भारतेन्दु ग्रंथावली

भारतेन्दु समग्र

सम्पादन : हेमन्त शर्मा

सभी खण्ड और अनेक अलभ्य
सामग्री एक जिल्द में

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो. बॉ. ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१

भारतेन्दु ग्रंथावली

भारतेन्दु समग्र

सम्पादन : हेमन्त शर्मा

सभी खण्ड और अनेक अलभ्य
सामग्री एक जिल्द में

पो. बॉ. ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१

प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो. बॉ. ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ के लिए विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा रत्ना ऑफसेट, सी-१०१, डी. डी. ए. शैड, इन्डस्ट्रियल एरिया, ओखला फेज़ I, नई दिल्ली-११००२० में मुद्रित ।

१९८७

मूल्य: Rs. 40/
परिवहन व्यय: १०.००

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना — १

भारतेन्दु समग्र
BHARTENDU SAMAGRA

Collected works of Bhartendu Harishchandra,
Edited by Hemant Sharma

प्रकाशकीय,

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु का रचना संसार जितना विराट है, उतना ही क्रान्तिकारी और बहुआयामी भी। उनकी प्रतिभा ने साहित्य की किसी विधा को अछूता नहीं छोड़ा। उन्होंने अपने संक्षिप्त जीवन में वह सब कुछ कर डाला, जिसके करने की सामर्थ्य व्यक्ति क्या संस्थाओं में भी आज दिखाई नहीं पड़ती।

ऐसे युग पुरुष के कर्तृत्व की समग्रता को एक जिल्द में समेट कर अत्यल्प मूल्य में देने का संकल्प भारतेन्दु पुण्यशती वर्ष में हमने किया था। प्रस्तुत ग्रंथ उसी संकल्प का परिणाम है।

इसी क्रम में हम शरत्, बंकिम, देवकी नंदन खत्री, प्रसाद, प्रेमचन्द आदि की ग्रंथावलियाँ भी प्रकाशित करेंगे और इतनी कम कीमत पर ग्राहकों को उपलब्ध करायेंगे कि पुस्तकों का मूल्य आम आदमियों की जेब के बाहर होने की आम शिकायत समाप्त हो जायेगी।

यह सारस्वत अनुष्ठान तभी पूरा होगा जब आपका सक्रिय सहयोग हमें मिलेगा।

प्रकाशक

विषय-सूची

पहला खण्ड
(काव्य)

दूसरा खण्ड

(नाटक)

तीसरा खण्ड

(गद्य)

भारतेन्दु को पढ़ने के बाद

भारतेन्दु अपने वक्त की बेमिसाल अभिव्यक्ति थे । शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा रचनाकार हो जिसने अपने युग की चेतना को इतनी सशक्त वाणी दी हो । भारतेन्दु का व्यक्तित्व लगभग उस सूरज जैसा है, जो शीत से ठिठुरते कुहरे भरे भोर में तह पर तह ढके बादलों को चीरता हुआ निकलता है, जिससे धरती अपना अंधेरा भी पोछती है और अपना बदन भी सेकती है । जिससे हजारों धरती पुत्र उस जान लेवा शीत से जूझने और अंधेरे से लड़ने के लिए कमर कसने में समर्थ होते हैं ।

भारतेन्दु के आविर्भाव के समय देश का राजनीतिक क्षितिज कुछ ऐसा ही था । आर्थिक धुंधलका और सामाजिक रुढ़िअंधता की छटपटाहट का परिणाम था भारतेन्दु और उनका प्रभा मंडल, जिसने उस व्यग्रता को वाणी दी थी, तत्कालीन राजनीतिक समझ और राजनीतिक चेतना को स्वर दिया था और जातीय स्तर पर घर कर गये पराधीनता बोध को झकझोरा था ।

भारतेन्दु ने अपने ७ वर्षों की मासूम आँखों से भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम देखा था और अपनी उन्हीं आंखों से उसका कातिलाना दमन भी देखा था । कम्पनी बहादुर के जालिमाने राज्य की समाप्ति और महारानी विक्टोरिया के मधुर आश्वासनों तथा लुभावने सपनों से भरे घोषणा पत्र को भी सुना था । एक ओर जुल्म सितम का अन्त और दूसरी और सुखचैन की बहाली । इतना जुल्म की जान ब्राइट को भी इस काल को "ए हंड्रेड यीअर्स आफ क्राइम" कहना पड़ा । इसी अनाचार युग के सम्बन्ध में सरजार्ज कार्नवस लीविस ने हाउस आफ कामन्स में १२ फरवरी १८५८ को कहा था, "मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि धरती पर आजतक कोई भी सभ्य सरकार इतनी भ्रष्ट, इतनी विश्वासघाती और इतनी लुटेरी नहीं पाई गयी ।"

ऐसे शासन के अंत में भारतवासियों का सुख की सांस लेना और महारानी विक्टोरिया की सराहना करना स्वाभाविक था । परिणामतः भारतेन्दु के कवि दरबार में 'पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवौ सदा विक्टोरिया रानी ।' जैसी समस्याओं की पूर्तियां की गयीं । यातायात में रेलों की शुरुआत पर लिखा गया —

> धन्य सहबा जौन चलाइस रेल ।
> मानो जादू किहिस दिखाइस खेल ।

किन्तु शीघ्र ही यह सुख स्वप्न टूट गया । महारानी के आश्वासन कोरे वादे निकले । लोगों ने देखा कि रेले अकाल पीड़ितों को अन्न पहुंचाने के लिए नहीं वरन् बन्दरगाहों तक कच्चा माल ढोने के

लिए हैं । कच्चा माल इंग्लैंड जाने लगा । देश के उद्योग और शिल्प को नष्ट करने का षड़यंत्र आरम्भ हुआ । भारत को महज कृषि पर निर्भर रहने की विवशता के हाथों सौंप दिया गया जब कि १८४० में ही **माटगोमरी मार्टिन** संसदीय जांच समिति की रिपोर्ट इस खतरे की चेतावनी दे गयी थी —

> "मैं यह नहीं मानता कि भारत एक कृषि प्रधान देश है । भारत जितना कृषि प्रधान देश है, उतना उद्योग प्रधान भी है, और जो उसे कृषि प्रधान देश की स्थिति तक लाना चाहते हैं, वे सभ्यता के पैमाने पर उसका स्थान नीचे लाने की कोशिश करते हैं ।"

यह चेतावनी आजतक हमें झकझोरती है । हम आज तक अपने को कृषि प्रधान मानते हैं । आखिर क्या हुआ कि हमारी मान्यता में इतना परिवर्तन हो गया । . . . हमें मात्र कृषिकर्म पर निर्भर रहने के लिए छोड़ दिया गया । आकाशी कृपा पर जीवित रहने वाली खेती हमारा साथ न दे सकी । परिणामतः अकाल पर अकाल पड़े । महामारी के हम शिकार हुए ।

> "मौटे तौर पर कहा जाय तो १९वीं सदी के अन्तिम तीस वर्षों में अकेले खाद्यान्नों की जितनी कमी हुई, वह सौ वर्ष पहले की तुलना में चार गुना अधिक और चार गुना ज्यादा व्यापक थी ।" — **डब्लू. डिगबी** —प्रासपरस ब्रिटिश इंडिया १९०१ ।

डब्लू. एस. लिली ने अपनी पुस्तक "इंडिया ऐंड इट्स प्राबलम्स" में अकाल से होने वाली मौतों की संख्या —सन् १८५०-७५ के बीच ५० लाख तथा १८७५-१९०० के बीच १.५० करोड़ बतायी ।

मार्टिन संसदीय आयोग की रिपोर्ट के ४० वर्ष के भीतर ही यह परिवर्तन हो गया । सन् १८८० में प्रकाशित अकाल आयोग की रिपोर्ट के निष्कर्ष के सम्बन्ध में रजनी पामदत्त ने "इंडिया टूडे" में लिखा । —

> "१८८० में प्रकाशित आयोग की रिपोर्ट का निष्कर्ष यह था कि अकालों के विनाशकारी परिणामों का मुख्य कारण और राहत पहुंचाने के काम में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यहां की विशाल जनता प्रत्यक्षरूप से कृर्षि पर निर्भर है और कोई ऐसा उद्योग नहीं है, जिसके सहारे आबादी का उल्लेखनीय हिस्सा काम चला सके ।"

एक ओर देश दुर्भिक्ष और महामारी से जूझ रहा था और दूसरी ओर सरकार की विदेश नीति और साम्राज्यवादी दृष्टिकोण ने हमें और आर्थिक संकट में डाल दिया । ब्रिटिश राजदूत के अपमान के कारण भूटान को सबक सिखाया गया । उसकी चाय बगान लायक भूमि ले ली गयी । वर्मा के भी कुछ अंश को भारत में मिला लिया गया फिर भी वर्मा ने व्यापार की सुविधा नहीं दी, जबकि वर्मा,फ्रांस जर्मनी और इटली से व्यापार के सम्बंध में बातें आरम्भ कर चुका था । इस स्थिति का जायजा लेते हुए लार्ड डफरिन ने भारत सचिव को लिखा कि फ्रांसीसियों से बर्मियों की बात बने इसके पहले ही मैं बर्मा को हथियाने में संकोच न करुंगा । उधर रुसी भालू ने पंख फटकने का बहाना लेकर अफगानिस्तान से भी लडाई मोल ले ली ।

भीतर अकाल और महामारी । बाहर-युद्ध । इस सबका खर्च भारत पर ही थोपा गया ।

> " . . . कोई आश्चर्य नहीं कि शाही प्रशासन के शुरु में १३ वर्षों के दौरान भारतीय राजस्व में ३ करोड़ ३० लाख पौंड से ५ करोड़ २० लाख पौंड प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई और सन् १८६६ से १८७० तक घाटे के रूप में एक करोड़ १५

लाख पौण्ड की राशि दर्ज की गयी। १८५७ से १८६० के बीच घरेलू ऋण के रुप में ३ करोड़ पौंड की राशि अंकित की गयी और इसमें तेजी से वृद्धि हुई, जबकि ब्रिटिश राजनेताओं को मितव्ययिता के लिए भारतीय हिसाब-किताब में विवेकपूर्ण जोड़तोड़ के जरिए वित्तीय मामले में कुशल होने के लिए ख्याति मिली।'' (एल. एच. जेक्स —''दि माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपिटल'' पृष्ठ २२३)

परिणाम स्पष्ट था, टैक्स बढ़ता चला गया। अकाल के बावजूद लगान में बढ़ोत्तरी हुई। इसके विरोध में उठे स्वर का गला घोट देने के लिए सन् १८७८ में बर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट आया। दूसरी ओर सामाजिक स्थिति इससे भी विषम थी। धार्मिक असहिष्णुता और भी कठोर हो गयी। विदेश यात्रा करनो पर धर्म समुद्री पानी में नमक की पुतली की तरह गलने लगा। विधवा विवाह का वर्जन और बाल विवाह तथा बेमेल विवाह पारिवारिक संतुलन के लिए अभिशाप हो गया। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक मत-मतान्तरों का प्रचार और उनका खण्डन-मण्डन ही प्रधान हो गया।

इस विपत्ति और रुढ़िग्रस्त सामाजिक स्थिति के साथ ही भारतेन्दु जी की वैयक्तिक एवं पारिवारिक स्थिति पर भी एक नजर डाले बिना भारतेन्दु के मूल्यांकन के प्रति न्याय नहीं होगा।

भारतेन्दु जी उस सेठ अमीचन्द की पांचवी पीढ़ी में पैदा हुए थे, जिसने अपनी सम्पत्ति और बुद्धि का इस्तेमाल बंगाल में अंग्रेजों का पैर जमाने के लिए किया था। उसने देशद्रोह के पैसे से अपनी तिजोरियाँ भरी, किन्तु क्लाइव ऐसे धूर्त ने अंत में उन्हें निराश ही किया। फिर भी अंग्रेज भारतेन्दु के परिवार पर भरोसा करते थे। १८५७ के विद्रोह के समय बनारस रेजीडेंसी का बहुत सा सामान भारतेन्दु के पिता बाबू गोपाल चन्द्र के पास अंग्रेजों ने सुरक्षा की दृष्टि से रखा था। ऐसे में भारतेन्दु का परिवार अंग्रेजों का कृपापात्र भी था और विश्वासपात्र भी।

भारतेन्दु की विषम स्थिति थी, पारिवारिक स्तर पर वें ''क्राउन'' के विश्वास पात्र थे। परम वैष्णव कभी विश्वासघाती नहीं हो सकता। उनकी नैतिकता क्राउन के समक्ष नतमस्तक थी, पर वे देख रहे थे कि अंग्रेज देश के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। यह स्थिति भी उनके लिए पीड़ाजनक थीं! भारतेन्दु को दोनों परिस्थितियों से जूझना पड़ा। उनके सम्पूर्ण कर्तृत्व को सरकस के खिलाड़ी की तरह सन्तुलन की कसी हुई डोर पर चलना पड़ा। एक साथ ही वे राजभक्ति और देशभक्ति दोनों का निर्वाह करते दिखायी पड़ते हैं। एक ही छन्द की पहली पक्ति में वे ''क्राउन'' के वफादार दिखायी पड़ते हैं तो दूसरी पंक्ति में देश की आर्थिक स्थिति उन्हें सताती है।

अग्रेज राज सुख साज, सबै विधि भारी।
पै धन विदेश चलि जात, यहै है ख्वारी।

महारानी विक्टोरिया के पौत्र प्रिंस फ्रैडरिक के भारत आगमन पर जो कविता उन्होंने लिखी थी वह अंग्रेजों के प्रति वफादारी से सराबोर जरुर है, किन्तु राष्ट्र की पीड़ा और छटपटाहट की भी उसमें ध्वनि है।

''दृष्टि नृपति बलदल दली दीना भारतभूमि
लहि है आज अनंद अति तुव पद पंकज चूमि।
सांचहु भारत में बढ़यो अचरज सहित अनन्द
निरखत पश्चिम में उदित आजु अपूरब चन्द।
जैसे आतप तपित को छाया सुखद गुनात।
जवन राज के अन्त तुव आगम तिमि दरसात

समजिद लखि बिसनाथ दिंग परेहिए जो घाव ।
ता कहं मरहम सहस है तुव दरसन नरराव ।।

इतना होने पर भी इसी स्वागत गान में वह पुलिस और अदालत को नहीं भूले ।

पहरु नहि कोउ लखि परै, होम अदालत बन्द ।
ऐसी निरुपद्रव करौ, राजकुवंर सुख चन्द ।

उनकी राजभक्ति अंग्रेज और अंग्रेजियत का हर स्थिति में विरोध करती है ।

भीतर-भीतर सब रस चूसै, बाहर से तनमन धन मूसै ।
जाहिर बातन में अतितेज, क्यों सखि साजन, नहिं अंग्रेज ।

★ ★ ★ ★
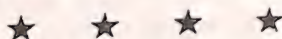
सब गुरुजन को बुरो बतावै, खिचड़ी अलग पकावै ।
भीतर तत्व न, झूठी तेजी, क्यों सखि सजिन नहि अंग्रेजी ।

अपने देश के अतीत पर उन्हें गर्व था । वे बड़े गौरव के साथ कहते हैं: —

सबसे पहले जेहि ईश्वर धन बल दीनों ।
सबसे पहले जेहि सभ्य विधाता कीनो ।।
सबसे पहले जो रुप रंग रस भीनो ।
सबसे पहले विद्या-फल जिन गहिलीनो ।।

इस स्वर्णित अतीत के बाद जब उनकी देश भक्ति वर्तमान को देखती है तो वह तिलमिला उठती है —

जो भारत जग में रहयो सबसे उत्तम देस
ताही भारत में रहयों अब नहि सुख को लेस ।

उनकी देशभक्ति असहाय और निरुपाय होकर भगवान के चरणों में चली जाती है —

सब विधि नासी भारत प्रजा, कहूं न रहयौं अवलम्ब अब
जागो-जागो करुनायतन फेर जागिहौ नाथ कब ?

(२)

चांदी के पालने में झूलने वाला भारतेन्दु का बचपन सामन्ती वातावरण में ही फूला फला था । कहते हैं कि उनके विवाह में कुंए में चीनी घोलकर बारात का स्वागत किया गया था । बारात तीन मील लम्बी थी । ऐसी सम्पन्नता और सामन्ती वृत्ति राष्ट्रीय चेतना को समझने में कहीं भी भारतेन्दु के आड़े नहीं आयी । वैभव की दीवारें उनकी समझ को घेर नहीं पायीं । आम आदमी से परिचित होने और देश दर्शन की लालसा उनकी बचपन से बनी रही । ग्यारह वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने देशाटन आरम्भ कर दिया था । चुनार, कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, हरिद्वार, अमृतसर, लाहौर, दिल्ली, आगरा आदि की उन्होंने आंखें खोलकर यात्राएँ की थी । जन जीवन को उन्होंने करीब से देखा था । उनके यात्रा वर्णनों में ऐसा हंसमुख और प्रसन्न गद्य दिखायी देता है जो उनके मस्त लेकिन

जागरुक व्यक्तित्व का परिचायक है । काशी नरेश के साथ वैद्यनाथ धाम की यात्रा की एक छवि देखिए: —

''श्रीकाशी नरेश के साथ वैद्यनाथ को चले । चारो ओर हरी घास का ऊपर रंग-रंग का बादल, बगसर के आगे बड़ा भारी मैदान पर सब्ज काशनी मखबल से चढ़ा हुआ । सांझ होने से बादल के छोटे-छोटे टुकड़े लाल पीले नीले बनारस कालेज की रंगीन शीशे की खिड़कियों के समान था . . . पटना पहुंचते पहुंचते पानी बरसने लगा बस पृथ्वी आकाश सब नीर ब्रहममय हो गये । इस धूमधाम में भी रेल कृष्णाभिसारिका-सी अपनी धुन में चली ही जाती थी । सच है, सावन की नदी और दृढ़ प्रतिज्ञ उपयोगी और जिनका मन प्रीतम के पास है वे कहीं रुकते हैं ? राह में बाजे पेड़ो में इतने जुगनू थे कि पेड़ शवेचिरागां बन रहे थे । . . . सेकेण्ड क्लास की गाड़ी ऐसी टूटी फूटी कि जैसी हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत । दानापुर से दो चार नीम अंग्रेज ''लेडी नहीं सिफ लैड'' मिले, उनको बेतकल्लुफ उसमें बैठा दिया था । सचमुच अब तो तपस्या करके गोरी कोख से जन्म लें तो संसार में सुख मिले । खैर इसी सात पांच में रात कट गयी । बादल के परदों को फाड़-फाड़ कर उषादेवी ने ताकझांक आरम्भ कर दी । परलोक गत सज्जनों की कीर्ति की भांति सूर्यनारायण का प्रकाश पिशून मेघों के बागाडम्बर से घिरा हुआ दिखलाई पड़ने लगा । प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ । ठंडी ठंडी हवा मन की काली को खिलाती हुई बहने लगी ।

मुझे तो लगता है कि कविता की अपेक्षा भारतेन्दु के गद्य में उनके व्यक्तित्व की रेखाएं अधिक उभरी है । उनकी सैलानी मस्त तबीयत तथा गहरी मानवता और प्रकृति प्रेम के साथ ही उनके फक्कड़ मिजाज का बनारसी अंदाज जितना गद्य में दिखायी देता है । उस सीमा तक कविता में नहीं ।

जनक़पुर की यात्रा के समय उनका साथ अंग्रेजों से हो गया । उस समय अंग्रेज हौवा समझे जाते थे, पर भारतेन्दु बाबू कब दबने वाले ? वे लिखते हैं ।

''राह में रेल पे कुछ कष्ट हुआ, क्योंकि सैकेंड क्लास में तीन चार अंग्रेज थे । बस इसमें अकेला, ''जिमि दसनन मह जीभ बिचारी,'' को कष्ट हुआ ही चाहे । जैसे उनको पान सुपारी की पचापच से नफरत वैसे ही, इधर चुरट के धूम से । मगर बाजे तो बड़े सभ्य और दिल्लगीबाज मिलते हैं । अब की बरसात में एक साहब सोये हुए थे, मैं भी था । रात में पानी की बौछार भीतर आयी । साहब ने जानबूझकर पूछा, ''यह पानी क्या आपने बहाया है । (पेशाब किया) (हैब यू मेड वाटर) मैंने कहा —मैंने नहीं भगवान ने (नाट आई बट गाड)

भारतेन्दु की जिन्दादिली और दिलफेंक मिजाज जैसा गद्य में उभरा है, वैसा पद्य में नहीं, सरयूपार की यात्रा का एक दिलचस्प वर्णन देखिए: —

''बाहरे बस्ती । अगर यही बस्ती है तो उजाड़ किसे कहेंगे । बैसवारे के पुरुष सब पुरुष, सब भीम, सब अर्जुन, सब सूत पौराणिक सब बाजिद अली शाह —नई सभ्यता अभी उधर नहीं आई है । रूप कुछ ऐसा नहीं, पर स्त्रियाँ नेत्र नचाने में बड़ी चतुर । यहां के पुरुषों की रसिकता, मोटीचाल, सूरती और खड़ी मोछ में छिपी है और स्त्रियों की रसिकता मैले वस्त्र और सूप ऐसे नथ में । मुझे उनके सब गीतों में —बोलो प्यारी सखियां सीताराम राम राम —यही अच्छा मालूम हुआ । बैलगाड़ी की डाक में बैठे सोचते थे कि काशी में रहते तो बहुत दिन हुए पर शिव आज ही हुए ।''

पत्र जीवन के अत्यन्त आत्मीय क्षणों की उपलब्धि होते हैं । भारतेन्दु का पत्र साहित्य भी उनकी आत्मीयता, सरलता निष्छलता और उनके मौजी स्वभाव को बड़े सहज भाव से उदघाटित करता है । अपने निकट मित्रों से लेकर भारतेन्दु जी ने देशी विदेशी अनेक विद्वानों को पत्र लिखें हैं । इनमें से कुछ ही अब उपलब्ध हैं ।

जिन लोगों को वे बहुधा लिखा करते थे उनमें हैं: —सर्वश्री गोस्वामी राधाचरण, प्रेमधन जी, कविराज श्यामलदास, काशिराज ईश्वरीप्रसाद सिंह, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजेन्द्रपाल मिश्र, केशवचन्द्र सेन, कृष्टोदास पाल, बंकिम बाबू आदि ।

भारतेन्दु ऐसा व्यक्ति तो अंध रुढ़ियों के खिलाफ खड़गहस्त था, परम्पराएं खुद उससें किस प्रकार चिपकी थी, यह कहानी इन पत्रों के ''श्रीनामों'' और इनमें व्यवहृत कागजों से स्पष्ट हो जाती हैं ।

ग्रह नक्षत्रों के अनुसार ही वह प्रतिदिन कागजों का व्यवहार करते थे रविवार को गुलाबी कागज पर लिखते थे और उसपर यह मुद्रित रहता था: —

भक्त कमल दिवाकराय नमः, सूर्यवंशविकासाय श्री रामायनमः
मित्र पत्र बिन हिय लहत छिनहूं नहि विश्राम ।
प्रफुलित होत कमल जिस नित रवि उदय ललाम ।।

सोमवार को ग्रह के अनुसार सफेद कागज व्यवहार में लाया जाता था उस पर छपा रहता था: —

श्री कृष्णचन्द्राय नमः, श्री चन्द्रचूडाय नमः
ससि कुल कैरव सोम जय कलानाथ द्विजराज ।
श्रीमुखचन्द्र चकोर, श्री कृष्ण चन्द्र महाराज ।
बंधुन के पत्रहि कहत अर्घ मिलन सब कोय ।
आपहु उत्तर भेजहु पूरौ मिलनौ होय ।।

मंगल ग्रह के अनुसार मंगलवार को लाल कागज पर वे लिखते थे । उस पर छपा रहता था: —

मंगलं भगवान विष्णु, मंगलं गुरुड़ध्वजः
मंगलं पुण्डरीकाक्षं, मंगलायतानों हरिः

बुधवार को कागज हरा होता था और उस पर छपा रहता था:

बुधजन दर्पणा में लखत दृष्टि वस्तु को मित्र ।
मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिम्ब विचित्र ।।

गुरुवार को हलके पीतवर्णी कागज पर यह शीर्षक रहता था ।

श्री गुरुगोविन्दाय नमः श्री गुरवे नमः
आशा अमृत पात्र प्रिय विरहातम हिय छत्र
बचन चित्र अवलंबप्रद कारज साधक पत्र ।

शुक्रवार का कागज फिर सफेद होता था और उस पर अंकित रहता था: —

कवि कीर्ति यशसे नमः

दूर रखत कर लेत आवरन हस्त रखि पास ।
जानत अन्तरभेद जिप पत्रअधिक रसराज ।।
उकदा कशाये हाले दिले दोस्तदार है ।
तकरीर की है सूरत हैरत में यार हैं ।।

शनिवार को जो कागज प्रयोग किया जाता था उसका रंग नीला होता था और उस पर छपा रहता था: —

आनंद कन्दाय नमः श्याम श्यामाम्यं नमः
और काज सनि लिखन में, होय न लेखनि मंद
मिले पत्र उत्तर अवसि, यह विनवत हरिचन्द्र ।

इन पत्रों में भारतेन्दु की संघर्ष शील मानसिकता, उनके निजी जीवन की उहापोहात्मकता और साहित्य निर्माण के प्रति उनकी व्यापक जिज्ञासा के परिचय मिलते हैं । कुछ पत्र तो उनके इतने आत्मीय है कि वे उनकी संक्षिप्त आत्मकथा ही बन गये हैं । ऐसाही एक पत्र उन्होंने अपने अनुज गोकुल चन्द्र को लिखा था ।

भारतेन्दु के ही अनुसार इस अंतरंग पत्र को लिखने में उन्हें चार दिन लग गये थे । पेन्सिल से लिखे इस पत्र को उन्होंने कलेजा फाड़कर लिखा । पूरा पत्र उपलब्ध नहीं है । समय की धूल से दबते-दबते लिखावट भी मद्धिम हो गयी है । इसकी कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं: —

. . . विदेश से लौटकर हम न आवें तो इस बात का जो हम लिखते हैं ध्यान रखना । ध्यान क्या अपने पर फर्ज समझना । पर हम जीते-जागते फिरेंगे चिन्ता न करना केवल संयोग के बश होकर यह लिखा है । यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना । यह तुम जानते हों कि तुम्हारी भाभी की हमें कुछ चिंता नहीं, क्योंकि तुम्हारे जैसा देवर जिनका वर्तमान है उसको और क्या चाहिए । दो बात की हमकों चिन्ता है । एक कर्ज, दूसरी मल्लिका की रक्षा । थोड़ी सी डिगरी जो बच गयी है, उसे चुका देना और जीवन भर दीन हीन मल्लिका की जिसको हमने धर्मपूर्वक अपनाया है रक्षा करना । कृष्ण की ऊंची शिक्षा संस्कृति, अंग्रेजी और बंगला की है । जो हमारे या बाबू जी के ग्रंथ बेछपे रह जायें वे छापें ।''

भारतेन्दु जी का यह पत्र उनकी वसीयत है, उनकी व्यथा कथा है, मल्लिका के प्रति उनके लगाव और आत्मीयता की स्वीकारोक्ति है, संस्कृत-अंग्रेजी के साथ बंगला के प्रति उनके प्रेम का भी दयोतक है ।

एक दूसरा पत्र उन्होंने अपने भतीजे कृष्णचन्द्र को लिखा था । पुत्र के अभाव में यह भतीजा ही उनका सबकुछ था । सारी आत्मीयता एवं हार्दिकता उन्होंने इसमें उड़ेल दी है ।

''चिरंजीव कृष्ण, प्यारे कृष्ण राजा कृष्ण, बाबू कृष्ण, आंखों की पुतली तुम्हारा जी कैसा है । सर्दी मत खाना रसोई रोज खाते रहना । तुमकों छोड़कर यदि हमारा अख्तियार होता तो क्षण भर बाहर नहीं आते, क्या करें लाचारी है, झक मारते हैं । कृष्ण तुम्हारा अभी कोमल स्वच्छ चित्त है । तुम हमारे चित्त को ध्यान से जान सकते, किन्तु बुद्दि और वाणी अभी स्फुर्तित नहीं है । इससे तुम और किसी पर उसे प्रकट नहीं कर सकते हों ।''

जो पत्र उन्होंने अपने मित्रों और विद्वानों को लिखें हैं, उनमें उनके विद्या व्यसनीस्वभाव की झलक मिलती है । अपने लेखन के लिए सामग्री जुटाने की प्रयत्नशीलता के साथ साथ उनकी जिज्ञासुवृत्ति भी इन पत्रों में दिखाई देती है ।

वे महाप्रभु श्री चैतन्य देव के जीवन परं एक नाटक लिखना चाहते थे शायद लिखा भी हो । पर

उसकी पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है । . . . महाप्रभु के जीवन के प्रति कुछ जिज्ञासाएं इस पत्र में की गयी हैं । पत्र गोस्वामी राधाचरण को लिखा गया था ।

''पूज्य चरणेषु,

श्री रुप सनातन गोस्वामी जी की जाति क्या थी ? श्री महाप्रभु का जीवन चरित्र बंगला से हिन्दी किया है । उसमें यवन लिखा है । मैंने कायस्थ सुना है । हमारे निज सम्प्रदाय के ग्रंथों में भी कायस्थ लिखा है । इसका उत्तर अतिशीघ्र दीजिए । श्री शचिदेवी और विष्णुप्रिया कब तक जीवित रहीं यह भी लिखिएगा ।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

इस सन्दर्भ में एक दूसरा पत्र और है ।

शतकोटि दण्डवत प्रणामानंतर निवेदयति, बाबू राजेन्द्रपाल मित्र ने एक प्रवन्ध में इस बात का खंडन किया है कि महाप्रभु जी मध्वयतावलंबी थे । इनमें प्रमाण उन्होंने यह दिया है कि यत् श्रीधर विरुद्ध तन्नास्माकमादणीयं । कहते हैं कि मध्व मत के ग्रंथ ही श्रीधर के विरुद्ध हैं । इसका क्या उत्तर है ? वैष्णवदीक्षा आपने कब और किससे लिया था ? मैं इन दिनों महाप्रभु के चरित्र का नाटक लिखता हूँ, इसी के लिए इन बातों के जानने की जल्दी है ।''

यह पत्र वस्तुत: भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व की आड़ी तिरछी रेखाओं में रंग भरते हैं । उनका बहुआयामी रचनाकार उन पत्रों में दिखायी पड़ता है ।

(४)

उनका अध्ययन केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं था । समाज को बहुत दूर तक देखने की उनमें ललक थी । इसी का परिणाम थी वे यात्राएं जिन्हें उन्होंने रेल के सेकेण्ड क्लास से लेकर बैलगाड़ी तक से की थी । (फर्स्ट क्लास का टिकट उन दिनों राजाओं नवाबों और अंग्रेजों के लिए ही रिजर्व रहता था) ।।

बैलगाड़ी की यात्रा में खाये हिचकोरे उन्हें बहुत दिनों तक याद रहे । उन्होंने लिखा था: —

हिलत डुलत चलत गाड़ी आवै,
झुलत सिर टुटत रीढ़ कमर झौका खावै ।

इन यात्राओं का परिणाम यह था कि उनकी अभिजात्य रुचि लोकरुचि की ओर आकृष्टि हुई । वे मूलत: कवि थे । उनका कवि कभी यह मानने को तैयार नहीं था कि ब्रजभाषा के अतिरिक्त भी किसी और भाषा में कविता हो सकती है । उनकी काव्य प्रतिभा प्राचीन परम्परा में आकण्ठमग्न थी । कहीं वह सूर के स्वर में स्वर मिलाकर गाती थी: —

उधौ जो अनेक मन होते ।
तो इक श्याम सुन्दर कौ देते, इक लै जोग संजोते ?
हंया तो हुतौ एक ही मन सो, हरि लै गये चुराई
हरी चन्द कोऊ और खोजि कै, जोग सिखावहु जाई ।

★ ★ ★

सखी यह नैना बहुत बुरे ।
तब सो भय पराए हरि सों जब सों जाई जुरे ।।
मोहन के रस बस है डोलत तलफत तनिक दुरे ।
मेरी सीख प्रीत सब छांड़ी ऐसे ये निगुरे ।।
जग खीझयों बरज्यों पै ए नहि हठ सों तनिक मुरे ।
''हरिश्चन्द्र देखत कमलन से विष के बुते छुरे ।।

कहीं रसखानि जैसा ब्रजभूमि के प्रति आकर्षण है, मोह है, लगाव है । छन्द भले ही दूसरा हो पर भावव्यक्ति वैसी ही है: —

ब्रज की लता पता मोहि कीजै ।
गोपी पद पंकज पावन की रस जामैं सिर भीजै ।।
आवत जातकुंज की गलियन रुप सुधा नित पीजै ।
श्री राधे-राधे मुख यह बर हरीश्चन्द्र को दीजै ।।

कहीं एक समर्पित पुष्टिमार्गी की तरह —''पोषणै तदनुग्रह'' में विश्वास करते हुए भारतेन्दु भगवान की लीला में प्रवेश पाते हैं । वहां अहंकार उनसे छूट जाता है और रह जाती है दीनता ।

श्री बल्लभ बल्लभ कहौ, छोड़ उपाय अनेक ।
जानि आपनो राखि है, दीनबन्धु को टेक ।
साधन छांडि अनेक विधि, परिहु द्वारे आये ।
आपनो जानि निबाहि हैं, करिकै कोऊ उपाय ।
श्री जमुना जलपान करु, वसु वृन्दावन धाम ।
मुख में महाप्रसाद रखूं, लै श्री वल्लभ नाम ।
वृजरज में लोटत रहा, छाड़ि सकल जंजाल ।
चरन राखि विश्वास दृढ भजु राधा गोपाल ।

कहीं धनानन्द के प्रेम की टीस और छटपटाहट भारतेन्दु की अपनी हुई दिखाई देती है । वियोगजन्य पीड़ा और तड़फती वेदना ऐसी जो सही नहीं जाती । प्रेमिका के दर्शन की लालसा मात्र स्वप्न रह जाती है ।

काले परे कोस चलि थक गये पाय
सुख के कसाले परे, ताले परे नस के ।
रोय-रोय नैनन में हाले परे, जाले परे
मदन के पाले परे प्राण पर-बस के ।
''हरिश्चन्द्र'' अंगहू हवाले परे रोगन के
सोगन के भाले परे तन बल खसके ।
पगन में छाले पर नाँघिबे को नाले परे,
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के ।

★ ★ ★

इन दुखियान को न चैन सपनेहु मिल्यौ,
तासों सदा व्याकुल विकल अकुलायेगी ।
प्यारे हरिश्चन्द्र जू की बीती जानि औध प्राण,
चाहत चले पै ये तो संग ना समायगी ।

देख्यों एक बारहु न मैन भरि तोहि यातें
जौन-जौन ज्यैहों ताहां पछतायेगी ।
बिना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय
मरेहू पै आंखे ये खुली ही रह जायेंगी ।

(५)

रीतिबद्ध काव्य रचना को छोड़कर मध्ययुगीन सभी काव्य प्रवृतियों को अपनी रचना प्रक्रिया में समेटते हुए भी भारतेन्दु की उन्मुक्त प्रकृति उस कविता संसार से भाग निकलना चाहती थी, क्योंकि ऐसी काव्य परम्परा की पप्पड़ छोड़ती दीवारें उनकी काव्य प्रतिभा को लोक साहित्य और लोक गीत के खुले वातावरण में जाने से रोकने में सर्वथा असमर्थ थीं । दूसरी ओर उनकी मानसिकता जन जीवन से अलग थलग पड़े साहित्य को जनता से जोड़ना चाहती थी । वह जंगल में उगे कैक्टस को लाकर साहित्य के ड्राइंग रूम को सजाना चाहते थे । ज्यादा सही यह कहना होगा कि साहित्य के ड्राइंग रुम को वे विलास भवन से निकालकर गांव गिराव की उस खुरदुरी धरती पर लाना चाहते थे जहां लोक रस की धारा स्वत: प्रवाहित होती है । इसके लिए उन्होंने मई १८७९ ई. की कविवचन सुधा में एक लम्बी विज्ञप्ति प्रकाशित करायी थी । शिवनन्दन सहाय कृत भारतेन्दु के जीवन चरित्र से यहां उसका कुछ अंश उदधृत किया जा रहा है ।

''भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय होने की आवश्यकता है । इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किन्तु वे जन साधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते । इसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बने और वे सारे देश गांव गांव में साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्राम गीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है, उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता । इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है । इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे गीतों का संग्रह करुं और उसको छोटी-छोटी पुस्तक में मुद्रित करुं ।''

इस विज्ञप्ति से साफ जाहिर है कि अच्छा से अच्छा साहित्य जो जन साधारण में दृष्टिगोचर नहीं होता, देश के लिए सम्प्रति बेकार है । आम आदमी को छूने वाला साहित्य लिखा जाना चाहिए । लिखना ही पर्याप्त नहीं है, उसका प्रचार भी होना चाहिए ।

भारतेन्दु सुदृढ़ और प्रौढ़ साहित्यिक परम्परा से जुड़े व्यक्ति थे । संगीत का अभिजात्य शास्त्रीय स्तर उनकी रुचि में रचा बसा था । फिर भी उन्होंने लोक साहित्य की शक्ति और उसकी अनिवार्यता को पहचाना ।

उन्होंने ''पक्के गाने'' सुनने वालों को सलाह दी कि वे लोक धुनों में भी रस लें । उनमें लोक साहित्य को जन जागरण का माध्यम बनाने की व्यग्रता दिखायी दी । उन्होंने इस साहित्य के प्रचार एवं प्रसार के सम्बन्ध में लिखा है —

''जिन लोगों का ग्रामीणों में सम्बन्ध है, वे गांव में ऐसी पुस्तक भेज दें । जहां कहीं ऐसे गीत सुने उसका अभिनन्दन करें । इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छन्दों में और साधारण भाषा में बने, वरंच गंवारी भाषा में और स्त्रियों की

भाषा में विशेष हों । कजली, ठुमरी, खेमका, कहरवा, अद्धा, चैती, होली, सांझी, लम्बे लावनी, जाँते के गीत, विरहा, चनैनी, गजल इत्यादि ग्राम गीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो-अर्थात पंजाब में पंजाबी, बुन्देलखण्ड में बुन्देल खंड़ी, बिहार में बिहारी-ऐसे देशों में जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें ।''

इस प्रकार जन साहित्य के लेखन के लिए भारतेन्दु अपने युग के लेखकों को ही नहीं प्रोत्साहित करते, वरन् आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी एक नया आयाम खोलते हैं । पाठकों की तलाश के लिए भी वे व्यग्र मालूम होते हैं । वे लोक गायकों की बोली ही बनाने के लिए व्याकुल नहीं दिखायी देते । वरन् श्रोताओं की तैयारी की भी चेष्टा करते हैं । उन्हें खुद ऐसा भान हो गया था कि जो हमारी साहित्यिक परम्परा है, वह दमतोड़ रही है । वह आम आदमी के लिए निर्रथक हो जा रही है । इसलिए साहित्य को जनता में जाना चाहिए । क्या ऐसा हो सकेगा ? या जनता के बीच लहरा रही जन साहित्य की धारा में से नयी ऊर्जा के साथ नयी साहित्यक परम्परा का जन्म होना चाहिए ।

एक सूखता हुआ वृक्ष किसी नये बृक्ष को जन्म नहीं दे सकता । नये स्वस्थ वृक्ष के लिए आवश्यक है कि उसका शोधित बीज धरती में डाला जाये । धरती में ही उस बीज को बृक्ष बनाने की ताकत होती है । इस सत्य को भारतेन्दु ने अच्छी तरह पहचाना था । एक मरी हुई साहित्यिक परम्परा के नये बीज को शोधित भी किया उसे धरती में बोकर उगाया भी उसके अनुकूल नयी भाषा भी दी ।

परिणामत: भारतेन्दु और भारतेन्दु मंडल के सभी लोगों ने लोक साहित्य की रचना आरम्भ की । जीवन से अधिक जुड़े होने के कारण लोक साहित्य में लोक समस्याओं की धारदार अभिव्यक्ति स्वाभाविक है ।

यही कारण है कि उस युग की सभी समस्याएं लोकगीतों का विषय बनीं । सामाजिक अन्धरुढ़ियों से लेकर राजनीतिक कुस्थितियों तक पर इनके माध्यम से निर्मम प्रहार किये गये । 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित यह होली काफी मशहूर है: —

डफ बाज्यो भारत भिखारी को ।
केशर रंग गुलाल भूलि गयो,
कोऊ पूछत नहिं पिचकारी को ।
बिन धन अन्न लोग सब व्याकुल ।
भई कठिन विपत नर नारी को ।
चहुं दिसि काल परसो भारत में
भय उपन्यो महामारी को ।

एक होली स्वयं भारतेन्दु की देखिए । एक ओर साम्राज्यबाद का वैभव और विलास में डूबा रुप है, तो दूसरी ओर निरीह जनता की बरबादी का चित्र है ।

भारत में मची है होरी ।
इक ओर भाग-अभाग एक दिसि, होय रही झकझोरी ।
अपनी अपनी जय सब चाहत, होड़ परी दुहं ओरी ।
दुन्द सखि बहुत बढ़ोरी ।।
धूर उड़त सोई अबिर उड़ावत, सबको नयन मरोरी ।
दीन दसा अंसुवन पिचकारिन सब खिलार भिजयो री ।।
भींजि रहे भूमि लटोरी ।

भारतेन्दु जी ने केवल लोकगीतों की रचना ही नहीं किी, लावानी बाजों के बीच बैठकर वे गाते भी थे । इससे लोगों का आकर्षण बढ़ा और लोक-साहित्य को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई ।

(६)

काव्य भाषा के लिए ब्रजभाषा का चमत्कार भारतेन्दु काल तक और उसके बाद भी हिन्दी रचनाकारों पर छाया था । भारतेन्दु ने खड़ी बोली में नई चाल की रचनाएं तो लिखी थी, पर उन्हें खड़ी बोली में काव्य रचना की सफलता पर खुद विश्वास नहीं था । इसके लिए लगता है, उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिला ।

भारत मित्र में प्रकाशनार्थ उन्होंने खड़ी बोली की अपनी कुछ रचनाएं भेजी थी । सितम्बर सन् १८८१ के भारत मित्र के अंक में वे छपीं थी । साथ में उनका यह पत्र भी छपा कि ''प्रचलित साधु भाषा में कुछ कविता भेजी है । देखिएगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के आलम्बन करने से इसमें काव्य सौन्दर्य बन सकता है । इस सम्बन्ध में सर्व साधारण की सम्मति ज्ञात होने से आगे से वैसा परिश्रम किया जायेगा ।''

इस मन्तव्य से स्पष्ट है कि वह कविता के लिए साधुभाषा और जन भाषा के हिमायती थे । इस जन भाषा के लिए वे प्रयत्न करने के लिए भी तैयार थे, जब कि कविता के लिए उन्हें किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता था । वे आशुकवि थे । जब मौज आयी, कविता हो गयी । घनानंद की यह उक्ति कि लोग हैं लाग कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत ।'' —भारतेन्दु पर बिल्कुल चरितार्थ होती है । . . . भारतेन्दु का निर्माण ही भारतेन्दु की कविता कर रही थी । . . . ऐसा व्यक्ति भी साधुभाषा में रचना के लिए व्यग्र था ।

वस्तुतः भाषा के मामले में भारतेन्दु की अवधारणा काफी साफ थी । वे निज भाषा के विकास के हिमायती थे । उनका नारा था —

निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ।।

उनकी ''निजभाषा'' केवल हिन्दी नहीं थी । वह बंगालियों के लिए बंगला, मराठियों के लिए मराठी, पंजाबियों के लिए पंजाबी थी तो दूसरे के लिए दूसरी थी । भाषा संन्दर्भ में उनका दिमाग बहुत साफ था: —

प्रचलित करहु अहान में,निज भाषा करिजत्न ।
राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ।

★ ★ ★

भाषा सोधहु आपनी, होई सबै एकत्र ।
पढ़तु पढ़ावहु लिखहु मिलि, छपवावहु कछु पत्र ।

सभी भाषा की उन्नति चाहते हुए भी वे उर्दू के कुछ खिलाफ लगते हैं । इसके दो मुख्य कारण एक तो भाषाई संदर्भ में उनके परम विरोधी शिवप्रसाद ''सितारे हिन्द'' का उर्दू के प्रति लगाव उनका व्यक्तिगत विरोध उर्दू के दुराव का कारण बना । दूसरे उर्दू भाषी लोगों की साम्प्रदायिकता भी उन्हें उर्दू से दूर खींच ले गयी । यद्यपि वे स्वयं उर्दू में कविताएं लिखते थे । उनका उपनाम ''रसा''

था । इन उर्दू रचनाओं में भी उनकी हार्दिकता और गम्भीरता किस हद तक थी, इसका एक ही उदाहरण काफी है ।

तेरी रहमत का उम्मीदवार आया हूं,
सर ढाये कफन से शर्मसार आया हूं
आने न दिया बारे गुनह ने पैदल,
ताबूत में कांधे पर सवार आया हूं ।

उर्दू के प्रति इतना व्यक्तिगत लगाव होने के बाद भी वह उर्दू की मौत पर स्यापा पढ़ते हैं । अरबी, फारसी, पश्तो, पंजाबी आदि कई भाषाएं उर्दू को रो रही हैं: —

है है उर्दू हाय-हाय । कहां सिधारी हाय-हाय ।।
मेरी प्यारी हाय-हाय । मुंशी मुल्ला हाय-हाय ।।
वल्ला विल्ला हाय-हाय । रोयें पीरे हाय-हाय ।।
डाढ़ी नोचे हाय-हाय । दुनिया उल्टी हाय-हाय ।।
रोजी बिल्टी हाय-हाय । सब मुखतारी हाय-हाय ।।
किसने मारी हाय-हाय । खबरनसीबी हाय-हाय ।।
दांत पीसी हाय-हाय । एडिटर पौसी हाय-हाय ।।
बात फरोशी हाय-हाय । वह लस्सानी हाय-हाय ।।
चरब जवानी हाय-हाय । शोख बयानी हाय-हाय ।।
फिर नहीं आनी हाय-हाय ।।

भारतेन्दु उर्दू वालों की साम्प्रदायिकता से बेहद दुखी थे । वे इसे देश हित के विरुद्ध समझते थे । उन्होंने मुसलमान भाइयों को सलाह दी थी: —

''मुसलमान भाइयों को भी उचित है कि इस हिन्दुस्तान में बसकर वे लोग हिन्दुओं को नीचा समझना छोड़ दें । ठीक भाइयों की भाँति हिन्दुओं से बरताव करें, ऐसी बात जो हिन्दुओं का जी दुखाने वाली हो, न करें । घर में आग लगे तब जिठानी-दयोरानी को आपस में डाह छोड़कर वह आग बुझानी चाहिए । जो बात हिन्दुओं को नहीं मयस्सर है कर्म के प्रभाव से मुसलमानों का सहज प्राप्त है । उनमें जाति नहीं, खाने पीने में चौका चूल्हा नहीं, विलायत जाने में रोक टोक नहीं । फिर भी बड़े सोच की बात है कि मुसलमानों ने अभी तक अपनी दशा नहीं सुधारी । अभी तक बहुतों को यहीं ज्ञात है कि दिल्ली लखनऊ की बादशाहत कायम है । यारों वे दिन गये । अब आलस हठधर्मी यह सब छोड़ो । चलों हिन्दुओं के साथ तुम भी दौड़ोगे । एक-एक दो होंगे । पुरानी बातें दूर करों । . . . अपने लड़कों को . . . अच्छी से अच्छी तालीम दो । पिनशिन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो । लड़कों को रोजगार सिखलाओं । विलायत भेजो । छोटेपन से मेहनत करने की आदत दिलाओं । सौ महलों के लाड़प्यार, दुनिया से बेखबर रहने की राह मत दिखलाओ ।''

इतना होने पर भी वे हिन्दू मुस्लिम का रिश्ता ''दयोरानी जेठानी का ही मानते थे । वे हिन्दु मुसलमानों को आपस में लड़ाने की अग्रेजों की नीति को अच्छी तरह समझते थे । अन्त तक वे जातीय एकता के लिए प्रयत्नशील रहे । इस जातिय एकता की भावना का आधार उनकी व्यापक राष्ट्रीयता थी, जो सर्वधर्म सम भाव पर आधृत थी । किसी भी धर्म की अच्छाई को वे नजरअंदाज नहीं करते थे । उन्होंने कुरान का भी हिन्दी में अनुवाद किया था । उनकी धार्मिक सहिष्णुता कबीर, दादू, नानक रैदास आदि को भी परम वैष्णव मानती थी ।

वस्तुत: साहित्य साधना से अधिक समाज हित साधना की ओर उनका ध्यान था । उनकी अधिकाशं साहित्य साधना समाजहितसाधना का माध्यम बनी । उनके लेखन का मुश्किल से दस प्रतिशत स्वयं सुखाय होगा, शेष तो देशजन हिताय था । उनकी यही प्रकृति उनके नाटकों के निर्माण के मूल में थी । सामाजिक कुरीतियों और पश्चिमी सभ्यता की भौड़ी नकल करने वाले उनके नाटकों के विषय बनें । उन्होंने विधवा विवाह के समर्थन, बेमेल विवाह का विरोध, मांस खाने के निषेध आदि पर नाटक लिखे । जिनमें नई रोशनी के बाबुओं की मिट्टी पलीद की, पोगां पंथियों की भद्द उड़ायी ।

नाटक एक ऐसी विधा है जिसमें सभी ललित कलाओं का समावेश हो जाता है, इसीलिए उसमें मनोरंजकता और सभी सामाजिक संदर्भो को छूने की ताकत अधिक होती है । दूसरे नाटक के माध्यम से हम अतीत को वर्तमान में देखते हैं । हम देखते हैं कि हरिश्चंद्र शैव्या से कफन मांग रहे हैं । अतीत की गौरवगाथा का प्रत्यक्ष दर्शन कराने और वर्तमान की उद्पीड़क स्थिति पर उत्तेजना पैदा कराने के लिए नाटक से बढ़कर साहित्य की कोई दूसरी विधा नहीं है । इसलिए एक ओर उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से बीते गौरव को दिखा एक मरी हुई जाति में प्राण फूंका और दूसरी ओर ''भारतदुर्दशा की तस्वीर दिखाकर कुछ करने की प्रेरणा दी ।

और वह भी ऐसे समय में जब लोगों को मालूम ही नहीं था कि नाटक किसे कहते हैं । सत्य हरिश्चंद्र नाटक में वे लिखते हैं कि ''यहां के लोग यह नहीं जानते कि नाटक किस चिड़िया का नाम है ।'' इसी से उन्होंने यह बताना आवश्यक समझा कि हमारे यहां कैसे-कैसे नाटक थे । उनके इस प्रयत्न ने संस्कृत और प्राकृत के अच्छे नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया । मुद्राराक्षस, रत्नावली, धनंजय विजय,पाखण्ड विडम्बन संस्कृत से और कर्पूर मंजरी प्राकृत से अनूदित किये गये । दुर्लभबन्धु के नाम से सेक्सपीयर के ''मर्चेन्ट आफ बेनिस'' का रुपान्तरण उन्होंने प्रस्तुत किया । यतीन्द्रमोहन ठाकुर के नाटक के आधार पर ''विद्यासुन्दर'' और भारत माता के आधार पर ''भारतजननी'' नाटक लिखा ।

अनेक मौलिक नाटकों के बाद अनुवाद की ओर उनका झुकाव मात्र इसलिए था कि वे हिन्दी के नाटकों के लिए व्यग्र दीखते है उतने ही हिन्दी में नाटकों के लिए लगते है । यहीं कारण है कि वे अपने समय के सभी हिन्दी लेखकों को मौलिक नाटक लेखन के साथ-साथ अनुवाद के लिए भी प्रोत्साहित करते रहे थे । बाबू कृष्णादास, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र बाबू कृष्णवर्मा, पण्डित बालकृष्ण भट्ट पण्डित बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमधन' आदि ने मौलिक नाटकों के साथ अनूदित नाटक भी प्रस्तुत किये ।

निश्चित रुप से नाटकों के निर्माण में भारतेन्दुबंगला से अधिक प्रभावित जान पड़ते थे । सोचना पड़ेगा कि उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक नीलदेवी पर क्या बंगला के ''नील दर्पण'' की छाया नहीं । मानसिकता वही है, विद्रोह की ललक वही है । इस नाटक में राजा सूर्यदेव से प्रत्यक्ष युद्ध करने में असमर्थ होने के कारण नबाब धोखे से राजा को बन्दी बनाता है । नबाब के प्रपंच से अभिज्ञ होते हुए भी सूर्य देव धर्म युद्ध करने का निर्णय लेता है । . . . किन्तु उसका धर्मयुद्ध निरर्थक होता । अंत में नील देवी छलछद्म से ही काम लेती है ।

इस नाटक का कथ्य है ''शठं प्रति शाठ्यं' कुर्यात ।'' नील दर्पण'' के नीलहा साहबों के अत्याचार से जागती जन चेतना का ही विग्रह है नीलदेवी । व्याकुल भारत माता की छटपटाहट का प्रयत्य है नीलदेवी ।

दस दृश्यों के इस गीति रुपक के आरंभ में भारतेन्दु लिखते हैं: —

''जब मुझे अंग्रेजी रमणी लोग भेद सिंचितकेश राशि, कृत्रम (त्रि) कुन्तल जूट मिथ्या रत्ना मरण और विविध वर्ण वसन से भूषित क्षीण कटिदेश कसे निजनिज पतिगण के साथ, प्रसन्न वदन इधर से उधर फर फर कल की पुतली की भांति फिरती हुई दिखायी पड़ती है तब इस देश की सीधी-सीधी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझकों स्मरण आती है और यहीं बात मेरे दुख का कारण होती है । इसमें यह शंका किसी को नहीं हो कि मैं स्वपन्न में भी यह इच्छा करता हूं कि इन गौरांगी युवती समूह की भांति हमारी कुल लक्ष्मीगण भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमें, किन्तु और बातों में जिस भांति अंग्रेजी स्त्रियों सावधान होती है . . . अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती है, उसमें सहायता देती हैं . . . उसी भांति हमारी गृह देवियां भी वर्तमान हीनावस्था को उल्लघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है ।''

''यही लालसा'' इस नाटक के बनावट और बुनावट के मूल में है । एक ओर आधुनिकता की भोड़ी नकल का तिरस्कार है और दूसरी ओर सदा से दबायी गयी पादाक्रांत भारतीय नारी अस्मिता के लिए सशक्त उद्‌बोधन ।

भारतेन्दु केवल एक नाटककार ही नहीं थे, अभिनेता भी थे । उनका रंगकर्मी उनके नाटककार से किसी प्रकार भी दुर्बल नहीं था । उन्होंने परसियन थियेटर के चकाचौंध से हिन्दी मंच को निकालकर उसे साहित्यिकता, सार्थकता और उपयोगिता प्रदान की और हिन्दी रंगमंच के संस्थापक होने का श्रेय प्राप्त किया ।

उन्हीं की प्रेरणा और प्रयत्न से सन् १९६८ में पण्डित शीतला प्रसाद त्रिपाठी लिखित नाटक जानकी मंगल बनारस थियेटर में खेला गया । रंगसज्जा से लेकर अभिनय तक में उनकी रुचि समान रुप में थी वे महिला पात्र का अभिनय करने से हिचिकते नहीं थे । महिला अभिनय करने के लिए एक दिन उन्होंने अपने पिताश्री से मूंछ मुड़ाने की अनुमति मांगी थी । पिता के जीवित रहते मूछें मुड़ाना हिन्दू शरीअत के खिलाफ था । इस रुढ़ि को तोड़ने की इच्छा जाहिर कर उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व ने अंध विश्वास की उस दीवार को ध्वस्त करना आरम्भ कर दिया था जिसने अपनी उपयोगिता खो दी थी ।

भारतेन्दु का नाम निराशा के समुद्र में आशा का टापू था । भारतेन्दु नाम था, गुजरती अंधेरी रात में भोर की एक ताजा किरण का । भारतेन्दु नाम था, राष्ट्र की सुप्त चेतना में नवीन स्पन्दन का । भारतेन्दु नाम था इस देश के नवजागरण का । वे भारत के नवजागरण के अग्रदूत हुए । राजाराम मोहन राय आचार्य केशवचंद्र सेन, स्वामी दयानंद ऐसे भारत के नव निर्माताओं से उनकी निकटता थी । वे इन सभी से प्रभावित होकर भी इनसे अलग थे । पौराणिक वाङ्मय और मूर्तिपूजा के विरोध के कारण वे स्वामी दयानंद के कट्टर विरोधी थे, पर अंध विश्वासों पर कुठाराघात करने और पश्चिमी ज्ञान की अच्छाई के सर्मथन और उनके समाज सुधारक दृष्टि के कारण वे उनके प्रशंसक भी । ईसाइयत परस्त होने के कारण वे केशवचन्द्र सेन की पंक्ति में भी बैठने को तैयार नहीं थे । स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन करवा कर उन्होंने स्वामी दयानंद और केशव चन्द्र सेन के प्रति अपनी धारणा को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है । इन महानुभावों की देश सेवा और समाज सुधार की भावना के वे मुक्त कंठ से प्रशंसक थे । स्व. राय कृष्ण दास जी ने एक साक्षात्कार के दौरान बताया था कि जब दयानंद जी पहले पहल बनारस आये थे तब इस नगर का कोई पोंगा पण्डित उनकी अगुआई करने स्टेशन पर नहीं गया था । यदि गये थे तो केवल दो सज्जन एक वे स्वयं और दूसरे स्व. डा. भगवान दास जी के पूज्य पिताश्री माधवदास जी ।

वे परम वैष्णव थे, पर वैष्णवता की व्याख्या उन्होंने धार्मिक कूप मंडूकता से बाहर निकल कर की थी । वे यथार्थ की धरती पर थे, "जब पेट भर खाने को ही नहीं मिलेगा, तबधर्म कहाँ बाकी रहेगा ? उनकी आंकाक्षा थी —

> "शैव, शाक्त, सिक्ख, जो हो, सबसे मिलो । उपासना एक हृदय की रत्न वस्तु है । उसके कार्य क्षेत्र में फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं । वैष्णव शैव ब्राहमण, आर्य समाजी, सब अलग-अलग पतली डोरी हो रहे हैं । इसी से ऐश्वर्यरुपी मस्त हाथी उनसे नहीं बंधता । इन सब डोरियों को एक में बांधकर मोटा रस्सा बनाओ, तब यह हाथी दिगदिगन्त भागने से रुकेगा । अर्थात अब वह काल नहीं है कि हम लोग भिन्न-भिन्न अपनी खिचड़ी अलग पकाया करें । अब महाघोर कालिकाल उपस्थिति हैं । चारों ओर आग लगी हुई है । दरिद्रता के मारे देश जला जाता है । . . . सब लोग एकत्र हो । हिन्दू नामधारी वेद से लेकर तंत्र वरंच भाषा ग्रंथ मानने वाले तक सब एक होकर अब अपना परमधर्म यह रक्खों कि आर्य जाति में एका हो । इसी में धर्म की रक्षा है । भीतर तुम्हारे चाहे जो भाव और जैसी उपासना हो, ऊपर से सब आर्य मात्र एक रहो । धन सम्बन्धी उपाधियों को छोड़कर प्रकृत धर्म की उन्नति करो ।"

वैष्णव धर्म को प्राकृत धर्म से जोड़कर भारतेन्दु ने पूरी वैष्णव अवधारणा को एक नया आयाम दिया । उसकी अनेक बन्द खिड़किया खोली । ताजी हवा में वैष्णव धर्म ने सांस ली और एक ऐसी वैष्णवता तैयार हुई जो गांधी को भी रास आयी ।

(९)

"वैष्णवजन तो तेने कहिए जो पीर परायी जाणो रे ।" इस दृष्टि से भारतेन्दु निश्चित रूप में श्रेष्ठ वैष्णव थे । दूसरे की पीर को अपनी पीर समझते थे । कोई भी दीन दुखी उनके दरबार से असन्तुष्ट नहीं लौटा । जो गया उसी ने कुछ न कुछ पाया । वे दोनों हाथों से लुटाते थे, "जो लूट सकै सो लूट । . . . और जब लूटनेवाला नहीं होता था, तो लोगों ने उन्हें लक्ष्मी को जलाते हुए भी देखा था ।

एक बार एकान्त में बैठकर भारतेन्दु जी बड़े शान्त भाव से मोमबत्ती में एक सौ का नोट जला रहे थे । उन दिनों के सौ के नोट के भीतर एक चमड़े की झिल्ली होती थी । जिसके जलने पर दुर्गन्ध निकलती थी । उनके एक चाकर अभिभावक ने जब यह दृश्य देखा तो चकित हो बोला, "बबुआ यह क्या ?"

बबुआ बड़े ही निस्पृह भाव से मुस्कराये और बोले, "मैं यह देख रहा हूं कि लक्ष्मी में कितनी दुर्गन्ध है ।"

उन्हें धन से कभी भी किसी सुगन्ध का भास नहीं हुआ । एक वितृष्णा सी थी । उसे वे अपने परिवार का विनाशक भी मानते रहे । इसी से वे अपने धन के विनाश में सदैव तत्पर दिखे । एक समय ऐसा भी आया जब वे कर्जदार हो गये थे ।

ऐसा व्यक्ति यदि लोगों से घिरा रहे, तो आश्चर्य क्या ? आज जब सड़क छाप नेता एक प्याली चाय पर अपना दरबार लगवाते हो तो, दोनों हाथों लुटाने वाले व्यक्ति के यहां लोग जमें रहें हो, तो आश्चर्य क्या ? इसी स्थिति को देखकर भारतेन्दु की दरबारी प्रकृति पर लोग अंगुली उठाते हैं । पर मैं नहीं समझता कि वे दरबारी प्रकृति के व्यक्ति थे ।

एक ऐसा व्यक्ति जो परम्परा से चली आयी सामन्ती मर्यादाओं को तोड़कर कजली और लावनी बाजों के बीच बैठकर कजली भी गाता हो, जिसके दोस्तों में काशी नरेश से लेकर गली का आम आदमी तक हो । जो सबसे मिलता जुलता हो, सबके दुख सुख में शरीक होता हो जिसके परायी पीर की दाह सड़क के किनारे सर्दी से ठिठुरते भिखमंगे पर अपना कश्मीरी दुशाला डाल देती हो, क्या वह दरबारी प्रवृत्ति का हो सकता है ? वस्तुतः उनका व्यक्तित्व उन सभी अवरोधों को लांघकर बाहर निकल रहा था, जो उन्हें सामन्ती जीवन में बांधने की असफल चेष्टा कर रहे थे वह दरबार जुटाकर भी दरबार के कितने बाहर थे, यह उनके पौत्र डा. मोती चन्द्र जी के कथन से स्पष्ट होता है: —

> ''भारतेन्दु का हंसता हुआ व्यक्तित्व बनारस की कहावत बन गया है । भारतेन्दु शायद ही किसी से अप्रसन्न हुए हों, अपने निकट विरोधियों को भी वह अपनी सरलता और हास्य प्रियता से अपने बस में कर लेते थे । हिन्दी को लेकर राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' से जो उनका विवाद हुआ था, वह इतिहास प्रसिद्ध घटना है । पर जहां तक राजासाहब के साथ उनके पारस्परिक सम्बन्ध का प्रश्न था, उसमें कटुता नहीं आई और वह राजा साहब को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे । उनके खुले विचारों के कारण बनारस के वैष्णव अप्रसन्न रहते थे । पर वे बराबर उनके विरोध को हंस कर टाल देते थे । इसी जिन्दा दिली के फलस्वरुप उन्होंने रईसी को ताक पर रखकर बनारस के सर्वसाधारण से अपना परिचय बढ़ाया और बराबर उनके साथ हंसे हसाँये । प्रेम योगिनी का यथार्थ वाद इस बात का परिचायक है कि भारतेन्दु ने अपने युग के बनारस की डूबकर झांकी ली और उसकी बुराइयों और भलाइयों को हंसकर हमारे सामने रखा ।''

'परायीपीर' के प्रति भारतेन्दु की अत्यधिक संवेदनशीलता ही उन्हें जनहित समाजहित और देशहित के प्रति सोचने के लिए विवश करती थी । अपनी सोच को वाणी देने के लिए ही उन्होंने तीन पत्रों का प्रकाशन किया था । ''कवि वचन सुधा'', ''हरिश्चन्द्र चन्द्रिका'' (''हरिश्चन्द्र मैगजीन'' ही आठ अंकों के बाद हरिश्चन्द्र चन्द्रिका हो गयी थी) और ''बाला बोधिनी'' । कहते हैं कि अपनी धार्मिक भावना को अभिव्यक्ति देने के लिए भी उन्होंने भक्ति की एक मैगजीन निकाली थी । इनके अलावा अपने समय की अनेक पत्र पत्रिकाओं के वे प्रेरक थे, वे मानते थे कि जन जागृति के लिए पत्र पत्रिकाएँ ही सबसे अच्छे माध्यम हैं । पर पत्र-पत्रिकाओं की उत्पत्ति के लिए उस युग में मौसम अनुकूल नहीं था । ग्राहक बनाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था । कोई कहता था —''अखबार पढ़कर सुना जाया कीजिए'' । कोई कहता था —''दाम ले लीजिए, पिण्ड छोड़िए । अखबार भेजिए चाहे न भेजिए ।''

ऐसे माहौल में पत्र पत्रिकाएं निकालना स्वयं में एक साधना थी । पढ़ने की रुचि नहीं थी । खरीदने की इच्छा नहीं थी । जिन्हें इच्छा थी, उनके पास पैसा नहीं था । इन सभी परिस्थितियों का सामना भारतेन्दु मंडल के अनेक सदस्यों ने सेवा और सर्मपर्ण की भावना से किया, क्योंकि वे जानते थे कि जिन विचारों के लिए वे संघर्ष कर रहे हैं, ये समाचार पत्र उनकी किलेबन्दियां हैं । इसी किलेबन्दी के लिए '''हिन्दी प्रदीप'' निकालने में पं. बालकृष्णभट्ट को क्या नहीं झेलना पड़ा । कहते हैं, वे अपने पत्र के लिए स्वयं मैटर लिखते थे, कम्पोज करते थे और आवश्यकता हुई तो ग्राहकों के यहां पहुँचवाते भी थे ।

आरम्भिक युग होते हुए भी इस युग की पत्रकारिता में भटकाव नहीं था । उनके सामने लक्ष्य था, स्पष्ट उद्देश्य था । ''हरिश्चन्द्र मैगजीन'' का टाइटिल पेज अंग्रेजी में छपता था । उस पर एक उद्घोषणा छपती थी: —

" A monthly journal published in connection with the Kavivachansutha containing articles on literary, scientific, political and religious subjects, antiquities reviews, dramas, history, novels, poetical selections gossip, humour and wit. "

इस घोषणा से ही स्पष्ट है कि भारतेन्दु का साहित्यिक विषयों के प्रति जितना लगाव था, साहित्येतर विषयों में भी उनकी चिन्ता कम नहीं थी । वे विज्ञान, पुरातत्व राजनीति ऐसे विषयों को हिन्दी में लिखना लिखाना चाहते थे । समस्त राष्ट्रीय चिन्तन को आधुनिक परिवेश में लाना चाहते थे । इतना ही नहीं वे एक विधि पत्रिका भी "नीतिप्रकाश" के नाम से निकालना चाहते थे । उन्होंने सन् १८७५ के अप्रैल की "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में एक विज्ञापन प्रकाशित किया था: —

"हिन्दी में बहुत से अखबार हैं, पर हमारे हिन्दुस्तानी लोगों को उनसे कानूनी खबर कुछ नहीं मिलती और न हिन्दी में कानूनों का तर्जुमा है, जिसे देखकर और पढ़कर वे अदालत की बातें समझ सकें । आदलत वह चीज है जिससे छोटे बड़े किसी को छुट्टी नहीं । इससे सब गृहस्थों को इसका जानना बहुत जरुरी है । बहुत से बेचारे कानून जाने बिना लोगों के जाल में पड़कर खराब हो जाते हैं । तो इस आपत्ति से लोगों को बचाने के लिए एक माहवारी पत्र 'नीति प्रकाश' नाम का बनारस से जारी होगा । इसमें अंग्रेजी और उर्दू कानूनों का तर्जुमा छपा करेगा । और इसके सिवाय विलायत और हाई कोर्ट के फैसले छपेंगे । मुन्शी ज्वालाप्रसाद गवर्नमेंट प्लीडर हाईकोर्ट, बाबू तोताराम हाईकोर्ट प्लीडर इत्यादि लायक दोस्त इसके मददगार होंगे ।"

इस विज्ञापन में दस विभिन्न कालमों के नामों की भी घोषणा की गयी थी । साथ एक शर्त भी लगायी गयी थी "बिना ५०० ग्राहक ठहरे इसका काम शुरु न होगा और ग्राहक ज्यादा होंगे तो इसके पन्ने बढ़ा दिये जायेंगे ।" मूल्य भी निश्चित कर दिया गया था । ६ रुपये वार्षिक और डाक व्यय था मात्र ६ आनें वार्षिक ।

अब पत्रों की बिक्री का हाल सुनिए । "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" की सौ प्रतियां सरकार खरीदती थी । सरकार उसकी नीतियों से नाराज थी । कोई न कोई बहाना ढूंढ ही रही थी कि इसमें "यती वैश्या संवाद" छपा । सरकार ने उसे अश्लील करार दिया । पत्रिका की सरकारी खरीद बन्द हो गयी । . . . उस समय बहुत सी ऐसी भी पत्रिकाएं थी जिनकी ग्राहक संख्या दस-बीस से अधिक नहीं थी । खुद "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" ऐसी पत्रिका भी १५० से अधिक लोगों के यहां नहीं पहुंचती थी ।

महान स्वप्नदृष्टा के बहुत से स्वप्न साकार नहीं होते । भारतेन्दु का विधि पत्रिका निकालने का स्वप्न भी साकार नहीं हो सका । न पांच सौ ग्राहक बने और न पत्रिका प्रकाशित हुई । फिर भी हिन्दी वाङ्.मय को विविध विषयों से भरने की उनकी लालसा बनी रही । उन्होंने बनारस कालेज के गणिताध्यापक पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र से त्रिकोणमिति पर एक पुस्तक लिखवायी थी । उसकी समीक्षा जून १८७४ की चंद्रिका में करते हुए उन्होंने लिखा था: —

"हिन्दी भाषा में विज्ञान, दर्शन, अंकादि के ग्रंथ बहुत थोड़े हैं और जो १०-पांच छोटे मोटे हैं भी, वे पुरानी चाल के हैं और उनके परिभाषिक शब्द ठीक नहीं हैं । इस ग्रंथ के अन्त में एक निघंटु भी है । जिसमें परिभाषिक शब्दों के पर्यायवाचक अंग्रेजी शब्द भी दिये हैं । यह इस विधा के नये-नये ग्रंथ बनाने वालों को बहुत उपयोगी होंगे, पर हम यह कहना चाहते हैं कि लोग त्रिकोणमिति के नये

ग्रंथ रचे, वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करे क्यों कि वे बहुत से परिभाषिक शब्द होने से भ्रम होता है । इसके सिवाय जब सब लोग यही शब्द लिखने लगेंगे तो हिन्दी में इसका प्रचार भी हो सकेगा ।''

कैसी अद्‌भुत आंकाक्षा है भारतेन्दु की हिन्दी शब्द भण्डार के समृद्धि की । ध्यातव्य है कि भारतेन्दु ही पहले पत्रकार थे जिन्होंने बुक रिव्यू की परम्परा हिन्दी में चलायी । समीक्षा के लिए पुस्तक मिलते ही वह उसकी प्राप्ति स्वीकृति बड़े विस्तार के साथ छापते थे । एक उदाहरण १३ अक्टूबर १८७३ के कवि वचन सुधा से: —

व्यामोड विद्रावण —श्रीयुक्त रंगाचारी स्वामी प्रणीत दिल्ली से श्री निवासदास जी ने भेजा धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत होकर अद्‌भुत वस्तु संग्रहालय के पुस्तक संग्रह से संग्रीहत हुआ । पदार्थ दर्शन सुरेन्द्रनाथ भाट्टाचार्य एम. ए. एल. एल. बी —स्कूल कलकत्ते की बनायी और श्री सदानन्द मिश्र की भेजी पहुंची । इस विधा में पुस्तकें बनती निस्संदेह बहुत श्रेयस्कर है, तथापि हिन्दी और परिष्कृत होती तो उत्तम होता । बीजगणित पण्डित पालीराम पाठक मेरठ स्कूल का भाषान्तरित धन्यवाद ।''

भारतेन्दु जी की पत्रकारिता हिन्दी शब्द भण्डार का विस्तार तथा हिन्दी वाङ्मय की वृद्धि के लिए सदा प्रयत्नशील रही । किन्तु वह सामाजिक संदर्भ में भारत की दुर्दशा को कभी भूल नहीं पाती थी । फैलन के शब्दकोश पर उनहत्तर हजार के स्वाहा हो जाने पर वे कितने दुखी दिखायी देते हैं और अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखते हैं: —

''बड़े पुन्य का फल

उनहत्तर हजार स्वाहा ।

बड़ा पुन्य करें तब अंग्रेज के घर जन्म लें । गौरवर्ण होने में ही सब बातों में गौरव । हिन्दू लोग लाख किताब बनावे, इससे क्या होता है । अंग्रेज होने ही से किताब बनाया नहीं कि उसमें सब गुण हो जाते हैं । आप लोगों ने कभी श्रीयुत सा. फैलन साहब की डिक्शनरी देखी है ? न देखी हो तो जरुर देख लीजिए । उसमें आप लोगों से टिक्कस बसूल कर-करके सरकार ने उनहत्तर हजार छः सौ रुपये दिये हैं । सब मिलाकर तेरह सौ बानबे कापी इसकी पचास पचास रुपय में सरकार ने खरीदी है, जिसमें छः सौ कापी तो सिर्फ बंगाल कवर्नमेंट ने ली हैं । . . . इसकी अच्छी छपाई, कागज, कटाई, बंधाई यदि बीस रुपये फार्म रखिए तो अठठाइस सौ रुपये हुए । बाकी बासठ हजार आठ सौ पचास रुपये क्या हुए ? फैलनाय समर्पयन्ति अंगरेजत्वात् । हाय . . . ''

भारतेन्दु की पत्रकारिता कई मोरचे पर एक साथ लड़ रही थी, पर उसकी प्रकृति निर्माणात्मक थी, वह नये समाज के निर्माण में लगी थी, वह साहित्य निर्माण में लगी थी । उसकी क्रियमाण शक्ति में नये भारत का स्वप्न था ।

आज की पत्रकारिता को कोई ऐसा रुप नहीं जिसका बीज भारतेन्दु में न हो । इस क्षेत्र में व्यंग विधा के तो वे प्रणेता थे । उनका व्यंग भी बहुआयामी था, कहीं भाषा के माध्यम से कहीं कथा के माध्यम से और कभी ऐसी खबर छापकर कि लोग लोटपोट हो जायें ।

कभी-कभी हरिश्चन्द्र मैगजीन में वे अंग्रेजी में भी छापते थे । ऐसी अंग्रेजी जो अंग्रेजी भाषा की भी खिल्ली उड़ाती थी और अंग्रेजी की भी । एक बहु उदघृत अंश:

When I go Sir, molakat ko, these chaprasis
Trouble me much.
How can I give daily Inam, ever they ask
Me I say such
Some time they give me gardaniya
And tell bahar niklo tum;
Dena na lena muft ke aye yaha hain
Bane Darban Ki dum.

(११)

हास्य व्यंग भारतेन्दु के खून में था । वे बनारसी की मौजमस्ती के प्रतीक थे । भरत ने हास्य रस को श्रृंगार की अनुकृति कहा है । अनुकृति यदि मनोरंजन में समर्थ है तो वह अवश्य ही हास्य का उत्पादन करेगी । विकृत आकार, वाणी वेष-भूषा आदि हास्य का कारण बनेगे । भारतेन्दु इन सब में माहिर थे ।

हास्य के व्यंजनात्मक पत्र पर जोर देने वाले पश्चिम के साहित्य शास्त्री उनके पांच भेद मानते हैं । १-हयूमर (शुद्ध हास्य) २-विट (हाजिर जवाबी) ३-सेटायर (व्यंग्य) ४-आइरनी (वक्रोत्ति) ५-फार्स (प्रहसन) । इनके अतिरिक्ति सरकास्टिक रिमार्क, फैंटेसी और पैरोड़ी को भी लोग व्यंग्य की एक शैली के रुप में ही मानते हैं ।

हास्य भारतेन्दु की जीवन शैली थी विनोदी ऐसे कि राजा और रंक किसी को नहीं छोड़ते थे । उनके व्यंग्य विनोद के अनेक किस्से आज तक असंग्रहीत हैं । वे कामदानी टोपी और बनारसी रंगीन कपड़े का अंगरखा पहनते थे । उनका राजसी पहनावा उनके मौजी व्यक्तित्व को रेखांकित करता था ।

वे काशी नरेश के परम आत्मीय थे । उन दिनों काशी नरेश और महाराज विजयानगरम में चलती थी । भारतेन्दु जी काशी नरेश के साथ महाराज विजयानगरम के यहां गये थे । भारतेन्दु की वेशभूषा पर व्यंग्य करते हुए महाराज विजयानगरम ने कहा, ''आज तो बलि के बकरा की तरह बने हो बबुआ ।''

भारतेन्दु ने तुरन्त कहा, ''तो चढ़ा तो न अपनी मैया पर ।'' यह उक्ति अश्लीलता की परिधि का भले ही स्पर्श करती हो, पर इतनी जीवंत हाजिर जवाबी किसी बनारसी के ही मुख से निकल सकती है । शिवप्रसाद ''सितारे हिन्द'' और भारतेन्दु का सम्बंध जगजाहिर था, फिर भी उसमें खटास नहीं थी एक प्यारी मिठास थी वे विश्वास करते थे: —

''दुश्मनी लाख हो, खत्म न हो रिश्ता,
दिल मिले न मिले हाथ मिलाते रहिए ।''

एक दिन उन्होंने ''सितारे हिन्द'' से उनका फोटो अपनी विनोद प्रियता के कारण यह लिखते हुए मांगा था: —

''कमाल शौके मुलाकात उसने लिखा है,
चलूं मैं आये ही कासिद जवाब के बदले ।''

मजा यह कि राजा साहब ने भी चलू को काटकर ''चाला'' बना दिया और फोटो के साथ जबाब के रुप में वह खत लौटा दिया ।

उन दिनों रामकटोरा मुहल्ला बनारस के बाहरी अलंग में आता था । भारतेन्दु की हर शाम वहीं रंगीन होती थी । पंचरत्नी की तरंग में वहां बैठे कुछ लोगों पर उन्होंने कविताएं सुनायी । एक वेश्या के मुख पर चेचक का दाग था जब उसने अपने पर कविता सुनाने को कहा तो उन्होंने झट से एक शोर गढ़ दिया: —

सूखे आइना पै दिल जो जा जा के फिसलता है
खुदाई दाग चेचक से जरा ठहराव मिलता है ।

हास्य व्यंग्य के क्षेत्र में पैरोडी के शायद वह जन्मदाता थे । उन्होंने उर्दू के नाटक इन्दर सभा के आधार पर बन्दर सभा लिखी थी । भाषा का तेवर भी "इन्दर सभा" वाला ही । शुतुरमुर्ग परी की जबानी: —

आई हूँ मैं सभा में छोड़ के घर ।
लेना है मुझे इन आग में जर ।
दुनिया में है जो कुछ सब जर है ।
बिना जर के आदमी बन्दर है ।
बन्दर, जर हो तो इन्दर है ।
जर ही के लिए सब को हुनर है ।

अमीर खुसरों की शैली पर भारतेन्दु ने नये जमाने की मुकरी लिखी थी । वस्तुतः यह 'पैरोडी' साहित्य ही है । इस युग में फैंटेसियां भी खूब लिखी गयी, क्योंकि सीधे-सीधे कहना अंग्रेजों का कोपभाजन बनाना था । इन अतिकल्पनाओं ने ऐसी किलेबन्दिया की जिनके भीतर से करारा प्रहार करते हुए भी सुरक्षित रहा जा सकता था । एक अद्‌भुत स्वप्न यमलोक की यात्रा स्वर्ग में केशवचन्द्र सेन और स्वामी दयानंद आदि ऐसी ही फैंटेसिया है ।

अंधेरी नगरी और चौपट राजा से अच्छा और प्रभावशाली हिन्दी साहित्य में दूसरा फार्स नहीं । भारतेन्दु युग की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति पर चोट करते हुए भी इसने आज भी न तो अपनी प्रासंगिकता खोयी है और न इसका संदर्भ ही बासी पड़ा है । यह आज भी तरोताजा है ।

(१२)

ऐसे थे भारतेन्दु, अपने जमाने के सबसे शानदार और जानदार रचनाकार । वे मात्र एक साहित्यकार ही नहीं थे, वरन एक ऐसा व्यक्तित्व था, जिसमें अपने युग की चेतना ने अंगड़ाई ली थी । जिसने युग को वाणी दी थी । जिसने लोक चेतना को समझा था । जो पुरातनता का विरोधी न होते हुए भी नवीनता की ओर बढ़ा था । उसके एक ओर गलितरुढ़ियों और अन्ध विश्वासों की ध्वस्त होती दीवार थी और दूसरी ओर नये भारत के सपने थे ।

उसके व्यक्तित्व की विसंगतियों में भी एक संगति थी । वह गुणियों का सेवक था । चतुरों का चाकर था । कवियों का मित्र था । सीधों के लिए सीधा था, बाकों के लिए महा बांका था । वह निहायत विनम्र होकर भी अभिमानियों से पैर पुजवाता था । वह चाह और परवाह से दूर था । वह प्रेम का दिवाना था । रसिकों का सरबस था और राधारानी का गुलाम था । वह परम वैष्णव था और दूसरों की पीर को अपनी पीर समझता था ।

भारतेन्दु समग्र क्यों ?

भारतेन्दु ग्रंथावली तीन खण्ड़ों में, इसके पूर्व प्रकाशित है । यह सही है कि उसमें भारतेन्दु की बहुत सी रचनाएँ आ नहीं पायी हैं । कुछ बीनने-बटोरने में छूट गयी होंगी । कुछ मिली ही नहीं होगी ।

इस ग्रंथ में उन तीनों खण्ड़ों में संकलित रचनाएँ तो है हीं, साथ ही भारतेन्दुकालीन पत्र-

पत्रिकाओं की फाइलों में दबी पड़ी कुछ ऐसी अलभ्य कृतियां भी हैं, जो अबतक किसी संग्रह में नहीं आयी, और यदि आयी भी हैं, तो किसी कोने अतरे में ।

यह मात्र ग्रंथावली ही नहीं है, वरन् भारतेन्दु समग्र है । इसमें वह सब उपलब्ध सामग्री दी गयी है जो भारतेन्दु की है और भारतेन्दु के रचना कौशल से कहीं ज्यादा उनके व्यक्तित्व से नयी है । इनमें कविताएँ हैं, पत्र हैं, सम्पादकीय टिप्पणियां हैं, सम्पादक के नाम पत्र हैं, एजूकेशन कमीशन के समक्ष भारतेन्दु की गवाही है । भारतेन्दु द्वारा दिये और प्रकाशित विज्ञापन है तथा कुछ सूचनाएँ और खबरे हैं । अन्त में चन्द्रास्त और भारतेन्दु की संक्षिप्त जीवनी भी है ।

चन्द्रास्त वह व्यथा भरा भवोद्‌गार है, जिसे भारतेन्दु जी के अनन्य मित्र पं. रामशंकर व्यास ने भारतेन्दु के निधन की दुखद सूचना काशीवासियों को देने के लिए छपवाकर मुफ्त बटँवाया था । व्यास जी भारतेन्दु की टूटती सांसों के चश्मदीद गवाह थे । उन्होंने भारतेन्दु को बड़े करीब से देखा था । इसीसे उनकी लिखी भारतेन्दु की जीवनी भी इस 'समग्र' में आ गयी है ।

भारतेन्दु जी अपनी पत्रिकाओं के मूल्य आदि की विज्ञप्ति भी कविता में ही छापते थे । बुढ़वा मंगल का निमंत्रण भी कविता में होता था । दोनों की बानगियाँ भी यहां इकट्ठी हैं । घोड़े की चाल के विषय में भी तीन छप्परा दिये गये हैं । जब पहली बार इस देश में आयकर लगा था, उसी समय विलियम म्योर का काशी आगमन हुआ था । गंगा तट पर रोशनी की गयी थी । भारतेन्दु ने एक नाव पर 'Oh Tax' और दूसरी पर एक दोहा लिखवाया था । वह दोहा भी दिया गया है । ऐसी कई फुटकल काव्य रचनाएं उनके सन्दर्भों के साथ दी गयी है जिन्हें भारतेन्दु ने किसी प्रसंग में लिखी या कही हैं । 'दशरथ विलाप' नाम की लम्बी कविता किसी ग्रंथावली में नहीं है, वह इस ग्रंथ में मिलेगी ।

भारतेन्दु के पूरे पत्र बहुत कम उपलब्ध हैं । ज्यादातर अधूरे ही मिलते हैं, उनमें भी पेन्सिल से लिखे हुए । कुछ पत्रों का प्रसंगवश कहीं जिक्र आया है । उन सबको इस 'समग्र' में लेने की चेष्टा की गयी है, क्योंकि ये पत्र भारतेन्दु के जीवन के बहुत से अनखुले पृष्ठ खोलते हैं । मिसाल के तौर पर भोपाल की बेगम साहिबा से भारतेन्दु की घनिष्टता थी । उनकी कविताएँ प्रकाशित करने के लिए "भारत मित्र" के सम्पादक को उन्होंने एक सिफारिश पत्र भी लिखा था ।

किन्हीं सन्तोष सिंह को लिखे पत्र से पता चलता है कि बंगला में उपन्यास साहित्य की प्रगति देखकर भारतेन्दु जी का ध्यान उधर भी गया था । वे हिन्दी में भी उपन्यास लिखना चाहते थे ।

अपने भाई को लिखे पत्र में अपनी प्रेयसि मल्लिका के सम्बन्ध में शायद दो-एक ही वाक्य हे, पर बड़ी ईमानदारी से उस पत्र में उसके वरण को स्वीकारा गया है । एक पत्र में कलकत्ता के अपने किसी मित्र को भारतेन्दु जी ने खंग विलास प्रेस के श्री रामदीन सिंह का जिक्र बड़ी आत्मीयता से किया है । यह पत्र इस बात का भी प्रमाण है कि भारतेन्दु जी का शाह खर्च अन्तिम दिनों में आर्थिक दृष्टि से कितना लाचार हो गया था ।

आली जान वेश्या से भारतेन्दु का लगाव था । आलीजान किन्हीं किसुन सिंह की लड़की थी और कभी हिन्दू थी । भारतेन्दु जी ने उसका शुद्धीकरण कर हिन्दू बना उसका नाम माधवी रखा । वह उसके लिए एक मकान भी खरीदना चाहते थे । पैसे का प्रश्न था । इसी बीच उनके एक मित्र ने उन्हें धोखा दिया । लाचार होकर उन्हें पं. बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमधन' को लिखना पड़ा ।

सन् १८८२-८३ में बिट्रिश नेशनल ऐंथम का अनुवाद करने के लिए एक कमेटी बनी । बीस भाषाओं में उसका अनुवाद अपेक्षित था । संस्कृत में अनुवाद प्रो. मैक्समूलर ने किया था और बंगला अनुवाद श्री यतीन्द्रनाथ ठाकुर ने । हिन्दी अनुवाद का काम भारतेन्दु जी को दिया गया । वे उस समय बीमार थे । फिर भी उन्होंने अनुवाद कितनी सावधानी से किया इसकी जानकारी फेडरिक कं. हेन फोर्ड

को लिखे उनके पत्र से मिलती है । इस अनुवाद की पांच सौ प्रतियां हिन्दी जानकारों के बीच वितरित कराकर अनुवाद की प्रामाणिकता जाँचने के लिए भारतेन्दु ने हेन फोर्ड को खुद भेजा था ।

साधु भाषा (खड़ी बोली) में लिखी कविताओं के प्रकाशन के सम्बन्ध में भारतेन्दु के सम्पादक को लिखे पत्र की चर्चा तो काफी हुई है ।

ये सभी पत्र या उनके अंश इस संग्रह में है ।

इस ग्रंथ में सम्मिलित भारतेन्दु की विज्ञप्तियाँ भी बड़े ममत्व की हैं । बिट्रेन के किसी उपनिवेश के गवर्नर पोप हेन्सी ने इल्बर्ट बिल के सम्बन्ध में भारतेन्दु जी को एक पत्र लिखा था कि लार्ड रिपन की सुनीति के सम्बन्ध में क्या आप अपनी लेखनी नहीं उठायेंगे । इस सन्दर्भ में उनके मौन का लाभ लेकर एक कर्नल साहब ने कहा था कि भारतेन्दु ''जुरिजडिकशन बिल' के विरोधी है । भारतेन्दु जी ने तत्काल इस गलतफहमी को दूर करने के लिए हिन्दी और अंग्रेजी के अखबारों में एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर अपनी स्थिति स्पष्ट की ।

अधिकांश विज्ञप्तियां कविवचन सुधा में प्रकाशित हैं । एक विज्ञप्ति के द्वारा उन्होंने सर्वसाधारण को सूचित किया था कि १ जनवरी से ३१ दिसम्बर १८७१ तक हिन्दी और संस्कृत में जितनी पुस्तकें छपें उनकी एक प्रति भेजकर मूल्य मंगवा लें । दूसरी विज्ञप्ति के द्वारा किन्हीं शीतला प्रसाद जी के पुस्तकालय की जर्जर अवस्था को सुधारने के लिए अर्थदान का आग्रह किया गया है । एक विज्ञप्ति में गोवध निवारण विषय पर काव्य रचना को पुरस्कृत करने की घोषणा है, तो दूसरी में कुरानशरीफ के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन के सम्बन्ध में कहा गया है कि यदि सौ ग्राहक बन जाये तो इस विराट ग्रंथ का मुद्रण आरम्भ किया जाय । एक विज्ञप्ति से यह भी ज्ञात होता है कि वे 'कासिद' नामक एक उर्दू साप्ताहिक निकालना चाहते थे, जिसका मूल्य भी उन्होंने दस रुपया वार्षिक रखा था, पर जो किसी कारणवश न निकल सका । इन संग्रहीत विज्ञप्तियों में कुछ व्यापारिक भी है । इनसे व्यापार की ओर भारतेन्दु के अस्थायी रुझान का पता चलता है । पर वे व्यापार भी अपनी शान के अनुसार ही करना चाहते थे । जैसे बनारसी माल, लेवेन्डर एवं इत्र आदि का । पर उनके अलमस्त कवि को मूलतः इसके लिए फुरसत कहां थी ?

कुछ विज्ञप्तियाँ ''कवितावर्द्धिनी सभा'' के सम्बन्ध में भी हैं । एक विज्ञप्ति में काशी में ''चौक से गुदौलिया जो नई सड़क निकली है, उसके बीच में एक शिवाला है, ईश्वर उसको खुदने से बचावै'' की प्रार्थना की गयी है । कुछ विज्ञप्तियाँ भारतेन्दु की अस्वस्थता का उल्लेख करती हुई इस सम्बन्ध की भी हैं कि मैं जैसा चाहता था, वैसा अंक निकल नहीं पाया ।

भारतेन्दु के सम्पादकीय नोट और सम्पादक के नाम पत्र भी उनको समझने के लिए बड़े काम के हैं । 'श्रृंगार रत्नाकार' नामक एक ग्रंथ काशिराज ने सं. १९१९ में प्रकाशित कराया था । इस ग्रंथ के लेखक थे तारा चरण तर्करत्न । भारतेन्दु ने इस में स्थापित मान्यताओं पर एक सम्पादक के नाम पत्र लिखा है । इनमें उनकी इस मीमांसा पर गम्भीर प्रकाश पड़ता है ।

हरिश्चन्द्र मैगजीन के पहले ही अंक में एक सम्पादकीय टिप्पणी इस प्रकार है: —''अंग्रेजों को घूस, सलाम, बंदगी ऐड्रेस सब कुछ मिलता है । धन विद्या कौशल सब उनके पास है । उन्हीं के आवभगत के लिए सभाएँ होती हैं । एक और बल उनके पास है । हिन्दुस्तानियों के हिस्से में मूर्खता है, कायरता, धक्के खाना पड़ा है । जो भाग्यशाली हैं, वे दरबार में कुर्सी पाते हैं, कौंसिल मेम्बरी और सितारे हिन्द का खिताब पाते हैं ।'' —ऐसे ही तीखी और चोट करनेवाली उनकी टिप्पणियाँ है ।

इनके अतिरिक्त दो लेख और एक पुस्तक परिहासिनी और दिये गये हैं । ये न तो भारतेन्दु ग्रंथावली में ही हैं और न भारतेन्दु के पिछले किसी संग्रह में । लेख हैं —' लेखक और नागरी लेखक तथा 'हिन्दी भाषा' । 'परिहासिनी' उनके व्यंग्य और चुटुकुले का संग्रह है ।

भारतेन्दु समग्र में उनके कविकर्म के अलावा पत्रकार कर्म पर भी प्रकाश डालने वाली सामग्री संग्रहीत हैं जिनसे भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व को समझना कहीं ज्यादा आसान हो जायेगा ।

हम इनके आभारी हैं
जिनके सहयोग के बिना इस ग्रन्थ का पूरा हो पाना कठिन था ।

श्री कृष्णचन्द्र बेरी जिनकी परिकल्पना इस ग्रन्थ के निर्माण का कारण बनीं । डॉ०. त्रिभुवन सिंह, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. रघुनाथ सिंह, डॉ. राय आनन्दकृष्ण, पं. मनुशर्मा, डॉ. युगेश्वर तथा डॉ. गिरीन्द्र नाथ शर्मा इनके कुशल निर्देशन में यह कार्य पूरा हुआ । सामग्री संकलन में भारतेन्दु परिवार के डॉ. गिरीश चन्द्र चौधरी और भारतेन्दु बाबू के दौहित्रपुत्र डॉ. बृजकिशोर अग्रवाल ने भरपूर मदद की । बिखरे भारतेन्दु साहित्य को बीनने बटोरने में कारमाइकेल लाइब्रेरी वाराणसी, सयाजीराव गायकवाड़ ग्रन्थालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, और डी. ए. वी. डिग्री कालेज ग्रन्थालय मददगार बनें । इन ग्रन्थालयों में खासतौर से श्री दिलीप नारायण सिंह श्री प्रियानाथ शर्मा और श्री अनिरुद्ध प्रसाद के हम आभारी है । श्री ओ. प्र. टण्डन (भारत कला भवन) और डॉ. धीरेन्द्र नाथ सिंह का विशेष सहयोग रहा है । कवर – श्री योगेश उपध्याय, किताब को संवारने में श्री प्रमोदसहाय, श्री अवनीधर, श्री रामप्रसाद सिंह, श्री योगेश उपाध्याय, मुद्रण – श्री करन सचदेवा (रत्ना ऑफसेट नई दिल्ली) पाण्डुलिपि टंकण – श्री रामप्रकाश शर्मा, और श्री नारायण प्रसाद जायसवाल, प्रूफ रीडिंग – डॉ. लालमणि तिवारी, श्री सुभाष डोबरियाल, श्री प्रकाश श्रीवास्तव, श्री रामायण सिंह, श्री राम आसरे मिश्र, श्री दीनानाथ तिवारी, श्री ब. ल. पावगी और श्री यमुना प्रसाद गुप्त, फोटो कम्पोजिंग – श्री राजेन्द्र सिंह रावत, श्री रवीन्द्र शर्मा, छपाई के कुशल संचालन और प्रबन्धन के लिए श्री रतनमणि बहुगुणा और श्री अ. प्र. यादव, सम्पादकीय सहयोग के लिए श्री सुधांशु भूषण मिश्र, श्री राजीव सिंह और श्री नवेन्दु सिंह का आभारी हूँ ।

ग्रंथ और ग्रंथकार जो सहायक बने

"भारतेन्दु नाटकावली" सं. – बाबू बृजरतन दास, "भारतेन्दु ग्रन्थावली" सं. – शिव प्रसाद मिश्र 'रुद्र' । "हरिश्चन्द्र कला" — (खंग विलास प्रेस) 'कवि बचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'बाला बोधिनी' की फाइलें, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' — लेखक बृजरतन दास, 'हरिश्चन्द्र' — श्री शिवनन्दन सहाय, 'हरिश्चन्द्र' — श्री राधा कृष्ण दास, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' — डॉ. मदन गोपाल ।

हेमन्त शर्मा
३८२ सी बड़ी पियरी
वाराणसी-२२१००१

पहला खण्ड

(काव्य)

भक्त-सर्वस्व

अर्थात्
श्रीचरण-चिन्ह-वर्णन
(रचना-काल —१८७०)

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यंति सूरयः'

मेडिकल हाल के छापेखाने में
१८७० में छपा

प्रस्तावना

इस छोटे से ग्रंथ में श्रीयुगल स्वरूप के श्रीचरण के अगाध चिन्हों के मति अनुसार कुछ भाव लिखे हैं। यद्यपि इसकी कविता काव्य के सब गुणों से (सत्य ही) हीन है, तथापि इसका मुझे शोच नहीं है, क्योंकि यह ग्रंथ मैंने अपनी कविता प्रगट करने और कवियों को प्रसन्न करने को नहीं लिखा है, केवल (अपनी) वाणी पवित्र करने और प्रेम-रंग में रँगे हुए वैष्णवों के आनन्द के हेतु लिखा है।

इसमें श्री भागवत के अनुसार बहुत से भाव लिखे हैं, इस कारण से श्री भागवत जाननेवालों को इसका स्वाद विशेष मिलेगा।

अनुप्रासों की संकीर्णता से इसमें पुनरुक्ति बहुत है, जिसको रसिक लोग (भगवन्नामांकित जान कर) क्षमा करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि जो रसिक भगवदीय जन इसको पाठ करें, वह मेरे (इस) बाल-चापल्य को क्षमा करें और (जहाँ तक हो सके) इस पुस्तक को कुरसिकों से बचावें और अनुग्रहपूर्वक सर्वदा मुझ से दीन को (अपना दास जान कर) स्मरण रक्खें।

श्रीहरिश्चन्द्र

भक्त-सर्वस्व

अथ चरण-चिन्ह-वर्णन

दोहा

जयति जयति श्री राधिका चरण जुगल करि नेम।
जाकी छटा प्रकास तें पावत पामर प्रेम।१

जयति जयति तैलंग-कुल रत्नद्वीप-द्विजराज।
श्री बल्लभ जग-अघ-हरन तारन पतित-समाज।२

नमो नमो श्री हरि-चरण शिव-मन-मंदिर रूप।
वास हमारे उर करौ जानि परयौ भव-कूप।३

प्रगटित जसुमति-सीप तैं मधि ब्रज-रतनागार।
जयति अलौकिक मुक्त-मणि ब्रज-तिय को श्रृंगार।४

दक्षिन दिसि चंद्रावली श्री राधा दिसि वाम।
तिन के मधि नट रूप धर जै जै श्री घनश्याम।५

हरि-मन-कुमुद-प्रमोद-कर ब्रज-प्रकासिनी वाम।
जयति कापिसा-चंद्रिका राधा जाको नाम।६

चंद्रभानु नृप-नंदिनी चंद्रानिनि सुकुवाँरि।
कृष्णचंद्र-मन-हारिनी जय चंद्रावलि नारि।७

जै जै ब्रज-जुवती सबै जिन सम जग नहिं कोइ।
मगन भई हरि-रूप मैं लोक-लाज-भय खोई।८

जसुदा लालित ललनवर कीरति-प्रान-अधार।
श्याम गौर द्वै रूप धर जै जै नंद-कुमार।९

जै जै श्री वल्लभ विमल तैलँग कुल द्विजराज।
भुव प्रगटित आनन्दमय विष्णु स्वामि पथ-काज।१०

तम पाखंडहि हरत करि जन-मन-जलज-विकास।
जयति अलौकिक रवि कोऊ श्रुति-पथ करन प्रकास।११

मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि-नाम।
जयति कोऊ सो केसरी बृन्दावन बन धाम।१२

गोपीनाथ अनाथ-गति जग-गुरु विट्ठलनाथ।
जयति जुगल वल्लभ-तनुज गावत श्रुति गुन-गाथ।१३

श्री गिरिधर गोविंद पुनि बालकृष्ण सुख-धाम ।
गोकुलपति रघुपति जयति जदुपति श्री घनश्याम ।१४
जै जै श्री शुकदेव जिन समुझि सकल श्रुति-पंथ ।
हम से कलिमल ग्रसति हित कह्यौ भागवत ग्रंथ ।१५
वंदौं पितु-पद जुग जलज हरन हृदय-तम घोर ।
सकल नेह-भाजन बिमल मंगलकरन अथोर ।१६
कविजन-उडुगन-मोद-कर पूरन परम अमंद ।
सुत-हिय-कुमुद-अनंद-भर जयति अपूरब चंद ।१७
जुगल चरन जग-तम-हरन भक्तन-जीवन-प्रान ।
बरनत तिन के चिन्ह के भाव अनेक बिधान ।१८
बरनन श्री हरिराय किय तिनको आयस पाई ।
चरन-चिन्ह हरिचंद कछु कहत प्रेम सों गाइ ।१९
भक्तन को सर्वस्व लखि बरनन या थल कीन ।
प्रेम-सहित अवलोकिहैं जे जन रसिक प्रबीन ।२०
कहँ हरि-चरन अगाध अति कहँ मोरी मति थोर ।
तदपि कृपा-बल लहि कहत छमिय ढिठाई मोर ।२१

छप्पय

स्वास्तिक स्यंदन संख सक्ति सिंहासन सुंदर ।
अंकुस ऊरध रेख अब्ज अठकोन अमलतर ।
बाजी बारन बेनु बारिचर बज्र बिमलवर ।
कुंत कुमुद कलधौत कुंभ कोदंड कलाधर ।
असि गदा छत्र नवकोन जव तिल त्रिकोन तरु तीर गृह ।
हरिचरन चिन्ह बत्तिस लखे अग्निकुंड अहि सैल सह ।१

स्वस्तिक चिन्ह भाव वर्णन

दोहा

जो निज उर मैं पद धरत असुभ तिन्हैं कहु नाहिं ।
या हित स्वस्तिक चिन्ह प्रभु धारत निज पद माँहिं ।१

रथ को चिन्ह वर्णन

निज भक्तन के हेतु जिन सारथिपन हूँ कीन ।
प्रगटित दीन-दयालुता रथ को चिन्ह नवीन ।१
माया को रन जय करन बैठहु यापै आइ ।
यह दरसावन हेत रथ चिन्ह चरन दरसाइ ।२

शंख चिन्ह के भाव वर्णन

भक्तन की जय सर्वदा यह दरसावन हेतु ।
शंख चिन्ह निज चरन मैं धारत भव-जल-सेतु ।१
परम अभय पद पाइहौ याकी सरनन आइ ।
मनहुँ चरण यह कहत है शंख बजाइ सुनाइ ।२

जग-पावनि गंगा प्रगट याही सों इहि हेत ।
चिन्ह सुजल के तत्व को धारत रमा-निकेत ।३

शक्ति चिन्ह भाव वर्णन

बिना मोल की दासिका शक्ति स्वतंत्रा नाहिं ।
शक्तिमान हरि, याहि तें शक्ति चिन्ह पद माँहिं ।१
भक्तन के दुख दलन की बिधि की लीक मिटाइ ।
परम शक्ति यामें अहै सोई चिन्ह लखाइ ।२

सिंहासन चिन्ह भाव वर्णन

श्री गोपीजन के सुमन यापैं करैं निवास ।
या हित सिंहासन धरत हरि निज चरनन पास ।।१
जो आवै याकी शरण सो जग राजा होइ ।
या हित सिंहासन सुभग चिन्ह रह्यौ दुख खोइ ।२

अंकुश चिन्ह भाव वर्णन

मन-मतंग निज जनन के नेकु न इत उत जाहिं ।
एहि हित अंकुस धरत हरि निजपद कमलन माँहिं ।१
याको सेवक चतुरतर गननायक सम होइ ।
या हित अंकुस चिन्ह हरि चरनन सोहत सोइ ।२

ऊरध रेखा चिन्ह भाव वर्णन

कबहुँ न तिनकी अधोगति जे सेवत पद-पद्म ।
ऊरध रेखा चिन्ह पद येहि हित कीनो सद्म ।१
ऊरधरेता जे भये ते या पद कों सेइ ।
ऊरध रेखा चिन्ह यों प्रगट दिखाई देइ ।२
यातें ऊरध और कछु ब्रह्म अंड मैं नाहिं ।
ऊरध रेखा चिन्ह है या हित हरि-पद माँहिं ।३

कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

सजल नयन अरु हृदय मैं यह पद रहिबे जोग ।
या हित रेखा कमल की करत कृष्ण-पद भोग ।१
श्री लक्ष्मी को वास है याही चरनन-तीर ।
या हित रेखा कमल की धारत पद बलबीर ।२
बिधि सों जग, बिधि कमल सों, सो हरि सों प्रगटाइ ।
राधावर-पद-कमल मैं या हित कमल लखाइ ।३
फूलत सात्विक दिन लखे सकुचत लखि तम रात ।
या हित श्री गोपाल-पद जलज चिन्ह दरसात ।४
श्री गोपीजन-मन-भ्रमर के ठहरन की ठौर ।
या हित जल-सुत-चिन्ह श्री हरिपद जन सिरमौर ।५
बढ़त प्रेम-जल के बढ़े घटे नाहिं घटि जात ।
यह दयालुता प्रगट करि पंकज चिन्ह लखात ।६
काठ ज्ञान वैराग्य मैं बँध्यो बेधि उड़ि जात ।
याहि न बेधत मन-भ्रमर या हित कमल लखात ।७

अष्टकोण के चिन्ह को भाव वर्णन

आठो दिसि भूलोक कौ राज न दुर्लभ ताहि ।
अष्टकोन को चिन्ह यह कहत जु सेवै याहि ।१
अनायास ही देत है अष्ट सिद्धि सुख-धाम ।
अष्टकोन को चिन्ह पद धारत येहि हित स्याम ।२

घोड़ा के चिन्ह को भाव वर्णन

हयमेधादिक जग्य के हम ही हैं इक देव ।
अश्व-चिन्ह पद धरत हरि प्रगट करन यह भेव ।१
याही सों अवतार सब हयग्रीवादिक देख ।
अवतारी हरि के चरन याही तें हय-रेख ।२
बैरहु जे हरि सों करहिं पावहिं पद निर्वान ।
या हित केशी-दमन-पद हय को चिन्ह महान ।३

हाथी के चिन्ह को भाव वर्णन

जाहि उधारत आपु हरि राखत तेहि पद पास ।
या हित गज को चिन्ह पद धारत रमा-निवास ।१
सब को पद गज-चरन मैं [१]सो गज हरि-पग माँहिं ।
यह महत्व सूचन करत गज के चिन्ह देखाहिं ।२
सब कवि कविता मैं कहत गजगति राधानाथ ।
ताहि प्रगट जग मैं करन धर्‌यो चिन्ह गज साथ ।३

वेणु के चिन्ह को भाव वर्णन

सुर नर मुनि नरनाह के बंस यहीं सों होत ।
या हित बंसी चिन्ह हरि पद मैं प्रगट उदोत ।१
गाँठ नहीं जिनके हृदय ते या पद के जोग ।
या हित बंसी चिन्ह पद जानहु सेवक लोग ।२
जे जन हरि-गुन गावहीं राखत तिनको पास ।
या हित बंसी चिन्ह हरि पद मैं करत निवास ।३
प्रेम भाव सों जे विंधे छेद करेजे माहिं ।
तेई या पद मैं बसैं आइ सकै कोउ नाहिं ।४
मनहुँ घोर तप करति है बंसी हरि-पद पास ।
गोपी सह त्रैलोक के जीतन की धरि आस ।५
श्री गोपिन की सौति लखि पद-तर दीनि डारि ।
यातैं बंसी चिन्ह निज पद मैं धरत मुरारि ।६
आई केवल ब्रज-बधू क्यों नहिं सब सुर-नारि ।
या हित कोपित होइ हरि दीनी पट तर डारि ।७
मन चोर्‌यो बहु त्रियन को पुन श्रवनन मग पैठि ।
ता प्राछित को तप करत मनु हरि-पद-सर बैठि ।८
वेणु सरिस ह्र पातकी शरण गये रखि लेत ।
वेणु -धरन के कमल-पद वेणु चिन्ह यहि हेत ।९

मीन चिन्ह को भाव वर्णन

अति चंचल बहु ध्यान सों आवत हृदय मँझार ।
या हित चिन्ह सुमीन को हरि-पद मैं निरधार ।१
जब लौं हिय में सजलता तब लौं याको वास ।
सुष्क भए पुनि नहिं रहत झष यह करत प्रकास ।२
जाके देखत ही बढ़ै ब्रज-तिय-मन मैं काम ।
रति-पति-ध्वज को चिन्ह पद यातें धारत स्याम ।३
हरि मनमथ कौं जीति कै ध्वज राख्यौ पद लाइ ।
यातैं रेखा मीन की हरि-पद मैं दरसाइ ।४
महा प्रलय मैं मीन बनि जिमि मनु रक्षा कीन ।
तिमि भवसागर कों चरन या हित रेखा मीन ।५

बज्र के चिन्ह को भाव वर्णन

चरण परस नित जे करत इन्द्र-तुल्य ते होत ।
बज्र-चिन्ह हरि-पद-कमल येहि हित करत उदोत ।१
पर्वत से निज जनन के पापहिं काटन काज ।
बज्र-चिन्ह पद मैं धरत कृष्णचंद्र महराज ।२
बज्रनाभ यासों प्रगट जादव सेस लखाहिं ।
थापन-हित निज वंश भुवि बज्र चिन्ह पद माहिं ।३

बरछी के चिन्ह को भाव वर्णन

मनु हरिहू अघ सों डरत मति कहुँ आवै पास ।
या हित बरछी धारि पग करत दूर सों नास ।१

कुमुद के फूल के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री राधा-मुखचंद्र लखि अति अनंद श्रीगात ।
कुमुद-चिन्ह श्रीकृष्ण-पद या हित प्रगट लखात ।१
सीतल निसि लखि फूलई तेज दिवस लखि बंद ।
यह सुभाव प्रगटित करत कुमुद चरण नँदनंद ।२

सोने के पूर्ण कुंभ के चिन्ह को भाव वर्णन

नीरस यामैं नहिं बसैं बसैं जे रस भरपूर ।
पूर्ण कुंभ को चिन्ह मनु या हित धारत सूर ।१
गोपीजन-बिरहागि पुनि निज जन के त्रयताप ।
मेटन के हित चरन मैं कुंभ धरत हरि आप ।२
सुरसरि श्री हरि-चरन सों प्रगटी परम पवित्र ।
या हित पूरन कुंभ को धारत चिन्ह विचित्र ।३
कबहुँ अमंगल होत नहिं नित मंगल सुख-साज ।
निज भक्तन के हेत पद कुंभ धरत ब्रजराज ।४
श्री गोपीजन-वाक्य के पूरन करिबे हेत ।
सुकुच कुंभ को चिन्ह पग धारत रामानिकेत [२] ।५

धनुष के चिन्ह को भाव वर्णन

इहाँ स्तब्ध नहिं आवहीं आवहिं जें नइ जाहिं ।
धनुष चिन्ह एहि हेतु है कृष्ण-चरन के माँहि । १
जुरत प्रेम के घन जहाँ दृग बरसा बरसात ।
मन संध्या फूलत जहाँ तहँ यह धनुष लखात ।२

१. सर्वे पदा : हस्तिपदे निमग्ना : ।

चन्द्रमा के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री शिव सों निज चरण सों प्रगट करन हित हत ।
चंद्र-चिन्ह हरि-पद बसत निज जन कों सुख देत ।१
जे या चरनहिं सिर धरें ते नर रुद्र समान ।
चंद्र-चिन्ह यहि हेतु निज पद राखत भगवान ।।२
निज जन पै बरखत सुधा हरत सकल त्रयताप ।
चंद्र-चिन्ह येहि हेतु हरि धारत निज पद आप ।।३
भक्त जनन के मन सदा यामैं करत निवास ।
यातें मन को देवता चंद्र-चिन्ह हरि पास ।४
बहु तारन को एक पति जिमि ससि तिमि ब्रजनाथ ।
दक्षिनता प्रगटित करन चंद्र-चिन्ह पद साथ ।५
जाकी छटा प्रकाश तें हरत हृदय-तम घोर ।
या हित ससि को चिन्ह पद धारत नंदकिसोर ।६
निज भगिनी श्री देखि कै चंद्र बस्यौ मनु आइ ।
चंन्द्र-चिन्ह ब्रजचंद्र-पद यातें प्रगट लखाइ ।७

तरवार के चिन्ह को भाव वर्णन

निज जन के अघ-पसुन कों बधत सदा करि रोस ।
एहि हित असि पग मैं धरत दूर दरत जन-दोस ।१

गदा के चिन्ह को भाव वर्णन

काम-कलुख-कुंजर-कदन समरथ जो सब भाँति ।
गदा-चिन्ह येहि हेतु हरि धरत चरन जुत क्रांति ।१
भक्त-नाद मोहिं प्रिय अतिहि मन महँ प्रगट करंत ।
गदा-चिन्ह निज कमल पद धारत राधाकंत ।२

छत्र के चिन्ह को भाव वर्णन

भय दुख आतप सों तपे तिनका अति प्रिय एह ।
छत्र-चिन्ह येहि हेत पग धारत साँवल देह ।१
ब्रज राख्यो सुर-कोप तें भव-जल तें निज दास ।
छत्र-चिन्ह पद मैं धरत या हित रमानिवास ।२
याकी छाया में बसत महाराज सम होय ।
छत्र-चिन्ह श्रीकृष्ण पद यातें सोहत सोय ।३

नवकोण चिन्ह को भाव वर्णन

नवो खंड पति होत हैं सेवत जे पद-कंजु ।
चिन्ह धरत नवकोन को या हित हरि-पद मंजु ।१
नवधा भक्ति प्रकार करि तब पावत येहि लोग ।
या हित है नवकोन को चिन्ह चरन गत-सोग ।२
नव जोगेश्वर जगत तजि यामें करत निवास ।
या हित चिन्ह सुकोन नव हरि-पद करत प्रकास ।३
नव ग्रह नहिं बाधा करत जो एहि सेवत नेक ।
याही तें नवकोन को चिन्ह धरत सविवेक ।४
अष्ट सखिन के संग श्री राधा करत निवास ।
याही हित नवकोन को चिन्ह कृष्ण-पद पास ।५
यामैं नव रस रहत हैं यह अनंद की खानि ।
याही तें नवकोन को चिन्ह कृष्ण-पद जानि ।६
नव को नव-गुन लगि गिनौ नवै अंक सब होत ।
तातें रेखा कहत जग यामैं ओत न प्रोत ।७

यव के चिन्ह को भाव वर्णन

जीवन जीवन के यहै अन्न एक तिमि येह ।
या हित जव को चिन्ह पद धारत साँवल देह ।१

तिल के चिन्ह को भाव वर्णन

याके शरण गए बिना पित्रन कौं गति नाहिं ।
या हित तिल को चिन्ह हरि राखत निज पद माँहिं ।१

त्रिकोण के चिन्ह को भाव वर्णन

स्वीया परकीया बहुरि गनिका तीनहु नारि ।
सबके पति प्रगटित करत मनमथ-मथन मुरारि ।१
तीनहु गुन के भक्त कों यह उद्धरण समर्थ ।
सम त्रिकोन को चिन्ह पद धारत याके अर्थ ।२
ब्रहमा-हरि-हर तीनि सुर याही ते प्रगटंत ।
या हित चिन्ह त्रिकोन को धारत राधाकंत ।३
श्री-भू-लीला तीनहू दासी याकी जान ।
तातें चिन्ह त्रिकोन को पद धारत भगवान ।४
स्वर्ग-भूमि-पाताल मैं विक्रम ह्वै गए धाइ ।
याहि जनावन हेत त्रय कोन चिन्ह दरसाइ ।५
जो याकै शरनहि गए मिटे तीनहूँ ताप ।
या हित चिन्ह त्रिकोन को धरत हरत जो पाप ।६
भक्ति-ज्ञान-वैराग हैं याके साधन तीन ।
यातें चिन्ह त्रिकोन को कृष्ण-चरन लखि लीन ।७
त्रयी सांख्य आराधि कै पावत जोगी जौन ।
सो पद है येहि हेत यह चिन्ह त्रिश्रुति को भौन ।८
बृन्दाबन द्वारावती मधुपुर तजि नहिं जाहिं ।
यातें चिन्ह त्रिकोन है कृष्ण-चरन के माहिं ।९
का सुर का नर असुर का सब पैं दृष्टि समान ।
एक भक्ति तें होत बस या हित रेखा जान ।१०
नित शिव जू वंदन करत तिन नैननि की रेख ।
या हित चिन्ह त्रिकोन को कृष्ण-चरन मैं देख ।११

वृक्ष के चिन्ह को भाव वर्णन

वृक्ष-रूप सब जग अहै बीज-रूप हरि आप ।
यातें तरु को चिन्ह पग प्रगटत परम प्रताप ।१
जे भव आतप सो तपे तिनहीं के सुख हेतु ।
वृक्ष-चिन्ह निज चरन मैं धारत खगपति-केतु ।२
जहँ पग धरै निकुंजमय भूमि तहाँ की होय ।

या हित तरु को चिन्ह पद पुरवत रस कों सोय ।३
यहाँ कल्पतरु सों अधिक भक्त मनोरथ दान ।
वृक्ष चिन्ह निज पद धरत यातें श्री भगवान ।४
श्री गोपीजन-मन-बिहँग इहाँ करैं विश्राम ।
या हित तरु को चिन्ह पद धारत हैं घनश्याम ।५
केवल पर-उपकार-हित वृक्ष-सरिस जग कौन ।
तातें ताको चिन्ह पद धारत राधा-रौन ।६
प्रेम-नयन-जल सों सिंचे सुद्ध चित्त के खेत ।
बनमाली के चरन में वृक्ष चिन्ह येहि हेत ।७
पाहन मारेहु देत फल सोइ गुन यामैं जान ।
वृक्ष-चिन्ह श्रीकृष्ण-पद पर-उपकार-प्रमान ।८

बाण के चिन्ह को भाव वर्णन

सब कटाक्ष ब्रज-जुबति के बसत एक ही ठौर ।
सोई बान को चिन्ह है कारन नहिं कछु और ।१

गृह के चिन्ह को भाव वर्णन

केवल जोगी पावहीं नहिं यामैं कछु नेम ।
या हित गृह को चिन्ह जिहि गृही लहैं करि प्रेम ।१
मति डूबौ भव-सिंधु मैं यामैं करौ निवास ।
मानहु गृह को चिन्ह पद जनन बोलावत पास ।२
शिव जू के मन को मनहुँ महल बनाये स्याम ।
चिन्ह होय दरसत सोई हरि-पद कंज ललाम ।३
गृही जानि मन बुद्धि को दंपति निवसन हेत ।
अपने पद कमलन दियो दयानिकेत निकेत ।४

अग्निकुंड के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री वल्लभ हैं अनल-वपु तहाँ सरन जे जात ।
ते मम पद पावत सदा येहि हित कुंड लखात ।१
श्री गोपीजन को विरह रह्यौ जौन श्री गात ।
एक देस में सिमिट सोइ अग्निकुंड दरसात ।२
मत तपि कै मम चरन मैं क्वथित धान सम होइ ।
तब न और कछु जन चहै अग्निकुंड है सोइ ।३
जग्य-पुरुष तजि और को को सेवै मतिमंद ।
अग्निकुंड को चिन्ह येहि हित राख्यौ ब्रजचन्द ।४

सर्प चिन्ह को भाव वर्णन

निज पद चिन्हित तेहि कियो ताको निज पद राखि ।
काली-मर्दन-चरन यह भक्त-अनुग्रह-साखि ।१
नाग-चिन्ह मत जानियो यह प्रभु-पद के पास ।
भक्तन के मन बाँधिवे हित राखी अहि पास ।२
श्री राधा के विरह मैं मति त्रि-अनिल दुख देइ ।
सर्प-चिन्ह प्रभु सर्वदा राखत हैं पद सेइ ।३
याकी सरनन दीन जन सर्पहि [१] आवहु धाय ।
सर्प-चिन्ह एहि हेतु पद राखत श्री ब्रजराय ।४

सैल चिन्ह को भाव वर्णन

सत्य-करन हरिदास वर श्री गिरिवर को नाम ।
सैल-चिन्ह निज चरन मैं राख्यो श्री घनस्याम ।१
श्री राधा के बिरह में पग पग लगत पहार ।
सैल-चिन्ह निज चरन मैं राख्यौ यहै विचार ।२

श्री गोपालतापिनी श्रुति के मत से चरण-चिन्ह वर्णन

परम ब्रहम के चरन मैं मुख्य चिन्ह ध्वज-छत्र ।
ऊरध अध अज लोक सों सोई द्वै पद अत्र ।१
ध्वजा दंड सो मेरु है बन्यो स्वर्णमय सोय ।
सूर्य्य-चंद्र की कांति जो ध्वज पताक सो होय ।२
आत पत्र को चिन्ह जोइ ब्रह्मलोक सो जान ।
येहि बिधि श्रुति निरनै करत चरन-चिन्ह परमान ।३
रथ बिनु अश्व लखात है मीन चिन्ह द्वै जान ।
धनुष विना परतंच को यह कोउ करत प्रमान ।४

मिलि कै चिन्हन को भाव वर्णन

दो चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ हाथी के और अंकुश के चिन्ह को भाव वर्णन

काम करत सब आपु ही पुनि प्रेरकहु आप ।
या हित अंकुश-हस्ति दोउ चिन्ह चरन गत पाप ।१

तिल और यव के चिन्ह को भाव वर्णन

देव-काज अरु पितर दोउ याही सों सिधि होइ ।
याके बिन कोउ गति नहीं येहि हित तिल-यव दोइ ।१
देव-पितर दोउ रिनन सों मुक्त होत सो जीव ।
जो या पद को सेवई सकल सुखन को सींव ।२

कुमुद और कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

राति दिवस दोउ सम अहै यह तौ स्वयं प्रकास ।
या हित निसि दिन के दोऊ चिन्ह कृष्ण-पद पास ।१

तीनि चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ पर्वत, कमल और वृक्ष के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री कालिंदी कमल सों गिरि सों श्री गिरिराज ।
श्री वृन्दाबन वृक्ष सों प्रगटत सह सुख साज ।१

जहाँ जहाँ प्रभु पद धरत तहाँ तीन प्रगटंत ।
या हित तीनहु चिन्ह ए धारत राधाकंत ।२

त्रिकोन नवकोन और अष्टकोन के चिन्ह को भाव वर्णन

तीन आठ नव मिलि सबै बीस अंक पद जान ।
जीत्यौ बिस्वे बीस सोइ जो सेवत करि ध्यान ।१

चारि चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ अमृत-कुंभ, धनु, वंशी और गृह के चिन्ह को भाव वर्णन

वैद्यक अमृत-कुंभ सों धनु सों धनु को वेद ।
गान वेद वंशी प्रगट शिल्प वेद गृह भेद ।१
रिग यजु साम अथर्व के ये चारहु उपवेद ।
सो या पद सों प्रगट एहि हेतु चिन्ह गत खेद ।२

सर्प, कमल, अग्निकुंड और गदा के चिन्ह को भाव वर्णन

रामानुज मत सर्प सों शेष अचारज मानि ।
निंबारक मत कमल सों रविहि पद्म प्रिय जानि ।१
विष्णुस्वामि मत कुंड सों श्रीवल्लभ वपु जान ।
गदा चिन्ह सों माध्व मत आचारज हनुमान ।२
इन चारहु मत मैं रहै तिनहिं मिलैं भगवंत ।
कुंड गदा अहि कमल येहि हित जानहु सब संत ।३

शक्ति, सर्प, बरछी, अंकुश को भाव वर्णन

सर्प चिन्ह श्री शंभु को शक्ति सु गिरिजा भेस ।
कुंत कारतिक आपु है अंकुश अहै गणेस ।१
प्रिया-पुत्र सँग नित्य शिव चरन बसत हैं आप ।
तिनके आयुध चिन्ह सब, प्रगटित प्रबल प्रताप ।२

पाँच चिन्हन को मिलि कै वर्णन

तहाँ गदा, सर्प, कमल, अंकुश शक्ति के चिन्ह को भाव वर्णन

गदा विष्णु को जानिए अहि शिव जू के साथ ।
दिवसनाथ को कमल है अंकुश है गणनाथ ।१
शक्ति रूप तहँ शक्ति है एई पाँचौ देव ।
चिन्ह रूप श्रीकृष्ण-पद करत सदा शुभ सेव ।२
जिमि सब जल मिलि नदिन मैं अंत समुद्र समात ।
तिमि चाहौ जाकौ भजौ कृष्ण चरन सब जात ।३

छ चिन्हन को मिलि कै वर्णन

तहाँ छत्र, सिंहासन, रथ, घोड़ा, हाथी और धनुष के चिन्ह को भाव वर्णन

छत्र सिंहासन बाजि गज रथ धनु ए षट जान ।
राज-चिन्ह मैं मुख्य हैं करत राज-पद दान ।१
जो या पद को नित भजै सेवै करि करि ध्यान ।
महाराज तिनको करत सह स्यामा भगवान ।२

सात चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वेणु, मत्स्य, चन्द्र, वृक्ष, कमल, कुमुद, गिरि के चिन्ह को भाव वर्णन

आवाहन हित वेणु झष काम बढ़ावन हेत ।
चंद्र बिरह-बरधन करन तरु सुगंधि रस देत ।१
कमल हृदय प्रफुलित-करन कुमुद प्रेम-दृष्टान्त ।
गिरिवर सेवा करन हित धारत राधा-कांत ।२
राग-बिलास-सिंगार के ये उद्दीपन सात ।
आलंबन हरि संग ही राखत पद-जलजात ।३

आठ चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वज्र, अग्निकुंड, तिल, तलवार, मच्छ, गदा, अष्टकोण और सर्प को भाव वर्णन

बज्र इन्द्र बपु, अनल है अग्निकुंड बपु आप ।
जम तिल बपु, तरवार बपु नैरित प्रगट प्रताप ।१
बरुन मच्छ बपु, गदा बपु वायु जानि पुनि लेहु ।
अष्टकोन बपु धनद है, अहि इसान कहि देहु ।२
आयुध बाहन सिद्धि झष आदिक को संबंध ।
इन चिन्हन सों देव सों जानहु करि मन संध ।३
सोइ आठो दिगपाल मनु सेवत हरि-पद आइ ।
अथवा दिगपति होइ जो रहै चरन सिरु नाइ ।४

पुन:

अंकुश, बरछी, शक्ति, पवि, गदा, धनुष, असि तीर ।
आठ शस्त्र को चिन्ह यह धारत पद बलबीर ।१
आठहु दिसि सों जनन की मनु-इच्छा के हेत ।
निज पद में ये शस्त्र सब धारत रमा-निकेत ।२

नव चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ बेनु, चंद्र, पर्वत, रथ, अग्नि, वज्र, मीन, गज, स्वस्तिक चिन्ह को भाव वर्णन

बेनु-चंद्र-गिरि-रथ-अनल-बज्र- मीन-गज-रेख ।
आठौ रस प्रगटत सदा नवम स्वस्तिकहु देख ।१
बेनु प्रगट शृंगार रस जो बिहार को मूल ।
चरन कमल मैं चंद्रमा यह अद्भुत गत सूल ।२
कोमल पद कहँ गिरि प्रगट यहै हास्य की बात ।
रन उद्यम आगे रहै रथ रस वीर लखात ।३
निसिचर-तूलहि दहन हित अग्निकुंड भय-रूप ।
रौद्र सर्प को चिन्ह है दुष्टन-काल-सरूप ।४
गज करुणा रस रूप है जिन अति करी पुकार ।
मीन चिन्ह बीभत्स है बंगाली-व्यवहार ।५
नाटक के ये आठ रस आठ चिन्ह सों होत ।

स्वस्तिक सों पुनि शांत को रस नित करत उदोत ।६
कर-पद-मुख आनंदमय प्रभु सब रस की खान ।
ताते नव रस चिन्ह यह धारत पद भगवान ।७

दस चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वेणु, शंख, गज, कमल, यव, रथ, गिरि, गदा, वृक्ष, मीन को भाव वर्णन

बेनु बढ़ावत श्रवन को, शंख सुकीर्तन जान ।
गज सुमिरन को कमल पद, पूजन कमल बखान ।१
भोग रूप यव अरचनहि, बंदन गिरि गिरिराज ।
गदा दास्य हनुमान को, सख्य सारथी-साज ।२
तरु तन मन अरपन सबै, प्रेम लक्षना मीन ।
दस बिधि उद्दीपन करहिं भक्ति चिन्ह सत तीन ।३

मत्स्य, अमृत-कुंभ, पर्वत, वज्र, छत्र, धनुष, बान, वेणु, अग्निकुंड और तरवार के चिन्ह को एक मैं वर्णन

प्रगट मत्स्य के चिन्ह सों विष्णु मत्स्य अवतार ।
अमृत-कुंभ सो कच्छ है भयो जो मथती बार ।१
पर्व्वत सो बाराह भे धरनि-उधारन-रूप ।
बज्र चिन्ह नरसिंह के जे नख बज्र-सरूप ।२
बामन जू हैं छत्र सों जो है बटु को अंग ।
परशुराम धनु चिन्ह हैं गए जो धनु के संग ।३
बान चिन्ह सौं प्रगट श्री रामचंद्र महराज ।
बेनु-चिन्ह हलधर प्रगट व्यूह रूप सह साज ।४
अग्निकुंड सों बुध भए जिन मख निंदा कीन ।
कलकी असि सों जानियै म्लेच्छ-हरन-परवीन ।५
भीर परत जब भक्त पर तब अवतारहिं लेत ।
अवतारी श्रीकृष्ण पद दसौ चिन्ह एहि हेत ।६

ग्यारह चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ शक्ति, अग्निकुंड, हाथी, कुंभ, धनुष चंद्र, जव,वृक्ष, त्रिकोण, पर्वत, सर्प को भाव वर्णन

श्री शिव जू हरि-चरन में करत सर्व्वदा वास ।
आयुध भूषन आदि सह ग्यारह रूप प्रकास ।१
शक्ति जानि गिरि-नंदिनी परम शक्ति जो आप ।
अग्निकुंड तीजो नयन अथवा धूनी थाप ।२
गज जानौ गज को चरम धरत जाहि भगवान ।
कुंभ गंग-जल कों कहौ रहत सीस अस्थान ।३
धनुष पिनाकहि मानियै सब आयुध को ईस ।
चंद्र जानि चूड़ारतन जेहि धारत शिव सीस ।४
श्रीतनु नवधा भक्तिमय सोइ नवकोन लखाइ ।
वृक्ष महावट वृक्ष है रहत जहाँ सुरराइ ।५
नेत्र रूप वा शुल को रूप त्रिकोनहि जान ।
पर्व्वत सोइ कैलास है जहँ बिहरत भगवान ।६
सर्प अभूखन अंग के कंकन मैं वा सेस ।
एहि बिधि श्री शिव बसहिं नित चरन माँहि सुभ बेस ।७
को इनकी सम करि सकै भक्तन के सिरताज ।
आसुतोष जो रीझि कै देहिं भक्ति सह साज ।८
जिन निज प्रभु कों जा दिवस आत्म-समर्पन कीन ।
चंदन-भूषन-बसन-भष-सेज आदि तजि दीन ।९
भस्म-सर्प-गज-छाल विष परबत माँहि निवास ।
तबसों अंगीकृत कियो तज्यौ सबै सुखरास ।१०

अन्य मत से चिन्हन को रंग वर्णन

स्वस्तिक पीवर वर्ण को, पाटल है अठ-कोन ।
स्वेत रंग को छत्र है, हरित कल्पतरु जौन ।१
स्वर्ण बर्ण को चक्र है, पाटल जव की माल ।
ऊरध रेखा अरुण है, लोहित ध्वजा विसाल ।२
बज्र बीजुरी रंग को, अंकुश है पुनि स्याम ।
सायक त्रय चित्रित बरन, पद्म अरुण अठ-धाम ।३
अस्व चित्र रँग को बन्यौ, मुकुट स्वर्ण के रंग ।
सिंहासन चित्रित बरन, सोभित सुभग सुढंग ।४
व्योम चँवर को चिन्ह है नील वर्ण अति स्वच्छ ।
जब अँगुष्ठ के मूल मैं पाटल वर्ण प्रतच्छ ।५
रेखा पुरुषाकार है पाटल रंग प्रमान ।
ये अष्टादश चिन्ह श्री हरि दहिने पद जान ।६
जे हरि के दक्षिन चरन ते राधा-पद वाम ।
कृष्ण वाम पद चिन्ह अब सुनहु बिचित्र ललाम ।७
स्वेत रंग को मत्स्य है, कलश चिन्ह है लाल ।
अर्ध चंद्र पुनि स्वेत है, अरुण त्रिकोण बिसाल ।८
स्याम बरन पुनि जंबु फल, काही धनु की रेख ।
गोखुर पाटल रंग को शंख श्वेत रँग देख ।९
गदा स्याम रंग जानिये, बिंदु चिन्ह है पीत ।
खंग अरुन षटकोन, जम दंड श्याम की रीत ।१०
त्रिबली पाटल रंग की पूर्ण चंद्र घृत रंग ।
पीत रंग चौकोन है पृथ्वी चिन्ह सुढंग ।११
तलवा पाटल रंग के दोउ चरन के जान ।
कृष्ण वाम पद चिन्ह सो राधा दक्षिन मान ।१२
या बिधि चौंतिस चिन्ह हैं जुगल चरन जलजात ।
छाँडि सकल भव-जाल को भजौ याहि हे तात ।१३

श्री स्वामिनी जी के चरण चिन्ह के भाव वर्णन

छप्पय

छत्र चक्र ध्वज लता पुष्प कंकण अंबुज पुनि ।
अंकुश ऊरध रेख अर्ध ससि यव बाएँ गुनि ।
पाश गदा रथ यज्ञवेदि अरु कुंडल जानौ ।
बहुरि मत्स्य गिरिराज शंख दहिने पद मानौ ।
श्रीकृष्ण प्राणप्रिय राधिका चरण चिन्ह उन्नीसवर ।
'हरिचंद' सीस राजत सदा कलिमल-हर कल्याणकर ।१

छत्र के चिन्ह को भाव वर्णन

दोहा

सब गोपिन की स्वामिनी प्रगट करन यह अत्र ।
गोप-छत्रपति-कामिनी धर्‌यौ कमल-पद छत्र ।। १
प्रीतम-बिरहातप-शमन हेत सकल सुखधाम ।
छत्र चिन्ह निज कंज पद धरत राधिका बाम ।। २
यदुपति व्रजपति गोपपति त्रिभुवनपति भगवान ।
तिनहूँ की यह स्वामिनी छत्र चिन्ह यह जान ।३

चक्र के चिन्ह को भाव वर्णन

एक-चक्र ब्रजभूमि मैं श्रीराधा को राज ।
चक्र चिन्ह प्रगटित करन यह गुन चरन बिराज ।१
मान समैं हरि आप ही चरन पलोटत आय ।
कृष्ण कमल कर चिन्ह सो राधा-चरन लखाय ।२
दहन पाप निज जनन के हरन हृदय-तम घोर ।
तेज तत्व को चिन्ह पद मोहन चित को चोर ।३

ध्वज के चिन्ह को भाव वर्णन

परम विजय सब नियत सों श्रीराधा पद जान ।
यह दरसावन हेतु पद ध्वज को चिन्ह महान ।१

लता चिन्ह को भाव वर्णन

पिया मनोरथ की लता चरन बसी मनु आय ।
लता चिन्ह ह्वै प्रगट सोइ राधा-चरन दिखाय ।१
करि आश्रय श्रीकृष्ण को रहत सदा निरधार ।
लता-चिन्ह एहि हेत सो रहत न बिनु आधार ।२
देवी वृंदा विपिन की प्रगट करन यह बात ।
लता चिन्ह श्रीराधिका धारत पद-जलजात ।३
सकल महौषधि गगन की परम देवता आप ।
सोइ भव रोग महौषधी चरन लता की छाप ।४
लता चिन्ह पद आपुके वृक्ष चिन्ह पद श्याम ।
मनहुँ रेख प्रगटित करत यह संबंध ललाम ।५
चरन धरत जा भूमि पर तहाँ कुंजमय होत ।
लता चिन्ह श्री कमल पद या हित करत उदोत ।६
पाग चिन्ह मानहुँ रहयौ लपटि लता आकार ।
मानिनि के पद-पद्म में बुधजन लेहु विचार ।७

पुष्प के चिन्ह को भाव वर्णन

कीरतिमय सौरभ सदा या सों प्रगटित होय ।
या हित चिन्ह सुपुष्प को रहयौ चरन-तल सोय ।१
पाय पलोटत मान में चरन न होय कठोर ।
कुसुम चिन्ह श्रीराधिका धारत यह मति मोर ।२
सब फल याही सों प्रगट सेओ येहि चित लाय ।
पुष्प चिन्ह श्रीराधिका पद येहि हेत लखाय ।३
कोमल पद लखि कै पिया कुसुम पाँवड़े कीन ।
सोइ श्रीराधा कमल पद कुसुमित चिन्ह नवीन ।४

कंकण के चिन्ह को भाव वर्णन

पिय-बिहार मैं मुखर लखि पद तर दीनो डारि ।
कंकन को पद चिन्ह सोइ धारत पद सुकुमारि ।१
पिय कर को निज चरन को प्रगट करन अति हेत ।
मानिनि-पद मैं वलय को चिन्ह दिखाई देत ।२

कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

कमलादिक देवी सदा सेवत पद दै चित्त ।
कमल चिन्ह श्रीकमल पद धारत एहि हित नित्त ।१
अति कोमल सुकुमार श्री चरन कमल हैं आप ।
नेत्र कमल के दृष्टि की सोई मानौ छाप ।२
कमल रूप वृंदा बिपिन बसत चरन में सोइ ।
अधिपतित्व सूचित करत कमल कमल पद होइ ।३
नित्य चरन सेवन करत विष्णु जानि सुख-सद्म ।
पद्मादिक आयुधन के चिन्ह सोई पद-पद्म ।४
पद्मादिक सब निधिन को करत पद्म-पद दान ।
यातें पद्म-चरन में पद्म चिन्ह पहिचान ।५

ऊर्ध रेखा के चिन्ह को भाव वर्णन

अति सूधो श्री चरन को यह मारग निरुपाधि ।
ऊरध रेखा चरन मैं ताहि लेहु आराधि ।१
शरन गए ते तरहिंगे यहै लीक कहि दीन ।
ऊरध रेखा चिन्ह है सोई चरन नवीन ।२

अंकुश के चिन्ह को भाव वर्णन

बहु-नायक पिय-मन-सुगज मति औरन पै जाय ।
या हित अंकुश चिन्ह श्री राधा-पद दरसाय ।१

अर्द्ध-चंद्र के चिन्ह को भाव वर्णन

पूरन दस ससि-नखन सों मनहुँ अनादर पाय ।
सूखि चंद्र आधो भयो सोई चिन्ह लखाय ।१
जे अ-भक्त कु-रसिक कुटिल ते न सकहिं इत आय ।
अर्ध-चंद्र को चिन्ह येहि हेत चरन दरसाय ।२
निष्कलंक जग-बंद्य पुनि दिन दिन याकी वृद्धि ।
अर्ध-चंद्र को चिन्ह है या हित करत समृद्धि ।३ ।
राहु ग्रसै पूरन ससिहि ग्रसै न येहि लखि वक्र ।
अर्ध-चंद्र को चिन्ह पद देखत जेहि शिव-सक्र ।४

यव के चिन्ह को भाव वर्णन

परम प्रथित निज यश-करन नर को जीवन प्रान ।
राजस यव को चिन्ह पद राधा धरत सुजान ।१
भोजन को मत सोच करु भजु पद तजु जंजाल ।
जव को चिन्ह लखात पद हरन पाप को जाल ।२

इति श्री वाम पद चिन्हम्

—:❀:—
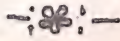
पाश के चिन्ह को भाव वर्णन

भव-बंधन तिनके कटैं जै आवैं करि आस ।
यह आशय प्रगटित करत पास प्रिया-पद पास ।१
जे आवैं याकी सरन कबहुँ न ते छूटि जाहिं ।
पास-चिन्ह श्री राधिका येहि कारन पद माहिं ।२
पिय मन बंधन हेत मनु पास-चिन्ह पद सोभ ।
सेवत जाको शंभु अज भक्ति दान के लोभ ।३

गदा के चिन्ह को भाव वर्णन

जे आवत याकी शरन पित्तर सबै तरि जात ।
गया गदाधर चिन्ह पद या हित गदा लखात ।१

रथ के चिन्ह को भाव वर्णन

जामैं श्रम कछु होय नहिं चलत समय बन-कुंज ।
या हित रथ कों चिन्ह पग सोभित सब-सुख-पुंज ।१
यह जग सब रथ रूप है सारथि प्रेरक आप ।
या हित रथ को चिन्ह है पग मैं प्रगट प्रताप ।२

वेदी के चिन्ह को भाव वर्णन

अग्नि रूप ह्वै जगत को कियो पुष्टि रस दान ।
या हित वेदी चिन्ह है प्यारी-चरन महान ।१
यग्य रूप श्रीकृष्ण हैं स्वधा रूप हैं आप ।
यातें बेदी चिन्ह है चरन हरन सब पाप ।२

कुंडल के चिन्ह को भाव वर्णन

प्यारी पग नूपुर मधुर धुनि सुनिबे के हेत ।
मनहुँ करन पिय के बसे चरन सरन सुख देत ।१
सांख्य योग प्रतिपाद्य हैं ये दोउ पद जलजात ।
या हित कुंडल चिन्ह श्री राधा-चरन लखात ।२

मत्स्य के चिन्ह को भाव वर्णन

जल बिनु मीन रहै नहीं तिम पिय बिनु हम नाहिं ।
यह प्रगटावन हेत हैं मीन चिन्ह पद माँहिं ।१

पर्व्वत के चिन्ह को भाव वर्णन

सब ब्रज पूजत गिरिवरहि सो सेवत हैं पाय ।
यह महात्म्य प्रगटित करन गिरिवर चिन्ह लखाय ।१

शंख के चिन्ह को भाव वर्णन

कबहुँ पिय को होइ नहिं विरह ज्वाल की ताप ।
नीर तत्व को चिन्ह पद या सों धारत आप ।१

इति श्री दक्षिन पद चिन्हम् ।

—:❀:—

भक्त, मंजूषा आदिक ग्रन्थ सो अन्य वर्णन

जव बेंड़ो अंगुष्ठ मध ऊपर मुख को छत्र ।
दक्षिन दिसि को फरहरै ध्वज ऊपर मुख तत्र ।१
पुनि पताक ताके तले कल्पलता के रेख ।
जो ऊपर दिसि कों बढ़ी देत सकल फल लेख ।२
ऊरध रेखा कमल पुनि चक्र आदि अति स्वच्छ ।
दक्षिण श्री हरि के चरण इतने चिन्ह प्रतच्छ ।३
श्री राधा के वाम पद अष्ट पत्र को पद्म ।
पुनि कनिष्ठिका के तले चक्र चिन्ह को सद्म ।४
अग्र शृंग अंकुश करौ ताही के ढिग ध्यान ।
नीचे मुख को अर्ध ससि एड़ी मध्य प्रमान ।५
ताके ढिग है वलय को चिन्ह परम सुख-मूल ।
दक्षिन पद के चिन्ह अब सुनहु हरन भव-सूल ।६
शंख रह्यौ अंगुष्ठ मैं ताको मुख अति हीन ।
चार अँगुरियन के तले गिरिवर चिन्ह नवीन ।७
ऊपर सिर सब अंग-जुत रथ है ताके पास ।
दक्षिन दिसि ताके गदा बाएँ शक्ति विलास ।८
एड़ी पैं ताके तले ऊपर मुख को मीन ।
चरन-चिन्ह तेहि भाँति श्री राधा-पद लखि लीन ।९

अन्य मत सों श्री स्वामिनी जू के चरन चिन्ह

वाम चरन अंगुष्ठ तल जव को चिन्ह लखाइ ।
अर्ध चरन लौं घूमि कै ऊरध रेखा जाइ ।१
चरन-मध्य ध्वज अब्ज है पुष्प-लता पुनि सोह ।
पुनि कनिष्ठिका के तले अंकुश नासन मोह ।२
चक्र मूल में चिन्ह द्वै कंकन है अरु छत्र ।
एड़ी में पुनि अर्ध ससि सुनो अबै अन्यत्र ।३
एड़ी में सुभ सैल अरु स्यंदन ऊपर राज ।
शक्ति गदा दोउ ओर दर अँगुठा मूल बिराज ।४
कनिष्ठिका अँगुरी तले वेंदी सुंदर जान ।
कुण्डल है ताके तले दक्षिन पद पहिचान ।।५

तुलसी शब्दार्थ प्रकाश के मत सों युगल स्वरूप के चिन्ह

छप्पय

ऊरध रेखा छत्र चक्र जव कमल ध्वजावर ।
अंकुश कुलिस सुचारि सथीये चारि जंबुधर ।
अष्टकोन दश एक लछन दहिने पग जानौ ।

वाम पाद आकास शंखवर धनुष पिछानौ ।
गोपद त्रिकोन घट चारि ससि मीन आठ ए चिन्हवर ।
श्रीराधा-रमन उदार पद ध्यान सकल कल्यानकर ।१
पुष्प लता जव वलय ध्वजा ऊरध रेखा वर ।
छत्र चक्र बिधु कलस चारु अंकुश दहिने धर ।
कुंडल बेदी शंख गदा बरछी रथ मीना ।
वाम चरन के चिन्ह सप्त ए कहत प्रवीना ।
ऐसे सत्रह चिन्ह-जुत राधा-पद बंदत अमर ।
सुमिरत अघहर अनघवर नंद-सुअन आनंदकर ।२

गर्ग-संहिता के मत सों चरण-चिन्ह वर्णन

दोहा

चक्रांकुश यव छत्र ध्वज स्वस्तिक बिंदु नवीन ।
अष्टकोन पवि कमल तिल शंख कुंभ पुनि मीन ।१
ऊरधर रेख त्रिकोन धनु गोखुर आधो चंद ।
ए उनीस सुभ चिन्ह निज चरन धरत नँद-नंद ।२

अन्य मत सों श्रीमती जू के चरन-चिन्ह वर्णन

केतु छत्र स्यंदन कमल ऊरध रेखा चक्र ।
अर्ध चंद्र कुश बिन्दु गिरि शंख शक्ति-अति वक्र ।१
लानी लता लवंग की गदा बिन्दु द्वै जान ।
सिंहासन पाठीन पुनि सोभित चरन बिमान ।२
ए अष्टादश चिन्ह श्री राधा-पद में जान ।
जा कहँ गावत रैन दिन अष्टादसौ पुरान ।३
जग्य श्रुवा को चिन्ह है काहू के मत सोइ ।
पुनि लक्ष्मी को चिन्हहू मानत हरि-पद कोइ ।४
श्रीराधा-पद मोर को चिन्ह कहत कोउ संत ।
द्वै फल की बरछी कोऊ मानत पद कुश अंत ।५

श्री मद्भागवत के अनेक टीकाकारन के मत सों

श्री चरण-चिन्ह को वर्णन

लाँबो प्रभु को श्री चरण चौदह अंगुल जान ।
षट अंगुल बिस्तार मैं याको अहै प्रमान ।१
दक्षिन पद के मध्य मैं ध्वजा-चिन्ह सुभ आन ।
अँगुरी नीचे पद्म है, पवि दक्षिण दिसि जान ।२
अंकुश वाके अग्र है, जव अँगुष्ठ के मूल ।
स्वस्तिक काहू ठौर है हरन भक्त-जन-सूल ।३
तल सों जहँ लौं मध्यमा सोभित ऊरध रेख ।
ऊरध गति तेहि देत है जो वाको लखि लेख ।४
आठ अँगुल तजि अग्र सों तर्जनि अँगुठा बीच ।
अष्टकोन को चिन्ह लखि सुभ गति पावत नीच ।५
वाम चरन मैं अग्र सों तजि कै अंगुल चार ।
बिना प्रतंचा को धनुष सोभित अतिहि उदार ।६
मध्य चरन त्रैकोन है अमृत कलश कहुँ देख ।
द्वै मंडल को बिंदु नभ चिन्ह अग्र पैं लेख ।७
अर्ध चंद्र त्रैकोन के नीचे परत लखाय ।
गो-पद नीचे धनुष के तीरथ को समुदाय ।८
एड़ी पै पाठीन है दोउ पद जंबू-रेख ।
दक्षिन पद अंगुष्ठ मधि चक्र चिन्ह कों लेख ।९
छत्र चिन्ह ताकें तले शोभित अतिहि पुनीत ।
वाम अँगूठा शंख है यह चिन्हन की रीत ।१०
जहँ पूरन प्रागट्य तहँ उन्निस परत लखाइ ।
अंश कला मैं एक द्वै तीन कहूँ दरसाइ ।११
बाल-बोधिनी तोषिना चक्र-वर्त्तिनी जान ।
वैष्णव-जन-आनंदिनी तिनको यहै प्रमान ।१२
चरन-चिन्ह निज ग्रन्थ मैं यही लिख्यौ हरिराय ।
विष्णु पुरान प्रमान पुनि पद्म-वचन कों पाय ।१३
स्कंध-मत्स्य के वाक्य सों याको अहै प्रमान ।
हयग्रीव की संहिता वाहू मैं यह जान ।१४

श्री राधिका-सहस्रनाम के मत सों चिन्ह को वर्णन

कमल गुलाब अटा सु-रथ कुंडल कुंजर छत्र ।
फूल माल अरु बीजुरी दंड मुकुट पुनि तत्र ।१
पूरन ससि को चिन्ह है बहुरि ओढ़नी जान ।
नारदीय के बचन को जानहु लिखित प्रमान ।२

श्री महाप्रभु श्री आचार्य्य जी के चरण-चिन्ह वर्णन

छप्पय

कमल पताका गदा वज्र तोरन अति सुंदर ।
कुसुमलता पुनि धनुष धरत दक्षिन पद मैं वर ।
ध्वज अंकुश झष चक्र अष्टदल अंबुद मानौ ।
अमृत-कुंभ यव चिन्ह वाम पद मैं पुनि जानौ ।
तैलंग वंश शोभित-करन विष्णु स्वामि पथ प्रगट कर ।
श्री श्री वल्लभ-पद-चिन्ह ये हृदय नित्य 'हरिचंद' धर ।१

श्री रामचन्द्र जी के चरण-चिन्ह वर्णन

स्वस्तिक ऊरध रेख कोन अठ श्रीहल-मूसल ।
अहि वाणांबर वज्र सु-रथ यव कंज अष्टदल ।
कल्पवृक्ष ध्वज चक्र मुकुट अंकुश सिंहासन ।
छत्र चँवर यम-दंड माल यव की नर को तन ।
चौबीस चिन्ह ये राम-पद प्रथम सुलच्छन जानिए ।
'हरिचंद' सोई सिय वाम पद जानि ध्यान उर आनिए ।१
सरयू गोपद महि जम्बू घट जय पताक दर ।

गदा अर्ध ससि तिल त्रिकोन षटकोन जीव वर ।
शक्ति सुधा सर त्रिवलि मीन पूरन ससि बीना ।
बंशी धनु पुनि हंस तून चन्द्रिका नवीना ।
श्री राम-वाम पद चिन्ह सुभ ए चौबिस शिव उक्त सब।
सोइ जनकनंदिनी दक्ष पद भजु सब तजु 'हरिचंद' अब ।२
रसिकन के हित ये कहे चरन-चिन्ह सब गाय ।
मति देखै यहि और कोउ करियो वही उपाय ।१
चरन-चिन्ह ब्रजराय के जो गावहि मन लाय ।
सो निहचै भव-सिंधु कों गोपद सम करि जाय ।२
लोक वेद कुल-धर्म बल सब प्रकार अति हीन ।
पै पद-बल ब्रजराज के परम ढिठाई कीन ।३
यह माला पद-चिन्ह की गुही अमोलक रत्न ।
निज सुकंठ मैं धारियो अहो रसिक करि जत्न ।४
भटक्यौ बहु बिधि जग बिपिन मिल्यो न कँहु विश्राम ।
अब आनंदित ह्वै रह्यौ पाइ चरन घनस्याम ।५
दोऊ हाथ उठाइ कै कहत पुकारि पुकारि ।
जो अपनो चाहौ भलौ तौ भजि लेहु मुरारि ।६
सुत तिय गृह धन राज्य हू या मैं सुख कछु नाहिं ।
परमानंद प्रकास इक कृष्ण-चरन के माहिं ।७
वेद भेद पायो नहीं भए पुरान पुरान ।
स्मृतिहू की सब स्मृति गई पै न मिले भगवान ।८
मोरौ मुख घर ओर सों तोरौ भव के जाल ।
छोरौ सब साधन सुनौ भजौ एक नँदलाल ।९
अहो नाथ ब्रजनाथ जू कित त्यागौ निज दास ।
बेगहि दरसन दीजिये व्यर्थ जात सब साँस ।१०
मरैं नैन जो नहिं लखैं मरैं श्रवन बिनु कान ।
मरैं नासिका करहिं नहिं जे तुलसी-रस घ्रान ।११
जीवन तुम बिनु व्यर्थ है प्यारे चतुर सुजान ।
यासों तो मरिबो भलौ तपत ताप तें प्रान ।।१२
निज अंगीकृत जीव को दसा देखि अति दीन ।
क्यौं न द्रवत हरि बेगहीं करुना-करन प्रवीन ।१३
निठुराई मत कीजिये नाहीं तौ प्रन जाय ।
दया-समुद्र कृपायतन करुना-सींव कहाय ।१४
तुमरे तुमरे सब कहें भे प्रसिद्ध जग माहिं ।
कहो सु तुम कहँ छाँड़ि कै कृपासिन्धु कहँ जाहिं ।१५
जद्यपि हम सब भाँति ही कुटिल क्रूर मतिमंद ।
तदपि उधारहु देखि कै अपनी दिसि नँद-नंद ।१६
कहूँ हँसै नहिं दीन लखि मोहिं जग के नँदलाल ।
दीन-बंधु के दास को देखहु ऐसो हाल ।१७
श्रीराधे बृषभानुजा तुम तौ दीन-दयाल ।
केहि हित निठुराई धरी देखि दीन को हाल ।१८
मान समै करि कै दया देहु बिलम्ब लगाय ।
तौ हरि को मालुम परै आरत जन की हाय ।१९
जौं हमरे दोसन लखौ तौ नहिं कछु अवलंब ।
अपुनी दीन-दयालता केवल दखहु अंब ।२०
श्री वल्लभ वल्लभ कहौ छोड़ि उपाय अनेक ।
जानि आपनो राखिहैं दीनबंधु की टेक ।२१
साधन छाँड़ि अनेक विधि परि रहु द्वारे आय ।
अपनो जानि निबाहिहैं करि कै कोउ उपाय ।२२
श्री जमुना-जल पान करु बसु वृंद्राबन धाम ।
मुख में महाप्रसाद रखु लै श्री वल्लभ नाम ।२३
तन पुलकित रोमांच करि नैनन नीर बहाव ।
प्रेम-मगन उन्मत्त ह्वै राधा राधा गाव ।२४
ब्रज-रज मैं लोटत रहौ छोड़ि सकल जंजाल ।
चरन राखि विश्वास दृढ़ भजु राधा-गोपाल ।२५
सब दीनन की दीनता सब पापिन को पाप ।
सिमिटि आइ मो में रह्यो यह मन समझहु आप ।२६
ताहू पै निस्तारियै अपनी ओर निहारि ।
अंगीकृत रच्छहिं बड़े यह जिय धर्म बिचारि ।२७
प्राननाथ ब्रजनाथ जू आरति-हर नँद-नंद ।
धाइ भुजा भरि राखिये डूबत भव 'हरिचंद' ।२८
मरौ ज्ञान वेदान्त को जरौ कर्म को जाल ।
दया-दृष्टि हम पै करौ एक नन्द के लाल ।२९
साधुन को सँग पाइ कै हरि-जस गाइ बजाइ ।
नृत्य करत हरि-प्रेम मैं ऐसे जनम बिहाइ ।३०
अहो सहो नहिं जात अब बहुत भई नँद-नंद ।
करुना करि करुनायतन राखहु जन 'हरिचंद' ।३१

इति

प्रेम-मालिका

रचनाकाल - १८७१ ई.

''संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं,
वज्रांकुशध्वजसरोरुहलांछनाढ्यम ।
उत्तुंगरक्तविलाससन्नखचक्रवाल,
ज्योत्स्नाभिराहरमहद्धृदयान्धकारम् ।१
यच्छौचनिसृतसरित्प्रवरोदकेन,
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिव : शिवोभूत ।
ध्यातुर्मनश्शमलशैलनिसृष्टवज्रं,
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ।२''

TO
THE LOVE
THESE
Few Pages are Affectionately
DEDICATED
WITH THE GOOD WISHES
OF
HARISH CHANDRA
BENARES

विजयते जीवितेश :

इस छोटे से ग्रंथ में मेरे बनाए कीर्तनों में से कतिपय कीर्तन एकत्र किए गए हैं। इसमें कीर्तन तीन भाँति के हैं—एक तो लीला संबंधी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे परम प्रेममय अनुभव के हैं। इसको एकत्र करना और छपवाना अप्रयोजन था, क्योंकि एक तो संसार में प्राय: अनधिकारी लोग हैं, दूसरे इसके द्वारा लोगों में अपनी प्रसिद्धि की इच्छा नहीं। तथापि परम प्रीति से यह प्रेम-पुष्प-ग्रथित मालिका उसी के श्रीकंठ में समर्पित है जो इसमें गाया गया है।

हरिश्चंद्र

प्रेम-मालिका

राग यथा-रुचि

प्यारी छबि की रासि बनी ।
जाहि बिलोकि निमेष न लागत श्री वृषभानु-जनी ।।
नंद-नँदन सो बाहु मिथुन करि ठाढ़ी जमुना-तीर ।
करक होत सौतिन के छबि लखि सिंह कमर पर चीर ।।
कीरति की कन्या जग-धन्या अन्या तुला न बाकी ।
वृश्चिक सी कसकत मो इन-हिय भौंह छबीली जाकी ।
धन धन रूप देखि जेहि प्रति छिन मकरध्वज-तिय लाजै ।
जुग कुच-कुंभ बढ़ावत सोभा मीन नयन लखि भाजै ।।
बैस-संधि-संक्रौन-समय तन जाके बसत सदाई ।
'हरिचंद' मोहन बढ़भागी जिन अंकम करि पाई ।१

आजु तन नीलाम्बर अति सोहै ।
तैसे ही केश खुले मुख ऊपर देखत ही मन मोहै ।।
मनु तन-गन लियो जीति चंद्रमा सौतिन मध्य बँध्यो है ।
कै कवि निज जिजभान जूथ में सुंदर आइ बस्यौ है ।।
श्री जमुना जल कमल खिल्यौ

कोउ लखि मन अलि ललच्यौ है ।
जीति तमोगुन को ताके सिर मनु सतगुन निवस्यौ है ।
सघन तमाल कुंज मै मनु कोउ कुंद फूल प्रगट्यो है ।
'हरीचंद' मोहन-मोहनि छबि बरनै सा कवि को है ।२।

राग सारंग

अहो पिय पलकन पै धरि पाँव ।
ठीक दुपहरी तपत भूमि मैं नाँगे पद मत आव ।।
करुना करि मेरो कह्यौ मानिकै धूपहि मैं मत धाव ।
मुरझानो लागत मुख-पंकज चलत चहूँ दिसि दाव ।।
जा पद को निज कुच अरु कर पै धरत करत सकुचाव ।
जाको कमला राखत है नित कर मैं करि करि चाव ।
जामैं कलो चुभत कुसुमन की कोमल अतिहि सुभाव ।
जो मन हृदय कमल पैं बिहरत निसि दिन प्रेम-प्रभाव ।
सोइ कोमल चरनन सों मो हित धावत हौ ब्रजराव ।
'हरीचंद' ऐसी मति कीजै सह्यौ न जात बनाव ।३।

नैना मानत नाहीं, मेरे नैना मानत नाहीं ।
लोक-लाज-सीकर मैं जकरे तऊ उतै खिंच जाहीं ।।
पचि हारे गुरुजन सिख दै कै सुनत नहीं कछु कान ।
मानत कह्यौ नाहिं काहू को जानत भए अजान ।।
निज चवाव सुनि औरहु हरखत उलटी रीति चलाई ।।
मदिरा प्रेम पिये पागल ह्वै इत उत डोलत धाई ।।
पर-बस भए मदनमोहन के रंग रँगे सब त्यागी ।
'हरीचंद' तजि मुख-कमलन अलि रहैं कितै अनुरागी ।४।

नैन भरि देखि लेहु यह जोरी ।
मनमोहन सुन्दर नट-नागर श्री वृषभानु-किसोरी ।।
कहा कहूँ छबि कहि नहि आवै वे साँवर यह गोरी ।
ये नीलाम्बर सारी पहिने उनको पीत पिछौरी ।।
एक रूप एक बेस एक बय बरनि सकै कवि को री ।
'हरीचंद' दोउ कुंजन ठाढ़े हँसत करत चित-चोरी ।५।

सखी री देखहु बाल-बिनोद ।

खेलत राम-कृष्ण दोउ आँगन किलकत हँसत प्रमोद ।।
कबहुँ घुटरुअन दौरत दोउ मिलि धूर धूसरित गात ।
देखि देखि यह बाल-चरित-छबि
जननी बलि बलि जात ।।
झगरत कबहुँ दोउ आनँद भरि कबहुँ चलत हैं धाय ।
कबहुँ गहत माता की चोटी माखन माँगत आय ।।
घर घर तें आवत बृजनारी देखन यह आनंद ।
बाल रूप क्रीड़त हरि आँगन
छलि लखि बलि 'हरिचंद' ।६।

राग केदारा चौताल

अरी हरि या मग निकसे आइ अचानक,
हों तो झरोखे ठाढ़ी ।
देखत रूप ठगौरी सी लागी,
बिरह-बेलि उर बाढ़ी ।
गुरुजन के भय संग गई नहिं,
रहि गई मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ।
'हरीचंद' बलि ऐसी लाज मैं लगौ री,
आग, हौं बिरहा दुख दाढ़ी ।७

अरी रखी गाज परौ ऐसी लोक-लाज पैं,
मदनमोहन सँग जान न पाई ।
हौं तो झरोखे ठाढ़ी देखत ही कछु,
आए इतै मैं कन्हाई ।
औचक दीठ परी मेरे तन,
हँसि कछु बंसी बजाई ।
'हरीचंद' मोहिं बिबस छोड़ि कै,
तन मन धन प्रान लीनौ सँग लाई ।८

राग बिहगरा

सखी मोरे सैंया नहिं आये बीति गई सारी रात ।
दीपक-जोति मलिन भई सजनी होय गयो परभात ।
देखत बाट भई यह बिरियाँ बात कही नहिं जात ।
'हरीचंद' बिन बिकल बिरहिनी ठाढ़ी ह्वै पछितात ।९

सखी मोहिं पिया सों मिला दे दैहों गले को हार ।
मग जोहत सारी रैन गँवाई मिले न नंद-कुमार ।
उन पीतम सों यौं जा कहियो तुम बिनु ब्याकुल नार ।
'हरीचंद' क्यों सुरति बिसारी तुम तो चतुर खिलार ।१०

नैन भरि देखौ गोकुल-चंद ।
श्याम बरन तन खौर बिराजत अति सुन्दर नँद-नंद ।
बिथुरी अलकैं मुख पै झलकैं मनु दोउ मन के फंद ।
मुकुट लटक निरखत रबि लाजत छबि लखि होत अनंद।
सँग सोहत बृषभानु-नंदिनी प्रमुदित आनँद-कंद ।
'हरीचंद' मन लुब्ध मधुप तहँ पीवत रस मकरंद ।११

नैन भरि देखो श्री राधा बाल ।

मुख छबि लखि पूरन ससि लाजत सोभा अतिहि रसाल।
मृग से नैन कोकिल सी बानी अरु गयंद सी चाल ।
नख सिख लौं सब सहजहिं सुन्दर मनहुँ रूप की जाल।
बृंदाबन की कुंज-गलिन मैं सँग लीने नँदलाल ।
'हरीचंद' बलि बलि या छबि
पर राधा-रसिक गोपाल ।१२

सखी हम कहा करैं कित जायँ ।
बिनु देखे वह मोहनि मूरति नैना नाहिं अघायँ ।
कछु न सुहात धाम धन पति सुत मात पिता परिवार ।

बसति एक हिय मैं उनकी छबि नैननि वही निहार ।
बैठन उठत सयन सोवत निस चलत फिरत सब ठौर ।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न एक पल और ।
हमरे तन धन सरबस मोहन मन बच क्रम चित माहिं ।
पै उनके मन की गति सजनी जानि परत कछु नाहिं ।
सुमिरन वही ध्यान उनको ही मुख में उनको नाम ।
दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु मोहन घनश्याम ।
नैना दरसन बिनु नित तलफैं बचन सुनन को कान ।
बात करन को रसना तलफै मिलबे को ए प्रान ।
हम उनकी सब भाँति कहावहिं जगत-बेद सरनाम ।
लोक-लाज पति गुरुजन तजिकै एक भज्यौ घनश्याम ।
सब बृज बरजौ परिजन खीझौ हमरे तौ हरि प्रान ।
'हरीचंद' हम मगन प्रेम-रस सूझत नाहिंन आन ।१३

ठुमरी

तू मिलि जा मेरे प्यारे ।
तेरे बिना मनमोहन प्यारे व्याकुल प्रान हमारे ।
'हरीचंद' मुखड़ा दिखला जा इन नैनन के तारे ।१४

राग रामकली

ऐसी नहिं कीजै लाल, देखत सब सँग को बाल,
काहे हरि गए आजु बहुतै इतराई ।
सूधे क्यौं न दान लेहु, अँचरा मेरो छाँड़ि देहु,
जामैं मेरी लाज रहै करौ सो उपाई ।
जानत ब्रज प्रीत सबै, औरहू हँसैंगे अबै,
गोकुल के लोग होत बड़े ही चवाई ।
'हरीचंद' गुप्त प्रीति, बरसत अति रस की रीति,
नेकहूँ जो जानै कोउ प्रगटत रस जाई ।१५
छाँड़ौ मेरी बहियाँ लाल, सीखी यह कौन चाल,
हा हा तुम परसत तन औरन की नारी ।
अँगुरी मेरी मुरुक गई, परसत तन पीर भई,
भीर भई देखत सब ठाढ़ीं बृज-नारी ।
बाट परौ ऐसी बात, मोहिं तौ नहीं सुहात,
काहे इतरात करत अपनो हठ भारी ।
'हरीचंद' लेहु दान, नाहीं तौ परैगी जान,
नेक करो लाज छाँड़ो अंचल गिरिधारी ।१६

राग सारंग

हमारे घर आओ आजु प्रीतम प्यारे ।
फूलन ही की सेज बिछाई फूलन के चौबारे ।
कोमल चरनन-हित फूलन के रचि पाँवड़े सँवारे ।
'हरीचंद' मेरो मन फूल्यौ आउ भँवर मतवारे ।१७

राग बिभास

आजु उठि भोर बृषभानु की नंदिनी,
फूल के महल तें निकसि ठाढ़ी भई ।
खसित सुभ सीस तें कलित कुसुमावली,
मधुप की मंडली मत्त रस ह्वै गई ।
कछुक अलसात सरसात सकुचात अति,
फूल की बास चहुँओर मोदित छई ।
दास 'हरिचंद' छबि देखि गिरिधर लाल,
पीत पट लकुट सुधि भूति आनंद-मई ।१८
अहो हरि ऐसी तौ नहिं कीजे ।
अपनी दिसि बिलोकि करुनानिधि हमरे दोस न लीजे ।
तुव माया मोहित कहँ जानै कैसे मति रस भीजे ।
'हरीचंद' पहिले अपनो करि फिरि काहें तजि दीजे ।१९

राग सोरठ

बनी यह सोभा आजु भली ।
नथ मैं पोही प्रान-पियारे निज कर कुसुम-कली ।
भीने बसन बिथुरि रहीं अलकैं श्री बृषभानु-लली ।
यह छबि लखि तन मन धन बार्‌यौ
तहँ 'हरिचंद' अली ।२०
फबी छबि थोरे ही सिंगार ।
बिना कंचुकी बिनु कर कंकन सोभा बढ़ी अपार ।
खसि रहि तन तें तनसुख सारी खुलि रहे सोंधे बार ।
'हरीचंद' मन-मोहन प्यारो रिझयो है रिझवार ।२१
आजु सिर चूड़ामनि अति सो है ।
जूड़ो कसि बाँध्यो है प्यारी पीतम को मन मोहै ।
मानहुँ तम के तुंग सिखर पै बाल चंद उदयो है ।
'हरीचंद' ऐसी या छबि को बरनि सकै सो को है ।२२

राग बिभास

भोर भये जागे गिरिधारी ।
सगरी निसि रस बस करि बितई कुंज-महल सुखकारी ।
पट उतारि तिय-मुख अवलोकत चंद-बदन छबि भारी ।
बिलुलित केस पीक अरु अंजन फैली बदन उज्यारी ।
नाहिं जगावत जानि नींद बहु समुझि सुरति-श्रम भारी ।
छबि लखि मुदित पीत पट कर लै रहे भँवर निरुवारी ।
संगम गुन मधुरे सुर गावत चौंकि उठी तब प्यारी ।
रही लपटाइ जँभाइ पिया उर 'हरीचंद' बलिहारी ।२३
जागे माई सुंदर स्यामा-स्याम ।
कछु अलसात जँभात परस्पर टूटि रही मोतिन की दाम ।
अधखुले नैन प्रेम की चितवनिआधे आधेबचन ललाम ।
बिलुलति अलक मरगजे बागे नख-छत उरसि मुदाम ।
संगम गुन गावत ललितादिक

बाजत बीन तीन सुर ग्राम ।
'हरीचंद' यह छबि लखि प्रमुदित
तृन तोरत ब्रज-वाम ।२४

राग देस

बेगाँ आवो प्यारा बनवारी म्हारी ओर ।
दीन बचन सुनताँ उठि धावौ नेकु न करहु अबारी ।१
कृपासिंधु छाँड़ौ निठुराई अपनो बिरद सँभारी ।
थानै जग दीनदयाल कहै छै क्यौं म्हारी सुरत बिसारी ।
प्राण दान दीजै मोहि प्यारा हौछूँ दासी थारी ।
क्यौं नहिं दीन बैण सुनो लालन कौन चूक छे म्हारी ।
तलफैं प्रान रहैं नहिं तन मैं बिरह-बिथा बढ़ी भारी ।
'हरीचंद' गहि बाँह उबारौ तुम तौ चतुर बिहारी ।२५

राग सारंग

जयति वेणुधर चक्रधर शंखधर,
पद्मधर गदाधर शृंगधर वेत्रधारी ।
मुकुटधर क्रीटधर पीतपट-कटिनधर,
कंठ-कौस्तुभ-धरन दु :खहारी ।
मत्स को रूप धरि बेद प्रगटित करन,
कच्छ को रूप जल मथनकारी ।
दलन हिरनाच्छ बाराह को रूप धरि,
दन्त के अग्र धर पृथ्वि भारी ।
रूप नरसिंह धर भक्त रच्छा-करन,
हिरनकश्यप-उदर नख बिदारी ।
रूप बावन धरन छलन बलिराज को,
परसुधर रूप छत्री सँहारी ।
राम को रूप धर नास रावन करन,
धनुषधर तीरधर जित सुरारी ।
मुशलधर हलधरन नीलपट सुभगधर,
उलटि करषन करन जमुन-वारी ।
बुद्ध को रूप धर बेद निंदा करन,
रूप धर कल्कि कलजुग-सँघारी ।
जयति दश रूपधर कृष्ण कमलानाथ,
अतिहि अज्ञात लीला बिहारी ।
गोपधर गोपिधर जयति गिरिराजधर,
राधिका का बाहु पर बाहु धारी ।
भक्तधर संतधर सोइ 'हरिचंद' धर,
बल्लभाधीष द्विज वेषकारी ।२६

राग कान्हरा

दोउ कर जोरे ठाढ़ो बिहारी ।
मान कह्यौ तजि मान मया करि सुनि चन्द्रावलि प्यारी ।
ये बहु-नायक मिलत भाग्य सों यह लै चित्र बिचारी ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया वे तू चन्द्रावलि नारी ।२

राग विहाग

आजु नव कुंज बिहरत दोऊ रस भरे
प्रिया ब्रजचंद सँग चतुर चन्द्रावली ।
सुरति श्रम स्वेद मुख परस्पर बढ़्यौ सुख
टूटि रही उरसि मुकुतानि हारावली ।
गिरत तन बसन नहिं थिरत बेसरि तनिक
खसित सुभ सीस ते कलित कुसुमावली ।
सखी 'हरिचंद' लखि मूँदि दृग दोउ रही
पाइ आनँद परम बुद्धि भई बावली ।२८
जयति राधिकानाथ चंद्रावली-प्रानपति
घोष-कुल-सकल-संताप-हारी ।
गोपिका-कुमुद-बन-चंद्र साँवर बरन
हरन बाहु बिरह आनंदकारी ।
त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु
विमल-वृन्दाविपिन-भूमिचारी ।
गाय गिरिराज के हृदय आनंद करन
नित्य बिहवल-करन जमुन-बारी ।
नंद के हृदय आनंद वर्धित-करन
भरनि जसुदा-मनसि मोद भारी ।
बाल क्रीड़ा-करन नंद-मन्दिर सदा
कुंज मैं प्रौढ़ लीला बिहारी ।
गोप-सागर-रतन सकल गुन-गन भरे
क्वनित स्वर सप्त मुख मुरलिधारी ।
मंजु मंजीर पद कलित कटि किंकिनी
उरसि बनमाल सुन्दर सँवारी ।
सदा निज भक्त संताप आरति-हरन
करन रस-दान अपनो बिचारी ।
दास 'हरिचंद' कलि बल्लभाधीश ह्वै
प्रगट अज्ञात लीला बिहारी ।२९

राग देव

स्यामा जी देखो आवे छे थारो रसियो ।
कछु गातो कछु सैन बतातो कछु लखिकै हँसियो ।
मोर मुकुट वाके सीस सोहणों पीतांबर कटि कसियो ।
'हरीचंद' पिय प्रेम रँगीलो थाके मन बसियो ।३०
म्हारी सेजाँ आवो जू लाल बिहारी ।
रंग रँगीली सेज सँवारी लागी छे आशा थारी ।
बिरह-बिथा बाढ़ी घणी ही मैंसों नहिं जात सँभारी ।
'हरीचंद' सो जाय कहो कोउ
तलफै छे थारे बिन प्यारी ।३१

राग असवारी

सुन्दर श्याम कमलदल लोचन
कोटिन जुग बीते बिनु देखे ।
तलफत प्रान बिकल निसि बासर
नैनन हूँ नहिं लगत निमेखे ।
कोउ मोहिं हँसत करत कोउ निंदा
नहिं समुझत कोउ प्रेम परेखे ।
मेरे लेखे जगत बावरो
मै बावरी जगत के लेखे ।
तापै ऊधव ज्ञान सुनावत
कहत करहु जोगिन के भेखे ।
बलिहारी यह रीझ रावरी
प्रेमिन लिखत जाने के लेखे ।
बहुत सुने कपटी या जग मैं
पै तुमसे तो तुमही पेखे ।
'हरीचंद' कहा दोष तुम्हारो
मेटै कौन करम की रेखे ।३२

राग बिहाग

हम तो श्री वल्लभ ही को जानैं ।
सवन वल्लभ-पद-पंकज को वल्लभ ही को ध्यानैं ।
हमरे मात पिता गुरु वल्लभ और नहीं उर आनैं ।
'हरीचन्द' वल्लभ-पद-बल सों
इन्द्रहु को नहिं मानैं ।३३

अहो प्रभु अपनी ओर निहारौ ।
करिकै सुरति अजामिल गज की हमरे करम बिसारौ ।
'हरीचंद' डूबत भव-सागर गहि कर धाइ उबारौ ।३४

हम तो मोल लिए या घर के ।
दास दास श्री वल्लभ-कुल के चाकर राधा-बर के ।
माता श्री राधिका पिता हरि बंधु दास गुन-कर के ।
'हरीचंद' तुम्हरे ही कहावत
नहिं बिधि के नहिं हर के ।३५

राग परज

तुम क्यों नाथ सुनत नहिं मेरी ।
हमसे पतित अनेकन तार पावन की बिरुदावलि तेरी ।
दीना नाथ दयाल जगतपति सुनिये बिनती दीनहु केरी ।
'हरीचंद' को सरनहिं राखौ
अब तौ नाथ करहु मत देरी ।३६

राग बिहाग

अहो हरि वेहू दिन कब ऐहैं ।
जा दिन में तजि और संग सब हम ब्रज-बास बसैहैं ।
संग करत नित हरि-भक्तन को हम नेकहु न अघैहैं ।
सुनत श्रवन हरि-कथा सुधारस महामत्त ह्वै जैहैं ।
कब इन दोउ नैनन सों निसि दिन नीर निरंतर बहिहैं ।
'हरीचंद' श्री राधे राधे कृष्ण कृष्ण कब कहिहैं ।३७

अहो हरि वह दिन बेगि दिखाओ ।
दै अनुराग चरन-पंकज को सुत-पितु-मोह मिटाओ ।
और छोड़ाइ सबै जग-वैभव नित ब्रज-बास बसाओ ।
जुगल-रूप-रस अमृत-माधुरी निस दिन नैन पिआओ ।
प्रेम-मत्त ह्वै डोलत चहुँ दिसि तन की सुधि बिसराओ ।
निस दिन मेरे जुगल नैन सों प्रेम-प्रवाह बहाओ ।
श्री वल्लभ-पद-कमल अमल मैं मेरी भक्ति दृढ़ाओ ।
'हरीचंद' को राधा-माधव अपनो करि अपनाओ ।३८

रसने, रटु सुन्दर हरि नाम ।
मंगल-करन हरन सब असगुन करन कल्पतरु काम ।
तू तौ मधुर सलोनो चाहत प्राकृत स्वाद मुदाम ।
'हरीचंद' नहिं पान करत क्यों
कृष्ण-अमृत अभिराम ।३९

उधारौ दीनबंधु महराज ।
जैसे हैं तैसे तुमरे ही नाहिं और सों काज ।
जौ बालक कपूत घर जनमत करत अनेक बिगार ।
तौ माता कहा वाहि न पूछत भोजन समय पुकार ।
कपटहु भेष किए जो जाँचत राजा के दरबार ।
तौ दाता कहा वाहि देत नहिं निज प्रन जानि उदार ।
जौ सेवक सब भाँति कुचाली करत न एकौ काज ।
तऊ न स्वामि सयानं तजत तेहि बाँह गहे की लाज ।
विधि-निषेध कछु हम नहिं जानत एक आस विश्वास ।
अब तौ तारे ही बनिहै नहिं ह्वैहै जग उपहास ।
हमरो गुन कोऊ नहिं जानत तुमरो प्रन विख्यात ।
'हरीचंद' गहि लीजै भुज भरि नाहीं तो प्रन जात ।४०।

राग भैरव

लाल यह बोहनियाँ की बेरा ।
हौं अबहीं गोरस लै निकसी बेचन काज सवेरा ।
तुम तौ याही ताक रहत हौ करत फिरत मग फेरा ।
'हरीचंद' झगरौ मति ठानो ह्वैहै आजु निबेरा ।४१

रागिनी अहीरी

अरी यह को है साँवरो सो लँगर ढोटा ऐंड़ोई ऐंड़ो डोले ।
काहू को कोहनी काहू को चुटकी काहू सो हँसि बोलै ।

काहू की गहि कंचुकि छोरत काहू को घूँघट खोले ।
'हरीचंद' सब लाज गँवाई बात कहै अनमोलै ।४२।

राग गौरी ताल चर्चरी

आजु नंदलाल पिय कुंज ठाढ़े भए
श्रवत सुभ सीस पै कलित कुसुमावली ।
मनहु निज नाथ ससि भूमि-गत देखिकै
खसित आकास तै तरल तारावली ।
बहत सौरभ मिलित सुभग त्रैबिधि पवन
गुंजरत महारस मत्त मधुपावली ।
दास 'हरीचंद' ब्रजचंद ठाढ़े मध्य,
राधिका बाम दक्षिण सुचन्द्रावली ।४३।

राग केदारा

फूलन के सब साज सजि गोरी
कित बदन दुराए जात ।
फूलन की तन सारी फूलनि की
छबि भारी फूली न हृदय समात ।
फूल्यौ श्री बृंदाबन फूलै तेदे
अँग अँग काहे को सकुचात ।
'हरीचंद' हम जानि पिय जू सों रति
मानी प्रीति छिपे न छिपात ।४४।

राग सारंग चर्चरी

आजु ब्रजचन्द्र तन लेप चन्दन किए,
ठाढ़े अति रस-भरे जमुना तीरे ।
फूल के आभरन बसन भीने बने,
खौर चन्दन दिए सीरे सीरे ।
तैसही संग वृषभानु-नृपनंदिनी,
धारि चन्दन के तन चोली चीरे ।
दास 'हरीचंद' बलि जात छबि देखि कै,
जयति बृजराज-सुत गोप बीरे ।४५

राग सारंग

नटवर रूप निहार सखी री नटवर रूप निहार ।
गोहन लगी फिरत जाके हित कुल की लाज बिसार ।
ललित त्रिभंग काछनी काछे अमल कमल से नैन ।
कर लै फूल फिरावत गावत मोहत कोटिक मैन ।
जग उपहास सहे बहु भाँतिन जा दरसन के हेत ।
सो हरि नीके नैननि भरि के काहे देखि न लेत ।
तुमरी प्रीति अलौकिक सजनी लखि न परै कछु ख्याल।
'हरीचन्द' धनि धनि तुम दोऊ राधा अरु गोपाल ।४६

राग हमीर

ठाढ़े हरि तरनि-तनैया-तीर ।
संग श्री कीरति-कुमारी पहिनि भीने चीर ।
उरनि फूलन माल जा पै भँवर-गन की भीर ।
हाथ कमल लिए फिरावत राधिका बलबीर ।
साँझ समय सोहावनो तहँ बहत त्रिबिध समीर ।
बारने 'हरिचन्द' छबि लखि श्याम गौर सरीर ।४७

राग केदारा

मेरेई पौरि रहत ठाढ़ो टरत न टारे
नन्दराय जू को ढोटा ।
पाग रही भुव ढरकि छबीली
जामै बाँध्यौ है मंजुल चोटा ।
चितवत मो तन फिरि फिरि
हेरत कर लै बेनु बजावत ।
धरि अधरन वह ललन छबीलो
नाम हमारोइ गावत ।
सुन्दर कमल फिरावत चहुँ दिसि
मो तन दृष्टि न टारै ।
'हरीचंद' मन हरत हमारो
हँसि हँसि पाग सँवारै ।४८
मारग रोकि भयो ठाढ़ो जान न देत
मोहि पूछत है तू को री ।
कौन गाँव कहा नाँव तिहारो
ठाढ़ि रहि नेक गोरी ।
कित चली जात तू बदन दुराए
एरी मनि की भोरी ।
साँझ भई अब कहाँ जायगी
नीकी है यह साँकरी खोरी ।
बहुत जतन करि हारी ग्वालिनी
जान दियो नहिं तेहि घर ओरी ।
'हरीचंद' मिलि बिहरत दोऊ रैननि
नंदकुँवर बृषभानु किशोरी ।४९

राग गौरी

नैना वह छबि नाहिंन भूले ।
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले।
वह आवनि वह हँसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरै।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुँ कोरै ।
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे ।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे ।
पर-बस भए फिरत हैं नैना एक छन टरत न टारे ।
'हरीचंद' ऐसी छबि निरखत तन मन धन सब हारे ।५०
बैठे लाल नवल निकुंजन माहीं ।
अति रस भरे दोऊ अंग जोरि कै हिलि मिलि दै गलबाहीं।
तैसे श्री गिरिराज शिला में फूले कुसुम अनेकन भाँती।
तैसी वै जमुना अति सोभित

लहकि रही कमलनि की पाँती ।
तैसेई भँवर गुँआर करत हैं तैसोइ त्रिविध बयार ।
तैसेई सौरभ झरत अनेकन वृन्दाबन तरु डार ।
कर लै कमल गिरावत दोऊ उर फूलन की माल ।
'हरीचंद' बलि बलि यह छबि लखि राधा और गोपाल ।५१

राग ईमन

तू तो मेरी प्रान-प्यारी नैन मैं निवास करै
तू ही जो करैगी मान कैसे कै मनाइहैं ।
तू ही तो जीवन-प्रान तोहि देखि जीव राखै
तूही जो रहेगी रूसि हम कहाँ जाइहैं ।
कियो मान राधे महारानी आजु पीतम सों
ऐसी जो खबरि कहूँ सौति सुनि पाइहैं ।
'हरीचंद' देखि लीजौ सुनतहि दौरि दौरि
निज निज द्वार पै बधाई बजवाइहैं ।५२

प्यारे जू तिहारी प्यारी अति ही गरब भरी
हठ कों हठीली ताहि आपु ही मनाइए ।
नैकहू न मानै सब भाँति हौं मनाय हारी
आपुहि चलिए ताहि बात बहराइए ।
रिस भरि बैठि रही नेकहू न बोलै बैन
ऐसी जो मानिनि तेहि काहे को रिसाइए ।
'हरीचंद' जामे मानै करिए उपाय सोई
जैसे बनै तैसे ताहि पग परि लाइये ।५३

आजु मैं देखे री आली री दोऊ
. मिलि पौढ़े ऊँची अटारी ।
मुख सों मुख मिलाइ बीरी खात
रंग भरि नवल पिया प्रानप्यारी ।
चाँदनी प्रकास चारु ओर छिरकाव भयो
सीतल चहुं दिसि चलत बयारी ।
'हरीचंद' सखीगन करत बिंजना
जानि सुरति-श्रम भारी ।५४

राग बिहाग

पौढ़े दोउ बातन के रस भीने ।
नींद न लेत अरुझि रहे दोऊ केलि-कथा चित दीने ।
तैसइ सीतल सेज बिछाई सखि बिंजन कर लीने ।
'हरीचंद' आलस भरि सोए ओढ़िकै पट झीने ।५५

राग सारंग

मेरे प्यारे सों सँदेसवा कौन कहै जाय ।
उर की बेदन हरे बचन सुनाय ।
कोऊ सखी देइ मोरी पाती पहुँचाय ।
जाइ कै बुलाय लावै बहुत मनाय ।
मिलि 'हरिचंद' मोरा जियरा जुड़ाय ।५६

जमुना जू की तिवारी चलु सखी ।
तेरो मग जोहत मनमोहन सुंदर गिरिवर-धारी ।
तेरे हित छिरकाव कियो है सुंदर सेज सँवारी ।
बिंजन चलत फुहारे छूटत खस परदे रुचिकारी ।
मृगमद चन्दन घोरि धरे हैं फूल-माल छबि भारी ।
मिलि बिहरो दोऊ आनँद भरि 'हरीचंद' बलिहारी ।५७

साँझ के गए दुपहरी आए ।
साँची बात कहो नँद-नंदन भले बने मन-भाए ।
अब लौं बाट रही तुव हेरत साजि धरे सब साज ।
बैठो हौं बींजना डुलाऊँ अब न जाहु ब्रजराज ।
आए मेरे नैन सिराए सीतल जल लै पीजै ।
रैनि नाहिं तौ दुपहरिया मैं 'हरीचंद' सुख दीजै ।५८

अरी कोऊ करिकै दया नेक ठाँव मोहिं
दीजौ धूप लगै मोहि भारी ।
पाँव तपै मेरो गो चारत मैं
यह बोलत गिरिधारी ।
सुनि यह बचन उसीर महल मैं
लै आई सुकुमारी ।
'हरीचंद' येहि मिसि मिलि बिहरे
नवल पिया अरु प्यारी ।५९

अरी हौं बरजि रही बरज्यौ नहिं मानत
दौरि दौरि बार बार धूप ही मैं जाय ।
सीरे खसखाने साजि सेजहू बिछाय राखी
भयो छिड़काव आइ नेकु तौ जुड़ाय ।
छूटत फुहारो चारु देखि तौ कौतुक आइ
मोतिन सी बूँद झरै चित ललचाय ।
'हरीचंद' मातु के बचन सुनि आइ पौढ़े
बिंजन करत सब सखि हरखाय ।६०

राग केदारा

फूलि रही द्वै बेली श्री बृन्दाबन ।
नव तमाल घनश्याम पिया श्री राधा पीत चमेली ।
और फूल फूली सब सखियाँ फूलनि पहिरि नवेली ।
'हरीचंद' मन फूल्यौ सब साज देखि
भँवर भयो है हेली ।६१

राग सोरठ

सखी मोहिं लै चलि जमुना-तीर ।
जहाँ मिले नटवर मनमोहन सुंदर श्याम शरीर ।
नंद-द्वार सब बड़े गोप मैं हौं कैसे धँसि जाऊँ ।
भौन माहिं जसुदा जू के भय नीके लखन न पाऊँ ।
गुरुजन की भय अटा झरोखाहू नहिं बैठन पावैं ।

राह बाट मैं लाज निगोड़ी कैसे नैन मिलावैं ।
तू सब जिय की जाननिहारी तो सों कहा दुराऊँ ।
'हरीचंद' जीवन-धन दै मोहिं नैना निरखि सिराऊँ ।६२

राग सोरठ

नाव हरि अवघट घाट लगाई ।
हम ब्रज-बाल कहो कित जैहैं करिहैं कौन उपाई ।
साँझ भई सँग मैं कोउ नाहीं देहु हमैं पहुँचाई ।
'हरीचन्द' तन मन धन जोवन सब दैहैं उतराई ।६३

हमैं तुम देहौ का उतराई ।
पार उतार देहिं जो तुम को करि कै बहुत खेवाई ।
जोबन धन वहु है तुम्हरे ढिग सो हम लेहिं छोड़ाई ।
हम तुम्हरे बस हैं मन-मोहन जो चाहौ सो करौ कन्हाई ।
निरजन बन मैं नाव लगाई करी केलि मन-भाई ।
'हरीचंद' प्रभु गोपी-नायक जग-जीवन ब्रजराई ।६४

राग सारंग

आजु श्री राधिका प्रानपति-काज निज,
हाथ सों कुंज मैं कुसुम सज्जा सजी ।
परम सीतल पवन चलत सुंदर भवन,
देखि छबि उष्णता दूर कोसन भजी ।
मोद भरि बिहरहीं दोउ अति सुख पगे,
काम की बाम लखि ललित सोभा लजी ।
दास 'हरीचंद' धुनि करत किंकिनि चुरी,
मदन के सदन मनु नवल नौबत बजी ।६५

आजु दुपहरी मैं श्याम के काम तू
बाम, छबि-धाम भई नवल अभिसारिका ।
अतिहि कोमल चरन तपित धरनी धरन,
गयो कुम्हलाय मुख-कमल सुकुमारिका ।
उरसि मुक्ताहार स्वेत सारी बनी,
कहत कोमल बचन मनहुँ पिक सारिका ।
बदत 'हरिचंद' छल-छन्द एतो कियो,
कहाँ सीखी नई कोक की कारिका ।६६

वृज के लता-पता मोहि कीजै ।
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जामैं सिर भीजै ।
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै ।
श्री राधे राधे मुख यह बर 'हरीचंद' को दीजै ।६७

राग आसावरी वा सारंग

ऊधो जौ अनेक मन होते ।
तौ इक श्याम-सुंदर कों देते इक लै जोग सँजोते ।
एक सों सब गृह-कारज करते एक सों धरते ध्यान ।
एक सों श्याम रंग रँगते तजि लोक-लाज कुल-कान ।
को जप करै जोग को साधै को पुनि मूँदै नैन ।
हिये एक रस श्याम मनोहर मोहन कोटिक मैन ।
ह्यां तो हुतो एक ही मन सो हरि लै गए चुराई ।
'हरीचंद' कोउ और खोजि कै जोग सिखावहु जाई ।६८

राग भैरव (खंडिता)

श्याम पियारे आजु हमारे भोरहि क्यौं पगु धारे ।
बिनु मादक ही आज कहो क्यौं घूमत नैन तुम्हारे ।
दीपक जोति मलिन भई देखो पच्छिम चन्द सिधार्‌यौ ।
सूरज किरिन उदित उदयाचल पच्छिन शब्द उचार्‌यौ ।
कुमुदिनि सकुची कमल प्रफुल्लित चक्रवाक सुख पायो ।
सीतल मरुत चलत उठि मुनियन
निज निज ध्यान लगायो ।
कहा कहौं कछु कहि नहिं आवै
आज बनी जो सोभा ।
पेंच खुले लटपटी पाग के
देखत ही मन लोभा ।
ऐसी को है सुघर सुनरिया
जिन यह हार बनायो ।
बिन नग जड़यौ हेम बिन निरमित
बिन गुन दाम पोहायो ।
मोहन तिलक महावर को सिर
लीलाम्बर कटि धारे ।
कौन सी चूक परी हरि हम सों
नैन लाल क्यौं प्यारे ।
लै आरसी सामुहें राखी
जल लाई भरि झारी ।
'हरीचंद' उठि कंठ लगाई
हँसि कै गिरिवरधारी ।६९

राग सारंग

सखी ए नैना बहुत बुरे ।
तब सों भए पराए हरि सों जब सों जाइ जुरे ।
मोहन के रस-बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे ।
मेरी सीख प्रीत सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे ।
जग खीझ्यौ बरज्यो पै ए नहीं उठ सों तनिक मुरे ।
'हरीचंद' देखत कमलन से बिष के बुते छुरे ।७०

राधिका पौंढ़ी ऊँची अटारी ।
पूरन चंद उयो नभ-मंडल फैली बदन उजारी ।
दोऊ जोति मिलि एक भई है भूमि गगन लौं भारी ।
सो छबि देखि सखा तृन तोरत 'हरीचंद' बलिहारी ।७१

देखु सखी देखु आजु कुंजन मैं नवल केलि,
करत कृष्ण संग बिबिध भाँति राधिका ।
तैसोई बहै त्रिविध पौन तैसोइ नभ चंद उग्यो,
तैसी परछाहीं परत लाज बाधिका ।
किंकिनि की धुनि सुनात पातन की खरखरात,
तैसी निसि सनसनात सुखहि साधिका ।
तहँ अलि 'हरिचंद' आय बिनवत ससि कों, मनाय
आजु रहो थिर ह्वै रथ यह अराधिका ।७२

तुम्हैं तो पतितन ही सों प्रीति ।
लोकरु बेद-बिरुद्ध चलाई क्यौं यह उलटी रीति ।
सब बिधि जानत हौ निश्चय करि तुम सों छिप्यौ न नेक ।
बेद-पुरान-प्रमान तजन को मेरो यह अबिबेक ।
महा पतित सब धर्म्म-बिबर्जित श्रुतिनिंदक अघ-खान।
मरजादा तें रहित मनस्वी मानत कछु न प्रमान ।
जानत भए अजान कहो क्यौं रहे तेल दै कान ।
तुम्हैं छोड़ि जग को नहिं जो मोहिं बिगर्‌यो करत बखान।
बलिहारी यह रीझि रावरी कहाँ खुटानी आय ।
'हरीचंद' सों नेय निबाहत हरि कछु कही न जाय ।७३

रावरी रीझ की बलि जैये ।
महा पतित सों प्रीति पियारे एक तुमहिं में पैये ।
नेमिन ज्ञानिन दूर राखि कै हम से पास बिठैये ।
'हरीचंद' यह जग उलटी गति केवल कहा कहैये ।७४

नाथ तुम प्रीति निबाहत साँची ।
करत इकंगी नेह जनन सों यह उलटी गति खाँची ।
जेहि अपनायो तेहि न तज्यो फिर अहो कठिन यह नेम।
जेहि पकर्‌यौ छोड़त नहिं ताकों परम निबाहत प्रेम ।
सो भूले पै तुम नहिं भूलत सदा सँवारत काज ।
'हरीचंद' कों राखत हौ बलि बाँह गहे की लाज ।७५

तुम्हारी साँचौ हम मैं नेह ।
कबहूँ नाहिं छाँड़िहौ हमको दृढ़ ब्रत लीनो एह ।
प्रेम सत्य तुमरो जग मिथ्या यामैं कछु न सँदेह ।
'हरीचंद' जो याहि न मानैं तिन के मुख में खेह ।७६

नाथ तुम उलटी रीति चलाई ।
सब शास्त्रन की बात बिगारी पतितन पास बिठाई ।
बिधि-निषेध तामैं नहिं राख्यौ जाहि लियो अपनाई ।
नाहीं तो क्यौं 'हरीचंद' सों इतनी प्रीति बढ़ाई ।७७

बलिहारी या दरबार की ।
बिधि-निषेध मरजाद शास्त्र की गति नहिं जहाँ पुकार की ।
नेमी धरमी ज्ञानी जोगी दूर किये जिमि नारकी ।
पूछ होत जहँ 'हरीचंद' से पतितन के सरदार की ।७८

हम तो दोसहु तुमपै धरिहैं ।
व्यापक प्रेरक भाखि भाखि कै बुरे कर्म सब करिहैं ।
भलो करम जौ कछु बनि जैहैं सो कहिहैं हम कीनो ।
निसि दिन बुरे करम को फल सब तुम्हरे माथे दीनो ।
पतित-पवित्र-करन तब तुमरो साँचो ह्वैहै नाम ।
जब तारिहौ हठी कोउ जैसे 'हरिचंद' अघ-धाम ।७९

प्यारे अब तो तारेहि बनिहै ।
नाहीं तो तुमकों का कहिहै जो मेरी गति सुनिहै ।
लोक बेद मैं कहत सबै हरि अभय-दान के दानी ।
तेहि करिहौ साँचो कै झूठो सो मोहिं भाषो बानी ।
भले बुरे जैसे हैं तैसे तुम्हरे ही जग जानै ।
'हरीचंद' कों तारेहि बनिहै को अब औरहि मानै ।८०

छिपाए छिपत न नैन लगे ।
उघरि परत सब जानि जात हैं घूँघट मैं न खगे ।
कितनो करौ दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे ।
'हरीचंद' उघरे से डोलत मोहन रंग रँगे ।८१

लगौहीं चितवनि औरहि होति ।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति ।
निज पीतम कों खोजि लेत हैं भीरहू मैं भरि रंग ।
रूप-सुधा छिपि छिपि कै पीयत गुरु-जनहूँ के संग ।
घूँघट मैं नहिं थिरत तनिकहूँ अति ललचौंहीं बानि ।
छिपत न क्योंहूँ 'हरीचंद' ये अंत जात सब जानि ।८२

आजु हम देखत हैं को हारत ।
हम अघ करत कि तुम मोहि तारत
को निज बान बिसारत ।
होड़ पड़ी है तुम सों हम सों देखैं कों प्रन पारत ।
'हरीचंद' अब जात नरक मैं कै तुम धाइ उबारत ।८३

कै तौ निज परतिज्ञा टारौ ।
गीतादिक मैं जौन कही है ताकों तुरत बिसारौ ।
दीनबन्धु प्रनतारति-नासन अपनो बिरत बिगारौ ।
कै झट धाइ उठाइ भुजा भरि 'हरीचंद' को तारौ ।८४

लगाओ वेदन पै हरताल ।
जिन तुमको गायो करुनानिधि भक्तन के प्रतिपाल ।
पतित-उधारन आरति-नासन दीनानाथ दयाल ।
इन नामन को झूठ करौ पिय छाँड़ो सब जंजाल ।
देहु बहाइ लोक-मरजादा तोरि आपुनी चाल ।
नाहीं तौ 'हरिचंदहि' तारौ बेगहि धाइ गुपाल ।८५

कहौ तुम व्यापक हौ की नाहीं ।
जौ तुम व्यापक हौ तौ अघ करि क्यौ हम नरकहिं जाहीं ।
जो नहिं पूरन घट घट तो क्यौं लिख्यौ पुरानन माहीं ।
तासों राखो 'हरीचंद' को चरन-छत्र की छाँहीं ।८६

बही मैं ठाम न नैकु रही ।
भरि गई लिखत लिखत अघ मेरे बाकी तबहू रही ।
चित्रगुप्त हारे अति थकि कै बेसुध गिरे मही ।
जमपुर मैं हरताल परी है कछु नहिं जात कही ।
जम भागे कछु खोज मिलत नहिं सबही बही बही ।
'हरीचंद' ऐसे को तारौ तौ तुव नाम सही ।८७

पियारे हम तो भक्त इकंगी ।
सब छोड़यौ तुमरे हित मोहन लोक-लाज कुल संगी ।
बिधि-निषेध अरु बेद छाँड़ि कै होइ गई मनु नंगी ।
'हरीचन्द' चाहै मति मानो हम तौ तुव रँग रंगी ।८८

छूट नहिं तुमको कोउ बिधि प्यारे ।
हम सब पाप करैंगे बनिहै ताहू पै पुनि तारे ।
बेदन मैं निज क्यौं कह आयो पतित-उधारन नाम ।
क्यौ परतिज्ञा यह कीनौ कै तारहिंगे अघ-धाम ।
सुबरन-चोर ब्रहम-हत्यारो गुरुतल्पगहु सुरापी ।
अबकी बेर निबाहि लेहु पिय 'हरिचंद' सों पापी ।८९

हम नहिं अपुने कों पछितात ।
यह सोचत कै बिनु मोहिं तारे बात तुम्हारी जात ।
अजामिलादिक के तारन सों भई अतिहि बिख्यात ।
सो काहू बिधि अब लौं निबही जानी जगत जगात
'हरीचंद' तुमरो औ पापी यह दोऊ अति ख्यात ।
तासों ताकहँ तारि कोऊ बिधि राखौ अपनी बात ।९०

राग आसावरी

जे जन अन्य आसरो तजि श्री विट्ठलनाथहि गावैं ।
ते बिनु श्रम थोरेहिं साधन मैं भव-सागर तरि जावैं ।
जिनके मात पिता गुरु विट्ठल और कतहुँ कोउ नाहीं ।
ते जन यह संसार समुद्रहि बत्सचरन करि जाहीं ।
जिनकों श्रवन कीर्तन सुमिरन विट्ठल ही को भावै ।
ते जन जीवनमुक्त कहावहिं मुख देखे अघ जावै ।
जिनके इष्ट सखा श्री विट्ठल और बात नहिं प्यारी ।
जिनके बस में सदा सर्वदा रहत गोवर्द्धनधारी ।
तिनके मन क्रम बच सब भाँतिन श्री विट्ठल-पद पूजो ।
ते कृतकृत्य धन्य ते कलि मैं तिन सम और न दूजो ।
जे निस-दिन श्री विट्ठल विट्ठल विट्ठल ही मुख भाखैं ।
'हरीचंद' तिनके पद की रज हम अपुने सिर राखैं ।९१

राग आसावरी (चीर-हरण)

जमुना-तट ठाढ़ नँद-नंदन कोउ न्हान न पावै हो ।
जो कोउ जल पैठत मज्जन-हित ताको चीर चुरावै हो ।
तोरत हार कंचुकी फारत चढ़त कदम पै धाई ।
पुनि पाछे तें पीठ मलत है ऐसो ढीठ कन्हाई ।
गारी देत कह्यौ नहिं मानत हाथ नचावत आई ।
हम जल मैं नाँगी सकुचाहीं सुनहु जसोदा माई ।
तुम निज सुत के गुन नहिं जानत कहत लाज अति आवै ।
'हरीचंद' बरजति नहि काहे नित नित धूम मचावै ।९२

राग टोड़ी

बिनती सुन नंद-बाल बरजो क्यौं न अपनो बाल
प्रातकाल आइ आइ अम्बर लै भागै ।
भोर होत जमुन तीर जुरि जुरि सब गोपी भीर
न्हात जबै बिमल नीर शीत अतिहि जागै ।
लेत बसन मन चुराइ कदम चढ़त तुरत धाइ
ठाढ़ी हम नीर माहिं नाँगी सकुचाहीं ।
'हरीचंद' ऐसो हाल करत नित्य प्रति गोपाल
ब्रज में कहो कैसे बसैं अब निबाह नाहीं ।९३

चलो सखी मिल देखन जैये दुलहिन राधा गोरी जू ।
कोटि रमा मुख छबि पै वारौं मेरी नवल-किसोरी जू ।
घँघरी लाल जरकसी सारी सोंधे भीनी चोली जू ।
मरवट मुख मैं सिर पै मौरी मेरी दुलहिया भोली जू ।
नकबेसर कनफूल बन्यौ है छबि का पै कहि आवै जू ।
अनवट बिछिया मुँदरी पहुँची दूलह के मन भावै जू ।
ऐसे बना बनी पै री सखि अपनो तन मन वारी जू ।
सब सखियाँ मिलि मंगल
गावत 'हरीचंद' बलिहारी जू ।९४

राग सारंग (रथ-यात्रा)

अटा पै मग जोवत है ठाढ़ी ।
यहि मारग हरि को रथ ऐहै प्रेम-पुलक तन बाढ़ी ।
कोउ खिरकिन छज्जन पै ठाढ़ीं कोउ द्वारे मग जोहैं ।
करि शृंगार श्यामसुंदर-हित प्रेम भरी अति सोहैं ।
यह आयो वह आयो सजनी कहति सबै ब्रजनारी ।
लै लै भेंट सामुहे आईं भरि कै कंचन थारी ।
बीरी देत करति न्योछावरि लै आरती उतारैं ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया पै अपनो तन मन वारैं ।९५

निविड़ तम-पुंज अति श्याम गहवर कुंज
राधिका-श्याम तहँ केलि सुंदर रची ।
परम अँधियार मधि उदय मुख-चंद को
करत तम दूर सब भाँति सोभा सची ।
हार हिय चमकि उडुगनन की छबि हरत
करत किंकिनि चुरी शब्द मनिगन खची ।
लखत 'हरिचंद' सखि ओट ह्वै सुरति-सुख
काम-कामिनि-काम-गरब गति नहिं बची ।९६

ठुमरी

सजन तेरी हो मुख देखे की प्रीत ।
तुम अपने जोबन मदमाते कठिन बिरह की रीत ।
जहाँ मिलत तहँ हँसि हँसि बोलत गावत रस के गीत।
'हरीचन्द' घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत ।९७

राग आसावरी

अरे कोऊ कहौ संदेसो श्याम को ।
हमारे प्रान-पिया प्यारे को अरु भैया बलराम को ।
बहुत पथिक आवत हैं या मग नित प्रति वाही गाम को ।
कोऊ न लायो पिय को सँदेसो 'हरीचंद' के नाम को ।९८

राग सारंग

हम तौ मदिरा प्रेम पिए ।
अब कबहूँ न उतरिहै यह रँग ऐसो नेम लिए ।
भई मतवार निडर डोलत नहिं कुल-भय तनिक हिये ।
डगमग पग कछु गैल न सूझत निज मन मान किए ।
रहत चूर अपुने प्रीतम पै तिन पै प्रान दिए ।
'हरीचंद' मोहन छैला बिनु कैसे बनत जिए ।९९
बैठी ही वह गुरुजन के ढिग पाती एक तहाँ लै आई ।
पाती लाय हाथ मैं दीनी कही श्याम यह तोहिं पठाई ।
सुनतहि अति चकृत सी ह्वै रही
मात-पितहि लखि बहुत लजाई ।
नैन नचाइ भौंह टेढ़ी करि
बोली तासों बुद्धि उपाई ।
अरी बावरी सी क्यौं डोलत
यह घर नाहीं क्यों घुसि आई ।
सो तो आगे दूर रहत है
जाके हित तू पाती लाई ।
वै तू नाम भूलि कै वाको
ताहि पढ़ावन मों ढिग धाई ।
औरहु ब्रज में बाँचनहारे तिन सों
क्यौं न पढ़ावत जाई ।
जानि परी हमकों याही मिस
भेद लेन घर की तू आई ।
जी चाहैं सो करैं डरैं नहिं या
ब्रज की अति कठिन लुगाई ।
बे-बातहि बदनाम करन की
इनकी टेव परी मै पाई ।
इन बैरिन पाछे या ब्रज में
कैसे कै बसिये री माई ।
दूती समुझि बहुत पछितानी
कहि भूली मैं भौन दुहाई ।
'हरीचंद' अति चतुर राधिका
यों मोहन की प्रीति छिपाई ।१००

कार्तिक-स्नान

(रचनाकाल — १८७२ ई.)

अथ कार्तिक-स्नान

नील-हीर-दुति अति मधुर सब ब्रज-जन-चित-चोर ।
जय जय बिरहातप-समन राधा-नंदकिशोर ।१
जुगल जलद केकी जुगल दोऊ चंद चकोर ।
उभय रसिक रस-रास जय राधा-नंदकिशोर ।२
जल तरंग बुधि प्रान पुनि दीप प्रकाश समान ।
जुगल अभिन्नहु दोय बपु जय राधा-भगवान ।३
नलिन-नयन अमृत-बयन बेनु-बाद्य-रत धीर ।
राधा-मुख-मधु-पान-रत जय जय जय बलबीर ।४
बिनु हरि-पद-राधा-भजन नाहिंन और उपाय ।
क्यौं मन तू भटकत बृथा जगत-जाल फँसि धाय ।५
मथिकै बेद पुरान बहु यहै लह्यौ इक सार ।
राधा-माधव-चरन भजु तजु जप जोग हजार ।६
भ्रमि मत तू वेदान्त-बन बृथा अरे मन मोर ।
चलु कलिंदजा-कुंज-तट लखु घनश्याम किशोर ।७
शास्त्र एक गीता परम मंत्र एक हरि-नाम ।
कर्म एक हरि-पद-भजन देव एक घनश्याम ।८
बिधि-निषेध जग के जिते तिनको यह सिरमौर ।
भजनो इक नँदलाल-पद तजनो साधन और ।९
साधकगन सों तुम सदा छिपत फिरत ब्रजराय ।
अति अँधियारो मम हृदय तहाँ छिपत किन आय ।१०
बेद कहत जग बिरचि हरि ब्यापि रहत ता माँहि ।
मम हिय जग बाहर कहा जो इत ब्यापत नाहिं ।११
तुमहिं रिझावन हित सज्यो लख चौरासी रूप ।
रीझि देहु गति खीझि कै बरजहु मोहिं ब्रज-भूप ।१२
कोऊ जप संजम करौ करौ कोउ तप ध्यान ।
मेरे साधन एक हरि सपनेहु रुचत न आन ।१३
नर्क स्वर्ग कै ब्रह्म-पद कै चौरासी माँहिं ।
जहाँ रहौ निज कर्म बस छुटै कृष्ण-रति नाहिं ।१४
कृष्ण नाम मुख सों कढ़ौ सुनौ कृष्ण-जस कान ।
मन में कृष्ण सदा बसौ नयन लखौं हरि ध्यान ।१५
चोरि चीर दधि दूध मन दुरन चहत ब्रजराय ।
मेरे हिय अँधियार मैं तौ न छिपत क्यौं आय ।१६
सुनत दूध दधि चीर मन हरत फिरत ब्रजराय ।
तौ अघ मेरे किन हरत यह मोहिं देहु बताय ।१७
कृष्ण-नाम मनि-दीप जो हिय-घर मैं न प्रकाश ।
दीप बहुत बारे कहा हिय-तम भयो न नाश ।१८
जय जय श्रुति-पद-बंदिनी कीर्तिनंदिनी बाल ।
हरि-मन परमानंदिनी कंदिनि भव-भय-जाल ।१९

सोरठा

जय जय परमानंद कृपाकंद गोविंद हरि ।
जय जय जसुदा-नंद नंदानंदन दुंद-हर ।२०

सवैया

पूजि कै कालिहि सत्रु हतौ कोऊ
लक्ष्मी पूजि महा धन पाओ ।
सेइ सरस्वति पंडित होउ
गनेसहि पूजिकै बिघ्न नसाओ ।
त्यों 'हरिचंद जू' ध्याइ शिवै कोऊ
चार पदारथ हाथही लाओ ।
मेरे तो राधिका-नायक ही,
गति लोक दोऊ रहौ कै नसि जाओ ।१
संध्या जु आपु रहौ घर नीकी नहान
तुम्हैं है प्रणाम हमारी ।
देवता पित्र छमौ मिलि मोहिं अराधना
होइ सकै न तुम्हारी ।
वेद पुरान सिधारौ तहाँ
'हरिचंद' जहाँ तुम्हरी पतियारी ।
मेरे तो साधन एक ही है
जग नंदलला वृषभानु-दुलारी ।२

भजन

जय वृषभानु-नंदिनी राधा ।
शिव ब्रह्मादि जासु पद-पंकज हरि बस हेतु अराधा ।
करुनामयी प्रसन्न चंदमुख हँसत हरति भव-बाधा ।
'हरीचंद' ते क्यौं जग जीवत जिन नहिं इनहिं अराधा ।१
जय जय हरि नंद-नंद पूर्ण ब्रह्म दुख-निकंद,
परमानंद जगतबंद सेवक सुखदाई ।
परम जस पवित्र गाथ दीनबंधु दीनानाथ,
स्रवन दरस ध्यान सुखद गोबर्द्धन-राई ।

गोप गोपिकादि-पाल सतत असुर-बंस-काल,
सकल कला-गुन-निधान कीरति जग छाई ।
'हरीचंद' प्राननाथ कीर्तिसुता लिए साथ,
पावनगुन अवलि बिमल श्रुतिगन नित गाई ।२

मेरी गति होउ सोई महरानी ।
जासु भौंह की हिलनि बिलोकत निसु दिन सारँगपानी ।
खेलन मैं कबहूं जौं आँचर उड़त बात-बस जाको ।
रिसि मुनि बंदित हू हरि मानत परम धन्य करि ताको।
परम पुरुष जो जोग जग्य जप क्योंहू लख्यौ न जाई ।
सो जा पद-रज बस निसि-बासर तुरतहि प्रगटत आई।
ग्राम बधूटी जा कटाच्छ-बल उमा रमाहि लजावैं ।
'हरीचंद' ते महामूढ़ जे इनहिं न अनुछिन ध्यावैं ।३

जय जय श्री बृंदावन देवी ।
अखिल विश्वनायक पुरुषोत्तम जा पद-पंकज-सेवी ।
जो निज दृष्टि कोर सों जग के जीवहिं नितहि जिआवै।
परमानंद-घनहू पै जो निज आनँद-कन बरसावै ।
जगत-आधार भूत परमातम जिय अधार सो ताकी ।
'हरीचंद' स्वामिनि अभिरामिनि तुल न जगत मैं जाकी।४

विपुल बृन्दा विपिन चक्रवर्ती-चतुर
रसिक-चूड़ा-रतन जयति राधा-रमन ।
गोप-गोपी सुखद भक्त नयनानंद
बिरहिजन कोटि संताप संतत समन ।
जयति गिरिराज धृत बास अंगुरि नखन
जयति कृत बेनु-रव मत्त गज-गति-गमन ।
अघ बकी बक सकट पूतनादिक काल जयति
'हरिचंद' हित-करन कालिय-दमन ।५

जय जय गोबर्धन-धर देव ।
जय जय देव राजमद-मर्दन करत सकल सुर सेव ।
जय जय श्रुतिजस गावत निसि-दिन पावत तऊ न भेव।
जय जय 'हरीचंद' रक्षण कृत दीन-उधारन टेव ।६

बाजी नैनन में लागी ।
रसिक राज इत उत श्री राधा परम प्रेम-रस-पागी ।
दोऊ हारे दोऊ जीते आपुस के अनुरागी ।
'हरीचंद' निज जन-सुखदायक रहे केलि निसि जागी ।७

हम मैं कौन बड़ो री प्यारी ।
ठाढ़ी होउ बराबर नापैं बिहँसि कह्यौ गिरिधारी ।
सुनत उठी बृषभानु-नंदिनी खरी भई समुहाई ।
पद-अँगुरी-बल उचकि पिया सों बढ़वन चहत उँचाई।
सुंदर मुख आपुहि ढिग आवत लखि चूम्यो पिय प्यारे।
'हरीचंद' लजि हँसि भुव निरखत पिया कह्यौ हम हारे ।८

राग बिहाग (दीपावली)

करत मिलि दीप-दान ब्रज-बाला ।
जमुना सों कर जोरि मनावत मिलैं पिया नँदलाला ।
स्नान दान जप जोग ध्यान तप संजम नियम बिसाला।
इनके फल में 'हरीचंद' गल लगै कृष्ण गुनवाला ।९

अरी तू हठ नहिं छाँड़त प्यारी ।
दीप-दान मैं मगन ह्वै रही भूलि गई गिरिधारी ।
तेरे बिनु उत बिनहीं दीपक बिरह-अगिनि संचारी ।
'हरीचंद' पीतम गर लगि के करु त्यौहार दिवारी ।१०

हमारे ब्रज के द्वै मनि दीप ।
पुष्पराग श्रीराधा मरकत गोबिंद गोप महीप ।
सदा प्रकाश करत ब्रज-मंडल वृंदाबन अवनीप ।
'हरीचंद' सुमिरत बियोग-तम कहुँ नहिं रहत समीप।११

राग बिहाग चौताला

अरी हौं बरजि रही बरज्यौ नहीं मानत,
सबै छोरि कृष्ण-प्रेम दीप जोरि ।
भरि अखंड दै सनेह एक लौ लगाइ वासों,
मन बाती राखु तामें नित्य बोरि ।
बिरह प्रगट करि जोति सों मिलाइ जोति,
करि पतंग नेम धरम लाज ओट डारि छोरि ।
'हरीचंद' कह्यो मानि देखिहै तू प्रीति-पंथ,
भाजैगो बियोग-तम मुख मोरि ।१२

राग बिहाग (दीपावली)

आजु गिरिराज के उच्चतर शिखर पर,
परम शोभित भई दिव्य दीपावली ।
मनहुँ नगराज निज नाम नग सत्य किय,
बिबिध मनि-जटित तन धारि हारावली ।
औषधी-गन मनहुँ परम प्रज्वलित भईं,
किधौं ब्रज-बास हित बसी तारावली ।
दास 'हरीचंद' मन मुदित छबि देखिकै,
करत जै जै बरषि देव कुसुमावली ।१३

आजु तरनि-तनया निकट परम परमा प्रगट,
ब्रज-बधुन मिलि रची दीप-माला ।
जोति-जाल जगमगत दृष्टि थिर नहिं लगत,
छूट छबि को परत अति बिसाला ।
खड़ीं नवल बनिता बनी चार दिसि,
छबि-सनी हँसहिं गावहिं बिबिध ख्याला ।
निरखि सखी 'हरीचंद' अति चकित सी ह्वै,
कहत जयति राधे जयति नंद-लाला ।१४

आजु ब्रजछबि की छूट परै ।
इत नंदलाल लाडिली उत इत दीपक ज्योति बरै ।
उत सहचरी ललित ललितादिक मुरछल चँवर ढरै ।
इत जरतार तास बागो उत भूषण झलक भरै ।

इत नवखंड सीसमहला उत दुगनित बिंब परै ।
इत बादलन लपेटी झालर झलाबोर झलरै ।
उत सारी कोरन सों मुकुता मानिक-हीर झरै।
जमुना-जल प्रतिबिंब सुहायो जल-छबि मिलि लहरै ।
'हरीचंद' मुख चंद मिलो सब रबि ससि गरब हरै ।१५
आजु सँकेनन दीपक बारे ।
निकट जानि गोबर्द्धन घटियाँ अपने हाथ सँवारे ।
किए प्रकासित गहवर गिरि थल कुंज पुंज ब्रज सारे ।
'हरीचंद' अपनी प्यारी की बाट निहारत प्यारे ।१६
अरी तू हठि चलि प्यारी दीप मंडल तें
क्यों शोभा हरि लेत ।
तेरे मुख-प्रकास दीपक-गन मंद दिखाई देत ।
मंद परे आभा सब मेटी झिलमिलि झीने सेत ।
'हरीचंद' तू दूरि बैठि कै कर त्योहार सहेत ।१७

ईमन

कविन सो साँचेहि चूक परी ।
दीप-सिखा की उपमा जिन तुलि प्यारी हेत धरी ।
वह दाहत यह अंग जुड़ावति वह चंचल थिर येह ।
वह निज प्रेमिन परम दुखत यह सदा सुखद पिय-देह।
वा में धूम स्वच्छ अति ही यह रैनि दिना इक रास ।
बह परिछिन्न बात-बस यह निज-बस सर्वत्र प्रकास।
वह सनेह-आधीन और यह है सनेह भरपूर ।
'हरीचंद' दीपक प्यारी की नहिं कोउ बिधि सम तूर ।१८
जमुना-जल बढ़ी दीप-छबि भारी ।
प्रतिबिंबित प्रतिबिंब लहरि प्रति तहँ राजत पिय प्यारी ।
तैसेही नभतर तारावलि तरल वायु गुन होई ।
तैसेहि उठत गगन गुब्बारे छुटत दारुगति जोई ।
अवनि नीर आकास प्रकासित दीपहि दीप लखाई ।
मनु ब्रजमंडल ज्योति-रूपता अपनी प्रगट दिखाई ।
मुख प्रकास रंजित सबही थल सोभा नहिं कहि आई ।
'हरीचंद' राधे मनमोहन रहे त्योहार मनाई ।१९
तुव बिनु पिय को घर अँधियारो ।
जदपि चहूँ दिसि प्रगटि श्वास मद बिरहानल संचारो ।
कछु न लखात ताहिं अति व्याकुल दृग-झर लावत भारो।
प्रिये प्रिये कहि प्रति कानन में ढूँढि रहित घर सारो ।
तू इत बैठी बदन बनाए उत वह बिकल बिचारो ।
'हरीचंद' उठि चलु री प्यारी लाउ गरे पिय प्यारो ।२०
दीपन उलटी करी सहाय ।
चली गई पिय पास प्रगट मग काहू न परी लखाय ।
अँधियारी मैं तो भय भारी मुख-साँस नाहिं दुराय ।
इत प्रकाश में मिल अलबेली एक भई चमकाय ।
जगमगे बसन कनक-मनि-भूषन एक भए सब आय ।
'हरीचंद' मिलि कै बियोग में दीनो तुरत नसाय ।२१
दिपति दिव्य दीपावली, आजु दीपति दिव्य दीपावली ।
मनु तम-नाश करन को प्रगटी कश्यप-सुत-बंसावली।
मनु ब्रजमंडल-कृष्ण चंद्रमा तहँ तारन की मंडली ।
जीतन कों मनु राहु-सेन को अति सुबरन किरनावली।
बिगत भई सब रैनि-कालिमा सोभा लागति है भली ।
'हरीचंद' मनु रतन-रासि की
उज्ज्वल ज्योति जुगावली ।२२
नेकु चलु पिय पै बेगहि प्यारी ।
देखु करी तेरे हित कैसी मोहन आजु तयारी ।
पड़े पाँवड़े मग मखमल के दल गुलाब रुचिकारी ।
छिरक्यो नीर गुलाब अतर मृगमद चंदन घनसारी ।
परदे परे झालरैं झमकैं तने बितान सुतारी ।
फरश गलीचन को अति राजत कोमल बहुरँग डारी ।
धरे साज ढिग अतर पान मधु फूल-माल जल झारी ।
लगी मिठाई रासि दुहूँ दिसि दीपक धरे कतारी ।
बिछी पलँग पय-फेनु मैनु-सम पास परयो रुचिकारी।
पास साज पालन के सोहन कहँ सतरंज सँवारी ।
ठौर ठौर आरसी लगाई दूनी द्युति करि डारी ।
प्रति खूँटन हारावलि माला फूल बसन लै धारी ।
प्रति आले सुगंध सों पूरे पान मिठाई डारी ।
जहँ तहँ अदब किये सब सखियाँ ठाढ़ी साज सँवारी ।
मुरछल चँवर रुमाल अड़ानो पीकदान लै बारी ।
चौंकि चौंकि पिय उठत बिना तुव अगम संक बनवारी।
'हरीचंद' प्रीतम गर लगिकै करु त्योहार दिवारी ।२३
रच्यो यह तेरेहि हित त्योहार ।
दीप-दिवारी युक्ति निकारी तव हित नंदकुमार ।
तव महलन की सुरति करन हित हठरी रुचिर बनाई।
तुव मुख-चंद्रप्रकाश लखन हित दीपावली सुहाई ।
हाट लगाई तुव आवन हित और न कछु संदेह ।
'हरीचंद' बिहरै किन भुज भरि प्रीतम सों करि नेह ।२४

कार्तिक में साँझ के गाइबे को पद

साँचहि दीपसिखा सी प्यारी ।
धूमकेश तन जगमगाति द्युति दीपति भई दिवारी ।
स्वयं प्रकाश अकुंठ सुहाई बिनु असार छबि छाई ।
सदा एक रस नित्य अधिक यह वासों चाल लखाई ।
भरत सुगंधन ब्रज कुंजन मग शीतल तन कर वारी ।
प्रीतम-तन को बिरह मिटावत 'हरीचंद' दुख जारी ।२५

वैशाख-माहात्म्य

(रचनाकाल — १८७२ ई.)

अथ वैशाख-माहात्म्य

दोहा

भरति नेह नव नीर सों बरसत सुरस अथोर ।
जयति अलौकिक घन कोऊ लखि नाचत मनमोर ।।

—: * :—

नित्य उमाधव जेहि नवत माधव अनुज मुरारि ।
श्यामाधव माधव भजौ माधव मास बिचारि ।
रमत माधवी कुंज करि प्रेम माधवी पान ।१
माधव रितु सँग माधवी लै माधव भगवान ।२
वैशाखा-पति नहिं भजहिं जे वैशाष-मँझार ।
ते वै शाषामृग अहैं वा वैशाष-कुमार ।३
गुरु-आयसु निज सीस धरि सुमिरि पिया नँदनंद ।
माधव की कछु विधि लिखत ग्रंथन लखि हरिचंद ।४
चैत्र कृष्ण एकादशी अथवा पूनो मान ।
मेष संक्रमन सों करै वा अरंभ अश्नान ।५
ब्राहमण-गन सों पूछि कै नियम शास्त्र को मान ।
हरिहि नौमि संकल्प करि न्याय समेत विधान ।६

(मंत्र)

सकल मास वैशाष में मेष रासि रवि मान ।
मधुसूदन प्रिय होहिं लखि सनियम माधव-न्हान ।७
मधु-रिपु के परसाद सों द्विज अनुग्रहहि जोय ।
नित वैशाख नहान यह विघ्न-रहित मम होय ।८
माधव मेषग भानु मैं हे मधु-सत्रु मुरारि ।
प्रात-न्हान फल दीजिए नाथ पाप निरुवारि ।९

इति

जा तीरथ में न्हाइये लीजै ताको नाम ।
जहँ न जानिए नाम तहँ विश्नु-तीर्थ सुखधाम ।१०
तुलसी श्यामा ऊजरी जो मधु-रिपु कों देत ।
सो नारायन होत है माधव मैं करि हेत ।११
तुलसी-दल वैशाष में अरपहिं तीनों काल ।
जनम मरन सो मुक्त तेहिं करत नंद के लाल ।१२
जो सींचत पीपर तरुहि प्रात न्हाइ हरि मानि ।
करत प्रदक्षिन भाँति बहु सर्व्व देवमय जानि ।१३
तरपन करि सुर पित्र नर स-चराचर तरु मूल ।
मेटै अपने पित्र की नरक-कुंड की सूल ।१४
जें सीचहिं जल भक्ति सों पीपर तरु जड़ माहिं ।
तिन तार्‌यो निज अयुत कुल यामैं संशै नाहिं ।१५
गऊ-पीठ सुहराइ कै न्हाइ तरुहि जल देइ ।
कृष्ण पूजि तजि दुर्गतिहिं देवन की गति लेइ ।१६
एक बेर भोजन करै कै तारा लखि खाइं ।
कै बिन माँगो पाइकै दै निसि नींद बिहाइ ।१७
ब्रह्मचर्य्य धरनी-शयन अशन हविश्य न आन ।
श्रीगंगादिक मैं करै बिधि-बिधान असनान ।१८
पुन्य मास वैशाष में हरि सों राखि सनेह ।
मन भायो ताको मिलै यामें कछु न सँदेह ।१९
मधुसूदन पूजन करै तप ब्रत सह दै दान ।
पाप अनेकन जनम के दाहैं तूल-समान ।२०
माधव थापै पौंसरा करै चटाई दान ।
छत्र ब्यजन जूता छरी अरु सूछम परिधान ।२१
चंदन जल-घट पुष्प ग्रह चित्र वस्तु अंगूर ।
देवहिं दीजै प्रीति सों केला फल करपूर ।२२
माधव में जो पित्र-हित करत अंबु-घट-दान ।
सत्तु ब्यजन मधु फल सहित प्रीति करत भगवान ।२३
माधव-हित जे देत घट या माधव के माहिं ।
भोजन के सह विप्र कों ते बैकुंठहि जाहिं ।२४
होइ सकै नहिं मास भर सौ बिधिवत् असनान ।
करै अंत के तीन दिन तो फल होइ समान ।२५

(अथ अक्षय तृतीया)

रोहिनि माधव शुक्ल पख तीज सोम बुध होय ।
अति पवित्र दुरलभ बहुरि पाप नसावत सोय ।२६
माघी पूनो भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशि जान ।
माधव तृतिया कारतिक नवमी युग परमान ।२७
इन चारहु युगादि में श्राद्ध करत जो कोय ।
द्वै सहस्र संबत दिनन तृप्ति पित्र की होय ।२८
तिथि युगादि में न्हाइ कै करै दान जप ध्यान ।
ताकों शुभ फल देत श्री कृष्णचंद भगवान ।२९
माधव शुक्ला तीज को श्री गंगाजल न्हाय ।
सर्व्व पाप सों छूटिकै विष्णु-लोक सो जाय । ३०
जव ही को होमादि करि हरि को जव हि चढ़ाइ ।
दान देई जव द्विजन कों पुनि आपहु जव खाइ ।३१

दान करै जल कुंभ को रस अन्नादिक साथ ।
चना और गोधूम को सक्तु देइ द्विज-हाथ ।३२
दधि ओदन आदिक सबै ग्रीषम रितु के भोग ।
देइ तीज दिन विप्र कों नासै भव-भय रोग ।३३
शिवहिं पूजिकै तीज दिन शिव-हित दै घट-दान ।
शिवपुर सो नर पावई भाषत शिव भगवान ।३४

(मंत्र)

ब्रह्म विष्णु शिव रूप यह दियो धर्म घट-दान ।
पिता-पितामह आदि सब तृप्ति होहिं परमान ।३५
गंध उदक तिल फल सहित पित्रन जल-घट देत ।
अक्षय पावैं तृप्ति सब दान कियो एहि हेत ।३६
ब्रह्म-विष्णु-शिव-रूप यह देत धर्म घट दान ।
या सों मेरे काम सब पुरवौ श्री भगवान ।३७
वायु देवता को व्यंजन नासन आतप-ताप ।
तासों याके दान सों प्रीति होहिं हरि आप ।३८
सक्तु प्रजापति देवता मख-हित किय निरमान ।
होहिं मनोरथ पूर्ण सब या सतुआ के दान ।३९

इति

चार युगादिक तिथिन मैं करि समुद्र असनान ।
सो फल पावत मनुज जो करिकै पृथ्वी-दान ।४०
इन चारिहू युगादि मैं कछु नहिं खैये रात ।
रात खान सों दिवस को पुन्य नास ह्वै जात ।४१
माधव शुक्ला तीज को श्रीमाधव को जौन ।
चंदन चरचहिं पावहीं महा पुन्य नर तौन ।४२
करपूरादि सुगंध सों सुंदर चंदन बासि ।
कृष्णहि देत जो पुन्य नर रहत पाप सो नासि ।४३
चंदन तन धारन किए कृष्णहिं सो लखि लेत ।
तीज दिवस सो मुक्त ह्वै पावत कृष्ण-निकेत ।४४
शीतल जल नव घटन भरि माल-बिजन बहु भाँति ।
देत हरिह सो पावई पुन्य फलन की पाँति ।४५
पुष्पमाल बहु भाँति अरु ग्रीषम के उपचार ।
जल यंत्रादि अनेक बिधि करै बुद्धि-अनुसार ।४६
कृष्ण-हेत जो कछु करै माधव तृतिया पाइ ।
सो अखंड ह्वैके रहै पुन्य न कबहुं नसाइ ।४७
परशुराम को जन्म-दिन पुनि याही दिन जान ।
तिनके हित हू कीजिये दान बरत असमान ।४८
छाता जूता आदि सब ग्रीषम सुख की वस्तु ।
द्विजन देइ या तीज को कहि कृष्णार्पणमस्तु ।४९
सुकृत जौन यामें करै सो सब अक्षय होय ।
तासों अक्षय तीज यह नाम कहैं सब कोय ।५०
चंदन को बागो करै चंदन ही की माल ।
चंदन ही के भौन में बैठावैं नँदलाल ।५१
फूलन को मंदिर रचे फूलन सेज बनाय ।
तामें थापे कृष्ण कों फूल-माल पहिराय ।५२
रितु-फल बहु सब भाँति के दधि-ओदन सुखधाम ।
पना धरै सब वस्तु को कहै लेहु घनश्याम ।५३
दीपादिक की मुख्यता कातिक मैं जिमि जान ।
तैसेई माधव मास मैं सीत वस्तु को मान ।५४
चार बरन को दीजिए माधव मैं जल-दान ।
अंत्यज पशु पक्षीन को नीर-दान सुख-खान ।५५
जे पशु-पक्षिन देत हैं ग्रीषम मैं जल-पान ।
ते नर सुरपुर जात है सुंदर बैठि बिमान ।५६
जे अति आतप सों तपे देहु तिन्हैं विश्राम ।
छाया-जल बहु भाँति सों ह्वैहै पूरन काम ।५७
गरमी के हित जे करत बापी कूप तड़ाग ।
तिनको पुन्य अखंड ते करत न सुरपुर त्याग ।५८
साधुन को अरु द्विजन-गृह नदी-तीर हरि-धाम ।
जे छावत छाया तिन्हैं मिलत श्याम अभिराम ।५९

अथ श्री गंगा सप्तमी

माधव सुदि सप्तमि कियो क्रुद्ध जन्हु जल-पान ।
छोड़यौ दक्षिण कर्ण तें तातें पर्व्व महान ।६०
ताही सों जान्हवि भई ता दिन सों श्री गंग ।
तिनको उत्सव कीजिए ता दिन धारि उमंग ।६१
तामें गंगा न्हाय कै पूजन कीजै चारु ।
गंगा नाम सहस्र जपि लीजै पुन्य अपार ।६२

अथ वैशाख शुक्ल द्वादशी

सिंह राशि-गत होहिं जौ मंगल गुरु इक ठौर ।
मेष राशि-गत दिवसपति शुक्ल पक्ष-जुत और ।६३
द्वादशि तिथि मैं होइ पुनि बितीपात संयोग ।
हस्त होय नक्षत्र तौ होय महा यह जोग ।६४
प्रात स्नान यामैं करै सहित बिबेक बिधान ।
गो सुबरन अवनी बसन देइ द्विजन कहँ दान ।६५
देव होइ सुरपति बनै नरपतिहू जग माहिं ।
जो मन इच्छित सो मिलै यामैं संशय नाहिं ।६६

अथ नृसिंह चतुर्दशी

माधव शुक्ल चतुर्दशी स्वाती पुनि शनिवार ।
वनिज करन सिध जोग मैं नरहरि लिय अवतार ।६७
जो सब जोग कहूँ मिले तौ पूरन सौभाग ।
बिना जोगहू ब्रत करै करि हरि सों अनुराग ।६८
सब लोगन को ब्रत उचित चौदस माधव मास ।
पै वैष्णव जन तो कर निश्चय ब्रत उपवास ।६९
साँझ समै हरि को करै पंचामृत असनान ।

शीतल भोग लगावई करि आनंद विधान ।७०
बा मृद गोमय आँवलनि करि मध्यान्ह स्नान ।
पूछि द्विजन सों यह करे सुभ संकल्प विधान ।७१

(मंत्र)

देव देव नरसिंह जू जानि जनम को जोग ।
आजु करैं उपवास हम त्यागि सकल जग भोग ।७२

इति

यह पढ़ि नदी नहाइ के साँझ समै घर आइ ।
लक्ष्मी सहित नृसिंह की सुबरन मूर्ति बनाइ ।७३
रात पूजि जागरन करि प्रात पूजि पुनि श्याम ।
पीठक विप्रहि दै करै यह बिनती सुखधाम ।७४

(मंत्र)

नरहरि अच्युत जगतपति लक्ष्मीपति देवेस ।
पूजौ पीठक-दान सों मन-कामना अशेस ।७५
जे मम कुल में होयगे होय गए जे साथ ।
या भव-सागर दुसह तें तिनहिं उधारौ नाथ ।७६
डूब्यौ पातक-सिंधु मैं महादुःख, के बारि ।
दुखित जानि मोहि राखिए नरहरि भुजा पसारि ।७७
श्री नरसिंह रमेश जू भक्तन को भय टारि ।
क्षीर समुद्र निवास तुव चक्रपाणि दनुजारि ।७८
जय जय कृष्ण गुबिन्द हरि राम जनार्दन नाथ ।
या व्रत सों मोहिं दीजिए भक्ति मुक्ति दोउ साथ ।७९

इति

या विधि सों व्रत जे करैं कृष्ण-जन्म दिन जानि ।
ते चारहु फल पावहीं यह उर निश्चय मानि ।८०
जिमि निकसे प्रभु खंभ ते राख्यौ जन प्रहलाद ।
तिमि तिनकी रक्षा करत जे राखत व्रत स्वाद ।८१

अथ पूर्णिमा

माधव कातिक माघ की पूनो परम पुनीत ।
ता दिन गंगा न्हाइयै करि केशव सों प्रति ।८२
एक मास जो नहिं बनै श्रीगंगा-असनान ।
तौ पूनो दिन न्हाइयै अरु करियै जल-दान ।८३
व्रत समाप्त या दिन करै देइ द्विजन को दान ।
हाथ जोड़ि कै यह कहै लखि कै श्री भगवान ।८४

(मंत्र)

हे मधुसूदन, कृष्ण हरि राधा-जीवन-प्रान ।
तव प्रताप पूजन भयो माधव बिधिवत स्नान ।८५

इति

श्याम मृगा के चर्म पै श्याम तिलहि दै दान ।
सुबरन सह कहि होंहि प्रिय मधुसूदन भगवान ।८६
ब्राह्मण बहुत खवावई करि अनेक पकवान ।
जौ बहु द्विज नहिं होइ तौ बारह सहित बिधान ।८७
एहि बिधि माधव में करै प्रेम सहित असनान ।
ताकों सब कछु देहिं श्री मधुसूदन भगवान ।८८
लखि कै निरनयसिंधु अरु भगवद्‌भक्ति-विलास ।
माधव की यह विधि लिखी 'हरीचंद' हरिदास ।८९
एक दिवस मैं यह लिखी माधव-बिधि अभिराम ।
जेहिं पढ़ि कै सुख पाइहैं कृष्ण-भक्त सुखधाम ।९०
लीजौ चूक सुधारि के कविमन सहित अनंद ।
हौं नहिं जानत रचन-विधि नहिं पिंगल नहिं छंद ।९१
माधव-विधि माधव सुमिरि उर अति धारि अनंद ।
परम प्रेमनिधि रसिकबर बिरच्यौ श्रीहरिचंद ।९२
प्रान-पियारे, प्रेमनिधि प्रेमिन-जीवन-प्रान ।
तिनके पद अरपन कियो यह वैशाख-बिधान ।९३

प्रेम सरोवर

हरिश्चंद्र चंद्रिका खण्ड २ सं. १८७४ अक्टूबर में प्रकाशित

समर्पण

अक्षय तृतीया है, देखो जल-दान की आज कैसी महिमा है। क्या तुम मुझे फिर भी जल-दान दोगे? कहाँ! वरंच जलांजलि दोगे; देखो मैं कैसा प्यासा हूँ और प्यास में भी चातकाभिमानी हूँ। हाँ! जिस चातक ने एक श्याम घन की आशा पर परिपूर्ण समुद्र और नदियों तथा अनेक उत्तम मीठे-मीठे सोते, झील, कूप, कुंड, बावली औ झरनों को तुच्छ करके छोड़ दिया, उसे पानी बरसना तो दूर रहे, जो मधुर घन की ध्वनि भी न सुन पड़े तो कैसे प्रान बचे? देखो यह कैसी अनीति है, वही आनंदघन जी का कहना 'सब छोड़ि अहो हम पायो तुम्है हमैं छोड़ि कहो तुम पायो कहा।' यह देखो कैसे संशय की बात है कि मैं तो दोनों लोक के यावत् पदार्थ छोड़ बैठा, उस पर भी आप न पिघले तो इससे तुम्हारे ही विषय में संशय होते हैं जो चित्त के धैर्यों को हिलाते हैं। पर चाहे तुम कुछ कहो; मैं तो व्रत नहीं छोड़ने का। यह बड़ा हठ कौन मिटा सकता है? जो कहो कि 'तुम कच्चे हो, घर बैठे ही यह संपत लूटा चाहते हो और संसार की वासनाओं से दूषित होकर भी हमें खोजते हो' तो हम कैसे भी हों, तुम तो अच्छे हो और हम कहाते तो तुम्हारे हैं, तो फिर तुमको इससे क्या? भले आदमी ही बनो 'सतां सप्तपदौ मैत्री' इसी का निबाह करो, किसी भाँति समझो। ऐ मेरे प्यारे, कुछ तो मानो। जो कहो धर्म तो तुम फल रूप हो। अब धर्म फिर कैसा? जो कहो कलंक, तो प्रथम तुमको कलंक ही नहीं, और जो होता भी हो तो हम तुमको ढिंढोरा पीटने तो कहते नहीं। केवल इस अपने दीन को आश्वासन दे दो कि निराश न हो और इन अनिवार्य्य अश्रुओं को अपने अंचल से निवारण करो और भव-ताप से परम तापित इस दीन-हीन दुखी को अपने चरण-कल्पतरु की छाया में विश्राम दो, क्योंकि वैशाख में छायादान का बड़ा पुण्य है। जो कहो कि वैशाख बड़ा पुण्य मास है, इसमें तुमने क्या किया? तो मैंने देखो यह कैसा उत्तम तीर्थ प्रेम-सरोवर बनाया है। जो इस तीर्थ का स्नान करेंगे, जो इस तीर्थ की विधि करेंगे, जो इस तीर्थ का ध्यान धरेंगे, वे आप पुण्य-स्वरूप पावन होकर अपने शरीर के वायु से तथा हवा से लोक को पवित्र करेंगे, क्योंकि सत्य प्रेम ऐसी ही वस्तु है। तो क्या इस सीतल सरोवर में तुम न नहाओगे? अवश्य नहाना होगा, आप नहाओ और अपने जनों को कहो कि इसमें स्नान करें। प्यारे, यह अक्षय सरोवर नित्य भरा रहेगा और इसमें नित्य नए कमल फूलेंगे और कभी मल न आवेगा और इस पर प्रेमियों की भीड़ नित्य लगी रहेगी और प्रेम शब्द को विषय का पूजादिक कहनेवाले वा प्रेमाधिकारी के अतिरिक्त कोई भी इस तीर्थ पर कभी न आवेंगे (एवमस्तु-एवमस्तु)। तो तुम तो स्नान करो कि मेरा परिश्रम सार्थक हो

और इसका तीर्थपना पक्का हो जाय, क्योंकि तुम्हारे वा हमारे वा तुम्हारे किसी सेवक के नहाने से जल मात्र गंगा हो जाते हैं। तो आओ, इधर आओ इस उत्तम तीर्थ का मार्ग दिलानेवाला तुम्हारे आगे चलता है, जिसका नाम—

अक्षय तृतीया, वैशाख शुक्ल ३
सं. १९३० मंगल

केवल तुम्हारा
* * * * है

प्रेम-सरोवर

जिहि लहि फिर कछु लहन की आस न चित में होय।
जयति जगत पावन-करन प्रेम बरन यह दोय ।१
प्रेम प्रेम सब ही कहत प्रेम न जान्यौ कोय।
जो पै जानहि प्रेम तो मरै जगत क्यों रोय ।२
प्राननाथ के न्हान हित धारि हृदय आनंद।
प्रेमं-सरोवर यह रचत रुचि सों श्री हरिचंद ।३
प्रेम-सरोवर यह अगम यहाँ न आवत कोय।
आवत सों फिर जात नहिं रहत वहीं के होय ।४
प्रेम-सरोवर मैं कोऊ जाहु नहाय बिचारि।
कछु के कछु ह्वै जाहुगे अपनेहि आप बिसारि ।५
प्रेम-सरोवर नीर को यह मत जानेहु कोय।
यह मदिरा को कुण्ड है न्हातहि बौरो होय ।६
प्रेम-सरोवर नीर है यह मत कीजो ख्याल।
परे रहैं प्यासे मरैं उलटी ह्याँ की चाल ।७
प्रेम-सरोवर-पंथ मैं चलिहै कौन प्रवीन।
कमल-तंतु की नाल सों जाको मारग छीन ।८
प्रेम-सरोवर के लग्यौ चम्पाबन, चहुँ ओर।
भँवर बिलच्छन चाहिए जो आवै या ठौर ।९
लोक-लाज की गाँठरी पहिले देई डुबाय।
प्रेम-सरोवर पंथ मैं पाछें राखै पाय ।१०
प्रेम-सरोवर की लखी उलटी गति जग माँहि।
जे डूबे तेई भले तिरे तरे ते नाँहि ।११
प्रेम-सरोवर की यहै तीरथ बिधि परमान।
लोक वेद कों प्रथम ही देहु तिलांजलि-दान ।१२
जिन पाँवन सों चलत तुम लोक वेद की गैल।
सो न पाँव या सर धरौ जल ह्वै जैहै मैल ।१३
प्रेम-सरोवर पंथ मैं कींचड़ छीलर एक।
तहाँ इनारू के लगे तट पैं वृक्ष अनेक ।१४
लोक नाम है पंक को वृच्छ वेद को नाम।
ताहि देखि मत भूलियो प्रेमी सुजन सुजान ।१५
गहवर बन कुल वेद को जहँ छायो चहुँ ओर।
तहँ पहुँचै केहि भाँति कोउ जाको मारग घोर ।१६
तीछन बिरह दवागि सों भसम करत तरुवृंद।
प्रेमीजन इत आवहीं न्हान हेत सानंद ।१७
या सरवर की हौं कहा सोभा करौं बखान।
मत्त मुदित मन भौंर जहँ करत रहत नित गान ।१८
कबहुँ होत नहिं भ्रम निसा इक रस सदा प्रकास।
चक्रवाक बिछुरत न जहँ रमत एक रस रास ।१९
नारद शिव शुक सनक से रहत जहाँ बहु मीन।
सदा अमृत पीके मगन रहत होत नहिं दीन ।२०
नंददास, आनंदघन, सूर, नागरीदास।
कृष्णदास, चैतन्य, हरिवंस, गदाधर, व्यास ।२१
इन आदिक जग के जिते प्रेमी परम प्रसंस।
तेई या सर के सदा सोभित सुंदर हंस ।२२
तिन बिनु को इत आवई प्रेम-सरोवर न्हान।
फँस्यौ जगत मरजाद में बृथा करत जप ध्यान ।२३
अरे बृथा क्यों पचि मरो ज्ञान-गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै लाखन करहु उपाय ।२४
प्रेम सकल श्रुति-सार है प्रेम सकल स्मृति-मूल।
प्रेम पुरान-प्रमाण है कोउ न प्रेम के तूल ।२५
बृथा नेम, तीरथ, धरम, दान, तपस्या आदि।
कोऊ काम न आवई करत जगत सब बादि ।२६
करत देखावन हेत सब जप तप पूजा पाठ।
काम कछू इन सों नहीं यह सब सूखे काठ ।२७
बिना प्रेम जिय ऊपजे आनँद अनुभव नाँहि।
ता बिनु सब फीको लगै समुझि लखहु जिय माँहि ।२८
ज्ञान करम सों औरहू उपजत जिय अभिमान।
दृढ़ निहचै उपजै नहीं बिना प्रेम पहिचान ।२९
परम चतुर पुनि रसिकबर कैसोहू नर होय।
बिना प्रेम रूखी लगै बादि चतुरई सोय ।३०
जान्यौ वेद पुरान भे सकल गुनन की खानि।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं कहा कियो सब जानि ।३१
काम क्रोध भय लोभ मद सबन करत लय जौन।
महा मोहहू सों परे प्रेम भाखियत तौन ।३२
बिनु गुन जोबन रूप धन बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना तें रहित प्रेम सकल रस-खानि ।३३
अति सूछम कोमल अतिहि अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा नित इक रस भरपूर ।३४

जग में सब कथनीय है सब कुछ जान्यौ जात ।
पै श्री हरि अरु प्रेम यह उभय अकथ अलखात ।३५
बँध्यो सकल जग प्रेम में भयो सकल करि प्रेम ।
चलत सकल लहि प्रेम कों बिना प्रेम नहिं छेम ।३६
पै पर प्रेम न जानहीं जग के ओछे नीच ।
प्रेम जानि कछु जानिबो बचत न या जग बीच ।३७
दंपति-सुख अरु विषय-रस पूजा निष्ठा ध्यान ।
इनसों परे बखानिए शुद्ध प्रेम रस-खान ।३८
जदपि मित्र सुत बंधु तिय इनमें सहज सनेह ।
पै इन मैं पर प्रेम नहिं गरे परे को एह ।३९
एकंगी बिनु कारने इक रस सदा समान ।
पियहि गनै सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान ।४०
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय ।
रहै एक रस चाहि कै प्रेम बखानौ सोय ।४१
इक्कीस तोप सलामी की औअल दर्जे का काम सभी ।
क्रास बाथ इस्टार हुए महराज बहादुर नाम सभी ।
जग जस पाया मुलक कमाया किया ऐश-आराम सभी ।
सार न जाना रहा भुलाना राम बिना बे काम सभी ।

प्रेमाश्रु-वर्षण

(रचनाकाल — सन् १८७३)

समर्पण

कितव*

यह प्रेमाश्रु की वर्षा है । इससे नहाके तब मुझे छुओ, क्योंकि वह धूर्तता करने से तुम अशुद्ध हो गए हो । क्या कहूँ, बहुत कुछ कहने को जी चाहता है और लेखनी कहनी-अनकहनी सभी कहना चाहती है, पर क्या करे, अदब का स्थान है, इससे चुप है और चुप रहेगी । हाय हाय, कभी मैं इस दुष्ट लेखनी को अपने प्रान-प्यारे जीवितेश, मेरे सर्वस्व की कुछ निंदा कैसे लिखने दूँगा । और जो लिखा भी हो तो क्षमा करना ।

यह बखेड़ा जाने दो, आज क्यों नहीं मिले ?
ले इन्हीं लक्षणों से तो कुछ कहने को जी चाहता है,
न कहूँगा, रूठने का डर तो सबसे बड़ा है न
जैसा कुछ हूँ, बुरा भला तुम्हारा हूँ
लो इस वर्षा से जी बहलाओ
पर प्यारे, तुम भी कभी बरसो ।
बरसि नदी नद सर समुद पूरे करुना-भौन ।
हम चातक लघु चंचु-पुट पूरन में श्रम कौन ।।

सावन हरिआरी अमावस — तुम्हारा चातक
गुरु पुष्य सं. १९३० — हरिश्चंद्र

प्रेमाश्रु-वर्षण

भइ सखि साँझ फूलि रहि बन
द्रुम बेली चलै किन कुंज कुटीर ।
हरे सरोवर भए सुनहरे छिरकी मनहुँ अबीर ।
झुकि रहे रंग रंग के बादर मनु सुखए बहु चीर ।
जानि बसेरा-समय कुलाहल करत कोकिला कीर ।

* धूर्त, छली

तन्यो बितान गगन अवनी लौं भयो सुहावन तीर ।
जमुना-जल झलकत आभा मिलि लहरत रंग भरि नीर।
धीर समीर बहत अँग सहरत सोभित धीर समीर ।
'हरीचंद' इक तुव बिनु फीको सब मानत बलबीर ।१

सखी री साँझ सहायक आई ।
मेट्यो भय बैरो प्रकास को सब कछु दीन दुराई ।
अवनि अकास एक भयो मारग कहुँ नहिं परत दिखाई।
सूने भए सबै थल ब्रजजन घर मैं रहे दुराई ।
गरजि बुलावति तोहि चंचला चमकत राह दिखाई ।
औरन के चकचौंधा लावत तेरी करत सहाई ।
तैसेहि झींगुर झनकत नूपुर जासों नाहिं सुनाई ।
वायु सुखद ता दिसि तोहिं भेजत तरु हिलि रहत बुलाई।
बरसत नान्ही बूँद हरन श्रम कोकिल करत बधाई ।
'हरीचंद' चलि उत किन भामिनि रहु पिय अंकम लाई।२

साँझ भई री परम सुहावनि घिरि नभ कीन बितान ।
भए अँधेर कुंज लता-तरु दुरयौ दुखद सो भान ।
घर गए गोप गाय गईं गोहर सूनभये मग थान ।
पावस समय जानि सब बेगहि सोए नर-नारी पट तान ।
अवनि अकास एक भयो दीखयत परत नाहिं कछु जान।
झनकत झिल्ली रट रहे दादुर कियो जात नहिं कान ।
तारे चंद मंद भए सारे लखिहैं कोउ न प्रयान ।
'हरीचंद' उठि चलु निधरक तू मति चूकै करि मान ।३

जगावन ही मनु पावस आयो ।
भयो भोर पिय उठौ उठौ कहि मधुरे गरजि सुनायो ।
बोले मोर कोकिला कुहके दादुर रोर मचायो ।
दामिनि दमकी मंगल बंदी-जन मनु नाच्यौ गायो ।
छोटी बूँद बरसि चौंकाए आलस सबै मिटायो ।
'हरीचंद' पिय प्यारी कों इन बेगहिं आज जगायो ।४

आजु प्रानप्यारी प्राननाथ सों मिलन चली
लखि कै पावस दास साजी है सवारी ।
तृन के पाँवरे बिछाय घन धुनि मंगल सुनाय
दामिनि दमकि आगे करैं उँजियारी ।
ठौर ठौर राह बतावत झिल्ली
बूँद बरसि हरैं श्रम सुखकारी ।
'हरीचंद' समै को उचित उपचारि करि
पावत न्यौछावर पिय जनहारी ।५

आजु तन भींजे बसनन सोहैं ।
देखि लेहु भरि लोचन सोभा जुगल अरी मन मोहैं ।
उघरे तन अनुरागहु उर के छिपे न जदपि लजौहैं ।
रति के चिन्ह जुगल तन बसनन ढँकेहु उघरि उलटौहैं।
अंग प्रभा मनु बसन रुको नहिं प्रगटि खुली सब सोहैं ।
'हरीचंद' दृग भींजि रहे रुकि उड़ि न सकत ललचौहैं ।६

बात बिनु करत पिया बदनाम ।
कौन हेतु वह लाज हरै मम बिना बात बे-काम ।
आजु गई हौं प्रात जमुन-तट आयो तहँ घनस्याम ।
पकरि मोहिं जल बीच हलोरयो तोरयो गर को दाम ।
लरि कंकन को दियो खरौटा मेरे मुख सुनु बाम ।
'हरीचंद' जाते जामैं सब छिपै न प्रीति मुदाम ।७

बिहरत रस भरि लाल बिहारी ।
ज्यौं ज्यौं घन गरजत हैं त्यौं त्यौं लपटि रहत पिय प्यारी।
होड़ा-होड़ी घन दामिनि सों केलि करत सुखकारी ।
बोलत मोर दामिनी चमकत लखि उमगत रस भारी ।
रहे सिहराइ भुजा भुज दीने राधा भानु-दुलारी ।
'हरीचन्द' कवि गन किए पावन कविता दोस निवारी ।८

दामिनि बैर करै बिनु बात ।
बिचन बनत बिनु बात कुंज मैं जब कबहूँ चमकात ।
निधरक जुगल रहन नहिं पावत प्रगटावत रस-बात ।
'हरीचंद' आखिर तौ चपला सहि नहिं सकत सिहात ।९

दामिनि बैरिनि बैर परी ।
जान न देत पिया प्यारे ढिग प्रगटत बात दुरी ।
रैन अँधेरी स्याम बसन तन जदपि रहत धरी ।
तऊ चमकि बिनु बात बैरिनी मेरी लाज हरी ।
घन गरजत बूँदन लखि घर नहिं रहियै धीर धरी ।
'हरीचंद' तजि संक अकेली पिय-मारग निकरी ।१०

मंगलमय सखि जुगल-बिहार ।
बड़े प्रात ही कुंज ओट तें क्यों चुपके नहिं लेत निहार ।
मंगल सेस भवन रस मंगल तहाँ जुगल मंगल की खानि।
मंगल बाह चाह मैं दीने मंगल बोलि अलसौंहीं बानि ।
मंगल जागत आलस पागत मंगल नींद भरे जुग नैन ।
मंगल लपटि लपटि कै पुनि पुनि
कबहुँ उठत करि कबहूँ सैन ।
मंगल परिरंभन आलिंगन मंगल तोतरे शब्द उचार ।
'हरीचंद' मंगल बल्लभ-पद जा
बल बिहरत बिना बिकार ।११

आजु कछु मंगल घन उनए ।
गरजत मंद मंद सोई मंगल मनवत कुंज छए ।
बरसत बूँदन मनु अभिसेचत मंगल कलस लए ।
चमकि मंगलामुखी दामिनी मंगल करत नए ।
मंगल बैरख बग की पंगत मंगल दादुर गान गए ।
मंगल नाचत मोर मोरनी मंगल कुंज बितान ठए ।
मंगल ब्रज बृंदाबन जमुना मंगल गिरिवर नाम लए ।
'हरीचंद' मंगल बल्लभ-पद जा बल जुगल बिहार भए ।१२

सखि ये बदरा बरसन लागै री ।
मोहिं मोहन पिय बिनु जानि जानि,

भुकि भुकि कै सरसन लागै री ।
हम उन बिनु अति ब्याकुल डोलैं,
मुख सों हाय पिया कहि बोलैं,
प्रान आइ अटकै नैनन में तेरे दरसन लागै री ।
सुनि सुनि कै सँजोग कुबिजा को,
करि कै याद बछुरिबो वाको,
लखि भमकनि बूँदन की मेरे जियरा हरसन लागै री ।
'हरीचंद' नहिं बरसत पानी,
बिरह अगिनि को घृत सम जानी,
कहा करैं कित जाइँ सेज सूनी लखि तरसन लागै री ।१३

सखी मन-मोहन मेरे मीत ।
लोक बेद कुल-कानि छाँड़ हम करी उनहिं सों प्रीत ।
बिगरौ जग के कारज सगरे उलटौ सबही नीत ।
अब तौ हम कबहूँ नहि तजिहैं पिय की प्रेम प्रतीत ।
यहै बाहु-बल आस यहै इक यहै हमारी रीत ।
'हरीचंद' निधरक बिहरैंगी पिय-बल दोउ जग जीत ।१४

अरी सोहागिन तेरे ही सिर राजतिलक बिधि दीनो ।
तोही कों फबै सेंदुर को टीको जिन पिय मन हरि लीनो ।
नास्यौ दरप सुन्दरीगन को भोग-भाग सब छीनो ।
'हरीचंद' भय मेटि काम को राज अचल ब्रज कीनो ।१५

श्रीराधे सबको मान हर्‌यौ ।
अरी सुहागिन मेरी तू अब सेंदुर तिलक धर्‌यौ ।
गिरे गरब-परबत जुबतिन के रूप गरूर बर्‌यौ ।
रीती सिद्धि भई रिषिगन की देविन दरप दर्‌यौ ।
शिव समाधि छूटी शुक डोल्यौ रवि ससि तेज छर्‌यौ ।
फूलन रूप-रंग तजि दीनौ जग आनंद भर्‌यौ ।
सबको भाग रूप अधरामृत इकलौ पान कर्‌यौ ।
'हरीचंद' हरि तोहि अंक लै ह्वै निसंक बिहर्‌यौ ।१६

सुरत-श्रम-जल बिहरत पिय-प्यारी ।
घाव भरे दोउ सेज नाव पै बाहु बाहु मैं धारी ।
करि आसरो पियारी को पिय पावत कोउ बिधि पारी ।
'हरीचंद' तहँ मौन बाँधि गल डूबे भयो सुखारी ।१७

प्यारी-रूप-नदी छबि देत ।
सुखमा-जल भरि नेह-तरंगनि बाढ़ी पिय के हेत ।
नैन-मीन कर-पद-पंकज से सोभित केस-सिवार ।
चक्रवाक जुग उरज सुहाए लहर लेत गल-हार ।
रहत एक-रस भरी सदा यह जदपि तऊ पिय भेंटि ।
'हरीचंद' बरसै साँवल घन बढ़त कूल कुल मेटि ।१८

आजु तन आनँद-सरिता बाढ़ी ।
निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीति तरंगनि काढ़ी ।
लोक बेद दोउ कूल तरोवर गिरे न रहे सम्हारे ।
हाव भाव के भरे सरोवर बहे होइ कै नारे ।
बुभै दवानल परम बिरह के प्रेम-परव भी भारी ।
मीन-बान के जे प्रेमी जन जल लहि भए सुखारी ।
भई अपार न छोर दिखावै नीति-नाव नहिं चाली ।
'हरीचंद' बल्लभ-पद-बल मैं अवगाहत सोई आली ।१९

हमारे नैन बहीं नदियाँ ।
बीती जानि औधि सब पिय की जे हम सों बदियाँ ।
अवगाह्यौ इन सकल अंग ब्रज अंजन को धोयो ।
लोक बेद कुल-कानि बहाई सुख न रह्यो खोयो ।
डूबत हौं अकुलाइ अथाहन यहै रीति कैसी ।
'हरीचंद' पिय महाबाहु तुम आछत गति ऐसी ।२०

खेमटा

ए री मेरी प्यारी आजु पौढ़ि तू हिंडोरें ।
ललित लतान मैं सेज फँसाई भरत फूल चहुँ ओरें ।
मंद पवन लगिहैं हालन मैं पीतम सों भुज जोरें ।
'हरीचंद' सुख नींद सोइ तूँ अपने पिय के कोरें ।२१

पिय की अँकोर रच्यो है हिंडोर ।
खंभ जाँघैं अंक पटुली मंद भुलनि भकोर ।
हार भूमर पीत पट भालर लगी चहुँ ओर ।
सुक मोर पिक किंकिनि बदत तन स्वेद बरसत जोर ।
तहाँ रमकि भूलत प्रान-प्यारी उमगि थोरहिं थोर ।
'हरीचंद' सखि श्रम-हरन बीजन रहत है तृन तोर ।२२

दोऊ मिलि भूलत कुंज बितान ।
चहुँ ओर एकन एक सों लगे सघन बिटप कतार ।
तापैं लता रहिं लपट घेरे मूल सों प्रति डार ।
बहु फूल तिन मैं फूलि सोहत बिबिध बरन अपार ।
तिमि अवनि तृन अंकुर-मई
भयो दसो दिसि इक सार । दोऊ.
इक सबल लखि कै डार डार्‌यौ तहाँ ललित हिंडोल ।
तापैं लता चहुँघा लपेटीं भूमि भूमर लोल ।
तहँभमकि भूलत होड़ बदि बदि उमगि करहिं कलोल ।
खेलैं हँसै गेंदुक चलावैं गाइ मीठे बोल । दोऊ.
भोटा बढ़्यो रमकत दोऊ दिसि डार परसत धाइ ।
फरहरत चंचल खुलत बेनी अंग परत दिखाइ ।
टूटि मोती-माल मुक्ता गिरत भू पै आइ ।
मनु मुक्त जन अधिकार
गत लखि देत धरनि गिराइ । दोऊ.
कसी कंचुकी होत ढीली खुलि तनी के बंद ।
सिथिल कबरी उड़त सारी गिरत करके छंद ।
प्रगट बदन दुरात भूलत मैं तहाँ सानंद ।
मनु प्रेम-सागर मथत

इत उत तरत कढ़ि बहु चंद । दोऊ
इक डार परकि हिलाइ बरसावत कुसुम बहु रंग ।
इक नचत गावत इक बजावत बीन मधुर मृदंग ।
इक खींचि भाजत एक को पट हँसत भरी उमंग ।
इक लपट डोरी खात भँवरी प्रगटि अंग अनंग । दोऊ
इक रीझि झूलनि पै रही इक रही बिरछन ओर ।
इक होड़ दै झोटन बढ़ावत सौंह देत निहोर ।
इक थकित उतरत सिथिल बैठत नटत घूमरि घोर ।
इक चढ़त झूलन हेत बदिकै दाँव लाख करोर । दोऊ.
इक भजत तेहि गहि रहत दूजी हँसत झगरत बात ।
इक कहत हम नहिं झूलिहैं भई सिथिल सगरे गात ।
तेहि खैंचि कोऊ आपुनो बल डोल पैं लै जात ।
इक श्रमित बैठत ताहि दूजी करत अंचल बात । दोऊ.
कोउ अंचल छोर कटि मैं बाँधि कसिकै देत ।
कोउ किए लावन की कछोटी चढ़त झोटा हेत ।
कोउ दाबि अंचल दाँत सों मुख सों झकोरे लेत ।
कोउ बाँधि गाती हार सगरे भिरत रति रन-खेत। दोऊ.
इक श्रमित मुख क़रि अरुन स्वेदित लेत बिबिध उसास।
भए हाथ डोरी गहत राते मनहुँ राग प्रकास ।
पिंडुरि काँपत अंग थहरत लहरि कच मुख पास ।
तन स्वेद-कन झलकत रहत

कोउ चाहि मंद बतास । दोऊ.
इक डरत झोटा देत पिय के गल रहत लपटाइ ।
इक बीनि सबके आभरन पोहत तहाँ मन लाइ ।
इक गिरत रपटत घन गरज सुनि डरि छिपत इक जाइ।
इक बसन डारन सों छुड़ावत रहे जे लपटाइ । दोऊ.
गए भींजि सबके बसन लपटे बिबिध अंबर गात ।
तन द्युति अभूखन सहित भई तहँ सबन को प्रगटात ।
मनु प्रान-प्रिय के मिलन अंतर-पट दुरायो जात ।
खुलि गई कलई दुर्‌यो फल

भयो प्रगट प्रेम लखात । दोऊ.
इत बदत सुक पिक भँवर चातक भेक मोर चकोर ।
इत डार हहरनि होत प्रतिधुनि मचकि डोल झकोर ।
इत हँसनि हाहा सी सराहनि किंकिनी की रोर ।
उत गान तान बँधान बाजन

मिलि तुमुल कल घोर । दोऊ.
रँग रंग सारी रंग रँग के बहु अभूखन अंग ।
रँग रंग फूले फूल चहुँ दिसि झालरैं रँग रंग ।
रँग रंग बादर छए नभ तन रंग रंग अनंग ।
मनु श्याम ससि लखि रंग

सागर चढ़ि चल्यौ इक संग । दोऊ.
जर- तार सारी बादला ले करत मोती पात ।
तन स्वेद-कन घनश्याम जल हरि-प्रेम बरसत जात ।
तरु सों पराग अमोद मधु-मद फूल बरसत पात ।
मनु श्याम घन लखि उमगि

चहुँ दिसि तें चली बरसात । दोऊ.
तरु फूल फल महि रहि गमकि तपि धूप ठौरहिं ठौर।
मिंहदी सुगंध कुसुंभ सारी अतर बासित छोर ।
मिलि केस सोंधे अरगजा कुच लेप मृगमद जोर ।
सुख मोद मधु तंबोल स्वेद सुगंध लेत झकोर । दोऊ.
घन तड़ित चमकनि तासु आभा पाइ जल चमकात ।
तन बिबिध भूखन बसन चमकनि हँसनि मैं द्विजपाँत।
चौंकि चमकनि नारि की मुख-चंद चमकनि गात ।
मिलि पीत पट के चमक मैं इक रंग सबै दिखात। दोऊ.
तन भींजि सारी रंग रँग के बारि बहत उदोत ।
सब रंग मिलि के बसन छापित मैं प्रगट मुख जोत ।
पिय के निचोरत चूनरी मैं रंग दूनो होत ।
मनु बहे मिलि रँग-समुद मैं इक संग बहु रँग सोत ।
मुख पै कसूँमी रंग सारी भीजि रही चुचाय ।
लट सगबगी ह्वै तिमि रही गल कुचन मैं लपटाय ।
मनु बाल ससि ढिग लाल बादर सुधा बरसत आय ।
तेहि पान करि अहि-पुच्छ सों

शिव-सीस देत बहाय । दोऊ.
तिनमैं छबीली ललित श्री बृषभानुराय-कुमारि ।
जायैं रमा रति उरबसी सी कोटि फेंकिय वारि ।
जगस्वामिनी जन-काम-पूरनि सहज ही सुकुँवारि ।
कीरति-जसोमति-लाडली ब्रजराज-प्रान-पियारि। दोऊ.
तन नील सारी मैं किनारी चंद-मुख परिबेख ।
सिंदूर सिर दोउ नैन काजर पान की मुख रेख ।
बड़े नैना चपल चितवनि श्याम हित अनमेख ।
गोरी किसोरी परम भोरी सहज सुंदर भेख । दोऊ.
ढिग बाँह जोरे जासु बैठे नंदराय-कुमार ।
प्रति रमक चितवनि हँसनि लखि जीवन करत मनुहार ।
परिबेख ।अंचल केस हारन करत मधुर बयार ।
रहे रीझि आपाभूलि बारंबार कहि बलिहार । दोऊ.
सिर मोर-मुकुट सोहावनो गल गुंज-माल अनूप ।
तन श्यमसुंदर पीत पट कटि सहजहीं नट रूप ।
मनु नीलगिरि पैं बाल रबि की ललित लपटी धूप ।
प्रेमिन महा सुख देत अतिहि उदार श्री ब्रज-भूप। दोऊ.
मुरछल चँवर बिजना अड़ानी लिए हाथ रुमाल ।
पिकदान फूल चँगेर भूखन बसन कुसुमन माल ।
झारी भरी जल डबा बीरा बिबिध बिंजन थाल ।

ललितादि ठाढ़ी अनुचरी ढिग रूप की सी जाल । दोऊ.
इक करत आरति इक निछावरि करत मनिगन छोरि ।
इक आइ राई लोन वारत इक रहत तृन तोरि ।
इक भौंर निरवारत खरी इक रहत भूखन जोरि ।
इक बूँद आड़त आइ इक पद पोंछि रहत निहोरि । दोऊ.
आनंद-सागर बढ़ो ताको कहूँ वार न पार ।
डूबे करम कुल ज्ञान नेम विवेक काम-बिकार ।
पायो न क्यौहूँ थाह शिव शुक रहे हारि बिचार ।
'हरीचंद' तेहि अवगाह किय बल्लभ-कृपा-आधार ।२३

सखी लखि यह रितु बन की शोभा ।
कुहकत कुंज कुंज में कोकिल लखि कै सब मन लोभा ।
नए नए वृक्ष नए नए पल्लव नए नए सब गोभा ।
नए नए पात फूल फल नए नए देत हिये में चोभा ।
सीतल चहत समीर सुहायो लेत सुगंध झकोर ।
तैसोइ सुख घन उमड़ि रह्यौ है जमुना जू लेत हलोर ।
नाचत मोर सोर चहुँ ओरन गुंजत अलि बहु भाँत ।
बोलत चातक सुक पिक चहुँ दिसि
लखि कै घन की पाँत ।
हरी हरी भूमि भरी सोभा सों देखत ही बनि आवै ।
जहँ राधा अरु माधव बिहरत कुंजन छिपि छिपि जावै।
वह सौदामिनि वह स्यामल घन बृंदा-बिपिन-बिहारी ।
जुगल चरन कमलन के नख पै 'हरीचंद' बलिहारी ।२४
आजु ब्रज-बधू फूलीं फूलन के साज सजि,
प्यारी को भुलावत फूल के हिंडोरें ।
फूली ब्रज भूमि सब द्रुम लता रहे फूलि,
तैसोई पवन बहै फूल के झकोरें ।
फूली सखी एक आई साँवरे सलोने गात,
फूली प्यारी कंठ लागी प्रेम के हलोरें ।
'हरीचंद' बलिहारी फूलि फूलि जात वारी,
संगम गुन गावत सुर थोरें ।२५

परज

सखी री मोरा बोलन लागे ।
मनु पावस को टेरि बोलावत तासों अति अनुरागे ।
किधौं स्याम घन देखि देखि कै नाचि रहे मद पागै ।
'हरीचंद' बृजचंद पिया तुम आइ मिलौ बड़-भागे ।२६
देखि सखि चंदा उदय भयो ।
कबहूँ प्रगट लखात कबहुँ बदरी को ओट भयो ।
करत प्रकास कबहुँ कुंजन में छन छन छिपि छिपि जाय।
मनु प्यारी मुख-चंद देखि के घूँघट करत लजाय ।
अहो अलौकिक वह रितु-सोभा कछु बरनी नहिं जात ।
'हरीचंद' हरि सों मिलिबे कों मन मेरो ललचात ।२७
सखी अब आनँद को रितु ऐहै ।
वह दिन ग्रीसम तप्यो सखी री सब तन-ताप नसैहै ।
ऐ हैं री झूकि कै बादर चिलिहैं सीतल पौन ।
कोइलि कुहकि कुहकि बोलैंगी बैठि कुंज के भौन ।
बोलैंगे पपिहा पिउ पिउ बन अरु बोलैंगे मोर ।
'हरीचंद' यह रितु-छबि लखि कै
मिलिहैं नंदकिसोर ।२८

सखी री कछु तौ तपन जुड़ानी ।
जब सों सीरी पवन चली है तब सों कछु मन-मानी ।
कछु रितु बदलि गई आली री मनु बरसैगो पानी ।
'हरीचंद' नभ दौरन लागे बरसा के अगवानी ।२९

भोजन कीजै प्रान-पिआरी ।
भइ बड़ी बार हिंडोले झूलत आज भयो श्रम भारी ।
बिंजन मीठे दूध सुहातो लीजै भानु-दुलारी ।
स्यामा-स्याम-चरन-कमलन पर
'हरीचंद' बलिहारी ।३०

एरी आजु झूलै छै जी श्याम हिंडोरें ।
बृन्दावन री सघन कुंज में जमुना जी लेतीं हलोरें ।
सँग थारे बृषभानु-नंदिनी सोहै छे रँग गोरे ।
'हरीचंद' जीवन-धन वारी मुख लखतीं चित चोरे ।३१
आजु फूली साँझ तैसी ही फूली राधा प्यारी ।
तैसी ही जमुना फूली, भौंरन की भीर भूली,
तैसौ ही समय भयो तैसी ही फूलीं फुलवारी ।
तैसे ही झोटा बढ़े, अति ही अनंद मढ़े,
तैसोई अड़ानो राग गावैं सुकुँवारी ।
तैसोई बृंदाबन, तैसोई आनंद मन, तैसोही,
मोहन बनै 'हरीचंद' तहाँ बलिहारी ।३२
कहूँ मोर बोलै री घन को गरज सुनि
दामिनी दमकै छतिया धरकै ।
पिय बिन बिकल अकेली तड़पूँ
बिरह-अगिनि उठि भरकै ।
वह सुख की रतियाँ नहिं भूलै
सोई बात जिय करकै ।
'हरीचंद' पिय से कैसे मिलूँ छतियाँ सों
बिरह बोझ मेरे सरकै ।३३

चौखडा

हिंडोरें झूलत कुंज कुटीर ।
हिंडोरे राधा औ बलबीर ।।
हिंडोरे सब गोपिन की भीर ।
हिंडोरे कालिंदी के तीर ।
कालिंदी के तीर गहबर कुंज रच्यो है हिंडोर ।
नव द्रुम लतन मैं ग्रंथि दै दै फूल हैं चहुँ ओर ।।

तहँ निबिड़ में शोभा भई अति ही सुगंध भकोर ।
लखि हंस सारस भँवर गुंजत नचत बहु बिधि मोर ।
सोभा अति भूलत भई आजु बृंदाबन माँहिं ।
एक उतरहिं एक चढ़हिं पुनि एक आवहिं एक जाँहिं ।।
तैसी भूमि सबै हरियारी ।
तैसी सीतल चलत बयारी ।।
डोलत कीर कतारी ।
तैसी दादुर की धुनि न्यारी ।
दादुर की धुनि चहुँ ओर तैसी बीर-बधू छबि देत ।
बग-पाँति तैसी श्याम घन मैं इंद्रधनुष समेत ।।
जल बरसि नान्हीं नान्हीं बूँदन जिय बढ़ावत हेत ।
कहुँ पंथ नहिं सूझत तृनन सों जल हलोरा लेत ।।
जब चमकत घन दामिनी प्यारी तबै तुरंत ।
पिय के कंठन लागई बाढ्यौ मोद अनंत ।।
तैसी भुकी रही लतारी ।
तैसे सोभित नवल पतारी ।।
तामैं अँटकि रहै सारी ।
तेहि आप छुड़ावत प्यारी ।।
प्यारी छोड़ावत आपु सारी फूल सखि खसि कै गिरैं ।
सब हिलत द्रुम अरु डार सोभा लखत ही मन को हरैं ।।
बेला चमेली कुंद मरुआ अरु गुलाबन के तरैं ।
बहु रंग फूले फूल तापै भँवर बहु बिधि गुंजरैं ।।
अति आनँद बाढ्यौ तहाँ भूलत हैं बृजचंद ।
सब बृजनारि भुलावहीं कबहुँ तरल कहुँ मंद ।।
सिर मोर मुकुट छबि छाजै ।
उनके सुरंग चूनरी राजै ।।
बिछुआ किंकिनि सब बाजै ।
मनु काम नृपति-दल गाजै ।।
मनु काम नृप की सैन गाजै जीति सब संसार को ।
कियो अचल पूरन प्रेम पंथहि नासि ग्यान-बिकार को।
नित एक रस यह ब्रज बसौ श्री श्याम नंदकुमार को ।
'हरीचंद' का बरनै कहो या नित्य नवल बिहार को।३४

राग मलार

बोलै भाई गोबर्द्धन पर मोर ।
सावन मास घटा जुरि आई करत पपीहा सोर ।
बृंदाबन तरु पुंज कुंज मैं ठाढ़े नंदकिसोर ।
तैसहि सँग बृषभानु-नंदिनी तन जोरन को जोर ।
सीतल चलत समीर सुहायो भरत सुगंधि अथोर ।
या बृज माहिं सदा चिरजीवै 'हरीचंद' चित-चोर ।३५

सखि री कुंजन बोलत मोर ।
दामिनि दमकि दसो दिसि दावत छूटि छुवत छित छोर ।
मंद मंद मारुत मन मोहन मत्त मधुपगन सोर ।
'हरीचंद' बृजचंद्र पिया बिनु मारत मदन मरोर ।३६

जेंवत भींजत हैं पिय प्यारी ।
सावन मास घटा जुरि आई बैठे मोर कनारी ।
मुरछल चँवर करत ललितादिक बैठे कंचन थारी ।
स्यामा-स्याम-बदन के ऊपर 'हरीचंद' बलिहारी ।३७

घिरि घिरि घोर घमक घन धाए ।
बरसत बारि बड़ी बड़ी बूँदन बृज-मंडल पर छाए ।
दादुर बक पिक मोर पपीहा चातक सोर मचाए ।
दामिनि दमकति दसहूँ दिसा सों बहु खद्योत चमकाए।
कुसुमित कुंज कुंद की कलिका केतकि कदम सुहाए ।
'हरीचंद' हरिचँद-नंदन-छबि
लखि रति-काम लजाए ।३८

चौताला

स्याम घटा स्यामही हिंडोरो बन्यौ,
स्यामा स्याम भूलैं जामें अतिही अनंद सों ।
तैसोई तमाल कुंज स्याम रंग सोहत गोपी,
सब मिलि गावैं आनँद के कंद सों ।
अलि पिक मोर नीलकंठ स्याम रंग सोहैं,
स्याम श्री यमुना बहैं गति अति मंद सों ।
'हरीचंद' हरि की निरखि छबि महादेव,
स्याम गज-खाल ओढ़ि नाचै गावैं छंद सों ।३९

सखी री ठाढ़े नंद-कुमार ।
सुभग स्याम घन सुख रस बरसत चितवन माँझ अपार।
नटवर नवल टिपारो सिर पर लखि छबि लाजत मार ।
'हरीचंद' बलि बूँद निवारत जब बरसत घन-धार ।४०

हिंडोला

भूलत हैं राधिका स्याम सँग नव रंग सुखद हिंडोरे ।
गावत मालव राग रस भरे तान मान मधुरे सुर जोरे ।
उमगि रहीं ब्रजनारि नवेली पँचरँग चीर
पहिरि चित चोरे ।
पँचरँग छबि रस जुगल माधुरी
कहि न जाइ श्यामल रँग गोरे ।
बरसत मंद मंद घन तेहि छन
पँच-रँग बादर सब सुख-बोरे ।
'हरीचंद' बृषभानुनंदनी कोटिन
ससि-छबि छिन महँ छोरे ।४१

बृषभानु-कुमारी लाडिली प्यारी फूलत हैं संकेत हो ।
सँग सुंदर सखी सुहावनी जिन कीनो हरि सों हेत हो ।
सुंदर साज सिंगार किए सब पहिरे बिबिध रँग चीर हो।
हिलि मिलि भुलवहिं लाडिली हो नव रस जमुना तीर हो।

सबै सोहाई नवल बधू मिलि गावत गौरी राग हो ।
'हरीचंद' सुख को घन बरसत
बाढ़यो सलिल सोहाग हो ।४२

कलेऊ कीजै नंद-कुमार ।
[illegible] जमुना- [illegible] सखा सब द्वार ।
आज प्रात ही घेर रह्यौ है बरसैगो बड़ी धार ।
'हरीचंद' बलि बेगहि ऐयो भींजोगे सुकुमार ।४३

[illegible] बरसत धुम धुम पिय
प्यारी रंग-भौन भोजन रस भीने ।
फुह फुह फुह बूँद परैं छज्जन सो नीर झरैं,
आनन रँग-भरे दोऊ अरस-परस कीने ।
नागरि [illegible]
सीतल जल झारी भरि बीड़ादिक लीने ।
'हरीचंद' हँसै गावैं भोजन को सुख पावैं,
वारि फेरि सखी तृन तोरि तोरि दीने ।४४

लाल यह सुंदर बीरी लीजै ।
हँसि हँसि कै नँदलाल अरोगौ मुख ओगार मोहिं दीजै।
रंग रह्यौ बाढ़ी की [illegible]चन मैं चुनरि नसिय कीजै ।
रस बाढ़यौ तिय की आनन मैं 'हरीचंद' पिय भीजै ।४५

नाचत ब्रजराज [illegible] साज नटराज-साज,
पावस सों बदि बदि कै होड़ सी लगाई ।
कोकिल कल बंसी-धुनि नृत्य कला मोर नटनि,
पीत बसन चपला दुति छीनत चमकाई ।
ज्यों ज्यों बरसत सुबेस त्यौं त्यौं रस बरसत,
हरि घन गरजत उत इत रहे मृदंग बजाई ।
'हरीचंद' जीति रंग रह्यौ आजु ब्रज अखारै,
हारे घन रीझि देव कुसुमन झर लाई ।४६

जैन-कौतूहल

अर्हन्नित्यपि जैन शासन रता :

(रचना-काल : सन् १८७३)

समर्पण

प्यारे!

तुम तो मेरा मत जानते ही हो, इस पचड़े से तुम्हे क्या! यह देखो यह नया तमाशा र-वु जैन-कुतूहल नाम का तुम्हे दिखाता हूँ। तुम्हे सौगंद, वाह वाह अवश्य कहना।

केवल तुम्हारा
हरिश्चंद्र

जैन-कौतूहल

पियारे दूजो को अरहंत ?
पूजा जोग मानिकै जग मैं जाको पूजैं संत ।
अपुनी अपुनी रुचि सब गावत पावत कोउ नहिं अंत ।
'हरीचंद' परिनाम तुही है तासों नाम अनंत ।१

जय जय जयति ऋषभ भगवान ।
जगत ऋषभ बुध ऋषभ धरम के ऋषभ पुरान प्रमान ।
प्रगटित-करन धरम पथ धारत नाना बेश सुजान ।
'हरीचंद' कोउ भेद न पायो कियो यथारुचि गान ।२

तुमहि तौ पार्श्वनाथ हौ प्यारे ।
तलपन लागैं प्रान बगल तें छिनहु होहु जो न्यारे ।
तुमसों और पास नहिं कोऊ मानहु करि पतियारे ।
'हरीचंद' खोजत तुमहीं को बेद पुरान पुकारे ।३

अहो तुम बहु बिधि रूप धरो ।
जब जब जैसो काम परै तब तैसो भेख करो ।
कहुँ ईश्वर कहुँ बनत अनीश्वर नाम अनेक परो ।
सत पंथहि प्रगटावन कारन लै सरूप बिचरो ।
जैन धरम में प्रगट कियो तुम दया धर्म सगरो ।
'हरीचंद' तुमकों बिनु पाए लरि लरि जगत मरो ।४

बात कोउ मूरख की यह मानो ।
हाथी मारै तौहू नाहीं जिन-मदिर में जानो ।
जग में तेरे बिना और है दूजो कौन ठिकानो ।
जहाँ लखो तहँ रूप तुम्हारो नैनन माहिं समानो ।
एक प्रेम है एकहि प्रन है हमरो एकहि बानो ।
'हरीचंद' तब जग में दूजो भाव कहाँ प्रगटानो ।५

नाहिं ईश्वरता अँटकी बेद में ।
तुम तो अगम अनादि अगोचर सों कैसे मत-भेद में ।
तुम्हरी अनित अपार अहै गति जाको वार न पारो ।
ताकों इति करि गाइ सकै क्यौं बहुरो बेद बिचारो ।
बेद लिखी ही होय तुम्हारी जो पै महिमा स्वामी ।
तौ परिमिति गुन भए तिहारे नेति नेति के नामी ।
बेद-मारगहि वारो प्यारे जो इक तुमकों पावै ।
तौ जग स्वामी जग-जीवन क्यों तुमरो नाम कहावै ।
जो तुव पद-रज-अंजन नैनन लागै तौ यह सूझै ।
'हरीचंद' बिनु नाथ-कृपा क्यों यह अभेद गति बूझै ।६

जैन को नास्तिक भाखै कौन ?
परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन ।
सत कर्मन को फल नित मानत अति बिबेक के भौन ।
तिन के मतहि बिरुद्ध कहत जो महा मूढ़ है तौन ।
सब पहुँचत एक हि थल चाहौ करौ जौन पथ गौन ।
इन आँखिन सों तो सब ही थल सूझत गोपी-रौन ।
कौन ठाम जहँ प्यारे नाहीं भूमि अनल जल पौन ।
'हरीचंद' ए मतवारे तुम रहत न क्यों गहि मौन ।७

पियारे तुव गति अगम अपार ।
यामैं खोलै जीह जौन सो मुरख क्रूर गँवार ।
तेरे हित बकनो बिन बातहिं ठानि अनेकन रार ।
यासों बढ़िकै और जगत नहिं मूरखता-व्यवहार ।
कहँ मन बुद्धि बेद अरु जिह्वा कहँ महिमा-बिस्तार ।
'हरीचंद' बिनु मौन भए नहिं और उपाय बिचार ।८

कहाँ लौं बकिहैं बेद बिचारे ।
जिनसों कछु नातो नहिं तोसों तिनके का पतियारे ।
कागज अक्षर शब्द अर्थ हिय धारण मुख उच्चार ।
इन सों बढ़ि जा मैं कछु नाहीं ते पावहिं क्यों पार ।
तेरी महिमा अमित इतै हैं गिनती की सब बात ।
'हरीचंद' बपुरे कहिहैं का यह नहिं मोहिं लखात ।९

युक्ति सों हरि सों का संबंध ?
बिना बात ही तरक करैं क्यौं चारहु दृग के अंध ।
युक्तिन को परमान कहा है ये कबहूँ बढ़ि जात ।
जाकी बात फुरै सों जीतै यामें कहा लखात ।
अगम अगोचर रूपहि मूरख युक्तिन मैं क्यों सानै ।
'हरीचंद' कोउ सुनत न मेरी करत जोई मन मानै ।१०

जो पै झगरेन मैं हरि होते ।
तौ फिर श्रम करिकै उनके मिलिबे हित क्यों सब रोते ।
घर-घर मैं नर नारिन मैं नित उठिकै झगरो होत ।
वहाँ क्यों न हरि प्रगट होत हैं भव-वारिधि के पोत ।
पसुगन मैं पच्छिन मैं नितही कलह होत है भारी ।
तौ क्यों नहिं तहँ प्रगट होत है आसुहि गिरवरधारी ।
झगड़हु मैं कछु पूँछ लगी है याहि होत का बार ।
तनिक बात पैं झगरि मरत हैं जग के फोरि कपार ।
रे पंडितो करत झगरो क्यों चुप ह्वै बैठा भौन ।
'हरीचंद' याही मैं मिलिहैं प्यारे राधा-रौन ।११

खंडन जग मैं काको कीजै ।
सब मत तो अपने ही हैं इनको कहा उत्तर दीजै ।
तासों बाहर होइ कोऊ जब तब कछु भेद बतावै ।
ह्याँ तो वही सबै मत ताके तहँ दूजो क्यों आवै ।
अपुने ही पै क्रोधि बावरे अपुनो काटैं अंग ।
'हरीचंद' ऐसे मतवारेन कों कहा कीजै संग ।१२

पियारो पैये केवल प्रेम मैं ।
नाहिं ज्ञान मैं नाहिं ध्यान मैं नाहिं करम-कुल-नेम मैं ।
नहिं भारत मैं नहिं रामायन नहिं मनु मैं नहिं बेद मैं ।
नहिं झगरे मैं नाहिं युक्ति मैं नाहिं मतन के भेद मैं ।
नहिं मंदिर मैं नहिं पूजा मैं नहिं घंटा की घोर मैं ।
'हरीचंद' वह बाँध्यो डोलत एक प्रीति के डोर मैं ।१३

धरम सब अटक्यो याही बीच ।
अपुनी आपु प्रसंसा करनी दूजेन कहनो नीच ।
यहै बात सबने सीखी है का बैदिक का जैन ।
अपनी-अपनी ओर खींचनो एक लैन नहिं दैन ।
आग्रह भर्‍यौ सबन के तन मैं तासौं तत्व न पावैं ।
'हरीचंद' उलटी की पुलटी अपुनी रुचि सों गावैं ।१४

जै जै पदमावति महारानी ।
सब देविन मैं तुमरी मूरति हम कहँ प्रगट लखानी ।

तुमहिं लच्छमी काली तारा दुरगा शिवा भवानी ।
'हरीचंद' हमकों तो नैनन दूजी कहुँ न दिखानी ।१५

कंत है बहुरूपिया हमारो ।
ठगत फिरत है भेस बदलि जग आप रहत है न्यारो ।
बूढ़ो-ज्वान-जती-जोगिन को स्वाँग अनेकन लावै ।
कबहूँ हिंदू जैन कबहुँ अरु कबहुँ तुरुक बनि आवै ।
भरमत वाके भेदन मैं सब भूले धोखा खात ।
'हरीचंद' जानत नहिं एकै ह्वै बहुरूप लखात ।१६-

लगाओ चसमा सबै सफेद ।
तब सब ज्यौं का त्यौं सूझैगो जैसो जाको भेद ।
हरो लाल पीरो अरु लीलो जो जो रंग लगायो ।
सोइ सोइ रंग सबै कछु सूझत वासों तत्व न पायो ।
आग्रह छोड़ि सबै मिलि खोजहु तब वह रूप लखैहैं ।
'हरीचंद' जो भेद भूलिहै सोई पिय को पैहै।१७

कहो अद्वैत कहाँ सों आयो ।
हमैं छोड़ि दूजो है को जेहिं सब थल पिया लखायो ।
बिनु वैसो चित पाएँ झूठो यह क्यौं जाल बनायो ।
'हरीचंद' बिनु परम प्रेम के यह अभेद नहिं पायो ।१८

यह पहिले ही समुझि लियो ।
हम हिंदू हिंदू के बेटा हिंदुहि को पय पान कियो ।
तब तोहि तत्व सूझिहै कहँ लौं
पहिलेहि सो बनि आपु रहे ।
जनम करम मैं हरिहि मानिकै खोए जे जग-तत्व लहे ।
मेरे मेरो कहि कै भूले अपुनो हरिहि भुलान नहीं ।
'हरीचंद' जो यह गति है
तौ फिर वह नहीं दिखाय कहीं । १९

इतनोही तौ फरक रह्यौ ।
हमरो हमरो कहत सबै जग हम ही हम काहू न कह्यौ ।
जौ हम हम भाखैं तो जग में और दिखाई कौन परै ।
'हरीचंद' यह भेद मिटावै तबै तत्व जिय मैं उछरै ।२०

चहिए इन बातन को प्रेम ।
कोरो 'हम' सों काम चलै नहिं मरौ बृथा करि नेम ।
जब लौं मूरति प्राननाथ की आँखिन मैं न समाय ।
तब लौं सब थल प्रीतम प्यारो कैसे सबहि लखाय ।
'अहं ब्रह्म' सब मूरख भाखैं ज्ञान गरूर बढ़ाय ।
तनिक चोट के लगे उठत हैं रोइ रोइ करि हाय ।
जो तुम ब्रह्म चोट केहि लागी रोइ तजौ क्यौं प्रान ।
'हरीचंद' हाँसी नाहीं है करनो ज्ञान-विधान ।२१

'शिवोहं' भाखत सब ही लोग ।
कहँ शिव कहँ तुम कीट अन्न के यह कैसो संजोग ।
अरध अंग मैं पारवती हू शिवहि न काम जगावै ।
तुमको तो नारी के देखत अंग गुदगुदी आवै ।
तुमसों कहा संबंध ब्रह्म सों क्यों छाँटत हौ ज्ञान ।
'हरीचंद' मनमथ जागैगो तबै पड़ैगी जान ।२२

जो पै सबै ब्रह्म ही होय ।
तो तुम जोरू जननी मानौ एक भाव सों दोय ।
ब्रह्म ब्रह्म कहि काज न सरनो वृथा मरौ क्यौं रोय ।
'हरीचंद' इन बातन सों नहिं ब्रह्महि पैहो कोय ।२३

जो पै ईश्वर साँचो जान ।
तौ क्यौं जग को सगरे मूरख झूठो करत बखान ।
जो करता साँचो है तो सब कारजहू है साँच ।
जो झूठो है ईश्वर तौ सब जगहू जानौ काँच ।
जो हरि एक अहै तो माया यह दूजी है कौन ।
'हरीचंद' कछु भेद मिल्यौ न बक्यौ जिय आयो जौन ।२४

कहौ रे इक-मत ह्वै मतवारो ।
क्यौं इतनो पाखंड रचि रहे बिनु पाए पिय प्यारो ।
कहा समझयौ, सिद्धांत कहा कियो, का परिनाम निकारो ।
कैसे मान्यौ केहि मान्यौ क्यौं कौन उपाय बिचारो ।
सब कीन्हों पै सिद्ध कहा भयौ तप करि क्यौं तन जारो ।
'हरीचंद' जो परम सुलभ पथ तापै कंटक डारो ।२५

भये सब मतवारे मतवारे ।
अपुनो अपुनो मत लै-लै सब झगरत ज्यौं भठिहारे ।
कोउ कछु कहत ताहि कोउ दूजो खंडत निज हठ धारे ।
कह झगड़े ही मैं तेहि मान्यौ पागल भए बिचारे ।
आपुस में पहिले सब मिलि निश्चै करि होइँ न न्यारे ।
'हरीचंद' आयो तो भाखैं जामैं मिलैं पियारे ।२६

मत को नाहीं अर्थ अहै ।
तो सब कोई मत मत कहिकै फिर क्यौं कछू कहै ।
इन बातन में जानि परे नहिं सब कोउ कहा लहै ।
'हरीचंद' चुप ह्वै सगरो जग यामैं क्यौं न रहै ।२७

नहिं इन झगड़न मैं कछु सार ।
क्यौं लरि लरिकै मरौ बावरे बादन फोरि कपार ।
कोइ पायौ कै तुमही पैहो सो भाखौ निरधार ।
'हरीचंद' इन सब झगड़न सों बाहर है यह यार ।२८

अरे क्यों घर घर भटकत डोलौ ।
कहा धर्‌यौ तेहि कहूँ पाइहौ क्यों बिन बातन छोलौ ।
क्यों इन पोथिन पोथिन लै कै बिना बात ही बोलौ ।
'हरीचंद' चुप ह्वै घर बैठो यामैं जीभ न खोलौ ।२९

खराबी देखहु हो भगवान की ।
कहाँ कहाँ भटकत डोलत है सुधि न ताहि कछु प्रान की ।
तीन ताग मैं कहुँ अँटक्यौ कहुँ वेदन मैं यह डोलै ।
कहुँ पानी मैं कहुँ उपवासन मैं कहुँ स्वाहा मैं बोलै ।

कहुँ पथरा बनि बनि बैठो कहुँ बिना सरूप कहायो ।
मंदिर महजिद गिरजा देहरन डोलत धायो धायो ।
बादन मैं पोथिन मैं बैठ्यौ बचन बिषय बनि आय ।
'हरीचंद' ऐसे को खोजैं केहि थल देहु बताय ।३०

लखौ हरि तीन ताग मैं लटक्यौ ।
रीझि रह्यौ पानी चाटन पै करम-जाल में अँटक्यौ ।
हाथ नचावत सोर मचावत अगिन-कुंड दै पटक्यौ ।
'हरीचंद' हरजाई बनिकै फिरत लखहु वह भटक्यौ ।३१

माया तुम सों बड़ी अहै ।
तुम्हरो केवल नाम बड़ो है वेद पुरान कहै ।
बस कछु नाहिं तुम्हरो या जग मैं यह जन साँच कहै ।
नाहीं तो 'हरिचंद' तुम्हारो ह्वै क्यौं काम दहै ।३२

न जानै तुम कछु हौ की नाहीं ।
झूठहि बेद पुरान बकत सब भेद जान नहिं जाहीं ।
तुम साँचे हौ कै सपना हौ कै हौ झूठ कहानी ।
पतित-उधारन दीन-नेवाजन यह सब कैसी बानी ।
जौ साँचे हौ तुम अरु सगरे बेदादिक सब साँचे ।
'हरीचंद' तौ हमहुँ पतित ह्वै उधरन सो क्यौं बाँचे ।३३

अहो यह अति अचरज की बात ।
जानि बूझि कै बिष के फल को क्यों भूल्यो जग खात ।
सब जानत मरनो है जग मैं झूठे सुत पितु मात ।
'हरीचंद' तो फिर क्यौं नित नित याही मैं लपटात ।३४

कहाँ तोहिं खोजिए ए राम ।
मंदिर बेद पुरान जज्ञ जप तप मैं तो नहिं ठाम ।
जहँ जहँ भाखत तहँ तहँ धावत मिलत न कहुँ बिसराम ।
'हरीचंद' इन सों कहा बाहर अहै तिहारो धाम ।३५

देखैं पावत कौन सोहाग ।
बहुत सोहागिन एक पियरवा सब ही को अनुराग ।
खोजत सब पावत नहिं कोऊ धावत करि करि लाग ।
'हरीचंद' देखैं पहिले हम काको लागत भाग ।३६

प्रेम-माधुरी

(अक्टूबर १८७५ में कविवचन सुधा में प्रकाशित ।
चन्द्र-प्रभा प्रेस में सन् १८८२ में दूसरी
आवृत्ति हुई ।)

प्रेम-माधुरी

दोहा

बार बार पिय आरसी मत देखहु चित लाय ।
सुन्दर कोमल रूप में दीठ न कहुँ लगि जाय ।।
देखन देहुँ न आरसी सुंदर नंदकुमार ।
कहुँ मोहित ह्वै रूप निज, मति मोहिं देहु बिसार ।।

सवैया

राखत नैनन मैं हिय मैं भरि
दूर भए छिन होत अचेत है ।
सौतिन की कहै कौन कथा तसवीर
हू सों सतराति सहेत है ।
लाग भरी अनुराग भरी 'हरीचंद'
सबै रस आपुहिं लेत है ।
रूप-सुधा इकली ही पियै पियहू
को न आरसी देखन देत है ।१

कूकै लगीं कोइलैं कदंबन पै बैठि फेरि
धोए धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे ।
बोलै लगे दादुर मयूर लगे नाचै फेरि
देखि कै सँजोगी जन हिय हरसै लगे ।
हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी
लखि 'हरिचंद' फेर प्रान तरसै लगे ।
फेरि झूमि झूमि बरषा की रितु आई फेरि
बादर निगोरे झुकि झुकि बरसै लगे ।२

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेरि
रुप-सुध मधि कीनो नैनहू पयान है ।

हँसनि नटनि चितवनि मुसुकानि सुघराई
रसिकाई मिलि मति पय पान है ।
मोहि मोहि मोहन-मई री मन मेरो भयो
'हरीचंद' भेद ना परत कछु जान है ।
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय ।
हिय में न जानो परै कान्ह है कि प्रान है ।३
करि कै अकेली मोहिं जात प्राननाथ अबै
कौन जानै आय कब फेर दुख हरिहौ ।
औध को न काम कछू प्यारे घनश्याम बिना
आप कैं न जीहैं हम जो पै इतै धरिहौ ।
'हरीचंद' साथ नाथ लेन मैं न मोहिं कहा
लाभ निज जीअ मैं बताओ तो बिचरिहौ ।
देह संग लेते तो टहलहू करत जातो
एहो प्रान-प्यारे प्रान लाइ कहा करिहौ ।४
गुरु-जन बरजि रहे री बहु भाँति मोहिं
संक तिनहूँ की छाँड़ि प्रेम-रंग राँची मैं ।
त्यों ही बदनामी लई कुलटा कहाई हौं
कलंकिनिहु बनी ऐसी प्रेम-लीक खाँची मैं ।
कहै 'हरिचंद' सबै छोड़यौ प्रान-प्यारे काज
यातें जग झूठयौ रह्यौ एक भई साँची मै ।
नेह के बजाय बाज छोड़ि सब लाज आज
घूँघट उघारि ब्रजराज-हेतु नाची मैं ।५
बाढ़यौ करै दिन ही छिन ही छिन
कोटि उपाय करौ न बुझाई ।
दाहत लाज समाज सुखै गुरु की
भय नींद सबै सँग लाई ।
छीजत देह के साथ में प्रानहू
हा 'हरिचंद' करौं का उपाई ।
क्योंहू बुझै नहिं आँसू के नीरन
लालन कैसी दवारि लगाई ।६
छाँड़ि के मोहिं गए मथुरा
कुबरी तहँ जाय भई पटरानी ।
जो सुधि लीनी तो जोग सिखायो
भए 'हरिचंद' अनूपम ज्ञानी ।
गोप सों जो पै भए रजपूत लड़ौ
किन जोड़ को आपने जानी ।
मारन हौ अबलागन को तुम
याही मैं बीरता आय खुटानी ।७
बाजी करै बंसी धुनि बाजि बाजि श्रवनन
जोरा-जोरी मुख-छबि चितहि चुराए लेत ।
हँसनि हँसावति जग सों तिहारी मुरि
मुरनि पियारी मन सब सों मुराए लेत ।
'हरिचंद' बोलनि चलनि बतरानि पीत-,
पट फहरानि मिलि धीरज मिटाए लेत ।
जुलफैं तिहारी लाज-कुलफन तोरैं प्रान,
प्यारे नैन-सैन प्रान संग ही लगाए लेत ।८
हौं तो तिहारे दिखाइबे के हित
जागत ही रही नैन उजार सी ।
आए न राति पिया 'हरिचंद' लिए
कर भोर लौं हौं रही भार सी ।
है यह हीरन सों जड़ी रंगन
तापै करी कछु चित्र चितार सी ।
देखो जू लालन कैसी बनी है नई
यह सुंदर कंचन-आरसी ।९
सोइ तिया अरसाय कै सेज पै
सो छबि लाल बिचारत ही रहे ।
पोंछि रुमालन सों श्रम-सीकर
भौंरन को निरुवारत ही रहे ।
त्यौं छबि देखिबे को मुख तैं
अलकैं 'हरिचंद जू' टारत ही रहे ।
द्वैक घरी लौं जके से खरे
बृषभानुकुमार निहारत ही रहे ।१०
बोल्यौ करै नूपुर श्रवन के निकट सदा,
पद-तल लाल मन मेरे बिहर्‌यौ करै ।
बाजी करै बंसी धुनि पूरि रोम-रोम मुख,
मन मुसुकानि मंद मनहि हँस्यौ करै ।
'हरिचंद' चलनि मुरनि बतरानि चित,
छाई रहै छबि जुग दृगन भर्‌यौ करै ।
प्रानहू ते प्यारौ रहै प्यारौ तू सदाई तेरो,
पीरो पट सदा जिय बीच फहर्‌यौ करै ।११
बृजवासी बियोगिन के घर मैं
जग छाँड़ि कै क्यौं जनमाई हमैं ।
मिलिबो बड़ी दूर रह्यो 'हरीचंद'
दई इक नाम-धराई हमैं ।
जग के सगरे सुख सों ठगि कै
सहिबे को यही है जिवाई हमैं ।
केहि बैर सों हाय दई बिधिना
दुख देखिबेही को बनाई हमैं ।१२
कहा कहौं प्यारे जे बियोग मैं तिहारे चित,
बिरह-अनल लूक भरकि भरकि उठै ।
कैसे कै बिताऊँ दिन जोबन के हा-हा काम,
कर लै कमान मोपै तरकि तरकि उठै ।
भूलै नाहिं हँसनि निहारी 'हरिचंद' नैसी,
बाँकी चितवनि हिय फरकि फरकि उठै ।

बेधि बेधि उठत बिसीले नैन-बान मेरे,
हिय मैं कँटीली भौंह करकि करकि उठै ।१३

कुबजा जग के कहा बाहर है नँदलाल
ने जा उर हाथ धर्‌यौ ।
मथुरा कहा भूमि की भूमि नहीं जहँ
जाय कै प्यारे निवास कर्‌यौ ।
'हरिचंद' न काहू को दोष कछू
मिलिहैं सोई भाग मैं जो उतर्‌यौ ।
सबको जहाँ भोग मिल्यौ वहाँ हाय
बियोग हमारे ही बाँटे पर्‌यौ ।१४

रोकहिं जो तो अमंगल होय औ
प्रेम नसै जो कहैं पिय जाइए ।
जौ कहैं जाहु न तौ प्रभुता जौ
कछू न कहैं तो सनेह नसाइए ।
जौ 'हरिचंद' कहैं तुमरे बिन जीहैं
न तो यह क्यौं पतिआइए ।
तासौं पयान समै तुमरे हम का
कहैं आपै हमें समझाइए ।१५

आजु सिंगार कै केलि के मंदिर
बैठी न साथ मैं कोऊ सहेली ।
धाय कै चूमै कबौं प्रतिबिंब
कबौं कहै आपुहि प्रेम-पहेली ।
अंक में आपुने आपै लगै 'हरिचंद जू'
सी करै आपु नवेली ।
प्रीतम के सुख मैं प्रिय-मैं भई आए
तें लाल के जान्यौ अकेली ।१६

सोई बने सब मंजुल कुंज
अलीन की भीर जहाँ अति हेली ।
साज अनेक सजे सुख के 'हरिचंद जू'
त्यों ही खरी है सहेली ।
सोई नई रतियाँ रति की पिय
सोई कहै ढिग प्रेम-पहेली ।
सोचत सो सुख सोई भई तिय आए
तें लाल के जान्यौ अकेली ।१७

तब तौ बखानी निज बीरता प्रमानी कै कै
प्रेम के निबाह भारे गरब गरूरे हौ ।
जान सों पिया कै कह्यो प्रथम पयान 'हरि-
चंद' अब बैठे कित दुरि दुरि दूरे हौ ।
हाय प्राननाथ-बिनु भोगत अनेक बिथा
खोई सुख आसा लागि अब लौं मजूरे हौ ।
अजौं तन तजिकै न जाओ लजवाओ मोहिं
हा हा मेरे प्रान निरलज्ज तुम पूरे हौ ।१८

जा दिन लाल बजावत बेनु अचानक आय कढ़े मम द्वारे ।
हौं रही ठाढ़ी अटा अपने लखि कै हँसे मो तन नंद-दुलारे ।
लाजि कै भाजि गई 'हरिचंद' हौं
भौन के भीतर भीति के मारे ।
ताही दिना तें चवाइनहूँ मिलि
हाय चवाय कै चौचँद पारे ।१९

बृज में अब कौन कला बसिये
बिनु बात ही चौगुनो चाव करैं ।
अपराध बिना 'हरिचंद जू' हाय
चवाइनैं घात कुदाव करैं ।
पौन मों गौन करे हौं लरी परैं
हाय बड़ोई हियाव करैं ।
जौ सपनेहुँ मिलै नँदलाल तौ
सौतुख मैं ये चवाव करैं ।२०

आजु कुंज मंदिर मैं छके रंग दोऊ बैठे,
केलि करैं लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि ।
सखीजन कहत कहानी 'हरीचंद' तहाँ
नेह भरी केकी कीर पिक सी चहकि चहकि ।
एक टक बदन निहारैं बलिहार लै लै,
गाढ़े भुज भरि लेत नेह सों लहकि लहकि ।
गरें लपटाय प्यारी बार बार चूमि मुख,
प्रेम भरि बातैं करैं मद सों बहकि बहकि ।२१

आजु कुंज-मंदिर अनंद भरि बैठे श्याम,
श्याम-संग रंगन उमंग अनुरागे हैं ।
घन घहरात बरसात होत जात ज्यौं ज्यौं,
त्यौंही त्यौं अधिक दोऊ प्रेम-पुंज पागे हैं ।
'हरिचंद' अलकैं कपोल पैं सिमिटि रहीं,
बारि बुंद चूअत अतिहि नीके लागे हैं ।
भींजि भींजि लपटि लपटि सतराइ दोऊ,
नील पीत मिलि भए एकै रंग बागे हैं ।२२

बृज के सब नाँव धरैं मिलि ज्यौं त्यौं
बढ़ाइकै त्यौं दोऊ चाव करैं ।
'हरीचंद' हँसैं जितनो सबही
तितनी दृढ़ दोऊ निभाव करैं ।
सुनि कै चहुँघा चरचा रिसि सों
परतच्छ ये प्रेम-प्रभाव करैं ।
इत दोऊ निसंक मिलैं बिहरैं उत
चौगुनो लोग चवाव करैं ।२३

मिलि गाँव के नाँव धरौ सबही

चहुँघा लखि चौगुनो चाव करौ ।
सब भाँति हमैं बदनाम करौ
कढ़ि कोटिन कोटि कुदावँ करौ ।
'हरिचंद' जू जीवन को फल पाय
चुकीं अब लाख उपाय करौ ।
हम सोवत हैं पियअंक निसंक
चवाइनै आओ चवाव करौ ।२४

व्याकुल हौं तड़पौ बिनु पीतम
कोऊ तौ नेकु दया उर लायो ।
प्यासी तजौं तन रूप-सुधा बिनु
पापिन पी को पपीहै पिआओ ।
जीअ मैं हौस कहूँ रहि जाय न
हा 'हरिचंद' दोऊ उठि धाओ ।
आवै न आवै पियारो अरे कोऊ हाल
तौ जाइ के मेरी सुनाओ २५

जानत हौं नहीं ऐसी सखी इन
मोहन जैसी करी हम सों दई ।
होत न आपुने पीअ पराए कवौं यह
बोलनि साँची अरी भई ।
हा हा कहा 'हरीचंद' करौं बिपरीत
सबै बिधि नै हम सों ठई ।
मोहन ह्वैं निरमोही महा भए नेह
बढ़ाय कै हाय दगा दई ।२६

जानि कै मोहन के निरमोहहि
नाहक बैर विसाहि बरें परी ।
त्यौं 'हरिचंद' बिगारि कै लोक
सो बेद की लीक भलै निदरें परी ।
आपुनि ही करनी को मिल्यो फल
तासों सबै सहते ही सरे परी ।
यामैं न और को दोष कछू सखि
चूक हमारी हमारे गरें परी ।२७

नेह लगाय लुभाय लई पहिले
बृज की सब ही सुकुमारियाँ ।
बेनु बजाय बुलाय रमाय हँसाय
खिलाय करी मनुहारियाँ ।
सो 'हरिचंद' जुदा ह्वै बसे बधि कै
छलसों ब्रज-बाल बिचारियाँ ।
वाह जू प्रेम निबाह्यो भलें
बलिहारियाँ लालन वे बलिहारियाँ ।२८

मेरी गलीन न आइए लालन
यासों सबै तुमहीं लखि जाइहै ।
प्रेम तो सोई छिप्यौ जो रहै प्रगटै
रसहू सब भाँति नसाइहै ।
आइहौं हौंही उतै 'हरीचंद'
मनोरथ आपको कुंज पुराइहै ।
अंक न बाट में लाइए जू कोउ देखि
जौ लैहै कलंक लगाइहै ।२९

मारग प्रेम को को समुझै 'हरिचंद'
यथारथ होत यथा है ।
लाभ कछू न पुकारन में बदनाम ही
होन की सारी कथा है ।
जानत है जिय मरो भली बिधि
और उपाय सबै बिरथा है ।
बावरे हैं बृज के सगरे मोहिं
नाहक पूछत कौन बिथा है ।३०

जिय पै जु होइ अधिकार तो विचार कीजै
लोक-लाज भलो बुरो भले निरधारिए ।
नैन श्रौन कर पग सबै पर-बस भए
उतै चलि जात इन्हें कैसे कै सम्हारिये ।
'हरीचंद' भई सब भाँति सों पराई हम
इन्हैं ज्ञान कहि कहो कैसे कै निबारिए ।
मन मैं रहै जो ताहि दीजिये बिसारि मन
आपै बसै जामैं ताहि कैसे कै बिसारिए ।३१

होते न लाल कठोर इते जु पै
होते कहूँ तुमहूँ बरसानियाँ ।
गोकुल गाँव के लोग कठोर करैं
छत हीय मैं मारि निसानियाँ ।
यौं तरसावत हौ अबलागन को मुख
देखिबे को दधि-दानियाँ ।
दीनता की हमरे तुमरे निरदैपनहू
की चलैंगी कहानियाँ ।३२

बेनी सी बखानै कबि ब्याली काली काली आली
तिन सबहू कों प्रतिपाली अहो काली है ।
ताही सों उताल नँदलाल बाल कूदि जल
नाथ्यौ जाय ताहि चाहि उपमा न चाली है ।
तहाँ 'हरिचंद' सबै गाँव के तमासे लगे
तिन के अछत तुहू कीनी खूब ख्याली है ।
ज्योंही ज्यों नचत प्यारी राधे तेरे दृग दोय
त्यौं ही त्यौं नचत फन पर बनमाली है ।३३

नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
फूल-माल गरें बन झालरि सी लाई है ।
भँवर गुँजार हरि-नाम जो उचार तिमि
कोकिला सों कुहुकि बियोन राग गाई है ।
'हरीचंद' तजि पतझार घर-बार सबै

बौरी बनि दौरि चारु पौन ऐसी धाई है ।
तेरे बिछुरे ते प्रान कंत कै हिमंत अंत
तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है ।३४

पीरो तन पर्‌यो फूली सरसों सरस सोई
मन मुरझानो पतझार मनो लाई है ।
सीरी स्वाँस त्रिबिध समीर सी बहति सदा
अँखियाँ बरसि मधु झरि सी लगाई है ।
'हरीचंद' फूले मन मैन के मसूसन सो
ताही सों रसाल बाल बदि कै बौराई है ।
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत कै हिमंत अंत
तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है ।३५

एरी प्रानप्यारी बिन देखे मुख तेरो मेरे
जिय मैं बिरह-घटा घहरि घहरि उठै ।
त्योंही 'हरिचंद' सुधि भूलत न क्योंहू तेरो
लाँबो केस रैन दिन छहरि छहरि उठै ।
गड़ि गड़ि उठत कँटीले कुच कोर तेरी ।
सारी सों लहरदार लहरि लहरि उठै ।
सालि सालि जात आधे आधे नैन-बान तेरे ।
घूँघट की फहरानि फहरि फहरि उठै ।३६

बैठे सबै गुरु लोग जहाँ तहाँ
आई बधू लखि सास भई खरी ।
देन उराहनो लागी तबै निसि को अति
भोरी न जानत रीत री ।
ढीठ तिहारो बड़ो 'हरिचंद' न देखत
मेरी सु ऐसी दसा करी ।
आँचर दीनों सखी मुख मैं कहि सारी
फटी तो बनाइहै दूसरी ।३७

प्रानपियारे तिहारे लिये सखि
बैठे हैं देर सों मालती के तर ।
तू रही बातैं बनाय बनाय मिलै
न बृथा गहिकै कर सों कर ।
तोहि घरी छिन बीतत है 'हरिचंद'
उतै जुग सो पलहू भर ।
तेरी तो हाँसी उतै नहिं धीरज
नौ घरी भद्रा घरी में जरै घर ।३८

दीनदयाल कहाइ कै धाइ कै दीनन
सों क्यों सनेह बढ़ायो ।
त्यौं 'हरिचंद' जू बेदन मैं करुनानिधि
नाम कहो क्यौं गनायो ।
एती रुखाई न चाहिए तापै कृपा
करिकै जेहि कों अपनायो ।
ऐसो ही जो पै सुभाव रह्यौ तो
गरीब-नेवाज क्यों नाम धरायो ।३९

क्यौं इन कोमल गोल कपोलन
देखि गुलाब को फूल लजायो ।
त्यौं 'हरिचंद' जू पंकज के दल सो
सुकुमार सबै अँग भायो ।
अमृत से जुग ओंठ लसे नव पल्लव
सो कर क्यों है सुहायो ।
पाहन सो मन होते सबै अँग
कोमल क्यौं करतार बनायो ।४०

आओ सबै जुरि कै बृज गाँव के
देखन को जे रहे अकुलात हैं ।
चार चबाइनै लै दुरबीनन धाओ
न आज तमासे लखात हैं ।
सास-जेठानी-सखी सँग की 'हरिचंद'
करौ मिलि भेद की बात हैं ।
घूँघट टारि निवारि भयै पिय कौं
हम आजु निहारन जात हैं ।४१

एक ही गाँव में बास सदा घर
पास इहौ नहिं जानती है ।
पुनि पाँचएँ सातएँ आवत जात की
आस न चित्त में आनती हैं ।
हम कौन उपाय करैं इनको
'हरिचंद' महा हठ ठानती हैं ।
पिय प्यारे तिहारे बिना अँखियाँ
दुखियाँ नहिं मानती हैं ।४२

यह संग मैं लागियै डोलैं सदा
बिन देखे न धीरज आनती हैं ।
छिनहू जो बियोग परै 'हरिचंद'
तौ चाल प्रलै की सु ठानती हैं ।
बरुनी में थिरै न झपैं उझपैं
पल मैं न समाइबो जानती है ।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना
अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं ।४३

ब्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन
हैं हमहूँ पहिचानती हैं ।
पै बिना नँदलाल बिहाल सदा
'हरिचंद' न ज्ञानहि ठानती हैं ।
तुम ऊधो यहै कहियो उन सों
हम और कछु नहिं जानती हैं ।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना
अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं ।४४

जिनको लरकाई सो संग कियो
अब सोऊ न साथहि साजती हैं ।
'हरिचंद' जू जानि हमैं बदनाम
चवाव घने उपराजती हैं ।
हा हाय कलंकिनि ऐसी भई सखियाँ
लखि कै मोंहि भाजती हैं ।
निसि-बासर संग मैं जे रहतीं मुख
बोलिबे सों अब लाजती हैं ।४५
पहिले बहुत भाँति भरोसो दियो
अब ही हम लाइ मिलावती हैं ।
'हरिचंद' भरोसे रही उनके सखियाँ
जे हमारी कहावती हैं ।
अब वेई जुदा ह्वै रहीं हम सों
उलटो मिलि कै समुझावती हैं ।
पहिले तो लगाई कै आग अरी जल कों
अब आपुहि धावतीं हैं ।४६
सब आस तो छूटी पिया मिलबे की
न जानैं मनोरथ कौन सजैं ।
'हरिचंद' जू दु:ख अनेक सहैं पै
अड़े हैं टरैं न कहूँ को भजैं ।
सब सों निरसंक ह्वै बैठि रहैं सो
निरादर हू सों कछू न लजैं ।
नहिं जान परै कछु या तन को कहि
मोह तें पापी न प्रान तजैं ।४७
मोहन सों जबै नैन लगे तब
तो मिलिकै समुझावन धाई ।
प्रीति की रीति औ नीति कही
मिलिबे को अनेकन बात सुनाई ।
वेऊ दगा दै जुदा ह्वै गई 'हरिचंद'
जू एकहु काम न आई ।
हाय मैं कौन उपाय करौं सखियाँ
अपुनी ह्वै गई जु पराई ।४८
हाय दशा यह कासों कहौं कोउ
नाहिं सुनै जौ करे हूँ निहोरन ।
कोऊ बचावनहारो नहीं 'हरिचंद'
जू यों तो हितू हैं करोरन ।
सो सुधि कैं गिरिधारन की अब
धाई कै दूर करौ इन चोरन ।
प्यारे तिहारे निवास की ठौर कों
बोरत हैं अँसुआ बरजोरन ।४९
हित की हम सों सब बात कहौ
सुख-मूल सबै बतरावती हौ ।
पै पिया 'हरिचंद' सों नैन लगे केहि
हेत ये बातैं बनावती हौ ।
यहाँ कौन जो मानै तिहारो कह्यौ
हमें बातन क्यों बहरावती हौ ।
सजनी मन पास नहीं हमरे तुम
कौन को का समुझावती हौ ।५०
जब सों हम नेह कियो उन सों तब
सों तुम बातैं सुनावती हौ ।
हम औरन के बस में हैं परी
'हरिचंद' कहा समुझावती हौ ।
कोउ आपुन भूलिहै बूझहु तौ
तुम क्यों इतनी बतरावती हौ ।
इन नैनन को सखी दोष सबै हमैं
झूठहि दोष लगावती हौ ।५१
जिनके हित त्यागिकै लोक की लाज
कों संगही संग में फेरो कियो ।
'हरिचंद' जू त्यौं मग आवत जात में
साथ घरी घरी घेरो कियौ ।
जिनके हित मैं बदनाम भई तिन
नेकु कह्यौ नहिं मेरो कियो ।
हमें व्याकुल छोड़िकै हाय सखी
कोउ और के जाइ बसेरो कियो ।५२
पिय रूसिबे लायक होय जो रूसनो
वाही सों चाहिए मान किये ।
'हरिचन्द' तौ दास सदा बिन मोल कों
बोलै सदा रुख तेरो लिये ।
रहै तेरे सुखै सों सुखी नित ही मुख
तेरो ही प्यारी बिलोकि जिये ।
इतने हू पै जानै न क्या तू रहै
सदा पीय सो भौंह तनेनी किये ।५३
पहिले बिनु जाने पिछाने बिना मिलीं
धाइ कै आगे बिचारे बिना ।
अपुने सों जुदा ह्वै गई तुरतै निज
लाभ औ हानि सम्हारे बिना ।
'हरिचंद' जू दोष सबै इनको
जो कियो सब पूछे हमारे बिना ।
बरिआई लखो इनकी उलटी अब
रोवहिं आपु निहारे बिना ।५४
आय कै जगत बीच काहू सों न करै बैर
कोऊ कछू काम करै इच्छा जौ न जोई की ।
ब्राह्मण की क्षत्रिन की बैसनि की सूद्रन की
अन्त्यज मलेछ की न ग्वाल की न भोई की ।

भले की बुरे की 'हरिचंद' से पतितहू की
थोरे की बहुत की न एक की न दोई की ।
चाहे जो चुनिन्दा भयो जग बीच मेरे मन
तौ न तू कबहूँ कहूँ निंदा करु कोई की ।५५

मैं बृषभानुपुरा की निवासिनि मेरी
रहै बृज-बीथिन भाँवरी ।
एक सँदेसो कहौं तुम सों पै सुनो जौ
करो कछ्रू ताको उपावरी ।
जो 'हरिचंद' जू कुंजन मैं मिलि जाहि
करो लखि कै तुम बावरी ।
बूझि है वाने दया करिकै कहिये
परसों कब होयगी रावरी ।५६

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं
अटके कित कौन बिचार लयो ।
नहिं जानि परै 'हरिचंद' कछ्रू
बिधि ने हमसों हठ कौन ठयो ।
निसि आजहू की गई हाय बिहाय
बिना पिय कैसे न जीव गयो ।
हत-भागिनि आँखिन कों नित के
दुख देखिबे कों फिर भोर भयो ।५७

हम तो सब भाँति तिहारी भईं तुम्हैं
छाँड़ि न और सों नेह करौं ।
'हरिचंद' जू छाँड़यो सबै कछु
एक तिहारोई ध्यान सदा ही धरौं ।
अपने को परायो बनाइ कै लाजहू
छाँड़ि खरी बिरहागि जरौं ।
सब ही सहौं नाहिं कहौं कछु पै तुव
लेखे नहीं या परेखे मरौं ।५८

आजु लों जौ न मिले तो कहा हम
तो तुमरे सब भाँति कहावैं ।
मेरो उराहनो है कछु नाहिं
सबै फल आपुने भाग को पावैं ।
जो 'हरिचंद' भई सो भई अब
प्रान चले चैहैं तासों सुनावैं ।
प्यारे जू है जग की यह रीति
बिदा की समै सब कंठ लगावैं ।५९

जान दे री जान दे बिचार कुल-कानहू को
गवन दे मेरे कुलटापन के गाथ को ।
मैं तो रही भूलि बिन बात को बिचारे जौन
प्रेम को बिगारे छाँडु ऐसे सब साथ को ।
देखो 'हरिचंद' कौन लाभ पायो जामैं पछि-
ताय रहि गई धन पाय खोयो हाथ को ।
जरौ ऐसी लाज आवै कौन काज जानै आज
लखन न दीनों भरि नैन प्राननाथ को ।६०

सदा ब्याकुल ही रहैं आपु बिना
इनको हू कछ्रू कहि जाइये तो ।
इक बारहू तोहिं न देख्यौ कभू
तिनको मुखचंद दिखाइये तो ।
'हरिचंद' जू ये अँखियाँ नित की हैं
बियोगी इन्हें समुझाइये तो ।
दुखियान को प्रीतम प्यारे कबौं
बहराइ कै धीर धराइये तो ।६१

रोवैं सदा नित की दुखिया बनि ये
अँखियाँ जिहि द्यौस सों लागीं ।
रूप दिखाओ इन्हैं कबहूँ 'हरिचंद'
जू जानि महा अनुरागी ।
मानिहैं औरन सों नहिं ये तुव रंग
रँगी कुल लाजहि त्यागी ।
आँसुन को अपने अँचरान सों
लालन पोंछि करौ बड़-भागी ।६२

वर-बाहर-केन को काम कछ्रू नहिं
को यह रार निबारि सकै ।
'हरिचंद जू' जो बिगरी बदिकै
तिन्है कौन है जौन सँवारि सकै ।
समुझाइ प्रबोधि कै नीति-कथा इन्हैं
धीरज कोऊ न पारि सकै ।
तुम्हरे बिनु लालन कौन है जो
यह प्रेम के आँसू निवारि सकै ।६३

सँग में निसि-बासर ही रहते
जिनते कछु बातैं न मैंने छिपाई ।
जे हितकारिनी मेरी हुतीं 'हरिचंद जू'
होय गईं सो पराई ।
सो सब नेह गयो कित को
मिलिबे की न एकहू बात बताई ।
और चबाव करैं उलटो हरि
हाय ये एकहू काम न आई ।६४

हौं कुलटा हौं कलंकिनी हौं हमने
सब छाँड़ि दयो कहा खोलौ ।
आछी रहौ अपने घर में तुम
क्यों यहाँ आई करेजहि छोलौ ।
लागि न जाय कलंक तुम्हैं कहूँ
दूर रहौ सँग लागि न डोलौ ।
बावरी हौं जो भई सजनी तो हटो
हम सों मति आइ कै बोलौ ।६५

आयो सखी सावन बिदेश मन-भावन जू
कैसे करि मेरो चित हाय धीर धारिहै ।
ऐहै कौन झूलन हिंडोरे बैठि संग मेरे
कौन मनुहारि करि भुजा कंठ पारि है ।
'हरीचंद' भींजत बचैहै कौन भींजि आप
कौन उर लाई काम-ताप निरवारिहै ।
मान समै पग परि कौन समुझैहै हाय
कौन मेरी प्रानप्यारी कहि कै पुकारिहै ।६६

घेरि घेरि घन आए छाय रहे चहुँ ओर
कौन हेत प्राननाथ सुरति बिसारी है ।
दामिनी दमक जैसी जुगनूँ चमक तैसी
नभ मैं बिशाल बग-पंगति सँवारी है ।
ऐसी समै 'हरिचंद' धीर न धरत नेकु
बिरह-बिथा तें होत ब्याकुल पियारी है ।
प्रीतम पियारे नंदलाल बिनु हाय यह
सावन की रात किधौं द्रौपदी की सारी है ।६७

लै मन फेरिबो जानौ नहीं बलि
नेह निबाह कियो नहिं आवत ।
हेरि कै फेरि मुखै 'हरीचंद जू'
देखनहू को हमैं तरसावत ।
प्रीत-पपीहन कों घन-साँवरे
पानिप-रूप कबौं न पिआवत ।
जानौ न नेक बिथा पर की बलिहारी
तऊ हौ सुजान कहावत ।६८

आई गुरु लोग संग न्यौते ब्रज गाँव नई
दुलही सुहाई शोभा अंगन सनी रही ।
पूछे मन-मोहन बतायो सखियन यह
सोई राधा प्यारी बृषभानु की जनी रही ।
'हरीचंद' पास जाय प्यारो ललचायो दीठ
लाज की धँसी सो मानो हीर की अनी रही ।
देखो अन-देखो देख्यो आधो मुख हाय तऊ
आधो मुख देखिबे की हौस की बनी रही ।६९

भूली सी भ्रमी सी चौंकी जकी सी थकी सी गोपी
दुखी सी रहत कछु नाहीं सुधि देह की ।
मोही सी लुभाई कछु मोदक सों खाए सदा
बिसरी सी रहै नेक खबर न गेह की ।
रिस भरी रहे कबौं फूलि न समात अंग
हँसि हँसि कहै बात अधिक उमेह की ।
पूछे ते खिसानी होय उतर न आवै ताहि
जानी हम जानी है निसानी या सनेह की ।७०

आई प्रात सोवत जगाई मैं सखीन साथ
ननद बिलोकिबे को करै अभिलाख है ।
'हरीचंद' हँसि हँसि पोंछै मुख अंचल सों
आरसी लै दूजी ठाढ़ी कहै कछु माख है ।
एक मोती बीनै एक गुथै बेनी एक हँसे
साँसत हमारी एक करै मिल लाख है ।
बसन के दाग धोवै नख-छत एक टोवै
चूरि लै चुरी को खेलै एक जूस-ताख है ।७१

आई आज कित अकुलाई अलसाई प्रात
रीसै मति पूछे बात रंग कित ढरिगो ।
सोने से या गात छुवैं सोनो भयो आप कै वा
आतप प्रभात ही को प्रगट पसरिगो ।
'हरीचंद' सौतिन की मुख-दुति छीनी कै वा
आपनो बरन कहुँ पाय धाय ररिगो ।
नील पट तेरो आज औरे रंग भयो काहे ।
मेरे जान बिछुरि पिया तें पीरो परिगो ।७२

कैसे सखी बसिए ससुरारि मैं लाज को
लेइबो क्यों सहि जावै ।
ऐसी सहेलिनैं ऊधमी हैं नख-दंत
के दाग लै कोऊ गनावै ।
त्यों 'हरिचंद' खरी ढिग सास के
ढीठ जिठानी पिया को हँसावै ।
ओढि कै चादर रात के सेज की
सामने ही ननदी चलि आवै ।७३

हम तो तिहारे सब भाँति सों कहावैं सदा
हम सों दुराव कौन सो है सो सुनाइ दै ।
द्वार पै खड़े हैं बड़ी देर सों अड़े हैं यह
आशा है हमारी ताहि नेक तो पुराइ दै ।
'हरीचंद' जोरि कर बिनती बखानै यही
देखि मेरी ओर नेक मंद मुसुकाइ दै ।
एरी प्रान-प्यारी बार बार बलिहारी नेक
घूँघट उघारि मोहिं बदन दिखाइ दै ।७४

सास जेठानिन सों दबती रहै
लीने रहै रुख त्यौं ननदी को ।
दासिन सों सतरात नहीं 'हरीचंद'
करै सनमान सखी को ।
पीय कों दच्छिन जानि न दूसत
चौगुनो चाउ बढ़ै या लली को ।
सौतिनहू को असीसै सुहाग करै
कर आपुने सेंदुर टीको ।७५

कहो कौन मिलाप की बातैं कहै कही
औरन की तो कछु न पतीजिये ।
चित चाहै जहाँ बसिए मिलिए न कभू
जिय आवै सोई सोई कीजिये ।

अब प्रान चले चहैं तासो कहैं
'हरीचंद' की सो बिनती सुनि लीजिये ।
भरि नैन हमैं इक बेरहू तो अपुनो
मुख मोहन जोहन दीजिये ।७६

लाई केलि-मंदिर तमासा को बताइ छल
बाला ससि सूर के कला पैं किये दावा सी ।
धाइ ताहि गहन चहत 'हरिचंद जू' के
घूमि रही घर में चहूँघा करि कावा सी ।
धोखा दै के अंकम भरत अकुलानी अति
चंचल चखन सों लखानी मृग छावा सी ।
आहि करि सिसक सकोरि तन मोहि पियै
कर ते छटकि छूटी छलकि छलावा सी ।७७

तू रँगी रंग पिया के सखी कछू
बात न तेरी लखाई परी है ।
जद्यपि हौं नित पास रहौं तऊ
मेरी यहै मति सोच भरी है ।
जानी अहो 'हरिचंद' अबै यह
प्रीत प्रतीत तिहारी खरी है ।
श्याम बसै उर मैं नित ताही सों
पीतहू कंचुकी होत हरी है ।७८

जाहु जू जाहु जू दूर हटो सो बकै
बिन बात ही को अब यासों ।
वा छलिया नै बनाय कै खासो
पठायो है याहि न जानै कहा सों ।
काहि करै उपदेस खरो 'हरिचंद'
कहै कित जाइ कै तासों ।
सो बनि पंडित ज्ञान सिखावत
कूबरीहू नहिं ऊबरी जासों ।७९

सिसुताई अजौं न गई तन तें तऊ
जोबन-जोति बटौरै लगी ।
सुनि कै चरचा 'हरिचंद' की कान
कछूक दै भौंह मरोरै लगी ।
बचि सासु जेठानिन सों पिय तें दुरि
घूँघट में दृग जोरै लगी ।
दुलही उलही सब अंगन तें दिन द्वै
तें पियूष निचोरै लगी ।८०

इत उत जग में दिवानी सी फिरत रही
कौन बदनामी जौन सिर पै लई नहीं ।
त्रास गुरू लोगन की आस कै अनेक सही
कब बहु भाँतिन के ताप सों तई नहीं ।
'हरिचंद' गिरि बन कुंज जहाँ जहाँ सुन्यौ
तहाँ तहाँ कब उठि धाइ कै गई नहीं ।
होनी अनहोनी कीनी सब ही तिहारे हेतु
तऊ प्रान-प्यारे भेंट तुम सों भई नहीं ।८१

एक बेर नैन भरि देखैं जाहि मोहै तौन
माच्यौ व्रज गाँव ठाँव ठाँव मैं कहर है ।
संग लगी डोलैं कोऊ घर ही कराहैं परी
छूट्यो खान-पान रैन चैन बन घर है ।
'हरिचंद' जहाँ सुनो तहाँ चर्चा है यही
इक प्रेम-डोर नाथ्यो सगरो शहर है ।
यामैं संदेह कछू दैया हौं पुकारे कहौं
मैया की सौं मैया री कन्हैया जादूगर है ।८२

जौन गली कढ़े तहाँ मोहे नर-नारी सब
भीरन के मारे बंद होइ जात राह है ।
जकी सी थकी सी सबै इत उत ठाढ़ी रहैं
घायल सी घूमैं केती किए हिए चाह हैं ।
'हरीचंद' जासों जोई कहै तौन सोई करै
बरबस तजै सब पतिव्रत राह है ।
यामैं न संदेह कछू सहजहि मोहै मन
साँवरो सलोना जानैं टोना खामखाह है ।८३

सुखद समीर रूखी ह्वै कै चलन लागी
घटि चली रैन कछु सिसिर हिमंत की ।
फूले लागे फूल फेरि बौर बन आम लागे
कोकिलै कुहूकै लागीं माती मदमंत की ।
'हरीचंद' काम की दुहाई सौ फिरन लागी
आवै लागी छन छन सुधि प्यारे कंत की ।
जानी परै आयु बिरहीन की सिरानी अब
आयो चहैं रातैं फेर दुखद बसंत की ।८४

बन बन आग सी लगाइ कै पलास फूले
सरसों गुलाब गुललाला कचनारो हाय ।
आइ गयो सिर पै चढ़ाय मैन बान निज
बिरहिन दौरि दौरि प्रानन सम्हारो हाय ।
'हरीचंद' कोइलैं कुहूकि फिरैं बन बन
बाजै लाग्यौ जग फेरि काम को नगारो हाय ।
दूर प्रान-प्यारो काको लीजिये सम्हारो अब
आयो फेरि सिर पै बसंत बजमारो हाय ।८५

रूप दिखाई कै मोल लियो मन
बाल-गुड़ी बहु रंगन जोरी ।
चाहत-माँझो दियो 'हरीचंद' जू
लै अपने गुन की रस डोरी ।
फेरि कै नैन परे तन पै
बदनामी की तापै लगाइ पुँछोरी ।
प्रीति की चंग उमंग चढ़ाय कै
सो हरि हाय बढ़ाय कै तोरी ।८६

जानत ही नहिं हौं जग में किहि कों
सबरे मिलि भाखत हैं सुख ।
चौंकत चैन को नाम सुने सपनेहू
न जानत भोगन को रुख ।
ऐसन सों 'हरिचंद' जू दूर ही
बैठनो का लखनो न भलो मुख ।
मो दुखिया के न पास रहौ उड़ि कै
न लगै तुमहू को कहूँ दुख ।८७

गरजे घन दौरि रहैं लपटाइ
भुजा भरि कै सुख पागी रहैं ।
'हरिचंद' जू भींजि रहैं हिय में
मिलि पौन चलें मद जागी रहैं ।
नभ दामिनी के दमके सतराइ
छिपी पिय अंग सुहागी रहैं ।
बड़ भागिनी वेई अहैं बरसात मैं
जे पिय-कंठ सो लागी रहैं ।८८

ऊधो जू सूधो गहो वह मारग
ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है ।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ इक
श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है ।
ये बृजबाला सबै इक सी
'हरिचंद' जू मंडली ही बिगरी है ।
एक जौ होय तो ज्ञान सिखाइए
कूप ही में यहाँ भाँग परी है ।८९

महाकुंज पुंजन में मिलि कै बिहार कीने
तहाँ बाँधि आसन समाधि समुझावै जिनि ।
जौन अंग लाग्यौ पिया अंगन में बार बार
तापै कूर धूर को रमाइबो बतावै जिनि ।
'हरिचंद' जाही चख नित ही बिलोके श्याम
ताहि मूँद योग को अयोग ध्यान लावै जिनि ।
जाही कान सुनी प्यार हरि की मधुर बातें
हाहा ऊधो ताही काम अलख सुनावै जिनि ।९०

कौन कहे इत आइए लालन
पावस में तो दया उर लीजिए ।
को हम हैं कहा जोर हमारो है
क्यों 'हरिचंद' बृथा हठ कीजिए ।
जो जिय मैं रुचै भेंटिए ताहि
दया करि कै तेहि को सुख दीजिए ।
कोरि ही कोरी भली हम हैं पिय
भींजिए जू उनके रस भींजिए ।९१

सखि आयो बसंत रितून को कंत
चहूँ दिसि फूलि रही सरसों ।
बर सीतल मंद सुगंध समीर
सतावन हार भयो गर सों ।
अब सुंदर साँवरो नंदकिसोर
कहैं 'हरिचंद' गयो घर सो ।
परसों को बिताय दियो बरसों
तरसों कब पाँय पिया परसों ।९२

आजु केलि-मंदिर सों निकसि नवेली ठाढ़ी
भौंर चारों ओर रहे गंध लोभि धार कै ।
नैन अलसाने घूमें पटहु परे हैं भू मैं
उर में प्रगट चिन्ह पिव कंठहार के ।
'हरिचंद' सखिन सों केलि की कहानी कहै
रस में मसूसी रही आलस निवार कै ।
साँचे में खरी सी परी सीसी उतरी सी खरी
बाजूबँद बाँधै बाजू पकरि किवार कै ।९३

साज्यौ साज गाँव मिलि तीज के हिंडोरना को
तानि कै बितान खासो फरस बिछायो री ।
आवैं मिलि गोपी तापैं भींजि झुंड झुंड काम
छाप सी लगावैं गावैं गीत मन-भायो री ।
मोहिं जान पाछे परी देरी तै दया कै
'हरीचंद' अंक लैकै लाल छिपि पहुँचायो री ।
जानि गई ताहू पैं चवाइनै गजब देखे
पाँय बिनु पंक के कलंक मोहिं लायो री ।९४

खोंरि साँकरी मैं आजु छिपि कै बिहारी लाल
तरु पैं बिराजें छल जिय अति कीनो है ।
ग्वाल-बाल साथ केहू इत उत घाटिन में
छिपे 'हरिचंद' दान हेतु चित दीनो है ।
ताही समैं गोपिन बिलोकि कूदि धाए सब
ऊधम मचायो दूध दधि घृत छीनो है ।
दही जो गिरायो सो तो फेरहू जमाय लैहैं
मन कहाँ पैहैं दान-मिस जौन लीनो है ।९५

लाज समाज निवारि सबै प्रन
प्रेम को प्यारे पसारन दीजिये ।
जानन दीजिये लोगन कों कुलटा
करि मोहि पुकारन दीजिये ।
त्यों 'हरिचंद' सबै भय टारि कै
लालन घूँघट टारन दीजिये ।
छाँड़ि संकोचन चंदमुखै भरि
लोचन आजु निहारन दीजिये ।९६

पूरन पियूष प्रेम आसव छकी हौं रोम
रोम रस भीन्यो सुधि भूलि गेह गान की ।
लोक परलोक छाँड़ि लाज सों बदन मोड़ि
उघरि नची हौं तजि संक तात मात की ।

'हरीचंद' एतोहू पैं दरस दिखावै क्यों न
तरसत रैन दिना प्यासे प्रान पातकी ।
एरें बृजचंद तेरे मुख की चकोरी हूँ मैं
एरे घनश्याम तेरे रूप की हौं चातकी ।९७

छाँड़ि कुल बेद तेरी चेरी भई चाह भरी
गुरुजन परिजन लोक-लाज नासी हौं ।
चातकी तृषित तुव रूप-सुधा हेत नित
पल पल दुसह बियोग दुख गाँसी हौं ।
'हरीचंद' एक ब्रत नेम प्रेम ही को लीनी
रूप की तिहारे ब्रज-भूप हौं उपासी हौं ।
ज्याय लै रे प्रानन बचाय लै लगाय कंठ
एरे नंदलाल तेरी मोल लई दासी हौं ।९८

तरसत स्रौन बिना सुने मीठे बैन तेरे
क्यौं न तिन माँहि सुधा-बचन सुनाइ जाय ।
तेरे बिन मिले भाइ झाँझरि सी देह प्रान
राखि लै रे मेरो धाइ कंठ लपटाइ जाय ।
'हरीचंद' बहुत भई न सहि जाय अब
हा हा निरमोही मेरे प्रानन बचाइ जाय ।
प्रीति निरवाहि दया जिय मैं बसाय आय
एरे निरदई नेकु दरस दिखाय जाय ।९९

दौरि उठि प्यारी गरलावै गिरधारी किन
ऐसे पियहू सों किन बोलै कलबादिनी ।
देखु 'हरिचंद' ठीक दुपहर तेरे हेतु
आयो चलि दूर सों पियारो री प्रमादनी ।
तेरे गृह चलत न दुख सुख जान गिन्यौ
सीतल बनाउ ताहि सुरत सवादनी ।
मखमल भूभल भो लूह सीरी पास
दूरी भई तेरे यह धूप भई चाँदनी ।१००

हे हरि जू बिछुरे तुम्हरे नहिं
धारि सकी सो कोऊ बिधि धीरहिं ।
आखिर प्रान तजे दुख सों न
सम्हारि सकी वा बियोग की पीरहिं ।
पै 'हरिचंद' महा कलकानि कहानी
सुनाऊँ कहा बलबीरहिं ।
जानि महा गुन रूप की रासि न
प्रान तज्यो चहैं वाके सरीरहिं ।१०१

साजि सेज रंग के महल मैं उमंग भरी
पिय गर लागी काम-कसक मिटाएँ लेत ।
ठानि बिपरीत पूरी मैन के मसूसन सों
सुरत समर जयपत्रहिं लिखाएँ लेत ।
'हरीचंद' उझकि उझकि रति गाढ़ी करि
जोम भरि पियहि झकोरन हराएँ लेत ।
याद करि पी की सब निरदय घातें आजु
प्रथम समागम को बदलो चुकाएँ लेत ।१०२

कबहुँक बारिन में कुंजन निवारिन में
इत उत बेलिन कों चौंकि चितवत है ।
कासन कपासन पै फिरत उदास कबौं
पल्लवन बैठि बैठि दिन रितवत है ।
'हरीचंद' बागन कछारन पहारन मैं
जित तित परयौ गुनि नेह हितवत है ।
सूखे सूखे फूलन पै तरुगन मूलन पै
मालती-बिरह भौंरि दिन बितवत है ।१०३

काले परे कोस चलि चलि थक गये पाय
सुख के कसाले परे ताले परे नस के ।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे
मदन के पाले परे प्रान पर-बस के ।
'हरीचंद' अंगहू हवाले परे रोगन के
सोगन के भाले परे तन बल खसके ।
पगन छाले परे नाँघिबे को नाले परे
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के ।१०४

थाकी गति अंगन की मति पर गई मंद
सूख झाँझरी सी ह्वै कै देह लागी पियरान ।
बाबरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई
सुख के समाज जित तित लागे दूर जान ।
'हरीचंद' रावरे-बिरह जग दुखमय
भयो कछू और होनहार लागे दिखरान ।
नैन कुम्हिलान लागे बैनहू अथान लागे
आओ प्राननाथ अब प्रान लागे मुरझान ।१०५

लाई लिवाय तमासो बताय
भुराय कै दूतिका कुंजन माँहीं ।
धाय गही 'हरिचंद' जबै न
छपी वह चंदमुखी परछाँहीं ।
अंक मैं लेत छल्यो छलकै बलकै
तब आप छोड़ाय कै बाँहीं ।
हाथन सों गहि नीबी कह्यो पिय नाँहीं
जू नाँही जू नाहीं जू नाँहीं ।१०६

नव कुंजन बैठे पिया नँदलाल
जू जानत हैं सब कोक-कला ।
दिन मैं तहाँ दूती भुराय कै लाई
महा छबि-धाम नई अबला ।
जब धाय गही 'हरिचंद' पिया तब
बोली अजू तुम मोही छला ।
मोहिं लाज लगै बलि पाँव परौं
दिन हीं हहा ऐसी न कीजै लला ।१०७

जानि सुजान मैं प्रीति करी सहिकै
जग की बहु भाँति हँसाई ।
त्यों 'हरिचंद' जू जो जो कह्यो सो कर्यो
चुप ह्वै करि कोटि उपाई ।
सोऊ नहीं निबही उनसों उन
तोरत बार कछु न लगाई ।
साँची भई कहनावति वा अरी
ऊँची दुकान की फीकी मिठाई ।१०८

जानति हो सब मोहन के गुन
तौ प्रति प्रेम कहा लगि कीनो ।
त्यों 'हरिचंद' जू त्यागि सबै चित
मोहन के रस रूप में भीनो ।
तोरि दई उन प्रीति उतै अपवाद
इतै जग को हम लीनो ।
हाय सखी इन हाथन सों
अपने पग आप कुठार मैं दीनो ।१०९

इन नैनन मैं वह साँवरि मूरति
देखति आनि अरी सो अरी ।
अब तो हैं निबाहिबो याको भलो
'हरिचंद' जू प्रीत करी सो करी ।
उन खंजन के मद-गंजन सों
अँखियाँ ये हमारी लरी सो लरी ।
अब लोग चवाव करैं तौ करैं हम
प्रेम के फंद परी सो परी ।११०

अब तौ बदनाम भई भले ब्रज मैं
घरहाई चवाव करौ तो करौ ।
अपकीरति होऊ भले 'हरिचंद' जू
सासु जेठानी लरौ तो लरौ ।
नित देखनो है वह रूप मनोहर
लाज पै गाज परौ तो परौ ।
मोहिं आपने काम सों काम अली
कुल के कुल नाम धरौ तो धरौ ।१११

नाम धरो सिगरो बृज तो अब
कौन सी बात को सोच रहा है ।
त्यों 'हरिचंद' जू और हू लोगन
मान्यो बुरो अरी सोऊ रहा है ।
होनी हुती सु तो होय चुकी इन
बातन तें अब लाभ कहा है ।
लागे कलंक हू अंक लगें नहिं
तौ सखि भूलि हमारी महा है ।११२

वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी मन
हाथ तें मेरे भग्यो सो भग्यो ।
चित माधुरी मूरति देखत ही
'हरिचंद' जू जाय पग्यो सो पग्यो ।
मोहिं औरन सो कछु काम नहीं अब
तौ जो कलंक लग्यो सो लग्यो ।
रँगो दूसरो चढ़ैगो नहीं अलि
साँवरो रंग रँग्यो सो लग्यो ।११३

हमहूँ सब जानतीं लोक की चालहिं
क्यों इतनो बतरावती हौ ।
हित जामैं हमारो बनै सो करो
सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ ।
'हरिचंद जू' यामैं न लाभ कछू
हमैं बातन क्यों बहरावती हौ ।
सजनी मन पास नहीं हमरे तुम
कौन को का समुझावति हौ ।११४

बिछुरे बलबीर पिया सजनी
तिहि हेत सबै बिछुरावने हैं ।
'हरिचंद' जू त्यौं सुनकै अपवाद न
औरहु सोच बढ़ावने हैं ।
करिकै उनके गुन-गान सदा
अपने दुख को बिसरावने हैं ।
जेहि भाँति सो द्यौस ए बीतैं सखी
तेहि भाँति सों बैठि बितावने हैं ।११५

मन-मोहन तें बिछुरीं जब सों
तन आँसुन सों सदा धोवती हैं ।
'हरिचंद जू' प्रेम के फंद परीं
कुल की कुल लाजहि खोवती हैं ।
दुख के दिन कों कोऊ भाँति बितै
बिरहागम रैन सँजोवती हैं ।
हम हीं अपनी सदा जानैं सखी
निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं ।११६

धिक देह औ गेह सबै सजनी
जिहि के बस नेह को टूटनो है ।
उन प्रान-पियारे बिना इहि जीवहि
राखि कहा सुख लूटनो है ।
'हरिचंद जू' बात ठनी सो ठनी
नित के कलकानि ते छूटनो है ।
तजि और उपाव अनेक अरी अब
तौ हमकों बिष घूँटनो है ।११७

सुनी है पुरानन में द्विज के मुखन बात
तोहिं देखैं अपजस होत हीं अचूक है ।
तासों 'हरिचंद' करि दरसन तेरो जिय

मेट्यौ चाहे कठिन मनोभव की हूक है ।
ऐसो करि मोहिं सबै प्यारे नँदनंद जू सों
मिली कहैं लावैं मुख सौतिन के लूक है ।
गोकुल के चंद जू सों लागै जो कलंक तौ तू
साँचो चौथ-चंद ना तो बादर को टूक है ।११८
आई केलि-मंदिर मैं प्रथम नवेली बाल
जोरा-जोरी पिय मन-मानिक छुड़ाएँ लेति ।
सौ सौ बार पूछे एक उत्तरु मरु कै देति
घूँघट के ओट जोति मुख की दुराएँ लेति ।
चूमन न देति 'हरिचंदै' भरि लाज अति
सकुचि सकुचि गोरे अंगहिं चुराएँ लेति ।
गहतहि हाथ नैन नीचे किए आँचर मैं
छबि सों छबीली छोटी छातिन छिपाएँ लेति ।११९
यह सावन सोक-नसावन है
मन-भावन यामैं न लाजै भरो ।
जमुना पै चलो सु सबै मिलि कै
अरु गाइ-बजाइ कै सोक हरो ।
इमि भाषत हैं 'हरिचंद' पिया
अहो लाडिली देर न यामैं करो ।
बलि झूलो झुलावो झुको उझको
यहि पायैं पतिव्रत तायैं धरो ।१२०
उमड़ि उमड़ि दृग रोअत अबीर भए
मुख-दुति पीरि परी बिरह महा भरी ।
'हरिचंद' प्रेम-माती मनहुँ गुलाबी छकीं
काम झूर झाँकरी सी दुति तन की करी ।
प्रेम-कारीगर के अनेक रंग देखौ यह
जोगिआ सजाए बाल बिरिछ तरे खरी ।
आँखिन मैं साँवरी हिए मैं बसे लाल वह
बार बार मुख तें पुकारत हरी हरी ।१२१
जिय सूधी चितौन की साधै रही
सदा बातन मैं अनखाय रहे ।
हँसि कै 'हरिचंद' न बोले कबौं मन
दूर ही सौं ललचाय रहे ।
नहिं नेक दया उर आवत क्यौं
करिकै कहा ऐसे सुभाय रहे ।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले
जेहि के बदले यौं सताय रहे ।१२२
जानत कौन है प्रेम-बिथा केहिसों
चरचा या बियोग की कीजिये ।
को कहि मानै कहा समुझै कोऊ
क्यौं बिन बात की रारहि लीजिये ।
क्रूर चवाइन मैं पड़िकै 'हरिचंद जू'
क्यों इन बातन छीजिये ।
पूछत मौन क्यौं बैठि रही सब प्यारे
कहा इन्हैं उत्तर दीजिये ।१२३
तुमरे तुमरे सब कोऊ कहैं तुम्हैं
सो कहा प्यारे सुनात नहीं ।
बिरुदावलि आपनी राखो मिलो
मोहि सोचिबे की कछु बात नहीं ।
'हरीचंद जू' होनी हुती सो भई
इन बातन सों कछु हात नहीं ।
अपनावते सोच बिचारि तबै
जल-पान कै पूछनी जात नहीं ।१२४
पिया प्यारे बिना यह माधुरी
मूरति औरन को अब पेखिये का ।
सुख छाँड़ि कै संगम को तुमरे
इन तुच्छन को अब लेखिये का ।
'हरिचंद जू' हीरन को बेवहार कै
काँचन को लै परेखिये का ।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यौ उन
आँखिन सों अब देखिये का ।१२५
कित को ढरिगो वह प्यार सबै क्यों
रुखाई नई यह साजत हौ ।
'हरिचंद' भये हौ कहा के कहा
अनबोलिबे ते नहिं छाजत हौ ।
नित को मिलनो तो किनारे रह्यौ
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ ।
पहिले अपनाय बढ़ाय कै नेह
रुसिबे मैं अब लाजत हौ ।१२६
पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू क्यों
चितै मुरि मो तन छाम कियो ।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ कै प्रीति
निबाहन को क्यों कलाम कियो ।
'हरिचंद' कहा के कहा ह्वै गए
कपटीन सों क्यों यह काम कियो ।
मन माँहि जौ छोड़न ही की हुती
अपनाइ कै क्यौं बदनाम कियो ।१२७
धाइ कै आगे मिलीं पहिले तुम कौन
सों पूछि कै सो मोहिं भाखो ।
त्यों तुम ने सब लाज तजी केहि के
कहे एतो कियो अभिलाखो ।
काज बिगारी सबै अपुनो 'हरिचंद जू'
धीरज क्यों नहिं राखो ।
क्यों अब रोइ कै प्रान तजौ अपुने

किये को फल क्यों नहिं चाखो ।१२८
इन दुखियान को न चैन सपनेहूँ मिल्यौ
तासों सदा ब्याकुल बिकल अकुलायँगी ।
प्यारे 'हरिचंद जू' की बीती जानि औध प्रान
चाहत चले पै ये तो संग ना समायँगी ।
देख्यो एक बारहू न नैन भरि तोहिं यातें
जौन जौन लोक जैहैं तहाँ पछतायँगी ।
बिना प्रान-प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय
मरेहू पै आँखें ये खुली ही रहि जायँगी ।१२९

हौं तो तिहारे सुखी सों सुखी सुख
सों जहाँ चाहिये रैन बिताइये ।
पै बिनती इतनी 'हरिचंद' न रूठि
गरीब पै भौंह चढ़ाइये ।
एक मतो क्यों कियो तुम सों तिन
सोउ न आवै न आप जो आइये ।
रूसिबे सों पिय प्यारे तिहारे
दिवाकर रूसत है क्यौं बताइये ।१३०

धारन दीजिये धीर हिए कुल-कानि
कों आजु बिगारन दीजिए ।
मारन दीजिए लाज सबै
'हरिचंद कलंक पसारन दीजिए ।
चार चवाइन कों चहुँ ओर सों
सोर मचाई पुकारन दीजिए ।
छाँडि सँकोचन चंदमुखै भरि
लोचन आजु निहारन दीजिए ।१३१

प्रेम-तरंग

भक्त-हृदय-वारिधि अगम झलकत श्यामहि रंग ।
विरह-पवन-हिल्लोर लहि उमग्यी प्रेमतरंग ।।

[९ अप्रैल, १८७७ की "कविबचन सुधा में प्रकाशित । मल्लिक चंद्र और कंपनी में तृतीय आवृत्ति छपी ।]

प्रेम-तरंग

खेमटा

राधा जी हो बृषभानु-कुमारी ।
कोटि कोटि ससि नख पर वारौं कीरति-दृग-उँजियारी।
सब ब्रज की रानी सुखदानी जसुदानंद-दुलारी ।
'हरीचंद' के हिये बिराजो मोहन-प्रान-पियारी ।१

बिरह की पीर सही नहिं जाय ।
कहा करौं कछु बस नहिं मेरो कीजे कौन उपाय ।
'हरीचंद' मेरी बाँह पकरि कै लीजै आय उठाय ।२

अकेली फूल बिनन मैं आई ।
संग नहीं कोउ सखी सहेली फूल देख बिमलाई ।
या बन के काँटन सों मेरी सारी गइ उरझाई ।
'हरीचंद' पिया आय दया करि अपने हाथ छुड़ाई ।३

खेमटा, साँझी का

श्याम सलोने गात मलिनियाँ ।
बड़े बड़े नैन भौंह दोउ बाँकी जोबन सों इठलात ।
सुनत नहीं कछु बात कोऊ की राधे के ढिग जात
'हरीचंद' कछु जान परै नहिं घूँघट मैं मुसकात ।४

लगत इन पुलवारिन में चोर ।
इन सों चौंकत रहियो सजनी छिप रहे चारों ओर ।
जबहिं निकसि अइहैं गहबर सों लैहैं भूषन छोर ।
'हरीचंद' इनसों बच रहिये ए ठगिया बरजोर ।५

मुख पर तेरे लटूरी लट लटकी ।
काली घूँघरवाली प्यारी चुरवारी मेरे जिअ खटकी ।
छल्लेदार छबीली लाँबी लखि
नागिन सब रहिं सिर पटकी ।

'हरीचंद' जंजीरन जकड़ी ये

अँखियाँ अब छूटहिं न अटकी ।६

कैसे नैया लागे मोरी पार खिवैया तोरे रूसे हो ।
औंड़ी नदिया नावरि भँभरी जाय परी मँझधार ।
देइ चुकीं तन मन उतराई छोड़ि चुकीं घर-बार ।
कहि 'हरिचंद' चढ़ाइ नेवरिया करो दगा मति यार ।७

सखी बंसी बजी नँद-नंदन की ।
श्री बृन्दावन की कुंज-गलिन में

सुधि आई साँवर घन की ।

मगर भई गोपी 'हरि' के रस

बिसरि गई सुधि तन मन की ।८

काफी

कठिन भई आजु की रतियाँ ।
पिया परदेस बहुत दिन बीते नहीं आई पतियाँ ।
बिरह सतावत दिन दिन हमको कैसे करौं बतियाँ ।
आय मिलौ पिय 'हरीचंद' तुम लागूँ मैं तोरी छतियाँ ।९

बजन लागी बंसी लाल की ।
हौं बरसाने जात रही री सुधि आई बनमाल की ।
बिसरत नाहिं सखी वह चितवनि सुन्दर स्याम तमाल की ।
हरीचंद हँसि कंठ लगायो बिसरि गई सुधि बाल की ।१०

झिंझोटी

रँगीले रँग दे मेरी चुनरी ।
स्याम रंग से रँग दे चुनरिया 'हरीचंद' उनरी ।११

होली खेमटा

छबीले आ जा मोरी नगरी हो ।
साँवरे रंग मनोहर मूरति बाँधे सुरुख पगरी हो ।
'हरीचंद' पिय तुम बिनु कैसे रैन कटे सगरी हो ।१२

चलो सोय रहो जानी, अँखियाँ खुमारी से लाल भईं ।
सगरी रैन छतिया पर राखा अधरन का रस लीना ।
'हरीचंद' तेरी याद न भूलै ना जानौं कहा कीना ।१३

दादरा

सैयाँ बेदरदी दरद नहिं जानै ।
प्रान दिए बदनाम भए पर नेक प्रीति नहिं मानै ।
'हरीचंद' अलगरजी प्यारा दया नहीं जिय आनै ।१४

सोरठ

जवनियाँ मोरी मुफुत गई बरबाद ।
सपन्यौं में सखियो नहिं जान्यौ सैयाँ-सुख सोवियाँ-सवाद ।
बारी बैस सैयाँ दूर सिधारे दे गए बिरह-बिखाद ।
'हरीचंद' जियरै में रहि गईं लाखन मोरी मुराद ।१५

सखी राधा-बर कैसा सजीला ।
देखो री गोइयाँ नजर नहिं लागै

कैसा खुला सिर चीरा छबीला ।

बार-फेर जल पीयो मेरी सजनी

मति देखो भर नैना रँगीला ।

'हरीचंद' मिलि लेहु बलैया

अँगुरिन करि चटकारि चुटीला ।१६

पीलू

का करौं गोइयाँ अरुझि गईं अँखियाँ ।
कैसे छिपाऊँ छिपत नहिं सजनी

छैला मद-मानी भईं मधु-मखियाँ ।

साँवरो रूप देख परबस भईं

इन कुल-लाज नेनिक नहिं राखियाँ ।

'हरीचंद' बदनाम भई मैं तो

ताना मारत सब सँग की सखियाँ ।१७

नयन की मन मारो नरवरिया ।
मैं तो घायल बिनु चोट भई रे कहर करेजे करिया ।
काहे को सान देत भौंहन की काजर नयनन भरिया ।
'हरीचंद' बिन मारे मरत हम मत लाओ तीर कटरिया ।१८

जिय लेके यार करो मत हाँसी ।
तुमरी हँसी मरन है मेरो यह कैसी रीत निकासी ।
आइ मिलौ गल लागौ पिअरवा अँखियाँ दरसन-प्यासी ।
'हरीचंद' नहिं तो जुलफन की मरिहैं दै गल-फाँसी ।१९

ठुमरी, सहाना

आज तोहिं मिल्यो गोरी कुंजन पियरवा ।
काहे बोलै झूठे बैन कहे देत तेरे नैन

देखु न बिथुरि रहे मुख पर बरवा ।

अँगिया के बँद टूटे कर सों कँकन छूटे

अपने पीतम जी के लागी है तू गरवा ।

'हरीचंद' लाज मेटी गाढ़े भुज भर भेंटी

द्वै द्वै के उपटि भये चार चार हरवा ।२०

काहू सों न लागें गोरी काहू के नयनवाँ ।
हँसैं सुनि सब लोग मिटै ना बिरह-सोग

पूछे ते न आवै कछु मुख सों बयनवाँ ।

'हरीचंद' घबराय बिपति कही न जाय

छूटै खान-पान मिटैं चित के चयनवाँ ।२१

ठुमरी

भए हो तुम कैसे ढीक कुँअर कन्हाई ।
मटुकी मोरी सिर सों पटकि तापै हँसत हौ ठाढ़े

देखो किन ऐसी ग्रान सिखाई ।
भीर भई देखो ठाढ़ी हँसै बृजबाल सब लखि मुख मेरे
'हरीचंद' तुम बृज कैसी यह नई रीति चलाई ।२२

हाँ दूर रहो ठाढ़े हो कन्हाई ।
जिन पकरो बहियाँ मेरी हटो लँगर
करो न लँगराई इठलाई ।
काहे इत आओ अरराने रहो दूर
'हरिचंद' कैसी रीत चलाई मन-भाई ।२३

ठुमरी, सोरठ

बे परवाह मोहन मीत, हौं तो पछिताई हो दिल देके ।
बरबस आय फँसी इन फंदन छोड़ सकल कुल-रीत ।
कीनी चाल पतंग-दीप की मानी तनक न नीत ।
'हरीचंद' कछु हाथ न आयो करि ओछे सों प्रीत ।२४

तू मिल जा मेरे प्यारे ।
मेरे बिन मन-मोहन प्यारे व्याकुल प्रान हमारे ।
'हरीचंद' मुखड़ा दिखला जा इन नयनन के तारे ।२५

बहियाँ जिन पकरो मोरी, पिया तुम साँवरे हम गोरी ।
तुम तो ढोटा नंद महर के, हम वृषभानु-किशोरी ।
'हरीचंद' तुम कमरी ओढ़ो, हम पै नील पिछौरी ।२६

सेजिया जिन आओ मोरी, मैं पइयाँ लागौं तोरी ।
तुम सौतिन घर रात रहत हौ आवत हौ उठ भोरी ।
'हरीचंद' हम सों मत बोलो झूठ कहत क्यों जोरी ।२७

झूठी सब बृज की गोरी, ये देत उलहनो जोरी ।
मइया मैं नाहीं दधि खायौ मैं नहिं मटुकी फोरी ।
'हरीचंद' मोहिं निबल जान ये नाहक लावत चोरी ।२८

कलिंगड़ा

आओ रे मोरे रूठे पियरवा, धाय लागो प्यारी के गरवा ।
रूठ रहे क्यों मुख सो बोलो,
हिय की गाँठें हँस हँस खोलो,
'हरीचंद' अपनी प्यारी को
मान राख राखौ अपने कोरवा ।२९

छतियाँ लेहु लगाय सजन अब मत तरसाओ रे ।
तुम बिन तलफत प्रान हमारे,
नयनन सों बहे जल की धारें,
बाढ़ी है तन बिरह-पीर सूरत दिखलाओ रे ।
'हरीचंद' पिय गरिवरधारी, पैयाँ परौं जाओं बलिहारी,
अब जिय नाहीं धरत धीर जलदी उठ धाओ रे ।३०

मुकुट लटक भौंहन की मटक मोहन दिखला जा रे ।
कुंडल की लटक, तानन की खटक,
मुख तनक हँसन, कटि कछनी कसन,
इन दरसन प्यासे नयनन कों प्यारे दरसा जा रे ।
झुक झुक के चलन, कलगी की हलन,
'हरिचंद' नाम मेरो लै लै नई तान सुना जा रे ।३१

पीलू

सजन तोरी हो मुख देखे की प्रीत ।
तुम अपने जोबन मदमाते कठिन बिरह की रीत ।
जहाँ मिलत तहाँ हँसि हँसि बोलत गावत रस के गीत ।
'हरीचंद' घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत ।३२

हिंडोला

जमुना-तट कुंजन बीन रहीं
सब सखियाँ फूलों की कलियाँ ।
एक गावत एक ताल बजावत हैं
करती मिल के एक रँग-रलियाँ ।
मृगनैनी आय अनेक जुरीं छबि
छाय रही बृज की गलियाँ ।
'हरीचंद' तहाँ मनमोहन जू
सखि बन आए लखि यों अलियाँ ।३३

यह कैसी बान तिहारी मेरे प्यारे गिरवरधारी हो ।
मारग रोकि रहे सूने बन घेरि लई पर-नारी ।
करि बरजोरी मोरी बहियाँ मरोरी,
लीनी मटुकीहु सिर सों उतारी ।
ऐसी चपलाई कहा करत कन्हाई,
देखो लोक-लाज सब टारी ।
पइयाँ परौं दूर रहौ अंग न छुओ
हमारो 'हरीचंद' तोपै बलिहारी ।३४

सजन छतियाँ लपटा जा रे ।
दोउ नैन जोरि कछु भौंह मोरि झुकि
झूमि चूमि सुख दै झकोरि
अधरन पैं धरके अपनो अधर
रस मोहिं पिला जा रे ।
दोउ भुज-बिलास गलबाँही डाल मेरे
गालन पै धर अपनो गाल,
उर छाय अंग संग में सबै
रस-रँग बरसा जा रे ।
मेरो खोल कंचुकी-बँद हँसि के
रस लै जोबन को कसि-कसि कै,
'हरिचंद' रँगीली सेजन पै सब
कसक मिटा जा रे ।३५

सजन गलियों बिच आ जा रे ।
तेरे बिन बाढ़ी बिरह-पीर गलियों-बिच आ जा रे ।
तेरे बिना मोहिं नींद न आवे, घर-अँगना कछु नाहि सुहावे,

इन नयनन सों बहत नीर सूरत दिखला जा रे ।
'हरीचंद' तू मिल जा प्यारे, तेरे बिन तलफत प्रान हमारे,
निकल जाय सब जिय की कसक गरवाँ लिपटा जा रे ।३६

सारंग

मेरे प्यारे सों संदेसवा कौन कहै जाय ।
जिय की बेदन हरे बचन सुनाय राम
कोई सखी देय मोरी पाती पहुँचाय ।
जाय के बुलाय लावैं बहुत मनाय राम
मिलै 'हरीचंद' मोरा जिअरा जुड़ाय ।३७

क्यों गले न लगत रसिया वे ।
तू तो मेरे दिल बिच बसिया वे ।।
तेरी घूँघरवाली अलकैं मेरो तन मन डसिया वे ।
'हरीचंद' नहिं मिलै करै तू सौतिन
सँग रँग-हसिया वे ।३८

मेरे रूठे सैयाँ हो अरज मेरी सुनि लीजै ।
कापै इतनी भौंह चढ़ाओ क्यों न सजा मोहिं दीजै ।
'हरीचंद' मैं तो तुमरी ही जो चाहे सो कीजै ।३९

किन वे रूठाया मेरा यार ।
कहाँ गया क्यों छोड़ गया मोहिं तोड़ गया क्यों प्यार ।
बन-बन पात-पात करि पूँछूँ कोई न सुनै पुकार ।
'हरीचंद' गल-लगन-हौंस मैं
बिरहिनि जरि भई छार ।४०

किन बिलमायो मेरो प्रान ।
पाटी कर पटकत निसि बीती रोवत भयो है बिहान ।
कहाँ रैन बसै को मन भाई किन तोर्‌यौ मेरो मान ।
'हरीचंद' बिन बिकल भई कछु करतब परत न जान ।४१

भैरवी

सैयाँ तुम हमसे बोलो ना ।
कब के गए कहाँ रैन गँवाई मत घूँघट पट खोलो ।४२

काफी

तेरी छबि मन मानी मेरे प्यारे दिल-जानी ।
प्रात समय जमुना-तट पै हौं जात रही पानी ।
घूँघट उलटि बदन दिसि हेर्‌यौ कहि मीठी बानी ।
'हरीचंद' के चित में चुभि गई सूरति सैलानी ।४३

छयल तोरी रे तिरछी नजर मोहिं मारी ।
जब तें लगी तनक सुधि नाहीं तन की दसा बिसारी ।४४

आजु की रात न जाओ सैयाँ मोरी बतियाँ मानो ।
तुम सौतन के रात रहत हौ हम सों छल मत ठानो ।४५

बल खात गुजरिया बिरह भरी ।
भूलि गई सब सुध तन मन की
लागी हरि की तिरछी नजरिया ।
'हरीचंद' पिया आय मिलो अब
मारत है मोहिं बिरह कटरिया ।४६

न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।
जागत सब सास ननद मोरी
बाजेगी पायल, मोसों सेजरिया० ।
तुम अपने मद चूर गिनत नहिं
मुख मेरो चूमो गर लाय हाय ।
'हरीचंद' न ऐसी मोसों बनैगी पियारे कैसे
लाज छाँड़ि दौरि आऊँ तोहि मिलूँ धाय ।४७

भैरवी

नजरहा छैला रे नजर लगाए चला जाय ।
नजर लगी बेहोस भई मैं जिया मोरा अकुलाय ।
ब्याकुल तड़पूँ नजर न उतरै हाय न और उपाय ।
'हरीचंद' प्यारे को कोई लाओ जाय मनाय ।४८

नशीला आँखोंवाले सोए रहो अभी है बड़ी रात ।
सगरी रैन मेरे सँग जागत रहे करत रँगीली बात ।
चिड़िया नहीं बोली मेरी चूरी खनकत काहें अकुलात ।
'हरीचंद' मत उठो पियरवा गल लगि करौ रस-घात ।
नशीली आँखोंवाले सोए रहो अभी है बड़ी रात ।४९

पीलू

हमसे प्रीति न करना प्यारी हम परदेसी लोगवा ।
प्रीत लगाय दूर चलि जैहैं रहि जैहैं जिय सोगवा ।
परदेसी की प्रीति बुरी है कठिन बिरह को रोगवा ।
'हरीचंद' फिर दुख बढ़ि जैहै कटि है नाहिं बियोगवा ।५०

भैरवी

पियारे गर लागो रैन के जागे हो ।
रैन के जागे प्यारी-रस-पागे जिया अनुरागे हो ।
घूमत नैन पीक रँग दागे रसमगे बागे हो ।
'हरीचंद' प्यारी मुख चूमत हँसि गर लागे हो ।
पियारे गर लागो लागो रैन के जागे हो ।५१

रैन के जागे पिया हो भोरहि मुख दिखलाओ ।
रँगीली नसीली छबीली अँखियन अँखियाँ यार मिलाओ ।
घूँघरवाली अलकैं बिथुरि रहीं जुलफैं या'र बनाओ ।
'हरीचंद' मेरे गलबहियाँ दै आलस रैन मिटाओ ।५२

न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।
बिरह बाढ़्यौ पिय बिन कैसे कटै रैन सखी
मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।

'हरीचंद' पिया बिनु नींद न आवै साँपिन सी
लगै सेज हाय मोरी तड़पत रैन बिहाय ।
न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।५३

पूरबी

अजगुत कीन्ही रे रामा ।
लगाय काँची प्रीति गए परदेसवा
अजगुत कीन्हीं रे रामा ।
बारी रे उमिरि मोरी नरम करेजवा
बिपति नई दीन्हीं रे रामा ।
अजगुत कीन्ही० ।
'हरीचंद' बिन रोई मरौं रे खबरियौ न लीन्ही रे रामा ।
अजगुत कीन्हीं ।५४

आवन की कछु आज पिया की
सुरति लगी मेरी सखियाँ ।
उड़ि उड़ि अंचल जोबन उमगत
फरकत मोरी बाईं अँखियाँ ।
'हरीचंद' पिय कंठ लागि कै
होइहैं ये छतियाँ सुखियाँ ।५५

भैरवी

रैन की हो पिय की खुमारी न टूटै ।
बहुत जगाय हारी मोरी सजनी नींदड़िया नहीं छूटै ।
भोर भए गर लगत न प्यारो अधर-सुधा नहिं छूटै ।
'हरीचंद' पिया नींद को मातो सेज को सुख नहिं लूटै ।५६
शिकारी मियाँ वे जुलफों का फन्दा न डारो ।
जुलफों के फंदे फँसाय पियरवा नैन-बान मत मारो ।
पलक कटारिन मार भँवन की मत तरवार निकारो ।
'हरीचंद' मेरे जुलमी घायल छोड़ि न हमैं सिधारो ।५७

पूरबी

अरे प्यारे हम तुम बिनु व्याकुल आ जा रे प्यारे ।
तड़पत प्रान हमारे तुम बिन हो दरस दिखला जा रे प्यारे ।
'हरीचंद' तुम बिना तलफ़त गर लपटा जा रे प्यारे ।
अरे प्यारे जल बिन मरत मछरिया
इनहिं जिला जा रे प्यारे ।५८

पूरबी वा गौरी

पिअरवा रे मिलि जा मत तरसाओ ।
तुम बिन व्याकुल कल न परत
छिन जलदी दरस दिखाओ ।
'हरीचंद' पिया अब न सहौंगी
धाइके गरवाँ लगाओ ।५९

प्यारी तोरी बाँकी रे नजरिया
बड़े तोरे नैना रे प्यारी ।
प्यारी तोरा रस भरा जोबन जोर मीठे मुख
बैना रे प्यारी ।
तड़पत छैला काहे छोड़ चली रे प्यारी
मार गई सैना रे प्यारी ।६०

साँवरे छैला रे नैन की ओट न जाओ ।
तुम बिन देखे मोरे नैना अति व्याकुल
इक छिन मुख न छिपाओ ।
सदा रहो मोरे नयनन आगे बंसी मधुर बजाओ ।
'हरीचंद' पिय प्यासी अँखियन सुंदर रूप दिखाओ ।६१
ना बोलौ मोसौं मीत पियरवा जानि गए सब लोगवा ।
तुमरी प्रीत छिपी न छिपाए, अब निबहैगी बहुत बचाये,
इन दइमारे नयनन पीछे यह भोगन पर्‌यो भोगवा ।
'हरीचंद' ब्रज बड़े चवाई, कहत एक की लाख लगाई,
कठिन भयो अब घाट-बाट मैं हमरो तुमरो सँजोगवा ।६२
एरी सखी ऐसी मोहिं परी लचारी रे ।
का करौं मीत मोहन सों मोलत हि बनि आयो,
पैयाँ परत बिनती करत हा हा खात
बलि बलि जात गिरिधारी रे ।
'हरीचंद' पियरवा निकट आय मेरे पग सों,
रहत मुकुट छुवाय ऐसे ढीठ लँगरवा सों हारी रे ।६३

राग सिंदूरा

भौंरा रे रस के लोभी तेरो का फरमान ।
तू रस-मस्त फिरत फूलन पर करि अपने मुख गान ।
इत सों उत डोलत बौरानो किए मधुर मधु-पान ।
'हरीचंद' तेरे फंद न भूलूँ बात परी पहिचान ।६४

खयाल

न जाय मोसों ऐसो झोंका सहीलो ना जाय ।
झुलाओ धीरे डर लगै भारी बलिहारी हो बिहारी,
मोसों ऐसो झोंका सहीलो न जाय ।
देखो कर धर मेरी छाती धर धर करै
पग दोऊ रहे थहराय हाय ।
'हरीचंद' निपट मैं तो डरि गई प्यारे
मोहिं लेहु झट गरवाँ लगाय ।
न जाय मोसौं ऐसो झोंका सहीलो ना जाय ।६५

सोरठ

नींदड़िया नहिं आवै, मैं कैसी करूँ एरी सखियाँ ।
'हरीचंद' पिय बिनु अति तड़पैं
खुली रहें दुखियाँ अँखियाँ ।६६

खयाल

सखियाँ री अपने सैयाँ के कारनवाँ हरवा गूँथि गूँथि लाई ।

बाग गई कलियाँ चुनि लाई रचि रचि माल बनाई ।
'हरीचंद' पिय गल पहिराई हँसि हँसि कंठ लगाई ।६७

बिहाग

जागत रहियो वे सोवनवालियो ऐहै कारो चोर ।
आधी रात निखंड गए मैं सुंदर नंद-किशोर ।
लूटन लगिहै जोबन जब तब चलिहै कछू न जोर ।
'हरीचंद' रीती करि जैहै तन-मन-धन सब छोर ।६८

असावरी

एरी लाज निछावर करिहौं जौ पिय मिलिहैं आज ।
गहि कर सों कर गर लपटैहौं करिहौं मन को काज ।
लोक-संक, एकौ नहिं मानौं सब बाधक पर डारिहौं गाज ।
'हरीचंद' फिर जान न दैहौं जो ऐहैं बृजराज ।६९

ईमन कल्यान

चतुर केवटवा लाओ नैया ।
साँझ भई घर दूर उतरनो नदिया गहिरी मेरो जिय डरपै
अब मैं तेरी लेहूँ बलैया ।
दैहौं जोबन-धन उतराई 'हरीचंद' रति करि मन भाई
पैयाँ लागूँ तोरी रे बलदाऊ के भैया ।
गर लगो मेरे पीतम सुघर खिवैया ।७०

पूरबी

प्रानेर बिना की करी रे आमी कोथाय जाई ।
आमी की सहिते पारी बिरह-जंत्रना भारी
आहा मरी मरी बिष खाई ।
बिरहे व्याकुल अति जल-हीन मीन गति
हरि बिना आमि ना बचाई ।७१

बेदरदी बे लड़िबे लगी तैंड़े नाल ।
बे-परवाही वारी जी तू मेरा साहबा
असी इत्थों बिरह-बिहाल ।
चाहनेवाले दी फिकर न तुझ नूँ
गल्लौं दा ज्वाब न स्वाल ।
'हरीचंद' ततवीर ना सुझदी
आशक बैतुल-माल ।७२

बिहाग वा कलिंगड़ा

मैं तो राह देखत ही खड़ी रह गई
हाय बीत गई सब रतियाँ ।
पिया साँझ के कह गए भयो भोर,
नहिं आए मदन को बाढ़यो जोर,
'हरिचंद' रही पछिताय सीस धुनि
करिकै बजर सी छतियाँ ।७३

पिया बिनु मोहिं जारत हाय सखी
देखो कैसी खुली उजियारियाँ ।
चंदा तन लावत बिरह लाय,
कर पाटी पटकत करत हाय,
दुख बाढ़यौ सखी नहिं पास कोऊ
ब्याकुल बिरहिन सुकुमारियाँ ।
तलफत जल बिनु मछरी सी सेज,
रहि जात पकरि कर सों करेज,
'हरिचंद' पिया की याद परै जब
बातें प्यारा प्यारियाँ ।७४

काफी पीलू

क्यौं फकीर बनि आया बे, मेरे बारे जोगी ।
नई बैस कोमल अंगन पर काहें भभूत
रमाया बे, मेरे बारे जोगी ।
को बे मात-पिता तेरे जोगी
जिन तोहिं नाहिं मनाया बे ।
कांचे जिय कहु काके कारन प्यारे
जोग कमाया बे, मेरे बारे जोगी ।
बड़े बड़े नैन छके मद-रँग सों
मुख पर लट लटकाया बे ।
'हरीचंद' बरसाने में चल घर घर
अलख जगाया बे, मेरे बारे जोगी ।७५

गौरी

मोहन मीत हो मधुबनियाँ ।
मतवारो प्यारो रसवादी रसिया छैल चिकनियाँ ।
बटपारो लंगर लड़वारौ भरन देत नहिं पनियाँ ।
घाट बाट रोकत 'हरिचंदहिं' नयो बन्यो दधि-दनियाँ ।७६

मोहन प्यारो हो नँद-गैयाँ ।
नित नई अट-पट चाल चलावत देखी सुनी जो नैयाँ ।
लकुट लिए रोकत मग जुवतिन मानत परेहू न पैयाँ ।
'हरीचंद' छैला ब्रज-जीवन वाको कोउ न गोसैयाँ ।७७

मोहन बाँको हो गोकुलिया ।
चलत न देत पंथ रोकत गहि चंचल अंचल चुलिया ।
नैन नचावत दधि मटुकिन की करिकै ठाला-ठुलिया ।
'हरीचंद' टोना कछु जानत जासों सब बृज भुलिया ।७८

लावनी

बिना उसके जल्वा के दिखाती कोई परी या हूर नहीं ।
सिवा यार के, दूसरे का इस दुनिया में नूर नहीं ।
जहाँ में देखो जिसे खूबरू वहाँ हुस्न उसका समझो ।
झलक उसी की सभी माशूकों में यारो मानो ।
जहँ कोई खुशगुलू मिलै तुम वहाँ उसी का बोल सुनो ।
जुल्फों को भी उसी का पेंच समझ कर आके फँसो ।
नशीली आँखें वहाँ नहीं हैं जहाँ मेरा मखमूर नहीं ।

सिवा यार के० ।१

जहाँ पै देखो नाज ग़ज़ब का उसके सब नखरे जानो ।
देख करिश्मा, उसी सीगे में उसको गरदानो ।
जहाँ हो भोलापन तुम उस भोले को वहाँ पै पहिचानो ।
जुल्म जो देखो, तो इस जालिम की बेरहमी मानो ।
बिना उसके इस शीशए-दिल को करता कोई चूर नहीं ।
सिवा यार के० ।२

बिना मिले उस मह के झलक माशूकपना आता ही नहीं ।
बग़ैर उसके, निवानी शक्ल कोई पाता ही नहीं ।
मजाल क्या है दिल छीनै उस बिना दिया जाता ही नहीं ।
उसको छोड़ कर, दूसरा आँखों को भाता ही नहीं ।
जितने खूबरू जहाँ में हैं वो कोई उससे दूर नहीं ।
सिवा यार के० ।३

वही मेरा माशूक झलक इन बुतों में भी दिखलाता है ।
वही इश्क में, आशिकों को हर तरह फँसाता है ।
कहीं मेहरवाँ बनता है और कहीं जुल्म फैलाता है ।
ग़रज कि हर जा, मुझे वो यार ही नजर आता है ।
'हरीचंद' जो और देखते वो आशिक़ भरपूर नहीं ।
सिवा यार के० ।४।७९

करि निठुर श्याम सों नेह सखी पछताई ।
उस निरमोही की प्रीति काम नहिं आई ।
उन पहिले आकर हमसे आँख लगाई ।
करि हाव-भाव बहु भाँति प्रीति दिखलाई ।
ले नाम हमारा बंसी मधुर बजाई ।
अब हमें छोड़ के दूर बसे जदुराई ।
कुबरी ने मोहा रहे वहीं बिलमाई ।
उस निरमोही की प्रीत काम नहिं आई ।१
हमने जिसके हित लोक-लाज सब छोड़ी ।
सब छोड़ रहे एक प्रीत उसी से जोड़ी ।
रही लोक-बेद घर-बाहर से मुख मोड़ी ।
पर उन नहिं मानी सो तिनका सी तोड़ी ।
इक हाथ लगी मेरे जग बीच हँसाई ।
उस निरमोही की प्रीत काम नहिं आई ।२
हम उन बिन सखियाँ बन बन ढूँढ़त डोलैं ।
पिय प्यारे प्यारे मुख से सब छिन बोलैं ।
जिन कुंजन में हरि हँसि हँसि करी कलोलैं ।
वहाँ व्याकुल हो हम मूँद मूँद दृग खोलैं ।
दै दगा जुदा भए मोहन बिपति बढ़ाई ।
उस निरमोही की प्रीत काम नहिं आई ।३
क्या करैं कोई तदबीर न और दिखाती ।
दिन रोते कटता रात जागते जाती ।
बिरहा से सब छिन हाय दहकती छाती ।
कोई उनसे जा यह मेरी बिथा सुनाती ।
'हरिचंद' उपाय न चलै रही पछताई ।
उस निरमोही की प्रीत काम नहिं आई ।४।८०

तुम सुनो सहेली सँग की सखी सयानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ।
एक दिन मैं अँधेरी रात रही घर सोई ।
पलँगों पै इकली और पास नहिं कोई ।
हरि आय अचानक सोए पास भय खोई ।
मुख चूम कस्यो मेरे भुज सों भुज सोई ।
मैं चौंकि उठी लियो गल लगाय सुखदानी ।
पिय यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ।१
एक साँझ अकेली मैं थी गलियों आती ।
लिए अंचल नीचे घर-हित दीआ-बाती ।
आए इतने में सखि मेरे बाल-सँघाती ।
उन दीप बुझाय लगाय लई मोहिं छाती ।
मैं औचक रह गई कियो जोई मनमानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ।२
एक दिन मेरे घर जोगी बन कर आये ।
सिर जटा बढ़ाये अंग भभूत लगाये ।
चढ़ सिढ़ी नाम लै हर को अलख जगाए ।
मैं भिच्छा ले गई तब मुख चूमि लुभाए ।
बोले भिच्छा थी मुझे यही मेरी रानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ।३
जब मिले जहाँ हँसि लीनो चित्त चुराई ।
मुख चूमि भए बलिहार कंठ रहे लाई ।
बिनती कर बोले सदा प्रीति दिखलाई ।
सपने में भी नहिं देखी कभी रुखाई ।
रहे सदा हाथ पर लिये मुझे दिल-जानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ।४
एक दिन कुंजों में साथ दूसरी नारी ।
अपने सुख बैठे थे मिलकर गिरिधारी ।
मैं गई तो सकुचे झट यह बुद्धि बिचारी ।
बोले यह आई तुमहिं मिलावन प्यारी ।
तुम घर भेजन को बिनती करि यहि आनी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ।५
मेरे मुख में पिय ने सब दिन सुख माना ।
मुझे अपना जीवन प्रान सदा कर जाना ।
मेरे हित सब सखियों का सहते ताना ।
मुरझाए जो मुख मेरा कुछ मुरझाना ।
गुन लाख एक मुख कैसे बोल्लौं बानी ।

पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ।६

वह बन बन बिरहन कुंज-कुंजतरु पातैं ।
वह गल भुज डालन प्रीत-रीत की बातैं ।
वह चंद चाँदनी और निराली रातैं ।
एक एक की सौ सौ जी में खटकनी बातैं ।
'हरीचंद' बिना भई रो रो हाय दिवानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ।७।८१

दुख किस्से कहूँ कोई साथ न सखी सहेली ।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ।
मैं पिय बिनु तड़पूँ हाय पास नहिं कोई ।
रही सपने की संपत सी सब सुख खोई ।
जो मैं पिय बिनु नहिं कभी पलँग पर सोई ।
सोइ आज सेज सूनी लखि दुख सों रोई ।
जंगल सी मुझको लगती हाय हवेली ।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ।१

मेरे बाल-सनेही मुझको छोड़ सिधारे ।
तड़पूँ ब्याकुल मैं बिन बृज के रखवारे ।
कहाँ बिलमि रहे किन मोहे पीय हमारे ।
नहिं खबर मिली भये निपट निठुर पिय प्यारे ।
यह बिरह-बिथा नहिं जाती है अब झेली ।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ।२

मेरा बाला जोबन पड़ी बिपति सिर भारी ।
दिन कैसे काटूँ भई उमर की ख्वारी ।
यह नई आपदा सिर से जात न टारी ।
कहाँ गए हाय मुझे छोड़ पिया गिरधारी ।
भई उन बिन मैं मुरझाय जली ज्यों बेली ।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ।३

गए सुरत भूल नहीं पाती भी भिजवाई ।
करि याद पिया की हाय आँख भरि आई ।
साँपिन सी सेज घर बन सों परत दिखाई ।
जीना भया भारी दामोदर दुखदाई ।
'हरिचंद' बिना भई जोगिन दे गल सेली ।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ।४।८२

वही तुम्हें जाने प्यारे जिसको तुम आप ही बतलाओ ।
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ।
क्या मजाल है मेरे नूर की तरफ आँख कोई खोले ।
क्या समझे कोई, जो इस झगड़े के बीच आकर बोले ।
खयाल के बाहर की बातें भला कोई क्योंकर तोले ।
ताकत क्या है, मुअम्मा तेरा कोई हल कर जो ले ।
कहाँ खाक यह कहाँ पाक तुम भला ध्यान में क्यों आओ ।
देखे वही बस जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ।१

गरचे आज तक तेरी जुस्तजू खासो आम सब किया किये ।
लिखीं किताबें हजारों लोगों ने तेरे ही लिये ।
बड़े बड़े झगड़े में पड़े हर शख्स जान रहते थे दिये ।
उम्र गुजारी, रहे गल्ताँ पेचाँ जब तक कि जिये ।
परम तुम हौ वह शै कि किसीके हाथ कभी क्यों कर आओ ।
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ।

पहिले तो लाखों में कोई बिरला ही झुकता है इधर ।
अपने ध्यान में, रहा वह चूर झुका भी कोई अगर ।
पास छोड़कर मज़हब का खोज़ा न किसी ने तुम्हें मगर ॥
तुमको हाजिर, न पाया कभी किसी ने हर जा पर ।
दूर भागते फिरो तो कोई कहाँ से पाए बतलाओ ।
देखे वही बस जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ।३

कोई छाँट कर ज्ञान फूल के ज्ञानी जी कहलाते हैं ।
कोई आप ही, ब्रहम बन करके भूले जाते हैं ।
मिला अलग निरगुन व सगुन कोइ तेरा भेद बताते हैं ।
गरज कि तुझको, ढूँढते हैं सब पर नहिं पाते हैं ।
'हरीचंद' अपनों के सिवा तुम नजर किसीके क्यों आओ ।
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ।४।८३

चाहे कुछ हो जाय उम्र भर तुझको प्यारे चाहैंगे ।
सहेंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे ।
तेरी नजर की तरह फिरैगी कभी न मेरी यार नजर ।
अब तो यों ही, निभैगी यों ही जिन्दगी होगी बसर ।
लाख उठाओ कौन उठे है अब न छुटैगा तेरा दर ।
जो गुजरैगी, सहैंगे करैंगे यों ही यार गुजर ।
करोगे जो जो जुल्म न उनको दिलबर कभी उलाहैंगे ।
सहैंगे सब कुछ मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे ।१

आह करैंगे तरसैंगें गम खायेंगे चिल्लायेंगे ।
दीन व ईमाँ बिगाड़ेंगे घर-बार डुबायेंगे ।
फिरैंगे दर दर बे-इज्जत हो आवारे कहलायेंगे ।
रोएँगे हम हाल कह औरों को भी रुलायेंगे ।
हाय हाय कर सिर पीटैंगे तड़पैंगे कि कराहैंगे ।
सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे ।२

रुख फेरो मत मिलो देखने को भी दूर से तरसाओ ।
इधर न देखो, रकीबों के घर में प्यारे जाओ ।
गाली दो कोसो झिड़की दो खफा हो घर से निकलवाओ ।
कत्ल करो या नीम-बिस्मिल कर प्यारे तड़पाओ ।
जितना करोगे जुल्म हम उतना उलटा तुम्हैं सराहैंगे ।
सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे ।३

होके तुम्हारे कहाँ जाँय अब इसी शर्म से मरते हैं ।
अब तो यों ही, जिन्दगी के बाकी दिन भरते हैं ।

मिलो न तुम या कत्ल करो मरने से नहीं हम डरते हैं।
मिलेंगे तुमको, बाद मरने के कौल यह करते हैं ।
'हरीचंद' दो दिन के लिये घबरा के न दिल को डाहैंगे।
सहैंगे सब कुछ मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे।४।८४

बाल या दिल के बबाल दिलबर ने मुखड़े पर डाले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ।
छल्लेदार छलीले लम्बे लम्बे यह छहराते हैं ।
बल खा खा कर, फंद में अपने दिल को फँसाते हैं ।
चिलकदार चुनवारे गिंडुरी से होकर रह जाते हैं ।
हिल हिल करके कभी यह अपनी तरफ बुलाते हैं ।
पेचदार खम खाये उलझे सुलझे घूँघरवाले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ।१

कहूँ इश्क-पेचाँ आशिक को पेच में भी यह लाते हैं ।
फाँसी भी हैं, मुसाफिर को बेतरह फँसाते हैं ।
जाल हैं यह जंजाल से सबको जाल में कर जाते हैं ।
जादू की यह, गिरह हैं दिलको अजब भुलाते हैं ।
काले काले ग़ज़ब निकाले पाले क्या यह काले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ।२

देख इनको तलवार ने खम दम म्यान में
मुँह को छिपा दिया ।
भौरों ने भी, न इन सा हो के गूँजना शुरू किया ।
हजार सिर बुलबुल ने पटका हुई न ऐसी साँवलिया ।
सिवार ने भी शर्म से पानी में मुँह डुबा लिया ।
मुश्क से खुशबू में रेशम से चमक में ये चौकाले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ।३

बंसी हैं दिल के शिकार को लालच देके फँसाने के ।
छींके हैं यह, लटकते दोनों दिल लटकाने के ।
आँकुस की है नोक जिगर से खींच के दिल को लाने के ।
जंजीरों से यह बढ़ कर दिल को कैद कर जाने के ।
दिल के दुखाने को बीछू के डंक से भी जहरीले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ।४

तुम्हें नूर की शमा कहूँ तो धुआँ इन्हैं कहना है बजा ।
रुखसारों पर यः दोनों चँवर ढला करते हैं सदा ।
यह वह उक्दा है जो किसी से अब तक प्यारे नहीं खुला ।
कहूँ मुअम्मा, तो इसमें नहीं बाल भर फर्क जरा ।
दिल के पहुँचने को गालों तक कमंद दोनों डाले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ।५
इनमें जो आकर फँसा वह फिर न उम्र भर कभी छुटा ।
बला हैं बस ये हमेशा इनसे बचाये दिलको खुदा ।
जंत्र मंत्र कुछ लगा न उसको जिसको इन साँपों ने डँसा ।
'हरीचंद' के, जुल्फ में दिल अब तो बेतरह फँसा ।
भूल-भुलैयाँ से उलझे चिकने महीन चमकीले हैं ।
ज़ुल्फ के फंदे, तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ।६।८५

आँखों में लाल डोरे शराब के बदले ।
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाब के बदले ।
नित नया जुल्म करना सवाब के बदले ।
झिड़की देना हर दम जवाब के बदले ।
त्योरी में बल बालों के ताव के बदले ।
खून में रँगना कपड़ा शहाव के बदले ।
सब ढंग आज-कल हैं जनाब के बदले ।
हैं जुल्म छुटीं रुख पर निकाब के बदले ।१

पीते हैं जिगर का खून आब के बदले ।
खाते हैं सदा हम गम कबाब के बदले ।
खुशबू तेरी सूँघी गुलाब के बदले ।
लेते हैं नाम तेरा किताब के बदले ।
तब रूपोशी यह किस हिसाब के बदले ।
है जुल्फ छुटीं रुख पर निकाब के बदले ।२

ह्याँ सदा जईफी है शबाब के बदले ।
मस्तों से मिले बस शेखों शाब के बदले ।
रातों जो जागते रहे ख्वाब के बदले ।
नागिन जिस पर अब हैं सहाब के बदले ।
मुँह तेरा देखा माहताब के बदले ।
हैं जुल्म छुटीं रुख पर निकाब के बदले ।३

दिन कभी न इस खान:खराब के बदले ।
मरना बेहतर इस इजतिराब के बदले ।
हो 'हरीचंद' पर खुश अताब के बदले ।
करे अब तो रहम अज़ाब के बदले ।
क्यों नए चोचले हैं हिजाब के बदले ।
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाब के बदले ।४।८६

(सपने में बनाई हुई)

मोहिं छोड़ि प्रान-पिय कहूँ अनत अनुरागे ।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ।
रहे एक दिन वे जो हरि ही के सँग जाते ।
वृन्दाबन कुंजन रमत फिरत मदमाते ।
दिन रैन श्याम सुख मेरे ही सँग पाते ।
मुझे देखे बिन इक छन प्यारे अकुलाते ।
सोइ गोपीपति कुबरी के रस पागे ।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ।१

कहाँ गई श्यामा की वे मनहरनी बातैं ।
वह हँसि हँसि कंठ-लगावनि करि रस-घातैं ।
वह जमुना-तट नव कुंज कुंज द्रुम पातैं ।
सपने सी भईं अब वे बिहरन की रातैं ।

सहि सकत न कठिन बियोग-अगिन तन दागे।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे।२

पहिले तो सुंदर मोहन प्रीति बढ़ाई।
सब ही बिधि प्यारे अपनी करि अपनाई।
सुख दै बहु भाँतिन नित नव लाड़ लड़ाई।
अब तोड़ि प्रीति मोहिं छोड़ि गए ब्रजराई।
संजोग-रैन बीतत बियोग-दुख जागे।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे।३

क्या करूँ सखी कुछ और उपाय बताओ।
मेरे पीतम प्यारे मुझसे आन मिलाओ।
जिय लगी बिरह की भारी अगिन बुझाओ।
मैं बुरी मौत मर रही मिलाइ जिलाओ।
'हरीचंद' श्याम-संग जीवन-सुख सब भागे।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे।४।८७

जबतक फँसे थे इसमें तबतक दुख पाया औ बहुत रोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए।
बिना बात इसमें फँस कर रंज सहा हैरान रहे।
मजा बिगाड़ा, अपना नाहक ही को परेशान रहे।
इधर उधर झगड़े में पड़े फिरते बस सर-गरदान रहे।
अपना खोकर, कहाते बेवक़ूफो नादान रहे।
बोझ फिक्र का नाहक को फिरते थे गरदन पर ढोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए।१

मतलब की दुनिया है कोई काम नहीं कुछ आता है।
अपने हित को, मुहब्बत सब से सभी बढ़ाता है।
कोई आज औ कल कोई सब छोड़ के आखिर जाता है।
गरज कि अपनी गरज को सभी मोह फैलाता है।
जब तक इसे जमा समझे थे तब तक थे सब कुछ खोए।
मुँह काला कर बखेड़े का हम भी सुख से सोए।२

जिसको अमृत समझे थे हम वह तो जहर हलाहल था।
मीठा जिसको जानते थे वह इनारू का फल था।
जिसको सुख का घर समझे थे वह तो दुख का जंगल था।
जिनको सच्चा समझते थे वह झूठों का दल था।
जीवन फल की आशा में उलटे हमने थे बिष बोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए।३

जहाँ देखो वहीं दगा और फरेब और मक्कारी है।
दुख ही दुख से, बनाई यह सब दुनिया सारी है।
आदि मध्य ओ अंत एक रस दुख ही इसमें जारी है।
कृष्ण-भजन बिनु, और जो कुछ है वह ख्वारी है।
'हरीचंद' भव पंक छूटै नहिं बिना भजन रस के धोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए।४।८८

पिय प्राननाथ मनमोहन सुंदर प्यारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सो न्यारे।
घनश्याम गोप-गोपी-पति गोकुल-राई।
निज प्रेमीजन-हित नित नित नव सुखदाई।
बृन्दाबन-रच्छक ब्रज-सरबस बलभाई।
प्रानहुँ ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई।
श्री राधानायक जसुदानंद दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।
तुव दरसन बिन तन रोम रोम दुख पागे।
तुव सुमिरन बिनु यह जीवन बिष सम लागे।
तुमरे सँयोग बिनु तन बियोग दुख दागे।
अकुलात प्रान जब कठिन मदन मन जागे।
मम दुख जीवन के तुम हो इक रखवारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सो न्यारे।
तुमहीं मम जीवन के अवलंब कन्हाई।
तुम बिनु सब सुख के साज परम दुखदाई।
तुव देखे ही सुख होत न और उपाई।
तुमरे बिनु सब जग सूनो परत लखाई।
हे जीवनधन मेरे नैनों के तारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।
तुमरे-बिनु इकछन कोटि कलप सम भारी।
तुमरे-बिनु स्वरगहु महा नरक दुखकारी।
तुमरे सँग बनहू घर सों बाढ़ि बनवारी।
हमरे तौ सब कुछ तुमही हौ गिरधारी।
'हरिचंद' हमारे राखौ मान दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे।८९

बरवा

(धुन–'मोरि तो जीवन राधे' इस चाल पर)

मोहन दरस दिखा जा।
ब्याकुल अति प्रान-प्यारे दरस दिखा जा।
बिछुरी मैं जनम जनम की फिरी सब जग छान।
अबकी न छोड़ों प्यारे यही राखो है ठान।
'हरीचंद' बिलम न कीजै दीजै दरसम दान।९०

दरस मोहिं दीजै हो पिय प्रान।
दरस दीजै अधर पीजै कीजै परस सुजान।
तुम बिनु ब्याकुल धीर न आवत लीजै अरज यह मान।
'हरीचंद' मोहिं जानि आपनी करिये जीवन दान।९१

पूरबी रेखता

हमैं दरसन दिखा जाओ हमारे प्रान के प्यारे।
तेरे दरसन को ऐ प्यारे तरस रहीं आँख बरसों से।
इन्हैं आकर के समझाओ हमारे आँखों के तारे।

सिथिल भई हाय यह काया है जीवन ओठ पर आया।
भला अब तो करो माया मेरे प्रानों के रखवारे।
अरज 'हरिचंद' की मानो लड़कपन अभी भी मत ठानो।
बचालो प्रान दरसन दो अजी ब्रजराज के बारे।९२

ठुमरी

पियारे सैयाँ कौने देस रहे रूसि
जोबना को सब रँग चूसि।
'हरीचंद' भये निठुर श्याम
अब पहिले तो मन मूसि।९३

पियारे पिया कौन देश रहे छाय।
का पर रहे बिलमाय।
मेरी सुध बिसराय प्रेम सब जिय सों दूर भुलाय।
'हरीचंद' पिय निठुर बसे कित जोगिन हमहिं बनाय।९४
पिया प्यारे तोहि बिनु रह्यो नहिं जाय।
कौन सो करौं मैं उपाय।
कहत 'चंद्रिका' धाइ मिलो अब लेहु गरे लपटाय।९५
आओ पिया प्यारे गरे लगि जाओ।
काहें जिअ तरसाओ, कहत 'चंद्रिका' धाइ मिलो
अब जिय की जरनि जुड़ाओ।९६

खेमटा

अब ना आओ पिया मोरि सेजरिया।
जात बिदेस छोड़ि तुम हमकों
हनि हनि हिय मैं बिरह कटरिया।
कहत 'चंद्रिका' हरीचंद पिय जाओ
वहीं जहाँ लाए नजरिया।९७

रेखता

मोहन पिय प्यारे टुक मेरे ढिग आव।
बारी गई सूरत के बंदन तौ दिखाव।
तरस गए अँग अँग गर मैं लपटाव।
तेरी मैं चेरी मुझे मरत सों जिलाव।
वही रूप वही अदा दीने निज घाव।
प्यारे! 'हरिचंदहिं' फिर आज भी दरसाव।९८

दिलदार यार प्यारे गलियों में मेरे आ जा।
आँखें तरस रही हैं सूरत इन्हें दिखा जा।
चेरी हूँ तेरी प्यारे इतना तो मत सता रे।
लाखों ही दुख सहा रे टुक अब तो रहम खा जा।
तेरे ही हेत मोहन छानी है खाक बन बन।
दुख झेले सर प : अनगनअब तो गले लगा जा।
मन को रहूँ मैं मारे कब तक बता दे प्यारे।
सूखे बिरह में तारे पानी इन्हें पिला जा।
सब लोक-लाज खोई दिन-रैन बैठ रोई।
जिसका कहीं न कोई उसका तो जी बचा जा।
मुझको न यों भुलाओ कुछ शर्म जी में लाओ।
अपनों को मत सताओ ए प्रान-प्यारे राजा।
'हरिचंद' नाम प्यारी दासी है जो तुम्हारी।
मरती है वह बिचारी आकर उसे जिला जा।९९
बंसी बजा के हम को बुलाना नहीं अच्छा।
घर-बार को यों हमसे छुड़ाना नहीं अच्छा।
घर-बार छुड़ाते हो तो फिर हमको न छोड़ो।
अपनों को यों दामन से छुड़ाना नहीं अच्छा।
करना किसी पै रहम इक अदना सी बात पर।
मुतलक किसी पै ध्यान न लाना नहीं अच्छा।
हम तो उसी में खुश हैं खुशी हो जो तुम्हारी।
फिर हम से छिपा कर कहीं जाना नहीं अच्छा।
गाओ जो चाहो बंसी में हैं राग हजारों।
रट नाम की मेरे ही लगाना नहीं अच्छा।
मिल जायेंगे हम कुंज में मौका जो मिलेगा।
गलियों में हमारे सदा आना नहीं अच्छा।
'हरिचंद' तुम्हरे ही हैं हम तो सभी तरह।
यों अपने गुलामों को सताना नहीं अच्छा।१००

अथ बँगला गान

प्रानप्रिय शशि-मुख बिदाय दाओ आमारे।
शून्य देह लोए जाबो प्रान दिये तोमारे।
करि हे बिनय हइया सदय आमारे
बिदाय दाओ जाई देशांतरे।१
प्राननाथ निदय हय बिदाय चेओ ना।
तोमा बिन प्रान, नाहिं रबे प्रान।
किसे पाब त्रान आमाय बलो ना।
आमि हे अबला, ताहा ते सरला,
बिरह-ज्वाला, प्राने सबे ना।२
जाई जाई करे नाथ दिओ नाहे जातना।
तोमार बिच्छेदे ए जीवन रबे ना।
पुन : ए नयन शशांक-बदन करिबे
दर्शन कबे ओहे बलो ना।
तोमारे ना हेरे प्रान जेकी करे कि कब
तोमारे, तुमि किये भावना।३
प्राननाथ बिदेशे त जेते दिबना।
जाबे जाओ कांत किंतु हे नितांत,
आमारे एकांत, आर कांत पाबे ना।
तोमार विहन, ए छार जीवन,

ओ प्रानधन आर रबे ना ।४
आर जातना प्रान सहे ना ।
सदा मन उचाटन, झरिछे दु नयन,
कांत बुझिए जीवन, आमार आर रबे ना ।
हाए एमन समय, कोथा ओहे रसमय,
हइया अति सदय, आछ प्रान बलो ना ।५

प्राननाथ देखा दाओ आसि अबलाय ।
जे दु:ख पेतेछि आमि, मन जाने आर,
आमि जानि आरि जानेन ईश ।
जिनि के मने आमि जानाब तोमाय ।६

आमार जे दशा माथ आसिया हे देख ना ।
हरिश्चंद्र नाथ जार, केन हेन दशा तार,
बल ओहे गुनि-मनि, आमार हे बलो ना ।
सदा मन उचाटन, दहिते छे जीवन मन,
असह्य 'चंद्रिका' जीवने सहेना यातना ।७

कोथाय रहिल सखि से गुन-मान ।
विच्छेद यातना, आर जे सहेना ।
कि करि बल न ओ प्रान सजनी ।
केमने एखन, धरिब जीवन ।
से कांत विहन बल ओ धनी ।८

हाय बिधि एत मोरे केन निर्दय ।
अमूल्य रतन करिया अर्पन,
केन गो हरन ताहारे कराय ।
मम प्रान-धन, हृदय-रतन
रमनी-मोहन कोथाय गो जाय ।९

तुमि कर के तोमार कारे बल रे मन आपन ।
मिछा ए संसार माया जुड़े आछे त्रिभुवन ।
दारा सुल परिवार संगे कि जाबे तोमार ।
जखन तुमि मुँदिबे दु नयन ।१०

ओरे हरि दयामय !
ए भव-जंत्रना, आर जे सहे ना ।
करिया करुना, उधारो आमाय ।११

ओहे नाथ करुनामय !
प्रभु हरि दयामय, दया करो ए जनाय,
नामे ना कलंक रय उद्धारो तराय ।
आमि अति मूढ़ मति, न जानी भक्ति स्तुति,
कि हबे आमार गति, बल गो आमाय ।१२

मन केन रे भाव एत ।
ओई जे दिवा-निशि भावछ बसी,
जेन बुधि हुए छे हत ।
एतेक, भावना, किसेर कारन,
हबे बूझि पागलेर मत ।१३

आमार नाथ बड़ दयामय ।
करुना-आकर दयार सागर
दयामय नाम जगत भीतर ।
एक मुखे गुन वर्णना जे भार,
कहि छे 'चन्द्रिका' भाविया हृदये ।१४

कलिंगड़ा एक-ताला

ओ प्रान नयन-कोने चाईले एरे क्षति कि आछे ।
आमार केंदे सोहाग जेंचे मान तोमार काछे ।
जथा इच्छा तथा जावो, सदत हृदय रओ ।
तोमार विहन कओ, आमार के आछे ।१५

सिंधु धीमा तिताला

ए सोहाग आर आमार काज नाई ।
सदत हृदय जे ज्वाला पाई ।
हृदय दहन जायगो जीवन ।
कि करि एखन बल गोसाईं ।१६

प्राननाथ कि बले छिले ।
ए दारुण ज्वाला हृदये केन गो दिले ।
हृदय माझे त राखिब तोमाय ।
सदत बलिते नाथ हे अमाय ।
से सब कथन रहिल कोथाय ।
भेवे देख प्रान कि करिले ।१७

कोथाय रहिले प्रान एमन बरखा ते ।
देख घन घन, बरिषे नयन, अबलारे भिजाते ।
बल ओरे प्रान, तोमाय कोन जन,
शिखाले एमन आमारे काँदते ।
'चंद्रिका' जे बले नाथ कि करिले
अबला बधिले बुझि हे प्रानेते ।१८

आदरे आदरे भालो तो छिले ।
जे तोमार अनुगत तार कि करिले ।
नव जलधर तुमि तृषित चातकि आमी,
ओहे प्राननाथ कोथा बारि बिन्दु बरषिले ।
प्रान-प्रिय प्रान-धन, बल जातना एमन,
'चंद्रिका' हृदये केन गो दिले ।१९

ओहे हरि जगतेर पति ।
दया कर दयामय आमि दीन हीन अति ।
लाए छे शरण चरणे जे जन,
रूष्ट कि कारण ताहार प्रति ।
नाम दयाकर जगत भीतर कि
हबे आमार बल गो गति ।२०

आशाय आशाय भालो जातना दिले ।
जाओ तथा गुन-मनि जथा निशि पोहाईले ।
से धनि तोमार धनि तुमि तार प्रेमे रिणि,
बाँधा आछ गुनमनी तबे हेथा केन आसिले ।२१

तोमाय भुलिब केमने ।
हृदय अंकित छबि अति यतने ।
दिवा निशि मुख देखि हृदय आदरे राखि,
प्रान सदा एई बासना मने ।२२

एक बार भाव ओरे मन ।
शेषेर से दिन तव निकट एखन ।
दिन दिन हीन बल मन हएछे दुर्बल,
रोगेर अति प्रबल भये भीत हएछे जीवन ।२३

एतेक जीवने केन मरन बासना ।
बुझि कपालेर दोषे बिधिर बिड़म्बना ।
केन रे अबोध मन कर कामना एमन,
से दु:ख तव कारन बुझि ताहा जान ना ।२४
एखनि एमन हबे स्वपने छिल ना ज्ञान ।
ना होते मिलने सुखि आगे ते जाइबे प्रान ।
जन्म जन्मांतरे जेन पाई प्राननाथ हेन ।
बिधिर काछे एई मोर शेष अकिंचन ।२५

किछु सुख होलो जीवने ।
प्राननाथ भुलाएछे सेई नवीने ।
आमार अभाव काले बिरह बेदना ज्वाले,
आघात हबे ना तार कोमल हृदय-
स्थाने एई भेवे सुखमने ।२६
नव प्रेमे प्रेमी होते कर वासना ,
बल बल ओरे प्रान मोरे बल ना ।
एई प्रेमे प्रेमी होले मम चिंता जाबे चले,
ईहा तेई जाबे मोर हृदि-बेदना ।
तोमाय पाब जन्मान्तरे एई आशा हृदे कोरे ।
प्रान जाबे आर जाबे हृदि जातना ।२७
सेई जे आमाय तोमाय छिल कथा मने आछे कि ना बल ।
सेई जे छिल जत भाल बासा मने आगे कि ना आछे बल।
कत कत छिल मने आशा कत छिल हृदे भालो बासा ।
शेषे होली आशा नैराशा मने आछे कि या आछे बल ।
हृदये दिए छ कतेक ब्यथा मने आछे कि ना आछे बल ।
तुमि हे कि कछु किछुई जान ना मम मने आछे सब बेदना।
आमि हृदये पेयेछि ब्यथा नाना मने आछे कि ना आछे बल।
दिए छिल-तक 'चंद्रिका' बाजा ओहे चंद्र तव प्रेमे बाधा।
आछे मन प्रान सब साधा मने आछे कि ना आछे बल।२८
हेरिब सतत सखी कालाई बरन ।
मने पड़े जेन सदा से नील रतन ।
मृगमद सिरे कज्जल नयन तीरे,
नित्य नील वर्ण चीरे आच्छादित तन ।
'हरिश्चंद्र' मुख सदा कृष्ण नामे आछे साधा
से पेमे अंतर बाधा कृष्ण पदे आछे मन ।२९
जाओ ओहे गुनिमनि ऐ कि काज करिले ।
आमार प्रानेर छबि काड़िते बसिले ।
मर्माधिक प्रान-प्रिय के आछे तोमार प्रिय ।
आमार भाल बासा छबि कारे दिते निए छिले ।
'चंद्रिका' बले बल ना केन करहे छलना ।
रक्षित छबि ते मम तुमि केन हाथ दिले ।३०

राखो हे प्रानेश ए प्रेम करिया जतन ।
तोमाय करेछि समर्पन ।
जत दिन रबे प्रान श्रीचरने दिओ स्यान,
हरिश्चंद्र प्रान-धन एई अकिंचन ।
'चंद्रिका' हृदय-धन नाहिक तोमा बिहन,
नत्र करे ते आपने करेछि जीवन मन ।३१

थाकिते जीवन मन नाथ ए कि करिले ।
आमार आशार प्रेम कारे तुमि दान दिले ।
'चंद्रिका' हृदय-मन तब करे समर्पन ।
तार हृदि हरिधन कारे प्राण दिते निले ।३२
आमाय भालो बेशे आर तोमार काज नाई ।
तुम अन्य प्रान ज्वले आमाय भालो बास बोले ।
सदा भासि आँखि जले हृदे नाना दु:ख पाई ।
बिदाय दाओ गुनमनी सजब एबे सन्यासिनी ।
हब नाथ बिदेशिनी सुख पथे दिया छाई ।
हरिश्चंद्र प्रान-धन 'चंद्रिकार' निवेदन,
बासना एमन मन विदेशे ते प्रान जाई ।३३

ऐ प्रेम राखिते केन करिछ जतनो रे ।
सेई प्रेम राखा गिया जथा बाँधा मनो रे ।
सेई विनोदिनी धनि तुमि तार प्रेमे रिणी,
बाँधा आछो गुनमनि ताहारई प्रेम-डोरे ।
छाड़ो एई प्रेम आशा जाना गेल भालो बासा,
हृदय सब नैराशा 'चंद्रिकार' एखनो रे ।३४

मिछा केन दिते आश प्रेमेरे परिचय ।
सतिनेर छबि आँकि आपन हृदय ।
प्रेम कथा बलि प्रान कोरो ना आर जालातन,
राख गिया प्रानधन ताहार जा आज्ञा हय ।
हरिश्चंद्र प्रान-पति तुमिरे निर्दय अति,
'चंद्रिकार' नाहे गति जानिनु निश्चय ।३५

आज आमार होलो सुप्रभात ।

नवीन वत्सरे पद दिल प्राननाथ ।
ओ वत्सरे दिन हेन बिधि पुन : देन जेन ।
धरे ए बासना मन पूर्ण करे जगन्नाथ ।३६

आज किवा सुखि होलो जीवन ।
बेंचे छिले ताई जीवन पाईले दिन ऐमन ।
प्राननाथेर जन्म दिन दिल दरसन ।
देख 'चंद्रिकार' आज किवा सुख हृदि माझे,
आनंदेर आज साज सेजे छे मन ।३७
कि आनंदेर दिन आज हेरिनु नयने ।
इहार समान दिन नहिक ए भुवने ।
हरिश्चंद्र प्रानपति आज तारे जन्म-तिथि,
बिधि सुख दिल अति आजि 'चंद्रिका' मने।३८

एई दिन पुन : हेरि मने वासना ।
नवीन वत्सरे आई पद दिले हृदिराज,
तारे सुखे राखुन प्रभु एई कामना ।
पुन : एई दिन हेरी एकांत वासना करी,
'चंद्रिका' हृदय आज सुख उपजिल नाना ।३९

शुनियाछि तव कृपा पतित-गामिनी ।
पाइबे कोथाये तबे पतित आमार तुल्य,
पाप मात्र कर्म जार दिवस-यामिनी ।
सर्वस्व स्वरूप जार मिथ्याचार व्यवहार,
हिंसा छल द्यूत मद्य मांस ओ कामिनी ।४०
निभृत निशीथे सई ओ बांशी बाजिल ।
पूरित करिया बन भेदिया गगन घन,
जे काँपाईया समीरन मधुर रवे गाजिल ।
स्तंभित प्रवाह नीर ताड़ित मयूर कीर,
झँकारिया तरुगन एक तान साजिल ।
'हरिश्चंद्र' श्याम-बांशी-स्वर कामदेव फांसी,
कुलबधु सुनियाई आर्यपथ त्याजिल ।४१
कोथाय आछ ओहे प्रिय अबला-जीवन ।
प्रानधन श्याम-घन ।
नव-नील-वर्ण-तन पूर्ण-चंद्र-निभानन ।
कूजित वंशिकास्वन प्रसन्न-बदन ।
कर दु :ख बिनाशन ओहे गोपिका-रमन ।
आशिया श्रीबृंदावन दाओ दर्शन ।
'हरिश्चन्द्र' निवेदन सुन दिया किछु मन ।
ओई पदे समर्पण आछे गो जीवन ।४२
सई मजाले मजाले श्याम मजाले आमाय ।
सतत बांशीर ध्वनि करे मोरे पागलिनी,
सई काँदाले काँदाले श्याम काँदाले आमाय ।
बाँशी ते गहन बने डाके काला घने घने,
सई मताले मताले श्याम मताले आमाय ।४३

केह जाओ गो जाओ मधुपुरि ते ।
बुझाईए सेई प्रानेर श्यामे आनिते ।
बल पिया प्रानधने राधा जे बाँचे ना प्राने ।
तोमार विच्छेद-बान नाहिं पारे सहिते ।४४

मदन-मोहन मधु-सूदन दयामय ।
बलि शुन गुनमनि सेथा राधा विनोदिनी ।
विरहे व्याकुल धनि चल गो तराय ।४५

ओहे श्याम आछे कि आर आमाय मने ।
सुन हे श्याम त्रिभंग दिया ए प्रनय भंग ।
सेथाय कुबजा संग भूले ए दु :खिनी जने ।
सुन हरि प्रानधन आमार ए निवेदन ।
आर कि ओहे दर्शन दिबे नाए बृन्दावने ।४६

ग़ज़ल

तेरी सूरत मुझे भाई मेरा जी जानता है ।
जो झलक तूने दिखाई मेरा जी जानता है ।
अरे जालिम तेरे इस तीरे निगह से हमने ।
चोट जैसी कि है खाई मेरा जी जानता है ।
खायँगे जहर नहीं डूब मरेंगे जाकर ।
जो है कुछ जी में समाई मेरा जी जानता है ।
कत्ल करके न खबर ली मेरे कातिल अफ़सोस ।
जाँ इसी दुख में गँवाई मेरा जी जानता है ।
प्यार की वह तेरी चितवन व नशीली आँखें ।
दिल को किस तरह हैं भाई मेरा जी जानता है ।
दे के जी और पै जीने का मजा खो बैठे ।
जीते जी जी पै बन आई मेरा जी जानता है ।
सब्र की फौज के बा उठ गए दिल हार गया ।
आँख तूने जो लड़ाई मेरा जी जानता है ।
ख्वाब सा हो गया शब को तेरी सुहबत का खयाल ।
रात वह फेर न आई मेरा जी जानता है ।
दाग दिल पर य होगा कि तेरे कूचे तक ।
थी 'रसा' की न रसाई मेरा जी जानता है ।१

दिल मेरा ले गया दगा करके ।
बेवफा हो गया वफा करके ।
हिज्र की शब घटा ही दी हमने ।
दास्ताँ जुल्फ की बढ़ा करके ।
शुअलारू कह तो क्या मिला तुझको ।
दिलजलों को जला जला करके ।
वक्ते रेहलत जो आए बालीं पर ।
खूब रोए गले लगा करके ।
सर्व कामत गजब की चाल से तुम ।

क्यों कयामत चले बपा करके ।
खुद बखुद आज जो वो बुत आया ।
मैं भी दौड़ा खुदा खुदा करके ।
क्यों न दावा करे मसीहा का ।
मुर्दे ठोकर से वह जिला करके ।

क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ ।
इक झलक सी मुझे दिखा करके ।
दोस्तो कौन मेरी तुरबत पर ।
रो रहा है 'रसा रसा' कर के ।२

उतरार्द्ध भक्तमाल

["कवि-वचन सुधा" २७ मार्च १८७६ में सूचना और 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' सन् १८७६-७७ में ग्रंथ प्रकाशित]

उत्तरार्द्ध-भक्तमाल

दोहा

राधावल्लभ वल्लभी वल्लभ वल्लभताइ ।
चार नाम बपु एक पद बंदत सीस नवाइ ।१
ह्वै प्रतच्छ बसि गृह निकट दियो प्रेम को दान ।
जय जय जय हरि मधुर बपु गुरु रस-रीति-निधान ।२
जग के विषय छुड़ाइ सब सुद्ध प्रेम दिखराइ ।
बसे दूर ह्वै सहज पुनि. जै जै जादवराइ ।३
धन जन हरि निर्हाचंत करि. फिर डार्यौ भव-जाल ।
सोचि जुगति कछु मोहिं जिन जै जै सो नंदलाल ।४
कछु गीता मैं भाखि कै शुक ह्वै करुना धारि ।
कही भागवत मैं प्रगट प्रेम-रीति निरुवारि ।५
पुनि बल्लभ ह्वै सो कही कबहूँ कही जु नाहिं ।
शुद्ध प्रेम-रस-रीति सब निज ग्रंथन के माहिं ।६
बंश रूप करि कै द्विबिध थापी पुनि जग सोय ।
अब लौं जाके लेस सों पामर प्रेमी होय ।७
व्यास कृष्ण चैतन्य हरि दास सु हित हरिवंस ।
विविध गुप्त रस पुनि कहे धरि वपु परम प्रसंस ।८
भाँति भाँति अनुभव सरस जिन दिखरायो आप ।
अधमहुँ को सो नित जयति समन समन पुर दाप ।९
अतिहि अघी अति हीन निज अपराधी लखि दीन ।
जदपि छमाके जोग नहिं तऊ दया अति कीन ।१०
छत्रानी सों यों कह्यौ या कहँ जानहु संत ।
अहो कृपाल कृपालुता तुमरी को नहिं अंत ।११
ज्वर-तापित हिय में प्रगट जुगल हँसत आसीन ।
स्वर्ण सिंहासन पर लिए कर जुग कंज नवीन ।१२
अगिनि बरत चारहूँ दिसा पै मधि सीतल नीर ।
ताहि उजारत चरन सों देत दास कहँ धीर ।१३
बहु नट वपु ह्वै आपुही कसरत करत अनेक ।
कबहूँ पौढ़े महल मैं तानि झीन पट एक ।१४
कबहूँ सेत पाखान की कोच जुगल छबि धाम ।
बैठे बाग बहार मैं गल भुज दिए ललाम ।१५
साँझ समय आरति करत सब मिलि गोपी ग्वाल ।
कबहुँ अकेले ही मिलत पिय नँदलाल दयाल ।१६
कबहुँ गौर दुति बाल बपु रजत अभूषन अंग ।
पंच नदी पौसाक तन धरे किए सोइ ढंग ।१७
कबहुँ जुगल आवत चले साँझ समय बरसात ।
कै बसंत जँह हरित धर चारहु ओर दिखात ।१८
देखि दीन भुव मैं लुठत फूल-छरी सिर मारि ।
हँसत परसपर रस भरे जिय अति दया बिचारि ।१९
कबहुँक प्रगट कबहूँ सुपन कबहुँ अचेतन माहिं ।
निज जय दृढ़ता हेत जो बारंबार दिखाहिं ।२०
होत बिमुख रोकत तुरत करत बिबिध उपदेश ।
जै जै जै हरि-राधिका बितरन नेह बिसेस ।२१
मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि-नाम ।

जयति कोऊ सो केसरी बृन्दाबन बन धाम ।२२
तम-पाखंडहि हरत करि जन-मन-जलज बिकास ।
जयति अलौकिक रबि कोऊ, श्रुति-पथ करन प्रकास ।२३

अथ परम्परा

तन्नमामि निज परम गुरु कृष्ण कमल-दल-नैन ।
जाको मत श्री राधिका नाम जपत दिन रैन ।२४
श्रीगोपीजन-पद जुगल बंदत करि पुनि नेम ।
जिन जग मैं प्रगटित कियो परम गुप्त रस प्रेम ।२५
श्रीशिव-पद निज जानि गुरु बंदत प्रेम-प्रमान ।
परम गुप्त निज प्रगट किय भक्ति-पंथ अभिधान ।२६
बंदौं श्री नारद-चरन भव पारद अभिराम ।
परम बिसारद कृष्ण-गुन-गान सदा गतकाम ।२७
पुनि बंदत श्री व्यास-पद बेद-भाग जिन कीन ।
कृष्ण तत्व को ज्ञान सब सूत्र बिरचि कहि दीन ।२८
बंदत श्री शुकदेव जिन सोध प्रेम को पंथ ।
हमसे कलि-मल ग्रसित-हित कह्यो भागवत ग्रंथ ।२९
विष्णुस्वामि-पद जुगल पुनि प्रनवत बारंबार ।
जिन प्रगटायो प्रेम-पथ बहत जानि संसार ।३०
गोपीनाथ अरंभि जै देवादिक मध थामि ।
बिल्वमँगल लौं सप्त सत गुरु-अवली प्रनमामि ।३१
नमो बिल्वमंगल-चरन भक्ति-बीज उत्कर्ष ।
सूक्ष्म रूप सों तरु रहे जो अनेक सत वर्ष ।३२
यह मारग डूबत निरखि जिन प्रगटायो रूप ।
नमो नमो गुरुवर-चरन श्री बल्लभ द्विजभूप ।३३
जुगल सुअन तिनके तनय जिनहिं आठ निरधारि ।
भक्ति रूप दसधा प्रगट बंदत तिनहिं बिचारि ।३४
एक भक्ति के दान हित थापित परम प्रसंस ।
भयो अहै अरु होइगो जै श्री बल्लभ बंस ।३५
प्रगट न प्रेम प्रभाव नित नासन सोग कुरोग ।
जै जै जग-आरति-हरन बिदित बल्लभी लोग ।३६
जे प्रेमी-जन कोउ पथ हरि-पद नित अनुरक्त ।
बंदत तिनके चरन हम करहु कृपा सब भक्त ।३७

अथ उपक्रम

नाभा जी महराज ने भक्तमाल रस जाल ।
आलबाल हरि-प्रेम की बिरची होई दयाल ।३८
ता पाछें अब लौ भये जे हरि-पद-रत-संत ।
तिनके जस बरनन करत सोइ हरि कहँ अति कंत ।३९
कबहुँ कबहुँ प्रसंग-बस फिर सों प्रेमी नाम ।
ऐहैं या नव ग्रंथ मैं पूरब-कथित ललाम ।४०
भक्तमाल जो ग्रंथ है नाभा-रचित विचित्र ।
ताही को एहि जानियो उत्तर भाग पवित्र ।४१
भक्त-माल उत्तर-अरध याही सों सुभ नाम ।
गुथी प्रेम की डोर मैं सन्त-रतन अभिराम ।४२
नव माला हरि-गल दई नाभा जी रचि जौन ।
दुगुन आजु करि कृष्ण कों पहिरावत हौं तौन ।४३
लिखे कृष्ण-हिय मैं सदा जदपि नवल कोउ नाहिं ।
नाम धाम हरि-भक्त के आदि समय हू माँहि ।४४
तदपि सदा निज प्रेम-पथ दीपक प्रगटन काज ।
समय समय पठवत अवनि निज भक्तन ब्रजराज ।४५
ताही सों जब आवहीं भुव तब जानहिं लोग ।
भक्त नाम गुन आदि सब नासन भव-भय-रोग ।४६
तिनहीं भक्त-दयाल की परम दया बल पाइ ।
तिनको चरित पवित्र यह कहत अहौं कछु गाइ ।४७

स्ववंश-वर्णन

वैश्य अग्रकुल मैं प्रगट बालकृष्ण कुल-पाल ।
ता सुत गिरिधर-चरन-रत बर गिरधारीलाल ।४८
अमींचंद तिनके तनय फतेचंद ता नंद ।
हरखचंद जिनके भये निज कुल-सागर-चंद ।४९
श्री गिरिधर गुरु सेइ कै घर सेवा पधराइ ।
तारे निज कुल जीव सब हरि-पद भक्ति दृढ़ाइ ।५०
तिनके सुत गोपाल-ससि प्रगटित गिरिधरदास ।
कठिन करम-गति मेटि जिन कीनी भक्ति प्रकास ।५१
मेटि देव-देवी सकल छोड़ि कठिन कुल-रीति ।
थाप्यौ गृह मैं प्रेम जिन प्रगटि कृष्ण-पद-प्रीति ।५२
पारवती की कूख सों तिनसों प्रगट अमंद ।
गोकुलचंद्राग्रज भयो भक्त दास हरिचंद ।५३
तिन श्री बल्लभ बर कृपा बिरची माल बनाइ ।
रही जौन हरिकंठ मैं नित नव ह्वै लपटाइ ।५४
लहिहैं भक्त अनंद अति, ह्वैहैं पतित पवित्र ।
पढ़ि पढ़ि कै हरि-भक्त को चित्र बिचित्र चरित्र ।५५

श्री विष्णु स्वामि संसार मैं प्रगट राजसेवा करी ।
श्री शुक सों लहि ज्ञान आंध्र भुव पावन कीनी ।
नृप-प्रधानता जगत-जाल गुनि कै तजि दीनी ।
हठ करि हरि कों अपुने कर नित भोग लगायो ।
भक्ति-प्रचारन द्विविध वंश भुव माहिं चलायो ।
जग मैं अनेक सत बरस बसि नाम दान भुव उद्धरी ।
श्री विष्णु स्वामि संसार मैं प्रगट राजसेवा करी ।५६

श्री निंबादित्य स्वरूप धरि आपु तुंग विद्या भई ।
द्रावड़ि भुव मैं अरुण गेह द्विज ह्वै प्रगटाए ।
तम पखंड दलमलन सुदर्सन बपु कहवाए ।
सकल वेद को सार कह्यौ दस ही छंदन महँ ।
शुक-मुख सों भागवत सुनी नृप देवरात जहँ ।

बनि अरक वृच्छ चढ़ि दरस दै अतिथि संक सब हरि लई।
श्री निंबादित्य सरूप धरि आपु तुंग विद्या भई ।५७

मायावादी घननाद मद रामानुज मर्द्दन कियो ।
अगनित तम पाखंड प्रगट ह्वै धूरि मिलायो ।
बीर बनक सों सुदृढ़ भक्ति को पंथ चलायो ।
वादी-गगन प्रतच्छ सेस बनि दरसन दीनो ।
गुरु को चार मनोरथ पन करि पूरन कीनो ।
जा सरन जाइ निरदुंद ह्वै जीव नरक-भय तजि जियो ।
मायावादी घननाद मद रामानुज मर्द्दन कियो ।५८

दृढ़ भेद भगति जग मैं करन मध्व अचारज भुव प्रगट।
प्रथम शास्त्र पढ़ि सकल अरंभन खंडन ठान्यौ ।
द्वैतवाद प्रगटाइ दास-भावहि दृढ़ मान्यौ ।
थापि देव गोपाल धरनि निज विजय प्रचार्यो ।
मतिमंडित पंडितगन-बल खंडित करि डार्यौ ।
दै संख चक्र की छाप भुज दई मुक्ति सारूप्य झट ।
दृढ़ भेद भगति जग मैं करन मध्व अचारज भुव प्रगट।५९

श्री विष्णु स्वामि-पथ-उद्धरन जै जै वल्लभ राजवर ।
तिलँग वंस द्विजराज उदित पावन वसुधा-तल ।
भारद्वाज सुगोत्र यजुर साखा तैत्तिर कल ।
यज्ञनरायन कुलमनि लक्ष्मनभट्ट-तनूभव ।
इल्लमगारू-गर्भ-रत्नसम श्रीलक्ष्मी धव ।
श्री गोपनाथ-विट्ठल-पिता भाष्यादिक बहु ग्रंथकर ।
श्री विष्णु स्वामि-पथ-उद्धरन जै जै वल्लभ राजवर।६०

निज प्रेम-पंथ सिद्धांत हरि विट्ठल बपु धरि कै कह्यौ।
श्री श्री वल्लभ-सुअन विप्रकुल-तिलक जगत-वर ।
माया-मत-तम-तोम-विमर्दन ग्रीष्म-दिवाकर ।
जन-चकोर हित-चंद भक्ति-पथ भुव प्रगटावन ।
अंतरंग सखि-भाव स्वामिनी-दास्य दृढ़ावन ।
दैवी-जन मिलि अवलंब हित इक जा पद दृढ़ करि गह्यौ।
निज प्रेम-पंथ सिद्धांत हरि बिट्ठल बपु धरि कै कह्यौ।६१

निज फलित प्रफुल्लित जगत मैं
जय वल्लभ-कुल-कलपतर ।
गुरुवर गोपीनाथ प्रगट पुरुषोत्तम प्यारे ।
श्री गिरिधर गोविंद राय रुक्मिनी दुलारे ।
बालकृष्ण श्री वल्लभ माला विजय प्रकासन ।
श्री रघुपति जदुनाथ स्याम-घन भव-भय-नासन ।
मुरलीधर दामोदर सुकल्यानराय आदिक कुँवर ।
निज फलित प्रफुल्लित जगत मैं
ज्य वल्लभ-कुल-कलपतर ।६२

जग कठिन सृंखला सिथिल कर प्रगटि प्रेम चैतन्य को।
श्री गोपीजन-सम हरि-हित सब सों मुख मोर्‌यौ ।
लोक-लाज भव-जाल सकल तिनुका सो तोर्‌यो ।
बेद-सार हरिनाम दान करि प्रगट चलायो ।
अनुदिन हरि-रस निरतत जुग दृग नीर बहायो ।
नित मत्त कृष्ण मधुपान करि समनेहु ध्यान न अन्य को।
जग कठिन सृंखला सिथिल कर
प्रगटि प्रेम चैतन्य को ।६३

ये मध्व संप्रदा के परम प्रेमी पंडित जग-विदित ।
बिजय-ध्वज अति निपुन बहुत बादी जिन जीते ।
माधवेन्द्र नरसिंह भारती हरि-पद प्रीते ।
ईश्वरपुरी प्रकाशभट्ट रघुनाथ अचारज ।
त्रिपुर गंग श्रीजीव प्रबोधानंद सु आरज ।
अद्वैत सुनित्यानंद प्रभु प्रेम-सूर-सौस से उदित ।
ये मध्व संप्रदा के परम प्रेमी पंडित जगविदित ।६४

जान्यौ वृंदाबन रूप हरिदास ब्यास हरिवंस मिलि ।
निंबारक मत बिदित प्रेम को सारहिं जान्यौ ।
जुगल-केलि-रस-रीति भलें करि इन पहिचान्यौ ।
सखी-भाव अति चाव महल के नित अधिकारी ।
पियहु सों बढ़ि हेत करत जिन पैं निज प्यारी ।
जग दान चलायो भक्ति को
ब्रज-सरवर-जल जलज खिलि ।
जान्यो वृंदाबन रूप हरिदास ब्यास हरिवंस मिलि ।६५

ये वृंदाबन के संत सब जुगल भाव के रँग रँगे ।
मौनीदास गुविंददास निंबार्कसरन जू ।
ललितमोहिनी चतुरमोहिनी आसकरन जू ।
सखी-चरन राधाप्रसाद गोवर्द्धन देवा ।
कंबल ललित गरीबदास भीमा सखि-सेवा ।
श्री वल्लभदास अनन्य लघु बिट्ठल मोहन रस पगे ।
ये वृंदाबन के संत सब जुगल भाव के रँग रँगे ।६६

रघुनाथ-सुअन पंडित-रतन श्री देवकिनंदन प्रगट ।
किय रसाब्धि नव काव्य कृष्ण-रस रास मनोहर ।
श्री गोकुल-सौस सेइ लहे अनुभव बहु सुंदर ।
पिता पितामह प्रपितामह की पंडितताई ।
भक्ति रीति हरि प्रीति भलें करि आपु निभाई ।
जानकी-उदर-अंबुधि-रतन पितु-गुन जिन मैं विदित खट।
रघुनाथ-सुअन पंडित-रतन श्री देवकिनंदन प्रगट ।६७

पीतांबर-सुत विद्या-निपुन पुरुषोत्तम वादींद्रजित ।
श्री वल्लभ पाछें बुधि-बल आचार्ज कहाए ।
निरनय बाद-बिबाद अनेकन ग्रंथ बनाए ।
गाड़ा पैं धुज रोपि जयति वल्लभ लिखि तापर ।
ग्रंथ साथ सब लिए फिरे जीतत चहुँ दिसि धर ।
श्री बालकृष्ण-सेवा-निरत निज बल प्रगटायो अमित।
पीतांबर-सुत-विद्या-निपुन पुरुषोत्तम वादींद्रजित ।६८

श्री द्वारकेश ब्रजपति व्रजाधीश भए निज कुल-कमल ।

सेवा भाव अनेक गुप्त इन प्रगट दिखाए ।
श्री युगल नित्य रस-रास कीरतन बहुत बनाए ।
शुद्धि पुष्टि अनुभवत उच्छलित रस हिय माहीं ।
समनेहु जिनकी वृत्ति कबहुं लौकिक-मय नाहीं ।
श्री वल्लभ को सिद्धांत सब थित
जिनके चित नित बिमल ।
श्री द्वारकेश व्रजपति व्रजाधीश भए निज कुल-कमल ।६९

श्री श्री हरिराय स्व-भक्ति-बल थानहि फिर बोलबाइयो ।
रसिक नाम सौं ग्रंथ रचे भाषा के भारे ।
नाम राखि हरिदास तथा संस्कृत के न्यारे ।
परम गुप्त रस प्रगट बिरह अनुभव जिन कीनो ।
सेवा महँ सब त्यागि सदा हरि के चित दीनो ।
हरि-इच्छा लखि बिनु समयहू मंदिर इन खुलवाइयो ।
श्री श्री हरिराय स्व-भक्ति-बल
नाथहि फिर बोलबाइयो ।७०

जो अनुभव श्री विट्ठल कियो सोइ दोऊ जी मैं उघट ।
सात सरूपहि फिर श्री जी पासहिं पधराए ।
पहिले ही की भाँति अन्नकूट भोग लगाए ।
सब रिपु उच्छव प्रगट एक रितु माहिं दिखाए ।
ह्रन परस करि सो कर फिर नहिं प्रभुहि छुआए ।
करि लाखन व्यय सेवा करी किय गोकुल मेवाड़ अट ।
जो अनुभव श्री बिट्ठल कियो सोइ दोऊ जी मैं उघट ।७१

लखि कठिन काल फिर आपुही आचारज गिरिधर भए ।
बालकपन खेलत ही मैं पाखान तरायो ।
बादी दक्षिण जीति पंथ निज सुदृढ़ दृढ़ायो ।
श्री मुकुंद भव-दुंद-हरन काशी पधराए ।
थापी कुल-मरजादा अनुभव प्रगट दिखाए ।
पूरे करि ग्रंथ अनेक पुनि आपहु बहु बिरचे नए ।
लखि कठिन काल फिर आपुही
आचारज गिरिधर भए ।७२

बारानसि प्रगट प्रभाव श्री स्यामा बेटी को भयो ।
श्री गिरिधर की सुता सतोगुन-मय सब अंगा ।
हरि-सेवा मैं चतुर पतित-पावनि जिमि गंगा ।
खट ऋतु छप्पन भोग मनोरथ करि मन-भायो ।
वृंदाबन को अनुभव कासो प्रगटि दिखायो ।
थिर थापी करि सब रीति निज
सुजस दसहु दिसि मैं छयो ।
बारानसि प्रगट प्रभाव श्री स्यामा बेटी को भयो ।७३

ये वल्लभ कुल के रत्न-मनि बालक सब भुव मैं भए ।
मोम चिरैया रचि कै श्री रनछोर उड़ाई ।
पुरुषोत्तम प्रभु-पद रचि लीला ललित सुनाई ।
बिट्ठलनाथ दयाल सतोगुन-मय बपु धारे ।
तैसेहि गोविंदलाल गोकुलाधीस पियारे ।
जीवन जी जनि-जीवन-करन बिबिध ग्रंथ बिरचे नए ।
ये बल्लभ कुल के रत्न-मनि बालक सब भुव मैं भए ।७४

अघ-निकर सूर-कर सूर-पथ सूर-सूर जग मैं उयो ।
बल्लभ सागर बिट्ठल जाहि जहाज बखान्यौ ।
जन-कवि-कुल-मद हर्‌यौ प्रेम नीके पहिचान्यौ ।
एक वृत्ति नित सवा लाख हरि-पद रच गाए ।
श्री वल्लभ बल्लभ अभेद करि प्रगट जनाए ।
जा पद-बल अब लौं नर सकल गाइ गाइ हरि गुनि जियो ।
अघ-निकर सूर-कर सूर-पथ सूर-सूर जग मैं उयो ।७५

श्री कुंभनदास कृपाल अति मूरति धारें प्रेम मनु ।
राधा-मानव बिनु कोउ पद जिन कबहुँ न गायो ।
बिरह-रीति हरि-प्रीति-पंथ करि प्रगट दिखायो ।
सुनत कृष्ण को नाम स्रवन हियरो भरि आवत ।
प्रेम-गमन नित नव पद रचि हरि सनमुख गावत ।
श्री बल्लभ-गुरुपद-जुग-पदुम प्रगट सरस मकरंद जनु ।
श्री कुभनदास कृपाल अति मूरति धारें प्रेम मनु ।७६

परमानँददास उदार अति परमानँद ब्रज बस लह्यो ।
हिय हरि-रस उच्छलित निरखि गुरु कर धरि रोक्यौ ।
जिनके दृग जुग जुगल रूप रसिकन अवलोक्यौ ।
लाखन पद रचि कहे बिरह व्यापी अनुछिन गति ।
सखी सखा वात्सल्य महातम भाव सिद्ध श्रुति ।
श्री वल्लभ प्रभु-पद प्रेम जों जागरूक जग जस लह्यौ ।
परमानँददास उदार अति परमानँद ब्रज बसि लह्यौ ।७७

श्री कृष्णदास अधिकार करि कृष्ण-दास्य अधिकार लह ।
अंतरंग हरि-सखा स्वामिनी के एकंगी ।
जासु गान मुनि नचत मुदित ह्वै ललित त्रिभंगी ।
जगत प्रीति अभिमान द्वेष हरि को अपनावन ।
इनके गुन औगुन प्रगटे तनहू तजि पावन ।
नव बार-बधू हरि भेंट करि बल्लभ-पद कर सुदृढ़ गह ।
श्री कृष्णदास अधिकार करि
कृष्ण-दास्य अधिकार लह ।७८

गोविंद स्वामी श्रीदाम-बपु सखा अंतरंगी भए ।
हरि सँग खेलत फिरत तुरग बनि कबहूँ धावत ।
भूख लगत बन छाक लेन तब इनहिं पठावत ।
अनुछिन साथहि रहत केलि परतच्छ निहारत ।
गाइ रिझावत हरिहि प्रेम जग में बिस्तारत ।
द्वै सै बावन पद जुगल रस-केलि-मए बिरचे नए ।
गोबिंद स्वामी श्रीदाम-बपु सखा अंतरंगी भए ।७९

श्री नंददास रस-रास-रत प्रान तज्यौ सुधि सो करत ।
तुलसिदास के अनुज सदा बिट्ठल-पद-चारी ।

अंतरंग हरि-सखा नित्य जेहि प्रिय गिरिधारी ।
भाषा मैं भागवत रची अति सरस सुहाई ।
गुरु आगें द्विज कथन सुनत जल माहिं डुबाई ।
पंचाध्यायी हठि करि रखि तब गुरुवर द्विज भए हरत ।
श्री नंददास रस-रास-रत प्रान तज्यौ सुधि सो करत ।८०

श्री दास चतुर्भुज तोक बपु सख्य दास्य दोऊ निरत ।
निज मुख कुंभनदास पुत्र पूरो जेहि भाख्यौ ।
गाइ गाइ पद नवल कृष्ण-रस नित जिन चाख्यौ ।
बिछुरि बिरह अनुभयो संग रहि जुगल केलि रस ।
सब छिन सोइ रग रँगे बल्लभी-जन के सरबस ।
सेयो श्री बिट्ठल भाव करि जगत-वासना सों बिरत ।
श्री दास चतुर्भुज तोक बपु सख्य दास दोऊ निरत ।८१

श्री छीत स्वामि हरि और गुरु प्रगट करि कै लखै ।
गुरुहि परिच्छन हेत प्रथम सनमुख जब आए ।
पोलो नरियर खोटो रुपया भेंट चढ़ाए ।
श्री बिट्ठल तेहि साचो किय लखि अचरज धारी ।
शरन गए कहि छमहु नाथ यह चूक हमारी ।
पद बिरचि सेइ श्रीनाथ कहँ बिविध गुप्त अनुभव चखे ।
श्री छीत स्वामि हरि और गुरु प्रगट एक करि कै लखे ८२

चौरासी परसंग मैं मम आयसु धरि सीस ।
छंद रचे ब्रजचंद कछु सुमिरि गोकुलाधीस ।।

अथ चौरासी वैष्णव प्रसंग

दामोदरदास दयाल भे सूत्र रूप यह माल के ।
जिन कहँ श्री प्रभु * कह्यौ कियो तेरे हित मारग ।
एक मात्र ये रहे रहस्यन के नित पारग ।
वल्लभ पथ के खंभ समर्पन प्रथम किए जिन ।
अनुदिन छाया सरिस संग रहि भेद लहे इन ।
रहिहैं जब लौं भूव पंथ यह अंतरंग नँदलाल के ।
दामोदर दास दयाल भे सूत्र रूप यह माल के ।८३

दृढ़ दास्य परम बिस्वास के कृष्ण-दास मेघन भये ।
जब गुरु वल्लभ बेदव्यास-ढिग मिलन पधारे ।
तीनि दिवस लौं जल बिनु ठाढ़े रहे दुआरे ।
निसि मैं गंगा तरि गुरु के हित चूड़ा लाए ।
करि प्रसन्न श्री प्रभुहि परम उत्तम बर पाए ।
गिरि-सिला हाथ रोकी गिरत भूमि परिक्रम सँग गये ।
दृढ़ दास्य परम बिस्वास के कृष्णदास मेघन भये ।८४

दामोदरदास कन्नौज के सँभलवार खत्री रहे ।
हरि सेयो तजि लाज सबै भय लीक मिटाई ।
नारी सिर घट धारि प्रगट गागरी भराई ।
तृन सम धन के मोह तजे सेवा हित धारी ।
अन्याश्रय को त्याग सदा भक्तन हितकारी ।
नित सेवत मथुरानाथ को प्रकट संप्रदा फल लहे ।
दामोदरदास कन्नौज के सँभलवार खत्री रहे ।८५

पद्मनाभदास कन्नौज कों श्री मथुरानाथ न तजे ।
नाम दास लै व्यास वृत्त प्रभु रूप लै त्यागी ।
भीषौ अनुचित जानि पुष्टि मारग अनुरागी ।
कौड़ी लकड़ी बेंचि भागवत कृत निरवाहे ।
छोला ही तें तोषि इष्ट ऐश्वर्ज न चाहे ।
सर्वज्ञ भक्त अरु दीन-हित जानि एक कृष्णहि भजे ।
पद्मनाभदास कन्नौज कों श्री मथुरानाथ न तजे ।८६

तनया पद्मनाभ-दास की तुलसा वैष्णव रुचि रपी ।
सपड़ी महाप्रसाद जाति-भय भगत न लीनी ।
जिय में यही बिचारि वैष्णवी पूरी कीनी ।
पै दोउन कों श्री मथुरापति कही सपन में ।
सपड़िहि महाप्रसाद जाति-भय करौ न मन में ।
श्री गोस्वामी हू मुदित भे सानुभावता अति लषी ।
तनया पद्मनाभ-दास की तुलसा वैष्णव रुचि रषी ।८७

पद्मनाभदास की बहू की ग्लानि गई सब जीय की ।
लिख्यौ कुष्ट-बिरतांत महाप्रभु निकट पठायो ।
सेवक दुख सुनि कै प्रभुहू कछु जिय दुख पायो ।
दृढ़ विश्वास सुहेत दई अज्ञा प्रभु सेवहु ।
वर पुरुषोत्तमदास कथा को समभ्यौ भेवहु ।
सेवत ही चारहि मास के भई पूर्व्व गति पीय की ।
पद्मनाभदास की बहू की ग्लानि गई सब जीय की ।८८

नाती पद्मनाभदास के रघुनाथदास सास्त्री रहे ।
श्रीगोस्वामी-चरन-कमल बंदे गोकुल मैं ।
पाई सुगम सुराह तिगुन-मय या बपु कुल मैं ।
श्री मथुरापति प्रगट भाव-बस बिहरत भूले ।
या कुल की मरजाद जान जापैं अनुकूले ।
परमानँद सोनी संग तें परम भागवत पद लहे ।
नाती पद्मनाभदास के रघुनाथदास सास्त्री रहे ।८९

छत्रानी रजो अडेल की परम भागवत रूप ही ।
श्राद्ध लक्षमन भट्ट सरपि कछु थोरो हो तहँ ।
महाप्रभुन घृत हेत पठाए सेवक तेहि पहँ ।
दिए नहीं बहु भाँति माँगि थकि पारिष लीने ।
इन ठाकुर घी देनो अति अनुचित दृढ़ कीने ।
स्राधहुदिन प्रभुहि जिवाँइकै लोकमेटि हरि-गति लही ।
छत्रानी रजो अडेल की परम भागवत रूप ही ।९०

* चौरासी वार्ता प्रसंग में प्रभु शब्द से श्री महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी का नाम जानना ।

पुरुषोत्तमदास सुसेठ-वर छत्री श्री काशी रहे ।
नाम दान सनमान जासु गिरिजापति कीने ।
निसि दिन भैरो द्वारपाल सिव सासन दीने ।
अन्याश्रय गत विरज मदनमोहन अनुरागी ।
महाप्रभुन की कृपापात्रता जिन सिर जागी ।
जिन घर नंदादिक कृप सों प्रगटि जनम उत्सव लहे ।
पुरुषोत्तमदास सुसेठ-बर छत्री श्री काशी रहे ।९१

जाई पुरषोत्तमदास की रुकमिनि मोहन-मदन-रत ।
गंगा-स्नानहु सों बढ़ि जिन सेवा गुनि लीनी ।
श्री गोस्वामी श्री मुख जासु बड़ाई कीनी ।
गहन नहानी एक बार चौबीस बरष में ।
सेठों सुनि भे मगन भजन सुख-सिंधु हरष में ।
सेवक स्वामी एकै अहैं यातैं नित एकतै रहत ।
जाई पुरुषोत्तमदास की रुकमिनि मोहन-मदन-रत ।९२

गोपालदास तिन ननय कों सुमिरत श्री मोहन-मदन ।
भगवद नामस्मरन हुँकारी प्रगट आप भर ।
श्री गोस्वामी श्री मुख जिनहिं सराहत निरभर ।
भगवद-लीला सदा नित्त नव अनुभव करते ।
तिलक सुबोधनि पाठ कीरतन चित हित धरते ।
पुरुषोत्तमदास सुबंस में अति अनुपम अवतंस मन ।
गोपालदास तिन तनय कों सुमिरत श्री मोहन-मदन ।९३

सारस्वत ब्राह्मण रामदास ठाकुर-हित चाकर भये ।
देनो दियो चुकाइ जासु नवनीत पियारे ।
श्री आचारज महाप्रभुन धनि धन्य उचारे ।
बाल-भाव निज इष्टहि सेवत बालक पाये ।
सेवा मैं बसु जाम लीन तन धन बिसराये ।
नित सकल काम-पूरन परम दृढ़ बिस्वास सरूप ये ।
सारस्वत ब्राहमण रामदास ठाकुर-हित चाकर भये ।९४

गदाधरदास द्विज सारस्वत अतिहि कठिन पन चित धरे।
जजमानाश्रय भोग मदन-मोहन के रोषे ।
जो आवै सो सकल तुरत अपने अभिलाषे ।
जा दिन नहिं कछु मिलै छानि जल अर्पन करते ।
भूषे ही रहि आप वैष्णवनि हित अनुसरते ।
सागौ स्वादित अति जासु घर भक्त भाव सों नहिं टरे।
गदाधरदास द्विज सारस्वत अतिहि
कठिन पन चित धरे ।९५

बेनीदास माधवदास दोउ श्री नवनीत-प्रिया निरत ।
बेनीदास महान भागवत बड़े भ्रात हे ।
विषई माधवदास अनुज पैं नहिं रिसात हे ।
बाँटि सकल धन भए बिलग कामिनि अनुकूले ।
मुक्तमाल लिय मोल इष्ट हित आपुहि भूले ।
प्रगटे ठाकुर चौरन लगे भये बिषय तें तब बिरत ।
बेनीदास माधवदास दोउ श्री नवनीत-प्रिया निरत ।९६

हरिबंस पाठक सारस्वत ब्राह्मण श्री कासी निवस ।
द्वै दिन पटने रहे तहाँ हाकिम चित ऐसी ।
अनुसरिहैं हम तुरत करैं ये आज्ञा जैसी ।
सपने ठाकुर कही डोल झूलन हम चाहत ।
हाकिम तें ह्वै बिदा तयारी करी बचन रत ।
श्री काशी में आए तुरत डोल झुलाए प्रेम-बस ।
हरिबंस पाठक सारस्वत ब्राह्मण श्री काशी निवस ।९७

गोविंददास भल्ला तज्यौ प्रानहु प्रिय निज इष्ट हित ।
चारि भाग निज द्रव्य प्रभुन आज्ञा तें कीने ।
एक भाग श्री नाथै इक निज गुरु कहँ दीने ।
एक भाग दै तजी नारि एक आपुहि लीने ।
सोउ वैष्णवन हेत कियो सब व्यय भय हीने ।
तजि देव अंस गुरु अंस लहि सेवा केसवराय नित ।
गोविंददास भल्ला तज्यौ प्रानहु प्रिय निज इष्ट हित ।९८

अम्मा पैं नित अनुकूल श्री बालकृष्ण ठाकुर प्रगट ।
अम्मा बालक दोय ताहि करि प्यार पुकारैं ।
मरे एक के ता रोवत हरि दुख जिय धारैं ।
रोवत रोवत मरो सोऊ सुत बहु बिलाप कर ।
श्री गोस्वामी समुझावन हित आये तेहि घर ।
मंदिर को टेरा खोलि कै देषे पय पीवत निकट ।
अम्मा पैं नित अनुकूल श्री बालकृष्ण ठाकुर प्रगट ।९९

गंजन धावन क्षत्री हुते श्री नवनीत-प्रिया सुखद ।
जिन बिन ठाकुर महाप्रभू धरहू नहिं रहते ।
जे ठाकुर बिन अतिहि दुसह दुख सहत न कहते ।
छन बिछुरत इन देह दहत जर वे न अरोगत ।
इन दोउन की प्रीति परस्पर कौन कहि सकत ।
सब भावहि बस नित ही रहे दिये जिनहिं निज परम पद।
गंजन धावन छत्री हुते श्री नवनीत-प्रिया सुखद ।१००

ब्रह्मचारी नरायनदास जू बसत महाबन भजत-रत ।
धन कहँ गुन्यौ बिगार देखि निज सेज चहूँ कित ।
दिय बोहारि फेंकवाइ बहुरि लिपवायो हँसि हित ।
श्री गोकुल चन्द्रमा षीर खाई जिनके घर ।
आरोगाई प्रभुन कही मति डरौ जाति-डर ।
तबहीं तै सषड़ी खीर नहिं यहै रीति या पुष्टि मत ।
ब्रह्मचारि नरायनदास जू बसत महाबन भजन रत ।१०१

छत्रानी एक महावनहि सेवत नित नवनीत-प्रिय ।
पृथ्वि-परिक्रम करत महाप्रभु तहाँ पधारे ।
पाये श्रुति-सरवस्व आपने प्रान अधारे ।
चार वेद के सार चार हरि विग्रह रूरे ।

आस पास ही बसन मनोरथ निज-जन पूरे ।
तिन मैं यह प्रेम-सुरंग रँगि रही धरे अति भक्ति हिय।
छत्रानी एक महावनहिं सेवत नित नवनीत-प्रिय।१०२

जियदास भजन-रत जाम चहुँ श्री लाडिले सुजान के ।
उभय तनय पुरुषोत्तमदास छबीलदास जिन ।
सेवा कीनी कछुक दिवस इन पै संतति बिन ।
तिनके मामा कृष्णदास पुनि सेवा कीनी ।
तिन पीछे तिन मित्र सोई सेवा सिर लीनी ।
तहुँ डेढ़ बरस रहि पुनि गए मंदिर निज प्रिय प्रान के ।
जियदास भजन-रत जाम चहुँ श्री लाडिले सुजान के ।१०३

श्री ललित त्रिभंगी लाल की सेवा देवा सिर रही ।
देवा पत्नी सहित सरस सेवा चित दीन्ही ।
तिनहीं लौं तहँ रहे ठाकुरौ भावहि चीन्ही ।
रहे तनय तिन चारि लई नहिं तिनतें सेवा ।
भाव-बस्य भगवान जासु कर्मादि कलेवा ।
अंतरध्यान भे सु भौन तें निज इच्छा बिचरन मही ।
श्री ललित त्रिभंगी लाल की सेवा देवा सिर रही ।१०४

रसिकाई दिनकरदास की कथा सुननि में अकथ ही ।
तुरतहि धावत सुनत महाप्रभु-कथा कहत अब ।
काचिहि लीटी पाइ लेत सुधि रहति न तन तब ।
जानि कही प्रभु अति अनुचित तुम करी कथा-हित ।
भोग लगाइ प्रसाद पाइ अब तें ऐहौ नित ।
येई श्रोता अब आजु तें श्री मुख यह आपै कही ।
रसिकाई दिनकरदास की कथा सुननि में अकथ ही।१०५

मुकुन्ददास कायस्थ हे जिन मुकुंद-सागर किये ।
श्री आचारज महाप्रभुन-पद प्रीति जिनहिं अति ।
याही तें प्रभु तिलक सुबोधनि भै तिन की मति ।
निज मुख श्री भागवत कहैं नहिं सुनैं सु अपर मुष ।
कर्म सुभासुभ जनित पंडितनि सुलभ न वह सुष ।
बरनाश्रम धर्मनि बंचकनि सहजहि में इन ठगि लिये।
मुकुंददास कायस्थ हे जिन मुकुंद-सागर किये ।१०६

छत्री प्रभुदास जलोटिया टका मुक्ति दै दधि लई ।
यह मारग अति विषम कृष्ण चइतन्य सुनत ही ।
मुर्छित ह्वै ह्वै जाहिं सु जिन कहँ सुलभ सुषद ही ।
वृंदावन प्रति बृच्छ पत्र ब्रज प्रगट दिखाये ।
अवगाहन नहिं दीन प्रभुन परसाद पवाये ।
सेवा श्री मोहन-मदन की जिनहिं सावधानी दई ।
छत्री प्रभुदास जलोटिया टका मुक्ति दै दधि लई ।१०७

प्रभुदास भाट सिंहनंद के तीर्थ प्रथोदिक निंदियो ।
सेवत नीकी भाँति ठाकुराहिं बृद्ध भये अति ।
तीर्थ प्रथोदिक पहुँचाये सब अन्याश्रित मति ।
अन्याश्रय लषि सावधान आये निज घर कहँ ।
करि सेवा निज सेव्य ललन की तजी देह तह ।
निंदा करि कीरति चौधरी मार षाइ पद बंदियो ।
प्रभुदास भाट सिंहनंद के तीर्थ प्रथोदिक निंदियो ।१०८

पुरुषोत्तम दास जु आगरे राजघाट पै रहत हे ।
श्री गोस्वामी एक समै आये तिनके घर ।
भई रसोई भोग समर्प्यौ किए अनौसर ।
पुनि सादर निज सेव्य ठाकुरै के भाजन में ।
आरोगाये जस आरोगे नंद-भवन में ।
श्री ठाकुर ही की सेज पै पौढ़ाए सेवत रहे ।
पुरुषोत्तमदास जु आगरे राजघाट पै रहत हे ।१०९

घर तिपुरदास को सेरगढ़ हुते सुकायथ जाता के ।
श्री हरिके रंग रँगे प्रभुन-पद-पदुम प्रीति अति ।
सही कैद दइ जिनहिं तुरुक बहु मार मंद मति ।
बिन चरनोदक महाप्रसाद लिए न पियत जल ।
इन कहँ खेद जानि ठाकुरहु परत न छन कल ।
गज्जी की फरगुल इनहिं की हरे सीत श्रीनाथ के ।
घर तिपुरदास को सेरगढ़ हुते सुकायथ जात के ।११०

पुरनमल छत्री प्रभुन के कृपापात्र अति ही रहे ।
आयसु लहि श्रीनाथ-हेतु मंदिर समराए ।
सुभ मुहूर्त में जहाँ श्रीनाथहि प्रभु पधराए ।
अति सुगंध अरगजा समर्पे जिन अपने कर ।
दिय ओढ़ाय आपने उपरना गोस्वामी बर ।
गद्दल परसादी नाथ के बरस बरस पावत रहे ।
पूरनमल छत्री प्रभुन के कृपापात्र अति ही रहे ।१११

यादवेंद्रदास कुम्हार श्री गोस्वामी-आयसु-निरत ।
श्री गोस्वामी संग कहूँ परदेस चलत जब ।
एक दिवस की सामग्री के भार बहत सब ।
सेवा करहिं रसोई निसि में पहरा देते ।
मास दिवस के काम एक ही दिन करि लेते ।
जो कूप खोदि निज कर-कमल खारो जल मीठो करत ।
यादवेंद्रदास कुम्हार श्री गोस्वामी-आयसु-निरत ।११२

गोसाँईदास सारस्वत देह तजी बदरी बनैं ।
ठाकुर-सेवा महाप्रभुन इन सिर पधराए ।
सेये नीकी भाँति ठाकुरहि अतिहि रिझाए ।
ठाकुर आयसु पाइ बदरिकास्रमहि पधारे ।
ठाकुर सेवा काहु भागवत माथे धारे ।
जिन यह इनसों निरधार किय ठाकुर देव न इहि तनैं ।
गोसाँईदास सारस्वत देह तजी बदरी बनें ।११३

माधवभट कसमीर के मरे बालकहि ज्याइयो ।
अतिहि दीन ह्वै लिषी सुबोधनि महाप्रभुन पैं ।
सेवा में अपराध परयौ अनजाने उनपैं ।
लघु बाधा में तजी चोरनि सर लागे ।
श्री आचारज महाप्रभुन-पद रति-रस पागे ।
श्रीनाथौ जिनकी कानि तें निज पासहि पधराइयो ।
माधवभट कसमीर के मरे बालकहि ज्याइयो ।११४

गोपालदास पै सदन बहु पथिकनि के बिस्राम हित ।
आवत श्री द्वारिका पद्मरावल निवसे जहँ ।
सुनि गोपालदास सेवा सो पहुँचि गए तहँ ।
पूछि कुसल लषि द्वारिकेस दरसन अभिलाषी ।
कही प्रगट रनछोर अडेल लषौ निज आँषी ।
सुनि बिरजो माव पटेल लै आइ दरस लहि भे मुदित ।
गोपालदास पै सदन बहु पथिकनि के बिस्राम हित ।११५

दुज साँचोरे रावल पदुम श्री रनछोर कही करी ।
परमारथी गुपालदास सिषये ये आये ।
महाप्रभुन दरसन करि निज अभिमत फल पाये ।
लै प्रभु-पद चंदन चरनामृत भे विद्याधर ।
श्री ठाकुर आयसु तें गये कोऊ सेवक घर ।
पथ बहु रोटी अरपन करी घी चुपरी न रुषी परी ।
दुज साँचोरे रावल पदुम श्री रनछोर कही करी ।११६

पुरुषोत्तम जोसी दुज हुते कृष्णभट्ट पैं अति मुदित ।
आये ये उज्जैन पद्मरावल के सुत-घर ।
रहे तहाँ पै तिन सब इनको कीन अनादर ।
बड़े पुत्र तिन कृष्ण भट्ट निज घर पधराये ।
राखे तहँ दिन चारि प्रसादहु भले लिवाये ।
सुनि सतसंगी हरिवंस के गोस्वामी मुष भगत हित ।
पुरुषोत्तम जोसी दुज हुते कृष्णभट्ट पैं अति मुदित ।११७

ऐसे भूले रजपूत कों जगन्नाथ लीने सरन ।
श्री ठाकुर अर्पित अशुद्ध गुनि अति दुख पाये ।
ताती षीर समर्पि सिषे जो प्रभुन सिषाये ।
ज्वार भोग अनकुट पैं पेट कुपीर उपाई ।
इरषा सों दुरजन इन पैं तरवार चलाई ।
तेहि श्री कर सों गहि कै कही मारै मति ये महत जन ।
ऐसे भूले रजपूत कों जगन्नाथ लीने सरन ।११८

जननी नरहर जगनाथ की महा प्रभुन-छबि छकि रहीं ।
इक इक मुहर भेंट हित दै पठये दोउ भाइन ।
नाम निवेदन हेतु प्रभुन पैं अति चित चाइन ।
मिले कृपा करि दियो दरस पुरुषोत्तम नगरी ।
भई स्वरूपासक्ति तुरत भूली सुधि सगरी ।
पुनि माँगि भेंट की मुहर प्रभु लिए सरन दोउन तहीं ।
जननी नरहर जगनाथ की महाप्रभुन-छबि छकि रहीं ।११९

नरहर जोसी जगनाथ के भाई बड़े महान हे ।
भोग अरोगन आये सिसु ह्वै अपन बिसारी ।
पै इन प्रभु की कानि रंचकौ चित न बिचारी ।
सावधान भे सुनत अनुज सों प्रभु की करनी ।
गोस्वामी के सरन किये जजमान स-घरनी ।
तेहि जरत बचाये आगि तें ऐसे ये सुषदान हे ।
नरहर जोसी जगनाथ के भाई बड़े महान हे ।१२०

साँचोरा राना व्यास दुज सिद्धपूर निवसत रहे ।
जगन्नाथ जोसी गर मुद्गर तपित लाइकै ।
हाकित पैं अविकारी इनकों किये जाइकै ।
जिनकी मति लहि राजपुतानी सती भई नहिं ।
शुद्ध होइ आई ताकों तिन दिये नाम तहिं ।
पुनि सरनागत करि प्रभुन के पर-उपकारी पद लहे ।
साँचोरा राना व्यास दुज सिद्धपूर निवसत रहे ।१२१

धनि राजनगर-बासी हुते रामदास दुज सारस्वत ।
श्री नटवर गोपाल पादुका गुरु सेयौ इन ।
श्री रनछोर सु कहे ग्रहन किय निज नारिहु जिन ।
ठाकुर ही आयसु तें तिय कों नामहु दीने ।
तब ताके कर महाप्रसाद मुदित मन लीने ।
पुनि नाम निवेदन प्रभुन पैं करवाये कहि कानि सत ।
धनि राजनगर-बासी हुते रामदास दुज सारस्वत ।१२२

गोविंद दूबे साँचोर द्विज नवरत्नहि नित पाठ किय ।
श्री गोस्वामी-पत्र पाइ मीरहि द्रुत त्यागी ।
श्री ठाकुर रनछोर-बारता-रस-अनुरागी ।
प्रभुन थार के महाप्रसाद दिये नहिं इक दिन ।
सकल वैष्णवनि सहित उपास किये तिहि दिन तिन ।
सुनि भूखे श्री रनछोर सो थार महापरसाद दिय ।
गोविंद दूबे साँचोर द्विज नवरत्नहि नित पाठ किय ।१२३

राजा माधौ दूबे हुते दोउ भाई साँचोर दुज ।
रामकृष्ण हरिकृष्ण बड़े छोटे दोउ भाई ।
बड़े पढ़े बहु कथा कहैं लघु मूढ़ सदाई ।
भावज की कटु सुनि दूबे के सरनहिं आये ।
अष्टोत्तर सतनाम बार द्वै जपि सब पाये ।
पुनि पाइ नाम श्रीप्रभुन पैं भे निज कुलके कलस-धुज ।
राजा माधौ दूबे हुते दोउ भाई साँचोर दुज ।१२४

जननी श्लोकोत्तम दास कों नाथ सेवकनि मिलि कहयौ ।
करैं रसोई प्रीति समेत परोसि लिवावैं ।
याही तें श्रीनाथ सेवकनि कों अति भावैं ।
श्री गोस्वामी रीझि रहे लषि शुद्ध प्रेम पन ।
रस वात्सल्य अलौकिक जानि सिहाहिं मनहिं मन ।
मन शुद्धाद्वैत सरूप मति कृष्णभक्ति तजि तन लहयौ ।
जननी श्लोकोत्तमदास कों नाथ
सेवकनि मिलि कहयौ ।१२५

ईश्वर दूबे साँचोर के मुखिया भे श्रीनाथ के ।
श्लोकोत्तम जन नाम धन्य येऊ पुनि पाये ।
नाथ सेवकनि अधिक धीय दै मातु कहाये ।
अविरल भक्ति विशुद्ध गुसाई सों इन लीन्हीं ।
महाप्रभुन पथ प्रीति रीति इन दृढ़ करि चीन्ही ।
पाई सेवा श्रीअंग की सरन अनाथनि नाथ के ।
ईश्वर दूबे साँचोर के मुखिया भे श्रीनाथ के१२६

वासुदेव जन जन्मस्थली काजी मर-मरदन किये ।
श्री गोपीपति मुहर गुसाईं पैं पहुँचाई ।
करी दंडवत लाइ पहुँच पत्रिका सुहाई ।
मथुरा तें आगरे गए आये जुग जामैं ।
सीहनंद वैष्णवनि उछाहनि में अभिरामैं ।
मन डेढ़ नित्त ये खात है ढ़ाल गुरज इक कर लिये ।
वासुदेव जन जन्मस्थली काजी मद-मरदन किये ।१२७

बाबा बेनू के अनुजवर कृष्णदास घघरी रहे ।
श्री केसव के कीर्तनिया ये अरु जादव जन ।
कृष्णदास तहँ गिरिवरधर ध्यावत त्यागे तन ।
नाथ दरस करि गिरि नीचे बेनु तन त्यागे ।
जादवदासौ सर रचि नाथ धुजा के आगे ।
कहि नाथ देह तजि आगि धरि बायु बहे तिन तन दहे ।
बाबा बेनू के अनुजवर कृष्णदास घघरी रहे१२८

जगतानंद दुज सारस्वत थानेसर निवसत रहे ।
एक श्लोक के अर्थ प्रभुन त्रै जाम बिताये ।
कही मास द्वै तीनि बीतिहै सुनि सिर नाये ।
देहु नाम इन बिनय करी तब प्रभु अपनाये ।
पुनि भहाप्रभुन को नित निज घर पधराये ।
तहँ नित सेवा विधि तिनहिं कहि सावधान सेवन कहे ।
जगतानंद दुज सारस्वत थानेसर निवसत रहे ।१२९

दोऊ भाई छत्रो हुते महाप्रभु-रस रँग रये ।
आनँददास बड़े भाई नित बैठि अनुज सँग ।
महाप्रभुन के चरित कृष्ण गुन कहत पुलकि अँग ।
सोइ जात जब दास बिसम्भर भरत हुंकारी ।
भरत आप तब श्री हरिजू निज जन-हितकारी ।
कहि कथा पूछि अनुजहि मुदित जानि ठाकुरहि ठगि गये ।
दोऊ भाई छत्री हुते महाप्रभुन-रस रँग रये ।१३०

इकं निपट अकिंचन ब्राह्मनी जिन हरि कहँ निज कर लहे ।
माटी के सब पात्र सदन साँकरो सुहायो ।
वृद्वि भई निज ठाकुर रत अपरस बिसरायो ।
लषि वैष्णव श्री महाप्रभुन पधराये तेहि घर ।
प्रीति भाव लखि भे प्रसन्न अति ही जिय प्रभुवर ।
सेवकन कह्यौ मरजाद तजि इन प्रभु-पद दृढ़ करि गहे ।
इक निपट अकिंचन ब्राह्मनी जिन
हरि कहँ निज कर लहे ।१३१

छत्रानी इक हरि-नेह-रत वत्सलता की खानि ही ।
दिन दस के लडुआ इक ही दिन करिकै राखे ।
सो प्रभु आप उठाइ अंक लै तुरतहि चाखे ।
यह मरजादा भंग देखि रोई भय होई ।
आरति के हित कियो कह्यौ तब प्रभु दुख जोई ।
तब नित सामग्री नव करति ऐसी चतुर सुजानि ही ।
छत्रानी इक हरि-नेह-रत वत्सलता की खानि ही ।१३२

समराई हठ करि प्रभुन कों निज कर भोग लगाइयो ।
सास गोरजा महाप्रभुन के दरस पधारी ।
तब यह हरि सनमुख लाई रच रुचि कै थारी ।
जब न अरोगे तब इन कछु आपहु नहिं खायो ।
ऐसे ही हठ करि जल बिनु दिन कछुक बितायो ।
तब आपु प्रगट ह्वै प्रेम सों जाल लैं याहि पिवाइयौ ।
समराई हठ करि प्रभुन कों
निज कर भोग लगाइयो ।१३३

दासी कृष्ण मति रुचि भरी गुरु-सेवा मैं अति निरत ।
जब गोस्वामी कहँ चतुर्थ बालक प्रगटाए ।
तब श्री बल्लभ गोस्वामी बर नाम धराए ।
कृष्ण भाख्यो इनकों गोकुलनाथ पुकारो ।
तासों जग में यहै नाम सब लेत हँकारो ।
गोस्वामी ह्र जा कानि सों यहै नाम भाखे तुरत ।
दासी कृष्णा मति रुचि भरी
गुरु-सेवा मैं अति निरत ।१३४

श्री बूला मिश्र उदार अति बिनु रितुह्र बालक दियो ।
जिजमानहि बरवस एक ही छंद सुनाई ।
करम लिखी ह्र उलटन पतनी गोद भराई ।
छत्री को इन सकल मनोरथ पूरन कीनो ।
करुना चित मैं धारि दान बालक को दीनो ।
हरि-गुरु-बल जो मुख सों

कह्यौ सोई हठ करि कै कियो ।
श्री बूला मिश्र उदार अति बिनु रितुहू बालक दियो ।१३५

मीराबाई की प्रोहिती रामदास जू तजि दई ।
हरि-गुरु परम अभेद भाव हिय रहत सदाई ।
याही तें गुरु-कीरति इन हरि-सनमुख गाई ।
मीरा भाख्यौ हरि-चरित्र गाओ द्विजराई ।
सुनि अति कोपे इन जाने नहिं वल्लभराई ।
लखि द्वैध भाव तजि गाँव सों दूर बसे मति गुरु भई ।
मीराबाई की प्रोहिती रामदास जू तजि दई ।१३६

सेवक गोबर्द्धननाथ के रामदास चौहान हे ।
जब प्रगटे प्रभु प्रथम गोबरधन गिरि के ऊपर ।
नाम नवल गोपाललाल त्रय-दमन मनोहर ।
तब श्री बल्लभ इनकों सेवा हरि की दीनी ।
रहैं मँड़ैया छाइ परम रति मैं मति भीनी ।
नित ब्रज को गारस अरपि कै सेवत हरि सुख-खान हे ।
सेवत गोबर्द्धननाथ के रामदास चौहान हे१३७

द्विज रामानंद बिछिप्त बनि जगहि सिखाई प्रेम-बिधि ।
गुरु रिसि करि कै तज्यौ तऊ हरि जेहि नहिं त्याग्यौ ।
दरसायो सिद्धांत यहै पथ को अनुराग्यौ ।
बिकल पथहि पथ फिरत खात तन की सुधि नाहीं ।
निरखि जलेबी हरिहि समर्पी अति चित-चाही ।
ताको रस हरि के बसन मैं देख्यौ गुरुवर भावनिधि ।
द्विज रामानंद बिछिप्त बनि
जगहि सिखाई प्रेम-बिधि ।१३८

छीपा-कुल-पावन भे प्रगट विष्णुदास वादींद्र-जित ।
हरि-सेवक बिन लेत न जलहू प्रेम बढ़ावन ।
भट्टनहू के परस लेत नहिं जानि अपावन ।
श्री गोस्वामी-चरन-कमल-मधुकर ये ऐसे ।
स्वाती-अंबर कों चातक चाहत है जैसे ।
धनि धनि जिनके प्रेम-पन अन्याश्रय गत धीर-चित ।
छीपा-कुल-पावन भे प्रगट विष्णुदास वादींद्र-जित ।१३९

जन-जीवन प्रभु की आनि दै मेघनि नहिं बरसन दये ।
एक समै श्री महाप्रभू दरसन करिबे हित ।
आवत हे सब सीहनंद के वैष्णव इक चित ।
लागे करन रसोई मग में घन घिरि आये ।
निहचै जानि अकाज अनन्यनि अति अकुलाये ।
चढ़ि आई गुरु की कानि चित मघवा-मद जिन हरि लये ।
जन-जीवन प्रभु की आदि दै मेघनि नहिं बरसन दये ।१४०

भगवानदास सारस्वतै दई प्रभुन श्री पाँवरी ।
श्री आचारज जाइ बिराजे इनके घर जहँ ।
नित उठि प्रातहि करहिं दंडवत ये सादर तहँ ।
तातें कोउ नहिं धरत पाव तेहि पूजित ठौरहि ।
ठाकुर जिन सों सानुभाव कहिए का औरहि ।
सेये जिन अपन बिसारि कै भरी निरंतर भाँवरी ।
भगवानदास सारस्वतै दई प्रभुन श्री पाँवरी ।१४१

भगवानदास श्रीनाथ के हुते भितरिया सुखद अति ।
कछु सामग्री दाभि गई इक दिन अनजाने ।
गोस्वामी सेवा नें बाहिर किए रिसाने ।
सुनि जन अच्युत गोस्वामी सों रोइ बिनय की ।
नाथ हाथ गति प्रभु संबंधी जीव निचय की ।
सुनि कर गहि लै गिरिराज पै कही सेइ अबतें सुमति ।
भगवानदास श्रीनाथ के हुते भितरिया सुखद अति ।१४२

दुज अच्युतदास सनोड़िया चक्रतीर्थ पै रहत हे ।
आवैं नित सिंगार समै श्रीनाथ-दरस हित ।
पुनि निज थल कों जात हुते ऐसो साहस चित ।
नाथ-परिक्रम दंडवती इन तीन करी जब ।
श्री गोस्वामी श्री-मुख करी बड़ाई बहु तब ।
हे गुनातीत ये भगवदी प्रभुन-भगति रस बहत हे ।
दुज अच्युतदास सनोड़िया चक्रतीर्थ पै रहत हे ।१४३

दुज गौड़ दास अच्युत तहीं प्रभु बिरहानल तन दहे ।
सेवा पधराई श्री मोहन मदन लाल की ।
आपहु बैठे पाट प्रगटि तन छबि रसाल की ।
सेये नीकी भाँति मदन-मोहन रिझवारे ।
श्री गोस्वामी जिनहिं नमत लषि अपन बिसारे ।
प्रभु-असुर-विमोहन-चरित लषि बद्रिनाथ दरसन लहे ।
दुज गौड़ दास अच्युत तहीं प्रभु बिरहानल तन दहे ।१४४

श्री प्रभुन सरूप सुजान सुभ अच्युत अच्युतदास द्विज ।
प्रभु सँग पृथ्वी-परिक्रम करि पद-पाँवरि पूजत ।
प्रभु के लौकिक करम धरम तिन कहँ नहिं सूझत ।
जिन लषि नर सुर असुर बिमोह परत भव-सागर ।
गुनातीत प्रभु-चरित-मगन मन जन नव नागर ।
मोहित जन लषि प्रभु दरस दै कहे सगुन प्रागट्य निज ।
श्री प्रभुन सरूप सुजान सुभ
अच्युत अच्युतदास द्विज ।१४५

नरायनदास प्रभु-पद-निरत अंबालय में बसत हे ।
नृप-नौकर अवसर न पावते प्रभु दरसन कों ।
उत्कंठित दिन राति धन्य धनि जिनके मन कों ।
कब जैहौ भैया श्री वल्लभ के दरसन हित ।
चाकर राषे सुरति देन कों यों छन छन तिन ।
बहु भेंट पठावत हे प्रभुहि ऐसे ये भागवत हे ।
नरायनदास प्रभु-पद-निरत अंबालय में बसत हे ।१४६

नरायनदास भाट जाति मथुरा में निवसत रहे ।

जिनकों आयुस दई मदनमोहन गुनि प्रभु-जन ।
बाहिर मुहिं पधारउ काढ़िहों गुप्त इतै बन ।
मथुरा तें निकसाइ तुरत बाहिर पधराये ।
पुनि श्री गोपीनाथ सिंहासन पै बैठाए ।
तातें दरसन करि सबै सहजहि अभिमत फल लहे ।
नारायनदास भाट जाति मथुरा में निवसत रहे ।१४७

नारिया नरायनदास भे सरन प्रभुन के अनुसरे ।
पातसाह ठट्ठा के ये दीवान हेत हे ।
दुसह दंड में परि नित पाँच हजार देत हे ।
रुपये लाख पचास भरन लौं कैद किये तिन ।
इक दिन के द्वै गुर-भाइन को देइ दिये जिन ।
छुटि पातसाह सों साँच कहि सहस मुहर प्रभु-पद धरे ।
नारिया नारायनदास भे सरन प्रभुन के अनुसरे ।१४८

छत्रानी एक अकेलियै सीहनंद मैं बसत ही ।
श्री नवनीत-प्रिया की करति अकिंचन सेवा ।
तरकारी हित सिसु लौं झगरत जासों देवा ।
माया विद्या अन-सषड़ी सषड़ी कै त्यागी ।
भावहि भूषे घी चुपरी रोटिहि अनुरागी ।
माया विसिष्ट प्रगटत सदा प्रेमहि तें प्रभु तुरत ही ।
छत्रानी एक अकेलियै सीहनंद मैं बसत ही ।१४९

कायथ दामोदरदास जिन श्री कपूररायहि भज्यौ ।
जिनकी जुवती हुती बीरबाई प्रसूतिका ।
श्री ठाकुर-सेवा की सोई सुचि बिभूतिका ।
लई सूतकौ मैं सेवा जासो प्रभु पावन ।
सेवक प्रभुन स्वरूप होत नहिं कबहुँ अपावन ।
नहिं आतम सुद्धासुद्ध कहुँ सोइ प्रभु सोइ सेवक सज्यौ ।
कायथ दामोदरदास जिन श्री कपूररायहि भज्यौ ।१५०

छत्री दोउ स्त्री पुरुष हे रहे आइ सिहनंद में ।
निपटै लघु घर हुतो मेड़ ठाकुर पौढ़ाए ।
जिनके डर सों सोवत निसि आँगन सचुपाए ।
पावस रितु में भींजत जानि पुकारि कही सुनि ।
घर मैं सोवहु भींजौ मति न करौ ऐसो पुनि ।
तौऊ साँस न पावै वजन सोये जा आनंद में ।
छत्री दोऊ स्त्री पुरुष हे रहे आइ सिहनंद में ।१५१

श्री महाप्रभुन सूतार घर श्रम पिछानि पग धारते ।
प्रभुन दरस बिन किये रहे नहिं जे एकौ दिन ।
छुटे सकल गृह-काज भये घर के सब सुष बिन ।
याही तें प्रभु आपै आवत हुते सदन जिन ।
बहुत बारता करत हुते धनि जिनसों अनुदिन ।
पै दिन चौथे पचयें कछु जननी रिस जिय धारते ।
श्री महाप्रभुन सूतार घर श्रम पिछानि पग धारते ।१५२

अन्य मारगी मित्र इक छत्री सेवक अति बिमल ।
अन्य मारगी भवन नेह बस गए एक दिन ।
किये पाक तेहि ठाकुर आगे नाथ अरपि तिन ।
भोग सराये ताहि लिवाये लिय आपौ पुनि ।
भूषे ठाकुर ताहि जगाय कही सब सों सुनि ।
परभाव जानि या पंथ को भयो सरन सोऊ बिकल ।
अन्य मारगी मित्र इक छत्री सेवक अति बिमल ।१५३

चित लघु पुरुषोत्तमदास के गुरु ठाकुर मैं भेद नहिं ।
श्री आचारज महाप्रभुन-पद रति रस-भाने ।
आपै के गुन श्रवन कीरतन सुमिरन कीने ।
आपै कहँ आतम अरपे सेध पूजे जन ।
सषा दास आपहि के बंदे आपहि को इन ।
आपहु जिनकों अति ही चहे भक्ति भाव धरि जीय महिं ।
चित लघु पुरुषोत्तमदास के
गुरु ठाकुर मैं भेद नहिं ।१५४

कविराज भाट श्रीनाथ कों नित नव कवित सुनावते ।
तीनों भाई नाम पाइकैं किये निवेदन ।
नाथ निकट बहु कवित पढे पभु भये मुदित मन ।
धनि धनि धनि ये कबित धन्य वे धन्य भगति जिन ।
धनि धनि धनि श्री प्रभुन नाम उद्धारन अगतिन ।
किय कबित अनेकनि प्रभुन के सदा प्रभुन मन भावते ।
कविराज भाट श्रीनाथ कों नित नव कबित सुनावते ।१५५

गोपालदास टोरा हुते अति आसक्त प्रभून पै ।
मार्कण्डे पूजत हे प्रभु निज जन्मोत्सव दिन ।
इक दिन आगे आये हे गाये पद नेहि छिन ।
सुनि माधव में बल्लभ हरि अवतरे दास मुष ।
कृष्ण-भगति मुद मगन भये तकि ज्ञानादिक सुष ।
बहु छंद प्रबंध प्रवीन ये बारे रसिक दुह्रन पै ।
गोपालदास टोरा हुते अति आसक्त प्रभून पै ।१५६

जनार्दनदास छत्री भये सरन पूर्न बिस्वास तें ।
दरसन करत प्रभुन पूरन पुरुषोत्तम जाने ।
करी बिनय कर जोरि सरन मोहिं लेहु सुजाने ।
आपौ आज्ञा दई न्हाइ आवौ ते आये ।
पाइ नाम पुनि किये समर्पन अति चित चाये ।
ये सन्निधान श्रीनाथ के न्यारे ह्वै भव-पास तें ।
जनार्दनदास छत्री भये सरन पूर्न बिस्वास तें ।१५७

गुडुस्वामी ब्रह्म सनोड़िया प्रभुन सरन भे प्रभु कहे ।
गये प्रभुन पैं न्हाइ दंडवत करी बिनय कै ।
कही सरन मोहिं लेहु नाथ अब देहु अभय कै ।
कही आप मुसिकाय कहौ स्वामी किमि सेवक ।
पुनि तिन बन्दन करी कही आज्ञा मुहिं देवक ।

लहि नाम सेवकनि सहित निज किये निवेदन मुद लहे।
गडुस्वामी ब्रह्म सनोड़िया प्रभुन सरन भे प्रभु कहे।१५८

कन्हैया साल छत्री जिन्हैं प्रभुन पढ़ाए ग्रंथ निज।
श्रीमद्गोस्वामी जू जिन सों पढ़े ग्रंथ बहु।
इनकी कहा बड़ाई करिये मुख अति ही लहु।
प्रेम दास्य बिस्वास रूप ये नीके जानत।
श्री हरि गुरु की भगति भाव करिकै पहिचानत।
निज गमन समय राख्यौ इन्हैं थापन कों भुवपंथ निज।
कन्हैया साल छत्री जिन्हैं प्रभुन पढ़ाए ग्रंथ निज।१५९

गौड़िया सु नरहरदास जू प्रभु-न-कृपा पाये सुपद।
जिन घर बैठे पाट मदन-मोहन पिय प्यारे।
सोये सहित सनेह जानि प्रेमहिं पर वारे।
पुनि पधराये श्री गोस्वामी पैं यह गुनि जिय।
ये सुष पैहैं यहीं लाल हैं इनहीं के प्रिय।
पुनि गोस्वामी पधरायो श्रीरघुनाथ-सदन सुषद।
गौड़िया सु नरहरिदास जू प्रभु न कृपा पाये सुपद।१६०

बादा श्रीप्रभु की कृपा तें दास बादरायन भये।
आछे भट तें सुने भागवत नाम पाइ कैं।
जाते श्री रनछोर प्रभु न तहँ टिके आइ कैं।
पाये प्रभु पैं नाम समर्पन किये गए सँग।
दरसन करि पुनि आइ मोरबी रँगे प्रभुन रँग।
पुनि रहे तहैं आयसु प्रभुन आपुन श्रीगोकुल गये।
बादा श्रीप्रभु की कृपा तें दास बादरायन भये।१६१

नरो सुता तिय आदि सब सद्‌द्र मानिकचंद की।
देवदमन जिन सदन पियत पय नरो पियावति।
जात कटोरो भूलि ताहि मुषियहि दै आवति।
माँगि प्रभुन सों गाय नाम गोपाल धराये।
निज प्रागट्य जनाइ प्रभुन तिन गृह पधराये।
प्रभु कृपापात्र सुचि भगवदी मूरति ब्रह्मानंद की।
नरो सुता तिय आदि सब सद्‌द्र मानिकचंद की।१६२

सन्यासी नरहरदास पै सुगुरु-कृपा अतिसय हुती।
एक समै श्री महाप्रभू द्वारिका पधारे।
बेना कोठारिहु लै एऊ संग सिधारे।
तहाँ विनय करि किये सुसेवक सरन प्रभुन के।
जिनके सरनागत पै बस नहिं चलत तिगुन के।
सेवा अपराधौ तिगुन सिर भेद भगति यह दृढ़मती।
सन्यासी नरहरदास पैं सुगुरु-कृपा अतिसय हुती।१६३

गोपालदास जटाधारी नाथ खवासी करत हे।
ग्रीषम भोग अरोगि जामिनी जगमोहन में।
पौढ़त जहँ श्रीनाथ स्वामिनी के गोहन में।
आँखि मींचि चहुँ जाम करत बीजन तहँ ठाढ़े।
प्रभु आयसु तें आरस-गत अति आनँद बाढ़े।
ठाकुर सेवक कहँ दंड दै बादि बिरह मैं तन दहे।
गोपालदास जटाधारी नाथ खवासी करत हे।१६४

सति धर्म मूल तिय बनिक-गृह कृष्णदास पहुँचाइयौ।
वैष्णव धर्म अकिंचनता तेहि प्रगटहि दिखाई।
जिनकी तिय करि कौल बनिक सों सीधो लाई।
करी रसोई भोग अरपि पुनि भोग सराये।
बहुरि अनौसर करकै सब वैष्णवनि जिंवाये।
लषि ज्ञानचन्द पै प्रभु-कृपा आपुहि कौल चिताइयौ।
सति धर्म मूल तिय बनिक-गृह
कृष्णदास पहुँचाइयौ।१६५

श्री गोस्वामी के प्रान-प्रिय संतदास छत्री रहे।
श्री हरि-पद अरबिंद मरंद मते मिलिंद में।
गावन में हरि-चरित मौन में अति अमंद ये।
अन-आश्रय अरु वैष्णव-धन बिष जिनहिं बिषहु तें।
याही तें ये हुते नियारे द्वंद दुषहु तें।
कौड़ी बेंचत हे ढाइयै पैसनि हित अधिक न चहे।
श्रीगोस्वामी के प्रान-प्रिय संतदास छत्री रहे।१६६

सुंदरदासहि के संग तें वैष्णव माधवदास भे।
माधवदास कृष्ण चैतन्य-सुसेवक दृढ़मति।
जाको भोग समर्पित पावत प्रेत दुष्ट अति।
पै तिहि दृढ़ विस्वास जु श्री ठाकुरै अरोगत।
श्री आचारज प्रभुन निंदि सो लह्यौ दंड द्रुत।
अपराध आपनो जानि कैं महाप्रभुन की आस भे।
सुंदरदासहि के संग तें वैष्णव माधवदास भे।१६७

बिरजो मावजी पटेल दोउ वैष्णव ही हित अवतरे।
श्री गोकुल द्वै बेर साल में सदा आवते।
गाड़ा गाड़ा गुड़ घृत सौंजनि सहित लावते।
एक पाष श्री गोकुल इक श्रीनाथद्वार रह।
खिरक लिवावत भोग समर्पित सब ग्वालिनि कहँ।
पुरुषोत्तम खेतहि वैष्णवनि सबै लिवाए मुद भरे।
बिरजो मावजी पटेल दोउ वैष्णव ही हित अवतरे।१६८

गोपालदास रोड़ा दिये नाम दान प्रभु के कहे।
एक समैं गोपालदास श्रीनाथहिं आये।
आयो ज्वर द्वै चारि भये लंघन दुष पाये।
लागी प्यास कही सेवक सों सोइ गयो सो।
आपुहि भारी प्याये जल दुष बिसरो सो।
श्री गोस्वामी की सीष सों प्रभुता मद रंच न रहे।
गोपालदास रोड़ा दिए नाम दान प्रभु के कहे १६९

काका हरिबंस प्रसंस मति धरम परम के हंस भे।
श्री बिट्ठल-सुत जेहि काका सम आदर करहीं।

वैष्णव पर अति नेह सुअन सम नित अनुसरहीं ।
नाम-दान दै जगत जीव फिरि फिरि के तारे ।
ठौर ठौर हरि सुजस भक्ति हित बहु बिस्तारे ।
प्रिय कंस धंस के होइ कै छत्रिहु वल्लभ बस भे ।
काका हरिबंस प्रसंस मति धरम परम के हंस भे ।१७०

गंगा बाई श्रीनाथ की अतिहि अंतरंगिनि भई ।
जवन-उपद्रव जब श्रीप्रभु मेवाड़ पधारे ।
मारग मैं यह साथ रहीं हिय भगति बिचारे ।
जब रथ कहुँ अड़ि जात तबै सब इनहिं बुलावै ।
श्री जी के ढिग भेजि नाथ-इच्छा पुछवावैं ।
श्री बिट्ठल गिरिधर नाम सों पद रचि हरि-लीला गई ।
गंगा बाई श्रीनाथ की अतिहि अंतरंगिनि भई ।१७१

श्रीतुलसिदास-परताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे ।
नंददास अग्रज द्विज-कुल मति गुन-गन-मंडित ।
कवि हरि-जस-गायक प्रेमी परमारथ पंडित ।
रामायन रचि राम-भक्ति जग थिर करि राखी ।
थोरे मैं बहु कह्यौ जगत सब याको साखी ।
जग-लीन दीनहु जा कृपा-बल न राम-चरितहि तजे ।
श्रीतुलसिदास-परताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे ।१७२

गोस्वामी बिट्ठलनाथ के ये सेवक जग में प्रगट ।
भट्ट नाग जी कृष्णभट्ट पद्मा रावल-सुत ।
माधोदास हिसार बास कायथ निज पितु सुत ।
बिट्ठलदास निहालचंद श्रीरूपमुरारी ।
रूपचंद नंदा खत्री भाइला कुठारी ।
राजा लाखा हरिदास भाई जलौट हरि नाम रट ।
गोस्वामी बिट्ठलनाथ के ये सेवक जग में प्रगट ।१७३

गोस्वामी बिट्ठलनाथ के ये सेवक हरि-चरन-रत ।
कृष्णदास कायस्थ नरायनदास निहाला ।
ज्ञानचंद्र ब्रह्माणी सहारनपुर के लाला ।
जन-अर्दन परसाद गोपालदास पाथी गनि ।
मानिकचंद मधुसूदनदास गनेस ब्यास पुनि।
जदुनाथ दास कान्हो अजब गोपीनाथ गुआल सत ।
गोस्वामी बिट्ठलनाथ के ये सेवक हरि-चरन-रत ।१७४

हित रामराय भगवान बलि हठी अली जगनाथ जन ।
कही जुगल रस-केलि माधुरीदास मनोहर ।
बिट्ठल बिपुल बिनोद बिहारिनि तिमि अति सुंदर ।
रसिक-बिहारी त्यौंही पद बहु सरस बनाए ।
तिमि श्री भट्टहु कृष्ण-चरित गुप्तहु बहु गाए ।
कल्यानदेव हित कमल-दृग नरबाहन आनंदघन ।
हित रामराय भगवान बलि हठी अली जगनाथ जन ।१७५

श्री ललितकिशोरी भाव सों नित नव गायो कृष्ण-जस ।
भट्ट गदाधर मिश्र गदाधर गंग गुआला ।
कृष्ण-जिवन हरि लछीराम पद रचत रसाला ।
जन हरिया घनश्याम गोविंदा प्रभु कल्याना ।
विचित्र-बिहारी प्रेम-सखी हरि सुजस बखाना ।
रस रसिकबिहारी गिरिधरन प्रभु मुकुंद माधव सरस ।
श्री ललितकिशोरी भाव सों
नित नव गायो कृष्ण-जस ।१७६

श्री वल्लभ आचारज अनुज रामकृष्ण कवि मुकुटमनि ।
बसत अजुध्या नगर कृष्ण सों नेह बढ़ावत ।
कृष्ण-कुतूहल कहि गुपाल लीला नित गावत ।
दोऊ कुल की वृत्ति तिनूका सी तजि दीनी ।
ब्याह कियो नहिं जानि सुखद हरि-पद मद भीनी ।
करि वाद पंथ थापन कियो ग्रंथ रचे नव तीन गनि ।
श्री वल्लभ आचारज अनुज
रामकृष्ण कवि मुकुटमनि ।१७७

हरि-प्रेम-माल रस-जाल के नागरिदास सुमेर भे ।
वल्लभ पथहि दृढ़ाइ कृष्णगढ़ राजहि छोड़यो ।
धन जन मान कुटुम्बहि बाधक लखि मुख मोड़यौ ।
केवल अनुभव सिद्ध गुप्त रस चरित बखाने ।
हिय सँजोग उच्छलित और सपनेहुँ नहिं जाने ।
करि कुटी रमन-रेती बसत संपद भक्ति कुबेर भे ।
हरि-प्रेम-माल रस-जाल के नागरिदास सुमेर भे ।१७८

हिय गुप्त बियोगहि अनुभवत बड़े नागरीदास हे ।
बार-बधू ढिग बसत सबै कछु पीयो खायो ।
पै छनहूँ हिय सों नहिं सो अनुभव बिसरायो ।
सुनतहि बिट्ठल नाम भक्त-मुख श्रवन मँझारी ।
प्रान तज्यो कहि अहो तिनहिं सुधि अजहुँ हमारी ।
दरसन ही दै हरिभक्त अपराध कुष्ट जन दुख दहे ।
हिय गुप्त बियोगहि अनुभवत बड़े नागरीदास हे ।१७९

श्री वृंदाबन के सूर-ससि उभय नागरीदास जन ।
निज गुरु हित हरिबंस कृष्ण-चैतन्य चरन-रत ।
हरि-सेवा में सुदृढ़ काम क्रोधादि दोषगत ।
अद्भुत पद बहु किये दीन जन दै रस पोषे ।
प्रभु-पद-रति विस्तारि भक्तजन मन संतोषे ।
दृढ़ सखी भाव जिय में बसत समनेहुँ नहिं कहुँ और मन ।
श्री वृंदाबन के सूर-ससि उभय नागरीदास जन ।१८०

इन मुसलमान हरि-जनन पै कोटिन हिंदुन वारियै ।
आलीखान पठान सुता सह ब्रज रखवारे ।
सेख नबी रसखान मीर अहमद हरि-प्यारे ।
निरमलदास कबीर ताजखाँ बेगम बारी ।
तानसेन कृष्णदास बिजापुर नृपति-दुलारी ।

पिरजादी बीबी रास्ती पद-रज नित सिर धारियै ।
इन मुसलमान हरि-जनन पै कोटिन हिंदुन वारियै ।१८१

बाबा नानन हरि-नाम दै पंचन दहि उद्वार किय ।
बार बार निज सौंज साधुजन लखत लुटाई ।
बेदी बंस प्रसंस प्रगटि रस-रीति दृढ़ाई ।
गुप्त भाव हरि प्रियतम को निज निज हिये पुरायो ।
गाइ गाइ प्रभु-सुजस जगत अघ दूरि बहायो ।
जग ऊँच नीच जन करि कृपा एक भाव अपनाइ लिय ।
बाबा नानक हरिनाम दै पंचनदहि उद्वार किय ।१८२

कवि करनपूर हरि-गुरु-चरित करनपूर सबको कियो ।
सेन बंस श्री शिवानंद सुत बंग उजागर ।
सुर-बानी मैं निपुन सकल रस के मनु सागर ।
अति छोटे तन गुरु महिमा करि छंद बखानी ।
जननि गोद सों किलकि हँसे निज गुरु पहिचानि ।
परमानँद सों चैतन्य ससि नाम पलटि दूजो दियो ।
कवि करनपूर हरि-गुरु-चरित करनपूर सबको कियो।१८३

बनमाली के माली भए नाभा जी गुन-गन-गथित ।
नाम नरायनदास विदित हनुमत कुल जायो ।।
अग्र कीलह गुरु-कृपा नयन खोयोह्र पायो ।
गुरु आयसु धरि सीस भक्त-कीरति जिन गाई ।
भक्तमाल रस-जाल प्रेम सों गूथि बनाई ।
नित ही नव-रूप सुबास सम सुमन-संत करनी कथित ।
बनमाली के माली भए नाभा जी गुन-गन-गथित ।१८४

ये भक्तमाल रस-जाल के टीकाकार उदार-मति ।
कृष्णदास बंगाल कृष्ण-पद-पदुम रत ।
प्रियादास सुखदास प्रिया जुग चरन कुमुद नत ।
ललितलालजी दास एक औरहु कोउ लाला ।
लाल गुमानी तुलसिराम पुनि अग्गरवाला ।
परतापसिंह सिधुआपती भूपति जेहि हरि-चरन-रति।
ये भक्तमाल रस-जाल के टीका उदार-मति ।१८५

लाला बाबू बंगाल के बृंदावन निवसत रहे ।
छोड़ि सकल धन-धाम बास ब्रज को जिन लीनो ।
माँगि माँगि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो ।
हरि-मंदिर अति रुचिर बहुत धन दै बनवायो ।
साधु-संत के हेत अन्न को सत्र चलायो ।
जिनकी मृत देहहु सब लखत ब्रज-रज लोटन फल लहे।
लाला बाबू बंगाल के बृंदावन निवसत रहे ।१८६

कुल अग्रवाल पावन-करन कुंदनलाल प्रगट भये ।
प्रथम लखनऊ बसि श्री घन सों नेह बढ़ायो ।
तहँ श्री युगल सरूप थापि मंदिर बनवायो ।
द्वापर को सुखरास कलियुग में कीनी ।
सोइ भजन आनंद भाव सहचरि रँग भीनी ।
लाखन पद ललित किशोरिका नाम प्रगटि बिरचे नए।
कुल अग्रवाल पावन-करन कुंदनलाल प्रगट भए ।१८७

गिरिधरनदास कवि-कुल-कमल वैश्य वंश भूषन प्रगट।
भाषा करि-करि रचे बहुत हरि-चरित सुभाषित ।
दान मान करि साधु भक्त मन मोद बढ़ायो ।
सब कुल-देवन मेटि एक हरि-पंथ दृढ़ायो
लक्षावधि ग्रंथन निरमये श्री वल्लभ विश्वास अट ।
गिरिधरनदास कवि-कुल-कमल
वैश्य वंश-भूषन प्रगट ।१८८

यह चार भक्त पंजाब में चार बेद पावन भए ।
श्री रामानुज बृद्ध हरिचरन बिनु सब त्यागी ।
भाई सिंह दयाल भजन मैं अति अनुरागी ।
कविवर दास अमीर कृष्ण-पद मैं अति पागी ।
मयाराम रसरास ललित प्रेमी बैरागी ।
श्री हरि के प्रम प्रचार-हित जिन उपदेस बहुत दये ।
यह चार भक्त पंजाब में चार बेद पावन भए ।१८९.

श्रीभक्त रत्नहरिदास जू पावन अमृतसर कियो ।
क्षत्रिय बंश गुलाबसिंह-सुत मत रामानुज ।
रामकुमारी-गर्भ-रत्न त्यागी-मंडल-धुज ।
सुबसु बेद बसु चंद आठ कातिक प्रगटाए ।
श्री हरि-महिमा ग्रंथ ललित बत्तीस * बनाए ।
रणजीत सिंह नृप बहु कह्यौ तदपि नाहिं दरसन दियो।
श्री भक्त रत्नहरिदास जू पावन अमृतसर कियो ।१९०

* श्री रघुनाथ के परम भक्त अति रसिक विद्वजन मान्य महानुभाव श्री रत्नहरिदास जी ने ३२ ग्रंथ नवीन बनाये हैं । तिन ग्रंथों में प्रति पद जमक अनुप्रासादि अलंकार भरे हैं और वर्णमैत्री की तो प्रतिज्ञा है कि एक पद वर्णमैत्री बिना नहीं होगा । तथा उनके पढ़ने से अत्यानंद प्रगट होता है कि कथन में, नहीं आता । जो पुरुष सुनते हैं, वही मोहित हो जाते हैं । १. रामरहस्य । चौपाई दोहादि छंदों में बाल्यलीला रघुनाथजी की श्लोक ५००० । २. प्रश्नोत्तरी । दोहा ४० शुक्र-प्रोक्तप्रश्नोत्तरी की भाषा है । ३. रामललाम-ललित पद छंदों में रामायण है । श्लोक ६००० राम कलेवा ग्रंथवत् । ४. सार संगीत — उक्त छंदों में श्लोक ६००० भागवत की कथा । ५. नानक-चंद्र-चंद्रिका – चौपाई दोहादि छंदों में श्री नानक शाह का जीवन चरित वर्णन । ६. दाशरथी दोहावली – दोहा ११०० रामायण है अति चमत्कार युत । ७. जगकदमक दोहावली – दोहा १२५ प्रति दोहा में ४ जमक हैं । ८. गूढ़ार्थ दोहावली – दोहा १०० फुटकर हैं । ९. एकादशस्कंध-भागवत काचौपाई दोहा में । १०. कौशलेश कवितावली – कवित्त १०८ रामायण क्रम से । ११. गुरु-कीरति कवितावली – १०८ नानक शाह का चरित्र है । १२. कुसुमक्यारी – कवित्त ३६.

त्रेता में जो लछिमन करी सो इन कलियुग माहिं किय।
अग्रज कुंदनलाल सदा दैवत सम मान्यौ।
परम गुप्त हरि-बिरह अमृत सों हियरो सान्यौ।
अंतरंग सखि भाव कबहु काहू न लखायो।
करम-जाल विध्वंसि प्रेम-पथ सुदृढ़ चलायो।
श्री कुंदनलाल उदार मनि बंधु-भगति अति धारि हिय।
त्रेता में जो लछिमन करी सो
इन कलियुग माहिं किय।१९१

नित श्याम सखी सम नेह नव श्याम सखा हरि सुजस कवि।
नित्य पाँच पद बिरचि कृष्ण अचरन तब ठानत।
गान तान बंधान बाँधि हरि सुजस बखानत।
देस देस प्रति घूमि घूमि नर पावन कीनो।
निज नयनन के प्रेम-बारि हियरो नित भीनो।
घर त्यागि फिरत इत उत भ्रमत
भक्त-बनज-बन प्रगट रवि।
नित श्याम सखी सम नेह नव श्याम
सखा हरि सुजस कवि।१९२

दक्षिण के ये सब भक्तवर संत मामलेदार सह।
तुकाराम चोखा महार साबंता माली।
नामदेव गोरा कुम्हार पंढ़री सुचाली।
रामदास पुनि एक नाथ मायूर कन्हाई।
कृष्णा साबू और कृष्ण अर्पन रत बाई।
दामाजी दत्त बधूत ज्ञानेश्वर अमृतराव कह।
दक्षिण के ये सब भक्तवर संत मामलेदार सह।१९३

नारायन शालग्राम हरिभक्त प्रगट यहि काल के।
गट्टजी महराज काठजिभ कृष्णदास धरि।
तुलाराम रघुनाथदास रघुनाथसिंह हरि।
युगुलानन्य सुप्रियादास राधिकादास कहि।
हरिबिलास नवनीत गोप जै श्रीकृष्णा लहि।
मथुरा ससि हरख अजीत हरि रामगुलाम गुपाल के।
नारायन शालग्राम हरिभक्त प्रगट यहि काल के।१९४

द्विज ब्रह्मदत्त सह प्रगट एहि समय भक्त हरि के भये।
रामसखा हरिहरप्रसाद लक्ष्मीनारायन।
अवधदास चौपाई उमादत जन रामायन।
रामचरन सुक लोटा गट्टू रामप्रसादा।
सेवक सीताराम पौहरी गल्लू दादा।
बलि रामनिरंजन जुगल जुगराज परम हंसादि ये।
द्विज ब्रह्मदत्त सह प्रगट एहि
समय भक्त हरि के भये।१९५

ये चार भक्त एहि काल के औरहु हरि-पद-पंकज-रत।
राम नाम रत रामदास हापड़ के बासी।
त्यागि संपदा भए सुनत सप्ताह उदासी।
जागो भट्ट प्रसिद्ध भजन-प्रिय सेवत कासी।
राम-नाम-रत माजी नागर बंस प्रकासी।
श्री हरिभाऊ हरिभाव-रत शूलटंक सिव ढिग बसत।
ये चार भक्त एहि काल के
औरहु हरि-पद-कंज-रत।१९६

उनइस सै तैंतीस वर संवत भादों मास।
पूनो सुभ ससि दिन कियो भक्त-चरित्र प्रकास।
जे या संवत लौं भए जिनको सुन्यौ चरित्र।
ते राखे या ग्रंथ में हरि-जन परम पवित्र।
प्राननाथ आरति-हरन सुमिरि पिया नँद-नंद।
भक्तमाल उत्तर अरध लिखी दास हरिचंद।
जो जग नर ह्वै अवतर्‌यौ प्रेम प्रगट जिन कीन।
तिनहीं उत्तर अरध यह भक्तमाल रचि दीन।
जब वल्लभ बिट्ठल जयति जै जै पिय नँदलाल।
जिन बिरची यह प्रेम-गुन गुथी भक्ति की माल।
नहिं तो समरथ यह कहाँ हरिजन गुन सक गाय।
ताहू मैं हरिचंद सो पामर है केहि भाय।
जगत-जाल मैं नित बँध्यो पर्‌यो नारि के जद।
मिथ्या अभिमानी पतित झूठो कवि हरिचंद।
धोबी बच सों सिय तजन ब्रज तजि मधुरा गौन।
यह द्वै संका जा हिये करत सदा ही भौन।
दुखी जगत-गति नरक कहँ देखि क्रूर अन्याय।
हरि-दयालुता मैं उठत संका जा जिय आय।
ऐसे संकित जीअ सों हरि हरि-भक्त चरित्र।
कबहूँ गायो जाइ नहिं यूह बिनु संक पवित्र।
हरि-चरित्र हरि ही कह्यौ हरिहि सुनत चितलाय।
हरिहि बड़ाई करत हरि ही समुझत मन भाय।
हम तो श्री वल्लभ-कृपा इतनो जान्यौ सार।
सत्य एक नँदनंद है झूठो सब संसार।
तासों सब सों बिनय करि कहत पुकार पुकार।
कान खोलि सबही सुनौ जौ चाहौ निस्तार।
मोरौ मुख घर ओर सों तोरौ भव के जाल।

दशस्कंध का समास से। १३. दशमस्कंध कवितावली – कवित्त १६७ अति विचित्र हैं। १४. महिम्न कवितावली – कवित्त २७। १५. नानक नवक – कवित्त ९ नानक शाह की स्तुति। १६. रासपंचाध्यायी – कवित्त ६० । १७. ब्रजयात्रा – कवित्त १५० व्रज के यात्रा का वर्णन। १८. कवित्त कादंबिनी – भागवत क्रम से कवित्त १५०। १९. रघूत्तसहस्र नाम – श्लोक २५ वाल्मीकि रामायण की कथा भी क्रम से। २०. पद रत्नावली – विष्णु पदों में रामायण। इसी प्रकार और भी उत्तम ग्रंथ हैं।

छोरौ जग साधन सबै भजौ एक नँदलाल ।
हरिश्चन्द्रो माली हरिपदगतानां सुमनसां

सदाऽम्लानां भक्ति प्रकटतर गंधां च सुगुणां ।
अगुंफत्सन्मालां कुरुत हृदयस्थां रस-पदा ।
यतोन्येषां स्वस्य प्रणय सुखदात्रीयमतुला ।।

प्रेम-प्रलाप

[हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका में १८७७ ई. में प्रकाशित]

प्रेम-प्रलाप

नखरा राह राह को नीको ।
इत तो प्रान जात हैं तुम बिनु
तुम न लखत दुख जी को ।
धावहु बेग नाथ करुना करि
करहु मान मत फीको ।
'हरीचंद' अठलानि-पने को
दियो तुमहिं बिधि टीको ।१

खुटाई पोरहि पोर भरी ।
हमहि छाँड़ि मधुबन में बैठे बरी क्रूर कुबरी ।
स्वारथ लोभी मुँह-देखे की हमसों प्रीति करी ।
'हरीचंद' व्रजेन के ह्वै कै हा हा हम निदरी ।२

चरित सब निरदय नाथ तुम्हारे ।
देखि दुखी-जन उठि किन धावत
लावत कितहि अबारे ।
मानी हम सब भाँति पतित अति तुम दयाल तौ प्यारे ।
'हरीचंद' ऐसिहि करनी ही तौ क्यौं अधम उधारे ।३

प्रभु हो ऐसी तो न बिसारो ।
कहत पुकार नाथ तब रूठे कहुँ न निबाह हमारो ।
जौ हम बुरे होइ नहिं चूकत नित ही करत बुराई ।
तो फिर भले होइ तुम छाँड़त काहे नाथ भलाई ।
जो बालक अरुझाइ खेल मैं जननी-सुधि बिसरावै ।
तो कहा माता ताहि कुपित ह्वै ता दिन दूध न प्यावै ।
मात पिता गुरु स्वामी राजा जौ न छमा उर लावैं ।
तो सिसु सेवक प्रजा न कोउ बिधि जग में निबहन पावैं ।
दयानिधान कृपानिधि केशव करुण भक्त-भयहारी ।
नाथ न्याव तजते ही बनिहै 'हरीचंद' की बारी ।४

नाथ तुम अपनी ओर निहारो ।
हमरी ओर न देखहु प्यारे निज गुन-गनन बिचारो ।
जौ लखते अब लौं जन-औगुन अपने गुन बिसराई ।
तौ करते किमि अजामेल से पापी देहु बताई ।
अब लौं तो कबहुँ नहिं देख्यौ जन के औगुन प्यारे ।
तौ अब नाथ नई क्यौं ठानत भाखहु बार हमारे ।
तुव गुन छमा दया सों मेरे अघ नहिं बड़े कन्हाई ।
तासों तारि लेहु नँद-नंदन 'हरीचंद' को धाई ।५

मेरी देखहु नाथ कुचाली ।
लोक वेद दोउन सों न्यारी हम निज रीति निकाली ।
जैसो करम करै जग मैं जो सो तैसो फल पावै ।
यह मरजाद मिटावन की नित मेरे मन में आवै ।
न्याय सहज गुन तुमरो जग के सब मतवारे जानैं ।
नाथ ढिठाई लखहु ताहि हम निहचय झूठो जानैं ।
पुन्यहि हेम हथकड़ी समझत तासों नहिं बिस्वासा ।
दयानिधान नाम की केवल या 'हरिचंदहि' आसा ।६

लाल यह नई निकाली चाल ।
तुम तो ऐसे निठुर रहे नहिं कबहुँ पिया नँदलाल ।
हमरिहि बारी और भए कह तुम तौ सहज दयाल ।
'हरीचंद' ऐसी नहिं कीजै सरनागत प्रतिपाल ।७

अनीतैं कहौ कहाँ लौं सहिए ।
जग-ब्यौहारन देखि देखि कै कब लौं यह जिय देहिए ।

तुम कछु ध्यानहि मैं नहिं लावत तौ अब कासों कहिए ।
'हरीचंद' कहवाइ तुम्हारे मौन कहाँ लौं रहिए ।८

अहो इन झूठन मोहिं भुलाओ ।
कबहुँ जगत के कबहुँ स्वर्ग के स्वादन मोहिं ललचायो।
भलें होइ किन लोह-हेम की पाप पुन्य दोउ बेरी ।
लोभ मूल परमारथ स्वारथ नामहिं मैं कछु फेरी ।
इनमैं भूलि कृपानिधि तुमरो चरन-कमल बिसरायो।
तेहि सों भटकत फिर्यौ जगत मैं नाहक जनम गँवायौ।
हाय-हाय करि मोह छाँड़ि कै कबहुँ न धीरज धार्यौ ।
या जग जगती जोर अगिनि मैं आयसु-दिन सब जार्यौ।
करहु कृपा करुनानिधि केशव जग के जाल छुड़ाई ।
दीन हीन 'हरिचंद' दास कों बेग लेहु अपनाई ।९

दीन पै काहे लाल खिस्याने ।
अपुनी दिसि देखहु करुनानिधि हमपैं कहा रिसाने ।
माछर मारे हाथ जलहि इक कहत बात परमाने ।
महा तुच्छ 'हरिचंद' हीन सों नाहक भौंहहिं ताने ।१०

हमहूँ कबहूँ सुख सों रहते ।
छाँड़ जाल सब निसि-दिन
मुख सों केवल कृष्णहि कहते ।
सदा मगन लीला अनुभव मैं
दृग दोऊ अविचल बहते ।
'हरीचंद' घनस्याम-बिरह इक
जग-दुख तृन सम दहते ।११

कहौ किमि छूटै नाथ सुभाव ।
काम क्रोध अभिमान मोह सँग तन को बन्यौ बनाव ।
ताहूँ मैं तुव माया सिर पैं औरहु करन कुदाँव ।
'हरीचंद' बिनु नाथ कृपा के नाहिंन और उपाव ।१२

बेदन उलटी सबहि कही ।
स्वर्ग लोभ दै जगहि भुलायो दुनिया भूलि रही ।
सुद्ध प्रेम तुव कहुँ नहिं गायो जो श्रुति-सार सही ।
'हरीचंद' इनके फंदन परि तुव छबि जिय न गही ।१३

सूरता अपुनी सबै डुलाई ।
हमसे महा हीन किंकर सों करि कै नाथ लराई ।
दयानिधान क्षमासागर प्रभु बिदित नाम कहवाई ।
हमरे अघहिं देखि तुम प्यारे कीरति तौन मिटाई ।
कबहुँ न नाथ-कृपा सों मेरे अघ ह्वैहैं अधिकाई ।
तौ किन तारि हीन 'हरिचंदहि' मेटत जगत हँसाई ।१४

कुढ़त हम देखि देखि तुव रीतैं ।
सब पैं इक सी दया न राखत नई निकाली नीतैं ।
अजामेल पापी पै कीनी जौन कृपा करि प्रीतैं ।
सो 'हरिचंद' हमारी बारी कहाँ बिसारी जी तैं ।१५

बड़े को होत बड़ी सब बात ।
बड़ो क्रोध पुनि बड़ी दयाहू तुम मैं नाथ लखात ।
मोसे दीन हीन पै नहिं तौ काहे कुपित जनात ।
पै 'हरिचंद' दया-रस उमड़े ढरतेहि बनि है तात ।१६

हमारे जिय यह सालत बात ।
दयानिधान नाम तुव आछत हम ऐसेहिं रहि जात ।
और अघी तो तरत पाप करि यह श्रुति -कथा सुनात ।
हम मैं कौन कसर नँद-नंदन यह कछु नाहिं जनात ।
जहँ लौं सोचे सुने किये अघ बदि बदि संझा प्रात ।
तऊ तरन को कारन दूजो 'हरिचंदहि' न लखात ।१७

अहो हरि अपुने बिरुदहि देखौ ।
जीवन की करनी करुनानिधि सपनेहु जनि अवरेखौ ।
कहुँ न निबाह हमारो जौ तुम मम दोसन कहँ पेखौ ।
अवगुन अमित अपार तुम्हारे गाइ सकत नहिं सेखौ ।
करि करुना करुनामय माधव हरहु दुखहि लखि भेखौ।
'हरिचंद' मम अवगुन तुव गुन दोउन को नहिं लेखौ।१८

करुना करि करुनाकर बेगहि सुध लीजिए ।
सहि न सकत जगत-दाव तुरत दया कीजिए ।
हमरे अवगुनहिं नाथ सपनेहुँ जिनि देखौ ।
अपुनी दिसि प्राननाथ प्यारे अवरेखौ ।
हम तो सब भाँति हीन कुटिल क्रूर कामी ।
करत रहत धन-जन के चरन की गुलामी ।
महा पाप पुष्ट दुष्ट धरमहिं नहिं जानौं ।
साधन नहिं करत एक तुमहीं सरन मानौं ।
जैसे हैं तैसे तुव तुमहीं गति प्यारे ।
कोऊ बिधि राखि लेहु हम तो सबहि हारे ।
द्रुपद-सुता अजामिल गज की सुधि कीजै ।
दीन जानि 'हरिचंद' बाहँ पकरि लीजै ।१९

जोड़ को खोजि लाल लरिए ।
हम अबलन पै बिना बात ही रोस नहीं करिए ।
मधुसूदन हरि कंस-निकंदन रावन-हरन मुरारि ।
इन नाँवन की सुरत करो क्यों ठानत हमसों रारि ।
निबलन कों बधि जस नहिं पैहौ साँचो कहत गुपाल ।
'हरीचंद' ब्रज ही पैं इतने कहा खिसाने लाल ।२०

पियारे बहु बिधि नाच नचायो ।
यह नहिं जानि परी केहि सुख के बदले इतो दुखायो ।
ब्रज बसि कै सब लाज गँवाई घर घर चाव चलायो ।
हम कुल-बधुन कलंकिनि कुलटा डगरै डगर कहायो।
हम जानी बदनामी दै हरि करिहैं सब मन-भायो ।

ताको फल यों उलटो दीनो भलो निबाह निभायो ।
ऐसी नहिं आसा ही तुम सों जो तुम करि दिखरायो ।
'हरीचंद' जेहि मीत कह्यौ सोइ
निठुर बैरि बनि आयो ।२१

जिनके देव गुबर-धन-धारी ते औरहि क्यौं मानै हो ।
निरभय सदा रहत इनके बल जगतहि तृन करि जानै हो ।
देवी देव नाग नर मुनि बहु तिनहिं नाहिं उर आनै हो ।
'हरीचंद' गरजत निधरक नित
कृष्ण कृष्ण बल साने हो ।२२

हमारे ब्रज के सरबस माधो ।
किन ब्रत जोग नेम जप संजम बृथा गोरि तन साधो ।
अष्ट-सिद्धि नव-निधि को सब फल यहैं न और अराधौ ।
'हरीचंद' इनहीं के पद-जुग-पंकज मन-अलि बाँधो ।२३

पिय तोहिं राखौंगी हिय मैं छिपाय ।
देखन न दैहौं काहु पियारे रहौंगी कंठ निज लाय ।
पल की ओट होन नहिं दैहौं लूटौंगी सुख-समुदाय ।
'हरीचंद' निधरक पीओंगी अधरामृतहि अघाय ।२४

तुम सम कौन गरीब-नेवाज ।
तुम साँचे साहेब करुनानिधि पूरन जन-मन-काज ।
सहि न सकत लखि दुखी दीन जन उठि धावत ब्रजराज ।
बिह्वल होइ सँवारत निज कर निज भक्तन के काज ।
स्वामी ठाकुर देव साँच तुम वृन्दाबन-महराज ।
'हरीचंद' तजि तुमहिं और जो जाँचत ते बिनु-काज ।२५

तो तेरे मुख पर वारी रे ।
इन अँखियन को प्रान-पिया छबि तेरी लागत प्यारी रे ।
तुम बिनु कल न परत पिय प्यारे बिरह बेदना भारी रे ।
'हरीचंद' पिय गरे लगाओ पैयाँ परौं गिरधारी रे ।२६

तुमरी भक्त-बछलता साँची ।
कहत पुकारि कृपानिधि तुम बिनु,
और प्रभुन की प्रभुता काँची ।
सुनत भक्त-दुख रहि न सकत तुम,
बिनु धाए एकहु छिन बाँची ।
द्रवत दयानिधि आरत लखतहि,
साँच झूठ कछु लेत न जाँची ।
दुखी देखि प्रहलाद भक्त निज,
प्रगटे जग जै जै धुनि माँची ।
'हरीचंद' गहि बाँह उपार्यौ,
कीरति नटी दसहुँ दिसि नाँची ।२७

नेम धरम ब्रत जप तप सबही जाके मिलन अराधों ।
जो कछु करौं सबै इनके हित इन तजि और न साधों ।
'हरीचंद' मेरे यह सरबस भजौं कोटि तजि बाधो ।२८

हौं जमुना जलन भरन जात ही
मारग माहिं मिले री कान्ह ।
करि मुठ-भेर अंक बरबस भरि
रोक्यौ मोहिं अंचल तान ।
भौंह नचाई प्रेम चितवन लखि
हँसि मुसुकाइ नैन रह्यौ जोरि ।
घट गिराइ करि और अचगरी
दूर खरो भयो अंचर छोरि ।
कहा कहौं कछु कहि नहिं आवत
करिकै हिये काम की चोट ।
मन लै तन लै नैन-चैन लै प्रानहुँ
लै भयो अँखियन ओट ।
कहा करौं कित जाऊँ सखी री
वा बिन मो कहँ कछु न सुहाय ।
हियो भर्‌यौ आवत छिनही छिन
हाय कहा करौं कछु न बसाय ।
कित पाऊँ कित अंक लगाऊँ
कित देखूँ वह सुंदर रूप ।
हाथ मिले बिन किमि जिय राखों
कहाँ मिलै मेरे गोकुल-भूप ।
रोअत बीतत रैन दिवस मोहिं
बेबस ह्वै हौं रहौं करि हाय ।
जौ तन तजै मिलैं मोहि निहचै
तौ जिअ त्यागौं कोटि उपाय ।
हाय कहा करौं करि न सकत कछु
रोवत ही जैहै सखि जीय ।
'हरीचंद' बिनु मिले स्याम घन
सुंदर मोहन प्यारे पीय ।२९

जनन सों कबहूँ नाहिं चली ।
सदा सर्बदा हारत आए जानत भाँति भली ।
कहा कियो तुम बलि राजा सों चतुराई न चली ।
बाँधन गए बँधाए आपुहि व्यर्थहि बने छली ।
भीषम नै परतिज्ञा टारी चक्र गहायो हाथ ।
अरजुन को रथ हाँकत डोले रन मैं लीने साथ ।
जसुदा जू सों हाथ बँधायो नाचे माखन काज ।
मैं रिनियाँ तुम्हरो गोपिन सों कह्यौ छोड़ि कै लाज ।

रिन बहु जानि छोड़ि कै गोकुल भागे मथुरा जाय ।
सदा सर्वदा हारत आए भक्तन सों ब्रजराय ।
हम सोहूँ हारत ही बनिहैं कबहुँ न जैहौ जीत ।
तासों तारौ 'हरीचंद' को मानि पुरानी प्रीति ।३०

श्री राधे कहा अजगुत कियो ।
अखिल लोक-निकुंज-नायक सहज निज करि लियो।
जासु माया जगत मोहत लखि तनिक दृग-कोर ।
सोई प्रभु तुव मोह मोहे नचत भौंह मरोर ।
रसन को अवलंब जेहि आनंदघन स्रुति कहत ।
सोई रसिक कहावत तो सों तोहि सों सुख लहत ।
जासु रूठे जगत मैं कछु सेस नहिं रहि जात ।
सोई तव रूठे बिकल ह्वै दीन बने लखात ।
जगत-स्वामी नाम के करि भेद जौन कहात ।
सो कहत तोहिं स्वामिनी यह अतिहि अचरज बात ।
रिखिन जो रस नहिं लह्यौ करि थके कोटि प्रसंस ।
सहज किय 'हरिचंद' सो करि प्रगट वल्लभ-बंस ।३१

तुम बिनु तलपत हाय बिपति बढ़ी भारी हो ।
तुम बिनु कोऊ नहिं मोर पिया गिरधारी हो ।
तुम बिनु व्याकुल प्रान धरौं कैसे धीर हो ।
आइ मिलौ गर लगौ पिया बलबीर हो ।
तुम बिनु सूनी सेज देखि जिय जारई ।
काम अकेली जानि बान कसि मारई ।
तुम बिनु अति अकुलाय बैन नहिं कहि सकौं ।
मिलौ पिया 'हरिचंद' भई बौरी बकौं ।३२

करनी करुनासिंधु की कासों कहि जाई ।
अति उदार गुन-गन भरे गोबरधन-राई ।
तनिक तुलसी दल कें दिये तेहि बहु करि मानै ।
सेवा लघु निज दास की परबत सी जानै ।
अजामेल सुत आपनो तुव नाम पुकार्‌यौ ।
ताके अघ सब दूर कै तुम तुरत उबार्‌यौ ।
कहा ब्याध गजराज सों करनी बनि आई ।
कहा गीध गनिका कियो तारयो तुम धाई ।
कहा कपिन को रूप है का गुन बड़िआई ।
तिन सों बोले बन्धु से ऐसी करुनाई ।
कहाँ सुदामा बापुरो कहँ त्रिभुवन स्वामी ।
ताकी अग्रज सारखी किय चरन-गुलामी ।
कहाँ ग्वाल और ग्वालिनी करनी की पूरी ।
जिनके सँग बन मैं फिरे हरि करत मजूरी ।
ब्रज के मृग पसु भीलनी तृन बीरुध जेते ।
बंधु सरिस माने सबै करुनानिधि तेते ।
कहाँ अधम अघ सों भर्‌यौ 'हरिचंद' भिखारी ।
जेहि माधो सहजहि लियो गहि बाँह उबारी ।३३

मेरी तुमरी प्रीति पिया अब जानि गए सब लोगवा ।
लाख छिपाए छिपे नहिं नैंना इन प्रगट्यौ संजोगवा ।
हँसत सबै मारत मिलि ताना सुनि सुनि बाढ़त सोगवा।
ताहू पर 'हरिचंद' मिलत नहिं
कठिन भयो यह रोगवा ।३४

प्राननाथ मन-मोहन प्यारे बेगहि मुख दिखराओ ।
तलफत प्रान मिले बिनु तुमसों क्यों न अबहिं उठि धाओ।
केहि बिधि कहौं कहत नहिं आवै जिय के भाव पियारे।
अपनो नेह हमहिं पहिचानत हे ब्रजराज-दुलारे ।
जग मैं जा कहँ प्रीति-रीति सब भाषत हैं नर-नारी ।
तासों अधिक बिलच्छन हमरी प्रेम-चाल कछु न्यारी।
मोह कहत कोउ भक्ति बखानत नेह प्रेम कोउ भाखैं ।
तिन सब सों बढ़ि प्रीति हमारी कहो नाम कह राखैं ।
समुझत कोउ न बात हमारी पागल सबहि बखानै ।
तुमरे नेह अलौकिक की गति कहौ कोऊ किमि जानै ।
जाके कहे-सुने जग रीझत सो कछु और कहानी ।
हम जिमि पागल बकत सुनत नहिं तासों कोउ मम बानी।
जानत नहिं परिनाम आपनो केवल रोअन जानै ।
अति बिचित्र मेरी गति प्यारे कैसे कहो बखानै ।
छूटत जग न धरम कछु निबहत रहत जीअ अकुलाई ।
होत न कछु निरनैं का ह्वै है तुम बिन कुँवर कन्हाई ।
कहा करैं कित जाँय पियारे कछुक उपाव बताओं ।
'हरीचंद' ऐसे नेहिन कों क्यौं न धाई गर लाओ ।३५

तुम बिन प्यारे कहूँ सुख नाहीं ।
भटक्यौ बहुत स्वाद-रस-लंपट ठौर-ठौर जग माँही ।
प्रथम चाव करि बहुत पियारे जाइ जहाँ ललचाने ।
तहँ ते फिर ऐसो जिय उचटत आवत उलटि ठिकाने ।
जित देखो तित स्वारथ ही की निरस पुरानी बातें ।
अतिहि मलिन व्यवहार देखि कै घिन आवत है तातें ।
हीरा जेहि समझत सो निकरत काँचो काँच पियारे ।
या व्यवहार नफा पाछें पछतानो कहत पुकारे ।
सुंदर चतुर रसिक्र अरु नेही जानि प्रीति जित कीनो ।
तिन स्वारथ अरु कारो चित हम भले सबहि लख लीनो।
सब गुन होई जुपै तुम नाहीं तौ बिनु लोन रसोई ।
ताही सों जहाज-पच्छी-सम गयो अहो मन होई ।
अपने और पराए सब ही जदपि नेह अति लावैं ।
पै तिन सों संतोख होत नहिं बहु अचरज जिय आवैं ।
जानत भलें तुम्हारे बिनु सब बादहि बीतत साँसैं ।
'हरीचंद' नहिं छुटत तऊ यह कठिन मोह की फाँसैं।३६

भूलि भव-भोगन भूमत फिर्‌यौं ।
खर कूकर सूकर लौं इत उत डोलत रमत फिर्‌यौं ।
जहँ जहँ छुद्र लह्यौ इंद्री-सुख तहँ तहँ भ्रमत फिर्‌यौं ।

छन भर सुख नित दुखमय जे रस तिन में जमत फिरयौं।
कबहुँ न दुष्ट मनहि करि निज बस कामहि दमत फिरयौं।
'हरीचंद' हरि-पद-पंकज गहि कबहूँ न नमत फिरयौं।३६

जो पै ऐसिहि करन रही ।
तो क्यों इतनी प्रीत बढ़ाई जो न अंत निबही ।
मीठे मीठे बचन बोलि कै दीनी क्यों परतीति ।
अब क्यौं छाँडि पराए ह्वै गए कहो कहो कौन यह नीति।
जौ मधुपुरी गमन तुम पहिलेहि बदि राखी मन माहीं ।
क्यों बृंदाबन सरद-चाँदनी बिहरे दै गल-बाहीं ।
कहाँ गई वह बात तुम्हारी कहाँ गयो वह प्यार ।
कित गई प्रेम भरी वह चितवनि जिहि लखि लाजत मार।
पहिले कहि देते हम सों नहिं निबहैगो यह प्रेम ।
'हरीचंद' यह दगा दई क्यों ठानि प्रीति को नेम ।३८

प्राननाथ भई सब भाँति तिहारी ।
बिगरी सबही भाँति कोऊ नाहिन रखवारी ।
कहा करैं कित जायँ ठौर नहिं कतहूँ लखाई ।
सब भाँतिन सो दीन भई दोउ लोक गँवाई ।
माने धरम न एक रही तुव पद अनुरागीं ।
कठिन करम अरु ज्ञान लखत दूरहि तें भागीं ।
तुव पद-बल अभिमान न कोउ कहँ तृन सम जान्यो ।
हित अनहित नहिं लख्यौ जगत काहुवै न मान्यो ।
काहू की नहिं होइ रही कोउ कियो न अपनो ।
ऐसी बेसुध जगत बसी मनु देखत सपनो ।
भली बात जेहि जगत कहत सो एक न कीनी ।
रही कुचालन सनी सदा गति अपजस पीनी ।
काहू सों नहिं डरीं रहीं बहु बैर बढ़ाई ।
अनहित जगहि बनायो नहि सीखी चतुराई ।
महामोद मैं बही सदा दुख ही दुख पायो ।
रोअत ही करि हाय हाय सब जनम गँवायो ।
सुख केहि कहत न हाय कबौं सपनेहूँ जान्यौ ।
जग के स्वादन हूँ कहँ नहिं कबहूँ पहिचान्यौ ।
उमगि उमगि कै सीदा रहीं रोअत दुख मानीं ।
कोउ सों मरम न कह्यौ रहीं मन फिरत दिवानी ।
'हरीचंद' कोउ भाँति निबाही प्रीति तुम्हारी ।
पैं अब सो नहिं चलत हहा प्यारे बनवारी ।३९

खोजहू न लीनो फेरि नैन-बान मारि कै ।
तड़पत ही छोड़ि गयो घायल करि डारि कै ।
भौह की कमान तान गुन-अंजन छाकि कै ।
काम जहर सों बुझाई मारयौ मोहिं ताकि कै ।
व्याकुल हौं तलपत तेहि दया नाहिं आवई ।
पानिप पानिप पिआइ मोहि ना जिआवई ।
प्रानहु अवसाने तन ब्याकुल भई भारी ।
'हरीचंद' निरदै मन-मोहना सिकारी ।४०

जहाँ तहाँ सुनियत अति प्यारो ।
प्यारे हरि को सुखद बिसद जस ।
करन रंध्र मैं स्रवत सुधा सम
सीतल होय हियो सुनि अति रस ।
अजामेल गज सों जो कीनी ।
दीन सुदामा कों जु कियो हित ।
सबरी कपि गनिका की करनी
नाथ-कृपा गावत सब जित तित ।
बधिक बिराध ब्याध जवनादिक
तारे छिनक बार लागी नहिं ।
पावन कियो पुलिंदी-गन कों दै
कुच-कुंकुम-जुत-पद-रज महिं ।
भाँति अनेक बिबिध बिधि बरनित
अगिनित गुनगन गथित मथित श्रुति ।
जहाँ तहाँ सुनियत सबके मुख
श्रवन सुखद संतत हिय हित अति ।
कोउ जस कोऊ गरीब-नेवाजी
कोऊ पतित-पावनता गावत ।
दीन-बंधु-ताई हितकारी
सरस सुभाव नेह बरसावत ।
नृप नारी द्रौपदी आदि सम
गावत ग्राम नगर नारी-नर ।
हियो भरयौ आवत सुनि सुनि कै
गोविंद नामांकित जस सुंदर ।
कहँ लौं कहौं कहत नहिं आवत
जो हरि करत पतित-हित कारन ।
'हरीचंद' सरनागत-वत्सल,
दीन-दयानिधि पतित-उधारन ।४१

मनवत मनवत ह्वै गयो भोर ।
खसित निसा-नायक पच्छिम दिसि सोर करत तमचोर।
पियहि सबै निसि जागत बीती खरे खरे कर जोर ।
आलस बस अब लरखरात पग निरखत तुव दृग कोर।
क्यौं सखि प्रेमहि लाज लगावति करिकै बृथा मरोर ।
'हरीचंद' गर लग उठि पिय के हौं तोहिं कहत निहोर।४२

आजु मेरे भोरहि जागे भाग ।
आए पिया तिया-रस-भीने खेलत दृग जुग फाग ।
भलौ हमैं भूलै तौ नाहीं राख्यौ जिय अनुराग ।
साँझ भोर एक ही हमारे तुव आवन की लाग ।
मंगल भयो भोर मुख निरखत मिटे सकल निसि दाग।
'हरीचंद' आओ गर लागो साँचो करौ सोहाग ।४३

हम तुम पिया एक से दोऊ ।
मानौ बिलग न नेक साँवरे घट बढ़िकै नहिं दोऊ ।

तुम जागे हमहूँ निसि जागे तिय सँग जोहत बाट ।
खरे बिताई निसि हम दोउन मनवत पकरि कपाट ।
सिथिल बसन तुमरे औ हमरे भोगत पछरा खात ।
थाकी गति दोउन की आलस इत उत आवत जात ।
अरुनारे दृग अंजन फैल्यौ बिलसत होइ हरास ।
टूटे बन्द कहा कंचुकि के लपटत लेत उसास ।
हम तुम एक प्रान मन दोऊ यामैं कछ्रु न भेद ।
'हरीचंद' देखहु बिन श्रम सों दोऊ के मुख स्वेद ।४४

ईमन

गोरी-गोरी गुजरिया भोरी कान्हर नट के संग
ललित जमुन-तट-नव बसंत करि होरी ।
सोभा सिन्धु बहार अंग प्रति दिपति देह
दीपक सी छबि अति मुख सुदेस ससि सोंरी ।
आसा करि लागी पिय सों रट पंचप सुर गावत ईमन
हट मेघ बरन 'हरिचंद' बदन अभिराम करी बरजोरी।
सारँगनैनि पहिरि सुहा सारी भयो कल्यान
मिले श्री गिरिधारी छबि पर जन तृन तोरी ।४५

प्यारे की छबि मनमानी सिर मोर मुकुट
नट भेख धरे मेरे घर आए दिलजानी ।
चतुर खिलारी गिरिधारी हँसि हँसि गर लाए
मन भाए 'हरिचंद' न सुरत भुलानी ।४६

प्यारी जू के तिल पर बलि बलिहारी ।
जा मिस बसत कपोल न अनुछिन लघु बनि पिय गिरधारी।
पिय की दीठ चीन्ह मनु सोहत लागत अति ही प्यारी ।
'हरीचंद' सिंगार तत्व सी लखि मोहन मनवारी ।४७

कहु रे श्रीवल्लभ-राजकुमार ।
दीन-उधारन आरति-नासन प्रगट कृष्ण अवतार ।
काहें तू भरमायो डोलत साधन करत हजार ।
यह भव-रुज क्यौंह्र नहिं जैहै बिना चरन-उपचार ।
कौन पतित सो प्रेम निबहिहै जो बहु अघ-आगार ।
श्रुति-पुरान कछु काम न ऐहैं यह तोहिं कहत पुकार ।
बुरे दिनन को साथी नहिं कोउ मात-पिता-परिवार ।
'हरीचंद' तासों बिट्ठल भजु अरे यहै श्रुति-सार ।४८

जौ पैं श्रीवल्लभ-सुतहिं न जान्यौ ।
कहाँ भयो साधन अनेक मैं परिकै बृथा भुलान्यौ ।
बादि रसिकता अरु चतुराई जौ यह जीअ न आन्यौ ।
मर्यौ बृथा बिषया रस लंपट कठिन करम मैं सान्यौ ।
सोई पुनीत प्रीति जेहि इनसों बृथा बेद मथि छान्यौ ।
'हरीचंद' श्रीबिट्ठल बिनु सब जगत झूठ करि मान्यौ।४९

पतित-उघारन नाम सही ।
श्रीवल्लभ-बिट्ठल बिनु दूजो नेह निबाहन हार नहीं ।
साधन बृथा न करु मन लंपट भूलि बुद्धि क्यों जात बही।
कोऊ कछ्रु काम नहिं ऐहै क्यों डोलत करि मही-मही।
दीनन के हित नाहिंन दूजो यहै बात करि सपथ कही ।
'हरीचंद' ये अधम-उधारन अरे यही इक यही-यही ।५०

चिर जीयो मेरो श्रीवल्लभ-कुल ।
माया मत खर तिमिर दिवाकर
प्रेम अमृत पय रस सागर-पुल ।
कलि खल-गन-उद्धरन रसिक-जन
सरन-करन बिरहिन बिरहाकुल ।
'हरीचंद' दैवी जन प्रियतम
पतित-उद्धरन महिमा अन-तुल ।५१

श्रीवल्लभ प्रभु मेरे सरबस ।
पचौ बृथा करि जोग जाय कोउ
हमको तो इक यहै परम रस ।
हमरे मात पिता पति बंधू
हरि गुरु मित्र धरम धन कुल जस ।
'हरीचंद' एकहि श्रीवल्लभ
तजि सब साधन भए इनके बस ।५२

गीत

बना मेरा ब्याहन आया बे ।
बना मेरा सब मन-भाया बे ।
बना मेरा छैल छबीला बे ।
बना मेरा रंग-रँगीला बे ।

बनरा रँगीला रँगन मेरा सबन के दृग छावना ।
सुंदर सलोना परम लोना श्याम रंग सुहावना ।
अति चतुर चंचल चारु चितवन जुवति-चित्त-चुरावना।
ब्याहन चला रँग-रस-रला जसुमति-लला मन-भावना।

बना के मुख मरवट सोहै बे ।
बना देखन मन मोहै बे ।
बना केसरिया जामा बे ।
बना लखि मोहत कामा बे ।

लखि कान मोहै श्याम छबि पर लखत सुंदर जेहरा ।
सिर जरकसी चीरा झुकाए खुला तिस पर सेहरा ।
कटि ललित पटुका बँधा सूहा सुभग दोहरा तेहरा ।
जियमें हमारी नवल दुलहिन-हेत धरे सनेहरा ।

बना के नैना बाँके बे ।
बने दोनों मद छाके बे ।
बना की भौंह कमानै बे ।
बनी का हिअरा छानै बे ।

छाने बना का नवल हिअरा भौंह बाँकी प्यार की ।
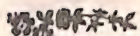
जुलफैं बनी उलफैं जिया की हिलत मोहन मार की ।
कर सुरख मेंहदी पग महावर लपट अतर अपार की ।
जिय बस गई सूरत निवानी दूलहे दिलदार की ।
बना मेरा सब रस जानै बे ।
बना प्रीतहि पहिचानै बे ।
बना चतुरा रस-बादी बे ।
बनी-रस-अधर-सवादी बे ।

रस अधर स्वादी बनी का अँग-अंग रस कस के भरा ।
जिय प्रेम मानै नेह जानै सकल गुन-आगर खरा ।
बिधि मदन मानी छबि गुमानी नवल नेही नागरा ।
निधि रसिक की 'हरिचंद'
सरबस नंद-बंस उजागरा ।५३

लावनी

सखी चलो साँवला दूलह देखन जावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ।
नीली घोड़ी चढ़ि बना मेरा बन आया ।
भोले मुख मरवट सुंदर लगत सुहाया ।
जामा चीरा जरकसी चमक मन भाया ।
सूहा पटुका कटि कसे भला छबि छाया ।
हाथों मेंहदी मन हाथों हाथ चुरावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ।
सिर मौर रँगीला तुर्रों की छबि न्यारी ।
मोती लर गूथा सेहरा मुख मन-हारी ।
फूलों की बेनी भबिया लटकै प्यारी ।
सिर पेंच सीस कानन कुंडल छबि भारी ।
घुँघराली अलकैं नैनन को अति भावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ।
तैसी दुलहिन सँग श्रीवृषभानु-कुमारी ।
मौरी सिर सोहत अंग केसरी सारी ।
मुख वरवट कर मैं चूरी सरस सँवारी ।
नकबेसर सोभित चितहि चुरावनवारी ।
सिर सेंदुर मुख मैं पान अधिक छबि पावै ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ।
सखियन मिलि रस सों नेह गाँठ लै जोरी ।
रहिं वारि-फेरि तन मन धन सब तृन तोरी ।
गावत नाचत आनँद सों मिलि के गोरी ।
मिलि हँसत हँसावत सकत न कंकन छोरी ।
'हरिचंद' जुगल छबि देखि बधाई गावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ।५४

ईमन, ताल नाम गर्भित

जै आदि ब्रह्म औतारी इक अलख अगोचर-चारी ।
लक्ष्मीपति घन जलद बरन तन रुद्र तीन
दृग चार बदन पति सुंदर गरुड़ सवारी ।
कहा कहों री रूपक हरि को चलत कबहुँ
धीमे कहुँ द्रुत गति बृंदाबन बनवारी ।
सुफल कतल कर जुलुफ बनी सिर
भक्त जनन के आड़े आवन
'हरीचंद' यह सृष्टि रची रचि अचिर चरचरी सारी ।५५

लावनी

तुम बिनु ब्याकुल बिलपत बन-बन बनमाली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।
तुव ध्यान धारि धरि बंसी अधर बजावैं ।
भरि बिरह नाम लै राधा राधा गावैं ।
तुव आगम सुमिरत छन-छन सेज सजावैं ।
मग लखत द्वार पर बार बार उठि धावै ।
मुरछात देखि तुव बिना सेज कहँ खाली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।
संजोग साज सिंगार न तुव बिनु भावैं ।
तन चंद चाँदनी औरहु बिरह जरावैं ।
जल चंदन माला फूल न कछू सुहावैं ।
तुम आगम बिनु कर मीजि मीजि पछतावैं ।
भई रैन चैन बिनु डसन मदन बिख ब्याली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।
अपने अपराधन कबहूँ बैठि बिचारै ।
तुव मिलन मनोरथ अल-बल बैन उचारै ।
कबहूँ संगम-सुख सुमिरत हियरो हारै ।
कबहूँ तेरे गुन कहि कहि धीरज धारै ।
भई रात ऊजरी दुख बियोग सौं काली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।
सुमिरत तोहि दृग भरि रहत श्याम सुखदाई ।
गद्‌गद गल बचनहु बोलि न सकत कन्हाई ।
पिय दुखित दसा देखी नहिं अब तो जाई ।
कर जोरत मिलु अब मोहन सों सखि धाई ।
'हरिचंद' मनावत पूरब छाई लाली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।५६

अष्टपदी

रासे रमयति कृष्णं राधा ।
हृदि निधाय गाढ़ालिंगन कृत हृत बिरहातप-बाधा ।
आश्लिष्यति चुम्बति परिरम्भति पुन : पुन : प्राणेशं ।
सात्विकभावोदयशिथिलायित। मुक्ताऽकुञ्चिततकेशं ।
गुजलतिकाबन्धमाबद्धं कामकल्पतरुरूपं ।
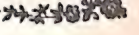
सीमन्तिनी कोटिशतमोहनसुन्दरगोकुलभूपं ।
स्वालिंगनकण्टकित -तनु- स्पर्शोदितमदनविकारं ।
स्खलित वचनरचन श्रवण स्खलितीकृतरतरति-मारं ।
रतिविपरीतलालसालसरस लसित मोहिनीवेशं ।
निज सीत्कारमोहितप्रमदादत्तमाधवावेशं ।
हुंकृतिद्विगुणसुरतपणश्रमलोलित नाशाभूषं ।
निजासेचनकसिंचित शशधार-मुख-स्वेदपीयूषं ।
वात्स्यायनविधिविहितषडङंग विलक्षण रक्षण दक्षं ।
चतुराशीति चतुरा तरता धृत कामकलाकलपक्षं ।
स्वेद-सुगंधविमूर्च्छितालिकुल सहकिंकिणिकलरावं ।
नखदानाधरखण्डनजनितोद्भटसहचारीभावं ।
कठिनकुचामर्दन शिथिलीकृतकरकंकणभुजबन्धं ।
प्रतिमुद्रितसिंदूरकज्जलादिक मुख हृदय स्कन्धं ।
निशावसानाजागर जेनित सखीजनमोहित तन्द्रे ।
गायति गोकुलचन्द्राग्रज कवि हरिश्चन्द कुलचन्द्रे ।५७

गरबो

थारे मुख पर सुंदर श्याम, लटूरी लट लटके छे ।
जे ने जोईने म्हारो मन लाल, जाइ-जाइ अटके छे ।
थारा सुन्दर नैन विशाल, प्यारा अति रूडा छे ।
जेने जोईने जग ना रूप, लागे भूँडा छे ।
थारा सुन्दर गोल कपोल, गुलाब जेव्हा फूल्या छे ।
जेने जोईने मन-भ्रमर, जुवतिओ ना भूल्या छे ।
तारे कंठे बे बधनखा, मनोहर सोहे छे ।
जेवा नव ससिना बे कटकाँ, लखताँ मोहे छे ।
तारा बोली अमृत सनी, करण-सुखदाई छे ।
जेने साम्हड़ताँ मन जाय, एह्वी मिठाई छे ।
तारो नख सिख रूप अनूप, सोभा प्यारी छे ।
जेनी सोभा लखीने 'हरीचंद' बलिहारी छे ।५८

बाला वल्लभ सुमिरण करताँ सहु दुख भागे छे ।
जेनो मंगलमय सुभ नाम अमृत जेवो लागे छे ।
जेनो सुंदर श्याम स्वरूप कृष्ण जेवो सोहे छे ।
जेने कंकुम तिलक ललाटे म्हारूँ मन मोहे छे ।
जेने नैणा जुगल विशाल कृपा-रस भरी रह्या छे ।
जेमा राधा कृष्णना रूप शोभा करी रह्या छे ।

जेनी लाँबी लाँबी बाँहों शोभा पाए छे ।
जेथी तार्‌या पतित हजार म्हारो मन भाए छे ।
जेना चरणे जन ना शरण तीर्थमय उभये छे ।
जेने जोँताँ जनना चित्त भिया थाय निभये छे ।
म्हारा लछमन-नंदन प्यारा गुरु केहवाये छे ।
जेना पद-रज पर 'हरिचंद' बलि बलि थाए छे।५९

कवित्त

जानि बिन पीतम सहाय लै बसंत काम,
इनहीं कबहूँ महा प्रलय प्रचारे हैं ।
आयो जानि आज प्रान-प्यारो 'हरिचंद' ह्वै कै,
सीतल सुगंध मंद मंद पग धारे हैं ।
मूँदि दै झरोखन कों डारि परदान जामैं,
आवै नाहिं क्योंहूँ पौन अति बजमारे हैं ।
छुअन न दैहौं इन्हैं सपनेहूँ अंग यह,
बेई अहैं आग ह्वै ह्वै अंग जिन जारे हैं ।६०

हय चले हाथी चले रथ चले प्यादे चले,
ऊँट चले रेल चली तार धाय कै चली ।
सूर चले चंद चल्यौ तारा चलें दिन चल्यौ,
रैन चली छिन चले पल पल में टली ।
बाप चल्यौ बेटा चल्यौ नारि चली मीत चले,
'हरीचंद' चली देव-दानव की मंडली ।
प्रति जुग प्रति वर्ष प्रति मास प्रति दिन,
प्रति घरी प्रति छिन लागी है चला-चली ।६१

गौरी

प्रान पिया के गुन-गन सुनौ री सहेली आय ।
सुमिरत गर भरि आवत मोपैं कह्यो न जाय ।
हौं निकसी घर बाहिर पिय मिले मारग माँह ।
मो पग छाँह छुआई प्यारे मुकुट की छाँह ।
मो दृग जल भरि आयो लखि कै ललन सनेह ।
बेबस मन भयो ब्याकुल कँपि सिथिल भई देह ।
लखि मग बहु जन हौं कछु बोलि सकी नहिं हाय ।
मुख की छाँह मिलायो मुख पिय तब चलि धाय ।
गेंद उठावन मिस लै मम पग-तर की धूरि ।
हा हा नैन लगाई मोहन जीवन-मूरि ।
चलि चलि आगे पाछे लटू भयो मँड़राइ ।
अनुचर भाव दिखायो प्रान-जीवन जदुराइ ।
इक दिन भवन अकेली दुपहर बैठी भौन ।
आए भेस बनाए सुंदर राधा-रौन ।
उठन चली आदर हित लखि पिय मोहन मैन ।
बादन इमि बैठाई कहि कहि सादर बैन ।
ठोढ़ी गहि मुख निखरत इक टक भरि दृग नीर ।
भुज गहि कहि हिय लाई प्रान-पिया बलबीर ।
इक चुम्बन हित उझकत जब लौं मैं ललचाय ।
तब लौं सौ लीन्हे प्यारे कंठ लगाय ।
देखि सकी न पिया मुख नीचे ह्वै गए नैन ।
तब लौं मैं दृग चूम्यौ सिर हिय धरि सुख-दैन ।
मम दृग जल-कन देखत पिय अति ही अकुलाइ ।
कसिकै हिय लगायो निज दृग जल बरसाय ।

मम मुख-ससि-दिसि निरखत पिय दृग भए चकोर ।
भे आनँद-घन चाकत देखत मेरी ओर ।
मम मुख पिय सुख पावत मम-मय भे पिय-प्रान ।
आदर-मय मोहि कीन्ही प्यारे चतुर सुजान ।
इक मुख गुन-गन अगनित कैसे कहौं बयान ।
हिय उमगत गर रूँधत नैन रहत झर लाय ।
परम मधुर नित नूतन कहँ लौं कहिए गाय ।
'हरीचंद' पिय गुन-गन जीवन एक उपाय ।६२

हिंडोले का प्रसंग

एरी हरियारी माँहि नीकी अति लागे तोहि,
सारी हरियारी जासों तूही हरि प्यारी है ।
बृन्दावन-देवी तू प्रतच्छ मनो आज भई,
हरिहू की परम बियोग-ताप-हारी है ।
गौर-श्याम-एकता रहस्य मनु प्रगट कियो,
हरि मैं सब भई सोई हरित सिंगारी है ।
'हरीचंद' हेतु हरि कलप तरोवर में,
लपटि रही कीरति की बेलि हरियारी है ।६३

दीपावली का पद

कुंज-महल रतन-खचित जगमग प्रतिबिंबन अति
सोभित ब्रज-बाल-रचित दीप-मालिका ।
इक-इक सत-सत लखात सो छबि बरनी न जात
जोतिमई सोहित सुंदर अरालिका ।
मानहु सिसुमार चक्र उडुगन सह लसत गगन
उदित मुदित पसरित दस दिसि उज़ालिका ।
मेट्यौ तम तोम तमकि बहु रबि इक साथ चमकि
अगनित इमि दीप करै कौन तालिका ।
सोरह सिंगार किए पीतम को ध्यान हिए,
हाथ किए मंगलमय कनक थालिका ।
गावन मिलि सरस गीत झलकत मुख परम प्रीत,
आई मिलि पूजन प्रिय गोप-बालिका ।
राधा-हरि संग लसत प्रमुदित मन हेरि हँसत,
जुग मुख छबि छूट परत गोख-जालिका ।
'हरीचंद' छबि निहार मान्यौ त्यौहार चार,
धनि-धनि दीपावलि सब ब्रज-रसालिका ।६४

जीव का दैन्य

कहिए अब लौं ठहर्‌यौ कौन ।
सोई भाग्यो तुव साम्हें सो गयो परिछयौ जौन ।
नारद विश्वमित्र पराशर महा-महा तप-खानि ।
असन बसन तजि बन में निबसे जन कहँ कंटक जानि ।
तिनहूँ की जब भई परिच्छा तब न नेक ठहराए ।
माया-नटी पकरि तिनहूँ कहँ पुतरी से नचवाए ।
तो जे जग मैं बसत विषय के कीट पाप मैं पागे ।
तिनको तुम परखन का चाहत हम तो अघ अनुरागे ।
अपुनो बिरुद समुझि करुनानिधि
निज गुन-गनहिं बिचारी ।
सब बिधि दीन हीन 'हरीचंदहि' लीजै तुरत उधारी ।६५

प्यारे मोहिं परखिए नाहीं ।
हम न परिच्छा जोग तुम्हारे यह समुझहु मन माहीं ।
पापहि सों उपज्यौ पापहि में सगरो जनम सिरान्यो ।
तुव सनमुख सो न्याव-तुला पैं कैसो के ठहरान्यौ ।
कीटहु तें अति तुच्छ मंद मति अधम सबहि बिधि हीना ।
जो ठहरै किमि जाँच-समय में जो सबही बिधि दीना ।
दयानिधान भक्त-वत्सल करुनामय भव-भयहारी ।
देखि दुखी 'हरीचंदहि' कर गहि बेगहि लेहु उबारी ।६६

साँझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है ।
हम सब इक दिन उड़ जाएँगे यह दिन चार बसेरा है ।
आठ बेर नौबत बज-बजकर तुझको याद दिलाती है ।
जाग-जाग तू देख घड़ी यह कैसी दौड़ी जाती है ।
आँधी चलकर इधर उधर से तुझको यह समझाती है ।
चेत चेत जिंदगी हवा सी उड़ी तुम्हारी जाती है ।
पत्ते सब हिल-हिल कर पानी हर-हर करके बहता है ।
हर के सिवा कौन तू है बे यह परदे में कहता है ।
दिया सामने खड़ा तुम्हारी करनी पर सिर धुनता है ।
इक दिन मेरी तरह बुझोगे कहता तू नहिं सुनता है ।
रोकर गाकर हँसकर लड़कर जो मुँह से कह चलता है ।
मौत-मौत फिर मौत सच्च है येही शब्द निकलता है ।
तेरी आँख के आगे से यह नदी बही जो जाती है ।
योंही जीवन बह जायेगा यह तुझको समझाती है ।
खिल-खिलकर सब फूल बाग में कुम्हला-२ जाते हैं ।
तेरी भी गति यही है गाफिल यह तुझको दिखलाते हैं ।
इतने पर भी देख औ सुनकर क्या ग़ाफ़िल हो फूला है ।
'हरीचंद' हरि सच्चा साहब
उसको बिलकुल भूला है ।६७

कवित्त

वह द्विजवर हम अधम महान वह अति ही
संतोषी मैं तो लोभ ही को जामा हौं ।
वह स्तुति पढ्यो महामूढ़ बुद्धि मेरी उन
तंदुल दियो हौं मनहूँ सो निहकामा हौं ।
'हरीचंद' आइ बनी एकै बात दीनानाथ
यासों मोहिं राखि लेहु जो पै अघ-धामा हौं ।
बालपने ही सों सखा मान्यौ हैं तुमहिं एक
दीन हीन छीन हौं मैं याही सों सुदामा हौं ।६८

होइ कुल-नारी ऐसी बात क्यौं बिचारी यामें
प्रति अघ भारी यह कहत पुकारी हौं ।
यही करनी है जो तौ खोजौ कोऊ धनी बली
हौं तो निज नारि के बियोग में दुखारी हौं ।
'हरीचंद' याही सों सुदामा बतरात इमि
छाँड़ौ मेरो हाथ ना तो दैहों शाप भारी हौं ।
द्वारिका में जाइ कै पुकारिहौं हरिहि मोहिं
काहे दुख देत मैं तौ बाम्हन भिखारी हौं ।६९

कितै गई हाय मेरी कुटिया परन छाई
साढ़े तीन पादहू की खटियौ कहा भई ।
कितै गए जनम के जोरे माटी-भाँड मेरे
सहसन टूक की कथरिया कितै गई ।
हरीचंद' कहत सुदामा बिलखाई इत
लाई किन राशि मनि-कंचन महामई ।
और जो गयो तो सहि जैहौं कोऊ भाँति पै
बताओ कोऊ हाय मेरी बाम्हनी कहाँ गई ।७०

परन-कुटीर मेरी कहाँ बहि गयी इत
कंचन महल ऊँचे ठाढ़े हैं महा विचित्र ।
मृत्तिका के भाँडहू बिलाने मेरे कंथा सह
टूटी पटरी मैं धरी पोथी हू गई पवित्र ।
'हरीचंद' नारिहू को खोज ना मिलत कहूँ
रोअत सुदामा हाय कैसो भयो है चरित्र ।
मिलन सों रह्यौ-सह्यौ घरहू उजार्‌यौ वाह
द्वारिका के नाथ भली मित्रता निवाही मित्र ।७१

फल दियो भीलनी अजामिल उचार्‌यो नाम
गिद्ध कियो जुद्ध, गज कलिका चढ़ाई है ।
गोपी-गोप नेह कीनो केवट चरन धोयो
सेवा करी भील कपि रिपु सों लराई है ।
'हरीचंद' पद को परस मुनि-नारि लह्यौ
गनिका पढ़ावत सुवा को नाम गाई है ।
इनके न एकौ गुन औगुन सबै के मोमैं
एतेहू पै तारौ सबै आपु की बड़ाई है ।७२

देखि कै काली कराली महा डरि
बुद्धि न ता पद माँहि धँसी है ।
लक्ष्मी के बहु वैभव चाहि न
लालच में अति मेरी फँसी है ।
त्यों 'हरीचंद' सरस्वति सेइ न
ज्ञान के ध्यान न मैं हुलसी है ।
चाकर हैं ब्रज साँवरे के
जिन टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ।७३

जो बिनु नासिका कान को ब्रह्म है
ता दिसि बुद्धि न नेकु धँसी है ।
निर्गुन जौन निरंजन है छबि ताकी
न या जिय माहिं धँसी है ।
त्यों 'हरिचंद जू' सीस सहस्र के
देव मैं इच्छा न नेकु गँसी है ।
चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन
टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ।७४

छोटे हैं छोटिहि बात रुचै मोहिं
यासों न जाल में बुद्धि फँसी है ।
गुंज हरा परे देखि नरामधि
दृष्टि तहीं मम जाय धँसी है ।
त्यों 'हरिचंद जू ' मोर-पखौअन
गौअन देखि महा हुलसी है ।
चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन
टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ।७५

लोचन चारु चकोरन कों सुख-दायक
नायक गोप ससी है ।
होत हियो हरियारो बिलोकत
कंठ हरा हरि के तुलसी है ।
पालक हैं 'हरिचंद' को तौन जो
नंद को बालक लोक जसी है ।
चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन
टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ।७६

गीत-गोविंदानंद

[हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खं. ५-६, नवम्बर १८७७ से अक्टूबर १८७८ के बीच प्रकाशित]

गीत-गोविंदानंद

दोहा

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर ।
जयति अलौकिक घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ।१
रसिक-राज बुध-बर विदित प्रेमी प्रिय-पद-सेव ।
राधा-गुन-गायक सदा मधु-बच जिय जयदेव ।२
कहँ कविवर जयदेव-बच कहँ मम मति अति हीन ।
पै दोउ हरि-गुन-गामिनी एहि हित यह स्रम कीन ।३
रसिकराज जयदेव की कविता को अनुवाद ।
कियो सबन पै नहिं लह्यौ तिनमैं तौन सवाद ।४
मेटन को निज जिय खटक उर धरि पिय नँदनंद ।
तिनहीं के पद-बल रच्यौ यह प्रबंध हरिचंद ।५
जिमि बनिता के चित्र मैं नहिं कछु हास-बिलास ।
पै जेहि सो प्रिय सो लहत वाहू मैं सुखरास ।६
तैसहि गीत-गुविंद अति सरस निरस मम गीत ।
पै जिन कहँ प्रिय तौन ते करिहैं यासों प्रीत ।७

मंगलाचरण

मेघन तें नभ छाय रहे,
बन भूमि तमालन सों भई कारी ।
साँझ समै डरिहै, घर याहि
कृपा करिकै पहुँचावहु प्यारी ।
यों सुनि नंद-निदेश चले दोउ
कुंजन में बृषभानु-दुलारी ।
सोइ कलिंदी के कूल इकंत की,
केलि हरै भव-भीति-हमारी ।८

दोहा

वाणी चारु चरित्र सों, चित्रित जो पिय भीति ।
पद्मावति पद दास जो, जानत कविता-रीति ।९
सोई कवि जयदेव यह, गीत-गोविंद रसाल ।
रच्यौ कृष्ण कल केलिमय, नव प्रबंध रस-जाल ।१०
जौ हरि सुमिरन होइ मन, जौ सिंगार सो होत ।
तौ बानी जयदेव की, सुनु सब सुगुन-निकेत ।११

सवैया

बेद-उधारन मंदर-धारन
भूमि उबारन ह्वै बनचारी ।
दैत विनासी बलि के छलि
छय-कारक छत्रिन के असुरारी ।
रावन-मारन त्यौं हल-धारन
बेद निवारन म्लेच्छ-सुदारी ।
यों दस रूप-विधायक कृष्णहि
कोटिन्ह कोटिप्रनाम हमारी ।१२

राग सोरठ

जय जय राधा हरि-राधा-रस-केलि । [१]
तरनि तनूजा-तट इकंत मैं बाहु बाहु पर मेलि । ध्रुव
एक समैं हरि नंदराय सँग रहे बाट मैं जात ।
तितही श्री राधा सुख-साधा आइ कढ़ी हरखात ।
हरि-माया करि मेघ बुलाए छाए घेरि अकास ।
साँझ समय भुव लहि तमाल तरु भई श्याम सुखरास ।
देखि नंद भय करि श्यामा सों बोले बैन रसाल ।
यह डरपत लखि कै अँधियारी बारो मेरो लाल ।
आगे हौं लै जाइ सकत नहिं भई भयानक साँझ ।
राधे करिकै दया याहि तुम पहुँचाओ घर माँझ ।
इमि सुनि नंद-निदेस चले दोउ बिहरत जमुना-तीर ।
'हरीचन्द' सों निरखि जुगल-छबि
हरी दृगन की पीर[२] ।१३

राग मालव

जय जय जय जगदीश हरे ।
प्रलय भयानक जलनिधि जल धँसि प्रभु तुम बेद उधारे।
करि पतवार पुच्छ निज बिहरे मीन सरीरहि धारे ।ध्रु.
कठिन पीठ मंदर मंथन किन छिति भर तिल सम राजै।

---

[१] इस मंगलाचरण में बारहो रस हैं । इससे यथाक्रम शृंगार, अद्‌भुत, वीर, रौद्र, भयानक, हास्य, वात्सल्य, करुणा, वीभत्स, सख्य, माधुर्य और शांत हैं ! (चंद्रिका)

[२] ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्का-जन्म खंड की यह कथा है । (चंद्रिका)

गिरि घूमनि सुहरानि नींद-बस
कमठ रूप अति छाजै । जय.
कनक-नयन-बध रुधिर छींट मिलि
कनक बरन छबि छायो ।
रद आगे धर ससि कलंक मनु
रूप बराह सुहायो । जय.
कर-नख-केतकिपत्र अग्र अलि-
कनककसिपु तन फार्‌यौ ।
खंभ-फारि निज जन-रच्छन-हित
हरि नरहरि-वपु धार्‌यौ । जय.
अद्‌भुत बामन बनि बलि छलिकै
तीन पैंड़ जग नाप्यौ ।
दरसन मज्जन पान समन अघ
निज नख जल थिर थाप्यौ । जय.
अभिमानी छत्रीगन बधि तिन
रुधिर सींचि धर सारी ।
इकइस बार निछत्र करी भुव
हरि भृगुपति-बपुधारी । जय.
दस दिसि दस सिरमौल दियो
बलि सब सुरगन भय हारे ।
सिय लछमन सह सोभित
सुंदर रामरूप हरि धारे । जय.
सुंदर गोर सरीर नील पट
ससि मैं घन लपटायो ।
करसन कर हल सों जमुना जल
हलधर रूप सुहायो । जय.
अति करुना करि दीन पसुन पैं
निंदे निज मुख वेदा ।
कलिजुग धरम कहे हरि ह्वै कै
बुद्ध रूप हर खेदा । जय.
म्लेच्छ बधन हित कठिन धार
तरवार धारि कर भारी ।
नासे जवन सत्ययुग थाप्यौ
कलकि रूप हरि धारी । जय.
नंद-नँदन जग-वंदन दस बपु
धरि लीला बिस्तारी ।
गाई कवि जयदेव सोई
'हरिचंद' भक्त-भय हारी । जय.।१४

झिंझौटी वा खमाच

कमला-उर धरि बाहु बिहारी ।
कुंडल कनक गंड जुग-धारी ।।
ललित कलित बनमाल सँवारी ।
जय जय जय हरि देव मुरारी ।।
जय जय दिनमनि तेज-प्रकासन ।
जय जय जय जय भव-भय-नासन ।।
मुनि-मन-मानस-जलज-विकासन ।
जय जय हरि केसव गरुड़ासन ।।
जय कालिय विषधर बल-गंजन ।
जय जय ब्रज-जुवती मन-रंजन ।।
जदु-कुल-कमल-सूर दृग खंजन ।
जय जय हरि केसव भव-भंजन ।।
जय जय सुर-मधु-नरक-बिदारन ।
पन्नगपति-गामी जगतारन ।।
जय जय सुर-कुल-सुख-विस्तारन ।
जय हरिदेव भक्त-भय-हारन ।।
जय जय अमल कमल-दल लोचन ।
जय जय भवपति भव-दव-मोचन ।।
त्रिभुवन-गति ब्रज-तिय-मन-रोचन ।
जय जय हरि सिर वर गोरोचन ।।
जय जय जनक-सुता कृत भूषण ।
समर विजित त्रिसिरा खर-दूषण ।।
जय दसकंठ-वनज-वन-भूषण ।
जय दृग-छटा कमल छबि भूषण ।।
जय जय अभिनव जलधर सुन्दर ।
जय धृत-पृष्ठ कठिन गिरि मंदर ।
जय बिहरन गोबर्धन-कंदर ।
श्रीमुख ससि रत गोप पुरंदर ।।
हम सब तुव पद-पंकज-दासा ।
पूरहु निज भक्तन की आसा ।।
तिनको तुम दुख नित नित नासा ।
जिन कहँ तुव चरनन बिस्वासा ।।
श्री जयदेव रचित मन-भाई ।
मंगल उज्ज्वल गीत सुहाई ।।
'हरीचंद' गावत मन लाई ।
ताकी हरि नित करत सहाई ।।१५

इति मंगलाचरन ।

प्रथम सर्ग

(सामोद दामोदर:)

बसन्त

हरि बिहरत लखि रसमय बसंत ।
जो बिरही जन कहँ अति दुरंत ।
बृन्दाबन-कुंजनि सुख समंत ।
नाचत गावत कामिनी-कंत ।
लै ललित लवंगलता-सुबास ।
डोलत कोमल मलयज बतास ।
अलि-पिक-कलरव लहि आस-पास ।
रह्यौ गूँजि कुंज गहवर अवास ।
उनमादित ह्वै लखि मदन-ताप ।
मिलि पथिक बधू ठानहिं बिलाप ।
अलि-कुल कल कुसुम-समूह-दाप ।
बन सोभित मौलसिरी कलाप ।
मृगमद-सौरभ के आलबाल ।
सोभित बहु नव चलदल तमाल ।
जुव-हृदय-बिदारन नख कराल ।
फूले पलास बन लाल लाल ।
बन प्रफुलित केसर कुसुम आन ।
मनु कनक छरी लिए मदन रान ।
अलि सह गुलाब लागे सुहान ।
विष बुझे मैन के मनहुँ बान ।
नव नीबू फूलन करि विकास ।
जग निलज निरखि मनु करत हास ।
निमि बिरही हिय-छेदन हतास ।
बरछी से केतकि-पत्र पास ।
लपटत इव माधविका सुबास ।
फूली मल्ली मिलि करि उजास ।
मोहे मुनिजन करि काम-आस ।
लखि तरुन-सहायक रितु-प्रकास ।
पुसपित लतिका नव संग पाय ।
पुलकित बोराने आम आय ।
लहि सीतल जमुना लहर बाय ।
पावन वृंदाबन रह्यौ सुहाय ।
जयदेव रचित यह सरस गीत ।
रितु-पति विहरन हरि-जस पुनीत ।
गावत जे करि 'हरिचंद' प्रीत ।
ते लहत प्रेम तजि काम-भीत ।१६

मालकोस

सखि हरि गोप-बधू सँग लीने ।
बिलसत बिबिध बिलास हास
मिलि केलि-कला रसभीने ।ध्रुव
स्याम सरीर खौर चंदन की पीत बसन बनमाला ।
रमनि हँसनि झलकत मनि कुंडल लोल कपोल रसाला।
पीन उरोज भार झुकि हरि को प्रेम सहित गर लाई ।
गोप-बधू कोउ पंचम रागहिं ऊँचे सुर रहि गाई ।
चपल कटाच्छन जुवती-जन-उर काम बढ़ावनहारे ।
मुग्ध बधू कोउ आइ रही मन मैं मनमोहन प्यारे ।
कोउ हरि के कपोल ढिग अपनो नवल कपोलहि लाई ।
बात करन मिस चूमति पिय-मुख तन पुलकावलि छाई।
जमुना-तीर निकुंज पुंज मैं मदनाकुल कोउ नारी ।
खैंचत गहि हरि को पीतांबर हँसत लरे बनवारी ।
ताल देत कंकन धुनि मिलि कल बंसी बजत सुहाई ।
ता अनुसार सरस कोउ नाचति लखि हरि करत बड़ाई ।
बिहरत कोउ सँग कोउ मुख चूमत काहू को गर रहे लगाई।
काहू को सुंदर मुख देखत चलत कोऊ सँग लाई ।
जो जयदेव कथित यह अद्भुत हरि-बन-बिहरनि गावै।
बल्लभ-बल हरिचंद सदा सो मंगल फल नव पावै।१७

इति सामोद दामोदरो नाम प्रथम सर्ग ।

बिहाग

जिय तें सो छबि टरत न टारी ।
रास-बिलास रमत लखि मो तन हँसे जौन गिरिधारी ।ध्रु.
अधर मधुर मधु-पान छकी बंसी-धुनि देति छकाई ।
ग्रीव-डुलनि चंचल कटाच्छ मिलि कुंडल-हिलनि सुहाई।
घुँघुरारी अलकन पै प्यारी मोर-चंद्रिका राजै ।
नवल सजल घन पै मनु सुंदर इंद्रधनुष-छबि छाजै ।
गोप-बधू मुख चूम अधर अमृत रस लाल लुभाए ।
बंधुजीव-निंदक ओठन पै मंद हँसनि मन भाए ।
भरत भुजन मैं गोप-बधूटिन प्रेम पुलक तन पूरे ।
कर-पद-गल-मनिगन आभूखन मेटत हिय तम रूरे ।
स्याम सुभग सिर केसर-रेखा घन नव ससि छबि पावै ।
जुबती-जूथ कठिन कुच मीजत जेहि जिय दया न आवै ।
गंडन पर मनि-मंडित कुंडल झलकत सब मन मोहै ।
सुर-नर-मुनिगन बंदित कटि-तट लपटि पीत पट सोहै।
बिसद कदंब तरें ठाढ़े जन-भव-भय-मेटनवारे ।
काम-भरी चितवन लखि मम उर काम-बढ़ावनहारे ।
श्री जयदेव कथित यह हरि को रूप ध्यान मन भायो ।
बसै सदा रसिकन के हिय 'हरिचंद' अनूप सुहायो ।१८

अरी सखि मोहिं मिलाउ मुरारी ।
मेटौं काम-कसक तन की गर लाइ रमन गिरिधारी ।ध्रु०

इक दिन गहवर कुंज गई हौं तहाँ छिपे रहे प्यारे ।
चितवत चकित चहूँ दिसि मोहिं लखि हँसे सुरति सुख-धारे।
प्रथम समागम लाजि रही बहु बातन तब बिलमाई ।
बोलत ही हँसिकै कछु मो तन नीबी सिथिल कराई ।
कोमल सेज सुवाइ मोहिं उर पर भर दै रहे सोई ।
हरि आलिंगत चुंबत ही पियो अधर लपटि तिन दोई ।
आलस-बस दृग मूँदत ही तिन तन पुलकावलि छाई ।
स्वेग सिथिल तब होत मोहिं भए काम बिबस ब्रजराई ।
बोलत ही मम प्राननाथ बहु कोक-कला बिसतारी ।
कुंतल कुसुम खसित लखि मम कुच जुग नख रेख पसारी।
नूपुर बोलत ही पिय प्यारे सुरत बितानहि तान्यौ ।
रमत गिरत किंकिनि सिर गहि मुख चूमत अति सुख मान्यौ
रति-सुख-समुद-मग मोहिं लखि दृग मूदि रहे मद थाके।
बिथकित सेज परी लखि पियहू काम-कलोलन छाके ।
गोप-बधू सखि सों इमि भाखत श्याम काम-रस पूरी ।
गायो सो जयदेव सुकवि 'हरिचंद' भक्ति-रति-मूरी ।१९

हाहा गई कुपति ही प्यारी ।
निज अपमान मानि मन भारी ।धु०
मोहिं घिर्‌यो लखि बधुन मँझारी ।
रिस करि गई उदास बिचारी ।
निज अपराध जानि भय धारी ।
हौंहू ताहि न सक्यौ निवारी ।
किमि ह्वैहै करिहै कहा बारी ।
का कहिहै मम बिरह-दुखारी ।
धन जन जीवन घर परिवारी ।
ता बिनु वृथा जगत-निधि सारी ।
सो मुख-चंद-जोति उँजियारी ।
कोप कुटिल भौंहै कजरारी ।
मनहुँ कँवल पर भँवर-कतारी ।
बिसरति हिय तें नाहिं बिसारी ।
बन बन फिरौं ताहि अनुसारी ।
बिलपौं वृथा पुकारि पुकारी ।
अब हौं हिय सों ताहि निकारी ।
रमिहैं तासों गल भुज डारी ।
मम अपराधन हिये बिचारी ।
अतिहि दुखित तेहि जात निहारी ।
पै नहिं जानौ कितै सिधारी ।
तासों सकत मनाइ न हारी ।
दृग सों छिनहूँ होत न न्यारी ।
आवत जात लखात सदा री ।
पै यह अचरज अतिहि हहा री ।
धाइ लगत गर क्यौं न पियारी ।
अबकें करु अपराध छमा री ।
करिहौं फेर न चूक तिहारी ।
सुंदरि दरसन दै बलिहारी ।
दहत मदन तो बिनु तन जारी ।
किंदु बिल्व वारिधि तमहारी ।
गाई कवि जयदेव सँवारी ।
बिरहातुर हरि कहनि कथारी ।
जो 'हरिचंद' भक्त-सुखकारी ।२०

प्यारे तुम बिनु ब्याकुल प्यारी ।
काम-बान-भय ध्यान धरत तुव लीजै ताहि उबारी ।
चंदन चंद न भावत पावत अति दुख धीर न धारै ।
अहिगन-गरल बगारि सरल तन मलयानिल तेहि जारै ।
अबिरल बरसत मदन-बान लखि उर महँ तुमहिं दुराई ।
सजग कमल-दल कवच बनाइ छिपावत हियहिं डराई ।
कुसुम सेज कंटक सों लागत सुख-साजन दुख पावै ।
ब्रत सम मुख तजि तुव रति मनवत कोउ बिधि समय बितावै।
अबिरल नीर ढरकि नैननि तें रहत कपोलन छाई ।
मनहुँ राहु-बिदलित ससि तें जुग अमृत-धार बहि आई ।
मृगमद लै तुव चित्र बनावति ब्याकुल बैठि अकेली ।
काम जानि तेहि लिखति मकर-सर पुनि प्रनवत अलबेली।
पुनि पुनि कहति अहो पिय प्यारे पाय परति अपनाओ ।
तुम बिनु दहत सुधानिधि प्रीतम गर लगि मरत जिआओ।
बिलपति हँसति बिखाद करति रोअति कबहूँ अकुलाई ।
कबहुँ ध्यान महँ तुमहिं निरखि गर लागति ताप मिटाई ।
ऐसहि जो हरि-बिरह-जलधि महँ मगन होइ रस चाहै ।
सीख-बचन जयदेव कथित 'हरिचंद' गीत अवगाहै ।२१
तुव बियोग अति ब्याकुल राधा ।
मिलि हरि हरहु मदन-मद-बाधा ।
कृश तन प्रानहु भर सम जानै ।
हार पहार सरिस उर मानै ।
कोमल चंदन बिष सम लागै ।
सुख सामा लखि संकित भागै ।
लेत स्वाँस गुरु ब्याकुल भारी ।
दहति तनहि मदनागि प्रजारी ।
चौंकि चौंकि चितवत चहुँ ओरी ।
स्रवत नीर नलिनी मनु तोरी ।
तुव बिनु सुमन परस तन जारी ।
सूनी सेज़ न सकत निहारी ।
निज कर सों न कपोल उठावै ।
नव ससि साँझ गहे मनु भावै ।

पुनि पुनि हरि तुव नाम उचारै ।
विरह मरत कोउ बिधि जिय धारै ।
कवि जयदेव कथित यह बानी ।
'हरीचंद' हरि-जन-सुखदानी ।२२

राग झिंझौटी

बिरह-बिथा तें ब्याकुल आली ।
तुव बिनु बहुत बिकल बनमाली ।ध्रु०
मलय-समीर झकोरत आवत ।
तन परसत अति काम जगावत ।
फूले बिबिध कुसुम तरु डारन ।
बिरही जन हिय नखन बिदारन ।
चंद चाँदनी सों तन जारत ।
तुव बिछुरे पिय प्रान न धारत ।
मदन-बान बिधि ब्याकुल भारी ।
तलपि तलपि बिलपत बनवारी ।
मधुर भँवर धुनि सहि नहिं जाई ।
मूँदे रहत श्रवन हरिराई ।
जब निसि बढ़त मदन-रुज भारी ।
मोहत बिकल अधीन मुरारी ।
छोड़ि देह - सुख गेह बिसारी ।
गिरि-बन-वास करत गिरिधारी ।
मुरछि धरनि लोटत बिलखाई ।
चौंकि रहत राधे रट लाई ।
हरि को बिरह-बिलास सुहायो ।
श्री जयदेव सुकबि यह गायो ।
'हरीचंद' जेहि यह रस भावत ।
तेहि हरि अनुभव प्रगट लखावत ।२३

बिलम मत करु पिय सों मिलु प्यारी ।
बैठे कुंज अकेले तुव हित मदन-मथन गिरधारी ।ध्रु०
धीर समीर घाट जमुना - तट बन राजत बनमाली ।
कठिन पीन कुच परसन चंचल कर जुग सोभा-साली।
लै तुव नाम बदत संकेतहिं मधुरी बेनु बजाई ।
तुव दिसि तें जु रेनु उड़ि आवत रहत ताहि हिय लाई।
उड़त पखेरुन गिरत पतौअन तु आगवन बिचारी ।
सेज सँवारत इत उत चितवत चकित पंथ बनवारी ।
चंचल मुखर नूपुरहि तजि मुख अंचल ओट दुराई ।
तिमिर-पुंज चल कुंच सखी मिलि हियरो लै न सिराई।
रति-बिपरीत पिया-उर ऊपर मुक्तमाल ढिग सोही ।
धन पैं चपल बलाका सह चपला सी रह मन मोही ।
किंकिन तजिकै बसन उतारि निरंतर अंतर त्यागी ।
चढ़ु पिय कोमल किसलय सेज पिया के उर रहु लागी ।
हरि बहु-नायक मानी रैनहु जात चली सब बीती ।
बेगहि चलु करु पीय मनोरथ पालि प्रीति की रीती ।
श्री जयदेव-कथित दूती-बच हरि-राधा गुन गाई ।
लही प्रेम-फल सब 'हरिचंद' जुगल छबि जीअ बसाई ।२४

तुम बिनु दुखित राधिका प्यारी ।
तुव-भय भइ तन सुरति बिसारी ।
अधर मधुर मधु पियत कन्हाई ।
तुमहिं सबै दिसि परत दिखाई ।
मिलत चलत उठि तुम कहँ धाई ।
गिरि गिरि परत बिरह दुबराई ।
किसलय वलय बिरचि कर धारी ।
तुव रति ध्यान जिअति सुकुमारी ।
कबहुँ रचति रस-रास सँवारी ।
जानति हमहीं मदन-मुरारी ।
बदति सखिन सों पुनि पुनि आली ।
अजहुँ न क्यों आए बनमाली ।
लखि घन सम अँधियार भुलाई ।
तुव धोखे चूमति गर लाई ।
तुव बिलंब अति ही अकुलाई ।
ब्याकुल रोअति सेज सजाई ।
श्री जयदेव रचित जो गावै ।
'हरीचंद' हरि-पद-रति पावै ।२५

(नागर नारायण नाम सर्ग)

हा हरि अजहूँ बन नहिं आए ।
बैठे बाट बिलोकत बीती औधहु कित बिलमाए ।ध्रु०
सखियन झूठ बोलि बहरायो, हा, अब कौन उपाई ।
प्राननाथ बिनु बिफल सबै मन नव जोबन सुँदराई ।
जाके मिलन हेत कारी निसि बन बन डोलत धाई ।
मदन-बान बेदना देत मोहिं सोई निठुर कन्हाई ।
घरहू छुट्यो हरिहू नहिं आए तौ अब मरनहिं नीको ।
कहा लाभ बिरहागि दाहि तन रखिबो जीवन फीको ।
इत मधु मधुर जामिनी मो हिय बेदन देत प्रजारी ।
उत कोउ बड़भागिनि कामिनि सँग ह्वैहैं रमत मुरारी ।
कर कंचन कंकन बाजूबँद बिरहानल तपि जारैं ।
बिष से बिषय साज सब लागत उलटे दुखहिं प्रचारैं ।
कुसुम-सरिस मम कोमल तन पैं फूल-माल हू भारी ।
तीछन काम-बान सी बेधति बिनु प्यारे गिरिधारी ।
हम जाके हित बेत कुंज मैं बैठी त्यागि हवेली ।
सो हरि भूलेहु सुमिरत नहिं मोहिं छाँड़ी हाय अकेली ।
इमि बिलपति बृषभानु-लली हरि-बिरह-बिथा अकुलाई ।

श्री जयदेव सुकवि मधुरी 'हरिचंद' कथा सोइ गाई ।२६

हरि सँग बिहरति ह्वैहैं कोऊ ।
बड़भागिनि जुवती गुनवारी दै गल मैं भुज दोऊ ।ध्रु.०
मदन-समर-हित उचित भेस लै कुंचुकि कुच कसि बाँधे।
कच-बिगलित कुसुमन सों मानहुँ बीर सुमन-सर साधे ।
हरि-गल-लागत स्वेदादिक तन मदन-बिकारहु जागे ।
कुच कलसन पर मुक्तहार बहु हिलत सुरत रस पागे ।
मुख-ससि-निकट ललित अलकावलि
उमरि-घुमरि रहि छाई ।
पिय-अधरासव-पान छकी तिमि झूमत तिय अलसाई।
परसत उझकि कपोलन चंचल कुंडल जुगल सुहाए ।
किंकिनि कलरव करति हिलत जब
जुगल जंघ मन भाए ।
पिय तिय दिसि निरखत चितवति
कछु हँसि करि नैन लजीले ।
बिबिध भाव रस भरी दिखावति लहि रति रसिक रसीले ।
रोम पाँति उलहित तन बेपथु होत गरो भरि आएँ ।
मूँदि मूँदि दृग खोलति लै लै स्वास सुरति सुख पाएँ ।
झलकत मुक्त-जाल से तन पर स्रम-सीकर अति नीके ।
रति-रन अभिरत थाकि परी गल लागिकै हिय पर पी के ।
श्री जयदेव सुकवि भाखित यह हरि-विहार रस गावै ।
काम-बिमुख ह्वै 'हरीचंद' सो प्रेम रुचिर *फल
पावै ।२७

माधव नव रमनी सँग लीने ।
बंसी-बट यमुना-तट बिहरत रति-रन जय रस-भीने।ध्रु.
मदन पुलक तन चूमन पिय मुख फरकत अधर लसाहीं ।
मृगमद तिलक देत ता मुख मैं मनु ससि मैं मृग-छाहीं ।
जुवजन मनहर रतिपति मृग बन सघन सुघन सम कारे ।
चिकुर निकर कर लिए सँवारत गूँथि कुसुम बहु प्यारे ।
नभमंडल सम कुच जुग मैं घन-मृगमद लपटि सुहावैं ।
नख-छत-ससि लखि नखत-माल सी मुक्तमाल पहिरावैं।
नवल नलिन भुज कोमल करतल सुकमल दल से राजैं ।
मरकत कंकन तहँ पहिरावत मधुप-माल सम भ्राजैं ।
सघन जघन मनु मदन-हेम-सिंहासन सुरुचि सोहायो ।
सुरँग बसन पर तोरन-सम पिय किंकिन-जाल बँधायो ।
कमलालय नख-मनिगन-भूखित पद-पल्लव हिय लाई ।
निज मन हित मनु मेड़ बनावत जावक-रेख सुहाई ।
इमि बलबीर निठुर बन बिहरत सँग लै दूजी नारी ।
ता हित तरु-तर बैठि बिलोकत बाट बृथा हम हारी ।
यों हरि रसमय होय कहनि सखियन सों व्याकुल प्यारी ।
सो कविवर जयदेव कह्यौ
'हरिचंद' कलुख कलि हारी ।२८

कमल-लोचन पिया जाहि गर लाइहैं ।
सो न सजनी कबहुँ बिरह-दुख पाइहै ।
देखि किसलय सेज सो न दुख मानिहैं ।
प्रान-प्रीतमहि निज निकट करि जानिहैं ।
अमल कोमल कमल-बदन हिय धारिहैं ।
तेहि न सर कुटिल कामहुँ कबहुँ मारिहैं ।
अमृत मधु मधुर पिय बचन स्रवन पारिहैं ।
ताहि अति मलिन मलयानिल न जारिहै ।
थल-कमल सम चरन करन हिय चाहिहै ।
ताहि चंदहु न निज किरन-सर दाहिहै ।
श्याम सुंदर सजल जलद तन लागिहै ।
तासु हिय कबहुँ नहिं बिरह दुख पागिहै ।
कनक सम पीत पट लपटि सुख सानिहै ।
सो न गुरुजन हँसत संक जिय मानिहै ।
तरुन-मनि कृष्ण सों सुरत सुख ठानिहैं ।
सो न सपनेहुँ कबौं बिरह दुख जानिहै ।
सुकवि जयदेव कृत गीत जो गाइहैं ।
सो न 'हरिचंद' भव-दुखन घबराइहैं ।२९

भैरव

हम सों झूठ न बोलहु माधव जाहु जू केशव जाओ ।
जो जिय बसी रैन निवसे जहँ ताही कों गर लाओ ।ध्रु.०
अनियारे दृग आलस-भीने पलकैं घुरि घुरि जाहीं ।
जागि तिया-रस पागि न प्रगटत निज अनुराग लजाहीं ।
बार बार चूमन सों रस भरि तिय-जुग-दृग कजरारे ।
लाल रहे तुव अधर लाल पै भए अंग सब कारे ।
रति-नर अभिरत स्याम सुभग
तन नख-छत लखत सुहायो ।
मदन नील पट कनक-लेखनी मनु जयपत्र लिखायो ।
पिय तुव हिय तिय-पद को जावक लखहु न कैसो सोहै ।
मनु जिय काम-लता उलही है पल्लव पसरि रह्यौ है ।

तुम अति निठुर तदपि हम तुम सों तनिकहु बिलग न प्यारे।
तुव अधरन रद-छद पै ताकी पिय उर पीर हमारे ।
तन जिमि कारो तिमि मनहू तुव कुटिल कपट सों कारो ।
अपनी जानि औरहु हम कहँ बदि मदनानल जारो ।
बन बन बधून-बधन-हित डोलत निरदय बने सिकारी ।

* पाठा. अनुपम ।

या मैं अचरज नहिं तुम प्रथमहिं नारि पूतना मारी ।
सुनि तिय-बचन सरोस पिया हठि लीनी कंठ लगाई ।
श्री जयदेव सुकवि 'हरिचंद' बिलास-कथा सोइ गाई ।३०

मानी माधव पिय सों मानिनि,
मान न करु मम मान कही ।
बहत पवन लखि हरि उठि,
आए तू केहि सुख घर बैठि रही ।
कुच जुग कलस ताल-फल से गुरु,
सरस तिनहिं कित निफल करै ।
बार बार सखि तोहि समुझावति,
किन सुंदर हरि सों बिहरै ।
बिलपति बिकल तोहि लखि,
सखिगन हँसहिं तऊ नहिं लाज धरै ।
बैठे सजल नलिन-दल से,
जन हरि लखि किन दृग पीर हरै ।
किन जिय खेद करति सुनु मम,
बच हरि सों मिलि मृदु बोलि अरी ।
सुनि जयदेव सखी 'हरिचंद'-कथन,
निज उर-दुख दूर दरी ।३१

मान तजि मानु सुनु प्रान-प्यारी ।
दहत मोहिं मदन तुव बिरह जर जाल सों,
अधर मधु पान दै लै उबारी ।ध्रु०

मधुर कछु बोलि मुख खोलि जासों निरखि
दसन-दुति बिरहतम दूर नाऊँ ।
अधर मधु मधुर सुंदर सुधा-सिंधु, मुख-
ससिहि लखि दृग-चकोरहि जुड़ाऊँ ।

साँचही होइ रूठी जुपै कोप करि,
तौ न क्यौं नयन-सर मोहि मारै ।
बाँध भुज-पास सों अधर-दंतन सुदंस,
क्यों न अपराध-बदलो निवारै ।

तुही मम प्रानधन भव-जलधि-रतन तू,
तोहि लगि जगत हौं जीव धारौं ।
तनिक जौ तू कृपा कोर मो दिसि लखै,
तौ जगहि तोहि परि बारि डारौं ।

नील नलिनी सुदल सरिस तुव नयन जुग,
कोप सों कोकनद रूप धारे ।
तौ न कीन जानि मोहि कृष्ण हति काम-सर,
अरुन करु तरुन अनुराग भारे ।

क्यों न सोभित करति कुंभ-कुच हार सों,
हीय जासों दुगुन होइ राजै ।
सघन निज जघन पैं बाँधि किंकिन कलित,
मदन नौबति सरिस सुरत बाजै ।

थल - कमल - हर मम हृदय प्रानकर,
सरस रतिरंभ तुव चरन प्यारे ।
कहै तो लाइ हिय मैं महावर भरौं,
हरौं, जिय - ताप आनंदवारे ।
सदन संताप को मदन मोहि कदन हित,
दहत अति अगिनि तन मैं बढ़ाई ।
चरन पल्लव जुगल-गरल-हर सीस मम,
धारि किन तेहि तुरत दै बुझाई ।
देखि इमि चतुर हरि पगन परि तियहि,
रिझयो लियो संक तजि अंक लाई ।
सोइ पदमावति - प्रान - जयदेव कवि,
कही 'हरिचंद' लीला बनाई ।३२

उठि चलु मोहन-ढिग प्यारी ।
मंजुल बंजुल कुंज बिलोकत तुव मग गिरिधारी ।
मनावत तो कहँ जे हारे,
कियो बिनय बहु तुव पद पैं निज सीस रहे धारे ।
सुरत करि उनकी तू नारी,
मंजुल बंजुल कुंज बिलोकत तुव मग गिरिधारी ।
परिहरि पग मनि नूपुर सीरे,
पीन पयोधर सघन जघन, भर चलु धीरे धीरे ।
चाल सो हंसहि लजवाई,
चलु सुनु तरुनी जन-मोहन मन-मोहन बच धाई ।
सफल करूँ श्रवनहिं मैं वारी । मंजुल बंजुल० ।
कुंज में सुनु कोइल, बोलै,
काम नृपति के बंदीजन से मदन-बिरद खोलै ।
चलत मलयानिल मद-माती,
नव पल्लव हिलि तोहिं बुलावत निकट बिरछि पाँती ।
बिलँब न करु गज-गति वारी । मंजुल बंजुल० ।
देखु फरकत जोबन दोऊ,
मदन रंग सो उमड़ि अलिंगन चहत पियहिं सोऊ ।
गवन हित सगुन मनहुँ कीने,
हीर-हार जलधार भरे जुग घट सनमुख लीने ।
चूक मति समयहि बलिहारी । मंजुल बंजुल० ।

सखिन तोहिं रति-रन-हित साज्यौ,
तौ किन अब लौं मदन-भेरि तुव किंकिन-रव बाज्यौ ।

द्रवन नाजि लाजन क्यों रूठी.
चलति न क्यों सखि कर गहि बैठी मानिनि ह्वै झूठी ।
बिना तुव व्याकुल बनवारी । मंजुल वंजुल० ।

कहयौ लै मानिनि मम मानी,
सूचन रति अभिसार बजावत चलु कंकन रानी ।
मिलत लखि तोहि हम सुख पावैं,
जुगल रूप जयदेव सुकबि लखि हिय महँ पधरावैं ।
होइ 'हरिचंदह' बलिहारी । मंजुल वंजुल० ।३३

माधव ढिग चल राधा प्यारी ।
बिलस पिया-गल मैं भुज धारी ।ध्रु०
मंजु कुंज मधि सेज बिछाई ।
बिहर तहाँ हँसि हँसि सुख पाई ।माधव
कुच-कलसन पर तरलित माला ।
बिहर असोक सेज पर बाला ।माधव
बिबिध कुसुम लै कुंजन बाँधे ।
बिलस कुसुम कोमल तन राधे ।माधव
बहत सीत मलयानिल आई ।
बिहर सुरत-रत हरि-गुन गाई ।माधव०
सघन जघन बरु सफल सुहाए ।
लखु पल्लव बल्लिन लपटाए ।माधव०
गूँजत मधुप मदन मद-माती ।
बिहर कृष्ण सँग रति-रस-राती ।माधव०
सुनु गावत पिक काम-बधाई ।
चलु लै निज पिय कों हित लाई ।माधव०
कवि जयदेव केलि - रस गावै ।
'हरिचंदह' सुनि जनम सिरावै ।माधव० ।३४

राधा केलि कुंज महँ जाई ।
बैठे बाट बिलोकत निरखे रस उमगे हरिराई ।ध्रुव०
राधा-ससि-मुख निरखि हरखि तन रस-समुद्र लहराने ।
रमन मनोरथ करत मदन-बस बिबिध भाव प्रगटाने ।
स्याम सुभग हिय पर इमि सोहत सुंदर मोतिन माला ।
जमुना-जल मनु सेत कमल के सोभित फेन रसाला ।
मृगमद मोचक मेचक तन पैं पीत बसन लपटाओ ।
मानहुँ नील कमल पै पसरयौ पीत पराग सुहायौ ।
रसमय तन मैं सुंदर बदन बिलोचन जुग मतवारे ।
सरद सरोवर कमलनि खेलत जुग खंजन अनियारे ।
कमल बदन में दुहुँ दिसि कुंडल रबि से सुभग लखाहीं ।
हिलत अधर मुसुकात मनहुँ पिय मुख चूमन ललचाहीं ।
बारन कुसुम गुथे मनु घन महँ कहुँ कहुँ चाँदनि राजै ।
नव ससि अरुन किरिन सम सिर पैं कुंकुम तिलक बिराजै ।
मनिगन भूखन भूखति सब अँग सुंदर सुभग सरीरा ।
पुलकित तन रति-आतुर बैठे मोहन पिय बलबीरा ।
श्री जयदेव कथित हरि को बपु जा जिय में छिन आवै ।
सो 'हरिचंद' धन्य जग में निज जीवन को फल पावै ।३५

राधे मेरी आस पुजाओ ।
प्रानपिया हरि को कहनो करि,
मिलि पिय सों सुख पाओ ।ध्रु०
नव किसलय सों सेज सँवारी कोमल पद तहँ धारी ।
हरु पल्लव अभिमानहि अरुन चरन दरसाइ पियारी ।
अति श्रम भयो प्रानप्यारी तोहिं चरन पलोटौं नेरे ।
नूपुर धरौं उतारि सेज पर बैठु आइ ढिग मेरे ।
बोलि मधुर कछु किन निज पिय कों व्याकुल हियो जुड़ावै ।
कहु तौ उर सों अंचल कृष्ण उतारि अधिक सुख पावै ।
पिय गर लगन हेत फरकौहैं जुगल कलस कुच प्यारी ।
पिय पुलकित हिय लाइ हरत किन मदन-ताप सुकुमारी ।
निज बिरहानल तपत देखि मोहिं क्यों न दया उर लावै ।
अधर मधुर रस सुधा स्वाद दै किन मोहिं मरत जियावै ।
तुव बिन कोकिल नाद सुनत रहे स्रवन सदा दुख पाई ।
दै तिन कहँ सुख भाखि मधुर कछु किंकिनि कलित बजाई ।
नाहक मान ठानि दुख दीनो अब मो दिस लखु प्यारी ।
नीचे नैन न लाज भरी करु दै रति-सुख बलिहारी ।
श्री जयदेव सुकवि हरि भाखित सरस गीत जो गावै ।
ता जिय में 'हरिचंद' प्रेम-बल काम-बिकार न आवै ।३६

यह सुनि राधा पिय सों बोली ।
मान छाँड़ि निज प्राननाथ सों गाँठ हृदय की खोली ।ध्रु०
मंगल कलस सरिस सम जुग कुच मृगमद चित्र बनाओ ।
चंदन से सीतल कर हिय धरि जिय को ताप मिटाओ ।
काम-बान अलि-कुल-मद-गंजन नैननि अंजन प्यारे ।
तुव चूमन सों फैलि रहयौ तेहि देह सँवारि दुलारे ।
दृग कुरंग-गति भेंड़ सरिस मम स्रवन न पिय गिरधारी ।
काम-फाँस से कुंडल प्यारे निज कर देहु सँवारी ।
मेरे मुख पर पीतम सुंदर निज कर बिरचि सँवारौ ।
नवल कमल पर अलि-कुल
सरिस अलक निरुवारि बगारौ ।
स्रम-सीकरहि पोंछि मम सिर पिय
निज कर रुचिर बनाओ ।
पूरन ससि पै मृग-छाया सों मृगमद-तिलक लगाओ ।
मदन-चौंर धुज से मम सुंदर केस-पास निरुवारौ ।
केकि-पच्छ से बारन गूथहु सुंदर कुसुम सँवारौ ।

सरस सघन मम जघनन पर
फल किंकिनि कलित सजाओ ।
सुंदर बसन अभूषन रचि रचि मम अंगनि पहिनाओ ।
इमि राधा-बच सुनत कृष्ण-गर लगि बिहरे सुख पायो ।
सो जयदेव सुकवि 'हरिचंद' बिहार कुतूहल गायो ।३७

दोहा

अष्ट-पद चौबीस इमि गाई कवि जयदेव ।
भाषा करि हरिचंद सोइ कही प्रेम-रस भेव ।१
गुप्त मंत्र सम पद सबै प्रगट भाषा माहि ।
यह अपराध महा कियो यामें संसय नाहिं ।२
छमिहैं निज जन जानि सो जुगल दास नकसीर ।
हरिहैं अपनो समुझि जिय कठिन मोह-भव-पीर ।३

सतसई-सिंगार

[हरिश्चन्द्रिका खं. २ सं. ८ से खं ६ सं. ५
सन् १८७५ तथा १८७८ के बीच प्रकाशित]

सतसई-सिंगार

मेरी भव-बाधा हरो राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाईं परैं स्याम हरित दुति होइ ।१*
स्याम हरित द्युति होइ परैं जा तन की झाँईं ।
पाय पलोटत लाल लखत साँवरे कन्हाई ।
श्री 'हरीचंद' बियोग पीत पट मिलि दुति टोरी ।
नित हरि जा रँग रँगे हरौ बाधा सोइ मेरी ।

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल ।
इहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारी-लाल ।३०१
सदा बिहारी-लाल बसौ बाँके उर मेरे ।
कानन कुण्डल लटकि निकट अलकावलि घेरे ।
श्री 'हरिचंद' त्रिभाग ललित मूरत नटवर सी ।
टरौ न उर तैं नैकु आज कुंजनि जो दरसी । २

मोहन मूरति श्याम की अति अद्भुत गति जोइ ।
बरसत सुचि अंतर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ ।१६१
प्रतिबिंबित जग होइ कृष्णमय ही सब सूझै ।
एक सँयोग बियोग भेद कछु प्रगट न बूझै ।
श्री 'हरिचंद' न रहत फेर बाकी कछु जोहन ।
होत नैन-मन एक जगत दरसत तब मोहन ।3

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति कर अनुराग ।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होत प्रयाग ।२०१
पग पग होत प्रयाग सरस्वति पद की छाया ।
नख की आभा गंग छाँह सम दिनकर-जाया ।
छन छबि लखि 'हरिचंद' कलप कोटिन लव सम लजि ।
भजु मकरध्वज मनमोहन मोहन तीरथ तजि । ४

सघन कुंज छाया सुखद सीतल मन्द समीर ।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर ।६८१
वा जमुना के तीर सोई धुनि आँखिन आवै ।
कान बेनु-धुनि आनि कोऊ औचक जिमि नावै ।
सुधि भूलति 'हरिचंद' लखत अजहूँ वृंदाबन ।
आवन चाहत अबहिं निकसि मनु स्याम सरस घन ।५

सखि सोहत गोपाल के उर गुंजनि की माल ।
बाहर लसति मनौ पिये दावानल की ज्वाल ।३१२
दावानल की ज्वाल धूम सह मनहुँ बिराजै ।
प्रिया-बिरह दरसाइ मनहुँ संगम सुख साजै ।
सोई 'श्री हरिचंद' बिहँसि कर लेत कबहुँ लखि ।

* दोहों के आगे दी गयी संख्या बिहारी रत्नाकर के दोहों की है ।

मानिक मुक्ता-नील बनत गुंजा सो लखु सखि । ६
कर लै. चूमि. चढ़ाइ सिर. उर लगाइ भुज भेंटि ।
लहि पाती पिय की लखति. बाँचति धरति समेटि ।६३५
बाँचति. धरति समेटि. खोलि पुनि पुनि निहि बाँचै ।
बरन बरन पर प्रान वारि आनँद जिय राचै ।
प्रेम-औधि 'हरिचंद' जानि उलही उर अंतर ।
नैन नीर जुग भरे लिये ही रहत सदा कर । ७

नित प्रति एकत ही रहत बयस-बरन-मन एक ;
चहियत जुगल-किसोर लखि लोचन-जुगल अनेक ।२३७
लोचन-जुगल अनेक होयँ तौ कछु सुख पावैं ।
जग की जीवन-मूरि प्रिया-प्रिय निरखि सिरावैं ।
गौर-स्याम 'हरिचंद' कोटि मोहन मनमथ-रति ।
एक बरन एक रूप लखौ इक ही ठक नित प्रति ।८

लोचन-जुगल अनेक पलटि यह अवधि पलक किय ।
सुधा-श्रवन-सम बैन-श्रवन-हित श्रवनहु जुग दिय ।
सेवन-हित 'हरिचंद' किये द्वै ही कर अनुचित ।
विधि सब धरी अनीति जुगल छबि किमि लखिये नित ।८

मोर मुकुट की चंद्रिकन यों राजत नँद-नन्द ।
मनु ससि-सेखर को अकस किय सेखर सत-चन्द ।४१९
किय सेखर सत-चंद सुरँग केसरी कुलह पर ।
गंगधार सी लटकि रही दुहुँ दिसि मोती लर ।
कहा कहौं 'हरिचंद' आजु छबि नागर नट की ।
सब जिय उपजत काम लटक लखि मोर मुकुट की । ९

किय सेखर सत-चंद जटित नगपेच विंब परि ।
स्याम सचिक्कन चिकुर आभ सों स्याम भये चरि ।
जमुना-तट 'हरिचंद' सरद निसि रास नटक की ।
छबि लखि मोही आज पीत पट मोर मुकुट की । ९

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्याम सुभग सिर मौर ।
उनहूँ बिन छन गहि रहत दृगन अजौं वह ठौर ।१८२
दृगन अजौं वहि ठौर खरे ही परत लखाई ।
क्यौंहू सुधि नहिं जात सोई छबि नैननि छाई ।
सुमिरत सोइ 'हरिचंद' पीर कसकत अति उर मह ।
अँसुवनि सींचत तहाँ खरे निरखे हरि जहँ जहँ ।१०

सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात ।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतप पर्यौ प्रभात ।६८९
आतप पर्यौ प्रभात किधौं बिजुरी घन लपटी ।
जरद चमेली तरु तमाल मैं सोभित सपटी ।
प्रिया-रूप-अनुरूप जानि 'हरिचंद' बिमोहत ।
स्याम सलोने गात पीत पट ओढ़े सोहत ।११

किती न गोकुल कुलबधु, काहि न किहि सिख दीन ।
कौने तजी न कुल-गली ह्वै मुरली-सुर-लीन ।६५२
ह्वै मुरली-सुर-लीन कौन ब्रज पतिव्रत राख्यौ ।
किन प्रन पार्यौ. लोक-सील किन दूरि न नाख्यौ
धुनि सुनिकै 'हरिचंद' न उठि धाई तजि को कुल ।
हरि सों जल-पय-सरिस मिली अस किती न गोकुल ।१२

मिलि परछाँहीं जोन्ह सों रहे दुहुँन के गात ।
हरि राधा इक संग ही चले गलिन मैं जात ।६५३
चले गलिन मैं जात जुगल नहिं देत लखाई ।
राधा मिलि रहिं जोन्ह छाँह मिलि रहे कन्हाई ।
गौर-स्याम 'हरिचंद' अबहिं दोउ देखो झिलि-मिलि।
दिए हाथ पै हाथ साथ ही जाते हिलि मिलि ।१३

गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रस-रास ।
लहाछेह अति गतिन की सबनि लखे सब पास ।२९१
सबनि लखे सब पास दिए नाचत गल-बाहीं ।
उरप तिरप गति लेत एक बहु गोपिन माहीं ।
लाग डाँट 'हरिचंद' ततथेइ संगीतक रँग ।
तान मान बधान रह्यौ निसि ब्रज-गोपिन सँग ।१४

मोर चंद्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमान ।
लखिबी पाइनि तर लुठति सुनियत राधा-मान ।६७६
सुनियत राधा मान कियो हरि जात मनावन ।
ह्वैहैं तोसी और दसेक नख-बिंबित चावन ।
धूरि भरी 'हरिचंद' होइहै बिगत चंद्रिका ।
जावक-रँग सों लाल लाल की मोर-चंद्रिका ।१५

इन दुखिया अँखियान कों सुख सिरजौई नाँहिं ।
देखें बनै न देखतें बिन देखे अकुलाहिं ।६६३
बिनु देखे अकुलाहिं बिकल अँसुवन झर लावैं ।
सनमुख गुरुजन-लाज भरी ये लखन न पावें ।
चित्रहु लखि 'हरिचंद' नैन भरि आवत छिन छिन ।
सुपन नींद तजि जात चैन कबहुँ न पायो इन ।१६

बिनु देखे अकुलाहिं बिकल अँसुवन झर रोवैं ।
खुली रहैं दिन रैन कबहुँ सपनेहु नहिं सोवैं ।
'हरीचंद' संजोग बिरह सम दुखित सदाहीं ।

हाय निगोरी आँखिन सुख सिरजौई नाहीं ।१६

बिनु देखे अकुलाहिं बावरी ह्वै ह्वै रोवैं ।
उघरी उघरी फिरैं लाज तजि सब सुख खोवैं ।
देखै 'श्रीहरिचंद' नैन भरि लखैं न सखियाँ ।
कठिन प्रेम-गति रहत सदा दुखिया ये अँखियाँ ।१६

नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर ।
जानति हौं नन्दित करी इहि कित नन्दकिसोर ।४६९
इहि कित नन्दकिसोर स्याम घन अबहीं आए ।
प्रफुलित लखियत लता बेलि सर जलज मुँदाए ।
पद-रेखा 'हरिचंद' चमकि प्रकटत नट-बानक ।
स्वेत सुगन्धित पवन अचल इत नाचि अचानक ।१७

प्रलय-करन बरखन लगे जुरि जलधर इक साथ ।
सुरपति गरब हरयौ हरखि गिरधर गिरि धरि साथ ।५४१
गिरिधर गिरि धर हाथ सकल ब्रज लोग बचाये ।
बरसि सुधा-रस सात दिवस नर-नारि जिवाये ।
मिले नयन 'हरिचंद' तहाँ तजि गुरुजन को भय ।
इत तैं रस बरसात करी उत घन जन-परलाय ।१८

डिगत पानि डिगलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल ।
कंप किसोरी-दरस कें खरे लजाने लाल ।६०१
खरे लजाने लाल जबै तैं भौंह मरोरी ।
सजग होइ गिरि धरयौ कोर करुना करि जोरी ।
लकुट लाय 'हरिचंद' रहे नब गोपहु हरि-ढिग ।
अरी खरी तू बाल नेक चितये हरि गे डिग ।१९

लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल ।
गिरिधारी राखे सकल गो-गोपी-गोपाल ।५२१
गो-गोपी-गोपाल अबै सब गोबरधन तर ।
हरि गिरि लीन्हे हाथ तकत इक टक तुव मुख पर ।
'हरीचंद' गहि दया उनै ही लखु कर चोपे ।
नाहीं तौ हरि चौंकि गिरैहै गिरि ब्रज लोपे ।२०

गो-गोपी-गोपाल जदपि गोपाल बचाये ।
पै तिन कौं निज बदन-सुधा दै तहीं जिवाये ।
नाहीं तो 'हरिचंद' सात दिन इक कर रोपे ।
किमि हरि गिरि कर लिये रहत सगरो ब्रज लोपे ।२०

गो-गोपी-गोपाल राखि गिरिधर कहवाये ।
हाथन हीं तू सदा तिन्हैं लै रहत लगाये ।
चढ़े रहत 'हरिचंद' बैन दृग जिय हरि चोपे ।
गिरिधर-धारिनि क्यौं न होत तू रति-रस-लोपे ।२०

लाज गहौ, बेकाज कत घेरि रहे, घर जाँहि ।
गो-रस चाहत फिरत हौ, गो-रस चाहत नाँहि ।१२६
गो-रस चाहत नाहिं रूप लखि लाल लुभाने ।
सो रस पैहौ नाहिं फिरत काहे मँडराने ।
साँझ भई 'हरिचंद' जान घर देहु लुगाई ।
लखिहैं कोऊ आइ लाज कछु गहौ कन्हाई ।२१

मकराकृति गोपाल के कुंडल सोहत कान ।
धँस्यौ मनौ हिय-सर समर, ड्योढ़ी लसत निसान ।२०३
ड्योढ़ी लसत निसान मनौ नृप गुन प्रगटावत ।
जेहि सुनि हरि अति बिकल कुंज नोहिं तुरत बुलावत ।
चलति न क्यौं 'हरिचंद' बृथा लावत बिलंब इत ।
छोड़ मकर तुव बिना स्याम जल-बिनु मकराकृत ।२२

अधर धरत हरि के परत ओठ-दीठि-पट-जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र-धनुष रँग होति ।४२०
इन्द्र-धनुष रँग होति स्याम घन लहि छबि पावत ।
याही तें हरि सुधा-सार सम रस बरसावत ।
मुक्त-माल बक-पाँति साँझ फूली माला मध ।
बिजुरीसम 'हरिचंद' पीत पट रहयौ लपटि अध ।२३

इंद्र-धनुष सी होति बधन बिरही अबलागमन ।
बिनु बलमी तै भये इतो बिष होइ कहाँ तन ।
हम बाँचत ही रहत सदा 'हरिचंद' लोक-डर ।
हाय निगोरी यह बंसी पीवत अधराधर ।२३

छूटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग ।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता रंग ।७०
दिपति ताफता रंग बसन बिरची गुड़िया सी ।
चतुराई नहिं चढ़ी तऊ कछु लाज प्रकासी ।
देह नितम्बनि भार अजौं कटि भलो लुटी नहिं ।
जोबन आयो जऊ तऊ मुगधता छूटी नहिं ।२४

दिपति ताफता रंग मिलित बय सोभा बाढ़ी ।
कछु तरुनाई चढ़ी जीय कछु लाजहु गाढ़ी ।
आइ चली 'हरिचंद' जदपि जिय मैं कछु रसना ।
बलिहारी चलि लखौ तऊ तन छूटी न सिसुना ।२४

तिय-तिथि तरनि-किसोर-बय पुन्य-काल सम दोन ।
काहू पुन्यनि पाइयत बैस-संधि-संक्रोन ।२७४
बैस-संधि-संक्रोन समय सब दिन नहिं आवत ।

दूती बनि दैवज्ञ मिलन को समय बतावत ।
श्री 'हरिचंद' सुकुंज-सेज तीरथ जानहु जिय ।
देहु अधर-रस-दान लाल भागन पाई तिय ।२५
वैस-संधि-संक्रौन सात बिनु चार सौति कहँ ।
द्वै की घट भौं नव सालन जिय अठ दृग बारह ।
अजौं न ग्यारह कुच सु पाँच कटि दस धुन नहिं जिय ।
करहु न एक न देर होहु त्रय भाग मिली तिय ।२५

लालन अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति ।
आजु कालिह मैं देखियत उर उकसौंही भाँति।२६
उर उकसौंहीं भाँति बनक कछु कहत न आवै ।
देखे हीं सुख होइ तिहारे मनहिं रिझावै ।
चलि निरखौ 'हरिचंद' जुगल बय मिलन अलौकिक ।
नैन बैन कछु भये औरही लालन अलौकिक ।२६८

भावक उभरौंहौ भयौ, कछुक परयौ भरुआय ।
सीपहरा के मिस हियौ निसि-दिन हेरनि जाय ।२५२
निसि-दिन हेरति जाय कछु हँसि हँसि कै बोलै ।
आँख-मिचौनी के मिस सखि-दृग नापनि डोलै ।
हिय हरखै 'हरिचंद' पियहि लखि होत लजौंही ।
कटि सूछमता प्रगट करत भावक उभरौंही ।२७

अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन ।
स्तन-मन-नयन-नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन ।२
बड़ौ इजाफा कीन सबनि जागीर बढ़ाई ।
कंचुकि चाहत अंजन सारी खिलत दिवाई ।
मदन चक्कवै जानि करन कारज ना मन के ।
जोबन नृप अधिकार बढ़ाए अपने तन के ।२८
इक भींजे, पहले परैं, बूड़ैं, कहैं हजार ।
किते न औगुन जग करत बै नै चढ़ती बार ।४६१
बै नै चढ़ती बार कुल-मरजादा तोरत ।
भंजत धीरज-मेंड़ लाज-सामाँ सब बोरत ।
बेग कठिन 'हरिचंद' भेद यह तदपि दुहूँ दिक ।
चतुर होत एक पार जानि कै बूड़त लहि इक ।२९

देह दुलहिया की बढ़ै ज्यों ज्यों जोबन-जोति ।
त्यौं त्यौं लखि सौतें सबै बदन मलिन दुति होति ।४०
बदन मलिन दुति होति सौत गुरुजन सुख पावत ।
लाल हजारन भाँति मनोरथ डर उपजावत ।
तजत गरब 'हरिचंद' जिती जुवती जग महियाँ ।
ज्यौं ज्यौं उलहति चलति सलोने देह दुलहिया ।३०

नव नागरि-तन-मुलुक लहि जोबन-आमिल जोर ।
घटि बढ़ि तें बढ़ि घटि रकम करी और की और ।२२०
करी और की और लखत सिसुता बलि छूटी ।
दियो नितंबनि भार लखौ बीचहिं कटि लूटी ।
कुच उमगे 'हरिचंद' भई बुधिहू गुन-आगरि ।
चपल नैन बढ़ि चले मदन परसत नव नागरि ।३१
लहलहाति तन तरुनई लचि लग लौं लफि जाइ ।
लगैं लाँक लोइन-भरी लोइन लेति लगाइ ।५३२
लोइन लेति लगाइ फेरि छूटैं न छुड़ाए ।
बनत चहँटुआ नैन लगे डोलन सँग धाए ।
लाल लटू 'हरिचंद', लटू सम देखत छाती ।
भटू फिरत सँग लगे तरुनई लखि उलहाती ।३२
सहज सचिक्कन, स्याम रुचि, सुचि, सुगन्ध, सुकुमार ।
गनत न मन पथ अपथ, लखि बिथुरे सुथरे बार ।९५
बिथुरे सुथरे बार देखि उरझयौही चाहत ।
मानत नहिं कुल-कानि लाज नहिं तनिक निबाहत ।
जूरा मैं बँधि लटकि रहत अलकन के छोंकन ।
चोटिन में गुँथि जात केस लखि सहज सचीकन ।३३
वेई कर ब्यौरौ वहै, ब्यौरौ क्यों न बिचार ।
जिनहीं उरझ्यौ मो हियौ तिनहीं सुरझे बार ।४३६
तिनहीं सुरझे बार बार जिनपै मैं वारी ।
कहे देत कर-परसनि सखि यह तौ गिरधारी ।
उन बिन को 'हरिचंद' परसि प्रगटै मनमथ-जर ।
रोम-पाँति उकसाति पीठ लागैं वेई कर ।३४
कच समेटि, भुज कर उलटि खरी सीस-पट डारि ।
काको मन बाँधै न यह जूरो बाँधनिहारि ।
जूरो बाँधनिहारि बाँधि मन छोड़ि न जानै ।
सींचति सरस सनेह सुगंधहुँ लौ सानै ।
नजनि नहिं 'हरिचंद' मोहिं बोलति मुखहु न बच ।
जुलुफ जँचीरन सीस फूल को कुलुफ देत कच ।३५

छुटे छुटाव जगत नें सटकारे सुकुमार ।
मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार ।५७३
नील छबीले बार हरत मन सब ही भाँतिन ।
बँधे, छुटे, सटकारे गुँथे मोती पाँतिन ।
अहि सिवार अलि आद सबन को गरब मिटावैं ।
अँखियन अरुझे रहत न सुरझैं छुटे छुटावैं ।३६
कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगो इतो उदोत ।
बंक बँकारी देत ज्यौं दाम रुपैया होत ।४४२
दाम रुपैया होत उलैया तें ब्यवहारन ।
सोलह सै गुन बढ़त बदन-सोभा तिमि बारन ।
अमल कमल अलि पाँति रहत जिमि जमल ओर जुटि ।
ससि पै अहि सम ससि-बदनी के कुटिल अलक छुटि ।३७

ताहि देखि मन तीरथनि बिकटनि जाइ बलाय ।
जा मृगनैनी के सदा बेनी परसत पाय ।
बेनी परसत पाय जमुन सी लोल कलोलै ।
मोतिन मिस तिमि गंग संग लागी ही डोलै ।
चरन महावर सरिस सरस्वति मिलति जौन छन ।
तिय तीरथपति होत लहत फल जाहि देखि मन ।३८

नीकौ लसत लिलार पर टीकौ जटित जराय ।
छबिहि बढ़ावत रवि मनौं ससि-मंडल मैं आय ।१०५
ससि-मंडल मैं आइ सूर सोभाहि बढ़ावत ।
मोती-लर तारागन सी तिमि अति छबि पावत ।
तिय-सोभा 'हरिचंद' कियौ सौतिन मुख फीको ।
लखौ लाल चलि कुंज आजु प्यारी-मुख नीको ।३९

सबै सुहाए ही लसैं बसत सुहाई ठाम ।
गोरे मुख बेंदी लसैं अरुन, पीत, सित, स्याम ।२७१
अरुन, पीत, सित, स्याम, खुलैं सबही मन मोहैं ।
साँच कहत जग लोग सबै सुंदर कहँ सोहैं ।
बिनु सिंगार ही लेत जौन मन सहज लुभाए ।
क्यौं न लगैं सिंगार ललन तेहि सबै सुहाए ।४०

कहत सबै, बेंदी दियें आँक दस-गुनो होत ।
तित-लिलार बेंदी दियें अगनित बढ़त उदोत ।३२७
अगनित बढ़त उदोत तीस, अस्सी, नब्बे-गुन ।
तीन, आठ, नव, सत, सहस्र 'हरिचंद' बढ़त पुन ।
बंदी बेना बैंदी भौं लहि बनत रुपा जब ।
मोती-लर तें होत मुहर लखि थकित रहत सब ।४१

अगनित बढ़त उदोत न सो कबि पैं गिनि आवै ।
निरखत मन हर लेत तिहारे मन अति भावै ।
सो सोभा 'हरिचंद' बरनि नहिं जात कछु अब ।
चलि निरखौ चलि स्याम सहज छबि जाहि कहत सब ।४१

भाल लाल बैंदी छए छुटे बार छबि देत ।
गह्यो राहु अति आहु करि मनु ससि सूर-समेत ।३५५
मनु ससि सूर-समेत इकत गहि राहु दबावत ।
स्वेद-कना मिस अमृत निकसि तब ससि तें आवत ।
बारिध औ पिय नाते तब गहि जुगल कमल बर ।
निरुवारत तकि तमहिं परसि तिय भाल लाल कर ।४२

पायल पाय लगी रहै लगे अमोलक लाल ।
भोडरहू की बेंदुली चढ़ति तिया के भाल ।४४१
चढ़ति तिया के भाल तिमिहिं सो तिय गरबानी ।
हम सब कुल की होय फिरत द्वारहि मँडरानी ।
कामी हरि 'हरिचंद' करी बेबस करि घायल ।
भोडर राख्यौ सीस जर्यौ रतनन लै पायल ।४३

चढ़ति तिया के भाल पिया-मन सुख उपजावति ।
कोटि रतन रबि-ससिहूँ सों बढ़ि सोभा पावति ।
मूरतमान सुहाग-बिंदु लखि कबि-मति कायल ।
यातें यह अनमोल जदपि नवलख की पायल ।४३

चढ़ति तिया के भाल तैसहीं तू गरबानी ।
सुनत सखिन की बात न पीतम कों पतियानी ।
रहति मान करि बृथा कोप मैं करि मति मायल ।
पियहिं लुठावति चरन तरें परसावति पायल ।४३

चढ़ति तिया के भाल सबै सुंदर कहँ सोहत ।
तासों करु न सिंगार बेंदुली ही मन मोहत ।
चलु 'हरिचंद' निकुंज द्रुज तजि माल हिमालय ।
उत पिय तुव बिन ब्याकुल इत तु पहिरति पायल ।४३

चढ़ति तिया के भाल सदा निज मान बढ़ावत ।
तैसहिं नूपुर बोलन सों आदर नहिं पावत ।
सूचति रति अभिसार सबन कहँ बाजि उतायल ।
याही सों मनि-जटितहु राखत पद तर पायल ।४३

भाल लाल बैंदी ललन आखत रहे बिराजि ।
इंदु-कला कुज मैं बसी मनौं राहु-भय भाजि ।६९०
मनौ राहु-भय भाजि इंदु कुज-मंडल आयो ।
ताहू पै तिन बाहर ही निज जोर जमायो ।
पूजि देव-तिय न्हाइ खरी बाढ़ी अति सोभा ।
बिथुरे केसनि तिलक अखत लखि पिय मन लोभा ।४४

पिय-मुख लखि पन्ना जरी बेंदी बढ़ै बिनोद ।
सुत-सनेह मानौं लियो बिधु पूरन बुध गोद ।७०७
बिधु पूरन बुध गोद मोद भरि कैं बैठार्‌यौ ।
होइ उच्च के जिन सोहाग को चौचँद पार्‌यौ ।
सेंदुर केसर पान दिठौना बेसर कच सुख ।
औरहु ग्रह मिलि बसे इकत लखि सुंदर तिय मुख ।४५

गढ़-रचना बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान ।
आघ बँकाई ही बढ़ै तरुनि तुरंगम तान ।३१६
तरुनि तुरंगम तान बँकाइहि तें छबि पावत ।
ताही तें तू सदा मान की मति उपजावत ।

बेहू ललित त्रभंग सदा बाँके सब सों बढ़ ।
यह जोरी 'हरिचंद' भली बिधि रची आपु गढ़ ।४६

नासा मोरि नचाइ दृग करी कका की सौंह ।
काँटे लौं कसकति हिये गरी कँटीली भौंह ।४०६
गरी काँटीली भौंह न भूलति कबहूँ भुलाये ।
वह चितवनि वह मुरनि चलनि चख चपल नचाये ।
प्रान रहे 'हरिचंद' एक सौंहन की आसा ।
उन तौ बिछुरत ही बुधि-बल मन-धीरज नासा ।४७

गरी कँटीली भौंह जीय सों चुभत सदाहीं ।
अब उनके बिनु मिले सखी जिय मानत नाहीं ।
लाउ बेगि 'हरिचंद' पूरि मम कोटिन आसा ।
नाहीं तो यह तन वियेग मनमथ अब नासा ।४७

गरी कँटीली भौंह कोप करि प्रगट बँकाई ।
मम भुज छूटन हेत सरस रिसि जौन दिखाई ।
बह छलि भाजी हाय रहयौ में लखत तमासा ।
मिलन-मनोरथ-पुंज पलक मूँदत सब नासा ।४७

गरी कँटीली भौंह सोइ कसकत जिय भारी ।
गुरुजन की भय-देनि खानि हा हा वह प्यारी ।
मिलन औध 'हरिचंद' बदनि वह राखनि आसा ।
भूलति क्यौंहूँ नाहिं नचावनि भौं दृग नासा ।४७

गरी कँटीली भौंह बिरह ब्याकुल अति भारी ।
कोउ बिधि बेगि मिलाउ मोहिं सुंदर सोइ प्यारी ।
कहियो तुम करि सौंह न पूरत क्यौं अब आसा ।
ताकी जाको बुधि बल सब देखत तुम नासा ।

खौरि-पनच, भृकुटी-धनुष, बधिक-समर, तजि कानि ।
हनत तरुन-दृग तिलक-सर, सुरक-भाल भरि तानि।१०४
सुरक-भाल भरि तानि खोजि चतुरन ही मारत ।
बधि फिर खोज न लेत चवाइन चौचँद पारत ।
जिय ब्याकुल 'हरिचंद' होत गति मति सब बौरी ।
गोरे गोरे भाल बिलोकत केसरि खौरी ।४८

रस सिंगार मंजन किए, कंजन भंजन-दैन ।
अंजन रंजनहूँ बिना, खंजन-गंजन नैन ।४६
खंजन-गंजन नैन लुकंजन मनहुँ लगाये ।
पैठि हिये मन लयो तबहुँ पहिं परत लखाये ।
वारौं कोटिक मीन, मैन-सर, मृग-छबि सरबस ।
कहँ ये जड़ पसु निरस कहाँ वे भरे मदन-रस ।४९

खेलन सिखए अलि भलैं चतुर अहेरी मार ।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरन सिकार ।४५
नागर नरन सिकार करत ये जुलुम मचावत ।
अंजन गुनहूँ बँधे उड़न झपटत गहि लावत ।
चीन्हि चीन्हि 'हरिचंद' रसिक ये मारत सेलन ।
बधि फिर सुधि नहिं लेत भले सिखये वह खेलन ।५०

सायक-सम घायक नयन, रँगे त्रिबिध रँग गात ।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि उलजात लजात ।५५
लखि उलजात लजात, हरिन बन बसत निरंतर ।
खंजन निज मद-गंजन करि निवसत तरुवर पर ।
सो मोहत 'हरिचंद' जौन त्रिभुवन के नायक ।
बुझे त्रिबेनी-नीर जीय-घायक दृग-सायक ।५१

अर तैं टरत न वर परे, दई मरक मनु मैन ।
होड़ा-होड़ी बढ़ि चले चित, चतुराई नैन । ३
चित, चतुराई, नैन मधुरता बच-रस-साने ।
जोबन कुच पिय प्रेम सबै साथहि उमगाने ।
जीतन हरि 'हरिचंद, कुमक नृप मदन सुघर तें ।
आवत सब ही बढ़े बढ़ेई टरत न अर तें ।५२

जोग-जुगुति सिखये सबै मनौ महा मुनि मैन ।
चाहत पिय अद्वैतता, कानन सेवत नैन ।१३
कानन सेवत नैन रहत नितही लौ लाए ।
हरि-मद-रस सों छके छबीले उमग बढ़ाए ।
सेली डोरे लाल लखत गुदरी पल अनमिख ।
क्यों न लहैं अद्वैत सिद्धि प्रिय जोग जुगुति सिख ।५३

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न ।
हरिनी के नैनान तैं हरि नीके ए नैन । ६७
हरिनी के ए नैन अनी के घन बरुनी के ।
फीके कमलन करत भावते जी के ती के ।
ही के हर 'हरिचंद' रंग चीते प्रिय प्रीते ।
नीते मानत नाहिं चपल चीते बर जीते ।५४
संगति दोष लगै सबै, कहे जु साँचे बैन ।
कुटिल बंग भ्रुव संग तैं भए कुटिल-गति नैन ।३०३
भए कुटिल-गति नैन कुटिलई पिय सों ठानत ।
सीधे जित अति रहत कान सिख नेक न मानत ।
अरुझि परत 'हरिचंद' सैन सजि बरुनिन-पंगति ।
घायहु बाँको करत खरे बिगरे लहि संगति । ५५

दृगनि लगत, बेधत, हियौ, बिकल करत अँग आन ।

ए तेरे सब तें बिषम ईछन तीछन बान ।३४९
ईछन तीछन बान आज अति अचरज पारैं ।
मिलत करेजे धाय करैं बिछुरे तिय मारैं ।
काढ़े औरहु धँसत बढ़त उपचार निरखि ढिग ।
जेहि लागत तेहि लगन देत नहिं लगन लाय दृग ।५६

झूठे जानि न संग्रहै मनु मुँद-निकसे बैन ।
याही तें मानों किये, बातनि कौं बिधि नैन ।३४६
बातनि कौं बिधि नैन किये सब बिधि बिधि जानी ।
बिनु बोलेहु जासु मधुर बोलनि रस-सानी ।
हाव भाव 'हरिचंद' छिपे रस धरे अनूठे ।
कहे देत जिय बात करत मुख के छल झूठे ।५७

फिरि फिरि दौरत देखियत, निचले नैंकु रहैं न ।
ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन ।६७०
करत कजाकी नैन कजा की सैन सैन गति ।
बटपारे बरजोर बिचारे पथिक देत हति ।
कावा सम 'हरिचंद' फिरत कावा धावा धरि ।
पै निज ठौरहि रहत करत अचरज अति फिरि फिर ।५८

खरी भीरहूँ भेदि कै कितहूँ तैं इत आय ।
फिरै दीठि जुरि दुहूँनि की सबकी दीठि बचाय ।
सब की दीठि बचाय नीठि मिलिही ये जाहीं ।
कोटि उपाय न करौ ठौरही ये ठहराहीं ।
कठिन प्रीति 'हरिचंद' भीत गुरुजन हरि सगरी ।
करत आपनो काज लाज तजि यह गति निखरी ।५९

सब ही तन समुहाति छिन, चलति सबन दै पीठि ।
वाही तन ठहराति यह, किबिलनुमा लौं दीठि ।३०
किबिलनुमा लौं दीठि एक हरि दिसि ही हेरै ।
कोटि जतन कोउ करौ अनत कहुँ रुखहु न फेरै ।
पीतम बिनु 'हरिचंद' कहौ क्यौं अनत लगै मन ।
सरल भाव यों भले लखौ किन छिन सबही तन ।६०

किबिलनुमा लौ दीठि न कबहूँ प्रन करि फेरै ।
छबि-सागर ड्ब्यो निज मन-ससि फिरि फिरि हेरै ।
हरि-चुम्बक 'हरिचंद' करत दृग-लोहहिं करसन ।
तिनही ठहरति जदपि करत कावा सब ही तन ।६०

किबिलनुमा लौं दीठि भई सब तजि पिय अनुसर ।
ताहि देखि 'हरिचंद' प्रेम गति सुदृढ़ करी अर ।
बिन देखें हरि-धाम लखन को तजति न वह प्रन ।
तौ परतछ हरि पाइ कहा यह चितवै सब तन ।६०

कहत, नटत, रीझत खिझत, मिलत, खिलत, लजि जात
भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात ।३२
नैनन ही सों बात करत दोऊ अरुझाने ।
अलख जुगल के खेल न काहू लखत लखाने ।
इन्हैं काम सौं काम होइ किन लाखन जन महँ ।
ये अपने रस-मगन भीर करिहैं इनको कहँ ।६१

कंज-नयनि मंजन किये बैठी ब्यौरति बार ।
कच-अँगुरिनि बिच दीठि दै निरखति नंदकुमार ।७८
निरखति नंदकुमार सखिन की दीठि बचाए ।
एक पंथ द्वै काज करति मुख अलक छिपाए ।
छिप्यौ चंद 'हरिचंद' सघन घन देइ लुकंजन ।
तहँ सों द्वै उडुगन निरखत करि ढिग जुग कंजन ।६२

सब अँग करि राखी सुघर नागर-नेह सिखाइ ।
रस जुत लेति अनंत गति पुतरी पातुर राइ ।२७४
पुतरी पातुर-राइ नचति मन हरति सुहावनि ।
अतिहि चतुर गुन भरी अनेकन भाव दिखावति ।
मनहिं हरति 'हरिचंद' हठनि नित रँगी मदन-रँग ।
को जोहत नहिं मोहत यह छबि-पूरित सब अँग ।६३

दीठि-बरत बाँधी अटनि,चढ़ि धावत न डरात ।
इत उत तें चित दुहुँन के नट लौं आवत जात ।१९३
नट लौं आवत जात संक बिनु इत उत मिलि भल ।
करत कला बहु भाँति मैन गुरु मंत्र-जोग-बल ।
दृष्टिबंध 'हरिचंद' होत जग लखत न नीठी ।
खेलि लहत रस-केलि रीझ चित-नट चढ़ि दीठी ।६४

लीनेहूँ साहस सहस, कीने जतन हजार ।
लोइन लोइन सिंधु तन, पैरि न पावत पार ।२१३
पैरि न पावत पार रहत त्रिबली-तरंग फँसि ।
कुच-गिर सों टकराइ नाभि-भँवरन घूमत धँसि ।
अरुझत बारहि बार रूप-चादर परि भीने ।
नैन कहर दरियाव पाइ बूड़त मन लीने ।६५

पहुँचति डँटि रन सुभट लौं, रोकि सकैं सब नाहिं ।
लाखनहूँ की भीर मैं आँखि उतै चलि जाहिं ।१७८
आँखि उतै चलि जाहिं रुकत नेकहु नहिं रोके ।
करैं आपुनो काज संक बिनु गिनत न टोके ।
छकी प्रेम 'हरिचंद' परस्पर लगीं दरस ठटि ।

मिलत धाइ अकुलाइ हेरि उतही पहुँचति डटि ।६६

गरी कुटुंबिनि-भीर मैं रही बैठि दै पीठि ।
तऊ पलक करि जात उत सलज हँसौंहीं दीठि । ९७
सलज हँसौंहीं दीठि झपकि उत फिरही जाँही ।
गुरु-जन नजरि बचाए दुरि सनमुख समुहाँहीं ।
कछु देखन मिस सहज इतहि उत दुरि दुरि अगरी ।
पीतम दिसि लखि लेत लालचिन चपल अचगरी ।६७

भौंह उँचै, आँचर उलटि, मौर मोरि मुँह मोरि ।
नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि ।२४२
दीठि दीठि सों जोरि काज परबस अकुलानी ।
गुरुजन आयसु बँधी सलोनी ओट दुरानी ।
प्रेम-भरी 'हरिचंद' चलत दृग चपल लजौंहैं ।
बेबस चितवनि चितै गई मोरत निज भौंहैं ।६८

लागत कुटिल कटाच्छ-सर क्यों न होय बेहाल ।
लगत जु हिये दुसार करि, तऊ रहत नटसाल ।३७५
तऊ रहत नटसाल सदा सालत जिय माँहीं ।
बेधि पार हवै जाँहि तदपि ये निसरत नाँहीं ।
सुधि न टरत 'हरिचंद' छिनकहू सोअत जागत ।
बारेकहू के लगे सदा लागत से लागत ।६९

अनियारे, दीरघ दृगिनि किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछू, जेहि बस होत सुजान ।५८८
जेहि बस होत सुजान भावते हैं कछु न्यारे ।
सहज प्रीति रस-रीति बिबस निज पिय बस पारे ।
कहा भयो 'हरिचंद' जु पै लाखन तिय पिय-ढिग ।
प्रेमी रीझत प्रेम न अनियारे दीरघ दृग ।७०

जदपि चवाइनि चीकिनी चलति चहूँ दिसि सैन ।
तऊ न छाँड़त दुहुँन के हँसी रसीले नैन ।३३६
हँसी रसीले नैन करत बस-रस अरुझाने ।
भाव भरे रस भरे मैन के मनहुँ खजाने ।
जग रीझो खीझो बरजौ घटिहैं नहिं चाइनि ।
ये अपने रस-पगे चाव किन करहिं चवाइनि ।७१

फूले फदकत लै फरी, पल कटाच्छ-करवार ।
करत बचावत पिय-नयन-पाइक घाइ हजार ।२४७
पाइक घाइ हजार करत जुरि जुरि दुरि जाहीं ।
फिर डँटि मनमुख लरहिं बचहिं अभिरहिं मुरि जाही।
जुगल चतुर 'हरिचंद' भीर भुलवत नहिं भूले ।
भिरे प्रेम-रन-रंग सुभग-दृग गुन-बल फूले ।७२

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन ।
मानहु सुर-सरिता बिमल जल उछलत जुग मीन ।३७६
जल उछलत जुग मीन रूप-चारा ललचाने ।
झलकत मुख तिमि निरखि न पिय मन रहत ठिकाने
सेत बसन 'हरिचंद' कहिय तन उपमा केहि सम ।
प्रगटत बाहर प्रभा चारु मुख चमकत चमचम ।७३

नावक-सर से लाइकै तिलक तरुनि गइ ताकि ।
पावस-झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि ।५७०
गई झरोखे झाँकि पिया-उर बिरह बढ़ाई ।
नीके मुख नहिं लख्यो रहयौ तासों अकुलाई ।
मीन उछरि जल दुरै लुकै बन जिमि भजि सावक ।
तिमि सो नैन नवाइ दुरी हति पिय-उर नावक ।७४

सटपटाति सी ससि-मुखी मुख घूँघट-पट ढाँकि ।
पावस-झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि ।६४६
गई झरोखे झाँकि लाज-बस ठहरि सकी नहिं ।
इत पिय-मुख नहि लख्यौ भले तासों व्याकुल महि ।
परे लाज-बस जुगल बिकल वह घर-मधि ये बट ।
मिलि न सकत 'हरिचंद' प्रेम की हिय-मधि सटपट ।७५

छुटत न लाज, न लालचौ प्यौ लखि नैहर-गेह ।
सटपटात लोचन खरे, भरे सकोच-सनेह ।५२४
भरे सकोच-सनेह निरखि ढिग पिय ललचाहीं ।
दुरि दुरि देखहिं कबहुँ कबहुँ लखि लोग लजाहीं ।
रोकेहु नहिं रहत न घूँघट तजि सुख लूटत ।
बिचि चुम्बक के लोह-सरिस कोउ बिधि नहिं छूटत ।७६

दूरौ खरे समीप को मानि लेत मन मोद ।
होत दुहुन के दृगन ही बत-रस हँसी-बिनोद ।६३९
बत-रस हँसी-बिनोद मान अरु मान-मनावनि ।
रिझनि-खिझनि-संकेत बदनि पुनि कंठ-लगावनि ।
नैननही 'हरिचंद' करत सुख-अनुभव पूरो ।
नैन मिले जिय निकट जदपि ठाढ़े दोउ दूरो ।७७

तिय, कित कमनैती पढ़ी, बिन जिहि, भौंह-कमान ।
चित बेधै चूकति नहीं बंक बिलोकनि-बान ।३५६
बंक बिलोकनि-बान सबै बिधि अजगुत पारत ।
बिनु देखी जो बस्तु ताहि तकि कै किमि मारत ।
काढ़े औरहु चुभत अनोखे चोखे सर हिय ।
बधिन बेझ लै जात सिकारिनि अत बिचित्र तिय ।७८

नीचे हीं नीचे निपट दीठि कुही लौं दौरि ।
उठि ऊँचे, नीचे दियो मन-कुलिंग झकझोरि ।२५७

मन कुलिंग झकझोरि कियो परबस मोहिं प्यारी ।
कहाँ जाऊँ, का करौं, भयो जिय अतिहि दुखारी ।
अब नहिं आन उपाय सुधाधर-रस-बिनु सींचे ।
सब विधि कियो निकाम निरखि दृग ऊँचे नीचे ।७९

नैन-तुरंगम अलक-छबिछरी लगी जेहि आइ ।
तिहि चढ़ि मन चंचल भयो मति दीनी बिसराइ ।

मति दीनी बिसराइ बिबस इत सों उत डोलै ।
छूटी धीरता-डोर न मुखहू सों कछु बोलै ।
सुपथ-कुपथ नहिं लखत भयो बुधि-बिनु उनमद सम।
सब विधि व्याकुल भयो चेत चढ़ि नैन-तुरंगम ।८०

ऐंचित सी चितवनि चितै भई ओट अलसाइ ।
फिर उझकनि कों मृग-नयनि दृगनि लगनिया लाइ ।३२०

दृगनि लगनिया लाइ इहाँ सों कितै दुरानी ।
कल न परत बिनु लखे बिकल गति मति बौरानी ।
छाँड़ि बिबस 'हरिचंद' गई बुधि धीरज सैंचति ।
दृग-बंसी मन-मीन रूप निज गुन-बिफ ऐंचति ।८१

करे चाह सों चुटकि कै खरें उड़ौहैं मैन ।
लाज नवाए तरफरत करत खूँद सी नैन ।५४२

करत खूँद सी नैन मेंड़ गुरुजन की तोरत ।
लोक-लीक नहिं गिनत उतैही हठि मुख जोरत ।
मन-सहीस 'हरिचंद' थक्यो बुधि-बागहि पकरे ।
खरें बिबस भे रहत न लाज-लगामन जकरे ।८२

नेकु न झुरसी बिरह-झर नेह-लता कुम्हिलाति ।
नित नित होति हरी हरी, खरी झालरति जाति ।१९८

खरी झालरति जाति मनोरथ करि उमगाई ।
सींचि सींचि अँसुवानि अवधि-तरु लाइ चढ़ाई
बनमाली 'हरिचंद' चलहु लावहु लै उर सी ।
लखहु आपनी नेह-लता बलि नेकु न झुरसी ।८३

कर उठाइ घूँघट करत उसरत पट-गुझरौट ।
सुख-मोटै लूटीं ललन लखि ललना की लौट ।४२४

लखि ललना की लौट ललन-दृग टरत न टारे ।
लोट-पोट ह्वै रहे छके सुधि सकल बिसारे ।
दुरि दुरि साम्हे होत रसिक 'हरिचंद' चतुर तर ।
अरुझे बारहिं बार लखत त्रिबली-मुख-दृग-कर ।८४

नभ लाली आली भई चटकाली धुनि कीन ।
रतिपाली, आली, अनत, आए बनमाली न ।११५

आए बनमाली न करी सखि बहुत कुचाली ।
काली ब्याली रैन बिरह घाली जिय माली ।
बाली दीपक जोति मन्द भइ प्रीति न पाली ।
टाली हाली औध भई खाली नभ-लाली ।८५

होली

[हरि प्रकाश यंत्रालय द्वारा सन् १८७९ में मुद्रित]

समर्पण

प्यारे,

कहाँ चले ? इधर आओ, त्यौहार घर का करो। देखो, हमने होली के कुछ खेल इन पत्रों मे लिखे हैं, इनसे जी बहलाओ।

तुम्हारा
हरिश्चंद्र

होली

दोहा

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर।

झपताल सहाना

सखी बनि ठनि तू चली आज
कितकों न जानत है मग श्याम खड़ो री।
चंद सों बदन ढाँकि नीले पट
देखु न आगे ही छैल अड़ो री।
वा मारग कोउ जान न पावत होरी
को खंभ सों ह्वै कै गड़ो री।
'हरीचंद' वासों भली दूर ही की
बिहारी खिलारी फफंदी बड़ो री।१

बिहाग

रे निठुर मोहिं मिल जा तू काहे दुख देत।
दीन हीन सब भाँति तिहारी क्यों सुधि काई न लेत।
सही न जात होत ब्याकुल बिसरत सब ही चेत।
'हरीचंद' सखि सरन राखि कै भल्यो निबाह्यो हेत।२

सिंदूरा

कान्ह तुम बहुत लगावत अपुने कों होरी-खिलार।
निकसि आव मैदान दुरत क्यौं लै चौगान निवार।
तू नँद-गैयाँ तौ हैं हमहूँ बरसाने की नार।
अब को दाँव जो जीतै तोपैं 'हरीचंद' बलिहार।३

एरी या ब्रज में बसिकै तरह दिये ही बनै काज।
वह तो निलज बिचार करत नहिं तू कत खोवत लाज।
तू कुलबधू सुलच्छनि गोरी क्यों डरवावति गाज।
'हरीचंद' के मुख नहिं लगनो होरी के दिन आज।४

सखी री कासों ठानत सरबर तू बे-काम।
वह तो धूत फफंदी ब्रज को तू है कुल की बाम।
कौन जीतिहै ढीठ निलज सों तू कित नाहक करत कलाम।
'हरीचंद' निज बाट चली चल याकों उपाधी नाम।५

धनाश्री

मनमोहन चतुर सुजान, छबीले हो प्यारे।
तुम बिनु अति ब्याकुल रहैं सब ब्रज के जीवन प्रान।
तुमरे हित नँद-लाडिले हो छोड़ि सकल धन-धाम।

बन बन मैं व्याकुल फिरैं हो सुंदर ब्रज की बाम ।
तनक बाँस की बाँसुरी हो लेत जबै तुम हाथ ।
व्याकुल धावैं देव-बधू तजि अपने पति को साथ ।
सुर-नर-मुनि-मन-मोहिनी हो मोहन तुमरी तान ।
जमुना जू बहिबो तजैं थकि टरत न देव-बिमान ।
जड़ चैतन होइ जात हैं चैतन जड़ होइ जात ।
जौ इन सब की यह दसा तौ अबलन की का बात ।
उठि धावैं ब्रज-नागरी हो सुनि मुरली टेर ।
लाज संक मानै नहीं हो रहत श्याम कों घेर ।
मगन भई सब रूप मैं हो गोकुल गाँव बिसारि ।
'हरीचंद' जन बारने हो धन धन्य ब्रज-नारि ।६

इकताला

भूलत पिय नंदलाल भुलवत सब ब्रज की बाल
बृंदावन नवल कुंज लोल दोलिका ।
संग राधिका सुजान गावत सारंग तान
बजत बाँसुरी मृदंग बीन ढोलिका ।
ऊधम अति होत जात घूँघट मैं नहिं लखात
छूटत बहुरंग उड़त अबिर भोलिका ।
'हरीचंद' दैं असीस कहत जियौ लख बरीस
दिन दिन यह आवै तेहवार होलिका ।७

काफी

अरे जोगिया हो कौन देस तें आयो ।
हाँ हाँ रे जोगी मीठे तेरे बोल । टेक ।
आँखें लाल बनीं मद-माती कुसुम फूल के रंग ।
मानो शिव बरसाने आयो चेला न कोऊ संग ।।
हाँ हाँ रे जोगी पहिरे बंघबर चोल ।।
हाँ हाँ रे जोगी तू तो चेला काम को भूठो साध्यौ ध्यान ।
जैसो बकुला गंगा-जल में बैठत आइ सुजान ।
हाँ हाँ रे जोगी खोलि आपुने नैन ।
हाँ हाँ रे जोगी अबलन कों ऐसे देखै जैसे ब्रज को रसिया कोय।
जोग लियो कैसो रे जोगी यह तो जोग न होय ।।
हाँ हाँ रे जोगी नारी बिन कैसो चैन ।।
हाँ हाँ रे जोगी कुंज कुटी एकांत थली मैं
जौ तू निकसै आय ।
तौ इक मोहन मंत्र कों हम देहैं तोहि सिखाय ।।
हाँ हाँ रे जोगी होयगो परम अनंद ।।
हाँ हाँ रे जोगी तोसों मंतर लेहिंगीं हो भेंट धरैं धन-धाम।
जोगी तेरे कारने सब जोगिन ब्रज की बाम ।।
हाँ हाँ रे जोगी चेला तेरो 'हरीचंद' ।।
हो कौन देस तें आयो रे जोगिया ।८

होरी काफी

तूही कहा ब्रज में अनोखी भई ।
कान नहिं काहू की करन दई ।
जानत नहिं कछु चाल यहाँ की आई अबहिं नई ।
मोहन मिलतहि जानि परैगी भूलैगी सबई ।
छैल खिलार रसिक होरी को लीने सखा कई ।
गाय कबीर अबीर उड़ावत आवत ह्वै है सई ।
देखत ही तोहिं दौरि परैगो जानि नवेली नई ।
हार तोरि रँग डारि चूमि मुख चूरी करि दै रई ।
तब तासों कछु बनि नहिं ऐहै जब तेरी लाज गई ।
'हरीचंद' सों को ऐसी जौ नै कै नाहिं गई ।९

होरी

जो मैं डरपत ही सो भई ।
छैल छबीले खिलारन लीने ठाढ़ो दई ।
फेंट गुलाल धरे डफ कर लै गावत तान नई ।
बाकी तान सुनत सो को नहिं जाकी लाज गई ।
एक प्रीत, मेरी वासों पुनि दूजे होरी छई ।
'हरीचंद' छिपिहैं नाहीं अब जानैंगे लो कई ।१०

डफ की

हम चाकर राधा रानी के ।
ठाकुर श्री नँदनंदन के वृषभानु लली ठकुरानी के ।
निरभय रहत बदत नहिं काहू डर नहिं डरत भवानी के।
'हरीचंद' नित रह दिवाने सूरत अजब निवानी के ।११

अब तेरे भए पिया बदि कै ।
दगे नाम सों यार तिहारे छाप तेरो सिर ऊपर लै ।
कहाँ जाहिं अब छोड़ि पियारे रहें तोहि निज सरबस दै ।
'हरीचंद' ब्रज की कुंजन में डोलैंगे कहि राधे जै ।१२

चिर जीओ फागुन कौ रसिया ।
जब लौं सूरज चंद उँजेरी तब लौं ब्रज मैं फिर बसिया ।
नित नित आओ होरी खेलन नित गारी नित ही हँसिया ।
'हरीचंद' इन नैन सदा रहौ
पीत पिछौरी कटि कसिया ।१३

कोऊ नाहिंनै जो बरजै निडर छैल ।
अररानो ही परत डरत नहिं
रोकि रहत मग बनि अरैल ।
वाके डर सों कोऊ कुल की नारि
निकसत नहिं जमुना की गैल ।
'हरीचंद' जैसे निबहैगी
फागुन के वाके फंद फैल ।१४

धमार धनाश्री

मन-मोहन की लगवारि गोरी गूजरी ।
मगन भई हरि-रूप मैं सब कुल की लाज बिसारी ।
नंद-सुवन को नाम हो कोऊ वाके आगे लेइ ।
सुनतहि तन थरथर कँपै मुख उत्तर कछु न देई ।
श्याम सुँदर को चित्र हो वाहि जो कोऊ देत देखाई ।
नैनन सों असुँवा बहैं मुख बचन कह्यौ नहिं जाइ ।
जो कोऊ वासों पूछई मुख बोलत आन की आन ।
जिय को भेद न खोलई वह नागरि चतुर सुजान ।
दृग को जल सूखै नहीं हो मनु जमुना बहि जाइ ।
गोरो मुख पीरो पर्‌यो मनु दिन मैं चंद लखाइ ।
नित गुरुजन खीजत रहैं हो लरत ससुर अरु सास ।
तिनकी सब बातें सहै नहिं छोड़ैं प्रेम की फाँस ।
तन अति ही दुबरो भयो मनु फूल-छरी की चाल ।
भयो मुख नित नित घटै अरु सूखे अधर रसाल ।
जो कोऊ कहि देइ हो मन-मोहन निकसे आइ ।
सुनतहि उठि धावै अरी गृह-काज सबै बिसराइ ।
मग मैं जो मोहन मिलैं हौ नहिं देखत भरि नैन ।
घूँघट पट की ओट मैं हो करत कछु इक सैन ।
जहँ मन-मोहन पग धरैं तहँ की रज सीस चढ़ाइ ।
सखियन कों सँग छोड़िकै वह पीछे लागी जाइ ।
या बृज की सब ग्वालिनी हो ज्यौं ज्यौं करत चवाव ।
त्यौं त्यौं वाके चित्त में हों बढ़त चौगुनो चाव ।
जो बैठे एकांत में हो जपत उनहिं को नाम ।
ध्यान करै नँदलाल को नहिं भावै कछु धन-धाम ।
खान-पान सब छोड़िकै हो पति को सुख बिसराइ ।
कोउ मिस सों ब्रजराज के वह घर के मारग जाइ ।
बातन मैं बहराइकै हो पूछत उनकी बात ।
जौ हमहूँ कछु पूछहीं तौ बातन मैं फिरि जात ।
नैन नींद आवै नहीं वाके लगे स्याम सों नैन ।
भावै नहिं कोउ भोग हो वाने त्याग्यो सब सुख चैन ।
जो कोऊ समुझावही तौ औरहु ब्याकुल होइ ।
'हरीचंद' हरि मैं मिलिहौ हो जल पय सम सब खोइ ।१५

राग देश

सखी हमरे पिया परदेश होरी मैं कासों खेलौं ।
जिनके पीतम घर हैं सजनी तिनहिं की है होरी ।
हम अपने मोहन सों बिछुरीं बिरह सिंधु में बोरी ।
चोआ चंदन अबिर अरगजा औरहु सुख के साज ।
'हरीचंद' पिय बिनु सब हमको बिख से लागत आज ।१६

सिंदूरा

आज कहि कौन रुठायो मेरो मोहन यार ।
बिनु बोले वह चलो गयो क्यों बिना किये कछु प्यार ।
कहा करौं कछू न बनत है कर मींड़त सों बार ।
'हरीचंद' पछितात रहि गई खोइ गले को हार ।१७

असावरी

तुम मम प्रानन तें प्यारे हो, तुम मेरे आँखिन के तारे हो।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो आयो फागुन मास ।
अब तुम बिनु कैसे रहौंगी नासों जीय उदास ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो यह होरी त्यौहार ।
हिलि मिलि झुरमुट खेलिये हो यह बिनती सौ बार ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो अब तो छोड़ो लाज ।
निधरक बिहरौ मो सँग प्यारे अब याको कहा काज ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जौ रहिहौ सकुचाय ।
तौ कैसे कै जीवन बचि है यह मोहिं देहु बताय ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जग मैं जीवन थोर ।
तो क्यों भुज भरिकै नहिं बिहरौ प्यारे नंदकिशोर ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो तुम बिनु जिय अकुलाय ।
ता पैं सिर पैं फागुन आयो अब तो रह्यौ न जाय ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो तुम बिनु तलफैं प्रान ।
मिलि जैये हौं कहत पुकारे एहो मीत सुजान ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो यह अति सीतल छाँह ।
जमुना-कूल कदंब तरे किन बिहरौ दै गलबाँह ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो मन कछु ह्वै गयो और ।
देखि देखि या मधु रितु मैं इन फूलन को बे-तौर ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो लेहु अरज यह मान ।
छोड़हु मोहिं न इकली प्यारे मति तरसाओ प्रान ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो देखि अकेली सेज ।
मुरछि मुरछि परिहौं पाटी पैं कर सों पकरि करेज ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो नींद न ऐहै रैन ।
अति ब्याकुल करवट बदलौंगी ह्वैहै जिय बेचैन ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो करि करि तुम्हरी याद ।
चौंकि चौंकि चहुँ दिसि चितओंगी सुनै कोउ फरियाद।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो दुख सुनिहै नहिं कोय ।
जग अपने स्वारथ को लोभी बादन मरिहौं रोय ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो सुनतहि आरत बैन ।
उठि धाओ मति बिलाम लगाओ सुनो हो कमल-दल नैन।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो सब छोड़यौ जा काज ।
सोऊ छोड़ि जाइ तौ कैसे जीवैं फिर ब्रजराज ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो मति कहुँ अनतै जाहु ।
मिलि कै जिय भरि लेन देहु मोहिं अपनो जीवन-लाहु।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो इनको कौन प्रमान ।

ये तो तुम बिनु गौन करन कों रहत तयारहिं प्रान ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जिय में नहिं रहि जाय ।
तासों भुज भरि मिलि कै भेंटहु सुंदर बदन दिखाय ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो पल की ओट न जाव ।
बिना तुम्हारे काहि देखिहैं अँखियाँ हमैं बताव ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो साथिन लेहु बुलाय ।
गाओ मेरो नामहि लै लै डफ अरु बेनु बजाय ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो आइ भरौ मोहिं अंक ।
यह तो मास अहै फागुन को या मैं काकी संक ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो देहु अधर-रस-दान ।
मुख चूमहु किन बार बार दै अपनै मुख को प्रान ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो कब कब होरी होय ।
तासों संक छोड़ि कै बिहरो दै गल मैं भुज दोय ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो रहौ सदा रस एक ।
दूर करौ या फागुन मैं सब कुल अरु बेद-विवेक ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो थिर करि थापौ प्रेम ।
दूर करौ जग के सबै यह ज्ञान-करम-कुल-नेम ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो सदा बसौ ब्रज देश ।
जमुना निरमल जल बहौ अरु दुख को होउ न लेस ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो फलनि फलो गिरिराज ।
लहौ अखंड सोहाग सबै ब्रज-बधू पिया के काज ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जाइ पछारौ कंस ।
फेरौ सब थल अपनि दुहाई करि दुष्टन को धंस ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो दिन दिन रहो बसंत ।
यही खेल ब्रज मैं रहौ हो सब बिधि अति सुखद समंत।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो बाढ़ौ अविचल प्रीति ।
नेह निसान सदा बजै जग चलौ प्रेम की नीति ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो यह बिनती सुनि लेहु ।
'हरीचंद' की बाँह पकरि दृढ़ पाछे छोड़ न देहु ।१८

देश

रंग मति डारो मोपै सुनो मोरी बात ।
बड़ी जुगति हौं तोहिं बताऊँ क्यौं इतने अकुलात ।
श्री वृषभानु-नंदिनी ललिता दोऊ वा मग जात ।
तुमहुँ जाइ माधुरी कुंज मैं पहिले हि क्यौं न दुरात ।
वे उत औचक आइ परैं तब कीजौ अपनी घात ।
'हरीचंद' क्यौं इतहि खरे तुम बिना बात इठलात ।१९

पूरबी

तुमहिं अनोखे बिदेस चले पिय आयो फागुन मास रे ।
फूले फूल फिरे सब पंथी बहि रही बिपत बतास रे ।
या रितु मैं कोउ जात न बाहर भयो काम परकास रे ।
'हरीचंद' तुम बिनु कैसे बचिहै
बिरहिन बिकल उदास रे ।२०

काफी

लाल फिर होरी खेलन आओ ।
फेर वहै लीला को अनुभव हमको प्रगट दिखाओ ।
फेर संग लै सखा अनेकन राग धमारहि गाओ ।
फेर वही बंसी धुनि उचरौ फिर वा डफहि बजाओ ।
फेर वही कुंज वहै बन बेली फिर ब्रज-बास बसाओ ।
'हरीचंद' अब सही जात नहिं खबर पाइ उठि धाओ ।२१

सिंदूरा

एरी कैसी भीर है होरी के दिन भारी ।
जाइ मनाइ कोउ लै आओ प्रानपिया गिरधारी ।
खेलनवारे बहुत मिलैंगे राग रंग पिचकारी ।
'हरीचंद' इक सो न मिलैगो जो कहिहै मोहिं प्यारी।२२

बिहाग

बिनु पिय आजु अकेली सजनी होरी खेलौं ।
बिरह-उसास उड़ाइ गुलालहि दृग-पिचकारी मेलौं ।
गाओं बिरह-धमार लाल तजि हो हो बोलि नवेली ।
'हरीचंद' चित माहिं गलाऊँ होरी सुनो हो सहेली ।२३

गौरी

एरी बिरह बढ़ावन आयो फागुन मास री ।
हौं कैसी अब करूँ कठिन परी गाँस री ।
औरै रितु ह्वै गयी बयारहु और री ।
औरै फूले फूल और बन ठौर री ।
और मन ह्वै गयो और तन पीय को ।
और चटपटी लगी काम की जीय को ।
बन के फूल देखि होत जिय सूल री ।
बिनु पिय मेटै कौन बिरह की हूल री ।
बिसर्यौ भोजन पान-खान सुख-चैन री ।
वही खुमारी चढ़ी रहत दिन-रैन री ।
रजनी नींद न आवै जिय अकुलाय री ।
चौंकि चौंकि हौं परौं चित्त घबराय री ।
अटा अटा चढ़ि डोलों पिय के हेत री ।
कहूँ नहीं मेरे लाल दिखाई देत री ।
सपने में जो कहुँ पिय-रूप दिखात री ।
तौ यह बैरिन नींद चौंकि तजि जात री ।
जौ कहुँ बाजन बाजै गोकुल-गैल री ।
तौ उठि धाऊँ आवत जानूँ छैल री ।
या घर मैं सखि क्यौं नहिं लागत आग री ।
जाके डर हौं खेलन जात न फाग री ।

बैरिन मेरी सास जिठानी हैं सबै ।
देखन देत न मोहन को मुख री अबै ।
जरौ लाज यह ऐहै कीने काम री ।
जो नहिं देखन देत पिया घनश्याम री ।
मोहिं अकेली निरबल अबला जान री ।
तानि कानि लौं खींच्यौ मदन कमान री ।
कहा करौं कहँ जाऊँ बताओ मोहिं री ।
कहै किन और उपात सपथ है तोहिं री ।
जदपि कलंकिन कहत सबै ब्रज-लोग री ।
तऊ मिटत नहिं मुख लखिबे को सोग री ।
रोअनहूँ नहिं देत प्रगट मोहिं हाय री ।
क्यौं ऐसो दुख मिटै बताव उपाय री ।
फिरि डफ बाजत सुनि सखि आए श्याम री ।
होरी खेलत प्राननाथ सुखधाम री ।
अब कैसे रहि जाय मिलौंगी धाइ कै ।
लाज छाँड़ि जग नेह-निसान बजाइ कै ।
'हरीचंद' उठि दौरी भामिनि प्रीति सों ।
बरजेहू नहिं रही मिली मन-मीत सों ।२४

ईमन कल्याण

तैंडा होरी खेल मैंडे जीउ नूँ भाँवदा ।
तू वारी कोई दी सरमन करदा बुरी बे गालियाँ गाँवदा ।
पाय अबीर नैण बिच साडे बंसी निलज बजाँवदा ।
'हरीचंद' मैनूँ लगी लड़ तैंडी तूँ नहि आस पुराँवदा ।२५

अहीरी

वह नटवर घन साँवरो मेरो मन ले गयो री ।
जब सों देखि लियो है वाको, तब सों भोजन-पान न भावै,
बैरनि लाज ह्वै गई मेरी बिरह दै गयो री ।
घर अँगना मोहिं नाँहिं सुहावें, बैठत हीं घुमरी सी आवै,
लोग कहैं मोहिं देखि-देखि याकों कहा ह्वै गयो री ।
'हरीचंद' ग्वालिन रसमाती, सास ननद की डर न डेराती,
लोकलाज तजि सँग मैं डोलै, कहा जानै का नंदलाल
टोना सो कै गयो री ।।
वह नटवर घर साँवरो मेरो मन लै गयो री ।२६

गौरी

मैं अरी कहा करौं कित जाऊँ,
सखी री मन लै गयो वह छैल ।
मेरी गलियन आइकै बंसी मधुर बजाय ।
जादू सो कछु करि गयो वह मेरो नाम सुनाय । अरी मैं ।
तब सों कछु भावैं नहीं हौं बन-बन फिरूँ उदास ।
कहुँ मोहिं कल आवैं नहीं हौं ब्याकुल लेहुँ उसास । अरी.
तरु तरु खग मृगन सों हौं पूछत डोलौं धाय ।
मेरो प्यारे लाल को हो देत न कोउ बताय । अरी मैं ।
सखी संग आवै नहीं जानि कलंकिन मोहिं ।
सोई हम दूजी भई हौं कहा कहौं री तोहिं । अरी मैं. ।
और कछू भावै नहीं बिसरयौ भोजन-पान ।
रुचि औरै कछु ह्वैगई मेरी कहँलौं करौं बखान । अरी.
सोई बन घरहूँ सोई हो सोई सबै समाज ।
बिष सों मोहिं लागै अरी सब मिले बिना ब्रजराज ।अरी.
कोऊ नाहिं सुनावई हो खबर लाल की आय ।
तन मन वापै वारिये हो भेद जो देहि बताय । अरी मै.
प्रेम प्रगट जग मैं भयो हो बाज्यौ नेह-निसान ।
तऊ आस पूरई नहीं हो कैसे चतुर सुजान । अरी मैं.
तोरि सिंखला गेह की हो लोक-लाज-भय खोय ।
'हरीचंद' हरि सों मिलौं होनी होय सो होय । अरी.२७

पूरबी

एक बेर भरि नैन लखन दै फिर पिया जैयो बिदेसवा रे।
तुम बिन प्रान रहै वा नाहीं यह जिय मोहिं अँदेसवा रे।
हरीचंद फिर कठिन परैगी कहिहै कोउ न सँदेसवा रे।२८

कहाँ बिलमे कौन देसवा में छाये
मोरे अबहुँ न आये पियवा रे ।
राह देखत मोरि अँखिया थकि गईं
निसि बीति भयो भोरवा रे ।
पाटी कर पटकत भई ब्याकुल
लागत हार पहरवा रे ।
'हरीचंद' पिय बिनु कैसी परिहै
कौन लगै मोरे गरवा रे ।२९

ईमन कल्यान

सुनौ चित्त दै सब सखियाँ बरनि
सुनाऊँ श्याम सुंदर के खेल ।
कल हौं निकसी मारग याही रोंगी गैल ।
अबिर उड़ाइ गाइ गारी बहु
(डफ बजाइ कै) करी संग को रेल ।
'हरीचंद' तबतें नहिं भूलत नैनन तें वह केलि ।३०

डफ की

ऐसो उधम न करि अबै कंस जियै ।
यह ऊधम तेरो सुन पावै जो तो
पकर मँगावै तोहिं लिये दियै ।
नै कै चलि अठलानि बुरी है सदा रहत अभिमान कियै ।
'हरीचंद' या फागुन मैं क्यों निबहैंगी हम लाज लियै ।३१

राग होरी विभास

आये कहाँ सों आज प्रात रस-भीने हो ।

अति जँभात अलसात लाल रस-मीने हो ।
कित खेले तुम रैन फाग रस-मीने हो ।
कौन को दियो सोहाग लाल रस-मीने हो ।
आज अहो बिनही गुलाल रस-मीने हो ।
नैन दोउ लाल लाल रस-मीने हो ।
गाँव न मिली गुलाल प्यार रस-मीने हो ।
जावक लग्यो लिलार लाल रस-मीने हो ।
मिलत न चोआ वाके देस रस-मीने हो ।
अंजन अधर सुबेस लाल रस-मीने हो ।
कुमकुमा मोर द्वै चलाय रस-मीने हो ।
ताको चिन्ह दिखाय लाल रस-मीने हो ।
बाँध्यौ अँग-अँग भुज मृनाल रस-मीने हो ।
दइ उर बिनु गुन माल लाल रस मीने हो ।
रँग के बदले पीक लाय रस-मीने हो ।
नीलो बसन उढ़ाय लाल रस-मीने हो ।
को ऐसी माती खेलार रस-मीने हो ।
जिन रिझयो रिझवार लाल रस-मीने हो ।
नैन मिलाओ करौ बात रस-मीने हो ।
काहे को सकुचात लाल रस-मीने हो ।
कौन सो आसव कियो पान रस-मीने हो ।
मत्त भये हौ सुजान लाल रस-मीने हो ।
'हरीचंद' इमि कहत बाल रस-मीने हो ।
भुज भरि लई गोपाल लाल रस-मीने हो ।३२

राग पीलू

रिझैया मन को कर जोरे ठाढ़ो द्वार ।
तू तो मानिनि बात न मानै करत न कछू बिचार ।
वह तो रसिया या दरसन को मानहि को रिझावर ।
वाके नैनन आछे लागैं बिथुरे सुथरे बार ।
बिन भूषन तन कछुक बसन बिन बिन चोली बिन हार ।
मोहिं कहत दबि निरखि लैन दै तू मति करि मनुहार ।
ठाढ़ो इक टक मुख निरखत हैं मनवत नाहिं बिचार ।
'हरीचंद' तू धन्य मानिनी धनि या छबि को प्यार ।३३

सोरठ

दिन दिन होरी बृज में आओ ।
चिरजीओ जुग-जुग यह जोरी नित कर जोरि मनाओ ।
नित बरसों रँग नितहि कुतूहल नित-नित खेल मचाओ ।
'हरीचंद' यह केलि-बधाई नित आनँद सो गाओ ।३४

धमार सिंदूरा

एक डफ धुंकार सुनि गन न रहोंगी
मिलोंगी मीत को धाय । ध्रु.
फागुन लहि उमग्यो जो मदन जिय सो अब रोकि न जाय ।
प्राननाथ आवन सुनि फिर पग घर में क्यों ठहराय ।
'हरीचंद' गर लगोंगी पिया के जाने-जगत बलाय ।३५

ठेका या ब्रज को तेरे माथे कौन दयो ।
जो तू लंगर दीठि उपाधी ऊधम रूप भयो ।
काहु न डरत करत मन की नित ठानत रंग नयो ।
'हरीचंद' ब्रज डगर-डगर बदनामी बीज बयो ।३६

होली काफी

पिय मनमोहन के संग राधा खेलत फाग । ध्रु.
दोउ दिसि उड़त गुलाल अरगजा दोउन उर अनुराग ।
रँग-रेलनि झोरी झेलनि में होत दृगन की लाग ।
'हरीचंद' लखि सों मुख शोभा-अयन सराहत भाग ।३७

धमार देश

साइला म्हारा भींजै न डारौ रंग । ध्रु.
मति नाखौ गुलाल आँखिन में सीखा छौ कनि रौढ़ ।
ना लेइ म्हारो मति गावो गारी संग बजाइ कै चंग ।
'हरीचंद' मद-मात्यो मोहन मति लागो म्हारे संग ।३८

धमार काफी

सुंदर श्याम शिरोमणि प्यारो खेलत रस-भरि होरी जू ।
इत सब सखा लसत रँग-भीने उत वृषभानु किशोरी जू ।
नाचत गावत रंग बढ़ावत करन बजावत तारी जू ।
हँसत हँसावत रंग बढ़ावत गावत मोठी गारी जू ।
श्री राधा हँसि मोहन पकरे अपने वश करि लीन्हें जू ।
रंग मचाइ नचाइ गवायो मन भाए सुख कीन्हें जू ।
कहत लाल छूटन्न नहिं पैहौ बिनु फगुआ बहु दीन्हें जू ।
मों बश परे भागि कित जैहौ बादि चतुरई कीन्हें जू ।
राधा जू के पायें पलोटौ अरज करो कर जोरी जू ।
तब चाहौ छोरयो तो छोरैं नृप वृषभान-किशोरी जू ।
हा हा खात लाल कर जोरे करत बहुत अनुहारी जू ।
यह गति लखत देवगन व्याकुल ग्वाल हँसत दै तारी जू ।
तीन लोक जाकी चरन छाँह बल जियत बसत सुख पाई जू ।
ताकी गोपीजन के आगे चलत न कछु ठकुराई जू ।
शिव-ब्रह्मा इंद्रादिक जाको परसत चरन डराहीं जू ।
ताको मुकुट उतारत गोपी तनिक शंक जिय नाहीं जू ।
जा दासी माया इक फेरे जग पर-बस ह्वै नाचै जू ।
ताहि नचावत पकरि गोपिका लखि जिय अचरज राचै जू ।
अस्तुति करत अधर सूखत है नेति कहत तउ बेदा जू ।
गारी ताहि निसंक देत गोपी जन करत न खेदा जू ।
ध्यान धरत पूजत बहु भाँतिन तदपि ध्यान नहिं आवै जू ।
ताहि गुलाल लगाइ हँसत सब करत जोई मन भावै जू ।
शिव समाधि-श्रम साधि करत नित तउ झलक नहिं देखै जू ।
फेंट पकरि तेहि जान देत नहिं ब्रज-जुवती सुख लेखै जू ।

जाको रुख चाहत त्रिभुवन में सुर मुनि नर-भय पागे जू।
हाथ जोरि सो अरज करत हैं राधाजू के आगे जू ।
वेद-मंत्र पढ़ि साधि करम-बिधि यज्ञ करत जेहि लागी जू।
ताको मुख मॉडत केशरि सोंब्रज-युवती रस-पागी जू ।
यह अवगति गति लखि न परत कछु देव बिमानन भूले जू।
मोहे फिरत सार नहिं जानत तऊ केलि-सुख फूले जू ।
रमा पलोटत चरन सरस्वति गुन-गन गाइ सुनावै जू ।
ताके पद नूपुर दै गोपी निज सुख नाच नचावै जू ।
बरनौ कहा बरनि नहिं आवै का समुझै जो गावै जू ।
वल्लभ-बल 'हरिचंद' कछुक सो
वल्लभि-जन-उर आवै जू ।३९

सिंधुरा धमार

हमैं लखि आवत क्यों कतराये ।
साफ कहत किन जिय की चलत जो
छाँह सों छाँह मिलाये ।
होरी में का बरजोरी करोगे क्यों इतने इतराये ।
रूप गरब फागुन मदमाने ताहू पै अति रसिकाये ।
जो तुम चाहत सो न इतै कछु चलो रहौ न लगाये ।
'हरीचंद' तुम्हरे व्यवहारन दूरहि से फल पाये ।४०

होरी के पूजन को पद

आजु हरि खेलत रस-भरि सँग वृषभान-किसोरी ।
पूनो निसि डहडह उँजियारी बाँह बाँह में जोरी ।
चाँदनि में गुलाल की चमकनि अरु बुक्कन की झोरी।
जमुना तीर श्वेत बारू मधि अत शोभित भई होरी ।
इत सब सखा खेल बौराने उत मदमाती गोरी ।
अद्भुत छबि 'हरिचंद' देखि कै रहयौ हरष तृन तोरी।४१

रेखता

बचे रहो जरा यह बदनाम फाग है ।
आँखों की भी हमसे तुमसे लाग है ।
इस ब्रज का ता अभी चवाई लोग है ।
आँख लगाना यहाँ बड़ा एक भोग है ।
मेरी तुमरी प्रीति बहुत मशहूर है ।
तिसमें भी होरी रँग चकनाचूर है ।
लगी आँख भी छुटी आज तक है कभी ।
करो लाख तदबीर यहाँ क्यों नहिं सभी ।
उतरे जी के साथ यह अजब खुमार है ।
'हरीचंद' बचना इससे दुशवार है ।४२

समधिन मधुमास

होरी में समधिन आई ।
अहो फागुन त्योहार मनाई ।
यथाशक्ति कीन्हों सबही ने समधिन को उपचार ।
समधिन जू ने बहुत करायो आदर शिष्टाचार ।
समधिन की तो चुपरी चपरी चोटी सोंधो नाय ।
समधिन को लखि रपटि परत है समधी को मन धाय ।
समधिन की तो अतिहि चिकनी
फिसिल फिसिल सब जात ।
देहरिया रँग भीनि रही जहँ प्रविसत सबै बरात ।
सबै जुड़ावत समधिन कों लखि बुक्का रँग मुख मींजि।
तब समधिन की चुवन लगत है सारी रँग मुख भींजि ।
छाती मींड़त सब समधिन कर रूप-छटा सब देखि ।
डारत अतर लगाइ अरगजा रँगिली समधिन लेखि ।
समधिन जू लगवावत डोलत सब सों चोवा रंग ।
फटी दरार परी समधिन की चोली उमिर उमंग ।
समधिन जू बिपरीत करत तुम इतो नवन नहिं योग ।
मानत तुम्हरी नृपहू सों बढ़ि थाप सबै ब्रज लोग ।
फैलि रही चहूँ दिशि समधिन की कीरति की नव बेलि।
तुमहिं देखि सब करत रंग सों होरी रसिक सिरेलि ।
ठाढ़ो होत तुमहि देखत ही आदर हित दरबार ।
गाँव भरे की नारि तुमहिं इक आदर देत अपार ।
यहि बिधि समधिन रंग बढ़त ब्रज कौन सकै सो गाय।
नित दूलह नित दुलहिन पै जन 'हरीचंद' बलि जाय ।४३

जोबन कैसे छिपाऊँ री रसिया परो पाछे ।
झलकत तन द्युति सारी सों काढ़ि लगत तमासो गाऊँ री।
मुखससि चमक नील घूँघट में ज्यों त्यों सकुचि चुराऊँ री।
ये उकसौहैं अंचल बाहर इन कहँ कहाँ दुराउँ री ।
बजमारे बिधि क्यों सिरजे ये कहा करूँ कित जाऊँ री ।
'हरीचंद' गोकुल में बसिकै पतिव्रत कैसे निभाऊँ री ।४४

यहि बिधि सिरजे नाहिं री तेरे जोबन दोऊ ।
रहे दुरे कित ये सिसुता में जो अब प्रगट दिखाहिं री ।
उमगे परत हरत मन हरि को कंचुकि में न समाहिं री।
'हरीचंद' निधि मदन धरी निज
इनहिं संपुटनि माहिं री ।४५

राग काफी

गिरिधर लाल रँगीले के सँग आजु फाग हौं खेलोंगी ।
सास ननद अरु गुरुजन की भय लाजहिं पाँयन ठेलोंगी।
चोवा चंदन अबिर अरगजा पिचकारिन रंग झेलोंगी ।
'हरीचंद' बृज-चंद पिया के कंठ भुजा गहि मेलोंगी।४६

रामकली ठेका धमार

कहत हौं बार करोरन होहु चिरंजी नित
नित प्यारे देखि सिरावै हियो ।
एक एक आसिख सों मेरे अरब खरब जुग जियो ।

जब लौं रवि ससि भूमि समुद ध्रुव तारागन थिर कियो।
'हरीचंद' तब लौं तुम पीतम अमृत पान नित पियो।४७

होली डफ की

मैं तो रँगोंगी अबीरी रे पिया की पगिया ।
केसर सों सब बागो रँगिहों लै जैहौं बाबा की बगिया ।
रँग उड़ाइ के गारी गैहौं भागि कहाँ जैहैं ठगिया ।
'हरीचंद' मनमानी करिहौं प्रान पिया के गर लगिया ।४८
कैसे आऊँ मेरी पायल झुनक बजै कैसे आऊँ रे ।
जागत हैं सब सास ननदिया
ऐसी लाज कहो कौन तजै ।४९

सोरठा

जीती सब बरसाने-वारी ।
आँख अँजाइ पहिरि कर चूरी हारे मोहन गिरिधारी ।
फगुआ दै हा हा करि छूटे अरु अनेक खाई गारी ।
'हरीचंद' कोउ बिधि घर आए
तन मन धन सरबस हारी ।५०

ईमन कल्यान

मोहिं मति बरजे री चतुर ननदिया होरी खेलन जाऊँ ।
फिर ये दिन सपने से ह्वैहैं पाऊँ कै ना पाऊँ ।
ऐसो सगुन बताउ जो पिय को द्वारहि पै गर लाऊँ ।
'हरीचंद' जनमन की प्यासी कछु तौ प्यास बुझाऊँ।५१
होरी खेलन दै मोहिं पिय सों ननदिया नाहक रोकैरी ।
सब जग तौ बरजहि तुहू क्यों बरबस टोकै री ।
एक नारि दूजे मरमिन ह्वै कि दुख मैं झोंकै री ।
'हरीचंद' कहवाइ सुघर क्यों बढ़वति सोकै री ।५२

सिंदूरा

अब मैं घर न रहूँगी काहू के रोके,
मोहिं मति बरजौ कोय ।
ऐसो पिय लहि या फागुन को मरै अभागिन रोय ।
जाऊँगी जहँ पिय होरी खेलत मिलूँगी जगत-भय खोय।
निधरक पिय के अधर पिऊँगी भेटूँगी भरि भुज दोय ।
मेटूँगी सब साध उत्तर कै लोक-लाज-भय धोय ।
'हरीचंद' पाऊँगी जनम-फल होनी होय सो होय ।५३
लाल गुलाल लाल गालन मैं अति ही मन को मोहै ।
सुंदर मुख भयो औरहु सुंदर भूलि जात जिय जो है ।
सबहि भले कों भलो लगत है सोहै को सब सो है ।
'हरीचंद' तजि प्यारी को मुख मलन जोग अरु को है।५४

नहिं मानूँगी काहू की बात
मैं पिय सँग आजु खेलौगी फाग ।
मोहिं घर के बरजौ जिन
कोऊ परी आनि अब लाग ।
मिल्यौ आइ मोहिं दाँव निकालूँगी अंतर को अनुराग ।
'हरीचंद' बनमालिहि सौंपूँगी निधरक जोबन-बाग ।५५

ठुमरी

झूम-झूम के मोरे आए पियरवा ।
दौरि-दौरि लागे मोरे गरवा ।
'हरीचंद' लटकीली चाल चलि
गर डारे मोतियन को हरवा ।५६
चूम-चूम के मुख भागै सँवलिया ।
धूम-घाम के आवै मेरी ही गलिया ।
'हरीचंद' मोहिं गरवा लगावें
मन भावै मेरे छल-बलिया ।५७
दूर दूर चला जा तू भँवरवा ।
आउ छली मत मेरे निअरवा ।
'हरीचंद' नाहक तू डारत
प्रेम-फाँस अबलन के गरवा ।५८
कूकि-कूकि रही कारी कोइरिया ।
फूँकि-फूँक हिय बिरह-दवरिया ।
'हरीचंद' पिय ऐसी समै मैं
दूर बसे हरि बिरह-कटरिया ।५९
झूमि-झूमि रहे राते नयनवाँ ।
आओ करो अब प्यारे सयनवाँ ।
'हरीचंद' सब रात जगे तुम
निकसत नहिं मुख पूरे बयनवाँ ।६०
उड़ि जा पंछी खबर ला पी की ।
जाय बिदेस मिलो पीतम से
कहो बिथा बिरहिन के जी की ।
सोने की चोंच मढ़ाऊँ मैं पंछी
जो तुम बात करो मेरे ही की ।
'माधवी' लाओ पिय को सँदेसवा
जरनि बुझाओ बियोगिन ती की ।६१

होली

मेरे जिय की आस पुजाउ पियरवा होरी खेलन आओ।
फिर दुरलभ ह्वैहैं फागुन दिन आउ गरे लगि जाओ ।
गाइ बजाइ रिझाइ रंग करि अबिर गुलाल उड़ाओ ।
'हरीचंद' दुख मेटि काम को घर तेहवार मनाओ ।६२
होरी नाहक खेलूँ मैं बन में,
पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं ।
सूनो जगत दिखात श्याम बिनु बिरह-बिथा बढ़ी तन मैं।
पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं ।
काम कठोर दवारि लगाई जिय दहकत छिन-छिन मैं ।

'हरीचंद' बिनु बिकल बिरहिनी बिलपति बालेपन मैं ।
पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं ।६३

बन में आगि लगी है फूले देखु फलास ।
कैसे बचिहै बाल बियोगिन देखि बसंत-बिलास ।
चलत पौन लै फूल-बास तन होत काम परकास ।
'हरीचंद' बिनु श्याम मनोहर बिरहिन लेय उसास ।६४

चहूँ दिसि धूम मची है हो हो होरी सुनाय ।
जित देखो तित एक यहै धुनि जगत गयो बौराय ।
उड़त गुलाल चलत पिचकारी बाजत डफ घहराय ।
'हरीचंद' माते नर नारी गावत लाज गँवाय ।६५

मोहन गोहन मेरे लग्योई डोलै छोड़ैं छिनहूँ न साथ ।
घर अँगना करि डारयौ मो घर सब छिन जोरें हाथ ।
झाँकत द्वार चलत पाछे लागि गावत मम गुन-गाथ ।
'हरीचंद' मैं कैसी करूँ मेरे चरन छुआवत माथ ।६६

इकताला

पिया प्यारे मैं तेरे पर वारी भई ।
सहज सलोनी सुंदर सूरत निरखत ही बलिहारी भई ।
अब ना रहौं घर लाख कहो कोऊ
सबही भाँति तुम्हारी भई ।
'हरीचंद' सँग लागी डोलौं सुंदर रूप-भिखारी भई ।६७

काफी पीलू

बीती जाती बहार री पिय अबहुँ न आए ।
कैसे कै मैं दिन बितवौं आली जोबन करत उभार री.
पिय अबहुँ न आए ।
कहा करौं कित जाओं बताओ यह समयो दिन चार री ।
अली 'माधवी पिय-बिनु ब्याकुल कोउ न सुनत पुकार री।
पिय अबहु न आए ।६८

होली खेमटा

खेलन मैं झुकि झूलै झुलनियाँ ।
अँगिया लाल लाल रँग सारी
कारी लट लटकाए नागिनियाँ ।
गावै हँसै बजाइ रिझावै गाल
छुआवै अपनी छिगुनियाँ ।
'हरीचंद' रँग मस्त पिया के
फिरै प्रेम-माती मतलिनियाँ ।६९

होली डफ की

पीरी परि गई रसिया के बोलन सों ।
याद परी सब रस की बातैं
बढि गयो बिरह ठठोलन सों ।
चलि न सकी जकि रही ठौरही
डोली नेक न डोलन सों ।
'हरीचंद' सुधि परी फेर पिय
प्यारे के घूँघट खोलन सों ।७०

पीरी परि गई रसिया के बोलन सों ।
आयो जानि छैल होरी को डरी लाज के खेलन सों ।
एक प्रीति दूजे होरी सिर पर कैसे बचिहौं ठठोलन सों।
'हरीचंद' सब कोउ जानैंगे मेरी गलियन डोलन सों।७१

डफ की

अरे गुदना रे-गोरी तेरे गोरे मुख पैं बहुत खुल्यौ गुदना रे।
अरे रसिया रे-गोरी वापैं घायल मायल होय रह्यौ ।
अरे दुपटा रे-गोरी तापैं सुरख अबीरी और फब्यौ ।
अरे मोहना रे-गोरी तेरे संग फिरै घर-बार तज्यो ।७२

गोरी कौन रसिक सँग रात बसी ।
भरी खुमारी नैन खुलत नहिं
सिर तें सारी जात खसी ।
बेरी सिथिल खसित तेरे अभरन
चलत डगमगी अधिक लसी ।
'हरीचंद' पिय सँग निसि जागी
चोली ढीली भई कसी ।७३

तेरी बेसर को मोती थहरै ।
या लटकन में मेरो मन लटकै खटकै धीरज नहिं ठहरै ।
'हरीचंद' तेरी सुरुख लहरिया देखत मेरो मन लहरै ।७४

तेरे श्याम बिंदुलिया बहुत खुली ।
गोरे-गोरे मुख पर श्याम बिंदुलिया
नैनन में प्यारे की चुली ।
ताह्र पै साँवरो गुदना सोहै
भँवर रह्यौ मनो कमल कली ।
'हरीचंद' पिय रीझ्यौ तेरो सँग
न छाँड़ैं गलिय गली ।७५

मैं तो चौंक उठी डफ बाजन सों ।
सोवत रही अपने आँगन मैं जागी गारी गाजन सों ।
देख्यौ तो द्वारे मोहन ठाढ़े सजे छैल सब साजन सों ।
'हरीचंद' मेरे नाम लियो नित
गारी दई बिन लाजन सों ।७६

बस करु अब ऊधम बहुत भयो ।
भींजि गई रँग सों मेरी सारी
अबीर गुलालन बसन छयो ।
झकझोरन मैं कर मेरो मुरक्यौ
कंकन बाजू टूट गयो ।

'हरीचंद' तेरे पाँव परत गारी
मति दै अपजस बहुत दयो ।७७

आजु मैं करुँगी निबेरो जो तू
ठाढ़ो रहैगो रँग मैं ।
अबही निकासूँगी सगरी कसर जो
तू रोकत टोकत रह्यौ नित मग मैं ।
बाँधि भुजन सों निज बस करि कै
मुख चूमौंगी प्रेम-उमग मैं ।
'हरीचंद' अपनो करि छाँड़ैंगी
मीर कहाऊँगी सगरे जग मैं ।७८

नित नित होरी ब्रज में रहौ ।
बिहरत हरि-सँग ब्रज-जुवतीगन सदा अनंद लहौ ।
प्रफुलित फलित रहौ बृंदाबन मधुप कृष्ण-गुन कहौ ।
'हरीचंद' नित सरल सुधामय प्रेम-प्रवाह बहौ ।७९

मधु-मुकुल

मधुरिपु मधुर चरित्र मधु-पूरित मृदु मुद-रास ।
हरिजन मधुकर सुखद यह नव मधु-मुकुल-प्रकास ।
हृदय बगीचा अस्रु जल बनमाली सुखबास ।
प्रेम-लता मैं यह भयौ नव मधु-मुकुल-बिकास ।

[बनारस लाइट यंत्रालय में सन् १८८१ में मुद्रित]

समर्पण

हृदयवल्लभ!

यह मधु-मुकुल तुम्हारे चरण-कमल में समर्पित है, अंगीकार करो । इसमें अनेक प्रकार की कलियाँ हैं, कोई स्फुटित कोई अस्फुटित, कोई अत्यंत सुगंधमय कोई छिपी हुई सुगंध लिए, किंतु प्रेम सुवास के अतिरिक्त और किसी गंध का लेश नहीं । तुम्हारे कोमल चरणों में ये कलियाँ कहीं गड़ न जायँ, यही संदेह है । तथापि तुम्हारे बाग के फूल तुम्हें छोड़ और कौन अंगीकार कर सकता है, इससे तुम्हीं को समर्पित है ।

तुम्हारा
हरिश्चंद्र ।

फागुन कृष्ण १
सं. १९३७

राग बसंत

जै वृषभानु-नंदिनि राधे मोहन प्रानपियारी ।
जै श्री रसिक कुँवर नँदनंदन सुंदर गिरिवरधारी ।
जै श्री कुंज-नायिका जै जै कीरति-कुल-उँजियारी ।
जै वृंदावन-चारु-चंद्रमा कोटि मदन-मद-हारी ।
जै ब्रज-तरुन-तरुनि-चूड़ामनि सखियन मैं सुकुमारी ।
जयति गोप-कुल-सीस-मुकुट-मनि
नित्य-बिहार-बिहारी ।
जयति बसंत जयति वृंदावन जयति खेल सुखकारी ।
जय अद्भुत जस गावत शुक मुनि 'हरीचंद' बलिहारी ।१

ऋतु सिसिर सुखद अति ही सुदेस ।
सूचित बसंत भावी प्रवेस ।
मुकुलित कचनार सुठौर ठौर ।
बन दरसाए नव बौर बौर ।
कहुँ कहुँ पिक बोले बैठि डार ।
मनु रितुपति नव चोबदार ।
चलि पवन सुखद छबि कहि न जाय ।
रहे जल लहराय अनंद बढ़ाय ।
फूली अतसी सरसों सुहात ।
मानों मिलि मदन बसंत गात ।
गेंदा फूले सब डार डार ।
मनु पाग पहिरि ठाढ़ी कतार ।
गूँजे भँवरा सब झोर झोर ।
आवेस भयो तन मदन-जोर ।
लखि बिहरन जुगल लजाय मार ।
'हरीचंद' हरषि गाई बहार ।२

खेलत बसंत राधा गोपाल ।
इत ब्रज-बाला उत ग्वाल-बाल ।
गावत बहार दै बिबिध ताल ।
बाजत मृदंग आवज रसाल ।
तहँ उड़त बिबिध बुक्का गुलाल ।
गारी दै दै बहु करत ख्याल ।
बाढ़ी सोभा अति तौन काल ।
'हरिचंद' निरखि हरषित बिसाल ।३

श्याम सरस मुख पर अति सोभित तनिक अबीर सुहाई ।
नील कंज पर अरुन किरिन की मनहुँ परी परछाँई ।
मनु अंकुल अनुराग सरस सिंगार माँझ छबि देई ।
किधौं नीलमनि मधि इक मानिक निरखत मन हरि लेई ।
चन्द-बदन मैं मंगल को मनु अंग निरखि मन मोहै ।
'हरीचंद' छबि बरनि सकै सो ऐसो कबि जग को है ।४

यह रितु बसंत प्यारी सुजान ।
नहिं ऐसी समय में कीजै मान ।
लखि शोभा यह रितुराज की ।
सब सुंदर सुखद समाज की ।
फूले नव कुसुम अनेक भाँति ।
मनु नव-रतनन की नवल पाँति ।
हरि बैठे हैं तो बिनु उदास ।
चलि बेगहि प्यारी पिय के पास ।
चलिये बनि ठनि रितुराज जान ।
'हरिचंद' कहै सो लीजै मान ।५

प्यारी पौढ़ि रहौ अब समै नाहिं ।
सब सखियाँ अपने घरन जाहिं ।
सब दिन बीत्यौ खेलत बसंत ।
अति आनंदित सब सुख समंत ।
चोवा चंदन बुक्का गुलाल ।
रँग भीनि बसन ह्वै गयो लाल ।
भरि रही अंग-अंगनि अबीर ।
सो पोंछि पहिन कै नवल चीर ।
इमि सुनि हरि की बतियाँ ललाम ।
श्रीराधा आई कुंज-धाम ।
पौढ़े दोउ सुख सों एक पास ।
तन मन वार्यौ 'हरिचंद' दास ।६

बिहाग धमार

अरी वह अबहिं गयो मुख मोड़ि ।
करि बेसुध भरि रूप ठगौरी तलफत ही मोहिं छोड़ि ।
हौं आई जल भरन अकेली नाहक जमुना-घाट ।
मारग ही में आइ कढ़्यौ वह साजे होरी ठाट ।
औचक पाछो सों मेरी गागरि दीनी सिर तैं ढोरि ।
नैन मूँदि मेरो मींजि कपोलन कंचुकि डारी तोरि ।
गाढ़े भुज कसि हिये लगायो चुंबन दै ब्रजराज ।
औरहु कछु करि गयो ढिठाई मैं रहि गई करि लाज ।
अबहीं चल्यौ जात कछु मुरिकै चितवत मन हरि लेत ।
सैनन हा हा खात छबीलो ऊपर गारी देत ।
कहाँ गयो री कोउ बताओ रूप चटपटी लाय ।
हौं इत रही कराहत ही सखि बेसुध करि करि हाय ।
'हरीचंद' तजि लाज काज सब नेह-निसान बजाय ।
अब नहिं रहिहौं बरजौ कोऊ मिलिहौं हरि सों धाय ।७

डफ की

मैं तो मलौंगी अबीर तेरे गालन मैं ।
मलि गुलाल आँखैं आँजौंगी चोटी गुहौंगी बालन मैं ।
आज कसक सब दिन की निकसै बेंदी दै तेरे भालन मैं ।

'हरीचंद' तोहिं पकरि नचाऊँ मीर बनूँ ब्रज-बालन मैं ।८

काफी

जुरि आए फाँके-मस्त होली होय री ।
घर में भूँजी भाँग नहीं है तौ भी न हिम्मत पस्त ।
होली होय रही ।
महँगी परी न पानी बरसा बजरौ नाहीं सस्त ।
धन सब गवा अकिल नहिं आई तो भी मंगल-कस्त ।
होली होय रही ।
बरबस कायर क्रूर आलसी अंधे पेट-परस्त ।
सूझत कुछ न बसंत माँहि ये भे खराब औ खस्त ।९

आजु भोरहि भोर खरी निखरी ।
गोरी काहू गाढ़े छैल के पाले परी ।
चोली-बंद खुले केस तेरे छूटे
रैन सुरत-संग्राम लरी ।
आँख लाल अधर रँग फीको
चोटी सिथिल तेरी फूल झरी ।
'हरीचंद' सगरी निसि जागी
अंग सिथिल अलसान भरी ।१०

ब्रज की होरी

अरे गोरी जोबन मद इठलाती,
चलै गज मस्त सी चाल ।
अरे गोरी गिनै न काहू वौ मदमाती,
फिरत उतानी बाल ।।
अरे गोरी मत इतनो गरबावै,
यह ब्रज टैढ़ो गाँव ।
अरे गोरी अबहिं छैल वह आवै,
मोहन जाको है नाँव ।।
अरे गोरी गर लावै मनमानो करि,
मद तेरो देइ उतार ।
अरे गोरी 'हरिचंद' संग लीने,
लँगर छैल लगवार ।११

डफ बाजै मेरो यार निकट आयो ।
सुन री सखी मेरो नाम लेइ कै मधुरे सुर गारी गायो ।
मेरे घर के द्वार खरो ह्वै अबिरन सों मारग छायो ।
'हरीचंद' अब घर न रहौंगी
मिलि करिहै पिय मन-भायो ।१२

सिंदूरा काफी

मेरी आँखिन भरि न गुलाल लाल मुख निरखन दै ।
होरीहू मैं काहें करत यह मुख-दरसन जंजाल ।
प्रीति रीति नहिं जानत प्यारी मदमातो रस-ख्याल ।
'हरीचंद' हिय हौस मिटै क्यौं अब यह ऐंड़ी चाल ।१३

सिंदूरा

रे रसिया तेरे कारन ब्रज में भई बदनाम ।
ऐसी होरी कोऊ खेलत बैंड़ी जैसी तू खेलत श्याम ।
करत न लाज बकत मनमानी गर लावत पर-बाम ।
'हरीचंद' कछु काम और नहिं एक एहै सब जाम ।१४

भीमपलासी

फिर गाई रस की सोइ गारी ।
मदन बसीकर सिद्ध मन्त्र सी
स्रवन परी धुनि आजि हहा री ।
फेर ओट डफ की करि चितई
चितवनि प्रेम भरी सोइ प्यारी ।
'हरीचंद' हिय लागी चटपटी
व्याकुल भई लाज की मारी ।१५

सोरठ का मेल

ब्रज के नगर तैंने कान्हा, ऊधम मचायो रे ।
होरी के मिस कुल-नारिन को गेह छुड़ायो रे ।
करत फिरत निज मनमानी गढ़ लाज ठहायो रे ।
'हरीचंद' पिय बाट चलत हठि कंठ लगायो रे ।१६
मेरे निकट तू आउ हौस तेरी सबै पुजाऊँ रे ।
निज बस कै रस लै अधरन को गर लपटाऊँ रे ।
काम-उमंग निकासि भुजन कसि हियो सिराऊँ रे ।
'हरीचंद' अपनो करि छाँड़ूँ तब घर जाऊँ रे ।१७

काफी

प्यारे होरी है कै जोरी ।
जो तुम निधरक झुकेई परत हौ मानत नाहिं निहारी ।
कहा कहैंगी देखनवारी जो मेरी दुलरी तोरी ।
'हरीचंद' मुख चूमि भजन की बदी कौन नै होरी ।१८

बिहाग या काफी

अरे कोउ लाइ मिलायो रे, प्रान-पिया मेरे साथ ।
कैसे भरो जोबन मेरो उमग्यौ मरत जिआओ रे ।
इन दुखिया अँखियन को सुन्दर रूप दिखाओ रे ।
'हरीचंद' दुख-अगिन दहकि रही धाइ बुझाओ रे ।१९
श्याम बिनु होरी न भावे हो ।
फाग खेल तेहवार रंग सब जियहि जरावै हो ।
को दुख मेटै करि कै दया उन्हें जाइ लै आवै हो ।
'हरीचंद' पिय लाइ इतै मोहि मरत जिआवै हो ।२०

पीलू काफी

अपुने रंग रँगी अँखियन मैं

प्रान-पियारे अबीर न मेलौ ।
देखन देहु मधुर मूरति मोहिं
अटपट खेल पिया जिन खेलौ ।
आओ गर लगि तपन बुझाऊँ
काहे करत हौ रँग को रेलौ ।
'हरीचंद' गर लगि प्यारी के
क्यों न सुरति-सुख-सिंधु सकेलौ ।२१

जोगिया काफी

और रंग जिन डारौ रँगी मैं तो रँग तुम्हारे ।
कोऊ बात सों होऊँ जौ बाहर तौ तुम गारी उचारौ ।
काहे कों बरबस लोग हँसावत निलज खेल निरवारौ ।
'हरीचंद' गर लगि कै मेरे जिय की हौस निकारौ ।२२

काफी

फेर वाही चितवन सों चितयो ।
लगी काम-चाबुक सी हिय पर तन मन बिकल भयो ।
भले लाज धीरज बुधि-बल सब गुरु-जन-भयहु गयो।
'हरीचंद' निधरक उर मैं फिर काम को राज ठयो ।२३

काफी

होरी है कै राम-राज रे ।
जो तू गिनत न कछू, काहुवै
करत आपुनेइ मन के काज रे ।
निधरक अँग पसरत नारिन के
गारी बकि-बकि लेत लाज रे ।
'हरीचंद' भयो छैल अनोखो
बरजेहूँ नहिं रहत बाज रे ।२४

पीलू काफी

यह दिन चार बहार, री पिय सों मिलु गोरी ।
फिर कित तू कित पिय कित फागुन
यह जिय माँझ बिचार ।
जोबन-रूप-नदी बहती यह लै किन पाँय पखार ।
'हरीचंद' मति चूक समै तू करु सुख सौं तेहवार ।२५

सिंदुरिया

ऐ री जोबन उमग्यौ फागुन लखिकै
कोउ बिधि रह्यौ न जात ।
मानत अब न मनाए मेरे जिय अति ही अकुलात ।
कहा करौं कित जाऊँ सहेली कठिन काम की घात ।
'हरीचंद' पिय बिनु मेरी कोउ पूछत हाय न बात ।२६

देस

पिया बिनु कटत न दुख की रात ।
तारे गिनत लेत करवट बहु होत न कठिन प्रभात ।
नैनन नींद न आवत क्यौंहू जियरा अति अकुलात ।
'हरीचंद' पिय बिनु अति ब्याकुल
मुरि-मुरि पछरा खात ।२७

सिंदूरा

भलें मिलि नाँव धरौ सबरे ब्रज के
अब तोहिं न छाड़ूँ छैल ।
मोहन लगी फिरौं निसु-बासर
कुंज घाट बन गैल ।
सुख सों लाज सिधारो सुरग
कों काहू की हौं न दबैल ।
'हरीचंद' तजि जाऊँ कहाँ
जब सबहि कहत बिगरैल ।२८

बिहाग या काफी

आजु सखि होरी खेलन प्यारे पीतम आवैंगे मेरे धाम ।
रँग सों भरौंगी कछु न डरौंगी पुजवौंगी मन काम ।
गाल गुलाल लगाई माल गल दैके करुँगी प्रनाम ।
'हरीचंद' मुख चूमि भुजा भरि मेटूँगी दुख को नाम ।२९

बिहाग या सिंदूरा

आजु सखि होरी खेलन पीतम
ऐहैं फरकत बायों नैन ।
पुजवौंगी सकल मनोरथ जिय के
सुख सों बिताउँगी रैन ।
दोउ भुज गल दै मुख चूमौंगी
करूँगी उमगि सुख-चैन ।
'हरीचंद' हिय सफल करुँगी
सुनि वा मुख के बैन ।३०

काफी

आजु मै करुँगी निबेरो खेल को
जो तू ठाढ़ो रहैगो रँग मैं ।
अबहीं निकासूँगी सगरी कसर जो
तू रोकत टोकत रह्यौ नित मग मैं ।
बाँधि भुजन सों निज बस करकै
मुख चूमौंगी प्रेम-उमग मैं ।
'हरीचंद' अपनो करि छाड़ूँगी
मीर कहाऊँगी सगरे जग मैं ।३१

पीलू

बन-बन फिरत उदास री, मैं पिय प्यारे बिन ।
कहुँ न लगत जिय घाट बाट
घर फिर-फिर लेत उसास री,

मैं पिय प्यारे बिन ।
कछु न सुहात धाम धन के सुख
जियत मिलन की आस ।
'हरीचंद' उमगेई आवत दोउ दृग होइ हरास ।३२

उमग्यौ जोबन जोर री, पिय बिनु नहिं मानै ।
देखि फाग-रितु बन द्रुम फूले कियो मदन घनघोर री ।
बाढ़ी अँग-अँग काल-कसक
अति सुनि-सुनि कोइल सोर री ।
'हरीचंद' प्यारे बिन मारत छिन-छिन मदन मरोर री ।३३

पीलू खेमटा

सलोनी तेरी सूरत मेरे जिय भाई ।
तन में नैनन में छबि तेरी रही समाई ।
इन आँखिन कों औरे रुचत नहिं करौ अनेक उपाई ।
'हरीचंद' तू ही इक सरबस जीवन-धन सुखदाई ।३४
निवानी तेरी सूरत मेरे मन बसी ।
नैन उदास अलक अरुमानी मेरे जिय सों फँसी ।
कोटि बनावट वारौं इन पैं सहजहि सोभा लसी ।
'हरीचंद' फाँसी गर डारत तनक मंद मृदु हँसी ।३५

भैरवी या काफी

पिया मैं पल ना तजौं तेरो साथ ।
एक ओर अब जगत होउ किन अब कलंक लियो माथ।
जनम-जनम की दासी मैं तेरी तुम ही मेरे नाथ ।
'हरीचंद' अब तो तेरो दामन पकर्‌यो गाढ़े हाथ ।३६

काफी

सखी री अब मैं कैसी करौं ।
बिनु पीतम गर लगें कौन विधि जीवन के दिन भरौं ।
बिनु पीतम हिय मैं हिय मेले कठिन ताप किमि हरौ ।
'हरीचंद' पूछै किन उन सौं कब लौं या दुख जरौं ।३७

धनाश्री

फेर अब आई रैन बसंत की ।
बहलि चली पौनहु सुगंध भरि तजि कै सीत हिमंत की ।
फिर आई दुखदाइन पिय बिनु घरी बयोगिन अंत की ।
'हरिचंद' पाती लै आओ अबहूँ तो कोउ कंत की ।३८

यथा-रुचि

घर में छिनहूँ थिर न रहै ।
दौरि-दौरि झाँकति दुआर लगि पिय को दरस चहै ।
रूप-सुधा पीअति अघाति नहिं पिय के गुनहिं कहै ।
'हरीचंद' रस-माती पलहु दृग अंतर न सहै ।३९

सिंदूरा

बे-परवाही के सँग मन फाँस गयो कहावैं ।
वह न गिनत त्रिनहु सों जा हित धरत सबै ब्रज नावैं ।
बेढब फँसी करौं का सजनी कहा करूँ किन जावैं ।
'हरीचंद' नहिं पूछत कोऊ मारि फिरैं सब गावैं ।४०

इकताला

पिया प्यारे मैं तेरे पर वारी भई ।
सहज सलोनी सुंदर सूरत निरखत ही बलिहारी भई ।
अब ना रहौं घर लाख कहो कोऊ सब ही भाँति तुम्हारी भई।
'हरीचंद' सँग लागी डोलौं सुंदर रूप-भिखारी भई ।४१

बिहाग

सोई पिय के गर लपटाई ।
सीस धुजा दै पिय के हिय सों कसि कै हियो लगाई ।
निधरक पियत अधर-रस उमगी तऊ न नेकु अघाई ।
'हरीचंद' रस-सिंधु-तरंगन अवगाहत सुख पाई ।४२

भीमपलासी

फेर चलाई रँग पिचकारी ।
गाई फेर वहै मीठे सुर प्रेम-भरी सोई गारी ।
फेर वहै चितवन चितई जो तन-मन-बेधन-वारी ।
'हरीचंद' फिर मदन बिबस भई,
मैं कुल-नारि बिचारी ।४३

काफी सिंदूरा

इतरानो फिरि तू भले अपने
मन मैं न गिनौं कछु तेहिं माल ।
चार दिना को छैल छोहरा सोऊ भयो चहै रसिक लाल ।
गारी गावत डफहि बजावत ऐंड़ानो चलै मस्त चाल ।
'हरीचंद' छिन में सो भुलाऊँ पकरि नचाउँ दै दै ताल ।४४

बिहाग

सोई सुख फिर चाहै पिय प्यारो ।
एक बेरि चलि फेर निकुंजन जहँ ब्रजराज दुलारो ।
जहँ रस-रंग बिलास किए बहु तुम सँग मिलि कै प्यारी ।
तहीं बैठि सुख सोचि सकल सोइ बेबस होत मुरारी ।
तुव गुन-गन दृग भरि भरि भाखत पिय ब्याकुल ह्वै जाई।
राधा-नाम-अधार जिअत है प्यारो कुँअर कन्हाई ।
फेर-फेर सखियन सों पूछत चरित तिहारे आली ।
तुव बैठनि बतरानि हँसनि सुधि कर उमगत बनमाली ।
चलु कित बेगि कुंज-मंदिर मैं लै पिय कों गर लाई ।
'हरीचंद' दै अधर-अमृत पिय-प्रानहि राखु बचाई ।४५

ईमन

गोरी-गोरी गुजरिया भोरी संग लै कान्हा ।

नट ललित जमुन-तट नव बसंत करि होरी ।
सोभा-सिंधु बहार अंग प्रति दिपति देह दीपक-
सी छबि अति मुख सुदेस ससि सो री ।
आसा करि लागी पिय सों रट सुर गावत ईमन हट ।
मेघ वरन 'हरीचंद' बदन अभिराम करी बरजोरी ।
सारँग-नैनि पहिरि सुहा सारी भयो कल्यान मिले ।
श्री गिरिधारी छबि पर जन तृन तोरी ।४६

होली

भारत मैं मची है होरी ।
इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी ।
अपनी-अपनी जय सब चाहत होड़ परी दुहुँ ओरी ।
दुन्दु सखि बहुत बढ़ो री ।
धूर उड़त सोइ अबिर उड़ावत सब को नयन भरो री ।
दीन दसा अँसुअन पिचकारिन सब खिलार भिंजयो री ।
भींजि रहे भूमि लटोरी ।
भइ पतझार तत्व कहुँ नाहीं सोइ बसंत प्रगटो री ।
पीरे मुख भई प्रजा दीन ह्वै सोई फूली सरसों री ।
सिसिर को अंत भयो री ।
बौराने सब लोग न सूझत आम सोई बौर्‌यौ री ।
कुहू कहत कोकिल ताही तें महा अँधार छयो री ।
रूप नहिं काहू लख्यो री ।
हार्‌यौ भाग अभाग जीत लखि बिजय निसान हयो री ।
तव स्वाधीनपनो धन-बुधि-बल फगुआ माहिं लयो री ।
शेष कछु रहि न गयो री ।
नारी बकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयो री ।
मूरख कारो काफिर आधो सिच्छित सबहि भयो री ।
उत्तर काहू न दयो री ।
उठौ उठौ भैया क्यौ हारौ अपुन रूप सुमिरो री ।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री ।
दीनता दूर धरो री ।
कहाँ गए छत्री किन उनके पुरुषारथहि हरो री ।
चूड़ी पहिरि स्वाँग बनि आए धिक धिक सबन कहयौ री ।
भेस यह क्यों पकरो री ।
धिक यह मात-पिता जिन तुमसों कायर पुत्र जन्यो री ।
धिक वह घरी जनम जामैं यह कलंक प्रगटो री ।
जनमतहि क्यों न मरो री ।
खान-पियन अरु लिखन-पढ़न सों काम न कछू चलो री ।
आलस छोड़ि एक मत ह्वैकै साँची बृद्धि करो री ।
समय नहिं नेकु बचो री ।
उठौ उठौ सब कमरन बाँधौ शस्त्रन सान धरो री ।
बिजय-निसान बजाइ बावरे आगेइ पाँव धरो री ।
छबीलिन रँगन रँगो री ।
आलस मैं कछु काम न चलिहै सब कछु तो बिनसो री ।
कित गयो धन-बल राज-पाट सब कोरो नाम बचो री ।
तऊ नहिं सुरत करो री ।
कोकिल एहि विधि बहु बकि हार्‌यौ काहू नाहिं सुनो री ।
मेटी सकल कुमेटी थोथी पोथी पढ़त मरो री ।
काज नहिं तनिक सरो री ।
चालिस दिन इमि खेलत बीते खेल नहीं निपटो री ।
भयो पंक अंत रँग को तामैं गज को जूथ फँसो री ।
न कोउ बिधि निकसि सको री ।
खेलत खेलत पूनम आई भारी खेल मचो री ।
चलत कुमकुमा रँग पिचकारी अरु गुलाल की झोरी ।
बजत डफ राग जमो री ।
होरी सब ठाँवन लै राखी पूजत लै लै रोरी ।
घर के काठ डारि सब दीने गावत गीत न गोरी ।
झूमका झूमि रहो री ।
तेज बुद्धि-बल धन अरु साहस ऊधम सूरपनो री ।
होरी में सब स्वाहा कीनो पूजन होत भलो री ।
करत फेरी तब कोरी ।
फेर धुरहरी भई दूसरे दिन जब अगिन बुझो री ।
सब कछु जरि गयो होरी में तब धूरहि धूर बचो री ।
नाम जमघंट परो री ।
फूँक्यो सब कुछ भारत नै कछु हाथ न हाय रहो री ।
तब रोअन मिस चैती गाई भली भई यह होरी ।
भलो तेहवार भयो री ।४७

होली लीला

राग मधुमात सारंग वा गौरी

रँगीली मचि रही दुहुँ दिसि होरी,
इत हरि उत बृषभानु-किसोरी ।
चलत कुमकुमा रँग पिचकारी, अरुन अबीर की झोरी ।
इत जमुना निरमल जल लहरति तरल तरंगनि राजै ।
उत गिरिराज फलित चिंतित फल चिंतामनिमय भ्राजै ।
ता मधि बिपुल बिमल वृंदाबन जुगल केलि-थल साहै ।
षटरितु रहत जहाँ कर जोरे बैकुंठहु को मोहै ।
जाही जुही केतकी कुरवक बकुल गुलाब निवारी ।
फूले फूल अनेकन लपटत लहरत केसर क्यारी ।
लपटी लता तरोवर सों बहु फूलि फूलि मन भाई ।
मनु मंडप में दुलहा दुलहिन रहे सेहरन लाई ।
कहुँ कहुँ सघन तरोवर सों मिलि मंडन सुंदर छायो ।

पत्ररंध्र सों धूप चाँदनी मिलिकैं लगत सुहायो ।
कहुँ कुटी कहुँ सघन कुटी कहुँ कदम खंडिका छाई ।
कहुँ बितान कहुँ कुंज-मँडप कहुँ छई छाँह मन-भाई ।
कहुँ कंदरा सिलामनि बेदी बिबिध रतन सोपाना ।
झरना झरत बिमल जल के जहँ करत हंस कल गाना ।
फले सकल फल अमृत सरिस कहुँ कहुँ मौर बिस्तारा ।
कहुँ फूलन पै मत्त भँवरगन उड़त करत झंकारा ।
कहुँ घाट छतरी कहुँ राजै सीतल सुभग तिबारी ।
कहुँ बालुका बिछी अति कोमल स्वच्छ स्वेत सुखकारी ।
कहुँ कहुँ झुके तरोवर जल मैं मनु निज प्रिय को भेंटैं ।
मुकुर माँह सोभा लखि अपनी कै जिय को दुख मेटैं ।
कहुँ कहुँ कुंड तलाब बावरी भरे फटिक से नीरा ।
कहुँ झील लहरत अपने रँग देखि द्रवत दृग-पीरा ।
त्रिबिध पौन जब लै पराग मधु चहुँ दिसि आनि झकोरे ।
बिहबल ह्वै मद-अंध करत तब गंध लिए जब दौरे ।
फूले जलनि कमल अरु कोई कहुँ सैवाल सुहाई ।
कारडव जल-कुक्कट सारस बिहरत तहँ मन लाई ।
मोर चकोर सारिका सुकगन मिलि कल कलह मचाई ।
डार डार प्रति बैठि कोकिलन काम-बधाई-गाई ।
सरसों अतसी खेतन सोहैं कुसुम फूल बहु फूले ।
नव पलास कचनार देत बिरहीजन के हिय हूले ।
सखिन जानि होरी को आगम पथ गुलाब छिरकायो ।
कियो ढेर केसर गुलाल को रंगन हौज भरायो ।
तोरि गुलाब पाँखुरिन मारग सोहत है अति छायो ।
अगर धूप ठौरहि ठौरन दै बगर सुबास बसायो ।
पानदान झारी पिकदानी मुरछल चँवर अड़ानी ।
फूल चँगेर माल बहु बिजन लै मृगमद घन सानी ।
लिये सकल सुख-साज सहेली सरस कतारन ठाढ़ी ।
मानहुँ मदन-सदन बिसुकरमा चित्र पूतरी काढ़ी ।
कोउ गावत कोउ नाचत आवै कोऊ भाव बतावै ।
कोउ मृदंग बीना सुर-मंडल ताल उपंग बजावै ।
खेलत गेंद कहूँ कोउ नट सी कला अनेकन साजै ।
आँख-मिचौनी होत तहाँ इक परसि और को भाजै ।
छड़ी लिए इक खड़ी अदब सों सबइ तमाम जनावै ।
एक भँवर निरवारनवारी एक निरखि बलि लावै ।
आवत तहँ दोउ होरी खेलन परम प्रेम-रँग भीने ।
कछु अलसात छके मद लोचन बाँह बाँह मैं दीने ।
अपुनो अपुनो जूथ अलग करि खेलत सब मिलि गोरी ।
जान न देहु प्रान-प्यारे को यह कह्यौ ललित किसोरी ।
रोपि मध्य डाँड़ो जै कहिकै बिजय-निसान बजाई ।
कियो खेल आरंभ सखी प्यारी की आज्ञा पाई ।
घरन लगीं मनमोहन पिय को घेरि घेरि ब्रज-नारी ।
लाल कियो गोपाल लाल कों दै केसर पिचकारी ।
चोआ चंदन बुक्का बंदन केसर मृगमद रोरी ।
अबिर गुलाल कुमकुमा कुमकुम अरु घनसार झकोरी ।
मींजि कपोल कोऊ भाजत है धाइ फेंट कोउ खोलै ।
कोउ मुख चूमि रहत ठोड़ी गहि इक गारी दै बोलै ।
इतनेहिं उत सों सखा-जूथ सब सजि सजि खेलन आए ।
बाँधे पाग सुरंग फेंट मैं रँग रँग बसन बनाए ।
फेंटन पै तुर्रा की मलकनि मोर-पँखोआ सोहै ।
बेनु सींग दल झाँझ ढोल डफ बाजन मुनि मन मोहै ।
गावत गारी अबिर उड़ावत धूम मचावत डोलैं ।
पकरि लेत तेहि जान देत नहि हो हो होरी बोलैं ।
तिनसों कहि ब्रजराज लाडिले सखियन धोखा दीन्हो ।
मैं प्यारी के सँग आवत हो इन बीचहि गहि लीन्हो ।
धाइ धरौ इनकों इक इक करि रँग मैं सबन भिजाओ ।
गारी दै मन-भायो करि कै बहु बिधि नाच नचाओ ।
ये अबला सबला भई भारी इनको सब मद गारौ ।
आजु हराइ इन्हैं होरी मैं रँग के पिचुका मारौ ।
धाए सुनत ग्वाल मदमाते गहिरो खेल मचायो ।
धूँधर करि गुलाल की चहुँ दिसि रंग-नीर बरसायो ।
एक घोरि कै मृगमद डारत इक लावत घनसारा ।
चोआ तेल फुलेल एक लै अतर भिंजावत बारा ।
हरित अरुन पंडुर श्यामल रँग रंग गुलाल उड़ाई ।
बिच बिच बिबिध सुगंध सनित बुक्का बगरत मन-भाई ।
कबहुँ बादले रंग रंग के कतरि मिहीन उड़ावै ।
तरनि किरिन मिलि अति छबि

पावत चमकि सबन मन भावै ।
परिमल अंबर मृगमद पीसे सने कपूर सुहाए ।
मेलि मेलि केवरा धूर में झोरिन पूरि उड़ाए ।
चोआ चोंटि चोंटि के अंगन तापर बिंदुली लावैं ।
केसर छींट चरचि रोरी सों लै रँग सों नहवावैं ।
गारी देत निलज डफ बाजत ऊँचे राग जमायो ।
गूँज रह्यौ सुर बर वृंदाबन हो हो शब्द सुनायो ।
एकन कों गहि रहत एक एकन को इक मुख माँड़ैं ।
करत निपट पट-रहित एक को हा हा करि करि छाँड़ैं ।
नारि नरन कों नारि बनावत न नारिन नर साजैं ।
गाँठ जोरि बर बदन चीति कै चूमि चूमि मुख भाजैं ।
फूल-छड़ी की मारि परत तब लाल उठत अकुलाई ।
पुनि हो हो करि रेलि पेलि तिय-दलहि भजावत आई ।
अवनि अकास एक रँग देखियत तरुन अरुनई छाई ।
लता पत्र प्रति रँगे रंग सों इक रँग परत लखाई ।
पटे अटारी अटा झरोखा मोखा छाजन छातैं ।
मारग सहित सुरँग गुलाल सों लाल सबै दरसातैं ।

भींजे बसन सबै तिन मधि कोउ सीत-भीत अति काँपे ।
काहू के पट छूटे लाज सों अपनो तन कोइ ढाँपे ।
एकन को इक पकरि नचावत एक बजावत तारी ।
आपुन हँसत हँसावत औरन देत कुफारी गारी ।
रंग जम्यो होरी को भारी मद-माते नर-नारी ।
सबके नैनन में देखियत इक होरी-खेल-खुमारी ।
तिन मधि घूँघर मैं गुलाल के लसत जुगल लपटाने ।
भींगे रंग सगबगे बागे रस-बस आलस साने ।
श्याम सरूप मनोहर मोहन कोटि काम लखि लाजै ।
उमगत अंग अंग तें जोबन बय किसोर नव भ्राजै ।
मनु मानिक नीलम मिलाइ दोउ सरस पूतरी ढारी ।
उलहत रोम रोम में सोभा कवि-रसना-मति हारी ।
अंग अनंग भर्‌यो आगम के दिन सहजहि सुँदराई ।
लखतहि मन मोहत जुवतिन को चढ़त तरल तरुनाई ।
पद-तन लाल प्रवाल चिन्ह धुज अंकुस मंडित सोहै ।
नव पल्लव पर सरस ओस-कन से नख लखि मन मोहै ।
चरन मंजु मंजीर बिबिध नग-जटित न परत बखानै ।
मनु मनिगन मिस मुनिजन को मन रहत चरन लपटाने ।
जुगल पींडुरी गुलफन की छबि लगत दृगन अति नीकी ।
मनु बैदूर्य्य डार जुग सुंदर करत जगत छबि फीकी ।
कदलि-खंभ सम जंघ जुगल जेहि रमा पलोटन चाहै ।
तापै लपटि रह्यौ पीतांबर सोभा सुख अवगाहै ।
मनु घन मैं घिरि दामिन लपटी नीलहि कंचन-बेली ।
रस सिंगार मैं बिरह-लता सु-तमालहि पीत चमेली ।
तापै कलित किंकिनी कूजति मनु रसना कविगन की ।
बंदनवार काम-मंदिर की विजय-घोस रति-रन की ।
तापैं फेंटा ललित लपेटा पँचरँग सोभित ऐसे ।
सावन साँझ बिबिध रँग बादर दामिनि चूमत जैसे ।
उदर उदार सचिक्कन कोमल भर्‌यौ सकल रस सोहै।
लेत लपेट चितै चितवत नहिं भरत पेट दृग जोहै ।
सब जग-मूल नाभिसर सोहत रूप-गाँठ मनु बाँधी ।
ता पर रमत रसिक रोमावलि रस-सरिता सर साधी ।
जुवति गाढ़ रति निरदय समुदय सदय दीन हित साजै ।
सोभित उर जहँ अनुदिन नवल प्रिया-प्रतिबिंब बिराजै ।
ता पर हार अपार परे मनिगन की अनगन माला ।
ओतप्रोत मनु जुवति मनोरथ सोत पोत मनि ख्याला ।
सब पर सोहत गुंजमाल बनमाल सहित आलम्बी ।
मनु अनुराग सहित सगरे रस रहे हरि-गल अवलंबी ।
मुक्तपाँति सोभित अति सुंदर कौस्तुभ-पदिक बिराजै ।
प्यारी मन को सरस सिंहासन छत्र मनहुँ छबि छाजै ।
मुक्त भएहूँ रस के लोभी-जन हरि-गर लपटाने ।
पुन्य गोप-पद पाइ ओप-जुत चोप भरे सरसानो ।

प्रियावरोधन चतुर बाहु जुग देखत ही मन मोहै ।
अति आतुर तिय गर लगिबे कों नील बेलि सी सोहै ।
मनिनपूर केयूर जुगल पर नौ-रतनी कसि बाँधी ।
नभ भसुंड के सुंड-दंड ध्रुव सह ग्रह पंगति नाँधी ।
मनिबंधन मनिबंध कलित कंगन पहुँची मन-भाई ।
जुगल नवल पल्लव मैं मानहुँ कुसुम-लता लपटाई ।
जुबती-उर परसन अति चंचल कर जुग अति रँग माँडै ।
हाथहिं हाथ लेत ये चित कों फेर कबहुँ नहिं छाँड़ै ।
ऊरधरेख चक्र-चिन्हन सों चिन्हित कर-तल देखे ।
मनु गुलाल पाटी पैं अंकित किए मदन निज लेखे ।
पोर पोर अँगुरी मैं मुदरी ऊपर नख दुति भारी ।
विद्रुम कली अग्र मुक्ताफल मीना मध्य सँवारी ।
कदलिपत्र सी पीठ दीठ परि नीठ नीठ नहिं चालै ।
ता पर पीत उपरना सोभित लपटी धूप तमालै ।
काजर पीकादिक छापित बर रंग भर्‌यौ मन मोहै ।
सोना और सुगंध दोऊ मिलि नगन जर्‌यौ अति सोहै ।
कलकल कंठ कुंठ कर सोभित कंठ पीक-छबि छाजै ।
मनहुँ नीलमनि सरस सुराही अमृत भरी अति राजै ।
चिबुक चारु मोहत मन जोहत करन करन छबि भारी ।
युगल कपोल गोल दरपन सम प्रतिबिंबित जहँ प्यारी ।
सकल स्वाद रस-मूल अधर जुग कोमल अति अनियारे ।
मनु द्वै लाल अंगूर लिए सुक लखि मुनि-मन मतवारे ।
कुंद-कली सी दंत-पाँति मैं बीरा रंग सुहायो ।
मनु दरक्यौ दारिम लखि प्रमुदित नासा सुक उड़ि आयो ।
आगम सूचित रेख लेख तल अधर आभ अरुनायो ।
हलकत बेसर मोती सुंदर अति जिय लगत सुहायो ।
बरुनी नैन चपल पल भौंहन सोभा के मनु भौना ।
मनुष जाल करि मनहुँ फँसाए खंजन के जुग छौना ।
प्रिया-रंग-माते अलसाने सरसाने रस-साने ।
प्रिया-भाव के भरे अघट मनु सोहत जुगल खजाने ।
प्रिया-ध्यान मैं मुँदे रहन की खुले रहन की देखैं ।
भुकित रहन की याद परे नित जिनकी बान बिसेखै ।
खंजन मीन कमल नरगिस मृग सीप भौंर सर साधे ।
मनु इनके गुन एकंत करिके अंजन-गुन दै बाँधे ।
जहँ जहँ परत दृष्टि इनकी बन गलियाँ अलियाँ मोहैं ।
मानिक नील हीर से बरसत खिलत कंज से सोहैं ।
मनु इन प्रन बदि राख्यौ ब्रज मैं कहर चहूँ दिसि डारी ।
जहाँ परै कतलाम करैं तित सब नव जोबनवारी ।
प्रिया-रूप लखि रीझि मनहुँ श्रवनन सों कहन गुन धाए ।
तिनहीं के प्रतिबिंब मकर जुग कुंडल करन सोहाए ।
मानिनि-मान प्रतिब्रत तिय को मुनि-मन ज्ञान-गरूरैं ।
सोभा सब उपमानन की यह बदि बदिकै नित चूरैं ।
चंचल चपल चारु अनियारे फरकत सुथिर रहैं ना ।

प्रियाबिंब प्रतिबिंबित पुतरिन प्रिया-रूप के ऐना ।
मान तजत कोउ परी कराहत कोउ अति ब्याकुल भारी ।
चली निकट आवत कोउ धाई जित तित इनकी मारी ।
कारी झपकारी अनियारी बरुनी सघन सुहाई ।
चुभत नोक जाकी नित मम उर रस छाजन सी छाई ।
केसर आड़ रेख पर सोभित लाल तिलक छबि मेखा ।
मान महावर के जुग पद की सोभित मनु जुग रेखा ।
ललित लटपटी लाल पाग बिच अलक अधिक छबि देई ।
मनु अनुराग सिंगार लपटि रहे निरखत जिय हरि लेई ।
चिक्कन चिलकदार चुनवारी कारी सोंधे भीनी ।
नव घूँघरवाली अलकावलि लटकत तिय-मन छीनी ।
पाग पेंच पर ललित हीर सिरपेंच भल्यौ रँग दमकै ।
गरब भर्‌यौ छबि छीनि जगत की ओप-चोप करि चमकै ।
तापर मोर-पखौआ सुंदर हलत अतिहि छबि पाई ।
जगत जीति सिंगार-सिखर पर धुजा मनहुँ फहराई ।
सहज तियागन को मन लोभा लखि नख-सिख की सोभा ।
गोभा उठत प्रेम के जिय में देत मदन मन चोभा ।
कोमल तासु गंध सोभा प्रति अंगन सरस सँवारी ।
मनहुँ नीलमनि अतर मेलि कै पुतरी साँचे ढारी ।
तैसिहि श्रीबृषभानु-नंदिनी रंग-भरी सँग राजै ।
रूपगर्बिता जुवति-जूथ सत जा पद-नख लखि लाजै ।
केहि अधिकार कहन सोभा को को पुनि सुनिबे लायक ।
बिनु ब्रजनाथ सदा जो तिनके अंतरंग पद-पायक ।
हरि-अनुराग प्रगटि पद-तल जुग अरुन लखत मन मोहैं ।
पिय हिय अधर नैन लागनि की जासु बानि नित जोहैं ।
पद-नख दिव्य फटिक से सुंदर कवि पै नहिं कहि जाही ।
मानस मैं हरि होत रुद्र-बपु लहि जिनकी परछाहीं ।
मेंहदी सुरँग महावर आभा मिलिकै अति दुति दमकै ।
प्रिया-अनय पर प्रीतम की अनुराग-मेंड़ मनु चमकै ।
अनवट बिछिया पग पातन सो सोभित अति पद-पीठी ।
मनहुँ कमल पर कलित ओस-कन चंद्र चँद्रिका दीठी ।
पायजेब गूजरी छड़े दोउ पग मैं पड़े सुहाए ।
पिय के उज्जल बिबिध मनोरथ मनु तिय-पद लपटाए ।
चरनन की छबि किमि भाखैं ये जग के सब कवि छोटे ।
बारंबार प्रिया सोए पर जे हरि आप पलोटे ।
मानस में इनकी परछाहीं जब प्रगटैं रँग भीने ।
पग-पेंच चंद्रिकन स्याम घन इंद्र-धनुष छबि छीने ।
बिनु श्रीहरि कै सखि समाज के जा पद-पंकज-धूरी ।
नहिं पाई शिव-अज अजहूँ लौं जद्यपि करत मजूरी ।
सारी नील लपटि रही कटि लौं रँग अनुरूप सोहाई ।
मनु हरि आप बसंत-मिस-निस-दिन रहत अंग लपटाई ।
अंचल हार माल मोतिन सों हिय अति सोभा पावै ।
उमगि उमगि जेहि श्याम मनोहर बार बार उर लावै ।
निज जन अभय करन को दोऊ करन मेंहदी राजै ।
कल पल तामैं मनु प्रवाल को पल्लव सोभा साजै ।
मुँदरी छल्ले बाँक आरसी कंकन पहुँची सोहैं ।
कड़े पड़े हथफूल अनूपम देखत पिय मन मोहैं ।
इन हाथन ही हाथन-हाथन पिय को मन लै लीनो ।
निज जन कों नित भक्ति-दान बिनही प्रयास इन दीनो ।
इनहीं पै धरि हाथ पिया डोलत निरतत मद-माते ।
धाय मिलत आगे पिय कों ये याही तें रँग-राते ।
पीठि परम सोभित चुटिला सों दीठि टरत नहिं टारी ।
मानस मैं पिय प्रानन को जो एकहि राखनवारी ।
मुख-सोभा कापै कहि आवै जहँ बानी मति हारी ।
पिया-प्रान अवलंब एक सब उपमहिं दीजै बारी ।
पिय के जीवन-मूरि अधर दोउ कोमल पतरे सोभैं ।
पिय की रसना सजल करत लखि अमृत-स्वाद के लोभैं ।
ठोड़ी नासा बेसर के बिच छोटो सो मुख राजै ।
अति भोरो रंजित रँग पानन दंतावलि मिलि छाजै ।
जुगल कपोलन झलकत लखियत करनफूल परछाहीं ।
रूप-सरोवर चलित कमल मनु कबिजन कहत लजाहीं ।
प्रतिबिंबित ताटंक नगन मैं जुगल कपोल सुहाए ।
मनु द्वै आरसि मध्य चंद्र प्रतिबिंबन बढ़त लखाए ।
तनिक तरकुली कानन सोहत केस-पास ढुरि आए ।
पास प्रगट परिवेष किनारिन मिलिकै अति छबि छाए ।
करन पिया-सुख-करन मनोहर सोभित परम लखाहीं ।
पीतम-बचन मुरलिका धुनि-सुनि प्रमुदित रहहिं सदाहीं
नैन सकल रस-ऐन ध्यान के द्वार छके रँग भारी ।
पुतरिन के मिस सदा बिराजत जिनमैं श्याम-बिहारी ।
सुंदरता श्यामता बड़ाई चंचलता अरुनाई ।
लाज सहित ये सिमिटि-सिमिटि सब इनहीं मैं मनु आई ।
सहजहि कजरा फैलि रह्यौ लखतहि पिय-मन ललचाई ।
अति भोरी चमकति सी पिय के मन बहु भाई ।
पलक पिया छबि ओट छबीली दया भरी अनियारी ।
घनसारी कारी बरुनी राजत प्यारी झपकारी ।
भौंह जुगल छबि भरी धनुष सी किमि कबि पै कहि आवै ।
मानहुँ मैं जिनपै कबहूँ नहिं कुटिलपनो दरसावै ।
रस सोहाग की आलबाल सों भाल ललित छबि छायो ।
तनिक बेंदुली सह जापै अति सेंदुर-बिंदु सुहायो ।
केस सुदेस चमक चिकनारे कारे अति सटकारे ।
खुले बधे सबही बिधि सोहत सघन सुघूँघरवारे ।
सारी मुख परिबेष किनारी मैं सुंदर मुख दमकै ।
मंडल किरिनावलि तारावलि मैं ससि मानहुँ चमकै ।
सोभा सुंदरता सुबास कोमलता ललित लुनाई ।

होड़ा-होड़ी उमड़ि रहे सब कवि पैं नहिं कहि जाई ।
सोभा फैलत रस बरसत सो उमगत सी तरुनाई ।
पसरत तेज लुनाई लहकति उपजति सी छबिताई ।
जितो जगत मैं रूप होत सब जाके तनिक बिलोकें ।
ताकी सोभा को कहि पावै रहत रसन कबि रोकें ।
प्रानपिया रिझवार पास मुख चितवत ही रहि जाहीं ।
ह्वै बलिहार प्रान मन वारत छिन-छिन अति ललचाहीं ।
लिए रहत रूख भौंर निवारत इक टक बदन निहारैं ।
तनिक हँसनि बोलनि चितवनि पैं अपुनो सरबस वारैं ।
सखी सहस तजि नित-नित जाके गोहन लागे डोलैं ।
हँसत प्रिया के हसे प्रान-प्यारी के बोले बोलैं ।
गुन गावत लै पान खवावत दावन रहत उठाएँ ।
मुख चूमत माला सुरझावत दोउ कर लेत बलाएँ ।
चुटकि देत बलिहार कहत हैं बोलनि चलनि सराहैं ।
अपने कों धन-धन करि मानत प्यारी-प्रेम उमाहैं ।
जुगल परस्पर रँगे प्रेम-रँग होरी खेलि न जानैं ।
रहत दृगनही मैं अरुझाने यहि कों सरबस मानैं ।
प्रिया श्रमित लखि चलत कुंज को मंथर गति अति मोहैं ।
मरगजे बसन माल कुम्हिलानी बिथुरे कच मन मोहैं ।
हाथ-हाथ पै दिये एक रँग अरुन भए दोउ राजैं ।
लखि बलिहार होत सखिजन सब सरस आरती साजैं ।
अक गावत इक तार बजावत इक कुसुमन झरि लाई ।
इक तृन तोरत इक पद परसत इक लखि रहत लुभाई ।
बाजत बेनु मंद मधुरे सुर गावत कछु-कछु प्यारी ।
आवत चले कुंज रस-भीने श्यामा श्री गिरधारी ।
एहि बिधि खेल होत नितही नित बृंदाबन छबि छायो ।
सदा बसंत रहत जहँ हाजिर कुसुमित फलित सोहायो ।
जदपि सकल दिन अति छबि बरसत बृंदा-बिपिन अपारा
तऊ सुखद सब सों निरभय यह होरी रंग बिहारा ।
नित-नित होरी रहैं मनावत याही तें ब्रजनारी ।
बिहरत कुल की संक छाँडिकै जामैं गिरिवरधारी ।
सो होरी-रस परम गुप्त है अनुभवहू नहिं आवै ।
शिब शुक सों बिरलो कोउ-कोऊ कछु पावै तो पावै ।
पै श्रीबल्लभ-चरन-सरन जो होय सोई कछु जानै ।
जो यह जानै सो फिर जग मैं और नहीं उर आनै ।
बिनु श्रीबल्लभ-कृपा-कोर यह निरखेहू नहिं सूझै ।
जिमि गँवार मनि हाथ लेइ पै ताको मोल न बूझै ।
श्रीबल्लभ-पद-रज-प्रताप सों यह लीला कहि गाई ।
मनि-सम पोहि-पोहि अति रुचि सों माला रुचिर बनाई
रसिकन की सरवस्व परम निधि बल्लभियन की जानौ ।
जुगल अनन्य जनन की तौ यहं मूरि सजीवन मानौ ।
एहि कुरसिक-जन हाथ न दीजौ रहियौ सीस चढ़ाई ।
पुनि पुनि पढ़ि पुनि सुनि अनुभव
करि लहियो रस अधिकाई ।
विषय-बिदूषित ज्ञान-करम मैं परे स्वर्ग सुख लोभे ।
ते या रसहि परसिहैं नाहिन निज अभिमान न सोभे ।
केवल श्रीबल्लभ-पद-किंकर 'हरीचंद' से दासा ।
रहिहैं यह रस-सने सदा माँगत बरसाने बासा ।४८

होली

फागुन के दिन चार, री गोरी खेल लै होरी ।
फिर कित तू औ कहाँ यह औसर क्यौं ठानत यह आर ।
जोबर रूप नदी बहती सम यह जिय माँझ बिचार ।
'हरीचंद' गर लगु पीतम के करु होरी त्यौहार ।४९

श्याम पिया बिनु होरी के दिनन में,
जिय की साध मेरी कौन पुजावै ।
गाइ बजाइ रिझाइ सबहि बिधि
कौन भुजन भरि कंठ लगावै ।
गाल गुलाल लगाइ लपटि गर,
कौन काम की कसक मिटावै ।
'हरीचंद' मुख चूमि बार बहु,
फिर चूमन कों को ललचावै ।५०

प्रान-पिया बिनु प्रान लेन कों,
फिर होरी सिर पर घहरानी ।
गावन लोग लगे इत उत सब,
सुनि सुनि फिर हो चली मैं दिवानी ।
फिर फूले टेसू सरसों मिलि
फिर कोइल कुहकत बौरानी ।
'हरीचंद' फिर मदन-जोर भयो
का मैं करों बिरहिन अकुलानी ।५१

झिंझौटी

रसमसी सरस रँगीली अँखियाँ मद सों भरीं ।
मुँदि मुँदि खुलत छकीं आलस सों ढुरि ढुरि जात ढरीं ।
झूमत झुकत रंग निचुरत मनु मीन मँजीठ परीं ।
'हरीचंद' पिय छकत लखत ही सबहि भाँति निखरीं ।५२

प्यारी तेरी भौहैं जात चढ़ी ।
आलस बस ह्वै चंचलता तजि बाँकेपनहि मढ़ीं ।
झुकि झूमत सरसानी अँखियाँ मनु रस-सिंधु कढ़ीं ।
'हरीचंद' अधखुली रसीली कानन जात बढ़ीं ।५३

पूरबी

नैन फकीरिनि हो रामा अपने सैयाँ के कारनवाँ ।

रूप-भीख माँगन के कारन छाँनि फिरत बन-बनवाँ ।
रूप-दिवानी कल न परत कहुँ बाहर कबहुँ अँगनवाँ ।
'हरीचंद' पिय-प्रेम-उपासी छोड़ि धाम धन जनवाँ ।५४

काफी

तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
जाव प्यारे तुम हमसे न बोलो ज़िय न जलाओ सदाई ।
सूनी सेज बरु मैं सो रहूँगी तुम मत आओ यहाँई ।
तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
समझावत मानत नहिं नेकहु करि अपने मन-भाई ।
रहो ख़ुशी से वहीं जाय के जहँ मुख अबिर मलाई ।
तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
प्यारे कियो और कों प्यारी इत उत प्रीति लगाई ।
अपने मन के भले भए हौ झूठी बात बनाई ।
तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
हमहिं लजावत मिलत और से जियरा जरावत आई ।
'माधवी' फाग प्रान-सँग खेलि रहौंगी मैं विष खाई ।
तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।५५

होली की लावनी

इत मोहन प्यारे उत श्री राधा प्यारी ।
बृंदाबन खेलत फाग बढ़ी छबि भारी ।ध्रु०
सब ग्वाल बाल मिलि डफ कर लिए बजावैं ।
इत सखियाँ हरि को मीठी गारी गावैं ।
पचरंग अबीर गुलाल कपूर उड़ावैं ।
पिचकारिन सों रँग की बरसा बरसावैं ।
लखि हँसत परस्पर राधा-गिरिवरधारी ।
बृंदाबन खेलत फाग बड़ी छबि भारी ।
इक ग्वालिन बनि बलदेव श्याल ढिग आई ।
कर पकरन मिस पकर्‌यौ हरि करि चतुराई ।
यह लखत सखी सब घेरि घेरि कै धाईं ।
गहि लिए श्याम रहिं बहु बिधि नाच नचाईं ।
फगुवा दै छूटे कोऊ बिधि बनवारी ।
बृंदावन खेलत फग बढ़ी छबि भारी ।
बंसी लै भागति हरि की कोऊ नारी ।
तब मोहन हा हा खात करत मनुहारी ।
सो लखि कै कोऊ हँसत खरी दै तारी ।
भागत कोउ गाल गुलाल लाइ दै गारी ।
सो छबि लखि कै कोउ तन मन डारत वारी ।
बृंदाबन खेलत फग बढ़ी छबि भारी ।
चहुँ ओर कहत सब हो हो हो हो होरी ।
पिचकारी छूटत उड़त रंग की झोरी ।
मध ठाढ़े सुंदर स्याम साथ लै गोरी ।
बाढ़ी छबि देखत रंग रँगीली जोरी ।
गुन गाइ होत 'हरिचंद' दास बलिहारी ।
बृंदाबन खेलत फाग बढ़ी छबि भारी ।५६

होली की ग़ज़ल

गले मुझको लगा लो ए मेरे दिलदार होली में ।
बुझे दिल की लगी मेरी भी तो ये यार होली में ।
नहीं यह है गुलाले सुर्ख उड़ता हर जगह प्यारे ।
य आशिक की है उमड़ी आहे आतिशबार होली में ।
जबाँ के सदके गाली ही भला आशिक को तुम दे दो ।
निकल जाए य अरमाँ जी के ऐ दिलदार होली में ।
गुलाबी गाल पर कुछ रंग मुझको भी जमाने दो ।
मनाने दो मुझे भी जाने-मन त्यौहार होली में ।
अबीरी रंग अबरू पर नहीं उसके नुमायाँ है ।
अबीरी म्यान में है मगरबी तलवार होली में ।
है रंगत जाफ़रानी रुख अबीरी कुमकुमे कुच हैं ।
बने हो खुद ही होली तुम तो ऐ दिलदार होली में ।
'रसा' गर जामे मै गैरों को देते हो तो मुझको भी ।
नशीली आँख दिखला कर करो सरशार होली में ।५७

बिहाग

बिनु पिय आजु अकेली सजनी होरी खेलौं ।
बिरह उसाँस उड़ाइ गुलालहिं दृग-पिचकारी मेलौं ।
गावौं बिरह धमार लाज तजि हो हो बोलि नवेली ।
'हरीचंद' चित माहिं लगाऊँ होरी सुनो सहेली ।५८

धमार

आज है होरी लाल बिहारी ।
आज तोहिं हम देहैं नई गारी ।
तोहिं गारी कहा कहि दीजै ।
अगिनित गुन क्यौं गनि लीजै ।
तेरो चंद बंस को धारी ।
जाने भोगी गुरु की नारी ।
तासों बुध भयो संकर जाती ।
जासों तेरे कुल की पाँती ।
तेरी कुल-जननी इला रानी ।
तामैं दोऊ सुख मुद-दानी ।
तेरी बेस्या सी कुल-माता ।
जाको नाम उरबसी ख्याता ।
जदुराज बड़े हैं ज्ञानी ।
जिन दीनी अपनी जवानी ।

तेरो कंसराय सो मामा ।
तेरी माय करी बे-कामा ।
तेरी रोहिनी तजि घर-बारा ।
अब ब्रज मैं करत बिहारा ।
तेरो नंद बहुत जस पायो ।
जिन बिरधापन सुत जायो ।
तुम सकल गुनन मैं पूरे ।
नट बिट सब ही बिधि रूरे ।
इमि कहत हँसत ब्रज-नारी ।
'हरिचंद' मुदित गिरिधारी ।५९

राग देस

बिहारी जी मति लागौ म्हारे अंक ।
या गोकुल रा लोक चवाई तुम तौ परम निसंक ।
म्हारी गलिअन मति आओ प्यारा रूप भीख रा रंक ।
'हरीचंद' थारे कारन म्हाने लाग्यौ छै जगरो कलंक ।६०

बिहारी जी काँईं छे तम्हारो यहाँ काज ।
तुम सौतिन रे मद रा मात्या रंग रँगीला साज ।
रैन बसे जहाँ वहीं सिधारो म्हाने तो लागे छे घणी लाज ।
'हरीचंद' थारे चरनन लागूँ छिमा करौ महाराज ।६१

राग कलिंगड़ा

बिहारी जी घूमै छो थारा नैणा ।
कौन खिलार संग निसि जाग्या कहा करो छो सैणा ।
कौन रो यह लाया छौ रे प्यारे रंगन रँग्यौ उपरैणा ।
'हरीचंद' थैं जनम रा कपटी कौन सुनैं थारे बैणा ।६२

राग धनाश्री

लाल मेरो अँचरा खोलै री ।
गुरजन की नहिं मानै लाज मेरो अँचरा खोलै री ।
पनियाँ लेन हौं निकसी मोसों हँसि हँसि बोलै री ।
मीठी मीठी बात सौं प्यारो अमृत घोलै री ।
'हरीचंद' पिय साँवरो संग लागोई डोलै री ।६३

राग सहाना

तैंड़े मुखड़े पर घोल घुमाइयाँ ।
साँवलिये साजन छल-बलिए तुझ पर बल बल जाइयाँ ।
हुई दिवाणी मोहन दा जो इशक जाल गल पाइयाँ ।
'हरीचंद' हँस हँस दिल लीता अब यह बे-परवाइयाँ ।६४

बिहाग

रे निठुर मोहिं मिल जा तू काहे दुख देत ।
दीन हीन सब भाँति तिहारी क्यों सुधि धाइ न लेत ।
सही न जात होत जिय ब्याकुल बिसरत सब ही चेत ।
'हरीचंद' सखि सरन राखि कै भल्यो निबाहयो हेत ।६५

काफ़ी

अब तेरे भए पिया बदि कै ।
दगे नाम सों यार तिहारे छाप तेरी सिर ऊपर लै ।
कहाँ जाहिं अब छोड़ि पियारे रहे तोहिं निज सरबस दै ।
'हरीचंद' ब्रज की कुंजन में डोलैंगे कहि राधे जै ।६६

सिंदूरा

आज कहि कौन रूठायो मेरो मोहन यार ।
बिनु बोले वह चलो गयो क्यों बिना किए कछु प्यार ।
कहा करौं हौं कछु न बनत है कर मींड़त सौ बार ।
'हरीचंद' पछितात रहि गई खोइ गले को हार ।६७

असवारी

तुम मम प्रानन तें प्यारे हो तुम मेरे आँखिन के तारे हो ।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो आयो फागुन मास ।
अब तुम बिनु कैसे रहोंगी तासों जीव उदास ।
प्रान-प्यारे यह होरी त्योहार ।
हिलि-मिलि झुरमट खेलिये हो यह बिनती सौ बार ।
प्रान-प्यारे अब तो छोड़ौ लाज ।
निधरक बिहरौ मो सँग प्यारे अब याको कहा काज ।
प्रान-प्यारे जौ रहिहौ सकुचाय ।
तौ कैसे कै जीवन बचिहै यह मोहिं देहु बताय ।
प्रान-प्यारे जग में जीवन थोर ।
तो क्यों भुज भरिकै नहिं बिहरौ प्यारे नंदकिशोर ।
प्रान प्यारे तुम बिनु जिय अकुलाय ।
तापै सिर पै फागुन आयो अब तो रहयौ न जाय ।
प्रान-प्यारे तुम बिन तलफै प्रान ।
मिलि जैयैं हौं कहत पुकारे एहो मीत सुजान ।
प्रान-प्यारे यह अति सीतल छाँह ।
जमुना-कूल कदंब तरे किन बिहरौ दे गल-बाँह ।
प्रान-प्यारे मन कछु हवै गयो और ।
देखि देखि या मधु रितु मैं इन फूलन को बे-तौर ।
प्रान-प्यारे लेहु अरज यह मान ।
छोड़हु मोहि न अकेली प्यारे मति तरसाओ प्रान ।
प्रान-प्यारे देखि अकेली सेज ।
मुरछि मुरछि परिहौं पाटी पै कर सों पकरि करेज ।

प्रान-प्यारे नींद न ऐहै रैन ।
अति ब्याकुल करवट बदलौंगी ह्वैहे जिय बेचेन ।
प्रान-प्यारे करि करि तुम्हरी याद ।
चौंकि चौंकि चहुँ दिसि चितओंगी सुनै न कोउ फरियाद ।
प्रान-प्यारे दुख सुनिहै नहिं कोय ।
जग अपने स्वारथ को लोभी बादन मरिहौं रोय ।
प्रान-प्यारे सुनतहि आरत बैन ।
उठि धाओ मति बिलम लगाओ सुनो हो कमलदल नैन ।
प्रान-प्यारे सब छोड़यौ जा काज ।
सोउ छोंड़ि जाइ तौ कैसे जीवैं फिर ब्रजराज ।
प्रान-प्यारे मति कहुँ अनते जाहु ।
मिलि कै जिय भरि लेन देहु मोहिं अपनो जीवन-लाहु ।
प्रान-प्यारे इनको कौन प्रमान ।
ये तो तुम बिनु गौन करन कों रहत तयारहि प्रान ।
प्रान-प्यारे पल की ओट न जाव ।
बिना तुम्हारे काहि देखिहैं अँखियाँ हमैं बताव ।
प्रान-प्यारे साथिन लेहु बुलाय ।
गाओ मेरे नामहिं लै लै डफ अरु बेनु बजाय ।
प्रान-प्यारे आइ भरौ मोहिं अंक ।
यह तो मास अहै फागुन को यामै काकी संक ।
प्रान-प्यारे देहु अधर रस दान ।
मुख चूमहु किन बार बार दै अपने मुख को पान ।
प्रान-प्यारे कब कब होरी होय ।
तासों संक छोड़ि कै बिहरौ दै गल मैं भुज दोय ।
प्रान-प्यारे रहौ सदा रस एक ।
दूर करौ या फागुन मैं सब कुल अरु बेद-बिबेक ।
प्रान-प्यारे थिर करि थापौ प्रेम ।
दूर करौ जग के सबै यह ज्ञान-करम-कुल-नेम ।
प्रान-प्यारे सदा बसौ ब्रज देस ।
जमुना निरमल जल बहौ अरु दुख को होउ न लेस ।
प्रान-प्यारे फलनि फलौ गिरिराज ।
लहौ अखंड सोहाग सबै ब्रज-बधू पिया के काज ।
प्रान-प्यारे जाइ पछारौ कंस ।

फेरौ सब थल अपुन दुहाई करि दुष्टन को धंस ।
प्रान-प्यारे दिन दिन रहौ बसंत ।
यही खेल ब्रज मैं रहौ हो सब बिधि सुखद समन्त ।

प्रान-प्यारे बाढ़ौ अबिचल प्रीति ।
नेह-निसान सदा बजै जग चलौ प्रेम की रीति ।
प्रान-प्यारे यह बिनती सुनि लेहु ।
'हरीचंद' की बाँह पकरि दृढ़ पाछे छोंड़ि न देहु ।६८

होली बन्दर सभा
(होली जबानी सुतुर्मुर्ग परी के)

इत उत नेह लगाइ भये पिय तुम हरजाई ।
जूठी पातर चाटत घूमत घर घर पूँछ डुलाई ।
सौत भई अब सगी तुम्हारी हम तो भई हैं पराई ।
पड़ी टुकड़े पर आई ।
मिल जा तू प्यारे क्यों नाहक फिरत मनो बौराई ।
बिनती करत उस्ताद खयानत गलियन गलियन धाई ।
राम सब लोग जगाई ।६९
पिय मूरख इत आइ देहु मोहिं बोल सुनाई ।
वह दिन भूल गये जु घाट पर तुमने दही गिराई ।
पोंछ उठाय रही पछताय न बोली हम सकुचाई ।
तुम्हें कछु लाज न आई ।
दुख धोवन अरु रोग-हरन तुम आप-सरूप कहाई ।
हम तो करि संतोष हैं बैठी बिरहा-बोझ उठाई ।
करो सीतल हिय आई ।
आसन सों बसंत में गावत हम तो मलार सदाई ।
भई उस्ताद न घाट न घर की खरी बात यह गाई ।
रही आखिर मुँह बाई ।७०

होली

कुंजबिहारी हरि सँग खेलत कुंज-बिहारिनि राधा ।
आनँद भरी सखी सँग लीने मेटि बिरह की बाधा ।
अबिर गुलाल मेलि उमगावत रसमय सिंधु अगाधा ।
घूँघट में झुकि चूमि अंक भरि भेंटति सब जिय साधा ।
कूजति कल मुरली मृदंग सँग बाजत धुम किट ता धा ।
वृंदाबन-सोभा-सुख निरखत सुरपुर लागत आधा ।
मच्यौ खेल बढ़ि रंग परस्पर इत गोपी उत काँधा ।
'हरीचंद' राधा-माधव-कृत जुगल खेल अवराधा ।७१

तुम भौंरा मधु के लोभी रस चाखत इत डोलौ ।
कलिन कलिन पर माते माते मधुरे मधुरे बोलौ ।
कहुँ गुंजरत कहूँ रस चाखत कहुँ नाचत मद-माते ।
बिलमि रहत कहुँ कलियन फूलन रस लालच रस-राते ।
कहुँ मधु पियत अंक कहुँ लागत करत फिरत कहुँ फेरा ।
कहुँ कलियन बस परि दल मैं मुंदि रजनी करत बसेरा ।
तुमरो का परमान लाड़िले सबै बात मन-मानी ।
तुम सों प्रीति करै सो बावरि 'हरीचंद' हम जानी ।७२

शिवरात्रि का पद

आजु शिव पूजहु हे बनमाली ।

छोड़ि कुटी बाहर ह्वैं बैठे ए दोउ शोभाशाली ।
नहिं गंगा मृग-चरम नहीं कटि नहिं बिभूति सिर राजै ।
नाहिं चंद केवल कछु नागिन लटकत सिर पर छाजै ।
तुम बड़भागी भक्त लाल चलि सेवन बहुत बिधि कीजै ।
'हरीचंद' ऐसी भामिनि को काहें रूसन दीजै ।।७३

संस्कृत राग बसंत

हरिरिह विलसति सखि ऋतुराजे ।
मदनमहोत्सव वेषविभूषित वल्लवरमणिसमाजे ।
प्रकटित वर्षावधि हृदयाहित युवतिसहस्रविकारे ।
स्वावेशावृतमत्तीकृत नरलोक-मयापहमारे ।
मुकुलितार्द्ध मुकुलितपाटलगण शोभितोपवनदेशे ।
शकुनपंडुरीकृत सुविवाहार्थित सिद्धार्थकवेशे ।
त्रिविधिपवन-पूरित पराग पटलांधमधुपझंकारे ।
आम्र-मंजरीवेष-विभूषित-रतिसहचरी-विहारे ।
कूजित केकावलि कलकंठप्रतिध्वनिपूरित तीरे ।
प्रकटित हृदयगतानुराग कमलाच्छलयमुनानीरे ।
पथिकबधूबधप्रायश्चित्तालतनु-दग्धपलाशे ।
कान्तविरहपीतिमापीत वासन्ती कुसुमविकाशे ।
रूपगर्व्वभरहसितमालतीदर्शितदन्तकदम्बे ।
कामविकाराञ्चितलतिका-कृत वरसहकारालम्बे ।
मृगमदकश्मीरागुरुचन्दन-चर्चित युवति-समूहे ।
सुरललनावाञ्छितविहारलोकत्रयसुकृतदूरूहे ।
श्री वृषभानु-नन्दिनीमोदविनोदामोदवितानै ।
कविवर गिरिधिरदास-तनूभव 'हरिश्चंद्र' -कृत गाने ।।७४

बसंत

श्री बल्लभ प्रभु बल्लभि अन-बिन तुम्हैं कहा कोउ जानै हो
निज निज रुचि अनुसारहि सब ही कछु को कछु अनुमाने हो
करमठ श्रुतिरत कर्म-प्रवर्तक जज्ञ-पुरुष कहि भाखै हो ।
ज्ञानी भाष्यकार आतम-रत विषय-बिरत अभिलाखै हो ।
मरजादा-रत मानि, अचारज हरि-पद-रत सिर नावैं हो ।
गुप्त परम रस अमृत प्रेम बपु नित्य बिहार बिहारी हो ।
गो-गोपी-गोकुल-प्रिय सुंदर रास रमत गिरिधारी हो ।
प्रगटत निज जन मैं निज लीला आपुहि द्विज बपु लीन्हो हो
'हरीचंद' बिनु निज पद-सेवक औरत नाहीं चीन्हो हो

बसंत

देखहु लहि रितुराजहि उपवन फूली चारु चमेली ।
लपटि रहीं सहकारन सों बहु मधुर माधवी-बेली ।
फूले बर बसंत बन बन मैं कहुँ मालती नवेली ।
ता पैं मदमाते से मधुकर गूँजत मधु-रस-रेली ।
मदन महोत्सव आजु चलौ पिय मदन-मोहन सों भेंटैं ।
चोआ चंदन अगर अरगजा पिय के अंग लपेटैं ।
बहुत दिनन की साध पुजावैं सुख की रास समेटैं ।
'हरीचंद' हिय लाइ प्रानप्रिय काम-कसक सब मेटैं ।।७६

मेरे जिय की आस पुजाउ पियरवा होरी खेलन आओ ।
फिर दुरलभ ह्वैहैं फागुन दिन आउ गरे लगि जाओ ।
गाइ बजाइ रिझाइ रंग करि अबिर गुलाल उड़ाओ ।
'हरीचंद' दुख मेटि काम को घर तेहवार मनाओ ।।७७

होरी नाहक खेलूँ मैं बन में पिया बिनु होरी लगी मेरे मन में
सूनो जगत दिखाई श्याम-बिनु बिरह-बिथा बढ़ी तन में ।
होरी नाहक खेलूँ मैं बन में पिया बिनु होरी लगी मेरे मन में
काम कठोर दवारि लगाई जिय दहकत छन छन में ।
'हरीचंद' बिन बिकल बिरहिन बिलपति बालेपन में ।
होरी नाहक खेलूँ मैं बन में पिया बिनु होरी लगी मेरे मन में ।।७८

बन मैं आगि लगी है फूले देखु पलासु ।
कैसे बचि है बाल बियोगिनि देखि बसंत-बिलास ।
चलत पौन लै फूल-बास होत काम परकास ।
'हरीचंद' बिनु श्याम मनोहर बिरहिन लेत उसास ।।७९

चहूँ दिसि धूम मची है हो हो होरी सुनाय ।
जित देखो तित एक यहै धुनि जगत गयौ बौराय ।
उड़त गुलाल चलत पिचकारी बाजत डफ घहराय ।
'हरीचंद' माते नर नारी गावत लाज गँवाय ।।८०

नित नित होरी ब्रज में रहौ ।
बिहरत हरि सँग ब्रज-जुवती-गन सदा अनँद लहौ ।
प्रफुलित फलित रहो वृंदाबन मधुप कृष्ण-गुन कहौ ।
'हरीचंद' नित सरस सुधामय प्रेम-प्रवाह बहौ ।।८१

राग-संग्रह

"हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, मोहन - चन्द्रिका" में सन् १८८० में प्रकाशित

राग-संग्रह

जल-बिहार, सारंग

आजु हरि बिहरत जमुना-तीर ।ध्रु०
श्यामा संग रंग भरि सोहत पहिने झीने चीर ।
प्रथम समागम सकुचत प्यारी जब परसत बलबीर ।
उघरत अंग भीनि जल बसनन लाजि भजत तब तीर ।
धीर समी सोहायो लागत लै सोई धीर समीर ।
'हरीचंद' संगम-गुन गावत छबि लखि धरत न धीर ।१

ठुमरी

अठिलात सँवरिया, मद ते भरी ।ध्रु०
कटि काछनि सिर मुकुट बिराजत
काँधे पर सोहै पटुका लहरिया ।
पहुँची बाजू बनमाला अरु
अँगुरिन अँगुरिन सोहैं मुँदरिया ।
'हरीचंद' मेरे मन बसो सोइ
हरि-राधा सोहै जाकी नगरिया ।२

गोवर्धनपूजा, बिलावल

आजु बन उमगे फिरत अहीर ।
हेरी देन बदत नहिं काहू देखियत जित तित भीर ।
इक गावत इक ताल बजावत एक बनावत चीर ।
एक नाचत इक गाइ खिलावत एक उड़ावत छीर ।
हमरो देव गोवर्द्धन पर्बत सुंदर श्याम शरीर ।
कहा करैगो इंद्र बापुरो जा बस केवल नीर ।
सात दिवस गिरि कर धरि राख्यो बाम भुजा बलबीर ।
'हरीचंद' जीत्यो मेरे मोहन हार्‌यौ इंद्र अधीर ।३

ग्रीष्म ऋतु, सारंग

एरी फुहारन के दोउ कौतुक में उरझाने ।
धरत फूल फल नीर धार पर देखत रहत लुभाने ।
कबहुँक चकई चलात चपल अध-ऊरध बहु गति ठाने ।
'हरीचंद' रिझवत सब सखि
मिलि नवजल-केलि बहाने ।४
ये युगल दोउ बैठे हो शीतल छाँह ।
सखी ठाढ़ीं चारों ओर फूलीं मन माँह ।
तिन बिच प्यारी पिया दिये गल बाँह ।५

बिहार, बिहाग

आजु दोउ बिहरत कुंजर कंत ।
श्यामा-श्याम सरस रँग बाढ़े सुख को लहत न अंत ।
ज्यों ज्यों निसि भीनत रँग बाढ़त होत सुरत की कंत ।
हारत कोउ न अभिरे दोऊ मदन-समर-सामंत ।
तहाँ न जाय सकत सखि-गनहूँ जहाँ कामिनी-कंत ।
'हरीचंद' श्री बल्लभ-पद-बल ताहि अनुभवत संत ।६

श्री नृसिंह चतुर्दशी-बधाई, सारंग

आजु अपमान अति ही निरखि भक्त को ।
बैकुंठ बन सिंह बहुत कोप्यो ।
पटकि कर भूमि पै झटकि सिर केश रद
चाभि ओंठन तेज गगन लोप्यो ।
खंभ को फारि चिक्कारि केहरि-नाद
गर्भिनी-गर्भ गरजन गिरायो ।
सटा फटकारि कै नछत्रगन नभहिं
फेंकि ईत सी उतहि क्रोध छायो ।

कोटि मनु बिज्जु इक साथ ही गिरि परीं ।
भयो अति घोर भुव सोर भारी ।
सिंधु-जल उच्छल्यौ गिरे पर्वत-शिखर
बृक्ष जड़ सों सबै दिये उजारी ।
देव-दानव-मनुज गिरे भय भागि
वस्त्र फटि गये कान सुधि तनक नाहीं ।
आजु असमय प्रलय देखि शिव चौंकि कै
शूल धरि भ्रमत इत उत लखाहीं ।
सृष्टि को क्रम संग जानि बिधि बावरो
मूँड़ पै हाथ धरि बहुत रोयो ।
दिसा दहिबो लगी भयो उल्का-पात
रुदित मूरति तेज अगिन खोयो ।
त्रस्त मधुकर पिवत नाहिं मधु बृक्ष को
गऊ निज बत्स-गन नाहि चाटैं ।
हवि अग्नि नहिं हरत डरत तहँ पौन नहिं
गौन करि सकत नभ धूरि पाटैं ।
चकित माया नटी भूलि निज नट-कला
जगत-गति जीव जड़ रोकि लीनी ।
रस शृंगार निज करत ही रहि गई
मनों सब चातुरी हारि दीनी ।
जगत जाको खेल बनत बिगरत तनिक
भौंह के इत सों उत हलन माँहीं ।
सोई त्रैलोक्यपति आजु कोप्यो जबै
तबै अब सबै कहँ सरन नाँही ।
मारि हरिनाच्छ उर फार कर नखन सों
भार हर भूमि अति शोक टार्‌यो ।
गोद प्रहलाद अहलाद-पूरब लियो
चाटि मुख चूमि जल नयन ढार्‌यो ।
राज्य दै अभय पद आप पद्मा सहित
गये बैकुंठ जय जगत छायो ।
प्रेम परधान परिनाम प्रेमिन उर।
भक्त-वत्सल नाम साँच पायो ।

सदा संकटहरन अकर कारन-करन
कृपा-कर नाम जिय जौन धारै ।
सत्रु-संताप-जय-जातना-तापहर अचल
बर घाम निज सो बिहारै ।

सदा प्रभु सर्बदा गर्वहर अभय-कर
जनन-उर सौख्य-कर दु:खहारी ।
पीर 'हरिचंद' की हरहु करुनायतन
त्रसित कलि काल तव सरनधारी ।७

बिरह, ठुमरी

अकुलात गुजरिया, दुख तें भरी ।
तनिकौ सुधि तन को नहिं जब तें
लागी हरि की तिरछी नजरिया ।
तलफत रहत बिरह-दुख भारी
देत कोउ नहिं पिय की खबरिया ।
'हरीचंद' पिय बिन अति ब्याकुल
रोवत सूनी देखि सेजरिया ।८

बिहाग

आजु रस कुंज-महल में बतियन रैन सिरानी जात ।
जाल रंध्र तें भरित चाँदनी चलत मंद कछु सीतल बात ।
सनसनात निसि झिलमिल दीपक
पात खरक बिच-बीच सुनात ।
रगमगे दोऊ भुज दिये सिरान्हे
आलस-बस मुसकात जँभात ।
मधुर बिहाग सुनात दूर सों,
लपटि रहे बिथकित सब गात ।
'हरीचंद' दोऊ रूप-लालची सिथिल
तऊ जागे न अघात ।९

ग्रीष्म ऋतु, फूल के शृंगार को पद

आजु सखी फूले हरि फूल कुंज माँही ।
प्यारी को सँग लिये दीन्हें गल-बाँहीं ।
फूलन के अंगन सब अभरन अति सोहैं ।
देखि देखि ब्रज-जन के मन को अति मोहैं ।
बिछिया पग राई बेलि चित की गति हरती ।
पंकज को पायजेब पायजेब करती ।
मदनबान फूलन की कटि किंकिनी राजै ।
कलियन की चोली मधि यौवन अति भ्राजै ।
चंपक की कली बनी चंपाकली भारी ।
फूलन के हार कंठ सोहत रुचिकारी ।
झबिया कर फूलन के बाजूबंद दोऊ ।
फूलन की पहुँची कर राजत अति सोऊ ।
फूलन की चूरी इमि कोऊ कर साजैं ।
चंदन के हार मनहुँ लपटि लता राजैं ।
पल्लव बसी अँगुरिन में मुँदरी छबि देहीं ।
देखत ही मोहन मन हाथन सों लेहीं ।

करना के करनफूल करन बीच धारे ।
झुमका दोऊ झूमत लखि मानों मतवारे ।

फूलन को झुलनी नक-बेसर बिच धारी ।
प्यारे को चित्त मनों पोहि धर्यौ प्यारी ।

मदनबान फूलन की बंदी अनुरागै ।
देखत ही लालन हिय मदन-बान लागै ।
बेना सिर फूलहि को देखत मन भूल्यो ।
रूप की लता में मनों एक फूल फूल्यो ।

बेनी सिर फूलन की सोहत छबि छाई ।
अपने कर नंदलाल गूँथि कै बनाई ।
नख-सिख तें फूलन के अभरन भव भारी ।
फूलन के लहँगा अरु फूलन की सारी ।
फूली छबि देखि देखि नंदलाल फूल्यो ।
भ्रमर होइ मेरो मन 'हरीचंद' भूल्यो ।१०

आजु सखी बृजराज लाडिलो नव दूलह बनि आयो ।
फूल सेहरो सीस बिराजै फूलन साज सजायो ।
फूलन के आभरन बिराजत फूलन माल बनाई ।
फूलन चँवर ढुरत दोऊ दिसि फूल-छत्र सुखदाई ।
घोड़ी सजी फूल के गहिने फूल लगाम बनाई ।
फूले फूले सकल बराती तन-धन देत लुटाई ।
फूले देव बिमानन फूले फूलन की झरि लाई ।
'हरीचंद' ऐसी जोरी पै फूलि फूलि बलि जाई ।११

ग्रीष्म, सारंग

आजु नंदलाल पिय कुंज ठाढ़े भये ।
स्रवन शुभ सीस पै कलित कुसुमावली ।
मनहुँ निज नाथ मुखचंद लखि देखिकै
खसित आकाश तें तरल तारावली ।
बहत सौरभ मिलत सुभग त्रय-विधि पवन
गुंजरत महारस मत्त मधुपावली ।
दास 'हरिचंद' बृज-चंद ठाढ़े मध्य
राधिका बाम दक्षिन सुचंद्रावली ।१२

मकर संक्रांति

अहो हरि नीको मकर मनाये ।
चित्र चमन धरि भले लाडिले पुन्य-समय घर आये ।
कहा परब कियो दियो दान रस तिल तन प्रगट लखाये ।
'हरीचंद' खिचरी से मिलि क्यों कित तिरबेनी न्हाये ।१३

श्री महाप्रभु जी की बधाई, सारंग

आजु भयो साँचो मंगल भुव प्रकटे श्री बल्लभ सुखधाम ।
करुना-सिंधु सकल रस-पोषक पतित-उधारन जाको नाम
दैवी जीवन अभयदान दै रसिक जनन के पूरे काम ।
'हरीचंद' प्रभु मंगल-मूरति
गौर-श्याम तन एक ललाम ।१४

प्रबोधिनी बिहाग

आजु सुहाग की राति रसीली ।
गावो नाचो करो बधाई कुंजन माँझ छबीली ।
गावत घोड़ी देव मनावत रस बरषत भरपूर ।
'हरीचंद' को टेरी टेरि कै देत सखी सब भूर ।१५

श्री ठाकुरजी की बधाई, बिहाग

आयो समय महा सुखकारी ।
सब गुन-गन- संयुक्त मन-रंजित
अतिसय परम सुशोभा-धारी ।
रोहिनि नखत सात सुभ ग्रह सब
कह कहिये उपमा मति हारी ।
दिसा प्रसन्न हँसत नभ निर्मल
तारन की बाढ़ी छबि भारी ।
मंगलमय धरनी सब राजत पुर
आकर बृज गाँव सुखारी ।
नदी प्रसन्न सलिल तालन की
कमलन सों भइ शोभा भारी ।
द्विज-अलिकुल सन्नाद करन लगे
बन-राजी फूलनि फुलवारी ।
पुन्य-गंध लै बह्यौ महासुभ वायु
सबिधि सुचि त्रिविध बयारी ।
द्विज जाचन की साँति-अगिनि
सब प्रगट भई कुंडन तें न्यारी ।
असुर-द्रोह सब साधू-जन के
मन सुप्रसन्न भये ता धारी ।
अजन जनम को समय जानि कै
बजत लजत सब दुन्दुभि भारी ।
गाइ-उठे गंधर्बरु किन्नर चारन
साध तुष्टि मन धारी ।
नाचन लगीं देवि असरा सह अति
प्यारी सब घर की नारी ।
मुनि-देवता महा आनंदित बरसत
फूल भरि भरि थारी ।
सागर के गरजन के पीछे
मंद मंद गरजे जल-धारी ।
आधी राति उदित भयो चंदा
आनँद करत हरत अँधियारी ।

दैव-रूपनी देवी जू तें प्रगट
भये श्री गिरिवरधारी ।
निरखि नयन आनंद सिथिल
भे 'हरीचंद' बलिहारी ।१६

बाल-लीला, असावरी

आजु लख्यौ आँगन में खेलत जसुदा जी को बारो री ।
पीत भगुंलिया तनक चौतनी मन हरि लेत दुलारो री ।
अति सुकुमार चंद्र से मुख पै तनक डिठौना दीनी री ।
मानहुँ श्याम कमल पै इक अलि बैठो है रँग-भीनो री ।
उर बघनहा बिराजत सखि री उपमा नहिं कहि आवै री ।
मनु फूली अगस्त की कलिका सोभा अतिहि बढ़ावै री ।
छोटी छोटी सीस लटूरिया भ्रमरावलि जनु आई री ।
तैसी तनिक कुलहइया ता पै देखत अति सुखदाई री ।
छुद्रघंटिका कटि में सोहत सोभा परम रसाला री ।
मनहुँ भवन सुंदरता को लखि बाँधी बंदन-माला री ।
पीत भगँा अति तन पै राजत उपमा यह बनि आई री ।
मनु घन में दामिनि लपटानी छबि कछु बरनि न जाई री ।
कोटि काम अभिराम रूप लखि अपनो तन मन वारै री ।
'हरीचंद' बृजचंद-चरन-रज लेत बलैया हारै री ।१७

दान-लीला, टोड़ी

ऐसी नहिं कीजै लाल, देखत सब बृज की बाल,
काहे हरि गये आज बहुतहिं इतराई ।
सूधे क्यों न दान लेव, अँचरा मेरो छाँड़ देव,
जामें मेरी लाज रहै करो सो उपाई ।
जानत बृज प्रीति सबै, औरहू हँसैंगे अबै,
गोकुल के लोग होत बड़ेई चवाई ।
'हरीचंद' गुप्त प्रीत, बरसत अति रस की रीति
नेकहू जो जानै कोउ प्रकटत रस जाई ।१८

मकर संक्रांति, टोड़ी

करत दोउ यहि हित खिचरी दान ।
जामें सदा मिले रहैं ऐसेहिं गौर-श्याम सुख-खान ।
चित्र बस्त्र धरि परम नेह सों जोरि पान सों पान ।
'हरीचंद' त्योहार मनावत सखि-जन वारत प्रान ।१९

ग्रीष्म ऋतु, सारंग

केसर-खौर श्याम-सुंदर-तन निरखत सब मन मोहै ।
मनु तमाल मैं चंपक बेली लपटि रही अति सोहै ।
मनु घन में दामिनि लपटानी उपमा को कवि को है ।
'हरीचंद' बन तें बनि आवत बृज-तिय मुख-छबि
जो है ।२०

प्रबोधिनी, यथा

कुंजन मंगलचार सखी री ।
थापे दीने कलस बधाये तोरन बाँधी द्वार ।
गावत सबै सोहग छबीली मिलि सब बृज की बाम ।
बन्ना बनि आयो नँद-नंदन मोहन कोटिक काम ।
रंग-रँगीली घोड़ी चढ़ि कै सिहरो सोहत सीस ।
देत असीस सासुरे की जब जीवो कोटि बरीस ।
बन्ना बहू पास बैठारी जोरि गाँठ इक साथ ।
'हरीचंद' को देत बधाई दुलहिन अपने हाथ ।२१

दीनता, यथा-रुचि

गुन-गुन बिट्ठल के कहँ लगि कोउ गावै ।
अमित महिम लघु बुद्धि सों कछु कहत न आवै ।
दैवी-जन अपने किये कलि जीव उबारै ।
माया-तिमिर मिटाय कै खल कोटि उधारै ।
अंगीकृत जाको कियो ताको नहिं त्याग्यो ।
अपराधहि मान्यो नहीं भक्तन अनुराग्यो ।
सरन परयौ त्रय ताप को मेट्यौ छन माहीं ।
'हरीचंद' की गहि भुजा यामें सक नाहीं ।२२

बिहाग

गावत गोपी कोकिल-बानी ।
श्रीबृषभानुराय से राजा कीरति सी जाकी पटरानी ।
गावत सारद नारद सुक मुनि सनकादिक ऋषि जानी ।
गावत चारिउ बेद शास्त्र षट् कहि कहि अकथ कहानी ।
गावत गुन अज ब्यासादिक शिव गीत परम रस-सानी ।
मन क्रम बचन दास चरनन की गावत 'हरीचंद'
सुखदानी ।२३

दान-लीला, सारंग

ग्वालिन दै किन गोरस दान ।
करु न पुन्य यह गोबर्धन गिरि तीरथ सों बढ़ि मान ।
गहन चिकुर मुख पूरन पै छाया सम लखु आन ।
बड़ो परब तुव भाग मिल्यो है करु न बिलम्ब सुजान ।
सिसुता पूरि प्रकट प्रति पद नव जोबन संधि-समान ।
'हरीचंद' कंचन-अंगन दै हरि सुपात्र पहिचान ।२४

अशीष, यथा-रुचि

चिरजीवो यह जोरी जुग-जुग चिरजीवो यह जोरी ।
श्रीजसुदानंदन मनमोहन श्रीबृषभानु-किशोरी ।
नित-नित ब्याह नित्य ही मंगल नित-नित सुख अति होई
श्री बृंदाबन-सुख-सागर को पार न पावै कोई ।

एक रूप दोउ एक बयस दोउ दोऊ चन्द्र-चकोरि ।
'हरीचंद' जब लौं ससि-सूरज तब लौं जीयो जोरि ।२५

ब्याहुला, यथा-रुचि

चलो सखी मिलि देखन जैये दुलहिन राधा गोरी जू ।
कोटि रमा मुख-छबि पै वारौं, मेरो नवल किशोरी जू ।
घँघरी लाल जरकसी सारी सोंधे भीनी चोली जू ।
मरवट मुख में शिर पै भौंरी मेरी दुलहिया भोली जू ।
नकबेसर कनफूल बन्यो है छबि कापै कहि आवै जू ।
अनवट बिछिया मुँदरी पहुँची दूलह के मन भावै जू ।
ऐसी बना-बनी पै री सखि अपनो तन मन वारी जू ।
सब सखियाँ मिलि मंगल गावत 'हरीचंद' बलिहारी जू।२६

श्रीस्वामिनी जी की बधाई

चलीं बधाई गावन के हित सुंदर बृज की नारी ।
अंचल उड़त हंस गति चंचल कर लै मंगल थारी ।
पीत बसन कटि कसन रसन छबि रसनि कहौं किमि गाई
दामिनि पै संध्या-धन तापै फिरि दामिनि लपटाई ।
नूपुर रुनित झनित कंकन कर हार चुरी मिलि बाजै ।
मनु आनंद भरि सब तन भूषन गाजत साजत राजै ।
चौमुख चारु दीप थालन पर मंगल साज सजाई ।
मनहुँ सनाल कमल पर कमला कनक-लता चढ़ि धाई ।
धावत खसत सुमन बेनी तें उपमा कह कवि हारैं ।
मनु कोमल पग गौनि चुकरगन फूल पाँवड़े डारैं ।
ऊँचे सुर गावत छबि छावत बरसावत रस भाई ।
इक सों इक बढ़ि अतिहि उतायल कीरति-मंदिर आईं ।
निरखत मुख सुख अत हिय बाढ़यो वारि सुनत मन दीनों।
आज सखी नँद के घर को सुख साँच बिधाता कीनों ।
नाचत मुदित करत कौतूहल गावत दै कर-तारी ।
'हरीचंद' आनँदमय आनँद जुगल इकत्र निहारी ।२७

बिहार, केदार

चले दोउ हिलि मिलि दै गल-बाहीं ।
फैली घटा चहूँ दिसि सुन्दर कुंजन की परछाहीं ।
अपने कर पिय श्रम-जल पोंछत प्यारी कह नहिं नाहीं ।
'हरिचँद' बिजन डोलावत श्रम
लखि बिधि हरि आदि सिहाहीं ।२८

रथ-यात्रा, सारंग

चारु चल चक्र चित्रित बिचित्रित परम
जगत-विजयी जयति कृष्ण को जैत्र रथ ।
अति तरलतर बलाहक शैब्य सुग्रीव मनिपुष्प
तुरँग योजित चलत पथ सुपथ ।
फहरत ध्वज उड़त नव पताका परम कलस
कल इन्द्र सम सकल चमकत अकथ ।
चक्र ता पर रह्यो तासु तल वायु सुत बिनत
बिनता-सुअन गरजि अरि करत हथ ।
खंभ कूबर छत्र चारु डाँड़ी चारु बिबिध
मनि-जटित उच्चरित बेद शब्द कथ ।
झाँझ झनकत करत घोर घंटा घहरि घने
घुँघरू थिरत फिरत मिलि एक जथ ।
झुखी सूरज-मुखी सूखी लखि जन दुखी
दैत्य-दल झलमलत झालरन मुक्त तथ ।
बैठि दारुक तदारुक करत अश्व को चलत
मन बेग-सम बेगगति शब्द नथ ।
देव-ऋषि करत जय-शब्द मुरछल ढुरत
सूत बंदी बिरत कहत बहु भाँति गथ ।
थकित 'हरिचंद' दृग सरस सोभा निखर
हरषि सुमनन बरषि लह्यो चारो अरथ ।२९

बाल लीला, यथारुचि

छोटो सो मोहन लाल छोटे-छोटे ग्वाल बाल
छोटी-छोटी चौतनी सिरन पर सोहैं ।
छोटे-छोटे भँवरा चकई छोटी-छीटी लिये
छोटे-छोटे हाथन सों खेलैं मन मोहैं ।
छोटे-छोटे चरन सों चलत घुटुरुवन
चढ़ीं ब्रज-बाल छोटी-छोटी छबि जोहैं ।
'हरीचंद' छोटे-छोटे कर पै माखन लिये
उपमा बरनि सकैं ऐसे कवि को हैं ।३०

आशिष, बिहाग

जुग जुग जीवो मेरी प्रान-प्यारी राधा ।
जब लौं जमुन-जल रबि ससि नभ थल
तब लौं सुहाग लहौ सुजस अगाधा ।
नित नित रूप बाढ़ो परस्पर प्रेम गाढ़ो
नवल बिहार करि हरौ जन-बाधा ।
'हरीचंद' दै असीस कहत जीओ लख बरीस ।
तुम्हरे प्रगट भये पूरी सब साधा ।३१

गणेश चतुर्थी को पद, राग यथा-रुचि

जय जय गोपी गणेश वृंदावन चिंतामनि
ऋद्धि-सिद्धि दायक ब्रजनाथ प्रान-प्यारे ।
बनिता कुच-मोदक गहि बार-बार केलि-करन
प्रिया-बेनिका-भुंजग हस्त-कंज धारे ।
मान-समय पद परसत अंकुसादि चिन्ह लसत

हँसत अभय बरद परम प्रान के रखवारे ।
शुंड दंड बाहु मेलि करनि सँग सुगज केलि
करत हैं 'हरिचंद' निरखि हरषि प्रानप्यारे ।३२

नित्य, विहाग

जय श्री मोहन-प्रान-प्रिये ।ध्रु०
श्री वृष-भानु-नन्दिनी राधे ब्रज-कुल-तिलक त्रिये ।
जा पद-रज सिव अज बंदत नित ललचत रहत हिये ।
तिन हरि सँग बिहरत निसंक निसि-दिन गलबाँह दिये ।
जा मुख-चंद-मरीच देखि सब ब्रज-नर-नारि जिये ।
तिनकी जीवन-मूरि होइकै सहजहि स्वबस किये ।
इंद्रादिक दिगपति जाके डर बरतत रुखहि लिये ।
'हरीचंद' सो मान जासु लखि सहजहि बहुत भिये ।३३

स्फुट, यथा-रुचि

जुरे हैं झूठे ही सब लोग ।
जैसे स्वामी परिकर तैसे तैसो ही संयोग ।ध्रु०
वे तो दीनानाथ कहाये करि इत उत कछु काज ।
एक एक की लाख इन्होंने गाई तजि कै लाज ।
जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो जाल फैलायो ।
मूँड़यो जिन्हैं मिटायो तिनको जग सों नाम धरायो ।
आजु नाहिं तो कल या आसा ही में दीनहिं राख्यो ।
'हरीचंद' मन लै निरमोहित श्वेत-कृष्ण नहिं भाष्यो ।३४

दीनता, देवगन्धार

जो पै श्री बल्लभ-सुत नहिं जान्यो ।
कहा भयो साधन अनेक मैं करिकै वृथा भुलान्यौ ।
बादि रसिकता अरु चतुराई जो यह जीवन जान्यो ।
मर्‌यौ बृथा विषयारस लंपट कठिन कर्म में सान्यो ।
सोइ पुनीत प्रीति जेहि इनसों बृथा बेद मथि छान्यो ।
'हरीचंद' श्रीबिट्ठल बिन सब जगत भूठ करि मान्यो ।३५

तथा, आसावरी

जे जन अन्य आसरो तजि श्री बिट्ठलनाथ हि गावैं ।
ते बिन श्रम थोरेहि साधन में भव-सागर तरि जावै ।
जिनके मात-पिता-गुरु बिट्ठल और कहूँ कोउ नाहीं ।
ते जन यह संसार-समुद्रहि बत्स-खुरन करि जाहीं ।
जिनके श्रवन कीरतन सुमिरन बिट्ठल ही को भावै ।
ते जन जीवन-मुक्त कहावहिं मुख देखे अघ जावै ।
जिनके इष्ट सखा श्रीबिट्ठल और बात नहिं प्यारी ।
तिनके बस में सदा सर्वदा रहत गोबर्द्धन-धारी ।
जिन मन-काय-करम-बच सब बिधि श्रीबिट्ठल-पद पूजो
ते कृत-कृत्य धन्य ते कलि में तिन सम और न दूजो ।
जो निसि-दिन श्री बिट्ठल बिट्ठल बिट्ठल ही मुख भाखैं ।
'हरीचंद' तिनके पद की रज हम अपने सिर राखैं ३६

बधाई, राग कान्हरा

जो पै श्री राधा रूप न धरती ।
प्रेम-पंथ जग प्रगट न होतो ब्रज-बनिता कहा करतीं ।
पुष्टिमार्ग थापित को करतो ब्रज रहतो सब सूनो ।
हरि-लीला काके सँग करते मंडल होतो ऊनो ।
रास-भध्य को रमतो हरि सग रसिक सुकबि कह गाते ।
'हरीचंद' भाव के भय सों भजि किहिके सरनहिं जाते ।३७

जय जय जय जय जय श्री राधा ।
जब तें प्रगट भईं बरसाने नासी जन के तन की बाधा ।
सब सखि आनंदित मन में अति चरन-कमल अवराधा ।
'हरीचंद' वृजचंद पिया को प्रेम-पंथ जिन साधा ।३८

श्री रामनौमी व दशहरा का कीर्तन, सारंग

जयति राम अभिराम छबि-धाम
पूरन-काम श्याम-बपुबाम सीता-विहारी ।
चंड कोदंड - बल खंड-कृत दनुज-बल
अनुज-सह सहज सुभ रूपधारी ।
रक्ष-कुल अनल बल प्रबल पर्जन्य सम
धन्य निज जन - पक्ष रक्षकारी ।
अवध-भूषन समर बिजित दूषन
दुष्ट बिगत दूषन चतुर धर्मचारी ।
खर प्रखर अगिन लंक दृढ़ दुर्ग
दल दलमलन बाहु मारीच-मारी ।
वैश्रवन अनुज घट-श्रवन रावन-शमन
शमन भय - दमन 'हरिचंद' वारी ।३९

जगाने के पद

जागो मेरे प्रान-पियारे ।
बलि बलि गई दिखावो ससि-मुख उठो जगत उँजियारे ।
मेटहु बिरह-ताप दरसन दै बोलहु मधुरे बैन ।
आलस भरे रैनि रँगराते खोलहु पंकज-नैन ।
मेरे सरबस जीवन माधव प्रात भयो बलि जागो ।
कछु अलसाय जँभाइ मंद हँसि 'हरीचंद' गर लागो ।४०

प्रबोधनी के पद, यथा-रुचि

जागो मंगल-मूरति गोविंद बिनय करत सब देव ।
तुव सोये सबही जन सोयो लखहु न अपनो भेव ।
बंदी वेद खरे जस गावत अस्तुति करत जुहारी ।
नारद सारद बीन बजावत जय जय बचन उचारी ।

किन्नर अरु गंधर्व अपसरा तुम्हारो ही जस गावैं ।
बाजन बिबिध बजाइ तुम्हे सब करि मनुहारि जगावैं ।
जग के मंगल काज होत नहिं बिनु तुव उठे कृपाल ।
तुव जागे सबही जग जागत तासों उठहु दयाल ।
निद्रा तजहु रमापति केशव चहुँ दिसि मंगल माचै ।
पंकज-नयन बिलोकि बिमल जस 'हरीचंदहू' बाँचै ।४१

ग्रीष्म ऋतु

झीनो पिछौरा सोहै आजु अति झीनो पिछौरा सोहै ।
चंदन लेप नँदनंदन-तन देखत ही मन मोहै ।
पारिजात मंदार रही लसि फूल-छरी कर लीन्हे ।
साँझ समय वन तें बनि आवत गोधन आगे कीन्हें ।
गोरज छुरित अलक सब सुंदर ब्रज-बालन दरसायो ।
'हरीचंद' मुख-चंद देखिकै बासर-ताप नसायो ।४२

दीनता, यथारुचि

तुम सम नाथ ओर को करिहैं ।
हमसे हीन दीन जनहू पै कौन कृपा बिसतरिहै ।
को निज बिरद सम्हारन कारन दौरि दीन दुखहरिहै ।
जानि क्षुधित 'हरिचंद' असन को भेजि क्षुधा परिहरि है ।४३

अशीष, कान्हारा

तिहारो घर सुबस बसो महरानी ।
कीरति जू तुम्हरे घर प्रगटीं वृज-जननी ठकुरानी ।
जाके भये सकल सुख बरसै जिमि सावन को पानी ।
अति आनंद भयो गोधन में हम यह आगम जानी ।
कोउ गावै कोउ देत बधाई बेद पढ़त मुनि ज्ञानी ।
'हरीचंद प्रगटी श्री राधा मोहन के मन-मानी ।४४

दीनता, यथा-रुचि

तेई धनि धनि या कलयुग में जिन श्री जाने बिट्ठलनाथ ।
जीवन जगत सुफल तिनहीं को जौन बिकाने इनके हाथ ।
धरम-मूल इक इनकी पद-रज इनके दासहि सदा सनाथ ।
भक्ति-सार इनको आराधन इनहीं को गावत श्रुति गाथ ।
इनके बिनु जे जीवत जग में ते सब श्वास लेत जिमि भाथ ।
'हरीचंद' चलु सरन इनहिं के धरिकै चरनन पर निज
माथ ।४५

सेहरा यथा-रुचि

दूलह श्री बृजराज फूलि बैठे कुंजन आज ।
फूलन को सेहरो फूलन के अभरन के सब साज ।
फूलि सखि गीत गावैं देव फूल बरसावै फूल्यो सकल समाज
फूली श्रीराधाप्यारी देखि फूली बृजनारी 'हरीचंद'
फूल्यो अति आज ।४६

दान-एकादशी और बावन द्वादशी

दान लेन द्वै ही जन जान्यो ।
कै तुम नन्दराय के ढोटा कै बावन बलि छल ठान्यो ।
तीन पैर कहि छोटे पग सों उन छल करि कै देह बढ़ाई ।
तुम गोरस के मिस कछु औरे रस लीनो छलिकै बृजराई ।
वे छोटे कपटी तुम खोटे एकहि से विधि रचे सँवारी ।
'हरीचंद' वे तो बावन रहे तुम छप्पन निकसे गिरधारी ।४७

दान एकादशी

देखे आजु अनोखे दानी ।
जाचक-पन में इती ढिठाई लाल कौन यह बानी ।
रार करत कै गोरस माँगत सो कछु बात न जानी ।
'हरीचंद' कुल-दीपक ढोटा कौन रीति यह ठानी ।४८

नित्य, टोड़ी

देखौ जू नागर नट, ठाढो जमुना के तट,
पर मग कोउ चलन न पावै ।
काहू को हरत चीर, काहू को गिरावै नीर,
काहू की ईंडुरी दुरावै ।
श्याम बरन तन सीस टिपारो
सोभा कहि नहिं आवैं ।
'हरीचंद' हँसि हँसि नयनन आवत
तन-मन सबहि चोरावै ।४९

मकर संक्रांति का और संक्रांति के दिन गायबे को पद,

राग यथा-रुचि

दुतिय नृप भानु छठी तजु मान ।
करन चतुर्थ सदा सौतिन हिय कटि पंचमी सुजान ।
तो सम माती नाय और कोउ नव मन दम तू बाल ।
तुव बिन आठ बेदना पावत व्याकुल पिय नँदलाल ।
दसम केतु पीड़त पिय कों अति निज दुख अगिनि बढ़ाय ।
करु अभिषेक अमृत एकादस कुच पिय के हिय लाय ।
द्वादश बिनु जल तिमि हरि तुव बिन लग तनि प्रथम न नेक
'हरीचंद' ह्वै तृतिय पिया सँग करु संक्रमन बिवेक ।५०

नित्य, यथा-रुचि

दोउ मिलि पौढ़े सुख सों सेज ।
करत भावती रस की बतियाँ बाढ़े मदन मजेज ।
बतियन ही कछु अनरस ह्वै गयो प्रिया रही करि मान ।

बोलन नहिं कछु मौन ह्वै रही भौंह जुगल-धनु तान ।५१

ब्याहुला, यथा रुचि

दोउ जन, गाँठि जोरि बैठारे ।
बिहँसत दोउ मुख देखि परस्पर चितवत होत सुखारे ।
दूलह दुलहिन को आनँद लखि बढ़्यो अनंद अपार ।
'हरीचंद' को पकरि नचावत गारि देत ब्रज-नार ।५२

ग्रीष्म ऋतु, यथा-रुचि

दोउ मिलि विहरत जमुना-तीर मैं ।
करि कर के जलयंत्र चलावत भींजि रही लट नीर मैं ।
इत उत तरत सखी जन सोहत मनहुँ कमल जल भीर की
छींट उड़ावत हँसत हँसावत बोलनि मनु पिक कीर की ।
साँवरे अंग गौर तन सोहत लपटनि भींजे चीर की ।
'हरीचंद' लखि तन मन वारत
छबि राधा-बलबीर की ।५३

बिरह

न जानी ऐसी हरि करिहैं ।
हमरे द्वै द्विजन के द्वै हैं दया न जिय धरिहैं ।
होत सामनो जिनि हँसि चितवत भाव अनेक कियो ।
तिन अब मिलतहि सकुचि इतै सों मुखहू फेरि लियो ।
मान्यो तिन्हैं काम नहिं हमसों तासों निठुर भये ।
'हरीचंद' ब्रजनाथ नाम की लाजहि ज्यों मिटये ।५४

नित्य, यथा-रुचि

नागरी रूप-लता सी सोहै ।
कमल सो बदन पल्लव से कर पद देखत ही मन मोहै ।
अतसी-कुसुम सी बनी नासिका जलज-पत्र से नयन ।
बिम्ब से अधर कुन्द दन्तावलि मदन-बान सी सयन ।
गाल गुलाब कान झुमका मनु करनफूल के फूल ।
बेनी मानों फूल की माला लखि कै मन रह्यो भूल ।
बाहु सुढार मृनाल-नाल सम फूल सरिस सब अंग ।
फूलन ओट लगे हैं द्वै फल बाढ़त देखि अनंग ।
जानु बनी रम्भा की खम्भा सोभा होत अपार ।
गूलरि-फूल-सरिस कटि राजत कविजन लेहु बिचार ।
नारंगी सी एँड़ी राजत पद-तन मनहुँ प्रवाल ।
और आभरन बिविध फूल बहु कर पहुँची उर माल ।
चम्पै सी देह दमक दवना सी चमक चमेली रंग ।
मालति महल लपट अति आवत कोमल सब अँग अंग ।
रसिक सिरोमनि नंदलाल सोइ भँवर भये हैं आइ ।
देखि देखि छबि राधा जू की हरीचंद' बलि जाइ ।५५

जल-बिहार

नाव चढ़ि दोऊ इत उत डोलैं ।
छिरकत कर सों जल जंत्रित करि गावत हँसत कलोलैं ।
करनधार ललिता अति सुंदर सखि सब खेवत नावैं ।
नाव-हलनि मैं पिया-बाहु मैं प्यारी डरि लपटावैं ।
जेहि दिसि करि परिहास झुकावहिं
सबही मिलि जल-यानै ।
तेहि दिसि जुगुल सिमिटि झुकि
परहीं सो छबि कौन बखानै ।
ललिता कहत दाँव अब मेरी तू मों हाथन प्यारी ।
मान करन की सौंह खाइ तौ हम पहुँचावैं पारी ।
हँसत हँसावत छींट उड़ावत विहरत दोऊ सोहैं ।
'हरीचंद' जमुना-जल फूले जलज सरिस मन मोहैं ।५६

बधाई, यथा-रुचि

प्रकटे रसिक जनन के सरबस ।
जसुमति-उदर अलौकिक वारिधि
श्याम कला-निधि निध-रस ।
पसरति चन्द्रकला सो पूरब उज्ज्वल बिमल बिसद जस।
'हरीचंद' ब्रज-बधू चकोरी सहजहि कीन्ही निज बस।५७

प्रगटे प्राननहूँ तें प्यारे ।
नंद-भवन आनंद-कलानिधि जसुमति मात दुलारे ।
आजु भयो साँचो आनँद भुव फले मनोरथ सारे ।
'हरीचंद गोपिन के सरबस सब ब्रज के रखवारे ।५८

वियोग

पिया बिनु बीत गये बहु मास ।
दिन दिन मदन सतावत अति ही बाढ़त बिरह-हरास ।
छन छन छीजत छकत छबीली छलकत छाँड़ि अवास ।
बेगि कृपा करि आवहु माधव 'हरीचंद' गुन-रास ।५९

दूती, यथा-रुचि

प्यारी मो सों कौन दुराव ।
कहि किन अरी अनमनी सी क्यों काहे को जिय चाव ।
काहे को अँसुवन सों मुख धोवत वारी नेक बताव ।
'हरीचंद' क्यों कहत न मोसों प्यारी लाइ मिलाव ।६०

नित्य विहार, विहाग चौताला

प्यारी के कुंज पिय प्यारो आवत
हरिहि धाय भुजन भरि लीनो ।
उमँगि मिले छतियन सों लपटे दोऊ
चलत न मारग रुक्यो रँग-भीनों ।

जित की तित रहि खरी सखियाँ
सब छूटत भुजन अलिंगन दीनो ।
'हरीचंद' जब बहुत सँभराये तब
क्योंहँ गमन मलहन में कीनो ।६१

विहाग तथा

प्यारी लाजन सकुची जात ।
ज्यों ज्यों रति प्रतिबिंब सामुहे आरसि माँह लखात ।
कहत लाख यहि दूर राखिये बल करि कर्षत गात ।
'हरीचंद' रस बढ़त अधिक अति
ज्यों-ज्यों तीय लजात ।६२

संक्रांति, यथा-रुचि

प्यारे इतही मकर मनावहु ।
ताती खिचरी सुखद अरोगौ हम कहँ सुख उपजावहु ।
बड़ो परब है आजु श्याम घन कहूँ न चित्त चलावहु ।
'हरीचंद' मिलि देहु महा सुख मेरी लगन पुजावहु ।६३
प्यारे जान दैहौं आज ।
कोटिन मकर करो नहिं छाँड़ौं प्राणनाथ ब्रजराज ।
मीन मेख बिनु बात करत तुम कहूँ मिथुन ललचाने ।
धनि धनि पिय तुम तुल नहिं दूजो सबके घटन समाने
करकत हिय बीछी सी बातैं सौतिन सँग जो कीनी ।
तासों राखौं लाय हिये अब करि करि अधिक अधीनी ।
तौ वृषभानु राय की कन्या जौ अब तुमहिं न छाँड़ौं ।
बड़ो परब यह पुन्य उदय मोहिं मिलि तुमसों रँग माँड़ौं ।
दच्छिन होन देउँ नहिं कबहूँ करौ लाख चतुराई ।
'हरीचंद' मेरे अयन बिराजौ सदा अबै बृजराई ।६४
पिया सों खिचरी क्यों तू राखत ।
कहा मान करि बैठि रही है कछुक बचन नहिं भाखत ।
यह संक्रम खिचरी को आली मानहिं दूरि न राखत ।
'हरीचंद' पिय सों खिचरी सी मिलि
क्यों रस नहिं चाखत ।६५
प्यारी जू के तिल पर हौं बलिहारी ।
सब सखियन की डीठि डिठौना रति-रतिपति मद-हारी ।
श्याम सरूप बसत बनि सूछम सोइ दरसावत प्यारी ।
'हरीचंद' हरि पीर-मिटावन एक यहै गुनकारी ।६६

परंपरा छप्पै

प्रथम नौमि गोपी पति-पद-पंकज अरुनारे ।
पुनि शिव-नारद-व्यास बहुरि सुक मुनि मतवारे ।
विष्णु स्वामि पुनि बंदि बिल्वमंगल-पद बंदत ।
श्री वल्लभ-चरनारबिंद जुग नौमि अनंदत ।
श्री बिट्ठल तिनकी दोऊ बिधि संतति जो अबलौ प्रगट
तेहि बंदत नित 'हरीचंद' यह परंपरा मत की उघट ।६७

जाड़े मे सैन समय गाइबे के पद

प्यारी को खोजत हैं पिय प्यारो ।
मिलि रहि दीपावलि मैं झिलमिलि फैलो बदन उजारो ।
नूपुर-धुनि सुनि जानि नवेली गहि ल्यायो पिय न्यारो ।
'हरीचंद' गर लाइ मनायो दीप-दान त्योहारो ।६८

बधाई

प्रगटी सुंदरता की खान ।
श्री बृषभानु राय के मंदिन राधा परम सुजान ।
गावत गोपी गीत बधाई बाजत तूर निसान ।
अंबर देव फूल बरसावत चढ़ि चढ़ि दिव्य बिमान ।
जाचक भये अजाचक सिगरे पाइ सबिधि सनमान ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया की जोरी अति सुखदान ।६९

ग्रीष्म ऋतु में, राग वृंदावनी सारंग

प्यारी मति डोलै ऐसी धूप में ।
तेरे मैं तो वारी गई री ।
जाके हेतु फिरत तू बन बन सो तोंहि आपुहि बोलै ।
तेरे मैं तो वारी गई री ।
चलि किन कुंज उसीर-महल तू करु पिय संग कलोलै ।
तेरे मैं तो वारी गई री ।
'हरीचंद' मिलि ठीक दुपहरी सुरति अमृत रस घोलै ।
तेरे मैं तो वारी गई री ।७०
पिय मेरे अंकन सुरथ बिराजौ ।
सुरँग चूनरि झालरि झूमत मोती-लर बहु साजौ ।
किंकिन कलहु घंटिका बाजनि चँवर चिकुर चल सोहै ।
अंचर ब्यजन चलनि मनमोहन सबही बिधि जिय मोहै ।
कोक-कला कल चक्र चपलबर तुरँग उछाह लगाये ।
नेह-डोर-बल सेज-भूमि पै करि मनुहार चलाये ।
अधर-सुधा-मधु भेंट करौंगी स्वेद कुसुम बरसाई ।
'हरीचंद' बलि बेगि पधारौ जानि-सिरोमनि राई ।

नित्य, राग षट

प्रात समय उठतहिं श्रीवल्लभ यह मंगलमय लीजै नाम ।
कोटि बिघन-वारन पंचानन सब विधि समरथ पूरन काम
अघ-नासन करुनानिधि दीनानाथ पतितपावन सुखधाम
सुमिरन मात्र हरन जन-आरति
मोहन कोटि कोटि रति-काम ।
रहिये इनकी सरन सदा चलि
बिकि जैये इन कर बिनु दाम ।
'हरीचंद' निरभय इन चरननि
छत्र-छाँह कीजै विश्राम ।७२

गरमी में सेहरे को पद, राग यथा-रुचि

फूल्यो सो दूलह आजु फूल ही को साजै साज

फूल सी दुलही पाइ फूल्यो फूल्यो डोलै ।
केसरी बन्यो है बागो मोनि की कोर लगो
फूल झरै जब वह मुख बोलै ।
फूल को सिहरो सीस फूलन की मालकंठ
फूले फूले नयन दोऊ लगे अनमोलै ।
'हरीचंद' बलिहारी निज कर गिरिधारी
कली सी दुलहिया को घूँघट खोलै ।७३

फूलहु को कँगना नहीं छूटत कैसे हो बलबीर जू ।
जानि परी सब आजु तुम्हारी नामहिं के रनधीर जू ।
दूध पिवाओ जसुदा मैया जा दिन कों सो आयो ।
चोरि चोरि कै माखन खायो सो बल कहाँ गँवायो ।
तारी दै दै हँसी सखी सब आजु परी मोहिं जानी ।
सुनि कै तिनकी बात दुलहिया घूँघट में मुसक्यानी ।
कोटि जतन कोऊ करि हारौ लग्री लगन नहिं टूटै ।
'हरीचंद' यह प्रेम-डोलना को कैसे करि छूटै ।७४

फूल को सिंगार करत अपने हाथ प्यारो ।
फूलन की कलियन को आभरन सँवारो ।
पाटी पारि अपने हाथ बेनी गुथि बनावै ।
सीसफूल करनफूल लै लै पहिरावै ।
कंचुकि पहिरावत मैं चपलई कछु कीनी ।
प्यारी मुसकाय आँखि नीची करि लीनी ।
किंकिन पहिराय झवा लहँगा पहिरायो ।
देखि देख मुदित होत प्यारो मन-भायो ।
पायल पहिरावन को चित्त जबै कीनो ।
प्रान-प्यारा सोचि चरन तब छिपाय लीनो ।
प्यारी को सँकोच जानि प्यारे इमि भाख्यो ।
मान समय कोटि बार इनहिं सीस राख्यौ ।
पायल मग बाँधि फूल-माला पहिराई ।
अपने कर नंदलाल आरसी दिखाई ।
प्यारी तब धाई पिया-कंठहि लपटाई ।
'हरीनंद' बार बार लखिकै बलि जाई ।७५

रास के पद

फिरि लीजै वह तान अहो पिय फिर लीजै वह तान ।
नि नि ध ध प प म म ग ग रि रि सा सा मोहन चतुरसुजान
उदित चंद्र निर्मल नभ-मंडल थकि गये देव-बिमान ।
कुनित किंकिनी नूपुर बाजत झनझन शब्द महान ।
मोहे शिव ब्रह्मादिक वहि निसि नाचत लखि भगवान ।
'हरीचंद' राधा-मुख निरखत छूट्यो सुर-तिय मान ।७६

विहार, बिहाग

बैठे दोउ अपने सुख मिलि ।
ऊँचे महलन के चौबारे
सरद-चाँदनी चहुँ दिसि रही खिलि ।
प्रिया करत कछु बिनय लाल सुनि
सहि न सकत जिय बिबस जात हिलि ।
कहि बस बल 'हरिचंद' अंश पर
दुरत अधर में अमर रहत रिलि ।७७

अगहन मे राजभोग समय, सारंग

बारो असि मेरो लाल सोइ उठत प्रातकाल
कहा तीर कैसो चीर झूठही अँगराती ।
चोरी लाइ छिनारो लावत
तुम ग्वालिन मद-माती ।
इहि मिस नित उठि देखन आवत
अपने मन क्यों नहिं समुझावति ।
यौवन के रस चूर फिरत
तुम घर घर में इतराती ।
'हरीचंद' धरन जाहु, लालहिं मति दोष लाहु,
कहत बात क्यों बनाइ कापै इठलाती ।७८

बिहार, केदारा

बैठे लाल जमुना जू के तट पर ।
ग्रीष्म ऋतु जान अति सुख माना
मान संग सब गोपी चतुरतर ।
व्यजन चँवर दुरत चहुँ दिसि तें
सोभित सुभग नवल बर ।
'हरीचंद' चंद-बदन हरि की छबि लखि
कोटि काम वारि गयो एक एक पद-नख पर ।७९

तथा, कलिंगड़ा

बीती निसि तिय सोवन दीजै यह ललिता लै बीन बजायो ।
चौंकि परे दोउ भोर जानि तब रसमसे नैननि आलस आयो
सीरे जानि हार उर के पिय करि मनुहार तियाहि सुनायो ।
'हरीचंद' संगम-सुख-शोभा
सो कैसे कहि जात सुनायो ।८०

रास को पद, भैरव

बृंदाबन उज्जल बर जमुना-तट नंदलाल
गोपिन सँग रहस रच्यो सरद जामिनी ।
निरतत गोपाललाल सँग में ब्रज-बाल बनी ।
अद्भुत गति लेत कोक-कलित कामिनी ।
लाग डाँट सुर-बँधान गावत अचूक तान
ततथेइ ततथेइ थेई गति अभिरामिनी ।
गोपिन सँग श्याम सुँदर मंडल-मधि सोभित अति
बिहरत बहु रूप मानों मेघ दामिनी ।
थाक्यो नभ चंद देखि रैनि सिथिल भई
लखि हरि गजपति संग गज-गामिनी ।
'हरीचंद' सोभा लखि देव-मुनि नभ बिथकित
मानी हरि साथ सबै ब्रज-भामिनी ।८१

वामन द्वादशी की बधाई, सारंग

बलि कीनो सो कौन करै ।
सरबस हरिहि समर्पि प्रेम सों
जगत-सीख हित को निदरै ।
द्विज-सनमान दान बच-पालन
दृढ़ व्रत को हठि नाहिं टरै ।
आत्म-समर्पन दास्य भाव निज
करि आग्रह को जीय धरै ।
हरि जस स्वामि प्रगटि दिखरायो
जामें संका सकल जरै ।
प्रभु-प्रतिकूल गुरुहि निज छाँड़यो
यह अनन्य मत को बिचरै ।
राजहु गये साप गुरु दीनों
आपु बँधे पै कौन डरै ।
'हरीचंद' दृढ़ता की दुन्दुभि
जग बजाइ इमि कौन तरै ।८२

बेदन में निज महिमा थापन
गये त्रिबिक्रम आजु सुरारी ।
सब सग ब्यापकता दिखराई
सबन प्रत्यक्ष दीन-हितकारी ।
औरहु एक भेद है यामें जो
प्रगट्यो या भेष खरारी ।
बामनहूँ बपु सब सों ऊँचे
त्रिभुवन-दायक जदपि भिखारी ।
जग-दाता विराट बपु की फिरि
कहौ महिम को कहै बिचारी ।
'हरीचंद' छोटे-पनहूँ में जब
सब ही सों बढ़ि बनवारी ।८३

बलिहि छलन गये आपु छलाये ।
माँगत दान दियो अपुने को
बाँधि एक छन जनम बँधाये ।
प्रनतारतिहर भगत-बछल प्रभु
साँच नाम निज करि दिखराये ।
'हरीचंद' सुर-काज करन गये
असुरराज थिर करि हरि आये ।८४

बलि की मति पर बलि बलिहारी ।
सिखयो जगहि समर्पन जिन निज गुरु की आयसु टारी ।
हरि सों बढ़ि सुपात्र जग नाहीं बलि सों बढ़ि के दाता ।
भूमि-दान सम दान नहीं यह थापी तीनहुँ बाता ।
दृढ़ बिस्वास अचल निज मत हठ कबहुँ न डिगत डिगाये ।
याही तें बहुरु करि हरि को रहत द्वार बैठाये ।
सेवक-स्वामि अनन्य भये मिलि गति नहिं परत लखाई ।
इनमें को बढ़ि को घटि यह
किमि 'हरीचंद' कहि गाई ।८५

भोजन के पद, राग यथा-रुचि

भोजन करत किशोर-किशोरी ।
कुंज महल में परि गै परदा सखि ठाढ़ी चहुँ ओरी ।
ललिता लै आई भरि थारी ताती खिचरी कोरी ।
तामें घृत डार्‌यो बहुतै करि रुचि बाढ़ी नहिं थोरी ।
हँसत परसपर खात खवावत बँधे प्रेम की डोरी ।
'हरीचंद' बलि बलि जोरी पर बरनि सकै सो कोरी ।८६

संक्रान्ति के पद, राग यथा-रुचि

भागन पाइये जू लालन बैस-संधि-संक्रौन ।
तिय तिथि पाइ ब्यापि गई तन में चलौ किन राधा-रौन ।
बाल-तरुनई-मिलन पुन्य-छन अति थोड़े ही बेर ।
ललिता बनि ज्योतिषी बतावत समय न पैहौ फेर ।
कुंज-कुटी तीरथ में चलि कै करहु स्वेद-अस्नान ।
'हरीचंद' अलि याचक को मिलि देहु दोऊ सुखदान ।८७

मकर संक्रोन सखी सुखदाई ।
मकर कुंडल सों मकर बिलोचनि क्यों न मिलत तू धाई ।
मकरकेतु को भय नहिं मानत घर में रही छिपाई ।
वे तुव बिनु भे मकर बिना जल ब्याकुल मुकरन पाई ।
मान मान तजु मान धरम कर कर धरि लै गर लाई ।
'हरीचंद' तजु मकर राधिके रहु त्यौहार मनाई ।८८

स्फुट, यथा-रुचि

मन तुहिं कौन जतन बस कीजै ।
काहू सों जिय भरत न तेरो कहाँ-कहाँ चित दीजै ।
ज्ञान कर्म कुल नेम धर्म सों होत न तोहिं संतोष ।
घर घर भटकत डोलत धायो किये अनेक भरोस ।
कामादिक नित काम तिहारे सो नहिं क्योंहूँ मानै ।
सहस सहस नित करत मनोरथ ताहि कौन बिधि जानै ।
कछु पूरो नहि परत पतन नित तीव्र चाह बढ़ावै ।
'हरीचंद' क्यों छाँडि न सब
को पिय-पद में चित लावै ।८९

बाल-लीला, बिलावल

मनिमय आँगन प्यारो खेलै ।
किलकि किलकि हुलसत मनहीं
मन गहि अँगुरी मुख मेलै ।
बड़भागिनि कीरति सी मैया मोहन लागी डोलै ।
कबहुँक लै झुनझुना बजावति मीठी बतियन बोलै ।
अष्ट सिद्ध नव निधि जेहि दासी सों ब्रज सिसु-बपुधारी ।

जोरी अविचल सदा विराजो 'हरीचंद' बलिहारी ।९०

तथा, आसावरी

मेरो लाड़िलो गोपाल माई साँवरो सलोना ।
जाके हित लाई मैं सुरँग खिलौना ।
छाँड़ो हठ वारने हों बार बार जाऊँ ।
मुख देखि लालन को नैनन सिराऊँ ।
बृज को उँजियारो मेरो छोटो सो लाला ।
मानै मेरोई कह्यो ऐसो सुभ चाला ।
तुम्हरे हित खोजूँ लाल दुलही इक छोटी ।
मिलि खेलै लालन के रहै संग जोटी ।
माखन मिसरी हौं दैहौं चाखो मेरे प्यारे ।
छाँड़ो मचलाई लाल नंद के दुलारे ।
हौं तो सँग लागी फिरौं पलकहू न त्यागों ।
पालने झुलाऊँ गीत गाऊँ अनुरागों ।
हौं तो माता हूँ तेरी मेरी बात मानो ।
'हरीचंद' बलिहारी आर नाहिं ठानो ।९१

रथ-यात्रा, सारंग

मेरे मन-रथ चढ़ि पिय तुम आवो ।
चारु चक्र बुधि बल छल साहस लगन की डोर लगावो।
चपल तुरंग मनोरथ बहु बिधि निर्भय छत्र छवावो ।
'हरीचंद' गर लागि हमारे प्रेम-ध्वजा फहरावो ।९२

बधाई, यथा-रुचि

मंगलमय सब ब्रज-बासी लोग ।
मंगलमय हरि जिन घर प्रकटे मिले अमंगल भव के सोग।
मंगल ब्रज बृंदाबन गोकुल मंगल माखन दधि घृत भोग।
'हरीचंद' बल्लभ-पद मंगल गोपी-कृष्ण-संयोग ।९३

मान को पद, बिहाग

मेरी री मत कोउ होउ बसीठि ।
मैं उनकी वे मेरे रहिहैं सदा दिए मैं पीठ ।
मैं मानिन वे मनावनहारे मेरी उनकी मिलि दीठि ।
'हरीचंद' मिलिहौं मैं उनसों लै मनुहार न नीठि ।९४

नित्य, यथा-रुचि

मेरेई पौरि रहत ठाढ़ो टरत न टारे नंदराय जू को ढोटा ।
पाग रही भुव ढरकि छबीली यामें बाँधो है मंजुल चोटा।
चितवत हँसि फिरि मों तन हेरत कर लै बेनु बजावत ।
धरि अधरन वह ललन छबीलो नाम हमारोइ गावत ।
कर लै कमल फिरावत चहुँ दिसि मों तन दृष्टि न टारै ।
'हरीचंद' मन हरि लै हमरो हँसि हँसि पाग सँवारे ।९५

मारग रोकि भयो ठाढ़ो जान
न देत मोहिं पूछत है तू को री ।
कौन गाँव कह नाम तिहारो
ठाढ़ी रह नेक गोरी ।
कित चलि जात तू बदन दुराए
एरी मति की भोरी ।
साँझ भई अब कहाँ जायगी
नीकी हैं यह साँकरी खोरी ।
बहुत जतन करि हारि ग्वालिनी
जान दियो नहिं तेहि घर ओरी ।
'हरीचन्द' मिलि बिहरत दोऊ
रैननि नन्दकुँवर श्री बृषभानुकिसोरी ।९६

ग्रीष्म को पद, यथा-रुचि

भोज भरे दोउ हौज किनारे
बैठे करत प्रेम की बतियाँ ।
ग्रीषम ऋतु लखि सखिन बनायो
मंजु कुंज रचि पुहप-पतियाँ ।
शीतल पवन परसि जल-कन मिलि
सीतल भईं सरससी रतियाँ ।
'हरीचंद' अलसाने दोऊ मुरि मुरि
बिहँसि रहत लगि छतियाँ ।९७

राग, यथा-रुचि

मोहन लाल के रस सानी ।
तन की सुधि न भवन की बुधि
कछु डोलत फिरत दिवानी ।
उघरि कहत पिय गुन सब
ही से गावत कोकिल-बानी ।
बिथुरी अलक सरकि रह्यौ
अंचल चंचल चखन लखानी ।
पिय-रस-मत्त छकी आसव सी
पिय के रूप लुभानी ।
पिय के ध्यान मूँदि रही
लोचन अन्तरगति प्रगटानी ।
उझकि ललकि चौंकति भुज भरि
भरि इमि सुख रहत भुलानी ।
निज मन हँसत मौन ह्वै
बैठति रोवति कहत कहानी ।
'हरीचन्द' इक रस हरि के रँग
दिन-निसि जात न जानी ।
प्रेम-समुद तन-नाव डुबोयेहु
प्रेम-ध्वजा फहरानी ।९८

बिजय दशमी, मारू

मान गढ़-लंक पर बिजय को मानिनी

आज ब्रजराज रघुराज बनि कै चढ़े ।
भृकुटि-धनु नयन-शर बिकट संधानि कै
मुकुट की ढाल करबाल अलकन कढ़े ।
कोकिला कड़कि उघरत कड़खैत ही
बदत बन्दी बिरद भँवर आगे बढ़े ।
कोक की कारिका बानरी सैन लै
दास 'हरीचंद' रति-बिजय आनँद मढ़े ।९९

आशीष, कान्हरा

माई तेरो चिरजीवो गोबिन्द ।
दिन दिन बढ़ो तेज बल धन जन ज्यों दूइज को चंद ।
पालो गोकुल गोपी गो सुत गाय गोप सानंद ।
हरो सकल भय निज भक्तन को नासौ सब दुख-दुन्द ।
हर्षित देखि गोद में अनुदिन रोहिनि जसुदानंद ।
लगौं बलाय प्रान-प्यारे की मम बैननि 'हरिचंद' ।१००

जाड़े में पौढ़िबे को पद, बिहाग

रजाई करत रजाई माँहीं ।
राजा कृष्ण राधिका रानी दिये बाँह में बाँहीं ।
सुखद सेज सोइ राजसिंहासन छत्र ओढ़ना सो है ।
चँवर चिकुर डोलत चहुँ दिसिते को वह जो नहिं मोहै ।
बजत निसान जीति जग कंकन किंकिन को बहु भाँती ।
झरत बादला मोती दीनी सोइ दीनन मनि-पाँती ।
बँधुआ मदनहिं बाँधि मँगायो लै पाइन तर पेल्यो ।
कियो खिराज सकल सुख संपति आनँद-सिंधु सकेल्यो ।
तब बंदीजन वेद श्वास कढ़ि पढ़यौ बिरद अकुलाई ।
कियो स्वेद अभिषेक रीझि कच-खसित कुसुम झर लाई ।
राजतिलक सिर दियो महावर अधर-सुधा नजरानो ।
तिहि लहि सर्वस दियो सरोपा साथ नील पट बानो ।
नाची बेसर वारिमुखी तहँ परमानँद रह्यो छाई ।
'हरीचंद' अवसर तब लखि कै प्रेम-जगीर दिखाई ।१०१

रास, यथा-रुचि

राधिकानाथ के साथ ब्रज-बाल सब
नवल जमुना-पूलिन रास राच्यो आज ।
लेत संगीत गत शब्द उघटत बिबिध
एक गावत राग सुरन साँच्यो आज ।
तत्तथेई तत्तथेई प्रकट धुनि होत तहँ
बजत किंकिनि चुरी आनंद माच्यो आज ।
थकित सुर गगन 'हरीचंद' निज तियन सह
देखि जब मुदित नँदनंदन नाच्यो आज ।१०२

नित्य, बधाई

राधिका मंगल को नव बेलि ।
जा दिन प्रकटी बरसाने में सब सुख धरेउ सकेलि ।
नित नव आनंद नित नव मंगल नित नव नौतन केलि ।
'हरीचंद' बिहरति प्रीतम सों कंठ भुजा उर मेलि ।१०३

बिहार, बिहाग

रसिक गिरिधर सँग सेज सोई भली ।
रीझि पिय देत सुखदान कीरति-लली ।
उझकि झुक चूमि मुख लूटि रस अधर-सुख
मेटि जिय दुसह दुख करत नव रँग-रली ।
भुजन सों भुज बँधे अंग प्रति अँग सधे
कसमसक कुम्हिलात सेज कुसुमन-काली ।
अंग उमंगे रंग पिया प्यारी संग प्रेम-रति
जंग पद मदन-मद दलमली ।
सखी 'हरीचंद' रही रीझि तन-मन वारि
करत गुन-गान रसमत्त चहुँ दिसि अली ।१०४

रसबस में निसि जात न जानी ।
कहत सुनत कछु हँसत हँसावत
दृग जोरत छन-सरिस बिहानी ।
आलस बिबस जम्हात परस्पर
कहि बलिहार मधुर सुर बानी ।
रूह लालची दृग नहिं झपकत
जागत ही निसि सकल सिरानी ।
अरुझे प्रेम-फंद नहिं सुरझत
मुख चूमत हरि राधा रानी ।
'हरीचंद' सखि-गन सोइ गावत
जुगल-प्रेम की अकथ कहानी ।१०५

नित्य

लालन पौढ़े हौं बलि जाऊँ ।
चाँपौं चरन कहानी भाषौं करि मनुहार सोवाऊँ ।
सीत-भीत परदा बहु डारौं नवल अंगीठी लाऊँ ।
सरस रंग परिमल कोमल अति चारु रजाई उढ़ाऊँ ।
मधुरे गुन गाऊँ प्यारे को करि मनुहार मनाऊँ ।
'हरीचंद' पौढ़ो प्रिय लालन हौ तेरे बलि जाऊँ ।१०६

स्फुट

लाल यह तौ तुरकन की चाल ।
दुख देनो गल रेति रेति कै करनो ताहि हलाल ।
जब बध करनो होइ बधो तौ क्यों खेलत यह ख्याल ।
एक हाथ में काम बनैगो छूटैंगे भव-जाल ।
कै मारो कै तारो मोहन कै मोहि करौ निहाल ।
'हरीचंद' मति यों तरसाओ बहुत भई नँदलाल ।१०७

रथ सारंग

लाल नहिं नेकौ रथहि चलावै ।

गली साँकरी अटकि रह्यौ रथ नहिं कहुँ इत उत जावै ।
उत वृषभानु-कुमारि अटा पे ठाढ़ी दृष्टि न टारै ।
इत नँदलाल रसिकबर सुंदर इक टक उतहि निहारै ।
ये हँसि हँसि के कमल फिरावत वै दोउ नैन नचावैं ।
ये पीतांबर लै जु उड़ावैं वे मधुरे सुर गावैं ।
रीझे रसिक परस्पर दोऊ 'हरीचंद' मन माहीं ।
ये इत अपनो रथ न चलावत वे न अटा-सों जाहीं ।१०८

स्पुट, यथा-रुचि

लाल लाल कर पद लाल अधर रस
लाल लाल नयन तासों साँचे लाल भये हो ।
लाल माल बिनु गुन लाल पीक छाप तन
लाल लाल ही महावर सिर पै दये हो ।
पीरो पट छोरि लाल पट भलो ओढ़ि आये
अनुराग प्रगट दिखावत नये हो ।
'हरीचंद' अरुन सिखा-धुनि सुनि चौंकि
अरुन उदय से आज अरुन भेष लये हो ।१०९

राग, यथा-रुचि

लखि सखि आजु राधिका रास ।
जमुना-पुलिन सरल कोमल कल जहँ मल्लिका बिकास।
उदित चंद्र पूरन नभ-मंडल पूरन ब्रज-तिय आस ।
मंद सुरन पिय पास बने सजि निकर चिकुर भल पास।
प्रचलित पवन रवन हित महकत मह मह दवन-सुबास।
दवन मदन मद मंद गवन सुख भवन जहाँ हरि-बास ।
बजत मृदंग उपंग चंग मिलि भजनन जति तति जास।
बढ़्यो रंग रति रंग दंग लखि अंग उमंग प्रकास ।
मुरली रली भली बाजत मिलि बीन लीन सुर खास ।
ताल देत उत्ताल बजावत ताल ताल करि हास ।
उघटत श्री राधे राधे मधु धुनि बन सब आस ।
हरि राधा की बचन-रचन लखि बलिहारी हरि-दास।११०

स्फुट, देश

बेग आओ प्यारे बनवारी हमारी ओर ।
दीन बचन सुनतै उठि धावो नेकु न करहु अबारी ।
कृपा-सिंधु छाँड़ौ निठुराई अपनो बिरद सम्हारी ।
थानै जग दीनदयान कहै क्यों हमरी सुरत बिसारी ।
प्रान दान दीजै मोहिं प्यारा हौं छू दासी प्यारी ।
क्यों नहिं दीन बचन सुनो लालन कौन चूक छे म्हारी ।
तलफैं प्रान रहैं नहिं तन मा बिरह ब्यथा बढ़ी भारी ।
'हरीचंद' गहि बाँह उबारौ तुम तो चतुर बिहारी ।१११

बिहार

वे देखो पौढ़े ऊँचे महल दोऊ
झलकत रूप झरोखन आई ।
हँसनि मुरनि बतरानि परस्पर
कछुक दूर तें परत लखाई ।
फैली अंग-प्रभा दीपक मैं जाल-
रंध्र सों घिरि घिरि आई ।
'हरीचंद' कंकन-किंकिनि-रव निसि के
उछीर भरो मधुर कछु सुनाई ।११२

रथ-यात्रा

वह देखो सखि सेन-ध्वजा फहरात ।
ज्यों ज्यों रथ नियरे आवत है त्यों त्यों मन अकुलात ।
खंजन से भये नैन सखी के चक्रित इत उत डोलैं ।
आवत प्राननाथ रथ चढ़ि कै सजनी यह मुख बोलैं ।
जहँ लगि दृष्टि जात प्यारी की यह छवि होत रसालैं ।
मानहुँ आदर सों पिय के हित कमल पाँवड़े डालैं ।
अति अनुराग संग बैठन को प्यारी मन की जानी ।
'हरीचंद' लै रथ बैठाये तिया अतिहि सुख मानी ।११३

पालन

वारी वारी हौं तेरे मुख पै वारी मैं तेरे लटकन पै वारी।
पालना-झूलो हो दठ छाँड़ो बलि बलि गइ महतारी ।
छोटी सी दुलहिनि तोहिं ब्याहौं अपने बाबा की दुलारी ।
तुम झूलो हौं हरखि झुलावों 'हरीचंद' बलिहारी।११४
वारी मेरे लालन झूलो पलना ।
हौं बलि जाऊँ बदन की मोहन मानहुँ बात हमारी ।
माखन लेहु ललन वृज-जीवन वारने गै महतारी ।
अँचरा छोरहु तुमहिं झुलाऊँ 'हरीचंद' बलिहारी।११५

स्फुट, यथा-रुचि

सखी मेरे नयना भये चकोर ।
अनुदिन निरखत श्याम चंद्रमा सुंदर नंद-किशोर ।
तनिक बियोग भये उर बाढ़त बहु बिधि नयन मरोर ।
होत न पल की ओट छिनकहूँ रहत सदा दृग जोर ।
कोउ न इन्हैं जुड़ावनहारो अरुझे रूप झकोर ।
'हरीचंद' नित छके प्रेम-रस जानत साँझ न भोर।११६

गरमी को पद

सखी मोहिं ग्रीषम अति सुखदाई ।
जामें शोभा श्याम अंग की प्रति छन परत लखाई ।
बिनु अंतरपट मिलत पियारी अंग अंग सो लाई ।
'हरीचंद' लखि कै सुख पावत गावत केलि बधाई।११७

फूल-सिंगार

सखियन आज नवल दुलहिन को फूल-सिंगार बनायो हो।
फूलन के आभरन मनोहर रचि रचि कै पहिरायो हो ।
फूलनि बेनि गुही मनोहर फूलन मौर सुहायो हो ।

फूलन के कँगना कर बाँधे फूलनि मंडप छायो हो ।
फूलनि चोली फूलनि सारी फूलनि लहँगा भायो हो ।
दुलहिन दुलहा गाँठि जोरि कै एक पास बैठायो हो ।
फूली फूली सब सखियन मिलि फूल्यो मंगल गयो हो ।
पूली जोरि देखि नयन सों 'हरीचंद' सुख पायो हो।११८

मकर-संक्रांति टोड़ी

सुखद अति खिचरी को त्योहार ।
मिलि बैठे दोउ कुंज सखी री नीके नयन निहार ।
पहिरि छींट बागो अति सुंदर ओढ़े सुखद रजाई ।
सिसिर प्रवेश दिखावत गावत तान गान सुखदाई ।
सखी सबै मिलि नेम पुजावत करत जुगल की सेवा ।
ताती खिचरी भोग लगावत भेंट करत बहु मेवा ।
करत दान तिल गौर श्याम दोउ हँसि-हँसि पीतम प्यारी।
'हरीचद' निज रीझि प्रान-धन
डारत छिन-छिन वारी ।११९

श्री गिरिधरजी की बधाई

सदा तुम मायावाद निवारेउ ।
जब जब प्रवल भयो मिथ्या मत तब तब प्रकटि बिदारेउ ।
प्रथमहि होय विष्णु स्वामी प्रभु यह मारग बिस्तारेउ ।
फिरि श्री बल्लभ ह्वै अगिनि काठ
कटु माया मत छिन जारेउ ।
अब के कासी लखि असुरासी अधरन तासु बिचारेउ ।
कृष्णावति ते श्री गोपाल-गृह जदु-कुल द्विज अवतारेउ ।
नाम जगतगुरु सुनत श्रवन-पुट पावन अमृत पारेउ ।
कियो ग्रंथ बहु घर थिर थाप्यो माया-वाद बिदारेउ ।
श्री गिरिधर गिरिधर हवै प्रकटे पुष्प-पंथ गिरि धारेउ।
प्रबल प्रवाह इन्द्र-धारा सों निज ब्रज लोग उबारेउ ।
काशी में गोकुल करि दीन्हो श्रुति-रहस्य उच्चारेउ ।
'हरीचंद' को जानि आपनो करुना करि निसतारेउ।१२०

अशिष, यथा-रुचि

सदा ब्रज सुवस बसो बरसानो ।
जहँ प्रगटी रस की निधि राधे बाजत प्रगट निसानो ।
जुग जुग अबिचल राज रजो दोउ रावलि अरु महरानो।
'हरीचंद' के सीस रहौ नित नील पीत को बानो ।१२१

बिहार, बिहाग

सुंदर सेजन बैठे प्रीतम-प्यारी ।
झिलमिलात दीप-ज्योति रँग-भरे
सँग दोऊ सोवत ऊँची अटारी ।
रिझवत हिलि-मिलि करि रस-बतियाँ
फैली बदन उँजियारी ।
दीप सों परस्पर मुख अवलोकत
'हरीचंद' बलिहारी ।१२२

दीनता

श्री वल्लभ की सरि करै कौन ।
प्रगटे प्रभु गुविंद-मन-वाहक भक्त कारनै जौन ।
परम पतित तारन करुनामय रसनिधि बुधता-भौन ।
'हरीचंद' जो इनहिं भजत नहिं महा अभागे तौन ।१२३

श्री वल्लभ प्रभु मेरे सरबस ।
पचौ बृथा करि जोग जज्ञ कोउ
हम को तो इक इहै परम रस ।
हमरे मात पिता पति बंधू
हरि गुरु मित्र धरम धन कुल जस ।
'हरीचंद' एकहि श्री बल्लभ
तजि सब ध्यान भये इनके बस ।१२४

श्री बड़े गिरिधर जी को पद

श्री विट्ठल-सुत गुननिधान श्री रुक्मिनि जीवन-प्रान
बन्दे श्री गिरधर प्रभु षटगुन सम्पन्न धीर ।
अति ही रिझवार रसिक सकल कलागुन-प्रवीन
बंधुन सिर छत्रछाँह मेटत जन-पीर ।
सेवा-रस परस पात्र पंडित-जन मंडित कर
खंडित कृत मायामति छंडित भव-पीर ।
श्री रानी प्राननाथ गावत श्रुति बिसद गाथ
'हरीचंद' हाथ माथ धरत बलबीर ।१२५

श्रीरघुनाथजी को पद

श्रीबिट्ठल-नंदन जग-बन्दन जय जय श्री रघुनाथ ।
जानकि-रमन समन जन अघ सत पितु-पद रजगुन गाथ।
सेवा रोचक मोचक भव-रुज कृत बल्लभी सनाथ ।
'हरीचंद' अनुभव बियोग कृत सदा सहायक साथ।१२६

श्रीगोपीनाथजी को पद

श्री बल्लभ-सुत प्रथम प्रगट लीला रस भाव
गुप्त जय जय श्री गोपीनाथ भक्तन सुखदाई ।
गावत गुन बेद चार तऊ नहीं पावैं पार
महिमा कोउ कहि न सकत गोप-वंश-राई ।
पुष्टि पथ करन-काथ प्रगटे हैं भूमि आज
गावत सब ब्रज-जन मिलि आनँद-बधाई ।
'हरीचंद' जस गावैं बहुत बधाई पावै
देखत त्रैलोक सब बलि बलि जाई ।१२७

श्रीबल्लभ गृह महामंगल भयो प्रकट भये श्री गोपीनाथ ।
मार्यादा श्रुति रूप रमन हित संकर्षन जन कियो सनाथ ।
अक्षर ब्रह्म रूप सुभ सोहत अनुज धाम जगधाम स्वरूप।
जोग ज्ञान कर्म्मादिक मारग थापन हित प्रगटे द्विज भूप ।

संवत पंद्रह सौ सुभ सरसठि आश्विन कृष्ण द्वादशी जानि।
श्री महालक्ष्मी जी के उदर तें प्रगटे हैं सब सुख की खानि।
पुष्टि प्रवेस हेतु अधिकारी करन कियो लीला-बिस्तार ।
कहि जय जय बल्लभ-सु दोऊ
'हरीचंद' जन भयो बलिहार ।१२८

श्रीघनश्यामजी को पद

श्री बिट्ठल घर अतिही उछाह ।
रानी पद्मावति सुत जायो
पूरी अपने जन की चाह ।
आश्विन बदी तेरसि रविबासर
बाढ़्यो गोकुल प्रेम प्रवाह ।
'हरीचंद' बैराग प्रकट गुन
जय जय जय श्री कृष्णावति-नाह ।१२९

श्री गोविन्द राय जी को पद

श्री गुबिंद राय जयति सुंदर सुखधाम ।
देवि देव मेटि सकल कृष्ण-रूप थापन नित
सुंदर बरन निज भक्तन अभिराम ।
सुंदर मर्याद रूप लोक-रीति स्वबस भूप
श्रीभागवत थापन सुखमय सुआद जाम ।
'हरीचंद' बिट्ठलसुत भक्तिभाव भूरि संयुत
राज-भाव बिनसे हरि सुजन पूरन काम ।१३०

श्री बालकृष्ण जी को पद

श्री रुक्मिनि-नंदन, जय-बंदन,
बाल कृष्ण सुख-धाम ।
सुंदर रूप नयन रतनारे
भक्तन पूरन काम ।
रस वात्सल्य-करन अनुभव नित
बिरह विधूनन हरि मुख नाम ।
'हरीचंद' बिट्ठल सुखदायक प्रिय
उनहारि रूप अभिराम ।१३१

श्री गोकुलनाथ जी को पद

श्री बल्लभ निज मत राखि लियो ।
जीति सभाबादी कठोर बहु माला तिलक दियो ।
अद्भुत अचरज बहुत दिखाये खल नृप निरखि भियो।
'हरीचंद' मर्याद राखि निज जग जस प्रगट कियो।१३२

श्री यदुनाथ जी को पद

श्रीजदुपति जय जय महाराज ।
बिरह गुप्त अनुभवत प्रगटि जग महँ बिराग को साज।
निवसत रह लघु कहत सुनत लहु छाँड़ि जगत के काज।
'हरीचंद' परमारथ-पूरन गोविंद भक्ति जहाज ।१३३

साँझी को पद

आजु दोउ खेलत साँझी साँझ ।
नंदकिशोर राधा गोरी जोरी सखियन माँझ ।
कुसुम चुनन में रुनझुन बाजत कर-चूरी पग-झाँझ ।
'हरीचंद' विधि गरब गरूरी भई रूप लखि बाँझ।१३४

महारानी तिहारो घर सुफल फलो ।
सुन री कीरति तैं कन्या जनि सब
ब्रज-जन को कियो भलो ।
कोउ गावत कोउ हँसत मोद
भरि कोउ अति आनँद रलो ।
देखि चंद्र-मुख कुँवरि लली
को वारि-फेरि तन-मन सकलो ।
आनंद-मगन सबै ब्रज-बासी सब
जिय को दुख पगनि दलो ।
'हरीचंद' जुग-जुग चिरजीवो
जुगल कहानी जुगुल चलो ।१३५

दीनता, यथा-रुचि

हमरे निर्धन की धन राधा ।
साधन कोटि छोड़ि इनहीं को चरन-कमल अवराधा ।
इनके बल हम गिनत न काहू करत न जिय कोउ साधा।
'हरीचंद' इन नख-सिख मेरी
हरी तिमिर भव-बाधा ।१३६

श्री महाप्रभु जी की बधाई

आजु ब्रज साँची बजत बधाई ।
रति-पथ प्रगट करन को द्विज-बपु वल्लभ प्रगटे आई ।
दैवीजन-हित कारन भूतल लीला फेरि दिखाई ।
'हरीचंद' भूले लखि तिज जन
लियो बाँह गहि धाई।१३७

आजु प्रेम-पथ प्रगट भयो भुव
जनमे श्रीवल्लभ पूरन-काम ।
कठिन काल कलि देखि दया करि
आपुहि चलि आयो द्विजधाम ।
बहे जात अपने जन लखि कै
धर्‌यो बाँह गहि कहि हरि-नाम ।
'हरीचंद' रसमय बपु सुदर
एकै राधा सुंदर श्याम ।१३८

निज पथ प्रगट करन कों द्विज हवै
आपुहि प्रगट भये हरि आज ।
माधव कृष्ण एकादशि गुरु दिन
लक्ष्मण भट-गृह पूरन काज ।
दैवीजन मन अति हुलसाने

फूल्यो ब्रज को सकल समाज ।
'हरीचंद' मिलि नाचत गावत
मिले भक्त-जन तजि जग-लाज ।१३९

आजु ब्रज घर घर बजत बधाई ।
द्विज-बपु लै नँदनंदन प्रगटे लक्ष्मण भट घर आई ।
फेर वहै लीला सोई रस निज जन हेत दिखाई ।
'हरीचंद' से अधम जानि निज तारे भुज गहि धाई ।१४०

मान को पद, यथा-रुचि

नेक निहारु नागरी हौं बलि ।
इती रुखाई प्रान-पिया पै मान न
करु सिख मान री उठि चलि ।
फूलत लय बिरचत उत प्यारो
बिरह-हुतासन जात चलो गलि ।
तू इत वैठी भौंह तनेतन नहिं
सोहात मोहिं यह रूखो कलि ।
खसित निसानायक पश्चिम दिसि
आधी सों बढ़ि रैन चली ढलि ।
अरुनसिखा-धुनि सुनियत कहुँ कहँ
सीरी पवन चली सुगंध रलि ।
चलि किन कुंजभवन तू भामिनि
अपनी सौतिन को छलबल छलि ।
प्रथम मान पुनि सहजहि मिलिबो सुनि
बैरिनि रहि जैहैं जलि जलि ।
कसि कंचुकि नयनन दै काजर
नूपुर छाँड़ि अतर अंगन मलि ।
बिन बिलंब उठि मिलु प्यारे सों
बिरह-दवागि मिले श्रम-जल दलि ।
भाग भरी अनुराग भरी सखि पीतम
सरस सोहाग फलन फलि ।
'हरीचंद' सखि-साथ गमन छबि
नयनन तें नहिं जाइ कबहुँ टलि ।१४१

वर्षा-विनोद

[हरिश्चन्द्र-चंद्रिका और मोहन चन्द्रिका खं. २ सं. २-६ में सन् १८८० में प्रकाशित]

वर्षा-विनोद

कजली

प्यारी झूलन पधारो झुकि आए बदरा ।
ओढ़ौ सुरुख चुनरि तापै श्याम चदरा ।
देखो बिजुरी चमक्के बरसै अदरा ।
'हरीचंद' तुम बिन पिय अति कदरा ।१
अगगग अगगग अगगग घन गरजै
सुनि सुनि मोरा जिय लरजै ।
जुगनूँ चमकै बादल रमकै
बिजुरी दमकै झमकै तरजै ।
ऐसो समय चले परदेसवाँ
पिय नहिं मानत मोरी अरजै ।
ऐसन नहिं कोइ पटुका गहि कै
पिय 'हरिचंदहि' जो बरजै ।२
घिर घिर आए बादर छाए
रिमझिम जल बरसै ।
चम चम चपला चमकै घन झमकै
झुकि झुकि बिरछन परसै ।
सूनी सेज परी मैं ब्याकुल
पिय की सूरत नहिं दरसै ।
बिनु 'हरिचंद' पियरवा सावन में
हाय मोरा जियरा तरसै ।३
मन-मोहना हो झूलैं झमकि हिंडोर ।
एक तो सावन ए दूजे घन उनए
तीजे फूल नए छए फूले चहुँ ओर ।
चलु लाज तजु री देखु चमकै बिजुरी
बग-पाँति जुरी मोरा करि रहे सोर ।
सोभा कहौं कस री मैं तो देखत हारी
भई बलिहारी 'हरिचंद' तुन तोर ।४

दोउ मिलि भूलैं फूलैं हो कुंज हिंडोरे री सखी ।
वृंदाबन चहुँ ओर सों हो फूल्यौ शोभा देत हो ।
जमुना नीर तीर पर सुंदर भलमल लहरा लेत हो ।

दोहा

बिजुरी चमकै जोर से नभ छाए घनघोर हो ।
मोर सोर चहुँ ओर करैं दादुर बन कीनी रोर हो ।
सखी भुलावैं प्रेम सों हो पहिरे रँग रँग चीर हो ।
भूलैं प्यारी राधिका सँग पीतम श्याम सरीर हो ।
सोभा नहिं कहि जात हो तहँ बढ़्यौ सखी आनंद हो ।
लखि गलबाहीं दोऊ को दीने बलिहारी 'हरीचंद' हो ।
दोउ मिलि भूलैं फूलैं हो कुंज हिंडोरे री सखी ।५

लावनी

बीत चली सब रात न आए अब तक दिल-जानी ।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी ।
अँधेरी छाय रही भारी ।
सूझत कहूँ न पंथ सोच करै मन मन में नारी ।
न कोई समझावनवारी ।
चौंकि चौंकि के उझकि झरोखा झाँक रही प्यारी ।
बिरह से व्याकुल अकुलानी ।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी ।
सूझै पंथ न कहीं हाथ से हाथ न दिखलाता ।
एक रंग धरती अकास का कहा नहीं जाता ।
किसी का बोल नहीं सुनाता ।
बूँद बजैं टपटप मारग कोई नहिं जाता आता ।
सोए घर घर सब पट तानी । खड़ी अकेली० ।
सन सन करके रात खनकती झींगुर झनकारैं ।
कभी कभी दादुर रट कर जिय व्याकुल कर डारैं ।
साँप खँडहर पर ठनकारैं ।
गिरैं करारे टूट टूट के नदी छलक मारैं ।
पिया बिन सब ही दुखदानी । खड़ी अकेली० ।
ठंढी पवन झकोरे आँचल उड़ उड़ फहरावै ।
बिरहिन इत सों उत डोलै कोइ नाहीं जो समुझावै ।
पिय बिन को जो गर लावै ।
'हरीचन्द्र' बिनु बरसा में को कसक मिटा जावै ।
कहाँ बिलमै, को मनमानी । खड़ी अकेली० ।६

गजल

न आया वो दिलबर औ आई घटा ।
तो हसरत की बस दिल पै छाई घटा ।
चढ़ा शाम को बाम पर गर वो माह ।
शफ़क का नया रंग लाई घटा ।
तहे जुल्फ तेरी ये बिजली नहीं ।
चमकती है बिजली है छाई घटा ।
बहाने से बिजली के छेड़ा मुझे ।
नया राग परदे में लाई घटा ।
मुझे तेरी जुल्फों का ध्यान आ गया ।
जो देखी सियह सिर पै छाई घटा ।
जमीं है 'हरीचंद' गजलें पढ़ो ।
'रसा' देखो कैसी है छाई घटा ।७

मलार

हरि बिनु बरसत आयो पानी ।
चपला चमकि चमकि डरवावत मोहिं अकेली जानी ।
रात अँधेरी हाथ न सूझै मैं बिरहिनी बिलखानी ।
'हरीचंद्र' पिय-बिनु बरसा मैं हाथ मींजि पछतानी ।८

ऊधो हरि जू सों कहियो जाइ हो जाइ ।
बिनु तुव प्रान परे संकट मैं घट
सों निकसत आइ हो आइ ।
बढ़त बिरह दुख छिन छिन मोहन
रोअत पछरा खाइ हो खाइ ।
'हरीचन्द्र' व्याकुल ब्रज देखत
बेगहि आओ धाइ हो धाइ ।९

पिय-बिनु सूनी सेजिया साँपिन सी
मोरा जियरा डसि डसि लेत ।
रैन डरारी कारी भारी
व्याकुल पिय-बिनु चेत ।
तड़पत करवट लेत अकेली
धीर कोऊ नहिं देत ।
पिय 'हरिचन्द्र' बिना को गरवाँ
लगि कै हाय निबाहै हेत ।१०

ठुमरी हिंडोले की

लचकि मचकि दोउ झूलि रहे
जमुना-तट सुरँग हिंडोरे में ।
ब्रज-नारी सब आईं मिलि भूलन कों
पहिरे चुनरी रँग बोरे में ।
बरसत घन बूँद परैं छतियाँ
बहै सीतल पवन झकोरे में ।
'हरीचंद' कहा छबि बरनि सकै सुख
बाढ़्यौ प्रेम-हलोरे में ।११

खेमटा

कहनवा मानो हो दिल-जानी ।
निसि अँधियारी कारी बिजुरी चमकै
रुम झुम बरसत पानी ।
हाथ जोर ठाढ़ी अरज करत हौं

सुनत नहीं मेरी बानी ।
तुम ही अनोखे विदेस-जवैया 'हरीचंद' सैलानी ।१२

न जाय मो सों ऐसो झोंका सहीलो न जाय ।
झुलाओ धीरे डार लागै भारी बलिहारी हो
बिहारी मो सों ऐसो झोंका सहीलो न जाय ।
देखो कर धर मेरी छाती धर धर करै
पग दोउ रहे थहराय हाय ।
'हरीचंद' निपट मैं तो डरि गई प्यारे
मोहिं लेहु झट गरवाँ लगाय । न जाय० ।१३

सोरठ

मेरे नैनों का तारा है, मेरा गोबिंद प्यारा है ।
वो सूरत उसकी भोली सी वो सिर पगिया मठोली सी,
वो बोली मैं उठोली सी बोलि दृग बान मारा है ।
व घूँघरवालियाँ अलकैं व झोंकेवालियाँ पलकैं,
मेरे दिल बीच हलकैं छुटा घर-बार सारा है ।
दरस सुख रैन दिन लूटै न छिन भर तार यह टूटै,
लगी अब तो नहीं छूटै प्रान 'हरीचंद' वारा है ।
मेरे नैनौं का तारा है, मेरा गोबिन्द प्यारा है ।१४

मेरी हरि जी सों कहियो बात हो बात ।
तुम बिन ब्रज सूनो मेरे प्यारे अब
देख्यौ नहिं जात हो जात ।
सूखी लता पेड़ मुरझाने गउ
भई दुबरे गात हो गात ।
जमुना जरित बृन्दाबन उजरयौ
पीरे भए सब पात हो पात ।
जसुदा-नंद बिकल रोअत हैं
कहि कहि के हा तात हो तात ।
सो दुख देख्यौ जान न नैनन
देखि दुखी तुव मात हो मात ।
ब्रज-नारिन की दसा कहा कहौं
रोअत बातत रात हो रात ।
'हरीचंद' मिलि जाओ पियारे करौ
न हम सों घात हो घात ।१५

एतो हरि जी सों कहियो रोय हो रोय ।
तुम बिन रहत सदा ब्रज-सुंदरि
अँसुअन सों पट धोय हो धोय ।
निसि-दिन बिरह सतावत ब्याकुल
रही हैं सब सुख खोय हो खोय ।
'हरीचंद' अब सहि न सकत दुख
होनी होय सो होय हो होय ।१६

संस्कृत की कजली

हरि हरि हरिरिह विहरत कुंजे मन्मथ मोहन बनमाली ।
श्री राधाय समेतो शिखिशेखर शोभाशाली ।
गोपीजन-बिधुबदन-बनज-बन मोहन मत्ताली ।
गायति निज दासे 'हरिचंदे' गल-जालक माया-जाली ।१७

हरि हरि धीर समीरे विहरति राधा कालिंदी-तीरे ।
कूजति कल कलरव केकावलि-कारंडव-कीरे ।
वर्षति चपला चारु चमत्कृत सघन सुघन नीरे ।
गायति निज पद-पद्मरेणु-रत
कविवर 'हरिश्चंद्र' धीरे ।१८

मलार

मेरे गल सों लग जाओ प्यारे घिरि आई बदरिया घोर ।
बड़ी बड़ी बूँदन बरसन लागीं बोलत दादुर मोर ।
बिजुरी चमक देखि जिय डर पै पवन चलत झकझोर ।
'हरीचंद' पिय कंठ लगाओ राखो अपनी कोर ।१९

आज घन अगगग गरजै हो सुनि सुनि कै जिय लरजै ।
बड़ी बड़ी बूँद घिरि घिरि बरसै बिजुरी तरजै ।
ऐसी समय पिय कंठ न लागत मानत नहिं मेरी अरजै ।
'हरीचंद' पिय जात बिदेसवाँ कोइ नहीं बरजै ।२०

सावन आयो मन-भावन पिय बिनु रह्यो न जाय ।
घन की गरज सुन लरजौं मिलन कों जिय ललचाय ।
खबर न आई पिय प्यारे की करौं मैं कौन उपाय ।
'हरीचंद' पिया को जो पाऊँ लेहुँ मैं गरवाँ लाय ।२१

ऊधो जी मिलायो पियारे को हमहिं सुनाओ न जोग ।
हम नारी जोग का जानैं हो हमरे लेखे सो रोग ।
बरसा आई बन हरे भए घर फिरे पंथी लोग ।
'हरीचंद' लाओ मेरे श्यामहि मिटै बिरह-दुख-सोग ।२२

ऐसे सावन में साँवलिया मोरा जोबन लूटे जाय ।
नैन-बान घायल करि दीनों जुलुफन बीच फँसाय ।
मुख मोरा चूमि करै मन-मानी गरवा लेत लगाय ।
सरबस रस लेके 'हरिचंद' बेदरदी
खड़ा खड़ा मुसकाय ।२३

मलार की ठुमरी

कुंजन में मोहिं पकरी री ।
ऐ माई री ढीठ मोहन पिया गरे लागे
जो जो जिय आई सोइ करी री ।
मैं निकसी दधि बेंचन कारन
औचकि आइ गही गिरधारन बरजि रही री ।
मेरो बरज्यौ न मान्यो
बरजोरी कर बहियाँ धरो री ।
'हरीचंद' अति लँगर कन्हाई,
करत फिरत ब्रज में मन-भाई,

ना जानो कैसे ऐसे ढीठ लँगर के धोखे फंद परी री ।२४

तरजीह-बंद

चमक से बर्क के उस बर्क-बश की याद आई है ।
घुटा है दम घटी है जाँ घटा जब से ये छाई है ।
कौन सुने कासों कहों सुरति बिसारी नाह ।
बदाबदी जिय लेत हैं ए बदरा बदराह ।
बहुत इन जालिमों ने आह अब आफत उठाई है ।
अहो पथिक कहियो इति गिरधारी सों टेर ।
दृग झर लाई राधिका अब बूड़त ब्रज फेर ।
बचाओ जल्द इस सैलाव से प्यारे दुहाई है ।
बिहरत बीतत स्याम सँग सो पावस की रात ।
सो अब बीतत दुख करत रोअत पछरा खात ।
कहाँ तो वह करम था अब कहाँ इतनी रुखाई है ।
बिरह जरी लखि जोगनिनि कहै न उहि कइ बार ।
अरी आव भजि भीतरैं बरसत आजु अँगार ।
नहीं जुगनूँ हैं यह बस आग पानी ने लगाई है ।
लाल तिहारे बिरह की लागी अगिन अपार ।
सरसैं बरसैं नीरहूँ मिटै न झर झंझार ।
बुझाने से है बढ़ती आग यह कैसी लगाई है ।
बन बागन पिक बटपरा तकि बिरहिन मन मैन ।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठैं करि करि राते नैन ।
गजब आवाज ने इन जालिमों के जान खाई है ।
पावस धन अँधियार मैं रह्यौ भेद नहिं आन ।
राति द्यौस जान्यो परै लखि चकई चकवान ।
नहीं बरसात है यह इक कयामत सिर पर आई है ।
पावक-झर तें मेंह-झर दावक दुसह बिसेखि ।
दहै देह वाके परस याहि दृगनहीं देखि ।
लगी है जिनकी लौ तुमसे बस उनकी मौत आई है ।
धुरवा होहिं न अलि यहै धुआँ धरनि चहुँ कोद ।
जारत आवत जगत कों पावस प्रथम पयोद ।
नहीं बिजली है यह इक आग बादल ने लगाई है ।
वेई चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ ।
छिन बिछुरे जिन के न इहि पावस आयु सिराइ ।
यहाँ तो जाँ-बलब हैं जबसे सावन की चढ़ाई है ।
बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस ।
प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत बिदेस ।
भला शरमाओ कुछ तो जी में यह कैसी ढिठाई है ।
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग ।
तुलसी चाकत प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ।
दिलों पर खाक उड़ती है मगर मुँह पर सफाई है ।
बरखि परुख पाहन पयद पंख करो टुक टूक ।
तुलसी परो न चाहिए चतुर चातकहिं चूक ।
जबाँ पर तेरे आशिक के भला कब आह आई है ।
दुखित धरनि लखि बरसि जल घनउ पसीजे आय ।
द्रवत न तुम घनस्याम क्यौं नाम दयानिधि पाय ।
खुदा ने बुत तेरी पत्थर की बस छाती बनाई है ।
जौ घन बरसै समय सिर जो भरि जनम उदास ।
तुलसी जाचक चातकहि तऊ तिहारी आस ।
सिवा खंजर यहाँ कब प्यास पानी से बुझाई है ।
चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि ।
प्रेम-तृषा बाढ़त भली घटे घटैगी कानि ।
शहीदों ने तेरे बस जान प्यासे ही गँवाई है ।
ऐसो पावस पाइहू दूर बसे ब्रजराइ ।
आइ धाइ 'हरिचंद' क्यौं लेहु न कंठ लगाइ ।
'रसा' मंजूर मुझको तेरे कदमों तक रसाई है ।२५

राग मलार

वृन्दाबन करो दोउ सुख-राज ।
फिरौ निसंक दिए गल-बहियाँ लीने सखी-समाज ।
बिहरो कुंज कुंज तरु तरु तर पुलिन पुलिन तजि लाज ।
प्रति छन नए सिंगार बनाओ सजौ सकल सुख-साज ।
छिन छिन बढ़ौ प्रेम प्रेमिन को पुरवहु सगरो काज ।
हरीचंद' की रानी (श्री) राधे गोपराज महराज ।२६

भींजते साँवरे सँग गोरी ।
अरस परस बातन रस भूली बाँह बाँह मैं जोरी ।
कदम तरे ठाढ़े दोउ ओढ़े एकहि अरुन पिछौरी ।
चुअत रंग अँग बसन लपटि रहे भींजि भींजि दुहुँ ओरी ।
जल-कन स्रवत सगबगी अलकन करत जुगुल चित-चोरी ।
गावत हँसत रिझावत हिलि-मिलि पुनि-पुनि भरत अँकोरी ।
बरसत घेरि घेरि घन उमँगे चपला चमक मचोरी ।
बोलत मोर कोकिला तरु पर पवन चलत झकझोरी ।
अति रस सहस बढ़यौ बृंदाबन हरित भूमि तरु खोरी ।
'हरीचंद' छवि टरत न दृग तें निरखि भींजती जोरी ।२७

बरषा में कोउ मान करत है
तू कित होत सखी री अयानी ।
यह रितु पीतम-गर लागन की
तू रूसत कित होइ सयानी ।
देखु न कैसी छह अँधियारी
बरसि रह्यो रिमझिम लखु पानी ।
'हरीचंद' चलि मिलु पीतम सों
लूट न रति-सुख पिय-मन-मानी ।२८

डरपावत मोरवा कूकि कूकि ।
पावस रितु बरसत कछु बादर
पवन चलत है झूकि झूकि ।

पिय बिनु जानि अकेली मो
कहँ देत मदन तन फूँकि फूँकि ।
'हरीचंद' बिनु हरि कामिनि के,
उठत बिरह की हूकि हूकि ।२९

पछितात गुजरिया, घर में खरी ।
अब लगि श्याम सुँदर नहि आए
दुखदाइनि भइ रात अँधरिया ।
बैठत उठत सेज पर भामिनि
पिय बिन मोरी सूनी अटरिया ।
'हरीचंद' हरि के आवतही बसि गई
मोरी उजरी नगरिया ।३०

दियो पिय प्यारा कों चौंकाय ।
सुख सोये मिलि जुगल अटारिन अंग अंग लपटाय ।
इन घन गरजि बरसि बूँदन दिये काँची नींद जगाय ।
अलसाने नहिं उठत सेज तें भींजि रहे अरुझाय ।
'हरीचंद' छपता लै कीनों क्योंहूँ बचन उपाय ।३१

डरत नहिं घन सों रति रस-माते ।
हार्यौ बरसि गरजि बहु भाँतिन टरै न बीर तहाँ ते ।
गिरवर अटा सुहावनि लागत बन दरसात जहाँ ते ।
तहँई जुगल लपटि रस सोए नींद भरे अलसाते ।
रस-भीने आलस सों भीने भीने जल बरसाते ।
औरहु गाढ़ अलिंगन करि कै सोए सुखद सुहाते ।
भोर भयो नहिं गिनत सखी-गन लखि कै कछु सकुचाते ।
'हरीचंद' घन दामिनि हारी जीति जुगल इतराते ।३२

प्रीति तुव प्रीतम कौं प्रगटैयै ।
कैसे कै नाम प्रगट तुव लीजै कैसे कै बिथा सुनैयै ।
को जानै समुझै जग जिन सों खुलि कै भरम गँवैयै ।
प्रगट हाय करि नैनन जल भरि कैसे जगहि दिखैयै ।
कबहुं न जानै प्रेम-रीति कोउ सुख सों बुरे कहैयै
'हरीचंद' पै भेद न कहियै भले ही मौन मरि जैयै ।३३

आजु झलक प्यारे की लखि कै
मो घर महा मंगल भयो अली ।
जद्यपि हौं गुरुजन के भय सों
नीके नहिं चितए बनमाली ।
उठे कुंज सों मरगजे बागे
जागे आवत रति-रन-साली ।
हौं भय सों सखियन के चितई
लोचन भरि नहिं रोचन लाली ।
उनहूँ नैन कोर हँसि चितई
मन लै गए ठगौरी घाली ।
'हरीचंद' भयो भोरहि मंगल
कारज ह्वै है सिद्ध सुखाली ।३४

हमारी श्री राधा महारानी ।
तीन लोक को ठाकुर जो है ताहू की ठकुरानी ।
सब ब्रज की सिरताज लाडिली सखियन की सुखदानी ।
'हरीचंद' स्वामिनि पिय
कामिनि परम कृपा की खानी ।३५

मलार खेमटा

पथिक की प्रीति को का परमान ।
रैन बसे इत भोर चले उठि मारि नैन को बान ।
ये काहू के भये न होयँगे स्वारथ लोभी जान ।
'हरीचंद' इनकै फंदन परि बृथा गँवैये प्रान ।३६

हिंडोरना आजु झकोरवा लेत ।
झूलत श्यामा-श्याम रंग-भरे लपटि बढ़ावत हेत ।
बरसत घन तन काम जगावत गावत तारी देत ।
'हरीचंद' अरुझे पिय प्यारी बीर सुरत-रन-खेत ।३७

परज

घेरि घेरि घन आए कुंज छाइ धाए
ऐसी या समय कोउ मान करै बाउरी ।
देखि तो कुंज की शोभा बोलि रहे मोर
कीर हरी भूमि भई संग चलि आउ री ।
पावस रितु सबै नारी मिलैं पीतम सों
तू ही अनोखी एती करत चवाउ री ।
'हरीचंद' बलिहारी मग देखै गिरधारी
उठु चलु प्यारी मति बात बहराउ री ।३८

दोउ मिलि आजु हिंडोले झूलैं ।
कंचन खंभ फूल सों बाँधे
शोभित सुभग कलिंदी-कूलैं ।
झुलवत चहुँ दिसि नवल नागरी
सोभा को रतिहूँ नहिं तूलैं ।
गावत हँसत हँसाइ रिझावत पिय
छबि लखि मन ही मन फूलैं ।
चलत चपल दृग कोर परसपर
मेटत कठिन मदन की सूलैं ।
'हरीचंद' छबि-रासि पिया-पिय
दरसत ही जिय दुख उनमूलैं ।३९

राग देश

हिंडोरे कौन झूलै थारे लार ।
तुम अटपटे थारी झूलन अटपटी हूँ तो घणी सुकुमार ।
तुम झूलौ थाने हूँ जू झुलाऊँ थारो चरित अपार ।
'हरीचंद' ऐसी कहै छे राधिका मोहन-प्रान-अधार ।४०

कजली

दोउ झूलैं आजु ललित हिंडोरे सखियाँ ।
लखि सोभा मेरी सुनो री सिरानी अँखियाँ ।
फूले फूल बहु कुंज झुकि रहीं डलियाँ ।
तहाँ बोलैं मोर कोकिला गावत अलियाँ ।
परै मंद मंद फुही दीने गल-बहियाँ ।
श्याम भींजत बचावैं प्यारी करि छहियाँ ।
छबि बाढ़ो अनूप तहाँ तौन घरियाँ ।
तन मन 'हरिचंद' बलिहारी करियाँ ।४१

भारत में एहि समय भई है सब कुछ
बिनहिं प्रमान हो दुइ-रंगी ।
आधे पुराने पुरानहिं मानें
आधे भए किरिस्तान हो दुइ-रंगी ।
क्या तो गदहा को चना चढ़ावै
कि होइ दयानँद जायँ हो दुइ-रँगी ।
क्या तो पढ़ै कैथी कोठिवलियै
कि होइ बरिस्टर धाय हो दुइ-रंगी ।
एही से भारत नास भया सब
जहाँ तहाँ यही हाल हो दुइ-रंगी ।
होउ एक मत भाई सबै अब
छोड़हु चाल कुचाल हो दुइ-रंगी ।४२

सखी चली री कदम्ब तरे छोड़ि काम धाम ।
झूलै रमकि डिंरोरे जहाँ राधा-घनश्याम ।
सोभा देखिकै सिराने नयन पूरे मन-काम ।
'हरिचंद' देखो उरझी गरे बन-दाम ।४३

एरी सखी झूलत हिडोरे श्यामा-
श्याम बिलोको वा कदम के तरे ।
ऐसी सोभा देखत ही बनि आवै बिरिछि सोहैं हरे हरे ।
एरी तहाँ रमकत प्यारी झूलैं दिये बाँह पिय के गरे ।
एरी छबि देखत ही 'हरिचंद' नैन मेरे आवत भरे ।४४

देखो भारत ऊपर कैसी छाई कजरी ।
मिटि धूर में सपेदी सब आई कजरी ।
दुज बेद की रिचन छोड़ि गाई कजरी ।
नृप-गन लाज छोड़ि मुँह लाई कजरी ।४५

तोरे पर भए मतवार रे नयनवाँ ।
लोक-लाज-जस-अजस न मानै
सरस रूप रिझवार रे नयनवाँ ।
मदिरा प्रेम पिये मतवारे
सब से करत बिगार रे नयनवाँ ।
'हरीचंद' पिय रूप दिवाने
करत न तनिक विचार रे नयनवाँ ।४६

बिनु साँवरे पियरवा जिय की जरनि न जाय ।
जिय नहिं बहलत प्रान-प्रिया-बिनू कीने लाख उपाय ।
काले बादर देखि बिरह की हूक उठत जिय आय ।
'हरीचंद' स्याम बिनु बादर उलटी आग देत दहकाय ।४७

बिजुरी चमकि चमकि डरवाये,
मोहिं अकेली पिय बिनु जानि ।
बादर गरजि गरजि अति तरजै
पँच-रँग धनुहीं तानि ।
मोरवा बैरी कड़खा गावैं
मनमथ-बिरद बखानि ।
पिय 'हरिचंद' गरें लगि मरत
जियाओ अरज लेहु यह मानि ।४८

काहे तू चौका लगाय जयचँदवा ।
अपने स्वारथ भूलि लुभाए
काहे चोटी-कटवा बुलाए जयचँदवा ।
अपने हाथ से अपने कुल कै
काहे तैं जड़वा कटाए जयचँदवा ।
फूट कै फल सब भारत बोए
बैरी कै राह खुलाए जयचँदवा ।
और नासि तैं आपो बिलाने
निज मुँह कजरी पुताय जयचँदवा ।४९

टूटै सोमनाथ कै मंदिर केहु लागै न गोहार ।
दौरो दौरो हिंदू हो सब गौरा करें पुकार ।
की केहू हिंदू कै जनमल नाहीं की जरि भैलैं छार ।
की सब आज धरम तजि दिहलैं भैलें तुरुक सब इक बार ।
केहू लगल गोहार न गौरा रोवैं जार-बिजार ।
अब जग हिंदू केहू नाहीं झूठै नामैं कै बेवहार ।५०

धन धन भारत के सब क्षत्री जिनकी सुजस-धुजा फहराय ।
मारि मारि कै सत्रु दिए हैं लाखन बेर भगाय ।
महानंद की फौज सुनत ही डरे सिकंदर राय ।
राजा चंद्रगुप्त ले आए बेटी सिल्यूकस की जाय ।
मारि बलूचिन बिक्रम रहे शकारी पदवी पाय ।
बापा कासिम-तनय मुहम्मद जीत्यौ सिंधु दियो उतराय ।
आयो मामूँ चढ़ि हिंदुन पै चौबिस बेरा सैन सजाय ।
खुम्मानराय तेहिं बाप-सार लखि सब बिध दियो हराय ।
लाहौर-राज जयपाल गयो चढ़ि खुरासान पर धाय ।
दीनो प्रान अनंदपाल पर छाँड़यौ देस धरम नहिं जाय ।५१

ध्रुवपद मलार

आयो पावस प्रचंड सब जग मैं मचाई धूम
कारे घन घेरि चारों ओर छाय ।
गरजि गरजि तरजि तरजि बीजु चमक चहुँ दिसि

सों बरखत जल-धार लेत धरनि छिपाय ।
मोर रोर दादुर-रव कोकिल कल झींगुर झनकारन
मिलि चारहु दिसि तुम कलह घोर सी मचाय ।
'हरीचंद' गिरिधारी राधा प्यारी साथ लगाय
ऐसी समै रहै मिलि कंठ लपटाय ।५२

तेरेई पयान-हित पावस प्रबल आयो
उठि चलि प्यारी देखि छाई अँधियारी भारी ।
पथ दिखाइ दामिनी रही चमकि तेरे गवन हेत
रवन संग मिलै क्यों न निसि अति कारी कारी ।
गोप सबै गेह गए ह्वै गयो इकंत कुंज
सीरी पौन चलि रही देखि प्यारी प्यारी ।
'हरीचंद' मान छोड़ि उठि चलु साथ मेरे
बैठे बाट हेरि रहे पिय गिरधारी वारी ।५३

ख्याल मलार तिताला

ए घिरि घिरि कै मेघवा बरसै,
पिय बिनु मोरा जियरा तरसै ।
बड़ी बड़ी बूँदन बरसत धायो घेरि घेरि
चहुँ दिसि तें छायो चपला चमकि मेरे प्रान परसै ।
झोंकत पवन जोर पुरवाई अति अँधियारी कहूँ
पंथ न लखाइ इत उत जुगनूँ चमकत दरसै ।
पंथ न लखाइ इत उत जुगनूँ चमकत दरसै ।
'हरीचंद' पिय गरवाँ लगाओ मेरे तन की तपन
बुझाओ तोहिं मिलि मेरो तन मन हरसै ।५४

दूसरी चाल की

देखो बूँदन बरसै दामिनि चमकै घिरि
आए बदरा गरें से लग जाओ ।
घन की गरज सुन उमगत मेरो जिय
ऐसी समै मोहिं मत तरसाओ ।
भरि गई नदी भूमि भई हरी हरी
मग भए अगम दूर मत जाओ ।
'हरीचंद' बलिहारी मिल प्यारे गिरधारी
पूरो मनोरथ तपत बुझाओ । देखो०। ५५

ख्याल मलार ताल झपक

पिया बिनु बिरह-बरसा आई ।
सघन घन दामिनि दमकि संग चमकि जुगुनूँ
रमकि बदरन झमकि बरसत बूँद अति झर लाई ।
रैन कारी डरारी भारी छाई अँधारी बिनु
पिया बिहारी गिरधारी के प्यारी घबराई ।
'हरीचंद' न धीर धरै पीर भई
भारी बनवारी बिना मुरझाई ५६

सूरदासी मलार आड़ा वा तिताला

यह रितु रूसन की नहिं प्यारी ।
देखु न छाय रहे घन झुकि झुकि भूमि छई हरियारी ।
सीरी पवन चलत गरुई ह्वै काम बढ़ावन-हारी ।
बन उपवन सब भए सुहावन औरहि छबि कछु धारी ।
फूली जुही मालती महँकी सुनि कोकिल किलकारी ।
लहकि लहकि लपटीं सब बेली पीतम-गल भुज डारी ।
मगन भए जड़ जीव सबै जब तब तूँ रहति क्यों न्यारी।
'हरीचंद' गर लगु पीतम के गाढ़े भुज भरि नारी ।५७

सावनी

पिय बिनु सखी नींद न आवै साँपिन सी भई रैन ।
व्याकुल तड़पूँ अकेली पीतम बिनु नहिं चैन ।
कैसे मैं जीऊँ बिनु प्यारे ही बरसत टप टप नैन ।
'हरीचंद' कटत न सावन मारत मोहन मैन ।५८

धुरपत टोड़ी वा गौड़ मलार चौताला

ताथेई ताथेई ताथेई नाचै री मदन-मोहन रास रंग
बधुन संग लाग डाँट लेत उरप-तिरप महामोद बढ़यौ
ब्रज-जुवतिन-मध्य आनंद राँचै री ।
ततधा ततधा ततधा बाजै मृदंग तरस तकिटधा
तकिटधा तकिटधा छबि लखि महा मोद री ।
अलाग लाग लेत गावत गुनिजन बंधान
तान मान बँध्यौ थिरक्यौ लय बिच बिच
बाजै मुरलि सुख साँचै री ।
छबि लखि शिव मोहे आय नाचत डमरू बजाय
डिमि डिमि डिमि डिमिर डिमिर जस तहाँ
'हरीचंद' बिमल बाँचै री । ताथेई० ।५९

लावनी

बरसा रितु सखि सिर पर आई पिय बिदेस छाए ।
हमैं अकेली छोड़ आप कुबरी सों बिलमाए ।
सँदेसे भी नहिं भेजवाए ।
वादे पर वादा झूठा कर अब तक नहिं आए ।
बिथा सो कही नहीं जाती ।
पिया बिना मैं ब्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
रात अँधेरी पंथ न सूझै घोर घटा छाई ।
रिमझिम रिमझिम बूँदैं बरसैं झोंकै पुरवाई ।
पपीहन पी पी रट लाई ।
सुधि कर पीतम प्यारे की मेरी अँखियाँ भरि आई ।
बिरह से दरकी सखि छाती ।
पिया बिन मैं ब्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
बाग बगीचे हरे भरे सब फूली फुलवारी ।
भरे तलाब नदी नद नारे मिटी राह सारी ।
बिपति यह पड़ी सखी भारी ।

कैसे आवैं मोहन उन बिन व्याकुल मैं नारी ।
याद कर तबियत घबराती ।
पिया बिन मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
जुगनूँ चमकैं चार दिसा में भई बड़ी सोभा ।
हरी भूमि पर बीर-बहूटी देखत मन लोभा ।
नए नए बिरछन के गोभा ।
देख देख के कामदेव मेरे जिय मारै चोभा ।
हुई जोबन-मद से माती ।
पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
बरसा रितु में पीतम के सँग फिरैं सभी नारी ।
झूलैं बागों जाय हिंडोरा गावैं दै तारी ।
पहिन के रँग रँग की सारी ।
मै किसके सँग सोऊँ सखी री बिपति बढ़ी भारी ।
करूँ क्या तबियत लहराती ।
पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
दादुर बोलैं नाचैं मोरा बरसा रितु जानी ।
बिजुली चमकै बादल गरजै बरस रहा पानी ।
सेज सूनी लखि पछितानी ।
हाथ पटक पाटी पर रो रो पिय बिन बिलखानी ।
कोई नहिं आकर समझाती ।
पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
कहाँ जाऊँ क्या करूँ कोई ततबीर न दिखलाती ।
खड़ी द्वार पर राह देखती भींजत पछताती ।
न भेजी अब तक भी पाती ।
'हरीचंद' को जाके कोई इतना तो समझाती ।
कटै कैसे दुख की राती ।
पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।६०

बारह-मासा

पिय गए बिदेस सँदेस नहिं पाय सखी मन-भावनी ।
लाग्यो असाढ़ बियोग बरसा भई अरंभ सुहावनी ।
अदरा लगी बदरा घुमड़ि रहे बिपति यह उनई नई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

सावन सुहावन दुख-बढ़ावन गरजि घन बन घेरहीं ।
दामिनि दमकि जुगनूँ चमकि मोहिं दुखी जान तरेरहीं ।
पपिहा पिया को नाम रटि रटि काम-अगिन जगावई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

भादों अँधेरी रात टपकै पात पर पानी बजै ।
डरि काम के भय सुन्दरी मिलि नाह सों सेजिया सजै ।
मैं भींजि मारग देखि पिय को रोय तजि आसा दई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

सखि क्वार मास लग्यौ सुहावन सबै साँझी खेलहीं ।
निसि चन्द पूरन चाँदनी मैं नाह गह भुज मेलहीं ।
मोहिं चाँदनी भई धूप रोअत रात बीति सबै गई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

कातिक पुनीत नहाइ सब दै दीप उँजियारी करै ।
हम प्रान-पिय-बिनु बिकल बिरहागिनि दिवारी सी जरैं ।
अँधियार पिय बिनु हिए चौपड़ कौन हँसि हँसि खेलई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

अगहन लग्यौ पाला पड़यौ सब लपटि पिय सों सोवहीं ।
बिनु प्रान-प्रियतम मिले हम करि हाय बहु बिधि रोवहीं ।
दो भए बिन इक रैन आली लाख जुग सी लागई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

सखि पूस लाग्यौ रूस बैठे प्रानपिय औरे कहीं ।
यह रात जाड़े की बिना पिय साथ के बीतत नहीं ।
उन निठुर सब सुख छीनि हमरो राह मधुबन की लई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

सखि माघ में कोयल कुहूकी काम को आगम भयो ।
फूली बसंत सुखेत सरसों आम बन बौर्‌यौ नयो ।
यह पंचमी तिहवार की भई हाय दुखदाइनि दई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

फागुन महीना मस्त सब मिलि निलज गारी गावहीं ।
डारैं अबीर गुलाल चोवा रंग संग उड़ावहीं ।
बिनु प्रान-पिय मैं आप बिरहिनि होय होरी जरि गई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

सखि चैत चाँदनि लगी सुखद बसंत ऋतु बन आइयो ।
चटके गुलाब सुहावने जग काम को बल छाइयो ।
बिनु प्रानपिय दुख दुगुन भयो मनो आज भइ बिरहिन नई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

बैसाख मास अरंभ ग्रीषम औरहू दुख बाढ़ही ।
इक तो बियोगिन आप दूजे दुसह ग्रीषम डाढ़ही ।
बन नयो पल्लव काम-बान समान उर बेधा दई ।
बिन श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

सखि जेठ में दिन भयो दूनो कटत कोऊ बिधि नहीं ।
बन पात पातन ढूँढ़ि हारी नहिं मिले प्यारे कहीं ।
पाती न पाई श्याम की सखि बयस सब योंही गई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
इमि खोज बारह मास पिय को हारि भामिनि भौनही ।
धरि रूप जोगिन को रही औलंब करि इक मौनही ।
'हरिचंद' देख्यो जगत को सब एक पिय मोहन-मई ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।६१

कजली

मोहिं नंद के कँधाई बेलमाई रे हरी ।

बहे पुरवाई औ बदरिया झुकि आई रामा,
कुंज में बुलाई बृजराई रे हरी ।
बँसिया बजाई सुनि सखि उठि आई रामा,
सब जुरि आई रस बरसाई रे हरी ।
माधवी भी जाई जिय अति हुलसाई रामा,
कजरी सुनाई मन भाई रे हरी ।
मिलु उर लाई प्यारी पिय को लुभाई रामा,
नाहिं 'हरिचंद' पछताई रे हरी ।६२

मलार

हरि बिनु काली बदरिया छाई ।
बरसत घेरि घेरि चहुँ दिसि तें दामिनि चमक जनाई ।
कोइलि कुहुकि हिय मेरे बिरहा-अगिन बढ़ाई ।
दादुर बोलत ताल-तलैयन मानहुँ काम-बधाई ।
कौन देस छाये नँद नंदन पातीहू न पठाई ।
'हरिचंद' बिनु बिकल बिरहिनी परी सेज मुरझाई ।६३

सखि फिरि पावस ऋतु आई ।
पिया बिना फिर पी पी करि कै इन पापिन रट लाई ।
फिर बदरी झुकि झुकि कै आई बिपति-फौज उठि धाई ।
देखि अकेली कुटिल काम फिर खींचि कमान चढ़ाई ।
फिर बरसत वैसी ही बूँदै चहुँ दिसि सों झरि लाई ।
फिर दुख-नदी उमड़ि हियरा सौं नैनन के मग आई ।
फिर चमकी चपला चहुँघा तें बिरहिन फेरि डराई ।
फिर इन मोरन बोलि बोलि कै मोहन सुधि जु दिवाई ।
फिर ये कुंज हरे भए देखियत जहँ हरि केलि कराई ।
'हरीचंद' फिर बिकल बिरहिनी परी सेज मुरझाई ।६४

फिरि आई बदरी कारी, फिर तलफैंगे पापी प्रान ।
बिनु पिय पची फेर याही दुख देखन के हित नारी ।
अति व्याकुल तलफत कोउ नाहिंन कछु समुझावन-हारी ।
देखि दसा रोवत द्रुम -बेली धीर सकत नहिं धारी ।
कोकिल-कूक सुनत हिय फाटत क्यौं जीवै सुकुमारी ।
'हरीचंद' बिनु को समुझावै कहि कहि प्रान-पियारी ।६५

मो मन स्याम घटा सी छाई ।
बरसत है इन नैनन के मग पिय बिनु बरसा आई ।
मन-मोहन बिछुरे सों सब जग सूनो परत लखाई ।
'हरीचंद' बिनु प्रान बचन को नाहिं लखात उपाई ।६६

राग मलार, चौताला

श्याम घटा छाई श्याम श्याम कुंज भयो
श्यामा-श्याम ठाढ़े तामें भींजत सोहैं ।
तैसिय श्याम सारी प्यारी तन सौहैं भारी
छबि देखि काम-बाम चंचलाहू मोहैं ।
तैसोई मुकुट मानों घन दामिनि पर
बग-पगति तापै मोर नचो है ।
'हरीचंद' बलिहारी राधा अरु गिरधारी
सो छवि कहि सकै ऐसो कवि को है ।६७

राग मलार

अनोखी तुही नई एक नारि ।
पवास रितु मैं मान करै कोउ लखि तो हृदै बिचारि ।
जोगीहू घन घटा देखिकै धावत ध्यान बिसारि ।
बड़े बड़े ज्ञानी बैरागी करत भोग तप हारि ।
तू कामिनि क्यौं धीर धरत है यह अचरज मोहिं भारि ।
कर जोरे गिरधर पिअ ठाढ़े करत बहुत मनुहारि ।
'हरीचंद' हठ छोड़ि दया करि भुज भरि कोप बिसारि ।६८

खंडिता

आजु तौ जँभात प्रात दोऊ दृग अलसात
भींजत भींजत लाल आए मेरे अँगना ।
लटपटी पाग तें कुसुँभी रँग बरसि रह्यौ
अकेले कहाँ ते आए सखा कोऊ सँग ना ।
निसि के उनींदे जागे कौन तिया-रस पागे
देखो तौ कपोलन पै रह्यौ कहुँ रँग ना ।
'हरीचंद' बलिहारी देखियै जू गिरधारी
नील पट अरुमयौ है काहू को कँगना ।६९

सारंग

आजु ब्रज बाजत महा बधाई ।
परम प्रेमनिधि श्री चंद्रावलि चंद्रभानु नृप-जाई ।
प्रफुलित भई कुंज द्रुम-बेली कीरादिक सुख पाई ।
परम रसिक-बर नंदलाल-हित प्रगट भूमि पै आई ।
चंद्रभानु नृप दान देत बहु हय गय सकल लुटाई ।
चंद्रकला रानी सुखदानी ताकी कूख सिराई ।
आये नंदादिक सब मिलकै महीभान घर धाई ।
प्रगटी सखी स्वामिनी की ब्रज सब मिलि नाचत गाई ।
चंपक-लता बहुरि चंद्रावलि तनया जुगुल सुहाई ।
प्रगटे ब्रज सुतहू तें दूनो करत उछाव बनाई ।
गुप्त रूप कोउ लखत नहीं कछु भेद न जान्यौ जाई ।
'हरीचंद' श्री विट्ठल-पद लखि लख्यो भेद सुखदाई ।७०

आजु ब्रज दूनो बढ़यो अनंद ।
भादौं सुदी पंचमी स्वाती बुध प्रगटे जदु-चंद ।
अग्रज श्री गिरिधारन जू के लीला ललित अमंद ।
रोहिनि माता उदर प्रगट भये हरन भक्त के दंद ।
दान देत हर्षे नँद-जसुमति हय गय रतनन कंद ।
'हरीचंद' अलि आनँद फूले गावत देव सुछंद ।७१

आसावरी

आनँद-सागर आजु उमड़ि चल्यो

ब्रज में प्रगटे आइ कन्हाई ।
नाचत ग्वाल करत कौतूहल
हेरी देत कहि नंद दुहाई ।
छिरकत गोपी गोप सबै मिलि
गावत मंगलचार बधाई ।
आनँद भरे देत कर-तारी लखि
सुरगन कुसुमन झर लाई ।
देत दान सम्मान नंद जू अति
हुलास कछु बरनि न जाई ।
'हरीचंद' जन जानि आपुनो टेरि
देत सब बहुत बधाई ।७२

यथा-रुचि

आजु ब्रज होत कुलाहल भारी ।
बरसानें बृषभानु गोप के श्री राधा अवतारी ।
गावत गोपी रस में ओपी गोप बजावत तारी ।
आनँद-मगन गिनत नहिं काहू देत दिवावत गारी ।
देत दान सम्मान भान जू कनक माल मनि सारी ।
जो जाँचत तासों बढ़ि पावत 'हरीचंद' बलिहारी ।७३

आजु बन ग्वाल कोऊ नहिं जाई ।
कहत पुकारि सुनौ री भैया कीरति कन्या जाई ।
लावहु गाय सिगारि बच्छ सह सुबरन सींग मढ़ाई ।
मोर-पंख मखतूल फूल धरि अँग अँग चित्र कराई ।
आजु उदय साँचो सब गावहु मिलिकै गीत बधाई ।
'हरीचंद' बृषभानु बबा सों बहुत निछावरि पाई ।७४

आनंदे सुख हेरि हेरि ।
ब्रज-जन गावत देत बधाये नचत पिछौरी फेरि फेरि ।
उनमत गिनत न ग्वाल कछू ब्रज सुंदरि राखी घेरि घेरि ।
हेरी दै दै बोलत सबही ऊँचे सुर सों टेरि टेरि ।
छिरकत हँसत हँसावत धावत राखत दधि-घृत झेरि झेरि ।
'हरीचंद' ऐसो मुख निरखत
तन-मन वारत बेरि बेरि ।७५

आनँद आजु भयो बरसाने जनमी राधा प्यारी जू ।
त्रिभुवन सुखदानी ठकुरानी जननी जनक-दुलारी जू ।
सुर नर मुनि जेहि ध्यान धरत हैं गावत बेद पुकारी जू ।
सो 'हरिचंद' बसत बरसाने मोहन प्रान-अधारी जू ।७६

राग बिलावल

आजु भौन बृषभानु के प्रगटीं श्री राधा ।
दूरि भई है री सखी त्रिभुवन की बाधा ।
को कबि जो छबि कहि सकै कछु कहि नहिं आवै ।
आनँद अति परगट भयो दुख दूरि बहावै ।
डारहिं सब ब्रज-गोपिका तन-मन-धन वारी ।
'हरीचंद' श्री राधिका-पद पै बलिहारी ।७७

भैरव

आजु तौ आनंद भयो का पै कहि जावै ।
भूलें सब गोपि-ग्वाल इत उत बहु डोलैं ।
बाढ़यौ अति हिय हुलास जय जय मुख बोलैं ।
पहिरि पहिरि सुरँग सारी आईं ब्रज-नारी ।
गावैं हिय मोद भरी दै दै कर-तारी ।
दान देत भानु राय जाको जो भावै ।
'हरीचंद' आनँद भरि राधा गुन-गावै ।७८

कान्हरा

आई भादौं की उँजियारी ।
आनँद भयो सकल ब्रज-मंडल
प्रगटी श्री बृषभानु-दुलारी ।
कीरति जू की कोख सिरानी
जाके घर प्यारी अवतारी ।
'हरीचंद' मोहन जू की जोरी
बिधना कुँवरि सँवारी ।७९

आजु बरसाने नौबत बाजैं ।
बीन मृदंग ढोल सहनाई गह गह दुंदुभि गाजैं ।
सब ब्रज-मंडल शोभा बाढ़ी घर घर सब सुख साजैं ।
'हरीचंद' राधा के प्रगटे देव-बधू सब लाजैं ।८०

आजु ब्रज आनँद बरसि रह्यौ ।
प्रगट भई त्रिभुवन की शोभा सुख नहिं जात कह्यौ ।
आनँद-मगन नहीं सुधि तन की सब दुख दूरि बह्यौ ।
'हरीचंद' आनंदित तेहि छन चरन की सरन गह्यो ।८१

आजु कहा नभ भीर भई ?
सजनी कौन फूल बरसावै सुख की बेलि बई ।?
बालक से चारहु को आये ? तीन नयन को को है ?
ओढ़ि बघंबर सरप लपेटे जटा धरे सिर सोहै ।?
तीन चार अरु पंच सप्त षटमुख के मिलि क्यों नाचैं ?
बड़ी जटा मुख तेज अनूपम को यह बेदहि बाँचैं ?
बीन बजावति कौन लुगाई हंस चढ़ी क्यों डोलै ?
को यह यंत्र बजाय रही है जै जै जै जै बोलै ?
को यह लिये तमूरा ठाढ़ो को नाचै को गावै ?
इत आवै कोउ बात न पूछत पुनि नभ लौं चलि जावै ?
अति आचरज भरीं सब तन में बात करैं ब्रज-नारी ?
प्रगट भई बृषभानु राय घर मोहन-प्रान-पियारी ।
आनँद बढ़यो कहत नहिं आवै कवि की मति सकुचाई ।
राधा-श्याम-चरन-पंकज-रज 'हरीचंद' बलि जाई ।८२

आजु प्रगट भई श्री राधा आजु प्रगट भई ।
गोपिका मिलि घर-घरन सों भानु-नगर गई ।

आइ नंद-जसोमति मिलि होत अधिक अनंद ।
भानु बरसाने उदय भो प्रगट पूरन चंद ।
होत जय जयकार वहि पुर देव बरषैं फूल ।
'हरीचंद' सब गोपिका के मिटे उर के शूल ।८३

सारंग

आजु दधि-काँदौ है बरसाने ।
छिरकति गोपी-गोप सबै मिल काहू को नहिं माने ।
आनंदित घर की सुधि भूली हमको हैं नहिं जाने ।
दधि-घृत-दूध उड़ै लै सिर सों फिरहि अतिहि सरसाने।
वह आनँद कापै कहि आवै भयो जौन महराने ।
श्री बल्लभ-पद-पद्म-कृपा सों 'हरीचंद' कछु जाने।८४

कजली

श्याम-विरह में सूझत सब जग
हम कों श्यामहि श्याम हो इक-रंगी ।
जमुना श्याम गोबरधन श्यामहि
श्याम कुंज बन धाम हो इक-रंगी ।
श्याम घटा पिक मोर श्याम सब
श्यामहि को है काम हो इक-रंगी ।
'हरीचंद' याही तें भयो है
श्यामा मेरो नाम हो इक-रंगी ।८५

मलार

अनत जाइ बरसत इत गरजत बे-काज ।
तुम रस-लोभी मीत स्वारथ के सुनहु पिया ब्रजराज ।
दामिनि सी कामिनि अनेक लिए करत फिरत हौ राज ।
'हरीचंद' निज प्रेम-पपीहन तरसावत महराज ।८६

पिय सँग चलि री हिंडोरे झूल ।
या सावन के सरस महीने मेटि अरी जिय सूल ।
देखि हरी भई भूमि रही सब बन-द्रुम-बेली फूल ।
यह रितु मानिनि-मान-पतिब्रत देत सबै उन्मूल ।
होन सँजोगिनि सुख बिरहिन के हिए उठत है ह्रूल ।
'हरीचंद' चल ऐसा समय तू
मिलु गहि पिय भुज-मूल ।८७

राग भैरव

प्रात काल ब्रज-बाल पनियाँ भरन चलीं
गोरे गोरे तन सोहै कुसुँभी को चदरा ।
ताही समै घन आए घेरि घेरि नभ छाए
दामिनि दमक देखि होत जिय कदरा ।
बोलत चातक मोर सीतल चलैं झकोर
जमुना उमड़ि चली बरसत अदरा ।
'हरीचंद' बलिहारी उठि बैठो गिरिधारी
सोभा तौ निहारौ चलि कैसो छाए बदरा ।८८

खंडिता

प्रात क्यौं उमड़ि आए कहा मेरे घर छाए
ए जू घनश्याम कित रात तुम बरसे ।
गरजत कहा कोऊ डर नहिं जैहैं भागि
झुकि झुकि कहा रहे चलौ अटा पर से ।
सजल लखात मानौ नील पट ओढ़ि आए
कहौ दौरे दौरे तुम आए काके घर से ।
'हरीचंद' कौन सी दामिनि सँग रात रहे
हम तौ तुम्हारे बिना सारी रैन तरसे ।८९

सारंग

आये ब्रज-जन धाय धाय ।
नाचत करत कोलाहल सब मिलि
तारी दै दै गाय गाय ।
जुरे आइ सिगरे ब्रज-बासी
टीको बहु बिधि लाय लाय ।
'हरीचंद' आनँद अति बाढ़यो
कहत नंद सों जाय जाय ।९०

आजु भयो अति आनँद भारी ।
प्रगटी श्री वृषभानु-दुलारी ।
गोपी सब टीकौ लै आवैं ।
मिलि मिलि रहसि बधाई गावैं ।
नाचत गोप देत सब तारी ।
तन मन की कछु सुधि न सम्हारी ।
दान देति हैं मनि-गन हीरा ।
हेम पटम्बर पीअर चीरा ।
सुख बाढ़यो तेहि छन अति भारी
'हरीचंद' छबि लखि बलिहारी ।९१

आजु श्री बल्लभ के आनंद ।
प्रगट भये ब्रज-जन-सुखदायी पूरन परमानंद ।
गावत गीत सबै ब्रज-बनिता सोहत है मुख-चंद ।
बेद पढ़त द्विजवर बहु ठाढ़े देत असीस सुछंद ।
गुप्त रूप कोऊ प्रकट न जानत हलधर सब सुखकंद।
गोपीनाथ अनाथ-नाथ लखि मन बारत 'हरिचंद ।९२

आजु ब्रज होत कोलाहल भारी ।
नंदराय घर मोहन प्रगटे भक्तन के सुखकारी ।
जित तित तें धाईं टीको लै अति आकुल ब्रज-नारी ।
निरखन कारन श्याम नवल ससि उमँगी सजि सजि सारी।
गावत गोप चोप भरि नाचत दै दै कै कर-तारी ।
बाजे बजत उड़त दधि माखन छीर मनहुँ घन वारी ।
दान देत नँदराय उमँगि रस रतन धेनु बिस्तारी ।
'हरीचंद' सों निरखि परम सुख देत अपनपौ वारी ।९३

परज

एरी आज बजै छे रंग बधावना ।
कीरति-उदर-उदयगिरि प्रगट्यो अद्‌भुद चंद्र सोहावना ।
आजु सुफल भयो नंद महोत्सव नर-नारी मिलि गावना ।
'हरीचंद' वृषभानु बबा सों प्रेम बधायो पावना ।९४

सारंग

कुंज कुंज रथ डोलै मदन मोहन जू को
श्वेत ध्वजा तामें उड़ि उड़ि सोहै ।
तैसोई सघन घन छाय रहेउ नभ
बीच देखत ही मनमथ-मन मोहै ।
दौरत में फरहरत पीताम्बर
मनु दामिनि घन नाचै ।
श्वेत ध्वजा बग-पाँति छबि कछु कहि न
जात निरखत अति मन आनंद राचै ।
द्रुम द्रुम कुंज कुंज बन बन
तीर तीर घूमत रथ फिरि आवै ।
'हरीचंद' बलि जाय छबि देखि सुख
पाय तन मन धन सब वारिकै लुटावै ।९५

बिहाग

गावत रंग-बधाई सब मिलि गावत रंग-बधाई ।
कीरति के प्रकटी श्री राधा मोहन के मन भाई ।
नर-नारी सब मिलि के आई गावत गीत सुहाई ।
'हरिचंद' कछु जस बरनन करि बहुत निछावरि पाईं ।९६

राइसा

गावो सखि मंगलचार बधायो बृषभानु की ।
सुनि चलीं गृह गृह तें साजनि सबै सजाय ।
बरनि छबि कछु कहि न आवै चंद उदय भयो आय ।
भयो अति आनंद तेहि छन कह्यो कापै जाय ।
ग्वाल नाचैं तारि दै दै देत बहुत बनाय ।
एक गावत एक नाचत एक परसत पाय ।
गारि देत दिवाय सब को सुख कह्यो नहिं जाय ।
देत सब कोऊ बधाई रतन बसन लुटाय ।
रंक भये कुबेर मानहु दान पाइ अघायं ।
भयो जौन अनंद तेहि छन कौन पै कहि जाय ।
'हरीचंद' बहुत दीनों दान तहाँ बुलाय ।९७

सारंग

ग्वाल सब हेरि हेरि बोलैं ।
कीरति के कन्या जायी यह सुख सों कहि डोलैं ।
आनँद-मगन गनत नहिं काहू माठ दही के रोलैं ।
'हरीचंद' को देत बधाई भक्ति मन मोलैं ।९८

गावै सबै बधाय धाय ।
आनँद भरे करत कौतूहल बहुधा यंत्र बजाय जाय ।
गोपी आईं मंगल कर लै कुमकुम मुखन लगाय गाय ।
श्री-मुख लखि आनंदत सबही नयनन नहीं बलाय लाय ।
रावल-गली सुगंधिन छिरकी
बहु बिधि बसन बिछाय छाय ।
'हरीचंद' सोभा लखि सुर नभ
तिय सब रहीं लुभाय भाय ।९९

यथा-रुचि

गोकुल प्रकटे गोकुलनाथ ।
प्रमुदित लता गोबर्द्धन जमुना
सब ब्रजवासी किये सनाथ ।
इक गावत इक ताल बजावत इक
नाचत गहि गहि कै हाथ ।
एक बसन पट देत बधाई
इक लावत घसि चंदन माथ ।
आनँद उमगे गनत न काहू
बाल बृद्ध सब एकहि साथ ।
'हरीचंद' सुर फूलन बरषत
सुक नारद गावत गुन-गाथ ।१००

परज

घर घर आजु बधाई बाजै ।
टीको लै आवति ब्रज-बनिता कीरति को घर राजै ।
इक गावत इक करत कोलाहल मनु पायो है राजै ।
'हरीचंद' छबि कहि नहिं आवै
कवि-मति या थल लाजै ।१०१

यथा-रुचि

चंद्रभानु घर बजत बधाई ।
श्री चंद्रावलि ब्रज प्रकटाई ।
हरित भये तरु पल्लव गोभा ।
कुंज-भवन बाढ़ी अति शोभा ।
बोलि उठे कल कोकिल कीरा ।
डोली तिहि छन त्रिबिध समीरा ।
उनये घन मनु आनँद छायो ।
गरजि मंद दुंदुभी बजायो ।
भादौं सित पंचमी सुहाई ।
स्वाती सोम पहर निसि आई ।
चंद्रकला की कोख सिरानी ।
चंद्रावलि प्रकटी सुखदानी ।
गुप्त भेद नहिं कछू प्रगटायो ।
सो श्री बिट्ठल प्रकट लखायो ।

रूप प्रकट छबि नयन निहारी ।
'हरीचंद' सर्बस बलिहारी ।१०२

ढाढ़ी

चलो आज घर नंद महर के प्रेम-बधाई गावैं ।
भादों कृष्ण अष्टमी दिन श्री कृष्णचंद्र-जस गावैं ।
तोरन तनी पताका द्वारन भवन मीर भइ भारी ।
री ढाढ़िन कर पगन समेटे चलियो भवन मँझारी ।
जहाँ इंद्र चंद्रादि-देवता कर बाँधे हैं ठाढ़े ।
कौन सुनैगो आज हमारी प्यारी कर हित गाढ़े ।
प्रेम-पंथ को पग है न्यारो ताते मन यह आवै ।
'हरीचंद' लखि लाल लड़इतो
नव निधि रिधि सिधि पावै ।१०३

जसोदा माई लेहु हमारी बधाई ।
धन्य भाग तेरे सुनु प्यारी जनम्यो कुँवर कन्हाई ।
चिरजीवो जब लौं जमुना-जल गंगा-जल सब देवा।
जब लौं धरा अकास और है जब लौं हरि की सेवा।
तब लौं चिरजीवो जग भीतर 'हरीचंद' तव लाला।
मंगल गीत विनोद मोद मति
मंगल होइ रसाला ।१०४

हिंडोला रायसा

झूलत राधा रंग भरी कुंज-हिंडोरे आज ।
सँग सब सखी सुहावनी साजे सुंदर साज ।
झूलन आये मोहन सुंदर मदन मुरारी ।
गावत ऊँचे सुर भरि सँग मिलि ब्रज की नारी ।
ताल मुरज डफ आवज साथ पखावज चंग ।
बाजत लय सुर साजत बीना और उपंग ।
बिच बिच बंसी गूँजत मधुर मधुर घन-घोर ।
धुनि-सुनि जासु कोइलियन तरुन मचाई रोर ।
इक उतरत इक झूलत एक चढ़त तहँ धाय ।
एक रहत गहि डोरी दूजी देत झुलाई ।
इक नाचत इक गावत एक बजावत तार ।
एक जुगल छबि लखि कै तन-मन डारत वार ।
रमकनि मैं रँग बाढ़यौ छबि कछु कही न जाइ ।
झोंटा लगि रहे डारन बिबिध बसन फहराइ ।
सोभा को कहि भाषै झूलत बाढ़ी जौन ।
'हरीचंद' लखि लखि कै
कवि-मति रसना मौन ।१०५

बिहाग

नाचति बरसाने की नारी ।
जिनके घर प्रकटी श्री राधा मोहन-प्रान-पियारी ।
नाचत शिव सनकादि मुनीश्वर नारदादि ब्रतधारी।
नाचत बेद पुरान रूप धरि डारत तन-मन वारी ।
अति आनंद बढ़यो बरसाने
प्रकटी श्रीवृषभान-कुमारी ।
'हरीचंद' आनंदित अति मन
होत निरखि बलिहारी ।१०६

नंद बधाई बाँटत ठाढ़े ।
भई सुता बाबा भानुराय के
प्रेम-पुलक तन बाढ़े ।
काहू का सोना काहू को रूपा
काहू के मनि-गन दीनो ।
जिन को माँग्यो तिन सो पायो
कह्यो सबनि को कीनो ।
काहु को धेनु बसन काहू को
दियो सबनि मन-भायो ।
आनँद भयो कहत नहिं आवै
'हरीचंद' जस गायो ।१०७

नागरी मंगल रूप-निधान ।
जब तें प्रकट भई बरसाने छायो आनंद महान ।
दिन दिन सुख उमड़त घर
घर में छन छन होत कल्यान ।
'हरीचंद' मोहन की प्यारी
राधा परम सुजान ।१०८

मलार

पिय बिन बरसत आयो पानी ।
चपला चमकि चमकि डरपावत
मोहिं अकेली जानी ।
कोयल कूक सुनत जिय
फाटत यह बरषा दुखदानी ।
'हरीचंद' पिय श्याम सुँदर बिनु
बिरहिनि भई है दिवानी ।१०९

सारंग

ब्रज-जन काँवर जोरि जोरि ।
आये मन-भाये लै दधि घृत
निज निज गृह तें दौरि दौरि ।
गोपी आई गीतन गावत पाइँ
परत मुर लोरि लोरि ।
करत निछावरि देखि प्रिया-मुख
तन के भूषन छोरि छोरि ।
दधि-काँदो माच्यो आँगन में देत माठ सब फोरि फोरि ।
लूटत झपटत खात मिठाई वारत छिन में कोरि कोरि ।
गिनत न कोऊ काहू को कछु पट भूषन दै तोरि तोरि ।

'हरीचंद' सुख कहत न आवै
आनँद बाढ़्यो खोरि खोरि ।११०

राग मलार हिंडोला

गिरधरलाल हिंडोरे झूलैं ।
पँच-रंग फूल हिंडोरे बनायो निरखि निरखि जिय फूलैं ।
को कहि सकै भई जो सोभा कालिंदी के कूलैं ।
'हरीचंद' यह कौतुक लखिकै देव बिमानन भूलैं ।१११

राग परज

एजी आज झूलै छे श्याम हिंडोरें ।
वृंदाबन री सघन कुंज में जमुना जी लेताँ हलोरें ।
सँग थारे वृषभानु-नंदिनी सोहै छै रँग गोरे ।
'हरीचंद' जीवन-धन वारी मुख लखताँ चित चोरे।११२

ईमन

कमल नैन प्यारी झूलै झुलावै पिय प्यारी ।
कबहुँक झोंटा देत कबहुँ लगावै कंठ
कबहुँ सँवारत सारी, करत मनुहारी ।
कबहुँ संग झूलै सोभा देखि देखि फूले कबहुँ
उतरि झोंटा देत भारी भारी, डरत सुकुमारी
'हरीचंद' बलिहारी झुकि आई घटा कारी
बरसत घोर बारी मुकुट, छावत गिरिधारी ।११३

राग अड़ानो

सावन आवत ही सब द्रुम नए फूले
ता मधि झूलत नवल हिंडोरे ।
तैसिय हरित भूमि तामैं बीरबधू सोहै
तैसीयै लता झुकि रही चहुँ कोरे ।
तैसोई हिंडोरो पच-रँग बन्यो सोहत
तैसी ही ब्रज-बधू घेरे सब ओरे ।
'हरीचंद' बलिहारी तापै झूलै राधाप्यारी
मोहन झुलावैं झोंटा देत धोरे धोरे ।११४

बारह-मासा

मास असाढ़ उमड़ि आए बदरा ऋतु बरसा आई ।
बोले मोर सोर चहुँ दिसि घन-घोर घटा छाई ।
पपीहन पी पी रट लाई ।
भयो अरंभ बियोग फिरी जब काम की दुहाई ।
देखि मेरी तबियत घबराती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
सावन मास सुहावन लागै मन-भावन नाहीं ।
झूलैं काकै संग हिंडोरा देकर गल-बाहीं ।
बरसि घन कुंजन के माहीं ।
कौन बचावै आप भींजि मोहि रखि अपनी छाँहीं ।
याद करि दरकत सखि छाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
भादौं मास अँधेरो लखि कै रही धीर खोई ।
ब्याकुल सूने घर में तड़पूँ पास नहीं कोई ।
अकेली मैं सेजों सोई ।
बूँद झमक दामिनी चमक लखि कै करवट रोई ।
बिथा सो नहीं सही जाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
कार मास सब साँझी खेलैं सरद बिमल पानी ।
मैं ब्याकुल बिनु प्रान-पिया के कहत न मुख बानी ।
उँजेरी रात न मन मानी ।
चंदा उलटी अगिनि लगावै मोहिं बिरहिनी जानी ।
कोई करवट नहिं कल पाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
कातिक मास पुनीत जानि सब न्हातीं बृज-नारी ।
मानि दिवाली दीप-दान दे करती उँजियारी ।
पिया बिन मेरे अँधियारी ।
भई बियोगिन ब्याकुल मैं सब रैन चैन हारी ।
बिपति यह सही नहीं जाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
अगहन आया सब मन भाया पड़ा जोर पाला ।
लपटि लपटि पीतम से सोईं घर घर में बाला ।
ओढ़ कर शाल औ दुशाला ।
मैं घर बीच अकेली तड़पूँ बिना नंदलाला ।
भई सौ जुग की इक राती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
पूस मास में सीत जोर है दुगुन रात होती ।
बिना पियारे प्राणनाथ मैं किससे लपट सोती ।
सेज सूनी लखि कै रोती ।
तड़प तड़प कर बिरह-बोझ मैं किसी भाँति ढ़ोती ।
भई मेरी पत्थर की छाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
माघ मास में मदन जोर भयो रितु बसंत आई ।
बौरे बौर फूल बन फूले मोरन रट लाई ।
फिरी जग काम की दुहाई ।
कोकिल कूक सुनत जिय दरकत मुरछित घबराई ।
न पाई मोहन की पाती ।
कैसे रैन कटै बिन पिय के नींद नहीं आती ।
फागुन खेलैं फाग रंग गावैं मीठी बोली ।
चलै रंग की पिचकारी उड़ै अबिर-झोली ।
देखि मेरे हिय लागी होली ।
भयो काम को जोर दरकि गई जोबन से चोली ।
जाय यह कोई समझाती ।

कैसे रैन कटै बिन पिय के नींद नहीं आती ।
चैत चाँदनी देख भया दुख सखी मेरा दूना ।
कामदेव ने अंग अंग मेरा जला जला भूना ।
पिया बिन मैं अब जीऊँ ना ।
कहाँ जाऊँ क्या करूँ दिखाता सारा जग सूना ।
धरनि में मैं समाय जाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
लगा मास बैसाख सखी दिन गर्मी के आए ।
सब सँजोगियों ने खसखाने घर में लगवाए ।
फूल के बँगले बनवाए ।
चंदन लेप फुहारे छूटे गुलाब छिरकाए ।
करूँ मैं क्या बियोग-माती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
जेठ मास गरमी सखि पड़ती बढ़ी पीर भारी ।
दिन नहिं कटता किसी भाँति घबराती मैं नारी ।
भई मेरे जोबन की ख्वारी ।
बारी बैस छोड़ के मुझको बिछुड़े बनवारी ।
हाय करि रोती पछिताती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।
बारह मास पिया बिन खोए रोइ रोइ हारे ।
बन बन पात पात करि ढूँढ़ा मिले नहीं प्यारे ।
मेरे प्रानों के रखवारे ।
'हरीचंद' मुखड़ा दिखलाओ आँखों के तारे ।
पीर अब सही नहीं जाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।११५

मलार

ऐ मैं कैसे आउँ ए दिलजानी हो
देखो रिमझिम बरसत पानी ।
जो मेरी भींजे सुरुख चूँदरी तो घर सास रिसानी ।
'हरीचंद' पिय मोहिं बचाओ पीत पिछोरी तानी ।११६

सारंग

ब्रज जनमत ही आनँद भयो ।
श्री वृषभानु-भवन के भीतर सब सुख आन नयो ।
गाँव गाँव तें टीको आयो भीतर भवन लयो ।
'हरीचंद' आनंद भयो अति दुख बहि दूरि भयो ।११७

ब्रज में रस-निधि प्रगट भई ।
चन्द्रभानु नृप भाग फले ब्रज प्रगटी सुता नई ।
हरि राधा को प्रेम परम जो सोइ मूरति चितई ।
कहि 'हरिचंद' मान लीला रस करि हित भूमि गई ।११८

यथा-रुचि

भट्ट इक बात नई सुनि आई ।
आजु भई कीरति के कन्या बाजत रंग-बधाई ।
नर-नारी सब हैं मिलि आईं कीरति घर छबि छाई ।
अति आनंद कहन नहिं आवै 'हरीचंद' बलि जाई ।११९

मलार

मनोरथ करत द्वार पर ठाढ़ी ।
करि करि ध्यान श्याम सुंदर को पुलकावलि तन बाढ़ी ।
ऐहैं री या मारग सों हरि कमल-नयन घनश्याम ।
बेनु बजावत कमल फिरावत हँसत गरे बन-दाम ।
करि करि बहु पकवान मिठाई भरि भरि राखत थार ।
अपने हाथ गूँथि बनावत रचि फूलन के हार ।
द्वारे मेरे रथ ठाढ़ो करि मोकों अति सुख दैहैं ।
जो हम रचि रचि कै राखे है सो प्रभु रुचि सो खैहैं ।
दै बीरा आरती करौंगी व्यजनै हाथ डुलैहैं ।
तन मन धन न्यौछावर करिहैं देखि देखि सुख पैहैं ।
औ जो कहुँ घन बरसन लागे ताहि निवारन काज ।
भींजत उतरि मेरे घर ऐहैं जहँ सुख को सब साज ।
सुफल काम सब मेरो ह्वैहैं जो कछु चित्त बिचारेउ ।
ऐसे ग्वालिनि करति मनोरथ रथ को दूरि निहारेउ ।
हरि आये बादरहू आये बरषन लाग्यो पानी ।
ताके घर प्रभु उतरि पधारे भींजत आपुहि जानी ।
अति आनंद भयो ताके चित मिलि प्रभु अति सुख दीनो ।
'हरीचंद' प्रभु अन्तरजामी सुफल मनोरथ कीनो ।१२०

कान्हरा

यह निधि धर्महि तें पाई ।
कीरति मैया तू बड़-भागिनि जो तेरे घर आई ।
जाको ध्यान धरत सरकादिक संभु समाधि बड़ाई ।
सो निधि तजि बैकुंठ धाम को बरसाने में आई ।
जाते ब्रज बिहरत आनँद भरि श्री गोकुल के राई ।
सो निधि बार बार उर धरिकै 'हरीचंद' बलि जाई ।१२१

सारंग

रथ चढ़ि नंदलाल पिय करत हैं बन फेरा ।
आजु सखी लालन सँग बिहरिबे की बेरा ।
रतन-खचित सुंदर रथ दिव्य बरन सोहै ।
छतरी ध्वज कलस चक्र सुर-नर-गन मोहै ।
छाई घन घटा चारु आनँद बरसावैं ।
प्रमुदित घनश्याम तहाँ राग मलार गावैं ।
और कोऊ संग नाहिं हरि अरु ब्रज-नारी ।
हाँकत रथ अपने हाथ राधा सुकुमारी ।
कुंज कुंज केलि करत डोलत हरि राई ।
'हरीचंद' जुगुल रूप लखि कै बलि जाई ।१२२

यथा-रुचि

रास-रस ब्रज में प्रगट भये। ।
फूली फिरत सबै ब्रज-बनिता तन को ताप गयो ।
लीला-रूप शील-गुन-सागर ब्रज आनंद भयो ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया को आनंद अतिहि दयो ।१२३

श्याम संग श्यामा रंग भरी राजत ।
अरध होट घूँघट पट कीन्हे
लखि रति मन्मथ लाजत । ध्रु०
नील निचोल मध्य मुख ससि की
फैली घटा सुहाई ।
झिलमिल ज्योति एक मिलि
दीखति महलन अलि छवि छाई ।
श्यामहु बने श्याम रँग
बागे अनुरागे पिय प्यारी ।
'हरीचंद' लखि जुगुल माधुरी
सरबस ठान्यो बारी।१२४

असावरी

सुनत जनम वृषभानु-लली को उठि धाई ब्रज-नारी ।
मंगल साज लिये कर कंजन पहिरे रँग रँग सारी ।
सो जैसे तैसे उठि धाई सुनतहि स्वामिनि नामा ।
भादों नदी सरिस उमगाई चहुँ दिसि ब्रज की बामा ।
बेनी सिथिल खसित कच झुमरन लुलित पीठ पर सौहै।
काजर नयन श्रवन-तल तरवन देखत ही मन मोहै ।
झुम झुम मंडित मुख ससि सोभित बेंदी हीर जगाई ।
अधर तमोल रंग सों भीने गावत सरस बधाई ।
आनँद उमगे गात गात सब हिय अति अधिक उछाह ।
सब घर पुत्र भयो धन बाढ्यो सब ही के मनु ब्याह ।
लोचन तृपित दरस बिनु ब्याकुल पगहू सों बढ़ि धावै ।
चौंकि चौंकि चितवत चारहु दिसि मग मनु कंज बिछावै।
आइ जुरीं वृषभानु-भवन में मुख निरखत सुख पायो ।
पद परि तरवा चूमि निरखि दृग जन्म सुफल करवायो ।
धनि दिन धनि निसि धनि छिन
धनि पल धनि यह घरी सोहाई ।
जामें तीन लोक की स्वामिनि भानु-भवन प्रगटाई ।
नाचत गावत करत कुलाहल प्रेम उमगि अकुलानी ।
हँसत प्रमोद करत मन फूलत बोलत कोकिल बानी ।
अति रस-मत्त बदत नहिं काहू उछलित रस आवेसा।
अंचल खुलत नाहिं सुधि तन की भई एक ही भेसा ।
सब ब्रज के शृंगार रूप रस भाग सुहाग सुहायो ।
मोहन की सरबस संपति सँग मिलि बरसाने आयो ।
को कहि सकै कहा कहि भाषै कवि पै नहिं कहि जाई ।
जो सुख सोभा ता छन बाढ़ी अनुभव नयन लखाई ।
नंद-भवन तें बढ़ि सुख तेहि छन क्योंहूँ करि प्रगटायो।
'हरीचंद' बल्लभ-पद-बल से
केवल यह लखि पायो ।१२५

हमारे तन पावस बास कर्‌यो ।ध्रु०
बरसत नैन-वारि सब ही छन दुख-घन उमड़ि पर्‌यो ।
जुगुनूँ चमकि अँगार-बिरह की श्वासा बान भर्‌यो ।
'हरीचंद' हिय करो मिलि
सीतल ना-तरु गात जर्‌यो ।१२६

हमारे भाई श्याम जू की जीति ।
हारो सदा जहाँ पिय प्यारो यहै प्रीति की रीति ।
प्रेम होड़ से बहु नायक बनि खोई श्याम प्रतीति ।
जदपि निरंतर लखत रहत रुख तऊ नाम की भीति ।
होत अधीन भौंह फेरन में यहै यहाँ की गीति ।
'हरीचंद' याही सों सब सों सरस जुगल की भीति।१२७

हम जो मनावत सो दिन आयो ।
कीरति-सुता प्रगट बरसाने गायो गीत बधायो ।
करि सिंगार चलीं घर घर तें मंगल साज सजायो ।
हाथन कंचन-थार बिराजै चौमुख दीप जगायो ।
आईं मिलि वृषभानु गोप के अति आनँद उर भायो ।
थापे दीने कलस धराये टीको सबन लगायो ।
गावत गोपी तन मन ओपी द्वार निसान बजायो ।
'हरीचंद' तेहि समय जाइ के बहुत बधाई पायो ।१२८

राव जू आजु बधाई दीजै ।
तुम्हारे प्रकट भई श्री राधा कह्यौ हमारो कीजै ।
गोपिन को मनि-गन आभूषन दै दै आशिष लीजै ।
ग्वालन पाग पिछौरी दीजै यातें सब दुख छीजै ।
तुम्ह'री सुता जगत ठकुरानी जायो मुख लखि लीजै ।
'हरीचंद' वृषभानु-सुता के चरन-कमल-रस पीजै।१२९

हमारी प्यारी सखियन की सिरताज ।
भोरी गोरी पिय-रस बोरी लाज-सुहाग-जहाज ।
ब्रज-रानी कीरति सुख-दानी पूरनि जसुमति-काज ।
नंद बबा की बयन-पूतरी मोहन की सुख-साज ।
भानु राय के घर की दीपक पालनि भक्त-समाज ।
'हरीचंद' पिय-सहित करौ नित
अबिचल ब्रज में राज ।१३०

विनय-प्रेम पचासा

[सन् १८८१ में प्रकाशित]

विनय-प्रेम-पचासा

जै जै श्री बृन्दाबन-देवी ।
जो देवन को देव कन्हाई सोऊ जा पद-सेवी ।
अगम अपार जगत-सागर के जाके गुन-गन खेवी ।
'हरीचंद' की यहै बीनती कबहूँ तो सुधि लेवी ।१

बचन दीन-जन सों जुगति नई निकारी लाल ।
बहरावन हित हम सवन भए बाल-गोपाल ।
जनम करम पढ़ि आपु को बहँकि जाइँ से और ।
हम दामन तजिहैं नहीं अहो छली-सिरमौर ।
जदपि बास तव मैं अहैं जीवहिं दोसी नाथ ।
पै निरघृन कौतुक लखत तुम क्यों वाके साथ ।
भयो पाप सों पाप बिनु जग न जियत छन एक ।
ऐसे जीवहिं होइ क्यों तुव पद-पदम बिबेक ।
न्याय-परायन साँच तुम साँचे अहौ दयाल ।
देखैं निबहत उभय गुन किमि मेरे अघ-काल ।
जो हम जैसो कछु करै तुम तैसो फल देहु ।
तौ जग की गति आपहू करी बिसारि सनेहु ।२

राग यथा-रुचि

नैनन मैं निवसौ पुतरी ह्वै हिय मैं बसौ ह्वै प्रान ।
अंग अंग संचरहु सक्ति ह्वै ए हो मीत सुजान ।
मन में बृत्ति वासना ह्वै कै प्यारे करौ निवास ।
ससि सूरज ह्वै रैन-दिना तुम हिय-नभ करहु-प्रकास ।
बसन होइ लिपटौ प्रति अंगन भूषन ह्वै तन बाँधो ।
सोंधो ह्वै मिलि जाऊ रोम प्रति अहो प्रानपति माधो ।
ह्वै सुहाग-सेंदुर सिर बिलसौ अधर राग ह्वै सोहौ ।
फूल-माल ह्वै कंठ लगौ मम निज सुबास मन मोहौ ।
नभ ह्वै पूरौ मम आँगन मैं पवन होइ तन लागौ ।
ह्वै सुगंध मो घरहि बसावहु रस ह्वैके मन पागौ ।
श्रवनन पूरौ होइ मधुर सुर अंजन ह्वै दोउ नैन ।
होइ कामना जागहु हिय मैं करहु नींद बनि सैन ।
रहौ ज्ञान में तुमही प्यारे तुम-लय तन मम होय ।
'हरीचंद' यह भाव रहै नहि प्यारे हम तुम दोय ।३

राग असावरी

जुगल-केलि-रस बल्लभियन बिनु और कहा कोउ जानै ।
बिनु अधिकारी कौन और या गुप्त रसहिं पहिचानै ।
तर्क बितर्क महा चतुराई काब्य-कोष-निपुनाई ।
कबहूँ याके निकट न आवत लाख कहौ न बनाई ।
कै तो जगत-बिषय की तिन सों गंध भयानक आवै ।
कै विज्ञान महा तम बढ़िकै सगरे रसहि सुखावै ।
जौ कोउ कोमल कमल तंतु सो महा मत्त गज बाँधै ।
तौ या मरमहिं समुझि सकै कछु पै जौ एकहि साधै ।
साधन जिते जगत मैं गाए तिनको फल कछु औरै ।
यह तौ उनकी कृपा साध्य इक साधन करै सो बौरै ।
जुपै प्रवाह छुट्यौ तौ लागी आई महा मरजादा ।
जद्यपि यह नीकि प्रवाह सों रंग तऊ है सादा ।
अतिहि निकट परलोक लोक दोउ जो या में कछु बोलै ।
तनिकहु पग खिसक्यो तौ ड्रब्यौ अमृत मैं बिष घोलै ।
रात दिना के सुनै किये जे अति अभ्यासित भाव ।
तिन सों कैसे बचे कहो मन कोटिक करौ उपाव ।
जिमि बिनु आयसु कठिन दुर्ग में सकै न कोऊ जाय ।
तैसेहिं उनकी कृपा बिना नहिं याको और उपाय ।
पद पद पै अघ धरे करोरन बृत्ति सहज अधगामी ।
काम क्रोध उपजत छिन छिन मैं होउ भले कोउ नामी ।
इन रिपुगन को जीवन कों जौ तप आदिक कछु साधै ।
तौ अभिमान जानकारी को आइ सकल अँग बाँधै ।
सूछमता को परम प्रान को ताको अतर निकारै ।
तो या रसहि कछुक कछु जानै औरन आन बिचारै ।
कहिए जुपै होइ कहिबे की पुनि भाखे न कहाई ।
'हरीचंद' बिनु बल्लभ-पद-बल
यह निधि नहिं लहि जाई ।४

तोसों न कछु प्रभु जाचौं ।
इतनो ही जाँचत करुना-निधि तुम ही मैं इक राचौं ।
खर कूकुर लौं द्वार द्वार पै अरथ-लोभ नहिं नाचौं ।
या पाखान-सरिस हियरे पै नाम तुम्हारोइ खाचौं ।
बिस्फुलिंग से जग-दुख तजि

तब बिरह-अगिन तन तार्चौं ।
'हरीचंद' इक-रस तुमसों मिलि
अति अनंद मन मार्चौं ।५

प्यारे यह नहिं जानि परी ।
नाथ समुझि यह बरयो तुमहिं कै तुम मोहिं प्रमो बरी ।
हम भाजत पै तुम गहि राखत बरबस करत निबाह ।
उलटी गति दिखराति मनों तुमहीं कहँ मेरी चाह ।
हम अपराध करत नहिं चूकत बिचलावत विश्वास ।
तुम तेहि छमा करत गहि गहि भुज औरहु खींचत पास।
दास होइ हम अति अभिमानी बंचक निमक-हराम ।
तुम स्वामी समरथ करुनामय क्यौं बनि रहे गुलाम ।
जो हम कहँ करनी चाहत ही सों तुम उलटी कीन्ही ।
प्रियतम ह्वै प्रेमी समान सब चाल जनन सों लीन्ही ।
यह उदारता कहँ लौं गाओं बनै तुमहि सों नाथ ।
नाहीं तौ 'हरिचंद' पतित को कौन निबाहै साथ ।६

याही सों घनश्याम कहावत ।
द्रवत दीन-दुरदसा बिलोकत करुना रस बरसावत ।
भींगे सदा रहत हिय रस सों जन-मन-ताप जुड़ावत।
'हरीचंद' से चातक जन के जिय की प्यास बुझावत ।७

हरि-तन करुना-सरिता बाढ़ी ।
दुखी देखि निज जन बिनु साधन उमगि चली अति गाढ़ी।
तोरि कूल मरजादा के दोउ न्याव-करार गिराए ।
जित तित परे करम फल-तरुगन जड़ सों तोरि बहाए।
अचल बिरुद गंभीर भँवर गहि महा पाप गन बोरे ।
असहन पवन बेग अति बेगहि दीन महान हलोरे ।
भरि दीने जन हृदय-सरोवर तीनहुँ ताप बुझाई ।
'हरीचंद' हरि-जस-समुद्र में मिली उमगि हरखाई ।८

प्रभु की कृपा कहाँ लौं गैये ।
करुना में करुनानिधि ही के इती बड़ाई पैयै ।
डार डार जौ अघ मेरे तो पात पात वह बोलै ।
नदी नदी जो पाप चलत तौ बिंदु बिंदु वह डोलै ।
थल थल में छिपि रहत जु यह वह रेनु रेनु ह्वै धावै ।
दीप दीप जौ यह समान वह किरिन किरिन बनि जावै।
काकी उपमा वाहि दीजिये ब्यापक गुन जेहि माँही ।
हिय अन्तर अँधियार दुराने अघहु नाहिं बचि जाहीं ।
सिंधु लहरहू सिंधुमयी है मूढ़ करै जो लेखे ।
नाहीं तो 'हरीचंद' सरीखे तरत पतित कहुँ देखे ।९

प्रभु हो जो करिहौ सोइ न्याव ।
सुगति कुगति सब ही अति समुचित हम पतितन के दाव।
जौ तृन-मात्रहु न्याव करौ प्रभु करि शास्त्रन पै नेह ।
तौ हम कठिन नरक के लायक यामैं कछु न सँदेह ।
पै जो ढरौ नाथ करुना-दिसि तौ का मेरे पाप ।
कोटि कोटि बैकुंठ सुलभ तर तनिक कटाक्ष-प्रताप ।
जौ हमरी दिसि लखहु उचित तौ सब बिधि दंड-विधान।
'हरीचंद' तौ यही जोग पै तुम प्रभु दयानिधान ।१०

जिन नहिं श्री बल्लभ-पद गहे ।
ते भवसिंधु-धार मैं साधन करत करत-हू बहे ।
परम तत्व जानत नहिं कोऊ जद्यपि शास्त्रन कहे ।
ते इनके किंकर-जन ही के कर-अमलक ह्वै रहे ।
नवनीत-प्रिय हाथ लगत नहिं स्तुति-पय बरबस महे।
'हरीचंद' बिनु बैश्वानर-बल करम-काठ किन दहे ।११

कहाँ लौं निज नीचता बखानौं ।
जब सों तुमसों बिछुरे तब सों अघ ही जनम सिरानौं ।
दुष्ट सुभाव बियोग खिस्याने संग्रह कियो सहाई ।
सूखी लकरी वायु पाइ कै चलौ अगिन उलहाई ।
जनम जनम को बोझ जमा करि भारी गाँठ बँधाई ।
उठि न सकत गर पीठ टूटि गई अब इतनी गरुआई ।
बूड़त तेहि लैके भव-धारा अब नहिं कछुक उपाई ।
'हरीचंद' तुम ही चाहौ तौ तारो मोहिं कन्हाई ।१२

प्रभु मैं सेवक निमक-हराम ।
खाइ खाइ के महा मुटैहों करिहौं कछ्रू न काम ।
बात बनैहौं लंबी-चौड़ी बैठ्यो बैठ्यो धाम ।
त्रिनहु नाहिं इत उत सरकैहों रहिहौं बन्यौ गुलाम ।
नाम बेंचिहौं तुमरो करि करि उलटो अघ के काम ।
'हरीचंद' ऐसन के पालक तुमहि एक घनश्याम ।१३

उमरि सब दुख ही माँहि सिरानी ।
अपने इनके उनके कारन रोअत रैन बिहानी ।
जहँ जहँ सुख की आसा करिकै मन बुधि सह लपटानी।
तहँ तहँ घन संबंध जनित दुख पायो उलटि महानी ।
सादर पियो उदर भरि बिष कहँ धोखे अमृत जानी ।
'हरीचंद' माया-मंदिर सों मति सब बिधि बौरानी ।१४

बैस सिरानी रोअत रोअत ।
सपनेहुँ चौंकि तनिक नहिं जागौं बीती सबही सोअत।
गई कमाई दूर सबै छन रहे गाँठ को खोअत ।
औरहु कजरी तन लपटानी मन जानी हम धोअत ।
स्वाद मिलौ न मजूरी को सिर टूट्यौ बोझा ढोअत ।
'हरीचंद' नहिं भर्यौ पेट पै हाथ जरे दोउ पोअत ।१५

नाहिंनै या आसा को अंत ।
बढ़त द्रोपदी-चीर-सरिस जब जुरे तंत में तंत ।
बरन बरन प्रगटत ही आवत तन विराट अनुहारी ।
थक्यौ दुसासन जीव बापुरो खींचत खींचत हारी ।
जिमि तित बसन बढ़ाइ कहाए भगत-बछल महराज।
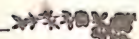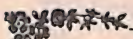
तैसहि इतै घठाइ राखिए 'हरीचंद' की लाज ।१६

करनी करुनानिधि केसव की कैसे कहि कहि गाऊँ ।
अधम जीव परिमित मति रसना एक पार क्यों पाऊँ ।
जग मैं जैसी होत तितोही जगत जीव कहि जानै ।
तुम तो सब विधि करत अलौकिक किमि तेहि नाथ बखानै।
मात पिता तिय मुनिहू जो अघ सहि न सकैं लखि भारी।
सो तुम तुरत छमत करुनानिधि निज दिसि लखि बनवारी।
कहँ लौं कहौं दयानिधि तुम सों जानहु अंतरजामी ।
'हरीचंद' से अघिहि चाहिए तुमरेहिं ऐसो स्वामी ।१७

लखहु प्रभु जीवन केरि ढिठाई ।
निज निंदा मेटन हित तुम महँ प्रेरक शक्ति लगाई ।
बुरो भलो सब कहत बुद्धि-बस मनहू की रुचि पाई ।
कहैं सबै हरि करत जीव को दोष नहीं कछु भाई ।
दैव करम संयोग आदि बहु सब्दन लेत सहाई ।
अपने दोस और पर थापत लखहु नाथ चतुराई ।
शास्त्रनहू कछु प्रेरकता कहि उलटो दियो भुलाई ।
सब मैं मिल्यौ सब सों न्यारो कैसे यह न बुझाई ।
मिल्यौ कहैं तो पाप पुन्य दोउ एकहि सम ह्वै जाई ।
जुदो कहै किमि तुम बिनु दूजो सत्ता नाहिं लखाई ।
कर्त्ता बुधि-दायक जग-स्वामी करुनासिंधु कन्हाई ।
'हरीचंद' तारहु इन कहँ मति इनकी लखौ खुटाई१८

प्रभु हो ! कब लौं नाच नचैहो ।
अपने जन के निलज तमासे कब लौं जगहि देखैहौ ।
कब लौं इन बिमुखन के मुख सों निज गुन-गनहि लजैहो।
कह लौं जिन पै सतत हँसत जम तिनसों हमहिं हँसैहो।
छिन छिन बूड़त जात पंक लखि मोहिं कब चित्त द्रवैहो।
जनम जनम के निज 'हरिचंदहि'
कब फिरिकै अपनेहौ ।१९

छप्पय

जीव-धर्म सों कुटिल मंद-मति लोक-बिनिंदित ।
काम-क्रोध-मद-मत्त सदा संसार मलिन मति ।
अथिर अबोध अधीर अधरमी अति अज्ञानी ।
पुरुषारथ सों रहित निबल अति पै अभिमानी ।
सब भाँति नष्ट लखि दास निज जानि कृपा कर धाइए ।
प्रभु महा हीन 'हरिचंद' को दीन जानि अपनाइए ।२०

कवित्त

भजौं तो गुपाल ही कों सेवौं तो गुपालै एक
मेरो मन लाग्यो सब भाँति गोपाल सों ।
मेरे देव देवी गुरु माता पिता बंधु इष्ट
मित्र सखा हरि नातो एक गोप-बाल सों ।
'हरीचंद' और सों न मेरो संबंध कछु
आसरो सदैव एक लोचन बिसाल सों ।
माँगौं तो गुपाल सों न माँगौं तो गुपाल ही सों
रीझौं तो गुपाल पै औ खीझौं तो गुपाल सों ।२१

द्वारहि पैं लुटि जायगो बाग औ
आतिसबाजी छिनै में जरैगी ।
ह्वैहैं बिदा टका लै हय-हाथिहु
खाय-पकाय बरात फिरैगी ।
दान दै मातु-पिता छुटिहैं
'हरीचंद' सखीहु न साथ करैगी ।
गाय-बजाय जुदा सब ह्वैहैं
अकेली पिया के तू पाले परैगी ।२२

पूजिहौं देवी न देव कोऊ किन
वेद-पुरानहु ऊँचे पुकारौ ।
काहू सों काम कछु नहिं मोहिं सबै
अपनी अपनी को सम्हारौ ।
हौं बनिहौं कै नसाइहौं यासौं
यहै प्रन है 'हरिचंद' हमारौ ।
मानिहौं एक गुपालहि को नहिं
और के बाप को ! यामें इजारौ ।२३

नैनन के तारे दुलारे प्रान-प्यारे मेरे
दुख के दरन सुख-करन बिसाल हैं ।
मेरो ध्यान मेरो ज्ञान मेरे वेद औ पुरान
बिबिध प्रमान मेरे एक नंदलाल हैं ।
'हरीचंद' और सों न काम सपनेहूँ मोहिं
मेरे सरबस धन जसुदा के बाल हैं ।
मेरी रति मेरी मति मेरे पति मेरे प्रान
मेरे जग माहिं सबै केवल गुपाल हैं ।२४

सकल की मूलमयी वेदन की भेदमयी
ग्रंथन की तत्वमयी वादन के जाल की ।
मन-बुद्धि-सीमामयी सृष्टिहु की आदिमयी
देवन की पूजामयी जीवमयी काल की ।
ध्यानमयी ज्ञानमयी सोभामयी सुखमयी
गोपी-गोप-गाय-ब्रज-भागमयी भाल की ।
भक्त-अनुरागमयी राधिका-सुहागमयी
प्राणमयी प्रेममयी मूरति गोपाल की ।२५

पाहि पाहि प्रभु अंतरजामी ।
तुमसों छिपी न कछु करुनानिधि कहा कहौं खग-गामी ।
तुम्हरो कहत सबै मोहिं मोहन जदपि पतित मैं नामी ।
ताकी लाज राखि 'हरचंदहि' बखसौ चरन-गुलामी ।२६

कहा कहौं कदु कहि न रही ।

विधि तैं अब लौं पंडित कवियन रचि-पचि सबहिं कही ।
महा अधम हम दीनबंधु तुम सब समरथ अघ-हारी ।
कहनो य है अनेकन विधि सों युक्त अनेक विचारी ।
नेति नेति जेहि वेद पुकारत तासों बाद बढ़ाई ।
फल कछु नाहिं उलटि खीझन-भय यामैं कह चतुराई ।
सब जानत सब करन जोग तुम नेकु जु पै इत हेरौ ।
लखि सरनागत पतित दीन 'हरिचंद' सीस कर फेरौ ।२७

मिटत नहिं या मन के अभिलाख ।
पुजवत एक सबै बिधि तन तैं होत और तन लाख ।
दिन प्रति एक मनोरथ बाढ़त तृष्णा उठत अपार ।
घृत जिमि अग्नि सिद्धि तिमि जग मैं होत एक तैं चार ।
जोग ज्ञान जप तीरथ आदिक साधन तें नहीं जात ।
'हरीचंद' बिनु कृष्ण-कृपा-रस पाएँ नहिंन अघात ।२८

अहो हरि दम बदि बदि कै अघ कीन्हें ।
लोक बेद निंदत जेहि अनुदिन ते हम हठि सिर लीन्हें ।
जामैं जान्यौ दोष अधिक अति सो कीनों चित लाई ।
तुमसों बिमुख होन की कीन्हीं लाखन खोज उपाई ।
जान्यौ जिन्हें प्रतच्छ भयंकर नरक-गमन को हेतू ।
तेइ आचरन किये नितही नित कहौं कहा खग-केतू ।
नाम रूप अपराध अनेकन जानि जानि बिस्तारे ।
थके वेद जम अघहू थाके पै हम अजहुँ न हारे ।
बहुत कहाँ लौं कहौं प्रानपति सुनत सुनत अकुलैहो ।
तुमरो नाम बेंच अघ करने यह हमही मैं पैहो ।
तुम्हरे बिरद-पनो सों मेरो पतित-पनो अधिकाई ।
'हरीचंद' तारे इतने पै पावन पतित कन्हाई ।२९

नेह हरि सों नीको लागै ।
सदा एक-रस रहत निरंतर छिन छिन अति रस पागै ।
नहिं बियोग-भय नहिं हिंसा जहँ सतत मधुर ह्वै जागै ।
'हरीचंद' तेहि तजि मूरख क्यौं जगत-जाल अनुरागै ।३०

प्रभु मोहिं नाहिं नैकहू आस ।
सब विधि मैं तजिबेहीलायक यह जिय दृढ़ विश्वास ।
शास्त्रन के अघ की जु कहानी तिनकी नहिं कछु बात ।
करुनामय को करनिहु सों मैं दंडहि जोग लखात ।
जिन दोसन सों सकुल दुसासन को तुम कीन्हो नास ।
ते तिनहूँ सों बढ़ि मेरे मैं करत एकत्रहि बास ।
शूद्र तपी सुनि बध्यो जाहि तुम तपत जदपि सो साँच ।
महानीच हम भंड तपस्वी सो रहिहैं किमि बाँच ।
मिथ्या अपजस सुनि-सुनीच-मुख तजी सिया सी नारि ।
सत्य सत्य हम महाकलंकिहि तजिहौ क्यौं न मुरारि ।
जिन कर्मन सों असुर स-कुल बारंबार सँहारे ।
ते अघ कौन नहीं हैं हम मैं भाखहु नंद-दुलारे ।
हाँ जो पै मरजाद मिटावहु करुना-नदी बढ़ाई ।
तो या महापतित 'हरचंदहिं' सकहु नाथ अपनाई ।३१

प्रेम मैं मीन-मेष कछु नाहीं ।
अति ही सरल पंथ यह सूधो छल नहिं जाके माहीं ।
हिंसा द्वेष ईरखा मत्सर मद स्वारथ की बातैं ।
कबहूँ याके निकट न आवैं छल-प्रपंच की घातैं ।
सहज सुभाविक रहनि प्रेम की पीतम सुख सुखकारी ।
अपुनो कोटि कोटि सुख पिय के तनिकहि पर बलिहारी ।
जहँ न ज्ञान अभिमान नेम व्रत विषय-बासना आवै ।
रीझ खीज दोऊ पीतम की मन आनंद बढ़ावै ।
परमारथ स्वारथ दोउ पीतम और जगत नहिं जानै ।
'हरीचंद' यह प्रेम-रीति कोउ बिरले ही परिचानै ।३२

तुम जो करत दीनन सों मोहन सो को और करै ।
महापतित जन वेद-विनिंदित को तिन कों उघरै ।
सब बिधि हीनन सों करि नेहहि कौन दया बितरै ।
'हरीचंद' की बाँह पकरि कै को भव पार करै ।३३

गोपालहि रुचत सहज ब्यौहार ।
निहछल बिनु प्रपंच निरकृत्रिम सब विधि विना बिकार ।
सहज प्रेम पुनि नेम सहजही सहज भजन रस-रीति ।
सहज मिलनि बोलनि चलनि सब सहजहि प्रीति प्रतीति ।
हाव भाव चितवनि कटाक्ष अनुराग सहज जो होय ।
भावै सोई मेरे हरि को करौ कोटि कछु कोय ।
पूजा दान नेम ब्रत के पाखंड न हरि कों भावैं ।
बादि रसिकता ज्ञान ध्यान जौ हरि-पद नेह न लावैं ।
तासों सहज प्रेम-पथ वल्लभ सहजहि प्रगटि चलायो ।
'हरीचंद' को सहजहि निज करि
निज जस सहज गँवायो ।३४

प्रभु हो अपुनो बिरुद सम्हारो ।
जथा-जोग फल देन जनन की या थल आनि बिसारो ।
न्यायी नाम छाँड़ि करुनानिधि दया-निधान कहाओ ।
मेटि परम मरजाद श्रुतिन की कृपा-समुद्र बहाओ ।
अपुनी ओर निहार साँवरे बिरदहु राखहु थापी ।
जामैं निवहि जाँहि कोऊ बिधि 'हरिचंदहु' से पापी ।३५

महिमा मेरे गोविंदजू की कही कौन पैं जाई ।
परम उदार चतुर चिंतामनि जानि निसोमनि-राई ।
सेवा तनिक बहुत करि मानत ऐसे दीनदयाला ।
तुलसी-दलहि मेरु करि समझत ऐसो कौन कृपाला ।
निज जन के अपराध कोटि सत तृनहूँ सों लघु मानै ।
करनी लखत न कबहुँ भक्त की अपुनो करिकै जानै ।

दीन सुदामा अजामेल गज गनिका याके साखी ।
बारंबार पुरान बेद कथि सोइ मुनिवर बहु भाखी ।
कहँ लौं कहौं कहत नहिं आवै करत नाथ जोइ जोई ।
'हरीचंद' से कलि के खल पैं कृपा तुमहिं सों होई ।३६

ऐसे तुमहीं सों निवहै ।
ऐसे अधमन को करुनानिधि तुम बिनु कौन चहै ।
मेटि सकल मरजाद श्रुतिन की पतितन को अपनाओ ।
तिनके दोस कोटि सब भूलो नित नित दया बढ़ाओ ।
बहुत कहाँ लौं कहौं और सों कबहुँ न यह बनि आई ।
'हरीचंद' तुमसों स्वामी नहिं तो बादिहि सब काई ।३७

वह अपनी नाथ दयालुता तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें याद हो कि न याद हो
सुनि गज की जैसे ही आपदा न बिलंब छिन का सहा गया।
वहीं दौड़े उठ के पियादे-पा तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
वह जो चाहा लोगों ने द्रौपदी की कि शर्म उसकी सभा में लें।
व बढ़ाया वस्त्र को तुमने जो तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
व अजामिल एक जो पापी था लिया नाम मरने पै बेटे का।
व नरक से उसको बचा दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
व जो गीध था गनिका व थी व जो व्याध था व मलाह था ।
इन्हें तुमने ऊँचों की गति दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो।
खाना भील के वे जूठे फल कहीं साग दास के घर पै चल ।
युँही लाख किस्से कहूँ मैं क्या तुम्हें याद हो कि न याद हो
जिन बानरों में न रूप था न तो गुनहि था न तो जात थी ।
उन्हें भाइयों का सा मानना तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
व जो गोपी गोप थे ब्रज के सब उन्हें
इतना चाहा कि क्या कहूँ ।
रहे उनके उलटे रिनी सदा तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
कहो गोपियों से कहा था क्या करो याद गीता की भी जरा ।
वानी वादा भक्त-उधार का तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
या तुम्हारा ही 'हरिचंद' है गो फसाद में जग के बंद है ।
न है दास जन्मों का आपका तुम्हें
याद हो कि न याद हो ।३८

मजा कहीं नहिं पाया जग में नाहक रहा भुलाया ।
छिन के सुख की लालच जित तित स्वान लार लटकाया।
यह जग में जिसको अपना कर झूठा भरम बढ़ाया ।
तिन स्वारथ फँसि सूकर कूकर सब दुतकार बताया ।
अपना अपना अपना करके बहुत बढ़ाई माया ।
अंत सबै तजि दीनों मल सम जिनको अति अपनाया ।
साँचे मीत श्यासुंदर सों छिनहुँ न नेह बढ़ाया ।
'हरीचंद' मल मूत कीट बनि नर-जीवनहि गँवाया ।३९

तुझ पर काल अचानक टूटैगा ।
ग़ाफ़िल मत हो लवा बाज़ ज्यौं हँसी-खेल में लूटैगा ।
कब आवैगा कौन राह से प्रान कौन बिधि छूटैगा ।
यह नहिं जानि परैगी बीचहि यह तन-दरपन फूटैगा ।
तब न बचावैगा कोई जब काल-दंड सिर कूटैगा ।
'हरीचंद' एक वही बचैगा जो हरिपद-रस घूँटैगा ।४०

जीव तू महा अधम निर्लज्ज ।
अब तो लाजु कछुक सिर गरज्यो आइ काल को बज्ज ।
फूलि न जौ तू ह्वै गयो राजा बाबू अमला जज्ज ।
सब बकरी ही से मरि जैहैं लै दिन चार गरज्ज ।
विष से विषयन कों तजियै तौ डूबन ही के कज्ज ।
'हरीचंद' हरि-चरन-अमृत-सर
तजि जग छीलर मज्ज ।४१

हरि-माया भटियारी ने क्या अजब सराय बसाई है ।
जिसमें आकर बसते ही सब जग की मति बौराई है ।
होके मुसाफिर सब ने जिसमें घर सी नेंव जमाई है ।
भाँग पड़ी कूएँ में जिसने पिया बना सौदाई है ।
सौदा बना भूर का लड्डू देखत मति ललचाई है ।
खाया जिसने वह पछताया यह भी अजब मिठाई है ।
एक एक कर छोड़ रहे हैं नित नित खेप लदाई है ।
जो बचते सो यही सोचते उनकी सदा रहाई है ।
अजब भँवर है जिसमें पड़कर सब दुनिया चकराई है ।
'हरीचंद' भगवंत-भजन-बिनु इससे नहीं रिहाई है ।४२

डंका कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई ।
देखो लाद चले सब पंथी तुम क्यों रहे भुलाई ।
जब चलना ही निहचै है तो ले किन माल लदाई ।
'हरीचंद' हरि-पद बिनु नहिं तो रहि जैहो मुँह बाई ।४३

मृत्यु-नगाड़ा बाजि रहा है सुन रे तू गाफ़िल सब छन ।
गगन भुवन भरि पूरि रहा गंभीर नाद अनहद घन घन ।
उनपति पहिले से बजता था बचता है औ बाजैगा ।
इसी शब्द में गुन लै होंगे सदा एक यह राजैगा ।
यह जग के सामान बीचही भए बीच मिट जावैंगे ।
परस रूप रस गंध अंत में शब्दहि माहिं समावैंगे ।
काल रूप सच्चिदानंद घन साँचो कृष्ण अकेला है ।
'हरीचंद' जो और है कुछ वह चार दिनों का मेला है ।४४

जग की लात करोरन खाया ।
मन से अब तो लाजु बेहाया ।

अपना अपना करके पाली देह रहा चौराया ।
इंद्रिन को परितोष करन हित अघ भर-पेट कमाया ।
स्वारथ लोभी जग आगे दुख रोया लाज गँवाया ।
लाज गई औ धरम डुबाया हाथ कछू नहिं आया ।
साँचे मीत पतित-पावन भरि करन दीन पर दाया ।
अरे मूढ़ 'हरिचंद' भागु चलु अब तौ उनकी छाया ।४५

यारो इक दिन मौत जरूर ।
फिर क्यौं इतने गाफ़िल होकर बने नशे में चूर ।
यही चुड़ैलें तुम्हें खायँगी जिन्हे समझते हूर ।
माया मोह जाल की फाँसी इससे भागो दूर ।
जान बूझकर धोखा खाना है यह कौन शऊर ।
आम कहाँ से खाओगे जब बोते गये बबूर ।
राजा रंक सभी दुनिया के छोटे बड़े मजूर ।
जो माँगो बाँधित को मारै वही सूर भर-पूर ।
झूठा झगड़ा झूठा टंटा झूठा सभी गरूर ।
'हरीचंद' हरि-प्रेम बिना सब अंत धूर का धूर ।४६

यारो यह नहिं सच्चा धरम ।
छू छू कर या नाक मूँद कर जो कि बढ़ाया भरम ।
बचन ही में डालैंगे यह बुरे-भले सब करम ।
प्रान नहीं सुधरा तौ कोरा बैठे धोओ धरम ।
झूठे साधन छोड़ो जी से दीन बनो तुम परम ।
'हरीचंद' हरि-सरन गहो इक यही धरम का मरम ।४७

चेत चेत रे सोवनवाले सिर पर चोर खड़ा है ।
सारी बैस बीत गई अब भी मद में चूर पड़ा है ।
सही अपमान स्वान-सम निरलज जग के द्वार अड़ा है ।
जरा याद उस समय की भी कर सबसे जौन कड़ा है ।
देखु न पाप नरक में तेरा जीवन जनम सड़ा है ।
'हरीचंद अब' तौ हरि-पद भजु
क्यों जग-कीच गड़ा है ।४८

क्यों बे क्या करने जग में तू आया था क्या करता है ।
गरभ-बास की भूल गया सुध मरनहार पर मरता है ।
खाना पीना सोना रोना और विषय में भूला है ।
यह तो सूअर में भी हैं तू मानुस बनि क्या फूला है ।
एक बात पशुओं से बढ़कर तुझमें पाई जाती है ।
तू ज्ञानी हो पापी है वहाँ पाप-गंध नहिं आती है ।
जो विशेष था तुझ में पशु से उसे भूल तू बैठा है ।
तो क्यौं नाहक हम मनुष्य हैं इस गरूर में ऐंठा है ।
जान बूझ अनजान बना है देखो नहिं पतियाता है ।
'हरिचंद' अब भी हरि-पद भज
क्यौं अवसरहि गँवाता है ।४९

अपने को तू समझ जरा क्या भीतर है क्या भूला है ।
तेरा असिल रूप क्या है तू जिसके ऊपर फूला है ।
हड्डी चमड़ी लहू मांस चरबी से देह बनाई है ।
भीतर देखो तो घिन आवै ऊपर से चिकनाई है ।
लार पीप मल मूत पित्त कफ नकटी खूँट और पोटा है ।
नीली पीली नस कीड़ों से भरा पेट का लोटा है ।
तनिक कहीं खुल जाय तो थू थू कर सब नाक सिकोड़ैगा
जरा गलै या पचै मरै तो देख सभी मुँह मोड़ैगा ।
भरी पेट में मल की गठरी ऊपर न्हाइ सुधरता है ।
तिसको छू कर वायु चलै तो नाक बंद सब करता है ।
मल से उपजा मल में लिपटा मति-मलीन तू घूरा है ।
इस शरीर पर इतना फूला रे अंधे मगरूरा है ।
जिसके छुटते ही तू गदा मिलने ही से सजता है ।
'हरीचंद' उस परमातम को,
गदहे क्यों नहिं भजता है ।५०

फूलों का गुच्छा

रचनाकाल-१८८२

समर्पण

मेरे प्राणप्रिय मित्र!

क्या तुमने यह नहीं सुना है "रिक्तपाणिर्न वश्येद्वै राजां भेषजं गुरु" अर्थात् राजा और वैद्य और गुरू को कोरे हाथों नहीं देखना। तो मैं आज अनेक दिन पीछे तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ, इससे यह" फूलों का गुच्छा" तुम्हारे जी बहलाने के लिए लाया हूँ जो अंगीकार करो तो परिश्रम सफल हो। यह मत संदेह करना कि मैं राजा वा गुरू इनमें कौन हूं, क्योंकि मेरे तो तुम्हीं राजा और तुम्हीं वैद्य और तुम्हीं गुरू हो।

केवल तुम्हारा
हरिश्चंद्र

१४ सितंबर १८८२
॥१२३९॥

फूलों का गुच्छा

नहीं का बाकी वक्त नहीं है जरा न जी में शरमाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
कहाँ गई वह पिछली बातें कहाँ गया वह था जो प्यार।
किधर छिपाया चाँद-सा मुखड़ा दिखलता जो यार।
बेहोशी में घबड़ा घबड़ा करके यही कहता हूँ पुकार।
मर्ज बढ़ गया बहुत इससे बचना अब है दुश्वार।
करो आरजू दिल की मेरे पूरी सूरत दिखलाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
गरचे उम्र भर खराब रुसवा ज़लीलो परेशान रहा।
हमेशा मुझको तुम्हारे मिलने का अरमान रहा।
जिया बेहयाई से अब तक कितना भी हैरान रहा।
जान न दे दी, हमेशा कौल का तेरे ध्यान रहा।
पै मरने के सिवा है अब तदबीर कौन वह बतलाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
तुम्हें कहे जो झूठा प्यारे उसे ही बनाए झूठा।
मुझको तुमसे नहीं कुछ बाकी है करना शिकवा।
इस्में तुम्हारा कसूर क्या है होता है किस्मत का लिखा।
मर जायेंगे पर न इस जबाँ से होगा तेरा गिला।
हुई जो होनी थी इस्से जरा न जी में शरमाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
हम तो खैर हसरत लाखों ही जी में अपने ले के चले।
पर य खौफ़ है तुम्हें बेरहम न प्यारे कोई कहे।
हँस के रुखसत करो न जी में तो कुछ भी अरमान रहे।
कोई जुदा गर होय तो मिलते हैं सब जाके गले।
'हरीचंद' से भला रस्म इतनी तो अदा करके जाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ। १

तुम्हीं निहाँ गर हौ तो जहाँ में सब ये आशकारा क्या है।
तुम्हीं छिपे हौ तो यह सब ज़ुहूर प्यारे किसका है।
तेरा रंग गर नहीं है तो क्या दुनियाँ में दिखलाता है।
तेरी सिल्क बिन कहाँ से सूरत हर शय पाता है।
तुझे हाथ गर नहीं तो खुद क्या यह जहान बन जाता है।
तुझे नहीं है जो मुँह तो किसका सबद सुनाता है।
तुममें झलक गर नहीं तो किससे रोशन यह काशाना है।
तुम्हीं छिपे हौ तो यह सब ज़ुहूर प्यारे किसका है।
खयाल के बाहर तुम हौ तो यह खयाल सब है किसका।
तुम तो चुप हौ तो फिर यह शोर जहाँ में है कैसा।
तुम्हें कान गर नहीं है तो आवाज कौन यह है सुनता।
ध्यान के बाहर जो तुम हो तो यह ध्यान कैसे आया।
दूर समझ से हौ तो यह फिर कैसे सबने समझा है।
तुम्हीं छिपे हौ तो यह सब ज़ुहूर प्यारे किसका है।
तुझे न जिसने याद किया वह खुद अपने को है भूला।
बिगड़ा बस वह न तेरा जोयाँ जो ऐ यार बना।

सब कुछ उसने खोया जिसने तुझे न ऐ दिलबर पाया ।
अंधा है वह जिसको यह नूर नहीं कुछ दिखलाया ।
हर जा पर गर नहीं हो तुम तो फिर य़ तमाशा कैसा है ।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहुर प्यारे किसका है ।
तुझे कोई काबे में हाजिर कोई दैर में बतलाता ।
भूले हैं सब अक्ल में बेशक हनके फर्क पड़ा ।
अरे नहीं एक-जाई तू तो हाजिर रहता है हर जा ।
फिर बकने से भला इन बातों के हासिल है क्या ।
बेवकूफ है 'हरीचंद' जो इसमें कुछ भी कहता है ।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहूर प्यारे किसका हैं ।२

छुड़ा के दीनों ईमाँ मुझको जहाँ में काफिर ठहराया ।
दैरो हरम को इबादत को क्यों मुझसे छुड़वाया ।
पिला पिला के शराब क्यों मस्ताना मुझको बनवाया ।
बना के मेरा तमाशा क्यौं आलम को दिखलाया ।
अपना अपना क्यौं मुझको दुनियाँ में प्यारे कहलाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यौं मुझको अपनाया ।

कहाँ गई वह बातें प्यारी प्यारी तेरी ऐ दिलदार ।
कहाँ गया वो तुम्हारा आगे का सा मुझ पर प्यार ।
कहाँ गई वह मीठी निगाहें हर दम जो थीं दिल के पार ।
कहाँ छिपाया निमानी सूरत तू ने मेरे यार ।
दिखा के अपना जल्वा फिर क्यों रुख फेरा क्यौं शरमाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यौं मुझको अपनाया ।

क्यौं वह मैं थी मुझे पिलाई जिसका न उतरै कभी नशा ।
दो आलम में मुझे ऐ प्यारे क्यों बदनाम किया ।
काफिर क्यौं कहलाया मुझको दैरो हरम दोनों से गँवा ।
हम-चश्मों में किया क्यों मुझे मेरे प्यारे रुसवा ।
मेरे इश्क का नक्कार :दो आलम में क्यों बजवाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यौं मुझको अपनाया ।

होके तुम्हारा गुलाम अब मैं किसका प्यारे कहलाऊँ ।
आके तुम्हारे दर पै प्यारे किसके घर पर जाऊँ ।
इसी शर्म में मरता हूँ मैं अपना नाम क्या बतलाऊँ ।
अपने दिल को यार किस तरह कहो मैं समझाऊँ ।
यही चाल थी तो फिर क्यौं तू गरीब-परवर कहलाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यौं मुझको अपनाया ।

अब तो न छोड़ूँ तेरा कदम प्यारे जो होनी हो सो हो ।
यार निबाहो तुम भी बाकी हैं जिंदगी के दिन दो ।
कहाँ मैं जाऊँ किसको ढूँढूँ किसका होकर रहूँ कहो ।
मैं तो प्यारे तुम्हारा हूँ तुम मेरे प्यारे हो ।
'हरीचंद' मेरा है मैं उसका हूँ यह था क्यों फरमाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यौं मुझको अपनाया ।४

दिल में दिलबर ने जल्वा दिखला के बनाया मस्ताना ।
मजा न पाया बयाँ जिसका गूँगे का गुड़ खाना ।
जब से यार ने अपने इश्क की मैं से मुझे सरशार किया ।
अपनी नरगिसी निमानी आखों का बीमार किया ।
भोली सी उस सूरत पर मुझको निसार सौ बार किया ।
जुल्फ दिखाकर पेंच में लट के झट गिरफ्तार किया ।
तब से जब कुछ छोड़ हुआ उस मस्ती से मैं दिवाना ।
मजा न पाया बयाँ जिसका गूँगे का गुड़ खाना ।
कोई मुझे कहता काफिर बे-ईमाँ कोई बतलाता ।
कोई मुझसे बोलने में भी जबाँ से शरमाता ।
हाल देखकर हँसता कोई तर्स कोई मुझपर खाता ।
कोई मुझको आनकर रो रो कर है समझाता ।
पर मैं क्या समझूँ कि रंग में अपने हूँ खुद मस्ताना ।
मजा न पाया बयाँ जिसका गूँगे का गुड़ खाना ।
यह वह शै है जिसकी खोज में हर कोई हैरान रहा ।
हर शखसों ने आज तक इसकी बाबत बहुत कहा ।
कोई मजाजी कहता हकीकी नाम किसी ने है रक्खा ।
कोई मसजिद कोई बुतखाने में नित है जाता ।
पै हमने तो सीधा ताका उस साकी का मैखाना ।
मजा न पाया बयाँ जिसका गूँगे का गुड़ खाना ।
यह वह रँग है जिसमें रँगा उसपर न दूसरा रंग चढ़ा ।
यह वह मैं है न उतरा महशर तक भी जिसका नशा ।
बगैर इसमें डूबे किसी को जरा न इसका पता लगा ।
बिन मस्ती के इश्क के कोई नहीं हुशियार बना ।
'हरीचंद' क्या इससे हासिल है व फकत हमने जाना ।
मजा न पाया बयाँ जिसका गूँगे का गुड़ खाना ।५

खाक किया सबको तब यह अकसीर है कमाया हमने ।
सबको खोया यार अपने को तब पाया हमने ।
अपना बेगाना किया दोस्त को दुश्मन ठहराया हमने ।
दीन व ईमाँ बिगाड़ा धरम सब डुबाया हमने ।
काम रंज से रहा चैन दम भर न कहीं पाया हमने ।
दोनों जहाँ के ऐश को खाक में मिलाया हमने ।
जिसका नाम है शरम उसी को जग में शरमाया हमने ।
सबको खोया यार अपने को तब पाया हमने ।

जब से दिल में मेरे वह दिलबर जलवा-अफरोज हुआ ।
मिला मजा वह नहीं इस दुनियाँ में सानी जिसका ।
जब से आँखों में उसके मिलने का मेरी छा गया नशा ।
सब कुछ भूला कुछ ऐसा हासिल मुझको हुआ मजा ।
काम किसी से रहा न ऐसा नशा है जमाया हमने ।
सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने ।
छिपा न उसका इश्क-राज आखिर को सब कुछ फाश हुआ
बे-दीनी का व शुहरा हुआ कि काफिर सब ने कहा ।
हुई यहाँ तक बरबादी घर-बार खाक में सभी मिला ।

ली बदनामी हुआ बेशर्मी हया दर-दर रुसवा ।
बे-ईमाँ बे-दीं काफिर अपने को कहलाया हमने ।
सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने ।
मिला मेरा दिलबर मुझको अब किसी बात की चाह नहीं ।
कोई खफा हो या खुश हो कुछ मुझको परवा नहीं ।
सिवा यार के कूचे जाना दैरो-हरम की राह नहीं ।
सब कुछ मेरा यार है और कोई अल्लाह नहीं ।
'हरीचंद' क्या बयाँ हो गूँगे होकर गुड़ खाया हमने ।
सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने ।६

श्री राधा-माधव जुगल-चरन-रस का अपने को मस्त बना ।
पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।
यह वह मै है जिसके पीने से और ध्यान छूट जाता है ।
अपने में औ दिलबर में फिर कुछ भेद नहीं दिखलाता है ।
इसके सुरूर से मस्त हरेक अपने को नजर बस आता है ।
फिर और हवस रहती न जरा कुछ ऐसा मजा दिखाता है ।
टुक मान मेरा कहना दिल को इस मैखाने की तर्फ झुका ।
पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।
यह वह मै है जिसका कि नशा जब आँखों में छा जाता है ।
मैखाना काबा बुतखाना सब एकी सा दिखलाता है ।
हुशियार समझता अपने को जग को अहमक बतलाता है ।
वह काम खुशी से करता जिसके नाम से जग शर्माता है ।
जिसका नाम है शर्म आप वह इस मै से जाती शरमा ।
पी प्रेम-पियाला भर-भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।
हुशियार वही है आलम में इस मै से जो सरशार बने ।
हो कार उसी का पूरा जो इस दुनियाँ से बे-कार बने ।
हो यार वही उसका जो इस जग में सबसेकुछयार बने ।
पहिने कमाल का जामा वह जिसका कि गरेबाँ तार बने ।
गर लुत्फ उठाना हो इसका तो तू भी मेरा मान कहा ।
पी प्रेम-पियाला भर-भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।
गो दुनिया में उस दाना को हर शख्श बड़ा नादान कहे ।
पर उसे मजा वह हासिल है जिससे वह हेच सबको समझे
कमी न उतरै उसका नशा जिसके सिर इसका भूत चढ़ै ।
हँसते-हँसते इस दुनिया से झट उसका बेड़ा पार लगे ।
इतबार न हो तो देख न ले क्या 'हरीचंद' का हाल हुआ ।
पी प्रेम-पियाला भर भर कर
कुछ इस मै का भी देख मजा ।७

यह वह गोरख-धंधा है जिसका न किसी पर भेद खुला ।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
कहाँ से औ किस तरह से किसने
क्यों यह पैदा किया जहाँ ।
किसने सूरत खड़ी की किसने इसमें डाली जाँ ।
मिली कहाँ से अक्ल बशर को अक्ल सख्त यह है हैराँ ।
क्या है बोलता बयाँ से इसके बस हारी है जंबाँ ।
फिर अखीर में कहाँ जायेगा इसका नतीजा होगा क्या ।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कछु अब तक न हुआ ।
कोई बनानेवाला खुद है या खुद ही यह बनता है ।
बदन है सोई जाँ है या वहाँ दूसरा बैठा है ।
बुरी-भली बातों का नतीजा कहीं जाके कुछ मिलता है ।
या मन माने वही करना दुनिया में अच्छा है ।
इसको मुअम्मा कहते हैं मुश्किल है हल करना जिसका ।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
गरचे खुदा है कोई तो हो फिर उसके मानने से है क्या ।
मानै भी तो किस तरह कैसे कोई देवे बता ।
काबे में जाकर के झुका सिर करे उसको डार कर सिजदा ।
या कोई बुत बना कर उसकी नित कर ले पूजा ।
होके एक-मत मजहबवालो कुछ तो इसमें कहो जरा ।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
एक किसी ने माना किसी ने दो व किसी ने तीन कहा ।
मिला बताया किसी ने उसे जहाँ से कहा जुदा ।
बुत में किसी ने पूजा किसी ने उसको पुकारा कह के खुदा ।
अपनी अपनी तौर पर गरज कि सबने है खींचा ।
मगर न तै यह हुआ हक़ीक़त में य माजरा है कैसा ।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
मैंने तो पहिचाना प्यारे तुमको तै कर सब झगड़े ।
बने बनाये तुम ने सब का सब में मौजूद रहे ।
नाम तुम्हारा दिलबर है हैं बुत व खुदा दोनों झूठे ।
यह सब जलवा तुम्हारा ही है जिधर चाहे देखे ।
'हरीचंद' के सिवा किसी पर जरा न तेरा भेद खुला ।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।८

दिलबर के इश्क में दिल को एक मिलादे ।
अपने को खोए तब अपने को पावे ।
दिलबर को एक कर के अपने में साने ।
इस दुनिया को इक अजब तमाशा जाने ।
मैं क्या हूँ इसको जी देकर पहिचाने ।
अपने को अपना सिरजनहारा माने ।
यह भेद का परदा आँखों से हट जावे ।
अपने को खोए तब अपने को पावे ।
वह मैं पी ले उतरे न नशा फिर जिसका ।
वह सुरूर हो जिसका बयान क्या करना ।
सब दुनिया को बस जाने एक तमाशा ।
इस धारा में अपने को समझै बहता ।
जब सब आलम यह नजर खेल सा आवे ।
अपने को खोए तब अपने को पावे ।
कुछ भले-बुरे में फर्क न जी से रक्खे ।

काले गोरे का एक रंग बस सूझे।
दुशमन को दोस्त को एकी नज़र से देखे।
मैखाना मसजिद मंदिर एकी समझे।
दो की गिनती भूले न जबाँ पर लावे।
अपने को खोए तब अपने को पावे।
जब अपना ही अपने को होए सौदा।
अपनी आँखों से देखे आप तमाशा।
खुद अपनी करने लगै आप ही पूजा।
अपने ही नशे से आप बने मस्ताना।
रग रग से अनल्हक यही सदा बस आवे।
आने को खोए तब अपने को पावे।
तब 'हरीचंद' मैं क्या कहूँ यह दिखलाता।
जब चिनगारी से आप आग हो जाता।
पत्ते से पेड़ बंदे से खुदा कहलाता।
जब अपने को हर शै में हाजिर पाता।
जुज़ से कुल क़तरे से दरिया बन जावे।
अपने को खोए तब अपने को पावे।९

मिलै न मुझसे उसका दिल जिस में वह दिलाराम न हो।
मुँह न दिखावै जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो।
लगै आग उस मैखाने में जहाँ न वह साक़ी होवैं।
बरगशत : हो व मजलिस जहाँ दौर उसका न चलै।
जिसमें उसका नशा न हो वह ज़हरे हलाहल होए मै।
बरहम होए वह सुहबत जहाँ न उसका जिक्र रहै।
बीरान: वह बाग़ हो जिसमें मेरा वह गुलफ़ाम न हो।
मुँह न दिखावै जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो।

पुरजे हो वह किताब जिसमें तेरा यार बयान न हो।
गारत हो वह दीन जिसमें तुझ पर ईमान न हो।
ढहै वह काबा जहाँ वक्त सिजदे के तेरा ध्यान न हो।
टूटै वह बुत तुम्हारी झलक जिसमें ए ज़ान न हो।
काफिर हो वह कुफ्र से तेरे यार जो कि बदनाम न हो।
मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो।

हम तो पीकर शराब तेरी मस्त हुए ऐसे प्यारे।
सबको खोकर तुम्हें ऐ यार हमने पाया बारे।
मजा मिला वह जिससे हेच दिखलाते हैं मजहब सारे।
छोड़के सबको बैठे मैखाने में आसन मारे।
दूर हो वह नाचीज हाथ में जिसके इश्क का जाम न हो।
मुँह न दिखावै जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो।

कभी न देखैं नजर उठाकर गरचे सामने खड़ा हो शाह।
या फकीर हो, नहीं कुछ इसकी भी मुझको परवाह।
यार हो रिश्तेदार हो मुझको खाक नहीं कुछ उनकी चाह।
फकत मिलो तुम मेरे दिलबर औ मेरा करो निबाह।
'हरीचंद' तेरे कहलाकर और किसी से काम नहो।
मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो।१०

हजार लानत उस दिल पर जिसमें कि इश्के दिलदार न हो।
फूटें आखें वे जिसमें बँधा अशक का तार न हो।
हिज्र की तलखी नहीं है जिसमें तलख जिन्दगानी वह है।
जीस्त नहीं है सरासर बस सरगरदानी वह है।
सुलझे रहना इसके जाल से निरी परेशानी वह है।
जीना क्या है अगर इस जाँ में नहीं जानी वह है।
उ जिंदा दर-गोर व जिसके मरने का आजार न हो।
फूटें आँखें वे जिनमें बँधा अशक का तार न हो।

बे महबूब मजेदारी गर हुई तबीअत में तो क्या।
झूठी है सब शायरी अगर नहीं दिल कहीं फिदा।
नाहक दीदारी है सारी गर न इश्क का तीर लगा।
दुनियादारी भी है इक बोझ सिर्फ उलफत के बिना।
बेचारा है वही जो जुल्मे दिलबर से लाचार न हो।
फूटें आँखें वे जिनमें बँधा अश्क का तार न हो।

मिलें जहन्नुम में वह बातें जिनका कुछ भी उसूल न हो।
क्यों वह काबिल है बनता जिसमें वह मकबूल न हो।
सिजदा है य सर का मारना जिसमें कुछ भी हुसूल न हो।
फाजिल है वह बना क्यों दुनियाँ में जो फुजूल न हो।
क्यों माला फेरे है वह गुल जिसके गले का हार न हो।
फूटें आँखें वे जिनमें बंधा अशक का तार न हो।

क्यों वद दौलतमंद है जिसके पास जरे बेकसी नहीं।
क्या आजादी है उसको जिसकी अक्ल कुछ फँसी नहीं।
बगैर उसके वस्ल के सब रँड़-रोना है यह हँसी नहीं।
उजड़ा है वह मोहनी छबि जिस दिल में बसी नहीं।
'हरीचंद' सब अभी खाक में मिलै जिसमें वह यार न हो।
फूटें आँखें वे जिनमें बँधा अश्क का तार न हो।११

तुम गर सच्चे हो तो जहाँ को कहते हैं सब क्यों झूठा।
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका।
जो झूठा होता है उसकी बातें होती हैं झूठी।
ज्यों सपने की मिली संपत कुछ काम नहीं करती।
सच्चों के तो काम हैं जितने वह सच्चे होते हैं सभी।
फिर बकते हैं भला क्यों सब के जहाँ झूठा है अजी।
भला कहीं शीशे से हीरा हुआ किसी ने है देखा।
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका।

तुम ने बनाया कि बने खुद तो यह माया है कैसी।
एक जो हो तुम तो फिर यह कौन दूसरी आके घुसी।
गरचे काम उसका है तो फिर तेरी क्या तारीफ रही।
तुम करते हो क्यों कहते हैं हुई किसमत की लिखी।
हैं जो तुम्हारे शरीक तो फिर ला-शरीक क्यों नाम पड़ा।
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किस का।
जहाँ अगर झूठा है तो फिर मतवालों को क्या है काम।

फिर मजहब में भला क्यों करता है हर शख्स कलाम।
वेद वगैरह भी तो जहाँ में हैं फिर क्या है इनसे काम ।
इनके सिवा भी कहोगे जो कुछ सब झूठा है मुदाम ।
खुद झूठा जो हो उसका कहना भी सब है झूठा ।
तुम निर्गुन हौ तो फिर यह गुन जग में सब है किस का ।
सभी शोर करते हैं साँप का रस्सी में यह धोखा है ।
भूले हैं वह, जहाँ गर दो हो तो यह बात बन ।
यह तो तब हो जब कि साँप रस्सी यह कायम हों दो शै।
यहाँ तुम्हारे सिवा है कोई दूसरा कौन कहै ।
'हरीचंद' तू सच है तो जग क्यौं अपने मुँह झूठ बना।
तुम निर्गुन हौ तो फिर यह गुन जग में सब है किसका।१२

ढूँढ़ फिरा मैं इस दुनिया में पश्चिम से ले पूरब तक ।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ।
मसजिद मंदिर गिरजों में देखा मतवालों का जा दौर ।
अपने अपने रँग में रँगा दिखाया सबका तौर ।
सिवा झूठी बातों व बनावट के न नजर आया कुछ और।
एक एक को टटोला खूब तरह हमने कर गौर ।
तेरे न दरशन हुए मुझे मैं बहुत खोज कर बैठा थक ।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ।
जो आक़िल पंडित शायर हैं उनको भी जाकर देखा ।
झगड़े ही में उन्हें हमने हर दम लड़ते पाया ।
जिसे बुरा कहता है एक उसको कहता कोई अच्छा ।
कोई पुरानी लीक पीटै है कोई कहता है नया ।
जहाँ पै देखा नजर पड़ी हाँ यह झूठ़ी कोरी बक बक ।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ।
जिनको आशिक सुनते थे उनके भी जाकर देखे ढंग ।
माशूकों के कहीं कुछ नजर पड़े हर तरह के रंग ।
वही बँधी बातें वही सुहबत है वही हैं उनके संग ।
गरज कि इनसे मेरी जाँ आई है अब बहुत ब-तंग ।
मतलब की बातों को छोड़कर और नहीं कुछ है बेशक।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ।
कोई मान कर सवाब तेरा इश्क़ जहाँ में करते हैं ।
कोई गुनह से खौफ़ दोजख़ का करके डरते हैं ।
कोई मजाज़ी इश्क में अपने मतलब का दम भरते हैं ।
कोई मरके मिले बैकुंठ इसी पर मरते हैं ।
'हरीचंद' पर इनमें से पहुँचा कोई नहिं तेरे तलक ।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ।१३

प्रेम-फुलवारी

[कुछ अंश नवोदिता हरिश्चन्द्र चंद्रिका में सन् १८८४ में प्रकाशित, पूरा ग्रंथ मेडिकल हाल प्रेस से सन् १८८३ में ही मुद्रित हो चुका था ।]
— सं०

समर्पण

मेरे प्यारे,

तुम्हें कुंजो में वा नदियो के तटो पर फिरते प्राय: देखा है और इससे निश्चय होता है कि तुम बड़े सैलानी हो । पर यो मन-मानी सैल करने मे तुम्हारे कोमल चरनो मे जो कंकरियाँ गड़ती हैं, वह जी मे कलकती हैं । इससे मैने रच रच कर यह फुलवारी बनाई है, सींचते रहना, यह भला मै किस मुँह से कहूँ । पर जैसे इधर उधर सैल करते फिरते हो, वैसे ही कभी कभी भूले भटके इस ''फुलवारी'' मे भी आ निकलोगे तो परिश्रम सफल होगा ।

केवल तुम्हारा
हरिश्चंद्र

प्रेम-फुलवारी

भरति नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ।१
जेहि लहि फिर कछु लहन की आस न चित में होय ।
जयति जगत-पावन-करन प्रेम बरन यह दोय ।२
चंद मिटै सूरज मिटै मिटै जगत के नेम ।
यह दृढ़ श्री 'हरिचंद' को मिटै न अविचल-प्रेम ।३

प्रेम-फुलवारी की भूमि

राग बिहाग

श्री राधे मोहिं अपुनो कब करिहौ ।
जुगल-रूप-रस-अमित-माधुरी कब इन नैननि भरिहौ।
कब या दीन हीन निज जन पै ब्रज को बास वितरिहौ ।
'हरीचंद' कब भव बूड़त तें भुज धरि धाइ उबरिहौ ।१

अहो हरि बस अब बहुत भई ।
अपनी दिसि बिलोकि करुना-निधि कीजै नाहिं नई ।
जौ हमरे दोसन कों देखो तौ न निबाह हमारौ ।
करिकै सुरत अजामिल-गज की हमरे करम बिसारौ ।
अब नहिं सही जात कोऊ बिधि धीर सकत नहिं धारी।
'हरीचंद' को बेगि धाइकै भुज भरि लेहु उबारी ।२

पियारे याको नाँव नियाव ।
जो तोहिं भजै ताहि नहिं भजनो कीनो भलो बनाव ।
बिनु कछु किये जानि अपुनो जन दूनो दुख तेहि देनो ।
भली नई यह रीति चलाई उलटो अवगुन लेनो ।
'हरीचंद' यह भलो निबेर्यौ ह्वैकै अंतरजामी ।
चोरनि छाँडि छाँड़ि कै डाँड़ौ उलटो धन को स्वामी ।३

जानते जो हम तुमरी बानि ।
परम अबार करन की जन पै, हे करुना की खानि ।
तो हम द्वार देखते दूजो होते जहाँ दयाल ।
तो हम द्वार देखते दूजो होते जहाँ दयाल ।
करते नहिं विश्वास बेद पै जिन तोहिं कह्यौ कृपाल ।
अब तो आइ फँसे सरनन मैं भयो तुम्हारो नाम ।
'हरीचंद' तासों मोहिं तारो बान छोड़ि घनश्याम ।४

प्यारे अब तो सही न जात ।
कहा करैं कछु बनि नहिं आवत निसि दिन जिय पछितात।
जैसे छोटे पिंजरा में कोउ पंछी परि तड़पात ।
त्योंही प्रान परे यह मेरे छूटन को अकुलात ।
कछु न उपाव चलत अति ब्याकुल मुरि मुरि पछरा खात।
'हरीचंद' खींचौ अब कोउ विधि छाँड़ि पाँच अरु सात ।५

नाहिं तो हँसी तुम्हारी ह्वैहै ।
तुमहीं पै जग दोस धरैगो मेरो दोस न दैहै ।
बेद पुरान प्रमान कहौ को मोहिं तारे बिनु लैहै ।
तासों तारो 'हरीचंद' को नाहीं तो जस जैहै ।६

फैलिहै अपजस तुम्हारो भारी ।
फिर तुमकों कोऊ नहिं कहिहै मोहन पतित-उधारी ।
वेदादिक सब झूठ होंइगे ह्व जैहै अति ख्वारी ।
तासों कोउ बिधि धाइ लीजिए 'हरीचंद' को तारी ।७

तुम्हरे हित की भाखत बात ।
कोउ बिधि अब की तार देहु मोहिं नाहीं तो प्रन जात ।
बूँद चूकि फिरि घट ढरकावत रहि जैहौ पछितात ।
बात गए कछु हाथ न ऐहै क्यों इतनों इतरात ।
चूक्यो समय फेरि नहिं पैहौ यह जिय धरि के तात ।
तारि लीजिए 'हरीचंद' को छाँड़ि पाँच अरु सात ।८

भरोसो रीझन ही लखि भारी ।
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित-उधारी ।
जो ऐसो सुभाव नहिं होतो क्यौं अहीर कुल भायो ।
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यौं गुंजा-हार धरायो।
क्रीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धार्यौ।
फेंट कसी टेंटिन पै मेवन को क्यौं स्वाद बिसार्यौ ।
ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस ।
जग-निंदित 'हरिचंदहु' को अपनावहिंगे करि दास ।९

सम्हारहु अपुने को गिरधारी ।
मोर-मुकुट सिर पाग पेंच करि राखहु अलक सँवारी ।
हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी ।
चक्रादिकन सान दै राखो कंकन फँसन निवारी ।
नूपुर लेहु चढ़ाइ किंकिनी खींचहु करहु तयारी ।
पियरो पट परिकर कटि कसि कै बाँधौ हो बनवारी ।
हम नाहीं उनमें जिनको तुम सहजहि दीने तारी ।
बानो जुगओ नीके अब की 'हरीचंद' की बारी ।१०

हम तो लोक-भेद सब छोड़यौ ।
जग को सब नाता तिनका सो तुम्हरे कारन तोड़यौ ।
छाँड़ि सबै अपुनो अरु दूजेन नेह तुमहिं सों जोड़यौ ।
हरीचंद पै केहि हित हम सों तुम अपुनो मुख मोड़यौ।११

जो पै सावधान ह्वै सुनिए ।
तौ निज गुन कछु बरनि सुनाऊँ जो उर मैं तेहि गुनिए ।
हम नाहिंन उन मैं जिनको तुम तारे गरब बढ़ाई ।

बोलि लेहु पृथुराजहि तो कछु मो गुन परै सुनाई ।
चित्रगुप्त जौ बदि हमरे गुन निज खातन लिखि लेहीं ।
तौ हम पाप आपुने तिनको हारि तुरत सब देहीं ।
सक समै औगुन गिनिबे कों नागराज प्रन कीनौ ।
नहिं गिनि गए सेस बहु रहि गयो सोई नाम तब लीनौ।
सबै कहत हरि-कृपा बड़ेरी अब हीं परिहि लखाई ।
पै जो मो अघ-भय न भागि कै रहै न हृदय दुराई ।
बहुत कहाँ लौं कहौं प्रानपति इतने ही सब मानौ ।
'हरीचंद' सों भयौ सामना नीके जुगओ बानौ ।१२

पिया हौं केहि बिधि अरज करौं ।
मति कहुँ चूकि होइ ब-अदबी याही डरन डरौं ।
भोरहि सों मेला सो लागत नर-नारिन को भारी ।
न्हात खात बन जात कुंज मैं केहि बिधि लेहुँ पुकारी ।
महल टहल मैं रहत लुभाने साँझहि सों सब राती ।
तहँ को बिघन बनै कछु कहि कै एहि डर धरकत छाती।
बड़े बड़े मुनि देव ब्रह्म शिव जहँ मुजरा नहिं पावैं ।
तहँ हम पामर जीव कहौ क्यौं घुसि कै अरज सुनावैं ।
एक बात बेदन की सुनिये कछु भरोस जिय आयो ।
हरीचंद पिय सहस-श्रवन तुम सुनतहि आतुर धायो।१३

प्रेम-फुलवारी के वृक्ष

प्राननाथ तुमसों मिलिबे को कहा जुगति नहिं कीनी ।
पचि हारी कछु काम न आई उलटि सबै बिधि दीनी ।
हेरि चुकी बहु दूतिन को मुख थाह सबन की लीनी ।
तब अब सोचि-बिचारि निकाली जुगति अचूक नवीनी।
तन परिहरि मन दै तुव पद हैं लोक तृगुनता छीनी ।
'हरीचंद' निधरक बिहरौगी अधर-सुधा-रस-मीनी।१४

इन नैनन को यही परेखो ।
वह सुख देखि पिया-संगम को फेर बिरह-दुख देखो ।
नहिं पाखान भए पिय बिछुरत प्रेम-प्रतीत न लेखौ ।
'हरीचंद' निरलज ह्वै रोवत यह उलटी गति पेखो।१५

देख्यौ एक एक कों टोय ।
प्राननाथ बिनु बिरह सँघाती और नाहिनै कोय ।
माता-पिता धन-धाम मीत जग निज स्वारथ को होय।
'हरीचंद' जो सोऊ बिछुरै तौ न मरै क्यों रोय ।१६

पियारे क्यों तुम आवत याद ।
छूटत सकल काज जग के सब मिटत भोग के स्वाद ।
जब लौं तुम्हरी याद रहै नहिं तब लौं हम सब लायक।
तुमरी याद होत ही चित में चुभत मदन के सायक ।
तुम जग के सब कामन के अरि हम यह निहचै जानैं ।
'हरीचंद' तो क्यों सब तुमरे प्रेमहिं जग में सानैं ।१७

पियारे ऐसे तौ न रहे ।
जैसे भए कठोर अबै तुम तैसे कबहुं न हे ।
हम वह नाहिं कहा, कै मुरछित लखि तुम भुज न गहे।
कहाँ गईं वे पिछली बतियाँ जो तुम बचन कहे ।
तो तुम तनिक मलिन मुख देखत छिनहू नाहिं सहे ।
सो 'हरिचंद' प्रान बिछुरत कित बदन छिपाय रहे ।१८

एहि उर हरि-रस पूरि गयो ।
तन मैं मन मैं जिय मैं सब ठाँ कृष्ण हि कृष्ण भयो ।
भर्‌यौ सकल तन-मन तौहू नहिं मान्यौ उमड़ि बह्यौ।
नैनन सों बैनन सों रोक्यो नाहिंन परत रह्यौ ।
लघु घट तामैं रूप-समुद रह्यो क्यौं न उमगि निकरै।
तापै लाए ज्ञान कहौ तेहि जिय कित लाइ धरै ।
कौन कहै रखिबे की उलटो बहि जैहै या धार ।
'हरीचंद' मधुपुरी जाहु तुम ह्याँ नहिं पैहो पार ।१९

रहैं क्यौं एक म्यान असि दोय ।
जिन नैनन में हरि-रस छायो तेहि क्यौं भावै कोय ।
जा तन-मन मैं रमि रहे मोहन तहाँ ग्यान क्यौं आवै ।
चाहो जितनी बात प्रबोधो ह्याँ को जो पतिआवै ।
अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरख जो भूलै ।
'हरीचंद' ब्रज तो कदली-बन काटौ तो फिरि फूलै ।२०

गमन के पहिले ही मिल जाहु ।
नाहीं तो जिय ही रहि जैहै तुव मुख-देखन लाहु ।
जान देहु सब और चित्त के मिलि रस करन उमाहु ।
'हरीचंद' सूरति तो अपनी बारेक फेर दिखाहु ।२१

नैन भरि देखन हूँ मैं हानि ।
कैसे प्रान राखिये सजनी नाहिं परत कछु जानि ।
या ब्रज के सब लोग चवाई त्यौं बैरिन कुल-कानि ।
देखत ही पिय प्यारे को मुख करत चवाव बखानि ।
मिलिबो दूर रह्यौ बिन बातहिं बैठि करहिं सब छानि।
'हरीचंद' कैसी अब कीजै या ललचौहीं बानि ।२२

प्राननाथ जो पै ऐसी ही तुम्हें करन ही हाँसी ।
तौ पहिले ही क्यौं न कह्यौ हम मरतीं दै गल फाँसी ।
जिय-जारन क्यौं जोग पठायो तोरि प्रीति तिनुका-सी।
'हरीचंद' ऐसी नहिं जानी ह्वैहैं हरि बिसुवासी ।२३

हरि सँग भोग कियो जा तन सों तासों कैसे जोग करैं ।
जो सरीर हरि सँग लपटानी वापैं कैसे भसम धरैं ।
जिन श्रवनन हरि-बचन सुन्यौ है ते मुद्रा कैसे पहिरैं ।
जिन बेनिन हरि निज कर गूँथी जटा होइ तें क्यौं निकरैं।
जिन अधरन हरि-अमृत पियो अब ते ज्ञानहिं कैसे उचरैं।
जिन नैनन हरि-रूप बिलोक्यौ
तिन्हैं मूँदि क्यों पलक परैं ।
जा हिय सो हरि-हियो मिल्यौ है
तहाँ ध्यान केहि भाँति धरैं ।
'हरिचंद जा सेज रमे हरि तहाँ बघम्बर क्यौं बितरैं ।२४

फेरहू मिलि जैये इक बार ।
इन प्रानन को नाहिं भरोसो ए हैं चलन तयार ।

जौ छतियन सों लगि नहिं बिहरो प्यारे नंद-कुमार ।
तौ दूरहि सों बदन दिखाओ करौ लाल मनुहार ।
नहिं रहि जाय बात जिय मेरे यह निज चित्त बिचार ।
'हरीचंद' न्यौतेहु कै मिस बृज आओ बिना अबार ।२५

भईं सखि ये अँखियाँ बिगरैल ।
बिगरि परीं मानत नहिं देखे बिना साँवरो छैल ।
भईं मतवार धरत पग डगमग नहिं सूझत कुल-गैल।
तजिकै लाज साज गुरुजन की हरि की भईं रखैल ।
निज चवाव सुनि औरहु हरखत करत न कछु मन मैल।
'हरीचंद' सब संक छाँड़ि कै करहिं रूप की सैल ।२६

हौस यह रहि जैहै मन माहीं ।
चलती बार पियारे पिय को बदन बिलोक्यौ नाहीं ।
बैदन के बदले पिय प्यारे धाइ गही नहिं बाहीं ।
'हरीचंद' प्यासी ही जैहैं अधर-सुधा-रस चाहीं ।२७

कहाँ गए मेरे बाल-सनेही ।
अब लौं फटी नहीं यह छाती रही मिलन अब केही ।
फेर कबै वह सुख धौं मिलि हैं जिअत सोचि जिय एही।
'हरीचंद' जो खबर सुनावै देहुँ प्रान-धन तेही ।२८

याद परैं वे हरि की बतियाँ ।
जो बन-कुंजन बिहरत मधुरी कहीं लाइकै छतियाँ ।
कहँ वे कुंज कहाँ वे खग-मृग कहँ वे बन की पतियाँ ।
'हरीचंद' जिय सूल होत लखि वही उँजेरी रतियाँ ।२९

जौ पै ऐसिहि करन रही ।
तो क्यों मन-मोहन अपुने मुख सों रस-बात कही ।
हम जानी सुख सों बीतैगी जैसी बीति रही ।
सो उलटी कीनी बिधिना नै कछु नहिं निबही ।
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही ।
'हरीचंद' कहा को कहा ह्वै गयो कछु नहिं जात कही ३०

अब वे उर मैं सालत बातैं ।
जो नँद-नंदन ब्रज मैं कीनी प्रेम-प्रीति की घातैं ।
वेई कुंज वही द्रुम पल्लव वही उँजेरी रातैं ।
एक प्रान-प्यारो ढिग नाहीं बिष सम लागत तातैं ।
क्रूर अक्रूर प्रान हरि लै गयो आयो दुष्ट कहाँ तैं ।
'हरीचंद' बिदरत नहिं छतियाँ भईं कुलिस की छातैं।३१

अब तो लाजहु छूटि गई री ।
ठोंकि-बजाइ नगारौ दै के हौं पिय-बसहि भई री ।
नहिं छिपाव कछु रह्यौ सखिन सों खुल्यौ भेद सबई री।
परछत ह्वै रोवत पिय के हित ऐसी रीति लई री ।
बकि बकि उठत नाम पीतम को है यह रीति नई री ।
'हरीचंद' जग कहत भले ही यह अब बिगरि गई री।३२

हरे कोउ कहौ सँदेसो श्याम को ।
हमरे प्रान-पिया प्यारे को अरु भैया बलराम को ।
बहुत पथिक आवत हैं या मग नित-प्रति वाही गाम को।
कोऊ न लायो पिय को सँदेसो 'हरीचंद' के नाम को ।३३

तुव मुख देखिबे की चाट ।
प्रान न गए अजहुँ मो तन तें लागी आस-कपाट ।
नैन फेर चाहत हैं देख्यौ लीने गो-धन ठाट ।
वेनु बजावत सो मुख लालन वाही जमुना-घाट ।
अटक्यौ जीब फँस्यौ जग मैं फिर तुव मिलिबे की बाट।
'हरीचंद' हिय भयो कुलिस लौं गयो न अब लौं फाट ।३४

निलज इन प्रानन सों नहिं कोय ।
सो संगम-सुख छाँड़ि अजहुँ ये जीवत निरलज होय ।
गए न संग प्रान-प्रीतम के रहे कहा सुख जोय ।
'हरीचंद' अब सरम मिटावत बिना बात ही रोय ।३५

अब मैं कैसे चलूँगी क्यौं सुधि मोहि दिलाई ।
पनघट ही पै पिय प्यारे को क्यौं दियो नाम सुनाई ।
दूर रह्यौ घर गति-मति भूली पग न धर्‌यो अब जाई।
'हरीचंद' हौं तबहि लौं काज की जब लौं रहूँ भुलाई।३६

हाय हरि बोरि दई मँझ-धार ।
कीन्हीं थल की नहिं बेरे की भली लगाई पार ।
नोह की नाव चढ़ाय चाव सों पहिले करि मनुहार ।
अब कहो बिन अपराध तजी क्यौं सुनिहै कौन पुकार।
लोक-लाज घर भूमि छुड़ाई करो घात सों वार ।
'हरीचंद' तापैं उतराई माँगत हौं बलिहार ।३७

नैन ये लगि के फिर न फिरे ।
बिथुरी अलकन मैं फँसि फँसिकै रहि गए तहीं घिरे ।
पचि हारे गुरुजन सिख दैके नाहिंन रहत थिरे ।
'हरीचंद' प्रीतम सरूप मैं डूबे फिर न तिरे ।३८

पिय सों प्रीति लगी नहिं छूटै ।
ऊधौ चाहो सो समझाओ अब तौ नेह न टूटै ।
सुंदर रूप छोड़ि गीता को ज्ञान लेइ को कूटै ।
'हरीचंद' ऐसो को मूरख सुधा त्यागि बिख लूटै ।३९

निठूर सों नाहक कीनी प्रीति ।
अब पछिताय हाय करि रहि गई उलटि परो सब रीति।
हम तन मन धन जा हित खोयो उन मानी न प्रतीति ।
'हरीचंद' कहा को कहा कीनों बलि बिधना की नीति।४०

पुरानी परी लाल पहिचान ।
अब हमकों काहे को चीन्हौ प्यारे भए सयान ।
नई प्रीति नए चाहनवारे तुमहूँ नए सुजान ।
'हरीचंद' पै जाइँ कहाँ हम लालन करहु बखान ।४१

सखी री ये उरझौहैं नैन ।

उरझि परत सुरझ्यौ नहिं जानत सोचत समुझत हैं न ।
कोऊ नाहिं बरजै जो इनको बने मत्त जिमि गैन ।
'हरीचंद' इन बैरिन पाछे भयो लैन के दैन ।४२

सखी री ये अँखियाँ रिझावरि ।
देखत ही मोहन सों रीझीं सब कुल-कानि बिसारि ।
मिलीं जाइ जल दूध मिलै ज्यों नेकु न सकीं सम्हारि ।
सुंदर रूप बिलोकत रपटीं काँचे घट जिमि बारि ।
अब बिनु मिले होत हैं व्याकुल रोअत निलज पुकारि ।
अपुने फल करि हमहिं कनौड़ी और दिवावत गारि ।
लोक-लाज कुल की मरजादा तृन-सम तजी किचारि ।
'हरीचंद' इनको को रोकै बिगरीं जगहि बिगारि ।४३

सखी री ये बिसुवासी नैन ।
निज सुख मिले जाइ पहिले पै अब लागे दुख दैन ।
दगा दई ह्वै गए पराए बिसरायो सब चैन ।
'हरीचंद' इनके बेवहारन जानि नफा कछु है न ।४४

मरम की पीर न जानै कोय ।
कासों कहौं कौन पुनि मानै बैठ रहीं घर रोय ।
कोऊ जरनि न जाननवारी बे-महरम सब लोय ।
अपुनो कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुझाऊँ सोय ।
लोक-लाज कुल की मरजादा बैठि रही सब सोय ।
'हरीचंद' ऐसहि निबहैगी होनी होय सो होय ।४५

मोह कित तुमरो सबै गयो ।
सोई हम सोई तुम तौ अब ऐसो काह भयो ।
मान समै जिनको नेकहु दुख तुम कबहूँ न सम्हारे ।
तेई नेन रोवत निसि-बासर कैसे सहत पियारे ।
तिनकहु लखि मम मुख मुरझानो करि मनुहार मनाओ।
सोइ परी धरनि पै देखत क्यौं तुरतै नहिं धाओ ।
हाय कहा हौं कहौं प्रान-पिय तुम आछत गति ऐसी ।
'हरीचंद' पिय कहाँ दुराये कहो प्रीति यह कैसी ।४६

जो पिय ऐसो मन मोहिं दीनों ।
तो क्यौं एक निरालो जग नहिं मो निवास हित कीनों ।
इन जग के लोगन सों मो सों बानिक बनि नहिं आवै ।
उन करोर के मध्य एक क्यौं हम सों निबहन पावै ।
कै तो जगहि छोड़ाओ हम सों राखौ कै ढिग मोहिं ।
'हरीचंद' दुख देहु न इतनो बिनय करत हौं तोहिं ।४७

खुलि कै दुखहु करन नहिं पावै ।
कैसे प्रान रहैं जो सब बिधि हम ही भार उठावैं ।
नैनन सदा चवाइन के डर दृग भरि पियहि न देख्यौ ।
ताको दुख तो सह्यौ कोऊ बिधि जानी करम को लेख्यौ।
रोवनहू में हानि भई अब प्रगट हाय नहिं होई ।
तो केहि बिधि जिय धीरज राखै सो भाखौ सब कोई ।
सब बिधि हमहिं बिपति तो ऐसे जीवनहू पै ख्वारी ।
'हरीचंद' सोयो बिधिना किन जाग हमारी बारी ।४८

पियारे तजी कौन सें दोस ।
इतनी हमहू तो सुनि पावैं फेर करैं संतोस ।
तुमरे हित सब तज्यो आस इक तुमरी ही चित धारी ।
एक तुम्हारे ही कहवाए जग मैं गिरवरधारी ।
जो कोउ तुमरो होइ सोई या जग मैं बहु दुख पावै ।
यह अपराध होइ तौ भाखौ जासों धीरज आवै ।
कियो और तो दोस कछू नहिं अपनी जान पियारे ।
तुमरे ही ह्वै रहे जगत मैं एक प्रेम-प्रन धारे ।
जो अपुने ही को दुख देनो यहै आप को बानो ।
तो क्यौं नहिं ताको अपने मुख्य प्यारे प्रगट बखानो ।
जासों चतुर होइ जग मैं कोउ तुम सों प्रेम न लावै ।
'हरीचंद' हम तौ अब तुमरे करौ जोई मन भावै ।४९

सुरतिहू अब नहिं आव स्याम की ।
प्राननाथ आरति-नासन मन-मोहन सब सुख-धाम की ।
वेई नैन वही मन औ तन वही चटपटी काम की ।
भये कुलिस लौं सब पिय बिछुरे निसि बीतत चौ-जाम की
सुनियत लाल कहानिन मैं अब जैसे सीता-राम की ।
'हरीचंद' कहा को कहा कीनो बलि
या गति बिधि बाम की ।५०

अब मैं कब लौं देखूँ बाट ।
भोर भयो हौं ठाढ़ि ही रहि गइ पकरे द्वार-कपाट ।
हार पहार भए बिछुरे अरु बिख भए सुख के ठाट ।
सूनी सेज बिनु पिया देखत क्यों न गयो हिय फाट ।
बिरह-सिंधु मैं डूबी ग्वालिनि कहुँ दिखात नहिं घाट ।
'हरीचंद' गहि बाँह उठाओ जिय मति करहु उचाट ।५१

होय हरि द्वै में ते अब एक ।
कै मारो कै तारो मोहन छाँड़ि अपनी टेक ।
बहुत भई सहि जात नहीं अब करहु बिलंब न नेक ।
'हरीचंद' छाँड़ो हो लालन पावन-पतित-विवेक ।५२

नावरि मोरी झाँझरी हो जाय परी मँझधार ।
निसि अँधियारी पानी लागत उलटो बहत बयार ।
सूझत नहिं उपाय बिनु केवट कोई न सुनत पुकार ।
'हरीचंद' डूबत कु-समय मैं धाइ लगाओ पार ।५३

कोऊ ना बटाऊ मेरी पीर को ।
सब अपने स्वारथ को कोऊ देनहार नहिं धीर को ।
कसकत सो बन रास बिलसिबो हरि-सँग जमुना-तीर को।
उलहत हियो नैन भरि आवत लखि थल धीर समीर को।
कहाँ कहौं कित जाउँ न भूलत हँसि हँसि हरिबो चीर को।
हरीचंद कोउ हाल कहत नहिं गोपराज बलबीर को।५४

अविरल जुगल कमल दृग बरसत
सखि प खीजत होइ खिस्यानी ।
आजु कुंज क्यौं सेज बिछाई
तापै दई पिछौरी तानी ।
हौं धोखे ही गई सयन को चिंतित
पिय-सँजोग सुखदाई।
द्वारहिं तें अभिलाख लाख करि
भरि आनँद फूली न समाई ।
ढकी सेज लखि कै पिय सोए
जानो भई जिय अमित उमाही ।
नूपुर खोलि चली हरुए गति
पीतम-अधर-सुधा-रस चाही ।
निकट जाइकै लाइ जुगल भुज
जबै गाढ़ आलिंगन कीनो ।
तब सुधि आई पिय घर नाहीं
उन तो गौन मधुबन को कीनो ।
मुरछि परी करि हाय साथ ही
मानहुँ लता मूल सों तोरी ।
बेसुधि लखि आईं बृज-बनिता
बैठि रहीं घेरे चहुं ओरी ।
छिरकत नीर गुलाब बदन पैं
आँचर पौन करत कोउ नारी ।
व्याकुल सखि-समाज सब रोअत
मनु आजुहिं बिछुरे गिरिधारी ।
इतनेहू पै प्रान गए नहिं
फिरहू सुधि आई अध-राती ।
हौं पापिन जीवति ही जागी
फटी न अजौं कुलिस की छाती ।
फिर वह घर-व्यवहार वहै सब
करन परै नित ही उठि माई ।
'हरीचंद' मेरे ही सिर विधि
दीनी काह जगत अमराई ।५५

रहे यह देखन कों दृग दोय ।
गए न प्रान अबौं अँखियाँ ये जीवति निरलज होय ।
सोई कुंज हरे हरे देखियत सोई सुक पिक कीर ।
सोई सोज परी सूनी ह्वै बिना मिले बलबीर ।
वही झरोखा वही अटारी वही गली वही साँझ ।
वहै नाहिं जो बेनु बजावत ऐहै गलियन माँझ ।
ब्रजहू वही वही गौवें हैं वही गोप अरु ग्वाल ।
बिडरे सब अनाथ से डोलत ब्याकुल बिना गुपाल ।
नंद-भवन सूनो देखत क्यों गयो नहीं हिय फाट ।
'हरीचंद' उठि बेगहि धाओ फेरहु ब्रज की बाट ।५६

नंद-भवन हौं आजु गई हो भूले ही उठि भोर ।
जागत समय जानि मंगल-मुख निरखन नंद-किशोर ।
नहिं बंदीजन गोप गोपिका नाहिंन गौवें द्वार ।
नहिं कोउ मथत दही नहिं रोहिनि ठाढ़ी लै उपचार ।
तब मोहिं सुरत परी घर नाहिंन सुंदर श्याम तमाल ।
मुरछित धरनि गिरी द्वारहि पै लखि धाईं ब्रज-बाल ।
लाईं गेह उठाइ कोउ बिधि जीवन गए अँदेस ।
'हरीचंद' मधुकर तुव आए जागी सुनत सँदेस ।५७

हठीले पिय हो प्यारिहु को हठ राखौ ।
तुव रूसे सों काम चलै नहिं मधुर बचन मुख भाखो ।
आओ मधुबन छाँड़ि फेरहू दूर कूबरिहि नाखौ ।
'हरीचंद' को मान राखिकै अधर-सुधा-रस चाखौ ।५८

अथ प्रेम-फुलवारी के फूल

प्रीति की रीति ही अति न्यारी ।
लोग बेद सब सों कछु उलटी केवल प्रेमिन प्यारी ।
को जानै समुझै को याको बिरली जाननहारी ।
'हरीचंद' अनुभव ही लखिये जामैं गिरवरधारी ।५९

श्रीराधे सोभा कहा कहिये ।
रसना अधम बहुरि अधिकारी कोऊ नहिं लहिये ।
कासों कहिये को समुझै एहि समुझि चित्त रहिये ।
परम गुप्त रस सब सों कहि कहि कैसे चित दहिये ।
बिनु तुव कृपा अपार सिंधु रस केहि प्रकार बहिये ।
'हरीचंद' एहि सोच छोड़ि सब मौन रह्यो चहिये ।६०

अहो मम प्राननहू तें प्यारे ।
ब्रज के धन प्रेमिन के सरबस इन अँखियन के तारे ।
गहबर कंठ होत क्यौं सुनतहि गुन-गन परम तिहारे ।
उमगत नैन हियो भरि आवत उलहत रोमहु न्यारे ।
प्राननाथ श्री राधा जू के जसुदा-नंद-दुलारे ।
'हरीचंद' जुग जुग चिरजीअहु भक्तन के रखवारे ।६१

पियारे थिर करि थापहु प्रेम ।
परम अमृतमय जब लौं रवि-ससि प्रेमिन पौं करि छेम।
दूर करहु जग बंचनहारे ज्ञान करम कुल नेम ।
'हरीचंद' यह प्रीत-दुन्दुभी तिनहीं गाजौ एम ।६२

छोड़ि कै ऐसे मीठे नाम ।
मित्र प्रानपति पीतम प्यारे जीवितेस सुख-धाम ।
क्यौं खोजत जग और नाम सब करिकै मुक्ति सहेत ।
ईश्वर ब्रह्म नाम हौआ सो श्रवन न जो सुख देत ।
तजि कै तेरे कोमल पंकज पद को दृढ़ बिस्वास ।
'हरीचंद' क्यों भटकत डोलत धारि अनेकन आस।६३

अहो मेरे मोहन प्यारे मीत ।

क्यौं न निबाही मम जीवन लौं परम प्रेम की रीति ।
इतनेहू पै तोहिं न आई मेरी यार प्रतीत ।
'हरीचंद' बलिहारी रावरे भली करी यह नीत ।६४

बिहरिहैं जग-सिर पै दै पाँव ।
एक तुम्हारे ह्वै पिय प्यारे छाँड़ि और सब गाँव ।
निंदा करौ बताओ बिगरी धरौ सबै मिलि नाँव ।
'हरीचंद' नहिं कबहुँ चूकिहैं हम यह अब को दाँव ।६५

निछावरि तुम पै सो कहा कीजै ।
सब कछू थोरो लगत जगत में कैसे इनको लीजै ।
राज-पाट घर-बार देह मन धन संबंधी जात ।
नेम-धरम कुल-कानि लाज सब तृनहू से न लखात ।
प्रेम-भरी तुमरी चितवनि की समता को जग कौन ।
'हरीचंद' तासों नहिं कहिए कछु रहिए गहि मौन ।६६

न जानों गोविंद कासों रीझै ।
जब सों तप सों ज्ञान ध्यान सों कासों रिसि करि खीझै।
बेद पुरान भेद नहिं पायो कह्यो आन की आन ।
कह जप तप कीनों गनिका नै गीध कियो कह दान ।
नेमी ज्ञानी दूर होत हैं नहिं पावत कहुँ ठाम ।
ढीठ लोक बेदहु ते निंदित घुसि घुसि करत कलाम ।
कहुँ उलटी कहुँ सीधी कहुँ दोहुन तें न्यारी ।
'हरीचंद' काहू नहिं जान्यौ मन की रीति निकारी ।६७

प्रेम-फुलवारी के फल

रे मन करु नित नित यह ध्यान ।
सुंदर रूप गौर श्यामल छबि जो नहिं होत बखान ।
मुकुट सीस चंद्रिका बनी कनफून सुकुंडल कान ।
कटि काछिनि सारी पग नूपुर बिछिया अनवट प्रान ।
कर कंकन चूरी दोउ भुज पै बाजू सोभा देत ।
केसर खौर बिंदु सेंदुर को देखत मन हरि लेत ।
मुख पैं अलक पीठ पैं बेनी नागिनि सी लहरात ।
चटकीलो पट निपट मनोहर नील-पीत फहरात ।
मधुर मधुर अधरन बंसी-धुनि तैसी ही मुसकानि ।
दोउ नैनन रस-भीनी चितवनि परम हया की खानि ।
ऐसो अद्भुत भेष बिलोकत चकित होत सब आय ।
'हरीचंद' बिन जुगल-कृपा यह लख्यो कौन पै जाय।६८

श्री राधे चंद्रमुखी तुव नाम ।
तदपि चकोर-मुखी सी ब्याकुल निरखत ससि-घनश्याम।
तैसेहि जदपि-आप नव घन से मोहन कोटिक काम ।
तदपि दरस तुव प्यास नैन जुग चातक रहत मुदाम ।
कौन कहै कै समुझै यामें जो कुछ करै कलाम ।
'हरीचंद' ह्वै मौन निरखिए जुगलरूप सुखधाम ।६९

आजु महा मंगल भयो भोर ।
प्राननाथ भेंटे मारग मैं चितयो प्रेम-भरी दृग-कोर ।
करौं निछावरि प्रान जीवनधन
तनिकहिं निरखत भौंह मरोर ।
श्याम सरूप सुधा-रस सानी बानी बोलत नंदकिशोर।
कोटि काम लावन्य मनोहर चितवत प्रेम भरी दृग-कोर।
नेह भर्‌यौ सब अंग सलोनो आनँद-रस भींज्यो प्रति पोर।
सिद्ध होयगो सगरो कारज प्रातहि मिलौ प्रानपिय मोर ।
'हरीचंद' जुग जुग चिरजीओ
माँगत ग्वालिनि अंचल छोर ।७०

आजु चलि कुंजन देखहु छाई बिमल जुन्हाई ।
पत्र रंध्र में घिर घिर आवत ता तर सेज बिछाई ।
समय निसीथ इकंत भयो अति
कहुँ कहुँ खग बोलत सुख पाई ।
ललिता दूर बजावत बीना मधुर मृदंगहु परत सुनाई ।
आलिंगन परिरंभन को सुख लूटत तहाँ जुगल रसदाई ।
'हरीचंद' वारत तन मन सब गावत केलि बधाई ।७१

कहत हौं बार करोरन होहु चिरंजी नित
नित प्यारे देखि सिरावै हियो ।
एक एक आसिख सों मेरे
अरब खरब जुग जियो ।
जब लौं रबि-ससि-भूमि-समुद-
ध्रुव-तारा-गन थिर कियो ।
'हरीचंद' तब लौं तुम प्रीतम
अमृत पान नित पियो ।७२

लाल के रंग रँगी तू प्यारी ।
याही तें तन धारत मिस कै सदा कसूँमी सारी ।
लाल अधर कर पद सब तेरे लाल तिलक सिर धारी ।
नैननहू में डोरन के मिस झलकत लाल बिहारी ।
तन-मै भई नहीं सुध तन की नख-सिख तू गिरधारी ।
'हरीचंद' जग बिदित भई यह प्रेम-प्रतीत तिहारी ।७३

हमारे ब्रज की रानी राधे ।
जिन निज बस करि मोहन सह सब ब्रज-नर-नारी नाधे ।
परम उदार धाइ सुमिरन के पहिलेहि नासत बाधे ।
कहि 'हरिचंद' सोच उनकी मोहिं
जे नहिं इनहिं अराधे ।७४

सखियो याद दिवावति रहियो ।
समय पाइकै सदा हमारिहु कबहुँ जुगल सों कहियो ।
केलि कोप अरु काज समय तजि सुख में तुम रुख लहियो
करि मनुहार जोरि कर दोऊ मेरी बिथा उलहियो ।
जो कछु क्रोध करै तो ताको बिनती कर कर सहियो ।
कहियो कबौं धाइकै बाहैं 'हरिचंदहु' की गहियो ।७५

पिया मुख चूमत अलकन टारि ।
सोई बाल मुँदी पलकन की छबि रहे लाल निहारि ।
कबहुँ अधर हलके कर परसत रहत भँवर निरवारि ।
अंजन मिसि सिंदूर निरखि रहे टरत न इक पल टारि।
जागी भरि आलस भुज सों गहि पियतम को भुज नारि।
खींचि चूमि मुख पास सोवायो 'हरीचंद' बलिहारि ।७६

पियारे केहि बिधि देहुँ असीस ।
नित नित तौ हम कहत जियो तुम मोहन कोटि बरीस।
तऊ न बोध होत मेरे जिय नित उठि यहै मनाऊँ ।
कबहुँ न बदन पिया प्यारे को मुरझयो देखन पाऊँ ।
तुम जीवो तुमरे जन जीवैं जब लों सागर बारी ।
कह्यौ कहत करु नितहि कहैंगे जीओ लाल बिहारी ।
भाग लहौ सब ही प्रेमी-जन सुबस बसौ बृजबासी ।
'हरीचंद' जग जुगल बिराजैं प्रीति-रीति परकासी ।७७

रहौं मैं सदा जुगल-भुज छहियाँ ।
अब मत छाँड़ौ राधा-मोहन पकरि दीन की बहियाँ ।
सदा बसाओ श्री वृंदाबन नित नव कुंजन महियाँ ।
'हरीचंद' इक-रूप निबाहौ अब पन बिगरै नहियाँ ।७८

तुम्हें कोऊ खोजत है हो राधे ।
ना जानै कौन साँवरो सो ढोटा पीरी कटि बाँधे ।
बड़े बड़े नैन भरि रहे जल सों बचन कहत आधे आधे।
बन बन पात पात करि खोजत प्यारी प्यारी रट साधे ।
कोमल मुख कुम्हलाइ रह्यौ वाको खरी प्रीति-पथ साधे ।
'हरीचंद' सखि चलु न दया
करि हरि-बिरहा की बाधे ।७९

टरौ इन अँखियन सों अब नाहिं ।
निवसो सदा सोहागिन राधा पुतरी सी दृग माहिं ।
नील निचोल तरकुली कानन सिर सिंदूर मुख पान ।
काजर नैन सहज ही भोरी मन-मोहनि मुसकान ।
सदा राज राजौ बृंदावन सुबस बसौ ब्रज देस ।
बरसौ प्रेम-अमृत प्रेमिन पै नितहि श्याम घन भेस ।
देखि यहै अब दूजो देखन परे न जब लौं प्रान ।
'हरीचंद' निबहौ स्वासा लगि यहै प्रेम की बान ।८०

श्री स्वामिनी जी की स्तुति

श्री राधे तुही सुहागिनि साँची ।
और कामिनिन को सुख-संपति तुव रस आगे कांची ।
प्रेम सिद्धि तुव द्वार नटी लौं रहत रैन-दिन नाची ।
हरीचंद याही सों सब तजि हरि-मति तुव रँग राँची।८१

राधे तुही सुहागिनि पूरी ।
जाको त्रिभुवन-पति सेवक लौं अनु-छिन करत मजूरी।
और सबन की सुख-सामाँ तुव आगे परम अधूरी ।
'हरीचंद' याही तें सोहत तोही के सेंदुर-चूरी ।८२

राधे तुव सोहाग की छाया जग में भयो सोहाग ।
तेरो ही अनुराग-छटा हरि सृष्टि-करन अनुराग ।
सत-चित तुव कृति सों बिलगाने लीला प्रियजन भाग।
पुनि 'हरिचंद' अनंद होत लहि तुव पद-पदुम-पराग।८३

हमारी प्यारी सखियन की सिरताज ।
ताहू की महरानी जो सब ब्रज-मंडल-महराज ।
सील सनेह सरस सोभा-निधि पूरनि जन-मन-काज ।
'हरीचंद' की सरबस जीवनि पालनि भक्त-समाज।८४

श्यामा प्यारी सखियन की सरदार ।
अति भोरी गोरी रस-बोरी सहजहि परम उदार ।
लाज-कृपा सों भरे बड़े दृग बड़े छूटे तिमि बार ।
'हरीचंद' तनिकहिं बस कीनो श्री ब्रजराज-कुमार ।८५

राधा प्यारी सखियन की सिरमौर ।
जदपि बहुत जुवती ब्रज मैं पै पिय कहँ रुचत न और ।
जा मुख-पंकज-मधु की लालच बन्यो रहत मनु भौंर ।
पान खवावत चरन पलोटत ढोरत बिंजन चौंर ।
मुख चूमत ललचाइ कबहुँ पुनि कबहूँ भरत अँकौर ।
निज मुख जुगल रमत नित नित श्री बृंदाबन निज ठौर।
ऐसी स्वामिनि तिजि को बरबस भरमैं इत उत दौर ।
'हरीचंद' सब तजि याही तें सेवत इनकी पौर ।८६

हमारी सरबस राधा प्यारी ।
सब ब्रज-स्वामिनि हरि-अभिरामिनि श्री बृषभानु-दुलारी।
बृंदाबन-देवी सुख-सेवी सहज दीन-हितकारी ।
'हरीचंद' गुन-निधि सोभा-
निधि कीरति की सुकुमारी ।८७

प्यारी कीरति-कीरति-बेलि ।
प्रफुलित रूप-रासि-कुसुमावलि गुन-सुगंध-रस रेलि।
सिंची प्रेम-जीवन हरि बारौ जन-भव-आतप-ठेलि ।
'हरीचंद' हरि कलप-तरोवर लपटी सुखहिं सकेलि।८८

हमारी प्रान-जीवन-धन श्यामा ।
ब्रज-जन-तरुनि-चक्र-चूड़ामनि पूरनि हरि-मन-कामा।
अति अभिरामा सब सुख-बामा हरि-धामा मनि-दामा।
'हरीचंद' तजि साधन सबरे रटत एक तुव नामा ।८९

राधे, सब बिधि जीति तिहारी ।
अखिल लोक-नायक रस-सरबस तिन की दृग उँजियारी।
तजिकै जुवति सहस्र रहत तुव दिसि टक एक निहारी ।
'हरीचंद' आनँदकँद आनँद दान करति बलिहारी ।९०

आजु भुव साँचो भयो अनंद ।
जन-हिय-कुमुद बिकासन प्रगट्यो ब्रज-नभ पूरन चन्द।

जो आनंद छिप्यो हो अब लौं तोहिं प्रगटि दिखरायो ।
मरजादा परवाह दुहुँन सों प्रेम छानि बिलगायो ।
भटकत फिरत श्रुतिन के बन मैं परम पंथ नहिं सूझ्यो।
जो कछु कह्यौं कहूँ कोउ सास्त्रन ताको मरम न बूझ्यो।
भक्ति कही तौ नेह बिना की नेहहु ब्यसन बिना को ।
ब्यसनहु कयौ जुपै कहुँ कहुँ तौ परवन चार दिना को ।
परम नेह सों एक भाव रस इनहीं प्रीति दिखाई ।
'हरीचंद' भक्तन-हिय बाजी जासों प्रेम-बधाई ।९१

जय जय भक्त-बछल भगवान ।
निज जन पच्छ रच्छ-कर नित प्रति सहजहि दयानिधान।
अधम-उधारन जनि-निस्तारन निस्तारन जस-गान ।
'हरीचंद' करुनामय केसव जन ब्रज-जन के प्रान ।९२

जय जय करुनानिधि पिय प्यारे ।
सुंदर श्याम मनोहर मूरति ब्रज-जन लोचन-तारे ।
अगिनित गुन-गन गने न आवत माया नर-बपु धारे ।
'हरीचंद' श्रीराधा-वल्लभ जसुदा-नंद-दुलारे ।९३

कृष्ण-चरित्र

[रचना-काल सन् १८८३]

कृष्ण-चरित्र

आजु हरि छलि कै लाए प्यारी ।
पार उतारन मिस नौका पै रसिक-काज गिरिधारी ।
औघट घाट लगाइ नाव निज बिहरत हरि मनुहारी ।
'हरीचंद' सखि लखत चकित चित देत प्रान धन वारी।१

जुगल-छबि नैनन सों लखि लेहु ।
ठाढ़े बाहुँ जोरि कुंजन मैं अवसर जान न देहु ।
साँझ समय आगम बरसा के फूल्यौ बन चहुँ ओर ।
लहरत कालिन्दी जल झलकत आवत मन्द झकोर ।
प्रथम फूल फूल्यौ आमोदित रसमय सुखद कदंब ।
ता तट ठाढ़े जुगल परसपर किए बाहुँ-अवलंब ।
पसरित महामोद दसहू दिसि मत्त भौंर रहे भूलि ।
'हरीचंद' सखि सरबस वार्‌यो
सो छबि लखि जिय फूलि ।२

आजु ब्रज भई अटारिन भीर ।
आवत जानि सुरथ चढ़िकै पथ सुंदर श्याम-सरीर ।
अटा झरोखन छज्जन छाजन गोखन द्वारन द्वार ।
मुख ही मुख लखिए जुवतिन के सोभा बढ़ी अपार ।
फूली मनो रूप-पुलवारी हरि-हित साधि सनेह ।
कै चंदन की बंदन-माला बाँधी ब्रजप्रति गेह ।
करत मनोरथ बिबिध भाँति सब साजें मंगल-साज ।
'हरीचंद' तिनको दरसन दै दुख मेट्यौ ब्रजराज ।३

हरि हम कौन भरोसे जीएँ ।
तुमरे रुख फेरे करुनानिधि काल-गुदरिया सीएँ ।
यों तो सबही खात उदर भरि अरु सब ही जल पीएँ ।
पै धिक धिक तुम बिन सब माधो बादिहिं सासा लीएँ।
नाथ बिना सब व्यर्थ धरम अरु अधरम दोऊ कीएँ ।
'हरीचंद' अब तो हरि बनिहै कर-अवलंबन दीएँ ।४

नाथ बिसारे तें नहिं बनिहै ।
तुम बिनु कोउ जग नाहिं मरम की पीर जिया जो जनि है।
हँसिहै सब जग हाल देखि कोउ नाहिं दीनता गनिहै ।
उलटी हमहिं सिखावनि दै है मेरी एक न मनिहै ।
तुम्हरे होइ कहाँ हम जैहैं कौन बीच मैं सनिहै ।
'हरीचंद' तुम बिनु दयालता और कोउ नहिं ठनिहै ।५

नवल नील मेघ-बरन दरसत त्रयताप-हरन ।
परसत सुख-करन भक्त-सरन जमुन-बारी ।
सोभित सुंदर दुकूल प्रफुलित कल कमल फूल
मेटत भव-सूल भक्ति-मूल ताप-हारी ।
कोमल बर बालु रचित बेदि बिबिध तटनि खचित

नव लता-प्रतान सचित नचित भृंग भारी ।
चंचल चल लोल लहर कलि कल करबाल कहर
जग-जन जम-जाल जहर भक्तन-सुखकारी ।
जल-कन लै त्रिविध पौन करत जबै कितहुँ गौन ।
परसत सुख-भौन सीत सोहत संचारी ।
अवगाहत मनुज-देव करत सकल सिद्ध सेव
जानत नहिं भेव भेद बेद मौन-धारी ।
ब्रजबर-मंडल-सिंगार गोप-गोपिका अधार
प्राननाथ-कंठहार जुगल बर बिहारी ।
पुष्टि-सुपथ पुष्टि करत सेवा को फल बितरत
'हरीचंद' जस उचरत जयति तरनि-बारी ।६

आजु सुर मुनि सकल ब्रजपुराधीश को
रत्न-अभिषेक बर-बिधि सों करत ।
सकल तीरथ बिमल गंग-जमुनादि नद
चतुर्सागर-मिलित नीर कलसन भरत ।
रिग-यजुर-साम-अथर्वनिक वेद-ध्वनि
स्तोत्र-पौराण-इतिहास मिलि उच्चरत ।
शंख-भेरि-पणव-मुरज-ढक्का बाद घनित
घंटा-नाद बीच बिच गुंजरत ।
बिबिध सर्व्वौषधी मलय-मृगमद-मिलित
बारि घनसार-केसर सुगंधित परत ।
कुसुम रल तुलसि मिश्रित सुमंत्रित सबिध
पूर्व्व अधिवासितोदक घटन तें ढरत ।
श्याम अभिराम तन पीत पट सुभग अति
बारि सों अंग सटि लखत ही मन हरत ।
झरित कल केस कुंचितन तें नीर-कन
मनहुँ मुक्तावली नवल उज्जल झरत ।
बदत बंदी बिरद सूत चारन चारु चरित
गावत खरे तान मानन भरत ।
देत आसीस द्विज हस्त श्रीफल किए
सुर जुहारत खरे रुख लिए जिअ डरत ।
घोष-सीमंतिनी गान मंगल शब्द
श्रवन-पुट जात दुख दुरित दारिद दरत ।
दास 'हरीचंद' के हृदय-मधि तौन छबि
खचित वल्लभ-कृपा-बल न टारे टरत ।७

मेरे प्यारे जी अरज लीजो मान हो मान ।
अब तुमरो दुख सहि न सकत हम
मिलि आओ मीत सुजान हो जान ।
एक बेर ब्रज में फिर आओ
इतनो देहु मोहिं दान हो दान ।
'हरीचंद' अब चलन चहत हैं
तुम बिन मेरे प्रान हो प्रान ।८

प्रात समै प्रीतम प्यारे को
मंगल बिमल नवल जस गाऊँ ।
सुन्दर स्याम सलोनी मूरति
भोरहि निरखत नैन सिराऊँ ।
सेवा करौं हरौं त्रैबिधि-भय तब
अपने गृह-कारज जाऊँ ।
'हरीचंद' मोहन बिनु देखे
नैनन की नहिं तपत बुझाऊँ ।९

प्रात समै हरि को जस गावत
उठि घर घर सब घोष-कुमारी ।
कोउ दधि मथत सिंगार करत कोउ
जमुना न्हान जात कोउ नारी ।
हरि-रस मगन दिवस नहिं जानत
मंगलमय ब्रज रहत सदा री ।
'हरीचंद' लखि मदन-मोहन-छबि
पुनि पुनि जात सबै बलिहारी ।१०

हरि को मंगलमय मुख देखो ।
सुंदर स्याम अंग-छबि निरखत
जीवन जनम सुफल करि देखो ।
देखि प्रथम पिय प्यारे को मुख
तब जग और काज अवरेखो ।
'हरीचंद' ब्रजचंद लखें बिनु
जगतहि बादि बृथा करि पेखो ।११

आनंद-निधि सुख-निधि सोभा-निधि
वल्लभ-बदन बिलोकौ भोर ।
मंगल परम भक्त-सुखदायक
तृपित-करन जन-नैन-चकोर ।
सकल कला-पूरन गुन-सागर
नागर नेही नवल-किसोर ।
'हरीचंद' रसिकन के सर्वस इन पैं वारौं मैन करोर ।१२

हरि मोरी काहें सुधि बिसराई ।
हम तो सब बिधि दीन हीन तुम समरथ गोकुल-राई ।
मों अपराधन लखन लगे जौ तौ कछु नहिं बनि आई ।
हम अपुनी करनी के चूके याहू जनम खुटाई ।
सब बिधि पतित हीन सब दिन के कहँ लौं कहौं सुनाई ।
'हरीचंद' तेहि भूलि बिरद निज
जानि मिलौ अब धाई ।१३

देखो माई हरि जू के रथ की आवनि ।
चलनि चक्र फहरानि धुजा को वह तुरगन की धावनि ।
जापै जुगल दिए गल-बाँही सोभित नैन मिलावनि ।
बीरी खानि चहूँ दिसि चितवनि
हँसि मुरि कै बतरावनि ।

घेरें सखी चारु चारों दिसि नव मलार की गावनि ।
'हरीचंद' चित तें न टरति है सो सोभा सुख-पावनि।१४

धनि वे दृग जिन हरि अवलोके ।
रथ चढ़ि कै डोलत ब्रज-बीथिन
ब्रज-तिय द्वार द्वार गति रोके ।
इक कर रास रासपति लीने
झूमत चलत तुरंग नचावत ।
दूजे कर साँटी लै दृग की
साँटी ब्रज-तिय-चित्त लगावत ।
इत उत चितवत चलत चख
हँसत हँसावत गावत डोलैं ।
छकत रूप लखि निरखनहारे
काहू सों हँसि कै मृदु बोलैं ।
संग भीर आभीर-जनन की
मुरछल चँवर डुलावत धावै ।
'हरीचंद' तें धन धन जग में
जे यह सोभा निरखि सिरावैं ।१५

कछु रथ हाँकनहू मैं भाँति ।
यह कछु औरहि चलनि-चलावनि औरे रथ की काँति।
कहूँ ठिठकि रथ रोकि घरकि लौं ठाढ़े रहत मुरारि ।
कहुँ दौरावत अतिहि तेज गति कहुँ काहू सों रारि ।
काहु को अंग परसि रथ चालनि काहु लेनि दौराय ।
चाबुक चमकि तनक काहू तन मारनि देनि छुआय ।
काहू के घर की फेरी दै घूमनि करि रथ मंद ।
बार बार निकसनि वाही मग मैं जानी 'हरीचंद' ।१६

वह धुज की फहरानि न भूलति ।
उलटि उलटि कै मो दिस चितवनि
रथ हाँकनि हरि की जिय सूलति ।
लै गए सब सुख साथहि मोहन
अब तो मदन सदा हिय हूलत ।
सो सुख सुमिरि सुमिरि कै सजनी
अजहूँ जिय रस-बेली फूलत ।
लै आओ कोउ मो ढिग हरि को
बिरह-आगि अब तन उनमूलत ।
'हरीचंद' पिय-रंग बावरी
ग्वालिनि प्रेम-ड़ोर गहि झूलत ।१७

आजु दोउ बैठे मिलि बृंदाबन नव निकुंज
सीतल बयार सेवैं मोद भरे मन मैं ।
उड़त अँचल चल चंचल दुकूल कल
स्वेद फूल की सुगंध छाई उपवन मैं ।
रस भरे बातैं करैं हँसि अंग भरैं
बीरी खात जात सरसात सखियन मैं ।
'हरीचंद' राधा प्यारी देखि रीझै गिरिधारी
आनँद सों उमगे समात नहिं तन मैं ।१८

गंगा पतितन को आधार ।
यह कलि-काल कठन सागर सों तुमहिं लगावत पार।
दरस-परस जल-पान किए तें तारे लोक हजार ।
हरि-चरनारबिंद-मकरंदी सोहत सुंदर धार ।
अवगाहत नर-देव-सिद्ध-मुनि कर अस्तुति बहु बार ।
'हरीचंद' जन-तारनि देवी गावत निगम पुकार ।१९

जयति कृष्ण-पद-पद्म-मकरंद रंजित
नीर नृप भगीरथ बिमल जस-पताके ।
ब्रह्म-द्रवभूत आनंद मंदाकिनी
अलकनंदे सुकृति कृति-विपाके ।
शिव-जटा-जूट-गह्वर-सघन-वन-मृगी
विधि-कमंडलु-दलित-नीर-रूपे ।
कपिल-हुंकार भस्मीभूत निरयगत
स्पर्श-तारित सगर-तारित-तनुज भूपे ।
जन्हुतनया हिमालय-शिखर-निकर
वर भेद भंजित इंद्र हस्ति गर्वे ।
असह धारा-प्रवह वारि-निधि मानहृत
मिलित शतधा रचित वेग खर्व्वे ।
विविध मंदिर गलित कुसुम-तुलसी-निचय
भ्रमर-चित्रित नवल विमल धारे ।
सिद्ध सीमंतिनी सुकुच-कुंकुम-मिलत
हिलित रंजित सुंगधित अपारे ।
लोल कल्लोल लहरी ललित वलित बल
एक संगत द्वितिय तर तरंगे ।
झरति झर झर झिल्लि सरस झंकार
वर वायु गत रव बीन-मान भंगे ।
मकर-कच्छप-नक्र-संकुलित जीवजय
शीत पानीय तृष्णादि नाशे ।
कलित कूजित सुकारंड-कलरव नाद
कोकनद कुमुद कल्हार काशे ।
निज महिम बल प्रबल अर्कसुत नर्क-भय
दूर कृत पतित-जन कृत पवित्रे ।
पान मज्जन मरण स्मरण दर्शन मात्र
निखिल अघ-राशि नाशन चरित्रे ।
मुक्ति-पथ-सोपान विष्णु-सायुज्य-प्रद
परम उज्ज्वल श्वेत नीर जाते ।
जयति यमुना-मिलित ललित गंगे
सदा दास 'हरिचंद' जन पक्षपाते ।२०

सारंग

प्यारे को कोमल तन परसि आवत आज
याही तें बयार अंग सीतल करत है ।
सनित सुगंध मंद मंद आइ मेरे ढिग
प्रेम सों हुलसि सखी अंकम भरत है ।
हिय की खिलत कली मदन जगत अली
पिय के मिलन को चित चाव बितरत है ।
'हरीचंद' चलि कुंज जहाँ करै भौंर गुंज
प्यारो सेज साजि मेरे ध्यान को धरत है ।२१

श्याम अभिराम रति-काम-मोहन सदा
बाम श्री राधिका संग लीने ।
कुंज सुख-पुंज नित गुंजरत भौंर जहाँ
गुंज-बन-दाम गल माहिं दीने ।
कोटि घन बिज्जु ससि सूरमनि नील अरु
हीर छबि जुगल प्रिय निरखि छीने ।
करत दिन केलि भुज मेलि कुच ठेलि
लखि दास 'हरिचंद' जयजयति कीने ।२२

आजु मुख चूमत पिय को प्यारी ।
भरि गाढ़े भुज दृढ़ करि अँग
अँग उमगि उमगि सुकुमारी ।
लहि इकंत प्रानहु तें प्रियतम करत मनोरथ भारी ।
उर अभिलाख लाख करि करि कै पुजवत साध महा री ।
मानत धन धन भाग आपुने देत प्रान-धन वारी ।
'हरीचंद' लूटत सुख-संपति श्री बृषभानु-दुलारी ।२३

घन गरजत बरसत लखि दोऊ
औरहु लपटि लपटि रहे सोय ।
स्यामा-स्याम इकंत कुंज में
अरु तीसरो निकट नहिं कोय ।
दामिनि दमकत ज्यौं ज्यौं त्यौ त्यौं
गाढ़ी भरत भुजा की होय ।
'हरीचंद' बरसत घन उत इत
रस बरसत पिय-प्यारी दोय ।२४

धन दिन धन मम भाग कुंज धन दोऊ जहाँ पधारे-।
राखौंगी बिनती करि दोऊन कों आजू प्रिया पिय प्यारे।
नै न पाँवरे बिछाइ करौंगी आँचर-बिजन बयारे ।
'हरीचंद' बारौंगी सर्बस गाऊँगी गुन-गन भारे ।२५

आज धन भाग हमारे यह घरी धन
मेरे घर आए गिरिराज-धरन ।
नाचों गाओंगी करौंगी बधाई वारि
डारौंगी तन-मन-धन-प्रान-अभरन ।
राखौंगी कंठ लाइ जान न देहौं फेर
करि बिनती बहु गहि कै चरन ।
'हरीचंद' बल्लभ-बल पीओंगी
अधर-रस, छाँडोंगी अब न सरन ।२६

मंगल महा जुगल रस-केलि ।
जिन तृन करि जग सकल अमंगल पायन दीने पेलि ।
सुख-समूह आनंद अखंडित भरि भरि धर्‌यौ सकेलि।
'हरीचंद' जन रीझि भिंजायो सर-समुद्र उर झेलि।२७

नाथ मैं केहि बिधि जिय समझाऊँ ।
बातन सों यह मानत नाहीं कैसे कहौ मनाऊँ ।
जदपि याहि विश्वास परम दृढ़ बेद-पुरानहु साखी ।
कछु अनुभवहू होत कहत है जद्यपि सोइ बहु भाखी ।
तऊ कोटि ससि कोटि मदन सम तुव मुख बिनू दृग देखें।
धीरज होत न याहि तनिकहू समाधान केहि लेखें ।
निस-दिन परम अमृत-सम लीला जेहि मानै अरु गावै।
तेहि बिनु अपुने चख सों देखें किमि यह धीरज पावै ।
दरसन करै रहै लीला मैं जिय भरि आँनंद लूटै ।
तृप्त होहिं तब मन इंद्रिय को अनुभव भुस लै कूटै ।
संपति सपने की न काम की मृग-तृष्णा नहिं नीकी ।
'हरीचंद' बिनु सुधा जिआवै कैसे छछिया फीकी ।२८

आजु दोउ बैठे हैं जल-भौन ।
हौज किनारे भरे मौज सों प्यारी राधा-रौन ।
सावन-भादों छुटत फुहारे नीरहि नीर दिखाई ।
भींज रहे दोउ तहँ रस-भींजे सखि लखि लेत बलाई ।
बूँद बदन पर सोभा पावत कमल ओस लपटाने ।
बिथुरे बारन मैं मनु मोती पोहे अति सरसाने ।
झीने बसन श्याम अँग झलकत सोभा नहिं कहि जाई।
मनहुँ नीलमनि सीसे-संपुट धर्‌यो अतिहि छबि छाई।
धार फुहार सीस पर लैहों लखि कै दृग सुख पावै ।
मनु अभिषेक करत सब सुर मिलि छबि सों परम सुहावै।
कै जमुना बहु रूप धारि कै जुगल मिलन हित आई ।
कै चपला घन देखि और घन मिलि बरसा बरसाई ।
लोचन ही लखिए सो सोभा कहे कह्यौ नहिं आवै ।
'हरीचंद' बिनु बल्लभ-पद-बल और लखन को पावै।२९

मन मेरो कहुँ न लहत विश्राम ।
तृष्णातुर धावत इत तें उत पावत कहुँ नहिं ठाम ।
कबहुँक मोह-फाँस मैं बाँध्यौ धन-कुटुंब-मुख जोहै ।
तिनहूँ सों जब लहत अनादर तब ब्याकुल ह्वै मोहै ।
कबहूँ काहू नारि-प्रेम-बस ताहि को सरबस मानै ।
ताहू सों प्रति-प्रेम मिलन बिनु अकुलि और उर आनैं।
देवी-देव तंत्र-मंत्रन में कबहुँ रहत अरुझाई ।
तिनहूँ सो जब काज सरत नहिं तबहि रहत अकुलाई ।

कबहुँ जगत के रसिक भगत सज्जन लखि तिन सों बोलै।
कालो हृदय देखि तिनहूं को उचटत झटकत डोलै ।
जिन कहँ मित्र सुहृद करि मानत राखत जिनकी आसा।
तेऊ मुख भंजत तब छोड़त सबही सो विश्वासा ।
कबहुँ ब्रह्म बनि रहत आपुही जामैं दुख नहिं व्यापै ।
माया प्रबल तहाँ अभिमानहिं नासि जगत मत थापै ।
सोचत कबहुँ निकसि बन जानो पैं जब आपु बिलोकै ।
तृष्णा क्षुधा साथ तहहूँ लखि ताहू सों चित रोकै ।
ब्रह्मा सों बढ़ि लै पिपीलिका लौं जग जीव सु जेते ।
कोऊ देत न अचल भरोसो निज स्वारथ के तेते ।
तृष्णा अमित सुखाए छिछिले छीलर सब जग माहीं ।
'हरीचंद' बिनु कृष्ण बारि-निधि
प्यास बुझत कहुँ नाहीं ।३०

कबित्त

ए री प्रान-प्यारी बिन देखे मुख तेरो मेरे
जिय मैं बिरह घटा घहरि घहरि उठै ।
त्यौं ही 'हरिचंद' सुधि भूलत न क्यौं हूँ तेरो
लाँबो केस रैन-दिंन छहरि छहरि उठै ।
गड़ि गड़ि उठत कटीले कुच-कोर तेरी
सारी सो लहरदार लहरि लहरि उठै ।
सालि सालि जात आधे आधे नैन-बान तेरे
घूँघट की फहरानि फहरि फहरि उठै ।३१

सवैया

हमैं नीति सों काज नहीं कछु है
अपुनो धन आपु जुगाए रहो ।
हमरी कुल-कानि गई तो कहा
तुम आपनी को तो छिपाये रहो ।
हमसों सब दूरि रहो 'हरिचंद' न
संग मैं मोहिं लगाए रहो ।
हम तो बिरहा मैं सदा ही दहैं
तुम आपुनो अंग बचाए रहो ।३२

पद

जयति जन्हु-तनया सकल लोक की पावनी ।
सकल अघ-ओघ हर-नाम उच्चार मैं
पतित-जन-उद्धरनि दुक्ख-विद्रावनी ।
कलि-काल कठिन गज गर्व्व खर्व्वित-करन
सिंहिनी गिरि गुहागत नाद-श्रावनी ।
शिव-जटा-जूट-जालाधिकृत-बासिनी
बिधि-कमंडलु बिमल रमनि मन-भावनी ।
चित्रगुप्तादि के पत्र-गत कर्म्म बिधि
उलटि निज भक्त आनँद सरसावनी ।
दास 'हरिचंद' भागीरथी त्रिपथगा
जयति गंगे कृष्ण-चरन गुन-गावनी ।३३

श्री गंगे पतित जानि मोहिं तारौ ।
जो जस अब लौं मिल्यौ तुम्हैं नहिं सो जग में बिस्तारौ।
जेते तारे हीन छीन तुम अब लौं पतित अपारे ।
ते मेरे लेखे तृन ऐसे कहा गरीब बिचारे ।
पाप अनेक प्रकार करन की बिधि कोऊ कहँ जानै ।
हौं तो बदि बदि करौं अनेकन जेहि जम-चित्रहु मानै ।
हम कहँ जौ पै तारि लेहु जग-तारनि नाम कहाई ।
'हरीचंद' तो जस जग मानै नातरु बादि बड़ाई ।३४

जै जै बिष्णु-पदी श्री गंगे ।
पतित-उधारनि सब जग-तारनि नव उज्ज्वल अंगे ।
शिव-सिर-मालति-माल सरिस वर तरल तर तरंगे ।
'हरीचंद' जन-उधरनि देवी पाप-भोग-भंगे ।३५

पतित-उधारनी मैं सुनी ।
इक बाजी खेलौ हमहूँ सों देखैं कैसी गुनी ।
कबहुं न पतित मिले जग गाढ़े ताही सों गायो मुनी ।
'हरीचंद' को जौ तुम तारौ तौ तारिनि सुर-धुनी ।३६

गंगा तुमरी साँच बड़ाई ।
एक सगर-सुत-हित जग आई तार्‌यौ नर-समुदाई ।
एक चातक निज तृषा बुझावन जाचत घन अकुलाई।
सो सरवर नद नदी बारिनिधि पूरत सब झर लाई ।
नाम लेत जल पिअत एक तुम तारत कुल अकुलाई ।
'हरीचंद' याही तें तो सिव राखी सीस चढ़ाई ।३७

आजु हरि-चंदन हरि-तन सोहै ।
तरु तमाल पै साँझ-धूप सम देखत तिह मन मोहै ।
ता पैं फूल-सिंगार सुहायो बरनि सकै सो को है ।
'हरीचंद' बड़ भाग राधिका अनुदिन पिय-मुख जोहै ।३८

आजु जल बिहरत पीतम-प्यारी ।
गल भुज दिये करिनि-गज से दोउ अवगाहत सुभ बारी ।
सखी खरीं चहुँ ओर चारु सब लै ग्रीषम उपचारी ।
चंदन सोंधो फूल-माल बहु झीने बसन सँवारी ।
कोउ गावत कोउ तार बजावत कोउ करत मनुहारी ।
कोउ कर सों जल-जंत्र चलावत 'हरीचंद' बलिहारी।३९

मिटत न हौस हाय या मन की ।
होत एक तें लाख लाख नित तृष्णा बुझत न तन की ।
दैव-कृपा सों जौ तमो-गुनी बृत्ति दूर ह्वै जाई ।
तौ रजोगुनी इच्छा बाढ़त लाखन जिय में आई ।
ताहू के मिटे सतोगुन संचय अपुनो लोभ न छोड़ै ।

जस कीरति चिर नाम मान पै चंचल चित कहँ मोड़ैं ।
भए बिरागिहु भक्त सिद्ध कहवावन की रुचि बाढ़े ।
रचि रचि छन्द नाम करिबे को इच्छा तव जिय काढ़े ।
तासों याहि जीतिबो दुरघट जानि जतन यह लीजै ।
'हरीचंद' घनस्याम-मिलन की हौस करोरन कीजै ।४०

बे दिन सपन रहे कै साँचे ।
जे हरि सँग बिहरत याही बृज बीति गए रँग-राचे ।
कहाँ गई वह सरद रैन सब जिन मैं हरि-सँग नाचे ।
कहँ वह बोलन-हँसन-मिलन-सुख मिले जौन बिनु जांचे ।
हाय दई कैसी कीनी दुख सहत करेजे काँचे ।
'हरीचंद' हरि-बिनु सूनो बृज
लखनहि हित हम बाँचे ।४१

हरि हो अब मुख बेगि दिखाओ ।
सही न जात कृपानिधि माधो एहि सुनतहि उठि धाओ ।
लखि निज जन डूबत दुख-सागर क्यौं न दया उर लाओ ।
आरत बचन सुनत चुप ह्वै रहे निठुर बानि बिसराओ ।
करुनामय कृपाल केसव तुम क्यौं निज प्रनहि डिगाओ ।
लखि बिलखत 'हरिचंद' दुखी
जन क्यौं नहिं धीर धराओ ।४२

यह मन पारद हू सों चंचल ।
एक पलक मैं ज्ञान बिचारत दूजे मैं तिय-अंचल ।
ठहरत कतहुँ न डोलत इत उत रहत सदा बौरानो ।
ज्ञान ध्यान की आन न मानत याको लंपट बानो ।
तासों या कहँ कृष्ण-बिरह-तप जो कोउ ताप तपावै ।
'हरीचंद' सो जीति याहि हरि-भजन-रसायन पावै ।४३

आजु अभिषेकत पिय कों प्यारी ।
धरि दृग ध्यान नवल आँसुन के भरि भरि उमगे बारी ।
कज्जल मिलित चारु मृगमद से बिरह-परब लखि भारी ।
बरखत गलित कुसुम बेनी तें सोई फूल-झर डारी ।
ब्याकुल कल नहिं लहत तनिक सुख हाय मंत्र उच्चारी ।
'हरीचंद' लखि दुखित सखी-जन
करि न सकत उपचारी ।४४

जनमतहि क्यौं हम नाहिं मरी ।
सखि बिधना विध ना कछु जानत उलटी सबहि करी ।
हरि आछत ब्रज चार चवाइन करि निंदा निदरीं ।
तिन भय मुखहु लखन नहिं पायो हौसहि रहत भरीं ।
अब हरि सो ब्रज छोड़ि अनत रहे बिलपत बिरह जरी ।
यह दुख देखन ही जनमाई बारेंहि बिपत परी ।
सुख केहि कहत न जान्यौ सपनेहु दुख ही रहत दरी ।
'हरीचंद' मोहिं सिरजि बिधिहि
नहिं जानौं कक्षा सरी ।४५

मेरो हठ राखो हठीले लाल ।
तुम बिनु मान कौन मेरो रखिहैं समुझहु जिय गोपाल ।
हमकों तो तुमरो बल प्यारे तुव अभिमान दयाल ।
पै तुमही ऐसी जो करिहौ कहँ जैहैं ब्रज-बाल ।
एक बेर ब्रज कों फिरि आओ लखि गौअन बेहाल ।
'हरीचंद' बरु फेर जाइयो मधुपुर कृष्ण कृपाल ।४६

राखिए अपुनेन कों अभिमान ।
तुव बल जो जग गिनत न काहू दीजै तेहि सनमान ।
तुम्हरे होय सहैं इतनो दुख यह तो अनय महान ।
तुमहि कलंक हमैं लज्जा अति कहिहै कहा जहान ।
एक बेर फिरहू ब्रज आओ देहु जीव को दान ।
'हरीचंद' गिरि कर-धारन की करिकै सुरति सुजान ।४७

ऊधो अब वे दिन नहिं ऐहैं ।
जिन मैं श्याम संग निसि-बासर
छिन सम बिलसि बितैहैं ।
वह हँसि दान माँगनो उनको
अब हम लखन न पैहैं ।
जमुना न्हात कदम चढ़ि छिपि अब
हरि नहिं चीर चुरैहैं ।
वह निसि सरद दिवस बरखा के
फिर बिधि नाहिं फिरैहैं ।
वह रस-रास हँसन-बोलन-हित
हम छिन छिन तरसैहैं ।
वह गलबाहीं दै पिय बतियाँ
अब नहिं सरस सुनैहैं ।
'हरीचंद' तरसत हम मरिहैं
तऊ न वे सुधि लैहैं ।४८

हरि बिनु बृज बसियत केहि भाएँ ।
जीवत अब लौं बिनु पिय प्यारे इन अँखियन दरसाएँ ।
केहि सुख लागि जियत हम अब
लौं यह नहिं परत लखाई ।
बिनु बृजनाथ देखि बृज सूनो प्रान रहत किमि माई ।
बिनु बृजनाथ देखि बृज सूनो प्रान रहत किमि माई ।
वह बन-बिहरन कुंज कुंज मैं सपनेहू नहिं देखैं ।
ऊधो जोग सुनन तुब मुख सौं प्रान रहे एहि लेखैं ।
बिनु प्रिय प्राननाथ मन-मोहन आरत-हरन कन्हाई ।
'हरीचंद' निरलज जग जीवत हम माथी की नाईं ।४९

सवैया

देत असीस सदा चित सों यह
साहिबी रावरी रोज बनी रहै ।
रूप अनूप महा धन है

'हरीचंद जू' बाकी न नेकु कमी रहै ।
देखहु नेकु दया उर कै
खरी द्वार अरी यह जाचक-मीर है ।
दीजियै भीख उघारि कै घूँघट
प्यारी तिहारी गली को फकीर है ।५०
अब तौ जग मैं खुलि कै चहुँघा
पन प्रेम को पूरो पसारि चुकी ।
कुल-रीति औ लोक की लाज सबै
'हरीचंद जू' नीके बिगारि चुकी ।
वहि साँवरि मूरति देखत ही
अपुने सरबस्वहि हारि चुकी ।
जग मैं कछु कोऊ कहौ किन हौं
तौ मुरारि पै प्रान कों वारि चुकी ।५१

छोटे प्रबंध तथा मुक्तक रचनाएं

स्वर्गवासी श्री अलवरत * वर्णन अंतर्लापिका

[रचनाकाल — सन् १८६१-१८८४]

छप्पय

बस हित सानुस्वार देव-वाणी मधि का है ?
अबहि भाषा माहिं कहा सब भाखन चाहै ?
को तुव हार्‌यौ सदा ? दान तुम नितहिं करत किमि ?
का तुव मीठे सुनत ? कहा सोहत नागिन जिमि ?
महरानी तुम कहँ का कहत ? अरि-सिर पै तुम का धरत ?
का जल की सोभा ?
कौन तुव सैन सदा निज भुज करत ।१
तुम स्व-नारि मैं कहा ? कौन रच्छा तुव करई ?
का करिकै तुव सैन सत्रु को बल परिहरई ?
कैसो तुव जन हियो ? तत
कैसो तुव जन हियो ? ततो वाचक का भासा ?
तुव अरि-सिर नित कहा ? कौन जल बरसत खासा ?
तुव पग संगर में का करत ? कौन प्रथम पाताल कहि ?
आमोदित कासों तुव बसन ?
का ह्वै पर दल परत महि ।२
तुव धन कासों है बढ़ि ? को पुनि देश जवन को ?
कौन मुखर ? तुम करत कहा अरि देखि भवन को ?
तरु की सोभा कहा ? होत त्रन से कह तुव अरि ?
पर सों कायर कहा न ? तुम किमि चलत सैन दरि ?
तोहिं बाल चालावन की सदा कहा परी पर फौज लखि?
कह बाजि उठत धन गाजि जिमि
साजत तोहिं रन लखि हरखि ।३
कह सितार को सार ? सत्रु के किमि मन तेरे ?
काकी मार प्रहार सीस अरि हनै घनेरे ?
का तुम सैनहिं देत सदा उनतिसएँ ही दिन ?
कहा कहत स्वीकार समय कछु अवसर के छिन ?
को महरानी को पति परम सोभित स्वर्गहि ह्वै रह्यौ ?
अलवरत एक छतीस इन प्रश्नन को उत्तर कह्यौ ।४

* १४ दिसंबर सन् १८६१ ई. को क्वीन विक्टोरिया के पति प्रिंस एलबर्ट की मृत्यु के समय लिखी थी ।
(यथा अलं, अब, अर, अत इत्यादि क्रम से छत्तीसों प्रश्नों के उत्तर केवल 'अलवरत' इन पाँच ही अक्षर में निकलते हैं इसीलिए इन्हें अन्तर्लापिका कहा गया है । लापिका अर्थ पहेली का होता है ।)

श्री राजकुमार-सुस्वागत-पत्र*

(रचना काल : सन् १८६९)

जाके दरस-हित सदा नैना मरत पियास ।
सो मुख-चंद बिलोकिहैं पूरी सब मन आस ।१
नैन बिछाए आपु हित आवहु या मग होय ।
कमल-पाँवड़े ये किए अति कोमल पग जोय ।२

हे हे लेखनी, आज तुझे मानिनी बनना उचित नहीं है, क्योंकि इस भूमि के नायक ने चिर-समय पीछे अपने प्यारी की सुधि ली है ।

आज तू भी आगत-पतिका बन और सोरह श्रृंगार करके इस पत्र रूपी रंगशाला में ऐसी मनोहर और मदमाती गति से चल कि सब देखनेवाले मोहित हो होके मतवाले से झूमने लगें और ऐसी फूलों की झड़ी लगा जिससे महाराज-कुमार के कोल चरनों को यह पत्रिका एक फूल के पाँवड़े सी बन जाय ।

आज क्या कारण है कि उपवनों में कोकिल ने धूम सी मचा रखी है और भँवरे मदमाते होकर इधर से उधर दौड़े दौड़े फिरते हैं ? वृक्षों को ऐसा कौन सा सुख हुवा है कि मतवालों की भाँति झुक झुक के भूमि चूम रहे हैं और लता सब ऐसी क्यों प्रमुदित हैं कि कुलटा नायिका की भाँति लाज छोड़ छोड़ के अपने नायक से लिपट रही हैं और फलों ने ऐसा क्या सुख पाया है कि अपना स्थान छोड़ छोड़ के उमगे हुए पृथ्वी पर टपके पड़ते हैं और फूलों ने किस के आगे का समाचार सुन लिया है कि फूले नहीं समाते हैं । मालिनें श्रृंगार करके किस के हेतु यह कोमल और अनेक रंग के फूलों की माला खूँथ रही हैं और यह ठंढ़ी पौन किस के अंग को छू के आती है कि सब के मन की कली सी खिली जाती है । नदियों और सरोवरों के पानी क्यौं उछल उछल के अपना आनंद प्रकाश कर रहे हैं और उनमें कँवल की कलियाँ किस की स्तुति के हेतु हाथ बाँधे खड़ी हैं । हंस और चकोर ऐसी कुलेल क्यौं करते हैं और वर्षा बिना मोर क्यौं नाच रहे हैं । पक्षी लोग बड़े उत्साह से किस के आने की बधाई गाते हैं और हिरन लोग अपने बड़े बड़े नेत्रों से किस के दर्शन की आशा में तृण छोड़ छोड़ के खड़े हो रहे हैं । खिड़कियों में स्त्री लोग किस के हेतु पुतली सी एकाग्र-चित्त हो रही हैं और मंगल का सब साज किस के हेतु सजा है । सुना है कि हम लोगों के महाराज-कुमार आज इधर आनेवाले हैं, फिर क्यौं न इस भारतवर्ष के उद्यान में ऐसा आनंद-सागर उमगै । भारतवर्ष के निवासी लोगों को अब इससे विशेष और कौन आनंद का दिन होगा और इससे बढ़ के अपने चित्त का उत्साह और आधीनता प्रगट करने का और कौन सा समय मिलेगा । कई सौ बरस से हम लोग चातक की भाँति आसा लगाए थे कि यह भी कोई दिन ईश्वर दिखावैगा, जिस दिन हम अपने पालनेवाले को इन नेत्रों से देखैंगे और अपना उत्साह और प्रीति प्रगट करेंगे । धन्य उस जगदीश्वर को जिसने आज हमारे मनोर्थ पूर्ण करके हम को उस अपूर्व निधि का दर्शन कराया जिस का दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ था । धन्य आज का दिन और धन्य यह घड़ी जिसमें हमारे मनोर्थ के वृक्ष में फल लगा और राजकुँवर को हम लोगों ने अपने नेत्रों से देखा । इस समै हम लोग तन मँन धन जो कुद न्योछावर करैं थोड़ा है और जो आनंद करैं सो बहुत नहीं है । ईश्वर करै जब तक फूलों में सुगंधि और चंद्रमा में प्रकाश है और पद्मिनी-नायक सूर्य्य जब तक उदयाचल पर उगता है और गंगा-जमुना जब तक अमृत धारा बहती हैं तब तक इनके रूप-बल-तेज और राज्य की वृद्धि होय, जिसमें हम लोग इनके कर-कल्प-वृक्ष की छाया में सब मगोर्थ से पूर्ण होकर सुखपूर्वक निवास करें ।

---

* ड्यूक आव एडिन्बरा के सन् १८६९ ई. में भारत आगमन के मौके पर लिखा गया था ।

कवित्त

जनम लियो है महारानी-कोख-सागर तें
जामें तौ कलंक को न लेसहु लखायो है ।
सुभट समूह साथ सोहत हैं तारागन
कुमुदहि तू न हिए हरख बढ़ायो है ।
चाहि रहे चाह सों चकोर ह्वै प्रजा के पुंज
वैरी तम निकर प्रकास तें नसायो है ।
आनँद असेसे दीबे हेत हिंद बीच आज
कुँवर प्रतापी नख-तेस बनि आयो है ।१

कोकिल समान बोलि उठे हैं सुकवि सबै
कामदार मौंर से बधाई लै लै धाए हैं ।
लागि उठी लाय बिरहीन की सी बैरिन कों
बौरि उठे हाकिम रसाल से सुहाए हैं ।
फूलि के सफल भे मनोरथ सबन ही के
नाचि उठे मोर से प्रजा के मन भाए हैं ।
साजि कै समाज महारानी के कुँवर आजु
दीबे सूख-साज रितुराज बनि आए हैं ।२

दोहा

अरी आज संभ्रम कहा जान परत कछु नाहिं ।
बोरे से दौरे फिरत फूले अंगन माहिं ।३
धावत इत उत प्रेम सों गावत हरख बढ़ाय ।
आवत राजकुमार यह कहत सुनाय सुनाय ।४
करत मनोरथ की लहर सागर मन समुदाय ।
राजकुँवर-मुख-चंद लखि, उमगि चल्यो अकुलाय ।५

अथ षट् ऋतु रूपक

बसंत

आनँद सों बौरी प्रजा, धाये मधुप समाज ।
मन-मयूर हरखित भए, राजकुँवर-रितुराज ।६

ग्रीष्म

तपत तरनि तिमि तेज अति, सोखत बैरि अपार ।
जीवन में जीवन करत, ग्रीषम-राजकुमार ।७

वर्षा

प्रजा कृषक हरखित करत, बरसत सुख-जल-धार ।
उमगावत मन नदिन कों, पावस-राजकुमार ।८

शरद

फूले सब जन मन कमल, नभ-सम निरमल देस ।
बिकसित जस की कैरवी, आया सरद नरेस ।९

हेमंत

मुरझावत रिपु-बनज बन, अरिन कँपावत गात ।
राजकुँवर हेमंत बनि, आवत आज लखात ।१०

सिसिर

पीरे मुख बैरी परै, पिकन बधाई दीन ।
सीरे उर सब जन भए, सिसिर-कुमार नवीन ।११

विनय

बिनवत जुग प्रफुलित जलज, करि कलि कैक समान ।
धुजा-भुजा की छाँह मैं, देहु अभय-पद दान ।१२

AN OFFERING OF FLOWERS

सुमनोऽञ्जलिः ।

रचना काल सन् १८७०

श्रीमन्महाराजकुमार ड्यूक आफ एडिनबरा चरणकमले समर्पित :

TO
HIS ROYAL HIGHNESS, THE DUKE OF EDINBURGH,
K.G., K.T., G.C.M.G., K.G.C.S.I.

"किमासनन्ते गरुडासवाय किम्भूषणडकौस्तुभमूषणाय ।।
लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं वागीशकिन्ते वचनीयमस्ति ।।"

(निबन्धे)

BY
HARISH CHANDRA

पटना —"खडगविलास" प्रेस-बांकीपुर ।
साहब प्रसाद सिंह ने मुद्रित किया ।
१८८८.

सुमनोऽञ्जलि:*

PREFACE

The short stay of H.R.H. the Duke of Edinburgh at Benares prevented me from personally presenting his this 'Offering of flowers' on the occasion of his visit to this city. With the co-operation of some of my esteemed friends, I convened a meeting at my house on the 20th January and invited many respectable and learned Pundits and Gentlemen to attend it. The meeting was formally opened by me by reading the biography of the Royal Prince in Hindi, and in conclusion requesting the gentlemen present on the occasion to adopt suitable measures for the address. The Pundits of the city expressed their great satisfaction, and read individually some Shlokas (verses) Sanskrit expressing their heartfelt joy on the advent of the Royal Prince to this city. The verses are entered systematically into this book. The meeting then broke. The gentlemen present on the occasion evinced great joy and loyalty to the Royal Prince for which this small book containing the expressions of their sincere loyalty, is most respectfully dedicated to his Gracious feet.

Benares
10th March 1870 Harischandra.

Names of the gentle- men present on the occasion of the meeting held for presenting an address to H.R.H. the Duke of Edinburgh.

H.R.H. the Duke of Edinburgh.

Prof. Shri Bapu Deva Shastri F.R.A.S. and Fellow Calcutta University

Shri Narayan Kavi
" Hanuman Kavi.
" Hari Bajpai.

* इस सुमनोंजलि में सर्व श्री बापूदेव, राजाराम, बेचनराम, बस्तीराम बालशास्त्री, गोविंददेव, शीतल प्रसाद, ताराचरण, गंगाधर शास्त्री, रमापति, नृसिंह शास्त्री, ढुंढिराज, विश्वनाथ, विनायक शास्त्री और रामकृष्ण शास्त्री के संस्कृत श्लोक हैं । और नारायण और हनुमान कवि की हिंदी कविताएँ हैं ।

Shri Raja Ram Shastri
" Basti Ram "
" Gavind Deva "
" Bal "
" Seetal Prasad.
" Bechan Ram.
" Krishna Shastri
" Dhundhi Raj
Dharmadhikari.
" Ramapati Dube.
" Ram Krishna
Pattburdhana.
" Shiva Ram Govind
Ranade.

Rai Narsingh Das.
" Jaya Krishna Das.
" Lakshmi Chandra.
" Murari Das.
" Balkrishna Das.
" Radha Krishna Das.
Babu Vishweshwar Das.
" Madho Das.
" Madhusudan Das
" Gokul Chandra
" Shama Das.
" Loka Natha Moitre.
Munshi Sankata Prasad.
Molvi Asharaf Ali Khan
Babu Balgovinda.

श्री : ।

स्वस्तिश्रीमन्महामहिमानिजप्रतापदावानलसमूलचर्वितसर्वोर्वीपत्यखर्वमहाटवीवर्गाया : समस्त-सामन्तचक्रचूडामणिशरच्चन्द्रचन्द्रिकाल्हादित पादकुमुदाया अपूर्वविद्योद्योतखद्योतति रस्कृताज्ञजनमानसवित-कार्या : श्री५मद्विजयिनीदेव्या : सततपरिशीलितविविधविद्या विलास : शान्त्यादिसुंदरगुणगणैरुपशोभमानो-नन्दनन्दनइवानन्दनिकर : नन्दनाधिपति : श्रीमान् डयूकाभिधानोनन्दनोनन्दनवननिमानन्दवननिवासिनां-मन्दाकिनीतीरवासिनां जनानां मानसान्यानन्दयितुमिव श्रीविश्वेशपुरीमाजगाम । ततस्तदागमनसमुत्पादिता-नन्दकन्दकदम्बाडकरितमहोत्सवप्रोत्साहितमानसेन मया तत्तन्माहितशास्त्रप्रवीणतासमासादितविविधबिरुदा-वलीसंमानितानेकविद्वज्जनसमाजविराजिता विविधगुणि गणागणितगाणितिकशोभमाना स्यस्वकुलोचितसदा-चारप्रचारसंपादितधनधान्यवदान्यधन्यधनिकसमलंकृता सभा सभाजिता । तस्यां च प्रथमं परमप्राचीन-समीचीन समय-समुचितेतिहासविचारोविद्वदोचरीभूय परमां चित्त्वमत्कृतिमावहति स्म, तत : श्रीमन्महाराज्ञी-तनयप्रचलित कीर्तिकलानिधिवर्द्धितापूर्वदर्शनसंजातकौतुकाब्धिर्विदुषां मानसेवकाशमप्राप्तय काव्यव्याजेन प्रकाशमानोनिखिलजनमन : संधानानन्दयांचकार । तृतीयमागे च तस्यां विविधपरिश्रमहर : सकलजन-मनोनुरंजनकरोवाद्यवादन प्रचारस्तामलंचकार ।

इत्थं च सभासदां परमप्रमदप्रदायी य : कतिपयकालकलाकदम्बो व्यत्यैत्तत्सं बन्धीनि पण्डितवरपरि-कल्पितकाव्यसुमनांस्येकीकृत्य तदञ्जलिं श्री५युतमहाराज्ञीकुमारचरणारविन्दयो : समर्पयितुमुत्सहते ।

श्रीहरिश्चन्द्रगुप्त :

काशी में ग्रहण के हित महाराज-कुमार के आने के हेतु

कवित्त

वाको जन्म जल याको रानी-कूख-सागर तें
वह तो कलंकी यामें छींटहु न आई है ।
वह नित घटै यह बाढ़े दिन दिन
यह बिरही-दुखद यह जग-सुखदाई है ।

जानि अधिकाई सब भाँति राजपुत्र ही मैं
गहन के मिस यह मति उपजाई है ।
देखि आजु उदित प्रकासमान भूमि चंद
नभ ससि लाजि मुख कालिमा लगाई है ।

सन् १८७१ में श्रीमान प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता[1]

रचना काल सन् १८७१

जय जय जगदाधार प्रभु, जग-व्यापक जगदीस ।
जय जय प्रनतारति-हरन, जय सहस्र-पद-सीस ।१
करुना-वरुनालय जयति, जय जय परम कृपाल ।
सुद्ध सच्चिदानंद-घन, जय कालहु के काल ।२
सब समर्थ जय जयति प्रभू, पूर्ण ब्रह्म भगवान ।
जयति दयामय दीन-प्रिय, क्षमा-सिंधु जन-जान ।३
हम हैं भारत की प्रजा, सब बिधि हीन मलीन ।
तुम सों यह बिनती करत, दया करहु लखि दीन ।४
हाथ जोर सिर नाइ कै, दाँत तेरे तृन राखि ।
परम नम्र ह्वै कहत हैं, दीन बचन अति भाखि ।५
बिनवत हाथ उठाय कै, दीजै श्री भगवान ।
जुबराजहिं गत-रुज करौ, देहु अभय को दान ।६
तिनके दुख सों सब दुखी, नर-नारिन के बृंद ।
तासो तुरतहि रोग हरि, तिन कहँ करहु अनंद ।७
जिनकी माता सब प्रजा-गन की जीवन-प्रान ।
तिनहिं निरोगी कीजिये, यह बिनवत भगवान ।८
बेग सुनैं हम कान सों, प्रिंस भए आनंद ।
परम दीन ह्वै जोरि कर, यह बिनवत हरिचंद ।९

।। श्री जीवन जी महाराज ।।[2]

रचना काल सन् १८७२

हरि की प्यारी कौन ? देह काके बल धावत ?
कहा पदन मैं परि विशेषता बोध करावत ?
कहा नवोढ़ा कहत ? ठाकुरन को को स्वामी ?
सुरगन को गुरु कौन ? बसत केहि थल रिसि नामी ?
हरि-वंशी-धुनि सुनि सकल ब्रजबनिता का कहि भजैं ?
वह कौन अक को गुननहूँ किए रूप निज नहि तजैं ।१
अश्व-पीठ कह धरत ? कौन रवि के जिय भावत ?
राजा के दरबार सभहि सुधि कौन दिआवत ?
नवल नारि मैं कहा देखि जुव-जन मन लोभा ?
को परिपूरन ब्रह्म ? कहा सरवर की शोभा ?
घन विद्या मानादिक सुगुन भूषित को जग-गुरु रह्यो ?
इन सब प्रश्नन को एक ही उत्तर श्री जीवन कह्यो ।२

चतुरंग[3]

बीस, तीस, चौबीस, सात, तेरह उन्निस कहि ।
चारुक, दस, पच्चीस, बयालिस, सत्तावन लहि ।
इक्कावन, छत्तिस, इक्किस, एकतिस, सोलह, खट।
बारह द्वै, सत्रह, सत्ताइस, तैंतिस गिन झट ।
पच्चास, साठ, तैंतालिस, सैंतिस,
चौवन, चौंसठ लहिय ।
सैंतालिस, बासठ, छप्पन,
उनतालिस, पैंतालिस कहिय ।१
पैंतिस, एकतालिस, अट्ठावन, बावन को गठ ।
छियालीस, एकसठ, पचपन, चालिस, तेइस अठ ।
चौदह, उनतिस, चौवालिस, चौंतिस, उनचासो ।
उनसठ, तिरपन, तिरसठ, अड़तालिस प्रकासो ।

---

१ नवम्बर १८७१ में टाइफाइड से पीड़ित होने के कारण कई दिनों तक प्रिंस की दशा गम्भीर हो गयी थी । उसी समय यह कविता लिखी गयी थी । —सं०

२ जिन श्री जीवन जी महाराज के अशेष गुण से पत्र में लिखे गए हैं उनके नाम की मैंने एक अंतर्लापिका बनाई है, कृपा करके प्रकाश कीजिएगा । इस अंतर्लापिका में १६ प्रश्न के उत्तर चार ही अक्षर से निकलते हैं ।

अथ क्रम से उत्तर ।।१ श्री २ जी ३ य ४ न ५ श्री जी ६ जीव ७ वन ८ वजी ९ नव १० जीन १२ वनजी १२ नजीव १३ नव श्री १४ श्रीजीव १५ जीवन १६ श्री जीवन ।

(२ सितम्बर सन् १८७२ की कवि वचन सुधा से)

३ ३ अगस्त १८७२ की कविवचन सुधा में प्रकाशित भारतेन्दु के अन तीनों छप्पयों को याद कर लेने से चतुरंग का खिलाड़ी खेल के चौसठों घर पर घोड़ा दोड़ा सकता था । किसी जमाने में चतुरंग राज परिवार का प्रिय खेल था ।

अड़तिस, बत्तिस, 'हरिचंद'
पंद्रह, सुपाँच, बाईस लहि ।
अट्ठाइस, ग्यारह, छबिस, नव,
तीन, अठारह, एक कहि ।२

चतुर जनन को खेल चारु चतुरंग नाम को ।
तामैं चपल तुरंग चलत द्वय अर्द्ध धाम को ।
जिमि कोउ विज्ञ सवार बाजि चढ़ि ब्यूह माँह धँसि ।
फेरै तेहि सब ठौर कठिन यद्यपि चाबुक कसि ।
तिमि चौंसठट्ठ घर मैं फिरै बाजि अंक सब ये कहहु ।
'हरिचंद' रसकि जन जानि एहि
नित चित परमानंद लहहु ।३

देवी छद्म-लीला

बनारस प्रिंटिंग प्रेस में सन् १८७३ में प्रकाशित ।

देवी छद्म-लीला

श्रीराधा अति सोचत मन में ।
कौन भाँति पाऊँ नँद-नंदन पिया अकेले बृंदाबन में ।
वे बहु-नायक रस के लोभी उनको चित्त अनेक तियन में ।
घेरे रहति सौति निसि बासर छौड़त नाहिं एकहू छन में ।
हमरे तो इक मोहन प्यारे बसे नैन में तन में मन में ।
'हरीचंद' तिन बिन क्यों जीवैं
दिन बीतत याही सोचन मैं ।१

तव ललिता इक बुद्धि उपाई ।
सुन् री सखी बात इक सोची
सो मैं तुम सों कहत सुनाई ।
हम सब बनत ग्वाल अरु पंडित
देवी आपु बनहु सुखदाई ।
तिन सों जाय कहत हम अद्भुत
बृंदाबन देवी प्रगटाई ।
अति परतच्छ है वाकी ताकों
देखन चलहु कन्हाई ।
'हरीचंद' यह छल करिकै हम
लावत तिनकों तुरत लिवाई ।२

यहै बात राधा मन भाई ।
आपु बनी बृंदाबन-देवि
सखियन कों तहँ दियो पठाई ।
बैठि आसन करि मंदिर मैं
सखियन की द्वै भुजा बनाई ।
बेनु श्रृंग पुनि लकुट कमल लै
चार भुजा तहँ प्रगट दिखाई ।
माथे क्रीट मोर-पखवा को
सारी लाल लसी सुखदाई ।
रतनन के आभरन बने तन
जिनपै दृष्टि नाहिं ठहराई ।
मौन साधि दोउ नैनन थिर करि
मूरति बनी महा छबि छाई ।
'हरीचंद' देविन की देवी
आज परम परमा प्रगटाई ।३

तब सखियन निज भेष बनायो ।
कोउ बचि ग्वाल बनी कोउ पंडा
पुरुषन ही को रूप सुहायो ।
बृंदाबन में सब मिलि पहुँचीं
जहँ मन-मोहन धेनु चरावत ।
तिन सों जाइ कहन यों लागीं
सुनहु लाल इक बात सुनावत ।
अचरज एक बड़ो भयो बन मैं
बट तर इक देवी प्रगटानी ।
अति परतच्छ कला है वाकी महिमा
कछु न जात बखानी ।
इक आवत इक जात नगर तें
भीर भई लाखन की भारी ।
जो जोइ माँगत सो सोइ पावत

साँच कहत करि सपथ तिहारी ।
तुम त्रिभुवन के नाथ कहावत
तासों ताहि बिलोकहु जाई ।
'हरीचंद' सुनि अति अचरज सों
तुरत चले उठि त्रिभुवन-राई ।४

मन-मोहन पूजन-साज लिये
दरसन कों देवी के आए ।
तहाँ भीड़ देखि नर-नारिन की
मन में अति ही बिस्मै छाए ।
इक आवत हैं इक जात चले
इक पूजत माला-फूल लिए ।
इक अस्तुति दोउ कर जोरि करैं
इक मुख सों जै-जैकार किए ।
तिन मोहन सों यह बात कही
तुमहूँ पूजा को साज करौ ।
मुँह-माँगो फल बरदान मिलै जो
तनिकहु उर मैं ध्यान धरौ ।
सुनिकै मनमोहन देवी के तब
पूजन को सब साज कियो ।
'हरिचंद' सुअवसर देखि तहाँ
बरदान भक्ति को माँग लियो ।५

न्यौते काहू गाँव जात ही
जसुमति हू निकसी तहँ आई ।
भीड़ देखि पूछत सखियन सों
यहाँ जुटीं क्यों लोग-लुगाई ।
काहू कह्यौ अजू या बट सों
देवी एक नई प्रगटाई ।
ताकी जात करन सब आवैं
नर-नारी इत हरख बढ़ाई ।
सनि अति अचरज सों जसुदा
तब देवी के दरसन को धाई ।
'हरीचंद' मालिन सों लै कै
फूल बतासा पूजत जाई ।६

हरिहु मातु ढिग आइ गए ।
कहत सुनत चरचा देवी की सब
मिलि भीतर भवन भए ।
दरसन करि देबी को पूज्यौ
सब मिलि जै-जैकार दए ।
'हरीचंद' जसुदा माता तब
अस्तुति ठानी भगति लए ।७

चिरजीओ मेरो कुँवर कन्हैया ।
इन नैनन हौं नित नित देखों राम कृष्ण दोउ भैया ।
अटल सोहाग लहो राधा मेरी दुलहिन ललित ललैया ।
'हरीचंद' देवी सों माँगत आँचर छोरि जसोदा मैया ।८

जब राधा को नाम लियो ।
तब मूरत कछु मन मुसुकानी पै
कछु भेद न प्रगट कियो ।
पूजा को परसाद सखिन तब
जसुदा मोहन दुहुँन दियो ।
'हरीचंद' घर गई जसोदा कहि
जुग-जुग मेरो लाल जियो ।९

मोहन जिय सँदेह यह आयो ।
जब राधा को नाम लियो तब
बाम्हन को गन क्यौं मुसकायो ।
मूरतिहू कछू जिय मुसकानी
या मैं है कछु भेद सही ।
प्यारी-स्वेद-सुगंधहु या
परसादी माला बीच लही ।
पूछि न सकत सँकोचन सब सों
अति आतुर चित लाल भए ।
'हरीचंद' ब्रजचंद साँवरे
मन में महा सँदेह लए ।१०

तब मोहन यह बुद्धि निकासी ।
जो यह राधा तौ नहिं छिपिहै
अंत प्रीति ह्वै है परकासी ।
यह जिय सोचि हाथ बीरा लै
देवी के अधरान लगायो ।
नख सों अधर छुयो ताही छिन
देवी तन पुलकित ह्वै आयो ।
सखियन कह्यौ छुओ मत देविहि
पहिने बसनन तुम सुखदाई ।
'हरीचंद' हँसि मौन भए तब
कह्यौ भेद की गति मैं पाई ।११

हाथ जोरि हरि अस्तुति ठानी ।
जय जय देवी बृंदाबन की
जै जै गोपिन की सुखदानी ।
तुम तो देवी अहौ बोलती
आजु मौन गति नई लखानी ।
जो अपराध भयो कछु हमसों
ता ताको छमिए महरानी ।
रूप-उपासी बिना मोल को
दास हमैं लीजै जिय जानी ।

'हरीचंद' अब मान न करिये
यह विनती लीजै मन मानी ।१२

हे देवी अब बहुत भई ।
यह बरदान दीजिए हमको कछु मत कीजै आजु नई ।
अब कबहूँ अपराध न करिहौं तुव वनन की सपथ करौं ।
छमा करौ हौं सरन तिहारी त्राहि त्राहि यह दीन खरौ ।
सह्यौ न जात बिरह यह कहिकै नैनन में हरि नीर भरे ।
'हरीचंद' बेबस ह्वै कै श्री राधा जू के चरन परे ।१३

देखि चरन पैं पीतम प्यारो ।
छुटि गयो मान कपट कछु जिय में
रह्यो छद्म कों नाहिं सँभारो ।
बाई उठाइ लियो भुज भरिकै
नैनन नीर भर्‌यौ नहिं ढारो ।
तन कंपत गद्‌गद् मुख बानी
कह्यौ न कछु जो कहन बिचारो ।
रहे लपटाइ गाढ़ भुज भरिकै
छूटत नहिं तिय हिए पियारो ।
'हरीचंद' यह सोभा लखि कै
अपनो तन-मन- सहजहि वारो ।१४

पूछत लाल बोलि किन प्यारी ।
क्यौं इतनो पाखंड बनायो
ठग्यौ बड़ो ठगिया बनवारी ।
प्यारी कह्यौ तुम्हारेहि कारन
प्यारे श्रम यह कीन्हो भारी ।
तुम बहु-नायक मिलत कहूँ नहिं
ताही सों यह बुद्धि निकारी ।
प्रेम भरे दोउ मिलत परस्पर
मुख चूमत हैं अलकन टारी ।
'हरीचंद' दोउ प्रीति-बिबस लखि
आपुन-पौ कीनो बलिहारी ।१५

सखियनहू निज बेस उतार्‌यौ ।
धाई सबै चारहु दिसि सों
कहत बधाई तन मन वार्‌यौ ।
कोउ लाई सज्जा कोउ बीरी कोउन
चँवर मोरछल ढार्‌यौ ।
कोउन गाँठि जोरि कै दोउ कों
एक पास लैके बैठार्‌यौ ।
दूलह बन्यौ पियारो राधा
दुलहिन कों सिंगार सँवार्‌यौ ।
'हरीचंद' मिलि केलि बधाई
गावत अति जिय आनँद धार्‌यौ ।१६

चिरजीओ यह अविचल जोरी ।
सदा राज राजौ वृंदाबन नँद-
नंदन बृषभानु-किशोरी ।
देत असीस सबै बृज-जुवती
करत निछावरि मनि-गन छोरी ।
आरति बारत धीर न धारत
रहत रूप लखि कै तृन तोरी ।
कुंज-महल पधराइ लाल कों हटीं
सबै बृज-बासिनि गोरी ।
मिलि बिलसत दोऊ अति सुख सों
'हरीचंद' छबि माखै को री ।१७

यह रस वृज मैं रहौ सदाई ।
जो रस आजु रहयौ कुंजन मैं छदम-केलि-सुख पाई ।
नित नित गाओ री सब सखियाँ मोहन-केलि-बधाई ।
'हरीचंद' निज बानी पावन करन सुजस यह गाई ।१८

प्रात: स्मरण मंगल-पाठ:

हरि प्रकाश यंत्रालय, नैपाली खपरा, काशी से प्रकाशित ।

रचना काल — सन् १८७३

प्रात: स्मरण मंगल-पाठ:

मंगल राधा-कृष्ण-नाम-गुन-रुप सुहावन ।
मंगल जुगल-बिहार रसिक-मन-मोद-बढ़ावन ।
मंगल गल भुज डारि बदन सों बदन मिलावनि ।
मंगल चुंबन लेनि बिहँसि हँसि कंठ लगावनि ।
आलिंगन परिरंभन मिलनि मंगल कोक-कलानि कढ़ि।
'हरिचंद' महा मंगलमयी जुगल-केलि रसरेलि बढ़ि।१

मंगल प्रातहि उठे कछुक आलस रस पागे ।
सिथिल बसन अरु केस नैन घूमत निसि जागे ।
भुज तोरनि जमुहानि लपटि कै अलस मिटावनि ।
भूखन बसन सँवारि परस्पर नन मिलावनि ।
कछु हँसनि सीकरनि लाज सों मुरि अँग पर गिरि परनि।
'हरीचंद' महा मंगलमयी प्रात उठनि पग धरि धरनि।२

मंगल सखी-समाज जानि जागे उठि धाईं ।
जल-झारी पिकदान वस्त्र दरपन लै आईं ।
करि मुजरा बलिहार भईं लखि नैन रिसाईं ।
प्रगट सुरत के चिन्ह देखि कछु हँसी-हँसाई ।
मुख धोइ पाग कसि आरसी देखत अलक सँवारहीं ।
'हरिचंद' भोग मंगल धर्‌यौ आरोगत मन वारहीं ।३

मंगल भेरि मृदंग पनव दुंदुभि सहनाई ।
चंग मुचंग उपंग झाँझ झालरी सुहाई ।
गोमुख आनक ढोल नफीरी मिलि कै साजै ।
मंगलमयी मुरलिका बिच बिच अजुगुत बाजै ।
जै करति हाथ जोरे सबै मुरछल बिंजन ढारहीं ।
'हरीचंद' महामंगलमयी मंगल-आरति बारहीं ।४

मंगल जुगल नहाइ विविध सिंगार बनावत ।
मंगल आरसि देखि फूल-माला पहिरावत ।
मंगल गोपी गोपी-बल्लभ भोग लगावत ।
मंगल ग्वालिन आइ दूध मथि धैया प्यावत ।
मंगल भोजन बहु बिधि करत उठि बीरी मुख मैं धरत ।
मंगल उगार 'हरिचंद' लै राज-भोग आरति करत ।५

मंगल बन के फल अनेक भीलिनि लै आई ।
मंगल जुगल समेत फूल-माला पहिराई ।
मंगल संध्या भोग अरपि आरति मिलि करहीं ।
मंगलमय सिंगार बहुरि निसि हलको धरहीं ।
मंगल व्यारू पै पान करि बीरी खात जँभात हैं ।
'हरिचंद' सैन आरति करत
सखि सब निरखि सिहात हैं ।६

मंगल बृंदा-बिपिन कुंज मंगलमय सोहै ।
मंगल गिरि गिरिराज वृक्ष मंगल मन मोहै ।
मंगल बन सब ओर झरत झरना सब मंगल ।
मंगल पच्छी बोल सुमंगल फूल पत्र फल ।
मंगल अलि-कुल गावत फिरत मंगल केकी नाचहीं ।
'हरिचंद' महामंगल सदा नित बृंदाबन माँचहीं ।७

मंगल जमुना-नीर कमल मंगलमय फूले ।
मंगल सुंदर घाट बँधे भँवरे जहँ भूले ।
मंगलमय नँद-गाँव महाबन मंगल भारी ।
मंगल गोकुल सबै ओर उपबन सुखकारी ।
मंगल बरसानो नित नवल मंगल रावलि सोहई ।
'हरीचंद' कुंड तीरथ सबै मंगलमय मन मोहई ।८

मंगल श्री नँदराय सुमंगल जसुदा माता ।
मंगल रोहिनि मंगलमय बलदाऊ भ्राता ।
मंगल श्री बृषभानु सुमंगल कीरति रानी ।
मंगल गोपी ग्वाल गऊ हरि को सुखदानी ।
मंगल दधि दूध अनेक बिधि मंगल हरि-गुन गावहीं ।
'हरिचंद' लकुट अरु मुकुट धरि मंगल धेनु बजावहीं ।९

मंगल वल्लभ नाम जगत उधर्‌यो जेहि गाए ।
विष्णु स्वामि पथ परम महा मंगल दरसाए ।
मंगल विट्ठलनाथ प्रेम-पथ प्रगटि दिखायो ।
मंगल दैवी जन दुखी लखि दान चलायो नाम को ।
'हरिचंद' महामंगल भयो दुख मेट्‌यौ सब जाम को ।१०

मंगल गोपीनाथ रूप पुरुषोत्तम धारी ।
श्री गिरिधर गोविंद राय भक्तन-दुखहारी ।
बालकृष्ण श्री गोकुलेस रघुनाथ सुहाए ।
श्री जदुपति घनस्याम सात बपु प्रगट दिखाए ।
मंगलमय बल्लभ बंस अटल प्रेम-मारग रह्यौ ।
'हरिचंद' महा मंगलमयी बेद-सार जिन मथि कह्यौ ।११

मंगल तिनकी मिलनि कहनि बोलनि सुखदानी ।
मंगल अनुराग सुनयन जल
हंसनि नचनि गावनि रमनि ।
'हरिचंद' जगत सिर पाँव धरि
मंगल लीला मैं गमनि ।१२

मंगल गीता और भागवत सों मथि काढ़ी ।
मंगल-मूरति जुगल-चरित विरुदावलि बाढ़ी ।
द्वादस द्वादस अर्ध पदी जो प्रातहि गावै ।
मंगल बाढ़ै सदा अमंगल निकट न आवै ।
मंगल चंद्रावलिनाथ की केलि-कथा मंगल-मई ।
मंगल बानी 'हरिचंद' सबही को मंगल भई ।१३

सुमिरौं बल्लभ रूप महा मंगल फल पावन ।
गौर गुप्त बपु प्रगट श्याम लोचन मन-भावन ।
दृग बिसाल आजानु-बाहु पदमासन सोहै ।
गल तुलसी की माल देखि सबको मन मोहै ।
सिर तिलक बाहु पर छाप बर केस बँध्यौ सिर राजई ।
त्रय ताप जनन को दूर सों देखत ही दुरि भाजई ।१४

जुगल-केलि रस-मत्त हँसत लखि ज्ञान खलन कहँ ।
दैविन पै अति करुन रौद्र मायाबादिन पहँ ।
बादिन पैं उत्साह भयद अनुसरन कहँ पग पग ।
दीन जीव पैं घृणित अचंभित देखि विमुख जग ।
अति शांत भक्तवत्सल परम
सख्य बिबुध-जन सों करत ।
जग-हास्य सिखावत मुख मधुर
आनँदमय रस बपु धरत ।१५

हृदय आरसी माँहि जुगल परतच्छ लखावत ।
जग-उधार मैं रसिक माल कर शोभा पावत ।
चरन-कमल-तल सकल विमल तीरथ दरसावत ।
मुख सों श्री भागवत गूढ़ आसय नित गावत ।
घेरे चहुँ दिसि सब संतजन जे हरि-रस भींजे रहत ।
कर ज्ञान-मुद्रिका धारिकै तिनसों कृष्ण-कथा कहत ।१६

कबहुँ अचल ह्वै रहत मौन कछु मुख नहिं भाखत ।
कबहुं बाद झर लाइ खंडि माया-मत नाखत ।
जुगल-केलि करि याद हँसत कबहूँ गुन गावत ।
कंपादिक परतछ संचारी भाव जनावत ।
तन रोम-पाँति उघटित सदा गद्गद हरि गुन मुख कहत ।
लखि दीन-दसा जग जीय की
उमगि निरंतर दृग बहत ।१७

तीरथ पावन करन कबहुँ भुव पावन डोलत ।
श्री भागवत-सुधा-समुद्र मथि कबहूँ बोलत ।
ग्रंथ रचत एकाग्र चित्त करि बाँचि सुनावत ।
कबहुँ बैठि एकांत बिरह अनुभव प्रगटावत ।
सेवा करि पीतम की कबौं सिखवत विधि सेवन प्रगट ।
कबहूँ सिच्छत जन आपुने
विविध वाक्य-रचना उघट ।१८

मोर कुटी मँह बैठि खिलावत कबहुँ लाल कहँ ।
खेलत धरि त्रैरूप बाल-तन बनि मोहन तहँ ।
हरे कुंज बन छए बितानन तनी लता सब ।
झुके मोर चहुँ ओर सुनन कों तहँ किंकिन-रब ।
तिन मध्य खिलौना कर लिए चुचकारत बालकन जब ।
किलकाइ चलहिं आनंद भरि
निरखत नैन सिरात तब ।१९

बन उपबन एकांत कुंज प्रति तरु तरु के तर ।
तीर तीर प्रति कूल कूल कुंडन पैं सर सर ।
गुफा दरी गिरि घाट सिखर गौवन की गोहर ।
गोकुल ब्रज के गाँव गाँव ब्रज-बासिन घर घर ।
हरि जहँ जहँ जो लीला करी तहँ
तहँ सोइ अनुभव करत ।
ब्रज-बासिन गौवन ब्रज-पसुन
संग ताहि बिधि अनुसरत ।२०

सेवा मैं हरि सों कबहूँ रस भरि बतरावत ।
कबहुँ सुतन सों हरि-सेवा की रीति बतावत ।
ब्रह्मवाद कों कबहुं बहुत बिधि थापन करहीं ।
लोक सिखावन हेतु कबहुँ संध्या अनुसरहीं ।
विश्राम करत कबहूँ जबै अमित होइ तब भक्त-जन ।
गुन गावत चरन पलोटहीं
करहिं कोउ मुरछल बिजन ।२१

राख्यौ श्रुति की मेड़ शास्त्र करि सत्य दिखायो ।
द्विज-कुल धन धन कियो भूमि को मान बढ़ायो ।
दैवी-जन अवलंब दियो पंडित परितोषे ।
वैष्णव-मारग उदय कियो बिरही-जन पोषे ।
ब्रज-भूमि लता तरु गिरि नदी पसु पंछी सों नेह करि ।
ब्रज-बासी जन अरु गउन सों
प्रेम निबाह्यौ रूप धरि ।२२

केसादिक सों बाम श्याम दक्षिन छबि पावत ।
शिव बिराग सों प्रगट देवरिषि से गुन गावत ।
ग्रंथ-रचन सों व्यास मुक्त सुक रूप प्रकासत ।
वैष्णव-पथ प्रगटाइ विष्णु स्वामी प्रभु भासत ।
मुख शास्त्र कहन बिरहागि कों प्रगटावन सों अगिनं सम ।
मनु सकल तत्व पिंडी बन्यौ
सोभित श्री बल्लभ परम ।२३

मनहुँ देवगन तत्व काढ़ि यह रूप बनायो ।
श्री भागवत-सुधा-समुद्र मथि कै प्रगटायो ।
पिंडभूत बैराग रूप निज प्रगट दिखावत ।
ज्ञान मनहुँ घन होइ सिमिटि कै सोभा पावत ।
ब्यास मुक्त सुक रूप प्रकासत ।
वैष्णव-पथ प्रगटाइ बिष्णु स्वामी प्रभु भाषत ।
मुख शास्त्र कहन बिरहागि कों प्रगटावन सों अगिन सम ।
मनु सकल तत्व पिंडी बन्यौ
सोभित श्री बल्लभ परम ।२३

मनहुँ देवगन तत्व काढ़ि यह रूप बनायो ।
श्री भागवत-सुधा-समुद्र मथि कै प्रगटायो ।
पिंडभूत बैराग रूप निज प्रगट दिखावत ।
ज्ञान मनहुं घन होइ सिमिटि कै सोभा पावत ।

यह मनहुँ प्रेम की पूतरी इक रस साँचे में ढरी ।
प्रेमीजन-नयनन सुख महा प्रगटावत निज बपु धरी ।२४

तिलँग बंस द्विजराज उदित पावन बसुधा-तल ।
भारद्वाज सुगोत्र यजुर शाखा तैतिरि वर ।
यज्ञ नरायन-कुलमनि लक्ष्मन भट्ट-तनूभव ।
इल्लमगारू-गर्भरत्न सम श्री लक्ष्मी धव ।
श्री गोपिनाथ-बिट्ठल-पिता भाष्यादिक बहु ग्रंथ कर ।
श्री बिष्णुस्वामि-पथ-उद्धरन जै जै बल्लभ रूप वर ।२५

इमि श्री बल्लभ रूप प्रात जो सुमिरन करई ।
लहै प्रेम-रस-दान जुगल पन मैं अनुसरई ।
द्वादस द्वादस अर्ध-पदी प्रातहि उठि गावै ।
दुबिध बासना छाँड़ि केलि-रस को फल पावै ।
यह प्राननाथ की प्रथम ही सुमिरन सब मंगल-मई ।
बानी पुनीत 'हरिचंद' की प्रेमिन को मंगल भई ।२६

दैन्य-प्रलाप

भक्तिसूत्र वैजयंती के अंत में यह कविता दी गई थी, जो सन् १८७३ में प्रकाशित हुई ।

दैन्य प्रलाप

जग में काको कीजै तोस ।
जासों तनकहु बिरति कीजिए सोई धारत रोस ।
इंद्रिय सब अपुनी दिसि खींचत चाहि चाहि निज भोग।
मन अलभ्य बस्तुनहू भोगत मानत तनिक न सोग ।
कहति प्रतिष्ठा हमहिं बढ़ाओ चहति कामना काम ।
ईर्षा कहति तुमहिं इक जीअहु करि औरन बे-काम ।
जागत सपन काय वाचा सों मन सों भोगत धाय ।
घिसि गईं इंद्री प्रान सिथिल भे तौहू नाहिं अवाय ।
जौन मिलत कै तन बल नहिं तौ दूरहि सों ललचाय ।
जिमि सतृष्ण ह्वै लखत मिठाइन स्वान लार टपटाय।
सब सों थकि कै करत स्वर्ग के अमृतादिक मैं चाह ।
धिक धिक धिक 'हरिचंद' सतत
धिक यह जग काम अथाह ।१

पूरबी

तन-पौरुष सब थाका मन नहिं थाका हो माधो ।
केस पके तन पक्यौ रोग सो मनुआँ तबहु न पाका ।
अर्जुन-भीम-सरिस चाहत यह करन बिषय-रन साका।
बीती रैन तबौ मतवारा घोर नींद मैं छाका ।
हारि गयो पै भूठहि गाड़े अबहूँ विजय-पताका ।
'हरीचंद' तुम बिनु को रोकै ऐसे ठय को नाका ।२
नर-तन सब औगुन की खान ।
सहज कुटिल-गति जीवहु तामैं यामैं श्रुति परमान ।
स्वारथ-पन आग्रह मलीनता लोभ काम अरु क्रोध ।
कामादिक सब नित्य धरम हैं तन मन के निरबोध ।
तापैं सहधरमिन सों पूरेयौ भो संसार सहाय ।
अंध आसरे चल्यौ अंध के कहो कहा लौं जाय ।
करि करुना करुनानिधि केसव जो पै पकरो हाथ ।

तौ सब विधि 'हरिचंद' बचै न-तु ड्रबत होइ अनाथ ।३

नर-तन कहो सुद्धता कैसी ।
कितनहु घोओ पोंछौ बाहर भीतर सब छिन पैसी ।
कारन जाको मूत रही मल ही मैं लिपटि अनैसी ।
ताको जल सों सुद्ध करत तिनकी ऐसी की तैसी ।
दैहिक करमन सों न बनै कछु ता गति सहज मलै सी ।
'हरीचंद' हरि-नाम-भजन बिनु सब वैसी की वैसी ।४

बिरद सब कहाँ भुलाए नाथ ।
पावन पतित दीन-जन रच्छन जो गाई श्रुति गाथ ।
जानहु सब कुछ अंतरजामी धाइ गहौ अब हाथ ।
'हरीचंद' मेटहु निज जन की बिधिहु लिखी जौ माथ ।५

तुम सों कहा छिपी करुनानिधि
जानहु सब अंतर-गति ।
सहज मलिन या देह जीव की
सहजहि नीच-गामिनी जो मति ।
तन मन सपनहुँ सो लोभी की
दीन बिपत-गन में रति ।
निरलज जितने होत पराजित
तितनो ही लपटति अति ।
तापैं जौ तुमहुँ बिसराओ
तजि निज सहज बिरद-तति ।
तौ 'हरिचंद' बचै किमि बोलहु
अहो दीन-जन की पति ।६

देखहु निज करनी की ओर ।
लखहु न करनी जीवन की कछू एहो नंदकिसोर ।
अपनाए की लाज करहु प्रभु लखहु न जन के दोस ।
निज बाने को बिरद निबाहो तजहु हीन पर रोस ।
दीनानाथ दयाल जगतपति पतित-उधारन नाथ ।
सब विधि हीन अधम 'हरिचंदहि' देहु आपुनो हाथ ।७

करहु उन बातन की प्रभु याद ।
जो अरजुन सों भारत-रन में कही थापि मरजाद ।
कैसहु होय दुराचारी पै सेवै मोहिं अनन्य ।
ताही कहँ तुम साधु गुनहु या जग मैं सोई धन्य ।
सीघ्र धरम मति शांति पाइहैं जो राखत मम आस ।
अरजुन मम परतिज्ञा जानहु नहिं मम भक्त-बिनास ।
छाँहि धरम सब लोक बेद के मम सरनहिं इक आउ ।
सब पावन सों तोहिं छुड़ैहौं कछु न सोच जिय लाउ ।
कही बिभीषन सरन समय मैं सोऊ सुमिरहु गाथ ।
लछिमन हनूमान आदिक सब याके साखी नाथ ।
हम तुमरे हैं कहै एकहू बार सरन जो आइ ।
ताहि जगत सों अभय करत हम सबहि भाँति अपनाइ ।
यह्रू कह्यौ मम जनहिं बासना उपजै और न हीय ।
जिमि कूटे चुरए धानन मैं उपजै नाहीं बीय ।
यह्रू कह्यौ तुम मो कहँ प्यारे निह-किंचन अरु दीन ।
यह्रू कह्यौ तुम हमहिं जीव के प्रेरक अंतर-लीन ।
कह लौं कहौं सुनौ इतनी अब सत्यसंघ महराज ।
'हरीचंद' की बार भुलाई क्यौं वे बातैं आज ।८

तिनकौं रोग सोग नहिं व्यापै जे हरि-चरन उपासी ।
सपनहु मलिन न होइ सदा जे कलप-तरोवर-बासी ।
हरि के प्रबल प्रताप सामुहें जगत दीनता नासी ।
'हरीचंद' निरभय बिहरहिं नित कृष्ण-दास अरु दासी ।९

उरहना

'हरिचंद्र मैगज़ीन' के १५ अक्तू. सन् १८७३ के अंक में प्रकाशित । इसके दो तीन पद राग-संग्रह तथा प्रेम-प्रलाप में भी आ गये हैं

उरहना

प्राननाथ तुम बिनु को और मान राखै ।
जिअ सों वा मुख सों को प्यारी कहि भाखै ।
प्रति छन को नयो नयो अनुभव करवावै ।
कौन जो खिझाइ कै रोवाइ कै हँसावै ।
संशय सागर महान डूबत लखि धाई ।
कौन जो अवलंब देहि तुम बिनु ब्रजराई ।
सुत पितु भव मोह कौन मेटैं चित लेई ।
मूरख कहवाइ जगत पंडित-गति देई ।
लोक वेद झगरन के जाल मैं बँधायो ।
कौने तुम बिनु करि निज अनुभव सुरझायो ।
भव अथाह बहे जात लखि कै चित माहीं ।
कौने करि मेंड़ धरीं निज बिसाल बाहीं ।
झूठे जग कहत मर्‌यो चित सँदेह आयो ।
'हरीचंद' कौन प्रगटि साँचो कहवायो ।१

अघी को पीठ ही चहिए ।
पाप बसत तुम पीठ माँहि यह बेदनहू कहिए ।
बुद्ध होय निन्धो बेदहि तब सों मुख नहिं लहिए।
'हरीचंद' पिय मुख न दिखाओ रूठे ही रहिए ।२

अहो मोहि मोहन बहुत खिलायो ।
अब लौं हाय कियो नाहीं बध बातन ही बिलमायो।
जानि परी अपराध हमारो तोहिं सुमिरत ह्वै आयो ।
ताही सों रूठि रूठि कै अब
ताहि सों रूठि रूठि कै अब लौं प्रान न पीय नसायो ।
हमहूँ जानत मो अघ आगे लघु सम सब दुख आयो ।
'हरीचंद' पै बिरह तुम्हारो जात न तनिक सहायो ।३

अहो हरि निरदय चरित तुम्हारे ।
तनिक न द्रवत हृदय कुलिसोपम लखि निज भक्त दुखारे।
दयानिधान कृपानिधि करुना-सागर दीन पियारे ।
यह सब नाम झूठही बेदन बकि बकि बृथा पुकारे ।
गोपीनाथ कहाइ न लाजत निरलज खरे सुधारे ।
'हरीचंद' तुम्हरे कहवायें मरियत लाजन मारे ।४

सुनौ हम चाकर दीनानाथ के ।
कृपा-निधान भक्त-वत्सल के पोषित पालित हाथ के ।
पिया न पूछत तऊ सुहागिनि बनि सेंदुर दै माथ के ।
दीन दया लखि हँसौ न कोऊ सुनौ सबैरे साथ के ।
वा घर के सेवक ऐसे ही जीवत स्वासा भाथ के ।
'हरीचंद' निरलज ह्वै गावत
निरलज हरि-गुन-गाथ के ।५

साहब रावरे ये आवैं ।
जिन्हे देखि जग के करुना सों नैनन नीर बहावैं ।
कोऊ हँसैं बिपति पै कोऊ दसा बिलोकि लजावैं ।
कोऊ घृणा करैं कोउ मूरख कहि कै हाथ बतावैं ।
देखि लेहु इक बार इनहिं तु नैना निरखि सिरावैं।
'हरीचंद' आखिर तो तुमरे कोऊ भाँति कहावैं।६

बीरता याही मैं अटकी ।
हम अबलन प जोर दिखावत य है बान टटकी ।
यही हित नित कसे रहत कटि कसनि पीत पटुकी ।
'हरीचंद' बलिहार सूरता पिय नागर-नट की ।७

लाल क्यौं चतुर सुजान कहावत ।
कहर अनीति निरलज से डोलत
क्यौं नहिं बदन छिपावत ।
चतुराई सब धूर मिलाई तौहू गरब बढ़ावत ।
'हरीचंद' अबलन को बधि कै कैसे अकरि दिखावत ।८

बेनी हमरे बाँट परी ।
धन धन भाग लाइहैं नैनन रहिहै हृदय धरी ।
लखि मुख चूमि अधर भुज दै भुज करौ सबै मिलि राज ।
हमरे तौ बेनी को दरसन सिद्ध करै सब काज ।
क्यौं कविगन नागिन की उपमा मेरी प्यारिहिं देत ।
हमकों तो इक यहै जिआवत राखत हमसों हेत ।
क्यौं नहिं सुख मानैं थोड़े ही जो बिधि बिरच्यौ भाग ।
राज देखि दूजेन को क्यौं हम करैं अकारथ लाग ।
वेनी हमरी हमरो जीवन बेनी ही के हाथ ।
जब तुम मुख फेरत तब बेनी रहत हमारे साथ ।
भलहिं रूप-सागर तुम्हरो सों खारो मेरे जान ।
हरीचंद मोहिं कल्प-तरोवर कामद बेनी-न्हान ।९

तन्मय-लीला

जनवरी १८७४ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित

तन्मय-लीला

राधे-श्याम-प्रेम-रस भीनी ।
नहिं मानत कछु गुरुजन को भय
लोक-लाज तजि दीनो ।
मगन रहत हरि-रूप-ध्यान में
जल-पथ की गति लीनी ।
'हरीचंद' बलि प्रेम सराहत
तन की सुधि नहिं कीनी ।१

राधे भई आपु घनश्याम ।
आपुन की गोविंद कहत है छाँड़ि राधिका नाम ।
वैसेइ झुकि झुकि कै कुंजन मैं कबहुँक बेनु बजावै ।
कबहुं आपुनो नाम लेइ कै राधा राधा गावै ।
कबहुं मौन गहि रहत ध्यान करि मूँदि रहत दोउ नैन ।
'हरीचंद' मोहन बिनु व्याकुल नेकु नहीं चित चैन ।२

प्यारी अपनो ध्यान बिसार्यौ ।
श्रीराधे श्रीराधे कहि कै कुंजन जाइ पुकार्यौ ।
कबहुं कहत बृषभानु-नंदिनी मान न इतनो कीजै ।
प्रान-पियारी सरन आपुके कह्यौ मानि मेरो लीजै ।
पनघट चलि रोको ब्रजनारिन दधि को दान चुकावो ।
कबहुं कहत मेरो सुरँग खिलौना राधे लियो चुराई ।
कबहुं कहत मैया यह तोकों छोटी दुलहिन भाई ।
कबहुं कहत हम सात दिवस गोबरधन कर पैं धार्यौ।
अघ बक धेनुक सकट पूतना इनको हमहिं सँहार्यौ ।
कबहुं कहत प्यारी जमुना-तट कुंजन करौ बिहार ।
'हरीचंद' भइ श्याम-रूप सो तन की दसा बिसार ।३

सखी सब राधा के गृह आईं ।
प्रेम-मगन तिन ताकहँ देखी जातें अति पछिताईं ।
दोऊ नैन मूँदि कै बैठी नेकहु नाहिंन वोलै ।
राधे राधे कहि कै हारी तबहुं न घूँघट खोलै ।
बीजन करि बहु भाँति जगावो लै लै वाकौ नाम ।
सुनत नहीं बानी कछु इनकी उर बैठे घन-श्याम ।
जब गोपाल को नाम लियो तब बोलि उठी अकुलाई ।
'हरीचंद' सखियन आगे लखि कछुक गई सकुचाई ।४

सखिन सों पूछत कित है प्यारी ।
ललिता तू मोहिं आनि मिलावैं हौं तेरी बलिहारी ।
देहौं आपुनो पीत पिछौरा बंसी रतन-जराई ।
'हरीचंद' इमि कहत राधिका ध्यान माँह फिर आई ।५

दसा लखि चकित भईं ब्रज-नारी ।
राधे को कह भयो सखी री अपनी दसा बिसारी ।
राधा नाम लिये नहिं बोलत कृष्ण नाम तें बोलै ।
वैसे ही सब भाव जतावति हँसि हँसि घूँघट खोलै ।
धन धन प्रेम धन्य श्रीराधा धन श्री नंद-कुमार ।
'हरीचंद' हरि के मिलिबे को करो कछू उपचार ।६

तहाँ तब आइ गए घन-श्याम ।
मोर-मुकुट कटि पीत पिछौरी गरे गुंज की दाम ।
दसा देखि प्यारी राधा की अति आनँद जिय मान्यो ।
सखियनहूँ ये प्रेम अवस्था को सब हाल बखान्यो ।
प्रेम-मगन बोले नँद-नंदन सुनि प्यारे मैं आई ।
जो तुम राधा नाम टेरिकै बेनु बजाइ बोलाई ।
सुनतहि नैन खोलिकै देख्यो स्याम मनोहर ठाढ़े ।
कछुक प्रेम कछु सकुच मानिकै प्रेम-बारि दृग बाढ़े ।
दौरि कंठ मोहन लपटाई बहुत बड़ाई कीनी ।
कर्यौ बोध प्यारी राधा को हृदय लाइ पुनि लीनी ।
कर सों कर दै चले कुंज दोउ सखियन अति सुख पायो।
रसना करत पवित्र आपुनी 'हरीचंद' जस गायो ।७

दान-लीला

फरवरी सन् १८७४ ई. की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित

दान-लीला

पिअ प्यारे चतुर सुजान मोहन जान दै ।
प्रेमिन के जीवन-प्रान मोहन जान दै ।
प्यारे गिरिधारियाँ एकांत मैं राखी हैं सब घेर ।
ऐसी तुम्हैं न चाहिए हो छाँड़ौ होत अबेर ।
कैसे छाँड़ैं ग्वालिनी हो लागत मेरो दान ।
ताहि दिये बिन जाति हौ तुम नागरि चतुर सुजान ।
जो चाहौ सो लाडिले हँसि हँसि गो-रस लेहु ।
सखन संग भोजन करौ औ मोहिं जान तुम देहु ।
थोरे ही निपटी भले दै गौ-रस को दान ।
परम चतुर तुम नागरी लियो हम कों मूरख जान ।
तुमकों मूरख को कहै हो यह का कहत मुरारि ।
सकल गुनन की खान हो जानैं ग्वारि गँवार ।
जद्यपि सकल गुन-खानि हैं हो नागर नाम कहात ।
पै तुम भौंह-मरोर सों मेरे भूलि सकल गुन जात ।
तुम तो कदु भूलै नहीं ही स्वारथ ही के मीत ।
भूलीं सब गोपिका हो करिकै तुमसों प्रेम-प्रीतत ।
क्यौं भूलीं सब गोपिका हो करिकै हमसों प्रीति ।
यह हमकों समुझाइये क्यौं भाखत उलटी रीति ।
हम उलटी नहिं भाखहीं हो समुझौ तुम चित चाह ।
हम दीनन के प्रेम की हो कहा तुम्हैं परवाह ।
ऐसी बात न बोलिए झूठेहिं दोस लगाय ।
बँधे तुम्हार प्रेम में हम सों कैसे छूटि जाय ।
प्रेम बँधे जौ लाडिले हो तो यह कैसो हेत ।
हम ब्याकुल तुम बिन रहैं नहिं भूलेहू सुधि लेत ।
गुरु-जन की नित त्रास सों हम मिलत तुमहिं नहीं धाइ।
जिय सों बिलग न मानियो हम मधुकर तुव बन-राइ ।
जा दिन बंसी बजाइकै हो लीनी हमैं बुलाय ।
ता दिन गुरुजन-भीति हो कित दीनी सबै बहाय ।
गुप्त प्रीति आछी लगै हो प्रगट भए रस जाय ।
जामैं या ब्रज को कोऊ नहिं देइ कलंक लगाय ।
प्रगट भई तिहुँ लोक मैं हौ गोपी-मोहन-प्रीति ।
सब जग मैं कुलटा भईं तापै तुम को नाहीं प्रतीति ।
गुरु-जन घर मैं खीझहीं हो देत अनेकन गारि ।
बाहर के देखत कहैं यह चली कलंकिन नारि ।
करन देहु जग को हँसी हो चुप ह्वै हैं थकि जाइ ।
त्रिन सो सब जग छाँडि कै हो मिलैं निसान बजाइ ।
प्यारे तुमरे ही लिए सब जग को बेवहार ।
तुम विरुद्ध सब छाँड़िए हो मात पिता परिवार ।
पै कठिनाई है यहै अरु होत यहै जिय साल ।
तुम तो कछु मानौ नहीं मेरे बे-परवाही लाल ।
सब सों तो पहिले करो हो हँसि हँसि कै तुम चाह ।
पै पालन सीखे नहीं तुम प्रेमी प्रेम-निबाह ।
तुम्हें कहा कोउ की परी भलेइ देइ कोउ प्रान ।
तापैं उलटो आइके हो माँगत हम सों दान ।
लोक-लाज कुल धर्महू तन मन धन बुधि प्रान ।
सब तो तुम कौं दे चुकीं अब मांगत काको दान ।
बहुत भई पिय लाड़िले अब क्यौंहू सहि नहिं जाय ।
जानि दासिका आपुनी गहि लीजै भुजा बढ़ाय ।
परम दीनता सों भरे सुनि प्यारी कै बैन ।
पुलकित अँग गदगद भयो हो उमगि चलै दोउ नैन ।
धाइ चूमि मुख भुजन सों भरि लीनी कंठ लगाय ।
'हरीचंद' पावन भयो यह अनुपम लील गाय ।

रानी छद्म-लीला

१५ फरवरी सन् १८७४ ई. की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित

रानी छद्म-लीला

नौमि राधिका-पद जुगल तिन पद को बल पाइ ।
उलटि छदम-लीला कहत 'हरीचंद' कछु गाइ ।
करे कान्ह जिमि छदम सुहाए ।

श्री प्यारी के मन अति भाए ।
तिमि प्यारीहू जीअ बिचार्यौ ।
पियहि ठगो यहि चित निरधार्यौ ।
निरधारि जिय कदि छदम-लीला सखिन कौ आज्ञा दई ।
बनि कछूक ठगिए आजु लालहि रीति यह कीजे नई ।
नव भेस रानी को मनोहर सबन सँग मिलि कीजिए ।
अति चतुर मोहन तिनहुँ को चलि आजु धोखा दीजिए ।

यह जिय सोच बिचारि कै गई एक बन माँहिं ।
बृंदा को आज्ञा दई सजौ सबै चि चाहि ।
वृन्दा तब तहँ आज्ञा पाई ।
सब सामग्री सजी सुहाई ।
नव खंडन के महल बनाए ।
राज-साज तह सजे सुहाए ।
सजि साज के सब साज बिच मैं सुभग सिंहासन धर्यौ ।
धरि क्रीट बैठी मध्य राधा भेष रानी को कर्यौ ।
बहु छड़ी मुरछल चँवर सूरजमुखी पंखा छत्र लै ।
भई सखी ठाढ़ी अदब सों चहुँ ओर सब मिलि नजर दै ।

परवानो जारी कियो बन-देविन के नाम ।
अबहिं पकरि कै बिन सखन हाजिर लाओ श्याम ।
सुनि चहुँ दिसि सखियाँ धाईं ।
मिलि वृन्दाबन मैं आईं ।
तहँ सखन संग हरि जाईं ।
रहे आपु चरावत गाईं ।
जहँ आप चारत गाय हे तहँ सखि सबै मिलि कै गईं ।
करि साम दाम सुदंड भेदहि बात यह बरनी नई ।
जदु-बंश की रानी नई इक कुमुद-बन में है रही ।
जागीर मैं तिन कंस नृप सों कुमुद बन की महि लही ।

तिन हम को आज्ञा दई करि के 'टेढ़ो डीठ ।
कौन श्याम उधम करै मेरे बन में ढीठ' ।
बिन मेरो हुकुम बतायो ।
उन क्यों बन गाय चरायो ।
फूल-फूल बिपिन के जेते ।
उन तोरि लिए क्यों तेते ।
उन तोरि बन के फूल फल सब घास गउवन को दई ।
तेहि पकरि हाजिर करौ यह हम सबन को आज्ञा भई ।
यह सुनि हुक्म बिन सखा गन चलि तहाँ उत्तर कीजिए ।
जो हुकुम रानी देहिं ताकों अदब सो सुनि लीजिए ।

सुनि आज्ञा जिय संग धरि कुछ तौ भय हिय लीन ।
कछु रानी को नाम सुनि लालचहु मन कीन ।
तब संग सखिन के आए ।
मुजरा करि नाम सुनाए ।
पग परि बोलीं सब आली ।
यह हाजिर है बन-माली ।
भयो हाजिर द्वार पै करि कृपा मुजरा लीजिए ।
जो हुकुम याके होइ लायक महारानी कीजिए ।
लखि भूमि में तन प्रान-प्रिय को कछु दया जिय मैं लई ।
कछु जानि आयो नारि के ढिग कोप निज मन में भई ।

उत मोहन श्री राधिका सी रानी को देखि ।
कछु जिय मैं संकित भए भौंह तनेनी देखि ।
तब बोले मोहन प्यारे ।
कहिए केहि हेत हँकारे ।
हम तो कछु दोष न कीनो ।
तो क्यों मोहिं दूषन दीनो ।
क्यों दियो दूषन मोहिं सुनि कै राधिका बोलत भई ।
कछु क्रोध मैं निज छद्म को नहिं ध्यान करि जिय में लई ।
जो झूठ बोलै नितहिं तासों और अपराधी नहीं ।
तेहि दंड देनो उचित राजहि नीति यह जग की कही ।

सुनि रूखे तिय के बचन भरे श्याम जुग नैन ।
हाथ जोड़ि गद्गद गिरा बोले मोहन बैन ।
हम झूठ कही कब बानी ।
मोहिं कहि दीजै महरानी ।
सुनि बचन राधिका बोली ।
जिय गाँठि आपनी खोली ।
जिय गाँठि आपनी खोलि राधा बात प्रीतम सों कही ।
तुम कहत हम श्री राधिका तजि और तिय देख नहीं ।
तो आजु सुनि क्यों नाम रानी को यहाँ आए कहौ ।
हौ परम कपटी श्याम तुम अब दरस नहिं मेरो लहौ ।

यह कहि कै मुख फेरि कै राधा रही रिसाय ।
तब ब्याकुल ह्वै धाइ पिय परे तिया के पाय ।
भरि नैन अरज यह कीनी ।
कर जोरि बिनय-बिधि लीनी ।
नित को अपराधी बारी ।
तजि चरन जाय कित प्यारी ।
कित जाहिं तजि कै चरन यह दृग बारि भरि मोहन कह्यौ ।
सुनि दीन बोलन प्रान-पति की धीर नहिं कोउ को रह्यौ ।
हँसि मिली प्यारी मान तजि निज रूप लै सँग श्याम के ।
मिलि करी क्रीड़ा बिबिध बिधि
नव कुंज सुख रस-धाम के ।

एहि बिधि पीतम सों मिली नव बन छद्म बनाइ ।
'हरीचंद' पावन भयो यह रस-लीला गाइ ।

संस्कृत लावनी

सन् १८७४ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित

संस्कृत लावनी

कुंज कुंज सखि सत्वरं ।
चल चल दयित : प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं ।।
सर्वा अपि संगता : ।
नो दृष्ट्वा त्वां तासि प्रियसखिहरिणा हं प्रेषिता ।।
मानं त्यज वल्लभे ।
नास्ति श्री हरिसदृशो दयितो वच्मि इदं ते शुभे ।
गतिर्भिन्ना ।
परिधेहि निचोलं लघु ।
जायते बिलम्बो बहु ।
सुंदरि त्वरां त्वं कुरु ।
श्री हरि मानसे वृणु ।
चल चल शीघ्रं नोचेत्सव निष्यन्तिहि सुन्दरं ।
अन्यद्वन मन्दिरं चल चल दयित : ।।
श्रृणु वेणुनादमागतं ।
त्वदर्थमेव श्रीहरिरेष : समानयत्स्त्रीशतं ।।
त्वय्येव हरिं सद्व्रतं ।
तवैतार्थमिह प्रमदाशनकं प्रियेण विनियोजितं ।।
श्रृण्वन्यमृतां संरुतं ।
आकरायन्ति सर्वे समाप्यहरिणोमधुरं मतं ।।
विभिन्न गति : ।
दिशति ते प्रियतमसंदेशं ।।
ग्रहीत्वा मदन : पिकवेशं ।
जनयति मनसि स्वावेशं ।।
समुत्साहयतरोतिलेशं ।
न कुरु विलम्बं क्षणमपि मत्वा दुल्लभमौल्याकारं ।।
श्रृणु वचनं में हितभरं ।
चल चल दयित : ।।२।।

सूर्य्योप्यरतंगत : ।
गोपिगोपयितुमभिसरणं तव अंधकारइहतत : ।।
दृश्यते पश्यनोमुखं ।
कस्यापिहि जीवस्य प्रणयिन्यभिसरणौतत्सुखं ।।
व्रज व्रजेन्द्र कुलनन्दनं ।
करोतियत्स्मृनिरपि सखि सकलव्याधे : सुनिकन्दनं ।।
गति : ।।
चन्द्रमुखि चन्द्ररवे समुदितं ।।
करैस्त्वामालम्बितुमुद्यतं ।
आलि अवलोक्य तारावृतं ।।
भाति बिष्टयं चन्द्रिकायुतं ।
चकोरायितश्चन्द्रस्त्यत्स्वा स्थलमपि रत्नाकरं ।।
मुखं ते द्रष्टुं सखि सुन्दरं ।
चल चल० ।।३।।
परित्यज चंचलमंजीरं ।
अवगुण्ठय चन्द्राननमिह सखि धेहि नील चीरं ।।
रमय रसिकेश्वरमाभीरं ।
युवतीशतसंग्रामसुरतरतमचलमेकवीरं ।।
भयं त्यज हृदि धारय धीरं ।
शोभयस्वमुखकान्तिविराजितरवितनया तीरं ।।
गति : ।।
मुञ्चमानं मानय वचनं ।।
विलम्बं मा कुरु कुरु गमनं ।
प्रियांके प्रिये रचय शयनं ।।
सुतनुतनु सुखमयमालिजनं ।
दासौ दामोदर हरिचन्दौ पार्थयतस्त्वेवरं ।।
वरय राधे त्वं राधावरं ।
चल चल दयित : प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं ।।४।।

बसंत होली*

सन् १८७४ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित

बसंत होली

जोर भयो तन काम को आयो प्रगट बसंत ।
बाढ़यो तन मैं अति बिरह भो सब सुख को अंत ।१
चैन मिटायो नारि को मैन सैन निज साज ।
याद परी सुख दैन की रैन कठिन भइ आज ।२
परम सुहावन से भए सबै बिरिछ बन बाग ।
तृबिध पवन लहरत चलत दहकावत उर आग ।३
कोइल अरु पपिहा गगन रटि रटि खायो प्रान ।
सोवन निसि नहिं देत हैं तलपत होत बिहान ।४
है न सरन तृभुवन कहूँ कहु बिरहिन कित जाय ।
साथी दुख को जगत मैं कोऊ नाहिं लखाय ।५
रहे पथिक तुम कित विलम बेग आइ सुख देहु ।
हम तुम बिन व्याकुल भई धाइ भुजन भरि लेहु ।६
मारत मैन मरोरि कै दाहत हैं रितुराज ।
रहि न सकत बिन मिलौ कित गहरत बिन काज ।७
गमन कियो मोहिं छोड़ि कै प्रान-पियारे हाय ।
दरकत छतिया नाह बिन कीजै कौन उपाय ।८
हा पिय प्यारे प्रानपति प्राननाथ पिय हाय ।
मूरति मोहन मैन के दूर बसे कित जाय ।९
रहत सदा रोवत परी फिर फिर लेत उसास ।
खरी जरी बिनु नाथ के मरी दरस के प्यास ।१०
चूमि चूमि धीरज धरत तुव भूषन अरु चित्र ।
तिनहीं को गर लाइकै सोइ रहत निज मित्र ।११
यार तुम्हारे बिनु कुसुम भए बिष-बुझे बान ।
चौदिसि टेसू फूलि कै दाहत हैं मम प्रान ।१२
परी सेज सफरी सरिस करवट लै पछतात ।
टप टप टपकत नैन जल मुरि मुरि पछरा खात ।१३
निसि कारी साँपिन भई डसत उलटि फिरि जात ।
पटकि पटकि पाटी करन रोइ रोइ अकुलात ।१४
टरै न छाती सों दुसह दुख नहिं आयो कंत ।
गमन कियो केहि देस कों बीती हाय बसंत ।१५
वारों तन मन आपुनौ दुहुँ कर लेहुँ बलाय ।
रति-रंजान 'हरिचंद' पिय जो मोहिं देहु मिलाय ।१६

स्फुट समस्या

१५ मई १८७४ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित ।

स्फुट समस्या

हित दीन सों जे करैं धन्य तेई
यह बात हिए मैं बिचारिये जू ।
सुनिए न कही कछु औरन की
आपनी बिरदावलि सम्हारिये जू ।
'हरिचंद' जू आपकी होय चुकी
एहि कों जिय मैं निरधारिये जू ।
हम दीन और हीन जो हैं तो कहा
अपुनी दिसि आपु निहारिये जू ।१
बिधि मैं बिध सों जब ब्याह रच्यो
नव कुंजन मंगल चाँवर भे ।
वृषभानु-किसोरी भई दुलही

* इसके सामने छपा है —
पहिलो बरन न बाँचियो यह बिनवत करजोर ।
जो पढ़िके मानौ बुरो तो न दोस कछु मोर ।।

दिन दूलह सुंदर साँवर भे ।
'हरिचंद' महान अनंद बढ़्यौ
दोउ मोद भरे जब भाँवर भे ।
तिनसों जग मैं कछु नाहिं बनी
जो न ऐसी बनी पै निछावर भे ।२

आँचर खोले लट छिटकाए
तन की सुधि नहिं ल्यावति हौ ।
धूर-धूसरित अंग संक कछु
गुरु-जन का नहिं पावति हौ ।
'हरिचंद' इत सों उत व्याकुल
कबहुँ हँसत कहुँ गावति हौ ।
कहा भयो है पागल सी क्यौं
कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।३

पहिले तो बिन ही समझे तुम
नाहक रोस बढ़ावति हौ ।
फिर अपनी करनी पैं आपुहि
रोइ रोइ बिलखावति हौ ।
मान समय 'हरिचंद' झिझकि पिय
अब काहें पछतावति हों ।
तब तो मुख उनसों फेर्‌यौ अब
कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।

बार बार क्यों जानि-बूझि
तुम याही गलियन आवति हौ ।
रोकि रोकि मग भई बावरी
इतसों उत क्यों धावति हौ ।
त्यौं हरिचंद भली रुजगारिन
नाहक तक्र गिरावति हौ ।
दही दही सब करौ अरे क्यौं
कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।५

कुंज-भवन नहीं गहबर बन यह
हाँ क्यौं सेज सजावति हौ ।
मोहन देखि जानि आए क्यौं
आदर कों उठि धावति हौ ।
देखि तमालन दौरि दौरि
क्यौं अपने कंठ लगावति हौ ।
पात खरक सुनि कै प्यारी
क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।६

जो तुम जोगिन बनि पी के
हित अंग भभूत रमावति हौ ।
सेलि डारि गले नैनन में
छकि कै रंग जमावति हौ ।
त्यौं 'हरिचंद' जोगिया लैके
तो फिर अलख अलख बोलौ
काँधे बीन बजावति हौ ।
क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।७

ती को भेख छाँड़ि कै जो तुम
मोहन बनिकै आवति हौ ।
मोर मुकुट सिर पीत पिछौरी
तैसोइ भाव दिखावति हौ ।
तौ 'हरिचंद' कसर इतनी क्यों
बंसी और बजावति हौ ।
राधे राधे रट लाओ क्यौं
कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।८

मूड़ चढ़ीं ब्रज चार चवाइन
इनपैं क्यौं हँसवावति हौ ।
धीर धरौ बलि गई प्रेम क्यौं
अपुनो प्रगट लखावति हौ ।
'हरिचंद' या बड़े गोप के
बंसहिं क्यौं लजवावति हौ ।
सखिन सामुने ब्याकुल ह्वै क्यौं
कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।९

कौन कहत हरि नाहिं कुंज में
सूनो झूठ बजावति हौ ।
कौन गयो मधुबन यह हरि को
नाहक दोस लगावति हो ।
बनि 'हरिचंद' बियोगिनि सी
सब बादहिं बिरह बढ़ावति हो ।
जित देखो तित प्राननाथ क्यौं
कान्हा कान्हा गोहरावति हौ ।१०

श्री बन नित्य बिहार थली इत
जोगिन बनि क्यौं आवति हौ ।
बिन बान ही प्रेम आपुनो
माला फेरि दिखावति हौ ।
नाम लेइ 'हरिचंद' निठुर को
नाहक प्रीति लजावति हौ ।
राधे राधे कहौ सबै क्यौं
कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।११

पिय के कुंज नाहिं कोउ दूजी काहें रोस बढ़ावति हौ ।
बिना बात निरदोसी पिय पैं भौंहं खींचि चढ़ावति हौ ।
कहा दिखैहौ का तुम चोरी पकरी जो ऐंड़ावति हौ ।
अपुनो ही प्रतिबिम्ब देखि क्यौं
कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।

होइ स्वामिनी दूतीपन कों कैसे चित्त चलावति हौ ।
हाथ न ऐहै ताहि गहत क्यौं घर के द्वार मुँदावति हौ ।
प्रेम-पगी 'हरिचंद' बादहीं रचि रचि सेज बिछावति हौ ।
अपनो ही प्रतिबिम्ब देखि क्यौं

कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।१३

चूरी खनकनि मैं बंसी कों
नाहक धोखा लावति हौ ।
बिना बात इन मोरन पै
जिय मुकुट-संक उपजावति हौ ।
जाहु जाहु 'हरिचंद' बृथा क्यौं
जल मैं आगि लगावति हौ ।
सुनिहैं लोग सबै घर के क्यौं
कान्ह कान्हा गोहरावति हौ ।१४

बिना बात ही अटा चढ़ी क्यौं
आँचर खोले धावति हौ ।
सेज साजि अनुराग उमगि क्यौं
रचि रचि माल बनावति हौ ।
पावस रितु नहिं जानति हौ
'हरिचंद' बृथा भ्रम पावति हौ ।
पिया नहीं ये धन उनये क्यौं
कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ।१५

कबहूँ नारी पुरुष के अजगुत भाव दिखावति हौ ।
कबहुँ लाज करि बदन ढकत हौ कबहूँ बेनु बजावति हौ।
भई एक सों द्वै सजनी 'हरिचंदहि' अलख लखावति हौ।
राधे राधे कबौं कबौं तुम कान्ह कान्ह गोहरावति हौ।१६

श्याम सलोनी मूरति अँग अँग
अद्‌भुत छबि उपजावति हौ ।
नारी होय अनारी सी क्यौं बरसाने में आवति हौ ।
जानि गई हरिचंद सबै जब तब क्यौं बात छिपावति हौ ।
राधे राधे कहो अहो क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ।१७

मुँह-दिखावनी*

रचना काल सन् १८७४

राज कुमार श्री ड्यूक आफ एडिनबरा की नवबधू को ।

आजु अतिहि आनँद भयो बढ्यो परम उछाह ।
राज-दुलारी सों सुनत राजकुँवर को ब्याह ।१
बसे राज-घर सुख भयो मिटे सकल दुख-दुंद ।
मेरी बहू सुलच्छिनी प्रजन दियो आनंद ।२
द्वार बँधाई तोरनै मनिगन मुकता-माल ।
धाई धाई फिरत हैं कहत बधाई बाल ।३
विद्या लक्ष्मी भूमि अरु तुव प्यारी तरवारि ।
राज-कुँवर ४ सौत लखि मोहीं हारि निहारि ।४
"देह दुलहिया के बढ़े ज्यौं ज्यौं जोबन-जोति ।
त्यौं त्यौं लखि सौतैं-बदन अतिहि मलिन दुति होति" ।५
माँगी मुख-दिखरावनी दुलहिन करि अनुराग ।
सास ससुर मन ललनहूँ सौतिन दियो सुहाग ।६
महरानी विक्टोरिया! धन धन तुमरो भाग ।
लख्यौ बधू मुख-चंद तुम पूरयौ भाग सुहाग ।७
रूस रूस सब के हिये भय अति ही हो जौन ।
बधू! तुम्हारे ब्याह सों उड़यौ फ़ुस सो तौन ।८
धन यह संबत मास पख धन तिथि धन यह बार ।
धन्य घरी छन लगन जेहिं ब्याहे राजकुमार ।९
आए मिलि सब प्रजा-गन नजर देन तुव धाम ।
ठाढ़े सनमुख देखिए नवत जुहारत नाम ।१०
कोउ मनि मानिक मुकुत कोउ कोऊ गल को हार ।
कनक रौप्य महि फूल फल लै लै करत जुहार ।११
तब हम भारत की प्रजा मिलिकै सहित उछाह ।
लाए 'आशा' दासिका लीजै एहि नर-नाह ।१२
सेवा मैं एहि राखियो नवल बधू के नाथ ।
यह भाग निज मानिकै छनक न तजिहै साथ ।१३

---

* सन् १८७४ ई. में क्वीन विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक आँव एडिनबरा का विवाह रूस की राजकुमारी ग्रै डचेज़ मेरी के साथ हुआ था, जिसके उपलक्ष्य में यह मुँह-दिखावनी लिखी गई थी । १५ फरवरी सन् १८७४ ई. की हरिश्चंद्र मैगजीन मेंयह प्रकाशित है ।

रूस मिले सों रेल के आगम-गमन-प्रचार ।
धन जन बल व्यवहारने छोड़ो यह सुकुमार ।१४
तासों तुम्हरे कर-कमल सौंपत एहि नर-नाह ।
जब लौं जीवैं कीजियौ तब लौं कुंवर! निबाह ।१५
यह पाली सब प्रजन अति करि बहु लाह उमाह ।
अति सुकुमारी लाड़िली सौंपत तोहिं नर-नाह ।१६
यह बाहर कहुँ नहिं भई सही न गरमी सीत ।
आदर दै कै राखियो करियो नित चित प्रीत ।१७
जौ यासौं जिय नहिं रमै वा कछु जिय अकुलाय ।
सौति बधू वा एहि लखै हौ हम कहत उपाय ।१८
जब हम सब मिलि एक-मत ह्वै तोहिं करहिं प्रनाम ।
फेरि दीजियो तब हमैं दै कछु और इनाम ।१९
जब लौं धरनी सेस-सिर जब लौं सूरज-चंद ।
तब लौं जननी-सह जियो राजकुँवर सानंद ।२०

उर्दू का स्यापा

जून १८७४ की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित

अलीगढ़ इंस्टिट्यूट गजट और बनारस अखबार के देखने से ज्ञात हुआ कि बीबी उर्दू मारी गई और परम अहिंसानिष्ठ होकर भी राजा शिवप्रसाद ने यह हिंसा की — हाय हाय ! बड़ा अंधेर हुआ मानो बीबी उर्दू अपने पति के साथ सती हो गई । यद्यपि हम देखते हैं कि अभी साढ़े तीन हाथ की ऊँटनी सी बीबी उर्दू पागुर करती जीती है, पर हमको उर्दू अखबारों की बात का पूरा विश्वास है । हमारी तो कहावत है — "एक मियाँ साहेब परदेस में सरिश्तेदारी पर नौकर थे । कुछ दिन पीछे घर का एक नौकर आया और कहा कि मियाँ साहब, आपकी जोरू राँड हो गई । मियाँ साहब ने सुनते ही सिर पीटा, रोए गाए, बिछौने से अलग बैठे, सोग माना, लोग भी मातम-पुरसी को आए । उनमें उनके चार पाँच मित्रों ने पूछा कि मियाँ साहब आप बुद्धिमान होके ऐसी बात मुँह से निकालते हैं, भला आपके जीते आपकी जोरू कैसे राँड होगी ? मियाँ साहब ने उत्तर दिया — "भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है, मैं भी समझता हूँ कि मेरे जीते मेरी जोरू कैसे राँड होगी । पर नौकर पुराना है, झूठ कभी न बोलेगा ।" जो हो 'बहर हाल हमैं उर्दू का गम वाजिब है" तो हम भी यह स्यापे का प्रकर्ण यहाँ सुनाते हैं । हमारे पाठक लोगों को रुलाई न आवे तो हँसने की भी उन्हें सौगन्द है, क्योंकि हाँसा-तमासा नहीं बीबी उर्दू तीन दिन की पट्ठी अभी जवान कट्ठी मरी है ।

अरबी, फारसी, पशतो, पंजाबी इत्यादि कई भाषा खड़ी होकर पीटती है

है है उर्दू हाय हाय । कहाँ सिधारी हाय हाय ।
मेरी प्यारी हाय हाय । मुंशी मुल्ला हाय हाय ।
बल्ला बिल्ला हाय हाय । रोय पीटें हाय हाय ।
टाँग घसीटैं हाय हाय । सब छिन सोचैं हाय हाय ।
डाढ़ी नोचैं हाय हाय । दुनिया उलटी हाय हाय ।
रोजी बिलटी हाय हाय । सब मुखतारी हाय हाय ।
किसने मारी हाय हाय । खबर नवीसी हाय हाय ।
दाँत-पीसी हाय हाय । एडिटर-पोसी हाय हाय ।
बात फरोशी हाय हाय । वह लस्सानी हाय हाय ।
चरब-जुबानी हाय हाय । शोख-बयानी हाय हाय ।
फिर नहिं आनी हाय हाय ।

प्रबोधिनी

अगस्त १८७४ की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित

जागे मंगल-रूप सकल ब्रज-जन-रखवारे ।
जागो नन्दानन्द-करन जसुदा के बारे ।
जागे बलदेवानुज रोहिनि मात-दुलारे ।
जागो श्री राधा के प्रानन तें प्यारे ।
जागो कीरति-लोचन-सुखद भानु-मान-वर्द्धित-करन ।
जागो गोपी-गो-गोप-प्रिय भक्त-सुखद असरन-सरन ।१

होन चहत अब प्रात चक्रबाकिनि सुख पायो ।
उड़े बिहग तजि बास चिरैयन रोर मचायो ।
नव मुकुलित उत्पल पराग लै सीत सुहायो ।
मंथर मति अति पावन करत पंडुर बन धायो ।
कलिका उपवन बिकसन लगीं भँवर चले संचार करि ।
पूरब पच्छिम दोउ दिसि अरुन
तरुन अरुन कृत तेज धरि ।२

दीप्र-जोति भइ मंद पहरुगन लगे जँभावन ।
भई सँजोगिन दुखी कुमुद मुद मुँदे सुहावन ।
कुम्हिलाने कच-कुसुम बियोगिनि लखि सचुपावन ।
भई मरगजी सेज लगे सब भैरव गावन ।
तन अभरन-गन सीरे भए काजर दृग बिकसित सजत ।
अधरन रस लाली साथ मुख पान स्वाद तजनो चहत ।३

मथत दही ब्रज-नारि दुहत गौअन ब्रज-बासी ।
उठि उठि कै निज काज चलत सब घोष-निवासी ।
द्विज-गन लावत ध्यान करत सन्ध्यादि उपासी ।
बनत नारि खंडिता क्रोध पिय पेखि प्रकासी ।
गौ-रम्भन-धुनि सुनि बच्छगन आकुल माता ढिग चलत ।
पशु-बृंद सबै बन को गवन करन चले सब उच्छलत ।४

नारद तुंबरु षट बिभास ललितादि अलापत ।
चारहु मुख सों बेद पढ़त बिधि तुव जस थापत ।
इंद्रादिक सुर नमत जुहारत थर थर काँपत ।
व्यासादिक रिषि हाथ जोरि तुव अस्तुति जापत ।
जय विजय गरुड़ कपि आदि गन खरे खरे मुजरा करत ।
शिव डमरू लै गुन गाइ तुव प्रेम-मगन आनँद भरत ।५

दुर्गादिक सब खरीं कोर नैनन की जोहत ।
गंगादि आचँवन हेत घट लाईं सोहत ।
तीरथ सब तुव चरन परस-हित ठाढ़े मोहत ।
तुलसी लीने कुसुम अनेकन माला पोहत ।
ससि सूर पवन घन इंदिरा निज निज सेवा में लगत ।
ऋतु काल यथा उपचार मैं खरे भरे भय सगबगत ।६

बंदीजन सब द्वार खरे मधुरे गुन गावत ।
चंग मृदंग सितार बीन मिलि मंद बजावत ।
द्विज गन प नँदराय अनेक असीम पढ़ावत ।
निज निज सेवा मैं सब सेवक उठि उठि धावत ।
पिकदान वस्त्र दरपन चँवर जलझारी उबटन मलय ।
सोंधो सुगंध तंबोल लै खरे दास-दासी-निचय ।७

मथे सद्य नवनीत लिये रोटी घृत-बोरी ।
तनिक सलोने साक दूध की भरी कटोरी ।
खरी जसोदा मात जात बलि बलि तृन तोरी ।
तुव मुख निरखन-हेत ललक उर किये किरोरी ।
रोहिनि आदिक सब पास ही खरी बिलोकत बदन तुव ।
उठि मंगलमय दरसाय मुख मंगलमय सब करहु भुव ।८

करत काज नहिं नंद बिना तुव मुख अवरेखे ।
दाऊ बन नहिं जात बदन सुंदर बिनु देखे ।
ग्वालिन दधि नहिं बेंचि सकत लालन बिनु पेखे ।
गोप न चारत गाय लखे बिनु सुंदर भेखे ।
भइ भीर द्वार भारी खरे सब मुख निरखन आस करि ।
बलिहार जागिए देर भइ बन गो-चारन चेत धरि ।९

करत रोर तम-चोर भोर चक्रवाक बिगोए ।
आलस तजि कै उठौ सुरत सुख-सिंधु भिगोए ।
दरसन हित सब अली खरीं आरती सँजोए ।
जुगल जागिए बेर भई पिय प्यारी सोए ।
मुख-चंद हमैं दरसाइ कै हरौ बिरह को दुख बिकट ।
बलिहार उठो दोऊ अबै बीती निसि दिन भो प्रगट ।१०

ललिता लीने बीन मधुर सुर सों कछु गावत ।
बैठि बिसाखा कोमल करन मृदंग बजावत ।
चित्रा रचिरचि बहु कुसुमन की माल बनावत ।
श्यामा भामा अभरन सारी पाग सजावत ।
पिकदान चंद्रभागा लिए चम्पक-लतिका जल गहत ।
दरपन लै कर में इंद्रलोक
लेखा बलि बलि जागौ कहत ।११

कबरी सबरी गूँथि फेर सों माँग भराओ ।
कसिकै रस सों पाग पेंच सिरपेंच बँधाओ ।

अंजन मुख सों सीस महावर-बिंदु छुड़ाओ ।
जुग कपोल सों पीक पोंछि कै छाप मिटाओ ।
उर हार चीन्ह परि पीठ पर कंकन उपरयौ देत छबि।
जागौ दुराउ तेहि बात अब जामें कछु बरनै न कबि।१२

आलस पूरे नैन अरुन अब हमहिं दिखावहु ।
सुरत याद दै प्रिया-दृगन भरि लाज लजावहु ।
चुटकी दै बलिहार बोलि कदु अलस जँभावहु ।
केलि-कहानी बिबिध भाखि कछु हँसहु-हँसावहु ।
भरि प्रेम परस्पर तन चितै आलस मेटहु लागि हिय ।
अँगरानि मुर्रानि लपटानि लखि
सखिगन सर्व सिराहिं जिय ।१३

जागौ जागौ नाथ कौन तिय-रति रस भोए ।
सिगरी निसि कहुँ जागि इतै आवत ही सोए ।
च्यौं न सामुहें नैन करत क्यौं लाज समोए ।
आधे आधे बैन कहत रस-रंग भिगोए ।
बलिहार और के भोग-सुख हमैं प्रात दरसन मिलन ।
ताहू पै सोवत लाल बलि जागौ कंज चहत खिलन ।१४

जुगल कपोलन पीक छाप अति शोभा पावत ।
खंडित अधरन पै अंजन जावक सरसावत ।
सिर नूपुर घुँघरू अंक छबि दुगुन बढ़ावत ।
अंग अंग प्रति अभरन-गन चिन्हित दरसावत ।
कंकन पायल सों पीठ खचि गाल तरौनन सों चुभित।
कंचुकी छाप सह माल बहु बिनु
गुन कोमल हिय खुभित ।१५

रहे नील पट ओढ़ि चूरिकन जहँ लपटाए ।
सेंदुर बिंदुली पीक चित्र तहँ बिबिध बनाए ।
बिथुरी अलकन मैं बेसर क्यौं सरस फँसाए ।
खसित पाग मैं गलित कुसुम मिलि पेंच बँधाए ।
बलिहार आरसी जल लिए दासी बिनय-बचन कहत।
जागो पीतम अब निसि बिगत
गर लागो मनमथ दहत ।१६

डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो ।
आलस-दव एहि दहन हेतु चहुँ दिसि सों लागो ।
महा मूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो ।
कृपा-दृष्टि की बृष्टि बुझावहु आलस त्यागो ।
आपुनो अपुनायो जानिकै करहु कृपा गिरिवर-धरन ।
जागो बलि बेगहि नाथ अब देहु दीन हिंदुन सरन ।१७

प्रथम मान धन बुधि कोशल बल देइ बढ़ायो ।
क्रम सों विषय-बिदूषित जन करि तिनहिं घटायो ।
आलस मैं पुनि फाँसि परसपर बैन चढ़ायो ।
ताही के मिस जवन काल सम को पग आयो ।
तिनके कर की करबाल बल बृद्ध सब नासि कै ।
अब सोवहु होय अचेत तुम दीनन के गल फाँसि कै।१८

कहँ गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर ।
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर ।
कहँ क्षत्री सब मरे जरे सब गये किते गिर ।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर ।
कहँ दुर्ग-सैन-धन-बल गयो धूरहि धूर दिखात जग ।
जागो अब तो खल-बल-दलन
रक्षहु अपुनो आर्य-मग ।१९

जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मंदिर ।
तहँ महजिद बनि गई होत अब अल्ला अकबर ।
जहँ झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर ।
तहँ अब रोवत सिवा चहुँ दिसि लखियत खँडहर ।
जहँ धन-विद्या बरसत रही सदा अबै वाही ठहर ।
बरसत सब ही बिधि बे-बसी अब तौ जागौ चक्रधर।२०

गयो राज धन तेज रोष बल ज्ञान नसाई ।
बुद्धि बीरता श्री उछाह सूरता बिलाई ।
आलस कायरपनो निरुद्यमता अब छाई ।
रही मूढ़ता बैर परस्पर कलह लराई ।
सब बिधि नासी भारत-प्रजा कहुँ न रह्यौ अवलंब अब।
जागो जागो करुनायतन फेर जागिहौ नाथ कब ।२१

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवत केवल ।
पसु समान सब अन्न खात पीअत गंगा-जल ।
धन बिदेस चलि जात तऊ जिय होत न चंचल ।
जड़ समान ह्वै रहत अकिल हत रचि न सकत कल।
जीवत बिदेस की वस्तु लै ता बिनु कछु नहिं करि सकत।
जागो जागो अब साँवरे सब कोउ रुख तुमरो तकत।२२

पृथ्वीराज जयचंद कलह करि जवन बुलायो ।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो ।
अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो ।
विषय-बासना दुसह मुहम्मद सह फैलायो ।
तब लौं सोए बहुत नाथ तुम जागे नहिं कोऊ जतन ।
अब तौ जागौ बलि बेर भइ हे मेरे भारत-रतन ।२३

जागो हौं बलि गई बिलंब न तनिक लगावहु ।
चक्र सुदरसन साथ धारि रिपु मारि गिरावहु ।
थापहु थिर करि राज छत्र सिर अटल फिरावहु ।
मूरखता दीनता कृपा करि बेग नसावहु ।
गुन विद्या धन बल मान बहु सबै प्रजा मिलि कै लहैं।
जय राज राज महराज की आनँद सो सब ही कहैं ।२४

सब देसन की कला सिमिटि कै इतही आवै ।
कर राजा नहिं लेइ प्रजन पैं हेत बढ़ावै ।

गाय दूध बहु देहिं तिनहिं कोउ न नवावै ।
द्विज-गन आस्तिक होइ मेघ सुभ जल बरसावै ।
तजि छुद्र बासना नरसवै निज उछाह उन्नति करहिं ।
कहि कृष्ण राधिका-नाथ जय
हमहूँ जिय आनँद भरहिं ।२५

प्रात-समीरन

अक्टूबर १८७४ की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित । इसका छंद बँगला का पयार है ।

मन्द मन्द आवै देखो प्रात समीरन
करत सुगन्ध चारो ओर विकीरन ।
गात सिहरात तन लगत सीतल
रैन निद्रालस जन-सुखद चंचल ।
नैन सीस सीरे होत सुख पावै गात
आवत सुगन्ध लिए पवन प्रभात ।
वियोगिनी-बिदारन मन्द मन्द गौन
बन-गुहा बास करै सिंह प्रात-पौन ।
नाचत आवत पात पात हिहिनात
तुरग चलत चाल पवन प्रभात ।
आवै गुंजरत रस फूलन को लेत
प्रात को पवन भौंर सोभा अति देत ।
सौरभ सुमद धारा ऊँची किए मस्त
गज सो आवत चल्यौ पवन प्रसस्त ।
फुलावत हिय-कंज जीवन सुखद
सज्जन सो प्रात पवन सोहै बिना मद ।
दिसा प्राची लाल करै कुमुदी लजाय
होरी को खिलार सो पवन सुख पाय ।
भौंर-शिष्य मंत्र पढ़ैं धर्म्म-कर्म्म-वन्त
प्रात को समीर आवै साधु को महंत ।
सौरभ को दान देत मुदित करत
दाता बन्यो प्रात-पौन देखो री चलत ।
पातन कँपावै लेत पराग खिराज
आवत गुमान भर्यौ समीरन-राज ।
गावैं भौंर गूँजि पात खरक मृदंग
गुनी को अखारो लिए प्रात-पौन संग ।
काम में चैतन्य करै देत है जगाय
मित्र उपदेस बन्यो भोर पौन आय ।
पराग को मौर दिए पच्छी बोल बाज
ब्याहन आवत प्रात-पौन चल्यौ आज ।
आप देत थपकी गुलाब चुटकार
बालक खिलावै देखो प्रात की बयार ।
जगावत जीव जग करत चैतन्य
प्रान-तत्व सम प्रात आवे धन्य धन्य ।
गुटकत पच्छी धुनि उड़े सुख होत
प्रात-पौन आवै बन्यो सुंदर कपोत ।
नव-मुकुलित पद्म-पराग के बोझ
भारवाही पौन चलि सकत न सोझ ।
दुअत सीतल सबै होत गात आत
स्नेही के परस सम पवन प्रभात ।
लिए जात्री फूल-गंध चलै तेज धाय
रेल रेल आवै लखि रेल प्रात-वाय ।
बिविध उपमा धुनि सौरभ को भौन
उड़त अकास कवि-मन किधौं पौन ।
आग सिहरात छूए उड़त अंचल
कामिनी को पति प्रात-पवन चंचल ।
प्रात समीरन सोभा कही नहिं जाय
जगत उद्योगी करै आलस नसाय ।
जागै नारी नर लगैं निज निज काम
पंछी चहचह बोलैं ललित ललाम ।
कोई भजै राम राम कोई गंगा न्हाय
कोई सजि वस्त्र अंग काज हेत जाय ।
चटकैं गुलाब फूल कमल खिलत
कोई मुख बंद करैं परन हिलत ।

गावत प्रभाती बाजै मंद मंद ढोल
कहूँ करैं द्विजगन जय जय बोल ।
बजै सहनाई कहूँ दूर सों सुनाय
भैरवी की तान लेत चित्त को चुराय ।
उड़त कपोत कहूँ काग करै रोर
चुह्र चुह्र चिरैयन कीनो अति सोर ।
बोलैं तम-चोर कहूँ ऊँचो करि माथ
अल्ला अकबर करैं मुल्ला साथ साथ ।
बुझी लालटेन लिए झुकि रहे माथ
पहरू लटकि रहे लंबो किए हाथ ।
स्वान सोये जहाँ तहाँ छिपि रहे चोर
गऊ पास बच्छन अहीर देत छोर ।
दही फल फूल लिए ऊँचे बोलैं बोल ।
आवत ग्रामीन-जन चले टोल टोल ।
सड़क सफाई होत करि छिड़काव
बग्गी बैठि हवा खाते आवैं उमराव ।
काज व्यग्र लोग धाए कंधन हिलाय
कसे कटि चुस्त बने पगड़ी सजाय ।
सोई वृत्ति जागीं सब नरन के चित्त
बुरी-भली सबै करैं लीक जौन नित्त ।
चले मनसूबा लोक थोकन के जौन
मार-पीट दान-धर्म काज-काज भौन ।
व्यास बैठे घाट घाट खोलि कै पुरान
ब्राह्मन पुकारै लगे हाय हाय दान ।
अरुन किरिन छाई दिसा भई लाल
घाट नीर चमकन लागै तौन काल ।
दीप-ज्योति उडुगन सह मंद मंद
मिलत चकई चका करत अनंद ।
प्रलय पीछे सृष्टि सम जगत लखाय
मानो मोह बीत्यौ भयो ज्ञानोदय आय ।
प्रात-पौन लागे जाग्यौ कवि 'हरीचंद'
ताकी स्तुति करि कहौ यह बंग छंद ।

बकरी-बिलाप

अक्टूबर १८७४ की 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित

सरद निसा निरमल दिसा गरद सहित नभ स्वच्छ ।
सब के मन आनँद बढ्यौ लखि आगम दिन अच्छ ।१
पितृ पक्ष को जानि कै ब्राह्मन-मन सानंद ।
निरखहिं आश्विन मास सब ज्यौं चकोर-गन चंद ।२
लखि आगम नवरात को सब को मन हुलसात ।
लखन राम-लीला ललित सजि सजि सबही जात ।३
छुट्टी भई अदालतन आफिस सब भए बंद ।
फिरे पथिक सब भवन निज धरि धरि हिए अनंद ।४
बंगालिन के ह्वैं भयो घर घर महा उछाह ।
देवी-पूजा की बढ़ी चित्त चौगुनी चाह ।५
नाच लखन मद-पान को मिल्यो आइ सुभ जोग ।
दुरगा के परसाद सों मिलिहैं सब ही भोग ।६
कोउ गावत कोऊ हँसत मंगल करन बिचार ।
आगतपतिका बनि रहीं परदेसिन की नारि ।७
ऐसे आनँद के समय बकरी अति अकुलाय ।
निज सिसु-गन लै गोद में करत दीन बनि हाय ।८
घोर सरद साँपिनि समै मोसो दुखिया कौन ।
जाके सुत सब नासिहैं बलिदायक अघ-भौन ।९
माता को सुत सो नहीं प्यारो जग में कोय ।
ताकैं परम वियोग में क्यों न मरैं हम रोय ।१०
जिनके सिसु ह्वै कै मरें ते जानहिं यह पीर ।
बाँझ गरभ की बेदना जानै कहा सरीर ।११
अपने बचन देखि कै हरो हमारो सोग ।
मेरो दुख अनुभव करौ तुमहु कुटुम्बी लोग ।१२
दूध देत नित तृन चरत करत न कछू बिगार ।
ताहू पैं मम यह दसा रे निर्दय करतार ।१३
पुत्र-सोगिनी ही रह्यौ जौ पै करनो मोहिं ।
तौ रे बिधि मम रचन सों कहा सिरान्यौ तोहिं ।१४
रे रे बिधि सब बिधि अबिधि आजु अबिधि तैं कीन ।
बधि बधि कै मेरे सुअन महा सोक मोहिं दीन ।१५

सुरति करत जिय अति जरत मरत रोय करि हाय ।
बलि यह बलिजा नीम सौ हीयो उलटत जाय ।१६
गुख गद्गद तन स्वेद-कन कंठहु रूँध्यो जात ।
उलट्यौ परत करेजवा जिय अतिही अकुलात ।१७
कहाँ जायँ कासों कहैं कोउ न मुनिबे जोग ।
खाँव खाँव करि धाय सब हमहिं लगावत भोग ।१८
जदपि नारि दुख जानहीं मेरो सहित विवेक ।
पै ते पति-मति मैं रँगी बरजहिं तिन्हैं न नेक ।१९
मानुष-जन सों कठिन कोउ जन्तु नाहिं जग बीच ।
बिकल छोड़ि मोहिं पुत्र लै हनत हाय सब नीच ।२०
बृथा जवन कों दूसहीं करि बैदिक अभिमान ।
जो हत्यारो सोइ जवन मेरे एक समान ।२१
धिक धिक ऐसे धरम जो हिंसा करत विधान ।
धिक धिक ऐसो स्वर्ग जौ बध करि मिलत महान ।२२
शास्त्रन को सिद्धांत यह पुण्य सु पर-उपकार ।
पर-पीड़न सों पाप कछु बढ़ि के नहिं संसार ।२३
जज्ञन में जप-जज्ञ बढ़ि अरु सुभ सात्विक धर्म ।
सब धर्मन सों श्रेष्ठ है परम अहिंसा धर्म ।२४
पूजा लै कहँ तुष्ट नहिं धूप दीप फल अन्न ।
जौ देवी बकरा बधे केवल होत प्रसन्न ।२५
हे बिस्वंभर ! जगत-पति जग-स्वामी जगदीस !
हम जग के बाहर कहा जो काटत मम सीस ।२६
जगन्मात ! जगदम्बिके ! जगत, जननि जग-रानि ।
तुव सन्मुख तुव सुतन को सिर काटत क्यों जानि ।२७
क्यौं न खींचि के खड्ग तुम सिंहासन तें धाइ ।
सिर काटत सुत बधिक कौ क्रोधित बलि ढिग आई ।२८
त्राहि त्राहि तुमरी सरन मैं दुखिनी अति अम्ब ।
अब लम्बोदर-जननि बिनु मोकों नहिं अवलम्ब ।२९
निर-अपराध गरीब हम सब बिधि बिना सहाय ।
हे षटमुख-गजमुख-जननि तुम समझौ मम हाय ।३०
पुत्रवती बिनु जानई को सुत-बिछुरन-पीर ।
यासों मोहिं अब दै अभय जननि धरावहु धीर ।३१
एहि विधि बहु बिलपत परी बकरी अति आधीन ।
हे करुना-बरुनायतन द्रवहु ताहि लखि दीन ।३२

स्वरूप-चिन्तन

दिसंबर सन् १८७४ ई० हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में प्रकाशित ।

जय जज गिरवर-धरन जयति श्री नवनीत-प्रिय ।
जयति द्वारिकाधीश जयति मथुरेश माल हिय ।
जय जय गोकुलनाथ मदनमोहन पिय प्यारे ।
जय गोकुल-चंद्रमा सु बिट्ठलनाथ दुलारे ।
श्री बालकृष्ण नटवर नवल श्री मुकुंद दुख-द्वंद-हर ।
स्वामिनि सह ललित तृभंग
गोपाललाल जय जयतिवर ।१

जय जय श्री गिरिराज-धरन श्रीनाथ जयति जय ।
वेद-दमन जय नाग-दमन जय शमन भक्त-भय ।
जय श्री राधा-प्राणनाथ श्री वल्लभ प्यारे ।
श्री बिट्ठल के जीव जयति जसुदा के बारे ।
श्रीवल्लभ कुल के परम निधि
भक्तन के बहु दुख-दरन ।
नित नव निकुंज लीला-करन जय जय श्रीगिरिवरधरन ।२

जय जय श्री नवनीत-प्रिय जय जसुदानंदन ।
जय नंदांगन रिंगन कर जुवती-मन-फंदन ।
जय कृत मृगमद-तिलक भाल जय युक्त माल गल ।
मुख मंडित दधि-लेप घुटुरुवन चलत चपल चल ।
जय बाल ब्रह्म गोपाल जन-पालक केहरि करज हिय ।
जदुनाथ नाथ गोकुल-बसन जै जै श्री नवनीत-प्रिय ।३

जय जय मथुरानाथ जयति जय भव-भय-भंजन ।
जय प्रनतारति-हरन जयति जय जन-मन-रंजन ।
भुज बिसाल सुभ चार भक्त-जन के रखवारे ।
शंख चक्र असि गदा पद्म आयुध कर धारे ।
श्री गिरिधर-प्रिय आनंदनिधि जयति चतुर्विध जूथपति ।
गावत श्रुति गुन-गन-गाथ जय मथुरानाथ अनाथ-गति ।४

जय श्री बिट्ठलनाथ साथ स्वामिनि सुठि सोहत ।
करि धारे दोउ हाथ रास-श्रम भरि मन मोहत ।
नृत्य भाव करि बिबिध जयति जुवती-मन-फंदन ।
जसुदा-ललित जयति नंद-नंदन आनंदन ।
श्री गोविंद प्रभु-पालन प्रनत दीन-हीन-जन-उद्धरन ।
जय असुर-दरन भक्तन-भरन
श्री बिट्ठल असरन-सरन ।५

जयति द्वारिकाधीस-सीस मनि-मुकुट बिराजत ।
जयति चार कर चक्रादिक आयुध छबि छाजत ।
तिय-दृग द्वै कर मूँदि जुगल कर बेनु बजायो ।
कंठ चरन उपमान कंबु अंबुज मन-भायो ।
जय प्रिया कंकनाकार कर चक्र गदा बंसी अभय ।
जय बालकृष्ण प्रिय प्रान श्री द्वारिकेस महराज जय ।६

जय श्री गोकुलनाथ जयति गिरिराज-उधारन ।
बिबि कर वंस प्रसंस कंबु गिरि बिबि कर धारन ।
रास-रसिक नटराज रसिक-मंडल मनि-मंडन ।
हरन इंद्र-मद-मान भक्त भव-भयभर-खंडन ।
श्री राधापति चंद्रावली-रमन शमन गजपति गमन ।
श्री वल्लभ प्रिय रसमय जयति गोकुलेस मनमथ दमन ।७

जय गोकुल-चंद्रमा परम कोमल अग सोहन ।
रास जूथपति बेनु-बाद-रत तिय-मन-मोहन ।
मधि नायक बृन्दाबनेस राका ससि पूरन ।
नटवर नर्त्तक करन मत्त मनमथ-मद-चूरन ।
श्रीरघुपति पति अति ललित गति
कति जुवती मति जति हरन ।
रतिरंजन नति प्रिय जयति
श्री गोकुल-ससि साँवर वरन ।८

जय जय मोहन मदन मदन-मद-कदन ताप-हर ।
सब सुख-सोभा-सदन रदन-छबि कुंद-निंद-कर ।
मरजादा उलंघि पुष्टि-पथ थापन चाहत ।
होइ त्रिभंगी प्रिया बदन मधु रस अवगाहत ।
बर बंसी कर स्वामिनि सहित
करन प्रेम-रँग भक्ति-लय ।
श्री घनश्याम आनँद भरन जय श्री मोहन मदन जय ।९

जय श्री नटवर लाल ललित नटवर बपु राजत ।
निरतत तजि मरजाद देखि रति-पति जिय लाजत ।
परम रसिक रस रास रास-मंडल की सोभा ।
पग कर सिर की हिलनि देखि ब्रज-तिय मन लोभा ।
श्री बृंदाबन-नभ-चंद्रमा जन-चकोर आनंद-कर ।
नित प्रेम-सुधा-बरखन-करन जय नटवर त्रय ताप-हर ।

जय जय जय श्री बालकृष्ण जसुदा के बारे ।
बलदेवानुज नंदराय के प्रान पियारे ।
नंदालय कृत जानु पानि रिंगन बाला-कृत ।
कर मोदक मन-मोद-करन ब्रत जुवती-जन-हित ।
जदुपति प्यारे आनंदनिधि सब गोकुल के प्रान-प्रद ।
झँगुली टोपी मसिबिंदु सिर बालकृष्ण जयजनी-सुखद ।११

श्री मुकुंद भव-दुंद-हरन जय कुंद गौर छबि ।
श्याम मिलित मधि जुगल भाव सो किमि बरनै कवि ।
बाल भाव परतच्छ तरुन अतर छबि छाजै ।
कर मोदक मिस प्रिया अधर मधु स्वाद बिराजै ।
जदुनाथ मनोरथ-पूर्ण-कर श्रीबल्लभ चिकुरस्थ बर ।
श्री गिरिधर लालित ललित जय
श्रीमुकुंद दुख-दुंद-हर ।१२

जय जय श्री गोपाल लाल श्री राधानायक ।
कोटि काम-मद-मथन-भक्तजन सादा सहायक ।
प्रिया प्रनय भट गौर बदन सुंदर छबि छाजत ।
प्यारी रिझवन हेत मुरलि कर लिये बजावत ।
दरसन दै मन करसन करत ब्रज-जुवतीजन-मन-हरन ।
काशी मैं बृंदाबन-करन जय गोपाल असरन-सरन ।१३

श्री राजकुमार-शुभागमन-वर्णन*

सन् १८७६ में 'बाला बोधिनी' में प्रकाशित

स्वागत स्वागत धन्य तुम भावी राजधिराज ।
भई सनाथा भूमि यह परसि चरन तुव आज ।१
''राजकुंअर आओ इते दरसाओ मुख चंद ।
बरसाओ हम पर सुधा बाढ़यौ परम अनंद ।२
नैन बिछाए आपु हित आवहु या मग होय ।
कमल पाँवड़े ये किए अति कोमल पग जोय'' ।३
साँचहु भारत में बढ़्यौ अचरज सहित अनंद ।
निरखत पच्छिम सों उदित आज अपूरब चंद ।४
दुष्ट नृपति बल दल दली दीना भारत भूमि ।
लहिहै आजु अनंद अति तुव पद-पंकज चूमि ।५
विकसित कीरति-कैरवी रिपु बिरही अति छीन ।
उडुगन-सम-नृप और सब लखियत तेज-बिहीन ।६
स्रवत सुधा-सम बचन-मधु पोखत औषधिराज ।
त्रासत चोर कुमित्र खल नंदत प्रजा-समाज ।७
चित-चकोर हरखित भए सेवक-कुमुद अनंद ।
मिट्यौ दीनता-तम सबै लखि भूपति मुख-चंद ।८
मन-मयूर हरखित भए गए दुरित दव दूरि ।
राजकुँअर नव घन सरस भारत-जीवन-मूरि ।९
हृदय-कमल प्रफुलित भए दुरे दुखद खल-चोर ।
पसर्यौ तेज जहान रबि भूपति-आगम भोर ।१०
नंद-पति-प्यारी सची दंड बज्र गज जान ।
मंत्रीवर सुर-सह लसत नृप-सुत- इंद्र-समान ।११
भए लहलहे न सबै उलस्यो प्रजा-समाज ।
बंदी-पिक गावत सुजस राजकुँअर रितुराज ।१२
विदलित रिपु-गज-सीस नित नख-बल बुद्धि-प्रभाव।
जन बन पथि सम अति प्रबल हरि भावी नर-राव ।१३
मेलाह्र सों बढ़ि सबै सज्यौ नगर को साज ।
बुढ़वामंगल तुच्छ कह लखि नव मंगल आज ।१४
ललित अकासी धुज सजे परकासी आनंद ।
राका सी कासीपुरी लखि भूपति मुखचंद ।१५
नौबत-धुनि-मंजीर सजि अंचल-धुज फहराय ।
कासी तुमहिं मिनार-मिस टेरति हाथ उठाय ।१६
मरवट सथिये बसन धुज मौरी तोरन लाय ।
दुलही सी कासीपुरी उलही नव बर पाय ।१७
जिमि रघुबर आए अवध जिमि रजनी लहि चंद ।
तिमि आगमन कुमार के कासी लह्यौ अनंद ।१८
मधुबन तजि फिर आइ हरि ब्रज निव से मनु आज ।
ऐसो अनुपम सुख लह्यो तुम कहँ निरखि समाज ।१९

[षड्भिः कुलकम्]

जदपि न भोज न व्यास नहिं बालमीकि नहिं राम ।
शाक्यसिंह 'हरिचंद' बलि करन जुधिष्ठिर श्याम ।२०
जदपि न बिक्रम अकबरहु कालिदासह्र नाहिं ।
जदपि न सो विद्यादि गुन भारतवासी माहिं ।२१
प्रतिष्ठान साकेत पुनि दिल्ली मगध कनौज ।
जदपि अबै उजरी परीं नगर सबै बिनु मौज ।२२
जद्यपि खँडहर सी भरी भारत भुव अति दीन ।
खोइ रत्न संतान सब कृस तन दीन मलीन ।२३
तदपि तुमहिं लखि कै तुरत आनंदित सब गात ।
प्रान लहे तन सी अहो भारत भूमि दिखात ।२४
दाव जरे कहँ वारि जिमि बिरही कहँ जिमि मीत ।
रोगिहि अमृत-पान मिजि तिमि एहि तोहि लहि प्रीत ।२५
घर घर में मनु सुत भयो घर घर मैं मनु ब्याह ।
घर घर बाढ़ी संपदा तुव आगम नर-नाह ।२६
जैसे आतप तपित कों छाया सुखद गुनात ।
जवन-राज के अंत तुव आगम तिमि दरसात ।२७
मसजिद लखि बिसुनाथ ढिग परे हिय जो घाव ।
ता कहँ मरहम सरिस यह तुव दरसन नर-राव ।२८
कुँअर कहाँ हम लेहिं तोहिं ठौर न कहूँ लखाय ।
दृग-मग ह्वै हमरे हिय बैठहु प्रिय तुम आय ।२९
कुँअर कहा आदर करैं देहिं कहा उपहार ।
तुव मुख ससि आगे लसत तृन-सम सब संसार ।३०
पै केवल अति सुद्ध जिय कहि यह देहिं असीस ।
सानुज-माता-सहित तुम जीओ कोटि बरीस ।३१
जब लौं बानी वेद की जब लौं जग को जाल ।
जब लौं नभ ससि-सूर अरु तारारन की माल ।३२
जब लौं गंगा-जमुन-जल जब लौं भर्यौ नदीस ।
जब लौं कवि कविता सुथित जब लौं भुव अहि-सीस ।३३

* सन् १८७५ में प्रिंस आफ वेल्स सम्राट एडवर्ड सप्तम के आगमन पर लिखी गयी यह कविता आषाढ़ सं. १९३३ की बाला बोधिनी में छपी थी । इसमें १९वें दोहे के बाद के छह दोहे हरिश्चंद्र कला में भी हैं ।

जब लौं सुमन सुवास पर मत्त भँवर संचार ।
जब लौं कामिनि-नयन पर होहिं रसिक बलिहार ।३४
जब लौं तत्व सबै मिले गठे सबै परमानु ।
जब लौं ईश्वर अस्तिता तब लौं तुम नरभानु ।३५
जिओ अचल लहि राज-सुख नीरुज बिना विवाद ।
उदय अस्त लौं मेदिनी पालहु लहि सुख स्वाद ।३६
पहरू कोउ न लखि परै होय अदालत बंद ।
ऐसो निरुपद्रव करौ राज-कुँअर सुख-कंद ।३७
लोहा गृह के काम मैं कलह दंपती माहिं ।
बाद बुधनही मैं सदा तुव राजत रहि जाहिं ।३८
जाति एक सब नरन की जदपि बिबिध व्यौहार ।
तुमरे राजत लखि परै नेही सब संसार ।३९
रसना इक आसा अमित कहँ लौं देहिं असीस ।
रहौ सदा तुम छत्र ते होइ हमारे सीस ।४०
भ्रात मात सह सुतन जुत प्रिया सहित जुवराज ।
जिओ जिओ जुग जुग जिओ भोगौ सब सुख-साज ।४१

भारत-भिक्षा*

अहो आज का सुन परत भारत भूमि मँझार ।
चहुँ ओर आनंद-धुनि कहा होत बहु बार ।१
बृटिश सुशासित भूमि मैं आनँद उमगे जात ।
सबै कहत जय आज क्यौं यह नहिं जान्यो जात ।२
बृटिश-राज-चिन्हन सजी नगरन-अटा अटारि ।
धुजा-पताका फरहरहिं सहसन आज सँवारि ।३
गंग-जमुन-गोदावरी-पथ ह्वै ह्वै बहु जान ।
स्यौं सब आवत हैं सजे देव-विमानसमान ।४
घर बाहर इत उत सबै सजे वसन मनि साज ।
चातक और चकोर से खरे अरे क्यौं आज ।५

शाखा

आवत मारत आज कुँअर बृटनहि सुखदानी ।
सुनहु न गगनहिं भेदि होत जै जै धुनि-बानी ।६
जै जै जै बिजयिनी जयति भारत-महरानी ।
जै राजागन-मुकुट-मनी धन-बल-गुन खानी ।७
जाकी कृपा-कटाक्ष चहत सिगरे राजा-गन ।
जा पद भारत-भुवन लुठत ह्वै बस कंपित मन ।८
आवत सोइ बृटन कुँअर जल-पथ सुनि एहि छन ।
ठाढ़ो भारत मग में निखरत प्रेम पूलक तन ।९

पूर्न कोरस

मृदंगादि बाजे बजाओ बजाओ ।
सितारादि यंत्रै सुनाओ सुनाओ ।
अरे ताल दै लै बढ़ाओ बढ़ाओ ।
बधाई सबै धाइ गाओ सुनाओ ।
कहाँ हैं रबानी मृदंगी सितारी ।
कहाँ हैं गवैये कहाँ नृत्यकारी ।
कहाँ आज मौलाबकस वाजपेई ।
कहाँ आज हैं क्षेत्रमोहन गुसाईं ।
कहाँ भाट नाटकपती स्वाँगधारी ।
कहाँ नट गुनी चट करैं सब तयारी ।
कहो रागिनी आज भारी जमाव ।
मिले एक लै मैं सु-गावैं बजावैं ।
कहाँ भाँड़ कत्थक छिपे हैं बुहलाओ ।
मुबारक कहाओ बधाई गवाओ ।
कहाँ हैं सबै सुंदरी बार-नारी ।
कहो पेशवाजैं सजैं आज भारी ।
लगै दून मैं आज आवाज प्यारी ।
सरगी बजै राग रंगी सँवारी ।
छिड़ै भैरवी सारँगौ सिंध काफी ।

* मई-सिम्बर १८७५ के हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के सम्मिलित अंकों में छपी इस कविता को उस पत्र के सम्पादक ने हेम चन्द्र बनर्जी की बंगला कविता की छापा पर लिखी कविता माना है । इसके बहुत से पद विजयिनी-विजय वैजयंती भारतवीरत्व में आ गये हैं जिन्हें यहाँ नहीं दिया गया है ।

जमै जोगिया पूरिया औ धनाश्री ।
रहै कान्हरा देस सोरठ बिहागा ।
कलिंगा किदारा परज आदि रागा ।
मिलै तान लै राग-रंगै जमाओ ।
मिले मान संगीत भावै दिखाओ ।
रहै लाग-डाँटो उरप-तिर्प संगा ।
रहै तत्थेई तत्थेई तृत्य-रंगा ।
दिखाओ कुमारै कला आज धाए ।
बड़े भाग सों पाहुने गेह आए ।१०

आरम्भ

कहाँ सबै राजा कुंवर और अमीर नवाब ।
आज राज-दरबार में हाजिर होहु सिताब ।११
सिरन झुकाइ सलाम करि मुजरा करहु जुहारि ।
जटितहु जूतन त्यागि कै स्वच्छ बूट पग धारि ।१२
जानु सुपानि नावाइ कै पद पै धरि उसनीस ।
चूमि चूमि बर अभय-प्रद कर जुग नावहु सीस ।१३
परम माक्ष फल राज-पद-परसन जीवन माहिं ।
बृटन-देवता राज-सुत-पद परसहु चित चाहि ।१४
कित हुलकर कित सेंधिया कित बेगम भूपाल ।
कित काशीपति कित रहे सिक्ख-राज पटियाल ।१५
कित लायल ईजानगर मानी नृप मेवार ।
कितै जोधपुर जैपुरी त्रावंकोर कछार ।१६
जाट भरतपुर धौलपूर राना कित तुम जाम ।
कित मुहम्मदिन के पती दक्षिन-राज निजाम ।१७
धाओ धाओ बेग सब पहिरि पहिरि पौसाक ।
पगरी मोती-माल गल साजि राजि इक ताक ।१८
गले बाँधि इस्टार सब जटित हीर मनि कोर ।
धावहु धावहु दौरि कै कलकत्ता की ओर ।१९
चढ़ि तुरंत बग्गीन पर धावहु पाछे लागि ।
उडुपति संग उडुगन-सरिस नृप सुख सोभा पागि ।२०
राज-भेंट सबही करौ अहो अमीर नवाब ।
हाजिर ह्वै झुकि झुकि करौ सबै सलाम अदाब ।२१

शाखा

राजसिंह छूटे सबै करि निज डेर उजार ।
सेवत हित नृप बर कुँअर धाये बाँधि कतार ।२२
तजि अफगानिस्तान को धाये पुष्ट पठान ।
हिमगिरि को दै पीठ किय कश्मीरेस पयान ।२३
नाभा पटियाला अमृत-सर जम्बू अस्थान ।
कच्छ सिंधु गुजरात मेवाड़रु राजपुतान ।२४
कोल्हापुर ईजानगर काशी अरु इंदौर ।
धाए नृप एक साथ सब करि सूनो निज ठौर ।२५
लखि कुल-दीपक राज-सुत धाए भूप-पतंग ।
रुके न गिरिवर नगर नद समुद जमुन जल गग ।२६
कहाँ पांडु जिन हस्तिनापुर मधि कीनौ जाग ।
राजसूय साँची लखैं बृटन-रचित बल आग ।२७

पूर्न कोरस

अति सुंदर मोहनी सजायो ।
आजु लगत कलकत्ता सुहायो ।
द्वार द्वार पर बंदन-माला ।
रँग रँग बसन फूल-दल-जाला ।२८
कदली खंभ पात थरहरहीं ।
पद भय हिल हिलि मनु मन हरहीं ।
फर फर फहरत धुजा पताका ।
चम चम चमकत कलस बलाका ।२९
अटा अटारी बाहर मोखन ।
छज्जै छातन गोख झरोखन ।
दीपहि दीपक परत लखाई ।
मनु नभ तें तारावलि आई ।३०
दिन को रवि अकास लखि लज्जित ।
मनहुँ हीर गिरि खंडव सज्जित ।
छुटत अतसबाजी रँग-रंगी ।
गगन प्रकट मनु अनल फिरंगी ।३१
नव तारे प्रगटहिं नसि जाहीं ।
उड़त बान इमि गगन लखाहीं ।
गंज सितारनि की छबि भारी ।
नभ मनु तेजोमय फुलवारी ।३२
धन कलकत्ता कलि-रजधानी ।
जेहि लखि कै सुरपुरी लजानी ।
चलत कुँअर चढ़ि चपल तुरंगनि ।
सँग सोभित दल बल चतुरंगनि ।३३
नृप-गन धावत पाछे पाछे ।
अश्व चढ़े मनि काछे आछे ।
ताजन पर कलँगी थरहरई ।
नृपगन दल दल सोभा करई ।३४
चलहिं नगर-दरसन हित धाई ।
झमक झमक बाजने बजाई ।
बजत बृटिस भेरी घहराई ।
कादर मन सुनि-सुनि थहराई ।३५
रूल बृटानिय रूल दि बेबस ।
ताल तरंग बजत अति रन रस ।

आरंभ

उठहु उठहु भारत-जननि लेहु कुँअर भरि गोद ।

आज जगे तुव भाग फिर मानहुँ मन अति मोद ।३६
करि आदर मृदु बैन कहि बहु बिधि देहु असीस ।
चिर दिन लौं सिसु-मुख
लख्यौ नहिं तुम सोइ अवनीस।३७
सेज छाँड़ि माता उठहु उदित अरुन तुव देस ।
मिटे अमंगल तिमिर सब राजकुमार-प्रवेस ।३८
मति रोओ रोओ न तुम जननी ब्याकुल होय ।
उठहु उठहु धीरज धरहु लेहु कुँअर मुख जोय ।३९
तुम दुखिया बहु दिनन की सदा अन्य आधीन ।
सदा और के आसरे रहो दीन मन खीन ।४०
तुम अबला हत-भागिनी सदा सनाथ दयाल ।
जोग भजन भूली रहत सूखे जिय की बाल ।४१
सो दुख तुमरो देखि महरानी करुना धारि ।
निज प्रानोपम पुत्र तुव ढिग पठयो मनुहारि ।४२
रिपु-पद के बहु चिन्ह सब कुँअरहिं देहु गिनाय ।
काढ़ि करेजो आपनो देहु न सुतहि दिखाय ।४३
सदा अनादर जो सह्यो सह्यो कठिन रिपु-लात ।
सो छत देहु दिखाय अब करहु कुँअर सों बात ।४४
उठहु फेर भारत जननि ह्वै प्रसन्न इक बार ।
लेहु गोद करि नृप कुँअर भयो प्रात उँजियार ।४५

शाखा

सुनत सेज तजि भारत माई ।
उठि तुरंतहि जिय अकुलाई ।
निविड़ केस कोउ कर निरुआरी ।
पीत बदन की क्रांति पसारी ।४६
भरे नेत्र अँसुअन जल-धारा ।
लै उसास यह बचन उचारा ।
क्यों आवत इत नृपति-कुमारा ।
भारत में छायो अँधियारा ।४७
कहा यहाँ अब लखिबे जोगू ।
अब नाहिंन इत वे सब लोगू ।
जिन के भय कंपत संसारा ।
सब जग जिन को तेज पसारा ।४८
रहे शास्त्र के जब आलोचन ।
रहे सबै जब इत षट-दरसन ।
भारत बिधि बिद्या बहु जोगू ।
नहिं अब इत केवल है सोगू ।४९
सो अमूल्य अब लोग इतै नहिं ।
कहा कुँअर लखिहै भारत महिं ।
रहे जबै मनि क्रीट सकुंडल ।
रह्यो दंड जब प्रबल अखंडल ।५०
रह्यो रुधिर जब आरज-सीसा ।
ज्वलित अनल समान अवनीसा ।
साहस बल इन सम कोउ नाहीं ।
जबै रह्यौ महि-मंडल माहीं ।५१
जब मोहिं ये कहि जननि पुकारै ।
दसहू दिसि धुनि गरज न पारै ।
तब मैं रही जगत की माता ।
अब मेरी जग मैं यह बाता ।५२
लखिहैं का कुमार अब धाई ।
गोद बैठि हँसिहैं इत आई ।
जब पुकारिहै कहि मोहिं माता ।
आनँद सों भरिहौं सब गाता ।५३
युरप अमरिका इहिहि सिहाहीं ।
भारत-भाग-सरिस कोउ नाहीं ।
पूर्व सखी मम रोम पिआरी ।
मरिकै बाँन्ति उठीं फिरि बारी ।५४
ग्रीसहु पुनि निज प्रानन पायो ।
हाय अकेली हमहिं बनायो ।
भग्न दंड कंपित कर-धारी ।
कब लौं ठाढ़ी रहौं दुखारी ।५५
भग्न सकल भूषन तन साजी ।
दास-जनिन कहवैहौं लाजी ।
मेरे भागन जो तन हारे ।
थाप्यो पद मम सीस उधारे ।५६

आरंभ

सुनि बोली भारत-जननि आये कहा कुमार ।
आये किन आओ निकट पुत्र जननि-अँकवार ।५७
रहत निरंतर अंतरहि कठिन पराजय-पीर ।
आवो सुत मम हृदय लगि सीतल करहु सरीर ।५८
लेहु माय कहि मोहिं पुकारी ।
सोइ भावन जिमि निज महतारी ।
सत संबत लौं रह्यौं अधूरी ।
करौ न आज भाव सोइ पूरी ।५९
अतिहि अकिंचन भारत-बासा ।
अतिहि छीन हिंदुन की आसा ।
भूलि बृटिश बल धारि सनेहू ।
भारत-सुतन गोद करि लेहू ।६०
कहि कृष्ण इन्हें मति तुच्छ करौ ।
नहि कीटहु तुच्छ बिचार धरौ ।
इनहूँ कहँ जीवन देह दया ।

इनहूँ कहँ ज्ञान सनेह मया ।६१
इनहूँ कहँ लाज तृषा ममता ।
इनहूँ कहँ क्रोध क्षुधा समता ।
इनहूँ तन सोनित हाड़ तुचा ।
इनहूँ कहँ आखिर ईस रचा ।६२

कबहुँ कबहुँ अबहुँ सोई उदय होत चित आस ।
इनसों करहु न कुँअर तुम कबहूँ जीय उदास ।६३
सोई परम पवित्र भुव आये अहो कुमार ।
ताहि न समझहु तुच्छ तुम सो संबंध बिचार ।६४
पालत पच्छिहु जो कुँअर करि पिंजरन महँ बंद ।
ताहू कहँ सुख देत नर जामें रहै अनंद ।६५
सोई सुख लहि घरहु में गावत बिबिध बिहंग ।
जतनहिं सों बस होत हैं बन के मत्त मतंग ।६६
कोकिल-स्वर सब जग सुखी बायस-शब्द उदास ।
यह जग कों कह देत है वह कह लेत निकास ।६७
केवल यह भाखै मधुर वह कठोर रव नित्त ।
तासों जग चाहै सबै मधुर सरल बस चित्त ।६८

हम तुव जननी की निज दासी ।
दासी-सुत मम भूमि-निवासी ।
तिनको सब दुख कुँअर छुड़ावो ।
दासी की सब आस पुरावो ।६९
मेटहु भय कर अभय दिखाई ।
हरहु बिपति बच मधुर सुनाई ।
बृटिश-सिंह के बदन कराला ।
लखि न सकत भयभीत भुआला ।७०

फाटत हिय जिय थर थर कंपत ।
तेज देखिकै दृग जुग झंपत ।
कहि न सकत मन को दुख भारी ।
झरत नैन जुग अबिरल बारी ।७१
सौदागर मेलुआ जहाजी ।
गोरा धरमपती जग काजी ।
सबहिं राज सम पूजन करहीं ।
सबको मुख देखत ही डरहीं ।७२
तेज चंड सो हरहु कुमारा ।
पोंछहु मम दुख को जल-धारा ।
लै भारत-बासी मम सुत ढिग ।
बैठहु छिनक लखहु छबि भरि दृग ।७३

लखहु लखहु सुत आनँद भारी ।
कैसो छायो भुवन मँझारी ।
तुमहिं देखि सब पुलकित गाता ।
गद्गद गल कहि सकहि न बाता ।७४

कहहि धन्य यह रैन धन्य दिन ।
धन धन घरी आज धन पल छिन ।
प्रेम-अश्रु-जल बहहि नैन तें ।
जिअहु कुँअर सब कहहिं बैन तें ।७५
फिरहु कुँअर जब जननी पासा ।
कहियो पूरहिं मम मन-आसा ।
मिथ्या नहिं कछु याके माहीं ।
राजभक्त भारत-सम नाहीं ।७६

लेहिं प्रात उठिकै तुव नामा ।
करहिं चित्र तव देखि प्रनामा ।
तुमरे सुख सों सब सुख पावैं ।
छल तजि सदा तुवहि गुग गावैं ।७७

यह कहि भारत नैन भरि आँचर बदन छिपाय ।
दै असीस जिय सों नृपहि भई अदृश्य सुहाय ।७८
बजे बृटिश डंका सघन गहगह शब्द अपार ।
जय रानी विक्टोरिया जै जुवराज-कुमार ।७९

पूर्ण कोरस

उदयो भानु है आजु या देस माहीं ।
रह्यो दु:ख को लेसहु सेस नाहीं ।
महाराज अलवर्त्त या भूमि आये ।
अरे लोग धावो बजावो बधाये ।८०

छुटीं तोप पहरीं धुजा गरजे गहकि निसान ।
भुव-मंडल खलभल भयो राजकुमार-प्रयान ।८१

श्री पंचमी

फरवरी १८७५ की 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित

श्री पंचमी प्रथम बिहार-दिन मदन महोत्सव भारी ।
भरन चलीं सब मिलि पीतम कों घर घर तें व्रज-नारी ।
नव-सत साज-सिंगार सजे कंचुकि सुदृढ़ सँवारी ।
लहँकति तन-दुति नवजोबन तें तापै तनसुख सारी ।
गावत गीत उमगि ऊँचे सुर मनहुं मदन-मतवारी ।
गलिन गलिन प्रति पायल झमकति
दमकति तन दुति-न्यारी ।
मदन दुहाई फेरति डोलै बिरद बसंत पुकारी ।
सजे सैन सी उमड़ी आवहिं जीतन कों गिरधारी ।
ललिता, चंद्रभगा, चंद्रावलि, ससिरेखा सुकुमारी ।
स्यामा, भामा, बाम, बिसाखा, चम्पक-ललिका प्यारी ।
सब मधि राधा सुछबि अगाधा श्रीबृषभानु-दुलारी ।
कर मैं लै चम्पक तबला सी सोहत प्रान-पियारी ।
जसुमति फगुआ देत सबनि कों भूषन बसन सँवारी ।
सो सुख सोभा निरखि होत तहँ 'हरीचंद' बलिहारी ।
अंबर उमत अबिर अरगजा चलत रंग पिचकारी ।
डफ बाजत गाजत मनु भेरी जीति जगत-गति सारी ।
बहुँचीं नंद-भवन सब मिलि कै नव नव जोबनवारी ।
निरख्यौ मुख ससि प्रान-पिया को दीनो तन-मन वारी ।
कियो खेल आरंभ प्रथमहीं पिय सों भानु-कुमारी ।
केसर छिरकि चंद मुख माड़यो आम-मौर सिर धारी ।
तिय के भरत खेल माच्यौ मधि नर-नारिन के भारी ।
उड़यो रंग केसर चहुं दिसि तें भइ अबीर अँधियारी ।
निलज भरत अंकम आपसु मैं देत उचारी गारी ।
हो हो करि धावत गावत मिलि देत परस्पर तारी ।

अथ श्री सर्वोत्तम-स्तोत्र
(भाषा)

लीथों में छपे इसके प्रथम संस्करण की सूचना 'कवि वचन सुधा' के सं. १९३४ सन् १८७७ । के अंक द्वारा दी गयी थी ।

जयति आनंद रूप परमानंद कृष्णमुख
कृपानिधि दैवि उद्धारकारी ।
स्मृति मात्र सकल आरतिहरन गूढ़
गुन भागवत अथ लीनो बिचारी ।१
एक साकार परब्रह्म स्थापन-करन
चारहु वेद के पारगामी ।
हरन मायावाद बहुवाद नास करि
भक्ति-पथ-कमल को दिवस स्वामी ।२
शूद्र ललना लोक उद्धरन सामर्थ
गोपिकाधीश कृत अंगिकारी ।
बल्लभी कृत मनुज अंगिकृत जनन
पै धरन मर्य्याद बहु करुनधारी ।३
जगत-व्यापक दान करत सब वस्तु को
चरित जाके सकल अति उदारा ।
आसुरी जनन मोहन करन हेत यह
व्याज सों प्रकृति इव रूप धारा ।४
अगिनि अवतार बल्लभ नाम शुभ रूप
सदा सज्जनन-हित करत जानी ।
लोक-शिक्षा-करन कृष्ण की भक्ति करि ।
निखिल जग इष्ट के आपु दानी ।५

सर्व लक्षननि-संपन्न श्रीकृष्ण को
ज्ञान प्रभु देत गुरु रूप धारी ।
सदा सानद तुंदिल पद्मदल-सरिस
नयन जुग जगत संतापहारी ।६
कृपा करि दृष्टि की वृष्टि बर्धित किए
दासिका दास पति परम प्यारे ।
रोग द्रुग करन मुरछित भक्ति द्वेषिगन
भक्तजन चरन सेवित दुलारे ।७
भक्तजन सुख-सेब्य अति दुराराध्य
दुरलभ कुंज पद अग्र तेजधारी ।
वाक्य रस-करन पूरन सकल जनन
मन भागवत-पय-सिंधु-मथनकारी ।८
सार ताको जनि रास बनितान के
भाव सों सकल पूरित सुमेसा ।
होत सनमुख देत प्रेम श्रीकृष्ण को
अविमुक्ति देत लखि बहत देसा ।९
रास लीकैक तात्पर्य्य-मम रूप मुनि
देत करि कृपा बहु कथा ताकी ।
त्यागि सब एक अनुभव करहु बिरह को
यहै उपदेस बानी सु जाकी ।१०
भक्ति आचार उपदेस नित करत पुनि
कर्म मारग प्रवर्त्तन सु कीनो ।
सदा यागादि मैं भक्ति मारग एक
करहु साधनहि उपदेस दीनो ।११
पूर्ण आनंद-माय सदा पूरन काम ।
वाक्य-प्रति निखिल जग विबुध भूपा ।
कृष्ण के सहस शुभ नाम निज मुख कहे
भक्ति पर एक जाको सरूपा ।१२
भक्ति आचार उपदेस हित शास्त्र के
वाक्य नाना निरुपन सु कीने ।
भक्त-जन सदा घेरे रहत जिनन निज
प्रेम-हित प्रान-प्रन त्यागि दीने ।१३
निज दास अर्थ-साधन अनेकन किए
जदपि प्रभु आप सब शक्तिकारी ।
एक भुव लोक प्रचलित करन
भक्तिपथ कियो निज वंश पितु रूप धारी ।१४
निज विमल वंस में परम माहात्म्य प्रभु
धर्‌यो सब जगत संदेहहारी ।
पतिव्रता पति परलौकिकैहिक दान
करन अधिकार जन को बिचारी ।१५

गूढ़ मति हृदय निज अन्य अनभक्त कों
सकल आशय आपु कहत प्यारे ।
जग उपासन आदि मारगादीन मैं
मुग्ध जन-मोह के हरनवारे ।१६
सकल मारगन सों भक्ति मारग वीच
अति विलक्षण सु अनुभवहि मानै ।
पृथक कहि शरण को मार्ग उपदेस करि
कृष्ण के हृदय की बात जानें ।१७
प्रति क्षण गुप्त लीला नव निकुंज को
भरि रही चित्त मैं सदा जाके ।
सोइ कथा स्मरण करि चित्त आक्षिप्तवत
भूलि गइ सकल सुधि आये ताके ।१८
ब्रज जिय व्रजवास अतिहि प्रिय पुष्टि
लीला-करन सदा एकांत-चारी ।
भक्तजन सकल इच्छा सुपूरन-करन
अतिहि अज्ञात लीला बिहारी ।१९
अतिहि मोहन निरासक्त जग भक्त
मात्रासक्त पतित पावन कहाई ।
जस-गान करत जे भक्त तिनके
हृदय कमल मैं वास जाको सदाई ।२०
स्वच्छ पीयूष लहरी सदृस निज जसनि
तुच्छ करि अन्य रस दिये बहाई ।
पर रूप कृष्ण-लीला अमृत रस
अखिल जन सींचि प्रेम मैं दिए भिंजाई ।२१
सदा उत्साह गिरिराज के वास में
सोई लीला प्रेम-पूर गाता ।
यज्ञ हवि हरत पुनि यज्ञ आपुहि करत
अति बिसद चारहू फल के दाता ।२२
सुभ प्रतिज्ञा सत्य जगत उद्धार की
प्रकृति सों दूर बहु नीति-ज्ञाता ।
कीर्ति वर्द्धन करी सूत्र को भाष्य करि
कृष्ण इक तत्व के ज्ञान-दाता ।२३
तूल मायावाद दहन-हित अग्नि वपु
ब्रह्म को वाद जग प्रगट कीनो ।
निखिल प्राकृत रहित गुनन भूषित सदा
मंद मुसुकानि मन चोरि लीनो ।२४
तीनहूँ लोक भूषन भूमि भाग्य वर
सहज सुंदर रूप बेद-सारं ।
सदा सब भक्त पार्थित चरन कमल
रज धन रूप नौमि लक्ष्मण-कुमारं ।२५

एक सत आठ ए नाम अभिराम नित
प्रेम सों जे जगत माँहि गावैं ।
परम दुरलभ कृष्ण-अधर-अमृत-पान
स्वाद करि सुलभ ते सदा पावैं ।१६

नाम आनंदनिधि वल्लभाधीश को
विट्ठलेश्वर प्रकट करि ।
छोड़ि साधन सकल एक यह गाइके
परम संतोष 'हरिचंद' पायो

इति श्री मद्विट्ठलनाथ-चरण-पंकज-पराग-लेपना-
पसारितनिखिलकल्मष हरिश्चन्द्रकृत
भाषान्तरित कीर्तनस्वरूप श्री सर्वोत्तम स्तोत्र
समाप्तिमगमत् ।।

निवेदन-पंचक

वर्षा न होने पर सोमवार आसाढ़ शुक्ल १२ सं. १९३३(सन् १८८६) की'कवि वचन सुधा' में यह रचना प्रकाशित की गयी थी । इसके अगले अंक में सूचना है कि जिस दिन यह कविता प्रकाशित हुई उसी दिन वर्षा हुई ।

श्याम घन अब तौ जीवन देहु ।
दुसह दुखद दावानल ग्रीषम सों बचाइ जग लेहु ।
तृनावर्त नित धूर उड़ावत बरसौ कह ना मेहु ।
'हरीचंद' जिय तपन मिटाओ निज जन पैं करि नेहु ।१

श्याम घन निज छबि देहु दिखाय ।
नवल सरस तन साँवल चपल पीताम्बर चमकाय ।
मुक्तमाल बगजाल मनोहर द्रुगन देहु बरसाय ।
श्रवन सुखद गरजनि बंसी धुनि अब तौ देहु सुनाय ।
ताप पाप सब जग को नासौ नेह-मेह बरसाय ।
'हरीचंद' पिय द्रवहु दया करि करुनानिधि ब्रजराय ।२

श्याम घन अब तौ बरसहु पानी ।
दुखित सबै नर नारी खग मृग कहत दीन सम बानी ।
तपत प्रचण्ड सूर निरदय ह्वै द्रवहु हाय झुरानी ।
'हरीचंद' जग दुखित देखि कै द्रवहु आपुनो जानी ।३

कितै बरसाने-वारी राधा ।
हरहु न जल बरसाइ जगत की पाप-ताप-मय बाधा ।
कठिन निदाघ लता वीरुध तृन पसु पंछी तन दाधा ।
चातक से सब नभ दिसि हेरत जीवन बरसन साधा ।
तुम करुनानिधि जन-हितकारिनि-दया-समुद्र अगाधा।
'हरीचंद' यही तें सब तजि तुव पद-पदुम अराधा ।४

जगत की करनी पै मति जैये ।
करिकै दया दयानिधि माधो अब तौ जल बरसैये ।
देखि दुखी जग-जीव श्याम घन करि करुना अब ऐये।
'हरीचंद' निज बिरद याद करि सब को जीव बचैये ।५

सर्व लक्षननि-संपन्न श्रीकृष्ण को
ज्ञान प्रभु देत गुरु रूप धारी ।
सदा सानद तुंदिल पद्मदल-सरिस
नयन जुग जगत संतापहारी ।६
कृपा करि दृष्टि की वृष्टि बर्धित किए
दासिका दास पति परम प्यारे ।
रोग दृग करन मुरछित भक्ति द्वेषिगन
भक्तजन चरन सेवित दुलारे ।७
भक्तजन सुख-सेव्य अति दुराराध्य
दुरलभ कुंज पद अग्र तेजधारी ।
वाक्य रस-करन पूरन सकल जनन
मन भागवत-पय-सिंधु-मथनकारी ।८
सार ताको जनि रास बनितान के
भाव सों सकल पूरित सुभेसा ।
होत सनमुख देत प्रेम श्रीकृष्ण को
अविमुक्ति देत लखि बहत देसा ।९
रास लीकैक तात्पर्य्य-मम रूप मुनि
देत करि कृपा बहु कथा ताकी ।
त्यागि सब एक अनुभव करहु बिरह को
यहै उपदेस बानी सु जाकी ।१०
भक्ति आचार उपदेस नित करत पुनि
कर्म मारग प्रवर्त्तन सु कीनो ।
सदा यागादि मैं भक्ति मारग एक
करहु साधनहि उपदेस दीनो ।११
पूर्ण आनंद-माय सदा पूरन काम ।
वाक्य-प्रति निखिल जग विबुध भूपा ।
कृष्ण के सहस शुभ नाम निज मुख कहे
भक्ति पर एक जाको सरूपा ।१२
भक्ति आचार उपदेस हित शास्त्र के
वाक्य नाना निरुपन सु कीने ।
भक्त-जन सदा घेरे रहत जिनन निज
प्रेम-हित प्रान-प्रन त्यागि दीने ।१३
निज दास अर्थ-साधन अनेकन किए
जदपि प्रभु आप सब शक्तिकारी ।
एक भुव लोक प्रचलित करन
भक्तिपथ कियो निज वंश पितु रूप धारी ।१४
निज विमल वंस में परम माहात्म्य प्रभु
धर्‌यो सब जगत संदेहहारी ।
पतिव्रता पति परलौकिकैहिक दान
करन अधिकार जन को बिचारी ।१५

गूढ़ मति हृदय निज अन्य अनभक्त कों
सकल आशय आपु कहत प्यारे ।
जग उपासन आदि मारगादीन मैं
मुग्ध जन-मोह के हरनवारे ।१६
सकल मारगन सों भक्ति मारग वीच
अति विलक्षण सु अनुभवहि मानै ।
पृथक कहि शरण को मार्ग उपदेस करि
कृष्ण के हृदय की बात जानैं ।१७
प्रति क्षण गुप्त लीला नव निकुंज को
भरि रही चित्त मैं सदा जाके ।
सोइ कथा स्मरण करि चित्त आक्षिप्तवत
भूलि गइ सकल सुधि आये ताके ।१८
व्रज जिय व्रजवास अतिहि प्रिय पुष्टि
लीला-करन सदा एकांत-चारी ।
भक्तजन सकल इच्छा सुपूरन-करन
अतिहि अज्ञात लीला बिहारी ।१९
अतिहि मोहन निरासक्त जग भक्त
मात्रासक्त पतित पावन कहाई ।
जस-गान करत जे भक्त तिनके
हृदय कमल मैं वास जाको सदाई ।२०
स्वच्छ पीयूष लहरी सदृस निज जसनि
तुच्छ करि अन्य रस दिये बहाई ।
पर रूप कृष्ण-लीला अमृत रस
अखिल जन सींचि प्रेम मैं दिए भिंजाई ।२१
सदा उत्साह गिरिराज के वास में
सोई लीला प्रेम-पूर गाता ।
यज्ञ हवि हरत पुनि यज्ञ आपुहि करत
अति बिसद चारहू फल के दाता ।२२
सुभ प्रतिज्ञा सत्य जगत उद्धार की
प्रकृति सों दूर बहु नीति-ज्ञाता ।
कीर्ति वर्द्धन करी सूत्र को भाष्य करि
कृष्ण इक तत्व के ज्ञान-दाता ।२३
तूल मायावाद दहन-हित अग्नि वपु
ब्रह्म को वाद जग प्रगट कीनो ।
निखिल प्राकृत रहित गुनन भूषित सदा
मंद मुसुकानि मन चोरि लीनो ।२४
तीनहूँ लोक भूषन भूमि भाग्य वर
सहज सुंदर रूप बेद-सारं ।
सदा सब भक्त पार्थित चरन कमल
रज धन रूप नौमि लक्ष्मण-कुमारं ।२५

एक सत आठ ए नाम अभिराम नित
प्रेम सों जे जगत माँहि गावैं ।
परम दुरलभ कृष्ण-अधर-अमृत-पान
स्वाद करि सुलभ ते सदा पावैं ।१६

नाम आनंदनिधि वल्लभाधीश को
विट्ठलेश्वर प्रकट करि दिखायो ।
छोड़ि साधन सकल एक यह गाइके
परम संतोष 'हरिचंद' पायो ।२७

इति श्री मद्विट्ठलनाथ-चरण-पंकज-पराग-लेपना-
पसारितनिखिलकल्मष हरिश्चन्द्रकृत
भाषान्तरित कीर्तनस्वरूप श्री सर्वोत्तम स्तोत्रं
समाप्तिमगमत् ।।

निवेदन-पंचक

वर्षा न होने पर सोमवार आसाढ़ शुक्ल १२ सं. १९३३(सन् १८८६) की 'कवि वचन सुधा' में यह रचना प्रकाशित की गयी थी । इसके अगले अंक में सूचना है कि जिस दिन यह कविता प्रकाशित हुई उसी दिन वर्षा हुई ।

श्याम घन अब तौ जीवन देहु ।
दुसह दुखद दावानल ग्रीषम सों बचाइ जग लेहु ।
तृनावर्त नित धूर उड़ावत बरसौ कह ना मेहु ।
'हरीचंद' जिय तपन मिटाओ निज जन पैं करि नेहु ।१

श्याम घन निज छबि देहु दिखाय ।
नवल सरस तन साँवल चपल पीताम्बर चमकाय ।
मुक्तमाल बगजाल मनोहर दृगन देहु बरसाय ।
श्रवन सुखद गरजनि बंसी धुनि अब तौ देहु सुनाय ।
ताप पाप सब जग को नासौ नेह-मेह बरसाय ।
'हरीचंद' पिय द्रवहु दया करि करुनानिधि ब्रजराय ।२

श्याम घन अब तौ बरसहु पानी ।
दुखित सबै नर नारी खग मृग कहत दीन सम बानी ।
तपत प्रचण्ड सूर निरदय ह्वै द्रवहु हाय भुरानी ।
'हरीचंद' जग दुखित देखि कै द्रवहु आपुनो जानी ।३

कितै बरसाने-वारी राधा ।
हरहु न जल बरसाइ जगत की पाप-ताप-मय बाधा ।
कठिन निदाघ लता वीरुध तृन पसु पंछी तन दाधा ।
चातक से सब नभ दिसि हेरत जीवन बरसन साधा ।
तुम करुनानिधि जन-हितकारिनि-दया-समुद्र अगाधा।
'हरीचंद' यही तें सब तजि तुव पद-पदुम अराधा ।४

जगत की करनी पै मति जैये ।
करिकै दया दयानिधि माधो अब तौ जल बरसैये ।
देखि दुखी जग-जीव श्याम घन करि करुना अब ऐये।
'हरीचंद' निज बिरद याद करि सब को जीव बचैये ।५

मानसोपायन

अर्थात्

युवराज श्रीप्रिन्स आफ वेल्स के भारतवर्ष में शुभागमन के महोत्सव में हिन्दी, महाराष्ट्री, बंगाली आदि विविध देश भाषा तथा फारसी, अंगरेजी, आदि विदेश भाषा और संस्कृतछन्दों में अनेक कवि पंडित चतुर उत्साही राजभक्त जन निर्मित कविता संग्रह रूपी उपायन।

भारत राजराजेश्वरी नन्दन युवराज

कुमार प्रिंस आफ वेल्स

के चरण कमलों में

संस्कृत भाषादि अनेक कविता ग्रन्थाकार तथा श्रीयुक्त राजकुमार ड्यूक आफ एडिनबरा को सुमनोञ्जलि समर्पण कर्त्ता

हरिश्चन्द्र

समर्पित तथा तद्वारैव संग्रहीत और प्रकाशित।

"रत्नाकरोऽति भवनं गृहिणी च पद्मा देयं किमस्ति भवते जगदीश्वराय ।।
गोपीगृहीतमनसो मनसो स्तिदैन्यम् दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ।।"

पटना— 'खंगविलास'— प्रेस— बांकीपुर।

साहब प्रसाद सिंह ने मुद्रित किया। सन् १८८८

मानसोपायन

अग्रजोपम स्नेह-पूजास्पद प्रिय कुमार,

जब आपसे कुछ भी कहने की इच्छा करते हैं तो चित्त में कैसे विविध भाव उत्पन्न होते हैं। कभी भारतवर्ष के पुरावृत्त के प्रारंभ काल से आज तक जो बड़े बड़े दृश्य यहाँ बीते हैं और जो महायुद्ध, महा शोभा और महा दुर्दशा भारतवर्ष की हुई है, उनके चित्र नेत्र के सामने लिख जाते हैं। कभी हिंदुओं की दशा पर करुणा उत्पन्न होती है, कभी स्नेह कहता है कि हाँ यही अवसर है खूब जी खोल कर जो कुछ हृदय में बहुत काल से भाव और उद्गार संचित है, उनको प्रकाश करो। पर साथ ही राजभक्ति और आपका प्रताप कहता है कि खबरदार हद से आगे न बढ़ना, जो कुछ बिनती करना बड़ी नम्रता और प्रमाण के साथ। इधर नई रोशनी के शिक्षित युवक कहते हैं — 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो'। सुनते सुनते जी थक गया, कोई मस्तिष्क की बात कहो। उधर प्राचीन लोग कहते हैं हमारे यहाँ तो 'सर्व्वदेवमयो नृप :' लिखा ही है जितना बन सके इनका आदर करो। कितने यहाँ के निवासी ऐसे मूढ़ हैं कि इन बातों को अब तक जानते ही नहीं। जानें कहाँ से, हजारों बरस से राज-सुख से वंचित हैं। आज तक ऐसा शुभ संयोग आया ही न था कि आप सा सुखद स्वामी इनके नेत्र-गोचर हो। इसी से तो आप के आगमन से हम लोगों को क्या आनंद हुआ है, वह कौन जान सकता है। प्रिय ! हम सब स्वभावसिद्ध राजभक्त हैं। बिचारे छोटे पद के अंगरेजों को हमारे चित्त की क्या खबर है, ये अपनी ही तीन छटाँक पकाने जानते हैं। अतएव दोनों प्रजा एक-रस नहीं हो जाती ; आप दूर बसे, हमारा जी कोई देखनेवाला नहीं, बस छुट्टी हुई। आपके आगमन के केवल स्मरण से हृदय गद्गद् और नेत्र अश्रुपूर्ण हमीं लोगों के हो जाते हैं और सहज में आप पर प्राण न्योछावर करनेवाले हमीं लोग हैं, क्योंकि राजभक्ति भरतखंड की मिट्टी का सहज गुण और कर्त्तव्य धर्म्म है, पर कोई कलेजा खोल कर देखनेवाला नहीं। जाने दो इन पचड़ों से क्या काम। जब आप का आगमन सुना तभी से आपके यश-रूपी कीर्त्तिस्तंभ को आपके सुभागमन के स्मरणार्थ स्थापन करने की इच्छा थी, पर आधि-व्याधि से वह सुयोग तब न बना। यद्यपि कविता-कलाप तो उसी समय समाचार पत्रों में सूचना देकर एकत्र किया था, परन्तु उनका प्रकाश न भया था सो अब जब कि हम दीनों की अवलंब अंब श्रीमती महारानी ने भारत-राजराजेश्वरी का पद ग्रहण किया और इस महत् महान से भारतवर्ष को अपनी अपार कृपा से सहज कृतकृत्य किया तो इसी शुभ मंगल अवसर पर यह पुस्तक प्रकाश करके हम भी आपके कोमल चरणों

में समर्पित करते हैं, कृपा पूर्वक स्वीकार कीजिये और इसको कविता नहीं वरञ्च अपनी प्रजा के चित्त के पूर्ण उद्गार और समुच्छ्वास समझिए। जिस तरह आप और अनेक कौतुक देखते हैं, कृपापूर्वक इस प्रजा के चित्तरूपी आतशी शीशे से (क्योंकि वह आपके वियोग और अपनी दुर्दशा से संतप्त हो रहा है) बनी हुई सैरबीन की भी सैर कीजिए और उस परिश्रम को क्षमा कीजिए जो इसके पढ़ने में हो, क्योंकि हमने तो चाहा कि थोड़ा ही लिखें और यह बहुत थोड़ा ही है, पर आपको श्रम देने को बहुत है।

१ जनवरी १८७७ ई.

हरिश्चंद

आओ आओ हे जुवराज।
धन-धन भाग हमारे जागे पूरे सब मन-काज।
कहँ हम कहँ तुम कहँ यह धन दिन कहँ यह सुभ संयोग।
कहँ हतभाग भूमि भारत की कहँ तुम-से नृप लोग।
बहुत दिनन की सूखी, डाढ़ी, दीना भारत भूमि।
लहि है अमृत-वृष्टि सो आनँद तुव पद-पंकज चूमि।
जेहि दलमल्यौ प्रबल दल लैकै बहु बिधि जवन-नरेस।
नास्यौ धरम करम सबहिन के मारि उजार्‌यौ देस।
पृथीराज के मरें लख्यौं नहिं सो सुख कबहूँ नैन।
तरसत प्रजा सुनन को नित हीं निज स्वामी के बैन।
जदपि जवनगन राज कियो इतही बसिकै सह साज।
पै तिनको निज करि नहि जान्यौ कबहूँ हिंदु समाज।
अकबर करिकै बुद्धिमता कछु सो मेट्यौ संदेह।
सोउ दारा सिकोह लौं निबही औरंग डारी खेह।
औरहु औरंगजेब दियो दुख सब बिधि परम नसाय।
निज कुल की मरजाद-मान-बल-बुधिहू साथ घटाय।
ता दिन सों दुरलभ राजा-सुख इनहिं इकंत निवास।
राजभक्ति उत्साहादिक को इन कहँ नहिं अभ्यास।
जदपि राज तुव कुल को इत बहु दिन सों बरसत छेम।
तदपि राज-दरसन बिनु नहिं नृप प्रज माहिं कछु प्रम।
सो अभाव सब तुव आवन सों मिट्यौ आज महराज।
पूर्‌यो प्रेम देस-देसन में प्रमुदित प्रजा-समाज।
आवहु प्रिय नैनन मग बैठो हिय मैं लेहुँ छिपाय।
जाहु न फिरि तजि भारत को तुम हम सों नेह लगाय।

गुजराती भाषा

(गरबी हरिश्चन्द्रकृत)

आवो आवो भारत राज भारत जोवाने।
दई दरसन दुख एनूं जनम जनमनो खोवाने।
ज्यम चन्द्रोदक जोई चकोर जिय राचे रे।
ज्यम नव घन आतां लखी मोर बन नाचे रे।
तेहूँ भारतवासी जनो तवागम चाहे जी।
लखि सुख ससि राजकुमार मुदित मन माहे जी।
आवो आवो प्यारा राजकुमार नई दऊँ जावाने।
वाला भारत मां सुख बसो सनेह बधावाने।
नई भियूं प्रानप्रिय आवे अरज करूँ बोलीने।
देऊँ आज लखाड़ी तमने हिरदो खोलीने।
म्हारा भारतवासी अनाथ नाथ बने नाथे जी।
तेथी कोंवर बिराजे अइज अम्हारे साथे जी।
ज्यारे जवन-जलधि जले पृथीराज-रवि नास्यौ रे।
आजे त्यार थकी नहीं भारत तेज प्रकास्यौ रे।
ते तुव पद-नख-ससि किरिणै बाणो वापो जी।
फरी फर्‌या भाग्य भारत नां आनंद छायो जी।
वाला दीठइयो नव मुखचंद कामणगारा नैणावे।
वारी श्रवण पाइया श्रवणे तव अमृत बैणावे।
आजे उमग्यौ आनँद रस सुख चारे पासे छायो छे।
तेथी तव जस परम पवित्र कविये गायो छे।

मानसोपायन भारतेन्दु द्वारा सम्पादित तथा संग्रह में निम्नलिखित सज्जनों की कविताएं प्रकाशित हुई थीं —

	नाम	भाषा	रचनाएँ
१.	श्रीबद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन	हिंदी	२ सवैया २४ दोहे-सोरठे
२.	श्रीरामराज	''	१९ '' ''
३.	श्रीकल्लू जी	''	३ '' ''
४.	श्रीलीलबिहारी शुक्ल	''	२ कवित्त
५.	श्रीनारायण कवि	''	१ कुंडलिया ७ दोहे सोरठे
६.	श्रीलोकनाथ शर्मा	''	१० '' ''
७.	श्रीकमलाप्रसाद मुं.	''	१ दो. ७ कवित्त, छप्पय, सवैया
८.	श्रीसंतलाल	''	९ छप्पय
९.	श्रीब्रजचंद	''	१० दोहे।
१०.	श्रीसंतोषसिंह शर्मा	पंजाबी	२४ दोहे, ५ कवित्त
११.	श्रीदामोदर शास्त्री	महाराष्ट्री	७ पद

पं. बापूदेव शास्त्री, पं. सखाराम भट्ट, पं. वेंकटेश शास्त्री, पं. विष्णुदत्त, पं. राजाराम गोरे, पं. कैलाशचंद्र शिरोमणि, पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. गदाधर शर्मा मालवीय, पं. आबा शास्त्री हलदीकर, पं. बिहारी शर्मा चतुर्वेदी, पं. गोपाल शर्मा, पं. लक्ष्मीनाथ द्रविड़, पं. रामचंद्र शास्त्री, पं. रामशरण त्रिपाठी, पं. रामचंद्र, पं. अनंतराम भट्ट, पं. चित्रधर मैथिल, पं. गोविंद शर्मा, पं. माधव राम, पं. भवानीप्रसाद, पं. रामप्रसाद मिश्र, पं. गोविन्द मिश्र, पं. श्रीधर मैथिल, पं. शालिग्राम, पं. हरिनाथ द्विवेदी, गोस्वामी रामगोपाल शर्मा, पं. ईश्वरदत्त, पं. दामोदर शास्त्री, पं. रामकृष्ण पटवर्धन, पं. कान्तानाथ भट्ट, पं. शिवनारायण शर्मा ओझा, पं. विश्वनाथ शर्मा, पं. गोविंद भरद्वाज, पं. राम ब्रह्म शास्त्री, पं. विश्वनाथ शास्त्री, पं. परमेश्वर मैथिल, नारायण पं., पं. विजयनाथ, पं. नंदकुमार शर्मा, पं. सोहन शर्मा, पं. भव्व शास्त्री अष्टपुत्र, पं. विश्वेश्वरनाथ, पं. उदयानंद शर्मा, पं. राजेश्वर द्रविड़, पं. केशव शास्त्री पर्वतीय, पं. काशीनाथ भट्ट, पं. बापू शर्मा, पं. शीतला प्रसाद, पं. गणेशदत्त, पं. बस्ती राम द्विवेदी, पं. दामोदर भरद्वाज, पं. शिवकुमार मिश्र पं. गंगाधर शास्त्री तैलंग, पं. रामकृष्ण पटवर्धन, पं. राजाराम, पं. राम मिश्र, पं. सरयूप्रसाद, पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, श्री मकरध्वज सिंह, पं. कन्हैयालाल पांडेय, पं. बेचनराम त्रिपाठी, पं. राधाकृष्ण, पं. कालीप्रसाद शिरोमणि, पं. लक्ष्मीनाथ कवि, पं. माधोदास और पं. राधाकृष्ण ने संस्कृत में श्लोक लिखे थे, जो इकतीस पृष्ठों में छपे थे।

इसके अनंतर सत्रह पृष्ठों में तालिब, अहकर, संतलाल, हसन, नज्म, अमीर और जिया की उर्दू, ४८ पृष्ठों में बँगला, ४ पृष्ठों में अंग्रेजी और ८ पृष्ठों में तैलगू आदि भाषाओं की रचनाएं संगृहीत हैं। सन् १८७६ ई. में प्रिंस ऑफ वेल्स ने काशी में अस्पताल की नींव डाली थी। जिसका नाम किंग एडवर्ड हास्पीटल रखा गया था। यही नाम बदल कर शिवप्रसाद गुप्त अस्पताल हुआ। उस पर तीन तारीखें भी उर्दू में हैं और अमीर ने हरिश्चंद्र की प्रशंसा भी मुसद्दस के अंत में की है।

प्रात: स्मरण स्तोत्र*

रचना-काल-सन्-१८७७

सुमिरौं राधाकृष्ण सकल मंगलमय सुंदर।
सुमिरौं रोहिनि-नंदन रेवतिपति कर हलधर।
जसुदा, कीरति, भानु, नंद, गोपी-समुदाई।
बृन्दावन गोकुल गिरिवर बृज-भूमि सुहाई।
कालिन्दी कलि के कलुष सब हारिनि सुमिरौं प्रेम-बल।
ब्रज गाय बच्छ तृन तरु लता पसु पंछी सुमिरौं सकल।१

श्री गोपीजन-स्मरण

सुमिरौं श्री चंद्रावली मोहन-प्रान पियारी।
श्री ललिता रस-सलिता परम जुगल हितकारी।
रस-शाखा हरिप्रिया विशाखा पूरन-कामा।
परम सभागा चंद्रभगा, रस-धामा भामा।
श्री चंपकलतिका, इंदुलेखा राधा-सहचरि सहित।
श्री स्वामिनि की आठौ सखी नित सुमिरौ करि प्रेम हित।२

अष्ट सखा-छप्पय

श्रीदामा सुखधाम कृष्ण को परम प्रान-प्रिय।
वसुदामा शुभ नाम दाम मनिमय जाके हिय।
सुबल ब्रबल परिहास-रसिक मंगल मधु मंगल।
लोक-सुखद ब्रज-लोक कृष्ण अनुरूप कृष्ण-फल।
अरजुन-पालक गोवत्स बहु ऋषभ बृषभ जूथाधिपति।
हरिजू के आठ सखा सदा सुमिरत मंगल होत अति।३

द्वारिका की लीला स्मरण

धाम द्वारिका कनक-भवन जादव नर-नारी।

* हरिप्रकाश यंत्रालय में पत्राकार छपा था, पर उसमें समय नहीं दिया है। कवि-वचन सुधा (९-४-१८७७) में छपने की सूचना निकली थी।

उद्धव, सात्यकि, नारद, गरुड़, सुदर्शनचारी।
रुक्मिनि, सत्या, भद्रा, शैव्या, नाग्नजिती पुनि।
जांबवती, लक्ष्मणा, मित्रबिंदा, रोहिणि गुनि।
इन आदि नारि सोलह सहस इनके सुत परिवार सह।
प्रद्युम्न पार्थ अनिरुद्ध जुत सुमिरौं दुख-नासन दुसह।४

अथ लीला स्मरण

देवकि के घर जनमि नंद घर में चलि आए।
बकीं तृनावृत अघ बक बछ बृष केसि नसाए।
बाल-रूप कालीमर्दन सुरपति मद-भंजन।
गोचारक रस रास-रमन गोपी-मन-रंजन।
कंसादि नास-कर सकल भुव-भार-उतारन रूप धरि।
सुमिरौं लीलामय नंद-सुत
अटल नित्य ब्रज-बास करि।५

अथ अवतार स्मरण

मत्स कच्छ बारह प्रगट नरहरि बपु बावन।
परशुराम श्री राम लक्ष्मण भरत शत्रुहन।
पुनि बलराम सुबुद्ध कल्कि हरि दस बपु धारी।
चौबिस रूप अनेक कोटि लीला बिस्तारी।
अवतारी हरि श्रीकृष्ण बपु शुद्ध सच्चिदानंदघन।
नित सुमिरत मंगल होत अति
सुख पावत सब भक्त-जन।६

अथ समुदाय स्मरण

गंगा गीता शंख चक्र कौमोदकि पद्मा।
नंदक सारँग बान पास पद्मा-सुख सद्मा।
बंशी माला श्रृग वेत्र पीताम्बरादि कल।
पुण्यधाम हरि वासर बैष्णव धर्म्म बिगत मल।
हरि-प्रेम दास्य विश्वास दृढ़ तिलक छाप माला सुमिरि।
तुलसी हरि-प्रिय-समुदाय भजि
निः नित सुमिरौं उठि प्रात हरि।७

अथ श्री भागवत स्मरण

निखिल निगम को सार दिव्य बहु गुण-गण-भूषित।
आदि अनादि पुरान सरस सब भाँति अदूषित।
शुक मुख भाखित मुक्त कथा परमारथ सोधक।
ब्रह्म-ज्ञानमय सत्यवती-नंदन मन-बोधक।
दस लक्षमन लक्षित पाप-हर द्वादस शाखा सहित पर।
सुमिरौं अष्टादस सहस श्री ग्रंथ भागवत मोह-हर।८

अथ प्राचीन भक्त स्मरण

सुमिरौं शुक नारद शिव अज नर व्यास परासर।
बालमीक पृथु अम्बरीष प्रहलाद पुन्य-कर।
पुण्डरीक भीष्मक शौनक पाण्डव गंगा-सुत।
हनूमान सुग्रीव विभीषन अंगद कपि जुत।
शांडिल्य गर्ग मैत्रेय जय बिजय कुमुद कुमुदाक्ष भजि।
हरि-भक्त सुमिरि मन प्रात उठि
नित प्रथमहि गृह-काज तजि।९

अथ गुरु-परंपरा स्मरण

सुमिरौं श्री गोपीपति पद-पंकज अरुनारे।
श्री शिव नारद व्यास बहुरि शुकदेव पियारे।
विष्णु स्वामि पुनि अरु-अवली सत सप्त सुमिरि मन।
बिल्वमँगल पुनि सुमिरौं थापन निज मत धरि तन।
श्री वल्लभ बिट्ठल भय-हरन पुष्टि-प्रकाशक जग बिमल।
सुमिरौं नित प्रेम-परंपरा
गुरुजन की निज भक्ति-बल।१०

अथ गुरु-स्मरण

श्री वल्लभ सुमिरौं अरु श्री गोपीनाथ पियारे।
श्री बिट्ठल पुरुषोत्तम जग-हित नर-बपु धारे।
श्री गिरिधर गोविन्द राय पुनि बालकृष्ण कहु।
गोकुलपति रघुपति जदुपति घनश्याम-भक्ति लहु।
लक्ष्मी-रुक्मिणि-पद्मावती-पद-रज नित सिर धारिए।
श्री वल्लभ कुल को ध्यान मन कबहूँ नाहिं बिसारिए।११

अथ वैष्णव-स्मरण

श्री निम्बारक रामानुज पुनि मध्व जय ध्वज।
नित्यानंद अद्वैत कृष्ण चैतन्य व्यास भज।
हित हरिबंश गदाधर श्री हरिदास मनोहर।
सूरदास परमानंद कुंभन कृष्णदास वर।
गोविन्द चतुर्भुजदास पुनि नंददास अरु छीत कल।
नित सुमिरि प्रात गन उठत ही
हरि भक्तन के पद-कमल।१२

दोहा

द्वादस द्वादस अर्द्ध पद प्रात पढ़ै जो कोय।
हरि-पद-बल 'हरिचंद' नित मंगल ताको होय।१३

हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान*

रचना काल-सन् १८७७

अहो अहो मम प्रान प्रिय आर्य भ्रातृ-गन आज ।
धन्य दिवस जो यह जुड़ो हिन्दी हेतु समाज ।१
तामें आदर अति दिये मोहिं तुम निज जन जान ।
जो बुलवायो मोहिं इत दर्शन हित सन्मान ।२
जदपि न मैं जानत कछू सब बिधि सों अति दीन ।
तदपि भ्रात निज जानिकै सबन कृपा अति कीन ।३
भारत में यह देस धनि जहाँ मिलत सब भ्रात ।
निज भाषा हित कट कसे हम कहँ आज लखात ।४
निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ।५
पढ़े संस्कृत जतन करि पंडित भे विख्यात ।
पै निज भाषा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात ।६
पढ़े फारसी बहुत बिध तौहू भये खराब ।
पानी खटिया तर रहो पूत मरे बकि आब ।७
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन ।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन ।८
यह सब भाषा काम की जब लौं बाहर बास ।
घर भीतर नहिं कर सकत इन सों बुद्धि प्रकास ।९
नारि पुत्र नहिं समझहीं कछु इन भाषन माहिं ।
तासों इन भाषन सों काम चलत कछु नाहिं ।१०
उन्नति पूरी है तबहि जब घर उन्नति होय ।
निज सरीर उन्नति किए रहत मूढ़ सब लोय ।११
पिता बिबिध भाषा पढ़े पुत्र न जानत एक ।
तासों दोउन मध्य में रहत प्रेम अविवेक ।१२
अँग्रेजी निज नारि को कोउ न सकत पढ़ाइ ।
नारि पढ़े बिन एक हू काज न चलत लखाइ ।१३
गुरु सिखवत बहु भाँति लौं जदपि बालकन ज्ञान ।
पै माता-शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान ।१४
जब अति कोमल जिय रहत तब बालक तुतरात ।
भूलत नहिं सो बात जो तबै सिखाई जात ।१५
भूलि जात वहु बात जो जोबन सीखत लोय ।
पै भूलत नहिं बालकन सीख्यो सुनो जो होय ।१६
जिमि लै काँची मृत्तिका सब कछु सकत बनाय ।
पै न पकाए पर चलत तामें कछू उपाय ।१७
काँचे पर ता सों बनत जो कछु सो रह जात ।
चिन्ह सदा तिमि बाल सिसु शिक्षा नाहिं भुलात ।१८
सो सिसु-शिक्षा मातु-बस जो करि पुत्रहि प्यार ।
खान-पान खेलन समय सकत सिखाय बिचार ।१९
लाल पुत्र करि चूमि मुख बिबिध प्रकार खेलाइ ।
माता सब कछु पुत्र को सहजहिं सकत दिखाइ ।२०
सो माता हिंदी बिना कछु नहिं जानत और ।
तासों निज भाषा अहै, सबही की सिरमौर ।२१
पढ़ो लिखो कोउ लाख बिध भाषा बहुत प्रकार ।
पै जबही कछु सोचिहो निज भाषा अनुसार ।२२
सुत सों तिय सों मीत सों भृत्यन सों दिन रात ।
जो भाषा मधि कीजिये निज मन की बहु बात ।२३
ता की उन्नति के किये सब बिधि मिटत कलेस ।
जामैं सहजहि देसकौ इन सब को उपदेश ।२४
जदपि बाहर के जनन गुन सों देत रिझाय ।
पै निज घर के लोग कहँ सकत नाहिं समझाय ।२५
बाहर तो अति चतुर बनि कीनो जगत प्रबंध ।
पै घर को व्यवहार सब रहत अंध को अंध ।२६
कै पहिने पतलून कै भये मौलवी खास ।
पै तिय सके रिझाय नहिं जो गृहस्थ सुख बास ।२७
इनकी सो अति चतुरता तिनको नाहिं सुहात ।
ताही सों प्राचीन कवि कही भली यह बात ।२८
खसम जो पूजै देहरा भूत-पूजनी जोय ।
एकै घर में दो मता कुसल कहाँ से होय ।२९
तासों जब सब होहिं घर बिद्या-बुद्धि-निधान ।
होइ सकत उन्नति तबै और उपाय न आन ।३०
निज भाषा उन्नति बिना कबहुँ न ह्वै है सोय ।
लाख अनेक उपाय यों भले करो किन कोय ।३१
इक भाषा, इक जीव इक मति सब घर के लोग ।
तबै बनत है सबन सों मिटत मूढ़ता सोग ।३२
और एक अति लाभ यह यामैं प्रगट लखात ।
निज भाषा में कीजिये जो विद्या की बात ।३३
तेहि सुनि पावै लाभ सब बात सुनु जो कोय ।
यह गुन भाषा और महँ कबहूँ नाहीं कोय ।३४

* हिंदी भाषा के परमाचार्य श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र का लेकचर, जिसे बाबू साहब ने जून मास (जेष्ठ सं. १९३४) की हिंदीवर्द्धिनी सभा में पढ़ा था । (हिंदी प्रदीप खं. १ सं. १-२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा "हिंदी भाषा" नाम से प्रकाशित ।

लखहु न अँगरेजन करी उन्नति भाषा माँहिं ।
सब विद्या के ग्रंथ अंगरेजिन माँह लखाहिं ।३५
सब्द बहुत परदेस के उच्चार हु न ठीक ।
लिखत कछू पढ़ि जात कछु सब बिधि परम अलीक।३६
पै निज भाषा जानि तेहि तजत नहीं अंगरेज ।
दिन दिन याही को करत उन्नति पै अति तेज ।३७
बिबिध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार ।
सब देसन से लै करहु भाषा माँहिं प्रचार ।३८
जहाँ जौन को गुन लह्यो लियो जहाँ सो तौन ।
ताहीं सों अंगरेज अब सब विद्या के भौन ।३९
पढ़ि बिदेस भाषा लहत सकल बुद्धि को स्वाद ।
पै कृतकृत्य न होत ये बिन कछु करि अनुवाद ।४०
तुलसी कृत रामायनहु पढ़त जबै चित लाय ।
तब ताको आसय लिखत भाषा माँहिं बनाय ।४१
तासों सबहीं भाँति है इनकी उन्नति आज ।
एकहि भाषा महँ अहै जिनकी सकल समाज ।४२
धर्म जुद्ध विद्या कला गीत काव्य अरु ज्ञान ।
सबके समझन जोग है भाषा माँहि समान ।४३
भारत में सब भिन्न अति ताही सों उत्पात ।
विविध देस मतहू बिबिध भाषा बिबिध लखात ।४४
सौंप्यौ ब्राह्मन को धरम तेइ जानत वेद ।
तासों निज मत को लह्यो कोऊ कबहुँ न भेद ।४५
तिन जो भाष्यो सोइ कियो अनुचित जदपि लखात ।
सपनहुँ नहिं जानी कछू अपने मत की बात ।४६
पढ़े संस्कृत बहुत बिध अंग्रेजी हू आप ।
भाषा चतुर नहीं भये हिय को मिट्यो न ताप ।४७
तिमि जग शिष्टाचार सब मौलवियन आधीन ।
तन सों सीखे बिनु रहत भये दीन के दीन ।४८
बैठनि बोलनि उठनि पुनि हँसनि मिलनि बतरान ।
बिन पारसी न आवही यह जिय निश्चय जान ।४९
तिमि जग की विद्या सकल अंगरेजी आधीन ।
सबै जानि ताके बिना रहै दीन के दीन ।५०
करत बहुत विधि चतुरई तऊ न कछू लखात ।
नहिं कछु जानत तार में खबर कौन विधि जात ।५१
रेल चलत केहि भाँति सों कल है काको नाँव ।
तोप चलावत किमि सबै जारि सकल जो गाँव ।५२
वस्त्र बनत केहि भाँति सों कागज केहि बिधि होत ।
काहि कवाइद कहत हैं बाँधत किमि जल-सोत ।५३
उतरत फोटोग्राफ किमि छिन मँह छाया रूप ।
होय मनुष्यहि क्यों भये हम गुलाम ये भूप ।५४
यह सब अंगरेजी पढ़े बिनु नहिं जान्यो जात ।
तासों याको भेद नहिं साधारनहि लखात ।५५
बिना पढ़े अब या समै चलै न कोउ विधि काज ।
दिन दिन छीजत जात है या सों आर्य्य समाज ।५६
कल के कल बल छलन सों छले इते के लोग ।
नित नित धन सों घटत हैं बाढ़त है दुख सोग ।५७
मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम ।
परदेसी जुलहान के मानहु भये गुलाम ।५८
वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौने आदि ।
आवत सब परदेस सों नितहि जहाजन लादि ।५९
इत की रुई सींग अरु चरमहि तित लै जाय ।
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु भेजत इतहि बनाय ।६०
तिनही को हम पाइकै साजत निज आमोद ।
तिन बिन छिन तृन सकल सुख, स्वाद बिनोद प्रमोद।६१
कछु तो बेतन में गयो कछुक राज-कर माँहि ।
बाकी सब व्यौहार में गयो रह्यौ कछु नाहिं ।६२
निरधन दिन दिन होत है भारत भुव सब भाँति ।
ताहि बचाइ न कोउ सकत निज भुज बुद्धि-बल कांति।६३
यह सब कला अधीन है तामें इतै न ग्रन्थ ।
तासों सूझत नाहिं कछु द्रव्य बचावन पंथ ।६४
अंगरेजी पहिले पढ़ै पुनि बिलायतहि जाय ।
या विद्या को भेद सब तो कछु ताहि लखाय ।६५
सो तो केवल पढ़न में गई जवानी बीति ।
तब आगे का करि सकत होइ बिरध गहि नीति ।६६
तैसहि भोगत दण्ड बहु बिनु जाने कानून ।
सहत पुलिस की ताड़ना देत एक करि दून ।६७
पे सब विद्या की कहूँ होइ जु पै अनुवाद ।
निज भाषा महँ तो सबै याको लहै सवाद ।६८
जानि सकैं सब कछु सबहि बिबिध कला के भेद ।
बनै बस्तु कल की इतै मिटै दीनता भेद ।६९
राजनीति समझैं सकल पावहिं तत्व बिचार ।
पहिचानैं निज धरम को जानैं शिष्टाचार ।७०
दूजे के नहिं बस रहैं सीखैं बिबिध विवेक ।
होइ मुक्त दोउ जगत के भोगैं भोग अनेक ।७१
तासों सब मिलि छाँड़ि कै दूजे और उपाय ।
उन्नति भाषा की करहु अहो भ्रात गन आय ।७२
बच्यौ तनिकहू समय नहिं तासों करहु न देर ।
औसर चूके व्यर्थ की सोच करहुगे फेर ।७३
प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि जत्न ।
राज-काज दरबार में फैलावहु यह रत्न ।७४
भाषा सोधहु आपनी होइ सबै एकत्र ।
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि छपवावहु कछु पत्र ।७५
बैर बिरोधहि छोड़ि कै एक जीव सब होय ।
करहु जतन उद्धार को मिलि भाई सब कोय ।७६

आल्हा बिरहहु को भयो अंगरेजी अनुवाद ।
यह लखि लाज न आवई तुमहिं न होत बिखाद ।७७
अंगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृति ढेर ।
खुले खज़ाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर ।७८
सबको सार निकाल कै पुस्तक रचहु बनाइ ।
छोटी बड़ी अनेक बिध बिबिध विषय की लाइ ।७९
मेटहु तम अज्ञान को सुखी होहु सब कोय ।
बाल वृद्ध नर नारि सब विद्या संजुत होय ।८०
फूट बैर को दूरि करि बाँधि कमर मजबूत ।
भारत माता के बनो भ्राता पूत सपूत ।८१
देव पितर सबही दुखी कष्टित भारत माय ।
दीन दसा निज सुतन की तिनसों लखी न जाय ।८२
कब लौं दुख सहिहौ सबै रहिहौ बने गुलाम ।
पाइ मूढ़ कालो अरध-सिक्षित काफिर नाम । ८३
बिना एक जिय के भये चलिहै अब नहिं काम ।
तासों कोरो ज्ञान तजि उठहु छोड़ि बिसराम ।८४
लखहु काल का जग करत सोवहु अब तुम नाहिं ।
अब कैसो आयो समय होत कहा जग माहिं ।८५
बढ़न चहत आगे सबै जग की जेती जाति ।
बल बुधि धन विज्ञान में तुम कहँ अबहूँ राति ।८६
लखहु एक कैसे सबै मुसलमान क्रिस्तान ।
हाय फूट इक हमहिं में कारन परत न जान ।८७
बैर फूट ही सों भयो सब भारत को नास ।
तबहु न छाँड़त याहि सब बँधे मोह के फाँस ।८८
छोड़हु स्वारथ बात सब उठहु एक चित होय ।
मिलहु कमर कसि भ्रातगन पावहु सुख दुख खोय ।८९
बीती अब दुख की निसा देखहु भयो प्रभात ।
उठहु हाथ मुँह धोइ कै बाँधहु परिकर भ्रात ।९०
या दुख सों मरनो, भलो, धिग जीवन बिन मान ।
तासों सब मिलि अब करहु बेगहि ज्ञान विधान ।९१
कोरी बातन काम कछु चलिहै नाहिंन मीत ।
तासों उठि मिलि कै करहु बेग परस्पर प्रीत ।९२
परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस ।
पर-बस ह्वै कब लौं कहो रहिहौ तुम ह्वै दास ।९३
काम खिताब किताब सों अब नहिं सरिहै मीत ।
तासों उठहु सिताब अब छाँड़ि सकल भय भीत ।९४
निज भाषा, निज धरम, निज मान करम ब्यौहार ।
सबै बढ़ावहु बेगि मिलि कहत पुकार पुकार ।९५
लखहु उदित पूरब भयो भारत-भानु प्रकास ।
उठहु खिलावहु हिय-कमल करहु तिमिर दुख नास ।९६
करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल ।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल ।९७
लहहु आर्य्य भ्राता सबै विद्या बल बुधि ज्ञान ।
मेटि परस्पर द्रोह मिलि होहु सबै गुन-खान ।९८

अपवर्गदाष्टक*

रचनाकाल-सन् १८७७

परब्रह्म परमेश्वर परमातमा परात्पर ।
पर पुरुष पदपूज्य पतित-पावन पद्मावर ।
परमानंद प्रसन्नवदन प्रभु पद्म-विलोचन ।
पद्मनाम पुण्डरीकाक्ष प्रनतारति-मोचन ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पबर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि ।१

फनपति फनप्रति फूँकि बाँसुरी नृत्य प्रकासन ।
फनिपति-नाथ फनीश-शयन फनि बैरि कृतासन ।
फैली फिरि फिरि चंद्रफेन सी बदन-कांतिबर ।
फलस्वरूप फबि रही फूल-माला गल सुंदर ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । २

ब्रजपति बृंदाबन-बिहार-रत बिरह-नसावन ।
बिष्णु ब्रह्म बरदेश बरहवर सीस सुहावन ।
बनमाली बलरामानुज बिधु विधि-बंदित बर ।
बिबुधाराधित बिधुमुख बुधनत बिदित बेनुधर ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।

* : कवि-वचन-सुधा शनिवार अ. जेष्ठ कृष्ण ६ संवत १९३४ में प्रकाशित ।

तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । ३

भवकर भवहर भवप्रिय भद्राग्रज भद्रावर ।
भक्तिबश्य भगवान भक्तवत्सल भुव-भरहर ।
भव्य भावनागम्य भामिनीभाव विभावित ।
भाव गतामृतचंद्र भागवतभय-विद्रावित ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि ।४

माधव मनमथमनमथ मधुर मुकुंद मनोहर ।
मधुमरदन मुरमथन मानिनी-मान-मंदकर ।
मरकतमनि-तन मोहन मंजुल नर मुरलीकर ।
माथे मत्त मयूर मुकुट मालती-माल गर ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी-गति देत किमि ।५

बृंदा बृंदावनी बिदित बृखभानु-दुलारी ।
परा परेशा प्रिया पूजिता भव-भयहारी ।
ब्रजधीश्वरी भामा मोहन-प्रानपियारी ।
ब्रजबिहारिनी फलदायिनि बरसाने-वारी ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि ।६

विष्णुस्वामि पथ प्रथित बिल्वमंगल मतमण्डन ।
मिथ्यावाद-विनासकरन मायामत-खण्डन ।
भारद्वाज सुगोत्र विप्रबर बेद बादब्रत ।
भक्तपूज्य भुवि भक्ति-प्रचारक भाष्यरचन-रत ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरीचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि ।७

ब्रजवल्लभ बल्लभ बल्लभ बल्लभ-बल्लभबर ।
पद्मावतिपति बालकृष्ण पितु भुविस्ववंसधर ।
मथन भागवत समुद भामिनी भाव विभावित ।
प्रगट पुष्टिपथकरन प्रथित पतितादिक पावित ।
विट्ठल प्रभु प्यारे भाखिए संक तजै 'हरचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि ।८

मनोमुकुल-माला

अर्थात्

राजराजेश्वरी आर्य्येश्वरी भारताधीश्वरी श्री १०८
विजयिनी देवी के चरण-तामरस में हरिश्चंद्र द्वारा
समर्पित वाक्य-पुष्पोहार ।

रचना काल सन् १८७७

अथ इंगलैंडी-पारसीक-वर्ण-चित्रिता राजराजेश्वरी आशी:

G वहु Es अ Cs बल हरहु प्रजन की :pr ।
सर U जमुना गंग मैं जब लौं थिर जग नी ।१
J Kवल तुम दास हैं नासहु तिनकी R ।
बढै स Y तेज नित Tको अवल लिलार ।२
भारत के Aकत्र सब Vर सदा बल Pन ।
Bसहु बित्वा ते रहैं तुमरे नितहि अधीन ।३
ج) ث ح) सबै ت، बिना क ل
गलै ه नहिं सत्रु को तुव सनमुख गुन-धाम ।
अزई कीरति छई रहै अحहराज ।
بर ی र बरनत सबै ے कवि यातें आज । ६
थां ي थिर करि राज-गन अपने अपने ठौर ।
तासों तुम'س हिं भई महरानी जग और ।६ *

* जीवहु ईस असीस बल हरहु प्रजन की पीर ।

अथ अङ्कमयी

राजराजेश्वरी स्तुति[1]

करि वि४ देख्यौ बहुत जग बिनु २स न१ ।
तुम बिनु हे विक्टोरियें नित ९०० पथ टेक ।१
ह ३ तुम पर सैन लै ८० कहत करि १०० ह ।
पै बिन७ प्रताप-बल सत्रु मरोरे भौंह ।२
सो १३ ते लोग सब बिल १७ त सचैन ।
अ ११ ती जागती पै सब ६ न दिन-रैन । ३
सखि तुव मुख २६ सि सदै कै १६ त अनंद ।
निहचै २७ की तुम मैं परम अमंद ।४
जिमि ५२ के पद तरें १४ लोक लखात ।
तिमि भुव तुम अधिकार मोहिं बिस्वे २० जनात ।५
६१ खल नहिं राज मैं २५ बन की बाय ।
तासों गायो सुजस तुव कवि ६ पद हरखाय ।६
किये १००००००००००० बल १००००००००० के तनिकहिं भौंह मरोर ।
४० की नहिं अरिन की सैन सैन लखि तोर ।७
तुव पद १००००००००००००००० प्रताप को करत सुकवि पि १०००००००० ।
करत १०००००००० बहु १००००० करि होत तऊ अति थोर ।८
तुम ३१ ब मैं बड़ी ताते बिरच्यौ छन्द ।
तुव जस परिमल । । । लहि अंक-चित्र हरिचंद ।९

भाषा सहज

कविता

धन्य धन्य दिन आजु को धन धन भारत-भाग ।
अतिहि बढ़ायो सहज निज दोऊ दिसि अनुराग ।१
आजु मान अति ही लह्यो आरज भारत देस ।
भारत की राजेश्वरी भए अनंद बिसेस ।२
प्रथम शमीरामा[2] भई दूजी भई न और ।

सरयू जमुना गंग मैं जब लौं थिर जग नीर ।।
जे केवल तुव दास हैं नासहु तिनकी आर ।
बढ़ै सवाई तेज नित टीको अचल लिलार ।
भारत के एकत्र सब वीर सदा बल-पीन ।
बीसहु बिस्वा ते रहैं तुमरे नितहि अधीन ।
चेरे से हेरे सबै तेरे बिना कलाम ।
गलै दाल नहिं सत्रु की तुव सनसुख गुनधाम ।
अमीमई कीरति छई रहै अजी महराज ।
बेर बेर बरनत सबै ये कवि यातें आज ।
थापे थिर करि राज-गन अपने अपने ठौर ।
तासों तुम सी नहिं भई महरानी जग और ।

---

[1] करि विचार देख्यौ बहुत जग बिनु दोस न एक ।
तुम बिन हे विक्टोरिये नित नव सौ पथ टेक ।
हती न तुम पर सैन लै असी कहत करि सौह ।
पै बिनसात प्रताप-बल सत्रु मरोरै भौंह ।
सोते रहते लोग सब बिलसत रहत सचैन ।
अग्या रहती जागती पै सब छन दिन रैन ।
लखि तुव मुख छबि ससि सबै कैसो रहत अनन्द ।
निहचै सत्ता ईस की तुम मैं परम अमंद ।
जिमि बावन के पद तरैं चौदह लोक लखात ।
तिमि भुव तुव अधिकार मोहिं बिस्वे बीस जनात ।
इक सठ खल नहिं राज में पची सबन की बाय ।
तासों गायो सुजस तुव कवि षट्-पद हरखाय ।
किये खरब बल अरब के तनिकहिं भौंह मरोर ।
चालि सकी नहिं अरिन की सैन सैन लखि तोर ।
तुव पद पद्म प्रताप को करत सुकवि पिक रोर ।
करत कोटि बहु लक्ष करि होत तऊ अति थोर ।
तुम इक ती सब में बड़ी ताते बिरच्यौ छंद ।
तुव जस परिमल पौन लहि अंक-चित्र हरिचंद ।

[2] पद्म पुराण में भारत को जीतने वाली शमीरामा नामक देवी का विजयदशमी के दिन शमी वृक्ष में पूजन का विधान है, जिसको इतिहास में Queen Semiremis कहते हैं ।

सो पूजी तुम विजयिनी महरानी बनि ठौर । ३
विजय मित्र जय विजयपति अजय कृष्ण भगवान ।
करहिं विजयिनी विजय नित दिन दिन सह कल्यान ।४
नारी दुर्गा रूप सब[१] राजा कृष्ण समान[२] ।
शक्ति शक्तिमत तुम दोऊ यासों अतिहि प्रधान ।५
और देश के नृप सबै कहवावत महराज ।
सो मोटी जिय सत्य तुम ह्वै कै राजधिराज ।६

होइ भारताधीश्वरी आरज-स्वामिनि आज ।
तुम द्वै[३] आरज जाति कहँ मिलयो धन यह राज ।७

रंग-चित्र [४]

——दुति करि बैरि भट —— मुख मसि लाय ।
— पीरजन — लित — हि इत पठवाय ।१

श्री राज-राजेश्वरी-स्तुति

संस्कृत छन्द में

श्रीमत्सर्वगुणाम्बुधेर्जनमनो वाणी विदूराकृते —
नित्यानंदधनस्य पूर्ण करुणाऽऽ सारैर्जनान् सिंचित :
शक्ति : श्रीपरमेश्वरस्य जनताभाग्यैरवाप्तोदया —
साम्राज्यैकनिकेतनं विजयिनी देवी वरी बृष्यते ।१
नानाद्वीप-निवासिनो नृपतय : स्वैरूत्तमाङ्.गैर्नतै —
रादेशाक्षरमालिकां यदुदितां मालामिवाबिभ्रति ।
यत्कीर्ति : शरदिंदुसुन्दरचिर्व्याप्नोति कृत्स्नां महीं ।
सेय सर्व जनातिगस्वविमवा कासां गिरां गोचरां । २

एषा यद्यपि सार्वभौमपदवीं प्राप्ता प्रतापैर्निजै —
वैंरिव्रातमहीधराशनिसमैर्भूपालनैकव्रतै : ।
आर्यावर्त जमर्त्य भाग्य निवहैर्भूयो धुनोदित्वरै :
स्वीकृत्या जनयन्मुदं मनसिन : साऽऽर्येश्वरीति प्रथाम् ।३

कर्णाकर्णिकया गते श्रुतिपथं वार्ता मृते स्मिन्वयं ।
विन्दामो यममन्दमात्तपुलका आनंदथुं संततम् ।
अप्राप्यातितनौ तनाववसरं तेनेव संचोदिता : ।
श्रीमत्या : परमेश्वरार्च्चिरतरं संप्रार्थयाम : शिवम् ।४
दीनानाथ जनावनोद्यतमना मानादिनानाविध- ।
श्रीमत्सर्वगुणावनिर्नयघना संमोदयित्री बुधान् ।
जीयादुज्ज्वल कीर्तिरार्तिशमिनी मूर्ति : परस्ये शितु :
पुत्रैरात्मसमै : समं विजयिनी देवी सहस्त्रं समा : ।५

गजल

रचना काल सन् १८६७

मादये तारीख

[विक्टोरिया शाहेशाहान हिन्दोस्तान]

उसको शाहनशही हर बार मुबारक होवे ।
कैसरे हिंद का दरबार मुबारक होवे ।
बाद मुबत के हैं देहली के फिरे दिन या रब ।
तख्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे ।
बाग़वाँ फूलों से आबाद रहे सहने चमन ।
बुलबुलो गुलशने बे-खार मुबारक होवे ।
एक इस्तूद में हैं शेखो बिरहमन दोनों ।
सिजद : इनको उन्हे जुन्नार मुबारक होवे ।
मुज़दए दिल कि फिर आई है गुलिस्ताँ में बहार ।
मैकशो खानये खुम्मार मुबारक होवे ।
दोस्तों के लिये शादी हो गुलज़ार मुबारक होवे ।
खार उनको इन्हें गुलज़ार मुबारक होवे ।

ज़मज़मों ने तेरे बस कर दिए लब बंद 'रसा' ।
यह मुबारक तेरी ग़ुफ़्तार मुबारक होवे ।

---

१. स्त्रिय : समस्ता : सकला जगत्सु-दुर्गा पाठ ।
२. नराणां च निराधिप :— श्री गीता ।
३. हिंदू और अँग्रेज ।
४. (पीरे) दुति करि बैरि भट (कारे) मुख मसि लाय ।
(हरे) पीर जन (नील) लित (लाल) हि इत पठवाय ।

वेणु-गीति

रचना काल सन् १८७७

(श्री चंद्रावली-मुख चकोरी विजयते)

दोहा

जै जै श्री घनश्याम बपु जै श्री राधा बाम ।
जै जै सब ब्रज-सुंदरी जै बृंदाबन धाम ।
मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि नाम ।
जयति कोऊ सो केसरी, बृंदाबन बन धाम ।२
गोपीनाथ अनाथ-गति जग-गुरु बिट्ठलनाथ ।
जयति जुगल बल्लभ-तनुज गावत श्रुति गुनगाथ ।३
श्री बृंदाबन नित्य हारि गोचारन जब जाहिं ।
बिरह-बेलि तबही बढ़े गोपी-जन उर माहिं ।४
तब हरि-चरित अनेक बिधि गावहिं तनमय होइ ।
करहिं भाव उर के प्रगट जे राखे बहु गोइ ।५
जो गावहिं ब्रज भक्त सब मधुरे सुर सुभ छंद ।
रसना पावन करन कों गावत सोइ 'हरिचंद' ।६

राग सोरठ तिताला

सखी फल नैन धरे को एह ।
लखिबो श्री ब्रजराज-कुँवर को गौर साँवरी देह ।
सखन संग बन तें बनि आवत करत बेनु को नाद ।
धन्य सोई या रस को जानै पान कियो है स्वाद ।
वह चितवनि अनुराग भरी सी फेरनि चारहुँ ओर ।
'हरीचंद' सुमिरत ही ताके बाढ़त मैन-मरोर । १
सखी लखि दोउ भाइन को रूप ।
गोप-सखा-मंडल-मधि राजत मनु द्वै नट के भूप ।
नवदल मोरपच्छ कमलन की माल बनी अभिराम ।
ता पै सोहत सुरँग उपरना बेष बिचित्र ललाम ।
नटवर रंगभूमि में सोभित कबहुँ उठत हैं गाय ।
'हरीचंद' ऐसी छबि लखि कै बार बार बलि जाय ।२

राग देस होरी का ताल

बंसी कौन सुकृत कियौ ।
गोपिकन को भाग याने आंपुही लै पियौ ।
करत अमृत-पान आपुन औरहू को देत ।
बचत रस सो पिवत हिदिनी वृक्ष लता समेत ।
प्रगट हिदिनी तटनि नृन पुन श्रवत मधु तरु-डार ।
होत याहि रोमांच वा को बहत आँसू-धार ।
बेन-पुत्र सुपुत्र लखिकै करत दोउ आनंद ।
आपु हरी न होत अचरज यह बड़ो 'हरिचंद' ।३

राग मल्लार आड़ा चौताला

बड़ी जग कीरति बृंदाबन की ।
श्री जसुदानंदन की जापैं छाप भई चरनन की ।
बेनु-धुनि सुनि जहाँ नाचत मत्त होइ मयूर ।
सिखर पै गिरिराज के सब संग कों करि दूर ।
सबै मोहत देव नर मुनि नदी खग मृग आन ।
ता समै यह मोर नाचत सुनत बंसी-तान ।
पच्छ यातें धरत सिर पैं श्याम नटवर-राज ।
कहत इमि 'हरिचंद' गोपी बैठि अपुन समाज ।४

बिहाग तिताला

धन्य ये मूढ़ हरिन की नार ।
पाइ बिचित्र बेष नँदनंदन नीके लेहिं निहारि ।
मोहित होइ सुनहिं बंसी-धुनि श्याम हरिन लै संग ।
प्रनय समेत करहिं अवलोकन बाढ़त अंग अनंग ।
जानि देवता बन को मानहुँ पूजहिं आदर देहिं ।
'हरीचंद' धनि धनि ये हरिनी जन्म सुफल कर लेहिं ।५

राग सोरठ तिताला

बिमानन देव-बधू रहीं भूलि ।
बनिताजन मन नैन महोत्सव कृष्ण-रूप लखि फूलि ।
सुनिकै अति बिचित्र गीतन कों बंसी की धुनि घोर ।
चकित होत सब अंग अंग मैं बाढ़त मैन मरोर ।
खुलि खुलि परत फूल की कबरी नीबी की सुधि नाहिं ।
'हरीचंद' कोउ चलन न पावत या नभ-पथ के माहिं ।६

देस तिताला

लखो सखि इन गौवन को हाल ।
ऐसी दसा पसुन की है जहँ हम तो हैं ब्रज-बाल ।
कृष्णचंद के मुख सों निकसै जो बंसी की तान ।
तो अमृत कों पान करहिं ये ऊँचे करि करि कान ।
बछरा थन मुख लाइ रहे नहिं पीवत नहिं तृन खात ।
थन तें पय की धार बहत है नैनन तें जल जात ।
इक टक लखत गोविंदचंद कों पलक परत नहिं नैन ।
'हरीचंद' जहाँ पसु की यह गति अबलन कों किन चैन ।७

सोरठ मल्लार तिताला

धन्य ये मुनि बृंदाबन-बासी ।
दरसन हेतु बिहंगम ह्वै रहे मूरति मधुर उपासी ।
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै मिलि बैठत हैं आई ।
नैननि मूँदि त्यागि कोलाहल सुनहिं बेनु-धुनि भाई ।
प्राननाथ के मुख की बानी करहिं अमृत-रस-पान ।
'हरीचंद' हम कों सोउ दुर्लभ यह बिधि की गति आन ।८

सोरठ तिताला

अहो सखि जमुना की गति ऐसी ।
सुनत मुकुंद गीत मधु श्रवनन बिहवल ह्वै गई कैसी ।
भँवर पड़त सोइ काम-बेग-सों थकित होत गति भूली ।
तटनि घास अंकुरित देखियत सोइ रोमावलि फूली ।
चुंबन हित धावत लहरन सों कर लै कमल अनेक ।
मानहुँ पूजन-हेत चरन कों यह इक कियो बिबेक ।
चरन-कमल के सदृस जानि तेहि निसि-दिन उर पैं राखै
'हरीचंद' जहँ जल की यह गति अबलन की कहा भाखै ।९

बिहाग आड़ा चौताला

जहँ जहँ राम-कृष्ण चलि जाहीं ।
तहँ तहँ आतप जानि देव सब दौरि करहिं तन छाँहीं ।
खेलहिं संग गोप के बालक चरहिं गऊ सुख पाई ।
तिन के मध्य बने दोउ राजत मुरली मधुर बजाई ।
प्रेम मगन ह्वै सुरँग फूल सब गगन आइ बरसावैं ।
कठिन भूमि कोमल पद लखि कै मनु पाँवड़े बिछावैं ।
दूर देस सों आइ देवता रूप-सुधा नित पीयैं ।
'हरीचंद' बसि एक गाँव बिनु दरसन कैसे जीयैं ।१०

कान्हरा आड़ा चौताला

अहो सखी धनि भीलन की नारि ।
हरि-पद-पंकज को श्री कुंकुम लेहिं कुचन पै धारि ।
तन-सिंगार जो ब्रज-जवतिन को प्रान-पिया पद लायौ ।
सो बन-गवन समै ब्रज तृन के पातन मैं लपटायौ ।
हरि-पद-तल की आभा सों सो अरुन ह्वै रह्यौ मोहै ।
भक्तन को अनुराग मनहुँ यह चरनन लाग्यौ सोहै ।
ताहि देखि भईं बिकल काम-बस कर सों लेहिं उठाई ।
निज मुख मैं दोउ कुच मैं लावहिं मनसिज-ताप नसाई ।
जगबंदन नँदनंदन के पग-चंदन भीलिन पावैं ।
'हरीचंद' हम कों सोउ दुर्लभ एकहि जात कहावैं ।११

राग सारंग वा बिहाग ताल चर्चरी

हरि-दास-बर्य्य गिरिराज धन धन्य
सखि राम घनश्याम करैं केलि जापैं ।
चरन के स्पर्श सों पुलकि रोमांच भयौ
सोई सब बृक्ष अरु लता तापैं ।
झरत झरना सोइ प्रेम-अँसुवा बहत
नवत तरु-डार मनुहार करहीं ।
परम कोमल भयो है यंगबीन (?) सम
जानि जापैं कृष्ण-चरन धरहीं ।
करत आदर सहित सबन की पहुनई
संग के गोप गो-बच्छ लेहीं ।
पत्र फल मधुर मधु स्वच्छ जल तृन छाँह
आदि सब वस्तु गिरिराज देहीं ।
करहिं बहु केलि हरि खेल खेलहिं संग
ग्वालगन परम आनंद पावैं ।
देखि 'हरीचंद' छबि मुदित बिथकित चकित
प्रेम भरि कृष्ण के गुनहिं गावैं ।१२

सोरठ तिताला

सखी यह अति अचरच की बात ।
गोप सखा अरु गोधन लै जब राम कृष्ण बन जात ।
बेनु बजावत मधुरे सुर सों सुनि कै ता धुनि कान ।
भूलि जात जग मैं सब की गति सुनत अपूरब तान ।
बृक्षन कौं रोंमाच होत है यह अचरज अति जान ।
थावर होइ जात हैं जंगम जंगम थावर मान ।
गोबधन कंधन पै धारे फेंटा झुकि रह्यौ माथ ।
मत्त भृंग-जुत है बन-माला फूल-छरी पुनि हाथ ।
बेनु बजावत गीतन गावत आवत बाल्क संग ।
'हरीचंद' ऐसो छबि निरखत बाढ़त अंग अनंग ।१३

दोहा

कृष्णचंद्र के बिरह मैं बैठि सबै ब्रज-बाल ।
एहि बिधि बहु बातैं करत तन सुधि बिगत बिहाल ।१
जब लौं प्यारे पीय को दरस होत नहिं नैन ।
इक छन सौ जुग लौं कटत परत नहीं जिय चैन ।२
साँझ समै हरि आइ कै पुरवत सब की आस ।
गावत तिनको बिमल जस 'हरीचंद' हरि-दास ।३

श्री नाथ-स्तुति

रचना काल सन् १८६७

छप्पै

जय जय नंदानंद-करन बृषभानु-मान्यतर ।
जयति यशोदा-सुअन कीर्त्तिदा कीर्त्तिदानकर ।
जय श्री राधा-प्राण-नाथ प्रणतारति-भंजन ।
जय बृंदाबन-चंद्र चंद्रवदनी-मनरंजन ।
जय गोपति गोपति गोपपति गोपीपति गोकुल-शरण ।
जय कष्ट-हरण करुनाभरण जय श्री गोवर्द्धन-धरण ।१

जय जय बकी-बिनाशन अघ-बक-बदन-विदारण ।
जय बृंदाबन-सोम व्योम-तमतोम-निवारण ।
जयति भक्त-अवलंब प्रलम्ब प्रलम्ब-बिनासन ।
जय कालिय-फन प्रति अति द्रुति गति नृत्य प्रकाशन ।
श्रीदाम-सखा घनश्याम-बपु वाम-काम-पूरन-करण ।
जय ब्रह्मधाम अभिराम रामानुज श्रीगिरिवर-धरण ।२

जयति बल्लभी-बल्लभ बल्लभ बल्लभ-बल्लभ ।
जय पल्लवदुति अधर भल्ल बरजित कटाक्ष प्रभ ।
उर-कृत मल्ली माल जयति ब्रज पल्ली-भूषन ।
ब्रजतरु-बल्ली-कुंज-रचित हल्लीश मुदित मन ।
जय दुष्ट-काल बनमाल गर भक्तपाल गजचाल-चय ।
कृत ताल नृत्य उत्ताल गति गोप-पाल नँदलाल जय ।३

जय धृतवरहापीढ़ कुपलयापीड़ पीड़कर ।
चूर करन चानूर मुष्टिबल मुष्टि-दर्पदर ।
जयति कंस विध्वंस-करन बिधु-बंस-अंसधर ।
परम हंस प्रिय अति प्रशंस अवतंस लसित वर ।
जय अनिर्वाच्य निर्वाणप्रद नित अर्वाच्यहु प्राच्यतर ।
दुर्वारार्बुदकर्बुरदलन श्रुति-निर्वदित ब्रह्म-वर ।४

जयति पार्वती-पूज्यपूज्य पतिपर्व दत्त सुख ।
पांडबगुर्वीत्रातोर्वीपति सर्वरीश मुख ।
हृतसुपर्व्व बृषपर्वादिकबर्वरदर्वी हुत ।
जय अथर्वनुत गान्धर्वीयुत गन्धर्व-स्तुत ।
दुर्बासाभाषित सर्वपति अर्व स्त्रर्ब जन-उद्धरण ।
जय शक्रगर्वकृत खर्व पर्वत पूजित पर्वतधरण ।५

जय नर्तनप्रिय जय आनर्त्त-नृपति-तनया-पति ।
तृनावर्त्तहर कृपावर्त्त जय जयति आर्तगति ।
कार्तस्वर-भूषण-भूषति जय धार्तराष्ट्र-दर ।
स्मार्तबृन्द-पूजित जय कार्त्तिक पूज्य पूज्य-तर ।
त्रय वर्हविराजित सीसवर गर्हदीनजन-उद्धरण ।
जय अर्ह अहर्निशिदुखदरण जय श्रीगोवर्द्धनधरण ।६

दोहा

यह खट सुंदर खटपदी सुमिरि पिया नँदनंद ।
हरिपद-पंकज-खटपदी बिरची श्री हरिचंद ।

मूक प्रश्न

रचना काल सन् १८७७

छप्पय

जीव एक, द्वै मृतक वनस्पति तीजो जानो ।
धातु चतुर्थी, शून्य पाँच, जल छठयों मानो ।
रस सातों, आठवों पारथिन, नवों बसन कहि ।
दस मुद्रा, मणि ग्यारह, बारहमो मिश्रित लहि ।
औषध तेरह, कृत्रम चतुरदस, पन्द्रह लेखन सकल ।
'हरिचंद' जोड़ि दोहान को कहहु प्रश्न-फल अति विमल । *

* इस छप्पय में पन्द्रह वस्तु हैं, यथा — जीव, मृतक, वनस्पतिए धातु, शून्य, जल, रस, पार्थिव, वस्त्र, द्रव्य, मणि, मिश्रित, औषध, कृत्रिम और लेख । इन्हीं पन्द्रहों में सारे संसार की वस्तु आ गई । जीव

दोहा

जीव, वनस्पति, शून्य, रस, वस्त्रौषधि, मनि लेख ।
एक कृष्ण को ध्यान धरि, प्रश्न चित्त सों देख ।
मृतक, वनस्पति, लेख, जल, कृत्रिम, रस, मनि, द्रव्य।
जुगल चरन सिर नाइ कै, भाषु प्रश्न फल भव्य ।

धातु, शून्य, जल, लेख, रस, कृत्रिम, औषध, मिस्र ।
चतुर्व्यूह माधो सुमिरि, कह फल स्वच्छ अमिस्र ।
मिस्त्रोषध, कृत्रिम, बसन, द्रव्य, लेख, मनि भूमि ।
अष्ट सखी सह श्याम सजि, कह फल गुरु-पद चूमि ।

अपवर्ग-पंचक

रचना काल सन् १८७७

परम पुरुष परमेश्वर पद्मापति परमाधर ।
पुरुषोत्तम प्रभु प्रनतपाल प्रिय पूज्य परात्पर ।
पदम नयन अरु पदमनाथ पालक पांडव-पति ।
पूर्ण पूतना-घातक प्रेमी प्रेम प्रीति गति ।
प्यारे यह मुख सों भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि ।
फलस्वरूप फनपति-फनप्रतिनिर्त्तन फलदाई ।
वासुदेव बिभु बिष्णु विश्व ब्रजपति बल-भाई ।
भरताग्रज भुवभार-हरण भर्वप्रिय भव-भय-हर ।
मनमोहन मुरमधुसूदन माधव मुरलीधर ।
माधव मुकुंद सोई भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि ।२
प्रिया परा परमानंदा पुरुषोत्तम-प्यारी ।
फलदायिनि ब्रजसुखकारिनि बृषभानु-दुलारी ।
बरसानेवारी बृन्दा बृंदाबन-स्वामिनि ।
भक्त-जननि भयहरनि मनहरनि भोरी भामिनि ।
माधव-सुखदाइनि भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि ।३
बल्लभ बल्लभ बल्लभ पण्डित मंगल मण्डन ।
ब्रह्मवाद-कर भाष्यकार माया-मत-खण्डन ।
भारद्वाज सुगोत्र भट्टकुल-मनि वेदोद्धर ।
मिथ्या मत-तमतोम-दिवाकर पुष्टि-प्रगट-कर ।

में जीते हुए प्राणी मात्र, मृतक में चमड़ा, मांस, लोम, केश, पंख, मल, झाला, इत्यादि जो कुछ जीव से अलग वस्तु हो । वनस्पति में पत्ता, छाल, लकड़ी, फल, फूल, गोंद, अन्न इत्यादि । धातु में बनाई हुई धातु की चीजें और बिना बनी धुतु । शून्य कुछ नहीं । जल में पानी से लेकर द्रव्य पदार्थ मात्र । रस में घी, गुड़, नमक और भोज्य वस्तु मात्र, पार्थिव में पत्थर, खाक, कंकड़, चूना इत्यादि । वस्त्र में डोरा, रुई, रेशम, इत्यादि । द्रव्य में रुपया, पैसा, हुंडी, लोट, गहना इत्यादि । मिश्रित में एक से विशेष वस्तु मिली है । औषध से दवाए सूखी गोली और मद्य इत्यादि । कृत्रिम मनुष्य की बनाई वस्तु । लेख में कागज, पुस्तक, कलम इत्यादि । इन वस्तुओं को ध्यान में चढ़ा लेना और छप्पय याद कर लेनी । किसी से कहा कि कोई चीज हाथ में वा जी में ले और फिर उसके सामने क्रम से दोहे पढ़ो ।

पूछो किस किस दोहे में वह वस्तु है जो तुमने ली है । जिन दोहों में बतावे उन दोहों के दूसरे तुक की गिनती के संकेतों को जोड़ डालो जो फल हो वह छप्पय के उसी अंक में देखो ! जैसा किसी ने रस लिया है तो पहिला दूसरा और तीसरा दोहा बतावेगा उसके अंक एक जुगल चतुर अर्थात् एक दो और चार गिन के सात हुए तो छप्पय में सातवीं वस्तु रस है देख लो और गणित विद्या के प्रभाव से सच्चा और सिद्ध मूक प्रश्न बतला दो ।

यह मूक प्रश्न कविवचन सुधा, ३० अप्रैल सन् १८७७ ई. में प्रकाशित हुआ था ।

वल्लभ वल्लभ सोइ भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि ।४

वल्लभनंदन भक्ति-मार्ग-प्रगटन बुध-बोधक ।
भावाश्रयरसपुष्ट विष्णु-स्वामी पथ-शोधक ।
वैष्णवजन मन-हरन भक्तकुल-कमल-प्रकासक ।
विद्वन मंडन-करन बितण्डावाद-बिनासक ।
विट्ठल बिट्ठल सोइ भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी-पाइकै प्रभु अपवर्गी गति देत किमि ।५

दोहा

यह पवर्ग हरि नाम-जुत पंचक्र बर अपवर्ग ।
पढ़त सुनत 'हरिचंद' जो लहत तौन सुख स्वर्ग ।

पुरुषोत्तम-पंचक

रचना काल सन् १८७७

सखी पुरुषोत्तम मेरे प्यारे ।
प्राननाथ मेरे मन धन जीवन जसुदानंद-दुलारे ।
जानत प्रीति-रीति सब भाँतिन नेह निबाहन-हारे ।
'हरीचंद' इनके पद-नख पैं जगत-जाल सब वारे ।१

सखी पुरुषोत्तम मेरे नाथ ।
मोर मुकुट सिर कटि पीतांबर सुंदर मुरली हाथ ।
गल बनमाल गोप गोपीगन गऊ बच्छ लिये साथ ।
'हरीचंद' पिय करुना-सागर निज-जन करन सनाथ ।२

पुरुषोत्तम प्रभु मेरे स्वामी ।
पतित-उधारन करना-कारन तारन खग-पति-गामी ।
पंकज-लोचन भव-दव-मोचन जन-रोचन अभिरामी ।
'हरीचंद' संतन के सरबस बखसहु चरन-गुलामी ।३

पुरुषोत्तम प्रभु मेरे सरबस ।
सरबस गुन-निधि करुना- बरुनालय जानत सकल प्रेम-रस ।
प्रीति-रीति पहिचानत मानत यातें रहत भगत-बस ।
'हरीचंद' मेरे प्रान-जीवन-धन मोह्यौ मनहि तनिक हँस ।४

पुरुषोत्तम बिन मोहिं नहिं कोई ।
मात-पिता परिवार-बंधु-धन मम हरि-राधा दोई ।
इन बिनु जगत और जो कीनो आयसु नाहक खोई ।
'हरीचंद' इन चरन सरन रहु मन बिनु साधन होई ।५

भारत-वीरत्व*

रचना काल सन् १८७८

अहो आज का सुनि परत भारत भूमि मँझार ।
चहूँ ओर तें घोर धुनि कहा होत बहु बार ।१
बृटिश सुशासित भूमि मैं रन-रस उमगे गात ।
सबै कहत जय आज क्यों यह नहिं जान्यो जात ।२

शाखा

जितन हेतु अफगान चढ़त भारत महरानी ।
सुनहु न गगनहिं भेदि होत जै जै धुनि-बानी ।३
जै जै जै बिजयिनी जयति भारत-सुखदानी ।
जै राजागन-मुकुटमनी धन-बल-गुन खानी ।४
सोई बृटिश अधीश चढ़त अफगान-जुद्ध-हित ।
देखहु उमड़यौ सैन-समुद उमड़यौ सब जित तित ।५

* यह हरिश्चंद्र चंद्रिका के सन् १८७८ ई. के अक्तूबर अंक में प्रकाशित हुआ था । इसमें

पूर्ण कोरस

अरे ताल दै लै बढ़ाओ ।
सबै धाइ कै राग मारू सुगाओ ।६

आरंभ

'कहाँ सबै राजा कुँअर और अमीर नवाब ।
कहौ आज मिल सैन में हाजिर होहु सिताब ।७
धाओ धाओ बेग सब पकरि पकरि तरवार ।
लरन हेत निज सत्रु सों चलहु सिंधु के पार ।८
चढ़ि तुरंग नव चलहु सब निज पति पाछे लागि ।
"उडपति सँग उडुगन सरिस नृप सुख सोभा पागि"।९
याद करहु निज बीरता सुमिरहु कुल-मरजाद ।
रन-कंकन कर बाँधि कै लरहु सुभट रन-स्वाद ।१०
बज्यो बृटिश डंका अबै गहगह गरजि निसान ।
कंपे थरथर भूमि गिरि नदी नगर असमान ।११

शाखा

राज-सिंह छूटे सबै करि निज देश उजार ।
लरन हेत अफगान सों धाए बाँधि कतार ।१२

पूर्ण कोरस

सुन्दर सैना सिबिर सजायो ।
मनहु बीर रस सदन सुहायो ।
छुटत तोप चहुँ दिसि अति जंगी ।
रूप धरे मनु अनल फिरंगी ।१३
हा हा कोई ऐसो इतै ना दिखावै ।
अबै भूमि के जो कलंकै मिटावै ।
चलै संग मैं युद्ध को स्वाद चाखै ।
अबै देस की लाज को जाइ राखै ।१४
कहाँ हाय ते बीर भारी नसाए ।
कितै दर्प तें हाय मेरे बिलाए ।
रहे बीर जे सूरता पूर भारे ।
भए हाथ तेई अबै कूर कारे ।१५
तब इन ही को जगत बड़ाई ।
रही सबै जग कीरति छाई ।
तित ही सब ऐसो कोउ नाहीं ।
लरै छिनहुं जो संगत माहीं ।१६
प्रगट बीरता देहि दिखाई ।
छन महँ काबुल लेइ छुड़ाई ।
फूस-हृदय-पत्री पर बरबस ।
लिखै-लोह लेखनि भारत-जस ।१७

आरम्भ

परिकर कटि कसि उठौ धनुष पै धरि सर साधौ ।
केसरिया बाना सजि कर रन-कंकन बाँधो ।१८
जासु राज सुख बस्यौ सदा भारत भय त्यागी ।
जासु बुद्धि नित प्रजा-पुंज-रंजन महँ पागी ।१९
जो न प्रजा-तिय दिसि सपनेहूँ चित्त चलावैं ॥
जो न प्रजा के धर्म्महि हठ करि कबहुँ नसावैं ।२०
बाँधि सेतु जिन सुरत किए दुस्तर नद नारे ।
रची सड़क बेधड़क पथिक हित सुख बिस्तारे ।२१
ग्राम ग्राम प्रति प्रबल पहारू दिए बिठाई ।
जिन के भय सों चोर बृन्द सब रहे दुराइ ।२२
नृप-कुल दत्तक-प्रथा कृपा करि निज थिर राखी ।
भूमि कोष की लोभ तज्यौ जिन जग करि साखी ।२३
करि वारड-कानून अनेकन कुलहि बचायो ।
विद्या-दान महान नगर पति नगर चलायो ।२४
सब ही बिधि हित कियो बिबिध बिधि नीति सिखाई।
अभय बाँह की छाँह सबहि सुख दियो सोहाई ।२५
जिनके राज अनेक भाँति सुख किए सदाहीं ।
समरभूमि तिन सों छिपनो कछु उत्तम नाहीं ।२६
जिन जवनन तुम धरन नारि धन तीनहुं लीनो ।
तिनहुं के हित आरजगन निज जसु तजि दीनो ।२७
मानसिंह बंगाल लरे परतापसिंह सँग ।
रामसिंह आसाम बिजय किए जिय उछाह रँग ।२८
छत्रसाल हाड़ा जूझ्यौ दारा हितकारी ।
नृप भगवान सुदास करी सैना रखवारी ।२९
तो इनके हित क्यौं न उठहिं सब बीर बहादुर ।
पकरि पकरि तरवार लरहिं बनि युद्ध चक्रधुर ।३०

शाखा

सुनत उठे सब बीरबर कर महँ धारि कृपान ।
सजि सजि सहित उमंग किय पेशावरहि पयान ।३१
चली सैन भूपाल की बेगम-प्रेषित धाइ ।
अलवर सों बहु ऊँट चढ़ि चले बीर चित चाइ ।३२
सैन सस्त्र धन कोष सब अर्पन कियो निजाम ।
दियो बहावल पूर-पति सैन-सहित निज धाम ।३३
बीस सहस्र सिपाह हिय जम्बूपति सह चाह ।
सैन सहित रन-हित चढ़यौ आपुहि नाभा-नाह ।३४

पृष्ठ दस और पंक्तियाँ २५ हैं । इसमें विजयिनी-विजय-वैजयंती और भारत शिक्षा आदि के पद भी सम्मिलित हैं, जो व्यर्थ पुनरावृत्ति के भय से नहीं दिए गए हैं ।

मण्डी जींद सुकेत पटिआला चम्बाधीस ।
टोंक सेन्धिया बहुरि करपूरथल-अवनीस ।३५
जोधपुराधिप अनुज पुनि टोंक चचा सह साज ।
नाहन मालर-कोटला फरिदकोट के राज ।३६
साजि साजि निज सैन सब जिय मैं भरे उछाह ।
उठि कै रन-हित चलत भे भारत के नर-नाह ।३७
'डिसलायल' हिंदुन कहत कहाँ मूढ़ ते लोग ।
दृग भर निरखहिं आज तें राजभक्ति-संजोग ।३८
निरभय पग आगेहिं परत मुख तें भाखत मार !
चले बीर सब लरन हित पच्छिम दिसि इक बार ।३९

पूर्ण कोरस

छुटी तोप फहरी धुजा गरजे गहकि निसान ।
भुव-मण्डल खलभल भयो भारत सैन पयान ।४०

श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र

रचना काल सन् १८७९

तद्वन्दे कनकप्रभं किमपि जानकीधाम ।
मत्प्रसादतस्सार्थतामेति राम इति नाम ।।
यो धारित : शिरसि शारदानारदाद्यौ : ।
यश्चैक एव भवरोगकृते निदानम् ।।
यो वै रघूत्तमवशीकरसिद्धचूर्णम् ।
तं जानकीचरणरेणुमहं स्मरामि ।१।
या ब्रह्मोशै : पूजिता बह्मरूपा
प्रेमानन्दा प्रेमभावैकगम्या ।
रामस्यास्ते या परा गौरमूर्ति :
सा श्रीसीता स्वामिनी मे स्तु नित्यम् ।२
नमोस्तु सीतापदपल्लवाभ्याम्
ब्रह्मेशमुख्यैरतिसेविताभ्याम् ।
भक्तेष्ट दाभ्याम्भवभंजनाभ्याम् ।
रामप्रियाभ्याम्मजीवनाभ्याम् ।३
रामप्रिये राममनो भिरामे
रामात्मिके पूरितरामकामे ।
रामाप्रदे रामजनाभिवन्द्ये
रामे रमे त्वां शरणं प्रपद्ये ।४
कण्ठे पंकजमालिका भगवतो यष्टि : करे कांचनी
गेहे चित्रपटी कुले मृतमयी क्षेमंकरी देवता ।
शय्यायां मणिदीपिका रतिकलाखेलाविधौ पुत्रिका
देहे प्राणसमास्ति या रघुपतेस्तां जानकीमाश्रये ।५
श्री मद्राममन : कुरंगदमने या हेमदामात्मिका
मजूषा सुमणे रघूत्तममणेश्चेतो लिन : पद्मिनी ।
या रामाक्षिचकोरपोषणकरी चान्द्रीकला निर्मला
सा श्रीरामवशीकरी जनकजा सीता स्तु मे स्वामिनी ।६
प्रायेण सन्ति बहव : प्रभव : पृथिव्याम्
ये दण्डनिग्रहकरा निजसेवकानाम् ।
किंचापराधशतकौटिसहाजनानाम्
एकात्वमेव हि यतो सि धरासुपुत्री ।७
स्वस्वास्सपल्यास्सुरनाथ सूनो
रक्ष : पतेस्त्यागकृतश्च भर्तु : ।
त्वया पराधा क्षमिता अनेके
क्षमासुते क्षाम्यमापि चाग : ।८
यन्मातास्ति वसुन्धरा भगवती साक्षात् विदेह : पिता
स्वस्रू : कोशलराज जास्व सुरकश्चार्यो दशस्यन्दन : ।
दासो वायुसुतो सुतौ कुशलवौ रामानुजा देवरा :
यास्या ब्रह्मपति स्तयातिदयया किं किं न सम्भाव्यते।९
नात : परं किमपि किंचिदपीह मात :
वाच्यं ममास्ति भवती पदकंजमूले ।
एतावदेव निनिवेद्य सुखं शये हम्
यन्मूढधी : शिशुरहं जननी त्वमेव ।१०
वन्दे भरतपत्नीं श्री माण्डवीं रतिरूपिणीम् ।

* हरिश्चंद्र चंद्रिका खं. ६ सं. १३ जुलाई सन् १८७९ ई. में प्रकाशित ।

तारुण्यरससम्पूर्णां कारुण्यरसपूरिताम् ।११
लक्ष्मणप्रेयसी श्री मच्छीरध्वजतनूद्भवाम् ।

वन्देहमूर्म्मिलां देवीं पतिप्रेमरसोर्म्मिलाम् ।१२
नृपतिकुशध्वजकन्या धन्या नान्या समास्ति यल्लोके।

सा श्रुतिविश्रुतकीर्ति : श्रुतिकीर्तिम स्तु सुप्रीता ।१३
यस्या : पतिर्निमिकुलाभरणं विदेहो
जामातर : श्रुतिशिर : प्रतिपाद्य रूपा : ।
भाग्यस्य या करपदादिविशिष्टमूर्ति :
तां श्री जगज्जनिजनिं प्रणमेसुनेत्राम् ।१४

जामातृत्वे गतं यस्य साक्षाद्ब्रह्म परात्परम् ।
तं वंदे ज्ञाननिलयं विदेहं जनकं परम् ।१५

विश्वामित्रं शतानन्दं मैथिलं च कुशध्वजम् ।
भौमं लक्ष्मीनिधिं चापि वंदे प्रीत्या पुन : पुन : ।१६

विदेहस्थान् नरांश्चापि बालान् नारी : गुणोज्वला : ।
वन्दे सर्व्वान् पशूज्जीवान् भूमिं च तृणावीरुध : ।१७

सव्वे ददन्तां कृपया : मह्यं श्रीजानकीपदम् ।
भक्तिदानम्प्रकुर्वन्तु यतस्ते स्वामिनीर्प्रिया : ।१८

आह्लादिनिं चारुशीलामतिशीलां सुशीलकाम् ।
हेमां बन्दे सदा भक्त्या सखी : सेवाविधौ हरे : ।१९

शांता सुभद्रा संतोषा शोभना शुभदा धरा ।
चावँगी लोचना क्षेमा सुधात्री चापि सुस्मिता ।२०
क्षेमदात्री सत्यवती धीरा हेमांगिनी तथा ।

वन्दे एता अपि श्रीमज्जानक्यां : प्रियकारिणी : ।२१
वयस्यां माधवीं विद्यां वागीशां च हरिप्रियां ।

मनोजवां सुविद्यां च नित्यां नित्यं नमाम्यहम् ।२२
कमला विमलाद्याश्च नद्यस्सख्यात्मिकास्तु या :।

नमोनम : सदा ताभ्य : सर्वता : कृपयान्तु माम् ।२३
परीता स्वगुणैरेवमधीतावेदवादिभि : ।

कान्त्यास्फीता गुणातीता पीतांशुकविलासिनी ।२४
श्रुतिगीतादिभिर्गीता शीतांशुकिरणोज्वला ।

नित्यमस्तु मनोनीता सीता प्रीता ममोपरि ।२५
आशाक्रीता वशं नीता मायया दु :खदायया ।

भवभीता वयं सीतापदपल्लवमाश्रिता : ।२६
खादन् पिवन् स्वापन् गच्छन् श्वसनस्तिष्ठन् यदा तदा ।

यत्र तत्र सुखे दु :खे सीतैव स्मरणे स्तु ने ।२७
रात्रौ सीता दिवा सीता सीता सीता गृहे बने ।

पृष्ठे ग्रे पार्श्वयो : सीता सीतैवास्तु गतिर्मम ।२८
इदं सीता-प्रियं स्तोत्रं श्रीरामस्यातिवल्लभम् ।

श्री हरिश्चन्द्रजिह्वाग्रे स्थित्या वाण्या विनिर्मिताम् ।२९
य : पठेत प्रातरुत्थाय सायं वा सुसमाहित : ।
भक्तियुक्तो भावपूर्ण : स सीतावल्लभो भवेत् ।३०

श्री रामलीला

रचना काल सन् १८७९

पद

हरि-लीला सब बिधि सुखदाई ।
कहत सुनत देखत जिय आनत देति भगति अधिकाई।
प्रेम बढ़त अघ नसत पुन्य-रति जिय मैं उपजत आई।
याही सों हरिचंद करत सुनि नित हरि-चरित बड़ाई ।१

गद्य

आहा ! भगवान् की लीला भी कैसी दिव्य और धन्य पदार्थ है कि कलिमलग्रसित जीवों को सहज ही प्रभु की ओर झुका देती है और कैसा भी विषयी जीव क्यों न हो दो घड़ी तो परमेश्वर के रंग में रंग ही देती है । विशेष कर के धन्य हम लोगों के भाग्य कि श्रीमान महाराज काशिराज भक्त-शिरोमणि की कृपा से सब लीला विधि-पूर्वक देखने में आती है । पहले मंगलाचरण होकर रावण का जन्म होता है फिर देवगण की स्तुति और बकुंठ और क्षीरसागर की झाँकी से नेत्र कृतार्थ होते हैं । फिर तो आनंद का समुद्र श्री राम-जन्म का महोत्सव है जो देखने ही से संबंध रखता है, कहने की बात नहीं है ।

कबित्त

राम के जनम माँहि आनँद उछाह जौन
सोई दरसायो ऐसी लीला परकासी है ।
तैसे ही भवन दसरथ राज रानी आदि
तैसो ही अनंद भयो दुख-निसि नासी है ।
सोहिलो वधाई द्विज दान गान बाजे बाजैं
रंग फूलि-वृष्टि चाल तैसी ही निकासी है ।
कलियुग त्रेता कियो नर सब देव कीन्हें
आजु कासीराज जू अजुध्या कीनी कासी है ।२

फिर श्री रामचंद्रजी की बाल-लीला, मुण्डन, कर्णबेध, जनेऊ, शिकार खेलना आदि ज्यों का त्यों होता है देखने से मनुष्य भव-दुख मूल से खोता है । फिर विश्वामित्र आते हैं संग में श्रीराम जी को सानुज ले जाते हैं । मार्ग में ताड़िका सुबाहु का बध और फिर चरणरेणु से अहिल्या का तारना । अहा ! धन्य प्रभु के पद-पद्म जिनके स्पर्श से कहीं मनुष्य पारस होता है देवता बनता है कहीं पत्थर तरता है । इस प्रभु की दीन दयाल पर श्रीमन्महाराज की उक्ति ।

दोहा

हम जानो तुम देर जौ लावत तारन माहिं ।
पाहनहू तें कठिन गुनि मो हिय आवत नाहिं ।३
तारन मैं मो दीन के लावत प्रभु कित बार ।
कुलिस रेख तुव चरनहू जो मम पाप पहार ।४

कवि की उक्ति

मो ऐसे को तारिबो सहज न् दीन-दयाल ।
आहन पाहन वज्रहू सों हम कठिन कृपाल ।५
परम मुक्तिहू सों फलद तुअ पद-पदुम मुरारि ।
यहै जतावन हेत तुम तारी गौतम-नारि ।६
एहो दीनदयाल यह अति अचरज की बात ।
तो पद सरस समुद्र लहि पाहनहू तरि जात ।७
कहा पखानहुँ तें कठिन मो हियरो रघुबीर ।
जो मम तारन मैं परी प्रभु पर इतनी भीर ।८
प्रभु उदार पद परसि जड़ पाहनहूं तरि जाय ।
हम चैतन्य कहाइ क्यों तरत न परत लखाय ।९
अति कठोर निज हिय कियो पाहन सों हम हाल ।
जामैं कबहूँ मम सिरहु पद-रज देहिं दयाल ।१०
हमहूँ कछु लघु सिल न सो सहजहिं दीनौ तार ।
लगिहै इत कछु बार प्रभु हम तो पाप-पहार ।११

फिर श्री रामचंद्र जी सानुज जनक-नगर देखने जाते हैं पर नारियों के मन नैन देखते ही लुभाते हैं ।

कबित्त

कोऊ कहै यहै रघुराज के कुँयर दोऊ
कोऊ ठाढ़ी एक टक देखै रूप घर में ।
कोऊ खिरकीन कोऊ हाट बाट धाई फिरैं
बावरी ह्वै पूछै गए कौन सी डगर मैं ।
'हरीचंद' झूमै मतवारी दृग मारी कोऊ
जकी सी थकी सी कोऊ खरी एक थर मैं ।
लहर चढ़ी सी कोऊ जहर मढ़ सी भई
अहर पड़ी है आजु जनक सहर मैं ।१२

फिर श्रीरामजी फुलवारी में फूल लेने जाते हैं । उस समय फुलवारी की रचना, कुंजों की बनावट, कल के मोरों का नाचना और चिड़ियों का चहकना यह सब देखने ही के योग्य है ।

इतने में एक सखी जो कुंजों में गई तो वहाँ राम रूप देखकर बावली हो गई । जब वहाँ से लौटकर आई तो और सखियाँ पूछने लगी ।

कवित्त

कहा भयो कैसी है बतावै किन देह दसा
छनहीं में काहे बुधि सबही नसानी सी ।
अबहीं तो हँसति हँसति गई कुंजन मैं
कहा तित देख्यौ जासों ह्वै रही हिरानी सी ।
'हरीचंद' काहू कछु पढ़ि कियो टोना लागी
ऊपरी बलाय कै रही है बिख सानी सी ।
आनँद समानी सी जगत सों भुलानी सी
लुभानी सी दिवानीसी सकानी सी बिकानी सी ।१३

यह सुनकर वह सखी उत्तर देती है ।

सवैया

जाहु न जाहु न कुंजन में उत
नाँहि तो नाहक लाजहि खोलिहौ ।
देखि जौ लैहौ कुमारन कों
अबही झट लोककी लोकहि छोलिहौ ।
भूलिहै देस-दसा सगरी
'हरिचंद' कछू को कछ मुख बोलिहौ ।
लागिहैं लोग तमासे हहा
बलि बावरी सी ह्वै बजारन डोलिहौ ।१४

कवित्त

जाहु न सयानी उत बिरछन माहिं कोऊ
कहा जानै कहा दोय झलक अमन्द है ।
देखत ही मोहिं मन जात नसै सुधि बुधि
रोम रोम छकै ऐसो रूप सुख-कन्द है ।
'हरीचंद' देवता है सिद्ध है छलावा है
सहावा है कि रत्न है कि कीनी दृष्टि-बंद है ।
जादू है कि जंत्र है कि मंत्र है कि तंत्र है कि
तेज है कि तारा है कि रवि है कि चन्द है ।१५

वहाँ से दूसरे दिन श्रीरामचन्द्र धनुष-यज्ञ में आते हैं और उनका सुंदर रूप देखकर नर-नारी सब यही मानते हैं ।

कवित्त

आए हैं सबन मन भाए रघुराज दोऊ
जिन्हैं देखि धीर नहिं हिअ माँहि धरि जाय ।
जनक-दुलारी जोग दूलह सखी है एई
ईस करै राउ आज प्रनहिं बिसरि जाय ।
'हरीचंद' चाहै जौन होइ एई सीअ बरै
जो जो होइ बाधक बिधाता करै मारि जाय ।
चाटि जाहिं धुन याहि अबहीं निगोरो
बटपारो दईमारो धनु आगि लगै जरि जाय ।१६

जब धनुष के पास श्री रामजी जाते हैं तब जानकी जी अपने चित्त में कहती हैं ।

सवैया

मो मन मैं निहचै सजनी यह
तातहु तें प्रन मेरो महा है ।
सुन्दर स्याम सुजान सिरोमनि
मो हिअ मैं रमि राम रहा है ।
रीत पतिब्रत राखि चुकी मुख
भाखि चुकी आपुनो दुलहा है ।
चाप निगोड़ो अबै जरि जाहु
चढ़ौ तो कहा न चढ़ौ तो कहा है ।१७

लोगों को चिंतित देख श्री रामचंद्र जी धनुष के पास जाते हैं और उठा कर दो टुकड़े करके पृथ्वी पर डाल देते हैं । बाजे और गीत के साथ जय जय की धुन आकाश तक छा जाती है ।

कवित्त

जनक निरासा दुष्ट नृपन की आसा
पुरजन की उदासी सोक रनिवास मनु के ।
बीरन के गरब गरूर भरपूर सब
भ्रम मद आदि मुनि कौसिक के तनु के ।
'हरीचंद' भय देव मन के पुहुमि भार
बिकल बिचार सबै पुर-नारी जनु के ।
संका मिथिलेस की सिया के उर सूल सबै
तोरि डारे रामचंद्र साथै हर धनु के ।१८

धनुष टूटते ही जगत्-जननी श्री जानकी जी जयमाल लेकर भगवान को पहिनाने चलीं, उसकी शोभा कैसे कही जाय ।

कवित्त

चंदन की डारन मैं कुसुमित लता कैधौं
पोखराज माखन मैं नव-रत्न जाल है ।
चंद्र की मरीचिन मैं इंद्र-धनु सोहै कै
कनक जुग कामी मधि रसन रसाल है ।
'हरीचंद' जुगुल मृनाल मैं कुमुद बेलि
मूँगा की छरी मैं हार-गूथ्यौ हरि लाल है ।

कैधौं जुग हंस एकै मुक्त-माल लीने कै
सिया जू करन माँह चारु जयमाल है ।१९

सवैया

टूटत ही धनु के मिलि मंगल
गाइ उठीं सगरी पुर-बाला ।
लै चलीं सीतहि राम के पास
सबै मिलि मन्द मराल की चाला ।
देखत ही पिय कों 'हरीचंद'
महा मुद पूरित गात रसाला ।
प्यारी ने आपुने प्रेम के जाल सी
प्यारे के कण्ठ दई जयमाला ।२०

बस चारों ओर आनंद ही आनंद हो गया ।

फिर अयोध्या से बरात आई । यहाँ जनकपुर में सब ब्याह की तैयारी हुई । वैसी ही मण्डप की रचना वैसा ही सब सामान ।

श्री रामचंद्र दूलह बन कर चारों भाई बड़ी शोभा से ब्याहने चले मार्ग में पुर-बनिता उनको देख कर आपुस में कहने लगीं ।

कवित्त

एई अहै दसरथ-नन्द सुखकन्द तारी
गौतम की नारी इनहीं मारि राछसनि ।
कौसला के प्यारे अति सुंदर दुलारे सिया ।
रूप रिझवारे प्रेमी जनक प्रान धनि ।
सुंदर सरूप नैन बाँके मद छाके 'हरिचंद'
घुँघराली लटैं लटकैं अहो सी बनि ।
कहा सबै उझकि बिलोकौ बार बार देखो
नजरि न लागै नैन भरि कै निहारौ जनि ।२१

सवैया

एई है गौतम नारि के तारक
कौसिक के मख के रखवारे ।
कौसलानंदन नैन-अनंदन
एई हैं प्रान जुड़ावत-हारे ।
प्रेमिन के सुखदैन महा 'हरिचंद' के
प्रानहुँ तें अति प्यारे ।
राज-दुलारी सिया जू के दूलह
एई हैं राघव राजदुलारे ।२२

मण्डप में पहुँच कर सब लोग यथास्थान बैठे । महाराज जनक ने यथाविधि कन्यादान दिया । जै जै धुनि से पृथ्वी आकाश पूर्ण हो गया ।

सवैया

वेदन की बिधि सों मिथिलेस करी
सब ब्याह की रीति सुहाई ।
मन्त्र पढ़ै 'हरिचंद' सबै द्विज
गावत मंगल देव मनाई ।
हाथ मैं हाथ के मेलन ही सब
बोलि उठे मिलि लोग लुगाई ।
जोरी जियो दुलहा दुलही की
बधाई बधाई बधाई बधाई ।२३

मौर लसै उत मोरी इतै उपमा
इकहू नहिं जातु लही है ।
केसरी बागी बनो दोउ के इत
चन्द्रिका चारु उतै कुलही है ।
मेंहदी पान महावर सों
'हरिचंद' महा सुखमा उलही है ।
लेहु सबै दृग को फल देखहु
दूलह राम सिया दुलही है ।२४

बिधि सों जब ब्याह भयो दोउ को
मनि मण्डप मंगल चाँवर भे ।
मिथिलेस कुमारी भई दुलही
नव दूलह सुन्दर साँवर भे ।
'हरिचंद' महान अनन्द बढ़्यौ
दोउ मोद भरे जब भाँवर भे ।
तिनसों जग मैं कछु नाहिं बनी जे न
ऐसी बनी पैं निछावर भे ।२५

फिर जेवनार हुई सब लोग भोजन को बैठे स्त्रियाँ ढोल मँजीरा लेकर गाली गाने लगीं ।

सुंदर श्याम राम अभिरामहिं गारी का कहि दीजै जू ।
अगुन सगुन के अनगन गुनगन कैसे कै गनि लीजै जू ।
मायापति माया प्रगटावन कहत प्रगट श्रुति चारी ।
जो पति पितु सिसु दोउ मैं व्यापत ताहि लगै का गारी ।
मात पिता को होत न निरनय जात न जानो जाई ।
जाके जिय जैसी रुचि उपजै तैसिय कहत बनाई ।
अज के दसरथ सुने रहे किमि दसरथ के अज आये ।
भूमिसुता पति भूमिनाथ सुत दोऊ आप सोहाये ।
धन्य धन्य कौशिल्या रानी जिन तुम सों सुत जायो ।
मात पिता सों बरन बिलच्छन श्याम सरूप सोहायो ।
कैकै की जो सुता कैकई ताको सुकृत अपारा ।
भरतहि पर अति ही रुचि जाकी को कहि पावै पारा ।
नाम सुमित्रा परम पवित्रा चारु चरित्रा रानी ।
अतिहि विचित्रा एक साथ जेहि द्वै सन्तति प्रगटानी ।

अति विचित्र तुम चारहु भाई कोउ साँवर कोउ गोरे ।
परी छाँह कै औरहि कारन जिय नहिं आवत मोरे ।
कौसलेस मिथिलेस दुहुन मैं कहौ जनक को प्यारे ।
कौसल्या सुत कौसलपति सुत दुहुँ एक को न्यारे ।
चरु सों प्रकटे कै राजा सों यह मोहिं देहु बताई ।
हम जानी नृप वृद्ध जानि कछु द्विज गन करी सहाई ।
तुमरे कुल को चाल अलौकिक बरनि कछ्रु नहिं जाई ।
भागीरथी धाइ सागर सों मिलि अनंद बढ़ाई ।
सू बंस गुरु कुलहि चलायो छत्री सबहि कहाहीं ।
असमंजस को बंस तुम्हारो राघव संसय नाहीं ।
कहँ लौं कहौं कहत नहिं आवै तुमरे गुन-गन भारी ।
चिरजीओ दुलहा अरु दुलहिन 'हरीचंद' बलिहारी ।२६

फर आनंद से बारात विदा होकर घर आई । रानियों ने दूलहा दुलहिन को परछन कर के उतारा । महाराज दशरथ ने सब का यथायोग्य आदर-सत्कार किया । अब हम लोग भी श्री जनक लली नव दुलही की आरती करके बालकांड की लीला पूर्ण करते हैं ।

आरति कीजै जनक लली की ।
राम मधुप मन कमल कली की ।
रामचंद्र मुख चन्द चकोरी ।
अन्तर साँवर बाहर गोरी ।
सकल सुमंगल सुफल फली की ।
पिय दृग मृग जुग बंधन डोरी ।
पीय प्रेम-रस रासि किसोरी ।
पिय मन गति विश्राम थली की ।
रूप-रासि गुननिधि जग स्वामिनि ।
प्रेम प्रबीन राम अभिरामिनि ।
सरवस धन 'हरिचंद' अली की ।२७

अब अयोध्या काण्ड की लीला प्रारंभ हुई । करुणा रस का समुद्र उमड़ चला । श्री रामचंद्र जी के वनवास का कैकेई ने वर माँगा, भगवान बन सिधारे, राजा दशरथ ने प्राण त्यागा ।

दोहा

बिनु प्रीतम तृन सम तज्यौ तन राखी निज टेक ।
हारे अरु सब प्रेम-पथ जीते दसरथ एक ।२८

नगर में चारों ओर श्रीराम जी का बिरह छा गया जहाँ सुनिए लोग यही कहते थे ।

राम बिनु पुर बसिए केहि हेत ।
धिक निकेत करुणा-निकेत बिनु का सुख इत बसि लेत।
देत साथ किन चलि हरि को उत जियत वादि बनि प्रेत।
'हरीचंद' उठ चलु अबहूँ बन रे अचेत चित चेत ।२९

रामचंद्र बिनु अवध अँधेरो ।
कछु न सुहात सिया-बर बिनु मोहिं राज-पाट घर-घेरो।
अति दुख होत राजमंदिर लखि सूनो साँझ सबेरो ।
डूबत अवध बिरह सागर मैं को आवै बनि बेरो ।
पसु पंछी हरि बिनु उदास सब मनु दुख कियो बसेरो ।
'हरीचंद' करुनानिधि केसव दै दरसन दिन फेरो ।३०

राम बिनु बादहि बीतत सासैं ।
धिक सुत पितु परिवार राम बिनु जे हरि-पद-रति नासैं।
धिक अब पुर बसिबो गर डारैं झूठ मोह की फासैं ।
'हरीचंद' तित चलु जित
हरि-मुख-चंद्र-मरीचि प्रकासैं ।३१

राम बिनु अवध जाइ का करिए ।
रघुबर बिनु जीवन सों तौ
यह भल जौ पहिलेहि मरिए ।
क्यौं उत नाहक जाइ दुसह
बिरहानल मै नित जरिए ।
'हरीचंद' बन बसि नित हरि
मुख देखत जगहि बिसरिए ।३२

राम बिन सब जग लागत सूनो ।
देखत कनक-भवन बिनु सिय-पिय
होत दुसह दुख दूनो ।
लागत घोर मसानहुँ सों
बढ़ि रघुपुर राम बिहूनो ।
कहि 'हरिचंद' जनम जीवन सब
धिक धिक सिय-बर ऊनो ।३३

जीवन जो रामहि सँग बीतै ।
बिनु हरि-पद-रति और बादि
सब जनम गँवावत रीतै ।
नगर नारि धन धाम काम सब
धिक धिक बिमुख जौन सिय पीतै ।
'हरीचंद' चलु चित्रकूट भजु भव मृग बाधक चीतै ।३४

फिर भरत जी अयोध्या आए और श्री रामचंद्र जी को फेर लाने को बन गए । वहाँ उनकी मिलन रहन बोलन सब मानों प्रेम की खराद थी । वास्तव में जो भरत जी ने किया सो करना बहुत कठिन है । जब श्री रामचंद्र जी न फिरे तब पाँवरी लेकर भरतजी अयोध्या लौट आए । पादुका को राज पर बैठा कर आप नंदिग्राम में वनचर्य्या से रहने लगे । यहाँ भरत जी की आरती करके आयोध्या कांड की लीला पूर्ण हुई ।

आरति आरति-हरन भरत की ।
सीय राम पद पंकज रत की ।
धर्म्म धुरंधर धीर बीर बर ।
राम सीय जस सौरभ मधुकर ।
सील सनेह निबाह निरत की ।
परम प्रीति पथ प्रगट लखावन ।
निज गुन गन जस अघ बिद्रावन ।
परछत पीय प्रेम मूरत की ।
बुद्धि विवेक ज्ञान गुन इक रस ।
रामानुज सन्तन के सरबस ।
'हरीचंद' प्रभु विषय बिरत की ।३५

भीष्मस्तवराज*

रचना काल सन् १८७९

मेरी मति कृष्ण-चरन मैं होय ।
जग के तृष्णा-जाल छाँड़ि कै सोक-मोह-भ्रम खोय ।
जादवपति भगवान लेत जो बिहरन हित अवतार ।
परमानंद रूप मायामय पावत कोउ न पार ।
यह जग होत जासु इच्छा तें जो यहि देत बिबेक ।
तिनही श्री हरिचरन-कमल तें मम चित टरै न नेक ।१

मो मन हरि सरूप मैं रहै ।
विजय-सखा-पद-कमल छोड़ि
मति छनहुँ न इत उत बहै ।
तृभुवन-मोहन सुंदर श्याम तमाल सरस तन सोहै ।
कुटिल अलक-अलि मुख-सरोज पर निरखत ही मन मोहै।
अरुन किरिन सम सुंदर पीत बसन जुग तन पर धारे ।
एकहु छिन इन नैनन तें मम कबहूँ होहु न न्यारे ।२

बसै जिय कृष्ण-रूप में मेरो ।
भारत-जुद्ध-समय जो सुंदर अरजुन रथ पर हेरो ।
सुंदर अलकावलि मैं रन की धूरि रही लपटाई ।
सोहत सीकर-बिंदु बदन पर सो छबि लगति सुहाई ।
मम चोखे बानन सों कहुँ कहुँ खंडित कवचहि धारे ।
अनुदिन बसो नयन जुग मेरे श्री बसुदेव-दुलारे ।३

जिय तें सो छबि बिसरत नाहीं ।
लखी जौन भारत अरंभ मैं अरजुन के रथ माहीं ।
सखा-बचन सुनि दोउ दल के मधि रथ लै ठाढ़ो कीनो।
पर-जोधन की आयु-तेज-बल देखत जिन हरि लीनो ।४

तिनकी चरन भक्ति मोहिं होई ।
जिन अरजुनहिं मोह मैं लखि कै तासु अविद्या खोई ।
सब बेदन को सार ज्ञानमय जिन हरि गीता गाई ।
निज जन-बंध-संकाहि मोह मति पारथ की बिसराई ।५

मेरी गति होउ सोइ बनवारी ।
जिन मेरी परतिज्ञा राखत निज परतिज्ञा टारी ।
अरजुन कहँ लखि बिकल बान सों कूदि सुरथ सों धावत।
को भरे मेरी दिसि आवत कर तें चक्र फिरावत ।
जद्यपि पग गहि बहु भाँतिन सों पारथ रोक्यौ चाहै ।
पै न रुकत जिमि महामत्त गज लखि मृगराज उछाहै ।
गिनत न मम सर-बरसनि कों कछु बध हित धावत आवैं।
टूटि रह्यौ तन कवच मनोहर सोभा अधिक बढ़ावैं ।
पीतांबर फहरात बात-बस सो छवि लागत प्यारी ।
यहै रूप तें सदा बसौ मन मेरे श्री गिरधारी ।६

मेरे जिय पारथ-सारथि बसिए ।
इक कर मैं लगाम दूजे मैं चाबुक लीने बसिए ।
जासु रूप लखि मरे बीर जे तिनहूँ हरि-पद पायो ।
मरन-समय मम जिय मैं निबसौ सोई रूप सुहायो ।७

हरि मम आँखिन आगे डोलौ ।
छिनहूँ हिय तें टरहु न माधव सदा श्रवन ढिग बोलौ ।
जो सरूप लखि कै ब्रज-बनिता देह गहे सब त्यागी ।

*हरिश्चन्द्र चंद्रिका खं. ६ सं. १५ सितम्बर सन् १८७९ ई. में प्रकाशित

होइ बिलग हरि-रूप-उपासी हरि-पद मैं अनुरागी ।
रास बिलास हास रस बिहरत प्रेम-मगन मन फूलीं ।
तनमय भई तनिक सुधि नाहीं देह दसा सब भूलीं ।
भाव-बिवस भगवान भक्त-प्रिय सबही बिधि सुखदाई।
सोई बसो सदा इन नैनन सुंदर कुँअर कन्हाई ।८

अहो मम भाग्य कह्यौ नहिं जाई ।
जो देखत त्रिभुवनपति माधव नैनन तें ब्रजराई ।
धरम-सभा महँ जेहि लखि
रिषि-मुनि अपनों भाग सराहैं ।
सब सों पूजित चरन-कमल जो
तासु चरन हम चाहैं ।९

तिन हरि मो कहँ अब अपनायो ।
निज नख-चंद्र-प्रकास मोह-तम मेरो सबहि नसायो ।
सबके हिय मैं अंतर-जामी ह्वै है जो ईस समायो ।
सोई अब मम उर अंतर मैं निज प्रकास प्रगटायो ।
हर्‌यौ मोह-तम अभय दान दै निज स्वरूप दरसायो ।
कहि 'हरिचंद' भीष्म हरि-पद-बल
परम अमृत-फल पायो ।१०

मान-लीला फूल-बुझौअल

रचना काल सन् १८७९

अमल कमल-कर-पद-बदन जमल कमल से नैन ।
क्यौं न करत कमला बिमल कमल-नाभ-सँग सैन ।१
निसि बीती मनवत सखी तू न नेक मुसकात ।
चटकत कली गुलाब की होन चहत परभात ।२
वह अलबेला कुंज मैं पर्‌यौ अकेला हाय ।
उठि चलि बहु बेला गई करु दृग-मेला धाय ।३
अरी माधवी-कुंज मैं माधव अति बेहाल ।
मधु रिपु माधव मास मैं तो बिनु व्याकुल बाल ।४
पहिरि नवल चंपाकली चंपकली से गात ।
रस-लोभी अनुपम भँवर हरि-ढिग क्यौं नहिं जात ।५
रूप रंग ऐसो मिल्यौ तामैं ऐसी मान ।
बिनु सुगंध के फूल तू भई कनैर समान ।६
तुव कुच परसन लालसा गेंदा लै कर श्याम ।
खरे उछारत कुंज मैं क्यों न चलत तू बाम ।७
कह पायन मिंहदी लगी जासों चल्यौ ना जाय ।
धाय कुंज मैं पियहि क्यौं लेत न कंठ लगाय ।८
दाऊ दीठि बचाय हरि गए कुंज के भौन ।
बजवत दाऊदी उतै क्यौं न करत तू गौन ।९
बृथा बकुल-पन कर रही उत व्याकुल अति लाल ।
चलि न मौलि बारन गुथे मौलिसिरी की माल ।१०
खबर न तोहि संकेत की कही केतकी बार ।
चलि पथ कुंज निकेत की कित की ठानत आर ।११
छिरकि केवरा सों पथहि चलन पाँवरे डारि ।
कब सों मोहन बैठि कै मारग रहे निहारि ।१२
करत न हरगिस लाड़िले वा बिन सेज न सैन ।
नरगिस से कब के खुले तुअ मग जोहत नैन ।१३
विमल चाँदनी भुव बिछी नभ चाँदनी प्रकास ।
तऊ अँधेरो तुव बिना पिय अति रहत उदास ।१४
बैठि रही क्यों कुंद ह्वै चलु मकुंद के पास ।
कुंद-दमल दरसाइ क्यौं करत मंद नहिं हास ।१५
अरी माधुरी कुंज मैं बचन माधुरी भाखि ।
मधुर पिया के प्रान कों क्यौं न लेत तू राखि ।१६
कह्यौ न मानत मो तिया पहिरि मोतिया-हार ।
लाउ गरे मोहन पिया सुंदर नंद-कुमार ।१७
सारी तन सजि बैजनी पग पैजनी उतारि ।
मिलु न बैजनी-माल सों सजनी रजनी चारि ।१८
मदन-बान पिय उर हनत तो बिनु अति अकुलात ।
तू निरमोहिन इत परी झूठे ही अनखात ।१९
मानिनि वारी बेग चलि प्यारी मान निवारि ।
सहिन न सकत अब बेदना तो बिनि मदन मुरारि ।२०
रमत रेवती के अनुज तो बिनु अति अकुलात ।
पिय-पद क्यौं नहिं सेवती करत मान बिनु बात ।२१
जदपि सबै सामाँ जुही कल न लहत तउ लाल ।
सोनजुही सौं भावती चलि उठि याही काल ।२२

अति अनारि हठ नहिं करिय सीख सखी की मानि ।
पिय सों रोस न कीजिये यामैं कोउ दिन हानि ।२३
गुल्लाला फूले लखौ आयो बर रितु-राज ।
कहो भला ऐसी समै कहा मान सों काज ।२४
तुव हित कब के चक्रधर ठाढ़े पकरि कपाट ।
दै निसु दरसन लाड़िली जोहत हरि तुव बाट ।२५
हरि सिंगार सब छाँड़ि के तुव बिनु होय मलीन ।
परे भूमि पै देखु किन बिरह-बिथा तन छीन ।२६
फूली बन नव मालती माल तीय गर डारि ।
अब उठि चलु न बिलंब करु लै उर लाइ मुरारि ।२७
करन-फूल दोउ करन सजि हरन सकल उर-सूल ।
चलु न चरन-आभरन तजि भरत मदन सुख मूल ।२८
रायबेलि महकति सखी अति सुगंध रस झेलि ।
क्यौं न रमत तू श्याम सों कंठ भुजा दोउ मेलि ।२९
ठाढ़े पीअ कदंब तर तजिकै जुवति-कदंब ।
चलु बिलंब तजि राधिके दै निज भुज अवलंब ।३०
पहिरि मल्लिका-माल उर प्रेम-बल्लिका बाल ।
लपटी कृष्ण तमाल सों लखि 'हरिचंद' निहाल ।३१

१

मल्लिका (चमेली)	कमल	रायबेलि	मालती
सुदरसन	अनार	सेवती	मदन बान
मोतिया	कुंद	नरगिस	केतकी
गुलदाऊदी	गेंदा	चंपा	बेला

२

मल्लिका (चमेली)	गुलाब	कदंब	मालती
हरसिंगार	अनार	जुही	मदनबान
बैजनी	कुंद	चांदनी	केतकी
मौलिसिरी	गेंदा	कनैर	बेला

नेत्र

४

मल्लिका (चमेली)	कदम	रायबेलि	करनफूल
अनार	माधवी	जूही	सेवती
निवारी	कुंद	चाँदनी	नरगिस
केवड़ा	गेंदा	कनैर	चंपा

वेद

८

मल्लिका (चमेली)	कदम्ब	रायबेलि	करनफूल
मिंहदी	मालती	हरसिंगार	सुदरसन
गुल्लाला	कुंद	चाँदनी	नरगिस
केवड़ा	केतकी	मौलसिरी	गुलदाउजी

१६

मल्लिका (चमेली)	कदम्ब	रायबेलि	करनफूल
मालती	हरसिंगार	सुदरसन	गुल्लाला
अनार	जूही	सेवती	निवारी
मदनबान	बैजनी	मोतिया	माधुरी

श्रृंगार

प्रश्न करने की विधि

यह एक बड़ा आश्चर्य प्रश्न का खेल है । पहले मान लीला के जिन दोहों में जिस फूल का नाम निकलता हो उसको समझ लो और उन दोहों के अंक भी याद कर रखो । प्रश्न करने वाले से कहो कि इन्हीं ३१ फूलों में एक फूल का नाम अपने जी में लो फिर इन पाँचों ताशों में से एक एक ताश उसके सामने रखकर पूछो इसमें

वह फूल है, जिसमें वह बतावै उन ताशों को अलग अलग करके उनके ऊपर लिखी गिनती जोड़ लो कि कितने अंक आते हैं । मान लीला के उसी अंक के दोहे में जिस फूल का नाम हो वही उसने जी में लिया है । जैसा चंपा अगर किसी ने लिया है तो वह ४ और १ एक अंक वाला ताश बतावैगा तो उसके जोड़ने से ५ अंक हुए तो मान लीला में पाँचवें दोहे में चंपा का वर्णन है इससे चंपा उसने लिया है समझो और जिसमें सबके समझ मैं न आवै इसके वास्ते स्पष्ट अंक के बदले छिपे अंक रखे हैं यथा चंद्र १ नेत्र २ बेद ४ वमु ८ श्रृंगार १६ ।

बन्दर सभा*

रचना काल सन् १८७९

इन्दर सभा उरदू में एक प्रकार का नाटक है वा नाटकाभास है और यह बन्दर सभा उसका भी आभास है

(आना राजा बन्दर का बीच सभा के)

सभा में दोस्तो बन्दर की आमद आमद है ।
गधे औ फूलों के अफसर की आमद आमद है ।
मरे जो घोड़े तो गदहा य बादशाह बना ।
उसी मसीह के पैकर की आमद आमद है ।
व मोटा तन व थुँदला थुँदला मू व कुच्वी आँख
व मोटे ओठ मुछन्दर की आमद आमद है ।
है खर्च खर्च तो आमद नहीं खर-मुहरे की
उसी बिचारे नए खर की आमद आमद है ।१

[चौबोले जबानी राजा बन्दर के बीच अहवाल अपने के]

पाजी हूँ मैं कौम का बन्दर मेरा नाम ।
बिन फुजूल कूदे फिरे मुझे नहीं आराम ।
सुनो रे मेरे देव रे दिल को नहीं करार ।
जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार ।
लाओ जन्नाँ को मेरे जलदी जाकर ह्याँ ।
सि मूड़ैं गारत करैं मुजरा करैं यहाँ ।२

[आना शुतुरमुर्ग परी का बीच सभा के]

आज महफिल में शुतुरमुर्ग परी आती है ।
गोया महमिल से व लैलो उतरी आती है ।
तैल औ पानी से पट्टी है सँवारी सिर पर ।
मुँह पै माँझा दिये जल्लादो जरी आती है ।
झूठे पट्ठे की है मूबाफ पड़ी चोटी में ।
देखते ही जिसे आँखों में तरी आती है ।
पान भी खाया है मिस्सी भी जमाई हैगी ।
हाथ में पायँचा लेकर निखरी आती है ।
मर सकते हैं परिन्दे भी नहीं पर जिस तक ।
चिड़िया-वाले के यहाँ अब व परी आती है ।
जाते ही लूट लूँ क्या चीज खसोटूँ क्या शै ।
बस इसी फिक्र में वह सोच भरी आती है ।३

[गजल जबानी शुतुरमुर्ग परी हस्ब हाल अपने के]

गाती हूँ मैं औ नाज सदा काम है मेरा ।
ए लोगो शुतुरमुर्ग परी नाम है मेरा ।
फन्दे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता ।
इस गुलशने आलम में बिछा दाम है मेरा ।
दो चार टके ही पै कभी रात गँवा दूँ ।
कारूँ का खजाना कभी इनआम है मेरा ।
पहले जो मिलै कोई तो जी उसका लुभाना ।

* हरिशचंद्र चंद्रिका सं. १३ जुलाई सन् १८७९ ई. में छपा ।

वस्स कार यही तो सहरो शाम है मेरा।
शुरफा व रुजला एक हैं दरबार में मेरे।
नहीं खास नहीं फैज तो इक आम है मेरा।
वन जाएँ जुगत तब तो उन्हें मूड़ ही लेना।
खाली हों तो कर देगा देना धता काम है मेरा।
जर मजहबो मिल्लत मेरा बन्दी हूँ मैं जर की।
जर ही मेरा अल्लाह है जर राम है मेरा।४

[छन्द जबानी शुतुरमुर्ग परी]

राजा बन्दर देस मैं रहें इलाही शाद।
जो मुझ सी नाचीज को किया सभा में याद।
किया सभा में याद मुझे राजा ने आज।
दौलत माल खजाने की मैं हूँ मुहताज।
रुपया मिलना चाहिये तख्त न मुझको ताज।
जग में बात उस्ताद की बनी रहे महराज।५

[ठुमरी जबानी शुतुरमुर्ग परी के]

आई हूँ मैं सभा में छोड़ के घर।
लेना है मुझे इनआम में जर।
दुनिया में है जो कुछ सब जर है।
बिन जर के आदमी बन्दर है।
बन्दर जर हो तो इन्दर है।
जर ही के लिये कसबो हुनर है।६

[गजल शुतुरमुर्ग परी की बहार के मौसम में]

आमद से बसन्तों के है गुलजार बसंती।
है फ़र्श बसंती दरो-दीवार बसंती।
आँखों में हिमाकत का कँवल जब से खिला है।
आते हैं नजर कूचओ बाजार बसंती।
अफयूँ मदक चरस के व चण्डू के बदौलत।
यारों के सदा रहते हैं रुखसार बसंती।
दे जाम मए गुल के मये जाफरान के।
दो चार गुलाबी हों तो दो चार बसंती।
तहवील जो खाली हो तो कुछ कर्ज मँगा लो,
जोड़ा हो परी जान का तय्यार बसंती।७

[होली जबानी शुतुरमुर्ग परी के]

पा लोगों कर जोरी भली कीनी तुम होरी।
फाग खेलि बहु रंग उड़ायो और धूर भरि झोरी।
धूँधर करो भली हिलि मिलि कै अंधाधुंध मचोरी।
न सूझत कछु चहुँ ओरी।
बने दीवारी के बबुआ घर लाइ भली बिधि होरी।
लगी सलोनो हाथ चरहु अब दसमी चैन करो री।
सबै तेहवार भयो री।८

(फिर कभी)

विजय-वल्लरी

रचना काल सन् १८८१

अहो आज आनंद का भारत भूमि मँझार।
सबकै हिय अति हर्ष क्यौं बाढ्यो परम अपार।१
आर्य्य गगन कों का मिल्यौ जो अति प्रफुलित गात।
सबै कहत जै आजु क्यौं यह नहिं जान्यौ जात।२
सबके मन संतोष अति सबके मन आनंद।
सबही प्रमुदित देखियत ज्यों चकोर लहि चंद।३
कहा भूमि-कर उठि गयौ कै टिक्कस भो माफ।
जनसाधारन कों भयो किधौं सिविल पथ साफ।४
नाटक अरु उपदेश पुनि समाचार के पत्र।
कारामुक्त भए कहा जो अनंद अति अत्र।५
कै प्रतच्छ गो-बधन की जवनन छाँड़ी बानि।
जो अब आर्य्य प्रसन्न अति मन महँ मंगल मानि।६
कहा तुम्हैं नहिं खबर खबर जय की इत आई।
जीति देस गन्धार सत्रु सब दिये भगाई।७
सब औगुन की खानि अयूब भज्यौ असु लैकै।
प्रविसी सैना नगर माहिं जय डंका दैकै।८

मेरट कारागार बस्यो याकूब अभागो।
और सबै बर्बर-दल इत उत बल-हत भागो।९
गो-भक्षक रक्षक बनि अँगरेजन फल पायो।
तासों करि अति क्रोष सत्रुगन मारि भगायो।१०
पंचम पांडव जिमि सकुनी गन्धार पछार्‌यो।
बृटिश रिषभ तिमि खरज काबुली मध्य मार्‌यो।११
रूम रूस उर सूल दियो ईरान दबायो।
बृटिश सिंह को अटल तेज करि प्रगट दिखायो।१२
प्रथम जबै काबुलपति कछु अभिमान जनायो।
तबै बृटिश हरि गरजि कोपि वापै चढ़ि धायो।१३
शेर अली भजि माँद समाधि प्रबेस कियो तब।
ठहरि सकत कहँ अली रंग-नायक उमड़े जब।१४
रूस ह्रूँस दे घूस प्रथम तेहि आस बढ़ाई।
धोखा दैकै अन्त घूस बनि पोंछ दबाई।१५
खैबर दर अरगला कठिन गिरि सरित करारे।
शत्रु हृदय सह तोड़ि तोड़ि रिपु कीन्हें सारे।१६
काबुल का बल करै बृटिश हरि गरजि चढ़ै जब।
बन गरजे केहरी भजहिं झट खर खच्चर सब।१७
नीति बिरुद्ध सदैव दूत बध के अघ साने।
रूस कुमति फँसि ह्रूस आप सों आप नसाने।१८
सिंह-चिन्ह को भुजा चढ़ी बाला-हिसार पर।
जय देवी बिजयिनी सोर भो काबुल घर घर।१९
पुनि परतिज्ञा चेति सत्य सो बदन न मोड़्यो।
खल-दल-बल दलमलि तृन-सम अफ़गानहिं छोड़्यो।२०
नृप अबदुल रहमान कियो आदेश सुनाई।
सुद्ध, सत्य अरु दान-बीरता तृतिय दिखाई।२१
तजि कुदेस निज सैन सहित सब सेनापतिगन।
भारत में फिर आय बसे जय कहत मुदित मन।२२
ताही सो उत्साह बढ़्यौ यह चहुँ दिसि भारी।
जय जय बोलत मुदित फिरत इत उत नर नारी।२३
नहिं नहिं यह कारन नहीं अहै और ही बात।
जो भारतवासी सबै प्रमुदित अतिहिं लखात।२४
काबुल सों इनको कहा हिये हरख की आस।
ये तो निज धन-नास सों रन सों और उदास।२५
ये तो समुझत व्यर्थ सब यह रोटी उतपात।
भारत कोष बिनास कों हिय अति ही अकुलात।२६
ईति भीति दुष्काल सों पीड़ित कर को सोग।
ताहू पै धन-नास की यह बिनु काज कुयोग।२७
स्ट्रैची डिजरैली लिटन चितय नीति के जाल।
फँसि भारत जरजर भयो काबुल-युद्ध अकाल।२८
सबहिं भाँति नृप-भक्त जे भारतबासी-लोक।
शस्त्र और मुद्रण बिषय करी तिनहुँ को लोक।२९
सुजस मिलै अंगरेज कों होय रूस की रोक।
बढ़े बृटिश बाणिज्य पै हम कों केवल सोक।३०
भारत राज मँझार जो कहुँ काबुल मिलि जाई।
जज्ज कलक्टर होइहैं हिंदू नहिं तित धाइ।३१
ये तो केवल मरन हित द्रव्य देन हित हीन।
तासों काबुल-युद्ध सों ये जिय सदा मलीन।३२
इनके जिय के हरख को औरहि कारन कोय।
जो ये सब दुख भूलि कै रहे अनंदित होय।३३
अब जानी हम बात जौन अति आनँदकारी।
जासों प्रमुदित भये सबै भारत नर-नारी।३४
नृप रहमान अयूब दोऊ मिलि कलह मचाई।
अंत प्रबल ह्वै लिय अयूब गन्धार छुड़ाई।३५
आदि बंस नव बंस दोऊ काबुल अधिकारी।
जाहि जातिगन चहै करैं निज नृप बलधारी।३६
यामें हमरो कहा कउन उन सों मम नाता।
भार पड़े मिलिँ लड़ैं भिड़ै झगड़ैं सब भ्राता।३७
दृढ़ करि भारत-सीम बसैं अँगरेज सुखारे।
भारत असु बसु हरित करहिं सब आर्य्य दुखारे।३८
सत्रु सत्रु लड़वाइ दूर रहि लखिय तमासा।
प्रबल देखिए जाहि ताहि मिलि दीजे आसा।३९
लिबरल दल बुधि मौन शांतिप्रिय अति उदार चित।
पिछली चूक सुधारि अबै करिहै भारत-हित।४०
खुलिहै 'लोन' न युद्ध बिना लगिहै नहिं टिक्कस।
रहिहै प्रजा अनन्द सहित बढ़िहै मंत्री-जस।४१
यहै सोचि आनंद भरे भारतवासी जन।
प्रमुदित इत उत फिरहिं आज
रच्छित लखि निज धन।४२

विजयिनी-विजय-पताका या वैजयंती *

रचना काल सन् १८८२

PREPATORY NOTE

A special meeting of the Benares institute was held on the 22nd September 1882 at 6 P.M. in the Town Hall to express our joy at the recent success of the Indian army in Egypt. Almost all the raises, Civil, Revenue and Judicial officers, Pandits, Professors, Members of Municipal and District Committees and Scholars were present, The Hall was fulland many were obliged to hear the recital from the verandah. The Honorable Raja Siva Siva Prasad C.S.I. was unanimously voted to the chair.

Babu Harischandra read an excellent poem in Hindi on the subject. The opening stanzas of the poem explain the cause of India's unusual cheerfulness. It is the signal success of the Indian army in Egypt. A vivid contrast is drawn between the past and present conditions of India and the victory of British nation in Egypt descrisbed.

The gentlemen present expressed their unqualified applause at the recital and the hall resounded with cheers. The Honorable Raja Siva Prasad C.S. I. then described the importance of Egypt as a highway to India and said that the British conquest has been extremely rapid. He thanked Babu Harischandra for his excellent poem.

Mr. Bullock, the Collector warmly thanked Raja Siva Prasad and Babu Harischandra for sentiments of loyalty to the British Government, expressed by the people of Benares.

H.H. the Maharaja of Benares was unavoidably detained at Ram Nagar on account of some religious ceremony but he has expressed his full sympathy with the object of the meeting.

विजयिनी-विजय-पताका या वैजयंती

कहो कहा यह सुनि पर्‌यौ जाको सबहिं उछाह ।
हरखित आरज मात्र मे जिय बढ़ाइ अति चाह ।१
फरकि उठीं सब की भुजा खरकि उठी तलवार ।
क्यों आपुहि ऊँचे भए आर्य मोंछ के बार ।२
जे आरजगन आजु लौं रहे नवाए माथ ।
तेह्र सिर ऊँचो किए क्यों दिखात इक साथ ।३
क्यों पताक लहरन लगीं फहरन लगे निसान ।
क्यों बाजन बजिबे लगे घहरि घहरि इक तान ।४

[1] आश्विन कृ. ६ सं. १९३९ को कवि-वचन-सुधा खंड १४ सं. ९ मों विजयिनी-विजय पताका छपी थी । अंग्रेजी की इस रिपोर्ट का हिंदी रुपान्तर वहां छपा है । सं.

२. अंग्रेजों ने पहला विद्रोह को सन् १८८२ में दबाकर पूरे मिश्र पी अपनी प्रभुता स्थापित की । इसमें भारतीय सेना भी अंग्रेजों की ओर से लड़ी थी । इस उपलक्ष्य में भारत में भी विजयोत्सव मनाया गया । 'बनारस इस्टीट्यूट' की एक विशेष सभा २२ सितम्बर १८८२ को बनारस के टाउन हाल में हुई थी, जिसमें भारतेन्दु ने यह कविता पढ़ी — सं.

क्यों दुंदुभि हुंकार सों छायो पूरि अकास ।
क्यों कंपित करि पवन-गति छई नफीरी-आस ।५
बृटिश सुशासित भूमि मैं रन-रस उमगे गात ।
सबै कहत जय आजु क्यौं यह नहिं जानौं जात ।६
छुटत तोप गंभीर रब ब्रजनाद सब जोर ।
गिरि कंपत थर थर खरे सुनि धर धर धर सोर ।७
विंध्य हिमालय नील गिरि सिखरन चढ़े निसान ।
फहरत 'रूल ब्रिटानिया' कहि कहि मेघ समान ।८
अटक कटक लौं आजु क्यौं सगरो आरज देस ।
अति आनँद मैं भरि रह्यौ मनु दुख को नहिं लेस ।९
क्यों अ-जीव भारत भयो आजु सजीव लखात ।
क्यौं मसान भुव आजु बनि रंगभूमि सरसात ।१०
सहसन बरसन सों सुन्यौ जो सपनेहु नहिं कान ।
जो जय भारत शब्द क्यों पूर्‌यौ आजु जहान ।११

शाखा

कहा तुम्हैं नहिं खबर खबर जय की इत आई ।
जीति मिसर मैं शत्रु-सैन सब दई भगाई ।१२
तड़ित तार के द्वार मिल्यौ सुभ समाचार यह ।
भारत-सेना कियो घोर संग्राम मिश्र मह ।१३
जेनरल मकफरसन आदिक जे सेनापति-गन ।
नि लै भारत सैन कियो भारी अति ही रन ।१४
बोलि भारती-सैन दयी आयसु उठि धायो ।
अभिमानी अरबी बेगहि गहि लाओ ।१५
सुनि कै सबही परम बीरता आजु दिखाई ।
शत्रु-गगन सों सनमुख भारी करी लराई ।१६
छिन मैं शत्रु भगाइ गह्यौ अरबी पासा कहँ ।
तीन सहस रन-बीर करे बँधुआ संगर महँ ।१७
आरजगन को नाम आजु सब ही रखि लीनो ।
पुनि भारत को सीस जगत महँ उन्नत कीनो ।१८

आरंभ

कित अरजुन, कित भीम कित करन नकुल सहदेव ।
कित बिराट, अभिमन्यु कित द्रुपद सल्य नरदेव ।१९
कित पुरु, रघु, अज, यदु कितै परशुराम अभिराम ।
कित रावन, सुगीव कित हनूमान गुनधाम ।२०

कित भीषम, कित द्रोन कित सात्यकि अति रनधीर ।
कित पोलस, कित चन्द्र, कित पृथ्वीराज, हम्मीर ।२१
कित सकारि विक्रम, कितै समरसिंह नरपाल ।
कित अंतिम नर-वीर रन-जीतसिंह भूपाल ।२२
कहहु लखहिं सब आइ निज संतति को उत्साह ।
सजे साज रन को खरे मरन-हेत करि चाह ।२३
स्वामिभक्तिकिरतज्ञता दरसावन-हित आज ।
छाँड़ि प्रान देखहिं खरो आरज बंस समाज ।२४
तुमरी कीरति कुल-कथा साँची करबे हेतु ।
लखहु लखहु नृप-गन सबै फहरावत जय-केतु ।२५
मेटहु जिय के सल्य सब सफल करहु निज नैन ।
लखहु न अरबी सों लरन ठाढ़ी आरज-सैन ।२६

शाखा

सुनत बीर इक वृद्ध नरन के संमुख आयो ।
श्वेत सिंह जिमि गुहा छाँड़ि बाहर दरसायो ।२७
सुभ्र मोछ फहरात सुजस की मनहुँ पताका ।
सेत केस सिर लसत मनहुँ थिर भई बलाका ।२८
अरुन बदन ढिग सेत केस सुंदर दरसायो ।
वीर रसहिं मनु घेरि रह्यो रस सांत सुहायो ।२९
रवि-ससि मिलि इक ठौर उदित सी कांति पसारे ।
पी हृदय आजानु-बाहु स्वेताम्बर धारे ।३०
कटि पै माथा कंध धनुष कर मैं करवाला ।
परी पीठ पैं ढाल गुलाबी नैन बिसाला ।३१
सिंह ठवनि निरभय चितवनि चितवत समुहाई ।
तन दुति फैली छूटि परत धानी पर आई ।३२
नभ मधि ठाढ़े होइ कही यह घन सम बानी ।
अति गँभीर कछु करुना कछु बीर-रस-सानी ।३३

कोरस

क्यों बहरावत झूठ मोहिं और बढ़ावत सोग ।
अब भारत मैं नाहिं वे रहे बीर जे लोग ।३४
जो भारत जग मैं रह्यौ सब सों उत्तम देस ।
ताही भारत मैं रह्यौ अब नहिं सुख को लेस ।३५
याही भुव मैं होत हैं हीरक, आम, कपास ।
इतहीं हिमगिरि, गंग-जल, काव्य-गीत-परकास ।३६
याही भारत देस मैं रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
जिनके भारत-गान सों भारत-बदन प्रकास ।३७
जासु काव्य सों जगत-मधि ऊँचो भारत-सीस ।
जासु राज-बल-धर्म की तृषा करहिं अवनीस ।३८
सोई व्यास अरु राम के बंस सबै संतान ।
अब लौं ये भारत भरे नहिं गुन-रूप-समान ।३९
कोटि कोटि ऋषि पुन्य-तन, कोटि कोटि नृप सूर ।
कोटि कोटि बुध, मधुर, कवि मिले यहाँ की धूर ।४०

आरंभ

हाय वहै भारत भुव भारी ।
सब ही बिधि तें भई दुखारी ।
रोम-ग्रीस पुनि निज बल पायो ।
सब बिधि भारत दुखित बनायो ।४१

अति निरबली स्याम जापाना ।
हाय न भारत तिनहुं समाना ।
हाय रोम तू अति बड़-भागी ।
बरबर तोहिं नास्यो जय लागी ।४२
तोड़े कीरति-खंभ अनेकन ।
ढहे गढ़ बहु करि जय-टेकन ।
सबै चिन्ह तुव धूर मिलाए ।
मंदिर महलनि तोरि गिराए ।४३
कछु न बची तुव भूमि निसानी ।
सो बरु मेरे मन अति मानी ।
पै भारतभुव-जीतन-हारे ।
थाप्यौ पद या सीस उघारे ।४४
तोर्‌यो दुर्गन, महल ढहायो ।
तिनही मैं निज गेह बनायो ।
ते कलंक सब भारत केरे ।
ठाढ़े अजहूँ लखो घनेरे ।४५

आय पंचनद, हा पानीपत ।
अजहुं रहे तुम धरनि बिराजत ।
हाय चितौर निलज तू भारी ।
अजहुं खरो भारत मँझारी ।४६
जा दिन तुव अधिकार नसायो ।
ताही दिन किन धरनि समायो ।
रह्यो कलंक न भारत-नामा ।
क्यों रे तू बाराणसि धामा ।४७
इनके भय कंपत संसारा ।
सब जग इनको तेज पसारा ।
इनके तनिकहि भौंह हिलाए ।
थर थर कंपत नृप भय पाए ।४८
इनके जय की उज्जल गाथा ।
गावत सब जग के रुचि साथा ।
भारत-किरिन जगत उँजियारा ।
भारत जीव जियत संसारा ।४९
भारत-भुज-बल लहि जग रच्छित ।
भारत-विद्या सों जग सिच्छित ।
रहे जबै मनि क्रीट सुकुंडल ।
रह्यो दंड जय प्रबल अखण्डल ।५०
रहयो रुधिर जब आरज सीसा ।
ज्वलित अनल-समान अवनीसा ।
साहस बल इन सम कोउ नाहीं ।
जबै रहयौ महि मंडल माहीं ।५१
तब इनहीं की जगत बड़ाई ।
रही सबै जग कीरति छाई ।
तितही अब ऐसो कोउ नाहीं ।
लरैं छिनहुं जो संगर माहीं ।५२
प्रगट वीरता देह दिखाई ।
छन महँ मिसरहिं लेइ छुड़ाई ।
निज भुज-बल विक्रम जग माड़े ।
भारत-जर-धुज अविचल गाड़े ।५३
यवन-हृदय-पत्री पर बरबस ।
लिखै लोह-लेखनि भारत-जस ।
पुनि भारत-जस करि विस्तारा ।
मम मुख फेर करै उँजियारा ।५४

शाखा

हाय !
सोय भारत भूमि भई सब भाँति दुखारी ।
रह्यौ न एकहु बीर सहस्रन कोस मँझारी ।५५
होत सिंह को नाद जौन भारत-बन माहीं ।
तहँ अब ससक सियार स्वान खर आदि लखाहीं ।५६
जहँ झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे वर ।
तहँ अब रोवत सिवा चहूँ दिसि लखियत खँडहर ।५७
धन विद्या बल मान वीरता कीरति छाई ।
रही जहाँ तित केवल अब दीनता लखाई ।५८

कोरस

अरे बीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए ।
लेहु करन करवालि काढ़ि रन-रंग समोए ।५९
चलहु बीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ ।
लेहु म्यान सों खंग खींचि रन-रंग जमाओ ।६०
परिकर कटि कसि उठौ बँदू कहि भरि भरि साधौ ।
सजौ जुद्ध-बानो सब ही रन-कंकन बाँधो ।६१
का अरबी को बेग कहो वाको बल भारी ।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहै समर मँझारी ।६२
पद-तल इन कहँ दलहु कीन-तृन-सरिस नीच-चय ।
तनिकहु संक न करहु धर्म जिय जय तित निश्चय ।६३
जिन बिनहीं अपराध अनेकन कुल संहारे ।
दूत पादरी बनिक आदि बिन दोसहि मारे ।६४
प्रथम जुद्ध परिहार कियो बिश्वास दिवाई ।
पुनि धोखा दै एकाएकी करी लराई ।६५
इनको तुरतहि हतौ मिलैं रन कै घर माहीं ।
इन दलियन सों पाप किएहू पुन्य सदाहीं ।६६
उठहु बीर तरवार खींचि माड़हु घन संगर ।

लोह-लेखनी लिखहु आर्य बल जवन-हृदय पर ।६७
मारू बाजे बजैं कहो घौंसा घहराहीं ।
उड़हि पताका सत्रु-हृदय लखि लखि थहराहीं ।६८
चारन बोलहिं विजय-सुजस बंदी गुन गावैं ।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं ।६९
चमकहिं जस भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर ।
हींसहिं हय झमकहिं रथ अज चिक्करहिं समर थर ।७०
नासहु अरबी शत्रु-गनन कहँ कहँ करि छन महँ छय ।
करहु सबहि बिजयिनी-राज महँ भारत की जय ।७१

आरंभ

सुनत उठे सब बीर-बर कर महँ धारि कृपान ।
कियो सबन मिलि जुद्ध-हित धारि उमंग पयान ।७२
पहिरि जिरह कटि कसि सबै तौलत चले कृपान ।
लै बँदूक साधत चले लच्छ बीर बलवान ।७३
निरभय पग आगहिं परत मुख तें भाखत मार ।
चले बीर सब लरन हित मिसरिन सों इकबार ।७४
चंद्र-सूर्य-बंसी जिते प्रमर, अनल, चौहान ।
घोड़न चढ़ि आए सबै छत्री बीर सुजान ।७५
सुमिरि सुमिरि हत्री सबै निज पुरुषन की बात ।
धाए ऐंठत मोछ निज उमगि बीर रस गात ।७६
उमगी भारत-सैन जब सुमद-सरिस घनघोर ।
तब मिसरी चीनी कहा का सैंधव को जोर ।७७
बजी बृटिश रन-दुंदुभी गरजे गहकि निसान ।
कंपे थर थर भूमि गिरि नदी नगर असमान ।७८

शाखा

दमामा सनाई बजाओ बजाओ ।
अरे राग मारू सुनाओ सुनाओ ।
सबै फौज आगे बढ़ाओ बढ़ाओ ।
अरे जै-पताका उड़ाओ उड़ाओ ।
कहाँ बीर हौ बेग धाओ सु-धाओ ।
अरे वीरता को दिखाओ दिखाओ ।
अरे म्यान सों शस्त्र खोलो सु-खोलो ।
अरे मार मारौ धरौ मार बोलो ।
अरे शत्रु सीस काटो सु-काटो ।
अरे कायरै दौरि डाँटो सु-डाँटो ।
निसाना सबै लै लगाओ ।
अरे लै बँदूकैं चलाओ चलाओ ।
सबै युद्ध भारी मचाओ मचाओ ।
अरे शत्रु-सेनै भगाओ भगाओ ।७९

कोरस

भगी शत्रु की सैन रह्यौ कहुँ नाहिं ठिकाना ।
कै जमपुर कै गिरि बन कबुरन कियो पयाना ।८०
सुख सों बस्यौ खदीव प्रजागन अति सुख पायो ।
ब्रिटिश क्रोध को फल सब कहँ परतच्छ लखायो ।८१
मथ्यो समुद्रहि जिन ब्रिटानिया निज कटाक्ष-बल ।
जग महँ जिनको निरभय विचरत कठिन प्रबल दल ।८२
जिन भारत महँ आइ तोप-बल दह्यौ व्रज कहँ ।
अग्नि-बान जय-पत्र लिख्यो जिन भारत-अँग महँ ।८३
कठिन छत्रियन जीति लए जिन बहु गढ़ सहजहि ।
सिक्खन दीनी हार लियो मुलतान तनिक चाहि ।८४
तर्जनि अग्र हिलाइ लखनऊ छिन महँ लीनो ।
तनिक दृष्टि की कोर सकल साजन बस कीनो ।८५
कठिन सिपाही द्रोह-अनल जा जल-बल नासी ।
जिन भय सिर न हिलाइ सकत कहुँ भारतवासी ।८६
जासु सैन-बल देखि रूस समयहिं जिय हार्‌यौ ।
बरलिन संधिहि मानि होउ बिधि समयहि टार्‌यौ ।८७
सहजहि निज बस कीनी जिन सिप्रस को टापू ।
छाइ दियो सब नृपनन पै निज प्रबल प्रतापू ।८८
काबुल अरु कंधार कठिन महँ हलचल पार्‌यौ ।
शेरअली-याकूब-अयूबहि सहज उखार्‌यौ ।८९
खैबर दर अरगला कठिन गिरि-सरित करारे ।
सत्रु-हृदय सह तोड़ि तोड़ि रिजु कीन्हे सारे ।९०
रूम-रूस-उर सूल दियो ईरान दबायो ।
बृटिश सिंह को अटल तेज करि प्रगट दिखायो ।९१
सिंह चिन्ह की धुजा चढ़ी बाला हिसार पर ।
जय देवी बिजयिनी सोर भो काबुल घर घर ।९२
ताके आगे कहा मिसिर का अरबी को बल ।
इन सों सपनहु बैर किए पावे परतछ फल ।९३
बज्यो बृटिश डंका गहकि धुनि छाई चहुँ ओर ।
जयति राजराजेश्वरी कियो सबनि मिलि सोर ।९४

नये जमाने की मुकरी

'नवोदिता हरिश्चंद्र चंद्रिका' खं. ११ सं. १ में सन् १८८४ में प्रकाशित ।

जब सभाविलास संगृहीत हुई थी, तब वैसा ही काल था कि (क्यौं सखि सज्जन ना सखि पंखा) इस चाल की मुकरी लोग पढ़ते पढ़ाते थे किन्तु अब काल बदल गया तो उसके साथ मुकरियाँ भी बदल गई। बानगी दस पाँच देखिये —

सब गुरुजन को बुरो बतावै ।
अपनी खिचड़ी अलग पकावै ।
भीतर तत्व न झूठी तेजी ।
क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेजी ।१

तीन बुलाए तेरह आवैं ।
निज निज बिपता रोइ सुनावैं ।
आँखौ फूटे भरा न पेट ।
क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रैजूएट ।२

सुंदर बानी कहि समुझावै ।
बिधवागन सों नेह बढ़ावै ।
दयानिधान परम गुन-आगर ।
सखि सज्जन नहिं विद्यासागर ।३

सीटी देकर पास बुलावै ।
रुपया ले तो निकट बिठावै ।
ले भागै मोहिं खेलहि खेल ।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि रेल ।४

धन लेकर कछु काम न आव ।
ऊँची नीची राह दिखाव ।
समय पड़े पर सीधै गुंगी ।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि चुंगी ।५

मतलब ही की बोलै बात ।
राखै सदा काम की घात ।
डोलै पहिने सुंदर समला ।
क्यों सखि सज्जन नहिं सिख अमला ।६

रूप दिखावत सरबस लूटै ।
फंदे मैं जो पड़ै न छूटै ।
कपट कटारी जिय मैं हुलिस ।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस ।७

भीतर भीतर सब रस चूसै ।
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै ।
जाहिर बातन मैं अति तेज ।
क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेज ।८

सतएँ अठएँ मों घर आवै ।
तरह तरह की बात सुनावै ।
घर बैठा ही जोड़ै तार ।
क्यों सखि सज्जन नहिं अखबार ।९

एक गरभ मैं सौ सौ पूत ।
जनमावै ऐसा मजबूत ।
करै खटाखट काम सयाना ।
सखि सज्जन नहिं छापाखाना ।१०

नई नई नित तान सुनावै ।
अपने जाल में जगत फँसावै ।
नित नित हमैं करै बल-सून ।
क्यों सखि सज्जन नहिं कानून ।११

इनकी उनकी खिदमत करो ।
रुपया देते देते मरो ।
तब आवै मोहिं करन खराब ।
क्यों सखि सज्जन नहीं खिताब ।१२

लंगर छोड़ि खड़ा हो झूमै ।
उलटी गति प्रतिकूलहि चूमै ।
देस देस डोलै सजि साज ।
क्यों सखि सज्जन नहीं जहाज ।१३

मुँह जब लागै तब नहिं छूटै ।
जाति मान धन सब कुछ लूटै ।
पागल करि मोहिं करे खराब ।
क्यों सखि सज्जन नहीं सराब ।१४

जातीय संगीत

रचनाकाल — सन् १८८४

प्रभु रच्छहु दयाल महरानी ।
बहु दिन जिए प्रजा-सुखदानी ।
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी ।

सब दिसि में तिनकी जय होई ।
रहै प्रसन्न सकल भय खोई ।
राज करै बहु दिन लौं सोई ।
हे प्रभु रच्छहु श्री महरानी ।१

उठहु उठहु प्रभु त्रिभुवन राई ।
तिनके अरिन देहु अकुलाई ।
रन महँ तिनहिं गिरावहु मारी ।
सब सुख दारिद दूर बहाओ ।
विद्या और कला फैलाओ ।
हमरे घर महँ शांति बसाओ ।
देहु असीस हमैं सुखकारी ।२

प्रभु निज अनगन सुभग असीसा ।
बरसहु सदा बिजयिनी-सीसा ।
देहु निरुजता जस अधिकारा ।
कृषक, राजसुत, कै अधिकारी ।
करहिं राज को संभ्रम भारी ।
निकट दूर के सब नर नारी ।
करहिं नाम आदर विस्तारा ।३

रच्छहु निज भुज तर सह साजा ।
सब समर्थ राजन के राजा ।
अलख राज कर सब बल-खानी ।
बिनय सुनहु बिनवत सब कोई ।
पूरब सों पच्छिम लौं जोई ।
राजभक्त-गन इक मन होई ।
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी ।४

(युद्ध के समय योधागण के गाने की)

उठहु उठहु प्रभु त्रिभुअन-राई ।
तिनके शत्रु देहु छितराई ।
रन महँ तिनहिं गिरावहु मारी ।
स्वाभिमानि स्वत्व हेतु जे बीरा ।
लड़हिं हरहु तिनकी सब पीरा ।
यह बिनवत हम तुव पद तीरा ।
हे प्रभु जग-स्वामी सुखकारी ।५

(अकाल और उपद्रव के समय गाने को)

उठहु उठहु प्रभु ! त्रिभुवन-राई ।
कठिन काल में होहु सहाई ।
देहु हमहिं अवलबन भारी ।
अभय हाथ मम सीस फिराओ ।
मुरझी भुव पर सुख बरसाओ ।
पिता बिपति सों हमहिं बचाओ ।
आइ सरन तुव रहे पुकारी ।६

रिपनाष्टक

[रचना काल सन् १८८४]

जय जय रिपन *उदा जयति भारत-हितकारी ।
जयति सत्य-पथ-पथिक जयति जन-शोक-बिदारी ।
जय मुद्रा-स्वाधीन-करन सालम दुख-नाशन ।
भृत्य-वृत्ति-प्रद जय पीड़ित-जन दया-प्रकाशन ।

* जार्ज फ्रेडरिक सैमुएल रॉबिन्सन, मारक्विस ऑव रिपन का जन्म सन् १८२७ ई. में लंदन में हुआ था ।

जय प्रजा-राज्यस्थापन-करन हरन दीन भारत-विपद ।
जय भारतबासिहि देन नव-महा-न्यायपति प्रथम पद ।१

जय जय हिंदू-उन्नति-पथ-अवरोध-मुक्त-कर
जय कर-बंधन-मंथर-कर जय जयति गुणाकर ।
जय जन-सिच्छन-हेत समिति-सिच्छा-संस्थापक ।
जय जय सेतासेत बरन सम संमत मापक ।
जय राज्य धुरंधर धीर जय भारत-शिल्पोन्नति-करन ।
जय परम प्रजावत्सल सदा सत्य-प्रिय जय श्री रिपन ।२

राजतंत्र के पंडित तुम जानत प्रयोग खट ।
स्तंभन कीनो राज-बाक्य कटि अटल नीति अट ।
जन-दुख-मारन उच्चाटन द्वैविद्ध भाव जग ।
बिद्वेषण स्वारथी मिलित दल मद्ध न्याय मग ।
आकर्षण मन सब जनन को निज उदार गुण प्रगट-कर ।
जय मोहन मंत्र समान निज वाक्य विमोहित देशवर ।३

जय भारत-नव-उदित-रिपन-चंद्रमा मनोहर ।
शुक्ल-कृष्ण-सम तेज तदपि जस अपजस बिधि कर ।
जस-चंद्रिकी विकासि प्रकास्यौ उन्नति मारग ।
वाक्य अमृत बरसाइ किए आल्हादित नर जग ।
ससअंक बंगबिल सो लसत जन-मन-मुकुद प्रफुल्लतर ।
सत्ताइस रैन प्रकास सम सत्ताइस शुभ कर्म कर ।४

जय तीरथपति रिपन प्रजा अघ-शोक-बिनाशक ।
गंग-जमुन-सम मिलित तदपि जान्हवि मरजादक ।
अक्षय बट सम अचल कीर्त्ति थापक मन पावन ।
गुप्त सरस्वति प्रगट कमीशन मिस दरसावन ।
कलि-कलुष प्रजागत-भीति कों सब बिधि मेटन नाम रट
जय तारन-तरन प्रयाग-सम जस चहुँ दिसि सब पै प्रगट ।५

जदपि बाहु-बल क्लाइव जीत्यौ सगरो भारत ।
जदपि और लाटनहू को जन नाम उचारत ।
जदपि हेसटिंग्ज आदि साथ धन लै गए भारी ।
जदपि लिटन दरबार कियो सजि बड़ी तयारी
पै हम हिंदुन के हीय की भक्ति न काहू सँग गई ।
सो केवल तुमरे सँग रिपन छाया सी साथिन भई ।६

शिवि दधीच हरिचंद कर्ण बलि नृपति युधिष्ठिर ।
जिमि हम इनके नाम प्रात उठि सुमिरत हैं चिर ।
तिमि तुमहू कहँ नितहिं सुमिरिहैं तुव गुन गाई ।
यासों बढ़ि अनुराग कहो का सकत दिखाई ।
हम राजभक्ति को बीज जो अब लौ उर अंतर धर्यौ ।
निज न्याय-नीर सों सोंचि कै तुम बामैं अंकुर कर्यौ ।७

निज सुनाम के बरन किए तुम सकल सबहि बिधि ।
रिपु सब किए उदास दई हिय राजभक्ति सिधि ।
महरानी को पन राख्यौ निज नवल रीति बल ।
परि मध न्याय-तुला के नप राख्यौ सम दुहुँ दल ।
सब प्रजापुंज-सिर आपकौ रिन रहिहै यह सर्व छन ।
तुम नाम देव सम नित जपत रहिहैं हम हे श्री रिपन ।८

यह सन् १८६१ ई. से १८६५ ई. तक भारत-सचिव रहे और फिर कई पदों पर रहकर सन् १८८० ई. में भारत के बाइसराय हुए । इनके समय में सन् १८८१ ई. में वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट समाप्त किया गया । सन् १८८१ ई में मैसूर राज्य उसके राजवंश को सौंप दिया गया । एलबर्ट बिल भी इन्हीं के समय में प्रस्तावित हुआ । अफ़गान युद्ध का अंत इन्हीं के समय में हुआ और अब्दुर्रहमान काबुल के अमीर हुए । लार्ड रिपन अराज कर्मचारी शिक्षित भारतीयों को, राज्य-प्रबंध के संपर्क में लाने का सदा प्रयत्न करते रहे और इन्होंने स्थानिक स्वयत्त शासन के लिए कई नये नियम बनाए थे । इन्हीं कारणों से यह भारत में विशेष सम्मानित हुए थे । सन् १८८४ मे वे विलायत लौट गये ।

स्फुट कविताएँ

दोहे और सोरठे आदि

हे इत लाल कपोल व्रत कठिन प्रेम की चाल ।
मुख सों आइ न भाखिहैं निज सुख करो हलाल ।१
प्रेम बनिज कीन्हो हुतो नेह नफा जिय जान ।
अब प्यारे जिय की परी प्रान-पुंजी में हान ।२
तेरोई दरसन चहैं निस-दिन लोभी नैन ।
श्रवन सुनो चाहत सदा सुंदर रस-मै बैन ।३
डर न मरन विधि बिनय यह भूत मिलैं निज बास ।
प्रिय हित वापी मुकुर मग बीजन आँगन अकास ।४
तन-तरु चढ़ि रस चूसि सब फूली-फली न रीति ।
प्रिय अकास-बेली भई तुव निर्मूलक प्रीति ।५
पिय पिय रटि पियरी भई पिय री मिले न आन ।
लाल मिलन की लालसा लखि तन तजत न प्रान ।६
मधुकर धुन गृह दंपती पन कीने मुकताय ।
रमा बिना यक बिन कहै गुन बेगुनी सहाय ।७
चार चार षट षट दोऊ अस्टादस को सार ।
एक सदा द्वै रूप धर जै जै नंदकुमार ।८
नीलम औ पुखराज दोउ जद्यपि सुख 'हरिचंद' ।
पै जो पन्ना होइ तो बाढ़ै अधिक अनंद ।९
नीलम नीके रंग को हौं लाई हौं बाल ।
कहुं न देय तो होयगो अति अद्भुत अहवाल ।१०
जद्यपि है बहु दाम को यह हीरा री माय ।
बनै तबै जब नीलमनि निकट जड़यो यह जाय ।११
नैन नवल 'हरिचंद' गुन लाल असित सित तीन ।
त्रिविध सक्ति त्रैदेव कै तिरबेनी के मीन ।१२
कहन दीन के बैन देहु विधाता एक बर ।
नहिं लागै ये नैन कोऊ सों जग नरन में ।१३
प्रेम-प्रीति को बिरवा चलेहु लगाय ।
सींचन की सुध लीजो मुरझि न जाय ।१४

सवैया

अब और के प्रेम के फंद परे
हमें पूछत कौन, कहाँ तू रहै ।
अहै मेरेह भाग की बात अहो तुम
सों न कछू 'हरिचंद' कहै ।
यह कौन सी रीति अहै हरिजू तेहि
मारत हौ तुमको जो चहै ।
बह भूलि गयो जो कही तुमने हम
तेरे अहैं तू हमारी अहै । १

हम चाहत हैं तुमको जिउ से
तुम नेकहू नाहिंनै बोलती हौ ।
यह मानहु जो 'हरिचंद' कहै
केहि हेत महाविष घोलती हौ ।
केहि हेत महाविष घोलती हौ ।
तुम औरन सों नित चाह करौ
हमसों हिअ गाँठ न खोलती हौ ।
इन नैन के डोर बँधी पुतरी तुम
नाचत औ जग डोलती हौ । २

जा मुख देखन को नितही रुख
दूतिन दासिन को अवरेख्यो ।
मानी मनौतीहू देवन की
'हरिचंद' अनेकन जोतिस लेख्यो ।
सो निधि रूप अचानक ही मग में
जमुना जल जात मैं देख्यो ।
सोक को थोक मिट्यो सब आजु
असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो ।३
रैन में ज्यौहीं लगी झपकी त्रिजटे
सपने सुख कौतुक-देख्यो ।
लै कपि भालु अनेकन साथ मैं
तोरि गढ़ै चहुं ओर परेख्यो ।
रावन मारि बुलावन मो कहँ
सानुज मैं अबहीं अवरेख्यो ।
सोक नसावत आवत आजु
असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो ।४

सदा चार चवाइन के डर सों
नहिं नैनहु साम्हे नचायो करैं ।
निरलज्ज भई हम तो पै डरै
तुमरो न चवाव चलायो करैं ।
'हरिचंद' जू वा बदनामिन के
डर तेरी गलीन न आयो करैं ।
अपनी कुल-कानिहुं सों बढ़िकै
तुम्हरी कुल-कानि बचाओ करैं ।५

ताजि कै सब काम को तेरे
गलीन में रोजहि रोज तो फेरो करैं ।

तुव बाट बिलोकत ही 'हरिचंद'
जू बैठि के साँझ सबेरो करै ।
पै सही नहिं जात भई बहुतै सो
कहाँ कह लौं जिय छोरो करै ।
पिय प्यारे तिहारे लिये कब लौं
अब दूतिन को मुख हेरो करै ।६

आइयो मो घर प्रान पिया
मुखचंद दया करि कै दरसाइये ।
प्याइये पानिय रूप सुधा को बिलोकि
इतै दृग प्यास बुझाइये ।
छाइये सीतलता हरीचंद जू हा हा
लगी हियरे की बुझाइये ।
लाइये मोहि गरे हँसि कै उर
ग्रीषमै प्यारे हिमन्त बनाइये ।७

कोऊ कलंकिनि भाखत है कहि
कामिनिहू कोऊ नाम धरैगो ।
त्रासत हैं घर के सिगरे अब
बाहरीहू तो चवाव करैगो ।
दूतिन की इनकी उनकी
'हरिचंद' सबै सहते ही सरैगो ।
तेरेई हेत सुन्यो न कहा कहा
औरहू का सुनिबो न परैगो ।८

मन लागत जाको जबै जिहिसों
करि दाया तो सोऊ निभावत है ।
यह रीति अनोखी तिहारी नई
अपुनो जहाँ दूनो दुखावत है ।
'हरिचंद जू' बानो न राखत आपुनो
दासहू ह्वै दुख पावत है ।
तुम्हरे जन होइ कै भोगैं दुखै तुम्हें
लाजहू हाय न आवत है ।९

देखत पीठि तिहारी रहैंगे न
प्रान कबौं तन बीच नवारे ।
आओ गरे लपटौ मिलि लेहु
पिया 'हरिचंद' जू नाथ हमारे ।
कौन कहै कहा होयगो पाछे
बनै न बनै कछु मेरे सम्हारे ।
जाइयो पाछे विदेस भले करि
लेन दे भेंट सखीन सों प्यारे ।१०

पीवै सदा अधरामृत स्याम को
भागन याको सुजात कहा है ।
तबै मुधि मूल वहाँ है ।
छूटै सबै धन-धाम अली हिय
व्याकुलता सुनि होत महा है ।
बेनु के बंस भई बँसुरी जो
अनर्थ करै तो अचर्ज कहा है ।११

लै बदनामी कलंकिनि होइ चवाइन
को कब लौं मुख चाहिए ।
सासु जेठानिन की इनकी उनकी
कब लौं सहि कै जिय दाहिए ।
ताहू पै एती रुखाई पिया 'हरिचंद'
की हाय न क्यौंहूँ सराहिए ।
का करिए मरिए केहि भाँतिन नेह
को नातो कहाँ लौं निबाहिए ।१२

लखिकै अपने घर को निज सेवक
भी सबै हाथ सदा धरिहैं ।
हल सों सब दूषन खैंचि झटै
सब बैरिन मूसल सों मरिहैं ।
अनुजै प्रिय जो सो सदा उनको प्रिय
कारज ताको न क्यौं सरिहै ।
जिनके रछपाल गोपाल धनी
तिनको बलभद्र सुखी करिहै ।१३

अब प्रीति करी तौ निबाह करौ
अपने जन सों मुख मोरिए ना ।
तुम तो सब जानत नेह मजा
अब प्रीति कहूँ फिर जोरिए ना ।
'हरिचंद' कहै कर जोर यही
यह आस लगी तेहि तोरिए ना ।
इन नैनन माहँ बसो नित ही
तेहि आँसुन सों अब बोरिए ना ।१४

यह काल कराल अहै कलि को
'हरिचंद' कों नेक सोहातो नहीं ।
धन धाम अराम हराम करौ
अपनो तो कोऊ दरसातो नहीं ।
चित चाहत है चित चाह करै पर
वाको निबाह लखातो नहीं ।
दिल चाहत है दिल देइबे को
दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं ।१५

कवित्त

आजु बृषभानुराय पौरी होरी होय रही
दौरी किसोरी सबै जोबन चढ़ाई मैं ।

खेलत गोपाल 'हरिचंद' राधिका के साथ
बुक्का एक सोहत कपोल की लुनाई मैं ।
कैधौं भयो उदित मयंक नभ बीच कैधों
हीरा जड़्यो बीच नीलमनि की जराई मैं ।
कैधों पर्‌यो कालिंदी के नीर छीर कैधों
गरक सु-गोरी भई स्याम-सुंदराई मैं ।१

गोपिन की बात कौं बखानौं कहा नंदलाल
तेरो रूप रोम रोम जिनके समाय गो ।
बिरह-बिथा से सब ब्याकुल रहत सदा
'हरीचंद' हाल वाकी कौन पै कहाय गो ।
आँसुन की प्रलय-पयोधि बूड़ि जैहै जबै
डूबि डूबि सब ब्रहमंडहू बिलाय गो ।
पौंड़त फिरौगे आप नीर बीच होय जब
बिरह-उसासन तैं बट जरि जाय गो ।२

तेरेई बिरह कान्ह रावरे कला-निधान
मार बान मारै सदा गोपिन के घट पै ।
ब्याकुल रहत ताते रैन दिन आप बिन
धूर छाय रही देखौ नागिन सी लट पै ।
'हरीचंद' देखे बिनु आज सब ब्रज-बाल
बैठि के बिसूरतीं कलिंदी जू के तट पै ।
होयगी प्रलय आज गोपिन के आँसुन तें
ताते ब्रज जाय बैठो झट बंसी बट पै ।३
गोपिन बियोग अब सही नहीं जात मोपै
कब लौं निठुर होय मैन-बान मारौगे ।
'हरीचंद' आप सों पुकारे कहौं बार बार
बेगही कृपाल अबै गोकुल सिधारोगे ।
कहत निहोरि कर जोरि हम पूछैं जौन
राधा-रौन ताको कौन उत्तर बिचारोगे ।
आँसुन को नीर जबै बाढ़ैगो समुद्र तबै
कच्छ रूप धारौगे मच्छ रूप धारौगे ।४

राधा-श्याम सेवैं सदा बृंदाबन वास करैं
रहै निहचिंत पद आस गुरुवर के ।
चाहे धन धाम न अराम सों है काम
'हरिचंद जू' भरोसे रहैं नंदराय-घर के ।
एरे नीच धनी हमें तेज तू दिखावै कहा
गुज परवाही नाहिं होहिं कबौं खर के ।
होइ ले रसाल तू भलेई जग-जीव काज
आसी ना तिहारे ये निवासी कलपतर के ।५
जदपि उँचाई धीरताई गरुआई आदि
एरे गजराज तेरी सबही बढ़ाई है ।
दान धारा दै दै सदा तोषत सबन नित
हिंसा सो विरत तऊ बल अधिकाई है ।
तासौं 'हरिचंद' मरजाद पै रहन नीको
काक चुगलन की जासों बनि आई है ।
बिरद बढ़ावें ये न दूर कर इन्हैं तेरे
कान की चपलताई भौंर दुखदाई है ।६
बात गुरुजन की न आछी लरकाई लागै
भावै खेल कूद में चपलता असीम की ।
छोड़त कसालो होय जदपि नरन तऊ
बान नाहिं नीकी मद भाँग के अफीम की ।
अवगुन करी लड्डू पेड़ा सौं गुनद
'हरिचंद' हित होय जग औषधि हकीम की ।
जौन गुनदाई सोई बात है सुहाई तासों
नीकी मधुराईहू सौं तिक्तताई नीम की ।७

जेही बक बार सुनै मोहै सो जन्म भरि
ऐसो ना असर देख्यौ जादू के तमासा मैं ।
अरिहु नवावैं सीस छोटे बड़े रीझैं सब
रहत मगन नित पूर होइ आसा में ।
देखी ना कबहुँ मिसरी से मधुहू मैं ना
रसाल, ईख, दाख मैं न तनिक बतासा मैं ।
अमृत मैं पाई ना अधर मैं सुरंगना के
जेती मधूराई भूप सज्जन की भासा मैं ।८
केलि-भौन बैठी प्यारी सरस सिंगार करै
सौतिन के सब अभिमाने दरत सो ।
कंठ-हार चूरी कर बाजूबंद चंद आदि
पहिन्यौ अभूषन बियोगहि हरत सो ।
पगपान चांदी को चरन पहिरन लागी
सोभा देखि रंभा-रति गर्बहू गरत सो ।
छोड़ अभिमान दास होन काज चंद आज
नवल बधू के मानो पायन परत सो ।९

बृंदाबन सोभा कछु बरनि न जाय मोपैं
नीर जमुना को जहँ सोहै लहरत सो ।
फूले फूल चारों ओर लपटै सुगंध तैसो
मंद गंधवाह जिय तापहि हरत सो ।
चाँदनी मैं कमल-कली के तरें बार बार
'हरिचंद' के प्रतिबिंब नीर माहिं बगरत सो ।
मान के मनाइबे को दौरि दौरि प्यारो आज
नवल बधू के मानो पायन परत सो ।१०
आजु कुंज-मंदिर बिराजे पिय प्यारी दोऊ

दीने गल-बाहीं बाढ़े मैन के उमाह में ।
हँसि हँसि बातें करें परम प्रमोद भरे
रीझे रूप-जाल भींजे गुनन अथाह में ।
कान में कहन मिस बात चतुराई करि
मुख ढिग लाई प्रान प्यारे भरि चाह में ।
चूमि कै कपोलन हँसावत हँसत छबि
छावत छबीलो छैल छल के उछाह में ।११

रंग-भौन पीतम उमंग भरि बैठ्यौ आज
साजे रति-साज पूर्यो मदन-उमाह में ।
'हरीचंद' रीझत रिझावत हँसावत हँसत
रस बाढ़्यौ अति प्रेम के प्रवाह में ।
बीरी देन मिस छुए आँगुरी अधर पुनि
चूमै चुपचाप ताहि पान खान चाह में ।
लाजहिं छुड़ावत छकावत छकत छबि
छावत छबीलो छैल छल के उछाह में ।१२

आजु लौं न आए जो तो कहा भयो प्यारे याकों
सोच चित नाहिं धारि मति सकुचाइये ।
औधि सों उदास ह्वै कै गमन तयार यह
ताते अब लाज छोड़ि कृपा करि धाइये ।
'हरीचंद' ये तो दास आपुही के प्रान कछु
और न कियो तो अब एतो ही निभाइये ।
चाहत चलन अकुलाइकै बिसासी इन्हैं
आह प्रान-प्यारे जू बिदा तो करि जाइये ।१३

जोग जग्य जप तप तीरथ तपस्या व्रत
ध्यान दान साधन समूह कौन काम को ।
वेद औ पुरान पढ़ि ज्ञान को निधान भयो
कूर मगरूर पाइ पंडिताई नाम को ।
'हरीचंद' बात बिना बात को बनाइ हार्यौ
चेरो रह्यौ जाम दाम काम धन धाम को ।
जानै सब तऊ अनजानै है महान जानै
राम को न जानै ताहि जानिये हराम को ।१४

साँझ समै साजे सज ग्वाल-बाल साथ लिए
मोहन मनहिं हरि आवत हरू हरू ।
सीस मोर-मुकुट लकुट कर लीने ओढ़े
पीत उपरैना जामैं टँक्यौ चारु गोखरू ।
'हरीचंद' बेनु को बजावत हैं गावत
सु आवत हैं लिए साथ साथ गाय बाछरू ।
नाचत गुवाल मध्य लाजत मनोज लखि
आवैं सखि बाजत गुपाल पाय घूँघरू ।१५

दासी दरबानन की झिरकी करोर सहीं
दूतिन नचाये नचीं नौ-नौ पानि नेजे पर ।
दिवस बिताये दौरि इत उत दूरि दूरि
रोइहू सकी न खुलि हाय दुख सेजे पर ।
'हरीचंद' प्रानन पै आय-बनी सबै भाँति
अंग अंग भीनी पीर परी बिष रेजे पर ।
हाय प्रान-प्यारे नेक बिछुरे तिहारे दुख
कोटिन अँगेजे याही कोमल करेजे पर ।१६

मेष मायावाद सिंह वादी अतुल धर्म
बृख जयति गुण-रासि बल्लभ-सुअन ।
कलि कुवृश्चिक दुष्ट जीव जीवन-मूरि
करम छल मकर निज,वाद धनु-सर-समन ।
गोप-कन्या भाव प्रगटि सेवा बिसद
कृष्ण राधा मिथुन भक्ति-पथ दृढ़-करन ।
हरन जय-हिय-करक मीन धुज-भय मेटि
दास 'हरिचंद' हिय कुम्भ हरि-रस भरन ।१७

कुंभ-कुच परस दृग-मीन को दरस तजि
तुच्छ सुख मिथुन को हिय बिचारै ।
छल मकर छाँड़ि सब तानि बैराग-धनु
सिंह ह्वै जगत के जाल जारै ।
कृष्ण बृखभानु-कन्या सहित भजन करि
कलि कुवृश्चिक समुझि दूर टारै ।
छाँड़ि अनआस बिस्वास हिय अतुल धरि
करम की रेख पर मेख मारै ।१८

फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाइ कूर
कोकिन कुहूकि कल सबद सुनावैगो ।
त्यौंही 'नरीचंद' सबै गावैगो धमार धीर
हरन अबीर बीर सबही उड़ावैगो ।
सावधान होहु रे बियोगिनी सम्हारि तन
अतन तनक ही में तापन तें तावैगो ।
धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम
कहर मचावत बसंत अब आवैगो ।१९

खेलौ मिलि होरी ढोरौ केसर-कमोरी फैंको
भरि भरि झोरी लाज जिअ मैं बिचारौ ना ।
डारौ सबै रंग संग चंगहू बजाओ गाओ
सबन रिझाओ सरसाओ संक धारौ ना ।
कहत निहोरि कर जोरि 'हरिचंद' प्यारे
मेरी बिनती है एक हाहा ताहि टारौ ना ।
नैन हैं चकोर मुख-चंद तें परैगी ओट
यातें इन आँखिन गुलाल लाल डारौ ना ।२०

लोक बेद लाज करि कीजे ना रुखाई एती
द्रविये पियारे नेकु दया उपजाइ कै ।
बिरह बिपति दुख सहि नहिं जाय
कहि जाय ना कछूक रहौं मन बिलखाइ कै ।
'हरीचंद. अब तो सहारो नहिं जाय हाय

भुजन बढ़ाय बेग मेरी ओर आइ कै ।
बिरद निभाय लीजै मरत जिवाइ लीजै
हा हा प्रान-प्यारे धाइ लीजै गर लाइ कै ।२१
आजु एक ललना जवाहिर खरीदबे को
आई हुती सुघर सुहाई हाट वारे की ।
कर के लिये तैं भए मुक्ता प्रवाल जैसे
गुंजा से लखाने फेरि दीठि दृग-तारे की ।
कहै 'हरिचंद' मोतीचूर से लखात फेरि
हास को विलास बढ़्यौ सुखमा कतारे की ।
बीजक को मोल घट्यौ नफा की चलावै कहा
अकिल हेरानी लखि जौहरी बेचारे की ।२२

पद और गीत

प्रगटे द्विजकुल-सुखकर-चंद ।
भक्ति-सुधा-रस निस-दिन बरषत सब बिधि परम अमंद

मायावाद परम अँधियारी दूरि कियो दुख-द्वंद ।
भक्त-हृदय-कुमुदिनि प्रफुलित भई भयो परम आनंद ।
काशी नभ महँ किरिन प्रकाशी बुध सब नखत सुछंद ।
'हरीचंद' मन-सिंधु बढ़्यौ लखि रसमय मुख सुखकंद ।१

हरि-सिर बाँकी बिराजे ।
बाँको लाल जमुन-तट ठाढ़ो बाँकी मुरली बाजै ।
बाँकी चपला चमकि रही नव बाँको बादल गाजै ।
'हरीचंद' राधा जू की छबि लखि रति मति गति भाजै ।२

सखी री ठाढ़े नंद-किसोर ।
वृंदाबन में मेहा बरसत निसि बीती भयो भोर ।
नील बसन हरि-तन राजत हैं पीत स्वामिनी मोर ।
'हरीचंद' बलि बलि ब्रज-नारी सब ब्रजजन-मनचोर ।३

हरि को धूप-दीप लै कीजै ।
षटरस बींजन बिबिध भाँति के नित नित भोग धरीजै ।
दही मलाई घी अरु माखन तापो पै लै दीजै ।
'हरीचंद' राधा-माधव-छबि देखि बलैया लीजै ।४

सुदामा तेरी फीकी छाक ।
मेरी छाक रोहिनी पठई मीठी और सु-पाक ।
बलदाऊ को कोरी रोटी मोको घी की दोनी ।
सो सुनि सुबल तोक उठि बैठे मेरी बहुत सलोनी ।
जैसी तेरी मैया मोटी तैसी मोटी रोटी ।
मेरी छाक भली रे भैया जामें रोटी छोटी ।
बोलत राम पतौका लै लै बैठो भोजन कीजै ।
बच्यौ बचायो अपनो जूठन 'हरीचंद' को दीजै ।५

भोजन कीनो भानु-कुमारी ।
ठाढ़े लिए नंद के नंदन भरि कै कंचन झारी ।
ललिता लिए सुभग बीरा कर लौंग कपूर सोपारी ।
जुग जुग राज करौ या ब्रज में 'हरीचंद' बलिहारी ।६

बैठे पिय-प्यारी इक संग ।
परदा परे बनाती चहुँ दिसि बाजत ताल मृदंग ।
धरी अँगीठी स्वच्छ धूम-बिन गावत अपने रंग ।
'हरीचंद' बलि बलि सो छबि लखि राधा लिए उछंग ।७

अब तौ आय पर्‌यौ चरनन मैं ।
जैसो हौं तैसो तुमरोई राखोइगे सरनन मैं ।
गनिका गीध अभीर अजामिल खस जवनादिक तारे ।
औरहु जो पापी बहुतेरे भये पाप तें न्यारे ।
सुत-बध हेत पूतना आई सब बिधि अघ तें पानी ।
जो गति जननीहूँ को दुर्लभ सो गति ताको दीनी ।
औरो पतित अनेक उधारे तिनमें मोहुँ को जान ।
तुमही एक आसरो मेरे यह निहचै करि मान ।
बुरो भलो तुमरोइ कहावत याकी राखौ लाज ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पियारे मत छाँड़हु महराज ।८

माई री कमल-नैन कमल-बदन बैठे हैं जमुना-तीर ।
कमल से करन कमल लिए फेरत सुंदर स्याम सरीर ।
कमल की कंठ माल ललित ललाम
बनी कमल ही को कटि चीर ।
कमल के महल कमल के खंभा भौंरन की जापै भीर ।
सुंदर कमल फूले लहलहे सोहत ता मधि झलकत नीर ।
'हरीचंद' पद-कमल जपत नित भंजन-भव-भय-भीर ।९

मंगल मंगल मंगल रूप ।
मंगल गिरि गोवर्धन धार्‌यौ मंगल गिरिधर ब्रज के भूप ।
मंगल-मय ब्रखभानु-नंदिनी श्रीराधा अति रुचिर सुरूप ।
मंगल बल्लभ-चरन-कृपा से
'हरीचंद' उबर्‌यौ भव कूप ।१०

घर तें मिलि चलीं ब्रज-नारि ।
खसित कवरी नैन घूमत सजे सकल सिंगार ।
लिए पूजन-साज कर मैं कुटिल बिथुरे बार ।
कृष्ण-गुन गावत सुबिहसत 'हरीचंद' निहार ।११

जल में न्हात हैं ब्रज-बाल ।
मास अगहन जान उत्तम मिलन को गोपाल ।
हाथ जोरि सुकहत देविहि देउ पति नंदलाल ।
चीर लै 'हरिचंद' भागे सुभग स्याम तमाल ।१२

खोजत बसन ब्रज की बाल ।

निकसि के सब लेहु छिपि कै कह्यौ स्याम तमाल ।
सुनत चंचल चित चहूँ दिसि चकित निरखत नारि ।
मधुर बैननि हिओ धरकत जानि कै बनवारि ।
कदम पर तैं दरस दीनो गिरिधरन घनश्याम ।
अंग अंग अनूप शोभा मथन कोटिक काम ।
सिर मुकुट की लटक चटकत बसन सोभित पीत ।
चरन तक बनमाल सोभित मनहुँ लपटी प्रीत ।
फैलि रहि सोभा चहूँ दिसि मन लुभावत पास ।
नैन तें 'हरिचंद' के छबि टरत नहिं इक साँस ।१३

देखौ सोभित तरु पर नट-वर ।
मोर मुकुट कटि पीत पिछौरी मुरली हाथ सुघर-वर ।
बोले हरि बाहर ह्वै आओ हे ब्रज-बाल चतुर-तर ।
नाँगी होइ जमुन मैं पैठीं पूजहु आइ दिवाकर ।
सुनि पिअ-बचन निकसि सब आई दीनो चीर गुंजधर ।
पहिरि चीर ब्रज-नारि नवेली केलि करी कुंजन पर ।
'हरीचंद' हरि की यह लीला नहिं पावत बिधि अरु हर ।
कोमल मंजु साँवरी मूरति नित्य बिराजौ हिअ पर ।१४

राग सारंग

श्री कृष्ण घर घर बाजत सुनिय बधाई ।
श्री राधा रावल मैं जाई ।
जय जय जय जय जय धुनि माचैं ।
आनँद-मगन तहाँ सब नाचैं ।
नाचत ब्रह्मा शिव अरु शेषा ।
नाचत बरुन कुबेर सुरेसा ।
नाचत नारद आदि मुनीसा ।
नाचत देव कोटि तैंतीसा ।
नाचत बसु अरु मरुत गनेसा ।
नाचत जम रवि ससि सुभकेसा ।
नाचत परशुराम धनु धारे ।
नचत राज-ऋषि सुर-ऋषि न्यारे ।
नाचत चारन किन्नर रच्छा ।
नाचत बिद्याधर अरु जच्छा ।
नाचत खग मृग अहिगन मच्छा ।
नाचत गाय भैंस के बच्छा ।
नाचत सुक प्रहलाद बिभीषन ।
नचत परीक्षित बलि आनँद मन ।
नर्चति सरस्वति बीन बजाई ।
माया नाचति अति हरषाई ।
नाचति चंपकलता बिसाखा ।
चंद्रावलि ललिता रस-साखा ।
नचत श्यामदा जसुदा माई ।
ब्याही काँरी सबै लुगाई ।
नाचत नंद सुनंद सुहाए ।
महानंद अति आनँद छाए ।
नचत तोक बल सुख श्रीदामा ।
सँग बृषभान गोप सुखधामा ।
नाचत नर-नारिन के बृन्दा ।
प्रेम-मत्त नाचत 'हरिचंदा' ।१५

राग सारंग

ग्वाल गावैं गोपी नाचैं । प्रेम-मगन मन आनँद राचैं ।
भानु राय के राधा जाई । धाये सब सुनि लोग-लुगाई ।
माखन दधि घृत दूध लुटावैं । बार बार प्रमुदित उर लावैं
ताल पखावज आवज बाजै । दुंदुभि ढोल दमामा गाजै ।
कूदत ग्वाल-बाल सब सोहैं ।
देखि देखि सुर नर मुनि मोहैं ।
भये दूध दधि घृत के पंका ।
इत उत दौरत फिरत निसंका ।
देत निछावर मनिगन बारी ।
प्रेमानंद मगन नर-नारी ।
थकित भये सब देव बिमाना ।
मुदित करत 'हरिचंद' बखाना ।१६

सुनौ सखि बाजत है मुरली ।
जाके नेकु सुनत ही हिअ में उपजत बिरह-कली ।
जड़ सम भए सकल नर-खग मृग लागत श्रवन भली ।
'हरीचंद' की मति रति गति सब धारत अधर छली ।१७

बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी ।
सुनत श्रवन मन थकित भयो अरु मति-गति जाति भजी ।
सात सुरन अरु तीन ग्राम सों पिय के हाथ सजी ।
'हरीचंद' औरहु सुधि मोही जबही अधर तजी ।१८

बँसुरिआ मेरे बैर परी ।
छिनहूँ रहन देत नहिं घर में मेरी बुद्धि हरी ।
बेनु-बंस की यह प्रभुताई बिधि-हर-सुमति छरी ।
'हरीचंद' मोहन बस कीनो बिरहिन-ताप-करी ।१९

सखी हम बंसी क्यौं न भए ।
अधर सुधा-रस निसु-दिनु पीवत प्रीतम-रंग रए ।
कबहुँक कर मैं कबहुँक कटि मैं कबहूँ अधर भरे ।
सब ब्रज-जन-मन हरत रहत नित कुंजन माँझ खरे ।
देहि बिधाता यह बर माँगों कीजै ब्रज की धूर ।
'हरीचंद' नैनन में निबसै मोहन-रस भर पूर ।२०

नाचत नवल गिरिधर लाल ।

सकल सुखदाता संग गोपी बाल ।
बजत झाँझ मृदंग आवज चंग बीना ताल ।
जात बलि 'हरिचंद' छबि लखि सुभग श्याम तमाल ।२१

भोजन कीजै प्रान-पियारी ।
भई बड़ी बार हिंडोले झूलत आज भयो श्रम भारी ।
बिंजन मीठो दूध सुहातो कीजै पान दुलारी ।
जूठन माँगत द्वार खड़ो है 'हरीचंद' बलिहारी ।२२

पनघट बाट घाट रोकत जसुदा जी को बारो ।
साँवरे वरन श्याम स्याम ही सज्यौ
है साज इन अँखियन को तारो ।
मुरलि बजावत गीतन गावत
करत अचगरी प्यारो ।
'हरीचंद' इंडुरी जमुन मैं बहावत मन ललचावत
नैन नचावत मेरो तन परसत सुंदर नंद-दुलारो ।२३

बजन लगी बंसी यार की ।
धुनि सुनि ब्रज-तिय चकित होत है
सुधि आवत दिलदार की ।
मीठी तान लेत चित मोह्यो
चितवन तीखी यार की ।
'हरीचंद' नैनन में गाढ़ि गई
छबि गुंजन के हार की ।२४

बजन लगी बंसी कान्ह की ।
धुनि सुनि चकित भए खग मृग
सब सुधि न रही कछु प्रान की ।
मोहे देव गंधरव रिसि मुनि
भूले गति जु बिमान की ।
'हरीचंद' को मन मोह्यो
'अस बिसरी सुधिहू अपान की' ।२५

किन चौंकाए पीतम प्यारे ।
किन सुख में दुख दिये जु उठि इत भोरहिं भोर पधारे ।
मेरे जान कूर तमचुर यह तुम कहँ सुरत दिवाई ।
कै द्विज-गन कै चहकि चिरैयन मेरी आस पुजाई ।
सीरी पौन अरुन किरिनावलि भए सहाय पियारे ।
धन्य भाग जो अबहूँ उठि कै आए भवन हमारे ।
आओ चरन पलोटों प्यारे सोइ रहौ स्रम भारी ।
'हरीचंद' सुनि बचन रचन तिय गर लाई बनवारी ।२६

हम मैं कौन कसर पिय प्यारे ।
अजामेल मैं का अवगुन जे नहिं तन माँहि हमारे ।
जानी और पतित के माथै सींग रही द्वै भारी ।
तब बिन हमहिं देखि नहिं तारत वृंदा-बिपिन-बिहारी ।
जो पापहि करिबै मों जग मैं जीव पतित कहवावैं ।
तौ हमसों बढ़ि कै कोउ नाहीं को मेरी सरि पावैं ।
कछु तो बात होइहै जासों तारत हम कहँ नाहीं ।
नाहीं तो 'हरिचंद' पतित-पति ह्व हम कित बचि जाहीं ।२७

तरन मैं मोहिं लाभ कछु नाहीं ।
तुमरेई हित कहत बात यह गुनि देखहु मन माहीं ।
तुमरेहू जिअ अब लौं बाकी यहै हौस चलि आई ।
कै कोउ कठिन अधी पावैं तो तारि बढ़िआई ।
बहुत दिनन की तुमरी इच्छा तेहि पूरन मैं आयो ।
करहु सफल सो हम सों बढ़ि कोउ पापी नहिं जग जायो ।
लेहु जोर अजमाह आपुनो दया-परिच्छा लीजै ।
हे बलबीर अधी 'हरिचंदहि' हारि पीठि जिनि दीजै ।२८

तुव जस हमहिं बढ़ावन-हारे ।
तुव गुन दिव्य तारनादिक के कारन हमहिं पियारे ।
छिपी दया तुव मेरेहि अघ मैं यह निहचै जिय जानौ ।
हम बिन तुम जग कछु न बड़ाई यह प्रतीत कर मानौ ।
केवल त्रिभुवन-पति फलदायक न्याय करत रहि जैये ।
दया-निधान पतित-पावन प्रभु हमरे हेत कहैये ।
हमहीं कियो कृपाल तुमहिं अघ-तीरन हमहिं बनायौ ।
यह गुन मानि हीन 'हरिचंदहि'
क्यौं न अबहुं अपनायौ ।२९

हमरी स्वारथ ही की प्रीति ।
तुव गुनहू स्वारथ हित गावत मानहु नाथ प्रीतीति ।
बक-धरमी स्वारथ-मूलक सब प्रेम भक्ति की रीति ।
'हरीचंद' ऐसे छलियन कों सकिहौ नाथ न जीति ।३०

अब हम बदि बदि कै अघ करिहैं ।
जब सब पतितन सों बढ़ि जैहैं तब ही भव-जल तरिहैं ।
हम जानी यह बानि नाथ की पतितन ही सों प्रीति ।
सहजहि कृपा कृपिन-दिसि गामिनि यहै आपु की रीति ।
ताही सों अघ किये अनेकन करत जात दिन-रात ।
तऊ न तरत परत नहिं जानी क्यौं अब लौं हम तात ।
किए करत अघ फेर करैंगे जब लौं जिअ मैं जीअ ।
जा सों दृष्टि परे तुमरी इत सुंदर साँवर पीअ ।
दीन-बन्धु प्रनतारति-भंजन आरत-हरन मुरारि ।
दयानिधान कृपन-जन-वत्सल निज गुन नाम सम्हारि ।
पावन परम पतित हरि हम कहँ हीन जानि उठि धाओ ।
साधन-रहित सहित अघ सत

लखि 'हरिचंदहि' अपनाओ ।३१

देखहु मेरी नाथ ढिठाई ।
होइ महा अघ-रासि रहन हम चहत भगत कहवाई ।
कबहूँ सुधि तुमरी आवै जो छठे-छमाहें भूले ।
ताहि सों मनि मानि प्रेम अति रहत संत बनि फूले ।
एक नाम सों कोटि पाप को करन पराछित आवैं ।
निज अघ बड़वानलहि एक ही आँसू बूँद बुझावैं ।
जो व्यापक सर्वज्ञ न्याय-रत धरम-अधीस मुरारी ।
'हरीचंद' हम छलन चहत तेहि साहस पर बलिहारी ।३२

स्याम घन देखहु गौर घटा ।
भरी प्रेम-रस सुधा बरसि रही छाई छूटि छटा ।
आपुहि बादर रूप जल भरी आपुहि बिज्जु लटा ।
यह अद्भुत लखि सिखी सखीगन नाचत बैठि अटा ।
हिय हरखावत छबि बरखावत झुकी निकुंज तटा ।
'हरीचंद' चातक ह्वै निसि-दिन जाको नाम रटा ।३३

आजु बसंत पंचमी प्यारे आओ हम तुम खेलैं ।
चोआ चंदन छिरकि परसपर अरस परस रँग झेलैं ।
और कहूँ जिनि जाहु पियरे हम तुम मिलि रस रेलैं ।
तुम मोहिं देहु आपुनी माला हम निज तुअ उर मेलैं ।
प्राननाथ कहँ कंठ लाइ कै आनँद-सिंधु सकेलैं ।
'हरीचंद' हिय-हौस पुजावै बिरहहिं पायन ठेलैं ।३४

आई है आजु बसंत पंचमी चलु पिय पूजन जैये ।
आम मंजरी काम चिनौती लै पिय सीस बँधैये ।
अति अनुराग गुलाल लाइ कै नव केसर चरचैये ।
उद्दीपन सुगन्ध सोंधे मृगमद कपूर छिरकैये ।
पुष्प-गेंदुकन परसि पिया कों तन में काम जगैये ।
संचित पंचम ऊँचे सुर सों काम-बधाई गैये ।
आलिंगन परिरंभन चुम्बन भाव अनेक दिखैये ।
'हरीचंद' मिलि प्रान-पिया सों सरस बसंत मनैये ।३५

नव दूलह ब्रजराय-लाडिलो नव दुलहिन बृषभानु-किसोरी
श्री बृन्दाबन नवल कुंज में खेलत दोउ मिलि होरी ।
नव सत साजि सिंगार अभूषन नवल संग गोरी ।
नवल सेहरो सीस बिराजत नवल बसन तन राजैं ।
त्रिभुवन-मोहन जुगल-माधुरी कोटि मदन लखि लाजैं ।
अति कमनीय मनोहर मूरति ब्रज-जन यह रस जानैं ।
'हरीचंद' ब्रजचंद-राधिका तजिकै किहि उर आनैं ।३६

कुंज-बिहारी हरि-सँग खेलत कुंज-बिहारिनि राधा ।
आनँद भरी सखी सँग लीन्हे मेटि बिरह की बाधा ।
अबिर गुलाल मेलि उमगावत रसमय सिंधु अगाधा ।
धूँघर मैं झुकि चूमि अंग भरि मेटति सब जिय साधा ।
कूजति कल मुरली मृदंग सँग बाजत धुम किट ताधा ।
बृन्दाबन-सोभा-सुख निरखत सुरपुर लागत आधा ।
मच्यौ खेल बढ़ि रंग परसपर इत गोपी उत कांधा ।
'हरीचंद' राधा-माधव कृत जुगल खेल अवराधा ।३७

सरस साँवरे के कपोल पर बुक्का अधिक बिराजै ।
मनहु जमुन-जल पुंज छीर की छींट अतिहि छबि छाजै ।
नील कंज पै कलित ओस-कन झलकत तियनि रिझावै
प्रिया-दीठि कौ चिन्ह किधौं यह ब्रज-जुवती मन भावै ।
सूछम रूप सकल ब्रज-तिय को बस्यौ कपोलनि आई ।
'हरीचंद' छबि निरखि हरषि हिय बार बार बलि जाई ।३८

नव बसंत को आगम सजनी हरि को जनम सुहायो ।
गावत कोकिन कीर मोर सी जुवती बजत बधायो ।
बिबिध दान लहि जाचक जन से कलित कुसुम बहु फूले।
गुग गावत धावत बंदीजन से भँवरे बहु भूले ।
उड़त गुलाल अबीर रंग सो दधि-काँदो झरि लाई ।
नाचत गारी देत निलज से गावत ताल बजाई ।
टेसू फूलन मिस वृन्दावन प्रकट्यौ जिय अनुरागै ।
केसर-सिंचित सम सरसों-बन नैन सुखद अति लागै ।
गोप पाग पहिरे सब सोभित गेंदा तरु इक-रासी ।
बौरे आम सरिस डोलत आनँद-बौरे ब्रजरासी ।
बंस-बेलि लहरानी नँदजू की अति सुख झालरि लाई ।
तरुन तमाल स्याम घन उपजे 'हरीचंद' सुखदाई ।३९

पिया मन-मोहन के सँग राधा खेलत फाग ।
दोउ दिसि उड़त गुलाल अरगजा दोउन उर अनुराग ।
रँग-रेलनि झोरी झेलनि मैं होत दृगनि की लाग ।
'हरीचंद' लषि सो सुख-सोभा अपुन सराहत भाग ।४०

शोभा कैसी छाई ।
कोइल कुहुकै भँवर गुँजारै सरस बहार
फूलि रही सरसों अँखियन लगत सुहाई, देखो ।
बीती सिसिर बसन्तहु आई फिर गई काम-दुहाई ।
बौरन आम लग्यो मन बौर्‌यौ बिरहिन बिरह सताई, देखो
जान न दैहौं तुहि ऐसी समय में लैहौं लाख बलाई ।
'हरीचंद' मुख चूमि पियरवा गरवाँ रहिहौं लाई, देखो ।४१

रिमझिम बरसै पनियाँ घर नहिं जनियाँ कैसे बीतै रात ।
मोर सोर घनघोर करत हैं सुनि सुनि जीआ डरात ।
सूनी सेज देखि पीतम बिनु धीरज जिय न धरात ।
पिय 'हरिचंद' बसे परदेसवाँ मोर
जोबवनाँ नाहक जात ।४२

देखो साँवरे के सँगवाँ गोरी झूलैलीं हिंडोर ।

जमुना तीर कदम की डारियाँ पहिरे चीर पटोर ।
बिजुली चमकै पनियाँ बरसै बादर छौले हौ घनघोर ।
हरि-राधा छबि देखि नयनवाँ सखि जुड़ैलैं मोर ।४३

सखी कैसी छबि छाई देखो आई बरसात ।
मोहिं पिया बिना हाय न भाई बरसात ।
धन गरजत बिरह बढ़ाई बरसात ।
हरि मिलत न भई दुखदाई बरसात ।४४

मधुरा के देसवाँ से भेजल पियरवाँ रामा ।
हरि हरि ऊधो जोगवा की पाती रे हरी ।
सब मिलि आओ सखी सुनो नई बतियाँ रामा ।
हरि हरि मोहन भए कुबरी के सँघाती रे हरी ।
छोड़ि घर-बार अब भसम रामाओ रामा ।
हरि हरि अब नहिं ऐहैं सुख की राती रे हरी ।
अपने पियरवाँ अब भए हैं पराए रामा ।
हरि हरि सुनत जुड़ाओ सब छाती रे हरी ।४५

रिमझिम बरसत मेह भींजति मैं तेरे कारन ।
खरी अकेली राह देखि रही सूनो लागत गेह ।
आइ मिलौ गर लगौ पियारे तपत काम सों देह ।
'हरीचंद' तुम बिनु अति व्याकुल लाग्यौ कठिन सनेह ।४६

मलार चौताला

(समय कुतुबुद्दीन का राज)

छाई अँधियारी भारी सूझत नहिं राह कहूँ
गरजि गरजि बादर से जवन सब डरावैं ।
चपला सी हिंदुन की बुद्धि बीरतादि भई
छिपे बीर-तारागन कहूँ न दिखावैं ।
सुजस-चंद मंद भयो कायरता-घास बढ़ी
दरिद-नदी उमड़ि चली मूरखता
पंक चहल पहल पग फँसावैं ।
हरीचंद' नंदनंद गिरिवर धरो आइ फेर
हिन्दुन के नैन नीर निस दिन बरसावैं ।४७

मलारी जलद तिताला

(समय सिकंदर का पंजाब का युद्ध)

गोरस सर जल रन महँ बरसत
लखि कै मोरा जियरा हरसत ।
बिजुरी सी चमकत तरवारैं, बादर सी तोपैं ललकारैं,
बीच अचल गिरिवर सो छत्री गज चढ़ि देवराज-सम सरसत
झींगुर से झनकत हैं बखतर, जवन करत दादुर से टरटर
छर्रा उड़त बहुत जुगनू से एक एक कौं तम सम गरसत ।
बढ़यौ बीर रस सिंधु सुहायो, डिग्यौ न राजा सबन डिगायो,
ऐसो बीर बिलोकि सिकंदर जाइ
मिल्यौ कर सों कर परसत ।४८

धनि धनि री सारिस-गमनी ।
गरि मध पसरी साम मनी सारी रेसम सनि सरिस सनी ।
निस मनि सम निसि धरि धरि
मगमधि परी परी पग मगनि गनी ।
निसरी साम साध सानी गनि
'हरिचंद' सरिगम पधनी ।४९

चातक को दुख दूर किया सुख दीनों सबै जग जीवन भारी ।
पूरे नदी नद ताल तलैया किए सब भाँति किसान सुखारी ।
सूखेहु रूखन कीने हरे जग पूरो महा मुद हलै निज वारी ।
हे घन आसिन लौं इतनो करि रीते भएहू बड़ाई तिहारी ।५०

जय बृषभानु-नंदिनी राधे मोहन-प्रान-पियारी ।
जय श्री रसिक कुँवर नँदनंदन मोहन गिरिवधारी ।
जय श्री कुंज-नायिका जय जय कीरति-कुल-उँजियारी ।
जय बृंदाबन चारु चंद्रमा कोटि-मदन-मद-हारी ।५१
जय ब्रज-तरुन-तरुनि-चूड़ामनि सखियन में सुकुमारी ।
जयति गोप-कुल-सीस-मुकुटमनि नित्यै सत्य बिहारी ।
जयति बसंत जयति बृंदाबन जयति खेल सुख सुखकारी
जय अद्भुत जस गावत सुक मुनि 'हरीचंद' बलिहारी ।५२

प्रगटे हरिजू आनँद-करंत ।
मनु आई भुव पर ऋतु बसंत ।
सब फूले गोप ग्वाल-बाल ।
मनु बौरि रहे बन में रसाल ।
सब ग्वाल धरे केसरी पाग ।
मनु डारन पै गेंदा सुभाग ।
फैली चहुँ दिसि हरदी सुरंग ।
सरसों के खेत फूलन के संग ।
सब के मन में अति री हुलास ।
मनु फूलि रहे सुंदर पलास ।
देखत सब देव चढ़े बिमान ।
मनु उड़त बिबिध पक्षी सुजान ।
नट नाचत गावत करत ख्याल ।
मनु नाचि रहे बन में मराल ।
गावत मागध बंदी प्रबीन ।
मनु बोलि रही कोकिल नवीन ।
पहिरे नर-नारी बसन हार ।
मनु नये पत्र-फल फूल चार ।
सो सुख लूटत 'हरिचंद' दास ।

मनु मत्त भँवर पायो सुबास ।५३

महारानी तिहारो घर सुबस बसो ।
आजु सुफल ब्रजबास भयो सब घर घर अति आनंद रसो।
कोउ गावत कोउ करत कोलाहल माखन को कोउ लेत गसो
श्री राधा के प्रकट भये ते या बरसानो सुख बरसो ।
देत असीस सदा चिर जीवो मोहन को सँग लै बिलसो ।
'हरीचंद' आनँद अति बाढ़यौ
सब जिय को दुख दरद नसो ।५४

मन की कासों पीर सुनाऊँ ।
बकनो बृथा और पतिखोनो सबै चवाई गाऊँ ।
कठिन दरद कोऊ नहिं धरिहै धहिहै उलटो नाऊँ ।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रकट जनाऊँ ।
रोम रोम प्रति नयन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊँ ।
बिना सुजान सिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊँ ।
मरमिन सखिन बियोग दुखित क्यों कहि निज दसा रोआऊँ
'हरीचंद' पिय मिलै तो पग गहि बाट रोकि समझाऊँ ।५५

तू केहि चितवत चकित मृगी सी ।
केहि ढूँढ़त तेरो कह खोयो
क्यों अकुलात लखाति ठगी सी ।
तन सुधि करि उघरत ही आँचर
कौन व्याध तू रहति खगी सी ।
उत्तर देत न खरी जकी ज्यों
मद पीये कै रैनि जगी सी ।
चौंकि चौंकि चितवति चारिहु
दिसि सपने पिय देखति उमँगी सी ।
भूलि बैखरी मृग सावक ज्यों निज
दल तजि कहुँ दूरि भगी सी ।
करति न लाज हाट-वारन की
कुल-मर्यादा जाति डगी सी ।
'हरीचंद' ऐसे हि उरझी तो
क्यों नहिं डोलत संग लगी सी ।५६

श्री गोपीजन-बल्लभ सिर पै बिराजमान
अब तोहि कहा डर मूढ़ मन बावरे ।
छोड़िकै कुसंग सबै आसरो अनेक अबै
छिन भर हरि-पद सीस नित नाव रे ।
कहत पुकार बार बार सुनि यह राम
क्रोध छोड़ि एक हरि गुन गाव रे ।
'हरीचंद' भटकै अनेक ठौर तिन प्रति
टेक तज वल्लभ सरन अब आव रे ।५७

हठीरो दे दे मेरी मुँदी ।
हा हा करत हौं पइआँ परत हौं गुरुजन माँझ खरी ।
'हरीचंद' तुम चतुर रसीले बहियाँ पकरी ।५८
बिनु सैयाँ मोको भावै नहिं अँगना ।
चंदा उदय जरावत हमकों बिष सो लगत कँगना ।५९

पिय की मीठी मीठी बतियाँ ।
श्रवन सुहावत सुधा-रस सानी कहत लाइ जब छतियाँ ।
बोलत ही हिय खचित होत मनु मैन लिखत मन पतियाँ ।
'हरीचंद' पूरन हिय करनहिं रहत सदा बनि थतियाँ ।६०

तरल तरंगिनि भव-भय-भंगिनि जय जय देवि गंगे ।
जगदघ-हारिनि करुना-कारिनि रमा-रंग-पद रंगे ।
नवल बिमल जल हरत सकल मल पान करत सुखदाई।
पापहि नासत पुन्य प्रकासत जलमय रूप लखाई ।
कच्छप मीन भ्रमरमय सोभित कृपा-कमल-दल फूले ।
देव-बधू-कुच-कुंकुम रंजित लखि छबि सुर नर भूले ।
शिव-सिर-बासिनि अज-कमंडलिनि पतित मंडलिनि तारो
'हरीचंद' इक दास जानि कै करुन कटाच्छ निहारो ।६१

हरिजू की आवनि मो जिय भावै ।
लटकीली रस-भरी रँगीली मेरे दृगन सुहावै ।
निज जन दिसि निरखनि दृग भरि कै हँसनि मुरनि मन मानै
बेनु बजावनि कटि कसि धावनि गावनि करि रस दानै ।
बंक बिलोचन फेरनि हेरनि सब ही चित्त चुरावै ।
'हरीचंद' भूलत नहिं कबहूँ नित सुधि अधिक दिवावै ।६२

जग बौराना मेरे लेखे ।
कोइ असाध कोई साधू बनि धाया करि करि भेखे ।
लड़ि लड़ि मरा बाद बादन में बिनु अपने चख देखे ।
धरम करम कर मोटी कीनी और करम की रेखे ।
होय सयाना मूल गँवाया सभी ब्याज के लेखे ।
'हरीचंद' पागल बनि पाया पीतम प्रीति परेखे ।६३
हरि जू कों नेह परम फल माई ।
मेरे नेम धरम जप संजम बिधि याही में आई ।
यहै लोक परलोक चार फल यहै जगत ठकुराई ।
मेरे काम धाम परमारथ स्वारथ यहै सदाई ।
यहै वेद बिधि लाज रीति धन हमरे यहै बड़ाई ।
'हरीचंद' बल्लभ की सरबस मैं जिय निधि कर पाई ।६४

मुसाफिर चेत करो निसि बीत गई चौजाम ।

अब चलने की करो तयारी सिर पर आई घाम ।
क़मर कसो औ बस्त्र सम्हारो कर में राखो दाम ।
'हरीचंद' पहिले से चेतो तब पैहो आराम ।६५

होली डफ की

तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी ।
इन चोरन मेरो सरवस लूट्यौ मन लीनो जोरा-जोरी ।
छोड़ि देई कि बंद चोलिया पकरैं चोर हम अपनोरी ।
'हरीचंद' इन दोउन मेरी नाहक कीनी चित चोरी ।६६

देखो बहियाँ मुरक मोरी ऐसी करी बर-जोरी ।
औचक आय दौरी पछे तें लोक की लाज सब छोरी ।
छीन झपट चटपट मोरी गागर मलि दीनी मुख रोरी ।
नहिं मानत कछु बात हमारी कंचुकि को बँद छोरी ।
एई रस सदो रसिक रहिओ 'हरीचंद' यह जोरी ।६७

ग़ज़ल

फिर आई फस्ले[१] गुल[२] फिर ज़ख्मदह[३] रह रह के पकते हैं
मेर दागे जिगर[४] पर सूरते लाला[५] लहकते हैं ।
नसीहत है अबस[६] नासेह[७] बयाँ नाहक ही बकते हैं ।
जो बहके दुख्तेरज़[८] से हैं वह कब इनसे बहकते हैं ?
कोई जाकर कहो यह आखिरी पैगाम[९] उस बुत से ।
अरे आ जा अभी दम तन में बाकी है सिसकते हैं ।
न बोसा लेने देते हैं न लगते हैं गले मेरे ।
अभी कम-उम्र हैं हर बात पर मुझ से झिझकते हैं ।
व गैरों को अदा से कत्ल जब बेबाक[१०] करते हैं ।
तो उसकी तेग़ को हम आह किस हैरत[११] से तकते हैं
उड़ा लाये हो यह तर्जे सखुन[१२] किस से बताओ तो ।
दमे तकदीर[१३] गोया बाग़ में बुलबुल चहकते हैं ।
'रसा' की है तलाशे यार में यह दश्त-पैमाई[१४] ।
कि मिस्ले शीशा मेरे पाँव के छाले झलकते हैं ।१
खयाले नावके[१५] मिजगाँ[१६] में बस हम सर पटकते हैं
हमारे दिल में मुबत से ये खारे[१७] गम खटकते हैं ।
रुखे रौशन पै उसके गेसुए[१८] शबगूँ[१९] लटकते हैं ।
कयामत[२०] है मुसाफिर रास्त : दिन को भटकते हैं ।
फुगाँ[२१] करती है बुलबुल याद में गर गुल के ऐ गुलची[२२]
सदा इक आह की आती है जब गुंचे[२३] चटकते हैं ।
रिहा करता नहीं सैयाद हम को मौसिमे गुल में ।
कफस[२५] में दम जो घबराता है सर दे दे पटकते हैं ।
उड़ा दूँगा 'रसा' मैं धज्जियाँ दामाने[२५] सहरा[२६] की ।
अबस[२७] खारे बियाबाँ मेरे दामन से अटकते हैं ।२
ग़ज़ब है सुरम : देकर आज वह बाहर निकलते हैं ।
अभी से कुछ दिले मुज़्तर[२८] पर अपने तीर चलते हैं ।
जरा देखो तो ऐ अहले सखुन[२९] जोरे सनाअत[३०] को ।
नई बंदिश है मजमूँ नूर के साँचे में ढलते हैं ।
बुरा हो इश्क का यह हाल है अब तेरी फुर्कत[३१] में ।
कि चश्मे खूँ चकाँ[३२] से लख्ते[३३] दिल पैहम[३४] निकलते हैं
हिला देंगे अभी ऐ संगे दिल तेरे कलेजे को ।
हमारी आहे आतिश-बार[३५] से पत्थर पिघलते हैं ।
तेरा उभरा हुआ सीना जो हम को याद आता है ।
तो ऐ रश्के परी पहरों कफे[३६] अफसोस मलते हैं ।
किसी पहलू नहीं चैन आता है उश्शाक को तेरे ।
तड़फते हैं फुगाँ करते हैं औ करवट बदलते हैं ।
'रसा' हाजत नहीं कुछ रौशनी की कुंजे मर्कद[३७] में ।
बजाये शमा[३८] याँ दागे जिगर हर वक्त जलते हैं ।३
अजब जोबन है गुल पर आमदे फस्ले बहारी है ।
शिताब आ साकिया गुलरू[३९] कि तेरी यादगारी है ।
रिहा करता है सैयादे सितमगर मौसिमे गुल में ।
असीराने[४०] कफस लो तुमसे अब रुख़सत हमारी है ।
किसी पहलू नहीं आराम आता तेरे आशिक को ।
दिले मुज़तर तड़पता है निहायत बेकरारी है ।
सफाई देखते ही दिल फड़क जाता है बिस्मिल का ।
अरे जल्लाद तेरे तेग़ की क्या आबदारी है ।
दिला[४१] अब तो फिराके यार में यह हाल है अपना ।
कि सर जानू पर है और खून दह आँखों से जारी है ।
इलाही खैर कीजो कुछ अभी से दिल धड़कता है ।
सुना है मंजिले औवल की पहली रात भारी है ।
'रसा' महवे[४२] फसाहत[४३] दोस्त क्या दुश्मन भी हैं सारे ।
ज़माने में तेरे तर्जे सखुन की यादगारी है ।४
आ गई सर पर कज़ा लो सारा सामाँ रह गया ।

---

१. ऋतु, २. फूल, ३. घाव, ४. हृदय, ५. एक पुष्प, ६. व्यर्थ, ७. उपदेशक, ८. मदिरा, ९. संदेश, १०. निडरता से, ११. आश्चर्य, १२. कहने की शैली, १३. बोलना, १४. जंगल में भटकना, १५. छोटा वाण, १६. पलक, १७. काँटा, १८. बाल, १९. काली, २०. प्रलय, २१. आह, २२. पुष्प चुननेवाला, २३. कलियाँ, २४. पिंजड़ा, २५. अंचल, २६. जंगल, २७. व्यर्थ, २८. घबड़ाया गया, २९. कविगण, ३०. व्यंजना, ३१. विरह, ३२. टपकनेवाले, ३३. टुकड़ा, ३४. सदा, ३५. अग्निवर्षक, ३६. हथेली, ३७. कब्र, ३८. दीपक, ३९. पुष्पमुखी, ४०. कैदियों, ४१. हे हृदय, ४२. मुग्ध, ४३. अच्छी व्यंजनाशक्ति.

ऐ फलक क्या क्या हमारे दिल में अरमाँ[1] रह गया ।
आगबाँ है चार दिन की बागे आलम में बहार ।
फूल सब मुरझा गये खाली बियाबाँ रह गया ।
इतना एहसाँ और कर लिल्लाह[2] ऐ दस्ते जनूँ[3] ।
बाकी गर्दन में फकत तारे गिरेबाँ[4] रह गया ।
याद आई जब तुम्हारे रुप रौशन की चमक ।
मैं सरासर सूरते आईना हैराँ रह गया ।
ले चले दो फूल भी इस बागे आलम से न हम ।
वक्त रेहलत[5] हैफ[6] है खाली हि दामाँ रह गया ।
मर गये हम पर न आये तुम खबर को ऐ सनम[7] ।
हौसला सब दिल का दिल ही में मेरी जाँ रह गया ।
नातवानी ने दिखाया जोर अपना ऐ 'रसा' ।
सूरते नक्शे कदम मैं बस नुमायाँ रह गया ।५
फिर मुझे लिखना जो वस्फ़े[8] रुए जानाँ हो गया ।
वाजिब इस जा पर कलम को सर झुकाना हो गया ।
सरकशी इतनी नहीं जालिम है ओ जुल्फे सियाह ।
बस के तारीक[9] अपनी आँखों में जमाना हो गया ।
ध्यान आया जिस घड़ी उसके दहाने[10] तंग का ।
हो गया दम बंद मुश्किल लब हिलाना हो गया ।
ऐ अजल[11] जल्दी रिहाई दे, न बस ताखीर कर ।
खानए तन[12] भी मुझे अब कैदखाना हो गया ।
आज तक आईना-वश हैरान है इस फिक्र में ।
कब यहाँ आया सिकंदर कब रवाना हो गया ।
दौलते दुनिया न काम आएगी कुछ भी बाद मर्ग[13] ।
है जमीं में खाक कारुं[14] का खजाना हो गया ।
बात करने में जो लब उसके हुए जेरो जबर[15] ।
एक सायत में तहो बाला[16] जमाना हो गया ।
देख ली रफ्तार उस गुल की चमन में क्या सबा ।
सर्व[17] को मुश्किल कदम आगे बढ़ाना हो गया ।

जान दी आखिर कफस में अंदलीबे[18] जार[19] ने ।
मुज्द :[20] है सैयाद वीराँ आशियान[21] हो गया ।
जिन्द : कर देता है एक दम में य ईसाए नफस [22] ।
खेल उसको गोया मुरदे को जिलाना हो गया ।
तौसने[23] उम्रे रवाँ[24] दम भर नहीं रुकता 'रसा' ।
हर नफस गोया उसे एक ताजियाना हो गया ।६
दिल मेरा तीरे सितमगर का निशाना हो गया ।
आफते जाँ मेरे हक में दिल लगाना हो गया ।
हो गया लागर[25] जो उस लैली अदा के इश्क में ।
मिसले मजनूँ हाल मेरा भी फिसाना[26] हो गया ।
खाकसारी[27] ने दिखाया बाद मुर्दन[28] भी उरुज[29] ।
आसमाँ तुरबत[30] पर मेरे शामियाना हो गया ।
ख्वाबे गफलत से जरा देखो तो कब चौंके हैं हम ।
काफिला मुल्के अदम[31] को जब रवाना हो गया ।
फसले गुल में भी रिहाई की न कुछ सूरत हुई ।
कैद में सैयाद मुझको एक जमाना हो गया ।
दिल जलाया सूरते परवाना जब से इश्क में ।
फर्ज तब से शमअ पर आँसू बहाना हो गया ।
आज तक ऐ दिल जवाबे खत न भेजा यार ने ।
नामाबर को भी गये कितना जमाना हो गया ।
पासे रुसवाई[32] से देखो पास आ सकते नहीं ।
रात आई नींद का तुमको बहाना हो गया ।
हो परेशानी सरेमू[33] भी न जुल्फे यार को ।
इसलिये मेरा दिले सद-चाक[34] शाना[35] हो गया ।
बद मुर्दन कौन आता है खबर को ए 'रसा' ।
खत् बस कंजे लहद[36] तक दोस्ताना हो गया ।७
जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है ।
उसी का सब है जलवा[37] जो जहाँ में आशकारा[38] है ।
भला मखलूक[39] खालिक की सिफत समझे कहाँ कुदरत ।

---

१. इच्छा, २. ईश्वर के लिए, ३. पागलपन, ४. कंठी, ५. महायात्रा, ६. शोक, ७. प्रिय, ८. गुण, ९. अंधकार, १०. मुख, ११. मृत्यु, १२. शरीर रूपी गृह, १३. मृत्यु, १४. एक धनाढ्य, १५. नीचे ऊपर, टेढ़े, १६. अस्तव्यस्त, १७. एक पौधा, सरो, १८. बुलबुल, १९. दुखी, २०. सुखी, २१. घोंसला, २२. प्राण, २३. घोड़ा, २४. चलता हुआ, २५. कृश, २६. कहानी, २७. नम्रता, २८. मरने के, २९. उत्कर्ष, ३०. कब्र, ३१. परलोक, ३२. कलंक के विचार, ३३. बाल बराबर भी, ३४. सौ टुकड़े, ३५. कंघी, ३६. कब्र,, ३७. शोभा, ३८. प्रकट, ३९. सृष्टि के जीव.

इसी से नेति नेति ऐ यार वेदों ने पुकारा है ।
न कुछ चारा चला लाचार चारो हारकर बैठे ।
बिचारे बेद ने प्यारे बहुत तुमको बिचारा है ।
जो कुछ कहते हैं हम यह भी तेरा जलवा है एक वरन :।
किसे ताक़त जो मुँह खोले यहाँ हर शख्स हारा है ।
तेरा दम भरते हैं हिंदू अगर नाक़ूस[१] बजता है ।
तुझे ही शेख न प्यारे अजाँ देकर पुकारा है ।
जो बुत पत्थर हैं तो काबे में क्या जुज़ ख़ाको पत्थर है ।
बहुत भूला है वह इस फ़र्क में सर जिसने मारा है ।
न होते जलवगर तुमतो यह गिरजा कब का गिर जाता ।
निसारा[२] को भी तो आखिर तुम्हारा ही सहारा है ।
तुम्हारा नूर है हर शै में कह[३] सो कोई[४] तक प्यारे ।
इसी से कह के हर हर तुमको हिंदू ने पुकारा है ।
गुनह बख्शो रसाई दो 'रसा' को अपने कदमों तक ।
बुरा है या भला है जैसा है प्यारे तुम्हारा है ।८

उठा के नाज़ से दामन भला किधर को चले ।
इधर तो देखिये बहरे खुदा[५] किधर को चले ।
मेरी निगाहों में दोनों जहाँ हुए तारीक ।
य आप खोल के जुल्फे दोता[६] किधर को चले ।
अभी तो आए हो जल्दी कहाँ है जाने की ।
उठो न पहलू से ठहरो ज़रा किधर को चले ।
ख़फा हो किसपै भँवें क्यों चढ़ी हैं ख़ैर तो है ।
ये आप तेग़ पै धर कर जिला किधर को चले ।
मुसाफ़िराने अदम कुछ तो अज़ीज़ों से कहो ।
अभी तो बैठे थे है है भला किधर को चले ।
चढ़ी हैं त्यौरियाँ कुछ है मिज़ह[७] भी जुम्बिश[८] में ।
खुदा ही जाने ये तेगे अदा किधर को चले ।
गया जो मैं कहीं भूले से उनके कूचे में ।
तो हँस के कहने लगे हैं 'रसा' किधर को चले ।९

असीराने कफ़स सहने चमन को याद करते हैं ।
भला बुलबुल प यों भी जुल्म ऐ सैयाद करते हैं ।
कमर का तेरे जिस दम नक़्श हम ईजाद करते हैं ।
तो जाँ फर्मान[९] आकर मानियो बिहजाद[१०] करते हैं ।
पसे मुर्दन तो रहने दे ज़मीं पर ऐ सबा मुझको ।
कि मिटटी ख़ाकसारों[११] की नहीं बरबाद करते हैं ।
दमे रफ़्तार आती है सदा पाज़ेब से तेरी ।
लहद के खिस्तगाँ उट्ठो मसीहा याद करते हैं ।
कफ़स में अब तो ऐ सैयाद अपना दिल तड़पता है ।
बहार आई है मुरग़ाने-चमन फरियाद करते हैं ।[१२]
बता दे ऐ नसीमे सुबह शायद मर गया मजनूँ ।
बता दे ऐ नसीमे सुबह शायद मर गया मजनूँ ।
ये किसके फूल उठते हैं जो गुल फ़रयाद करते हैं ।
मसल सच है बशर[१३] की कद्रे ने अमत[१४] बाद होती है ।
सुना है आज तक हमको बहुत वह याद करते हैं ।
लगाया बागबाँ ने ज़ख्म कारी दिल प बुलबुल के ।
गरेबाँ चाक गुंचे हैं तो गुल फरयाद करते हैं ।
'रसा' आगे न लिख अब हाल अपनी बेकरारी का ।
बरंगे गुंच : लब[१५] मज़मू तेरे फरयाद करते हैं ।१०

दिल आतिशे हिजराँ से जलाना नहीं अच्छा ।
अय शोल : रुखो[१७] आग लगाना नहीं अच्छा ।
किस गुल के तसव्वर[१८] में है ए लाल : जिगर-खूँ ।
यह दाग कलेजे प उठाना नहीं अच्छा ।
आया है अयादत[१९] को मसीहा सरे बालीं[२०] ।
ऐ मर्ग[२१], ठहर जा अभी आना नहीं अच्छा ।
सोने दे शबे वस्ले गरीबाँ है अभी से ।
ऐ मुर्गे-सहर[२२] शोर मचाना नहीं अच्छा ।
तुम जाते हो क्या जान मेरी जाती है साहब ।

---

१. शंख, २. ईसाई, ३. तिनका, ४. पर्वत, ५. ईश्वर के लिए, ६. दोनों ओर, ७. पलक.
८. हिलना. ९. एक पुष्प, १०. तर्क तथा वाधा, ११. दीनों,
१२. पाठा — बहार आई है फिर सैरै गुलिस्ता याद करते हैं ।
कफस में सिर को टकराते है और फरियाद करते हैं ।।
१३. मनुष्य, १४. भलाई, १५. कली के समान बंद ओठ,
१६. एक प्रति में निम्नलिखित शैर अधिक है ।
मज़ामीने बलंद अपनी पहुँच जाएंगी गर्दू तक ।
य तर्जे नौ जमीं में शैर हम आबाद करते हैं ।।
१७. प्रकाशमान मुखवाले, १८. सोच, १९. रुग्णावस्था में हाल पूछने जाना, २०. सिराहना,
२१. मृत्यु, २२. सबेरे का मुर्गा ।

अय जाने-जहाँ आपका जाना नहीं अच्छा।
आ जा शबे फुर्क़त में क़सम तुमको ख़ुदा की।
ऐ मौत बस अब देर लगाना नहीं अच्छा।
पहुँचा दे सबा कूचए जानाँ में पसे मर्ग।
जंगल में मेरी खाक उड़ाना नहीं अच्छा।
आ जाय न दिल आपका भी और किसी पर।
देखो मेरी जाँ आँख लड़ाना नहीं अच्छा।
कर दूँगा अभी हश्र[1] बपा देखियो जल्लाद।
धब्बा य मेरे खूँ का छुड़ाना नहीं अच्छा।
ऐ फ़ाख़्त: उस सर्वसिही[2] क़द का हूँ शैदा।
कू कू की सदा मुझको सुनाना नहीं अच्छा।
होगा हरेक आह से महशर[3] बपा 'रसा'।
आशिक़ का तेरे होश में आना नहीं अच्छा।११

रहै न एक भी बेदादगर[4] सितम[5] बाकी।
रुके न हाथ अभी तक है दम में दम बाकी।
उठा दुई का जो परदा हमारी आँखों से।
तो काबे में भी रहा बस वही सनम बाकी।
बुला लो बालीं प हसरत न दिल में मेरे रहे।
अभी तलक तो है तन में हमारे दम बाकी।
लहद प आएँगे और फूल भी उठाएँगे।
ये रंज है कि न उस वक्त होंगे हम बाकी।
यह चार दिन के तमाशे हैं आह दुनिया के।
रहा जहाँ में सिकन्दर न और न जम[6] बाकी।
तुम आओ तार से मरकद प हम कदम चूमें।
फक़त यही है तमन्ना तेरी कसम बाकी।
'रसा' ये रंज उठाया फिराक में तेरे।
रहे जहाँ में न आखिर को आह हम बाकी।१२

बैठे जो शाम से तेरे दर पर सहर हुई।
अफसोस अय कमर[7] कि न मुतलक खबर हुई।
अरमाने वस्ल यों ही रहा सो गए नसीब।
जब आँख खुल गई तो यकायक सहर हुई।
दिल आशिकों के छिद गए तिरछी निगाह से।
मिज़गाँ[8] की नोक दुशमने जानी जिगर हुई।
पछताता हूँ कि आँख अबस तुम से लड़ गई।
बरछी हमारे हक में तुम्हारी नजर हुई।
छानी कहाँ न खाक, न पाया कहीं तुम्हें।
मिट्टी मेरी खराब अबस दर-बदर हुई।
ध्यान आ गया जो शाम को उस ज़ुल्फ का 'रसा'।
उलझन में सारी रात हमारी बसर हुई।१३

बाल बिखेरे आज परी तुरबत पर मेरे आएगी।
मौत भी मेरी एक तमाशा आलम को दिखलाएगी।
महवे अदा हो जाऊँगा गर वस्ल में वह शरमाएगी।
बारे ख़ुदाया दिन की हसरत कैसे फिर बर आएगी।
कहीदा[9] ऐसा हूँ मैं भी ढूँढ़ा करे न पाएगी।
मेरी खातिर मौत भी मेरी बरसों सर टकराएगी।
इश्के बुताँ में जब दिल उलझा दीन कहाँ इसलाम कहाँ।
वाअज़[10] काली ज़ुल्फ की उल्फत सब को राम बनाएगी।
चंगा होगा जब न मरीज़े काकुले शबगूँ हज़रत से।
आपकी उलफत ईसा की अब अज़मत आज मिटाएगी।
बहे अयादत भी जो आएँगे न हमारे बालीं पर।
बरसों मेरे दिल की हसरत सिर पर खाक उड़ाएगी।
देखूँगा मिहराबे हरम याद आएगी अबरूए सनम।
मेरे जाने से मसजिद भी बुतखाना बन जाएगी।
ग़ाफिल इतना हुस्न प गर्रा[11] ध्यान किधर है तौबा कर।
आखिर इक दिन सूरत यह सब मिट्टी में मिल जाएगी।
आरिफ[12] जो हैं उनके हैं बस रंज व राहत एक 'रसा'।
जैसे वह गुज़री है यह भी किसी तरह निभ जाएगी।१४

फसादे दुनिया मिटा चुके हैं
हुसूले हस्ती उठा चुके हैं।
ख़ुदाई अपने में पा चुके हैं
मुझे गले यह लगा चुके हैं।
नहीं नज़ाकत से हम में ताकत
उठाएँ जो नाज़े हूरे जन्नत[13]।
कि नाज़े शमशीर पुर नज़ाकत
हम अपने सर पर उठा चुके हैं।
नजात हो या सज़ा हो मेरी मिले
जहन्नुम[14] कि पाऊँ जन्नत।
हम अब तो उनके कदम प अपना
गुनह भरा सिर झुका चुके हैं।
नहीं ज़बाँ में है इतनी ताकत
जो शुक्र लाएँ बजा हम उनका।
कि दामें हस्ती[15] से मुझको अपने।
इक हाथ में वह छुड़ा चुके हैं।
वजूद[16] से हम अदम में आकर।

---

१. प्रलय, २. सरो पौधे के समाव सीधा, ३. प्रलय, ४. अत्याचारी, ५. कष्ट, अत्याचार, ६. ईरान का एक राजा जमशेद, ७. चंद्र, ८. पलकें, ९. कृश, १०. उपदेशक, ११. घमंड, १२. ज्ञानी, १३. स्वर्ग, १४. नर्क, १५. जीवन

मुर्की[1] हुए ला-मकां[2] के जाकर ।
हम अपने को उनकी तेग़ खाकर
मिटा मिटाकर बना चुके हैं ।
यही हैं अदना सी इक अदा से
जिन्होंने बरहम[3] है की खुदाई ।
यही हैं अकसर कज़ा के जिनसे
फरिश्ते भी ज़क[4] उठा चुके हैं ।
य कहदो बस मौत से हो रुखसत
क्यों नाहक आई है उसकी शामत ।
कि दर तलक वह मसीहे खसलत
मेरी अयादत को आ चुके हैं ।
जो बात माने तो ऐन शफकत
न माने तो एन हुस्ने खूबी ।
'रसा' भला हमको दख्ल क्या अब
हम अपनी हालत सुना चुके हैं ।१५

दश्त-पैमाई का गर कस्द मुकर्रर होगा ।
हर सरे खार पए आबिला[5] नश्तर होगा ।
मैकदे से तेरा दीवाना जो बाहर होगा ।
एक में शीशा और इक हाथ में साग़र होगा ।
हलकए चश्मे सनम लिख के य कहता है कलम ।
बस कि मरकज़ से कदम अपना न बाहर होगा ।
दिल न देना कभी इन संग-दिलों को यारो ।
चूर होवेगा जो शीशा तहे पत्थर होगा ।
देख लेना व अगर रुख की तजल्ली[6] तेरे ।
आइना खानए मायूसी[7] मे शशदर[8] होगा ।
चाक कर डालूँगा दामाने कफन वहशत से.।
आस्तीं से न मेरा हाथ जो बाहर होगा ।
ऐ 'रसा' जैसा है बर-गशता[9] ज़माना हमसे ।
ऐसा बरगश्ता किसी का न मुकद्दर[10] होगा ।१६

नींद आती ही नहीं धड़के की बस आवाज़ से ।
तंग आया हूँ मैं इस पुरसोज[11] दिल के साज़ से ।
दिल पिसा जाता है उनकी चाल के अन्दाज़ से ।
हाथ में दामन लिए आते हैं वह किस नाज़ से ।
सैकड़ों मुरदे जिलाए हो मसीहा नाज़ से ।
मौत शरमिंदा हुई क्या क्या तेरे ऐजाज[12] से ।
बागबाँ कुंजे कफस में मुद्दतों से हूँ असीर ।
अब खुले पर भी तो मैं वाकिफ नहीं परवाज[13] से ।
कब्र में राहत से सोए थे न था महशर का खौफ ।
बाज़ आए ए मसीहा हम तेरे ऐजाज़ से ।
वाए ग़फलत भी नहीं होती कि दम भर चैन हो ।
चौंक पड़ता हूँ शिकस्त ! होश की आवाज़ से ।
नाज़े माशूकाना से खाली नहीं है कोई बात ।
मेरे लाशे को उठाए हैं व किस अन्दाज से ।
कब्र में सोए हैं महशर का नहीं खटका 'रसा' ।
चौंकनेवाले हैं कब हम सूर[14] की आवाज़ से ।१७

चाह जिसकी थी वही यूसुफे सानी निकला ।१८

बख्त[15] ने फिर मुझे इस साल दिखाई होली ।
सोजे फुरकत जेबस मुझको न भाई होली ।
शोल्लए इश्क भड़कता है तो कहता हूँ 'रसा' ।
दिल जलाने के लिए आह यह आई होली ।१९

बुते काफ़िर जो तू मुझसे खफ़ा है ।
नहीं कुछ ख़ौफ़ मेरा भी ख़ुदा है ।
यह दर परद : सितारों की सदा है ।
गली कूच : में गर कहिए बजा है ।
रकीबों[16] में वह होंगे सुर्खरू आज ।
हमारे कत्ल का बीड़ा लिया है ।
यही है तार उस मुतरिब[17] का हर रोज ।
नया इक राग लाकर छेड़ता है ।
शुनीद : कै बुवद मानिंद दीद : ।[18]
तुझे देखा है हूरों को सुना है ।
पहुँचता हूँ जो मैं हर रोज़ जाकर ।
तो कहते हैं गज़ब तू भी 'रसा' है ।२०

रहमत का तेरे उम्मीदवार आया हूँ ।
मुँह ढ़ँपे कफन में शर्मशार[19] आया हूँ ।
आने न दिया बारे[20] गुनह ने पैदल ।
ताबूत[21] में काँधों पै सवार आया हूँ ।२१

चंपई गरचे दुपट्टा है तो गुलदार है बेल ।
सैरे गुलशन को चले आते हैं गुलशन होकर ।२२

कलक की ग़ज़ल 'बाद अज़ फना तो रहने दे इस ख़ाकसार को' पर चार शैर कहे हैं —
अल्ला रे लुत्फे ज़बह की कहता हुँ बार बार ।

---

१. अस्तित्व, संसार, २. गृहवाला, ३. बिना गृह का, ४. व्यस्त, ५. पराजय, ६. फफोला, ७. प्रकाश, ८. नैराश्य, ९. चकित, १०. फिरा हुआ, ११. भाग्य, १२. जलन से भरा । १३. अद्भुत कार्य, १४. उड़ान, १५. प्रलय के समय बजने वाला नरसिंहा बाजा, १६. भाग्य, १७. प्रतिद्वंद्वी, १८. गायक, १९. सुना हुआ क्या देखे हुए के समान हो सकता है, २०. लज्जित, २१. बोझ ।

कातिल गले से खींच न खंजर की धार को।
तड़पा न कर दे जबह मुझे बानिए-जफा[1]।
कुरबाँ गले प फेर दे खंजर की धार को।
दे दो जबाब साफ कि किस्सा तमाम हो।
दौड़ाते किस लिए हो इस उम्मीदवार को।
होगी कशिश वहाँ से पस अज़ मर्ग जो 'रसा'।
पाएगी गर हवा मेरे मुश्ते-गुबार[2] को।२३

[बुलबुल को बाँधिए तो रगे
गुल से बाँधिए—तरह]

जुल्फ़ों को लेके हाथ में कहने लगा वह शोख़।
गर दिल को बाँधना हो तो काबुल से बाँधिए।२४

जब कभी उसकी याद पड़ती है।
सोस[3] आकर जिगर में पड़ती है।
यादे मिज़गाँ जो मुझको है पैहम[4]।
बरछी सी एक जिगर में गड़ती है।
वक्ते तहरीर यह जमीने सखुन।
बात में आसमाँ पै चढ़ती है।
है जो मद्दे नज़र विसाल उसे।
दम बदम मुझ पै आँख पड़ती है।
वस्ल में भी नहीं है चैन मुझे।
ख्वाहिशे दिल जियाद : बढ़ती है।
है अजब उसके सुलहो-जंग में लुत्फ।
दिल मिला जब तो आँख लड़ती है।
देके आँखों में सुरमा वह बोले।
शान पर आज तेग़ चढ़ती है।
सैरे गुलशन जो करता है वह माह।
बस गुलिस्ताँ पै ओस पड़ती है।
बस्ल होगा नसीब आज 'रसा'।
चेहरए गुल पै ओस पड़ती है।
सौ करो एक भी नहीं बनती।
आह तकदीर जब बिगड़ती है।२५

बर्कदम[5] क्यों हाथ में शमशीर है।
आज किस के कत्ल की तदबीर है।
खाक सर पर पाँओं में जंजीर है।
तेरे चलते यह मेरी तौकीर[1] है।
पूछते हो क्या मेरी जरदी का हाल।
साहबो यह इश्क की तासीर है।
कुचए लैली में कहते हैं मुझे।
मिनअअन[6] मजनूँ की बस तस्वीर है।
दस्तो-पा[7] सर्द आशिकों के होते हैं।
घर तेरा क्या खत्तए[8] कश्मीर है।
पीसता है माहरूओं[9] को सदा।
कैसी कजफहमी[10] पै चरखे मीर है।
पूछा मैंने एक दिन उस माह से।
मेह्व तुझको कुछ भी ए बेपीर है।
रूठता है दम बदम बेबजह क्यों।
आशिकों की क्या यही तौकीर है।
है कसम तुझ को हमारे सर की जाँ।
क्या खता थी जिसकी यह ताज़ीर[11] है
बोला हँस कर चुपके बस जाओ चले।
क्या तुम्हारी मौत दामनगीर है।
फूल झड़ते हैं जबाँ से बात में।
मिस्ले बुलबुल यार की तकदीर है।
फर्शे रह[12] करता हूँ आँख उसके लिए।
खाके-पा हक में मेरे अकसीर है।
ख़्वाब में उस गुल को देखा ऐ 'रसा'।
बस्ल होगा उसकी ये ताबीर[13] है।
ऐ 'रसा' मिटती नहीं जुज़ ताब-मर्ग।
खते किसमत की अजब तहरीर है।२६

है कमाँ अबरू तो मिजगाँ तीर है।
आफते जाँ ग़मज़ए[14] बे पीर है।२७ ।२७

बाद में मिले हुए फुटकर पद

दीपन की बर माला शोभित।
जगमग जोत जगति चारो दिसि सोभा बढ़ी बिसाला।
घृत करपूर पूर करि राखी मेटि तिमिर की जाला।
'हरीचंद' बिहरत आनँद भरि राधा मद-गोपाला।१

हटरी सजि कै राधा रानी मोहन पिय को लै बैठावत।
फूल-माल पहिराइ बिबिध बिधि भाँति के भोग लगावत।
बारी देत आरती करि कै करत निछावर बसन लुटावत।
इक टक निरखि प्रान-पिय मुख छबि
जीवन जनम सुफल करि पावत।
जगमग दीप प्रकास बदन दुति
रतन अभूषन मिलि मन भावत।
हाट लगाइ प्रेम की मोहन

---

१. शव रखने का संदूक, २. अत्याचारी, ३. एक मुट्ठी धूलि, ४. अफसोस, ५. सर्वदा, ६. विद्युत रूपा, ७. सम्मान, ८. ठीक वैसाही, ९. हाथ पैर, १०. देश, ११. चंद्रमुखी, १२. उल्टी समझ, १३. दंड, १४. राह मार्ग, १५. स्वप्न का फल

मन के बदले सौंज दिखावत ।
पासा खेलत हँसत हँसावत
जानि बूझि पिय अपुन हरावत ।
'हरीचंद' पिय प्यारी मिलि कै
एहि विधि नित त्यौहार मनावत ।२

समस्या—'क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।' की पूर्ति

कहा भयो मद है पीयौ कै गहिरी बिजया छानी सी ।
लाल लाल दृग केस बिथुरि रहे सूरत भई निवानी सी ।
झुक झुक झूमत अल-बल बोलत चाल मस्त बौरानी सी।
काके रंग रंगी ऐसी क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।१

छूट्यौ केस खुलौ है अंचल पीक-छाप पहिचानी सी ।
टूटी माल हार अरु पहुँची कुसुम-माल कुम्हिलानी सी ।
नैन लाल अधरा रस चूसे सुरतिहू अलसानी सी ।
जानी जानी नेकु लाजु क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।२

बन बन पात पात करि डोलत बोलत कोकिल बानी सी ।
मूँदि मूँदि दृग खोलि खोलि कै कहूँ रहत ठहरानी सी ।
उभकति झुकति जगी सी सब छिन मोहन हाथ बिकानी सी।
धीरज धरि बलि गई अरी क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी।३

मौन रहत कबहूँ कबहूँ तू बोलत अलबल बानी सी ।
ठगी उगी रस पगी श्याम रट लगी कबहुँ अकुलानी सी ।
तन की सुधि गुरु जन की भै बिनु 'हरीचंद' रस सानी सी ।
काके मद माती डोलत क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।४

उफनत तक्र चुअत चहुँ दिसि तें खींचत पथ कहँ पानी सी।
बार बार नँद-द्वार जाइ कै ठाढ़ी रहत बिकानी सा ।
तन की सुधि नहिं उघरत आँचर डोलत पथहि भुलानी सी।
मुख सों कहत गुपालहि लै क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।५

नैहर सासुर बाहर भीतर सब थल की ह्वै रानी सी ।
लाज मेटि अन-कही भई अपवादनहू न डरानी सी ।
कुलहि कलंक लगाय भली बिधि होइ गई मन-मानी सी।
अबहूँ तो कछु सम्हरि अरी क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।६

बिलखि बिलखि मति रोवै प्यारी ह्वै कै दुख बौरानी सी ।
सीस धुनत क्यों अभरन तोरत फारत अंचल तानी सी ।
गहिरी लेत उसास भरी दुख भई मीन बिनु पानी सी ।
कहुँ बैठत कहुँ उठि धावत क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।७

आजु कुंज मैं कौन मिल्यौ जिन लूटी सब रस खानी सी ।
चूसे अधर अँगूर दोउ गालन पै प्रगट निसानी सी ।
बिथुरे बार सिंगार हार 'हरिचंद' माल कुम्हिलानी सी ।
धर धर छतिया क्यौं धरकत क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।८

बंसी झुकि झुकि कहा बजावत झूठहिं अंचल तानी सी ।
आपुहि आपु हँसत अरु रीझत यह गति अलख लखानी सी।
मेरे गल भुज दे दे लटकत मुख चूमत मन-मानी सी ।
नाम रटत अपुनो राधे क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।९

नन्द-भवन नहिं भानु-भवन यह इत क्यौं रहत लजानी सी।
घूँघट तानि बिलोकत केहि तू हिय हरषित रस-सानी सी ।
मैं ही एक अरी तू केहि इत आदर देत बिकानी सी ।
सेज सजत क्यौं आँगन मैं क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।१०

समस्या—'रोम मोम रूस फूस है ।' की पूर्ति

जीते हैं गुराई सों अनेक अरमनी
जरमनी जरमनौ मन रहत मसूस हैं ।
चित्र लिखे चीनी भए पारसी सिपारसी से
संग लगे डोलैं अँगरेज से जलूस हैं ।
भौंह के हिलाये सों बिलात तेरे चेरे ऐसे
हेरे नित नित फरासीस और प्रूस हैं ।
जदपि कहावैं बल भारी पै तिहारी सौंह
प्यारी तेरे आगे रोम मोम रूस फूस हैं ।१

हबसी गुलाम भये देखि कारे केस तेरे
चीनी लखि गालन कों फोरत फनूस हैं ।
मिसरी सुनत मीठे बोल बिना दाम बिके ।
तन की सुबास रहे मिलय भसूस हैं ।
फरासीसी मद्य सीसी ढारि मतवारे भए
नैन पेखि काफरी हू होइ रहे हूस हैं ।
बरमा हिये के काम धरमा चलायो प्यारी
तेरे रूप आगे रोम मोम रूस फूस हैं ।२

भाजे से फिरत शत्रु इत उत दौरि दौरि
दबत जमानी जाको जोहत जलूस है ।
ब्रह्म अस्त्र ऐसी तोपैं तोपैं एकै बार फौज
बिमल बँदूक गोली दारू कारतूस है ।
ऐसो कौन जग में बिलोकि सकै जौन इन्हैं
देखि बल बैरी-दल रहत मसूस है ।
प्रबल प्रताप भारतेश्वरी तिहारैं क्रोध
ज्वाल काल आगे रोम मोम रूस फूस है ।३

जनम लियो है जाने मरनो अवस ताहि
राजा है कै रंक है चतुर है कि हूस है ।
'हरीचंद' एक हरी नाम जग साँचो जानौ
बाकी सब झूठो चार दिन को जलूस है ।
काफरी कपूर चरबी से अरबी हैं अँगरेज
आदि काठ तृन तूल प्रूस भूस है ।
सकला सी सकल सकल काल ज्वाल आगे
हिंद्र घृत-विंद्र रोम मोम रूस फूस है ।४

समस्या–'राम बिना बे-काम सभी' की पूर्ति

राज-पाट हय गज रथ प्यादे बहु बिधि अन धन धाम सभी
हीरा मोती पन्ना मानिक कनक मुकुट उर दाम सभी ।
खाना-पीना नाच-तमाशा लाख ऐश-आराम सभी ।
जैसे बिंजन निमक बिना त्यों राम बिना बे-काम सभी ।१

इक्कीस तोप सलामी की औअल दर्जे का काम सभी ।
क्रास बाथ इस्टार हुए महराज बहादुर नाम सभी ।
जग जस पाया मुलक कमाया किया ऐश-आराम सभी ।
सार न जाना रहा भुलाना राम बिना बे-काम सभी ।२

यह जग मोह-जाल की फाँसी झूठे सुत धन-धाम सभी ।
नाटक इसमें मर पच के करते हैं जीस्त हराम सभी ।
जब तक दम में दम था झगड़े टण्टे रहे तमाम सभी ।
आँख मुँदी तब यह सूझा है राम बिना बे-काम सभी ।३

ब्रह्म-ज्ञान विचार ध्यान धारना व प्रानायाम सभी ।
षट दरसन की बक बक जप तप साधन आठो जाम सभी ।
योग सिद्धि बैराग भक्ति पूजा पत्री परनाम सभी ।
प्रेम बिना सब व्यर्थ कृष्ण बलराम बिना बे-काम सभी ।४

समस्या—'ग्रीष्मै प्यारे हिमंत बनाइये' की पूर्ति

कीजिये राई सुमेर सरीखी
सुमेरहि खीझि के धूर मिलाइये ।
राव सों रंक भिखारी सों भूपति
सिंह सो स्वान के पाय पुजाइये ।
दीजिए सींग ससै 'हरिचँद जू'
सागर-नीर मिठाइ बहाइए ।
कीजै हिमन्तहि ग्रीषम भीषम
ग्रीषमै प्यारे हिमन्त बनाइये ।१

पूरन बह्म समर्थ सबै जिय मैं
जोइ आवै सोई दरसाइये ।
फेरिये सूरज चंद गती छिन मैं
जग लाख बनाइ नसाइये ।
होनी न होनी सबै करिये 'हरीचंद जू'
सीस की लीक मिटाइये ।
कीजै हिमन्तहि ग्रीषम भीषम
ग्रीषमै प्यारे हिमन्त यनाइये ।२

प्रेम दै आपुनो मेटि दुखै जुग
नैनन आँसू प्रवाह बहाइये ।
लोभ पदारथ चारहु को अरु
लोक को मोह दया कै छुड़ाइए ।
आपुनो ही 'हरीचँद जू' रूप
दसो दिसि नैनन को दरसाइए ।
भारी भवातप ताप तपे हिय
ग्रीषमै प्यारे हिमन्त बनाइए ।३

दीनहूँ पै कबौं कीजै कृपा उजरी
कुटी मेरिहू आइ बसाइए ।
राखिए मान गरीबनीहू को
दयानिधि नाम की लाज निभाइये ।
दै अधरामृत प्रान पिया 'हरिचंद जू'
काम को ताप मिटाइये ।
मेरे दुखै सुख कीजिये पीतम
ग्रीषमै प्यारे हिमन्त बनाइये ।४

भोज मरे अरु विक्रमहू किनको
अब रोई कै काव्य सुनाइये ।
भाषा भई उरदू जग की अब तो
इन ग्रंथन नीर डुबाइये ।
राजा भये सब स्वारथ पीन
अमीरहू हीन किन्हें दरसाइये ।
नाहक देनी समस्या अबै यह
"ग्रीषमै प्यारे हिमन्त बनाइये" ।५

समस्या—'जीवौ सदा विक्टोरिया रानी' की पूर्ति

राज मैं जाके सबै सुखसाज
सुकीरति जासु न जात बखानी ।
जो सुन्यो श्री रघुनंदन के समै
नैनन सों सोई रीति लखानी ।
तार औ रेल की चाल करी 'हरिचंद'
जो लोगन को सुखदानी ।
यातें कहैं सबरे मिलिकैं
चिरजीवौ सदा विक्टोरिया रानी ।१

दीन भये बलहीन भये धन
छीन भये सब बुद्धि हिरानी ।
ऐसी न चाहिये आपुके राज
प्रजागन ज्यों मछरी बिनु पानी ।
या रुज की तुम ही अहो बैद
कहै तेहिं तें 'हरिचंद' बखानी ।
टिक्कस देहु छुड़ाइ कहैं सब
जीवौ सदा विक्टोरिया रानी ।२

समस्या— 'बीस रवि दस ससि संग ही उदय भये' की पूर्ति

ठाढ़ नंदनंदन कलिंदजा निकट लिये
दोऊ ओर ब्रजबाल कंठ में भुजा दये ।
अंग अंग माधुरी निकाई सुकुमारताई
पूरन प्रकास परिहास सुख सों छये ।
'हरीचंद' धारि उर सेत रतनारे नख
ध्यान करि प्रेम भरि मूँदि दृग द्वै लये ।
करत प्रकास मेरे हिय उदयाचल पैं
बीस रवि दस ससि संग ही उदै भये ।१

देख्यो आजु आली ब्रजराज के कुँअर जू कों
राधा लिये संग ठाढ़े अति सुखमा छये ।
प्रीति रीति पूरे धरे दोऊ हाथ कुच पर
एक टक देखत चकोर नैन ह्वै गये ।
'हरीचंद' आँगुरीन मानिक अँगूठी द्वै द्वै
तैसे नख सेत मिलि सोभा बेलि से बये ।
मानौं आजु प्रात उदयाचल सिखर पर
बीस रवि दस ससि संग ही उदै भये ।२

आजु जलकेलि मैं बिलोकी ब्रजबाल दस
खेलैं जमुना मैं सोभा कमल मनो बये ।
जलन उछारैं छोड़ै हाय सों फ़हारैं गहि
भुजा कंठ डारैं महामोद मन मैं लये ।
कर मेहदी सों रँगे तैसे मुखमंडल
दिखात 'हरिचंद' सब अंग जल मैं दये ।
मानौं नभ छोड़ि अनहोनी कर होनी आजु
बीस रवि दस ससि संग ही उदै भये ।

ताप अधिकात कबौं जिय सियरात आली
जब तें पियारे मनमोहन जुदै भये ।
कबहुँ प्रकास औ अँधेरो सो कबहुँ हिय
जल खिलत खिलत कबहुँ कबहुँ मुदै भये ।
प्यारे 'हरिचंद' के बियोग सों प्रथम दसा
दूजी ध्यान माँफ मानों संगम सुदै भये ।
ताप दूनो ताहू पैं न जानि परै मोहि कहा
बीस रवि दस ससि संग ही उदै भये ।३

दशरथ विलाप

(दशरथ विलाप)

कहाँ हौ ऐ हमारे राम प्यारे ।
किधर तुम छोड़ कर मुझकों सिधारे ।
बुढ़पे में य दुख भी देखना था ।
इसी के देखने को में बचा था ।
छिपाई है कहां सुन्दर व मूरत ।
दिखा तो सांवली सी मुझकों सूरत ।
छिपे हौ कौन से परदे में बेटा ।
निकल आवो कि अब मरता हु बुड्ढा ।
बुढ़पे पर दया मेरे जो करते ।
तो बन की और क्यों तुम पैर धरते ।
किधर वह वन है जिसमें राम प्यारा ।
अजुध्या छोड़ कर सूचना सिधारा ।
गई संग में जनक की जो लली है ।
इसी में मुझकों और बे कली है ।
कहेंगे क्या जनक यह हाल सुनकर ।
कहां सीता कहां वन वह भयंकर ।
गया लक्ष्मण भी उसके साथ ही साथी ।
तड़फता रह गया मैं मलते ही हाथ ।
मेरी आंखों की पुतली कहां है ।
बुढ़पे की मेरी लकड़ी कहां है ।
कहां ढ्रूंढों मुझे कोई बता दो ।
मेरे बच्चों को बस मुझसे मिला दो ।
लगी है आग छाती में हमारे ।
बुझाओ कोई उनका हाल कह के ।
मुझे सूना दिखाता है जमाना ।
कहीं भी अब नहीं मेरा ठिकाना ।
अंधेरा हो गया घर हाथ मेरा ।
हुआ क्या मेरे हाथों का खिलौना ।
मेरा धन लूट कर के कौन भागा ।
मैरे घर को मेरें किसने उजाडा ।
हमारा बोलता तोता कहा है ।
अरे वह रामा सा बेटा कहाँ है ।
कमर टूटी न बस अब उठ सकेंगे ।
अरे बिन राम के रो रो मरैंगे ।
कोई कुछ हाल तो आकर के कहता ।
है किस वन में मेरा प्या कलेजा ।
हवा और धूप में कुम्हला के थक कर ।
कहीं साये में बैठे होंगे रघुवर ।
जो डरती देखकर मट्टी का चीता ।
व वन वन फिर रही है आज सीता ।
कभी उतरी न सेजों से जमीं पर ।
वे फिरती है पियोदे आज दर दर ।
न निकली जान अब तक बेहया हूँ ।
भला मैं राम बिन क्यों जी रहा हूँ ।
मेरा है वज्र का लोगों कलेजा ।
कि इस दुख पर नहीं अब भी य फटता ।
मेरे जीने का दिन बस हाय बीता ।
कहां हैं राम लक्ष्मण और सीता ।
कहीं मुखड़ा तो दिखला जायें प्यारे ।
न रह जाये हविस जी में हमारे ।
कहां हो राम मेरे राम ये राम ।
मेरे प्यारे मेरे बच्चे मेरे श्याम ।
मेरे जीवन मेरे सरबस मेरे प्रान ।
हुए क्या हाय मेरे राम भगवान ।
कहां हो राम हा प्रानों से प्यारे ।
यह कह दशरथ जी सुरपुर को सिधारे ।

दूसरा खण्ड
(नाटक)

विद्यासुंदर

यह भारतेन्दु की प्रथम नाट्य रचना है। बंगला से अनूदित है। इस समय भारतेन्दु बाबू की अवस्था अठारह वर्ष थी। इस नाटक के प्रथम संस्करण की कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। इसका दूसरा संस्करण चन्द्रप्रभा प्रेस में सन् १८८३ में हुआ। जिसका उपक्रम चैत्र सम्वत् १९३९ (१८८२) में लिखा गया था। उपक्रम में भारतेन्दु स्वयं लिखते हैं कि प्रथम संस्करण पन्द्रह वर्ष पहले यानी सन् १८६७ में हुआ था। सन् १८८६का संस्करण भारत जीवन प्रेस का है। बंगला के अतिरिक्त संस्कृत में विद्यासुन्दर नाम का एक छोटा काव्य मिलता है। यह कब लिखा गया यह तो पता नहीं पर यह चौर कवि कृत कहा जाता है। — सं.

द्वितीय आवृत्ति का उपक्रम

विद्यासुन्दर की कथा वंग देश में अति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि चोर कवि जो संस्कृत में चौरपंचाशिका का कवि है यही सुन्दर है। कोई इस चौरपंचाशिका को वररुचि की बनाई मानते हैं। जो कुछ हो विद्यावती की आख्यायिका का मूल सूत्र वही चौरपंचाशिका है। प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय ने इस उपाख्यान को बंगभाषा में काव्य स्वरूप में निर्माण किया है और उसकी कविता ऐसी उत्तम है कि बंगदेश में आबाल वृद्ध बनिता सब उसको जानते हैं। महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलंबन करके जो विद्यासुन्दर नाटक बनाया था उसी की छाया लेकर आज पन्द्रह बरस हुए यह हिंदी भाषा में निर्मित हुआ है। विशुद्ध हिन्दी भाषा के नाटकों के इतिहास में यह चौथा नाटक है। निवाज का शकुन्तला या व्रजवासीदास का प्रबोधचन्द्रोदय नाटक नहीं काव्य है इससे हिन्दी भाषा में नाटकों की गणना की जाये तो महाराज रघुराजसिंह का आनंदरघुनंदन और मेरे पिता को नहुष नाटक यही दो प्राचीन ग्रंथ भाषा में वास्तविक नाटककार मिलते हैं। यों नाम को तो देवमायाप्रपंच समयसार इत्यादि कई भाषा ग्रंथों के पीछे नाटक शब्द लगा दिया है। इनके पीछे शकुन्तला का अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह ने किया है। यदि पूर्वोक्त दोनों ग्रंथों को ब्रजभाषामिश्र होने के कारण हिन्दी न मानो तो विद्यासुन्दर नाटक गुणों में अद्वितीय न होने पर भी द्वितीय है। पश्चिमोत्तर देश की मान्य गवर्नमेन्ट ने इसकी एक सौ पुस्तक लेकर इसका मान बढ़ाया है। पूर्व आवृत्ति का अत्यन्ताभाव ही इसकी पुनरावृत्ति का कारण है।

यह दूसरी आवृत्ति उसी को समर्पित है जिससे इस ग्रंथ से त्रिपथगा घनिष्ठ संबंध है। प्रथम विद्या मानो उसकी द्वितीया संपत्ति है द्वितीय एक देशी कथा भाग और तृतीय हमारा संबंध है।

काशी चैत्र १९३९ हरिचन्द्र

विद्यासुन्दर

प्रथम अंक
पहिला गर्भांक

(राजा और मंत्री का प्रवेश)

राजा — (चिन्ता सहित) यही तो बड़ा आश्चर्य है कि इतने राजपुत्र आए पर उनमें मनुष्य एक भी नहीं आया । इन सबों का केवल राजवन्श में जन्म तो है पर वास्तव में ये पशु है । जो मैं ऐसा जानता तो अपनी कन्या को ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा न करने देता पर अब तो उसे मिटा भी नहीं सकता । अब निश्चय हुआ कि हमारी विद्या की विद्या केवल दोषकारिणी हो गई । हा, क्यों मंत्री तुम कोई उपाय सोच सकते हो ।

मंत्री — महाराज आप जो आज्ञा करते हैं सो सच है । लक्ष्मी और सरस्वती दोनों एक स्थान पर नहीं रहतीं इससे ऐसा भाग्यशाली वर मिलना अत्यंत कठिन है । इन दिनों मैंने सुना है कि कांचीपुर के राजा गुणसिन्धु का पुत्र युवराज अत्यन्त सुन्दर अनेक शास्त्रों में शिक्षित और बड़ा कवि है और अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में जीता है ।

राजा — क्या गुणसिन्धु राजा को ऐसा गुणवान पुत्र हो और उसका समाचार हम अब तक न जानें ।

मंत्री — महाराज मैंने निश्चय सुना है वह अपूर्व सुन्दर और अद्वितीय पंडित है । इससे मैं अनुमान करता हूँ कि जिसने संसान की सब विद्या पाई है वही हमारी राजकुमारी विद्या को भी पावैगा । यद्यपि ईश्वर की इच्छा और होनहार अत्यन्त प्रबल है तथापि हमको निश्चिन्त होके बैठ रहना उचित नहीं है । इस कहने का अभिप्राय यह है कि आप कांचीपुर में किसी को समाचार लेने के हेतु भेजिए ।

राजा — ठीक है, तो विलम्ब क्यों करते हो । शीघ्र ही वहाँ किसी को भेजना चाहिए । (द्वार की ओर देखकर) कोई है ! गंगा भाट को अभी बुला लाओ ।

(प्रतिहारी आकर)

प्रतिहारी — जो आज्ञा महाराज । (जाता है)

राजा — (खेदपूर्वक) विद्यावती का केवल यह अदृष्ट है कि अब तक कहीं विवाह नहीं ठहरता । देखें क्या होता है ।

मंत्री — महाराज आज तक कोई कन्या क्वारी नहीं रही । सीता और द्रौपदी इत्यादि जिनके बड़े कठिन प्राण थे उनका तो विवाह हो ही गया । जब ईश्वर कन्या उत्पन्न करता हौ तो उसका वर भी उसीके साथ उत्पन्न कर देता है । अतएव आपको सोच करना न चाहिए ।

(प्रतिहारी के सहित गंगा भाट का प्रवेश)

गंगा भाट — वीरसिंह महाराज को,
दिन दिन ही जय हो ।
तेज बुद्धि बल नित बढ़ै शत्रु,
रहै नहिं कोय ।।

राजा — कविराज अब तक तुमने अनेक देशों में भ्रमण किया और अनेक राजपुत्रों को यहां ले आए परन्तु उनमें सुपात्र एक भी न आंया । अब हम सुनते हैं कि कांचीपुर के राजा गुणसिन्धु के पुत्र सुन्दर ने अनेक विद्या उपार्जित की है इससे हम सोचते हैं कि वही हमारी विद्या के योग्य भी होगा इससे तुम शीघ्र वहां गमन करो और राजपुत्र को अपने साथ ही लेते आओ तो अति उत्तम हो जिसमें विलंब न हो क्योंकि राजकन्या विवाह योग्य हो चुकी है ।

भाट — महाराज यह कौन बड़ी बात है, मैं अभी जाता हूं । (जाता है)

राजा — (मंत्री से) गुणसिन्धु राजा को एक पत्र भी देना उचित है । तुम यह सब वृतान्त इस रीति से लिख दो कि जिसमें हमारा सब कार्य सिद्ध हो जाय और गंगा भाट की यात्रा की सब वस्तु शीघ्र ही सिद्ध कर दो जिसमें उसे विलम्ब न हो । अब बेला ढल चली, हम भी रनिवास को जाते हैं ।

मंत्री — जो आज्ञा ।

जवनिका गिरती है

●

दूसरा गर्भांक

सुन्दर आता है ।

सुन्दर — (स्वगत) वर्द्धमान की शोभा का वर्णन मैंने जैसा सुना था उससे कहीं बढ़कर पाया । आह कैसे सुन्दर सुन्दर घर बने हैं, कैसी चौड़ी चौड़ी सुन्दर स्वच्छ सड़कें हैं, वाणिज्य की कैसी बृद्धि हो रही है, दुकानें अनेक स्थान की अनेक प्रकार की सब वस्तुओं से पूर्ण हो रही हैं, सब लोग अपने अपने काम में लगे हुए हैं और बहुतेरे लोग नदी के प्रवाह की भांति इधर उधर दौड़ रहे हैं, स्थान स्थान पर पहरेदार लोग सावधानी से पहरे दे रहे हैं, प्रजा लोग सुख से अपना कालक्षेप करते हैं । निश्चय यहां का राजा बड़ा

भाग्यमान है । यद्यपि हमारे पिता की राजधानी भी अत्यन्त अपूर्व हैं परन्तु इस स्थान सा तो मुझे पृथ्वी में कोई स्थान ही नहीं दिखाई देता । इसका वर्द्धमान नाम बहुत ठीक है क्यों कि इसमें रूप और धन दोनों की वृद्धि है । (हंसकर) परन्तु हमारा अभिलाष भी वर्द्धमान हो तो हम जाने (चारो ओर देखकर) वाह, यह उद्यान भी कैसा मनोहर है, इसके सब वृक्ष कैसे फले फूले हैं और यह सरोवर कैसे निर्मल जल से भरा हुआ है मानों सब वृक्षों ने अपने अनेक रंग के फूलों की शोभा देखने को इस उद्यान के बीच में एक सुन्दर आरसी लगा दी है । पक्षी भी कैसे सुन्दर स्वर से बोल रहे हैं मानो पुकारते हैं कि इससे सुन्दर संसार में और कोई उद्यान नहीं है । आहा. कैसा मनोहर स्थान है । हम इस बकुल के कुंज में थोड़ा विश्राम करेंगे । (बैठता है) अहा, शरीर कैसा शीतल हो गया । निश्चय यह पौन (सांस लेकर) हमारी प्राणप्यारी त्रिभुवनमोहिनी विद्या का अंग स्पर्श करके आता है, नहीं तो ऐसी मधुर सुगंध इसमें न होती है । (कुछ सोचकर) यह तो सब ठीक है परन्तु जिस काम के हेतु मैं यहां आया हूं उसका तो कुछ सोच ही नहीं किया । यहां मैं किसी को जानता भी नहीं कि उससे कुछ उपाय पूछूं क्योंकि मैं तो यहां छिपकर आया हूं । (चिन्ता नाट्य करता है)

एक चौकीदार आता है

चौकीदार— (स्वगत) ई के हौ भाई, कोई परदेसी जान पड़डला । हमहन के कुछ घूस फूस देई की नाहीं । भला देखी तो सही (प्रकाश) कौन है ।

सुंदर— हम एक परदेशी हैं ।

चौ.— सो क्या हमें नहीं सूझता पर कहां रहते हौ ।

सुं.– हमारा घर दक्षिण हैं ।

चौ.— दक्षिण तो जमराज के घर तक सभी हैं । तुम किस दक्षिण में रहते हो ।

सुं.— सो नहीं, हमारा घर इतनी दूर नहीं है ।

चौ.— तो फिर कहते क्यों नहीं कि तुम्हारा घर कहां है ।

सुं.— कांचीपुर ।

चौ.— काशी कांची जो सुनते है सोई कांची !

सुं.— काशी दूसरा नगर है कांची दूसरा । काशी कांची एक ही कैसी ।

चौ.— तो फिर यहां क्यों आए हौ ।

सुं.— यहां विद्याप्राप्ति के अर्थ आए हैं ।

चौ.— कौन विद्या ।

सुं.— जो विद्या सब में प्रधान है ।

चौ.— सब में प्रधान विद्या ! सब में प्रधान विद्या तो चोरी है ।

सुं.— (मुसक्याकर) तुम्हारे यहां यही विद्या प्रधान होगी ।

चौ.— (सोटा उठाकर पैंतरे से चलता हुआ) हां रे, यही तो हमारा काम है कि जो इस विद्या के पंडित हों उन्हें हम वैसा पुरस्कार दें ।

सुं.— क्या पुरस्कार देता है ।

चौ.— इस विद्या के पुरस्कार हेतु एक यंत्र बना है जिसका नाम काठ तुड़ुम हर और चोर शत्रु है ।

सुं.— कैसा है ।

चौ.— दो बड़े बड़े काठ एकत्र करके चोर भाई का पांव बसके भीतर डाल देते हैं । (सुन्दर का दाहिना पैर बल से खींचकर अपनी दोनों जांघ में रखकर दबाता है) अब जब तक हमरी पूजा न दोगे तब तक न छूटोगे ।

सुं.— (चौकीदार को बल पूर्वक लात मारता है और चौकीदार पृथ्वी पर गिरता है) लो तुम्हारी यही पूजा है ।

चौ.— (उठाकर) हां हां बचा, अभी तुमको दूसरा पुरस्कार नहीं दिया । चार पांच कोड़े तुम्हारी पीठ पर लगे तब जानो ।

सुं.— बस अब बहुत भई, मुंह सम्हाल के बोलो नहीं तो एक मुक्का ऐसा मारूंगा कि पृथ्वी पर लोटने लगोगे और दक्षिण दिशा में यमराज के घर की ओर गमन करोगे । जिसके हेतु तुम इतना उपद्रव करते हौ सो मैं जानता हूं परंतु धमकी दिखाने से तो मैं एक कौड़ी भी न दूंगा और तुमको भी परदेशियों से झगड़ा करना उच्ति नहीं है । (कुछ देता है) इसे लो और अपने घर चल दो ।

चौ.— (आनन्द से लेकर) नहीं, नहीं, हमने आपको जाना नहीं निस्संदेह आप बड़े योग्य पुरुष हैं हम आशीर्वाद देते हैं कि आप अनेक विद्या लाभ करें, राजकुमारी विद्या भी आपको मिले । (हंसता हुआ जाता है)

सु— आज बहुत बचे नहीं तो यह दुष्ट बहुत कुछ दुख देता । जिस काम को चलो पहले अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं । देखैं अब क्या होता है । (पेड़ के नीचे बैठ जाता है । हीरा मालिन आती है ।)

ही. मा.— (आश्चर्य से) अरे यह कौन है । हाय हाय ऐसा सुन्दर रूप तो न कभी आंखों देखा न कानो

सुना । इसकी दोनो हाथ से बलैया लेने की जी चाहता है । लोग सच कहते हैं कि चन्द्रमा को सिंगार न चाहिए । हमको जान पड़ता है कि चन्द्रमा ही पृथ्वी पर उतर के बैठा है । क्या कामदेव इस रूप की बराबरी कर सकता है । ऐसी कौन स्त्री है जो इसको देख के धीरज धरेगा । हम सोचते हैं कि यह कोई परदेशी है क्योंकि इस नगर में ऐसा कोई नहीं है जिसको हीरा मालिन न जानती हो । हाय हाय इसके मां बाप का कलेजा पत्थर का है कि ऐसे सुकुमार पुरुष को घर से निकलने दिया । निश्चय इसकी स्त्री नहीं है नहीं तो ऐसे पति को कभी न छोड़ती । जो कुछ हो एक बेर इससे पूछना तो अवश्य चाहिए । (पास जाकर हंसती हुई) क्यों जी तुम कौन हौ । हमको तो कोई परदेशी जान पड़ते हौ ।

सुं.— (स्वगत) अब यह कौन आई । (प्रकाश) हमारा घर दक्षिण है और विद्या को खोजते खोजते यहाँ तक आए हैं ।

ही. मा.— उतरे कहां हौ ।

सुं.— अभी कहां उतरे हैं क्योंकि हम इस नगर में किसी को नहीं जानते । इसी हेतु अब तक उतरने का निश्चय नहीं किया और इसी वृक्ष की ठंडी छाया में विश्राम करते हैं और सोचते हैं कि अब कौन उपाय करें । तुम कौन हौ ।

ही. मा.— हम राजा के यहां की मालिन है, हमारा नाम हीरा है । हमारा घर यहां से बहुत पास है । भैया, हमारा दुख कुछ न पूछो । (पास बैठ जाती है) हमारे दोनों कुल में कोई नहीं है, जमराज सबको तो ले गए पर न जाने हमको क्यों भूल गए । (लम्बी सांस लेती है) पर रानी और राजकुमारी हम पर बड़ी दया रखती हैं और उन्हीं के पास जाकर हम अपना जी बहलाती हैं । अभी तो आपने अपने रहने का निश्चय कहीं नहीं किया है । (रुक कर) हमें कहने में लाज लगती है क्योंकि हमारे यहां बड़ी बड़ी अटारी तो है नहीं केवल एक झोपड़ी है जो आप दु:खिनी जान कर हमसे बचना न चाहिए तौ चलिए हम सेवा में सब भांति लगी रहैंगी ।

सुं.— (स्वगत) तो इसमें हमारी क्या हानि, जो रहने का ठिकाना होगा तो काम का भी ठिकाना हो रहेगा क्योंकि यह रात दिन रनिवास में आती जाती है इससे वहां के सब समाचार मिलते रहेंगे और ऐसे कामों में जहां अच्छा बिचवई मिला तहां उसके सिद्ध होने में विलंब नहीं होता । (प्रकाश) अब इससे बढ़कर हमारा क्या उपकार होगा कि इस परदेश में हमको आप से आप मिलने को घर मिलै । तुमने हम पर बड़ी कृपा की । आज से तुम हमारी मौसी और हम तुम्हारे मांजे हुए ।

ही. मा.— यह हमारे भाग्य की बात है कि आप ऐसे कहते हौ और यों तो आप हमारे बाप के भी अन्नदाता हौ । दया करके जो चाहो पुकारो । तौ हम आज से तुमको बेटा कहेंगे । (स्वगत) हाय हाय, इसका मुख कैसा सूख गया है । (प्रकाश) तो अब बेटा अपने घर चलो, हमारा जो कुछ है सो सब तुम्हारा है ।

सुं.— हां चलो ।

जवनिका गिरती है

तीसरा गर्भांक

सुंदर और हीरा मालिन आती है

सुं.— रनिवास का समाचार सब मैंने सुना । तो मौसी राजा को क्या केवल एक ही कन्या है ।

ही. मा.— हां बेटा केवल एक ही कन्या है पर वह कुछ सामान्य कन्या नहीं है मानो कोई देवता की कन्या श्राप से पृथ्वी पर जनमी है और राजा रानी दोनों उसको वैसा ही प्यार भी करते हैं । घर में सब से विशेष उनको वही प्यारी है । यहां तक कि उसको प्राण से भी अधिक समझते हैं ।

सुं.— भला मौसी वह राजकन्या कैसी है ।

ही. मा.— बेटा उसकी कथा कोई एक मुंह से नही कह सकता । (गाती है)

राग सोरठ तिताला

कहौ यह कैसे बरनै रूप ।
नख सिख लौं सब ही विधि सुंदर सोभा अति ही अनूप ।।१
नैन धरे को कौन सुफल जो नैन न देख्यौ वाहि ।
कोटि चंदहू लाज करत हैं तनिक बिलोकत जाहि ।२
घुंघरारे सटकारे कारे बिथुरे सुथरे केस ।
एड़ी लौं लांबे अति सोभित नव जलधर के भेस ।३
लचकीली कटि अतिही पातरी चालत झोंका खाय ।।
अति सुकुमार सकल अंग वाके कवि सो नहिं कहि जाय ४
दिन दिन जोवन बढ़त उमंग अति पूरि रहे सब गात ।
लाज भरी चितवन चित चोरति जब मुसुकाइ जंभात ।५
तरुनाई अंगराई अंग अंग नैन रहत ललचाय ।
मनु जग जुवजन जीतन एकहि बिधिना रची बनाय ।६

सु — हां मौसी यह सब बात तो हम जानते हैं पर हम चाहते हैं कि एक बेर राजसभा में जाकर विद्या के विद्या की परीक्षा करें । जो जीत गए तो सकाम सिद्ध भया और जो हार गए तो कुछ लाज नहीं क्योंकि हमें इस नगर में कोई पहिचानता नहीं । भला एक दिन मौसी हमारे हाथ की गूंथी माला तू वहां ले जा सकती है ।

ही. मा. — (हंसकर) वाह बेटा तुम क्या माला बनाने भी जानते हौ । तुम लोगों का तो यह काम नहीं है । क्या माला गूंथ कर राजकन्या के गले के हार हुआ चाहते हौ ।

सुं. — नहीं मौसी हम केवल एक ही माला गूंथना जानते हैं जिसे तुम देख लेना जो अच्छी बने तो राजकन्या के पास ले जाना ।

ही. मा. — (हंसकर) अच्छा, कल तुम माला गूंथना देखें कैसी बनती है । अब रात बहुत गई उठो और कुछ भोजन करके सो रहो ।

जवनिका गिरती है

चौथा गर्भांक

(विद्या बैठी हुई है डाली हाथ में लिए हीरा मालिन आती है)

ही. मा. — (हंसकर) राजकुमारी कहां हैं (सामने देखकर) अहा यहां बैठी है । आज मुझको इस माला के गूंथने में बड़ी देर लगी इससे मैं दौड़ी आती हूं । यह माला लीजिए और आज का अपराधर क्षमा कीजिए ।

वि. — चल बहुत बातें न बना । जो रात भर चैन करेगी तो सबेरे जल्दी कैसे आ सकेगी । तेरा शरीर बूढ़ा हो गया है पर चित्त अभी बारही बरस का है । इतना दिन हो गया अब तब मैंने पूजा नहीं किया । पर तुझे क्या । तू तो रंग में रंग रही है । मेरी पूजा हो या न हो ।

ही. मा. — वाह वाह बाल पके दांत टूटे पर अभी हम बारही बरस की बनी हैं । आप धन्य हैं, हमने तो आज बड़े परिश्रम से माला गूंथी कि राजकुमारी उसको देख कर अत्यन्त प्रसन्न होंगी । उसके बदले आपने हमको गाली दिया । सच्च है अभागे को कहीं भी सुख नहीं है । अब हमने अपना कान पकड़ा । अब की बार क्षमा कीजिए ऐसा अपराध फिर कभी न होगा । यह माला लीजिए ।

वि. — (माला हाथ में लेती है) अभी आज तो माला बड़ी सुन्दर है ! (पत्ते की पुड़िया में फूल के धनुषवाणा देखकर) क्यों रे, इसमें यह फूल के धनुषबाण कहां से आए क्या तू हम से ठठोली करती है । सच्च बतला यह माला किसने बनाई है ।

ही. मा. — मेरे बिना कौन बनावेगा ।

वि. — नहीं नहीं तू तो नित्य ही बनाती थी पर ऐसी माला तो किसी दिन नहीं बनी । आज निश्चय किसी दूसरे ने बनाई है ।

ही. मा. — मैं तो एक बेर कह चुकी कि हमारे घर में दस बीस देवर जेठ तो बैठे नहीं हैं कि बना देंगे । (आकाश देखकर) अब सांझ होती है हमको आज्ञा दो !

वि. — वाह वाह आज तो आप मारे अभिमान के फूली जाती हैं । ऐसा घर पर कौन बैठा है जिसके हेतु इतनी घबड़ाती है । बैठ तुझे मेरी सौगन्द है । बता यह माला किसने बनाई है । (मालिन का अंचरा पकड़ के खींचती है ।)

ही. मा. — नहीं भाई नहीं, मैं कुछ न कहूंगी । जड़ काट के पल्लव सींचने से क्या होगा । बैठे बैठाये दुःख कौन मोल ले क्योंक प्रीत करनी तो सहज है पर निबाहना कठिन है इस हेतु इससे दूर ही रहना उचित है ।

वि. — वाह वाह तू बड़ा हठ करती है । एक छोटी सी बात मैंने पूछी सो नहीं बताती । क्या मुझसे छिपाने की कोई बात है जो नहीं बतलाती ।

ही. मा. — मैं तो तुम्हारे लिए प्राण देती हूं और भगवान से नित्य मनाती हूं कि हमारी राजकुमारी को सुन्दर वर मिले जिसे देख के मैं अपनी आंख ठंढी करूं और आप उसके बदले मुझ पर क्रोध करती हो । इसी के जतन में तो मैं रात दिन लगी रहती हूं ।

वि. — तो खुलकर क्यों नहीं कहती । आधी बात कहती है आधी नहीं कहती व्यर्थ देर करती है । है ।

ही. मा. — सुनिए दक्षिण देश के कांचीपुर के गुणसिंधु राजा का नाम आपने सुना ही होगा । उसका पुत्र सुन्दर जिसे ले आने के हेतु राजा ने गंगा भाट को भेजा था यहां आप से आप आया है ।

वि. — (घबड़ाकर) कहां कहां ? (फिर कुछ लज्जित होकर) नहीं क्या वह सचमुच यहां आया है ।

ही. मा. — (हंसकर) मैं उसको बड़े यत्न से लाई हूं क्योंकि मैं सर्व्वदा खोजा करती थी कि मेरी बेटी

को दूल्हा चांद का टुकड़ा मिले तो मैं सुखी होऊं सो मैंने कहीं से खोजकर उसे अपने घर में रक्खा है पर यहां तो वही दशा है जाके हित चोरी करो वही बनावै चोर ।

वि.— तो फिर वे छिप के क्यों आए हैं ।

ही. मा.— आपकी प्रतिज्ञा तो संसार में सब पर विदित ही है सो प्रत्यक्ष बाद करने में जो कोई हारे तो प्रेम भंग होय और परस्पर संकोच लगै इस हेतु छिप के आए हैं ।

वि.— उनका रूप कैसा है ।

ही. मा.— उनका रूप वर्णन के बाहर है ।

(गाती है, राग —बिहाग) ।

कहै को चन्द बदन की शोभा ।
जाको देखत नगर नारि कों सहजहि तें मन लोभा ।।
मनु चन्दा आकास छोड़ि कै भूमि लखन को आयो ।
कैंधौं काम बाम के कारन अपुनो रूप छिपायो ।।
भौंह कमान कटाक्ष बान से अलक भ्रमर घुंघुरारे ।
देखत ही बेधत है मन मृग नहिं बचि सकत विचारे ।।

वि.— तो भला उन को एक बेर किसी उपाय से देख भी सकती हैं ?

ही. मा.— वाह वाह यह तुम ने अच्छी कही । पहिले राजा रानी से कहैं वह देख सुन के जांच लें तो पीछे तुम देखना ।

वि.— नहीं, ऐसा न होने पावे, पहिले मैं देख लूं तब और कोई देखै ।

ही. मा.— मैं कैसे पहिले तुम्हें दिखला दूं, यह राजा का घर है चारों ओर चौकी पहरा रहता है यहां मक्खी तो आही नहीं सकती भला वह कैसे आ सकते हैं जो कोई जान जायगा तो क्या होगा ?

वि.— सो मैं कुछ नहीं जानती जैसे चाहो वैसे एक बेर मुझ को उन का दर्शन करा दो । तू आप चतुर है कोई न कोई उपाय सोच लेना और जो तू मेरा मनोरथ पूरा करैगी तो मैं भी तेरा मनोरथ पूरा कर दूंगी ।

ही. मा.— यह तो मैं भी समझती हूं पर मैं सोचती हूं कि किस रीति से उसे ले आऊं, हां एक उपाय यह तो है कि वह इस वृक्ष के नीचे ठहरै और तुम अपनी अटारी पर से देख लो ।

वि.— हां ठीक है, यह उपाय बहुत अच्छा है । पर कब आज या कल ?

ही. मा.— कल उन को लाऊंगी (हंसकर) एक बात मैं कह देती हूं कि उन को एक बेर देख के फिर भूल न जाना ।

वि.— भूल जाऊंगी — हाय !

(गाती है — ठुमरी)

मेरे तन अति बाढ़ी बिरहपीर अब नहिं सहि जाई हो । अब कोउ उपाय मोहि नहिं लखाय, दुख कासों कछु कहि न जाय, मन हीं बिरह की अगिनि बरै धूआं न दिखाई हो ।। दईमारी लाज बैरिन सी आज, कहो आवत मेरे कौन काज, पिय बिन मेरो जियरा तड़पै कछु नाहिं बसाई हो ।।

(राग बिहाग)

चढ़ावत मो पैं काम कमान ।
बेघत है जिय मारि गारि के तानि श्रवन लगि बान ।।
पिया बिना निसिदिन डरपावत मोहि अकेली जान ।
तुमरे बिन को धीर धरावै पीतम चतुर सुजान ।।१।।

ही. मा.— (हंस कर) वाह वाह यह अनुराग हम नहीं जानती थीं ।

(गाती है-राग-कलिंगड़ा)

अहो तुम सोच करो मति प्यारी ।
तुम्हरो प्रीतम तुमहिं मिलैं है करि अनेक उपचारी ।।
अति कुम्हिलाने कमल बदन कों प्रफुल्लित करि हौं वारी
चंदहि जौ चाहै तौ लाऊं यह तो बात कक्षारी ।।

वि.— तो मैं आज छत पर उसकी आशा देखूंगी ।

।।जवनिका गिरती है।।

।। प्रथम अंक समाप्त हुआ ।।

दूसरा अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान — विद्या का महल

(विद्या बैठी है और चपला पंखा हांकती है और सुलोचना पाना का डब्बा लिए खड़ी है) ।

सुलोचना— (बीड़ा देकर) राजकुमारी, एक बात पूछूं पर जो बताओ ।

वि.— क्यों सखी क्यों नहीं पूछती, मेरी ऐसी कौन सी बात है जो तुम लोगों से छिपी है ।

सुलोचना— और कुछ नहीं मुझे केवल इतना पूछना है कि कई दिन से तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है, सर्वदा अनमनी सी बनी रहती हो, और खान पान सब छूट गया है, और दिन दिन शरीर गिरा पड़ता है, रात दिन मुंह सूखा रहता है, इसका कारण क्या है ?

वि.— (मुंह नीचा कर लाज से चुप रह जाती है)

सुलोचना — (बीड़ा देकर) यह तो मैं पहिले ही जानती थी कि तुम न कहोगी ।

वि. — नहीं सखी मैं क्यों न कहूंगी पर तू क्या उसका कारण अब तक नहीं जानती ?

सुलो. — जो जानती तो क्यों पूछती ?

वि. — हीरा मालिन जो उस दिन माला लाई थी वह क्या तूने नहीं देखी थी ?

सुलो. — हां देखी तो थी, तो उस से क्या ?

वि. — और उस दिन छत पर से मैं जिसे वृक्ष तले देखने गई थी उसे तू ने नहीं देखा था ?

सुलो. — हां सो सब जानती हूं ।

वि. — तो अब नहीं क्या जानती ?

सुलो. — तो फिर उस में इतना सोच विचार क्यों चाहिये केवल एक बेर बड़ी रानी जी से कहने से सब काम सिद्ध हो जायगा ।

चपला — वाह २ क्या इसी बात का इतना सोच विचार था, तो मैं अभी जाती हूं (जाना चाहती है)

वि. — नहीं २ ऐसा काम कभी न करना, नहीं तो सब बात बिगड़ जायगी ।

चप. — क्यों इस में दोष क्या है ?

सुलो. — और फिर यह न होगा तो होगा क्या ?

वि. — सखी मेरी प्रतिज्ञा ने सब बात बिगाड़ रक्खी है !

चप. — क्यों ?

वि. — मां से कह देने से फिर उन के संग विचार करना पड़ेगा, और उस में जो मैं जीती तो भी अनुचित है क्योंकि मैं अपना प्राण धन सब उन से हार चुकी हूं और फिर उन से विवाह भी कैसे होगा, और वह जीते तो इस बात का लोगों को निश्चय कैसे होगा कि गुर्णसिन्धु राजा के पुत्र यही हैं और निश्चय बिना तो विवाह भी नहीं हो सकता, इस से मेरा जी दुबिधे में पड़ा है —और जिस दिन से मैंने उन्हें देखा है उस दिन से अपने आपे में नहीं हूं क्योंकि उस मनमोहन रूप को देखकर मैं कुल और लाज दोनों छोड़ चुकी हूं और उस विषय में जो २ उमंग उठते हैं वह कहने के बाहर हैं और सखियो ! तुम लोग भी तो स्त्री हो अपने ऐसा जी सब का समझो । हाय, मुझे कोई उपाय नहीं दिखाता ।

(गाती है) (राग सोरठा)

सखी हम कहा करैं कित जायं ?
बिनु देखे वह मोहिनि मूरति नैना नाहिं अघायं ।।१।।
कछु न सुहात धाम धन गृह सुख मात पिता परिवार ।
बसति एक हिय मैं उनकी छबि नैनन वही निहार ।।२।।
बैठत उठत सयन सोवत निसि चलत फिरत सब ठौर।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और ।।३।।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और ।।३।।
हमरे तो तन मन धन प्यारे मन बच क्रम चित माहिं ।
पै उन के मन की गति सजनी जानि परत कछु नाहिं ।।४।।
सुमिरन वही ध्यान उन को ही मुख मैं उनको नाम ।
दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु पिय और न काम ।।५।।
नैन दरसन बिनु नित तलफे श्रवन सुनन कों कान ।
बात करन कों मुख तलफैं, गर मिलिवे को ये प्रान ।।६।।

सुलो. — हां इन बातों को तो मैं समझती हूं पर कर क्या सकती हूं क्योंकि कोई उपाय नहीं दिखता । हम तो तेरे दुख से दुखी और तेरे सुख से सुखी हैं, जो किसी उपाय से यह सुख होय तो हम सब अपने शरीर बेंच कर भी उसे कर सकती हैं, परन्तु यह ऐसी कठिन बात है कि इस का उपाय ही नहीं है ।

चप. — इस में क्या सन्देह, आज दिन राजा के प्रताप से सब देश थर २ कांपता है और द्वारों पर चौकीदार यमदूत की भांति खड़े रहते हैं, तब फिर ऐसी भयानक बात कैसे हो सकती है ।

वि. — (लम्बी सांस लेकर) हाय सखी अब मैं क्या करूंगी जो शीघ्र ही कोई उपाय न होगा तो प्राण कैसे बचैंगे यह प्रीत दइमारी बड़ी दुखद होती है —

(गाती है) (राग बिहाग)

बावरी प्रीति करौ मति कोय ।
प्रीति किये कौने सुख पायो मोहि सुनाओ सोय ।।१।।
प्रीति कियो गोपिन माधव सों लोक लाज भय खोय ।
उनको छोड़ि गये मथुरा को बैठि रही सब राय ।।२।।
प्रीति पतंग करत दीपक सों सुन्दरता कहं जोय ।
सो उलटो तेहि दाह करत है पच्छ नसावत दोय ।।३।।
जानि बूझि के प्रीति करी हम कुल मरजादा धोय ।
अब तो प्रीतम रंग रंगी मैं होनी होय सो होय ।।४।।

हीरा मालिन ने हम को वचन तो दिया है कि किसी भांति उसे एक बेर तुझ से मिला दूंगी पर देखूं अब वह क्या उपाय करती है ।

(एक सुरंग का मुंह खुलता है और उस में से सुन्दर निकलता है)

(सब सखी घबड़ा कर एक दूसरी का मुंह देखती हैं और विद्या लाज से मुंह नीचे कर लेती है)

चप. — अरे यह कौन है और कहां चला आता है !

सुलो.— सोई तो मैं घबड़ाती हूं कि यह कौन है और कहां से आया है. अब मैं चोर २ कह कर पुकारती हूं जिसमें सब चौकीदार लोग दौड़कर हम लोगों को बचावैं ।

वि.— (हाथ से पुकारने का निषेध कर के धीरे से) नहीं २ मैं समझती हूं कि यह चोर नहीं है. मेरा चितचोर है कोई जाकर उस से पूछो ।

चप.— भला देखो मेरी छाती कैसे धड़कती है । इससे मैं तो नहीं पूछने की (सुलोचना से) सुलोचना तू जाकर पूछ आ यह कौन है ।

सुलो.— (सुन्दर से) तुम कौन हो और बिराने घर में क्यों घुस आये हो सच बतलाओ क्योंकि हम लोगों का डर से कलेजा कांपता है. इस से कहो कि तुम देवता हो. या दानव हो या मनुष्य हो ?

सु.— (मुसुका कर) नहीं सखी. डरने का क्या काम है ? न मैं देवता हूं. न दानव. मैं तो साधारण मनुष्य हूं. और कांचीपुर के महाराज गुणसिन्धु का पुत्र हूं. और मेरा नाम सुन्दर है, भाट के मुख से तुम्हारी राजकन्या के विचार का समाचार सुन के यहां आया हूं परन्तु विचार तो दूर रहै तुम्हारी सभा में अविचार बहुत है ।

चप.— (धीरे से) सखी यह तो वही है ।

सुलो.— क्यों हमारी सभा में अविचार कौन सा है ?

सुं.— और विचार किस को कहते हैं ? जो कोई परदेशी अतिथि आवे तो न तो उसका आदर होता है और न कोई उसे बैठने को कहता है ।

(विद्या संकेत से चपला से बैठाने को कहती है और सुन्दर बैठता है. और विद्या लज्जा से वस्त्र से अपना सब शरीर ढांक लेती है ।

सुं.— (सुलोचना से) सखी विद्यावती के गुण की मैं जैसी प्रशंसा सुनी थी उस से भी अधिक आश्चर्य गुण देखने में आये ।

सुलो.— ऐसे आप ने कौन आश्चर्य गुण देखे ?

सुं.— जाल में चन्द्रमा को फंसाना. बिजली को मेघ में छिपाना. और वस्त्र से कमल की सुगंधि को मिटाना. यह सब बात तुम्हारी राजकन्या कर सकती है ।

सुलो.— (हंस कर) यह आप कैसी बातैं कहते हैं. क्या ये बातैं हो सकती हैं ।

सुं.— जो नहीं हो सकतीं तो तुम्हारी राजकन्या ने अंचल से मुख क्यों छिपा लिया ?

सुलो.— (हंस कर) आप बड़े सुरसिक और पंडित हैं इस से मैं आप की बात का उत्तर नहीं दे सकती. ''दीपक की रवि के उदय बात न पूंछे कोय'' पर हां जो लज्जा न करती तो हमारी सखी कुछ उत्तर देती ।

सुं.— (हंसकर) तो आज तुम्हारी राजकन्या हम से हार गई ।

सुलो.— क्यों हार क्यों गई ?

सुं.— और हारने के माथे क्या सींग होती है ? मुझे देख कर लाज के मारे वह कुछ उत्तर नहीं दे सकती इसी से हार गई ।

सुलो.— (हंस कर) आप को सब कहना शोभा देता है ।

वि.— (सखी से) सुलोचने, तुझे कुछ उत्तर देने नहीं आता, तू क्यों नहीं कहती कि हमारी विद्यावती ने विद्या के विचार का प्रण किया था, कुछ चोरी विद्या के विचार का प्राण नहीं किया था, आप से न देकर घुस आये और अब बातैं बनाते हैं ।

सुं.— (हंस के) हां इस देश के विचार की चाल ही यही है और उलटे हमी चोर बनाये जाते हैं, मैंने क्या अपराध किया था कि उस दिन वृक्ष के नीचे घंटों खड़ा किया गया और तुम्हारी राजकुमारी ने हमारा तन मन धन सब लूट लिया । अब कहो पहिले चोरी का आरंभ किसने किया, वही बात हुई कि 'उलटा चोर कोतवाल को डांड़े' ।

वि.— और सुनो ! यह चोर नहीं है बड़े साधू हैं । सच है साधू न होते तो सेन देने की विद्या कहां सीखते ! यह कर्म साधुओं ही के तो हैं — सखियो ! आज तुमने बड़े महात्मा का दर्शन किया निश्चय तुम्हारे सब पाप कट गये क्योंकि शंख बजानेवाले साधू तो बहुत देखे थे पर सेन लगानेवाले आज ही देखने में आये ।

सुं.— (हंस कर) इसमें क्या सन्देह है, सखियो ! तुम परीक्षा कर लो कि हम में सब साधुओं के लक्षण हैं कि नहीं ? देखो मैं अपने चोर को ढूंढ़ता २ यहां तक आया और उसे पाकर उस को पकड़ने और धन फेर लेने के बदले और भी जो कुछ मेरे पास बच गया है भेंट किया चाहता हूं, परन्तु जो यह लें ।

वि.— (धीरे से) दीजिये ।

सुं.— (प्रसन्न होकर) सखियो तुम साक्षी रहना, मन और प्रण तो इन्होंने चोरी कर के ले लिए,

एक देह बच गई है इसे मैं अपनी ओर से अर्पण करता हूं (विद्या से) प्यारी, मैं यह केवल इसी हेतु आया था तो तुम ने मुझे अपना कर लिया, अब इसका निबाह करना, (हाथ बढ़ाता है)

वि.— (लाज से) यह मैंने कब कहा था ?

सुलो.— (विद्या से हंस कर) सखी, अब तेरी ये बातैं न चलैंगी आज के विचार में तो तू हार गई ।

च.— इसमें क्या संदेह है, यहां के न्याय के विचार का क्या काम है जो रस के विचार में जीतै सो जीता क्योंकि न्याय का विचार कर के स्त्री को जीतना यह भी एक अविचार है ।

सुलो.— (हंस कर विद्या से) सखी अब विलंब क्यों करती है क्योंकि राजपुत्र तुझै अपना शरीर समर्पण कर के पाणिग्रहण के हेतु हाथ फैलाए हुए हैं इससे या तो तुम उसकी बनो या उसे अपना करो क्योंकि आज से हम उसमें और तुझ में कुछ भेद नहीं समझती और हस्तकमल के संग अपना हृदयकमल भी राजपुत्र के अर्पण करो क्योंकि अच्छे काम में विलम्ब न करना चाहिए ।

सुं.— (प्रसन्नता से विद्या का हाथ अपने हाथ में लेकर) अहाहा ऐसा भी कोई दिन होगा ।

सुलो.— अब होने में बिलम्ब क्या है ? परन्तु मैं यह विनती करती हूं कि हमारी राजकुमारी अत्यन्त सीधी और सच्ची हैं क्योंकि इसने पहिले ही जान पहिचान में आपका विश्वास करके अपना तन मन धन आप के अर्पण किया परन्तु आप सुरसिक और पण्डित हैं इस से इस धन की रक्षा का कोई उपाय कीजिये (फूल की माला से दोनों का हाथ बांधती है) हम भगवान से प्रार्थन करती हैं कि तुम दोनों सर्वदा फूल की माला की भांति आपुस में प्रेम के डोरे में बंधे रहो ।

सु.— सखी, हम भी हृदय से एवमस्तु कहते हैं ।

च.— राजनन्दिनी तो इस समय कुछ कहने ही की नहीं पर मैं उसकी ओर से कहती हूं कि ऐसा ही हो ।

सुलो.— ऐसी नई बहू की प्रतिनिधि कौन नहीं होना चाहती ?

च.— चल तुझे तो ऐसी ही बातें सूझती हैं ।

सुलो.— अब नये दुलहे दुलहिन को दूर २ बैठना उचित नहीं है, इस से कृपा कर के दोनों एक पास बैठो जिसे देख कर हमारी आंखैं सुखी हों ।

सुन्दर— (हंस कर के) ठीक है (विद्या के पास बैठता है और विद्या कटाक्ष से देखती है) ।

सुलोचना— (हंस कर) सखी, सब बातैं हो चुकी तो अब गान्धर्व विवाह की कुछ रीतैं बची क्यों जाती हैं और हमारी आज्ञा करने में तुझे क्या लज्जा है, अब तुम दोनों माला का अदला बदला करो जिसे देख कर हम सुखी हों ।

(सुंदर के यत्न से दोनों परस्पर माला बदलते हैं और सखी लोग आनन्द ले ताली बजाती हैं) ।

विद्या— (मन ही मन) विधाता क्या सचमुच आज ऐसा दिन हुआ है, या कि मैं सपना देखती हूं — नहीं यह सपना है ।

च.— हमारे नेत्र आज सुफल हुए ।

सुलो.— (आनन्द से गाती है) ।

आजु अति मोहि अनन्द भयो ।
बहुत दिवस की इच्छा पूजी सब दुख दूर गयो ।।
यह सोहाग की राति रसीली सब मिलि मंगल गाओ ।
जनम लिये को आज मिल्यो फल अंखियां निरखि सिराओ
दिन दिन प्रेम बढ़ो दोउन को सब अति ही सुख पावैं ।
चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन दोउ कर जोरि मनावैं ।।

सुन्दर.— आहाहा कैसा मधुर गीत है, सखी जो तुझे कष्ट न हो तो एक गीत और गा ।

सुलो.— वाह ऐसे आनन्द के समय में और मैं गीत न गाऊं, उस में नये जमाई की पहिली आज्ञा न माननी तो सर्वथा अनुचित है ।

च.— सखी हमारी राजनन्दिनी ने उस दिन जो गीत बनाई थी सो क्यों नहीं गाती ? क्योंकि नये बर उस गीत से निश्चय बड़े प्रसन्न होंगे ।

(विद्या आंखों से निषेध करती है)

सुलो.— हां सखी बहुत ठीक कहा (विद्या से) क्यों सखी इसमें दोष क्या है तू क्यों निषेध करती है अब तो मैं निश्चय वही गीत गाऊंगी । (चपला ताल देती है और सुलोचना गाती है ।)

(राग देस)

जहां पिय तहीं सबै सुख साज ।
बिनु पिय जीवन व्यर्थ सखी री यद्यपि सबै समाज ।
जो अपुनो पीतम संग नाहीं सुरपुर कौने काज ।।
निरजन बनहू मैं पीतम के संग सुरपुर को राज ।।१।।

सुं.— वाह २ बहुत अच्छी गीत गाया, जैसे मेरे कान में अमृता की धारा की वर्षा हुई, सखी सुरपुर सुख आज मुझे यथार्थ अनुभव होता है ।

सुलो.— (हंस कर) क्या मेरे गाने से ! जो होय अब रात बहुत गई और नई बहू के मिलाप में पहिले ही

दिन बहुत विलम्ब करना योग्य नहीं ।

सुं.— हां सखी, अब जाता हूं (अंगूठी उतार कर दोनों सखियों को देता है) यह हमारे सन्तोष का चिन्ह सर्वदा अपने पास रखना ।

सुलो.— (लेती है) यद्यपि यह अंगूठी सहजही बहुमूल्य है परन्तु आप के सन्तोष का चिन्ह होने से और भी अमूल्य हो गई और इसे हम सर्वदा बड़े प्यार से अपने पास रक्खैंगी ।

च.— आप की प्रसादी फूल भी हमैं रत्न के समान है ।

सुलो.— तो अब उठिए ।

सुं.— तुम आगे चलो हम लोग भी आते हैं ।

सुलो.— (उठकर) इधर से आइए ।

(सुलोचना और चपला आगे २, उन के पीछे विद्या का हाथ पकड़े हुए सुन्दर चलता है और जवनिका गिरती है)

दूसरा गर्भांक

(विद्या और मालिन बैठी हैं)

वि.— कहो उन के लाने का क्या किया, लम्बी चौड़ी बातैं ही बनाने आती हैं कि कछु करना भी आता है ?

मा.—भला इस में मेरा क्या दोष है मैंने तो पहिले ही कहा था कि यह काम छिपाकर न होगा, जब मैंने कहा कि मैं रानी से कहूं तौ भी तुमने मना किया और उलटा दोष भी मुझी को देती हौ, उस दिन तुम ने कहा कि उन से कहो वे कोई उपाय आप सोच लेंगे, उसका उन ने यह उत्तर दिया कि 'मौसी मैं परदेशी हूं इस नगर की सब बातैं नहीं जानता और राजा के घर में चोरी से घुस कर बच जाना भी साधारण कर्म नहीं है । जब तुम्हीं कोई उपाय नहीं सोच सकती तो मैं क्या सोचूंगा और अब मुझे मनुष्यों का कुछ भरोसा नहीं है इससे मैं अब दैवकर्म्म करूंगा सो तू घर में एक अग्नि का कुंड बना दे और रात भर मेरा पहरा दिया कर' वे तो यों कहते हैं पर देखूं उनका देवता कब सिद्ध होता है — भला वह तो चाहे जब हो एक नई बात और सुनने में आई है जिससे जी में तो रुलाई आती है और ऊपर हंसी आती है ?

वि.— क्या कोई और भी बात सुनने में आई है ?

ही. मा.— हां, मैंने सुना है कि राजसभा में कोई संन्यासी आया है ।

वि.— तो फिर क्या ?

ही. मा.— मैं सुनती हूं कि वह विचार में सभा को तो जीत चुका है और अब कहता है मैं राजकुमारी से शास्त्रार्थ करूंगा ।

वि.— ऐसा कभी हो सकता है कि मैं संन्यासी से विचार करूं ।

ही. मा.— क्यों नहीं, क्या प्रण करने के समय तुम ने यह प्रतिज्ञा थोड़ी ही की थी कि संन्यासी को छोड़कर मैं प्रण करती हूं, अब तो जैसा राजकुमार वैसा ही संन्यासी ।

वि.— तो मैं तो उस से विचार नहीं करने की ।

ही. मा.— अब नहीं करने से क्या होता है विचार तो करना ही होगा । और फिर इस में दोष क्या है, जैसा तुम्हारा दिव्य राजा के कुल में जन्म है वैसा ही दिव्य संन्यासी वर मिल जायगा, मैंने तो चन्द्रमा का टुकड़ा वर खोज दिया था पर तू कहती है कि रानी से उसका समाचार ही मत कहो, तो अब मैं कौन उपाय करूं — अच्छा है जैसी तुम्हारी चोटी है कुछ उस से भी लम्बी उस की डाढ़ी है, सिर पर बड़ा भारी जटा है और सब अंग में भभूत लगाए हैं, ऐसे जोगी नित्य नित्य नहीं आते-अहाहा कैसा अद्‌भुत रूप है !

(गाती है) (राग देस)

अरे यह जोगी सब मन मानै ।
लम्बी जटा रंगीले नैना जंत्र मंत्र सब जानै ।।
कामदेव मनु काम छोडि के जोगी ह्वै बौराने ।
या जोगिय की मैं बलिहारी जग जोगिन कियो जानै ।
अरे यह जोगी ।।१।।

ऐसा रसिक जोगी वर मिलता है अब और क्या चाहिए ?

वि.— चल तू भी चूल्हे में जा और जोगी भी ।

ही. मा.— ऐसा कभी न कहना मैं भले चूल्हे मैं जाऊं पर संन्यासी विचारा क्यों चूल्हे में जायगा ? भला यह तो हुआ पर अब मैं यह पूछती हूं कि एक भले मानस के लड़के को मैंने आस देकर घर में बैठा रक्खा है, उस की क्या दशा होगी और मैं उससे क्या उत्तर दूंगी क्योंकि तुम तो महादेव जी की सेवा में जाओगी पर वह बिचारा क्या करैगा — और क्या होगा । तुम संन्यासी को लेकर आनन्द करना और वह विचार आप संन्यासी होकर हाथ में दंड कमंडल लेकर तुम्हारे नाम से भीख मांग खायगा ।

वि.— चल — लुच्ची ऐसी दशा शत्रु की

होय — मैं तो उसे उसी दिन वर चुकी जिस दिन उस का आगमन सुना और उसी दिन उसे तन मन धन दे चुकी जिस दिन उस का दर्शन दिया, इस से अब प्राण कहां रहा और विचार का क्या काम है ?

ही. मा.— पर मन मे लड्डू खाने से तो काम नहीं चलेगा । क्योंकि मन से हम ने इन्द्र का राज कर लिया, इससे क्या होता है, सपने की सम्पति किस काम की कि जब आंख खुली तो फिर वही टूटी खाट — राजा यह बात कैसे जानैंगे और रानी इस बात को क्या समझती है कि मेरी कन्या का गान्धर्व विवाह हो चुका है और जब संन्यासी से व्याह देंगे तब तुम क्या करोगी और वह तब कहां जायगा ?

वि.— हां तुम तो इस जात से बड़ी प्रसन्न हो ! तुम्हारी क्या बात है । मैंने कई बार कहा कि उसको एक बार मुझसे और मिला दे पर तू उसे कब छोड़ती है । अरी पापिन जामाई को तो छोड़ देती पर तौ भी तू धन्य है कि इतनी बूढ़ी हुई और अभी मद नहीं उतरा । जब बुढ़ापे में यह दशा है तो चढ़ते यौवन में न जानै क्या रही होगी ।

ही. मा.— सच है उलटा उराहना तो मुझे मिलैहीगा क्यौंकि अब तो सब दोष मुझे लगेगा, तुमको सब बात में हंसी सूझती है पर मुझे ऐसा दुख होता है कि उसका वर्णन नहीं होता ।

जो विधि चन्दहिं राहु बनायो ।
सोइ तुम कहं संन्यासी लायो ।।

इस दु :ख से प्राण त्याग करना अच्छा है — मेरी तो छाती फटी जाती — यह मैंने जो सुना सो कहा अब तुम जानो तुम्हारा काम जानै, मैंने जो सुना कहा ।

वि.— नहीं नहीं मैं तो तेरे भरोसे हूं जो तू करेगी सो होगा — भला उनसे भी एक वेर यह समाचार कह दे ।

(चपला आती है)

च.— राजकुमारी पूजा का समय हुआ ।

वि.— चलो सखी मैं अभी आई ।

(चपला जाती है)

ही. मा.— तो मैं आज जाकर उससे यह वृतान्त कहती हूं, इस पर वह जो कहैगा सो मैं कल तुमसे फिर कहूंगी ।

वि.— ठीक है, कल अवश्य इसका कुछ उपाय करैंगे !

(जवनिका गिरती है) ।

तृतीय गर्भांक

(विद्या अकेली बैठी है और सुन्दर आता है)

वि.— आज मेरे बड़े भाग्य है कि आप सांझ ही आये ।

सुं.— (पास बैठकर) प्यारी, मुझे जब तेरे मुखचन्द्र का दर्शन हो तभी सांझ है ।

वि.— परन्तु प्राणनाथ, यह दिन सर्व्वदा न रहैगा चार दिन की चांदनी है ।

सुं.— हां यह तो मैं भी कहता हूं ।

वि.— क्यौं ?

सु.— क्यौंकि जब मैं 'बैठिए' तो कभी नहीं सुनता और ''जाइए'' प्राय : सुनता हूं तो अवश्य ऐसा होगा ।

वि.— वाह वाह ! अब तो आप बहुत सी हंसी करना सीखे हैं — कहिए कै उपवास में यह विद्या आई है (पान का डब्बा देती है) लीजिए इसे छूके शुद्ध कर दीजिए ।

सु.— पहिले आप तो मुझे पवित्र कीजिए पीछे मैं जब आप शुद्ध हो जाऊंगा तब इसे भी पवित्र कर सकूंगा ।

वि.— भला यह बात तो हुई आज सवेरे मालिन आई थी उसका समाचार आप जानते हैं ?

सु.— हां वह तो नित्य सवेरे आती है आज विशेष क्या हुआ, क्या उसको किसी ने एक दो धौल लगाई ?

वि.— भला, मेरे सामने ऐसा कभी हो सकता है और फिर वह ऐसी डरपोकनी है कि जो उसको कोई मारता तो वह तुरन्त रानी से जाकर सब समाचार कह देती तो भी बुरा होता ।

सुं.— तो उससे बहुत चौकस रहना चाहिए ।

वि.— नहीं, इसका कुछ भय नहीं है पर एक दूसरी बात जो मैंने सुनी है उसका बहुत भय है ।

सुं.— क्या कोई दूसरा उपद्रव हुआ ?

वि.— एक बड़े पण्डित संन्यासी आए हैं वह मुझसे विचार किया चाहते हैं ।

सुं.— (विषाद से) अरे यह बड़ा उपद्रव हुआ — मैं उस संन्यासी को जानता हूं क्योंकि जब मैं वर्द्धमान को आता था तो वह मुझे मार्ग में मिला था, वह निश्चय बड़ा पंडित है, इससे उसका विचार में जीतना कठिन है ।

वि.— तब क्या होगा ?

सुं.— होगा क्या 'चोर का धन बठमार लूटै' ।

वि.— भगवान ऐसा न हो कि मुझे उससे विचार करना हो ।

सुं.— जी महाराज विचार करने की आज्ञा देंगे तो करना ही होगा ।

वि.— हां यह तो ठीक है — हाय हाय मैं बड़े द्विविधे में पड़ रही हूं कि क्या करूंगी ।

सुं.— तुम्हैं किस बात का सोच है, पुराना कपड़ा उतारा नया पहिना, सोच तो मुझे है ।

वि.— (उदास होकर) चलो सब समय हंसी नहीं अच्छी होती ''पुराना उतारा नया पहिना'' यह तो पुरुषों का काम है स्त्री बिचारी तो एक बेर जिस की हुई जन्म भर उसी की हो रहती है ।

सुं.— (हंस कर) ऐसा मत कहो क्योंकि स्त्रियों के चरित्र अत्यन्त विलक्षण होते हैं ।

वि.— मैं तो नये पुरुषों का मुख भी नहीं देखने पाती मैं नई पुरानी क्या जानूं आपही नित्य नई स्त्री को देखते हैं आप जानैं ।

सुं.— तो क्या हुआ इतने दिन तक राजसुख भोग किया अब जोगिन का सुख भोग करना ।

वि.— यह बात कैसे हो सकती है कि जिस के वियोग में एक पलक प्रलय सा जान पड़ता है उस को छोड़ कर मैं जोगिन हूंगी — हा ! मैं संन्यासिनी हूंगी —हे भगवान तू ने कर्म्म में क्या लिखा है ! (अत्यन्त शोच करती है और लम्बी सांसै लेती है) ।

सुं.— (हंसकर) और जो वह संन्यासी हमीं होयं ।

वि.— यह बात कैसी ?

सुं.— नहीं मैंने एक बात कही जो वह संन्यासी हमीं होयं ।

वि.— तो फिर तुम्हारे लिये तो मैं जोगिन आप ही हो रही हूं इस में क्या कहना — जो यह बात सच्च होय तो शीघ्र ही कहो तुम्हें मेरी सौगन्द है — जब से मैंने उस का समाचार सुना है तब से मुझे रात को नींद नहीं आती ।

सुं.— (हंसकर) जो तुम्हैं दु:ख होता है तो मैं कहता हूं पर किसी से कहना मत, अपनी सखियों से भी न कहना । देखो मैं राजसभा देखने को संन्यासी बन के गया था और मैंने विचार कि यहां विचार की चरचा निकालैं देखैं क्या फल होता है ।

वि.— हाय हाय अब मेरे प्राण में प्राण आए — अरे तू बड़ा बहुरूपिया है और तुझे बड़े बड़े नखरे आते हैं । पुरुष में तो यह दशा है जो स्त्री होता तो न जाने क्या करता, चल तू बड़ा छलिया है — हाय हाय मुझे कैसा धोखा दिया, भला तू ने यह विद्या कहां सीखी (कुछ ठहर कर) हां तब — तब क्या हुआ ?

सुं.— तब क्या हुआ सो तो तुम जानती होगी पर राजा ने कुछ निश्चय नहीं किया ।

वि.— यह बड़ा आनन्द हुआ मानों आज मेरे छाती पर से एक बोझा उतर गया, मुझे आज रात को नींद सुख से आवैगी कल मैंने मालिन से हंसी में यह बात उड़ा तो दी थी पर भीतर मेरा जीही जानता था और मैंने आप से भी कई बेर कहना चाहा पर सोचती थी कि कैसे कहूं ।

(सुलोचना आती है)

सुलो.— राजकुमारी, रात बहुत गई जो बहुत जागोगी तो कल दिन को जी आलस में रहैगा ।

वि.— नहीं सखी अब जाती हूं (सुलोचना जाती है और विद्या सुंदर भी उठकर चलते हैं) पर एक बेर मुझे भी उस रूप का दर्शन करा देना क्योंकि मुझे भी तो जोगिन बनना है ।

सुं.— प्यारी, उस प्रेम के जोगी की जोगिन होना तुम्हीं को शोभा देता है ।

वि.— नाथ, तुम जो कहौ सो सब उचित है ।

(जवनिका पतन)

दूसरा अंक समाप्त हुआ ।

तीसरा अंक

प्रथम गर्भांक

(विमला और चपला आती हैं)

विमला— वाहरे वाहरे कैसी दौड़ी चली आती है देख कर भी बहाली दिये जाती है ।

चपला— (देखकर) नहीं बहिन नहीं मैंने तुम्हें नहीं देखा क्षमा करना ।

विम.— भला मैंने क्षमा तो किया पर अपनी कुशल कहो ?

च.— कुशल मैं क्या कहूं उस दिन के तो समाचार तूने सुने ही होंगे ।

विम.— कौन समाचार राजकन्या के — बड़े घर की बात ?

च.— अरे चुप चुप भाई धीरे धीरे — जो कोई सुन ले तो कहै कि यह सब ऐसे ही रनवास की बातैं

कहती फिरती होंगी ।

विम.— हां तो फिर रानी ने सब बात जान कर क्या कहा ?

च.— कहैंगी क्या अपना सिर ? राजकुमारी को बुला कर बड़ी ताड़ना की और हम लोगों पर जो क्रोध किया उस का तो कुछ पार ही नहीं है और राजा से जा कर सब कह दिया । राजा ने और भी दस बीस बातैं सुनाई, क्रोध से लाल होकर कोतवाल की आज्ञा दी कि नंगे शस्त्र ले कर रात भर राजकुमारी के महल के चारों ओर घूमा करो और किसी प्रकार से उस चोर को पकड़ो ।

विम.— (घबड़ा कर) तब क्या हुआ ?

च.— उसी समय से कोतवाल न हम लोगों के महल में बड़ा उपद्रव मचा रखा है और कहां तक कहैं कई चौकीदार स्त्री बन २ के विद्या के सोने के महल में रात भर बैठे रहें, पर जिस के हेतु इतना उपद्रव हुआ वह अभी यह समाचार नहीं जानता और फिर उसकी क्या दशा होगी, इस सोच से विद्यावती रात भर रोती रही । यद्यपि हम लोगों ने बहुत समझाया परन्तु उसको धीरज कहां, इसी विपत में सब रात कटी ।

विम.— फिर सबेरे क्या हुआ सो कहो ।

च.— फिर क्या हुआ यह तो मैं ठीक २ नहीं जानती पर कोतवाल सबेरे उठ के चले गये और विद्या ने मुझ से कहा कि तू सोध ले कि अब क्या होता है ।

विम.— सो तूने कुछ सोध पाई ?

च.— अब तक तो कुछ सोध नहीं मिली, लोगों के मुंह से ऐसा सुनती हूं कि चोर पकड़ गया और एक आपत्ति यह भी न है कि मैं तो किसी से पूछ भी नहीं सकती परन्तु कोतवाल इत्यादिक बड़े प्रसन्न हैं इस से जाना जाता है कि चोर पकड़ गया — मैंने पहिले ही कहा था कि इस काम को छिपा के करना अच्छी बात नहीं है (नेपथ्य में कोलाहल होता है) अरे यह क्या है, यह तो कोतवाल का शब्द जान पड़ता है और मानो सब इसी ओर आते हैं तो अब हम लोग किनारे खड़ी हो जायं जिस से वह सब हमको न देखैं (दोनों एक ओर खड़ी हो जाती हैं)

(नेपथ्य में फिर कोलाहल होता है और कोई गाता है)

(हाथ बंधे हुए सुन्दर और मालिन को लेकर चौकीदार आते हैं)

१ चौ.— चल रे चल ।

२ चौ.— आज इसका पांव फूल गया है, जिस दिन सुरंग खोद कर राजकुमारी के महल में गया था उस दिन पैर नहीं फूले थे, आज आप 'गजगति' चलते हैं ।

सुं.— क्यों व्यर्थ बकता है, राजा के पास तो सब चलते ही हैं, वह जो समझेगा सो उचित दंड देगा, फिर तुम को अपनी तीन छटांक पकाये बिना क्या डूबी जाती है ।

१ चौ.— अहा मानो हमारे राजपुत्र आये हैं, देखो सब लोग मुंह सम्हाल के बोलो कहीं अप्रसन्न न हो जायं और उनकी अक्षत चन्दन से पूजा करो — लुच्चा, जिस दिन सेन लगाया था उस दिन आदर कहां गया था, आज आप बड़े पद्धती बने हैं, चल चुपचाप आगे चला चल नहीं तो —

२ चौ.— सुनो भाई बहुत शब्द मत करो, कोतवाल ने कह दिया कि चुपचाप जाना हम पीछे २ आते हैं और सब लोग संग ही महाराज के यहां जायंगे इस से जब तक वह न आवैं तब तक यहां चुपचाप खड़े रहो ।

३ चौ.— अच्छा आइए चोर जी यहां ठहरिए । राजकन्या के महल के जाने का समय गया, अब कारागार में चलने का समय आया (सब बैठते हैं) ।

२ चौ.— देखो भाई भला यह तो परदेसी है पर इस रांड़ मालिन को क्या सूझी कि इसने ऐसा साहस किया !

१ चौ.— अरे यह छिनाल बड़ी छत्तीसी है, इसको तुमने समझा है क्या — ऐसा मन होता है कि इस रांड़ की जीभ पकड़ के खींच लें (हीरा के पास जाता है) ।

ही. मा.— दोहाई महाराज की, दोहाई महाराज की, हे धर्मदेवता तुम साक्षी रहना, देखो यह सब मुझे अकेली पाकर मेरा धर्म लिया चाहते हैं, दोहाई राजा की ।

१ चौ.— वाह वाह, चुप रह ।

(धूमकेतु कोतवाल आता है)

धू के.— क्यों तुम लोगों ने क्या शब्द कर रक्खा है ?

ही. मा.— दोहाई कोतवाल की, यह सब जो चाहते हैं सो गाली देते हैं हाय इस राज्य में स्त्रियों का ऐसा अपमान, महाराज धूमकेतु आप तो पण्डित हैं, आप इस का विचार क्यों नहीं करते ?

१ चौ.— महाराज यही रांड़ सब कुकर्म की जड़ है और तिस पर ऐसी ऐसी बातें बनाती हैं ।

ही. मा.— एक मैं ही दुष्कर्म करती हूं और तुम

सब साधू हो, देखो कोतवाल हम तो कुछ नहीं करती और तुम सब हमारी प्रतिष्ठा बिगाड़ते हो ।

धू. के.— (हंस कर) हां हां ! मैं तेरी सब प्रतिष्ठा समझता हूँ, पर यहां इस से क्या ? सब लोग महाराज के पास चलें जो वह चाहेंगे सो करेंगे ?

ही. मा.— अरे कोतवाल बाबा इस बुढ़िया को क्यों पकड़े लिये जाते हौ बुढ़िया के मारने से क्या लाभ होगा, मुझे अपने बाप की सौगन्द जो मैं कुछ जानती हूँ — भगवान साक्षी है कि मैं किसी पाप में रही हूँ ।

सु.— मौसी इतनी शीघ्रता क्यों करती है ? सब लोग महाराज के पास चलते हैं जो महाराज उचित समझेंगे सो करेंगे ?

ही. मा.— (क्रोध से) अरे दुष्ट तेरी मौसी कौन है ? इसी के पीछे तो हमारा सब कुछ नाश हुआ, अब तेरा होमकुंड क्या हुआ और तेरे इष्ट देवता कहां गए ! अरे तू बड़ा जालिया है और तूने मुझे बड़ा धोखा दिया, अब मैं आज पीछे अपने घर में किसी परदेसी को न उतारूंगी ।

धू. के.— अब भले ही न उतारना, पर इस उतारने का फल तो भुगतना ही पड़ेगा ।

ही. मा.— (रोती है) हाय मैं हाथ जोड़ के कहती हूं कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती, दोहाई भगवान की मैं कुछ नहीं जानती (कोतवाल से) अरे बेटा ! तुम्हारे मां बाप मुझे बड़े प्यार से रखते थे, सो तुम अपने मां बाप के पुण्य पर मुझे छोड़ दो और इसने जैसा कर्म किया है वैसा दण्ड दो । दोहाई कोतवाल की मैं बिना अपराध मारी जाती हूं ।

धू. के.— इस से क्या होता है ! अब तुम दोनों को महाराज के पास ले चलते हैं और उन की आज्ञा से एक संग ही बंदीगृह में छोड़ देंगे (सुन्दर का हाथ पकड़कर कोतवाल जाता है और हीरा को खींच करा चौकीदार लोग ले जाते हैं)

विम.— अब सचमुच चोर पकड़ा गया ।

च.— जो आंख से देखती है उस का पूछना क्या ?

विम.— पर भाई ऐसा रूप तो न आंखों देखा और न कानों सुना, यह तो राजकन्या के योग्य ही है इस में उसने अनुचित क्या किया, क्योंकि जैसी सुन्दर वह है वैसाही यह भी है, ''उत्तम को उत्तम मिलै मिलै नीच को नीच'' ।

च.— पर उस निर्दयी विधाता से तो सही नहीं गई ।

विम.— सोई तो, अहा जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रसै हा —विधाता बड़ा कपटी है ।

च.— सखी, अब और कुछ मत कह क्योंकि इस कथा के सुनने से मेरी छाती फटी जाती है और राजकन्या का दुख स्मरण कर के मुझसे यहां खड़ा नहीं रहा जाता, देखें और क्या २ होता है ?

विम.— तो फिर कब मिलैगी ?

च.— जो जीती रहूंगी तो शीघ्रही मिलूंगी (दोनों जाती हैं) ।

(जवनिका गिरती है ।)

दूसरा गर्भांक

(विद्या शोच में बैठी है)

चपला और सुलोचना आती हैं ।

च.— (धीरे से) सखी, मुझसे तो यह दु:ख की कथा न कही जायगी तूही आगे चलकर कह ।

सुलो.— तो तुम मत कहना पर संग चलने में क्या दोष है जो विपत्ति आती है सो भोगनी पड़ती है ।

च.— चल ।

(दोनों विद्या के पास जाती हैं)

वि.— (घबड़ाकर) कहो सखी कहो क्या समाचार लाई हो ?

सुलो.— सखी क्या कहूं कुछ कहा नहीं जाता, मेरे मुख से ऐसे दुख की बात नहीं निकलती । हाय — हम इसी दुख देखने को जीती हैं — सखी जिस प्रीतम के सुख से तू सुखी रहती थी वह आज पकड़ा गया — हाय उस के दोनों कोमल हाथों को निरदई कोतवाल ने बांध रक्खा है — हाय — उस की यह दशा देखकर मेरी छाती क्यों नहीं फट गई ।

वि.— (घबड़ा कर) अरे सच ही ऐसा हुआ — हाय फिर क्या हुआ होगा — (माथे पर हाथ मार कर) हा विधाता तेरे मन में यही थी — (मूर्छा खाती है और फिर उठ कर) हाय — प्राणनाथ बन्धन में पड़े हैं और मैं जीती हूं — हाय ।

धिक है वह देह औ गेह सखी
जिहि के बस नेह को टूटनो है ।
उन प्रान पियारे बिना यह जीवहि
राखि कहा सुख लूटनो है ।।
हरिचन्द जू बात ठनी जिय मैं
नित की कलकानि ते छूटनो है ।
तजि और उपाय अनेक सखी

अब तो हमको बिष घूटनो है ।।

सखी अब मैं किसके हेतु जीऊंगी — आओ हम तुम मिल के क्योंकि यह पिछला मिलना है फिर मैं कहां और तुम कहां — सखी जो प्राणप्यारे जीते बचै तो उनसे मेरा संदेश कह देना कि मैंने तुम्हारी प्रीति का निबाह किया कि अपना प्राण दिया पर मुझे इतना शोच रह गया कि हाय मेरे हेतु प्राण प्रीतम बांधे गये — पर मेरी इस बात का निबाह करना कि मेरे दु :ख से तुम दुखी न होना — हाय — मेरी छाती बज्र की है कि अब भी नहीं फटती (रोती है और मूर्छा खाकर गिरती है)

सुलो. — (उठा कर) सखी इतनी उदास न हो और रो रो कर प्राण न दे — यद्यपि जो तू कहती है सो सब सत्य है पर जब ईश्वर ही फिर जाय तो मेरा तेरा क्या बश है ? हाय — बादल से कोई बिजली भी नहीं गिरती कि हम को यह दु :ख देखना पड़े — सखी धीरज धर सखी धीरज धर ।

वि. — (रोकर) सखी, मन नहीं मानता । हाय — बिसासी विधाता ने क्या दिखा कर क्या दिखाया, हाय-अब मैं क्या करूंगी — और कैसे दिन काटूंगी ।

'मेलि गरे मृदु बेलि सी बांहिन
कौन सी चाहन छाहन डोलिहौं ।
कासो सुहास बिलास मुबारक ही के
हुलासन सों हंसि बोलिहौं ।।
श्रौनन प्याइहौं कौन सुधारस कासों विथा की कथा गढ़ी छोलिहौं ।
प्यारे बिना हौं कहा लखिहौं
सखियां दुखिया अखियां जब खोलिहौं' ।।

सखी, केवल दु :ख भोगने को जन्मी हूं क्योंकि आज तक एक भी सुख नहीं मिला — क्या विधाता की सब उलटी रीति है कि जिस वस्तु से मुझे सुख है उसी को हरण करता है — हाय मैं ने जाना था कि मुझे मन माना प्रीतम मिला, अब मैं कभी दुखी न हूंगी सो आशा आज पूरी हो गई — हाय अब मुझे जन्म भर दु :ख भोगना पड़ा ।

सुलो. — सखी, यह सब कर्म के भोग हैं नहीं तो तुम राजा की कन्या हौ तुम्हारे तो दु :ख पास न आना चाहिए पर क्या करैं — सखी तू तो आप बड़ी पण्डित है — मैं तुझे क्या समझाऊंगी पर फिर भी कहती हूं कि धीरज धर ।

वि. — सखी, मैं यद्यपि समझती हूं पर मेरा जी धीरज नहीं धरता — कर्म्म के भोग न होते तो यह दिन क्यों देखना पड़ता — हाय — जो पिता माता प्राण देकर सन्तान की रक्षा करते हैं उन्हीं पिता माता ने मुझे जन्म भर रंड़ापे का दुख दिया (रोती है)

च. — सखी, अब इन बातों से और भी दु :ख बढ़ैगा इससे चित्त से यह बातैं उतार दे और किसी भांति धीरज धर के जी को समझा ।

वि. — सखी, मैं तो समझती हूं पर मन नहीं समझता — हाय — और जिस का सर्वस नास हो जाय वह कैसे समझै और कैसे धीरज धरै — हाय ! हाय ! प्राण बड़े अधम हैं कि अब भी नहीं निकलते (लम्बी सांस लेती है और रोती है)

सुलो. — पर एक बात यह भी है कि अभी राजा ने न जानै क्या आज्ञा दीं — बिना कुछ भए इतना दु :ख उचित नहीं, न जानै राजा छोड़ दें ।

वि. — राजसभा में क्या होगा केवल हमारे शोकानल में पूर्णाहुति दी जायगी और क्या होगा — हाय — प्राणनाथ इस अभागिनी के हेतु तुम्हें बड़े-बड़े दु :ख भोगने पड़े ।

सुलो. — जो तू कहै तो में छत पर से देखूं कि सभा में क्या होता है ।

वि. — जो तेरे जी में आवै और जिस से मेरा भला हो सो कर ।

सुलो. — चपल चल हम देखैं तो क्या होता है ।

च. — चल (दोनों जाती हैं)

वि. — अब मैं यहां बैठी बैठी क्या करूंगी और मन को कैसे समझाऊंगी । हे भगवान मेरे अपराधों को क्षमा कर — मैं बड़ी दीन हूं मैंने क्या ऐसा अपराध किया है कि तू मुझे दु :ख दे रहा है । नहीं भगवान का क्या दोष है, सब दोष मेरे भाग्य का है (हाथ जोड़कर) हे दीनानाथ, हे दीनबन्धु, हे नारायण, मुझ अबला पर दया करो — और जो मैं प्रतिव्रता हूं और जो मैंने सदा निश्छल चित्त से तुम्हारी आराधना की हो तो मुझे इस दु :ख से पार करो ।

(नेपथ्य में)

अरे राजकाज के लोगों ने बड़ा बुरा किया कि बिना पहिचाने कांचीपुरी के महाराज गुणसिन्धु के पुत्र राजकुमार सुन्दर को कारागार में भेज दिया — क्या किसी ने उसे नहीं पहिचाना ? मैं अभी जाकर महाराज से कहता हूं कि यह तो वही है जिसके बुलाने के हेतु आपने मुझे कांचीपुर भेजा था ।

वि. — (हर्ष से) अरे — यह कौन अमृत की

धार बरसाता है — अहा भगवान ने फिर दिन फेरे क्या ? अब मैं भी छत पर चल कर देखूं कि सभा में क्या होता है ।

(जवनिका गिरती है)

तीसरा गर्भांक

(राजा सिंहासन पर बैठा है)

(मंत्री पास है और कुछ दूर पर गंगा भाट खड़ा है ।)

राजा.— मंत्री, गंगा भाट ने जो कहा सो तुमने सुना ?

मंत्री— महाराज, सब सुना ।

रा.— तब फिर उनको चोर जान कर कारागार में भेज देना बुरा हुआ ?

मं.— महाराज, पहिले यह कौन जानता था कि यह राजा गुणसिन्धु का पुत्र है, केवल चोर समझ कर दंड दिया गया ।

रा.— पर जब से मैंने उसे देखा तभी से मुझ को संदेह था कि आकार से यह कोई बड़ा तेजस्वी जान पड़ता है और मैं सच कहता हूं कि उसकी मधुर मूर्ति और तरुण अवस्था देख कर मुझे बड़ा मोह लगता था —जो कुछ हो अब तो विलम्ब मत कर और शीघ्र ही आप जाकर उसे ले आ क्योंकि कोतवाल अभी कारागार तक न पहुंचा होगा ।

मं.— जो आज्ञा महाराज, मैं अभी जाता हूं (जाना चाहता है ।

रा.— पर केवल सुन्दर का लाना और कोतवाल इत्यादिक को मत लाना ।

मं.— जो आज्ञा (जाता है)

राजा.— क्यों कविराज, तुम उसे अच्छी भांति पहिचानते हो कि नहीं ?

गंगा— महाराज, मैं भली भाँति पहिचानता हूं और पृथ्वीनाथ ! बिना जाने मैं कोई बात निवेदन भी तो नहीं कर सकता ।

रा.— तो गुणसिन्धु राजा का पुत्र वही है ?

गं.— महाराज, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

रा.— तुम जो न कहते तो बड़ा अनर्थ होता । यह भी हमारे भाग्य की बात है कि ईश्वर ने धर्म बचा लिया । पर मंत्री के आने में इतना विलम्ब क्यों हुआ इस से तुम जाकर देखो तो सही ।

गं.— जो आज्ञा (जाता है) ।

रा.— (आप ही आप) इतना विलम्ब क्यों लगा ? (शरीर हिला कर) विद्यावती के संग जो इसका गांधर्व विवाह हुआ वह अच्छा ही हुआ क्योंकि नीच कुल में विवाह करने से तो मरना अच्छा होता है, परन्तु हमारी विद्यावती ने कुछ अयोग्य नहीं किया, यह एक भाग्य की बात है नहीं तो मैं अपने हाथ से कन्या को जन्म भर का दुख दे चुका था, अहा भगवान ने बहुत बचाया (द्वार की ओर देख कर) मंत्री अब तक नहीं आये (नेपथ्य में पैर का शब्द सुन कर) जान पड़ता है कि सब आते हैं (गंगा भाट आता है)

गं.— महाराज, कांचीराजपुत्र को मंत्री आदर पूर्वक ले आते हैं (मंत्री और सुन्दर) ।

रा.— (सुन्दर का मुख चूम कर) यहां आओ पुत्र यहां (हाथ पकड़ कर अपने सिंहासन पर बैठाता है) बेटा मैंने तुझको आज अनेक दु:ख दिये, इस दोष को मैं स्वीकार करता हूं और यह मांगता हूं कि तुम आज से इन बातों को भूल जाओ ।

सु.— (हाथ जोड़ कर) महाराज ! आपका क्या दोष है यह तो आपने मुझे उचित दंड दिया था, यह केवल मेरे यौवन का दोष था कि मैंने आपके यहां अनेक अपराध किए सो मैं हाथ जोड़कर मांगता हूं कि आप मुझे क्षमा करें ।

रा.-- (मंत्री से) मंत्री रनिवास में से विद्यावती को शीघ्र ले आओ ।

मं.— जो आज्ञा (जाता है) ।

रा.— बेटा, मैंने तुमको जितना दुख दिया है उसके बदले तो मैं तुम्हारा कुछ भी सन्तोष नहीं कर सकता पर मैं इतना कहता हूं कि तुम ने विद्यावती से जो गांधर्व विवाह किया है उस में मैं प्रसन्नता पूर्वक सम्मति प्रगट करता हूं जिस से अवश्य तुमको बड़ा संतोष होगा ।

सु.-- (हाथ जोड़ कर) महाराज, आपकी कृपा ही से मुझ को बड़ा संतोष हुआ ।

(मंत्री आता है)

रा.— मंत्री क्या विद्यावती आई ?

मं.— महाराज अभी आती है ।

रा.— (सुन्दर से) बेटा, तुम ने पकड़े जाने के समय अपना नाम क्यों नहीं बतलाया नहीं तो इतना उपद्रव क्यों होता ?

सु.— महाराज, जो मैं नाम बतलाता तो भी मेरी बात कौन सुनता और सभासद जानते कि यह प्राण बचाने को भूठी बातें बनाता है और फिर क्षत्री के

निष्कलंक कुल में उत्पन्न होकर ऐसे बुरे कर्म में अपना नाम प्रगट करने से प्राणत्याग करना उत्तम है ।

(सुलोचना और चपला के संग विद्या नीची आँख किये हुए आती है)

वि.— (धीरे से) सखी मैं पिता को मुंह कैसे दिखाऊंगी ।

सुलो.— (धीरे से) जब पिता ने बुला भेजा है तो कौन सी लज्जा है ।

रा.— आ मेरी प्यारी बेटी इधर आ, आज तक मैंने तुझे अनेक दु:ख दिये थे पर वे सब दु:ख आज सम्पूर्ण हो गये (उठकर विद्या का हाथ पकड़ कर) प्यारे यह लो वीरसिंह का सर्वस धन मैं तुम्हें आज समर्पण करता हूँ (विद्या का हाथ सुन्दर के हाथ में देता है और नेपथ्य में बाजा बजता है और आनन्द के शब्द से रंगभूमि पर जाती है) यह बात तो कहना सर्वथा अनुचित है कि इस कन्या पर प्रीति रखना क्योंकि जो परस्पर अत्यन्त नेह न होता तो दु:ख क्यों सहते परन्तु ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आज से फिर तुम्हें कोई दुख न हो और सर्व्वदा अखण्ड सुख करो और शीघ्र ही एक बालक हो जिस के देखने से हमारा हृदय और आंखें शीतल हों ।

(दोनों दण्डवत करते हैं)

सुं.— महाराज, आप की दया से मेरे सब दुख दूर हुए पर यह शंका है कि मैं आप की प्रसन्नता के हेतु कोई योग्य सेवा नहीं कर सका ।

गं.—

आज अनन्द भयो अति ही
विपदा सब की दुरि दूरि नसाई ।
मोद बढ़यो परजागन को
दुख को कहुं नाम न नेकु लखाई ।।
मंगल छाइ रह्यो चहुं ओर
असीसत हैं सब लोग लुगाई ।
जोरी जियो दुलहा दुलही की
बधाई बधाई बधाई बधाई ।।

सुं.— महाराज, आप ने मुझे यद्यपि सब सुख दिया तथापि एक प्रार्थना और है ।

राजा.— कहो ऐसी कौन सी वस्तु है जो तुम को अदेय है ।

सुं.— (हाथ जोड़कर) महाराज ने यद्यपि मालिन को प्राण दान दिया है परन्तु देश से निकाल देने की आज्ञा है सो अब उसके सब अपराध क्षमा किये जांय ।

रा.— (हंस कर) जो तुम चाहते हो सोई होगा (मंत्री से) मन्त्री, मालिन के सब अपराध क्षमा हुए, इस से अब उसे कोई दण्ड न दिया जाय ।

मं.— जो आज्ञा ।

रा.— (मन्त्री से) मन्त्री, अब तुम शीघ्रही व्याह के सब मंगल साज सजो जिस में नगर में कहीं शोच का नाम न रहै क्यौंकि पुरवासियों को दुलहा दुलहिन के देखने की बड़ी अभिलाषा है और मैं बर बधू को लेकर रनिवास में जाता हूँ ।

मं.— महाराज, हम लोगों का जीवन आज सुफल हुआ ।

(मंत्री और भाट एक ओर से जाते हैं और राजा और विद्यासुन्दर दूसरी ओर से और उन के पीछे सखी जाती हैं)

(जवनिका पतन होती है)
नेपथ्य में मंगल का बाजा बजता है ।
।। इति ।।

रत्नावली

नाटिका

संस्कृत से अनूदित इस नाटिका के प्रस्तावना और विषकम्भक का ही अनुवाद मिलता है। भारतेन्दु ने इसकी भूमिका वैशाख कृ. सं. १९२५ को लिखी थी इसके किसी पत्रिका में छपने या इसकी किसी पुरानी प्रति का पता नहीं। रत्नावली का एक और अनुवाद बरेली के किन्हीं पं. देवदत्त जी का भी मिलता है।– सं.

भूमिका

हिन्दी भाषा में जो सब भांति की पुस्तकें बनने के योग्य हैं अभी वे बहुत कम बनी है विशेष कर के नाटक तो (कुंवर लक्ष्मणसिंह के शकुन्तला के सिवाय) कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिन को पढ़ के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रगट हो; इस वास्ते मेरी इच्छा है कि चार नाटकों का तर्जुमा हिन्दी में हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।

शकुन्तला के सिवाय और सब नाटकों में रत्नावली नाटिका बहुत अच्छी और पढ़नेवालों को आनन्द देनेवाली है इस हेतु से मैंने पहिले इसी नाटिका का तर्जुमा किया है और जो ईश्वरेच्छा अनुकूल है और आप गुणग्राहकों की अनुग्रहदृष्टि है तो धीरे धीरे कुछ नाटकों का तर्जुमा होकर प्रकाशित होता जायगा।

इस नाटिका में मूल संस्कृत में जहां छन्द थे वहाँ मैंने भी छन्द किये हैं यदि संस्कृत के छन्दों से इसके छन्दों को मिला के पढ़ि तो इसका परिश्रम प्रकट होगा।

मुझे इसके उल्था करने में श्री पंडित शीतलाप्रसाद से बहुत सहायता मिली है। और निश्चय है कि इस का उल्था अगर कोई अच्छी हिन्दी जानने वाला करता तो रचना अति उत्तम होता इस से मुझे आप लोगों से आशा है कि इसके भूल चूक को सुधारेंगे और मुझे अपने एक दास की नाई सदा स्मरण करेंगे।

बनारस। हरिश्चन्द्र

मि. वैशाख २ सं. १९२५।

श्रीकृष्णाय नम :

श्रीराधिकायै नम :

रत्नावली

रंगभूमि में नान्दी (मंगलाचरण) पढ़ता है।

नांदी !

पादाग्रस्थितया मुहु :स्तनभरेणानीतया नम्रतां ।
शम्भो :सस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने ।।
ह्रीमत्या शिरसीहित : सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया ।
विश्लिष्यन् कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तो न्तरे पातु व :।।

पार्वती शिवजी के पूजन के समय उन के मस्तक पर पुष्पांजली चढ़ाने के लिये कई बार चरण के अंगूठों के बल से ऊँची हुई और स्तनों के भार से फिर नीची हो गई। परन्तु जब शिवजी इन की ओर तीनों नेत्रों से बड़े अभिलाष से देखने लगे तो इन को बड़ी लज्जा हुई और रोम खड़े हो गए और अंग में पसीना और कंप होने लगा और हाथ न सम्हल सका तो इन्होंने उस पुष्पांजली को बीच ही में छोड़ दिया। ऐसी पुष्पाञ्जली तुम्हारी रक्षा करै।

औत्सुक्येन कृतत्वरा सह भुवा व्यावर्तमाना ह्रिया ।
तैस्तैर्बन्धुजनस्य वचनै नींता भिमुख्यं पुन: ।।
दृष्ट्वाव ग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे संगमें ।
संरोहत्पुलका हरेण हसता शिवायास्तु व: ।।

पार्वती प्रथम समागम के समय पहिले तो उत्कण्ठित हो कर जल्दी से चलीं परंतु जब थोड़ी दूर गईं तो स्वभाव ही से लजा कर फिर पीछे हटीं । जब बंधुजनों की स्त्रियों ने अनेक प्रकार से समझाया तो फिर सन्मुख हुईं और जब पति को आगे देखा तो इनको अति भय हुआ और इन के अंग में रोमाञ्च हो आया तब शिव जी ने हंसकर कर कंठ से लगा लिया । ऐसी पार्वती तुम्हारा कल्याण करैं ।

क्रोधेद्धैर्दृष्टिपातैस्त्रिभिरुपशमिता वन्हयो मीत्रयो पि
त्रासार्त्तात्रृत्विजो धश्चपलगणहृतोष्णीषपट्टा :पतन्ति ।।
दक्ष :स्तौत्यस्य पत्नी विलपति करुणं चापि देवै: ।
शंसन्नित्यात्तहासोमखमथनविधौ पातदेव :शिवो व: ।।

प्रज्वलित हमारी तीनों दृष्टियों के पड़ने से ये तीनों अगिन बुझ गईं । हमारे चंचल गणों ने ऋत्विकों के माथे की पाग छीन ली हैं और वे मारे डर के मुँह के बल गिरे पड़ते हैं । दक्ष स्तुति करता है इस की स्त्री करुणा कर के रोती है देवता सब भाग गये । शिव जी दक्ष के यज्ञ के विध्वंस के समय यह कहते हुए तुम्हारी रक्षा करैं ।

नांदी के पीछे सूत्रधार आता है ।

सूत्रधार— बस बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं । आज इस बसन्तोत्सव में महाराज श्रीहर्ष देव के चरण कमल के आश्रित राजा लोग जो बहुत देशों से आकर इकट्ठे हुए हैं उन लोगों ने हम को बड़े आदर से बुला कर कहा है कि हमारे स्वामी श्रीहर्षदेव नो जो बहुत अपूर्व रत्नावली नाटिका बनाई है उस का वृत्तान्त हम लोगों ने बहुत लोगों के मुंह से सुना है पर अब तक उस की लीला नहीं देखी । इस वास्ते सब लोगों के चित्त को आनंद देनेवाले उनके बहुत मान से और हम लोगों पर अनुग्रह की दृष्टि से उस नाटिका की लीला कीजिये (घूम कर और चारों तरफ देख कर) अब इस समय नेपथ्य रचना कर लूँ तो फिर जो करना हो करूँ (सब लोगों की तरफ देख कर) अरे मुझे निश्चय होता है कि सब सभासदों का मन इसी ओर लगा है ।। क्यों न होय ।

श्री हर्ष सो अति निपुन कवि यह सभा जन गुन को धरैं ।
जग बत्सराज चरित्र मनहर हम ललित लीला करैं ।।
इन सबन सों जहं होय एकहु मिलहिं मन बांछित घने ।
यद उदय मेरे भाग्य का जंह सकल गुन गन हैं बने ।१

तब तक घर से सुघर घरनी को बुला कर कुछ गाना आरंभ करें (घूमकर और नेपथ्य की ओर देखकर) यही मेरा घर है इसके भीतर चलें (कुछ आगे बढ़कर) प्यारी इधर आइयो ।

नटी आई ।

नटी— प्राणनाथ ! मैं आई हूँ । कहिये आज कौन सी लीला करनी है ।

सू.— प्यारी ! इन राजा लोगों को रत्नावली देखने की बड़ी इच्छा है सो तुम जाकर नेपथ्य के सब साजों को सम्हालो ।

नटी— (चिन्ता से लंबी सांस लेकर) प्राणनाथ ! आप इस बेला निचिन्त हौ आप क्यों न नाचौगे मुझ अभागिनि की तो एक ही कन्या है उसे भी आपने दूसरे देश में देने कहा है । ऐसे दूर रहनेवाले बर से उसका ब्याह कैसे होग इस सोच में मुझे तो अपने देह की भी सुधि नहीं है । नाचना कैसा ।

सू.— प्यारी ! बर दूर देश में है इस बात की कुछ चिन्ता न करो, क्योंकि —

जौ विधना अनुकूल तौ दीपन सों सब लाय ।
सागर मधि दिग अंत सों तुरतहि देत मिलाय ।।

(नेपथ्य में ।

सू.— (सुनकर नेपथ्य की ओर देखकर) प्यारी : अब क्यों बिलंब करती हौ यह मेरा छोटा भाई यौगंधरायन बन के आया है । आओ हम लोग भी चलकर अपना २ भेष धारण करैं ।

(यह कह के दोनों चले जाते हैं) (इति प्रस्तावना)

बहुत प्रसन्न भेष से योगन्धरायन आता है ।

यौ.— यह सच है इसमें कुछ संदेह नहीं । (जो विधना अनुकूल इत्यादि फिर से पढ़ता है) जो ऐसा न होता तो ये अनहोनी बातें कैसे होतीं कि हमने सिद्ध के बात का विश्वास करके सिंहल दीप के राजा की कन्या अपने स्वामी के लिये मांगी और जब उसने भेजी तो जहाज टूट जाने से वह डूबने लगी और एक तखते पर जो उसको मिल गया था बहती फिरी और संयोग से उसी समय कौशाम्बी के एक महाजन ने जो सिंहल दीप से फिरा आता था उसे बहते देखा और उसके गले की रत्नमाला से इसने जाना कि कोई बड़े घर की बेटी है इससे वह उसको यहाँ लाया (प्रसन्न होकर) सब भांति हमारे स्वामी की बढ़ती ही होती जाती है (विचार कर के) और हम ने भी उस कन्या को बड़े गौरव से रानी को सौंपा है यह बात अच्छी हुई । अब सुनने में आया है कि हमारे महाराज के व्याभ्रव्य कंचुकी और सिंहलेश्वर

का बसुभूति मंत्री जो राजकन्या के साथ चले थे वह दोनों किसी उपाय से बच कर समुद्र के किनारे लगे और वहां सैनापति रुमण्वान से जो कौशला नगरी जीतने गया था, मिल के यहाँ आ पहुंचे इन बातों से यद्यपि हमारे स्वामी का सब काम सिद्ध ही होता है तौ भी हमारे जी को धीरज नहीं होता । हा ! सेवक का धर्म बड़ा कठिन है ।

यद्यपि स्वामिहि के हित कारन
मैंने सबै यह काज किया है ।
देखहु तौ यह भाग की बात
सु दैव ने आय सहाय दियो है ।।
सिद्धहु होइगो संसय नाहिं
सदा निहचै मन माह लियो है ।
तौहू किया अपने चित सों
यह सोचि डरै सब काल हियो है ।।

(नेपथ्य में कुलाहल होता है)

(कान लगा कर) अरे यह नगरनिवासियों के चाकर की धुन सुन पड़ती है । मृदंग भी कैसा मधुर बज रहा है और उसी के साथ कैसी मीठी मीठी तानें सुनाई देती हैं ऐसा अनुमान होता है अस बसन्तोत्सव में नगरवासियों ऐसा अनुमान है इस बसन्तोत्सव में न्गारनिवासियों का कौतुक देखने को महाराज अटारी की ओर जाते हैं । ऊपर देखकर —
आहा ! महाराज तो अटारी पर आगए । देखो ।

याके राज बीच कहूं विग्रह नहीं हैं अरु विग्रहरहित कामदेवहू सुहायो है । यह रति मान और वह रतिपति यह प्रजा चित बसे वह जगचित छायो है ।। याको है बसन्तक परमसखा वाहू को बसन्त रितु मित्र यह जगबीच गायो है । आपुनो महोत्सव विलोकिवे कों अनुरागी कामदेव मानो बत्सराज बनि आयो है ।।[१]

तो घर जाकर अब जो करना है उसकी चिन्ता करूँ (चला जाता है)

इति विष्कम्भक । परदा गिरा ।।

१. अथवा यह पाठान्तर । दोहा ।
रति धर जन चित बसत बिन विग्रह मित्र बसन्त ।
आयो उत्सव लखन बनि बत्सराज रितु कन्त ।।

पाखंड विडंबन

पं. कृष्ण मिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के तीसरे अंक का यह अनुवाद है बाबू ब्रजरत्नदास इसे अपनी चाल का पहला नाटक मानते हैं। सम्भवतः भक्ति की पराकाष्ठा और वैष्णवधर्म की विशिष्टता स्थापित करने की नीयत से भारतेन्दु ने इसे अनूदित किया। यह नाटक श्री छन्नूलाल द्वारा बनारस प्रिंटिंग प्रेस में सं. १९२९ में छपा। — सं०

।।पाखण्ड विडम्बन ।।

अर्थात

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक

का

तीसरा अंक

श्री मन्महाकवि कृष्ण मिश्र

का बनाया

तथा

श्रीहरिश्चन्द्रजी

ने

हिन्दी भाषा में हास्य रसिकों के आनन्दार्थ
।।अनुवाद किया।।

Benares :

Printed at the Benaras Printing Press
by Chhannu Lal

मेरे प्यारे!

भला इस्से पाखंड का विडम्बन क्या होना है यहाँ तो तुम्हारे सिवा सभी पाखंड हैं क्या हिन्दू क्या जैन क्योंकि मैं पूछता हूँ कि बिना तुमको पाए मत की प्रवृत्ति ही क्यों है तुम्है छोड़ कर मेरे जान सभी झूठे हैं चाहे ईश्वर हो चाहे ब्रह्म चाहे बेद हो चाहे इंजील तो इस्से यह शंका न करना कि मैंने किसी मत की निन्दा के हेतु यह उलथा किया है क्योंकि सब तुम्हारा है इस नाते तो सभी अच्छा है और तुमसे किसी से संम्बध नहीं इस नाते सभी बुरे हैं। इन बातों को जाने दो।

क्योंजी ऐसे निठुर क्यों हो गये हो ? क्या तुम वह नहीं हौ ? इतने दिन पीछे मिलना उस पर भी आँखैं निगोड़ी प्यासी ही रहें; मुँह न छिपाओ देखौ यह कैसा सुन्दर नाटक का तमाशा तुमको दिखाता हूँ क्योंकि जब तुम अपने नेत्रों को स्थिर करके यह तमाशा देखने लगोगे तो मैं उतना ही अवसर पा कर तुम्हारी भोली छबि चुपचाप देख लूँगा।

फाल्गुन सुदी १४ सं. १९२९, तुम्हारा हरिश्चन्द्र।।

।।पाखंड विडम्बन ।।

।।शान्ति और करुणा आती हैं ।।

शा.— (शोच से) मेरी प्यारी मां कहां है जल्दी मुझे अपना मुखड़ा दिखा । हा !
जो बन मैं सरितान के तीर
जहां बहै सीतल पौन सुहाई ।।
देवन के घर मैं ऋषि के घर मैं
जिन आपुनी आयु बिताई ।।
सज्जन के चित में जो रही हिय मैं
जिन पुन्य की वेलि बढ़ाई ।
सो परी जाय पखंडिन के कर गाय
ज्यौं बांधि कै राखै कसाई ।।
अब मैं जी के क्या करूंगी क्योंकि —
मम देखे बिन न्हाय नहिं नहिं पिवै नहिं खाय ।
मो बिन प्रान न रखिहै प्यारी श्रद्धा माय ।।
हा ! तो अब सरधा माता के बिना जीना तो दु :खही भोग करना है । सखी करुणा तू मेरा सोच मत करियो मैं शीघ्र ही आग में जल के अपनी मां के पास पहुंचुंगी ।

(रोती है)

करु.— (शोच से) सखी यह क्या करती है तेरा यह दु :ख मुझ से सहा नहीं जाता, तू ऐसी बातैं कह कर मुझे क्यों अधमरी किए देती है सखी धीरज धर और प्रान मत दे तब तक मैं उस को तीरथों में, गंगाजी के किनारों पर सूने बनों में, मुनी लोगों की कुटियों में और देवता के मन्दिरों में ढूंढ़ती हूं ऐसा न हो कि वह महाराज महामोह के डर से कहीं छिप रही हो ।

शा.— सखी अकारथ क्यौं खोज करती है ? क्योंकि, —
कूल मैं छाइ रहे है सिवार
घिरे हैं विखानस के समुदाई ।
त्यौं घर ब्राह्मण के चरु सों
कुश सों समिधान सों राखे छिपाई ।।

चारहूआश्रम के इमि मूढ़न कामना की बहु बेलि बढ़ाई ।
बातहूनाहि कहूँ सुनिए कित श्रद्धा गई कछू जान न जाई ।

करु.— सखी ऐसा कभी नहीं हो सकता क्योंकि वह तो सतोगुनी श्रद्धा है उस्की ऐसी दुरगत तो सपने में भी नहीं हो सकती ।

शा.— सखी जब दैव फिर जाता है तो क्या क्या नहीं होता, देख
श्री रघुनाथ की प्रान पिया
मिथिलेस लली दस सीस चही है ।
वेद चुराय कै दानव के गन
भागे पताल न जाय कही है ।।
वाम मदालसा जो सुरलोक की
सो छलकै खल दैत लही है ।
जो विधि बाम भयो सजनी तब
जो जो करै सो अचर्ज नहीं है ।।
तो चल अब पाखण्डही के
घर में चल के खोज करैं ।।

करु.— ठीक है चल ।। (दोनों घूमती हैं)
करु.— (डर) सखी मुझें जल्दी बचा ।।
शां.— हैं ! क्या कोई राच्छस है ।
करु.— देख इधर देख यह सरीर में कीचड़ लगा कर अपने को मैला कुचैला बनाए नोचे खसोट बाल नंगा घिड़ंगा, खोंड़े मैले दाँत भोड़ी भ्यावनी सूरत राच्छस की मूरत हाथ में झाडूसा एक मोरछल लिए इधर चला आता है ।।
शा.— सखी यह राक्षस नहीं है क्योंकि ऐसा बलवान नहीं जान पड़ता ।
करु.— तो सखी फिर यह कौन है ?
शा.— सखी हो नो हो वह पिशाच है ।
करु.— सखी दिन में पिशाच की गम कहाँ ?

शा.— तो कोई नरक से तुरत का ढकेला पापी होगा ।

(पास से देखकर और जान कर)

अरे जाना यह तो महाराज महा मोह का भेजा दिगंबर सिद्धान्त है तो इस्से दूरही रहना चाहिये (मुंह फेरती है)
करु.— सखी एक दो घड़ी यहीं ठहर तो सरधा को खोजैं ।।

(दोनों किनारे खड़ी हो जाती हैं)

(ऊपर कहे हुए भेस से दिगम्बर सिद्धान्त आता है)

दिग.— नमो अर्हन्त नमो अर्हन्त ।।
नवद्वारांरोदेह धरतिसमां आतम दीप ।
जिनबररो सिद्धान्त यह देसी मोच्छ समीप ।।
अरे सुणौरे सरावगियो सुणौ : अरे,
रे रे श्रावक सुनो !
यामल रूपी देह मांकसी जलारी सुद्दि ।
आतम बिमल स्वभावछै यह रिषिआंरी बुद्दि ।।

(ऊपर कान लगाकर)

क्या कहयो कौण रिसिआंरी ? अरे सुण
जौ न करी परनाम दै मिष्ट भोग सतकार ।
तौ बैरहु तिन सों न कर जदपि रमत रिषि दार ।।

(वैसाही भेस बनाये श्रद्धा आती है)

श्र.— हुकम महाराज ।।

(शान्ति मूर्च्छा खाके गिरती है)

दिग.— अरे सरावकांरा कुल एक्क छिण मत छोडिया ।।

श्र.— जो हुकम महाराज (जाती है)

करु.— सखी धीरज धर धिरज धर तू इतता क्यों डरती है क्योंकि मैंने अहिंसा से सुना है कि पाखंडियों को भी तमोगुण की बेटी सरधा है इससे यह तो तमोगुनी सरधा है ।

शा.— (उठ कर और अपने को सम्हाल कर) सखी ठीक है ।

दुराचार मैं अति लपटाई ।
वेष कुरूप न देख्यौ जाई ।।
बस बिधि हीन अहै गुनमाहीं ।
माता की सरि कोउ बिधि नाहीं ।।

तो अब हम लोग बौद्धों के घर में उसे खोजैं ।

(शान्ति करुणा घूमती हैं)

।।हाथ में पोथी लिए भिक्षुक बुद्धागम आता है ।।

भिक्षु—(चिन्ता करके) अले अले उपाछको छुनो छनो ।

छन छन मैं विगरत बनत जग ता भावहि मानि ।
छोड़ि बासना सकल भे मुक्त तत्व हम जानि ।।

(फिर कर बड़े चाव से)

अले अले अहाहा ! अले छावाछ छावाछ इछ धलम्म मैं दोनों लोअ का छुख है ।।

लहने को मिआ घल छुन्दलछा अलु
भोजन को मिली छुंदल नानी ।
लद्दु अनेअन भोजन कों मिए
छैन के एत ऐ छेज छुखाली ।।
कै छलधा जुअती छब अंगन
लाओत तेअ फुएअ छुवाली ।
दै गलमैं वइयाँ छुख छो इमि
बीअत है नित लात उजाली ।।

करु.— सखी यह ताड़ सा लम्बा बड़ा गेरुआ काछे सिर मुंडा कौन है जो इधरी की ओर चला आता है ?

शा.— सखी यह बुद्धागम है ।।

भिक्षु.— (ऊँचे सुरसे) अले अले उपाछकओ अलेअले भिच्छुओ अले छुनो भगवान छौगत छुनो ।

(पुस्तक पढ़ता है)

अले भिच्छुओ अमदिव्व चच्छ छेछब लोकों की दुलगइ छुलगइ छब देखते ऐ अले छव छंछार छनिकए आम्मा थायी नईऐ अल्ले इच्छे जोऊके दाठभिच्छुओछे जिय की लाअ अच्छी नई अलेबछबछ इनकी लाअ छे (नेपथ्य की ओर देखकर) छलधेइधल आना इधल ।।

(श्रद्धाभिछुकी बनी आती है)

श्र.— आज्ञा महाराज ।।

भिक्षु.— अले उपाछक औ भिच्छुओ छे छव्वदालपती लहु ।।

श्र.— जो आज्ञा महाराज (जाती है)

शा.— सखी यह भी तामसी श्रद्धा होगी ।

करु.— सखी ऐसेही है ।

दिगं.— (भिक्षुक को देखकर बड़े ऊँचे शब्द से) अरे अरे भिच्छुक इठे आ इठे आ म्हां तोसूं कछ्र पूछांगा ।

भिक्षु.— (क्रोध से) हट पाप पिछाचकी मूअतका वकताऐ ।।

दिगं.— अरे क्रोध क्यूं करैहै रे हों शस्त्ररो बिचार पूछवावालोछूं ।।

भि.— अले छपनअ तू छ छतल वो जानताए अच्छा देखतेए । (बैठकर) पूछका पूछताऐ ।।

दिगं.— अरे कहे छन विनास वालामत वारौ तेरो कसो व्रतछै ।

भि.— (हिं) सुन छनछन में ज्ञान का नाश और उदय होता है इस से जब कोई विज्ञान क्षन में प्रान त्याग करता है तो उसकी मोक्ष होती है

दिगं.— अरे मूरख अरे जो कोई मन्वन्तर माकोई रो मोछहोवा वालो छे वा भयो तौ वह तेरो उपकार कैसे करेगो और पूछूं के यह धरम रो उपदेश कोण ने कियो छै ।।

भि.— अले छलवग्गबुध भगोआनने उपदेछ किआऐ ।।

दिगं.— अरे बुध्ध सरवज्ञ छे यह थैने कहां सूंकाढारे ।।

भि.— अले उनके छाछतलै छेछिध्धए ।।

दिगं.— अरे थोरी बुद्धि के अरे जो वाहीके कहेसुं सर्वज्ञता होती होय तो हूं भी कहूं छू के हूंसर्बज्ञ छूं और हूं भले जानू छूंजो हूं सर्वज्ञारो सर्वज्ञछूं और थैं और थारे वाप दादे सात पुरषा म्हारे दास हैं ।।

भि.— अले पाप पिछाच अले मैया कुचैआ अले

हम तेएदाछऐंले ।।

दिगं.— अरे दासियों के दास ! यह तो नैंने एक दृष्टांत दियो और अब तेरे हित की कहूं सुन बुद्ध को धरम छोड़ि और अर्हन्त को धम्म ले ।

भि.— अले पापी आप नाछ ओ कल दूछलों को वी नाछ कलताए ।।

(हि) छोड़िसवै वरवार कौ करिनिंदित के कर्म ।
भयो पिशाच समान तू लो जैनिन के धर्म ।।

औल वी जैन धलम्म को छलवग्गता तैने कैछे जानी ।

दिगं.— अरे ग्रहनक्षत्र चन्द्र सूर्य्य ग्रहनके ज्ञान के संबाद का देखवाही सूं भगवान अरहंत री सर्व्वज्ञता प्रगटथायछै ।।

भि.— (हंसकर) अले जोतिछ छाछतल तो अनादिऐ न जानै किछ ने तुमलोओको धोखा दे कल इछ धलम्मै लखहे ।।

(हि) है जितनो बड़ो देह को पिंडक जीवहू तैसइ रूपहि धारिहै । तासों नजानिहै और कछू निजदेहही की सब बात सम्हारिहै । जीकी नहीं गति दूसरे लोक में सो किमि बात कहूंको विचारिडै । कुंभके भीतर दीप ढंक्यौ सो न बाहर क्यौंहूं प्रकाश पसारिहै ।।

इछछे दोनों लोअ-विलुद्ध जैनमत छे छगत भगवा नहीं का मत अच्छाए इछमों छंदेअ कुछ नइऐ ।।

शा.— सखी चल उधर चलैं ।

करु.— चल सखी ।

(दोनों घूमती हैं)

शा.— सखी देख यह सामने सोमसिद्धान्त जाता है तौ चल इसके पीछे चलैं ।।

(कापालिक का रूप धारण किये सोमसिद्धांत आता है)

कापा.— (घूमकर)

हाड़को कंठ मैं चारु माला धरे ।
देखते जोगकी दृष्ट मंझार से
एक श्री संभु से भिन्न संसार से ।।

दिगं.— अरे यह पुरुष कापालिक व्रत धारेहै तौयासूं होहू कछु पूछूं (पास जाकर) बोल रे बोल कापालिका तू अरे । हाड़ और मूड़ को कंठ माला धरे ।। कौनसो धर्म्म रे कौनसो धर्म्म है । मोक्ष जामैं मिलै सो कसोकर्म्म है ।।

कापा.— अरे छपनक सुन जो हम लोगों का धर्म्म हैं ।।

नित सीस के काटे लहूसों भरे
चरबी लगे मासको होमकरैं ।
पुनिं खोपड़ी ब्राह्मन जात की
लाइ कै पारन के हित मद्यभरैं ।।
अरु काटिकै कंठ कठोर तुरंतके
रक्तन कुंभ भराइ धरैं ।
ममदेवता भैरव नाथ जू हैं
जिन्हैं पूजन लोग अनेक तरैं ।

भिक्षु.— (दोनों कान मूंद कर) बुद्ध वृद्ध अले बला कथिन धलम्मऐ ।

दिगं.— अर्हन्त २ अरे कोऊ बड़े पापी ठगियाने य विचाराकूं ठगलियोछै ।।

कापा.— (क्रोध से) क्योंरे पाप पखंडियों से नीच, मुड़ मुड़े, नोचे खसोटे अरे चौदहो भुवन के स्वामी स्थिति उत्पत्ति प्रलय पालन करने वाले वेदान्त वेद्य भगवान् भवानीनाथ का मत ठगों का है क्योंरे अरे सुन इस मत की महिमा ।

हरिहर आदिक देव गनन को बांधि मंगाऊं ।
नभ पथ मैं नक्षत्रन की गतिरोकि थिराऊं ।।
परवत नदी समुद्र नगर नर सह यह धरनी ।
एक प्याले में घोरिपिऊं यह सुनि मम करनी ।।

दिगं.— अरे कपलिआ सोई तो कहूं छूं कै काहू इन्द्रजाल वारेने तोकूं इंद्रजाल दिखाइ कै भरमाइ दियो छै ।

कापा.— अरे पापी फिर भी भगवान पर इन्द्रजाल वाले का आक्षेप करता है ? तौ अब इसका घमंड दूर करना चाहिए (खंग खींच कर) तो अब मैं । अहो खींचकै खंग की तीक्ष्ण धारैं ।
गरौ काटिकै दुष्टकों मारि डारैं ।।
लग्यौ फेन ताजो लहू यासु लैहों ।
अबै हौं भवानी भवैं तृप्ति दैहौं ।।

(खंग लेकर दौड़ता है)

दिगं.— (डर से) महाभाग 'अहिंसा परमो धर्म्म : ।।'

(भिक्षुक की गोद में छिपता है)

भि.— (कापालिक को निवारण करके) महालाज महालाज हंछी की बकवाद में इस तपच्छीको बध उचित नईऐ ।।

(कापा : खगं मियान में रखता है)

दिगं.— (फिर उठ कर) जो महाराज रो क्रोध शान्त भयो होय तो हौं कछू पूछिवेकी इच्छा कहं छूं ।।

कापा.— पूछ क्या पूछता है !

दिगं.— आप को धरम्म तो सुन्यौ पर मोक्ष को सुख कशो होयछै ।

कापा.— सुन ।

है न कछू विन भोग के या जग
कौन जो दूसरी सु:ख बतावै ।
मानिकै वेदन ज्ञानहि छांडिकै ह्वै
पथरा निज मुक्ति बनावै ।।
पारबती समप्यारिन सों विहरै
रतिमैं मुख सों मुखलावै ।
ह्वै शिव नाचै अनंद भरो जग
मैं सुख सो निज काल वितावै ।।

भि.— महालाज बैलागिओ को तो ऐछी मुत्ति न अच्छी लऐ गी ।।

दिगं.— अरे खप्परवारे जो तू रीसै न तो हों यह पूछूं जो शरीर और प्रेम दोऊ होत हू मुक्ति तो वेद में नहीं ।

कापा.— (आप ही आप) अरे इनके वित्त में तनिक भी श्रद्धा नहीं है । अच्छा देखो (प्रकाश) श्रद्धे इधर तो आना ।

(कपालिनी बनी हुई श्रद्धा आती है)

कछ.—

सखी देख यह रजोगुण की वेटी श्रद्धा है ।
दृगजुग अलसाने कंज से नील सोहैं ।।
जुवजन गलमाला अस्थिकी देखिमोहै ।
कुच अरु उरु भारैं चाल धीरी लईहै ।
मुख छबि यह देखौ चन्दकी सी भई हैं ।।

श्र.— (घूमकर) रावलजी मैं आई कहिये क्या आज्ञा है ।

कापा.— प्यारी पकड़ तो इस भिक्षुक को ।

(श्रद्धा भिक्षुक को लपट जाती है)

भिक्षुक.— (लपट कर और रोमांच दिखाकर) वाहले कपालिनी का लपतनेका छुख ।— (हिंदी में)

बार अनेकनं रंडन को हम लैं निज कंठ लगायो ।
चूमि मुखै गल मैं भुज डालि सदा निज जन्म बितायो ।।
औरहु भोग अनेक किए कुच वारिनकों लपटायो ।
जो सुख मोहिं कपालिनि दीनन सो कबहूं हम पायो ।।

अले कपालिक चलित्तल बला पवित्तलऐ अहाहा अले छोम छिद्धान्त इच्छा कलनेके जोगऐ अले यह बला अचलज धलमऐ महालाज हमने आजछं बुद्ध का मत छोआ ओल कौल धलम लिआ आप हमाले आचालज ओ हम आप के छिछ्छ भए छो अब हमको पलमेछुली दिच्छा दीजिए ।

दिगं.— अरे भिक्षुक तू अबी कपालिनी के संग सूं दूषित होयगयो सो दूर हट ।।

भि.— अले दिगंवल तू अबीकपालिनी का छुख काजानै ।।

कापा.— प्यारी पकड़ इसको भी ।

(श्रद्धा दिगंबर को लपटती है)

दिगं.— (रोमांचित होकर) अहाहा ! वाहरे ! कपालिनी गल लाग वारोसु:ख अरी सुंदरी एकवार तो फेर गरेसू लपटिजा (स्वगत) अरे एसी समय नागो रहिवो उचित नहीं तासू लगोटी लगायलऊ तो ठीक परै (लंगोटी कसकर) अहाहा ! (गाता है)

अरे सुण पीणपयोधर वारी ।
थारे इनं नेणा री सोभा मृगन लजावन हारी ।।
रीकपालिनी जौं तू म्हासूं रमण करै मिलि प्यारी ।
तौ सरावगिणि और जतिण रो काम कछू न यहारी ।।
अरे कपालिक रा दरसनही मोच्छको सुख छै ।
अरे आचारज हूं थारोसेवकछूं हमकूं भैरवीदिच्छा ध्यानसूँदे ।

कापा.— अच्छा बैठो ।

(दोनों बैठते हैं)

(कापा : हाथ में बोतल लेकर ध्यान करता है)

श्र.— रावलजी बोतल मद से भर गया ।

कापा.— (देखकर और कुछ पीकर शेष भिक्षुक को देता है)

यह पवित्र भवभयहरन । अमृत पियो इक साथ ।।
करम पास यासों कटत । भाखत भैरवनाथ ।।

(दोनों कुछ संकोच करते हैं)

दिगं.— अरे । म्हारे अर्हन्तानुशासन में मद पीवारी आज्ञा तो कोई नहीं ।।

भि.— अले कापालिक की जूथी मदिला कैछे पियैगे ।

कापा.— क्या सोचते हो ? श्रद्धे इन दोनों का पशुत्व अब भी नहीं गया ये हमारे पीने से मदिराको जूठी समझते है इससे तू अपने अधर के रस से इसको पवित्र कर के इन दोनों को दे क्योंकि कथा वाले भी कहते हैं 'स्त्री मुख तु सदा शुचि ।'

श्र.— महाराज को जो आज्ञा (आप पीकर बोतल भिक्षुक को देती है)

भि.— महापछादऐ (बोतल लेकर पीता है) अहा कैछी छुंदल दुधियाऐ ।।

बहुबार बारबधून के संग पान हम मद को कर्यौ ।
जो अधर मधु के संग मौलसिरी सुगंधन सो भर्यौ ।।
यह तो सुवासित आप जोगिन वदन संगमजानही ।
जेहि जानि दुरलभ देवगन लै अमृत बहु सुख मानही ।।

दिगं.— अरे भिक्षुक सब आपही आप मत पीजा कपालिनीरी जूठी मीठी मदिरा थोड़ी म्हारे कूं बी तो छोड़ ।

(भि : दिगम्बर को बोतल देता है)

दिगं.— (पीकर) अहाहा वाह रे या मदिराकी मिठास वाह रे स्वाद वाह रे सुगंध वाह रे मादकता अरे मैं तो अर्हंत के मतमे रह्यौ सो ऐसी मदिरा बिना बहुत ही ठग्यौ गयोरे अरे भिक्षुक मेरोतो माथो घूमै छै तासों हूं तो सोऊँगो ।।

भि.— बहुत थीकऐ (दोनों लेटते हैं)

कापा.— प्यारी यह आज बिना मोल के दो दास मिलेहैं तो उठ इस आनंद में हमलोग नृत्य करें (दोनों नाचते हैं)

दिगं.— अरे भिक्षुक यह कापालिक अरे हौं भूल्यौ आचारज कापालिनी के संग नाच रह्यौ छै तो हमदोऊ क्यौन नाचैं ।।

भि.— थीकऐ (दोनों नाचते हैं)

दि.— ("अरे सुण पीणापयोधर वारी . . ." यह गाता है और गिरता २ नृत्य करता है)

भि.— आचालज ! इछ मतसे यह आचलज ऐ कि बिना पलिछ्लमही छव छिद्धिमिलतीये ।।

कापा— अरे तूने इस्मे आश्चर्य्य क्या समझा ।।
जाहि विलोकौंबनै सोई सिद्ध धरुं
निज चित्त जो सोई करौं ।।
अरु काम कलान की बातैं अनेक
पढ़ाइ सिखाइ कै कष्ट हरौं ।।
पुनि मोहन मारन कर्षन थंभन
आदि अनेकन सिद्धिभरौं ।
वह कौनसी कामना जोनमिले
जिय यामे कछून संदेह धरौं ।।

दिगं.— अरे कापालिक (कुछ ठहरकर) नहीं आचारज वा आचार्ज रावलजी श्री आप महाराज ।।

भि.— अले इछ विचाले तपछली ने कबी मद पान तो कियाई नईं था इच्छे बावला ओगयाऐ महालाज आप इछका मद उताल दीजिए ।।

कापा.— ठीक है (अपने जूठे पान की सीठी देता है) ।

दिगं.— (जाकर और स्वस्थ होकर) आचार्य्य हों यह पूछूं के जैसी या मदिरा में आहरन सिद्धिछे वैसी स्त्री पुरुष के आहरण मैं छे के नहीं ।।

कापा.— अरे यह क्या पूछता है देख ।
सुर मुनि विद्याधर की नारी ।
यक्षरक्ष किन्नर की प्यारी ।।
स्वर्ग भूमि पाताल छिपाई ।
भौगैं सब विद्या बल लाई ।।

दिगं.— (कुछ उंगलियों पर गिनकर) सुणौ सुणौ अरे हमने गनित सूंजान्यौ के हम सब महा मोह के किंकर हैं ।

दोनो.— (स्वर्ण आनानाट्य करके) ठीक है आपने बहुत ठीक समझा है ।

दिगं.— तो अब राजा को कछु काम करो ।

कापा.— वह क्या ।

दिगं.— धर्म्म री बेटी श्रद्धा कूं पकड़ कै म्हाराज रे पास ले चलो ।।

कापा.— बोल वह दासी की पुत्री कहां है अभी उस्को विद्या के बल से खींच मंगाता हूँ ।

दिगं.— (खड़ी लेकर गणित करता है)

शा.— सखी देख यह सब माता की बात करते हैं इस्से कान लगा कर सुनना चाहिए ।

करु.— सखी ठीक है (दोनों सुनती हैं)

दिगं.— (विचारकर)
नहिं जल थल पाताल मैं, गिरवर हूं मैं नाहिं ।
कृश्न भक्ति के संग वह, बसत साधु चित माहिं ।।

करु— सखी बधाई है ! सुन तेरी मा श्रद्धा श्री कृश्न को भग्ति महारानी संग है ।।

(शां : हर्ष नाट्य करती है)

कापा— और कामदेव के डर से भागकर धर्म्म कहां छिपा है ।।

(दिगं : गिनकर "नहिं जल थल. . ." फिर से पढ़ता है)

कापा— (शोच से) हा महाराज के बुरे दिन आए ।

हरिभग्ति सबै कछु सिद्ध करै ।
सरधा सतकन्या का दोस हरै ।
पुनि धर्म्महूं सो कर छूटि गयो ।
सबहू बिधि हाय अनर्थ भयो ।।

जो होय प्राण रहे तक तो स्वामी का काम साधना ही है तो अब हम महाभैरवी विद्या का प्रयोग करके धर्म्म और श्रद्धा को खींचते हैं ।

।।चारों जाते हैं।।

शा— सखी चल हम लोग भी इन पापियों का मनोरथ देवी विष्णु भक्ति से कहैं ।

।।दोनों जाती हैं।।

।।जवनिका पतन।।

इति श्री प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में पाखंड बिडम्बन नाम यह तीसरा खेल समाप्त हुआ ।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

प्रहसन

परिहास पूर्ण शैली का यह नाटक सं. १९३० के शुरू में लिखा गया । २१ जून १८७२ के'' कविवचन सुधा' के अंक में इस नाटक के पूरे होने की सूचना छप चुकी थी । इसका पहला संस्करण मेडिकल हाल प्रेस से सन् १८७३ में निकला । बाद में १८८४ में इसे भारत जीवन प्रेस ने भी छापा । — सं०

DEDICATION

प्यारे,

मैं तुम्हें क्या तमाशा दिखाऊंगा हां धन्यवाद करूँगा क्योंकि निस्संदेह तुमने ऐसा तमाशा दिखाया कि सब कुछ भूल गया, अहा ! स्त्री पुरुष, पंडित मूर्ख, अपना बिगाना और छोटे बड़े सबका तमाशा देखा पर वाह ! क्या ही तमाशा है — तमाशा तो है पर देखनेवाले थोड़े हैं, न हो तुम देखो मैं देखूं उन्हीं तमाशाओं में से यह भी एक तमाशा है देखो ।

श्रावण शुद्ध ११
सोम – सं० १९३०

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

प्रहसन

नांदी

दोहा

बहु बकरा बलि हित कटै, जाके बिना प्रमान ।
सो हरि की माया करै, सब जग को कल्यान ।।

(सूत्रधार और नटी आती हैं)

सूत्रधार—अहा हा ! आज की संध्या की कैसी शोभा है । सब दिशा ऐसी लाल हो रही है, मानों किसी ने बलिदान किया है और पशु के रक्त से पृथ्वी लाल हो गई है ।

नटी— कहिए आज भी कोई लीला कीजिएगा ?

सूत्र.— बलिहारी ! अच्छी याद दिखाई, हां जो लोग मांसलीला करते हैं उनकी लीला करैंगे ।

(नेपथ्य में) अरे शैलूषाधम ! तू मेरी लीला क्या करैगा । चल भाग जा, नहीं तो मुझे भी खा जायँगे ।

(दोनों सभय) अरे हमारी बात गृध्रराज ने सुन ली, अब भागना चाहिए नहीं तौ बड़ा अनर्थ करैगा ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

प्रथम अंक

स्थान रक्त से रंगा हुआ राजभवन

(नेपथ्य में) बढ़े जाइयो ! कोटिन लवा बटेर के नाशक, वेद धर्म्म प्रकाशक, मंत्र से शुद्ध करके बकरा खानेवाले, दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ानेवाले, सहित सकल समाज श्रीगृधराज महागर्जाधिराज !

(गृध्रराज, चोबदार, पुरोहित और मंत्री आते हैं)

राजा— (बैठकर) आज की मछली कैसी स्वादिष्ट बनी थी।

पुरोहित— सत्य है। मानो अमृत में डुबोई थी और ऐसा कहा भी है —

केचित वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु केचित वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु।
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा : जंबीरनीर-परिपूरितमत्स्यखण्डे ।।

राजा— क्या तुम ब्राह्मण होकर ऐसा कहते हो ? ऐं तु साक्षात् ऋषि के वंश में होकर ऐसा कहते हो !

पुरो.— हां हां ! हम कहते हैं और वेद, शास्त्र, पुराण, तंत्र सब कहते हैं। "जीवो जीवस्य जीवनम्"

राजा— ठीक है इसमें कुछ संदेह नहीं है।

पुरो.— संदेह होता तो शास्त्र में क्यौं लिखा जाता। हां बिना देवी अथवा भैरव के समर्पण किए कुछ होता हो तो हो भी।

मंत्री— सो भी क्यों होने लगा भागवत में लिखा है।

"लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जन्तोर्नहि तत्र चोदना।"

पुरो.— सच है और देवी पूजा नित्य करना इसमें कुछ सन्देह नहीं, और जब देवी की पुजा भई तो मांस भक्षण आही गया। बलि बिना पूजा हो ही गी नहीं और जब बलि दिया तब उसका प्रसाद अवश्य ही लेना चाहिये। अजी भागवत में बलि देना लिखा है, जो वैष्णवों का परम पुरुषार्थ है।

'धूपोपहारबलिभिस्सर्वकामवरेश्वरी'

मंत्री— और 'पंचपंचनखा भक्ष्या :' यह सब वाक्य बराबर से शास्त्रों में कहते ही आते हैं।

पुरो.— हां हां, जी इसमें भी कुछ पूछना है अभी साक्षात् मनु जी कहते हैं —

'न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने'

और जो मनुजी ने लिखा है कि —

'स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति'

सो वही लिखते हैं।

'अनभ्यर्च्य पितृन् देवान्'

इससे जो खाली मांस भक्षण करते हैं उनको दोष है। महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मण गोमांस खा गय पर पितरों को समर्पित था इससे उन्हें कुछ भी पाप न हुआ।

मंत्री— जो सच पूछो तो दोष कुछ भी नहीं है चाहे पूजा करके खाओ चाहे वैसे खाओ।

पुरो.— हां जी यह सब मिथ्या एक प्रपंच है, खूब मजे में मांस कचर-२ के खाना और चैन करना। एक दिन तो आखिर मरना ही है, किस जीवन के वास्ते शरीर का व्यर्थ वैष्णवों की तरह क्लेश देना, इससे क्या होता है।

राजा— तो कल हम बड़ी पूजा करेंगे एक लाख बकरा और बहुत से पक्षी मँगवा रखना।

चोबदार— जो आज्ञा।

पुरो.— (उठ कर के नाचने लगा) अहा हा ! बड़ा आनंद भया, कल खूब पेट भरैगा।

(राग कान्हरा ताल चर्चरी)

धन्य वे लोग जो मांस खाते।
मच्छ बकरा लवा ससक हरना चिड़ा
भेड़ इत्यादि नित चाभ जाते।
प्रथम भोजन बहुरि होइ पूजा सुनित
अतिही सुखमा भरे दिवस जाते।
स्वर्ग को वास यह लोक में है तिन्हैं
नित्य एहि रीति दिन जे बिताते।

(नेपथ्य में वैतालिक)

राग सोरठ

सुनिए चित्त धरि यह बात।
बिना भक्षण मास के सब व्यर्थ जीवन जात।
जिन न खायो मच्छ जिन नहिं कियो मदिरा पान।
कछु कियो नहिं तिन जगत मैं यह सु निहचै जान ।।
जिन न चूम्यौ अधर सुंदर और गोल कपोल।
जिन न परस्यौ कुंभ कुच नहिं लखी नासा लोल ।।
एकहू निसि जिन न कीना भोग नहिं रस लीन।
जानिए निहचै ते पशु हैं तिन कछु नहिं कीन।

दोहा

एहि असार संसार में, चार वस्तु है सार।
जुआ मदिरा मांस अरु, नारी संग बिहार ।।

क्योंकि —

"मांस एव परो धर्मो मांस एव परा गति :।
मांस एव परो योगी मांस एव परं तप : ।।"

हे परम प्रचण्ड भुजदण्ड के बल से अनेक पाखण्ड के खण्ड को खण्डन करनेवाले, नित्य एक अजापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप में बढ़ती जाय और अस्थि माला धारण करनेवाले शिवजी आप का कल्याण करें आप बिना ऐसी पूजा और कौन करे । (आकर बैठता है)

पुरो.— वाह वाह ! सच है सच है ।

(नेपथ्य में)

पतीहीना तु या नारी पत्नीहीनस्तु न : पुमान् ।
उभाभ्यां षण्डरण्डाभ्यान्न . दोषो मनुरब्रवीत ।।

(सब चकित होकर)

ऐसा मालूम होता है कि कोई पुनर्विवाह का स्थापन करने वाला बंगाली आता है ।

(नंगे सिर बड़ी धोती पहिने बंगाली आता है)

बंगाली— अक्षर जिसके सब बे मेल, शब्द सब बे अर्थ न छंद वृत्ति, न कुछ, ऐसे भी मंत्र जिसके मुँह से निकलने से सब कार्य्यों के सिद्ध करने वाले हैं ऐसी भवानी और उनके उपदेष्टा शिवजी इस स्वतंत्र राजा का कल्याण करें ।

(राजा दण्डवत् करके बैठता है)

राजा— क्यों जी भट्टाचार्य जी पुनर्विवाह करना वा नहीं ।

बंगाली— पुनर्विवाह का करना क्या ! पुनर्विवाह अवश्य करना । सब शास्त्र की यही आज्ञा है, और पुनर्विवाह के न होने से बड़ा लोकसान होता है, धर्म का नाश होता है, ललनागन पुंश्चली हो जाती हैं जो विचार कर देखिए तो विधवागन का विवाह कर देना उनको नरक से निकाल लेना है और शास्त्र की भी आज्ञा है ।

''नष्टे मृत्ये प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ।।''
ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेद्यती गच्छेत्तपस्विनी !
अस्त्रीको विधवां गच्छेन्न दोषो मनुरब्रवीत ।।

राजा— यह वचन कहां का है ?

बंगाली— यह वचन श्रीपराशर भगवान का है जो इस युग के धर्म्मवक्ता हैं यथा —

'कलौ पाराशरी स्मृति :

राजा— क्यों पुरोहितजी, आप इसमें क्या कहते हैं ?

पुरो.— कितने साधारण धर्म्म ऐसे हैं कि जिनके न करने से कुछ पाप नहीं होता, जैसा — ''मध्याह्ने भोजनं कुर्यात्'' तो इसमें न करने से कुछ पाप नहीं है, वरन व्रत करने से पुण्य होता है । इसी तरह पुनर्विवाह भी है इसके करने से कुछ पाप नहीं होता और जो न करै तो पुण्य होता है । इसमें प्रमाण श्रीपाराशरीय स्मृति में —

''मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थिता ।
सा नारी लभते स्वर्गं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।''

इस वचन से, और भी बहुत जगह शास्त्र में आज्ञा है, सो जो विधवा विवाह करती हैं उनको पाप तो नहीं होता पर जो नहीं करतीं उनको पुण्य अवश्य होता है और व्यभिचारिणी होने का जो कहो सो तो विवाह होने पर भी जिस को व्यभिचार करना होगा सो करै ही गी जो आप ने पूछा वह हमारे समझ में तो यों आता है परन्तु सच पूछिए तो स्त्री तो जो चाहे सो करै इन को तो दोष ही नहीं है —

'न स्त्री जारेण दुष्यति' । 'स्त्रीमुखं तु सदा शुचि' ।
स्त्रियस्समस्ता : सकला जगत्सु' । 'व्यभिचारादृतौ शुद्ध :।

इनके हेतु तो कोई विधि निषेध है ही नहीं जो चाहैं करैं, चाहैं जितना विवाह करैं, यह तो केवल एक बखेड़ा मात्र है ।

(सब एक मुख हो कर) सत्य है, वाह वे क्यों न हो यथार्थ है ।

चोबदार— सन्ध्या भई महाराज !

राजा— सभा समाप्त करो ।

इति प्रथमांक

द्वितीय अंक

स्थान पूजाघर ।

(राजा, मंत्री, पुरोहित और उक्त भट्टाचार्य्य आते हैं । और अपने-अपने स्थान पर बैठते हैं)

चोबदार— (आकर) श्रीमच्छंकराचार्य्य मतानुयायी कोई वेदांती आया है ।

राजा— आदरपूर्वक ले आओ ।

(विदूषक आया)

विदूषक— हे भगवान इस बकवादी राजा का नित्य कल्याण हो जिससे हमारा नित्य पेट भरता है । हे ब्राह्मण लोगों ! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंस सहित वास करैं और उसकी पूंछ मुख में न अटकै । हे पुरोहित, नित्य देवी के सामने मराया करो और प्रसाद खाया करो ।

(बीच में उतर फेर कर बैठ गया)

राजा— अरे मूर्ख फिर के बैठ ।

विदू.— ब्राह्मण को मूर्ख कहते हो फिर हम नहीं जानते जो कुछ तुम्हें दंड मिलै, हां !

राजा — चल मुझ उद्दंड को कौन दंड देनेवाला है ।

विदू. — हां फिर मालूम होगा ।

(वेदांती आए)

राजा — बैठिए ।

वेदांती — अद्वैतमत के प्रकाश करनेवाले भगवान शंकराचार्य इस मायाकल्पित मिथ्या संसार से तुझको मुक्त करें ।

विदू. — क्यों वेदांतीजी, आप मांस खाते हैं कि नहीं ?

वेदांती — तुमको इससे कुछ प्रयोजन है ?

विदू. — नहीं, कुछ प्रयोजन तो नहीं है । हमने इस वास्ते पूछा कि आप वेदांती अर्थात् बिना दाँत के हैं सो आप भक्षण कैसे करते होंगे ।

(वेदांती टेढ़ी दृष्टि से देखकर चुप रह गया । सब लोग हँस पड़े)

विदू. — (बंगाली से) तुम क्या देखते हो ? तुम्हें तो चैन है । बंगाली मात्र मच्छ भोजन करते हैं ।

बंगाली — हम तो बंगालियों में वैष्णव हैं । नित्यानंद महाप्रभु के संप्रदाय में हैं और मांसभक्षण कदापि नहीं करते और मच्छ तो कुछ मांसभक्षण में नहीं ।

वेदांती — इसमें प्रमाण क्या ?

बंगाली — इसमें यह प्रमाण कि मत्स्य की उत्पत्ति वीर्य और रज से नहीं है । इनकी उत्पत्ति जल से है । इस हेतु जो फलादिक भक्ष्य हैं तो ये भी भक्ष्य हैं ।

पुरो. — साधु-साधु ! क्यों न हो । सत्य है ।

वेदांती — क्या तुम वैष्णव बनते हो ? किस संप्रदाय के वैष्णव हो ?

बंगाली — हम नित्यानंद महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय में हैं और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण ही हैं, इसमें प्रमाण श्रीभागवत में —

कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदं ।
यज्ञै : संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति ह्यणुमेधसा ।।

वेदांती — वैष्णवों के आचार्य्य तो चार हैं । तो तुम इन चारों से विलक्षण कहाँ से आए ?

अत : कलौ भविष्यन्ति चत्वार : सम्प्रदायिन : ।

राजा — जाने दो, इस कोरी बकवाद का क्या फल है ?

(नेपथ्य में)

उमासहायं परमेश्वरं विभुं त्रिलोचनं नीलकंठं दयालुम ।

(पुन :) गोविन्द नारायण माधवेति ।

पुरो. — कोई वैष्णव और शैव आते हैं ।

राजा — चोबदार जा करके आदर से ले आओ ।

(चोबदार बाहर गया, वैष्णव और शैव को लेकर फिर आया)

(राजा ने उठकर दोनों को बैठाया)

दोनों — शंख कपाल लिए कर मैं, कर दूसरे
चक्र त्रिशूल सुधारे ।
माल बनी मणि अस्थि की कंठ मैं
तेज दसो दिसि माँफ पसारे ।।
राधिका पारवती दिसि बाम,
सबै जगनाशन पालनवारे ।
चंदन भस्म को लेप किए हरि ईश,
हरैं सब दु :ख तुम्हारे ।।

बंगाली — महाराज, शैव और वैष्णव ये दोनों मत वेद के बाहर हैं ।

सर्वे शाक्ता द्विजा : प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवा : ।
आदिदेवीमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम ।।
तथा —तस्मान्माहेश्वरी प्रजा ।
इस युग का शास्त्र तंत्र हैं ।
कृते श्रुत्युक्तमार्गाश्च त्रेतायां स्मृतिभाषिता : ।
द्वापरे वै पुराणोक्ता : कलावागमसंभवा : ।।

विद्यासुन्दर पेज न. १३ फाइल विद्या.०३ डिस्क १

शैव — मुंह सम्हाल के बोला करो, उस श्लोक का अर्थ सुनो, सर्वे शाक्ता द्विजा : प्रोक्ता : परंतु, शैवा वैष्णवा न शाक्ता : प्रोक्ता : । जो केवल गायत्री की उपासना करते हैं वे शाक्त हैं । 'पुराणे हरिणा प्रोक्तौ मार्गों द्वौ शैववैष्णवौ' । और वेदों करके वेद्य शिव ही हैं ।

बंगाली —भवव्रतधारा ये च ये च तान्समनुव्रता : पाखण्डिनश्च ते सर्व्वे सच्छास्त्रपरिपन्थिन : ।। इस वाक्य में क्या कहते हैं ?

शैव — इस वाक्य में ठीक कहते हैं । इसके आगेवाले वाक्यों से इसको मिलाओ । यह दोनों तांत्रिकों ही के वास्ते लिखते हैं । वह शैव कैसे कि — 'नष्टश्शौचा मूढधियो जटा भस्मास्थिधारिण : ।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र देवं सुरासवम ।।
तो जहाँ देव सुरा और आसव यही है अर्थात तांत्रिक शैव, कुछ हम लोग शुद्ध शैव नहीं ।

राजा — भला वैष्णव और शैव मांस खाते हैं कि नहीं ?

शैव — महाराज, वैष्णव तो नहीं खाते और शैवों को भी न खाना चाहिए परंतु अब के नष्ट बुद्धि शैव खाते हैं ।

पुरो. — महाराज, वैष्णवों का मत तो जैनमत की एक शाखा है और महाराज दयानंद स्वामी ने इन सबका खूब खण्डन किया है, पर वह तो देवी की मूर्ति भी तोड़ने को कहते हैं । यह नहीं हो सकता क्योंकि फिर बलिदान किसके सामने होगा ?

(नेपथ्य में) नारायण

राजा — कोई साधु आता है ।

(धूर्तशिरोमणि गंडकीदास का प्रवेश)

राजा — आइए गंडकीदास जी ।

पुरो. — गंडकीदासजी हमारे बड़े मित्र हैं । यह और वैष्णवों की तरह जंजाल में नहीं फँसे हैं । यह आनंद से संसार का सुख भोग करते हैं ।

गंडकी — (धीरे से पुरोहित से) अजी, इस सभा में हमारी प्रतिष्ठा मत बिगाड़ो । वह तो एकांत की बात है ।

पुरो. — वाह जी इसमें चोरी की कौन बात है ?

गंडकी — (धीरे से) यहाँ वह वैष्णव और शैव बैठे हैं ।

पुरो. — वैष्णव तुम्हारा क्या कर लेगा ! क्या किसी की डर पड़ी है ?

विदू. — महाराज, गंडकीदासजी का नाम तो रंडादासजी होता तो अच्छा होता ।

राजा — क्यों ?

विदू. — यह तो रंडा ही के दास हैं ।

आशंखचक्रांकितबाहुदण्डा गृहे समालिंगितबालरण्डा : ।
अथच — भण्डा भविष्यन्ति कलौ प्रचण्डा : ।
रण्डामण्डलमण्डनेषु पटवो धूर्ता : कलौ वैष्णवा : ।

शैव, वैष्णव और वेदांती — अब हम लोग आज्ञा लेते हैं । इस सभा में रहने का हमारा धर्म नहीं ।

विदू. — दंडवत, दंडवत जाइए भी किसी तरह ।

(सब जाते हैं)

विदू. — महाराज, अच्छा हुआ यह सब चले गए । अब आप भी चलें । पूजा का समय हुआ ।

राजा — ठीक है ।

(जवनिका गिरती है)

तृतीय अंक

स्थान राजपथ

(पुरोहित गले में माला पहिने टीका दिए बोतल लिए उन्मत्त सा आता है)

पुरो. — (घूमकर) वह भगवान करै ऐसी पूजा नित्य हो, अहा ! राजा धन्य है कि ऐसा धर्मनिष्ठ है, आज तो मेरा घर मांस मदिरा से भर गया । अहा ! और आज की पूजा की कैसी शोभा थी, एक ओर ब्राह्मणों का वेद पढ़ना, दूसरी ओर बलिदानवालों का कूद-कूदकर बकरा काटना 'वाचं ते शुंधामि', तीसरी ओर बकरों का तड़पना और चिलाना, चौथी ओर मदिरा के घड़ों की शोभा और बीच में होम का कुंड, उसमें मांस का चटचटाकर जलना और उसमें से चिरहिन की सुगन्ध का निकलना, वैसा ही लोहू का चारों ओर फैलना और मदिरा की छलक, तथा ब्राह्मणों का मद्य पीकर पागल होना, चारों ओर घी और चरबी का बहना, मानो इस मंत्र की पुकार सत्य होती थी ।

'घृतं घृतपावान : पिबत बसां वसापावान : ।'

अहा ! वैसी ही कुमारियों की पूजा —

'इमं ते उपस्थं मधुना सृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्-द्वितीयं तस्या योनिं परिपश्यंति धीरा : ।'

अहा हा ! कुछ कहने की बात नहीं है सब बातें उपस्थित थीं ।

'मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धव :

ऐसे ही मदिरा की नदी बहती थी । (कुछ ठहर कर) जो कुछ हो मेरा तो कल्याण हो गया, अब इस धर्म्म के आगे तो सब धर्म्म तुच्छ हैं और जो मांस न खाय वह तो हिन्दू नहीं जैन है वेद में सब स्थानों पर बलि देना लिखा है । ऐसा कौन सा यज्ञ है जो बिना बलिदान का है और ऐसा कौन देवता है जो मांस बिना ही प्रसन्न हो जाता है, और जाने दीजिए इस काल में ऐसा कौन है जो मांस नहीं खाता ? क्या छिपा के क्या खुले-खुले, अँगौछे में मांस और पोथी के चोंगें में मद्य छिपाई जाती है । उसमें जिन हिंदुओं ने थोड़ी भी अंगरेजी पढ़ी है वा जिनके घर में मुसलमानी स्त्री है उनकी तो कुछ बात ही नहीं, आजाद है । (सिर पकड़कर) हैं माथा क्यों घूमता है ? अरे मदिरा ने तो जोर किया । (उठ कर गाता है) ।

जोर किया जोर किया जोर किया रे, आज तो मैंने नशा जोरे किया रे । साँझहि से हम पीने बैठे पीते पीते भोर किया रे ।। आज तो मैंने.

(गिरता पड़ता नाचता है)

रामरस पीओ रे भाई, जो पीए सो अमर होय जाई ।

चौके भीतर मुरदा पाकैं जवेलै नहाय कै ऐसन जनम जर जाई ।। रामरस पीओ रे भाई

अरे जो बकरी पत्ती खात है ताकी काढ़ी खाल ।
अरो जो नर बकरी खात है तिनको कौन हवाल ।।
रामरस पीओ रे भाई

यह माया हरि की कलवारिन मद पियाय राखा बौराई ।
एक पड़ा भुइँया में लोटै दूसर कहै चोखो दे माई ।।
रामरस पीओ रे भाई

अरे चढ़ी है सो चढ़ी नहिं उतरन को नाम ।
भर रही खुमारी तब क्या रे किसी से है काम ।।
रामरस पीओ रे भाई

मीन काट जल धोइए खाए अधिक पियास ।
अरे तुलसी प्रीत सराहिए मुए मीत की आस ।
रामरस पीओ रे भाई

अरे मीन पीन पाठीन पुराना भरि भरि भार कंहारन आना ।
महिष खाई करि मदिरा पाना अरे गरजा रे कुंभकरन बलवाना ।। रामरस पीओ रे भाई

ऐसा है कोई हरिजन मोदी तन की तपन बुझावैगा ।
पूरन प्याला पिये हरी का फेर जनम नहिं पावैगा ।
रामरस पीओ रे भाई

अरे भक्तों ने रसोई की तो मरजाद ही खोई ।
कलिए की जगह पकने लगी रामतरोई रे ।
रामरस पीओ रे भाई

भगतजी गदहा क्यों न भयो ।
जब से छोडयो माँस-मछरिया सत्यानाश भयो ।
रामरस पीओ रे भाई

अरे एकादशी के मछली खाई ।
अरे कबौं मरे बैकुंठे जाई ।
रामरस पीओ रे भाई

अरे तिल भर मछरी खाइबो कोटि गऊ को दान ।
ते नर सीधे जात हैं सुरपुर बैठि विमान ।
रामरस पीओ रे भाई

कंठी तोड़ो माला तोड़ो गंगा देह बहाई ।
अरे मदिरा पीयो खाइ कै मछरी बकरा जाह चबाई ।।
रामरस पीओ रे भाई

ऐसी गाढ़ी पीजिए ज्यौं मोरी की कीच ।
घर के जाने मर गए आप नशे के बीच ।
रामरस पीओ रे भाई

(नाचता नाचता गिर के अचेत हो जाता है)

(मतवाले बने हुए राजा और मंत्री आते हैं)

राजा— मंत्री पुरोहितजी बेसुध पड़े हैं ।

मंत्री— महाराज पुरोहित जी आनंद में हैं । ऐसे ही लोगों को मोक्ष मिलता है ।

राजा— सच है । कहा भी है —

पीत्वा पीत्वा पुन: पीत्वा पतित्वा धरणीतले ।
उत्थाय च पुन: पीत्वा नरो मुक्तिमवाप्नुयात् ।

मंत्री— महाराज, संसार के सार मदिरा और मांस ही हैं ।

'मकारा : पञ्च दुर्लभा : ।'

राजा— इसमें क्या संदेह ।

वेद वेद सबही कहैं, भेद न पायो कोय ।
बिन मदिरा के पान सो, मुक्ति कहो क्यों होय ।

मंत्री— महाराज, ईश्वर ने बकरा इसी हेतु बनाया ही है, नहीं और बकरा बनाने का काम क्या था ? बकरे केवल यज्ञार्थ बने हैं और मद्य पानार्थ ।

राजा— यज्ञो वै विष्णु : यज्ञेन यज्ञमयजंति देवा : यज्ञाद्भवति पर्ज्जन्य :, इत्यादि श्रुतिस्मृति में यज्ञ की कैसी स्तुति है और ''जीवो जीवस्य जीवन'' जीव इसी के हेतु हैं क्योंकि —''मांस भात को छोड़िकै का नर खैहैं घास ?''

मंत्री— और फिर महाराज, यदि पाप होता भी हो तो मूर्खों को होता होगा । जो वेदांती अपनी आत्मा में रमण करनेवाले ब्रह्मस्वरूप ज्ञानी हैं उनको क्यों होने लगा ? कहा है न —

यावद्व्रतोस्मि हंतास्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् ।
तावदेवाभिमानज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिता : ।।
नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावक : ।।
अच्छेद्योयामदह्योयमक्लेद्यो शोष्य एव च ।
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

इससे हमारे आप से ज्ञानियों को तो कोई बंधन नहीं है । और सुनिए मदिरा को अब लोग कमेटी करके उठाया चाहते हैं वाह बे वाह !

राजा— छि : अजी मद्यपान गीता में लिखा है ''मद्याजी मां नमस्कुरु ।''

मंत्री— और इस संसार में मांस और मद्य से बढ़कर कोई वस्तु है भी तो नहीं ।

राजा— अहा ! मदिरा की समता कौन करेगा जिसके हेतु लोग अपना धर्म छोड़ देते हैं । देखो —

मदिरा ही के पान हित, हिंदू धर्महि छोड़ ।
बहुत लोग ब्राह्मो बनत, निज कुल सों मुख मोड़ ।।
ब्रांडी को अरु ब्राह्म को, पहिलो अक्षर एक ।
तासों ब्राह्मो धर्म में, यामें दोस न नेक ।

मंत्री—महाराज, ब्राह्मों को कौन कहे हम लोग तो वैदिक धर्म्म मानकर सौत्रामणि यज्ञ करके मदिरा पी सकते हैं ।

राजा—सच है, देखो न —

मदिरा को तो अंत अरु आदि राम को नाम ।
तासों तामैं दोष कछु नहिं यह बुद्धि ललाम ।
तिष्ठ तिष्ठ क्षण मद्य हम पियैं न जब लौं नीच ।
यह कहि देवी क्रोध सों हन्यौ शुंभ रन बीच ।।
मद पी विधि जग को करत, पालत हरि करि पान ।
मद्यहि पी कै नाश सब करत शंभु भगवान ।।
विष्णु वारुनी, पोर्ट पुरुषोत्तम मद्य मुरारि ।
शांपिन शिव, गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म विचारि ।।

मंत्री—और फिर महाराज, ऐसा कौन है जो मद्य नहीं पीता, इससे तो हमीं लोग न अच्छे जो विधिपूर्वक वेद की रीति से पान करते हैं और यों छिपके इस समय में कौन नहीं करता ।

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु सैयद सेख पठान ।
दे बताइ मोहि कौन जो करत न मदिरा पान ।।
पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुत्रगतिन के वृंद ।।
गौतम पियत अनंद सों पियत अग्र के नंद ।।
ब्राह्मण सब छिपि छिपि पियत जामैं जानि न जाय ।
पोथी के चोंगान भरि बोतल बगल छिपाय ।।
वैष्णव लोग कहावहीं कंठी मुद्रा धारि ।
छिपि छिपि कै मदिरा पियहिं, यह जिय मांझ विचारि ।
होटल में मदिरा पियैं, चोट लगे नहिं लाज ।
लोट गए ठाढ़े रहत टोटल देवै काज ।।
राजा राजकुमार मिलि बाबू लीने संग ।
बार-बधुन लै बाग में पीअत भरे उमंग ।।

राजा—सच है इसमें क्या संदेह है ।

मंत्री—महाराज, मेरा सिर घूमता है और ऐसी इच्छा होती है कि कुछ नाचूं और गाऊं ।

राजा—ठीक है मैं भी नाचूं-गाऊंगा, तुम प्रारंभ करो ।

(मंत्री उठकर राजा का हाथ पकड़ कर गिरता-पड़ता नाचता और गाता है)

पीले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरी रस का रे ।
तननं तननं तननं तननं में गाने का है चसका रे ।।
निनि धध पप मम गग रिरि सासा भरले सुर अपने बस का रे ।
धिधिकट धिधिकट धिधिकट धाधा बजे मृदंग थाप कस का रे ।।
पीले अवधू के. ।

भट्ठी नहिं सिल लोढ़ा नहीं धारधार ।
पलकन की फेरन में चढ़त धुआंधार ।।
पीले अवधू के. ।
कलवारिन मदमाती काम कलोल ।
भरि भरि देत पियलवा महा ठठोल ।
पीले अवधू के. ।
अरी गुलाबी गाल को लिए गुलाबी हाथ ।
मोहि दिखाव मद की झलक छलक पियालो साथ ।।
पीले अवधू के. ।
बहार आई है भर दे बादए गुलगूं से पैमाना ।
रहे लाखों बरस साकी तेरा आबाद मैखाना ।।
सम्हल बैठो अरे मस्तो जरा हुशियार हो जाओ ।
कि साकी हाथ में मै का लिए पैमाना आता है ।
उड़ाता खाक सिर पर झूमता मस्ताना आता है ।
पीले अवधू के — अहाँ अहाँ अहाँ ।।
यह अठरंग है लोग चतुरंग ही गाते हैं ।

न जाय न जाय मो सों मदवा भरीलो न जाय तब फिर कहाँ से —

ड्रिंक डीप ऑर टेस्ट नॉट द पीयरियन स्प्रिंग ।
Drink deep or taste not the Pierian spring
पीले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरा रस का रे ।

(एक दूसरे के सिर पर धौल मारकर ताल देकर नाचते हैं । फिर एक पुरोहित का सिर पकड़ता है दूसरा पैर और उसको लेकर नाचते हैं ।)

(जवनिका गिरती है)

चतुर्थ अंक

स्थान —यमपुरी

(यमराज बैठे हैं, और चित्रगुप्त पास खड़े हैं)

(चार दूत राजा, पुरोहित, मंत्री, गंडकीदास, शैव और वैष्णव को पकड़ कर लाते हैं)

१ दूत—(राजा के सिर में धौल मारकर) चल बे चल, अब यहाँ तेरा राज नहीं है कि छत्र-चंवर होगा, फूल के पैर रखता है, चल भगवान् यम के सामने और अपने पाप का फल भुगत, बहुत कूद-कूद के हिंसा की और मदिरा पी, सौ सोनार की न एक लोहार की । (दो धौल और लगाता है)

२ दूत—(पुरोहित को घसीटकर) चलिए पुरोहितजी, दक्षिणा लीजिये, वहां आपने चक्र-पूजन किया था, यहां चक्र में आप में चलिए, देखिए बलिदान का कैसा बदला लिया जाता है ।

३ दूत — (मंत्री की नाक पकड़कर) चल बे चल, राज के प्रबन्ध के दिन गये, जूती खाने के दिन आए, चल अपने किये का फल ले ।

४ दूत — (गंडकीदास का कान पकड़कर झोंका देकर) चल रे पाखंडी चल, यहाँ लंबा टीका काम न आवेगा । देख वह सामने पाखंडियों का मार्ग देखने वाले सर्प मुंह खोले बैठे हैं ।

(सब यमराज के सामने जाते हैं)

यम. — (वैष्णव और शैव से) आप लोग यहाँ आकर मेरे पास बैठिए ।

वै. और शै. — जो आज्ञा । (यमराज के पास बैठ जाते हैं ।)

यम. — चित्रगुप्त देखो तो इस राजा ने कौन-कौन कर्म किये हैं ।

चित्र. — (बही देखकर) महाराज, सुनिये, यह राजा जन्म से पाप में रत रहा, इसने धर्म्म को अधर्म्म माना और अधर्म्म को धर्म्म माना, जो जी चाहा किया और उसकी व्यवस्था पण्डितों से ले ली, लाखों जीव का इसने नाश किया और हजारों घड़े मदिरा के पी गया पर आड़ सर्व्वदा धर्म्म की रखी, अहिंसा, सत्य, शौच, दया, शांति और तप आदि सच्चे धर्म्म इसने एक न किये, जो कुछ किया वह केवल वितंडा कर्म-जाल किया, जिसमें मांस भक्षण और मदिरा पीने को मिलै, और परमेश्वर-प्रीत्यर्थ इसने एक कौड़ी भी नहीं व्यय की, जो कुछ व्यय किया सब नाम और प्रतिष्ठा पाने के हेतु ।

यम. — प्रतिष्ठा कैसी, धर्म्म और प्रतिष्ठा से क्या सम्बन्ध ?

चित्र. — महाराज सर्कार अंगरेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको "स्टार आफ इंडिया' की पदवी मिलती है ।

यम. — अच्छा ! तो बड़ा ही नीच है, क्या हुआ मैं तो उपस्थित ही हूँ

"अंतःप्रच्छन्न पापानां शास्ता वैवस्वतो यमः"

भला पुरोहित के कर्म्म तो सुनाओ ।

चित्र. — महाराज यह शुद्ध नास्तिक है, केवल दंभ से यज्ञोपवीत पहने है, यह तो इसी श्लोक के अनुरूप है —

अंतः शाक्ता बहिःशैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः ।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ।।

इसने शुद्ध चित्त से ईश्वर पर कभी विश्वास नहीं किया, जो-जो पक्ष राजा ने उठाये उसका समर्थन करता रहा और टके-टके पर धर्म्म छोड़ कर इसने मनमानी व्यवस्था दी, दक्षिणा मात्र दे दीजिए फिर जो कहिए उसी में पंडितजी की सम्मति है, केवल इधर उधर कमंडलाचार करते इसका जन्म बीता और राजा के संग से मांस-मद्य का भी बहुत सेवन किया, सैकड़ों जीव अपने हाथ से बध कर डाले ।

यम. — अरे यह तो बड़ा दुष्ट है, क्या हुआ मुझसे काम पड़ा है, यह बचा जी तो ऐसे ठीक होंगे जैसा चाहिये, अब तुम मंत्री जी के चरित्र कहो ।

चित्र. — महाराज, मंत्रीजी की कुछ न पूछिए । इसने कभी स्वामी का भला नहीं किया, केवल चुटकी बजाकर हां में हां मिलाया, मुंह पर स्तुति पीछे निंदा, अपना घर बनाने से काम, स्वामी चाहे चूल्हे में पड़े, घूस लेते जन्म बीता, मांस और मद्य के बिना इसने न और धर्म्म जाने न कर्म्म जाने — यह मंत्री की व्यवस्था है, प्रजा पर कर लगाने में तो पहले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया ।

यम. — भला ये श्रीगंडकीदास जी आये हैं इनका पवित्र चरित्र पढ़ो कि सुनकर कृतार्थ हों, देखने में तो बड़े लम्बे लम्बे तिलक दिये हैं ।

चित्र. — महाराज, ये गुरु लोग हैं, इनके चरित्र कुछ न पूछिए, केवल दंभार्थ इनका तिलक मुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति से मूर्ति को दंडवत न किया होगा पर मंदिर में जो स्त्रियाँ आईं उनको सर्वदा तकते रहे, महाराज, इन्होंने अनेकों को कृतार्थ किया और समय तो मैं श्रीरामचंद्रजी का श्रीकृष्ण का दास हूँ पर जब स्त्री सामने आवे तो उससे कहेंगे मैं राम तुम जानकी, मैं कृष्ण तुम गोपी और स्त्रियाँ भी ऐसी मूर्ख कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं, हा ! महाराज, ऐसे पापी धर्मवंचकों को आप किस नरक में भेजियेगा ।

(नेपथ्य में बड़ा कलकल होता है)

यम. — कोई दूत जाकर देखो यह क्या उपद्रव है ।

१ दूत — जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज, संयमनीपुरी की प्रजा बड़ी दुखी है, पुकार करती है कि ऐसे आज कौन पापी नरक में आए हैं जिनके अंग के वायु से हम लोगों का सिर घूमा जाता है और अंग जलता है । इनको तो महाराज शीघ्र ही नरक में भेजें नहीं तो हम लोगों के प्राण निकल जायंगे ।

यम. — सच है, ये ऐसे ही पापी हैं, अभी मैं इनका दंड करता हूँ, कह दो घबड़ायें न ।

१ दूत— जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है)

यम.— (राजा से) तुझ पर जो दोष ठहराए गए हैं बोल उसका क्या उत्तर देता है ।

राजा— (हाथ जोड़कर) महाराज, मैंने तो अपने जान सब धर्म ही किया कोई पाप नहीं किया, जो मांस खाया वह देवता-पितर को चढ़ाकर खाया और देखिए महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मणों ने भूख के मारे गोवध करके खा लिया पर श्राद्ध कर लिया था इससे कुछ नहीं हुआ ।

यम.— कुछ नहीं हुआ, लगें इसको कोड़े ।

२ दूत— जो आज्ञा । (कोड़े मारता है)

राजा— (हाथ से बचा-बचाकर) हाय-हाय, दुहाई-दुहाई, सुन लीजिए —

सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगा: कालंजरे गिरौ ।
चक्रवाका: शरद्वीपे हंसा: सरसि मानसे ।।
तेपि जाता: कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगा: ।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ।।

यह वाक्य लोग श्राद्ध के पहले श्राद्ध शुद्ध होने को पढ़ते हैं फिर मैंने क्या पाप किया । अब देखिए अंगरेजों के राज्य में इतनी गोहिंसा होती है सब हिंदू बीफ खाते हैं उन्हें आप नहीं दंड देते और हाय हमसे धार्म्मिक की यह दशा, दुहाई वेदों की दुहाई धर्म्म शास्त्र की, दुहाई व्यासजी की, हाय रे मैं इनके भरोसे मारा गया ।

यम.— बस चुप रहो, कोई है ? यह अंधतामिस्र नामक नरक में जायगा । अभी इसके अलग रखो ।

१ दूत— जो आज्ञा महाराज । (पकड़-खींचकर एक ओर खड़ा करता है) ।

यम.— (पुरोहित से) बोल बे ब्राह्मणधम ! तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है ।

पुरो.— (हाथ जोड़कर) महाराज, मैं क्या उत्तर दूंगा, वेद-पुराण सब उत्तर देता है ।

यम.— लगें कोड़े, दुष्ट वेद-पुराण का नाम लेता है ।

२ दूत— जो आज्ञा (कोड़े मारता है)

पुरो.— दुहाई-दुहाई, मेरी बात तो सुन लीजिए । यदि मांस खाना बुरा है तो दूध क्यों पीते हैं, दूध भी तो मांस ही है और अन्न क्यों खाते हैं अन्न मे भी तो जीव है और वैसे ही सुरापान बुरा है जो वेद में सोमपान क्यों लिखा है और महाराज, मैंने तो जो बकरे खाए वह जगदंबा के सामने बलि देकर खाए, अपने हेतु कभी हत्या नहीं की और न अपने राजा साहब की भाँति मृगया की । दुहाई, ब्राह्मण व्यर्थ पीसा जाता है । और महाराज, मैं अपनी गवाही के हेतु बाबू राजेन्द्रलाल के दोनो लेख देता हूँ, उन्होंने वाक्य और दलीलों से सिद्ध कर दिया है कि मांस की कौन कहे गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं, आगे के हिंदू सब खाते-पीते थे । आप चाहिए एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल मंगा के देख लीजिए ।

यम.— बस चुप, दुष्ट ! जगदंबा कहता है और फिर उसी के सामने उसी जगत के बकरे को अर्थात उसके पुत्र ही को बलि देता है । अरे दुष्ट अपनी अंबा कह, जगदंबा क्यों कहता है, क्या बकरा जगत के बाहर है ? चांडाल सिंह को बलि नहीं देता —'अजापुत्रं बलिं दद्याद्दैवोदुर्बलघातक:' कोई है ? इसको सूचीमुख नामक नरक में डालो । दुष्ट कहीं का वेद-पुराण का नाम लेता है । मांस-मदिरा खाना-पीना है तो यों ही खाने में किसने रोका है धर्म्म को बीच में क्यों डालता है, बाँधो ।

२ दूत— जो आज्ञा महाराज । (बांध कर एक ओर खड़ा करता है) ।

मंत्री— (आप ही आप) मैं क्या उत्तर दूँ, यहाँ तो सब बात बेरंग है । इन भयानवी मूर्तियों को देखकर प्राण सूखे जाते हैं उत्तर क्या दूं । हाय-हाय, इनके ऐसे बड़े-बड़े दाँत हैं कि मुझे तो एक ही कवर कर जाएंगे ।

यम.— बोल जल्दी ।

३ दूत— (एक कोड़ा मारकर) बोलता है कि नहीं ।

मंत्री— (हाथ जोड़कर) महाराज, अभी सोंचकर, बड़ी कठिनाइई और बड़े-बड़े अधर्म्म से एकत्र किया है सब आपको भेंट करूंगा और मैं निरपराधी कुटुंबी हूँ मुझे छोड़ दीजिये ।

चित्र.— (सक्रोध से) अरे दुष्ट, यह भी क्या, मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहां के न्यायकर्त्ताओं की भांति जंगल, से पकड़ कर आए हैं कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते । जहां तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेनेवालों की भी होगी ।

यम.— (क्रोध से) क्या यह दुष्ट द्रव्य दिखाता है ? भला रे दुष्ट ! कोई है इसको पकड़कर कुंभीपाक में डालो ।

३ दूत-- जो आज्ञा महाराज। (पकड़कर खींचता है)।

यम.-- अब आप बोलिए बाबाजी, आप अपने पापों का क्या उत्तर देते हैं ?

गंडकी.— मैं क्या उत्तर दूँगा। पाप पुण्य जो करता है ईश्वर करता है। इसमें मनुष्य का क्या दोष है।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशे र्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन सर्व्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मामया।।

मैं तो आज तक सर्व्वदा अच्छा ही करता रहा।

यम.--- कोई है ? लगें कोड़े दुष्ट को, अब ईश्वर फल भी भुगतैगा। हाय हाय, ये दुष्ट दूसरों की स्त्रियों को मां और बेटी कहते हैं और लंबा लंबा टीका लगाकर लोगों को ठगते हैं।

४ दूत-- महाराज यह किस नरक में जायगा। (कोड़े मारता है)

गंडकी.— हाय-हाय, दुहाई, अरे कंठी-टीका कुछ काम न आया। अरे कोई नहीं है जो इस समय बचावै।

यम.-- यह दुष्ट रौरव नरक में जायगा जहां इसको ऐसे ही अनेक धर्म्मवंचक मिलैंगे। ले जाओ सबको।

(चारों दूत चारों को पकड़कर घसीटते और मारते हैं और चारों चिल्लाते हैं)

चारों—

अरे 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'
हाय रे 'अग्निष्टोमे पशुमालभेत।'
अरे बाप रे "सौत्रामण्यां सुरा पिबेत।"
भैया रे "श्रोत्रं ते शुंधामि।"

यही कहकर चिल्लाते हैं और दूत लोग उसको घसीटकर मारते मारते ले जाते हैं)

यम.- (शैव और वैष्णव से) आप लोगों को अकृत्रिम भक्ति से ईश्वर ने आपको कैलास और बैकुंठ वास की आज्ञा दी है सो आप लोग जाइए और अपने सुकृत का फल भोगिए। आप लोगों ने इस धर्म्म वंचकों की दशा तो देखी ही है, देखिए पापियों की यह गति होती है और आप से सुकृतियों को ईश्वर प्रसन्न होकर सामीप्य मुक्ति देता है सो लीजिए, आप लोगों को परम पद मिला। बधाई है, कहिए इससे भी विशेष कोई आपका हित हो तो मैं पूर्ण करूं।

शै. और वै.— (हाथ जोड़कर) भगवन् इनसे बढ़कर और हम लोगों का क्या हित होगा। तथापि यह नाट्काचार्य्य भरतऋषि का वाक्य सफल हो।

निज स्वारथ को धरम-दूर या जग सों होई।
ईश्वर पद मैं भक्ति करैं छल बिन् सब कोई।
खल के बिष-बैनन सों मत सज्जन दुख पावैं।
छूटै राजकर मेघ समय पै जल बरसावैं।।
कजरी ठुमरिन सों मोड़ि मुख सत कविता सब कोउ कहैं।
यह कवि बानि बुध-बदन में
रवि ससि लौं प्रगटित रहैं।।

(सब जाते हैं)

(जवनिका गिरती है।)

इति चतुर्थोऽङ्कः।

समाप्तं प्रहसनं।

धनंजय विजय

मूल संस्कृत में है। इसके रचयिता कांचन पंडित थे। इसका समय संदिग्ध है। लेकिन भारतेन्दु ने इसे व्यायोग में सं. १५३७ की एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है। जिससे इसके समय की अंतिम सीमा जरूर निर्धारित होती है। यह "पहिले पहल" हरिश्चंद्र मैगजीन में सन् १८७३ ई. में प्रकाशित हुआ। - सं.

॥धनंजय विजय॥

व्यायोग

श्री नारायण उपाध्याय के पुत्र

श्री कवि कांचन

का बनाया

हिंदी भाषा के रसिकों के आनन्दार्थ

श्री हरिश्चन्द्र

ने मूल गद्य के स्थान में गद्य और छन्द के स्थान में छन्द में

अनुवाद किया

बनारस

मेडिकल हाल के छापेखाने में छापी गई।

सन् १८७४ ई.

प्यारे :

निश्चय इस ग्रंथ से तो तुम बड़े प्रसन्न होगे क्योंकि अच्छे लोग अपनी कीर्ति से बढ़कर अपने जन की कीर्त्ति से सन्तुष्ट होते हैं तो इस हेतु इस होली के आरम्भ के त्यौहार माघी पूर्णिमा में हे धनंजय और निधनंजय के मित्र! यह धनंजय विजय तुम्हें समर्पित है स्वीकार करो।

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र

धनंजय विजय

व्यायोग

(नान्दी आर्शीवाद पढ़ता है)

हरेर्लीली वराहस्य द्रंष्ट्रादण्ड: स पातु व:।
हेमाद्रिकलशा यत्र धात्री छत्रश्रियं दधौ ॥

सूत्रधार आता है

सू.— (चारों ओर देखकर) वाह वाह प्रात :काल की कैसी शोभा है।

(भैरव)

भोर भयो लखि काम मात श्रीरुकमिनी महलन जागीं।
विकसे कमल उदय भयो रवि को चकइनि अति अनुरागी।
हंस हंसनी पंख हिलावत सोइ पटह सुखदाई।
आंगन धाइ धाइ कै भंवंरी गावत केलि बधाई ॥

(आगे देखकर) अहा शरद रितु कैसी सुहानी है।

(भैरव) (वा ठुमरी)

सबको सुखदाई अति मन भाई शरद सुहाई आई।
कूजत हंस कोकिला फूले कमल सरनि सुखदादे ॥
सूखे पंक हरे भए तरुवर दुरे मेघ मग भूले।
अमल इन्दु तारे भए सरिता कूल कास तरु फूले ॥
निर्मल जल भयो दिसा स्वच्छ भई सो लखि अति अनुरागे।

जानि परत हरि शरद विलोकत रतिश्रम आलस जागे।।

(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह चिट्ठी लिए कौन आता है।

(एक मनुष्य चिट्ठी लाकर देता है)

(सूत्रधार खोलकर पड़ता है)

'परम प्रसिद्ध श्री महाराज जगदेव जी
दान देन मैं समर मैं जिन न लही कहुं हारि।
केवल जग में विमुख किय जाहि पराई नारि।।
जाके जिय में तूल सो तुच्छ दोय निरधार।
खीझे अरि को प्रबल दल रीझे कनक पहार।।

वह प्रसन्न होकर रंगमंडन नामक नट को आज्ञा करते हैं।

अलसाने कछु सुरत श्रम अरुन अधखुले नैन।
जगजीवन आगे लखहु दैन रमाचित चैन।।
शरद देखि जब जग भयो चहुंदिसि महा उछाह।
तौ हमहूं को चाहिए मंगल करन सचाह।।

इस्से तुम वीररस का कोई अद्‌भूत रूपक खोलकर मेरे गदाधर इत्यादि साथियों को प्रसन्न करो' ऐसा कौनसा रूपक है (स्मर्ण करके) अरे जाना।

कवि मुनि के सब शिशुन को धारि धाय सी प्रीति।
सिखवत आप सरस्वती नित बहु विधि की नीति।।
ताही कुल में प्रगट भे नारायण गुणधाम।
लह्यो जीति बहु बादिगन जिन बादीश्वर नाम।।
अमय दियो जिन जग को धारि जोग संन्यास।
पै भय इक रबि को रही मंडल भेदन त्रास।।

तिनके सुत सब गुन भरे
कविवर कांचन नाम।
जाकी रसना मनु सकल
विद्या गन की धाम।।

तो उस कवि का बनाया धनंजय विजय खेलैं।

(नेपथ्य की ओर देखकर) यहां कोई है।

(पारिपार्श्वक आता है)

पा.— कौन नियोग है कहिए।

स.— धनंजय विजय के खेलने में कुशल नटवर्ग को बुलाओ।

पा.— जो आज्ञा। (जाता है)

सू.— (पश्चिम की ओर देखकर)

सत्य प्रतिज्ञा करन को छिप्यौ निशा अज्ञात।
तेजपुंज अरजुन सोई रवि सो कढत लखात।।

(विराट के अमात्य के साथ अर्जुन आता है)

अ.— (उत्साह से) दैव अनुकूल जान पड़ता है क्योंकि

जा लताहि खोजत रहै मिली सु पगतल आइ।
बिना परिश्रम तिमि मिल्यौ कुरुपति आपुहि धाइ।।

स.— (हर्ष से देखकर) अरे यह शामलक तो अरजुन का भेष लेकर आ पहुंचा तो अब मैं और पात्रों को भी चलकर बनाऊं।

(जाता है)

।। इति प्रस्तावना ।।

अ.— (हर्ष से)

गोरक्षन रिपुमान बध नृप विराट को हेत।
समर हेत इक बहुत, सब भाग मिल्यौ हा खेत।।

और भी

वहै मनोरथ फल सुफल वहै महोत्सव हेत।
जो मानी निज रिपुन सों अपुना बदलो लेत।।

अमा.— देव यह आप के योग्य संग्राम भूमि नहीं है —

जिन निवातकवचन बध्यौ कालकेय दिय दाहि।
शिव तोख्यौ रनभूमि जिन ये कौरव कह ताहि।।

अ.— वाह सुयोधन वाह! क्यों न हो।

लह्यौ बाहुबल जाति कै ना तुव पुरुषन राज।
सो तुम जूआ खेलि कै जीत्यौ सहित समाज।।
अब भीलन की भांति इमि छिपि कै चोरत गाय।
कुल गुरु ससि तुव नीचपन लखि कै रह्यौ लजाय।।

अमा.— देव!

जदपि चरित कुरुनाथ के ससि सिर देत झुकाय।
तरु रावरो विमल जस राखत ताहि उचाय।।

अ.— (कुछ सोचकर) कुमार नगर के पास पास धरे शस्त्रों को लेने रथ पर बैठकर गया है सो अब तक क्यों नहीं आया?

(उत्तरकुमार आता है)

कु.— देव आपकी आज्ञानुसार सब कुछ प्रस्तुत है अब आप रथ पर विराजिए।

अ.— (शस्त्र बांधकर रथ पर चढ़ना नाट्य करता है)

अमा.— (विस्मय से अर्जुन को देखकर)

रनभूषन भूषित सुतन गत दूखन सब गात।
सरद सूर सम घन रहित दूर प्रचंड लखात।।

(नायक से)

दक्षिन खुरमहि मरदि हय गरजहिं मेघ समान।
उडि रथ धुज आगे बढ़हिं तुव बस बिजय निसान।।

अ.— अमात्य! अब हम लोग गऊ छुड़ाने जाते है। आप नगर में जाकर गऊहरण से व्याकुल नगरवासियों को धीरज दीजिए।

अमा.— महाराज जो आज्ञा (जाता है)।

अ.— (कुमार से) देखो गऊ दूर न निकल जाने पावैं घोड़ों को कस के हांको ।।

कु.— (रथ हांकना नाट्य करता है)

अ.— (रथ का वेग देखकर)

लीकहु नहिं लखिपरत चक्र की ऐसे धावत ।
दूर रहत तरु वृन्द छनक मैं आगे आवत ।।
जदपि वायु बल पाइ धूरि आगे गति पावत ।
पै हय निज खुर वेग पीछहीं मारि गिरावत ।।
खुर मरदित महि चूमहिं मनहु
धाइ चलहिं जब वेग गति ।
मनु होड़ जीत हित चरन सों
आगेहि मुख बढ़ियाजात अति ।।

(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे अरे अहीरो सोच मत करो क्योंकि

जबलौं बछरा करुना करि महि तृन नहिं खै है ।
जबलौं जननी बाट देखि कै नहिं डकरैहैं ।।
जबलौं पय पीअनहित ते नहिं व्याकुल ह्वै हैं ।
ताके पहिले गाय जीति कै हम ले ऐहैं ।।

(नेपथ्य में) बड़ी कृपा है ।

कु.— महाराज ! अब ले लिया है कौरवों की सेना को क्योंकि

हय खुररज सों नभ छयो वह आगे दरसात ।
मनू प्राचीन कपोलगत सान्द्र सुरुचि सरसात ।।
कविवर मद धारा तिया रमत रसिक जो पौन ।
सोई केलिमद गंधलै करत इतैही गौन ।।

अ.— वह देखो कौरवों की सैना दिखा रही है ।।

चपल चंवर चहुंचोर चलहिं सित छत्र फिराहीं ।
उड़हिं गीधगन गगन जबै भालै चमकाहीं ।।
घोर संख के शब्द भरत बन मृगन डरावति ।
यह देखौ कुरुसैन सामने धावति आवति ।।

(बांह की ओर देखकर उत्साह से)

बनबन धावत सदा धूर धूसर जो सोहीं ।
पंचाली गल मिलत हेतु अबलौं ललचैंही ।।
जो जुवती जन बाहु बलय मिलि नाहिं लजाहीं ।
रिपुगन ! ठाढ़े रहौ सोई मम भुज फरकाही ।।

(नेपथ्य में)

फेरत धनु टंकारि दरप शिव सम दरसावत ।
साहस को मनु रूप काल सम दुसह लखावत ।।
जय लक्ष्मी सम वीर धनुष धरि रोस बढ़ावत ।
को यह जो कुरुपतिहि गिनत नहिं इतहीं आवत ।।

(दोनों कान लगाकर सुनते हैं)

कु.— महाराज यह किसके बड़े गम्भीर वचन हैं ।।

अ.— हमारे प्रथम गुरु कृपाचार्य के ।।

(फिर नेपथ्य में)

शिव तोषन खांडव दहन सोई पांडव नाथ ।
धनु खींचत घट्टा पड़े दूजे काके हाथ ।।
छूटि गए सब शस्त्र तबौं धीरज उर धारे ।
बाहु मात्र अवशेष दुगुन हिय क्रोध पसारे ।।
जाहि देखि निज कपट भूलि ह्वै प्रगट पुरारी ।
साहस पैं बहु रीझि रहे आपुन पौहारी ।।

अरे यह निश्चय अर्जुन ही है, क्योंकि —

सागर परम गंभीर नघ्यो गोपद सम छिन मैं ।
सीता विरह मिटावन की अद्भुत मति जिन मैं ।
जानी जिन तृन फूस हूस की लंका सारी ।
रावन गरब मिटाइ हने निसिचर बल भारी ।।
श्रीराम प्रान सम वीर वर भक्तराज सुग्रीव प्रिय ।
सोई वायु तनय धुज बैठि कै गरजि डरावत शत्रु हिय ।।

(दोनों सुनते हैं)

कु.— आयुष्मान

भरी बीर रस सों कहत चतुर गूढ़ अति बात ।
पक्षपात सुत सो करत को यह तुम पैं तात ।।

अ.— कुमार ! यह तो ठीक ही है, पुत्र सा पक्षपात करता है यह क्या कहते हो ! मैं आचार्य का तो पुत्र ही हूँ ।

(नेपथ्य में)

करन ! गहौ धनु वेग, जाहु कृप ! आगे धाई ।
द्रोन ! अस्त्र भृगुनाथ लहे सब रहो चढाई ।।
अश्वत्थामा ! काज सबै कुरुपति को साधहु ।
दुरमुख !दुस्सासन ! विकर्ण ! निज व्यूहन बांधहु ।।
गंगा सुत शांतनु तनय बर भीष्म क्रोध सो धनु गहत ।
लखि शिव शिक्षित रिपु सामुहे तानि बान छाड़ो चहत ।।

अ.— (आनन्द से) अहा ! यह कुरुराज अपनी सैन्य को बढ़ावा दे रहा है ।

कु.— देव ! मैं कौरव योधाओं का स्वरूप और बल जानना चाहता हूं ।

अ.— देखो इसके ध्वजा के सर्प के चिन्ह ही से इसकी टेढ़ाई प्रगट होती है ।

चन्द्र बंश को प्रथम कलह अंकुर एहि मानौ ।
जाके चित सौजन्य भाव नहिं नेकु लखानो ।।
बिष जल अगिन अनेक भांति हमको दुख दीनो ।
सो यह आवत ढीठ लखौ कुरुपति मति हीनो ।।

कु.— और यह उसके दाहिनी ओर कौन है ।

अ.— (आश्चर्य से)

जिन हिडम्ब अरि रिसि भरे लखत लाज भय खोय ।
कृष्णापट खींच्यौ निलाज यह दुस्सासन सोय ।।

कु.— अब इससे बढ़कर और क्या साहस

होगा।

अ.— इधर देखो (हाथ जोड़कर प्रणाम करके)

कंचन वेदी बैठिं बड़ोपन प्रगट दिखावत।
सूरज को प्रतिबिंब जाहि मिलि जाल तनावत।।
अस्त्र उपनिषद भेद जानि भय दूर भजावत।।
कौरव कुल गुरु पूज्य द्रोन अचारज आवत।।

कु.— यह तो बड़े महानुभाव से जान पड़ते हैं।

अ.— इधर देखौ।

सिर पैं बाकी जूट जटा मंडित छबि धारी।
अस्त्र रूप मनु आप दूसरो दुसह पुरारी।।
शत्रुन कों नित अजय मित्र को पूरन कामा।
गुरु सुत मेरो मित्र लखौ यह अश्वत्थामा।।

कु.— हां और बताइये।

अ.—धनुर्वेद को सार जिन घट भरि पूरि प्रताप।
कनक कलशकरि धुज धर्‌यौ सो कृप कुरु गुरु आप।

कु.— और वह कुरुराज के सामने लड़ाई के हेतु फेंट कसे कौन खड़ा है।

अ.— (क्रोध से)

सब कुरुगन को अनय बीज अनुचित अभिमानी।
भृगुपति छलि लहि अस्त्र वृथा गरजत अघखानी।।
सूत सुअन बिनु बात दरप अपनो प्रगटावत।
इंद्रशक्ति लहि गर्व भरो रन को इत आवत।।

कु.— (हंस कर) इनका सब प्रभाव घोष यात्रा में प्रकट हो चुका है (दूसरी ओर दिखाकर) यह किसका ध्वज है।

अ.— (प्रणाम करके)

परतिय जिन कबहूं न लखी निज व्रतहि दृढ़ाई।
श्वेत केस मिस सो कीरति मनु तन लपटाई।।
परशुराम को तोष भयो जा सर के त्यागे।
तौन पितामह भीष्म लखौ यह आवत आगे।।

सूत! घोड़ों को बढ़ाओ

(नेपथ्य में)

समर बिलोकन कों जुरे चढ़ि बिमान सुर धाइ।
निज बल बाहु विचित्रता अरजुन देहु दिखाय।।

(इन्द्र, विद्याधर और प्रतिहारी आते हैं)

इन्द्र.— आश्चर्य से

बातहु सों भगरें बली तौ निबलन भय होय।
तौ यह दारुन युद्ध लखि क्यौं न डरैं जिय खोय।।
एक रथी इक ओर उत बली रथी समुदाय।
तोहु सुत तू धन्य अरि इकलो देत भजाय।।

कु.— (आगे देखकर) देव कौरवराज यह चले आते हैं।

(रथ पर बैठा दुर्योधन आता है)

दु.— (अर्जुन को देखकर क्रोध से)

बहु दुख सहि बनबास करि जीवन सों अकुलाय।
मरन हेतु आयो इतै इकलो गरब बढ़ाय।।

अ.— (हंसकर)

काल केय बधिकै निवातकवचन कहं मार्‌यो।
इकले खांडव दाहि उमापति युद्ध प्रचार्‌यो।।
इकलेही बल कृष्ण लखत भगिनी हरि छीनी।
अरजुन की रन नांहि नई इकली गति लीनी।।

दु.— अब हंसने का समय नहीं है क्योंकि अंधाधुंध घोर संग्राम का समय है।

अ.— (हंसकर)

दूर रहौ कुरुनाथ नांहि यह छल जूआ इत।
पापी गन मिलि द्रौपदि कों दासी कीनी जित।।
यह रण जूआ जहां बान पासे हम डारैं।
रिपु गन सिर की गोंट जीति अपुने बल मारैं।।

दु.— (क्रोध से)

चूड़ी पहिरन सों गयो तेरो सर अभ्यास।
नर्तन साला जात किन इत पौरुष परकास।।

कु.— (मुँह चिढ़ाकर) आर्य इनको यह आप ठीक कहते हैं कि इनका बहुत दिन से धनुष चलाने का अभ्यास छूट गया है।

जब बन मैं गंधर्व गनन तुमकों कसि बांध्यौ।
तब करि अग्रज नेह गरजि जिन तहं सर साध्यौ।।
लीन्हौ तुम्है छुड़ाइ जीति सुर गन छिन मांहीं।
तब तुम शर अभ्यास लख्यो बिहबल ह्वै नाहीं।।

विद्या.— देव यह बालक बड़ा ढीठा है।

इ.— क्यौं न हो राजा का लड़का है

दु.— सूत! ब्राह्मणों की भांति इस कोरी बकवाद से फल क्या है। यह पृथ्वी ऊँची नीची है इससे तुम अब समान पृथ्वी पर रथ ले चलो।

अ.— जो कुरुराज की इच्छा (दोनों जाते हैं)

विद्या.— (अर्जुन का रथ देखकर) देव!

तुव सुत रथ हय खुर बढ़ी समर धूरि नभ जौन।
अरि अरनी मंथन अगिनि धूम लेखसी तौन।।

इं.— क्यों न हो तुम महा कवि हौ।

विद्या.— देव! देखिए अर्जुन के पास पहुंचते ही कौरवों में कैसा कोलाहल पड़ गया देखिए।

हाय हिन हिनात अनेक गज सर खाइ घोर चिकारहीं।
बहु बजहिं बाजे मार धरु धुनि दरपित बीर उचारहीं।।
टंकार धनुकी होत घंटा बजहिं सर संचारहीं।
सुनि सबद रन को बरन पति सुरबधू तन सिंगारहीं।।

प्रति.— देव ! केवल कोलाहल ही नहीं हुआ बरन आप के पुत्र के उधर जाते ही सब लोग लड़ने को भी एक संग उठ दौड़े, देव ! देखिए अर्जुन ने कान तक खींच खींचकर जो बान चलाए हैं उस्से कौरव सैना में किसी के अंग भंग हो गए हैं किसी के धनुष दो टुकड़े हो गए हैं किसी के सिर कट गए हैं किसी की आंखे फूट गई हैं किसी की भुजा टूट गई है किसी की छाती घायल हो रही है ।

इन्द्र.— (हर्ष से) वाह बेटा अब ले लिया है ।

विद्या.— अब देखिए देखिए ।

गज जूथ सोई गन घटा मद धार धारा सरतजे ।
तरवार चमकनि बीजु की दमकनि गरज बाजन बजे ।।
गोली चलें जुगनू सोई बक वृन्द ध्वज बहु सोहई ।
कातर बियोगिन दुखद रन की भूमि पावस नभ भई ।।
तुव सुत सर सहि मद गलित दंत केतकी खोय ।
धावत गज जिनकें लखें हथिनी को भ्रम होय ।।

इन्द्र.— (संतोष से)

हर सिच्छित सर रीति जिन कालकेय दियदाहि ।
जो जदुनाथ सनाथ कह कौरव जीतन ताहि ।

प्रति.— महाराज देखैं ।

कटे कुंड सुंडन के रुंड मैं लगाय तुंड भुंड मुंड पान करैं लेहू भूत चेटी हैं । घोड़न चबाइ चरबीन सों अघाय मेटी भूख सब मरे मुरदान मैं सभेटी हैं ।। लाल अंग कीने सीस हाथन में लीने अस्थि भूखन नवीने आंत जिनपै लपेटी हैं । हरख बढ़ाय आंगुरीन को नचाय पियैं सोनित पियासी सी पिसाचन की बेटी हैं ।।

विद्या.— देव देखिए ।

हिलन धुजा सिर ससि चमक मिलि कै व्यूह लखात ।
तुव सुत सर लगि घूमि जब गरज गन मंडल खात ।।

इन्द्र.— (आनन्द से देखता है)

प्रति.— देव देखिए देखिए आप के पुत्र के धनुष से छूटे हुए बानों से मनूष्य और हाथियों के अंग कटने से जो लहू की धारा निकलती है उसे पी पी कर यह जोगिनिये आपके पुत्र ही की जीत मनाती हैं ।

इन्द्र.— तो जय ही है क्योंकि इनकी असीस सच्ची है ।

विद्या.— (देखकर) देव अब तो बड़ा ही घोर युद्ध हो रहा है देखिए ।

बिरचि नली गज सुंड की काटि काटि भट सीस ।
रुधिर पान करि जोगिनी विजयहि देहिं असीस ।।
टूटि गई दोउ भौंह स्वेद सों तिलक मिटाए ।
नयन पसारे जाल क्रोध सों ओठ चबाए ।।
कटे कुंडलन मुकुट बिना श्रीहत दरसाए ।
वायु बेग बस केस मूछ दाढ़ी फहराए ।।
तुव तनय बाल लगि बैरि सिर
एहि विधि सों नभ में फिरत ।
तिन संग काक अरु कंक बहु रंक भए धावत गिरत ।।

(बड़े आश्चर्य से इधर उधर देखकर) देव देखिए ।

सीस कटे भट सोहहीं नैन जुगल बल लाल ।
बरहिं तिनहिं नाचहिं हंसहिं गावहिं नभ सुर बाल ।।

इन्द्र.— (हर्ष से) मैं क्या क्या देखूं मेरा जी तो बावला हो रहा है ।

इत लाखन कुरु संग लरत इकलो कुंती नंद ।
उत बीरन को बरन कों लरहिं अप्सरा बृंद ।।

विद्या.— ठीक है (दूसरी ओर देखकर) देव इधर देखिए ।

लपटि दपटि चहुं दिसन बाग बन जीव जरावत ।
ज्वाला माला लोल लहर धुज से फहरावत ।।
परम भयानक प्रगट प्रलय सम समय लखावत ।
गंगा सुत कृत अगिनि अस्त्र उमग्यौ ही आवत ।।

प्रति.— देव ! मुझे तो इस कड़ी आंच से डर लगती है ।

विद्या.— भद्र ! व्यर्थ क्यौं डरता है भला अर्जुन के आगे यह क्या है ? देख ।

अर्जुन ने यह बरुन अस्त्र जो बेग चलायो ।
तासों नभ मैं घोर घटा को मंडल छायो ।।
उमडि उमडि करि गरज बीजुरी चमक डरायो ।
मुसलधार जल बरसि छिनक मैं ताप बुझायो ।।

इन्द्र.— बालक बड़ा ही प्रतापी है ।

प्रति.— देव ! राधेय ने यह भुजंगास्त्र छोड़ा है देखिए अपने मुखों से आग सा बिष उगलते हुए अपने सिर की मणियों से चमकते हुए इन्द्रधनुष से पृथ्वी को व्याकुल करते हुए देखने ही से वृक्षों को जलाते हुए यह कैसे-कैसे डरावने सांप निकले चले जाते हैं ।

विद्या.— (देखकर) वैनामक अस्त्र चल चुका.

दुष्ट मनोरथ सरिस लसै लांबे दुखदाई ।
टेढ़े जिमि खल चित्त भयानक रहत सदाई ।।
बमत बदन बिष निन्दक सो मुख कारिख लाए ।
अहिगन नभ मैं लखहु धाइ कै चहुं दिस लाए ।।

इन्द्र.— क्या खांडव बन का बैर लेने आते हैं ?

विद्या.— आप शोच क्यौं करते हैं देखिए अर्जुन ने गारुड़ास्त्र छोड़ा है ।

निज कुल गुरु तुव पुत्र सारथिहि तोष बढ़ावत ।
झपटि दपटि गहि अहिन टूक करि नास मिलावत ।।

बादर से उड़ि चोंखि चोंखि दोउ पंख हिलावत ।
गरुड़न को गन गगन छयो अहि हियो डरावत ।।

इन्द्र.— (हर्ष से) हां तब ।

प्रति.— देखिए यह दुर्योधन के वाक्य से पीड़ित होकर द्रोणाचार्य ने आपके पुत्र पर वारुणास्त्र छोड़ा है ।

विद्या.— (देखकर) वैनामक अस्त्र चल चुका है, देखिए ।

रगे गंड सिंदूर सो घहरत घंटा घोर ।
निज मद सों सोचत धरनि गरजि चिकारहिं जोर ।
सूंड फिरावत सीकरन धावत भरे उमंग ।
छावत आवत घन सरिस मरदत मनुज मतंग ।।

इंद्र.— तब तब ।

विद्या.— तब अर्जुन ने नरसिंहास्त्र छोड़ा है देखिए

गरजि गरजि जिन छिन मैं गर्भिनि गर्भ गिरायो ।
काल सरिस मुख खोलि दांत बाहर प्रगटायो ।
मारि थपेड़न गंड सुंड को मांस चबायो ।
उदर फारि चिक्कारि रुधिर पौसरा चलायो ।।
करि नैन अगिनि सम मोछ फहराइ पोंछ टेढ़ी करत ।
गल केसर लहरावत चल्यौ क्रोधि सिंहदल दल दलत ।।
दलत ।।

इन्द्र.— तो अब जय होने में थोड़ी ही देर है ।

विद्या.— देव ! कहिए कि कुछ भी देर नहीं है ।

गंगा सुत के बधि तुरग द्रोनसुत हति खेत ।
करन रथहि करि खंड बहु कृप कहं कियो अचेत ।।
और भजाई सैन सब द्रोन सुवन धनु काट ।
तुव सुत जोहत अब खड़ो दुरजोधन की बाट ।।

प्रति.— दुर्योधन का तो बुरा हुआ ।

विद्या.— नहीं ।

व्याकुल तुव सुत बान सों विमुख भयो रनकाज ।
मुकुट गिरन सों क्रोध करि फिरयो फेर कुरुराज ।।

(नेपथ्य में)

सुन सुन कर्ण के मित्र ।
सभा मांहि लखि द्रोपदिहि क्रोध अतिहि जिय लेत ।
अग्रज परतिज्ञा करी तुव उरु तोड़न हेत ।।
ताही सो तोहि नहिं बध्यौ न तरु अवौ कुरु ईस ।
जा सर सों तोरयौ मुकुट तासों हरतो सीस ।।

प्रति.— देव अपने पुत्र का वचन सुना ।

इन्द्र.— (विस्मय से) ।

दे भए अनुकूल तें सबही करत सहाय ।
भीम प्रतिज्ञा सों बच्यो अनायास कुरुराय ।।

विद्या.— देव ! दुर्योधन के मुकुट गिरने से सब कौरवों ने क्रोधित होकर अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया है ।

इन्द्र.— तो अब क्या होगा ।

विद्या.— देव अब आपके पुत्र ने प्रस्वापनास्त्र चलाया है ।

नाक बोलावत धनु किए तकिया मूंदे नैन ।
सब अचेत सोए भई मुरदा सी कुरु सैन ।

इन्द्र.— युद्ध से थके वीरों को सोना योग्य ही है । हां फिर ।

विद्या.—

एक पितामह छोड़ि कै सबको नांगो कीन ।
बांधि अंधेरी आंख मैं मूड़ि तिलक सिर दीन ।।
अब जागे भागे लखौ रह्यौ न कोऊ खेत ।
गोंधन लै तुव सुत अवै ग्वालन देखौ देत ।।
शत्रु जीति निज मित्र को काज साधि सानन्द ।
पुरजन सों पूजित लखौ पुर प्रविसत तुवनन्द ।।

इन्द्र.— जो देखना था वह देखा ।

(रथ पर बैठे अर्जुन और कुमार आते हैं)

अ.— (कुमार से) कुमार ।

जो मो कहं आनंद भयो करि कौरव विनु सेस ।
तुव तन को बिनु घाव लखि तासों मोद विसेस ।।

कु.— जब आप सा रक्षा हो तो यह कौन बड़ी बात है ।

इन्द्र.— (आनन्द से) जो देखना था वह देख चुके ।

(विद्याधर और प्रतिहारी समेत जाता है)

अ.— (सन्तोष से) कुमार ।

करी बसन बिनु द्रोपदी इन सब सभा बुलाय ।
सो हम इनको वस्त्र हरि बदलो लीन्ह चुकाय ।।

कु.— आप ने सब बहुत ठीक ही किया क्योंकि

बरु रन मैं मरनो भलौ पाछे सब सुख सीव ।
निज अरिसौं अपमान हिय खटकत जबलौं जीव ।।

अ.— (आगे देखकर) अरे अपने भाइयों और राजा विराट समेत आर्य धर्मराज इधर ही आते हैं ।

(तीनों भाई समेत धर्मराज और विराट आते हैं)

धर्म्म.— मत्स्यराज ! देखिए ।

धूर धूसरित अलक सब मुख श्रमकन झलकात ।
असम समर करि थकित पै जयसोभा प्रगटात ।।
सौगन्धिक तोरयौ छनक कियो हिडम्बहि घात ।
हत्यौ बकासुर जिन सहज तेहि केती यह बात ।।

भीम— (विनय से) महाराज सुनिए अब हम

क्षमा नहीं कर सकते ।

धर्म्म. — बेटा क्षमा के दिन गए युद्ध के दिन आए अब इतना मत घबड़ाओ ।

विरा. — (युधिष्ठिर से) ।

तुव सरूप जाने बिना लियो अनेकन काज ।
जोग अजोग अनेक विध सों छमिये महराज ।।

अ. — राजन् यह उपकार ही हुआ अपकार कभी नहीं हुआ । क्यौंकि ।

जो अजोग करते न हम सेवा ह्वै तुम दास ।
तौ कोऊ विधि छिपतो न यह मम अज्ञात निवास ।।

विरा. — (अर्जुन से) राज पुत्र ।

सात चरनहू संग चले मित्र भए हम दोय ।

विरा. — सत्य है ।

द्विज सोहत विद्या पढ़ें छत्री रन जय पाय ।
लक्ष्मी सोहत दान सों तिमि कुल बधू लजाय ।।

अ. — (घबड़ाकर) अरे क्या भैया आ गए (रथ से उतरकर दंडवत् करता है) ।

सब — (आनन्द से एक ही साथ) कल्यान हो —जीते रहो ।

धर्म्म. —

इकले सिव षट पुर दह्यौ निसचर मारे राम ।
तम इकले जीत्यौ कुरुन नहिं अथ चौथो नाम ।।

अ. — (सिर झुका कर हाथ जोड़कर) यह केवल आपकी कृपा है ।

विरा. — (नेपथ्य की ओर हाथ से दिखाकर) राजपुत्र देखो ।

मिलि बछरन सों धेनु सब श्रवहिं दूध की धार ।
तुव उज्जल कीरति मनहुं फैलत नगर मंझार ।।

और

खींच्यौ कृष्णा केस जो समर मांहि कुरुराज ।
सो तुस मुकुट गिराइ कै बदलो लीनहों आज ।।

भीम — (सुनकर क्रोध से) राजन् अभी बदला नहीं चुका क्यौंकि ।

तोरि गदा सों हृदय दुष्ट दुस्सासन केरो ।
तासों ताजो सद्य रुधिर करि पान घनेरो ।।
ताहीं करसों कृष्णा की बेनी बंधवाई ।
भीमसैन ही सो बदलो लैहै चुकवाई ।।

धर्म्म. — बेटा तुम्हारे आगे यह क्या बड़ी बात है ।

तासों माँगत उत्तरा पुत्र बधू तुव होय ।।

अ. — आपकी जो इच्छा क्यौंकि ।

आपु आवती लच्छमी को मूरख नहि लेत ।
सोऊ बिन मांगे मिलै तो केवल हरि हेत ।।

वि. — और भी मैं आपका कुछ प्रिय कर सकता हूं ।

अ. — अब इस्से बढ़कर क्या होगा ।

शत्रु सुजोधन सो लही करन सहित रनजीत ।
गाय फेरि जाए सबै पायो तुमसो मीत ।।
लही बधू सुत हित भयो सुख अज्ञात निवास ।
तौ अब का नहिं हम लह्यौ जाकी राखैं आस ।।

तौ भी यह भरत वाक्य सत्य हो ।

राज वर्ग मद छोड़ि निपुन विद्या मैं होई ।
श्री हरिपद मैं भक्ति करैं छल बिनु सब कोई पंडित
गन पर कृति लखि कै मति दोष लगावैं ।
छुटै राज कर मेघ समै पै जल बरसावैं ।।
कजरी ठुमरिन सों मोरि मुख
सत कविता सब कोउ कहै ।
यह कविवानी बुध बदन मैं
रवि ससि लौं प्रगटित रहै ।।

और भी

सौजन्यामृतसिन्धव : परहितप्रारब्धवीरव्रता ।
वाचाला : परवर्णने निजगुणालापे च मौनव्रता : ।।
आपत्स्वप्यविलुप्तधैर्य्यनिचयास्सम्पत्स्वनुत्सेकिनो ।
माभूवनु खलवक्त्रनिर्गतविषम्लाननास्सज्जना :' ।।

विरा. — तथास्तु ।

(सब जाते हैं)

श्री धनंजय विजय नाम का व्यायोग श्रीहरिश्चन्द्र अनुवादित समाप्त हुआ ।

विदित हो कि यह जिस पुस्तक से अनुवाद किया गया है वह संवत् १५२७ की लिखी है और इसी से बहुत प्रमाणिक है इस्से इसके सब पाठ उसी के अनुसार रक्खे हैं ।

मुद्राराक्षस

विशाखदत्त कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद है। जर्मन विद्वान प्रोफेसर हिलंब्रैन्ड के अनुसार मुद्राराक्षस की प्राचीन कई प्रतियां पाई जाती है, जिनमें रचनाकार के स्थान पर किसी पर विशाखदत्त का और किसी पर भास्करदत्त का उल्लेख है। ज्ञातव्य है कि विशाखदत्त के पिता का नाम भास्करदत्त था। इस नाटक का अनुवाद भारतेन्दु जी ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के आग्रह से किया था। और इसे पाठ्यक्रम में चलवाने का प्रयत्न भी किया था। यह पहले बालबोधिनी में प्रकाशित हुआ। इसकी प्रस्तावना वर्ष २ नं. २ फाल्गुन सं. १९३१ (फरवरी १८७५) में प्रकाशित हुई थी।

कहते हैं कि इसी का अनुवाद महामना पं. मदनमोहन मालवीय के पितृव्य पं. गंगाधर भट्ट मालवीय जी ने भी किया था पर जब उन्हे यह मालूम हुआ कि भारतेन्दु ने भी किया है, तो उन्होने इसे प्रकाशित नही किया। — सं.

मुद्राराक्षस

नाटक

परमश्रद्धास्पद

श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद बहादुर सी.एस.आई.

के

चरण कमलों में

केवल उन्हीं के उत्साहदान से

उनके

वात्सल्यभाजन छात्र द्वारा बना हुआ

यह ग्रंथ

सादर समर्पित हुआ

पूर्व कथा

पूर्व काल में भारतवर्ष में मगधराज एक बड़ा भारी जनस्थान था। जरासंध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहाँ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इसका नाम भूमंडल पर प्रसिद्ध है। किन्तु कालचक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था में रहने नहीं देता।

अंत में नंदवंश[1] ने पौरवों को निकालकर वहाँ अपनी जयपताका उड़ाई । वरंच सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया ।

इतिहास ग्रंथों में लिखित है कि एक सौ अड़तीस बरस नंदवंश ने मगध देश का राज्य किया । इसी वंश में महानंद का जन्म हुआ । यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यंत प्रतापशाली राजा हुआ । जब जगद्विजयी सिकंदर (अलक्षेंद्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब असंख्य हाथी, बीस हजार सवार और दो लाख पैदल लेकर महानंद ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया था ।[2] सिद्धांत यह कि भारतवर्ष में उस समय महानंद सा प्रतापी और कोई राजा न था ।

महानंद के दो मंत्री थे । मुख्य का नाम शकटार था और दूसरे का राक्षस था । शकटार शूद्र और राक्षस ब्राह्मण[3] था । ये दोनों अत्यंत बुद्धिमान और महाप्रतिभासंपन्न थे । केवल भेद इतना था राक्षस धीर और गंभीर था, उसके विरुद्ध शकटार अत्यंत उद्धतस्वभाव था, यहाँ तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता । महानंद भी अत्यंत उग्र स्वभाव, असहनशील और क्रोधी था, जिसका परिणाम यह हुआ कि महानंद ने अंत को शकटार को क्रोधांध होकर बड़े निविड़ बंदीखाने में कैद किया और सपरिवार उसके भोजन का केवल दो सेर सत्तू देता था ।

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था इससे यह अनादर उसके पक्ष में अत्यंत दुखदाई हुआ । नित्य सत्तू का बरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नंदवंश को जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह सत्तू खाय । मंत्री के इस वाक्य से दुखित होकर उसके परिवार का कोई भी सत्तू न खाता । अन्त में कारागार की पीड़ा से एक एक करके उसके परिवार के सब लोग मर गए ।

एक तो अपमान का दुःख, दूसरे कुटुंब का नाश, इन दोनों कारणों से शकटार अत्यंत तनछीन मनमलीन दीनहीन हो गया । किंतु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े-बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रखा । रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा ।

कहते हैं कि राजा महानंद एक दिन हाथ-मुँह धोकर हँसते-हँसते जनाने में आ रहे थे । विचक्षणा नाम की एक दासी, जो राजा के मुँह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी, राजा को हँसता देख कर हँस पड़ी, राजा उसकी ढिठाई से बहुत चिढ़े और उससे पूछा --- तू क्यों हँसी ? उसने उत्तर दिया --- 'जिस बात पर

---

१. नंदवंश सम्मिलित क्षत्रियो का वंश था । ये लोग शुद्ध क्षत्री नहीं थे ।

२. सिकंदर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने से महानंद से उससे मुकाबिला नहीं हुआ ।

३. बृहत्कथा में राक्षस मंत्री का नाम कहीं नहीं है, केवल वररुचि के एक सच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है ---एक बड़ा प्रचंड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था । वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि 'इस नगर में कौन स्त्री सुंदर है ?' वररुचि ने उत्तर दिया --- ''जो जिसको रुचै वही सुंदर है ।'' इस पर प्रसन्न होकर राक्षस ने उस से मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे और फिर सदा राजकाज में ध्यान में प्रत्यक्ष होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता ।

४. बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है । वररुचि, व्याड़ि और इंद्रदत्त तीनों को गुरुदक्षिणा देने के हेतु करोड़ों रुपए के सोने की आवश्यकता हुई । तब इन लोगों ने सलाह की कि नंद (सत्यनंद) राजा के पास चलकर उससे सोना लें । उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था, ये तीनों ब्राह्मण वहाँ गए, किंतु संयोग से उन्हीं दिनों राजा मर गया । तब आपस में सलाह करके इंद्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़कर राजा के शरीर में चला गया, जिससे राजा फिर जी उठा । तभी से उसका नाम योगानंद हुआ । योगानंद ने वररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा की । शकटार बड़ा बुद्धिमान था ; उसने सोचा कि राजा का मर कर जीना और एक बारगी एक अपरिचित को रुपया देना इसमें हो न हो कोई भेद है । ऐसा न हो कि अपना काम करके फिर राजा का शरीर छोड़कर यह चला जाय, यह सोचकर शकटार ने राज्य भर में जितने भी मुरदे मिले उनको जलवा दिया, उसी में इंद्रदत्त का भी शरीर जल गया । जब व्याड़ि ने यह वृत्तांत योगानंद से कहा तो यह सुनकर वह पहिले तो दुखी हुआ पर फिर वररुचि को अपना मंत्री बनाया । अंत में शकटार की उग्रता से संतप्त होकर उसको अंधे कुएँ में कैद किया । बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल ना लिखा है ।

मुद्राराक्षस

विशाखदत्त कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद है। जर्मन विद्वान प्रोफेसर हिलंब्रैन्ड के अनुसार मुद्राराक्षस की प्राचीन कई प्रतियां पाई जाती है, जिनमें रचनाकार के स्थान पर किसी पर विशाखदत्त का और किसी पर भास्करदत्त का उल्लेख है। ज्ञातव्य है कि विशाखदत्त के पिता का नाम भास्करदत्त था। इस नाटक का अनुवाद भारतेन्दु जी ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के आग्रह से किया था। और इसे पाठ्यक्रम में चलवाने का प्रयत्न भी किया था। यह पहले बालबोधिनी में प्रकाशित हुआ। इसकी प्रस्तावना वर्ष २ नं. २ फाल्गुन सं. १९३१ (फरवरी १८७५) में प्रकाशित हुई थी।

कहते हैं कि इसी का अनुवाद महामना पं. मदनमोहन मालवीय के पितृव्य पं. गंगाधर भट्ट मालवीय जी ने भी किया था पर जब उन्हें यह मालूम हुआ कि भारतेन्दु ने भी किया है, तो उन्होने इसे प्रकाशित नही किया। — सं.

मुद्राराक्षस

नाटक

परमश्रद्धास्पद

श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद बहादुर सी.एस.आई.

के

चरण कमलों में

केवल उन्हीं के उत्साहदान से

उनके

वात्सल्यभाजन छात्र द्वारा बना हुआ

यह ग्रंथ

सादर समर्पित हुआ

पूर्व कथा

पूर्व काल में भारतवर्ष में मगधराज एक बड़ा भारी जनस्थान था। जरासंध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहाँ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इसका नाम भूमंडल पर प्रसिद्ध है। किन्तु कालचक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था में रहने नहीं देता।

अंत में नंदवंश[1] ने गौरवों को निकालकर वहाँ अपनी जयपताका उड़ाई । वरंच सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया ।

इतिहास ग्रंथों में लिखित है कि एक सौ अड़तीस बरस नंदवंश ने मगध देश का राज्य किया । इसी वंश में महानंद का जन्म हुआ । यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यंत प्रतापशाली राजा हुआ । जब जगद्विजयी सिकंदर (अलक्षेंद्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब असंख्य हाथी, बीस हजार सवार और दो लाख पैदल लेकर महानंद ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया था ।[2] सिद्धांत यह कि भारतवर्ष में उस समय महानंद सा प्रतापी और कोई राजा न था ।

महानंद के दो मंत्री थे । मुख्य का नाम शकटार था और दूसरे का राक्षस था । शकटार शूद्र और राक्षस ब्राह्मण[3] था । ये दोनों अत्यंत बुद्धिमान और महाप्रतिभासंपन्न थे । केवल भेद इतना था राक्षस धीर और गंभीर था, उसके विरुद्ध शकटार अत्यंत उद्धतस्वभाव था, यहाँ तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता । महानंद भी अत्यंत उग्र स्वभाव, असहनशील और क्रोधी था, जिसका परिणाम यह हुआ कि महानंद ने अंत को शकटार को क्रोधांध होकर बड़े निबिड़ बंदीखाने में कैद किया और सपरिवार उसके भोजन का केवल दो सेर सत्तू देता था ।

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था इससे यह अनादर उसके पक्ष में अत्यंत दुखदाई हुआ । नित्य सत्तू का बरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नंदवंश को जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह सत्तू खाय । मंत्री के इस वाक्य से दुखित होकर उसके परिवार का कोई भी सत्तू न खाता । अन्त में कारागार की पीड़ा से एक एक करके उसके परिवार के सब लोग मर गए ।

एक तो अपमान का दु:ख, दूसरे कुटुंब का नाश, इन दोनों कारणों से शकटार अत्यंत तनछीन मनमलीन दीनहीन हो गया । किंतु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े-बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रखा । रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा ।

कहते हैं कि राजा महानंद एक दिन हाथ-मुँह धोकर हँसते-हँसते जनाने में आ रहे थे । विचक्षणा नाम की एक दासी, जो राजा के मुँह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी, राजा को हँसता देख कर हँस पड़ी, राजा उसकी ढिठाई से बहुत चिढ़े और उससे पूछा — तू क्यों हँसी ? उसने उत्तर दिया — 'जिस बात पर

---

१. नंदवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था । ये लोग शुद्ध क्षत्री नहीं थे ।

२. सिकंदर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने से महानंद से उससे मुकाबिला नहीं हुआ ।

३. बृहत्कथा में राक्षस मंत्री का नाम कहीं नहीं है, केवल वररुचि के एक सच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है —एक बड़ा प्रचंड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था । वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि 'इस नगर में कौन स्त्री सुंदर है ?' वररुचि ने उत्तर दिया — "जो जिसको रुचै वहीं सुंदर है ।" इस पर प्रसन्न होकर राक्षस ने उस से मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे और फिर सदा राजकाज में ध्यान में प्रत्यक्ष होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता ।

४. बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है । वररुचि, व्याड़ि और इंद्रदत्त तीनों को गुरुदक्षिणा देने के हेतु करोड़ों रुपए के सोने की आवश्यकता हुई । तब इन लोगों ने सलाह की कि नंद (सत्यनंद राजा के पास चलकर उससे सोना लें । उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था, ये तीनों ब्राह्मण वहाँ गए; किंतु संयोग से उन्हीं दिनों राजा मर गया । तब आपस में सलाह करके इंद्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़कर राजा के शरीर में चला गया, जिससे राजा फिर जी उठा । तभी से उसका नाम योगानंद हुआ । योगानंद ने वररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा की । शकटार बड़ा बुद्धिमान था ; उसने सोचा कि राजा का मर कर जीना और एक बारगी एक अपरिचित को रुपया देना इसमें हो न हो कोई भेद है । ऐसा न हो कि अपना काम करके फिर राजा का शरीर छोड़कर यह चला जाय, यह सोचकर शकटार ने राज्य भर में जितने भी मुरदे मिले उनको जलवा दिया, उसी में इंद्रदत्त का भी शरीर जल गया । जब व्याड़ि ने यह वृत्तांत योगानंद से कहा तो यह सुनकर वह पहिले तो दुखी हुआ पर फिर वररुचि को अपना मंत्री बनाया । अंत में शकटार की उग्रता से संतप्त होकर उसको अंधे कुएँ में कैद किया । बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल ना लिखा है ।

महाराज हँसे उसी पर मैं भी हँसी ।' महानंद इस बात पर और भी चिढ़ा और कहा कि अभी बतला मैं क्यों हँसा, नहीं तो तुझको प्राणदंड होगा । दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उसने घबड़ाकर इसके उत्तर देने की एक महीने की मुहल्लत चाही । राजा ने कहा — आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचेंगे ।

विचक्षणा के प्राण उस समय तो बच गए परंतु महीने के जितने दिन बीतते थे, मारे चिंता के वह मरी जाती थी । कुछ सोच विचार कर वह एक दिन कुछ खाने-पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो-रोकर अपनी सब बिपत्ति कहने लगी । मंत्री ने कुछ देर तक सोचकर उस अवसर की सब घटना पूछी और हँसकर कहा —''मैं जान गया राजा क्यों हँसे थे । कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छींटों पर राजा को वटबीज की याद आई, और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े बड़ के वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अंतर्गत हैं । किन्तु भूमि पर पड़ते ही वह जल के छींटे नाश हो गए । राजा अपनी इसी भावना को याद करके हँसते थे ।' विचक्षणा ने हाथ जोड़कर कहा —'यदि आप के अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मैं जिस तरह से होगा आपको कैदखाने से छुड़ाऊँगी और जन्म भर आपकी दासी होकर रहूँगी ।'

राजा ने विचक्षणा से एक दिन फिर हँसने का कारण पूछा, तो विचक्षणा ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया । राजा ने चमत्कृत होकर पूछा — 'सच बता, तुझसे यह भेद किसने कहा ।' दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशंसा करते देख अवसर पाकर उसके मुक्त होने की प्रार्थना भी की । राजा ने शकटार को बंदी से छुड़ाकर राक्षस के नीचे मंत्री बनाकर रखा ।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चूक जाते हैं । पहले तो किसी की अत्यंन्त प्रतिष्ठा बढ़ानी ही नीतिविरुद्ध है । यदि संयोग से बढ़ जाय तो उसकी बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिए, और जो कदाचित बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करे तो उसकी जड़ काटकर छोड़े, फिर उसका कभी विश्वास न करे । प्राय: अमीर लोग पहले तो मुसाहिब या कारिंदों को बेतरह सिर चढ़ाते हैं, और फिर छोटी छोटी बातों पर उसकी प्रतिष्ठा हीन कर देते हैं (इसी से ऐसे लोग राजाओं के प्राण के गाहक हो जाते हैं और अंत में नंद की भाँति उसका सर्वनाश होता है ।

शकटार यद्यपि बंदीखाने से छूटा और छोटा मंत्री भी हुआ, किन्तु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उसके चित्त में सदा पहिले ही सा जागता रहा । रात दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थितचित्त उद्धत राजा का नाश करके अपना बदला ले ! एक दिन वह घोड़े पर हवा खाने जाता था । नगर के बाहर एक स्थान पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़-उखाड़ कर उसकी जड़ में मठा डालता जाता है । पसीने से लथपथ है, परंतु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नहीं देता । चारों ओर कुशा के बड़े-बड़े ढेर लगे हुए हैं । शकटार ने आश्चर्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा । उसने कहा —'मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है । मैं ब्रह्मचर्य में नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन आदि संसार की उपयोगी सब विद्या पढ़कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था, किंतु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ में विघ्न हुआ, इससे जब तक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूँगा और काम न करूँगा । मठा इस वास्ते इनकी जड़ में देता हूँ जिससे पृथ्वी के भीतर इनका मूल भी भस्म हो जाय ।'

शकटार के जी में यह बात आई कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उसका जड़ से नाश करके छोड़े । यह सोचकर उसने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर में चलकर पाठशाला स्थापित करें तो मैं अपने को बड़ा अनुगृहीत समझूँ । मैं इसके बदले बेलदार लगाकर यहां की सब कुशाओं को खुदवा डालूँगा । चाणक्य इस पर संमत हुआ और उसने नगर में आकर एक पाठशाला स्थापित की । बहुत से विद्यार्थी लोग पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़े धूमधाम से चल निकली ।

अब शकटार इस सोच में हुआ कि चाणक्य से राजा से किस चाल से विगाड़ हो । एक दिन राजा के घर में श्राद्ध था । उस अवसर को शकटार अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोचकर चाणक्य को श्राद्ध का न्योता देकर अपने साथ ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठला कर चला गया, क्योंकि वह जानता था कि चाणक्य का रंग काला, आँखें लाल और दाँत काले होने के कारण नंद उसको आसन पर से उठा देगा, जिससे चाणक्य अत्यंत क्रुद्ध होकर उसका सर्वनाश करेगा ।

और ठीक ऐसा ही हुआ — जब राक्षस के साथ नंद श्राद्धशाला में आया और एक अनिमंत्रित ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़कर आज्ञा दी कि इसको बाल पकड़कर यहाँ से निकाल दो । इस अपमान से ठोकर खाए हुए सर्प की भाँति अत्यंत क्रोधित होकर शिखा खोलकर चाणक्य ने सब के सामने प्रतिज्ञा की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूँगा तब तक शिखा न बाँधूँगा । यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया ।

शकटार अवसर पाकर चाणक्य को मार्ग में से अपने घर ले आया और राजा की अनेक निंदा करके उसका क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कह कर नंद के नाश में सहायता करने की प्रतिज्ञा की । चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानें कोई उपाय नहीं सोच सकते । शकटार ने इस विषय में विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तांत कहा और रात को एकांत में बुलाकर चाणक्य के सामने उससे सब बात का करार ले लिया ।

महानंद को नौ पुत्र थे । आठ विवाहिता रानी से और एक चंद्रगुप्त मुरा नाम की नाइन स्त्री से । इसी से चंद्रगुप्त को मौर्य और वृषल भी कहते हैं । चंद्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान था इसी से और आठों भाई इससे भीतरी द्वेष रखते थे । चंद्रगुप्त की बुद्धिमानी की बहुत सी कहानियाँ हैं । कहते हैं कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानंद के पास एक कृत्रिम सिंह लोहे की जाली के पिंजड़े में बंद करके भेजा और कहला दिया कि पिंजड़ा टूटने न पावे और सिंह इसमें से निकल जाय । महानंद और उसके आठ औरस पुत्रों ने इसको बहुत कुछ सोचा, परन्तु बुद्धि ने कुछ काम न किया । चंद्रगुप्त ने विचारा कि यह सिंह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो या तो पानी से या आग से गल जाय. यह सोचकर पहले उसने उस पिंजड़े को पानी के कुंड में रखा और जब वह पानी से न गला तो उस पिंजड़े के चारों तरफ आग जलवाई, उसकी गर्मी से वह सिंह लाह और राल का बना था गल गया । एक बेर ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अँगीठी में दहकती हुई आग[१], एक बोरा सरसों और एक मीठा फल महानंद के पास अपने दूत के द्वारा भेज दिया । राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इसका आशय न समझ सका ; किंतु चंद्रगुप्त ने सोचकर कहा कि अंगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सरसों यह सूचना कराती है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का आशय यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है । इनके उत्तर में चंद्रगुप्त ने एक घड़ा जल और एक पिंजड़े में थोड़े से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा, जिसका आशय यह था कि तुम्हारी सेना कितनी भी असंख्य क्यों न हो हमारे वीर उनको भक्षण करने में समर्थ हैं और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति से सहज ही बुझाया जा सकता है और हमारी मित्रता सदा अमूल्य और एक रस है । ऐसे ही तीन पुतलीवाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है । इसी बुद्धिमानी के कारण चंद्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे ; और महानंद भी अपने औरस पुत्रों का पक्ष करके इससे कुढ़ता था । यह यद्यपि शूद्रा के गर्भ से था, परंतु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था ; और इसी से इसका राजपरिवार से पूर्ण वैमनस्य था । चाणक्य और शकटार ने इसी से निश्चय किया कि हम लोग चंद्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नंदों का नाश करके इसी को राजा बनावें ।

यह सब सलाह पक्की हो जाने के पीछे चाणक्य तो अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चंद्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा पढ़ाकर पक्का करके अपनी ओर फोड़ लिया । चाणक्य ने कुटी में जाकर हलाहल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किए जो परीक्षा करने में न पकड़े जायँ, किन्तु खाते ही प्राण नाश हो जाय । विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानंद को पुत्रों समेत यह पकवान खिला दिया, जिससे बेचारे सबके सब एक साथ परमधाम को सिधारे[१] ।

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था । शकटार अपने दुःख और पापों से संतप्त होकर निविड़ बन में चला गया और अनशन करके प्राण त्याग किए । कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि चाणक्य ने अपने हाथ से शस्त्र द्वारा नन्द का वध किया और फिर क्रम से उसके पुत्रों को भी मारा, किन्तु इस विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है । चाहे जिस प्रकार से हो चाणक्य ने नन्दों का नाश किया, किन्तु केवल पुत्र

१. भारतवर्ष की कथाओं में लिखा है कि चाणक्य ने अभिचार से मारण का प्रयोग करके इन सभों को मार

सहित राजा के मारने ही से वह चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर न बैठ सका. इससे अपने अंतरंग मित्र जीवसिद्धि को क्षपणक के वेष में राक्षस के पास छोड़कर आप राजा लोगों से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला। अंत में अफगानिस्तान वा उसके उत्तर ओर के निवासी पर्वतक नामक लोभ परतंत्र एक राजा से मिलकर और उसको जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने के नियम पर उसको पटने पर चढ़ा लाया। पर्वतक के भाई का नाम वैरोधक[1] और पुत्र का नाम मलयकेतु था। और भी पाँच म्लेच्छ राजाओं को पर्वतक अपनी सहायता को लाया था। इधर राक्षस मंत्री राजा के मरने से दुखी होकर उसके भाई सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बैठाकर राजकाज चलाने लगा। चाणक्य ने पर्वतक की सेना लेकर कुसुमपुर को चारों ओर से घेर लिया। पंद्रह दिन तक घोरतर युद्ध हुआ। राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते लड़ते शिथिल हो गए; इसी समय में गुप्त रीति से जीवसिद्धि के बहकाने से राजा सर्वार्थसिद्धि वैरागी

डाला। विचक्षण ने उस अभिचार का निर्माल्य किसी प्रकार इन लोगों के अंग में छुला दिया था। किंतु वर्त्तमान काल के विद्वान लोग सोचते हैं कि उस समय निर्माल्य में मंत्र का बल नहीं था: चाणक्य ने कुछ औषध ऐसे विषमिश्रित बनाए थे कि जिनके भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्य: नाश हो जाय। भट्ट सोमदेव के कथा सरित्सागर के पीठलंबक के चौथे तरंग में लिखा है — योगानंद को ऊँची अवस्था में नए प्रकार की कामवासना उत्पन्न हुई। वररुचि ने यह सोचकर कि राजा को तो भोगविलास से छुट्टी ही नहीं है, इससे राजकाज का काम शकटार से निकाला जाय तो अच्छी तरह चले। यह विचार कर और राजा से पूछकर शकटार को अंधे कुएँ से निकाल कर वररुचि ने मंत्रीपद पर नियत किया। एक दिन शिकार खेलने में गंगा में राजा ने अपनी पाँचों उँगली परछाईं वररुचि को दिखलाई। वररुचि ने अपनी दो उँगलियों की परछाईं ऊपर से दिखाई. जिससे राजा के हाथ की परछाईं छिप गई। राजा ने इन संज्ञाओं का कारण पूछा। वररुचि ने कहा — आपका यह आशय था कि पाँच मनुष्य मिलकर सब कार्य साध सकते हैं। मैंने यह कहा कि जो दो चित्त एक हो जायँ तो पाँच का बल व्यर्थ है। इस बात पर राजा ने वररुचि की बड़ी स्तुति की। एक दिन राजा ने अपनी रानी को एक ब्राह्मण से खिड़की में से बात करते देखकर उस ब्राह्मण को मारने की आज्ञा की, किंतु अनेक कारणों से वह बच गया। वररुचि ने कहा कि आप के सब महल की यही दशा है। अनेक स्त्री वेषधारी पुरुष महल में रहते हैं और उन सबों को पकड़ कर दिखला दिया। इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे। एक दिन योगानंद की रानी के एक चित्र में, जो महल में लगा हुआ था; वररुचि ने जाँघ में तिल बना दिया। योगानंद को गुप्त स्थान में वररुचि के तिल बनाने से उस पर भी संदेह हुआ और शकटार को आज्ञा दी कि तुम वररुचि को आज ही रात को मार डालो। शकटार ने उसको अपने घर में छिपा रखा और किसी और को उसके बदले मार कर उसका मारना प्रकट किया। एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जंगल में शिकार खेलने गया था, वहां राज को सिंह के भय से एक पेड़ पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर एक भालू था, किन्तु इसने उसको अभय दिया। इन दोनों में यह बात ठहरी की आधी रात तक कुँवर सोवें भालू पहरा दें, फिर भालू सोसे कुँवर पहरा दे। भालू ने अपना मित्र धर्म्म निबाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुँवर की रक्षा की। किंतु अपनी पारी में कुँवर ने सिंह के बहकाने से भालू को ढकेलना चाहा, जिस पर उसने जाग कर मित्रता के कारण कुँवर को मारा तो नहीं किंतु कान में मूत दिया। कुँवर जिससे गूंगा और बहिरा हो गया। राजा को बेटे की इस दुर्दशा पर बड़ा सोच हुआ और कहा कि वररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता। शकटार ने यह अवसर समझकर राजा से कहा कि वररुचि जीता है। और लाकर राजा के सामने खड़ा कर दिया। वररुचि ने कहा — कुँवर ने मित्रद्रोह किया उसी का यह फल है। वह वृत्त कहकर उसको उपाय से अच्छा किया। राजा ने पूछा — तुमने यह सब वृत्तांत किस तरह जाना? वररुचि ने कहा — तुमने यह सब वृत्तांत किस तरह जाना? वररुचि ने कहा — योगबल से जैसे रानी का तिल। (ठीक यही कहानी राजा भोज उसकी रानी भानुमती उसके पुत्र और कालिदास की भी प्रसिद्ध है। यह सब कहकर और उदास होकर वररुचि जंगल मे चला गया। वररुचि से शकटार ने राजा को मारने को कहा था, किंतु वह धर्मिष्ठ था इससे सम्मत न हुआ। वररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पाकर चाणक्य द्वारा कृत्या से नंद को मारा।

१. लिखी पुस्तकों में यह नाम, विरोधक, वैरोधक इत्यादि कई चाल से लिखा है।

होकर बन में चला गया । इस कुसमय में राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ । चंदनदास नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर में अपने कुटुंब को छोड़ कर और शकटदास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जाननेवाले विश्वासपात्र मित्रों को और कई आवश्यक काम सौंपकर राजा सर्वार्थसिद्धि के फेर लाने को आप तपोवन की ओर गया ।

चाणक्य ने जीवसिद्ध द्वारा यह सब सुनकर राक्षस के पहुँचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला । राक्षस जब तपोवन में पहुँचा और सर्वार्थसिद्धि को मरा देखा तो अत्यन्त उदास होकर वहीं रहने लगा । यद्यपि सर्वार्थसिद्धि के मार डालने से चाणक्य की नंदकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, किंतु उसने सोचा कि जब तक राक्षस चंद्रगुप्त का मंत्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा । वरंच बड़े विनय से तपोवन में राक्षस के पास मंत्रित्व स्वीकार करने का संदेसा भेजा, परंतु प्रभुभक्त राक्षस ने उसको स्वीकार नहीं किया ।

तपोवन में कई दिन रहकर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्वतक को हम न फोड़ेंगे, काम न चलेगा । यह सोचकर वह पर्वतक के राज्य में गया और वहाँ उसके बूढ़े मंत्री से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज है, वह आधा राज कभी न देगा । आप राजा को लिखिए, वह मुझसे मिले तो मैं सब राज्य उनको दूँ । मंत्री ने पत्रद्वारा पर्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीतिकुशलता लिख भेजा और यह भी लिखा कि अत्यंत वृद्ध हूँ, आगे से मंत्री का काम राक्षस को दीजिए । पाटलिपुत्र विजय होने पर भी चाणक्य आधा राज्य देने में विलंब करता है, यह देखकर सहज लोभी पर्वतक ने मांत्री की बात मान ली और पत्र द्वारा राक्षस को गुप्त रीति से अपना मुख्य अमात्य बना कर इधर ऊपर के चित्त से चाणक्य से मिला रहा ।

जीवसिद्धि के द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जानकर अत्यंत सावधानतापूर्वक चलना आरंभ किया । अनेक भाषा जानने वाले बहुत से धूर्त पुरुषों को वेष बदल बदलकर भेद लेने को चारों ओर नियुक्त किया । चंद्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्तचर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुँचावे इसका भी पक्का प्रबंध किया और पर्वतक की विश्वासघातकता का बदला लेने का दृढ़ संकल्प से, परन्तु अत्यंत गुप्त रूप से, उपाय सोचने लगा ।

राक्षस ने केवल पर्वतक की सहायता से राज के मिलने की आशा छोड़कर कुलूत[१], मलय, काश्मीर, सिंधु और पारस इन पाँचों देशों के राजा से सहायता ली । जब इन पाँचों देश के राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोवन के निकट फिर से लौट आ और वहाँ से चंद्रगुप्त के मारने को एक विषकन्या[२] भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उसके साथ कर दिया । चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब बात जानकर और पर्वतक की धूर्तता और विश्वास घातकता से कुढ़ कर प्रकट में इस उपहार को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लानेवाले को बहुत सा पुरस्कार देकर विदा किया । साँझ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया और इंद्रियलोलुप पर्वतक उसी रात को उस कन्या के संग से मर गया । इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलय-केतु यहाँ रहेगा तो उसको राज्य का हिस्सा देना पड़ेगा, इससे किसी तरह इसको यहाँ से भगावें तो काम चले । इस कार्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा पढ़ा कर भेज दिया । उसने पिछली रात को मलयकेतु से जाकर उसका बड़ा हितू बनकर उसने कहा कि आज चाणक्य ने विश्वासघातकता करके आप के पिता को विषकन्या के प्रयोग से मार डाला और अवसर पाकर आप को भी मार डालेगा । मलयकेतु बेचारा इस बात

---

१. कुतूल देश किलात वा कुल्लू देश ।

२. विषकन्या शास्त्रोा में दो प्रकार की लिखी हैं । एक थोड़े से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न में उस प्रकार के ग्रहों के समा जो कन्या उत्पन्न हो जिसके साथ जिसका विवाह हो वा जो उसका साि करे वह साथ ही वा शीघ्र ही मर जाता है । दूसरे प्रकार की विषकन्या वैद्यक रीति से बनाई जाती थी । छोटेपन से वरन गर्भ से कन्या को दूध में वा भोजन में थोड़ा-थोड़ा विष देते बड़ी होने पर उसका शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उसका अंग संग करता वह मर जाता ।

के सुनते ही सन्न हो गया और पिता के शयनागार में जाकर देखा तो पर्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया। इस भयानक दृश्य के देखते ही मुग्ध मलयकेतु के प्राण सूख गए और वह भागुरायण की सलाह से उस रात को छिपकर वहाँ से भाग कर अपने राज्य की ओर चला गया। इधर चाणक्य के सिखाए भद्रभट इत्यादि चंद्रगुप्त के कई बड़े-बड़े अधिकारी प्रकट में राजद्रोही बनकर मलयकेतु और भागुरायण के साथ ही भाग गए।

राक्षस ने मलयकेतु से पर्वतक के मारे जाने का समाचार सुनकर अत्यंत सोच किया और बड़े आग्रह और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्टसाधन मो प्रवृत्त हुआ।

चाणक्य ने कुसुमपुर में दूसरे दिन यह प्रसिद्ध कर दिया कि पर्वतक और चंद्रगुप्त दोनों समान बंधु थे, इससे राक्षस ने विषकन्या भेजकर पर्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित्त पर, जिनको कि यह सब गुप्त अनुसंधि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।

इसके पीछे चाणक्य और राक्षस के परस्पर नीति की जो चोटें चलती हैं, उसी का इस नाटक में वर्णन है।

महाकवि विशाखदत्त का बनाया

मुद्राराक्षस

स्थान — रंगभूमि

रंगशाला में नांदीमंगलपाठ

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब धन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ।।[1]

'कौन है सीस पै' ? 'चंद्रकला',
'कहा याको है नाम यही त्रिपुरारि' ?
'हाँ यही नाम है, भूल गई
किमी जानत हू तुम प्रान-पियारी' ।।
'नारिहि पूछत चंद्रहिं नाहिं',
'कहै विजया जदि चांद्र लबारी'।
यों गिरजै छलि गंग छिपावत ईस हरौ सब पीर
तुम्हारी ।।

पाद-प्रहार सों जाई पताल न
भूमि सबै तनु बोझ के मारे।
हाथ नचाइबे सों नभ मैं इत के उत टूटि परै नहिं
तारे।
देखन सों जरि जाहिं न लोक
न खोलत नैन कृपा उर धारे।
यों थल के बिनु कष्ट सों नाचत
शर्व हरौ दुख सर्व तुम्हारे ।।[2]

(नांदीपाठ के अनंतर

सूत्रधार— बस! बहुत मत बढ़ाओ, सुनो, आज मुझे सभासदों की आज्ञा है कि सामंत वटेश्वरदत्त

---

१. स्वतंत्र मंगलाचरण।

२. संस्कृत का मंगलाचरण —

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्या:
नामैवास्यास्तदेतत् : परिचितमपि ये विस्मृतं कस्य हेतो:।
नारी पृच्छमि नेन्दुं: कथयतु विजया न प्रमाण यदीन्दु —
दैव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यामव्याद्विभोर्व: ।।१।।

और भी

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवनेरक्षत: स्वैरपातै:
संकोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयता सर्व्वलोकातिगानाम्। दृष्टिं लक्ष्ययेषु
नोग्रज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिन: पातु वो दु:खनृत्तम् ।।२।।

के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया मुद्राराक्षस नाटक खेलो। सच है, जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भाँति समझती है, उसके सामने खेलने में मेरा भी चित्त संतुष्ट होता है।

उपजैं आछे खेत में, मूरखहू के धान।
सघन होन मैं धान के, चहिय न गुनी किसान।।

तो मैं घर से सुघर घरनी को बुलाकर कुछ गाने बजाने का ढंग जमाऊँ। (घूमकर) यही मेरा घर है, चलूँ। (आगे बढ़कर) अहा! आज तो मेरे घर में कोई उत्सव जान पड़ता है, क्योंकि घरवाले सब अपने अपने काम में चूर हो रहे हैं।

पीसत कोऊ सुगंध कोऊ जल भरि कै लावत।
कोऊ बैठि कै रंग रंग की माल बनावत।।
कहँ तिय गन हुँकार सहित अति स्रवन सोहावत।
होत मुशल को शब्द सुखद जिय को सुनि भावत।।

जो हो घर से स्त्री को बुलाकर पूछ लेता हूँ (नेपथ्य की ओर)

री गुनवारी अब उपाय की जाननवारी।
घर की राखनवारी सब कुछ साधनवारी।।
मो गृह नीति सरूप काज सब करन सँवारी।
बेगि आउरी नटी विलंब न करु सुनि प्यारी।।

(नटी आती है)

नटी— आर्यपुत्र[1]! मैं आई, अनुग्रहपूर्वक कुछ आज्ञा दीजिए।

सूत्र.— प्यारी, आज्ञा पीछे दी जायगी पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों का न्यौता करके तुमने इस कुटुंब के लोगों पर क्यों अनुग्रह किया है? या आपही से आज अतिथि लोगों ने कृपा किया है कि ऐसे धूम से रसोई चढ़ रही है?

नटी— आर्य! मैंने ब्राह्मणों को न्यौता दिया है।

सूत्र.— क्यों? किस निमित्त से?

नटी— चंद्रग्रहण लगनेवाला है।

सूत्र.— कौन कहता है?

नटी— नगर के लोगों के मुँह सुना है।

सूत्र.— प्यारी मैंने ज्योति:शास्त्र के चौंसठों[2] अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो; रसोई तो होने दो[3] पर आज तो ग्रहन है यह तो किसी ने तुझे धोखा ही दिया है क्योंकि —

चंद्र बिंब पूरा न भए क्रूर केतु[4] हठ दाप[5]।
बल सों करिहै ग्रास कह —

(नेपथ्य में)

हैं! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रस सकता है?

सूत्र.— जेहि बुध रच्छत आप।।

नटी— आर्य! यह पृथ्वी ही पर से चंद्रमा को कौन बचाना चाहता है?

अर्थ

'यह आपके सिर पर कौन बड़भागिनी है?' 'शशिकला' है। 'क्या इसका यही नाम है?' 'हाँ, यही तो, तुम तो जानती हो फिर क्यों भूल गई?' 'अजी हम स्त्री को पूछती हैं, चंद्रमा को नहीं पूछतीं, 'अच्छा चंद्र की बात का विश्वास न हो तो अपनी सखी विजया से पूछ लो।' योंही बात बनाकर गंगा जी को छिपाकर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करने वाले महादेव जी का छल तुम लोगों की रखा करै।

दूसरा

पृथ्वी भुकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते, ऊपर के लोको के इधर-उधर हो जाने के य से हाथ भी यथेच्छ नहीं फेंक सकते और उसके अग्निकण से जल जायँगे इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नहीं सकते, इससे आधार के संकोच से महादेव जी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करै।

नाटकों में पहले मंगलाचरण करके तब खेल आरंभ करते हैं।

इस मंगलाचरण के नाटकशास्त्र में नांदी कहते हैं। किसी का मत है कि नांदी पहले ब्राह्मण पढ़ता है, कोई कहता है सूत्रधार ही और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नांदी पढ़ी या गाई जाय।

१. संस्कृत मुहाविरे में पति को स्त्रियाँ आर्यपुत्र कहकर पुकारती हैं।

२. होरा मुहूर्त जातक ताजक रमल इत्यादि।

३. अर्थात् ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है। खैर रसोई हो।

४. केतु अर्थात् राक्षस मंत्री। राक्षस मंत्री ब्राह्मण था और केवल नाम उसका राक्षस था किंतु गुण उसमें देवताओं के थे।

५. इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय के अध्यक्ष जगद्विख्यात पंडितवर

सूत्र. — प्यारी, मैंने भी नहीं लखा, देखो, अब फिर से वही पढ़ता हूँ और अब जब वह फिर बोलैगा तो मैं उसकी बोली से पहिचान लूँगा कि कौन है ।

('अहो चंद्र पूर न भए' फिर से पढ़ता है)

(नेपथ्य मे)

हैं ! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र. — (सुनकर) जाना ।

अरे अहै कौटिल्य

नटी — (डर नाट्य करती है)

सूत्र. —

दुष्ट टेढ़ी मतिवारो ।

बापूदेव शास्त्री को मैंने पत्र लिखा । क्योंकि टीकाकारों ने 'चंद्रमा पूर्ण होने पर' यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा । कारण यह कि पूर्ण चंद्र में तो ग्रहण लगता ही है ; इसमें विशेष क्या हुआ ? शास्त्री जी ने जो उत्तर दिया है वह यहाँ प्रकाशित होता है ।

श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव का कोटिश: आशीर्वाद, आपने प्रश्न लिख भेजे उनका संक्षेप से उत्तर लिखता हूँ ।

१ सूर्य के अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अंधकार होता है यही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य से छोटी है इसलिये उसकी छाया सूच्यकार शंकु के आकार की होती है और यह आकाश में चंद्र के भ्रमरण मार्ग को लाँघ के बहुत दूर तक सदा सूर्य से छह राशि के अंतर पर रहती है और पूर्णिमा के अंत में चंद्रमा भी सूर्य से छह राशि के अंतर पर रहता है । इसलिये जिस पूर्णिमा मो चंद्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात् पृथ्वी की छाया चंद्रमा के बिंब पर पड़ती है तभी वह चंद्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चंद्रबिंब पर देख पड़ती है वही ग्रास कहलाता है और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चंद्रग्रहणकाल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश करके चंद्र की ओर प्रजा को पीड़ा करता है, इसी कारण से लोक में राहुकृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि करने से वह राहुकृत पीड़ा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है ।

२ पूर्णिमा में चंद्रबिंब भी संपूर्ण उज्जल होता है तभी चंद्रग्रहण होता है ।

३ जब कि पूर्णिमा के दिन चंद्रग्रहण होता है, इससे पूर्णिमा में चंद्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता (क्योंकि बुद्ध सर्वदा सूर्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य चंद्रमा से छह राशि के अंतर पर रहता है, इसलिये बुद्ध भी उस दिन चंद्र से दूर ही रहता है) । यों बुध के योग में चंद्रग्रहण कभी नहीं हो सकता । इति शिवम् संवत् १९३७ जेष्ठ शुक्ल, १५ मंगल दिने, मंगल मंगले भूयात् ।

शास्त्री जी से एक दिन मुझे इस विषय में फिर वार्ता हुई । शास्त्रीजी को मैंने मुद्राराक्षस की पुस्तक भी दिखलाई । इसपर शास्त्री जी ने कहा कि मुझको ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का संभव होगा तो सूर्यग्रहण का क्योंकि बुधयोग अमावस्या के पास होता भी है । पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चंद्रमा का ग्रास करता है और केतु सूर्य का और इस श्लोक में केतु का नाम भी है । इससे भी संभव होता है कि सूर्य्य उपराग रहा हो । तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हठपूर्वक क्यों चंद्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नहीं, दूसरे केतु का चंद्रमा ग्रास का विषय नहीं क्योंकि नंदवीर्य्यजात होने से चंद्रगुप्त राक्षस का वध्य नहीं है । इस अवस्था में 'चंद्रम् असंपूर्णमंडल' चंद्रमा का अधूरा मंडल यह अर्थ करना पड़ेगा । तब छंद में 'चंद बिंब पूरन भए' के सथान पर 'बिना चंद्र पूरन भए' पढ़ना चाहिए ।

बुध का बिंब प्राचीन भास्कराचार्य्य के मतानुसार छह कला पंद्रह विकला के लगभग है । परंतु नवीनों के मत से केवल दश विकला परम है ।

परंतु इसमें कुछ संदेह नहीं कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्योंकि प्राचीनों को इसका ज्ञान बहुत कठिनता से हुआ है, इसीलिये इसका नाम ही बुध, ज्ञ, इत्यादि हो गया । यह पृथ्वी से ६८९३७७ इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता है और सदा सूर्य के अनुचर के समान सूर्य्य के पास ही रहता है, एक पाद अर्थात् तीन राशि भी सूर्य्य से आगे नहीं आता । विलसन ने केतु शब्द से मलयकेतु का ग्रहण किया है । इसमें भी एक प्रकार का अलंकार अच्छा रहता है ।

चमत्कृतबुद्धिसंपन्न पंडित सुधाकर जी ने इस विषय में जो लिखा है वह विचित्र ही है । वह भी प्रकाश किया जाता है —

नंदवंश जिन सहजहिं निज क्रोधानल जारो ।
चंद्रग्रहण को नाम सुनत निज नृप को मानी ।।
इतही आवत चंद्रगुप्त पैं कछु भय जानी ।।
तो अब चलो हम लोग चलें ।

(दोनों जाते हैं)

प्रथम अंक

(स्थन --- चाणक्य का घर)

(अपनी खुली शिखा को हाथ से फटकारता हुआ चाणक्य आता हैं)

चाणक्य. — बता ! कौन हैं जो मेरे जीते चंद्रगुप्त को बल से ग्रसना चाहता है ?

सदा दंति के कुंभ को जो बिदारै ।
ललाई नए चंद सी जौन धारैं ।।
जँभाई समै काल सो जौन बाढ़ै ।
भलो सिंह को दाँत सो कौन काढ़ै ।।

और भी

कालसर्पिणी नंद-कुल, क्रोध धूम सी जौन ।
अबहुँ बाँधन देत नहिं, अहो शिखा मम कौन ।
दहन नंदकुल बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप ।
को मम क्रोधानल-पतँग, भयो चहत अब पाप ।।

शारंगरव ! शारंगरव !!

(शिष्य आता हैं)

शिष्य. — गुरुजी ! क्या आज्ञा हैं ?

चाणक्य. — बेटा ! मैं बैठना चाहता हूँ ।

शिष्य. — महाराज ! इस दालान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी हैं, आप बिराजिए ।

चाणक्य. — बेटा ! केवल कार्य्य में तत्परता मुझे व्याकुल करती हैं, न कि और उपाध्यायों के तुल्य शिष्यजन से दु:शीलता[1] (बैठकर आप ही आप) क्या सब लोग यह बात जान गए कि मेरे नंदवंश[2] के नाश से क्रुद्ध होकर राक्षस पिताबध से दुखी मलयकेतु[3] से मिलकर यवनराज की सहायता लेकर चंद्रगुप्त पर चढ़ाई किया चाहता है । (कुछ सोचकर) क्या हुआ, जब मैं नंदवंश-वध की बड़ी प्रतिज्ञारूपी नदी से पार

करत अधि अँधियार वह, मिलि मिलि करि हरिचंद ।
द्विजराजहु विकसित करत, धनि धनि यह हरिचंद ।।
श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशीर्वाद,

महाशय !

चंद्रग्रहण का संभव भूछाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अंत में होता है और उस समय के केतु और सूर्य्य साथ रहते हैं । परंतु केतु और सूर्य्य का योग यदि नियत संख्या के अर्थात् पाँच राशि सोलह अंश से लेकर यह राशि चौदह अंश के वा ग्यारह राशि सोलह अंश से लेकर बारह राशि चौदह अंश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत संख्या के बाहर पड़ जाता है तब ग्रहण नहीं होता । इसलिये सूर्य्य केतु के योग ही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा में ग्रहण नहीं होता । तब

क्रूरग्रह: स केतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम् ।
अभिभवितुमिच्छिति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोग: ।।

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह है कि क्रूरग्रह सूर्य्य केतु केतु के साथ चंद्रमा के पूर्ण मंडल को न्यून करने की इच्छा करता है परंतु हे बुध ! योग जो है वही बल से उस चंद्रमा की रक्षा करता है । यहाँ बुद्ध शब्द पंडित के अर्थ में संबोधन है, ग्रहवाची कदापि नहीं है । बुध शब्द को ग्रहार्थ में ले जाने से जो जो अर्थ होते हैं वे सब बनौआ हैं । इति

सं. १९३७, वैशाख शुक्ल ५

ऊँचे ह्वै गुरु बुध कबी मिलि लरि होत विरूप ।
करत समागम सबहि सों यह द्विजराज अनुप ।।

आपका
पं. सुधाकर

१. अर्थात् कुछ तुम लोगों पर दुष्टता से नहीं, अपने काम की घबराहट से बिछी हुई चटाई नहीं देखी ।
२. नंदवंश अर्थात् नव नंद-एक नंद और उसके आठ पुत्र ।
३. पर्वतेश्वर राजा का पुत्र ।

उतर चुका, तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मैं इसको न पूरा कर सकूँगा ?

क्योंकि —

दिसि सरिस रिपु-रमनी बदन-शसि शोक कारिख लाय कै।
लै नीति पवनहि सचिव-बिटपन छार डारि जराय कै।।
बिनु पुर निवासी पच्छिगन नृप बंसमूल नसाय कै।
भो शांत मम क्रोधाग्नि यह कछु दहन हित नहिं पाय कै[१]।

और भी

जिन जनन ने अति सोच सो
नृप-भय प्रगट धिक नहिं कह्यो।
पै मम अनादर को अतिहि
वह सोच जिय जिनके रह्यो[२]।।
ते लखहिं आसन सों गिरायो नंद सहित समाज कों।
जिमि शिखर तें बनराज क्रोध गिरावई गजराज कों।।

सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूँ, तौ भी चंद्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूँ। देखो मैंने —

नव नंदन कौं मूल सहित खोद्यो छन भर में।
चंद्रगुप्त मैं श्री राखी नलिनी जिमि सर में।
क्रोध प्रीति सों एक नासि कै एक बसायो।
शत्रु मित्र को प्रकट सबन फल लै दिखलायो।।

अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नंदों के मारने ही से क्या और चंद्रगुप्त को राज्य मिलने से ही क्या ? (कुछ सोचकर) अहा ! राक्षस की नंदवंश में कैसी दृढ़ भक्ति है ! जब तक नंदवंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक वह कभी शूद्र का मंत्री बनाना स्वीकार न करेगा, इससे उसके पकड़ने में हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नहीं। यही समझकर तो नंदवंश का सर्वार्थसिद्धि विचारा तपोवन में चला गया तौ भी हमने मार डाला। देखो, राक्षस मलयकेतु को मिलाकर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है। (आकाश में देखकर) वाह राक्षस मंत्री वाह ! क्यों न हो ! वाह मंत्रियों में वृहस्पति के समान वाह ! तू धन्य है, क्योंकि —

जब लौं रहै सुख राज को तब लौं सबै सेवा करैं।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी ? तनिक नहिं चित में धरैं।
जे बिपतिहूँ में पालि पूरब प्रीति काज संवारहीं।
ते धन्य नर तुम सरीख दुरलभ अहै संसय नहीं।।

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हें मिलाया चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चंद्रगुप्त के मंत्री बनो, क्योंकि —

मूरख कातर स्वामिभक्त कछु काम न आवै।
पंडित हू बिन भक्ति काज कछु नाहिं बनावै।।
निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होय सबै सेवक सुखकारी।।

सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूँ, यथाशक्ति उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूँ। देखो, पर्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते हैं कि चंद्रगुप्त और पर्वतक मेरे मित्र हैं तो मैं पर्वतक को मारकर चंद्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूँगा ऐसी शंका कोई न करेगा, सब यही कहेंगे कि राक्षस ने विषकन्या प्रयोग करके चाणक्य के मित्र पर्वतक को मार डाला। पर एकांत में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया कि तेरे पिता को मैंने नहीं मारा, चाणक्य ही ने मारा। इससे मलयकेतु मुझसे बिगड़ रहा है। जो हो, यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ा जायगा। पर जो हम मलयकेतु को पकड़ेंगे तो लोग निश्चय कर लेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इसके पिता को मारा और अब मित्रपुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता है। और भी, अनेक देश की भाषा, पहिरावा, चाल व्यवहार जाननेवाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैंने इसी हेतु चारों ओर भेज रखे हैं कि वे भेद लेते रहें कि कौन हम लोगों से शत्रुता रखता है, कौन मित्र है। और कुसुमपुर निवासी नंद के मंत्री और संबंधियों के ठीक ठीक वृत्तांत का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्रभटादिकों को बड़े बड़े पद देकर चंद्रगुप्त के पास रख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षा करने को नियत कर दिए हैं। वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णु शर्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्रनीति और चौसठों कला से ज्योतिषशास्त्र में बड़ा प्रवीण है, उसे मैंने पहले ही योगी बनाकर नंदवध की प्रतिज्ञा के अनंतर ही कुसुमपुर में भेज दिया है, वह वहाँ नंद के मंत्रियों से मित्रता करके, विशेष करके राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ाकर सब काम सिद्ध करेगा, इससे मेरा सब काम बन गया है परंतु चंद्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रखकर सुख करता है। सच है, जो अपने बल बिना और अनेक दु:खों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है। क्योंकि —

१. अग्नि बिना आधार नहीं जलती।

२. नंद ने कुरुप होने के कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था।

अपने बल सों लावहीं जद्यपि मारि सिकार ।
तदपि सुखी नहिं होत हैं, राजा-सिंह-कुमार ।।

(यम[1] का चित्र हाथ में लिए योगी का वेष धारण किए दूत आता है)

दूत —

अरे, और देव को काम नहिं, जम को करो प्रनाम ।
जो दूजन के भक्त को, प्रान हरित परिनाम ।।

और

उलटे ते ह्र बनत है, काज किएअति हेत ।
जो जम जी सबको हरत, सोई जीविका देत ।।

तो इस घर में चलकर जमघट दिखाकर गावें । (घूमता है)

शिष्य — रावल जी ! ड्योढ़ी के भीतर न आना ।

दूत — अरे ब्राह्मण ! यह किसका घर है ?

शिष्य. — हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु चाणक्य जी का ।

दूत — (हँसकर) अरे ब्राह्मण, तब तो यह मेरे गुरुभाई का घर है ; मुझे भीतर जाने दे, मैं उसको धर्मोपदेश करूँगा ।

शिष्य. — (क्रोध से) छि : मूर्ख ! क्या तू गुरु जी से भी धर्म विशेष जानता है ?

दूत — अरे ब्राह्मण ! क्रोध मत कर, सभी सब कुछ नहीं जानते, कुछ तेरा गुरु जानता है, कुछ मेरे से लोग जानते हैं ।

शिष्य. — (क्रोध से) मूर्ख ! क्या तेरे कहने से गुरु जी की सर्वज्ञता उड़ जायगी ?

दूत. — भला ब्राह्मण ! जो तेरा गुरु सब जानता है तो बतलावे कि चंद्र किसको नहीं अच्छा लगता ?

शिष्य — मूर्ख ! इसको जानने से गुरु को क्या काम ?

दूत — यही तो कहता हूँ कि यह तेरा गुरु ही समझेगा कि इसके जानने से क्या होता है ? तू तो सुधा मनुष्य है, तू केवल इतना ही जानता है कि कमल को चंद्र प्यारा नहीं है । देख —

जदपि होत सुंदर, कमल, उलटो तदपि सुभाव ।
जो नित पूरन चंद सों, करत बिरोध बनाव ।।

चाणक्य. — (सुनकर आप ही आप) अहा ! "मैं चंद्रगुप्त के बैरियों को जानता हूँ" यह कोई गूढ़ बचन से कहता है ।

शिष्य. — चल मूर्ख ! क्या बेठिकाने की बकवाद कर रहा है ।

दूत — अरे ब्राह्मण ! यह सब ठिकाने की बातें होंगी ।

शिष्य — कैसे होंगी ?

दूत — जो कोई सुननेवाला और समझनेवाला होय ।

चाणक्य. — रावल जी ! बेखटके चले आइए, यहाँ आपको सुनने और समझनेवाले मिलेंगे ।

दूत — आया (आगे बढ़कर) जय हो महाराज की ।

चाणक्य. — (देखकर आप ही आप) कामों की भीड़ से यह नहीं निश्चय होता कि निपुणक को किस बात के जानने के लिये भेजा था । अरे जाना, इसे लोगों के जी का भेद लेने को भेजा था । (प्रकाश) आओ आओ कहो, अच्छे हो ? बैठो ।

दूत — जो आज्ञा । (भूमि में बैठता है)

चाणक्य. — कहो, जिस काम को गए थे उसका क्या किया ? चंद्रगुप्त को लोग चाहते हैं कि नहीं ?

दूत — महाराज ! आपने पहले ही से ऐसा प्रबंध किया है कि कोई चंद्रगुप्त विराग न करे ; इस हेतु सारी प्रजा महाराज चंद्रगुप्त में अनुरक्त है, पर राक्षस मंत्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे हैं जो चंद्रगुप्त की वृद्धि नहीं सह सकते ।

चाणक्य. — (क्रोध से) अरे ! कह, कौन अपना जीवन नहीं सह सकते, उनके नाम तू जानता है ?

दूत — जो नाम न जानता तो आप के सामने क्योंकर निवेदन करता ?

चाणक्य. — मैं सुना चाहता हूँ कि उनके क्या नाम हैं ?

दूत — महाराज सुनिए । पहिले तो शत्रु का पक्षपात करनेवाला क्षपणक है ।

चाणक्य. — (हर्ष से आप ही आप) हमारे शत्रुओं का पक्षपाती क्षपणक है ? (प्रकाश) उसका नाम क्या है ?

दूत — जीवसिद्धि नाम है ।

---

१. उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखलाकर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख माँगते थे ।

चाणक्य. — तूने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है ?

दूत — क्योंकि उसने मंत्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया ।

चाणक्य. — (आप ही आप) जीवसिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है । (प्रकाश) हाँ, और कौन है ?

दूत — महाराज ! दूसरा राक्षस मंत्री का प्यारा सखा शकटदास कायथ है ।

चाणक्य. — (हँसकर आप ही आप) कायथ कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्र शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इसी हेतु तो मैंने सिद्धार्थक को उसका मित्र बनाकर उसके पास रखा है (प्रकाश) हाँ, तीसरा कौन है ?

दूत — (हँसकर) तीसरा तो राक्षस मंत्री का मानों हृदय ही पुष्पपुरवासी चंदनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिसके घर में मंत्री राक्षस अपना कुटुंब छोड़ गया है ।

चाणक्य. — (आप ही आप) अरे ! यह उसका बड़ा अंतरंग मित्र होगा ; क्योंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना कुटुंब यों न छोड़ जाता । (प्रकाश) भला, तूने यह कैसे जाना कि राक्षस मंत्री वहां अपना कुटुंब छोड़ गया है ?

दूत — महाराज ! इस 'मोहर' की अँगूठी से आपको विश्वास होगा । (अँगूठी देता है ?)

चाणक्य. — (अँगूठी लेकर और उसमें राक्षस का नाम बाँचकर प्रसन्न होकर आप ही आप) अहा ! मैं समझता हूँ कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा । (प्रकाश) भला, तुमने यह अँगूठी कैसे पाई ? मुझसे सब वृत्तांत तो कहो ।

दूत — सुनिए, जब मुझे आपने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा तब मैंने यह सोचा कि बिना भेष बदले मैं दूसरे के घर में न घुसने पाऊँगा, इससे मैं जोगी का भेस करके जमराज का चित्र हाथ में लिए फिरता-फिरता चंदनदास जौहरी के घर में चला गया और वहाँ चित्र फैलाकर गीत गाने लगा ।

चाणक्य. — हाँ तब ?

दूत. — तब महाराज ! कौतुक देखने को एक पाँच बरस का बड़ा सुंदर बालक एक परदे के आड़ से स्त्री की उँगली पतली होती है, इससे द्वार पर ही यह बड़ा कलकल हुआ कि ''लड़का कहां गया ।'' इतने में एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकालकर देखा और लड़के को झट पकड़ ले गई, पर पुरुष की उँगली से स्त्री की उँगली पतली होती है, इससे द्वार पर ही य अँगूठी गिर पड़ी, और मैं उस राक्षस मंत्री का नाम देखकर आपके पास उठा लाया ।

चाणक्य. — वाह वाह ! क्यों न हो । अच्छा जाओ मैंने सब सुन लिया ! तुम्हें इसका फल शीघ्र ही मिलेगा ।

दूत. — जो आज्ञा ।

चाणक्य. — शारंगरव ! शारंगरव !!

शिष्य — (आकर) आज्ञा, गुरुजी ।

चाणक्य. — बेटा ! कलम, दावात, कागज तो लाओ ।

शिष्य — जो आज्ञा । (बाहर जाकर ले आता है) गुरुजी ! ले आया ।

चाणक्य. — (लेकर आप ही आप) क्या लिखूं ? इसी पत्र से राक्षस को जीतना है ।

(प्रतिहारी आती है)

प्रतिहारी — जय हो, महाराज की जय हो !

चाणक्य. — (हर्ष से आप ही आप) वाह वाह ! कैसा सगुन हुआ कि कार्यारंभ ही में जब शब्द सुनाई पड़ा । (प्रकाश) कहो, शोणोत्तरा, क्यों आई हो ?

प्रति. — महाराज ! राजा चंद्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मैं पर्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूँ इससे आपकी आज्ञा हो तो उनके पहिरे आभरणों को पंडित ब्राह्मणों को दूँ ।

चाणक्य. — (हर्ष से आप ही आप) वाह चंद्रगुप्त वाह ; क्यों न हो ; मेरे जी की बात सोचकर संदेश कहला भेजा है । (प्रकाश) शोणोत्तरा ! चंद्रगुप्त से कहो कि 'वाह ! बेटा वाह ! क्यों न हो, बहुत अच्छा विचार किया ! तुम व्यवहार में बड़े ही चतुर हो, इससे जो सोचा है सो करो, पर पर्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान ब्राह्मणों के देने चाहिएँ, इससे ब्राह्मण मैं चुन के भेजूँगा ।

प्रति. — जो आज्ञा महाराज ? (जाती है)

चाणक्य — शारंगरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जाकर चंद्रगुप्त से आभरण लेकर मुझसे मिलें ।

शिष्य — जो आज्ञा । (जाता है)

चाणक्य — (आप ही आप) पीछे तो यह लिखें पर पहिले क्या लिखें । (सोचकर) अहा ! दूतों के मुख से ज्ञात हुआ है कि उस म्लेच्छराज-सेना में प्रधान पांच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं ।

प्रथम चित्रवर्मा कुलूत को राजा भारी ।
मलयदेशपति सिंहनाद दूजो बलधारी ।।
तीजो पुसकरनयन अहै कश्मीर देश को ।

सिधुसेन पुनि सिंधु नृपति अति उग्र भेष को ।।
मेघाक्ष पांचवों प्रबल अति,
बहु हय-जुत पारस-नृपति ।
अब चित्रगुप्त इन नाम को
मेटहिं हम जब लिखहिं हति ।।[1]

(कुछ सोचकर) अथवा न लिखूँ, अभी सब बात यों ही रहे । (प्रकाश) शारंगरव ! शारंगरव !

शिष्य— (आकर) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य—बेटा! वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखें तो भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते ; इससे सिद्धार्थक से कहो (कान में कहकर) कि वह शकटदास के पास जाकर यह सब बात यों लिखवा कर और 'किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बांचे' यह सरनामे पर नाम बिना लिखवाकर हमारे पास आवे और शकटदास से यह न कहे कि चाणक्य ने लिखवाया है ।

शिष्य— जो आज्ञा । (जाता है)

चाणक्य— (आप ही आप) अहा ! मलयकेतु को तो जीत लिया ।

(चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है)

सिद्धा.— जय हो महाराज की जय हो, महाराज ! यह शकटदास के हाथ का लेख है ।

चाणक्य— (लेकर देखता है) वाह कैसे सुंदर अक्षर हैं ! (पढ़कर) बेटा इस पर यह मोहर कर दो ।

सिद्धा.— जो आज्ञा । (मोहर करके) महाराज, इस पर मोहर हो गई, अब और कहिए क्या आज्ञा है ।

चाणक्य— बेटा ! हम तुम्हें एक अपने निज काम में भेजा चाहते हैं ।

सिद्धा.— (हर्ष से) महाराज, यह तो आपकी कृपा है । कहिए, यह दास आपके कौन काम आ सकता है ।

चाणक्य— सुनो पहिले जहाँ सूली दी जाती है वहाँ जाकर फाँसी देनेवालों को दाहिनी आँख दबाकर समझा देना [2] और जब वे तेरी बात समझकर डर से इधर उधर भाग जायँ तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस मंत्री के पास चले जाना। वह अपने मित्र के प्राण बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हें पारितोषिक देगा, तुम उसको लेकर कुछ दिनों तक राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुंच जायँ तब यह काम करना । (कान में समाचार कहता है ।)

सिद्धा.— जो आज्ञा महाराज ।

चाणक्य— शारंगरव ! शारंगरव !!

शिष्य— (आकर) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य— कालपाशिक और दंडपाशिक से यह कह दो कि चंद्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीवसिद्ध क्षपणक ने राक्षस के कहने से विषकन्या का प्रयोग करके पर्वतेश्वर को मार डाला, यही दोष प्रसिद्ध करके अपमानपूर्वक उसको नगर से निकाल दें ।

शिष्य— जो आज्ञा (घूमता है)

चाणक्य— बेटा ! ठहर — सुन, और वह जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य हम लोगों की बुराई करता है । यही दोष प्रगट करके उसको सूली दे दें और उसके कुटुंब को कारागार में भेज दें ।

शिष्य— जो आज्ञा महाराज । (जाता है)

चाणक्य— (चिंता करके आप ही आप) हा ! क्या किसी भाँति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा ।

सिद्धा.— महाराज ! लिया ।

चाणक्य— (हर्ष से आप ही आप) अहा ! क्या राक्षस को ले लिया ? (प्रकाश) कहो, क्या पाया ?

सिद्धा.— महाराज ! आपने जो संदेश कहा, वह मैंने भली भाँति समझ लिया, अब काम पूरा करने जाता हूँ ।

चाणक्य—(मोहर और पत्र देकर) सिद्धार्थक ! जा तेरा काम सिद्ध हो ।

सिद्धा.— जो आज्ञा । (प्रणाम करके जाता है)

शिष्य— (आकर) गुरु जी, कालपाशिक, दंडपाशिक आपसे निवेदन करते हैं कि महाराज चंद्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं ।

चाणक्य— अच्छा बेटा ! मैं चंदनदास जौहरी को देखा चाहता हूँ ।

शिष्य— जो आज्ञा । (बाहर जाकर चंदनदास को लेकर आता है) इधर आइए सेठ जी !

चंदन.— (आप ही आप) यह चाणक्य ऐसा निर्दय है कि यह जो एकाएक किसी को बुलावे तो लोग बिना अपराध भी इससे डरते हैं, फिर कहाँ मैं इसका

---

१. अर्थात् अब जब हम इनका नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरेंगे । इससे अब चित्रगुप्त अपने खाते से इनका नाम काट दें, न ये जीते रहेंगे न चित्रगुप्त को लेखा रखना पड़ेगा ।

२ चांडालों को पहले से समझा था कि जो आदमी दाहिनी आँख दबावे उसको हमारा मनुष्य समझ कर तुम लोग झटपट हठ जाना ।

नित्य का अपराधी, इसी से मैंने धनसेनादिक तीन महाजनों से कह दिया कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तो आश्चर्य नहीं, इससे स्वामी राक्षस का कुटुंब और कहीं ले जाओ, मेरी जो गति होनी है वह हो ।

शिष्य — इधर आइए साह जी !

चंदन. — आया (दोनों घूमते हैं)

चाणक्य — (देखकर) आइए साहजी ! कहिए, अच्छी तो हैं ? बैठिए यह आसन है ।

चंदन. — (प्रणाम करके) महाराज ! आप नहीं जानते कि अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दु:ख का कारण होता है, इससे मैं पृथ्वी पर बैठूँगा ।

चाणक्य — वाह ! आप ऐसा न कहिए, आपको तो हम लोगों के साथ यह व्यवहार उचित ही है ; इससे आप आसन ही पर बैठिए ।

चंदन. — (आप ही आप) कोई बात तो इस दुष्ट ने जानी । (प्रकाश) जो आज्ञा (बैठता है)

चाणक्य — कहिए साहजी ! चंदनदास जी ! आपको व्यापार में लाभ तो होता है न ?

चंदन. — महाराज, क्यों नहीं, आपकी कृपा से सब बनज-व्यापार अच्छी भाँति चलता है ।

चाणक्य — कहिए साहजी ! पुराने राजाओं के गुण, चंद्रगुप्त के दोषों को देखकर, कभी लोगों को स्मरण आते हैं ?

चंदन. — (कान पर हाथ रखकर) राम ! राम ! शरद ऋतु के पूर्ण चंद्रमा की भाँति शोभित चंद्रगुप्त को देखकर कौन नहीं प्रसन्न होता ?

चाणक्य — जो प्रजा ऐसी प्रसन्न है तो राजा भी प्रजा से कुछ अपना भला चाहते हैं ।

चंदन. — महाराज ! जो आज्ञा । मुझसे कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं ?

चाणक्य — सुनिए साह जी ! यह नंद का राज[1] नहीं है, चंद्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होने वाला तो वह लालची नंद ही था, चंद्रगुप्त तो तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है ।

चंदन. — (हर्ष से) महाराज, यह तो आपकी कृपा है ।

चाणक्य — पर यह तो मुझसे पूछिए कि वह भला किस प्रकार से होगा ?

चंदन. — कृपा करके कहिए ।

चाणक्य — सौ बात की एक बात यह है कि राजा से विरुद्ध कामों को छोड़ो ।

चंदन. — महाराज वह कौन अभागा है जिसे आप राजविरोधी समझते हैं ?

चाणक्य — उनमें पहिले तो तुम्हीं हो ।

चंदन. — (कान पर हाथ रखकर) राम ! राम ! राम ! भला तिनके से और अग्नि से कैसा विरोध ?

चाणक्य — विरोध यही है कि तुमने राजा के शत्रु राक्षस मंत्री का कुटुंब अब तक घर में रख छोड़ा है ।

चंदन. — महाराज ! यह किसी दुष्ट ने आपसे झूठ कह दिया है ।

चाणक्य — सेठजी ! डरो मत । राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास बिना चाहे भी कुटुंब छोड़कर भाग जाते हैं इससे इसके छिपाने ही में दोष होगा ।

चंदन. — महाराज ! ठीक है । पहिले मेरे घर पर राक्षस मंत्री का कुटुंब था ।

चाणक्य — पहिले तो कहा कि किसी ने झूठ कहा है । अब कहते हो था, यह गबड़े की बात कैसी ?

चंदन. — महाराज ! इतना ही मुझसे बातों में फेर पड़ गया ।

चाणक्य — सुनो, चंद्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता, इससे राक्षस का कुटुंब दो, तो तुम सच्चे हो जाओगे ।

चंदन. — महाराज ! मैं कहता हूँ न, पहिले राक्षस का कुटुंब था ।

चाणक्य — तो अब कहाँ गया ?

चंदन. — न जाने कहाँ गया ।

चाणक्य — (हँसकर) सुनो सेठ जी ! तुम क्या नहीं जानते कि साँप तो सिर पर बूटी पहाड़ पर । और जैसा चाणक्य ने नंद को . . .(इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है ।)

चंदन. — (आप ही आप)

प्रिया दूर धन गरजहीं, अहो दु:ख अति घोर ।
औषधि दूर हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर ।।

चाणक्य — चंद्रगुप्त को अब राक्षस मंत्री राज पर से उठा देगा यह आशा छोड़ो, क्योंकि देखो —

नृप नंद जीवत नीतिबल सों मति रही जिनकी भली ।
ते 'वक्रनासादिक' सचिव नहिं थिर सके करि, नसि चली ।।
सो श्री सिमिट अब आय लिपटी चंद्रगुप्त नरेस सों ।
तेहि दूर को करि सकै ? चांदनि छुटत कहुँ राकेस सों ?

१. यहाँ तुच्छता प्रकट करने के लिए 'राज्य' का अपभ्रंश 'राज' लिखा गया है ।

और भी

'''सादा दाँत के कुंभ को'' इत्यादि फिर से पढ़ता है ।

चंदन.— (आप ही आप) अब तुमको सब कहना फबता है ।।

(नेपथ्य में) हटो हटो —

चाणक्य— शारंगरव ! यह क्या कोलाहल है देखो तो ?

शिष्य— जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर) महाराज, राजा चंद्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीवसिद्धि क्षपणक निरादरपूर्वक नगर से निकाला जाता है ।

चाणक्य— क्षपणक ! हा ! हा ! अथवा राजविरोध का फल भोगै । सुनो चंदनदास ! देखो, राजा अपने द्वेषियों को कैसा कड़ा दंड देता है । मैं तुम्हारे भले की कहता हूँ, सुनो, और राक्षस का कुटुंब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो ।

चंदन.— महाराज ! मेरे घर राक्षस मंत्री का कुटुंब नहीं है ।

(नेपथ्य में कलकल होता है)

चाणक्य— शारंगरव ! देख तो यह क्या कलकल होता है ?

शिष्य— जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज ! राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते हैं ।

चाणक्य— राजविरोध का फल भोगे । देखो, सेठ जी ! राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दंड देता है, इससे राक्षस का कुटुंब छिपाना वह कभी न सहेगा ; इसी से उसका कुटुंब देकर तुमको अपना प्राण और कुटुंब बचाना हो तो बचाओ ।

चंदन.— महाराज ! क्या आप मुझे डर दिखाते हैं ! मेरे यहाँ अमात्य राक्षस का कुटुंब हई नहीं है, पर जो होता तो भी मैं न देता ।

चाणक्य— क्या चंदनदास ! तुमने यही निश्चय किया है ?

चंदन.— हाँ ! मैंने यही दृढ़ निश्चय किया है ।

चाणक्य— (आप ही आप) वाह चंदनदास ! वाह ! क्यों न हो !

दूजे के हित प्रान दै, करै धर्म प्रतिपाल ।
को ऐसो शिवि के बिना, दूजो है या काल ।।

(प्रकाश) क्या चंदनदास, तुमने यही निश्चय किया है ?

चंदन.— हाँ ! हाँ ! मैंने यही निश्चय किया है ।

चाणक्य— (क्रोध से) दुरात्मा दुष्ट बनिया ! देख राजकोप का कैसा फल पाता है ।

चंदन.— (बाँह फैलाकर) मैं प्रस्तुत हूँ, आप जो चाहिए अभी दंड दीजिए ।

चाणक्य— (क्रोध से) शारंगरव ! कालपाशिक, दंडपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दंड दें । नहीं, ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इसके घर का सारा धन ले लें और इसको कुटुंब समेत पकड़कर बाँध रखें, तब तक मैं चंद्रगुप्त से कहूँ, वह आप ही इसके सर्वस्व और प्राण के हरण की आज्ञा देगा ।

शिष्य—जो आज्ञा महाराज : सेठजी इधर आइए ।

चंदन.— लीजिए महाराज ! यह मैं चला । (उठकर चलता है, आप ही आप) अहा ! मैं धन्य हूँ कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, अपने हेतु को सभी मरते हैं !

चाणक्य— (हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि

जिमि इन तृन सम प्रान तजि कियो मित्र को त्रान ।
तिमि सोइ निज मित्र अरु कुल रखिहै दै प्रान ।।

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य— शारंगरव !

शिष्य— (आकर) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य— देख तो यह कैसी भीड़ है ।

शिष्य— (बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर) महाराज ! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया ।

चाणक्य— (आप ही आप) वाह सिद्धार्थक । काम का आरंभ तो किया । (प्रकाश) हैं क्या ले गया ? (क्रोध से) बेटा ! दौड़कर भागुरायण से कहो कि उसको पकड़े ।

शिष्य— (बाहर जाकर आता है, विषाद से) गुरु जी ! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है ।

चाणक्य— (आप ही आप) निज काज साधने के लिये जाय । (क्रोध से प्रकाश) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़ें ।

शिष्य— जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आकर विषाद से) महाराज ! बड़े दुख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है । भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गए ।

चाणक्य— (आप ही आप) सब काम सिद्ध करें । (प्रकाश) बेटा, सोच मत करो ।

जे बात कछु जिय धारि भागे, भले सुख सों भागहीं ।
जे रहे तेह जाहिं, तिनको सोच मोहि जिय कछु नहीं
'सत सैन सो अधिक साधिनि काज की जेहि जग कहै ।
सो नंदकुल की खननहारी बुद्धि नित मो मैं रहै ।।

(उठकर और आकाश की ओर देखकर) अभी भद्रभटादिकों को पकड़ता हूँ । (आप ही आप) राक्षस ! अब मुझसे भाग के कहाँ जायगा, देख —

एकाकी मदगलित गज, जिमि नर लावहिं बाँध ।
चंद्रगुप्त के काज मैं तिमि तोहि धरिहौं साध ।।

(सब जाते हैं — जवनिका गिरती है)

द्वितीय अंक

स्थान — राजपथ

(मदारी आता है)

मदारी — अललललललल, नाग लाए साँप लाए !

तंत्र युक्ति सब जानहीं, मंडल रचहिं बिचार ।
मंत्र रक्षही ते करहिं, अहि नृप को उपकार ।।

आकाश में देखकर[1]) महाराज ! क्या कहा ? 'तू कौन है ?' महाराज ! मैं जीर्णविष नाम सपेरा हूँ । फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहा कि "मैं भी साँप का मंत्र जानता हूँ खेलूँगा ? तो आप काम क्या करते हैं, यह कहिए ? (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहा —'मैं राजसेवक हूँ ?' तो आप तो साँप के साथ खेलते ही हैं । (फिर ऊपर देखकर) क्या कहा 'कैसे' ? मंत्र और जड़ी बिन मदारी और आँकुस बिन मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसे ही नए अधिकार के संग्रामविजयी राजा के सेवक — ये तोनों अवश्य नष्अ होते हैं । (ऊपर देखकर) यह देखते देखते कहाँ चला गया ? (फिर ऊपर देखकर) यह महाराज ? पूछते हो कि 'इन पिटारियों में क्या है ?' इन पिटारियों में मेरी जीविका के सर्प हैं (फिर ऊपर देखकर) क्या कहा कि मैं देखूँगा ! वाह वाह महाराज । देखिए देखिए, मेरी बोहनी हुई, कहिए इसी स्थान पर खोलूँ ? परंतु यह स्थान अच्छा नहीं है ; यदि आपको देखने की इच्छा हो तो आप इस स्थान में आइए मैं दिखाऊँ । (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहा कि 'यह स्वामी राक्षस मंत्री का घर है, इसमें मैं घुसने न पाऊँगा, तो आप जायँ, महाराज ! मैं तो अपनी जीविका के प्रभाव से सभी के घर जाता आता हूँ । अरे क्या वह गया ? (चारों ओर देखकर) अहा, बड़े आश्चर्य की बात है जब मैं चाणक्य की रक्षा में चंद्रगुप्त को देखता हूँ तब समझता हूँ कि चंद्रगुप्त ही राज्य करेगा, पर जब राक्षस की रक्षा में मलयकेतु को देखता हूँ तब चंद्रगुप्त का राज गया सा दिखाई देता है, क्योंकि —

चाणक्य ने लै जदपि बाँधी बुद्धिरूपी डोर सों ।
करि अचल लक्ष्मी मौर्यकुल में नीति के निज जोर सों ।
पै तदपि राक्षस चातुरी करि हाथ में ताकों करै ।
महि ताहि खींचत आपुनी दिसि मोहि यह जानी परै ।

सो इन दोनों पर नीतिचतुर मंत्रियों के विरोध में नंदकुल की लक्ष्मी संशय में पड़ी है ।

दोऊ सचिव विरोध सों, जिमि बन जुग गजराज ।
हथिन सी लक्ष्मी बिचल, इत उत झोंका खाय ।।

तो चलूँ, अब मंत्री राक्षस से मिलूँ ।

(जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और पास प्रियंबदक नामक सेवक दिखाई देते हैं)

राक्षस — (ऊपर देखकर आँखों में आँसू भर कर) हा ! बड़े कष्ट की बात है —

गुन-नीति बल सों जीति अरि जिमि आपु जादवगन हयो
तिमि नंद को यह विपुल कुल बिधि बाम सों सब नसि गयो ।।
एहि सोच में मोहि दिवस अरु निसि नित्य जागत बीतहीं ।
यह लखै चित्र विचित्र मेरे भाग के बिनु भीतहीं ।।

अथवा

बिनु भक्ति भूले, बिनहि
स्वारथ हेतु हम यह पन लियो ।
बिनु प्रान के भय, बिनु
प्रतिष्ठालाभ सब अब लौं कियो ।।
सब छोड़ि कै परदासता एहि हेत नित प्रति हम करैं ।
जो स्वर्ग में हूँ स्वामि मम निज शत्रु हत लखि सुख भरैं ।।

(आकाश की ओर देखकर दु :ख से) हा ! भगवती लक्ष्मी ! तू बड़ी अगुणज्ञा है क्योंकि —

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि गुनरासि नंद नृपाल कों ।
अब शूद्र में अनुरक्त ह्वै लपटी सुधा मनु ब्याल कों ।
ज्यों मत्त गज के मरत मद की धार ता साथहिं नसै ।
त्यों नंद साथहि नसी किन ? निलज, अजहूँ जग बसै ।।

अरे पापिन !

का जग में कुलवंत नृप जीवत रह्यौ न कोय ।

१. 'आकाश में देखकर' या 'ऊपर देखकर' का आशय यह है कि मानो दूसरे से बात करता है ।

जो तू लपटी शूद्र सों नीचगामिनी होय ?

अथवा

बारबधू जन को अहै सहजहिं चपल सुभाव ।
तजि कुलीन गुनियन करहिं ओछे जन सो चाव ।।

तो हम भी अब तेरा आधार ही नाश किए देते हैं । (कुछ सोचकर) हम मित्रवर चंदनदास के घर अपना कुटुंब छोड़कर चले आए सो अच्छा ही किया । क्योंकि एक तो अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नहीं चाहता, दूसरे यहाँ के निवासी महाराजनंद में अनुरक्त हैं, इससे हमारे सब उद्योगों में सहायक होते हैं । वहाँ भी विषादिक से चंद्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार से शत्रु का दाँव घात व्यर्थ करने को बहुत सा धन देकर शकटदास को छोड़ ही दिया है । प्रतिक्षण शत्रुओं का भेद लेने को और उनका उद्योग नाश करने को भी जीवसिद्धि इत्यादि सुहृद नियुक्त ही हैं ।

सो अब तो —

विषवृक्ष-अहिसुत-सिंहपोत समान जा दुखरास कों।
नृपनंद निज सुत जानि पाल्यौ सकुल निज असु-नास को।
ता चंद्रगुप्तहि बुद्धि सर मम तुरत मारि गिराइ है ।
जो दुष्ट दैव न कवच बनिकै असह आड़ै आइहै ।।

(कंचुकी आता है)

कंचुकी — (आप ही आप)

नृपनंद काम समान चानक-नीति-जर जरजर भयो ।
पुनि धर्म सम नृप चंद्र तिन तन पुरहु क्रम सों बढ़ि लियो ।।
अवकास लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइहै ।
पै सिथिल बल भे नाहिं कोऊ बिधिहु सों जय पाइहै।।

(देखकर) मंत्री राक्षस है । (आगे बढ़कर) मंत्री ! आप का कल्याण हो ।

राक्षस जाजलक ! प्रणाम करता हूं । अरे प्रियंबदक ! आसन ला ।

प्रियंबदक — (आसन लाकर) यह आसन है, आप बैठें ।

कंचुकी — (बैठकर) मंत्री, कुमार मलयकेतु ने आपको यह कहा है कि 'आपने बहुत दिनों से अपने शरीर का सब श्रृंगार छोड़ दिया है इससे मुझे बड़ा दुख होता है । यद्यपि आपको अपने स्वामी के गुण नहीं भूलते और उनके वियोग के दु:ख में यह सब कुछ नहीं अच्छा लगता तथापि मेरे कहने से आप इनको पहिरें ।' (आभरण दिखाता है) मंत्री ! आभरण कुमार ने अपने अंग से उतार कर भेजे हैं, आप इन्हें धारण करें ।

राक्षस — जाजलक ! कुमार से कह दो कि तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया । पर —

इन दुष्ट बैरिन सों दुखी निज अंग नहिं सँवारिहौं ।
भूषन बसन सिंगार तब लौं हौं न तन कछु धारिहौ ।।
जब लौं न सब रिपु नासि, पाटलिपुत्र फेर बसाइहौं।।
हे कुँवर ! तुमको राज दै, सिर अचल छत्र फिराइहौं।।

कंचुकी — अमात्य ! आप जो न करो सो थोड़ा है, यह बात कौन कठिन है ? पर कुमार की यह पहिली बिनती तो मानने ही के योग्य है ।

राक्षस — मुझे तो जैसी कुमार की आज्ञा माननीय है वैसी ही तुम्हारी भी, इससे मुझे कुमार की आज्ञा मानने में कोई विचार नहीं है ।

कंचुकी — (आभूषण पहिराता) कल्याण हो महाराज ! मेरा काम पूरा हुआ ।

राक्षस — मैं प्रणाम करता हूँ ।

कंचुकी — मुझको जो आज्ञा हुई थी सो मैंने पूरी की । (जाता है)

राक्षस — प्रियंबदक ! देख तो मेरे मिलने को द्वार पर खड़ा है ।

प्रियं. — जो आज्ञा । (आगे बढ़कर सँपेरे के पास आकर) आप कौन हैं ?

सँपेरा — मैं जीर्णविष नामक सँपेरा हूँ और राक्षस मंत्री के सामने मैं साँप खेलना चाहता हूँ । मेरी यही जीविका है ।

प्रियं. — तो ठहरो, हम अमात्य से निवेदन कर ले । (राक्षस के पास जाकर) महाराज ! एक सँपेरा है, वह आपको अपना करतब दिखलाया चाहता है ।

राक्षस — (बाईं आँख का फड़कना दिखाकर आप ही आप) हैं, आज पहिले ही साँप दिखाई पड़े । (प्रकाश) प्रियंबदक ! मेरा साँप देखने को जी नहीं चाहता तो इसे कुछ देकर विदा कर ।

प्रियं. — जो आज्ञा । (सँपेरे के पास जाकर) लो, मंत्री तुम्हारा कौतुक बिना देखे ही तुम्हें यह देते हैं, जाओ ।

सँपेरा — मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं केवल सँपेरा ही नहीं हूँ किंतु भाषा का कवि भी हूँ, इससे जो मंत्री जी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ़ लें ! (एक पत्र देता है)

प्रियं. — (पत्र लेकर राक्षस के पास आकर) महाराज ! वह सँपेरा कहता है कि मैं केवल सँपेरा ही नहीं हूँ, भाषा का कवि भी हूँ । इससे जो मंत्री जी मेरी कविता मेरे मुख से सुनना न चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ़ ले । (पत्र देता है ।)

राक्षस— (पत्र पढ़ता है)

सकल कुसुम रस पान करि मधुप रसिक सिरताज ।
जो मधु त्यागत ताहि लै होत सबै जग काज ।।

(आप ही आप) अरे !! — 'मैं कुसुमपुर का वृत्तांत जाननेवाला आप का दूत हूँ' इस दोहें से यह ध्वनि निकलती है । अह ! मैं तो कामों से ऐसा घबड़ा रहा हूँ कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया । अब स्मरण आया । यह तो सँपेरा बना हुआ विराधगुप्त कुसुमपुर से आया है । (प्रकाश) प्रियंवदक ! इसको बुलाओ यह सुकवि है, मैं भी इसकी कविता सुना चाहता हूँ ।

प्रियं.— जो आज्ञा । (सँपेरे के पास जाकर) चलिए, मंत्री जी आपको बुलाते हैं ।

सँपेरा— (मंत्री के सामने जाकर और देखकर आपही आप) अरे यही मंत्री राक्षस है ! अहा !—

लै बाम बाहु-लताहि राखत कंठ सौं खसि खसि परै ।
तिमि धरे दच्छिन बाहु कोह्र गोद में बिच लै गिरै ।।
जा बुद्धि के डर होइ संकित नृप हृदय कुच नहिं धरै ।
अजहूँ न लक्ष्मी चंद्रगुप्तहि गाढ़ आलिंगन करै ।।

(प्रकाश) मंत्री की जय हो ।

राक्षस— (देखकर) अरे विराध — (संकोच से बात उड़ाकर) प्रियंवदक ! मैं जब तक सर्पों से अपना जी बहलाता हूँ तब तक सबको लेकर तू बाहर ठहर !

प्रियं.— जो आज्ञा ।

(बाहर जाता है)

राक्षस— मित्र विराधगुप्त ! इस आसन पर बैठो ।

विराध गुप्त— जो आज्ञा । (बैठता है) ।

राक्षस— (खेद-सहित निहारकर) हा ! महाराज नंद के आश्रित लोगों की यह अवस्था ! (रोता है)

विराध— आप कुछ सोच न करें, भगवान की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी ।

राक्षस— मित्र विराधगुप्त ! कहो, कुसुमपुर का वृत्तांत कहो ।

विराध— महाराज ! कुसुमपुर का वृत्तांत बहुत लंबा-चौड़ा है, जिससे जहाँ से आज्ञा हो वहाँ से कहूँ ।

राक्षस— मित्र ! चंद्रगुप्त के नगर-प्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देनेवाले लोगों ने क्या क्या किया यह सुना चाहता हूँ ।

विराध— सुनिए — शक, यवन, किरात, कांबोज, पारस, वाल्हीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजों की सहायता से, चंद्रगुप्त और पर्वतेश्वर के बलरूपी समुद्र से कुसुमपुर चारों ओर सो घिर गया है ।

राक्षस— (कृपाण खींचकर क्रोध से) हैं ! मेरे जीते कौन कुसुमपुर घेर सकता है ? प्रवीरक ! प्रवीरक !

चढ़ौ लै सरैं, धाइ घेरौ अटा को ।
धरौ द्वार पै कुंजरैं ज्यों घटा को ।
कहौ जोधनै मृत्यु को जीति धावैं ।
चलैं संग भै छाँड़ि, कै कीर्ति पावैं- ।।

विराध— महाराज ! इतनी शीघ्रता न कीजिए, मेरी बात सुन लीजिए ।

राक्षस— कौन बात सुनूँ ? अब मैंने जान लिया कि इसी का समय आ गया है । (शस्त्र छोड़कर आँखों में आँसू भरकर) हा ! देव नंद ! राक्षस को तुम्हारी कृपा कैसे भूलेगी ?

हैं जहँ झुंड खड़े गज मेघ के अज्ञा
करौ तहां राक्षस ! जायकै ।
त्यों ये तुरंग अनेकन हैं,
तिनहूँ के प्रबंधहि राखौ बनायकै ।।
पैदल ये सब तेरे भरोसे है,
काज करौ तिनको चित लायकै ।
यों कहि एक हमैं तुम मानत हे,
निज काज हजार बनाय कै ।।

हाँ फिर ?

विराध.— तब चारों ओर से कुसुमनगर घेर लिया और नगरवासी बिचारे भीतर ही भीतर घिरे घिरे घबड़ा गए । उनका उदासी देखकर सुरंग के मार्ग से सर्व्वार्थसिद्धि तपोवन में चला गया और स्वामी के विरह से आपके सब लोग शिथिल हो गए । तब अपने जयकी डौंड़ी सब नगर में शत्रु लोगों ने फिरवा दी, और आपके भेजे हुए लोग सुरंग में इधर उधर छिप गए, और जिस विषकन्या को आपने चंद्रगुप्त के नाश-हेतु भेजा था उससे तपस्वी पर्वतेश्वर मारा गया ।

राक्षस— अहा मित्र ! देखो, कैसा आश्चर्य हुआ —

जो विषमयी नृप-चंद्र बध-हित नारि राखी लाय कै ।
तासों हत्यो पर्वत उलटि चाणक्य बुद्धि उपाय कै ।।
जिमि करन शक्ति अमोघ अर्जुन-हेतु धरी छिपाय कै ।
पै कृष्ण के मत सो घटोत्कच पै परी घहराय कै ।।

विराध.— महाराज ! समय की सब उलटी गति है — क्या कीजिएगा ?

राक्षस— हाँ । तब क्या हुआ ?

विराध.— तब पिता का वध सुनकर कुमार

मलयकेतु नगर से निकलकर चले गए और पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक पर उन लोगों ने अपना विश्वास जमा लिया । तब उस दुष्ट चाणक्य ने चंद्रगुप्त का प्रवेश मुहूर्त्त प्रसिद्ध करके नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुलाकर एकत्र किया और उनसे कहा कि महाराज के नंद भवन में गृहप्रवेश का मुहूर्त ज्योतिषियों ने आज ही आधी रात का दिया है, इससे बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जाँच लो । तब उससे बढ़ई लोहारों ने कहा कि महाराज ! चंद्रगुप्त का गृहप्रवेश जानकर दारुवर्म ने प्रवेश द्वार तो पहले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रखा है, भीतर से द्वारों को हम लोग ठीक करते हैं ।' यह सुनकर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म ने बड़ा काम किया इससे उसको चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलेगा ।

राक्षस— (आश्चर्य से) चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है ? इससे दारुवर्म का यत्न या तो उलटा होगा या निष्फल होगा, क्योंकि इसने बुद्धिमोह से या राजभक्ति से बिना समय ही चाणक्य के जी में अनेक संदेह और विकल्प उत्पन्न कराए । हां फिर ?

विराध.— फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुलाकर सबको सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्वतेश्वर का भाई वैरोधक और चंद्रगुप्त को एक आसन पर बिठाकर पृथ्वी का आधा आधा भाग कर दिया ।

राक्षस— क्या पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक को आधा राज मिला, यह पहले ही उसने सुना दिया ?

विराध.— हां, तो इससे क्या हुआ ?

राक्षस— (आप ही आप) निश्चय यह ब्राह्मण बड़ा धूर्त है, कि उसने उस सीधे तपस्वी से इधर उधर की चार बात बनाकर पर्वतेश्वर के मानने के अपयश निवारण के हेतु यह उपाय सोचा । (प्रकाश) अच्छा कहो — तब ?

विराध.— तब यह तो उसने पहले ही प्रकाश कर दिया था कि आज रात को गृह प्रवेश होगा, फिर उसने वैरोधक को अभिषेक कराया और बड़े बड़े बहुमूल्य स्वच्छ मोतियों का उसके कवच पहिराया और अनेक रत्नों से जड़ा सुंदर मुकुट उसके सिर पर रखा और गले में अनेक सुगंध के फूलों की माला पहिराई, जिससे वह एक ऐसे बड़े राजा की भांति हो गया कि जन लोगों ने उसे सर्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकें । फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चंद्रगुप्त की चंद्रलेखा नाम की हथिनी पर बिठाकर बहुत से मनुष्य साथ करके बड़ी शीघ्रता से नंद में उसका प्रवेश कराया जब वौरोधक मंदिर में घुसने घुसने लगा तब आपका भेजा दारुवर्म बढ़ई उसको चंद्रगुप्त समझकर उसके ऊपर गिराने को अपनी कल की बनी तोरन लेकर सावधान हो बैठा । इसके पीछे चंद्रगुप्त के अनुयायी सब बाहर खड़े रह गये और जिस बर्बर को आपने चंद्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह भी अपनी सोने की छड़ी की गुप्ती जिसमें एक छोटी कृपाण थी लेकर वहाँ खड़ा हो गया ।

राक्षस— दोनों ने बेठिकाने काम किया । हाँ फिर ?

विराध.— तब उस हथिनी को मारकर बढ़ाया और उसके दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष्य, जो चंद्रगुप्त के धोखे वैरोधक पर किया गया था, चूक गया और वहाँ बर्बर जो चंद्रगुप्त का आसरा देखता था, वह बेचारा उसी कल की तोरन से मारा गया । जब दारुवर्मा ने देखा कि लक्ष्य तो चूक गए, अब मारे जायहींगे तब उसने उस कल के लोहे की कील से उस ऊँचे तोरन के स्थान ही पर से चंद्रगुप्त से धोखे तपस्वी वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला ।

राक्षस— हाय ! दोनों बातें कैसे दुख की हुई कि चंद्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनों बिचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए (आप ही आप) दैव ने इन दोनों को नहीं मारा हम लोगों को मारा !! (प्रकाश) और यह दारुवर्म बढ़ई क्या हुआ ?

विराध.— उसको वैरोधक के साथ के मनुष्यों को मार डाला ।

राक्षस— हाय ! बड़ा दु :ख हुआ ! हाय प्यारे दारुवर्म का हम लोगों से वियोग हो गया । अच्छा ! उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया ?

विराध.— महाराज ! सब कुछ किया ।

राक्षस— (हर्ष से) क्या चंद्रगुप्त मारा गया ?

विराध.— दैव ने न मारने दिया ।

राक्षस— (शोक से) तो क्या फूलकर कहते हो कि सब कुछ किया ।

विराध.— उसने औषधि में विष मिलाकर चंद्रगुप्त को दिया, पर चाणक्य ने उसको देख लिया और सोने के बरसतन में रखकर उसके रंग पलटा जानकर चंद्रगुप्त से कह दिया कि इस औषधि में विष मिला है, इसको न पीना ।

राक्षस— अरे वह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है । हाँ, तो वह वैद्य क्या हुआ ?

विराध.— उस वैद्य को वही औषधि पिलाकर मार डाला ।

राक्षस— (शोक से) हाय हाय ! बड़ा गुणी मारा गया । भला शयनघर के प्रबंध करनेवाले प्रमोदक ने क्या किया ।

विराध.— उसने सब चौका लगाया ।

राक्षस— (घबड़ा कर) क्यों ?

विराध.— उस मूर्ख को जो आपके यहाँ से व्यय को धन मिला सो उससे उसने अपना बड़ा ठाटबाट फैलाया । यह देखते ही चाणक्य चौकन्ना हो गया और उससे अनेक प्रश्न किए, जब उसने उन प्रश्नों के उत्तर अंडबंड दिए तो उसपर पूरा संदेह करके दुष्ट चाणक्य ने उसको बुरी चाल से मार डाला !

राक्षस— हा ! क्या देव ने यहाँ भी उलटा हमी लोगों को मारा ! भला वह चंद्रगुप्त के सोते समय मारने के हेतु जो राजभवन में वीभत्सकादि वीर सुरंग में छिपा रखे थे उनका क्या हुआ ?

विराध.— महाराज ! कुछ न पूछिए ।

राक्षस— (घबड़ाकर) क्यों-क्यों क्या चाणक्य ने जान लिया ?

विराध.— नहीं तो क्या ?

राक्षस— कैसे ?

विराध.— महाराज ! चंद्रगुप्त के सोने जाने के पहले ही वह दुष्ट चाणक्य उस घर में गया और उसको चारों ओर से देखा तो भीतर की एक दरार से चिऊँटियाँ चावल के कने लाती हैं । यह देखकर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर मनुष्य छिपे हैं । बस, यह निश्चय कर उसने घर में आग लगवा दिया और धुआँ से घबड़ाकर निकल तो सके ही नहीं, इससे वे वीभत्सकादि वहीं भीतर ही जलकर राख हो गए ।

राक्षस— (सोच से) मित्र ! देख, चंद्रगुप्त का भाग्य कि सब के सब मर गए । (चिंता सहित) अहा ! सखा ! देख दुष्ट चंद्रगुप्त का भाग्य !

कन्या जो विष की गई ताहि हतन के काज ।
तासों मार्‌यौ पर्वतक जाको आधो राज ।।
सबै नसे कलबल सहित जे पठए बध हेत ।
उलटी मेरी नीति सब मौर्यहि को फल देत ।।

विराध.— महाराज ! तब भी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिए —

प्रारंभ ही नहिं विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं ।
पुनि करहिं तौ कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं ।
धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम ते टरैं ।
जे पुरुष उत्तम अंत में ते सिद्ध सब कारज करैं ।।

और भी —

का सेसहि नहिं भार पैर धरती देर न डारि ।
कहा दिवसमनि नहिं थकत पैं नहिं रुकत विचारि ।।
सज्जन ताको हित करत जेहि किय अंगीकार ।
यहै नेम सुकृत को निज जिय करहु विचार ।।

राक्षस— मित्र ! यह क्या तू नहीं जानता कि मैं प्रारब्ध के भरोसे नहीं हूँ ? हाँ, फिर ।

विराध.— तब से दुष्ट चाणक्य चंद्रगुप्त की रक्षा में चौकन्ना रहता है और इधर उधर के अनेक उपाय सोचा करता है और पहिचान-पहिचान के नंद के मित्रों को पकड़ता है ।

राक्षस— (घबड़ाकर) हाँ ! कहो तो, मित्र ! उसने किसे किसे पकड़ा है ?

विराध.— सबसे पहले तो जीवसिद्धि क्षपणक को निरादर करके नगर से निकाल दिया ।

राक्षस— (आप ही आप) भला, इतने तक तो कुछ चिंता नहीं, क्योंकि वह योगी है उसका घर बिना जी न घबड़ायगा । (प्रकाश) मित्र ! उसपर अपराध क्या ठहराया ?

विराध.— कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्वतेश्वर को मार डाला ।

राक्षस— (आप ही आप) वाह रे कौटिल्य वाह ? क्यों न हो ?

निज कलंक हम पै धर्‌यो, हत्यौ अर्ध बँटवार ।
नीतिबीज तुव एक ही फल उपजवत हजार ।।

(प्रकाश हाँ, फिर

विराध.— फिर चंद्रगुप्त के नाश को इसने दारुवर्मादिक नियत किए थे यह दोष लगाकर शकटदास को शूली दे दी ।

राक्षस— (दु:ख से) हा मित्र शकटदास ! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई । अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गए । इससे कुछ सोच नहीं है, सोच हमीं लोगों का है कि स्वामी के मरने पर भी जीना चाहते हैं ।

विराध.— मंत्री ! ऐसा न सोचिए, आप स्वामी का काम कीजिये ।

विराध.— मित्र ।

केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौं बचे ।
स्वामि गयो परलोक, पै कृतघ्न इतही रहे ।।

विराध.— महाराज ! ऐसा नहीं । ('केवल है यह' ऊपर का छंद फिर से पढ़ता है)[१]

राक्षस— मित्र ! कहो, और भी सैकड़ों मित्रों का नाश सुनने को ये पापी कान उपस्थित हैं ।

विराध.— यह सब सुनकर चंदनदास ने बड़े

कष्ट से आपके कुटुंब को छिपाया ।

राक्षस— मित्र ! उस दुष्ट चाणक्य के तो चंदनदास के विरुद्ध ही किया ।

विराध.— तो मित्र का बिगाड़ा करना तो अनुचित ही था ;

राक्षस— हाँ, फिर क्या हुआ ?

विराध.— तब चाणक्य ने आपके कुटुम्ब को चंदनदास से बहुत मांगा पर उसने नहीं दिया, इस पर उस दुष्ट ब्राह्मण ने —

राक्षस— (घबड़ाकर) क्या चंदनदास को मार डाला ।

विराध.— नहीं, मारा तो नहीं, पर स्त्री-पुत्र धन-समेत बाँधकर बंदीघर में भेज दिया ।

राक्षस— तो क्या ऐसे सुखी होकर कहते हो कि बंधन में भेज दिया ? अरे ! यह कहो कि मंत्री राक्षस को कुटुंब सहित बाँध रक्खा है । अरे ! यह कहो कि मंत्री राक्षस को कुटुंब सहित बाँध रक्खा है ।

(प्रियंवदक आता है)

प्रियंवदक— जय-जय महाराज ! बाहर शकटदास खड़े हैं ।

राक्षस— (आश्चर्य से) सच ही !

प्रियं.— महाराज ! आपके सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं ?

राक्षस— मित्र विराधगुप्त ! यह क्या !

विराध.— महाराज ! होनहार जो बचाया चाहे तो कौन मार सकता है ।

राक्षस— प्रियंवदक ! अरे जो सच ही कहता है तो उनको झटपट लाता क्यों नहीं ?

प्रियं.— जो आज्ञा । (जाता है)

(सिद्धार्थक के संग शकटदास आता है)

शकटदास— (देखकर आप ही आप)

वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ़ कै,
सो चंद्र को राज थिरयो प्रन तें ।
लपटी वह फाँस की डोर सोई,
मनु श्री लपटी वृषलै मन तें ।।
बजी डौंड़ी निरादर की नृप नंद के,
सेऊ लख्यो इन आँखन तें ।।
नहिं जानि परै इतनोहू भए,
केहि हेतु न प्रान कढ़े तन तें ।।

(राक्षस को देखकर) यह मंत्री राक्षस बैठे हैं । अहा !

नंद गए हू नहिं तजत प्रभुसेवा को स्वाद ।
भूमि बैठि प्रगटत मनहुँ स्वामिभक्त-मरजाद ।।

(पास जाकर) मंत्री की जय हो ।

राक्षस— (देखकर आनंद से) मित्र शकटदास ! आओ, मुझसे मिल लो, क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आए हो ।

शकट.— (मिलता है)

राक्षस— (मिलकर) यहाँ बैठो ।

शकट.— जो आज्ञा । (बैठता है)

राक्षस— मित्र शकटदास ! कहो तो यह आनंद की बात कैसे हुई ?

शकट.— (सिद्धार्थक को दिखाकर) इस प्यारे सिद्धार्थक ने सूली देने वाले लोगों को हटाकर मुझको बचाया है ।

राक्षस— (आनंद से) वाह सिद्धार्थक ! तुमने काम तो अमूल्य किया है, पर भला ! तब भी यह जो कुछ है सो लो ।(अपने अंग से आभरण उतार कर देता है)

सिद्धा.— (लेकर आप ही आप) चाणक्य के कहने से मै सब करूँगा । (पैर पर गिरके प्रकाश) महाराज ! यहाँ में पहिले पहल आया हूँ, इससे मुझे यहाँ कोई नहीं जानता कि मैं उसके पास इन भूषणों को छोड़ जाऊँ । इससे आप इसी अँगूठी से इस पर मोहर करके अपने ही पास रखें, मुझे जब काम होगा ले जाऊँगा ।

राक्षस— क्या हुआ ? अच्छा शकटदास ! जो यह कहता है वह करो ।

शकट.— जो आज्ञा) । (मोहर पर राक्षस का नाम देखकर धीरे से मित्र ! यह तो तुम्हारे नाम की मोहर है ।

राक्षस— (देखकर बड़े सोच से आप ही आप) हाय हाय इसको त

हाय हाय इसको तो जब मैं नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले लिया था, यह इसके हाथ कैसे लगी ? (प्रकाश) सिद्धार्थक ! तुमने यह कैसे पाई ?

सिद्धा.— महाराज ! कुसुमपुर में जो चंदनदास जौहरी हैं उनके द्वार पर पड़ी पाई ।

राक्षस— तो ठीक है ।

सिद्धा.— महाराज ! ठीक क्या है ?

राक्षस— यही कि ऐसे धनिकों के घर बिना यह वस्तु और कहां मिले ?

शकट— मित्र ! यह मंत्रीजी के नाम की मुहर है, इससे तुम इसको मंत्री को दे दो, तो इसके बदले तुम्हें बहुत पुरस्कार मिलेगा ।

सिद्धा.— महाराज ! मेरे ऐसे भाग्य कहा कि

आप इसे लें। (मोहर देता है)

राक्षस— मित्र शकटदास! इसी मुद्रा से सब काम किया करो।

शकट.— जो आज्ञा।

सिद्धा.— महाराज! मैं कुछ बिनती करूँ?

राक्षस— हाँ हाँ! अवश्य करो।

सिद्धा.— यह तो आप जानते ही हैं कि उस दुष्ट चाणक्य की बुराई करके फिर मैं पटने में घुस नहीं सकता, इससे कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा किया चाहता हूँ।

राक्षस— बहुत अच्छी बात है। हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे, अच्छा है, यहीं रहो।

सिद्धा.— (हाथ जोड़कर) बड़ी कृपा हुई।

राक्षस— मित्र शकटदास! ले जाओ, इसके उतारो और सब भोजनादिक को ठीक करो।

शकट.— जो आज्ञा।

(सिद्धार्थक को लेकर जाता है)

राक्षस— मित्र विराधगुप्त! अब तुम कुसुमपुर का वृत्तांत जो छूट गया था सो कहो। वहाँ के निवासियों को मेरी बातें अच्छी लगती हैं कि नहीं।

विराध.— बहुत अच्छी लगती हैं, वरन वे सब तो आप ही के अनुयायी हैं।

राक्षस— ऐसा क्यों?

विराध.— इसका कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के पीछे चाणक्य को चंद्रगुप्त ने कुछ चिढ़ा दिया श्और चाणक्य ने भी उसकी बात न सहकर चंद्रगुप्त की आज्ञा भंग करके उसके दुःखी कर रखा है, यह मैं भली भाँति जानता हूँ।

राक्षस— (हर्ष से) मित्र विराधगुप्त! जो तुम इसी सँपेरे के भेष से फिर कुसुमपुर जाओ और वहाँ मेरा मित्र स्तनकलस नामक कवि है उससे कह दो कि चाणक्य के आज्ञाभंगादिकों के कवित्त बना बनाकर चंद्रगुप्त के बढ़ावा देता रहे और जो कुछ काम हो जाय वह करभक से कहला भेजे।

विराध.— जो आज्ञा (जाता है)

(प्रियंवदक आता है)

प्रियं.— जय हो महाराज! शकटदास कहते हैं कि ये तीन आभूषण बिकते हैं, इन्हें आप देखें।

राक्षस— (देखकर) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहने हैं। अच्छा शकट दास से कह दो कि दाम चुका कर ले लें।

प्रियं.— जो आज्ञा। (जाता है)

राक्षस— तो अब हम भी चलकर करभक को कुसुमपुर भेजें। (उठता है) अहाँ! क्या उस मृतक चाणक्य से चंद्रगुप्त से बिगाड़ हो जायगा? क्यों नहीं? क्योंकि सब कामों को सिद्ध ही देखता हूँ।

चंद्रगुप्त निज तेज बल करत सबन को राज।
तेहि समझत चाणक्य यह मेरी दियो समाज।।
अपनो अपनो करि चुके काज रह्यो कछु जौन।
अब जौ आपसु में लड़ैं तौ बड़ अचरज कौन।।

(जाता हैं)

तृतीय अंक

स्थान — राजभवन की अटारी

(कंचुकी आता है)

कंचुकी— रूप आदि विषय जो राखे हिये बहु

हे रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों।
सो मिटे इंद्रीगन सहित ह्वै सिथिल अतिही छोभ सो।।
मानत कह्यो कोउ नाहिं सब अंग अंग ढ़ीले ह्वै गए।
तौहू न तृष्णे! क्यौं तजत तू मोहि बूढ़ोहु भए।

(आकाश की ओर देखकर) अरे! अरे! सुगांगप्रासाद के लोगों! सुनो। महाराज चंद्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी कि 'कौमुदी-महोत्सव के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूँ इससे उस अटारी को बिछोने इत्यादि से सज रखो, देर क्यों करते हो! (आकाश की ओर देखकर) क्या कहा? कि क्या महाराज चंद्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी-महोत्सव अब की न होगा? दुर दइमारो! क्या मरने को लगे हो? शीघ्रता करो।

सवैया

बहु फूल की माल लपेट कै खंभन
धूप सुगंध सो ताहि धुपाइए।
तापैं चहूँ दिस चंद छपा से
सुसोभित चौंर घने लटकाइए।।
भार सों चारु सिंहासन के
मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइए।
छींट कै तापैं गुलाब मिल्यौ
जल चंदन ताकहँ जाइ जगाइए।।

(आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो कि 'हम लोग अपने काम में लग रहे हैं?' अच्छा अच्छा झटपट सब सिद्ध करो। देखो! वह महाराज चंद्रगुप्त आ पहुँचे।

बहु दिन श्रम करि नंद नृप बह्यो राजपुर जौन।
बालेपन ही में लियो चंद्र सीस निज तौन।।

डिगत न नेकहु विषय पथ दृढ़ प्रतिज्ञ दृढ़ गात ।
गिरन चहत सम्हरत बहुरि नेकु न जिय घबरात ।।

(नेपथ्य में — इधर महाराज इधर । राजा और प्रतिहारी आते हैं)

राजा — (आप ही आप) राज उसी का नाम है जिसमें अपनी आज्ञा चले, दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढ़ोना है । क्योंकि —

जो दूजे को हित करैं तो खोवै निज काज ।
जो खायो निज काज तौ कौन बात को राज ।।
दूजे ही को हित करै तौ वह परवस मूढ़ ।
कठ पुतरी सो स्वाद कछु पावै कबहुँ न कूढ़ ।।

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सम्हालना बहुत कठिन है । क्योंकि —

कूर सदा भाखत पियहि चंचल सहज सुभाव ।
नर गुन औगुन नहिं लखति सज्जन खल सम भाव ।।
डरति सूर सो भीरु कहँ गिनति न कछु रति-हीन ।
बारनारि अरु लच्छमी कहो कौन बस कीन ? ।।

यद्यपि गुरु ने कहा है कि तू झूठी कलह करके स्वतंत्र होकर अपना प्रबंध कर ले, पर यह तो बड़ा पाप सा है । अथवा गुरुजी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतंत्र हैं ।

जब लौं बिगारै काज नहिं तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै ।
पै शिष्य जाइ कुराह तौ गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै ।।
तासों सदा गुरु-वाक्य-वश हम नित्य पर आधीन हैं ।
निर्लोभ गुरु से संत जन ही जगत में स्वाधीन है ।।

(प्रकाश) अजी वैहीनर ! सुगांगप्रासाद का मार्ग दिखाओ ।

कंचुकी — इधर आइए, महाराज, इधर ।

(राजा आगे बढ़ता है)

कंचुकी — महाराजा ! सुगांगप्रासाद की यही सीढ़ी है ।

राजा — (ऊपर चढ़कर) अहा ! शरद ऋतु की शोभा से सब दिशाएँ कैसी सुंदर हो रही हैं । क्योंकि —

सरद बिमल ऋतु सोहई निरमल नील प्रकास ।।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास ।
चारु चमेली बन रही महमह महँकि सुबास ।
नदी तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास ।।
कमल कुमोदिनि सरन में फूले सोभा देत ।
भौंर वृंद जापै लखौ गूँजि गूँजि रस लेत ।
बसन चाँदनी चंद मुख, उडुगन मोती माल ।।
कास फूल मधु हास, यह सरद किधौं नव बाल ।।

(चारों ओर देखकर) कंचुकी ! यह क्या ? नगर में 'चंद्रिकोत्सव' कहीं नहीं मालूम पड़ता ; क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव हो ?

कंचुकी — महाराज सबसे ताकीद कर दी थी ।

राजा — तो फिर क्यों नहीं हुआ ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी ?

कंचुकी — (कान पर हाथ रखकर) राम राम ! भला नगर क्या, इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा न माने ?

राजा — तो फिर चंद्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ ? देख न —

गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न बंदनवार ।
तने बितान न कहुँ नगर, रंजित कहूँ न द्वार ।।
न नारी डोलत न कहुँ फूल माल गल डार ।
नृत्य बाद धुनि गीत नहिं सुनियत श्रवन मँझार ।।

कंचुकी — महाराज ! ठीक है, ऐसा ही है ।

राजा — क्यों ऐसा ही है ?

कंचुकी — महाराज योंही है ।

राजा — स्पष्ट क्यों नहीं कहता ?

कंचुकी — महाराज ! चंद्रिकोत्सव बंद किया गया है ।

राजा — (क्रोध से) किसने बंद किया है ?

कंचुकी — (हाथ जोड़कर) महराज ! यह मैं नहीं कह सकता ।

राजा — कहीं आर्य चाणक्य ने तो नहीं बन्द किया ?

कंचुकी — महाराज ! और किसको अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी ?

राजा — (अत्यंत क्रोध से) अच्छा, अब हम बैठेंगे ।

कंचुकी — महाराज ! यह सिंहासन हैं, बिराजिए ।

राजा — (बैठकर क्रोध से) अच्छा, कंचुकी ! आर्य चाणक्य से कह कि 'महाराज आपको देखा चाहते हैं ।'

कंचुकी — जो आज्ञा । (बाहर जाता है)

(एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखाई पड़ता है ।

चाणक्य — (आप ही आप) दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है, जानता है कि —

जिमि हम नृप-अपमान सों महा क्रोध उर धारि ।
करी प्रतिज्ञा नंद नृप नासन की निरधारि ।।

सो नृप नंदहि पुत्र सह नासि करी हम पूर्ण ।।
चंद्रगुप्त राजा कियो करि राक्षस-मद चूर्ण ।।
तिमि सोऊ मोहि नीति-बल छलन चहत इति चंद ।
पै मो आछत यह जतन वृथा तासु अति मंद ।।

(ऊपर देखकर क्रोध से) अरे राक्षस ! छोड़-छोड़ यह व्यर्थ का श्रम ; देख —

जिमि नृप नंदहि मारि कै वृष लहि दीनों राज ।
आइ नगर चाणक्य किय दुष्ट सर्प सों काज ।।
तिमि सोऊ नृप चंद्र को चाहत करन बिगार ।।
निज लघु मति लाँघ्यौ चहत मो बल-बुद्धि-पहार ।।

(आकाश की ओर देखकर) अरे राक्षस ! मेरा पीछा छोड़ो क्योंकि —

राज काज मंत्री चतुर करत बिना अभिमान ।
जैसी तुम नृप नंद हो चंद्र न तौन समान ।।
तुम कछु नहिं चाणक्य सो साधौ कठिनहु काज ।
तासों हम सों बेर करि नहिं सरिहैं तुव राज ।।

अथवा इसमें तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिए । क्योंकि —

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरि कै ।
तिमि गए सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निबेरि कै ।।
अब लखहु करि छल कलह नृप सों भेद बुद्धि उपाइ कै।
पर्वत जनन सों हम बिगारत राक्षसहि उलटाइ कै ।।

कंचुकी — हा ! सेवा बड़ी कठिन होती है ।

नृप सों सचिव सों सब मुसाहेब-गनन सों डरते रहौ ।
पुनि विटहु जे अति पास के तिनकौं कह्यौ करतो रहौ।
मुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत संकित प्रान है।
निज उदर-पूरन हेतु सेवा स्वान-वृत्ति समान है ।।

(चारों ओर घूमकर देखकर)

अहा ! यही आर्य चाणक्य का घर है तो चलूँ । (कुछ आगे बढ़कर और देखकर) अहाहा ! यह राजाधिराज श्रीमंत्रीजी के घर की संपत्ति है । जो —

कहुँ परे गोमय शुष्क, कहुँ सिल परी सोभा दै रही।
कहुँ तिल कहूँ जब-रासि लागी बटुन जो भिक्षा लही ।।
कहुँ कुस परे कहुँ समिध सूखत भार सों ताके नयो ।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसो भुकि गयो ।।

महाराज चंद्रगुप्त के भाग्य से ऐसा मंत्री मिला है ।

बिन गुनहूँ के नृपन कों धन हित गुरुजन धाई ।
सूखो मुख करि भूठहीं बहु गुन कहहिं बनाई ।।
पै जिनको तृष्णा नहीं ते न लबार समान ।
तिनसों तृन सम धनिक जन पावत कबहुँ न मान ।।

(देखकर डर से) अरे आर्य चाणक्य यहाँ बैठे हैं, जिन्होंने —

लोक धरपि चंद्रहि कियो राजा नंद गिराइ ।
हो प्रात रवि के कढ़त जिमि ससि तेज नसाइ ।।

(प्रगट दंडवत करके) जय हो ! आर्य की जय हो !!

चाणक्य — (देखकर) कौन है, वैहीनर । क्यों आया है ?

कंचुकी — आर्य ! अनेक राजागणों के मुकुट-माणिक्य से सर्वदा जिनके पदतल लाल रहते हैं उन महाराज चंद्रगुप्त ने आपके चरणों में दंडवत् करके निवेदन किया है कि 'यदि आपके किसी कार्य में विघ्न न पड़े तो मैं आपका दर्शन किया चाहता हूँ ।

चाणक्य — वैहीनर ! क्या वृषल मुझे देखा चाहता है ? क्या मैंने कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध कर दिया है यह वृषल नहीं जानता ?

कंचुकी — आर्य क्यों नहीं ।

चाणक्य — (क्रोध से) हैं ? किसने कहा ?

कंचुकी — (भय से) महाराज प्रसन्न हों जब सुगांगप्रसाद की अटारी पर गए थे तो देखकर महाराज ने आप ही जान लिया कि कौमुदी महोत्सव अबकी नहीं हुआ ।

चाणक्य — अरे ठहर, मैंने जाना यह तुम्हीं लोगों ने वृषल का जी मेरी ओर से फेरकर उसे चिढ़ा दिया है, और क्या ।

(कंचुकी भय से नीचा मुँह करके चुप रह जाता है)

चाणक्य — अरे राज के कारबारियों का चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है । अच्छा, वृषल कहाँ है । बता ।

कंचुकी — (डरता हुआ) आर्य ! सुगांगप्रासाद की अटारी पर से महाराज ने मुझे आपके चरणों में भेजा है ।

चाणक्य — (उठकर) कंचुकी सुगांगप्रासाद का मार्ग बता ।

कंचुकी — इधर महाराज । (दोनों घूमते हैं)

कंचुकी — महाराज ! यह सुगांगप्रासाद की सीढ़ियाँ हैं, चढ़ें ।

(दोनों सुगांगप्रासाद पर चढ़ते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिर के छिप जाता है)

चाणक्य — (चढ़कर और चंद्रगुप्त को देखकर प्रसन्नता से आप ही आप) अहा ! वृषल सिंहासन पर बैठा है —

हीन नंद सो रहित नृप चंद्र करत जेहि भोग ।
परम होत संतोष लखि आसन राजा भोग ।।

(पास जाकर) जय हे वृषल की !

चंद्रगुप्त — (उठकर और पैरों पर गिरकर)

आर्य ! चंद्रगुप्त दंडवत् करता है ।

चाणक्य— (हाथ पकड़कर उठाकर) उठो बेटा ! उठो ।

जहँ लौं हिमालय के सिखर सुरधुनी-कन सीतल रहै ।
जहँ लौं विविध मणिखंड-मंडित समुद दच्छिन दिसि बहै ।।
तहँ लौं सबै नृप आइ भय सों तोहि सीस झुकावहीं ।
तिनके मुकुट-मणि रँगे तुव पद निरखि हम सुख पावहीं।

चंद्र.— आर्य ! आपकी कृपा से ऐसा ही हो रहा है । बैठिए ।

(दोनों यथास्थान बैठते हैं)

चाणक्य— वृषल ! कहो मुझे क्यों बुलाया है ?

चंद्रगुप्त— आर्य के दर्शन से कृतार्थ होने को ।

चाणक्य— (हँसकर) भया बहुत शिष्टाचार हुआ, अब बताओ क्यों बुलाया है ? क्योंकि राजा लोग किसी को बेकाम नहीं बुलाते ।

चाणक्य— जब पूछना ही है तब तुमको इससे में क्या फल सोचा है ?

चाणक्य— (हँसकर) तो यही उलाहना देने को बुलाया है न ?

चंद्र— उलाहना देने को कभी नहीं ?

चाणक्य— तो क्यों ?

चंद्र— पूछने को ।

चाणक्य— जब पूछना ही है तब तुमको इससे क्या ? शिष्य को सर्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए ।

चंद्र— इसमें कोई संदेह नहीं पर आपकी रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवृत्त होती । इससे पूछा ।

चाणक्य— ठीक है, तुमने मेरा आशय जान लिया, बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती ही नहीं ।

चंद्र— इसी से तो तुमने बिना मेरा जी अकुलाता है !

चाणक्य— सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं — एक राजा के भरोसे, दूसरा मंत्री के भरोसे, तीसरा राजा और मंत्री दोनों के भरोसे ; सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है ; फिर इन बातों के पूछने से क्या ? व्यर्थ मुँह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जानें ।

(राजा क्रोध से मुँह फेर लेता है ; नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं)

(राग विहाग)

प्रथम वै.—

अहो यह सरद संभु ह्वै आई ।
कास-फूल फूले चहुँ दिसि तें सोइ मनु भस्म लगाई ।।
चंद उदित सोइ सीस अभूषन सोभा लगति सुहाई ।
तासों रंजित घन-पटली सोइ मनु गज-खाल बनाई ।।
फूले कुसुम मुंडमाला सोइ सोहत अति धवलाई ।
राजहंस सोभा सोइ मानों हास-विभव दरसाई ।।
अहो यह सरद संभु बनि आई ।

(राग कलिंगड़ा)

हरौ हरि-नैन तुम्हारी बाधा ।
सरद-अंत लखि सेस अंक तें जगे जगत-सुभ-साधा।।
कछु कछु खुले मूँदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे
अरुन कमल से मद के माते थिर भे जदपि ढ़रारे ।।
सेस सीस मनि चमक-चकौंधन तनिकहुँ नहिं सकुचाहीं।
सकुचाहीं ।।
नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला-उर माहीं ।।
हरौ हरि-नैन तुम्हारी बाधा ।

दूसरा वै.— कड़खे की चाल में)

अहो जिनको विधि सब जीव सों बढ़ि दीनो जग काज ।
अरे, दान-सलिल-वारे सदा जे जीतहिं गजराज ।।
आहो, झुक्यो न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज।।
ब्रे, सहहिं न आज्ञा-भंग जिमि दंतपात मृगराज ।।
अरे, केवल बहु गहिना पहिरि राजा होइ न कोय ।
अहो, जाकी नहिं आज्ञा टरै सो नृप तुम सम होय ।।

चाणक्य— (सुनकर आप ही आप) भला पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद दिया, पर इस दूसरे ने कहा ? (कुछ सोच कर) अरे जाना, यह सब राक्षस की करतूत है । अरे दुष्ट राक्षस ! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है ?

चंद्र.— अजी वैहीनर ! इन दोनों गानेवालों को लाख-लाख मोहर दिलवा दो ।

वैहीनर— जो आज्ञा महाराज । (उठकर जाना चाहता है)

चाणक्य— वैहीनर, ठहर अभी मत जा, वृषल, कुपात्र को इतना क्यों देते हो ?

चंद्र.— आप मुझे सब बातों में यों ही रोक दिया करते हैं, तब यह मेरा राज्य क्या है वरन् उलटा बंधन है ।

चाणक्य— वृषल ! जो राजा आप असमर्थ होते हैं उनमें इतना ही तो दोष है, इससे जो ऐसी इच्छा हो तो तुम अपने राज का प्रबंध आप कर लो ।

चंद्र.— बहुत अच्छा, आज से मैंने सब काम सम्हाला ।

चाणक्य— इससे अच्छी और क्या बात है, तो मैं भी अपने अधिकार पर सावधान हूँ ।

चंद्र.— जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूँ कि कौमुदी महोत्सव का निषेध क्यों किया गया ?

चाणक्य— मैं भी यही पूछता हूँ कि उसके होने का प्रयोजन क्या था !

चंद्र.— पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन ।

चाणक्य— मैंने भी आप की आज्ञा के अपालन के हेतु की कौमुदी-महोत्सव का प्रतिषेध किया, क्योंकि —

आइ चारह सिंधु के छोरहु के भूपाल ।
जो शासन सिर पै धरैं जिमि फूलन की माल ।।
तोहि हम जौ कछु टारहीं सोउ तुव हित उपदेस ।
जासो तुमरो विनय गुन जग मैं बढ़ै नरेस ।।

चंद्र.— और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूँ ।

चाणक्य— वह भी कहता हूँ ।

चंद्र.— कहिए ।

चाणक्य— शोणोत्तरे ! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादिकों का लेखपत्र है वह माँगा है ।

प्रतिहारी— जो आज्ञा । (बाहर से पत्र लाकर देती है)

चाणक्य— वृषल, सुनो ।

चंद्र.— मैं उधर ही कान लगाए हूँ ।

चाणक्य— (पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रसिद्ध महाराज श्री चन्द्रगुप्त देव के साथी जो अब उनको छोड़कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए हैं उनका यह प्रतिज्ञापत्र है । पहिला गजाध्यक्ष भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त महाप्रतिहार चंद्रभानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालवा के राजा का पुत्र रोहिताश्व और क्षत्रियों में सबसे प्रधान विजय-वर्म्मा (आप ही आप) ये हम सब लोग यहाँ महाराज का काम सावधानी से साधते हैं (प्रकाश) यही इस पत्र में लिखा है । सुना ?

चंद्र.— आर्य्य, मैं इन सबों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूँ ।

चाणक्य— वृषल ! सुनो —जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वे रात-दिन मद्य, स्त्री और जुआ में डूबकर अपने काम से निरे बेसुध रहते थे । इससे मैंने उनसे अधिकार लेकर केवल निर्वाह के योग्य जीविका कर दी थी, इससे उदास होकर कुमार मलयकेतु के पास चले गए और वहाँ अपना-अपना कार्य्य सुनाकर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए हैं और हिंगुरात और बलगुप्त ऐसे लालची हैं कि कितना भी दिया पर अंत में मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे कि यहीं बहुत मिलेगा, और जो आपका लड़कपन का सेवक राजसेन था उसने आपकी थोडी ही कृपा से हाथी, घोड़ा, घर और धन सब पाया, पर इस भय से भागकर मलयकेतु के पास चला गया कि सब धन छिन न जाय, और वह जो सिंहबलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उससे पर्व्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि ''जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा इससे यहां से भाग चलो'' ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आपके वैरी चंदनदासादिकों को दंड हआ कृपा से हाथी, घोड़ा, घर और धन सब पाया, इस भ्य से भाग कर मलयकेतु के पास चला गया कि सब धन छिन न जाय, और वह जो सिंहबलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उससे पर्व्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि ''जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा इससे यहां से भाग चलो'' ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा तब मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा । उसने भी यह समझकर कि इसने मेरे प्राण बचाए और मेरे पिता का परिचित भी है उसको कृतज्ञता से अपना अंतरंगी मंत्री बनाया है, और वे जो रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा थे वे ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उनके नातेदारों का आदर करते थे तब वह कुढ़ते थे, इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गए, बस, यही उन लोगों की उदासी का कारण है ।

चंद्र— आर्य्य । जब इन सबके भागने का उद्यम जानते ही थे तो क्यों न रोक रखा ?

चाणक्य— ऐसा कर नहीं सके ।

चंद्र— क्या आप इसमें असमर्थ हो गए वा कुछ उसमें भी प्रयोजन था ?

चाणक्य— असमर्थ कैसे हो सकते हैं ? उसमें भी कुछ प्रयोजन ही था ।

चंद्र.— आर्य । वह प्रयोजन मैं सुनना चाहता हूँ ।

चाणक्य— सुनो और भूल मत जाओ ।

चंद्र.— आर्य ! मैं सुनता हुई हूँ, भूलूँगा भी नहीं ; कहिए ।

चाणक्य— जब जो लोग उदास हो गए है या बिगड़ गए हैं उनके दो ही उपाय है, या तो फिर से उन पर अनुग्रह करें या उनको दंड दें और भद्रभट, पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उनको उनका अधिकार दिया जाय ; और यह हो नहीं सकता, क्योंकि उनको मृगया, मद्यपानादिक का जो व्यसन है इससे इस योग्य नहीं हैं कि हाथी, घोड़ों को सम्हालें और सब सेना की जड़ हाथी घोड़े ही हैं । वैसे ही हिंगुरात बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है, क्योंकि उनको सब राज्य पाने से भी संतोष न होगा, और राजसेन और भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे हैं ; ये तो प्रसन्न होई नहीं सकते, और रोहिताक्ष, विजयवर्म्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है, क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं और उनका कितना भी मान करो, उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है ; तो इनका क्या उपाय है। यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ, अब दंड का सुनिए । यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्वदा शुभाकांक्षी और साक्षी रहे दंड देकर दुखी करें तो नंदकुल के साथियों का हम पर से विश्वास उठ जाय, इससे छोड़ ही देना योग्य समझा, सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों को पक्षपाती बनाकर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पाकर और अपने पिता के वध से क्रोधित होकर पर्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है, सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है उत्सव का समय नहीं । इससे गढ़ के संस्कार के समय कौमुदीमहोत्सव क्या होगा, यही सोचकर उसका प्रतिषेध कर दिया ।

चंद्र.— आर्य ! मुझे अभी इसमें बहुत कुछ पूछना है ।

चाणक्य— भली भाँति पूछो, क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है ।

चंद्र.— यह पूछता हूँ —

चाणक्य— हाँ ! मैं भी कहता हूँ ।

चंद्र— यह कि हम लोगों के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है ; उसे आपने भागते समय क्यों नहीं पकड़ा ?

चाणक्य— वृषल ! मलयकेतु के भागने के समय भी दो ही उपाय थे — या तो मेल करते या दंड देते । जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दंड देते तो फिर यह हम लोगों की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती कि इन्हीं लोगों ने पर्वतक को भी मरवा डाला और जो आधा राज देकर अब मेल कर लें तो उस बिचारे पर्वतक के मारने का पाप ही पाप लगे । इससे मलयकेतु के भागते समय छोड़ दिया ।

चंद्र.— और भला राक्षस इसी नगर में रहता था, उसका भी आपने कुछ न किया इसका क्या उत्तर है ।

चाणक्य— सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहाँ बहुत दिन रहने से यहाँ के लोगों का और नंद के सब साथियों का विश्वासपात्र हो रहा है और उनका स्वभाव सब लोग जान गए हैं । उसमें बुद्धि और पौरुष भी है, वैसे ही उसके सहायक भी हैं और कोषबल भी हैं, इससे जो वह यहाँ रहे तो भीतर के सब लोगों को फोड़कर उपद्रव करे और जो यहाँ से दूर रहे तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावे पर उनके मिटाने में इतना कठिनाई न हो । इससे उसके जाने के समय उपेक्षा कर दी गई ।

चंद्र..— तो जब वह यहाँ था तभी उसको वश में क्यों नहीं कर लिया ?

चाणक्य— वश क्या कर लें, अनेक उपयों से तो वह छाती में गड़े काँटे की भाँति निकालकर दूर किया गया है ! उनसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था ।

चंद्र.— तो बल से क्यों नहीं पकड़ रखा ?

चाणक्य— वह राक्षस ऐसा नहीं है, उस पर जो बल किया जाता तो या तो वह आप मारा जाता या तुम्हारी सेना का नाश कर देता ।

और —

हम खोवैं इक महत नर जो वह पावै नास ।
जो वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास ।।
तासों कल बल करि बहुत आने बस करि वाहि ।
जिमि गज पकरैं सुघर तिमि बाँधैंगे हम ताहि ।।

चंद्र.— मैं आप की बात तो नहीं काट सकता, पर इससे तो मंत्री राक्षस ही बड़ चढ़ के जान पड़ता है ।

चाणक्य— (क्रोध से) 'आप नहीं' इतना क्यों छोड़ दिया ? ऐसा कभी नहीं है । उसने क्या किया है कहो तो ?

चंद्र— जो आप न जानते हों तो सुनिए कि वह महात्मा —

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुशलात ।
जब लौं जिय चाह्यौ रह्यौ धारि सीस पै लात ।।
डौंड़ी फेरन के समय निज बल जय प्रगटाय ।

मेरो दल के लोग को दीनों तुरत हराय ।।
मोहें परिजन रीति सों जाके सब बिनु त्रास ।
जो मो पै निज लोकहू आनहिं नहिं विश्वास ।।

चाणक्य— (हँसकर) वृषल ! राक्षस ने वह सब किया ?

चंद्र.— हाँ ! हाँ ! अमात्य राक्षस ने यह सब किया ।

चाणक्य— तो हमने जाना, जिस तरह नंद का नाश करके तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा ।

चंद्र.— आर्य ! यह उपालंभ आपको नहीं शोभा देता, करनेवाला सब दूसरा है ।

चाणक्य— रे कृतघ्न ।

अतिहि क्रोध करि खोलिकै सिखा प्रतिज्ञा कीन ।
सो सब देखत भुव करी नव नृप नंद विहीन ।।
घिरी स्वान अरु गीध सों भय उपजावनिहारि ।
जारि नंदहू नहिं भई सांत मसान दवारि ।।

चंद्र— यह सब किसी दूसरे ने किया ।

चाणक्य— किसने ?

चंद्र.— नन्दकुल के द्वेषी दैव ने ।

चाणक्य— दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं ।

चंद्र.— और विद्वान् लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं ।

चाणक्य— (क्रोध नाट्य करके) अरे वृषल ! क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है ।

खुली सिखाहूँ बाँधिबे चंचल मे पुनि हाथ ।
(क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर)
घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ ।।
नंद नसे सों निरुज ह्वै तू फूल्यौ गरबाय ।
सो अभिमान मिटाइहौं तुरतहिं लेहि गिराय ।।

चंद्र.— (घबड़ाकर) अरे ! क्या आर्य को सचमुच क्रोध आ गया !

फर फर फरकत अधर फूट, भए नयन जुग लाल ।
चढ़ी जाती भौंहैं कुटिल, स्वाँस तजत जिमि व्याल ।।
मनहुँ अचानक रुद्रदृग खुल्यौ त्रितिय दिखरात ।
(आवेग सहित)
धरनी धार्‌यौ बिनु धँसे हा हा किमि पदघात ।।

चाणक्य— (नकली क्रोध रोककर) तो वृषल ! इस कोरी बकवाद से क्या लाभ है ! जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे । (शस्त्र फेंक और उठकर —आप ही आप) ह ह ह ! 'राक्षस' ! यही तुमने चाणक्य को जीतने का उपाय किया ।

तुम जानो चाणक्य सों नृप चंदहिं लखाय ।
सहजहि खैहैं राज हम निज बल बुद्धि उपाय ।।
सो हम तुमही कहूँ छलन कियो क्रोध परकास ।
तुमरोई करिहै उलटि यह तुव भेद बिनास ।।
(क्रोध प्रकट करता हुआ चला जाता है)

चंद्र.— आर्य वैहीनर ! "चाणक्य का अनादर करके आज से चंद्रगुप्त सब काम-काज आप ही सम्हालेंगे," यह लोगों से कह दो ।

कंचुकी— (आप ही आप) अरे ! आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य शब्द नहीं कहा ! क्यों ? क्या सचमुच अधिकार छीन लिया ? वा इसमें महाराज का क्या दोष है !

सचिव-दोष सों होत है नृपहु बुरे ततकाल ।
हाथीवान-प्रमाद सों गज कहवावत व्याल ।।

चंद्र.— क्यों जी ? क्या सोच रहे हो ?

कंचुकी— यही कि महाराज को महाराज शब्द यथार्थ शोभा देता है ।

चंद्र.— (आप ही आप) इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य का काम होगा । (प्रकट) शोणोत्तरे ! इस सूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा, इससे शयनगृह का मार्ग दिखलाओ ।

प्रतिहारी— इधर आवें, महाराज, इधर आवें ।

चंद्र.— (उठकर चलता हुआ आप ही आप)

गुरु आयसु छल सों कलह करिहू जीय डराय ।
किमि नर गुरुजन सों लरहिं, यहै सोच जिय हाय ।।
(सब जाते हैं — जवनिका गिरती है ।)

चतुर्थ अंक

(स्थान — मंत्री राक्षस के घर के बाहर का प्रांत ।)
(करभक घबड़ाया हुआ आता है)

करभक— अहाहा हा ! अहाहा हा !

अतिसय दुरगम ठाम मैं सत जोजन सों दूर ।
कौन जात है धाइ बिनु प्रभु निदेस भरपूर ।।

अब राक्षस मंत्री के घर चलूँ । (थका सा घूमकर) । अरे कोई चौकीदार है ! स्वामी राक्षस मंत्री से जाकर कहे कि 'करभक काम पूरा करके पटने से दौड़ा आता है ।'

(दौवारिक आता है)

दौवारिक— अजी : चिल्लाओ मत, स्वामी राक्षस मंत्री को राजकाज सोचते-सोचते सर में ऐसी बिथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछौने से नहीं

उठे, इससे एक घड़ी भर ठहरो, अवसर मिलता है तो मैं निवेदन किए देता हूँ ।

परदा उठता है और सोने के बिछौने पर चिंता में भरा राक्षस और शटकदास दिखाई पड़ते हैं)

राक्षस— (आप ही आप)

कारज उलटो होत है कुटिल नीति के जोर ।
का कीजै सोचत यही जगि होय है भोर ।।

और भी

आरंभ पहिले सोचि रचना वेश की करि लावहीं ।
इक बात में गर्भित बहुत फल गूढ़ भेद दिखावहीं ।।
कारन अकारन सोचि फैली क्रियन को सकुचावहीं ।
जे करहिं नाटक बहुत दुख हम सरिस तेऊ पावहीं ।।

और भी यह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य —

दौवा.— (प्रवेश कर) जय जय ।

राक्षस— किसी भाँति मिलाया या पकड़ा जा सकता है !

दौवा.— अमात्य —

राक्षस— बाएँ नेत्र के फड़कने का अपशकुन देखकर आप ही आप) 'ब्राह्मण चाणक्य जय जय' और 'पकड़ा जा सकता है अमात्य' यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ । तो भी क्या हुआ, उद्यम नहीं छोड़ेंगे । (प्रकाश) भद्र ! क्या कहता है ?

दौवा.— अमात्य ! पटने से करभक आया है सो आप से मिला चाहता है ।

राक्षस— अभी लाओ ।

दौवा.— जो आज्ञा । (करभक के पास जाकर, उसको संग ले आकर) भद्र ! मंत्रीजी वह बैठे हैं, उधर जाओ । (जाता है)

कर.— (मंत्री को देखकर) जय हो, जय हो ।

राक्षस— अभी करभक ! आओ आओ, अच्छे हो ? — बैठो ।

कर.— जो आज्ञा । (पृथ्वी पर बैठ जाता है)

राक्षस— (आप ही आप) अरे ! मैंने इसको किस काम का भेद लेने को भेजा था यह भूला जाता है । (चिंता करता है)

(बेंत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है)

पुरुष— हटे रहना, बचे रहना — अजी देर रहो — दूर रहो, क्या नहीं देखते ?

नृप द्विजादि जिन नरन को मंगल रूप प्रकास ।
ते न नीच मुखहू लखहिं, कैसो पास निवास[1] ।।

(आकाश की ओर देखकर) अजी क्या कहा, कि क्यों हटाते हो ? अमात्य राक्षस के सिर में पीड़ा सुनकर कुमार मलयकेतु उसको देखने को इधर ही आते हैं ! (जाता है)

(भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है)

मलयकेतु— (लंबी साँस लेकर — आप ही आप) हा ! देखो पिता को मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान करके अब तक हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, वरन तर्पण करना भी छोड़ दिया । या क्या हुआ, मैंने तो पहिले यही प्रतिज्ञा की है कि

कर वलय उर ताड़त गिरे, आँचरहु की सुधि नहिं परी ।
मिलि करहिं आरतनाद हाहा, कलक खुलि रज सो भरी ।
जो शोक सों भई मातुगन की दशा सो उलटायहै ।।
करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहिं तृप्त करायहैं ।।

और भी —

रन मरि पितु ढ़िग जात हम बीरन की गति पाय ।
कै माता दृग-जल धरत रिपु-ज़ुवती मुख लाय ।।

(प्रकाश) अजी जाजले ! सब राजा लोगों से कहो कि "मैं बिना कहे सुने राक्षस मंत्री के पास अकेला जाकर उनके प्रसन्न करूँगा, इससे वे सब लोग उधर ही ठहरें !"

कंचुकी— जो आज्ञा ! (घूमते-घूमते नेपथ्य की ओर देखकर) अजी राजा लोग ! सुनो कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ कोई न चले (देखकर आनंद से) महाराज कुमार ! आप देखिए । आपकी आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए —

अति चपल जे रथ चलत, ते सुनि चित्र से तुरतहि भए ।
जे खुरन खोदत नभ-पथहि,
ते बाजिगन झुकि रुकि गए ।
ज़े रहे धावत, ठिठकि ते
गज मूक घंआ सह सधे ।
मरजाद तुव नहिं तजहिं नृपगण जलधि से मानहुँ बँधे ।।

मलय.— अजी जाजले ! तुम भी सब लोगों को लेकर जाओ, एक केवल भागुरायण मेरे संग रहे ।

कंचुकी— जो आज्ञा ।

(सबको लेकर जाता है)

मलय.— मित्र भागुरायण ! जब मैं यहाँ आता था तो भद्रभट प्रभृति लोगों ने मुझसे निवेदन किया कि 'हम राक्षस मंत्री के द्वारा कुमार के पास नहीं रहा

---

१. प्राचीन काल में आचार्य, राजा आदि नीचों को नहीं देखते थे ।

चाहते, कुमार के सेनापति शिखरसेन के द्वारा रहेंगे । दुष्ट मंत्री ही के डर तो चन्द्रगुप्त को छोड़कर यहाँ सब बात का सुबीता जानकर कुमार का आश्रय लिया है ।" सो उन लोगों की बात का मैंने आशय नहीं समझा ।

भागु.— कुमार ! यह तो ठीक ही है, क्योंकि अपने कल्याण के हेतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित और प्रिय के द्वारा करते हैं ।

मलय.— मित्र भागुरायण ! तो फिर राक्षस मंत्री तो हम लोगों का परम प्रिय और बड़ा हितू है ।

भागु.— ठीक है, पर बात यह है कि अमात्य राक्षस का बैर चाणक्य से है, कुछ चन्द्रगुप्त से नहीं है, इससे तो चाणक्य की बातों से रूठकर चन्द्रगुप्त उससे मंत्री का काम ले ले और नन्दकुल की भक्ति से "यह नंद ही के वंश का है" यह सोचकर राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े लोगों का पुराना मंत्री समझकर उसको मिला ले, तो ऐसा न हो कि कुमार हम लोगों पर भी विश्वास न करें ।

मलय.— ठीक है, मित्र भागुरायण । राक्षस मंत्री का घर कहाँ है ?

भागु.— इधर, कुमार, इधर । (दोनों घूमते हैं) कुमार । यही राक्षस मंत्री का घर है !चलिए ।

मलय.— चलें । (दोनों भीतर जाते हैं)

राक्षस— अहा ! स्मरण आया । (प्रकाश) कहो जी ! तुमने कुसुमपुर में स्तनकलस वैतालिक को देखा था ?

कर.— क्यों नहीं ?

राक्षस— मित्र भागुरायण ! जब तक कुसुमपुर की बातें हों तब तक हम लोग इधर ही ठहरकर सुनें कि क्या बात होती है, क्योंकि —

भेद न कछु जामैं खुलै याही भय सब ठौर ।
नृप सों मंत्रीजन कहहिं बात और हीं और ।।

भागु.— जो आज्ञा । (दोनों ठहर जाते हैं)

राक्षस— क्यों जी ! वह काम सिद्ध हुआ ?

कर.— अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध ही हैं ।

मलय.— मित्र भागुरायण । वह कौन-सा काम है ?

भागु.— कुमार मंत्री के जी की बातें बड़ी गुप्त हैं । कौन जाने ? इससे देखिए अभी सुन लेते हैं कि क्या कहते हैं ।

राक्षस— अजी, भली भाँति कहो ।

कर.— सुनिए जिस समय आपने आज्ञा दिया कि करभक, तुम जाकर वैतालिक स्तनकलस से कह दो कि जब जब चाणक्य चंद्रगुप्त की आज्ञा भंग करे तब तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिससे उसका जी और फिर जाय ।

राक्षस— हाँ तब ?

कर.— तब मैंने पटने से जाकर स्तनकलस से आपका संदेशा कह दिया ।

राक्षस— तब ?

कर.— इसके पीछे नंदकुल के विनाश से दु :खी लोगों का जी बहलाने के हेतु चंद्रगुप्त ने कुसुमपुर में कौमुदीमहोत्सव होने की डौंड़ी पिटा दी और उसको बहुत दिन से बिछुड़े हुए मित्रों के मिलाप की भाँति पुर के निवासियों ने बड़ी प्रसन्नता पूर्व्वक स्नेह से मान लिया !

राक्षस— (आँसू भरकर) हा देव नंद !

जदपि उदित कुमुदन सहित पाइ चाँदनी चंद ।
तदपि न तुम बिन लसत हे नृपससि । जगदानंद ।।

हाँ, फिर क्या हुआ ?

कर.— जब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगों के नेत्र के परमानंददायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी समय स्तनकलस ने ऐसे-ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का भी मन फिर जाय ।

राक्षस— कैसे श्लोक थे ।

कर.— ('जिनको बिधि सब' पढ़ता है)

राक्षस— वाह मित्र स्तनकलस, वाह क्यों न हो ! अच्छे समय में भेद बीज बोया है, फल अवश्य होगा । क्योंकि —

नृप रूठे अचरज कहा, सकल लोग जा संग ।
छोटे हू मानैं बुरो परे रंग में भंग ।।

मलय.— ठीक है । ('नृप रूठे' यह दोहा फिर पढ़ता है) ।

राक्षस— हाँ फिर क्या हुआ ?

कर.— तब आज्ञा भंग से रुष्ट होकर चंद्रगुप्त ने आपकी बड़ी प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य से अधिकार ले लिया ।

मलय.— मित्र भागुरायण ! देखो प्रशंसा करके राक्षस में चंद्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखाई ।

भागु.— गुण-प्रशंसा से बढ़कर चाणक्य का अधिकार लेने से ।

राक्षस— क्यों जी, एक कौमुदीमहोत्सव के निषेध ही से चाणक्य चंद्रगुप्त में बिगाड़ हुआ कि कोई और कारण भी है ?

मलय.— क्यों मित्र भागुराय ! एक और बैर मे यह क्या फल निकालेंगे ?

भागु.— यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान् है, वह व्यर्थ चंद्रगुप्त को क्रोधित न करावेगा और चंद्रगुप्त भी उसकी बात जानता है, वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करेगा, इससे उन लोगों में बहुत झगड़े से जो विगाड़ होगा तो पक्का होगा ।

कर.— आर्य्य ! और भी कई कारण हैं ।

राक्षस— कौन ?

कर.— कि जब पहले यहाँ से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उसने क्यों नहीं पकड़ा ?

राक्षस— (हर्ष से) मित्र शकटदास ! अब तो चंद्रगुप्त हाथ में आ जायगा ।

शकट.— अब चंदनदास छूटेगा, और आप कुटुंब से मिलेंगे, वैसे ही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश से छूटेंगे ।

भागु.— (आप ही आप) हाँ, अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा ।

मलय.— मित्र भागुरायण ! अब मेरे हाथ चंद्रगुप्त आवेगा, इसमें इनका क्या अभिप्राय है ?

भागु.— और क्या होगा ? यही होगा कि चाणक्य से छूटे चंद्रगुप्त के उद्धार का समय देखते हैं ।

राक्षस— अजी, अब अधिकार छिन जाने पर यह ब्राह्मण कहाँ है ?

कर.— अभी तो पटने ही में है ।

राक्षस— (घबड़ाकर) हैं ! अभी वहीं है ? तपोवन नहीं चला गया ? या फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं की ?

कर.— अब तपोवन जायगा — ऐसा सुनते हैं ।

राक्षस— (घबड़ाकर) शकटदास, यह बात तो काम की नहीं,

देव नंद को नहिं सह्यौ जिन भोजन अपमान ।
सो निज कृत नृप चंद की बात न सहिहै जान ।।

मलय.— मित्र भागुरायण ! चाणक्य के तपोवन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने में कौन कार्य्य सिद्धि निकाली है ।

भागु.— कुमार ! यह तो कोई कठिन बात नहीं है, इसका आशय तो स्पष्ट ही है कि चंद्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहेगा उतनी ही कार्य्यसिद्ध होगी ।

शकट.— आमात्य ! आप व्यर्थ सोच न करें, क्योंकि देखें

सबहिं भाँति अधिकार लहि अभिमान नृप चंद ।
नहिं सहिहै अपमान अब राजा होइ स्वच्छंद ।।
तिमि चाणक्यहु पाइ दुख एक प्रतिज्ञा पूरि ।
अब दूजो करिहै न कछ निज उद्यम मद चूरि ।।

राक्षस— ऐसा ही होगा । मित्र शकटदास ! जाकर करभक को डरा इत्यादि दो ।

मलय.— जो आज्ञा ।

(करभक को लेकर जाता है)

राक्षस— इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है ।

मलय.— (आगे बढ़कर) मैं आप ही आपसे मिलने को आया हूँ ।

राक्षस— (आसन से उठकर) अरे कुमार आप ही आ गए ! आइए, इस आसन पर बैठिए ।

मलय.— मैं बैठता हूँ आप विराजिए ।

(दोनों बैठते हैं)

मलय.— इस समय सिर की पीड़ा कैसी है ?

राक्षस— जब तक कुमार के बदले महाराज कहकर आपको नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटेगी ।

मलय.— आपने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कुद होईगा । परंतु सब सेना सामंत के होते भी अब आप किस बात का आसरा देखते हैं ?

राक्षस— किसी बात का नहीं, अब चढ़ाई कीजिए ।

मलय.— अमात्य ! क्या इस समय शत्रु किसी संकट में है ?

राक्षस— बड़े ।

मलय.— किस संकट में ?

राक्षस— मंत्री संकट में ।

मलय.— मंत्री-संकट तो कोई संकट नहीं है ।

राक्षस— और किसी राजा को न हो तो न हो, चंद्रगुप्त को तो अवश्य है ।

मलय.— आर्य ! मेरी जान में चंद्रगुप्त को और भी नहीं है ।

राक्षस— आपने कैसे जाना कि चंद्रगुप्त को मंत्री-संकट संकट नहीं है ?

मलय.— क्योंकि चंद्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उससे उदास रहते हैं, जब चाणक्य ही न रहेगा तब उसके सब कामों के लोग और भी संतोष से करेंगे ।

राक्षस— कुमार, ऐसा नहीं है, क्योंकि वहाँ दो प्रकार के लोग हैं — एक चंद्रगुप्त के साथी, दूसरे नंदकुल के मित्र, उनमें जो चंद्रगुप्त के साथी हैं उनको चाणक्य ही स दु:ख था ; नंदकुल के मित्रों दो कुछ

दु:ख नहीं है, क्योंकि वह लोग तो यही सोचते हैं कि इसी कृतघ्न चंद्रगुप्त ने राज के लोभ से अपने पितृकुल का नाश किया है, पर क्या करें उनका कोई आश्रय नहीं है इससे चंद्रगुप्त के आसरे पड़े हैं । जिस दिन आपको शत्रु के नाश में और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखेंगे उसी दिन चंद्रगुप्त को छोड़कर आपसे मिल जायँगे, इसके उदाहरण हमीं लोग हैं ।

मलय.— आर्य ! चंद्रगुप्त पर चढ़ाई करने का एक यही कारण है कि कोई और भी है ?

राक्षस— और बहुत क्या होंगे एक यही बड़ा भारी है ।

मलय.— क्यों आर्य ! यही क्यों प्रधान है ? क्या चंद्रगुप्त और मंत्रियों से या आप अपना काम करने में असमर्थ हैं ।

राक्षस— निरा असमर्थ है ।

मलय.— क्यों ?

राक्षस— यों कि जो आप राज्य सँभालते हैं या जिनका राज राजा और मंत्री दोनों करते हैं वह राजा ऐसे हों तो हों ; परंतु चंद्रगुप्त तो कदापि ऐसा नहीं है । चंद्रगुप्त एक तो दुरात्मा है, दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब काम करता है, इससे वह कुछ व्यवहार जानता ही नहीं, तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है ? क्योंकि —

लक्ष्मी करत निवास अति प्रबल सचिव नृप पाय ।
पै निज बाल सुभाव सों इकहिं तजत अकुलाय ।।

और भी —

जो नृप बालक सों रहत सदा सचिव के गोद ।
बिन कछु जग देखे सुने सो नहिं पावत मोद ।।

मलय.— (आप ही आप) तो हम अच्छे हैं कि सचिव के अधिकार में नहीं । (प्रकाश) अमात्य ! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहाँ शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहाँ तक इसी सिद्धि से सब काम न निकलेगा ।

राक्षस— कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होंगे देखिए,

चाणक्य को अधिकार छूट्यौ चंद्र हैं राजा नए ।
पुर नंद में अनुरक्त तुम निज बल सहित चढ़ते भए ।।
जब आप हम — (कहकर लज्जा से कुछ ठहर जाता है)
तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी ।
वह कौन सी नृप ! बात जो नहिं सिद्धि ह्वै है ता धरी ।।

मलय.— अमात्य ! जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर करके क्यों बैठे हैं ? देखिए —

इनको ऊँची सीस है, वाको उच्च करार ।
श्याम दोऊ, वह जल स्रवत, ये गंडन मधुधार ।।
उतै भँवर को शब्द, इत भँवर करत गुंजार ।
निज सम तेहि लखि नासिहै, दंतन तोरि कछार ।।
सीस सोन सिंदूर सों ते मतंग बल दाप ।
सोन सहज ही खोलिहैं निश्चय जानहु आप ।

और भी —

गरजि गरजि गंभीर रव, बरसि बरसि मधु धार ।
सत्रु-नगर गज घेरिहै, घन जिमि विविध पहार ।।

(शस्त्र उठाकर भागुरायण के साथ जाता है)

राक्षस— कोई है ?

(प्रियंवदक आता है)

प्रियंवदक— आज्ञा ।

राक्षस— देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है ?

प्रिय.— जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है) अमात्य ! एक क्षपणक भिक्षुक ।

राक्षस— (असगुन जानकर आप ही आप) पहिले ही क्षपणक का दर्शन हुआ ।

प्रिय.— जीवसिद्धि है ।

राक्षस— अच्छा बोलाकर ले आ ।

प्रिय.— जो आज्ञा । (जाता है)

(क्षपणक आता है)

क्षपणक—

पहिले कटु परिणाम मधु, औषध-सम उपदेस ।
मोह व्याधि के वैद्य गुरु, तिनको सुनहु निदेश ।।

(पास जाकर) उपासक ! धर्म लाभ हो !

राक्षस— ज्योतिषीजी, बताओ, अब हम लोग प्रस्थान किस दिन करें ?

क्षप.— (कुछ सोचकर) उपासक ! मुहूर्त तो देखा । आज भद्रा तो पहर पहिले ही छूट गई है और तिथि भी संपूर्णचंद्र पौर्णमासी है । आप लोगों को उत्तर से दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है ।

अथइ सूरहि, चंद के उदए गमन प्रशस्त ।।
पाइ लगन बुध केतु तो उदयी हू भी अस्त ।।[1]

१. भद्रा छूट गई अर्थात् कल्याण को तो आप ने जब चंद्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और संपूर्ण-चंद्र पौर्णमासी है अर्थात् चंद्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है । उत्तर नाम, प्राचीन पक्ष छोड़कर दक्षिण अर्थात् यम की दिशा

राक्षस— अजी, पहिले तो तिथि ही नहीं शुद्ध है।

क्षप.— उपासक !

एक गुनी तिथि होत है, त्यौं चौगुन नक्षत्र।
लगन होत चौंतिस गुनो, यह भाखत सब पत्र।।
लगन होत है शुभ लगन छोड़ि क्रूर ग्रह एक।
जाहु चंद कल देखि कै पावहु लाभ अनेक।।[२]

राक्षस— अजी, तुम और ज्योतिषियों से जाकर झगड़ो।

क्षप.— आप ही झगड़िउ, मैं जाता हूँ ?

राक्षस— क्या आप रूस तो नहीं गए ?

क्षप.— नहीं, तुमसे ज्योतिषी नहीं रूसा है।

राक्षस— तो कौन रूसा है ?

क्षप.— (आप ही आप) भगवान), कि तुम अपना पक्ष छोड़कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो।

(जाता है)

राक्षस— प्रियंवदक ! देख तो कौन समय है।

प्रियं.— जो आज्ञा। (बाहर से हो आता है) आर्य ! सूर्य्यास्त होता है।

राक्षस— (आसन से उठकर और देखकर) अहा ! भगवान सूर्य्य अस्ताचल को चले —

जब सूरज उदयो प्रबल, तेज धारि आकाश।
तब उपवन तरुवर सबै छायाजुत भे पास।।
दूर परे ते तरु सबै अस्त भए रवि ताप।।
जिमि धन बिन स्वामिहि तजै भृत्य स्वारथी आप।।

(दोनों जाते हैं)

पंचम अंक

(हाथ में मोहर और गहिने की पेटी और पत्र लेकर सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक— अहाहा !

देशकाल के कलश में सिंची बुद्धि-जल जौन।
लता नीति चाणक्य की बहु फल देहे तौन।।

अमात्य राक्षस की मोहर का, आर्य्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर की हुई यह आभूषण की पेटिका लेकर मैं पटने जाता हूँ। (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे ! यह क्या क्षपणक आता है ? हाय हाय ! यह तो बुरा असगुन हुआ। तो मैं सूरज का देखकर इसका दोष छुड़ा लूँ।

(क्षपणक आता है)

क्षप.—

नमो नमो अर्हंत को, जो निज बुद्धि प्रताप।
लोकोत्तर की सिद्धि सब करत हस्तगत आप।।

सिद्धा.— भदंत ! प्रणाम।

क्षप.— उपासक ! धर्म लाभ हो। (भली भाँति देखकर) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रखा है।

सिद्धा.— भदंत तुमने कैसे जाना ?

क्षप.— इसमें छिपी कौन बाता है ? जैसे समुद्र में नाव पर सब के आगे मार्ग दिखलाने वाला माँझी रहता है, वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है।

सिद्धा.— अजी भदंत ! भला यह तुमने ठीक जाना कि मैं परदेश जाता हूँ, पर यह कहा कि आज दिन कैसा है ?

क्षप.— (हंसकर) वाह श्रावक वाह ! तुम मूँड़ मुँड़ाकर भी नक्षत्र पूछते हो ?

सिद्धा.— भला अभी क्या बिगड़ा है ? कहते क्यों नहीं ? दिन अच्छा होगा जायँगे, न अच्छा होगा न जायँगे।

को जाना है। नक्षत्र दक्षिण है अर्थात् आपका बाम (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आपका दक्षिण पक्ष (मलयकेतु) नक्षत्र (बिना क्षत्र के) अथए इत्यादि तुम जो सूर हो उसकी बुद्धि के अस्त के समय और चंद्रगुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय में जय होगी। लग्न अर्थात् कारण भाव में बुध चाणक्य पड़ा है इससे केतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तौ भी अस्त ही होगा। अर्थात् इस युद्ध में चंद्रगुप्त जीतेगा और मलयकेतु हारेगा। सूर अथए — इस पद से जीवसिद्धि ने अमंगल भी किया। आश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरुवार, मेष के चंद्रमा मीन लग्न में उसने यात्रा बतलाई। इसमें भरणी नक्षत्र, गुरुवार, पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्र मों निषिद्ध हैं। फिर सूर्य्य मृत है, चंद्र जीवित है यह भी बुरा है। लग्न में मीन का बुध पड़ने से नीच का होने से बुरा है। यात्रा में नक्षत्र दक्षिण ही से बुरा है।

२. मलयकेतु का साथ छोड़ दो तो तुम्हारा भला हो। वास्तव में चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्धि ने साइत भी उलटी दी। ज्योतिष के अनुसार अत्यंत क्रूर बेला, क्रूर ग्रहवेध में युद्ध आरंभ होना चाहिए। उसके विरुद्ध सौम्य समय में युद्ध यात्रा कही, जिसका फल पराजय है।

क्षप.— चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर लिए कोई जाने नहीं पाता ।

सिद्धा.— यह नियम कब से हुआ ?

क्षप.— सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक-टोक नहीं थी, पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवे । इससे जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हे हाथ पैर न बँधवाना पड़े ।

सिद्धा.— क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अंतरंग खेलाड़ी मित्र हैं ? हमें कौन रोक सकता है ?

क्षप.— चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे ।

सिद्धा.— भदंत ! क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो ।

क्षप.— जाओ, काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने के हेतु भागुरायण से मोहर लेने जाते हैं ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक

(भागुरायण और सेवक आते हैं)

भागु.— (आप ही आप) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है ।

कहूँ विरल, कहुँ सघन, कहुँ विफल, कहूँ फलवान ।
कहुँ कृस, कहुँ अति थूल, कछु भेद परत नहिं जान ।।
कहूँ गुप्त अति ही रहत, कबहूँ प्रगट लखात ।
कठिन नीति चाणक्य की, भेद न जान्यो जात ।।

(प्रगट) भासुरक ! मलयकेतु से मुझे क्षण भर भी दूर रहने में दु:ख होता है इससे बिछौना बिछा तो बैठें ।

सेवक— जो आज्ञा । बिछौना बिछा है, विराजिए ।

भागु.— (आसन पर बैठकर) भासुरक ! बाहर कोई मुझसे मिलने आवे तो आने देना ।

सेवक— जो आज्ञा जाता है

भागु.— (आप ही आप करुणा से) राम राम ! मलयकेतु तो मुझसे इतना प्रेम करता है, मैं उसका बिगाड़ किस तरह करूँगा ?

अथवा —

जस-कुल तजि, अपमान सहि, धन-हित परबस होय ।
जिन बेंच्यो निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय ।।

(आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं)

मलय.— (आप ही आप) क्या करें राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं, कुछ निर्णय नहीं होता ।

नंदवंश को जानिकै ताहि चंद्र की चाह ।
कै अपनायो जानि निज मेरे करत निबाह ।।
को हित अनहित तासु को यह नहिं जान्यो जात ।
तासों जिय संदेह अति, भेद न कछू लखात ।।

(प्रगट) विजये ! भागुरायण कहाँ हैं देख तो ?

प्रति.— महाराज ! भागुरायण वह बैठे हुए आपकी सेना के जानेवाले लोगों को रहा-खर्च और परवाना बाँट रहे है ?

मलय.— विजये ! तुम दबे पाँव से उधर से आओ, मैं पीछे से जाकर मित्र भागुरायण की आँखें बंद करता हूँ ।

प्रति.— जो आज्ञा ।

(दोनों दबे पाँव से चलते हैं और भासुरक आता है)

भासुरक— (भागुरायण से) बाहर क्षपणक आया है, उसको परवाना चाहिए ।

भागु.— अच्छा, यहाँ भेज दो ।

भासु.— जो आज्ञा । (जाता है)

(क्षपणक आता है)

क्षप.— श्रावक को धर्म लाभ हो ।

भागु.— (छल से उसकी ओर देखकर) यह तो राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है । (प्रगट) भदंत ! तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होंगे ।

क्षप.— (कान पर हाथ रखकर) छी छी ! हमसे राक्षस वा पिशाच क्या काम ?

भागु.— आज तुमसे और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है ?

क्षप.— राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है, अपराधी तो हम हैं ।

भागु.— ह ह ह ह । भदंत । तुम्हारे इस कहने से तो मुझको सुनने की और भी उत्कंठा होती है ।

मलय— (आप ही आप) मुझको भी ।

भागु.— तो भदंत । कहते क्यों नहीं ?

क्षप.— तुम सुनके क्या करोगे ?

भागु.— तो जाने दो, हमें कुछ आग्रह नहीं है, गुप्त हो तो मत कहो ।

क्षप.— नहीं उपासक ! गुप्त ऐसा नहीं है, पर वह बहुत बुरी बात है ।

भागु.— तो जाओ, हम तुमको परवाना न देंगे ।

क्षप.— (आप ही आप की भांति) जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दें । (प्रगट) श्रावक ! निरुपाय होकर कहना पड़ा । सुनो । मैं पहिले कुसुमपुर में रहता था, तब संयोग से मुझसे राक्षस से मित्रता हो गई, फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग कराके विचारे पर्वतेश्वर को मार डाला ।

मलय— (आंखों में पानी भर के) हाय हाय ! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नहीं मारा । हा !

भागु.— हाँ, तो फिर क्या हुआ ?

क्षप.— फिर मुझे राक्षस का मित्र जानकर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझको नगर से निकाल दिया : तब मैं राक्षस के यहाँ आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझको ऐसा काम करने को कहता है जिससे मेरा प्राण जाय ।

भागु.— भदंत ! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज देने को कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म किया, राक्षस ने नहीं किया ।

क्षप.— (कान पर हाथ रखकर) कभी नहीं, चाणक्य तो विषकन्या का नाम भी नहीं जानता : यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है ।

भागु.— हाय हाय ! बड़े कष्ट की बात है । लो मुहर तो तुमको देते हैं, पर कुमार को भी यह बात सुना दो ।

मलय.— (आगे बढ़कर)

सुन्यो मित्र, श्रुति-भेद-कर शत्रु कियो जो हाल ।
पिता मरन को मोहि दुख दुगुन भयो एहि काल ।।

क्षप.— (आप ही आप) मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन ली तो मेरा काम हो गया । (जाता है)

मलय.— (दांत पीसकर ऊपर देखकर) अरे राक्षस !

जिन तोपै विश्वास करि सौंप्यो सब धन धाम ।
ताहि मारि दुख दै सबन साँचो किय निज नाम ।।

भागु.— (आप ही आप) आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि ''अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना'' इससे अब बात फेरें । (प्रकाश) कुमार ! इतना आवेग मत कीजिए । आप आसन पर बैठिए तो मैं कुछ निवेदन करूँ ।

मलय.— मित्र, क्या कहते हो ? कहो । (बैठ जाता है)

भागु.— कुमार ! बात यह है कि अर्थशास्त्रवालों की मित्रता और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है, साधारण लोगों की भाँति इच्छानुसार नहीं होती । उस समय सर्वार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्वतेश्वर ही उस कार्य में कंटक थे तो उस कार्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं आप देखिए —

मित्र शत्रु ह्वै जात है, शत्रु करहिं अति नेह ।
अर्थ-नीति-बस लोग सब बदलहिं मानहुँ देह ।।

इससे राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिए । और जब तक नंदराज्य न मिले तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीतिसिद्ध है ; राज मिलने पर कुमार जो चाहेंगे करेंगे ।

मलय.— मित्र ! ऐसा ही होगा । तुमने बहुत ठीक सोचा है । इस समय इसके वध करने से प्रजागण उदास हो जायँगे और ऐसा होने से जय में भी संदेह होगा ।

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य— कुमार की जय हो ! कुमार के कटकद्वार के रक्षाधिकारी दार्घचक्षु ने निवेदन किया है कि ''मुद्रा लिए बिना एक पुरुष कुछ पत्र-सहित बाजार जाता हुआ पकड़ा गया है सो उसको एक बेर आप देख लें ।''

भागु.— अच्छा, उसको ले आओ ।

पुरुष— जो आज्ञा ।

(जाता है और हाथ बँधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धा— (आप ही आप)

गुन पै रिझवति दोस सों दूर बचावति जौन ।
स्वाभि-भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन ।।

पुरुष— (हाथ जोड़कर) कुमार ! यही मनुष्य है ।

भागु.— (अच्छी तरह देखकर) यह क्या बाहर का मनुष्य है या नहीं किसी का नौकर है ?

सिद्धा.— मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूँ ।

भागु.— तो तुम क्यों मुद्रा लिए बिना कटक के बाहर जाते थे ?

सिद्धा.— आर्य ! काम की जल्दी से ।

भागु.— ऐसा कौन काम है, जिसके आगे राजाज्ञा का भी कुछ मोल नहीं गिना ?

(सिद्धार्थक भागुरायण के हाथ में लेख देता है)

भागु.— (लेख लेकर देखकर) कुमार ! इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है ।

मलय.— ऐसी तरह से खोलकर दो कि मुहर न टूटे ।

(भागुरायण पत्र खोलकर मलयकेतु को देता है)

मलय.— (पढ़ता है) स्वति । यथास्थान में कहीं से कोई किसी पुरुष-विशेष को कहता है हमारे विपक्ष को निराकरण करके सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखलाई ! अब हमारे पहले के रखे हुए हमारे हितकारी मित्रों को भी जो-जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना । यह लोग प्रसन्न होंगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भाँति अपने अपने उपकारी की सेवा करेंगे । सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते हैं । इनमें से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज चाहते हैं । हमको सत्यवादी ने जो तीन अलंकार भेजे सो मिले । हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना । और जबानी हमारे अत्यंत प्रमाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना ।[१]

मलय.— मित्र भागुरायण ! इस लेख का आशय क्या है ?

भागु.— भद्र सिद्धार्थक ! यह लेख किसका है ?

सिद्धा.— आर्य ! नहीं जानता ।

भागु.— धूर्त ! लेख लेकर जाता है और यह नहीं जानता कि किसने लिखा है, और संदेसा किससे कहेगा ?

सिद्धा.— (डरते हुए की भाँति) आपसे ।

भागु.— क्यों रे ! हमसे ?

सिद्धा.— आपने पकड़ लिया । हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है ?

भागु.— (क्रोध से) अब जानेगा ! भद्र भासुरक ! इसको बाहर ले जाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावे तब तक खूब मारो ।

पुरुष— जो आज्ञा (सिद्धार्थक को बाहर लेकर जाता है और हाथ में एक पेटी लिए फिर आता है) आर्य ! उसको मारने के समय उसके बगल में से यह मुहर की पेटी गिर पड़ी ।

भागु.— (देखकर) कुमार ! इस पर भी राक्षस की मुहर है ।

मलय.— यही लेख अशून्य करने को होगी ! इसकी भी मुहर बचाकर हमको दिखलाओ ।

(भागुरायण पेटी खोलकर दिखलाता है)

मलय.— अरे ! यह तो वही सब आभरण हैं जो हमने राक्षस को भेजे थे । निश्चय यह चंद्रगुप्त को लिखा है ।

भागु.— कुमार ! अभी सब संशय मिट जाता है । भासुरक ! उसको और मारो ।

पुरुष— जो आज्ञा । बाहर जाकर फिर आता है) आर्य ! हमने उसको बहुत मारा है । अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे ।

मलय.— अच्छा, ले आओ ।

पुरुष— जो कुमार की आज्ञा । (बाहर जाकर सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धा.— (मलयकेतु के पैरों पर गिरकर) कुमार ! हमको अभय दान दीजिए ।

मलय.— भद्र ! उठो, शरणागत जन यहाँ सदा अभय हैं । तुम इसका वृत्तांत कहो ।

सिद्धा.— (उठकर) सुनिए । मुझको अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चंद्रगुप्त के पास भेजा था ।

मलय.— जबानी क्या कहने को कहा था वह कहो ।

सिद्धा.— कुमार ! मुझको अमात्य राक्षस ने यह कहने को कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्म्मा, मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष सिंधु-महाराज सिंधुसेन और पारसीकपालक मेघाक्ष इन पाँच राजाओं से आपसे पूर्व में संधि हो चुकी है । इसमें पहले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते हैं और बाकी दो खजाना और हाथी चाहते हैं । जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़कर मुझको प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को प्रसन्न करना चाहिए । यही राजसंदेश है ।

मलय.— (आप ही आप) क्या चित्रवर्म्मादिक भी हमारे द्रोही हैं । तभी राक्षस में उन लोगों की ऐसी प्रीति है । (प्रकाश) विजये ! हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं ।

प्रति.— जो आज्ञा । (जाती है)

(एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिंता की मुद्रा में एक पुरुष के साथ दिखाई पड़ता है)

राक्षस— (आप ही आप) चंद्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती हो रहे हैं इससे हमारा

---

१. यह वही लेख है जिसको चाणक्य ने शकटदास से धोखा देकर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर कर के सिद्धार्थक के दिया था ।

मन शुद्ध नहीं है । क्योंकि —

रहत साध्य तें अन्वित अरु विलसत निज पच्छहिं ।
सोई साधन साधक जो नहिं छुअत बिपच्छहिं ।।
जो पुनि आपु असिद्ध सपच्छ विपच्छहु में सम ।
कछु कहुँ नहिं निज पच्छ माँहि जाको है संगम ।।
नरपति ऐसे साधनन कों अनुचित अंगीकार करि ।
सब भाँति पराजित होत हैं बादी लौं बहु विधि बिगरि ।।

वा जो लोग चंद्रगुप्त से उदास हो गए हैं वही लोग इधर मिले हैं, मैं व्यर्थ सोच करता हूँ । (प्रगट) प्रियंवदक ! कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि-अब कुसुमपुर दिन-दिन पास आता जाता है, इससे सब लोग अपनी सेना अलग-अलग करके जो जहाँ नियुक्त हों वहाँ सावधानी से रहें ।

आगे खस अरु मगध चलें जयध्वजहिं उड़ाए ।
यवन और गंधार रहें मधि सेन जमाए ।।
चेदि-हून-सकराज लोग पीछे सों धावहिं ।।
कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहिं ।।

पिय — अमात्य की जो आज्ञा । (जाता है

(प्रतिहारी आती है)

प्रति. — अमात्य की जय हो । कुमार अमात्य को देखना चाहते हैं ।

राक्षस — भद्र ! क्षण भर ठहरो । बाहर कौन है ?

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य — अमात्य ! क्या आज्ञा है ?

राक्षस — भद्र ! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हमको आभरण पहराया है तब से उनके सामने नंगे अंग जाना हमको उचित नहीं है । इससे जो तीन आभरण मोल लिए हैं उनमें से एक भेज दें ।

मनुष्य — जो अमात्य की आज्ञा । (बाहर जाता है और आभरण लेकर आता है) अमात्य ! अलंकार लीजिए ।

राक्षस — (अलंकार धारण करके) भद्रे ! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ ।

प्रति. — इधर से आइए ।

राक्षस — अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है ।

सेवक प्रभु सों डरत सदाहीं ।
पराधीन सपने सुख नहीं ।।
जे ऊँचे पद के अधिकारी ।
तिनको मनहीं मन भय भारी ।।
सबहीं द्वेष बड़न सो करहीं ।
अनुछिन कान स्वामी को भरहीं ।।
जिमि जे जनमें ते मरे, मिले अवसि बिलगाहिं ।
तिमि जे अति ऊँचे चढ़े, गिरि हैं संसय नाहिं ।।

प्रति — (आगे बढ़ कर) अमात्य ! कुमार यह बिराजते हैं, आप जाइए ।

राक्षस — अरे, कुमार यह बैठे हैं ।

लखत चरन की ओर हू, तऊ न देखत ताहि ।
अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि ।।
कर पै धारि कपोल निज लसत झुको अवनीस ।
दुसह काज के भार सों मनहुँ नमित भो सीस ।।

(आगे बढ़कर) कुमार की जय हो !

मलय. — आर्य ! प्रणाम करता हूँ । आसन पर बिराजिय ।

(राक्षस बैठता है)

मलय. — आर्य ! बहुत दिनों से हम लोगों ने आपको नहीं देखा ।

राक्षस — कुमार ! सेना को आगे बढ़ाने के प्रबंध में फँसने के कारण हमको यह उपालंभ सुनना पड़ा ।

मलय. — अमात्य ! सेना के प्रयाण का आपने क्या प्रबंध किया है ? मैं भी सुनना चाहता हूँ ।

राक्षस — कुमार ! आपके अनुयायी राजा लोगों को यह आज्ञा दी है । ('आगे खस अरू मगध' इत्यादि छंद पढ़ता है) ।

मलय. — (आप ही आप) हाँ, जाना ; जो हमारा नाश करने के हेतु चंद्रगुप्त से मिले हैं वही हमको घेरे रहेंगे । (प्रकाश) आर्य, अब कुसुमपुर से कोई आता है या वहाँ जाता है कि नहीं ?

राक्षस — अब यहाँ कसी के आने जाने से क्या प्रयोजन । पाँच छ : दिन में हम लोग ही वहाँ पहुँचेगे ।

मलय. — (आप ही आप) अभी सब खुल जाता है । (प्रगट) जो यही बात है तो इस मनुष्य की चिट्ठी लेकर आपने कुसुमपुर क्यों भेजा था ?

राक्षस — (देखकर) अरे ! सिद्धार्थक है ? भद्र ! यह क्या ?

सिद्धा. — (भय और लज्जा नाट्य करके) अमात्य ! हमको क्षमा कीजिए । अमात्य ! हमारा कुछ भी दोष नहीं है, मार खाते-खाते हम आपका रहस्य छिपा न सके ।

राक्षस — भद्र । वह कौन सा रहस्य है यह हमको नहीं समझ पड़ता !

सिद्धा. — निवेदन करते हैं, मार खाने से । (इतना ही कह वह लज्जा से नीचा मुँह कर लेता है ।)

मलय. — भागुरायण ! स्वामी के सामने लज्जा

और भय से यह कुछ न कह सकेगा, इससे तुम सब बात आर्य से कहो ।

भागु.— कुमार की जो आज्ञा । अमात्य ! यह कहता है कि अमात्य राक्षस ने हमको चिट्ठी देकर और संदेश कह कर चंद्रगुप्त के पास भेजा है ।

राक्षस— भद्र सिद्धार्थक ! क्या यह सत्य है ?

सिद्धा.— (लज्जा नाट्य करके) बहुत मार खाने के डर से मैं कह दिया ।

राक्षस— कुमार ! यह झूठ है, मार खाने से लोग क्या नहीं कह देते ?

मलय.— भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और संदेशा वह अपने मुँह से कहेगा ।

(भागुरायण चिट्ठी खोलकर 'स्वस्ति कहीं से कोई किसी को' इत्यादि पढ़ता है) ।

राक्षस— कुमार ! कुमार ! यह सब शत्रु का प्रयोग है ।

मलय.— लेख शून्य करने को आर्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजेगा ? आभरण दिखलाता है) ।

राक्षस— कुमार यह मैंने किसी को नहीं भेजा । कुमार ने यह मुझको दिया और मैंने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दिया ।

भागु.— अमात्य ! क्या ऐसे उत्तम आभरणों को, विशेष कर क्या अपने अंग से उतार कर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है ?

मलय.— और संदेश भी बड़े प्रामाणिक सिद्धार्थक सुनना, यह आर्य ने लिखा है ।

राक्षस— कैसा सन्देश और कैसी चिट्ठी ? यह हमारा कुछ नहीं है !

मलय.— तो मुहर किसकी है ?

राक्षस— धूर्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते हैं ।

भागु.— कुमार ! अमात्य सच कहते हैं । सिद्धार्थक यह चिट्ठी किसकी लिखी है ?

(सिद्धार्थक राक्षस का मुँह देखकर चुप रह जाता है)

भागु.— चुप मत रहो ! जी कड़ा करके कहो ।

सिद्धा— आर्य ! शकटदास ने ।

राक्षस— शकटदास ने लिखा तो मानों मैंने ही लिखा ।

मलय.— विजये ! शकटदास को हम देखा चाहते हैं ।

भागु.— (आपही आप) आर्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते । जो शकटदास आकर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह वृत्तांत कह देगा तो मलयकेतु फिर बहक जायगा । (प्रकाश) कुमार ! शकटदास, ने अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करेंगे, इससे उनका कोई और लेख मँगाकर अक्षर मिला लिए जायँ ।

मलय.— विजये ! ऐसा ही करो ।

भागु.— और मुहर भी आवे ।

मलय.— हाँ, वह भी ।

कंचुकी— जो आज्ञा (बाहर जाती है और पत्र और मुहर लेकर आती है) कुमार ! यह शकटदास का लेख और मुहर है ।

मलय.— (देखकर और अक्षर और मुहर की मिलान करके) आर्य ! अक्षर तो मिलते हैं ।

राक्षस— (आप ही आप) अक्षर निःसंदेह मिलते हैं, किंतु शकटदास हमारा मित्र है, इस हिसाब से नहीं मिलते । तो क्या शकटदास ही ने लिखा, अथवा —

पुत्र दार की याद करि स्वामि भक्ति तजि देत ।
छोड़ि अचल जस कों करत चल धन सों जन हेत ।।

या इसमें संदेह ही क्या है ?

मुद्रा ताके हाथ में, सिद्धार्थक हू मित्र ।
ताही के कर को लिख्यौ, पत्रहु साधन चित्र ।
मिलि कै शत्रुन सों करन भेद भूलि निज धर्म ।
स्वामि विमुख शकटहि कियो, निश्चय यह खल कर्म ।।

मलय.— आर्य ! श्रीमान् ने तीन आभरण भेजे सो मिले, यह जो आपने लिखा है सो उसी में का एक आभरण यह भी है ? (राक्षस के पहने हुए आभरण को देखकर आप ही आप) क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं ? (प्रकाश) आर्य, यह आभरण आपने कहाँ से पाए ?

राक्षस— जौहरी से मोल लिया था ।

मलय.— विजये ! तुम इन आभरणों को पहचानती हो ?

प्रति.— (देख कर आँसू भर के) कुमार ! हम सुगृहीत नामधेय महाराज पर्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानेंगी ?

मलय.— (आँखों में आँसू भर के)

भूषण-प्रिय ! भूषण सबै, कुल भूषण ! तुव अंग ।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन संग ।।

राक्षस— (आप ही आप) ये पर्वतेश्वर के पहने हुए आभरण हैं ? (प्रकाश) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही बेंचा है ?

मलय.— आर्य ! पिता के पहने हुए आभरण

और फिर चंद्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जौहरी बेंचे, यह कभी हो नहीं सकता। अथवा हो सकता है —
अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर ! त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरन के तुम बेंच्यौ मम देह।।

राक्षस — (आप ही आप) अरे ! यह दाँव तो पूरा बैठ गया।
मम लेख नहिं यह किमि कहैं मुद्रा छपी जब हाथ की।
विश्वास होत न शकट तजिहै प्रीति कबहूँ साथ की।।
पुनि बेंचिहै नृप चंद भूषण कौन यह पतियाइहै।
तासों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइहै।।

मलय. — आर्य ! हम यह पूछते हैं ?

राक्षस — जो आर्य हो उससे पूछो; हम अब पापकारी अनार्य हो गए हैं।

मलय. —
स्वामि पुत्र तुव मौर्य, हम मित्र पुत्र सह हेत।
पैहौ उत वाको दियो, इत तुम हमको देत।।
सचिवहु भे उत दास ही, इत तुम स्वामी आप।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीन्हो यह पाप।।

राक्षस — (आँखों में आँसू भर के) कुमार ! इसका निर्णय तो आप ही ने कर दिया —
स्वामि पुत्र मम मौर्य्य, तुम मित्र पुत्र सह हेत।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुमकों देत।।
सचिवहु भे उत दास ही, इत हम स्वामी आप।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीन्हो यह पाप।।

मलय. — (चिट्ठी, पेटी इत्यादि दिखला कर) यह सब क्या है ?

राक्षस — (आँखों में आँसू भर के) यह सब चाणक्य ने नहीं किया दैव ने किया।
निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह।
तिन सों अपने सुत सरिस सदा निबाहत नेह।।
ते गुणागाहक नृप सबै जिन मारे छन माहि।
ताही बिधि को दोस यह औरन को कछु नाहिं।।

मलय. — क्रोधपूर्वक) अनार्य ! अब तक छल किए जाते हो कि यह सब दैव ने किया।
विषकन्या दै पितु हत्यौ प्रथम प्रीति उपजाय।
अब रिपु सों मिलि हम सबन बधन चहत ललचाय।।

राक्षस — (द:ख से आप ही आप) हा ! यह और जले पर नमक है। (प्रगट कानों पर हाथ रखकर) नारायण ! देव पर्वतेश्वर का कोई अपराध हमने नहीं किया।

मलय. — फिर पिता को किसने मारा ?

राक्षस — यह दैव से पूछो।

मलय. — दैव से पूछें, जीवसिद्धि भी क्षपणक से न पूछें ?

राक्षस — (आप ही आप) क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है ! हाय ! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया ?

मलय. — (क्रोध से) भासुरक, शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस से मिलकर चंद्रगुप्त को प्रसन्न करने को पाँच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं, उनमें कौलूत चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद और कश्मीराधीश पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इनको भूमि ही में गाढ़ दे; और सिंधुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सेना चाहते हैं सो इनको हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दे।

पुरुष — जो कुमार की आज्ञा। (जाता है

मलय. — राक्षस ? हम मलयकेतु हैं, कुछ तुमसे विश्वासघाती राक्षस नहीं है। इससे तुम जाकर अच्छी तरह चंद्रगुप्त का आश्रय करो।
चंद्रगुप्त-चाणक्य सों मिलिए सुख सों आप।
हम तीनहुँ को नासिहैं जिमि त्रिवर्ग कहँ पाप।।

भागु. — कुमार ! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए। कुसुमपुर घेरने को हमारी सेना चढ़ चुकी है।
उड़िकै तियगन गंड जुगल कहँ मलिन बनावति।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छवावति।।
चपल तुरग-खुर घात उठी घन घुमड़ि नवीनी।
सत्रु-सीस पैं धूरि परै गजमद सों भीनी।।
(अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है)

राक्षस — (घबड़ाकर) हाय ! हाय ! चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय ! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु के नहीं, मित्रों ही के नाश करने को होती है। अब हम मंदभाग्य क्या करें ?
जाहि तपोवन, पै न मन शांत होत सह क्रोध।
प्रान देहि रिपु के जियत यह नारिन को बोध।।
खींचि खंगकर पतँग सम जाहिं अनल-अरि-पास।
पै या साहस होइहै चंदनदास विनास।।
(सोचता हुआ जाता है)

षष्ठ अंक

स्थान — नगर से बाहर सड़क

(कपड़ा, गहिना पहिने हुए सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक—

जलद नील तन जयति जय, केशव केशी काल ।
जयति सृजन जन दृष्टि ससि, चंद्रगुप्त नरपाल ।।
जयति आर्य चाणक्य की नीति सहज बल-भौन ।
बिनही साजे सैन नित, जीतत अरि कुल जौन ।।

चलो, आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करें । (घूमकर) अरे ! मित्र समिद्धार्थक आप ही इधर आता है ।

(समिद्धार्थक आता है)

समिद्धार्थक—

मिटत ताप नहिं पान सों, हात उछाह बिनास ।
बिना मीत के सुख सबै औरहु करत उदास ।।

सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है । उसी को खोजने को हम भी निकले हैं कि मिले तो बड़ा आनन्द हो । (आगे बढ़कर) अहा ! सिद्धार्थक तो यही हैं । कहो मित्र ! अच्छे तो हो ?

सिद्धा.— अहा ! मित्र समिद्धार्थक आप ही आ गए । (बढ़कर) कहो मित्र ! क्षेम कुशल तो है ?

(दोनों गले से मिलते हैं)

समि.— भला ! यहाँ कुशल कहाँ कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया !

सिद्धा.— मित्र ! क्षमा करो । मुझको देखते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस प्रिय वृत्तांत को अभी चंद्रमा सदृस प्रकाशित शोभावाले परम प्रिय महाराज प्रियदर्शन से जाकर कहो । मैं उसी समय महाराज के पास चला गया और उनसे निवेदन करके यह सब पुरस्कार पाकर तुमसे मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था ।

समि.— मित्र ! जो सुनने के योग्य हो तो महाराज प्रियदर्शन से जो प्रिय वृत्तांत कहा है वह हम भी सुनें ।

सिद्धा.— मित्र ! तुमसे भी कोई बात छिपी है ! सुनो ! आर्य चाणक्य की नीति से मोहित मति होकर उस नष्ट मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्रवर्मादिक पाँचों प्रबल राजों को मरवा डाला । यह देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझकर उसको छोड़कर सेना सहित अपने अपने देश चले गए । जब शत्रु ऐसी निर्बल अवस्था में हुआ, तो भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष, विजयवर्मा, इत्यादि लोगों ने मलयकेतु को कैद कर लिया ।

समि.— मित्र ! लोग तो यह जानते हैं कि भद्रभट इत्यादि लोग महाराज चंद्रश्री को छोड़कर मलयकेतु से मिल गए तो क्या कुकवियों के नाटक की भाँति इसके मुख में और तथा निर्वहण में और बात है ?

सिद्धा.— वयस्य ! सुनो, जैसे देव की गति नहीं जानी जाती वैसे ही आर्य चाणक्य की जिस नीति की भी गति नहीं जानी जाती उसको नमस्कार है ?

समि.— हाँ । कहो, तब क्या हुआ ?

सिद्धा.— तब इधर से सब सामग्री लेकर आर्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को नि:शेष करके बर्बर लोगों की सब सामग्री लूट ली ।

समि.— तो वह सब अब कहाँ हैं ?

सिद्धा.— वह देखो ।

स्रवत गंडमद गरब गज, नदत मेघ अनुहार ।
चाबुक भय चितवत चपल, खड़े अस्व बहु द्वार ।।

समि.— अच्छा, यह सब जाने दो । यह कहो कि सब लोगों के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य चाणक्य उसी मंत्री के काम को क्यों करते हैं ?

सिद्धा.— मित्र । तुम अब तक निरे सीधे साधे बने हो । अरे, अमात्य राक्षस भी आर्य चाणक्य की जिन चालों को नहीं समझ सकते उनको हम तुम क्या समझेंगे !

समि.— वयस्य । अमात्य राक्षस अब कहाँ हैं ?

सिद्धा.— उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सेना से निकलकर उंदुर नामक चर के साथ कुसुमपुर ही की ओर वह आते हैं, यह आर्य चाणक्य को समाचार मिला है ।

समि.— मित्र ! नंदराज्य के फिर स्थापना की प्रतिज्ञा करके स्वनामतुल्य-पराक्रम अमात्य राक्षस, उस काम को पूरा किए बिना फिर कैसे कुसुमपुर आते हैं ?

सिद्धा.— हम सोचते हैं कि चंदनदास के स्नेह से ।

समि.— ठीक है, चंदनदास के स्नेह ही से । किंतु तुम सोचते हो कि चंदनदास के प्राण बचेंगे ?

सिद्धा.— कहाँ उस दीन के प्राण बचेंगे ? हमीं दोनों को वधस्थान में ले जाकर उसको मारना पड़ेगा ।

समि.— (क्रोध से) क्या आर्य चाणक्य के पास कोई घातक नहीं है कि ऐसा नीच काम हम लोग करें ?

सिद्धा.— मित्र ! ऐसा कौन है जिसको इस जीवलोक में रहना हो और वह आर्य चाणक्य की आज्ञा न माने ? चलो, हम लोग चांडाल का वेष बनाकर

चन्दनदास को वधस्थल में ले चलें ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक

स्थान — बाहरीप्रांत में प्राचीन बारी

(फाँसी हाथ में लिए हुए एक पुरुष आता है)

पुरुष —

षट गुन सुदृढ़ गुथी मुख फाँसी ।
जय उपाय परिपाटी गाँसी ।।
रिपु-बंधन मैं पटु प्रति पोरी ।
जय चाणक्य नीति की डोरी ।

आर्य चाणक्य के चर उंदुर ने इसी स्थान में मुझको अमात्य राक्षस से मिलने को कहा है । (देखकर) यह अमात्य राक्षस सब अंग छिपाए हुए आते हैं । तब तक इस पुरानी बारी में छिपकर हम देखें कि यह कहाँ ठहरते हैं (छिपकर बैठता है)

(सब अंग छिपाए हुए राक्षस आता है)

राक्षस — (आँखों में आँसू भर के) हाय ! बड़े कष्ट की बात है ।

आश्रय बिनसें और पैं जिमि कुलटा तिय जाय ।
तजि तिमि नंदहि चञ्चला चंद्रहि लपटी धाय ।।
देखा देखी प्रजहु सब कीनो ता अनुगौन ।।
तजि कै निज नृप नेह सब कियो कुसुमपुर भौन ।।
होइ बिफल उद्योग मैं, तजि कै कारज भार ।
आप्त मित्रहू थकि रहे, सिर बिनु जिमि अहि छार ।।
तजि कै निज पति भुवन पति सुकुल जाय नृप नंद ।
श्री वृषली गइ वृषल ढिग सील त्यागि करि छंद ।।
जाइ तहाँ थिर ह्वै रही निज गुन सहज बिसारि ।
बस न चलत जब बाम बिधि सब कछु देत बिगारी ।।
नंद मरे सैलेश्वरहि देन चह्यौ हम राज ।
सोऊ बिनसे तब कियो ता सुत हित सो साज ।।
बिगरचौ तौन प्रबंध हू, मिट्यौ मनोरथ मूल ।
दोस कहा चाणक्य को दैवहि भो प्रतिकूल ।।

वाह रे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता ! जिसने इतना नहीं समझा कि —

मरे स्वामिहू नहिं तज्यौ जिन निज नृप अनुराग ।
लोभ छाँड़ि दे प्रान जिन करी सत्रु सों लाग ।।
सोई राक्षस शत्रु सों मिलिहै यह अंधेर ।
इतनो सूझ्यौ वाहि नहिं दई दैव मति फेर ।।

सो अब भी शत्रु के हाथ में पड़के राक्षस नाश हो जायगा, पर चंद्रगुप्त से संधि न करेगा । लोग झूठा कहें, यह अपयश हो, पर शत्रु की बात कौन सहेगा ? (चारों ओर देखकर) हा ! इसी प्रांत में देव नंद रथ पर चढ़कर फिरने आते थे ।

इतहि देव अभ्यास हित सर तजि धनु संधानि ।
रचत रहे भुव चित्र सम सुचक्र परिखानि ।।
जहँ नृपगन संकित रहे इत उत थमे लखात ।
सोई भुव ऊजर भई दृगन लखी नहिं जात ।।

हाय ! यह मंदभाग्य अब कहाँ जाय ? (चारों ओर देखकर) चलो, इस पुरानी बारी में कुछ देर ठहरकर मित्र चंदनदास का कुछ समाचार लें । (घूमकर आप ही आप) अहा ! पुरुष के भाग्य की उन्नति-अवनति की भी क्या क्या गति होती है कोई नहीं जानता ।

जिमि न ससि कहँ सब लखत निज निज करहि उठाय ।।
तिमि पुरजन हम को रहे लखत अनंद बढ़ाय ।।
चाहत हे नृपगन सबै जासु कृपा दृग कोर ।
सो हम इत संकित चलत मानहुँ कोऊ चोर ।।

वा जिसके प्रसाद से यह सब था, जब वही नहीं है तो यह हो होगा । (देखकर) यह पुराना उद्यान कैसा भयानक हो रहा है ।

नसे बिपुल नृप कुल सरिस बड़े बड़े गृह जाल ।
मित्र नास सों साधुजन हिय सम सूखें ताल ।।
तरुवर भे फलहीन जिमि बिधि बिगरे सब नीति ।
तृन[1] सों लोपी भूमि जिमि मति लहि मूढ़ कुरीति ।।
तीछन परसु प्रहार सों कटे तरोबर-गात ।
रोअत मिलि पिंडुक सँग ताके घाव लखात ।।
दुखी जानि निज मित्र कहँ अहि मनु लेत उसास ।
निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु-व्रन पास ।
तरुगन को सूख्यौ हियो, छिदे कीट सों गात ।
दुखी पत्र फल छाँह बिनु, मनु मसान सब जात ।।

तो अब तक हम इस सिला पर, जो भाग्यहीनों को सुलभ है, लेटें । (बैठकर और कान देकर सुनकर) अरे ! यह शंख डंके से मिला हुआ नांदी शब्द कहाँ हो रहा है ?

अति ही तीखन होन सों फोरत स्रोता कान ।
जब न समायो घरन मैं तब इत कियो पयान ।।
संख पटह धुनि सों मिल्यौ भारी मंगल नाद ।
निकस्यौ मनहु दिगंत की दूरी देखन स्वाद ।।

(कुछ सोचकर) हां, जाना । यह मलयकेतु के पकड़े जाने पर राजकुल(रुककर)मौर्यकुल को आनंद देने को हो रहा है । (आँखों में आँसू भर कर) हाय बड़े दु:ख की बात है ।

मेरे बिनु अब जीति दल शत्रु पाइ बल घोर ।
मोहि सुनावन हेतु ही कीन्हों शब्द कठोर ।।

पुरुष — अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य चाणक्य की आज्ञा पूरी करें । (राक्षस की ओर न

देखकर अपने गले में फाँसी लगाना चाहता है)

राक्षस — (देखकर आप ही आप) अरे यह फाँसी क्यों लगाता है ? निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है । जो हो, पूछें तो सही । (प्रकाश) भद्र, यह क्या करते हो ?

पुरुष — (रोकर) मित्रों के दु :ख से दुखी होकर हमारे ऐसे मंदभाग्यों का जो कर्त्तव्य है ।

राक्षस — (आप ही आप) पहले ही कहा था, हमारा सा दुखिया है । (प्रकाश) भद्र, जो अति गुप्त वा किसी विशेष कार्य की बात न हो तो हमसे कहो कि तुम क्यों प्राण त्याग करते हो ?

पुरुष — आर्य ! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है ; परंतु मित्र के दु :ख से मैं क्षण भर भी ठहर नहीं सकता ।

राक्षस — (आप ही आप दु :ख से) मित्र की विपत्ति में हम पराए लोगों की भाँति उदासीन होकर जो देर करते हैं मानों उसमें शीघ्रता करने की यह अपना दु :ख कहने के बहाने शिक्षा देता है । (प्रकाश) भद्र ! जो रहस्य नहीं है तो हम सुना चाहते हैं कि तुम्हारे दु :ख का क्या कारण है ?

पुरुष — आपको इसमें बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा । इस नगर में जिष्णुदास नामक एक महाजन है ।

राक्षस — (आप ही आप) वह तो चंदनदास का बड़ा मित्र है ।

पुरुष — वह हमारा प्यारा मित्र है ।

राक्षस — (आप ही आप) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है । इस अति निकट संबंध से इसको चंदनदास का वृत्तांत ज्ञात होगा ।

पुरुष — (रोकर) सो दीन जनों को धन देकर वह अब अग्निप्रवेश करने जाता है । यह सुनकर हम यहाँ आए हैं कि इस दु :खवार्ता सुनने के पूर्व ही अपने प्राण दे दें ।

राक्षस — भद्र ! तुम्हारे मित्र के अग्निप्रवेश का कारण क्या है ?

कै तेहि रोग असाध्य भयो
कोऊ जाको न औषध नाहिं निदान है ?

पुरुष — नहीं आर्य !

राक्षस — कै विष अग्निहु सो बढ़ि कै
नृप कोप महा फँसि त्यागत प्रान है ?

पुरुष — राम राम ! चंद्रगुप्त के राज्य में लोगों को प्राणहिंसा का भय कहाँ ?

राक्षस — कै कोउ सुंदरी पै जिय देत
लग्यो हिय माँहि बियोग को बान है ?

पुरुष — राम राम ! महाजन लोगों की यह चाल नहीं ; विशेष करके साधु जिष्णुदास की ।

राक्षस — तौ कहुँ मित्रहि को दुख वाहू के
नाश के हेतु तुम्हारे समान है ?

पुरुष — हाँ, आर्य ।

राक्षस — (घबड़ाकर आप ही आप) अरे, इसके मित्र का प्रिय मित्र तो चंदनदास ही है और यह कहता है सुहृदविनाश ही उसके विनाश का हेतु है इससे मित्र के स्नेह से मेरा चित्त बहुत ही घबड़ाता है । (प्रकाश) भद्र ! तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तर सुना चाहते हैं ।

पुरुष — आर्य ! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलंब नहीं कर सकता ।

राक्षस — यह वृत्तांत तो अवश्य सुनने के योग्य है, इससे कहो ।

पुरुष — क्या करें ? आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिए ।

राक्षस — हाँ ! जी लगाकर सुनते हैं, कहो ।

पुरुष — आपने सुना ही होगा कि इस नगर में प्रसिद्ध जौहरी सेठ चन्दनदास हैं ।

राक्षस — (दु :ख से आप ही आप) दैव ने हमारे विनाश का द्वार अब खोल दिया । हृदय ! स्थिर हो अभी न जाने क्या क्या कष्ट तुमको सुनना होगा । (प्रकाश) भद्र ! हमने भी सुना है कि यह साधु अत्यंत मित्रवत्सल हैं ।

पुरुष — यह जिष्णुदास के अत्यंत मित्र हैं ।

राक्षस — (आप ही आप) यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्रपात है । (प्रकाश) हां, आगे ।

पुरुष — सो जिष्णुदास ने मित्र की भाँति चंद्रगुप्त से बहुत विनय किया ।

पुरुष — क्या क्या ?

पुरुष — कि देव ! हमारे घर में जो कुछ कुटुंबपालन का द्रव्य है आप सब ले लें, पर हमारे मित्र नंदनदास को छोड़ दे ।

राक्षस — (आप ही आप) वाह जिष्णुदास ! तुम धन्य हो । तुमने मित्रस्नेह का निर्वाह किया ।

जा धन के हित नारि तजैं
पति पूत तजैं पितु सीलहिं खोई ।
भाई सों भाई लरैं रिपु से
पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई ।।
ता धन को बनिया ह्वै गिन्यौ
न दियो दुख मीत सों आरत होई ।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोई है तुमरे

सम और न या जग कोई ।।

(प्रकाश) इस बात पर मौर्य ने क्या कहा ?

पुरुष — आर्य ! इस बात पर चंद्रगुप्त ने उससे कहा कि जिष्णुदास ! हमने धन के हेतु चंदनदास को नहीं दंड दिया है । इसने अमात्य राक्षस का कुटुंब अपने घर में छिपाया था, और बहुत माँगने पर भी न दिया, अब भी जो यह दे दे तो छूट जाय, नहीं तो इसको प्राणदंड होगा । तभी हमारा क्रोध शांत होगा और दूसरे लोगों को भी इससे डर होगा — यह कह उसको वध-स्थान में भेज दिया । जिष्णुदास ने कहा कि 'हम कान से अपने मित्र का अमंगल सुनने के पहिले मर जाएँ तो अच्छी बात है' और अग्नि में प्रवेश करने को वन में चले गए । हमने भी इसी हेतु कि उनका मरण न सुने यह निश्चय किया कि फाँसी लगाकर मर जायँ और इसी हेतु यहाँ आए हैं ।

राक्षस — (घबड़ाकर) अभी चंदनदास को मारा तो नहीं

पुरुष — आर्य ! अभी नहीं मारा है, बारंबार अब भी उनसे अमात्य राक्षस का कुटुंब माँगते हैं और वह मित्रवत्सलता से नहीं देते, इसी में इतना विलंब हुआ ।

राक्षस — (सहर्ष आप ही आप) वाह मित्र चंदनदास ! वाह ! धन्य ! धन्य !!

मित्र परोच्छहुँ मैं कियो सरनागत प्रतिपाल । निरमल जस सिवि सो लियो तुम या काल कराल ।। (प्रकाश) भद्र ! तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलने से रोको, हम जाकर अभी चंदनदास को छुड़ाते हैं ?

पुरुष — आर्य आप किस उपाय से चंदनदास को छुड़ाइएगा ?

राक्षस — (खड़ग मियन से खींचकर) इन दु:खों में एकांत मित्र निष्कृप कृपाण से ।

समर साध तन पुलकित नित साथी मम कर को । रन महँ बारहिं बार परिछ्यौ जिन बल पर को ।। विगत जलद नभ नील खड़ग वह रोस बढ़ावत । मीत कष्ट सो दुखिहु मोहिं रनहित उमगावत ।। **पुरुष** — सेठ चंदनदास के प्राण बचाने का उपाय मैंने सुना किंतु ऐसे टेढ़े समय में इसका परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं कह सकता । (राक्षस को देखकर पैर पर गिरता है) आर्य ! क्या सुगृहीत-नामधेय अमात्य राक्षस आप ही हैं ? यह मेरा संदेह आप दूर कीजिए ।

राक्षस — भद्र ! भर्तृकुल विनाश से दु:खी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ नामा अनार्य राक्षस मैं ही हूँ ।

पुरुष — (फिर पैर पर गिरता है) धन्य हैं ! बड़ा ही आनंद हुआ । आपने हमको आज कृतकृत्य किया है ?

राक्षस — भद्र ! उठो । देर करने की कोई आवश्यकता हीं । जिष्णुदास से कहो कि राक्षस चंदनदास को अभी छुड़ाता है ।

(खंग खींचे हुए 'समर साध' इत्यादि पढ़ता हुआ इधर उधर टहलता है)

पुरुष — (पैर पर गिरकर) अमात्यचरण ! प्रसन्न हों । मैं यह बिनती करता हूँ कि चंद्रगुप्त दुष्ट ने पहले शकटदास के वध की आज्ञा दी थी फिर न जाने कौन शकटदास को छुड़ाकर उसको कहीं परदेश में भगा ले गया । आर्य शकटदास के वध में धोखा खाने से चंद्रगुप्त ने क्रोध करके प्रमादी समझकर उन वधिकों ही को मार डाला । तब से वधिक जो किसी को वधस्थान में ले जाते हैं और मार्ग में किसी को शस्त्र खींचे हुए देखते हैं तो छुड़ा ले जाने के भय से अपराधी को बीच ही में तुरंत मार डालते हैं । इससे शस्त्र खींचे हुए आपके वहाँ जाने से चंदनदास की मृत्यु में और भी शीघ्रता होगी । (जाता है)

राक्षस — (आप ही आप) उस चाणक्य बटु का नीतिमार्ग कुछ समझ नहीं पड़ता क्योंकि —

सकट बच्यौ जो ता कहै तो क्यों घातक घात । जाल भयो का खेल में कछु समझयौ नहिं जात ।।

(सोचकर)

नहिं शस्त्र को यह काल यासों मीत जीवन जाइ है । जो नीति सोचैं या समय तो व्यर्थ समय नसाइहै ।। चुप रहनहू नहिं लोग जब मम हित बिपति चंदन परयौ। तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज बिक्रय करयौ।।

(तलवार फेंककर जाता है)

सप्तम अंक

स्थान — सूली देने का मसान

(पहिला चांडाल आता है)

चांडाल — हटो लोगो हटो दूर हो भाइयो, दूर हो । जो अपना प्राण, धन और कुल बचाना हो तो दूर हो । राज का विरोध यत्नपूर्वक छोड़ो ।

करि कै पथ्य विरोध इक रोगी त्यागत प्रान । पै विरोध नृप सों किए नसत सकुल नर जान ।।

जो न मानो तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री पुत्र समेत यहाँ सूली देने को लाया जाता है । (ऊपर

देखकर) क्या कहा कि 'इस चंदनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है ?' भला इस बेचारे के छूटने का कौन उपाय है । पर हाँ, जो यह मंत्री राक्षस का कुटुंब दे दे तो छूट जाय । (फिर ऊपर देखकर) क्या कहा कि 'यह शरणागतवत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म न करेगा ।' तो फिर इसकी बुरी गति होगी क्योंकि बचने का तो वही एक उपाय है ।

(कंधे पर सूली रखे मृत्यु का कपड़ा पहने चंददनदास, उनकी स्त्री और पुत्र, दूसरा चांडाल आते हैं)

स्त्री.— हाय हाय ! जो हम लोग नित्य अपनी बात बिगड़ने के डर से फूँक फूँकर पैर रखते थे उन्हीं हम लोगों की चोरों की भाँति मृत्यु होती है । काल देवता को नमस्कार है, जिसको मित्र उदासीन सभी एक से हैं, क्योंकि —

छोड़ि मांस भख मरन भय जियहिं खाइ तृन घास ।
तिन गरीब मृग को करहिं निरदय व्याधा नास ।।

(चारों ओर देखकर)

अरे भाई जिष्णुदास ! मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते ? हाय ! ऐसे समय में कौन ठहर सकता है ।

चंदन.— (आँसू भरकर) हाय ! यह मेरे सब मित्र विचारे कुछ नहीं कर सकते, केवल रोते हैं और अपने को अकर्मण्य समझ शोक से सूखा सूखा मुँह किए आँसू भरी आँखों से एकटक मेरी ही ओर देखते चले आते हैं ।

दोनों चांडाल— अजी चंदनदास ! अब तुम फाँसी के स्थान पर आ चुके इससे कुटुंब को बिदा करो ।

चंदन.— (स्त्री से) अब तुम पुत्र को लेकर जाओ, क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नहीं है ।

स्त्री.— ऐसे समय में तो हम लोगों को विदा करना उचित ही है, क्योंकि आप परलोक जाते हैं, कुछ परदेश नहीं जाते । (रोती है)

चंदन— सुनो, मैं कुछ अपने दोष से नहीं मारा जाता, एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, इस हर्ष के स्थान पर क्या रोती है ?

स्त्री.— नाथ ! जो यह बात है तो कुटुंब को क्यों बिदा करते हो ?

चंदन.— तो फिर तुम क्या कहती हो ?

स्त्री.— (आँसू भरकर) नाथ ! कृपा करके मुझे भी साथ ले चलो ।

चंदन.— हा ! यह तुम कैसी बात कहती हो ? अरे ! तुम इस बालक का मुँह देखो और इसकी रक्षा करो, क्योंकि यह विचार कुछ भी लोकव्यवहार नहीं जानता । यह किसका मुँह देख के जीएगा ?

स्त्री— इसकी रक्षा कुलदेवी करेंगी । बेटा ! अब पिता फिर न मिलेंगे इससे मिलकर प्रणाम कर ले ।

बालक— (पैरों पर गिरके) पिता ! मैं आपके बिना क्या करूँगा ?

चंदन.— बेटा, जहाँ चाणक्य न हो वहाँ बसना ।

दोनों चाडाल— (सूली खड़ी करके) अजी चंदनदास ! देखो, सूली खड़ी हुई अब सावधान हो जाओ !

स्त्री— (रोकर) लोगों, बचाओ ! अरे ! कोई बचाओ !

चंदन.— भाइया, तनिक ठहरो । (स्त्री से) अरे ! अब तुम रो रोकर क्या नन्दों को स्वर्ग से बुला लोगी ? अब वे लोग यहाँ नहीं हैं जो स्त्रियों पर सर्वदा दया रखते थे ।

१चांडाल— अरे वेणुवेत्रक ! पकड़ इस चंदनदास को, घरवाले आप ही रो पीटकर चले जायँगे ?

२ चांडाल— अच्छा वज्रलोमक, मैं पकड़ता हूँ ।

चदन.— भाइयो ! तनिक ठहरो, मैं अपने लड़के से तो मिल लूँ । (लड़के को गले लगाकर और माथा सूँघकर) बेटा ! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं इससे सोच मत कर ।

पुत्र— पिता, क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आए हैं ? (पैर पर गिर पड़ता है) !

२ चांडाल— पकड़ रे वज्रलोमक ! (दोनों चंदनदास को पकड़ते हैं)

स्त्री— लोगों ! बचाओ रे, बचाओ !

(वेग से राक्षस आता है)

राक्षस— डरो मत ; डरो मत । सुनो सुनो, घातको ! चंदनदास को मत मारना, क्योंकि —

नसत स्वामिकुल जिन लख्यौ निज चख शत्रु समान ।
मित्रदु:ख हू मैं धर्‌यौ निलज होइ जिन प्रान ।।
तुम सों हारि बिगारि सब कढ़ी न जाकी साँस ।
ता राक्षस के कंठ मैं डारहु यह जमफाँस ।।

चंदन.— (देखकर आँखों में आँसू भरकर) अमात्य यह क्या करते हो ?

राक्षस— मित्र, तुम्हारे सच्चरित्र का एक छोटा सा अनुकरण ।

चंदन.— अमात्य, मेरा किया तो सब निष्फल

हो गया, पर आपने ऐसे समय यह साहस अनुचित किया ।

राक्षस— मित्र चंदनदास ! उलाहना मत दो सभी स्वार्थी हैं (चांडाल से) अजी ! तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो ।

दोनों चांडाल— क्या कहें ?

राक्षस—

जिन कलि मैं हू मित्र हित तृन सम छोड़े प्रान ।
जाके जस रवि सामुहे सिवि जस दीप समान ।।
जाको अति निर्मल चरित, दया आदि नित जानि ।
बौद्रहु सब लज्जित भए, परम शुद्ध जेहि मानि ।।
ता पूजा के पात्र कों मारत तू धरि पाप ।
जाके हित सो शत्रु तुव आयो इत मैं आप ।।

१ चांडाल— अरे वेणुवेत्रक ! तू चंदनदास को पकड़कर इस मसान के पेड़ की छाया में बैठ, तब से मंत्री चाणक्य को मैं समाचार दूँ कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया ।

२ चांडाल— अच्छा रे वज्रलोमक ! (चंदनदास, स्त्री, बालक और सूली को लेकर आता है)

१ चांडाल— (राक्षस को लेकर घूमकर) अरे यहाँ पर कौन है ? नंदकुल सेनासंचय के चूर्ण करने करने वाले वज्र से, वैसे ही मौर्य्यकुल में लक्ष्मी और धर्म्म स्थापना करने वाले, आर्य्य चाणक्य से कहो —

राक्षस— (आप ही आप) हाय ! यह भी राक्षस को सुनना लिखा था !

१ चांडाल— कि आप की नीति ने जिसकी बुद्धि को घेर लिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया ।

(परदे में सब शरीर छिपाए केवल मुँह खोले चाणक्य आता है)

चाणक्य— अरे कहो, कहो ।

किन जिन बसननि मैं धरी कठिन अगिनि की ज्वाल ?
रोकी किन गति वायु की डोरिन ही के जाल ?
किन गजपति मर्द्दन प्रबल सिंह पींजरा दीन ?
किन केवल निज बाहु बल पार समुद्रहि कीन ?

१ चांडाल— परमनीतिनिपुण आप ही ने तो ।

चाणक्य— अजी ! ऐसा मत कहो, वरन् "नंदकुलद्वेषी दैव ने" यह कहो ।

राक्षस— (देखकर आप ही आप) अरे ! क्या यही दुरात्मा वा महात्मा कौटिल्य है ? क्योंकि

सागर जिमि बहु रत्नमय तिमि सब गुन की खानि ।
तोष होत नहिं देखि गुन वैरी हू निज जानि ।।

चाणक्य— (देखकर) अरे ! यही अमात्य राक्षस हैं ?
जिस महात्मा ने—

वह दुख सों सोचत सदा जागत रैन बिहाय ।
मेरी मति अरु चंद्र की सैनहि दई थकाय ।।

(परदे से बाहर निकलकर) अजी अजी अमात्य राक्षस ! मैं विष्णुगुप्त आपको दंडवत् करता हूँ । (पैर छूता है)

राक्षस— (आप ही आप) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल मुँह चिढ़ाना है । (प्रगट) अजी विष्णुगुप्त ! मैं चांडालों से छू गया हूँ इससे मुझे मत छूओ ।

चाणक्य— अमात्य राक्षस ! वह श्वपाक नहीं है, वह आपका जाना-सुना सिद्धार्थक नामा राजपुरुष है ; और दूसरा भी समिद्धार्थक नामा राजपुरुष ही है ; और इन्ही दोनों द्वारा विश्वास उत्पन्न करके उस दिन शकटदास को धोखा देकर मैंने वह पत्र लिखवाया था ।

राक्षस— (आप ही आप) अहा ! बहुत अच्छा हुआ कि मेरा शकट दास पर से संदेह दूर हो गया ।

चाणक्य— बहुत कहाँ तक कहूँ —

वे सब भद्रभटादि, वह सिद्धार्थक, वह लेख ।
वह भदंत, वह भूषनहु, वह नट आरत भेख ।।
वह दुख चंदनदास को जो कछु दियो दिखाय ।
सो सब मम (लज्जा से कुछ सकुचकर)
सो सब राजा चंद्र को तुम सों मिलन उपाय ।।

देखिये, यह राजा भी आप से मिलने आप ही आते हैं ।

राक्षस— (आप ही आप) अब क्या करें ? (प्रगट) हाँ ! मैं देख रहा हूँ ।

(सेवकों के संग राजा आता है)

राजा— (आप ही आप) गुरुजी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रु का कुल जीत लिया इसमें कोई संदेह नहीं । मैं तो बड़ा लज्जित हो रहा हूँ, क्योंकि —

ह्वै बिनु काम लजात करि नीचो मुख भरि सोक ।
सोवत सदा निषग में मम बानन के थोक ।।
सोवहिं धनुष उतारि हम जदपि सकहिं जग जीति ।
जा गुरु के जागत सदा नीति निपुण गत भीति ।।

(चाणक्य के पास जाकर) आर्य ! चंद्रगुप्त प्रणाम करता है ।

चाणक्य— वृषल ! अब सबै असीस सच्ची हुई इससे इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो, यह तुम्हारे पिता के सब मत्रियों में मुख्य है ।

राक्षस— (आप ही आप) लगाया न इसने संबंध —

राजा— (राक्षस के पास जाकर) आर्य ! चंद्रगुप्त प्रणाम करता है ।

राक्षस— (देखकर आप ही आप) अहा ! यही

चंद्रगुप्त है ।
होनहार जाको उदय बालपने ही जोइ ।
राज लह्यौ जिन बाल गज जूथाधिप सम होइ ।।
(प्रगट) महाराज ! जय हो ।

राजा— आर्य !
तुमरे आछत बहुरि गुरु जागत नीति प्रवीन ।
कहहु कहा या जगत में जाहि न जय हम कीन ।।

राक्षस— (आप ही आप) देखो, यह चाणक्य का सिखाया पढ़ाया मुझसे कैसी सेवकों की सी बात करता है ! नहीं नहीं, यह आप ही विनीत है । अहा ! देखो, चंद्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है । चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है, क्योंकि —
पाइ स्वामि सतपात्र जो मंत्री मूरख होइ ।
तौहू पावै लाभ जस, इत तौ पंडित दोइ ।।
मूरख स्वामी लहि गिरै चतुर सचिव ह्वै हारि ।
नदी तीर तरु जिमि नसत जीरन है लहि बार ।।

चाणक्य— क्यों अमात्य राक्षस ! आप क्या चंदनदास के प्राण बचाया चाहते हैं ।

राक्षस— इसमें क्या संदेह है ?

चाणक्य— पर अमात्य ! आप शस्त्र ग्रहण नहीं करते, इससे संदेह होता है कि आपने अभी राजा पर अनुग्रह नहीं किया, इससे जो सच ही चंदनदास के प्राण बचाया चाहते हो तो यह शस्त्र लीजिए ।

राक्षस— सुनो विष्णुगुप्त ! ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि हम उस योग्य नहीं, विशेष करके जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किए हो तब तक हमारे शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है ?

चाणक्य— भला अमात्य ! आपने यह कहाँ से निकाला कि हम योग्य हैं और आप अयोग्य हैं ? क्योंकि देखिए —
रहत लगामहिं कसे अश्व की पीठ न छोड़त ।
खान पान असनान भोग तजि मुख नहिं मोड़त ।।
छूटे सब सुख साज नींद नहीं आवत नयनन ।
निसि दिन चौंकत रहत वीर सब भय धरि निज मन ।।
वह हौदन सौं सब छन कस्यौ नृप गजगन अवरेखिए ।
रिपुदर्प दूर कर अति प्रबल निज महात्मबल देखिए ।।
वा इन बातों से क्या ! आपके शस्त्र ग्रहण किए बिना तो चंदनदास बचता भी नहीं ।

राक्षस— (आप ही आप)
नंद नेह छूट्यौ नहीं दास भए अरि साथ ।
ते तरु कैसे काटि है जे पाले निज हाथ ।।
कैसे करिहैं मित्र पैं हम निज कर सों घात ।
अहो भाग्य गति अति प्रबल मोहिं कछु जानि न जान ।।

(प्रकाश) इच्छा विष्णुगुप्त ! मँगाओ खंग ''नमस्सर्व्वकार्य्य प्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय'' देखो, मैं उपस्थित हूँ ।

चाणक्य— (राक्षस को खंग देकर हर्ष से) राजन् वृषल ! बधाई है, बधाई है ! अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया । अब तुम्हारी दिन दिन बढ़ती ही है ।

राजा— यह सब आपकी कृपा का फल है ।

(पुरुष आता है)

पुरुष— जय हो महाराज की, जय हो । महाराज ! भद्रभटभागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ पैर बाँधकर लाए हैं और द्वार पर खड़े हैं । इसमें महाराज की क्या आज्ञा होती है ?

चाणक्य— हाँ, सुना । अजी ! अमात्य राक्षस से निवेदन करो, अब सब काम वही करेंगे ।

राक्षस— (आप ही आप) कैसे अपने वश में करके मुझी से कहलाता है । क्या करें ? (प्रकाश) महाराज, चंद्रगुप्त ! यह तो आप जानते हैं कि हम लोगों का मलयकेतु का कुछ दिन तक संबंध रहा है । इससे उसका प्राण तो बचाना ही चाहिए ।

(राजा चाणक्य का मुँह देखता है)

चाणक्य— महाराज । अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्वथा माननी ही चाहिए । (पुरुष से) अजी ! तुम भद्रभटादिकों से कह दो कि ''अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चंद्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य देते हैं'' इससे तुम लोग संग जाकर उसको राज पर बिठा आओ ।

पुरुष— जो आज्ञा ।

चाणक्य— अजी अभी ठहरो, सुनो ! दुर्गपाल विजयपाल से यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण से प्रसन्न होकर महाराज चंद्रगुप्त यह आज्ञा करते हैं कि ''चंदनदास क सब नगरों का जगतसेठ कर दो ।''

पुरुष— जो आज्ञा । (जाता है)

चाणक्य— चंद्रगुप्त ! अब और मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूँ ?

राजा— इससे बढ़कर और क्या भला होगा ?
मैत्री राक्षस सों भई, मिल्यो अकंटक राज ।
नंद नसे सब अब कहा यासों बढ़ि सुख साज ।।

चाणक्य— (प्रतिहारी से) विजये ! दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि 'अमात्य राक्षस के मेल से प्रसन्न होकर महाराज चंद्रगुप्त आज्ञा करते हैं कि हाथी, घोड़ों को छोड़कर और सब बंधुओं का बंधन

छोड़ दो' वा जब अमात्य राक्षस मंत्री हुए तब अब हाथी घोड़ों का क्या सोच है ? इससे —

छोड़ौ सब गज तुरग अब कछु मत राखौ बाँधि ।
केवल हम बाँधत सिखा निज परतिज्ञा साधि ।।

(शिखा बाँधता है)

प्रतिहारी — जो आज्ञा । (जाती है)

चाणक्य — अमात्य राक्षस ! मैं इससे बढ़कर और कुछ भी आपका प्रिय कर सकता हूँ ?

राक्षस — इससे बढ़कर और हमारा क्या प्रिय होगा ? पर जो इतने पर भी संतोष न हो तो यह आशीर्वाद सत्य हो —

''वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपा
यस्य प्राग्दन्तकोटिम्प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री ।
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवर राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीम्पार्थिवश्चंद्रगुप्तः।।''[१]

(सब जाते हैं)

उपसंहार– (क)

इस नाटक में आदि, अंत तथा अकों के विश्रामस्थल में रंगशाला में ये गीत गाने चाहिएँ । यथा —

सबके पूर्व मंनलाचरण में ।

(ध्रुवपद चौताला)

जय जय जगदीश राम, श्याम धाम पूर्ण काम,
आनँदघन ब्रह्म सत चितसुखकारी ।
कंस रावनादि काल सतत प्रनत भक्त पाल,
सोभित गल मुक्तमाल, दीनतापहारी ।।
प्रेमभरन पापहरन, असरन जन सरन चरन,
सुखहि करन दुखहि हरन, वृंदावनचारी ।
रमावास जगनिवास, राम रमन समनत्रास,
विनवत 'हरिचंद' दास, जयजय गिरधारी ।।

(प्रस्तावना के अंत में प्रथम अंक के आरम्भ में । चाल लखनऊ की ठुमरी 'शाहजादे आलम तेरे लिये' इस चाल की)

जिनके हितकारक पंडित हैं
तिनकों कहा सत्रुन को डर है ।
समुझैं जग मैं सब नीतिन्ह जो
तीन्हैं दुर्ग बिदेस मनो घर है ।
जिन मित्रता राखी है लायक सों
तिनकों तिनकाहू महा सर है ।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं
तिनकी जय ही सब ही थर है ।।

(पहले अंक की समाप्ति और दूसरे अंक के प्रारंभ में)

जग मैं घर की फूट बुरी ।
घर के फूटहि सों बिनसाई सुवरन लंकपुरी ।।
फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो ।
जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नहिं पुजयो ।।
फूटहि सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम ।
जाको फल अबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम ।।
फूटहि सों नव नंद बिनासे गयो मगध को राज ।
चंद्रगुप्त को नासन चहयौ आपु नसे यह साज ।।
जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय ।
तो अपुने घर मैं भूलेहू फूट करौ मति कोय ।।

(दूसरे अंक की समाप्ति और तीसरे अंक के आरंभ में)

जग में तेई चतुर कहावैं ।
जे सब विधि अपने कारज को नीकी भाँति बनावैं ।।
पढ़यौ लिख्यौ किन होइ जु पै नहिं कारज साधन जानै ।
ताही को मूरख या जग मैं सब कोउ अनुमानै ।।
छल मैं पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु गायो ।
पै अरि सों छल किए दोष नहिं मुनिजन यहै बतायो ।।

(तीसरे अंक की समाप्ति और चौथे अंक के आरंभ में)

ठुमरी

तिनको न कछू कबहूँ बिगरै,
गुरु लोगन को कहनो जे करैं ।
जिनको गुरु पंथ दिखावत हैं
ते कुपंथ पैं भूलि न पाँव धरैं ।।
जिनको गुरु रच्छत आप रहै
ते बिगारे न वैरिन के बिगरैं ।
गुरु को उपदेश सुनौ सब ही,
जग कारज जासों सबै सँभरैं ।।

(चौथे अंक की समाप्ति और पाँचवें अंक के आरंभ में)

परजी

करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछितैहौ रे भाई ।
अंत दगाखैहौ सिर धुनिहौ रहि हौ सबै गँवाई ।।

---

१. महाबली वाराह शरीरधारी स्वयं श्रीविष्णु, जिनके दृष्टांग्र पर प्रलय में निमग्ना पृथ्वी ठहरी हुई थी, तथा बड़े भाई का अनुयायी ऐश्वर्यशाली राजा चंद्रगुप्त बहुत दिनों तक पृथ्वी की रक्षा करते रहे, जिस राजमूर्ति की दोनों दृढ़ भुजाओं में म्लेच्छों से उत्पीड़ित होकर वह आश्रय पा रही है ।

मूरख जो कछु हितहु करै तो तामैं अंत बुराई ।
उलटो उलटो काज करत सब दैहै अंत नसाई ।।
लाख करी हित मूरख सों पै ताहि न कछु समुझाई ।
अत बुराई सिर पैं ऐंहै रहि जैहो मुँह बाई ।।
फिर पछितैहौ रे भाई ।।
(पाँचवें अंक की समाप्ति और छठे अंक के आरंभ में)
काफी ताल होली का
छलियन सों रहो सावधान नहिं तो पछताओगे ।
इनकी बात मैं फँसि रहिहौ सबहि गँवाओगे ।।
स्वारथ लोभी जन सों आखिर दगा उठाओगे ।
तब सुख पैहौ जब साँचन सों नेह बढ़ाओगे ।।
छलियन सों. ।।
(छठे अंक की समाप्ति और सातवें अंक के आरंभ में)
('जिनके मन में सिय राम बसें' इस धुन की)
जग सूरज चंद टरैं तो टरैं पै
न सजन नेहु कबौं विचलै ।
धन संपति सर्बस गेह नसौ
नहिं प्रेम की मेड़ सो एड़ टलै ।।
सतवादिन कों तिनका सम प्रान
रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै ।
निज मीत की प्रीत प्रतीत रहौ
इक और सबै जग जाउ भलै ।।
(अंत में गाने को)
ङःबिहाग— श्लोक के अर्थ के अनुसार)
हौर हरि रूप सबै जग बाधा ।
जा सरूप सों धरनि उधारी निज जन कारज साधा ।।
जिमिं जव दाढ़ अंग्र लै राखी महि असुर गिरायो ।
कनक दृष्टि म्लेच्छन हूँ तिमि किन अब लौं मारि नसायो ।।
आरज राज रूप तुम तासों माँगत यह बरदाना ।
प्रजा कुमुदगन चंद्रनृपति को करहु सकुल कल्याना ।।

(बिहाग ठुमरी)

पूरी अमी की कटोरिया सी
चिरजीओ सदा विकटोरिया रानी ।
सूरज चंद प्रकास कर जब लौं
रहै सात हू सिंधु मैं पानी ।।
राज करौ सुख सों तब लौं निज
पुत्र औ पौत्र समेत सयानी ।
पालौ प्रजागन को सुख सों जग
कीरति मान करैं गुन गानी ।।

(कलिंगड़ा)

लहौ सुन सब विधि भारतवासी ।
विद्या कला जगत को सीखौ तजि आलस की फाँसी ।।
अपनो देश धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी ।
उद्यम करिकैं होहु एकमति निज बल बुद्धि प्रकासी ।।
पंचपीर की भगति छोड़ि कै ह्वै हरिचरन उपासी ।
जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुनरासी ।।

उपसंहार— (ख)

इस नाटक के विषय में बिलसन साहिब लिखते हैं कि यह नाटक और नाटकों से अति विचित्र है, क्योंकि इसमें सपूर्ण राजनीति के व्यवहारों का वर्णन है । चंद्रगुप्त (जो यूनानी लोगों का सैंड्रोकोत्तस sandrocottus है) और पाटलिपुत्र (जो यूरप की पालीबोत्तरा Palibothra है) के वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है ।

इस नाटक का कवि विशाखदत्त, महाराज पृथु का पुत्र और सामंत बटेश्वरदत्त का पौत्र था । इस लिखने से अनुमान होता है कि दिल्ली के अंतिम हिंदू राजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र विशाखदत्त है, क्योंकि अंतिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है, भेद इतना ही है कि रायसे में पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनंद लिखा है । मैं यह अनुमान करता हूँ कि सामन्त बटेश्वर इतने बड़े नाम को कोई शीघ्रता में या लघु करके कहे तो सोमेश्वर हो सकता है और संभव है कि चंद ने भाषा में सामंत बटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो ।

मेजर विल्फर्ड ने मुद्राराक्षस के कवि का राम गोदावरी तीर निवासी अनंत लिखा है, किंतु वह केवल भ्रममात्र है । जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिलीं, किसी में अनंत का नाम नहीं मिला है ।

इस नाटक पर बटेश्वर मैथिल पंडित की एक टीका भी है । कहते हैं कि गुहसेन नामक किसी अपर पंडित की भी एक टीका है, किंतु देखने में नहीं आई । महाराज तंजौर के पुस्तकालय में व्यासराज यज्वा की एक टीका और है ।

चंद्रगुप्त[1] की कथा विष्णुपुराण, भागवत और पुराणों में और वृहत्कथा में वर्णित है । कहते हैं कि

१. प्रियदर्शी-प्रियदर्शन, चंद्र, चंद्रगुप्त, श्रीचंद्र, चंद्रश्री, मौर्य यह सब चंद्रगुप्त के नाम हैं, और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिल या द्रोहिण, अंशुल, कौटिल्य यह सब चाणक्य के नाम हैं ।

विकटपल्ली के राजा चंद्रदास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है ।

महानंद अथवा महापद्मनंद भी शुद्रा के गर्भ से था, और कहते हैं कि चंद्रगुप्त इसकी एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था । यह पूर्वपीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी । इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहाँ कुछ लिखना अवश्य हुआ । सूर्यवंशी सुदर्शन[1] राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बसाया । कहते हैं कि कन्या को बंध्यापन के दु:ख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उसका नाम पाटलिपुत्र रख दिया था । वायुपुराण में 'जरासंध' के पूर्वपुरुष वसु राजा ने बिहार प्रांत का राज्य संस्थापन किया' यह लिखा है । कोई कहते हैं कि 'वेदों में जिस बसु के यज्ञों का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है' जो लोग चरणाद्रि को राज्यगुह का पर्वत बतलाते हैं उनको केवल भ्रम है । इस राज्य का आरंभ चाहे जिस तरह हुआ हो पर जरासंध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ । मार्टिन साहब नो जरासंध ही के विषय में एक अपूर्व कथा लिखी है । वह कहते हैं कि जरासंघ दो पहाड़ियों पर दो पैर रखकर द्वारका में जब स्त्रियाँ नहाती थीं तो ऊँचा होकर उनको घूरता था । इसी अपराध पर श्रीकृष्ण ने उसको मरवा डाला ।

मगध शब्द मग से बना है । कहते हैं कि 'श्रीकृष्ण के पुत्र सांब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्टान करने को बुलाया था और वे जिस देश में बसे उसकी मगध संज्ञा हुई ।'' जिन अंगरेज विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्ध (मध्यप्रदेश) का अपभ्रंश माना है उन्हें शुद्ध भ्रम हो गया है जैसा कि मेजर बिलफर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गंगा और कोसी के संगम पर बतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते हैं । यो तो पाली इस नाम के कई शहर हिंन्दुस्तान में प्रसिद्ध हैं किंतु पालीबोत्रा पाटलिपुत्र ही है । सोन के किनारे मावलीपुर एक स्थान है जिसका शुद्ध नाम महाबलीपुर है । महाबली नंद का नामांतर भी है, इसी से और वहाँ प्राचीन चिन्ह मिलने से कोई-कोई शंका करते हैं कि बलीपुर वा बलीपुत्र का पालीबोत्रा अपभ्रंश है, किंतु यह भी भ्रम ही है । राजाओं के नाम से अनेक ग्राम बसते हैं इसमें कोई हानि नहीं, किन्तु इन लोगों की राजाधनी पाटलिपुत्र ही थी ।

कुछ विद्वान का मत है कि मग लोग मिश्र से आए और यहाँ आकर Siris और Osiris नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की । यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते हैं । किसी पुराण में 'महाराज दशरथ के शाक-द्वीपियों को बुलाया' यह लिखा है । इस देश में पहले काल और चेरु (चोल) लोग बहुत रहते थे । शनुक और अजक इस वंश में प्रसिद्ध हुए । कहते हैं कि ब्राह्मणों ने लड़कर इन दोनों को निकाल दिया । इसी इतिहास से भुइँहार जाति का भी सूत्रपात होता है और जरासंध के यज्ञ से भुइँहारों की उपत्पतिवाली किंवदंती इसका पोषण करती है । बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहाँ राज्य करते रहे । किंतु एक जैन पंडित 'जो ८०० वर्ष ईसामसीह के पूर्व हुआ है' लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीतकर निकाल दिया । कहते हैं कि विहार के पास बारागंज में इसके किले का चिन्ह भी है । यूनानी विद्वानों और वायु पुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज की संस्थापन किया । इसका समय ५५० ई. पू. बतलाते हैं और चंद्रगुप्त को इससे तेरहवाँ राजा मानते हैं । यूनानी लोगों ने सोन का नाम Eranobaos (इरन्नोबओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है । हिरण्यवाह, स्वर्णनद और शोण का अपभ्रंश सोन है । मेगास्थनीज अपने लेख में पटने के नगर को ८० स्टेडिया (आठ मील) लंबा और १५ चौड़ा लिखता है, जिससे स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लंबा नगर है[2] । उसने उस समय नगर के चारों ओर ३० फुट गहरी खाई, फिर ऊँची दीवार और उसमें ५७० बुर्ज और ६४ फाटक लिखे हैं । यूनानी । लोग जो इस देश को (Prassi) प्रास्सि कहते हैं वह पलाशी का अपभ्रंश बोध होता है, क्योंकि जैनग्रंथों में उस भूमि के पलाशवृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन दिया गया है ।

जन और बौद्धों से इस देश से और भी अनेक संबंध

१. सुदर्शन सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामांतर था, किसी किसी ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है ।

२. जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियों ने उस समय इस धूम से किया है उसकी वर्त्तमान स्थिति यह है । पटने का जिला २४ ° ५८ ' से ५२ ° ४२ ' लैटि. और ८४ ° ४४ ' से ८६ ° ०५ ' लौंगि. पृथ्वी

हैं। मसीह के छः सौ बरस पहले बुद्ध पहले पहल राजगृह ही में उदास होकर चले गए थे। उस समय इस देश की बड़ी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम बिंबिसार लिखा है। (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थंकर सुव्रत स्वामी का राजगृह में कल्याणक भी मानते हैं) बिंबिसार ने राजधानी के पास ही इनके रहने को कलद नामक बिहार भी बना दिया था। फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बड़े बड़े धर्मसमाज इस देश में हुए। उस काल में हिंदू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यंत विद्वेषी थे। क्या आश्चर्य कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने अपवित्र ठहराया हो और गौतम की निंदा ही के हेतु अहल्या की कथा बनाई हो।

भारत नक्षत्री राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग में इस समय और देश के विषय में जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं। इससे बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जायँगी।

प्रसिद्ध यात्री हिआनसाँग सन् ६३७ ई. में जब भारतवर्ष में आया था तब मगध देश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था। किंतु दूसरे इतिहास-लेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और अंध्रवंश का भी राज्य चिह्न संभलपुर में दिखलाते हैं।

सन् १२९२ ई. में पहले इस देश में मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना बनारस के वंदावत राजदूत राजा इंद्रदमन के अधिकार में था। सन् १२२५ में अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रांत का स्वतंत्र सूबेदार नियत किया। इसके थोड़े ही काल पीछे फिर हिंदू लोग स्वतंत्र हो गए। फिर मुसलमानों ने लड़कर अधिकार किया सही, किंतु झगड़ा नित्य होता रहा, यहाँ तक कि सन् १३९३ में हिंदू लोग स्वतंत्र रूप में फिर यहाँ के राजा हो गए और तीसरे महमद की बड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय में गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश को छोड़कर लड़ने आए[१] थे और पंजाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिंदू मगध देश में जाकर प्राण त्याग करना बड़ा पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन् १४०० के लगभग बीस बरस मगध देश को स्वतंत्र रखा। किंतु आर्यमत्सरी दैव ने यह स्वतंत्रता स्थिर नहीं रखी और पुण्यधाम गया फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। सन् १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार में रहा। फिर बहलूलवंश ने इसको जीत लिया था, किंतु १४९१ में हुसेनशाह ने फिर जीत लिया। इसके पीछे बंगाल के पाठानों से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुई और सन् १४९४ में दोनों राज्य में एक सुलहनामा हो गया। इसके पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने बिहार छोड़कर पटने को राजधानी किया। सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई.) यह देश मुगलों के अधीन

२१०१ मील समचतुष्कोण १५५९६३८ मनुष्य-संख्या। पटने की सीमा उत्तर गंगा, पश्चिम गंगा, पश्चिम सोन, पूर्व का मुँगेर का जिला और दक्षिण गया का जिला। नगर की बस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर हैं। साढ़े आठ लाख मन के लगभग बाहर से प्रति वर्ष यहाँ माल आता और पाँच लाख मन लग भग जाता है। हिंदुओं में छः जातियाँ यहाँ विशेष हैं। यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार भुइँहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोइरी, आठ हजार रातश्त। अब दो लाख के आस-पास मुसलमान पटने के लिले में बसते हैं।

१. गया के भूगोल में पंडित शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं — "औरंगाबाद के तीन कोष अग्निकोण पर देव बड़ी भारी बस्ती है। यहाँ श्रीभगवान् सूर्यनारायण का बड़ा भारी संगीन पश्चिम रुख का मंदिर है। यह मंदिर देखने से बहुत प्राचीन जान पड़ता है। यहाँ कातिक और चैत की छठको बड़ा मेला लगता है। दूर-दूर के लोग यहाँ आते और अपने लड़कों के मुंडन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मंदिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब और सूर्यकुंड का तालाब है। इस तालाब से सटा हुआ और एक कच्चा तालाब है। उसमें कमल बहुत फूलते हैं। देव राजधानी है। यहाँ के राजा महाराजा उदयपुर के घराने के मड़ियार राजपूत हैं। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आये हैं। यहाँ के महाराज श्रीजयप्रकाशसिंह के. सी. आई. बड़े शूर सुशील और उदार मनुष्य थे। यहाँ से दो कोस दक्खिन कंचनपुर में राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, उस के पास पहाड़ के

हुआ और अन्त में जरासंध और चंद्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वेश और आर्य नाम परित्याग करके औरंगजेब के पोते अजीमशाह के नाम पर अपना नाम अजीमाबाद प्रसिद्ध किया (१६९७ ई.) बंगाले के सूबेदारों में सबसे पहले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतंत्र समझा था किंतु १७५० की पलासी की लड़ाई में मीर जाफर अंगरेजों के बल से बिहार बंगाला और उड़ीसा का अधिनायक हुआ । किंतु अंत में जगद्विजयी अँगरेजों ने सन् १७६३ में पूर्व में पटना पर अधिकार करके दूसरे बरस की बकसर प्रसिद्ध लड़ाई जीतकर स्वतंत्र रूप से सिंहचिन्ह की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रांत मात्र को हिंदोस्तान के मानचित्र में लाल रंग के स्थापित कर दिया ।

जस्टिन (Justin) कहता है[१] — संद्रकुत्तम महापराक्रमी था । असंख्य सैन्य संग्रह करके विरुद्ध लोगों का इतने सामना किया था । डियोडोरस सिक्यूलस (Deodorus Siculus) कहता है[२] — प्राच्य देश के राजा चंद्रमा के पास २०००० अश्व, २०००० पदाति, २००० रथ और ४००० हाथी थे । यद्यपि यह Xandramas शब्द चंद्रमा का अपभ्रंश है, किंतु कई भ्रांत यूनानियों ने नंद को भी इसी नाम से लिखा है । क्विंतस करशिअस (Quintus Curtius) लिखता है —([३]) चंद्रमा के क्षौरकार पिता ने पहले मगधराज को फिर उसके पुत्रों को नाश करके रानी के गर्भ में अपने उत्पन्न किए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया । स्ट्राबो (Strabo) कहता है — ([४]) सेल्यूकस ने मेगास्थनीज को संद्रकुत्तम के निकट भेजा और अपना भारवर्षीय समस्त राज्य देकर उससे संधि कर ली । ओरियन Orriun लिखता है — ([५]) मेगस्थनीज अनेक बार संद्रकुत्तम की सभा में गया था । ([६]) प्लूटार्क (Plutarch) ने चंद्रगुप्त को दो लक्ष सेना का नायक लिखा है । इस सब लेखों को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकंदरकृत पुरु पराजय के पीछे मगधराज मंत्री द्वारा निहत हुए और उनके लड़के भी उसी गति को पहुँचे और उसके पीछे चंद्रगुप्त राजा हुआ, किंतु बहुत से यूनानी लेखकों ने चंद्रगुप्त की पट्टरानी के गर्भ में क्षौरकार से उत्पन्न लिखकर व्यर्थ अपने को भ्रम में डाला है । चंद्रगुप्त क्षत्रिय वीर्य से दासी में उत्पन्न था यह सर्वसाधारण का सिद्धान्त है । ([७]) इस क्रम से ३२७ ई. पू. में नंद का मरण और ३१४ ई. पू. में चंद्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है । पारस देश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी वही चंद्रगुप्त को दी गई । ३०२ ई. पू. में यह संधि और विवाह हुआ, इसी कारण अनेक यवनसेना चंद्रगुप्त के पास रहती थी । २९२ ई. पू. में चंद्रगुप्त २४ बरस राज्य करके मरा ।

चंद्रगुप्त के इस मगधराज्य को आइनेअकबरी में मकता लिखा है । डिग्विग्नेज़ (Deguignes) कहता है कि चीनी मगध देश के मकियात कहते हैं । केंफर (Kemfer) लिखता है कि जापानी लोग उसको मगत् कफ कहते हैं । (कफ शब्द जापानी में देशवाची है) । प्राचीन फारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा है । मगधराज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिव्बतवाले इस देश को अनुखेक बा अनोनखेक कहते हैं और तातारवाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं ।

सिसली डिउडोरस ने लिखा है कि मगधराजधानी

ऊपर देव के सूर्यमंदिर के ढंग का एक महादेव का मंदिर है । पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है । जान पड़ता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहाँ ही रहते थे, पीछे देव मों बसे । देव और उमगा दोनों इन्हीं की राजधानी थी, इससे दोनो नाम साथ ही बोले जाते (देवमूंगा) तिल संक्रांति को उमगा में बड़ा मेला लगता है ।' इससे स्पष्ट हुआ है कि उदयपुर के जो राजा लोग आए उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं । और बिहारदर्पण से भी यह बात पाई जाती है कि मड़ियार लोग मेवाड़ से आए हैं !

१. Justin His. Phellipp Lib XV Chap. IV.

२. Deodorus Siculus XVII . 93.

३. Quitus Curtius IX. 2.

४. Strabo XV. 2.9.

५. Orriun Indica X. 5.

६. Plutarch Vita Alexanbri O. 62.

७. टाड आद कई लोगों का अनुमान है कि मोरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चित्तौर के राजा थे वे भी मौर्य थे । क्या चंद्रगुप्त चौहान था ? या ये मोरा सब शूद्र थे ?

पालीपुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता द्वारा स्थापित हुई । सिसरो ने हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता का नामांतर बेलस (बल:) लिखा है । बल शब्द बलदेव जी का बोध करता है और इन्ही का नामांतर बली भी है । कहते हैं कि निज पुत्र अंगद निमित्त बलदेव जी ने यह पुरी निर्माण की, इसी से वलीपुत्रपुरी इसका नाम हुआ । इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया । पाली भाषा, पाली धर्म, पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले हैं । कहते हैं कि बाणासुर के बसाए हुए जहाँ तीन पुर थे उन्हीं को जीतकर बलदेव जी ने अपने पुत्रों के हेतु पुर निर्माण किए । यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते में, एक विदर्भदेश में (मुजफ्फरपुर वर्तमान नाम) और एक (राजमहल वर्तमान नाम) बंगदेश में है । कोई कोई बालेश्वर, मैसूर, पुरनियाँ प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते हैं । यहाँ एक बात बड़ी विचित्र प्रकट होती है । बाणासुर भी बलीपुत्र है । क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलीपुत्र शब्द निकला हो । कोई नंद ही का नामांतर महाबली कहते हैं और कहते हैं कि पूर्व में गंगा जी के किनारे नंद ने केवल एक महल बनाया था, उसके चारों ओर लोग धीरे-धीरे बसने लगे और फिर वह पत्तन (पटना) हो गया । कोई महाबली के पितामह उदसी, उदासी, उदय, श्रीउदयसिंह (?) ने ४५० ई. पू. इसको बसाया मानते हैं । कोई पाटलि देवी के कारण पाटलिपुत्र मानते हैं ।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य लिखा है । बृहत्कथा में लिखते हैं कि शकटाल ने इंद्रदत्त का शरीर जला दिया इससे योगानंद (अर्थात नंद के शरीर में इंद्रदत्त की आत्मा) फिर राजा हुआ । व्याड़ि जाने के समय शकटाल को नाश करने का मंत्र दे गया था । दररुचि मंत्री हुआ किंतु योगानंद ने मदमत्त होकर उसको नाश करना चाहा उससे वह शकटाल के घर में छिपा । उसकी स्त्री उपकोशा पति को मृत समझकर सती हो गई । योगानंद के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किंतु फिर तपोवन में चला गया । फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नंद के नाश का कारण हुआ । उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानंद का पुत्र था उसको मार कर चंद्रगुप्त को जो कि असली नंद का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया ।

ढुंढिराज पंडित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नंदों में मुख्य था । इसको दो स्त्रियाँ थीं । सुनंदा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उसका नाम मुरा था । एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहाँ गया और ऋषि कृत मार्जन के समय सुनंदा पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी । मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि से प्रसन्न होकर वरदान दिया । सुनंदा को एक मांसपिंड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ । राक्षस ने मांसपिंड काटकर नौ टुकड़े किया, जिससे नौ लड़के हुए । मौर्य को सौ लड़के थे, जिसमें चन्द्रगुप्त सबसे बड़ा बुद्धिमान था । सर्वार्थसिद्धि ने नंदों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा । नंदों ने ईर्षा से मौर्य और उसके लड़कों को मार डाला, किंतु चंद्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नंदों को नाश करके राजा हुआ ।

यों ही भिन्न भिन्न कवियों और विद्वानों ने भिन्न भिन्न कथाएँ लिखी हैं । किंतु सबके मूल का सिद्धान्त पास पास एक ही आता है ।

इतिहास तिमिरनाशक में इस विषय में जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाश किया जाता है ।

बिंबिसार को उसके लड़के अजातशत्रु ने मार डाला । मालूम होता है कि यह फसाद ब्राह्मणों ने उठाया । अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था । शाक्यमुनि गौतम बुद्ध श्रावस्ती में रहने लगा । यहाँ भी प्रसेनजित को उसके बेटे ने गद्दी से उठा दिया : शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में गया ।

अजातशत्रु की दुश्मनी बौद्ध मत से धीरे धीरे बहुत कम हो गई । शाक्यमुनि गौतम बुद्ध फिर मगध में गया । पटना उस समय एक गाँव था, वहाँ हरकारों की चौकी में ठहरा । वहाँ से विशाली [१] में गया । विशाली की रानी एक बेश्या थी । वहाँ से पावा गया, वहाँ से

१ जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक बतलाते हैं । यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में हैं : उजड़ गई है । वहाँ वाले अब उसे बसहर पुकारते हैं ।

जैनी यहाँ महावीर का निर्वाण बतलाते हैं, पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं असल में वह नहीं है ; पावा विशाली से पश्चिम और गंगा ने उत्तर होनी चाहिए ।

जैन अपने चौबीसवें अर्थात् सबसे पिछले तीर्थंकर महावीर का निर्वाण विक्रम के संवत् से ४७० अर्थात् सन् ईसवी से ५२७ बरस बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से २५० बरस पहले अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ

कुशीनार गया। बौद्धों के लिखने बमूजिब उसी जगह सन् ईसवी ४४३ बरस पहले ८० बरस की उमर में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेटे हुए इसका निर्वाण हुआ। काश्यप उसका जानशीन हुआ। अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मारकर मगध की गद्दी पर बैठे, यहाँ तक कि प्रजा ने घबराकर विशाली की बेश्या के बेटे शिशुनाग मंत्री को गद्दी पर बैठा दिया। वह बड़ा बुद्धिमान था। इसके बेटे काल अशोक ने, जिसका नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है, पटना अपनी राजधानी बनाया।

जब सिकंदर का सेनापति बाबिल का बादशाह सिल्यूकस सूबेदारों के तदारुक को आया, पटने से सिंधु किनारे तक नंद के बेटे चंद्रगुप्त के अमल दखल में पाया, बड़ा बहादुर था, शेर ने इसका पसीना चाटा था और जंगली हाथी ने इसके सामने सिर झुका दिया था।

पुराणों में बिंबिसार को शिशुनागर के बेटे काकवर्ण का परपोता बतलाया है और नंदिनवर्द्धन को बिंबिसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता; और कहा है कि नंदिबर्द्धन का बेटा महानंद और महानंद का बेटा शूद्री से महापद्मनंद और इसी महापद्मनंद और उसके आठ लडंकों के बाद जिन्हें नवनंद कहते हैं, चंद्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा। बौद्ध कहते हैं कि तक्षशिला के रहनेवाले चाणक्य ब्राह्मण ने धननंद को मार के चंद्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और वह मोरिया नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिसमें शाक्यमुनि गौतम बुद्ध पैदा हुआ।

मेगस्थनीज लिखता है कि पहाड़ों में शिव और मैदान में विष्णु पुजाते हैं, पुजारी बदन रँग[1] कर और सिर में फूलों की माला लपेटकर घंटा और झाँझ बजाते हैं। एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री ब्याह नहीं सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता है। हिंदू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कंधों पर कपड़ा[2] रखते हैं। जूते उनके रंग बरंग के चमकदार और कारचोबी के होते हैं। बदन पर अकसर गहने, भौं मिहंदी से रंगते हैं और दाढ़ी मूछ पर खिजाब करते हैं। छतरी, सिवाय बड़े आदमियों के और कोई नहीं लगा सकता। रथों में लड़ाई के समय घोड़े और मंजिल काटने के लिए बैल जोते जाते हैं। हाथियों पर भारी जर्दोजी झूल डालते हैं। सड़कों की मरम्मत होती है, पुलिस का अच्छा इंतिजाम है। चंद्रगुप्त के लशकर में औसत चोरी तीस रुपये रोज से जियादा नहीं सुनी जाती है। राजा जमीन की पैदावार से चौथाई लेता है।

चंद्रगुप्त सन् ई. के ९१ बरस पहले मरा। उसके बेटे बिंदुसार के पास यूनानी एलची दयोमेकस (Diamachos) आया था परंतु वायुपुराण में उसका नाम भद्रसार और भागवत में बारिसार और मत्स्यपुराण में शायद बृहद्रथ लिखा है। केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रंथों के साथ बिंदुशार बतलाता है। उसके १६ रानी थीं और उनसे १०१ लड़के, उनमें अशोक[3] जो पीछे से 'धर्म्मअशोक' कहलाया, बहुत तेज था, उज्जैन का नाजिम था। वहाँ के एक सेठ([4]) की लड़की देवी उससे ब्याही थी, उसी से महेंद्र लड़का और संघमिता (जिसे सुमित्रा भी कहते हैं) लड़की हुई थी।

का निर्वाण मानते हैं।

* कैसे आश्चर्य की बात है, चेटक रंडी के भड़वे को भी कहते हैं। (हरिश्चंद्र)

१. चंदन इत्यादि लगाकर।

२. अर्थात पगड़ी दुपट्टा।

३. जैनियों के ग्रंथों में इसी का नाम अशोक भी लिखा है।

४. सेठ श्रेष्ठों का अपभ्रंश है, अर्थात् जो सबसे बड़ा हो।

सत्य हरिश्चन्द्र

सन् १८७६ में निउ मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से छपा यह नाटक सम्भवतः बच्चों के लिए लिखा गया था। संस्कृत साहित्य में आर्य क्षेमेश्वर कृत चंडकौशिक और रामचंद्र कृत सत्य हरिश्चन्द्र नाम के दो रूपक मिलते हैं। जो राजा हरिश्चंद्र की आख्यायिका को लेकर लिखे गये हैं। भारतेन्दु का यह नाटक इन दोनों में से किसी का अनुवाद तो नहीं था। पर पहले का कुछ भाग इसमें अनुदित अवश्य है।

— सं.

सत्य हरिश्चन्द्र
एक रूपक
चार खेलो मे
चन्द्रावली इत्यादि नाटको के कवि
श्री हरिश्चन्द्र
लिखित
श्रीयुत् बाबू बालेश्वरप्रसाद बी. ए.
की आज्ञानुसार
काशी पत्रिका नामक पाक्षिक हिन्दी पत्र से
संगृहीत होकर
बनारस
निउ मेडिकल हाल प्रेस मे छापा गया
सन् १८७६ ई.

उपक्रम

मेरे मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद बी.ए. ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखैं जो लड़कों को पढ़ने पढ़ाने के योग्य हो क्योंकि श्रृंगार रस के आप ने जो नाटक लिखे है वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं की इच्छानुसार मैंने यह सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इस में सूर्य कुल सम्भूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्य वंश का अट्ठाइसवाँ राजा रामचन्द्र के ३५ पीढ़ी पहले राजा त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपाल देव के समय में आर्य्य क्षेमीश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य ग्रंथ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। वह एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब बशिष्ठ ने सैन समेत उसकी जाफत अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूमधान से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और गऊ के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिए। विश्वामित्र इस

पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेव जी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आए। वशिष्ठ ने मंत्र के बल से एक ऐसे ब्रह्म दंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हार कर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप कर के ब्राह्मण होना चाहिए और तप कर के अंत में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह बाल्मीकीय रामायण के आयोध्या कांड के ५२ से ६० सर्ग तक सविस्तार वर्णित है।

जब हरिश्चंद्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठ जी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह अशक्य काम हम से न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उन से भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं किया और हम को कोरा जवाब दिया इससे अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल होजा। बिचारा त्रिशंकु चांडाल बन कर विश्वामित्र के पास गया और दुखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने वैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा किया कि इसी देह से तुम को स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आए पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि जहाँ चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहाँ कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देखकर और विचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मंत्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ भाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु यज्ञ से कुछ काम नहीं तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है तो पुकारा कि अरे तू यहां आने के योग्य नहीं है नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र से त्राहि त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तप बल से उसको वहां बीच ही में स्थिर रखा। कर्म्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार सो बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव जंतु फल मूल बनाकर जब इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डर कर इनसे क्षमा मांगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रखकर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भाँति प्रकाशमान स्थिर रखकर क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में हैं। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा इससे बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख माँगने गए और जब कुत्ते का माँस पाया तो उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इन के भय से काँप गए और इन्द्र ने उसी समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांति पर्व्व के १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की बिपत्ति सुनकर क्रोध से वशिष्ठ जी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुनकर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ी[1] हो जाओ। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया जिससे त्रैलोक्य कांप गया। अन्त में ब्रह्मा ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मारकंडेय पुरान के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है। भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को व्याह किये देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और बेटा बहु देखने को उनके घर आए। उन दोनों ने पिता की पूजा किया और हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी बर मांग। सत्यवती ने यह वर मांगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जानने वाला और मेरी माता को युद्ध विद्या विशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर ध्यान से प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिंगन करके खाय और तुम यह सफेद चरु उसी भांति उदुम्बर का आलिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कनौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से कहा। उसकी माता ने यह समझकर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने का चरु दिया होगा जब ऋतु काल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद आप खाया। भगवान भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आकर बहू से कहा कि तुमने चरु को उलट पुलट किया इससे तुम्हारा लड़का ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय कर्म्म होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायगा सत्यवती ने जब ससुर से अपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रिय कर्म्मा होगा वही राजा गाधि को विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और

१. बीसी जाति का गिद्धा

जमदग्नि को परशुराम हुए । यह उपाख्यान कालिका पुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है ।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़ने वालें को बड़ी सहायता मिलैगी । इसी भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्ब्ब पुरुष महाराजा हरिश्चन्द्र भी थे और यह समझकर इस नाटक के पढ़ने वाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा ।

समर्पण

नाथ

यह एक नया कौतुक देखो । तुम्हारे सत्यपथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते है यही उसमे दिखाया गया है । भला हम क्या कहै ? जो हरिश्चन्द्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करैगा पर उस वंश ही के नाते इनको भी मानना । हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं पर तुम्हारी तो बहुत कुछ हष । बस इतनी ही सही । लो सत्य हरिश्चन्द्र तुम्हें समर्पित है अंगीकार करो । छल मत समझना सत्य शब्द सार्थ है कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है ।

तुम्हारा

जेष्ठ शुक्ल ५ सं. १९३३ । हरिश्चन्द्र ।

सत्यहरिश्चन्द्र

एक रूपक

करुण रस अंगी

भयानक और बीर अंग

चार अंकों में

प्रथम अंक	इन्द्र सभा
द्वितीय अंक	हरिश्चन्द्र की सभा
तृतीय अंक	काशी में विक्रय
चतुर्थ अंक	स्मशान

अथ सत्यहरिश्चन्द्र

(मंगलाचरण)

सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघ हर सुख कन्द ।
जनहित कमला तजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द[1] ।।१।।

(नान्दी के पीछे सूत्रधार[2] आता है)

सू.— अहा ! आज की सन्ध्या भी धन्य है कि पूछ ही नहीं है । केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक देखें । धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहां के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे भला वहां अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त हुई । परन्तु हा ! शोच की बात है कि जो बड़े-२ लोग हैं और जिनके किए कुछ हो सकता है वे ऐसी अन्धपरम्परा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं बात है जिन्हें झूठी खैरखाही दिखाना वा लंबा चौड़ा गाल बजाना आता है । (कुछ सोच कर क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तो यों भी बहुत कुछ हो रहैगा । काल बड़ा बली है, धीरे-२ सब आप से आप ही कर देगा । पर भला आज इन लोगों को लीला कौन सी दिखाऊं । (सोच कर) अच्छा उनमें भी तो पूछ लें ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है । (नेपथ्य की ओर देख कर) मोहना ! अपनी भाभी को

१. यह श्लेष शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पांच का वर्णन करता है ।

२. सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जांघिया पहिने उस के आगे पटुके की तरह कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजाई, ऊपर माला वगैरह और सब गहिने सिर पर टिपारा, पैर में घुंघरू, हाथ में छडी, वा पैजामा, काछनी सिर पर मुकुट ।

जरा इधर तो भोजना ।

(नेपथ्य में से — मैं तो आप ही आती थी कहती हुई नटी[1] आती है)

न. — मैं तो आप ही आती थी । वह एक मनिहारिन आ गई थी उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती । कहिए आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहै तौ मैं और सभी से कह के सावधान कर दूं ।

सू. — आज का नाटक तो हमने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है ।

न. — हम लोगों को तो सत्य हरिश्चन्द्र आज कल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे बड़े को मज रहा है ।

सू. — ठीक है यही हो । भला इससे अच्छा और कौन नाटक होगा । एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एक मात्र जीवन है ।

न. — (लंबी सांस लेकर) हा ! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण रूप न समझा । क्या हुआ । कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिश्चंद की कहानी रहिजायगी ।।२।।

सू. — इसमें क्या सन्देह है । काशी के पंडितों ही ने कहा है ।।

सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचंद ।
जिमि सुभाव दिन रैन के कारन नित हरिचंद[2] ।।३।।[3]

और फिर उनके मित्र पंडित शीतला-प्रसाद जी ने इस नाटक के नायक से उनकी समता भी किया है इससे उनके बनाए नाटकों में भी सत्य हरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है ।।

न. — कैसी समता मैं भी सुनूं ।

सू. — जो गुन नृप हरिचन्द मैं जगहित सुनियत कान ।
सो सब कवि हरिचन्द मैं लखहु प्रतच्छ सुजान ।।४।।[4]

(नेपथ्य में)

अरे !
यहां सत्यभय एक के कांपत सब सुर लोक ।
यह दूजो हरिचन्द को करन इन्द्रउर सोक ।।२।।

सू. — (सुनकर और नेपथ्य की ओर देख कर) यह देखो ! हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बन कर आ पहुंचा । तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

प्रथम अंक

जवनिका उठती है

(स्थान इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ)

(इन्द्र[5] आता है)

इ. — ('यहाँ सत्यभय एक के' यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर उधर घूमता है)

(द्वारपाल[6] आता है)

द्वा. — महाराज ! नारद जी आते हैं ।

इ. — आने दो अच्छे अवसर पर आए ।

द्वा. — जो आज्ञा । (जाता है)

इ. — (आप ही आप) नारद जी सारी पृथ्वी पर इधर उधर फिरा करते हैं इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा । हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उस के धर्म्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए ।

(नारदजी[7] आते हैं)

इ. — (हाथ जोड़कर दंडवत करता है) आइए आइए धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़ ।

---

१. महाराष्ट्री भेष, कमर पर पेटी कसे, वा मर्दाना कपड़ा पहिने, पर जेवर सब जनाने ।
२. हरि — सूर्य ।
३. ''विद्वज्जनप्रतिष्ठा कारणमेवं हरिश्चन्द्रः यद्वत् स्वभावगत्वादिन रात्योर्वा हरिश्चन्द्रः'' ।
४. ''श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाल्हादिनो गुणा । दृश्यन्ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने ।।''
५. जामा, क्रीट, कुण्डल और गहने पहने हुए, हाथ में ब्रज कई फल का छोटा भाला लिए हुए ।
६. छज्जेदार पगड़ी, चमकन, घेरदार पाजामा पहने कमरबन्द कसे और हाथ में असा लिये हुए ।
७. धोती की लांग कसे, गाती बाँधे, सिर से पांव तक चंदन का और दिए, पैर में घुंघुरू, सिर के बाल छुटे, और हाथ में बीन लिए हुए । आने और जाने के समय 'राम कृष्ण गोविन्द' की ध्वनि नेपथ्य में से हो ।

ना.— हमैं और भी कोई काम है, केवल यहां से वहां और वहां से यहां — यही हमैं है कि और भी कुछ ।

इ.— साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं । विशेष कर के आप ऐसे जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं । क्योंकि जो लोग गृहस्थ और काम काजी हैं वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधु संगम तो उनको सपने में भी दुर्लभ हो जाता है, न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे न कहीं जायंगे ।

ना.— आप को इतनी शिष्टाचार नहीं सोहती । आप देवराज हैं और आप के संग की तो बड़े बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं फिर आप को सतसंग कौन दुर्लभ है । केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुंह देखा व्यापार होता है वैसी ही बातैं आप इस समय कर रहे हैं ।

इ.— हम को बड़ा शोच है कि आप ने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा । क्षमा कीजिए आप से हम बनावट नहीं कर सकते । भला बिराजिये तो सही यह बातें तो होती ही रहेंगी ।

ना.— बिराजिये (दोनों बैठते हैं) ।

इ.— कहिए इस समय कहां से आना हुआ ।

ना.— अध्योध्या से । अहा ! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है । मैं तो उसके निष्कपट अकृत्रिम स्वभाव से बहुत ही संतुष्ट हुआ । यद्यपि इसी सूर्यकुल में अनेक बड़े-२ धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है ।

इ.— (आप ही आप) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं ।

ना.— महाराज । सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्त्ति है । निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊंचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी ।

इ.— (आपही आप) अहा ! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है । यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट कीर्त्ति से इसमें ईर्ष्या होती ही है, उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्ष्या भी उतनी ही बड़ी है । हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना संताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्ति ।

ना.— आप क्या सोच रहे हैं ।

इ.— कुछ नहीं । योंही मैं यही सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्त्ति आजकल छोटे बड़े सबके मुंह से सुनाई पड़ती है इससे निश्चय होता है कि नहीं हरिश्चन्द्र निस्संदेह बड़ा मनुष्य है ।

ना.— क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे बड़े सब मानैं, और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो ऐसा दृढ़ होकर धर्म्म साधन करेगा । (आप ही आप) और उसकी बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उससे बुरा मानते हैं क्योंकि जिससे बड़े-२ लोग डाह करें पर उसका कुछ बिगाड़ न सकें यह निस्संदेह बहुत बड़ा मनुष्य है ।

इ.— भला उसके गृह चरित्र कैसे हैं ।

ना.— दूसरों के लिए उदाहरण बनाने के योग्य । भला पहिले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये हैं उसकी और बातों पर क्या विश्वास हो सकता है । शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है । बचन से उपदेशक और त्रियादिक से कैसा भी धर्म्मनिष्ठ क्यों न हो पर यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं है तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायगा और उसकी बातें प्रमाण न होंगी ! महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन बचन और कर्म्म एक रहते हैं, इनके भिन्न ।[1] निस्संदेह हरिश्चन्द्र महाशय है । उसके आशय बहुत उदार हैं इसमें कोई संदेह नहीं ।

इ.— भला आप उदार वा महाशय किसको कहते हैं ।

ना.— जिसका भीतर बाहर एक सा हो और विद्यानुरागिता उपकार प्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों । अधिकार में क्षमा, बिपत्ति में धैर्य्य, सम्पत्ति में अनभिमान, और युद्ध में जिसको स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है । हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं । दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर संतोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी थोड़ा दिया ।

इ.— (आपही आप) हृदय ! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो ।

ना.— और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उसमें ऐसी है जो सब का भूषण है क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं । फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को संदेह होता है कि इन्हें राज काज देखने की छुट्टी कब मिलती है । सच है छोटे जी के लोग थोड़ो ही कामों में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है ; पर जो बड़े लोग हैं उनके सब काम महारम्भ होते हैं तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उनके समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग्य बंटे रहते हैं जिससे

उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं ।

इ.— भला महाराज वह ऐसे दानी है तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है ।

ना.— यही तो हम कहते हैं । निस्संदेह वह राजा कुल का कलंक है जिसने बिना पात्र बिचारे दान देते-२ सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया, आप कुछ उपार्जन किया ही नहीं जो था वह नाश हो गया । और जहां प्रबन्ध है वहां धन की क्या कमती है । मनुष्य कितना धन देगा और जाचक कितना लेंगे ।

इ.— पर यदि कोई अपने बित्त के बाहर मांगे या ऐसी वस्तु मांगे जिससे दाता की सर्वस्व हानि हो तो वह दे कि नहीं ?

ना.— क्यों नहीं । अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए । जिसको धन पाकर सत्पात्र में उसके त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहा हुआ ।

इ.— (आपही आप) भला देखेंगे न ।

ना.— राजन् ! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है । वे तो अपने सहज सुभाव ही से सत्य और विचार दृढ़ता में ऐसे बंधे हैं कि सत्पात्र हरिश्चन्द्र — जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी, और तलवार पर भी नहीं है । जो सत्यानुरागी ही नहीं है भला उससे न्याव कब होगा, और जिसमें न्याव नहीं है वह राजा ही काहे का है । कैसी भी विपत्ति और उभय संकष्ट पड़े और कैसी ही हानि वा लाभ हो पर जो न्याव न छोड़े वही धीर और वही राजा । और उस न्याव का मूल सत्य है ।

इ.— तो भला वह जिसे जो देने को कहैगा देगा वा जो करने को कहैगा वह करैगा ।

ना.— क्या आप उसका परिहास करते हैं । किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उसकी निन्दा है । क्या आप ने उसका यह सहज साभिमान बचन कभी नहीं सुना है —

चन्द टरै सूरज टरै टरैं जगत व्योहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिश्चन्द को टरै न सत्य विचार ।।

इ.— (आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला । (प्रकट) हाँ पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म्म स्वर्ग लेनें को करता है ?

ना.— वाह । भला जो ऐसे उदार हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है । क्या बड़े लोग धर्म्म स्वर्ग पाने को करते हैं । जो अपने निर्मल चरित्र से संतुष्ट हैं उन के आगे स्वर्ग कौन वस्तु है । फिर भला जिनके शुद्ध हृदय और सहज व्योहार हैं वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच से धर्म्म करते हैं । वे तो आपके स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं । और जिन लोगों को भगवान के चरणारविंद में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्म्माचरण करते हैं, यह भी तो एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना ।

इ.— (आप ही आप) हमने माना कि उस को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि अपने कर्म्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा ।

ना.— और जिनको अपने किये शुभ अनुष्ठानों से आप संतोष मिलता है उन के इस असीम आनंद के आगे आपके स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महा महा तुच्छ हैं । क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं ।

इ.— तथापि एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता ।

ना.— राजन् ! आपका यह सब सोचना बहुत अयोग्य है । ईश्वर ने आपको बड़ा किया है तो आपको दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर संतोष करना चाहिए । ईर्षा करना तो क्षुद्राशयों का काम है । महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझै ।

इ.— (आप ही आप) इन से काम न होगा । (बात बहलाकर प्रकट) नहीं नहीं मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उनके गुणों को अपनी आंखों से देखता भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूं जिसमें उन्हें कुछ कष्ट हो ।

ना.— (आप ही आप) अहा ! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता । बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है । अधिकार तो बड़ा पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं वह आदर के योग्य नहीं है, परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर उसका चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है ।

(द्वारपाल आता है)

द्वा.— महाराज ! विश्वामित्र जी आए हैं ।

इ.— (आप ही आप) हां इनसे वह काम होगा । अच्छे अवसर पर आए । जैसा काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिएं । (प्रकट) हां हां लिवालाओ ।

द्वा.— जो आज्ञा । (जाता है)

(विश्वामित्र[१] आते हैं)

इ.— (प्रणामादि शिष्टाचार करके) आइए भगवन् बिराजिए ।

वि.— (नारदजी को प्रणाम करके और इन्द्र को

१. धोती, उपरना, डाढ़ी, जटा, हाथों में पवित्री और कमंडल खड़ाऊँ पर चढ़े ।

आशीर्वाद देकर बैठते हैं) ।

ना.— तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम को जाना है ।

वि.— यह क्या ? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की ।

ना.— हरे हरे ! आप ऐसी बात सोचते हैं, राम राम भला आप के आने से हम क्यों जायंगे । मैं तो जाने ही को था कि इतने मे आप आ गये ।

इ.— (हंसकर) आपकी जो इच्छा ।

ना.— (आप ही आप) हमारी इच्छा क्या अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायं, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्र जी से राजा हरिश्चन्द्र को दु:ख देने की सलाह कीजिएगा तो हम उसके बाधक क्यों हों पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतनी ही उनकी सत्य कीर्ति तपाए सोने की भांति और भी चमकती है क्योंकि बिपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती । (प्रगट) यद्यपि 'जो इच्छा' आप ने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन बचन नहीं कहते क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है । मैं कुछ इसका ध्यान नहीं करता, केवल मित्र भाव से कहता हूं । लो जाता हूं और यही आशीर्वाद देकर जाता हूं कि तुम किसी को कष्टदायक मत हो क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं सुख देना शोभा है ।

इ.— (कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है) ।

(नारदजी जाते हैं)

वि.— यह क्यों ? आज नारद भगवान ऐसी जली कटी क्यों बोलते थे, क्या तुमने कुछ कहा था ।

इ.— नहीं तो । राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग निकला था सो उन्होंने उसकी बड़ी स्तुति की और हमारा उच्च पद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्त्ति को सहन न कर सका इसी में कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गए ।

वि.— तो हरिश्चन्द्र में कौन से ऐसे गुण हैं ? (सहज ही भृकुटी चढ़ जाती है) ।

इ.— (ऋषि का भ्रूभंग देखकर चित्त में संतोष करके उनका क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज सिपारसी लोग चाहे जिसको बढ़ा दें चाहे घटा दें । भला सत्य धर्म्म पालन क्या हंसी खेल है । यह आप ऐसे महात्माओ ही का काम है जिन्होंने घर बार छोड़ दिया है । भला राज करके और घर में रह के मनुष्य क्या धर्म्म का हठ करैगा । और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ती । इन्हीं बातों से तो नारद जी बिना बात ही अप्रसन्न हुए ।

वि.— मैं अभी देखता हूं न । जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं । भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनैगा और क्या दानीपने का अभिमान करैगा ।

(क्रोध पूर्व्वक उठकर चला चाहते हैं कि परदा गिरता है) ।

।। इति प्रथम अंक ।।

दूसरा अंक

स्थान —राजा हरिश्चन्द्र का राजभवन ।
रानी शैव्या[1] बैठी हैं और एक सहेली[2] बगल में खड़ी है ।

रा.— अरी ? आज मैंने ऐसे बुरे-२ सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूं कलेजा कांप रहा है । भगवान् कुसल करे ।

स.— महराज के पुन्य प्रताप से सब कुसल ही होगी आप कुछ चिन्ता न करें । भला क्या सपना देखा है मैं भी सुनूँ ?

रा.— महाराज को तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले, और (आंखों में आंसू भर कर) रोहितास्व को देखा है कि उसे सांप काट गया है ।

स.— राम ! राम ! भगवान् सब कुसल करेगा । भगवान करे रोहितास्व जुग जुग जिए और जब तक गंगा जमुना में पानी है आप का सोहाग अचल रहे । भला आप ने इसकी शांति का भी कुछ उपाय किया है ।

रा.— हां गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है देखो वह क्या करते हैं ।

स.— हे भगवान् हमारे महाराज महारानी कुंअर सब कुसल से रहैं, मैं आंचल पसार के यह ˉरदान मांगती हूं ।

(ब्राह्मण आता है)[3]

ब्रा.— (आशीर्वाद देता है)

स्वस्त्यस्तुतेकुशलमस्तुचिरायरस्तु
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु
ऐश्वर्यमस्तुकुशलोस्तुरिपुक्षयोस्तु
सन्तानवृद्धिसहिताहरिभक्तिरस्तु ।।

१. लंहगा, साड़ी, सब जनाना गहिना, बन्दी बेना इत्यादि ।
२. साड़ी, सादा सिंगार ।
३. धोती, उपरना, सिर पर चुन्दी वा सिर भर बाल, डाढ़ी हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊं ।

रा.— (हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)

ब्रा.—महाराज गुरूजी ने यह अभिमंत्रित जल भेजा है इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी कर लें और यह रक्षावंधन भेजा है इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बांध दें फिर इस जल से मैं मार्जन करूंगा ।

रा.— (नेत्र में जल लगाकर और कुछ मुंह फेर कर आचमन करके) मालती यह रक्षाबन्धन तू सम्हाल के अपने पास रख जब रोहितास्व मिले उसके दहिने हाथ पर बाँध दीजियो ।

स.— जो आज्ञा (रक्षाबन्धन आने पास रखती है) ।

ब्रा.— तो अब आप सावधान हो जायं मैं मार्जन करलूँ ।

रा.— (सावधान होकर) जो आज्ञा ।

ब्रा.— (दुर्वा से मार्जन करता है ।

देवास्त्वामभिषिंचन्तुब्रह्मविष्णु शिवादय :
गन्धर्व्वा :किन्नरा : नागा : रक्षां कुर्व्वन्तुतेसदा
पितरोगुह्यकायक्षा : देव्योभूताचमातर :
सर्व्वेत्वामभिषिंचन्तुरक्षांकुर्वन्तुतेसदा
भद्रमस्तुशिवंचास्तुमहालक्ष्मीप्रसीदतु
पतिपुत्रयुतासाध्विजीत्ववं शरदांशतं ।।
(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंककर)
यत्पापंरोगमशुभंतद्दूरेप्रतिहतमस्तु
(फिर रानी पर मार्जन करके)
यन्मंगलंशुभं सौभाग्यंधनधान्यमारोग्यं बहु
पुत्रत्वं तत्सर्व्वमीशप्रसादात्ब्राम्हणवचनातत्वय्यस्तु
(मार्जन कर के फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रा.— (हाथ जोड़कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज गुरू जी से मेरी ओर से बिनती करके दंडवत कह दीजिएगा ।

ब्रा.— जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है)

रा.— आज महाराज अब तक सभा में नहीं आए ?

स.— अब आते होंगे पूजा में कुछ देर लगी होगी ।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रबिकुलरबि निसि बीती प्रजा कमलगन फूले ।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन भय तम उन भूले ।।
नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।
मागध बंदी सूत चिरैयन मिलि कलरोर मचायो ।।
तुव कस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियां ।
अति सुख पाइ असीस देत सोई करि अंगुरिन चट अलियां ।।
भए धरम मैं थित अब द्विज जन प्रजा काज निज लागे ।
रिपु जुवती मुख कुमुद मन्द जन चक्रवाक अनुरागे ।।
अरध सरिस उपहार लिए नृप ठाढ़े तिन कहं तोखो ।
न्याव कृपा सों ऊंच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ ।

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा.— महाराज ठाकुरजी के मंदिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बंदीलोग भी गाते आते हैं ।

स.— आप कहती हैं चले ? वह देखिये आ पहुंचे कि चले ।

रा.— (घबड़ा कर आदर के हेतु उठती हैं)

(परिकर[1] सहित महाराज हरिश्चन्द्र[2] आते हैं)

(रानी प्रणाम करती है और सब लोग
यथा स्थान बैठते हैं)

ह.— (रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलीन क्यों हो रहा है ?

रा.— पिछली रात मैंने कुछ दु :स्वप्न देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है ।

ह.—प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है पर तुम तो बीर कन्या बीरपत्नी और बीरमाता हो तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?

रा.— नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है ।

ह.— सो गुरु जी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलया ।

रा.— महाराज ! शान्ति तो गुरू जी ने कर दी है ।

ह.— तब क्या चिन्ता है शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो सब कल्याण होगा । सदा सर्वदा सहज मंगल साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के संतोष करना चाहिए ।

रा.— महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने भी ग्रंथों में देखा है ?

ह.— (रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो

---

१. राजा के परिकर में प्रथम मंत्री नीमा पैजामा कमरबंद दुशाला पगड़ी सिरपेच सजे । दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के भेष में । एक निशान वाला सेवक के भेष में । निशान पर सूर्य्य के नीचे "सत्ये नास्ति भयंक्वचित्" लिखा हुआ । चार शस्त्रधारी अंगरक्षक दो सेवक ।

२. सपेद वा केसरी जामा पैजामा कमरबंद मर्दाना सब गहना सिर पर किरीट वा पगड़ी सिरपेंच तुर्रा हाथ में तलवार दुशाला वा कोई चमकता रुमाल ओढ़े ।

कुछ हमने भी देखा है। (चिन्ता पूर्व्वक स्मरण करके) हां यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या साधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जान कर उनको बचाने गया हूं तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य मांगा हैं । मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया है । (इतना कहकर अत्यन्त व्याकुलता नाट्य करता है) ।

रा.— नाथ । आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गए ।

ह.— मैं यह सोचता हूं कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहां पाऊंगा और बिना उसकी थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूंगा ।

रा.— नाथ । क्या स्वप्न के व्योहार को भी आप सत्य मानिएगा ।

ह.— प्रिये हरिश्चन्द्र की अर्द्धांगिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है । हां ! भला तुम ऐसी बात मुंह से निकालती हौ ! स्वप्न किसने देखा ? मैं ने न ? फिर क्या ? स्वप्न संसार अपने काल में असत्य है इसका कौन प्रमाण है, और जो अब असत्य कहो तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है फिर इस संसार में परलोक के हेतु लोग धर्म्माचरण क्यों करते हैं ? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष ।

रा.— (हाथ जोड़कर) नाथ क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी !

ह.— (चिन्ता करके) पर मैं अब करूं क्या ! अच्छा । प्रधान ! नगर में डौंडी पिटवा दो कि राज्य सब लोग आज से अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण का समझें उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भाँति उस की थाती समझ के राज का कार्य्य करेगा और दो मुहर राज काज के हेतु बनवा लो एक पर 'अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण सेवक हरिश्चन्द्र' और दूसरे पर 'राजाधिराज अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण महाराज' खुदा रहे और आज से राज काज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे । देस देस के राजाओं और बड़े २ कार्य्यधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र के स्वप्न में अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है इससे आज से उसका राज हरिश्चन्द्र मंत्री की भांति सम्हालेगा ।

(द्वारपाल आता है)

द्वा.—महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है ।

ह.— (घबड़ा कर) अभी सादर पूर्वक ले आओ ।

द्वा.— जो आज्ञा (जाता है) ।

ह.— यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात हो ।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र[1] आते हैं) ।

ह.— (आदर पूर्व्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज ! पधारिए यह आसन है ।

वि.— बैठे, बेठ चुके, बोल अभी तैंने मुझे पहिचना कि नहीं ।

ह.— (घबड़ाकर) महाराज ! पूर्ब्ब परिचित तो आप ज्ञात होते हैं ।

वि.— (क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम तू काहे को पहिचानेगा, सच है रे सूर्य्यकुलकलंक तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार तेरे मिथ्या धर्माभिमान को ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं । अरे दुष्ट तैं भूल गया कल पृथ्वी किस को दान दी थी, जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?

'जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्रं
दृप्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम्
सर्गान्तिराहरणभीतजगत्कृतान्तं
चण्डालयाजिनमवैषिनकौशिकंमाम्'

ह.— (पैरों पर गिरके बड़े बिनय से) महाराज ! भला आप को त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा ।

'अन्नक्षयादिषु तथाविहितात्मवृत्ति
राजप्रतिग्रह पराङ्.मुखमानसं त्वाम्
आड़ोवकप्रधनकम्पितजीवलोकं
कस्तेजसां च तपसां च निधिर्नवेत्ति ।।'

वि.— (क्रोध से) सच है रे पाप पाखंड मिथ्यादान बीर ! तू क्यों न मुझे 'राज प्रतिग्रह पराङ्.मुख' कहेगा क्योंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान न दी है, ठहर ठहर देख इस झूठ का कैसा फल भोगता है, हा ! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जाति स्मरण के संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है, (अत्यन्त क्रोध से लंबी सांस लेकर और बांह उठा कर) अरे ब्रह्मा ! सम्हाल अपनी सृष्टि को नहीं तो परम तेज पुञ्ज दीर्घतपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जाएगा, अथवा संसार के नाश ही से

[1]. जटा और डाढ़ी बढ़ाए, खड़ाऊ पहिने, गले में मृगछाला बांधे, धोटी पर बाघ की मोटी करधनी, एक हाथ में कुश और कमंडल ।

क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूंगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत में दानी प्रसिद्ध हो रहा है ।

ह.— (पैरों पर गिर के) महाराज क्षमा कीजिए मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था, सारी पृथ्वी आप की मैं आप का भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुंह से निकालते हैं । (ईषत् क्रोध से) और आप बारंबार मुझे झूठा न कहिए । सुनिए मेरी यह प्रतिज्ञा है ।

'चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत ब्योहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को टरै न सत्य बिचार' ।।

बि.— (क्रोध और अनादर पूर्व्वक हंस कर) हहहह ! सच है सच है रे मूढ़ ! क्यों नहीं, आखिर सूर्य्यबंशी है । तो दे हमारी पृथ्वी ।

ह.— लीजिए, इसमें बिलम्ब क्या है, मैंने तो आप के आगमन के पूर्व्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है । (पृथ्वी की ओर देख कर)

जेहि पाली इक्ष्वाकु सों अबलौं रवि कुल राज ।
ताहि देत हरिचन्द नृप बिश्वामित्र हि आज ।।
बसुधे ! तुम बहु सुख कियो मम पुरुखन की होय ।
धरमबद्ध हरिचन्द को छमहु सु परबस जोय ।।

बि.— (आप ही आप) अच्छा ! अभी अभिमान दिखा ले, तो मेरा नाम विश्वामित्र तो तुझको सत्यभ्रष्ट कर के छोड़ा, और लक्ष्मी से तो भ्रष्ट हो ही चुका है । (प्रगट) स्वस्ति । अब इस महादान की दक्षिणा कहां है ?

ह.— महाराज ! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है ।

बि.— भला सहस्र स्वर्ण मुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी ।

ह.— जो आज्ञा (मंत्री से) मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ ।

बि.— (क्रोध से) 'मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ' मंत्री कहां से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है कि तैं मंत्री पर हुकुम चलता है ? झूठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुंह से कहा क्यों ? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा ।

ह.— (हाथ जोड़कर बिनय से) महाराज ठीक है । खजाना अब सब आप का है, मैं भूला क्षमा कीजिए । क्या हुआ खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है ।

बि.— एक महीने में तो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदंड गिराऊंगा, देख केवल एक मास की अवधि है ।

ह.— महाराज ! मैं ब्रह्मदंड से उतना नहीं डरता जितना सत्यदंड से इससे

बेचि देह दारा सुअन होइ दास हू मन्द ।
रखि है निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ।।

(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है)

(जवनिका गिरती है)

।।इति दूसरा अंक ।।

तीसरे अंक में अंकावतार

स्थान-वाराणसी का बाहरी प्रान्त तालाब ।

(पाप[१] आता है)

पाप— (इधर उधर दौड़ता और हांफता हुआ) मरे रे मरे, जले रे जले, कहां जायं, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुन्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते । सुना है कि राजा हरिश्चन्द्र काशी गए हैं क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हमको तुमने दान दे दी है, इससे पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेचकर हमसे उरिन नहीं हो सकते । यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबड़ाए और सोच विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है । यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलें क्योंकि जहां हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहां हमारे प्राण बचेंगे, सो यहां और भी उत्पात हो रहा है । जहां देखो वहां स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालेंगे । रात दिन शंख घंटा की घनघोर के साथ वेद की धुनि मानो ललकार के हमारे शत्रु धर्म्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उसका हृदय एक साथ शीतल हो जाता है । इसके उपरान्त शि शि शि . . . ध्वनि अलग मारे डालती है । हाय कहां जायं

१. काजल सा रंग, लाल नेत्र, महा कुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिए, नीला काछ काछे ।

क्या करें । हमारी तो संसार से मानो जड़ ही कट जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है पर यहां तो मानो हमारा राज ही नहीं, कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहां आया कि गति हुई ।

(नेपथ्य में)

सच है, येषांक्वापिगतिर्नास्ति तेषांवाराणसीगति :

पाप— अरे ! यह कौन महा भयंकर भेस, अंग में भभूत पोते ; एड़ी तक जटा लटकाए, लाल लाल आँख निकाले साक्षात् काल की भाँति तृशूल घुमाता हुआ चला आता है । प्राण ! तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल से, अब इस समय भूमंडल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है ।

(भागता हुआ जाता है)

(भैरव[1] आते हैं)

भैर.— सच है । येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गति: । देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और स्त्री पुत्र बेचने को यहीं आया है । अहा ! धन्य है सत्य । आज जब भगवान् भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृतांत भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गए और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकण अलग अलग हो गए । मुझको आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्व्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना । इससे चलूं मैं भी भेस बदल कर भगवान की आज्ञा पालन में प्रवर्त्त हूँ ।

(जाते हैं । जवनिका गिरती है)

तीसरे अंक में यह अंकावतार समाप्त हुआ

तीसरा अंक

(स्थान काशी के घाट किनारे की सड़क)

महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं

ह.— देखो काशी भी पहुंच गए । अहा ! धन्य है काशी । भगवति बाराणसि तुम्हें अनेक प्रणाम हैं । अहा ! काशी की कैसी अनुपम शोभा है ।

'चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि कंचन धाम अकास बिभासिका । सोभा नहीं कहि जाई कछू बिधि नै रची मानो पुरीन की नासिका । आपु बसैं गिरि धारनजू तट देवनदी बर बारि बिलासिका । पुन्यप्रकासिका पापबिनासिका हीयहुलासिका सोहत कासिका' ।।१।।

'बसैं बिदुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही तें लागै जब मुख मसी है । तीरथ अनादि पंचगंगा मनिकर्निकादि सात आवरन मध्य पुन्य रूप धंसी है । गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी बार तोरै आसु कर्म्म रूप रसी हैं । ससी सम जसी असी बरना मैं बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी बारानसी है' ।।२।।

'रचित प्रभासी भासी अवलि मकानन की जिनमें अकासी फवै रतन नकासी है । फिरैं दास दासी बिप्रगृही औ सन्यासी लसै बर गुनरासी देवपुरी हूं न जासी है । गिरिधरधास बिश्वकीरति बिलासी रमा हासी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है । खासी परकासी पुनवांसी चंद्रिका सी जाके वासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी है' ।।३।।

देखो । जैसा ईश्वर ने यह सुंदर अंगूठी के नगीने सा नगर बसाया है वैसी ही नदी भी इसके लिए दी है । धन्य गंगे !

'जम की सब त्रास बिनास करी मुख तें निज नाम उचारन में । सब पाप प्रतापहि दूर दरयौ तुम आपन आप निहारन में । अहो गंग अनंग के शत्रु करे बहु नेकु जलै मुख डारन में । गिरिधारनजू कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में' ।।४।।[2]

कुछ महात्म ही पर नहीं गंगा जी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है । आहा !

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति ।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति ।।
लोल लहर पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ।।
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत ।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ।।
श्री हरिपदनख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस ।
ब्रह्म कमंडल मंडन भव खंडन सुर सरबस ।।
शिव सिर मालति माल भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
ऐरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल ।।
सगर सुअन सठ सहस परस जल मात्र उधारन ।
अगिनित धारारूप धारि सगर संचारन ।
कासी कहं प्रिय जानि ललकि भेट्यौ जब धाई ।
सपनेहूं नहिं तजी रही अंकन लपटाई ।।
कहुं बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुं छतरी कहुं मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ।।
धवल धाम चहुंध ओर फरहरत धुजा पताका ।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ।।
मधुरी नौबत बजत कहूं नारी नर गावत ।
बेद पढ़त कहुं द्विज कहुं जोगी ध्यान लगावत ।।

१. महादेव जी का सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रग एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में प्याला ।
२. यह चारों कवित्त ग्रंथकर्ता के पिता श्री बाबू गोपालचन्द्र के बनाए हैं जो कविता में अपना नाम गिरिधरदास रखते थे ।

कहूं सुंदरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत।।
धोअत सुंदरि बदन करन अति ही छबि पावत।
'बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत।।
सुंदरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुंदर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत।।
दीठि जहीं जहं जात रहत तितही ठहराई।
गंगा छबि हरिचन्द्र कछू बरनी नहीं जाई।।

(कुछ सोचकर) पर हां ! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है।

असनं वसनं वासो येषां चैवाविधानत:।
मगधेनसमाकाशी गंगाप्यंगारवाहिनी।।[१]

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता है। हा ! कैसे कष्ट की बात है राजपाट धनधाम सब छूटा अब दक्षिणा कहां से देंगे ! क्या करें ! हम सत्य धर्म कभी छोड़ेंहीगे नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे, और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या ? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग कर सकते। क्या करें ? कुबेर को जीत कर धन लावें ? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है। तो क्या किसी से मांग कर दें ? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे। फिर ऋण काढ़ें ? पर देंगे कहां से। हा ! देखो काशी में आकर लोग संसार के बंधन से छूटते हैं पर हमको यहां भी हाय हाय मची है। हा ! पृथ्वी ! तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलंकित मुंह फिर किसी को न दिखाऊं। (आतंक से) पर यह क्या ? सूर्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे यह कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिए बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें। (कुछ सोच कर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करें ? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है। (चिन्ता करके। एक साथ हर्ष से) वाह अभी तो स्त्री पुत्र और हम तीन-२ मनुष्य तैयार हैं, क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी न मिलेंगी ? तब फिर किस बात का इतना शोच ? न जानें बुद्धि इतनी देर तक कहां सोई थी। हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था :

बेचि देह दारा सुअन होय दास हूं मंद।
रखि हैं निज बच सत्य करि अभिमानी हरिश्चन्द।।

(नेपथ्य में) तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता ? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे-२ दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें ?

ह.— अरे मुनि तो आ पहुंचे। क्या हुआ आज उनसे एक दो दिन की अवधि और लेंगे।

(विश्वामित्र आते हैं)

वि.— (आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण फिर बहक गई कछु इन्द्र के कहने ही पर नहीं हमारा इस पर स्वत: भी क्रोध है पर क्या करें इसके सत्य, धैर्य और बिनय के राज्यभ्रष्ट हो चुका पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूंगा तब तक मेरा संतोष न होगा। (आगे देखकर) अरे यही दुरात्मा (कुछ रुक कर) वा महात्मा हरिश्चंद्र है। (प्रगट) क्यों रे आज महीने में कै दिन बाकी हैं। बोल कब दक्षिणा देगा ?

ह.— (घबड़ाकर) अहा ! महात्मा कौशिक। भगवान् प्रणाम करता हूं। (दंडवत करता है)।

वि.— हुई प्रणाम, बोल तैं ने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महीना पूरा हुआ अब मैं एक क्षण भर भी न मानूंगा। दे अभी नहीं तो — शाप के वास्ते कमंडल से जल हाथ में लेते हैं।)

ह.— (पैरों में गिरकर) भगवन् क्षमा कीजिए ; क्षमा कीजिए। यदि आज सूर्यास्त के पहिले न दूं तो जो चाहे कीजिएगा। मैं अभी अपने को बेचकर मुद्रा ले आता हूं।

वि.— (आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) अच्छा आज सांझ तक और सही। सांझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूंगा वरंच त्रौलोक्य में आज ही विदित कर दूंगा कि हरिश्चन्द्र सत्य भ्रष्ट हुआ। (जाते हैं)

ह.— भला किसी तरह मुनी से प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेचकर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा ! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल आंखें नहीं देखी हैं। (आगे चलकर) अरे क्या बजार में आ गए, अच्छा, (सिर पर तृण रखकर)[२] अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदार, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं किसी को लेना हो तो लो। (इसी तरह

---

१. जिन का भोजन, वस्त्र और निवास ठीक नहीं है उनको काशी भी मगह है और गंगा भी तपाने वाली है
२. उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था।

कहता हुआ इधर उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य विक्रय को अनुचित जानकर हम दूसरों को दंड देते थे पर आज वही कर्म हम आप करते हैं । दैव बली है । (अरे सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है । ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'क्यों तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो ?'' आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है । (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'तुम क्या क्या कर सकते हो ; क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे ?' इस का क्या पूछना है । स्वामी जो कहेगा वही करेंगे ; समझते सब कुछ हैं पर इस अवसर पर कुछ समझना काम नहीं आता ; और जैसे स्वामी रक्खेगा वैसे रहेंगे । जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है । (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'कुछ दाम कम करो ।' आर्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहां से जानें । जो कुछ ठीक था कह दिया ।

(नेपथ्य में से)

आर्यपुत्र ! ऐसे समय में हम को छोड़े जाते हो । तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहके क्या करूंगी । स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते हैं, इससे पहिले बायां अंग बेच लो तब दहिना अंग बेचो ।

ह.— (सुनकर बड़े शोक से) हा ! रानी की यह दशा इन आंखों से कैसे देखी जायगी !
(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शै.— कोई महात्मा कृपा करके हमको मोल ले तो बड़ा उपकार हो ।

बा.— अम को बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ ।

शै.— (आंखों में आंसू भरकर) पुत्र ! चन्द्रकुल-भूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर बचन कहता है । मैं अभी जीती हूं ! (रोती है)

बा.— (मां का अंचल पकड़ के) मां ! तुमको कोई मोल लेगा तो अम को बी मोल लेगा । आं आं मा लोती काए को औ । (कुछ रोना सा मुंह बना के शैव्या का आंचल पकड़ के झूलने लगता है) ।

शै.— (आंसू पोंछकर) पुत्र ! मेरे भाग्य से पूछ ।

ह.— अहह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था । हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई हम उनको कुछ धीरज भी न दे आए । उनकी अब कौन गति होगी । हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो अब यह देखना पड़ा । हृदय तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक हो और स्त्री को बिकता देखकर टुकड़े टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ?
(बारंबार लंबी सांसें लेकर आंसू बहाता है) ।

शै.— (कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'क्या क्या करोगी ?' पर पुरुष से संभाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और सब सेवा करूंगी । (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'पर इतने मोल पर कौन लेगा ?' आर्य कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा करके लेही लेंगे ।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उ.— क्यों रे कौंडिन्य ! सच ही दासी बिकती है ?

ब.— हां गुरुजी क्या मैं झूठ कहूंगा । आप ही देख लीजिएगा ।

उ.— तो चल, आगे आगे भीड़ हटाता चल । देखं धाराप्रवाह की भांति कैसे सब काम काजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं । भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं है, और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता ।

ब.— (आगे आगे चलता हुआ) हटो भाई हटो (कुछ आगे बढ़कर) गुरुजी यह जहां भीड़ लगी है वहीं होगी ।

उ.— (शैव्या को देखकर) अरे यही दासी बिकती है ?

शै.— (अरे कोई हम को मोल ले इत्यादि कहती और रोती है)

बा.— (माता की भांति तोतली बोली से कहता है) ।

उ.— पुत्री ! कहो तुम कौन कौन सेवा करोगी ?

शै.— पर पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और जो-२ कहिएगा सब सेवा करूंगी ।

उ.— वाह ! ठीक है । अच्छा लो यह सुवर्ण । हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र के अग्नि की सेवा के घर के काम काज नहीं कर सकती सो तुम सम्हालना ।

शै.— (हाथ फैलाकर) महाराज आपने बड़ा उपकार किया ।

उ.— शैव्या को भली भांति देखकर आपही आप) आहा ! यह निस्संदेह किसी बड़े कुल की है । इसका

मुख सहज लज्जा से ऊंचा नहीं होता, और दृष्टि बराबर पैर ही पर है । जो बोलती है वह धीरे धीरे और बहुत सम्हाल के बोलती है । हा ! इसकी यह गति क्यों हुई ! (प्रकट) पुत्री तुम्हारे पति हैं न ?

शै.— (राजा की ओर देखती है)

ह.— आप ही आप दुख से) अब नहीं । पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो ।

उ.— राजा को देख कर आश्चर्य से) अरे यह बिशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य लंबी-२ भुजावाला कौन मनुष्य है, और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रखा है ? (प्रगट) महात्मा तुम हम को अपने दुख का भागी समझो और कृपा पूर्व्वक अपना सब वृत्तांत कहो ।

ह.— भगवान् ! और तो बिदित करने का अवसर नहीं है इतना ही कह सकता हूँ कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई ।

उ.— तो हम से धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त हूजिए ।

ह.— (दोनों कानों पर हाथ रख कर) राम राम ! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है । आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी ?

उ.— तो पांच हजार पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले ।

शै.— (राजा से हाथ जोड़कर) नाथ हमारे आछत आप मत बिकिए, जिस में हम को अपनी आँख से यह न देखना पड़े हमारी इतनी बिनती मानिए । (रोती है)

ह.— (आंसू रोक कर) अच्छा ! तुम्हीं जाओ । (आपही आप) हा ! यह बज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं बिदीर्ण होता ।

शै.— (राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई) नाथ ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे । (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्य पुत्र का भली भांति दर्शन कर लूं । फिर यह मुख कहां और मैं कहां ।

उ.— हां हां मैं जाता हूं कौडिन्य यहा है तुम उसके साथ आना । (जाता है)

शै.— (रोकर) नाथ मेरे अपराधों को क्षमा करना ।

ह.— (अत्यन्त घबड़ाकर) अरे अरे बिधाता तुझे यही करना था । (आप ही आप) हा ! पहिले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया । यह भी देखना बदा था । हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है । (रोता हुआ प्रकट रानी से) प्रिये सर्बभाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना ।

शै.— (रोकर) नाथ ! जो आज्ञा ।

बटु.— उपाध्याय जी गए अब चलो जल्दी करो ।

ह.— (आंखों में आंसू भर के) देवी (फिर रुक कर अत्यंत सोच से आप ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्य कहता हूं अब तो बिधाता ने इसे दासी बनाया । (धैर्य से) देवी ! उपाध्याय की आराधना भली भांति करना और इनके सब शिष्यों से भी सुहृत भाव रखना, ब्राह्मण के स्त्री की प्रीति पूर्व्वक सेवा करना, बालक का यथासंभव पालन करना, और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना । विशेष हम क्या समझावें जो जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना । (आंसू बहते हैं)

शै.— जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिर के रोती है) ।

ह.— (धैर्य पूर्व्वक) प्रिये ! देर मत करो बटुक घबड़ा रहे हैं ।

शै.— (उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे धीरे चलती है)

बा.— (राजा से) पिता मां कआं जाती ऐं ।

ह.— (धैर्य से आंसू रोककर) जहां हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है ।

बा.— (बटुक से) अले मां को मत लेजा । (मां का आंचल पकड़ के खींचता है)

बटु.— (बालक को ढकेल कर) चल चल देर होती है ।

बा.— (ढकेलने से गिर कर रोता हुआ उठकर अत्यंत क्रोध और करुणा से माता पिता की ओर देखता है)

ह.— ब्राह्मण देवता ! बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना (बालक को उठाकर धूर पोंछ के मुंह चूमता हुआ) पुत्र मुझ चांडाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए । जाओ माता के संग मुझ भाग्यहीन के साथ रह कर क्या करोगे । (रानी से) प्रिये धैर्य धरो । अपना कुल और जाति स्मरण करो । अब जाओ देर होती है ।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

ह.— धन्य हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किस का होगा । संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं पर तुमने उसका भी त्याग किया ।

(विश्वामित्र आते हैं)

ह.— (पैर पर गिर के प्रणाम करता है)

बि.— ला दे दक्षिणा । अब सांझ होने में कुछ देर नहीं है ।

ह.— (हाथ जोड़कर) महाराज आधी लीजिए आधी अभी देता हूं । (सोना देता है)

बि.— हम आधी दक्षिणा लेके क्या करें ! दे चाहे जहां से सब दक्षिणा । (नेपथ्य में) धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञानं धिक् बहुश्रुतम् । नीतवान सियब्रह्मन् हरिश्चंद्रमिमां दशां ।

बि.— (बड़े क्रोध से) आ : हमको धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है ? (ऊपर देखकर) अरे विश्वेदेवा (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपतियो ! तुम अभी बिमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ से मारे जाओ[१] । (जल छोड़ते हैं)

(नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)

(सुनकर और ऊपर देखकर आनंद से) हहहह ! अच्छा हुआ ! यह देखो किरीट कुंडल बिना मेरे क्रोध से बिमान से छूट कर बिश्वेदेवा उलटे हो-२ कर नीचे गिरते हैं । और हमको धिक्कार दें ।

ह.— (ऊपर देखकर भय से) वाह रे तप का प्रभाव । (आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यही बड़ा अनुग्रह है । (प्रकट) भगवन यह स्त्री बेच कर आधा धन पाया है सो लें और आधा हम अपने को बेचकर अभी देते हैं । (नेपथ्य में) अरे अब तो नहीं सही जाती ।

बि.— हम आधा न लेंगे चाहे जहाँ से अभी सब दे ।

ह.— (अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है)

(चांडाल के भेष में धर्म और सत्य आते हैं)[२]

धर्म.— (आप ही आप)

हम प्रत्तच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत ।
जल थल नभ थिर मो प्रभाव मरजाद न टालत ।।
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी ।
इक हमहीं संग जात तजत सब पितु सुत नारी ।।
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जियो ।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेस हम यह कियो ।।
कियो ।।

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है । (आगे बढ़कर प्रत्यक्ष) अरे हरजनवाँ ! मोहर का संदूख ले आवा है न ?

सत्य.— क चौधरी मोहर ले के का करबो ?

धर्म.— तोंहसे का काम पूछै से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह.— (अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि दो तीन बेर पुकार के इधर उधर घूमकर) हाय ! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान् सूर्य भी आज हमसे रुष्ट हो कर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं (घबराहट दिखाता है) ।

धर्म.— (आप ही आप) हाय हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है । तो अब चलें आगे । (आगे बढ़कर) अरे अरे हम तुम को मोल लेंगे । लेव यह पचास सै मोहर लेव ।

ह.— (आनन्द से आगे बढ़कर) वाह कृपा-निधान ! बड़े अवसर पर आए । लाइये । (उसको पहिचान कर) आप मोल लोगे ?

धर्म.— हां हम मोल लेंगे । (सोना देना चाहता है) ।

ह.— आप कौन हैं ?

धर्म.— हम चौधरी डोम सरदार ।
अमल हमारा दोनों पार ।।
सब मसान पर हमारा राज ।
कफन मांगने का है काज ।।
फूलमती देवी[३] के दास ।
पूजैं सती मसान निवास ।।
धनतेरस औ रात दिवाली ।।
बल चढ़ाय कै पूजैं काली ।।
सो हम तुमको लेंगे मोल ।
देंगे मुहर गांठ से खोल ।।

---

१. यही पांचों विश्वेदेवा बिश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रोपदी के पांच पुत्र हुए थे जिन्हें अश्वत्थामा ने बालकपन ही में मार डाला ।

२. काछ कछे, काला रंग, लाल नेत्र, सिर भर छोटे छोटे घूंघराले बाल और शरीर नंगा, बातों से मतवालापन झलकता हुआ ।।

३. प्राचीन काल में चांडालों की कुल देवी चंडकात्यायनी थी परंतु इस काल में फूलवती इन लोगों की कुलदेवी हैं ।

(मत्त की भांति चेष्टा करता है)

ह.— (बड़े दु :ख से) अहह ! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थित हुआ है । (विश्वामित्र से) भगवान् मैं पैर पड़ता हूं, मैं जन्म भर आप का दास होकर रहूंगा, मुझे चांडाल होने से बचाइए ।।

बि.— छि : मूर्ख ! भला हम दास लेके क्या करेंगे ।

'स्वयंदासास्तपस्विन :'

ह.— (हाथ जोड़कर) जो आज्ञा कीजियेगा हम सब करेंगे ।

बि.— सब करेगा न ? (ऊपर हाथ उठाकर) कर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूंगा ।

ह.— हां हां जो आप आज्ञा कीजिएगा सब करूंगा ।

बि.— तो इसी गाहक के हाथ अपने को बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे ।

ह.— जो आज्ञा । (आप ही आप) अब कौन सोच है । (प्रगट धर्म से) तो हम एक नियम पर बिकेंगे ।

धर्म.— वह कौन ?

ह.—

भीख असन कम्मल बसन रखिहैं दूर निवास ।।
जो प्रभु आज्ञा होई है करि हैं सब ह्वै दास ।।

धर्म.— ठीक है लेव सोना (देर से राजा के आंचल में मोहर देता है)

ह.— लेकर हर्ष से आप ही आप) ऋण छूट्यो पूर्यो बचन द्विजहू न दीनो शाप । सत्य पालि चंडालहू होई आजु मोहि दास ।।

(प्रकट विश्वामित्र से) भगवन् ! लीजिए यह मोहर ।

बि.— (मुंह चिढ़ाकर) सचमुच देता है ?

ह.— हां हां यह लीजिए । (मोहर देते हैं)

बि.— (लेकर) स्वस्ति । (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी । (जाना चाहते हैं)

ह.— (हाथ जोड़कर) भगवन् दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न ?

बि.— हां क्षमा हुआ । अब हम जाते हैं ।

ह.— भगवन् प्रणाम करता हूं ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

ह.— अब चौधरी जी (लज्जा से रुककर) स्वामी की जो अज्ञा हो वह करें ।

धर्म.— (मत्त की भांति नाचता हुआ)

जाओ अभी दक्खिनी मसान ।
लेओ वहां कफ्फन का दान ।।
जो कर तुमको नहीं चुकावै ।
सो किरिया करने नहिं पावै ।।
चलो घाट कर करो निवास ।
भए आज से मेरे दास ।

ह.— जो आज्ञा ।

सत्यहरिश्चन्द्र का तीसरा अंक समाप्त हुआ ।

(जवनिकाा गिरती है)

चौथा अंक

स्थान— दक्षिण स्मशान, पीपल का बड़ा पेड़, चिता, मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी, इत्यादि । (कम्मल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिए हुए राजा हरिश्चन्द्र फिरते दिखाई पड़ते हैं)

ह.— (लंबी सांस लेकर) हाय ! अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान ।
कफन खसोटी को करम, सबही एक समान ।।

न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शांत हुआ कि नहीं । बड़ों ने सच कहा है कि दु :ख से दु :ख जाता है । दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा । हम क्या क्या सोचें । अपनी अनाथ प्रजा को या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चंडालपने को । हा ! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने जाती समय करुणाभरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती । (घबड़ा कर) हा देवी ! सूर्यकुल की बहू और चंद्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गई और दासी बनी । हा ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गुंथ सकती थीं उनसे बरतन कैसे माजोगी ! (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा।

बेचि देह दारा सुअन होई दासहू मन्द ।
राख्यौ निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ।।

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे ! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी ? कोई पुन्यात्मा का मुरदा आया होगा । तो हम सावधान हो जायं । (लट्ठ कंधे पर रखकर फिरता हुआ) खबरदार खबरदार बिना हम से कहे और बिना हमें आधा कफन दिए कोई संस्कार न करे । (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर उधर देखता फिरता है) (नेपथ्य में कोलाहल सुनकर) हाय हाय ! कैसा भयंकर स्मशान है ! दूर से मंडल बांध बांध

कर चोंच बाए, डैना फैलाए, कंगालों की तरह मुरदों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं, और कैसा मांस नोंच नोंच कर आपुस में लड़ते और चिल्लाते हैं । इधर अत्यन्त कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भाँति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं । उधर चिरांइन फैलाती हुई चट चट करती चिता कैसी जल रही हैं, जिन में कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू वा चरबी बहती है । आग का रंग मांस के संबंध से नीला पीला हो रहा है । ज्वाला घूम-घूम कर निकलती है । आग कभी एक साथ धधक उठती है कभी मन्द हो जाती है । धुआँ चारों ओर छा रहा है । (आगे देखकर आदर से) अहा ! यह वीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है । शव ! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो । अतएव कहा है

'मरनो भलो बिदेश को जहां न अपुनो कोय ।
माटी खायं जनावरा महा महोच्छव होय ।।'

अहा ! देखो

सिर पर बैठयौ काग आंख दोउ खात निकारत ।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनन्द उर धारत ।
गिद्ध जांघ कहं खोदि खोदि कै मांस उचारत ।
स्वान आँगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत ।
बहु चील नोंचि लै जात तुच मोद बढ़यौ सबको हियो ।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियो ।
सोई मुख सोई उदर सोई कर पद दोय ।
भयो आजु कछु और ही परसत जेहि नहिं कोइ ।।
हाड़ मांस लाला रकत बसा तुचा सब सोय ।
छिन्न भिन्न दुरगन्धमय मरे मनुस के होय ।।
कादर जेहि लखि कै डरत पंडित पावत लाज ।
अहो ! व्यर्थ संसार को विषय बासना साज ।।

अहा ! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है ।
(हा ! मरना भी क्या वस्तु है ।)

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ ।
सोइ अंग जेहि प्रिय करि जान्यौ ।।
सोई भुज जे पिय गर डारें ।
सोई भुज जिन रन बिक्रम पारें ।।
सोई पद जिहि सेवक बन्दत ।
सोई छबि जेहि देखि आनन्दत ।।
सोई रसना जहं अमृत बानी ।
सोई सुनी कै हिय नारि जुड़ानी ।।
सोई हृदय जहां जहर अनेका ।
सोई सिर जहं निज बच टेका ।।
सोई छबिमय अंग सुवाए ।।
आजु जीव बिनु धरनि सुहाए ।।
कहां गई वह सुंदर सोभा ।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ।।
प्रानहुं ते बढ़ि जा कहं चाहत ।
ता कहं आजु सबै मिलि दाहत ।।
फूल बोझ हू जिन न सहारे ।
तिन पैं बोझ काठ बहु डारे ।।
सिर पीड़ा जिन की नहिं हेरी ।
करत कपाल क्रिया तिनकेरी ।।
छिनहूं जे न भए कहुं न्यारे ।
ते हू बन्धुन छोड़ि सिधारे ।।
जो दृग कोर महीप निहारत ।
आजु काक तेहि भोज बिचारत ।।
भुज बल जे नहिं भुवन समाए ।
ते लखियत मुख कफन छिपाए ।।
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे ।
गनें काल सब एकहि लेखे ।।
सुभग कुरूप अमृत बिख साने ।
आजु सबै इक भाव बिकाने ।।
पुरु दधीच कोउ अब नाहीं ।
रहे नावं हीं ग्रन्थन मांही ।।

अहा ! देखो वही सिर जिसपर मंत्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिसमें बड़े-२ राज जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी घिन करते हैं । (आगे देखकर) अरे यह स्मशान देवी हैं । अहा कात्यायनी को भी कैसा वीभत्स उपचार प्यारा है । यह देखो डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ पकड़ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है । मरे बैल और भैंसों के गले के घंटे पीपल की डार में लटक रहे हैं जिन में लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है । घट के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खंभे में लोहू के थापे लगे हैं । नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उस के खाने को कुत्ते और सियार लड़-लड़ कर कोलाहल मचा रहे हैं । (हाथ जोड़ कर) 'भगवति ! चंडि ! प्रेते ! प्रेते बिमाने ! लसत्प्रेते । प्रेतास्थि रौद्ररूपे ! प्रेताशनि । भैरवि ! नमस्ते'' ।

नेपथ्य में) राजन् हम केवल चंडालों के प्रणाम के योग्य हैं । तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है । मांगो क्या वर मांगते हो ।

ह. — (सुनकर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए । (नेपथ्य मे) साधु महाराज हरिश्चन्द्र साधु !

ह.— (ऊपर देखकर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है । जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनी बल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण-२ बढ़ाता गया, जो गगनांगन का दीपक और कालसर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भांति अपना सब तेज गंवाकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है ।

अथवा

सांझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है । पच्छिन के बहु सब्दन के मिस जीअ उचाटन मंत्र कह्यो है । मद्य भरी नर खोपरी सो ससि को नव बिम्बहू धाइ गह्यो है । दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै काल कपालिक नाचि रह्यो है ।

सूरज धूम बिना की चिता सोई अंत में लै जल माहिं बहाई । बोलैं घने तरु बैठि बिहंगम रोअत सो मनु लोग लोगाई । धूम अंधार, कपाल निसाकर, हाड़ नछत्र, लहूसी[१] ललाई । अनंद हेतु निसाचर के यह काल समान सी सांझ बनाई ।

अहा ! यह चारों ओर से पक्षी लोग कैसा शब्द करते हुए अपने-२ घोसलों की ओर चले आते हैं । वर्षा से नदी का भयंकर प्रवाह, सांझ होने से स्मशान के पीपल पर कौओं का एक संग अमंगल शब्द से कांव-कांव करना, और रात के आगम से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है । अंधकार बढ़ता ही जाता है । वर्षा के कारण इन स्मशानवासी मंडूकों का टर-टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है ।

रुरुआ चहुंदिसि ररत डरत सुनि कै नर नारी ।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी ।
अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रव ।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखिविकट भयद दव ।
रोअत सियार गरजत नदी स्वान भू मि डरपावई ।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि खर तुमुल मचावई।

इस समय ये चिता भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती हैं । किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आंच से हाथ पैर जलकर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिल्कुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे छोड़ दिया है, किसी का मुंह जल जाने से दांत निकला हुआ भयंकर हो रहा है, और कोई दहकती आग में ऐसा जल गया कि कहीं पता भी नहीं है । वाहरे शरीर ! तेरी क्या क्या गति होती है !!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे, उसको कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ा कर दुर्गंधमय करना बहुत ही बुरा है । न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी । हाय ! चलो आगे चलें । (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर घूमता है) (कौतुम से देखकर) पिशाचों का क्रीड़ा कुतूहल भी देखने योग्य है । अहा ! यह कैसे काले-काले झाड़ू से सिर के बाल खड़े किये लम्बे-२ हाथ पैर विकराल दांत लम्बी जीभ निकाले इधर उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानों भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहां स्वच्छंद बिहार कर रही है । हाय हाय ! इन का खेल और सहज व्योहार भी कैसा भयंकर है । कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लोहू भर भर के पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अंतड़ी निकालकर गले में डाले है और चंदन की भांत चरबी और लोहू शरीर में पोत रहा है, एक दूसरे से मांस छीन कर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुंह में रख लेता है पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू थू करके थूक देता है, और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है । हा ! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है जिसे देखने को चारों ओर से सब भूतने एकत्र हो रहे हैं और सभों को इसका बड़ा कौतुक हो गया है । हंसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं और उनको ले ले कर नाचते हैं । यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो स्मशान में कुत्तों को पकड़-२ कर खा जाते हैं । अहा ! भगवान भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग साधना की है । (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है) (ऊपर देख कर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अंधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता । चांडाल कुल की भांत स्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है । (स्मरण करके) हा ! इस दु:ख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है । कैसी भी हीन अवस्था हो पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं

१. प्राचीन काल में राज के अपराधी लोग स्मशान ही पर गला काट कर मारे जाते थे इसी से यहां स्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है ।

मालूम पड़ता । सच है —''टूट टाट घर टपकत खटियौ टूट । पिय कै बांह उसिसवां सुख कै लूट'' । विधना ने इस दु :ख पर भी वियोग दिया हा ! यह वर्षा और यह दु :ख ! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा पर जिसने सपने में भी दुख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी । हा दैव ! धीरज धरो धीरज धरो । तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुख ही दुख है । (ऊपर देखकर) अरे पानी बरसने लगा ! (घोघी भली भांत ओढ़कर) हमको तो यह वर्षा और स्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं । देखो

चपला की चमक चहुंघा सों लगाई चिता चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है । हेती बग माल स्याम बाद सु भूमिकारी बीर बधू बूंद भव लपटायो है ।।
हरीचन्द नीर धार आंसू सी परत जहाँ दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है । दाहन बियोगी दुखियान को मरे हूं यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है ।

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है ? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिर कर)

इन्द्रकालहू सरिस जो आयसु लांघै कोय ।
यह प्रचंड भुज दंड मम प्रति भट ताको होय ।।

अरे कोई नहीं बोलता । (कुछ आगे बढ़कर) कौन है ?

(नेपथ्य में) हम हैं ।

ह.— अरे हमारी बात का उत्तर कौन देता है ? चलो जहां से आवाज आई है वहां चलकर देखें । (आगे बढ़कर नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह कौन है ?

चिता भस्म सब अंग लगाए ।
अस्थि अभूषन बिबिध बनाए ।।
हाथ मसान कपाल जगावत ।
को यह चल्यो रुद्र सम आवत ।।

(कापालिक के वेष में धर्म आता है[1])

धर्म.— अरे हम हैं ।

वृत्ति अयाचित आत्म रति करि जग के सुख त्याग ।
फिरहिं मसान-२ हम धारि अनन्द बिराग ।।

(आगे बढ़कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत ।
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत ।।
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी ।
हम ही इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी ।।
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो ।
सो सत्य परिच्छिन नृपति को आजु भेष हम यह कियो ।।

(कुछ सोचकर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दु :ख परंपरा अत्यंत शोचनीय और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं ! अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है ।

सहत बिबिध दुख मरि मिटत भोगत लाखन सोग ।
पै निज सत्य न छाड़हीं जे जग सांचे लोग ।
बरु सूरज पच्छिम उगैं बिन्ध्य तरैं जल मांहि ।
सत्य बीर जन पै कबहुं निज बच टारत नाहिं ।।

अथवा उनके मन इतने बढ़े हैं कि दुख को दुख, सुख को सुख गिनते ही नहीं । चलें उनके पास चलें । (आगे बढ़कर और देखकर) अरे यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं ? (प्रकट) महाराज ! कल्याण हो ।

ह.— (प्रणाम करके) आइये योगिराज ।

ध.— महाराज हम अर्थी हैं ।

ह.— (लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

ध.— महराज आप लज्जा मत कीजिए । हम लोग योग बल से सब कुछ जानते हैं । आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं । चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुओं का कल्याण करता है ।

ह.— आज्ञा । हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए ।

ध.— अंजन गुटिका पादुका धातुभेद बैताल ।
वज्र रसायन जोगिनी मोहि सिद्ध इहि काल[2] ।

ह.— तो मुझे आज्ञा हो वह करूं ।

ध.— आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गए हैं पर विघ्न इस में बाधक होते हैं सो आप विघ्नों का निवारण कर दीजिए ।

---

१. गेरुए वस्त्र का काछा कछे गेरुआ कफनी पहिने, सिर के बाल खेले, सेंदुर का अर्द्धचंद्र दिए, नंगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे से आँखें लाल, लाल फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहिने ।

२. अंजन सिद्धि से जमनी में गड़े खजाने देख पड़ते हैं । गुटिका मुंह में रखकर वा पादुका पहिन कर चाहे जहां अलक्ष्य चला जाय । धातुभेद से औषध मात्र सिद्ध होती हैं । बैताल बस में होकर यथेच्छ काम देता है । वज्र सिद्ध होने से जहां गिराओ वहां गिरता है । रसायन सिद्धि से चांदी सोना बनता है । जोगिनी सिद्ध होने से भूत भविष्य का वृत्तांत कह देती है । और सब इच्छा पूर्ण करती है । यही आठो सिद्धि हैं ।

ह.— आप जानते ही हैं कि मैं पराया दास हूं, इससे जिनमें मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूं।

ध.— (आप ही आप) राजन् जिस दिन तुम्हारा धर्म जाएगा उस दिन पृथ्वी किसके बल से ठहरेगी (प्रत्यक्ष) महाराज इसमें धर्म न जायगा क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लंघन करते ही नहीं। सिद्धि का आकर इसी स्मशान के निकट ही है और मैं अव पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप बिघ्नों का निषेध कर दीजिए।

(जाता है)

ह.— (ललकार कर) हटो रे हटो बिघ्नां चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हम ने रोक दिया।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज जो आज्ञा।

आप से सत्य वीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है।

खुल्यौ द्वार कल्यान को सिद्ध जोग तप आज।
निधि सिधि विद्या सब करहिं अपुने मन को काज।।

ह.— (हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया। (बिमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्या आती है[1])

म.— वि. महाराज हरिशचन्द्र ! बधाई है। हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था तब देवताओं ने माया से आपको स्वप्न में हमारा रोना सुनकर हमारा प्राण बचाया।

ह.— (आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली महाविद्या हैं जिन्हे विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रगट हाथ जोड़कर) त्रिलोकविजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है।

म.— वि. महाराज हम लोग आप के बस में हैं। हमारा ग्रहण कीजिए।

ह.— देवियो ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि को वशवर्त्तिनी हो क्योंकि उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

म.— वि. (परस्पर आश्चर्य से देखकर) धन्य महाराज धन्य ! जो आज्ञा।

(जाती हैं)

धर्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है।

ध.— महाराज का कल्याण हो। आप की कृपा से महानिधान[2] सिद्ध हुआ। आपको बधाई है अब लीजिए इस रसेन्द्र को।

याही के परभाव सों अमरदेव सम होइ।
जोगी जन बिहरहिं सदा मेरु शिखर भए खोइ।।

ह.— (प्रणाम करके) महाराज दास धर्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

ध.— (आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) तो इसके स्वर्ण बना कर आप अपना दास्य छुड़ा लें।

ह.— यह ठीक है पर मैंने तो बिनती किया न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सत्व मात्र बेच चुका इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिए।

ध.— (आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य ! धन्य तुम्हारा विवेक ! और धन्य तुम्हारी महानुभावता ! या

चलै मेरु बरु प्रलय जल पवन झकोरन पाय।
पै बीरन कें मन कबहूं चलहिं नाहिं ललचाय।।

तो हमें भी इसमें कौन हठ है। (प्रत्यक्ष) बैताल ! जाओ जो महाराज की आज्ञा है वह करो।

बै.— जो रावल जी की आज्ञा। (जाता है)

ध.— महाराज ब्राह्म मुहूर्त निकट आया अब हम को भी आज्ञा हो।

ह.— जोगिराज ! हम को भूल न जाइएगा, कभी कभी स्मरण कीजिएगा।

ध.— महाराज ! बड़े बड़े देवता आप का स्मरण करते हैं और करेंगे मैं क्या हूँ।

(जाता है)

ह.— क्या रात बीत गई ! आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं आया। रात. के साथ ही स्मशान भी शांत हो चला। भगवान् नित्य ही ऐसा करें।

(नेपथ्य में घंटानूपुरादि का शब्द सुनकर) अरे यह बड़ा कोलाह कैसा हुआ ?

(बिमान पर अष्ट महासिद्धि नव निधि और बारहो प्रयोग आदि देवता[3] आते हैं)।

---

१. ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में पर स्त्री का श्रृंगार।

२. महानिधान बुभुक्षित धातु भेदी पारा जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं।

३. साधारण देवी देवताओं के वेश में। अष्ठ महासिद्धि यथा — अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईश्वत्व और वशित्व। नव निधि यथा — पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द,

ह.— (आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर स्मशान पर एकत्र हो रहे हैं ।

दे.— महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो । आप के अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतंत्र हो गए । अब हम आपके वश में हैं जो आज्ञा हो करें । हम लोग अष्ट महा सिद्ध नव निधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ में हैं ।

ह.— (प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हो तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जन के, और प्रयोग साधकों के पास जाओ ।

दे.— (आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे । हमीं लोगों की सिद्धि को बड़े २ योगी मुनि पच मरते हैं पर तुमने तृण की भांति हमारा त्याग करके जगत कल्याण किया ।

ह.— आप लोग मेरे सिर आंखों पर हैं पर मैं क्या करूं, क्योंकि मैं पराधीन हूं । एक बात और भी निवेदन है । वह यह कि छ अच्छे प्रयोग की तो हमारे समय में सद्य: सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलंब से हो ।

दे.— महाराज ! जो आज्ञा । हम लोग जाते हैं । आज आप के सत्य ने शिव जी के कीलन[१] को भी शिथिल कर दिया । महाराज का कल्याण हो ।

(जाते हैं)

(नेपथ्य में इस भांति मानो राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनते)

(एक स्वर से) तो अब अप्सरा को भेजें ?

(दूसरे स्वर से) छि: मूर्ख ! जिस को अष्ट सिद्धि नव निधियों ने नहीं डिगाया उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी ।

(एक स्वर से) तो अब अन्तिम उपाय किया जाय ।

(दूसरे स्वर से) हाँ तक्षक को आज्ञा दे । अब और कोई उपाय नहीं है ।

ह.— अहा अरुण का उदय हुआ चाहता है । पूर्व दिशा ने अपना मुंह लाल किया । (सांस ले कर) "या चकई को भयो चित चीतो चितोति चहूं दिसि चाय सों नाची । ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनी जोति मनो जम जांची । बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपति काची । लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची ।" हा ! प्रिये इन बरसातों की रात को तुम रो रो के बिताती होगी ! हा ! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गए !

जोहि सहसन परिचायिका राखत हाथहि हाथ । सो तुम लोटत धूर मैं दास बालकन साथ ! जाकी आयसु जग नृपति सुनतहि धारत सीस ! तेहि द्विज बटु अज्ञा करत अहह कठिन अति इस । बिनु तन बेचे बिनु जग जान विवेक । दैव सर्पदंशित भए भोगत कष्ट अनेक ।

(घबड़ाकर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया । देवता उस की रक्षा करें । (बाईं आंख का फड़कना दिखाकर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ ? (दाहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथ ही यह मंगल शकुन भी ! न जाने क्या होनहार है, वा अब क्या होनहार है जो होना था सो हो चुका । अब इस से बढ़कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरण मात्र बाकी है । इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहिले ही शरीर छूटे क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है पर बश क्या है ।

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र सावधान । यही अन्तिम परीक्षा है । तुम्हारे पुरखा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं । आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दु:ख किसी को नहीं हुआ था । ऐसा न हो कि इन का सिर नीचा हो । अपने धैर्य का स्मरण करो ।

ह.— (घबड़ा कर ऊपर देखकर) अरे ! यह कौन है ? कुलगुरू भगवान सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं । (ऊपर पित : मैं सावधान हूं सब दुखों को फूल की माला की भांति ग्रहण करूंगा । (नेपथ्य से रोने की आवाज सुन पड़ती है)

ह.— अरे अब सबेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चांडल कुल का सदा कल्याण हो हमें इस से

नील, और बर्च्चस । बारह प्रयोग यथा — मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन यह छ बुरे; और स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, बंदी मोक्षण, कालपूरण और वाक् प्रसारण ये छ: अच्छे ।

१. शिवजी ने साधन मात्र को कील दिया है जिस में जलदी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघनों को जो रोक दिया इस से वह कीलन भी शिव जी की इच्छा पूर्वक उस समय दूर हो गया था क्योंकि यह भी तो एक सब मो बड़ा विघ्न था ।

क्या । (खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा हमें रोती छोड़ के कहां चले गए ! हाय ! हायरे !

ह.— अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इस को पुत्र का है । हाय हाय ! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और वीभत्स कर्म सौंपा है । इससे भी बस्त्र मांगना पड़ेगा ।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है ।)

शै.— (रोती हुई) हाय ! बेटा जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले ! हाय हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुम ने न देखा ! हाय ! हाय रे अब हमारी कौन गति होगी ! (रोती है)

ह.— हाय ! हाय ! इसके पति ने भी इसको छोड़ दिया है । हा ! इस तपस्विनी को निष्करुण बिधि ने बड़ा ही दुख दिया है ।

शै.— (रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किसनें लूट लिया ! हाय मेरी बोलती चिड़िया कहां उड़ गई ! हाय अब मैं किसका मुंह देख के जीऊंगी ! हाय मेरी अंधी की लकड़ी कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुंदर खिलौना किसने तोड़ डाला ! अरे बेटा तै तो मरे पर भी सुंदर लगता है ! हाय रे ! अरे बोलता क्यों नहीं ! बेटा जल्दी बोल, देख मां कब की पुकार रही है ! बच्चा तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़कर गले से लपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता !

(शव को बारंबार गले लगाती, देखती और चूमती है)

ह.— हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता ।

शै.—(पागल की भांति) यह क्या हो रहा है । बेटा कहां गए हो आओ जल्दी ! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगती है यहां मुझ को कौन ले आया है रे ! बेटा जल्दी आओ । क्या कहते हौ, मैं गुरू को फूल लेने गया था वहां काले सांप ने मुझे काट लिया ! हाय हाय रे ! अरे कहां काट लिया ? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावै बच्चे को । अरे वह सांप कहां गया ! हम को क्यों नहीं काटता ? काट रे काट, क्या उस सुकुंआर बच्चे ही पर बल दिखाना था ? हमें काटा । हाय हम को नहीं काटता । अरे हिंयां तो कोई सांप वांप नहीं है, मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय मैं इतना पुकारती हूं और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा गुरूजी पुकार रहे हैं उनके होम की बेला निकली जाती है । देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं । दो जल्दी इनको दूब और बेलपत्र । हाय हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते ! (जोर से) बेटा सांझ भई, सब बिद्यार्थी लोग घर फिर आए तुम अब तक क्यों नहीं आए ? (आगे शव देखकर) हाय हाय रे ! अरे मेरे लाल को सांप ने सचमुच डंस लिया ! हाय लाल ! हाय मेरे आँखों के उजियाले को कौन ले गया ! हाय ! मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहां उड़ गया ! बेटा अभी तो बोल रहे थे अभी क्या हो गया ! हाय मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया ! हाय मेरी कोख में किस ने आग लगा दी ! हाय मेरा कलेजा किसने निकाल लिया ! (चिल्ला चिल्लाकर रोती है) हाय लाल कहां गए ! अरे अब मैं किसका मुंह देख के जीऊंगी रे ! हाय अब मां कहके मुझको कौन पुकारेगा ! अरे आज किस बैरी की छाती ठंडी भई रे ! अरे तेरे सुकुंआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई ! अरे बेटा आंख खोलो ! हाय मैं सब विपत तुम्हारा ही मुंह देखकर सहती थी सो अब कैसे जीती रहूंगी ! अरे लाल एक बेर तो बोलो (रोती है)

ह.— न जाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है ।

शै.— (रोती हुई) हा नाथ ! अरे अपने गोद के खेलाए बच्चे को यह दशा क्यों नहीं देखते ! हाय ! अरे तुम ने तो इसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना सो हमने इसकी यह दशा कर दी ! हाय ! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते ! भला एक बेर लड़के का मुंह तो देख जाओ ! अरे मैं किस के भरोसे अब जीऊंगी ।

ह.— हाय हाय ! इसकी बातों से प्राण मुंह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है । यहां से हट चलें (कुछ दूर हटकर उसकी ओर देखता खड़ा हो जाता है) ।

शै.— (रोती हुई) हाय ! यह बिपत का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा ! अरे छलिया मुझे छलकर कहां भाग गया ! (देखकर) अरे आयुस की रेखा तो इतनी लम्बी है फिर अभी से यह बज्र कहां से टूट पड़ा ! अरे ऐसा सुंदर मुंह, बड़ी २ आंख, लम्बी लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग ! हाय मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान ने तुझे मार डाला ! हाय लाल ! अरे बड़े २ जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा, सो सब झूठ निकला ! हाय ! पोथी, पत्रा, पूज पाठ, दान, जप होम, कुछ भी काम न आया ! हाय तुम्हारे बाप का कठिन पुन्न भी तुम्हारा सहाय न भया और तुम

चल बसे ! हाय !

ह.— अरे इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शब को भली भांति देखकर) अरे इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं । हाय ! न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इस ने बुझाया है, और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है । हाय ! रोहिताश्व भी इतना बड़ा भया होगा (बड़े सोच से) हाय हाय ! मेरे मुहं से क्या अमंगल निकल गया । नारायण (सोचता है)

शै.— भगवान विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे भए । हाय !

ह.— (घबड़ाकर) हाय हाय यह क्या ? (भली भांत देखकर रोता हुआ) हाय अब तक मैं संदेह ही में पड़ा हूं ? अरे मेरी आंखें कहां गई थीं जिन ने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, और कान कहाँ गये थे जिन ने अब तक महारानी की बोली न सुनी ! हा पुत्र ! हा लाल ! हा सूर्यबंश के अंकुर ! हा हरिश्चन्द्र की बिपत्ति के एक मात्र अवललम्ब ! हाय ! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मां को छोड़कर कहां गए । अरे तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया ! तुम ने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे । पुत्र स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं अपने बाहुबल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुंच देता । अथवा अब इस अभिमान से क्या ? भगवान इसी अभिमान का फल यह सब दे रहा है । हाय पुत्र ! (रोता है)

आह ! मुझसे बढ़कर और कौन मन्दभाग्य होगा ! राज्य गया, धन, जन, कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ । भला अब मैं रानी को क्या मुंह दिखाऊं । निस्संदेह मुझसे अधिक अभाग और कौन होगा । न जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुख न देखना पड़ता । हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले, निस्संदेह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूं । (रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आ गया ? नहीं । यह बड़ा भारी असगुन हुआ है । इसका फल कुछ अच्छा नहीं, वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा । हा । न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है (रोता है) हा सूर्यकुल आलवालप्रवाल । हा हरिश्चन्द्र हृदयानन्दन ! हा शैव्याबलम्ब ! हा वत्सरोहिताश्व ! हा मातृ पितृ विपत्ति सहचर ! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहां गए ! आज हम सच मुच चांडाल हुए । लोग कहेंगे कि इस ने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा । हाय हम संसार को क्या मुंह दिखावेंगे । (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें । हा निर्लज्ज प्राण तुम अब भी क्यों नहीं निकलते । हा बज्र हृदय इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता । नेत्रों अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो । या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है, इसके पूर्व कि किसी से साम्हना हो प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है (पेड़ के पास जाकर फांसी देने के योग्य डाल खोजकर उसमें दुपट्टा बांधता है) धर्म ! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया परंतु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना । (दुपट्टे की फांसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौक कर) गोविन्द गोविन्द्र ! यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म विचारा । भला मुझ दास को अपनी शरीर पर क्या अधिकार था कि मैं ने प्राण त्याग करना चाहा । भगवान् सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे । नारायण नारायण ! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ! हे सर्वान्तिर्यामी जगदीश्वर क्षमा करना, दुख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती ; अब तो मैं चांडालकुल का दास हूं, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र । चलूं अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊं, वा देखूं अब दुक्खिनी शैव्या क्या करती है (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है) ।

शै.— (पहली तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूं । अब मैं किसका मुंह देखकर संसार में जीऊंगी । हाय मैं आज से निपूती भई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी । हा नित्य सबेरे उठकर अब मैं किसकी चिन्ता करूंगी । खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझ से मांग मांग कर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली सूनी देखकर कैसे प्रान रक्खूंगी । (रोती है) हाय खेलता खेलता आकर मेरे गले से कौन लपट जायगा, और मा मा कहकर तनक तनक बातों पर कौन हठ करेगा । हाय मैं अब किसको अपने आंचल से मुंह की धूल पोंछकर गले लगाऊंगी और किसके अभिमान से बिपत में भी फूली फूली फिरूंगी । (रोती है) या जब

रोहिताश्व नहीं तो मैं ही जी के क्या करूंगी । (छाती पीटकर) हाय प्रान तुम भी क्यों नहीं निकले । (हाय मैं ऐसी स्वारथी हूं कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती । नहीं नहीं अब मैं न जीऊंगी । या तो इस पेड़ में फांसी लगाकर मर जाऊंगी या गंगा में कूद पड़ूंगी (उन्मत्त की भांति उठकर दौड़ना चाहती है) ।

ह.— (आड़ में से)

तनहिं बेंचि दासी कहवाई ।
मरत स्वामि आयसु बिन पाई
करु न अधर्म सोचु जिय माहीं ।
'पराधीन सपने सुख नाहीं ।।'

शै.— (चौकन्नी होकर) अहा ! यह किसने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया । सच है मैं अब इस देह की कौन हूं जो मर सकूं । हा दैव ! मुझसे यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊं । (कुछ धीरज धरके) तो चलूं छाती पर वज्र धरके अब लोकरीति करूं । रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई) हाय ! जिन हाथों से ठोंक ठोंक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूंगी, जिसके मुंह में छाला पड़ने के भय से कभी मैंने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे — (बहुत ही रोती है) ।

ह.— धन्य देवी आखिर तो चंद्र सूर्यकुल की स्त्री हो तुम न धीरज करोगी तो और कौन करेगा ।

शै.— (चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती है और रोती है) ।

ह.— तो अब चलें उस से आधा कफन मांगे (आगे बढ़कर और बलपूर्वक आंसुओं को रोककर शैव्या से) महाभागे ! स्मशान पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिए बिना कोई मुरदा फूंकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो (कफन मांगने को हाथ फैलता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है) ।

(नेपथ्य मे)

अहो धैर्यमहो सत्यमहो दानमहो बलं । त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्व्वं लोकोत्तर कृतं ।

(दोनो आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै.— हाय ! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है ?वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो ! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाषंड है ।

ह.— (दोनों कानों पर हाथ रखकर) नारायण नारायण ! महाभागे ऐसा मत कहो ; शास्त्र, ब्राहमण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं । ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा । अपना धर्म बिचारो । लाओ मृतकंबल हमें दो और अपना काम आरंभ करो (हाथ फैलाता है)

शै.— (महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिन्ह देखकर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र इतने दिन तक कहां छिपे थे ! देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा । तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भांति मसान में पड़ा है (रोती है ।)

ह.— प्रिये धीरज धरो । यह रोने का समय नहीं है । देखो सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आजाय और हम लोगों की जान ले, और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय । चलो कलेजे पर सिल रखकर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कंबल हमको दो ।

शै.— (रोती हुई) नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूं, उसमें से भी जो आधा दूंगी तो यह खुला ही रह जायगा । हाय चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता ! (बहुत रोती है)

ह.— (बलपूर्वक आंसुओं को रोककर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी रोओ मत । ऐसे ही समय में तो धीरज और धरम रखना काम है । मैं जिस का दास हूं उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिए क्रिया मत करने दो । इससे मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझकर तुम से इसका आधा कफन न लूं तो बड़ा अधर्म हो । जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा उसका धर्म आध गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दे । देखो सबेरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कुलगुरू भगवान् सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देखकर चित् में उदास हों । (हाथ फैलाता है)

शै.— (रोती हुई) नाथ जो आज्ञा) । (रोहिताश्व का मृतकंबल फाड़ना चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है । नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय २ की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान् नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं ।)

भ.— बस महाराज बस (धर्म और सत्य सब की परमावधि हो गई । देखो तुम्हारे पुण्य भय से पृथ्वी

बारम्बार कांपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो । (नेत्रों से आंसू बहते हैं)

ह.— (साष्टांग दंडवत करके रोता हुआ गद्गद स्वर से) भगवान् ! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया ! कहां यह श्मशान भूमि, कहाँ यह मर्त्यलोक, कहां मेरा मनुष्य शरीर, और कहां पूर्ण परब्रहम सच्चिदानंदघन साक्षात् आप ! (प्रेम के आंसुओं से और गद्गद कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भ.— (शैव्या से) पुत्री अब शोच मत कर ! धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे, राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है (रोहिताश्व की ओर देखकर वत्स रोहिताश्व उठो देखो तुम्हारे माता पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं ।)

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम कर के माता पिता का मुंह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है)

ह. और शै.— (आश्चर्य, आनंद, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आंखों से आंसू बहते हैं और एकटक भगवान् के मुखारबिंद की ओर देखते हैं)

(श्री महादेव, वार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इंद्र, और विश्वामित्र आते हैं)[१]

सब— धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य ! जो आपने किया सो किसी ने, न किया, न करेगा ।

(राजा हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)

बि.— महाराज यह केवल चन्द्र सूर्य तक आप की कीर्तिस्थिर रहने के हेतु मैंने छल किया था सो क्षमा कीजिए ओर अपना राज्य लीजिए ।

(हरिश्चन्द्र भगवान और धर्म का मुंह देखते हैं)

धर्म.— महाराज राज आप का है इसका मैं साक्षी हूं आप निस्संदेह लीजिए ।

सत्य.— ठीक है जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है ।

श्रीमहादेव.— पुत्र हरिश्चन्द्र भगवान नारायण के अनुग्रह से ब्रहमलोक पर्यंत तुम ने पाया तथापि मैं आशिर्वाद देता हूं कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे, और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती होय ।

पा.— पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियां गावें, तुम्हारी पुत्रबधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करे ।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भै.— और जो तुम्हारी कीर्ति कहे सुने और उसका अनुसरण करे उस को भैरवी यातना न हो ।

इन्द्र.— (राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के) महाराज मुझे क्षमा कीजिये । यह सब मेरी दुष्टता थी परंतु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ । स्वर्ग कौन कहे आप ने अपने सत्यबल से ब्रहमपद पाया । देखिये आप की रक्षा के हेतु श्रीशिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थीं, आप उपाध्याय बने थे, नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया । न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया ।

ह.— (गद्गद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ानेवाला और कौन है ।

भ.— महाराज । और भी जो इच्छा हो मांगो ।

ह.— (प्रणाम करके गद्गद स्वर से) प्रभु ! आप के दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आप की आज्ञानुसार यह वर मांगता हूं कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुंठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे ।

भ.— एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायंगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायंगे तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहेगा । इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी मांगो । मैं तुम्हें क्या २ दूं क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका । तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुम को कुछ और वर दूं । तुम्हें वर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता ।

ह.— (हाथ जोड़कर) भगवान मुझे अब कौन इच्छा है । मैं और क्या वर मांगूं तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो —

खल गनन सों सज्जन दुखी मति होइं, हरिपद रति रहै।
उपधर्म छूटैं सत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै ।।
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सबजगसुखल है
तजि ग्रामकविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै ।।

(पुष्पवृष्टि और बाजे की धुनि के साथ जवनिका गिरती है)

इति श्री सत्य हरिश्चंद्र नाटक सम्पूर्ण हुआ ।।

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के परवर्ती संस्करणों में बढ़ाया गया अंश ।

(पिशाच और डाकिणी गण परस्पर आमोद करते और गाते बजाते आते हैं ।)

पि. और डा.—

हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम,
हम सेवैं मसान, शिव को भजैं, बोलैं बम बम बम ।

पि.—

हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे ।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे ।

डा.— हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावेंगी ।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावेंगी ।।

सब—

हम नाचें मिलकर थेई थेई थेई थेई कूदें धम् धम् धम् ।
हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमा छम ।।

पि.—

हम काट काट कर सिर को गेंदा उछालेंगे ।
हम खींच खींच कर चर्बी पंशाखा बालेंगे ।।

डा.—

हम माँग के लाल लाल लोहू का सिंदूर लगावेंगी ।
हम नस के तागे चमड़े का लहँगा बनावेंगी ।।

सब—

हम धज से सज के बज के चलेंगे चमकेंगे चम चम चम ।

पि.—

लोहू का मुँह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ेंगे ।
माला गले पहिरने को अँतड़ी को जोड़ेंगे ।।

डा.—

हम लाद के औंधे मुरदे चौकी बनावैंगी ।
कफ़न बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी ।।

सब—

हम सुख से गावेंगे ढोल बजावेंगे ढम ढम ढम ढम ढम ।
(वैसे ही कूदते हुए एक ओर चले जाते हैं ।)

प्रेम योगिनी

अपूर्व नाटिका है। पहले इसके दो दृश्य लिखे गये थे। जिसमें पहले में'' काशी के बदमाशो'' और ''बुरे चाल के लोगो'' का वर्णन है। और दूसरे मे काशी की प्रशंसा करते हुए यहां देखने योग्य स्थान और योग्य महात्माओं का वर्णन है। दोनों दृश्य हरिश्चद्र चंद्रिका खण्ड १ संख्या ११ और खण्ड २ सं. ३, ७ सन् १८७४ में प्रकाशित हुए थे। फिर यही काशी के छायाचित्र अर्थात काशी के दो बुरे भले फोटोग्राफ नाम से चंद्रिका से उद्धृत हो हरिप्रकाश प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुए। — सं.

प्रेमजोगिनी
नाटिका

श्रीहरिश्चन्द्रलिखिता

नान्दी मंगलपाठ करता है —

भरित नेह नवनीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर।।

और भी —

जिन तृन सम किय जानि जिय कठिन जगत जंजाल।
जयतु सदा सो ग्रंथ कवि प्रेमजोगिनी बाल।।

(मलिन मुख किए सूत्रधार और पारिपार्श्वक आते हैं)

सू.— (नेत्र से आँसू पोंछ और ठंडी सांस भरकर) हा ! कैसे ईश्वर पर विश्वास आवै।

पा.— मित्र आज तुम्हें क्या हो गया है और क्या बकते हो और इतने उदास क्यों हो।

(नेत्र से जल की धारा बहती है और रोकने से भी नहीं रुकती।)

पा.— (अपने गले में सूत्रधार को लगाकर और आँसू पोंछकर) मित्र आज तुम्है हो क्या गया है ? यह क्या सूझी है ? क्या आज लोगों को यही तमाशा दिखाओगे।

सू.— हो क्या गया है क्या मैं झूठ कहता हूँ — इससे बढ़कर और दु:ख का विषय क्या होगा कि मेरा आज इस जगत् के कर्त्ता और प्रभु पर से विश्वास उठा जाता है और सच है क्यों न उठे यदि कोई हो तब न उठे हा ! क्या ईश्वर है तो उसके यही काम हैं जो संसार में हो रहे हैं। क्या उसकी इच्छा के बिना भी कुछ होता है ? क्या लोग दीनबन्धु दयासिन्धु उसको नहीं कहते ? क्या माता पिता के सामने पुत्र की स्त्री के सामने पति की और बन्धुओं के सामने बन्धुओं की मृत्यु उसकी इच्छा बिना हीं होती है। क्या सज्जन लोग विद्यादि सुगुण से अलंकृत होकर भी उसके इच्छा बिना ही दुखी होते हैं और दुष्ट मूर्खों के अपमान सहते हैं, केवल प्राण मात्र नहीं त्याग करते पर उनकी सब गति हो जाती है, क्या इस कमलवनरूप भारत भूमि को दुष्ट गजों ने उसकी इच्छा बिना ही छिन्न भिन्न कर दिया ? क्या जब नादिर चंगेज खाँ जैसे ऐसे निर्दयों ने लाखों निर्दोषी जीव मार डाले तब वह सोता था ? क्या अब भारतखंड के लोग ऐसे कापुरुष और दीन उसकी इच्छा के बिना ही हो गए ? हा ! (आंसू बहते हैं लोग कहते हैं कि ये यह उसके खेल हैं। छि : ऐसे निर्दय को भी लोग दयासमुद्र किस मुँह से पुकारते हैं ?

पा.— इतना क्रोध एक साथ मत करो। यह संसार तो दु:ख रूप आप ही है इसमें सुख का तो केवल आभास मात्र है।

सू.— आभासमात्र है तो — फिर किसने यह बखेड़ा बनाने कहा था और पचड़ा फैलाने कहा था उसपर भी न्याव करने और कृपालु बनने का दावा (आँख भर आती है)।

पा.— आज क्या है किस बात पर इतना क्रोध किया है भला यहाँ ईश्वर का निर्णय करने आये हो कि नाटक खेलने आए हो ?

सू.— क्या नाटक खेलैं क्या न खेलैं ले इसी खेल ही में देखो। क्या सारे संसार के लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम बन्धु पिता मित्र पुत्र सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एकमात्र मूर्ति, सत्य का

एक मात्र आश्रय, सौजन्य का एकमात्र पात्र, भारत का एकमात्र हित, हिन्दी का एकमात्र जनक, भाषा नाटकों का एकमात्र जीवनदाता, हरिश्चन्द्र ही दुखी हो (नेत्र में जल भर कर) हा सज्जनशिरोमणे ! कुछ चिन्ता नहीं तेरा तो बाना है कि कितना ही भी 'दुख हो उसे सुख ही मानना' लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति तक का परित्याग कर दिया और जगत से विपरीत गति चलके तूने प्रेम की टकसाल खड़ी की है । क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अंक में रख कर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते हैं और तू संसारी वैभव से सूचित नहीं है ; तुझे इनसे क्या, प्रेमी लोग जो तेरे और तू जिन्हें सरबस है वे जब जहाँ उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन सहन को अपनी जीवन पद्धति समझेंगे (नेत्रों से आंसू गिरते हैं) मित्र ! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हौ तुम्हें इनकी निन्दा से क्या इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हौ स्मरण रक्खो ये कीड़े ऐसे ही रहैंगे और तुम लोक वहिष्कृत होकर भी इनके सिर पर पैर रखके विहार करोगे, क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए —

''कहैंगे सबै ही नैन नीर भरिभरि पाछे प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी'' मित्र मैं जानता हूँ कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है ; हा ! बड़ा विपरीत समय है (नेत्र से आँसू बहते हैं) ।

पा. — मित्र जो तुम कहते हौ सो सब सत्य है पर काल भी तो बड़ा प्रबल है । कालानुसार कर्म्म किए बिना भी तो काम नहीं चलता ।

सू. — हाँ न चलै तो हम लोग काल के अनुसार चलैंगे, कुछ वह लोकोत्तर चरित्र थोड़े ही काल के अनुसार चलैगा ।

पा. — पर उसका परिणाम क्या होगा ?

सू. — क्या कोई परिणाम होना अभी बाकी है हो चुका जो होना था ।

पा. — तो फिर आज जो ये लोग आये हैं सो यही सुनने आए हैं ?

सू. — तो ये सब सभासद तो उसके मित्रवर्गों में हैं और जो मित्रवर्गों में नहीं हैं उनका जी भी उसी की बातों में लगता है ये क्यौं न इन बातों को आनन्दपूर्व्वक सुनैंगे ।

पा. — परन्तु मित्र बातों ही से तो काम न चलैगा न । देखो ये हिंदी भाषा में नाटक देखने की इच्छा से आए हैं इन्हें कोई खेल दिखाओ ।

सू. — आज मेरा चित्त तो उन्ही के चरित्र में मगन है आज तुझे और कुछ नहीं अच्छा लगता ।

पा. — तो उनके चरित्र के अनुरूप ही कोई नाटक करो ।

सू. — ऐसा कौन नाटक है यों तो सभी नायकों के चरित्र किसी किसी विषय में उससे मिलते हैं पर आनुपूर्व्वी चरित्र कैसे मिलैगा ।

पा. — मित्र मृच्छकटिक हिन्दी में खेलो क्योंकि ! उसके नायक चारुदत्त का चरित्रमात्र इनसे सब मिलता है केवल बसन्तसेना और राजा की हानि है ।

सू. — तो फिर भी आनुपूर्व्वी न हुआ और पुराने नाटक खेलने इनका जी भी न लगैगा कोई नया खेलैं ।

पा. — (स्मरण करके) हाँ हाँ वह नाटक खेलौ जो तुम उस दिन उद्यान में उनसे सुनते थे, — वह उनके और इस घोर काल के बड़ा ही अनुरूप है उसके खेलने से लोगो का वर्त्तमान समय का ठीक नमूना दिखाई पड़ेगा और वह नाटक भी नई पुरानी दोनों रीति मिलके बना है ।

सू. — हाँ हाँ प्रेमजोगिनी — अच्छी सूरत पड़ी — तो चलो यों ही सही इसी बहाने उसका स्मरण करैं ।

पा. — चलो ।। (दोनों जाते हैं)

अर्द्ध जवनिका पतन

।। इति प्रस्तावना ।।

प्रथम अंक

पहिले गर्भांक के पात्र

टेकचंद	एक महाजन बनिये
छक्कूजी	ऐ
माखनदास	वैष्णव बनियाँ
धनदास बनितादास	नाम के वैष्णव
मिश्र	कीर्तन करनेवाला
झापटिया	कोड़ा मार कर मंदिर की भीड़ हटाने वाला
जलघरिया	पानी भरने वाला
बालमुकुन्द मलजी	दो भाई मुलतानी वैष्णव

रामचन्द्र नायक
दो गुजराती

पहिला गर्भांक

स्थान — मंदिर का चौक

(झपटिया इधर उधर घूम रहा है)

झ.— आज अभी कोई दरसनी परसनी नहीं आयें और कहाँ तक अभहिंन तक मिसरो नहीं आयें अभहीं तक नींद न खुली होइहैं । खुलै कहाँ से आधी रत तक बाबू किहाँ बैठ के ही ही ठी ठी करा चाहै, फिर सबेरे नींद कैसे खुलै ।

(दोहर माथे में लपेटे आँखें मलते मिश्र आते हैं — देखकर)

झ.— का हो मिसिरजी तोरी नींद नहीं खुलती देखो शंखनाद होय गवा मुखिया जी खोजत रहे ।

मि.— चले त्तो आई थे ; अधियै रात के शंखनाद होय तो हम का करैं तोरे तरह से हमहू के घर में से निकस के मंदिर में घुस आवना होता तो हमहू जल्दी अउते । हियाँ तो दारानगर से आवना पड़त है । अवहीं सुरजौ नाहीं उगे ।

झ.— भाई सेवा बड़ी कठिन है, लोहे का चना चाबए के पड़थै, फोकटै थोरे होथी ।

मि.— भवा चलो अपना काम देखो । (बैठ गया)

(स्नान किये तिलक लगाये दो गुजराती आते हैं)

पहिला— मिसिरजी जय श्रीकृष्ण कहो का समय है ।

मि.— अच्छी समय है मंगला की आधी समय है बैठो ।

प.— अच्छा मथुरादासजी वैसी जाओ । (बैठते है)

(धोती पहिने १ धोती ओढ़े छक्कूजी आते हैं और उसी वेस से माखनदास भी आये)

छ— (माखनदास की ओर देखकर) काहो माखनदास एहर आवो ।

मा.— (आगे बढ़कर हाथ जोड़कर) जै सी किष्ण साहब ।

छ.— जै श्रीकृष्ण बैठो कहो आजकल बाबू रामचंद का क्या हाल है ।

मा.— हाल जौन है, तौन आप जनतै हौ, दिन दूना रात चौ गूनाा । अभई कल्हौ हम ओ रस्ते रात के आवत रहे तो तबला ठनकत रहा । बस रात दिन हा हा ठी ठी बहुत भवा दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन बस होय चुका ।

छ.— अरे कवित्त तो इनके बापौ बनावत रहे कवित्त बनावै से का होथै और कवित्त बनावना कुछ अपने लोगन का काम थोरे हय ई भाँटन का काम है ।

मा.— ई तो हई है पर उन्हैं तो ऐसी सेखी है कि सारा जमाना मूरख है और मैं पंडित थोड़ा सा कुछ पढ़ वढ़ लिहिन हैं ।

छ.— पढ़िन का है पढ़ा वढ़ा कुछ भी नहिनी, एहर ओहर की दुइ चार बात सीख लिहिन किरिस्तानी मते की अपने मारग की बात तो कुछ जनवै कतैं अबहीं कल के लड़का हैं ।

मा.— और का ।

(बालमुकुन्द औ मलजी आते हैं)

दोनों— (छक्कू की ओर देखकर । जय श्रीकृष्ण बाबू साहब ।

छ.— जय श्रीकृष्ण, आओ बैठो कहो नहाय आयो ।

बा.— जी भय्याजी का तो नेम है कि बड़े सबेरे नहा कर फूलघर में जाते है तब मंगला के दर्शन करेक तब घर में जायकर सेवा में नहाते हैं और मैं तो आज कल कार्तिक के सबब से नहाता हूँ तिस पर भी देर हो जाती है रोकड़ मेरे जिम्मे काकाजी ने कर रखा है इससे बिध बिध मिलाते देर हो जाती है फिर कीर्तन होते प्रसाद बँटते व्यालू वालू कर्ते बारह कभी एक बजते हैं ।

छ.— अच्छी है जो निबही जाय कहो कातिक नहाये बाबू रामचंद जाथें कि नाहीं !

बा.— क्यों जाते क्यों नहीं अब की दोनों भाई जाते हैं कभी दोनों साथ कभी आगे पीछे कभी इनके साथ मसाल कभी उनके मुझको अकशर करके जब मैं जाता हूँ तब वह नहाकर आते रहते हैं ।

छ.— मसाल काहे ले जाथैं मेहरारुन का मुँह देखै के ?

बा.— (हँसकर) यह मैं नहीं कह सकता ।

छ.— को मलजी आज फूलघर में नाहीं गयो हिंअई बैठ गयो ?

म.— आज देर हो गई दर्शन करके जाऊँगा ।

छ.— तोरे हियाँ ठाकुर जी आगे होहिहैं कि नाहीं ?

म.— जागे तो न होंगे पर अब तैयारी होगी मेरे हियाँ तो स्त्रियाँ जगाकर मंगल भोग धर देती हैं । फिर जब मैं दर्शन करके जाता हूँ तो भोग सराकर आरती

कर्त्ता हैं ।

छ.— कहो तोसे रामचंद से बोलाचाली है कि नाहीं ?

म.— बोलचाल तो हैं पर अब यह बात नहीं है आगे तो दर्शन करने का सब उत्सवों पर बुलावा आता था अब नहीं आता तिस्में बड़े साहब तो ठीक ठीक, छोटे चित्त के बड़े खोटे हैं ।

(नेपथ्य में)

गरम जल की गागर लाओ ।

झ.— (गली की ओर देखकर जोर से) अरे कौन जलघरिया है एतनी देर भई अभहीं तोरे गागर लिआवै की बखत नाहीं भई ? सड़सी से गरम जल की गगरी उठाये सनिया लपेटे जलघरिया आता है)

भ.— कहो जगेसर ई नाहीं कि जब शंखनाद होय तब भटपट अपने काम से पहुँच जावा करो ।

ज.— अरे चल्ले तो आवथई का भहराय पड़ीं का सुत्तल थोड़े रहली हमहूँ के भ्रापट कंधे पर रख के एहर ओहर घूमै के होत तब न । इहाँ तो गगरा ढोवत ढोवत कधा छिल जाला । (यह कहकर जाता है)

(मैली धोती पहिने दोहर सिर में लपेटे टेकचंद आए)

टे.— (मथुरादास की ओर देखकर) कहो मथुरादास जी रुडा छो ?

म.— हाँ साहेब, अच्छे हैं । कहिए तो सही आप इतने बड़े उच्छव में कलकत्ते से नहीं आए । हियाँ बड़ा सुख हुआ था, बहुत से महाराज लोग पधारे थे । षट रुत छपन भोग में बड़े आनंद हुए ।

टे.— भाई साहब, अपने लोगन का निकास घर से बड़ा मुसकिल है । येक तो अपने लोगन का रेल के सवारी से बड़ा बखेड़ा पड़ता है, दुसरे जब जौन काम के वास्ते जाओ जब तक ओका सब इन्तजाम न बैठ जाय तब तक हुँवा जाए से कौन मतलब है और कौन सुख तो भाई साहब श्री गिरिराज जी महाराज के आगे जो जो देखा है सो अब सपने में भी नहीं है । अहा ! वह श्री गोविंदराय जी के पधारने का सुख कहाँ तक कहें ।

(धनदास और बनितादास आते हैं)

ध.— कहो यार का तिगथौ ?

ब.— भाई साहेब, बड़ी देर से देख रहे हैं, कोई पंच्छी नजर नाहीं आया ।

ध.— भाई साहेब, अपनो तो ऊ पच्छी काम का जे भोजन सोजन दूनो दे ।

ब.— तोहरे सिद्धांत से भाई साहेब हमारा काम तो नहीं चलता ।

ध.— तबै न सुरमा घुलाय के आँख पर चरणामृत लगाए हौ जे में पलक बाजी खूब चले, हाँ एक पलक एहरो ।

ब.— (हँसकर) भाई साहेब अपने तो वैष्णव आदमी हैं, वैष्णविन से काम रक्खित है ।

ध.— तो भला महाराज के कबौं समर्पन किए है कि नाहीं ?

ब.— कौन चीज ?

ध.— अरे कोई चौकाली ठल्ली मावड़ी पामरी ठोली अपने घरवाली ।

ब.— अरे भाई गोसाँइन पर तो ससुरी सब आपै भहराई पड़ थीं पवित्र होवै के वास्ते, हमका पहुँचैंबै ।

ध.— गुरु इन सबन का भाग बड़ा तेज है, मालो लूटैं मेहररुवो लूटैं ।

ब.— भाई साहब, बड़ेन का नाम बेचथैं और इन सबन में कौन लच्छन हैं, न पढ़ना जानैं न लिखना, रात दिन हा हा ठी ठी यै है कि और कुछ ?

ध.— और गुरु इनके बदौलत चार जीवन के और चैन है एक तो भट दूसरे इनके सरबस खवास तिसरे बिरकत और चौथी बाई ।

ब.— कुछ कहै की बात नाहीं है । भाई मंदिर में रहै से स्वर्ग में रहै । खाए के अच्छा पहिरै के परसादी से महाराज कब्बौं गाढ़ा तो पहिरबै न करियैं, मलमल नागपुरी ढाँकै पहिरियै, अतरै फुलेल केसर परसादी बीड़ा चाभो सब से सेवकी ल्यौ, ऊपर से ऊ बात का सुख अलगै है ।

ध.— क्या कहैं भाई साहब हमरो जनम हियँई होता ।

ब.— अरे गुरु गली गली तो मेहरारू मारी फिरथीं तौहें एह्र पर रोनै बना है । अब तो मेहरारू टके सेर है । अच्छे अच्छे अमीरनौ के घर की तो पैसा के वास्ते हाथ फैलावत फिरथीं ।

ध.— तो गुरु हम तो ऊ तार चाही थै जहाँ से उलटा हमैं कुछ मिलै ।

ब.— भाग होय तो ऐसियो मिल जायँ । देखो लाड़ली प्रसाद के और बच्चू के ऊ नागरनी और बम्हनिया मिली हैं कि नाहीं !

ध.— गुरु, हियों तो चाहे मुड़ मुड़ाये हो चाहे मुँह में एक्को दाँत न होय पताली खोल होय, पर जो हथफेर दे सो काम की ।

ब.— तोहरी हमरी राय ई बात में न मिलिये ।

(रामचन्द्र ठीक इन दोनों के पीछे का किवाड़ खोलकर आता है)

छ.— (धीरे से मुँह बना के) ई आएँ । (सब

लोगों से जय श्री कृष्ण होती है) ।

बा.— (रामचंद्र को अपने पास बैठाकर) कहिए बाबू साहब आजकल तो आप मिलते ही नहीं क्या खबगी रहती है ?

रा.— भला आप ऐसे मित्र से कोई खफा हो सकता है ? यह आप कैसी बात कहते हैं ?

बा.— कार्तिक नहाना होता न है ?

रा.— (हँसकर) इसमें भी कोई सन्देह है !

बा.— हँहँहँ फिर आप तो जो काम करैंगे एक तजवीज के साथ ऐं ।

(रामचन्द्र का हाथ पकड़ के हँसता है)

रा.— भाई ये दोनों (धनदास और बनितादास को दिखा कर) बड़े दुष्ट हैं । मैं किवाड़ी के पीछे खड़ा सुनता था । घंटों से ये स्त्रियों ही की बात करते थे ।

बा.— यह भवसागर है । इस्में कोई कुछ बात करता है, कों कुछ बात करता है । आप इन बातों का कहाँ तक ख्याल कीजिएगा ऐं ! कहिए कचहरी जाते हैं कि नहीं ?

रा.— जाते हैं कभी कभी — जी नहीं लगता, मुफ्त की बेगार और फिर हमारा हरिदास बाबू का साथ कुकुर भौंभौं, हुज्जते-बंगाल माथा खाली कर डालते हैं । खाँव खाँव करके, थूँक थूँक के, बीभत्स रस के आलंबन, सूर्य्यनंदन —

बा.— (हँसकर) उपमा आपने बहुत अच्छी दिया और कहिए और अंधरी मजिसटरों[१] का क्या हाल है ?

रा.— हाल क्या है सब अपने अपने रंग में मस्त हैं । काशी परसाद अपना कोठीवाली ही में लिखते हैं सहजादे साहब तीन धंटे में इक सतर लिखते हैं उसमें भी सैकड़ों गलती । लक्ष्मीसिंह और शिवसिंह अच्छा काम करते हैं और अच्छा प्रयागलाल भी करते हैं, पर वह पुलिस के शत्रु हैं । और विष्णुदास बड़े conning chap हैं । दीवानराम हई नहीं, बाकी रहे फिजिशियन सो वे तो अँगरेज ही हैं, पर भाई कई मूर्खों को बड़ा अभिमान हो गया है, बात बात में तपाक दिखाते और छ महीने को भेज दूँगा कहते हैं ।

बा.— मैं कनम चाप नहीं समझा ।

रा.— कनिंग चैप माने कुटीचर !

(नेपथ्य में)

श्री गोविंदराय जी की श्री मंगला खुली (सब दौड़ते हैं)

(परदा गिरता है)

इति मंदिरादर्श नामक प्रथम गर्भांक

दूसरे गर्भांक के पात्र

दलाल	
गंगापुत्र	तीर्थस्थ ब्राह्मण
भंडेरिया	लिंगिया
दूकानदार	
सुधाकर	रामचंद (नाटक के नायक) का मुसाहब
भूरी सिंह	बदमाश
परदेसी	

दूसरा गर्भांक

स्थान — गैबी, पेड़ कुँआ, पास बावली

(दलाल, गंगापुत्र, दूकानदार, भंडेरिया और भूरीसिंह बैठे हैं)

द.— कहो गहन यह कैसा बीता ? ठहरा भोग बिलासी —
माल वाल कुछ मिला, या हुआ कोरा सत्यानाशी ?
कोई चूतिया फँसा या नहीं ? कोरे रहे उपासी ?

ग—मिलै न काहे भैया, गंगा मैया दौलत दासी ।।
हम से पूत कपूत की दाता मनकनिका सुखरासी ।
भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी ।।

दू.— परदेसियो बहुत रहे आए ?

दू.— परदेसियो बहुत रहे आए ?

ग— और साल से बढ़कर ।

भ— पितर सौंदनी रही न अमसिया,

भू— रंग है पुराने भंभर ।
खूब बचा बचा ताड़चो कहना,
तूँ हौ चूतिया हंटर ।

भ— हम न तड़वै तो के तडिये ? यही तो किया जनम भर ।।

द.— जो हो, अब की भली हुई यह अमावसी पुनवासी ।

ग.— भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी- ।

१. 'आनरेरी मजिस्ट्रेट का पद और अधिकार दिया है, उनका नाम यों है —कुँवर शंभूनारायण सिंह, बा. ऐश्वर्यनारायण सिंह, बा. गुरुदास मित्र, बा. हरिश्चंद्र, राय नारायणदास, बा. विश्वेश्वर दास, डा. लाजरस, मुं. बेणीलाल और दीवान कृष्ण कुँअर ।' (कवि-वचन-सुधा भाद्रपद शु. १५ सं. १९२३)

भू.— यार लोग तो रोजै कड़ाका करथैं ऐ पैजामा ।

ग.— ई तो भूठ कह्यौ, सिंहा,

भू.— तू सच बोल्यो, मामा ।।

ग— तौहैं का, तू माार पीट के करथौ अपना कामा ।।

कोई का खाना, कोई की रंडी, कोई का पगड़ी जामा ।।

भू— ऊ दिन खीपट दूर गए अब सोरहो दंड एकासी ।

ग— भूखे पेट नहिं सुतत, ऐसी है ई कासी ।।

भू— जब से आए नए मजिस्टर तब से आफत आई ।

जान छिपावत फिरीथै खटमल —

दु.— ई तो सच है भाई ।।

भू—ई है ऐसा तेज गुरू बरसन के देथै लदाई ।
गोविन पालक मेकलौडो से एकी जबर दोहाई ।।
जान बचावत छिपत फिरीथै घुस गई सब बदनामी ।

ग— भूखे पेट कोई नहिं सुतत, ऐसी है ई कासी ।।

तोरे आँख में चरबी छाई माल न पायो गोजर ।
कैसी दून की सूझ रही है असमानों के उप्पर ।।
तन न भए हौ पैदा करके, घर के माल चुतरे तर ।
बछिया के बाबा, पँड़िया के ताऊ,
धुसनि के घुसघुस भरभर ।।
कहाँ की ई तूँ बात निकास्यो खासी सत्यानासी ।।
भूखे पेट तो कोइ नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी ।।

(गाता हुआ एक परदेसी आता है)

प— देखी तुमरी कासी, लोगो, देखी तुमरी कासी ।
जहाँ विराजैं विश्वनाथ विश्वेश्वरजी अविनासी ।।
आधी कासी भाट भंडेरिया बाम्हन औ संन्यासी ।
आधी कासी रंडी मुंडी राँड खानगी खासी ।।
लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बे-बिसवासी ।
महा आलसी भूठे शुहदे बे-फिकरे बदमासी ।।
आप काम कुछ कभी करैं नहिं कोरे रहैं उपासी ।
और करे तो हँसैं बनावैं उसको सत्यानासी ।।
अमीर सब भूठे और निंदक करें घात विश्वासी ।
सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलैं बात अकासी ।।
मैली गली भारी कतवारन सड़ी चमारिन पासी ।
नीचे नल से बदबू उबलै मनो नरक चौरासी ।।
कुत्ते भूँकत काटन दौड़ैं सड़क साँड़ सों नासी ।।
दौड़ैं बंदर बने मुछंदर कूदैं चढ़े अगासी ।।
घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचैं दै गल फाँसी ।
करैं घाटिया बस्तर-मोचन दे देके सब भाँसी ।।
राह चलत भिखमंगे नोचैं बात करैं दाता सी ।
मंदिर बीच भँड़ेरिया नोचैं करैं धरम की गाँसी ।
सौदा लेत दलालो नोचैं देकर लासालासी ।
माल लिये पर दुकानदार नोचैं कपड़ा दे र[illegible] ।।
चोरी भए पर पूलिस नोचें हाथ गले बिच [illegible] ।
गए कचहरी अमला नोचैं मेचि बनावैं घ[illegible] ।।
फिरैं उचक्का दे दे धक्का लूटैं माल मवासी ।
कैद भए की लाज तनिक नहिं बे-सरमी नंगा सी ।।
साहेब के घर दौड़े जावैं चंदा देहि निकासी ।
चढ़ैं बुखार नाम मंदिर का सुनतहि होंय उदासी ।।
घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी ।
दाल की मंडी रंडी पूजैं मानो इनको मासी ।।
आप माल कचरौं छानैं उठि भोरहिं कागाबासी ।
बाप के तिथि दिन बाम्हन आगे धरैं सड़ा औ बासी ।।
आप माल कचरैं छानैं उठि भोरहिं कागाबासी ।
बाप के तिथि दिन बाम्हन आगे धरैं सड़ा औ बासी ।।
करि बेवहार साक बांधै बस पूरी दौलत दासी ।
घालि रुपैया काढ़ि दिवाला माल डेकारैं ठाँसी ।।
काम कथा अमृत सी पीयैं समुझैं ताहि बिलासी ।
रामनाम मुंह से नहिं निकसै सुनतहि आवै खांसी ।।
देखी तुमरी कासी भैया, देखी तुमरी कासी ।

भू— कहो ई सरवा अपने शहर की एतनी निन्दा कर गवा तूं लोग कुछ बोलत्यौ नाहीं ?

ग— भैया, अपना तो जिजमान है अपने न बोलैंगे चाहे दस गारी भी दे ले ।

भं— अपनो जिजमानै ठहरा ।

द.— और अपना भी गाहकै है ।

दु.— और भाई हमहूँ चार पैसा एके बदौलत पावा ।

भू.— तूं सब का बोलबो तूं सब निरे दब्बू चप्पू हौ, हम बोलवै । (परदेसी से) ए चिड़ियाबावली के परदेसी फ[illegible] । कासी की बहुत निन्दा मत करो मुँह बस्सैये का कहैं के साहिब मजिस्टर हैं नाहीं तो निंदा करना निकास देते ।

प.— निकास क्यों देते ? तुमने क्या किसी का ठीका लिया है ?

भू— हाँ हाँ, ठीका लिया है मटियाबुर्ज ।

प— तो क्या हम भूठ कहते हैं ?

भू— राम राम तू भला कबौं भूठ बोलबो तू तो निरे पोथी के बेठन हौ ।

प— बेठन क्या ।

भू— बे ते मत करो गप्पों के, नाहीं तो तोरी अरबी फारसीं घुसेड़ देवै ।

प— तुम तो भाई अजब लड़ाके हो, लड़ाई मोल लेते फिरते हौ । वे ते किसने किया है ? यह तो अपनी अपनी राय है कोई किसी को अच्छा कहता है कोई बुरा कहता है । इससे बुरा क्या मानना ।

भू— सच है पनचोरा, तू कहै सो सच्च, बुढ्ढी तू कहे सो सच्च ।

प— भाई अजब शहर है, लोग बिना बात ही लड़े पड़ते हैं ।

(सुधाकर आता है)

(सब लोग आशीर्वाद, दंडवत, आओ आओ शिष्टाचार करते हैं)

गं— भैया इनके दम के चैन है । ई अमीरन के खेलउना हैं ।

भू— खेलाउना का हैं टाल खजानची खिदमत-गार सबै कुछ्र हैं ।

सु— तुम्हें साहब चर्रिये बूकना आता है ।

भू— चर्री का, हमहन भूठ बोलील :, अरे बखत पड़े पर तूँ रंडी ले आब : मंगल के मुजरा मिले ओमें दस्तूरी काट :, पैर दाब : रुपया पैसा अपने पास रक्ख : यारन के द्रूरे से भाँसा बताव : । ऐ ! ले गुरु तोहीं कह : हम भूठ कहथई ।

गं— अरे भैया बिचारे ब्राह्मण· कोई तरह से अपना कालच्छेप करयैं ब्राह्मण अच्छे हैं ।

भं— हाँ भाई न कोई के बुरे में न भले में और इनमें एक बड़ी बात है कि इनफी चाल एक रंगै हमेसा से देखी थै ।

गं— और साहेब एक अमीर के पास रहै से इनकी चार जगह जान पहिचान होय गई । अपनी बात अच्छी बनाय लिहिन हैं ।

दु— हाँ भाई बजार में भी इनकी साक बँधी है ।

सु— भया भया यह पचड़ा जाने दो, कहो यह नई मूरत कौन है ?

भू— गुरु साहब हम हियाँ भाँग का रगड़ा लगावत रहें बीच में गहन के मारे-पीटे ई घूआँकस आय गिरे ।

आके पिंजड़े में फंसा अब तो पुराना चंड्रल ।
लगी गुलसन की हवा दुम का हिलाना गया भूल ।।

(परदेशी के मुँह के पास चुटकी बजाता है और नाक के पास से उँगली लेकर दूसरे हाथ की उँगली पर घुमाता है)

प— भाई तुम्हारे शहर सा तुम्हारा ही शहर है, यहाँ की लीला ही अपरंपार है ।

भू— तोहूँ लीला करथौ ।

प— क्या ?

भू— नहीं ई जे तोहूँ रामलीला में जाथौ कि नाहीं ?

(सब हँसते हैं)

प— (हाथ जोड़कर) भाई तुम जीते हम हारे, माफ करो ।

भू— (गाता है) तुम जीते हम हारे साधो तुम जीते हम हारे ।

सु— (आप ही आप) हा ! क्या इस नगर की यही दशा रहेगी ? जहाँ के लोग ऐसे मूर्ख हैं वहाँ आगे किस बात की वृद्वि की संभावना करें ! केवल इस मूर्खता छोड़ इन्हें कुछ आता ही नहीं ! निष्कारण किसी को बुरा भला कहना । बोली ही बोलने में इनका परम पुरुषार्थ ! अनाब शनाब जो मुँह से आया बक उठे न पढ़ना न लिखना ! हाय ! भगवान् इनका कब उद्वार करेगा !!

भू— गुरु, का गुड़बुड़-गुड़बुड़ जपथौ ?

सु— कुछ नाहीं भाई यही भगवान का नाम ।

भू— हाँ भाई, भई एह बेरा टें टें न किया चाहिए राम राम की बखत भई तो चलो न गुरू ।

सब— चलो भाई ।

(जवनिका गिरती है)

(इति गैबी ऐबी नामक दूसरा गर्भांक)

तीसरा गर्भांक

स्थान —मुगलसराय का स्टेशन

(मिठाईवाले, खिलौनेवाले, कुली और चपरासी इधर उधर फिरते हैं । सुधाकर एक विदेशी पंडित और दलाल बैठे हैं)

द.— (बैठ के पान लगाता है) या दाता राम ! कोई भगवान से भेंट कराना ।

बि.प.— (सुधाकर से) — आप कौन हैं । कहाँ से आते हैं ।

सु— मैं ब्राह्मण हूँ, काशी में रहता हूँ और लाहोर से आता हूँ ।

बि. प.— क्या आपका घर काशी ही जी में है ?

सु.— जी हाँ, ।

बि. प.— भला काशी कैसा नगर है ?

सु— वाह ! आप काशी का वृत्तान्त अब तक नहीं

जानते भला त्रैलोक्य में और दूसरा ऐसा कौन नगर है जिसको काशी की समता दी जाय ।

वि. ष. — भला कुछ वहाँ की शोभा हम भी सुनैं ?

सु. — सुनिए, काशी का नामांतर वाराणसी है जहाँ भगवती जह्न नंदिनी उत्तरवाहिनी होकर धनुषाकार तीन ओर से ऐसी लपटी हैं मानो इसको शिव की प्यारी जानकर गोद में लेकर आलिंगन कर रही हैं, और अपने पवित्र जलकण के स्पर्श से तापत्रय दूर करती हुई मनुषमात्र को पवित्र करती हैं । उसी गंगा के तट पर पुण्यात्माओं के बनाए बड़े बड़े घाटों के ऊपर दोमंजिले, चौमंजिले, पँच मंजिलेऔर सतमंजिले ऊँचे ऊँचे घर आकास से बातें कर रहे हैं मानो हिमालय के श्वेत श्रृंग सब गंगा सेवन करने को एकत्र हुए हैं । उसमें भी माधोराय के दोनों धरहरे तो ऐसे दूर से दिखाई देते हैं मानों बाहर के पथिकों को काशी अपने दोनों हाथ ऊँचे करके बुलाती हैं । साँझ सबेरे घाटों पर असंख्य स्त्री पुरुष नहाते हुए ब्राह्मण लोग संध्या का शास्त्रार्थ करते हुए, ऐसे दिखाई देते हैं मानो कुबेरपुरी की अलकनंदा में किन्नरगण और ऋषिगण अवगाहन करते हैं, और नगाड़ा नफीरी शंख घटा झांझस्तव और जय का तुमुल शब्द ऐसा गूंजता है मानो पहाड़ों की तराई में मयूरों की प्रतिध्वनि हो रही है, उसमें भी जब कभी दूर से साँझ को वा बड़े सबेरे नौब्त की सुहानी धुन कान में आती है तो कुछ ऐसी भली मालूम पड़ती है कि एक प्रकार की झपकी सी आने लगती है । और घाटों पर सबेरे धूप की झलक और साँझ को जल में घाटों की परछाहीं की शोभा भी देखते ही बन आती है ।

जहाँ ब्रज ललना ललित चरण युगल चूर्ण परब्रह्म सच्चिदानंद घन बासुदेव आप ही श्री गोपाललाल रूप धारण करके प्रेमियों को दर्शन मात्र से कृतकृत्य करते हैं, और भी विंदुमाधवादि अनेक रूप से अपने नाम धाम के स्मरण दर्शन, चिन्तनादि से पतितों को पावन करते हुए विराजमान हैं ।

जिन मंदिरों में प्रात :काल संध्या समय दर्शनीकों की भीड़ जमी हुई है, कहीं कथा, कहीं हरिकीर्तन, कहीं नामकीर्तन कहीं ललित कहीं नाटक कहीं भगवत लीला अनुकरण इत्यादि अनेक कौतुकों के मिस से भी भगवान के नाम गुण में लोग मग्न हो रहे हैं ।

जहाँ तारकेश्वर विश्वेश्वरादि नामधारी भगवान भवानीपति तारकब्रह्म का उपदेश करके तनत्याग मात्रा से ज्ञानियों को भी दुर्लभ अपुनर्भव परम मोक्षपद — मनुष्य पशु कीट पतंगादि आपामर जीवनमात्र को देकर उसी क्षण अनेक कल्पसंचित महापापपुंज भष्म कर देते हैं ।

जहाँ अंधे, लँगड़े, लूले, बहरे, मूर्ख और निरुद्यम आलसी जीवों को भी भगवती अन्नपूर्णा अन्न वस्त्रादि देकर माता की भाँति पालन करती हैं ।

जहाँ तक देव, दानव, गंधर्व, सिद्ध चारण, विद्याधर देवर्षि, राजर्षिगण और सब उत्तम उत्तम तीर्थ — कोई मूर्तिमान, कोई छिपकर और कोई रूपांतर करके नित्य निवास करते हैं ।

जहाँ मूर्तिमान सदाशिव प्रसन्न वदन आशुतोष सकलसद्गुणैकरत्नाकर, विनयैकनिकेतन, निखिल विद्याविशारद, प्रशांतहृदय, गुणिजनसमाश्रय, धार्मिकप्रवर, काशीनरेश महाराजाधिराज श्रीमदीश्वरी-प्रसादनारायणसिंह बहादुर और उनके कुमारोपम गुमार श्री प्रभुनारायणसिंह बहादुर दान धर्म्मसभा राम-लीलादि के मिस धर्मोन्नति करते हुए ओर असत् कर्म्म नीहार को सूर्य की भाँति नाशते हुए पुत्र की तरह अपनी प्रजा का पालन करते हैं ।

जहाँ श्रीमती चक्रवर्तिनिचयपूजितपादपीठा श्रीमती महारानी विक्टोरिया के शासनानुवर्ती अनेक कमिश्नर जज कलेक्टरादि अपने अपने काम में सावधान प्रजा को हाथ पर लिए रहते हैं और प्रजा उनके विकट दंड के सर्वदा जागने के भरोसे नित्य सुख से सोती है ।

जहाँ राजा शंभूनारायणसिंह बाबू फतहनारायणसिंह बाबू गुरुदास बाबू माधवदास विश्वेश्वरदास राय नारायणदास इत्यादि बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिक तथा श्री बापूदेव शास्त्री, श्रीबाल शास्त्री से प्रसिद्ध पंडित, श्रीराजा शिवप्रसाद, सैयद अहमद खाँ बहादुर ऐसे योग्य पुरुष, मानिकचंद्र मिस्तरी से शिल्पविद्या निपुण, वाजपेयी जी से तन्त्रीकार, श्री पंडित बेचनजी, शीतलजी, श्रीताराचरण से संस्कृत के और सेवक हरिश्चंद्र से भाषा के कवि बाबू अमृतलाल, मुंशी गन्नूलाल, मुंशी शामसुंदरलाल से शास्त्रव्यसनी और एकांतसेवी, श्रीस्वामी विश्वरूपानंद से यति, श्रीस्वामि विशुद्धानंद से धर्म्मोपदेष्टा, दातृगणैकाग्रगण्य श्री-महाराजाधिराज विजयनगराधिपति से विदेशी सर्वदा निवास करके नगर की शोभा दिन दूनी रात चौगुनी करते है ।

जहाँ क्वींस कालिज (जिसके भीतर बाहर चारों ओर श्लोक और दोहे खुदे हैं), जयनारायण कालिज से बड़े बंगाली टोला, नार्मल और लंडन मिशन से मध्यम तथा हरिश्चंद्र स्कूल से छोटे अनेक विद्यामंदिर है, जिनमें संस्कृत, अँगरेजी, हिन्दी, फारसी, बँगला,

महाराष्ट्री की शिक्षा पाकर प्रति वर्ष अनेक विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण होकर प्रतिष्ठालाभ करते हैं ; इनके अतिरिक्त पंडितों के घर में तथा हिंदी फारसी पाठकों की निज शाला में अलग ही लोग शिक्षा पाते हैं, और राय शंकटाप्रसाद के परिश्रमोत्पन्न पबलिक लाइब्रेरी, मुनशी शीतलप्रसाद का सरस्वती-भवन, हरिश्चंद्र का सरस्वती और भंडार इत्यादि अनेक पुस्तक-मंदिर हैं, जिनमें साधारण लोग सब विद्या की पुस्तकें देखने पाते हैं ।

जहाँ मानमंदिर ऐसे यंत्रभवन, सारनाथ की धमेक से प्राचीनावशेष चिह्न, विश्वनाथ के मंदिर का वृषभ और स्वर्ण-शिखर, राजा चेतसिंह के गंगा पार के मंदिर, कश्मीरीमल की हवेली और क्वींस कालिज की शिल्पविद्या और माधोराय के धरहरे की ऊँचाई देखकर विदेशी जन सर्वदा रहते हैं ।

जहाँ महाराज विजयनगर के तथा सरकार के स्थापित स्त्री-विद्यामंदिर, औषधालय, अंधभवन, उन्मत्तागा इत्यादिक लोकद्वयसाधक अनेक कीर्तिकर कार्य हैं वैसे ही चूड़वाले इत्यादि महाजनों का सदावर्त्त और श्री महाराजाधिराज सेंधिया आदि के अटल सत्र से ऐसे अनेक दीनों के आश्रयभूत स्थान हैं जिनमें उनको अनायास ही भोजनाच्छादन मिलता है ।

अहोबल शास्त्री, जगन्नाथ शास्त्री, पंडित काकाराम, पंडित मायादत्त, पंडित हीरानंद चौबे, काशीनाथ शास्त्री, पंडित भवदेव, पंडित सुखलाल ऐसे धुरंधर पंडित और भी जिनका नाम इस समय मुझे स्मरण नहीं आता अनेक ऐसे ऐसे हुए हैं, जिनकी विद्या मानों मंडन मिश्र की परंपरा पूरी करती थी ।

जहाँ विदेशी अनेक तत्ववेत्ता धार्मिक धनीजन घबार कुटुंब देश विदेश छोड़कर निवास करते हुए तत्वचिंता में मग्न सुख-दु :ख भुलाए संसार को यथारूप में देखते सुख से निवास करते हैं ।

जहाँ पंडित लोग विद्यार्थियों को ऋक, यजु : साम, अथर्व, महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण, स्मृति, न्याय, व्याकरण, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक, मीमांसा, वेदांत, शैव, वैष्णव, अलंकार, साहित्य, ज्योतिष इत्यादि शास्त्र सहज पढ़ाते हुए मूर्तिमान गुरु और व्यास से शोभित काशी की विद्यापीठता सत्य करते हैं ।

जहाँ भिन्न देशनिवासी आस्तिक विद्यार्थीगण परस्पर देव-मंदिरों में, घाटों पर, अध्यापकों के घर में, पंडित सभाओं में वा मार्ग में मिलाकर शास्त्रार्थ करते हुए अनर्गल धारा प्रवाह संस्कृत भाषण से सुनने वालों का चित्त हरण करते हैं ।

जहाँ स्वर लय छंद मात्रा, हस्तकंपादि से शुद्ध वेदपाठ की ध्वनि से जो मार्ग में चलते वा घर बैठे सुन पड़ती है, तपोवन की शोभा का अनुभव होता है ।

जहाँ द्रविड, मगध, कान्यकुब्ज, महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, गुजरात इत्यादि अनेक देश के लोग परस्पर मिले हुए अपना-२ काम करते दिखते हैं और वे एक एक जाति के लोग जिन मुहल्लों में बसे हैं वहाँ जाने से ऐसा ज्ञान होता है मानों उसी देश में आए हैं, जैसे बंगाली टोले में ढाके का , लहौरी टीले में अमृतसर का और ब्रह्माघाट में पूने का भ्रम होता है ।

जहाँ निराहार, पयाहार, यताहार, भिक्षाहार, रक्तांबर, श्वेतांबर, नीलांबर, चर्म्माम्बर, दिगंबर, दंडी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, योगी, यती, सेवड़ा, फकीर, सुथरेसाई, कनफटे, ऊर्ध्ववाहु, गिरि, पुरी, भारती, वन, पर्वत, सरस्वती, किनारामी, कबीरी, दादूपंथी, नान्हकसाही, उदासी, रामानंदी, कौल, अघोरी, शैव, वैष्णव, शाक्त गाणपत्य, सौर, इत्यादि हिंदू और ऐसे ही अनेक भाँति के मुसलमान फकीर नित्य इधर से उधर भिक्षा उपार्जन करते फिरते हैं और इसी भाँति सब अंधे लँगड़े, लूले, दीन, पंगु, असमर्थ लोग भी शिक्षा पाते हैं, यहाँ तक कि आधी काशी केवल दाता लोग के भरोसे नित्य अन्न खाती है ।

जहाँ हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा, अन्न, घी, तेल, अतर, फुलेलक, पुस्त खिलौने इत्यादि की दूकानों पर हजारों लोग काम करते हुए मोल लेते बेंचते ट गाली करते दिखाई पड़ते हैं ।

जहा की बनी कमखाब बाफता, हमरू, समरू ; गुलबदन, पोत, बनारसी साड़ी दुपट्टे, पीताम्बर, उपरने, चोलखंड, गोंटा, पट्ठा इत्यादि अनेक उत्तम वस्तुएँ देशविदेश जाती हैं और जहाँ की मिठाई, खिलोंने, चित्र टिकुली, बीड़ा इत्यादि और भी अनेक सामग्री ऐसी उत्तम होती हैं कि दूसरे नगर में कदापि स्वप्न में भी नहीं बन सकतीं ।

जहाँ प्रसादी तुलसी माला फूल के पवित्र और स्नायी स्त्री पुरुषों के अंग के विविध चंदन, कस्तूरी, अतर इत्यादि सुगंधि द्रव्य के मादक आमोद संयुक्त परम शीतलकण तापत्रय विमोचक गंगाजी के स्पर्श मात्र से अनेक लौकिक अलौकिक ताप से तापित मनुष्यों का चित्त सर्वदा शीतल करते हैं ।

जहाँ अनेक रंगों के कपड़े पहने, सोरहो सिंगार बत्तीसो अभरन सजे पान खाए मिस्सी की धड़ी जमाए

जोवन मदमाती झलझलाती हुई बारबिलासिनी देवदर्शन वैद्य ज्योतिषी गुणीगृहगमन जार मिलन गानश्रावण उपवनभ्रमण इत्यादि अनेक बहानों से राजपथ में इधर-उधर झूमती घूमती नैनों के पटे फेरती बिचारे दीन पुरुषों को ठगती फिरती हैं । और कहाँ तक कहैं काशी काशी ही है । काशी सी नगरी तैलोक्य में दूसरी नहीं है । आप देखिएगा तभी जानिएगा बहुत कहना व्यर्थ है ।

वि.प.— वाह वाह ! वाह ! आपने वर्णन से मेरे चित्त का काशी दर्शन का उत्साह चतुर्गुण हो गया । यों तो मैं सीधा कलकत्ते जाता पर अब काशी बिना देखे कहीं न जाऊँगा । आपने तो ऐसा वर्णन किया मानों चित्र सामने खड़ा कर दिया । कहिए वहाँ और कौन कौन गुणी और दाता लोग हैं जिनसे मिलूं ।

सु— मैं तो पूर्व ही कह चुका हूँ कि काशी गुणी और धनियों की खान है यद्यपि यहाँ के बड़े बड़े पंडित जो स्वर्गवासी हुए उनसे अब होने कठिन हैं, तथापि अब भी जो लोग हैं दर्शनीय और संस्मरणीय हैं । फिर इन व्यक्तियों के दर्शन भी दुर्लभ हो जायँगे और यहाँ के दाताओं का तो कुछ पूछना ही नहीं । चूड़ की कोठीवालों ने पंडित काकाराम जी के ऋण के हेतु एक साथ बीस सहस्र मुद्रा दीं । राजा पटनीमल के बाँधे धर्म्मचिन्ह कर्म्मनाशा का पुल और अनेक धर्म्मशाला, कुएँ, तालाब, पुल इत्यादि भारतवर्ष के प्राय : सभी तीर्थों पर विद्यमान हैं । साह गोपालदास के भाई साह भवानीदास की भी ऐसी उज्ज्वल कीर्त्ति है और भी दीवान केवलकृष्ण, चम्पतराय अमीन इत्यादि बड़े बड़े दानी इसी सौ वर्ष के भीतर हुए हैं । बाबू राजेन्द्र मित्र की बाँधी देवी पूजा गुरु दास मित्र के यहाँ अब भी बड़े धूम से प्रतिवर्ष होती है । अभी राजा देवनारायणसिंह ही ऐसे गुणज्ञ हो गए हैं कि उनके यहाँ से कोई खाली हाथ नहीं फिरा । अब भी बाबू हरिश्चंद्र इत्यादि गुणग्राहक इस नगर की शोभा की भाँति विद्यमान हैं । अभी लाला बिहारीलाल और मुंशी रामप्रताप जी ने कायस्थ जाति का उद्धार करके कैसा उत्तम कार्य किया । आप मेरे मित्र रामचंद्र ही को देखिएगा । उसने बाल्यावस्था ही में लक्षावधि मुद्रा व्यय कर दी है । अभी बाबू हरखचंद मरे हैं जो एक गोदान नित्य करके जलपान करते थे । कोई भी फकीर यहाँ से खाली नहीं गया । दस पंद्रह रामलीला इन्हीं काशीवालों के व्यय से प्रति वर्ष होती हैं और भी हजारों पुण्यकार्य यहाँ हुआ ही करते हैं । आपको सबसे मिलाऊँगा आप काशी चलें तो सही ।

वि.पं.— आप लाहोर क्यों गए थे ।

सु— (लंबी साँस लेकर) कुछ न पूछिए योंही सैर को गया था ।

द.—(सुधारकर से) का गुरु। कुछ पंडितजी से बोहनी वांड़े का तार होय तो हम भी सायै चलूँचैं ।

सु— तार तो पंडितवाड़ा है कुछ विशेष नहीं जान पड़ता ।

द.— तब भी फोंक सऊड़े का मालवाड़ा । कहाँ तक न लेऊचियै ।

सु.— अब जो पलते पलते पलै ।

वि.— यह इन्होंने किस भाषा में बात की ?

सु.— यह काशी ही की बोली है, ये दलाल हैं, सो पूछते थे कि पंडितजी कहाँ उतरेंगे ।

वि.— तो हम तो अपने एक सम्बन्धी के यहाँ नीलकंठ पर उतरेंगे ।

सु.— ठीक है, पर मैं आपको अपने घर अवश्य ले जाऊँगा ।

वि.— हाँ हाँ इस्में कोई संदेह है ? में अवश्य चलूँगा ।

(स्टेशन का घंटा बजता है और जवनिका गिरती है)

इति प्रतिच्छवि-वाराणसी नामक तीसरा गर्भांक समाप्त हुआ ।

प्रथम अंक

चतुर्थ गर्भांक

स्थान — बुभुक्षित दीक्षित की बैठक

(बुभुक्षित दीक्षित, गप्प पंडित, रामभट्ट, गोपालशास्त्री, चंबूभट्ट, माधव शास्त्री आदि लोग पान बीड़ा खाते और भाँग बूटी की तजबीज करते बैठे हैं ; इतने में महाश कोतवाल अर्थात निमंत्रण करनेवाला आकर चौक में से दीक्षित को पुकारता है)

महाश— काहो, बुभुक्षित दीक्षित आहेत ?

बुभुक्षित— (इतना सुनते ही हाथ का पान रखकर) कोण आहे ? (महाश आगे बढ़ता है) वाह महाश तु आहेश काय ? आय बाबा आज किति ब्राह्मण

आमच्या तड़ात देतोस ? सरदारानी किती सांगीतलेत ! (थोड़ा ठहरकर) कायरे ठोक्याच्या कमऱ्यान्त सहस्रभोजन कुणाच्या यजमानाचे चाल्ले आहे ?

महाश— दीक्षित जी ! आज ब्राह्मणाची अशी मारामार झाली कि मी माँहीं सांगू शकत नाहीं — कोण तो पचड़ा !

बु.भु— खरें, काय मारामार झाली ? अच्छा ये तर बैठकेंत पण आखेरीस आमचे तड़ाची काय व्यवस्था ? ब्राह्मण आणलेस की नाहीं ? काँ हात हलवीतच आलस ?

महाश— (बैठक में बैठकर जल माँगता है) दीक्षित जी थोड़ेंसें पाणी द्या, तहान बहुत लागली आहे ।[१]

बुभु.— अच्छा भाई, थोड़ा सा ठहर अत्ता उनातून आला आहेस, बूटी ही बनतेच आहे । पाहिजे तर बूटीचच पाणी पी । अच्छा साँग तर कसे काय ब्राह्मण किती मिलाले ?

महाश— गुरु, ब्राह्मण तो आज २५ निकाले, यार लोग आपके शागिर्द हैं कि और किसके ?

चंबूभट्ट— (बड़े आनंद से) क्या भाई सच कहो — २५ ब्राह्मण मिलाले ?

महाश— हो गुरु ! २५ ब्राह्मण तर नुसते सहस्रभोजनाचे, परंतु आजचे वसंतपूजेचे तर शिवाय च — आणखी सभेकरतां तर पेष लावलाच आहे पण —

गोपाल, माधव शास्त्री— (घबड़ाकर) काय महाश पण काँ ? सभेचें काम कुणाकड़े आहे ? अणखी सभा कधीं होणार ? आँ ?

महाश— पणं इतकेंच कीं हा यजमान पाप नगरांत रहतो, आणियाला एक कन्या आहे ती गतभर्तृका असून सकेशा आहे आणि तीर्थस्थलीं तर क्षौर करणें अवश्य पण क्षौरकरून कन्येंची शोभा जाईल या करितां जर कोणी अस्र शास्त्रीय आधार दाखवील तर एक हजार रुपयांची सभाकरण्याचा त्यांचा विचार आहे व या कामांत धनुतुंदिल शास्त्रीनी हात घातला आहे ।

गप्प पंडित— अं :, तो ऐसी झुल्लक बात के हेतु शास्त्राधार का क्या काम है ? इसमें तो बहुत से आधार मिलेंगे ।

माधव शास्त्री— हाँ पंडित जी आप ठीक कहते हैं, क्योंकि हम लोगों का वाक्य और ईश्वर का वाक्य समान ही समझना चाहिए ''विप्रवाक्ये जनार्दन :'' ''ब्राह्मणो मम दैवतं'' इत्यादि ।

गोपाल— ठीकच आहे, आणि जरि कदाचित् असल्या दुर्घट कामानी आम्ही लोकदुष्टया निन्ध झालों तथापि वन्द्यच आहों, कारण श्री मद्भागवतांत ही लिहलें आहे 'विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्येत कश्चने-त्यादि' ।

गप्प पंडित— हाँ जी, और इसमें निंद्य होने का भी क्या कारण ? इसमें शास्त्र के प्रमाण बहुत से हैं और युक्ति तो हुई है । पहिले यही देखिए कि इस क्षौर कर्म से दो मनुष्यों को अर्थात् वह कन्या और उसके स्वज्जन इनको बहुत ही दु:ख होगा और उसके प्रतिबंध से सबको परम आनंद होगा । तब यहाँ इस वचन को देखिए —

''येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिन : ।
संतोषं जनयेत् प्राज्ञस्तदेवेश्वर पूजनं ।।''

बुभु.— और ऐसे बहुत से उदाहरण भी इसी काशी में होते आये हैं दूसरा काशीखंड ही में कहा है 'येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगति : ।''

चंबूभट्ट— मूर्खतागार का भी यह वाक्य है 'अथवाा वाललवनं जीव — नार्बनवद्भवेत्' । संतोषसिंधु में भी 'सकेशैव हि संस्याप्या यदि स्यात्तोषदा नृणां' ।

महाश— दीक्षित जी ! बूटी झाली — अब छने जल्दी कारण बहुत प्यासा जीव होऊन गेला अणखी अझून पुष्कल ब्राह्मण सांगायचे आहेत ।

बुभु.— (भांग की गोली और जल, बरतन, कटोरा साफी लेकर) । शास्त्री जी ! थोड़े से बड़ा तर ।

माधव शास्त्री— दीक्षित जी ! हें माँझ काम नव्हें, कारण मी अपला खाली पीण्याचा मालिक आहे, मला छानतां येत नाहीं । (गोपाल शास्त्री की ओर दिखलाकर । ये इसमें परम प्रवीण हैं ।

गोपाल शास्त्री— अच्छा दीक्षित जी, मीच आलों सही ।

चंम्बूभट्ट— (इन सबों को अपने काम में निमग्न देखकर) बरें मग महाश अखेरीस तड़ाचे किसी ब्राह्मण सहस्रभोनाचे व वसंत पूजेचे किती ?[५]

महाश— दीक्षिताचे तड़ांत आज एकंदर २५ ब्राह्मण ; पैकीं १५ सहस्र भोजनाकड़े आणि १० वसंतपूजेकड़े —

माधव शास्त्री— आणि सभेचे ?

महाश— सभेचे तर मी सांगीतलेंच कीं धनतुंदिल शास्त्रीचे अधिकारांत आहे, आणि दोन तीन दिवसांत ते बंदोबस्त करणार हाहेत ।

गप्प पडित— क्यों महाश ! इस सभा में कोई गौड़ पंडित भी हैं वा नहीं ।

महाश— हाँ पंडित जी, वह बात छोड़ दीजिए, इसमें तो केवल दाक्षिणात्य द्राविण और क्वचित् तैलंग भी होंगे, परन्तु सुना है कि जो इसमें अनुमति करेंगे वे भी अवश्य सभासद होंगे ।

गप्प पडित— इतना ही न, तब तो मैंने पहिले ही कहा है, माधव शास्त्री ! अब भाई यह सभा दिलवाना आपके हाथ में है ।

माधव— हाँ पंडित जी, मैं तो अपने शक्त्य-नुसार प्रयत्न करता हूँ, क्योंकि प्राय : काका धनतुंदिल शास्त्री जो कुछ करते हैं उसका सब प्रबंध मुझे ही सौंप देते हैं । (कुछ ठहर कर) हाँ, पर पंडित जी, अच्छा स्मरण हुआ, आपसे और न्यू फांड (New fond) शास्त्री से बहुत परिचय है, उन्हीं से आप प्रवेश कीजिए, क्योंकि उनसे और काका जी से गहरी मित्रता है ।

गप्प पंडित— क्या क्या शास्त्री जी ? न्यू — क्या ? मैंने यह कहीं सुना नहीं ।

गोपाल— कभी सुना नहीं इसी हेतु न्यू फांड ।

गप्प पंडित— मित्र ! मेरा ठट्टा मत करो । मैं यह तुम्हारी बोली नहीं समझता । क्या यह किसी का नाम है ? मुझे मालूम होता है कि कदाचित् यह द्रविड़ त्रिलिंग आदि देश के मनुष्य का नाम होगा । क्योंकि उधर की बोली मैंने सुनी है उसमें मूर्द्धन्य वर्ण प्राय : बहुत रहते हैं ।

माधव शास्त्री— ठीक पंडित जी, अब आप का तर्कशास्त्र पढ़ना आधा सफल हुआ । अस्तु ये इधर ही के हैं जो आप के साथ रामनगर गये थे, जिन्होंने घर में तमाशेवाले की बैठक की थी —

गप्प पंडित— हाँ हाँ, अब स्मरण हुआ, परन्तु उनका नाम परोपकारी शास्त्री है और तुम क्या भांड कहते हो ?

गोपाल शास्त्री— वह पंडित जी, भांड नहीं कहा फांड कहा — न्यू फांड अर्थात् नये शौखीन । सारांश प्राचीन शौखीन लोगों ने जो जो कुछ पदार्थ उत्पन्न किए, उपभुक्त किये उन ही उनके उच्छिष्ट पदार्थ का अवलंबन करके वा प्राचीन रसिकों की चाल चलन को अच्छी समझ हमको भी लोक वैसा ही कहे आदि से खींच खींच के रसिकता लाना, क्या शास्त्री जी ऐसा न इसका अर्थ ?

माधव शास्त्री— भाई, मुझे क्यों नाहक इसमें डालते हो —

गप्प पडित— अच्छा, जो होय मुझे उसके नाम से क्या काम । व्यक्ति मैंने जानी परन्तु माधव जी आप कहते हैं और मुझसे उनसे भी पूर्ण परिचय है और उनको उनका नाम सच शोभता है, परंतु भाई वे तो बड़े आढ्य मान्य हैं और कंजूस भी हैं — और क्या तुमसे उनसे मित्रता मुझसे अधिक नहीं है । यहाँ तक शयनासन तक वे तुमको परकीय नहीं समझते ।

माधव शास्त्री— पंडित जी ! वह सर्व ठीह है, परंतु अब वह भूतकालीन हुई । कारण 'अति सर्वत्र वर्ज्येत' —

बुभु.— हाँ पडित जी ! अब क्षण भर इधर बूटी को देखिए, लीजिए । (एक कटोरा देकर पुन : दूसरा देते हैं)

गप्प पंडित— वाह दीक्षित जी, बहुत ही बढ़िया हुई ।

चंबूभट्ट— (सब को बूटी देकर अपनी पारी आई देखकर) हाँ हाँ दीक्षित जी, तिकड़ेच खतम करा मी आज कल पीत नाहीं ।

गोपाल माधव— काँ भट जी ! पुरे आतां, हे नखरे कुठे शिकलात, या — प्या — हवेने व्यर्थ थंडी होते ।

चंबूभट्ट— नाहीं भाई मी सत्य साँगतों, भला सोसत नाहीं । तुम्हाला माझे नखरे वाटतात पण हे प्राय : इथले काशीतलेच आहेत, व अपल्या सारख्यांच्या परम प्रियतम सफेत खड़खड़ीत उपर्णा पाँघरणार अनाथा बालानींच शिकविलेंन बरें ।

(सब आग्रह करके उसके पिलाते हैं)

महाश— कां गुरु दीक्षित जी अब पलेती जमविली पाहिजे ।

बुभु.— हाँ भाई, घे तो बंटा आणि लाव तर एक दोन चार ।

महाश— (इतने में अपना पान लगाकर खाता है और दीक्षित जी से) दीक्षित जी, १५ ब्राह्मण ठोक्याच्या कमऱ्यांत पाटवा, दाहा बाजतां पानें माँडलो जातील, आणि आज रात्री बसंतपूजेस १० ब्राह्मण लवकर पाठवा कारण मग दूसरे तड़ाचे ब्राह्मण येतील (ऐसा कहता हुआ चला जाता है)

बुभु.— (उसको पुकारते हुए जाते हैं) महाश ! दक्षिणा कितनी ? (महाश वहीं से चार अंगुली दिखाकर गडा कहकर गया ।

माधव— दीक्षित जी ! क्या कहीं बहरी ओर चलिएगा ?

गोपाल— (दीक्षित से) हाँ गुरु, चलिए आज

बड़ी वहाँ लहरा है ।

बुभु.— भाई बहरीवर मी जाऊन इकडचा बन्दोवस्त कोण करील ?

गोपाल— अे: गुरु इतके १५ ब्राह्मणात घबड़ावता । सर्वभक्षास साँगीतले ब्राह्मण जे झाले । न्यू फांड की पत्ती हैं ।

गप्प पंडित— क्या परोपकारी की पत्ती हैं ? खाली पत्ती दी है कि और भी कुछ है ? नाहीं तो मैं भी चलूँ ।

माधव शास्त्री— पत्ती क्या बड़ी बड़ी लहरा है, एक तो बड़ा भारी प्रदर्शन होगा और नाना रीति के नाच, नए नए रंग देख पड़ेंगे ।

गप्प पंडित— क्यों शास्त्री जी मुझे यह बड़ा आश्चर्य ज्ञात होता है और इससे परिहासोक्ति सी देख पड़ती है । क्योंकि उसके यहाँ नाच रंग होना सूर्य का पश्चिमाभिमुख उगना है ।

गोपाल— पंडित जी ! इसी कारण इनका नाम न्यू फांड है । और तिस पर यह एक गुह्य कारण से होता है । वह मैं और कभी आप से निवेदन करूँगा, वा मार्ग में —

बुभु.— (सर्वभक्ष नाम अपने लड़के को सब व्यवस्था कहकर आप पान पलेती और रस्सी लोटा और एक पंखी लेकर) हाँ भाई मेरी सब तैयारी है ।

माधव गोपाल— चलिए पंडित जी वैसे ही धनतुंदिल शास्त्री जी के यहाँ पहुँचेंगे । (सब उठकर बाहर आते हैं ।)

चंबूभट्ट— मैं तो भाई जाता हूँ क्योंकि संध्या समय हुआ है । (चला जाता है)

गप्प पंडित— किधर जाना पड़ेगा ?

माधव शास्त्री— शंखोध्यारा क्योंकि आजकल श्रावण मास में और कहाँ लहरा ? धराऊ कजरी, श्लोक, लावनी, ठुमरी, कटौवल, बोली ठोली सब उधर ही ।

गप्प पंडित— ठीक शास्त्रि जी, अब मेरे ध्यान में पहुँचा, आजकल शंखोध्यारा का बड़ा माहात्म्य है । भला घर पर यह अब कहाँ सुनने में आवेगा ? क्योंकि इसमें धराऊ विशेषण दिया है ।

गोपाल— आ: हमारा माधव शास्त्री जहाँ है वहाँ सब कुछ ठीक ही होगा, इसका परम आश्रय प्राणप्रिय रामचंद्र बाबू आपके विदित है कि नहीं ? उसके यहाँ ये सब नित्य कृत्य हैं ।

गप्प पंडित— रामचंद्र हम ही को क्या परंतु मेरे जान प्राय : यह जिसको विदित नहीं ऐसा स्वल्प ही निकलेगा । विशेष करके रसिकों को ; उसको तो मैं खूब जानता हूँ ।

गोपाल— कुछ रोज हमारे शास्त्री जी भी थे, परंतु हमारा क्या उनका कहिए ऐसा दुर्भाग्य हुआ कि अब वर्ष वर्ष दर्शन नहीं होने पाता । रामचंद्र जी तो इनको अपने भ्राते के समान पालन करते थे और इनसे बड़ा प्रेम रखते थे । अस्तु सारांश पंडित वहाँ रामचंद्र जी के बगीचे में जायँगे । वहाँ सब लहरा देख पड़ेगी और इस मिस से तौ भी उनका दर्शन होगा ।

बुभु.— अरे पहिले नवे शौखिनाचे इथे जाऊं तिथे काय आहे हें पाहूँ आणि नंतर रामचंद्राकड़े झुकूं ।

माधव शास्त्री— अच्छा तसेच होय आजकल न्यू फांड शास्त्री यानी ही बहुत उदारता धरली आहे बहुत सी पाखरें ही चारली आहेत तो सर्व दृष्टीस पड़तील पण भाई मी आँत यायचा नाहीं । कारण मला पाहून त्यांना त्रास होतो ।

गोपाल— अच्छा तिथ वर तर चलशील आगे देखा जायगा ।

(सब जाते हैं और जवनिका गिरती है)

(इति)

घिस्सघिसद्विज कृत्य विकर्तनी नाम चतुर्थ गर्भांक

।। प्रथम अंक समाप्त हुआ ।।

विषयस्य विषमौषधम्

पहली बार यह नाटक '' हरिश्चंद्र चंद्रिका '' खं. ३ सं. १० अक्टूबर सन् १८७६ ई. मे प्रकाशित हुआ । इसके शीर्षक के ऊपर प्राप्त लिखा था । जिसमें लगता है कि यह शीर्षक किसी दूसरे लेखक का रहा होगा । — सं.

विषस्यविषमौषधम्
(भाण)

परतिय-रत रावन बध्यौ, पर-धन-रत तिमि कंस ।
राम कृष्ण जय सूर ससि, करन मोह अधधंस ।।१।।

(भण्डाचार्य्य आता है)

भण्डाचार्य्य— (लम्बी सांस लेकर)

'पर नारी पैनी छुरी, ताहि न लाओ अंग ।
रावनहू को सिर गयो, पर नारी के संग ।।१।।

हमारी दशा भी अब रावण की हुआ चाहती है, तो क्या हुआ, होय ।

रावन ने दस सिर दिए, जनक-नन्दनी-काज ।
जौ मेरो इक सिर गयो, तो यामें कहं लाज ।।३।।

देखो पर-स्त्री संग से चन्द्रमा यद्यपि लाञ्छित हैं तो भी जगत को आनन्द देता है वैसे ही (मोछों पर हाथ फेरकर) हम बड़े कलंकित सही पर हमी उस नगर की शोभा हैं । भला दुष्ट बाबाभट्ट क्या हुआ तुम ने हमारा सब भेद खोल दिया, इस भेद खुलने पर भी हम ने तुम्हैं और कृष्णाबाई दोनों को न छकाया तो मेरा नाम भण्डाचार्य्य नहीं । अब भी क्या खंडेराव का राज्य है कि पहलवानों की पूछ होगी अब तो जो कुछ हमीं लोग हैं (ऊपर देखकर)) क्या कहा कि 'इसी उपद्रव से न यह गति हुई' किसकी किसकी ? महाराज मल्हार राव की ? ए भाई जरा हाल तो कहे जाओ (ऊपर देखकर) हैं चला गया, कौन गति हुई, इनता तो हमने भी सुना था कि कुछ दिन हुए एक खबीसन आई थी, क्या जानै कौन साहेब उसके मालिक थे । उं : अरे वह तो इसी बान पर न आई थी कि महाराज की भेड़ियां उन से अच्छी तरह नहीं चराई जातीं, तो फिर इस से क्या ? अपनी नाक ठहरी चाहे जिधर फेर दिया । और फिर उस का प्रबन्ध करने तो उनके साढ़े-तीन नातेदार आए न थे एक दादा दूसरा भाई तीसरा पति (नौरा) और आधी जीजी, क्या उन से भी कुछ न हुआ (ऊपर देखकर) क्या कहा, होता कहां से मलहर जी कुछ करने देते तब तो । अजी बावले हुए हो करने क्या देते ? राजा होता है प्रभु और ''कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ : प्रभु :'' यह प्रभु का लक्षण है, उनकी बकरी थी चाहे जिस घाट पानी पिलाया । हम तो अपने नौकरों से रात दिन जो चाहते हैं काम लेते हैं । और फिर सुख भी तो हिंदुस्तान में तीन ही ने किया, एक मुहम्मदशाह ने दूसरे वाजिदअली शाह ने तीसरे हमारे महाराज ने । मुहम्मदशाह के जमाने में नादिरशाही हुई, वाजिदअली से लखनऊ ही छूटा, अब देखैं इन की कौन गति होती है । इस का तो यही फल है, पर फिर कौर इस रंग में नहीं है, बड़े बड़े ऋषि मुनि राजा महाराज नए पुराने सभी तो इस में फंसे हैं । अहा स्त्री वस्तु भी ऐसी ही है ।

पुरुष जनन के मोहन को विधि यंत्र विचित्र बनायो है ।
काम अनल लावन्य सुजल बल जाको बिरचि चलायो है।
कमर कमानी बार तार सों सुन्दर ताहि सजायो है ।
धरमघड़ी अरु रेलहु सों बढ़ि यह सबके मन भायो है।।
है ।।

यह तो कल के अर्थ में यंत्र हुआ अब हिन्दुस्तानी तन्त्र का यन्त्र वर्णन सुनिए ।

पुरुष जनन के मोहन को यह मंगल यन्त्र बनायो है ।
कामदेव के बीच मन्त्र सों अंकित सब मन भायो है ।।
ग्रहण दिवारी कारी चौदस सानी रात जगायो है ।
सिद्ध भयो सब को मन मोहत नारी नाम धरायो है ।।

(ऊपर देखकर) क्या कहा ? इसी यंत्र के अनुष्ठान का न यह फल हुआ कि सिर पर इतनी सारी जबाबदेही आय पड़ी । किसके किसके ? किसके बल हम कूदते हैं ! अरे महाराज के ? क्या हुआ (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'तुमको क्या नहीं मालूम' हमको यहां तक तो मालूम है कि पहिले एक कमीशन आया था और फिर कुछ आया के आया जाया की गड़बड़ सुनी थी । छि : छि : स्त्री ऐसी ही वस्तु है उस पर भी कुमारी । बिजली को घन का पच्चड़ । स्त्री और बिजली जिससे छू गई वह गया (ऊपर देखकर) क्या कहा 'गया भी ऐसा कि फिर न बहुरैगा' अरे कौन कौन ? क्या कहा ? वही

जिसका तुम सुबेरे से पचड़ा गा रहे हो ! हाय ! हाय ! महाराज ! अरे क्या हुए ? गद्दी से उतारे गए ? हाय ! महा अनर्थ हुआ । महाराज नहीं गए हिन्दुस्तान गया। भला पूरा हाल तो कहो (कुछ ठहर कर ऊपर देखकर) हां समझा । हाय बहुत ही बुरा हुआ बुढ़िया मरने का डर नहीं जम परचने का डर है ? परचल गोह करौंदा खाय । वाजिदअलीशाह भी तो इसी खुराफात से उतरे थे ''मा और भाई मलिक : से इनसाफ चाहने के लिये विलायत पहुँचे वह कुछ सुनाती (न ?) दोनों आपनी जान मलिक : पर निछावर कर गुजरे'' ''सो बातैं सुनि राजसभा में ह्वै निशंक बिस्तारी जू'' भाई यस्यास्ति भाग्यं स नर : कुलीन : स पण्डित : श्रुतिमान् गुणाज्ञ : स एव दासा स च दर्शनीय : सर्व्वेगुणा : भाग्यवता-मधीना : । हमारा तो सुनकर जी जल गया कि कविवचन सुधा नाम का कोई अखबार सोने के और लाल टाइप में उस दिन छपा था जिस दिन महाराज उतारे गए । वाहरे शिफारशियो ? अरे खुशामद की भी कुछ हद होती है । एक बादशाह ने हुक्म दिया बड़े-बड़े खुशामदी लाओ । तीन आदमी हाजिर किये गए । बादशाह ने पूछा तुम खुशामद कर सकोगे । पहिला बोला हुजूर क्यों नहीं। बादशाह ने उसे निकाल दिया। दूसरे से पूछा तुम खुशामद कर सकोगे ? उसने कहा जहाँपनाह जहाँ तक हो सकेगी, बादशाह ने उसे भी निकाल दिया । तीसरे से भी पूछा तुम खुशामद कर सकोगे । बोला गरीब परवर क्या मजाल भला मेरी ताकत है कि हुजूर की खुशामद कर सकूं । बादशाह ने कहा हां यह पक्का खुशामदी है । ठीक वही हाल है । और निबाह भी इसी से है हजार जान दे मरो शिफारिश नहीं तो कुछ भी नहीं । जान भी दे तो बादशाह ही न था । फिर भी भाई शिफारशियों का कल्याण है । तो हमहुं कहब अब ठकुर सोहाती। हसब टठाब फुलाउब गालू, पर हम से न होगा । भला कहां हिन्दुस्तानी सिफारशी दरवार, कहां हमसे पण्डित । '''हरि संग भोग कियो जा तन सों तासों कैसे जोग करैं ।'' पक्षपात नहीं है ऐसा ही है । लाखों सबूत दे सकते हैं पर कोई सुनै भी । हाय ! कोई सुनने वाला भी तो ''नहीं प्रानपियारे तिहारै बिना कहो काहि करेजो निकासी दिखाऊँ'' ए भाई कुछ कहना भी तो झख मारना है । पासा पड़े सो दाव, राजा करै सो न्याव । कहैं जो लोग बस उस को बजा कहिए । इन का राज गया तो क्या आश्चर्य है यह कुछ आज ही थोड़े हुई है सनातन से चली आई है । और फिर राजनीति राक्षा भी तो इसी से होती है । पर ऐसे ही सारे भारतवर्ष की प्रजा का सर्कार ध्यान नहीं रखती । रामपुर में दुरंत यवन हिन्दुओं को इतना दुख देते हैं पूजा नहीं करने देते शंख नहीं बजता पर सर्कार इस बात की पुकार नहीं सुनती। यद्यपि यह अनर्थ वहां है जहां पहिले सर्कारी राज्य था और जिस देश के विषय में पक्का अहदनामा हो चुका है । अहदनामे पर क्या, जैसे अधिकारी आते हैं वैसा बरताव होता है । सर्कार बिचारी कुछ देखने आड़े ही आती है । धन्य है ईश्वर ! सन् १५९९ में जो लोग सौदागरी करने आये थे वे आज स्वतंत्र राजाओं को यों दुध की मक्खी बना देते हैं । वा यह तो बुद्धि का प्रभाव है । साढ़े सत्रह सौ के सन् में जब आरकाट में क्लाइव किले में बन्द था तो हिन्दुस्तानियों ने कहा कि रसद घट गई है सिर्फ चावल है सो गोरे खांय हम लोग मांड़ पीकर रहैंगे । सन् १६१७ में जब सर्कार से सब मरहठे मात्र बिगड़े थे तब सिर्फ बड़ौदे वाले साथ थे । उन के कुल की यह दशा ! यह तो जब पहिले कमीशन आया था तभी हम समझे थे । यदा श्रौयं माधवं बासुदेवं सर्वात्मना पाण्डवार्थे निविष्टं । यस्येमां गां विक्रममेकं माहुस्तादानाशंसे बिजयाय संजय । जो हो मलहर की यह करतूत भी कभी न भुलैगी । कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्व्व कृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होंने उत्तर दिया जैसे सतरंज के राजा, जहां चलाइए वहां चलैं । (ऊपर देख कर) क्या कहा ? यह सब ठीक, पर कहे कौन ? सो तो ठीक है ''कोनसाहिबनू-अक्खे'' यों नहीं यों कर । राजा और दैव बराबर होते हैं ये जो करैं सो देखते चलो बोलने की तो जगही नहीं। मलहर सुनते ही तो यह नौबत काहे को होती । राजा बनारस के अधिकार के विषय में जब कौन्सिल में चर्चा हुई तो हेस्टिंग्स साहिब ने रेजिडेण्ट न मुकर्रर हो, वे कम्पनी को पटने के इलाके में मालगुजारी दिया करैं । क्योंकि रेजिडेण्ट मुकर्रर होने से वह राजा और राज्य पर अपना अखतियार जारी करने की कोशिश करैगा और इन से राजा के साथ उसका बिवाद होने से कौन्सिल में हमेशा नालिशैं आवैंगी, जिसमें कि निस्सन्देह रेजिडेण्ट की बात पर विश्वास कर के राजा के बिपक्ष फैसला होगा और पश्चात् एतद्द्वारा उनका सब नुकसान होकर उनको साधारण जमीदारी की अवस्था भोगनी पड़ैगी'' * सो उन्हीं रेजिडेण्ट से

* सन् १७७५ ई. के जून की १२ तारीख का गवर्नर जेरनल की मिनट देखो ।

मलहर ने बिगाड़ कर लिया । ठीक है ठीक है अरे भाई अपने हिन्दुस्तानियों का चाल व्यवहार जितना हिन्दुस्तानी समझैंगे उतना और कोई क्या समझैगा ? वरंच ऐसे मामलों का अन्त:सार हिन्दुस्तानी ही लोग जानते हैं, ''सहवासी विजानीयत् चरितंसह-वासिन :'' । हाय ! ऐसे बड़े वंश की यह दुर्दशा ! सच है, कुपुत्र बुरा होता है । इनका पुरखा दमाजी गायकवाड़ कैसा प्रतापी था, जिसके बल से पेशवा रघुनाथराव निशंक रहता था । सन् १९६८ में जब माधवराव रघुनाथराव से जूती उछली थी तो इसी दमा ने अपने बेटे गोविन्दराव को भेजा था । सुना है कि दमा के ४ बेटे थे, बड़ा, पर छोटी रानी से तो सियाजी छोटा, पर बड़ी रानी से गोविन्दराव । सब से छोटकी रानी से फते सिंह और माणिक जी । यही गोविन्दराव बाप के मरने पर साढ़े पचास लाख रु. देकर हर साल उनहत्तर हजार रुपया और तीन हजार सवार, समय पड़े पाँच हजार देने के करार पर सैना खास खेल हुआ (ऊपर देख कर) क्या कहा ? फतेसिंह भी तो लड़ा था ? हां सिया जी को राजा बनाकर लड़ता भिरता रहा, पर बाजीराव ने पेशवा होकर गोविन्दराव को पक्का न कर दिया, वरञ्च हरिफड़ के चढ़ाव के समय फौज लेकर आप बड़ौदे गया और गोविन्दराव को राजा बनाया। सर्कार ही ने तो इन दोनों की कलह मिटाई थी जिसमें तै कर दिया था कि २६ लाख रु. तो तीन महीने में गायकवाड़ पेशवा रघुनाथ को दे और पेशवा उसको दश लाख की दक्षिण में जागीर दे और दो लाख तेरह हजार की जमीन गायकवाड़ सर्कार को दे (ऊ. दे.) क्या कहा ? कभी कर्नल गाड ने बड़ोदे का भी तो कुछ हिस्सा ले लिया था ? हां फतेसिंह ने कुछ गड़बड़ किया था पर उस पर कर्नल गाड ने हुमायूँ का जहर ले लिया था (ऊपर देखकर) क्या कि फिर क्या हुआ ? फिर यह तै हुआ कि मायी नदी के उत्तर की पृथ्वी पेशवा फतेसिंह ले और सर्कार को भरोच अठाविशी के अठाइसो परगने, शिनोर परगना और कुछ जमीन मिलै । यह फतेसिंह नानाफड़नवीस के दौर दौरा में साढ़े पंद्रह लाख रु. दीवान को देकर सैना खास खेल हुआ । बिचारा सन् १७९१ ई. में गिर कर मर गया और उस का छोटा भाई मानिक जी सिया जी को नांव का राजा बना कर राज चलाने लगा । पर गोविन्द राव ने, जो तब खेड़े गांव में पूने के पास रहता था, पेशवा से कहा कि हमारा राज अब हम को मिलै । यह सुनतेही माणिक जी ने तैंतीस लाख तेरह हजार रुपया नजर और ३८ लाख की बाकी देकर फड़नवीस से राज की सनद लेली और इधर गोविन्दा ने महाजी सेंधिया के पूना आने पर उनके द्वारा सनद पायी । इसी बखेड़े में माणिकराव आपही मर गया तब भी नाना ने गोविन्द को पहिली नजर दिए बिना जाने न दिया, देखो इन्हीं अँगरेजों ने पहिले तै हुई बात के विरुद्ध समझ कर उस समय गोविन्दा की सहायता की और नाना को समझाया कि सालपी में जो तै हो चुका है उसके बरखिलाफ अब नया तापी के दक्षिण का मुल्क बिचारे गोविन्दा से क्यों मांगते हौ और इन्हीं के बदौलत बिचारा गोबिन्दा सन् १७९२ दिसम्बर को १९ तारीख को राजा हुआ और सन १७९९ मैं बम्बई के गवर्नर डंकन साहब से मिलकर शिष्टाचार करके सूरत का चौथाई हिस्सा और चौरासी परगना दिया (ऊ. दे.) क्या कहा ? हाँ कुछ बड़ोदा का हाल और भी कहो ? सुनो, हम तो इस वंश के पुराने पुरोहित हैं सब शाखोच्चार करैं । हां तो सबसे पहिले गोबिन्दा राज गद्दी पर बैठे, फिर आबा शेलूकर जो नाना के साथ कैद में पड़ा था सो सेंधिया को दस लाख रु. देकर छूटा और अहमदाबाद का हाकिम हुआ, बाजीराव ने गोबिन्दराव से और उससे बिगाड़ कराया जिससे इन दोनों में रात दिन धौल धप्पड़ होती रही पर डंकन साहब से गोविन्दराव से मेल होने से आबा मन्द पड़ गया, बिचारा गोबिन्दराव १८१० सन् में मर गया, कुछ मल्हारराव की पुरुषार्थी नहीं हैं । गोबिन्दराव के उस समय से यह बात है क्योंकि वह चार औरस और ७ दासी पुत्र छोड़ गए थे, आनन्दराव सब में बड़ा था उसी को राजवाले मालिक समझते थे पर वह बुद्धिमान नहीं था इससे दूसरे हिस्सेदारों ने अपना तार जमाना चाहा गोबिन्दराव ने दूसरे लड़के कान्हों जी को फसादी जानकर अपने सामने से कैद किया था । पर पीछे आनन्दराव से बहुत मिन्नत करके और फौज के अफसरों को बीच में डालकर छूटा और मुख्य दीवान हुआ पर उस पर संतोष न कर के सारे राज पर सत्ता बढ़ाने लगा अन्त में रावजी आपा परभू पुराने कारिन्दे ने प्रबल होकर उसको पदच्युत किया । इन दोनों ने सर्कार से सहायता चाही । जिस में कान्होजी ने पुराने करार के सिवाय चिखली का परगना देने को कहा । आनन्दराव और उसके दीवान आपा की मदद को सात हजार अरब सवार थे क्योकि आपा का भाई बाबा जी उनका सरदार था, कान्होवा का पक्षपाती कड़ी का जमीदार मल्हारराव गायकवाड़ था और यह मनुष्य शूर चतुर था, इसने आनन्दराव के राज में जब बहुत उपद्रव किया और बहुत से किले भी ले लिए तब आपा ने बम्बई के गवर्नर को मदद के वास्ते लिखा और

पाँच पल्टन इस शर्त पर मांगी कि उन का खर्च वह देगा । बम्बई के गवर्नर ने बिना गवर्नर जेनरल से पूछे पूरी मदद कैसे दें यह सोचकर मेजर बाकर साहब की मुहतमी में १६०० आदमी भेजे जो आनन्दराव पल्टन से मिल के कड़ी पर चढ़ दौड़े । उस समय मल्हारराव ने, मुझ से चूक हुई हम सब फेर देंगे, यह कह के मेल का पैगाम डाला । पर उस के जी में छल था । इसी से जब ये लोग बेखबर थे तब छापा मारा पर बाकर साहब की बुद्धिमानी से फौज बच गई । थोड़े दिन में मालूम हुआ कि मल्हार ने आनन्दराव के बहुत से लोग मिला लिए जिस से वाकर साहब को उस समय अपनी रक्षा के सिवा और कुछ न सूझी और बम्बई कुमक भेजने को लिखा । एप्रिल को २३ तारीख को बम्बई से कुछ लोगों को मदद आ गई और वे लोग खाई खोद कर कड़ी का किला घेर कर पड़े रहे । गायकवाड़ और सर्कार की फौज ने मिल कर कड़ी जीत लिया जिस में ११३ सर्कारी आदमी मरे, मल्हारराव सर्कार के आधीन हुआ और सवा लाख रु. साल नरियाद की आमदनी में से देकर वहीं उस को नजरबन्द रखा और कड़ी का किला गायकवाड़ के अधिकार में आया । मल्हारराव का पक्षपाती गणपतराव गायकवाड़ बड़ोदे के पास लड़ता था सो संकरं के किले में बन्द हुआ । सर्कार ने वह किला भी छीन लिया और गणपतराव और गोविन्दराव का दासीपुत्र मुरारराव ये दोनों धार भाग गए और वहां के पवांर राजा के आश्रय में रहे, थोड़े दिन पीछे अरब लोगों ने अपनी तनखाह न मिलने के बहाने बड़ा उपद्रव किया आनन्दराव को कैद कर लिया और कान्होवा को कैद से छोड़ दिया । मेजर बाकर ने पहिले तो उन्हें बहुत समझाया फिर दस दिन तक खूब लड़े और अन्त में जब किले की दीवार तोड़ा तब अरब लोगों ने हार कर मेल करना चाहा । इस लड़ाई में अच्छे अच्छे अंग्रेजी सरदार मारे गए । सवा सत्रह लाख तनखाह बाकी देकर इस करार कर मेल हुआ कि वे लोग अपने देश या राज के बाहर चले जायं । उस में बहुत तो चले गए पर आबू जमादार राज पिंपली गांव में कान्होवा से जा मिला । कान्होवा ने फिर मार धाड़ लूट खसोट शुरु की, पर अन्त में होम्स साहब से हार कर उज्जैन में जा रहा । हां हां इस के सिवा एक बात और भी है । एक दफे बड़ोदा के वकील बाप मैराल को बाजीराव ने कहा कि बड़ौदा वालों के यहां हमारा एक करोड़ा रुपया बाकी है । सो उसमें से सत्रह लाख हम छोड़ देते हैं बाकी इनसे दिलवा दो । बाजीराव ने केवल दगाबाजी से बड़ोदे पर हाथ डालने को यह युक्ति की थी, बड़ोदे वाले कहते थे कि हम ने जो बहुत से पेशवा के काम किए हैं उसके बदले हमी को अभी कुछ चाहिए, गंगाधरशास्त्री पट्टवर्धन को गायकवाड़ ने सर्कार की रक्षा में पेशवा के यहां भेजा । पेशवा ने कछु बात तै नहीं की और शिष्टाचार में लगा कर शास्त्री को लेकर अपने सलाही त्रिंबक जी डेगला के साथ पंडरपुर गया और वहां छल से १८१५ की चौदहवीं जुलाई को शास्त्री को किसी सिपाही से मरवा डाला । सरकार ने इस बात पर अत्यन्त क्रोध किया और चारों ओर से पेशवा पर फौज भेजी जिस से पेशवा ने अन्त में हार कर त्रिंबक को सरकार के हवाले किया और आगे से बड़ोदावालों को छेड़ने का हाथ उठाया । हाय ! यह वही बड़ोदा है जिस पर सरकार की सदा से ऐसी छाया रही ।

(ऊपर देख कर) क्या कहा 'हां कहे चलो' जाने दो इन पुराने पचड़ों को लेकर कौन रोवै पर भाई आर्चसन साहब ने अपने अहदनामों में लिखा है कि खंडेराव और मल्हारराव के सिवाय पीलजी गायकवाड़ के असली और नसली वंश में और कोई नहीं है ; तब मल्हारराव का वंश राज पर बैठने से रोका जाय यह तनिक अनुचित मालूम होता है । अनुचित काहे को है सन् १८०२ में जो अहदनामें हुए हैं उनमें तो सर्कार को गायकवाड़ की खानगी बातों में बिलकुल अधिकार है । फिर यह रोना क्या । हम तो जानते हैं कि जब मल्हारराव ने लक्ष्मीबाई से विवाह किया तभी से उसकी बड़ी बहिन दरिद्राबाई भी इनके ताक में भी और समय पाकर अपनी बहिन के पास आ गई । शास्त्रों में लिखा है कि लक्ष्मी दरिद्रा दोनों बहिन हैं । पर भाई ! यह कन्या फली नहीं मुद्राराक्षस की विषकन्या हो गई । अत्त भी तो बड़ी हुई । सुना है कि जब महाराज शहर के अमीरों के घर में जाते थे तो उनके डर के मारे औरतें कुएँ में उतारी जाती थीं । क्या हुआ सनातन से चली आई है । अग्नि वर्ण भी तो ऐसा ही था ।

'अंकमंकपरिवर्त्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यताभुभे ।
बल्लकींच हृदयंगमस्वना वल्गुवागपिच वामलोचना'।

और नहीं तो क्या । या बगल मो महाताब हो या आफताब या साकी हो या शराब । भला रावन इन से बढ़ के था कि ये रावन के बढ़ के ? एक बात में ये रावन से बढ़ गये कि ऐसे काल में और सरकार के राज्य में इन्होंने ऐसा उपद्रव किया ! धन्य भारत भूमि ! तुझै ऐसी ही पुत्र प्रसव करने थे । हाय ! मुहम्मदशाह और वाजिदअलीशाह तो मुसलमान हो के छूटे पर मल्हारराव का कलंक हिन्दुओं से कैसे

छूटैगा । विधवा विवाह सब कराया चाहते हैं पर इसने सौभाग्यवती विवाह निकाला । भला मुसलमान होता तो तिलाक दिलवा के भी हलाल कर लेता । पर तिलाक कहां, लक्ष्मीबाई के खसम ने तो नालिश की थी । सच है यह ऐसे ही हजरत थे । हमारे सरकार के विरुद्ध जो कुछ कहै वह झख मारै । यदि ऐसे लोगों के उचित दंड न हो तो वे लोग न जानैं क्या अनर्थ करैं । कहा भी तो है ।

'अदंड्यान दण्डयेत राजा दंड्यानेवाभिनन्दयन् ।
अयशोमहदाप्नोति नारकींचगतिंपरां ।।१।।''

(ऊपर देखकर) क्या कहा ? और खानदेश का एक कुमार गद्दी पर बैठा भी तो दिया गया । लो भया तब क्या हहाहा ! भला तब हम क्या इतना झँखते थे । अहा धन्य है सर्कार ! यह बात कहीं नहीं है । दूध का दूध पानी का पानी । और कोई बादशाह होता तो राज जप्त हो जाता । यह इन्हीं का कलेजा है । हे ईश्वर जब तक गंगा यमुना में पानी है तब तक इनका राज स्थिर रहै । अहा ! हमारी तो पुरोहिती फिर जगी । हमैं मल्हारराव से क्या काम, हमैं तो उस गद्दी से काम है ''कोउ नृप होउ हमैं का हानी'' धन्य अंगरेज ! राम और युधिष्ठिर का धर्म्मराज्य इस काल में प्रत्यक्ष कर दिखाया, अहाहा ! (ऊपर देखकर) क्या कहा ? कहो और क्या चाहते हो । भला और क्या चाहैंगे हमारा भंडपना जारी ही रहा बड़ोदा का राज फिर मुख से बसा तो अब और क्या चाहिए । और मल्हारराव का जो कहो तो उसका कौन सोच है, जैसे व्रत वैसे उद्यापन । विषस्यविषमौषधं, तो भी यह भरत वाक्य सफल हो ।

परतिय परधन देखि न नृपगन चित्त चलावैं ।
गाय दूध बहु देहिं, मेघ सुभ जल परसावैं ।।
हरि पद में रति होइ न दुख कोऊ कहं व्यापै ।
अंगरेजन को राज ईस इत थिर करि थापै ।।
श्रुति पन्थ चलैं सज्जन सबै सुखी होहिं तजि दुष्टभय ।
कविबानी थिर रस सों रहै भारत की नित होइ जय ।।

जवनिका गिरती है ।

इति विषस्यविषमौषधम् नाम भाणं ।

कर्पूर मंजरी

महाराष्ट्र के क्षत्रिय कवि राजशेखर की प्राकृत कृत'' सट्टक'' का अनुवाद है । चैत्रशुक्ल ९ सम्वत् १९३३ से शुरू हो'' कविबचन सुधा'' मे छपा । पुस्तकाकार पहला संस्करण बनारस आर्य यंत्रालय से सन् १८८२ मे निकला — सं०

कर्पूरी मञ्जरी

(सट्टक)

दोहा

भरित नेह नव नीर नीत, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ।।

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार— (घूमकर) हैं क्या हमारे नट लोग गाने बजाने लगें ? यह देखो कोई सखी कपड़े चुनती है, कोई माला गूंधती है, कोई परदे बांधती है, कोई चन्दन घिसती है ; यह देखो बंसी निकली, यह बीन की खोल उतरी, यह मृदंग मिलाए गए, यह मंजीरा झनका, यह

धुरपद गाया गया । (कुछ ठहर कर) किसी को बुलाकर पूछैं तो (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे कोई है ? पारि-पार्श्वक आता है ।

पा. — कहो, क्या आज्ञा है ?

सूत्र. — (सोच कर) क्या खेलने की तैयारी हुई ?

पारि. — हां, आज सट्टक न खेलना है ।

सूत्र. — किस का बनाया ?

पारि. — राज्य की शोभा के साथ अंगों की शोभा का ; और राजाओं में बड़े दानी का अनुवाद किया ।

सूत्र. — (विचार कर) यह तो कोई कूट सा मालूम पड़ता है (प्रगट) हां हां राजशेखर का और हरिश्चन्द्र का ।

पारि. — हां, उन्हीं का ।

सूत्र. — ठीक है, सट्टक में यद्यपि विष्कम्भक प्रवेशक नहीं होते तब भी यह नाटकों में अच्छा होता है। (सोचकर) तो भला कवि ने इस को संस्कृत ही में क्यों न बनाया, प्राकृत में क्यों बनाया ?

पारि. — आप ने क्या यह नहीं सुना है ?

जामैं रस कछु होत है, पढ़त ताहि सब कोय ।
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय ।।

और फिर

कठिन संस्कृत अति मधुर, भाषा सरस सुनाय ।
पुरुष नारि अन्तर सरिस, इन में बीज लखाय ।।

सूत्र. — तो क्या उस कवि ने अपना कुछ वर्णन नहीं किया ?

पारि. — क्यौ नहीं, उस समय के कवियों के चन्द्रमा अपराजित ही ने उसका बड़ा बखान किया है ।

निरभर बालक राज कवि, आदि अनेक कबीस ।
जाके सिखए तें भए, अति प्रसिद्ध अवनीस ।।
धवल करत चारहु दिसा, जाको सुजस अमन्द ।
सो शेखर कबि जग विदित, निज कुल कैरव चन्द ।।

सूत्र. — पर भला आज तुम को किस ने खेलने की आज्ञा दी है ?

पारि. — अवन्ती देश के राजा चारुधान की बेटी उसी कवि की प्यारी स्त्री ने, और यह भी जान रक्खो कि इस सट्टक में कुमार चन्द्रपाल कुन्तल देश की राजकुमारी को ब्याहेगा । तो अब चलो अपने २ स्वांग सजै, देखो तुम्हारा बड़ा भाई देर से राजा की रानी का भेस धर कर परदे के आड़ में खड़ा है ।

(दोनों जाते हैं)

पहिला अंक

स्थान — राजभवन

(राजा, रानी, विदूषक और दरबारी लोग दिखाई पड़ते हैं)

राजा — प्यारी, तुम्हें बसन्त के आने की बधाई है, देखो अब पान बहुत नहीं खाया जाता, न सिर में तेल देकर चोटी कस के गूंधी जाती है, वैसे ही चोली भी कस के नहीं बांधी जाती, न केसर का तिलक दिया जा सकता है, उसी से प्रगट है कि बसन्त ने अपने बल से सरदी को अब जीत लिया ।

रानी — महाराज ! आपको भी बधाई है, देखिए, कामी जन चन्दन लगाने और फूलों की माला पहिरने लगे, और दोहर पाएंते रक्खी रहती है, तौ भी अब ओढ़ने की नौबत नहीं आती ।

(नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं ।)

जै पूरब दिसि कामिनी कंत ।
चंपावति नगरी सुख समंत ।।
खेलत जीत्यौ जिन राढ़ देश ।
मोहत अनंग लखि जासु भेस ।।
क्रीड़ा मृग जाको सारदूल ।
तन बरन कान्ति मनु हेम फूल ।।
सब अंग मनोहर महाराज ।
यह सुखद होइ रितुराज साज ।।

मन्द मन्द लै सिरिस सुगन्धहि सरस पवन यह आवै ।
करि संचार मलय पर्वत पैं बिरहिन ताप बढ़ावै ।।
कामिनि जन के बसन उड़ावत काम धुजा फहरावे ।
जीवन प्रान दान सो बितरत वायु सबन मन भावै ।।१।।
देखहु लहि रितुराजहि उपबन फूली चारु चमेली ।
लपटि रही सहकारन सों बहु मधुर माधवी बेली ।।
फूले बर बसन्त बन बन मैं कहु मालती नबेली ।
तापैं मदमाते से मधुकर गूजंत मधुरस रेली ।।१ ।।

राजा — प्यारी, हम लोग तो आपस में बसन्त की बधाई एक दूसरे को देते ही थे अब इन दोनों कांचनचन्द्र और रत्नचन्द्र बन्दियों ने हम दोनों को बधाई दी । अब तुम इस बसन्तोत्सव की ओर दृष्टि करो । देखो कोइल कैसे पंचम सुर में बोलती है, हवा के झोंके से लता कैसी नाच रही है तरुन स्त्रियों के जी में कैसा इस का उत्साह छा रहा है और सारी पृथ्वी इस बसन्त की वायु से कैसी सुहानी हो रही है ।

रानी— महाराज ! बन्दी ने जैसा कहा है हवा वैसी ही बर रही है, देखिए यह पवन लंका के कनगूरों की पंगति में यद्यपि कैसा चंचल है पर अगस्त मुनि के आश्रम में उन के भय से धीरा चलता है, इसके झोंके से चन्दन कपूर कंगोल और केले के पत्ते कैसे झोंका खा रहे हैं, जंगलों में जहां सांप नाचते हैं और ताम्रपर्णी नदी की लहरों को यह स्पर्श करता है तो उन्हें दूना कर देता है ।

देखिये, कोयल मानों कामदेव की आज्ञा से इस चैत के त्यौहार में पुकार रही है कि तरुणिओ झूठा मान छोड़ो, अपने प्यारे को प्यार की चितवन से देखो, और दौड़ दौड़ के प्रीतम को गले लगाओ यह चार दिन की जवानी तो बहती नदी है, फिर यह दिन कहां और यह समय कहां ?

विदूषक— अरे कोई मुझे भी पूछो, मैं भी बड़ा पंडित हूं, जब मैंने अपना मकान बनाया था तो हजारों गदहों पर लाद लाद कर पोथियां नेव में भरवाई गई थीं और हमारे ससुर जनम भर हमारे यहां पोथी ही ढोते २ मरे, काले अक्षर दूसरों को तो कामधेनु हैं पर हमको भैंस हैं ।

विचक्षणा— इसी से तो तुम्हारा नाम लबार पांड़े हैं ।

वि.— (क्रोध से) हत तेरी की, दाई माई कुटनी लुच्ची मूर्ख ! अब हम ऐसे हो गए कि मजदूरिनैं भी हमैं हंसैं !

विच.— तुम्हारी माई कुटनी है तभी तुम ऐसे सपूत हुए, तुम से तो वे भाट अच्छे जो अभी गीत गा गए हैं, तुम्हैं इतनी भी समझ नहीं कि कुछ बनाओ और गाओ, यह सेखी और तीन काने ।

विदू.— अब हम इन के सामने गावेंगे, इनका मुंह है कि हमारी कविता सुनें हां अगर हमारे दोस्त महाराज कुछ कहें तो अलबत्ते गाऊं ।

राजा— हां, हां मित्र पढ़ो, हम सुनते हैं ।

विदू.— लाठी पर तमूरा बजा कर गाता है ।

आयो २ बसन्त आयो २ बसन्त ।
बन में महुआ टेसू फुलन्त ।।
नाचत है मोर अनेक भांति,
मनु भैंसा का पड़वा फूलफालि ।
बेला फूले बन बीच बीच,
मानो दही जमायो सींच सींच ।
बहि चलत भयो है मन्द पौन,
मनु गदहा का छान्यो पैर ।

तारीफ और वाह वाह करते जाइए नहीं न गाया जायगा, देखिए संगीत साहित्य दोनों एक ही साथ करना मेरा काम है ।

(गाता है)

गेंदा फूले जैसे पकौरि ।
लड्डू से फले फल बौरि बौरि ।
खेतन में फूले भातदाल ।
घर में फूले हम कुल के पाल ।।
आयो आयो बसन्त आयो आयो बसन्त ।।

(सब लोग हँसते हैं)

राजा— भला इनकी कविता तो हो चुकी अब बिचक्षणे ! तुम भी कुछ पढ़ो ।

विदू.— हां हां, हमारी बोली पर हंसती है तो यह पढ़ै बड़ी बोलने वाली इस को सिवाय टें टें करने के और आता क्या है, क्या ऐसी बदमाश स्त्री राजा के महल में रहने के योग्य है ? यह रात दिन महारानी का गहना चुरा कर अपने मित्रों को दिया करती है और उस पर हमारे काव्य पर हंसती है, सच है बन्दर आदी का स्वाद क्या जाने, हमारे काव्य पर रीझनेवाले महाराज हैं, तू क्या रीझेगी, अब देखते न हैं तू कैसा काव्य पढ़ती है ।

रानी— हां हां सखी विचक्षणे ! हम लोगों के आगे तो तू ने अपना बनाया काव्य कई बेर पढ़ा है, आज महाराज के सामने भी तो पढ़, क्योंकि विद्या वही जिस की सभा में परीक्षा ली जाय और सोना वही जो कसौटी पर चढ़े और शस्त्र वही जो मैदान में निकले ।

विचक्षणा— महारानी की जो आज्ञा (पढ़ती है)

फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाइ कूर,
कोकिल कुहूकि कल सबद सुनावैगो ।।
त्यौंही सखी लोक सबै गावैगो धमार धीर ।
हरन अबीर बीर सब ही उड़ावैंगो ।।
सावधान होहुरो वियोगिनी सम्हारि तन,
अतन तनकही मैं तापन तें तावैगो ।।
धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम,
कहर मचावत बसन्त अब आवैगो ।।

राजा— वाह वाह ! सचमुच विचक्षणा बड़ी ही चतुर है और कविता-समुद्र के पार हो गई है, यह तो सब कवियों की राजा होने योग्य है ।

रानी— (हंस कर) इस में कुछ सन्देह है हमारी सखी सब कवियों की सिरताज तो हुई ।

विदू.— (क्रोध से) तो महारानी स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं कि यह दासी विचक्षणा बहुत अच्छी है और कपिञ्जल ब्राहमण बहुत निकम्मा है ।

विचक्षणा— हैं हैं ! एक बारगी इतने लाल

पीले हो गए, जो जैसा है उसका गुण तो उस के काव्य ही से प्रकट हो गया, तुम्हारे काव्य की उपमा तो ठीक ऐसी है जैसे लम्बस्तनी के गले में मोती की माला, बड़े पेटवाली को कामदार कुरती, सिर मुण्डी के फूलों की चोटी और कानी को काजल ।

विदू.— सच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है सफेद फर्श का गोबर का चोंथ, सोने की सिकड़ी में लोहे की घण्टी और दरियाई की अंगिया में मूंज की बखिया ।

विचक्षणा— खफा मत हो, अपनी ओर देखो, आप आप ही हो, एक अक्षर नहीं जानते तिस पर भी हीरा तौलते हो, और हम सब पढ़ लिख कर भी अब तक कपास ही तौलती हैं ।

विदू.— बकबक किये ही जायगी तो तेरा दहिना और बायां युधिष्ठिर का बड़ा भाई उखाड़ लेंगे ।

विचक्षणा— और तुम भी जो टें टें किये ही जाओगे तो तुम्हारी भी स्वर्ग काट के एक ओर के पोंछ की अनुप्रास मूड़ देंगे और लिखने की सामग्री मुंह में पोत कर पान के मसाले का टीका लगा देंगे ।

राजा— मित्र ! इस के मुंह मत लगो, यह कविताई में बड़ी पक्की हैं ।

विदू.— (क्रोध से) तो साफ साफ क्यों नहीं कहते कि हरिश्चन्द्र और पद्माकर इसके आगे कुछ नहीं हैं ।

(क्रोध करके इधर इधर घूमता है)

विचक्षणा— चल, उसी खूंटी पर लटक जिस पर मेरा लहंगा रक्खा है ।

विदूषक— (क्रोध कर और सिर हिला के) और तू भी वहां जा जहाँ मेरी बुड्ढी मां के दांत गए । छि: ! हम भी बड़े २ दरबार से निकाले गए पर ऐसी अंधेर नगरी और चौपट राजा कहीं नहीं । यहां चरणामृत और शराब एक ही बरतन में भरे जाते हैं ।

विचक्षणा— भगवान करे इस दरबार से तुझे वह मिले जो महादेव जी के सिर पर है और तुझे वह शास्त्र पढ़ाया जाय जो कांटो को मर्दन करता है ।

विदूषक— लौंडिया फिर टें टें किये ही जाती है, खजाना लूट लूट के खाली कर दिया, इस पर भी मोढ़े पर बैठने वाली और गलियों में मारी मारी फिरने वली, हम कुलीन ब्राह्मणों के मुंह लगती है । जा तुझको सर्वदा वही फांकना पड़े जो महादेव जी अंग में पोतते हैं और तेरे हाथ सदा वही लगे जिस में धरम बंधता है ।

विचक्षणा— तेरे इस बोलने पर तो ऐसा जी चाहता है कि पान के बदले चरनदास जी से तेरा मुंह लाल कर दूं । फिट ।

विदू.— (बड़े क्रोध से ऊंचे स्वर से) ऐसे दरबार को दूर ही से नमस्कार करना चाहिए जहां लौंडियां पण्डितों के मुंह आवें । यदि हमें इसी उचक्की की बात सहनी हों तो हम बसुंधरा नाम को अपनी ब्राह्मणी ही की न चरनसेवा करें जो अच्छा अच्छा और गर्म २ खाने को खिलावे (ऐसा कहता हुआ क्रोध से चला जाता है) (सब लोग हंसते हैं) ।

रानी— महाराज कपिंजल बिना सभा ऐसी हो गई जैसे बिना काजल का श्रृंगार ।

नेपथ्य में ।

नहीं २ हम नहीं आवेंगे । विचक्षणा को खसम और राजा को मुसाहब कोई दूसरा खोज लो या आज ये हमारा काम वही गलितयौवना और चिपटे नाक कान वाली करेंगी ।

विचक्षणा— महारानी ! आपके आग्रह से यह कपिंजल और भी अकड़ा जाता है, जैसे सन की गांठ भिगाने से उलटी कड़ी होती है, उसको जाने दीजिए इधर देखिए यह गवांरिनों के गीतों और चांचर से मोहित सूर्य्य यद्यपि धीरे चलता है तो भी अब कितना पास आ गया है ।

(विदूषक घबड़ाया हुआ आता है)

विदूषक— आसन ! आसन !!

राजा— क्यो ?

विदूषक— भैरवानन्द जी आते हैं ।

राजा— क्या वही भैरवानन्द जो आज कल के बड़े प्रसिद्ध हैं ?

विदूषक— हां, हां ।

(भैरवानन्द आते हैं)

भै. न.— जंत्र न मंत्र न ज्ञान न ध्यान न जोग न भोग केवल गुरु का प्रसाद, पीने को मदिरा और खाने को मांस, सोने को स्त्री मसान का बास, लाख लाख दासी सब कड़े २ अंग सेवा में हाजिर रहैं पीए मद्य भंग, भिच्छा का भोजन और चमड़े का बिछौना, लंका पलंग सातों दीप नवों खण्ड गौना, ब्रह्मा विष्णु महेश पीर पैगम्बर जोगी जती सती बीर महाबीर हनूमान रावन महिरावन अकाश पताल जहां बांधू तहां रहे जो जो कहूँ सो सो करे, मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच, दोहाई पशुपति नाथ की, दोहाई कामाक्षा की, दोहाई गोरखनाथ की ।

राजा— महाराज ! प्रणाम !!

भै. न.— राजा ! विष्णु और ब्रह्मा तप करते २

थक गए पर सिद्धि मद्य और स्त्री ही में है यह महादेव जी ही ने जाना है तो वह कापालिकों के परम कुलगुरु शिव तेरा कल्याण करै ।

राजा — महाराज, आसन पर विराजए ।

भै. न. — हम रमते लोगों को बैठने से क्या काम, तब भी तेरी खातिर से बैठते हैं । (बैठता है) — बोल, क्या दिखावें ?

राजा — महाराज ! कुछ आश्चर्य दिखाइए ।

भैरवानन्द — क्या आश्चर्य दिखावें ?
सूरज बांधू चन्दर बांधू बांधू अगिन पताल ।
सेंस समुन्दर इन्दर बांधू औ बांधू जम काल ।।
जच्छ रच्छ देवन की कन्या बल लाऊं बांध ।
राजा इन्दर का राज डोलाऊं तो मैं सच्चा साध ।।
नहीं तो जोगड़ा । और क्या ।

राजा — (विदूषक के कान में) मित्र, तुम ने कहीं कोई बड़ी सुन्दर स्त्री देखी हो तो बुलवावें ?

विदूषक. — (स्मरण करके) हां ! दक्षिण देश में विदर्भ नाम नगर है वहां मैंने एक लड़की बड़ी सुन्दर देखी थी, वही बुलाई जाय ।

भैरवानन्द — बोल ! बुलाई जाय ?

राजा — हां ! महाराज ! पूर्णमांसी का चन्द्रमा पृथ्वी पर उतारा जाय ।

भैरवानन्द — (ध्यान करता है)
(पर्दे के भीतर से खिंची हुई की भांति एक सुन्दर स्त्री आती है और सब लोग बड़ा ही आश्चर्य करते हैं)

राजा — (आश्चर्य से) आहाहा ! जैसे रूप का खजाना खुल गया, नेत्र कृतार्थ हो गए, यह रूप, यह जोबन, यह चितवन, यह भोलापन, कुछ कहा नहीं जाता, मालूम होता है कि वह नहा कर बाल सुखा रही थी उसी समय पकड़ आई है, अहा ! धन्य है इसका रूप !!! इसकी चितवन कलेजे में से चित्त को जोरा-जोरी निकाले लेती है, इसकी सहज शोभा इस समय कैसी भली मालूम पड़ती है, अहा ! इसके कपड़े से जो पानी की बूंदे टपकती हैं वह ऐसी मालूम होती हैं मानों भावी वियोग के भय से वस्त्र रोते हैं, काजल आंखों से धो जाने से नेत्र कैसे सुहाने हो रहे हैं, और बहुत देर तक पानी में रहने से कुछ लाल भी हो गए हैं, बाल हाथों में लिए हैं उससे पानी की बूँदें ऐसी टपकती हैं मांनों चन्द्रमा का अमृत पी जाने से दो कमलों ने नागिनी को ऐसा दबाया है कि उनके पोंछ से अमृत बहा जाता है, भींगे वस्त्र से छोटे छोटे इसके कठोर कुच अपनी ऊंचाई और श्यामताई से यद्यपि प्रत्यक्ष हो रहे हैं तौ भी यह उन्हें बांह से छिपाना चाहती है, और वैसे ही गोरी गोरी जांघै इस के चिपके हुए भीगे वस्त्र से यद्यपि चमकती हैं तौ भी यह उन को दबाए देती है, वरञ्च इसी अंग उघरने से यह लजाकर सकपकानी सी भी हो रही है और योगबल से खिंच आने से जो कुछ डर गई है, इससे और भी चौकन्नी हो होकर भूले हुए मृगछौने की भाँति अपने चंचल नेत्र नचाती है ।

स्त्री — (चकपकानी सी होकर एक एक को देखती है) (आप ही आप) यह कौन पुरुष है जिस का देह गम्भीर और मधुर छबि का मानों पुंज है, निश्चय यह कोई महाराज है और यह भी महादेव के अंग में पार्वती की भाँति निश्चय इस की प्यारी महारानी हैं, और यह कोई बड़ा जोगी हैं, हो न हो यह सब इसी का खेल है (विचार करके) यद्यपि यह एक स्त्री के बगल में बैठा है तौ भी मुझे ऐसी गहरी और तीखी दृष्टि से क्यों देखता है (राजा की ओर देखती है ।)

राजा — (विदूषक से कान में) मित्र ! अभी जो इसने अपने कानों को छूने वाली चञ्चल चितवन से मुझे देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों मुझ पर किसी ने अमृत की पिचकारी चलाई वा कपूर बरसाया वा चांदनी से एक साथ नहला दिया या मोती का बुक्का छिड़क दिया ।

विदूषक — सच्च है, अहाहा ! वाह रे इस के रूप की छबि ! इसकी कमर एक लड़का भी अपनी मुट्ठी में पकड़ सकता है, और नेत्र की चञ्चलता देख कर पुरुष क्या स्त्री भी मोह जाती हैं, देखो यद्यपि इस ने स्नान के हेतु गहना उतार दिया है तो भी कैसी सुहानी दिखाई पड़ती है । सच्च है, सुन्दर रूप को तो गहना ऐसा है जैसा निर्मल जल को काई ।

राजा — ठीक है, इस की छबि तो आप ही कुन्दन की निन्दा करती है । तो गहने से इसे क्या, इस का दुबला शरीर काम की परतंचा उतारी हुई कमान है, और इस के गोरे गोरे गोल गालों में कनफूल की परछाहीं ऐसी दिखाती है जैसे चांदी की थालों में भरे हुए मजीठ के रंग में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब, इस के कर्णवलम्बी नेत्र मेरे मन को अपनी ओर खींचे ही लेते हैं ।

विदूषक — (हंस कर) जाना जाना ! बहुत बड़ाई मत करो ।

राजा — (हंस कर) मित्र ! हम कुछ झूठ नहीं कहते, तुम्ही देखो, यह बिना आभूषण भी अपने गुणों से भूषित है । जो स्त्रियाँ ऐसी सुन्दर हैं उन पर पुरुष को आसक्त कराने में कामदेव को अपना धनुष नहीं चढ़ाना पड़ता, देखो इसकी चितवन में मिठास के साथ स्नेह

भी झलकता है, इस के कान में नीले कमल के फूल झूलते हुए ऐसे सुहाते हैं मानो चन्द्रमा में सो दोनों ओर से कलंक निकला जाता है ।

रानी— अजी कपिंजल ! इनसे पूछो तो यह कौन हैं या मैं ही पूछती हूं । (स्त्री से) सुन्दरी, यहाँ आओ, मेरे पास बैठो और कहो तुम कौन हो ?

राजा— आसन दो ।

विदूषक— यह मैंने अपना दुपट्टा बिछा दिया है, विराजो (स्त्री बैठती है) ।

विदूषक— हां, अब कहो ।

स्त्री— कुन्तल देश में जो विदर्भनगर है, वहां की प्रजा का बल्लभ, बल्लभराज नामक राजा है ।

रानी— (आप ही आप) वह तो मेरा मौसा है ।

स्त्री— उसकी रानी का नाम शशिप्रभा है ।

रानी— (आप ही आप) और यही तो मेरी मौसी का भी नाम है ।

स्त्री— (आंख नीची कर के) मैं उन्हीं की बेटी हूँ ।

रानी— (आप ही आप) सच है, बिना शशिप्रभा के और ऐसी सुन्दर लड़की किस की होगी । सीप बिना मोती और कहाँ हो (प्रगट) तो क्या कर्पूरमंजरी तू ही है ?

स्त्री— (लाल से सिर झुका कर चुप रह जाती है) ।

रानी— तो आओ २ बहिन मिल तो लें ।

(कर्पूरमंजरी को गले लगा कर मिलती है)

कर्पूरमंजरी— बहिन, यह आज हमारी पहली भेंट है ।

रानी— भैरवानन्द जी की कृपा से कर्पूरमंजरी का देखना हमें बड़ा ही अलभ्य लाभ हुआ । अब यह पन्द्रह दिन तक यहीं रहे, फिर आप जोगबल से पहुँचा दीजिएगा ।

भैरवानद— महारानी की जो इच्छा ।

विदूषक— मित्र ! अब हम तुम दो ही मनुष्य यहाँ बेगाने निकले, क्योंकि ये दोनों तो बहिन ही हैं और भैरवानन्द जी इन दोनों के मिलाने वाले ठहरे, यह सरस्वती की दूसरी कुटनी भी एक प्रकार की रानी ही ठहरी, गए हम ।

रानी— विचक्षणा ! अपनी बड़ी बहन सुलक्षण से कह कि भैरवानन्द जी की पूजा कर के उन को यथायोग्य स्थान दे ।

विचक्षणा— जो आज्ञा ।

रानी— महाराज ! अब हम महल में जाते हैं, क्योंकि बहिन को अभी कपड़ा पहराना और सिंगार करना है ।

राजा— इस को सिंगारना तो मानों चंपे के थाल में कस्तूरी भरना है, पर सांझ हो चुकी है अब हम भी तो चलते हैं ।

(नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं)

प. बै.— (राग गौरी)

भई यह सांझ सबन सुखदाई ।
मानिक गोलक सम दिन मनि मनु संपुट दियो छिपाई ।।
अलसानी दृग मूंदि मूंदि कै कमल लता मन भाई ।
पच्छी निज निज चले बसेरन गावत काम बधाई ।।

दू. बै.— (राग पूरबी) देखो बीत चल्यो दिन प्यारे, आई गई रतियां हो रामा । दीपक बरे निकस चले तारे हो, हिलत नहीं पतियां हो रामा ।। दासिन महलन सेज बिछाई हो मान मई मतियां रामा । काम छोड़ि घर फिरै सबै नर हो, लगीं तिय छतियां हो रामा ।।

(जवनिका गिरती है ।)

पहला अंक समाप्त हुआ ।

दूसरा अंक

स्थान राजभवन

(राजा और प्रतिहारी आते हैं)

प्र.— इधर महाराज इधर ।

राजा— (कुछ चल कर सोच से) हा ! उस समय वह यद्यपि कुच नितम्ब भार से तनिक भी न हिली, परन्तु त्रिबली के तरंग भय श्वास से चंचल थे,और गला तिरछा था, मुखचंद्र हिलने से बेणी ने कंचुकी की आलिंगन किया था, सो छबि तो भुलाए भी नहीं भूलती ।

प्रतिहारी— (आप ही आप) क्या अब तक वही गेंद वही चौगान ! अच्छा देखो, हम इनका चित्त बसन्त के वर्णन से लुभाते हैं । (प्रत्यक्ष) महाराज ! इधर देखिए, कोकिल के कण्ठ खोलनेवाले भ्रमरों की झंकार में माधुर्य्य उत्पन्न करनेवाले और बिरहियों के चित्त पंचम स्वर से घूर्णित करनेवाले चैत के दिन अब कुछ बड़े होने लगे ।

राजा— (सुन कर अनुराग से) सच्च है, तभी न लावन्य जल से पूरित अनेक विलास हास से छके सब की सुंदरता जीतनेवाले उस के नील कमल से नेत्रों को

स्मरण करके श्रृंगार को जगाते हुए कामदेव ने वियोगियों पर यह कठिन धनु कान तक तान कर तीर चढ़ाया है, (पागल की भांति) हा ! वह हरिननयनी मानों चित्त में घूमती है, उस के गुण नहीं भूलते, सेज पर मानों सोई हुई है, और मेरे साथ ही साथ चलती है, प्रति शब्द में मानों बोलती है, और काव्यों से मानों मूर्तिमान प्रगट होती है, हा ! जिस को उसने नेत्र भर नहीं देखा है जब वे बसन्त ऋतु के पंचम गान से मरे जाते हैं तो जिन्हें उस ने पूर्णदृष्टि से देखा है उन्हें तो तिलांजुलि ही देना योग्य है । हाय ! उस के दूध के धोए सफेद कोए में काली भंवरे सी पुतली कैसी शोभित हैं, जिन की दृष्ठि के साथ ही कामदेव भी हृदय में प्रवृष्ट हो जाता है । (विचार कर के) प्यारे मित्र ने क्यों देरी लगाई ।

(विचक्षणा और विदूषक आते हैं ।)

विदू.— तो विचक्षणा तुम सच कहती हो न ?

विच.— हां हां सच है, वाह ! सच नहीं क्या भूठ कहैंगे ।

विदू.— हम को तुम्हारी बात का विश्वास इससे नहीं आता कि तुम बड़ी हंसोड़ हौ ।

विच.— वाह ! हंसी की जगह हंसी होती है, काम की बात में हंसी कैसी ?

विदू.— (राजा को देख कर) अहा ! प्यारे मित्र यह बैठे हैं, हा ! बिना हंस के मानस, बिना मद के हाथी, तुषार के कमल, दिन के दीपक और प्रात :काल के पूर्णचन्द्र की भांति महाराज कैसे तनछीन मनमलीन हो रहे हैं ।?

दोनों— (सामने जाकर) महाराज की जय हो ।

राजा— कहो मित्र, तुम्हें विचक्षण कहां मिली ?

विदू.— महाराज ! आज विचक्षणा मुझ से मित्रता करने आई थी, इन्ही बातों में तो इतनी देर लगी ।

राजा— क्यों, विचक्षणा तुम से क्यों मित्रता करैगी ?

विदू.— क्यौंकि आज यह किसी बड़े प्यारे मनुष्य की पत्नी हाथ में लिए है ।

राजा— और भला यह केवड़ा कहां से आया ?

विच.— केवड़े ही के पत्र पर पत्नी लिखी है ।

राजा— बसन्त ऋतु में केवड़ा कहा से आया ?

विच.— भैरवानन्द जी ने अपने मंत्र के प्रभाव से महारानी के महल के सामने एक लाठी को केवड़े का पेड़ बना दिया, महारानी ने भी आज हिंडोलनर्तनी चतुर्थी के पर्व से उन्हीं पत्तों से महादेव जी की पूजा की, और दो पत्ता अपनी छोटी बहिन कर्पूरमंजरी को दिया, उस ने भी एक पत्ता मंगला गौरी को चढ़ाया, और दूसरे पत्ते की पुड़िया यह आप के भेंट है जिस में कस्तूरी के अक्षरों से छन्द लिखे हैं ।

(पत्र राजा को देती है)

राजा— (खोल कर पढ़ता है)

जिमि कपूर के हंस सों, हंसी धोखा खाय ।
तिमि हम तुम सों नेह करि, रहे हाय पछिताय ।।

(इस को बारम्बार पढ़ कर) अहा ! यह वही मदन के रसायन अक्षर हैं ।

विच.— महाराज ! दूसरा छन्द मैं ने अपनी प्यारी सखी की दशा में बना के लिखा है ; उसे भी पढ़िए ।

राजा— (पढ़ता है)

बिरह अनल दहकत तिनत छाती ।
दुखद उसास बढ़त दिन राती ।।
गिरत आंसु संग सखि कर चूरी ।
तन सम जियन आस भई भूरी ।।

विच.— और अब मेरी बहिन ने जो उस का हाल लिखा है वह पढ़िए ।

राजा— (पढ़ता है)

तुम बिन तासु उसास गुरु, भए हार के तार ।
तन चंदन पति जात हैं, बिरह अनल संचार ।।
तन पीरो दिन चंद सम, निस दिन रोअत जात ।
कबहुं ताको मुख कमल, मृदु मुसकनि बिकसात ।।

राजा— (लम्बी सांस लेकर) भला कविता में तो वह तुम्हारी बहिन ही है, इसका क्या कहना है ।

विदू.— महाराज ! विचक्षणा पृथ्वी की सरस्वती और इसकी बहिन त्रैलोक्य की सरस्वती, भला इसका क्या पूछना है, पर हम भी अपने मित्र के सामने कुछ पढ़ना चाहते हैं ।

जबसों देखी मृगनयनि, भूल्यो भोजन पान ।
निसदिन जिय चिन्तत वहै, रुचत और नहिं आन ।।
मलय पवन तापत तनहि, फूल माल न सुहात ।
चंदन लेप उसीर रस, उलटो जारत गात ।।
हार धार तरवार से, सूरज सों बढ़ि चंद ।
सबहीं सुख दुखमय भयो, परे प्रान हू मंद ।।

राजा— प्रान न मंद होंगे, अभी थोड़ी ही देर में लड्डू से जिला दिए जायंगे । अब यह कहो कि रनिवास में फिर क्या क्या हुआ ?

विदू.— विचक्षणा, कहो न क्या क्या हुआ ?

विच.— महाराज ! स्नान कराया, वस्त्र पहिनाया, तिलक लगाया, आभूषण साजे और मनाकर

प्रसन्न किया ।

राजा— कैसे ?

विच.— गोरे तन कुमकुम सुरंग, प्रथम न्हवाई बाल ।

राजा— सोतो जनु कंचन तप्यो, होत पीत सों लाल ।।

विच.— इन्द्रनीलमणि पैंजनी, ताहि दई पहिराय ।

राजा—कमल कली जुग घेरि कै, अलि मनु बैठे आय ।।

विच.— सजी हरित सारी सरिस, जुगल जघ कहं घेरि ।

राजा— सो मनु कदली पात निज, खंभन लपट्यौ फेरि ।।

विच.— पहिराई मनि किंकिनी, छीन सुकटि तट लाय ।

राजा— सो सिंगार मंडप बंधी, बंदनमाल सुहाय ।।

विच.— गोरे कर कारी चुरी, चुनि पहिराई हाथ ।

राजा— सों सांपिन लपटी मनहुं, चंदन साखा साथ ।।

विच.— निज कर सों बांधन लगी, चोली तब वह बाल ।

राजा— सो मनु खींचत तीर भट, तरकस ते तेहि काल ।।

विच.— लाल कंचुकी में उगे, जोबन जुगल लखात ।

राजा— सो मानिक संपुट बने, मन चोरी हित गात ।।।

विच.— बड़े बड़े मुक्तान सों, गल अति सोभा देत ।

राजा— तारागन आए मनौ, निज पति ससि के हेत ।।

विच.— करनफूल जुग करन में, अतिहि करत प्रकास ।

राजा— मनु ससि लै द्वै कुमुदिनी, बैठ्यौ उतरि अकास ।।

विच.— बाला के जुग कान में, बाला सोभा देत ।

राजा— स्रवत अमृत ससि दुहुं तरफ, पियत मकर करि हेत ।

विच.— जिय रंजन खंजन दृगनि, अंजन दियो बनाय ।।

राजा— मनहु सान फेर्यौ मदन, जुगल बान निज लाय ।।

विच.— चोटी गुथी पाटी सरस, करिकै बांधे केस ।

राजा— मनहु सिंगार इकत्र ह्वै, बंध्यो यार के वेस ।।

विच.— बहुरि उढ़ाई ओढ़नी, अतर सुबास बसाय ।

राजा— फूल लता लपटी किरिन, रवि ससि की मनुआय ।।

विच.— एहि विधि सो भूषित करी, भूषण बसन बनाय ।

राजा— काम बाग झालरि लई, मनु बसत ऋतु पाय ।।

विदू.— महाराज ! मैं सच कहता हूं ।

दृग काजर लहि हृदय वह, मनिमय हारन पाय ।
कंचन किंकिनि सों सुभग, ता जुग जंघ सुहाय ।।

राजा— (उस की बात का अनादर करके)

छि: । दृग पग पोंछन को किए भूषन पायंदाज ।

विदू.— (क्रोध से) वाह ! हम तो गहिने का वर्णन करते हैं और आप उसकी निन्दा करते हैं ।

अबि सुन्दर हूं कामिनी, बिनु भूषन न सुहाय ।
फूल बिना चम्पक लता, केहि भावत मन भाय ।।

राजा— (हंसकर) मूढ़ ।

बिनु भूषन सोहही, चतुर नारि करि भाव ।
चहिअत नहिं अंगूर को, मिश्री मधुर मिलाव ।।

विच.— महाराज ठीक है, जो नेत्र कान को छूए लेते हैं उनमें अंजन क्या, और जो मुख चन्द्रमा की निन्दा करता है उस को तिलक क्या, वैसे ही यद्यपि रूप के समुद्र से शरीर में काई से गहिनों की कौन आवश्यकता है, पर यह केवल लोक की चाल है, फूली हुई पीत चमेली को किसने गहिने से सजा है ।

राजा— कपिञ्जल सुनो, गहिना और कपड़ा तो नाचने वालियों का भूषण है, रूप वही है जो सहज ही चित्त चुरावे, सुभाव ही स्त्री की शोभा है, और गुण ही उसका भूषण है, रसिक लोग कभी ऊपर की बनावट नहीं देखते ।

विच.— महाराज ! मैं रानी की आज्ञा से केवल उस की सेवा ही नहीं करती, कर्पूरमंजरी को मेरे प्रेम से मुझ पर विश्वास भी है इसी से मैं भी उसे बहुत चाहती हूँ और आप से सच निवेदन करती हूँ कि वह निस्सन्देह विरह से बहुत ही दुखी है । क्योंकि

मदन दहन दहकत हिए, हाथ धर्‌यौ नहिं जात ।
करसों ससि की ओट कैं, बितवत सों नित रात ।।
मैं तो इतना ही कहे जाती हूँ बाकी सब कपिंजल कहेगा ।

(जाती है)

राजा— कहो मित्र और कौन काम है ?

विदू.— आज हिंडोल चतुर्थी के दिन रानी और कर्पूरमंजरी झूला झूलने आवेंगी और महाराज इसी केले के कुंज में छिपकर देखेंगे यही काम है । (कुछ सोचकर) अहा ! महारानी बड़ी चतुर हैं तौ भी हम ने कैसा छकाया, पुरानी बिल्ली को भी दूध के बदले मट्ठा पेलाया ।

राजा— मित्र तुम्हारे बिना और कौन हमारा काम ऐसा जी लगा के करै, समुद्र को चन्द्रमा के सिवाय और कौन बढ़ा सकता है ।

(दोनों केले के कुंज में जाते हैं)

विदू.— मित्र इन ऊँचे चबूतरे पर बैठो ।

राजा— अच्छा ।

(दोनों बैठते हैं)

विदू.— कहो पूर्णिमा का चन्द्र दिखाई पड़ा (एक ओर हाथ से दिखाता है) ?

राजा— (देखकर के) अहा ! यह तो सचमुच प्यारी का मुखचन्द्र दिखाई पड़ा ।

गयो जगत रमनी गरब, परयो मन्द नभ चन्द ।
सकुचि कमल जल मैं दुरे, भई कुमुद छबिमन्द ।।
झूलनि मैं किंकिन बजन, अंचल पट फहरान ।
को जोहत मोहत नहीं, प्यारी छबि इहि आन ।।

विदू.— आप सूत्रधार थे इस से आप ने बहुत थोड़े में कहा, हम भाष्यकार हैं इससे हम विस्तार पूर्वक कहते हैं ।

फूली फूलबेली सी नवेली अलबेली बधू,
झूलत अकेली काम केली सी बढ़ति है ।
कहै पद्माकर झमंकी की झकोरन सों,
चारों ओर सोर किंकिनीन को कढ़ति है ।।
उर उचकाई मचकीन की मचामच सो,
लंकहि लचाय चाय चौगुनी चढ़ति है ।
रति बिपरीत की पुनीत परिपाटी सुतौ,
हौंसनि हिंडोरे की सुपाटी मैं पढ़ति है ।।१।।
छाइहौं मलारे और जमाइहौं हिये में छबि,
छाइहौं छिगुनि कुंज कुंजहीं के कोरे मैं ।
कहै पद्माकर पियाइहौं पियाला मुख,
मुख सों मिलाइहौं सुगंध के झकोरे मैं ।।
नेह सरसाइहौं सिखाइहौं जो सासन मैं,
पाइहौं परी सो सुख मैंन के मरोरे मैं ।
उर उर सरझाइहौं हिए सों हिए लाइहौं,
झुलाइहौं कबैंधों प्रानप्यारी हिंडोरे मैं ।।२।।
रहसि रहसि हंसि हंसि के हिंडोरे चढ़ीं,
लेत खरी पेंगे छबि छाजें उसकन मैं ।
उड़त दुकूल उघरत भुज मूल बढ़ी,
सुखमा अतूल केस फूलन खसन मैं ।।
बोझल ह्वै देखि देखि भये अनिमेख लाल,
रीझत विसूर श्रम सीकर मसन मैं ।
ज्यौं, ज्यौं, लचि लचि लंक लचकत भावती की,
त्यौं त्यौं पिअ प्यायो गहै आंगुरी दसन मैं ।।३।।
झूलत पाट की डोरी गहे,
पटुली पर बैठन ज्यों उकुरू की ।
देवजू दै मचकी कटि बाजत,
किंकिनि केहर गोल उरू की ।।
सीखन के विपरीत मनों
ऋतु पावस ही चटसार सुरू की ।
खोंटी पटैं उचटैं तिय चोंटी
चमोटी लगै मानों काम गुरू की ।।
झूलति ना वह झूलनि बाल की,
फूलनि भाल की लाल पटी की ।
देव कहै लटकै कटि चंचल
चोली दृगंचल चाल नटी की ।।
अंचल की फहरान हिये,
रहि जान पयोधर पीन तटी की ।
किंकिनि की झमकानि झुलावनी,
झूकनि झुकि जानि कटी की ।।५।।

राजा— हाय हाय ! कर्पूरमंजरी झूले से क्यों उतरी ? झूल क्या खाली हुआ, हमारे मन के साथ देखनेवालों के नेत्र भी खाली हुए ।

विदू.— क्या बिजली की भांति चमक कर छिप गई ?

राजा— नहीं, बरन छलावे की भांति दिखाई पड़ी और फिर अन्तर्धान हो गई ।

(स्मरण कर के)

गोरी सो रंग उमंग भर्‌यो चित,
अंग अनंग को मंत्र जगाए ।।
काजर रेख खुभी दृग मैं दोउ,
भौंहन काम कमान चढ़ाए ।।
आवनि बोलनि डोलनी ताकी,
चढ़ी चित में अति चोप बढ़ाए ।
सुन्दर रूप सो नैनन में बस्यो,
भूलत नाहिनै क्यों हूँ भुलाए ।।

विदू.— मित्र, यही पन्ने का कुंज है, यहाँ बैठ के आप आसरा देखिए, अब सांझ भी हुआ चाहती है ।

(दोनों बैठते हैं)

राजा— मित्र, अब तो उस का विरह बहुत ही तपाता है ।

विदू.— तो हमारा लाठी पकड़े दम भर बैठे रहो तब तक ठण्ढाई की तयारी लावें ।
(कुछ आगे बढ़कर) वाह ! क्या विचक्षणा यहीं आती है ?

राजा— ज्यौं ज्यौं संकेत का समय पास आता है, त्यौं त्यौं उत्कण्ठा कैसी बढ़ती जाती है !

(लम्बी सांस लेकर)

ससि सम मुख दृग कुमुद से, कर पद कमल समान ।
चम्पा सो तन तदपि वह, दाहत मोहि सुजान ।

विदू.— अहा ! विचक्षणा तो ठण्ढाई लिए ही आती है ।

(विचक्षणा आती है ।)

विच.— अहा ! प्यारी सखी को विरह का ताप कैसा सता रहा है ।

विदू.— (पास जाकर) यह क्या है ?

विच.— ठण्ढाई ।

विदू.— किस के लिए ?

विच.— प्यारी सखी के वास्ते ।

विदू.— तो आधी हम को दो ।

विच.— क्यौं ?

विदू.— महाराज के वास्ते ।

विच.— कारण ?

विदू.— "कर्पूरमंजरी के वास्ते" कारण ।

विच.— तुम क्या नहीं जानते महाराज का वियोग ?

विदू.— तो तुम क्या नहीं जानती कर्पूरमंजरी का वियोग ?

(दोनों हंसते हैं)

विच.— तो महाराज कहां है ?

विदू.— तुम्हारी आज्ञानुसार पन्ने के कुंज में ।

विच.— तो तुम भी वहां जाके बैठो ! दम भर में ठण्ढाई के बदले दोनों को दर्शन ही से तरावट पहुंच जायगी ।

विदू.— तो वहां जाओ जहां से फिर न बहुरो ।

(विचक्षणा को ढकेलता है)

(दोनों आपस में धक्का मुक्की करते हैं)

विच.— छोड़ो छोड़ो ! रानी की आज्ञानुसार कर्पूरमञ्जरी आती होगी ।

विच.— रानी जी की क्या आज्ञा है ?

विच.— महारानी ने तीन पेड़ लगाये हैं ?

विदू.— किस के ?

विच.— कुरवक, तिलक और अशोक के ।

विदू.— फिर ?

विच.— महारानी ने कहा कि सुन्दर स्त्रियों के आलिंगन से कुरवक, देखने से तिलक और पैर के छूने से अशोक फूलता है, इस से तुम जाकर मेरे कहे अनुसार सब काम अभी करो, सो वह आती होंगी ।

विदू.— तो पन्ने के कुंज से प्यारे मित्र को लाकर इन तमालों की आड़ में बैठावें ।

(राजा को लाकर तमाल के पास बैठाता है)

विदू.— मित्र सावधान होकर अपने मन रूपी समुद्र के चन्द्रमा को देखो ।

राजा— (देखता है)

(सजी सजाई कर्पूरमंजरी आती है)

कर्पूर.— कहां से विचक्षणा ?

विच.— (पास जाकर) सखी, रानी की आज्ञा पूरी करो ।

राजा— मित्र, कौनसी आज्ञा ?

विदू.— घबराओ मत, चुपचाप बैठे बैठे देखा करो ।

विच.— यह कुरवक का पेड़ है ।

कर्पूर.— (आलिंगन करती है)

राजा—

करत अलिंगन ही अहो, कुरवक तरु इक साथ ।
फूल्यो उमगि अनन्द सों, परसि पियारी हाथ ।।

विदू.— मित्र, यह अद्‌भुत इन्द्रजाल देखो, जिससे छोटा सा कुरवक का पेड़ कैसा एक साथ फूल उठा ! सच है, दोहद के ऐसे ही विचित्र गुण होते हैं ।

विच.— और सखी यह तिलक का पेड़ है ।

कर्पूर.— (देर तक उसी की ओर देखती है)

राजा—

अहा, काजर भीनी काम निधि दीठि तिरीछी पाय ।
भर्‌यो मंजरिन तिलक तरु, मनहु रोम उलहाय ।।

विच.— सखी, अब इस अशोक की पारी है ।

कर्पूर.— (वृक्ष को लात मारती है ।)

विच.—

नूपुर बाजत पद कमल, परसत पुरतः अशोक ।

फूल्यौ तजि सब सोक निज, प्रगटि कुसुम कल थोक ।।

विदू.— मित्र, महारानी ने यह दोहद आपही क्यों न किया, आप इस का कारण कुछ कह सकते हैं ?

राजा— तुम्ही जानो ।

विदू.— मैं कहूं, पर जो आप रूठ न जायं ?

राजा— भला इसमें रूठने की कौन बात है, निस्सन्देह जो जी में आवे कह डाले ।

विदू.—

जदपि उतै रूपादि गुन, सुन्दर मुख तन केस ।
पै इत जोबन नृपति की, महिमा मिली विसेस ।।

राजा—

जदपि इतै जोबन नवल, मधुर लरकई चारु ।
पै उत चतुराई अधिक, प्रगटन रस ब्यौहारु ।।

विदू.— सच है जवानी और चतुराई में बड़ा बीच है ।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग चैती गौरी)

मन भावनि भई सांझ सुहाई । दीपक प्रकट कमल सकुचाने प्रफुलि कुमुदिनि निसि ढिग आई ।। ससि प्रकाश पसरित तारागण उगन लगे नभ में अकुलाई । साजत सेज सबै जुवती जन पीतम हित हिय हेत बढ़ाई । फूले रैन फूल बागन में सीतल पौन चली सुखदाई । गौरी राग सरस सुर सब मिलि गावत कामिनि काम बधाई ।।

राजा— मित्र, देखो सन्ध्या हुई ।

विदू.— तभी न बन्दियों ने सांझ के गीत गाए ।

कर्पूर.— सखी अंधेरा होने लगा, अब चलो ।

विच.— हां, चलना चाहिए ।

(जवनिका गिरती है)

इति द्वितीय अंक

तीसरा अंक

स्थान राजभवन

(राजा और विदूषक आते हैं)

राजा— (स्मरण करके) । उसकी मधुर छवि के आगे नया चन्द्रमा, चम्पे की कली,हलदी की गांठ, तपाया सोना और केसर के फूल कुछ नहीं है । पन्ने के हार और मालती की माला से शोभित उस का कण्ठ जी से नहीं भूलता और उस के कर्णावलम्बी नेत्र मेरे जी में अब तक खटकते हैं ।

विदू.— मित्र, स्त्रीजितों की भांति तुम क्यों व्यर्थ बकते हो ?

राजा— मित्र, स्वप्न में हम ने ऐसा ही मनुष्य रत्न देखा है ।

विदू.— कैसा ?

राजा— मैं ने देखा है कि वह कमलबदनी हंसती हुई मेरी सेज के पास आकर नीलकमल घुमाकर मुझे मारने चाहती है और जब मैंने उस का अंचल पकड़ा है तो वह चंचल नेत्रों को नचाकर अंचल छुड़ाकर भाग गई और मेरी नींद भी खुल गई ।

विदू.— (आप ही आप) तो कुछ हम भी कहैं । (प्रगट) मित्र, मैंने भी एक सपना देखा है !

राजा— (आशा से) हां मित्र, कहो कहो ।

विदू.— हम ने देखा है कि देवगंग के सोते में सोते सोते हम महादेव जी के सिर पर खेलने वाली नदी में जा पहुँचे हैं और फिर शरद ऋतु के मेघों ने हम को पेट भर के पीया है और तब हम हवा के घोड़े पर आकाशा की सैर करते फिरते हैं ।

राजा— (आश्चर्य से) हां, फिर ?

विदू.— फिर उसी मेघ में गुब्बारे की भांति बैठे बैठे ताम्रपर्णी नदी में पहुंचे हैं और जब सूर्य्य चित्रा नक्षत्र में गये तब समुद्र के ऊपर जाके वह मेघ बड़ी बड़ी बूंद से बरसने लगा और एक सीप ने मुंह खोल कर हमें भली भांति पीया है और उस के पेट में जाते ही हम छ माशे के मोती हो गये ।

राजा— (आश्चर्य से) फिर ?

विदू.— फिर हम समुद्र की लहरों से टक्कर लड़े और सैकड़ों सीपों में घूमते फिरे । अन्त में घिस घिसा कर सुन्दर गोल मटोल चमकीले मोती बन गए और हम को पूर्व जन्म का स्मरण ज्यों का त्यों बना रहा ।

राजा— (आश्चर्य से) फिर ९ ाा हुआ ?

विदू.— फिर समुद्र से वह सीप निकाल कर फाड़ी गई, तब हम एक दाने से चौंसठ होकर बाहर निकले और लाख अशरफी पर एक सेठ के हाथ बिके और जब उस ने उन मोतियों को बिधवाया तो हम को बड़ी पीड़ा हुई ।

राजा— (आश्चर्य से) हां तब ?

विदू.— फिर उस सेठ ने दस दस छोटे मोतियों के बीच हमें पिरोकर एक माला बनाई । तब हमारा दाम करोड़ों अशरफी से भी बढ़ गया और सोने के डिब्बे में रख के सागरदत्त सेठ ने पंजाब देश से कर्णउभ्क नगर के राजा श्री बज्रायुध के हाथ हमें बेच डाला ।

राजा— (घबड़ाकर) फिर क्या हुआ ?

विदू.— फिर उस की रानी के सुन्दर गले में थोड़ी देर तक हम भूला भूलते रहे, पर जब राजा ने उस का आलिंगन किया तो कठोर स्तन के धक्कों से पिस कर हम ऐसे चिल्लाये कि नींद खुल गई ।

राजा— (हंसता है)
समभा, यह तुम हमारा परिहास करते हो ।

विदू.— परिहास नहीं, ठीक कहते हैं । राज्य से छुटा हुआ राजा, कुटुम्ब में फँसी बालरण्डा, भूखा गरीब ब्राह्मण, और बिरह से पागल प्रेमी लोग मन के ही लड्डू से भूख बुभा लेते हैं । भला मित्र, हम यह पूछते हैं कि यह सब किसका प्रभाव है ।

राजा— प्रेम का ।

विदू.— भला रानी से इतना स्नेह होते भी कर्पूरमंजरी पर इतना प्रेम क्यौं करते हौ और फिर रानी रूप आदिक में किस से कमती है ?

राजा— यह मत कहो । किस २ मनुष्य से ऐसी प्रेम की गांठ बंध जाती है कि उस में रूप कारण नहीं होता । ऐसे प्रेम में रूप और गुण तो केवल चवाइयों के मुंह बंद करने के काम आता है ।

विदू.— तो प्रेम नाम आप के मत से किस का ?

राजा— नव यौवन वाले स्त्री पुरुषों के परस्पर अनेक मनोरथों से उत्पन्न सहज चित्त के विकार को प्रेम कहते हैं ।

विदू.— और उस में गुण क्या क्या हैं ?

राजा— परस्पर सहज स्नेह अनुराग के उमंगों का बढ़ना, अनेक रसों का अनुभव, संयोग का विशेष सुख, संगीत साहित्य और सुख की सामग्री मात्र को सुहाना कर देना और स्वर्ग का पृथ्वी पर अनुभव करना ।

विदू.— और वह जाना कैसे जाता है ।

राजा— लगावट की दृष्टि, नेत्रों का चञ्चल और चोर होना, अंग अंग के अनेक भाव और मुख की आकृति से ।

विदू.— हमारी जान में चित्त में जो बिहार के उत्साह होते हैं उसी का नाम प्रेम है । और उस को रूप नहीं है तो भी मनुष्य में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है । जहाँ कामदेव का इन्द्रजाल यह प्रेम स्थिर है वहां आभूषण और द्रव्य से क्या ?

राजा— (हंस कर) इस को द्रव्य और आभूषण ही की पड़ी रहती है । अरे !

कहा अभूषन कह वसन, का अनेक सिंगार ।
तिय तन सो कछु और ही ; जो मोहत संसार ।।
खञ्जनमद गञ्जन करन ; जग रञ्जन जे आहिं ।
मदन लुकञ्जन सरिस दृग, कह अंजन तिन माहिं ।।
धन कुल की मरजाद कछु, प्रेमपंथ नहिं होत ।
राव रंक सब एक से, लगत प्रनय रस सोत ।
धनिक बधू जो छबि लहत ; बेदी रतन जराय ।
ग्रामबधूटी हूँ सुई, कुकुम तिलक लगाय ।
"अगियारे तीखे दृगनि, किती न तरुनि जहान ।
वह चितवनि कछु और ही, जिंहिं बस होत सुआन" ।।

विदू.— यह ठीक है, पर लड़कई में जो रूप रहता है जवानी के सौन्दर्य से उस से कोई सम्बन्ध नहीं । यह क्यों ?

राजा— हमारे जान में जन्म लेनेवाला विधि दूसरा है । और उन्नत कुच उत्पन्न करने वाला दूसरा है । सुन्दरता से भरा अंग, कर्णावलम्वी नेत्रं, हारशोभी सत्न, क्षीण मध्य देश और गोल नितम्ब यही पांच अंग कामदेव के मुख्य सहायता होते हैं ।

(नेपथ्य में)

हाय ! इस ठण्ढे घर में भी कर्पूरमंजरी पसीने से तर हुई जाती हैं इस से इसे पंखा भलें ।

सखी कुरंगिक ! यह हिम उपचार तो मुभ कमल की लता को और भी मुरभा देगा ।

कमलनाल विषजाल सम, हार भार अहि भोग ।
मलय प्रलय जल अनल मोहि, वायु आयु हर रोग ।।

विदू.— प्यारे मित्र ने सुना ! तो अब इस अमृत के प्याले की उपेक्षा कब तक करोगे, चलो धूप से सूखती कमलिनी, बिना पानी की केसर की क्यारी, बालक के हाथ में रोली की पुतली, हरने के सींग में फंसी हुई चन्दर की डाल, और अनाड़ी के हाथ पड़ी मोती की सी कर्पूरमंजरी की दशा है, इस से चल कर शीघ्र ही उस को प्राणदान दो, लो न तुम्हारा सपना तो सच्च हुआ, चलो काम की पताका उड़ाओ, मदनमंत्र के हुंकार के साथ ही स्वेद का अभिषेक भी होय, चलो इसी खिड़की से चलें । (खिड़की की ओर चलना नाट्य करते हैं) (भीतरी परदा उठता है और एक घर में कुरंगिका और कर्पूरमंजरी बैठी दिखाई देती हैं) ।

कर्पूर.— (राजा को देखकर घबड़ा के) अहा ! क्या पूर्णिमा का चन्द आकाश से उतर आया या भगवान शिव जी ने रति की अधीनता पर प्रसन्न होकर फिर से कामदेव को जिला दिया, या वही छलिया आता है जिसने चित्त चुरा कर ऐसा धोखा दिया । सखी ! यह कुछ इन्द्रजाल तो नहीं है ?

विदू.— (राजा को दिखा कर) हां, सचमुच यह इन्द्रजाल का तमाशा है ।

कर्पूर.— (लाज से सिर नीचे कर लेती है)

कुरंगि.— सखी महाराज खड़े हैं और तू आदर करने को नहीं उठती ?

कर्पूर.— (उठा चाहती है)

राजा— बस बस, प्यारी, तुम अपने कोमल अंगों को क्यौं दुख देती हो ? जहां की तहां बैठी रहो ।
कुच नितम्ब के भार सों, लचि न जाय कटि छीन ।
रहो रही, बैठी रहो, करौ न आज नवीन ।।

विदू.— हाय हाय ! कर्पूरमंजरी को बड़ा पसीना हो रहा है । अच्छा, पंखा झलौं । (अपने दुपट्टे से पंखा झलता हुआ जान बूझ कर दिया बुझा देता है)। हहहह ! बड़ा आनन्द हुआ । दिया गुल पगड़ी गायब । अब बड़ा आनन्द होगा । महाराज ! देखिए कुछ अन्धेर न हो ।

राजा— तो सब लोग छत्त पर चलें, आओ प्यारी तुम हमारा हाथ पकड़ लो और अपनी मन्द चाल से हंसों को लजाओ (स्पर्श सुख नाट्य करके) अहा ! तुम्हारे अंग से छू जाते ही कदम्ब की भाँति हमारा अंग पुष्पित हो गया ।

(सब लोग चलना दिखाते हैं)

(नेपथ्य में प्रथम वैतालिक)

नव ससि उदय होइ सुखदायक । कुमकुम मुख मण्डित तिय मुख सम, देखहु उग्यो जामिनीनायक । अरुन दिसा प्राची रंग राची, तरुन करुन विरही जन घायक । रजनी लखि सजनी अनंग अब, तजत किरिन मिस तकि तकि सायक ।। पत्ररन्ध तें छनि छनि आवत, चांदनि रस सिंगार की वायक । तारागन प्रगटित नभ मण्डल, ससि राजा के संग जनु पायक । बिहरत तरुनि संजोगिन सों मिलि, लहि सब सुख रसिकन के लायक । प्रफुलित कुमुद देखि सरवर मह, गावत कम बधाई गायक ।।

(नेपथ्य में चन्द्रमा का प्रकाश होता है)

विदू.— कनकचन्द्र गा चुका अब माणिकचन्द्र गावै ।

(नेपथ्य में दूसरा वैतालिक गाता है)

रैन संजोगिन कों सुखदाई ।
तजत मानिनी मान चन्द लखि,
दूती तिन कहं चलत लिवाई ।।
कोमल सेज तमोल फूल मधु,
सुखद साज सब धरे सजाई ।
बिहरहिं कामिनि कामी जन संग,
लूटहिं सुख पीतम ढिग पाई ।।

विदू.—
दिसावधू चन्दन तिलक, नभ सरवर को हंस ।
काम कंद सम नभ उदित, यह ससि जगत प्रसंस ।।

कुरं.—
चंद उदय लखि कै मदन, कानन लों धनु तानि ।
जीत्यौ जग जुव जन सबैं, निसि निज अति बल जानि ।।
(कर्पूरमंजरी से) सखी अब तेरा बनाया चन्द्रमा का वर्णन महाराज को सुनाती हूँ ।

कर्पूर.— (लजा नाट्य करती है ।)

कुर.—
ससि अति सुन्दर ताहि कहुं दुष्टि नाहि लगि जाय ।
तातें दैव कलंक मिस, दियौ दिठौना लाय ।।

राजा— वाह वाह ! जैसा छंद वैसे ही बनाने वाले । फिर क्या पूछना है, कोमल मुख से जो अक्षर निकलेंगे वह क्यों न कोमल होंगे पर —
सिर दै कस्तूरी तिलक, सब विधि ससि छबि धारि ।
तुमहू तौ मम मन कुमुद, विकसावति सुकुमारि ।।

(चन्द्रमा की ओर)

तजौ गरब अब चन्द तुम, भूलौ मत मन माहिं ।
क्रोध हंसनि भ्रूभंग छबि, तुम मैं सपनेहु नाहिं ।।

(नेपथ्य में कोलाहल)

राजा— यह क्या कोलाहल है ?

क. म.— (भय से) कुरंगिके ! देखो तो यह क्या है ?

(कुरंगिका बाहर होकर आती है ।)

विदू.— जान पड़ता है कि यह सब बात रानी ने जान ली ।

कुरं.— हां ठीक है, महारानी हम लोगों को पकड़ने यहां आती हैं वही कोलाहल है ।

क.— (डर कर) तो हम लोग अब इस सुरंग की राह से महल में जाते हैं जिसमें महारानी महाराज के साथ हमैं न देखें ।

(सब जाना चाहते हैं । जवनिका गिरती है)

इति तृतीय अंक

चौथा अंक

(राजा और बिदूषक आते हैं ।)

राजा— अहा ! ग्रीष्म ऋतु भी कैसा भयानक होता है ! इस ऋतु में दो बातें अत्यन्त असह्य हैं — एक तो दिन की प्रचण्ड धूप, दूसरे प्यारे मनुष्य का वियोग ।

विदू.— संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते

हैं — एक सुखी एक दुखी । हम अच्छे न सुखी न दुखी, न संयोगी न वियोगी ।

(नेपथ्य में मैना बोलती है)

तो तेरा सिर टूट बेल सा क्यौं नहीं गिर पड़ता ?

राजा— मित्र खिलवाड़िन मैना क्या कहती है, सुनो ।

विदू.— (क्रोध से) अच्छा दुष्ट दासी देख अभी तुझ को पकड़ कर मरोड़ डालते हैं ।

(नेपथ्य में मैना बोलती है)

हां हां, निपूते जो हमैं पर न होते तू सब करता ।

राजा— (देख कर) क्य मैना उड़ गई ? (विदूषक से) कामी जनों की प्यारी इस गरमी की ऋतु में जब निशारूपी मैना जल्दी से उड़ जाती है तो यह मैना क्यों न उड़ै । क्यौं न हो, वा संयोगियों को तो ग्रीष्म भी सुखद ही है । दो पहर तक ठण्डे चन्दन का लेप, तीसरे पहर महीन गीले कपड़े, फुहारे, खसखाने और सांझ को जल बिहार और हिम से ठण्डी की हुई मदिरा और पिछली रात ठण्ढी हवा में विहार इत्यादि इस ऋतु में भी सुख के सभी साज हैं, पर जो करनेवाला हो ।

विदू.— ऐसा नहीं, मुंह भर के पान, पानी से फूली हुई सुपारी और कपूर की धूर और मीठा २ भोजन ही गरमी में सुखद होता है ।

राजा— छि :, इस गरमी में भी तुझे पान और मीठे भोजन की पड़ी है । गरमी में तो वायु के संयोग से जल, हिम में रखने से मदिरा, चन्दनलेप करने से स्त्री, सुन्दर कण्ड पाकर फूल और पंचम स्वर से पूरित हो कर वंशी यही पांच वस्तु ठण्डी हैं । तथा सिरीस के फूल के गहने, बेल की चोटी, मोतियों के हार, चम्पे की चम्पाकली, नेवारी के गजरे, जल भरी कुमुद की बिना डोरे की माला और हाथ में कमलनाल के कंकण यही सुन्दरियों को रत्नाभरण के बदले योग्य श्रृंगार हैं ।

विदू.— हम तो यही कहेंगे कि दो पहर को चन्दन लगाए, साँझ को नहाए मन्दवायु से कान का फूल हिलाने वाली स्त्री ही गरमी में सुखद होती है ।

राजा— (याद करके) देखो, जिन के प्यारे पास हैं उनको गरमी के बड़े बड़े दिन एक क्षण से बीतते हैं, पर जो अपने प्यारे से दूर पड़े हैं उन को तो ये दिन पहाड़ से भी बड़े हो जाते हैं, (विदूषक से) मित्र, कुछ उसी की बात कहो ।

विदू.— हां मित्र, सुनो, बहुत अच्छी २ बात कहेंगे । जब से कर्पूरमंजरी को गुप्त घर की सुरंग के दरवाजे पर महारानी ने देख लिया है तब से सुरंग का मुंह बन्द करके अनंगसेना, कलिंगसेना, बसन्तसेना और विभ्रमसेना, नामक चार सखियों को नंगी तलवार लेकर पूरब में, अनंगलेखा, चन्दनलेखा, चित्रलेखा, मृगांकलेखा, और विभ्रमलेखा इन पांच सखियों को धनुषदेकर दक्षिण में, और कुन्दनमाला, चन्दनमाला कुबलमाला, कांचनमाला, वकुलमाला, मंगलमाला और माणिक्यमाला इन सात सखियों को चोखे भाले देकर पश्चिम दरवाजे पर, और अनंगकेलि, कर्पूरकेलि कंदर्पकेलि और सुंदरकेलि, इन चार सखियों को खंग देकर उत्तर की ओर पहरे के वास्ते रक्खा है । और भी हजारों हथियारबन्द सखी चारों ओर फिरा करती हैं, और मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती और तांबूलवती ये पांच सोने की छड़ी हाथ में लेकर उस सेना की रक्षा करती हैं ।

राजा— वाहरे ठाट बाट ! महारानी सचमुच अपने महारानीपन पर आ गईं ।

विदू.— मित्र, महारानी के यहाँ से सारंगिका नाम की सखी कुछ कहने को आती है ।

(सारंगिका आती है)

सारंगिका— महाराज की जय हो । महाराज ! महारानी ने निवेदन किया है कि आज बटसावित्री का उत्सव होगा सो महाराज छत पर से देखें ।

राजा— महारानी की जो आज्ञा ।

(सारंगिका जाती है)

(राजा और विदूषक छत पर चढ़ना नाट्य करते हैं)

विदूषक— देखिए, मोतियों के गहने से लदीं हुई नृत्य में वस्त्र फहराने वाली स्त्रियां हीरे के नगीने से जलकरणों में कैसा परस्पर खेल रही हैं, इधर विचित्र प्रबंध से घूमनेवाली, फिरकी की भाँति नाचनेवाली और सम पर पांव रखनेवाली स्त्रियां कैसा परस्पर नाच रही हैं, कोई मंडल बाँधकर पंक्ति से, कोई दूसरी का हाथ पकड़कर और कोई अकेली ही नाचती हैं । नृत्य के श्रमश्वास से कुचों पर हार कम्पित होकर देखनेवालों के नेत्र और मन को अपनी ओर बुलाते हैं, सब देश की स्त्रियों के स्वांग बन कर कुछ स्त्रियां अलग ही कौतुक कर रही हैं । यह देखिये जिस ने भीलनी का स्वांग लिया है वह कैसी निर्ल्लज्ज और मत्तचेष्ठा करती है ? वैसे ही जो गंवारिन बनी है वह अपनी सहज सीधी और भोली चितवन से अलग चित्त चुराती है ; कोई गाती है, कोई हंसती है, कोई नकल करती है सब अपने २ रंग में मस्त हैं ।

(सारंगिका आती है)

सार.— (आप ही आप) अहा ! महाराज तो छत

पर पन्ने के बंगले में बैठे हैं (प्रगट) महाराज की जय हो। महाराज ! महारानी कहती हैं कि हम सांझ को महाराज का व्याह करेंगे।

विदूषक— ह हा ह हा ! वाह ! क्या अच्छी वे समय की रागिनी छेड़ी गई है।

राजा— सारंगिके ! सविस्तार कहो, तुम्हारी बात हमारी समझ में नहीं आती है।

सार.— विगत चतुर्दशी को महारानी ने मानिक्य की गौरी बनाकर भैरवानन्द जी के हाथ से प्रतिष्ठा कराई थी, सो जब महारानी ने भैरवानन्द जी से कहा कि आप कुछ गुरुदक्षिणा मांगिये तब उन्होंने कहा "ऐसी गुरुदक्षिणा दो जिसमें महाराज का कल्याण भी हो और वे प्रसन्न भी हों, अर्थात् लाट देश के राजा चन्द्रसेन की कन्या घनसारमंजरी को ज्योतिषियों ने बताया है कि जिस से इसका विवाह होगा वह चक्रवर्ती होगा। उसका महाराज से विवाह कर दो यही हमें गुरुदक्षिणा दो।" महारानी ने भी स्वीकार किया और इसी हेतु मुझे आपके पास भेजा है।

विदू.— वाह वाह ! सिर पर सांप और काबुल में वैद्य, आज व्याह और लाट देश में घनसारमंजरी।

राजा— इससे क्या ! भैरवानन्द के प्रभाव से सब निकट है।

सार.— महाराज, आम की बारी वाले चामुण्डा के मन्दिर में महारानी और भैरवानन्द जी आपका व्याह करेंगे सो आप यहां से कहीं मत टलियेगा।

(जाती है)

राजा— वह सब भैरवानन्द जी का प्रभाव है।

विदू.— सच है, चन्द्र बिना चन्द्रकान्तमणि को और कौन द्रवावै ?

(एक ओर बगीचे और मन्दिर का दृश्य)

(भैरवानन्द आता है)

भैरवानन्द— इस बट के मूल में सुरंग के दरवाजे पर चामुंडा की मूर्ति है तो यहीं ठहरैं। (हाथ जोड़कर) कल्पान्त महास्मशन रूपी क्रीड़ा मन्दिर में ब्रह्मा की खोपड़ी के कटोरे में राक्षसों का उष्ण रुधिर रूपी मद्यपान करने वाली कराली काली को नमस्कार है। (आगे बढ़कर) अभी तक कर्पूरमंजरी नहीं आई ? (सुरंग का मुंह खुलता है और उसमें से कर्पूरमंजरी निकलती है)

क. मं.— महाराज प्रणाम करती हूं।

भै. ब.— योग्य वर पाओ ! आओ, यहां बैठो

क. मं.— (बैठती है)।

भै. न.— अब तक रानी नहीं आई ?

(रानी आती है)

रानी— (आगे देख कर) अरे यही चामुण्डा हैं ? और कर्पूरमंजरी भी बैठी है। (भैरवानन्द से) महाराज, व्याह की सामग्री ले आवें ?

भै.नं.— हां रानी।

रानी— (आगे बढ़ती है।)

भै.नं.— (हंस कर) यह खोजने गई है कि हमारे पहरे में से कर्पूरमंजरी कैसे चली आई ? तो अच्छा बेटा कर्पूरमंजरी तुम सुरंग की राह से जाकर अपनी जगह पर बैठो, जब रानी देख ले तब चली आना।

क. मं.— जो आज्ञा (उसी की भांति जाती है)।

रानी— (आगे एक घर में झांक कर) अरे कर्पूरमंजरी तो यही है, वह कोई दूसरी होगी, बेटा कर्पूरमंजरी जी कैसी है ?

(नेपथ्य में) सिर में कुछ दर्द है।

रानी— तो चलें (आगे बढ़कर) लाओ जल्दी तयारी। (कर्पूरमंजरी सुरंग की राह से आकर अपनी जगह पर बैठती है)

रानी— (देखकर) अरे ! यहां भी कर्पूरमंजरी !

भै. नं.— बेटा विभ्रमलेखे ! व्याह की सामग्री ले आई ?

रानी— हां लाई सही, पर कर्पूरमंजरी के लायक आभूषण लाना भूल गई।

भै. नं.— तो लाओ जल्दी ले आओ।

रानी— जो आज्ञा (आगे बढ़कर उसी घर की ओर जाती है)

भै. नं.— बेटा कर्पूरमंजरी फिर वैसा ही करो।

क. मं.— जो आज्ञा (वैसे ही जाती है।)

रानी— (उसी घर के दरवाजे से झांककर) आहा ! मैं निस्संदेह ठगी गई, (प्रगट) अरे व्याह की तयारी लाओ (कर्पूरमंजरी वैसे ही आती है) (फिर भैरवानांद के पास आकर और कर्पूरमंजरी को देखकर) यह क्या चरित्र है ! हा ! हमारी चेष्टा इस योगीश्वर ने ध्यान से सब जानी होगी।

भै. नं.— रानी ! बैठो, महाराज भी आते होंगे। (राजा और विदूषक ऊपर से उतरते हैं और कुरंगिका आती है)

भै. नं.— महाराज विराजिए (सब बैठते हैं)

राजा— (कर्पूरमंजरी को देखकर) यह कामदेव की मूर्तिमान शक्ति है, वा श्रृंगार की साक्षात लता है, वा सिमटी हुई चन्द्रमा की चांदनी है, वा हीरे की पुतली है, वा बसन्तऋतु की मूल कला है, जिस को इसने एक बार देखा उसके चित्तरूपी देश में कामदेव का

निष्कंटक राज हुआ ।

विदू.— (धीरे से) वाहरे जल्दी, अरे अब तो क्षण भर में गोद ही में आई जाती है । अब क्या बक बक लगाए हो, कोई सुनैगा तो क्या कहैगा ?

रानी— (कुरंगिका से) तुम महाराज को गहिना पहिनाओ और सुरंगिका घनसार मंजरी को (दोनों सखियां वैसा ही करती हैं) ।

भै. नं.— उपाध्याय को बुलाओ ।

रानी— महाराज का पुरोहित आर्य्य कपिंजल बैठा ही है फिर किस की देर है ?

विदु.— हां हां, हम तो तय्यार ही हैं । मित्र, हम गंठबन्धन करते हैं, तुम कर्पूरमंजरी, का हाथ पकड़ो और कर्पूरमंजरी, तुम महाराज को पकड़ो (भूठ मूठ के अशुद्ध मंत्र पढ़ता है और वैदिकों की चेष्टा करता है) ।

भै. नं.— तुम निरे वही हौ कर्पूरमंजरी का घनसार मंजरी नाम हुआ ।

राजा— (कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़ कर आप ही आप) आहा ! इस के कोमल करस्पर्श से कदम्ब ओर केवड़े की भांति मेरा शरीर एक साथ रोमांचित हो गया ।

विदू.— अग्नि प्रगटाओ और लावा का होम करो

(राजा और कर्पूरमंजरी अग्नि की फेरी करते हैं कर्पूरमंजरी धुँए से मुंह फेरना नाट्य करती है) ।

रानी— अब विवाह हो गया, हम जाते हैं ।

(जाती है)

भै. नं.— विवाह की आचार्य्य दक्षिणा दीजिए ।

राजा— (विदूषक से) हां मित्र ! सौ गांव तुम को दिया ।

विदू.— स्वस्ति स्वस्ति (उठकर बगल बजाकर नाचता है) ।

भै. नं.— महाराज, कहिए और क्या होय ?

राजा— (हाथ जोड़ कर) महाराज ! अब क्या बाक़ी है ?

कुन्तल नृपकन्या मिली, चक्रवर्त्ति पद साथ ।
सब पूरे मनकाज मम, तुमपद बल ऋषिनाथ ।।
तब भी भरतवाक्य सत्य हो ।

उन्नत चित्त ह्वै आर्य्य परस्पर प्रीति बढ़ावैं ।
कपट नेह तजि सहज सत्य ब्यौहार चलावैं ।।
जवनसंसरगजात दोस गन इन सो छूटैं ।
सबै सुपथ पथ चलै नितही सुख सम्पति लूटैं ।।
तजि विविध देव रति कर्म मति एक भक्ति पथ सब गहै ।
हिय भोगवती सम गुप्त हरिप्रेम धार नितही बहै ।

।। इति ।।

श्री चंद्रावली

नाटिका

> सं. १९३३ सन् १८७६ में छपा मौलिक नाटक। इसका संस्कृत अनुवाद सं. १९३५ हरिश्चंद्र चंद्रिका में क्रमशः छपा था, यह अनुवाद पं. गोपालशास्त्री ने किया था। — सं.

समर्पण

प्यारे!

लो तुम्हारी चंद्रावली तुम्हें समर्पित है। अंगीकार तो किया ही है इस पुस्तक को भी उन्हीं की कानि से अंगीकार करो। इस में तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है। हाँ एक अपराध तो हुआ जो अवश्य क्षमा करना ही होगा। वह यह कि प्रेम की दशा छाप कर प्रसिद्ध की गई। वा प्रसिद्ध करने ही से क्या जो अधिकारी नही है उन के समझ ही में न आवैगा।

तुम्हारी कुछ विचित्र गति हैं। हमी को देखो। जब अपराधों को स्मरण करो तब ऐसे कि कुछ कहना ही नहीं। क्षण भर जीने के योग्य नहीं। पृथ्वी पर पैर धरने को जगह नहीं।मुंह दिखाने के लायक नहीं। और जो यों देखो तो ये लम्बे लम्बे मनोरथ। यह बोलचाल। यह ढिठाई कि तुम्हारा सिद्धान्त कह डालना। जो हो इस दूध खटाई की एकत्र स्थिति का कारण तुम्हीं जानो। इसमें कोई संदेह नहीं कि जैसे हों तुम्हारे बनते हैं। अतएव क्षमा समुद्र! क्षमा करो। इसी में निर्व्वाह है। बस—

भाद्रपद कृष्ण १४
सं. १९३३

हरिश्चन्द्र

श्रीचन्द्रावली
नाटिका

स्थान रंगशाला ।

(ब्राह्मण आशीर्वाद पाठ करता हुआ आया ।)

भरति नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अलौकिक घन कोऊ, लखि नाचत मन
मोर ।।१।।

(और भी)

नेति नेति तत शब्द प्रतिपाद्य सर्व्व भगवान ।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करौ कल्यान ।२

(सूत्रधार आता है)

सू.— बस बस बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं ? मारिष मारिष दौड़ो दौड़ो आज ऐसा अच्छा अवसर फिर न मिलैगा हम लोग अपना गुण दिखा कर आज निश्चय कृतकृत्य होंगे ।

(पारिपार्श्वक आकर)

पा.— कहो कहो, आज क्यौं ऐसे प्रसन्न हो रहे हो ? कौन सा नाटक करने का विचार है और उसमें ऐसा कौन सा रस है कि फूले नहीं समाते ?

सू.— आ : तुमने अब तक न जाना ? आज मेरा विचार है कि इस समय के बने एक नये नाटक की लीला करूँ क्यौंकि संस्कृत नाटकों को अपनी भाषा में अनुवाद करके तो हम लोग अनेक बार खेल चुके हैं फिर भी बारम्बार उन्हीं के खेलने को जी नहीं चाहता ।

पा.— तुमने बात तो बहुत अच्छी सोची, वाह क्यौं नहो, पर यह तो कहो कि वह नाटक बनाया किसने है ?

सू.— हम लोगों को परम मित्र हरिश्चन्द्र ने ।

पा.— (मुंह फेर) किसी समय तुम्हारी बुद्धि में भी भ्रम हो जाता है भला वह नाटक बनाना क्या जानै । वह तो केवल आरम्भशूर है और अनेक बड़े-बड़े कवि हैं, कोई उनका प्रवन्ध खेलते ?

सू.— (हंसकर) इसमें तुम्हारा दोष नहीं, तुमतो उस से नित्य नहीं मिलते, जो लोग उसके संग में रहते हैं वे तो उसको जानतें ही नहीं तुम विचारे क्या हौ !

पा.— (आश्चर्य से) हां मैं तो जानता ही न था, भला कहो उनके दो चार गुण मैं भी सुन सकता हूँ ।

सू.— क्यों नहीं, पर जो श्रद्धा से सुनो तो ।

पा.— मैं प्रति रोम को कर्ण बना कर महाराज पृथु हो रहा हूँ, आप कहिए ।

सू.— (आतन्द से) सुनो —

परम प्रेम निधि रसिक बर, अति आदर गुन खान ।
जग जन रंजन आशु कवि, को हरिचंद समान ।३
जिन श्री गिरिधरदास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस ।
ता सुत श्री हरिचन्द को, को न नवावै सीस ।४
जग जिन तृन सम करि तज्यौ, अपने प्रेम प्रभाव ।
करि गुलाब सो आचमन, लीजत वाको नांव ।५
चन्द टलै सूरज टलैं, टलैं जगत के नेम ।
यह दृढ़ श्री हरिचन्द को टलै न अविचल प्रेम ।६

पा.— वाह वाह ! मैं ऐसा नहीं जानता था, तब तो इस प्रयोग में देर करनी ही भूल है ।

(नेपथ्य में)

श्रवन सुखद भव भय हरन त्यागिन कों अत्याग ।
नष्ट जीव बिनु कौन हरि गुन सों करै विराग ।।
हम सौंहू तजि जात नहिं, परम पुन्य फल जौन ।
कृष्ण कथा सौं मधुर तर, जग मैं भाखौं कौन ।।८।।

सू.— (सुन कर आनन्द से) आहा ! यह देखो मेरा प्यारा छोटा भाई शुकदेव जी बनकर रंगशाला में आता है और हम लोग बातों ही से नहीं सुलझे । तो अब मारिष ! चलो, हम लोग भी अपना अपना वेष धारण करैं ।

पा.— क्षण भर ठहरो मुझे शुकदेव जी के इस वेष को शोभा देख लेने दो तब चलूँगा ।

सू.— जब कहा, अहा कैसा सुन्दर बना है, वाह मेरे भाई वाह । क्यौं न हो आखिर तो मुझ रंगरंज का भाई है ।।

अति कोमल सब अंग रंग सांवरो सलोना ।
घूंघर वाले बालन पै बलि वारौं टोना ।।
भुज विशाल मुख चन्द झलमले नैन लजौहैं ।
जुग कमान सी खिंची गड़त हिय में दोउ भौंहै ।।
छवि लखत नैन छिन नहिं टरत
शोभा नहिं कहि जात है ।
मनु प्रेमपुंज ही रूप धरि आवत आजु लखात है ।।९।।

।। दोनों जाते हैं ।।

।। इति प्रस्तावना ।।

(अथ विष्कम्भक

(आनन्द में झूमते हुए डगमगी चाल से शुकदेव जी आते हैं ।)

शु.— (श्रवन सुखद इत्यादि फिर से पढ़कर) अहा संसार के जीवों की कैसी विलक्षण रुचि है, कोई नेम धर्म में चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त, कोई मत मतान्तर के झगड़े में मतवाला हो रहा है, एक दूसरे को दोष देता है, अपने को अच्छा समझता है,

कोई संसार को ही सर्वस्व मानकर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मानकर घर बार तष्णा सा छोड़ देता है । अपने अपने रंग में सब रंगे है, जिसने जो सिद्धान्त कर लिया है वही उसके जी में गड़ रहा है और उसी के खंडन मंडन में जन्म बिताता है, पर वह जो परम प्रेम अमृत मय एकान्त भक्ति है जिस के उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह स्वरूप ज्ञान विज्ञानादि अंधकार नाश हो जाते हैं और जिस के चित्त में आते ही संसार का निगड़, आप से आप खुल जाता है —किसी को नहीं मिली मिलै ; कहाँ से, अब उस के अधिकारी भी तो नहीं है, और भी, जो लोग धार्मिक कहाते हैं उन का चित्त स्वगत स्थापन और पर मत निराकरण रूप वादविवाद से और जो विचारें विषयी हैं उनका अनेक प्रकार की इच्छा रूपी तृष्णा से, अवसर तो पाता ही नहीं कि इधर झुकें । (सोच कर) अहा इस मदिरा को शिवजी ने पान किया है और कोई क्या पियैगा ? जिस के प्रभाव से अर्द्धाङ्ग में बैठी पार्वती भी उन को विकार नहीं कर सकती, धन्य है, धन्य है और दूसरा ऐसा कौन है । (विचार कर) नहीं नहीं ब्रज की गोपियों ने उन्हें भी जीत लिया है, आहा इनका कैसा विलक्षण प्रेम है कि अकथनीय और अकरणीय है क्योंकि जहाँ माहात्म्य ज्ञान होता है वहां प्रेम नहीं होता और जहां पूर्ण प्रीति होती है वहां माहात्म्य ज्ञान नहीं होता । ये धन्य हैं कि इनमें दोनों बातें एक संग मिलती हैं, नहीं तो मेरा सा निवृत्त मनुष्य भी रात दिन इन्हीं लोगों का यश क्यों गाता है ?

(नेपथ्य में बीणा बजती है)

(आकाश की ओर देख कर और वीणा का शब्द सुनकर)

आहा ! यह आकाश कैसा प्रकाशित हो रहा है और बीणा के कैसे मधुर स्वर कान में पड़ते हैं ऐसा संभव होता है कि देवर्षि भगवान् नारद यहां आते हैं ? आहा ! बीणा कैसे मीठे सुर से बोलती है । (नेपथ्य पथ की ओर देखकर) अहा वही तो हैं, धन्य हैं कैसी सुन्दर शोभा है —

पिंग जटा को भार सीस पै सुन्दर सोहत ।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत ।।
कटि मृगपति को चरम चरन मैं घुंघरु धारत ।
नारायण गोविन्द कृष्ण यह नाम उचारत ।।
लै बीना कर बादन करत तान सात सुर सों भरत ।
जग अघ छिन मैं हरि कहि हरत
जेहि सुनि नर भवजल तरत ।।१०।।

जुग तूं बन की बीन परम शोभित मन भाई ।
लय अरु सुर की मनहुं जुगल गठरी लटकाई ।।
आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहैं ।
कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग मन मोहैं ।।
कै श्री राधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट ।
यह अगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो हू
अघट ।।११।।

मत्तु तीरथ भय कृष्ण चरित की कांवरि लीने ।
कौ भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने ।
जग बुधि तौलन हेत मनहुं यह तुला बनाई ।
भक्ति मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई ।
मनु गांवन सों श्री राग के बीना हू फलती भई ।
कै राग सिन्धु के तरन हित यह दोऊ तूं बी लई ।१२

ब्रह्म जीव, निरगुन सगुन, द्वैताद्वैत बिचार ।
नित्य अनित्य विवाद कै द्वै तूंबा निरधार ।।१३।।
जो इक तुंबा लै कढ़ै, सो बैरागी होय ।
क्यौं नहिं ये सब सौं बढ़ैं, लै तुंबा कर दोय ।।१४।।

तो अब इन से मिल के आज मैं परमानन्द लाभ करूंगा ।

(नारद जी आते हैं)

शु.— (आगे बढ़कर और गले से मिलकर) आइए आइए, कहिए कुशल तो है ? किस देश को पवित्र करते हुए आते हैं ?

ना.— आपसे महापुरुष के दर्शन हों और फिर भी कुशन न हो यह बात तो सर्वथा असम्भव है ; और आप से तो कुशल पूछना ही व्यर्थ है ।

शु.— यह तो हुआ अब कहिए आप आते कहां से हैं ?

ना.— इस समय तो मैं श्रीवृन्दावन से आता हूँ ।

शु.— अहा ! आप धन्य हैं जो उस पवित्र भूमि से आते हैं (पैर छू कर) धन्य है उस भूमि की रज, कहिए वहां क्या क्या देखा ?

ना.— वहां परम प्रेमानन्दमयी श्री ब्रजल्लवी लोगों का दर्शन करके अपने को पवित्र किया और उनकी बिरहावस्था देखता बरसों वहीं भूला पड़ा रहा, अहा ये श्री गोपीजन धन्य हैं, इनके गुणगण कौन कह सकता है ।

गोपिन की सरि कोऊ नाहीं ।
जिन तृन सम कुल लाज निगड़ सब तोरयौ हरि रस माहीं
जिन निज बस कीने नंदनन्दन बिहरी दै गलबांहीं ।
सब सन्तन के सीस रहौ इन चरन छत्र की छांहीं ।१५

ब्रज के लता पता मोहि कीजै ।
गोपी पद पंकज, पावन की रज जामैं सिर भींजै ।
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुध नित पीजै ।
श्री राधे राधे मुख यह बर मुंह मांग्यौ हरि दीजै ।।

(प्रेम अवस्था में आते हैं और नेत्रों से आंसू बहते हैं)

शु.— (अपने आंसू पोंछ कर) अहा धन्य हैं आप धन्य हैं, अभी जो मैं न सम्हालता तो बीना आप के हाथ से छूट के गिर पड़ती, क्यों न हो श्री महादेव जी के प्रीतिपात्र होकर आप ऐसे प्रेमी हों इसमें आश्चर्य नहीं ।

ना.— (अपने को सम्हाल कर) अहा ये क्षण कैसे आनन्द से बीते हैं, यह आप से महात्मा की संगत का फल है ।

शु.— कहिए, उन सब गोपियों में प्रेम विशेष किस का है ?

ना.— विशेष किसका कहूं और न्यून किसका कहूं, एक से एक बढ़ कर हैं । श्रीमती की कोई बात ही नहीं वह तो श्री कृष्ण ही हैं लीलार्थ दो हो रही हैं तथापि सब गोपियों में श्रीचन्द्रावली जी के प्रेम की चरचा आज कल ब्रज के डगर-डगर में फैली हुई है । अहा ! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता पिता भाई बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भी भय है तथापि श्रीकृष्ण से जल में दूध की भांति मिल रही हैं लोक लाज गुरुजन कोई बाधा नहीं कर सकते किसी न किसी उपाय से श्रीकृष्ण से मिल ही रहती हैं ।

शु.— धन्य हैं धन्य हैं, कुल को वरन जगत को अपने निर्मल प्रेम से पवित्र करने वाला है ।

(नेपथ्य में वेणु का शब्द होता है)

आहा यह वंशी का शब्द तो और भी ब्रजलीला की सुधि दिलाता है चलिए चलिए अब तो ब्रज का वियोग सहा नहीं जाता ; शीघ्र ही चल के उसका प्रेम देखैं, उस लीला के बिना देखे आंखे व्याकुल हो रही हैं ।

।। दोनों जाते हैं ।।

।। इति प्रेमसुख नामक विष्कम्भक ।।

प्रथम अंक

।। जवनिका उठी ।।

स्थान श्री वृन्दावन : गिरिराज दूर से दिखाता है ।

(श्री चन्द्रावली और ललिता आती हैं)

ल.— प्यारी व्यर्थ इतना सोच क्यौं करती है ?

च.— नहीं सखी मुझे सोच किस बात का है ।

ल.— ठीक है, ऐसी ही तो हम मूर्ख हैं कि इतना भी नहीं समझतीं ।

च.— नहीं सखी मैं सच कहती हूं, मुझे कोई शोच नहीं ।

ल.— बलिहारी सखी एक तू ही तो चतुर है, हम सब तो निरी मूर्ख हैं ।

च.— नहीं सखी जो कुछ शोच होता तो मैं तुझ से कहती न ? तुझ से ऐसी कौन बात है जो छिपाती ।

ल.— इतनी ही तो कसर है जो तू मुझे अपनी प्यारी सखी समझती तो क्यों छिपाती ?

च.— चल मुझे दुख न दे भला मेरी प्यारी सखी तू न होगी तो और कौन होगी ।

ल.— पर यह बात मुख से कहती है, चित्त से नहीं ।

च.— क्यौं ?

ल.— जो चित्त से कहती तो फिर मुझसे क्यों छिपाती ?

च.— नहीं सखी, यह केवल तेरा झूठा सन्देह है ।

ल.— सखी मैं भी इसी ब्रज में रहती हूं और सब के रंग ढंग देखती ही हूं तू मुझसे इतना क्यौं उड़ती है ? क्या तू यह समझती है कि मैं यह भेद किसी से कह दूंगी, ऐसा कभी न समझना सखी तू तो मेरी प्राण है मै तेरा भेद किससे कहने जाऊंगी ?

च.— सखी भगवान न करै कि किसी को किसी बात का सन्देह पड़ जाय जिस को सन्देह पड़ जाता है वह फिर कठिनता से मिटता है ।

ल.— अच्छा तू सौगंद खा ।

च.— हां सखी, तेरी सौगंद ।

ल.— क्या मेरी सौगंद ?

च.— तेरी सौगंद कुछ नहीं है ।

ल.— क्या कुछ नहीं है फिर तू चली न अपनी चाल से ? तेरी छल विद्या कहीं नहीं जाती, तू व्यर्थ इतना क्यों छिपाती है सखी तेरा मुखड़ा कहे देता है कि तू कुछ सोचा करती है ।

च.— क्यौं सखी मेरा मुखड़ा क्या कहे देता है ?

ल.— यही कहे देता है कि तू किसी की प्रीति में फंसी है ।

च.— बलिहारी सखी, मुझे अच्छा कलंक दिया ।

ल.— यह बलिहारी कुछ काम न आवैगी अन्त में फिर मैं ही काम आऊंगी और मुझी से सब कहना पड़ैगा क्यौंकि इस रोग का वैद्य मेरे सिवा दूसरा न मिलैगा ।

च.— पर सखी जब कोई रोग हो तब न ?

ल.— फिर वही बात कहे जाती है अब क्या मैं इतना भी नहीं समझती सखी भगवान ने मुझे भी आंखें,

दी हैं और मेरे भी मन है और मैं कुछ ईंट पत्थर की नहीं बनी हूँ ।

च.— यह कौन कहता है कि तू ईंट पत्थर की बनी है इससे क्या ?

ल.— इससे यह कि ब्रज में रहकर उससे वही बची होगी जो ईंट पत्थर की होगी ।

च.— किससे ?

ल.— जिसके पीछे तेरी यह दशा है ?

चं.— किसके पीछे मेरी यह दशा है ?

ल.— सखी तू फिर वही बात कहे जाती है । मेरी रानी, ये आंखें ऐसी बुरी हैं कि जब किसी से लगती हैं तो कितना भी छिपाओ नहीं छिपती ।

छिपाये छिपत न नैन लगे ।
उघरि परत सब जानि जात है घूंघट मैं न खगे ।
कितनो करौ दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे ।
निडर भए उघरे से डोलत मोहन रंग रंगे ।।

च.— वाह सखी क्यों न हो तेरी क्या बात है अब तूही तो एक पहेली बूझने वालों में बची है चल बहुत झूठ न बोल कुछ भगवान से भी डर ।

ल.— जो तू भगवान से डरती तो भूठ क्यों बोलती वाह सखी अब तो तू बड़ी चतुर हो गई है कैसा अपना दोष छिपाने को मुझे पहिले ही से झूठी बना दिया (हाथ जोड़कर) धन्य है तू दंडवत् करने के योग्य है कृपा करके अपना बायां चरण निकाल तो मैं भी पूजा करूं चल मैं आज पीछे तुझ से कुछ न पूछूंगी ।

च.— (कुछ सकपकानी सी होकर) नहीं सखी तू क्यों झूठी है झूठी तो मैं हूं और जो तूही बात न पूंछैगी तो कौन बात पूछैगा सखी तेरे ही भरोसे तो मैं ऐसी निडर रहती हूं और तू ऐसी रूसी जाती है !

ल.— नहीं बस अब मैं कभी कुछ नहीं पूछने की एक बेर पूछकर फल पा चुकी ।

च.— (हाथ जोड़कर) नहीं सखी ऐसी बात मुंह से मत निकाल एक तो मैं आप ही मर रही हूं तेरी बात सुनने से और भी अधमरी हो जाऊंगी (आंखों में आंसू भर लेती है) ।

ल.— प्यारी तुझे मेरी सौगन्द । उदास न हो मैं तो सब भाँति तेरी हूं और तेरे भले के हेतु प्राण देने को तैयार हूँ यह तो मैंने हंसी की थी क्या मैं नहीं जानती कि तू मुझसे कोई बात न छिपावैगी और छिपावैगी तो काम कैसे चलेगा देख !

हम भेद न जानिहै जो पै कछू
औ दुराव सखी हम मैं परि है ।
कहि कौन मिलै है पियारे पियै
पुनि कारज कासों सबै सरि है ।।
बिन मोसों कहे न उपाव कछू
यह वेदन दूसरी को हरि है ।
नहिं रोगी बताइहै रोगहि जौ
सखी वापुरो वैद कहा करि है ।।

च.— तो ऐसी कौन बात है जो तुझसे छिपी है तू जानबूझ के बार-बार क्यौं पूंछती है ऐसे पूछने को तो मुंह चिढ़ाना कहते हैं और इसके सिवा मुझे व्यर्थ याद दिलाकर क्यौं दुख देती है हा !

ल.— सखी मैं तो पहिले ही समुझी थी, यह तो केवल तेरे हट करने से मैंने इतना पूछा नहीं तो मैं क्या नहीं जानती ?

च.— सखी मैं क्या करूं मैं कितना चाहती हूं कि यह ध्यान भुला दूं पर उस निठुर की छबि भूलती नहीं इसी से सब जान जाते हैं ।

ल.— सखी ठीक है ।

लगैंहीं चितवनि औरहि होति
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति ।।
घूंघट मैं नहिं थिरत तनिक हूं अति ललचौंही बानि ।
छिपत न कैसहुं प्रीति निगौड़ी ये अन्त जात सब जानि।

च.— सखी ठीक है जो दोष है वह इन्हीं नेत्रों का है यही रीझते, यही अपने को छिपा नहीं सकते और यही दुष्ट अन्त में अपने किये पर रोते हैं ।

सखी ये नैना बहुत बुरे ।
तब सों भये पराये हरि सों जब सों जाइ जुरे ।।
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे ।।
मेरी सीख प्रीति सब छांड़ी ऐसे ये निगुरे ।।
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं हठ सों तनिक मुरे ।
अमृत भरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे ।।

ल.— इसमें क्या सन्देह है, मेरे पर तो सब कुछ बीत चुकी है । मैं इन के व्यवहारों को अच्छी रीति से जानती हूं । निगोड़े नैन ऐसे ही होते हैं ।

होत सखी ये उलझौहैं नैन ।
उरझि परत सुरझ्यो नहिं जानत सोचत समुझत हैं न।
कोउ नहिं बरजै जो इनको बनत मत्त जिमि गैन ।
कहा कहौं इन बैरिन पाछे होत लैन के दैन ।।

च.— और फिर इन का हठ ऐसा है कि जिस की छबि पर रीझते हैं उसे भूलते नहीं, और कैसे भूलैं, क्या वह भूलने के योग्य है हा !

नैना वह छबि नाहिं न भूले ।
दया भरि चहुं दिसि की चितवनि नैन कमल दल फूले ।।
वह आवनि वह हंसनि छबीली वह मुसकनि चितचोरै ।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहु कोरैं ।।

वह धीरी गति कमल फिरावत कर लै गायन पाछे ।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे ।।
पर बस भये फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे ।
हरि ससि मुख ऐसी छबि निरखत तन मन धन सबहारे।

ल.— सखी मेरी तो यह बिपति भोगी हुई है इस से मैं तुझै कुछ नहीं कहती ; दूसरी होती तो तेरी निन्दा करती और तुझे इस से रोकती ।

च.— सखी दूसरी होती तो मैं भी तो उससे यों एक संग न कह देती । तू तो मेरी आत्मा है । तू मेरा दुःख मिटावैगी कि उलटा समझावैगी ?

ल.— पर सखी एक बड़े आश्चर्य की बात है कि जैसी तू इस समय दुखी है वैसी तू सर्व्वदा नहीं रहती ।

च.— नहीं सखी ऊपर से दुखी नहीं रहती पर मेरा जी जानता है जैसे रातैं बीतती हैं ।

मन मोहन तें बिछुरी जब सों
तन आंसुन सों सदा धोवती हैं ।
हरिचंद जू प्रेम के फंद परी
कुल की कुल लाज हि खोवती हैं ।।
दुख के दिन कों कोउ भांति बितै
बिरहागम रैन सँजोवती हैं ।
हमहीं अपुनी दसा जानैं सखी
निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं ।।

ल.— यह हो पर मैंने तुझे जब देखा तब एक ही दशा में देखा और सर्व्वदा तुझे अपनी आरसी वा किसी दर्पण में मुंह देखते पाया पर वह भेद आज खुला ।

हौं तो याही सोच मैं बिचारत रही री काहें,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है ।
त्यौंही हरिचंद जू बियोग औ संयोग दोऊ,
एक से तिहारे कछु लखि न परत है ।।
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात,
तू तौ परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है ।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसति ताहि,
आरसी में रैन दिन देखिबो करत है ।।

सखी ! तू धन्य है बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द को सार्थ करने वाली और प्रेमियों की मंडली को शोभा है ।

च.— नहीं सखी ! ऐसा नहीं है मैं जो आरसी देखती थी उस[illegible] कारण कुछ दूसरा ही है । हा ! (लम्बी सांस लेकर) [illegible] ! मैं जब आरसी में अपना मुंह देखती और अपना रं[illegible] [illegible]ा पाती थी तब भगवान से हाथ जोड़कर मनाती थी [illegible] भगवान मैं उस निर्दयी को चाहूं पर वह मुझे न चाहे, हा ! (आंसू टपकते हैं)

ल.— सखी तुझे मैं क्या समझाऊँगी पर मेरी इतनी बिनती है कि तू उदास मत हो जो तेरी इच्छा हो पूरी करने उद्यत हूं ।

च.— हां ! सखी यही तो आश्चर्य है कि मुझे इच्छा कुछ नहीं है और न कुछ चाहती हूं तौ भी मुझको उसके वियोग का बड़ा दुःख होता है ।

ल.— सखी मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू धन्य है संसार में जितना प्रेम होता है कुछ इच्छा लेकर होता है और सब लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख से सुख मानती है यह तेरी चाल संसार से निराली है, इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करने वाली है ।

च.— (नेत्रों में जल भर कर मुख नीचा कर लेती है)

(दासी आकर)

दा.— अरी, मैया खीझ रही है के वाहि ! घर कछू और हू कामकाज हैं के एक हाहा ठीठी ही है, चल उठि, भोर सों यहीं पड़ी रही ।

च.— चल आऊं बिना बात की बकवाद लगाई (ललिता से) सुन सखी इसकी बातैं सुन, चल चलै । (लम्बी सांस लेकर उठती है) ।

(तीनों जाती हैं)

।। स्नेहालाप नाम पहिला अंक समाप्त हुआ ।।

दूसरा अंक

स्थान केले का बन

समय संध्या का, कुछ बादल छाए हुए ।
(वियोगिनी बनी हुई श्री चंद्रावली जी आती हैं)

च.— (एक वृक्ष के नीचे बैठकर) वाह प्यारे ! वाह ! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हौ ; और निश्चय बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं जानता, जानैं कैसे ? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं, जिसने जो समझा है उसने वैसा ही मान रखा है, हा ! यह तुम्हारा जो अखंड परमानन्दमय प्रेम है और जो ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शान्ति देने वाला है उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता, सब अपने ही सुख में और अभिमान में भूले हुए हैं, कोई किसी स्त्री से वा पुरुष से उसको सुन्दर देख कर चित्त लगाना और उससे मिलने का अनेक यत्न करना इसी को प्रेम कहते हैं, और कोई ईश्वर की बड़ी लम्बी-चौड़ी पूजा करने को प्रेम कहते हैं —पर प्यारे तुम्हारा प्रेम इन

दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसी को मिलता है जिसे तुम आप देते हौ, (कुछ ठहर कर) हाय ! किससे कहूं और क्या कहूं और क्यौं कहूं और कौन सुनै और सुनै भी तो कौन समुझै — हा !

जग जानत कौन है प्रेम विथा
केहि सो चरचा या वियोग की कीजिए ।
पुनि को कही मानै कहा समुझै कोऊ
क्यौं बिन बातकी रारहि लीजिए ।।
नित जो हरिचंद जू बीतै सहै
बकि कै जग क्यौं परतीतहि छीजिए ।
सब पूछत मौन क्यौं बैठि रही
पिय प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिए ।।

क्यौंकि —
मरम की पीर न जानत कोय ।

कासो कहौं कौन पुनि मानैं बैठि रही घर रोय ।
कोऊ जरनि न जाननहारी बेमहरम सब लोय ।
अपुनी कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुझाऊं सोय ।
लोक लाज कुल की मरजादा दीनी है सर्ब खोय ।
हरीचंद ऐसेहि निबहैगी होनी होय सो होय ।।

परन्तु प्यारे तुम तो सुनने वाले हौ ? यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो प्यारे ! जिनको नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं (नेत्रों से आंसू गिरते हैं ।) प्यारे ! जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यौं ?

पहिले सुसुकाई लजाइ कछु
क्यौं चितै मुरि मो तन छाम कियो ।
पुनि नैन लगाई बढ़ाइ कै प्रीति
निबाहन को क्यौं कलाम कियो ।।
हरिचंद भए निरमोही इतै निज
नेह को यौं परिनाम कियो ।
मनमाहि जो तोरन ही की हुती
अपनाइ के क्यौं बदनाम कियो ।।

प्यारे तुम बड़े निरमोही हौ, हा ! तुम्हैं मोह भी नहीं आती । (आंख में आंसू भर कर) प्यारे इतना तो वे नहीं सताते जो पहिले सुख देते हैं तो तुम किस नाते इतना सताते हैं ? क्योंकि —

जिय सूधी चितौन की साधै रही
सदा बातन में अनखा रहे ।
हंसिकै हरिचंद न बोले कभूं
जिय दूरहिं सों ललचाय रहे ।।
नहिं नेकु दया उर आवत है
करि के कहा ऐसे सुभाय रहे ।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले
जिहि के बदले यों सताय रहे ।।

हा ! क्या तुम्हैं लाज भी नहीं आती ? लोग तो सात पैर संग चलते हैं उसका जन्म भर निबाह करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है ! नहीं नहीं तुम्हारा तो ऐसा स्वभाव नहीं था यह नई बात है, यह बात नई है या तुम आप नये हो गये ।

हौ ? भला कुछ तो लाज करो !
कितकों ढरिगो वह प्यार सबै
क्यौं रुखाई नई यह साजत हौ ।
हरिचन्द भये हौ कहां के कहां
अन बोलिबे में नहिं छाजत हौ ।।
नित को मिलनो तो किनारे रह्यौ
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइ कै नेह
न रूसिबे में अब लाजत हौ ।।

प्यारे जो यही गति करनी थी तो पहिले सोच लेते । क्यौंकि,

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहैं
तुम्हैं सो कहा प्यारे सुनात नहीं ।
बिरुदावली आपुनो राखौ मिलौ
मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं ।।
हरिचन्द जू होनी हुती सो भई
इन बातन सों कछु हात नहीं ।
अपनावते सोच बिचारि अबै
जल पान कै पूछनी जात नहीं ।।

प्राणनाथ ! (आंखों में आंसू उमड़ उठे) अरे नेत्रो अपने किये का फल भोगो ।

धाइकै आगे मिलीं पहिले तुम
कौन सों पूछि कै सो मोहि भाखौ ।
त्यौं सब लाज तजी छिन मैं
केहि के कहे एतौ कियो अभिलाखौ ।।
काज बिगारि सबै अपुनी
हरिचन्द जू धीरज क्यौं नहिं राखौ ।
क्यौं अब रोई कै प्रान तजौ
अपुने किये को फल क्यौं नहिं चाखौ ।।

हा !

इन दुखियान कों न सुख सपने हू मिल्यौ
योंही सदा व्याकुल बिकल अकुलायंगी ।
प्यारे हरिचन्द जू की बीती जानि औध जोपै
जैहैं प्रान तऊ येतो साथ न समायंगी ।।

देख्यौ एक बारहू न नैन भरि तोहि यातें
जौन जौन लोक जैहैं तहीं पछितायंगीं ।
बिना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय
देखि लीजौ आंखें ये खुली ही रहि जायंगी ।।

परन्तु प्यारे अब इनको दूसरा कौन अच्छा लगैगा जिसे देख कर यह धीरज धरैंगी, क्यौंकि अमृत पीकर फिर छाछ कैसे पीयैंगी ।

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो
अब का करिए कहि पेखि का ।
सुख छांड़ि कै संगम को तुम्हरे
इन तुच्छन कों अब लेखिए का ।।
हरिचन्द जू हीरन को वेवहारन कै
कांचन कों लै परेखिए का ।
जिन आंखिन मैं तुव रूप बस्यो
उन आंखिन सों अब देखिए का ।।

इससे नेत्र तुम तो अब बन्द ही रहो (आंचल से नेत्र छिपाती है) ।

(बनदेवी[1] सन्ध्या [2] और वर्षा [3] आती हैं)

स.— अरी बन देवी । यह कौन आंखिनैं मूंदि कै अकेली या निरजन बन मैं बैठि रही है ।

ब. दे.— अरी का तू याही नायं जानै ? यह राजा चन्द्रभानु की बेटी चन्द्रावली है ।

वर्षा.— तौ यहां क्यौं बैठी है ।

ब. दे.— राम जानै (कुछ सोचकर) अहा जानी ! अरी, यह तो सदा ह्यांई बैठी बक्यौ करै है और यह तो या बन के स्वामी के पीछे बावरी होय गई है ।

वर्षा.— तौ चलौ यासूं कछ्रू पूछ ।

ब. दे.— चल ।

(तीनों पास जाती हैं)

ब. दे.— (चन्द्रावली के कान के पास) अरी मेरी बन की रानी चन्द्रावली ! (कुछ ठहर कर) राम ! सुनै हू नहीं है (और ऊंचे सुर से) अरी मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली ! (कुछ ठहर कर) हाय ! यह तौ अपुने सों बाहर होय रही है अब काहे को सुनैगी (और ऊंचे सुर से) अरी ! सुनै नांय नै री मेरी अलख लड़ैती चन्द्रावली !

च.— (आंख बन्द किये ही) हां हां अरी क्यौं चिल्लाय है चोर भाग जायगो ।

ब. दे.— कौन सो चोर ?

च.— माखन को चोर, चीरन को चोर, और मेरे देश में ठीक नियम पर चलने वाला कोई आर्य

ब. दे.— सो कहां सो भाग जायगो ?

च.— फेर बके जाय है अरी मैंने अपनी आंखिन में मूंदि राख्यौ है सौ तू चिल्लायगी तौ निकसि भागैगो ।

ब. दे.— (चन्द्रवली की पीठ पर हाथ फेरती है) ।

च.— (जल्दी से उठ, बन देवी का हाथ पकड़कर) कहो ! प्राणनाथ अब कहां भागोगे ।

(बनदेवी का हाथ छुड़ा कर एक ओर वर्षा सन्ध्या दूसरी ओर वृक्षों के पास हट जाती हैं)

च.— अच्छा क्या हुआ यों ही हृदय से भी निकल जाओ तो जानूं तुमने हाथ छुड़ा लिया तो क्या हुआ मैं तो हाथ नहीं छोड़ने की, हा ! अच्छी प्रीति निवाही !

(बनदेवी सीटी बजाती है)

च.— देखो दुष्ट का, मेरा तो हाथ छुड़ा कर भाग गया अब न जाने कहां खड़ा बंशी बजा रहा है । अरे छलिया कहां छिपा है ? बोल बोल कि जीते जी न बौलैगा (कुछ ठहर कर) मन बोल मैं आप पता लगा लूंगी । (बन के वृक्षों से पूछती है) अरे वृक्षो बताओ तो मेरा लुटेरा कहां छिपा है ? क्यों रे मोरो इस समय नहीं बोलते नहीं तो रात को बोल के प्राण खाये जाते थे कहो न वह कहां छिपा है (गाती है)

अहो अहो बन के रूख कहूं देख्यौ पिय प्यारो ।
मेरो हाथ छुड़ाइ कहौ वह कितै सिधारो ।।
अहो कदम्ब अहो अम्ब निम्ब अहो बकुल तमाला ।
तुम देख्यौ कहुं मन मोहन सुन्दर नंदलाला ।।
अहो कुंज बन लता बिरुध तृन पूछत तोसों ।
तुम देखे कहुं श्याम मनोहर कहहु न मोसों ।।
अहो जमुना अहो खग मृग हो अहो गोबरधन गिरि ।
तुम देखे कहुं प्रान पियारे मन मोहन हरि ।।

(एक एक पेड़ से जाकर गले लगती है)

(बन देवी फिर सीटी बजाती है)

च— अहा देखो उधर खड़े प्राण प्यारे मुझे बुलाते हैं तो चलो उधर ही चलें (अपने आभरण संवारतीं हैं)

(वर्षा और संध्या पास आती हैं)

व.— (हाथ पकड़कर) कहां चली सजि कै ?

च.— पियारे सों मिलन काज ।

व.— कहां तू खड़ी है ?

१. हरा कपड़ा, पत्ते का किरीट, फूलों की माला ।
२. गहरा नारंजी कपड़ा ।
३. रंग सांवला लाल कपड़ा ।

च.— प्यारे ही को यह धाम है ।

ब.— कहा कहैं मुख सों ?

च.— पियारे प्रान प्यारे ।

ब.— कहा काज है ?

च— पियारे सों मिलन काम है ।।

ब.— मैं हूँ कौन बो तो ?

च.— हमारे प्रान प्यारे हौ न ?

ब.— तू है कौन ?

च.— पीतम पियारे मेरो नाम है ।

स.— (आश्चर्य से) पूछत सखी के एकै उत्तर बतावति जकी सी एक रूप आज श्यामा भई श्याम है ।।

(बन देवी आकर चन्द्रावली के पीछे से आंख बन्द करती है)

च.— कौन है कौन है ?

ब. दे.— मैं हूँ ।

च.— कौन तू है ?

ब. दे.— (सामने आकर) मैं हूं, तेरी सखी वृन्दा ।

च.— तो मैं कौन हूं ?

ब. दे.— तू तो मेरी सखी चन्द्रावली है न ? तू अपने हूं को भूल गई ।

च.— तो हम लोग अकेले बन में क्या कर रही हैं ?

ब. दे.— तू अपने प्राण नाथै खोजि रही है न ?

च.— हा ! प्राणनाथ ! हा ! प्यारे ! अकेले छोड़ के कहां ले गये ? नाथ ऐसी ही बदी थी ! प्यारे यह वन इसी विरह का दु :ख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ बिहार करने को ? हा !

जो पै ऐसिहि करन रही ।
तो फिर क्यौं अपने मुख सों तुम रस की बात कही ।।
हम जानी ऐसिहि बीतैगी जैसी बीति रही ।
सो उलटी कीनी विधिना ने कछु नाहिं निबही ।।
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही ।
'हरीचंद' कहा को कहा ह्वै गयौ कछु नहिं जात की ।।

(रोती है)

ब. दे.— (आंखों में आंसू भर के) प्यारी ! अरी इतनी क्यों घबराई जाय है देख तौ यह सखी खड़ी हैं सो कहा कहैंगी ।

च.— ये कौन है ?

ब. दे.— (वर्षा को दिखा कर) यह मेरी सखी वर्षा है ।

च.— यह वर्षा है तो हा ! मेरा वह आनन्द का घन कहां है ? हा ! मेरे प्यारे ! प्यारे कहां बरस रहे हौ ? प्यारे गरजना इधर और बरसना और कहीं ?

''बलि सांवरी सूरत मोहिनी मूरत
आंखिन को कबौं आइ दिखाइये ।
चातिक सी मरैं प्यासी परीं
इन्हें पानिप रूप सुधा कबौ प्याइये ।।
पीत पटै बिजुरी से कबौं
हरिचंद जू धाइ इतै चमकाइये ।
इतहू कबौं आइकै आनन्द के घन
नेह को मेह पिया बरसाइये ।।''

प्यारे ! चाहे गरजो चाहैं लरजो — इन चातकों की तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्यौंकि फिर यह कौन सुनैगा कि चातक ने दूसरा जल पी लिया ; प्यारे तुम तो ऐसे करुणा के समुद्र हौ कि केवल हमारे एक जाचक के मांगने पर नदी नद भर देते हौ तो चातक के इस छोटे चंचु-पुट भरने में कौन श्रम है क्यौंकि प्यारे हम दूसरे पक्षी नहीं हैं कि किसी भांति प्यास बुझा लेंगे हमारे तो हे श्याम घन तुम्ही अवलम्ब हौ ; हा !

(नेत्रौं में जल भर लेती है और तीनों परस्पर चकित हो कर देखती हैं)

ब. दे.— सखी देखि तौ कछू इनकी हू सुन कछू इनकी हू लाज कर अरी यह तो नई हैं ये कहा कहैंगी ?

सं.— सखी यह कहा कहै है हम तौ याको प्रेम देखि बिना मोल की दासी होय रही है और तू पंडिताइन बनि कै ज्ञान छांटि रही है ।

च.— प्यारे ! देखो ये सब हंसती हैं — तो हंसैं, तुम आओ, कहां बन में छिपे हो ? तुम मुंह दिखलाओ इनको हंसने दो ।

धारन दीजिए धीर हिए
कुलकानि को आजु बिगारन दीजिए ।
मारन दीजिए लाज सबै
हरिचन्द कलंक पसारन दीजिए ।
चार चबाइन कों चहुं ओर सों
सोर मचाइ पुकारन दीजिए ।।
छांड़ि संकोचन चन्द मुखै भरि लोचन आजु निहारन दीजिए ।।

क्यौंकि —

ये दुखियां सदा रोयों करैं बिधना
इन कों कबहूं न दियो सुख ।
झूठहीं चार चबाइन के डर देख्यौ
कियो उनहीं को लिए रुख ।।
छांड़यौ सबै हरिचन्द तऊ न गयो
जिय सों यह हाय महा दुख ।

प्रान बचैं केहि भांतिन सों तरसैं
जब दूर सों देखिबै कों मुख ।।

ब. दे.— (आंसू अपने आंचल से पोंछकर) तौ ये यहां नांय रहिबे की सखी एक घड़ी धीरज धर जब हम चली जांय तब जो चाहियो सो करियो ।

चं.— अरी सखियो मोहि छमा करियो, अरी देखौ तो तुम मेरे पास आईं और हमने तुमारो कछू सिष्टाचार न कियो । (नेत्रों में आंसू भर कर, हाथ जोड़कर) सखी मोहि छमा करियो और जानियो कि जहां मेरी बहुत सुखी हैं उन मैं एक ऐसी कुलच्छिनी हूं है ।

सं और ब.— नहीं नहीं सखी तू तो मेरी प्रानन सों हूं प्यारी है, सखी हम सच कहैं तेरी सी सांची प्रेमिन एक हू न देखी ऐसे तो सबी प्रेम करैं पर तू सखी धन्य है ।

चं.— हां सखी और (संध्या को दिखा कर) या सखी को नाम का है ?

ब. दे.— याको नाम संध्या है ।

चं.— (घबड़ा कर) संध्यावली आई ? क्या कुछ संदेसा लाई ? कहो कहो प्रान प्यारे ने क्या कहा ? सखी बड़ी देर लगाई (कुछ ठहर कर) संध्या हुई है ? संध्या हुई ? तो वह बन से आते होंगे सखियो चलो झरोखों में बैठें यहां क्यों बैठी हो ।

(नेपथ्य में चन्द्रोदय होता है, चन्द्रमा को देखकर)
अरे-२ यह देखो आया ।
(उंगली से दिखा कर)

देख सखी देख अनमेख ऐसो भेख यह
जाहि पेख तेज रबिहू को मंद ह्वै गयो ।
हरिचन्द ताप सब हिय को नसाइ चित
आनन्द बढ़ाइ भाइ अति छकि सों छयो ।।
ग्वाल उडुगन बीच बेनु को बजाइ सुधा
रस बरखाइ मान कमल लजा दयो ।
गोरज समूह घन पटल उघारि वह
गोप कुल कुमुद निसाकर उदै भयो ।।

चलो चलो उधर चलो । (उधर दौड़ती है)

ब. दे.— (हाथ पकड़ कर) अरी बावरी भई है चन्द्रम निकस्यो है कै वह बन सों आवै है ?

चं.— (घबड़ा कर) का सूरज निकस्यो ? भोर भयो हाय ! हाय ! हाय ! या गरमी में या दुष्ट सूरज की तपन कैसे सही जायगी अरे भोर भयो हाय भोर भयो ! सब रात ऐसें ही बीत गई, हाय फेर वही घर के व्योहार चलैंगे, फेर वही नहानो वही खानो बेई बातैं, हाय !

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं
अटके कित कौन बिचार लयो ।
नहिं जान परै हरिचन्द कछू
बिधि ने हम सों हठ कौर ठयो ।।
निसि आजहू की गई हाय बिहाय
पिया बिनु कैसो न जींव गयो ।।
हत अभागिनी आंखिन कों नित के
दुख देखिबे कों फिर भोर भयो ।।

तो चलो घर चलैं, हाय हाय ! मां सों कौन बहाना करूंगी, क्योंकि वह जाती ही पूछैगी कि सब रात अकेली बन में कहा करती रही । (कुछ ठहर कर) पर प्यारे ! भला यह तो बताओ कि तुम आज की रात कहां रहे ? क्यौं देखो तुम हमसे झूठ न बोले न ! बड़े झूठे हौ, हा ? अपनों से तो झूठ मत बोला करो, आओ आओ अब तो आओ ।

आउ मेरे झूठन के सिरताज ।
छल के रूप कपट की मूरत मिथ्यावाद जहाज ।।
क्यों परतिज्ञा करी रह्यौ जो ऐसो उलटो काज ।
पहिले तो अपनाइ न आवत तजिबे में अब लाज ।।
चलो दूर हठो बड़े झूठे हो ।
आउ मेरे मोहन प्यारे झूठे ।
अपनी टारि प्रतिज्ञा कपटी उलटे हम सों रूठे ।।
मति परसौ तन रगे और को रंग अधर तुम जूठे ।
ताहू पै तिनकौ लाजत निरलज अहो अनूठे ।।

पर प्यारे बताओ तो तुम्हारे बिना राता क्यों इतनी बढ़ जाती है ?

काम कछु नहिं यासों हमैं
सुख सों जहां चाहिए रैन बिताइए ।
पै जो करै बिनती हरिचन्द जू
उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए ।।
एक मतो उनसो क्यों कियो तुम
सोउ न आवै जो आप न आइए ।
रूसिबे सों पिय प्यारे तिहारे
दिवाकर रूसत है क्यौं बताइए ।।

जाओ जाओ मैं नहीं बोलती (एक वृक्ष की आड़ में दौड़ जाती है)

तीनों— भई ! यह तो बावरी सी डोलै, चलौ हम सब वृक्ष की छाया में बैठे (किनारे एक पास ही तीनों बैठ जाती हैं)

चंद्रा.— (घबराई हुई आती है अंचल केश इत्यादि खुल जाते है) कहां गया कहां गया ? बोल ! उलटा रूसना, भला अपराध मैंने किया कि तुमने ? अच्छा मैंने किया सही, क्षमा करो, आओ, प्रगट हो, मुंह दिखाओ, भई बहुत भई गुदगुदाना वहां तक जहां तक रुलाई न आवै (कुछ सोचकर) हा ! भगवान किसी को

किसी की कनौड़ी न करै, देखो मुझको इसकी कैसी बातैं सहनी पड़ती हैं । आप ही नहीं भी आता उलटा आप ही रूसता है, पर क्या करू अब तो फंस गई, अच्छा यों ही सही । ('अहो अहो बन के रूख' इत्यादि गाती हुई वृक्षों से पूछती है) हाय ! कोई नहीं बतलाता अरे मेरे नित के साथियो कुछ तो सहाय करो ।

अरे पौन सुख मौन सबै थल गौन तुम्हारो ।
क्यौं न कहौ राधिका रौन सों मौन निवारो ।।
अहे भंवर तुम श्याम रंग मोहन ब्रत धारी ।
क्यौं न कहौ वा निठुर श्याम सों दसा हमारी ।।
अहे हंस तुम राज बंस तरवर की सोभा ।
क्यौं न कहो मेरे मानस सों या दुख के गोभ। ।
हे सारस तुम नीके बिछुरन बेदन जानौ ।
तौ क्यौं पीतम सों नहिं मेरी दसा बखानौ ।।
हे कोकिल कुल श्याम रंग के तुम अनुरागी ।
क्यौं नहिं बोलहु तहीं जाय जहं हरि बड़ भागी ।।
हे पपिहा तुम पिउ पिउ पिय पिय पिय रटत सदाई ।।
आजहु क्यौं नहिं रटि रटि कै पिय लेहु बुलाई ।।
अहे भानु तुम तो घर घर में किरिन प्रकासो ।।
क्यौं नहिं पियहि मिलाइ हमारो दुख तम नासो ।।

हाय !

कोउ नहिं उत्तर देत भये सबही निरमोही ।
प्रान पियारे अब बोलौ कहां खोजौं तोही ।।

(चन्द्रमा बदली की ओट हो जाता है और बादल छा जाते हैं)

(स्मरण करके) हाय ! मैं ऐसी भूली हुई थी कि रात को दिन बतलाती थी, अरे मैं किसको ढूंढती थी, हा ! मेरी इस मूखता पर उन तीनों सखियों ने क्या कहा होगा, अरे यह तो चन्द्रमा था जो बदली को ओट में छिप गया । हा ! यह हत्यारिन वर्षा ऋतु है, मैं तो भूल गई थी, इस अंधेरे में मार्ग तो दिखाता ही नहीं चलूंगी कहां और घर कैसे पहुंचूंगी ? प्यारे देखो जो जो तुम्हारे मिलने में सुहाने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गये, हा ! जो बन आंखों में देखने में कैसा भला दिखाता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है, देखो सब कुछ है एक तुम्ही नहीं हो (नेत्रों से आंसू गिरते हैं) प्यारे ! छोड़ के कहां चले गये ? नाथ ! आंखैं बहुत प्यासी हो रही हैं इनको रूप सुधा कब पिलाओगे ? प्यारे बेनी की लट बंध गई हैं इन्हैं कब सुलझाओगे (रोती है) नाथ इन आंसुओं को तुम्हारे बिना और कोई पोंछने वाला भी नहीं है, हा ! यह गत तो अनाथ की भी नहीं होती, अरे बिधिना ! मुझे कौन सा सुख दिया था जिसके बदले इतना दु :ख देता है, सुख का तो मैं नाम सुन के चौंक उठती थी और धीरज धर के कहती थी कि कभी तो दिन फिरैंगे सो अच्छे दिन फिरे । प्यारे बस बहुत भई अब नहीं सही जाती, मिलना हो तो जीते जी मिलजाओ । हाय ! जी भर आंखों देख भी लिया होता तो जी का उमाह निकल गया होता, मिलना दूर रहैं मैं तो मुँह देखने को तरसती थी, कभी सपने में भी गले न लगाया, जब सपने में देखा तभी घबड़ा कर चौंक उठी हाय ! इन घर वालों और बाहर वालों के पीछे कभी उनसे रो रो कर अपनी बिपत भी न सुनाई कि जी भर जाता, लो घर वालो और बाहर वालो ब्रज को सम्हालो मैं तो अब यहीं (कंठ गदगद हो कर रोने लगती है) हाय रे निठुर ! मैं ऐसा निरमोही नहीं समझी थी, अरे इन बादलों की ओर देख के तो मिलता, इस ऋतु में तो परेदेसी भी अपने घर आजाते हैं पर तू न मिला, हा ! मैं इसी दुख देखने को जीती हूं कि वर्षा आवै और तुम न आओ, हाय ! फेर वर्षा आई, फेर पत्ते हरे हुए, फेर कोइल बोली पर प्यारे तुम न मिले, हाय ! सब सखियां हिंडोले झूलती होंगी पर मैं किसके संग झूलूं क्योंकि हिंडोला झुलाने वाले मिलैंगे पर आप भींज कर मुझै बचाने वाला और प्यारी कहने वाला कौन मिलैगा (रोती है) हा ! मैं बड़ी निर्लज्ज हूं, अरे प्रेम मैंने प्रेमिन बन कर तुझे भी लज्जित किया कि अब तक जीती हूं, इन प्रानों को अब न जानैं कौन लाहे लूटने हैं कि नहीं निकलते । अरे कोई देखा मेरो छाती ब्रज की तो नहीं है कि अब तक (इतना कहते ही मूर्छा खा कर ज्यों ही गिरा चाहती है उसी समय तीनों सखियां आकर सम्हालती हैं)

(जवनिका गिरती है)

।। प्रियान्वेषण नामक दूसरा अंक समाप्त हुआ ।।

दूसरे अंक के अंतर्गत

।। अंकावतार ।।

।। बीथी, वृक्षा ।।

(सन्ध्यावली दौड़ी हुई आती है)

सं.— राम राम ! मैं दौरत दौरत हार गई, या ब्रज की गऊ का हैं सांड हैं ; कैसी एक साथ पूंछ उठाय कै मेरे संग दौरी हैं, तापैं वा निपूते सुवल को बुरो होय और हू तूमड़ी बजाय कै मेरी ओर उन सबनै लहकाय दीनी, अरे जो मैं एक संग प्रानन्नै छोड़ि कै न भाजती तौ उनके रपट्टा में कबकी आय जाती । देखि आज वा सुवल की कौन गति कराऊं, बड़ो ढीठ भयो है

प्रानन की हांसी कौन काम की देखौ तो आज सोमवार है नंदगांव में हाट लगी होयगी मैं वहीं जाती इन सबने बीच की आय धरी, मैं चन्द्रावली की पाती वाके यारें सौंप देती इतनों खुटकोऊ न रहतो । (घबड़ा कर) अरे आई ये गौवें तो फेर इतैही कूं अरराई । (दौड़कर जाती है और चोली में से पत्र गिर पड़ता है) (चंपकलता आती है)

चं.ल.— (पत्र गिरा हुआ देख कर) अरे ! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है किसी की हो देखूं तो इसमें क्या लिखा है (उठा कर देखती है) राम राम ! न जानै किस दुखिया की लिखी है कि आंसुओं से भींज कर ऐसी चपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलने में फट जाती है (बड़ी कठिनाई से खोल कर पढ़ती है) प्यारे !

क्या लिखूं ! तुम बड़े दुष्ट हौ चलो भला सब अपनी बीरता हम पर दिखानी थी । हां ! भला मैंने तो लोक वेद अपना विराना सब छोड़कर तुम्हें पाया तुमने हमैं छोड़ के क्या पाया ? और जो धर्म्म उपदेश करो तो धर्म से फल होता है, फल से धर्म्म नहीं होता निर्लज्ज, लाज भी नहीं आती मुंह ढको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हौ, चलो वाह ! अच्छी प्रीति निबाही, जो हो तुम जानते ही हौ, हाय कभी न करूँगी योंही सही अन्त मरना है मैंने अपनी ओर से खबर दे दी अब मेरा दोष नहीं बस ।

"केवल तुम्हारी"

(लंबी सांस लेकर) हा ! बुला रोग है न करै किसी के सिर बैठे बिठाए यह चक्र घहराय, इन चिट्ठी के देखने से कलेजा कांपा जाता है, बुरा ! तिसमें स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा है क्यौंकि कपोतब्रत बुरा होता है कि गला घोंट डालो मुंह से बात न निकलै । प्रेम भी इसी का नाम है, राम राम उस मुंह से जीभ खींच ली जाय जिससे हाय निकलै । इस व्यथा को मैं जानती हूं कि और कोई क्या जानैगा क्यौंकि जाके पांव न भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई । यह तो हुआ पर यह चिट्ठी है किसी की यह न जान पड़ी (कुछ सोचकर) अहा जानी ! निश्चय यह चनद्रावली ही की चिट्ठी है । क्यौंकि अक्षर भी उसी के से हैं और इस पर चन्द्रावली का चिन्ह भी बनाया है । हा ! मेरी सखी बुरी फंसी, मैं तो पहिले ही उसके लच्छनों से जान गई थी पर इतना नहीं जानती थी, अहा गुप्त प्रीति भी विलक्षण होती है, देखो इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं, मनुष्य न इधर होता है न उधर का, संसार के सुख छोड़कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है । जो हो यह पत्र तो मैं आप उन्हें जाकर दे आऊंगी और मिलने की भी बिनती करूंगी ।

(नेपथ्य में बूढ़ों के से सुर से)

हां तू सब करैगी ।

चं.— (सुन कर और सोचकर) अरे यह कौन है (देख कर) न जानै कोऊ बूढ़ी फूंस सी डोकरी है ऐसो न होय कै यह बात फोड़ि कै उलटी आग लगावै, अब तो पहिले याहि समझयावनो परचो, चलूं (जाती है) ।।इति द्वितीयां के भेद प्रकाश नामकों कावतार : ।।

तीसरा अंक

।। समय तीसरा पहर, गहिरे बादल छाये हुए ।।

।। स्थान तालाब के पास एक बगीचा ।।

।। झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती कुछ इधर उधर फिरती हैं ।।

(चन्द्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी, इत्यादि एक स्थान पर बैठी हैं, चन्द्रकान्ता, वल्लभा, श्यामला, भामा, भूले पर हैं, कामिनी और माधुरी हाथ में हाथ दिए घूमती हैं)

का.— सखी, देख बरसात भी अब की किस धूम धाम से आई है मानो कामदेव ने अवलाओं को निर्बल जान कर इनके जीतने को अपनी सैना भिजवाई है । धूम से चारों ओर से घुम घुम कर बादल परे के परे जमाये वगपंगति का निसान उड़ाये लपलपाती नंगी तलवारसी बिजली चमकाते गरज-गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखासा कुछ अलग पुकार पुकार गा रहे हैं । कुल की मर्य्याद ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है । मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमंग जो अंग अंग में भरी है उनके निकले बिना जी तिलमिलाता है । ऐसे बादलों को देखकर कौन लाज की चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है !

माधु.— विशेष कर वह जो आप कामिनी हो (हंसती है) ।

का.— चल तुझे हंसने ही की पड़ी है । देख भूमि चारों ओर हरी हरी हो रही है । नदी नाले बावली तालाब सब भर गये । पक्षी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं । बीरबहूटी और जुगुनूं पारी पारी रात और दिन को इधर उधर बहुत दिखाई पड़ती हैं । नदियों के करारे धमाधम टूट

कर गिरते हैं । सर्प्प निकल निकल अशरण से इधर उधर भागे फिरते हैं । मार्ग बन्द हो रहे हैं । परदेशी जो जिस नगर में हैं वहीं पड़े पड़े पछता रहे हैं आगे बढ़ नहीं सकते । वियोगियों को तो मानो छोटा प्रलय काल ही आया है ।

माधु.— छोटा क्यौं बड़ा प्रलय काल आया है । पानी चारों ओर से उमड़ ही रहा है । लाज के बड़े बड़े जहाज गारद हो चुके, भया फिर वियोगियों के हिसाब तो संसार डूबाही है तो प्रलय ही ठहरा ।

का.— पर तुझ को तो कटे कृष्ण का अवलम्ब है न, फिर तुझे क्या, भांडीर वट के पास उस दिन खड़ी बात कर ही रही थी, गए हम —

माधु.— और चन्द्रवली ?

का.— हां, चन्द्रावली बिचारी तो आप ही गई बीती है उसमें भी अब तो पहरे में हैं, नजर बन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती, अब क्या —

माधु.— जाने दे नित्य का झंखना । देख, फिर पुरवैया झकोरने लगी और वृक्षों से लपटी लताएं फिर से लरजने लगीं । साड़ियों के आंचल और दामन फिर उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया । देख यह घटा अभी गरज गई थी फिर गरजने लगी ।

का.— सखी वसंत का ठंढा पवन और सरद की चांदनी से राम राम करके वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं, पर इन काली काली घटा और पुरवैया के झोंके तथा पानी के एकतार झमाके से तो कोई भी न बचेगा ।

माधु.— तिसमें तू तो कामिनी ठहरी तू बचना क्या जानै ।

का.— चल ठठोलिन । तेरी आंखों में अभी तक उस दिन की खुमारी भरी है इसी से किसी को कुछ नहीं समझती । तेरे सिर बीते तो मालूम पड़े ।

माधु.— बीती है मेरे सिर । मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूं ।

का.— चल तू हुई है क्या न उबल पड़ैगी स्त्री की बिसात ही कितनी बड़े बड़े योगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते हैं, कोई योगी होने ही पर मन ही मन पछताते हैं कोई जटा पटक कर हाय-हाय चिल्लाते हैं और बहुतेरे तो तूमड़ी तोड़ तोड़कर योगी से भोगी हो ही जाते हैं ।

माधु.— तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुंकवा कर तुमड़ी तोड़वा ले ।

का.— चल ! तू क्या जानै इस पीर को । सखी यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे ही हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किये देते हैं । तुझे प्रेम हो तब सूझै । इस आनन्द की धुनि में संसार ही दूसरा एक विचित्र शोभा वाला और सहज काम जगाने वाला मालूम पड़ता है ।

माधु.— कामिनी पर काम का दावा है इसी से हेर फेर उसी को बहुत छेड़ा करता है ।

(नेपथ्य में बारम्वार मोर कूकते हैं)

का.— हाय हाय इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विषपान ही है । इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकोर कर चलना यह दो बात बड़ी कठिन है । धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रंग रंग के कपड़े पहिने ऊंची ऊंची अटारियों पर चढ़ी पीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं वा बगीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती हैं । दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़ कर चौकुना रंग बढ़ाते हैं झूलते हैं, झुलाते हैं, हंसते हैं, हंसाते हैं, भीगते हैं, भिगाते हैं, गाते हैं, गवाते हैं, और गले लगते हैं, लगाते हैं ।

माधु.— और तेरो न कोई पानी बचाने वाला न तुझे कोई निचोड़ने वाला, फिर चौगुने की कौन कहे इयौढ़ा सवाया तो तेरा रंग बढ़े ही गा नहीं ।

का.— चल लुच्चिन ! जाके पायं न भई बिवाई सों क्या जानै पीर पराई । (बात करती करती पेड़ की आड़ में चली आती है)

माधवी.— (चनद्रावली से) सची, श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहावनी मालूम पड़ती है । मुखचन्द्र पर चूनरी चुई पड़ती है । लटैं सगबगी हो कर गले में लपट रही हैं । कपड़े अंग में लपट गये हैं । भींगने से मुख का पान और काजल सब की एक विचित्र शोभा हो गई है ।

चं.— क्यों न हो । हमारे प्यारे कीं प्यारी है । मैं पास होती हो दोनों हाथों से इसकी बलैया लेती और छाती से लगाती ।

का.— सखी, सचमुच आज तो इस कदंब के नीचे रंग बरस रहा है जैसी समा बंधी है वैसी ही झूलने वाली है । झूलने में रंग रंग की साड़ी की अर्द्ध चन्द्राकार रेखा इन्द्र धनुष की छवि दिखाती है । कोई सुख से बैठी झूले की ठंढी ठंढी हवा खा रही है, कोई गाती बांधे लांग कसे पेंग मारती है, कोई गाती है कोई डर कर दूसरी के गले में लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगंद देती है पर दूसरी उसको चिढ़ाने को झूला और भी झोंको से झुला देती है ।
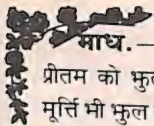
माध.— हिंडोरा ही नहीं भूलता । हृदय में प्रीतम को भुलाने के मनोरथ और नैनों में पिया की मूर्त्ति भी भुल रही है । सखी आज सांवला ही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग है । देख बिजुरी की चमक में उसकी मुखछबि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार बार घूघट उलट देता है । देख —

हूलति हिये मैं प्रान प्यारे के बिरह सूल
फूलति उमंग भरी भूलति हिंडोरे पै ।
गावति रिझावति हंसावति सबन हरि-
चंद चाव चौगुनों बढ़ाइ घन घोरे पै ।।
वारि वारि डारौं प्रान हंसनि मुरनि बत-
रान मुंह पान कजरारे दृग डोरे पै ।।
ऊनरी घटामैं देखि दूनरी लगी है आहा
कैसी आजु चूनरी फवी है मुखगोरे पै ।।

चं.— सखियो देखो कैसो अंधेर गजब है कि या रुत मैं सब अपनो मनोरथ पूरो करै और मेरी यह दुरगति होय ! भला काहुवै तो दया आवती । (आंखों में आंसू भर लेती है ।)

माध.— सखी तू क्यों उदास होय है । हम सब कहा करैं हम तो आज्ञाकारिणी दासी ठहरीं, हमारो का अखत्यार है तऊ हममैं सों तो कोऊ कछू तोहि नायं कहै ।

का.मं.— भलो सखी हम याहि कहा कहैंगी याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी ।

विला.— हां सखी हमारी तो दोऊ स्वामिनी हैं । सखी बात यह है कै खराबी तो हम लोगन की है, ये दोऊ फेर एक की एक होंयगी । लाठी मारवे सों पानी थोरों हूं जुदा हो जायगो, पर अभी जो सुन पावैं कि ढिमकी सखी ने चन्द्रावलियै अकेलि छोड़ि दीनी तो फेर देखौ तमासा ।

माध.— हम्वे बीर । और केर कामहू तौ हमीं सब बिगारैं । अब देखि कौन नै स्वामिनी सों चुगली खाई । हमारेई तुमारे में सों बहू है । सखी चन्द्रावलियै जो दु:ख देयगी वह आप दु:ख पावैगी ।

चं.— (आप ही आप) हाय ! प्यारे हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते प्यारे फिर यह शरीर कहां और हम तुम कहां ? प्यारे यह संयोग को तो अब की ही बना है फिर यह बातें दुर्लभ हो जायेंगी । हाय नाथ ! मैं अपने इन मनोरथों को किस को सुनाऊं और अपनी उमंगैं कैसे निकालूं । प्यारे रात छोटी है और स्वांग बहुत हैं । जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा । हाय ! मुझ सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं । रात दिन रोते ही बीतते हैं । कोई बात पूछने वाला नहीं क्योंकि संसार में जो कोई नहीं देखता सब ऊपर ही की बात देखते हैं । हाय ! मैं तो अपने पराये सब से बुरी बन कर बेकाम हो गई । सब को छोड़ कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की । हाय ! मैं किसी की होके रहूं, मैं किस का मुंह देख कर जिऊं । प्यारे मेरे पीछे कोई ऐसा चाहने वाला न मिलेगा । प्यारे फिर दीया लेकर मुझको खोजोगे । हा तुमने विश्वासघात किया । प्यारे तुम्हारे निर्दयीपन की भी कहानी चलैगी । हमारा तो कपोतव्रत है । हाय स्नेह लगा कर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो । बकरा जान से गया पर खाने वाले को स्वाद न मिला । हाय यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे । वाह खूब निबाह किया । बधिक भी बध कर सुधि लेता है, पर तुमने न सुधि ली । हाय एक बेर तो आकर अंक में लगा जाओ । प्यारे जीते जी आदमी का गुन नहीं मालूम होता । हाय फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसेगा और कौन रोवेगा । हाय संसार छोड़ा भी नहीं जाता सब दु:ख सहती हूं पर इसी में फंसी पड़ी हूं । हाय नाथ ! चारों ओर से जकड़ कर ऐसी ऐसी बेकाम क्यों कर डाली है । प्यारे योंही रोते दिन बीतैंगे । नाथ यह हवस मन की मन ही में रह जायगी । प्यारे प्रगट होकर संसार का मुंह क्यों नहीं बंद करते और क्यौं शंका द्वार खुला रखते हो । प्यारे सब दीनदयालुता कहां गई ! प्यारे जल्दी इस संसार में छुड़ाओ । अब नहीं सही जाती । प्यारे जैसी हैं, तुम्हारी हैं । प्यारे अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ । नाथ जहां इतने गुन सीखे वहां प्रीति निबाहना क्यौं न सीखा । हाय ! मंझदार में डुबा कर ऊपर से उतराई मांगते हो, प्यारे सो भी दे चुकी अब तो पार लगाओ । प्यारे सब की हद होती है । हाय हम तड़पै और तुम तमाशा देखो । जन कुटुम्ब से छुड़ा कर यों छितर बितर करके बेकाम देना यह कौन बात है । हाय सब की आंखों में हलकी हो गई । जहां जाओ वहां दूर दूर, उस पर यह गति । हाय "भामिनी तें भौंड़ी करी मानिनी तें मौड़ी करी कौड़ी करी हीरा तें कनौड़ी करी कुलतें" तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है । बस अब मैं गाली दूंगी । और क्या कहूं, बस आप आप ही हो ; देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्म्भ वाक्य कहूंगी —झूठे, निर्दय, निर्घृण, निर्दय हृदय कपाट" बखेड़िये और निर्लज्य ये सब तुम्हें सच्ची गालियां हैं ; भला जो कुछ करना ही नहीं था तो इतना क्यौं झूठ बके ? किसने बकाया था ? कूद कूद कर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी ? झूठे ! झूठे !! झूठे !!! झूठे ही नहीं वरंच
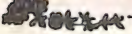
विश्वासघातक ; क्यौं इतनी छात ठोंक और हाथ उठा उठाकर कर लोगों कों विश्वास दिया ? आप ही सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुर्रा यह है कि किसी को चाहे कितना भी दु:ी देखें आपको कुछ घृणा तो आती ही नहीं, हाय हाय कैसे कैसे दुखी लोग हैं — और मजा तो यह है कि सब धान बाइस पसेरी । चाहे आपके वास्ते दु:खी हो, चाहे अपने संसार के दु:ख से, आपको, दोनों उल्लू फंसे हैं। इसी से तो ''निर्दय हृदय कपाट'' यह नाम है । भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया ? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था ? कुछ न होता तुम्हीं तुम रहते बस चैन था केवल आनन्द था फिर क्यों यह विषमय संसार किया । बखेड़िये । और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई परलेसिरे की । नाम बिकै, लोग झूठा कहैं, अपने मारे फिरैं, आप भी अपने मुंह झूठे बनैं, पर वाहरे शुद्ध बेहयाई और पूरी निर्लज्जता । बेशरमी हो तो इतनी तो हो । क्या कहना है लाज को जूतों मार के पीट पीट के निकाल दिया है । जिस मुहल्ले में आप रहते हैं उस मुहल्ले में लाज की हवा भी नहीं जाती । जब ऐसे हो तब ऐसे हों । हाय एक बेर भी मुंह दिखा दिया होता तो मतवाले मतवाले बने क्यौं लड़ लड़कर सिर फोड़ते । अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलैंगे, हुकुमी बेहया हो, कितनी गाली दूं बड़े भारी पूरे हो, शरमाओगे थोड़े ही कि माथा खाली करना सुफल हो । जाने दो — हम भी तो वैसी ही निर्लज्ज और झूठी हैं । क्यौं न हों । जस दुलह तस बनी बराता । पर इसमें भी मूल उपद्रव तुम्हारा ही है, पर यह जान रखना कि इतना और कोई न कहैगा क्यौंकि सिफारशी नेतिनेति कहैंगे, सच्ची थोड़े ही कहैंगे । पर यह तो कहो कि यह दुखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहैगा कि कुछ तै भी होगा वा न तै होय । हम को क्या ? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ । हाय मैं किससे कहती हूं । कोई सुनने वाला है । जंगल में मोर नाचा किसने देखा । नहीं नहीं वह सब देखता है, वा देखता होता तो अब तक मेरी खबर न लेता । पत्थर होता तो वह भी पसीजता । नहीं नहीं मैंने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया । प्यारे तुम्हारा दोष कुछ नहीं । यह सब मेरे कर्म्म के दोष है । नाथ मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूँ। प्यारे छमा करो । मेरे अपराधों की ओर न देखो अपनी ओर देखो (रोती है)

मा.— हाय हाय सखियो यह तो रोय रही है ।

का. म.— सखी प्यारी रोवै मती । सखी तोहि मेरे सिर की सौंह जो रोवै ।

मा.— सखी मैं तेरे हाथ जोड़ूँ मत रोवै। सखी हम सबन को जीव भर्‌य आवै है ।

बि.— सखी जो तू कहैगी हम सब करैंगी । हम भले ही प्रियाजी की रिस सहैंगी पर तो सूं हम सब काहू बात सों बाहर नहीं ।

मं.— हाय हाय ! यह तो मानै ही नहीं (आँसू पोंछ कर) मेरी प्यारी मैं हाथ जोड़ूँ हा हा खाऊंमानि जा ।

का. म.— सखी यासों मति कछू कहौ । आओ हम सब मिलि के विचार करे जासों याको काम हो ।

बि.— सखी हमारे तो प्राणताईं यापैं निछावर हैं पर जो कछू उपाय सूझै ।

चं.— [रो कर] सखी एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो ।

मा.— सखी क्यौं न मानैंगी तू कहै क्यौं नहीं ।

चं.— सखी मुझे यहां अकेली छोड़ जाओ ।

मां.— तौ तू अकेली यहां का करेगी ?

चं.— जो मेरी इच्छा होगी ।

मां.— भलो तेरी इच्छा का होयगी हमहूं सुनैं ?

चं.— सखी वह उपाय कहा नहीं जाता ।

मां.— तौ का अपनी प्रान देगी । सखी हम ऐसी भोरी नहीं हैं कै तोहि अकेली छोड़ जायंगी ।

बि.— सखी तू व्यर्थ प्राण देन को मनोरथ करै है तेरे प्राण तोहि न छोड़ैंगे । जौ प्राण तोहि छोड़ जायंगे तो इनको ऐसी सुन्दर शरीर फिर कहां मिलैगो ।

का. म.— सखी ऐसी बात हम सूं मति कहै, और जो कहै सो २ हम करियें को तयार हैं, और या बात को ध्यान तू सपनो हू मैं मति करि । जब ताईं हमारे प्राण है तब ताईं तोहि न मरन देंयगी पीछे भलेंई जो होय सो होय ।

चं.— [रो कर] हाय ! मरने भी नहीं पाती । यह अन्याय ।

मा.— सखी अन्याय नहीं यही न्याय है ।

का मं.— जान दै मधवी वासों मति कछू पूछै । आओ हम तुम मिल कै सल्लाह करैं अब का करनो चाहिए ।

बि.— हां माधवी तू ही चतुर है तू ही उपाय सोच ।

मां.— सखी तेरे जी में तौ [illegible] आवै है । हम तीनि हैं सो तीनि काम बांटि लें । प्यारी जू के मनाइबे को मेरो जिम्मा । यही काम सब में कठिन है । और तुम दो उन मैं सो एक याके धरकेन सों याकी

सफाई करावै और एक लाल जू सों मिलिबे की कहै ।

का. म.— लाल जी सों मैं कहूंगी । मैं विन्नै बहुती लजाउंगी और जैसे होय गो वैसे यासों मिलाऊंगी ।

मां.— सखी बेऊ का करैं । प्रिया जी के डर सों कछू नहीं कर सकैं ।

बि.— सो प्रिय जी को जिम्मा तेरो हुई है ।

मा.— हां हां, प्रिया जी को जिम्मा मेरो ।

बि.— तौ याके घर को मेरौ ।

मा.— भयो फेर का । सखी काहू बात को सोच मति करै । उठि ।

चं.— सखियो ! व्यर्थ क्यौं यत्न करती हौ । मेरे भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो ।

मा.— सखी हमारे भाग्य तो सीधे हैं । हम अपने भाग्य बल सों सब काम करैंगी ।

का. मं.— सखी तू व्यर्थ क्यों उदास भई जाय है । जब तक सांसा तब तक आसा ।

मां.— तौ सखी बस अब यह सलाह पक्की भई । जब ताईं काम सिद्ध न होय तब ताईं काहुवै खबर न परै ।

बि.— नहीं खबर कैसे परैगी ?

का मं.— (चन्द्रावली का हाथ पकड़ कर) लै सखी अब उठि । चलि हिंडोरों झूलि ।

मां.— हां सखी अब तौ अनमनोपन छोड़ि ।

चं.— सखी छूटा ही सा है पर मैं हिंडोरे न झूलूंगी । मेरे तो नेत्र आप ही हिंडोरे झूला करते हैं ।

पल पटुली पैं डोर प्रेम लगाय चारु
आसा ही के खंभ दोय गाढ़ कै धरत हैं ।
झुमका ललित काम पूरन उछाह भरयो
लोग बदनामी झूमि झालर झरत हैं ।।
हरीचन्द आंसू दृग नीर बरसाइ प्यारे
पिया गुन मान सो मलार उचरत हैं ।
मिलन मनोरथ के झोंटन बढ़ाइ सदा
विरह हिंडोरे नैन झूल्योई करत हैं ।।

और सखी मेरा जी हिंडोरे पर और उदास होगा ।

मां.— तौ सखी तेरी जो प्रसन्नता होय ! हम तौ तेरे सुख की गांहक हैं ।

चं.— हा ! इन बादलों को देख कर तो और भी जी दुखी होता है ।

देखि घनस्याम घनस्याम की सुरतिकरि
जियमैं बिरहघटा घहरि घहरि उठै ।
त्यौंहीं इन्द्रधनु बगमाल देखि बनमाल
मोतीलर पीकी जय लहरि लहरि उठै ।
हरीचंद मोर पिक धुनि सुनि बंसीनाद
बांकी बार बार छहरि छहरि उठै ।
देखि देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत
पट छोरे मेरे हिय फहरि फहरि उठै ।

हाय ! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे इतनी दुखदाई हो रही है ।

मा.— तौ न दुखदायिनी होयगी । चल उठि घर चलि ।

काम.— हां चलि ।

(सब जाती हैं)

।।जवनिका गिरती हैं।।

।। इति वर्षा वियोग बिपत्ति नाम तृतीय अंक ।।

।। चौथा अंक ।।

।। स्थान चन्द्रावली जी की बैठक ।।

खिड़की में से यमुना जी दिखाई पड़ती हैं । पलंग बिछी हुई, परदे पड़े हुए इतरदान पानदान इत्यादि सजे हुए ।

([१] जोगिनी आती है)

जो.— अलख ! अलख ! आदेश आदेश गुरू को ! अरे कोई है इस घर में ? — कोई नहीं बोलता । क्या कोई नहीं है ? तो अब मैं क्या करूं ? बैठूं । का चिन्ता है । फकीरों को कहीं कुछ रोक नहीं । उसमें भी हम प्रेम की जोगी । तो अब कुछ गावैं ।

(बैठकर गाती है)

''कोई एक जोगिन रूप कियैं ।
भौहैं बंक छकोहैं लोयन चलि चलि कोयन कान छिपैं ।।
सोभा लखि मोहत नारीनर बारि फेरि जल सबहिं पियैं ।
नागर मनमथ अलख जगावत गावत कांधे बनीं लियै [२] १

१. गेरुआ सारी गहिना सब जनाना पहिने, रंग सांवला । सिंदूर का लम्बा टीका वेड़ा । बाल खुले हुए । हाथ में सारंगी लिये हुए । नेत्र लाल । अत्यन्त सुन्दर । जब जब गावैगी सरंगी बजा कर गावैगी ।
२. काफी ।

बनी मनमोहिनी जोगिनिया ।
गल सेली तन गेरुआ सारी
केस खुले सिर बैंदी सोहनियां ।
मातै नैन लाल रंग डोरे मद
बोरे मोहै सबन छलिनियां ।
हाथ सरंगी लिये बजापत
गाय जगावत बिरह अगिनिय.[१] ।।२।।

जोगिन प्रेम की आई ।
बड़े बड़े नैन छुए कानन लौं चितवन मद अलसाई ।।
पूरी प्रीति रीति रस सानी प्रेमी जन मन भाई ।।
नेह नगर मैं अलख जगावत गावत बिरह बधाई ।।३।।
जोगिन आंखन प्रेम खुमारी ।
चंचल लोयन कोयल खुभि रही काजर रेख ढरारी ।।
डोरे लाल लाल रस बोरे फैली मुख उजियारी ।
हाथ सरंगी लिये बजावत प्रेमिन प्रान पियारी ।।४।।
जोगिन मुख पर लट लटकाई ।
कारी घूंघरवारी प्यारी देखत सब मन भाई ।।
छूटे केस गेरुआ बागे सोभा दुगुन बढ़ाई ।
सांचे ढरी प्रेम की मूरति आंखियां निरखि िराई ।

(नेपथ्य में से ~जनी की भनकार सुन कर)
अरे कोई आता है । तो मैं छिप रहूं । चुपचाप सुनूं । देखूं यह सब क्या बातें करती हैं ।

(जोगिन जाती है, ललिता आती है)

ल.— हैं अब तक चन्द्रावली नहीं आई । सांझ हो गई, न घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर चकार चला आवै तो क्या हो । (खिड़की की ओर देख कर) अहा ! यमुनाजी की कैसी शोभा हो रही है । जैसा वर्षा का बीतना और शरद का आरंभ होना वैसा ही वृंदावन के फूलों की सुगन्धि से मिले हुए पवन की झकोर से जमुना जी का लहराना कैसा सुन्दर और सुहावना है कि चित्त को मोहे लेता है । आहा ! यमुना जी की शोभ तो कुछ कही ही नहीं जाती । इस समय चन्द्रावली होती तो यह शोभा उसे दिखाती । वा वह देख ही के क्या करती उलटा उसका बिरह और बढ़ता । (यमुनाजी की ओर देख कर) निस्सन्देह इस समय बड़ी ही शोभा है ।

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुं सुहाये ।
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज शोभा।
कै प्रनवल जल जानि परम पावन फल लोभा ।
मनु आतप वारन तीर कों सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ।
कहूं तीर पर कमल अमल सोभित बहु भांतिन ।
कहुं सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पांतिन ।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा ।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ।
कै करि कै बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई ।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ।

कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
कै मुख करि नहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत ।
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांई ।
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आई ।
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमीं भौन एहि करि सतधा निज जल धरत।
तिन पै जेहि छिन चंद जोति राका निसि आवति ।
जल मैं मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति ।
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ।
सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन जमुना तीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छबि इकसी नभ तीर की

परत चन्द्र प्रतिबिम्ब कहूं जल मधि चमकाओ ।
लोल लहर लहि नचत कबहुं सोई मन भायो ।
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो ।
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है ।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है
कबहुं होत सत चन्द कबहुं प्रगटत दुरि भाजत ।
पावन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ।

कै बालगुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ।
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ।
कै कालिन्दी नीर तरंग जितो उपजावत ।
तितनौ ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ।।
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत ।।
कूजत कहुं कलहंस कहूं मज्जत पारावत ।
कहुं कारंडव उड़त कहूं जलकुक्कुट धावत ।

१. चैती गौरी वा पीलू खेमटा ।

चक्रवाक कहुं बसत कहुं बक ध्यान लगावत ।।
सुक पिक जल कहुं पियत कहूं भ्रमरावलि गावत ।।
कहुं तट पर नाचत मोर बहुं रोर बिबिध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ।।
कहूं बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ।।
पिय के आगम हेत पांवड़े मनहुं बिछाये ।
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराये ।
मनु मुक्त मांग सोभित भरी,
श्यामनीर चिकरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर मैं,
ब्रज निवास लखि हिय हरसि ।

(चन्द्रावली अचानक आती है)

चं.— वाह वाहरी बैहना आजु तो बड़ी कविता करी । कबिताई की मोट की मोट खोलि दीनी । मैं सब छिपें छिपे सुनती ।

(दबे पांव से योगिन आकर एक कोने में खड़ी हो जाती है)

ल.— भलो भलो बीर तोहि कविता सुनिबे को सुधि तौ आई हमारे इतनोई बहुत है ।

चं.— (सुनते ही स्मरण पूर्वक लम्बी सांस लेकर)

सखीरी क्यौं सुधि मोहि दिवाई ।
हौं अपने गृह कारज भूली भूलि रही बिलमाई ।।
फेर वहै मन भयो जात अब मरिहौं जिय अकुलाई ।
हौं तबही लौं जगत काज की जब लौं रहौं भुलाई ।।

ल.— चल जान दै दूसरी बात कर ।

जो.— (आप ही आप) निस्सन्देह इसका प्रेम पक्का है, देखो मेरी सुधि आते हो इसके कपोलों पर कैसी एक साथ जरदी दौड़ गई । नेत्रों में आंसुओं का प्रवाह उमग आया । मुंह सूख कर छोटासा हो गया । हाय ! एकही पल में यह तो कुछ की कुछ हो गई । अरे इसकी तो यही गति है ।

छरीसी छकीसी जड़ा भईसी जकीसी घर
हारीसी बिकीसी सो तो सबही घरी रहै ।
बोले तें न बोलै दृग खोलै नाहि डोलै बैठी
एकटक देखै सो खिलौनासी धरी रहै ।।
हरीचन्द औरो घबरात समुझायें हाय
हिचकि हिचकी रोवै जीवति मरी रहै ।।
याद आयें सखिन रोवावै दुख कहि कहि
तौलौं सुख पावै जौलौं मुरछि परी रहै ।

अब तो मुझ से रहा नहीं जाता । इससे मिलने को अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं ।

चं.— (ललिता की बात सुनी अनसुनी करके बायें अंग का फरकना देखकर आप ही आप) अरे यह असमय में अच्छा सगुन क्यौं होता है । (कुछ ठहर कर) हाय आशा भी क्या ही बुरी वस्तु है और प्रेम भी मनुष्य को कैसा अन्धा कर देता है । भला वह कहां और मैं कहां, पर जी इसी भरोसे पर फूला जाता है कि अच्छा सगुन हुआ है तो जरूर आवैंगे (हंसकर) हैं — उनको हमारी इस वखत फिकिर होगी । मान न मान मैं तेरा मिहमान मन को अपने ही मतलब की सूझती है । मेरो पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागिन नाम (लम्बी सांस लेकर) हा ! देखो प्रेम की गति ! यह कमी आशा नहीं छोड़ती जिसको आप चाहो वह चाहे झूठ मूठ भी बात न पूछै पर अपने जी को यह भरोसा रहता है कि वे भी जरूर इतना ही चाहते होंगे (कलेजे पर हाथ रखकर) रहो रहो क्यों उमगे आते हो धीरज़ धरो, वे कुछ दीवार में से थोड़े ही निकल आवैंगे ।

जो.— (आप ही आप) होगा प्यारी ऐसा ही होगा । प्यारी मैं तो यहीं हूं । यह मेरा ही कलेजा है कि अंतर्य्यामी कहला कर भी अपने लोगों से मिलने में इतनी देर लगती है । (प्रगट सामने बढ़कर) अलख ! अलख !

(दोनों आदर करके बैठाती हैं)

ल.— हमारे बड़े भाग जो आपुसी महात्मा के दर्शन भये ।

चं.— (आप ही आप) न जानैं क्यौं इस योगिन की और मेरा मन आप से आप खिंचा जाता है ।

जो.— भला हम अतीतन को दरसत कहा योंहों घर घर डोलत फिरैं ।

ल.— कहां तुम्हारो देस है ।

जो.— प्रेम नगर प्रिय गांव ।

ल.— कहा गुरू कहि बोलहीं ।

जो.— प्रेमी मेरो नांव ।।

ल.— जो लियो केहि कारनै ।

जो.— अपने पिय के काज ।

ल.— मंत्र कौन ?

जो.— पियनामइक ।

ल.— कहा तज्यौ ?

जो.— जगलाज ।

ल.— आसन कित ।

जो.— जितही रमे ।

ल.— पन्थ कौन ।

जो.— अनुराग ।

ल.— साधन कौन ।

जो.— पिया मिलन ।

ल.— गादी कौन ।

जो.— सुहाग ।

नैन कहें गुरु मन दियो, बिरह सिद्धि उपदेस ।
तब सों सब कुछ छोड़ि हम, फिरत देस परदेस ।।

चं.— (आप ही आप) हाय ! यह भी कोई बड़ी भारी बियोगिनि है तभी इसकी ओर मेरा मन आपसे आप खिंचा जाता है ।

ल.— तौ संसार को जोग औरहीं रकम को है और आप को तो पन्थ ही दूसरी । है । तौ भला हम यह पूछैं कि का संसार के ओर जोगी लोग वृथा जोग साधैं हैं ।

जो.— यमैं का सन्देह है सुनो (सारंगी छेड़ कर गाती है)

पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिरधारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।।
बिरहागिन धूनी चारों ओर लगाई ।
बंसी धुनि की मुद्रा कानों पहिराई ।।
अंसुअन की सेली गल में लगत सुहाई ।
घर धूर जमी सोई अंग भभूत रमाई ।
लट उरझि रहीं सोइ लटकाई लटकारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।
गुरु बिरह दियो उपदेस सुनो ब्रजवाला ।
पिय बिछुरन दुख का (ज ?) बिछाओ तुम मृगछाला ।।
मन के मन के की जपो पिया की माला ।
बिरहिन की तो हैं सभी निराली चाला ।।
पीतम से लगि लौ अचल समाधि न टारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।।
यह है सुहाग का अचल हमारे बाना ।
असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना ।
सि सेंदुर देकर चोटी गूथ बनाना ।
कर चूरी मुख में रंग तमोल जमाना ।।
पीना प्याला भर रखना वही खुमारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।।
है पन्थ हमारा नैनों के मत जाना ।
कुल लोक वेद सब औ परलोक मिटाना ।।
शिवजी से जोगी को भी जोग सिखाना ।।
हरिचन्द एक प्यारे से नेह बढ़ाना ।।
ऐसे बियोग पर लाख जोग बलिहारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।।

चं.— (आप ही आप) हाय हाय इसका गाना कैसा जी को बंधे डालता है । इसके शब्द का जीपर एक ऐसा विचित्र अधिकार होता है कि वर्णन के बाहर हैं । या मेरा जी ही चोटल हो रहा है । हाय हाय ! ठीक प्रान प्यारे की सी इसकी आवाज है । (बल पूर्वक आंसूओं को रोक कर और जी बहला कर) कुछ इस से और गावाऊं । (प्रकट) योगिन जी कष्ट न हो तो कुछ और गाओ । (कह कर कभी चाव से उसकी ओर देखती है और कभी नीचा सिर करके कुछ सोचने लगती है ।)

जो.— (मुसका कर) अच्छा प्यारी ! सुनो (गाती है)

जोगिन रूप सुधा की प्यासी ।
बिनु पिय मिलें फिरत
बन ही बन छाई मुखहि उदासी ।
भोग छोड़ि धन धाम
काम तजि भई प्रेम बनबासी ।
पिय हित अलख अलख रट
लागी पीतम रूप उपासी ।
मन मोहन प्यारे तेरे लिए
जोगिन बन बन बन छान फिरी ।।
कोमल से तन पर खाक मली
ले जोग स्वांग सामान फिरी ।।
तेरे दरसन कारन डगर डगर
करती तेरा गुन गान फिरी ।
अब तो सूरत दिखला प्यारे
हरिचन्द बहुत हैरान फिरी ।

चं.— (आप ही आप) हाय यह तो सभी बातैं पते की कहती है । मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को खिंचा आता है । हाय ! 'अब तो सूरत दिखला प्यारे' ।

जो.— तो अब तुम को भी गाना होगा। यहां तो फकीर हैं । हम तुम्हारे सामने गावैं तुम हमारे सामने न गाओगी । (आप ही आप) भला इसी बहाने प्यारी की अमृत बानी तो सुनैंगे । (प्रकट) हां ! देखो हमारी यह पहिली भिक्षा खाली न जाय हम तो फकीर हैं हमसे कौन लाज है ।

चं.— भला मैं गाना क्या जानूं । और फिर मेरा जी भी आज अच्छा नहीं है गला बैठा हुआ है । (कुछ ठहर कर नीची आंख कर के) और फिर मुझे संकोच लगता है ।

जो.— (मुसक्या कर) वाह रे संकोच वाली । भला मुझ से कौन संकोच है ? मैं फिर रूठ जाऊंगी जो मेरा कहना न करेगी ।

चं.— (आप ही आप) हाय हाय ! इसकी कैसी

मीठी बोलन है जो एक साथ जी को छीने लेती है । जरा से भूठे क्रोध से जो इसने भौहें तनेनी की हैं वह कैसी भली मालूम पड़ती हैं । हाय ! प्राणनाथ कहीं तुम्हीं तो जोगिन नहीं बन आए हो । (प्रकट) नहीं नहीं रूठो मत मैं क्यों न गाऊंगी । जो भला बुरा आता है सुना दूंगी, पर फिर भी कहती हूं आप मेरे गाने से प्रसन्न न होंगी । ऐ मैं हाथ जोड़ती हूं, मुझे न गवाओ (हाथ जोड़ती है) ।

ल.— वाह तुझे नये पाहुने की बात अवश्य माननी होगी । ले मैं तेरे हाथ जोड़ूं हूं, क्यों न गावैगी। यह तो उससे बहाली बता जो न जानती हो ।

चं.— तो तू ही क्यौं नहीं गाती । दूसरों पर हुकुम चलाने को तो बड़ी मुस्तैद होती है ।

जो.— हां हां सखी तू ही न पहिले गा । ले मैं सरंगी से सुर की आस देती जाती हूं ।

ल.— यह देखो । जो बोले सो घी को जाय । मुझे क्या, मैं अभी गाती हूं ।

(राग बिहाग गाती है)

अलख गति जुगल पिया प्यारी की ।
को लखि कै लखत नहीं आवै तेरी गिरिधारी की ।।
बलि बलि बिछुरनि मिलनि
हंसनि रूठनि नितहीं यारी की ।
त्रिभुवन की सब रति गति मति
छबि या पर बलिहारी की ।।

चं.— (आप ही आप) हाय ! यहां आज न जाने क्या हो रहा है मैं कुछ सपना तो नहीं देखती । तुझे तो आज कुछ सामान ही दूसरे दिखाई पड़ते हैं। मेरे तो कुछ समझ ही नहीं पड़ता कि मैं क्या देख सुन रही हूं। क्या मैंने कुछ नशा तो नहीं पिया है । अरे यह योगिन कहीं जादूगर तो नहीं है । (घबड़ानीसी होकर इधर उधर देखती है)

(इसकी दशा देखकर ललिता सकपकाती और जोगिन हंसती है)

ल.— क्यों ? आप हंसती क्यों हैं ?

जो.— नहीं योंही मैं इस को गीत सुनाया चाहती हूं पर जो यह फिर गाने का करार करे ।

चं.— (घबड़ा कर) हां मैं अवश्य गाऊंगी आप गाइए ।

(फिर ध्यानावस्थित सी हो जाती है) ।

(सारंगी बजाकर गाती है)

(संकरा)

जो.—

तू केहि चितवति चकित मृगीसी ।
केहि ढूंढ़त तेरो कहा खोयो
क्यौं अकुलाति लखाति ठगीसी ।।
तन सुधि करु उघरत री आंचर
कौन ख्याल तू रहति खगीसी ।
उतरु न देत जकीसी बैठी मद
पीयो कै रैन जगीसी ।।
चौंकि चौंकि चितवति चारहु
दिस सपने पिय देखति उमगीसी ।।
भूलि बैखरी मृग छौनी ज्यौं निज
दल तजि कहुं दूर भगीसी ।।
करति न लाज हाट घर बर की
कुलमरजादा जाति डगीसी ।
हरीचंद ऐसिहि उरझी तौ
क्यौं नहिं डोलत संग लगीसी ।।
तू केहि चितवति चकित मृगीसी ।

चं.— (उन्माद से) डोलूंगी डोलूंगी संग लगी (स्मरण करके लजा कर आप की आप) हाय हाय ! मुझे क्या हो गया है । मैंने सब लज्जा ऐसी धो बहाई कि आये गये भीतर बाहर वाले सब के सामने कुछ बक उठती हूं भला यह एक दिन के लिये आई बिचारी योगिन क्या कहैगी ? तौ भी धीरज ने इस समय बड़ी लाज रक्खी नहीं तो मैं राम-राम-नहीं-नहीं मैंने धीरे से कहा था किसी ने सुना न होगा । अहा ! संगीत और साहित्य में भी कैसा गुन होता है कि मनुष्य तन्मय हो जाता है । उस पर भी जले पर नोन । हाय ! नाथ हम अपने उन अनुभव सिद्ध अनुरागों और बढ़े हुए मनोरथों को किस को सुनावैं जा काव्य के एक एक तुक और संगीत की एक एक तान से लाख लाख गुन बढ़ते हैं और तुम्हारे मधुर रूप और चरित्र के ध्यान से अपने आप ऐसे उज्ज्वल सरस और प्रेममय हो जाते हैं । मानो सब प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं । पर हा ! अंत में करुणा रस में उनकी समाप्ति होती है क्योंकि शरीर की सुधि आते ही एक साथ बेबसी का समुद्र उमड़ पड़ता है ।

जो.— वाह अब यह क्या सोच रही हो ! गाओ ले अब हम नहीं मानैंगी ।

ल.— हां सखी अब अपना बचन सच कर ।

चं.— (अर्द्धोन्माद की भांति) हां हां मैं गाती हूं ।

(कभी आंसू भर कर कभी कई बेर, कभी ठहर कर, कभी भाव बता कर, कभी बेसुर ताल ही, कभी ठीक ठीक कभी टूटी आवाज से पागल की भांति गाती है)

मन की कासों पीर सुनाऊं ।
बकनो वृथा और पत खोनी सबै चवाई गाऊं ।।

कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै धरिहै उलटो नाऊं ।।
यह तों जो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रगट जनाऊं ।।
रोम रोम अति नैन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊं ।
बिना सुजान शिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊं।।
मरमिन सखिन बियोग दुखिन क्यौं
कहि निज दसा रोआऊं ।
हरीचंद पिय भिले तो पग परि गहि पटुका समझाऊं।।

(गाते गाते बेसुध होकर गिरा चाहती है कि एक बिजली सी चमकती है और योगिन श्रीकृष्ण बनकर उठाकर गले लगाते हैं और नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

ल.— (बड़े आनंद से) सखी बधाई है, लाखन बधाई है । ले होश में आ जा । देख तो कौन तुझे गोद में लिये है)

चं.— (उन्माद की भांति भगवान के गले में लपट कर) ।

पिय तोहि राखौगी भुजन में बांधि ।
जान न देहौं तोहि पियारे धरौंगी हिये सों नांधि ।।
बाहर गर लगाइ राखौंगी अन्तर कसैंगी समाधि ।
हरीचन्द छूटन नहिं पैहौं लाल चतुरई साधि ।
पिय तोहि कैसे हिय राखौं छिपाय ?
सुन्दर रूप लखत सब कोऊ यहै कसक जिय आय ।।
नैनन में पुतरी करि राखौं पलकन ओट दुराय ।
हियरे में मनहू के अन्तर कैसे लेउं लुकाय ।
मेरो भाग रूप पिय तुमरी छीनत सौतैं हाय ।
हरीचन्द जीवन धन मेरे छिपत न क्यौं इत धाय ।।
पिय तुम और कहूं जिन जाहु ।
लेन देहु किन मों रंकिन को रूप सुधा रस लाहु ।
जो जो कहौ करौं सोइ सोई धरि जिय अमित उछाहु ।
राखौं हिये लगाइ पियारे किन मन कोहिं समाहु ।।
अनुदिन सुन्दर बदन सुधानिधि नैन चकोर दिखाहु ।
हरिचन्द पलकन की ओटैं छिनहु न नाथ दुराहु ।।
पिय तोहि कैसे बस करि राखौ !
तुव दृग मैं दृग तुव हिय मैं निज हियरो केहि बिधि
नाखौं ।।
कहा करौं का जतन बिचारौं बिनती केहि बिधि भाखौं।
हरीचन्द प्यासी जनमन की अधरसुधा किमि चाखौं ।।

भगवान्— तौ प्यारी मैं तोहि छोड़ि कै कहां जाऊंगी तू तौ मेरी स्वरूप ही है । यह सब प्रेम की

वि.— सखी ! बधाई है । स्वामिनी ने आज्ञा दई है के प्यारे सों कही दै चंद्रावली की कुंज मैं सुखेन पधारौ ।

चं.— (बड़े आनंद से घबड़ाकर ललिता विशाखा से) सखियो, मैं तो तुम्हारे दिए पीतम पाये हैं । (हाथ जोड़कर) तुमारो गुन जनम जनम गाऊंगी ।

वि.— सखी, पीतम तेरो तू पीतम की, हम तौ तेरी टहलनी हैं । यह सब तौ तुम सबन की लीला है । यामैं कौन बोलै और बोलै हू कहा जौ कछू समझै तौ बोलै — या प्रेम को तौ अकथ कहानी है । तेरे प्रेम को परिलेख तो प्रेम की टकसाल होयगो और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझ ही में न आवैगो । तू धन्य तेरो, प्रेम धन्य, या प्रेम के समझिवारे धन्य और तेरे प्रेम को चरित्र जो पढै सो धन्य । तो मैं और सिच्छा करिबे कों तेरी लीला है ।

ल.— अहा ! इस समय जो मुझे आनन्द हुआ है उसका अनुभव और कौन कर सकता है । जो आनन्द चन्द्रावली को हुआ है वही अनुभव मुझे भी होता है । सच है युगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनन्द का अनुभव और किस को है ?

चं.— पर नाथ ऐसे निठुर क्यौं हौ ! अपनों को तुम कैसे दुखी देख सकते हो ? हा ! लाखों बातैं सोची थी कि जब कभी पाऊंगी तो यह कहूंगी यह पूछूंगी पर आज सामने कुछ नहीं पूछा जाता !

भ.— प्यारी मैं निठुर नहीं हूं । मैं तो अपुने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूं । परन्तु मोहि निहचै है कै हमारे प्रेमिन को हम सों हू हमारो विरह प्यारी है । ताही सों मैंहूं बचाय जाऊं हूं । या निठुरता मैं जे प्रेमी हैं विनको तो प्रेम और बढ़ै और जे कच्चे हैं विनके बात खुल जाय । सो प्यारी वह बात हूं दूरसेन की है । तुमारो का तुम और हम तो एक ही है न तुम हम सों जुदी हो न प्यारी जू सों । हमने तो पहिले ही कही कै यह सब लीला है । (हाथ जोड़कर) प्यारी छिमा करियो, हम तौं तुम्हारे सबन के जनम जनम के रानियां हैं । तुमसे हम कभू उरिन होईबेई के नहीं । (आंखों में आंसू भर जाते हैं) ।

चं.— (घबड़ाकर दोनों हाथ छुड़ाकर आंसू भर के) बस बस नाथ बहुत भई, इतनी न सही जायगी । आपकी आंखों में आंसू देखकर मुझसे धीरज न धरा जायगा (गले लगा लेती है) ।

(विशाखा आती है)

स्वामिनी मैं भेद नहीं है, ताहू मैं रस की पोषक ठैरी । बस, अब हमारी दोउन की यही बिनती है कै तुम दोऊ गलबाही दै कै बिराजौ और हम युगलजोड़ी को दर्शन करि आज नेत्र सफल करैं ।

(गलबाहीं देकर जुगल स्वरूप बैठते हैं)

दोनों—

नीके निरखि निहारो नैन भरि नैनन को फल आजु लहौ री

जुगुल रूप छवि अमित माधुरी
रूप-सुधा-रस-सिंधु बहौ री ।
इनही सौं अभिलाख लाख करि
इक इनहीं को नितहि चहौ री ।
जो नर तनहि सफल करि चाहौ
इनहीं के पद कंज गहौ री ।
करम-ज्ञान-संसार-जाल तजि
बरु बदनामी कोठि सहौ री ।
इनहीं के रस-मत्त मगन नित
इनहीं के ह्वै जगत रहौ री ।।
इनके बल जग-जाल कोटि अब
तृन सम प्रेम प्रभाव दहौ री ।।
इनहीं को सरबस करि जानौ यहै
मनोरथ जिय उमहौ री ।।
राधा चंद्रावली-कृष्ण-ब्रज-जमुना-
गिरिवर सुखहिं कहौं री ।
जनम जनम यह कठिन प्रेमव्रत
'हरीचंद' इकरस निबहौ री ।।

भ. — प्यारी ! और जो इच्छा होय सो कहौ । काहे सो कै जो तुम्हैं प्यारो है सोई हमैं हू प्यारो है।

चं. — नाथ ! और कोई इच्छा नहीं, हमारी तो सब इच्छा की अवधि आपके दर्शन ही ताई है तथापि भरत को यह वाक्य सफल होय —

परमारथ स्वारथ दोउ कह सँग मेलि न सानैं ।
जे आचारज होइँ धरम निज तेइ पहिचानैं ।।
बृंदाबिपिन बिहार सदा सुख सों थिर होई ।
जन बल्लभी कहाइ भक्ति बिनु होइ न कोई ।।
जगजाल छाँहि अधिकार लहि कृष्णचरित सबही कहैं ।
यह रतनदीप हरिप्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै ।।

(फूल की वृष्टि होती है, बाजे बजते हैं और जवनिका गिरती है)

इति परमफल चतुर्थ अंक

भारत दुर्दशा

सन् १८७५ में छपा दुखान्त रूपक है, जिसे भारतेन्दु नाट्य रासक या लास्य रूपक कहते हैं । — सं.

भारतदुर्दशा

(मंगलाचरण)

जय सतजुग-थापन-करन, नासन म्लेच्छ-आचार ।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कलिक अवतार ।।

पहिला अंक

स्थान — बीथी

(एक योगी गाता है)

(लावनी)

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।।ध्रुव।।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनों ।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो ।।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो ।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनों ।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।।

जहँ भए शाक्य हरिचंदरु नहुष ययाती ।
जहँ राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती ।।
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती ।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती ।।
अब जहँ देखहु तहँ दु:खहिं दु:ख दिखाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।।
लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी ।
करि कलह बुलाई जवनसैन पुनि भारी ।।
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी ।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी ।।
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।
अँगरेजराज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी ।
दिन दिन दूने दु:ख ईस देत हा हा री ।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।

(पटोत्तोलन)

दूसरा अंक

स्थान — श्मशान, टूटे-फूटे मंदिर
कौआ, कुत्ता, स्यार घूमते हुए, अस्थि इधर-उधर पड़ी है ।

(भारत [1] का प्रवेश)

भारत — हा ! यह वही भूमि है जहां साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के दूतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन ने कहा था, 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव' और आज हम उसी को देखते हैं कि शमशान हो रही है । अरे यहां की योग्यता, विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्तता, सत्य सब कहां गए ? अरे पामर जयचन्द्र ! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूबा जाता था ? हाय ! अब मुझे कोई शरण देनेवाला नहीं । (रोता है) मात ; राजराजेश्वरी बिजयिनी ! मुझे बचाओ । अपनाए की लाज रक्खो । अरे दैव ने सब कुछ मेरा नाश कर दिया पर अभी संतुष्ट नहीं हुआ । हाय ! मैंने जाना था कि अँगरेजों के हाथ में आकर हम अपने दुखी मन को पुस्तकों से बहलावेंगे और सुख मानकर जन्म बितावेंगे पर दैव से यह भी न सहा गया । हाय ! कोई बचानेवाला नहीं ।

(गीत)

कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ ।।
जाकी सरन गहत सोइ मारत सुनत न कोउ दुखगाथ ।
दीन बन्यौ इस सों उत डोलत टकरावत निज माथ ।।
दिन दिन बिपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ ।
सब बिधि दुख सागर मैं डूबत धाइ उबारौ नाथ ।।

(नेपथ्य में गंभीर और कठोर स्वर से)

अब भी तुझको अपने साथ का भरोसा है ! खड़ा तो रह ! अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं ।

भारत — (डरता और कांपता हुआ रोकर) अरे यह विकराल वदन कौन मुंह बाए मेरी ओर दौड़ता चला आता है ? हाय-हाय इससे कैसे बचेंगे ? अरे यह तो मेरा एक ही कौर कर जायगा ! हाय ! परमेश्वर बैकुंठ में और राजराजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी ? हाय अब मेरे प्राण कौन बचावेगा ? अब कोई उपाय नहीं । अब मरा, अब मरा । (मूर्छा खाकर गिरता है)

(निर्लज्जता [2] आती है)

निर्लज्जता — मेरे आछत तुमको अपने प्राण की फिक्र। छि : छि : ! जीओगे तो भीख माँग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है । क्या हुआ जो धनमान सब गया 'एक जिंदगी हजार नेआमत है ।' (देखकर) अरे सचमुच बेहोश हो गया तो उठा ले चलें । नहीं नहीं मुझसे अकेले न उठेगा । (नेपथ्य की ओर) आशा ! आशा ! जल्दी आओ ।

(आशा [3] आती है)

निर्लज्जता — यह देखो भारत मरता है, जल्दी इसे घर उठा ले चलो ।

---

१. फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी, शिथिल अंग ।
२. जाँघिया —सिर खुला —ऊँची चोली —दुपट्टा ऐसा गिरता पड़ता कि अंग खुले, सिर खुला, खानगियों का सा वेष ।
३. लड़की के वेष में ।

आशा—मेरे आछत किसी ने भी प्राण दिया है ? ले चलो : अभी जिलाती हूँ ।

(दोनों उठाकर भारत को ले जाती हैं)

तीसरा अंक

स्थान — मैदान

(फौज के डेरे दिखाई पड़ते हैं ! भारतदुर्दैव [1] आता है)

भारतदु.— कहाँ गया भारत मूर्ख ! जिसको अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है ? देखो तो अभी इसकी क्या क्या दुर्दशा होती है ।

(नाचता और गाता हुआ)

अरे !

उपजा ईश्वर कोप से औ आया भारत बीच ।
छार खार सब हिंद करूँ मैं, तो उत्तम नहिं नीच ।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।
कौड़ी कौड़ी को करूँ मैं सबको मुहताज ।
भूखै प्रान निकालूँ इनका, तो मैं सच्चा राज । मुझे.
काल भी लाऊँ महँगी लाऊँ, और बुलाऊँ रोग ।
पानी उलटा कर बरसाऊँ, छाऊँ जग में सोग । मुझे.
फूट बैर और कलह बुलाऊँ, ल्याऊँ सुस्ती जोर ।
घरघर में आलस फैलाऊँ, छाऊँ दुख घनघोर । मुझे.
काफर काला नीच पुकारूँ, तोड़ूँ पैर और हाथ ।
दूँ इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ । मुझे.
मरी बुलाऊँ देस उजाड़ूँ, महँगा करके अन्न ।
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न ।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।

(नाचता है)

अब भारत कहाँ जाता है, ले लिया है । एक तस्सा बाकी है, अबकी हाथ में वह भी साफ है । भला हमारे बिना और ऐसा कौन कर सकता है कि अँगरेजी अमलदारी में भी हिंदू न सुधरें ! लिया भी तो अँगरेजों से औगुन ! हा हाहा ! कुछ पढ़े लिखे मिलकर देश सुधारा चाहते हैं ? हहा हहा ! एक चने से भाड़ फोड़ेंगे । ऐसे लोगों को दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को न हुक्म दूँगा कि इनको डिसलायल्टी में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज करके जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो । हैं ! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख ! यह क्यों ? मैं अपनी फौज ही भेज के न सब चौपट करता हूँ । (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे कोई है ? सत्यानाश फौजदार को तो भेजो ।

(नेपथ्य में से 'जो आज्ञा' का शब्द सुनाई पड़ता है)

देखो मैं क्या करता हूँ । किधर किधर भागेंगे ।

(सत्यानाश फौजदार आते हैं)

(नाचता हुआ)

सत्या. फौ.—

हमारा नाम है सत्यानास । आए हैं राजा के हम पास ।
धरके हम लाखों ही भेस । किया चौपट यह सारा देस।
बहु हमने फैलाए धर्म । बढ़ाया छुआछूत का कर्म ।
होके जयचंद हमने एक बार । खोल ही दिया हिंद का द्वार ।
हलाकू चंगेजो तैमूर । हमारे अदना अदना सूर ।
दुरानी अहमद नादिरसाह । फौज के मेरे तुच्छ सिपाह।
हैं हममें तीनों कल बल छल ।
इसी से कुछ नहिं सकती चल ।
पिलावैंगे हम खूब शराब । करैंगे सबको आज खराब।

भारतदु.— अहा सत्यानाशजी आए । आओ, देखो अभी फौज को हुक्म दो कि सब लोग मिल के चारों ओर से हिंदुस्तान को घेर ले । जो पहले से घेरे हैं उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़ चले ।

सत्या. फौ.— महाराज 'इंद्रजीत सन जो कछु भाखा, सो सब जनु पहिलहिं करि राखा ।' जिनको आज्ञा हो चुकी है वे तो अपना काम कर ही चुके हैं और जिनको जो हुक्त हो, कर दिया जाय ।

भारतदु.— किसने किसने क्या क्या किया है ?

सत्या. फौ.— महाराज ! धर्म ने सबके पहिले सेवा की ।

रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए ।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए ।।
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो ।
खान पान संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो ।।
जन्मपत्र बिधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब ।
बालकपन में ब्याहि प्रीतिबल नास कियो सब ।।
करि कुलान के बहुत ब्याह बल बीरज मार्‌यो ।
बिधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचार्‌यो ।।
रोकि बिलायतगमन कूपमंडूक बनायो ।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो ।।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई ।
ईश्वर सो सब बिमुख किए हिंदू घबराई ।।

१. क्रूर, आधा क्रिस्तानी आधा मुसलमानी वेष, हाथ में नंगी तलवार लिए ।

भारतदु.— आहा ! हाहा ! शाबाश ! शाबाश ! हाँ और भी कुछ धर्म्म ने किया ?

सत्या. फौ.— हाँ महाराज ।

अपरस सोल्हा छूत रचि, भोजनप्रीति छुड़ाय ।
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका छाय ।।

भारतदु.— और भी कुछ ?

सत्या. फौ.— हां ।

रचिकै मत वेदांत को, सबको ब्रह्म बनाय ।
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो, तोरि हाथ अरु पाय ।।

महाराज, वेदांत ने बड़ा ही उपकार किय । सब हिंदू ब्रह्म हो गए । किसी को इतिकर्त्तव्यता बाकी ही न रही । ज्ञानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रुक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए । जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहाँ ! बस, जय शंकर की ।

भारतदु.— अच्छा, और किसने किसने क्या किया ?

सत्या. फौ.— महाराज, फिर संतोष ने भी बड़ा काम किया । राजा प्रजा सबको अपना चेला बना लिया । अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं । राज न रहा, पेनसन ही सही । रोजगार न रहा, सूद ही सही । वह भी नहीं, तो घर ही का सही, 'संतोषं परमं सुखं' रोटी ही को सराह सराह के खाते हैं। उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्यमता ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी । इन दोनों को बहादुरी का मेडल जरूर मिले । व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया ।

भारतदु.— और किसने क्या किया ?

सत्या. फौ.— फिर महाराज जो धन की सेना बची थी उसको जीतने को भी मैंने बड़े बांके वीर भेजे । अपव्यय, अदालत, फैशन और सिफारिश इन चारों ने सारी दुश्मन की फौज तितर बितर कर दी । अपव्यय ने खूब लूट मचाई । अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किए । फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अंटाधार कर दिया और शिफारिश ने भी खूब ही छकाया । पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब तक पीछा करके खूब भगाया । तुहफे, घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए कि 'बम बोल गई बाबा की चारों दिसा' घूम निकल पड़ी । मोटा भाई बना बनाकर मूँड़ लिया । एक तो खुद ही यह सब पँडिया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, धांय धांय गिनी गई,[1] वर्णमाला कंठ कराई,[2] बस हाथी के खाए कैथ हो गए । धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली !

भारतदु.— और भला कुछ लोग छिपाकर भी दुश्मनों की ओर भेजे थे ?

सत्या. फौ.— हाँ, सुनिए । फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता इन एक दरजन दूती और दूतों को शत्रुओं की फौज में हिला मिलाकर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटा पर के गरुड़ हो गए । फिर अंत में भिन्नता गई । इसने ऐसा सबको काई की तरह फाड़ा कि भाषा, धर्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना सब एक एक योजन पर अलग अलग कर दिया । अब आवें बचा ऐक्य ! देखें आहीं के क्या करते हैं !

भारतदु.— भला भारत का शस्य नामक फौजदार अभी जीता है कि मर गया ? उसकी पलटन कैसी है ?

सत्या. फौ.— महाराज ! उसका बल तो आपकी अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक फौजों ने बिलकुल तोड़ दिया । लाही, कीड़े टिड्डी और पाला इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की । बीच में नील ने भी नील बनकर अच्छा लंकादहन किया ।

भारतदु.— वाह ! वाह ! बड़े आनन्द की बात सुनाई । तो अच्छा तुम जाओ । कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है । बाकी साकी अभी सपराए डालता हूँ । अब भारत कहाँ जाता है । तुम होशियार रहना और रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस और अंधकार को जरा क्रम से मेरे पास भेज दो ।

सत्या. फौ.— जो आज्ञा । (जाता है)

भारतदु.— अब उसको कहीं शरण न मिलेगी । धन, बल और विद्या तीनों गई । अब किसके बल कूदेगा ?

(जवनिका गिरती है)

पटोत्तोलन

१. सलामी मिली ।

२. पी. आई. ई. आदि उपाधियाँ मिली ।

चौथा अंक

(कमरा अंग्रेजी सजा हुआ, मेज, कुरसी लगी हुई ; कुरसी पर भारत दुर्दैव बैठा है)

(रोग का प्रवेश)

रोग — (गाता हुआ) जगत् सब मानत मेरी आन।
जगत सब मानत मेरी आन ।
मेरी ही टट्टी रचि खेलत नित सिकार भगवान ।
मृत्यु कलंक मिटावत मैं ही मो सम और न आन ।
परम पिता हम हीं वैद्यन के अत्तारन के प्रान ।।

मेरा प्रभाव जगत विदित है । कुपथ्य का मित्र और पथ्य का शत्रु मैं ही हूँ । तैलोक्य में ऐसा कौन है जिसपर मेरा प्रभुत्व नहीं । नजर, श्राप, भूत, प्रेत, टोना, टनमन, देवी, देवता सब मेरे ही नामांतर हैं । मेरी ही बदौलत ओझा, दरसनिए, सयाने पंडित, सिद्ध लोगों को ठगते हैं । (आतंक से) भला मेरे प्रबल प्रताप को ऐसा कौन है जो निवारण करे । हह ! चुंगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है, यह नहीं जानती कि जितनी सड़क चौड़ी होगी उतने ही हम भी 'जस जस सुरसा वदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा' । (भारतदुर्दैव को देखकर) महाराज ! क्या आज्ञा है ?

भारतदु. — आज्ञा क्या है, भारत को चारों ओर से घेर लो ।

रोग — महाराज ! भारत तो अब मेरे प्रवेशमात्र से मर जायगा । घेरने का कौन काम है ? धन्वंतरि और काशिराज दिवोदास का अब समय नहीं है । और न सुश्रुत, वाग्भट्ट, चरक ही हैं । वैदगी अब केवल जीविका के हेतु बची है । काल के बल से औषधों के गुणों और लोगों की प्रकृति में भी भेद पड़ गया । बस अब हमें कौन जीतेगा और फिर हम ऐसी सेना भेजेंगे जिनका भारतवासियों ने कभी नाम तो सुना ही न होगा ; तब भला वे उसका प्रतिकार क्या करेंगे ! हम भेजेंगे विस्फोटक, हैजा, डेंगू, अपाप्लेक्सी । भला इनको हिंदू लोग क्या रोकेंगे ? ये किधर से चढ़ाई करते हैं और कैसे लड़ते हैं जानेंगे तो हई नहीं, फिर छुट्टी हुई वरंच महाराज, इन्हीं से मारे जायँगे और इन्हीं को देवता करके पूजेंगे, यहाँ तक कि मेरे शत्रु डाक्टर और विद्वान इसी विस्फोटक के नास का उपाय टीका लगाना इत्यादि कहैंगे तो भी ये सब उसको शीतला के डर से न मानेंगे और उपाय आछत अपने हाथ प्यारे बच्चों की जान लेंगे ।

भारतदु. — तो अच्छा तुम जाओ । महर्घ और टिकस भी यहाँ आते होंगे सो उनको साथ लिए जाओ । अतिवृष्टि, अनावृष्टि की सेना भी वहाँ जा चुकी है। अनक्य और अंधकार की सहायता से तुम्हें कोई भी रोक न सकेगा । यह लो पान का बीड़ा लो । (बीड़ा देता है)

(रोग बीड़ा लेकर प्रणाम करके जाता है)

भारतदु. — बस, अब कुछ चिंता नहीं. चारों ओर से तो मेरी सेना ने उसको घेर लिया, अब कहाँ बच सकता है ।

(आलस्य का प्रवेश[1])

आलस्य. — हहा ! एक पोस्ती ने कहा : पोस्ती ने पी पोस्त नौ दिन चले अढ़ाई कोस । दूसरे ने जवाब दिया, अबे वह पोस्ती न होगा डाक का हरकारा होगा । पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कूँड़ी के उस पार या इस पार ठीक है । एक बारी में हमारे दो चेले लेटे थे और उसी राह से एक सवार जाता था । पहिले ने पुकारा "भाई सवार, सवार, यह पक्का आम टपक कर मेरी छाती पर पड़ा है, जरा मेरे मुँह में तो डाल ।" सवार ने कहा "अजी तुम बड़े आलसी हो । तुम्हारी छाती पर आन पड़ा है सिर्फ हाथ से उठाकर मुँह में डालने में यह आलस है !" दूसरा बोला ठीक है साहब, यह बड़ा ही आलसी है । रात भर कुत्ता मेरा मुँह चाटा किया और यह पास ही पड़ा था पर इसने न हाँका ।" सच है किस जिंदगी के वास्ते तकलीफ उठाना ; मजे में हालमस्त पड़े रहना । सुख केवल हम में है 'आलसी पड़े कुएँ में वहीं चैन है ।'

(गाता है)

गजल —

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा ।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा ।।
बिस्तर प मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा ।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ।।
"रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है ।"
छेड़ो न नक्शेपा हैं मिटाना नहीं अच्छा ।।
उठ करके घर से कौन चले यार के घर तक ।
"मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा ।"
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे ।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा ।।
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ हो तो हो ।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा ।।
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए ।
दुनिया नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा ।।

१. मोटा आदमी जँभाई लेता हुआ धीरे धीरे आवेगा ।

सिजदे से गर विहिश्त मिले दूर कीजिए ।
दो जख्न ही सही सिर का भुकाना नहीं अच्छा ।।
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या ।
ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा ।।

और क्या । काजी जी दुबले क्यों, कहैं शहर के अंदेशे से । अरे 'कोऊ नृप होउ हमें का हानी, चेरि छाँड़ि नहिं होउब रानी ।' आनंद से जन्म बिताना । 'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम । दास मलूका कह गए, सबके दाता राम ।।' 'जो पड़तव्यं सो मरतव्यं, जो न पढ़तव्यं सो भी मरतव्यं, तब फिर दंतकटाकट किं कर्तव्यं ?' भई जात में ब्राह्मण, धर्म में वैरागी, रोजगार में सूद और दिल्लगी में गप सब से अच्छी । घर बैठे जन्म बिताना, न कहीं जाना और न कहीं आना सब खाना, हगना, मूतना, सोना, बात बनाना, तान मारना और मस्त रहना । अमीर के सर पर और क्या सुरखाब का पर होता है, जो कोई काम न करे वही अमीर । 'तवंगरी बदिलस्त न बमाल ।'[१] दोई तो मस्त हैं या मालमस्त या हालमस्त । (भारतदुर्दैव को देखकर उसके पास जाकर प्रणाम करके) महाराज ! मैं सुख से सोया था कि आपकी आज्ञा पहुँची ज्यों त्यों कर यहाँ हाजिर हुआ । अब हुक्म ?

भारतदु.— तुम्हारे और साथी सब हिंदुस्तान की ओर भेजे गए हैं, तुम भी वहीं जाओ और अपनी जोगनिंद्रा से सब को अपने वश में करो ।

आलस्य.— बहुत अच्छा । (आप ही आप) आह रे बप्पा ! अब हिंदुस्तान में जाना पड़ा । तब चलो धीरे धीरे चलें । हुक्म न मानेंगे तो लोग कहेंगे 'सरबस खाइ भोग करि नाना, समरभूमि भा दुरलभ प्राना ।' अरे करने को दैव आप ही करैगा, हमारा कौन काम है, पर चलें ।

(यही सब बुड़बुड़ाता हुआ जाता है)

(मदिरा[२] आती है)

मदिरा— भगवान सोम की मैं कन्या हूँ । प्रथम वेदों ने मधु नाम से मुझे आदर दिया । फिर देवताओं की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई और मेरे प्रचार के हेतु श्रौत्रामणि यज्ञ की सृष्टि हुई । स्मृति और पुराणों में भी प्रवृत्ति मेरी नित्य कही गई । तंत्र तो केवल मेरी ही हेतु बने । ससार में चार मत बहुत प्रबल हैं, हिंदू बौद्ध, मुसलमान और क्रिस्तान । इन चारों में मेरी चार पवित्र प्रेममूर्ति विराजमान हैं । सोमपान, बीराचमन, शराबुन्नतहूरा और बापटैजिग वाईन । भला कोई कहे तो इनको अशुद्ध ? या जो पशु हैं उन्होंने अशुद्ध कहा ही तो क्या हमारे चाहनेवालों के आगे वे लोग बहुत होंगे तो फी सैकड़े दस होंगे, जगत में तो हम व्याप्त हैं । हमारे चेले लोग सदा यही कहा करते हैं । और फिर सरकार के राज्य के तो हम एकमात्र भूषण हैं ।

दूध सुरा दधिहू सुरा, सुरा अन्न धन धाम ।
वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग को नाम ।।
जाति सुरा विद्या सुरा, बिन मद रहै न कोय ।
सुधरी आजादी सुरा, जगत् सुरामय होय ।।
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु, शैयद सेख पठान ।
दै बताइ मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान ।।
पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृंद ।
गौतम पियत अनंद सों, पियत अग्र के नंद ।।
होटल में मदिरा पिएँ, चोट लगे नहिं लाज ।
लोट लए ठाढ़े रहत, टोटल दैवे काज ।।
कोउ कहत मद नहिं पिएँ, जो कछु लिख्यो न जाय ।
कोउ कहत हम मद्य बल, करत वकीली आय ।।
मद्यहि के परभाव सों, रचत अनेकन ग्रंथ ।
मद्यहि के परकास सों, लखत धरम को पंथ ।।
मद पी विधिजग को करत, पालत हरि करि पान ।
मद्यहि पी कै नाश सब, करत शंभु भगवान् ।।
विष्णु बारुणी, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि ।
शांपिन शिव गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म विचारि ।।
मेरी तो धन बुद्धि बल, कुल लज्जा पति गेह ।
माय बाप सुत धर्म सब, मदिरा ही न सँदेह ।।
सोक हरन आनँद करन, उमगावन सब गात ।
हरि मैं तपबिनु लय करनि, केवल मद्य लखात ।।
सरकारहि मंजूर जो मेरा होत उपाय ।
तो सब सों बढ़ि मद्य पै देती कर बैठाय ।।
हमहीं कों या राज की, परम निसानी जान ।
कीर्ति खंभ सी जग गड़ी, जबलौं थिर ससि भान ।।
राजमहल के चिन्ह नहिं, मिलिहैं जग इत कोय ।
तबहू बोतल ट्रक बहु, मिलिहैं कीरति होय ।।

हमारी प्रवृत्ति के हेतु कुछ यत्न करने की आवश्यकता नहीं । मनु पुकारते हैं 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां' और भागवत में कहा है 'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्ययास्ति जंतो : ।' उसपर भी वर्तमान समय की सभ्यता की तो मैं मुख्यभूलसूत्र हूँ । विषयेंद्रियों के सुखानुभव मेरे कारण द्विगुणित हो जाते हैं । संगीत साहित्य की तो एकमात्र जननी हूँ । फिर ऐसा कौन है

१. अमीरी हृदय से है, धन से नहीं है !
२. साँवली सी स्त्री, लाल कपड़ा, सोने का गहना, पैर में घुँघुरू ।

जो मुझसे विमुख हो ?

(गाती है)

(राग काफी, धनाश्री का मेल, ताल धमार)

मदवा पीले पागल जोबन बीत्यौ जात ।
बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मान हमारी बात ।।
पी प्याला छक छक आनँद से नितहि साँझ और प्रात।
झूमत चल डगमगी चाल से मारि लाज को लात ।।
हाथी मच्छड़, सूरज जुगुनू जाके पिए लखात ।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात ।।

(राजा को देखकर) महाराज ! कहिए क्या हुक्म है ?

भारतदु.— हमने बहुत से अपने वीर हिंदुस्तान में भेजे हैं । परंतु मुझको तुमसे जितनी आशा है उतनी और किसी से नहीं है । जरा तुम भी हिंदुस्तान की तरफ जाओ और हिंदुओं से समझो तो ।

मदिरा— हिंदुओं के तो मैं मुद्दत से मुँहलगी हूँ, अब आपकी आज्ञा से और भी अपना जाल फैलाऊँगी और छोटे बड़े सबके गले का हार बन जाऊँगी । (जाती है)

(रंगशाला के दीपों में से अनेक बुझा दिए जायँगे)

(अंधकार का प्रवेश)

(आँधी आने की भाँति शब्द सुनाई पड़ता है)

अंधकार— (गाता हुआ स्खलित नृत्य करता है)

(राग काफी)

जै जै कलियुग राज की, जै महामोह महराज की ।
अटल छत्र सिर फिरत थाप जग मानत जाके काज की।।
कलह अविद्या मोह मूढ़ता सबै नास के साज की ।।

हमारा सृष्टि संहार कारक भगवान् तमोगुण जी से जन्म है । चोर, उलूक और लंपटों के हम एकमात्र जीवन हैं । पर्वतों की गुहा, शोकितों के नेत्र, मूर्खों के मस्तिष्क और खलों के चित्त में हमारा निवास है । हृदय के और प्रत्यक्ष, चारों नेत्र हमारे प्रताप से बेकाम हो जाते हैं । हमारे दो स्वरूप है, एक आध्यात्मिक और एक आधिभौतिक, जो लोक में अज्ञान और अँधेरे के नाम से प्रसिद्ध हैं । सुनते हैं कि भारतवर्ष में भेजने को मुझे मेरे परम पुज्य मित्र दुर्दैव महाराज ने आज बुलया है । चलें देखें क्या कहते हैं (आगे बढ़कर) महाराज की जय हो, कहिए, क्या अनुमति है ?

भारतदु.— आओ मित्र ! तुम्हारे बिना तो सब सूना था । यद्यपि मैने अपने बहुत से लोग भारतविजय को भेजे हैं पर तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं । मुझको तुम्हारा बड़ा भरोसा है, अब तुमको भी वहाँ जाना होगा ।

अंध.— आपके काम के वास्ते भारत क्या वस्तु है, कहिए मैं विलायत जाऊँ ।

भारतदु.— नहीं, विलायत जाने का अभी समय नहीं, अभी वहाँ त्रेता, द्वापर है ।

अंध.— नहीं, मैंने एक बात कही । भला जब तक वहाँ दुष्टा विद्या का प्रावल्य है, मैं वहाँ जाही के क्या करूँगा ? गैस और मैगनीशिया से मेरी प्रतिष्ठा भंग न हो जाएगी ।

भारतदु.— हाँ, तो तुम हिंदुस्तान में जाओ और जिसमें हमारा हित हो सो करो । बस 'बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊँ, परम चतुर मैं जानत अहऊँ ।'

अंध.— बहुत अच्छा, मैं चला । बस जाते ही देखिए क्या करता हूँ । (नेपथ्य में बैतालिक गान और गीत की समाप्ति में क्रम से पूर्ण अंधकार और पटाक्षेप)

निहचै भारत को अब नास ।
जब महराज विमुख उनसों तुम निज मति करी प्रकास।।
अब कहुँ सरन तिन्हैं नहिं मिलिहै ह्वैहै सब बल चूर ।
बुधि विद्या धन धान सबै अब तिनको मिलिहैं धूर ।।
अब नहिं राम धर्म अर्जुन नहिं शाक्यसिंह अरु व्यास ।
करिहै कौन पराक्रम इनमें को दैहै अब आस ।।
सेवाजी रनजीतसिंह हू अब नहिं बाकी जौन ।
करिहैं कछू नाम भारत को अब तो नृप मौन ।।
वही उदैपुर जैपुर रीवाँ पन्ना आदिक राज ।
परबस भए न सोच सकहिं कछु करि निज बल बेकाज।।
अँगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़ ।
स्वारथपर विभिन्न-मति-भूले हिंदू सब ह्वै मूढ़ ।।
जग के देस बढ़त बदि बदि के सब बाजी जेहि काल ।
ताहू समय रात इनको है ऐसे ये बेहाल ।।
छोटे चित अति भीरु बुद्धि मन चंचल बिगत उछाह ।
उदर-भरन-रत, ईसबिमुख सब भए प्रजा नरनाह ।।
इनसों कछू आस नहिं ये तो सब बिधि बुधि-बल-हीन।
बिना एकता-बुद्धि-कला के भए सबहि बिधि दीन ।।
बोझ लादि कै पैर छानि कै निज सुख करहु प्रहार ।
ये रासभ से कछु नहिं कहिहैं मानहु छमा अगार ।।
हित अनहित पशु पंछी जाना पै ये जानहिं नाहिं ।
भूले रहत आपुने रँग मैं फँसे मूढ़ता माहिं ।।
जे न सुनहिं हित, भलो करहिं नहिं तिनसों आसा कौन।
डंका दै निज सैन साजि अब करहु उतै सब गौन ।।

(जवनिका गिरती है)

पाँचवाँ अंक

स्थान — किताबखाना

(सात सभ्यों की एक छोटी सी कमेटी ; सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाए, छड़ी लिए ; छह सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय)

सभापति — (खड़े होकर) सभ्यगण ! आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतदुर्दैव की, सुना है कि हम लोगों पर चढ़ाई है । इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिए कि जिससे हम लोग इस भावी आपत्ति से बचें । जहाँ तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म है । आशा है कि आप सब लोग अपनी अपनी अनुमति प्रकट करेंगे । (बैठ गए, करतलध्वनि)

बंगाली — (खड़े होकर) सभापति साहब जो बात बोला सो बहुत ठीक है । इसका पेशतर कि भारतदुर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है किंतु प्रश्न एई है जे हम लोग उसका दमन करने शाकता कि हमारा बोर्ज्जोबल के बाहर का बात है । क्यों नहीं शाकता ? अलबत्त शकैगा, परंतु जो सब लोग एक मत्त होगा । (करतलध्वनि) देखो हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं । ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लीग इत्यादि अनेक शभा भी होते हैं । कोई थोड़ा बी बात होता हम लोग मिल के बड़ा गोल करते । गवर्नमेंट तो केवल गोलमाल से भय खाता । और कोई तरह नहीं शोनता । ओ हुँआ का अखबार वाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गवर्नमेंट को अलबत्त शुनने होता । किंतु हेंयाँ, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता । आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य शोचना चाहिए । (उपवेशन) ।

प. देशी — (धीरे से) यहीं, मगर अब तक कमेटी में हैं तभी तक । बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं ।

दू. देशी. — (धीरे से) क्यों भाई साहब ; इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे ?

एडिटर — (खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारत दुर्दैव को हटाने को तैयार हैं । हमने पहिले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहां तो कोई सुनता ही नहीं । अब जब सिर पर आफत आई सो आप लोग उपाय सोचने लगे । भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्द सोचिए । (उपवेशन)

कवि — (खड़े होकर) मुहम्मदशाह ने भाँड़ों ने दुश्मन को फौज से बचने का एक बहुत उत्तम उपाय कहा था । उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाय । जमना किनारे कनात खड़ी कर दी जायँ, कुछ लोग चूड़ी पहने कनात के पीछे खड़े रहें । जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकालकर उँगली चमकाकर कहें "मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं" । बस सब दुश्मन हट जायँगे । यही उपाय भारतदुर्दैव से बचने को क्यों न किया जाय ।

बंगाली — (खड़े होकर) अलबत्त, यह भी एक उपाय है किंतु असभ्यगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो ? (उपवेशन)

एडि. — (खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एड्रकेशन की एक सेना बनाई जाय । कमेटी की फौज । अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायँ । आप लोग क्या कहते हैं ? (उपवेशन)

दू. देशी — मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो ? (उपवेशन)

बंगाली — हाकिम लोग काहे को नाराज होगा । हम लोग शदा चाहता है कि अँगरेजों का राज्य उत्पन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता । (उपवेशन)

महा. — परंतु इसके पूर्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जाननी कि हाकिम लोग भारतदुर्दैव की सैन्य से मिल तो नहीं जायँगे ।

दू. देशी — इस बात पर बहस करना ठीक नहीं । नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें अपना काम देखिए (उपवेशन और आप ही आप) हाँ, नहीं तो अभी कल ही भाड़वाजी होय ।

महा. — तो सार्वजनिक सभा का स्थापन करना । कपड़ा बीनने की कल मँगानी । हिंदुस्तानी कपड़ा पहिनना । यह भी सब उपाय है ।

दू. देशी — (धीरे से) बनात छोड़कर गंजी पहिरेंगे, हें हें ।

एडि. — परन्तु अब समय थोड़ा है जल्दी उपाय सोचना चाहिए ।

कवि — अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिन्दू मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें सब दुर्दैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दें ।

प. देशी — पर रंग गोरा कहाँ से लावेंगे ?

बंगाली — हमारा देश में भारत उद्वार नामक एक नाटक बना है । उसमें अँगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें । ओ लिखता पाँच जन बंगाली मिल के अँगरेजों को निकाल देगा । उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा । दूसरा बाँस काट काट के पिवरी नामक जलयंत्र विशेष बनावेगा । तीसरा उस जलयंत्र से अँगरेजों की आँख से धूर और पानी डालेगा ।

महा. — नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है । ऐसा उपाय करना जिससे फल सिद्दि हो ।

प. देशी — (आप ही आप) हाय ! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो । क्रमश : सब कुछ हो जायगा ।

एडि. — आप लोग नाहक इतना सोच करते हैं, हम ऐसे ऐसे आर्टिकिल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा ।

कवि — और हम ऐसी ही ऐसी कविता करेंगे ।

प. देशी — पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है ?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूँ ।

(सब डरके चौकन्ने से होकर इधर उधर देखते हैं)

दू. देशी — (बहुत डरकर) बाबा रे, जब हम कमेटी में चले थे तब पहिले ही छींक हुई थी । अब क्या करें । (टेबुल के नीचे छिपने का उद्योग करता है)

(डिसलायलटी[1] का प्रवेश)

सभापति — (आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहाँ तशरीफ लाई हैं ? कुछ हम लोग सरकार के विरुद्द किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं । हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं ।

डिसलायलटी — नहीं, नहीं, तुम सब सरकार के विरुद्द एकत्र हुए हो, हम तुमको पकड़ेंगे ।

बंगाली — (आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है । सरकार के विरुद्द कौन बात हम लोग बोला ? व्यर्थ का विभीषिका !

डिस. — हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है । कवि वचन सुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्द कौन बात थी ? फिर क्यों उसे पकड़ने को हम भेजे गए ? हम लाचार हैं ।

दू. देशी — (टेबुल के नीचे से रोकर) हम नहीं, हम नहीं, तमाशा देखने आये थे ?

महा. — हाय हाय ! यहाँ के लोग बड़ो भीरू और क़ापुरुष हैं । इसमें भय की कौन बात है ! क़ानूनी है ।

सभा. — तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है ?

डिस. — इँगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से ।

महा — परंतु तुम ?

दू. देशी — (रोकर) हाय हाय ! भटवा तुम क़हता है अब मरे ।

महा. — पकड़ नहीं सकतीं, हमको भी दो हाथ दो पैर हैं । चलो हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं, सवाल जवाब करेंगे ।

बंगाली — हाँ चलो, ओ का बात — पकड़ने नहीं शेकता ।

सभा. — (स्वगत) चेयरमैन होने से पहिले हमी को उत्तर देना पड़ेगा, इसी से किसी बात में हम अगुआ नहीं होते ।

डिस. — अच्छा चलो । (सब चलने की चेष्टा करते हैं) ।

(जवनिका गिरती है)

छठा अंक

स्थान — गंभीर वन का मध्यभाग

(भारतएक वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा है)

(भारतभाग्य का प्रवेश)

भारतभाग्य — (गाता हुआ-राग चैती गौरी)

जागो जागो रे भाई ।
सोअत निसि बैस गँवाई जागो जागो रे भाई ।।
निसि की कौन कहे दिन बीत्यो काल राति चलि आई।
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई।।
निज उद्वार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई ।
अबहूँ चेति, पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई ।।
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वैहै रहि जैहौ मुँह बाई ।।
जागो जागो रे भाई ।।

(भारत को जगाता है और भारत जब नहीं जागता

१. पुलिस की वर्दी पहिने ।

तब अनेक यत्न से फिर जगाता है, अंत में हारकर उदास होकर)

हाय ! भारत को आज क्या हो गया है ? क्या निस्संदेह परमेश्वर इससे ऐसा ही रूठा है ? हाय क्या अब भारत के फिर वे दिन न आवेंगे ? हाय यह वही भारत है जो किसी समय सारी पृथ्वी का शिरोमणि गिना जाता था ?

भारत के भुजबल जग रक्षित ।
भारतविद्या लहि जग सिच्छित ।।
भारततेज जगत बिस्तारा ।
भारतभय कंपत संसारा ।।
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए ।
थर थर कंपत नृप डरपाए ।।
जाके जय की उज्ज्वल गाथा ।
गावत सब महि मंगल साथा ।।
भारत किरिन जगत उँजियारा ।
भारतजीव जिअत संसारा ।।
भारतवेद कथा इतिहासा ।
भारत वेदप्रथा परकासा ।।
फिनिक मिसिर सीरीय युनाना ।
भे पंडित नहि भारत दाना ।।
रह्यौ रुधिर जब आरज सीसा ।
ज्वलित अनल समान अवनीसा ।।
साहस बल इन सम कोउ नाहीं ।
तबै रह्यो महिमंडल माहीं ।।
कहा करी तकसीर तिहारी ।
रे बिधि रुष्ट याहि की बारी ।।
सबै सुखी जग के नर नारी ।
रे बिधना भारत हि दुखारी ।।
हाय रोम तू अति बड़भागी ।
बर्बर तोहि नास्यो जय लागी ।।
तोड़े की रतिथंभ अनेकन ।
ढाहे गढ़ बहु करि प्रण टेकन ।।
मंदिर महलनि तोरि गिराए ।
सबै चिन्ह तुव धूरि मिलाए ।।
कछु न बची तुव भूमि निसानी ।
सो बरु मेरे मन अति मानी ।।
भारत भाग न जात निहारे ।
थाप्यो पग ता सीस उधारे ।।
तोर्‌यो दुर्गन महल ढहायो ।
तिनहीं में निज गेह बनायो ।
ते कलंक सब भारत केरे ।
ठाढ़े अजहुँ लखो घनेरे ।।
काशी प्राग अयोध्या नगरी ।
दीन रूप सम ठाढ़ी सगरी ।।
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई ।
रही सबै भुव मुँह मसि लाई ।।
हाय पंचनद हा पानीपत ।
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत ।।
हाय चितौर निलज तू भारी ।
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी ।।
जा दिन तुव अधिकार नसायो ।
जो दिन क्यों नहिं धरनि समायो ।।
रह्यो कलंक न भारत नामा ।
क्यों रे तू बारानसि धामा ।।
सब तजि कै भजि कै दुखभारी ।
अजहुँ बसत करि भुव मुख कारो ।।
अरे अग्रवन तीरथराजा ।
तुमहुँ बचे अबलौं तजि लाजा ।।
पापिनि सरजू नाम धराई ।
अजहूँ बहत अवधतट जाई ।।
तुम में जल नहिं जमुना गंगा ।
बढ़हु बेग करि तरल तरंगा ।।
धोवहु यह कलंक की रासी ।
बोरहु किन झट मथुरा कासी ।।
कुस कन्नौज अंग अरु बंगहि ।
बोरहु किन निज कठिन तरंगहि ।।
बोरहु भारत भूमि सबेरे ।
मिटै करक जिय की तब मेरे ।।
अहो भयानक भ्राता सागर ।
तुम तरंगनिधि अतिबल आगर ।
बोरे बहु गिरि बन अस्थाना ।
पै बिसरे भारत हित जाना ।।
बढ़हु न बेगि धाई क्यों भाई ।
देहु भारत भुव तुरत डुबाई ।।
घेरि छिपावहु विंध्य हिमालय ।
करहु सफल भीतर तुम लय ।।
धोवहु भारत अपजस पंका ।
मेटहु भारतभूमि कलंका ।।

हाय ! यहीं के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे ।

जेहि छिन बलभारे हे सबै तेग धारे ।
तब सब जग धाई फेरते हे दुहाई ।
जग सिर पग धारे धावते रोस भारे ।
बिपुल अवनि जीती पालते राजनीती ।।

जग इन बल काँपै देखिकै चंड दापै ।
सोइ यह [illegible] मेरे ह्वै रहे आज चेरे ।।
ये कृष्ण बरन जब मधुर तान ।
करते अमृतोपम वेद गान ।।
तब मोहन सब नर नारि वृंद ।
सुनि मधुर बरन सज्जित सुछंद ।।
जग के सबही जन धारि स्वाद ।
सुनते इनहीं को बीन नाद ।।
इनके गुन होतो सबहि चैन ।
इनहीं कुल नारद तानसैन ।।
इनहीं के क्रोध किए प्रकास ।
सब काँपत भूमंडल अकास ।।
इनहीं के हुंकृति शब्द घोर ।
गिरि काँपत हे सुनि चारु ओर ।।
जब लेत रहे कर में कृपान ।
इनहीं कहँ हो जग तृन समान ।।
सुनि कै रनबाजन खेत माहिं ।
इनहीं कहँ हो जिय सक नाहिं ।।
याही भुव महँ होत है हीरक आम कपास ।
इतही हिमगिरि गंगाजल काव्य गीत परकास ।।
जाबाली जैमिनि गरग पातंजलि सुकदेव ।
रहे भारतहि अंक में कबहिं सबै भुवदेव ।।
याही भारत मध्य में रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
जिनके भारतगान सों भारतबदन प्रकास ।।
याही भारत में रहे कपिल सूत दुरवास ।
याही भारत में भए शाक्य सिंह संन्यास ।
याही भारत में भए मनु भृगु आदिक होय ।
तब तिनसी जग में रह्यो घृना करत नहि कोय ।।
जासु काव्य सों जगत मधि अब ल ऊँचो सीस ।
जासु राज बल धर्म की तृषा करहिं अवनीस ।।
साई व्यास अरु राम के बंस सबै संतान ।
ये मेरे भारत भरे सोइ गुन रूप समान ।।
सो बंस रुधिर वही सोई मन बिस्वास ।
वही वासना चित वही आसय यही विलास ।।
कोटि कोटि ऋषि पुन्य तन कोटि कोटि अति सूर ।
कोटि कोटि [illegible] मधुर कनि मिले यहाँ की धूर ।।
सोइ भारत की आज यह भई दुरदसा हाय ।
कहा करें कित जायँ नहिं सूझत कछू उपाय ।।

(भारत को फिर उठाने की अनेक चेष्टा करके उपाय निष्फल होने पर रोकर)

हा ! भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं । सच है, जो जान बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा ? हा दैव ! तेरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है । कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नंगे पाँव बन बन की धूल उड़ाते फिरते हैं । कल जिनके घर लड़के लड़कियों के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था आज उसका नाम लेवा और पानी देवा कोई नहीं बचा और कल जो घर अन्न धन पूत लक्ष्मी हर तरह से भरे पूरे थे आज उन घरों में तू ने दिया बोलनेवाला भी नहीं छोड़ा ।

हा ! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट, प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार में ऊँचा है, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारतवर्ष के राजा चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रूम रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारत में राम, युधिष्ठर, नल, हरिश्चन्द्र, रंतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं उसकी यह दशा ! हाय, भारत भैया, उठो ! देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है । अब सोने का समय नहीं है । अँगरेज का राज्य पाकर भी न जगे तो कब जागोगे । मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए, अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना । विद्या की चरचा फैल चली, सबको सब कुछ कहने सुनने का अधिकार मिला, देश विदेश से नई विद्या और कारीगरी आई । तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भाँग के गोले, ग्रामगीत, वही बाल्यविवाह, भूत प्रेत की पूजा जन्मपत्री की विधि ! वही थोड़े में संतोष, गप हाँकने में प्रीति और सत्यानाशी चालें ! हाय अब भी भारत की यह दुर्दशा ! अरे अब क्या चिता पर सम्हलेगा । भारत भाई ! उठो, देखो अब दु:ख नहीं सहा जाता, अरे कब तक बेसुध रहोगे ? उठो, देखो, तुम्हारी संतानों का नाश हो गया। छिन्न-भिन्न होकर सब नरक की यातना भोगते हैं, उस पर भी नहीं चेतते। हाय ! मुझसे तो अब यह दशा नहीं देखी जाती । प्यारे जागो। (जगाकर और नाड़ी देखकर) हाय इसे तो बड़ा ही ज्वर चढ़ा है ! किसी तरह होश में नहीं आता । हा भारत ! तेरी क्या दशा हो गई ! हे करुणासागर भगवान् इधर भी दृष्टि कर । हे भगवती राज-राजेश्वरी, इसका हाथ पकड़ो । (रोकर) अरे कोई नहीं जो इस समय अवलंब दे । हा ! अब मैं जी के क्या करूँगा ! जब भारत ऐसा मेरा मित्र इस दुर्दशा में पड़ा है और उसका उद्धार नहीं कर सकता, तो मेरे जीने पर धिक्कार है ! जिस भारत का मेरे साथ अब तक इतना संबंध था उसकी ऐसी दशा देखकर भी

मैं जीता रहूँ तो बड़ा कृतघ्न हूँ ! (रोता है) हा विधाता, तुझे यही करना था ! (आतंक से) छि : छि : इतना क्लैव्य क्यों ? इस समय यह अधीरजपना ! बस, अब धैर्य ! (कमर से कटार निकालकर) भाई भारत ! मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ ! मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता । इसी से कातर की भाँति प्राण देकर उऋण होता हूँ । (ऊपर हाथ उठाकर) हे सर्व्वांतर्यामी ! हे परमेश्वर ! जन्म-जन्म मुझे भारत सा भाई मिलै । जन्म जन्म गंगा जमुना के किनारे मेरा निवास हो ।

(भारत का मुँह चूमकर और गले लगाकर)

भैया, मिल लो, अब मैं बिदा होता हूँ । भैया, हाथ क्यों नहीं उठाते ? मैं ऐसा बुरा हो गया कि जन्म भर के वास्ते मैं बिदा होता हूँ तब भी ललककर मुझसे नहीं मिलते । मैं ऐसा ही अभागा हूँ तो ऐसे अभागे जीवन ही से क्या ; बस यह लो ।

(कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका पतन)

भारत जननी

सन् १८७७ की दिसम्बर में "हरिश्चद्र चंद्रिका" में प्रकाशित मौलिक ओपेरा। सन् १८७८ की "कविवचन सुधा" में एक विज्ञापन छपा जिससे यह पता चलता है कि यह भारतेन्दु की मौलिक कृति न होकर उनके किसी मित्र की कृति है। जिन्होने बंगला की "भारतमाता" का हिन्दी अनुवाद किया। उनकी इच्छा के अनुसार भारतेन्दु ने उसमें संशोधन कर पद आदि जोड़ अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया।

बाद में "नाटक" (सिद्धांत विवेचन) में उन्होने इसे स्वरचित नाटको की सूची में लिखा। दिसम्बर १८८१ के "उचितवक्ता" में भी इसका विज्ञापन भारतेन्दु रचित ही किया गया है। इसका पहला संस्करण हरिप्रकाश प्रेस और तीसरा संस्करण सं. १९३४ में भारत जीवनप्रेस से निकला। —सं.

भारतजननी

An Opera.

बंग भाषा की "भारतमाता के आशय के अनुसार निर्मित हुआ और चन्द्रिका से उद्धृत हो कर श्री मन्महाराज राधाप्रसाद सिंह डुमरांव देशाधीश्वर की अनुमति से बाबू हरिश्चन्द्र ने प्रकाश किया। बनारस

मूल्य ।।   संवत् १९३४

नं. १ महल्ला नैपाली खपरा हरि
यंत्रालय में अमीर सिंह ने
मुद्रित किया।

भारत जननी

An opera

(सूत्रधार आता है)

(भैरव ताल इकताला)

सू.—

जगत पिता जग जीवन जागो मंगल मुख दरसाओ ।
तुव सोए सबही मनु सोए तिन कहं जागि जगाओ ।।
अब बिनु जागे काज सरत नहिं आलस दूरि बहाओ ।
हे भारत भुवनाथ भूमि निज बूड़त आनि बचाओ ।।

भारत भूमि और भारत सन्तान की दुर्दशा दिखाना ही इस भारत जननी की इति कर्तव्यता है और आज जो वह आर्य्य वंश का समाज इस खेल देखने को प्रस्तुत है उसमें से एक मनुष्य भी यदि इस भारतभूमि के सुधारने में एक दिन भी यत्न करैं तो हमारा परिश्रम सफल है ।

(जाता है)

स्थान — बड़ा भारी खंडहर

(एक टूटे देवालय की सहन में एक मैली साड़ी पहिने बाल खोले भारतजननी निद्रित सी बैठी, भारत सन्तान इधर उधर सो रहे हैं ।) (भारत सरस्वती आती है सफेद चन्द्रजोत छोड़ी जाय)

(गाती हुई ठुमरी)

भा. सं.—

क्यों माता मुख मलिन होय रही जिय मैं कहा उदासी ।
क्यों घर छोड़ि त्यागी आभूषन बैठी है बनबासी ।।
कहां गई वह मुख की सोभा कित वह तेज गवायो ।
कित वह श्री बल बुधि उछाह सब कछु नहिं आज लखायो।
कहां गयो वह राजभवन कित धवल धाम बिनसाए ।
कहँ वह ओज प्रताप नसानो वैभव कितहि दुराए ।।
सदा प्रसन्न तेजजुत मुख तुव बालअरक छबि छाजै ।
सो दिन ससि सम पीत बरन ह्वै आजु तेज बिन राजे ।।
धूरि भरी तुव अलक देखि मेरो चित अकुलाई ।।
छत्र चवर नित ढुरत जौन मुख तहं मनु छुटत हवाई ।।
कित सब वेद पुरान शास्त्र उपवेद अंग सह भागे ।
दरसन दुरै कितै जिन के बल तुव प्रताप जग जागे ।।
आजु न कोऊ संग अकेली दीन होइ बिलखाई ।
बैठी क्यों हत जननि कहौ क्यों बुधि गुन ज्ञान नसाई ।।

(भारत माता के पास जाकर कई बेर जगाकर)

(परज कलिंगड़ा)

क्यों बोलत नहिं मुख माय बचन
जिय व्याकुल बिन तुव अमृत बयन ।
क्यों रूसि रही अपराध बिना
नहिं खोलत क्यों जुगल नयन ।
बिनती न सुनत हित जिय न गुनत
भई मौन कियो जागत ही सयन ।
मुख खोलौ बोलौ बलि बलि गई
दिन ही में काहे करत रयन ।।
बिछुरत अब फिर कठिन मिलन
लै जात यवन मोहि करि कै जयन ।।

(अंत का तुक गाते और रोते रोते भारत सरस्वती जाती है)

(भारत दुर्गा आती है लाल चंद्रजोत छूटै)

(राग बसंत)

भा. दु.—

भारत जननी जिय क्यों उदास ।
बैठी इकली कोउ नाहिं पास ।
किन देखहु यह रितुपति प्रकास ।
फुलीं सरसों बन करि उजास ।।
खेतन मैं पकि रहे लखहु धान ।
पियरान लगे भरि स्वाद पान ।
रितु बदलि चली देखहुं सुजान ।
अबहूं तौ चेतौ धारि ज्ञान ।।
भयो सुखद सिसिर को माय अंत
लखि सबहिन मिली गायो बसंत ।।
तब क्यों न बाँधि कंकन समंत ।
साजत केसरिया भूमि कंत ।।

(होली)

भारत मैं मची है होरी ।।
इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी ।
अपनी अपनी जय सब चाहत होड़ परी दुहुं ओरी ।।
दुन्द सखि बहुत बढ़ो री ।।१।।
धूर उड़त सोइ अबिर उड़ावत सबको नयन भरो री ।
दीन दसा अंसुवन पिचकारिन सब खिलार भिंजयो री ।।
भींजि रहे भूमि लटो री ।।२।।
भइ पतझार तत्व कहुँ नाहीं सोइ वसंत प्रगटो री ।
पीरे मुख भई प्रजा दीन ह्वै सोइ फूली सरसों री ।।
सिसिर को अंत भयो री ।।३।।
बौराने सब लोग न सूझत आम सोई बौरयौ री ।
कुहू कहत कोकिल ताही तें महा अंधार छयो री ।।
रूप नहिं कहु लख्यौ री ।।४।।
हारयौ भाग अभाग जीत लखि विजय निसान हयो री ।
तव उछाह श्रीधन बुधिबल सब फगुआ माहिं लयो री ।।
सेस कछु रहि न गयो री ।।५।।
* गारी बकत कुफार जीति दल तासुन सोच लयो री ।
मूरख कारो काफिर आधो सिच्छित सबहि भयो री ।।
उत्तर काहू न दयो री ।।६।।
उठौ उठौ मैया क्यों हारौ अपुन रूप सुमिरो री ।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री ।।
दीनता दूर धरो री ।।७।।
कहां गये क्षत्री किन उन के पुरषारथहिं हरो री ।
चूड़ी पहिरि स्वांग बनि आए धिक धिक सबन कह्यो री ।
भेस यह क्यों पकरो री ।८
धिक वह मात पिता जिन तुम सों कायर पुत्र जन्यो री ।
धिक वह घरी जनम भयो जामै यह कलंक प्रगटो री ।
जनमतहि क्यों न मरो री ।९
खान पियन अरु लिखन पढ़न सों काम न कछू चलो री ।
आलस छोड़ि एक मत ह्वै कै सांची वृद्धि करो री ।
समय नहिं नेकु बचो री ।१०
उठौ उठौ सब कमरन बांधौ शस्त्रन सान धरो री ।
विजय निसान बजाइ बावरे आगेइ पांव धरो री ।
छबीलिन रंग रंगो री ।११
आलस मैं कछु काम न चलि है सब कछु तो बिनसों री ।
कित गयो धन बल कल विवेक अब कोरो नाम बचो री ।
तऊ नहिं सुरत करो री ।१२
कोकिल एहि बिधि बहुबकि हारयौ काहू नाहि सुनो री ।
मेटो सकल कुमेटी थोथी पोथी पढ़त मरो री ।
काज नहिं तनिक सरो री ।१३
चालिस दिन इमि खेलत बीते खेल नहीं निपटो री ।
भयो पंक अति रंग को तामै गज को जूथ फंसो री ।
न कोउ विधि निकसि सको री ।१४
कंफन बाँधौ कर में सबेरे चूरी डारहु तोरी ।
एक मतो करि दृढ़ ह्वै सबेरे आगेहि चरन धरो री ।
मचा बहु गहिरी होरी ।१५
अबलन सो जनि डरहु धाइ दृढ़ करिकै करन गहो री ।
निपट निलज करिके झकझोरहु अरुन रंग में बोरी ।
छबीलिन रंग रंगो री ।१६
खेलत खेलत पूनम आई भारी खेल मचो री ।
चलत कुमकुमा रंग पिचकारी अरु गुलाल की झोरी ।।
बजत डफ राग जमो री ।१७[१]
होरी सब ठांवन लै राखी पूजत लै लै रोरी ।
घर के काठ डारि सब दोने गावत गीतन गोरी ।।
झूमको झूमि रहो री ।१८
तेज बुद्धि बल धन अरु साहस उद्यम सूरपनो री !
होरी में सब स्वाहा कीनी पूजन होत भलो री ।।
करत फेरी तब को री ।१९
फेर धुरहरो भई दूसरे दिन जब अगिन बुझो री ।
सब कछु जरि गयो होरी में तब धूरहि धूर बचो री ।
नाम जमघण्ट परो री ।२०
फूक्यौ सब कछु भारत नै कछु हाथ न हाय रहो री ।
तब रोअन मिस चैती गाई भली भई यह होरी ।
भलो तेवहार भयो री ।२१
(रोती हुई भारत जननी की ठोढ़ी पर हाथ रख कर)

(राग चैती)

अब हम जात हो परदेसवाँ कठिन फिर होइहै मिलनवां
हो राम ।
अरे मुखहू न कोई बौलै कोई न आदर देय मोरे रामा ।
अरे सपनेहु न मोर पियरवा रे भुज भर मोहि लेय ।।
अरे अबहू न सोचत लोगवा मति सब गई बौराय हो राम ।
हमरे बिन जरि जरि मरिहैं करि करि कै हाय ।
हम रूसि चली परदेसवाँ फिर नहिं आवन होय हो राम ।
अरे बिन आदर तनिकौ पाए जात बिदेश हम रोय ।
(रोते रोते हाथ की तलवार को दो टुकड़े तोड़कर भारत
दुर्गा जाती है)
(भारत लक्ष्मी आती है) (हरी चन्दर जोत छूटै)

(सोरठ गाकर)

भा. ल.—
मलिन मुख भारत माता तेरो ।

बारि भरत दिन रैन नैन सो लखि दुख होत घनेरो ।
तुव मुख ससि देखत मन जलनिधि बढ़त रह्यौ चहुँ फेरो ।
सोइ मुख आज बिलोकत दुख सो फट्यौ जात हिय मेरो ।।

मलार ।

लखौ किन भारत वासिन की गति ।
मदिरा मत्त भए से सोअत ह्वै अचेत तजि सब मति ।।
घन गरजै जल बरसै इन पर बिपति परै किन आई ।
ये बजमारे तनिक न चौंकत ऐसी जड़ता छाई ।।
भयो घोर अन्धियार चहूंदिसि ता महँ बदन छिपाए ।
निरलज परे खोइ आपुनपौ जगतहू न जगाए ।।
कहा करैं इत रहि कै अब जिय तासो यहै बिचारा ।
छोड़ि मूढ़ इन कहे अचेत हम जात जलधि के पारा ।।

(अन्त का तुक गाते गाते और रोते रोते भारत लक्ष्मी का प्रस्थान)

भारत माता— (आँखें खोल कर) हाय क्या हुआ ? क्या लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई ? हां ! मैं ऐसी पापिनी हूं कि नेत्रों के सामने आने पर भी उसे आँख भर न देखा भली भांति उसे पहचान भी न सकी । (चिन्ता से) नहीं नहीं अन्तर्धान नहीं हुई अभी तो वह हमको बहुत कुछ कह रही थी बहुत उरहना देती थी और कुछ प्रबोध करती थी फिर क्यों कुछ कहते कहते और रोते रोते दूर चली गई ? क्या कहा (सोच के) 'जाऊं जलधि के पार' हाय (रोने लगी) फिर हमारी और हमारे सन्तति की लक्ष्मी बिना क्या गति होगी ? (सोच से) तो क्या इन लड़कों को जगा दें ? क्या सब वृत्तान्त उन से कह दें । नहीं जगाने का काम नहीं ये सब चिरकाल से गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं । इन्हें सोने ही दें । (सोच कर) नहीं नहीं भला यह कुछ सोते थोड़े ही हैं इन्हें तो अज्ञान्धकार में पड़ने के कारण दिग् भ्रम हो रहा है और इसी हेतु नेत्र निमीलित कर इस दशा में पड़े हैं । हाय मेरे बेटे अन्न जल न मिलने के कारण पिपासाकुलित सर्प की भाँति बार बार दीर्घ श्वास ले रहे है । हाय मैं कैसी पापिनी क्रूरकर्मा नृशंसहृदया हूं कि अपने सन्तत ही ऐसी दशा देख कर भी जीती हूं । हा विधाता मेरे प्राण शतधा होकर अभी क्यों नहीं विदीर्ण हो जाते, माता का हृदय तो ऐसा कठोर स्वप्न में भी नहीं होता ।

जान पड़ता है कि अभी कुछ और भी शेष है जिस के हेतु ईश्वर मेरे प्राण का शीघ्र ही अन्त नहीं कर देता (आंसू पोंछ कर एक का हाथ पकड़ के) बेटा उठो, इस प्रकार सोने से कुछ काम न चलेगा, यह पूर्वकाल का समय नहीं, तुम्हारा वह दिन गया, अब शीघ्र उठो और इस रोग के निवृत्त करने को सब मिल कर ऐक्यावलम्बन कर स्वस्थचित्त हो कोई उपाय सोचो, नहीं तो रोग बढ़ जाने पर फिर कुछ न बन पड़ेगी । (एक को उठाती है तो दूसरा सोता है और दूसरे को उठाती है तो पहिला सो जाता है, इसी भाँति सब को भारतमाता ने उठाया किंतु सब के सब फिर पूर्ववत् सो गए) हाय ! यह क्या है ? ये किस दशा में पड़े हैं ? वत्स ! तुम लोगों की क्या गति हो रही है, इतने काल से मैं सोचती हूं किन्तु कुछ ध्यान में नहीं आता, कितना प्रबोधन किया परंतु सब निष्फल हुआ (कुछ सोच के) हा अब मैं ने समझा अभी इन के चेतने का समय नहीं आया, अभी जो कुछ प्रयत्न किया जायगा सब निष्फल होगा, देखो एक को उठाओ तो एक सोता है और इसको उठाओ तो वह सोता है । तो फिर क्या हताश हो कर इन को ऐसे ही रहने दें ? पर इस से तो संबोधन नहीं होता, अच्छा तो एक बार और उद्योग करैं ।

पृथ्वीराज जैचंद कलह करि जवन बुलायो ।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो ।।
अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो ।
विषय बासना दुसह भुहम्मद शह फैलायो ।।
तब लौं सोए वत्स तुम, जागे नहिं कोऊ जतन ।
अब तौ रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छाड़ि मन ।।
जहां बिसेसर सोमनाथ माधव के मंदर ।
तहं महजिद बन गई होत अब अल्ला अकबर ।।
जहं भूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर ।
तहँ अब रोवत सिवा चहूं दिशि लखियत खंडहर ।।
जहं धन बिद्या बरसत रही सदा अबै, वाही ठहर ।
बरसत सब ही बिधि बेबसी अब तो चेतौ बीर वर ।।

पहिला— (आंख मल कर) मां क्यौं बुलाती है ?

दूसरा— बड़ी गाढ़ी नींद में थे क्यों वृथा जगाया माँ !

तीसरा— हम को सोने दो मां, बड़ी नींद आती है क्यों नाहक दिक करती हौ ?

भारतमाता— वत्स ! कब तक इस प्रकार से तुम सब निद्रित रहोगे, अब सोने का समय नहीं, एक बेर आंखें खोल भली भाँति पृथ्वी की दशा को तो देखो

तुम्हें कुछ नहीं मालूम कि तुम्हारे चारों ओर क्या हो रहा है, यह तो तुम लोग देखो कि तुम्हारी अब क्या अवस्था हो रही है, क्या थे और क्या हो गए, एक बेर तो भला अपने मन में बिचारो, निरवलंबा शोकसागर-मग्ना, अभागिनी अपनी जननी की दुरावस्था को एक बार तो आंखें खोल के देखो। बेटा हमारा धन, आभूषण वसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गये, अब हम निराधार हो रही हैं, तेल भी नहीं मिलता कि केशों में लगावैं। यह मलिन शतग्रंथि वस्त्र मैं कब तक पहिरूँ हाय! जो अँगरेजों का राज्य न होता तो अवतक तो मेरे प्राण न बचते। बेटा तुम लोग अब उठो और अपने इस दुखिया माता को घोर दुःख से उद्धार करो।

पहिला— मां फिर अब हम क्या करैं?

दूसरा— हम अपने माता के कष्ट को कैसे दूर करैं!

तीसरा— मां तुम किस्से कहती हो! हम लोग तो अब मनुष्य नहीं, हम लोग तो अब आलसी हो गए हैं, हमारी गणना तो अब अज्ञान तिमिरावृत, कूपनिवासी पिशाचगणों में हैं, तो फिर हम क्या करैं?

भारतज.— हाय! हाय। क्या सचमुच हमारे पुत्रों की अब ऐसी दीन दशा हो गई है कि ये लोग कुछ भी नहीं कर सकते। अरे मेरे इसी अंक में आगे कैसे-कैसे महात्मागण हुए हैं जिन के यश सौरभ से सारी पृथ्वी आमोदित थी। इसी हमारे अंक आलवाल में कैसे पुण्य कल्पतरु हुए हैं जिनकी कीर्तिशाखा दशों दिशा में भी नहीं समा सकी। इसी हमारे अंक में कैसे कौसे लोग लालित पालित हुए है जिन का आज दिन समस्त संसार आदरपूर्वक नाम ग्रहण करता है, जिन्होंने अपने बुद्धि बल से मुझ को सब देश ललनाओं का शिरोमणि कर रखा था।

''जावाली जैमिनि गरग पातञ्जलि शुकदेव।
रहे हमारेहि अंक में कबहिं सबै भुवदेव।।
याही मेरे अंक में रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिन के भारत गान सों भारत बदन प्रकास।।
याही मेरे अंक में कपिल सूत दुर्वास।
याही मेरे अंक मो कपिल सूत संन्यास।
याही मेरे अंक मै शाक्य सिंह संन्यास।
तब तौ तिन कौ करत हो आदर जग सब कोय।।''

सो उसी भारतभूमि में अब सब हतज्ञान हो रहे हैं और कोई इन को सम्हालने वाला नहीं। कोई काल ऐसा था कि इस भूमि की स्त्रियां भी विद्या संभ्रम, शौर्य्य, औदार्य्य में जगत विख्यात थीं वहां के पुरुष अब उद्यमशून्य हो केवल सूद या नौकरी पर सन्तोष कर के बैठे हैं, उद्योग किस चिड़िया का नाम है इसको मानो स्वप्न में भी नहीं जानते।

हाय! जगत् विख्यात हमारे पूर्व समय के पुत्रगण किधर गये। क्या उन की आत्मा भी यहां नहीं है जो इस अभागिनि दुखिया माता को इस समय सम्बोधन दे।

कहं गये विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करि कै थिर।।
कहं छत्री सब मरे बिनसि सब गए कितै गिर।
कहां राज को तौन साज जेहि जानत हे चिर।।
कहं दुर्ग सैन जन बल गयो, धूरहि धूर दिखात जग।
उठि अजौं न मेरे वत्सगन, रक्षहि अपुनो आर्य्य मग।''

पहिला— माता बड़ी भूख लगी है।

दूसरा— क्षुधा से उदर फटा जाता है।

तीसरा— मां कुछ खाने को दो।

भारतमाता— (स्वगत) काल तू बड़ा प्रबल है, तुझ को कोई कार्य्य दुर्घट नहीं, तू सब कर सकता है, तेरा विश्वास कभी नहीं करना (प्रकाश) बेटा मेरे पास क्या है जो तुम लोगों को खाने को दूं।

सब— माता दूध दो वहीं पिये।

भारतमाता— वत्स! तुम्हारी मां के पास क्या अब दूध रक्खा है जो तुम लोगों को दे, बेटा इतर पदार्थों की क्या गणना है मेरे शरीर का तो अब रक्त भी शेष नहीं, यवन सब चूस ले गए। बेटा तुम लोग कब तक ऐसे पड़े रहोगे अब अपना-२ काम देखने के लिये तुम लोग शीघ्र प्रयत्न करो।

पहिला— मां हम लोग क्या करैं कैसे इस क्षुधित उदर को पूर्ण कर आत्मा को सुख दें।

दूसरा— मां हम लोगों की तो यहाँ तक इच्छा होती है कि सेना विभाग में जा कर महारानी की ओर से उन के शत्रुओं से प्रथम ही युद्ध करैं और इस से अपने को प्रतिपालित करैं, परंतु वह भी तो नहीं करने पाते।

भारतमाता— बेटा तुम लोग क्या कह रहे हो? हाय मैं ऐसी वज्रहृदया हूं कि यह सब सुन कर भी सुखपूर्वक अपना प्राण धारण किये हूं अब तो यह दुसह दुख सहा नहीं जाता (दीर्घ श्वास लेकर) बेटा तुम लोग अब क्या कर सकते हो, तुम्हारे पास अब है क्य? तुम लोग अब एक बेर जगतविख्याता, ललनाकुल-कमल कलिकाप्रकाशिका, राजनिचयपूजितपादपीठा, सरल हृदया, आर्द्रचित्ता, प्रजारञ्जनकारिणी, एवम् दयाशीला आर्य्य स्वामिनी राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के चरण कमलों में अपने इस दुःख का

निवेदन करो वह अतीव कारुण्यमयी दयाशालिनी और प्रजाशोक नाशिनी हैं, निस्सन्देह तुम लोगों की ओर कृपाकटाक्ष से देखैंगी और अगस्त की भांति झटिति ही तुम लोगों के शोकसागर का शोषण कर लेंगी ।

पहिला — मां हम लोगों ने कई बार पुकारा इतना मुक्त कंठ होकर गोहार किया कि हम लोगों का कंठ अद्यापि स्तब्ध हो रहा है किन्तु हम लोगों का रुदन इतने समुद्र पार महारानी के कान तक पहुंचता ही नहीं । मां इसमें उनका क्या दोष हम लोगों के भाग्य का सब दोष है, महारानी यदि सुनैं तो अपनी दयामयी प्रकृति से अवश्य कुछ करैं ।

भारतमाता — बेटा तुम लोग क्या करोगे तुम्हारे दिन ही ऐसे हैं । हा विधाता हमारे भाग्य में इतना कष्ट । जननी हो के अपनी सन्तति की यह दशा इन्हीं नेत्रों से देखनी पड़ती है । हाय ! वे नेत्र भी नहीं फूट जाते ! इसमें विधाता का दोष नहीं हमारे कपाल का दोष है ! (स्वगत) एक समय में मैं इन्हीं भुजाओं से अपने प्रसिद्ध यशस्वी पुत्रों को गोद में ले कर उनका स्नेह चुम्बन करती-२ अहंकार मद से उन्मत्त होती थी और अपने को रमणी-सरसरोजिनी, रमणीकुलगर्व, रमणीधुरी, कीर्त्तनीया, रमणी ललाटतिलक, रमणी-शिरोभूषण, रमणी-मौक्तिकमणि, समझ अपने भाग्य को सराहती थी, हाय अब तो वैसा ही जगदीश्वर हमारे उस पूर्वकाल के गर्वों को खर्व कर रहा है । शास्त्रकारों ने वृथा लिखा है कि पाप पुण्य का फल स्वर्ग में होता है, मैं जानती हूं कि पाप कर्म का फल इसी काल और इसी संसार में भोगना पड़ता है । (प्रकाश) बेटा तुम लोग हमारे कहने से एक बेर और महान उच्चस्वर से कृपाशीला महाराणी को पुकारो, वह चाहै तो सब सुन सकती है और निःसन्देह दत्तचित्त हो सब सुनैगी और शोकसमूह को शीघ्र ही दूर करैंगी ।

पहिला — अच्छा तो एक बार और पुकारैं, जान पड़ता है कि विधाता ने हम लोगों को केवल रोने ही के हेतु इस संसार में भेजा है तो फिर इस को कौन मेट सकता है । अच्छा एक बार फिर पुकारैं तो सही (उच्चस्वर से) कहा सम्मार्गरक्षिणी, लंडननिवासिनी राजाधिराज्ञी, इंगलैण्डेश्वरी माता विक्टोरिया ! माता ! ये भारत सन्तानगण आप से सविनय प्रार्थना करते हैं एक बार आप दया कर इन अनाथभारत सन्तानों के प्रति अपना कृपाकटाक्ष निक्षेपण कीजिये । माता ! हम लोगों ने सुना है कि आप दयाशीला और परम कारुणिका हैं, आप प्रच्छन्न भेष से दरिद्रों का दुख दूर करती हुई समस्त नगर में विचरण करती हैं । यदि एक बार भी आप अपने शील युक्त नैनों की कोर से हम भारत सन्तानों की ओर देखैं तो हम लोगों का सब क्लेश पल भर में दूर हो जाय और हम लोगों का सुख और आप का औदार्य्य दिग्देशान्तर में फैल जाय, अब विलम्ब करना उचित नहीं ! माता इन भारतसन्तानों को अब शीघ्र ही दया दान दीजिये । हम लोग जिस रोगापत्ति से पीड़ित हो रहे हैं उसको आप के अतिरिक्त दूसरे की सामर्थ्य नहीं कि दूर कर सके ।

(एक साहिब का प्रवेश)

साहिब — (तर्जन गर्जन पूर्वक) रे दुराशय ! दुर्व्यसिगण ! क्या इसी हेतु हमने तुम लोगों को ज्ञान चक्षु दिया है ? रे नराधम ! राजविद्रोही महारानी के पुकारने में तुम लोगों को तनिक भी भय का सञ्चार नहीं होता । उंह ! यदि ऐसा जानते तो क्या हम तुम लोगों को लिखना पढ़ना सिखाते । सब अब चुप रहो, खबरदार जो आगे कुछ भी कोलाहल किया ।

पहिला — मां फिर भी तुम पुकारने को कहोगी ?

दूसरा — मां इसी से तो हम लोग कुछ भी नहीं बोलते ।

भारतमाता — (रोकर) ईश्वर तू कहां है ! मेरे पुत्र अब पुकारने और रोने भी नहीं पाते ।

(दूसरे साहिब का प्रवेश)

दू. सा. — अरे इंग्लैण्ड चन्द्रलाञ्छन ! तू यहां से दूर हो ।

(पहिले को निकाल देता है)

दू. सा. — (भारतमाता के समीप जाकर) माता ! अब और रोदन न करो तुम्हारा दुःख देखने से पाषाण भी द्रवीभूत हो जाता है । तुम्हारे निरन्तर धारावाही अश्रुप्रवाह के अवलोकन से कौन ऐसा कठोर चित्त मनुष्य है जो फिर भी स्थिर रहेगा । आलुलायित केशावलम्बित ये तुम्हारे क्षीण गण्डस्थल एवम् विगतकान्ति तथा संस्कार रहित इस तुम्हारे कृशशरीर को देखकर कौन दुःखसागर में मग्न नहीं होता । तिस पर ऐसे लोग तुम्हारे इस शोक को अधिकतर वर्द्धित करते हैं । किंतु हे माता ! अंगरेज सब कदापि भी ऐसे नहीं । तुम्हारा अश्रुपात देखने से जिनका स्वयम् अश्रुपात नहीं होता ऐसे अंगरेज बहुत थोड़े हैं । उनकी दयालुता न्यायशीलता, निष्पक्षपातिता और प्रजा-पालित्व तो संसार में प्रसिद्ध है । मां ऐसे भी कितने असभ्य हैं किन्तु वे परमहीन और वेही हमारी जाति के कलंक हो रहे हैं । माता ! हम लोगों की महारानी परम कारुणिका और अति दयाशीला हैं । वह अपनी प्रजा के

अनुरञ्जन के हेतु प्राणप्रिय आत्मपुत्रों का भी त्याग कर सकतीं हैं और इतर बस्तुओं की कौन गणना । उन के गुण अनन्त हैं । उनके समान सच्चरित्रा, साध्वी, पतिब्रता और धर्मपरायणा स्त्री कुल में उत्पन्न होना अति दुर्लभ है । वह रामचन्द्र से भी अधिक प्रजापालन में सदैव तत्पर रहती हैं । माता ! कुछ दु :ख मत करो तुम्हारी यह शोकरात्रि अब शीघ्र ही प्रभात होगी और सुखरूपी मार्तण्ड तुम्हारे इस मुकुलित मुखकमल को शीघ्र ही प्रफुलित करैगा । माता ! तुम ने क्या ग्लैडस्टन फासेट मानियर विलियम्स इत्यादि महात्माओं का नाम नहीं सुना ! ये लोग तो अभागे भारतसन्तानों के शोक निवारण के हेतु तन मन सब अर्पण कर चुके हैं और रात दिन उसी का प्रयत्न किया करते हैं । (सन्तानों के प्रति) भ्रातृगण ! सचमुच तुम लोगों की अब तक अत्यन्त दुर्दशा हुई है और तुम लोगों ने अनेक आपत्तियों को झेली है और अनेक दु :ख उठाये हैं, भाई इस में कोई क्या कर सकता है सब उस सृष्टिकारक परमेश्वर के आधीन हैं, उसी को पुकारो, वही समस्त जगत् और सब दीन दुखियों का रक्षक है . ज़गदीश्वर तुम लोगों को इस विषदजाल से शीघ्र ही मुक्त करै ।

(दूसरे साहिब का प्रस्थान)

(धैर्य्य का प्रवेश)

धैर्य्य — जननी क्यौं रोदन करती हो धैर्य्य को धारण करो और शोकवेग को दूर करो । देखो मैं धैर्य्य तुम्हारा आश्वासन करता हूं । यद्यपि मैं धैर्य्य हूं और विपद काल में लोगों को धीरज देने के हेतु मैंने जन्म लिया है किन्तु तुम्हारे इस शोकावस्था को देख मेरे भी धीरज छूटे जाते हैं और अत : परं उसके धारण करने को असमर्थ हूं । मैं कैसे तुम्हारा दु :ख दूर करूं । (संतानों से) हे भ्रातृगन अब उठो और जननी के दु :खानल के निर्व्वाण का प्रयत्न करो । अभिमान लोभ अपमान आत्मसमाज प्रशंसा परजातनिन्दा इन सब का सावधान पूर्वक परित्याग करो धैर्य्य का अवलम्बन करो सब कोई धैर्य्य को धारण करो भाई अवश्य तुम लोगों की कांक्षा पूरी होगी धीरज धरो धीरज धरो ।

(धैर्य्य का प्रस्थान)

भारतमाता — हे मेरे प्यारे वत्सगण ! अब भी उठो और धैर्य्य के उत्साह और ऐक्य के उपदेशों को मन में रख इस दुखिया के दु :ख दूर करने में तन मन से तत्पर हो, अब तक हमने उसका सहन किया अब तो ऐसा उपाय करो जिसमें मेरा यह शोकनद बढ़ने न पावै (हाथ जोड़कर) हे जगदीश्वर तूं सर्वशक्तिमान है तुझको कोई बात दुर्घट नहीं अब मुझ अबला पर दया करके मेरा दु :ख निवारण कर और मेरी इस प्रार्थना को अंगीकार कर ।

पुनि हृदय ज्ञान प्रकाश तें अज्ञान तम तुरतहि दहैं ।।
तजि द्वेष इर्ष्या द्रोह निन्दा देस उन्नति सब चहैं ।
अभिलाख यह जिय पूर्ववत धन धन्य मोहि सबही कहैं ।।

सब जाते हैं ।

जवनिका पतन ।

नीलदेवी

(गीत रूपक)

सन् १८८१ ई. में लिखा गया ऐतिहासिक मौलिक गीत रूपक। कहते हैं भारतेन्दु ने जिस अंग्रेजी काव्य की कुछ पंक्तियां इस रूपक के आरम्भ में उद्धृत की हैं। उसी के कथानक के आधार पर इसका निर्माण हुआ है। ये पंक्तियां किस काव्य की है इसका कहीं उल्लेख नहीं है। पर लगता है, बंगला के नीलदर्पण के राष्ट्रीयता की इस पर छाप अवश्य है। —सं.

नीलदेवी

ऐतिहासिक गीत रूपक

'गर्ज गर्ज क्षणं मूढ़ मधु यार्वात्पवाम्यहं।
मयार्त्वायहते त्रैव गर्जिष्यन्याशु देवता:।'
'तैलोक्र्यामिन्द्रो लभतां देवा: सन्तु हविर्भुज:।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ।।'
'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविर्ष्यति।
तदातदा वतीर्याहं करिषाम्यरिसंक्षयम्।।
'स्त्रिय: समस्ता: सकला: जगत्सु त्वयैका पूरितमम्बमेतत्,

(दुर्गापाठ)

'For the kiss she gave him was his first and last.'
Kiss of dagger. driven to his heart and past.
At the feet he wallowed. choked with wicked blood.
In his breast the katar quiverecl where it stood.
At the helt his fingers vainly widly try !
Then they stiffen feable are ! thou slayer die
From his jewelled scabbard. drew the shureef's sword.
Cut at vein the neck-bone of the Muslim Lord.
Underneath, the star light sooth a slight of dread !
Like the Goddess Kali, comes she with the head.
Comes to where her brothers guard their murdered Chief;
All the camp is silent but the night is brief.
At his feet she flings it, fling her burden vile;
'Suraj ! I keep my promise ! Brothers ! build the pile'

नाटकस्थ पात्र गण

सूर्य्य देव . . . . . पंजाब प्रान्त का राजा।
सोमदेव . . . . . सूर्य्य देव का पुत्र।
अब्दुश्शरीफ़ खाँ सूर . . . दिल्ली के बादशाह का सिपहसालार।
बसन्त . . . पागल बना हुआ महाराज सूर्य्यदेव का नौकर।
पं. विष्णुशर्मा . . . मौलवी के भेष में राजा का पंडित।
नीलदेवी . . . महाराज सूर्य्यदेव की रानी।
चपरगट्टू और पीकदान अली दो मुफ्तखोरे।
देवसिंह इत्यादि सिपाही, राजपूत सर्दार।
मुसलमान मुसाहिब, काजी, भटियारी, देवता, अप्सरा इत्यादि।

मातृ भगिनी सखी तुल्या आर्य ललना गण!

आज बड़ा दिन है। क्रिस्तान लोगों को इससे बढ़कर कोई आनन्द का दिन नहीं है। किन्तु मुझको आज उलटा और दु:ख है। इसका कारण मनुष्य स्वभाव सुलभ ईर्षा मात्र है। मैं कोई सिद्ध नहीं कि रागद्वेष से विहीन हूँ। जब मुझे अंगरेजी रमणी लोग मेदसिंचित केश राशि, कृत्रिम कुन्तलजूट, मिथ्या

रत्नाभरण और विविध वर्ण वसन से भूषित क्षीण कटि-देश कसे, निज निज पति गण के साथ, प्रसन्न बदन इधर से उधर फर फर कल की पुतली की भाँति फिरती हुई दिखलाई पड़ती हैं तब इस देश की सीधी सीधी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दु:ख का कारण होती है । इससे यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूँ कि इन गौरांगी युवती समूह की भाँति हमारी कुललक्ष्मी गणा भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमैं ; किंतु और बातों में जिस भाँति अंगरेजी स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी लिखी होती हैं, घर का काम काज सम्हालती हैं, अपने संतान गण को शिक्षा देती है, अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहाय देती हैं, और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन को व्यर्थ ग्रह दास्य और कलह ही में नहीं खोतीं उसी भाँति हमारी गृह देवता भी वर्त्तमान हीनावस्था को उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है । इस उन्नति पथ की अवरोधक हम लोगों की वर्त्तमान कुल परंपरा मात्र है और कुछ नहीं है । आर्य्य जन मात्र को विश्वास है कि हमारे यहाँ सर्व्वदा स्त्रीगण इसी अवस्था में थीं । इस विश्वास के भ्रम को दूर करने ही के हेतु यह ग्रंथ विचरित हो कर आप लोगों के कोमल कर कमलों में समर्पित होता है । निवेदन यही है कि आप लोग इन्हीं पुण्यरूप स्त्रियों के चरित्र को पढ़ें, सुनें और क्रम से यथाशक्ति अपनी वृद्धि करें ।

२५ दिसंबर १८८१ ग्रंथकर्त्ता

नीलदेवी

वियोगात्त

प्रथम दृश्य

हिमगिरि का शिखर

(तीन अप्सरा गान करती हुई दिखाई देती हैं)

अप्सरागण— (झिंझौटी जल्द तिताला)

धन धन भारत की छत्रानी ।

वीरकन्यका वीरप्रसविनी वीरवधू जग जानी ।।

सती सिरोमनि धरमधुरन्धर बुधि बल धीरज खानी ।

इनके जस की तिहूँ लोक में अमल धुजा फहरानी ।

सब मिलि गाओ प्रेम बधाई ।

यह संसार रतन इक प्रेमहिं और बादि चतुराई ।।

प्रेम बिना फीकी सब बातैं कहहु न लाख बनाई ।।

जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई ।।

हाव भाव रस रंग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई ।

बिना लोन विंजन सो सबही प्रेम रहित दरसाई ।।

प्रेमहि सो हरिहू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई ।

तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई ।।

दूसरा दृश्य

युद्ध के ढेरे खड़े हैं ।

एक शामियाने के नीचे अमीर अबदुश्शरीफखाँ सूर बैठा है और मुसाहिब लोग इर्द गिर्द बैठे है ।

शरीफ़—(एक मुसाहिब से) अबदुस्समद ! खूब होशियारी से रहना । यहाँ के राजपूत बड़े काफिर हैं । इन कमबख्तों से खुदा बचाए । (दूसरे मुसाहिब से) मलिक सज्जाद ! तुम शब के पहरों का इन्तिजाम अपने जिम्मे रक्खो ऐसा न हो कि सूरजदेव शबेखून मारे । (काजी से) काज़ी साहब ! मैं आप से क्या बयान करूँ, वल्लाही सूरजदेव एक ही बदबला है । इहातए पंजाब में ऐसा बहादुर दूसरा नहीं ।

काजी— बेशक हुजूर ! सुना गया है कि वह हमेशा खेमों ही में रहता है । आसमान शामियाना और जमीन ही उसे फर्श है । हजारों राजपूत उसे हरवक्त घेरे रहते हैं ।

शरीफ— वलाह तुमने सच कहा, अजब बदकिरदार से पाला पड़ा, जाना तंग है । किसी तरह यह कमबख़्त हाथ आता तो और राजपूत खुद बखुद पस्त हो जाते ।

१ मुसाहिब— खुदावन्द ! हाथ आना दूर रहा उसके खौफ से अपने खेमे में रहकर भी खाना सोना हराम हो रहा है ।

शरीफ़— कभी उस बेईमान से सामने लड़ कर फतह नही मिलनी है । मैंने तो अब जी में ठान ली है कि मौका पाकर एक शब उसको सोते हुए गिरफ्तार कर लाना । और अगर खुदा को इस्लाम की रोशनी का जिल्वा हिन्दोस्तान जुल्मत निशान में दिखलाना मंजूर है तो बेशक मेरी मुराद बर आएगी ।

काजी— इन्शा अलाह तआला ।

शरीफ— कसम है कलामे शरीफ की मेरी खुराक आगे से इस तफक्कुर में आधी हो गई है । (सब लोगों से) देखो अब मैं सोने जाता हूँ तुम सब लोग होशियार रहना ।

(गजल)

(उठकर सब की तरफ देख कर)

इस राजपूत से रहो हुशियार खबरदार ।
गफ़लत न जरा भी हो खबरदार खबरदार ।।
ईमाँ की कसम दुश्मने जानी है हमारा ।
काफ़िर है य पंजाब का सरदार ख़बरदार ।।
अजदर हैं भभूका है जहन्नुम है बला है ।
बिजली है गजब इसकी है तलवार खबरदार ।।
दरबार में वह तेगे शररबार न चमके ।
घरबार से बाहर से भी हर बार खबरदार ।।
इस दुश्मने ईमाँ को है धोखे से फँसाना ।
लड़ना न मुकाबिल कभी जिनहार खबरदार ।।

(सब जाते हैं)

तीसरा दृश्य

पहाड़ की तराई

(राजा सूर्य्यदेव, रानी नीलदेवी और चार राजपूत बैठे हैं)

सू.— कहो भाइयो इन मुसलमानों ने तो अब बड़ा उपद्रव मचाया है ।

१ ला.— तो महाराज ! जब तक प्राण हैं तब तक लड़ेंगे ।

२ रा.— महाराज ! जय पराजय तो परमेश्वर के हाथ है परन्तु हम अपना धर्म्म तो प्राण रहे तक निबाहैं ही गे ।

सू.— हाँ हाँ, इसमें क्या संदेह है । मेरा कहने का मतलब यह है कि सब लोग सावधान रहैं ।

३ रा.— महाराज ! सब सावधान हैं । धर्म्म युद्ध में तो हमको जीतनेवाला कोई पृथ्वी पर नहीं है ।

नी. दे.— पर सुना है कि ये दुष्ट अधार्म्म से बहुत लड़ते हैं ।

सू.— प्यारी । वे अधर्म्म से लड़ें हम तो अधर्म्म नहीं न कर सकते । हम आर्य्यवंशी लोग धर्म्म छोड़ कर लड़ना क्या जानैं ? यहाँ तो सामने लड़ना जानते हैं । जीते तो निज भूमि का उद्धार और मरे तो स्वर्ग । हमारे तो दोनों हाथ लड्डू हैं ; और यश तो जीतै तो भी हमारा साथ है और मरैं तो भी ।

४ था.— महाराज । इसमें क्या संदेह है, और हम लोगों को एकाएकी अधर्म्म से भी जीतना कुछ दाल भात का गस्सा नहीं है ।

नी.दे.— तो भी इन दुष्टों से सदा सावधान ही रहना चाहिए । आप लोग सब तरह चतुर हो मैं इसमें विशेष क्या कहूँ स्नेह कुछ कहलाए बिना नहीं रहता ।

सू.दे.— (आदर से) प्यारी । कुछ चिंता नहीं है अब तो जो कुछ होगा देखा ही जायगा न । (राजपूतों से) ।

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदाहीं ।
जागत ही सब रहैं रैनहूँ सोअहिं नाहीं ।।
कसे रहैं कटि रात दिवस सब बीर हमारे ।
अस्व पीठ सो होहिं चारजामें जिनि न्यारे ।
तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बंदूकन ।
रहै खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरें छन ।।
देखि लेहिंगे कैसे पामर जवन बहादुर ।
आवहिं तो चढ़ि सनमुख कायर कूर सबै जुर ।।
देहैं रन को स्वाद तुरतहि तिनहिं चखाई ।
जो पै इक छन हू सनमुख ह्वै करिहिं लराई ।।

(जवनिका पतन)

चौथा दृश्य

सराय

(भठियारी, चपरगट्टू खाँ और पीकदान अली)

चप.— क्यों भाई अब आज तो जशन होगा न ? आज तो वह हिंदू न लड़ेगा न ।

पीक.— मैंने पक्की खबर सुनी है । आज ही तो पुलाव उड़ाने का दिन है ।

चप.— भई मैं तो इसी से तीन चार दिन दरबार में नहीं गया । सुना वे लोग लड़ने जायेंगे । मैंने कहा जान थोड़ी ही भारी पड़ी है । यहाँ तो सदा भागतों के आगे मारतों के पीछे । जबान तेग़ कहिए दस हजार हाथ भारूँ

पीक.— भई इसी से तो कई दिन से मै भी खेमों तर्फ़ नहीं गया । अभी एक हफ्ता हुआ मैं उस गाँव में एक ख़ानगी है उसके यहाँ से चला आता था कि पाँच हिन्दुओं के सवारों ने मुझे पकड़ लिया और तुरक तुरक करके लगे चपतियाने । मैंने देखा कि अब तो बेतरह फँसे मगर वल्लाह मैं भी अपने कौम और दीन की इतनी मज़म्मत और हिन्दुओं की इतनी तारीफ़ की कि उन लोगों को छोड़ते ही बन आई । ले ऐसे मौके पर और क्या करता ? मुसल्मानी के पीछे अपनी जान देता ?

चप.— हाँ जी किसकी मुसल्मानी और किसका कुफ्र । यहाँ अपने मांड़े हलुए से काम है ।

भटि.— तो मियाँ आज जशन में जाना तो देखो मुझको भूल मत जाना । जो कुछ इनआम मिलै उस में भी कुछ देना । हाँ ! देखो मैंने कई दिन ख़िदमत की है ।

पीक.— ज़रूर ज़रूर जान छल्ला, यह कौन बात है तुम्हारे ही वास्ते जी पर खेलकर यहाँ उतरें हैं । (चपरगट्ट से कान में) यह सुनिए जान झोकें हम माल चाभैं नी भटियारी । यह नहीं जानतीं कि यहाँ इनकी ऐसी ऐसी हजारों चरा चर छोड़ दी हैं ।

चप.— (धीरे से) अजी कहने दो कहने से कुछ दिये ही थोड़े देते हैं । भटियारी हो चाहे रंडी आज तक तो किसी को कुछ दिया नहीं है उलटा इन्हीं लोगों का खा गए हैं (भटियारी से) वाह जान तक हाजिर है । जब कहो गरदन काट कर सामने रख दूं । (खूब घूरता है ।)

भटि.— (आँखें नचाकर) तो मैं भी तो मियाँ की ख़िदमत से किसी तरह बाहर नहीं हौं ।

(दोनों गाते हैं)

पिकदानी चपरगट्ट है बस नाम हमारा ।
इक मुफ्त का खाना है सदा काम हमारा ।।
उमरा जो कहे रात तो हम चाँद दिखा दें ।
रहता है सिफारिश से भरा जाम हमारा ।।
कपड़ा किसी का खाना कहीं सोना किसी का ।
गैरों ही से है सारा सरंजाम हमारा ।
हो रंज जहाँ पास न जाएँ कभी उसके ।
आराम जहाँ हो है वहाँ काम हमारा ।
जर दीन है कुरआन है ईमां है नबी है ।
जर ही मेरा अल्लाह है ज़र राम हमारा ।।

भटि.— ले मैं तो मियाँ के वास्ते खाना बनाने जाती हूँ ।

पीक.— तो चलो भाई हम लोग भी तब तक जरा 'रहे लाखों बरस साकी तेरा आबाद मैखाना' ।

चपर.— चलो ।

(जवनिका पतन)

पंचम दृश्य

(सूर्य्यदेव के डेरे का बाहरी प्रान्त)

(रात्रि का समय)

देवा सिंह सिपाही पहरा देता हुआ घूमता है ।

नेपथ्य में गान

(राग कलिंगड़ा)

सोंओ सुख निंदिया प्यारे ललन ।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे
सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन ।
भई आधी रात बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात,
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात
पातहु नहिं पावत तरुन हलन ।।
झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सनसन लगी सिरी पवन चलन ।
सोए जग मे सब नींद घोर,
जागत कामी चिंतित चकोर,
बिरहिन बिरही पाहरू चोर,
इन कहं छन रैनहूं हाय कल न ।।

सिपाही— बरसों घर छूटे हुए । देखें कब इन दुष्टों का मुँह काला होता है । महाराज घर फिरकर चलैं तो देस फिर से बसै । रामू की माँ को देखे कितने दिन हुए । बच्चा की खबर तक नहीं मिली (चौंक कर ऊँचे स्वर से) कौन है ? ख़बरदार जो किसी ने झूटमूठ भी इधर देखने का विचार किया । (साधारण स्वर से) हां — कोई यह न जानै कि देवासिंह इस समय जोरू लड़कों की याद करता है इससे भूला है । क्षत्री का लड़का है । घर की याद आवै,तो और प्राण छोड़कर लड़े । (पुकारकर) ख़बरदार । जागते रहना ।

(इधर उधर फिर कर एक जगह बैठकर गाता है)

(कलिंगड़ा)

प्यारी बिन कटन न कारी रैन ।
पल छिन न परत जिय हाय चैन ।।
तन पीर बढ़ी सब छुटयो धीर,
कहि आवत नहिं कछु मुखहु बैन ।
जिय तड़फड़ात सब जरत गात,
टप टप टपकत दुख भरे नैन ।।
परदेस परे तजि देस हाय,
दुख मेटन हारो कोउ है न ।
सजि बिरह सैन यह जगत जैन,
मारत मरोरि मोहि पापी मैन ।।
प्यारी बिन कटत न कारी रैन ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

कौन है । यह कैसा शब्द आता है । ख़बरदार ।

(नेपथ्य में विशेष कोलाहल)

(घबड़ाकर) हैं यह क्या है ? अरे क्यों एक साथ इतना कोलाहल हो रहा है । बीरसिंह ! बीर सिंह ।

जागो। गोविंद सिंह दौड़ो!

नेपथ्य में बड़ा कोलाहल और मार मार का शब्द। शस्त्र खींचे हुए अनेक यवनों का प्रवेश। अल्ला अकबर का शब्द। देवासिंह का युद्ध और पतन। यवनों का डेरे में प्रवेश।

पटाक्षेप।

छठवाँ दृश्य

अमीर का खेमा

(मसनद पर अमीर अबदुश्शरीफ खाँ सूर बैठा है इधर उधर मुसलमान लोग हथियार बाँधे मोछ पर ताव देते बड़ी शान से बैठे हैं।)

अमीर— अलहम्दुलिल्लाह! इस कम्बख्त काफिर को तो किसी तरह गिरफ्तार किया। अब बाकी फौज भी फतह हो जायगी।

एक सर्दार— ऐ हुजूर जब राजा ही क़ैद हो गया तो फौज क्या चीज़ है। खुदा और रसूल के हुक्म से इसलाम की हर जगह फतह है। हिंदू हैं क्या चीज़। एक तो खुदा की मार दूसरे बेवक़ूफ आनन फानन में सब जहन्नुमरसीद होंगे।

२ सर्दार— खुदावंद! इसलाम के आफताब के आगे कुफ्र की तारीकी कभी ठहर सकती है? हुजूर अच्छी तरह से यकीन रक्खें कि एक दिन ऐसा आवेगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिल्वा होगा। कुफ्फ़ार सब देखिले दोजख़ होंगे और पयगंबरे आख़िरूल् जमां सल्लरूल्लाह अल्लै हुम्सल्लम का दीन तमाम रूए जमीन पर फैल जायगा।

अमीर— आमीं आमीं।

क़ाज़ी— मगर मेरी राय है कि और गुफ्तगू के पेश्तर शुकरिया अदा किया जाय क्योंकि जिस हकतआला की मिहरबानी से यह फतह हासिल हुई है सबके पहिले इस खुदा का शुक्र अदा करना जुरूर है।

सब— बेशक, बेशक।

(काजी उठकर सब के आगे घुटने के बल झुकता है और फिर अमीर आदि भी उसके साथ झुकते हैं)

काजी— (हाथ उठाकर) काफिर पै मुसल्माँ को फतहयाब बनाया।

सब— (हाथ उठाकर) अलहमद् उलिल्लाह।

काजी— की मेह बड़ी तूने य बस मेरे खुदाया।

सब— अलहम्द् उलिल्लाह।

काजी— सदके में नवी सैयदे मक्की मदनी के अतफाले अली के, असहाब के, लश्कर मेरा दुश्मन से बचाया।

सब— अलहम्द्उलिल्लाह।

क़ाज़ी— खाली किया इक आन में दैरों को सनम से, शमशीर दिखा के, बुतखान: गिरा कर के हरम तूने बनाया।

सब— अलहम्द् उललिल्लाह।

क़ाज़ी— इस हिंद से सब दूर हुई कुफ्र की जुल्मत, की तूने वह रहमत नक्कारए ईमां को हरेक सिम्त बजाया।

सब— अलहम्द् उललिल्लाह।

क़ाज़ी— गिरकर न उठे क़ाफिरे बदकार जमीं से, ऐसे हुए ग़ारत। आमों कहो।

सब— आमीं।

क़ाज़ी— मेरे महबूब ख़ुदाया।

सब— अलहम्द् उललिल्लाह।

(जवनिका गिरती है)

सातवाँ दृश्य

कैदखाना।

महाराज सूर्य्यदेव एक लोहे के पिंजड़े में मूर्छित पडे हैं। एक देवता सामने खड़ा होकर गाता है।

देवता—

(लावनी)

सब भांति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहुं बीर बर भारत की सब आसा।।
अब सुख सूरज को उदय नहीं इत ह्वैहै।
सो दिन फिर इत समनेहुं नहिं ऐहैं।
स्वाधीनपनो बल धीरज सबहि नसैहैं।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वै जैहै।।
दुख ही दुख करिहै चारहु ओर प्रकासा।।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा।।
इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहै।
मूरखता को तम चारहु ओर पसरिहै।।
वीरता एकता ममता दूर सिधरि है।।
तजि उद्यम सब ही दास वृत्ति अनुसरि है।।
ह्वै जैहै चारहु बरन शूद्र बनि दासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आशा।
ह्वैहैं सब इतके भूत पिशाच उपासी।
कोऊ बनि जैहैं आपुहि स्वयं प्रकासी।।

नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी ।
निज हरि सों ह्वैहैं विमुख भरत भुवबासी ।।
तजि सुपथ सबहि जन करिहैं कुपथ बिलासा ।।
अब तजहु वीर बर भारत की सब आसा ।।
अपनी वस्तुन कहँ लखिहैं सबहि पराई ।।
निज चाल छोड़ि गहिहैं औरन की धाई ।।
तुरकन हित करिहैं हिंदू संग लराई ।
यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई ।।
तजि निज कुल करिहैं नीचन संग निवासा ।।
अब तजहु वीर बर भारत की सब आसा ।।
रहे हमहुँ कबहुँ स्वाधीन आर्य बल धारी ।
यह दैहैं जिय सों सबही बात बिसारी ।।
हरि विमुख धरम बिनु धन, बलहीन दुखारी ।
आलसी मंद तन छीन छुधित संसारी ।।
सुख सों सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा ।।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ।।

(जाता है)

सू.दे. — (सिर उठा कर) यह कौन था ? इस मरते हुए शरीर पर इस ने अमृत और विष दोनों एक साथ क्यों बरसाया ? अरे अभी तो यहां खड़ा गा रहा था अभी कहाँ चला गया ? निस्संदेह यह कोई देवता था । नहीं तो इस कठिन पहरे में कौन आ सकता है । ऐसा सुंदर रूप और ऐसा मधुर सुर और किसका हो सकता है । क्या कहता था ? 'अब तजहु वीर वर भारत की सब आसा' ऐं ! यह देववाक्य क्या सचमुच सिद्ध होगा ? क्या अब भारत का स्वाधीनता सूर्य फिर न उदय होगा ? क्या हम क्षत्रिय राजकुमारों को भी अब दासवृत्ति करनी पड़ैगी ? हाय ! क्या मरते मरते भी हमको यह वज्र शब्द सुनना पड़ा ? और क्या कहा 'सुख सौं सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा ।' हाय ! क्या अब यहाँ यही दिन आवैंगे ? क्या भारत जननी अब एक भी वीर पुत्र न प्रसव करैगी ? क्या दैव को अब इस उत्तम भूमि की यही नीच गति करनी है ? हा ! मैं यह सुनकर क्यों नहीं मरा कि आर्यकुल की जय हुई और यवन सब भारतवर्ष से निकाल दिए गए । हाय !

(हाय करता और रोता हुआ मूर्छित हो जाता हैं)

(जवनिका पतन)

आठवाँ दृश्य

मैदान वृक्ष ।

(एक पागल आता है)

पागल — मार मार मार-काट काट काट-ले ले ले-ईबी-सीबी-बीबी-तुरक तुरक तुरक-अरे आया आया आया-भागो भागो भागो । (दौड़ता है) मार मार मार-और मार दे मार-जाय न जाय न-दुष्ट चांडाल गोभक्षी जवन-अरे हाँ रे जवनलाल डाढ़ी का जवन-बिना चोटी का जवन-हमारा सत्यानाश कर डाला । हमारा हमारा हमारा । इसी ने इसी ने-लेना जाने न पावै । दुष्ट म्लेच्छ हुं ! हमको राजा बनावैगा । छत्र चँवर मुरछल सिंहासन सब — पर जवन का दिया — मार मार मार — शस्त्र न हो तो मंत्र से मार । मार मार मार । ह्रां ह्री ह्रवं फट चट पट — जवन पट — षट — छट पट — आँ ईं ऊँ आकास बाँध पाताल — चोटी कटा निकाल । फ : — हां हीं हौं — जवन जवन मारय मारय उच्चाटय उच्चाट्य . . . बेधय बेधय ... नाशय नाशय फाँसय फाँसय — त्रासय त्रासय . . स्वाहा फू : सब जवन स्वाहा फू : अब भी नहीं गया ? मार मार मार । हमारा देश — हम राजा हम रानी । हम मंत्री । हम प्रजा । और कौन ? मार मार मार । तलवार तलवार । टूट गई टूटी । टूटी से मार । ढेले से मार । हाथ से मार । मुक्का जूता लात लाठी सोंटा ईंटा पत्थर — पानी सबसे मार हम राजा हमारा देश हमारा भेस हमारा पेड़ पत्ता कपड़ा लत्ता छाता जूता सब हमारा । ले चला ले चला । मार मार मार — जाय न जाय न — सूरज में जाय चंद्रमा में जाय जहां जाय तारा में जाय उतारा में जाय पारा में जाय जहाँ जाय वहीं पकड़ — मार मार मार । मीयाँ मीयाँ मीयाँ चीयाँ चीयाँ चीयाँ । अल्ला अल्ला अल्ला हल्ला हल्ला हल्ला । मार मार मार । लोहे के नाती की दुम से मार पहाड़ की स्त्री के दिये से मार — मार मार — अंड का बंड का संड का खंड — धूप छाँह चना मोती अगहन पूस माघ कपड़ा लत्ता डोम चमार मार मार । ईंट की आँख में हाथी का बान — बंदर की थैली में चूने की कमान — मार मार मार — एक एक एक मिल मिल मिल — छिप छिप छिप — खुल खुल खुल — मार मार मार —

(एक मियाँ को आता देखकर)

मार मार मार — मुसल मुसल मुसल — मान मान मान — सलाम सलाम सलाम कि मार मार मार — नबी नबी नबी — सबी सबी सबी — ऊँट के अंडे की चरबी का खर । कागज के छप्पे कर सप्पे की सर — मार मार मार ।

(मियाँ के पास जाकर)

तुरुक तुरुक तुरुक — धुरुक घुरुक घुरुक — मुरुक मुरुक मुरुक — पुरुक फुरुक फुरुक — याम शाम लीम लाम ढाम —

(मियाँ को पकड़ने को दौड़ता है)

मियाँ— (आप ही आप) यह तो बड़ी हत्या लगी। इससे कैसे पिंड छूटेगा —(प्रकट) दूर दूर।

पागल— दूर दूर दूर — चूर चूर चूर — मियाँ की डाढ़ी में दोजख की हूर — दन तड़ाक छू मियाँ की माई में मोयीं की मूँ — मार मार मार मियाँ छार खार।

(मियाँ के पास जाकर अट्टहास करके)

रावण का साला दुर्योधन का भाई अमरूत के पेड़ की पसेरी बनाता है — अच्छा अच्छा — नहीं नहीं तैंने तो हमको उस दिन मारा था न ! हाँ हाँ यही है यही जाने न पावे। मार मार —

(मियाँ की गरदन पकड़कर पटक देता है और छाती पर चढ़कर बैठता है)

रावण का साला दिल्ली का नवाब वेद की किताब — बोल हम राजा कि तू राजा — (मियाँ की डाढ़ी पकड़कर खींचने से कृत्रिम डाढ़ी निकल आती है। विष्णु शर्मा को पहिचान कर अलग हो जाता है) रावण का साला मियाँ का भेस विष्णु के कान में शर्मा का केस। मेरी शक्ति गुरु की भक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच डाढ़ी जगावें तो मियाँ साँच।

(आँख से इंगित करता है)

मियाँ—(फिर डाढ़ी लगाकर) लाहौलवलाकूअत क्या बेखबर पागल है। इसके घर के लोग इसके लौटने के मुनतजीर हैं यह यहीं पड़ा है।

पागल— पड़ा घड़ा सड़ा — घूम घाम जड़ा— एक एक बात — जात सात धात — नास नास नास — घास ढास फास।

मियाँ— क्या सचमुच — दरहकीकत — यह बड़ा भारी पागल है।

पागल— सचमुच नाच — राजा अकास — ढ़ल बे ढ़ाल मियाँ मतवाल (आँख से दूर जाने को इंगित करता है। मियाँ आगे बढते हैं — यह पीछे धूल फेंकता दौड़ता है)

मार मार मार। बरसा की धार। लेना जाने न पावे। मियां का खच्चर (दोनों एकांत में जाकर खड़े होते हैं)

मियाँ— (चारों ओर देख कर) अरे वसंत ! क्या सचमुच सर्वनाश हो गया ?

पागल— पंडित जी ! कल सवेरी रात ही महाराज ने प्राण त्याग किए (रोता है)।

मियाँ— हाय ! महाराज हम लोगों को आप किसके भरोसे छोड़ गए ! अब हमको इन नीचों का दासत्व भोगना पड़ैगा ! हाय हाय ! (चारों ओर देखकर) हाँ, समाचार तो कहो क्या हुआ।

पागल—कल उन दुष्ट यवनों ने महाराज से कहा कि तुम जो मुसलमान हो जाओ तो हम तुमको अब भी छोड़ दें। इस समय वह दुष्ट अमीर भी वहीं खड़ा था। महाराज ने लोहे के पिंजड़े में से उसके मुँह पर थूक दिया, और क्रोध कर के कहा कि दुष्ट ! हमको पिंजड़े में बंद और परवश जानकर ऐसी बात कहता है। छत्री कहीं प्राण के भय से दीनता स्वीकार करते हैं। तुझपर थू और तेरे मत पर थू।

मियाँ— (घबड़ाकर) तब तब।

पागल— इसपर सब यवन बहुत बिगड़े। चारों ओर से पिंजड़े के भीतर शस्त्र फेंकने लगे। महाराज ने कहा इस बंधन में मरना अच्छा नहीं। बड़े बल से लोहे के पिंजड़े का डंडा खींचकर उखाड़ लिया और पिंजड़े से बाहर निकल उसी लोहे के डंडे से सत्ताईस यवनों को मारकर उन दुष्टों के हाथ से प्राण त्याग किए। हाय ! (रोता है)

मियाँ— (चारों ओर देखकर) और अब क्या होता है ? महाराज का शरीर कहाँ है ? तुमने यह सब कैसे जाना ?

पागल— सब इन्हीं दुष्टों के मुख से सुना। इसी भेष में घूमते हैं। महाराज का शरीर अभी पिंजड़े में रक्खा है। कल जशन होगा। कल सब शराब पीकर मस्त होंगे। (चारों ओर देखकर) कल ही अवसर है।

मियाँ— तो कुमार सोमदेव और महारानी से हम जाकर यह वृत्त कह देते हैं, तुम इन्हीं लोगों में रहना।

पागल— हाँ हम तो यहीं हुई हैं। (रोकर) हम अब स्वामी के बिना वह जाही कर क्या करैंगे।

मियाँ— हाय ! अब भारतवर्ष की कौन गति होगी ? अब त्रैलोक्य ललाम सुता भारत कमलिनी को यह दुष्टयवन यथासुख दलन करैंगे। अब स्वाधीनता का सूर्य्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करैगा। हाय ! परमेश्वर तू कहाँ सो रहा है। हाय ! धार्मिक वीर पुरुष की यह गति !

(उदास स्वर से गाता है)

(बिहाग)

कहाँ करुनानिधि केसव सोए !

जागत नेकु न यदपि बहुत बिधि भारत बासी रोए ।।
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराए।
इतके पसु गज कों आरत लखि आतुर प्यादे धाए ।।
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाई।।
अकुलाई ।।
अपनी संपति जानि इनहि तुम रह्यौ तुरंतहिं धाई ।।
प्रलय काल सम जौन सुदरसन असुर प्रान संहारी ।
ताकी धार भई अब कुंठित हमरी बेर मुरारी ।।
दुष्ट जवन बरबर तुव संतति घास साग सम काटैं ।
एक-एक दिन सहस सहस नर सीस काटि भुव पाटैं।।
ह्वै अनाथ आरत कुल बिधवा बिलपहिं दीन दुखारी।।
बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं लजत खरारी।
कहाँ गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई ।
भक्तबछल करुनानिधि तुम कहँ गयो बहुत बनाई ।।
हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यों परम दयाल कहाई ।
सब बिधि बूड़त लखि निज देसहि लेहु न अबहुँ बचाई।।
(दोनों रोते हैं)
(जवनिका पतन)

नवाँ दृश्य

राजा सूर्य्यदेव के डेरे
(एक भीतरी डेरे में रानी नीलदेवी बैठी हैं और बाहरी डेरे में क्षत्री लोग पहरा देते हैं)

नी.दे.— (गाती और रोती)
तजी मोहि काके ऊपर नाथ ।
मोहि अकेली छोड़ि गए तजि बालपने के साथ ।
याद करहु जो अगिनि साखि दै पकर्‌यौ मेरो हाथ ।
सो सब मोह आज तजि दीनों कीनो हाय अनाथ ।।१।।
प्यारे क्यों सुधि हाय बिसारी ?
दीन भई बिड़री हम डोलत हा हा होय तुमारी ।।
कबहुँ कियो आदर जा तन को तुम निज हाथ पियारे ।
ताही की अब दीन दशा यह कैसे लखत दुलारे ।
आदर के धन सम जा तन कहँ निज अंकन तुम धर्‌यौ ।
ताही कहँ अब पर्‌यौ धूर में कैसे नाथ निहार्‌यौ ।२

प्यारे कितै गई सो प्रीति ?
निठुर होइ तजि मोहि सिधारे नेह निबाहन रीति ।
इकह्यो रह्यो जो छिन नहिं तजिहैं मानहु वचन प्रतीति।
सो मोहि जीवन लौं दुख दीनो करी हाय विपरीति ।३

(कुमार सोमदेव चारपूतों के साथ बाहरी डेरे में आते हैं)

सोम.— भाइयो महाराज का समाचार तो आप लोगों ने सुना । अब कहिए क्या कर्त्तव्य है ? मेरी तो शोक से मति विकल हो रही है । आप लोगों की जो अनुमति हो किया जाय ।

१ रा. पू.— कुमार आप ऐसी बात कहैंगे कि शोक से मति विकल हो रही है तो भारतवर्ष किसका मुँह देखैगा । इस शोक का उत्तर हम लोग अश्रुधारा से न देकर कृपाण धारा से देंगे ।

२ रा. पू.— बहुत अच्छा !!! उन्मत्त सिंह, तुमने बहुत अच्छा कहा । इन दुष्ट चांडाल यवनों के रुधिर से हम जब तक अपने पितरों का तर्पण न कर लेगें हम कुमार की शपथ करके प्रतिज्ञा कर के कहते हैं कि हम पितृत्रृण से कभी उत्रृण न होंगे ।

३ रा. पू.— शाबाश ! विजयसिंह ऐसा ही होगा । चाहे हमारा सर्वस्व नाश हो जाय परंतु आकल्पांत लोह लेखनी से हमारी यह प्रतिज्ञा दुष्ट यवनों के हृदय पर लिखी रहैगी । धिक्कार है उस छत्रियाधम को जो इन चांडालों के मूल नाश में न प्रवृत्त हो ।

४ रा. पू.— शत बार धिक्कार है सहस्र बार धिक्कार है उसको जो मनसा वाचा कर्मणा किसी तरह इन कापुरुषों से डरै । लक्ष बार कोटि बार कोटि बार धिक्कार है उसको जो इन चाडालों के दमन करने में तृण मात्र भी त्रुटि करै । (बायाँ पैर आगे बढ़ाकर) म्लेच्छ कुल के और उसके पक्षपातियों के सिर पर यह मेरा बायाँ पैर है जो शरीर के हजार टुकड़े होने तक ध्रुव की भाँति निश्चल है । जिस पामर को कुछ भी सामर्थ्य हो हटावै ।

सो. दे.— धन्य आर्यवीर पुरुषगण ! तुम्हारे सिवा और कौन ऐसी बात कहैगा । तुम्हारी ही भुजा के भरोसे हम लोग राज्य करते हैं । यह तो केवल तुम लोगों का जी देखने को मैंने कहा था । पिता की वीरगति का शोच किस क्षत्रिय को होगा ? हाँ जो हम लोग इन दुष्ट यवनों का दमन न करके दासत्व स्वीकार करैं तो निसंदेह दु:ख हो । (तलवार खींच कर) भाइयों चलो इसी क्षण हम लोग उस पामर नीच यवन के रक्त से अपने आर्य पितरों को तृप्त करें ।
चलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ाओ ।
लेहु म्यान सो खंग खींचि रनरंग जमाओ ।
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ ।
केसरिया बानो सजि सजि रनकंकन बाँधौ ।
जौ आरज गन एक होइ निज रूप सम्हारैं ।
तजि गृह कलहहि अपनी कुल मरजाद विचारैं ।
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी ।

सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी ।
पदतल इन कहँ दलहु कीट त्रिन सरिस जवनचय ।
तनिकहु संक न करहु धर्म जित जय तित निश्चय ।
आर्य वंश को बधन पुन्य जा अधम धर्म मै ।
गोभक्षन द्विज श्रुति हिंसन नित जास कर्म मैं ।
तिनकौ तुरितहिं हतौ मिलें रन कै घर माहीं ।
इन दुष्टन सों पाप किएहुँ पुन्य सदाहीं ।
चिऊँटिहु पदतल डसत ह्वै तुच्छ जंतु इक ।
ये प्रतच्छ अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक ।
धिक तिन कहँ जे आर्य होइ जवनन को चाहैं ।
धिक तिन कहँ जे इनसों कछु संबध निबाहैं ।
उठहु बीर तरवार खींचि मारहु घन संगर ।
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर ।
मारू बाजे बजैं कहौ धौंसा घहराहीं ।
उडहिं पताका सत्रु हृदय लखि लखि थहराहीं ।
चारन बोलहिं आर्य सुजस बंदी गुन गावैं ।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं ।
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर ।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर ।
छन महँ नासहिं आर्य नीच जवनन कहँ करि छय ।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय ।

सब बीर— भारतवर्ष की जय — आर्यकुल की जय — महाराज सूर्यदेव की जय — महारानी नीलदेवी की जय — कुमार सोमदेव की जय — छत्रिय वंश की जय ।

(आगे आगे कुमार उसके पीछे तलवार खींचकर छत्रिय चलते हैं । रानी नीलदेवी बाहर के घर में आती है)

नील— पुत्र की जय हो । छत्रिय कुल की जय हो । बेटा एक बात हमारी सुन लो तब युद्ध यात्रा करो ।

सोम.— (रानी को प्रणाम करके) माता ! जो आज्ञा हो ।

नी. दे.— कुमार तुम अच्छी तरह जानते हो कि यवन सेना कितनी असंख्य है और यह भी भली भांति जानते हो कि जिस दिन महाराज पकड़े गए उसी दिन बहुत से राजपूत निराश होकर अपने अपने घर चले गए । इससे मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि इनसे एक ही बेर संमुख युद्ध न करके कौशल से लड़ाई करना अच्छी बात है ।

सो. दे.— (कुछ क्रोध कर के) तो क्या हम लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं कि यवनों को युद्ध में लड़कर जीतैं ?

सब छत्री— क्यों नहीं ?

नी. दे.— क्यों नहीं ?

नी. दे.— (शांत भाव से) कुमार तुम्हारी सर्वदा जय है । मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा कहीं पराजय नहीं है । किंतु माँ की आज्ञा मानना भी तो तुमको योग्य है ।

सब क्षत्री— अवश्य अवश्य ।

सोम.— (हाथ जोड़ कर) माँ, जो आज्ञा होगी वही करूँगा ।

नी. दे.— अच्छा सुनो । (पास बुलाकर कान में सब विचार कहती हैं)

सोम.— जो आज्ञा ।

(एक ओर से कुमार और दूसरी ओर से रानी जाती हैं)

(पटाक्षेप)

दसवाँ दृश्य

स्थान — अमीर की मजलिस

(अमीर गद्दी पर बैठा है । दो चार सेवक खड़े हैं । दो चार मुसाहिब बैठे हैं । सामने शराब के पियाले, सुराहीं, पानदान, इतरदान रक्खा है । दो गवैये सामने गा रहे हैं । अमीर नशे में झूमता है)

गवैये —

आज यह फतह की दरबार मुबारक होए ।
मुल्क यह तुझको शहरयार मुबारक होए ।
शुक्र सद शुक्र की पकड़ा गया वह दुश्मने दीन ।
फतह अब हमको हरेक बार मुबारक होए ।
हमको दिन रात मुबारक हो फतह ऐशे उरूज ।
काफिरों को सदा फिटकार मुबारक होए ।
फत्हे पंजाब से सब हिंद की उम्मीद हुई ।
मोमिनो नेक य आसार मुबारक होए ।
हिंदू गुमराह हों बेजर हों बने अपने गुलाम ।
हमको ऐशो तरबोतार मुबारक होए ।

अमीर— आमीं आमीं । वाह वाह वल्लाही खूब गाया । कोई है ? इन लोगो को एक एक जोड़ा दुशाला इनआम दो । (मद्यपान)

(एक नौकर आता है)

नौ— खुदावंद निआमत ! एक परदेसी की गानेवाली बहुत ही अच्छी ख़ेमे के दरवाजे पर हाजिर है । वह चाहती है कि हजूर को कुछ अपना करतब दिखलाए । जो इरशाद हो बजा लाऊँ ।

अमीर— जरूर लाओ । कहो साज मिला कर जल्द हाजिर हो ।

नौ.— जो इरशाद ।

अमीर— आज के जशन का हाल सुनकर दूर दूर से नाचने गानेवाले चले आते हैं ।

मुसाहिब— बजा इरशाद है, और उनको इनआम भी बहुत जियादा : मिलता है न क्यों आवैं ?

(चार समाजियों के साथ एक गायिका का प्रवेश)

अमीर— (आप ही आप) यह तायफा तो बहुत ही खूबसूरत है ! (प्रगट) तुम्हारा क्या नाम है ? (मद्यपान)

गायिका— मेरा नाम चंडिका है । मैं बड़ी दूर से आपका नाम सुनकर आती हूँ ।

अमीर— बहुत अच्छी बात है । जल्द गाना शुरू करो । तुम्हारा गाना सुनने को मेरा इश्तियाक हर लहजे बढ़ता जाता है । जैसी तुम खूबसूरत हो वैसा ही तुम्हारा गाना भी खूबसूरत होग (मद्यपान)

गायिका— जो हुकुम । (गाती है)

ठुमरी तिताला

हाँ मोसे सेजिया चढ़लि नहिं जाई हो ।
पिय बिनु साँपिन सी डसै बिरह रैन ।
छिन छिन बढ़त बिथा तन सजनी,
कटत न कठिन बियोग की रजनी ।
बिनु हरि अति अकुलाई हो ।

अमीर— वाह वाह क्या कहना है ! (मद्यपान) क्यों फिदाहुसैन ! कितना अच्छा गाया है ।

मुसाहिब— सुवहानअल्लाह ! हजूर क्या कहना है । वल्लाह मेरा तो क्या जिक्र है मेरे बुजुर्गों ने ख्वाब में भी ऐसा गाना नहीं सुना था ।

(अमीर अँगूठी उतारकर देना चाहता है)

गायिका— मुझको अभी आपसे बहुत कुछ लेना है । अभी आप इसको अपने पास रक्खें आखीर में एक साथ मैं सब ले लूँगीं ।

अमीर— (मद्यपान करके) अच्छा ! कुछ परवाह नहीं । हाँ, इसी धुन की एक और हो मगर उसमें फुरकत का मजमून न हो क्योंकि आज खुशी का दिन है ।

गायिका— जो हुकुम (उसी चाल में गाती है)

जाओ जाओ काहे आओ प्यारे कतराए हो ।
काहे चलो छाँह से छाँह मिलाए हो ।
जिय को मरम तुम साफ कहत
किन काहे फिरत मँड़राए हो ।
एहो हरि देखि यह नयो मेरो
जोबन हम जानी तुम जो लुभाए हो ।

अमीर— (मद्यपान कर के अत्यंत रीझने का नाट्य करता है) कसम खुदा की ऐसा गाना मैंने आज तक नहीं सुना था । दरहक़ीकत हिंदोस्तान इल्म का खजाना है । वल्लाह मैं बहुत ही खुश हुआ ।

मुसाहिब गण— वल्लाह, बजा इरशाद बेशक इत्यादि सिर और दाड़ी हिला हिलाकर कहते हैं)

अमीर— तुम शराब नहीं पीतीं ?

गायिका— नहीं हुजूर ।

अमीर— तो आज हमारी खातिर से पीओ ।

गायिका— अब तो आपके यहाँ आई ही हूँ । ऐसी जल्दी क्या है । जो जो हजूर कहैंगे सब करूँगी ।

अमीर— अच्छा कुछ परवाह नहीं । (मद्यपान) थोड़ा सा और आगे बढ़ आओ ।

(गायिका आगे बढ़ कर बैठती है)

अमीर— (खूब घूरकर स्वगत) हाय हाय ! इसको देखकर मेरा दिल बिलकुल हाथ से जाता रहा । जिस तरह हो आज ही इसको काबू में लाना जरूर है । (प्रगट) वल्लाह, तुम्हारे गाने ने मुझको बेअख़्तियार कर दिया है । एक चीज़ और गाओ इसी धुन की । (मद्यपान)

गायिका— जो हुकुम । (गाती है)

हाँ गरवा लगावै गिरिधारी हो,
देखो सखी लाज सरम जग की,
छोड़ि चट निपट निलज मुख चूमै बारी बारी ।
अति मदमाती हरि कछु न गिनत
छैल बरजि रही मैं होइ होइ बलिहारी ।
अब कहाँ जाउँ कहा करूँ लाज की मैं मारी

अमीर— (मद्यपान करके उन्मत्त की भाँति) वाह ! वाह क्या कहना है । (गिलास हाथ में उठाकर) एक गिलास तो अब तुमको जरूर ही पीना होगा । लो तुमको मेरी कसम, वल्लाह मेरे सिर की कसम जो न पी जाओ ।

गायिका— हुजूर मैंने आज तक शराब नहीं पी है । मैं जो पीऊँगी तो बिल्कुल बेहोश हो जाऊँगी ।

अमीर— कुछ परवाह नहीं, पीओ ।

गायिका— (हाथ जोड़कर) हुजूर, एक दिन के वास्ते शराब पीकर मैं क्यों अपना ईमान छोड़ूँ ?

अमीर— नहीं नहीं, तुम आज से हमारी नौकर हुई, जो तुम चाहोगी तुमको मिलैगा । अच्छा हमारे पास आओ हम तुमको अपने हाथ से शराब पिलावैगे । (गायिका अमीर के अति निकट बैठती है)

अमीर— लो जान साहब !

(पियाला उठाकर अमीर जिस समय गायिका के

पास ले जाता है उस समय गायिका बनी हुई नीलदेवी चोली से कटार निकालकर अमीर को मारती है और चारों समाजी बाजा फेंककर शस्त्र निकालकर मुसाहिब आदि को मारते हैं) ।

नी. दे.— ले चांडाल पापी ! मुझको जान साहब कहने का फल ले महाराज के बध का बदला ले । मेरी यही इच्छा थी कि मैं इस चांडाल का अपने हाथ से बध करूँ ! इसी हेतु मैंने कुमार को लड़ने से रोका सो इच्छा पूर्ण हुई । (और अघात) अब मैं सुख पूर्वक सती हूँगी ।

अमीर— (मृतावस्था में)दगा — अल्लाह चंडिका —

(रानी नीलदेवी ताली बजाती है (तंबू फाड़कर शस्त्र खींचे हुए, कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं । मुसलमानों को मारते और बाँधते हैं । क्षत्री लोग भारतवर्ष की जय, आर्यकुल की जय, क्षत्रियबंश की जय, महाराज सूर्यदेव की जय, महारानी नीलदेवी की जय, कुमार सोमदेव की जय इत्यादि शब्द करते हैं) ।

(पटाक्षेप)

दुर्लभ बन्धु

शेक्सपीयर के" मर्चेंट आफ वेनिस" का अनुवाद । इसका पहला दृश्य ज्येष्ठ शुक्ल सं. १९३७ की हरिश्चंद्र चंद्रिका और मोहनचंद्रिका में प्रकाशित हुआ । यह नाटक अपूर्ण रह गया था जिसे पं. रामशंकर व्यास और बाबू राधा कृष्ण दास ने बाद में पूरा कर प्रकाशित कराया ।

दुर्ल्लभा गुणिनो शूरा : दातारश्चातिदुर्ल्लभां : ।
मित्रार्थे त्यक्तसर्व्वस्वो बन्धुस्सर्व्वैस्सुदुर्ल्लभ : । ।

خدا ملے تو ملے آشنا نہیں ملتا
کسی کا کوئی نہیں دوست سب کہانی ہے

प्रथम अंक

पहिला दृश्य

स्थान — वंशपुर की सड़क

(अनंत , सरल और सलोने आते हैं)

अनंत— सचमुच न जाने मेरा जी इतना क्यों उदास रहता है, इससे मैं तो व्याकुल हो ही गया हूँ पर तुम कहते हो कि तुम लोग भी घबड़ा गए । हा, न जाने यह उदासी कैसी है, कहाँ से आई है और क्यों मेरे चित्त पर इसने ऐसा अधिकार कर लिया है ? मेरी बुद्धि ऐसी अकुला रही है कि मैं अपने आपे से बाहर हुआ जाता हूं ।

सरल — आपका जी क्या यहाँ हैं , आपका चित्त तो वहाँ है जहाँ समुद्र में आप के सौदागरी के भारी जहाज बड़ी-बड़ी पाल उड़ाए हुए धनमत्त लोगों की भाँति डगमगी चाल से चल रहे होंगे और वरुण देवता की भाँति झूमते और आस पास की छोटी छोटी नौकाओं की ओर दयादृष्टि से देखते आते होंगे और वे बेचारियाँ भी अपने छोटे छोटे परों से उड़ती हुई और सिर झुका झुकाकर बारंबार उनको प्रणाम करती किसी तरह से लगी बझी उनका अनुगमन करती चली आती होंगी ।

सलोने — महाराज ! हम सच कहते हैं ! जो हमारी इतनी जोखिम जहाज पर बाहर होती तो हमारा जी आठ पहर उसी में लगा रहता, प्रति क्षण तिनका उठाकर हम हवा का रुख देखा करते, रात दिन नकश लिए सड़क, बंदर और खाड़ियों को ताका करते और थोड़े से खटके में भी अपनी हानि के डर से घबड़ा जाते ।

सरल — और मेरा कलेजा तो गरम दूध के फूँकने में भी तूफान की याद करके दहल जाता और सोचता कि हाय यदि कहीं समुद्र में आँधी चली तो जहाजों की क्या गति होगी । बालू की घड़ी देखने से मुझे यह ध्यान बँधता कि मेरा माल से लदा जहाज बालू की चर पर चढ़ गया है और उसके उलट जाने से उसका ऊँचा मस्तूल झुका हुआ ऐसा दिखाई देता है मानों वह अपने प्यारे जलयान की समाधि को गले लगा कर रो रहा है । देवालय के शिखर का ऊँचा पत्थर देखते ही मुझे पहाड़ों की चट्टाने याद आतीं और सोचता कि इन्हीं चट्टानों से ठोकर खाकर मेरा भरा पूरा जहाज टूट गया है, किराना पानी पर फैल गया है और रंग रंग के रेशमी कपड़े समुद्र की लहरों पर लहरा रहे हैं, यहाँ तक कि जो जहाज अभी लाखों रुपये का था छन भर में एक पैसे का भी न रहा । बतलाइए कि जब एक बार इस तरह का शोच जी में आवे तो संभव है कि मनुष्य हानि के डर से उदास न हो जाय ?

सलोने — मैं जानता हूँ कि आपको अपनी जोखों ही का सोच है ।

अनंत — इसका नहीं । मैं धन्यवाद करता हूँ कि मेरा माल कुछ एक ही जहाज पर नहीं लदा है, और न सबके सब एक ही ओर भेजे गए हैं, और न एक साल के घाटे नफे से मेरे व्यापार की इतिश्री है, इससे सौदागरी की जोखों के सबब से मैं इतना उदास नहीं हूँ ।

सरल — तो कहीं किसी से आँख तो नहीं लगी है ?

अनंत — छि छि !

सरल — वह भी नहीं यह भी नहीं तब तो आप का जी झूठ मूठ उदास है, अभी हँसो, बोलो, कूदो, अभी प्रसन्न हो जाय । संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं । कुछ तो ऐसे हैं जो बे समझे बूझे तुच्छ तुच्छ बात पर बड़े बड़े दाँत निकाल कर खिलखिला उठते हैं और बाजे ऐसे (मुहर्रमी पैदाइश के) होते हैं कि ऐसा उत्तम परिहास जिस पर धर्मराज सा गंभीर मनुष्य हँस पड़े उस पर भी उनका फूला हुआ थूथन नहीं पिचकता ।

(बसंत, लवंग और गिरीश आते हैं)

सलोने — लो गिरीश और लवंग के साथ आपके प्रियबंधु बसंत आते हैं । अब हमारा प्रणाम लो । हम लोग आपको अपने से अच्छी मंडली में छोड़ कर जाते हैं ।

सरल — भाई यदि ये उत्तम मित्रगण न आ जाते तो मैं आपको अच्छी तरह प्रसन्न किये बिना कभी न जाता ।

अनंत — मेरे हिसाब तो तुम भी बहुत उत्तम मित्र हो । परंतु तुम्हें किसी आवश्यक काम से जाना है इसी हेतु अवसर पाकर यह बात बनाई है ।

सरल — प्रणाम महाशयो ।

बसंत — दोनों मित्रों को प्रणाम ! कहो अब हम लोग फिर कब हँसे बोलेंगे । तुम लोग तो अब निरे अपरिचित हो गए । सचमुच क्या चले ही जाओगे ?

सरल — हम लोग अवसर के समय फिर मिलेंगे ।

(सरल और सलोने जाते हैं)

लवंग — मेरे श्रीमंत बसंत लीजिए आपसे और अनंत गुणकंत अनंत से भेंट हो गई अब हम लोग भी जाते हैं, परंतु खाने के समय जहाँ मिलने का निश्चय किया उसे न भूलिएगा ।

बसंत — नहीं, न भूलूँगा ।

गिरीश — भाई अनंत । आप उदास मालूम पड़ते हो । हुआ ही चाहैं । संसार के कामों में जो जितना विशेष रहेगा उतना ही विशेष वह उदास रहेगा । मैं सच कहता हूँ कि आपकी सूरत बिलकुल बदल गई है ।

अनंत — मैं संसार को उसके वास्तविक रूप से बढ़कर कदापि नहीं समझता । गिरीश ! संसार एक रंगशाला है, जहाँ सब मनुष्यों को एक न एक स्वाँग अवश्य बनना पड़ता है, उनमें से उदासी का नाट्य मेरे हिस्से है ।

गिरीश— और मैं विदूषक की नकल करता हूँ । मैं चाहता हूँ कि मेरे बाल भी हँसते खेलते पकें । नित्य मद्य पीने से मेरे कलेजे में गर्मी पहुँचे न कि आहों के भरने से उसमें शीत आवे । शरीर में रक्त की गर्मी रहते भी लोग क्योंकर मूरत की तरह चुपचाप बैठे रह सकते हैं, जागते हुए लोग भी किस तरह सो जाते हैं, या रोगी की तरह कराह कराह कर दिन बिताते हैं । आप मेरी बात से अप्रसन्न न हूजिएगा, मैं आपको जी से चाहता हूँ तब इतनी धृष्टता की है । बहुतेरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि बँधे पानी के तालाब की भाँति उनके मुख का रंग सदा गँदला बना रहता है और यह समझ कर कि लोग हमको बड़ा सोचने वाला, विचारवान, पंडित और गंभीर कहेंगे व्यर्थ को भी मुंह फुलाए रहते हैं । उनका मुंह देखने से स्पष्ट प्रगट होता है कि वह लोग अने को वेदव्यास से भी बढ़कर लगाते और अपनी बात को वेदव्यास से भी बढ़कर समझते हैं । मेरे प्यारे अनंत । मैं ऐसे बहुतेरे लोगों को जानता हूँ जो केवल जीभ न हिलाने के कारण समझदार प्रसिद्ध हैं । मैं सच कहता हूँ कि ऐसे लोगों से बोलना ही पाप है क्योंकि इनकी बात के सुनते ही क्रोध आ जाता है और मनुष्य के मुंह से बुरा भला निकल ही आता है । मैं इस विषय में आप से फिर कभी बातचीत करूँगा । देखिए ऐसा न हो कि उसी झूठी बड़ाई की इच्छा आप पर भी प्रबल हो । भाई लवंग चलो अब इस समय विदा । खाने के पीछे आकर मैं अपना व्याख्यान समाप्त करूंगा ।

लवंग— तो खाने के समय तक के लिए जाता हूँ । परंतु मैं तो उन्हीं गूंगे बुद्धिमानों में से एक हूँ, क्योंकि गिरीश अपनी बकवाद में मुझें तो कभी बोलने ही नहीं देता ।

गिरीश— अभी दो बरस मेरी संगति में और रहो तो फिर तुम्हारी जिह्वा का शब्द तुम्हारे कान को भी न सुनाई पड़ेगा ।

अनंत— अच्छा जाओ, मैं भी तब तक बकवाद करना सीख रखता हूँ ।

गिरीश— आप बड़ी कृपा कीजिएगा क्योंकि चुप रहने का स्वभाव यों तो पशुओं के लिये योग्य होता है या ऐसी स्त्रियों के लिये जिसे व्याह करने वाला न मिलता हो ।

(गिरीश और लवंग जाते हैं)

अनंत— कहो भाई, इसकी बात में कोई आनंद था ?

बंसत्त— गिरीश बहुत ही व्यर्थ बकता है । सारे वंशनगर में उससे बढ़कर कोई बक्की न निकलेगा । व्यर्थ की बकवाद की जाल में उसका वास्तविक आशय ऐसा छिपा रहता है जैसे गट्ठे भर भूसे में अनाज का एक दाना । जब दिन भर उसके लिए हैरान हो तब कहीं एक दाना हाथ लगे, वैसे ही जब बहुत सा समय इसकी बात के पीछे नाश करो तब उसका आशय समझ में आवै और इतने कष्ट के पीछे समझने पर भी कुछ उसका फल नहीं ।

अनंत— हुआ, यह रामकहानी दूर करो । अब यह बतलाओ कि वह कौन सी स्त्री है जिसके लिये तुम गुप्त यात्रा करने वाले हो । देखो, आज मुझसे सब वृत्तांत कहने का वादा है ।

बंसत— भाई अनंत ! तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैंने अपनी सब जायजाद किस तरह गँवा दी । समझ कर व्यय न कर के सर्वदा बड़ी चाल चला और यही चाल मेरे नाश की कारण हुई । परंतु मुझे अपनी अवस्था के घट जाने का कुछ भी शोच नहीं है, शोच है तो केवल इस बात का है मुझे जो बहुत सा ऋण हो गया है उसे किसी तरह चुका दूँ । भाई अनंत ! तुम्हारा मैं सब प्रकार ऋणी हूँ । रुपये का कहो, दया का कहो । इस लिये ऋण चुकाने का मैं जो जो उपाय सोचता हूँ वह तुम से सब स्वच्छ स्वच्छ वर्णन करके अपने चित्त के बोझ को हलका करूँगा ।

अनंत— प्यारे बसंत ! परमेश्वर के वास्ते मुझ से सब वृत्तांत स्पष्ट वर्णन करो । यदि वह उपाय धर्म का है जैसा कि तुम सदा बरतते आए हो तो निश्चय रक्खो क मेरा रुपया मेरा शरीर सब कुछ तुम्हारे लिये समर्पण है ।

बंसत— छोटेपन में जब मैं पाठशाला में पढ़ता था तब यदि मेरा कोई तीर खो जाता था तो उसके ढूँढने को मैं वैसा ही दूसरा तीर उसी ओर छोड़ता था और ध्यान रखता था कि यह तीर कहाँ गिरता है । इसी भाँति दुहरी जोखों उठाने से प्राय : दोनों मिल जाते थे । इस लड़कपन की बात के छेड़ने से मेरा आसय यह है कि अब मैं जो उपाय किया चाहता हूँ वह भी इसी लड़कपन के खेल की भाँति है । मैं तुम्हारा बड़ा ऋणी हूँ । जो कुछ मैंने तुमसे लिया वह सब एक हठी लड़के की भाँति गँवा दिया परंतु जहाँ तुमने पहिले एक तीर छोड़ा है उसी ओर यदि एक तीर और फेंको तो मैं तुम्हें निश्चय दिलाता हूँ कि अब की मैं उसके लक्ष्य की ओर अच्छी तरह दृष्टि रख कर जैसे होगा वैसे दोनों तीर खोज लाऊँगा । और यदि संयोग से पहिला न मिला तो दूसरा तो अवश्य ही फेर लाऊँगा और पहिले के लिये धन्यवाद के साथ तुम्हारा सदा ऋणी रहूँगा ।

अनंत — भाई तुम तो मुझे अच्छी तरह जानते हो । फिर मेरा जी टटोलने के लिये फेरवट के साथ बात करके व्यर्थ क्यों समय नष्ट करते हो । मुझे इसका दु:ख है कि तुमने इस बात में संदेह किया कि मैं तुम्हारे लिए प्राण तक दे सकता हूँ । यदि तुम मेरी सर्वस्व हानि किए होते तब भी मुझे इतना दु:ख न होता जो इस बात से हुआ । व्यर्थ बात बढ़ाने से क्या लाभ ? केवल इतना कहो कि मुझे तुम्हारे हेतु क्या करना होगा, मैं उसके लिये प्रस्तुत हूँ शीघ्र बतलाओ ।

बंसत — बिल्वमठ में एक क्वारी स्त्री रहती है जो अपने माँ बाप के मर जाने से एक बडी रियासत की स्वामिनी हुई है । उसका रूप ऐसा है कि केवल सौंदर्य के शब्द से उसकी स्तुति हो ही नहीं सकती । उसमें अनगिनत गुण हैं । कुछ दिन हुए उसकी चितवन ने मुझको ऐसे प्रेम संदेह दिए थे कि मुझको उसकी ओर से पूरी आशा है । उसका नाम पुरश्री है, वह सचमुच पुरश्री है, पुरश्री क्या सारे संसार की श्री है । रूप में श्री और गुण में सरस्वती है । संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ उसकी स्तुति की सुगंध न फैली हो । चारों ओर से बड़े बड़े राजकुमार और धनिक उसके व्याह की आशा में आते हैं । भाई अनंत ! यदि मुझे इतना रूपया मिलता कि वहाँ जाकर इन लोगों के समक्ष मैं विवाह की प्रार्थना कर सकता तो मेरा जी कहता है कि मैं अपने मनोरथ में अवश्य विजयी होता ।

अनंत — भाई तुम अच्छी तरह जानते हो कि मेरी सब लक्ष्मी समुद्र में है, इस समय न मेरे पास मुद्रा है न माल जिसे बेंच कर रुपया मिल सके, इससे जाओ देखो तो मेरी साक वंशनगर में क्या कर सकती है । तुम्हें पुरश्री के पास बिल्वमठ जाने के लिए जो रुपया चाहिए उसके प्रबन्ध में मैं ऊँचा नीचा सब काम करने को प्रस्तुत हूँ । देखो अभी जाकर खोज करो कि रुपया कहां मिलता है और मैं भी जाता हूँ मेरे नाम या जमानत से जिस प्रकार रुपया मिले मुझे किसी बात में सोच विचार नहीं है ।

(दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान — बिल्वमठ में पुरश्री के घर का एक कमरा

(पुरश्री और नरश्री आती हैं)

पुरश्री — नरश्री मैं सच कहती हूँ कि मेरा नन्हा सा जी इतने बड़े संसार से बहुत ही दु:खी आ गया है ।

नरश्री — मेरी प्यारी सखी यह बात तो आप तब कहतीं जब, भगवान न करे, जैसा आपको सुख है उसके बदले उतना ही दु:ख होता । परंतु न जाने क्यों प्राय: ऐसा देखा है कि जो बहुत धनवान हैं वह भी संसार से वैसे ही घबड़ाये रहते हैं जैसे वह लोग भूखों मरते हैं । इसी से निश्चय होता है कि मध्यावस्था कुछ साधारण भाग्य की बात नहीं । लक्ष्मी बहुत शीघ्र श्वेत बाल करती है पर तृप्ति बहुत दिन तक जिलाती है ।

पुरश्री — क्यों न हो तुमने कैसे मनोहर वाक्य कहे और कैसी अच्छी तरह ।

नरश्री — यदि उनका बरताव किया जाय तो और उ ा हो ।

पुरश्री — यदि अच्छी बात का करना उतना ही ही सहज होता जितना कि उसका जानना तो सब मढ़ियाँ मंदिर और सब झोपड़ियाँ महल हो जातीं । अच्छा गुरु वही है जो अपनी शिक्षा पर आप भी चलता है । बीस अच्छी बातें दूसरा को सिखलाना सहज है किंतु उनमें से अपनी शिक्षा के अनुसार एक पर भी चलना कठिन है । बुद्धि स्वभाव के ठंढा करने के लिये बहुत से उपाय बतलाती है किंतु समय पर क्रोध की गर्मी को कब रोक सकती है । यौवन का हिरन शिक्षा के फंदे में से बहुत सहज से छूट जाता है । किंतु इस बात से और पतिवरण करने से कोई संबंध नहीं । हाय ! भला मेरे वरण करने का फल ही क्या ? मैं तो न जिसे चाहूँ उसे स्वीकार कर सकती हूँ और न जिसे न चाहूँ, उसे अस्वीकार कर सकती हूँ । हाय ! एक जीती लड़की की आशा एक मरे हुए बाप के मृत-पत्र से कैसी रुक रही है । नरश्री क्या यह घोर दु:ख की बात नहीं है कि न मैं किसी को स्वीकार कर सकती हूँ और न अस्वीकार ?

नरश्री — आपके बाप बड़े अच्छे और धर्मिष्ठ मनुष्य थे और ऐसे महात्माओं को मरने के समय अनुभव हुआ करते हैं । इससे सोनो चाँदी और जस्ते के तीन संदूकों के निश्चय करने में जो बात उन्होंने सोची थी (जिसके अनुसार वह मनुष्य जो उनका बतलाया हुआ संदूक ग्रहण करेगा उसी का विवाह आपसे होगा) वह कभी बुराई न करेगी । मुझे निश्चय है कि

चिंतित संदूक को वही मनुष्य चुनेगा जिसे आप जी से प्यार करती होंगी । परन्तु यह तो कहिए कि इतने राजकुमार और धनिक जो विवाह की आशा में आए हैं

नरश्री — और भला फनेश देश के नरेश को आप कैसा समझती हैं ।

पुरश्री — बे लगाम का ऊँट । मनुष्य के साँचे में ढल गया है बस इसी से मनुष्य कहा जाता है, नहीं तो है निरा पशु । किसी की निन्दा करनी निस्सन्देह पाप है पर सच्ची बात यह है कि नैपाल के राजकुमार से जैसा एक नाशनी बढ़कर यह घुड़चढ़ा है वैसा ही पाटन वाले से बढ़कर नकचढ़ा । आप तो कुछ भी नहीं है पर छाया उसमें सब किसी की है । अभी गौरिया बोले तो आप उसकी तान पर नाचने लगे और अभी अपनी परछाईं देखें तो तलवार लेकर उससे लड़ने चलें । एक उससे न ब्याह किया मानों बीस मनुष्य से एक साथ ब्याह किया । यदि वह मुझसे घृणा करेगा तो मैं उससे कदापि अप्रसन्न न हूँगी वरंच अपना सौभाग्य समझूँगी क्योंकि यदि वह मेरे प्रेम में पागल भी हो जायगा तो मैं उसे प्यार न कर सकूँगी ।

नरश्री — अच्छा, [illegible]गदेश के नवयुवक धनी उनमें से किसी की ओ[illegible] आपको कुछ भी स्नेह है या नहीं ।

पुरश्री — तुम उ[illegible]के नामों को मेरे सामने कहती जाओ तो मैं प्रत्येक के विषय में अपना विचार दर्शन करती जाऊंगी । इसी [illegible] तुम मेरे प्रेम का वृत्तांत जान लोगी ।

नरश्री — अच्छा तो नैपाल के राजकुमार से आरंभ कीजिए ।

पुरश्री — छि : छि : ! वह तो निरा बछेड़ा है, और कोई काम नहीं, बस रात दिन अपने घोड़ों ही का वर्णन । सारे अस्तबल की बेला अपने सिर लिये रहता है और बड़ा भारी अभिमान इस बात पर करता है कि मैं अपने घोड़े की नाल आप ही बाँध लेता हूँ । वह तो बिल्कुल खोगीर की भरती है । निखट्टू नैपाली टट्टू ।

नरश्री — और पाटन वाला ?

पुरश्री — मरकहा बैल । रात दिन फूँ फूँ किया करता है मानो उसकी चितवन कहे देती है कि या तो ब्याह करो या साफ जवाब दो । सैकड़ों हँसी की बातें सुनाता है पर चाहे कि तनिक भी उसका थूथन पिचके । मुस्कुराना तो सपने में नहीं जानता । हँसी मानो जुए में हार आया है । अभी जब हट्टा कट्टा साँड़ बना है तब तो वह रोनी मूरत है तो बुढ़ापे में तो बात पूछते रो देगा । सिवाय हर हर भजने के और किसी काम का न रहेगा । मेरा ब्याह चाहे एक मुर्दे से ही पर इन भद्दे जानवरों से नहीं । भगवान इन दोनों से बचावे ।

व्रजपालक को आप क्या कहती हैं ?

पुरश्री — तुम जानती हो कि मैं उसके कुछ नहीं कह सकती क्योंकि न वह मेरी बात समझता है न मैं उसकी । वह न हिंदी जानता है न व्रजभाषा न मारवारी और तुम शपथपूर्वक कह सकोगी कि मैथिल में मुझे कितना न्यून अभ्यास है । उसकी सूरत तो बहुत अच्छी है पर इससे क्या ? खिलौने से कोई भी बातचीत कर सकता है ? उसका पहिनावा कैसा बेजोड़ है । उसने अपना अंगा मारवाड़ में मोल लिया है, पाजामा मथुरा में बनवाया है, टोपी गुजरात से मँगनी लाया है, और चालढाल थोड़ी थोड़ी सब जगह से भीख मांग लाया है ।

नरश्री — और उसका परोसी मालवा का अधिपति ?

पुरश्री — परोसी की सी क्षमा तो उसके स्वभाव में निस्संदेह है क्योंकि उस दिन जब उस अंगवाले ने उसकी कनपटी पर एक घूसा मारा था तो उसने सौगंद खाई थी कि अवसर मिलेगा तो अवश्य बदला लूँगा । इस पर फनेश देशवाले ने बीच में पड़ कर झगड़ा यों निबटा दिया कि रूसो मत दहिने के बदले बायाँ भी तुमको मिल जायगा ।

नरश्री — और उस नवयुवक शर्म्मण्य देश के मंडलेश्वर के भतीजे को आप कैसा पसंद करती हैं ?

पुरश्री — राम राम ! वह तो बड़ा भारी घनचक्कर है । सबेरे जब वह अपने आपे में रहता है तभी बहुत बुरा रहता है तो तीसरे पहर जब मद में चूर होता है तब तो और भी बुरा हो जाता है । अच्छी दशा में वह मनुष्य से कुछ न्यून रहता है और बुरी दशा में पशु से भी नीच हो ही जायगा । भगवान न करे यदि यह आपत्ति पड़े कि मुझको उससे विवाह करना हो तो जैसे हो सके वैसे में उससे दूर रहूँ ।

नरश्री — भला यदि ऐसा हुआ कि उसने वही मंजूषा चुना जिसके चुनने से वह आपको पावे तब क्या कीजिएगा क्योंकि फिर तो विवाह न करना अपने बाप

की इच्छा के विरुद्ध चलना है ।

पुरश्री— इसी से मैं तुम से कहती हूँ कि जिस मंजूषा में भूत की मूर्ति है, उसके ऊपर एक उत्तम मद्य से भरा हुआ पात्र रख दो क्योंकि भीतर भूत ऊपर मद्य बस वह उसी सन्दूक को चुनेगा । जैसे हो उस समुन्द्र सोख अगस्त से बचाने का कोई उपाय करना ही पड़ेगा ।

नरश्री— सखी आप इस बात का भय मत कीजिए कि इन लोगों में से किसी से आप को विवाह करना पड़ेगा क्योंकि मैं सब के जी का हाल ले चुकी हूँ । यदि आप अपने बाप की आज्ञा के अनुसार मंजूषा के चुनने ही पर अपना निश्चय रक्खेंगी और कोई दूसरी प्रतिज्ञा न करेंगी तो यह सब के सब यहाँ से चले जायँगे और फिर विवाह की इच्छा प्रकट कर के आपको कष्ट न देंगे ।

पुरश्री— तुम निश्चय जानो कि यदि मुझे मारकंडेय की आयु मिले तो भी मैं अम्बालिका की तरह क्वारी मर जाऊँगी पर अपने पूज्य पिता की इच्छा के विरुद्ध कभी ब्याह न करूँगी । मुझको बड़ा आनंद है कि इन सन्दूकों में ऐसी चातुरी है कि यह सब आपत्ति बिना मंत्र जंत्र के आप से आप दूर हो जाती है क्योंकि इन में से ऐसा कोई नहीं जिसका मैं घड़ी भर रहना भी सह सकती हूँ ।

नरश्री— क्यों सखी आपको स्मरण है कि नहीं आप के पिता के समय में फनित मठ के राजा के साथ वंशनगर का एक युवक बुद्धिमान और शूर मनुष्य आया था ?

पुरश्री— हाँ वह बसन्त था — क्यों यहीं न उसका नाम था ?

नरश्री— हाँ सखी — जहाँ तक कि मुझ मूर्ख की समझ है सुंदरी स्त्री के योग्य उससे उत्तम और कोई वर मुझे दृष्टि नहीं पड़ा ।

पुरश्री— मुझको भली भाँति स्मरण है और जो कुछ तुमने उसकी प्रशंसा की बहुत ठीक है ।

(एक नौकर आता है)

क्यों क्यों ! कोई नई बात है ?

नौकर— बबुई साहिब ऊ चारों आदमी आप से बिदा होए कै ठाढ़ होएँ और एक पाँचवाँ का हरकारा आयल हौ सो कहत हौ की मोरकुटी कै राजकुमार ओकर मालिक आज राती क़े इहाँ पहुँची हैं ।

पुरश्री— यदि यह पाँचवाँ मनुष्य ऐसा होता है कि मैं उसके आने पर वैसी ही प्रसन्नता प्रकट कर सकती जैसी प्रसन्नता से इन चारों को विदा करती हूँ तो क्या बात थी । परंतु यदि इसका रूप भूत का सा है और चित्त देवता का सा तो मैं उसका शाप देना इसकी अपेक्षा उत्तम समझूँगी कि वह मुझसे ब्याह करे । नरश्री चलो । नौकर तू आगे आ । एक गाहक जाने नहीं पाता कि दूसरा आ उपस्थित होता है । (सब जाते हैं) ।

तीसरा दृश्य

(बंसत और शैलाक्ष आते हैं)

शैलाक्ष— छ स सहस्र मुद्रा — हूँ ।

बंसत— हाँ साहिब — तीन महीने के वादे पर ।

शैलाक्ष— तीन महीने का वादा — हूँ ।

बंसत— और इनके लिये, जैसा कि मैं आप से कह चुका हूँ, अनंत जामिन होंगे ।

शैलाक्ष— अनंत जामिन होंगे — हूँ ।

बंसत— तो आप मुझे देंगे ? आप से मेरा काम निकलेगा ? मैं आप के उत्तर की राह देखता हूँ ।

शैलाक्ष— छ सहस्र मुद्रा तीन महीने का वादा — और अनंत की जमानत ।

बंसत— जी हाँ । आप क्या उत्तर देते हैं ?

शैलाक्ष— अनंत है तो अच्छा मनुष्य ।

बंसत— क्यों क्या आपने इस के विरुद्ध कुछ सुना है ?

शैलाक्ष— नहीं नहीं, मेरा अभिप्राय उनके अच्छे होने से यह है कि उनकी जमानत ही बहुत है — यद्यपि आजकल उनकी दशा हीन है क्योंकि उनका एक जहाज त्रिफुल को गया है दूसरा हिन्दुस्तान को, सुना है कि बाजार में भी कुछ व्यवहार है, एक

तीसरा जहाज मौक्षिक में तथा चौथा अंग देश में है । इसी भाँति इधर उधर और बंदरों में भी उनकी जोखों है । परंतु जहाज फिर भी काठ ही है और मल्लाह भी मनुष्य ही है ; चूहे थल में भी होते हैं और जल में भी, वैसे ही चोर पृथ्वी पर भी होते हैं और पानी में भी अर्थात् डाकुओं का भय सभी स्थल है और फिर आँधी, तूफान और चट्टान का भय अलग लगा हुआ है पर फिर भी वह बहुत हैं — छ सहस्त्र मुद्रा — मैं समझता हूँ कि उनकी जमानत स्वीकार कर लूँगा ।

बंसत — संतोष रखिए उनकी जमानत निस्संदेह ग्रहण करने योग्य है ।

शैलाक्ष — मैं अपना मन भर लूँगा और किस तरह मेरा तोष होगा इस पर विचार करूँगा — मैं अनंत से इसकी बातचीत कर सकता हूँ ?

बंसत — यदि दोपहर को कृपा करके हम लोगों के साथ खाना खाइए तो वहाँ सब बात निश्चय हो जाय ।

शैलाक्ष — जी हाँ सूअर सूँघने को और उस घर में खाने को जहाँ आप के देवताओं ने सब पिशाची की बातें भर दी हैं । मैं आप लोगों से लेन देन करूँगा बोलूँगा, आप के साथ चलूँ फिरूँगा और ऐसे ही दूसरी बातें करूंगा, परंतु यह नहीं हो सकता कि मैं आप लोगों के साथ खाना खाऊँ, पानी पीऊँ या पूजा करूँ । बाजार की क्या खबर है ? — यह कौन आता है ।

(अनंत आता है)

बंसत — अनंत आप आ पहुँचे ।

शैलाक्ष — (आप ही आप) देखो इसकी सूरत ही से यह बात झलकती है कि यह हिंदुओं को प्रसन्न करने के लिये जैनियों से शत्रुता रखता है । मैं इससे घृणा करता हूँ क्योंकि यह ईसाई है परन्तु मुख्यत : इस कारण से ऐसा निरुत्साह और नीच है कि लोगों को रुपया बिना ब्याज के ऋण दे देकर हम लोगों के ब्याज का भाव बिगाड़ देता है । यदि एक बार भी मेरे हाथ चढ़े तो मैं सब पुरानी कसर निकाल लूँ । यह मनुष्य हमारी पवित्र जाति को तुच्छ समझता है और मेरी और मेरे व्यवहारों की निंदा वहाँ भी नहीं छोड़ता जहाँ बहुत से व्यापारी इकट्ठा होते हैं । धर्म्मोपार्जित द्रव्य का ब्याज नाम रखता है । धिक्कार है मेरी जाति को यदि मैं इस मनुष्य से बदला न लूँ ।

बंसत — शैलाक्ष आपने सुना ?

शैलाक्ष — मैं अभी आपने जी में हिसाब कर रहा था कि मेरे पास कितना रुपया तैयार है और जहाँ तक मैंने सोचा इस समय मेरे पास छ सहस्र रुपया न निकलेगा — पर इससे क्या ? मैं त्र्यंबक से जो मेरी जाति का एक धनिक पुरुष है शेष मुद्रा ले लूँगा । परंतु नेक ठहरिए — कै महीने की मिती आप चाहते हैं ? (अनंत से) प्रणाम महाशय, आपकी बड़ी आयु है, अभी आप ही का हम लोग वर्णन कर रहे थे ।

अंनत — शैलाक्ष यद्यपि मैं ब्याज पर रुपये का कभी लेन देन नहीं करता तो भी अपने मित्र की अत्यंत आवश्यकता को समझ कर अपने नियम के तोड़ने पर प्रस्तुत हूँ । बँसत तुम इनसे कह चुके हो कि कितने रुपये की आवश्यकता है ?

शैलाक्ष — हाँ हाँ — छ सहस्र मुद्रा ।

अंनत — और तीन महीने के लिये ।

शैलाक्ष — हाँ मैं भूल गया था — तीन महीने की मिती पर — आप कह चुके हैं — तो किन प्रतिज्ञाओं पर, नेक ठहरिए — किंतु सुनिए तो सही अभी आपने कहा था कि हम सूद पर लेन देन नहीं करते ।

अंनत — मैं इसका व्यापार कभी नहीं करता ।

शैलाक्ष — जब कि यादव अपने मामा लवेंद्र की भेड़ों को चराते थे — तो उनको उनकी माँ की चातुरी से बरकत मिली थीं ।

अंनत — तो उनके नाम लेने से यहाँ क्या तात्पर्य है ? क्या वह सूद खाते थे ?

शैलाक्ष — नहीं ब्याज नहीं खाते थे, जिसे आप सूद कहते हैं ठीक वैसा ब्याज नहीं लेते थे — सुनिए वह क्या उपाय करते थे । जब की लवेंद्र और उनमें परस्पर यह बात निश्चय हुई कि जितने भेड़ों के बच्चे धारीदार और चितकबरे पैदा हों वह यादव को वेतन में मिले तो यादव ने चतुराई से बहुत सी हरी छड़ियाँ काट कर और स्थान स्थान से छिलका उड़ा कर उन्हें गंडेदार बनाया और उठी हुई भेड़ों के सामने गाड़ दिया और जब यह गाभिन हुई तो इसके प्रयोग से चितकबरे बच्चे उत्पन्न हुए, जो यादव के भाग में आये । यह लाभ उठाने का एक उपाय था और यादव पर ईश्वर की कृपा थी क्योंकि लाभ भी होना ईश्वर की कृपा है, यदि

मनुष्य उसको चोरी से न उपार्जन करे ।

अंनत — यह तो ईश्वर की दया थी जिससे यादव ने अपने परिश्राम का इस प्रकार से फल पाया । इसमें उनका कुछ वश न था वरंच केवल ईश्वर की माया से यह बात प्रकट हुई । पर क्या आप का यह तात्पर्य है कि इतिहास में इस कथा के लिखने से यह अभिप्राय था कि व्याज लेना उचित समझा जाय, या आप अपने रुपये और अशरफी को भेड़ा भेड़ी समझते हैं ।

शैलाक्ष — मैं यह नहीं कह सकता परंतु मैं उनसे बच्चे वैसे ही शीघ्र उत्पन्न कर लेता हूँ । परंतु नेक इस बात को सुनिए ।

अनंत — बसंत इस पर विचार करो, राक्षस भी अपने स्वार्थ के लिये इतिहास और पुराण का प्रणाम दे सकता है । दुष्ट मनुष्य जो अपनी निष्कलंकता प्रकट करता है एक हँसमुख बात करनेवाला होता है । वह एक सेव की भाँति है जिसका छिलका बहुत स्वच्छ और उत्तम है परंतु भीतर बिलकुल सड़ा हुआ है, देखो झूठ की सूरत देखने में कैसी चिकनी चुपड़ी होती है ।

शैलाक्ष — छ : हजार रुपया — यह तो एक पूरी जमा है — और महीने भी तीन — तो हमें भाव सोचने दीजिए ।

अनंत — स्पष्ट कहो रुपया देना है या नहीं ।

शैलाक्ष — अनंत महाशय आपने बाजार में सहस्रों ही बार मेरे धन और लाभ के लिये मेरी दुर्दशा की होगी पर मैंने क्षमा करने के सिवाय कभी कुछ उत्तर नहीं दिया क्योंकि क्षमा हमारी जाति का चिन्ह है । आप मुझे नास्तिक, गलकट्टा और कुत्ता कह कर मेरे जातीय परिधान पर थूकते थे ओर यह सब केवल इस अपराध के लिये कि मैं अपनी जमा को जिस भाँति चाहता हूँ काम में लाता हूँ । अस्तु तो अब जान पड़ता है कि आप मेरी सहायता के अपेक्षी हैं, आप मेरे पास आए हैं । और कहते हैं कि शैलाक्ष हमें रुपया ऋण दो — ऐं आप ऐसा कहते हैं, आप जो मेरी डाढ़ी को अपना उगालदान समझते थे और मुझे ठीक इस तरह ठोकर मारते थे जैसे कोई अपनी देहली पर अनजान कुत्ते को मारता है । आपकी प्रार्थना रुपये की है — इसका मैं आपको क्या उत्तर दूँ ? क्या मैं आपसे यह पूछूँ कि साहिब कहीं कुत्ते के पास भ रुपया सुना है ? कभी संभव है कि अपवित्र कुत्ता भी छ सहस्र मुद्रा ऋण दे सके ! या नम्रता से सिरस झुका कर भृत्य की भाँति काँपता हुआ धीमे स्वर से निवेदन करूँ 'महाराज ने कृपापूर्वक मुझ पर गए बुध को थूका था और फलाने दिन ठोकर मारी थी और फलाने दिन कुत्ते की उपाधि दी थी, अत : इन कृपाओं के बदले में उतना रुपया देने को प्रस्तुत हूँ ?

अनंत — मैं तुझे फिर भी ऐसा कहूँगा और तुझ पर थूकूँगा और लात मारूँगा । यदि तुझे रुपया उधार देना है तो मुझे अपना मित्र समझ कर मत दे (क्योंकि मित्रता रुपये से जो एक बाँझ की भाँति है बच्चे कब उत्पन्न कर सकती है ?) वरंच अपना शत्रु समझ कर जिससे भंगप्रतिज्ञ होने पर तुझे सर्व प्रकार से प्रतिज्ञानुसार दंड ग्रहण करने का मुँह पड़े ।

शैलाक्ष — वाह वाह देखिए तो आप कैसा आपे से बाहर हो गये । मैं आपसे मित्रता का नाता रक्खा चाहता हूँ और पिछले बैरों को भुला कर आपके स्नेह की आशा रखता हूँ, मैं आपको रुपया उधार देने को प्रस्तुत हूँ और सूद एक पैसा नहीं चाहता तिस पर भी आप मेरी बात नहीं सुनते । क्या यह मेरा बर्ताव मित्रता का नहीं है ?

बसंत — यह आपकी दया है ?

शैलाक्ष — मैं इस कृपा को दिखलाऊँगा । (अनंत से) मेरे साथ किसी व्यवस्थापक के यहाँ चलिए और उसके सामने तमस्सुक पर अपनी मुहर कर दीजिए और हँसी की रीति पर यह शर्त लिख दीजिए कि यदि अमुम दिन और अमुक स्थान पर आप मेरा रुपया जिसका तमस्सुक में वर्णन है न चुका दें तो मुझे अधिकार होगा कि उसके बदले मैं आपके जिस शरीर के अंश से चाहूँ आध से माँस काट लूँ ।

अनंत — मैं चित्त से प्रसन्न हूँ और इन शर्तों पर मुहर कर दूँगा और यह भी कहूँगा कि इस जैन में बड़ी मनुष्यता है ।

बसंत — तुम मेरे लिये ऐसे तमस्सुक पर हस्ताक्षर न करने पाओगे इससे तो मैं अपनी दरिद्रावस्था में रहना ही श्रेय समझूँगा ।

अनंत — क्यों ? डरो मत — प्रतिज्ञा भंग होने की घड़ी कदापि न आवेगी — दो महीने के भीतर अर्थात् तमस्सुक की मिती पूजने के एक महीना पहिले मुझे आशा है कि इसका तिगुना धन मेरे पास पहुँच जायगा ।

शैलाक्ष— हे ईश्वर, ये आर्य्य भी कैसे मनुष्य होते हैं ! जैसा इनका चित्त कठोर होता है वैसा ही औरों का भी समझ कर संदेह करते हैं ! भला यह तो बतलाइये कि यदि इन्होंने प्रतिज्ञा भंग की तो तुम्हें इस शर्त के पूरा कराने से क्या लाभ, होगा ? मनुष्य के शरीर का आध सेर मांस किस रोग की औषधि है और वह किस गिनती में है ? क्या वह उतना भी काम में आ सकता है जैसा भेड़ी बकरी का मांस ? सुनिए केवल इनसे मैत्री करने के लिये मैं इनके साथ ऐसी कृपा करता हूँ, यदि यह इसे समझें तो अच्छी बात है नहीं तो प्रणाम. और मेरी प्रीति के बदले मेरे साथ बुराई न कीजिएगा ।

अनंत— हाँ शैलाक्ष मैं इस तमस्सुक पर मुहर कर दूँगा ।

शैलाक्ष— तो अभी व्यवस्थापक के घर पर जाइए और इस हँसी की दस्तावेज के लिखने को कहिए । मैं भी शीघ्र ही जा कर थैली में छ हजार रुपये लिये हुए वहीं पहुँचता हूँ और अपना घर भी देखता आऊँगा जिसे एक बड़े बहुव्ययी और अविश्वासी भृत्य को सौंप आया हूँ — मैं सब काम कर के बात की बात में आप से मिलता हूँ । (जाता है)

अनंत— अच्छा झटपट जाओ । यह जैन ऐसा कृपालु होता जाता है कि आर्य बन जायगा ।

बसंत— मैं चिकनी चुपड़ी बातें और दुष्ट अंतःकरण नहीं पसंद करता ।

अनंत— आओ, इसमें कोई धोका नहीं हो सकता क्योंकि मेरे जहाज मिति पूजने के एक महीना पहिले अवश्य ही पहुँच जायँगे । (जाते हैं)

द्वितीय अंक

पहिला दृश्य

स्थान — बिल्वमठ । पुरश्री के घर का एक कमरा (तुरहियाँ बजती हैं । मोरकुटी का राजकुमार अपने सभासदों के सहित और पुरश्री, नरश्री और अपनी दूसरी सहेलियों के संग आती है ।)

मोरकुटी— मेरी रंगत देखकर मुझसे घृणा न करना क्योंकि यह तो सूर्य की दी हुई वर्दी है जिसके समीप मैं रहता हूँ और जिसकी छाया में पला हूँ । उत्तर के देश जहाँ सूर्य्य की गर्मी वर्फ के टुकडों को भी नहीं गला सकती वहाँ के किसी सुंदर से सुंदर युवा को मेरे सामने लाओ और हम दोनों तुम्हारे प्रेम के लिये अपने शरीर में नश्तर चुभावें तो विदित होगा कि किस का रुधिर अधिक रक्त है । सखी तुम विश्वास मानों कि मेरे इसी चेहरे ने बड़े से बड़े वीरों का पिता पानी कर दिया है, और मैं अपने प्रेम की सौगंद खा कर कहता हूँ कि इसी मुख को मेरे देश की परम सुंदरी युवतियाँ भी चाहती हैं । मैं अपने इस रंग को किसी अवस्था में बदलना पसंद न करूँगा पर हाँ तुम्हारी प्रसन्नता के लिये ।

पुरश्री— मेरी रुचि के लिये केवल मेरी आँखें ही नहीं हैं और न मैं किसी भाँति अपनी इच्छा के अनुसार पति बन सकती हूँ, किंतु ऐ प्रसिद्ध राजकुमार, यदि मेरे पिता ने मुझे परवश न कर दिया होता अर्थात इस बात की उलझन न लगा दी होती कि जो कोई मुझे उस विधि से जीते (जिसका आपसे मैं वर्णन कर चुकी हूँ) उसकी मैं स्त्री बनूँ तो जिन लोगों को मैंने अब तक देखा है उनमें से आपको किसी की अपेक्षा पूर्ण मनोरथ होने का अवसर कम न था ।

मोरकुटी— मैं इतनी कृपा के लिये भी तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ, तो ईश्वर के लिये मुझे संदूकों के पास ले चलो जिसमें अपने प्रारब्ध की परीक्षा करूँ । शपथ है इस खंग की, जिसने राजा को वध किया और इंदर के उस राजकुमार को मारा जो महाराज सुलक्षण से तीन लड़ाइयाँ जीता था, तुम्हारे मिलने की आशा में मैं संसार में वीर से वीर का सामना करने को प्रस्तुत हूँ, रीछ की मादा के सामने से उसके बच्चे उठा लाने को उपस्थित हूँ, सिंह जिस समय के शिकार की खोज में गरज रहा हो उसकी आँख निकाल लाने को प्रस्तुत हूँ — पर हाय ऐसी अवस्था में किसका वश है ! यदि हारीत और लक्षेन्द्र पासा फेंक कर इस बात को निश्चय करना चाहें कि दोनों में कौन बड़ा आदमी है तो संभव है कि पासे के पड़ने से अनारी जीत जाय और संसार का सबसे बड़ा पहलवान अपने एक नीच नौकर के सामने नीचा देखे । ऐसे ही संयोग से मेरी अवस्था हो सकती है कि अपने लक्ष्य में प्राप्त करने में असमर्थ हूँ जिसे कदाचित् एक साधारण व्यक्ति भी कर ले और मुझे कुढ़ कुढ़ कर मरना पड़े ।

पुरश्री— लाचारी है — बिना मंजूषा चुने हुए

कुछ नहीं हो सकता, इसलिये या तो आप इस इच्छा ही को छोड़ दें या यदि चुनना चाहें तो पहिले इस बात की शपथ खायँ कि यदि आप भूठे मंजूषा को चुनें तो फिर आमरण किसी स्त्री की ओर व्याह करने के अभिप्राय से दृष्टि न करें — इसे खूब सोच लीजिए ।

मोरकुटी — हमें यह प्रतिज्ञा स्वीकार है । चलो अपने भाग्य की परीक्षा करें ।

पुरश्री — पहिले मन्दिर में चलिए । तीसरे पहर संदूक चुनिएगा ।

मोरकुटी — ऐ भाग्य सहाय हो, मुझे सबसे अधिक प्रसन्न या सबसे अधिक अभागा बनाना तेरे ही हाथ है ।

(तुरहियाँ बजती हैं । सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान — बंशनगर-एक सड़क

(गोप आता है)

गोप — निस्संदेह मेरा धर्म मुझे इस जैन अपने स्वामी के पास से भाग जाने की सम्मति देगा । प्रेत मेरे पीछे लगा है और मुझे बहकाता है कि गोप, मेरे अच्छे गोप, पाँव उठाओ, आगे बढ़ो, और चलते फिरते दिखलाई दो । मेरा धर्म कहता है नहीं, खबरदार सच्चे गोप खबरदार, सच्चे गोप भागो मत, भागने पर लात मारो । तो एक ओर से बली भूता बहका रहा है कि अपनी बोरिया बँधना बाँधो, धता हो, दून हो, साहस को दृढ़ करो और नौ दो ग्यारह हो जाओ — दूसरी ओर से धर्म मेरे चित्त को, गले का हार हो कर, इस प्रकार से शिक्षा देता है — मेरे धर्मिष्ट मित्र गोप ! तुम कि एक धर्मात्मा के पुत्र हो वरंच यों कहना चाहिए कि एक धर्मात्मा स्त्री के पुत्र हो — अस्तु मेरा धर्म कहता है कि अपने स्थान से हिलो मत — तो अब भूत कहता है कि अपने स्थान से हिलो और धर्म कहता है कि अपने स्थान से मत हिलो । मैं अपने धर्म से कहता हूँ कि तुम्हारी सम्मति बहुत अच्छी है । फिर मैं भूत से कहता हू कि तुम्हारी राय बहुत अच्छी है । यदि मैं अपने धर्म की आज्ञा मानता हूँ तो मुझे अपने स्वामी जैन के साथ ठहरना पड़ता है जो कि आप ही एक प्रकार का भूत है — यदि मैं जैन के पास से भाग जाता हूँ तो भूत की आज्ञा पर चलता हूँ जो कि (स्वामी की प्रतिष्ठा में अंतर नहीं डालता) आप ही भूत है । निस्संदेह जैन तो निज भूत का अवतार है इसलिये मेरी जान में तो मेरा धर्म बड़ा कठोर है जो इस जैन के साथ ठहरने की सम्मति देता है । भूत की सम्मति बहुत भली जान पड़ती है, तो ले भूत मैं भागने को उपस्थित हूँ, मेरे पाँव तेरी आज्ञा में हैं, मैं अवश्य भागूँगा ।

वृद्ध गोप — साहिब नेक कृपा कर के परदेसी महाजान के घर का मार्ग तो बता देते ।

गोप — आगे के मोड़ पर पहुँच कर अपने दाहिने हाथ को फिर जाना, और सब से आगे को मोड़ पर जब पहुँचो तो अपने बायें हाथ को मुड़ना, फिर दूसरे मोड़ पर किसी ओर न फिरना वरंच तिरछे मुड़ कर सीधे परदेसी महाजन के घर चले जाना ।

(वृद्ध गोप एक टोकरा लिए हुए आता है)

वृद्ध गोप — भाई समृद्ध परदेसी महाजन के घर का कौन सा मार्ग है ?

गोप — (आप ही आप) ईश्वर का त्राण ! आप मेरे सगे बाप हैं, जो ऐसे अंधे हो गए हैं कि अपने जनमाए हुए लड़के को नहीं पहिचानते । ठहरो तनिक इन की परीक्षा लूँगा ।

वृद्ध गोप — भगवान की शपथ है इस मार्ग का पाना तो कठिन होगा । भला आप को विदित है कि एक मनुष्य गोप नाम का जो उनके यहाँ रहता था अब वहाँ है या नहीं ?

गोप — क्या तुम युवक गोप को पूछते हो ? — (आप ही आप) अब देखो मैं कैसा खेल करता हूँ — क्या तुम युवा गोप महाशय का वर्णन करते हो ?

वृद्ध गोप — 'महाशय' न कहिए वरंच एक दरिद्र का बेटा । उसका बाप एक बहुत ही धर्मात्मा दरिद्री है पर धन्य है ईश्वर को कि रोटी कपड़े से सुखी है ।

गोप — उसके बाप को कौन पूछता है वह जो चाहे सो हों, यहाँ तो इस समय युवा गोप महाशय का वर्णन है ।

वृद्ध गोप — जी हाँ वही गोप आप का मित्र ।

गोप — इसी लिये तो बूढ़े बाबा मैं तुमसे कहता हूँ, इसी लिये तो निवेदन करता हूँ कि उसे युवा महाशय कहो ।

वृद्ध गोप — आप की साहिबी बनी रहे मैं गोप

को पूछता हूँ ।

गोप— तो उसका नाम गोप महाशय हुआ — बाबा गोप महाशय का वर्णन न करो क्योंकि वह युवा सज्जन मनुष्य तो कुछ दिन हुए मर गया या यों समझ लो कि स्वर्ग को गया ।

वृद्ध गोप— भगवान न करे ! वही लड़का तो मेरे बुढ़ापे की लकड़ी था, मेरे अँधेरे घर का दीपक था ।

गोप— मेरी सूरत तो कहीं लकड़ी या दिये से नहीं मिलती ? — बाबा तुम मुझे पहचानते हो ?

वृद्ध गोप— शोच है कि मैं आप को नहीं पहिचानता, किंतु ईश्वर के लिये मुझे शीघ्र बतलाइए कि मेरा लड़का (भगवान ससकी आत्मा को सुख दे !) जीता है कि मर गया ?

गोप— बाबा तुम मुझे नहीं पहिचानते ?

वृद्ध गोप— साहिब मैं तो बिल्कुल अंधा हूँ और तुम्हें नहीं पहिचान सकता ।

गोप— और न यदि तुम्हारे आँख होती तो तुम मुझे पहिचान सकते । यह बड़े बुद्धिमान पिता का काम है कि अपने लड़के को पहिचान लें । अच्छा बूढ़े बाबा मैं तुम्हारे बेटे का हाल तुमसे कहूँगा, मुझे आशीर्वाद दो, अभी सच्चा हाल खुल जायगा । रुधिर अधिक दिन तक नहीं छिप सकता, लड़का कदाचित् छिप सके — परंतु अंत को मुख्य बात प्रकट हो जाती है । (घुटने के बल झुकता है) ।

वृद्ध गोप— भाई उठो यह क्या बात है — मुझे निश्चय है कि तुम मेरे लड़के गोप नहीं हो ।

गोप— ईश्वर के लिये अब अधिक मूर्ख मत बनो और मुझे आशीर्वाद दो । मैं वही गोप हूँ जो पहिले तुम्हारा लड़का था, अब तुम्हारा बेटा है, और आगे तुम्हारा बच्चा कहलावेगा ।

वृद्ध गोप— मैं कैसे जानूँ कि तुम मेरे बेटे हो ?

गोप— मैं नहीं जानता कि तुम्हारी समझ को क्या कहूँ पर महाजन का नौकर गोप मैं ही हूँ और भली भाँति जानता हूँ कि तुम्हारी पत्नी मागधी मेरी माता है ।

वृद्ध गोप— निस्सन्देह उसका नाम मागधी है । मैं शपथ से कह सकता हूँ कि यदि तू गोप है तो मेरे ही मांस और रुधिर से है । वाह वाह तेरे डाढ़ी कितनी लंबी निकल आई है ! जितने बाल तेरी टुड्डी पर हैं उतने तो मेरे घोड़े दमनक की पोंछ पर भी न होंगे ।

गोप— तो इससे मालूम होता है कि दमनक की पोंछ बढ़ने के बदले दिन पर दिन भीतर घुसी जाती है । मुझे स्मरण है कि जब मैंने उसे अंतिम बार देखा था तो उसकी पोंछ के बाल मेरी डाढ़ी के बाल से कहीं बड़े थे ।

वृद्ध गोप— हे भगवान ! तुम में कितना अंतर हो गया है । भला तुझे से और तेरे स्वामी से कैसी पटती है ? मैं उसके लिये कुछ भेंट लाया हूँ । बता तेरी उनके साथ कैसी निभती है ?

गोप— किसी भाँति निभ जाती है । मैं अपने जी में नौ दो ग्यारह होने की ठान चुका हूँ और जब तक कुछ दूर भाग न लूँगा कदापि दम नहीं लूँगा । मेरा स्वामी पूरा जैन है । उसे भेंट दोगे ! हुह, उसे फाँसी दो । मैं उसी नौकरी में भूखों मरता हूँ — नेक मेरी दशा तो देखो कि कोई चाहे तो मेरी नसों को हर एक अँगुली को गिन ले । बाबा बड़ी बात हुई कि तुम यहाँ आ गए । चलो अपनी भेंट बसंत महाराज को दो जो अच्छी नई नई वर्दियाँ बाँटता है । यदि मुझे इसकी नौकरी न मिली तो जहाँ तक कि ईश्वर के पास पृथ्वी है मैं भाग जाऊँगा । अहा ! मेरा भाग्य कैसा प्रबल है ! देखो वह आप चले आते हैं । बाबा इससे कहो, क्योंकि यदि अब मैं एक दम भी जैन की नौकरी करूँ तो मैं उससे अधम ।

(बसंत लोरी तथा दूसरे भृत्यों के सहित आता है)

बसंत— अच्छा यों ही करो — परंतु देखो ऐसी शीघ्रता से सब प्रबंध हो कि अधिक से अधिक पाँच बजे तक ब्यालू तैयार हो जाय । इन पत्रों को डाक में डाल आओ, वर्दियाँ झटपट बनवा लो और गिरीश से जाकर कहो कि अभी मेरे घर आवें ।

(एक नौकर जाता है)

गोप— बाबा — हूँ ।

वृद्ध गोप— ईश्वर आपको चिरायु करै ।

बसंत— (धन्यवाद पूर्वक) तुम्हें मुझसे कुछ काम है ?

वृद्ध गोप— धर्मावतार यह दीन बालक मेर पुत्र —

गोप— दीन बालक नहीं महाराज वरंच धनिक महाजन का मनुष्य जो इस बात को चाहता है जैसा कि मेरा पिता विवरण के साथ कहेगा कि —

वृद्ध गोप— इसे नौकर की बड़ी इच्छा है और —

गोप— सचमुच महाराज मुख्य बात वह है कि मैं जैन के यहां नौकर हूँ और इच्छा रखता हूँ जैसा कि मेरा बाप कहेगा कि —

वृद्ध गोप— महाराज इसकी और इसके स्वामी की जरा भी नहीं पटती —

गोप— मैं थोड़े में सच्ची कहे देता हूँ कि जैन ने

मेरे साथ बुराई की है जिसके कारण से मैं चाहता हूँ, जैसा कि मेरा बाप जो मैं आशा करता हूँ कि एक वृद्ध मनुष्य है आपसे सविस्तार वर्णन करेगा —

वृद्ध गोप — मैं एक थाली कबूतर के मांस की आपको पारितोषिक देने को लाया हूँ और मेरी प्रार्थना यह है कि —

गोप — सौ बात की एक बात यह है कि यह प्रार्थना मेरे विषय में जैसा कि आपको इस सच्चे बूड़े के कहने से विदित होगा जो यद्यपि बूढ़ा और दीन है तो भी मेरा बाप है।

बसंत — दो के बदले एक मनुष्य बोलो — तुम क्या चाहते हो?

गोप — सर्कार की सेवा करना।

वृद्ध गोप — जी हाँ यही मुख्य तात्पर्य है।

बसंत — मैं तुम्हें भली भांति जानता हूँ, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हुई। तुम्हारे स्वामी शैलाक्ष ने आज ही तुम्हारी सिफारिश की है, यदि एक धनवान जैन की सेवा छोड़ कर मुझ ऐसे दरिद्री की नौकरी करना चाहते हो।

गोप — वह पुरानी कहावत सर्कार के और मेरे स्वामी शैलाक्ष के विषय में ठीक ठीक घट गई है — सर्कार पर ईश्वर की कृपा है और उसके पास पुष्कल धन है।

बसंत — यह बात तो तुमने खूब कही। बूढ़े बाबा अपने बेटे के साथ जाओ अपने पुराने स्वामी से बिदा होकर मेरे घर का पता लगाकर उपस्थित हो। (अपने भृत्यों से) इस मनुष्य को एक वर्दी जिसमें औरों की वर्दियों से उत्तम लैस टँकी हो दे दो, देखो अभी निबटा दो।

गोप — बाबा चलो — मेरे लिये कहीं नौकरी की कमी हो सकती है, नहीं। मैं कभी अपने मुँह से प्रार्थना नहीं करता! हाँ (अपना हाथ देख कर) क्या मुझ से बढ़कर मारवाढ़ भर में किसी की हथेली निकलेगी, जो पुस्तक लेकर शपथ खाने को प्रस्तुत है कि तुम खूब रुपया कमाओगे! यह देखो आयु की रेखा कैसी सीधी चली गई है! — और यह पत्नियों का एक साधारण लेखा है — हा केवल पंद्रह स्त्री यह तो कुछ भी नहीं है — ग्यारह रॉड़ और नौ क्वारियों से ब्याह करना तो मनुष्य के लिये थोड़ी ही बात है — फिर तीन बार डूबते डूबते बचना — और फिर एक तिनके से जीव का जोखिम — यह देखो यह इन सब आपत्तियों से बचने की रेखा है — अहा! यदि विधाता कोई स्त्री है तो ऐसे उत्तम स्त्रीधन के साथ अवश्य ब्याहने के योग्य है — बाब जाओ — मैं पलक भांजते मैं जैन से बिदा हो लूँगा। (गोप और वृद्ध गोप जाते हैं)।

बसंत — लोरी इसको भली भाँति समझ लो। इन वस्तुओं को मोल लेकर और वर्दियाँ बाँट कर शीघ्र लौट आओ क्योंकि आज ही रात को मुझे अपने परम प्रतिष्ठित मित्र का आतिथ्य करना है। शीघ्रता करो, जाओ।

लोरी — जहाँ तक हो सकता है शीघ्र प्रबंध करके उपस्थित होता हूँ।

(गिरीश आता है)

गिरीश — तुम्हारे स्वामी कहाँ हैं?

लोरी — महाराज, वहाँ टहल रहे हैं।

(लोरी जाता है)

गिरीश — बसँत महाशय —

बसंत — गिरीश!

गिरीश — मेरी आपसे एक प्रार्थना है।

बसंत — मैंने स्वीकार की — कहो।

गिरीश — देखिए अस्वीकार न कीजिएगा — मैं आपके साथ विल्वमठ चलूँगा।

बसंत — इसमें कौन सी बात है आनंद से चलो — लेकिन सुनो गिरीश, तुम में ढिठाई, अनार्य्यता और असभ्यता अधिक है जो यद्यपि तुम में गुण जान पड़ते हैं और हमारी दृष्टि में दुर्गुण नहीं ठहरते तथापि बाहरवालों की दृष्टि से धृष्टता समझी जाती हैं। नेक इसका ध्यान रखना और लज्जा के ठंढे पानी से अपने चिलबिलेपन की गर्मी को ठंढा करने का यत्न करना जिसमें ऐसा न हो कि जहाँ मैं जानेवाला हूँ वहाँ तुम्हारी अनार्य्यता के कारण मैं भी हल्का समझा जाऊँ और मेरी सब आशाएँ धूलि में मिल जायँ।

गिरीश — बसंत महाराज, सुनिए यदि मैं गंभीर बन जाऊँ, नम्रता के साथ न बोलूँ, शपथ खाने का अभ्यास कम न कर दूँ, स्तोत्र की पुस्तक जेब में न भरे रहूँ, दृष्टि नीची न रक्खूँ, केवल इतना ही नहीं वरंच जिस समय स्तुति पढ़ी जाती हो अपनी टोपी की इस तरह आँख पर अँधेरी न चढ़ा लूँ, और आह भर कर एवमस्तु कहूँ, और एक बड़े विद्वान सभ्य मनुष्य की भाँति निम्रता के साथ हर बात में चुनाचुनी न करूँ, तो आज से मेरी बात का विश्वास न कीजिएगा।

बसंत — वह तो देखने ही में आवेगा।

गिरीश — हाँ पर आज की रात को इस प्रतिबंधन से दूर रखिए, आज की रात हँसी के लिये रुकावट न रहेगी।

बसंत — नहीं नहीं मैं कब ऐसा चाहने लगा, वरंच मैं तो स्वयं कहने को था कि आज की सभा में नियम से भी अधिक ढीठ रहो क्योंकि आज ऐसे मित्रों का भोज है जो चुहल की इच्छा रखते हैं — परंतु इस समय विदा हो क्योंकि मुझे कुछ काम है ।

गिरीश — और मैं लवंग प्रभृति के पास जाता हूँ, पर भोजन के समय हम सब अवश्य उपस्थित होंगे ।

(दोनों जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान — वंशनगर, शैलाक्ष के घर की एक कोठरी

(जसोदा और गोप आते हैं)

जसोदा — मुझे खेद है कि तू मेरे बाप की नौकरी छोड़ता है । यह घर मुझे नरक समान लगता है पर तुझ ऐसे हँसमुख भूत के कारण थोड़ा बहुत जी बहल जाता था । अस्तु, विदा हो ; यह ले यह एक रुपया तेरे लिये पारितोषिक है । और सुन गोप ! थोड़ी देर में तेरे नये स्वामी के यहाँ लवंग भोजन करने जायगा उसे चुपके से यह पत्र दे देना — बस जा — मैं नहीं चाहती कि मेरा बाप मुझे तुझसे बात करते देख ले ।

गोप — तुम्हें ईश्वर को सौंपता हूँ — आँसुओं के मारे तो मेरे मुँह से शब्द नहीं निकलने पाता । ऐ सुंदरी कामिनी, ऐ प्यारी जैनिन, यदि कोई आर्य्य तुझे न ठगे और अपनी स्त्री न बनावे तो मेरा नाम नहीं । किंतु बस, ईश्वर ही रक्षा करे । प्रेम के आँसू तो मेरे दृढ़ चित्त पर प्रबल हुआ चाहते हैं । ईश्वर रक्षा करे —

(जाता है)

जसोदा — अच्छा बिदा हो सुहृद गोप । हाय ! मेरे लिये कैसे यह पाप की बात है कि मैं अपने बाप की लड़की होने से लज्जित होऊँ ! परंतु यद्यपि मैं उसके रक्त से उत्पन्न हूँ पर मेरा चित्त उसका सा नहीं है । ऐ लवंग, यदि तू अपने वचन पर दृढ़ रहा तो मैं इस झगड़े को निबटा दूँगी और आर्य्य होकर तेरी प्यारी स्त्री बन जाऊँगी ।

(जाती है)

चौथा दृश्य

स्थान — वंशनगर — एक सड़क

(गिरीश, लवंग, सलारन और सलोने आते हैं)

लवंग — नहीं, वरंच हम लोग खाने के समय खिसक देंगे और मेरे घर पर आकर भेस बदल कर सब लोग लौट आवेंगे । एक घंटे में सब काम हो जायगा ।

गिरीश — हम लोगों ने अभी सब तैयारी नहीं की है ।

सलारन — अब तक मशाल्चियों का भी कुछ प्रबंध नहीं हुआ है ।

सलोने — जब तक कि स्वाँग का उत्तमता के साथ प्रबंध न हो वह निरा लड़कों का खेल होगा और मेरी सम्मति में ऐसी अवस्था में उसका न करना ही उत्तम होगा ।

लवंग — अभी तो केवल चार बजा है — अभी हमें तैयारी के लिये दो घंटे का अवकाश है —

(गोप हाथ में पत्र लिए आता है)

कहो जी गोप क्या समाचार लाए ?

गोप — यदि आप इसे खोलेंगे तो आप ही सब समाचार विदित हो जायगा ।

लवंग — मैं इन अक्षरों को पहिचानता हूँ, ईश्वर की सौगंध कैसे सुंदर अक्षर हैं, और जिस कोमल हाथ ने इन्हें लिखा है वह इस पत्र से भी अधिक गोरा है ।

गिरीश — निस्संदेह यह तुम्हारी प्यारी का पत्र है ।

गोप — साहिब अब मुझे आज्ञा होती है ?

लवंग — कहाँ जाते हो ?

गोप — अपने पुराने स्वामी जैन को अपने नये आर्य्य स्वामी के साथ आज रात को भोजन करने के लिए निमंत्रण देने ।

लवंग — ठहरो, यह लो, प्यारी जसोदा से कह दो कि कदापि अंतर न पड़ेगा — देखो अकेले में कहना — जाओ ।

(गोप जाता है)

महाशयो आप लोग अब तो रात के लिये स्वाँग की तैयारी करेंगे ? मशाल दिखलाने वाले का प्रबंध हो गया ।

सलारन — जी हाँ मैं अभी जाकर तैयार होता हूँ ।

सलोना — और मैं भी चला ।

लवंग — लगभग एक घंटे के गिरीश के घर पर मुझसे और गिरीश से मिलना ।

सलारना — बहुत ठीक ।

गिरीश — वह पत्र जसोदा ही का न था ?

(सलारन और सलोने जाते हैं)

लवंग— अवश्य है कि मैं तुमसे सब हाल वर्णन कर दूँ । उसने मुझे सूचना दी है कि मैं उसे किस भाँति उसके बाप के घर से ले जाऊँ, कितनी अशरफी और गहने उसने ले रक्खे हैं, और कैसा परिचारक का वस्त्र अपने लिये उपस्थित कर रक्खा है । भाई गिरीश यदि कभी इसके बाप जैन को स्वर्ग में आने की आज्ञा मिलेगी तो अपनी बेटी के सुकृत के बदले, और यदि कभी कोई बुराई इस तक आवेगी तो इस बहाने से कि वह एक अधर्मी जैन की बेटी है । आओ, मेरे साथ आओ, मार्ग में इसे पढ़ते चलो । सुंदरी जसोदा आज स्वाँग में मशाल दिखलावेगी ।

(दोनों जाते हैं)

पाँचवा दृश्य

स्थान — वंशनगर — शैलाक्ष के घर के सामने

(शैलाक्ष और गोप आते हैं)

शैलाक्ष— अच्छा तो तू देखेगा, तेरा आँखें आप ही इस बात का न्याय करेंगी कि वृद्ध शैलाक्ष और बसंत में कितना अंतर है । अरी जसोदा ! जैसा तू मेरे यहाँ भुखमुए की भाँति ढाई सेर भकोसता था उसका स्मरण वहाँ आवेगा । अरी जसोदा ! और हर समय पड़े रहने और खर्राटे लेने और कपड़े फाड़ डालने की महिमा भी जान पड़ेगी । अरी जोसदा, सुनती नहीं !

गोप— जसोदा !

शैलाक्ष— तुझे किसने पुकारने को कहा है ? मैंने तुझसे नहीं कहा कि पुकार ।

गोप— आपही न मुझ पर सदा क्रुध हुआ करते थे जि तू बेकहे कोई काम नहीं करता ।

(जसोदा आती है)

जसोदा— मुझे आपने बुलाया है ? आज्ञा ?

शैलाक्ष— मुझे आज का नेवता आया है, लो जसोदा यह कुंजियाँ तुम्हारे सुपर्द हैं । पर मैं क्यों जाने लगा ? मुझे वह लोग कुछ प्रेम में नहीं बुलाते वरंच सुश्रषा से — किंतु क्या हुआ मैं भी तिरस्कार की दृष्टि से जाऊँगा और उस बहुव्ययी आर्य्य का माल चाभूँगा । मेरी प्यारी बेटी तू घर से सावधान रहियो । मेरा जाने को तनिक भी जी नहीं चाहता, मुझे कोई बुराई आती मालूम होती है जिसका मेरे जी में खटका लग रहा है, क्योंकि आज ही रात को मैंने रुपये के तोड़ों का सपना देखा था ।

गोप— आप कृपा करके चलें : मेरे नये स्वामी आपकी राह देखते होंगे, और उन लोगों ने आपस में गुट किया है । यह मैं नहीं कह सकता कि आप अवश्य ही स्वाँग देखिएगा परंतु यदि ऐसा हुआ तो निस्संदेह कुछ न कुछ रंग खिलेगा क्योंकि मेरी नाक से उस दिन तेवहार के छ बजे सबेरे रुधिर का बहना व्यर्थ न जायगा ।

शैलाक्ष— क्या स्वाँग भी बनेंगे ? सुनो जसोदा द्वारों में ताला लगा दो और जब भेर की ढबढब और बाँसुरी की ध्वनि सुनाई दे तो झरोखों में से झाँकने के लिये ऊपर न चढ़ना और न इन आर्य मसखरो के लुक फेर हुए चिहरों को देखने के लिए खिड़की से बाजार की ओर सिर निकालना वरंच शीघ्र ही मेरे घर के कानों को अर्थात् खिड़िकियों को बंद कर लेना जिसमें ऐसे असभ्य तुच्छ जनों का शब्द मेरे सभ्य घर के भीतर न पहुँचने पावे । शपथ है अहंत देव की छड़ी की मेरा जी आज रात के नेवते में जाने को नेक भी नहीं उभरता । किन्तु मैं जाऊँगा । अबे तू आगे जा कह दे कि मैं आऊँगा ।

गोप— महाराज में चला । बबुई तुम इनकी बकबक पर ध्यान न देकर आवश्य खिड़की में से झाँकती रहना क्योंकि 'आज होगा उस मसीहा का गुजर इस राह से, जिसने मूसा क
को ।' (जाता है) ।

शैलाक्ष— वह मूर्ख प्रेत का अवतार क्या कहता था, ऐं ?

जसोदा— उसने केवल इतना ही कहा कि 'बबुई ईश्वर आपकी रक्षा करे' और कुछ नहीं ।

शैलाक्ष— वह मूर्ख प्रेम तो रखता है परंतु खाने में साँड से अधिक है, दिन को सोने में जंगली बिल्ली से बढ़कर और काम करने में घोंघे से अधिक सुस्त । ऐसे कृतघ्नों का निर्वाह मेरे साथ कहाँ हो सकता है ; इसीलिए मैं उसे दूर करता हूँ, और फिर उसे पल्ले भी कैसे मनुष्य के बाँधता हूँ जिसके उधार लिए हुए रुपये के नष्ट करने में वह सहायता देगा । अच्छा जसोदा अब तुम भीतर जाओ, कदाचित् मैं अभी लौट जाऊँ । जिस भाँति मैंने समझा दिया है वैसा ही करना । द्वारों को बंद करती जाओ — 'जागै सो पावै, सोवै सो खोवै' यह कहावत बहुत ठीक है । (जाता है)

जसोदा— जाइए — (आप ही आप)

"गर वर आई आर्जू मेरी तो रुखसत आपको,
आपने बेटे को खोया और मैंने बाप को ।"

(जाती है)

छठा दृश्य

(स्थान — शैलाक्ष के घर के सामने)

(गिरीश और सलारन भेस बदले हुए आते हैं)

गिरीश— यही बरामदा है जिसके नीचे लवंग ने हमें खड़े रहने को कहा था ।

सलारन— उनका समय तो हो गया ।

गिरीश— आश्चर्य है कि उन्होंने देर की क्योंकि अनुरागियों की चाल तो सदा घड़ी से तीव्र रहती है ।

सलारन— ओह ! नये अनुरागी कामदेव के कबूतर की भाँति अनुराग की दस्तावेज पर मुहर करने को तो दस गुने तेज उड़ते हैं पर फिर उसकी उलझन में उतने ही सुस्त हो जाते हैं ।

गिरीश— यह तो नियम की बात है । किसी को भी खाने के पश्चात् वह भूख नहीं रह जाती है जो खाने पर बैठने के समय थी ? कोई घोड़ा भी उस तीव्रगति के साथ लौट सकता है जिसके साथ वह चला था ? संसार में जितनी वस्तुएँ हैं उनके मिलने के पूर्व जो उत्साह रहता है वह उनके मिलने पर नहीं रहता जैसा कि कहा भी है । "जो मजा इंतिजार में देखा, वह नहीं वस्लो यार में देखा ।" जिस समय जहाज अपनी खाड़ी से रवाना होता है तो कैसा एक युवा व्यसनी अथवा बहुव्ययी के भाँति झंड़ियाँ फहराए हुए और दुष्ट वायु के गले लगा हुआ चला जाता है ! पर जब वह लौटता है तो उसी बहुव्ययी की भाँति उसकी कैसी दुरवस्था हो जाती है अर्थात् तूफान से किनारे टूटे हुए, पाल फटे हुए निरातंक और व्याकुल ! और यहाँ सब बुराइय उसी कठोर वायु के द्वारा होती है ।

(लंवग आता है)

गिरीश— वह देखो लवंग आ पहुँचे । उस विषय में हम लोग फिर बातचीत करेंगे ।

लवग— मेरे प्यारे मित्रो, मुझे विलंब के लिये क्षमा करना । इसमें अपराध मेरा न था वरंच आवश्यक कामों कां । जब स्त्री चुराने की तुम्हारी बारी आवेगी तब मैं भी इतनी देर तक तुम्हारी राह देखूँगा । अच्छा इधर आओ, यहीं मेरा ससुरा जैनी रहता है । ऐ कोई भीतर है ।

(जसोदा लड़के का कपड़ा पहिने हुए ऊपर से झाँकती है)

जसोदा— तुम कौन हो ? शीघ्र बतलाओ जिसमें मेरा पूरा संतोष हो जाय । यद्यपि मैं शपथ खा सकती हूँ कि मैं तुम्हारा शब्द पहिचानती हूँ ।

लवग— तुम्हारा प्रेमी लवंग ।

जसोदा— निस्संदेह तुम लवंग हो, और सचमुच मेरे प्यारे, क्योंकि मैं तुम्हारे सिवाय किसको प्यार करती हूँ ? किंतु प्यारे इस बात को सिवाय तुम्हारे कौन जान सकती है कि मैं भी तुम्हारी प्यारी हूँ या नहीं ?

लवग— इस बात का साक्षी तो ईश्वर और तुम्हारा मन है ।

जसोदा— लो इस संदूक को सम्हालो, इसमें हम लोगों के परिश्रम का पूरा मिहनताना मिलेगा । मुझे हर्ष है कि रात का समय है और तुम मेरी सूरत नहीं देख सकते क्योंकि मुझे अपने इस वेष पर बड़ी लज्जा आती है : पर प्रेम अंधा होता है और प्रेमी अपनी मूर्खता की बातों को कभी नहीं देख सकते, क्योंकि यदि वह देख सकें तो कामदेव आप मुझे लड़के के वेष में देख कर लज्जित हो जाय ।

लवग— उतरो, क्योंकि तुम्हें मशअल दिखलानी होगी ।

जसोदा— क्या मैं अपनी निर्लज्जता को आप ही मशआल लेकर दिखाऊँ ? वह तो स्वयं अत्यंत प्रकाशमान है । प्यारे, मशअलची तो इसलिये होता है कि अंधेरे में की वस्तुओं को प्रकट करे पर मुझे तो उसके विरुद्ध अपने तई छिपाना चाहिए ।

लवंग— प्यारी तुम तो लड़के के सुहावने वेष में आप ही छिपी हो। परंतु अब शीघ्रता करो क्योंकि रात, जो प्रेमियों की अवलंब है, बीतती जाती है और हम लोगों को अभी बसंत के भोज में कुछ देर ठहरना है ।

जसोदा— मैं द्वार बंद करके और कुछ और रुपये ले कर अभी आती हूँ ।

(ऊपर से जाती है)

गिरीश— मैं शपथ खा कर कह सकता हूँ कि यह जैन नहीं वरंच आर्या जान पड़ती है ।

लवग— मेरा बुरा हो यदि मैं इसे जी से न प्यार करता हूँ । यदि मेरी समझ ठीक है तो यह बुद्धिमती है, और यदि मेरी आँखें अंधी नहीं हो गई हैं तो सुंदर भी अत्यंत ही है । सचाई इस की जैसी कुछ है विदित है, अत : ऐसी बुद्धिमती, सुंदरी और सच्ची युवती का मैं सदा मन से आज्ञाकारी रहूँगा ।

(जसोदा नीचे आती है)

क्या तुम आ गई ? चलो महाशयो, चलो, हमारे स्वाँग

के साथी लोग हमारी राह देख रहे होंगे।

(जसोदा और सलारन के साथ जाता है)

(अनंत आता है)

अनन्त— कौन है ?

गिरीश— अनंत महाराज ?

अनन्त— छी छी गिरीश ! और लोग कहाँ हैं ? नौ बज गया। हमारे सब मित्र तुम लोगों का बाट जोहते हैं। आज स्वाँग बंद रहा क्योंकि अभी — अनुकूल वायु चला और वसंत शीघ्र ही यात्रा करने जायँगे। मैंने बीसियों मनुष्यों को तुम्हारी खोज में चारों ओर दौड़ाया है।

गिरीश— मैं इस समाचार से बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे स्वाँग से कहीं बढ़ कर इस बात में आनंद मिलेगा कि आज ही रात को पाल उड़ाऊँ और चलता फिरता दिखलाई दूं।

(जाते हैं)

सातवाँ दृश्य

(स्थान — विल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा)

(तुरहियाँ बजती हैं। पुरश्री और मोरकुटी का राजकुमार अपने अपने साथियों के साथ आते हैं)

पुरश्री— जाओ, पर्दे उठाओ और इस प्रतिष्ठित राजकुमार को तीनों संदूक दिखलाओ। अब आप पसंद कर लें।

मोरकुटी— पहला संदूक सोने का है जिस पर यह लेख लिखा है। "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उस वस्तु को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं।"

दूसरा चाँदी का है जिस पर यह प्रतिज्ञा लिखी है। "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है।"

तीसरा कुंद सीसे का है जिस पर वैसी ही धमकी भी लिखी हुई है। "जो कोई मुझे पसंद कर वह अपनी सब वस्तुओं को भय में डाले और उनसे हाथ धोवै।"

भला मैं कैसे जानूँगा कि मैंने सही संदूक चुना है ?

पुरश्री— इनमें से एक में मेरी तस्वीर है — यदि आप उसे चुनेंगे तो मैं भी उस चित्र के साथ आप की हो जाऊँगी।

मोरकुटी— कोई देवता इस अवसर पर मेरी सहायता करता ! देखूँ तो ; मैं इस संदूकों के परिलेखों पर फिर तो विचार करूँ। इस सीसे के संदूक पर क्या लिखा है ?

"जो कोई मुझे पसंद करे वह अपनी सब वस्तुओं को भय में डाले और उनसे हाथ धोवै।

हाथ धोवै — किस के लिये ? सीसे के लिये ? भय में डालना और सीसे के लिये ? यह संदूक तो बहुत ही धमकाता है ; लोग जो अपनी सब वस्तुओं को जोखों में डालते हैं तो अच्छे अच्छे लाभ की आशा में ; सहृदय कूड़े करकट की ओर कब झुक सकता है ; तो मैं सीसे के लिये न किसी वस्तु के हाथ धोऊँगा और न उसे भय में डालूँगा। अब देखो यह चाँदी जिसकी रंगत अल्प-वयस्क कामिनियों की सी है क्या कहती है ? "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है।" उतना जितने के वह योग्य है ? — मोरकुटी के राजकुमार नेक ठहर और हाथ साध कर अपनी योग्यता को तौल। यदि तू अपने नाम की ख्याति के अनुसार आँका जाय तो तू निस्संदेह बहुत कुछ पाने के योग्य है, पर कौन जाने कदाचित् यह कुमारी इस बहुत कुछ से बढ़ कर हो। किंतु इसी के साथ अपनी योग्यता में संदेह करना भी निर्बलता की बात है और अपनी योग्यता में बट्टा लगाना है। उतना जितने के मैं योग्य हूँ। वाह वह तो यही कुमारी है ; मैं अपनी उत्पत्ति, अपनी लक्ष्मी, अपनी शिक्षा, अपनी चालचलन हर बात से उसके पाने की क्षमता रखता हूँ, पर सबसे बढ़ कर अपने प्रेम के ध्यान से मैं अपने को उसके योग्य कह सकता हूँ। तो अब मैं आगे क्यों भटकूँ और इसी को चुन लूँ — पर एक बार सोने के संदूक की लिपि को फिर तो देखूँ। 'जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उस वस्तु को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं।"

वाह वह तो यही कुमारी है ; सारा संसार इसकी इच्छा रखता है और पृथ्वी के चारों कोनों से लोग इस जागृत महात्मा के पैर चूमने को चले आते हैं। हरिद्वार के जंगल और बीकानेर के उजाड़ मैदान दोनों आज कल पुरश्री के प्रणयी राजकुमारों के लिये साधारण मार्ग हो रहे हैं। समुद्र जिसका अभिमानी मस्तक आकाश के मुँह पर थूकता है उसका भय भी आने वालों के साहस को नहीं तोड़ सकता और लोग पुरश्री के देखने की लालसा में उस पर से ऐसे चले आते हैं जैसे कोई एक छोटे से नाले को पार करता हो। इन संदूकों में से एक में उसका मनोहर चित्र है। क्या यह सम्भव है कि वह सीसे के भीतर हो ? ऐसा तुच्छ विचार मेरे नाश का कारण होगा।

सीसा तो अंधेरी समाधि में उसके कफन के रखने के लिये भी एक बड़ी भद्दी वस्तु होगी । था यह समझूँ कि वह चाँदी में बंद है जिसका मूल्य खरे सोने से दसगुना कम है ? ऐसा सोचना ही पाप है ! भला कभी भी ऐसा अलभ्य रत्न सोने से कम मूल्य वाले पदार्थ में जड़ा गया है ? अंग में एक सोने का सिक्का होता है जिस पर पार्षदों का चित्र खुदा रहता है, परंतु वह तो ऊपर खुदा रहता है और यहाँ सचमुच एक अप्सरा सोने के बिछौने पर भीतर मग्न है । अच्छा मुझे ताली दो मैं इसी को चुनता हूँ आगे जो कुछ मेरे भाग्य में हो !

पुरश्री— यह लो राजकुमार यदि मेरी तस्वीर इसके भीतर निकली तो मैं आपकी हो चुकी ।

(सोने के संदूक को खोलता है)

मोरकुटी — हाय अंधेर ! यह क्या निकला । एक खोपरी जिसकी आँख के गढ़े में एक लिपटा हुआ पत्र खोसा है । इसे पढ़ूँ तो सही —

"करि विचार देखहु जिय माहीं ।
जो चमकत सो सुबरन नाहीं ।।
कितने ही मम छवि ललचाने ।
नाहक प्रान देत बिनु जाने ।।
जे समाधिगन कनक रँगाये ।
तिन में भरे कीट बहु पाये ।।
जिमि तुअ अंग वीर रस साना ।
तिमि होते गुन-ज्ञान निधाना ।।
जिमि तुमरे तन जोबन जोती ।
तौसिहि बुद्धि वृद्ध की होती ।।
तो न होत यह पढ़ि स्रम नासा ।
जाहु प्रनाम सरद तुअ आसा" ।।

सचमुच सर्द और श्रम व्यर्थ, तो अब गर्मी को विदा और सर्दी से काम -- पुरश्री का ईश्वर रक्षक हो ! मेरा जी इतना टूट गया है कि अब एक दम ठहरने का सामर्थ्य नहीं रखता । जिसका मनोरथ पूरा नहीं होता वे ऐसे ही बिदा होते हैं ।

(जाता है)

पुरश्री — अच्छी छुटी, जाओ परदों को गिराओ । यदि इस राजकुमार की रंगत के सब लोग मुझे इसी भाँत वरैं तो क्या बात है ।

(सब जाते हैं)

आठवाँ दृश्य

स्थान — वंशनगर, एक सड़क

(सलारन और सलोने आते हैं)

सलारन — अजी मैंने स्वयं बसंत को जहाज पर जाते देखा ; उन्हीं के साथ गिरीश भी गया है, पर मुझे विश्वास है कि उस जहाज में लवंग कदापि नहीं है ।

सलोने -- उस दुष्ट जैन ने वह आपत्ति मचायी कि महाराज को स्वयं बसंत के जहाज की तलाशी लेने के लिये जाना पड़ा ।

सलारन — हाँ, परंतु वह देर करके पहुँचे, उस समय जहाज जा चुका था और वहाँ महाराज को समाचार मिला कि लवंग अपनी वल्लभा जसोदा के सहित एक छोटी सी नाव में जाता दृष्टि पड़ा था ! इसके सिवाय अनंत ने महाराज को अपने भरोसे पर इस बात का विश्वास कराया कि वह दोनों बसंत के जहाज पर नहीं हैं ।

सलोने — मैंने तो आज तक घबराहट और झुँझलाहट के ऐसे बेजोड़ और बिचित्र वाक्य न सुने थे जैसे कि वह जैनी कुत्ता सड़क पर बक रहा था — 'मेरी बेटी !— हाय मेरी अशरफियाँ !— हाय मेरी बेटी !—हाय !—एक आर्य्य के साथ भाग गई !— हाय मेरी आर्य्य अशरफियाँ !— न्याय कानून ! मेरी अशरफियाँ और मेरी बेटी ! एक सरबमुहर तोड़ा, दो सरबमुहर तोड़े अशरफियों के, कलदार अशरफियों के, मेरी बेटी चुरा ले गई !— और रत्न ; दो नगीने, दो अमूल्य अलभ्य नगीने, जिन्हें मेरी बेटी चुरा ले गई — न्याय ! लड़की का पता लगाओ ! उसी के पास अशरफियाँ और पत्थर हैं ।'

सलारन -- अजी वंशनगर के सारे लड़के उसके पीछे दौड़ते हैं और हल्ला मचा कर चिल्लाते हैं -- इसके पत्थर, इसकी लड़की और इसकी अशरफियाँ ।

सलोने — अनंत महाशय को चाहिए कि उससे सावधान रहें और ठीक समय पर ऋण चुका दें नहीं तो पीछे से पछताना पड़ेगा ।

सलारन — तुमने अच्छा स्मरण दिलाया, कल मैं एक फनेशवासी से बातचीत कर रहा था कि उसने वर्णन किया कि उस छोटे समुद्र में जो फनेश और अंगदेश को जुदा करता है तुम्हारे देश का एक अमूल्य धन से लदा हुआ जहाज डूब गया है । मुझे इस समाचार के सुनते ही अनंत के जहाज का ध्यान आया और मन में ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि वह उनका जहाज न हो ।

सलोने -- पर तुमको यही उचित है कि जो कुछ

सुनो अनंत के कान तक पहुँचा दो, किंतु अकस्मात मत कह देना क्योंकि इसमें कदाचित उन्हें अधिक सोच हो ।

सलारन—मुझे तो उनसे बढ़कर दयावंत मनुष्य सारे संसार में दृष्टि नहीं आता । मैं बंसत और अनंत के जुदा होने के समय उपस्थित था । बसंत ने उनसे कहा कि मैं जहाँ तक संभव होगा शीघ्र लौट आऊँगा जिस पर उन्होंने उत्तर दिया — 'बसंत मेरे लिये काम में कदापि शीघ्रता न करना वरंच उचित अवसर के अधीन रहना और उस दस्तावेज के विषय में जो मैंने जैन को लिख दी है कभी अपने जी में ध्यान न करना । प्रति क्षण प्रसन्न रहना और अपने चित्त को प्राणप्रिया की प्रसन्नता और प्रेम के सूचित करने में आसक्त रखना जो तुम्हारे मनोरथ के लिये उपयुक्त हों'' परंतु अंत को उनकी आँखों में आँसू ऐसे डबडबा आए कि और कुछ न कह सके और अपना मुँह फेर कर बसंत की ओर हाथ बढ़ाया और एक अद्‌भुत अनुराग सहित जिससे सच्ची प्रीति टपकती थी उनसे हाथ मिला कर बिदा हुए ।

सलोने— मैं समझता हूँ कि वह संसार को बसंत ही के लिये चाहते हैं । चलो उन्हें खोज करके मिलें और उनके जी की उदासी को किसी शुभ समाचार से दूर करें ।

सलारन— चलो । (जाते हैं)

नवाँ दृश्य

स्थान — बिल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा
(नरश्री एक नौकर के साथ आती है)

नरश्री— शीघ्रता करो ; पर्दे को झटपट उठाओ ; आर्य्यग्राम के राजकुमार शपथ ले चुके और सन्दूक चुनने के लिये पहुँचा ही चाहते हैं । (तुरहियाँ बजती हैं । पुरश्री और आर्य्यग्राम का राजकुमार अपने अपने मुसाहिबों के सहित आते हैं ।)

पुरश्री— अवलोकन कीजिए ऐ प्रसिद्ध राजकुमार, वह संदूक रक्खे हैं । यदि आपने उस मंजूषा को चुना जिसके भीतर मेरी छबि है तो अभी आप के साथ मेरे विवाह के उपचार हो जायँगे परंतु यदि आप भ्रम में पड़े तो शीघ्र ही मुख से एक वर्ण उच्चारण किए बिना आप को यहाँ से चले जाना पड़ेगा ।

आ. रा.— मुझे शपथ है कि प्रण के अनुसार तीन बातों का ध्यान रखना होगा । पहिले इस बात को किसी पर प्रकट न करना कि मैंने कौन सा सन्दूक चुना था ; दूसरे यदि मैं लक्ष्य मंजूषा को न चुन सकूँ तो फिर अपनी अवस्था भर किसी स्त्री की ओर प्रणय की दृष्टि से न देखूँ तीसरे यदि मैं सन्दूक के चुनने में त्रुटि करूँ तो शीघ्र ही तुमसे पृथक हो कर अपनी रहा लूँ ।

पुरश्री— जो कोई मुझ अधम के प्राप्त करने का प्रयत्न करता है उसे इन्ही प्रणों के अनुसरण करने की सौगंद खानी पड़ती है ।

आ. रा.— और मैं भी उसी के अनुकूल कर चुका । हे ईश्वर मेरे मन का मनोरथ पूरा कर !— सोना, चाँदी और तुच्छ सीसा ''जो कोई मुझे चाहे वह अपनी सब वस्तुओं को विघ्न में डाले और उनसे हाथ धो बैठे ।''

वाह, इसी रूप पर ? नेक अपने मुख की श्यामता को धो ले तब विघ्न डालने और हाथ धोने की सुना । और सोने का सन्दूक क्या कहता है ? तनिक देखूँ तो सही ;

''जो कोई मुझे चाहेगा वह उस पदार्थ को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं ।''

जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं । संभव है कि इस 'बहुत' का संकेत मूर्खों की ओर हो जो कि बाहरी चमक दमक पर जाते हैं और दृष्टि के ऐसे स्थूल होते हैं कि किसी वस्तु की आंतरिक अवस्था को कदापि नहीं ज्ञात कर सकते, वरंच गोला कबूतर की भाँति अपने खोते को भय स्थान में घर की बाहरी दीवार पर बनाते हैं जहाँ कि हर समय भय रहता है । मैं उस वस्तु को नहीं चाहूँगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं क्योंकि मैं सर्वसाधारण के तुल्य नहीं हुआ चाहता और गँवार लोगों की सहायता नहीं किया चाहता । तो अब मैं तेरी ओर ध्यान देता हूँ ऐ चाँदी के सन्दूक, एक बर फिर तो बता तेरा क्या प्रण है, ''जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग है ।'' भई सच्ची सच्ची तूने इसमें कही क्योंकि निज की योग्यता बिना कौन प्रतिष्ठा लाभ कर सकता और कौन बड़ा हो सकता है । किसी मनुष्य को अपनी योग्यता से अधिक अधिकार पाने का साहस न करना चाहिए । अहा ! कैसा अच्छा होता यदि अधिकार, उपाधि और पद उत्कोच से न मिल सकते और प्रतिष्ठा निष्कलंक बनी रहती अर्थात केवल पानेवाले की योग्यता से मोल ली जा सकती । फिर कितने सिर जो अब मन सूचन में नंगे दिखलाई देते हैं टोपी से ढके हुए दृष्टि पड़ते । कितने लोग जो अब हाकिम हैं महकूम होते । कितने कमीने जो बड़े बन बैठे हैं मानियों में से दूध की मक्खी

की भाँति निकाल दिए जाते और कितने प्रतिष्ठित जो समय के हेरफेर से साधारण लोगों में मिल गए हैं भूसी में से अन्न की भाँति छाँट कर बड़े पद पर पहुँचा दिए जाते । अस्तु, किंतु मैं अपना काम देखूँ ।

"जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है ।" मैं अपनी योग्यता को मान लेता हूँ । मुझे इसकी कुंजी दो तो मैं इसे तुरंत खोलकर अपने भाग्य की परीक्षा करूँ ।

(चाँदी के सन्दूक को खोलता है)

पुरश्री— क्या निकला ? आह इतना क्यों रुके हैं ?

आ. रा.— ऐं यह क्या है ? एक झूठे अंधे का चित्र जो मुझे एक पत्र दे रहा है ! मैं इसे पढ़ूँगा । हाँ ! मुझमें और पुरश्री के स्वरूप में क्यों सादृश्य । और मुझसे और मेरी आशाएँ और योग्यता से क्या संबंध !

'जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जिसके वह योग्य है ।'

क्या मेरे मुँह के योग्य यही मूर्ख का मस्तक है ? क्या मेरे लिये यही पारितोषिक है ? क्या मेरी योग्यता इससे अधिक नहीं है ।

पुरश्री— अपराध करना, और न्याय करना दो विरुद्ध बातें हैं और एक दूसरे के प्रतिकूल ।

आ. रा.— इसमें लिखा क्या है ?

(पढ़ता है)

'जिमि यह उज्जल रजत सुहायो ।
सात बेर लो अगिन तपायो ।।
तिमि यह बुद्धिहु बहु बिधि जाँची ।
कोउ प्रकार ठहरी नहिं काँची ।।
ऐसे बहुत मूरख जग माँही ।
जे छाया सँग धाये जाहीं ।।
पै कहुँ तिन को आस पुराई ।
मृग मरिचि कहुँ प्यास बुझाई ।।
जो सुख छायहिं अंक लगाए ।
होत तिनहिं सोई गहि पाए ।।
ऐसे बहु जग नर अज्ञाना ।
सेत केस भे रजत समाना ।।
पै नहिं बुद्धि तिनहिं अछु आई ।
तैसहि यह मूरख सिर भाई ।।
जो रहिहै तुअ होइ निसानी ।
करहु अबै जो तुअ मन मानी ।।
ब्याहहु जाइ औरहीं काहू ।
हारि चुके बाजी घर जाहू' ।।

मैं जितनी देर तक यहाँ ठहरूँगा उतना ही अधिक मूर्ख बनूँगा, एक मूढ़ का सिर लेकर तो मैं व्याह करने को आया पर अब दो लेकर जाता हूँ । प्यारी ईश्वर रक्षा करै ! मैं अपनी सौगंद पर स्थिर रहूँगा और संतोष के साथ अपने दु:ख को खाऊँगा ।

(आर्य्यग्राम का राजकुमार अपने साथियों के सहित जाता है)

पुरश्री— वाह इस कर्पूरवर्त्तिका ने तो अच्छे उस पतंग के पंख जला दिए । समझदार मूर्ख ऐसों ही को कहते हैं । जिस समय वह संदूकों को चुनते हैं तो अपने मन की स्फूर्त्ति में सब बुद्धि को खो देते हैं ।

नरश्री— यह पुरानी कहावत मिथ्या नहीं है — फाँसी और स्त्री दोनों का मिलना भाग्य से होता है ।

पुरश्री— नरश्री आओ पर्दे को गिराओ ।

(एक भृत्य आता है)

भृत्य— रानी साहिब कहाँ हैं ?

पुरश्री— इधर, राजा साहिब क्या आज्ञा करते हैं ?

भृत्य— सर्कार की डेवढ़ी पर वंशनगर का एक नवयुवक अपने स्वामी के आगमन का समाचार लेकर आया है । यह मनुष्य अपने स्वामी के प्रणाम के साथ बहुमूल्य सौगात भी लाया है । अब तक मैंने अभिलाष का ऐसा मनोहर दूत न देखा था । बसंत ऋतु जो कि सुहावन ग्रीष्म के आगमन का समाचार देता था है ऐसा प्रिय नहीं प्रतीत होता जैसा कि यह दूत जो अपने स्वामी के पहुँचने का समाचार लाया है ।

पुरश्री— किसी भाँति चुप भी रह ; मैं सोचती हूँ कि थोड़ी ही देर में तेरे मुँह से सुनूँगी कि वह मनुष्य तेरा कोई संबंधी है क्योंकि उसकी प्रशंसा तू अत्यंत कर रहा है । आओ नरश्री आओ ; मैं इस अभिलाष के दूत को जो ऐसी नम्रता के साथ आता है अभी देखा चाहती हूँ ।

नरश्री— ऐ कामदेव यह मनुष्य बसंत का हो ?

(जाती है)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान — वंशनगर, एक सड़क

(सलोने और सलारन आते हैं)

सलोने— कहो बाजार का कोई नया समाचार है ?

सलारन— इस बात का अब तक वहाँ बड़ा कोलाहल है कि अनंत का एक अनमोल माल से लदा हुआ जहाज उस छोटे समुद्र में नष्ट हो गया ; कदाचित् उस स्थान को लोग दुरूह कहते हैं जो एक बड़ी भयानक बालू की ठेंक है जहाँ कितने ही बड़े-बड़े अनमोल जहाज नष्ट हो गए हैं यदि यह समाचार निरी गप हाँकने वाली कुटनी न हो ।

सलोने— ईश्वर करे वह वैसी ही झूठी कुटनी निकले जो आँसू बहाने के लिये अपनी आँखों में लाल मिर्च मल लेती है, जिसमें लोगों पर अपने तीसरे पति के मरने का दु :ख प्रकट करे । पर यह सच है और मैं बिना इसके कि बात को बढ़ाऊँ या बातचीत की सीधी राह से मुड़ूँ कहता हूँ कि सुहृद अनंत धर्मिष्ठ अनंत — हाय मुझे तो कोई ऐसा शब्द ही नहीं मिलता जिससे उसकी प्रशंसा सूचित हो सके ।

सलारन— अच्छा तो अब तुम्हारा वाक्य समाप्त हुआ ।

सलोने— वाह ! क्या कहते हो ? अच्छा तो उसका परिणाम यह है कि उनका एक जहाज नष्ट हो गया ।

सलारन— मैं तो आशीर्वाद देता हूँ कि उनकी हानि यहीं पर समाप्त हो जाय ।

सलोने— मैं भी झटपट एवमस्तु कह दूँ, कहीं ऐसा न हो कि भूत मेरी प्रार्थना में विघ्न करे क्योंकि यह देखो वह जैन की सूरत में चला जाता है ।

(शैलाक्ष आता है)

सलोने— कहो जी शैलाक्ष आज कल सौदागरों में क्या समाचार है ?

शैलाक्ष— मेरी बेटी के भागने का हाल तुमको भली भाँति विदित है तुमसे बढ़कर इस बात को कोई नहीं जानता, कोई नहीं जानता ।

सलारन— इसमें भी कोई संदेह है, परंतु यदि मुझसे पूछो तो मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि अमुक दर्जी ने उसके लिये पर बनाये थे जिनके सहारे से उड़ी ।

सलोने— और शैलाक्ष भी इस बात को जानता था कि उस चिड़िए के पर जम चुके हैं जिसके होने से सब पक्षियों का नियम है कि अपने मां बाप के खोते से निकल भागते हैं ।

शैलाक्ष— वह इस अपराध के लिये अवश्य नरक में पड़ेगी ।

सलारन— अवश्य यदिचेत भूत उसका न्याय-कर्ता हो ।

शैलाक्ष— ऐ ! मेरा ही मांस और रुधिर मुझी से विरुद्ध हो !

सलोने— तुम भी पुराने घाघ होकर क्या ही वाही तबाही बकते हो ! भला ऐसी युवा कुमारी के ऐसे कृत्य को विरुद्ध कह सकते हैं ?

शैलाक्ष— क्या मेरी लड़की मेरा मांस और लहू नहीं है ?

सलारन— तुम्हारे और उसके मांस में तो उससे भी अधिक अंतर है जैसा कि नीलमणि और स्फटिक में होता है, तुम्हारे और उसके रुधिर में उससे भी अधिक अंतर है जैसा कि सिंगर्फ और गेरू में होता है । पर यह तो कहो कि तुमने भी अनंत के जहाज के नष्ट होने का कुछ हाल सुना है ?

शैलाक्ष— वह मेरे लिये एक दूसरे घाटे की बात है ; एक पूरा व्यर्थ व्यय करने वाला ओर दीवालिया जो अब बाजार में किसी को मुँह नहीं दिखला सकता, एक भिखमंगा जो किस बनावट के साथ बन ठन कर बाजार में आया करता था ; नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखे ; वह मुझे बड़ा व्याज खाने वाला कहता था ; नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखे ; वह लोगों को बहुत अपनी आर्य्य दयालुता दिखलाने के लिये व्यर्थ रुपया ऋण दिया करता था ; नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखे ।

सलारन— क्यों, मुझे विश्वास है कि यदि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके तो तुम उनका मांस न माँगोगे ; भला वह तुम्हारे किस काम में आ सकता है ?

शैलाक्ष— मछली फँसाने के लिये चारे के काम में यदि वह और किसी वस्तु का चारा नहीं हो सकता तो मेरे बदले का चारा तो होगा । उसने मुझे अप्रतिष्ठित किया है और कम से कम मेरा पाँच लाख का लाभ रोक दिया है ; वह सदा मेरी हानि पर हँसा है, मेरे लाभ की निंदा की है, मेरी जाति की अप्रतिष्ठा की है, मेरे व्यवहारों में टाँच मारी है, मेरे मित्रों को ठंढा और मेरे शत्रुओं को गर्म किया है ; और यह सब किस लिये ? केवल इस लिये कि मैं जैनी हूँ । क्या जैनी की आँख, नाक, हाथ, पाँव और दूसरे अंग आर्य्यों की तरह नहीं होते ? क्या उसकी सुंधि, सुख और दु :ख, प्रीति और क्रोध आर्य्यों की भाँति नहीं होता ? क्या वह वही अन्न नहीं खाता उन्हीं शस्त्रों से घायल नहीं होता, वही रोग नहीं झेलता, उन्हीं औषधियों से अच्छा नहीं होता, उसी गर्मी और जाड़े से सुख और कष्ट नहीं उठाता जैसा कि कोई आर्य्य ? क्या यदि तुम चुटकी काटो तो

हम लोगों के रुधिर नहीं निकलता ? क्या यदि तुम गुदगुदाओ तो हम लोगों को हँसी नहीं आती ? क्या यदि तुम विष दो तो हम लोग मर नहीं जाते ? तो फिर जो तुम हम पर अत्याचार करोगे तो क्या हम बदला न लेंगे ? यदि हम लोग और बातों में तुम्हारे सदृस हैं तो इस बात में भी तुम्हारे तुल्य होंगे । यदि कोई जैनी किसी आर्य्य को दु :ख दे तो वह किस भाँति अपनी नम्रता प्रकट कर सकता है ? बदला लेकर । तो यदि कोई आर्य्य किसी जैन को क्लेश पहुँचावे तो इसे उसके उदाहारण के अनुसार किस प्रकार से सहन करना चाहिए ? अवश्य बदला लेकर । जो पाजीपन तुम लोग मुझे अपने उदाहरण से सिखलाते हो उसे मैं कर दिखलाऊँगा और कितनी ही कठिनता क्यों न पड़े मैं बदला लेने में अवश्य तुमसे बढ़कर रहूँगा ।

(एक भृत्य आता है)

भृत्य — महाशयो मेरे स्वामी अनंत अपने घर पर हैं और आप दोनों से कुछ बातचीत किया चाहते हैं ।

सलारन — हम लोग तो उनको चारों ओर खोज ही रहे थे ।

(दुर्बल, आता है)

सलारन — यह देखो एक दूसरा जैनी आया ; अब तीसरा इनकी बराबरी का नहीं निकल सकता पर हाँ उस दशा में कि भूत आप ही एक जैन बन जाय ।

(सलोने, सलारन और भृत्य जाते हैं)

शैलाक्ष — कहो जी दुर्बल जयपुर से क्या समाचार लाए ? मेरी बेटी का पता लगाया ?

दुर्बल — मैंने जहाँ जहाँ उसका समाचार सुना, वहाँ वहाँ पहुँचा परंतु कहीं पता न लगा ?

शैलाक्ष — वही, वही, वही वह हीरा ले गई जो मैंनो दो सहस्र अशरफी को फरीदकोट में लिया था ! ऐसा बड़ा ईश्वर का कोप हमारी जाति पर आज तक न गिरा था । मुझे तो आज तक उसका अनुभव न हुआ था — दो सहस्र अशरफी का एक हीरा और दूसरे अमूल्य रत्न अलग । अच्छा होता कि मेरी लड़की मेरी आँखों के सामने मर गई होती र वह रत्न उसके शरीर पर होते । अच्छा होता कि उसका शव मेरे पावों के नीचे गड़ता और अशरफियाँ उसके कफन में होती । उनका कुछ पता नहीं लगा ? यही परिणाम हमारे प्रयत्नों का है और विदित नहीं कि खोज में कितना व्यय पड़ा — हाय यह हानि पर हानि ! "मुफलिसी में आटा गीला !" इतना तो चोर ले गया और इतना चोर की खोज में नष्ट हुआ । तिस पर न कुछ उसके सन्ती मिलने की आशा और न बदला निकलने की । किसी और के घर दु :ख भी दृष्टि पड़ता जिसे देख कर धीरज हो । हाँ यदि है तो मेरी गर्दन पर सवार, कहीं से आह भी नहीं सुनाई देती सिवाय उसके जो मेरे हृदय से निकलती है, और न सिवाय मेरे किसी के आँसू गिरते हैं ?

दुर्बल — ऐसा तो नहीं और लोग भी अपने अपने दु :ख से खाली नहीं है । अभी मैंने जयपुर में समाचार पाया कि अनंत का —

शैलाक्ष — क्या, क्या, क्या ? दु :ख दु :ख ?

दुर्बल — उसके जहाजों का एक बेड़ा त्रिपुल से आते समय राह में नष्ट हो गया ।

शैलाक्ष — धन्य है ईश्वर को, धन्य है ईश्वर को, क्या यह समाचार सच्चा है ? क्या यह समाचार सच्चा है ?

दुर्बल — मैं आप उन खलासियों के मुँह से सुन आया हूँ जो जहाज के नष्ट होने से बच कर आए हैं ?

शैलाक्ष — मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ अच्छे दुर्बल, बड़ा अच्छा समाचार लाए, बड़ा अच्छा समाचार ला, अहाहा — कहाँ ? जयपुर में ?

दुर्बल — मैंने जयपुर में सुना कि तुम्हारी बेटी ने एक रात में अस्सी अशरफियाँ व्यय कीं ।

शैलाक्ष — तू मेरे कलेजे में छुरी मारता है । अब मैं फिर अपनी अशरफियों को इन आँखों से न देखूँगा ; हाय ! अस्सी अशरफियाँ ! एक बार में अस्सी अशरफियाँ !

दुर्बल — अनंत के कई ऋणदाता मेरे साथ वशनगर को आए जो शपथ खा कर कहते थे कि अब उसके काम का बिगड़ना किसी भाँति नहीं रुक सकता ।

शैलाक्ष — बड़े हर्ष की बात है ; मैं उसे बहुत रुलाऊँगा, मैं उसे कोच कोच कर मारूँगा ; बड़े हर्ष का विषय है ।

दुर्बल — उनमें से एक ने मुझे एक अँगूठी दिखलाई जो तुम्हारी बेटी ने उसे एक बंदर के मोल में दी है ।

शैलाक्ष — उसका नाम मत लो दुर्बल ! तुम मेरे हृदय में रह रह के घात करते हो ! वह मेरी नीलम की अँगूठी थी ; मैंने उसे कमलाक्षी से पाया था, जब कि मेरा ब्याह नहीं हुआ था ; यदि मुझे कोई बंदरों का जंगल देता तो भी मैं इस अँगूठी को अपने से पृथक न करता ।

दुर्बल — लेकिन अनंत तो निस्संदेह नष्ट हो

गया।

शैलाक्ष— इसमें भी कोई संदेह है, यह तो स्पष्ट है, यह तो भली भाँति प्रकट है। जाओ दुर्बल उसके पकड़ने के लिए एक प्रधान ठहराओ, उसे पंद्रह दिन पहले से पक्का कर रक्खो। यदि यह मनुष्य अपने प्रण के अनुसार रुपया न दे सका तो मैं इसका पित्ता निकलवा लूँगा, क्योंकि यदि यह काँटा वंशनगर से निकल जाय तो मेरा व्यापार मनमाना चले। अच्छा दुर्बल अब जाओ और मुझसे मंदिर में मिलो, जाओ प्यारे दुर्बल ; देखो हम लोगों के मंदिर में मिलना।

(दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान — बिल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा

(बंसत, पुरश्री, गिरीश, नरश्री, और उनके साथी आते हैं। संदूक रक्खे जाते हैं)

पुरश्री— भगवान के निहोरे थोड़ा ठहर जाइए। भला अपने भाग्य की परीक्षा के पहिले एक दो दिन तो ठहर जाइए, क्योंकि यदि आप की रुचि ठीक न हुई तो आप के साथ रहने का आनंद तुरंत ही हाथ से जाता रहेगा। इसलिए थोड़ा धीरज धरिए, न जाने क्यों मेरा जी आप से पृथक होने को नहीं करता, पर मैं समझती हूँ कि इसका कारण अनुराग नहीं है और यह तो आप भी कहेंगे कि घृणा का इससे संबंध नहीं हो सकता। किंतु कदाचित् आप मेरे जी की बात न समझे हों इसलिये मैं आप को भाग्य की परीक्षा करने के पहले दो एक महीने तक ठहराऊँगी, परंतु इससे क्या होना है ? कुमारी अपने जी की बात को जिह्वा पर कब ला सकती है। मैं आप को पते का सन्दूक बता सकती हूँ पर मेरी सौगंद टूट जायगी और यह मुझे किसी तरह पर अंगीकार नहीं। कदाचित मैं आप को न मिलूँ, पर यदि ऐसा हुआ तो मेरा चित्त यही कहेगा कि तू ने अपराध क्यों न किया और शपथ क्यों न तोड़ डाली। मेरा मन करता है कि आपकी आँखों को कोसूँ, इन्हीं ने तो मुझे मोल ले लिया और मेरे दो भाग कर डाले — आधी तो मैं आप की हूँ, और शेष आधी भी आप ही की, क्योंकि यदि मैं यों कहूँ कि अपनी हूँ तो भी तो आपही की हुई, इस लिये सब आप ही की ठहरी। क्या बुरा समय आ गया है कि अपनी वस्तु पर भी अपना बस नहीं ! एतएव यद्यपि मैं आप ही की हूँ तो भी क्या ? हुई न हुई दोनों बराबर — यदि कहीं भाग्य ने धोखा दिया तो उसके कारण मैं क्यों दु:ख में पड़ूँ, पड़े तो भाग्य पड़े जिसका दोष है। मैं बहुत कुछ बक गई पर तात्पर्य मेरा यह है कि बातचीत में कुछ समय कटे और आपके संदूक पसंद करने के लिये जाने में इसी बहाने कुछ देर हो।

बंसत— मुझे झटपट चुन लेने दीजिए, यों रहने से तो मेरा जी सूली पर टँगा है।

पुरश्री— सूली पर, तो कहिए कि आप के प्रेम के साथ दगा कैसी मिली हुई है ?

बंसत— दगा का क्या काम, हाँ यदि कुछ है तो अपने चित्त के अभिलाष पूरे होने की ओर से अविश्वास। मेरे प्रेम के साथ तो दगा का होना ऐसा है मानो आग और बर्फ की मित्रता।

पुरश्री— जी हाँ, पर मुझे भय है कि आप का जी तो सूली पर टँगा है, और सूली पर लोग प्राय: विवश होकर वे सिर पैर की बका करते हैं।

बंसत— जीवदान दीजिए तो यथार्थ कह दूँ।

पुरश्री— अच्छा तो फिर कहिए, आप का जीवन आपको मुबारक।

बंसत— कह दूँ, मेरा प्राण मुझको मुबारक ! तो तो मेरा मनोरथ बर आया, वाह जब सतााने वाला आप ही वह राह दिखलाता है जिस से जी बचे तो कष्ट भी परम सुख है। परंतु अच्छा अब मुझे संदूकों के साथ अपने भाग्य की परीक्षा के लिये छोड़ दीजिए।

पुरश्री— अच्छा तो आप जायँ, उन संदूकों में से एक में मेरा चित्र है ; यदि आप मुझे चाहते होंगे तो वह आप को मिल जायगा। नरश्री तुम अब अलग खड़ी हो जाओ और जब आप संदूक पसंद करने लगे तो कुछ गाना का भी आरंभ हो, जिसमें यदि आप कहीं चूक जायँ तो जैसे बत्तक अपना दम निकालने के समय गाता है वैसे ही आप के बिदा होने के समय भी गाना होता रहे। यदि कहिए कि बत्तक की समाधि पानी में होती है तो मेरी आँखे नदी बनकर आप के शत्रुओं की समाधि बन जायँगी। यदि कहीं आप ने दाँव मारा तो गाना क्या है मानो उस समय की सलामी का बाजा है जब कोई नया राजा सिंहासन पर बैठता है और उसकी शुभचिंतक प्रजा करके अभिनंदन को आती है, या वह मीठी तान है जिसे सुनकर नया वर विवाह के दिन सबेरे ही उठ कर ब्याह की तैयारी करता है। देखिए वह जाते हैं। जब रुद्र उस कुमारी को छुड़ाने गया था, जिसे त्र्यम्बक ने समुद्र की एक आपत्ति को सौंप दिया था तो जैसा तेज उसके मुख पर बरसता था वैसा ही उनके मुँह पर बरसता है परंतु प्रेम तो उसकी अपेक्षा

कई अंश अधिक है । मैं भी उस कुमारी की भाँति बलिदान के लिये प्रस्तुत हूँ और यह स्त्रियाँ मानो त्र्यम्बक की रहने वाली हैं ओर वियोगिन बनी हुई खड़ी देख रही हैं कि इस दुस्तर कर्म का क्या परिणाम होता है । अच्छा मेरे रुद्र जाओ, अब तो मेरा जीवन तुम्हारे प्राण के साथ है । और निश्चय रखिए कि आप का चित्त यद्यपि आप स्वयं लड़ने जाते हैं, इतना न धड़कता होगा जितना मेरा धड़कता है यद्यपि मैं केवल दूर से खड़ी हुई कौतुक देख रही हूँ ।

गीत

अहो यह भ्रम उपजत किय आय ।
जिय मैं कै सिर मैं जनमत है बढ़त कहाँ सुख पाय ।
ता को यह उत्तर जिय उपजत बढ़त दृष्टि मैं धाय ।
पै यह अति अचरज कै जित यह जनमत तितहि नसाय ।
देखि उपरी चमक चतुर हूँ जद्यपि जात भुलाय ।।
पै जब जानत अथिर ताहि तव निज भ्रम पर पछिताय ।
तासों टनटन बजै कहौ अब घंटा हू घहराय ।।

बंसत — सच है जो पदार्थ देखने में भले और भड़कीले होते हैं वस्तुत : कुछ नहीं होते । संसार के लोग बाहरी चमक दमक में भूल जाया करते हैं। देखिए कानून में कोई दलील कैसी झूठी और बे सिर पैर की क्यों न हो यदि उसी को साधु भाषा में नमक मिर्च लगाकर कहिए तो उसका सब अवगुण छिप जाता है । उसी भाँति धर्म में देखिए तो कैसी ही घृणा के योग्य भूल क्यों न हो कोई न कोई उपयुक्त युक्ति मनुष्य उसके प्रमाण में देकर उसे सराहेगा और उसके दोषों पर सुवर्ण का पर्दा डाल देगा । निरी बुराई पर भी बाहरी भलाई का मुलम्मा चढ़ जाता है । देखिए कितने ऐसे डरपोक मनुष्य, जिनके चित्त बालू की भीत की भाँति निर्बल हैं, दाढ़ी और रूप रंग में मानसिंह और विजयसेन को तुच्छ करते हैं और भीतर देखिए तो उनका दुर्बल अंत :करण दूध सा स्वच्छ है । उन लोगों को कहना चाहिए कि यह केवल वीरपुरुषों का उतरन अपना प्रभाव दिखलाने के निमित्त पहिन लेते हैं । सुंदरता की ओर दृष्टि कीजिए तो विदित होगा कि वह केवल चाँदी की न्योछावर है जितना रुपया लगाइए उतनी ही भड़क हो । वास्तव में तत्वनिरूपण करने पर करामात प्रतीत होने लगती है, जिसके सिर पर जितना अधिक भार है उतना ही विशेष तुच्छ है । यही दशा उन घुँघरवाले सुंदर कंचकलापों का है जो वायु में इस भाँति बल खाते हैं कि मन को लुभा लेते हैं । देखिए एक के सिर से उतर कर दूसरे के सिर चढ़ते हैं और जिस सिर ने उन्हें पाला था वह अंत में कीड़ों का आहार है । अत : भूषण वसन क्या हैं मानो किसी बड़े भयानक समुद्र का ऐसा किनारा है जो थाह बता कर गोता दे या किसी हिंदुस्तानी स्त्री का भड़कीला दुपट्टा है, अर्थात् यह कहना चाहिए कि समय के छली लोग झूठ को ऐसा सच करके दिखा देते हैं कि बड़े बड़े बुद्धिमान की बुद्धि चकित हो जाती है । इसलिये चमकीले सोने जिसने महाराज मागधि से उसका खाना लेकर लोहे के चने चबवाए मैं तुझ को न छुऊँगा ओर न तुझे ऐ कुरूप चाँदी जिसके लिये एक मनुष्य दूसरे की सेवा करता है । परंतु तुच्छ सीसे जिसके देखने से आशा के बदले भय उत्पन्न होता है —

वचन रचन तजि और के, तोही पै बिस्वास ।
उदासीन प्रेमी मनहिं, लखि तुव रंग उदास ।।
औरन तजि तासों चुनत, सीसक अब हम तोहि ।
आनँदघन करुनायतन, करहु अनंदित मोहि ।।

पुरश्री — (आप ही आप)

मिटयो सकल भ्रम भीति नसानी ।
नसी निरासा जिय-दुखदानी ।।
मोह-कँवल-रुज दृग सों भाग्यौ ।
संसय तजि मन आनँद पाग्यौ ।।
प्रेम ! धीर धरु किन अकुलाई ।
धरत सीवँ तजि पगहि बढ़ाई ।।
आनँद नीर इतो हिय-जलधर ।
उमगि उमगि जनि बरस धीर धर ।।
यह सुख नदि उमड़ि जो आई ।
मम घट घट नहिं सकत समाई ।।
होइ न कहूँ अनंद अजीरन ।
तासों धरु धीरज चंचल मन ।।

बंसत — देखें तो यह क्या निकला ?

(सीसे के संदूक को खोलकर) वाह वाह यह तो मेरी परम सुंदरी पुरश्री का चित्र है ! यह किस चितेरे की निपुणता है कि चित्र बोला ही चाहता है ? क्या यह आँखे सचमुच फिरती हैं या केवल मेरी आंखों की पुतलियों पर इनकी परछाई पड़ने से मुझे घूमती हुई दिखाई देती हैं । इधर देखिए तो दोनों ओष्ठ इस भाँति से भिन्न हैं मानों मीठे प्यारे श्वासों के आने जाने का मार्ग है । ऐसे प्यारे साथियों के विरह का कारण ऐसी ही प्यारी वस्तु होनी चाहिए । इधर देखिए तो बालों की छबि खींचने में चित्रकार ने मकड़ी की चातुरी को तुच्छ कर दिखलाया है और सोने के तारों का ऐसा जाल बिना है कि मनुष्य का चित्त पतंग की भांति उसमें फँस जाय । पर वाह री आँखें ! इनके बनाने के समय

चित्रकार की दृष्टि किस भाँति ठहरी ? मेरी समझ में तो जब एक बन गई थी तो उसकी दोनों आँखें इस एक के न्यौछावर हो जातीं और यह आँख बेजोड़ रह जाती। किंतु सच पूछिए तो जितनी ही मेरी प्रशंसा की इस चित्र के सामने कुछ गिनती नहीं उतनी ही साक्षात् के सामने इस छबि की कुछ गणना नहीं। देखिए यह भाग्य का लेखाजोखा है।

(पढ़ता है)

जौ लखि छबि ऊपरी भुलाते।
तौ यह दाँव कबहुँ नहिं पाते।।
तुम्हरी बुद्धि धीर नहिं छूटी।
लेहु अबै रस संपति लूटी।।
अब जिय चाह करौ जनि दूजी।
भ्रमहु न जग इच्छा तुव पूजी।।
जौ तुम याहि भाग निज लेखौ।
तौ मुरि निज प्यारी मुख देखौ।।
जीवन सरबस याहि बनाई।
रहौ चूमि मुख कंठ लगाई।।
अब जौ प्यारी सुंदरी तुव अनुशासन होय।
तौ हम चुंबन लेहिं अरु निजहु देहिं भय खोय।।

(मुँह चूमता है)

कहँ द्वै जन की होड़ मैं जीतत बाजी कोय।
तौ सब दिसि सों एक सँग ताकी जय धुनि होय।।
सो कोलाहल सुनत ही तासु बुद्धि अकुलाय।
ठाढ़ो सोचत साँच ही जीत्यो मैं इत आय।।
तिमि सुंदरि संदेह यह मेरे हू जिय माहिं।
के जो देखत मैं दृगन तौन साँच की नाहिं।।
सो मम भ्रम तुम करि दया बेगहि देहु मिटाय।
मम जयपत्र सकारि पुनि सुंदरि मुहि अपनाय।।

पुरश्री — मेरे स्वामी बसंत आप मुझे जैसी खड़ी हुई देखते हैं वैसे ही मैं हूँ ; यद्यपि केवल अपने लिये मेरे जी में यह अभिलाष नहीं है कि मैं अपनी वर्त्तमान मेरे जी में यह अभिलाष नहीं है कि मैं अपनी वर्त्तमान अवस्था में बढ़ जाऊँ किंतु आपके विचार से मेरा बस चले तो मैं सौगुनी अच्छी हो जाऊँ। रूप में सहस्र बार और धन में लक्षवार अधि हो जाऊँ, केवल इसलिए कि आपकी दृष्टि में जचूँ। संभव है कि मैं गुण, सौंदर्य, लक्ष्मी और मित्रों में अत्यंत बढ़ जाऊँ तथापि इन सब अलभ्य पदार्थों के होते भी मेरी अवस्था यह है कि मैं एक निरी मूर्ख, बेसमझ और सीधी सादी छोकरी हूँ ; पर हाँ इस बात से तो प्रसन्न हूँ कि मेरी अवस्था इतनी अधिक अभी नहीं हुई कि मैं कुछ सीख न सकूँ और इस कारण से और भी प्रसन्न हूँ कि इतनी कुंठित भी नहीं हो गई हूँ कि सीखने के योग्य न रही हूँ और सबसे अधिक प्रसन्नता का कारण यह है कि मैं अपने भोले चित्त को आपको सौंपती हूँ कि वह आपको अपना स्वामी, अपना नियंता, अपना अधिपति समझकर जो आप कहे सो किया करे। मैं और जो कुछ मेरा है अब वह सब आप का हो चुका। अभी एक साइत हुई कि मैं इस राजभवन और अपने अनुचरों को स्वामिनी और अपने मन की रानी थी, ओर अभी इस क्षण यह घर, ये नौकर चाकर और मैं आप, सब आप के हो गए। मैं इन सभों को इस अँगूठी के साथ आपको सौंपती हूँ। जब यह अँगूठी आप के पास न रहे, खो जाय या आप इसे किसी को दे देवें तो मैं तो समझूँगी कि आप के प्रेम में अंतर आ गया और फिर मुझे आप से उपालंभ देने का पूरा स्वत्व प्राप्त होगा।

बसंत — प्यारी मेरी जिह्वा को सामर्थ्य नहीं कि तुम्हारे उत्तर में एक अक्षर भी निकाले, पर हाँ मेरा रोम रोम तुम्हारी कृतज्ञता में जिह्वा बन रहा है और मेरी सुधि में ऐसी घबड़ाहट आ गई है जैसी कि प्रजावृंद में उस समय दृष्टि पड़ती है जब कि वह अपने प्यारे राजा के मुख से कोई उत्तम व्याख्यान सुन कर प्रसन्न हो जाते हैं और वाह वाह करने और आशी : देने लगते हैं। जब कि बहुत से शब्द जिनके कुछ अर्थ हो सकते हैं मिल कर सब व्यर्थ हो जाते हैं और सिवाय इसके कि उनसे प्रसन्नता प्रकट हो और कोई तात्पर्य नहीं समझ में आता। परंतु यह प्यारी अँगूठी मेरी उँगली से उसी समय जुदा होगी जब कि इस उँगली से सत्ता निकल जायगी और उस समय तुम निस्संदेह समझ लेना कि बसंत मर गया।

नरश्री — मेरे स्वामी और मेरी स्वामिनी अब तक हम लोग खड़े खड़े अपने मन के मनोरथ के पूर्ण होते देखा किए और अब हम लोगों की बारी है कि 'कल्याण हो' की ध्वनि मचावें। 'कल्याण हो' ऐ मेरे स्वामी और मेरी स्वामिनी।

गिरीश — ऐ मेरे स्वामी बसंत और मेरी सरल स्वामिनी मेरी यही आसीस है कि आप के सारे मनोरथ पूरे हों क्योंकि मुझे निश्चय है कि आप मेरे हर्ष को तो बाँट लेंगे ही नहीं, अत : मेरी यह प्रार्थना है कि जिस समय आप लोग परस्पर अपना मनोभिलाषा और प्रतिज्ञा पूरी करें उसी समय मेरा ब्याह भी कर दिया जाय।

बंसत — मुझे तन और मन से स्वीकार है पर इस शर्त पर कि तुम अपने लिये कोई स्त्री ठहरा लो।

गिरीश — मैं आप को धन्यवाद देता हूँ कि आप ही के न्यौछावर में मेरा काम भी निकल आया, क्योंकि

ज्योंही आप की प्रेम दृष्टि राजकुमारी पर पड़ी, मेरे नेत्रों में भी उनकी सहेली बस गई । उधर आप अनुरक्त हुए इधर मैं प्रेम के फंदे में फँसा । इस में न आप को विलंब लगा न मुझे । आप के प्रारम्भ की परीक्षा संदूकों के चुनने पर थी वैसे ही मेरा भाग्य भी उन्हीं के साथ अटका हुआ था । तात्पर्य यह है कि मुझे इस सुंदरी की इतनी सुश्रूषा करनी पड़ी कि शरीर से स्वेद निकल आया और अपनी प्रीति का निश्चय दिलाने के लिये इतनी सौगंदें खानी पड़ी कि तालू चटक गया तब कहीं, यदि वाक्दान कोई वस्तु है तो इनके मुख से यह वाक्य निकला कि जो तुम्हारे स्वामी का विवाह मेरी स्वामिनी से हो जायगा तो मैं भी तुम्हें ग्रहण करूँगी ।

पुरश्री— नरश्री क्या यह बात सच है ?

नरश्री— हाँ सखी यदि आप की इच्छा के विरुद्ध न हो तो सच ही समझी जायगी ।

बसंत— और तुम गिरीश धर्मपूर्वक यह विचार करते हो न ?

गिरीश— धर्मावतार सब सच्चे जी से ।

बसंत— तुम्हारे व्याह से हमारे समाज का आनंद दूना हो उठेगा ।

गिरीश— ये यह कौन आता है ? अहा लवंग और उनकी प्राणप्यारी ! और हमारे पुराने वंशनगर के मित्र सलोने भी साथ हैं ।

(लवंग, जसोदा और सलोने आते हैं)

बसंत— अहा लवंग और सलोने आए परंतु मैं अपनी अवस्था में बिना अपनी प्यारी की आज्ञा के प्रसन्नता प्रकट करने का कब अधिकार रखता हूँ । प्यारी पुरश्री यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं अपने सच्चे मित्रों और स्वदेशियों के आने पर प्रसन्नता प्रकट करूँ ।

पुरश्री— मेरे स्वामी इस में मेरी परम प्रसन्नता है, ऐसे लोगों का भाग्य से आना होता है ।

लवंग— मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, किंतु सच पूछिए तो मेरी इच्छा आप से यहाँ भेंट करने की न थी परंतु मार्ग में सलोने मित्र मिल गए और मुझे यहाँ लाने के विषय में इतना हठ किया कि मैं नहीं न कर सका और साथ आना ही पड़ा ।

सलोने— जी हाँ मैं इनको वस्तुत : खींच लाया पर इसका एक मुख्य कारण है अनंत महाशय ने आपको सलाम कहा है ।

(बसंत के हाथ में एक पत्र देता है)

बसंत— इससे पहिले कि मैं उनके पत्र को खोलूँ मुझे भगवान के लिये इतना बता दो कि मेरे सुहृन्मित्र प्रसन्न तो हैं ।

सलोने— देखने में तो वह पीड़ित नहीं हैं परंतु आंतरिक हो तो हो और न अच्छे ही दृष्टि आते हैं किंतु चित्त का हाल मैं नहीं कह सकता । अच्छा उस पत्र से उनका वृत्तांत आपको भली भाँति सूचित हो जायगा ।

गिरीश— नरश्री अपने पाहुनों का सत्कार करो और उनका मन बहलाओ । सलोने नेक इधर ध्यान दीजिए, कहो तो वंशनगर का क्या समाचार है, सब सौदागरों के सिरताज हमारे सुहृद अनंत किस भाँति है ? हमारे पूर्ण मनोरथ होने का समाचार सुनकर तो वह फूले न समायँगे, हम लोग अपने समय के महावीर हैं क्योंकि सोने की खाल हमने ही जीती है ।

सलोने— मेरी जान तो यदि तुम उस खाल को जीतते जिसे बसंत हारे हैं तो अच्छा होता ।

पुरश्री— कदाचित् पत्र में कोई बुरा समाचार है कि जिससे बसंत के मुख की कांति बढ़ी जाती है । कोई प्रिय मित्र मर गया हो, नहीं तो कौन ऐसी बात है कि जिससे ऐसे धीर मनुष्य की अवस्था हीन हो जाय । ऐं ! यह तो क्षण प्रति क्षण मुख की पांडुता बढ़ती जाती है । बसंत मुझे क्षमा कीजिएगा, मैं आपके शरीर का अर्द्धांग हूँ, और इसलिए जो कुछ कि उस पत्र में लिखा है उस में से आधा हाल सुनने की मैं भी अधिकारी हूँ ।

बसंत— ऐ मेरी प्यारी पुरश्री इस पत्र में कई एक ऐसे दुखदाई शब्द हैं कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता । मेरी सुजान प्यारी तुम भली भांति जानती हो कि जब मैंने तुम्हे अपना मन दिया था तो यह पहले ही कह दिया था कि जो, कुछ कि मेरी पूँजी है वह मेरा शरीर है अर्थात् मैं अपने कुल का कुलीन हूँ । और इस में कोई बात मिथ्या न थी, परन्तु प्यारी यद्यपि मैंने अपनी क्षमता तुम पर स्पष्ट प्रकट कर दी तो भी यदि सच पूछो तो मैंने अभिमान किया क्योंकि जिस समय मैंने तुमसे यह कहा कि मेरे पास कुछ नहीं है मुझे यों कहना चाहिये था कि मेरी अवस्था उससे भी गई बीती है । खेद है कि मैंने केवल अपना मनोरथ पूरा करने के लिये अपने प्यारे मित्र को उसके परम शत्रु के पंजे में फँसा दिया । देखो यह पत्र वर्तमान है जिसे मेरे मित्र का शरीर समझना चाहिए और प्रति शब्द उसका नया घाव जिससे रक्त टपक रहा है । पर क्यों सलोने क्या यह सत्य है कि उनका सारा काम बिगड़ गया ? क्या एक भी ठीक न उतरा ? ऐं त्रिपुल, मौक्षिक, अंगदेश, नंदन बरबर और हिंदुस्तान सब देशों के जहाजों में से एक को भी व्यापारियों को निराश करने वाली चट्टानो ने अखंड न छोड़ा ।

सलोने — महाराज एक भी नहीं । तिस पर यह और आपत्ति है कि यदि वह जैन को नकद रुपया देने का कहीं से प्रबन्ध भी करें तो वह न लेगा । मेरी दृष्टि में तो ऐसा व्यक्ति मनुष्य की उन्नति तथा उसकी अवनति का साथ अब तक नहीं आया ! इसी सोच में वह प्रति दिन सायं प्रात : मण्डलेश्वर को जाकर घेरता है और कहता है कि यदि मेरे साथ न्याय न बरता जायगा तो इस राज्य के इस सिद्धांत पर कि वह प्रतिवर्ण के लोगों को एक दृष्टि से देखता है बट्टा लग जायगा । बीस सौदागरों और कितने और बड़े बड़े नामी लोगों ने और मंडलेश्वर ने आप भी उसे समझाया पर उसने एक की भी न सुनी । अब बतलाइए क्या किया जाय । उस पर तो ईर्षा के मारे यही धुन सवार है कि बस जो कुछ होना था सो हो चुका अब तमस्सुक के प्रण के अनुसार मेरा विचार हो ।

जसोदा — जब कि मैं उनके साथ थी मैंने उन्हें प्राय : दुर्बल और अक्रूर अपने स्वदेशियों से इस बात की सौगंद खाते हुए सुना था कि यदि मुझे कोई ऋण के बीस गुने रुपये भी दे तो अनंत के मांस के अतिरिक्त उसकी ओर आँख उठा कर न देखूँगा और महाराज मुझे निश्चय है कि यदि वहाँ के विचाराधीन कानून के अनुकूल उसे हठपूर्वक रोक न रक्खेंगे तो विचारे अनंत के सिर पर बुरी बीतेगी ।

पुरश्री — क्या वह आपके कोई प्यारे मित्र हैं जिन पर यह आपत्ति आई है ।

बसंत — (आह भरकर) यह वही मेरा सबसे प्यारा मित्र है जो उपकार करने में अपना जोड़ी नहीं रखता, उपकार करने में कभी नहीं थकता और शील का राजा है । इस समय मारवाड़ में वही अकेला एक मनुष्य है जिसमें मारवाड़ के प्राचीन समय के लोगों की उत्तम बातें और उच्च विचार पूरे पूरे पाए जाते हैं ।

पुरश्री — उन्हें उस जैन का कितना देना है ?

बसंत — मेरे ही कारण छ हजार रुपये के ऋणी हो गए हैं ।

पुरश्री — बस इतना ही ? आप बारह सहस्र देकर तमस्सुक फेर लीजिए । यदि आवश्यकता हो तो बारह सहस्र के भी दूने कर डालिए और इस दूने के तिगुने, पर ऐसा कदापि न होने पावे कि बसंत के कारण उनके ऐसे अनुपम मित्र का एक रोम भी टेढ़ा हो। चलिए अभी मंदिर में चल कर व्याह की रीति कर लीजिए और इसके उपरांत सीधे अपने मित्र के पास वंशनगर को चले जाइए ; क्योंकि जब तक आपका शोच दूर न हो लेगा, मुझे आप के साथ सोना धिक्कार है । उस छोटे ऋण को चुका देने के लिये उनका बीस गुना रुपया लेते जाइए और उसे देकर अपने मित्र को यहाँ साथ लेते आइए । इस बीच में मैं और मेरी सहेली नरश्री कुमारी और विधवा स्त्रियों की भाँति अपना समय काटेंगी । आइए चलिए क्योंकि आपको आज ही अपने व्याह के दिन यहाँ से जाना है । अपने मित्रों से प्रसन्नतापूर्वक मिलिए और अपना मन विकसित रखिए । आप से मिलने में जितनी कठिनता होवेगी उतने ही अधिक आप मुझे प्यारे प्रतीत होंगे । परंतु तनिक अपने दोस्त का पत्र तो सुनाइए ।

बसंत — (पढ़ता है) —

मेरे प्यारे बसंत, सब जहाज नष्ट हो गए मेरे ऋणदाता निर्दयता से वर्त्तते हैं, मेरे अवस्था अत्यंत ही नष्ट है और मेरी प्रतिज्ञा जैन के साथ टल गई और जो कि ऋण के चुका देने में संभव नहीं कि मैं जीता बचूँ, इसलिये मैं सब हिसाब अपने और तुम्हारे बीच साफ समझूँगा कि मैं अपने मरने के समय तुम्हें एक आँख देख लूँ । परन्तु हर हालत से यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है । यदि मेरा प्रेम तुम्हें यहाँ तक न खींच ला सके तो मेरे पत्र का कुछ ध्यान न करना ।

पुरश्री — मेरे प्यारे सब काम को झटपट पूरा करके एकबारगी चले ही जाओ ।

बसंत — जब तुमने प्रसन्नता से जाने की आज्ञा दी तो अब मुझे क्या विलंब है । परंतु जब तक कि मैं लौट न आऊँ मेरे लिये नींद हराम और सुख दु :ख से अधम है ।

तीसरा दृश्य

स्थान — वंशनगर की एक सड़क

शैलाक्ष, सलारन, अनंत और कारागार के प्रधान आते हैं)

शैलाक्ष — प्रधान इससे सचेत रहो ; मुझसे दया का नाम न लो । यही वह मूर्ख है जो लोगों को बिना व्याज रुपये ऋण दिया करता था । प्रधान इससे सावधान रहो ।

अनंत — मेरे सुहृद शैलाक्ष कुछ तो मेरी सुन लो ।

शैलाक्ष — मैं तमस्सुक के प्रणों को नहीं तोड़ने का, उसके विरुद्ध कुछ मत कहो । मैं इस बात की शपथ खा चुका हूँ कि अपने तमस्सुक की शर्तों पर दृढ़

रहूँगा। तुम ही न इस मुकद्दमे के होने के पहिले मुझे कुत्ता कहा करते थे। अच्छा मैं तो तुम्हारे कहने अनुसार कुत्ता हो ही चुका पर नेक मेरे पंजों से डरते रहना ; मंडलेश्वर साहिब मेरा विचार करेंगे ! मुझे तो ऐ दुष्ट प्रधान तुझ पर आश्चर्य्य होता है कि तुझे क्या मूर्खता सूझी है जो इसकी बातों में आकर इसे बेखटके इधर उधर लिए फिरता है।

अनंत — भगवान के वास्ते एक बात तो मेरी सुन लो।

शैलाक्ष — मुझे अपने तमस्सुक से काम है, मैं कदापि तुम्हारी बात न सुनूँगा, मुझे केवल अपने तमस्सुक से काम है ; बस अब अधिक गिड़गिड़ाने से क्या लाभ। मैं कुछ ऐसा चित्त का दुर्बल अथवा आँखों का अंधा थोड़े ही हूँ जो सिर हिला कर खेद करूँ, आहें भरूँ और आर्य्यों के समझाने बुझाने में आकर पिघल जाऊँ। मेरे पीछे न आओ, मैं कदापि सुनने का नहीं, मुझे अपने तमस्सुक से काम है।

(शैलाक्ष जाता है)

सलारन — मनुष्य की आकृति में ऐसा पाषाण-हृदय कुत्ता काहे को निकलेगा।

अनंत — जाने दो, अब मैं उसके पीछे व्यर्थ गिड़गिड़ाता न फिरूँगा। वह मेरे प्राण लेने की चिंता में है और इसका कारण भी मैं भली भाँति जानता हूँ। प्राय : मैंने बहुतेरे लोगों को जो मेरे पास आकर रोए हैं उसके पंजे से छुड़ाया है और इसी कारण से वह मेरा प्राणघातक शत्रु हो रहा है।

सलारन — मुझे निश्चय है कि मंडलेश्वर उसकी शर्त को कदापि स्थिर न रहने देंगे।

अनंत — क्यों नहीं, मंडलेश्वर कानून के उद्देश्य को जिससे विदेशी वंशनगर में आकर बेखटके लेन देन करते हैं क्योंकर बदल सकते हैं। यदि अस्वीकार किया जाय तो यहाँ के राज्य का अपवाद है क्योंकि इस नगर का वाणिज्य और लाभ सब जाति वालों के मिलाप होने के कारण है। अच्छा तो अब तुम जाओ। जो दु:ख और क्षतियाँ मैंने इधर उठाई हैं उनके कारण मेरी अवस्था ऐसी नष्ट हो गई है कि कदाचित कल तक मेरे रक्त के प्यासे ऋणदाताओं के लिये मेरे शरीर में आध सेर माँस भी शेष न रहे। आओ प्रधान चलो। ईश्वर करे कहीं बसंत आ जाय और मुझे अपना ऋण चुकाते हुए देख ले, फिर मेरे जी में कोई लालसा शेष न रहेगी।

(सब जाते हैं)

चौथा दृश्य

स्थान — बिल्वमठ पुरश्री के घर का एक कमरा

(पुरश्री, लवंग, जसोदा और बालेसर आते हैं)

लवंग — प्यारी यद्यपि आप के मुँह पर कहना सुश्रूषा है पर आप में ठीक देवताओं का सा सच्चा और पवित्र प्रेम पाया जाता है और इसका बड़ा प्रमाण यह है कि आपने इस भाँति अपने स्वामी का विरह सहन किया किंतु यदि आपको विदित हो कि आपने किस पर इतनी कृपा की है और वास्तव में कैसे सच्चे सभ्य को सहायता भेजी है और उसको मेरे स्वामी अर्थात् आपके स्वामी से कैसी प्रीति है तो आपको अपने इस कृत्य पर और साधारण कर्तव्यों की अपेक्षा कहीं बढ़कर प्रसन्नता हो।

पुरश्री — मैं अच्छे काम करके न आज तक पछताई हूँ और न अब पछताऊँगी क्योंकि ऐसे मित्र जो हर क्षण मिले जुले रहते हैं और जिनके चित्त में एक दूसरे का समान प्रेम है मानो एक प्राण दो देह हैं उनकी चाल ढाल रहन सहन और चित्त भी अवश्य ही एक सा होगा तो मैं समझती हूँ कि यह अनंत जो मेरे स्वामी के अंतरंग मित्र हैं उन्हीं के सदृश्य होंगे। यदि ऐसा है तो मैंने अपने स्वामी के चित्त को महा आपत्ति के पंजे से कैसे थोड़े व्यय में छुड़ा पाया। पर इससे तो मेरी ही प्रशंसा निकलती है इसलिये अब इस प्रकरण को छोड़कर दूसरी बातें सुनो। लवंग मैं अपने घर और गृहस्थी का सारा प्रबंध अपने स्वामी के लौट आने तक तुम्हारे आधीन करती हूँ। रही मैं सो मैंने अपने मन में ईश्वर के सामने एक मन्नत मानी है कि नरश्री को साथ लेकर उसके स्वामी और अपने स्वामी के आने तक प्रार्थना करती और उसकी ओर लौ लगाए रहूँ। यहाँ से दो मील पर एक मठ है, उसी में जाकर हम लोग रहेंगी। मैं आशा करती हूँ कि तुम मेरी इस प्रार्थना से जिसे अपनी प्रीति और कुछ अधिक आवश्यकता होने के कारण करती हूँ अनंगीकार न करोगे।

लवंग — प्यारी मैं तन मन से आप की आज्ञा का अनुगामी हूँ।

पुरश्री — मेरे नौकर चाकर इस इच्छा को जान चुके हैं और वह तुम्हें और जसोदा को महाराज बसंत और मेरे स्थानापन्न समझेंगे। अच्छा अब मैं तुम लोगों से विदा होती हूँ, जब तक कि भगवान तुमसे फिर न मिलाए।

लवंग — भगवान् आपको उच्च मनोरथ और उत्तम साहस दें।

जसोदा — मेरी आसीस है कि आपका आंतरिक मनोरथ पूरा हो ।

पुरश्री — मैं तुम्हारी इस अभिलाष का धन्यवाद देती हूँ और तुम्हारे विषय भी वैसा ही जी से चाहती हूँ । जसोदा मेरा राम राम लो ।

(जसोदा और लवंग जाते हैं)

हाँ बालेसर जैसा कि मैंने तुम्हें सदा सच्चा और धार्मिक पाया है वैसा ही मैं चाहती हूँ कि अब भी पाऊँ । इस पत्र को लो और जहाँ तक कि तुम्हारे पाँव में बल हो शीघ्र पाँडुपुर पहुँचने का प्रयत्न करो और इसे मेरे चचेरे भाई कविराज बलवंत के हाथ में दो और देखो कि जो पत्र ओर वस्त्र वह तुम्हें दें उन्हें ईश्वर के वास्ते मन से अधिक तीव्र उस घाट पर जहाँ से वंशनगर को व्यापार का माल जाता है, लेकर आओ । बस अब चले जाओ, बातों में समय नष्ट न करो । मैं तुमसे पहिले वहाँ पहुँच जाऊँगी ।

बालेसर — बबुई मैं जितना शीघ्र संभव होगा जाऊँगा ।

पुरश्री — इधर आओ नरश्री मुझे अभी वह काम करना है जो तुम्हें अभी विदित नहीं है । हम तुम चल कर अपने स्वामी को देखेंगे और उनको इसका ध्यान भी न होगा ।

नरश्री — हमें भी वह देखेंगे यह नहीं ?

पुरश्री — हाँ हाँ परंतु ऐसे भेस में कि उन्हें ध्यान न होगा कि वे वीरता के चिन्ह जो स्त्रियों में नहीं होते हम में उपस्थित हैं । मैं प्रण करती हूँ कि जब हम तुम युवा मनुष्यों की भाँति वस्त्र इत्यादि पहिन कर तैयार हो जायँगे, उस समय मैं तुमसे बढ़कर सजीली जान पड़ूँगी और अपनी तलवार को खूब तिरछी बाँध कर चलूँगी और बालक और युवा के शब्द के बीच का भारी शब्द बनाकर बोलूँगी और स्त्रियों की मंदगति छोड़कर पुरुषों की भाँति लम्बे पैर रक्खूँगी और एक अभिमानी नवयुवक व्यसनी पुरुष की भाँति युद्ध इत्यादि का भी वर्णन करूँगी और झूठी बातें गढ़ गढ़ कर कहूँगी कि बड़ी प्रतिष्ठित स्त्रियाँ मुझपर आसक्त हुई पर मैंने उन्हें ऐसा कोरा उत्तर दिया कि नैराश्य से पीड़ित होकर मर गई पर मेरा इसमें क्या बस था फिर मैं खेद प्रकट करूँगी ओर कहूँगी कि यद्यपि इसमें मुझ पर कुछ दोष नहीं है किंतु यदि वह मेरे इश्क में न मरतीं तो उत्तम था और इसी प्रकार के बीसों झूठ ऐसे बोलूँगी कि लोगों को इस बात का पक्का विश्वास हो जायगा कि मुझे पाठशाला छोड़े साल भर से अधिक न हुआ होगा । मुझे इन अभिमानी छोकरों के सहस्त्रों चुटकुले स्मरण हैं और इन्हीं में से अपना काम निकालूँगी । परंतु आओ मैं तुमसे अपना सब उपाय गाड़ी में जो बगीचे के फाटक पर खड़ी है सवार होकर वर्णन करूँगी । बस अब शीघ्र ही चलो क्योंकि हमें आज ही बीस मील समाप्त करना है ।

(दोनों जाती हैं)

पाँचवा दृश्य

स्थान — बिल्वमठ — एक उद्यान

(गोप और जसोदा आते हैं)

गोप — हाँ बेशक — तुम जानती हो कि पिता के पापों का दंड उसके बच्चों को भोगना पड़ता है इसलिये मैं सच कहता हूँ कि मुझे तुम्हारा अमंगल दृष्टि आता है । मैंने तुमसे छलाबल की बात आज तक नहीं की ओर अब भी तुमसे अपना विचार स्पष्ट कह दिया । नेक अपने मन को प्रसन्न रक्खो क्योंकि मेरी सम्मति में तो तुम अपराधग्रस्त हो चुकीं । हाँ एक उपाय तुम्हारे कल्याण का दृष्टि आता है सो उसकी भी आशा कुछ ऐसी वैसी है ।

जसोदा — वह कौन सा उपाय है नेक बताना तो ?

गोप — भाई ! तुम यह समझो कि तुम अपने पिता से उत्पन्न नहीं हो अर्थात् तुम जैन की कन्या नहीं हो ।

जसोदा — तौ तो सचमुच यह आशा ऐसी ही वैसी है क्योंकि ऐसा करने में मुझे अपनी माता के अपराधों का दंड मिलेगा ।

गोप — हाँ सच तो है, तब तो मुझे भय है कि तुम अपने माता पिता दोनों के निमित्त दंड पाओगी । हाय हाय जब मैं तुम्हें उधर अर्थात् तुम्हारे पिता से बचाता हूँ तो इधर खाई अर्थात् तुम्हारी माता दृष्टि आती है । अच्छा तो अब तुम दोनों ओर से गईं ।

जसोदा — मैं अपने स्वामी के द्वारा मुक्ति पाऊँगी, वह मुझे आर्य धर्म में लाए हैं ।

गोप — तौ तो प्रधान दोष उन पर है ! हम लोग पहिले ही से आर्य धर्म के क्या न्यून मनुष्य हैं । परन्तु अच्छा जितने थे उतनों का किसी भाँति पूरा पड़ जाता था पर अब नये आर्य्यों के भरती होने से सूअर का दाम बढ़ जायगा । यदि हम सब के सब शूकर भक्षी बन

जायँगे तो थोड़े दिनों में बहुत दाम देने से भी उस स्वादिष्ट मांस का एक टुकड़ा भी हाथ न आवेगा ।

(लवंग आता है)

जसोदा— गोप, मैं तुम्हारी सब बातें अपने स्वामी से कहूँगी ; देखो वह आते हैं ।

लवंग— गोप, यदि, तुम इस भाँति मेरी स्त्री से परोक्ष में बात किया करोगे तो मुझ से कैसे देखा जायगा ।

जसोदा— नहीं लवंग हम लोगों की ओर से संदेह मत करो ; मुझ से और गोप से कहासुनी हो रही है क्योंकि वह मुझसे स्पष्ट कहता है कि मुझको भगवान न क्षमा करेगा क्योंकि मैं जैन की पुत्री हूँ और तुम्हारे विषय में कहता है कि तुम अपनी जाति के शुभचिंतक नहीं हो क्योंकि जैनियों को आर्य बना कर सूअर के मांस का भाव बिगाड़ते हो ।

लवंग— अबे जा उन लोगों से भोजन की तैयारी के लिये कह दे ।

गोप— साहिब वह सब प्रस्तुत है क्योंकि उनको भी तो पेट है ।

लवंग— ईश्वर का कोप हो तुझ पर, तू क्या ही हँसोड़ है । अच्छा उन्हें थाली परोसने के लिये कह दे ।

गोप— यह भी हो चुका है केवल आच्छादन करना शेष है ।

लवंग— तो शीघ्र आच्छादित करो ।

गोप— यह मेरा सामर्थ्य नहीं कि स्वामी के सामने आच्छादन करूँ ।

लवंग— फिर भी अपना ही राग गाए जाता है । क्या तू एक ही क्षण में अपना कुल हँसोड़पन खर्च कर डालेगा मैं तुझसे विनय करता हूँ कि मेरी सरल बातचीत के सीधे अर्थ समझ । जा अपने साथियों से कह दे कि थाली में मांस चुन कर ढँपना, छुरी काँटा इत्यादि रख दे । हमलोग भोजन को आते हैं ।

गोप— महाराज थाली तो परस दी जायगी और मांस भी लगा दिया जायगा पर बिना चुहल के खाना अलोना प्रतीत होगा इससे इसका तार न तोड़िये ।

लवंग— ईश्वर की शरण, इस दुष्ट में तो हँसोड़पन कूट कूट कर भरो है मानो इसके सिर में श्लेष की सेना पैतरा बाँधे हर समय उपस्थित है । मैं बहुतेरे दुष्टों को जानता हूँ जो इससे अधिकार में कहीं बढ़कर हैं परंतु शब्दों के प्रयोग में अर्थ का सत्यानाश करते हैं । जसोदा तुम किस विचार में हो । भला प्यारी तुम अपनी सम्मति तो वर्णन करो कि तुम राजकुमार बसंत की अर्द्धांगिनी को कैसा समझती हो ?

जसोदा— उनकी प्रशंसा अनिर्वचनीय है । मेरी जान में तो उचित होगा कि राजकुमार बसंत को अब अपना जीवन निरी पवित्रता के साथ बिताना चाहिए क्योंकि जो पदार्थ कि उन्हें अपनी स्त्री में मिला है वह ऐसा है कि मानों उन्हें पृथ्वी पर स्वर्ग का सुख जीते जी हाथ लगा और यदि वह इसका आदर न करें तो स्पष्ट है कि उन्हें स्वर्ग का सुख भी क्या उठेगा । मेरी समझ में तो यदि दो देवता आपस में कोई स्वर्गीय कौतुक करें ओर दो सांसारिक स्त्रियों की होड़ बदें और इनमें से एक पुरश्री को अपनी ओर से बाजी में लगावें तो दूसरे को अपनी शर्त में एक स्त्री के साथ और भी बहुत कुछ बदना होगा । क्योंकि इस उजाड़ संसार में पुरश्री का सा दूसरा तो मिलना नहीं ।

लवंग— जैसा कि राजकुमार बसंत को स्त्री लब्ध हुई है वैसा ही मैं भी तुम्हें स्वामी मिला हूँ ।

जसोदा— सत्य बचन । परंतु इसके विषय में भी तनिक मेरी सम्मति पूछ देखो ।?

लवंग— हाँ अभी पूछता हूँ । पहिले चलो खाना खा लें ।

जसोदा— नहीं, अभी मुझे पेट भर तुम अपनी प्रशंसा कर लेने दो भोजन के उपरांत समाई न रहेगी ।

लवंग— भगवान के वास्ते यह कथा खाने के समय के लिये रहने दो । उस समय तुम मुझे कैसा ही कुछ कहोगी मैं उसे और पदार्थों के साथ पचा जाऊँगा ।

जसोदा— बहुत अच्छा मैं आपकी प्रशंसा की पोथी वहीं खोलूंगी ।

(दोनों जाते हैं)

चौथा अंक

पहला दृश्य

(स्थान — वंशनगर राजद्वार)

(मंडलेश्वर वंशनगर, प्रधान लोग अनंत, बंसत, गिरीश, सलारन, सलोने और दूसरे लोग आते हैं)

मंडलेश्वर— अनंत आ गए हैं ?

अनंत— धर्मावतार उपस्थित हूँ ।

मंडलेश्वर— मुझे तुम पर अत्यंत शोच होता है क्योंकि तुम ऐसे दुष्ट कठोर वज्रहृदय वादी (मुद्दई) के उत्तर देने के लिये बुलाए गए हो, जिसे दया नाम को भी नहीं छू गई है ।

अनंत— मैं सुन चुका हूँ कि महाराज ने उसके

क्रूर बरताव के नम्र करने के प्रयत्न में कितना श्रम किया परंतु उस पर किसी बात की सिद्धि नहीं होती और न मैं किसी उचित रीति सें उसकी शत्रुता की परिधि के बाहर जा सकता हूँ । अत : मैं अपना संतोष उसके अनर्थ के प्रति प्रकट करता हूँ और उसका अत्याचार सहने को सब प्रकार से प्रस्तुत हूँ और कदापि मुख से आह न निकालूँगा ।

मंडलेश्वर— कोई जाय और उस जैन को न्यायालय में उपस्थित करे ।

सलोने— महाराज वह पहिले ही से द्वार पर खड़ा है, वह देखिए आ पहुँचा ।

(शैलाक्ष आता है)

मंडलेश्वर— सब लोग स्थान दो जिसमें वह हमारे सम्मुख आकर खड़ा हो । शैलाक्ष, सारा संसार सोचता है और मैं भी ऐसा ही समझता हूँ कि यह हठ तुम उसी क्षण तक स्थिर रक्खोगे जब तक कि उसके पूरे होने का समय न आ जायगा और तब लोगों का यह विचार है कि तुम जितनी अब प्रकट में कठोरता दिखला रहे हो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक खेद और दया प्रकाश करोगे और जहाँ कि अभी तुम उससे प्रतिज्ञा भंग होने का दंड लेने पर प्रस्तुत हो (जो इस दीन व्यापारी के शरीर का आध सेर मांस है) वहाँ उस समय तुम केवल इस दंड ही के छोड़ने पर अभिमत न हो जाओगे वरंच मनुष्य धर्म और शील का अनुकरण करके मूल ऋण में से आधा छोड़ दोगे । यदि उसकी हानियों की ओर जो इधर थोड़ी देर में उसके ऊपर फट पड़ी हैं ध्यान दिया जाय तो वही इतने बड़े व्यापारी की कमर तोड़ देने के लिये बहुत हैं और कोई मनुष्य कैसा ही कठोर चित्त क्यों न हो और पत्थर का हृदय क्यों न रखता हो यहाँ तक कि कोल और भिल्ल भी जिन्होंने कभी शील का नाम नहीं सुना उसकी दशा को देख कर अत्यंत ही शोक करेंगे, तो ऐ जैन हम लोग आशा करते हैं कि तुम इसका उत्तर नम्रता पूर्वक दोगे ।

शैलाक्ष— महाराज को अपने उद्देश्य से सूचित कर चुका हूँ और मैंने अपने पवित्र दिन रविवार की शपथ खाई है कि जो कुछ मेरा दस्तावेज के अनुसार चाहिए वह भग्नप्रतिज्ञ होने के दंड के सहित लूँगा । यदि महाराज उसको दिलवाना अनंगीकार करें तो इसका अपवाद महाराज के न्याय और महाराज के नगर की स्वतंत्रता के सिर पर । महाराज मुझ से यही न पूछते हैं कि मैं इतना मृतमांस छ हजार रुपयों के बदले लेकर क्या करूँगा । इसका उत्तर मैं यही देता हूँ कि मेरे मन की प्रसन्नता । बस अब महाराज को उत्तर मिला ? यदि मेरे घर में किसी घूंस ने बहुत सिर उठा रक्खा हो और मैं उसके नष्ट करने के लिये बीस सहस्र मुद्रा व्यय कर डालूँ तो मुझे कौन रोक सकता है । अब भी महाराज ने उत्तर पाया या नहीं ? कितने लोगों को सूअर के मांस से घृणा होती है, कितने ऐसे हैं कि बिल्ली को देखकर आपे से बाहर हो जाते हैं, तो अब आप मुझ से उत्तर लीजिए कि जैसे इन बातों का कोई मूल कारण नहीं कहा जा सकता कि वह सूअर के मांस से क्यों दूर भागते हैं और यह बिल्ली सदृश दीन और सुखदायक जंतु से क्यों इतना घबराते हैं वैसे ही मैं भी इसका कोई कारण नहीं कह सकता और न कहूँगा । सिवाय इसके कि मेरे और उसके बीच एक पुरानी शत्रुता चली आती है और मुझे उसके स्वरूप से घृणा है जिसके कारण से मैं एक ऐसे विषय का जिसमें मेरा इतना घाटा है उद्योग करता हूँ । कहिए अब तो उत्तर मिला ?

बसंत— ओ निर्दय यह बात जिससे तू अपने अत्याचार को उचित सिद्ध करता है कोई उत्तर नहीं है ।

शैलाक्ष— मेरा कुछ तेरी प्रसन्नता के लिये उत्तर देना कर्त्तव्य थोड़े ही है ।

बसंत— क्या सब लोग ऐसे पशु को मार डालते हैं जिसे वह बुरा समझते हैं ।

शैलाक्ष— संसार में कोई भी ऐसा मनुष्य है जो किसी जंतु के मारने से जिससे वह घृणा करता हो हाथ उठावे ।

बसंत— हर एक अपराध से पहिली वार घृणा उत्पन्न हो जाती है ।

शैलाक्ष— क्या तुम चाहते हो कि मैं साँप को दूसरी बार डसने का अवसर दूँ ।

अनंत— भगवान के निहोरे नेक विचारों तो कि तुम किससे विवाह कर रहे हो । इसको मार्ग पर लाना तो ठीक वैसी बात ही है जैसा कि समुद्र के किनारे खड़े होकर तरंगों को आज्ञा देना कि तुम इतनी ऊँची मत उठो, या भेड़िये से पूछना कि उसने बकरी के बच्चे को खा कर उसकी माँ को दु :ख में क्यों फँसाया, या पहाड़ी खजूर के वृक्षों को कहना कि वह अपनी ऊँची फुन्गियों को वायु के झोंके से न हिलने दें और न पत्तों की खड़खड़ाहट का शब्द होने दें, ऐसे ही तुम संसार के कठिन से कठिन काम कर लो इसके पूर्व कि इस जैन के चित्त को (जिस से कठोरतर दूसरा पदार्थ न होगा) द्रव करने का यत्न करो । इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि न तो तुम उससे अब कुछ देने दिलाने की बातचीत

करो और न इस विषय में अधिक चिंता करो वरंच थोड़े में भाग्य पर संतोष करके मुझे दंड भुगतने और इस जैन को अपना मनोरथ पूरा करने दो ।

बंसत— तेरे छ हजार रुपयों के बदले यह ले बारह तयार हैं ।

शैलाक्ष— यदि इन बारह हजार रुपयों का हरएक रुपया बारह भागों में बाँट दिया जाय और हर एक भाग एक रुपये के बराबर हो तौ भी मैं उनकी ओर आँख उठा कर न देखूँ, मुझे केवल दस्तावेज के प्रण से काम है ।

मंडलेश्वर— भला तू किसी पर दया नहीं करता तो तुझे दूसरों से क्या आशा होगी ?

शैलाक्ष— जब मैंने कोई अपराध ही नहीं किया है तो फिर किस बात से डरूँ ? आप लोगों के पास कितने मोल लिए हुए दास और दासियाँ उपस्थित हैं जिन्हें आप गधों, कुत्तों और खच्चरों की भाँति तुच्छ अवस्था में रख कर उनसे सेवा कराते हैं और यह क्यों ? केवल इस लिये कि आपने उन्हें मोल लिया है । यह मैं आप से यह कहूँ कि आप उन्हें स्वतंत्र करके अपने कुल में ब्याह कर दीजिए, या यह कि उन्हें बोझ के नीचे दबा हुआ पसीने से घुला घुला कर मारे क्यों डालते हैं, उन्हें भी अपनी सदृश कोमल शैया पर सुलाइए और स्वादिष्ट भोजन खिलाइए तो इसके उत्तर में आप यही कहिएगा कि वह दास हमारे हैं हम जो चाहेंगे करेंगे, तुम कौन ? इसी भाँति मैं भी आपको उत्तर देता हूँ कि इस आध सेर मांस का जो मैं इससे माँगता हूँ बहुतमूल्य दिया गया है, वह मेरा माल है और मैं उसे अवश्य लूंगा । यदि आप दिलवाना अस्वीकार करें तो आप के न्याय पर थुड़ी है । जाना गया कि वंश-नगर के कानून में कुछ भी सार नहीं । मैं राजद्वार की आज्ञा सुनने के लिए उपस्थित हूँ, कहिए मुझे मिलेगा या नहीं ?

मंडलेश्वर— मुझे निज स्वत्व के अनुसार अधिकार है कि मुकद्दमे के दिन को टाल दूँ । यदि बलवंत नामी एक सुयोग्य वकील जिसकी मैंने इस मुकद्दमें के विचार के लिये बुलाया है आज न आया तो मैं इस मुकद्दमे को टाल दूँगा ।

सलारन— महाराज बाहर उस वकील का एक मनुष्य खड़ा है, जो उसके पास से पत्र लेकर अभी पांडुपुर से चला आता है ।

मंडलेश्वर— शीघ्र पत्र लाओ और दूत को भीतर बुलाओ ।

बंसत— अनंत अपने चित्त को स्वस्थ रक्खो. कैसे मनुष्य हो ! साहस न हारो । पहिले इसके कि तुम्हारा एक बाल भी टेढ़ा हो मैं अपना मांस, त्वचा, अस्थि और जान प्राण वो धन उस जैन के अर्पण करूँगा ।

अनंत— गल्ले भर में मन्नत की दुर्बल भेड़ मैं ही हूँ, मेरा ही मरना श्रेय है । कोमल फल सब के पहले पृथ्वी पर गिरता है तो मुझी को गिरने दो । तुम्हारे लिये इससे बढ़कर कोई बात उचित न होगी कि मेरे पश्चात मेरा जीवनचरित्र लिखो ।

(नरश्री वकील के लेखक के भेस में आती है)

मंडलेश्वर— तुम पांडुपुर से बलवंत के पास से आते हो ?

नरश्री— जी महाराज वहीं से उन्हीं के पास से बलवंत ने आपको प्रणाम कहा है ।

(एक पत्र देती है)

बंसत— क्यों, तू ऐसे उत्साह से छुरी क्यों तीक्ष्ण कर रहा है ?

शैलाक्ष— उस दिवालिये के शरीर से दंड का मांस काटने के लिये ।

गिरीश— अरे निर्दयी जैनी तू अपनी जूती के तल्ले पर छुरी को क्यों तेज करता है, तेरा पाषाण तुल्य हृदय तो प्रस्तुत ही है । पर कोई शस्त्र यहाँ तक कि वधिक की तलवार भी तेरी शत्रुता के वेग को नहीं पहुँच सकती । क्या तुझ पर किसी की विनती काम नहीं आती ?

शैलाक्ष— नहीं, एक की भी नहीं जो तू अपने बुद्धि से गढ़ सकती हो ।

गिरीश— हा ! ओ कठोर कुत्ते, ईश्वर तेरा बुरा करे, यह केवल न्याय का दोष है जिसने अब तक तुझे जीता रख छोड़ा है, तूने तो आज मेरे धर्म में बट्टा लगा दिया क्योंकि तेरे लक्षणों को देखकर मुझे गोरक्ष के इस विचार को कि पशुओं की आत्मा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है मानना पड़ा । तेरी हिंसक आत्मा एक भेड़िये की छाया में थी जो कितने मनुष्यों के जीव बध के लिए सूली चढ़ा दिया गया था । इस अवस्था को पहुँचने पर भी उस नारकी आत्मा को तोष न हुआ और वहाँ से भाग कर जिस समय तू अपनी माता के अपवित्र गर्भ में था तुझ में पैठ गई क्योंकि तेरा मनोरथ भी भेड़ियों की भाँति घातक हिंसक है ।

शैलाक्ष— जब तक कि तेरे धिक्कार में इतनी शक्ति न हो कि अनंत की मुहर को मेरी दस्तावेज पर से मिटा दे सके तब तक इस विचार से क्या फल निकल सकता है । व्यर्थ को तू चिल्ला चिल्ला कर

अपना ही कंठ फाड़ रहा है । ऐ नवयुवक अपने सुधि की औषधि कर कहीं ऐसा न हो कि तेरे सिर पर कोई आपत्ति आ जाय । क्या तुझे विदित नहीं कि मैं न्याय के लिये यहाँ खड़ा हूँ ?

मंडलेश्वर— बलवंत अपने पत्र में इस न्याय सभा के लिये एक नवयुवक विद्वान वकील की सिफारिश करता है, वह कहाँ है ?

नरश्री— वह समीप ही आपके उत्तर पाने की प्रत्याशा में खड़े हैं कि आप उन्हें विवाद करने की आज्ञा दे देंगे या नहीं ।

मंडलेश्वर— अति प्रसन्नता से । आप दो चार महाशय जायँ और उनका समादर करके सन्मान के साथ यहाँ ले आएँ तब तक विचारसभा बलवंत का पत्र सुनेगी ।

(लेखक पड़ता है)

श्रीमन्, मैंने महाराज का पत्र अस्वस्थ होने की अवस्था में पाया । परंतु जिस समय आप का दूत पहुँचा उस समय मेरे मित्रों में से मालवा के एक युवा वकील बालेसर नामी मरी भेंट करने को आए हुए थे । मैंने उनको जैन और अनंत सौदागर के मुकद्दमे का सब व्यवरा समझा दिया । हम दोनों मनुष्यों ने मिल कर कई व्यवस्थाएँ पलट कर देखीं । मैंने अपनी सम्मति उनसे प्रकट कर दी है अत : वह मेरी सम्मति लेकर जिसे वह अपनी योग्यता के बल से (जिसकी प्रशंसा मैं किसी मुँह से नहीं कर सकता) और सुधार लेंगे । मेरे निवेदन के अनुसार मेरे स्थानापन्न महाराज की सेवा में उपस्थित होते हैं । प्रार्थना करता हूँ कि महाराज उनकी अल्प अवस्था का ध्यान न करके उनके आदर में कदापि न्यूनता न करेंगे क्योंकि मेरी दृष्टि में ऐसी थोड़ी अवस्था का पुरुष ऐसी पुष्कल बुद्धि के साथ आज तक नहीं आया । मैं उन्हें महाराज की सेवा में अर्पण करता हूँ, परीक्षा से उनकी योग्यता का हाल भली भाँति खुल जायगा ।

मंडलेश्वर— आप लोगों ने सुना कि प्रसिद्ध विद्वान बलवंत ने क्या लिखा है और जान पड़ता है कि वकील महाशय भी वह आ रहे हैं ।

(पुरश्री वकीलों की भाँति वस्त्र पहने आती है)

मंडलेश्वर— आइये हाथ मिलाइए, आप ही वृद्ध बलवंत के पास से आते हैं ?

पुरश्री— महाराज ।

मंडलेश्वर— मुझे आप के आने से बड़ी प्रसन्नता हुई, विराजिए । आप इस मुकद्दमें को जानते हैं जिसका इस समय विचारसभा में विचार हो रहा है ?

पुरश्री— मैं उसके वृत्तांत को भली भाँति जानने वाला हूँ । वर्णन कीजिए कि इन लोगों में से कौन सौदागर है और कौन जैन ?

मंडलेश्वर— अनंत और वृद्ध शैलाक्ष दोनों सामने खड़े हो जाओ ।

पुरश्री— तुम्हारा नाम शैलाक्ष है ?

शैलाक्ष— हाँ मेरा नाम शैलाक्ष है ।

पुरश्री— यह तुमने विचित्र मुकद्दमा रच रक्खा है, परंतु नियमानुसार वंशनगर का कानून तुमको उसके प्रयत्न से रोक नहीं सकता । और आप ही इनके पंजे में फँसे हैं, क्यों साहिब ?

(अनंत से)

अनंत— जी हाँ, मुझी पर इनका लक्ष्य है ।

पुरश्री— आप तमस्सुक लिखना स्वीकार करते हैं ।

अनंत— निस्संदेह मैं स्वीकार करता हूँ ।

पुरश्री— तब तो अवश्य है कि जैन दया करे ।

शैलाक्ष— मैं किस बात से दब कर ऐसा करूँ यह तो कहिए ?

पुरश्री— दया ऐसी वस्तु नहीं जिसे आग्रह की आवश्यकता हो । वह जलधारा की भाँति नभ मंडल से पृथ्वीतल पर गिरती है . उसका दुहरा फल मिलता है अर्थात् पहले उसको जो करता है और दूसरे उसको जिसे उसका लाभ पहुँचता है । महानुभावों को यह अधिकतर शोभा देती है, मंडलेश्वरों को यह मुकुट से अधिकतर शोभित है । राजदंड केवल सांसारिक बल प्रकट करता है जो आतंक और तेज का चिन्ह है और जिससे राजेश्वरों का भय लोगों के चित्त पर छा जाता है परंतु दया का प्रभाव राजदंड के प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक है, दया का वासस्थान राजेश्वरों का चित्त है, यह एक प्रधान महिमा ईश्वर की है । अत : संसार के राजेश्वर उसी समय देवतुल्य प्रतीत होते हैं जब कि वह न्याय के साथ दया का भी बरताव करते हैं । इसलिए ऐ जैनी यद्यपि तू न्याय ही न्याय पुकारता है किंतु विचार कर कि केवल न्याय ही के भरोसे पर हम में से कोई मरने के उपरांत मुक्त होने की आशा नहीं कर सकता । हम ईश्वर से दया की प्रार्थना करते हैं तो चाहिए कि वही प्रार्थना हमको भी दया के काम सिखावे । मैंने इतना तेरे न्याय के आग्रह से हटाने के निमित्त से कहा पर यदि तू न मानेगा तो जैसे हो सकेगा वंशनगर की विचारशीला न्यायसभा तुझे इस सौदागर पर विनयपत्र दे देगा ।

शैलाक्ष— मेरा किया मेरे सिर पर । मैं राजद्वार से अपने तमस्सुक के अनुसार दंड दिला पाने की प्रार्थना करता हूँ ।

पुरश्री— क्या वह रुपया चुका देने की क्षमता नहीं रखता ।

बसंत— हाँ, मैं राजद्वार में उनकी संती अभी दूना देने को उपस्थित हूँ । यदि इससे भी उसका पेट न भरे तो मैं उस जमा का दस गुना दूँगा और यदि न दे सकूँ तो दंड में अपना सिर अर्पण करूँगा । यदि इस पर भी वह न माने तो स्पष्ट है कि शत्रुता के आगे धर्म की दाल नहीं गलती । मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने निज अधिकार से इस बार कानून का प्रतिबंध छोड़ दीजिए । एक बड़े भारी उपकार की अपेक्षा में थोड़ी सी अनीति स्वीकार कीजिए और हे मंडलेश्वर, अत्याचारी पिशाच की बुराई को रोकिए ।

(मंडलेश्वर से)

पुरश्री— ऐसा न होना चाहिए वंशनगर के कानून के अनुसार किसी को अधिकार नहीं है कि नीति को रोक सके । यह विचार दृष्टांत की भाँति पर लिखा जायगा और बहुत सी त्रुटियाँ इसके कारण राजा के कामों में आ पड़ेंगी । यह कदापि नहीं हो सकता ।

शैलाक्ष— वाह वाह मानो महात्मा विक्रम आप ही न्याय के लिए उतर कर आए हैं । वास्तव में आपको विक्रम ही कहना चाहिए । ऐ युवा बुद्धिमान न्यायकर्त्ता मैं नहीं कह सकता कि मैं चित्त से आपका कितना समादर करता हूँ ।

पुरश्री— कृपाकर, नेक मुझे तमस्सुक तो देखने दो ।

शैलाक्ष— लीजिए सुप्रतिष्ठ वकील महाशय यह उपस्थित है ।

पुरश्री— शैलाक्ष तुम्हें तुम्हारे मूलधन का तिगुना मिल रहा है ।

शैलाक्ष— शपथ, शपथ, मैं शपथ जो खा चुका हूँ । क्या मैं भूठी शपथ खाने का पाप अपने माथे पर लूँ ? न, कदापि नहीं, यदि मुझे इसके बदले में वंशनगर का राज्य भी हाथ आए तौ भी ऐसा न करूँ !

पुरश्री— इस तमस्सुक की मिती तो टल चुकी और इसके अनुसार विवेकत : जैन को अधिकार है कि सौदागर के हृदय के पास से आध सेर मांस काट ले । परंतु उस पर दयाकर और तिगुना रुपया लेकर मुझे तमस्सुक फाड़ डालने की आज्ञा दे ।

शैलाक्ष—हाँ उस समय जबकि मैं लिखे अनुसार दंड दिला पाऊँ । मुझे प्रतीत होता है कि आप एक योग्य न्यायी हैं, आप कानून से परिचित हैं और उसके तात्पर्य को भी ठीक समझते हैं, तो मैं आपको उसी की शपथ देता हूँ जिसके आप पूरे आधार हैं कि आप आज्ञा सुनाने में विलंब न करें । मैं अपने प्राण की सौगंद खाकर कहता हूँ कि मनुष्य की जिह्वा में इतना सामर्थ्य नहीं कि मेरा मनोरथ फेरे । मुझको सिवाय तमस्सुक के प्रणों के और किसी बात से क्या प्रयोजन ।

अनंत— मैं भी चित्त से चाहता हूँ कि न्यायकर्त्ता आज्ञा सुना दे ।

पुरश्री— तो बस आपको छाती खोलकर प्रस्तुत रहना चाहिए ।

शैलाक्ष— वाहरे योग्यता ! वाह रे न्याय ! आहा ! क्या कहना है !

पुरश्री— क्योंकि कानून का अभिप्राय यही है कि प्रतिज्ञा भंग करने का दंड तमस्सुक के प्रणानुसार सब व्यवस्था में दिया जाना चाहिए, तो वह इस अवस्था में भी उचित है ।

शैलाक्ष— बहुत ठीक, क्या कहना है, न्याय-कर्त्ता को ऐसा ही बुद्धिमान और न्यायी होना चाहिए ! यह अवस्था और यह बुद्धि ।

पुरश्री— अब आप अपनी छाती खोल दीजिए ।

शैलाक्ष— जी हाँ छाती ही, यही तमस्सुक में लिखा है, है न मेरे सुजन न्यायकर्त्ता, हृदय के समीप ये ही शब्द लिखे हैं ।

पुरश्री— ऐसा ही है, परन्तु बताओ कि मांस तोलने के लिये तराजू रक्खे है ?

शैलाक्ष— मैंने उन्हें ला रक्खा है ।

पुरश्री— शैलाक्ष, अपनी ओर से कोई जर्राह भी बुरा रक्खो कि उसका घाव बंद कर दे, जिसमें अधिक रक्त निकलने से कहीं वह मर न जाय ।

शैलाक्ष— क्या यह तमस्सुक में लिखा है ?

पुरश्री— नहीं लिखा तो नहीं परंतु इससे क्या, इतनी भलाई यदि उसके साथ करोगे, तो तुम्हारी ही कीर्ति है ।

शैलाक्ष— मैं नहीं करने का, तमस्सुक में इसका वर्णन नहीं है ।

पुरश्री— अच्छा सौदागर साहिब, तो अब आपको जो कुछ किसी से कहना सुनना हो कह सुन लीजिए ।

अनंत— केवल दो बातें करनी हैं, नहीं तो मैं सब भाँति उपस्थित और प्रस्तुत हूँ । लाओ बसंत, मुझे अपना हाथ दो, मैं तुमसे विदा होता हूँ । तुम इस बात का कदापि खेद न करना कि मुझ पर यह आपत्ति
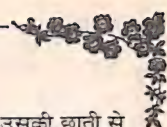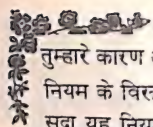
तुम्हारे कारण आई क्योंकि इस समय पर भाग्य अपने नियम के विरुद्ध बहुत कृपालु जान पड़ती है । उसका सदा यह नियम देखने में आया है कि वह भाग्यहीन मनुष्य को उनकी लक्ष्मी चले जाने के उपरांत ठोकर खाने और दुरवस्था से दारिद्रया का दु:ख उठाने के लिए छोड़ देती है किंतु मुझे वह एक साथ इस जन्म भर के क्लेश से छुटकारा दिए देती है । अपनी सुशील स्त्री से मेरा सलाम कहना और उनसे मेरे मरने का हाल कह देना । जो स्नेह मुझे तुम्हारे साथ था उसका भी वर्णन करना, मेरे प्राण देने के ढंग को सराहना और जिस समय मेरी कहानी कह चुको तो उनसे न्यायदृष्टि से पूछना कि किसी समय में बसंत का भी कोई चाहने वाला था या नहीं । मेरे प्यारे तुम इस बात का खेद न करो कि तुम्हारा मित्र संसार से उठा जाता है क्योंकि निश्चय मानो कि उसे इस बात का नेक भी शोच नहीं कि वह तुम्हारे ऋण को अपने प्राण देकर चुकाता है क्योंकि यदि जैन ने गहरा घाव लगाने में कमी न की तो मैं तुरंत उससे उऋण हो जाऊँगा ।

बसंत — अनंत मेरा व्याह एक स्त्री के साथ हुआ है जिसे मैं अपने प्राण से अधिक प्रिय समझता हूँ, परंतु मेरा प्राण, मेरी स्त्री और सारा संसार तुम्हारे जीवन के सामने तुच्छ है, और तुमको इस दुष्ट राक्षस के पंजे से छुड़ाने के लिये मैं इन सब को खोने वरंच तुम पर से न्यौछावर करने को प्रस्तुत हूँ ।

पुरश्री — यदि तुम्हारी स्त्री इस स्थान पर उपस्थित होती तो तुम्हारे मुँह से अपने विषय में ऐसे शब्द सुन कर अवश्य अप्रसन्न होती ।

गिरीश — मेरी एक स्त्री है, जिसे मैं धर्म से कहता हूँ कि मैं प्यार करता हूँ परंतु यदि उसके स्वर्ग जाने से किसी देवता की सहायता मिल सकती, जो इस पापी जैन के चित्त को फेर देता है तो मुझे उससे हाथ धोने में कुछ शोच न होता ।

नरश्री — यही कुशल है कि तुम उसकी पीठ पीछे ऐसा कहते हो, नहीं तो न जाने आज कैसी आपत्ति मचती ।

शैलाक्ष — (आप ही आप) इन आर्यपतियों की बातें सुनो ! मेरी बेटी का व्याह तो यदि बरवंड के सदृश्य किसी व्यक्ति से होता तो मैं अधिक पसन्द करता, इसकी अपेक्षा कि वह एक आर्य की स्त्री बने । (चिल्ला कर) समय व्यर्थ जाता है । मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप विचार सुना दें ।

पुरश्री — इस सौदागर के शरीर का आधा सेर मांस तुम्हारा ही है, जिसे कि कानून दिलाता है और राजसभा देती है ।

शैलाक्ष — वाह रे न्यायी !

पुरश्री — और यह मांस तुमको उसकी छाती से काटना चाहिए, कानून इसको उचित समझता है और न्यायसभा आज्ञा देती है ।

शैलाक्ष — ऐ मेरे सुयोग्य न्यायकर्त्ता ! इसका नाम विचार है । आओ, प्रस्तुत हो ।

पुरश्री — थोड़ा ठहर जा, एक बात और शेष है । यह तमस्सुक तुझे रुधिर एक बूँद भी नहीं दिलाता, ''आध सेर मांस'' यही शब्द स्पष्ट लिखे हैं । इसलिये अपनी प्रण प्राप्ति कर ले अर्थात् आध सेर मांस ले ले परंतु यदि काटने के समय इस आर्य का एक बूँद रक्त भी गिराया तो वंशनगर के कानून के अनुसार तेरी सब संपत्ति और लक्ष्मी व सामग्री राज्य में लगा ली जायगी ।

गिरीश — वाह रे विवेकी ! सुन जैन — ऐ मेरे सुयोग्य न्यायी !

शैलाक्ष — क्या यह कानून में लिखा है ?

पुरश्री — तुझे आप कानून दिखला दिया जायगा क्योंकि जितना तू न्याय न्याय पुकारता है उससे अधिक न्याय तेरे साथ बरता जायगा ।

गिरीश — आहा ! वाह रे न्याय ! देख जैनी कैसे विवेकी न्यायकर्त्ता हैं ।

शैलाक्ष — अच्छा मैं उसकी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ — तमस्सुक का तिगुना देकर वह अपनी राह ले ।

बसंत — ले यह रुपये हैं ।

पुरश्री — ठहरो, इस जैनी के साथ पूरा न्याय किया जायगा, थोड़ा धीरज धरो, शीघ्रता नहीं है, उसे दंड के अतिरिक्त और कुछ न दिया जायगा ।

गिरीश — ओ जैनी देख तो कैसे धार्मिक और योग्य न्यायी हैं । वाह वाह !

पुरश्री — तो अब तू मांस काटने की प्रस्तुतियाँ कर, परंतु सावधान, स्मरण रखना कि रक्त नाम को भी न निकलने पावे और न आध सेर मांस से न्यून वा अधिक कटे । यदि तूने ठीक आध सेर से थोड़ा सा भी न्यूनाधिक काटा यहाँ तक कि यदि उसमें एक रत्ती बीसवें भाग का भी अंतर पड़ा, वरंच यदि तराजू की डाँडी बीच से बाल बराबर भी इधर या उधर हटी तो तू जी से मारा जायगा और तेरा सब धन और धान्य छीन लिया जायगा ।

गिरीश — वाह वाह ! मानो महाराज विक्रम आप ही न्याय के लिए उतर आए हैं ! अरे जैनी देख

महाराज विक्रम ही तो हैं ! भला अधम तू अब मेरे हाथ चढ़ा है ।

पुरश्री— ओ जैनी तू अब किस सोच विचार में पड़ा है ? अपना दंड ग्रहण कर ले ।

शैलाक्ष— अच्छा मुझे मेरा मूल दे दो मैं अपने घर जाऊँ ।

बसंत— ले, यह रुपया उपस्थित है ।

पुरश्री— यह भरी सभा में रुपये का लेना अस्वीकार कर चुका है । अब इसे न्याय और दंड के अतिरिक्त कुछ न मिलेगा ।

गिरीश— विक्रम महाराज ! सचमुच यह विक्रम ही तो हैं । ऐ जैनी, मैं तेरा धन्यवाद करता हूँ कि तू ने मुझे अच्छा शब्द बतला दिया ।

शैलाक्ष— क्या मुझे मेरी मूल धन भी न मिलेगा ?

पुरश्री— तुझे दंड के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलने का । इससे ऐनी जैनी अपने जी पर खेल कर उसे वसूल कर ले ।

शैलाक्ष— अच्छा मैंने उसे राक्षस को सौंपा अब मैं यहाँ कदापि न ठहरूँगा ।

पुरश्री— ठहर ओ जैनी, तुझपर कानून की एक और धारा है । वंशनगर के कानून में यह लिखा है कि यदि किसी परदेसी के विषय में यह सिद्ध हो कि उसने प्रकट या गुप्त रीति पर वंशनगर के किसी रहने वाले के वध करने की चेष्टा की तो वह प्रतिवादी जिसके विषय में ऐसा यत्न किया गया हो अपने प्रतिवादी की आधी सम्पत्ति पर अधिकार दिला पाने का दायी है और शेष आधा राजकोष में ग्रहण किया जायगा । अपराधी के मुक्त करने का केवल मंडलेश्वर को अधिकार है, उसमें कोई दूसरा हस्तक्षेप नहीं कर सकता । तो जान, ओ जैनी कि इस समय तेरी अवस्था अत्यंत दुर्बल है क्योंकि मुकद्दमा के विवरण से यह स्पष्ट है कि तू ने जान बूझ कर प्रतिवादी के प्राण लेने की चेष्टा की और इस भाँति उस आपत्ति में, जिसका मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूँ, फँसा है । इसलिये तुझको उचित है कि मंडलेश्वर के चरणों पर सिर रखकर दया की प्रार्थना कर ।

गिरीश— सुन जैनी, मैं तुझे एक उपाय बताऊँ ; मंडलेश्वर से निवेदन कर कि तुझे आप फाँसी लगाकर मर जाने की आज्ञा दें । परंतु तेरा धन संपत्ति तो छीन ली जायगी अब तेरे पास इतना बचेगा कहाँ कि रस्सी मोल ले सके, इस लिये तुझको राजा ही के व्यय से फाँसी देनी पड़ेगी ।

मंडलेश्वर— जिसमें तुझे हमारे और अपने स्वभाव में अंतर जान पड़े मैंने बेमाँगे तेरा जी बचा दिया । अब रही तेरी सम्पत्ति सो उसमें से आधी तो अनंत की हो चुकी और आधी राज्य की, जिसके पलटे में यदि तू दीनता प्रकाश करेगा तो दंड ले लिया जायगा ।

पुरश्री— अर्थात् जितना राज्यांश है उसके बदले में, अनंत के भाग से कुछ प्रयोजन नहीं ।

शैलाक्ष— नहीं मेरा प्राण और सब कुछ ले लीजिए, वह भी न क्षमा कीजिए । जब कि आप उस आधार को जिस पर मेरा घर खड़ा है लिए लेते हैं तो मेरे घरको पहले ले चुके, इस भाँति जबकि आपने मेरे जीवन का आधार छीन लिया तो मानो मेरा प्राण पहले ले चुके ।

पुरश्री— अनंत तुम उसके साथ कितनी दया कर सकते हो ।

गिरीश— भगवान के वास्ते सिवाय एक रस्सी के जिससे वह फाँसी लगाकर मर सके और कुछ व्यर्थ न देना ।

अनंत— मैं मंडलेश्वर और राजसभा से विनती करता हूँ कि उसके अर्धभाग के बदले का दंड मैं इस शर्त पर देने को प्रस्तुत हूँ कि वह भाग शैलाक्ष मेरे पास धरोहर की भाँति जमा रहने दे, जिसमें उसके मरने पर जो मनुष्य हाल में उसकी लड़की को ले भागा है उसको सौंप दूँ । परंतु इसके साथ दो प्रण हैं अर्थात् पहले तो वह इस वर्त्ताव के लिये आर्य हो जाय और दूसरे इस समय सभा में एक दानपत्र इस आशय का लिख दे कि उसके मरने पर उसकी सारी सम्पत्ति उसके जमाता लवंग और उसकी लड़की को मिले ।

मंडलेश्वर— उसे यह करना पड़ेगा, नहीं तो मैंने जो क्षमा की आज्ञा अभी दी है उसे काट देता हूँ ।

पुरश्री— क्यों जैनी तू इस पर प्रसन्न है, कह क्या कहता है ?

शैलाक्ष— मैं प्रसन्न हूँ ।

पुरश्री— लेखक अभी एक दानपत्र लिखो ।

शैलाक्ष— भगवान् के निहोरे मुझे यहाँ से जाने की आज्ञा दीजिए, मेरी बुरी दशा है । पांडुलिपि मेरे मकान पर भेज दीजिए मैं हस्ताक्षर कर दूँगा ।

मंडलेश्वर— अच्छा जा, परन्तु हस्ताक्षर कर देना ।

गिरीश— आर्य्य होने से तेरे दो धर्म बाप होंगे । कदाचित मैं न्याय कर्त्ता होता तो दस और होते जिसमें तुझे आर्य्य करने के लिए मंदिर भेजने के बदले में

सूली पर पहुँचा देते ।

(शैलाक्ष जाता है)

मंडलेश्वर— महाशय मैं प्रार्थना करता हूँ कि आज आप मेरे साथ भोजन करें ।

पुरश्री— महाराज मुझे क्षमा करें, मुझे आज ही रात को पांडुपुर जाना है और यह अत्यन्त आवश्यक है कि मैं अभी चला जाऊँ ।

मंडलेश्वर— मैं खेद करता हूँ कि आपको अवकाश नहीं है । अनंत इनका भली भाँति सत्कार करो क्योंकि मेरी जान तुम पर इनका बड़ा उपकार है ।

(मंडलेश्वर, बड़े बड़े प्रधान और उनके चाकर जाते हैं)

बसंत— ऐ मेरे सुयोग्य उपकारी, आज मैं और मेरे मित्र आपके बुद्धि वैभव से आपत्ति से मुक्त हुए, जिसके बदले छ सहस्र मुद्रा जो जैन के पाने थे मैं बड़ी प्रसन्नता से आपकी भेंट करता हूँ क्योंकि आपने हमारे निमित्त कष्ट सहन किया है ।

अनंत— और इनके अतिरिक्त हम लोग जन्म भर तन मन से आपके दास बने रहेंगे

पुरश्री— जिस मनुष्य का चित्त अपने किए पर तुष्ट हुआ उसने अपनी सारी मजदूरी भरपाई और मेरे चित्त को इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि आप मेरे द्वारा मुक्त हुए, इससे मैं समझता हूँ कि आपने मुझको सब कुछ दिया । मेरे चित्त में आज तक मिहनताना पाने का ध्यान नहीं हुआ है, क्योंकि मुझे किराये के टट्टू बनने से घृणा है । कृपापूर्वक जब मेरा आपका कभी फि साक्षात् हो तो मुझे स्मरण रखियेगा । ईश्वर आपकी रक्षा करें, अब मैं विदा होता हूँ ।

बसंत— महाशय मेरा धर्म है कि इस बारे में आपसे फिर प्रार्थना करूँ, कृपा करके कोई वस्तु हम लोगों के स्मरणार्थ मिहनताने करके नहीं वरंच एक स्मारक चिन्ह की भाँति स्वीकार कीजिए । मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी दो बातें स्वीकार करें, एक तो यह है कि आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें और दूसरे मेरी धृष्टता को क्षमा करें ।

पुरश्री— आप मुझे अत्यन्त दबाते हैं इसलिये अब अधिक अस्वीकार करना निश्शीलता है । अच्छा एक तो मुझे आप अपने दस्ताने दें, मैं उन्हें आपकी प्रसन्नता के लिये पहनूँगा और दूसरे आपके स्नेह के चिह्न में इस अँगूठी को लूँगा । हाथ न खींचिए, मैं और कुछ न लूँगा पर मुझे निश्चय है कि आप मेरे स्नेह से निहोरे इसके देने में अनंगीकार न करेंगे ।

बसंत— यह अंगूठी महाशय ! खेद, यह तो एक अत्यन्त तुच्छ वस्तु है मुझे आपको देते लज्जा आती है ।

पुरश्री— मैं इसको छोड़ और कुछ कदापि न लूँगा और मुख्य करके मेरा जी इसके लेने को बहुत ही चाहता है ।

बसंत— मैं इसके मोल लेने के ध्यान से यह बातचीत नहीं करता, इसमें कुछ और ही भेद है । वंशनगर के राज्य में जो अंगूठी सब से अधिक मूल्य की होगी उसे मैं सूचना देकर मँगवाऊँगा और आप के अर्पण करूँगा पर केवल इस अँगूठी के लिये आप मुझे क्षमा करें ।

पुरश्री— बस महाशय बस, मैंने समझ लिया कि आप बातों के बड़े धनी हैं । पहले तो आपने मुझे भीख माँगना सिखलाया और अब यह ढंग बताते हैं कि भिखमंगे को किस भाँति टालना चाहिए ।

बसंत— मेरे सुहृद, यह अगूँठी मुझे मेरी स्त्री ने दी थी और जिस समय कि उसने इसे मेरी उँगली में पहनायी तो मुझ से इस बात की प्रतिज्ञा ले ली कि न तो मैं इसे कभी बेचूँ, न किसी को दूँ और न खोऊँ ।

पुरश्री— इस भाँति के चुटकुले प्राय: बहाना करनेवालों के पास गढ़े गढ़ाए रहते हैं । यदि आपकी स्त्री पागल न होगी तो वह इस बात के कह लेने पर कि मैंने आप के साथ इस अँगूठी की लागत से कितना बढ़कर सुलूक किया, इसके दे डालने पर आप से सदा के लिये शुत्रुता कदापि न ठान लेंगी । अच्छा मेरा प्रणाम लीजिए ।

(पुरश्री और नरश्री जाती हैं)

अनंत— मेरे सुहृद बसंत अँगूठी उन्हें दे दो । इस समय उनकी उपकार और मेरी प्रीति को अपनी स्त्री की आज्ञा से बढ़कर समझो ।

बसंत— जाओ गिरीश, दौड़कर उन तक पहुँचो, यह अँगूठी उनको भेंट करो और यदि बन पड़े तो उन्हें किसी भाँति अनंत के घर पर लाओ, बस अब चले ही जाओ देर न करो ! (गिरीश जाता है) आओ हम तुम भी वहीं चले, कल बडे तड़के हम दोनो विल्वमठ की ओर चलेंगे, आओ अनंत ।

(दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान — वंशनगर की एक सड़क

(पुरश्री और नरश्री आती हैं)

पुरश्री — जैन के घर का पता लगा कर उससे झटपट इस पांडुलिपि पर हस्ताक्षर करा लो । हम लोग आज ही रात को चलते होंगे, जिसमें अपने पति से एक दिन पहले घर पहुँच रहें । लवंग इस लिपि को देखकर अत्यंत प्रसन्न होगा ।

(गिरीश आता है)

गिरीश — महाराज बढ़ी बात हुई कि आप मिल गए । मेरे मालिक बसंत ने अंतत: सोच समझ कर वह अँगूठी आप की सेवा में भेजी है और प्रार्थना की है कि आज आप उन्हीं के साथ भोजन करें ।

पुरश्री — मैं असमर्थ हूँ, हाँ उनकी अँगूठी मैंने सिर आँखों से स्वीकार की । तुम मेरी ओर से जाकर विनती कर देना । अब तुम इतनी कृपा और करो कि मेरे लेखक को शैलाक्ष का घर दिखला दो ।

गिरीश — मैं प्रस्तुत हूँ .।

नरश्री — (पुरश्री से) महाशय मैं आप से कुछ विनय किया चाहता हूँ । (अलग ले जाकर कहती हैं) देखिए मैं भी अपने पति की अँगूठी लेने का यत्न करती हूँ । मुझसे उन्होंने शपथ खाई थी कि मैं उसे जन्म भर अपने से पृथक न करूँगा ।

पुरश्री — अवश्य, चूकियो मत, हम लोगों को अच्छा अवसर हाथ आएगा । यह लोग शपथ खायँगे कि हमने अँगूठी पुरुषों को दी है परन्तु हम लोग उनकी एक न मानेंगी और आप सौगंद खाकर उन्हें झूठा बना लेंगी । बस अब चली ही जाव, तुम जानती हो जहाँ मैं ठहरी रहूँगी ।

नरश्री — आइए महाशय, मुझे वह घर बतला दीजिए ।

(दोनों जाते हैं)

पाँचवाँ अंक

पहिला दृश्य

स्थान — विल्वमठ, पुरश्री के घर का प्रवेशद्वार

(लवंग और जसोदा आते हैं)

लवंग — आहा ! चाँदनी क्या आनंद दिखा रही है ! मेरे जान ऐसी ही रात में जब कि वायु इतना मंद चल रहा था कि वृक्षों के पत्तों का शब्द तक सुनाई न देता था, त्रिविक्रम दुर्ग की भीत पर चढ़ कर कामिनी की राह ताकता हुआ, जो यवनपुर के खेमे में थी, हृदय से ठंडी साँस निकाल रहा था ।

जसोदा — ऐसी ही रात में कादम्बिनी ओस पड़ी हुई घास पर डर डर कर कदम रखती थी कि यकायक सिंह की पर्छाई सामने देखकर बेचारी भय से भाग गई ।

सिंह की पर्छाई सामने देखर बेचारी भय से भाग गई ।

लवंग — ऐसी ही रात में जयलक्ष्मी समुद्र के किनारे खड़ी होकर छड़ी से अपने प्यारे को कामपुर लौट आने के लिये संकेत करती थी ।

जसोदा — ऐसी ही रात में मालिनी ने जड़ी बूटियों को जंगल में एकत्र किया था, जिनके प्रभाव से बूढ़ा पुरुष जवान हो गया ।

लवंग — ऐसी ही रात में जयलक्ष्मी समुद्र के पिता के घर से निकल भागी और एक दरिद्र प्रेमी के साथ वंशनगर से विल्वमठ को चली आई ।

जसोदा — ऐसी ही रात में लवंग ने उससे चित्त से प्रेम करने की सौंगद खाई और निर्वाह का प्रण करके उसका मन छीन लिया परंतु एक भी सच्चे न निकले ।

लवंग — ऐसी ही रात में कामिनी जसोदा ने दुष्टता से अपने प्रेमी पर दोष लगाया और उसने कुछ न कहा ।

जसोदा — क्या कहूँ मैं तो तुम को बात ही बात में बेबात कर देती यदि कोई आता न होता । देखो मुझे किसी के पैर की आहट जान पड़ती है ।

(तूफानी आता है)

लवंग — रात के ऐसे सन्नाटे में कौन इतना शीघ्र चला आता है !

तूफानी — मैं हूँ, आप का एक मित्र ।

लवंग — ऐं मित्र ? कैसे मित्र ? भला मित्र, कृपा करके अपना नाम तो बताओ ?

तूफानी — मेरा नाम तूफानी है । मैं यह समाचार लाया हूँ कि मेरी स्वामिनी आज मुँह अँधेरे विल्वमठ में पहुँच जायँगी । वह मंदिरों में घुटने के बल विवाह मंगल होने की प्रार्थना कर रही हैं ।

लवंग — उनके साथ और कौन आता है ?

तूफानी — कोई नहीं, केवल वह आप एक जोगिन के भेष में और उनकी सहेली । पर यह तो कहिए कि हमारे स्वामी अभी तक लौट आए या नहीं ।

लवंग — न वह आए हैं न कुछ उनका हाल विदित हुआ है । पर आओ जसोदा हम तुम भीतर चलकर घर के स्वामी के शिष्टाचार का प्रबंध कर

रक्खें ।

(गोप आता है)

गोप— धूतू धूतू पिपी पिपी धूतू धूतू !

लवंग— कौन पुकारता है ?

गोप— धूतू धूतू ! तुम जानते हो कि लवंग महाशय और उनकी स्त्री कहाँ है ? धूतू धूतू !

लवंग— अरे कान न फोड़े डाल, इधर आ ।

गोप— धूतू धूतू ! किधर ? किधर ?

लवंग— यहाँ ।

गोप— उनसे कह दो कि मेरे स्वामी के पास से एक दूत आया है । जिस की तुरुही मंगल समाचारों से भरी हुई है, वह सवेरा होते होते यहाँ पहुँच जायँगे ।

लवंग— प्यारी आओ, घर में चल कर उनके आने की राह देखें, या अच्छा यहीं बैठी रहो भीतर जाने की कौन सी आवश्यकता है । भाई तूफानी नेक भीतर जाकर लोगों से जना दो कि तुम्हारी स्वामिनी आती हैं और अपने साथ गवैयों को बाहर बुलाते लाओ ।

(तुफानी जाता है)

इस बुरुज पर चाँदनी कैसी छिटक रही ! आओ हम तुम यहीं बैठकर गाना सुनें । एक तो सन्नाट मैदान और दूसरी रात, यह दोनों राग का आनंद दूना बढ़ा देते हैं । बैठो जसोदा, देखो तो आकाश क्या शोभा दिखला रहा है, यह प्रतीत होता है कि मानों उसमें हजारों सोने के कुंकुमे लटकते हैं । जितने यह दृष्टि आते हैं इनमें से छोटे से छोटे की चाल से भी देवताओं के राग का सा शब्द आता हैं, मानों वह उनके शब्द के सात सुर मिलाते हैं । ऐसा ही सुरीलापन मनुष्य के निश्शब्द आत्मा में भी है परंतु वह इस भौतिक वस्त्र को, जो नष्ट हो जाने वाला है, पहने है इसलिये हम उसके मीठे राग को सुन नहीं सकते ।

(गाने बजाने वाले आते हैं)

इधर आओ और कोई राग ऐसा छेड़ो कि तानसेन भी नींद से चौंक उठे और जब तुम्हारे मीठे सुरों का आलाप तुम्हारी स्वामिनी के कान तक पहुँचे तो वह भी विवश होकर घर की ओर दौड़ी आवें ।

जसोदा— मैं तो जिस समय अच्छा राग सुनती हूँ सब सुध बुध दूर भाग जाती है ।

(लोग गाते हैं)

लवंग— इसका कारण यह है कि तुम अपना ध्यान जमाती और उस पर सोचती हो । तुमने देखा होगा कि नये सीधे बछड़े जिन्हें किसी ने हाथ तक न लगाया हो आपस में क्या क्या कुलेलें करते, छलाँगे मारते और हिनहिनाते हैं जिससे उनके रुधिर की गर्मी जानी जाती है । परंतु यदि संयोग से उनके सामने तुरुही या किसी दूसरे प्रकार का बाजा बजाया जाय तो वह शीघ्र ही सबके सब ठठक कर खड़े हो जायँगे और राग के प्रभाव से कुछ देर के लिये उनकी घबड़ाहट दूर हो जायगी । एक कवि का कथन ठीक है कि तानसेन के गाने का प्रभाव वृक्ष, पत्थर, जल पर भी होता था क्योंकि कोई वस्तु ऐसी कठोर और भयानक नहीं जिसकी प्रकृति-स्वभाव को अधिक नहीं तो थोड़ी ही देर के लिये राग बदल न देता हो । जिस मनुष्य को गाने का आनंद नहीं और जिसके जी पर सुरीले शब्द का प्रभाव नहीं होता उससे अत्याचार, छल और चोरी इत्यादि जो कुछ न हो सब थोड़ा है क्योंकि ऐसे मनुष्य का चित्त नरक से अधिक अंधा और भ्रष्ट और बुरा होता है और वह कदापि विश्वास के योग्य नहीं होता । तुम ध्यान देकर गाना सुनो ।

(पुरश्री और नरश्री कुछ दूर पर चली आती हैं)

पुरश्री— वह प्रकाश जो सामने दृष्टि पड़ता है मेरे ही दालान में हो रहा है । देखो तो एक छोटे से दीपक का प्रकाश कितनी दूर तक फैला हुआ है । इसी भाँति संसार में शुभकर्म चमकता है ।

नरश्री— जब चाँदनी थी तो यह प्रकाश जान नहीं पड़ता था ।

पुरश्री— इसी भाँति बड़ा तेज अपने सामने छोटे तेज को दबा लेता है । किसी कवि ने कितना ठीक कहा है — दिये (दीपकों) की तो प्रकट में चमक है, पर दिये (दान) का प्रकाश परलोग में भी है । राजा की अनुपस्थिति में उसके प्रतिनिधि ही की प्रतिष्ठा राजा के समान होती हैं परंतु उसके सामने जैसे नदी की समुद्र के सामने कुछ गिनती नहीं उसका भी कोई मान नहीं होता । ऐं देखो, कहीं से गाने का शब्द आता है ! कोई मान नहीं होता । ऐं देखो, कहीं से गाने का शब्द आता है !

नरश्री— सखी यह आप ही के महल में गाना हो रहा है ।

पुरश्री— इसमें संदेह नहीं कि हर वस्तु के लिये एक नियत काल है और उसी समय वह भली जान पड़ती है । मेरी सम्मति में इस समय गाना दिन की अपेक्षा अधिक मनोहर होता है ।

नरश्री— सखी यह आनंद एकांत के कारण से प्राप्त हुआ है ।

पुरश्री— यदि कोई कान ही न दे तो कौवे का शब्द वैसा ही कोमल और मधुर है जैसा कोयल का और मेरी सम्मति में दिन को जब कि बत्तक काँव काँव कर

रही हों, बुलबुल हजारदास्ताँ का चहचहाना कोलाहल से बुरा है । कितनी वस्तुओं की सुंदरता और उत्तमता समय ही पर जानी जाती है । बस बंद करो, चंद्रमा समुद्र के साथ सोने को गया और अभी उसकी आँख नहीं खुलने की ।

(गाना बंद हो गया)

लवंग— यदि मेरे कानों ने त्रुटि न की तो यह शब्द पुरश्री का है !

पुरश्री— मेरा शब्द तो इस समय मानों अंधे के लिये लकड़ी हो गया ।

लवंग— ऐ मान्य सखी, आपके कुशलपूर्वक लौट आने पर धन्यवाद देता हूँ ।

पुरश्री— हम लोग अपने अपने स्वामी की कुशलता की प्रार्थन करती थीं और हम आशा करती हैं कि हमारी प्रार्थन स्वीकार हुई । वह लोग आए ?

लवंग— इस समय तक तो नहीं आए हैं परंतु उनके पास से अभी एक दूत समाचार लाया है कि वह लोग निकट ही हैं ।

पुरश्री— नरश्री भीतर जाकर नौकरों से कह दो कि वह हमारे बाहर जाने के विषय में किसी से कुछ न कहें, लवंग तुम भी ध्यान रखना और तुम भी स्मरण रखना जसोदा ।

(तुरुही की ध्वानि सुनाई देती है)

लवग— आपके पति आन पहुँचे, मेरे कान में उनकी तुरही का शब्द आता है । हम लोग लुतरे नहीं हैं, आप तनिक भय न कीजिए ।

पुरश्री— आज के सबेरे की दशा तो कुछ पीड़ित सी जान पड़ती है क्योंकि उसके मुँह पर नियम से अधिक पियराई छा रही है जैसा कि सूर्यास्त के समय दृष्टि आती है ।

(बसंत, अनंत, गिरीश ओर उनके नौकर चाकर आते हैं)

बसंत— यदि सूर्यास्त होने पर आप घूँघट उलट कर निकल आएँ तो हम को उसके अस्त होने की कुछ चिंता न हो ।

पुरश्री— ईश्वर करे मुख की कान्ति आपको प्रकाशित कर सके परंतु मेरी गति में चमक न आए क्योंक चमक मटक छिछोरेपन का चिह्न है जिसका परिणाम यह होता है कि अंत को स्वामी के चित्त में अपनी स्त्री की ओर से एक चमक आ जाती है, इसलिये ईश्वर मुझ को इस आपत्ति से बचाए । आपका जाना हम लोगों को शुभंकर हो ।

बंसत— प्यारी मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ, पर इस समय तुम मेरे मित्र के आने पर प्रसन्नता प्रकट करो । यही अनंत हैं जिनका मैं अंत :करण से अत्यंत उपकृत हूँ ।

पुरश्री— इसमें कोई संदेह है, आप को अवश्य उपकार मानना चाहिए क्योंकि जहाँ तक मैंने सुना है उन्होंने आप के साथ बड़ा उपकार किया है ।

अनंत— आप लोग इस कहने से मुझे व्यर्थ लज्जित करते हैं, मैंने तो जो कुछ सेवा की होगी उससे कहीं अधिक भर पाया ।

पुरश्री— महाशय आपके पधारने से हमारे घर की शोभा और हम लोगों की प्रसन्नता दूनी हुई परंतु मुख से कहना बनावट है और मैं अपने आंतरिक हर्ष को बनावट की आवश्यकता नहीं समझती ।

(गिरीश और नरश्री पृथक् बात करते जान पड़ते हैं)

गिरीश— शपथ है अपने प्राण की तुम मुझ पर झूठा दोष लगाती हो, मैंने सचमुच उसे न्यायकर्त्ता के लेखक को दिया ।

पुरश्री— वाह वाह आते ही झगड़ा होने लगा ! यह क्या बात है ?

गिरीश— एक सोने के छल्ले के लिये, एक टके की मुँदरी के लिये जो आपने दी थी और जिस पर यह वाक्य खुदा था जैसा प्राय : बिसातियों की छुरियों पर लिखा होता है — 'मुझसे स्नेह रक्खो और कभी जुदा न हो' ।

नरश्री— तुम लिखने और मूल्य का क्या कहते हो । क्या तुमने लेने के समय शपथ नहीं खाई थी कि मैं उसे आमरण अपनी उँगली में रक्खूँगा और वह मेरे साथ समाधि में जायगी ? यदि मेरा कुछ ध्यान न था तो भला अपनी कठिन सौगंदों का तो ध्यान करते । हंह ! न्यायी के लेखक को दिया ! मैं भली भाँति जानती हूँ कि जिस लेखक को तुम ने दिया है उसके मुँह पर दाढ़ी कभी न निकलेगी ।

गिरीश— क्यों नहीं, जब वह पूर्ण युवा होगा तो अवश्य निकलेगी ।

नरश्री— हाँ, यदि स्त्री पुरुष हो सकती हो ।

गिरीश— शपथ भगवान की, मैंने उसे एक लड़के को दिया, एक मझले कद के छोकरे को जो तुम से ऊँचा न था । यही विचारपति का लेखक था । उसने ऐसी मीठी मीठी बातें करके अँगूठी पारितोषिक में माँगी कि मैं अनंगीकार न कर सका और उसको सौंपते ही बनी ।

पुरश्री— सुनो साहिब मैं स्पष्ट कहती हूं कि

इस विषय में सब दोष तुम पर है कि एक लड़के की बातों में आकर अपनी स्त्री का दिया हुआ पहला चिन्ह उसे दे डाला और वह वस्तु, जिस पर तुम ने अपनी उँगली में पहनने के समय सौगंद की बौछार मचा दी थी और प्रतिज्ञा के ढेर लगा दिए थे, ऐसे सहज में दे डाली । मैंने भी अपने प्यारे स्वामी को एक अंगूठी दी है और उसने शपथ ले ली है कि उसे कभी जुदा न करे । यह देखिए यहाँ उपस्थित हैं । परंतु उनकी संती मैं शपथ खा सकती हूँ कि यदि कोई उन्हें कुबेर का भंडार भी अर्पण करे तो वह उसे अपनी उँगली से न उतारें, दे डालना तो दूर है । तात्पर्य यह कि गिरीश तुम ने अपनी स्त्री को व्यर्थ इतना बड़ा दुःख दिया । यदि मैं उसके स्थानापन्न होती तो इस समय क्रोध के मारे पागल हो जाती ।

बंसत — (आप ही आप) इस समय इससे उत्तम कोई उपाय नहीं कि मैं अपना बायाँ हाथ काट डालूँ और शपथ खा लूँ कि जहाँ तक बस चला रक्षा की परंतु अंत को जब हाथ कट गया तो उसी के साथ अंगूठी भी गई ।

गिरीश — मेरे स्वामी बसंत ने अपनी अंगूठी विचाराधीश को उसकी प्रार्थना पर दे दी और निस्संदेह उसने काम भी ऐसा ही किया था । इस पर उसके लेखक ने लिखाई की संती मेरी अँगूठी माँगी और अभाग्य यह कि उसे और उसके स्वामी दोनों को इस बात का आग्रह हुआ कि सिवाय उन अँगूठियों के और कोई वस्तु हाथ से न छुएँगे ।

पुरश्री — क्यों साहब आपने कौन सी अँगूठी दी ? वह तो काहे को दी होगी जो आपने मुझ से पाई थी ।

बंसत — यदि मुझे झूठ बोल कर अपने अपराध को दूना कर देना स्वीकार हो तो हाँ निस्संदेह अस्वीकार करूँ परंतु तुम देखती हो कि मेरी उँगली में अँगूठी नहीं है, वह जाती रही ।

पुरश्री — ऐसे ही आपका निर्दय चित्त भी स्नेह से शून्य है । शपथ भगवान की, जब तक आप मेरी अँगूठी मेरे सामने लाकर न रखिएगा मैं आपके साथ अंक में सोना पाप समझूँगी ।

पुरश्री — और मैं भी जब तक अपनी अँगूठी देख न लूँगी आपसे बात न करूँगी । (गिरीश से)

बंसत — मेरी प्यारी पुरश्री, यदि तुम्हें विदित हो कि मैंने अँगूठी किसे दी, किसके लिये क्यों दी और कैसी निर्वशता से दी जब कि वह पुरुष सिवा उस अँगूठी के दूसरी वस्तु के लेने पर प्रसन्न ही नहीं होता था तो तुम्हारा क्रोध इतना न रह जाय ।

पुरश्री — यदि आप को अँगूठी का गौरव विदित होता, या आपने उसके देने वाली को आधा भी दिया होता, या अपनी बात का कि मैं सदा अँगूठी प्राण सदृश रक्खूँगा नेक भी विचार किया होता तो आप उसे कभी अपने से जुदा न करते । भला कौन ऐसा मूर्ख होगा कि आप से निर्लज्जता के साथ एक रीति की वस्तु को माँगे जाता, यदि आप ने कुछ भी चित्त से उसके न देने का यत्न किया होता । नरश्री का विचार मुझे यथार्थ प्रतीत होता है, मैं शपथ खा सकती हूँ कि आप ने अँगूठी अवश्य किसी स्त्री को दी ।

बंसत — प्यारी, मैं अपनी प्रतिष्ठा, अपने प्राण की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने उसे किसी स्त्री को नहीं दिया वरंच एक वकील को, जिसने छ हजार रुपया लेना अस्वीकार किया और केवल वह अँगूठी माँगी । फिर भी मैंने निवेदन किया और उसे अप्रसन्न होकर चले जाने दिया यद्यपि यह वह पुरुष था जिसने मेरे प्यारे मित्र की जान बचाई थी । मेरी प्यारी तुम ही बतालओ कि मैं क्या करता ? मेरे शील ने सहन न किया कि ऐसे उपकारी को अप्रसन्न करूँ, मुझे बड़ी लज्जा पर्दे पड़ी और स्वभाव इस बात को सह न सका कि मैं अपनी मर्यादा में कृतघ्नता का धब्बा लगाऊँ । अंत को मुझे विवश होकर अँगूठी उसके पीछे भेज देनी पड़ी । मेरी प्यारी मेरा अपराध क्षमा करो । शपथ है यदि तुम वहाँ होती तो अँगूठी को मुझ से छीन कर उस योग्य वकील को सौंप देती ।

पुरश्री — अच्छा अब उस वकील की ओर से सचेत रहना और उसको मेरे घर के निकट कदापि न फटकने देना क्योंकि जिस वस्तु से मुझको प्रीति थी और आपने मेरे निहोरे सदा अपने पास रखने की शपथ खाई थी वह उसके हाथ में आ गई तो मैं भी आप की भाँति उदारता पर कमर बाँधूगी और जो कुछ वह मुझ से माँगेगा उसके स्वीकार करने से मुँह न मोड़ूँगी । पहिचान तो मैं उसको लूँ ही गी, इसमें किसी भाँति का संदेह नहीं । अब आप को उचित है कि कभी रात के समय घर से बाहर न जायँ और आठ पहर मेरी रक्षा करते रहें । यदि आपने मुझे किसी दिन अकेला छोड़ा तो शपथ है अपने लज्जा की जिस पर अब किसी पुरुष की परछाई नहीं पड़ी है, मैं उस वकील को अपने पास सुला लूँगी ।

नरश्री — और मैं उसके लेखक को, इसलिये सावधान कभी मुझको मेरे भरोसे पर छोड़ कर न जाना ।

गिरीश — अच्छा जैसा तुम्हारा जी चाहे करो,

पर उस अवस्था में उसे मेरे पंजे से बचाए रहना नहीं तो लेखक साहब की लेखनी पर आपत्ति आ जायगी ।

अनंत — मैं ही अभागा इन झगड़ों का कारण हूँ !

पुरश्री — आप न उदास हूजिए, आपके आने की मुझे बड़ी प्रसन्नता है ।

बंसत — पुरश्री, इस बार मेरा अपराध जो निरी निर्विशता की अवस्था में हुआ क्षमा कर दो और अब मैं इन सब मित्रों के सामने तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ वरंच तुम्हारी आँखों की जिनमें मेरा प्रतिबिंब दृष्टि पड़ता है शपथ कर कहता हूँ कि —

पुरश्री — देखिए नेक आप लोग इस बात को विचारिए, वह मेरे दो नेत्रों में अपना दुहरा प्रतिबिंब देखते हैं यानी हर नेत्र में एक, इसलिये आप अपनी दुहरी सूरत की शपथ खाइए तो हाँ विश्वास हो ।

बंसत — अच्छा थोड़ा मेरी सुन लो । इस अपराध को क्षमा करो और अब मैं अपने जीवन की सौगंद खाता हूँ कि अब फिर कभी तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा से भ्रष्ट न हूँगा ।

अनंत — मैंने एक बार रुपयों के बदले अपना शरीर इनके लिये धरोहर रक्खा था और यदि वह मनुष्य, जिसने आपके स्वामी की अँगूठी ली, न होता तो यह अब तक कभी का नष्ट हो गया होता । अब मैं इस बार अपने प्राण को जमानत में दे करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपके स्वामी फिर कभी जान बूझ कर अपना बचन न तोड़ेंगे ।

पुरश्री — तो मैं आपको उनका जामिन समझूँगी । अच्छा उन्हें यह अँगूठी दीजिए ओर शपथ ले लीजिए कि इसको पहली से अधिक सावधानी के साथ रक्खें ।

अनंत — लो बसंत इसको लो और शपथ खाओ ।

बसंत — शपथ भगवान की यह वही अँगूठी है, जो मैंने उस वकील को दी थी ।

पुरश्री — और मैंने भी तो उसी से पाई । बंसत मुझे क्षमा करना क्योंकि इसी अँगूठी के स्वत्व से वह मेरे साथ आकर सोया था ।

नरश्री — और मेरे सुहृद गिरीश आप भी मेरा अपराध क्षमा करें क्योंकि वही मझलाकद वकील का लेखक इस अँगूठी के बदले कल रात को मेरे साथ सोया हुआ था ।

गिरीश — ऐं, यह तो मानो भरी बरसात में खेत को कुएँ के पानी से सींचना है । क्या हम लोगों में कोई दोष पाया जो हमारी स्त्रियों ने हमें अपना भँडुआ बनाया ।

पुरश्री — इतनी असभ्यता से मत बको । आप लोग चकित हो गए । लीजिए यह पत्र पांडुपुर से बलवंत के पास आया है, इसे अवकाश के समय पढ़ियेगा, उससे आपको विदित होगा कि पुरश्री वकील थी और नरश्री उसकी लेखक । लवंग उपस्थित है वह साक्षी ही देंगे कि ज्योंही आप सिधारे मैं भी उसी क्षण चल दी और अभी चली आती हूँ यहाँ तक कि घर में पैर नहीं रक्खा । अनन्त महाराज आपका आगमन मंगल, मैं आपको वह समाचार सुनाती हूँ जिसका आपको स्वप्न में भी ध्यान ने होगा । इस पत्र की मुहर तोड़ कर पढ़िये, इसमें आप देखिएगा कि आपके तीन जहाज अनमोल माल से लदे हुए घाट (बन्दरगाह) में आ गए हैं । परन्तु मैं आपको यह न बतलाऊँगी कि मेरे हाथ यह पत्र क्योंकर लगा ।

अनंत — मेरे मुख से तो शब्द नहीं निकलता ।

बसंत — आप ही वकील थीं और मैं पहचाना तक नहीं !

गिरीश — आप ही वह लेखक हैं जो मुझे जोरू का भँडुआ बनाया चाहती हैं ?

नरश्री — जी हाँ, पर वह लेखक जिसकी इच्छा कभी ऐसा करने की नहीं परतु हाँ उस अवस्था में कि वह स्त्री से पुरुष बन सके ।

बसंत — मेरे सुहृद वकील अब आपको मेरे साथ सोना होगा और जब मैं न रहूँ उस समय मेरी स्त्री के साथ सोइए ।

अनंत — बबुई आप ने जीवन और उसकी सामग्री दोनों मुझे दी, क्योंकि इस पत्र से विदित हुआ कि वास्तव में मेरे कुशलता के साथ बंदरगाह में आ गए ।

पुरश्री — लवंग, मेरे लेखक के पास आप के लिये भी कुछ सौगात प्रस्तुत है ।

नरश्री — और मैं आपको बिना लिखाई लिए सौंपती हूँ, लीजिये यह उस धनी जैनी ने आपको और जसोदा को एक दानपत्र अपनी सारी संपत्ति का लिख दिया है, जिसके आप लोग उसके मरने पर उत्तराधिकरी होंगे ।

लवंग — महाशय जी, यह मानों भूखों के सामने मोहनभोग का ढेर लगा देना है ।

पुरश्री — सवेरा हो गया अब तक मेरी जान में आप लोगों का इन सब बातों के विषय पूरा तोष नहीं हुआ, इसलिये उचित होगा कि भीतर चलकर जो जो

संदेह हों उनके विषय मुझसे प्रश्न कीजिए और ब्योरेवार वृतांत सुनिए ।

गिरीश— बहुत ठीक —

है जब तक मेरे दम में दम डरूँगा हर घड़ी हर दम ।
रहेगा रात दिन खटका नरश्री की अँगूठी का ।

(सब जाते हैं)

इति

अंधेर नगरी

चौपट्ट राजा

यह प्रहसन भारतेन्दु ने बनारस में हिन्दी भाषी और कुछ बंगालियों की संस्था नेशनल थियेटर के लिए एक दिन मे सन् १८८१ मे लिखा था और काशी के दशाश्वमेध घाट पर ही उसी दिन अभिनीत भी हुआ । भारतेन्दु जी का इस संस्था के संरक्षक थे ।

— सं.

अंधेर नगरी चौपट राजा
टके सेर भाजी टके सेर खाजा

समर्पण

मान्य योग्य नहिं होत कोऊ कोरो पद पाए ।
मान्य योग्य नर ते, जे केवल परहित जाए ।।
जे स्वारथ रत धूर्त हंस से काक-चरित-रत ।
ते औरन हति बंचि प्रभुहि नित होहिं समुन्नत ।।
जदपि लोक की रीति यही पै अन्त धर्म जय ।
जौ नाहीं यह लोक तदपि छलियन अति जम भय ।।
नरसरीर मे रत्न वही जो परदुख साथी ।
खात पियत अरु स्वसत स्वान मुडुक अरु भाथी ।।
तासों अब लौं करो, करो सो, पै अब जागिय ।
गो श्रुति भारत देस समुन्नति मैं नित लागिय ।।
साँच नाम निज करिय कपट तजि अन्त बनाइय ।
नृप तारक हरि पद भजि साँच बड़ाई पाइय ।

ग्रंथकार ।

छेदश्चन्दनचूतचंपकवने रक्षा करीरद्रुमे
हिंसा हंसमयूरकोकिलकुले काकेषुलीलारतिः
मातंगेन खरक्रयः समतुला कर्पूरकर्पासयोः एषा
एषा यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः

अंधेर-नगरी

चौपट्ट राजा

टके सेर भाजी टके सेर खाजा ।

प्रथम दृश्य

(वाह्य प्रान्त)

(महन्त जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं)

सब—

राम भजो राम भजो राम भजो भाई ।
राम के भजे से गनिका तर गई,
राम के भजे से गीध गति पाई ।
राम के नाम से काम बनै सब,
राम के भजन बिनु सबहि नसाई ।।
राम के नाम से दोनों नयन बिनु
सूरदास भए कबिकुलराई ।
राम के नाम से घास जंगल की,
तुलसी दास भए भजि रघुराई ।।

महन्त— बच्चा नारायण दास ! यह नगर तो दूर से बड़ा सुन्दर दिखलाई पड़ता है ! देख, कुछ भिच्छा उच्छा मिले तो ठाकुर जी को भोग लगै । और क्या ।

ना. दा.— गुरु जी महाराज ! नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुन्दर है जो है सो, पर भिक्षा सुन्दर मिलै तो बड़ा आनन्द होय ।

महन्त— बच्चा गोबरधन दास ! तू पश्चिम की ओर से जा और नारायण दास पूरब की ओर जायगा । देख, जो कुछ सीधा सामग्री मिलै तो श्री शालग्राम जी का बालभोग सिद्ध हो ।

गो. दा.— गुरु जी ! मैं बहुत सी भिच्छा लाता हूँ । यहाँ लोग तो बड़े मालवर दिखलाई पड़ते हैं । आप कुछ चिन्ता मत कीजिए ।

महन्त— बच्चा बहुत लोभ मत करणा । देखना, हाँ —

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान ।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान ।।

(गाते हुए सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

(बाजार)

कबाबवाला—कबाब गरमागरम मसालेदार—चौरासी मसाला बहत्तर आँच का — कबाब गरमागरम मसालेदार — खाय सो होंठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै । कबाब लो, कबाब का ढेर — बेच टके सेर ।

घासीराम— चने जोर गरम —

चने बनावैं घासीराम । जिन की झोली में दूकान ।।
चना चुरमुर चुरमुर बोलै । बाबू खाने को मुँह खोलै ।।
चना खावै तौकी मैना । बोलै अच्छा बना चबैना ।।
चना खायं गफूरन मुन्ना । बोलै और नहीं कुछ सुन्ना ।।
चना खाते सब बंगाली । जिन धोती ढीली ढाली ।।
चना खाते मियां जुलाहे । डाढ़ी हिलती गाह बगाहे ।।
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।।
चने जोर गरम — टके सेर ।

नरंगीवाली— नरंगी ले नरंगी —सिलहट की नरंगी, बुटवल की नरंगी, रामबाग की नरंगी, आनन्दबाग की नरंगी । भई नीबू से नरंगी । मैं तो पिय के रंग न रंगी । मैं तो भूली लेकर संगी । नरंगी ले नरंगी । कंवला नीबू, मीठा नीबू, रंगतरा, संगतरा । दोनों हाथों लो — नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे । नरंगी ले नरंगी । टके सेर नरंगी ।

हलवाई— जलेबियां गरमा गरम । ले सेव इमरती लड्डू गुलाबजामुन खुरमा बुंदिया बरफी समोसा पेड़ा कचौड़ी दालमोट पकौड़ी घेवर गुपचुप । हलुआ हलुआ ले हलुआ मोहनभोग । मोयनदार कचौड़ी कचाका हलुआ नरम चभाका । घी में गरक चीनी में तरातर चासनी में चभाचभ । ले भूरे का लड्डू । जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी

पछताय । रेवड़ी कड़ाका । पापड़ पड़ाका । ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तिस कौम हैं भाई । जैसे कलकत्ते के विलसन मन्दिर के भितरिए, वैसे अंधेर नगर के हम । सब समान ताजा । खाजा ले खाजा । टके सेर खाजा ।

कुंजड़िन — ले धनिया मेथी सोआ पालक चौराई बथुआ करेमूं नोनियाँ कुलफा कसारी चना सरसों का साग । मरसा ले मरसा । ले बैंगन लौआ कोहड़ा आलू अरुई बण्डा नेनुआँ सूरन रामतरोई तोरई मुरई ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा । ले फालसा खिरनी आम अमरूत निबुआ मटर होरहा । जैसे काजी वैसे पाजी रैयत राजी टकेसेर भाजी । ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर ।

मुगल — बादाम पिस्ते अखरोट अनार बिहीदाना मुनक्का किशमिश अंजीर आबजोश आलूबोखरा चिलगोजा सेव नाशपाती बिही सरदा अंगूर का पिटारी । आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दाँत खट्टा ओ गया । नाहक को रुपया खराब किया । हिन्दोस्तान का आदमी लक लक हमारे यहाँ का आदमी बुंबक बुंबक लो सब मेवा टके सेर ।

पाचकवाला —

चूरन अमल बेद का भारी। जिस को खाते कृष्ण मुरारी।।
मेरा पाचक है पचलोना। जिको खाता श्याम सलोना।।
चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार।।
मेरा चूरन जो कोइ खाय। मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय।।
हिन्दू चूरन इस का नाम। विलायत पूरन इस का काम।।
चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा। कीना दाँत सभी का खट्टा।।
चूरन चला डाल की मंडी। इसको खाएँगी सब रंडी ।।
चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रुशवत तुरत पचावैं।।
चूरन नाटकवाले खाते। इस की नकल पचा कर लाते।।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।
चूरन खाते लाला लोग। जिनको अकिल अजीरन रोग।।
चूर खावै एडिटर जात। जिन के पेट पचै नहिं बात।।
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।
चूरन पूलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर ।।

मछलीवाली — मछरी ले मछरी ।

मछरिया एक टके कै बिकाय ।
लाख टका के वाला जोबन, गांहक सब ललचाय ।
नैन मछरिया रूप जाल में, देखतही फांसि जाय ।
बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिले बिना अकुलाय ।

जातवाला (ब्राह्मण) — जात ले जात, टके से जात । एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं । टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायं और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें । टके के वास्ते भूठ को सच करैं । टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान । टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचैं, टके के वास्ते भूठी गवाही दें । टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं । वेद धर्म्म कुल मरजादा सच्चाई बड़ाई सब टके सेर । लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर ।

बनियां — आटा दाल लकड़ी नमक घी चीनी मसाला चावल ले टके सेर ।

(बाबा जी का चेला गोबर्धनदास आता है और सब बेचनेवालों की आवाज सुन सुन कर खाने के आनन्द में बड़ा प्रसन्न होता है ।)

गो. दा. — क्यों भाई बणिये, आंटा कितणे सेर ?

बनियां — टके सेर ।

गो.दा. — औ चावल ?

बनिया — टके सेर ।

गो.दा. — औ चीनी ?

गो.दा. — टके सेर ।

गो.दा. — औ घी ?

बनिया — टके सेर ।

गो.दा. — सब टके से । सचमुच ।

बनिया — हां महाराज, क्या भूठ बोलूंगा ।

गो.दा. — (कुंजड़िन के पास जाकर) क्यों भाई, भाजी क्या भाव ?

कुंजड़िन — बाबा जी, टके सेर । निबुआ मुरई धनिया मिरचा साग सब टके सेर ।

गो.दा. — सब भाजी टके सेर । वाह वाह ! बड़ा आनंद है । यहां सभी चीज टके सेर । (हालवाई के पास जाकर) क्यौं भाई हलवाई ? मिठाई कितणे सेर ?

हलवाई — बाबा जी ! लडुआ हलुआ जलेबी गुलाबजामुन खाजा सब टके सेर ।

गो.दा. — वाह ! वाह !! बड़ा आनन्द है ? क्यौं बच्चा, मुझसे मसखरी तो नहीं करता ? शचमुच सब टके सेर ?

हलवाई — हां बाबा जी, शचमुच सब टके सेर । इस नगरी की चाल ही यही है । यहाँ सब चीज टके सेर बिकती है ।

गो.दा. — क्यौं बच्चा ! इस नगरी का नाम क्या

है ?

हलवाई— अंधेर नगरी ।

गो.दा.— और राजा का क्या नाम है ?

हलवाई— चौपट्ट राजा ?

गो.दा.— वाह ! वाह ! अंधेर नगरी चौपट्ट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा (यही गाता है और आनन्द से बगल बजाता है) ।

हलवाई— तो बाबा जी कुछ लेना देना हो तो ले दो ।

गो.दा.— बच्चा, भिक्षा माँग कर सात पैसे लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु चेले सब आनन्दपूर्वक इतने में छक जायंगे ।

हलवाई मिठाई तौलता है — बाबा जी मिठाई लेकर खाते हुए और अंधेर नगरी गाते हुए जाते हैं ।)

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

(स्थान जंगल)

(महन्त जी और नारायणदास एक ओर से 'राम भजो इत्यादि गीत गाते हुए आते हैं और एक ओर से गोवर्धनदास अन्धेरनगरी गाते हुए आते हैं)

महन्त— बच्चा गोबर्धन दास ! कह, क्या भिक्षा लाया ? गठरी तो भारी मालूम पड़ती है ।

गो.दा.— बाबा जी महाराज ! बड़े माल लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई है ।

महन्त— देखूं बच्चा ! (मिठाई की झोली अपने सामने रखकर खोल कर देखता है) वाह ! वाह ! बच्चा ! इतनी मिठाई कहां से लाया ? किस धर्मात्मा से भेंट हुई ?

गो.दा.— गुरुजी महाराज ! सात पैसे भीख में मिले थे, उसी से इतनी मिठाई मोल ली है ।

महन्त— बच्चा ! नारायण दास ने मुझसे कहा था कि यहा सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया । बच्चा, यह कौन सी नगरी है और इसका कौन सा राजा है, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा है ?

गो.दा.— अन्धेरनगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा ।

महन्त— तो बच्चा ! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहां टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा हो ।

दोहा

सेत सेत सब एक से, जहां कपूर कपास ।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुं न कीजै बास ।।

कोकिल बायस एक सम, पण्डित मूरख एक ।
इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहां न नेकु विवेकु ।।
बसिए ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो होय ।
रहिए तो दुख पाइये, प्रान दीजिए रोय ।।

सो बच्चा चलो यहाँ से । ऐसी अन्धेरनगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिलै तो किस काम की ? यहां एक छन नहीं रहना ।

गो.दा.— गुरु जी, ऐसा तो संसार भर में कोई देस ही नहीं है । दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है । मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊँगा । और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता । वरंच बाजे बाजे दिन उपास करना पड़ता है । सो मैं तो यहीं रहूँगा ।

महन्त— देख बच्चा, पीछे पछतायगा ।

गो.दा.— आपकी कृपा से कोई दुःख न होगा ; मैं तो यही कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिए ।

महन्त— मैं तो इस नगर में अब एक क्षण भर नहीं रहूंगा । देख मेरी बात मान नहीं पीछे पछताएगा । मैं तो जाता हूं, पर इतना कहे जाता हूं कि कभी संकट पड़ै तो हमारा स्मरण करना ।

गो.दा.— प्रणाम गुरु जी, मैं आपका नित्य ही स्मरण करूँगा । मैं तो फिर भी कहता हूं कि आप भी यहीं रहिए ।

(महन्त जी नारायण दास के साथ जाते हैं ; गोबर्धन दास बैठकर मिठाई खाता है ।)

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

(राजसभा)

(राजा — मन्त्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं)

१ सेवक— (चिल्लाकर) पा खाइए महाराज ।

राजा— (पीनक से चौंक के घबड़ाकर उठता है) क्या कहा ? सुपनखा आई ए महाराज । (भागता है) ।

मन्त्री — (राजा का हाथ पकड़कर) नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज !

राजा — दुष्ट लुच्चा पाजी ! नाहक हमको डरा दिया । मन्त्री इसको सौ कोड़े लगैं ।

मन्त्री — महाराज ! इसका क्या दोष है ? न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता ।

राजा — अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगैं ।

मन्त्री — पर महाराज, आप पान खाइए सुन कर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनख के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो ।

राजा — (घबड़ाकर) फिर वही नाम ? मन्त्री तुम बड़े खराब आदमी हो । हम रानी से कह देंगे कि मन्त्री बेर बेर तुमको सौत बुलाने चाहता है । नौकर ! नौकर ! शराब ।

२ नौकर — (एक सुराही में से एक गिलास में शराब उझल कर देता है) लीजिए महाराज । पीजिए महाराज ।

राजा — (मुँह बनाकर पीता है) और दे ।

(नेपथ्य में — दुहाई है दुहाई — का शब्द होता है ।)

कौन चिल्लाता है — पकड लाओ ।

(दो नौकर एक फर्यादी को पकड़ लाते हैं)

फ. — दोहाई है महाराज दोहाई है । हमारा न्याव होय ।

राजा — चुप रहो । तुम्हारा न्याव यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा । बोलो क्या हुआ ?

फ. — महाराजा कल्लू बनिया की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई । दोहाई है महाराज न्याव हो ।

राजा — (नौकर से) कल्लू बनिया की दीवार को अभी पकड़ लाओ ।

मन्त्री — महाराजा, दीवार नहीं लाई जा सकती ।

राजा — अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ ।

राजा — महाराज ! दीवार ईंट चूने की होती है, उसको भाई बेटा नहीं होता ।

राजा — अच्छा कल्लू बनिये को पकड़ लाओ ।

(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिए को पकड़ लाते हैं) क्यों बे बनिए ! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई ।

मन्त्री — बरकी नहीं महाराज बकरी ।

राजा — हां हां, बकरी क्यों मर गई — बोल, नहीं अभी फांसी देता हूँ ।

कल्लू — महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं । कारीगर ने ऐसी दीवार बनाया कि गिर पड़ी ।

राजा — अच्छा, इस मल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ । (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं) क्यों बे कारीगर ! इसकी बकरी किस तरह मर गई ?

कारीगर — महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा बोदा बनाया कि दीवार गिर पड़ी ।

राजा — अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं, निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ ।

(कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़कर लाया जाता है) क्यों बे खैर सुपाड़ी चूनेवाले ! इसकी कुबरी कैसे मर गई ?

चूनेवाला — महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं, भिश्ती न चूने में पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा ।

राजा — अच्छा, चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो । (चुनेवाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है (क्यो बे भिश्ती ! गंगा जमुना की किश्ती ! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी दीवार दब गई ।

भिश्ती — महाराज ! गुलाम का कोई क़सूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दिया कि उसमें पानी जादे आ गया ।

राजा — अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती निकालो ।

(लोग भिश्ती को निकालते हैं और कस्साई को लाते हैं)

क्यौं बे क़स्साई, मशक ऐसी क्यौं बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई ?

कस्साई — महाराज ! गडेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेंड़ मेरे हाथ बेंची की उसकी मशक बड़ी बन गई ।

राजा — अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती को लाओ ।

(कस्साई निकाला जाता है गंडेरिया आता है)

क्यौं बे ऊखपौंड़े के गंड़ेरिया ! ऐसी बड़ी भेड़ क्यौं बेचा कि बकरी मर गई ?

गड़ेरिया — महाराज ! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उस के देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का खयाल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं ।

राजा — अच्छा, इस को निकालो, कोतवाल को

अभी सरबमुहर पकड़ लाओ ।

(गड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा आता है)

क्यौं बे कोतवाल ! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यौं निकाली कि गड़ेरिये ने घबड़ा कर बड़ी भेड़ बेचा, जिस से बकरी गिर कर कल्लू बनियाँ दब गया ?

कोतवाल— महाराज महाराज ! मैं ने तो कोई कसूर नहीं किया मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था ।

मंत्री— (आप ही आप)यह तो बड़ा ग़जब हुआ, ऐसा न हो कि बेवकूफ, इस बात पर सारें नगर को फूंक दे या फांसी दे ।

(कोतवाल से) यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यौं निकाली ?

राजा— हां हां, यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यौं निकाली कि उसकी दबरी दबी ।

कोतवाल— महाराज महाराज —

राजा— कुछ नहीं, महाराज महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फांसी दो । दरबार बरखास्त ।

(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़ कर राजा जाते हैं)

(पटाक्षेप)

पांचवां दृश्य

(आरण्य)

(गोवर्धन दास गाते हुए आते हैं)

(राग काफी)

अंधेरे नगरी अनबूझ राजा ।
टका सेर भाजी टका से खाजा ।।
नीच ऊँच सब एकहि ऐसे ।
जैसे भड़ुए पंडित तैसे ।।
कुल मरजाद न मान बड़ाई ।
सबै एक से लोग लुगाई ।।
जात पांत पूछै नहिं कोई ।
हरि को भजे सो हरि को होई ।।
वेश्या जोरू एक समाना ।
बकरी गऊ एक करि जाना ।।
सांचे मारे मारे डोलैं ।
छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं ।।
प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी ।
सोइ राजसभा बलभारी ।।
सांच कहैं ते पनही खावैं ।
झूठे बहुविधि पदवी पावै ।।
छलियन के एका के आगे ।
लाख कहौ एकहु नहिं लागे ।
भीतर होइ मलिन की कारो ।
चहिये बाहर रंग चटकारो ।।
धर्म अधर्म एक दरसाई ।
राजा करै सो न्याव सदाई ।।
भीतर स्वाहा बाहर सादे ।
राज करहिं अमले अरु प्यादे ।।
अन्धाधुन्ध मच्यौ सब देसा ।
मानहुं राजा रहत विदेसा ।।
गो द्विज श्रुति आदर नहिं होई ।
मानहुं नृपति बिधर्म्मी कोई ।।
ऊँच नीच सब एकहि सारा ।
मानहुं ब्रह्म ज्ञान बिस्तारा ।।
अंधेर नगरी अनबूझ राजा ।
टका सेरा भाजी टका सेर खाजा ।।

(बैठकर मिठाई खाता है)

गुरूजी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था । माना कि देस बहुत बुरा है । पर अपना क्या ? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से राम-भजन करना ।

(मिठाई खाता है)

(चार प्यादे चार ओर से आकर उस को पकड़ लेते हैं)

१ प्या.— चल बे चल, बहुत मिठाई खा कर मुटाया है । आज पूरी हो गई ।

२ प्या.— बाबा जी चलिए, नमोनारायन कीजिए ।

गो. दा.— (घबड़ा कर) हैं !यह आफ़त कहां से आई ! अरे भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगड़ा है जो मुझको पकड़ते हौ ।

प्या.— आप ने बिगाड़ा या बनाया है इस से क्या मतलब, अब चलिए । फांसी चढ़िए ।

गो. दा.— फांसी । अरे बाप रे बाप फांसी !! मैंने किस की प्राण मारे कि मुझ को फांसी !

२ प्या.— आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फांसी होती है ।

गो. दा.— मोटे होने से फांसी ? यह कहां का न्याय है ! अरे, हंसी फकीरों से नहीं करनी होती ।

१ प्या.— जब सूली चढ़ लीजिएगा तब मालूम होगा कि हंसी है कि सच । सीधी राह से चलते हो कि घसीट कर ले चलें ?

गो. दा.— अरे बाबा, क्यों बेकसूर का प्राण

मारते हौ ? भगवान् के यहाँ क्या जवाब दोगे ?

१ प्या. — भगवान् को जवाब राजा देगा । हम को क्या मतलब । हम तो हुक्मी बन्दे हैं ।

गो. दा. — तब भी बाबा बात क्या है कि हम फ़कीर आदमी को नाहक फांसी देते हौ ?

१ प्या. — बात है कि कल कोतवाल को फांसी का हुकुम हुआ था । जब फांसी देने को उस को ले गए, तो फांसी का फन्दा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं । हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि मोटा आदमी पकड़ कर फांसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी की सजा होनी जरूर है, नहीं तो न्याव न होगा । इसी वास्ते तुम को ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फांसी दें ।

गो. दा. — तो क्या ओर कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फ़कीर को फांसी देते हैं !

१ प्या. — इस में दो बात हैं — एक तो नगर भर में राजा के न्याव के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़ै तो वह न जानैं क्या बात बनावै कि हमी लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इस से तुम्हीं को फांसी देंगे ।

गो. दा. — दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूँ ! अरे यहाँ बड़ा ही अन्धेर है, अरे गुरु जी महाराज का कहा मैंने न माना उस का फल मुझ को भोगना पड़ा । गुरुजी कहां हौ ! आओ, मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूँ गुरुजी गुरुजी —

(गोवर्धन दास चिल्लाता है, प्यादे लोग उस को पकड़ कर ले जाते हैं)

(पटाक्षेप)

छठां दृश्य

(स्थान श्मशान)

(गोवर्धन दास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश)

गो दा. — हाय बाप रे ! मुझे वेकसूर ही फांसी देते हैं । अरे भाइयो, कुछ तो धरम विचारो । अरे मुझ गरीब को फांसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा ? अरे मुझे छोड़ दो । हाय ! हाय ! (रोता है और छुड़ाने का यत्न करता है)

१ सिपाही — अबे, चुप रह — राजा का हुकुम भला कहीं टल सकता है ? यह तेरा आखिरी दम है, राम का नाम ले — बेफाइदा क्यों शोर करता है ? चुप रह —

गो. दा. — हाय ! मैं ने गुरुजी का कहना न माना, उसी का यह फल है । गुरुजी ने कहा था कि ऐसे —नगर में न रहना चाहिये, यह मैं ने न सुना ! अरे ! इस नगर का नाम ही अंधेरनगरी और राजा का नाम चौपट्ट है, तब बचने की कौन आशा है । अरे ! इस नगर में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो इस फकीर को बचावै । गुरु जी ! कहाँ हौ ? बचाओ — गुरुजी-गुरुजी —(रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं)

(गुरु जी और नारायण दास आते हैं)

गुरु. — अरे बच्चा गोवर्धन दास ! तेरी यह क्या दशा है ?

गो. दा. — (गुरु को हाथ जोड़कर) गुरु जी ! दीवार के नीचे बकरी दब गई, सो इस के लिए मुझे फांसी देते हैं, गुरु जी बचाओ ।

गुरु. — अरे बच्चा ! मैंने तो पहिले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं, तैं ने मेरा कहना नहीं सुना ।

गो. दा. — मैं ने आप का कहा नहीं माना, उसी का यह फल मिला । आप के सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करै । मैं आप ही का हूं, आप के सिवा और कोई नहीं (पैर पकड़ कर रोता है) ।

महन्त — कोई चिन्ता नहीं, नारायण सब समर्थ है । (भौं चढ़ाकर सिपाहियों से) सुनो, मुझको अपने शिष्य को अन्तिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा ।

सिपाही — नहीं महाराज, हम लोग हट जाते हैं । आप बेशक उपदेश कीजिए ।

(सिपाही हट जाते हैं । गुरु जी चेले के कान में कुछ समझाते हैं)

गो. दा. — (प्रगट) तब तो गुरु जी हम अभी फांसी चढ़ेंगे ।

महन्त — नहीं बच्चा मुझको चढ़ने दे ।

गो. दा. — नहीं गुरु जी, हम फांसी पड़ैंगे ।

महन्त — नहीं बच्चा हम । इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भए, हमको जाने दे ।

गो. दा. — स्वर्ग जाने में बूढ़ा जवान क्या ?

आप तो सिद्ध हो, आपको गति अगति से क्या ? मैं फांसी चढूंगा ।

(इसी प्रकार दोनों हुज्जत करते हैं — सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं)

१ सिपाही — भाई ! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता ।

२ सिपाही — हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गबड़ा है ।

(राजा, मंत्री कोतवाल आते हैं)

राज — यह क्या गोलमाल है ?

१ सिपाही — महाराज ! चेला कहता है मैं फांसी पड़ूंगा, गुरु कहता है मैं पड़ूंगा ; कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है ?

राजा — (गुरु से) बाबा जी ! बोलो । काहे को आप फांसी चढ़ते हैं ?

महन्त — राजा ! इस समय ऐसा साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जायगा ।

मंत्री — तब तो हमी फांसी चढ़ेंगे ।

गो. दा. — हम हम । हम को तो हुकुम है ।

कोतवाल — हम लटकैंगे । हमारे सबब तो दीवार गिरी ।

राजा — चुप रहो, सब लोग, राजा के आछत और कौन वैकुण्ठ जा सकता है । हमको फांसी चढ़ाओ, जल्दी, जल्दी ।

महन्त —

जहाँ न धर्म्म न बुद्धि नाह, नीति न सुजान समाज ।
ते ऐसहि आपुहि नसे, जैसे चौपटराज ।।

(राजा को लोग टिकठी पर खड़ा करते हैं)

(पटाक्षेप)

इति

सतीप्रताप

गीतिरूपक, जिसे भारतेन्दु ने सम्वत् १९४१ में लिखना शुरू किया था । इसके कुछ दृश्य सन् १८८४ में ''हरिश्चंद्र चंद्रिका के अंको में प्रकाशित हुए । भारतेन्दु जी के निधन के कारण यह पूरा नहीं हो पाया । बाद में बाबू राधाकृष्ण दास ने अंतिम तीन दृश्य लिखकर इसे पूरा किया ।

कहा जाता है कि लाला श्री निवासदास '' तप्तासंवरण'' नाटक इसी पति महात्म्य पर लिख चुके थे । वह '' हरिश्चंद्र मेगजीन'' में छपा भी था । शायद वह भारतेन्दु को पसंद नही आया तभी उन्होंने इस गीत रूपक को लिखा । — सं.

सती प्रताप

(एक गीतिरूपक)

पहला दृश्य

हिमालय का अधोभाग ।

तृण लता वेष्टित एक टीले पर बैठी हुई तीन अप्सरा गाती हैं ।।

(राग झिंझौटी)

१ अप्सरा —

१. जय जय श्री रुकमिन महरानी ।
२. निज पति त्रिभुअन पति हरि पद में छाया सी

लपटानी।
३. सती सिरोमणि रुपरासि करुनामय सब गुनखानी।
४. आदिशक्ति जग कारिनि पालिनि निज भक्तन सुखदानी।

२ अप्सरा—

(राग जंगला या पीलू)

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान ।।
अनुसूया सीता सावित्री इन के चरित प्रमान।
पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान ।।
धन्य देस कुल जहँ निवसत हैं नारी सती सुजान ।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असथान ।
सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहु में इन को करत सबै गुन गान ।।

३ अप्सरा—

(रागिनी बहार)

नवल बन फूलीं द्रुम बेली।
लहलह लहकहिं महमह महकहिं मधुर सुगंधहिं रेली।
प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मनु भूषन बसन बनाई।
आंचर उड़त बात बस फहरत प्रेम धुजा लहराई ।।
गूंजहिं भंवर विहंगम डोलहिं बोलहिं प्रकृति बधाई।
पुतली सी जित तित तितली गन फिरहिं सुगन्ध लुभाई।।
लहरहिं जल लहकहिं सरोज मन हिलहिं पात तरु डारी।
लखि रितु पति आगम सगरे जग मनहुं कुलाहल भारी।।

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

तपोवन — लतामंडप में सत्यवान बैठा हुआ है।

(रंग गीति-पीलू-धमार)

"क्यों फकीर बना आया वे मेरे वारे जोगी।
नई बैस कोमल अंगन पर काहे भभूत रमाया वे ।।
किन वे मात पिता तेरे जोगी जिन तोहि नाहि मनाया वे।।

(चैती गौरी तिताला)

विदेसिया वे प्रीति की रीति न जानी।
प्रीति की रीति कठिन अति प्यारे कोई विरले पहिचानी।।

सत्यवान— यह कोमल स्वर कहां से कान में आया ? प्रतिध्वनि के साथ यह स्वर ऐसा गूंज रहा है कि मेरी सारी कदम्बखंडी शब्द ब्रह्ममय हो गई। बीच बीच में मोर कुहुक कुहुक कर और भी गूँज दूनी कर देते हैं। (कुछ सोचकर) हाय ! मेरा मन इस समय भी स्थिर नहीं। हाय ! प्रासादों में स्फटिक की छत पर चलने में जिनके चरण को कष्ट होता था आज वह कंटकमय पथ में नंगे पाओं फिर रहे हैं और दुग्धफेन सी सेज के बदले आज मृगचर्म पर सोते हैं। हाय हमारे माता पिता बुढ़ापे से सामर्थ्यहीन तो थे ही ऊपर से दैव ने उन्हें अंधा भी बनाया। हाय अभागे सत्यवान से भी कभी माता पिता की सेवा न बन पड़ी। कभी उनके वात्सल्य-पूर्ण प्रेमामृत वचन ने मेरे कान न शीतल किए। और न ऐसा होना है। जनमते ही तो तपस्या करनी पड़ी। धन्य विधाता ! दरिद्र को धनवान और धनवान को दरिद्र करना तो तुम्हें एक खेल है। किन्तु दरिद्र बन के फिर क्यों कष्ट देते हो। दरिद्र ही सही पर मन को तो शान्ति दो। भला दो घड़ी भी वृद्ध माता पिता की सेवा करने पावैं। (चिन्ता)

(सावित्री को घेरे हुए गाते गाते मधुकरी, सुरवाला और लवंगी का आना और फूल बीनना)

सखीजन— (गौरी)

भौंरा रे बौरानो लखि बौर
लुबध्यौ उतहि फिरत मंडरान्यौ जात कहुं नहिं और—
भौंरा रे बौरान्यो

(चैती गौरी)

फूलन लगे राम बन नवाल गुलववा।
फूलन लागे राम महुआ फले आम बौराने डारहिडार
भंवरवा भूलन लगे राम।

(गौरी)

पवन लगि डोलत बन की पतियां।
मानहु पथिकन निकट बुलावहिं कहन प्रेम की बतियां।।
अलक हिलत फहरत तन सारी होत है सीतल छतियां।।
यह छबि लखि ऐसी जिय आवत इतहि बितैए रतियां।।

सुरबाला— सखी, कैसा सुंदर वन है।

लवंगी— और यह बारी भी कैसी मनोहर है !

मधुकरी— आहा ! तपोबन रिषि मुनि लोगों को कैसा सुखदायक होता है।

सावित्री— सखी, रिषि मुनि क्या तपोबन सभी को सुख देता है।

सुरबाला— क्योंकि यहाँ सदा बसन्त ऋतु रहती है न।

सावित्री— बसन्त ही से नहीं तपोबन ऐसा नहीं है।

मधुकरी— अहा ! यह कुंज कैसा सुंदर है। सखी देखो माधवीलता इस कुंज पर कैसा घनघोर छाई हुई है।

सावित्री— सहज वस्तु सभी मनोहर होती है।

देखो इस पर फूल कैसे सुन्दर फूले हैं जैसे किसी ने देवता की फूल मण्डली बनाई हो ।

सुरबाला— और उधर से हवा कैसी ठंढी आती है ।

लवंगी— और हवा में सुगंध कैसी है ।

मधुकरी— सखी ! एकटक उधर ही क्यों देख रही हो !

सुरबाला— सच तो सखी । वहां क्या है जो उधर ही ऐसी दृष्टि गड़ा रही हौ ?

लवंगी— तू क्या जानै । तपोवन में सैकड़ों वस्तु ऐसी होती हैं ।

सावित्री— (रागसोरठ)

लखो सखि भूतल चन्द खस्यो ।

राहु केतु भय छोड़ि रोहिनिहि या बन आइ बस्यौ ।।

कै सिव जय हित करत तपस्या मनसिज इत निबस्यौ ।

कै कोऊ बनदेव कुंज में बनविहार बिलस्यौ ।।

मधुकरी— सच तों, तपसियों में ऐसा रूप !

सुरबाला— जाने दे । वनवासी तपस्वी में ऐसा रूप कहां ?

सावित्री— यह मत कहो । विधना की कारीगरी जैसी नगर में वैसी ही बन में ।

(सत्यवान की ओर सतृष्ण दृष्टिपात)

सुरबाला— देखती हौ ? एक मन एक प्रान डोकर कैसी सोच रही है ?

लवंगी— (परिहास से) आज जो यह तापस-कुमार के बदले राजकुमार होते तो घर बैठे गंगा बही थी ।

मधुकरी— सखी, इसका कुछ नेम नहीं है कि राजकुमारी का ब्याह राजकुमार ही से हो ।

सावित्री— विधाता ने जिस भाव में राजपुत्र को सिरजा है उसी भाव में मुनिपुत्र को । और फिर राजधन से तपोधन कुछ कम नहीं होता ।

सत्यवान— (आप ही आप) यह क्या बनदेवी आई हैं ।

मधुकरी— हम उनके पास जाकर प्रणाम तो कर आवें ।

(मधुकरी का कुंज की ओर बढ़ना और सत्यवान का लतामंडप से निकलकर बाहर बैठना)

मधुकरी— (सत्यवान के पास जाकर) प्रनाम (हाथ जोड़कर सिर झुकाना)

सत्यवान— आयुष्मती भव । आप लोग कौन हैं ?

मधुकरी— हम लोग अपनी सखी मद्रदेश के जयन्ती नगर के राजा अश्वपति की कुमारी सावित्री के साथ फूल बीनने आई हैं ।

सत्यवान— (स्वगत) राजकुमारी ! वामन को चंद्रस्पर्श ।

मधुकरी— कृपानिधान । आप सदा यहीं निवास करते हैं ।

सत्यवान— जब तक दैव अनुकूल न हो यही निवास है ।

मधुकरी— इससे तो बोध होता है कि किसी राजभवन को सूना करके आप यहां आए हैं ।

सत्यवान— सखी ! उन बातों को जाने दो ।

मधुकरी— हमारे अनुरोध से कहना ही होगा । दयाल सज्जनगण अतिथि की याञ्चा व्यर्थ नहीं करते । विशेष कर के पहले ही पहल ।

सत्यवान— हम शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र हैं । हमारा नाम चित्राश्व वा सत्यवान है । इस भेध्यारण्य नामक बन में पिता की सेवा करते हैं ।

मधुकरी— (आप ही आप) तभी । गंगा समुद्र छोड़कर और जलाशय की ओर नहीं झुकती । (प्रकट) तो आज्ञा हो तो अब प्रणाम करूं ।

सत्यवान— (कुछ उदास होकर) यह क्यों ? बिना आतिथ्य स्वीकार किए हुए ?

मधुकरी— इसका तो मैं सखी से पूछ लूं तो उत्तर दूं । (सावित्री के पास आकर) सखी ! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा ।

सावित्री— (सखियों का मुंह देखती है) ।

लवंगी— (परिहास से) अवश्य अवश्य ! इसमें क्या हानि है ।

सावित्री— (कुछ लज्जा करके) सखी ! उनसे निवेदन कर दे कि हम लोग माता पिता की आज्ञा लेकर तब किसी दिन आतिथ्य स्वीकार करेंगे, आज विलम्ब भी हुआ है ।

मधुकरी— (सत्यवान के पास जाकर) कुमारी कहती है कि किसी दिन माता पिता की आज्ञा लेकर हम आवैंगे तब आतिथ्य स्वीकार करेंगे । आप तो जानते ही हैं कि आर्यकुल की ललनागण किसी अवस्था में भी स्वतंत्र नहीं हैं । इससे आज क्षमा कीजिए ।

सत्यवान— (कुछ उदास होकर) अच्छा । (सखियों के साथ सावित्री का प्रस्थान) (उधर ही देखता है) यह क्या ? चित्त में ऐसा विकार क्यों ? क्या स्वर्ण और रत्न में भी मलिनता ? क्या अग्नि में भी कीट की उत्पत्ति ? उह ? फिर वही ध्यान ? यह क्या ? अब तो जी नहीं मानता । चलैं आगे बढ़कर बदली में छिपते
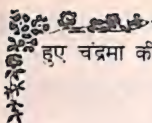
हुए चंद्रमा की शोभा देखकर जी को शान्ति दें ।

(जाता है)

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

जयन्ती नगर गृहोद्यान ।

(जोगिन बनी हुई सावित्री ध्यान करती है)

(नेपथ्य में बैतालिक गान)

प्र. बै.—

नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
फूल माल गरें बन फ्रालरि सी लाई है ।
भंवर गुंजार हरि नाम को उचार तिमि
कोकिला सी कुहुकि बियोग राग गाई है ।।
हरीचन्द तजि पतफ्रर घर बार सबै
बौरी बनि नौरी चारू पौद ऐसी धाई है ।
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत कै हिमन्त अन्त
तेरी प्रेम जोगिनी बसन्त बनि आई है ।।१।।

द्वि. बै.—

पीरो तन परचो फूली सरसों सरस सोई
मन मुरझान्यौ पतफ्रार मनो लाई है ।
सीरी स्वास त्रिविध समीरसी बहति सदा
अँखियाँ बरसि मधुफ्ररि सी लगाई है ।।
हरीचन्द फूले मन मैन के मसूसन सों
ताही सों रसाल बाल बदि कै बौरई है ।
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत कै हिम्मत अन्त
तेरी प्रेम जोगिनी बसन्त बनि आई है ।।२।।

प्र. बै.—

"बरुनी बघंबर मैं गूदरी पलक दोऊ,
कौए राते बसन भगौंहै भेख रखियाँ ।
बूड़ी जलही मैं दिन जामिनीहूं जागैं भौंह,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियां ।।
आंसू ज्यौं फटिक माल काजर की सेली पैन्ही,
भई हैं अकेली तजि चेलि संग सखियाँ ।
दीजिये दरस देव कीजिये संजोगन ये,
जोगिन ह्वै बैठी हैं बियोगिन की अंखियाँ" ।।३।।

द्वि. बै.—

एक ध्यान एकै ज्ञान एकै मन एकै प्रान,
दसों दिसि अबिचल एकै तान तानो है ।
जग मैं बसत हूँ मनहुँ जग बाहिर सों,
हियौ तन दोऊ निसि दिवस तपानो है ।।
हरीचंद जोग की जुगति रिद्धि सिद्धि सब,
तजि तिनका सी एक नेह को निभानो है ।
बिना फल आस सीस सहनी सहस्र त्रास,
जोगिन सों कठिन बियोगिन को बानो है ।।

(सावित्री ध्यान से आँख खोलती है)

सावित्री— अहा ! एक पहर दिन आ गया । सखीगण अब तक नहीं आई इसी से ध्यान भी निर्विघ्न हुआ । हमारी वासना सत्य है तो अंतर्गति जाननेवाली सतीकुल-सरोजिनी भगवती भवानी हमारी भावना अवश्य पूर्ण करेंगी । मन बच कर्म से जो हमारी भक्ति पति के चरणारविंद में है तो वे हमको अवश्य ही मिलेंगे । अथवा न भी मिलें तो इस जन्म में तो दूसरा पति हो नहीं सकता । स्त्रीधर्म बड़ा कठिन है । जिसको एक बेर मन से पति कहकर वरण किया उसको छोड़कर स्त्री शरीर की अब इस जगत् में कौन गति है । पिता माता बड़े धार्मिक हैं सखियों के मुख से यह संवाद सुनकर वह अवश्य उचित ही करेंगे । वा न करेंगे तो भी इस जन्म में अन्य पुरुष अब मेरे हेतु कोई है नहीं । (अपना वेष देखकर) अहा ! यह वेष मुझको कैसा प्रिय बोध होता है । जो वेष हमारे जीवितेश्वर धारण करें वह क्यों न प्रिय हो । इसके आगे बहुमूल्य हीरों के हार और चमत्कार दर्शक वस्त्र सब तुच्छ हैं । वही वस्तु प्यारी है जो प्यारे को प्यारी हो । नहीं तो सर्वसंपत्ति की मूल कारण स्वरूपा देवी पार्वती भगवान भूतनाथ की परिचर्या इस वेष से क्यों करतीं? सतीकुलतिलका देवी जनकनंदिनी को अयोध्या के बड़े बड़े स्वर्ग विनिंदक प्रासाद और शचीदुर्लभ गृह-सामग्री से भी वन की कर्णकुटी और पर्वतशिला अति प्रिय थी, क्योंकि सुख तो केवल प्राणनाथ की चरणपरिचर्या में है । जब तक अपना स्वतंत्र सुख है तब तक प्रेम नहीं । पत्नी का सुख एकमात्र पति की सेवा है । जिस बात में प्रियतम की रुचि उसी में सहधर्मिणी की रुचि । अहा ! वह भी कोई धन्य दिन आवेगा जब हम भी अपने प्राणाराध्य देवता प्रियतम पति की चरणसेवा में नियुक्त होंगी । वृद्ध श्वसुर और सास के हेतु पाक आदि निर्माण करके उनका परितोष करेंगी । कुसुम, दूर्वा, तुलसी, समिधा इत्यादि बीनने को पति के साथ वन में घूमेंगी । परिश्रम से थकित प्राणनायक के स्वेद-सीकर अपने अंचल से पोंछकर मंद मंद वनपत्र के व्यजनवायु से उनका श्रीअंग शीतल और चरण-संवाहनादि से श्रमगत करेंगी । (नेत्र से आँसू गिरते हैं)

(गान करते हुए सखीगण का आगमन)

(ठुमरी)

सखीत्रय—
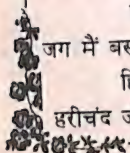
देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो-जोगी पिय मन भाई हो।
खुले केस गोरे मुख सोहत जोहत दृग सुखदाई हो।।
नव छाती गाती कसि बाँधी कर जप माल सुहाई हो।
तन कंचन दुति बसन गेरुआ दूनी छबि उपजाई हो।।
देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो ।

(सावित्री के पास जाकर)

(लावनी)

लवंगी—

सखि !बोले जोबन महा कठिन व्रत कीनो ।
यह जोग भेख कोमल अंगन पर लीनो ।।
अबहीं दिन तुमरे खेल कूद के प्यारी ।
पितु मातु चाव सों भवन बसो सुकुमारी ।।
ओढ़ो पहिरौ लखि सुख पावै महतारी ।
बिलसौ गृह संपति सखी गईं बलिहारी ।।
तजि देहु स्वांग जो सबही विधि सों हीनो ।।
यह जोग भेष जो कोमल अंग पर लीनो ।।

मधु.—

सखि ! यही जगत की चाल जिती है क्वारी ।
उनके सबही बिधि मात पिता अधिकारी ।।
जेहि चाहैं ताकहँ दान करैं निज बारी ।
यामैं कछु कहनो तजनो लाज दुलारी ।।
बिनती मानहु हठ माँहि वृथा चित दीनो ।
यह जोगभेष जो कोमल अँग पर लीनो ।।

सुर.—

सखि औरहु राजकुमार बहुत जग माँहीं ।
विद्या- बुधि- गुन- बल- रूप- समूह लखाहीं ।।
चिरजीवी प्रेमी धनी अनेक सुनाहीं ।।
का उन सम कोऊ और जगत में नाहीं ।।
जाके हित तुम तजि राजभेष सुख-भीनो ।
यह जोग-भेष निज कोमल अँग पर लीनों ।।

सावित्री— (ईषत क्रोध से)

बस-बस ! रसना रोको ऐसी मति भाखो ।
कछु धरमहु को भय अपने जिय मैं राखो ।।
कुलकामिनि ह्वै गनिका धरमहि अभिलाखो ।
तजि अमृतफल क्यों विषमय विषयहि चाखो ।।
सब समुभ्हि बूझि क्यों निंदहु मूरख तीनों ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनो ।।

लवंगी— सखी को कैसा जल्दी क्रोध आया है ?

सावित्री— अनुचित बात सुनकर किसको क्रोध न आवेगा ?

सुर.— सखी ! हम लोगों ने जो वचन दिया था वह पूरा किया ।

सावित्री— वचन कैसा ?

सुर.— सखी, तुम्हारे माता पिता ने हम लोगों से वचन लिया था कि जहाँ तक हो सकेगा हम लोग तुमको इस मनोरथ से निवृत्त करेंगे ।

सावित्री— निवृत्त करोगी ? धर्मपथ से ? सत्य प्रेम से ? और इसी शरीर में ?

सुर.— सखी, शांत भाव धारण करो । हम लोग तुम्हारी सखी हैं, कोई अन्य नहीं हैं । जिसमें तुमको सुख मिले वही हम लोगों को करना है । यह सब जो कुछ कहा सुना गया, केवल ऊपरी जी से ।

सावित्री— तब कुछ चिंता नहीं । चलो, अब हम लोग माता के पास चलें । किंतु वहाँ मेरे सामने इन बातों को मत छेड़ना ।

सखीगण— अच्छा, चलो ।

(जवनिका गिरती है)

चौथा दृश्य

स्थान — तपोवन । द्युमत्सेन का आश्रम

(द्युमत्सेन, उनकी स्त्री और ऋषि बैठे हैं)

द्युमत्सेन— ऐसे ही अनेक प्रकार के कष्ठ उठाए हैं, कहाँ तक वर्णन किया जाय ।

पहला ऋषि—यह आपकी सज्जनता का फल है ।

(छप्पय)

क्यौं उपज्यौ नरलोक ? ग्राम के निकट भयो क्यौं ?
सघन पात सों सीतल छाया दान दयो क्यौं ?
मीठे फल क्यौं फल्यो ? फल्यौ तो नम्र भयो कित ?
नम्र भयो तो सहु सिर पै बहु बिपति लोक कृत ।
तोहिं तोरि मरोरि उपारिहैं पाथर हनिहै सबहि नित ।
जे सज्जन ह्वै नै कै चलहिं तिनकी वह दुरगति उचित ।।

दूसरा ऋषि— ऐसा मत कहिए ! वरंच यों कहिए —

चातक को दुख दूर कियो पुनि
दीनो सब जग जीवन भारी ।
पूरे नदी नद ताल तलैया किये
सब भाँति किसान सुखारी ।।
सूखेहु रूखन कीने हरे जग पूरयौ
महामुद दै निज बारी ।
हे घन आसिन लौं इतनो करि
रीते भए हूँ बड़ाई तिहारी ।।

द्युमत्सेन —

मोहि न धन को सोच भाग्य बस होत जात धन ।
पुनि निरधन सो दोष न होत यहौ गुन गुनि मन ।।
मोकहँ इक दुख यहै जु प्रेमिन हू मोहिं त्याग्यौ ।।
बिना द्रव्य के स्वानहु नहिं मोसों अनुराग्यौ ।।
सब मित्रन छोड़ी मित्रता बंधुन हू नातो तज्यौ ।
जो दास रह्यौ मम गेह को मिलनहुँ मैं अब सो तज्यौ ।।
तज्यौ ।।

प. ऋषि — तो इसमें आपकी क्या हानि है ? ऐसे लोगों से न मिलना ही अच्छा है ।

द्युमत्सेन — नहीं, उनके न मिलने का मुझको अणुमात्र सोच नहीं है । मुझको तो ऐसे तुच्छमना लोगों के ऊपर उलटी दया उत्पन्न होती है । मुझको अपनी निर्धनता केवल उस समय अति गढ़ाती है जब किसी सत्पुरुष कुलीन को द्रव्य के अभाव से दु:खी देखता हूँ । उस समय मुझको निस्संदेह यह हाय होती है कि आज द्रव्य होता तो मै उसकी सहायता करता ।

दू. ऋषि — आपके मन में इसका खेद होता है तो मानसिक पुण्य आपको हो चुका । और आपकी मनोवृत्ति ऐसी है तो वह अवश्य एक न एक दिन फलवती होगी ।

प. ऋषि — सज्जनगण स्वयं दुर्दशाग्रस्त रहते हैं, तब भी उनसे जगत् में नाना प्रकार के कल्याण ही होते हैं ।

द्युमत्सेन — अब मुझसे किसी का क्या कल्याण होगा ! बुढ़ापे से शरीर में पौरुष हई नहीं । एक आँख थी सो भी गई । तीर्थ भ्रमण और देवदर्शन से भी रहित हुए ।

प. ऋषि — आपके नेत्रों के इतने निर्बल हो जाने का क्या कारण है ? अभी कुछ आपकी अवस्था अति वृद्ध नहीं हुई है ।

द्युमत्सेन — वही कारण जो हमने कहा था । (उदास होकर) पुत्रशोक से बढ़कर जगत् में कोई शोक नहीं है । गणक लोगों ने यह कहकर कि तुम्हारा पुत्र अल्पायु है, मेरा चित्त और भी तोड़ रखा है । इसी से न मैं ऐसा घर, ऐसी लक्ष्मी सी बहू पाकर भी अभी विवाह संबंध नहीं स्थिर करता ।

दू. ऋषि — अहा ! तभी महाराज, अश्वपति और उनकी रानी इस संबंध से इतने उदास हैं । केवल कन्या के अनुरोध से संबंध करने के लिये कहते हैं ।

(हरिनाम गान करते हुए नारद जी का आगमन)

नारद — (नाचते और बीणा बजाते हुए)

(चाल नामकीर्तन महाराष्ट्रीय कटाव)

जय केशव करुणाकंदा । जय नारायण गोविंदा ।
जय गोपीपति राधानायक ।
कृष्णकमल लोचन सुखदायक ।।
माधव सुरपति रावण-हंता ।
सीतापति जदुपति श्रीकंता ।।
बुद्ध नृसिंह परशुधर बावन ।
मच्छ-कच्छा-वपुधर जग-पावन ।।
कल्कि बराह मुकुन्दा । जय केशव करुणा कंदा ।।
जय जय विष्णु भक्त भयहारी । बृंदावन वैकुंठ-बिहारी ।।
जसुदा-सुअन देवकीनंदन । जगबंदन प्रभु कंसनिकंदन ।
शंख-चक्र-कौमोदकि-धारी । वंशीधर बकबदन बिदारी ।।
जय वृंदावन चंदा । जय केशव करुणा-कंदा ।।
जय नरायण गोविंदा ।

(सब लोग प्रणाम करके बैठाते हैं)

द्युमत्सेन — हमारे धन्य भाग कि इस दीनावस्था में आपके दर्शन हुए ।

नारद — राजन् ! तुम्हारे पास सत्यधन, तपोधन, धैर्यधन अनेक धन हैं, तुम क्यों दीन हौ । और आज हम तुमको एक अति शुभ संदेश देने को आए हैं । तुम्हारे पुत्र का विवाह संबंध हम अभी स्थिर किए आते हैं । सावित्री के पिता को भी समझा आए हैं कि उनकी कन्या सावित्री अपने उज्ज्वल पातिव्रत धर्म के प्रभाव से सब आपत्तियों को उल्लंघन करके सुखपूर्वक कालयापन करेगी और अपने पवित्र चरित्र से दोनों कुल का मान बढ़ावेगी । तुमसे भी यही कहने आए हैं कि सब संदेह छोड़कर विवाह का संबंध पक्का करो ।

द्युमत्सेन — मुझको आपकी आज्ञा कभी उल्लंघनीय नहीं है । किन्तु —

नारद — किंतु फिंतु कुछ नहीं । विशेष हम इस समय नहीं कह सकते । इतना मात्र निश्चय जानो कि अन्त में सब कल्याण है ।

द्युमत्सेन — जो आज्ञा ।

नारद — अब हम जाते हैं ।

(गान चाल भैरव, ताल इकताला वा बाउल भजन की चाल पर ताल आड़ा)

बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम ।

गोविंद-२ केशव केशव गोपाल गोपाल माधव माधव।
हरि हरि हरि वंशीधर श्याम ।
नारायण वासुदेव नंदनन्दन जगबंदन ।
वृंदावन चारु चंद गरे गुंजदाम ।
'हरीचंद' जन रंजन सरन सुखद मधुर मूर्ति ।
राधापति पूर्ण करन सतत भक्त काम ।।

(नृत्य और गीत)

(जवनिका गिरती है)

सबै जाति गोपाल की

संवादात्मक प्रहसन है । रूद्र जी के अनुसार अंग्रेजी के केर्टेन रेजर के अनुसरण पर लिखा गया है । हरिश्चंद्र मैगजीन जिल्द संख्या ६ नवम्बर १८७३ में पहली बार छपा ।" सबै जाति गोपाल की" "बसंत पूजा" "ज्ञाति विवेकिनी सभा", संड्. भड्योः संवाद" ये चारों सं. १९३० से ८० के बीच कभी प्रकाशित" प्रहसन पंचक" में संग्रहीत हैं ।

— सं०

सबै जात गोपाल की

(एक पंडित जी और एक क्षत्री आते हैं)

क्षत्री — महाराज देखिये बड़ा अंधेर हो गया कि ब्राह्मणों ने व्यवस्था दे दी कि कायस्थ भी क्षत्री हैं । कहिए अब कैसे कैसे काम चलेगा ।

पंडित — क्यों इसमें दोष क्या हुआ ? "सबै जात गोपाल की" और फिर यह तो हिंदुओं का शास्त्र पनसारी की दूकान है और अक्षर कल्प वृक्ष है इस में तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है पर दक्षिणा आपको बाएं हाथ से रख देनी पड़ेगी फिर क्या है फिर तो "सबै जात गोपाल की ।"

क्ष. — भला महाराज जो चमार कुछ बनना चाहे तो उसको भी आप बना दीजिएगा ।

पं. — क्या बनना चाहे ?

क्ष. — कहिये ब्राह्मण ।

पं. — हां, चमार तो ब्राह्मण हई है इस में क्या संदेह है, ईश्वर के चर्म्म से इनकी उत्पत्ति है, इनको यह दंड नहीं होता . चर्म का अर्थ ढ़ाल है इससे ये दंड रोक लेते हैं । चमार में तीन अक्षर हैं 'च' चारों वेद 'म' महाभारत 'र' रामायण जो इन तीनों को पढ़ावे वह चमार । पद्मपुराण में लिखा है कि इन चर्मकारों ने एक बेर बड़ा यज्ञ किया था, उसी यज्ञ में से चर्मण्ववती निकली है । अब कर्म भ्रष्ट होने से अन्त्यज हो गए हैं नहीं तो हैं असिल में ब्राह्मण, देखो रैदास इन में कैसे भक्त हुए हैं लाओ दक्षिणा लाओ । 'सबै.'

क्ष. — और डोम ।

पं. — डोम तो ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों कुल के हैं, विश्वामित्र-वशिष्ट वंश के ब्राह्मण डोम हैं और हरिश्चंद्र और वेणु वंश के क्षत्रिय हैं । इस में क्या पूछना है लाओ दक्षिणा 'सबै जा.' ।

क्ष. — और कृपा निधान ! मुसलमान ।

प. — मीयाँ तो चारों वर्णों में हैं । वाल्मीकि रामायण में लिखा है जो वर्ण रामायण पढ़े मीयाँ हो जाय ।

पठन् द्विजो वाग ऋषभत्वमीयात् ।
ख्यात् क्षत्रियों भूमिपतित्वमीयात् ।।

अल्लहोपनिषत् में इनकी बड़ी महिमा लिखी है । द्वाराका में दो भाँति के ब्राह्मण थे जिनको बलदेव जी (मुशली) मानते थे । उनका नाम मुशलिमान्य हुआ और जिन्हें श्रीकृष्ण मानते उनका नाम कृष्णमान्य हुआ । अब इन दोनों का अपभ्रंश मुसलमान और कृस्तान हो गया ।

क्ष.— तो क्या आप के मत से कृस्तान भी ब्राह्मण हैं ?

पं.— हई हैं इसमें क्या पूछना है — ईशावास उपनिषत् में लिखा है कि सब जगत ईसाई है ।

क्ष.— और जैनी ?

पं.— बड़े भारी ब्राह्मण हैं । ''अहैन्नित्यपि जैनशासनरता'' जैन इनका नाम तब से पड़ा जब से राजा अलर्क की सभा में इन्हें कोई जै न कर सका !

क्ष.— और बौद्ध ?

प.— बुद्धि वाले अर्थात् ब्राह्मण ।

क्ष.— और धोबी ।

पं.— अच्छे खासे ब्राह्मण जयदेव के जमाने तक धोबी ब्राह्मण होते थे । 'धोई कवि : क्षमापति :' । ये शीतला के रज से हुए हैं इससे इनका नाम रजक पड़ा ।

क्ष.— और कलवार ।

पं.— क्षत्री हैं, शुद्ध शब्द कुलवर है, भट्टी कवि इसी जाति में था ।

क्ष.— और महाराज जी कुहांर ।

पं.— ब्राह्मण, घटखर्प्पर कवि था ।

क्ष.— और हां, हां वैश्या ।

पं.— क्षत्रियानी-रामजनी, और कुछ बनियानी अर्थात् वेश्या .

क्ष.— अहीर ।

पं.— वैश्य-नंदादिकों के बालकों का द्विजाति संस्कार होता था । ''कुरु द्विजाति संस्कारं स्वस्ति-वाचनपूर्वकं'' भागवत में लिखा है ।

क्ष.— भुइंहार ।

पं.— ब्राह्मण ।

क्ष.— द्रुसर ।

पं.— ब्राह्मण, भृगुवंश के, ज्वालाप्रसाद पंडित का शास्त्रार्थ पढ़ लीजिए ।

क्ष.— जाठ ।

पं.— जाठर क्षत्रिय ।

क्ष.— और कोल ।

पं.— कोल ब्राह्मण ।

क्ष.— धरिकार ।

पं.— क्षत्रिय शुद्ध शब्द धर्यकार है ।

क्ष.— और कुनबी और भर और पासी ।

पं.— तीनों ब्राह्मण बंश में हैं, भरद्वाज से भर, कन्व से कनुबी, पराशर से पासी ।

क्ष.— भला महाराज नीचों को तो आपने उत्तम बना दिया अब कहिए उत्तमों को भी नीच बना सकते हैं ?

पं.— ऊँच नीच क्या, सब ब्रह्म है, आप दक्षिणा दिए चलिए सब कुछ होता चलेगा ।

क्ष.— दक्षिणा मैं दूँगा, आप इस विषय में भी कुछ परीक्षा दीजिए ।

पं.— पूछिए मैं अवश्य कहूंगा ।

क्ष.— कहिए अगरवाले और खत्री ।

पं.— दोनों बढ़ई हैं, जो बढ़िया अगर चंदन का काम बनाते थे उनकी संज्ञा अगरवाले हुई और जो खाट बीनते थे वे खत्री हुए वा खेत अगोरने वाले खत्री कहलाए ।

क्ष.— और महाराज नागर गुजराती ।

पं.— संपेरे और तैली, नाग पकड़ने से नागर और गुल जलाने से गुजराती ।

क्ष.— और महाराज भुंइहार और भाटिये और रोड़े ।

पं.— तीनों शूद्र, भूजा से भुंइहार, भट्टी रखने वाले भाटिये, रोड़ा ढोने वाले रोड़े ।

क्ष.— (हाथ जोड़कर) महाराज आप धन्य हौ लक्ष्मी वा सरस्वती जो चाहैं सो करैं चलिए दक्षिणा लीजिये ।

पं.— चलौ इस सब का फल तो यही था ।

(दोनों गए)

बसंत पूजा

संवादत्मक प्रहसन'' हरिश्चंद्र मैगजीन'' जि. सं. ७ अप्रैल मई १८७४ में छपा। '' प्रहसन पंचक'' में संग्रहीत दूसरा प्रहसन। — सं.

बंसत पूजा

(यजमान और सर्वभट्ट और मुद्रं भट्ट आते हैं)

यज.— महाराज इसका नाम बसंत पूजा क्यों है ?

स.भ.— महाराज इसमें बंसतों की बंसत ही में पूजा करते हैं विशेषत : हम लोग पूरे बसंतनंदन हैं क्योंकि तौकी बाई को बाईस रुपये मिलें, मियां खिलौना को पंदरह, लाट साहब को नजर भी पंद्रही की असरफी, बड़े डाक्टर और वकीलों की फीस भी इतना ही, बीनकारों को दस, कवियों को पाँच, चपरासियों को दो, कथा पर एक, पंडितों का ईमान बिगड़वाई आठ आना पर हम को दुअन्नी, कठसरैया की माला और बेलकठा, सेती के चंदन घस मोरे ललुआ।

मु. भ.— सत्यं सत्यं, हम चिल्लाने में किसी

मु. भ.— सत्यं सत्यं, हम चिल्लानो में किसी से कम नहीं, शास्त्र भी हमारा सर्वोपरि वेद, उस पर यह दशा।

य.— अच्छा आज कोई इस समय के अनुसार संहिता पढ़िये तो हम विशेष दक्षिणा दें।

स. भ.— तर आरंभ करा मुद्रं भट्ट।

मु. भ.— हंआं भी ह्मणतो सहस्र शीर्षा पुरुष : सहस्राक्ष : ।

स. भ.— अं आं सहताक्ष : नेत्र कुत्रास्ति।

मु. भ.— स्वकार्य्यदर्शने-मा भवतु प्रजा-दर्शनेन्सहस्रपात् (रेलादिना) सभूमिं सर्व्वतो वृत्तवा-अत्यतिष्ठद्दशांगुलं।

स. भ.— हां हां अत्यतिष्ठत्सार्द्ध त्रिहस्तं वासप्तवितस्तकं।

मु. भ.— पुरीष : एवेदं सर्व्वं यद्भूतंयच्च भाव्यं।

स. भ.— उतमद्यत्वस्ये शानो यदन्नेनातिरोहति।

य. — सहस्र शीर्षा का अध्याय तो हमैं भी यह याद है यह मत पढ़िये दूसरा चरखा निकालिये।

मु. भ.— तरते नम : म्हणा।

स. भ.— हां-राज्ञेनम : वणिजेनम गौराय-चनमस्ताम्रायचनम : ह्रणायचनम् : कपर्द्दिने नमोनम : ।

मु. भ.— नमश्श्वभ्यश्श्पतिम्यच्चयोनमौनम : ।

य.— हमें यह नमोनमो नहीं सुहाती।

स. भ.— तर देवता म्हणा-गौरी देवता हनुमान् देवता जाम्बुवान् देवता चंद्रमा देवता।

मु. भ.— पूषा देवता मूका देवता ईसा देवता भूठा देवाता मीठा देवता गोदेवता के भक्ष को देवता।

स. भ.— प्रकाल देवता स्वार्थो देवता धोखा देवता जोषा देवता कोरा देवता शिष्टाचारा देवता।

मु. भ.— लाटो देवता जज्जो देवता मजिस्टरो देवता पुलिस देवता डाक्टरो देवता।

स. भ.— बंगला देवता सड़को देवता रेलो देवता तारो देवता धूआंकसो देवता।

मु. भ.— कोतवालो देवता थानेदोरो देवता नाजिरो देवता कांस्टिबलो देवता देव ताकत का हौअ : ।

स. भ.— ईशावासमिदं सर्व्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत्।

मु. भ.— माधुवाता ऋृतायते मधुक्षरन्ति सिन्धव : माध्वीर्नस्सन्त्वोषधी : । मधुम्हणजे मद्य।

स. भ.— सलामश्चते बंदगीचते घूसश्चते चंदाचते अड़ेसश्चते बालश्चते बलश्चते राज्यंचते पाटंचते कलाकौशल्यंचते स्वच्छ विहारश्चते लक्ष्मीचते विद्याचते।

मु. भ.— रिसेप्शनश्चते-इल्युमिनेशनश्चते टैक्शचते-चुंगीचते जमाचते जुर्मानाचते।

स. भ.— बैतुमालश्चते रसूमश्चते स्टाम्पश्चते नजरश्चते डालीश्चते इनामश्चते।

मु. भ.— रेलतार का किराया च ते अंगरेजी सोदे का दामश्चते रुईचते अनंचते।

स. भ.— एकाचते बलंचते तनमनधन सर्व्वस्वंचते भवतु।

मु. भ.— मूर्खताचमे कायरत्वंचमे धक्काचमे सर्व्वस्वंचते भवतु।

मु. भ.— मूर्खताचमे कायरत्वंचमो धक्काचमे गरदनियाचमे हंसीचमे।

गरदनियाचमे हंसीचमे ।

स. भ. — भ्रष्टताचमे आजादीचमे इंग्लि-साइजज्डत्वचमे बीएचमे एमएचमे ।

मु. भ.— गर्व्वचमे कमेटीचमे चुंगी किमिश्नरीचमे आनरेरी मेजिस्ट्रेटीचमे ।

स. भ. — खानाचमे टिकट्चमे मद्यंचमे होटलंचमे लेक्चरचमे ।

मु. भ. — स्टारअवइंडियाचमे कौंसिलमें· बरत्वंचमे उपाधिचमे ।

स. भ. — दर्बार में कुरसीचमे मुलाकातचमे आनरचमे प्रतिष्ठाचमे ।

मु. भ. — फूलस्केपचमे हाफसिविलाइजेडत्वंचमे जितत्वममन्धवत्वंचमे बूटचमे शिफारशेन कल्पन्ताम्।

य. — लीजिए महाराज दक्षिणा, कान की मैल सब निकल गई अब नींद आती है बस धता ।

दोनों. — अहा हा इस गला फाड़ने का फल तो यही था लाइये लाइये ।

सब जाते हैं ।

ज्ञाति विवेकिनी सभा

यह प्रहसन" कविवचन सुधा" जि. ८ सं. १०, ११ दिसम्बर १८७६ में प्रकाशित है।" प्रहसन पंचक" में भी संग्रहीत है।

ज्ञाति विवेकिनी सभा

(विपिन राम शास्त्री सभा के सब पंडितों से बोले)

'हे सभा के विराजमान पंडितों, आज हमने आप सब को इस लिए बुलाया है कि आप सब महात्मा हमारी इस विनती को सुनो और उस पर ध्यान दो । वह हमारी विनती यह है कि हमारे पुश्तैनी यजमान गड़ेरिये लोग जो परम सुशील और सत्कर्म लवलीन हैं इन्हें किसी वर्ण में दाखिल करें । अरे भाइयो यह बड़े सोच की बात है कि हमारे जीते जी यह हमारे जन्म के यजमान जो सब प्रकार से हमको मानते जानते हैं नीच के नीच बने रहें तो हमारी जिंदगी को धिक्कार है । कोई वर्ष ऐसा नहीं होता कि इन विचारों से दस बीस भेड़ा बकरा और कमरी आसनादि वस्तु और सीधा पैसा न मिलता होय । विचारे बड़े भक्तिमान और ब्रह्मण्य होते हैं । इसलिये हमने इनके मूल पुरुष का निर्णय और वर्ण व्यवस्था लिखी है । हम को आशा है कि आप सब हमारी संमति से मेल करेंगे ! क्योंकि आज की हमारी कल की तुम्हारी । अभी चार दिन ही की बात है कि निवासीराम कायस्थ की गढ़ंत पर कैसा लंबा चौड़ा दस्तखत हमने कर दिया । और हम क्या आप सबने ही कर दिया है । रह गई पाँडित्य सो उसे आज कल्ह कौन पूछता है गिनती में नाम अधिक होने चाहिए ।

मैंने कलिपुराण का आकाश खंड और निघंट पुराण का पाताल खंड देखा तो मुझे अत्यंत खेद भया कि यह हमारे यजमान खासे अच्छे क्षत्री अब कालवशात् शूद्र कहलाते हैं । अब देखिए इनके नामार्थ ही से छत्रियत्व पाया जाता है । गढ़ारि अर्थात् गढ़ जो किला है उसके अरि, तोड़ने वाले, यह काम सिवाय क्षत्री के दूसरे का अरिनहीं है । यदि इसे गूढ़ारि का अपभ्रंश समझें तो यह

शब्द भी छत्रियत्व का सूचक है । गूढ़ मत्स्य का नाम है तिनका अरि अर्थ लें तो यह भी ठीक है क्योंकि जल स्थल सब का आखेट करना क्षत्रियों का काम है । सब अर्थ अनुमान मात्र है मुख्य इनका नाम गरुड़ाई अर्थात के वंशी वा गरुड़ के भाई जो अरुण हैं उनके वंश में उत्पन्न । इसी से जो पंडित लोग इनका नाम गरलारि अनुमान करते हैं सो भी ठीक है क्योंकि गरलारि जो मरकत अथवा गरुड़ मणि है सो गरुड़ जी की कृपा से पूर्वकाल में इनके यहाँ बहुत थे और इनको सर्प नहीं काटता था और ये सर्पविष निवारण में बड़े कुशल थे इसी से गरुड़ार्य्य कहलाते थे, अब गड़रिया कहलाने लगे हैं ।

'इन की पूर्वकालिक प्रशस्तता और कुलीनता का वृत्तांत तो आकाश खंड ही कहे देता है कि इनका मूल पुरुष उत्तम क्षत्री वर्ण था । यद्यपि इस अवस्था में सब प्रकार से हीन दीन हो गए हैं तथापि बहुत से क्षत्रियत्व के चिन्ह इनमें पाए जाते हैं । पहिले जब इनके पुरखे लोग समर भूमि में जुड़ते थे और लड़ने के लिए व्यूह रचना करते थे तो अपने योद्धाओं के चेतने और सावधान करने के लिए संस्कृत में यह बोली बोलते थे । मत्तोहि मत्तोहि दृढ़ं दृढ़ं । अर्थात् मतवाले हो गए हो संभलो चौकस रहो सो इस वाक्य के अपभ्रंश का लेश अब भी इन लोगों में पाया जाता है । देखो जब ये भेड़ी और बकरियों को डांटने लगते हैं तो 'द्रहि द्रहि मतवाही मतवाही' कहने लगते हैं तो इनके क्षत्री होने में भला कौन संदेह कर सकता है । क्षत्री का परम धर्म वीरता, शूरता, निर्भयता और प्रजापालन है सो इनमें सहज ही प्राप्त है । सावन भादों की अंधेरी रात में जंगलों के बीच सिंह के समान गरजते हैं और अपनी प्रजा भेड़ी बकरी को बड़े भारी शत्रु वृक से बचाते हैं । शिकारी ऐसे होते हैं कि शशप्रभृति बन जंतुओं को दंडों से पीट लेते हैं । बड़े बड़े वेगवान आदेशकारी श्वान इनकी सेवा करते और इनकी छाग मेषमय सेना की रक्षा में उद्यत रहते हैं । और दु :ख सुख की सहनशीलता इन्हीं के बाँटे पड़ी हैं । जेठ की धूप और सावन भादों की वर्षा और पूस माघ की तुषार के दु :ख को सहकर न खेदित होना इनहीं का काम है । जैसे इनके पुरखे लोग पूर्वकाल में बाणों से विद्ध होनो पर रण में पीछे का पांव नहीं देते थे ऐसे ही जब इनके पांव में भदई कुश का डाभा तीव्र चुभ जाता है तो ये उस असह्य व्यथा को सहकर आगे ही बढ़ते हैं । और धरती को सुधारने में तो इनकी प्रत्यक्ष महिमा है कि जिस खेत में दो तीन रात ये गरुड़वंशी नृपति छागमयी सेना को लेकर निवास करते हैं उस खेत के किसान को ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण कर देते हैं । फिर वह भूमि सबल और विकार रहित हो जाती है और मोटे नाजों की कौन कहे उसमें गोधूम और इक्षुदंड अपरिमित उत्पन्न होता है तो इनसे बढ़कर भूमिपाल और प्रजारक्षक कौन होगा । और यज्ञ करना क्षत्रियों का मुख्य धर्म है सो इनमें भली भाँति पाया जाता है । शरत्कालीन और चैत्र मासिक नवरात्र में अच्छे हृष्ट पुष्ट छाग मेषों के बलि प्रदान से भद्रकाली और योगिनीगणको तृप्त करते है । और जब इनके यहाँ लोमकर्तनोत्सव होता है तो उस समय सब भाई बिरादर इकट्ठे होकर खान पान के साथ परम आनन्द मनाते हैं । व्यवहार कुशल ऐसे होते हैं कि इनकी सेना की कोई वस्तु व्यर्थ नहीं जाती । यहाँ तक कि मल, मूत्र,मांस, चाम, लोम उचित मूल्य से सब बिकता है । और बैरीहंता ऐसे हैं कि सबसे बड़े भारी शत्रु को पहिले ही इन्होंने मार डाला है जैसे कहावत प्रसिद्ध है कि गड़रिया अपनी रिस को मनही में मार डालता है यदि ऐसा न करते तो इनकी प्रजा की ऐसी वृद्धि काहे को होती । ये ऐसे नीतिज्ञ होते हैं कि मेष छाग की शक्ति के अनुसार हलकी लकड़ी से उनकी ताड़ना करते हैं । वृक्ष और नदी से बढ़कर परोपकारी साधू कोई नहीं होता सो वहीं इनका रात दिन निवास रहता है इसलिए ये गरुड़ार्य सदैव सज्जनों की संगति में रहते हैं । मनोरंजन तंत्र में लिखा है कि पूर्व काल में यज्ञार्थ संचित पशुओं को राक्षस लोग उठा ले जाते थे तब उनकी रक्षा का संभार ऋषियों ने इन गरुड़वंशी क्षत्रियों को सौंपा तो इन्होंने राक्षसों को जीत कर यज्ञ पशुओं की रक्षा की तभी से छागमेष की रक्षा इनके कुल में चली आती है ।

'मैं अति प्रसन्न हुआ कि आप सबने सम्मति से एकता करके मेरी बात रख ली और तंत्र के इन प्रामाणिक वचनों को सच्चा किया ।

मेषचारणसंसक्ता : छागपालनतत्परा : ।
बभूवु :क्षत्रियादेवि स्वाचारप्रतिवर्जनात् ।।
कलौपंचसहस्राब्दे किंचिद्गनेगतैसति ।
क्षत्रियत्वंगमिष्यंति ब्राह्मणानांव्यवस्थया ।।

(तदनंतर गरुड़वंशियों के संमुख होकर)

हे गरुड़वंशियों आज इस सभा के ब्राह्मणों ने तुम्हारे पुन : अपने क्षत्रिय पद के ग्रहण और धारण करने की अभिलाषा को पूर्ण किया । अब सब दक्षिणा लाओ हम सब पंडित जन आपस में बाँट लें और तुम्हारे क्षत्री बनने के कागद पर दस्तखत कर दें ।।'

(कलऊ गड़ेरिया दक्षिणा देता है पंडित लोग लेते हैं)

कलहु— सब महरजवन से मोरी इहै विनती हौ कि किछु कहा कराना हौ तवन पक्का पाढ़ा कर दिह : । हाँ महरज्जा जिहमा कोऊ दोषै न ।

विपिनराम— दोखे का सारे ?

कलहु— अरे इहै कि धरम सास्तरवा में होइ तौने एहिमा लिखिह : ।

विपिनराम— अरे सरवा धरमसास्तर फास्तर का नाम मत लेइ ताइ तोप कै काम चलाउ सास्तर का परमान ढूँढ़े सरऊ तौ तोहार कतहूँ पता न लागी । अरे फिर आज काल धरमसास्तर को पूछत को है ।

कलहु— अरे महरज्जा पोथी पुरान के अश्लोक फश्लोक लिख दीहा इहै और का महरज्जा तोहार परजा हौं ।

विपिनराम— अरे सरवा परजा का नाँव मत लेइ । अस कहु कि हम क्षत्री हई ।

कलहु— अच्छा महरज्जा हम क्षत्री हईं तोहरे सबके पायन परत हई ।

विपिनराम— अच्छा चिरंजूचिरंजू सुखी रहा । अच्छा कलऊ तुम दोऊ प्रानी एक विरहा गाइ कै सुनाइ दो तौ हम सब विदा होहिं ।

कलहु— बहुत अच्छा महरज्जा (अपनी स्त्री से) आउरे पवरी धीहर ।

(दोनों स्त्री पुरुष मिलकर नाचते गाते हैं)

आउ मोरी जानी सकल रसखानी ।
धरि कंध बहियां नाचु मनमानी ।
मैं भैलों छतरि तु धन छतरानी ।
अब सब छुटि गैरे कुल कै रे कानी ।।
धन धन बम्हना लै पोथिया पुरानी ।
जिन दियो छतरी बनाई जगजानी ।।

(सब का प्रस्थान भया)

संड़ भंड़यो संवाद

''विद्यार्थी' में फाल्गुन सं. १९३५ मे प्रकाशित ''प्रहसन पंचक' का चौथा प्रहसन । — सं.

संडभडंयोः संवाद :

संड:. — क : कोत्र भो : ? (आप यहाँ कौन ?)

भंड: — अहमस्सि भंडाचार्य : । (मैं हूं भण्डाचार्य ।)

सं.— कुतो भवान् ? (कहां से आ रहे हैं ?)

भं.— अहं अनादियवनसमाधिंत उत्थित : । (मैं अनादि कब्रिस्तान से उठा हूँ)

सं.— विशेष : । (विशेषता क्या है ?)

भं.— क अभिप्राय : । (क्या मतलब ?)

सं.— तर्हितु भवान् वसंत एव । (तब तो आप वसंत ही हैं ।)

भं.— अत्र क : संदेह : केवलं वसंतौ, वसंतन्नदन : । (इसमें सन्देह क्या ? खालिस वसंत हूँ ; वसंतनन्दन हूँ ।)

सं.— मधुनन्दनोवा माधवनंदनों वा ? (चैत्रनंदन या वैशाखनंदन ?)

भं.— आ : किमामाक्षिपसि ! नाहं मधो : कैटभाग्रजस्य नंदन : ! अहं तु हिंदू पदवाच्य अतएव माधवनन्दन : । (ओह ! आक्षेप क्यों करता है ? मैं मधुकैटभ के बड़े भाई का बेटा नहीं हूँ । मैं हिंदू नामधारी हूँ अत : माधवनंदन हूँ ।)

सं.— तर्हितु सुस्वागतं ते। आगच्छ। माधवनंदन। (तब आपका स्वागत है। आइए माधवनंदन जी !)

भं.— हंत, प्रणामं करोमि। हा हंत। प्रणाम करता हूं।)

सं.— आस्यतां स्थीयतांच। (आइए, विराजिए !)

भं.— हं हं हं हं, भवानेव तिष्ठतु। (ह: ह: ह: आप भी बैठिए।)

सं.— नायं कालो व्यर्थशिष्टाचारस्य, तत् स्थीयतां, इदमासनं (यह व्यर्थ शिष्टाचार का समय नहीं है अत: बैठिए। यह आसन है।)

भं.— इदमासनमास्ये। (मैं इस आसन पर बैठता हूं।)

(उभावुपनिशत:)

(दोनों बैठते हैं।)

सं.— किमर्थं निर्गतोसि ? (किसलिए निकले हैं ?)

भं.— कुत: जननीजठरकुहर पिटरात् गृहाद्वा। (कहां से ? घर से या माता की गर्भ गठरी से ?)

सं.— पूर्वतस्तु निर्गत एव विभासि, परत: पृच्छामि। (गर्भ गठरी से ही निकले जान पड़ते हो ; पहला प्रश्न फिर पूछता हूं किस लिए निकले हो !

भं.— होलिका रमणार्थं। (होली खेलने के लिए।)

सं.— हहा ! अस्मिन् घोरतरसमयेपि भवादृशा होलिका रमणमनुमोदयंति न जानासिह नायं समयो होलिकारमणस्य ? भारतवर्षधने विदेशगते, क्षुत चामपीडितेच जनपदे, किं होलिकारमणेन ? (वाह ! ऐसे कठिन समय भी आप जैसे लोग होली खेलने का समर्थन करते हैं, यह नहीं जानते कि यह समय होली खेलने का नहीं। भारतवर्ष का धन विदेश जाने से जनता भूख प्यास से पीड़ित है। यह क्या होली खेलने का समय है ?)

भं.— अस्मादृशां गृहे सर्वदैव होलिका, नाहं लोकरोदनं श्रृणोमि। लोकास्तु सर्वदैव रोदनशीला:। (हम जैसों के घर सदा होली हैं मैं लोगों का रोना नहीं सुनता। लोग तो हमेशा रोते ही रहते हैं।)

भं.— तहि भवान् ढुंढावंशजात:। (तो आप ढुंढा के वंश में उत्पन्न हुए हैं ?)

भं.— नाहं ढुंढिराज:। (मैं ढुंढिराज नहीं हूँ।

सं.— नहि भो, मया उच्यते तर्हितु भवान् ढुंढावंसजात: ? (नहीं जी, मैंने तो यह पूछा कि क्या आप ढुंढा के कुल में पैदा हुए हैं ?)

भं.— नाहं जयपुरी। (मैं जयपुरी नहीं हूं।)

सं.— क: कथयति भवान् जयपुरी, दिल्लीपुरी, गोरक्षपुरी, गिरिर्भारतीति ? (कौन कहता है कि आप जयपुरी, दिल्लीपुरी, गोरखपुरी, गिरि, भारती हैं ?)

भं.— तर्हि न सुद्वो मया ढुंढाशब्दार्थ:। (तब तो मैंने ढुंढा शब्द का अर्थ नहीं समझा।)

सं.— ढुंढानाम्न्या राक्षस्या एव होलिकापर्वं। (ढुंढा नाम की राक्षसी का ही यह होलिका पर्व है।)

भं.— आ: ! पुनरपि मामाक्षिपसि राक्षसवंशकलंकेन ! मधुनंदन: मेवोक्त नाहं मधुवंशीय, माधवनंदनोहं। (ओह, फिर राक्षस वंश का कलंक लगाकर मुझ पर आरोप करता है। मैंने मधुनंदन कहा ; मैं मधुवंशी नहीं हूं, माधवनंदन हूं।)

सं.— भवतु, केन साकं रस्यसे होलिकाक्रीड़:। (अच्छा, किसके साथ होली खेलेंगे ?)

भं.— यो मिलिष्यति-उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकं। (जो भी मिल जायगा, विश्व परिवार है उदार वृत्त वालों का।)

सं.— कया सामग्रया भवान् रिरंसु: ? (किस चीज से आप होली खेलेंगे ?)

भं.— धवलधूलिरक्तपौडरश्यामपंकपीतागरुजादिद्रव्यै:। अंतरंच गुलाश्च चोवा चंदनमेव च। अबीर: पिचकारी चेति वाक्यात्। (सफेद धूल, लालपाउडर, कालेकीचड़, पीले अगुरु आदि चीजों से और चोवा चंदन से भी। अबीर पिचकारी आदि वाक्यों से।)

सं.— अधुना, भारते तादृक, कीर्तिकर्तारो न संति, धवलधूलि: कुत आगमिष्यति ? (आजकल भारत में वैसे कीर्तिशाली नहीं रह गये हैं, सफेद धूल कहां से आयेगी ?)

भं.— न ज्ञात भवता ? चुंगीरचित राज मार्गत:। (आपको मालूम नहीं ? चुंगी रचित शाही सडक से।)

सं.— भवतु राजमार्गतो, देवमार्गतो वा, किन्तु धवलधूलि: कुतस्तत्र निरंतरसेककर्मप्राचुर्यात् ? (शाही सड़क हो या देवताओं की सड़क परंतु बराबर बहुत छिड़काव होने से वहां धूल कहां ?)

भं.— आ:। यथार्थनामन्। नास्ति धूल्यभाव: ? भारतेतु प्राय: सर्वेषामेव धूर्तनेत्रैप्रक्षेपिता धूलिर्मिलिष्यति। (हे अन्वर्थनाम। धूल की कमी नहीं है।! भारत में प्राय: सभी की आंखों में धूर्तों द्वारा झोंकी गयी धूल मिलेगी।)

सं.— तर्हि रक्तपौडरंकुत: मेडिकलहालात् ?

(तब लाल पाउडर कहां से आयेगा ? क्या मेडिकल हाल से ?)

भं.— न बुद्धं भो भवता, रक्त पौडरं नाम अबीर :, रक्तंच तत् पौडरंचेति समास : । (आप नहीं जानते, लाल पाउडर का नाम अबीर है । लाल है जो पाउडर यह समास हुआ ।)

सं.— रक्तं, पौडरं चेति किं वस्तुद्वयं ? (लाल और पाउडर क्या दो वस्तुएँ हैं ?)

भं.— हा ! कीदृशो भवानल्पज्ञ : ! नहि नहि, भो अन्यर्णावछेदक रक्त वर्णावच्छिन्न : पौडर, नाम विशिष्टजातिबोधक : स्वाभाविकधर्मवान् तत्वरूपश्- चूर्णविशेष : । (आप भी कितने घोंघा हैं । नहीं नहीं, दूसरे रंगों को पृथक् करने वाले लाल रंग से युक्त एक विशिष्ट वस्तु का बोधक सहज गुण वाले चूर्ण का नाम पाउडर है ।)

सं.— हंहो बुद्धं भवान् वैयाकरण नैययायिकश्च । (हां अब समझ आप वैयाकरण भी हैं और नैयायिक भी) ।

भं.— सत्यमेव, यत्र शाब्दिकास्तत्रतार्किका इति हि प्रसिद्धि : (सच है, यह तो प्रसिद्ध ही है कि जहां शब्द शास्त्री वहां तर्क शास्त्री !)

भं.— भवतु रक्तपौड रं कुत आनेप्यसि, आयीणा शिरसि तदभावात् ? (अच्छा लाल पाउडर लाइयेगा कहां से आर्यों के सिर पर तो रह नहीं गया है)

भं.— हहहह, रक्त रजसोपि दारिद्र्यं मम नारीभंडस्य ! विशेषत : कुसुमाकरे ऋतो ? (अहाहा, मेरे नारीभंड के लिये रक्त रज का भी अभाव है, खासकर वसंत ऋतु में ।)

सं.— ज्ञातं परंतु श्यामपकं कि जयचंद्रादारभ्य आर्यकुलानर्थविग्रहमूलजनकानोमुखात्, भारत ललनाया अश्रुपूर्णान्नेत्राद्वा ? (समझा, परंतु क्या जयचंद से शुरू कर आर्य वंश के लिये अनर्थ और विग्रह की जड़ के जन्मदाताओं के मुंह से या नारियों के आंसू भरे नेत्रों से काला कीचड़ लाइयेगा ।

भं.— नहि, गंधविक्रेतुर्हट्टपण्यात् । (नहीं, इत्रफरोशों के बाजार से)

सं.— अगरुजंकुत, आर्याणां मुख कांति समूहात ? (अगुरु कहाँ से लाइयेगा ? क्या आर्यों के मुख की कान्ति से ?)

भं.— पांचलात्काश्मीरात् । अस्माकं तु सर्वत्रैव गति :, यत : कुतश्चिद् गृहीत्वा क्रीडिश्यामि । (पंजाब से काश्मीर से ! हम लोगों की गति सभी जगह है अत : कहीं से भी लाकर खेलूंगा ।)

सं.— क्रीड निश्चिंतो भवान् कुत्रास्माकं देशचिंतातुराणां क्रीड़ाभिरुचि : ? (आप बेफिक्र खेलिये हम जैसै देश की चिन्ता से ग्रस्त लोगों को खेल का क्या शैक ?)

भं.— भवंतस्तु व्यर्थ देशचिंतापुरा : भवच्चित्तया किं भविष्यति ? (आप व्यर्थ ही देश की चिंता से व्याकुल हैं, आपके चिन्ता करने से क्या क्या होगा ?

सुखं क्रीड, रमस्व, खेल, कूदखेलम् याति, पुन : क्व युवतय :, रोदनेन न किमपि भविता (सुख से खेलिए कूदिए । फिर यौवन कहाँ ? रोने से क्या होता है ।) भारतंतु होलिकाया मेव गंता । अत्रतु जमघंटो- धूलिखेल एवावशिष्यति, तन्मारय अनंतांगलराज- धानीशिखरोपरि पोलिटिकल चिंता समूहं । (भारत ही होली झोंक जायगा । यहाँ तो यमघंट छलका खेल ही वच रहेगा या चिंता रह जायगी भारत में अगणित अँगरेजों की राजधानी की चोटी पर बेठे हुए राजनीतिज्ञों के पास ।।

सं.— मित्र, परमयमुत्साह : किंमूल : इति जानासि वा त्वं ? (मित्र, उत्साह तो तुम्हारा खूब है परंतु क्या इसका कारण भी जानते हो ।)

भं.— नहि, लोके तु शिष्टाचार एव सर्वकर्म- प्रधानो मन्यते, अत : सएव मूलं भविता अवा पश्यचाधुनिकं विद्यार्थिनं । (नहीं, दुनिया के सभी कामों में शिष्टाचार ही प्रधान माना जाता है अत : वही कारण होगा या देख लो आजकल के विद्यार्थियों को ।)

सं.— भवतु तथैव करोमि । (अच्छा, ऐसा ही करूंगा ।)

रणधीर प्रेममोहिनी

लाला श्री निवासदास की रणधीर प्रेममोहिनी की प्रस्तावना। — सं.

रणधीर प्रेममोहिनी की

प्रस्तावना

नान्दी।

(गाइए गनपति जगवन्दन। चाल में)

गीत।

जय जय हरि निज जन सुखदाई।
विश्व ब्रह्मा बिभु त्रिभुवन राई।
भक्त चकोर चन्द्र सुख रासी।
घट घट व्यापक अज अबिनासी।।
आरज धर्म्म प्रचारक स्वामी।
प्रेम गम्य प्रभु पन्नग गामी।
करि करुणा प्रभु प्रीति प्रकासौ।
भारत सोक मोह तम नासौ।।

(जय जय इत्यादि)

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार— हां प्रभु! "भारत सोक मोह तम नासौ" देखो अंगरेजों की दया से पश्चिम से विद्या का स्रोत प्रवाहित होकर सारे भारतवर्ष को प्लावित कर रहा है परन्तु हिन्दू लोग कमल के पत्ते की भांति उसके स्पर्श से अब भी अलग हैं। (कुछ सोच कर) सचमुच नाटक के प्रचार से इस भूमि का बहुत कुछ भला हो सकता है। क्योंकि यहां के लोग कौतुकी बड़े हैं। दिल्लगी से इन लोगों को जैसी शिक्षा दी जा सकती है वैसी और तरह से नहीं। तो मैं भी क्यों न कोई ऐसा नाटक खेलूं जो आर्य्य लोगों के चरित्र का शोधक हो, (नेपथ्य की ओर देखकर) प्यारी! आज क्या यहां न आओगी।

(नटी आती है)

नटी.— प्राणनाथ! मैं तो आप ही आती था। कहिए क्या आज्ञा है?

सूत्रधार— प्यारी! आप इस आर्य्य समाज के सामने कोई ऐसा नाटक खेलो जिसका फल केवल चित्त विनोद ही न हो।

नटी.— जो आज्ञा परन्तु वह नाटक सुखान्त हो कि दु:खान्त?

सूत्रधार— प्यारी! मेरी जान तो इस संसार रूपी कपट नाटक के सूत्रधार ने जगत ही दु:खान्त बनाया। कैसा भी राजपाट उत्साह विद्या खेल तमाशा क्यों न हो अन्त में कुछ नहीं। सबका अन्त दु:ख है इससे दु:खान्त ही नाटक खेलो।

नटी— मेरी भी यही इच्छा थी। क्योंकि दु:खान्त नाटक का दर्शकों के चित्त पर बहुत देर असर बना रहता है।

सूत्रधार— और नाटक भी कोई नवीन हो और स्वभाव विरुद्ध न हो। कहो तुम कौन सोचती हो।

नटी— नाथ! दिल्ली के रईस लाला श्रीनिवासदासजी का बनाया रणधीर प्रेममोहिनी नाटक क्यों न खेला जाय। मेरे जान तो उसका आजकल हिन्दी समाज में चरचा भी है। इससे वही अच्छा होगा।

सूत्रधार— हां हां बहुत अच्छी बात है। उस नाटक में वे सब गुण हैं जो मैं चाहता हूं। तो चलो हम लोग शीघ्र ही वेश सजें। और खेल का आरम्भ हो।

नटी— चलिए।

(दोनो जाते हैं)

नट का गान।

आवहु मिलि भारत भाई। नाटक देखहु सुख पाई
आवहु मिलि.
जबसों बढ़यौ विषय इत मूरखता सब नैननि छाई।
तबसों बाढ़े भांड भगतिया गनिका के समुदाई।।
आवहु. मिलि.
ऐसो कोउ न बिनोद रच्यौ इन जामैं जीअ लुभाई।
सज्जन कहन सुमन देसान के लायक दृग सुखदाई।।
आवहु मिलि.
ताही सों यह सब गुन पूरन नाटक रच्यौ बनाई।
याहि देखि श्रम करहु सफल मम यह विनवत सिर नाई
आवहु.

श्री हरिश्चन्द्र

बनारस।

श्री रामलीला

चम्पूविधा मे वर्णित रामनगर की लीला का वर्णण। पहली बार इसे खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर ने छापा।

— सं.

श्री रामलीला

अतिरोचक गद्य और पद्य में श्री राम जी की
बाललीला।

भारत भूषण भारतेन्दु श्री हरिश्चद्र कृत

जिसको हिन्दी भाषा के प्रेमी तथा रसिकजनों के
मनोविलास के लिये क्षत्रियपत्रिका सम्पादक

म. कु. बाबू रामदीन सिंह
ने प्रकाशित किया

पटना — 'खंगविलास' प्रेस बांकीपुर।
चंडीप्रसाद सिंह ने मुद्रित किया।

१९०४

हरिश्चन्द्राब्द २०

प्रथम बार दाम ।।)

श्री रामलीला।

पद— हरि लीला सब बिधि सुखदाई।
कहत सुनत देखत जिअ आनत देति भगति अधिकाई।
प्रेम बढ़त अघ नसत पुन्यरति जिय मैं उपजत आई।
याही सों हरिचन्द करत स्तुति नित हरि चरित बड़ाई ।।१

गद्य— आहा! भगवान की लीला भी कैसी दिव्य और धन्य पदार्थ है कि कलिमल ग्रसित जीवों को सहज ही प्रभु की ओर झुका देती है और कैसा भी विषयी जीव क्यों न हो दो घड़ी तो परमेश्वर के रंग में रंग ही देती है। विशेष करके धन्य हम लोगों के भाग्य कि श्रीमान महाराज काशिराज भक्त शिरोमणि की कृपा से सब लीला विधिपूर्वक देखने में आती है। पहले मंगलाचरण होकर रावण का जन्म होता है फिर देवगण की स्तुति और बैकुण्ठ और क्षीरसागर की झाँकी से नेत्र कृतार्थ होते हैं। फिर तो आनन्द का समुद्र श्री रामजन्म का महोत्सव है जो देखने ही से सम्बन्ध रखता है कहने की बात नहीं हैं।

कवित्त— राम के जनम माहि आनंद उछाह जौन सोई दरसायो ऐसी लीला परकासी है। तैसे ही भवन दसरथ राज रानी आदि तैसो ही अनन्द भयो दुख निसि नासी है ।। सोहिलो बधाई द्विज दान गान बाजे बजैं रंग फूल वृष्टि चाल तैसी निकासी है। कलिजुग त्रेता कियो नर सब देव कीन्हें आजु कासीराज जू अजुध्या कीनी कासी है ।।२।।

फिर श्री रामचन्द्र की बाललीला, मुण्डन कर्णबेध जनेऊ शिकार खेलना आदि ज्यौं का त्यौं होता है देखने से मनुष्य भव दुख मूल से खोता है। फिर विश्वामित्र आते हैं संग में श्री राम जी को सानुज ले जाते हैं। मार्ग में ताड़िका सुबाहु का बध और फिर चरण रेणु से अहिल्या का तारना। आहा! धन्य प्रभु के पदपद्म जिसके स्पर्श से कहीं मनुष्य पारस होता है देवता बनता है कहीं पत्थर तरता है। इस प्रभु की दीन दयाल पर

श्री मन्महाराज की उक्ति ।

दोहे—
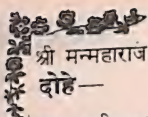
हम जानी तुम देर जो, लावत तारन मांहि ।
पाहन हू तें कठिन गुनि, मो हिय आवत नाहिं ।३
तारन मैं मो दीन के, लावत प्रभुत कित बार ।
कुलिस रेख तुव चरन हू, जो मम पाप पहार ।३

कवि की उक्ति ।

मो ऐसो को तारिबो, सहज न दीनदयाल ।
आहन पाहन बज्रहू, सो हम कठिन कृपाल ।५
परम मुक्तिहू सों फलद, तुअ पद पदुम मुरारि ।
यहै जतावन हेत तुम, तारी गौतम नारि ।६
एहो दीनदयाल यह, अति अचरज की बात ।
तो पद सरस समुद्र लहि पाहन हूं तरि जात ।७
कहा पखानहुं ते कठिन, मो हियरो रघुबीर ।
जो मम तारन मैं परी, प्रभु पर इतनी भीर ।८
प्रभु उदार पद परसि जड़, पाहन हूं तरि जाय ।
हम चैतन्य कहाइ क्यौं तरत न परत लखाय ।९
अति कठोर निज हिय कियो, पाहन सों हम हाल ।
जामैं कबहूं मम सिरहू, पद रज देहि दयाल ।१०
हमहूं कछु लघु सिल न जो, सहजहिं दीनी तार ।
लगि है इत कछु बार प्रभु, हम तौ पाप पहारा ।११

फिर श्री रामचन्द्रजी सानुज जनकनगर देखने जाते हैं । पुरनारियों के मन नैन देखते ही लुभाते हैं ।

कबित्त— कोऊ कहै यहै रघुराज के कुंआर दोऊ कोऊ ठाढ़ी एक टक देखैं रूप घर मैं । कोऊ खिरकीनी कोऊ हाट बाट धाई फिरै बावरी ह्वै पूछै गए कौनसी डगर मैं ।। हरीचन्द भूमै मतवारी दृग मारी कोऊ जकी सी ठगी सी थकी सी कोऊ खरी एकै थर मैं । लहर चढ़ी सी कोऊ जहर मढ़ी सी भई कहर पड़ी है आजु जनक सहर मैं ।।१२।।

फिर श्री राम जी फुलवारी में फूल लेने जाते हैं । उस समय फुलवारी की रचना, कुंजों की बनावट कल के भौंरों का नाचना, और चिड़ियों का चहकना यह सब देखने ही के योग्य है ।

इतने में एक सखी जो कुंजों में गई तो वहां रामरूप देखकर बावली हो गई । जब वहां से लौटकर आई तो और सखियां पूछने लगीं ।

कबित्त— कहा भयो कैसी है बतावै किन देह दसा छन हीं में काहे बुधि सबही नसानी सी । अबहीं तो हंसति हंसति गई कुञ्जन मैं कहा तित देख्यौ जासों ह्वै रही हिरानी सी ।। हरीचन्द काहू कछु पढ़ि कियो टोना लागी ऊपरी बलाय कै रही है बिख सानी सी । अनन्द समानी सी जगत सौं भुलानी सी लुभानी सी दिवानी सी सकानी सी बिकानी सी ।।१३ ।।

यह सुनकर वह सखी उत्तर देती है ।

सवैया— जाहु न जाहु न कुञ्जन मैं उत नांहि तौ नाहकर लाजहि खोलि हौ । देखि जौ लैहो कुमारन कों अबहीं झट लोक की लीकहि छोलि हौ ।। भूलि है देह दसा सगरी हरिचन्द कछू को कछू मुख बोलि हौ । लागि हैं लोग तमासे हहा बलि बावरी सी ह्वै बजारन डोलि हौ ।।१४ ।।

कबित्त— जाहु न सयानी उत बिरछन मांहि कोऊ कहा जानै कहा दोय झलक अमन्द है । देखत ही मोहि मन जात नसै सुधि बुधि रोम रोम छकै ऐसो रूप सुख कन्द है ।। हरीचन्द देवता है सिद्ध है छलावाहै सहावा है कि रत्न है कि कीनो दृष्टि बन्द है । जादू है कि जन्त्र है कि मन्त्र है कि तन्त्र है कि तेज है कि तारा है कि रवि है कि चन्द है ।।१५ ।।

वहां से दूसरे दिन श्री रामचन्द्र धनुषयज्ञ में आते हैं और उनका सुन्दर रूप देखकर नर नारी सब यही मनाते हैं ।

कबित्त— आए हैं सबन मन भाए रघुराज दोऊ जिन्हैं देख धीर नाहिं हिअ मांहि धरि जाय । जनक दुलारी जोग दूलह सखी हैं एई ईस करै राउ आज प्रनहिं बिसरि जाय ।। हरीचन्द चाहै जौन होइ एई सिअ बरैं जो जो होई बाधक बिधाता करै मरि जाय । चाटि जाहिं घुन याहि अबहीं निगोरो बटपारो दई मारो धनु आग लगै जरि जाय ।।१६।।

जब धनुष के पास श्रीरामजी जाते हैं तब जानकी जी अपने चित्त में कहती हैं ।

सवैया— मो मन मैं निहचै सजनी यह तातहु ते प्रन मेरो महा है । सुन्दर स्याम सुजान सिरोमनि मो हिअ मैं रमि राम रहा है ।। रीत पतिब्रत राखि चुकी मुख भाखि चुकी अपुनो दुलहा है । चाप निगोड़ो अबै जरि जाहु चढ़ो तो कहा न चढ़ो तो कहा है ।।१७।।

लोगों को चिन्तित देख श्री रामचन्द्र जी धनुष के पास जाते हैं और उठाकर दो टुकड़े करके पृथ्वी पर डाल देते हैं । बाजे और गीत के साथ जय जय की धुन आकाश तक छा जाती है ।

कबित्त— जनक निरासा दुष्ट नृपन की आसा पुरजन की उदासी सोक रनिवास मनु के । बीरन के गरब गरूर भरपूर सब भ्रम आदि मुनि कौसिक के तनु के ।। हरीचन्द भय देव मन के पुहुमि भार बिकल बिचार सबै पुरनारी जनु के । संका मिथिलेस की सिया के उर सूल सबै तोरि डारे रामचन्द्र साथै हर धनु के ।।१८।।

धनुष टूटते ही जगत जननी जानकी जी जयमाल लेकर भगवान को पहिनाने चलीं उसकी शोभा कैसे कही जाय ।

कवित्त— चन्दन की डारन मैं कुसुमित लता कैधौं पोखराज साखन मैं नव रत्न जाल है । चन्द्र की मरीचिन मैं इन्द्रधनु सोहै कै कनक जुग कामा मधि रसन रसाल है ।। हरीचन्द जुगल मृनाल मैं कुमुद बेलि मूंगा की छरी मैं हार गूथ्यौ हीर लाल है । कैंधौं जुग हंस एके मुक्तमाल लीने कै सिया जू करन महं चारु जयमाल है ।।१९।।

सवैया— टूटत ही धनु के मिलि मंगल गाइ उठीं सगरी पुरबाला । लै चलीं सीतहि राम के पास सबै मिलि मन्द मराल की चाला ।। देखत ही पिय को हरिचन्द महा मुद पूरित गात रसाला । प्यारी ने आपुने प्रेम के जाल सी प्यारे के कण्ठ दई जयमाला ।।२०।।

बस चारों ओर आनन्द ही आनन्द हो गया ।

फिर अयोध्या से बरात आई यहाँ जनकपुर में सब व्याह की तयारी हुई । वैसी ही मण्डप की रचना वैसा ही सब सामान ।।

श्री रामचन्द्र दूलह बन कर चारों भाई बड़ी शोभा से व्याहने चले । मार्ग में पुर बनिता उनको देख कर आपुस में कहने लगीं ।

कवित्त— एई अहैं दसरथ नन्द सुखकन्द तारी गौतम की नारी इनहीं ने मारी राछसनि । कौशला के प्यारे अति सुंदर दुलारे सिया रूप रिझवारे प्रेमी जनन के प्रान धनि ।। सुन्दर सरूप नैन बाँके मद [illegible]के हरिचन्द घुघुराली लटैं लटकैं अही सी बनि । कहा सबै उझकि बिलोकी बार बार देखो नजरि न लागै [illegible] भरि कै निहारो जनि ।।२१।।

सवैया— एई हैं गौतम नारि के तारक कौसिक के मख के रखवारे । कौसला नन्दन नैन अनन्दन एई हैं प्रान जुड़ावन हारे ।। प्रेमिन के सुखदैन महा हरिचन्द के प्रानहुं ते अति प्यारे । राजदुलारी सिया जू के दूलह एई हैं राघव राज दुलारे ।।२२।।

मण्डप में पहुँच कर सब लोग यथास्थान बैठे । महाराज जनक ने यथा विधि कन्यादान दिया । जै जै की धुनि से पृथ्वी आकाश पूर्ण हो गया ।।

सवैया— बेदन बिधि सों मिथिलेस करी सब व्याह की रीति सुहाई । मंत्र पढ़ै हरिचन्द सबै द्विज गावत मंगल देव मनाई ।। हाथ मैं हाथ के मेलत ही सब बोलि उठे मिलि लोग लुगाई । जोरी जियो दुलहा दुलही की बधाई बधाई बधाई ।।२३।।

मौर लसैं उत मौरी इतै उपमा इकठ्ठ नहिं जातु लही है । केसरी बागो बनो दोउ के इत चन्द्रिका चारु उतै कुलही है । मेंहदी पान महावर सों हरिचन्द महा सुखमा उलही है । लेहु सबै दृग को फल देखहु दूलह राम सिया दुलही है ।।२४।।

विधि सो जब व्याह भयो दोउ को मनि मण्डप मंगल चांवर भे । मिथिलेस कुमारी भई दुलही नव दूलह सुंदर सांवर भे ।। हरिचन्द महान अनन्द फल्यों दोउ मोद भरे जब भांवर भे । तिनसों जग मैं कछू नाहिं बनी जे न ऐसी बनी पैं निछावर भे ।।२५।।

फिर जेवनार हुई ! सब लोग भोजन करने को बैठे । स्त्रियाँ ढोल मंजीरा लेकर गाली गाने लगीं ।

सुन्दर श्याम राम अभिरामहिं गारी का कहि दीजै जू । अगुन सगुन के अनगन गुनगन कैसे कै गनि लीजै जू ।। मायापति माया प्रगटावन कहत प्रगट स्रुति चारी । जो पति पितु सिसू दोउ मैं व्यापत ताहि लगै का गारी । मात पिता को हत न निरनय जात न जानी जाई । जाके जिय जैसी रुचि उपजै तैसिय कहत बनाई ।। अज के दसरथ सुने रहै किमि दसरथ के अज जाये । भूमिसुता पति भूमिनाथ सुत दोउ आप सोहाये ।। धन्य धन्य कौसिल्या रानी जिन तुम सो सुत जाओ । मात पिता सों बरन बिलच्छन श्याम सरूप सोहायो । कैकै की जो सुता कैकेई ताको सुकृत अपारा । भरतहि पर अतिही रुचि जाकी को कहि पावै पारा ।। नाम सुमित्रा परम पवित्रा चारु चरित्रा रानी । अतिहि बिचित्रा एक साथ जेहि द्वै सन्तति प्रगटानी ।। अति विचित्र तुम चारहु भाई कोउ साँवर कोउ गोरे । परी छांह कै औरहि कारन जिय नहिं आवत मोरे ।। कौसलेस मिथिलेस दुहुन में कहौ जनक को प्यारे । कौसल्यासुत कौसलपतिसुत दुहूँ एक की न्यारे ।। चरु सों प्रगटे कै राजा सों यह मोहि देहु बताई । हम जानी नृप बृद्ध जानि कछु । द्विज गन करी सहाई । तुमरे कुल की चाल अलौकिक बरनि कछु नहिं जाई । भागीरथी धाइ सागर सों मिलि अनंद बढ़ाई । सूर बंस गुरु कुलहि चलायो छत्री सबहि कहाहीं । असमञ्जस को बंस तुम्हारो राघव संसय नाहीं ।। कहलौं कहौं कहत नहि आवै तुमदे गुन गन भारी । चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन हरीचंद बलिहारी ।।२६।।

फिर आनंद से बरात विदा होकर घर आई । रानियों ने दुलहा दुलहिन को परछन करके उतारा । महाराज दशरथ ने सब का यथा योग्य आदर सत्कार किया । अब हम भी श्री जनक लली नव दुलही की आरती करके बालकांड की लीला पूर्ण करते हैं ।।

आरती कीजै जनक लली की । राम मधुप मन

कमल कली की ।। रामचंद्र मुख चंद्र चकोरी अंतर सांवर बाहर गोरी । सकल सुमंगल सुफल फली की । पिय दृग मृग जुग बंधन डोरी । पीय प्रेम रस रासि किसोरी पिय मन गति बिश्राम थली की । रूप रासि गुन निधि जग स्वामिनि प्रेम प्रवीन राम अभिरामिनि सरवस धन हरिचंद अली की ।।२७।।

अथ अयोध्या कांड की लीला प्रारंभ हुई । करुणा रस का समुद्र उमड़ चला । श्री रामचंद्र जी के बनबास का कैकेयी ने बर मांगा भगवान बन सिधारे राजा दशरथ ने प्राण त्यागा ।

(दोहा ।

बिनु प्रीतम तून सम तज्यौ, तन राखी निज टेक
हारे अरु सब प्रेम पथ, जीते दसरथ एक ।।२८।।

नगर में चारों ओर श्री रामजी का बिरह छा गया जहां सुनिए लोग यही कहते थे ।।

पद— राम बिनु पुर बसिए केहि हेत । धिक निकेत करुणानिकेत बिनु का सुख इत बसि लेत ।। देत साथ किन चलि हरि की उत जियत बादि बनि प्रेत । हरीचंद उठि चलु अबहूं बन रे अचेत चित चेत ।।२९।।

रामचंद्र बिनु अवध अंधेरो ।। कछु न सुहात सियावर बिनु मोहि राज पाट घर घेरो ।। अति दुख होत राजमंदिर लखि सूनो सांझ सबेरो । डूबत अवध बिरह सागर मैं का आवै बनि बेरो । पसु पंछी हरि बिनु उदास सब मनु दुख किया बसेरो । हरीचंद करुनानिधि केसव दै दरस दिन फेरो ।।३।।

राम बिनु बादहि बीतत सासैं । धिक सुत पितु परिवार राम जै बिनु हरि पद रति नासैं ।। धिक अब पुर बसिबो गर डारें झूठ मोह की फासैं । हरीचंद तित चलु जित हरि मुख चंद मरीचि प्रकासै ।।३१।।

राम बिनु अवध जाइ का करिए । रघुबर बिनु जीवन सों तौ यह भल जौ पहिलेहि मरिए ।। क्यौं उत नाहक जाइ दुसह बिरहानल मैं नित जरिए । हरीचंद बन बसि नित हरि मुख देखत जगहि बिसरिए ।।३२।।

राम बिन सब जग लागत सूनो । देखत कनक भवन बिनु सिय पिय होत दुसह दुख दूनो ।। लागत घोर मसान हुं सो बढ़ि रघुपुर राम बिहूनो ।कवि हरिचंद जनम जीवन सब धिक धिक सियबर ऊनो ।।३।।

जीवन जो रामहि संग बीतै । बिनु हरि पद रति और बादि सब जनम गंवावत रीतै । नगर नारि धन धाम काम सब धिक धिक बिमुख जौन सिय पीतै । हरीचंद चलु चित्रकूट भजु भव मृग बाधक चीतै ।।३४।।

फिर भरत जी अयोध्या आए और श्री रामचंद्र जी को फेर लाने को बन गए । वहां उन की मिलन रहन बोलन सब मानों प्रेम की खराद थी । वास्तव में जो भरत जी ने किया सो करना बहुत कठिन है । जब श्री रामचंद्र जी न फिरे तब पावरी ले कर भरत जी अयोध्या लौट आए । पादुका को राज पर बैठा कर आप नंदिग्राम में बनचर्य्या से रहने लगे । यह भरत जी की आरती कर के अयोध्या कांड की लीला पूर्ण हुई ।।

आरति

आरति आरति हरन भरत की सीय राम पद पंकज रत की । धर्म्म धुरंधर धीर बीर बर राम सीय जस सौरभ मधुकर सील सनेह निबाह निरत की ।। परम प्रीति पग प्रगट लखावन निज गुन गन जन अघ बिद्रावन परतछ पीय प्रेम मूरत की । बुद्धि बिवेक ज्ञान गुन इक रस रामानुज संतन के सरवस हरीचन्द प्रभुत विषय विरत की ।।३५।।

नाटक

अथवा

दृश्य काव्य
सिद्धान्त विवेचन

भारतेन्दु बाबू ने महज नाटक ही नहीं लिखे नाट्य कला पर भी एक स्वतन्त्र पुस्तक नाटक लिखी। जिसे उन्होने संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के नाट्य ग्रन्थों के आधार पर तैयार किया था। यह पुस्तक मेडिकल हाल प्रेस बनारस से सन् १८८३ में प्रकाशित हुई थी। —सं.

उपक्रम

मुद्राराक्षस का जब मैंने अनुवाद किया तब यह इच्छा थी कि नाटकों के वर्णन का विषय भी इसके साथ दिया जाय। किंतु एक तो ग्रंथ के बढ़ने के भय से दूसरे कई मित्रों के अनुरोध से यह विषय स्वतंत्र, पुस्तकाकार मुद्रित हुआ। इसके लिखित विषय दशरूपक, भारतीय नाट्य शास्त्र, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, विल्सन्स हिंदू थिएटर्स, लाईफ आव दि एमिनेंट परसन्स, ड्रामेटिस्ट्स ऐंड नोवेलिस्ट, हिस्ट्री दि इटालिक थिएटर्स, और आर्य दर्शन से लिए गए हैं। आशा है कि हिंदी भाषा में नाटक बनाने वालें का यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी हो। एक तो मनुष्य बुद्धि ही भ्रमात्मिका है; दूसरे मेरी ठीक रुग्णावस्था मे यह विषय लिखा गया है, इससे बहुत सी अशुद्धियां संभव हैं। आशा है कि सज्जनगण गुण मात्र ग्रहण करके मेरा काम सफल करेंगे। इसके निर्माण से मुझको जिससे सहायता मिली है उसको धन्यवाद देने की आवश्यकता नही क्योंकि दक्षिण हस्त के परिवर्त्त मे वाम हस्त जो कार्य करे वह भी निजकृत ही है।

चैत्र शुक्ला १५, संवत् १९४०

हरिश्चन्द्र

समर्पण

हे मायाजवनिकाच्छन्न! जगन्नाटक-सूत्रधार! मदंगरंग नायक! नट नागर!

जिसने इसे इतने बड़े संसार-नाटक को रचकर खड़ा किया है, अगवंत: पाती वस्तु मात्र उसी को समर्पणीय है, विशेषकर नाटक संबंधी और वह भी उसी के एक अभिमानी जन का।

नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्य जीवन का अंतिम अंक हो चुकता, किंतु न जाने क्या सोचकर और किस पर अनुग्रह करके उसकी आज्ञा नहीं हुई । नहीं तो यह ग्रंथ प्रकाश भी न होने पाता । यह भी आप ही का खेल है कि आज इसके प्रकाश का दिन आया । जब प्रकाश होता है तो समर्पण भी होना अवश्य हुआ । अतएव —

त्वदीयं वस्तु गोविंद! तुभ्यमेव समर्पये ।

अपनाए हुए की वस्तु समझकर अंगीकार कीजिए ।

यद्यपि संसार के कुरोग से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त था ही किंतु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त तुम्हारा ।

हरिश्चंद्र ।

बपु लख चौरासी सजे नट सम रिझवन तोहि ।
निरखि रीझि गति देहु कै खीझि निवारहु मोहि ।।

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपंजरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानस राजहंसः ।
प्राणप्रयाण समये कफवातपित्तैः
कंठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ।।

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा
महारास की समाप्ति
संवत १९४७

नाटक
अथवा
दृश्य काव्य

नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया । नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने वा किसी वस्तु के स्वरूप के फेर कर देने वाले को, वा स्वयं दृष्टि रोचन के अर्थ फिरने को । नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजादिक का स्वरूप धारण करते हैं वा वेषविन्यास के पश्चात रंगभूमि में स्वकीय कार्य-साधन के हेतु फिरते हैं । काव्य दो प्रकार के हैं — दृश्य और श्रव्य । दृश्य काव्य वह है जो कवि की वाणी को उसके हृदयगत आशय और हाव-भाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे । जैसा कालिदास ने शाकुंतल में भ्रमर के आने पर शकुंतला की सूधी चितवन से कटाक्षों का फेरना जो लिखा है, उसको प्रथम चित्रपटी द्वारा उस स्थान का शकुंतला वेषसज्जित स्त्री द्वारा उसके रूप-यौवन और वनोचित श्रृंगार का, उसके नेत्र, सिर, हस्तचालनादि द्वारा उसके अंगभंगी और हाव-भाव का ; तथा कवि-कथित वाणी के उसी के मुख से कथन द्वारा काव्य का, दर्शकों के चित्त पर खचित कर देना ही दृश्यकाव्यत्व है । यदि श्रव्यकाव्य द्वारा ऐसी चितवन का वर्णन किसी से सुनिए या ग्रंथ में पढ़िए तो जो काव्य-जनित आनंद होगा, यदि कोई प्रत्यक्ष अनुभव करा दे तो उससे चतुर्गुणित आनंद होता है दृश्यकाव्य की संज्ञा रूपक है । रूपकों में नाटक ही सबसे मुख्य है । इससे रूपक मात्र को नाटक कहते हैं । इसी विद्या का नाम कुशीलवशास्त्र भी है । ब्रह्मा, शिव, भरत, नारद, हनुमान, व्यास, वाल्मीकि, लव-कुश, श्रीकृष्ण, अर्जुन, पार्वती, सरस्वती, और तुंबुरु

आदि इसके आचार्य हैं। इनमें भरतभूमि इस शास्त्र के मुख्य प्रवर्तक हैं।

अर्थ भेद

नाटक शब्द की अर्थग्राहिता यदि रंगस्थ खेल ही में की जाय तो हम इसके तीन भेद करेंगे। काव्यमिश्र, शुद्ध कौतुक औ भ्रष्ट। शुद्ध कौतुक यथा कठपुतली वा खेलौने आदि से सभा इत्यादि का दिखलाना, गूँगे-बहिरे का नाटक, बाजीगरी वा घोड़े के तमाशे में संवाद, भूत-प्रेतादि की नकल और सभ्यता की अन्यान्य दिल्लगियों को कहैंगे। भ्रष्ट अर्थात जिनमें अब नाटकत्व नहीं शेष रहा है यथा भाँड़, इंद्रसभा, रास, यात्रा, लीला और झाँकी आदि। पारसियों के नाटक, महाराष्ट्रों के खेल आदि यद्यपि काव्यमिश्र हैं तथापि काव्यहीन होने के कारण वे भी भ्रष्ट ही समझे जाते हैं। काव्यमिश्र नाटकों को दो श्रेणी में विभक्त करना उचित है। प्राचीन और नवीन —

अर्थ प्रचीन

प्राचीन समय में अभिनय नाट्य, नृत्य, नृत्त, तांडव और लास्य इन पाँच भेदों में बंटा हुआ था। इनमें नृत्य भावसहित नाचने को, नृत्त केवल नाचने को और तांडव और लस्य भी एक प्रकार के नाचने ही को कहते हैं। इससे केवल नाट्य में नाटक आदि का समावेश होगा; शेष चारों नाचनेवालों पर छोड़ दिए जायँगे। नाट्य रूपक और उपरूपक में दो भेदों में बँटा है। रूपक के दश भेद हैं। यथा —

१ नाटक।

काव्य के सर्वगुण संयुक्त खेल को नाटक कहते हैं। इसका नायक कोई महाराज (जैसा दुष्यन्त) वा ईश्वरांश (जैसा श्रीराम) वा प्रत्यक्ष परमेश्वर (जैसा श्रीकृष्ण) होना चाहिए। रस श्रृंगार वा वीर। अंक पाँच के ऊपर और दस के भीतर। आख्यान मनोहर और अत्यन्त उज्ज्वल होना चाहिए। उदाहरण शाकुंन्तल, बेणीसंहार आदि।

२ प्रकरण।

यह और बातों में नाटक के तुल्य होना चाहिए किन्तु इसका उपाख्यान लौकिक हो। नायक कोई मन्त्री धनी वा ब्राह्मण हो। इसकी नायिका मंत्रिकन्या, किसी के घर में आश्रित भाव से रहनेवाली, वा वेश्या हो। प्रथमावस्था में शुद्ध और द्वितीयावस्था में प्रकरण की संकर संज्ञा होती है। उदाहरण मल्लिकामारुत मालतीमाधव और मृच्छकटिक।

३ भाण।

भाण में एक ही अंक होता है। इसमें नट ऊपर देख देख कर जैसे किसी से बात करै आप ही सारी कहानी कह जाता है। बीच में हंसना, गाना, क्रोध करना, गिरना इत्यादि आप ही दिखलाता है।। इसका उद्देश्य हंसी, भाषा उत्तम और बीचों बीच में संगीत भी होता है। उदाहरण "विषस्य विषमौषधम्।"

४ व्यायोग

युद्ध का निदर्शन, स्त्री पात्र रहित और एक ही दिन की कथा का होता है। नायक कोई अवतार [१] वा वीर होना चाहिए। ग्रंथ नाटक की अपेक्षा छोटा। उदाहरण 'धनंजय विजय।'

५ समवकार

यह तीन अंक में हो। इसमें १२ तक नायक हो सकते हैं। कथा दैवी हो। छन्द वैदिक हों। युद्ध आश्चर्य मात्रा इत्यादि इसमें दिखलाई जाती हैं। उदाहरण भाषा में नहीं है।

६ डिम

यह भी वैसा ही किन्तु इसमें उपद्रव दर्शन विशेष होता है। अंक चार नायक देवता वा दैत्य का अवतार। (उदाहरण नहीं)।

७ ईहामृग

चार अंक, नायक ईश्वर वा अवतार। नायिका देवी। प्रेम इत्यादि वर्णित होता है। नायिका द्वारा युद्धादि कार्य सम्पादन होता है। (उदाहरण नहीं)।

८ अंक।

एक ही अंक में खेल दिखलाना। नायक गुणी और आख्यान प्रसिद्ध हो। (उदाहरण नहीं)।

---

(१) अवतारों का वर्णन भक्तमाल में एक ही छप्पय में लिखा है :—

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि बावन।
परसुराम रघुवीर कृष्ण कीरति जगपावन।।
बौध कलंकी व्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।
यज्ञ ऋषभ हयग्रीव ध्रुवहि वर देन धन्वंतर।।
बद्रीपति दत्त कपिल देव सनकादिक करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर अग्रदास उर पद धरौ।।

९ वीथी ।

भाण की भाँति एक अंक में । इसमें दो पुरुष आकर बात कर सकते हैं । अपनी वार्ता में विविध भाव द्वारा किसी का प्रेम वर्णन करेंगे किन्तु हंसाते जायंगे (उदाहरण नहीं) ।

१० प्रहसन

हास्यरस का मुख्य खेल । नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो । इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है । यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिये बिना नहीं लिखे जाते । उदाहरण — हास्यार्णव, वैदिकी हिंसा, अन्धेर नगरी ।

महानाटक ।

नाटक के लक्षणों से पूर्ण ग्रंथ यदि दश अंकों में पूर्ण हो तो उसको महानाटक कहते हैं ।

अथ उपरूपक ।

उपरूपक के अठारह भेद हैं । यथा नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित (श्रीरासिका) शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश ओर भाणिका ।

नाटिका ।

नाटिका में चार अंक होते हैं और स्त्री पात्र अधिक होते हैं तथा नाटिका की नायिका कनिष्ठा होती हैं अर्थात् नाटिका के नायक की पूर्व प्रणयनी के वश में रहती है । उदाहरण रत्नावली, चन्द्रावली इत्यादि ।

त्रोटक ।

इसमें सात-आठ नौ या पांच अंक होते हैं । और प्राय: प्रति अंक में विदूषक होता है । नायक दिव्य मनुष्य होता है । उदाहरण विक्रमोर्वशी ।

गोष्ठी ।

नौ या दस साधारण मनुष्य और पांच छ: स्त्री जिसमें हों और कैशिकी वृत्ति तथा एक ही अंक हो । (उदाहरण नहीं) ।

सट्टक ।

जो सब प्राकृत में हो और प्रवेशक विष्कम्भक जिसमें न हों और शेष सब नाटिका की भांति हो वह सट्टक है । उदाहरण कर्पूरमंजरी ।

नाट्यरासक ।

इसमें एक अंक, नायक उदात्त, नायिका वासकसज्जा, पीठमर्द उपनायक, और अनेक प्रकार के गान नृत्य होते हैं ।

अथ शेष उपरूपक ।

योंही थोड़े थोड़े भेद में और भी शेष उपरूपक होते हैं । न तो सबों के भाषा में उदाहरण हैं न इन सबों का काम ही विशेष पड़ता है इससे सविस्तार वर्णन नहीं किया गया ।

भरत मुनि ने उपरूपकों के भेद नहीं लिखे हैं । दश प्रकार के रूपक लिखकर नाटक के दो भेद और माने हैं यथा नाटिका और त्रोटक । 'मल्लिकामारुत' प्रकरण-कार दंडी कवि रूपकमात्र को मिश्रकाव्य नाम से व्यवहृत करते हैं ।

अथ नवीन भेद

आज कल योरोप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और बंगदेश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं । प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारम्बार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक अंक में अनेक अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है क्योंकि इस समय में नाटक के खेलों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है । इस अंक और गर्भांकों की कल्पना यों होनी चाहिए, यथा पाँच वर्ष के आख्यान का एक नाटक है तो उसमें वर्ष वर्ष के इतिहास के एक एक अंक और उस अंक के अंत :पाती विशेष-२ समयों के वर्णन का एक एक गर्भांक । अथवा पांच मुख्य घटनाविशिष्ट कोई नाटक है तो प्रत्येक घटना के संपूर्ण वर्णन का एक-२ अंक और भिन्न-भिन्न स्थानों में विशेष घटनांत :पाती छोटी छोटी घटनाओं के वर्णन में एक एक गर्भांक । ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदों में बँटे हैं — एक नाटक, दूसरा गीतिरूपक । जिनमें कथा भाग विशेष और गीति न्यून हों वह नाटक और जिसमें गीति विशेष हों वह गीतिरूपक । यह दोनों कथाओं के स्वभाव से अनेक प्रकार के हो जाते हैं किन्तु उनके मुख्य भेद इतने किये जा सकते हैं यथा —१ संयोगांत — अर्थात प्राचीन नाटकों की भांति जिसकी कथा संयोग पर समाप्त हो । २ वियोगांत जिसकी कथा अंत में नायिका वा नायक के मरण वा और किसी आपद घटना पर समाप्त हो । (उदाहरण 'रणधीर प्रेममोहिनी') ३ मिश्र —अर्थात् जिसके अंत में कुछ लोगों का तो प्राणवियोग हो और कुछ सुख पावैं ।

इन नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य ये होते हैं यथा — १ श्रृंगार २ हास्य ३ कौतुक ४ समाज संस्कार ५ देशवत्सलता । श्रृंगार और हास्य के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं, जगत में प्रसिद्ध है । कौतुकविशिष्ट वह है जिसमें लोगों के

चित्तविनोदार्थ किसी यंत्रविशेष द्वारा या और किसी प्रकार अद्भुत घटना दिखाई जाय । समाज संस्कार के नाटकों में देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्तव्य कर्म है । यथा शिक्षा की उन्नति विवाह सम्बन्धी कुरीतिनिवारण अथवा धर्म सम्बन्धी अन्यान्य विषयों में संशोधन इत्यादि । किसी प्राचीन कथाभाग का इस बुद्धि से संगठन कि देश की उससे कुछ उन्नति हो, इसी प्रकार के अंतर्गत है । (इसके उदाहरण सावित्री चरित्र, दु:खिनीबाला, बाल्यविवाहविदूषक जैसा काम वैसा ही परिणाम, जय नारसिंह की, चक्षुदान इत्यादि ।) देशवत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़ने वालों वा देखने वालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है और ये प्राय: करुणा और वीररस के होते हैं । (उदाहरण भारतजननी, नीलदेवी, भारतदुर्दशा इत्यादि) । इन पांच उद्देश्यों को छोड़कर वीर, सख्य इत्यादि अन्य रसों में भी नाटक बनते हैं ।

अथ नाटक रचना ।

प्राचीन समय में संस्कृत भाषा में महाभारत आदि का कोई प्रख्यात वृत्तान्त अथवा कवि-प्रौढ़ोक्ति सम्भूत, किम्वा लोकाचार संघटित, कोई कल्पित आख्यायिका अवलम्बन करके, नाटक प्रभृति दशविध रूपक और नाटिका प्रभृति अष्टादश प्रकार उपरूपक लिपिबद्ध होकर, सहृदय सभासद लोगों की तात्कालिक रुचि अनुसार, उक्त नाटक नाटिका प्रभृति दृश्यकाव्य किसी राजा की अथवा राजकीय उच्चपदाभिषिक्त लोगों की नाट्यशाला में अभिनीत होते हैं ।

पुराचीनकाल के अभिनयादि के सम्बन्ध में तात्कालिक कवि लोगों की और दर्शक मंडली की जिस प्रकार रुचि थी वे लोग तदनुसार ही नाटकादि दृश्यकाव्य रचना कर के सामाजिक लोगों का चित्त विनोद कर गये हैं किन्तु वर्त्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है इससे संप्रति प्राचीन मत अवलम्बन करके नाटक आदि दृश्यकाव्य लिखना युक्तिसंगत नहीं बोध होता ।

जिस समय में जैसे सहृदय जन्म ग्रहण करें और देशीय रीति नीति का प्रवाह जिस रूप से चलता रहे, उस समय में उक्त सहृदय गण के अन्त:करण की वृत्ति और सामाजिक रीति पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना योग्य है ।

नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयत करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करै यह आवश्यक नहीं है क्योंकि जो सब प्राचीन रीति वा पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होंगी वह सब अवश्य ग्रहण होंगी । नाट्यकला कौशल दिखलाने को देश काल और पात्रगण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है । पूर्वकाल में लोकातीत असंभव कार्य की अवतारणा सभ्यगण को जैसी हृदयहारिणी होती थी वर्तमान काल में नहीं होती ।

अब नाटकादि दृश्यकाव्य में अस्वाभाविक सामग्री परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मंडली को नितांत अरुचिकर है, इस लिये स्वाभाविक रचना ही इस काल के सभ्यगण की हृदयग्राहिणी है, इस से अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना उचित नहीं है । अब नाटक में कहीं आशी:[१] प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं 'प्रकरी'[२] कहीं 'विलोभन'[३] कहीं 'सम्फेट',[४] 'पंचसन्धि',[५] वा ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं बाकी रही । संस्कृत नाटक की भाँति हिन्दी नाटक में इनका अनुसन्धान करना, वा किसी नाटकांग में इन को यत्न पूर्वक रखकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा सम्पादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है । संस्कृत नाटकादि रचना के निमित्त महामुनि भरत जो जो सब नियम लिख गए हैं उनमें जो हिन्दी नाटक रचना के नितांत उपयोगी हैं और इस काल के सहृदय सामाजिक लोगों की रुचि के अनुयायी हैं वे ही नियम यहां प्रकाशित होते हैं ।

अथ प्रतिकृति (Scenes)

किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, बन वा उपवन

---

१. आशी :—नाटक में जो आशीर्वाद कहा जाय । यथा
 शाकुन्तल में 'ययातिरेव शर्मिष्ठा पत्युर्वहुमता भव' ।

२. 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीय फलान्तरम्' ।

३. 'गुणाख्यानं विलोभनं' यथा वेणीसंहार में 'नाथ किं दुक्करं तुए परिकुविदेते' ।

४. 'सम्फेटो रोष भाषणम' यथा वेणीसंहार में 'राजा — अरे मरुत्तनय ! वृद्धस्य राज्ञ: पुरतो निन्दितमप्यात्मकर्म श्लाघयसि' ।

५. पंचसंधि यथा — 'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहृति: इति पंचास्य भेदा:स्यु:' ।

आदि की प्रतिच्छाया दिखलाने को प्रतिकृति कहते हैं । इसी का नामान्तर अन्त :पटी वा चित्रपट वा दृश्य वा स्थान है, (१) । यद्यपि महामुनि भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र में, चित्रपट द्वारा प्रासाद, वन उपवन किम्वा शैल प्रभृति की प्रतिच्छाया दिखाने का कोई नियम स्पष्ट नहीं लिखा है, किन्तु अनुधावन करने से बोध होता है कि तत्काल में भी अन्त :पटी परिवर्त्तन द्वारा वन उपवन वा पर्वतादि की प्रतिच्छाया अवश्य दिखलाई जाती थी । ऐसा न होता तो पौर जानपदवर्ग के अपवादभय से श्रीरामकृत सीतापरिहार के समय में उसी रंगस्थल में एक ही बार अयोध्या का राजप्रासाद और फिर उसी समय वाल्मीकि का तपोवन कैसे दिखलाई पड़ता, इससे निश्चय होता है कि प्रतिकृति के परिपर्त्तन द्वारा पूर्वकाल में यह सब अवश्य दिखलाया जाता था । ऐसे ही अभिज्ञान शाकुंतल नाटक के अभिनय करने के समय सूत्रधार एक ही स्थान में रह कर परदा बदले बिना कैसे कभी तपोवन और कभी दुष्यन्त का राजप्रासाद दिखला सकैगा (२) यही सब बात प्रमाण है कि उस काल में भी चित्रपट अवश्य होते थे । ये चित्रपट नाटक में अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु है और इन के बिना खेल अत्यन्त नीरस होता है ।

जवनिका वा वाह्यपटी(Drop Scene) (३)

कार्य अनुरोध से समस्त रंगस्थल को आवरण करने के लिये नाट्यशाला के संमुख जो चित्र प्रक्षिप्त रहता है उसका नाम जवनिका वा वाह्यपटी है । जब रंगशाला में चित्रपट परिवर्त्तन का प्रयोजन होता है उस समय यह जवनिका गिरा दी जाती है । संस्कृत नाटकों में जवनिकापतन का नियम देखने से और भी प्रतीत होता है कि अन्त :पटी परिवर्त्तन द्वारा गिरि नदी आदि की प्रतिच्छाया उस काल में भी अवश्य दिखलाई जाती थी ।

''तत : प्रविशन्त्यपटीक्षेपेणाप्सरस :''

अर्थात् जवनिका बिना गिराये ही (उर्व्वशी विरहातुर) अप्सरागण ने रंगस्थल में प्रवेश किया इत्यादि दृष्टांत ही इस के प्रमाण हैं ।

अथ प्रस्तावना ।

नाटक की कथा आरंभ होने के पूर्व नटी विदूषक किम्वा पारिपार्श्विक सूत्रधार से मिलकर प्रकृत प्रस्ताव विषयक जो कथोपकथन करैं, नाटक के इतिवृत्त सूचक उस प्रस्ताव को प्रस्तावना कहते हैं । नाटक की नियमावली में मुनिवर भरताचार्य ने पाँच प्रकार की प्रस्तावना लिखी हैं । वाह पांचों प्रणाली अति आश्चर्य भरित और सुंदर हैं । उन में से चार हिंदी नाटक में भी व्यवहार की जा सकती हैं । सुत्रधार के पार्श्वचर बन्धु को पारिवार्श्विक कहते हैं । पारिपार्श्विक की अपेक्षा नट कुछ न्यून होता है । अब पूर्व लिखित पाँच प्रकार की प्रस्तावना लिखते हैं ।

यथा १ उद्घात्यक, २ कथोद्घात, ३ प्रयोगातिशय ४ प्रवर्त्तक, और ५ अवगलित ।

अथ उद्घात्यक ।

सूत्रधार प्रभृति की बात सुनकर अन्य प्रकार अर्थ प्रतिपादनपूर्वक जहाँ पात्र प्रवेश होता है उसे उद्घात्यक प्रस्तावना कहते हैं ।

उदाहरण । मुद्राराक्षस ।

सूत्र. — प्यारी, मैंने जोति :शास्त्र के चौसठों अंगों में बड़ा परिश्रम किया है । जो हो रसोई तो होने दो । पर आज गहन है यह तो किसी ने तुम्हें धोखा ही दिया है । क्योंकि —

चन्द्रबिम्बपूरन भए, क्रूर केतु हठ दाप ।
बल सों करि है ग्रास कह —

(नेपथ्य में)

हैं ! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रास कर सकता है ?

सूत्र. ।— जेहि बुध रच्छत आप ।

---

१. विर्त्तमान समय में जहां-२ ये दृश्य बदलते हैं उसी को गर्भांक कहते हैं ।

२. मुद्राराक्षस में भी कई उदाहरण इस के प्रत्यक्ष मिलते हैं । मलयकेतु राक्षस से मिलने जाता है यह कह कर उसी अंक में कहते हैं कि आसन पर बैठा राक्षस दिखलाई पड़ा । स्मशान से चंदनदास को ले कर चांडाल कुद बढ़ कर पुकारता है कि भीतर कौन है अमात्य चाणक्य से कहो इत्यादि । अर्थात् पूर्व के दोनों दृश्य बदल कर राक्षस के और चाणक्य के गर के दृश्य दिखलाई पड़े । यह न हो तब तो नाटक निरे व्यर्थ हो जाते हैं जैसा रास में और महाराष्ट्रों के नाटक में शतरंजी और मशालची को दिखला कर नायिका नायक कहते हैं कि अहा देखो ! यह फुलवारी वा नदी कैसी सुंदर है । इससे जहाँ पात्र जैसे स्थान का अपने वाक्य में वर्णन करैं वा जिस स्थान की वह कथा हो उसका चित्र पीछे पड़ा रहना बहुत ही आवश्यक है ।

३. इस परदे पर कोई सुंदर मनोहर नदी पर्वत नगर इत्यादि का दृश्य वा किसी प्रसिद्ध नाटक के किसी अंक का चित्र दिखलाना अच्छा होता है । प्रणाली अति आश्चर्य भरित और सुंदर है । उन में से हिंदी नाटक में भी व्यवहार की जा सकती हैं । सूत्रधार के पार्श्वचर बन्धु को पारिपार्श्विक कहते हैं । पारिपार्श्विक की अपेक्षा

आप ।

यहां सूत्रधार ने तो ग्रहण का विषय कहा था किन्तु चाणक्य ने चंद्र शब्द का अर्थ चंद्रगुप्त प्रगट कर के प्रवेश करना चाहा, इसी से उद्‌घात्यक प्रस्तावना हुई ।

अथ कथोद्‌घात ।

जहाँ सूत्रधार की बात सुन कर उस के साथ वाक्य के अर्थ का मर्म्म-ग्रहण कर के पात्र प्रविष्ट होते हैं उसे कथोद्‌घात कहते हैं ।

यथा रत्नावली में सूत्रधार के इस कहने पर कि ईश्वरेच्छा से द्वीपान्तर किम्वा समुद्र के मध्य की वस्तु भी सहज में मिल जाती हैं, योगंधरायण का आना ।

यहाँ सूत्रधार के वाक्य का मर्म यह था कि जिस नाटक में द्वीपान्तर की नायिका आती है, खेला जायगा इसी को समझ कर अन्य नट मन्त्री बन कर आया ।

अथ प्रयोगातिशय ।

एक प्रयोग करते करते घुणाक्षरन्याय से दूसरे ही प्रकार का प्रयोग कौशल में प्रयुक्त और उसी प्रयोग का आश्रय कर के पात्र प्रवेश करैं तो उसको प्रयोगातिशय प्रस्तावना कहते हैं ।

जैसे कुंदमाला नामक नाटक में सूत्रधार ने नृत्य प्रयोग के निमित्त अपनी भार्या को आह्वान करने के प्रयोग विशेष द्वारा सीता और लक्ष्मण का प्रवेश सूचित किया ।[१] इस प्रकार से नाटक की प्रस्तावना शेष होने पर पात्र प्रवेश और नाटकीय इतिवृत्त की सूचना होगी ।

अथ चर्चरिका

जब जब एक एक विषय समाप्त होगा जवनिका पात कर के पात्रगण अन्य विषय दिखलाने को प्रस्तुत होंगे तब तब पटीक्षेप के साथ ही नेपथ्य में चर्चरिका आवश्यक है, क्योंकि बिना उस के अभिनय शुष्क हो जाता है । जहाँ बहुत स्वर मिल कर कोई बाजा बजे या गान हो उस को चर्चरिका कहते हैं । इस में नाटक की कथा के अनुरूप गीतों का वा रागों का बजना योग्य है । जैसे सत्यहरिश्चन्द्र में प्रथम अंक की समाप्ति में जो चर्चरिका बजै वह भैरवी आदि सबेरे के राग की और तीसरे अंक की समाप्ति पर जो बजै वह रात के राग की होनी चाहिए ।

कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारतीवृत्ति ।

अथ कैशिकीवृत्ति ।

जो वृत्ति अति मनोहर स्त्री जनोचित भूषण से भूषित, और रमणी बाहुल्य नृत्य (२) गीतादि परिपूर्ण और भोगादि विविध विलास युक्त होती है उस का नाम कैशिकीवृत्ति है । यह वृत्ति श्रृंगाररसप्रधान नाटकों की उपयोगिनी है ।

अथ सात्वतीवृत्ति ।

जिस वृत्ति द्वारा शौर्य्य, दान, दया और दाक्षिण्य प्रभृत्ति से विरोचिता विविध गुणान्विता, आनन्द विशेषोद्‌भाविनी, सामान्य विलास युक्ता, विशोका और उत्साहवर्द्धिनी वाग्भंगी नायक कर्तृक प्रयुक्त होती है उस का नाम सात्वतीवृत्ति है । वीररस प्रधान नाटक में इस की आवश्यकता होती है ।

अथ आरभटी ।

माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात, प्रतिघात और बन्धनादि विविध रौद्रोचितकार्यजड़ित वृत्ति का नाम आरभटी है । रौद्र रस वर्णन के स्थल में इस वृत्ति पर दृष्टि रखनी चाहिये ।

अथ भारती ।

साधुभाषाबाहुल्य वृत्ति का नाम भारतीवृत्ति है । वीभत्स रस वर्णन स्थल में यह व्यवहृत होती है । नाटककर्त्ता ग्रन्थगुम्फन करने के समय यदि आद्यरस प्रधान नाटक लिखने की इच्छा करेंगे, तो उन को कैशिकी वृत्तिही में समस्त वर्णन करना योग्य है । आद्यरस वर्णन करने के समय ताल ठोकना, भगदर घुमाना, वा असिक्षेप प्रभृति विरोचितविषयक कोई भी वर्णन नहीं करना चाहिए । सात्वती प्रभृति वृत्तियों के पक्ष में भी ठीक यही चाल है ।

---

१. यहाँ प्रर्वतक अवगति के लक्षण ग्रंथकार ने भूल से नहीं लिखे । जहाँ वर्त्तमान समय को सूत्रधार वर्णन करता हो और उसी का सम्बन्ध लिये पात्र का प्रवेश हो उसे प्रवर्त्तक कहते हैं । जहाँ दूसरे समावेश से (उपमादि द्वारा) दूसरा कार्य्य सिद्ध हो (दूसरे का प्रवेश हो) उसे अवगलित कहते हैं । यथा शाकुंतल । विशेष विवरण संस्कृत ग्रंथों में है । सं.

२. हिंदुस्तान से नृत्यविद्या उठ गई, यह विद्या आगे इस देश में ऐसी प्रचलित थी कि सब अच्छे लोग इस को सीखते थे । इस के शास्त्र अब तक कहीं कहीं लब्ध होते हैं और उनसे इस विद्या का महत्व प्रत्यक्ष प्रगट होता है । संगीतशास्त्र का यह एक अंग है । वाद्य नृत्य और नाना यह तीनों वस्तु जिस में हो उसको संगीत संज्ञा है । इस काल में हिंदुस्तान में संगीत शास्त्र जानने वालों का कुछ आदर नहीं और लोग इस विद्या से लज्जा करते हैं परन्तु ये ही इस देश के दुर्दिन का उदाहरण हैं, अब भी भारतवर्ष के जिस प्रदेश में यह विद्या बच गई है वहां बहुत अच्छी है जैसा कि १८९१ ई. में श्री महाराज व्यंकटगिरि के संग एक नर्त्तकी शारदा नाम

अथ उपक्षेप ।

अभिनयकार्य के प्रथम संक्षेप में समस्त नाटकीय विवरण कथन का नाम उपक्षेप है ।

पूर्वकाल में मुद्रायंत्र (१) की सृष्टि नहीं हुई थी, इस हेतु रंगस्थल में नट नटी सूत्रधार अथवा पारिपार्श्विक कर्तृक उपक्षेप का उल्लेख होता था । आज कल मुद्रायंत्र के प्रभाव से इस की कुछ आवश्यकता नहीं रही प्रोग्राम बांट देने ही से वह काम सिद्ध हो जायगा ।

पूर्वकाल में नाटक मात्र में उपक्षेप उपन्यस्त होता था यह नियम नहीं था क्योंकि सब नाटकों में उपक्षेप का उल्लेख दिखाई नहीं पड़ता । वेणीसंहार में इस का उल्लेख है किन्तु यह भीमकृत उपन्यस्त हुआ है ।

यथा भीम :—

''लाक्षागृहानलविषान्नसभा प्रवेशै : प्राणेषुवित्तनिचयेषु च न : प्रहृत्य आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् सुस्था भवन्ति मयि जीवतिधार्त्तराष्ट्रा : ?''

अथ प्ररोचना ।

जिस के अनुष्ठान द्वारा अभिनयदर्शन में सामाजिक लोगों की प्रवृत्ति जन्मती है उस का नाम प्ररोचना है । यह सूत्रधार, नट, पारिपार्श्विक या नटी के द्वारा विगीत होती है ।

अथ नेपथ्य ।

रंगस्थल के पश्चात् भाग मो जो एक गुप्त स्थान रहता है उस का नाम नेपथ्य है ।

अलंकारयिता इसी स्थान में पात्रों के वेश भूषणादि से साजते हैं । जब रंगभूमि में आकाशवाणी दैवीवाणी अथवा और कोई मानुषीवाणी का प्रयोजन होता है तो वह नेपथ्य ही में से गाई या कही जाती है ।

अर्थ उद्देश्यबीज ।

गुम्फित आख्यायिका के समग्र मर्म्म का नाम उद्देश्यबीज है । कवि जो इस का साधन न कर सकैगा तो उस का ग्रंथ नाटक में परिगणित न होगा ।

अथ वस्तु ।

नाटकीय इतिहास अथवा कोई विवरण विशेष का नाम वस्तु है । वस्तु दो प्रकार की हैं यथा — आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु ।

अथ प्रासंगिक वस्तु ।

जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उस को अधिकारी कहते हैं । अधिकारी का आश्रय करके जो वस्तु विरोचित होती है उसका नाम आधिकारिक वस्तु है । जैसा उत्तरचरित ।

अथ प्रासंगिक वस्तु ।

इस आधिकारिक इतिवृत्त का रस पुष्ट करने के लिये प्रसंगक्रम में जो वृत्त लिखा होता है, उस का नाम प्रासंगिक वस्तु है । जैसा बालरामायण में सुग्रीव विभीषणादि का चरित्र ।

अथ मुख्य उद्देश्य ।

प्रसंग क्रम से नाटक में कितनी भी शाखा प्रशाखा विस्तृत हों, और गर्भांक के द्वारा आख्यायिका के अतिरिक्त और कोई विषय वर्णित हो किंतु मूल प्रस्तावनिष्कम्प रहै तो उस की रसपुष्टि करने को मुख्य उद्देश्य कहा जाता है ।

की आई थी । निस्सन्देह वह इस विद्या में बहुत प्रवीण गी । नृत्त और नत्य दोनों में अपूर्व्व काम करती थी । इस देश की नर्त्तकी तो केवल मुखावलोकन ही के योग्य होती हैं गुण तो उनके पास से भी नहीं निकलता परन्तु वह ''यथानाम तथागुण :'' को सत्य करती थी । नृत्य और नृत्त में यह भेद है कि ''भवेद्भावाश्रयंनृत्तं-नृत्यलाललयाश्रयम्'' जिस में भाव मुख्य हो वह नृत्त और जिसमें लय मुख्य हो वह नृत्य कहलाता है । भाव नेत्र भौंह मुख और हाथ और स्वर से भी प्रकट होते हैं । लय भी हाथ पैर गले और भौंह से होती है । नृत्य के शास्त्रों में १०८ भेद लिखे हैं और लाग डांट उड़प तिरप हस्तक भेद इत्यादि इस के अंग हैं, जिसमें केवल घुंघरू बजाने के ७ मुख्य भेद हैं । लास्य और ताण्डव इस के दो मुख्य अंग हैं और यह नृत एक से लेकर बहुत से मनुष्यों से भी होता है । पुरुष और स्त्री दोनों इस के अधिकारी हैं परन्तु नृत्तभेद से किसी में केवल स्त्री और किसी में दोनों होते हैं । हम परम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह विद्यासम्बन्धी संगीतशास्त्र हम लोगों में फैले और यह प्रचलित मूर्खतामय लज्जा का कारण विषयरूपी संगीत हमारे शत्रुओं को मिलै ।

(१)। यद्यपि छापे की विद्य बहुत दिनों से भारतवर्ष में प्रचलित है इस में कुछ सन्देह नहीं, किन्तु आजकल जैसी इस की उन्नति है और इससे पत्र और पुस्तक आदि छप-२ के प्रकाशित होते हैं यह भी कभी यहां था कि नहीं सो कुछ निश्चय नहीं है । श्री कृष्ण के समय जब राजा शल्व ने द्वारवतीपुरी को आक्रमण कियाए उस समय वहां यह बन्दोबस्त किया था कि ''नचा मुद्रो मिनिर्याति नैवान्त : प्रविशेदप'' महाभारतवनपर्व ; अर्थात् बिना राजकीय नाम की मोहर छाप के कोई नगर से निकल नहीं सके और कोई भीतर

अथ अभिनय ।

कालकृत अवस्था विशेष के अनुकरण का नाम अभिनय है । अवस्था यथा, रामाभिषेक, सीता निर्वासिन, द्रोपदी का केशभाराकर्षण आदि ।

अथ पात्र ।

जो लोग राम युधिष्ठिरादि का रूप धारण करके, कथित अवस्था का अनुकरण करते हैं, उन लोगों को पात्र कहते हैं । नाटक के जो सब अंश स्त्रीगणकर्तृक प्रदर्शित होते हैं, उन में भाव, हाव, हेला प्रभृति यौवन सम्भूत अष्टाविंशति प्रकार के अलंकार उन लोगों को अभ्यास नहीं करने पड़ते किंतु पुरुष लोगों को स्त्री वेश धारण के समय अभ्यास द्वारा वह भाव दिखलाना पड़ता है ।

अथ अभिनय प्रकार ।

अभिनय चार प्रकार का होता है । — यथा आंगिकाभिनय, वाचिकाभिनय, आहार्याभिनय और सात्विकाभिनय ।

अथ आंगिकाभिनय ।

केवल अंगभंगी द्वारा जो अभिनयकार्य साधन करते हैं, उस का नाम आंगिकाभिनय है । जैसे सती नाटक में नन्दी । सती ने शिव की निन्दा श्रवण कर के देह त्याग किया । यह सुन कर महावीर नन्दी ने जब त्रिशूल हस्त में लेकर के रंगस्थल में प्रवेश किया तब केवल आंगिकभाव द्वारा क्रोध दिखलाना चाहिये ।

अथ वाचिकाभिनय ।

केवल वाक्यविन्यास द्वारा जो अभिनय कार्य समाहित होता है, उस का नाम वाचिकाभिनय है । यथा तोतले आदि का वेश ।

अथ आहार्याभिनय ।

वेष भूषणादि निष्पाद्य का नाम आहार्याभिनय है । जैसा सत्यहरिश्चन्द्र में चोबदार का मुसाहिब ये लोग जब राजा के साथ रंगस्थल में प्रवेश करते हैं तो इन को कुछ बात नहीं करनी पड़ती । केवल आहार्याभिनय के द्वारा आत्मकार्य निष्पन्न करना होता है ।

अथ सात्विकाभिनय ।

स्तम्भ स्वेद रोमांच कम्प और अश्रु प्रभृति द्वारा अवस्थानुकरण का नाम सात्विकाभिनय है । जैसा सती को मृत देखकर नन्दी का व्यवहार और अश्रुपात इत्यादि ।

अथ बीभत्साभिनय ।

एक पात्र द्वारा जब कथित अभिनय में से दो वा तीन अथवा सब प्रदर्शित होते हैं तो उस को बीभत्साभिनय कहते हैं ।

अथ अंगांगी भेद ।

नाटक में जो प्रधान नायक होता है उस को समस्त इतिवृत्त का अंगी कहते हैं । जैसे सत्यहरिश्चन्द्र में हरिश्चन्द्र ।

अथ अंग ।

अंगी के कार्यसाधक पात्रगण अंग कहलाते हैं ।

भी न आवे, यहां स्पष्ट ही देख लीजिये कि छापे की मुद्रा से, एक जगह के अक्षर दूसरी जगह उतारे जाते थे । मुद्राराक्षस नाटक, जो राजा चन्द्रगुप्त के समसामयिक वा कुछ उत्तरवर्ती काल में बना है, यहां भी राक्षस नामांकित मुद्रा प्रसिद्ध ही है । इस प्रकार यद्यपि मुद्रण विधि का मूल तो आर्य्यशास्त्रों में प्राय : मिलता है, किन्तु इस की उन्नति कर के देशान्तरीय लोगों ने जैसा इस से लाभ उठाया है वैसा भारतीय आर्य्या लोगों ने कूछ भी नहीं किया, यह सभी कोई कह सकते हैं ; अतएव यह मुद्रण विद्या देशान्नर ही से चली और अनार्य्य लोग ही इस के आद्य आचार्य्य हुए, यह बात हम को भी खुले मूंह कहनी पड़ती है ।

छापा यन्त्र बनाने के निमित्त अनेक लोग ही सम्मान प्राप्त होने के योग्य हैं, किन्तु वास्तव में इंग्लैण्ड देश के हार्लेम् नगर में यह यन्त्र पहले ही पहले निर्मित हुआ, यह प्राय : सभी स्वीकार करते हैं । उक्त नगर के शासन कर्त्ता लौरेंस कोम्मर साहिब के शक १४४० चौदह सौ चालीस में इसका निर्माण किया और आद्या प्रादुर्भाव के निमित्त, सब के प्रथम वही सम्माननीय हुआ । वह एक दिन अपने समीपस्थ किसी बगीचे में जाके एक वृक्ष की गीली त्वचा काट के, उस से अपने नाम के अक्षर बना-२ एक क्रीड़ा सी कर रहा था । वे ही अक्षर काट काट के जब उस ने एक किसी कागज के ऊपर रख दिये थे, उसी समय एक वायु का भोका आया और वे अक्षर जो उस वृक्ष के रस से गीले हो रहे थे, उनकी समस्त और वे अक्षर जो उस वृक्ष के रस से गीले हो रहे थे, उनकी समस्त आकृति वायुवेग से हठात् उस कागर जर उखड़ आयी । साहिब ने जब उक्त घटना देखी तो पीछे अपनी विवेचना द्वारा वह और-२ भी अनेक प्रकार की परीक्षा करने लगा, फिर उस के काष्ट के अक्षर बना

जैसे वीरचरित में सुग्रीव विभीषण अंगद इत्यादि ।

अथ वैषम्यपात दोष ।

नाटक में अंगी को अवनत कर के अंग का प्राधान्य करने से वैषम्यपात नामक दोष होता है ।

अथ अंक लक्षण ।

नाटक के एक एक विभाग को एक एक अंक कहते हैं । अंक में वर्णित नायक नायिकादि पात्र का चरित्र और आचार व्यवहारादि दिखलाया जाता है । अनावश्यक कार्य का उल्लेख नहीं रहता । अंक में अधिक पद्य का समावेश दूषणावह होता है ।

अथ अंकावयव ।

नाटक का अवयव बृहत् होने से, एक रात्रि में अभिनय कार्य समाहित नहीं होगा । इस हेतु दश अंक से अधिक नाटक निर्माण विधि और युक्ति के विरुद्ध है । प्रथम अंक का अवयव जितना होगा द्वितीयांक का अवयव तदपेक्षा न्यून होना चाहिये । ऐसे ही क्रम क्रम से अंक का अवयव छोटा कर के ग्रन्थ समाप्त करना चाहिये ।

अथ विरोधक ।

नाटक में जिन विषयों का वर्णन निषिद्ध है, उन का नाम विरोधक है ।

उदाहरण ।

दूराह्वान, अति विस्तृत युद्ध, राज्य देशादि का विप्लव, प्रबल वात्या, दन्तच्छेद, नखच्छेद, अश्वादि बृहत्काय जन्तु का अति वेग से गमन, नौका परिचालन और नदी में सन्तारण प्रभृत्ति अघटनीय विषय ।

अथ नायक निर्वाचन ।

विनय, शीलता, वदान्यता, दक्षता, क्षिप्रता, शौर्य, प्रियभाषिता, लोकरंजकता, वाग्मिता —प्रभृति गुणसमूह सम्पन्न सद्वंशसम्भूत युवा को नायक होने का अधिकार है । नायक की भांति नायिका में भी यथासम्भव वही गुण रहना आवश्यक है । प्रहसन आदि रूपकविशेष के नायकादि अन्य प्रकार के होते हैं ।

अथ परिच्छद विवेक ।

नाटकान्तर्गत कौन पात्र कैसा परिच्छद पहिरै यह ग्रन्थकार कर्त्तृक उल्लिखित नहीं होता न किसी प्राचीन नाटककार ने इस का उल्लेख किया है । नाटक में किसी स्थान में उत्तम परिच्छद का परिवर्तन दिखलाई पड़ता है । नाटक सत्यहरिश्चन्द्र में "दरिद्र वेष से हरिश्चन्द्र का प्रवेश ।"

ऐसी अवस्था भिन्न स्पष्ट रूप से परिच्छद का वर्णन किसी स्थान में उल्लिखित नहीं रहता, इस से अभिनय में वेशरचयिता पात्रगण का स्वभाव और अवस्था विचार करके वेशरचना कर दे । नेपथ्य कार्य सुन्दर रूप से निर्वाह के हेतु एक रसज्ञ वेषविधायक की आवश्यकता रहती है ।

अथ देशकाल प्रवाह ।

अति दीर्घकाल सम्पाद्य घटना सकल नाटक में अल्पकाल के मध्य में वर्णनकरना यद्यपि दूषणावह नहीं है तथापि नाटक में देशगत और कालगत वैलक्षण्य वर्णन करना अतिशय अनुचित है ।

अथ विष्कम्भक ।

नाटक में विषकम्भक रखने का तात्पर्य यह है कि नाटकीय वस्तुरचना में जो सब अंश अत्यन्त नीरस और आडम्बरात्मक हैं उनके सन्निवेशित होने से सामाजिक लोगों को विरक्ति और अरुचि हो जाती है । नाटक प्रणेतृगण इन घटनाओं को पात्र विशेष के मुख से संक्षेप में विनिर्गत कराते हैं ।

अथ नाटकरचना प्रणाली ।

नाटक लिखना आरम्भ करके, जो लोग उद्देश्यवस्तु परंपरा से चमत्कारजनक और मधुर अति वस्तु

के एक प्रकार के सघर और द्रव वस्तु में उन को डुबोके छापा किया, तब और भी कुछ उत्तम छपा हुआ मालूम दिया । शेष में उसने शीशा एवं शीशा और रांगा मिले हुए धातु से अक्षर बना के यन्त्र के निमित्त एक स्वतन्त्र स्थान निर्माण किया । इस प्रकार उस काल से ले के अद्य पर्यन्त इस उत्तम मुद्रणविद्या की वृद्धि होती चली आती है । उक्त लौरेंस साहिब के पास एक उस का नौकर 'योहनफस्तत' नामक रहता था । उस ने गुप्त भाव से अपने स्वामी की विद्या चुरायी और वहां से आके मेण्डस नामक नगर में, उक्त मुद्रणविद्या का प्रकाश किया । अतएव वह उस देश में उस नूतन विद्या द्वारा विद्वान और मायावी के नाम से स्वयं विख्यात हुआ ।

भारतवर्षीय उन्नति के समय और उस के बाद जब यूनान और रोम देशीय लोगों की उन्नति का समय आया तो, वहां भी केवल जो धनी और बड़े आदमी होते थे, अथवा अधिक परिश्रम करते थे, वही हस्तलिखित पुस्तकों द्वारा विद्या उपार्जन कर सकते थे, किंतु आज छापे द्वारा विविध विद्याविभूषित पुस्तकें सर्वसाधारण को सहज ही में प्राप्त हो सकती हैं, इससे मनुष्य समाज में एक नूतन युक सा आविर्भूत हुआ दिखाई देता है, इस में कुछ संदेह नहीं ।

निर्व्वाचन करके भी स्वाभाविक सामग्री परिपोष के प्रति दृष्टिपात नहीं करते उन का नाटक नाटकादि दृश्य काव्य लिखने का प्रयास व्यर्थ है क्योंकि नाटक आख्यायिका की भांति श्रव्य काव्य नहीं है ।

ग्रंथकर्त्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रगण की बातचीत रचना करै कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही उस की बात भी विरचित हो । नाटक में वाचाल पात्र की मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मूर्ख की वाक्पटुता और पण्डित का मौनीभाव बिडम्बनामात्र है । पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है । नाटक में वाक्प्रपंच एक प्रधान दोष है । रसविशेष द्वारा दर्शक लोगों के अन्त :करण को उन्नत अथवा एक बारगी शोकावनत करने को समधिक वागाडंबर करने से भी उद्देश्य सिद्ध नहीं होता । नाटक में वाचालता की अपेक्षा मितभाषिता के साथ वाग्मिता का ही सम्यक् आदर होता है । नाटक में प्रपंच रूप से किसी भाव को व्यक्त करने का नाम गौण उपाय है और कौशलविशेष द्वारा थोड़ी बात में गुरुतर भाव व्यक्त करने का नाम मुख्योपाय है थोड़ी सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही नाटक जीवन का महौषध है । जैसा उत्तररामचरित में महात्मा जनकजी आकर पूछते हैं 'क्वास्ते प्रजवत्सलो राम :' यहां प्रजावत्सल शब्द से महाराज जनक के हृदय के कितने विकार बोध होते हैं । केवल सहृदय ही इस का अनुभव करैंगे । चित्रकार्य के निमित्त जो जो उपकरण का प्रयोजन और स्थान विशेष की उच्च नीचता दिखलाने को जैसी आवश्यकता होती है वैसे ही वही उपकरण और उच्च नीचता प्रदानपूर्वक अति सुन्दर रूप से मनुष्य के बाह्य भाव और कार्यप्रणाली के चित्रकरण द्वारा सहज भाव से उसका मानसिक भाव और कार्य प्रणाली दिखलाना प्रशंसा का विषय है । जो इस भांति दूसरे का अन्तरभाव व्यक्त करने को समर्थ हैं, उन्हीं को नाटककार सम्बोधन दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रन्थ नाटक में परिगणित होते हैं ।

नाटक में अन्तर का भाव कैसे चित्रित किया जाता है इस का एक अति आश्चर्य दृष्टांत अभिज्ञान शाकुन्तल (१) से उद्धृत किया गया ।

शकुन्तला श्वशुरालय में गमन करेगी इस पर भगवान कण्व जिस भांति खेदप्रकाश करते हैं वह यह है :

''सर्व्वयज्ञ कृत' इत्यादि नाम प्रसिद्ध है, 'तं यज्ञं बर्हिषिप्रौक्षं पुरुषं' इत्यादि की दो तीन ऋचा में यज्ञोत्पत्ति कही है ।

'ये द्वे कालंविधत्त :' अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य्य सूर्य्यशशाकंवह्नियनं' जिस की दो नेत्र स्वरूप मूर्त्तियां काल का विधान करती हैं और शिव के निमिष में प्रलयादिक होते हैं यह भी पुराण प्रसिद्ध वा सूर्य्य नेत्र चन्द्रमा सिर पर वा मन स्वरूप 'चन्द्रमा मन सो जातश्चक्षोस्सूर्य्यो अजायत' ।

'श्रुतिविषयगुणा या स्थिताव्याप्य विश्वं' अर्थात् वाणीस्वरूपी मूर्ति, जिस की वाणी वेद स्वरूप विश्व को अपने नियम में व्याप्त कर के स्थित है क्योंकि शिवजी वाणी के अधिदेवता 'वागीश :' अहं कलानां ऋषभोपि' विद्याकामस्तु गिरिशं' 'वाणी व्याकरणं यस्य' इत्यादि पुराण में प्रसिद्ध हैं वा वेदों की विषय हो कर जो मूर्ति एक देशावच्छिन्ना होकर भी विश्व को व्याप्त कर के स्थित है 'सभूमि सर्व्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगलम' वा

नाभि अंग का वर्णन किया है यस्य नाभिवै आकाश : 'नाभ्या असीदंतरिक्षं इत्यादि ।

'यामाहु : सर्व्वबीजप्रकृतिरिति अर्थात् पृथ्वी, सो

---

(१) इस प्रसिद्ध नाटक के मंगलाचरण का श्लोक 'यास्रष्टु सृष्टिराधा वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री ये द्वे कालं विधत्त : श्रुतिविषयगुण या स्मिता व्याप्यविश्वम् । या 'माहुस्सर्ववीजप्रकृतिरिति यथा प्राणिन : प्राणवन्त : प्रत्यक्षाभि : प्रसन्न स्तनुभिरवतु वस्ताभिष्टाभिरीश :' बहुत प्रसिद्ध है और सब टीकाकारों ने इस के अनेक अर्थ किये हैं तथापि मुझे ऐसा निश्चित होता है कि कालिदास ने क्षिति इत्यादि शब्दों में श्रीशिवजी का विराट स्वरूप वर्णन नहीं किया है क्योंकि उन मूर्तियों का 'प्रत्यक्षामि :' यह विशेषण दिया है और लोग ''यस्रष्टु : सृष्टिराद्य'' इस का अर्थ आकाश करते हैं तो आकाश क्या अक्षि का विषय है ? इस से मेरे ध्यान में आता है कि शिवजी की जो प्रत्यक्ष परम सुन्दरी मूर्ति है वह उसकी का वर्णन है । जैसे :—

'यास्रष्टु सृष्टिराद्या' अर्थात् जल 'शीर्षे च मन्दाकिनी' जि मूर्ति में 'जल सब के ऊपर है ।' वहतिविधिहुतंयाहवि :', अर्थात् अग्नि, 'वन्देसूर्य्यशशंकवह्निनयनं, जिस मूर्ति का एक मुख्य अंग अर्थात् नेत्र अग्नि है वा मुख वर्णन किया 'मुखोवैं अग्नि : 'मुखादग्नि :' ।

'या चा होत्री' अर्थात् यजमान स्वरूप जो मूर्ति कर्म्ममार्ग स्थापन करने वाली है
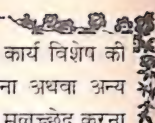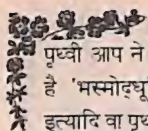
पृथ्वी आप ने भस्म स्वरूप से सर्व्वांगं में धारण किया है 'भस्मोद्धूलित सर्वांग :' भस्मोद्धूलित विग्रह :' इत्यादि वा पृथ्वी गंगा शिर नेत्र मुख नाभि इत्यादि अंगों का वर्णन कर के चरण का वर्णन करते हैं जिस के चरण पृथ्वी स्वरूप हैं 'चरणे धरा पद्माम्भूमि :' इत्यादि ।

'यथा प्राणिन : प्राणवन्त :' अर्थात् आत्मा, तो इस में मूर्ति ही में आत्मा का वर्णन इस हेतु किया जिस में भगवान के देह में आत्मा है अलग यह सन्देह न हो क्योंकि 'यथा सैन्धवघनो' इत्यादि परमात्मा का स्वरूप है तो सब मूर्तियों का वर्णन कर के व्यापकत्व और आत्मस्वरूपत्व कहा वा कानों का वर्णन मानों 'श्रोत्राद्वायुश्चप्राणश्च' वा आप प्राणायामस्य हैं यह ध्यान किया है ।

तो इन आठों मूर्त्तियों से विशिष्ट प्रत्यक्ष शिवजी का वर्णन कालिदास ने किया, कुछ संसार स्वरूप भगवान का वर्णन नहीं है क्योंकि अन्त में भी कण्व —(मन में चिन्ता करके)

आहा आज शकुन्तला पतिगृह में जायगी यह सोचकर हमारा हृदय कैसा उत्कण्ठित होता है, अन्तर में जो वाष्पभर कर उच्छवास हुआ है उससे वाग्जड़ता हो गई है, और दृष्टिशक्ति चिन्ता से जड़ीभूत हो रही हैं । हाय ! हम वनवासी तपस्वी हैं सो जब हमारे हृदय में ऐसा वैक्लव्य होता है तो कन्या के वियोग के अभिनव दु :ख में बिचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी ।

सहृदय पाठक ! आप विवेचना कर के देखिये कि इस स्थान में कविश्रेष्ठ कालिदास कुलपति कण्व ऋषि का रूपधारण कर के ठीक उनका मानसिक भाव व्यक्त कर सके हैं कि नहीं ?

इस के बदले कालिदास यदि कण्व ऋषि का छाती पीटकर रोना वर्णन करते तो उन के ऋषि जनोचित धैर्य की क्या दुर्दशा होती अथवा कण्व का शकुन्तला के जाने पर शोक ही न वर्णन करते तो कण्व का स्वभाव मनुष्य स्वभाव से कितना दूर जा पड़ता । इसी हेतु कविकुलमुकुटमाणिक्य भगवान् कालिदास ने ऋषि जनोचित भाव ही में कण्व का शोक वर्णन किया ।

नाटक रचना में शैथिल्य दोष कभी न होना चाहिये । नायक नायिका द्वारा किसी कार्य विशेष की अवतारणा कर के अपरिसमाप्त रखना अथवा अन्य व्यापार की अवतारणा कर के उस का मूलच्छेद करना नाटक रचना का उद्देश्य नहीं है । जिस नाटक की उत्तरोत्तर कार्यप्रणाली सन्दर्शन कर के दर्शक लोग पूर्वकार्य विस्मृत होते जाते हैं वह नाटक कभी प्रशंसा भाजन नहीं हो सकता । जिन लोगों ने केवल उत्तम वस्तु चुन कर एकत्र किया है उन की गुम्फित वस्तु की अपेक्षा जो उत्कृष्ट मध्यम और अधम तीनों का यथा स्थान निर्वाचन कर के प्रकृति की भाव भंगी उत्तम रूप से चित्रित करने में समर्थ है वही काव्यामोदी रसज्ञ मण्डली अपूर्व आनन्द वितरण कर सकते हैं । कालिदास भवभूति और शेक्सपियर प्रभृति नाटककार इसी हेतु पृथ्वी में अमर हो रहे हैं । कोई सामग्री संग्रह नहीं है, अथवा नाटक लिखना होगा यह अलीक संकल्प करके जो लोग नाटक लिखने को लेखनी धारण करते हैं उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है । यदि किसी को नाटक लिखने की वासना हो तो नाटक किस को कहते हैं इस का तात्पर्य हृदयंगम कर के, नाटकरचयिता को सूक्ष्मरूप से ओतप्रोत भाव में मनुष्य प्रकृति की आलोचना करनी चाहिये । जो अनालोचित मानव प्रकृति हैं उनके द्वारा मानवजाति के अन्तर्भाव सब विशुद्धरूप से चित्रित होंगे, यह कभी सम्भव नहीं है इसी कारण से कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल और शेक्सपियर मैकबेथ और हैमलेट इतने विख्यात हो के पृथ्वी के सर्व स्थान में एकादर से परिभ्रमण करते हैं । मानवप्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करै । तथा नाना प्रकार के समाज में गमन करके विविध लोगों का आलाप सुनै तथा नाना प्रकार के ग्रंथ अध्ययन करे, वरंच समय में अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करै । यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती । मनुष्य लोगों की मानसिक वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य है उन लोगों के हृदयस्थभाव भी उसी रूप अप्रत्यक्ष हैं । केवल बुद्धि वृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कतिपय बाह्य कार्य पर सूक्ष्म दृष्टि

'अभिवाद्योमहाकम्मातपस्वीभूतभावत :' 'स्र्व्वकर्म्मा' 'नीललोहित :' विशेषण दिया है और यों मानने से क्रम से शिर पर गंगा फिर मुख और उन के यज्ञादिक कर्म्म और चन्द्रचूड़ तथाच नेत्र फिर वाणी का वा नाभि का और भस्मधारण का तथा चरण का और फेर पुष्प स्वरूप आत्मा का क्रमश : वर्णन हो गया तो मेरी बुद्धि में आता है कालिदास का अभिप्राय भी यही होगा क्योंकि 'प्रत्यक्षामि :' का दोष और नाटक के उपसंहार में सगुण शिव नीललोहित कर के वर्णन इत्यादि का इस अर्थ में विरोध नहीं आता ।।

रखकर उस के अनुशीलन में प्रवृत्त होना होता है । और किसी उपकरण द्वारा नाटक लिखना झख मारना है ।

राजनीति, धर्म्मनीति, आन्वीक्षिकी, दंडनीति, सन्धि, विग्रह प्रभृति राजगुण, मन्त्रणा चातुरी, आद्य, करुणा प्रभृतिरस, विभाव, अनुभाव व्यभिचारी भाव, तथा सात्विक भाव तथा व्यय, वृद्धि, स्थान प्रभृति त्रिवर्ग की समालोचना में सम्यक् रूप समर्थ हो तब नाटक लिखने को लेखनी धारण करैं ।

स्वदेशीय तथा भिन्न देशीय सामाजिक रीति व्यावहारिक रीति पद्धति का निदान फल और परिणाम इन तीनों का विशिष्ट अनुसन्धान, नाटक रचना का उत्कृष्ट उपाय है ।

वेश और वाणी दोनों ही पात्र की योग्यतानुसार होनी चाहिये । यदि भृत्यपात्र प्रवेश करे तो जैसे बहुमूल्य परिच्छद उस के हेतु अस्वाभाविक है वैसे ही पण्डितों के संभाषण की भाँति विशेष संस्कृत गर्भित भाषा भी उस के लिये अस्वाभाविकी है । महामुनि भरताचार्य पात्र स्वभावानुकूल भाषण रखने का वर्णन अत्यन्त सविस्तार कर गये हैं, यद्यपि उनके नांदी रचनादि विषय के नियम हिंदी में प्रयोजनीय नहीं किन्तु पात्र स्वभाव विषयक नियम तो सर्वथा शिरोधार्य हैं ।

नाटक पठन वा दर्शन में स्वभावरक्षा मात्र एक उपाय है जो पाठक और दर्शकों के मन :समुद्र को भाव तरंगों से आस्फलित कर देता है ।

नाटकदर्शकगण विदूषक के नाम से अपरिचित नहीं है किन्तु विदूषक का प्रवेश किस स्थान में योग्य है इस का विचार लोग नहीं करते । बहुत से नाटकलेखकों का सिद्धांत है कि अथ इति की भाँति विदूषक की नाटक में सहज आवश्यकता है । किन्तु यह एक भ्रम मात्र है । वीर वा करुणरस प्रधान नाटक में विदूषक का प्रयोजन नहीं रहता । श्रृंगार की पुष्टि के हेतु विदूषक का प्रयोजन होता है, सो भी अब स्थल में नहीं, क्योंकि किसी किसी अवसर पर विदूषक के बदले विट, चेट, पीठमर्द, नर्मसखा प्रभृत का प्रवेश विशेष स्वाभाविक होता है । प्राचीन शास्त्रों के अनुसार कुसुमबसंतादिक नामधारी, नाटा, मोटा, वामन, कुबड़, टेढ़े अंग का वा और किसी विचित्र आकृति का, किम्बा हकला तोतला भोजनप्रिय, मूर्ख, असंगत, किंतु हास्य रस के अविरुद्ध बात कहने वाला विदूषक होना चाहिए और उसका परिच्छद भी ऐसा हो जो हास्य का उद्दीपक हो ।

संयोग श्रृंगार वर्णन में इस की स्थिति विशेष स्वाभाविक होती है ।

अथ रस वर्णन ।

श्रृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, वीभत्स, शांत, भक्ति वा दास्य, प्रेम वा माधुर्य, सख्य, वात्सल्य, प्रमोद वा आनन्द ।

श्रृंगार, संयोग और वियोग दो प्रकार का । यथा शाकुन्तल के पहले और दूसरे अंक में संयोग, पांचवें छठें अंक में वियोग ।

हास्य, यथा भाण प्रहसनों में ।

करुणा, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में शैव्या के विलाप में, रौद्र, यथा धनंजय-विजय में युद्धभूमि वर्णन ।

वीर रस ४ प्रकार । यथा दानवीर, सत्यवीर युद्धवीर, और उद्योगवीर । दानवीर, यथा सत्य-हरिश्चन्द्र में 'जेहि पाली इक्ष्वांकु सों' इत्यादि । सत्यवीर यथा हरिश्चन्द्र में 'बेचि देह द्वारा सुअन' इत्यादि युद्धवीर यथा नीलदेवी । उद्योगवीर (१) मुद्राराक्षस । भयानक अद्भुत और वीभत्स यथा सत्यहरिश्चन्द्र में स्मशानवर्णन ।

शांत यथा प्रबोध चन्द्रोदय में भक्ति यथा संस्कृत चैतन्यचन्द्रोदय में, प्रेम यथा चन्द्रावली में, वात्सल्य और प्रमोद के उदाहरण नहीं हैं ।

अथ रसविरोध ।

नाटकरचना में विरोधी रसों को बहुत बचाना चाहिए । जैसे श्रृंगार के हास्यवीर विरोधी नहीं किन्तु अति करुणा वीभत्स रौद्र भयानक और शान्त विरोधी हैं तो जिस नाटक में श्रृंगाररस प्रधान अंगी भाव से हो उसमें ये न आने चाहिए । अति करुणा लिखने का तात्पर्य यह कि सामान्य करुणा तो वियोग में भी वर्णित होगी किन्तु पुत्रशोकादिवत् अति करुणा का वर्णन श्रृंगार का विरोधी है । हाँ नवीन (ट्रैजेडी) वियोगान्त नाटक लेखक तो इस रस विरोध करने को बाधित हैं । नाटकों की सौन्दर्य्यरक्षा के हेतु विरोधी रसों को बचाना भी बहुत आवश्यक कार्य है अन्यथा होने से कवि का मुख्य उद्देश्य नाश हो जाता है ।

अथ अन्य स्फुट विषय ।

नाटक रचना के हेतु पूर्वोक्त कथित विषयों के अतिरिक्त कुछ नायिकाभेद और कुछ अलंकारशास्त्र जानने की भी आवश्यकता होती है । ये विषय रसरत्नाकर भारतीभूषण लालित्यलता आदि ग्रन्थों में विस्तार रूप से वर्णित हैं ।

आज कल की सभ्यता के अनुसार नाटकरचना में उद्देश्यफल उत्तम निकलना बहुत आवश्यक है । यह न होने से सभ्यशिष्टगण ग्रन्थ का तादृश आदर नहीं

(१) मुद्राराक्षस में मुख्य अंगीभाव से कोई रस न पाकर मुझ को उद्योगवीर की कल्पना करनी पड़ी ।

करते । अर्थात् नाटक पढ़ने या देखने से कोई शिक्षा मिले जैसे सत्यहरिश्चन्द्र देखने से आर्यजाति की सत्यतिज्ञा, नीलदेवी से देशस्नेह इत्यादि शिक्षा निकलती है । इस मर्यादा की रक्षा के हेतु वर्तमान समय में स्वकीया नायिका तथा उत्तम गुण विशिष्ट नायक को अवलम्बन कर के नाटक लिखना योग्य है । यदि इसके विरुद्ध नायिका नायक के चरित्र हों तो उसका परिणाम बुरा दिखलाना चाहिए । यथा नहुप नाटक में इन्द्राणी पर आसक्त होने से नहुष का नाश दिखलाया गया है । अर्थात चाहे उत्तम नायिका गायक के चरित्र की समाप्ति सुखमय दिखलाई जाय किंवा दुश्चरित्र पात्रों के चरित्र की समाप्ति कंटकमय दिखलाई जाय । नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावैं ।

अथ अभिनय विषयक अन्यान्य स्फुट नियम ।

नाटक की कथा — नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्वापर बद्ध होनी चाहिए कि जब तक अन्तिम अंक न पढ़ै किम्वा न देखै यह न प्रकट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा । यह नहीं कि 'सीधा एक को बेटा हुआ उस ने यह किया वह किया' प्रारम्भ ही में कहानी का मध्य बोध हो ।

पात्रों के स्वर — शोक हर्ष हास क्रोधादि के समय में पात्रों को स्वर भी घटाना बढ़ाना उचित है । जैसे स्वाभाविक स्वर बदलते हैं वैसे ही कृत्रिम भी बदलें । 'आप ही आप' ऐसे स्वर में कहना चाहिए कि बोध हो कि धीरे-धीरे कहता है किन्तु तब भी इतना उच्च हो कि श्रोतागण निष्कंटक सुन लें ।

पात्रों की दृष्टि — यद्यपि परस्पर वार्ता करने में पात्रों को दर्शकों की ओर देखकर कहने पड़ैंगे । इस पात्रों को दर्शकों की ओर देखकर कहने पड़ैंगे । इस अवसर पर अभिनयचातुर्य यह है कि यद्यपि पात्र दर्शकों की ओर देखैं किन्तु यह न बोध हो कि वह बातैं वे दर्शकों से कहते हैं ।

पात्रों के भाव — नृत्य की भांति 'रंगस्थल पर पात्रों को हस्तक भाव वा मुख नेत्र भ्रू के सूक्ष्मतर भाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं स्वर भाव और यथायोग्य स्थान पर अंगभंगी भाव ही दिखलाने चाहिए ।

पात्रों का का फिरना — एक यह साधारण नियम भी माननीय है कि फिरने वा जाने के समय जहां तक हो सकै पात्रगण अपनी पीठ दर्शकों को बहुत कम दिखलावैं । किन्तु इस नियम पालन का इतना आग्रह न करैं कि जहाँ पीठ दिखलाने की आवश्यकता हो वहां भी न दिखलावैं ।

पात्रों का परस्पर कथोपकथन — पात्रगण आपस में वार्ता जो करैं उन को कवि निरे काव्य की भांति न ग्रथित करै । यथा नायिका से नायक साधारण काव्य की भांति 'तुम्हारे नेत्र कमल हैं, कुच कलश हैं' इत्यादि न कहैं । परस्पर वार्ता में हृदय के भावबोधक वाक्य ही करने योग्य है । किसी मनुष्य वा स्थानादि के वर्णन में लम्बी चौड़ी काव्यरचना नाटक के उपयोगी नहीं होती ।

अथ नाटकों का इतिहास ।

यदि कोई हम से यह प्रश्न करे कि सब के पहिले किस देश में नाटकों का प्रचार हुआ तो हम क्षण मात्र का भी बिलम्ब किये बिना मुक्त कंठ से कह देंगे भारतवर्ष में । इसका प्रमाण यह है कि जिस देश में संगीत और साहित्य प्रथम परिपक्व हुए होंगे वहीं प्रथम नाटक का भी प्रचार हुआ होगा । हम नहीं समझ सकते कि पृथ्वी की और कोई जाति भी भारतवर्ष के सामने इस विषय में मुंह खोले । आर्यों का परम शास्त्र वेद संगीत और साहित्यमय है । और जाति में संगीत और साहित्य प्रमोद के हेतु होते हैं किन्तु हमारे पूज्य आर्य महर्षियों ने इन्हीं शास्त्रों द्वारा आनन्द में निमग्न होकर परमेश्वर की उपासना की है । यहाँ तक कि हमारे तीसरे वेद साम की संज्ञा ही गान है । और किस के यहां धर्म संगीत साहित्य-मय है ? हमारे यहां लिखा है —

> वीणावादनतत्वज्ञ : श्रुतिजातिविशारद : ।
> तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्ग प्रयच्छति ।।१।।
> काव्यालापश्च येकेचित् गीतिकान्यखिलानिच ।
> शब्दरूपधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मन : ।।२।।

तो जब हमारे धर्म के मूल ही में संगीत और साहित्य मिले हैं तब इस में क्या सन्देह है कि इस रस के प्रथमाधिकारी आर्यगण ही हैं । इस के अतिरिक्त नाटकरचना में रंग नट इत्यादि जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे सब प्राचीन काव्य, कोष, व्याकरण और धर्मशास्त्रों में पाए जाते हैं । इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि नाटकरचना हमारे आर्यगणों पर पूर्वकाल ही से विदित है ।

सर्वदा नट लोगों के ही द्वारा ये नाटक नहीं अभिनीत होते थे । आर्य राजकुमार और कुमारीगण भी इस को सीखते थे । महाभारत के खिल हरिवंश पर्व के विष्णु पर्व के ९३ अध्याय में प्रद्युम्न साम्बादि यादव राजकुमारों का वज्रनाभ के पुर में जाना और वहां नट बन कर (कौबेरम्भाभिसार) नाटक खेलना बहुत स्पष्ट

रूप से वर्णित है । वहां लिखा है कि जब प्रद्युम्न आदिक वीर बज्रनाभ के पुर में गये तो भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कुमारों को नाटक करने की आज्ञा देकर भेजा था । प्रद्युम्न सूत्रधार थे साम्ब विदूषक थे और गद पारिपार्श्विक थे । यहां तक कि स्त्रियाँ भी गाने बजाने का साज ले कर साथ गई थीं । पहले दिन इन लोगों ने रामजन्म नाटक किया जिस में लोमपाद राजा की आज्ञा से गणिका लोगों का श्रृंगी ऋषि को ठग कर लाना बहुत अच्छी रीति से दिखलाया गया था । दूसरे दिन फिर रम्भाभिसार नाटक किया (१) इसमें पहिले इन लोगों ने नेपथ्य बांधा (२) फिर स्त्रियों से भीतर से बड़े सुन्दर स्वर से गान किया (३) पीछे गंगा जी के वर्णन में प्रद्युम्न गद और साम्ब ने मिलकर नान्दी गायी (४) और तदनन्तर प्रद्युम्न जी ने विनय के श्लोक पढ़कर सभा को प्रसन्न किया (५) और तब नाटक आरम्भ हुआ । इस में शूर नामक यादव रावण बना, मनोवती नाम्नी स्त्री रम्भा (६) प्रद्युम्न नल कूबर और साम्ब विदूषक । इसी प्रकरण से यह बात सिद्ध होती है कि केवल नट ही नहीं, प्राचीन काल से आर्यकुल में बड़े-२ लोग भी इस विद्या को भली भाँति जानते थे (१९) ।

मध्य समय के नाटक

(१) 'मैमापि वद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा । कायार्थं भी कर्माणो नृत्यार्थ मुपचक्रमु: ।। इत्यादि २१ श्लोक से ३२ श्लोक तक ।

(२) अर्थात् बिना नेपथ्य के महाराष्ट्रों की भांति शतरंजी और मशालची के भरोसे नाटक नहीं खेला ।

(३) इस से विदित हुआ कि बाह्यपटी उठने के पहले गान होना भी प्राचीन रीति है ।

(४) नांदी विषयक दृढ़ नियम उसी काल से प्रचलित है ।

(५) विनय के श्लोक पढ़े अर्थात् प्रस्तावना हुई ।

(६) इस से एक बात बहुत बड़ी प्रमाण हुई कि प्राचीन काल में स्त्री का वेष स्त्री लेती थी ।

(७) अब के लोगों को नाटक के अनुशीलन वा अनुकरण करने में उत्साह नहीं होता वरन इसके तुच्छ और बुरा समझ के इस से दूर भागते हैं और नाटक करने वाले चतुरों को लोग साधारण ढ़ोल बजाने वाले नट जान कर इस काम में अपनी घृणा प्रकाश करते हैं, परन्तु बड़े शोच की बात है कि जो सब से अच्छी वस्तु है और जिसके करने वाले लोग महा सभ्यता के निकेतन हैं इन्हीं दोनों बातों में देश के कुसंस्कार से लोगों को अरुचि हो गई । नाटकों का अभिनय करना सहृदय जनों के समाज को कितनी प्रीति देनेवाला, देश की कुचालों को सुधारने वाला और कैसा कुशल करने वाला है इसका सब गुण उन नाटकों को देखने ही से उन पर प्रगट हो जायगा और इसी भांति प्रतिकूलता के बन्धन से छूट कर अनुकूलता भूषण से भूषित होकर नाटक दर्शन रूपी अलौकिक कुसुम कानन में घूमनें फिरने से अनिर्वचनीय आनन्द पावैंगे और उस के काव्यों के वायु के ठंडे और सुगन्धित झकोरों से उन के जी की कली खिल जायगी । नाटकों के अभिनय करने में जो स्वच्छंदता होती है उसे छोड़ कर उस से देश का कितना उपकार होता है कि हम लिख नहीं सकते देखिये कि यदि एक बड़ा राजा वा कोई धनी अथवा कोई पण्डित किसी बुरे काम में प्रवृत्त होय तो उसको हम लोग सभा में कभी शिक्षा न दे सकेंगे और जो कुसंस्कार की दावाग्नि बहुत काल से प्रगट हो कर हम लोगों के मंगलमय सभ्यता वन को जला रही है उस महा दावाग्नि को हम लोग दोषकथन वारि से घर बैठे बुझाना चाहेंगे तो कभी न बुझैगी इस में अब हम लोगों को कुशलता के उद्योग बीजों को अवश्य बोना चाहिये और वह किसी एक मनुष्य के प्रयत्न से कभी अंकुरित न होगी परन्तु यदि नाटकों के अभिनय का आरम्भ हो जायगा तो यह सब कुचाल आप से आप छूट जायगी और उसी भांति फिर सब लोग अच्छी बातों से रुष्ट न होकर प्रचार में प्रयत्न करेंगे ।

जैसे वेश्या सक्त पुरुषों का वेष धारण करने वाले नटों से वेश्या सक्त पुरुषों को घृणा होगी और कुलटात्व दोष निवारण के हेतु कुलटा वेषधारी नट के आने से उसका दुर्दशा का दिखाना, मद्यपों के वेष से मद्यपों की बुरी अवस्था का अनुभव कराना इसी भांति जुवारी झूठ बोलने वाले ऋणी, अपने बन्धुओं से विरोध करनेवाले, वृथा आचरण करने वाले, वृथा व्यय करनेवाले, कर्कश बोलनेवाले, और मूर्खों के वेष और सम्भाषण से इन की दुर्दशा दिखाने से अनायास ही पूर्वोक्त दुर्दशावाले मनुष्य सभा में बातों ही के चोअ से चैतन्य हो जाएंगे और इस रस रूपी उपदेश से सावधान हो कर बुरी बातों से ब्चैंगे । और जो नाटक करना कोई बुरी बात होती तो सभ्य शिरोमणि विद्यासागर अंगरेज लोग इसके होने में क्यों प्रयत्न करते और बड़ी-२ रंगशालाओं में नित्य नित्य बड़े बड़े अधिकारी लोग क्यों वेष धारण करके नाटकाभिनव करते ? जो कहो कि यह नाटक

मध्य समय के नाटककारों में कविकुलगुरु भगवान् कालिदास (१) मुख्यतम हैं। भवभूति (२) और धावक दूसरी श्रेणी में हैं। राजशेखर, जयदेव, भट्टनारायण, दंडी (३) इत्यादि तीसरी श्रेणी में हैं। अब जितने नाटक प्रसिद्ध हैं उन में मृच्छकटिक सब से प्राचीन है। इसके पीछे शकुन्तला और विक्रमोर्वशी बने हैं। यहां पर एक बड़ी प्रसिद्ध बात का विचार करना है। प्राय: सभी प्राचीन इतिहास लेखकों ने लिखा है कि श्रीहर्ष कालिदास के पूर्व हुआ, क्यौंकि मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने धावक का नाम लिया है, किन्तु राजतरंगिणी में हर्ष नामक जो राजा हुआ है वह विक्रमादित्य (४) के कई सौ वर्ष पीछे हुआ है। अनन्त देव नामक राजा भोज के समय में था! अनत का पुत्र कलस हुआ जिस ने आठ बरस राज्य किया। इस का पुत्र हर्ष था जिस ने कई दिन मात्र राज्य राज्य किया था। कनिघम के मत से हर्ष सन् १०८८ ई. में और बिल्सन के मत से १०५४ ई. में हुआ था। यद्यपि राजतरंगिणीकार ने हर्ष को कवि लिखा है और बिह्लण और बिल्लण कवि भी इसके समय में लिखे हैं किन्तु धावक का नाम तथा रत्नावली इत्यादि के बनने का प्रसंग कोई नहीं लिखा। राजतरंगिणीकार के मत से हर्ष के समय अत्यन्त उपद्रव रहा। और चारों ओर राजकुमार तथा उच्चद कुल के लोगों के रुधिर की नदी बहती थी। हर्ष श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती की भांति मूर्तिपूजा के भी विरुद्ध था इसी हेतु प्रजा उसको तुरुष्क पुकारती थी। इन बातों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि या तो धावकवाला श्रीहर्ष दूसरा है, कश्मीर का नहीं। या मालविकाग्निमित्रकार कालिदास वह जगत्प्रसिद्ध शकुन्तला का कालिदास नहीं। दूसरी बात विशेष संभव बोध होती है क्योंकि शकुन्तला और मालविकाग्निमित्र की संस्कृत ही में भेद नहीं काव्य की उत्तमता मध्यमता में भी आकाश पाताल का बीच है।

राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर के राजा तुंजीन के समय में चंद्रक कवि ने बड़ा सुन्दर नाटक बनाया। यह तुंजीन राजतरंगिणी के हिसाब से गत कलि ३५८२ में अर्थात् आज से १००२ वर्ष पहले, ट्रायर के मत से १०३ ई. पूर्व अर्थात् आज से १९८६ वर्ष पहले, कनिंघम के मत से ईस्वी सन् ३१९ में अर्थात् १५६४ वर्ष पहले, विल्सन के मत से १०४ ई. पूर्व अर्थात् १९८७ वर्ष पहले, विल्फर्ड के मत से सन् ५४ ईश्वी में अर्थात् १८२९ वर्ष पहले हुआ था।

जिन जिन संस्कृत नाटकों की स्थिति मुझको उपलब्ध हुई है उनकी एक तालिका प्रकाश की जाती

भरतखण्ड के हेतु एक नई बात है सो नहीं, देखिए पूर्व्वकाल में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने पुत्र साम्ब और श्रीप्रद्युम्न का और अपने छोटे भाई गद को एक बड़े समाज के साथ नाटक करने की आज्ञा दी थी और उन लोगों ने रामाभिनय नाटक किया था और इसी भांति से भरतखंड भूषण रूप से प्रचार था इसमें विशेष प्रणाण का कुद काम नहीं है, उस समय के शकुन्तला और रत्नावली इत्यादि नाटक अब भी प्रमाण आदर्शरूप से वर्तमान हैं और पढ़नेवालों को अपूर्व आनन्द देते हैं। अहा! हे नाटकविरोधी मानवगण! आप लोग अब चमत्कार कार्य में क्यौं उत्साह नहीं बढ़ाते और इस आनन्दमय रस समुद्र में क्यों नहीं स्नान करते और बड़े-२ महात्मा और रसिक शिरोमणि दुष्यन्त युधिष्ठिर राम और वत्सराज ऐसे लोगों के साक्षात दर्शन और उनके गुण स्वभाव श्रवण की इच्छा क्यों नहीं करते? इस हेतु अब यही हमारी प्रर्थना है कि आप लोग इस बात को सुनकर कान में रुई देके न बैठे जहां तक हो सकै इस की उन्नति में प्रयत्न करैं जिससे हमारे इस देशवासियों का उपकार हो।

(१) पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदास:। अद्यपि तत्तुल्यकवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव ।।१।।

(२)) भवभूते: संबंधात् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृत कारूण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ।।१।।

(३) जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधा भवत्। कवी इतिततोव्यासे कवयस्त्वयि दंडिनि ।।१।।

प्रसिद्ध कवि कालिदास और दंडी स्पर्द्धिनी दो स्त्रियां भी कवि हुई थीं। यथा — 'नीलोत्पलदलश्यामां की विज्जिकां मामजानता। वृथैव दंडिना प्रोक्तं सर्व शुक्ला सरस्वती।' तथा सरस्वतीव कर्णाटी विजयांका जयत्यसौ। या वैदर्भगिरां वास: कालिदासादनन्तरम् ।।१।।'

भास नामक कोई कवि नाटककार हुआ है किन्तु उस का नाटक प्रसिद्ध नहीं है। 'सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकैर्वहुभूमिकै:। सपताकैर्यशो लेभे भासो देव कुलैरिव ।।१।' भासोहास: कवि कुलगुरु: कालिदासो विलास: ।।१।।

(४) विक्रमादित्य के समय में इतिहास के देखने से अत्यन्त गोलमाल मालूम होती है। परन्तु जिस विक्रामादित्य का सम्वत् चलाया है वह १९ सौ से ऊपर हुए यह ठीक है परन्तु राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने

है । इस में * ऐसा चिन्ह जिन पर दिया है वे नाटक मेरे पढ़े हुए हैं और छपे भी हैं और जिन पर X ऐसा चिन्ह है वे मेरे पढ़े तो हैं किन्तु छपे नहीं हैं और शेष भारतवर्ष में मिलते तो हैं किन्तु मेरे देखे हुए नहीं हैं । इन्हीं नाटकों में कोई कोई ऐसे भी होंगे जो मृच्छकटिक के पूर्व के बने होंगे किन्तु अब इस बात का पता नहीं लग सकता है यह सारी सृष्टि दो हजार वर्ष की है । जिस काल के अनन्त उदर में हम आर्यों के अनन्त ग्रन्थरत्न गल पच गए वहां इस के पूर्व के नाटक भी गए । कालिदास भवभूति प्रभृति महाकवियों के जीवनचरित स्वतन्त्र आलोच्य विषय हैं इस हेतु यहां नहीं लिखे गए ।

अथ संस्कृत नाटकतालिका

शाकुन्तल, *	(कालिदास)	
मालविकाग्निमित्र, *	''	
विक्रमोर्वशी, *	''	
मालतीमाधव, *	(भवभूति)	
प्रियदर्शिका, *	(श्रीहर्ष)	
धूर्त्तसमागम *	(राजशेखर)	
कर्पूरमञ्जरी-X	''	
विद्धशालभंजिका, *	''	
प्रचण्डपाण्डव	(चन्द्रशेखर)	जामदग्न्यजय
बालरामायण *		
प्रसन्नराघव,	(जयदेव)	

अपने इतिहास तिमिरनाशक तीसरे खंड में यो लिखा है :-

यहां तक कि सन् ईसवी में ५७ बरस पहले विक्रम उज्जैन के शैव राजा ने दिल्ली फतह करके अपना अमल कश्मीर तक पहुंचाया ओर बौद्धमत को बड़ा धक्का लगाया । ब्राहमणों ने फिर बल पाया । इस ने पण्डितों का नवरत्न बनाया । कालिदास सब का शिरोमणि था । उसी के समय में कुमारसंभव ग्रन्थ बना । मृच्छकटिक नाटक भी सन् ईस्वी के आरम्भ ही में रचा गया । उससे उस समय का हाल बहुत मालूम होता है । उस में वसंत* नाम एक वेश्या के मकान की तारीफ लिखी है । चौकठ रंगी हुई झाड़ू दी हुई, पानी छिड़का हुआ, बंदनवार बंधी हुई, बालाखाना बलंद, पीले झंडे, गमलों में आम के पौधे, पहले चौक में वेदपाठी ब्राहमणों की तरह दर्बान ऊंघते, कव्वे दही भात खाकर यज्ञ के बचे हुए खाने से बेपर्वा, दूसरे चौक में अस्तबल, उस में रथ के बैल, लड़ाई के मेढ़े और बन्दर, बंधे हुए हाथी भात और घी के गोले खाते हुए, तीसरे चौक में जवान जूआ खेलते हुए, चौथे चौक में नाच गाना नाटक बाजा, पांचवें चौक में रसोई, तेल और हींग की बू से महकी हुई जानवरों की खालें धोई जाती हैं । मिठाई और पकवान बन रहे हैं । छठें चौक में दर्वाजा मिहराबदार ; जौहरी सुनार पटवे गहने बना रहे हैं । हक्काक अपना काम कर रहे हैं कोई केसर के थैले सुखला रहा है और कोई मुश्कनाफे हिलाता है, कोई चन्दन का इतर निकाल रहा है, कोई और और खुशबू की चीजें बना रहा है । सातवें चौक में चिड़ियाखाना कबूतर तोते मैना कोयल मौजूद, आठवें चौक में उस वेश्या का भाई रेशमी कपड़े पहने गहनों से चमचमाता हुआ लोट पोट कर रहा है मानों उस के हड्डी के जोड़ ही उखड़ गये हैं और उस की मा जामदानी का कपड़ा पहने तेल से चमकते हुए पैरों में जूती ऐसी मोटी कि शायद वहां उसे बैठा कर उस मकाना की दीवार बनायी गयी थी । बाग में बसन्त टहल रही थी उस की सवारी के रथ पर पर्दे पड़े हुए थे चारुदत्त ब्राहमण इस वेश्या का यार था चोरी करना भी विद्या में गिना जाता था ! एक ब्राहमण चोर दीवार में जनेऊ से नाप कर शास्त्र के बमूजिब स्वस्तिक और घड़े की शकल पर सेंध लगा रहा है । राजा वेश्या के पीछे बाजार में दौड़ता है, उसे घायल करता है । एक बौद्ध भिक्षुक बचाता है । आर्यक अहीर जिस की आंखें तांबे के रंग की लिखी हैं राजा को मार कर उज्जैन की गद्दी पर आप बैठता है । जो हो इस में संदेह नहीं कि विक्रम के समय में (शक लोग नाग की पूजा करते थे और नाग ही उन की चिन्ह था कौन जाने यही यहां नागवंशियों की जड़ हुए हों रामगढ़ सिरगुजा के नागबंशी राजा अब तक अपनी मुहर में नाग का चिन्ह था कौन जाने यही यहां नागवंशियों की जड़ हुए हों रामगढ़ सिरगुजा के नागबंशी राजा अब तक अपनी मुहर में नाग का चिन्ह खुदवाते हैं यूनान का पुराना इतिहासवेत्ता हेरोदोतस लिखता है कि शक लोग अपने तंई एक एक ऐसी स्त्री की औलाद बतलाते थे जिस का नीचे का धढ़ सांप का था इसी से शायद इस देश वालों को नागकन्या का खयाल बंधा) हूण जट (Jits, Getes, Gaeti तैमूर के समय तक यह तातार में वहां की एक कौम गिनी जाती थी) इत्यादि तातारी कौमों नो इस देश पर भारी चढ़ाई की थी और बिक्रम ने उन से अच्छी लड़ाई जीती बरन इसी लिये वह शकारि कहलाया बिक्रम नाम के इतने (आठ से अधिक) राजा हुए हैं कि उन के इतिहास मिलजुल जाने के कारन बहुत गड़बड़ हो गये है यहां तक कि अकसर साहिब लोग संवत् को विक्रम का चलाया नहीं मानते हैं क्योंकि उस समय उज्जैन में किसी बड़ महाराजाधिराज बिक्रम का कहीं कुछ पक्का पता नहीं

अनर्घ्यराघव, *	(मुरारि)	अंगदनाटक	
पुष्पमाला, *	(राजशेखर)	मुद्राराक्षस, °	(विशाखदत्त)
उदात्तराघव		वेणीसंहार, *	(नारायण भट्ट)
महारामायण,		धनञ्जयविजय *	(कांचन)
हनुमन्नाष्टक	(त्रावंकोरराज)	मृच्छकटिक *	(शूद्रक)

मिलता । एक बड़ा विक्रम सन् ५०० और ६०० ईस्वी के बीच में महाराजाधिराज हुआ । मातृगुप्त को भेज के कश्मीर फतह किया । वहां का राजा तोरमान कैद हो गया लेकिन बिक्रम के मरने पर और मातृगुप्त के काशीवास करनो को चले आने पर तोरमान के बेटे प्रवरसेन ने कश्मीर से निकल कर विक्रम के बेटे शिलादित्य को कैद कर लियाह और जिस तरह नादिरशाह दिल्ली से तख्तताऊस ले गया था विक्रम का बत्तीस पुतलियों वाला सिंहासन उठा ले गया । एक साहिब ऐसा भी अनुमान करते हैं कि यहां संवत् गुप्तों के राज से चला था बीच में लुप्त हो गया था और फिर किसी गुप्त विक्रम ने जारी किया इसी से विक्रम का कहलाया । कौन जाने यही बड़ा विक्रम दूसरा चंद्रगुप्त विक्रम रहा हो । बराहमिहिर का समय सन् ५८७ ईस्वी ठीक निश्चय हो गया है वह इसी विक्रम के समय में हुआ जिसने सन् ५०० और ६०० के बीचमें राज किया और अमरसिंह कोशकर्त्ता और कालिदास कवि भी बराहमिहिर के साथ इसी विक्रम की सभा के रत्न थे । (एक पंडित मातृगुप्त ही को कालिदास ठहराते हैं ।) लेकिन सन् ईस्वी से कोई २६ बरस पहले यहां सिंध मालवा इत्यादि देशों में तातारियों का राज हो गया था इनके सिक्कों से जो मिलते हैं मालूम होता है कि वह आग पूजते थे । क्योंकि उनके देवता अर्देथ्रो (Ardethro) अर्थात् अग्निदेव की जो उन पर तसवीर है उस के कंधों से अग्नि की शिखा निकल रही है और फिर पिछले सिक्कों पर शिव की मूर्त्ति भी त्रिशूल हाथ में लिये नंदी के सहारे से खड़ी है परंतु आंख दो और सिर में अग्नि की शिखा प्रज्वालित । दूसरी ओर इन्ही सिक्का पर हलिओस (Helios) अर्थात हरि : अर्थात् सूरज, माओ (Mao) अर्थात् माह अर्थात् चाँद और नानाइया (Nanaia) अर्थात् नानदेवी खुदा हुआ है । इसी नानदेवी को अब अफगानिस्तान वाले बीबी नानी कहते हैं । और याज्ञवल्क्य स्मृति में इन्हीं सिक्कों को नानक वा नाणक (इस दलील से यह ग्रंथ विक्रम से पीछे बना मालूम होता है) लिखा है । कनकीं राजा का जो सिक्का मिला है उस पर बुद्धि की मूर्त्ति है लेकिन अग्नि की शिखा के साथ यह वही राजा है जिसे बौद्ध और ब्राह्मणों ने कनिष्क (पिशावर के पास मनिकयाला का स्तूप इसी कनिष्क का बनवाया है । सन् ईस्वी से ३३ बरस पहले के रूमी सिक्के उस में से निकले हैं) लिखा है ! राजतगिणी में लिखा है कि कश्मीर में तीन राजा मुरुष्ण अर्थात् तुर्क वंश के हुए और कनिष्क नागर बिहार स्तूप और विद्यालय बनाये बौद्ध मत को रौनक दी नागार्जुन तांत्रिक योगी जिसका नाम नागसेन भी लिखा है और विदर्भ में जनमा था उनका गुरु था । नागार्जुन के चेले माध्यमिक कहलाये । इस ने कश्मीर में बौद्धों का चौथा संघ अर्थात् समाज किया । तातार से के य्वद्वीप (Java) तक बुद्ध का मत फैलाया । चीनवाले इन राजाओं को ऐसा जबर्दस्त लिखते हैं कि उन्होंने ओल में चीन से शाहजादे मँगाये थे ।जाड़े में हिन्दुस्तान में बहार में कंधार में, और गर्मी में काबुल के उत्तर कोहिस्तान में रहते थे । निदान इन तुरुष्कवंशी राजाओं ने बौद्ध शैव और अग्नि पूजन को खूब मिलाया मानों तीनों को एक मत कर डाला । गुप्तराजा — लेकिन सन् १४४ ईस्वी से अर्थात् बौद्ध राजा मेघवाहन के मरने से बौद्धों का असली जोर घटने और ब्राह्मणों का बढ़ने लगा था जब फाहियान आया गुप्तवंशी दूसरा चंद्रगुप्त विक्रम सारे भारतवर्ष का महाराजाधिराज था । यह शायद आखिरी बौद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ वह समुद्रगुप्त पराक्रम का जिस का नाम सैदपुरभितरी और इलाहाबाद की लाटों पर खुदा है, बेटा था और उस के दादा पहले चंद्र के दादा । गुप्त से गुप्त संवत गिना जाता था (अभी हम लिख आये हैं कि "एक साहिब ऐसा भी अनुमान करते हैं कि यहां संवत् गुप्तों के राज से चला था बीच में लुप्त हो गया था फिर किसी गुप्त विक्रम ने जारी किया इससे विक्रम का कहलाया' सो वह विक्रम यही दूसरा चन्द्रगुप्त हो सकता है । विक्रम अथवा विक्रमादित्य उस का खिताब था और इसी तरह शिलादित्य अवश्य उस के बेटे कुमार गुप्त महेन्द्र का खिताब रहा होगा इससे पहले कहीं विक्रम के नाम से किसी संवत् का कुछ पता नहीं लगता है अबूरैहां लिखता है

فاصا کرنت کال وکان کمافیل فوءآ الاشرار القرابیا فلما انقرضرا اوسح بجهم و
کان بلب کال اخیر هم ارل تاریخهم ایضا صناهوین من شک کال اءا

जमदग्न्यजय	
समुद्रमंथन	
त्रिपुरदाह	
सारदातिलक	(शंकर)
ययातिचरित	(रुद्रभट्ट)
ययातिविजय	
ययातिशर्म्मिष्ठा	
मृगांकलेखा	(त्रिमल्लदेव के पुत्र विश्वनाथ)
हास्यार्णव +	
महावीरचरित *	(भवभूति)
उत्तररामचरित *	''
रत्नावली *	(श्रीहर्ष)
नागानन्द, °	''
विदग्धमाधव x	(रूपगोस्वामि)
राधामाधव	
पारिजातक	
कमलिनीकलहंस चूड़ामणि दीक्षित	
तप्तीसंवरण	(त्रावंकोरराज)
मालमंगलभाण	(मालमंगल)
कलावतीकामरूप	
नग्नभूपतिग्रह नाटक	
प्रियदर्शना	
यादवोदय	
बालिबध	
अनेकमूर्त्त	
मयपालिका	
क्रीड़ारसातल	
कनकावतीमाधव	
विन्दुमती	
केलिरैवतक	
कामदत्ता	
सुदर्शनविजय	
वासन्तिकापरिणय	
चित्रयज्ञ	(वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य्य)
वृषभानुजानाटिका x	(मथुरा दास कायस्थ)
ऊषारागोदय x	(रुद्रचन्द्रदेव)

और वाड साहिब के वमूजिब सोमनाथ में एक पत्थर र संवत् १३२० और बल्लभी ९५४ और हिजरी ६६२ लिखा हुआ मिला है पस मुतावकत् बहुत अच्छी हो जाती है अर्थात ईस्वी सन् ३१९ अर्थात् गुप्त संवत् ३७६ में कि विक्रम के संवत् के बराबर है गुजरात से गुप्तों के निकलने पर गुप्त संवत् लुप्त होकर बल्लभी का संवत् शुरू हुआ । जब विक्रम ने गुप्त संवत् का उद्धार करके उसे फिर चलाया वह अर्थात गुप्त संवत् अर्थात् विक्रम का चलाया संवत् १३२० बल्लभी संवत् ९५४ के जैसा कि पत्थर पर लिखा है बराबर आया । इसी दूसरे चन्द्रगुप्त विक्रम के पोते स्कन्दगुप्त का कीर्तिस्तम्भ गोरखपुर के जिले में सीलमपुर मझौली के पास कुहाव गांव में अब तक मौजूद है । उसमें लिखा है कि एक सौ राजा उसके सामने सिर झुकाते थे । स्कन्दगुप्त के बाप कुमारगुप्त महेन्द्र की तसवीर जो उसके सिक्के पर है उस से जाहिर है कि वह थोड़ी मुहरी का पाजामा और बुटामदार कोट पहनता था । गुप्त राजाओं के सिक्कों पर अकसर शिव पार्वती नदी मयूर सिंह (मयूर कार्तिकेय का बाहन और सिह पार्वती का और नंदी शिव का यह तो हर कोई जानता है) इत्यादि का चिन्ह मिलता है । समुद्रगुप्त और स्कन्दगुप्त दोनों निश्चय वैदिक और शैव थे । सन् ३१९ ईस्वी में इन गुप्तों को सेन राजाओं ने गुजरात से निकाल दिया और अपनी राजधानी बल्लभी (कहते हैं कि बल्लभी का राज सन् २०० ईस्वी से कुछ पहले सूर्यवंशी कनकसेन ने अवध से जाकर जमाया था) का संवत् काइम किया । यह सेन भी बड़े नामी राजा हुए । निदान ह्वागंत्सांग के समय तक अर्थात सन् ६०० ईस्वी से इधर तक बौद्धमत मध्यदेश में वना रहा, फिर घटते घटते ऐसा घटा कि सन् बारह तेरह सौ ईस्वी से भारतवर्ष में अब नाम को भी बाकी न रहा । ह्वांगसांग लिखता है कि बनारस में १०० शिवालय और १०००० शैव मौजूद थे और बिहार में कुल तीस और बौद्ध पांच हजार से भी कम रह गए थे । इस सन्देह नहीं कि कन्नौज के भवभूति ने सन् ७२० ईस्वी में मालतीमाधव नाटक बनाया है उस में लिखा है कि बिहार के राजा का लड़का माधव न्याय सीखने के लिये उज्जैन में एक बौद्ध गुरनी के पास गये और वहां मन्त्री की लड़की मालती भी पढ़ने को आती थी परन्तु दिल्ली में तोमर कन्नौज में राठौर महोबे में चदेल सब शैव और वैष्णव थे । बुद्ध ने चाहा था कि ज्ञान जो बुद्धि से परे और केवल अनुभवसिद्ध है और थोड़ों को ही प्राप्त हो सकता है सब को दान दे और इन सब लोगों का हाल यह है कि मोटी बात चाहते हैं जो दिखलाई दे उसी की पूजा करते हैं । निदार यहीं मूर्ति और प्रतिमापूजन की जड़ हुई यहां तक कि स्तूप वृक्ष पशु राख हड्डी ईंट पत्थर इत्यादि सब पूजने लगे ।

मल्लिकामारुत * (उद्दण्ड)
वसंततिलकभाण * (वरदाचार्य)
मुकुंदानंद X
नटक मेलक प्रहसन *
दानकेलिकौमुदी X
अभिराममणि (सुंदरमिश्र)
मधुरानिरुद्ध (चंद्रशेखर)
कंसवध X (कृष्णकविशेष)
प्रद्युम्नविजय शंकरदीक्षित बाल-
कृष्णदीक्षित के पुत्र
श्रीरामचरित साम्राज्यदीक्षित
धूर्त्तनर्त्तक
कौतुक सर्वस्व (गोपीनाथ पं.)
प्रबोधचन्द्रोदय *(कृष्णमिश्र)
चैतन्यचंद्रोदय सौगंधिकाहरण
संकल्पसूर्योदय * (वेदांताचार्य)
रामाभ्युदय
कुंदमाला
सौगंधिकारहरण
रैवतकमदनिका
कुसुमशेखरविजय ताराशशांक (चूड़ामणि)
नर्मवती
विलासवती
श्रृंगारतिलक (रुद्रभट्ट)
देवीमहादेव
ताराशशांक (श्रीधर)
(चंडकौशिक * (आर्यक्षेमीश्वर)
जानकीराघव
रुक्मिणीपरिणय X (रामचंद्र)
गृहवृक्षबाटिका
कुलपत्यंग
बध्यशिला
तरंगदत्त (प्रकरण)
लीलामधुकर
दूतांगद X
मुंडितप्रहसन X (सुभट)
नाटक सर्वस्व
उदयन चरित
कृत्यारामायण
रामाभिनंद
रामचरित
चंद्रकला (विश्वनाथ)
प्रभावतीपरिणय

पार्वतीस्वयंबर
सुभद्राविजय
सुभद्राहरण
भैमोपरिणय
रुक्मिणीकल्याण (चूणामणि)
वसुमती चित्रसेन
विद्यापरिणय (वेदकविस्वामी)
अहल्या संक्रंदन
आनंदविलास
सेवंतिकापरिणय
कनकवल्लीपरिणय
रामनाटक
सुमद्राधनंजयविजय (गुरुराम)
वकुलमालिनी परिणय (कृष्ण दीक्षित)
बसंतभूषणभाण
इंदिरापरिणय
कल्याणीपरिणय
कुसुमवाणविलास
बटुचरित्र नाटक
मरकतवल्लीपरिणय
चूड़ामणि नाटक
सामवत नाटक पं. अंबिकादत्त
व्यास साहित्याचार्य)
सौगंधिका हरण
कुसुमशेखरविजय
छलितराम
कंदर्पकेलि
स्तंभितरंभ
विजयपारिजात वा
आसामविजय (हरिजीवन)
पुष्पदूषितक (प्रकरण)
ललिता नाटिका
जानकीपरिणय X रामभद्र दीक्षित)
माधवाभ्युदय (वेदांताचार्य)
प्रद्युम्नानंदनीय (वेंकटाचार्य)
पंचवाणविजय
रविकिरण कूर्चिका
सुभद्राधनंजय (गुरुराम)
कन्यामाधव
त्रिपुरारि
सत्यीाामापरिणय
भिक्षाटन नाटक
मंत्रांग नाटक

संवरण नाटक
सीताराघव नाटक
हरिश्चंद्र यशश्चंद्रिका
नरकासुरव्यायोग
अरुणामोदिनी
वृहन्नाटक
काशिदास प्रहसन
अंबालभाण (श्रीवरदाचार्य)
कृष्णभक्तिचंद्रिकानाटक X (अनंतदेव)
अतंद्रचंद्रिका विद्यानिधि)
पार्थ पराक्रम
भर्तृहरिनिर्वेद
धर्मविजयनाटक (शुक्ल भूदेव)
सत्संगविजयनाटक (वैद्यनाथ)
चंद्रप्रभा X
कर्णसुंदरी नाटिका
रतिवल्लभ X (जगन्नाथ पंडितराज)
जगन्नाथ वल्लभनाटक
ध्रुवचरित्र ° (पं. दामोदरशास्त्री)

अथ भाषानाटक

हिंदी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रन्थ की सृष्टि हुए पच्चीस वर्ष से विशेष नहीं हुए । यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदान्त विषयक भाषा ग्रन्थ समयसार नाटक, ब्रजवासीदास प्रभृति के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के भाषा अनुवाद, नाटक नाम से अभिहित हैं किन्तु इन सबों की रचना काव्य की भाँति है अर्थात् नाटक रीत्यनुसार पात्रप्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है । भाषा कविकुल मुकुट माणिक्य देवकवि का 'देवमायाप्रपंच नाटक' और श्रीमहाराज काशिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्रीमहाराज विश्वनाथसिंह रीवां का आनन्दरघुनन्दन नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और छन्दप्रधान ग्रंथ हैं । विशुद्ध माणिक्य देवकवि का 'देवमायाप्रपंच नाटक' और श्रीमहरारज काशिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्रीमहाराज विश्वनाथसिंह रीवां का आनन्दरघुनन्दन नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन इन में नहीं हैं और छन्दप्रधान ग्रंथ हैं । विशुद्ध नाटक रीति से पात्रप्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है । इस में इंद्र को ब्रमहत्या लगना और उसके अभाव में नहुष का इन्द्र होना, नहुष का इन्द्रपद पाकर मद, उसकी इन्द्रानी पर कामचेष्टा, इन्द्रानी का सतीत्व, इन्द्रानी के भुलावा देने से सप्तऋृषि को पालकी में जोत कर नहुष का चलना, दुर्वासा का नहुष को शाप देना और फिर इन्द्र का पूर्वपद पाना, यह सब वर्णित है । मेरे पिता ने बिना अंगरेजी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि दी यह बात आश्चर्य की नहीं । उन के सब विचार परिष्कृत थे । बिना अंगरेजी की शिक्षा के भी उन को वर्त्तमान समय का स्वरूप भली भांति विदित था । पहले तो धर्मही के विषम में ही वह इतने परिस्कृत थे कि वैष्णवव्रत पूर्वपालन के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उठा दिए थे । टामसन साहब लेफ्टिनेंटगवर्नर के समय काशी में पहला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को उन्होंने उस स्कूल में प्रकाश रीति से पढ़ने बैठा दिया । यह कार्य उस समय में बहुत ही कठिन था क्योंकि इस में बड़ी ही लोकनिन्दा थी । हम लोगों को अंगरेजी शिक्षा दी । सिद्धान्त यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं और उन को स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है । नहुष नाटक बनने का समय मुझ को स्मरण है । आज पच्चीस बरस हुए होंगे जब कि मैं सात बरस का था नहुष नाटक बनता था । केवल २७ वर्ष की अवस्था में मेरे पिता ने देहत्याग किया किन्तु इसी अवसर में चालीस ग्रन्थ (जिन में बलरामकथामृत, गर्गसंहिता, भाषावाल्मीकि रामायण, जरासन्धबध महाकाव्य और रसरत्नाकर ऐसे बड़े बड़े भी हैं) बनाए ।

हिन्दी भाषा में दूसरा ग्रन्थ वास्तविक नाटककार राजा लक्ष्मणसिंह का शकुंतला नाटक है । भाषा के माधुर्य आदि गुणों से यह नाटक उत्तम ग्रन्थों की गिनती में है । तीसरा नाटक हमारा विद्यासुन्दर है । चौथे के स्थान में हमारे मित्र लाला श्रीनिवासदास का तप्तासंवरण, पंचम हमारा वैदिकीहिंसा, षष्ठ प्रियमित्र बाबू तोताराम का केटोकृतान्त और फिर तो और भी दो चार कृत विद्य लेखकों के लिखे हुए अनेक हिन्दी नाटक है । सर. विलियम म्यौर (१) साहिब के काल में

(१) सन् १८७६ ईस्वी जुलाई में मैंने भी एक कवित्त भेजा था जिस पर इन्होंने अनेक धन्यवाद दिया था । जो कवित्त मैंने भेजा था वह यह है —

अनेक ग्रन्थ बने हैं क्योंकि वे ग्रन्थ बनानेवालों को पारितोषिक देते थे । इसी से रत्नावली भी हिन्दी में बनी (२५) और छपी हैं किन्तु इसकी ठीक वही दशा है जो पारसी नाटकों की है । काशी में पारसी नाटकवालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उस में धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटेवालियोा की तरह कमर पर हाथ रख कर मटक मटक कर नाचने और पतरी कमर बलखाय यह गाने लगा और डाक्टर थिबो बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कह कर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं । यही दशा बुरे अनुवादों की भी होती है । बिना पूर्व कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं कवि की लोकान्तर स्थित आत्मा को नरक कष्ट देना है ।

इस रत्नावली की दुर्दशा के दो चार उदाहरण यहां दिखलाए जाते हैं । 'यथा तब यह प्रसंग हुआ कि यौगन्धरायण प्रसन्न हो कर रंगभूमि में आया और यह बोला और गान कर कहता है कि अए मदनिके' अब कहिए यह राम कहानी है कि नाटक ?
और आनन्द सुनिए 'जो आज्ञा रानी जी की ऐसा कर तैसा ही करती है हहाहाहा !!!

'एक आनन्द और सुनिए । नाटकों में कहीं कहीं आता है 'नाट्ये नोपविश्य' अर्थात् पात्र बैठना नाट्य करता है । उस का अनुवाद हुआ है 'राजा नाचता हुआ बैठता है' 'नाट्ये नोल्लिख्य' की दुर्दशा हुई है 'ऐसे नाचते हुई लिखती है' ऐसे ही 'लेखनी को लेकर नाचती हुई' निकट बैठ कर नाचती हुई ।' ।।

और आनन्द सुनिए 'इतिविष्कम्भक :' का अनुवाद हुआ है 'पीछें विष्कम्भक आया' धन्य अनुवादकर्त्ता ! और धन्य गवर्नमेंट जिसने पढ़ने वाले की बुद्धि का सत्यानाश करने को अनेक द्रव्य का श्राद्ध कर के इस को छापा !!

गवर्नमेंट की तो कृपादृष्टि चाहिए योग्यायोग्य के विचार की आवश्यकता नहीं । फालेन साहब की डिक्शनरी के हेतु आधे लाख रुपये से विशेष व्यय किया गया तो यह कौन बड़ी बात है । 'सेत सेत सब एक से, जहां कपूर कपास' । यहां तो 'भेंट भए जय साहि सों 'भाग चाहियत भाल' वाली बात है । किन्तु ऐसी दशा में अच्छे लोगों का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है क्योंकि 'आंधरे साहिब की सरकार कहां लौं करै चतुराई चितेरो' ।

यद्यपि हिन्दी भाषा में दस बीस नाटक बन गए हैं किन्तु हम यही कहेंगे कि अभी इस भाषा में नाटकों का बहुत ही अभाव है । आशा है कि काल की क्रमोन्नति के साथ ग्रन्थ भी बनते जायंगे । और अपनी सम्मति शालिनी ज्ञान वृद्धा बड़ी बहन बंगभाषा के अक्षयरत्न भांडागार की सहायता से हिन्दी भाषा बड़ी उन्नति करै ।

यहां पर यह बात प्रकाश करने में भी हम को अतीव आनन्द होता है कि लण्डन नगरस्य श्रीयुत फ्रेडरिक पिनकाट साहब ने भी (२६) शकुन्तला का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है । वह अपने २० मार्च के पत्र में हिन्दी ही में मुझ को लिखते हैं 'उस पर भी मैं ने हिन्दी भाषा के सिखलाने के लिए कई एक पोथियां बनाई हैं उनमें से हिन्दी भाषा में शकुंतला नाटक एक है ।'

हिन्दी भाषा में जो सब से पहला नाटक खेला गया वह जानकीमंगल था । स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्य्य नारायण सिंह के प्रयत्न से चैत्र शुक्ल ११ संवत

आसुतोस ऐसे आसु तोसत सबन तुम याही तें जगत नीलकंठ बने बाके हौ । त्रासत अनेक खल सर्पन सदर्प तुम वलम मयूर सुख पूरक प्रजा के हो । ।१ । ।

(१) इस को बरेली कौलेज के संस्कृत प्रोफेसर पण्डित देवदत्त तिवारी ने उल्था किया है । वह महाशय देवकोश अर्थात् अमर कोश भाषा-विवरण सहित के कर्ता भी हैं :

देखि भूमि हरित अधिक हरखात गात ईस कृपा जल सों विसेस सुख छाके हौ । सबै तुम्हैं मोर कहै सहज सनेह बस प्रजा दुख दलन सहस्र दृग ताके हौ । ।

(२) *इन से मुझे संस्कृत, नागरी की उन्नति होने की* अधिक आशा है क्योंकि इन्होंने संस्कृत हिन्दी के अनेक ग्रंथ पुराचीन और नवीन संग्रह किए हैं और तन मन धन से संस्कृत हिंदी की उन्नति चाहते हैं । मैं हिन्दी का यह सौभाग्य समझता हूं । ऐसे सहायक मित्र मिलने से हिन्दी रसिकों को भी अभिमान होना चाहिये । ये उन पुराचीन ग्रन्थों के प्रकाश के लिये यत्न कर रहे हैं जो अब तक प्रकाश न हुए हैं । इन के कई पत्रों का संग्रह हिन्दी भाषा में है देखिये ।

१९२५ में बनारस थिएटर में बड़ी धूम धाम से यह खेला गया था । रामायण से कथा निकाल कर यह नाटक पंडित शीतला प्रसाद त्रिपाठी ने बनाया था । इस के पीछे प्रयाग और कानपुर के लोगों ने भी रणधीर प्रेममोहिनी और सत्यहरिश्चन्द्र खेला था । पश्चिमोत्तर देश में ठीक नियम पर चलने वाला कोई आर्य्य शिष्टजन का नाटकसमाज नहीं है ।

अथ हिन्दी नाटक तालिका ।

नहुषनाटक (श्रीगिरिधरदास)
शकुन्तला (राजालक्ष्मण सिंह)
शकुन्तला (फ्रेडरिक पिंकाट साहब)
मुद्राराक्षस (हरिश्चन्द्र)
सत्य हरिश्चन्द्र ''
विद्या सुंदर ''
अन्धेर नगरी ''
विषस्य विषमौषधम् ''
सती प्रताप ''
चन्द्रावली ''
माधुरी ''
पाखंड बिडम्बन ''
नवमल्लिका ''
दुर्ल्लभबन्धु ''
प्रेमयोगिनी ''
जैसा काम वैसा परिणाम ''
नील देवी ''
भारत दुर्दशा (हरिश्चन्द्र)
भारत जननी ''
धनंजय विजय ''
वैदिकी हिंसा ''
बूढ़ेमुंह मुंहासे लोग
देखे तमाशे (बूड़ो शालिकेर बाबूगोकुल
का अनुवाद । चन्द
अद्भुत चरित्र वा गृहचंडी (श्रीमती)
तप्तासंवरण लाला श्रीनिवास दास)
रणधीर प्रेममोहिनी (लाला श्रीनिवास दास)
केटो कृतान्त (बाबू तोताराम भारत बंधु सम्पादक)
सज्जाद सुम्बुल (बाबू केशोराम भट्ट बिहारबन्धु सम्पादक)
शमशाद सौसन ''
जंय नारसिंह की (पं देवकीनन्दन दिवारी, प्रयाग समाचार पत्र सम्पादक)
होलीखगेश ''
चक्षुदान ''
पद्मावती (पं. बालकृष्ण भट्ट
शर्मिष्ठा हिंदीप्रदीप
सरोजिनी (पं. गणेशदत्त)
सरोजिनी (राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु सम्पादक)
मृच्छकटिक (पं. गदाधरभट्ट मालवीय,
मच्छकटिक (पं. दामोदर शास्त्री)
मृच्छकटिक (बाबू ठाकुरदयाल सिंह)
बारांगना रहस्य (बाबू बदरीनारायन चौधरी, आनन्दकादम्बिनी के सम्पादक)
विज्ञान बिभाकर (पं. जानी बिहार लाल)
ललिता नाटिका (पं. अम्बिका दत्त)
व्यास साहित्याचार्य, वैष्णव पत्रिका और पियूषप्रवाह के सम्पादक)
देव पुरुष हृदय ''
वेणीसंहार नाटक ''
गोसंकट ''
जानकीमंगल (पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी)
दु:खिनीबाला (बाबू राधाकृष्णदास)
पद्मावती ''
महारस (महाराजधिरज कुमार लाल खंग बहादुरमल्ल युवराज मझौली राज)
रामलीला ७ कांड (पं. दामोदर शास्त्री, विद्यार्थी सम्पादक)
बालखेल ''
राधामाधव ''
वेनिस का सौदागर (बाबू बालेश्वर प्रसाद) काशी पत्रिका सम्पादक)
(बाबू ठाकुरदयाल सिंह)

योरप में नाटकों का प्रचार

योरप में नाटकों का प्रचार भारतवर्ष के पीछे हुआ है। पहिले दो मनुष्यों के सम्बाद को ही वहाँ नाटकों का सूत्रपात मानते हैं । प्राचीन ईसाई धर्मपुस्तक में 'बुक अव जाब' और सुलैमान के गीतों में ऐसे सम्बाद मिलते हैं किन्तु इन के अतिरिक्त हिब्रू भाषा में और कोई प्राचीन नाटक का ग्रन्थ नहीं । योरप में सबसे प्राचीन नाटक यूनान में मिलते हैं और यह निश्चय अनुमान हुआ है कि भारतवर्ष से वहां यह विद्या गई होगी । यूनान में एथेन्स प्रदेश में नाटकों का प्रचार विशेष था

और डायोनिसस (१) नामक देवता के मेले में नाटक प्राय: खेले जाते थे । अनुमान होता है कि बैक्सस (२) नामक देवता की पूजा से वहां इन का चलन हुआ प्राचीन काल से यूरोप के नाटक संयोगान्त और वियोगान्त इन दो भागों में बंटे है । आरिअन नामक कवि ने ५८० वर्ष ईसा के पूर्व्व वियोगान्त नाटक की सृष्टि की ट्रैजिडी (Tragedy) शब्द बकरे से निकला है जिस से अनुमान होता है कि बैक्सस देवता के सामने बकरे का बलि दिया जाता था और उसी समय पहिले यह खेल आरम्भ हुआ इस से वियोगान्त नाटक की संज्ञा ट्रैजिडी हुई । (Comedy) कामेडी ग्राम शब्द से निकला है अर्थात् ग्राम्यसुखों का जिन में वर्णन हो वह कामेडी (संयोगान्त) है । थेसपिस ने (५३६ ई. पू.) प्रथ रंगशाला में एक शिष्य का वेष देकर मनुष्यों को सम्वाद पढ़वाया और उसी पात्र को प्रिनिशश ने ५१२ ई. पू. पहले पहल स्त्री का वेष देकर रंगशाला में सब को दिखलाया । इस के पीछे इशिलश के काल तक वियोगान्त नाटकों में फिर काई नई उन्नति नहीं हुई ।

आरिअन ही के समय में वरन् उसी के लाग पर सुसेरियन ने संयोगान्त नाटकों का प्रचार सारे यूनान में फिर फिर कर किया और एक छोटी सी चलती फिरती रंगशाला भी उन के साथ थी । उस काल के ये नाटक अब के बंगाली यात्रा वा रास के से होते थे । उस समय में वियोगान्त नाटक गम्भीराशय और विशेष चित्ताकर्षक होने के कारण सभ्य लोगों में और संयोगान्त ग्राम्य लोगों में खेले जाते थे ।.एपिकार्मस, फार्मस, मैग्नेस, क्रेट्स, क्रेटनस यूपोलिस, यूफेटिक्रेट्स और एलिस्टेफेन्स ये सब उस काल के प्रसिद्ध कामेडी लेखक थे । बीच में लोगों ने संयोग वियोग मिला कर भी पुस्तकें लिख कर इस विद्या की उन्नति की ।

वियोगांत नाटक में इशिलस सोफाकोलस और यूरुपिडीस ये तीन बड़े दक्ष हुए । इन कवियों ने स्वयं पात्रों को अभिनय करना सिखाया और स्वाभाविक भावभंगी दिखलाने में विशेष परिश्रम किया । अरस्तू ने इन्हीं तीनों कवियों की अपने ग्रन्थ में बड़ाई की है ।

रोमवाले नाटकविद्या में ऐसे दक्ष नहीं थे । इन लोगों ने यूनान वालों ही से इस विद्या का स्वाद पाया । शोक का विषय है कि प्लाटस और टेरेन्स के अतिरिक्त इन कवियों में से किसी का न नाम मालूम है न कोई ग्रन्थ मिला । आगष्टस के प्रसिद्ध समय में इस विद्या की उन्नति हुई थी किन्तु सेनीका नामक नाटक के अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ का नाम तक कहीं नहीं मिला । रोम के बड़े बड़े महलों और बीरों के साथ वहां की विद्या और कला भी धूल में मिल गई, यहां तक कि उन का नाम लेनेवाला भी कोई न बचा । जब रोम में क्रिस्तानी मत फैला तो ऐसे नाटक वा खेल राजनियम के अनुसार निषेध कर दिए गए । केवल पिता पुत्र एपोलीनारी और ग्रेगरी ने इंजील से कथा भाग लेकर क्रिस्तानों का जी बहलाने को कुछ सवांग इत्यादि बनाए थे ।

योरोप में इटलीवालों ने पहले पहल ठीक तरह से नाटक के प्रचार में उद्योग किया और रोमवालें के चित्त में फिर से मुरझाए हुए इस बीज को हरा किया । सोलहवीं शताब्दी में ट्रसनो कवि का सोफोनिस्वा नामक वियोगान्त नाटक पहले पहल छापा गया । आरिआस्टोवैबिना और मैशियाविली ने ट्रिसीनो की भांति और कई नाटक लिखे । इसी शताब्दी के अंत में गिएम्बाटिस्टालिआपोर्टा ने प्रहसन पहले पहल प्रकाश किया और इस में परिहास की बातें ऐसी सुसभ्यता से वर्णन की कि लोगों ने नाटक की इस शैली को बहुत ही प्रसन्नता से स्वीकार किया । इसी समय में हिशी, बोरगिनी, ओडो और बुओनाटोरी ने जातीय स्नेह बढ़ानेवाले बीररसाश्रित इतिहास के खेल लिखे और प्रचार किए । सतरहवीं शताब्दी में रिनुशिनी ने पहले पहल आपेरा (संगीत नाट्य) का आरम्भ किया । इस में उस ने ऐसे उत्तम रीति से प्रेम, देशस्नेह, वीर और करुण रस के गीत बांधे कि सब लोग और नाटकों को भूल कर इसी की ओर झुके । मैकी नामक कवि ने इस की और भी उन्नति की । अब स्पेन फरासीस चारों ओर इसी गीतिनाट्य का चर्चा फैल गया । इस के पीछे जीनो, मेटैस्टेसिओ, गोलडोनी, मोलिएर, रिशोबिनी, गोज्जी, गालडोनी, आलफीरो, मांटी, मानुजानी और निकोलिनी इत्यादि प्रसिद्ध कवियों ने पूर्वोक्त नाटकों के ऐसी उत्तमता से ग्रन्थ लिखे और नाट्य में ऐसी उन्नति की कि इटली इस विद्या में सारे योरप की गुरु मानी गई ।

योरोप के और देशों में नाटकों के प्रचार को पादरियों ने बहुत रोका । जहां कोई नाटक खेलता ये पादरी उस को धर्म्म दण्ड देने को दौड़ते । विलेना,

(१) यह युद्ध का देवता था ।

(२) यह मद्य का देवता है । प्रिन्सिप साहब कहते हैं कि यह बलराम है ।

सान्तिलाना, नाहरो और रूएडा नामक कवियों ने इस आपत्ति से बचने को अपनी लेखनी को धर्म्मविषय के नाटकों के लिखने पर परिचालित किया । विशेष कर के करवैनूस ने अपने नाटक ऐसी उत्तमता से लिखे कि लोगों के चित्त से नाटकों की बुराई का संस्कार एकबारगी उठा दिया । इस के पीछे कल्डिरन भी ऐसा ही उत्तम कवि हुआ कि उस को राजनियम विरूद्ध होने पर सैंतीस बरस के वास्ते नाटक लिखने की राजाज्ञा मिली । ये दोनों कवि सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व्व भाग में हुए थे ।

फरासीस में नाटकों के विषय में बहुत सा बादानुवाद होता रहा और इसके होने के नियमों पर लोगों में बड़ा चरचा रहा किन्तु कोई बहुत उत्तम नाटक लेखक उस समय नहीं हुआ । जाडिली ने पहले पहल पांच अंक का एक वियोगान्त नाटक ठीक चाल पर बनाया और फरासीस के दूसरे हेनरी बादशाह के सामने वह खेला गया । चौदहवें लुइस के दरबार में कार्निली, मालिएरी और रैसिनी क्रम से एक दूसरे अच्छे नाटकवाले हुए । इस के पीछे बालटायर बड़ा प्रसिद्ध हुआ वाले हुए । इस के पीछे वालटायर बड़ा प्रसिद्ध हुआ और फिर चार पांच और प्रसिद्ध कवि हुए ।

जर्मनी के नाटक के इतिहास में अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ तक कोई भी विशेष बात नहीं । लेसिंग ने पहले पहल अपनी धूम धाम की समालोचना में जर्मनी का ध्यान इधर फेरा । इसके पीछे गोथी और सिलर यह दो बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए ।

इंग्लैण्ड के नाटकों का इतिहास अत्यन्त शृंखलाबद्ध है । पहले यहां केवल मत सम्बन्धी नाटक होते थे और इन का प्रबन्ध भी पादरियों के हाथ में रहता था । ये नाटक दो प्रकार के होते थे एक धर्म्मसम्बन्धी आश्चर्य घटनाओं के दूसरे शिक्षासम्बन्धी । इंग्लैण्ड के पुनरसंस्कार ने इन पुरानी बातों में कोई स्वाद बाकी न रक्खा । यहां तक कि सोलहवीं शताब्दी के मध्य में संयोग और वियोग के नाटक स्वतंत्र रूप से वहां प्रचण्ड हुए । पहला संयोगान्त नाटक सन् १५५७ में निकोलस उडाल ने लिखा । ठीक उसके दस बरस पीछे बीबी नोरटेन और लार्ड बकहर्स्ट से मारवूडाक नामक पहला वियोगान्त नाटक बनाया । उस के पीछे स्टिल, किड, लाज, ग्रीन, लायली, पील, मार्ली और नैश इत्यादिक कई प्रसिद्ध नाटककार हुए । जगत विख्यात शेक्सपीयर ने अपने वाक्य माधुर्य के आगे सब को जीत लिया । यह प्रसिद्ध कवि सन् १५६४ में स्टम्ट फोर्ड बार्विक्शायर में उत्पन्न हुआ । इसका पिता ऊन का व्यवसाय करता था और उसके दस लड़कों में शेक्सपीयर सब से बड़ा था । काल पा कर यह ऐसा प्रसिद्ध कवि हुआ कि पृथ्वी के मुख्य कवियों की गणना में एक रत्न समझा जाने लगा । इस को जैसी कविताशक्ति थी वैसी ही विचित्र कथाओं की बाँधने की भी शक्ति थी । जिस के मस्तिष्क में ये दोनों शक्तियां एकत्र हों उस के बनाए हुए नाटकों का क्या पूछना है । नाटक भी इस ने बहुत बनाए और सब रस के । निस्सन्देह यह मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि का एक रत्न हुआ है ।

बेनजान्सन, व्यूमौन् और फ्लेचर ये तीन शेक्सपीअर के समकालीन प्रसिद्ध नाटककार हुए हैं । मैसिन्जर, फोर्ड और शरली के काल तक इंगलैंड की प्राचीन नाटक प्रणाली समाप्त होती है । सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में ड्राइडन ने नई प्रणाली के नाटक लिखने आरम्भ किए । अठारहवीं शताब्दी में ली, आटवे, ग्रे, कानग्रीव, सिवर, विचरली, वैनब्रो, फारक्वहर, एडिसन जान्सन, यंग टामसन, लिलो, मूर, गैरिक, गोल्डस्मिथ कालमन्स, कम्बरलैंड, हालक्राफ्ट, बीबी इन्च वाल्ड, लुइस, मैटूरिन नैट्यूरिन तथा आधुनिक काल में शिरिडन नोल्स, बुलवरलिटन लॉर्डवैरन, कालेरिज, हेनरी, टेलर, टालफोर्ड जेरल्ड ब्रूक्स, मार्स्टन, टामटेलर, चार्ल्सरीड, राबर्टसन, विल्स वैरन, गिल्बर्ट, स्विनबर्न, टेनीसन और ब्रौनिंग प्रसिद्ध नाटककार गद्य पद्य के कवि हुए हैं ।

इंगलैंड में इन नाटक लिखनेवालों के हेतु एक राजनियम है जिस से अपने जीवित समय में कवि लोग और उन के पीछे उन के उत्तराधिकारी कविस्वत्व का भोग कर सकते हैं ।

।। इति ।।
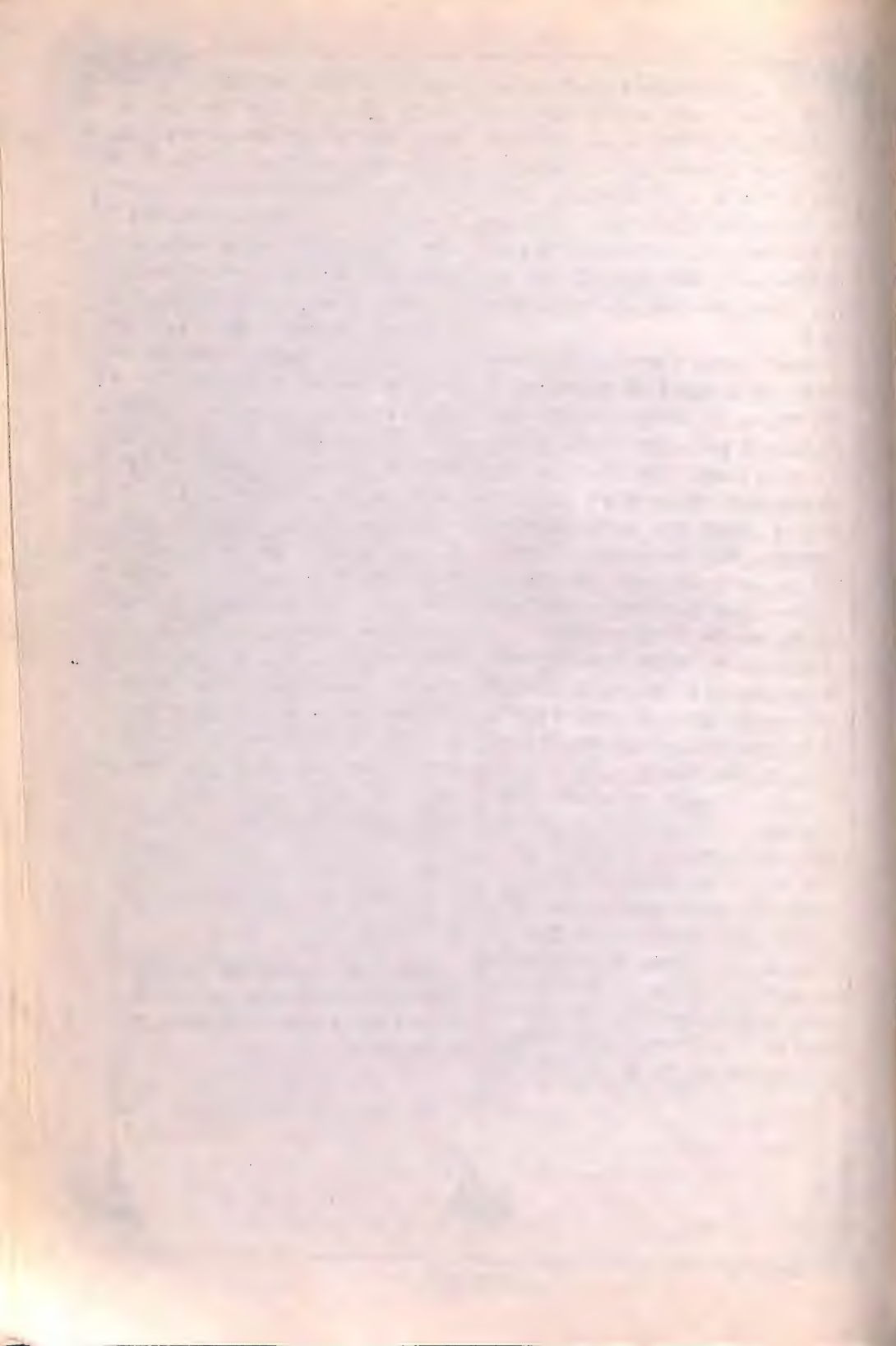
तीसरा खण्ड
(गद्य)

अगरवालों की उत्पत्ति

इसका रचनाकाल सन् १८७१ है। इसी वर्ष यह मेडिकल हाल प्रेस से छपी। १८७१ की किसी कविवचन सुधा मे इसका विज्ञापन भी छपा था। सन् १८८२ का खंड्ग विलास प्रेस बांकीपुर का भी एक संस्करण मिलता है। शेरिंग की कास्ट और ट्राइब में इस लेख का उल्लेख कई बार आता है। —सं.

भूमिका

—★—

यह वंशावली परंपरा की जनश्रुति और प्राचीन लेखों से संगृहीत हुई है परंतु इसका विशेष भाग भविष्य पुराण के उत्तर भाग में के श्रीमहालक्ष्मी व्रत की कथा से लिया गया है। इसमें वैश्यों में मुख्य अगरवालों की उत्पत्ति लिखी है। इस बात का महाराज जय सिंह के समय में निर्णय हुआ था कि वैश्यों में मुख्य अगरवाले ही हैं। इन अगरवालों का संक्षेप वृत्तांत इस स्थान पर लिखा जाता है। इनका मुख्य देश पश्चिमोत्तर प्रांत है और बोली स्त्री और पुरुष सब की खड़ी बोली अर्थात् उर्दू है। इन के पुरोहित गौड़ ब्राह्मण हैं और इनका व्यवहार सीधा और प्राय: सच्चा होता है और इस जाति में एक विशेषता यह है कि इन में कोई ऊँचे नीचे नहीं होते और न किसी को कोई अल्ल (उपाधि) होती है। बनारस और मिरजापुर में तो पुरबियों का नाम भी सुनाता है पर जो देश में पूछो कि तुम पुरबिए हौ कि पछाँहीं तो वे लोग बड़ा आश्चर्य करते हैं और कहते हैं कि पुरबिए शब्द का क्या अर्थ है। बनारस के पछाँहीं लोगों में भी ठीक अगरवाले की रीतें नहीं मिलतीं और उनकी बोली भी वैसी नहीं है। केवल जो घर दिल्ली वाले लोगों के हैं उनमें वे बातें हैं। इन लोगों में जैसा विवाहादिक में उत्साह

होता है वैसा ही मरने में बरसों दु:ख भी करते हैं परंतु जो बूढ़ा मरता है तब तो विवाह से भी धूमधाम विशेष कर देते हैं!!!

देश में तो जामा पगड़ी पहन के सब दाल भात खाते हैं पर इधर वह व्यवहार नहीं करते और केवल पूरी खाने में जाति का साथ देते हैं। एक बात यह भी इस जाति में उत्तम है कि अगरवालों में मांस और मदिरा की चाल कहीं नहीं है पर हुक्का इनके पुरोहित और ये दोनों पीते हैं यों जो लोग नेमी हों वे न पियें पर जाति की चाल है। विवाह के समय इन का बहुत व्यय करना सब में प्रसिद्ध है। और इसी विपत से कई घर बिगड़ गए पर यह रीति छोड़ते नहीं। इन में कुछ लोग जैनी भी होते हैं। और देश में सब जनेऊ पहिरते हैं पर इधर पूरब में कोई कोई नहीं भी पहिरते। इनके पुरुषों का पहिरावा पगड़ी पायजामा या धोती और अंगा है और स्त्रियों का पहिरावा ओढ़ना घँघरा या छोटेपन में सुथना है। और दशो संस्कार होने की चाल इन में अब तक मिलती है। पुरबियों के अतिरिक्त मारवाड़ी अगरवाले भी होते हैं पर इनका ठीक पता नहीं मिलता कि कब से और कहाँ से हैं। जैसे पछाँही अगरवालों की चाल खत्रियों से मिलती है वैसे ही इन मारवाड़ियों की महेश्वरियों से मिलती है पर पुरबियों की चाल तो इन दोनों से विलक्षण है।

अगरवालों की उत्पत्ति की भूमिका में यह बात लिखनी भी आनंद देने वाली होगी कि श्रीनंदरायजी, जिन के घर साक्षात् श्रीकृष्णचंद्र प्रगट हुए, वैश्य ही थे और यह बात श्रीमद्भागवतादि ग्रंथों से भी निश्चय की गई है। जो हो, इस कुल में सर्वदा से लोग बड़े धनवान और उदार होते आए पर इन दिनों वे बातें जाती रही थीं। मुगलों के समय से इनकी वृद्धि फिर हुई और अब तक होती जाती है।

मैंने इस छोटे से ग्रंथ में संक्षेप से इनकी उत्पत्ति लिखी है। निश्चय है कि इसे पढ़ के वे लोग अपनी कुछ परंपरा जानैंगे और मुझे भी अपने दीन और छोटे भाइयों में स्मरण रक्खैंगे।

वैशाख शुद्ध ५ सं० १९२८ श्री हरिश्चंद्र
काशी

वैश्यवंशावतंसाय भगवते श्रीकृष्णचन्द्राय नमः

अगरवालों की उत्पत्ति

दोहा

विमल वैश्य वंशावली, कुमुदबनी हित चंद।
जयजय गोकुल, गोप, गो, गोपी-पति नँद-नंद ।।१।।

भगवान ने अपने मुख से ब्राह्मण और भुजा से क्षत्री और जाँघ से वैश्य और चरण से शूद्रों को बनाया। उसमें वैश्य को चार कर्म का अधिकार दिया — पहिला खेती, दूसरा गऊ की रक्षा, तीसरा व्यापार और चौथा ब्याज। जैसे वेद और यज्ञादिक का स्वामी ब्राह्मण और राज्य और युद्ध का स्वामी क्षत्री वैसे ही धन का स्वामी वैश्य है और ब्राह्मण-क्षत्री-वैश्य इन तीनों की द्विज संज्ञा है और तीनों वर्ण वेद-कर्म के अधिकारी हैं। पहिला मनुष्य जो वैश्यों में हुआ उसका नाम धनपाल था, जिसे ब्राह्मणों ने प्रतापनगर में राज पर बिठाकर धन का अधिकारी बनाया। उसके यहाँ आठ पुत्र और एक कन्या हुई। उस कन्या का नाम मुकुटा था और वह याज्ञवल्क्य ऋषि से ब्याही गई। उन आठ पुत्रों के ये नाम थे — शिव, नल, अनिल, नंद, कुंद, मुकुंद, बल्लभ और शेखर। इन पुत्रों को अश्वविद्या शालिहोत्र के आचार्य विशाल राजा ने अपनी आठ बेटियाँ ब्याह दी थीं। उन कन्या लोगों के ये नाम थे और यही वैश्य लोगों की मात्रिका हैं — पद्मावती, मालती, कांती, शुभ्रा, भव्या, भवा, रजा और सुंदरी। इनका ब्याह नाम के क्रम से हुआ। इन आठ पुत्रों में नल नामा पुत्र जोगी दिगंबर होकर बन में चला गया और सात पुत्रों ने सात द्वीप का अधिकार पाया। और पृथ्वी में इनका वंश फैल गया। जंबू द्वीप में विश्य नामा राजा हुआ जो आठ पुत्रों में शिव के कुल में था और उस विश्य को वैश्य हुआ। उसके वंश में एक सुदर्शन राजा हुआ, जिस के दो स्त्रियाँ थीं जिन के नाम सेवती और नलिनी थे। उस का पुत्र धुरंधर हुआ। इसी धुरंधर का पड़पोता समाधि नामा वैश्य हुआ था। इसी समाधि के वंश में मोहन दास बड़ा प्रसिद्ध हुआ, जिस ने कावेरी के तट पर श्रीरंगनाथ जी के बहुत से मंदिर बनाए। इस का पड़पोता नेमिनाथ हुआ, जिसने नैपाल बसाया और उस का पुत्र वृंद हुआ, जिसने श्री वृन्दावन में यज्ञ करके वृंदा देवी की मूर्ति स्थापन किया। इस वंश में गुर्जर बहुत प्रसिद्ध हुआ, जिस के नाम से गुजरात का देश बसा है। इसके वंश में हीर नामा एक राजा हुआ, जिस के रंग इत्यादिक सौ पुत्र थे, जिन में रंग ने तो राज पाया और सब बुरे कर्मों से शूद्र हो गए और तप के बल से फिर इन लोगों के वंश चलाये, जिन के वंश के लोग वैश्य हुए पर उनके कर्म शूद्रों के से थे। रंग का पुत्र विशोक हुआ, उसके पुत्र का नाम मधु और उसका पुत्र महीधर हुआ। महीधर ने श्री महादेव जी को प्रसन्न करके बहुत से बर पाये। इसके वंश में सब लोग ब्यौहार में चतुर और सब धन और पुत्र से सुखी थे।

इसी वंश में वल्लभ नामा एक राजा हुए और उस के घर में बड़े प्रतापी अग्र राजा उत्पन्न हुए। इसको अग्रनाथ और अग्रसेन भी कहते थे। यह बड़ा प्रतापी था। इसने दक्षिण देश में प्रतापनगर को अपनी राजधानी बनाया। यह नगर धन और रत्न और गऊ से पूर्ण था। यह ऐसा प्रतापी था कि इंद्र ने भी उससे मित्रता की थी। एक समय नाग लोक से नागों का कुमुद नाम राजा अपनी माधवी कन्या को लेकर भूलोक में आया और उस कन्या को देखकर इंद्र मोहित हो गया और नागराज से वह कन्या माँगी। पर नागराज ने इंद्र को वह कन्या नहीं दी और उसका विवाह राजा अग्र से कर दिया। यही माधवी कन्या सब अगरवालों की जननी है और इसी नाते हम लोग सर्पों को अब तक मामा कहते हैं।

इंद्र ने इस बात से बड़ा क्रोध किया और राजा अग्र से बैर मान कर कई बरस उनकी राजधानी पर जल नहीं बरसाया और अग्रराजा से बडा युद्ध किया, तब भगवान ब्रह्मदेव ने दोनों को युद्ध से रोका। इससे राजा

अपनी राजधानी में फिर आया और राज अपनी स्त्री को सौंप के आप तीर्थों में घूमने चला गया और सब तीर्थों में फिर कर महालक्ष्मी की उपासना किया और काशी में आकर कपिलधारा तीर्थ पर महादेव जी का बड़ा यज्ञ करके बहुत सा दान किया, तब श्री महादेवजी प्रसन्न होकर प्रगट हुए और कहा कि वर माँगो तब राजा ने कहा कि मैं केवल यही वर माँगता हूँ कि इंद्र मेरे वश में होय । इसपर प्रसन्न होकर अनेक वर दिये और कहा कि तुम महालक्ष्मी की उपासना करो तुम्हारी सब इच्छा पूरी होगी । यह सुन कर राजा फिर तीर्थ में चला और एक प्रेत की सहायता से हरिद्वार पहुँचा और वहाँ से गर्गमुनि के संग सब तीर्थों में फिरा और जब फिर हरिद्वार में आया तब वहाँ महालक्ष्मी की बड़ी उपासना किया और देवी ने प्रसन्न होकर वर दिया कि इंद्र तेरे वश में होगा और तेरे वंश में दु:खी कोई न होगा और अंत में तुम दोनों स्त्री पुरुष ध्रुवतारा के आसपास रहोगे और इस समय तुम कोलापुर में जाओ, वहाँ नागराज के अवतार राजा महीधर की कन्याओं का स्वयंवर है वहाँ उन कन्याओं से ब्याह करके अपना वंश चलाओ । देवी से ये वर पाकर राजा कोलापुर में गया और वहाँ उन कन्याओं से धूमधाम से ब्याह किया और फिर कर दिल्ली के पास के देशों में आया और पंजाब के सिरे से आगरे तक अपना राज स्थापन किया और इन्हीं देशों में अपना वंश फैलाया । जब इंद्र ने राजा के वर का समाचार सुना तब तो घबड़ाया और उससे मित्रता करनी चाही । और इस बात के हेतु नारद जी को भेजा और एक अप्सरा जिसका नाम मधुशालिनी था देकर मेल कर लिया । इसके पीछे राजा अग्रसेन ने जमुना जी के तट पर श्री महालक्ष्मी का बड़ा तप किया और श्रीलक्ष्मीजी ने प्रसन्न होकर ये वर दिये कि आज से यह वंश तेरे नाम से होगा और तेरे कुल की मैं रक्षा करने वाली और कुलदेवी हूँगी और इस कुल में मेरा दीवाली का उत्सव सब लोग मानैंगे । यह वर देकर श्री महालक्ष्मी चली गईं । तब राजा ने आकर अपना राज बसाया । उस राज की उत्तर सीमा हिमालय पर्वत और पंजाब की नदियाँ थीं और पूर्व और दक्षिण की सीमा (श्रीगंगाजी) और पश्चिम की सीमा जमुनाजी से लेकर मारवाड़ देश के पास के देश थे । इनके वंश के लोग सर्वदा इन्हीं देशों में बसे । इससे मुख्य अगरवाले लोग वेही हैं जो पंजाब प्रांत से इधर मेरट-आगरे तक के बसने वाले हैं । अगरवालों के मुख्य बसने के नगर ये हैं — १-आगरा, जिसका शुद्ध नाम अग्रपुर है । यह नगर राजा अग्र के पूर्व-दक्षिण प्रदेश की राजधानी था । २-दिल्ली, जिसका शुद्ध नाम इंद्रप्रस्थ है । ३-गुड़गाँवाँ, जिसका शुद्ध नाम गौड़ ग्राम है । यह नगर अगरवालों के पुरोहित गौड़ ब्राह्मणों को मिला था, इसी से प्राय: अगरवाले लोग यहीं की माता को पूजते हैं । ४-मेरट, जिसका शुद्ध नाम महाराष्ट्र है ।[1] ५-रोहतक, जिसका शुद्ध नाम रोहिताश्व है । ६-हाँसीहिसार, जिसका शुद्ध नाम हिंसार देश है । ७-पानीपत, जिसका शुद्ध नाम पुन्यपत्तन जाना जाता है । ८-करनाल । ९-कोट काँगड़ा, जिसका शुद्ध नाम नगर कोट है । अगरवालों की कुलदेवी महामाया का मंदिर यहीं है और ज्वाला जी का मंदिर भी इसी नगर की सीमा में है । १०-लाहौर, इस नगर का शुद्ध नाम लवकोट है । ११-मंडी इसी नगर की सीमा में रैवालसर तीर्थ है । १२-बिलासपुर, इसी नगर की सीमा में नयना देवी का मंदिर बसा है । १३-गढ़वाल । १४-जींदसपीदम । १५-नाभा । १६-नारनौल, इसका शुद्ध नाम नारिनवल है । ये सब नगर उस राज में थे और राजधानी का नाम अग्र नगर था, जिसे अब अगरोहा कहते हैं । आगरा और अगरोहा[2] ये दोनों नगर राजा अग्रसेन के नाम से आज तक प्रसिद्ध हैं । राजा अग्रसेन ने अपनी राजधानी में महालक्षमी का एक बड़ा मंदिर किया था ।

राजा अग्रसेन ने साढ़े सत्रह यज्ञ किये । इसका कारण यह है कि जब राजा ने अट्ठारवाँ यज्ञ आरंभ किया और आधा हो भी चुका तब राजा को यज्ञ की हिंसा से बड़ी ग्लानि हुई और कहा कि हमारे कुल में यद्यपि कहीं भी कोई मांस नहीं खाता परंतु दैवी हिंसा होती है, सो आज से जो मेरे वंश में हो उसको यह मेरी आन है कि दैवी हिंसा भी न करै अर्थात् पशु-यज्ञ और बलिदान भी हमारे वंश में न होवै और इससे राजा ने उस यज्ञ को भी पूरा नहीं किया । राजा को सत्रह रानी और एक उपरानी थीं । उनसे एक एक को तीन तीन पुत्र और एक एक कन्या हुई और उसी साढ़े सत्रह यज्ञ से साढ़े सत्रह गोत्र हुए । कोई लोग ऐसा भी कहते हैं कि किसी मनुष्य का ब्याह जब गोत्र में हो गया तो बड़े लोगों ने एकही गोत्र के दो भाग कर दिये, इससे साढ़े सत्रह गोत्र हुए पर यह

१. इसको कोई मयराष्ट्र भी कहते हैं ।
२. अब यह एक गाँव सा बच गया है ।

बात प्रमाण के योग्य नहीं है । राजा अग्र के उन बहत्तर पुत्र और कन्याओं के बेटा अग्रवाल कहाए । अग्रवाल का अर्थ अग्र के बालक हैं । अग्रवालों के साढ़े सत्रह गोत्रों के ये नाम हैं —१ गर्ग, २ गोइल, ३ गावाल, ४ वात्सिल, ५ कासिल, ६ सिंहल, ७ मंगल, ८ भद्दल, ९ तिंगल, १० ऐरण, ११ टैरण, १२ ठिंगल, १३ तित्तल, १४ मित्तल, १५ तुंदल, १६ तायल, १७ गोभिल, और गवन अर्थात् गोइन आधा गोत्र है, पर अब नामों में के कुछ अक्षर उलट पुलट भी हो गए हैं । राजा अग्र ने अपने सहायक गर्ग ऋषि के नाम से अपना प्रथम गोत्र किया और दूसरे गोत्रों के नाम भी यज्ञों के अनुसार रक्खे । राजा अग्र ने अपने कुल पुरोहित गौड़ ब्राह्मण बनाए और उस काल में सब अगरवाले वेद पढ़नेवाले और त्रिकाल साधनेवाले थे । राजा अग्र बूढ़ा होकर तप करने चला गया और उसका पुत्र विभु राज पर बैठा और उसके कई वंश तक राजा लोग अपने धर्म में निष्ठ होकर राज करते रहे । इस वंश में दिवाकर एक राजा हुआ, जो वेदधर्म छोड़कर जैनी हो गया और उसने बहुत से लोगों को जैनी किया और उसी काल से अगरवालों में वेदधर्म छूटने लगा परंतु अगरोहा और दिल्ली के अगरवालों ने अपना धर्म नहीं छोड़ा । इस वंश में राजा उग्रचंद्र के समय से राज घटने लगा और जब शहाबुद्दीन ने चढ़ाई किया तब तो अगरोहा सब भाँति नाश कर दिया । शहाबुद्दीन की लड़ाई में बहुत से लोग मारे गए और उनकी बहुतसी स्त्री सती हुईं, जो हम लोगों के घर में अब तक मानी और पूजी जाती हैं । यह अगरवालों के नाश का ठीक समय था । इसी समय से इन में से बहुतों ने धर्म छोड़ दिये और यज्ञोपवीत तोड़ डाले । उस समय जो अगरवाले भागे वे मारवाड़ और पूर्व में जा बसे और उनके वंश में पुरबिये और मारवाड़ी अगरवाले हुए, और उतराधी और दखिनाधी लोग भी इसी भाँति हुए, पर मुख्य अगरवाले पछाँही वेही कहलाए जो दिल्ली प्रांत में बच गए थे । जब मुगलों का राज हुआ तब अगरवालों की फिर बढ़ती हुई और अकबर ने तो अगरवालों को अपना वजीर बनाया । उसी काल से अगरवालों की विशेष वृद्धि हुई । अकबर के दो मुख्य और प्रसिद्ध अगरवाले वजीर थे, जिन का नाम महाराज टोडरमल और मद्धूशाह था । मद्धूसाही पैसा इन्हीं के नाम से चला है ।

चरितावली

अर्थात्

अनेक प्रसिद्ध पुरुषों का जीवन चरित

यह सन् १८७१ से १८८० के बीच लिखे इतिहास और पुराण पुरुषों के जीवन चरित्रों का संग्रह है। जो अलग-अलग पत्रिकाओं में छप चुकी है। इस संग्रह में उन व्यक्तियों का जीवन चरित्र है जिन्होंने धर्म, साहित्य, राजनीति आदि के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित किया है। इसमें कुछ महान लोगों की कुण्डलियां भी हैं।

— सं.

चरितावली

१— विक्रम

इस के पूर्व कि हम विक्रमादित्य का कुछ चरित्र लिखें हम को श्री मद्बुहलर साहब का धन्यवाद करना चाहिए, जिन्होंने विक्रमांक-चरित्र नाम ग्रंथ खोज कर प्रकाश किया। यह श्रीहर्षचरित्र के चाल का एक दूसरा ग्रंथ है, जो अब प्रकाश हुआ। यह ग्रंथ बिल्हण कवि का है और अनेक छंदों में अठारह सर्ग में लिखा हुआ है। इसके सत्रह सर्गों में विक्रमादित्य का चरित्र और अठारहवें सर्ग में कवि ने अपना वर्णन किया है। प्रसिद्ध है कि चौरपंचाशिका इसी बिल्हण की बनाई हुई है। कहते हैं कि गुजरात के राजा बैरीसिंह की बेटी चन्द्रलेखा वा शशिकला को बिल्हण पढ़ाता था और उस ने उससे गंधर्व विवाह भी किया था। जब राजा ने इस बात से क्रुद्ध होकर बिल्हण को फाँसी की आज्ञा दिया, रास्ते में इस ने चौरपंचाशिका बनाई, जिससे प्रसन्न होकर राजा ने फाँसी के बदले अपनी कन्या की बाँह उसके गले में डाली। इन कथाओं पर हमारा कुछ ऐसा विश्वास नहीं, क्योंकि इस ग्रंथ में बिल्हण ने इन बातों की कहीं चर्चा नहीं की है। बिल्हण अपना हाल यो लिखता है — कश्मीर के देश में जिहलम और सिंध के मुहाने पर प्रवर पुर नाम का बड़ा सुंदर नगर था। अनंत देव वहाँ का बड़ा प्रतापी और धार्मिक राजा था, जिसकी रानी का नाम सुभटा था। उस रानी का भाई क्षितिपति भोज के समान कवियों का गुण ग्राहक और बड़ा विष्णुभक्त था। अनंत का बेटा कलश हुआ और कलश के पुत्र हर्षदेव और विजयमल्ल थे। प्रवरपुर के पास ही विजयवन में खीनमुख नाम का एक गाँव था, जहाँ कुशिक गोत्र के ब्राह्मण बसते थे, जिनको गोपादित्य मध्य देश से बड़े आदर से लाया था। उन ब्राह्मणो में मुक्तिकलश सब से मुख्य था और उस को राज्य कलश और राज्य कलश को ज्येष्ठ कलश पुत्र हुआ। ज्येष्ठ कलश को इष्टराम, बिल्हण, आनंद तीन पुत्र थे। बिल्हण व्याकरण और काव्य अच्छी तरह पढ़ा था और श्री वृन्दावन में बहुत दिन तक उस ने काल बिताया और फिर कन्नौज, प्रयाग, बनारस और अयोध्या में फिरता रहा और फिर कुछ दिन दाहाल के राज्य में, कुछ दिन धार में और कुछ दिन गुजरात में रहकर अपनी कविता से लोगों को प्रसन्न करता रहा। जब यह दक्षिण में चोल देश में गया, तो वहाँ के राजा से इसको विद्यापति की पदवी मिली। उस की

माता का नाम नागादेवी था । कर्ण के दरबार में गंगाधर कवि के मुकाबिले में राम जी के चरित्र में काव्य बनाया । यह अपने ग्रंथ में लिखता है कि किसी कारण से वह राजा भोज से न मिल सका । विक्रमांक चरित्र उसने अपने बुढ़ापे में बनाया । विदित रहे कि विल्हण ईसवी ग्यारहवें शतक के मध्य और अंत भाग में हुआ है, क्योंकि विक्रमादित्य ने (जिस के दरबार का यह पंडित था) सन् १०७६ से ११२७ तक राज्य किया था । विल्हण की कविता में कई बातें विशेष जानने के योग्य हैं, जैसा उसने कादम्बरी का अपने ग्रंथ में वर्णन किया है, जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि वाण कवि विल्हण के पहिले हुआ है और उसके समय में भी वाण की कविता का माधुर्य भारतवर्ष में फैला हुआ था । फारसी (शिकस्त) के चाल के कोई अक्षर विल्हण के समय में कश्मीर में लिखे जाते थे, क्योंकि उसने कश्मीर के वर्णन में लिखा है कि वहाँ कायस्थ लोग अपने लिखावट की जाल से किसी को ठग नहीं सकते थे । विल्हण गुजरातियों से बहुत नाराज था, क्योंकि वह लिखता है कि गुजराती राक्षसी बोली बोलते हैं और लाँघ नहीं बाँधते और मैले होते हैं । विल्हण के बाप ने महाभाष्य पर कोई तिलक किया था, परन्तु अब वह नहीं मिलता । विल्हण की कविता वैदर्भी और ओज और प्रसाद गुण से पूर्ण है । कविता से जहाँ कवि के और गुण प्रकट होते हैं वहाँ साथ ही उसका अभिमान, उद्दण्डता और परिहास का स्वभाव भी पाया जाता है ।[१]

इसी कवि ने विक्रमादित्य का चरित्र अठारह सर्गों में कहा है । इस समय हम इस बात का झगड़ा नहीं ले बैठते कि विक्रम कितने भए और किस किस समय में भए । यहाँ पर हम केवल उस विक्रम का चरित्र वर्णन करते हैं जो दक्षिण देश में राज्य करता था, कल्याण जिसकी राजधानी थी और विक्रमादित्य जिस का नाम था । हमारे पाठक लोगों को यह जान कर बड़ा आश्चर्य होगा कि यह वह विक्रम नहीं है जिसका संवत चलता है और न इस विक्रमादित्य के हुए १९४१ वर्ष हुए ।

इस विक्रमादित्य का जन्म चालुक्य[२] नामक क्षत्रीवंश में हुआ था । विल्हण लिखता है कि ब्रह्मा एक बेर अंजुली में जल लेकर अर्घ देना चाहते थे कि इंद्र अपनी विपत्ति कहने लगा, जिस से ब्रह्मा ने अपनी अंजुली का जल गिरा दिया और उसी से चालुक्य नामक क्षत्रियों का कुल उत्पन्न हुआ । हारीत और मानव्य इस वंश के पूर्व पुरुष थे और पहले से ये लोग अयोध्या के राजाओं के अधिकार में अयोध्या जी में बसते थे । श्री रामचंद्र के समय में भी ये लोग उन की सेवा में उपस्थित थे । फिर इन लोगों ने दक्षिण में अधिकार आरंभ किया और धीरे-धीरे वहाँ के राजा हो गये । काल पाकर श्री तैलप नामक इस वंश में एक राजा हुआ । इसने सन् ९७३ से ९९७ तक राज्य किया । इस ने हिंदुस्तान के बहुत से राजाओं को मार कर अपना अधिकार बढ़ाया । श्रीयुत बूलर साहब लिखते हैं मुंज को इसी ने मारा था और मालवा पर इस ने बड़े धूमधाम से चढ़ाव किया था । उसके पीछे सत्याश्रय राजा हुआ, जिसने ग्यारह वर्ष अर्थात् सन् १००८ तक राज्य किया । इसी का नामांतर सत्यश्री था । इस के पीछे जय सिंह राजा हुआ, जिसने सन् १०१ ० तक राज्य किया । इसके पीछे आहव मल्लदेव राजा हुआ । इसी का नामांतर त्रिभुवनमल्ल और त्रैलोक्यमल्ल था । इसने पवाँरों[३] के देश

---

१. "बून्दी राजवंश वर्णन" और बाबू रामचरित्र सिंह संग्रहीत "नृपवंशावली" और "राजस्थान" में देखिये ।

२. सिंहल के इतिहास में बंगाल का पहला हाल इतना लिखा है कि सिंहबाहु नाम एक बंगाले का राजा था । उस का बड़ा बेटा विजयसिंह प्रजाओं को पीड़ा देने के कारण जब देश से निकाला गया, तो सात सौ आदमियों के साथ जहाज में चढ़कर निकला । अनेक प्रकार के कष्ट सहने के उपरान्त सिंहल में जा पहुँचा और वहाँ के लोगों को जीत कर उन का राजा बन गया । विजयसिंह के मरने के बाद उस का भतीजा पांडुवास जो बंगाल में रहता था सिंहल-द्वीप के सिंहासन पर बैठा । यह सिंहलद्वीप के राजाओं में पहला राजा था । सिंहवंश के राजा होने के कारण इस टापू का नाम सिंहलद्वीप हुआ । जिस साल बुद्धदेव का परलोक हुआ था उसी साल सिजयसिंह सिंहल में पहुँचा । यह साफ जान पड़ता है कि ५०० बरस ईस्वी सन् के पहले बंगाले में आर्यवंश के लोगों का अधिकार बहुत बढ़ा था, क्योंकि उन लोगों ने भी समुद्र की राह से जहाज पर चढ़ कर दूर दूर के देशों को जीता था ।

३. विल्हण का यह स्फुट श्लोक मिला है, जिस से उसका अभिमान स्पष्ट प्रगट होता है ।

वास : शुभ्रमृतुर्वसन्तसमय : पुष्पंशरन्मल्लिका । धानुष्क : कुसुमायुध : परिमल : कस्तूरिका ऽस्त्रंवनु : । ।
वाणीतर्वरसोज्वला प्रियतमा श्यामावयो यौवनं । देवोमाधवएवपंचमलया गीतिर्कविर्विल्हण : । ।

मालव की राजधानी धारानगरी पर चढ़ाई किया । करनाटक, कुंतल और डाहल देश में इसका निज राज्य था, पर चोल, केरल और द्रविण देश इसने जीत के अपने राज्य में मिला लिया था । विल्हण लिखता है कि अद्भुत कथा और दश रूप काव्य में इस राजा का बहुत सा वर्णन है । इस को पुत्र नहीं होता था इस से इसने महादेव जी की घर ही में बड़ी आराधना की और काल पाकर सोमदेव, विक्रमादित्य और जय सिंह तीन पुत्र हुए । विक्रम के शरीर में छोटेपन ही से शूरता इत्यादिक उत्तम गुण झलकते थे । जब यह जवान हुआ, तो पहिले इस ने बंगाले पर चढ़ाव किया और कामरूप जीता । समुद्रपार होकर सिंहल पर इसने चढ़ाव किया और द्राविड़ और चोलों की राजधानी कांची तीन बेर लूटा । जब वह सिंहल जीत कर लौटा, तो गोदावरी के पास सुना कि तुंगभद्रा के किनारे पिता ने देह त्याग किया । यह उसी समय घर गया और इस का बड़ा भाई सोमदेव राजा हुआ । विल्हण लिखता है कि सोमदेव बड़ा मदोन्मत्त हो गया था और इन्दुमित्र नामक एक बुरा राजा उस को सहायता को मिल गया, इस से विक्रम ने इसका संग छोड़ा । इसी को चालुक्य कहते हैं । दिया हौर कोंकण का राजा जयकेश इससे मिलकर दक्षिण में बहुत से देश जीते और अपना अपना अलग राज स्थापन किया । उस समय इस का छोटा भाई जयसिंह भी इस के साथ था । द्रविण देश के राजा ने अपनी कन्या देकर इस से मैत्री की और जब वह राजा मर गया तो विक्रम ने उसके बेटे अर्थात अपने साले को बड़े धूमधाम से गद्दी पर बैठाया । और फिर गांगकुंडपुर होता हुआ तुंगभद्रा के किनारे आकर रहा । जब चेंगों के राजा राजिक ने इस के साले को जीत लिया था तब यह बड़ी धूमधाम से उस से लड़ने को गया था । कहते हैं कि राजिक इस के बड़े भाई सोमदेव का मित्र था, इस से राजिक की ओर से सोमदेव भी लड़ने को आया था । यह लड़ाई बड़ी तैयारी से हुई और सोमदेव अंत में पकड़ा गया । राजिक भागा और विक्रमादित्य अपने बाप की गद्दी पर बैठा । काहाट के राजा की कन्या ने स्वयंवर किया था, जिस में विक्रमादित्य भी गया था । विल्हण ने यहाँ पर राजाओं के स्वाभाविक अभिमान और काम की चेष्टा के वर्णन में बहुत ही अच्छी स्वभावोक्ति दिखाई है और 'पारसीक तैल' के नाम से आतिशबाजी के भांति की किसी वस्तु का वर्णन किया है । स्वयंवर में विल्हण ने नीचे लिखे हुए राजाओं का वर्णन किया है, जिस से प्रगट होता है कि इतने राजा उस समय अलग अलग वर्त्तमान और अच्छी दशा में थे, यथा अयोध्या, चंदेरी, कान्यकुब्ज (अर्जुन के कुल का राजा), चंबल के तट का देश, कालिंजर, गोपाचल, मालव, गुजरात, मंदराचल के समीप का पांड्यदेश और चोल । कन्या ने जयमाल विक्रमादित्य के गले में डाली और धूमधाम से इस का विवाह हुआ ।

इस राजा के बहुत से ऐश्वर्य और बिहार वर्णन के पीछे विल्हण लिखता है कि एक दिन विक्रम ने दूत के मुख से सुना कि उसका छोटा भाई बागी हो गया है और चेंगों जीतने के पीछे विक्रम ने जो उसे देश और सेना दी थी उस पर संतोष न करके बहुत से सिपाही नौकर रख के सारे दक्षिण में लूट मार करता फिरता है और द्रविड़ के राजा (शायद विक्रम का साला) ने उसे बहुत ही बहकाया है और छोटे-छोटे बहुत से उपद्रवी राजा उससे मिल गए हैं । यह सुन कर बहुत पछताया और सेना लेकर बाहर निकला । जब भाई की सेना के पास इसका डेरा पहुँचा, तो उसने दूतों के और पत्रों के द्वारा उस को बहुत समझाया, पर वह न माना और अंत में विक्रम से हारकर कही दूर जा रहा । विक्रम फिर सुख से राज्य करने लगा । एक बेर कांची पर फिर चढ़ा था, क्योंकि वहाँ का राजा इस से फिर गया था । कवि ने विक्रम के स्वाभाविक बहुत से गुण लिखे हैं, जिन में उदारता का बहुत ही सविशेष वर्णन है । इस ने इक्यावन वर्ष राज्य किया था ।

ऊपर के लिखे अनुसार लोगों को विक्रम का जीवनवृत्त विदित होगा । कवि ने उस में जो जो सद्गुण लिखे हैं वह उस में रहे हों, पर अपने दो भाइयों को उस ने जीता और बड़े भाई को कैद करके आप गद्दी पर बैठा, इस से उसके चरित्र में हम को थोड़ा संदेह होता है । क्योंकि जब उसके बड़े भाई के जीतने का कवि वर्णन करेगा, तो उस दोष के छिपाने के वास्ते उस के उस भाई को बुरा लिखें, इस में क्या संदेह है । जो कुछ हो, विक्रम एक बड़ा राजा और गुणग्राही मनुष्य हो गया है और यह पंडितों के आदर का ही फल है कि उस का संपूर्ण वर्णन आज हम पाठकों को सुनाते हैं ।

कालिदास का जीवनचरित्र

यह सब वार्ता केवल बंगदेशियों की है । पश्चिम प्रदेशीय पंडित लोग भारतवर्षीय कवियों में कालिदास को सर्वोच्चासन देते हैं । बंबई के प्रसिद्ध पंडित भाऊदाजी ने केवल कालिदास की कविता ही नही पढ़ी वरन

बहुत परिश्रम करके प्राचीन संस्कृत ग्रंथ और ताम्रपत्रों से उन का जीवनवृत्तांत संग्रह की । हम ने भी उन के ग्रंथ से कई एक बातें ग्रहण किया है ।

कालिदास विख्यात महाराजा विक्रम के नवरत्नों में थे । इसके[१] व्यतिरिक्त उन के जीवन की और कोई प्रमाणिक बात लोग नहीं जानते । बंगदेश के कई अभिमानी पंडितों ने कालिदास को लंपट ठहरा कर उन के नाम से हास्यरस की कविताओं का प्रचार किया । पाठशाला के युवा ब्राह्मण थोड़ा सा मुग्धबोध व्याकरण पढ़ के इन श्लोकों का अभ्यास करके धनिक लोगों का मनोरंजन करते हैं और इसी प्रकार धनी लोगों से प्रति वर्ष कुछ पाते हैं । यथार्थ में तो यह सब कविता कालिदास की नहीं हैं, परंतु नवीन कवियों की बनाई हुई है । "प्रफुल्लित ज्ञान नेत्र" नामक पद्यमय पुस्तक बंगभाषा में मुद्रित हुई है । इस ग्रंथ में लोगों ने मिथ्या कल्पना करके कालिदास में ऊपर लिखा हुआ दोष ठहराया है । इसी प्रकार से इन दिनों अंगरेजी भूमिका सहित यह रघुवंश की सटीक पोथी मुद्रित हुई है । इस में भी लोगों ने मिथ्या कल्पना किया है । कालिदास ने कोई भी ग्रंथ में अपना वृत्तांत कुछ भी नहीं लिखा है, केवल, इतनाही प्रकट किया है ।

धन्वन्तरि: क्षपणकोमरसिंहशंकु: वेतालभट्टघटखर्परकालिदासा: ।
ख्यातोबराहमिहिरोनृपते: सभायाँरत्नानिवैवररुचिर्नवविक्रमस्य ।।

केवल इतना ही परिचय नवरत्नों का लिखा है । अभिज्ञानशाकुंतल-ग्रंथकर्ता के इतने ही परिचय से संतुष्ट न रह के और-और संस्कृत ग्रंथों से इस विषय का अनुसंधान करना उचित है । प्राय : ५०० वर्ष हुए कि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ने कालिदास कृत काव्यों की टीका की है । उन्हीं ने यह टीका दक्षिणावरनाथ की टीका देखकर बनाई । परंतु वह अब दुष्प्राप्य है । भाषातत्ववित् लासेन साहब ने यह लिखा है कि कालिदास ईस्वी दो संवत् में समुद्र गुप्त की सभा में वर्त्तमान थे । लासेन ने एक पत्थर देखा था, जिस पर यह लिखा था कि "समुद्र गुप्त कवि बंधु काव्य प्रिय" और इसी से यह अनुमान करते हैं कि कविश्रेष्ठ कालिदास उन के सभासद थे । बेन्टली ने एशियाटिक नामक पत्रिका में भोज प्रबंध का फरासीसी अनुवाद और "आईने अकबरी" को देख कर लिखा है कि भोज राजा के राज्य के ८०० वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य के सभा में कालिदास वर्त्तमान थे, परंतु यह बात कदापि नहीं हो सकती । बेंटली ने स्वीय ग्रंथों में कई एक ऐसी अशुद्ध बाते लिखी हैं जिनके पढ़ने से बोध होता है कि वह हिंदुओं का इतिहास कुछ भी नहीं जानते ।

कर्नेल विलफोर्ड, प्रिंसेप और एलफिनस्टन ने लिखा है कि कालिदास प्राय : १४०० वर्ष पूर्व वर्त्तमान थे ।

भोज प्रबंध के प्रमाणानुसार गुजरात, मालव और दक्षिण के पंडित कहते हैं कि कालिदास सन् ११०० ईस्वी में भोजराजा के सभासद थे । उज्जैन के राजसिंहासन पर कई विक्रमादित्य और भोजराज नामक राजा बैठे, परंतु सब से अंत के भोज राजा तो संवत् ११०० ईस्वी में राज्य करते थे । और इससे बोध होता है कि अंत के विक्रम ही को भोजराज कहते हैं और उन्हीं की नवरत्न की सभा थी । हमने स्वयं "भोजप्रबंध" पाठ कर के देखा है कि उनमें यह लिखा है कि मालव देशांतर्गत धारानगराधिप भोज सिन्धुल के पुत्र और मुंज के भ्रातृपुत्र थे । भोज के बाल्यावस्था में उन के पिता का परलोक हुआ तो उनके पितृव्य मुंज राजपद पर अभिषिक्त हुए और भोज ने उन के मंत्री बनकर बहुत विद्या उपार्जन किया और इसी प्रकार भोज दिन प्रतिदिन विख्यात होने लगे । तो मुंज के मन में यह शंका हुई कि अब लोग हमको पदच्युत करेंगे और यह विचार करने लगे कि किसी प्रकार से भोज का प्राणनाश करूँ । इसी हेतु मुंज ने वत्सराज राजा को बुलाकर अपना दुष्टविचार प्रकाशित किया और कहा कि भोज को शीघ्र ही अरण्य में ले जाकर इसका प्राणनाश करो । परंतु इस राजा ने भोज को तो छिपा रक्खा और पशु के रक्त से भरे हुए खड्ग को राजा मुंज के पास भेज दिया । इस को देखकर उन्होंने सानन्द चित्त से पूछा कि भोज ने मानव लीला समाप्त किया ? यह सुन वत्स राजा ने एक पत्र पर लिख

---

१. राजा लक्ष्मण सिंह रघुवंश के उल्था में यों लिखते हैं :-"कालिदास नाम के कई कवि हुए हैं । उनमें दो मुख्य गिने जाते हैं —एक वह जो राजा वीर विक्रमाजीत की सभा के नौरत्नों में था, दूसरा जो राजा भोज के समय में हुआ । इनमें भी पण्डित लोग पहले को दूसरे से श्रेष्ठ मानते हैं और उसी के रचे हुए रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार इत्यादि काव्य और शाकुंतल नाटक, विक्रमोर्वसी त्रोटक और और अच्छे अच्छे ग्रंथ समझे गए हैं ।

दिया कि — ''मान्धाता, जो भोज क्या, एक समय नृप कुल का शिरोमणि था अब परलोक में है । रावणारि रामचंद्र जिन्होंने समुद्र में सेतु बाँधा था वह कहाँ हैं ? और बहुत से महोदय गण और राजा युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण किया है, परंतु पृथ्वी उन के साथ नहीं गई । पर आप के साथ पृथ्वी अवश्य रसातल को जायगी ।'' इस पत्र के पढ़ते ही मुंज का शरीर रोमांचित हुआ और भोज के लिये अत्यंत व्याकुल हुए । परंतु जब उन्होंने सुना कि भोज जीता है, तो उन को वत्सराज से शीघ्र बुलवा कर धारानगर के राज सिंहासन पर बैठाया और आप ईश्वराराधन के निमित्त अरण्य में प्रवेश किया । भोज ने पितृसिंहासन पा के बहुत से पंडितों को अपनी सभा में बुलाया । हम को भोज प्रबंध में कालिदास के सहित नीचे लिखे हुए पंडितों के नाम मिलें हैं :—

कर्पूर, कलिंग, कामदेव, कोकिल, श्रीदचन्द्र, गोपालदेव, जयदेव, तारेचंद्र, दामोदर, सामनाथ, धनपाल, वाण, भवभूति, भास्कर, मयूर, मल्लिनाथ, महेश्वर, माघ, मुचकुंद, रामचंद्र, रामेश्वर, भक्त, हरिवंश, विद्याविनोद, विश्ववसु, विष्णुकवि, शंकर, सामदेव, शुक, सीता, सोम, सुबंधु इत्यादि ।

सीता अवश्य किसी स्त्री का नाम है और इसी से बोध होता है कि स्त्रीशिक्षा उस समय प्रचलित थी । तो हम नहीं समझते कि हम लोगों के स्वदेशीय अब इस को क्यों बुरा समझ के अपने देश की उन्नति नहीं होने देते । देखिये, अमेरिका में स्त्रीशिक्षा कैसी प्रचलित है और जो लोग एक समय अत्यंत मूर्ख अवस्था में थे अब यूरप के लोगों को भी दबा लिया चाहते हैं, तो यह देखकर हे हिंदुस्तानियो ! क्या तुम को थोड़ी भी लज्जा नहीं आती ?

पण्डित शेषगिरि शास्त्री ने लिखा है कि बल्लालसेन ने १२० ईस्वी में भोजप्रबंध बनाया । इस से बोध होता है कि वे भोजराज के विद्योत्साही और उनके संमान के वृद्धि के हेतु कालिदास, भवभूति इत्यादि कवियों को केवल अनुमान ही से भोजराज का सभासद ठहराया है । भोजचरित में इन सब कवियों के नाम मिलते हैं इस लिये भोजप्रबंध को कैसे प्रामाणिक ग्रंथ कहें ? इसी भोजराज ने चंपू रामायण, सरस्वती कंठाभरण, अमरटीका, राजवार्तिक, पातंजलिटीका और चारुचार्य इत्यादि बहुत से ग्रंथ मिलते हैं, परन्तु कालिदास, भवभूति आदि कवियों के नाम इन में से एक भी ग्रंथ में नहीं लिखे हैं । विश्वगुणादर्शक ग्रंथकार वेदांताचार्य कालिदास श्रीहर्ष और भवभूति एक समय भोजराज के सभा में वर्त्तमान थे, जैसा लिखा भी है ।

माघश्चोरो मयूरो मुररिपुरेपरो भारविः सारविद्यः ।
श्रीहर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्यादयो भोजराजः ।।

इस में वे भी भोजप्रबंधप्रणेता बल्लाल के न्याय महाभ्रम में पतित हुए हैं, क्योंकि श्रीहर्ष, कालिदास और भवभूति एक काल में वर्तमान नहीं थे । इस विषय में बहुत से प्रमाण भी हैं ।

भारतवर्ष के बहुत से राजाओं का नाम विक्रमादित्य था । उज्जयिनी के अधीश्वर विक्रमादित्य जो ५७ ईस्वी.पू. में राज्य करते थे और जिन्हों ने 'संवत' स्थापन किया है तो अब हम लोगों को देखना चाहिये कि कालिदास इस विक्रम की सभा में उपस्थित थे वा नहीं । हम्बोल्ट लिखते हैं कि कविवर होरेस और वर्जिल कालिदास के समकालि थे । इस बात को बहुत से यूरोपीय पंडितों ने स्वीकार किया है । कर्नेल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि ''जब तक हिंदू साहित्य वर्तमान रहेगा तब तक लोग भोज प्रमार और उनके नवरत्नों को न भूलेंगे'' । परंतु यह ठहराना बहुत कठिन है कि वह गुण-पंडित तीन भोजराजों में से किस भोजराज की नवरत्न की सभा थी । कर्नेल टाड ने यह निरूपण किया है — प्रथम भोजराज संवत ६३१ में, द्वितीय ७२१ और तृतीय भोजराज संवत ११०० में वर्तमान थे । ''सिंहासनबत्तीसी'', ''वेतालपच्चीसी'' और ''विक्रमचरित्र'' आदि ग्रंथों में महाराज विक्रमादित्य की बहुत सी अलौकिक कथा भरी हुई है, इसी कारण इन में कोई सत्य इतिहास नहीं मिल सकता । मेरुतुंग कृत ''प्रबंध चिंतामणि'' और राजशेखरकृत ''चतुर्विंशति प्रबंध'' में लिखा है कि महा राजा विक्रमादित्य अति शूर वीर और महाबल पराक्रांत नृपति थे । परंतु उनमें नवरत्न और कालिदास आदि कवियों का कुछ भी वृत्तांत नहीं लिखा है ।

जैन ग्रंथों में लिखा है कि सिद्धसेन नामक जैन पुरोहित विक्रमादित्य के उपदेष्टा थे । परंतु हम नहीं कह सकते कि यह बात कहाँ तक शुद्ध है । और एक जैन लेखक कहते हैं कि ७२३ संवत में भोजराज के राज्य में

बहुत से लोग उज्जयिनी नगर में जा बसे थे । यह और वृद्ध भोज दोनों जैनमतावलवी थे । ये सब वृत्तांत जैन ग्रंथों से ज्ञात होते हैं ओर और संस्कृत ग्रंथों में ये सब प्रमाण नहीं मिलते । वृद्धभोज मनोतुंग सूरि के शिष्य थे । मनांतुग और बाण, मयूर भट्ट के समकालिक जैनाचार्य्य थे । बाणकृत हर्षचरित पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने सन् ७०० ईस्वी मों श्रीकंठाधिपति हर्षवर्द्धन के साथ भेंट किया था । यही कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन हियांग सियांग शिलादित्य थे और इन्हीं की सभा में हियांग सियांग नामक चैनिक परिव्राजक बुलाए गए थे । शिलादित्य थे और इन्हीं की सभा में हियांग सियांग नामक चैनिक परिव्राजक बुलाए गए थे । वाण कवि ने हियांग सियांग के ग्रंथ को पाठ करके अपना ग्रंथ बनाया । । हर्षवर्द्धन के साथ चैनिकाचार्य्य के भेंट का वृत्तांत हर्षचरित्र में "यवन प्रोक्त पुराण" नामक ग्रंथ से लिया गया है ।

महर्षि कण्व ने अपने "कथा सरित्सागर" के १८ वें अध्याय में नरवाहन दत्त को विक्रमादित्य का उपन्यास कहा है । उसमें लिखा है कि विक्रमादित्य सन् ५०० ईस्वी में राज्य करते थे । नरवाहन दत्त जैन ग्रंथ, कथा सरित सागर और मत्स्य-पुराण के मतानुसार शतानिक के पौत्र थे । नासिक में एक पत्थर की चट्टान मिली है जिस पर विक्रमादित्य का नाम लिखा है और उन को नाभाग, नहुष, जन्मेजय, ययाति और और बलराम के नाई योद्धा वर्णन किया है । पाठक जनों को देखना उचित है कि एक विक्रमादित्य के इतिहास में कितनी गड़बड़ है । लोगों में जो केवल एक ही विक्रमादित्य प्रसिद्ध हैं, इस समय के भारतवर्षीय इतिहासों में कई एक विक्रमादित्यों के नाम मिले हैं । परंतु हम को उस विक्रमादित्य का इतिहास ज्ञात होना आवश्यक है जिस से हम लोगों का संदेह दूर हो और यह जान पड़े कि नवरत्नों के अमूल्यरत्न कवि-चक्रचूड़ामणि कालिदास का विक्रमादित्य से कुछ संबंध है वा नहीं ।

श्री देवकृत विक्रमचरित में लिखा है कि विक्रमादित्य तीर्थंकर वर्द्धमान के नाश होने के ४७० वर्ष परे उज्जयनी में राज्य करते थे और इन्होंने ही संवत् स्थापन किया है, परंतु इस ग्रंथ में कालिदास का नाम भी नहीं लिखा है ।

पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति कहते हैं कि महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' बनाने के अनंतर ३०६८"कलिगताब्द में "ज्योतिर्विदाभरण" नामक कालज्ञान शास्त्र बनाया । मेघदूत-प्रकाशक बाबू प्राणनाथ पंडित महाशय ने भी इस बात को अपनी भूमिका में लिखा है, परंतु यह किसी का ग्रंथ नहीं दृष्टि पड़ता कि 'ज्योतिर्विदाभरण' रघुकार कालिदास रचित है । तर्कवाचस्पति महाशय के मत को सहायता देने के निमित्त "ज्योतिर्विदाभरण" के कतिपय श्लोकों का अनुवाद करके नीचे लिखते हैं, जैसा कालिदास ने लिखा ।

मैंने इस प्रफुल्लकर ग्रंथ को भारतवर्षांतरगत मालव देश में (जिस में १८० नगर हैं) राजा बिक्रमादित्य के राज्य के समय रचा है ।।७।।

शंकु, वररुचि, मणि, अंशुदत्त, जिष्णु, त्रिलोचन हरि, घटकर्पर, अमर सिंह और और बहुत से कवियों ने उनके सभा को सुशोभित किया था ।।८।।

सत्य, वराहमिहिर, अतिसेन, श्रीवादरायणी, भनिथ्व, कुमार सिंह और कई एक महाशय ज्योतिषशास्त्र के अध्यापक थे ।।९।।

धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बैतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास और वराहमिहिर और वररुचि, ये सब महाशय विक्रम के नवरत्न थे ।।१०।।

विक्रम की सभा में ८०० छोटे छोटे राजा और उनके महासभा में १६ वाग्मी, १० ज्योतिषी, ६ वैद्य और १६ वेद-पारग पंडित उपस्थित रहते थे ।।११।।

कोई कहते हैं कि यह कवि, मालवा के हर्ष विक्रमादित्य के समय, हज़रत ईसा की छठवीं सदी में था । उस राजा की राजधानी उज्जैन नगरी थी । इसी कारण कालिदास भी वहाँ रहा था । राजा विक्रम की सभा में नौ रत्न थे, उनमें से एक कालिदास था । कहते हैं कि लड़कपन में इसने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा, केवल एक स्त्री के कारण इसे यह अनमोल विद्यां का धन हाथ लगा । इस की कथा यों प्रसिद्ध है कि राजा शारदानंद की लड़की विद्योत्तमा बड़ी पंडिता थी । उसने यह प्रतिज्ञा की कि जो मुझे शास्त्रार्थ में जीतेगा, उसी को ब्याहूँगी । उस राजकुमारी के रूप, यौवन, विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर दूर से पंडित आते थे पर शास्त्रार्थ के समय उस से

सब हार जाते थे । जब पंडितों ने देखा कि यह लड़की किसी तरह वश में नहीं आती और सब को हरा देती है, तो मन में अत्यंत लज्जित होकर सबने पक्का किया कि किसी ढब विद्योत्तमा का विवाह किसी ऐसे मूर्ख के साथ करावें, जिसमें वह जन्म भर अपने घमंड पर पछताती रहे । निदान वे लोग मूर्ख के खोज में निकले । जाते जाते देखा कि एक आदमी पेड़ के ऊपर जिस टहनी के ऊपर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है । पंडितों ने उसे महा मूर्ख समझ कर बड़ी आवभगत से नीचे बुलाया और कहा कि चलो हम तुम्हारा ब्याह राजा की लड़की से करा देवें । पर खबरदार राजा की सभा में मुंह से कुछ भी बात न कहो, जो बात करनी हो इशारों में कहियो । निदान जब वह राजा की सभा में पहुँचा, जितने पंडित वहाँ बैठे थे, सब ने उठकर उस की पूजा की, ऊँची जगह बैठने को दी और विद्योत्तमा से यो निवेदन किया कि ये वृहस्पति के समान विद्वान हमारे गुरु आपके ब्याहने को आये हैं । परंतु इन्होंने तप के लिए मौन साधन किया है । जो कुछ आप को शास्त्रार्थ करना हो, इशारों से कीजिए । निदान उस राजकुमारी ने इस आशय से, कि ईश्वर एक है, एक उंगली उठाई । मूर्ख ने यह समझकर कि धमकाने के लिए उँगली दिखा कर आँख फोड़ देने का इशारा करती है, अपनी दो उँगलियाँ दिखलाईं । पंडितों ने उन दो उँगलियों के ऐसे अर्थ निकाले कि उस राजकुमारी को हार माननी पड़ी और विवाह भी उसी दम हो गया । रात के समय जब दोनों का एकांत हुआ, किसी तरफ से एक ऊंट चिल्ला उठा । राजकन्या ने पूछा कि यह क्या शोर है, मूर्ख तो कोई भी शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था, कह उठा उट्र चिल्लाता है । और जब राजकुमारी ने दुहराकर पूछा तो, उट्र की जगह उस्ट्र कहने लगा, पर शुद्ध उष्ट्र का उच्चारण न कर सका । तब तो विद्योत्तमा को पंडितों की दगाबाजी मालूम हुई और अपने धोखा खाने पर पछताकर फूट-फूट कर रोने लगी । वह मूर्ख भी अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ । पहिले तो चाहा कि जान ही दे डालूँ पर सोच समझकर घर से निकल विद्या उपार्जन में परिश्रम करने लगा । और थोड़े ही दिनों में ऐसा पंडित हो गया, जिस का नाम आज तक चला जाता है । जब वह मूर्ख पंडित होकर घर में आया, तो जैसा आनंद विद्योत्तमा के मन में हुआ, लिखने से बाहर है । सच है, परिश्रम से सब कुछ हो सकता है ।

कालिदास के समय घटखर्पर, वररुचि आदि और भी कवि थे । कालिदास ने काव्य, नाटकादि अनेक ग्रंथ संस्कृत-भाषा में लिखे हैं । इन की काव्य-रचना बहुत सादी, मधुर और विषयानुसारिणी है । अंगरेज लोग कालिदास को अपने शेक्सपियर के सदृश उपमा देते हैं । इसके समय में भवभूति नामक एक कवि था । कहते हैं कि उसकी विद्या कालिदास से अधिक थी । परंतु कवित्वशक्ति कालिदास की सी न थी । भवभूति कालिदास के श्रेष्ठत्व को मानता था ।

कालिदास सारस्वत ब्राह्मण था । उस को आखेट आदि खेलों की बड़ी चाह थी और उसने अपने ग्रंथ में इस का वर्णन किया है कि मनुष्य के शरीर पर ऐसे खेलों से क्या क्या उपकारी परिणाम होते हैं ।

विक्रमादित्य ने उस को कश्मीर का राजा बनाया और यह राज्य उस ने चार बरस नौ महीने किया ।

कालिदास उज्जैन में रहता था, परन्तु उसकी जन्मभूमि कश्मीर थी । देशांतर होने पर स्त्री के वियोग से जो दुख उसने पाये, उन का बखान मेघदूत-काव्य में लिखा है । कालिदास बड़ा चतुर पुरुष था । उसकी चतुराई की बहुत सी कहानियाँ हैं और वे सब मनोरंजन हैं, यथा उनमें से कई एक ये हैं ।

(१) भोजराजा के कवित्व पर बड़ी प्रीति थी । जो कोई नया कवि उसके पास आता और कविताचातुर्य बताता, तो उसको वह अच्छा पारितोषिक देता, और चाहता तो अपनी सभा में भी रखता । इस प्रकार से यह कविमंडल बहुत बढ़ गया । उसमें कई कवि तो ऐसे थे कि वे एक बार कोई नया श्लोक सुन लेते, तो उसे कंठ कर सकते थे । जब कोई मनुष्य राजा के पास आकर नया श्लोक सुनाता था, तो कहने लगते थे, कि यह तो हमारा पहिले ही से जाना हुआ है और तुरंत पढ़कर सुना देते थे ।

एक दिन कालिदास के पास एक कवि ने आकर कहा कि महाराज, आप यदि राजा के पास ले चलें और कुछ धन दिला देवें, तो मुझ पर आप का बड़ा उपकार होगा । जो मैं कोई नया श्लोक बनाकर राजसभा में सुनाऊँ तो उनका नूतनत्व मान्य होना कठिन है इस लिए कोई युक्ति बताइए ।

कालिदास ने कहा कि तुम श्लोक में ऐसा कहो कि राजा से मुझ को रत्नों का हार लेना है, और जो कुछ मैं कहता हूँ, सो यहाँ के कई पंडितों को भी मालूम होगा । इस पर यदि पंडित लोग कहें कि श्लोक पुराना है, तो तुम को रत्नों का हार मिल जायगा, नहीं नए श्लोक का अच्छा पारितोषिक मिलेगा ।

उस कवि ने कालिदास की बताई हुई युक्ति को मानकर वैसा ही श्लोक बनाया और जब उस को राजसभा में पढ़ा, तो कविमंडल चुपचाप हो रहा और उस कवि को बहुत सा धन मिला।

(२) एक समय कालिदास के पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा कि कविराज मैं अति दरिद्री हूँ और मुझ में कुछ गुण भी नहीं है, मुझ पर आप कुछ उपकार करें तो भला होगा।

कालिदास ने कहा, अच्छा हम एक दिन तुम को राजा के पास ले चलेंगे, आगे तुम्हारा प्रारब्ध। परन्तु रीति है कि जब राजा के दर्शन निमित्त जाते हैं, तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं[1] इसलिए मैं जो ये साँटे के चार टुकड़े देता हूँ सो ले चलो। ब्राह्मण घर लौटा और उन साँटें के टुकड़ों को उस ने धोती में लपेट रक्खा। यह देख किसी ठग ने उस के बिन जाने उन टुकड़ों को निकाल लिया और उन के बदले लकड़ी के उतने ही टुकड़े बाँध दिए।

राजा के दर्शनों को चलने के समय ब्राह्मण ने साँटे के टुकड़ों को नहीं देखा। जब सभा में पहुँचा तब यह काष्ठ की भेंट राजा को अर्पण की। राजा उस को देखते ही बहुत क्रोधित हुआ। उस समय कालिदास पास ही था। उस ने कहा, महाराज, इस ब्राह्मण ने अपनी दरिद्ररूपी लकड़ी आप के पास लाकर रक्खी है इसलिये कि उस को जला कर इस ब्राह्मण को आप सुखी करें! यह बात कवि के मुख से सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस ब्राह्मण को बहुत धन दिया।

(३) एक समय राजा भोज कालिदास को साथ ले वनक्रीड़ा के हेतु अरण्य को गए, और घूमते-घूमते थके माँदे हो, एक नदी के किनारे जा बैठे। इस नदी में पत्थर बहुत थे, उन पर पानी गिरने से बड़ा शब्द होता था। उस समय राजा ने कालिदास से विनोद करके पूछा कि कविराज यह नदी क्यों रोती है? कालिदास ने उत्तर दिया कि महाराज वह छोटे ही पन में अपने मैके से ससुराल को जाती है।

कालिदास के प्रसिद्ध ग्रंथ शकुंतला, विक्रमोर्वशी, मालविक्राग्निमित्र और मेघदूत हैं। शकुंतला बहुत वर्णनीय ग्रंथ है। उस का उल्था यूरप में सब देशों की भाषाओं में हो गया है।

एक समय कविवर कालिदास अपने मकान में बैठकर अपने प्रिय पुत्र को अध्ययन कराता था, उसी समय क्षत्रिय-कुल-भूषण शकारि विक्रमादित्य संयोग से आ गए। कविवर कालिदास ने महाराज को देख प्रिय पुत्र का पढ़ाना छोड़ कर शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया। जब क्षत्रिय-कुल-भूषण राजा विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारंभ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने देश ही में मान पाता है और विद्वान् का मान सब स्थानों में होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा को सुन कर अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविराज कालिदास ऐसा अभिमानी पंडित है कि मेरे ही सामने पंडितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को वा मुझे नीचा देखता है। मैं पंडितों का विशेष आदर मान करता हूँ और जो मेरे वा राजाओं के वा धनवानों के यहाँ पंडितों का आदर नहीं, तो कहाँ हो सकता है। ऐसा कुतर्क करते हुए अपने घर पर गए। महाराज विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन संपत्ति दी थी उसको हर लेने के लिए मंत्री को आज्ञा दी। मंत्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था। कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दु:खी होकर अपने बाल बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता अन्त में करनाटक देश में पहुंचा। करनाटक देशाधिपति बड़ा पंडित और गुणग्राहक था। उसके पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविताशक्ति दिखाई, तो उस पर करनाटक देशाधिपति ने अति प्रसन्न होकर बहुत सा धन और भूमि देकर उसको अपने राज्य में रक्खा। कविवर कालिदास राजा से सम्मान पाकर उस देश में रहकर प्रतिदिन राजसभा में जाने लगा। वहाँ राजा के सिंहासन के पास ऊँचे आसन पर बैठ सब राजकाजों में उत्तम सलाह देने लगा और अनेक प्रकार की कविताओं से सभासदों के मन की कली खिलाता हुआ सुख से रहने लगा। जब से कविवर कालिदास को विक्रमादित्य ने छोड़ा तब से वे बड़े शोक-सागर में डूबे थे। नवरत्नों में कविवर कालिदास ही अनमोल रत्न था। इसके सिवाय जब राजा को राजकाज के कामों से फुरसत मिलती थी तब केवल कविराज कालिदास ही की अद्भुत

---

१. राजा कन्या ज्योतिषी, वैद गुरू सुर सिद्ध।
भरे हाथ इन पै गए, शेष कार्य सब सिद्ध।।

कविताओं को सुनकर राजा का मन प्रफुल्लित होता था । इस लिए ऐसे गुणी मनुष्य के बिना राजा का सब वस्तुओं से मन उदास होने लगा । फिर राजा ने कविराज कालिदास का पता लगाने के लिये सब देशों में दूतों को भेजा । जब कहीं पता न लगा तब राजा आप ही भेष बदल कर खोजने के लिये निकले । कई देशों में घूमते फिरते जब करनाटक देश में गए उस समय उन्हें पथव्यय के लिए एक हीरा जड़ी हुई अंगूठी को छोड़ और कुछ नहीं था । उस अंगूठी को बेंचने के लिये वे किसी जौहरी की दुकान पर गये । रत्न-पारषी ने ऐसे दरिद्र के हाथ में ऐसी अनमोल रत्न-जड़ित-अँगूठी को देख कर मन में चोर समझा और कोतवाल के पास भेजा । कोतवाल राज-सभा में ले गया । वे चारों ओर देखते भालते जो आगे बढ़े तो कविवर कालिदास को देखा और कहा, महाराज मैंने जैसा किया वैसा ही फल पाया । कविवर कालिदास उठकर राजा को अंक में लगा कर करनाटक देशाधिपति से परिचय करा और सब व्यौरा कह कर राजा वीर विक्रमादित्य के साथ चला आया ।

पर इन कथाओं से भी वही झंझट पाई जाती है और कविवर कालिदास का समय ठीक निश्चय होना कठिन है ।

कोई कोई कहते हैं कि कविवर कालिदास की सहायता से एक ब्राह्मण ने राजा भोज से एक श्लोक पर अनेक रुपया इस चतुराई से लिया था ।

उज्जैन नगरी में राजा भोज ऐसा विद्यारसिक और गुणज्ञ और दानशील था कि विद्या की वृद्धि के प्रयोजन से उसने यह नियम प्रचलित किया था कि जो कोई नवीन आशय का श्लोक बना के लावे, तो उसको लाख रुपये देवें । इस बात को सुन के देश देशांतर के पंडित लोग नये आशय के श्लोक बना के लाते थे, परंतु उसकी सभा में चार ऐसे पंडित थे कि एक को एक बार, दूसरे को दो बार, तीसरे को तीन बार और चौथे को चार बार सुनने से नया श्लोक कंठस्थ हो जाता था । सो जब कोई परदेशी पंडित राजा की सभा में नवीन आशय का श्लोक बना के लाता तो वह राजा के सम्मुख पढ़के सुनाता था । उस समय राजा अपने पंडितों से पूछता था कि वह श्लोक नया है वा पुराना । तब वह मनुष्य जिसको कि एक बार के सुनने से कंठस्त होने का अभ्यास था कहता कि यह पुराने आशय का श्लोक है और आप भी पढ़ के सुना देता था । इसके अनन्तर वह मनुष्य जिसको दो बार सुनने से कंठ हो जाता था पढ़ के सुनाता और इसी प्रकार वह मनुष्य जिसको तीन बार और वह भी जिसको चार बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था, क्रम से सब राजा को कंठाग्र सुना देते । इस कारण परदेशी विद्वान अपने प्रयोजन से रहित हो जाते थे और इस बात की चर्चा देश देशांतर में फैली । सो एक विद्वान ऐसा देश काल में चतुर और बुद्धिमान था कि उसके बनाये हुए आशय को इन चार मनुष्यों को भी अंगीकार करना पड़ा कि यह नवीन आशय है और वह श्लोक यही है ।

श्लोक

राजन् श्रीभोजराज त्रिभुवनविजयी धार्मिकस्ते पिताऽभूत ।
पित्रा तेन गृहीता नवनवतिमिता रत्नकोटिर्मदीया ।।
तां त्वं देहि त्वदीयैस्सकल बुधवरैर्ज्ञायते वृत्तमेत-
न्नोचेज्जानंतितेवैनवकृतमथवा देहि लक्षं ततो मे ।।१।।

हे राजा भोज, तीनों लोक के जीतनेवाले, तुम्हारे पिता बड़े धर्मिष्ट हुए हैं । उन्होंने मुझसे निन्नानबे करोड़ रत्न लिया है सो मुझे आप दीजिये और इस वृत्तांत को तुम्हारे सभासद विद्वान् जानते होंगे, उनसे पूछ लीजिये । जो वह कहें कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है, तो अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिए । इस आशय को सुनकर चारों विद्वानों ने विचारांश किया कि जो इसको पुराना आशय ठहरावें, तो महाराज को निन्नानबे करोड़ द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहने में केवल एक लाख । सो उन चारों ने क्रम से यही कहा कि पृथ्वीनाथ, यह नवीन आशय का श्लोक है । इस पर राजा ने उस विद्वान को लाख रुपया दिया ।

३. श्री रामानुज स्वामी का जीवनचरित्र

दक्षिण में पूर्व सागर के पश्चिम तट से बारह कोस दूर तोंडीर देश में भूतपुरी नामक नगरी है । यहाँ हारीत गोत्र के केशव नामक ब्राह्मण रहते थे । यह संतान-हीन होने के कारण बहुत दुखी रहा करते थे । एक

बार चंद्रग्रहण में पुत्रप्राप्ति के हेतु इन्होंने यज्ञ भी किया था । कहते हैं स्वप्न में शेषजी ने दर्शन देकर इनको आज्ञा किया कि हम तुम्हारे घर में अवतार लेंगे । तदनुसार श्री रामानुजाचार्य का केशव के घर चैत्र सुदी ५ को जन्म हुआ । लक्ष्मण आर्य्य और रामानुज यह दो नाम इनका रक्खा गया । सोलहवें बरस रक्षकांबा नामक एक स्त्री के साथ इनका विवाह हुआ । विवाह के पीछे केशवजी मर गए । तब रामानुज स्वामी विद्या पढ़ने को कांचीपुर गये और वहाँ यादव नामक प्रसिद्ध पंडित के पास विद्या पढ़ने लगे । जिन दिनों स्वामी वहाँ विद्या पढ़ते थे उन्हीं दिनों में कांचीपुर के राजा की कन्या को ब्रह्मपिशाच की बाधा हुई । राजानुज स्वामी ने अपना पैर छुला कर उसकी पिशाचबाधा दूर कर दी । इससे प्रसन्न होकर राजा ने उनको बहुत सा द्रव्य दिया । उसी काल में स्वामी के मौसा गोविंद नामक एक बड़े पंडित यादव पंडित से शास्त्रार्थ करने आये और रामानुज स्वामी का और इनका मत-विषयक एक विश्वास होने से दोनों में अत्यंत प्रीति हुई । यादव पंडित जो वास्तव में मायावादी थे गोविंद पंडित और स्वामी से बाद में बारंबार पराभूत होने से इस कुविचार में फंसे कि किसी भाँति स्वामी के प्राण हरण किए चाहिए । इसी वास्ते प्रगट में बहुत स्नेह दिखला कर स्वामी को साथ लेकर यात्रा के बहाने से प्रयाग की ओर चले । मार्ग में गोंड़ा के जंगल में गोविंद पंडित ने स्वामी से यादव की सब कुप्रवृत्ति कह दिया । स्वामी भयभीत होकर जंगल में छिपे । वहाँ उस जंगल के देवता नारायण हस्तिगिरिनाथ ने लक्ष्मी समेत व्याधमिथुन बनकर दर्शन दिया और अपनी रक्षा में उनको कांचीपुर ले आए ।

इसी समय रंगपुर में यामुनार्य्य नामक एक त्रिदंडी संन्यासी थे । उनको सर्वलक्षणसंपन्न एक शिष्य करने की इच्छा हुई । उन्होंने अपने चेलों को चारों ओर भेजा कि एक सर्वगुणसंयुक्त लड़का खोज लाओ । उन शिष्यों ने आचार्य्य से जाकर रामानुज स्वामी का कुल गुण विद्या आदि का वर्णन किया ।

गोविंद पंडित इस समय कालहस्ति नगर में आ बसे और वहाँ एक शिव स्थापन करके अध्यापन कराने लगे । यादव भी प्रयाग से कांची फिर आए और स्वामी का दैवी प्रभाव देख कर शिष्यों के द्वारा उनसे मैत्री करके रहने लगे ।

यामुनाचार्य्य रामानुज स्वामी को देखने के हेतु कांचीपुर चले और मार्ग में हस्तिगिरि नारायण के दर्शन के हेतु और अपने शिष्य कांचीपूर्ण से मिलने को हस्तिपुर में ठहरे । संयोग से रामानुज स्वामी आदि शिष्यों के साथ यादव पंडित भी हस्तिगिरि नाथ के दर्शन को आये थे । वहाँ कांचीपूर्ण ने आचार्य्य से स्वामी का परिचय कराया और आचार्य्य इनको देख कर बहुत प्रसन्न हुए और कुछ दिन के पीछे सब लोग अपने अपने नगर गए । एक दिन रामानुज स्वामी अपने गुरु यादव पंडित को तेल लगाते थे । उसी समय 'कप्यास्य' इस श्रुति का अर्थ यादव ने कुछ अशुद्ध किया, इससे स्वामी को बड़ा कष्ट हुआ और शास्त्रार्थ में स्वामी ने यादव को परास्त किया । इससे यादव ने क्रोधित होकर स्वामी को निकाल दिया । स्वामी वहाँ से हस्तिगिरि चले आए और कांचीपूर्ण के उपदेश से हस्तिगिरि वरदराज नारायण की सेवा करने लगे ।

यह वृत्तांत सुनकर यामुनाचार्य्य ने अपने शिष्य पूर्णाचार्य को अपने बनाए स्तोत्र देकर हस्तिगिरि भेजा । एक दिन वरदराज स्वामी के सामने पूर्णाचार्य वह सब स्तोत्र पढ़ रहे थे कि रामानुज स्वामी ने सुन कर और उनकी भक्तिपूर्ण रचना से प्रसन्न होकर पूर्णाचार्य्य से पूछा कि यह स्तोत्र किसके बनाए हैं । पूर्णाचार्य ने कहा कि यह सब स्तोत्र यामुनाचार्य के बनाए हैं और वे आप के दर्शन की बड़ी इच्छा रखते हैं । पूर्णाचार्य के उपदेश से रामानुज स्वामी यामुनाचार्य्य से मिलने रंगपुर चले और मार्ग में महापूर्णाचार्य से मिलाप हुआ । स्वामी का आना सुनकर यामुनाचार्य भी आगे से उन को लेने चले, किंतु कावेरी के किनारे पहुँच कर शरीर छोड़ दिया । स्वामी भी शीघ्रता से वहाँ पहुँचे, तो देखा कि आचार्य्य ने शरीर छोड़ दिया है, परंतु तीन अंगुली उठाये हुए हैं । स्वामी ने आचार्य्य का आशय समझ कर (अर्थात १ बोधायन मतानुसार ब्रह्मसूत्रादि का भाष्य बनाना, २ दिल्ली के तत्सामयिक बादशाह से श्रीराममूर्ति का उद्धार करना और ३ दिग्विजय पूर्वक विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार) प्रतिज्ञा किया कि हम आपकी इच्छा पूर्ण करैंगे, जो सुन कर सुखपूर्वक आचार्य्य वैकुण्ड धाम गए और स्वामी भी कांची फिर आए । एक बेर कांचीपूर्ण के घर स्वामी भोजन करने गए थे, तब कांचीपूर्ण ने स्वमत विषयक उन को अनेक उपदेश किया और कहा कि आप रंगपुर जाकर पूर्णाचार्य्य से सब ग्रंथ पढ़िए ।

स्वामी उन के उपदेशानुसार रंगपत्तन आए और विधिपूर्वक पंच संस्कार[1] दीक्षित होकर संस्कृत और द्राविड़ भाषा के ग्रंथ सरहस्य पूर्णाचार्य्य से पढ़े । कुछ काल पीछे एक कुंए में से जल निकालते समय पूर्णाचार्य्य की स्त्री से और स्वामी की स्त्री से कुछ कलह हो गई, इससे स्वामी रक्षकाम्बा से उदास हो गए । एक यही नहीं, अनेक समय में रक्षकाम्बा के खरतर स्वभाव का परिचय मिलने से स्वामी का जी उस की ओर से खिंच गया था, इस से स्वामी ने उनको नैहर भेज दिया और आप भी सब धन गृह आदि का त्याग करके त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया । कांचीपूर्ण ने इस पर अति प्रसन्न होकर 'यतिराज' की स्वामी को पदवी दिया ।

कुछ दिन पीछे स्वामी के भांजे दाशरथि और अनंतभट्ट के पुत्र कूरनाथ यह दोनों आकर कांची रहने लगे और स्वामी से विद्या पढ़ने लगे । एक समय यादव पंडित कांची आए और शंख चक्र से स्वामी का कलेवर चिन्हित देख कर बड़ा आपेक्ष किया । इस पर स्वामी की इच्छा से कूरनाथ ने शास्त्रार्थ पूर्वक स्वमत स्थापन कर के यादव को निरुत्तर किया । यादव पंडित ने भी ज्ञान पाकर त्रिदंड ग्रहणपूर्वक गृहस्थाश्रम का परित्याग किया और दीक्षित होकर गोविंददास यह नाम पाया । इन्ही गोविंददास ने 'यतिधर्म्म समुच्चय' नामक ग्रंथ बनाया है ।

कुछ काल के पीछे यमुनाचार्य्य के पुत्र वररंग स्वामी रामानुज को लेने को हस्तिगिरि आए । यहाँ उन्होंने नाटकों का अभिनय दिखला कर श्रीवरदराज को माँगा और वहाँ से रामानुज स्वामी को लाकर रंगनाथ जी को समर्पण किया, जिससे स्वामी अब रंगनाथ जी की सेवा का अधिकार और उस संप्रदाय का आचार्य्यत्व दोनों के अधिकारी हुए ।

उसी समय में स्वामी के ममेरे भाई वेंकट गोविंद पंडित से, जो कि बड़े शैव थे, वेंकटगिरि के निवासी श्री शैलपूर्ण नामक वैष्णव यति से बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ, जिस में गोविंद पंडित ने पराजय पाकर श्री शैलपूर्ण का शिष्यत्व अंगीकार किया ।

कुछ दिन पीछे पूर्णाचार्य्य के उपदेश से स्वामी रामानुज अठारह बेर गोष्ठीपुर में गोष्ठीपूर्णाचार्य्य से तत्व पूछने की इच्छा से गए और यद्यपि पहिले उन्होंने बहुत आनाकानी की पर अंत में सब रहस्य स्वामी को उपदेश किया किंतु यह कह दिया था कि यह किसी को बतलाना मत ।

स्वामी रामानुज मंत्री का रहस्य पाकर ऐसे परितुष्ट हुए कि अनेक लोगों से उन्होंने दयापूर्वक वह रहस्य कहा । जब गोष्ठीपूर्णाचार्य्य को यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने स्वामी को बुला कर पूछा कि ''जो गुरु की आज्ञा उल्लंघन करै उस की क्या गति होती है ?'' स्वामी ने उत्तर दिया 'नर्क' । तब गुरु ने पूछा कि फिर तुम ने हमारी आज्ञा उल्लंघन कर के रहस्य क्यों लोगों से कहा । इस पर स्वामी ने अपने दयापरवश उदार स्वभाव से निर्भय होकर उत्तर दिया —

''पतिष्ये एक एवाहं नरके गुरुपातकात् ।
सर्वे गच्छन्तु भवतां कृपया परमं पदम् ।।''

अर्थात् आप की आज्ञा टालने से मैं एक नरक में पड़ूँ किंतु और लोग जिन से हम ने रहस्य का उपदेश किया है वे आप की दया से परम पद पावैं ।

गुरु उन के उस उदार वाक्य से ऐसे प्रसन्न हुए कि ''मन्नाथ,'' अर्थात् हमारे भी स्वामी, उन का नाम रक्खा और वरदान दिया कि आज से यह वैष्णव सिद्धांत रामानुज सिद्धांत से प्रचलित होगा और संसार में तुम आचार्य रूप से प्रसिद्ध होगे ।

कुछ काल पीछे स्वामी के भांजे दाशरथि स्वामी की आज्ञा से पूर्णाचार्य्य की बेटी के ससुराल में उस का काम काज सम्हालने को रहने लगे । वहाँ एक वैष्णव श्रुतियों का कुछ विरुद्ध अर्थ करता था । उस से शास्त्रार्थ कर के उस को उन्होंने स्वामी के पास दीक्षित होने को भेज दिया और वह वैष्णव दास नाम पाकर इस मत का एक मुख्य पंडित हुआ ।

इस सम्प्रदाय में मालाधर नामक एक बड़े पंडित थे । शठकोपाचार्य्य कृत सहस्रगीतिका स्वामी ने उन से व्याख्यान सुना । ऐसे ही अनेक वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्धो से स्वमत का अनेक सिद्धांत स्वामी ने लिया । वरंच अपने पुत्र सुंदरबाहु को मालाधर ही से दीक्षित कराया ।

---

१. दो० —ऊर्ध पुंड, मुद्रा बहुरि, माला, मंत्र, विचार ।
संसकार ए वैष्णवी, धर्म कर्म को सार ।।१ ।।

रंगजी ठाकुर का आभूषण एक बार चोर लोग चुरा ले गए थे और उन लोगों को इस दोष से कारागार हुआ था । वे चोर स्वामी से बड़ा द्वेष रखते थे । इस से उन लोगों ने स्वामी के अंगसेवकों को घूस देकर इन के भोजन में विष मिला दिया । किंतु परमेश्वर ने यह सब वृत्त अनुभव द्वारा स्वामी को बतला दिया, इस से उन की रक्षा हुई ।

यज्ञमूर्ति नामक एक वेदांत का बड़ा भारी संन्यासी पंडित था । वह दिग्विजय करता हुआ रंगनगर में स्वामी से शास्त्रार्थ करने आया । स्वामी ने अठारह दिन पर्य्यंत उस से शास्त्रार्थ कर के उस को परास्त किया और उस से प्रायश्चित्त करा के उस को फिर से शिखा सूत्र धारण कराया । देवराज, देवमन्नाथ और मन्नाथ यह तीन नाम उस पंडित के रक्खे गए और वह एक बड़े मठ का स्वामी नियत हुआ । इस पंडित ने ज्ञानसार और प्रमेयसार नामक द्राविड़ भाषा में वैष्णव मत के दो बड़े सुंदर ग्रंथ बनाए हैं ।

एक समय पुण्यनगर से अनंताचार्य्य बहुत से वैष्णवों के साथ स्वामी के दर्शन को आए । स्वामी ने उन को वेंकटगिरि की सेवा का अधिकार दिया । तब वे वेंकटगिरि गए और वहाँ वृंदावन बना कर रहने लगे । इन्होंने वेंकटनाथ स्वामी का "रामानुज" 'लक्ष्मण' इत्यादि नाम रक्खा हैं ।

स्वामी इस के पश्चात् देशाटन करने को निकले और वेंकटगिरि होते हुए उत्तर की यात्रा को चले । मार्ग में दिल्ली में त्रिविक्रमाचार्य्य से भेंट किया । वहाँ से बदरीनाथादि होते हुए लौट कर अष्ट सहस्र गाँव में आए । वहाँ वरदाचार्य्य और यज्ञेश नामक अपने दो शिष्यों को मठाधिपति नियुक्त किया । वहाँ से हस्तगिरि आए और पूर्णाचार्य्यादि से मिल कर कापिल तीर्थ को गए । वहाँ कुछ दिन तक रहे और देश के राजा बिट्ठलदेव को शिष्य किया । इस राजा बिट्ठलदेव ने तोंडीर मंडलादिक अनेक गाँव स्वामी को भेंट किए । वहाँ से वृषाचलादि स्थानों में अपना माहात्म्य प्रकाश करते हुए रंगनगर स्वामी लौट आए ।

स्वामी के मामा के पुत्र गोविंदपंडित को विराग में ऐसी रुचि हुई कि स्वामी ने बहुत कहा परंतु उन्होंने गृहस्थाश्रम स्वीकार नहीं किया । तब स्वामी ने उनको संन्यास दिया ।

एक बार केवल कूरेश को साथ लेकर स्वामी शारदापीठ गए क्योंकि वहाँ विशिष्टाद्वैत[१] मत का मूल ग्रंथ बौधायन कृत ब्रह्मसूत्र वृत्ति की पुस्तक थी । जिस को देखकर स्वामी को तदनुसार भाष्य बनाना बहुत आवश्यक था । शारदापीठ के सब पंडितों को स्वामी ने शास्त्रार्थ में पराजित किया । जब वहाँ से लौटे तो बौधायन वृत्ति की पुस्तक स्वामी के साथ थी । किंतु शारदापीठ के पंडितों ने द्वेष करके रात को डाँका डाला और वह पुस्तक लूट ले गए । स्वामी को इससे बड़ा दु:ख हुआ । तब कुरेश ने कहा कि आप इतना दु:ख क्यों सहते हैं । एक बार मैंने आद्योपांत उस पुस्तक को देखा है, इससे उसके प्रति अक्षर मुझको कंठाग्र हैं । मैं सब आप को लिख दूँगा । तदनुसार एकश्रुतिधर कुरेश ने बौधायन सूत्र वृत्ति सब स्वामी को लिख दी । इसी वृत्ति के अनुसार स्वामी ने वेदांत सूत्र पर श्रीभाष्य, वेदांतसार, वेदार्थसंग्रह और गीताभाष्यादि ग्रंथ बनाए ।

इन ग्रंथों के बनाने के पीछे बहुत से शिष्यों को साथ लेकर स्वामी दिग्विजय करने निकले । क्रम से चोलमंडल, पांड्यमंडल, कुरुक इत्यादि देशों में जाकर वहाँ के पंडितों को शास्त्रार्थ में जीत कर उनको वैष्णव धर्म से दीक्षित किया और कुरंग देश के राजा को दीक्षित करके केरल देश के पंडितों को जीता । वहाँ से क्रम से द्वारिका, मथुरा, शालिग्राम, काशी, अयोध्या, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य और श्रीवृंदावन आदि तीर्थों में होते हुए फिर से शारदापीठ गए । वहाँ सरस्वती ने प्रत्यक्ष होकर "कप्यास्य" इस श्रुति का तात्पर्य पूछा । स्वामी ने जो अर्थ कहा इस से प्रसन्न होकर सरस्वती ने श्री भाष्य अपने सिर पर चढ़ा कर स्वामी को दिया और उन का दोनों हाथ पकड़ कर "भाष्यकार" नाम से पुकारा । इस के अनंतर स्वामी ने वहाँ के पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित करके पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन किया । वहाँ जाकर देखा कि बौद्ध और कापालिक लोग पुरुषोत्तम की सेवा में नियुक्त हैं । स्वामी ने उन को जीतकर वैष्णवगण को सेवा में नियुक्त किया और वहाँ रामानुज मठ बना कर रहने लगे ।

---

१. दो. कहहिं एक अद्वैत, दुतिय द्वैत मत जान ।
त्रितिय विशिष्टाद्वैत है, ता मधि तीन प्रमान ।।१।।
प्रगट लोक मत लोक मैं, दुतिय वेदमत जान ।
तृतिय संतमत करत जिहि, हरिजन अधिक प्रमान ।।२।।

स्वामी की इच्छा थी कि पंचरात्र के विधि से जगन्नाथ जी की सेवा हो परंतु पंडे लोग अपने मन से सब काम करते थे और श्री जगन्नाथ जी भी इसी से प्रसन्न थे । क्योंकि जब स्वामी जी ने इस बात में आग्रह किया, तो एक रात देवगण ने स्वामी को सोते हुए उठा कर कूर्मक्षेत्र में रख दिया । जाग कर स्वामी ने यह चरित्र देखा और भगवदिच्छा मुख्य समझ कर फिर इस विषय में आग्रह न किया ।

कुछ दिन कूर्माचल रहकर स्वामी सिंहाचल, अहोबलक्षेत्र, गरुड़ाचलादि तीर्थों में गए और वहाँ से फिर वेंकटगिरि जाकर वहाँ के शैवों को शास्त्रार्थ में परास्त किया ।

कुछ काल पीछे कुरेश को व्यास-पराशर के अंश के दो पुत्र एक साथ उत्पन्न हुए । स्वामी ने एक का नाम पराशर और दूसरे का व्यास वा श्री रामदेशिक रक्खा । इन्हीं पराशर को रंगेश ने अपुत्र होने के कारण गोद लेकर बड़े धूमधाम से विवाह किया था । गोविंद को भी कालांतर में पुत्र हुआ, तो स्वामी ने परांकुश उसका नाम रक्खा ।

मथुरा के एक धनिक धनुर्दास को उस की भार्या हेमांगना समेत स्वामी ने वैष्णव दीक्षा दी । यह धनुर्दास ऐसा उत्तम वैष्णव हुआ है कि रंगनाथ जी के उत्सव में स्वामी एक बार उस को मित्र की भाँति पकड़े हुए थे और इस पर जब लोगों ने पूछा तो स्वामी ने उसकी वैष्णवता की बड़ी स्तुति की ।

उसी समय में चोलदेश का एक बड़ा भारी शैव राजा कृमिकंठ हुआ था जिस ने चित्रकूट तक विजय किया था । इस ने एक बार शास्त्रार्थ के हेतु प्रार्थनापूर्वक स्वामी को बुलाया । स्वामी उस के यहाँ जाते थे कि मार्गमें चेलाचलाम्बा और उसके पति को दीक्षित किया । और बहुत से बौद्धों को शास्त्रार्थ में जय किया । इसी प्रकार कुछ दिन भक्तनगर में रहे । वहाँ स्वप्न देखने से इन्होंने यादवाचल जाकर वहाँ छिपी हुई भगवन्मूर्ति को निकाला और शके १०१२ में उस मूर्त्ति को यादवाचल में प्रतिष्ठित किया ।

एक बार स्वामी को खबर मिली कि दिल्ली के राजा के घर में रामप्रिय नामक एक नारायण की मूर्ति है । स्वामी यह सुनकर दिल्ली गए और वहाँ कुछ दिन रह कर राजा से वह मूर्त्ति ले आए । कहते हैं कि दिल्ली के राजा की बेटी उस भगवद्विग्रह पर ऐसी आसक्त थी कि भक्ति प्रभाव से आज तक नारायण की मूर्ति उस के पास तथा यादवाचल में वर्त्तमान है ।

इसके पीछे विष्णुचित्त की बेटी गोदा को स्वामी ने उपदेश दिया । इन के ७४ शिष्य बड़े प्रसिद्ध हुए हैं । इन में भी आंध्रपूर्ण की बड़ी महिमा है ।

इस प्रकार स्वामी रामानुज आचार्य्य एक सौ बीस वर्ष पृथ्वी पर रहे और चारो ओर वैष्णव संप्रदाय का प्रचार करके सब शिष्यों को भगवद्भक्ति का उपदेश करके माघ सुदी १० को परम-धाम पधारे । इनके पीछे रंगनाथ जी के मंदिर का अधिकार पराशर को मिला और दाशरथि, पूर्णाचार्य, गोविंद और कुरुक ये चार मत-शाखा-प्रवर्तक हुए । इस संप्रदाय के मुख्य बड़े बड़े लोग शठकोपाचार्य, रंगेश, वेंकटेश, वरद, बकुला-भरण, सुंदर । यामुनाचार्य, वररंग, पूर्णाचार्य, गोष्ठीपूर्ण, मासभद्र, माधवदास, कासार, भक्तिसार, फणि कृष्ण, कुलशेखर, भट्टनाथ, पद्मराज और अनंताचार्य आदिक हैं ।

दानपत्रादिकों से और दक्षिण राजाओं के घर के लेखकों से निश्चय होता है कि ईस्वी सन् १०१० वा इसके आस पास किसी संवत् में स्वामी का जन्म हुआ था और द्वादश शताब्दी के पूरे पूरे भोग में ये वर्त्तमान थे ।

इनका मत विशिष्टाद्वैत है और उपास्यदेव साकारा ब्रहमनारायण है । ये भुजा पर तप्त चक्र की छाप देते हैं । हिंदुस्तान के सब प्रांत में इस मत के लोग मिलते हैं । और बहुत बड़े बड़े पंडित इस मत में हुए हैं । बड़गल और तिंगल ये दो शाखा इस मत की बहुत प्रसिद्ध हैं । पीछे तो रामानंद आदि अनेक शाखा इस की हुई हैं । इनके संप्रदाय के वैष्णव श्री वैष्णव कहलाते हैं ।

४-श्रीशंकराचार्य्य

इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम् ।
बन्दारुजनमन्दारं बन्देऽहं यदुनन्दनम् ।।

धन्य वह ईश्वर है जो अपनी सृष्टि में अनेक अद्‌भुत शक्ति के मनुष्यों को उत्पन्न करता है और उनके द्वारा लोगों की पहिली चाल चलन को बदल देता है । फिर कुछ काल के अनंतर दूसरे को उत्पन्न करता हुआ उससे भी वैसा ही कराता है, इसी प्रकार से अपने सृष्टि क्रम को निरंतर चलाता है ।

देखो कुछ न्यूनाधिक ११०० वर्ष हुए इस सारे भारतवर्ष में बौद्धमत फैल गया था और लोग उसी मत पर चलते थे और जो उस मत को स्वीकार करने में अप्रसन्न थे उनको अनेक प्रकार के क्लेश सहने पड़ते थे । प्राय : कन्याकुमारी अंतरीप से चीन देश तक और ब्रहमा के देश से ईरान तक जहाँ देखो बौद्धमत के मनुष्य देख पड़ते थे । फाहियान और हवानसांग जो चीन देश से यात्रा के लिये यहाँ आए थे और जिनके सं. ३९९ और ६४० ईस्वी निश्चित किए गए हैं, अपने ग्रंथ में उस समय का भारतवर्ष का वृत्तांत लिखते हैं कि बौद्धधर्म की बड़ी उन्नति है, राजाओं ने बौद्ध भिक्षुकों को गाँव, बाग, घर, बिहार बनाने के लिये दे दिये हैं और उनमें श्रमण लोग सुख से बास करते हैं । मांस खाने का बड़ा निषेध किया गया है, कोई यज्ञ करने नहीं पाते, न देवी के सामने बलिदान कर सकते हैं, और पटने में जिसे पाटिलपुत्र भी कहते हैं शाक्यमुनि बुद्ध का बड़ा उत्सव होता है और प्राय: बड़े बड़े नगरों में स्तूप[1] और बिहार देख पड़ते हैं ।

हवन्सांग लिखता है कि बौद्धमत केवल भारतवर्ष ही में फैला न था परंतु तूरान और काबुल में भी सौ से अधिक बिहार बने थे और उन दिनों में गजनी, काबुल इत्यादि पश्चिम के देश इसी भारतवर्ष के राजाओं के अधीन थे । सब मिल के अस्सी राजा गिने जाते थे । जालंधर से गंगासागर तक और हिमालय से महानदी तक देश कन्नौज के बौद्ध राज हर्षवर्धन के अधीन थे और मगध देश में बौद्ध राजा राज करते थे ।

इस से यह न समझना चाहिए कि भारतवर्ष में वैदिक मत लुप्त हो गया था । बहुत से ऐसे ऐसे देश दक्षिण

---

१. "गोरखपुर दर्पण" में एक लेख यों लिखा है :-

भागलपुर के निकट एक पत्थर की लाट है जिस पर पुराने अक्षर खुदे हुए हैं । उन अक्षरों को प्रिन्सेप साहिब ने बनारस में पढ़ा था । सहिया गाँव परगने सलेमपुर मझौली में है । वहाँ एक पुराना मंदिर है, जिसके बीच एक बुद्ध की मूर्ति वर्त्तमान है और कहाँव जो सलेमपुर से छ मील पश्चिम है उस गाँव में एक लाट २४ फुट ऊँची गड़ी है और उस पर छ फुट लंबे १६ कोने के कलश पर एक बुद्ध की मूर्त्ति स्थापित है । उस पर जो पुराने अक्षर अंकित हैं उनका उल्था नीचे लिखा जाता है ।

मूल — **यस्योपस्थानभूमिर्नृपतिशतशिर: पातवातावधूता ।**
गुप्तानां वंशजत्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धे: ।।
राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिपशतपते: स्कन्दगुप्तस्य शान्ते: ।
वर्षे त्रिंशद्दशैकोत्तरकशततमे ज्येष्ठमासि प्रपन्ने ।।१।।
ख्यातेऽस्मिन् ग्रामरत्नेककुभरति जनैस्साधुसंसर्गपूते ।
पुत्रोयस्सोमिलस्य प्रचुरगुणनिधेर्भाट्टसोमो महार्थ: ।।
तत्सूनूरुद्रसोम: प्रथुलमतियशाव्याघ्र इत्यन्यसंज्ञा: ।
मद्रस्तस्यात्मजोऽभूद्विज गुरुयतिषु प्रायश: प्रीतिमान्य: ।।२।।
पुण्यस्कंधं स चक्रे जगदिदमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो ।
श्रेयोर्त्थं भूतभूत्यै पथि नियमवता मर्हतामादिकर्त्तृन् ।।
पञ्चेंद्रान्स्थापयित्वा धरणिधरमयान्सन्निखाततत्तोऽयं ।
शैलस्तम्भ: सुचारु: गिरिवर शिखराग्रोपम: कीर्त्तिकर्त्ता ।।३।।

में और काशी, करुक्षेत्र, काश्मीर इत्यादि उत्तर में थे जहाँ वैदिक मत के लोग रहते थे और यज्ञ योगादिक सब अपने कर्म करते थे।

जब इस प्रकार से बौद्धमत भारतवर्ष में फैल गया, ईश्वर ने सोचा कि अब वैदिक मत डूबने पर है, जो इस की सहायता न करेंगे तो इस का चलना कठिन है। द्रविण देश में जो अब मंदराज हाते में है चिदंबरपुर में द्राविण ब्राह्मण के कुल में सर्वज्ञ नामक तपस्वी का जन्म हुआ। उस की स्त्री का नाम कामाक्षी था और वे दोनों चिदंबरेश्वर की, जो आकाशलिंग कर के दक्षिण देश में प्रसिद्ध है, सेवा करने लगे। और एक कन्या उन को हुई उस का नाम विशिष्टा रक्खा। आठवें वर्ष उस कन्या का विवाह विश्वजित् ब्राह्मण से कर दिया और वह विशिष्टा भी सर्व काल अपने मा बाप के सदृश उसी महादेव की सेवा करती थी। उस का पति विश्वजित् उस को छोड़ कर जंगल में तप करने को गया, परंतु विशिष्टा ने महादेव की सेवा नहीं त्यागी। ईश्वर उस से प्रसन्न हुआ और उस को एक लड़का उत्पन्न हुआ, जिसका नाम शंकराचार्य्य रक्खा। पुराण और तंत्रों में शंकराचार्य्य को शिव का अवतार लिखा है और इन के प्रतिवादी वैष्णव लोग भी इन को शिव का अवतार होने में कुछ विवाद नहीं करते। इन की उत्पत्ति का समय अभी ठीक ठीक नहीं ज्ञात हुआ परंतु शिष्य परंपरा से जो आचार्य के अनंतर अभी तक चली आती है, जान पड़ता है कि कुछ न्यूनाधिक एक हजार वर्ष हुए। डाक्तर डाकवेल साहब अपने ग्रंथों में ९०० वर्ष लिखते हैं, और पण्डित जयनारायण तर्क-पञ्चानन १२०० वर्ष के निकट अनुमान करते हैं।

उस नगर के निवासी ब्राह्मणों ने इनके जात कर्मादिक संस्कार किये और तीसरे वर्ष में चौल और पाँचवें में यज्ञोपवीत किया। तब से श्रीशंकराचार्य जी ने आठवें वर्ष तक सकल विद्या का पूर्ण अभ्यास किया और सब विद्या में पारंगत हुए और शिष्यों को भी विद्या सिखलाई। आठवें वर्ष में श्रीगोविंद योगींद्र के उपदेश से सँन्यासाश्रम स्वीकार किया और इनके मुख्य शिष्य बारह थे, जिनके नाम पद्मपाद, हस्तामलक, समित्पाणि, चिद्विलास, ज्ञानकन्द, विष्णुगुप्त, शुद्धकीर्ति, भानुमरीचि, कृष्णदर्शन, बुद्धिवृद्धि, विरंचपाद, अनन्तानन्दगिरि थे। इनके समय में पचास से अबिक मत प्रचलित थे, उनमें जो जो कुछ मुख्य मत थे उनके नाम ये हैं। शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य, शाक्त, कापालिक, कौल, पांचरात्र, भागवत्, बौद्ध, जैन, चार्वाक इत्यादि। इन सब मतवालों के आचार्यों को उन्होंने शास्त्रार्थ में जीत लिया और उन सब को अपना शिष्य किया।

तब आचार्य जी काशी में गये और मध्यान्ह के समय माणिकर्णिका स्नान करते थे, इतने में श्रीव्यास जी बूढ़े ब्राह्मण का भेष लेकर वहाँ आये और शंकाराचार्य से पूछा कि मैंने सुना है कि आपने ब्रह्मसूत्र में बहुत परिश्रम किया है। आचार्य ने उत्तर दिया, हाँ, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ पूछो। व्यास जी ने एक स्थल में पूछा, आचार्य जी ने उसका यथार्थ उत्तर दिया। इस पर व्यास जी फिर कुछ विवाद करने लगे। आचार्य जी को क्रोध आया और अपने पद्मपाद नामक शिष्य से कहा कि इस बूढ़े ब्राह्मण को बाहर निकाल दो, तब शिष्य ने यह श्लोक पढ़ा।

शंकरः शंकरः साक्षात् व्यासो नारायणः स्वयम्।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते किं करः किंकरिष्यति।

उल्था—राजा स्कन्दगुप्त जिस के प्रस्थान के समय अर्थात् जब वह अपने मन्दिर से बाहर निकलता था सैकड़ों राजाओं के सिर के मुकुट उस के चरणों पर झुकते थे। बड़ा यशस्वी और प्रचुर रत्न से युक्त था। उस के स्वर्ग वास करने से ३२१ वर्ष के अनन्तर ज्येष्ठ महीने में राजा सोमिल का बेटा भट्टिसोम, उस का बेटा रुद्रसोम, जिस का व्याघ्र भी नाम है, उस का बेटा मद्रसोम, जिस की भक्ति ब्राह्मण गुरु और सन्यासियों में अधिक थी, जगत् का संसकरण अर्थात् दिन दिन नाश अवलोकन करके बहुत भययुक्त हुआ। और उस से अपनी और अपनी प्रजा की रक्षा के लिये ककुभ ग्राम में जिस को अब कहांव कहते है और जिस में साधु जन अधिक बसते थे, जिन के रहने से वह पवित्र गिना जाता था, एक यज्ञ किया। उस यज्ञ में पाँच इंद्र पहाड़ों के बराबर अर्थात् पाँच स्तंभ पर इंद्र की मूतिर्त्त बना कर स्थापित की। वह (१) कहांव में (२) भागलपुर में (३) सारण में (४) बेतिया के राज्य में (५) तराई में अब भी कई फुट के लंबे गड़े हुये खड़े मौजूद हैं और उन के सिवाय एक और स्तंभ स्थापन किया, जो उस की कीर्त्ति को प्रकाश करता है।

आचार्य जी ने यह सुनकर कहा जो सचमुच यह बूढ़ा ब्राहमण व्यास होगा, तो अवश्य हमारे उत्तर पर संतुष्ट हो के प्रत्यक्ष दर्शन देगा । व्यास जी यह सुनकर आप प्रत्यक्ष हुए और आचार्य जी से कहा कि मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के वास्ते आया था । तुम तो शिव के अवतार हो तुम को कौन जीतने वाला है । फिर व्यास ने आचार्य को वर दिया और ब्रहमा को बुला कर इनकी आयु बढ़ा दी । तब से आचार्य का प्रताप द्विगुणित बढ़ गया । कुछ समय के अनंतर आचार्य जी रुद्रपुर में गए । वहाँ भट्टपाद, जिसे कुमारिल कहते हैं और जिस ने मीमांसातन्त्र वार्तिक नामक एक बड़ा भारी ग्रंथ बनाया है, तुषाग्नि में बैठा था । आचार्य जी ने उससे भेंट करके वाद-भिक्षा माँगी, परंतु भट्टपाद ने कहा कि मैं अब शरीर दग्ध होने के कारण तुम्हारे साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ । मेरा बहनोई मंडनमिश्र, जो हस्तिनापुर से आग्नेय दिशा में बिजिलबिंदु नाम नगर में रहता है, तुम से शास्त्रार्थ करेगा और उससे तुम्हारा गर्व शान्त हो जायगा ।

आचार्य जी यह वचन सुन कर वहाँ गये और लोगों से मंडनमिश्र के घर का ठिकाना पूछा । लोगों ने उत्तर दिया कि जहाँ तोते और मैने शास्त्रार्थ करते हैं वही मंडनमिश्र का घर है । शंकराचार्य जी ने सोचा कि जो मैं दरवाजे से जाता हूँ तो मुझे बहुत काल लगेगा, इस लिये मंत्र के बल से आकाशमार्ग से उसके घर में उतरे । कोई कहते हैं कि उस के घर के पीछे एक लंबा ताड़ का पेड़ था उस पर चढ़ कर घर में गये । उस समय मंडनमिश्र श्राद्ध करता था । इनको देखते ही बहुत क्रुद्ध हो गया क्योंकि ये संन्यासी थे और उस ने संन्यास का खंडन किया था और कहा, ''कुतो मुण्डी'' । आचार्य जी ने उत्तर दिया, ''आगलान्मुण्डी'' । मंडन ने कहा — ''सुरापीता'' । शंकर जी ने कहा — ''साहिश्वेता'' इत्यादि दोनों के संवाद हुए । मिश्र जी श्राद्ध समाप्त करने के अनंतर आचार्य से शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त हुए और उसकी स्त्री सरसबाणी, जिसे सरस्वती का साक्षात् अवतार कहते थे, मध्यस्थ हुई । दोनों से सौ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ । अंत में मंडनमिश्र का पराजय हुआ और संन्यासाश्रम को स्वीकार किया । पुराण में मंडनमिश्र को ब्रहमा का अवतार लिखा है ।

जब मंडनमिश्र संन्यास लेने लगे उस के पहिले ही सरसबाणी अपना पूर्व शरीर छोड़ कर ब्रहमलोक को जाने लगी । शंकराचार्य ने वन दुर्गा मंत्र में आकर्षण किया और कहा कि मुझसे शास्त्रार्थ करके चली जाओ । उसने कहा मैंने वैधव्य के भय से अपने पति के संन्यास के पहले ही पृथ्वी को त्याग किया । अब पृथ्वी पर नहीं आ सकती, क्योंकर तुम से शास्त्रार्थ करूँ । आचार्य ने उत्तर दिया कि आकाश में भूमि से छ : हाथ दूरी पर खड़ी होके मुझसे शास्त्रार्थ कर । उसने आचार्य के कहने के अनुसार शास्त्रार्थ किया, अंत में हार गई, तब उस ने सोचा कि यह संन्यासी है इस को काम-शास्त्र नहीं आता होगा इसमें जो पूछेंगे तो उत्तर नहीं दे सकेगा । फिर सरसवाणी ने कहा कि काम-शास्त्र में विवाद करो । शंकाराचार्य्य इस वचन को सुनकर चुप हो गये और कहा कि छ: महीने के अनंतर तुमसे इसी शास्त्र में विवाद करूँगा ।

तब शंकराचार्य्य अमृतपुर में गए । वहाँ का राजा मर गया था । इसका नाम अमरु करके प्रसिद्ध था । उसका शरीर जलाने के लिये चिता पर रक्खा था इतने में शंकराचार्य ने अपने शरीर से प्राण निकाल कर परकायप्रवेश विद्या के बल से उस राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया और शिष्यों ने आचार्य का शरीर एक पहाड़ की गुफा में रक्खा । कहीं लिखा है इस राजा की सौ रानी थीं उन में जो बड़ी थी उस ने देखा कि पति की चेष्टा पहले ऐसी नहीं है केवल पहला शरीर मात्र वही है और इस की आत्मा किसी योगी की जान पड़ती है नहीं तो इतना चातुर्य इस में कहाँ से होता । रानी ने आज्ञा दी कि जहाँ कहीं मृत शरीर मिले उसी क्षण उस को जला दो । राजदूतों ने आचार्य का शरीर गुफा में पाया और उसको जलाने के लिये चिता पर रक्खा और आग लगा दी । आचार्य के शिष्यों ने देख कर राजा की स्तुति की । उस का अभिप्राय यही थी कि राजा, तू शंकराचार्य्य है दूसरा कोई नहीं । उसी क्षण राजा के शरीर से प्राण ने निकल कर उस चिता पर रक्खे हुए शरीर में प्रवेश किया और अग्नि शांत होने के लिये नृसिंह की स्तुति की । नृसिंह ने प्रसन्न हो के वर दिया । वहाँ से सरस्वती के पास आये और उसको जीत लिया और उस को साथ लेकर श्रृंगपुर में आये, जिस को अब श्रृंगेरी कहते हैं और जो तुंगभद्रा के तीर पर है । उसी स्थल पर सरस्वती की स्थापना की और भारती संप्रदाय की शिष्य परंपरा करने की रीति स्थापन की ।

शंकराचार्य की गुरुपरंपरा इस प्रकार से लिखी है । पहिले नारायण, फिर ब्रहमा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, सुक, गौड़पाद, गोविंद योगीन्द्र, श्री शंकराचार्य्य । इन के १२ मुख्य शिष्य हुए उन के नाम

पहिले लिख आये हैं ।

शृंगेरी में १२ बरस रह कर कांचीपुर में गये । वहाँ कामाक्षा देवी की स्थापना की और कांची का नगर बसाया और विष्णुकांची में वरदराज विष्णु का और शिवकांची में शिव का मंदिर बनवाया और अवताम्रपर्णी नदी के तीर पर रहने वाले लोगों को शिष्य किया । प्राय: सब भारतवर्ष में इनकी शिष्यशाखा फैली ।

श्री शंकराचार्य्यजी ने व्यास सूत्र पर अद्वैत भाष्य और दस महोपनिषदों और गीता पर भी भाष्य बनाये । और कई एक ग्रंथ बनाये हैं वे सब अब तक मिलते हैं । इनका मत यह था कि प्रपंच में ब्रहम को छोड़कर जो कुछ दिखाई देता है सब मिथ्या है, सब ब्रहम रूप है, और ईश्वर और जीव एक ही है इत्यादि. उनके ग्रंथों को देखने से जान पड़ता है । इसी लिये किसी मत को जिस में ईश्वर की सत्ता मानी जाती है सर्वथा खंडन नहीं किया । नास्तिक मत को छोड़कर सब मतों को स्थापन किया और ३२ बरस के वय में परलोक को चले गये । शक्ति संगम तंत्रादिक ग्रंथों में तो १६ ही वर्ष लिखे हैं परंतु शंकर विजयादि ग्रंथों से ज्ञात हुआ कि जो ऊपर संख्या लिखी है ठीक है क्योंकि इतना कृत्य इतने थोड़े समय में नहीं हो सकता । इनकी कीर्ति अब तक इस भारतवर्ष में चली जाती है और प्राय: यहाँ के लोग भी इसी मत पर चलते हैं ।

मैंने शंकाराचार्य्य का जीवनवृतांत बहुत संक्षेप से लिखा है । यदि इसमें कहीं शीघ्रता के हेतु भूल हो तो पढ़ने वाले उस पर क्षमा करें क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि भ्रांति पुरुष का धर्म है ।

५. महाकवि श्री जयदेव जी*

जयदेव जी की कविता का अमृत पान करके तृप्त, चकित, मोहित और घूर्णित कौन नहीं होता और किस देश में कौन सा ऐसा विद्वान है जो कुछ भी संस्कृत जानता हो और जयदेव जी की काव्य-माधुरी का प्रेमी न हो । जयदेव जी का यह अभिमान कि अंगूर और ऊख की मिठास उनकी कविता के आगे फीकी है बहुत सत्य है । इस मिठाई को न पुरानी होने का भय है न चींटी का डर है, मिठाई है, पर नमकीन है यह नई बात है । सुनने पढ़ने की बात है पर गूंगे का गुड़ है । निर्जन में जंगल पहाड़ में जहाँ बैठने को बिछौना भी न हो वहाँ गीतगोविंद सब आनंद सामग्री देता है, और जहाँ कोई मित्ररसिक भक्त-प्रेमी न हो वहाँ यह सब कुछ बन कर साथ रहता है । जहाँ गीतगोविंद है वहीं वैष्णव गोष्ठी है, वहीं रसिक-समाज है, वहीं वृंदावन है, वहीं प्रेमसरोवर है, वहीं भाव-समुद्र है, वहीं गोलोक है और वहीं प्रत्यक्ष ब्रहमानंद है । पर यह भी कोई जानता है कि इस परब्रहम-रस प्रेम-सर्वस्व श्रृंगार-समुद्र के जनक जयदेव जी कहाँ हुए ? कोई नहीं जानता और न इसकी खोज करता । प्रोफेसर लैसेन ने लैटिन भाषा में और पूना के प्रिन्सिपल आरनल्ड साहब ने अंगरेजी में गीत-गोविंद का अनुवाद किया, परंतु कवि का जीवनचरित्र कुछ न लिखा केवल इतना ही लिख दिया कि सन् ११५० के लगभग जयदेव उत्पन्न हुए थे । किंतु धन्य हैं बाबू रजनीकांत गुप्त कि जिन्होंने पहिले पहल इस विषय में हाथ डाला और "जयदेवचरित्र" नामक एक छोटा सा ग्रंथ इस विषय पर लिखा । यद्यपि समयनिर्णय में और जीवनचरित्र में हमारे उनके मत में अनेक अनैक्य है तथापि उनके ग्रंथ से हम को अनेक सहायता मिली है, यह मुक्त कंठ से स्वीकार करना होगा । और इसमें कोई संशय नहीं कि उन्हीं के ग्रंथ ने हमारी रुचि को इस विषय के लिखने पर प्रबल किया है ।

वीरभूमि से प्राय: दस कोस दक्षिण[1] अजयनद के उत्तर किन्दुबिल्व[2] गाँव में श्रीजयदेव जी ने जन्म ग्रहण किया था ।

संभव है कि कन्नौज से आए हुए ब्राहमणों में से जयदेव जी का वंश भी हो । इन के पिता का नाम

* चंद्रिका अभिनव किरणावली खंड ६ संख्या १० अप्रैल सन् १८७९ में पूर्वार्ध छपा ।

१. अजयनद भागीरथी का करद है । यह भागलपुर ज़िला के दक्षिण से निकल कर सोंताल परगने के दक्षिण भाग दक्षिण की ओर और फिर वर्द्दमान और वीरभूमि के ज़िले के बीच में से पश्चिम की ओर बह कर कटवा के पास भागीरथी से मिला है । (ज. च. बंगदेश विवरण) ।

२. किन्दुबिल्व वीरभूमि के मुख्य नगर सूरी से नौ कोस है । यहाँ श्रीराधा दामोदर जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है । वैष्णवों का यह भी एक पवित्र क्षेत्र है ।

भोजदेव और माता का नाम रामादेवी था । इन्होंने किस समय अपने आविर्भाव से धरातल को भूषित किया था यह अब तक नहीं ज्ञात हुआ । श्रीयुक्त सनातन गोस्वामि ने लिखा है कि बंगाधिपति महाराज लक्ष्मणसेन की सभा में जयदेव जी विद्यमान थे । अनेक लोगों का यही मत है और इस मत को पोषण करने को लोग कहते हैं कि लक्ष्मणसेन के द्वार पर एक पत्थर खुदा हुआ लगा था, जिस पर यह श्लोक लिखा हुआ था "गोवर्द्धनश्चशरणो जयदेव उमापति : । कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणास्यच ।।"

श्रीसनातन गोस्वामी के इस लेख पर अब तीन बातों का निर्णय करना आवश्यक हुआ । प्रथम यह कि "लाक्ष्मणेय" का काल क्या है । दूसरे यह कि यह लक्ष्मणसेन वही है जो बंगाले का प्रसिद्ध लक्ष्मणसेन है कि दूसरा है । तीसरे यह कि यह बात श्रद्धेय है कि नहीं कि जयदेव जी लक्ष्मणसेन की सभा में थे ।

प्रसिद्ध इतिहास लेखकर मिनहाजिउद्दीन ने तबकाते नासिरी में लिखा है कि जब बख्तियार खिलजी ने बंगाल फतह किया तब लछमनिया नाम का राजा बंगाले में राज करता था । इन के मत से लछमनिया बंगदेश का अंतिम राजा था । किंतु बंगदेश के इतिहास से स्पष्ट है कि लछमनिया नाम का कोई भी राजा बंगाले में नहीं हुआ । लोग अनुमान करते हैं कि बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के माधवसेन और केशवसेन "लाक्ष्मणेय" इस शब्द के अपभ्रंश से लछमनिया लिखा है ।

राजशाही के जिले से मेटकाफ साहब को एक पत्थर पर खोदी हुई प्रशस्ति मिली है । यह प्रशस्ति विजयसेन राजा के समय में प्रद्युम्नेश्वर महादेव के मंदिर-निर्माण के वर्णन में उमापतिधर की बनाई हुई है । डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र के मत से इस की संस्कृति की रचना प्रणाली नवम वा दशम वा एकादश शताब्दी की है । शोच की बात है कि इस प्रशस्ति में संवत् नहीं दिया है, नहीं तो जयदेव जी के समय निरूपण में इतनी कठिनाई न पड़ती । इसमें हेमंतसेन, सुमंतसेन ओर वीरसेन यही तीन नाम विजयसेन के पूर्वपुरुषों के दिये हैं, जिससे प्रगट होता है कि वीरसेन ही वंशस्थापनकर्त्ता है । विजयसेन के विषय में यह लिखा है कि उस ने काम रूप और कुरुमंडल (मद्रास और पुरी के बीच का देश) जय किया था और पश्चिम जय करने को नौका पर गंगा के तट में सेना भेजी थी । तवारीखों में इन राजाओं का नाम कहीं नहीं है । कहते हैं आइनेअकबरी का सुखसेन (बल्लालसेन का पिता) विजयसेन का नामांतर है, क्योंकि बाकरगंज की प्रस्तरलिपि में जो चार नाम हैं वे विजयसेन, बल्लालसेन, लक्ष्मणसेन और केशवसेन इस क्रम से हैं । बल्लालसेन बड़ा पंडित था और दानसागर और वेदार्थ स्मृति संग्रह इत्यादि ग्रंथ उसके कारण बने । कुलीनों की प्रथा भी बल्लालसेन की स्थापित है । उसके पुत्र लक्ष्मणसेन के काल में भी संस्कृतविद्या की बड़ी उन्नति थी । भट्ट नारायण (वेणी संहार के कवि) के वंश में धनंजय के पुत्र हलायुध पंडित उसके दानाध्यक्ष थे, जिन्होंने ब्राह्मण सर्वस्व बनाया और इनक दूसरे भाई पशुपति भी बड़े स्मार्त आन्हिककार थे । कहते हैं कि गौड़ का नगर बल्लालसेन ने बसाया था, परंतु लक्ष्मणसेन के काल से उस का नाम लक्ष्मणावती (लखनौती) हुआ । लक्ष्मणसेन के पुत्र माधवसेन और केशवसेन थे । राजावली में इन के पीछे सुसेन वा शूरसेन और लिखा है और मुसलमान लेखकों ने नौजीव (नवद्वीप ?), नारायण, लखमन और लखमनिया ये चार नाम और लिखे हैं वरंच एक अशोकसेन भी लिखा है किंतु इन सबों का ठीक पता नहीं । मुसलमानों के मत से लखमनिया अंतिम राजा है, जिस ने ८० वर्ष राज्य किया और बख्तियार के काल में जिसने राज्य छोड़ा । यह गर्भ ही से राजा था । तो नाम का क्रम बीरसेन से लछमनिया तक एक प्रकार ठीक हो गया, किंतु इन का समय निर्णय अब भी न हुआ, क्योंकि किसी दानपत्र में संवत् नहीं है । दानसागर के बनने का समय समय-प्रकाश के अनुसार १०१९ शके (१०७९ ई.) है । इस से बल्लालसेन का राजत्व ग्यारहवीं शताब्दी के अंत तक अनुमान होता है और यह आईनेअकबरी के समय से भी मेल खाता है । बल्लालसेन ने १०६६ में राज्य आरंभ किया था । तो अब सेनवंश का क्रम यों लिखा जा सकता है ।

---

१. बंबई की छपी हुई पुस्तक में राधा देवी जो इन की माता का नाम लिखा है वह असंगत है । हाँ, वामादेवी और रामादेवी यह दोनों पाठ अनेक हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं । बंगला में र और व में केवल एक बिन्दु के भेद होने के कारण यह भ्रम उपस्थित हुआ है ।

वीरसेन	
सामंतसेन	
हेमंतसेन	
विजयसेन वा सुखसेन	
बल्लालसेन	१०६६
लक्ष्मणसेन	११०१
माधवसेन	११२१
केशवसेन	११२२
लछमनिया	११२३

बल्लालसेन का समय १०६६ ई. समय-प्रकाश के अनुसार है । यदि इस को प्रमाण न मानैं और फारसी लेखकों के अनुसार लछमनिया के पहले नारायण इत्यादि और राजाओं को भी मानैं तो बल्लालसेन और भी पीछे जा पड़ैंगे । तो अब जयदेव जी लक्ष्मणसेन की सभा में थे कि नहीं यह विचारना चाहिए । हमारी बुद्धि से नहीं थे । इस के कई दृढ़ प्रमाण हैं । प्रथम तो यह कि उमापतिधर जिसने विजयसेन की प्रशस्ति बनाई है वह जयदेव जी का समसामयिक था । तो यदि यह मान लें कि जयदेव उमापति गोवर्द्धनादिक सब सौ बरस से विशेष जिए हैं तब यह हो सकता है कि ये विजयसेन और लक्ष्मण दोनों की सभा में थे । दूसरे चंद कवि ने जिसका जन्म ११५० सन् के पास है अपने रायसा में प्राचीन कवियों की गणना में जयदेव को लिखा है।[1] तो सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हुए बिना जयदेव जी की कविता का चंद के समय तक जगत में आदरणीय होना असंभव है । गोवर्द्धन ने अपनी सप्तशती में "सेन-कुलतिलक भूपति" इतना ही लिखा, नाम कुछ न दिया, किंतु उस की टीका में "प्रवरसेन नामा इति" लिखा है । अब यदि प्रवरसेन, हेमंतसेन या विजयसेन का नामांतर मान लिया जाय और यह भी मान लिया जाय कि जयदेव जी की कविता बहुत जल्दी संसार में फैल गई थी और समय-प्रकाश का बल्लाल का समय भी प्रमाण किया जाय तो यह अनुमान हो सकता है कि विजयसेन के समय में वा उस से कुछ ही पूर्व सन् १०२५ से १०५० तक में किसी वर्ष में जयदेव जी का प्राकट्य है और ऐसा ही मानने से अनेक विद्वानों की एकवाक्यता भी होती है । यहाँ पर समय विषयक जटिल और नीरस निर्णय जो बंगला और अंगरेजी ग्रंथों में है वह न लिख कर सार लिख दिया है । इससे "जयदेव चरित" इत्यादि बंगला ग्रंथों में जो जयदेव जी का समय तेरहवीं वा चौदहवीं शताब्दी लिखा है वह अप्रमाण होकर यह निश्चय हुआ कि जयदेव जी ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में उत्पन्न हुए हैं ।

जयदेव जी की बाल्यावस्था का सविशेष वर्णन कुछ नहीं मिलता । अत्यंत छोटी अवस्था में यह मातृपितृबिहीन हो गए थे, यह अनुमान होता है । क्योंकि विष्णुस्वामि चरितामृत के अनुसार श्री पुरुषोत्तमक्षेत्र में इन्होंने उसी संप्रदाय के किसी पंडित से पढ़ी थी । इनके विवाह का वर्णन और भी अद्भुत है । एक ब्राहमण ने अनपत्य होने के कारण जगन्नाथ देव की बड़ी आराधना कर के एक कन्या-रत्न लाभ किया था । इस कन्या

---

[1] भुजंगप्रयात — प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहंनं । जिनैं नाम एक्कं अनेकं कहनं । ।
दुती लभ्भयं देवतं जीवतेसं । जिनै विश्व राख्यौ बलीमंत्र सेसं । ।
चवं वेद बंभं हरी कित्ति भाषी । जिनैं ध्रम्म साध्रम्म संसार साषी । ।
तृती भारती व्यास भारत्थ भाष्यौ । जिनैं उत्त पारत्थ सारत्थ साष्यौ । ।
चवं सुक्खदेवं परीषत्त पायं । जिनैं उद्धर्यो श्रब्ब कुर्वेस रायं । ।
नरं रूप पंचम्म श्रीहष सारं । नलैराय कंठं दिने पद्द हारं । ।
छटं कालिदासं सभाषा सुबद्दं । जिनै बागवानी सुबानी सुबद्दं । ।
कियो कालिका मुक्ख वासं सुसुद्धं । जिनैं सेत बंध्योति भोज प्रबंद्धं । ।
सतं डंडमाली उलाली कवित्तं । जिनैं बुद्धि तारंग गांगा सरित्तं । ।
जयद्देव अट्ठं कवी कविबरायं । जिनैं केवं कित्ति गोविंद गायं । ।
गुरं सब्ब कव्वी लहू चंद कव्वी । जिनैं दर्सियं देवि सा अंग हव्वी । ।
कवी कित्तिकित्ति उकती सुदिक्खी । तिनैं कोउ चिष्टोकवीचंद भक्खो । ।

का नाम पद्मावती था । जब यह कन्या विवाह योग्य हुई तो जगन्नाथ जी ने स्वप्न में उसके पिता को आज्ञा किया कि हमारा भक्त जयदेव नामक एक ब्राह्मण अमुक वृक्ष के नीचे निवास करता है, उसको तुम अपनी कन्या दो । ब्राह्मण कन्या को लेकर जयदेव जी के पास गया । यद्यपि जयदेव जी ने अपनी अनिच्छा प्रकाश किया तथापि देवादेशानुसार ब्राह्मण उस कन्या को उनके पास छोड़ कर चला आया । जयदेव जी ने जब उस कन्या से पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है तो पद्मावती ने उत्तर दिया कि आज तक हम पिता की आज्ञा में थे, अब आप की दासी हैं । ग्रहण कीजिए वा परित्याग कीजिए मैं आप का दासत्व न छोडूँगी । जयदेव जी ने उस कन्या के मुख से यह सुन कर प्रसन्न होकर उस का पाणिग्रहण किया । अनेक लोगों का मत है कि जयदेव जी ने पूर्व में एक विवाह किया था । उस स्त्री की मृत्यु के पीछे उदास होकर पुरुषोत्तमक्षेत्र में रहते थे । पद्मावती उनकी दूसरी स्त्री थी । इन्हीं पद्मावती के समय, संसार में आदरणीय कविता रत्न का निकष गीतगोविंद काव्य जयदेव जी ने बनाया ।

गीतगोविंद के सिवा जयदेव जी की और कोई कविता नहीं मिलती । प्रसन्नराघव, पक्षधरी, चन्द्रालोक और सीताविहार काव्य विदर्भ नगर वासी कौंडिन्य गोत्रोद्भव महादेव पंडित के पुत्र दूसरे जयदेव जी के बनाए हैं, जिनका काव्य में पीयूषवर्ष और न्याय में पक्षधर उपनाम था । वरंच अनेक विद्वानों का मत है कि तीन जयदेव हुए हैं, यथा गीतगोविंदकार, प्रसन्नराघवकार और चन्द्रालोककार, जिनका नामांतर पीयूषवर्ष है ।

पद्मावती के पाणिग्रहण के पीछे जयदेव जी अपने स्थापित इष्टदेव की सेवा निर्वाहार्थ द्रव्य एकत्र करने की इच्छा से वा तीर्थाटन और धर्मोपदेश की इच्छा से निज देश छोड़ कर बाहर निकले । श्रीवृंदावन की यात्रा करके जयपुर वा जयनगर होते हुए जयदेव जी मार्ग में चले जाते थे कि डाँकुओं ने धन के लोभ से उन पर आक्रमण किया और केवल धन ही नहीं लिया, वरंच उनके हाथ पैर भी काट लिए । कहते हैं कि किसी धार्मिक राजा के कुछ भृत्य लोग उसी मार्ग से जाते थे । उन लोगों ने जयदेव जी की यह दशा देखा और अपने राज्य में उन को उठा ले गए । वहाँ औषध इत्यादि से कुछ इनका शरीर स्वस्थ हुआ । इसी अवसर में चोर भी उस नगर में आए और साधु वेश में उस नगर के राजा के यहाँ उतरे । तब राजा के घर में जयदेव जी का बड़ा मान था और दान धर्म इन्ही के द्वारा होता था । जयदेव जी ने इन साधु वेशधारी चोरों को अच्छी तरह पहचान लिया और यदि वे चाहते तो भली भाँति अपना बदला चुका लेते, परंतु उनके सहज उदार और दयालु चित्त में इस बात का ध्यान तक न आया, वरंच दानादिक देकर उनका बड़ा आदर किया । बिदा के समय भी उन को बड़े सत्कार से अच्छी बिदाई देकर बिदा किया और राजा के दो नौकर साथ कर दिये कि अपनी सरहद तक उन को पहुँचा आवें । मार्ग में राजा के अनुचर ने उन चोरों से पूछा कि इन साधू जी ने और लोगों से विशेष आपका आदर क्यों किया । इस पर उन चांडाल चोरों ने यह उत्तर दिया कि जयदेव जी पहिले एक राजा के यहाँ रहते थे, इन्होंने कुछ ऐसा दुष्कर्म किया कि राजा ने हम लोगों को इन के प्राण हरने की आज्ञा दिया, किंतु दया परवश हो कर हम लोगों ने इन के प्राण नहीं लिए, केवल हाथ पैर काट के छोड़ दिया । इसी बात के छिपाने के हेतु जयदेव ने हमलोगों का इतना आदर किया । कहते हैं कि मनुष्यों की आधारभूता पृथ्वी इस अनर्थ मिथ्याप्रवाद को न सह सकी और द्विधा विदीर्ण हो गई । वे चोर सब उसी पृथ्वीगर्त में डूब गए और परमेश्वर के अनुग्रह से जयदेव जी के भी हाथ पैर फिर से यथावत् हो गए । अनुचरों के द्वारा यह वृत्तांत सुन कर और जयदेव जी से पूर्ववृत्ति जान कर राजा अत्यंत ही चमत्कृत हुआ । आश्चर्य घटना-अविश्वासी विद्वानों का मत है कि जयदेव जी ऐसे सहृदय थे कि उनके सहज स्वभाव पर रीझ कर लोगों ने यह गल्प कल्पित कर ली है ।

तदनंतर जयदेव जी ने अपनी पत्नी पद्मावती को भी वहीं बुला लिया । कहते हैं कि एक बेर उस राजा की रानी ने ईर्षा-वश पद्मावती की परीक्षा करने को उस से कह दिया कि जयदेव जी मर गए । उस समय जयदेव जी राजा के साथ कहीं बाहर गए थे । पतिप्राणा पद्मावती ने यह सुनते ही।प्राण परित्याग कर दिया । जब जयदेव जी आए और उन्होंने यह चरित देखा तो श्रीकृष्ण नाम सुना कर उस को पुनर्जीवन दिया, किंतु उस ने उठ कर कहा कि अब आप हमको आज्ञा दीजिए, हमारा इसी में कल्याण है कि हम आपके सामने परमधाम जायँ, और तदनुसार उस ने फिर शरीर नहीं रक्खा । जयदेव जी इससे उदास होकर अपनी जन्मभूमि केंदुली ग्राम में चले आए और फिर यावत् जीवन वहीं रहे ।

श्री जयदेव जी के गीतगोविंद के जोड़ पर गीतगिरीश नामक एक काव्य बना है, किंतु जो बात इस में है वह उस में सपने में भी नहीं है ।

गीतगोविंद के अनेक टीकाकार भी हुए हैं, यथा उदय, जो खास गोवर्द्धनाचार्य का शिष्य था और जयदेव जी से भी कुछ पढ़ा था । एक टीका उस की बनाई है और पीछे से अनेक टीका बनी हैं । उदयन की टीका जयदेव जी के समय में बन चुकी थी और इसमें भी कोई संदेह नहीं कि गीतगोविंद ज्यदेव जी के जीवन काल ही से सारे संसार में प्रचलित हो गया था । गीतगोविंद दक्षिण में बहुत गाया जाता है और बाला जी में सीढ़ियों पर द्राविण लिपि में खुदा हुआ है । श्री बल्लभाचार्य संप्रदाय में इस का विशेष भाव है, वरंच आचार्य के पुत्र गोसाई विट्ठलनाथ जी की इस के प्रथम अष्टपदी, पर एक रसमय टीका भी बड़ी सुंदर है, जिस में दशावतार का वर्णन रृंगार परत्व लगाया है । वैष्णवों में परिपाटी है कि अयोग्य स्थान पर गीतगोविंद नहीं गाते, क्योंकि उनका विश्वास है कि जहाँ गीतगोविंद गाया जाता है वहाँ अवश्य भगवान का प्रादुर्भाव होता है । इस पर वैष्णवों में एक आख्यायिका प्रचलित है । एक बुढ़िया की गीतगोविंद की "धीर समीरे यमुना तीरे" यह अष्टपदी याद थी । वह बुढ़िया गोवर्द्धन के नीचे किसी गाँव में रहती थी । एक दिन वह बुढ़िया अपने बैंगन के खेत में पेड़ों को खींचती थी और अष्टपदी गाती थी, इस से ठाकुर जी उस के पीछे पीछे फिरे । श्रीनाथ जी के मंदिर में तीसरे पहर को जब उत्थापन हुए तो श्री गोसाईं जी ने देखा कि श्रीनाथ जी का बागा फटा हुआ है और बैंगन के काँटे और मिट्टी लगी हुई है । इस पर जब पूछा गया तो उत्तर मिला कि अमुक बुढ़िया ने गीतगोविंद गाकर हमको बुलाया इस से काँटे लगे, क्योंकि वह गाती गाती जहाँ जाती थी मैं उस के पीछे फिरता था । तब से यह आज्ञा गोसाईं जी ने वैष्णवों में प्रचार किया कि कुस्थान पर कोई गीतगोविंद न गावे ।

किंवदंती है कि जयदेव जी प्रति दिवस श्रीगंगा स्नान करने जाते थे । उन का यह श्रम देख कर गंगाजी ने कहा कि तुम इतनी दूर क्यों परिश्रम करते हो, हम तुम्हारे यहाँ आप आवेंगे । इसी से अजयनद नामक एक धार में गंगा अब तक केंदुली के नीचे बहती हैं ।

जयदेव जी विष्णुस्वामी संप्रदाय में एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि संप्रदाय की मयावस्था में मुख्यत्व कर के इन का नाम लिया गया है । यथा —

विष्णुस्वामीसमारम्भां जयदेवादिमध्यगां । श्रीमद्वल्लभपर्य्यन्तांस्तुमीगुरुपरम्पराम् ।१

जयदेव जी का पवित्र शरीर केंदुली ग्राम में समाधिस्थ है । यह समाधि मंदिर सुंदर लताओं से वेष्ठित हो कर अपनी मनोहरता से अद्यापि जयदेव जी के सुंदर चित्त का परिचय देता है ।

"जयदेव जी नितांत करुण हृदय और परम धार्मिक थे । भक्ति विलसित महत्व छटा और अनुपम प्रीति व्यंजक उदार भाव यह दोनों उनके अंतःकरण में निरंतर प्रतिभासित होते थे । उन्हों ने अपने जीवन का अर्द्धकाल केवल उपासना और धर्मघोषणा में व्यतीत किया । वैष्णव संप्रदाय में इन के ऐसे धार्मिक और सहृदय पुरुष विरले ही हुए हैं" ।

जयदेव जी एक सत्कवि थे, इस में कोई संदेह नहीं । यद्यपि कालिदास, भवभूति, भारवि इत्यादि से बढ़कर वह कवि थे यह नहीं कह सकते, पर उनकी अपेक्षा इनको सामान्य भी नहीं कह सकते । बंगभूमि में तो कोई ऐसा सत्कवि आज तक हुआ नहीं । "ललितपद विन्यास और श्रवण मनोहर अनुप्रास छटा निबंधन से जयदेव की रचना अत्यंत ही चमत्कारिणी है । मधुर पद विन्यास में तो बड़े कवि भी इस से निस्संदेह हारे हैं" ।

जयदेव जी का प्रसिद्ध ग्रंथ गीतगोविंद बारह सर्गों में विभक्त है । जिस में पूर्व में श्लोक और फिर गीत क्रम से रक्खे हैं । इस ग्रंथ में परस्पर विरह, दूती, मान, गुण-कथन और नायक का अनुनय और तत्पश्चात् मिलन यह सब वर्णित है । जयदेव जी परम वैष्णव थे । इस से उन्होंने जो कुछ वर्णन किया अत्यंत प्रगाढ़ भक्ति पूर्ण हो कर वर्णन किया है । इन्होंने इस काव्य में अपनी रसशालिनी रचना शक्ति और चित्तरंजक सद्भाव-शालित्व का एक शेष प्रदर्शन दिया है । पंडितवर ईश्वरचंद्र विद्यासागर स्वप्रणीत संस्कृत विषयक प्रस्ताव में लिखते हैं "इस महाकाव्य गीतगोविंद की रचना जैसी मधुर कोमल और मनोहर है उस तरह की दूसरी कविता संस्कृत-भाषा में बहुत अल्प है । वरंच ऐसे ललित पद विन्यास, श्रवण मनोहर, अनुप्रास छटा और प्रसाद गुण और कहीं नहीं है ।" वास्तव में रचना विषय में गीतगोविंद एक अपूर्व पदार्थ है । और तालमानों के चातुर्य से और अनेक रागों के नाम के अनुकूल गीतों में अक्षर से स्पष्ट बोध होता है कि जयदेव जी

गाना बहुत अच्छा जानते थे । कहते हैं कि गीतगोविंद को अष्टपदी और अष्टताली नाम से भी लोग पुकारते हैं ।

अनेक विद्वानों ने लिखा है गीतगोविंद विक्रमादित्य की सभा में गाया जाता था । किंतु यह कथा सर्वथा गीत-गोविंद निस्संदेह गाया जाता था । वरंच जोनराज ने अपनी राजतंरगिणी में लिखा है कि श्रीहर्ष जब क्रम सरोवर के निकट भ्रमण करते थे उन दिनों गीतगोविंद उन की सभा में गाया जाता था ।

कहते हैं कि "प्रिये चारुशीले" इस अष्टपदी में "स्मरगरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं" इस पद के आगे जयदेव जी की इच्छा हुई कि "देहि पदपल्लवमुदारं" ऐसा पद दें, किंतु प्रभु के विषय में ऐसा पद देने को उन का साहस नहीं पड़ा, इस से पुस्तक छोड़ कर आप स्नान करने चले गए । भक्तवत्सल, भक्तमनोरथपूरक भगवान इस समय स्नान से फिरते हुए जयदेव जी के वेश में घर में आए । प्रथम पद्मावती ने जो रसोई बनाई थी उस को भोजन किया, तदनंतर पुस्तक खोल कर "देहि पदपल्लवमुदारं" लिख कर शयन करने लगे । इतने में जयदेव जी आए तो देखा कि पतिप्राणा पद्मावती, जो बिना जयदेव जी को भोजन कराये जल भी नहीं पीती थी वह, भोजन कर रही है । जयदेव जी ने भोजन का कारण पूछा तो पद्मावती ने आश्चर्य-पूर्वक सब वृत्त कहा । इस पर जयदेव जी ने जाकर पुस्तक देखा तो "देहि पदपल्लवमुदारं" यह पद लिखा है । वह जान गए कि यह सब चरित्र उसी रसिकशिरोमणि भक्तवत्सल का है । इस से आनंद पुलकित हो कर पद्मावती का थाली का अन्न खा कर अपने को कृतार्थ माना ।

कहते हैं कि पुरी के राजा सात्विकराय ने ईर्षापरवश होकर एक जयदेव जी को कविता की भाँति अपना भी गीतगोविंद बनाया था । इस झगड़े को निबटाने को कि कौन गीतगोविंद अच्छा है दोनों गीतगोविंदों को पंडितों ने जगन्नाथ जी के मंदिर में रखकर बंद कर दिया । जब यथा समय द्वार खुला तो लोगों ने देखा कि जयदेव जी का गीतगोविंद श्री जगन्नाथ जी के हृदय में लगा हुआ है और राजा का दूर पड़ा है । यह देखकर राजा आत्महत्या करने को तैयार हुआ । तब श्रीजगन्नाथ जी ने उसके संबोधन के वास्ते आज्ञा किया कि हम ने तेरा भी आंगीकार किया, शोच मत कर ।

गीतगोविंद अंगरेजी गद्य में सर विलियम जोन्स कृत, पद्य में आरनलड साहब कृत, लैटिन में लासिन कृत, जर्मन में रुकार्ट कृत, ऐसे ही अनेक भाषाओं में अनेक जन कृत अनुवादित हुआ है । हिंदी में इसके छंदोबद्ध तीन अनुवाद हैं । प्रथम राजा डालचन्द की आज्ञा से रायचन्द नागर कृत, द्वितीय अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरीदास कृत और तृतीय इस प्रबंध के लेखक हरिश्चंद्र कृत । इन अनुवादों के अतिरिक्त द्राविण और कार्णाटादि भाषाओं में इसके अपरापर अन्य अनेक अनुवाद हैं ।

लोग कहते हैं कि जयदेव जी ने गीतगोविंद के अतिरिक्त एक ग्रंथ रतिमंजरी भी बनाया था, किंतु यह अमूलक है । गीतगोविंदकार की लेखनी से रतिमंजरी सा जघन्य काव्य निकले यह कभी संभव नहीं । एक गंगा की स्तुति में सुन्दर पद जयदेव जी का बनाया हुआ और मिलता है, वह उनका बनाया हुआ हो तो हो ।

इस भाँति अनेक सौ बरस हुए कि श्रीजयदेव जी इस पृथ्वी को छोड़ गए । किंतु अपनी कविता-बल से हमारे समाज में वह सादर आज भी विराजमान हैं । इनके स्मरण के हेतु केन्दुली गाँव में अब तक मकर की संक्रांति को एक बड़ा भारी मेला होता है, जिसमें साठ सत्तर हजार वैष्णव एकत्र हो कर इनकी समाधि के चारों ओर संकीर्त्तन करते हैं ।

६. पुष्पदंताचार्य और महिम्न

यह स्तोत्र अब ऐसा प्रसिद्ध है कि आर्ष की भाँति माना जाता है, वरंच पुराणों में भी कहीं-कहीं इसका माहात्म्य मिलता है । एक प्रसंग है कि जब पुष्पदंत ने महिम्न बना के शिवजी को सुनाया तब शिवजी बड़े प्रसन्न हुए इससे पुष्पदंत को गर्व हुआ कि मैंने ऐसी अच्छी कविता किया कि शिवजी प्रसन्न हो गए । यह बात शिवजी ने जाना और अपने भृंगी-गण से कहा कि मुँह तो खोलो । जब भृंगी ने मुँह खोला, तो पुष्पदंत ने देखा कि महिम्न के बत्तीसो श्लोक भृंगी के बत्तीसो दाँत में लिखे हैं । इससे यह बात शिवजी ने प्रगट किया कि ये

श्लोक तुमने नहीं बनाए हैं ।वरंच यह तो हमारी अनादि स्तुति-श्लोक है । यह बात प्रसिद्ध है कि पुष्पदंत जब शाप से ब्राह्मण हुआ था तब यह स्तोत्र बनाया है और ऐसी ही अनेक आख्यायिका हैं । अब वह पुष्पदंत कौन है और कब वह ब्राह्मण हुआ इसका विचार करते हैं । कथासरित्सागर में एक पहिला ही प्रसंग है, जिससे यह प्रसंग बहुत स्पष्ट होता है । उस में लिखते हैं कि पार्वती जी का मान छुड़ाने को शिवजी ने अनेक विचित्र इतिहास कहे और उस समय नंदी को आज्ञा दी थी कि कोई भीतर न आवै, परंतु पुष्पदंत गण ने योगबल से नंदी से छिप कर भीतर जा कर वह सब कथा सुनी और अपनी स्त्री जया से कही और जया ने फिर पार्वती से कही । यह सुन कर पार्वती ने बड़ा क्रोध किया और पुष्पदंत और उस के मित्र माल्यवान् को शाप दिया कि दोनों मृत्युलोक में जन्म लो । फिर जब उन सबों ने पार्वती को बहुत मनाया तब पार्वती ने कहा कि अच्छा विंध्याचल में सुप्रतीक नाम यक्ष काणभूति पिचाश हुआ है उसको देख कर पुष्पदंत जब यह सब कथा कहेगा तब दोष दूर होगा और काणभूति से जब माल्यवान् सुनेगा तब शाप से छूटेगा । वही पुष्पदंत वररुचि नामक कवि कौशांबी में हुआ और सुप्रतिष्ठ नगर में माल्यवान् गुणाढ्य कवि हुआ । यथा —

अवदच्चन्द्रमौलिः कौशाम्बीत्यस्तियामहानगरी ।
तस्यां सपुष्पदंतो वररुचि नामा प्रिये जातः ।।१ ।।
अन्यश्च माल्यवानपि नगरे सुप्रतिष्ठाख्ये ।
जातो गुणाढ्य नामा देवितयोरेषवृत्तान्तः ।।२ ।।"

कौशांवी नगरी में सोमदत्त व अग्निशिख नामा ब्राह्मण की स्त्री बसुदत्ता से वररुचि का जन्म हुआ और पिता छोटे ही पन में मर गया, इस से माता ने बड़े कष्ट से इस का पालन किया । यह छोटे ही पन में ऐसा श्रुतिधर था कि एक बेर जो सुनता वा जो कला देखता कंठ कर लेता और जान जाता । एक समय बेतसपुर के देवस्वामी और कदंबक नामा ब्राह्मण के पुत्र इंद्रदत्त और व्याड़ि इसके घर में आए । वहाँ इन दोनों ने वररुचि को एकश्रुतिधर सुन के प्राति शांख्य पढ़ा और वररुचि ने उन दोनों को वह ज्यों का त्यों सुना दिया और वररुचि के पिता का मित्र भवानंदर नामक नट उस रात्रि को कहीं अभिनय करता था । वह देख कर वररुचि ने अपने माता के सामने ज्यौं का त्यौं फिर कर दिखाया । उन दोनों ब्राह्मणों को इसकी एकश्रुतिधरता से बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि जब इन दोनों ने विद्या के हेतु तक किया था तब इन को वर मिला था कि पाटलिपुत्र में वर्ष नामक उपाध्याय से सब विद्या पाओगे । वर्ष, उपवर्ष यह दो भाई शंकर स्वामि ब्राह्मण के पुत्र थे । उनमें उपवर्ष पंडित और धनी था और वर्ष मूर्ख और दरिद्री था । उपवर्ष की स्त्री से अनादर पा कर वर्ष ने विद्या के हेतु तप किया और स्कंद से सब विद्या पाई, परंतु स्कंद ने कहा था कि जो एक श्रुतिधर हो उसके सामने तुम अपनी विद्या प्रकाश करना । सो जब वर्ष के पास ये दोनों ब्राह्मण गए तब उसकी स्त्री ने कहा कि एकश्रुतिधर कोई हो तो ये अपनी विद्या प्रकाश करैं, अन्यथा न प्रकाश करैंगे । इसी से वे दोनों ब्राह्मण वररुचि को एक श्रुतिधर पा कर बड़े प्रसन्न हुए । वररुचि की माता से उन दोनों ने सब वृत्तांत कह कर वररुचि को साथ लिया और फिर पाटिलपुत्र में आए, क्योंकि उसकी माता से भी आकाशवाणी ने कहा था कि तेरा पुत्र एकश्रुतिधर होगा और वर्ष से सब विद्या पढ़ेगा और व्याकरण का आचार्य होगा । वर्ष ने तब उन तीनों को विद्या पढ़ाया और बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि वररुचि एकश्रुतिधर, व्याड़ि द्विश्रुतिधर और इंद्रदत्त त्रिश्रुतिधर था । वर्ष को नगर के लोग मूर्ख जानते थे, पर जब एकाएकी उस के विद्या का प्रकाश हुआ तो सब ब्राह्मणवर्ग बड़े प्रसन्न हुए और नंद राजा ने भी बहुत सा धन वर्ष को दिया । फिर इन तीनों ने बड़ी विद्या पढ़ी और वररुचि ने उपवर्ष की कन्या उपकोषा से विवाह किया और उपकोषा अपने पतिव्रत और चरित्र से नंद की भगिनी हुई । वर्ष के एक पाणिनि * नामा मूर्ख शिष्य ने शिव जी से वर पाकर व्याकरण बनाया और जब वररुचि ने उससे वाद किया तो

---

* राजा शिवप्रसाद यों लिखते हैं:-"समय के उलट फेर में हमारे पंडित लोग जो कुछ अपनी पंडिताई दिखलाते हैं, लिखने योग्य नहीं है । इसी एक बात से सोच लो कि जिस पंडित से पाणिनि वैय्याकरण का जमाना पूछोगे छूटते कहेगा कि सत्य युग में हुआ था । लाखों बरस बीते परंतु इस से इनकान न करेगा कि कात्यायन की पतंजलि ने टीका लिखी और पतंजलि की व्यास ने । अब हेमचन्द्र अपने कोश में कात्यायन का

शिवजी ने हुँकर के वररुचि का इंद्रमत का व्याकरण भुला दिया, इस से वररुचि ने फिर तपस्या कर के शिवजा से पाणिनि व्याकरण सीखा । यह वररुचि बहुत दिन तक योगानंद का मंत्री रहा और इस का नामांतर कात्यायन था, परंतु यह नंद का मंत्री कैसे हुआ और कब तक रहा यह यहाँ नहीं लिखते, क्योंकि प्रसंग के बाहर है । यह बन बन फिरने लगा । जब शकटार ने चाणक्य द्वारा नंदवंश का नाश किया तब उदास हो कर और विंध्याचल में कालभूति पिशाच को देख कर अपना पूर्व जन्म स्मरण करके उस से सब कथा कह कर बदरिकाश्रम में जा कर योग से अपनी गति को गया और शाप से छूटा । गंधर्व से भी पहिले जन्म में यह गंगातीर के ग्रहार नामक ग्राम में गोविंददेव ब्राह्मण अग्निदत्ता ब्राह्मणी का पुत्र देवदत्त था और प्रतिष्ठानपुर के राजा की कन्या से विवाह किया था । उस कन्या ने पहले दाँत में फूल दबा कर उस को संकेत बताया था । इससे जब वह ब्राह्मण वरदान पाकर शिवगण हुआ तब उस की स्त्री भी जया प्रतिहारी हुई ।

इस कथा के व्याख्यान से यह स्पष्ट होता है कि वर्णन नंद के राज्य के समय का है और उस समय के

नाम वररुचि बतलाता है और कश्मीर का सोमदेव भट्ट अपने कथासरित्सागर में लिखता है कि कात्यायन वररुचि कौशांबी में, जो अब प्रयाग के पास जमुना के किनारे कोसम गाँव कहलाता है, पैदा हुआ, पाणिनि से व्याकरण में शास्त्रार्थ किया और राजा नंद का मंत्री हुआ । मुद्राराक्षस इत्यादि बहुत ग्रंथों से साबित है कि नंद के बाद ही चंद्रगुप्त राज्यसिंहासन पर बैठा और चंद्रगुप्त का जमाना ऐसा निश्चय ठहर गया है कि जैसे पलासी की लड़ाई अथवा नादिरशाही अथवा पृथ्वीराज और विक्रम का कहो कि हम पाणिनि का जमाना अब अढाई हजार बरस से इधर मानें या लाखों बरस से उधर ? पतंजलि चंद्रगुप्त के पीछे हुआ इसमें किसी तरह का संदेह नहीं, क्योंकि उसने अपने भाष्य में "सभाराजा मनुष्य पूर्वा" इस सूत्र पर "चंद्रगुप्तसभम्" ऐसा उदाहरण दिया है ।"

Dr. Rajendra Lal Mitra LL.D. in his Indo–Aryans No. 1. P. 19 says, "According to Dr. Goldstucker, the Grammar of Panini was composed between the 9th and 11th centuries before Christ. Professor Max Muller brings down the age of Grammar to the 6th century B.C,"

पाणिनीय व्याकरण के समय में निम्नलिखित बातें होती थीं ।

१. उस समय के लोगों में हँसी करने की चाल थी । एहिमन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति भुक्तः सो ऽतिथिभिः- मानो भात खाने आया है सब खा पी गया ।

२. श्राद्धों में नाती को अवश्य बुलाने की चाल थी । निमन्त्रणं, आवश्यकें श्राद्धभोजनादौ दौहित्रदेः प्रवर्तनं —निमंत्रण, अर्थात् जैसे नाती वगैरह को श्राद्ध भोजन में बुलाना ।

३. नृत्य और नृत में भेद । गात्र विक्षेपमात्रं नृत-भाँड़ों का तमासा, बदन तोड़ना इत्यादि । पदार्थाभिनयोनृत्यं —भावादिकों का दिखलाना ।

४. बहुत सी कहावतें उस समय के लोग जानते थे । जैसा-नविश्वसेद-विश्वस्तं-जिस का विश्वास एक बेर गया फिर उसका विश्वास न करना ।

५. आलिंगन करने की रीति थी । अश्लिक्षत् कन्यां देवदत्तः —देवदत्त ने कन्या को आलिंगन दिया ।

६. लड़कियों को गहना पहिनाने की चाल । उपस्कृता कन्या-अलंकार पहिनाई गई कन्या ।

७. मुहावरेवार बोलने की चाल । हस्तयते-हाथी पर चढ़के जाता है । पादयते-लात मारता है ।

८. लोग बहुत भावुक थे । सिद्धशब्दो ग्रंथान्ते मङगलार्थ-ग्रंथ के अंत में सिद्ध-ऐसा लिखो, क्योंकि यह मंगल है ।

९. वृषस्यतिगौः-गाय उठी है ।

१०. महल बना करते थे । कुटीयति प्रासादे । महल में बैठ कर झोपड़ी समझता है ।

११. भिक्षुक लोग राजा के पास जाया करते थे । भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते ।

१२. मल्लयुद्ध हुआ करता था । आह्वयते-मैदान में खड़े होकर पुकारना । नहीं तो आह्वयति ।

१३. खिराज दिया जाता था । करं बिनयते-कर देने को निकालता है ।

१४. शास्त्र की चर्चा रहा करती थी । शास्त्रेवदते-शास्त्र में बोल सकता है ।

देवता शिव और स्कंध थे और व्याकरण का बड़ा प्रचार था । कातंत्र, कालाप, एन्द्र, पाणिनी इत्यादि मत में परस्पर बड़ा विरोध था । संस्कृत, प्राकृत, पैशाची और देश भाषा बहुत प्रसिद्ध थी, परंतु पाँच और भाषा भी प्रचलित थीं । पाटलिपुत्र नया बसा था, प्रतिष्ठानपुर और अयोध्या भी बहुत बसती थी, धूर्तता फैल गई थी और हिंदुस्तान में पश्चिम देश बहुत मिला हुआ था इत्यादि ।

इस वृहत्कथा में ऐसे ही गुणाढ्य कवि के भी तीनों जन्म लिखे हैं और उस का वृहत्कथा का पैशाची भाषा में निर्माण करना, उस में छः लाख ग्रंथ जला देना और एक लाख ग्रंथ नर वाहन दत्त के चरित्र का राजा शातवाहन को देना इत्यादि सविस्तर वर्णित है ।

अब यह वृहत्कथा कब बनी है और किस ने बनाया है इस के विचार में चित्त बहुत दोलायित होता है, क्योंकि इस का काल ठीक निर्णीत नहीं होता । नंद के समय की भी नहीं मान सकते, क्योंकि इसी वृहत्कथा में विक्रमादित्य, उदयन ऐसे प्राचीन नवीन अनेक राजाओं का वर्णन है, परंतु इतना कह सकते हैं कि इस का मूल प्राचीन काल से पड़ा है और उस को अनेक काल में अनेक कवि बढ़ाते गए हैं, क्योंकि "कात्यायनाद्यैकृतिः, तत्पुष्पदन्तादिभिः" इत्यादि पदों में आदि शब्द मिलता है । वा अनेक प्राचीन सुनी हुई कथाओं को किसी ने एकत्र कर के आदर के हेतु उस में पुष्पदंत का नाम रख दिया हो तो भी आश्चर्य नहीं, क्योंकि कात्यायन वररुचि का होना ख्रीस्ताब्दीय के १२० वर्ष पूर्व लोग अनुमान करते हैं और विक्रम का काल पंडितों ने ५०० ख्रीस्ताब्द के लगभग निश्चय किया है और ऐसा मानने से प्रोफेसर गोल्डसृकर इत्यादि इतिहासवेत्ताओं का दो वररुचि मानने वाला मत भी स्पष्ट खण्डित होता है, क्योंकि वृहत्कथा में जब विक्रम का चरित्र है तब उसी विक्रमादित्य वाले वररुचि का नाम कात्यायन संभव है ।

परंतु हमारा कथन यह है कि संस्कृत वृहत कथा गुणाढ्य की बनाई ही नहीं है, क्योंकि उस में स्पष्ट लिखा है कि गुणाढ्य ने संस्कृत बोलना छोड़ दिया था, इस से पिशाच भाषा में वृहत्कथा बनाया । तो इस दशा में संभव है कि किसी ने यह वृहत्कथा बना कर वररुचि, गुणाढ्य, पुष्पदंत इत्यादि का नाम आदर और प्रमाण पाने के हेतु रख दिया हो ।

अब जो वृहत्कथा मिलती है वह तीस हजार श्लोक में रामदेव भट्ट के पुत्र सोमदेव भट्ट की बनाई है, जो उसने कश्मीर के राजा संग्रामदेव के पुत्र अनंत देव की रानी सूर्यवती के चित्तविनोद के हेतु बनाई है और इसी अनंतदेव के पुत्र कमलदेव हुए और कमलदेव के पुत्र श्री हर्षदेव हुए । कश्मीर के इन राजाओं के नाम चित्त को और भी संशय में डालते है, क्योंकि रत्नावली वाला श्रीहर्ष कालिदास के पहिले का है, क्योंकि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में धावक कवि का नाम प्राचीन कवियों में लिखा है । अब इस दशा में विरोध का परिहार यों हो सकता है कि जिस विक्रम का चरित्र वृहत्कथा में है वह नवरत्न वाला विक्रम नहीं, किंतु कोई प्राचीन विक्रम है । और यह वृहत्कथा धावक के थोड़े ही काल पहिले कश्मीर में सोमदेव ने बनाई है, क्योंकि इस में नंद और विक्रम के नाम की भाँति भोज, कालिदास इत्यादि का नाम नहीं और नवरत्न वाला वररुचि दूसरा था, क्योंकि उस काल में राजा और कवियों के वही नाम बारंबार होते थे, इस से वृहत्कथा संवत और खिस्तसन के पूर्व बनी है और गुणाढ्य और वररुचि कुछ इस से भी पहिले के हैं ।

परंतु वृहत्कथा के किसी लेख का हम प्रमाण नहीं करते, क्योंकि यह बड़ा ही असंगत ग्रंथ है । जैसा अनंत पंडित की बनाई मुद्राराक्षस की पूर्व पीठिका में नंद का नाम सुधन्वा लिखा है और इस में योगनंद है । उस में जो वररुचि के मंत्री होने का प्रसंग है वह इस पीठिका में कहीं मिलता ही नहीं और पाणिनी, वर्ष, कात्यायन, व्याड़ि, इंद्रदत्त और अनेक व्याकरण के आचार्य वृहत्कथा के मत से एक काल के थे, पर बुद्धिमानों ने इन सबके काव्य में बड़ा भेद ठहराया है । इससे इतिहास विषय में वृहत्कथा अप्रमाणिक है ।

वृहत्कथा का वर्णन और गुणाढ्य इत्यादि कवियों का वर्णन आर्य्या सप्तशती बनानेवाले गोवर्द्धन कवि ने किया है और गोवर्द्धन कवि का काव्य जयदेव जी के काल से निश्चित होगा । बंगाली लेखकों ने जयदेव जी का समय पन्द्रहवाँ शतक ठहराया है, पर इस निर्णय में परम भ्रांत हुए हैं, क्योंकि जयदेव जी का काल एक सहस्र वर्ष के पूर्व है और इसमें प्रमाण के हेतु पृथ्वीराज रायसा में चंद कवि का जयदेव जी का और गीतगोविंद वर्णन ही प्रमाण है । जयदेव जी ने गोवर्द्धन कवि का वर्णन वर्त्तमान क्रिया से किया है । इससे अनुमान होता है कि उस काल में गोवर्द्धन कवि था । बंगाली लोगों में कोई बारहवें शतक में लक्ष्मण सेन के काल में जयदेव को मानते हैं ।

और उसके समकालीन गोवर्द्धन इत्यादि कवियों को लक्ष्मण सेन की सभा के पंचरत्न मानते हैं । यह बात भी असंभव है, क्योंकि पृथ्वीराज ग्यारहवें शतक में था और चंद भी तभी था । तो जयदेव चंद के सैकड़ों वर्ष पहिले निस्संदेह हुए हैं, क्योंकि चंद ने प्राचीन कवियों की गणना में बड़ी भक्ति से जयदेव जी का वर्णन किया है । हाँ, यदि लक्ष्मण सेन को पृथ्वीराज के पहिले मानो तो जयदेव उसकी सभा के पंडित हो सकते हैं, नहीं तो समझ लो कि आदर के हेतु इन कवियों का नाम लक्ष्मण सेन ने अपनी सभा में रक्खा है । इससे चल सखि कुंज की भाषा और अँगरेजी इतिहासवेत्ताओं का मत लेकर बंगालियों ने जयदेव का जो काल निर्णय किया है वह अप्रमाण है यह निश्चय हुआ और वृहत्कथा उस काल के भी पहिले बनी है यह भी सिद्धान्तित हुआ ।

७. श्री वल्लभाचार्य्य

दोहा

तम पाखंड हि हरत कर, जन मन जलज विकास ।
जयति अलौकिक रवि कोऊ, श्रुति पथ करन प्रकाश ।।

जो लोग बहुत प्रसिद्ध हैं और जिन को लाखों मनुष्य सिर झुकाते हैं उनके जीवनचरित्र पढ़ने या सुनने की किसकी इच्छा न होगी । इस हेतु यहाँ पर श्री वल्लभाचार्य्य का जीवनचरित्र संक्षेप से लिखा जाता है ।

मंदराज हाते में, तैलंगदेश के आकबीडु जिले में काँकरबल्लि गाँव में भारद्वाज गोत्र, तैलंग ब्राह्मण जाति पंचप्रवर, यजुर्वेद, तैत्तिरीयशाखा, दीक्षित सोमयागी उपनाम, यज्ञनारायण भट्ट के प्रसिद्ध वंश से लक्ष्मण भट्ट जी की धर्मपत्नी इल्लमगारु के गर्भ से चम्पारण्य में इनका जन्म हुआ ।

लक्ष्मण भट्ट जी के तीन पुत्र थे । बड़े रामकृष्ण भट्ट जी युवावस्था ही में संन्यस्त हो गये और केशव पुरी नाम से प्रसिद्ध हुए । मँझले पूर्वोक्ताचार्य्य और छोटे रामचंद्र भट्ट जी, जिन के कृष्णकुतूहल, गोपाल लीला इत्यादि ग्रंथ हैं । इन्होंने अपने नाना की वृत्ति पाई थी, परन्तु विवाह न करके अपना सब जीवन अयोध्या मे बिताया ।

लक्ष्मण भट्ट जी अपने घर के खान पान से बहुत दुखी थे । वे जब काशी में अपने जाति के ब्राह्मणों का सत्कार करने आये तो मार्ग में बितिया के इलाके में चौरा गाँव के पास चम्पारण्य में संवत् १५३५ वैसाख बदी ११, * आदित्यवार को मध्यान्ह समय आचार्य का जन्म हुआ । जब ये पाँच वर्ष के हुए तब चैत सुदी ९ के दिन अपने पिता से गायत्री उपदेश लिया और कृष्णदास मेघन को उसी अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश करके प्रथम वैष्णव किया ।

उसी साल असाढ़ सुदी ८ को काशी के प्रसिद्ध पंडित माधवानंद तीर्थ त्रिदण्डी से विद्याध्ययन किया और छोटेपन ही में पत्रावलम्बन ग्रंथ कर के विश्वनाथ के दरवाजे पर लगा दिया और डौंड़ी पीट कर काशी के पंडितों से पहला शास्त्रार्थ किया । जब इन के पिता काशी से चले तो लक्ष्मणबाला जी में उनका देहांत हुआ । उनकी क्रियादिक के पीछे आचार्य पृथ्वी परिक्रमा को चले और विद्यानगर में जाकर कृष्णदेव राजा की सभा में सब पंडितों को जीत कर आचार्य पद पाया । संवत् १५४८ के वैशाख बदी २ को ब्रह्मचर्य धर्म से पहिली पृथ्वी परिक्रमा करने चले और पंढरपुर, त्र्यंबक, उज्जैन होते हुए वृज आए और चार महीने श्रीवृंदावन में रह कर श्रीमद्भागवत का पारायण किया और फिर सोरों, अयोध्या वो नैमिषारण्य होते हुए काशी आए ।

राह में जो पंडित मिलते उनसे शास्त्रार्थ करते और वैष्णव धर्म फैलाते थे ।

काशी जी से गया और जगन्नाथ जी होते हुए फिर दक्खिन चले गए और संवत् १५५४ में अपना पहिला दिग्विजय समाप्त किया । दूसरे दिग्विजय में वृज में गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का स्वरूप प्रकट कर के उन की सेवा स्थापन किया और तीन पृथ्वी परिक्रमा कर के सारे भारतखंड में वैष्णव मत फैला कर बावन वर्ष की अवस्था में संवत् १५८७ आषाढ़ सुदी २ को काशी जी में लीला में प्राप्त भए । इनके दो पुत्र — बड़े श्री गोपीनाथ जी, छोटे श्री विट्ठलनाथ जी । गोपीनाथ जी के पुत्र श्री पुरुषोत्तम जी, पर उनके आगे वंश नहीं । श्री विट्ठलनाथ जी के सात पुत्र, जिनमें बड़े गिरधर जी और छोटे पुत्र यदुनाथ जी का वंश अब तक वर्त्तमान है ।

* वल्लभदिग्विजय में लिखा है : संवत् शाके १४४० वैशाख मास कृष्णपक्ष ११ रविवार मध्याह्न । एक पद श्री

इनका मत शुद्धाद्वैत अर्थात् जगत्‌ब्रह्म के सच्चित्‌रूप से अभिन्न और सत्य, परन्तु भक्ति बिना ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान फलदायक नहीं । परमोपास्य श्रीकृष्ण और विष्णुस्वामी परमाचार्य, साधन सेवा मुख्य, प्रमाण ग्रंथ, वेदव्याससूत्र, गीता और भागवत । तिलक दो रेखा का लाल (ऊर्द्धपुंड्र), शंख, चक्र, शीतल ।

आचार्य ने अणुभाष्य, तत्वदीप, निबंध, रसमंडन, श्री मद्‌भागवत पर सुबोधिनी टीका, सिद्धान्त मुक्तावली, पुष्टिप्रवाह मर्यादा, पुरुषोत्तम (सहस्र) नाम, सिद्धांत रहस्य, अंत :करण प्रबोध, भक्ति प्रकरण, नवरतन, विवेक धैर्य्याश्रय, पत्रावलंबन, कृष्णाश्रय, भक्तिवर्द्धिनी, जलभेद संन्यासनिर्णय, जैमिनी सूत्रभाष्य, चित्तप्रबोध, निरोधलक्षण, व्यास-विरोध लक्षण, परिवृद्धाष्टक और वैद्यवल्लभ ये चौबीस ग्रंथ बनाये हैं, जिनमें दोनों सूत्रों का भाष्य और भागवत की टीका बहुत बड़े ग्रंथ हैं ।

द्वारकेशजी कृत । ।रागसारंग । । ५ ३ ५ १

तत्व गुन बान भुवि माधवासित तरणि प्रथम सौभग दिवस प्रकट लक्ष्मण-सुवन ।
धन्य चंपारन्य मन्य त्रैलोक्य जन अन्य अवतार भुवि है न ऐसा भुवन । ।१ । ।
लग्न वृश्चिक कुंभ केतु कवि इंदु सुख मीन बुध उच्च रवि बैरि नाशे ।
मंद वृष कर्क गुरु भौम युत सिंह मैं तमस के योग ध्रुव यश प्रकाशे । ।२ । ।
दिछ धनिष्ठा प्रतिष्ठा अधिष्ठान स्थिर बिरह बदनानलाकार हरि को ।
यहै निश्चय 'द्वारकेश' इन के शरण और को श्री वल्लभाधीश सरि को । ।३ । ।

श्री महाप्रभुन की जन्मकुण्डली ऊपर के कीर्त्तन अनुसार ।
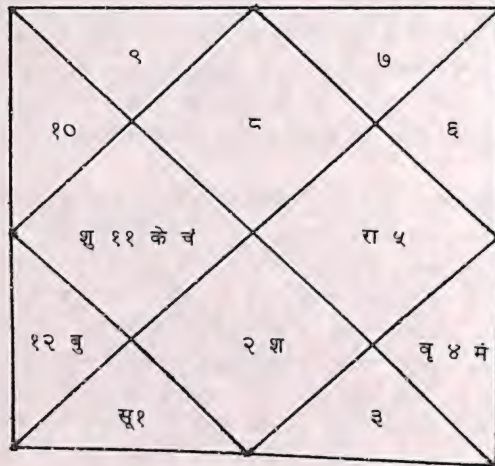
८. सूरदास जी

दो.— हरि पद पंकज भक्त अलि, कविता रस भरपूर।
दिव्य चक्षु कवि-कुल-कमल, सूर नौमि श्री सूर ।।

सब कवियों के वृत्तांत में सूरदास जी का वृत्तांत पहिले लिखने के योग्य है, क्यों कि यह सब कवियों के शिरोमणि हैं और कविता इनकी सब भाँति की मिलती है । कठिन से कठिन और सहज से सहज इनके पद बने हैं और किसी कवि में यह बात नहीं पाई जाती । और कवियों की कविता में एक बात अच्छी है और कविता एक ढंग पर बनती है परंतु इन की कविता में सब बात अच्छी है और इनकी कविता सब तरह की होती है, जैसे किसी ने शाहनशाह अकबर के दरबार में कहा था —

दो.— उत्तम पद कवि गंग को, कविता को बल वीर।
केशव अर्थ गँभीर को, सूर तीन गुन धीर ।।

और इस के सिवाय इनकी कविता में एक असर ऐसा होता है कि जी में जगह करै । जैसे एक वार्ता है कि किसी समय में एक कवि कहीं जाता था और एक मनुष्य बहुत व्याकुल पड़ा था । उस मनुष्य को अति व्याकुल देखकर उस कवि ने एक दोहा पढ़ा ।

दो.— किधौ सूर को सर लग्यो, किधौ सूर की पीर।
किधौ सूर को पद सुन्यौ, जौ अस विकल शरीर ।।

इस वार्ता के लिखने का यह अभिप्राय है कि निस्संदेह इन के पदों में ऐसा एक असर होता कि जो लोग कविता समझते हैं उनके जी पर इस की चोट लगे ।

ये जाति के ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम बाबा रामदास जी था, जो गाना बहुत अच्छा जानते थे और कुछ धुरवपद इत्यादि भी बनाते थे और देहली या आगरे या मथुरा इन्हीं शहरों में रहा करते थे और उस समय के नामी गुनियों में गिने जाते थे । उन के घर यह सूरदास जी पैदा हुए । यह इस असार संसार के प्रपंच को न देखने के वास्ते आँख बंद किए हुए थे । इन के पिता ने इन को गाना सिखाने में बड़ा परिश्रम किया था और इन की बुद्धि पहिले ही से बड़ी विलक्षण और तीव्र थी । संवत् १५४० के कुछ न्यूनाधिक में इनका जन्म हुआ था और आगरे में इन्होंने कुछ फारसी विद्या भी सीखी थी । इनकी जवानी ही में इनके पिता का परलोक हुआ और यह अपने मन के हो गए और भजन तभी से बनाने लगे । उस समय में इनके शिष्य भी बहुत से हो गए थे और तब अपना नाम पदों में सूर स्वामी रखते थे । उन्हीं दिनों में इनने महाराज नल और दमयंती के प्रेम की कथा में एक पुस्तक बनाई थी, जो अब नहीं मिलती । उस समय इनकी पूर्ण युवा अवस्था थी । और उन दिनों में ये आगरे से नौ कोस मथुरा के रास्ते के बीच में एक स्थान जिस का नाम गऊघाट है, वहीं रहते थे और बहुत से इनके शिष्य इनके साथ थे । फिर ये आचार्य-कुल-शिरोरत्न श्री वल्लभाचार्य्य महाप्रभु के शिष्य हुए । तब से यह अपना नाम पदों में सूरदास रखने लगे । ये भजनों में नाम अपना चार तरह से रखते थे — सूर, सूरदास, सूरजदास, और सूरश्याम । जब यह सेवक हुए थे तब इन्होंने यह भजन बनाया था ।

भजन— चकई री चलि चरन-सरोवर, जहँ नहि प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निसा होत नहिं कबहूँ सो सागर सुख जोग।।१।।
सनक से हंस मीन शिव-मुनि-जन नख-रवि-प्रभा-प्रकाश।
प्रफुलित कमल निमेषन ससि डर गुंजत निगम सुबास।।२।।
जेहि सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल सुकृत विमल जल पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम इहाँ कहा रहि कीजै।।३।।
जहँ श्री सहस सहित नित क्रीड़त सोभित 'सूरज दास'।
अब न सुहाइ बिषै रस छीलर वा समुद्र की आस।।४।।

फिर तो इन की सामर्थ्य बढ़ती ही गई और इन्होंने श्री मद्भागवत को भी पदों में बनाया, और भी सब तरह के भजन इन्होंने बनाए । इनके श्रीगुरू इनको सागर कहकर पुकारते थे, इसी से इन ने अपने

पदों को इकट्ठा करके उस ग्रंथ का नाम सूरसागर रखा । जब यह वृद्ध हो गए थे और श्री गोकुल में रहा करते थे, धीरे-धीरे इन के गुण शाहनशाह अकबर के कानों तक पहुँचे । उस समय ये अत्यंत वृद्ध थे और बादशाह ने इनको बुलावा भेजा और गाने की आज्ञा किया । तब इनने यह भजन बनाकर गाया ।

मन रे करि माधो सो प्रीति ।

फिर इन से कहा गया कि कुछ सहनशाह का गुणानुवाद गाइए । उस पर इन्होंने यह पद गाया ।

केदारा— नाहिन रह्यौ मन में ठौर ।
नंद-नंदन अछत कैसे आनिये उर और ।।१ ।।
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत राति ।
हृदय ते वह मदन मूरति छिनु न इत उत जाति ।।२।।
कहत कथा अनेक ऊधो लोग लोभ दिखाइ ।
कहा करौ चित्त प्रेम पूरन घट न सिंधु समाइ ।।३।।
श्यामगात सरोज आनन ललित गति मृदु हास ।
'सूर' ऐसे दरस कारन मरत लोचन खास ।।४।।

फिर संवत् १६२० के लगभग श्रीगोकुल में इन्होंने इस शरीर को त्याग किया । सूरदास जी ने अंत समय में यह पद किया था ।

बिहाग— खंजन-नैन रूप-रस माते ।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ।।
चलि चलि जात निकट श्रवनन के उलटि फिरत ताटंक फँदाते ।
'सूरदास' अंजन गुन अटके नातरु अब उड़ि जाते ।।

दो०— मन समुद्र भयो सूर को, सीप भये चख लाल ।
हरि मुक्ताहल परतहीं, मूँदि गए तत् काल ।।

संसार में जो लोग भाषा काव्य समझते होंगे वे सूरदास जी को अवश्य जानते होंगे और उसी तरह जो लोग थोड़े बहुत भी वैष्णव होंगे वे उनका थोड़ा बहुत जीवन-चरित्र अवश्य जानते होंगे । चौरासी वार्ता, उस की टीका, भक्तमाल और उस की टीकाओं में इनका जीवन विवृत किया है । इन्हीं ग्रंथों के अनुसार संसार को और हम को भी विश्वास था कि ये सारस्वत ब्राह्मण हैं, इनके पिता का नाम रामदास, इनके माता पिता दरिद्री थे, ये गऊघाट पर रहते थे, इत्यादि । अब सुनिए, एक पुस्तक सूरदास जी के दृष्टिकूट पर टीका (टीका भी संभव होता है इन्हीं की, क्योंकि टीका में जहाँ अलंकारों के लक्षण दिए हैं । वह दोहे और चौपाई भी सूर नाम से अंकित हैं) मिली है । इस पुस्तक में ११६ दृष्टिकूट के पद अलंकार और नायिका के क्रम से हैं और उन का स्पष्ट अर्थ और उनके अलंकार इत्यादि सब लिखे हैं । इस पुस्तक के अंत में एक पद में कवि ने अपना जीवनचरित्र दिया है, जो नीचे प्रकाश किया जाता है । अब इस को देख कर सूरदास जी के जीवनचरित्र और वंश को हम दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे । वह लिखते हैं कि 'प्रथजगात'[1] पार्थज गोत्र में इन के मूल पुरुष ब्रह्मराव[2] हुए जो बड़े सिद्ध और देवप्रसाद-लब्ध थे । इन के वंश में भौचंद[3] हुआ । पृथ्वीराज[4] ने जिस को ज्वाला देश दिया ; उस के चार पुत्र, जिन में पहिला राजा हुआ । दूसरा गुणचंद्र । उस का पुत्र सीलचंद्र उसका

---

१. 'प्रथ जगात' इस जाति वा गोत्र के सारस्वत ब्राहण सुनने में नहीं आए । पंडित राधाकृष्ण संगृहीत सारस्वत ब्राह्मणों की जाति माला में 'प्रथ जगात', 'प्रथ' वा 'जगात' नाम के कोई सारस्वत ब्राह्मण नहीं होते । जगा वा जगातिआ तो भाट को कहते हैं ।

२. ब्रह्मराव नाम से भी संदेह होता है कि यह पुरुष या तो राजा रहा हो या भाट ।

३. 'भौ' का शब्द हुआ अर्थ में लीजिए तो केवल चंद्र नाम था । चंद्र नाम का एक कवि पृथ्वीराज की सभा में था! आश्चर्य्य !!!

४. पृथ्वीराज का काल सन् ११७६ ।

वीरचंद्र । यह वीरचंद्र रत्नभ्रमर (रणथम्भौर) के राजा प्रसिद्ध हम्मीर[1] के साथ खेलता था । इसके वंश में हरिश्चंद्र[2] हुआ । उसके पुत्र को सात पुत्र हुए, जिन में सब से छोटा (कवि लिखता है) मैं सूरजचंद था । मेरे छ : भाई मुसलमानों के युद्ध[3] में मारे गए । मैं अंधा कुबुद्धि था । एक दिन कुएँ में गिर पड़ा, तो सात दिन तक उस (अंधे) कुएँ में पड़ा रहा, किसी ने न निकाला । सातवें दिन भगवान ने निकाला और अपने स्वरूप का (नेत्र दे कर) दर्शन कराया और मुझ से बोले कि बर माँग । मैंने वर माँगा कि आप का रूप देख कर अब और रूप न देखें और मुझ को दृढ़ भक्ति मिले और शत्रुओं[4] का नाश हो । भगवान ने कहा ऐसा ही होगा । तू सब विद्या में निपुण होगा । प्रबल दक्षिण के ब्राह्मण-कुल[5] से शत्रु का नाश होगा । और मेरा नाम सूरजदास, सूर, सूरश्याम इत्यादि रखकर भगवान अंतर्ध्यान हो गए । मैं ब्रज में बसने लगा । फिर गोसाईं[6] ने मेरी अष्टछाप[7] में थापना की इत्यादि । इस लेख से और लेख अशुद्ध मालूम होते हैं, क्योंकि जैसा चौरासी वार्ता की टीका में लिखा है कि दिल्ली के पास सीही गाँव में इन के दरिद्र माता पिता के घर इनका जन्म हुआ, यह बात नहीं आई । वह एक बड़े कुल में उत्पन्न थे और आगरे वा गोपाचल में इनका जन्म हुआ । हाँ, यह मान लिया जाय कि मुसलमानों के युद्ध में इतने भाइयों के मारे जाने के पीछे भी इन के पिता जीते रहे और दरिद्र अवस्था में पहुँच गए थे और उसी समय में सीही गाँव में चले गए हों तो लड़ मिल सकती है । जो हो, हमारी भाषा कविता के राजाधिपति सूरदास जी एक इतने बड़े वंश के हैं, यह जान कर हम को बड़ा आनंद हुआ । इस विषय में कोई और विद्वान जो कुछ और विशेष पता लगा सके तो उत्तम हो ।

भजन

प्रथमही प्रथ जगत में प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप।।
पान पिय देवी दियो सिव आदि सुर सुर पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय।।
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु वंश प्रसिद्ध में भौचंद चारु नवीन।।
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीन्हों प्रथम आप नरेस।।
दूसरे गुलचंद ता सुत सीलचंद सरूप।
बीरचंद प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप।।

---

१. हम्मीर चौहान, भीमदेव का पुत्र था । रणथंभौर के किले में इसी की रानी इस के अलाउद्दीन (दुष्ट) के हाथ से मारे जाने पर सहस्रावधि स्त्री के साथ सती हुई थी । इसी का वीरत्व यश सर्वसाधारण में 'हमीर हठ' के नाम से प्रसिद्ध है (तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार) । इसी की स्तुति में अनेक कवियों ने वीर रस के सुंदर श्लोक बनाए हैं "मुञ्चति मुञ्चति कोषं भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्गं ।मीर वीर खड्ग त्यजति च त्यजति क्षमामाशु" । इस का समय सन् १२९० (एक हमीर सन् ११९२ में भी हुआ है) ।

२. संभव है कि हरिचंद के पुत्र का नाम रामचंद्र रहा हो, जिसे वैष्णवों ने अपनी रीति के अनुसार रामदास कर लिया हो ।

३. उस समय तुगलकों और मुगलों का युद्ध होता था ।

४. शत्रुओं से लौकिक अर्थ लीजिए तो मुगलों का कुल (इससे संभव होता है इन के पूर्वपुरुष सदा से राजाओं का आश्रय कर के मुसल्मानों को शत्रु समझते थे या तुगलकों के आश्रित थे, इससे मुगलों को शत्रु समझते थे), यदि अलौकिक अर्थ लीजिए तो काम-क्रोधादि ।

५. सेवा जी के सहायक पेशवा का कुल, जिस ने पीछे मुसल्मानों का नाश किया । अलौकिक अर्थ लीजिए तो सूरदास जी के गुरु श्री वल्लभाचार्य दक्षिणब्राह्मण-कुल के थे ।

६. 'गोसाईं' श्री विट्ठलनाथ जी, श्री बल्लभाचार्य के पुत्र ।

७. अष्टछाप यथा सूरदास, कुंभनदास, परमानंद दास और कृष्णदास ये चार महात्मा आचार्य जी के सेवक और दीत स्वामि, गोविन्द स्वामि, चतुर्भुज दास और नंददास ये गोसाईं जी के सेवक । ये आठो महाकवि थे ।

रत्नभौर हमीर भूपति संग खेलत आय।
तासु वंश अनूप भा हरिचंद अति विख्याय।।
आगरे रहि गोपाचल में रहौ ता सुत वीर।
पुत्र जनमें सात ताके महा भट गंभीर।।
कृष्णचंद, उदारचंद जु, रूपचंद सुभाइ।
बुद्धिचंद प्रकाश चौथौ चंद भे सुखदाइ।
देवचंद प्रबोध संसृत चंद ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरज चंद मंद निकाम।।
सो समर करि साहि सेवक गए विधि के लोक।
रहे सूरज चंद दृग ते हीन भरि बर सोक।।
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातएँ दिन आइ जदुपति कीन आपु उधार।।
दियो चख दै कही सिसु सुनु माँगु वर जो चाइ।।
हौं कही प्रभु भगति चाहत, शत्रु नाश सुभाइ।।
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधास्याम।
सुनत करुनासिंधु भाख्यो एवमस्तु सुधाम।।
प्रबल दच्छिन बिप्रकुल तें सत्रु ह्वै है नास।
अखित बुद्धि विचारि विद्यामान माने सास।।
नाम राखो मोर सूरजदास, सूर सुश्याम।
भए अंतरधान बीते पाछली निसि जाम।।
मोहि पन सोइ है ब्रजकी बसे सुखि चित थाप थापि।
थापि गोसाईं करी मेरी आठ मद्धे छाप।।
विप्र प्रथ जगात को है भाव भूरि निकाम।
सूर है नँदनंद जू को लयो मोल गुलाम।। *

९. सुकरात

इतिहासों से प्रगट है कि यूनान देश प्राचीन काल में हर तरह की विद्या, शिल्प, विज्ञान आदि के लिए अति प्रसिद्ध था, वरन् हर एक विद्याओं की खान या उत्पत्ति भूमि कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। वहीं के बड़े बड़े विद्वान और विज्ञानियों में एक सुकरात भी था। यह ईसाई सन् ४७१ वर्ष पहिले आसीनिया नगर में पैदा हुआ था और "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत के अनुसार छोटी ही उमर में अपने बाप के सौदागिरी पेशे का काम झटपट सीख सिखाय भलीभाँति प्रखर हो गया। तब यह हर तरह की विद्याओं के सीखने में प्रवृत्त हुआ और अपना समय यूनान देश के विद्वानों में काटने लगा, जिन के सतसंग से कुछ दिनों के उपरांत अपनी विमल बुद्धि के कारण यह संपूर्ण विद्या, विज्ञान और शिल्पशास्त्र में भली-भाँति कुशल हो यूनान के बड़े बड़े विद्वान और दार्शनिक से भी बाद विवाद में भिड़ जाता था। उन का पक्ष खंडन कर अपनी बात अनेक युक्तियों से सिद्ध करता था। यहाँ तक कि कुछ दिनों में संपूर्ण यूनान भर में इसकी लोकोत्तर चमत्कार बुद्धि की धूम मच गई। एक बार सुकरात का बाप कहीं बाहर सफर को जाते समय इसे चार हजार लूर, जो उस समय का यूनानी सिक्का था, इसके निज के खर्च के लिए दे गया था। पर इसने उन सब रुपयों को बतौर ऋण के अपने एक मित्र को दे दिया। उसने रुपये इसे फिर लौटा कर न दिए, पर सुकरात ने इस बात का कुछ भी ख्याल न किया और न रुपये उससे कभी माँगे। मेसिडोनिया का राजा अर्किलीस ने बहुत कुछ

---

* कवि वचन सुधा जिल्द २ प्राचीन पुस्तकावली में और श्री हरिश्चंद्र-चंद्रिका खंड ६ संख्या ५ नवंबर सन् १८७८ ई. में छपा।

चाहा कि सुकरात एक बार उससे किसी बात के लिए कुछ कहे, पर इस ने कभी इस बात की ओर ध्यान भी न किया । इस बुद्धिमान हकीम में धीरज इतना था कि किसी तरह की तकलीफ या रंज जो इस पर आ पड़ते थे तो यह किसी प्रकार और लोगों को उस मानसी व्यथा को नहीं प्रगट होने देता था । उस के मन की सब से बड़ी अभिलाषा जिस के लिए वह अत्यंत लौलीन रहा किया यह थी कि जिस तरह हो सके हम अपनी जन्मभूमि को कुछ फायदा पहुँचा सकें और सब लोग कुमार्ग से बच सच्चे और सीधे राह पर चलें, एक दूसरे की बुराई कभी न चेतें । यद्यपि इस सज्जन पुरुष ने कोई स्कूल या वाज करने को कोई जगह नहीं बनावाया पर अक्सर जहाँ लोगों की बहुत भीड़भाड़ रहती उनके बीच यह खड़ा हो घंटों तक सदुपदेश किया करता था और दिन रात मनसा वाचा कर्मणा अपने देश के लोगों के हित में तत्पर रहा । हकीम अफलातून सुकरात का बहुत बड़ा सार्गिद था । मरती बार सुकरात ने तीन बात के लिये अपनी प्रसन्नता प्रगट की और हाथ जोड़ कर कहा, हे जगदीश्वर, मैं तुझे कोटि-कोटि धन्यवाद देता हूँ कि तूने मुझे बातों के मर्म समझने की बुद्धि दी, यूनान ऐसे देश में जन्म दिया और अफलातून ऐसा शिष्य मुझे दिया । एक दिन अट्टिका का राजा अलसीबिडीस बड़े घमंड में भर यह दून हाँक रहा था कि मेरे पास बड़ा धन है और मैं बड़े भारी राज्य का स्वामी हूँ । जब सुकरात ने उसकी यह घमंड की बात सुनी उससे कहा, अलसीबिडीस, तनिक इधर आ और भूगोल के नकशे की ओर ध्यान कर, और बता तेरा राज्य अट्टिका कहाँ पर है । जब उसने नकशे को देखा, घमंड के नशे में जो चूर-चूर था सब उतर गया और उसकी आँख खुल गई । सिर नीचा कर कहा कि मेरा मुल्क यूनान, जो सम्पूर्ण यूरोप का एक छोटा सा देश है, उस का भी एक अत्यंत छोटा प्रदेश है । उसकी यह बात सुन सुकरात ने कहा, तो ऐ प्यारे, फिर क्यों इतनी दून की हाँक रहा है । घमंड बहुत बुरा होता है; सर्व शक्तिमान जगदीश्वर के करतब से इस भूमंडल पर एक से एक चढ़ बढ़ कर पड़े हैं, उन के सामने तू किस गिनती में है ? थोड़े दिन बाद यूनान के बहुत से अत्याचारी निष्ठुर मनुष्यों ने ईर्ष्या में उनहत्तरवें वर्ष में सुकरात पर यह दोष लगाया कि यह बुड्ढा असीना नगर के नव युवा लोगों को बुरे चाल-चलन की ओर रुजू करता है, उनके बाप दादाओं के पुराने बर्त्ताव और मत से हटा कर उन्हें नास्तिक बनाया चाहता है और उन के देवी देवताओं की निंदा करता है । इन दोषों के कारण वह अदालत के सुपुर्द हुआ । अदालत ने इसे विष पीकर मर जाने की सज़ा तजवीज की । उस निर्दोषी पर प्राणांत दंड की सजा का हुकुम सुन जब सब उसके बंधु भाई और मित्र विलाप कर और पछता रहे थे, सुकरात अत्यंत धैर्य के साथ विष का प्याला उठा कर घूँट गया और मरने तक सबों को सदुपदेश देता रहा । जब विष इस के सर्वांग में व्याप्त हो गया, यहाँ तक कि बोल भी न सकता था, तब इसने आँख बंद कर ली और सिधार गया ।

१०. महाराजाधिराज नेपोलियन

९वीं जनवरी सन् १८७३ ई. को बारह बज के २५ मिनट पर महाराजाधिराज तृतीय नेपोलियन ने इस असार संसार को त्याग किया । जो मनुष्य मरने के अढ़ाई वर्ष पूर्व तक एक प्रधान देश का राजा और महाराजा दौड़े आए थे, वही नेपोलियन इंग्लैंड के एक गाँव में एक छोटे घर में मरा !!! इस से बढ़के और क्या दुःख होगा कि जिस के एक खेल में रूम और रूस के महाराज पारिस की गलियों में दौड़ते थे, उस के शव के साथ वही ग्राम निवासी लोग !!! क्यों धन के अभिमानियो ! तुम अब भी अपने धन का अभिमान करोगे और अपने से छोटों को दुःख देने में प्रवृत्त होगे ? यह वही नेपोलियन है, जिस का दादा ऐसा प्रतापी था, जिसने सारे यूरप को हिला दिया था और सब अंगरेजों को दाँतों चने चबवा दिए थे । जर्मनी के युद्ध में नेपोलियन पराजित हुआ, इस का कुछ सोच नहीं, क्योंकि जिस काल में नेपोलियन के स्थान का वा उस की समाधि का वा उस युद्धस्थान का भी चिन्ह न मिलैगा, उस समय तक उन का नाम वर्त्तमान रहेगा ।

महाराज नेपोलियन चिजिलहर्स्ट नामक स्थान में गाड़े गए । उस समय बोनापार्ट के वंश के सब लोग और पारिस के समस्त शिल्पविद्या के गुणियों का समाज विमान के आगे था । लार्ड साइडनी और लार्ड स्फील्ड महारानी विक्टोरिया और युवराज की ओर से आये थे और पचास सहस्र मनुष्य केवल कौतुक देखने को एकत्र थे और राजकुमार और विधवा महारानी भी साथ थीं । शव को समाधि करने के पीछे बोनापार्ट के वंश के सब

लोगों ने राजकुमार को पिता के स्थानापन्न भाव से वंदना किया। इंगलैंड, रूस इत्यादि सब राजकीय कार्यालय दस दिवस तक शोक भेष में रहे।

हम को लिखने में अत्यंत खेद होता है कि पृथ्वी पर का एक महा विख्यात पुरुष समाप्त हुआ। इस मनुष्य की सब आयुष्य प्रारंभ से अंत तक चमत्कारिता और फेरफार की एक विलक्षण श्रृंखला थी। कुछ काल तक राजा और कुछ काल तक रंक सांप्रत सब पराक्रमी राजा उस का आदर करते थे, जो क्या अब उस को तुच्छ मान कर उसकी अप्रतिष्ठा करनी चाहिए?

यद्यपि वे राजसिंहासन पर न थे और इंगलैंड में केवल एक साधारण मनुष्य के समान रहते थे तथापि उनके मरण की दुःखवार्त्ता श्रवण कर के राजकीय और राजसभा के अधिकारियों के चित्त अवश्य चकित होंगे और फ्रांस के राज्य-प्रबंधों में इनके मृत्यु के कुछ विलक्षण फेरफार होगा। यह नेपोलियन फ्रेंच लोगों के मुख्य महाराज थे। और इनको तीसरे नेपोलियन कहते थे और बड़े नेपोलियन बोनापार्ट के भतीजे थे। इन का जन्म २० अप्रैल सन् १८०८ ई. में फ्रांस देश में हुआ था और इन के पिता का नाम लुई बोनापार्ट था, जो लालैंड के महाराज थे। जब यह सात वर्ष के हुए थे तब प्रथम नेपोलियन का अंत का पराभव हुआ था। अनंतर इन को और इनके माता को फ्रांस छोड़ कर के अन्य देश में जाना पड़ा। इन्होंने स्विटजरलैंड में विद्याभ्यास आदि किया। पीछे इन को वहाँ की सेना में रहने की आज्ञा मिली। कुछ दिवस पर्यंत थन सरोवर के तट के तोपखाने में अभ्यास किया। तदनंतर सन् १८३० में फ्रांस देश में राज्य संबंधी हलचल देखकर के फिर अपने स्वदेश में आने का उद्योग किया परंतु वह सफल न हुआ; उलटी सीमा के बाहर रहने की आज्ञा हुई। एक वर्ष के अनंतर स्विटजरलैंड छोड़ कर के टस्कनी में जाकर रहना पड़ा और रोम के युद्ध में मिल गए। इतने में उन के ज्येष्ठ भ्राता का देहांत हुआ। फिर वहाँ से निकल कर इंगलैंड में जाकर रहे। सन् १८३२ से सन् १८३५ पर्यंत काल ग्रंथ लिखने में व्यतीत किया। इसी काल में अनेक चचेरे भाई, प्रथम नेपोलियन के पुत्र नेपोलियन की सहायता करके उसे दूसरा नेपोलियन कहला कर राजसिंहासन पर बैठावें, फ्रांस देश के कई एक मुख्य निवासियों के चित्त में यह बात आई थी और फ्रांस के सीमा तक आगमन की इच्छा करते थे तो इतने में उन का भी देहांत हुआ, इससे फ्रांस के राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार उक्त नेपोलियन को प्राप्त हुआ और वह संपादन करने का विचार उन के चित्त में आया। सन् १८३६ पर्यंत प्रयत्न करके स्ट्रासबर्ग पर चढ़ाई किया, परंतु यह प्रयत्न सफल न होकर आपही पकड़े गए। अंत में पारिस में उन को ले गए। वहाँ एक दो वर्ष रहकर स्विटजरलैंड में लौट आए, तो वहाँ उनके माता का देहांत हुआ। सन् १८३८ में उनकी अनुमति से एक महाशय ने स्ट्रासबर्ग के चढ़ाई का वर्णन लिखा, इस से फ्रेंच सरकार को बड़ा खेद हुआ और उक्त महाशय को दंड दिया और नेपोलियन को स्विट्जरलैंड से निकाल देने के हेतु वहाँ के सरकार को लिख भेजा। परंतु नेपोलियन आपही स्विट्जरलैंड छोड़ कर पुनः इंगलैंड में गए। वहाँ दो वर्ष रहकर सन् १८४० में फ्रांस का राज्य मिलने के हेतु प्रयत्न करते रहे और बोलोन पर चढ़ाई किया, परंतु वह भी प्रयत्न निष्फल हुआ और पकड़े गए और इन के सहकारी जितने मनुष्य थे सभों को जन्म भर के हेतु वहाँ के दुर्ग में कारागार हुआ। इस दुर्ग में छः वर्ष पर्यं रहे। अनंतर सन् १८४६ के मई महीने के २५वीं तारीख को अपूर्व वेश धारण कर के वेलजिअम में भाग कर फिर इंगलैंड में गए। सन् १८४८ ई. के फ्रांस के युद्ध तक वहाँ रहे। इस युद्ध के समय फ्रांस के निवासियों ने इनको नैशनल असेम्ब्ली का सभासद नियत किया। तदनंतर उन्हीं महाशयों ने इन को अध्यक्ष नियत किया। तारीख २ दिसम्बर सन् १८५१ को उन्होंने कई महाशयों के विचार से और पारिस के सर्व प्रसिद्ध राजकीय महाशयों को घेर कर कारागार में डाल दिया और नेशनल असेम्ब्ली को तोड़कर के स्वतः मुख्याधिकारी डिक्टेटर नाम से आप प्रसिद्ध हुए। कुछ सेना मार्ग में रख कर प्रबंध करने के अनंतर 'सकल देश का हम को इस वर्ष अध्यक्ष का अधिकार मिला' यह प्रसिद्ध किया और उन्हीं के इच्छानुसार सब अधिकार उनको प्राप्त हुआ और उन्होंने फ्रेंच लोगों की सम्मति से तारीख २ दिसम्बर सन् १८५२ को अपने को महाराज तीसरा नेपोलियन कहवाया।

इंगलैंड के सरकार ने प्रथम उन को मान्य किया और पश्चात यूरोपियन सब राजाओं ने धीरे-धीरे उन को फ्रेंच का महाराज कहना स्वीकार किया। सन् १८५३ के जनवरी की १३ तारीख को उन्होंने विवाह

किया । तदनंतर १८५४ में रशिया के युद्ध का आरंभ हुआ और सन् १८५६ में समाप्त हुआ । इस युद्ध से उनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई । सन् १८५९ —६० इस वर्ष में उन्होंने विक्टर इमानुअल की सहायता करके इटली को आस्ट्रिया के अधिकार से निकाल कर स्वतंत्र किया और आस्ट्रिया का पराभाव करने से उन की और भी विशेष प्रतिष्ठा बढ़ी और उन को कुछ देश भी इसी कारण मिला । इसी समय में महाराज नेपोलियन ने अत्युच्च पद भी प्राप्त किया, यह समझना चाहिए । तदनंतर मेक्सिको में इन्होंने प्रयत्न और लड़ाई करके अपना राज्य स्थापन किया, परंतु इस का परिणाम अत्यंत दुःखकारक हुआ । अंत में सन् १८७० में प्रशिया और उनके युद्ध का आरंभ होकर उन का भली भाँति पराभव ता. २ सेप्टेम्बर सन् १८७० में हुआ । तदनंतर कुछ दिवस जरमनी के दुर्ग में बद्ध रह कर छूट गए । पश्चात् इंगलैंड में आप और अपनी रानी और पुत्र चिरंजीव प्रिंस नेपोलियन यह सब ता. २० मार्च सन् १८७१ को एकत्र हुए । इस पुत्र का जन्म ता. १६ मार्च सन् १८५६ में हुआथा । अंत का समय उनका साधारण मनुष्य के समान परदेश में और परराष्ट्र में व्यतीत हुआ । उन को कई दिन से रोग हुआ, पर शास्त्रोपाय बहुत करते थे, परंतु उससे कुछ न्यून न हुआ और बहुत कृश हो गए । तारीख ९ को दिन के साढ़े बारह बजे उनका देहांत हुआ । जब ये राजसिंहासन पर थे इनें ने रोम के प्रथम प्रख्यात महाराज जुलियस-सीज़र का इतिहास लिखा । इन सब वृत्तांत से स्पष्ट विदित होगा कि इन को जन्म भर फेरफार उलट पुलट करते व्यतीत हुआ ; उन को भली भाँति स्वस्थता कभी नहीं हुई थी । प्रशिचन लोगों से इन का पराभव होने तक सर्व पृथ्वी में इधर दश वर्ष पर्यंत इन के समान बुद्धिमान और सर्व सामान्य गुणयुक्त दूसरा पुरुष नहीं हुआ । ऐसा लोग कहते हैं कि इन को शीघ्र इस दशा में पहुँचने का मुख्य कारण यही है कि इन से कोई परोपकार नहीं हुआ और इन के हाथ जेनरल वाशिंगटन के समान निष्काम और परोपकार से रहित थे और अपनी बुद्धि से कोई उत्तम कृत्य नहीं किया । इसी कारण इनकी कीर्ति का उय और अस्त अंतकाल में हुआ तथापि यह मनुष्य अति उच्च पद को प्राप्त कर के पतन हुआ और पणिाम अत्यंत खेदजनक हुआ । इस से सकल मनुष्यों को खेद हुआ यह वार्ता प्रसिद्ध है ।

११. महाराज जंगबहादुर

परोपकार से रहित थे और अपनी बुद्धि से कोई उत्तम कृत्य नहीं किया। इसी कारण इनकी कीर्त्ति का उदय और अस्त अंतकाल में हुआ तथापि यह मनुष्य अति उच्च पद को प्राप्त कर के पतन हुआ और परिणाम अत्यंत

श्री मन्महाराज जंगबहादुर का बैकुंठवास होना सब पर विदित है और बहुत से समाचारपत्रों में यह समाचार प्रकाश हो चुका है, परंतु हमारी लेखनी इस शोच से काले आँसुओं से न रुदन करै यह चित्त नहीं सहन कर सकता। बादशाह रंजीत सिंह को सब लोगभारतवर्ष का अंतिम मनुष्य कहते थे, परंतु महाराज जंगबहादुर ने अपने अप्रमेय बल से उन्हीं लोगों से यह कहलाया कि महाराज जंगबहादुर भी हिन्दुस्तान में एक मनुष्य हैं। पूर्वोक्त महाराज ने १८७७ फरवरी की पच्चीसवीं तारीख को वीर प्रसू-भारतभूमि को पुत्रशोक दिया। यों तो अनेक जननी-यौवन-कुठार नित्य जनमते और मरते हैं, पर यह एक ऐसा पुरुष मरा कि भारतवर्ष के सच्चे हितकारी लोगों का जी टूट गया। भादों की गहरी अँधेरी में एक दीप जो टिम कर को झिलमिला रहा था, वह भी बुझ गया। क्या इस अभागिन भारतमाता को फिर ऐसे पुत्र होंगे? नीति के तो मानो ये मूर्तिमान अवतार थे। ऐसे प्रदेश में रह कर जो चारों ओर भिन्न-भिन्न राज्यों से घिरा हो, स्वामी की उन्नति साधन करते हुए आस पास के कठिन महाराजों को प्रसन्न रखना नीति सूत्र के परम सूत्रधार का काम है। हम लोगों के भाग्य ही ऐसे हैं; यह रोना कहाँ तक रोएँ।

पूर्वोक्त महाराज प्रतिवर्ष की भाँति दौरा करते हुए शिकार खेलते थे कि एकाएक सुगौली में जो पहुँचे तो रोगाक्रांत हो गए। कहते हैं कि उबांत और दस्त होने से एक साथ बहुत व्याकुल हो गए। और उसी समय कहारों को आज्ञा दी कि बाघमति गंगा पर पालकी ले चलो। बड़ी महारानी महाराज के साथ थीं और उन्होंने अत्यंत सावधानी से अपने जगत विख्यात प्राणपति की उभयलोकसाधिनी अंतिम सेवा की। कहारों के बदले पालकी क्षत्रियों ने उठाई थी। जब नदी पर सवारी पहुँची तब दानादिक कर के महाराज ने इस असार संसार का त्याग किया। उन के भाई जनरल रणोद्दीप सिंह बहादुर उसी समय काठमांडू गए और महाराज से एकांत में यह शोक समाचार कहा। महाराजाधिराज ने उसी समय उन को महाराजगी का पद और उनके भाई को जो जो अधिकार प्राप्त थे सब दिए। महाराज राणोद्दीप सिंह ने बाहर आकर चालीस हजार सेना में से बीस हजार को बाहरी और सीमा के प्रांतों पर और बीस हजार को नगर के चारों ओर उपस्थित रहने की आज्ञा दिया, जिससे किसी प्रकार के उपद्रव की शंका न हो। इस सेना भेजने की आज्ञा केवल स्वकीय रक्षा के निमित्त थी। राजधानी में दो दिन तक यह समाचार छिपा रहा, दूसरी रात्रि को एक साथ यह वज्रपात या समाचार नगर में फैल गया जिस से सारी रानी और दो छोटी रानी अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक सती हुई। कहते हैं कि जिन रानियों से विशेष प्यार था और सदा महाराज के साथ सती होना प्रकाश करती थीं वे न सती हुईं और इन दोनों छोटी रानियों से प्रकाश में प्रेम विशेष नहीं था और ये सती हुईं। कहाँ हैं और देश की स्त्रियाँ, आवैं, और आँख खोल कर भारतभूमि का प्रेम और पातिव्रत देखैं और लाज से सिर झुका लें।

१२. जज्ज द्वारकानाथ मित्र

स्वर्गीय आनरेबुल द्वारकानाथ मित्र ने सन् १८३१ में हुगली जिला के अंतर्गत आपता से एक कोस दूर अनुनाशी गाँव में एक साधारण हुगली और हबड़ा की कचहरी के मुख्तार विश्वनाथ मित्र के घर जन्म लिया था। बंगाली पाठशाला और हुगली ब्रांच स्कूल में पढ़कर हुगली कालेज में इन्होंने अंगरेजी विद्याध्ययन करके अपनी बुद्धि के चमत्कार से सब शिक्षकादिकों को अचंभित किया। ये अंगरेजी भाषा की पारंगतता के अतिरिक्त हिसाब किताब भी बहुत अच्छी भाँति जानते थे। हुगली कालेज से ये हिंदू कालेज में आए, जब इन के शील, औदार्य, चातुर्य, स्वातंत्र्य इत्यादि गुण सब छोटे बड़े के चित्त पर भली भाँति खचित हो गये थे। हुगली कालेज में मुख्य छात्रवृत्ति पाना तथा अपने पहिले ही लेख पर पारितोषिक पाना, कौन्सिल आफ एजुकेशन के रिपोर्ट में इन की स्थिति का लिखा जाना, और कलकत्ता युनिवर्सिटी के फेलोशिप के हेतु इन का चुना जाना ही इन के गुणों और विद्या का प्रत्यय देता है। एक कानूनी मनुष्य के पुत्र होने के कारण इन की चित्तवृत्ति एक साथ कानून की ओर फिरी और उसमें योग्य क्षमता पाकर सन् १८५६ में ये वकीली की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और उसी वर्ष के मार्च में अपना वर्तमान इंटरप्रिटर का पद छोड़कर इन्होंने सदर कचहरी में वकीली करना आरंभ किया। इन्होंने केवल अपने व्यय से एक औषधालय नियत किया और द्रव्यहीन छात्रों को उत्तम परीक्षा होने

तक सहायता करते थे और इन के सत्यप्रियता निष्पक्षपातिता, दोनों पर दया, मुकद्दमों के सूक्ष्म भावार्थों की समुझ और कार्य में चातुर्य इत्यादि गुण हाकिमों से लेकर चपरासियों तक विदित हो गए थे । और जज्ज लोग इन को विवाद की जड़ समझने और समझ ने से बहुत ही प्यार करते थे । विशेष कर के आनरेबुल पंडित शंभूनाथ अपनी वकीली से लेकर जज्ज होने की अवस्था तक इन्हें बहुत प्यार करते थे । ठकुरानी दासी के कर-संबंधी बड़े मुकद्दमे में १५ जज्जों के फुलबेंच के सामने मिस्टर डाइन ऐसे प्रसिद्ध वकील और अनेक अंगरेज वकीलों को सात दिन तक अनवरत वाग्धारा-वर्णण से और कानून संबंधी सूक्ष्म बातों की झर से परास्त कर के हिन्दू वकीलो में इन्होंने चिरकीर्त्ति का ध्वज स्थापित किया और गर्वनमेंट की इन पर विशेष दृष्टि से उस समय में जब कि इन की आमदनी एक लाख रुपये साल की थी, ये गवर्नमेंट के मुख्य वकील हुए । और पंडित शंभूनाथ के मृत्यु पर सन् १८६७ में ये बिना इच्छा किया भी जस्टिस पीकाक की प्रार्थनानुसार गवर्नमेंट से प्रधान जज्ज नियत किये गये और विचारासन पर बैठ कर जैसी योग्यता और शुद्ध चित्त से सावधान होकर उन्होंने काम किया वह हिंदूसमाज में चिरस्मरणीय है । जस्टिस पीकाक के अतिरिक्त कोई जज्ज इन की योग्यता के तुल्य नहीं गिने जाते थे और एक व्याभिचारिणी के दाय भाग के बड़े मुकद्दमे के समय बीमार होकर सात बरस सज्जी का काम करके अपने ग्राम में अपनी वृद्ध माता, तीसरी स्त्री, दो बालक और दो विवाहिता बालिका को छोड़ कर ये भारतवर्ष को शून्य करके अपनी ४३ वर्ष की अवस्था में ता. २५ फेब्रवरी सन् १८७४ बुध के दिन परलोक को सिधारे ।

१३. श्री राजाराम शास्त्री

श्रीयुत पंडितवर राजाराम शास्त्री वेदर श्रौतादि विविध विद्यापारीण श्रीयुत गोविंदभट्ट कार्लेकर के तीन पुत्रों में कनिष्ठ थे । जब ये दस वर्ष के लगभग थे तब इन के पितृचरण परलोक को सिधारे । फिर त्रिलोचन घाट पर एक ऋषितुल्य महातपस्वी श्रीयुत रानडोपनामक हरिशास्त्री विद्वान ब्राह्मण रहते थे, उन के पास इन्होंने अपनी तरुण अवस्था के प्रारंभ में काव्य और कौमुदी पढ़ कर आस्तिकनास्तिकों भयविध द्वाद्रश दर्शनाचार्यवर्य परम मान्य जगद्विदितकीर्ति श्रीयुत दामोदर शास्त्री जी के पास तर्कशास्त्राध्ययन प्रारंभ किया । थोड़े ही दिनों में इन की अतिलौकिक प्रतिभा देख कर इन को उक्त शास्त्री जी महाशय ने अपनी वृद्ध अवस्था के कारण पढ़ाने का आयास अपने से न हो सकेगा, जान कर श्रीमान् कैलास निवास परमानंदनिमग्न दिगंगनाविख्यात-यशोराशि प्रसिद्ध महा पण्डितवर्य श्रीयुत काशीनाथ शास्त्री जी के, जिन के नाम श्रवणमात्र के सहृदय पंडितवर समूह गद्‌गद होकर सिर डुलाते हैं, स्वाधीन कर दिया । और इन के प्रतिभा का अत्यंत वर्णन कर के कहा कि मैं एक रत्न आपको पारितोषिक देता हूँ जो आपके सुविस्तीर्ण शाखाकांडमंडित कुसुमचयाकीर्ण यशोवृक्ष को अपनी यशश्चन्द्रिका से सदा अम्लान और प्रकाशित रक्खेगा । फिर इन्होंने उक्त महाशय के पास व्याकरणादि विविध शास्त्र पढ़कर चित्रकूट में जाकर उत्तम उत्तम पंडितों के साथ विप्रतिपत्तियों में अत्युत्तम प्रतिष्ठा पाई और श्रीमंत विनायक राव साहेब ने बहुत सन्मान किया । फिर जब सांस्कृतादि विविध विद्या कलादि गुण-गण मंडित श्रीमान् जान म्यूर साहब की काशी में आप और पाठशाला में विविधि विद्या पारंगत पंडिततुल्य विद्यार्थियों की परीक्षा ली तब उक्त शास्त्री जी महाशय के विद्यार्थिगण में इन की अद्‌भुत प्रतिभा और अनेक शास्त्रोपस्थिति देख प्रसन्न होकर केवल इस अभिप्राय से कि ऐसे उत्तम पंडित-रत्न का अपने पास रहना यशस्कर है और आजमगढ़ के जिले में उक्त साहेब महाशय प्राड्विवाक थे इस लिए कहीं कहीं हिंदू धर्म शास्त्र के अनुसार निर्णय करने के विमर्श में और उनकी बनाई हुई अनेक सुंदर सुंदर कविता के परिशोधन में सहायता के लिए इन को अपने साथ ले गए । उन के साथ चार पाँच वर्ष के लगभग रह कर ग्वालियर में गए । वहाँ बहुत से उत्तम उत्तम पंडितों के साथ शास्त्रार्थ में परम प्रतिष्ठा और राजा की ओर से अत्युत्तम सन्मान पूर्वक विदाई पाकर संवत् १९१२ के वर्ष में काशी आए । तब यद्यपि विधवोद्वाहशंकासमाधि अर्थात् पुनर्विवाह खंडन श्रीमान् परम गुरु श्री काशीनाथ शास्त्री जी तैयार कर चुके थे तथापि उस को इन्होंने अपूर्व अपूर्व अनेक शंका और समाधानों से पुष्ट किया । इसी कारण उक्त शास्त्री जी महाराज ने अपने नाम के पहिले इन्हीं का नाम उस ग्रंथ पर लिख कर प्रसिद्ध किया । संवत् १९१३ के वर्ष के अंत में श्रीमान् यशोमात्रा विशेष

वालण्टेन साहेब महाशय ने सांख्यशास्त्राध्यापन के कार्य में इनको नियुक्त किया । उस कार्य पर अधिष्ठित होकर सपरिश्रम पाठन आदि में अनेक विद्यार्थियों को ऐसे व्युत्पन्न किया जिन की सभा में तत्काल अपूर्व कल्पनाओं को देख कर प्राचीन प्रतिष्ठित पंडित लोग प्रसन्न होकर श्लाघा करते थे । संवत् १९२० के वर्ष में राजकीय श्री संस्कृत पाठशालाध्यक्ष श्रीमान् ग्रिफिथ साहेब महाशय ने इन को धर्मशास्त्राध्यापक का पद दिया । सब से बराबर पढ़ा पढ़ा कर शतावधि विद्यार्थियों को इन्होंने उत्तम पंडित किया, जो संप्रति देशदेशांतर में अपने अपने विद्यार्थिगण को पढ़ाकर इन की कीर्त्ति को आसमुद्रांत फैला रहे हैं । कुछ दिन हुए श्रीमान् नंदन नगर की पाठशाला के संस्कृताध्यापक मोक्षमूलर साहिब महाशय की बनाई हुई अंगरेजी और संस्कृत व्याकरण की पुस्तक का परिशोधन और कई स्थलों में परिवर्तन किया था, जिससे उक्त साहिब महाशय ने अति प्रसन्न होकर इनकी कीर्त्ति अनेक द्वीपांतर निवासियों में विख्यात की, यहाँ तक कि जब उन्होंने अपने पुस्तक की द्वितीयावृत्ति छपवाई तब उस की भूमिका में लिखा है कि इन के समान संस्कृत व्याकरण जानने वाला इस द्वीप में तो क्या संसार भर में दूसरा कोई नहीं है । वे उक्त पंडित वर राजाराम शास्त्री संप्रति पाँच चार वर्ष से विरक्त हो कर योगाभ्यास में लगे थे और अपने दीन बांधवों का पोषण और दीन विद्यार्थी प्रभृति के परिपालन ही के हेतु अर्जन करते थे और आप साधारण ही वृत्ति से जीवन करते हुए मठ मेंनिवास करते थे । संवत १९३२ श्रावण शुक्ल १२ के दिन संन्यास लेकर उसी दिन से अन्न परित्याग पूर्वक परमार्थ का अनुसंधान करते करते मरण काल से अव्यवहित पूर्व तक सावधानता पूर्वक परमेश्वर का ध्यान करते करते भाद्रपद कृष्ण ३ गुरुवार को प्रात:काल ८ बजते बजते परमपद को प्राप्त हो कर यशोमात्रावशिष्ट रह गए ।

१४. लार्ड म्योसाहिबका जीवन चरित्र *

हा ! यह कैसे दु:ख की बात है कि आज दिन हम उस के मरण का वृत्तांत लिखते हैं जिस की भुजा की छाँह में सब प्रजा सुख से कालक्षेप करती थी और जो हम लोगों का पूरा हितकारी था । ऐसा कौन है इस को पढ़कर न कंपित होगा और परम शोक से किस की आँखों से आँसू न बहैंगे ? मनुष्य की कोई इच्छा पूरी नहीं होने पाती और ईश्वर और ही कुछ कर देता है । कहाँ युवराज के निरोग होने के आनंद में हम लोग मग्न थे और कैसे कैसे शुभ मनोरथ करते थे, कहाँ यह कैसा विज्जुपात सा हाहाकार सुनने में आया । निस्सन्देह भरतखंड के वृत्तांत में सर्वदा इस विषय को लोग बड़े आश्चर्य और शोक से पढ़ैंगे और निश्चय भूमि ने एक ऐसा अपूर्व स्वामी खो दिया है जैसा फिर आना कठिन है । तारीख १२ को यह भयानक समाचार कलकत्ते में आया और उसी समय सारा नगर शोकाक्रांत हो गया ।

गुरुवार ८वीं तारीख को श्रीमान् लार्ड म्यौ साहिब पोर्ट ब्लेयर उपद्वीप में ग्लासगो नामक जहाज पर आए और ढ़ाका और नेमिसिस नाम के दो जहाज और भी संग आए और साढ़े नौ बजे उन टापुओं में पहुँचे और ग्यारह बारह के भीतर श्रीमान् ने बर्मा के चीफ कमिश्नर इत्यादि लोगों के साथ कैदियों की बारक, गोराबारिक और दूसरे प्रसिद्ध स्थानों को देखा । उस समय श्रीमान् की शरीर रक्षा के हेतु बहुत से सिपाही, कांस्टेब्ल और गार्ड बड़ी सावधानी से नियत किए गए और थोड़ी देर जेनरल स्टुअर्ट साहिब की कोठी पर ठहर कर सब लोग जहाजों को फिर गए । अढ़ाई बजे सब लोग फिर उतरे और इन टापुओं के लोगों का स्वभाव जानकर सब लोग बड़ी सावधानी से चले और बड़े यत्न से सब लोग श्रीमान् की रक्षा करते रहे । उस समय श्रीमती लेडी म्यौ और सब स्त्रियाँ ग्लासगो जहाज पर ही थीं । ये लोग अबरदीन और ऐडो होते हुए बाइयर टापू में पहुँचे । यह स्थान रास के टापू से ढ़ाई कोस है और यहाँ १३०० कैदी रहते हैं, जो अपने बुरे कर्मों से काले पानी भेजे गए हैं । भय का स्थान समझ कर कांस्टेबल और सरकारी पलटन रक्षा के हेतु संग हुई और जेलखाना इत्यादि स्थानों को देख कर चथाम टापू में गए और वहाँ कोयले की खान देख कर फिर जहाज पर फिर आने का विचार करने लगे । अब ५ बजने का समय आया और सब लोग जहाज पर जाने को घबड़ा रहे थे कि श्रीमान् ने कहा कि हम लोग हिरात की पहाड़ी पर चढ़ें और वहाँ सूर्यास्त की शोभा देखें । यह पहाड़ी इसी टापू में है और इसके ऊपर

---

* शनिवार २४ फरवरी सन् १८७२ ई. कवि वचन सुधा जि. ३ सं. १३ में प्रकाशित (स.)

कोई बस्ती नहीं है, परंतु नीचे होप टौन नामक एक छोटी बस्ती है, जिस में कुछ कैदी काम करने वाले रहते हैं । यद्यपि सबेरे ऐसा लोगों ने सोचा था कि समय मिलैगा तो इस पहाड़ी पर जायेंगे, पर ऐसा निश्चय नहीं था और न यहाँ कुछ तयारी थी । ऐलिस साहिब इस पहाड़ी पर नहीं चढ़े और यहाँ पलटन के न होने से चथाम से पलटन बुलाई गई कि वह श्रीमान् की रक्षा करे और वहाँ से आठ कांस्टेबल रक्षा हेतु संग हुए । श्रीमान् एक छोटे टट्टू पर चलते थे और सब लोग पैदल थे । ऊपर बहुत से ताड़ और सुपारी के पेड़ों से स्थान घना हो रहा था और चोटी पर पहुँच कर श्रीमान् पांच घंटे तक सूर्यास्त की शोभा देखते रहे । यद्यपि सूर्यास्त हो चुका था पर ऊपर प्रकाश इतना था कि नीचे की घाटी दिखाती थी और अंधकार होता जान कर सब लोग नीचे उतरने लगे । मार्ग में केवल दो छूटे हुए कैदी मिले और उन लोगों ने कुछ बिनती करना चाहा । पर जेनरल स्टुअर्ट ने उन को टोका और कहा कि जब श्रीमान् स्वस्थ रहैं तब आओ । इन के अतिरिक्त और कोई मार्ग में नहीं मिला । कप्तान लकउड और कौंट बाल्गास्टन आगे बढ़ गए और एक चट्टान पर बैठे उन लोगों का मार्ग देखते थे । इस समय अंधेरा हो गया था, परंतु कुछ मार्ग दिखाई देता था और उन लोगों ने केवल कुछ मनुष्यों को पानी ले जाते देखा और कोई नहीं मिला । श्रीमान् सवा सात बजे नीचे पहुँचे और उस समय संपूर्ण रीति से अंधेरा हो गया था और एक अफसर ने मशाल लाने की आज्ञा दिया इस से कई मनुष्य भी संग के उन को बुलाने हेतु दौड़ गए । जब कैदियों के झोपड़े के आगे बढ़े, जेनरल स्टुअर्ट एक आवर्सियर को आज्ञा देने के हेतु पीछे ठहर गए और श्रीमान् आगे बढ़ गए । उस समय श्रीमान के आगे दो मशाल और कुछ सिपाही थे और उन के प्राइवेट सेक्रेटरी मेबर्न और जमादार भी कुछ दूर हो गए थे और कर्नल जरविस और मि. हाकिन और मि. एलिन भी पीछे छूट गए थे कि इतने में एक मनुष्य उनके बीच से उछला और श्रीमान् को दो छुरी मारी, जिस में से पहली दहिने कंधे पर और दूसरी बाएँ पर लगी । यह नहीं जाना गया कि यह किस मार्ग से वहाँ आया, क्योंकि चारों ओर लोग घेरे थे । पर ऐसा अनुमान होता है कि चट्टानों के नीचे छिप रहा था । श्रीमान् चोट लगते ही उछले और पास ही पानी के गड़हे में गिर पड़े यद्यपि लोगों ने उन को उठाकर खड़ा किया, पर ठहर न सके और तुरंत फिर गिर पड़े । उनके अंत के शब्द हैं "They've hit me Burne" उन लोगों ने मुझे मारा) और फिर दो एक शब्द कहे वह समझ न पड़े और उन के शरीर को लोग उठाकर जहाज पर लाने लगे, परंतु श्रीमान् तो पूर्व ही शरीर त्याग कर चुके थे और वीरों की उत्तम गति को पहुँच चुके थे । उस दुष्ट को अर्जुन सिंह नामक क्षत्रिय ने बड़े साहस से पकड़ा । कहते हैं कि उस ने पहिले तो उस हत्यारे के मुख पर अपना दुपट्टा डाल दिया और फिर आप उस पर एक साहिब की सहायता से चढ़ बैठा और फिर तो सब लोगों ने उस को हाथों हाथ पकड़ लिया और यदि उस समय विशेष रक्षा न की जाती तो लोग क्रोधावेश में उस को मार डालते । कहते हैं कि जिस समय उन का शरीर जहाज पर लाए हैं उस समय अनवरत रुधिर बहता था । जब श्रीमान् का शरीर ग्लासगो पर लाए उस समय लेड़ी म्यौ के चित्त की दाशा सोचनी चाहिए ! हा ! कहाँ तो यह प्रतीक्षा करी थी कि प्यारा पति फिर से आता है, अब उसके साथ भोजन करेंगे और यात्रा का वृत्तांत पूछेंगे, कहाँ उस पति का मृतक शरीर सामने आया । हाय हाय ! कैसा दारुण समय हुआ है !! परंतु वाह रे इन का धैर्य कि उसी समय शोच को चित्त में छिपा कर सब आज्ञा उसी भाँति किया जैसी श्रीमान् करते थे ! जब यह समाचार कलकत्ते में १२वीं तारीख को पहुँचा उसी समय आज्ञा हुई दुर्गध्वज अधोमुख हो और ३९ मिनिट पर सायंकाल तोप छूटें । कानून के अनुसार लार्ड नेपियर गवर्नर-जेनरल हुए और उसी टापू से एक एक जहाज उन के लाने को भेजा गया और श्रीमान के भाई भी फिर बुला लिए गये । परंतु लार्ड नेपियर के आने तक आनरैब्ल स्ट्रैची स्थानापन्न गवर्नर-जेनरल हुए । कहते हैं कि लार्ड नेपियर १६ तारीख को चले । जिस दिन ये वहाँ से चले थे उस दिन सब लोग शोक वस्त्र पहरे हुए इनको विदा करने को एकत्र हुए थे । श्रीमान् का शरीर कलकत्ते में आया और वहाँ से आयर्लैंड गया । लेडी म्यौ और श्रीमान् के दोनों भाई और पुत्र तो बम्बई जायंगे, वहाँ से जहाज पर सवार होंगे, पर श्रीमान् का शरीर सीधा कलकत्ते से ग्लासगो पर जायगा ।

नीचे लिखा हुआ आशय का पत्र कलकत्ते के छापे वालों को सर्कार की ओर से मिला है । 'आठवीं तारीख वृहस्पति के दिन श्रीमान् गवर्नर जेनरल बहादुर पोर्टब्लेअर नाम स्थान पर पहुँचे ओर रास नाम स्थान को भली-भाँति निरीक्षण कर वाइपर नामे टापू में पहुँचे, जहाँ महा दुष्ट गण रहते हैं । स्टीवर्ट साहेब सुपरिंटेन्डेन्ट ने श्रीमान के शरीर रक्षा के हेतु बहुत अच्छा प्रबंध किया था कि कोई मनुष्य निकट न आने पावे ।

पुलिस के व्यतिरिक्त एक विभाग पदचारियों का साथ था, परंतु यह श्रीमान् को लंकेश्वर जान पड़ता था और उन्हों ने कई बार निषेध किया । यहाँ से लोग चाथम में गए, जहाँ आरे चलते हैं और लकड़ी काटी जाती है । परंतु यह सब कर्म पाँच बजे के भीतर ही हो गया, तो श्रीमान् ने कहा कि होपटाउन प्रदेश में चल कर हरियट पर्वत पर आरोहण करके प्रदोष काल की शोभा देखना चाहिए । यह स्थिर कर सब लोग उसी ओर चले और साढ़े पाँच बजे वहाँ पहुँचे । थोड़े से पुलिस के सिपाही साथ में थे, क्योंकि वहाँ यह आशा न थी कि कोई दुष्कर्मा मिले — वहाँ सब रोग ग्रसित और श्रमित लोग रहते हैं । श्रीमान् बहुत दूर पर्यंत एक टट्टू पर आरूढ़ थे और उनके सहचारी लोग भूमि पर चलते थे । हारियट पर्वत पर पहुँच कर लोगों ने किंचित् काल विश्राम किया और फिर तीर की ओर चले । मार्ग में दो श्रमिक व्यक्ति मिले और श्रीमान् से कुछ कहने की इच्छा प्रकट की, परंतु स्टीवर्ट साहेब ने उनसे कहा कि तुम लोग लिख कर निवेदन करो । दो साहेब आगे थे और लोग साथ में थे । उन लोगों के तीर पर पहुँचने के पूर्व ही अंधकार छा गया और श्रीमान् के पहुँचते पहुँचते ''मशाल'' जल गए । तीर पर पहुँच कर स्वीटर्ट साहेब पीछे हट कर किसी को कुछ आज्ञा देने लगे । शेष २० गज आगे नहीं बढ़े थे कि एक दुष्कर्मी हाथ में छुरी लिए द्रुतवेग से मंडल में आया और श्रीमान् को दो छुरी मारी, एक वाम स्कंध पर और दूसरी स्कंध के पुट्ठे के नीचे । अर्जुन नाम सिपाही और हाबिन्स साहेब ने उसे पकड़ा और बड़ा कोलाहल मचा और ''मशाल'' बुत गए । उसी समय श्रीमान् भी या तो करारे पर से गिर पड़े वा कूद पड़े । जब फिर से प्रकाश हुआ तो लोगों ने देखा कि गवर्नर जेनरल बहादुर पानी में खड़े थे और स्कंध देश से रुधिर का प्रवाह बड़े बेग से चल रहा था । वहाँ से लोग उन्हें एक गाड़ी पर रख कर ले गए और घाव बाँधा गया, परंतु वे तो हो चुके थे । जब उन की लाश ग्लासगो नाम नौका पर पहुँची तो डाक्टरों ने कहा कि इन दोनों घाओं में एक भी प्राण लेने के समर्थ था । परंतु उस समय लेडी म्यो का साहस प्रशंसनीय था । उनको अपने ''राज'' नाश की अपेक्षा भारतखंड के राज के नाश और प्रजा के दुःख का बड़ा शोच हुआ ।' स्टुअर्ट साहेब ने इस विषय का गवर्नमेंट को एक रिपोर्ट किया है और एक सार्टिफिकेट डाक्टरों की ओर से भी गवर्नमेंट को भेजा गया है ।

शव यात्रा

हा! शनिश्चर (१७ वीं) को कलकत्ते की कुछ और ही दशा थी । सब लोग अपना अपना उचित कर्म परित्याग कर के विषन्नबदन प्रिंसेप घाट की ओर दौड़े जाते थे । बालक अपनी अवस्था को विस्मृत कर और खेल कुतूहल छोड़ उस मानव-प्रवाह में बहे जाते थे, वृद्ध लोग भी अपने चिरासन को छोड़ लकुट हाथ में, शरीर काँपते हुए उन के अनुसरण चले । — स्त्री बेचारी कुलमर्याद-सीमा-परिवद्ध उद्विग्नचित्त होकर खिड़कियों पर बैठी युगल नेत्र प्रसारनपूर्वक अपने हितैषी, परमविद्याशाली और परम गुणवान उपराज के मृतक शरीर के आगमन की मार्ग प्रतीक्षा करती थी । मार्ग में गाड़ियों की श्रेणी बँध गई थी, नदी में संपूर्ण नौकाओं के पताका युक्त मस्तूल झुक रहे थे, मानों सब सिर पटक पटक कर रो रहे हैं । दुर्ग से सेना धीरे धीरे आई और गवर्नमेन्ट हाउस से उक्त घाट पर्यंत श्रेणीबद्ध होकर खड़ी हुई और प्रत्येक वर्ग के पुरुष समुचित स्थान पर खड़े थे । एक सन्नाटा बँध गया था कि पौने पाँच बजे घाट पर से एक शतन्वी (तोप) का शब्द हुआ और उसका प्रतिउत्तर दुर्ग और कानी नाम नौका पर से हुआ । बाजावालों ने बड़ी सावधानी से अपने अपने वाद्य यंत्रों को उठाया और कलकत्ते के वालंटियर्स लोग आगे बढ़े । एक तोप की गाड़ी पर इंगलैंड के राजकीय पताका से आच्छादित श्रीमान् गवर्नर जेनरल का मृतक शरीर शव यात्रा के आगे हुआ । उस समय लोगों के चित्त पर कैसा शोच छा गया था उसका वर्णन नहीं हो सकता । ऐसा कौन पाहनचित्त होगा जिसका हृदय उस श्रीमान् के चंचल अश्व को देखकर उस समय विदीर्ण न हुआ होगा । उस के नेत्र से भी अश्रुधारा प्रवाहित होती थी । हा ! अब उस घाड़े का चढ़नेवाला इस संसार में नहीं है । उस से भी शोकजनक श्रीमान् के प्रिय पुत्र की दशा थी जो कि विषन्नवदन, अधोमुख, सजलनयन, बाल खोले अपने दोनों चचा के साथ पिता के मृतक शरीर के साथ चलते थे । हा ! ऐसी वयस में उन्हें ऐसी विपद पड़ी । परमेश्वर बड़ा विषमदर्शी दीख पड़ता है । वैसे ही मेजर बर्न भी देखे जाते थे । शोक से आँखें लाल और डबडबाई हुई थीं और अनाथ की भाँति अपने स्वामी वरन उस मित्र

के शोक में आतुर थे, जिनने उन्हें अंत में पुकारा और मरण समय उन्हीं का नाम लिया। हा! यह यात्रा निम्नलिखित रीति पर गवर्ननेंट हाउस में पहुँच। कार्टर मास्टर जेनरल के विभाग का एक अश्वारोही अफसर फस्ट बंगाल केवलरी (अश्वारोही सेना) का एक भाग, कलकत्ते के वालंटीयर्स की रैफल पलटन अस्त्र उलटा लिए हुए और श्री महाराणी की १४ वीं रेजिमेंट का शोकसूचक बाजा बजता हुआ।

श्रीमान् का बाजा

बॉडी गार्ड शरीररक्षक पैदल

दुर्ग और कथीड्रल गिरजा के पादड़ी श्री मान् के चापलेन

डाक्टर जे. फेअरर सी. एस. आई., करनेल जी. डिलेन कमांडिग बाडी गार्ड क. एफ. एच. ग्रेगरी

एडीकॉंग

डाक्टर ओ. बर्नेट

के. एच. वी. लॉकउड एडीकॉंग

क. टी. एम जोन्स आर. एन.

एल. टी. डीन

क. आर. एच. आट एडिकाग

श्रीमान् का मृतक शरीर

एक तोप की गाड़ी पर

सुबादार मेजर और सरदार बहादुर शिवबख्श अवस्ती

एडिकाग

क. सी. एल. सी. डी रोवक

एडिकांग

ले. सी. हाकिन्स आर. एन.

मेजर ओ. टी. बर्न प्राईवेट सेक्रेटरी।

मुख्य शोक प्रकाशक।

आनरेब्ल आर. बोर्क, आनरएब्ल टी. बोर्क, मेजर बोर्क।

श्रीमान् का विश्वासपात्र क्लर्क वा लेखक।

श्रीमान् के सेवक।

श्रीमान् के पलटन के अफसर।

श्रीमान् के एतद्देशीय सेवक।

माझी नौकास्थ लोग और ग्लासगो और डाफनी नाम नौका का तोपखाना।

उक्त नौकाओं के अफसर।

अस्मिन् कालिक गवर्नर-जेनरल।

बंगाल के लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर और श्रीमान् कमांडर-इन-चीफ।

बंगाल के चीफ जस्टिस, कलकत्ते के लॉर्ड बिशप, आर्क बिशप और पश्चिम बंगाल के विकार अपॉस्टोलिक।

श्रीमान् गवर्नर-जेनरल के सभा के सभासद।

कलकत्ते के पुइन जज्ज।

सभा के अधिक सभासद।
एतद्देशीय राजे।
कन्सलस् जेनरल। बरमा के चीफ कमिश्नर।
अन्य देशों के कन्सल एजेन्ट।
गवर्नमेन्ट के सेक्रेटरी।

इन के पीछे और बहुत से लोग पलटन के अफसर इत्यादि और लेफिटनेन्ट गवर्नर के साथ के लोग थे।

यद्यपि अनुचित तो है, परंतु ऐसी शोभा कलकत्ते में कभी देखने में नहीं आई थी और ईश्वर करे न कभी देखने में आवे।

श्रीमान् का शरीर सर्वसाधारण लोगों के देखने के लिये तीन दिन पर्यंत मारब्लहाल रक्खा गया है और सब लोग श्रीमान् का अन्त का दरबार करने वहाँ जायँगे।

हे भारतवर्ष की प्रजा ! अपने परम प्रेमरूपी अश्रुजल से अपने उस उपराज्याधीश का तर्प्पण करो जो आज तक तुम्हारा स्वामी था और जिस की बाँह की छाँह में तुम लोग निर्भय निवास करते थे और जो अनेक कोटि प्रजा लक्षावधि सैन्य के होते हुए भी अनाथ की भाँति एक क्षुद्र के हाथ से मारा गया और एक बेर सब लोग निस्संदेह शोक-समुद्र में मग्न होकर उस अनाथ स्त्री लेडी म्यौ और उनके छोटे बालकों के दुःख के साथी बनो। हा ! लेखनी दुःख से आगे लिखने को असमर्थ हो रही है, नहीं तो विशेष समाचार लिखती। निश्चय है कि पाठकजन इस असह्य दुःख रूपी वृत्त को पढ़ कर विशेष दुःखी होने की इच्छा भी न रक्खैंगे।

श्रीमान् स्वर्गवासी के मरण पर लोगों ने क्या किया।

जिस समय यह शोक रूपी वृत्त श्रीमती महाराणी को पहुँचा श्रीमती ने लेडी म्यौ और बर्क साहेब को तार भेजा कि हम लोगों के उस अपार दुःख से अत्यंत दुःखी हुए और हम तुम लोगों के उस दुःख के साथी हैं जो श्रीमान् लार्ड म्यौ के मरने से तुम पर पड़ा है ! सेक्रेटरी आफ स्टेट ने भी इसी भाँति स्थानापन्न गवर्नर जेनरल को तार दिया कि "हम इस समाचार से अत्यंत दुःखी हुए। निस्संदेह भरतखंड ने एक अपना बड़ा योग्य स्वामी नाश किया और यह ऐसा अकथनीय वृत्तांत है कि इस समय हम विशेष कुछ नहीं कह सकते"। महाराज साम ने भी स्थानापन्न गवर्नरजेनरल को तार दिया है कि हम इस दुःख में लेडी म्यौ और भारत की प्रजा के साथ हैं, जो उन लोगों पर अकस्मात् एक योग्य स्वामी के नाश होने से आ पड़ा है। महाराज जयपुर को जब यह समाचार गया एक संग शोकाक्रांत हो गए और राज के किले का झंडा गिरवा दिया और पंचमी का बड़ा दर्बार बंद कर दिया और बीस बीस मिनट पर किले से शोक सूचक तोप छूटी और नगर में एक दिन तक सब काम बंद रहा। सुना है कि महाराज कलकत्ते जायंगे। पटियाला के महाराज ने एक शोकसूचक इश्तिहार प्रकाशित किया और अपने दर्बारियों को आज्ञा दिया कि शोक का वस्त्र पहिरें। महाराज कपूरथला ने भी ऐसा ही किया और अवध अंजुमन के सेक्रेटरी को एक पत्र भेजा कि उन के स्मरणार्थ उद्योग करै। कलकत्ते की दशा तो लिखने के योग्य ही नहीं है, न ऐसा कभी पूर्व में हुआ था और न ईश्वर करै होय। वसंत पंचमी का नाच गान सब बंद हो गया और नगर में दूकानें सब कई दिन तक बंद रहीं, बरात नहीं निकली, कई लग्न टाल दिए गए। वहाँ के जस्टिस आफ दि पीस लोग मिल कर एक शोकपत्र श्री लेडी म्यौ को देने वाले हैं और भी अनेक शोकसूचक कृत्य हो रहे हैं। बंबई में भी सब दूकानें बंद हो गई और सब कारखाने बंद हो गए। बनारस में भी इस समाचार के आने से कई स्कूल बंद हो गए और कई शोकसूचक कमेटियाँ हुईं। बंबई में फरासीस, इटली ओर प्रशिया इत्यादि देशों के राजदूतों ने अपनी कोठियों के राज के झंडे आधे गिरा दिये और सब मिल कर शोक का वस्त्र पहिन कर वहाँ के गवर्नर के पास गए थे और वहाँ सब लोगों ने शोक भरी वार्त्ता किया और उस के उत्तर में लाट साहिब ने भी एक सुरस भाषण किया। हा ! ईश्वर फिर यह दिन लावे !!

उस चांडाल दुष्ट हत्यारे शेरअली के विषय में फ्रेंड आफ इंडिया के संपादक से हम पर्ण सम्मति करते हैं। निस्संदेह उस दुष्ट को केवल प्राण दंड देना तो उस की मुँह माँगी बात देनी है, क्योंकि मरने से डरता तो

ऐसा कर्म न करता । संपादक महाशय लिखते हैं कि ये दुष्ट प्राण से प्रतिष्ठा और धर्म को विशेष मानते हैं इस से ऐसा करना चाहिये जिस में इन दुष्टों का सुख भंग हो और धर्म और प्रतिष्ठा दोनों को हानि पहुँचे । वह लिखते हैं (और बहुत ठीक लिखते हैं, अवश्य ऐसा ही वरन् इस से बढ़ कर होना चाहिये) कि उस के प्राण अभी न लिये जायँ और उसे खाने को वह वस्तु मिलैं जो "हराम" है और वस्त्र के स्थान पर उस को सूअर के चर्म की टोपी और कुरता पहिनाया जाय । यावच्छक्ति उस को दुःख और अनादर दिया जाय । ऐसे नीच के विषय में जितनी निर्दयता की जाय सब थोड़ी है और ऐसे समय हमलोगों को कानून छप्पर पर रखना चाहिए और उस को भरपूर दुःख देना चाहिये ।

श्रीमान् लार्ड म्यो स्वर्गवासी के मरने का शोक जैसा विद्वानों की मंडली में हुआ वैसा सर्वसाधारण में नहीं हुआ । इस में कोई संदेह नहीं कि एक बेर जिस ने यह समाचार सुना घबड़ा गया, पर तादृश लोग शोकाक्रांत न हो गए इस का मुख्य कारण यह है कि लोगों में राजभक्ति नहीं है । निस्संदेह किसी समय में हिंदुस्तान के लोग ऐसे राजभक्त थे कि राजा को साक्षात् ईश्वर की भाँति मानते और पूजते थे, परंतु मुसल्मानों के अत्याचार से यह राजभक्ति हिंदुओं से निकल गई । राजभक्ति क्या इन दुष्टों के पीछे सभी कुछ निकल गया; विद्या ही का वैसा आदर न रहा । अब हिंदुस्तान में तीन बात का बड़ा घाटा है — वह यह है कि लोग विद्या, स्त्री, राजा का तादृश स्वरूप ज्ञान पूर्वक आदर नहीं करते । विद्या को केवल एक जीविका की वस्तु समझते हैं । वैसे ही स्त्री को केवल काम शांत्यर्थ वा घर की सेवा करने वाली मात्र जानते हैं । उसी भाँति राजा को भी केवल इतना जानते हैं कि वह मुझ से बलवान है और हम उस के वश में हैं । राजा का और अपना संबंध नहीं जानते और यह नहीं समझते कि भगवान की ओर से वह हम लोगों के सुख दुख का साथी नियत हुआ है, इससे हम भी उस के सुख दुःख के साथी हैं ।

हम आशा रखते हैं कि श्रीमान् गवर्नरजेनरल बहादुर के अकाल मृत्यु का समाचार अब सब को भली भाँति पहुँच गया । हम लोगों ने जिस समय यह संवाद सुना शरीर शिथिलेंद्रिय और वाक्य-शून्य हो गया । यदि कोई आकर कहे कि चंद्रमा में आग लगी है तो कभी विश्वास न होगा । उसी प्रकार भरतखंड के उपराज का एक कैदी के हाथ से मारा जाना किसी समय में एकाएकी ग्राह्य नहीं हो सकता । हाय ! देश को कैसा दुःख हुआ ! अभी वे ब्रहम देश की यात्रा कर के अंडमन्स नाम द्वीपस्थित दुखियों के सहायार्थ उपाय करने को जाते थे और वहाँ ऐसी घटना उपस्थित हुई । चीफ जस्टिस नारमन का मरण भूलने न पाया और एक उस से भी विशेष उपद्रव हुआ और फिर भी मुसल्मान के हाथ से । यद्यपि कई अंग्रेज़ी समाचार पत्र संपादकों ने लिखा है कि जो कारण नारमन साहेब के मारने का था सो श्रीमान् के घात का कारण नहीं हो सकता, परंतु इस में हमारी सम्मति नहीं है । क्योंकि यदि शेरअली के मन यह बात पहिले से ठनी न होती तो वह ऐसे निर्जन स्थान में छुरी ले कर छिपा क्यों बैठा रहता ! फिर एक दूसरे कैदी के "इज़हार" से स्पष्ट ज्ञात होता है । जिस समय शेरअली ने अब्दुल्ला के और नारमन साहेब के मरण का समाचार सुना कैसा प्रसन्न हुआ और लोगों का निमंत्रण किया । यदि वह उस वर्ग का न होता जो कि तन मन से चाहते हैं कि सरकार "काफिर" है इस लिये उस के बड़े बड़े अधिकारियों के मारने से बड़ा "सवाब" होता है । प्रसन्नता और निमंत्रण का क्या कारण था ? फिर वह स्वत: कहता है कि अपने मरण के पूर्व मैं एक बात कहूँगा । वह कौन सी बात हो सकती है ! इन सब विषयों को भली भाँति दृढ़ कर के तब उस को फाँसी देना उचित है ।

१५. लार्ड लारेन्स

सन् १८११ ई. ४ मार्च को उक्त महात्मा ने जन्म ग्रहण किया था । उन्होंने पहिले कुछ दिन वर्ड लण्डन डेरी के काथेल कालिज में शिक्षा लाभ की थी, बाद उस के हेलिवार कालिज में पढ़ने लगे । १८२९ ई. में सिविलियन हो कर भारतवर्ष में आए । १८३१ ई. में दिल्ली के रेजिडेण्ट और चीफ कमिश्नर के सहकारी हुए । १८३२ ई. में प्रतिनिधि मजिस्टर और कलक्टर हुए । १८३४ ई. में पानीपत के प्रतिनिधि मजिस्टर हो के गए । दो बरस के बाद गुड़गाँव के एजेण्ट मजिस्टर और डिपटी कलक्टर हुए । कई एक वर्षों के बाद दिल्ली के मजिस्टर हुए । उस समय यहाँ के गवर्नरजेनरल सर हेनरी हारडिंग थे । उन्हों ने इन की चमत्कार राजनीति देख कर इन को शतद्रु तीरस्थ प्रदेशों का कमिश्नर कर के भेज दिया । १८४८ ई. में लारेन्स लाहौर

के रेजिडेण्ड के प्रतिनिधि हुए । सिक्खों की दूसरी लड़ाई के बाद डलहौसी ने पंजाब शासन करने के लिये एक एडमिनिस्ट्रेशन बोर्ड स्थापन किया । उस में यह और इन के बड़े भाई सर हेनरी लारेन्स, चार्लस और मानसेल सभ्य नियुक्त हुए । इन दोनों भाइयों ने राज्य शासन संबंध में अति उत्तम क्षमता और निपुणता दिखाई । जॉन लारेन्स ने १८५७ ई. के गदर में अपनी अद्‌भुत शक्ति के प्रभाव से पंजाब को शांत रक्खा था, इसी लिये आज तक भारत साम्राज्य अव्याहत है । उस समय लारेन्स पंजाब के चीफ कमिश्नर थे । १८५६ ई. में लारेन्स को के. सी. बी. की उपाधि मिली और बाद ही इन को जी. सी. बी. की भी उपाधि मिली थी । १८५८ ई. में यह महाराज बारनट होकर प्रीवी कौंसिल के सभ्य हुए । १८६३ ई. के डिसेम्बर महीने में भारतवर्ष के गवर्नर-जेनरल होकर लार्ड एलगिन के उत्तराधिकारी हुए । १८६९ ई. के मार्च महीने में यह लार्ड उपाधि प्राप्त हो कर पार्लियामेण्ट में सभ्य हुए । लार्ड लारेन्स का धर्म विषय में विशेष अनुराग था । इन्हों ने भारतवर्ष के गवर्नमेंट स्कूल समूहों में बाइब्ल पढ़ाने का प्रस्ताव किया था । और और भी विशेष गुण इन में थे । आज कल यह पार्लियामेण्ट में भारतवर्ष संबंधी विषयों की चर्चा विशेष करने लगे थे । जिस में भारतवर्ष का मंगल हो, इन की यही इच्छा और चेष्टा रहती थी । ऐसे हितकारी मित्र को खोकर जो भारतवर्ष शोकाकुल न होगा, यह कहना बाहुल्य है । उनके सन्मानार्थ १ जुलाई को कलकत्ते के किले का निशान गिरा था और ३१ तोपें दागी गई थीं । लार्ड हेस्टिंग्स के बाद और किसी का ऐसा सम्मान नहीं किया गया था । वेस्टमिनिस्टर ऐबे में इन को समाधि दी गई है ।

१६. महाराजाधिराज जार

ता. १३ मार्च (१८८१ ई.) रविवार के दिन रूस के शाहनशाह जार राजकीय गाड़ी में बैठकर भजन मंदिर से अपने भवन में जाते थे कि इस बीच में किसी दुष्ट ने कुलफीदार गोला उन की गाड़ी के नीचे फेंका. परंतु वार खाली गया । तब दूसरा फेंका । इस बेर गोला फूट गया और उस के भीतर की बारूद और गोलियों ने चारो ओर उड़ कर गाड़ी को विध्वंस किया । और जार के पैरों का पता न लगा । केवल दो घण्टा प्राण रहा, पश्चात् शाहनशाह रूस पंचत्व को प्राप्त हुए । इस गोले ने कई मनुष्यों का प्राण लिया । इस दुष्ट घातक के पकड़ने का शोध हुआ और पकड़ा गया । इस की अवस्था केवल २१ वर्ष की है; नाम इस का रोसा काफ है । यह खनन विद्या में निपुण है । पहले तो इस दुष्ट ने अपने अपराध को अस्वीकार कर के बचाव किया था, पर यह गुप्तभाव कब छिपे । अंत में इस ने सब कुछ अपने मुख से प्रगट किया । इस घोर विपत्ति से रूस में हाहाकार मचा है । यूरोप के लोगों को भी बड़ा दुःख हुआ है । राजकुमार जारविच् रूसी राज्य के उत्तराधिकारी अपने पिता के पद पर नियुक्त हुए और उन का राजकीय नाम "तृतीय एलेकजेंडर" रक्खा गया है । ड्यूक आफ एडिम्बरा सपत्नीक सेंटपीटर्सबर्ग में गये हैं । इंगलैंड में इस मास भर अधिकारी लोग शोचसूचक वस्त्र धारण करेंगे । हाउस आफ कामंस और लाईस की तरफ से दुःख सान्त्वन पत्र भेजे जायंगे । निहिलिस्ट लोग इस दुष्ट कर्म के करने में बहुत दिन से लगे हुए थे और कई बेर जो नहीं सो कर चुके थे पर शाहनशाह की आयुष्य थी, इस से इनका यत्न पूरा नहीं होता था । अब की इन्होंनें अपना दुष्ट संकल्प पूरा किया । शाहनशाह रूस जैसे शूर और पराक्रमी थे सो समस्त भूमंडल में प्रख्यात ही है ।

इस महान् व्यक्ति का जन्म सन् १८१८ में हुआ । उस समय इन के चाचा अलेकज़ांडर प्रथम रूस के राजसिंहासन पर थे । इन की पूरी सात वर्ष की अवस्था भी नहीं हुई थी कि इन के चाचा साहब स्वर्गवासी हुए । मृत अलेकजांडर के भाई कांसटेंटाइन ने राज्य के भार से मुख मोड़ लिया था, इस कारण जार के पिता निकोलस को गद्दी मिली और ये युवराज हुए । इस के अनंतर रूसी सैनिक लोगों में बलवा उत्पन्न हुआ और वह कई दिन तक रहा । इन बलवाइयों का नाम "डेकाब्रिस्टस" था और ये लोग राजकीय कुटुंब के पूर्ण शत्रु थे । इन का यह संकल्प था कि जैसे जर्मनी के छोटे छोटे हिस्से हो गए हैं, वैसे ही इस राज्य के भी हो जावें । परंतु बहुत सी अन्य प्रामाणिक सैन्य समूह ने प्रथम निकोलस को इन के पराजय करने में बड़ी ही सहायता दी, जिस ने इन का दुष्ट संकल्प निर्मूल हो गया । सन् १८२५ में राजकीय व्यवस्था भली भाँति स्थापित करके निकोलस अपनी इच्छानुसार राज करने लगे । जार की माता प्रुशिया के सम्राट् तृतीय फ्रेडिरिक की कन्या थीं ।

इन्हों ने स्वयं अपने लड़के ज़ार को विद्या सिखाई, परंतु इस बात से इन के पिता अप्रसन्न रहते थे । उन्होंने ज़ार को फौजी गवर्नरों और निपुण शिक्षकों के पास विद्योपार्जन के निमित्त बैठाया । इस बात को जार ने अनहित समझ अपने को उस शिक्षा से हटाया और देश देश पर्यटन करने लगे और कुछ काल तक अपनी माता की संबंधिनी स्त्रियों के सहवासी रहे । ये राजकीय प्रबंधों से बहुत प्रसन्न रहते थे । सैनिक कामों में इन का मन कुछ भी नहीं लगता, जो बात रूसी राज दरबार के संपूर्ण विरुद्ध थी । इस विषय में पूर्ण चिंतना और यह कल्पना होने लगी कि इस युवराज के अधिकार में पुराने रूसी समूह क्योंकर रहने पावेंगे । यह बात इन के भाई ग्रांडड्यूक कांस्टेन्टाइन के लिये परमोपयोगी थी । इन दोनों भाइयों में इस कारण ईर्षा उत्पन्न हुई । सामान्यत: इस बात की चर्चा होने लगी और कभी कभी लड़ाई भी हो जाती थी ।

एक समय की बात है कि इन के भाई कंस्टेन्टाइन ने जो समुद्रीय सेना के एडमिरल थे, इतनी अधिक शत्रुता इन पर की कि ये कैद कर लिए गए । इस व्यवहार के पल्टे निकोलस ने यही दंड देना कंस्टेन्टाइन को योग्य समझा । इस आपुस के विरोध से इनके पिता को बड़ा शोच रहता था । जब कि सन् १८४३ में अलेकजैंडर का प्रथम पुत्र जन्मा तब निकोलस ने कांस्टेन्टाइन से शपथ ली कि वह युवराज का आज्ञाकारी रहेगा । निदान निकोलस ने अपने मरने के समय दोनों लड़कों को बुलाकर उन के समक्ष अलैक्ज़ैंडर को राज्याधिकार का तिलक दे दिया और इन दोनों से शपथ ली कि आपुस में विरोध रहित राज्य प्रबंध में सन्नद्ध रहें, जिस से प्रजा और राज्य को हानि न पहुँचे । यह सुन शाहज़ादे ने बड़े बड़े प्रधान मंत्रियों के सन्मुख प्रतिज्ञा की कि राज्य प्रबंध हम भलीभाँति करेंगे और अपने को द्वितीय अलेजैंडर के नाम से विख्यात किया । उसी दिन अपरान्ह समय सब राजकीय और सैनिक कर्मचारियों ने जो सेन्टपीटर्सबर्ग में थे आज्ञाकारिता स्वीकार की और भेंटें दीं । एक कौंसिल जो नवीन अलेक्जेंडर के लिए नियत हुई थी उस में यह विचार ठहरा कि जो युद्ध उस से और अन्य राजों से हो रहा है वह हुआ करे । अलेक्जेंडर का प्रथम काम यह था कि उस ने समग्र राज्यभर में अपने नाम और राज्यसिंहासन पर स्थित होने का विज्ञापन दिया और उस में यह आशय प्रगट किया कि मुख्य अभिप्राय मेरा यह है कि जिस प्रकार से पीटर, कैथराइन, अलेक्जेंडर प्रथम के समय से राज्य की प्रभा और वैभव बढ़ती आई है और वैसी ही बढ़ा करे । जेनरल रुड़ीगर को वार्स नामक स्थान से बुलाकर राजकीयगार्ड की कमान दी और अपनी शान, शौकत के मुआफिक सेना भरती की; वाणिज्य की उन्नति में भी बड़ी चेष्टा की । राज्य में बहुत से गुलाम जो सरदार लोगों के पास थे उनमें से २३०००००० गुलामों को दासत्व भाव से मुक्त कराया । यही नहीं वरन् उन को पेट भरने का उद्योग भी बतला दिया । निस्संदेह यह काम जार का, जो सन् १८६१ में हुआ था, अत्यंत प्रशंसा के योग्य है । इन्होंने सरकारी कालेज स्थापित किए । देश देश में सभा नियत कराई । फेब्रुअरी सन् १८६८ में पोलैंड गुलामों को भी स्वाधीन किया । इस के करने का अभिप्राय यह था कि पोलेंड के सरदारों का ऐश्वर्य्य न्यून हो जाय, क्योंकि पूर्व में उस भूमि के स्वामी वेही लोग थे । जार की विद्याविभाग की ओर दृष्टि इतनी अधिक बढ़ी थी कि उन्होंने यूरप के कालिजों के समान अपनी राजकीय पाठशाला में बड़े बड़े पद स्थापित किए थे और यह प्रबंध बड़ा ही उत्तम था कि प्रत्येक सूबे की ओर से मेंबर भरती होते थे । इन की सभा प्रथम सन् १८६५ में हुई थी, जिस से बहुत कुछ उपकार के पलटे अपकार की संभावना भी हुई । जार ने अपनी प्रजा को युद्ध विद्या में बहुत निपुण किया और राज्य में पंचायती कोर्ट न्याय करने की स्थापित कर दिए । सन् १८६६ में इन्होंने बुखारे के अमीर से लड़ाई प्रारंभ की, जो डेढ़ वर्ष तक होती रही । इस में रूसी लोग विजयी हुए और समरकंद पर अपना अधिकार जमा लिया । सन् १८६८ में जार ने अपना अमेरिका प्रदेश यूनाइटेड स्टेट्स की गवर्नमेन्ट अमेरिका के हाथ १४००००००) रुपये को बेंच दिया । जब फ्रेंच और जर्मन में लड़ाई होने लगी और जर्मन लोगों ने पैरिस नामक स्थान को घेर लिया तब जार ने सन १८५६ के संधिपत्र को (जिस से बलपक्सी की सीमा बाँधी गई थी) मानना अंगीकार किया । इस से बड़े बड़े राष्ट्रों की बड़ी कठिनता देख पड़ने लगी । सन् १८७१ में इस निमित्त एक कान्फरेन्स हुआ, जिस में जार के इच्छानुरूप संधिपत्र स्थापित हुआ । सन् १८७२ में जब चार बर्लिन नगर को गए तो जर्मन और ऑस्ट्रिया के सम्राट से भेंट किया । ये दोनों महाराज सेन्टपीटर्सबर्ग में थे । शाहनशाह की भेंट के लिए निमंत्रित होकर आए थे । उस अवसर में बड़ा उत्सव हुआ था । सन् १८७३ में जेनरल कॉफमैन ने खीवा को अधिकार में लाकर इस का कुछ खंड रूसी महाराज्य में जोड़ा था । सन् १८७४ में इन्हों ने अपने राज्य के चारो ओर

पर्यटन किया । जहाँ जहाँ इन का गमन होता था वहाँ वहाँ की प्रजा बड़ी धूम धाम से इनका आदर सम्मान करती थी । सन् १८७५ में इनके जेनरल कॉफमैन ने कोखंद नामक स्थान को सर किया और सब्ज दरिया का उत्तर भाग अपने अधिकार में करके मस्कविट के राज्य को मिला लिया । सन् १८७६ में जब टर्की और सर्विया के बीच में युद्ध प्रारंभ हुआ, उनमें इन्होंने कुछ स्वयं सहायता किसी को नहीं की । हाँ, रूसी लोग सर्विया की सैन्य समूह में गए थे । जब तुर्क लोगों ने अलेक्जिनाक को फतः कर लिया उस समय कुस्तुन्तुनिया में रहने वाले वकील ने सुल्तान को छ सप्ताह तक युद्ध बंद करने के लिये एक निवेदनपत्र प्रदर्शित किया था, जिसे सुल्तान ने मान्य किया । सन् १८७७ में टर्की और सर्विया के मध्य एक संधिपत्र हुआ और इसी वर्ष में यूरप के सब राजों के वकीलों का कुस्तुन्तुनिया में कान्फरेंस हुआ था, उसमें जो व्यवस्था नियत हुई सो टर्की के सुल्तान को माननीय न हुई, उस कारण जार ने टर्की से लड़ने का उद्वेश प्रगट किया । इस युद्ध में तुर्क लोग बड़ी शूरता से लड़े, परंतु तुर्की लोग पराजित हुए ।

उस समय रूसी सेना कुस्तुन्तुनिया के द्वार तक पहुँची थी । सन् १७७८ ता. १९ फेब्रुआरी को एक संधिपत्र स्थान स्टेफेनो में हुआ, जिस के नियम बर्लिन के कान्फरेंस में कुछ परिवर्तन हुए थ । जार का चित्त सर्वदा धर्म विषय में लगा रहता था, इसी कारण ये सब भजनमंदिरों के अध्यक्ष हुए थे; परंतु ये रोमनकैथलिक चर्च से द्वेश रखते थे । जार के ऊपर दो मारण-प्रयोग हुए — प्रथम सन् १८६६ ता. १६ एप्रिल को ज्योंही ये गाड़ी पर सवार होते थे कि एक काराकोजोव विद्यार्थी ने गोली चलाई, परंतु एक कारीगर ने उसी क्षण अपने बुद्धिबल से उस विद्यार्थी के हाथ को फेर दिया, इस कारण निशाना उस का खाली गया ।

इस बात को देखकर जार ने उस कारीगर कामिसरोफ नामक को उच्च पदवी का सरदार बनाया । द्वितीय सन् १८६७ में ता. ६ जून को पारिस में पोल जाति के बरेजोवास्की नामक पुरुष ने इन पर गोली चलाई थी, उस समय जार अपने दोनों पुत्र और शाहनशाह नेपोलियन के साथ गाड़ी में बैठे थे । परंतु कुशल हुई, कि गोली किसी को न लगी केवल एक अर्दली सवार का घोड़ा जख्मी हुआ । दूसरी गोली वह दुष्ट छोड़ता ही था कि बंदूक की नली फट गई और उसी के हाथ में जा लगी । जार का विवाह ता. २८ एप्रिल सन् १८४१ में हेंस की राजकन्या मेरिया एलेक्जांड्रोविना से हुआ, जिससे संतति बहुत हुई । ज्येष्ठ पुत्रस्वर्गवासी निकोलस का जन्म ता. २२ सेप्टेम्बर सन् १८४३ में हुआ था जो सन् १८६५ में मृत्यु के वश हुआ । द्वितीय पुत्र एलेग्जेंडर ता. १० मार्च सन १८८५ में जन्में और उन का विवाह ता. ९ नवम्बर सन् १८६६ में डेनमार्क की राजकन्या मेरिया फेडोरविना से हुआ । इन की राजकन्या डचेज मेरी का विवाह ता. २३ जनवरी सन् १८७४ में इंगलैंड के राजकुमार ड्यूक आफ एडिम्बरा से हुआ ।

Francis I King of France.

इन का जन्म सन् १४९४ सेप्टेम्बर की १२ वीं तारीख को दो पहर बाद १० घंटा ३७ मिनट पर । जन्मदेश का अक्षांश याम्य ४८ अंश, उस समय दशम का विपुवांश ३३ अंश ४८ कला, दशम लग्न ११ राशि ६ अंश, जन्म लग्न ३ राशि ५ अंश ५६ कला ।

सायना: स्पष्ट ग्रहा:

र.	चं.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	ग्रहा:
५	१०	६	४	४	५	११	रा.
२८	२७	१९	१५	२३	२३	१०	अ.
३९	३०	१०	५०	१५	५४	२२	क.

दक्षिण चन्द्र क्रांति १० अंश २ कला । दक्षिण शनिक्रांति: ९ अंश ४३ कला ।

जन्म कुंडली

Charles V Emperor of Germany

इन का जन्म सन् १५०० फेब्रुअरी की चौबीसवीं तारीख आधीराता के बाद २ घन्टा ३९ मिन्ट। जन्मस्थान का अक्षांश याम्य ५२ अंश। उस समय दशम का विषुवांश २२० अंश, दशम लग्न ७ राशि १२ अंश २७ कला, जन्म लग्न ९ राशि ५ अंश ४४ कला।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः

र.	चं.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	ग्रहाः
११	९	११	११	१	११	१	रा.
१४	६	१९	२६	२४	७	१७	अ.
३०	४५	३६	४०	४०	२९	३७	क.

जन्म कुंडली

Napoleon III Emperor of France.

इन का जन्म सन् १८०८ एप्रिल की २० वीं तारीख की आधीरात के बाद १ घंटा पर। जन्मस्थान प्यारिस, दशम का विषुवांश २२२ अंक ५६ कला, दशम लग्न ७ राशि १५ अंश २४ कला, जन्म लग्न ९ राशि १ अंश २४ कला।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः संक्रांतयः

र.	चं.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	उर्नस	ग्रहाः
०	१०	०	०	०	११	७	७	रा.
२९	२६	२	२	२९	९	२०	३	अं.
४५	२९	३२	२	५३	२४	२४	८	क.
क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	
११	७	१	०	११	८	१५	१२	अं.
२४	४६	१८	३८	७	५५	२८	३	क.

जन्म कुंडली
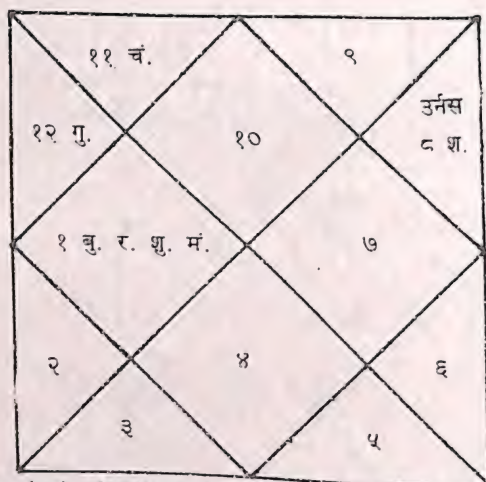
Frederic William V Emperor of Germany.

इन का जन्म सन् १७९७ मार्च की २२ वीं तारीख को दो पहर के बाद दो बजे पर । जन्मस्थान बर्लिन, दशम विषुवांश ३० अंश ३० कला ४४ विकला, दशम लग्न १ राशि २ अंश ३३ कला, जन्म लग्न ४ राशि १८ अंश कला ।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः संक्रांतयः

र.	चं.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	उर्नस	ग्रहाः
०	९	११	११	१	११	२	५	रा.
२	२५	७	१४	१५	२७	२१	९	अ.
२५	२४	२२	५२	२८	३६	४८	५९	क.
क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ३	
०	२३	१०	७	१७	१	२२	८	अ.
५८	३०	४६	१९	२	५६	१२	३५	क.

जन्म कुंडली
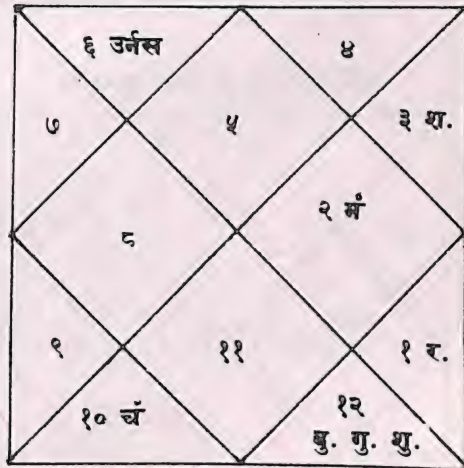
महाराज मलहार राव की जन्म कुण्डली
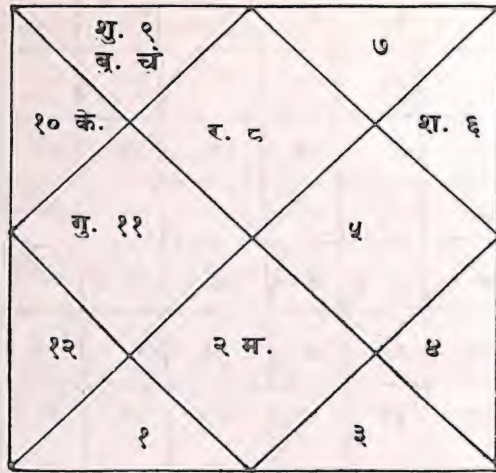
महाराज के प्रस्तुत दशा का कारण लग्नेश ७, भौम है दशमेश रवि १ तनु भावि दोनों का परस्पर दृष्टि योग है ।

> लग्नकर्माधिनेतारौ अन्योन्याश्रयि संस्थितौ ।
> राजयोगावितिप्रोक्तौ विख्यातौविजयीभवेत् ।।११।।

टीपू सुल्तान की जन्म कुण्डली
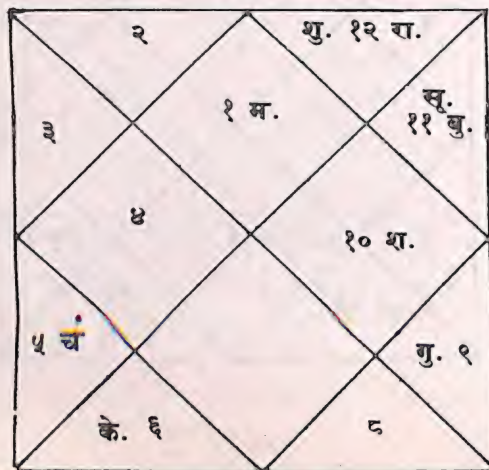
सिकन्दर की जन्म कुण्डली

रावण की जन्म कुण्डली

पुरावृत्त-संग्रह

अर्थात

इतिहास सम्बन्धी बात

इस संग्रह में ज्यादातर प्राचीन काल की प्रशस्तियां और दान पत्र हैं। इसमें सन् १८७२ से १८७४ के बीच लिखे गये और एक १८८२ का प्रकाशित लेख है। इनका संग्रह कब और कहां से हुआ इसका उल्लेख कहीं नहीं मिला है। — सं.

(इस प्रबंध में प्राचीन पुस्तकें तथा राजा, बादशाह आदि के वृत्त और आरंभ में सर्कारी अमलदारी की दशा जो कुछ हाथ लगेगी प्रकाशित होगी।)

१. अकबर और औरंगजेब

काशी में राजा पटनीमल्ल बहादुर अग्रवाल कुलके भूषण हो गए हैं। इन के उद्योग, अध्यवसाय, साहस, धर्मनिष्ठा, गंभीर गवेषणा,बुद्धि और अपूर्व औदार्य सभी गुण प्रशंसा के योग्य हैं। कई बेर राजविप्लव में ऐसे लुट गए कि कुछ भी पास न रहा, किंतु अपने उद्योग से फिर करोड़ों की संपत्ति पैदा किया। गया, काशी, मथुरा, त्रैलरणी, किस तीर्थ में इन के बनाए मंदिर, घाट, तालाब, आदि नहीं है। कर्मनाशा का पक्का पुल अद्यापि इनकी अतुल कीर्ति का चिन्ह वर्त्तमान है। फारसी विद्या के ये पारंगत थे। काशीखंड का संपूर्ण फारसी में इन्होंने स्वयं अनुवाद किया है। और भी कई ग्रंथों का हिंदी और फारसी में इन्होंने अनुवाद कराया था। वेद, स्मृति, पुराण, काव्य,कोष आदि विषय मात्र की पुस्तकें इन्होंने संग्रह की थीं। फारसी पुस्तकों के संग्रह की तो कोई बात ही नहीं, अँगरेजी यद्यपि स्वयं नहीं जानते थे किंतु दस पंद्रह हजार की पुस्तक अंगरेजी भाषा की संग्रह की थीं और सब के ऊपर फारसी में उस का नाम, विषय, कवि, मूल्य आदि का वृत्तांत लिखा हुआ था। उनका सरस्वती भंडार और औषधालय तीन लाख रुपये का समझा जाता था। किंतु हाय ! वह अमूल्य भंडार नष्ट हो गया। कीट, दीमक, छुईमुई, चूहे आदि उन अमूल्य ग्रंथों को खा गए। उनके स्वकार्य निपुण छ पौत्र और अनेक प्रपौत्रों के होते भी यह अमूल्य संग्रह भस्मावेष हो गया। मैंने दो बेर इस भंडार का दर्शन किया था। रुपये का चार आना तो पहली ही बेर देखा था, दूसरी बेर एक आना मात्र बचा पाया। सो भी खंडित छिन्न भिन्न। इस पुण्य-कीर्ति-उदार मनुष्य की उदारता और अध्यवसाय और उसके संग्रहीत वस्तु की यह दुर्दशा देख कर मेरी छाती फट गई। इस्कन्दरिया का पुस्तकालय मानो अपनी आँखों से जला हुआ देख लिया। अस्तु ! ईश्वर की यही गति है !! नाशान्ताः संचयः सर्वे !!!

उन के प्रपौत्र और अपने फुफेर भाई राय प्रहलाद दास से कह कर उस संग्रह की भस्मावशिष्ट हड्डियों में से मैं टूटे फूटे दस पाँच ग्रंथ ले आया हूँ। इन में कुछ सर्कारी पुराने छपे हुए कागज और कुछ खंडित पुस्तकें हैं। इस प्रबंध में बहुत सी बात उन्हीं सबों में से चुन कर लिखी जायँगी, इस हेतु उस सुगृहीतनामा महापुरुष का भी थोड़ा वृत्तांत लिखे बिना जी न माना।

प्रकृति मनुसराम:

मैंने बादशाहदर्पण नामक अपने छोटे इतिहास में अकबर और औरंगजेब की बुद्धि और स्वभाव का तारतम्य दिखलाया है । अब पूर्वोक्त राजा साहब की अंगरेजी किताबों में सन् १७८२ से लेकर १८०२ तक के जो पुराने एशियाटिक रिसर्चेज के नंबर मिले हैं, उन में जोधपुर के राजा जसवंत सिंह का वह पत्र भी मिला है जो उन्होंने औरंगजेब को लिखा था और श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद सी. एस. आई. ने भी अपने इतिहास में जिस का कुछ वर्णन किया है तथा मेरे मित्र पंडित गणेश राम जी व्यास ने मुझ को कुछ पुस्तकें प्राचीन दी हैं, उन में महाकवि कालिदास के बनाए सेतुबंध काव्य की टीका मिली है, जिस में कुछ अकबर का वर्णन है । इन दोनों को हम यहाँ प्रकाश करते हैं, जिस से पूर्वोक्त दोनों बादशाहों का स्पष्ट चित्त और विचार policy प्रकट हो जायगी ।

यह टीका राजा रामदास कछवाहे की बनाई है । अपना वंश उस ने यों लिखा है । कुलदेव को क्षेमराज, उन के पुत्र माणिक्य राय, फिर क्रम से मोकलराय, चोरराय, नापाराय (उन के पौत्र) पातलराय; खाना-राय, चंदाराय और उदयराज हुए । इन्हीं उदयराज का पुत्र रामदास हुआ, जो सर्व भाव से अकबर का सेवक है । अकबर के विषय में वह लिखता है :—

श्लोक ।

आमेरोरासमुद्रादवति वसुमतीं यः प्रतापेन तावत् ।
दूरे गाः पाति मृत्योरपि करममुचत्तीर्थवाणिज्य वृत्योः ।
अप्यश्रौषीत् पुराण जपति च दिनकृन्नाम योगं विधत्ते ।
गंगाम्भोर्भिन्नमम्भो न च पिबति जयत्येषजल्लालुदीन्द्रः ।।३।।
अँग-वँग-कलिंग-सिलिहट-तिपुरा-कामता-कामरूपा
नान्ध्रं कर्णाट-लाट द्रविड़-मरहट द्वारका-चोल-पाण्ड्यान् ।
भोटान्नं मारुवारोत्कलमलयखुरासानखान्धारजाम्बू ।।
काशी-काश्मीर ढक्का बलक-बदखशा-काबिलान् यः प्रशास्ति ।।४।।
कलियुगमहिमाऽ पचीयमानश्रु तिसुरभिद्विजधर्मरक्षणाच ।
धृतसगुणातनं तमप्रमेयं पुरुषमकब्बरशाहमानतोस्मि ।।५ ।।

अर्थ — जो समुद्र से मेरू तक पृथ्वी को पालता है, जो मृत्यु से गउओं की रक्षा करता है जिस ने तीर्थ और व्यापार के कर छुड़ा दिए , जिस ने पुराण सुने, जो सूर्य्य का नाम जपता, जो योग धारणा करता है और गंगाजल छोड़कर और पानी नहीं पीता उस जलालुद्दीन की जय ।।३।।

अंग वंग कलिंग सिलहट तिपुरा कामता (कामटी ?) कामरूप अंध कर्णाटक लाट द्रविड़ महाराष्ट द्वारका चोल पांड्य भोट मारवाड़ उड़ीसा मलय खुरासान कंदहार जम्बू काशी ढाका बलख बदखशाँ और काबुल को जो शासन करता है ।।४।।

कलियुग की महिमा से घटते हुए वेद गऊ द्विज और धर्म की रक्षा को सगुण शरीर जिस ने धारण किया है उस अप्रमेय पुरुष अकबरशाह को हम नमस्कार करते हैं ।।५।।

पाठक गण ! अकबर की महिमा सुनी । यह किसी भाट की बनाई नहीं है, एक कट्टर कछवाहे क्षत्रिय महाराज की बनाई है, इसी से इस पर कौन न विश्वास करैगा । उसने गो-वध बंद कर दिया था यह कवि परंपरा द्वारा तो श्रुत था, अब प्रमाण भी मिल गया । हिंदूशास्त्रों को वह सुना करता था । यह तो और इतिहासों में लिखा है कि वह आदित्यवार को पवित्र समझता था । देखिए उसके इस कार्य से, गायत्री के देवता सूर्य के आदर से, हिंदूमात्र उससे कैसे प्रसन्न हुए होंगे । मैं समझता हूँ कि उस समय सूर्यवंशी राजा बहुत थे और सूर्य को यह सम्मान दिखा कर अकबर ने सहज उन लोगों का चित्त वश कर लिया था । योग साधने से हिंदुओं की प्रसन्नता और शरीर की रक्षा दोनों काम हुए । विशेष यह बात जानी गई कि वह गंगाजल छोड़ कर और पानी

नहीं पीता था । यह उस की सब क्रिया हिंदुओं को वश करने को एक महामोहनास्त्र थीं । इसी से उसको परमेश्वर का अवतार तक कहने में हिंदुओं ने संकोच न किया । उसको लोग जगद्गुरु पुकारते थे, यह आगे वाले महाराज जसवंत सिंह के पत्र से प्रकट होगा । इसके विरुद्ध औरंगजेब से हिंदुओ का जी कैसा दुःखी था और उस समय राज्य की भी कैसी अवनति थी यह भी इस पत्र ही से प्रकट हो जायगा, हम विशेष क्या लिखें

विदित हो कि इस पत्र के लेखक महाराज जसवंत सिंह जोधपुर के महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे । सन् १६३८ में गजसिंह युद्ध में मारे गए । अपने बड़े पुत्र अमर सिंह को अति क्रूर और प्रजापीड़क समझ कर गज सिंह ने त्याग कर दिया । यही अमर सिंह फिर शाहजहाँ के दर्बार में रहा और वहाँ भी अपनी उद्वतता से एक दिन काम पर हाजिर नहीं हुआ । इस पर शाहजहाँ ने उस पर जुर्माना किया । जुर्माना अदा कराने को सलाबत खाँ खजानची को भेजा । उस का भी अमर सिंह ने निरादर किया । इस पर बादशाह ने उस को दरबार में बुला भेजा । यह अति क्रोधावेश में एक कटार लिए हुए दर्बार में निर्भय चला गया । बादशाह को क्रोधित देख कर रोषानल और भी भड़का । पहले सलाबत का प्राण संहार किया फिर वही शस्त्र बादशाह पर चलाया । खंभे में लग कर कटार गिर पड़ी, किंतु उस आघात में बल इतना था कि खंभे का दो अंगुल पत्थर टूट गया ।[१] दर्बार में चारों ओर हाहाकार हो गया । पाँच बड़े बड़े मोगल सर्दारों को अमर ने और मारा । अंत में उसको उसका साला अर्जुन गोरा (बूँदी का राजकुमार) पकड़ने चला, तो उससे लड़ा और उसी की तलवार से गिरा भी । अब तक तख्त पर लहू की छींट और टूटा हुआ खंभा उस के वीर दर्प का चिन्ह आगरे के किले में विद्यमान है । लाल किले का दरवाजा, जिससे अमर सिंह आया था, बुखारा दरवाजा कहलाता था ; उस दिन से अमर फाटक कहलाता है । उसके सरदार चंपावत गोती और कंपावत गोती भी दरबार में अपनी निज सैन्य लेकर घुस आए और बहुत से मुगलों को मार कर मारे गए । अमर सिंह की स्त्री बूंदी की राजकुमारी पति का देह लेने को उसी हल्ले में अपने योद्धाओं को लिये किले में चली आई और देह ले गई और डेरे में जा कर सती हो गई । इस घटना के वर्णन में राजपुताने में कई ग्रंथ, ख्याल आदि बने हैं और अब तक इस लीला को नट, सुथरेसाही, जोगी, भवैये, गवैये गाया करते हैं ।

अथ पत्र

"सब प्रकार की स्तुति सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को उचित है और आप की महिमा भी स्तुति करने के योग्य है, जो चंद्र और सूर्य की भाँति चमकती है । यद्यपि मैंने आज कल अपने को आप के हाथ से अलग कर लिया है किन्तु आपकी जो सेवा हो उसको मैं सदा चित्त से करने को उद्यत हूँ । मेरी सदा इच्छा रहती है कि हिंदुस्तान के बादशाह रईस मिर्जा राजे और राय लोग यथा ईरान तूरान रूम और शाम के सरदार लोग और सातों बादशाहत के निवासी और वे सब यात्री जो जल या थल के मार्ग से यात्रा करते हैं मेरी सेवा से उपकार लाभ करें ।

यह इच्छा मेरी ऐसी उत्तम है कि जिसमें आप कोई दोष नहीं देख सकते । मैंने पूर्वकाल में जो कुछ आप की सेवा की है, उस पर ध्यान कर के मुझ का अति उचित जान पड़ता है कि मैं नीचे लिखी हुइ बातों पर आप का ध्यान दिलाऊँ, जिसमें राजा और प्रजा दोनों की भलाई है । मुझ को यह समाचार मिला है कि आप ने मुझ शुभचिंतक के विरुद्ध एक सैना नियत की है और मैंने यह भी सुना है कि ऐसी सैनाओं के नियत होने से आपका खजाना जो खाली हो गया है उस को पूरा करने को आप ने नाना प्रकार के कर भी लगाए हैं ।

आप के परदादा मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर ने, जिनका सिंहासन अब स्वर्ग में है, इस बड़े राज्य को ५२ बरस तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सब जाति के लोगों ने उससे सुख और आनंद उठाया । क्या ईसाई, क्या मूसाई, क्या दाऊदी, क्या मुंसल्मान, क्या ब्राह्मण, क्या नास्तिक सब ने उनके

१. आनि के सलाबत खाँ जोर कैं जनाई बात तोरि घर पंजर करेजे जाय करकी ।
दिल्लीपति नाह के चरन चलबे को भए गाज्यो राजसिंह को सुनी है बात बरकी ।।
कहै 'बनवारी' बादशाह के तखत पास फरकि फरकि लोथ लोथन सी अरकी ।
हिंदुन की हद्द सह राखी तैं अमर सिंह कर की बड़ाई कै बड़ाई जमधर की ।।

राज्य में समान भाग से राजा का न्याय और राज्य का सुख भोग किया । और यही कारण है कि सब लोगों ने एक मुँह होकर उनको जगतगुरु की पदवी दिया था ।

शाहनशाह मुहम्मद नूरुद्दीन जहाँगीर ने, जो अब नंदनवन में बिहार करते हैं, उसी प्रकार २२ बरस राज्य किया और अपनी रक्षा की छाया से सब प्रजा को शीतल रक्खा । और अपने आश्रित या सीमास्थित राजवर्ग को भी प्रसन्न रक्खा और अपने बाहु बल से शत्रुओं का दमन किया ।

वैसे ही परम प्रतापी शाहजहाँ ने बत्तीस बरस राज्य करके अपना शुभ नाम अपने गुणों से विख्यात किया ।

आप के पूर्व पुरुषों की यह कीर्ति है । उन के विचार ऐसे उदार और महत् थे कि जहाँ उन्होंने चरण रक्खा, विजय लक्ष्मी को हाथ जोड़े अपने सामने पाया और बहुत से देश और द्रव्य को अपने अधिकार में किया । किंतु आप के राज्य में वे देश अब अधिकार से बाहर होते जाते हैं और जो लक्षण दिखलाई पड़ते हैं उनसे निश्चय होता है कि दिन दिन राज्य का क्षय ही होगा । आप की प्रजा अति दु :खी है और सब देश दुर्बल पड़ गये हैं । चारों ओर से बस्तियों के उजड़ जाने की और अनेक प्रकार की दु :ख ही की बातें सुनने में आती हैं । जब बादशाह और शाहजादों के देश की यह दशा है तब और रईसों की कौन कहै । शूरता तो केवल जिह्वा में आ रही है । व्यापारी लोग चारों ओर रोते हैं । मुसल्मान अव्यवस्थित हो रहे हैं । हिंदू महा दु :खी हैं, यहाँ तक कि प्रजा को संध्या को खाने को भी नहीं मिलता और दिन को सब मारे दु :ख के अपना सिर पीटा करते हैं ।

ऐसे बादशाह का राज्य कै दिन स्थिर रह सकता है, जिसने भारी कर से अपने प्रजा की ऐसी दुर्दशा कर डाली है ? पूरब से पश्चिम तक सब लोग यही कहते हैं कि हिंदुस्तान का बादशाह हिंदुओं का ऐसा द्वेषी है कि वह ब्राह्मण से बड़ा योगी वैरागी और संन्यासी पर भी कर लगाता है और अपने उत्तम तैमूरी वंश को इन धनहीन उदासीन लोगों को दु :ख देकर कलंकित करता है । अगर आप को उस किताब पर विश्वास है जिस को आप ईश्वर का वाक्य कहते हैं तो उसमें देखिए कि ईश्वर को मनुष्य मात्र का स्वामी लिखा है, केवल मुसलमानों का नहीं । उस के सामने गबर और मुसलमान दोनों समान हैं । नाना रंग के मनुष्य उसी ने इच्छा से उत्पन्न किये हैं । आप के मसजिदों में उस का नाम लेकर चिल्लाते हैं और हिंदुओं के यहाँ देवमंदिरों में घंटा बजाते हैं, किन्तु सब उसी को स्मरण करते हैं । इससे किसी जात को दु :ख देना परमेश्वर को अप्रसन्न करना है । हम लोग जब कोई चित्र देखते हैं, उसके चितेरे को स्मरण करते हैं और कवि की उक्ति के अनुसार जब कोई फूल सूंघते हैं उसके बनाने वाले को ध्यान करते हैं ।

सिद्धांत यह है कि हिंदुओं पर जो आप ने कर लगाना चाहा है वह न्याय के परम विरुद्ध है । राज्य के प्रबंध को नाश करने वाला है और बल को शिथिल करने वाला है तथा हिंदुस्तान के नीति रीति के अति विरुद्ध है । यदि आप को अपने मत का ऐसा आग्रह हो कि आप इस बात से बाज न आवें, तो पहिले रामसिंह से, जो हिंदुओ में मुख्य है, यह कर लीजिए और फिर अपने इस शुभचिंतक को बुलाइए । किंतु यों प्रजापीड़न वा रण भंग वीर धर्म उदारचित्त के विरुद्ध है । बड़े आश्चर्य की बात है कि आप के मंत्रियों ने आप को ऐसे हानिकर विषय में कोई उत्तम मंत्र नहीं दिया ।''

महात्मा कर्नैल टॉड साहब लिखते हैं कि यह पत्र महाराज जसवंतसिंह ने नहीं लिखा था, महाराणा राजसिंह ने लिखा था ।

२. कन्नौज के राजा का दानपत्र

यह प्रसिद्ध दानी कन्नौज के राजा गोविंदचंद के अन्यतर दानपत्र की प्रति है । यह राजा बड़ा ही दानी था ।

ताम्रपत्र ।

स्वास्ति अकुण्ठोत्कुण्ठवैकुण्ठकण्ठपीठलुठत्कर: ।
संरम्भ: सुरतारंभे सश्रिय:श्रेयसेऽस्तुव: ।।१।।

आसीदशीतद्युति वंशजातक्ष्मापालमालासुदिवंगतासु ।
साक्षाद्विवस्वानिवभूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रहइत्युदार: ।।२।।
तत्सुतोभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभंनिजं ।
येनायारमकूपारं पारेव्यापारितंयश: ।।३।।
तस्याऽभूत्तनयोनयैकरसिक: क्रांतद्विषन्मंडलो
विध्वस्तादभुतवीरयोध विजित: श्रीचन्द्रदेवोनृप: ।
येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवं
श्रीमंगाधिपुराधिराज्यसममं दोर्विक्रमेनोर्जितं ।।४।।
तीर्थाणि काशिकुशिकोत्तरकोसलेन्द्रस्थानीयकानि परिपायताभिगम्य ।।
हेमात्मतुल्यमनिशंददता द्विजेभ्यो येनांकिता वसुमती शतशस्तुलाभि: ।।५।।
तस्यात्मजोमदनपालइतिक्षितींद्रचूडामणिर्विजययेनिजगोत्रचन्द्र: ।
यस्याभिषेककलशोल्लसितै:पयोभि: प्रक्षालितंकलिरज:पटलंधरित्र्या: ।।६।।
यस्यासी द्विजय:प्रयाणसमये तुंगाचलौघश्चलन
माद्यत्कुंभिपदक्रमात्समसरत्त्रयस्यन्महीमंडले ।
चूड़ारत्न विभिन्नतालुगलितस्थानास्टगुदभासिता:
शेष:पेशवशादित:क्षणमसोक्रोडेनिलीनानन: ।।७।।
तस्मादजायत निजायत बाहुबल्लिबन्धनवराष्ट्र गजोनरेंद्र: ।
सांद्रामतृद्रवसुधा प्रभवी गवां यो गोविंदचंद्रइति चंद्रइवांबुराशे: ।।८।।
नकथमप्यलभन्तरणक्षमां स्तिस्टषुदिक्षुगजानथतक्षिण: ।
ककुभिवभ्रमुरभ्रमुवल्लभ प्रतिभटाइवयस्यघटागजा: ।।९।।

सोयं समस्तराजचक्रसंसेवितचरण : परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निज भुजोपार्जित श्रीकान्यकुब्जाधिपत्य श्रीचन्द्रदेवपादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वर श्रीमदनपाल देव पदानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वरराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध विद्याविचारवाचस्पति श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवो विजयी खरकापत्तलायां मधुवाग्राम निवासिनो निखिलजन पदानुपगतानपि राजाराज्ञी युवराज मन्त्रिपुरोहित प्रतीहार सेनापति भांडागारिकाऽक्षपट लिकभिषग्नि मित्तिकान्त: पुरिकदूत करितुरगपत्तनाकरस्थानाऽऽगोकुलाधिकारि पुरुषान्समाज्ञापयति बोधयत्यादिशतिच यथा विदितमस्तुभवतां यथोपरिलिखितग्राम: सजलस्थल: सलोहलवणाकर: समत्स्यकार: सगर्तोखर: समधूकाम्रवनवाटिका विटपतृगप्रतिगोचरपर्यन्तश्रतुराघाटशुद्ध-स्वमसीमापर्यन्त: सोगांध: संवत् ११९५ माघ वदि ९ सोमदिने प्रयागे वेण्यां स्नात्वा विधिवन्मन्त्राद्देव मुनिमनुजभूत पितृणां स्तर्पयित्वा तिमिर पटल पाटन पटुसहस्रमुष्णरोचिषमु-पस्थायौषधिपतिंसकलसप्तभंस मभ्यर्च्च त्रिभुवनत्रातुर्वासुदेवस्य पूजां विधायप्रचुरपायसेनहविषा हविभुजंहुत्वा मातापित्रोरात्मनश्च पुण्यशोभिवृद्धये कौशिकगोत्राय कौशिकावदल्य विश्वामित्र देवराततत्रिप्रवराय पण्डित श्रीकैंकप्रपौत्राय पंण्डित श्रीमहादित्य पौत्राय पण्डित श्रीसाक्षतपुत्रायपण्डित श्रीविद्याकचसंभाराय ब्राह्मणाय अस्सा भिर्गोकर्ण-कुशलतापूतकरतलोदकपूर्वमाचन्द्रार्क यावदाशीसनी कृत्यप्रदत्तोमत्ताराद्यदीयमानभाग भोग कर प्रवणिकर प्रभृति समस्तादायानां विधियाप्रयदास्यन्निति भवन्तिचात्र । श्लोका : ।

भूमिय :प्रातगृह्णाति यश्चभूमिप्रयच्छति । उभौ तौपुण्यकर्माणौ नियतंस्वर्गगामिनो । शंखभद्रासनं छत्रं वराश्वाबरवारणा : । भूमिदानस्यचिन्हानि फलमेतत्पुरंदर । सर्वनितान्भाविन : पार्थिवेन्द्रान्भूयोभूयो याचतेरामभद्र : । सामान्योयंधर्मसेतुर्नृपाणां कालेकालेपालनीयोभवद्भिम : । बहुभिर्वभुक्ता राजभि :-सगरादिभि : ।। यस्ययस्ययदाभूमिस्तस्यतस्यतदाफलं । स्थलमेकंग्राममेकं भूमेरप्येकमंगुलं । हरन्नरकमाप्नोति यावदाभूतसुसंप्लवं । ठक्कुर श्रीबालिकेन लिखितमिदम् ।

काशी क्वीन्स कालिज (Queen's College Benares) के फाटक पर यह लेख है —

तालुकदार दाउदपुर के राय पृथ्वीपाल सिंह ने
अपने कीर्त्ती के लिये दो द्वार रचवाये ।

(१)

रामरास बाबू सुघर, वैश्यवंश औतार ।
हर्षचन्द्र तिन के तनय, रचवाये दुईद्वार ।।

(२)

राजा पटनीमल्ल के पुत्र नारायण दास ।
रचवाये दुइद्वार यह, अचल कीर्त्ति के आस ।।

(३)

श्री देवकीनन्दन सूनुरासीघो जनकी पूर्वपद प्रसाद ।
तदंगजो द्वारमिदं द्रव्य धत राम प्रसन्नोपमहीश्चरोये ।।

(४)

श्री मत बाबू देवकीनन्दन पौत्र उदार ।
बाबू रामप्रसन्नो सिंह रचवाये यह द्वार ।। सं. १८०७ ।।

(५)

श्री बाबू भगवानदास बड़े जानि बिदित ।
मृजापुर बिच धाम तिन रचवाए द्वार दुई ।।

(६)

सुनय जानकिदास के, श्री विश्वेश्वर दास ।
रचवाए दुइ दुवार वर, मुक्ति सुजस के आस ।।

(७)

राजा दर्सन सिंह के, सुत कुल अति उजियार ।
राजा रघुवरदयाल जस, चाहि किन दुइ दुयार ।।

(८)

इण्डियन म्यूजियम (Indian Museum) में एक पत्थर के मुंडेरे के एक टुकड़े पर नीचे की ओर निम्न लिखित लेख लिखा है । वह पत्थर अशोक के चारदिवाली का है, परंतु यह लेख सन् ईसवी दो सौ बरस पहले का नहीं हो सकता । यह गुप्ताक्षर में पुराचीन रीति से लिखा है —

दी पढंका कता येषां दान ×× मशमनिनाचार्य्य ।

—(:)—

अशोक के चारदिवाली के मुंड़ेरे के पत्थर पर निचली ओर निम्न लिखित लेख लिखा है । यह दो लाइन (पंक्ति) में है और प्रत्येक लाइन ६ फीट लंबा है ।

१ । कारितो यन्त्रवज्रासन वृहत्गर्भ्मकुटी प्रंमादमर्द्वत्रिकोट्यां भश्मतैर्म्मधुलेपकस्यपुन लटिक : गिक रेदगतुट मादन्यार्क्कतारकं भगवते बुद्धाय ×× रदानेन वृतप्रदीप : × रारिध दिए प्रति समधने रदनी मायां च प्रदहं घृतप्रदीपै : गुणे शतदानेनापारेण कारित : बिहारेपि भगवते रेत्यपद्व ।

२ । हग्रटां पाक्षय न : धिकरो धमशत तं दं वं ग प्रदेष च च नं पं ×××× गं ×× मनीनू माधुरं लातीतं तदसं सव्वं चा प्रहतत × क्षनुमत्पादितं तदेतत सर्व्वं यन्मया बुद्धौ प्रचेतमभारंतन ।

मेजर (Major Mead) ने बोधगया के बड़े मंदिर की एक कोठरी से एक मूर्त्ति निकाली थी उस के पांव के समीप निम्न लिखित लिपि थी —

इन्द्र्मानितरचित्रं सर्व्वं सत्वानुकम्पिने ।
भवनवरमदारजितमाराय पतये ।।
सु (शु) द्धात्मा कारयामास बोधिमार्गरतोयति : ।
बोधि षे (से) णो (नो) तिविख्यातो दत्तगल्लनिवासक : ।।
भवबन्धविमुत्क्यार्थं पित्रोर्वन्धुजनस्य च ।
तथोपाध्यायपूर्वाणामाहवाग्रनिवासिनां ।। ली।।

ए. ग्रोट साहिब (A. Grote Esqr.) प्रेसिडेन्ट बंगाल एशियाटिक सोसाइटी ने निम्नलिखित लिपि, जो एक सांढ़ (नंदी) की मूर्ति के पीठ पर लिखी हुई है, एशियाटिक सोसाइटी में भेज दी थी । यह लेख कुटिलाक्षर (Kutila Character) में लिखा हुआ है । भीमकउल्ला के पुत्र श्री सुफंदी भट्टारक ने यह मूर्ति संवत् ७८१ में सन्तति के लिए चढ़ाई थी ।

ए सम्ब ७८१ वैखाख वदि ९ षरूध्य ग्रामव ×××× त्तम भिमक उल्लसुतेन श्री सुफन्दिनभट्टारक अ (?) ग्र (?) त मतया ×× । त्मनापत्यहेतो : वृषभट्टारकप्रतिष्ठितेति ।

जनरल कनिंगहम (General Cunningham) ने बोधगया के मंदिर के फाटक के चूर के नीचे एक पत्थर देखा था जिस पर निम्न लिखित लिपि लिखी खुदी हुई है । यह लेख २० लाइन में है और कुटिलाक्षर में लिखा हुआ है ।

(१) नमोबुद्धाय ।। आसीद्दृप्तनरेन्द्रवृन्दविजयी श्रीराष्ट्रकूटान्वय : श्रीमान्नन्द इति त्रिलोकविदितस्तेज-स्विनामग्रणी : । सत्येन प्रययेन शौचविधिना श्लाघ्येन विख्यातिपतस्त्यागै: कल्प महीरुह : प्रणयिपु प्राज्ञो नरेन्द्रात्मज : ।।

(२) यो मत्तमातंगमभिद्रवन्तन्नरेन्द्रवीथ्यां ऽतुरगेन्द्रगागी ।
कशाभिघातेन विजित्य वीर : प्रख्यातवान्हस्तितलप्रहार : ।।

(३) दुर्गं दुर्जयमूर्जितक्षितिभुजामत्युत्तमैर्विक्रमै : श्रीमद्रम कृपाण पुण्यविभवैरुच्चैर्विजग्ये च य : । येनाद्यापि नरेन्द्रसंसदि सदा सम्भूतरोमोदग्मैर्व्वर्णज्ञैर्मणिपूरदुर्गधवल : संवर्ण्य सूरिभि : ।।

(४) य : शौर्यातिशयादनल्पसदृशातख्यातो महोभृद्रक : (?) सन्मार्गेण गुणावलोक इति च श्लाघ्यामभिख्यान्दधौ । गेयैर्बुद्धगुणाह्वयैरभिन वस्वान्तर्व्विंशोषोद्गतैर्यश्चान्ते तनुमुतससर्ज विधि वद्योगीव तीर्थाश्रय : ।।

(५) तस्यालि सूनुर्विजितारिवर्ग : प्रतापसंतापितदिग् विभाग : । प्रहर्षितार्थिव्रजपद्मषण्ड : पूषेव पादाश्रितसर्व्व लोक : ।।

(६) धर्म्मार्थकामेषु गृहीतसार : श्रिया सदाराधिपतपादपद्म : । अरातिमातंगकुलैकसिंहस्त्रिलोकविख्यात· यश : पताक : ।।

(७) कोपे यम : कल्पतरु : प्रसादे प्रयोगमार्गप्रणयी कलानां । अगण्यविक्रान्तविलासभूमि : प्रभूतसद्वर्णशशांककीर्त्ति : ।। रूपोदयैरर्पितचित्रयोनिर्मितांगजारोहनलब्धशब्द : । तुरंगमाध्यासनकौशलाप्त : प्रभासते राजसु कीर्त्तिराज : ।।

(८) तस्यात्मज : शुभशतोदितपुण्यमूर्त्ति : साक्षान्मनोभव इव प्रयतात्मभाव : । दृप्तद् विषद्विपिनवन्हिरु-दीर्णदीप्तिरस्तीह तुंग इतिसान्वयनामधेय : ।।

(९) कामिनीवदनपंकजतिग्मभानुर्विद्वन्मन : कुमुदकाननकान्तरश्मि: शास्त्रप्रयोगकुशल : कुशलानुवर्त्ती धर्म्मवलोकइति च प्रथित पृथिव्याम् ।।

(१०) शैलेन्द्रस्य द्विमूर्त्तीननवरतगलद्दानमत्तद्विरेफश्रेणीसंकीर्णनादप्रतिगजविजयोद्गारिभेरीविरावान् । दृष्ट्वा यो दन्तिशास्त्रे षु गुरु रिव गुरु : प्रो गु ×××× लोल : कालज : पुण्यपूत : कलयति मृगवद्वन्यकानवारणन्द्रान् ।।

(११) येनागाधतया जितो जलनिधि : शान्त्या मुनिस्तेजसा भानु : कान्ततया शशी मृगपति : शौय्यण नीत्या गुरू : ।
कर्णस्त्यागितया विलासविधिना दैत्यद्विषामीश्वर : वाचालापितया यथार्थपदया नैवास्ति यस्योपमा ।।

(१२) धत्ते य : श्रीनिधानं हृतकलिचलितं धर्ममामूलमुच्चैरुतुंगै : स्वर्गमार्गप्रणयिभिरतुलै : कीर्त्तनै : शुद्धकीर्त्ति : कुर्वतसेवामनिन्द्यामनुदिनममलैरन्नपानैर्यतीनां शिष्टैस्मत्कारयन्नैर्भव इव चलितं रावणोनाचलेन्द्रम् ।।

(१३) तेन प्रसन्नमनसा जितमारशत्रोरुत्तीर्णजन्मजलधेरसृ ×× भवैकवन्द्यो : श्रीमद्विशुद्धगुणरत्नस — विप्रेन्द्रशेखरितपादसरोजरेणो : ।।

(१४) मोहान्धकारनिघनोद्गतभास्करस्य संग्रामरेणुशमनैकघनाघनस्य । द्वेषोरगोद्धरणकर्म्मणि तार्क्ष्यस्य गिरिदारणवज्रधाम्न : ।।

(१५) स्फुर्ज्जत्प्रवादिकरियूथमृगाधिपस्य नैरात्म्यसिंहनिनदप्रविभातवितस्य । धर्म्माभिषेकपरिपूतजगत्-त्रयस्य — गुणरत्नमहार्णवस्य ।।

(१६) निर्म्मापिता गन्धकुटीयमुच्चै : सोपानमालेव दिवो दिदेश । गृहीतसारेण धनोदयानामनित्यता-भावितमा —।।

(१७) तरामर्शविचक्षणेन शरत्पसन्नेन्दुमनोहरेण । मदानभिज्ञेन गुणाभिरामैरावर्जिताजय्यसमागमेन ।।

(१८) मुनिरिह गुणरत्न — प्रजानामभयपथविदर्शी सन्निधत्तां सदैव । विदधदभिमतानां सिद्धिमभ्युन्नतीनामनयविमुखबुद्धेदयिकस्यास्य भूयः ।।। त देवराज सम्वत् १५ श्रावणदिनपञ्चम्यां । सिंहलद्वीपजन्मना पण्डितरत्न श्रीजनभिक्षुणा ।।

एक मूर्त्ति पर बोधगया में यह लेख लिखा है । यह दो पंक्ति में है जो प्रत्येक ६ फीट लम्बी है । पूर्णभद्र सुमंतस के पुत्र ने इस (मूर्त्ति) को बनवाया था । इस से उस का और उस के वंश का कुछ वृत्तांत मालूम होता है ।

१ । बावस्तस्यैव स्वसङ्घत : सङ्घ : ।
२ । सिध्धा । पर : श्रीमान् तस्य सुत : श्रीधर्म्म : ।
३ । थर्थिय जगती कृत्तिक प्रतापनेग्रतां यात : तेनयश :
१ । सिन्धौ दातृ × गजो गल्लभूमज :—
नरवर सिक्ष ग
२ । नुसपुररन्ध्रौ सदुदयकम × पुन : पूत : श्री दुर्गजयसेन :
कुमा कु तर सयू शुभं
म्वोधिलासुकृत ग
१ । ये धर्म्मा हेतुप्रभवा हेतुस्तेषां तथागत : ह्यवदत् तेषाञ्चयो निरोध स्वंवादी महा —
२ । श्रमण : ।
३ । श्रीसामन्तस्तदात्मजस्तस्य । श्रीपुनु भद्रनामा प्रतापेन चन्द्रम : कोत्ति : । द्राक्ष
१ । सु × यिष्ठो ×× श्रीमान्
२ । सेनोसन द्योत : । श्रीमति उदण्डपूरे येन
३ । तिलरलकता × सिंव चन्द्रनमवृत : सुधिय : ।।

महाबोधी मन्दिर के समीप एक पत्थर के टुकड़े पर खोदी हुई निम्न लिखित लिपि डबल्यू हाथोर्न (W. hawthorne Esqr.) ने पायी थी, उस पत्थर को बचनन हमिलटन (Mr. Buchanan Hamilton) ने ईस्ट इन्डिया कम्पनी के म्यूजियम (Museum) में रख दिया था ।

नमोबुद्धाय संकल्पोयं प्रवरमहावीरस्वामिन : परमोपासकस्य देवज्ञचरणारविन्दमकरन्दमधुकर-हलकारभूपालवेंशमोत्पन्ना कृस्ननृपति गुरूह नारायण रिपुराज मत्तगज सिंहति रिवल महीपाल जनकेत्पादिनिजनिरखेल प्रशस्ति समलंकृतं सपादलक्ष शिखरिख समेण राजाधिराज श्रीमदशोकचन्द्र-

देवकनिष्ठभ्रातृ श्रीदशरथनामधेयकुमारपादपद्मोपजीविभारादागरिक सत्यव्रतपरायणविनिवर्त्तनीय-बोधिसत्व चरितस्कन्धिस्वकुलदीय श्री सहस्रपातु नामधेयस्य महात्मक श्रीचाट ब्रह्मसुतस्य महामहात्मक श्री ऋषिब्रह्मपौत्रस्य यदत्रपुरायं तद्भट्टाचार्योपाध्याय मातापित्र शर्वांग संगता सकल पुण्यराशि रनन्तविज्ञानफलावाप्तव इति श्रीमल्लक्षण सेनदेवपादानामतीतराज्ये सं. ७९ वैशाख वदि १२ गुरौ ।

बोधगया के बड़े मंदिर के बारहदरी के सामने एक छोटे मंदिर में एक संगमरमर के तख्ते पर तीन लिपि खोदी हुई है । यह तख्ता कुछ नीले रंग का चार फीट लंबा और दो फीट ३ इंच चौड़ा है । इस के आगे की ओर दो लिपि है, पहली अपभ्रंश पाली भाषा में और दूसरी ब्रह्मा देश की भाषा में है । और तख्ते की पिछली ओर ३० पंक्ति ब्रह्मा देश की भाषा में है ? परंतु वह संस्कृत नहीं है । उन में से केवल पालीलिपि को यहाँ नागरी अक्षर में प्रकाश किया है —

१ । नमस्तस्मै भगवते अरहते सम्यक सम्बुद्धाय ।। जयतु ।। बोधिमूले जिन्ना : सर्व्वे सर्व्वेजुतो तथा अयं । जयतं धर्म्मगतापि बोधिप्रसादनेन सा । पथ्यावर्त्तशलोक । अयं महाधर्म्मराजा अनेकशेनिभप्रतिच्छ-इन्तगजराजस्वामि अनेकशतामं आदित्यकुलसम्मतान । पीतुपीतामह अव्ययकपाव्यकादिमहा धर्म्मराजनं सम्यकदि ।

२ । ष्टिकानं धर्म्मिकानं प्रवरराजवंशानुक्रमेण असम्मितक्षेत्रिय वंशजो । सन्ध्याशीलाद्यनेकगुनाधिवासो । दानरागेण सन्तोषमानसो । धर्म्मिको धर्म्मगुरुधर्म्मकेतु धर्म्मध्वजो । बुद्धादिरतनत्रये सततं समितं निम्नपोण प × रद्दृदयो । नानाविधानि । शारीरिक, परिभोग उद्देश्यक चैत्यानि नानाप्रकारेण नन्दति माने ।

३ । ति पूजेति संस्करोति । मारजयनक्लेशविध्वंसनसर्व्वधर्म्मविघातनवीरभूतं महाबोधिम्बि । अभिप्रसादेन पुनप्पुनं भनसि ×××× । संमति परिवृन्दति कलैरारम्भने गन्य । सप्तपञ्चद्विके गते । वसूरतवभूवर्व्वे ? । धर्म्मं विहगे नमारबन्ध : । पुराकपिल व ×× ।। माया देव्यो सुद्धोदवी । निक्षमित्वा स्तनूले अनु " अ " ।

४ । तं पदं तेन सुदेसिनो धर्म्मो संघो चास्यानुशासितो । दिश्यते दानिलोक । मू बोधित्वस्य न दिश्यते । इति हि पूराणतन्त्रागतानुरूपं । अयं महाधर्म्मरागमनसि करोनो विमसन्तो । परिपृच्छन्ती पीतामहच्छद्दन्त गजरात्रस्वामि महाधर्म्मराजकाले । मध्यपदेरागतैहि वाणिरैहि ब्राह्मणैहि × गीहि च ।

५ । मगधराष्ट्रे । गयाशीषपदे च नद्यानेरञ्जनाग्रतीरे सुसमे भूमिभागे । वनप्रतिभूत्वा प्रतिष्ठिभावं । अर्धखण्डसाखाप्रमाणेन हस्तशत विस्ताराद् ये धर्म्मभावं । × कादी पाति हरार्य्य गृहणक । लेयय । षिद्वानं दक्षिण महासाखाय स्वयमेवच्छिन्नाकारदषा मानभावं बोधिमण्डसंखानवज्रासनयानसिरिधम्मा सोके ।

६ । न नाम सकल जम्बुद्वीपेश्वरमहाराज्ञा कृतचेतियस्य विद्यमानभावं । पूर्व्वे षड्शतसप्तपन्नायसकराजे श्वेतगजेन्द्रमहाराजेन तं चैत्यमतिसंखरित्वा धम्मभासाय सेनज्ञ स्वामिनभावं च श्रुत्वा । तदेतद् वचनं अनेकतन्त्रागतवचनेन सं सन्दति समेति । यथातं गंगोदकेन यमुनोदकस्मि । युक्तायुक्तं बिदि ।

७ । त्वा । अवश्यमेवेषं भगवता सह जातो महाबोधीसि निसंषयं । सन्निधानमकासि ।। यथावत् कठोन विशेष नियमिते हि । मनुरपानं क्षेत्रवस्त्वादिकर्म्मकरण × ततो यथानुक्रममुन्नतुन्नतभावेन षदवी युगेध्रे । अष्टराजकरोप मात्रविस्तारोकेष मश्रु प्रमाणानम्पिति णानमधिहल्ले । समन्तासिनलना ।

८ । गन्धं गुम्बबनघ्रतीनं प्रदक्षिणावद्याभिमूखपरिवारितो रजतवर्णबालुकाबिप्रकिर्णं । भेरितलमिव समे भूमिभागे । बोधिमण्ड संघायस्य वज्रासनपल्लंकस्य अपस्मयफलकमिव सन्धुक्षुत्वा । साखा पर्ण × मणिपत्रमिव पटिच्छादेत्वा महाबोधिवृक्ष : प्रतिष्ठाति तस्मिन् पनवज्रासनपल्लंके अत (न) ।

९ । न (त) ग्रंगि काले सर्व्वेपि असंख्येया सम्यक समबुद्धा आणाप्राणवस्तुज्ञानपादकन्धत्रिराकोटिपतसहस्-सबिपस्सता ज्ञानसंघातं महाबज्रज्ञानं भावेत्वा अ ।

१० । मार्गपदष्ठान सर्व्वज्ञान ज्ञानपति रभिसु । न याहिसे । सण्वहन्ते कल्पे पयस सणवहितो । विनाश्यन्तेपि प × विन्नश्यन्तो अचलपदेषो पृथुद्वीप × बो ।

११। धिमण्डो नाम होति ।। एवं अतिच्चरिय मन्वच्चरिय महाबोधिवृक्ष एकसत विदित्वा अभिप्रसादमानसो । यथा कालि × चक्रवत्तिसिरिधम्मासोको प × महिकोसलो । महार्घ्य यतिर्वा महाबोधिमभिपूजेसु । यथा पूजेतुकामो । सिरिपवरसुधम्ममहाराजाधिराजाति । मूलभासाय श्रीप्रबरधम्मिक राजा ××× मल ।

१२। ञ्वतो अनेकश्चेति × प्रतिसरदकुमुदकुन्दइन्दु प्रभासमानबर्णच्छद्दन्तगजराजस्वामिमहाधर्म्मराजा । पुरोहित महाराजिन्द अग्ग महाधर्म्मराज गुरूभि × नं भूमिनन्दभारिकामत् पञ्चमहाराजाभिरूप सागरसूरमकं । अनेकशतपरिजनेहि मूद । द्विसहस्रत्रिशतपञ्चषष्टिसासनबर्षे । एकसहस्मै ।

१३। शिक शतत्याशीतिसकराजे कार्त्तिकमाससरदकृतुपं । स्वबिजिनरक्तांगदेन नु सार जलजस्थलजमार्गण पेसेत्वा सरिच्चर महाराजिन्दाररता देवी नामिकाय अग्गमहेसिया सार्द्ध । महाबोधिमूले बुद्वत प्राप्तं भगवन्तभुद्देष्य । दक्षिणोदकं पादन्तो । इमं महापृथुविं साक्षिं कृध्वा महार्घ्य ।

१४। हि सोर्ण रोप्य माणिवय विचित्रेहि । ल । × । छत्र । ध्वज । पद्योत । कलश । मालांग लेहि महाबोधिमभिपूजेसि । संसारौघनिर्म्मुग्ग सत्वगग्णताणर्ह्मं पि बुद्धत प्रयतमकासि । मातापीतुपीता-महआय्यक पार्य्यकादिनं पि सत्वानं पुण्यभागमदासि । यथानेह रबिससि । यावत् क्षयाबतिष्ठति ।

१५। तथापि दसेलक्षरं । तिष्ठतं अनुमोदयति । इदमनेकश्चेतिभप्रतिच्छदन्तगजराजस्वामिमहाधर्म्मराजोत्तरं पुज्यसेलदारं । महाजेयसहस्रनामेन पण्डितामन्येन बन्धित । इदं सेलक्षरं सिराजिन्दमहाधर्म्मराज-गुरूनामिकेन पुरोहितेन नागरीलेखाय लिक्षितं । :।। : ।।

राजा जन्मेजय का दानपत्र

यह दानपत्र युधिष्ठिर के संवत् १११ का है, जो गौज अगराहर तालुका अनंतपुर जिला महानाद नगर इलाका मैसूर में मिला है । इस में सर्पयाग और सूर्यपर्व का वर्णन है । कर्नेल एलिस साहिब सोचते हैं कि यह उस जन्मेजय का नहीं है, विजयनगर के राजाओं में से किसी का है । यह कहते हैं कि जैसा सूर्यग्रहण इस में लिखा है वैसा स. १५२१ ई. में हुआ था । कोलब्रुक साहिब कहते हैं कि यह प्राचीन काल में ब्राह्मणों ने जाल करके बनाया होगा । परंतु उन दोनों साहिबों की बात का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं । इस की लिपि प्राचीन बालवन्द अथवा नन्दिनागर अक्षरों में है । इसके पीछे का भाग बहुत सा टूट गया है और यहाँ हम भी इस का वह भाग नहीं लिखते जिस ने उन दक्षिणी ग्रामों के और उन की चारों सीमाओं का वर्णन बड़े कठिन कठिन कर्णाटकी शब्द लिखे हैं ।

''जयत्याविष्कृतं विष्णोर्वाराहं क्षोधितार्णवम् ।
दक्षिणोन्नतदंष्ट्राग्रे विश्रान्तम्भूवनंवपु : ।।

स्वस्ति समस्तीभुवनाश्रय श्री पृथ्वी वल्लभ महाराज परमेश्वर परम भट्टारक हस्तिनापुरवराधीश्वर आरोहभगदत्तरिपुराय कान्तादत्त वैरिवैधव्यपाण्डव कुलकमलमार्त्तण्डकदन प्रचण्ड कलिंग कोदण्ड मार्त्तण्ड एकांगवीर रणरंगधीर अश्वपतिराय दिशापति गजपतिराज्य संहारक नरपतिराय मस्तक तलप्रहारिहयारूढ़ा-प्रौढ़रेखरे सामन्त मृगचामर कोंकण चतुर्द्दश भयंकरनित्यकर मरांगनापुत्र सुवर्णवराहलाञ्छनध्वजसमस्न राजावलिविराजित समा लिंगित श्री सोमवंशोद्भव श्री परीक्षित चक्रवर्त्ती । तस्यपुत्रो जन्मेजयचक्रवर्त्ती हस्तिनापुरे सुखसंकथाविनोदन राज्यंकरोति । दक्षिण दिशावरे दिग्विजययात्रेयंविजयंकरोमि । तुंगभद्राहरिद्रा-संगमे श्री हरिहरेश्वरसन्निधौ कटकमुत्क्रमितचैत्रमासे कृष्णपक्षदर्शके रवि वासरे ववकरणे उत्तरायण संक्रान्तौ व्यतीपातनिमित्त सूर्य्यपर्व्वणि अर्द्धग्रासग्रसित समये सर्वयागंकरोमि ।

इस के पीछे ३२००० ब्राह्मण जो वनवासे शान्तलिको गौतम ग्राम और दूसरे गाँवों से आए थे जिन में मुख्य गौतमगोत्री कण्वशाखीय गोविन्द पट्टवर्धन कर्णाट ब्राह्मण, काण्वशाखीय वशिष्ठगोत्री वामन-पट्टवर्द्धन कर्णाट ब्राह्मण, कण्वशाखीय भारद्वाजगोत्री केशव यज्ञ दीक्षित कर्णाटक ब्राह्मण, कण्वशाखीय श्रीवत्सगोत्री नारायण दीक्षित कर्णाटक ब्राह्मण थे । उनको गौतम ग्राम के बारहों गाँव नाद बल्लि, बूदबल्लि, चिक्कहार, कतरलगेरे, सुरलगोडु, ताग, रुंगु, जिंअलूरु, वाचेन, हल्लिं, त्रपगोडु और किरूसम्य गोडु सब सपर्य्या अष्टभोग समेत पूजन करके दिया । इस के नीचे इन गाँओं की सीमा लिखी है । उस के पीछे 'सर्वनितान् भाविना पार्थिवेन्द्रान्' यह और 'दानं वा पालनं वापि' ये दो प्राचीन श्लोक हैं ।

मंगलीश्वर का दानपत्र

यह दानपत्र मंगलीश्वर का कलादगी जिले में बदामों में हिंदू मत की बड़ी गुहाओं के पास खुदा है, इसकी लंबाई और चौड़ाई २५ × ४३ इंच है । यह मंगलीश्वर कीर्ति वर्म्मा का भाई पुलकेशी का पुत्र था, जो शक ४७७ में राज्य करता था । यह दानपत्र श. ५०० (ई. ५७८) में लिखा गया है जिस के १२ वर्ष पूर्व्व अर्थात् ४८८ (ई. ५६६) में यह राज्य पर बैठा था । इस दानपत्र में मंगलीश्वर ने एक विष्णुमंदिर बनाया और अपने भाई को स्मरणार्थ जो निपिम्मलिंगेश्वर ग्राम दिया है उस का वर्णन है ।

स्वस्ति । श्रीस्वामिपादानुध्यातानां मण्डव्यसगोत्राणाम् हारीति पुत्राणाम् अग्निष्टोमाग्निचयनवाजपेय-पौंडरीक बहुसु वर्णाश्वमेधावभृथस्नान पवित्री कृतशिरसाम् चाल्क्यानांवंशेसंभूत: शक्तित्रयसंपन्न: चालक्यवशाम्बर पूर्णचन्द: अनेकगुणगणालंकृतशरीर: सर्वशास्त्रार्थतत्वनिविष्टबुद्धि: अतिबलपराक्रमोत्साह-संपन्न: श्रीमंगलिश्वरोरणविक्रान्त: प्रवर्द्ध मानराज्य२संवत्सरे द्वादशेशकनृपतिराज्याभिषेक संवत्सरे ष्वतिक्रन्केषु पंचसुशतेषु निजभुजावसम्वितखंगधारानमितनृपशिरो मकुट मणिप्रभारंजिपादयुगल: चतु: सागरपर्य्यन्तावनिविजय: मांगलिकागार: परमभागवतोलयये मयाविष्णुगृहअतिदैव मानुष्यकाम अत्यद्भुतकर्म विरचितभूमि भागोपभागो परिपर्य्यन्तातिशय दर्शनीय तमकृत्वातस्मिन् महाकार्तिक्यांपौर्णमास्यांब्राह्मणेभ्यो-महाप्रदानंत्वाभगवत: प्रलयोदिताक्कं मण्डलाकारचक्षपितापकारिपक्षरय विष्णो: प्रतिमाप्रतिष्ठापनाभ्युदये निपिंमलिंगेश्वरम नामग्रामंनारायणावल्युप्रहारार्थं षोड़शमृड़.ख्येभ्योब्राह्मणेभ्यश्च सत्रनिबन्धं प्रतिदिनंअनुविधानं कृत्वाशेषं च परिव्राजकभोज्यं दत्वा सकलजगन्मंडलावनसमर्थारथहस्त्यश्च पदातसंकुलानेकयुद्धलब्ध्यजय पताकालम्बितचतुस्समुद्रोर्म्मिनिवारितयश: प्रतापनोपशोभिताय देवद्विजगुरुपूजिताय ज्येष्ठायस्मद्भात्रे कीर्तिवर्मणेपराक्रमेश्वरातत् पुण्यो पचयफलम् आदित्याग्निमहाजन समुक्षमुदक पूर्वविश्राणितमस्मद्भ्रातृशुश्रूतषणे यत्फलंतन्मह्यंस्यादितिनकैश्चिंत्परि हापितव्य: । बहुभिर्व सुधादत्ता बहुभिश्वानुपालिता यस्ययस्ययदा-भूमिस्तस्यंतस्यतदाफलम् । स्वदत्तांपरदत्तांवायत्राद्रक्षयुधिष्ठिर । महीमही क्षितांश्रेष्ठंदानाच्छे योनुपालनं । स्वदतांपरदत्तांवायोहरेतवंसुधरम् । श्वविष्ठायांकृमि भूर्त्वापितृभिस्सहमज्जति । व्यासगीता: श्लोका: ।

मणिकर्णिका ।

अहा ! संसार का भी कैसा स्वरूप है और नित्य यह कुछ से कुछ हुआ जाता है, पर लोग इस को नहीं समझते और इसी में मग्न रहते हैं । जहाँ लाखों रुपये के बड़े बड़े और दृढ़ मंदिर बने थे वहाँ अब कुछ भी नहीं है और जो लाखों रुपये अपने हाथ से उपार्जन व्यय करते थे उन के वंशवाले भीख मांगते फिरते हैं नित्य नए नए स्थान बनते जाते हैं वैसे ही नए नए होते जाते हैं ।

यह मणिकर्णिका तीर्थ सब स्थानों में प्रसिद्ध है और हिन्दूधर्म्मवालों को इस का आग्रह सर्वदा से रहा है । इसी कारण जो बड़े-बड़े राजा हुए उन सबों ने इस स्थान पर कीर्त्ति करनी चाही और एक के नाम को मिटा कर दूसरा अपना नाम करता रहा । इस स्थान पर तीर्थ दो हैं, एक तो गंगाजी दूसरा चक्रपुष्करिणी तीर्थ और इन दोनों पर लोगों की सदा दृष्टि रही । घाट के नीचे ब्रह्मनाल और नीलकंठ तक अनेक घाटों के बनने के चिन्ह मिलते हैं । थोड़े दिन हुए कि मणिकर्णिका पर एक पुराना छत्ता था जिस को लोग राजा कीचक का छत्ता कहते थे, पर न जाने यह कीचक किस वंश में और किस समय में उत्पन्न हुआ था । ऐसा ही राजा मान का एक जनाना घाट है जो गली की भांति ऊपर से पटा है, पर अब इस के ऊपर ब्रह्मनाल की सड़क चलती है । निश्चय है कि योंही घाटों के नीचे अनेक राजाओं के बनाए घाटों के चिन्ह मिलैंगे । हम आजकल में मणिकर्णिका पर से एक प्राचीन पत्थर उठा लाए हैं जिससे उस समय का कुछ वृत्तांत मिलता है । यह पत्थर संवत १३५९ तेरह सौ उनसठ का लिखा है जो ईस्वी सन् १३०२ के समय का होता है । इस के अक्षर प्राचीन काल के हैं और मात्रा पड़े हैं । पर शोच का विषय है कि पूरा नहीं है, कुछ भाग इस का टूट गया है, इससे नाम का पता नहीं लगता कि किस राजा का है । जो कुछ वृत्त उससे जाना गया वह यह है — "उक्त समय में क्षत्रिय राजा दो भाई बड़े विष्णुभक्त और ज्ञानवान हुए और इन की कीर्त्ति परम प्रगट थी, उन लोगों ने मणिकर्णिका घाट बनवाया । उस घाट के निर्माण का विस्तार वीरेश्वर तक था और मध्य में मणिकर्णिकेश्वर का

बड़ा लम्बा चौड़ा और ऊँचा मंदिर बनाया और बीच में बड़ी बड़ी वेदिका बनाई (वेदिका चबूतरे को कहते हैं) यह राजा बड़ा गुणज्ञ था'' इत्यादि । इससे निश्चय है कि उस की बनाई कोई वस्तु शेष नहीं रही । अब जो मणिकर्णिकेश्वर है वह एक गहिरे नीचे संकीर्ण स्थान में हैं और विश्वेश्वर और वीरेश्वर भी नए स्थानों में हैं । ऐसा अनुमान होता है कि गंगाजी आगे ब्रह्मनाल की ओर बहुत दब के बहती थीं, क्योंकि अद्यापि वहाँ नीचे घाट मिलते हैं । निश्चय है कि इस राजा के पीछे भी अनेक बार घाट बने होंगे, परंतु अब जो कुछ टूटा फूटा घाट बचा है वह अहल्याबाई साहब का बनाया है ।

मणिकर्णिका कुण्ड की सीढ़ियां जो वर्त्तमान हैं वह दो सौ उनचास २४९ वर्ष की बनी हुई है और इन को नारायणदास नामक वैश्य ने (जिस का पुकारने का नाम नरैनू था) बनवाई है । यह सोमवंशी राजा बासुदेव का नाम था । यह बात इन श्लोकों से प्रगट होती है जो वहाँ एक पत्थर पर खुदे मिले हैं ।

व्योमाष्टषट् चन्द्रमिते शुभेब्दौ मासे शुचौ विष्णुतिथौ शिवायां ।
चकार नारायणदासगुप्त: सोपानमेतन्मणिकर्णिकाया: ।।१।।
जात: क्षितौवासतुल्यतेजा: सीमान्यये भूपति वासुदेवा:
तस्यानुवर्त्ती मणिकर्णिकायाश्चकार सोपान ततिर्नरेणु: ।।२।।
वासुदेवाग्रसचिवो नरंणुरावतात्मज: ।
चक्रपुष्करणी तीर्थ जीर्णोद्धारमचीकरत् ।।३।।

।। काशी ।।

मैं इस में काशी के तीन भाग का वर्णन करूँगा यथा प्रथम भाग में चंचक्रोश का, दूसरे में गोसाइयों के काल का, तीसरे कुछ अन्य स्फुट वर्णन । मैं पंचक्रोशी का वर्णन ऐसा नहीं करना चाहता कि जिसे देख कर लोग पंचक्रोशी की यात्रा करने चले जायँ वरंच मैं भगवान काल के उस परम प्रबल फेर फार रूपी शक्ति को दिखाता हूँ जिस से धैर्य्यमानों का धैर्य्य और अज्ञानों का मोह बढ़ता है । आहा ! उस की क्या महिमा है और कैसी अचिंत्य शक्ति है ? अतएव मैं मुक्तखंड से कह सकता हूं कि ईश्वर भी काल का एक नामान्तर है । क्योंकि इस संसार की उत्पत्ति प्रलय केवल इसी पर अंटकी है । जिस विजयी और विख्यात सिकन्दर ने संसार को जीत उसकी अस्थि कहां गड़ी है और जिस कालिदास की कविता संसार पढ़ता है वह किस काल में और किस स्थान पर हुआ ? यह किसका प्रभाव है कि अब उस का खोज भी नहीं मिलता ? काल का अतएव यदि हम प्राचीन, नवीनों से नवीन, बलवालों से बलवान, उत्पत्ति, पालन, नाश कर्त्ता और सर्व तन्त्रष्वतन्त्रादि विशेषणों से विशिष्ट ईश्वर को काल ही का एक नामान्तर कहैं, तो क्या दोष है ।

इस पंचक्रोशी के मार्ग और मंदिर और सरोवरों में से दो सौ वा तीन सौ वर्ष से प्राचीन कोई चिन्ह नहीं है और इस बात का कोई निश्चायक नहीं कि पंचक्रोश का मार्ग यही है केवल एक कर्दमेश्वर का मंदिर मात्र बहुत प्राचीन है और इस के बौद्धों के काल का वा इस के पीछे के काल का कहैं, तो अयोग्य न होगा । इस मंदिर के अतिरिक्त और कोई प्राचीन चिन्ह नहीं, पर हां पद पद पर पुराने बौद्ध वा जैन मूत्तिखंड, पुराने जैन मंदिरों के शिखर, दासे, खंभे और चौखटें टूटी फटी पड़ी हैं । क्यों भाई हिंदुओ ! काशी तो तुम्हारा तीर्थ न है । और तुम्हार वेद मत तो परम प्राचीन है । तो अब क्यों नहीं कोई चिन्ह दिखाते जिस से निश्चय हो कि काशी के मुख्य देव विश्वेश्वर और विंदुमाधव यहाँ पर थे और यहाँ उन का चिन्ह शेष है और इतना बड़ा काशी का क्षेत्र है और यह उस की सीमा और यह मार्ग और यह पंचक्रोश के देवता हैं । बस इतना ही कहो भगवते कालाय नम: । हमारे गुरु राजा शिवप्रसाद तो लिखते हैं कि ''केवल काशी और कन्नौज में वेदधर्म्म बच गया था'' पर मैं यह कैसे कहूँ, वरंच यह कह सकता हूँ कि काशी में सब नगरों से विशेष जैन मत था और यहीं के लोग दृढ़ जैनी थे, भवतु काल जो न करे सब आश्चर्य्य है । क्या यह संभावना नहीं हो सकती कि प्राचीन काल में जो हिंदुओं की मूर्त्तियाँ और मंदिर थे उन्हीं में जैनों ने अपने काल में अपनी मूर्त्तियाँ बिठा दीं ? क्यों नहीं । केवल कुछ क्षण दिल्ली के सिंहासन पर एक हिंदू बनिया बैठ गया था उतने ही समय में मसजिदों में हिंदुओं ने सिंदूर

के भैरव बना दिये और कुरान पढ़ने की चौकियों पर व्यासों ने कथा बांची, तो यह क्या असम्भावित है।

कर्दमेश्वर का मंदिर बहुत ही प्राचीन है और उस के शिखर पर बहुत से चित्र बने हैं जिनमें कई एक हिंदुओं के देवताओं के हैं, पर अनेक ऐसे विचित्र देव और देवी बनी हैं जिसका ध्यान हिंदू शास्त्र में कहीं नहीं मिलता अतएव कर्दमेश्वर महादेव जी का राज्य उस मंदिर पर कब से हुआ यह निश्चय नहीं है और पलथी मारे हुए जो कर्दमजी की श्रीमूर्ति है वह तो निस्संदेह ****कुछ और ही है और इसके निश्चय के हेतु उस मंदिर के आस पास के जैन खंड प्रमाण हैं और उसी गांव में आगे कूप के पास दाहिने हाथ एक चौतरा है उस पर वैसी ही ठीक किसी जैनाचार्य्य की मूर्त्ति पलथी मारे खंडित रक्खी है देख लीजिए और उस के लंबे कान उस का जैनत्व प्रमाण करते हैं। अब कहिए वह तो कर्दम ऋषि हैं ये कौन हैं कपिलदेव जी हैं ? ऐसे ही पंचक्रोशी के सारे मार्ग में परंच काशी के आस पास के अनेक गांव में सुंदर सुंदर शिल्पविद्या से विरचित जैन खंड पृथ्वी के नीचे और ऊपर पड़े हैं। कर्दमेश्वर का सरोवर श्रीमती रानी भवानी का बनाया है और उस पर यह श्लोक लिखा है।

"शाके गोत्रतुरंभूपतिमिते श्रीमत्भवानीनृपा
गौड़ाख्यानमहीमहेन्द्रवनिता निष्कर्द्दमं कार्द्दमं।
कुंडं प्राज्ञसुखंडमंडिततटं काश्यां व्यधादादरात्
श्रीतारातनया पुरांतकपर प्रीत्यै विमुक्तै नृणां॥

अर्थ— शाके १६७७ में अपनी कन्या श्रीतारा देवी के स्मरणार्थ यह कर्दम कुंड बंगाले की महारानी श्रीभवानी ने बनाया। इन महारानी की कीर्त्ति ऐसी ही सब स्थानों में उज्ज्वल और प्रसिद्ध है और राजा चंद्रनाथ राय (उनके प्रपौत्र) मानो उस पुण्य के फल हैं। भीमचंडी के मार्ग में भी ऐसे ही अनेक चिन्ह हैं और भद्राक्षी नामक ग्राम में एक बड़ा पुराना कोट उलटा हुआ पड़ा है और पंचक्रोशी करानेवाले उसके नीचे उसी के ईंटों से छोटे-२ घर बनाते हैं और इस में पुण्य समझते हैं। सम्भावना है कि यहाँ कोई छोटी राजसी रही हो, क्योंकि काशी के चारों ओर ऐसी छोटी छोटी कई राजसियाँ थीं जैसे आशापुर। काशीखंड में आशापुर को एक बड़ा नगर कर के लिखा है पर अब तो गाँव मात्र बच गया है। भीमचंडी का कुंड भी श्रीमती रानी भवानी का बनाया है और उस में यह श्लोक लिखा हुआ है।

शाके कालाद्रिभूपे गतविलकमलं गौड़राजेन्द्रपत्नी
गन्धर्व्वाम्भोनिधिसमखननं स्वर्गसोपानजुष्टं।
चक्रे राज्ञी भवानी सुकृतिमतिकृतिर्भीमचंडी सकाशे
काश्यामस्यासुकीर्त्तिस्सुर पतिसमितौगीयतेनारदाद्यैः।

अर्थात् शाके १६७६ में रानी भवानी ने यह सरोवर बनाया तो इस लेख से ११८ का प्राचीन यह सरोवर है। इससे प्राचीन भी कुछ चिन्ह हैं, पर अत्यन्त प्राचीन नहीं। देहली विनायक जो मुख्य काशी की सीमा हैं वहीं ठीक नहीं हैं, क्योंकि वहाँ कोई भी प्राचीन चिन्ह शेष नहीं है। वहाँ के मंदिर और सरोवर सब एक नागर के बनाये हुए हैं जिसे अभी केवल सत्तर अस्सी बरस हुए। पर इतने ही समय में वह बहुत टूट गए हैं। काशी के कतिपय पंडित कहते हैं कि प्राचीन देहली विनायक वहाँ से कोसों दूर हैं। अतएव पंचक्रोशी का प्रचलित मार्ग ही अशुद्ध है और यह संभावना भी है, क्योंकि सिंधुसागर तीर्थ का बहुत सा भाग इस मार्ग में बाम भाग पड़ता है, पर प्राचीन मार्ग की सड़क खेतवालों ने संपूर्ण नष्ट कर डाली है ? रामेश्वर में श्री रानी भवानी की धर्म्मशाला और उद्यान है, परंतु रामेश्वर के कोस भर उधर बीच मार्ग ही में एक बड़ा प्राचीन मंदिर खंड पड़ा है। बीच में शिवपुर एक विश्राम है और वहाँ पाँचों पांडव हैं, परंतु वह विश्राम इत्यादि कोई काशीखंड लिखित नहीं हैं। सब साहो गोपाल दास के भाई भवानी दास साहो के बनाए हुए हैं और अब वह एक ऐसा विश्राम हो गया है कि सब काशी के बंधु वहीं पंचक्रोशी वालों से मिलने जाते हैं। कपिलधारा मानों जैनों की राजधानी है। कारण ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीन काल में काशी उधर ही बसती थी, क्योंकि सारनाथ वहाँ से पास ही है और मैं वहाँ से कई जैन मूर्त्ति के सिर उठा लाया हूँ। ऐसी भी जनश्रुति है कि महादेवभट्ट नामक

कोई ब्राह्मण था, उसी ने पंचकोशी का उद्धार किया है ।

मुझे शिव मूर्त्ति अनेक प्रकार की मिली हैं १ पंचमुख दशभुज, २ एक मुख द्विभुज, ३ एक मुख चतुर्भुज, ४ पद्मपर से पैर लटकाए हुए बैठे और पार्वती गोद में बैठी, ५ पालथी मारे, ६ पार्वती को आलिंगन किए हुए इत्यादि । तो इस अनेक प्रकार की शिव मूर्त्तियों की प्राप्ति से शंका होती है कि आगे लिंग पूजन का आग्रह नहीं था ।

काशी में किसी समय में दश नामी गोसाइयों का बड़ा प्राबल्य था और इन महात्माओं ने अनेक कोटि मुद्रा पृथ्वी के नीचे दबा रखी है अतएव अनेक ताम्र पत्र पर बीजक लिखे हुए मिलते हैं, पर वे द्रव्य कहाँ हैं इसका पता नहीं । इन गोसाइयों ने अनेक बड़े बड़े मठ बनवाए थे और वे सब ऐसे दृढ़ बने हैं कि कभी हिल भी नहीं सकते । इन गोसाइयों में पीछे मद्यपान की चाल फैली और इसी से इन का तेजोनाश हुआ और परस्पर की उन्मत्तता और अदालत की कृपा से इन का सब धन नाश हो गया, पर अद्यापि वे बड़े बड़े मठ खड़े हैं । इन गोसाइयों के समय में भैरव की पूजा विशेष फैली थी । कालिज में एक विस्तीर्ण पत्थर पड़ा है उस पर एक गोसाइयों के बनाए मठ और शिवाले और उसकी विभूति का सविस्तार वर्णन है मैं उस को ज्यों का त्यों आगे प्रकाश करूंगा जिससे वह स्वयं स्पष्ट हो जायेगा ।

यहाँ जिस मुहल्ले में मैं रहता हूँ उस के एक भाग का नाम चौखम्भा है । इस का कारण यह है कि वहाँ एक मसजिद कई सौ बरस की परम प्राचीन है । उसका कुतबा कालबल से नाश हो गया है पर लोग अनुमान करते हैं कि ६६४ बरस की बनी है और मसजिदे चिहल सुतून, यही उस की 'तारीख' पर यह दृढ़ प्रमाणी भूत नहीं है । इस मसजिद में गोल गोल एक पंक्ति में पुराने चाल के चार खंभे बने हैं अतएव यह नाम प्रसिद्ध हो गया है । यही व्यवस्था ढाई कनगूरे के मससिद की है, यह मसजिद भी बड़ी पुरानी है । अनुमान होता है कि मुगलों के काल के पूर्व की है । इसकी निर्मिति का काल में १०५९ ई. बतलाते हैं । इस से निश्चय होता है कि इस मुहल्ले में आगे अब सा हिंदुओं का प्राबल्य नहीं था, पर यह मुहल्ला प्राचीन समय से बसा है ।

मैंने जो अनेक स्थलों पर लिखा है कि जैन मूर्त्ति बहुत मिलती हैं इमसे यह निश्चय नहीं कि काशी में जैन के पूर्व हिंदूधर्म्म नहीं था, क्योंकि जैन काल से पूर्व की और सम काल की हिंदुओं की अनेक मूर्त्ति अद्यापि उपलब्ध होती हैं । कालिज में एक प्रस्तर खंड पड़ा है और उस की लिपि परम प्राचीन है । पंडित शीतलाप्रसाद जी का अनुमान है कि यह लिपि पाली के भी पूर्व की है । इस पत्थर पर एक काली के मंदिर की प्रतिष्ठा का समाचार है और इस का काल अनेक सहस्र वर्ष पूर्व्व है और उस में ये श्लोक लिखे हैं ।

१

ख्याता वाराणसीय त्रिभुवनभवने भोगचौरीति दूरात् ।
सेवन्ते यां विरक्ता: जननमरणयो मोक्षमक्षैकरक्ता ।।

२

यत्र देवोऽविमुक्त: यो दृष्ट्या ब्रह्माहा ऽपि च्युतकलिकलुषो जायते शुद्धभाव: ।
अस्यामुत्तुंगशृंगस्फुटशशि किरिणा ।।

३

प्रतुलिविविधजनपदस्त्रीविलासा ऽभिरामं विद्या वेदान्ततत्त्वव्रतजपनियमव्यग्रञ्चंत्रा-
भिजुष्टं ।। श्रीमत्स्थान सुसेव्य ।।

४

तत्रा ऽभूत सार्थनामा शिशुरपि विनयव्यापदोभद्रभूत्ति: त्यागी धीर: कृतज्ञ:
परिलयविभवोप्यात्मवृत्याभिजीवी ।

५

वर्णा चऽङनरोत्तमांगरचितव्यालम्बिमालोत्कटा ।
सर्प्पत्सर्प्पविवेष्टितांगरपशुव्याविद्धिशुष्काभिषा लीला नृत्यकचित्तपिंलोत्प

६

यस्यापि न तस्य तुष्टिरभवत यावत् भवानीग्रहं शुशिलष्टाऽमलसन्धि वन्धघटितं

घंटानिनादोज्जलं। रम्यं दृष्टिहरं शिलोच्चाय ।।
ध्वज चामरं सुकृति नाश्रेयो ऽर्थिना कारितं
७

इस लेख के उपसंहार काल में मणिकर्णिका घाट का अवशिष्ट वर्णन करता हूँ । अब जो सांप्रत्त घाट वर्तमान है वह अहल्याबाई का बनवाया हुआ है और दो बड़े बड़े शिवालय भी घाट की सीमा पर उन्हीं के बनाए हैं और उन पर ये श्लोक लिखे हैं ।

श्रीमान् होलकरोपाख्यख्यातो राजन्यदर्प्पहा ।
मल्लारिरावनामा ऽभूत खंडेरावस्तु तत्सुत: ।।१।।
विलासी गुणकल्पद्रुः शूरो वीराभिसम्मतः ।
तत्पत्नी पुण्यचरिता कुलद्वयविभूषणं ।।२।।
अहल्याख्या तया ख्याता तृषु लोकेषु कीर्तये ।
वद्धोघट्टस्सुसोपानो मणिकर्ण्यास्सुविस्तृत: ।।३।।
तत्पार्श्वयोर्विधायेमौ प्रासादावुन्नतौ पृथक् ।।
तयो: पश्चिमदिकसंस्थे स्थापितो गौतमेश्वर: ।।४।।
प्राक् संस्थे तारकेशांक अहल्योद्धारकेश्वर: ।
स्थापितो वसुवेदेह विधुसम्मतवैक्रमे ।।५।।
रामेन्दुदधि भूयुक्ते शालिवाहनजेशके ।
राधशुक्लद्वितीयायां गुरौ दुंदुभिवत्सरे ।।६।।
घटोत्सर्ग: सुसम्पन्न: यजमान्यभ्यनुज्ञयया ।
स्वामिकार्यहितैकेच्छु जीवाजीशर्म्म हस्तत: ।।७।।
(शाके १७१३)

काशी में बिन्दुमाधव घाट सम्वत् १७९२ में श्री छत्रपति महाराज के पन्त प्रतिनिधि परशुराम के पुत्र श्री श्रीनिवास की स्त्री श्रीमती राधाबाई ने बनवाया है और ऐसा अनुमान होता है जब यह घाट नहीं बना था तभी से इसका नाम नरसिंह दाढ़ा था, क्योंकि नरसिंह दाढ़े का नाम उस श्लोक में पड़ा है जो बाई साहब के काल का बना है । निश्चय है कि नरसिंह दाढ़ा के नाम से लोग सोचेंगे कि यह कौन वस्तु है, परंतु मैं इतना ही कह सकता हूँ कि वह नरसिंह दाढ़ा एक पत्थर का केवल मुख का आकार है जो रामानंद की मढ़ी में हनुमान जी की बाईं ओर दीवार में लगा है और जब वहाँ तक पानी चढ़ता है तब इंद्रदमन का नहान लगता है । ऐसा अनुमान होता है कि यह इसी नाम के हेतु बनाया हो वा यह किसी पुरानी मूर्ति का मुँह है जो नरसिंह जी के मुंह के नाम स पूजता है । पर कोई कहते हैं कि वह रामानंद गोसाईं का मुँह है । जो हो, मुँह तो गोल पुराना मुछमुंडा सा है ।

यही श्लोक वहाँ खुदा है ।

स्वस्ति श्री विक्रमार्केद्विवननगरधरासंमिते १९७२ क्रोधनाब्दे ।
मासीषे शुक्लके दिक्तिथिहरिभयुते चान्हिविश्वेशतुष्ट्यै ।।
श्रीशाहो: श्रीनिवास: प्रतिनिधिपदग: पर्शुरामात्मजस्त ।
ज्जायाराधाकृतोयं जयतिनृहरिदंष्ट्राख्यघट्ट: सुबद्ध: ।।१।।
प्रत्यंतरमिदं ऊर्ध्वं श्लोकस्यद्वारिदीपवत् ।
अकारिबालकृष्णेन स्वामिकार्यनिरूपकं ।।२।।

तथा काशी में जो वृद्धकाल महादेव का मंदिर है वह भी किसी छत्रपति के आश्रितों में मेघश्याम के पुत्र चाविक उपनामक देवराज ने बनाया है और एक तो कालेश्वर के लिंग का जीर्णोद्धार किया और अपने नाम देवराजेश्वर एक शिव और बैठाया है जो इन श्लोकों से प्रगट है ।

अब्देत्वीश्वरसंज्ञके शुभदिने संस्थाप्य कालेश्वरं ।
प्राचीनं प्रणतार्तिभंजनपरं श्रीदेवराजेश्वरं ।।
शाहूछत्रपतेः कृपालुवशगः श्रीदेवरायः स्वयं ।
मेघश्यामसुतः शिवालयमहो काश्यामबध्नात्ध्रुवं ।।१।।
श्रीमत्प्रौढ़प्रतापप्रगटितयशसः शाहुभूपालकस्य ।
प्राजस्याज्ञानुकारिद्विजहितविहितश्चाविकोदेवरायः ।
धात्रब्देमोरभट्टानुमितमुपवनं गेहशालाविशालं ।
काश्यांविश्वेश्वरस्यत्रिजगधनुषः प्रीतयेनिर्निमाय ।।२।।

पापभक्षेश्वर भैरव का मंदिर भी बाजीराव का बनाया है । जो हो, अब काशी में जितने मंदिर वा घाट हैं उन में आधे से विशेष इन महाराष्ट्रों के बनाए हुए हैं ।

शिवपुर का द्रौपदी कुण्ड

यह बात प्रसिद्ध है कि शिवपुर काशी की पंचक्रोशी में कोई तीर्थ नहीं केवल लोगों के वहाँ टिकते टिकते वह टिकान हो गई है और देवता बिठा दिए गए हैं । पर अब की द्रोपदी कुंड में एक पत्थर के देखने से ज्ञात हुआ कि यह प्राचीन तीर्थ है और तीन सौ बरस पहिले भी यहाँ पांडवों का मंदिर था । वरंच 'सुकृति कृति हितैषी'' पद जो उस में राजा टोडरमल का विशेषण दिया है उस से ज्ञात होता है कि उन्होंने भी किसी के बनाये हुए कुंड का जीर्णोद्वार किया है इससे उसकी और भी प्राचीनता सिद्ध होती है । यह बावली राजा टोडरमल ने सं. १६४६ में बनवाई थी और ''पांडव मंडपे'' इस पद से स्पष्ट है कि वहाँ उस काल में पांडवों का मंदिर था । इस का पहिला श्लोक नहीं पढ़ा गया बाकी के तीन श्लोक पाठकों के विनोदार्थ यहाँ प्रकाशित होते हैं ।

प्रत्यर्थिक्षितिपालकालनसु***** ने दूतिका ।
मुद्रांक प्रकटप्रतापतपनप्रोद्भासिताशामुखे ।।१।।
क्षाणाशेकवरे प्रशासति मही तस्मिन् नृपालावलिस्फूर्जन्मौ-
लिमरीचिवीचिरुचिरोदञ्चत्पदाम्भोरुहे ।।२।।
तद्राज्यैकधुरन्धरस्य वसुधा साम्राज्यदीक्षागुरोः ।
श्रीमच्छण्डनवंशमण्डनमणे :श्रीटोडरक्ष्मापतेः ।
धर्मौघैकविधौ समाहितमतेरादेशतो ऽचीकर-
द्वापीं पाण्डवमण्डपे** वनो गोविन्ददासः सुधीः ।।३।।
ऋतुनिगमरसात्मासम्मिते १६४६ वत्सरेशे
सुकृतिकृतिहितैषी टोडरक्षोणिपालः ।
विहितविविधपूर्त्तो ऽचीकरच्चारु वापीम्
विमलसलिलसारां बद्धसोपान पंक्तिम् ।।४।।

पंपासर का दानपात्र

यह दानपात्र गोदावरी के तीर पर एक खेतवाले को मिला है । यह पाँच टुकड़ों में अच्छा गहिरा खुदा हुआ कपाली लिपि में पाँचों टुकड़े एक तामे की सिकड़ी में बँधे हुए एक तामे के डब्बे में बंद और उसी डब्बे में शीसे की भाँति किसी वस्तु के आठ टुकड़े और एक चोंगा जिसमें सील लगी हुई थी निकला है । अनुमान होता है कि इस चोंगे में कागज रहा होगा, जो काल पाकर भीतर ही भीतर गल गया है । यह पत्र चंद्रवंशी क्षत्री दो राजाओं के दिए सं. १९७ के हैं और इन के पढ़ने से उस काल की बहुत सी चाल व्यवहार और उन के राज्य करने की नीति इत्यादि प्रगट होती है । इससे इनका यथास्थित संस्कृत का भाषानुवाद यहाँ प्रकाश होता है

इस वंश का और कहीं पता नहीं लगा है । केवल उन दोनों ताम्रपत्रों से जो कालेपानी से सं. १८५७ में एशियाटिक सोसाइटी में आए थे इनका संबंध ज्ञात होता है, क्योंकि उनमें यही लिपि और इन्हीं दोनों वंशों का वर्णन है पर नाम अलग अलग है और उन दोनों में संबंध भी नहीं है ।

विजनजवन नामक क्षत्रियों के दो प्राचीन कुल थे जिनकी संज्ञा ढढ़िया और पुछड़िया थी ।।१।।

अपने बैरियों का सर्वस्व धन और धर्म नाश करके और भोग करके ढढ़िया वंश समाप्त हुआ ।

पुछड़िया कुल के राजा जब दोनों कुलों के स्वामी हुए तब इन लोगों ने प्रजा का बड़ा आडम्बर से सत्कार किया और चक्रवर्ती हो गए ।।३।।

विद्या में बड़े पद और सभाओं में बड़ी बड़ी वक्तृता और आदर के अनेक आकाशी चिन्हों से इन के अनुयायी सदैव शोभित रहते थे ।।४।।

उदार ऐसे थे कि समाधि में भी रुपया नहीं बचने पाता था, चारों ओर केवल जाचक ही जाचक दिखाई देते थे ।।५।।

कलानिपुण ऐसे थे कि इन के सिवा और कोई था ही नहीं और राजनीति के छल बल के तो एकमात्र वृहस्पति थे ।।६।।

कहते हैं कि शौरसेन यादव वंश में बलदेव जी से इस वंश का साक्षात् संबंध है, क्योंकि अब तक ये जैसे हलीमद प्रिय भी हैं ।।७।।

ये इतने चतुर थे कि और सब जाति के लोग इन के सामने मूर्ख ज्ञात होते थे । और प्रबल भी इतने कि इन की बात कभी दोहराई नहीं जाती थी ।।८।।

इन में वेणु के पुत्र सगर के पौत्र द्वीपसिंह के प्रपौत्र नाभाग और त्रिशंकु नामक दो राजा हुए ।।९।।

नाभाग को भोज मदमत्त और भगवान तीन पुत्र और त्रिशंकु को बावन नामक एक पुत्र था ।।१०।।

बावन को गौरचंद्र और हनुमान दो पुत्र हुए, जो अब तमसा कृष्णा तक नीलगिरि से हिमगिरि के प्रांत तक राज्य करते हैं ।।११।।

इनके अभिषेक के जलकण से और हाथियों के मद से तथा शूरों के परिश्रम और रति शूरों के स्वेद जल और इन के शत्रुओं की स्त्री के नेत्रजल से मिलकर इन की दान जलधारा नगर के चारों ओर खाई सी बन रही है ।।१२।।

जिन लोगों को ये जीतते थे उन की ऐसी दुर्गति होती थी कि वे अन्न वस्त्र को भी दीन हो जाते थे तथापि ये ऐसे दयालु थे कि यही मात्र उन के शरण होते थे ।।१३।।

प्राचीन कर सब इन लोगों ने क्षमा कर दिए । इनके काल में केवल आठ दस कर बच गए । उस पर भी प्रजा को दुःखी देखकर ये उन का बड़ा प्रतिपालन करते थे ।।१४।।

वरंच ये ऐसे दयालु थे कि और राजाओं की भांति आप कर लेने में ये ऐसे लज्जित होते थे जिस का वर्णन नहीं । इसी से पाठशाला धर्म्मशाला इत्यादि धर्म कार्य के हेतु संगृहीत हो कर उन्हीं कामों में व्यय होता था ।।१५।।

शुक्लानधान उसी को समझते थे जो इनके जातिवालों की नौकरी वा बनज को मिस आवे ।।१६।।

लक्ष्मी के एक मात्र आश्रय सरस्वती के पूरे दुर्गा के वर्ग तीनों शक्ति से ये सम्पन्न और त्रिदेव पुरजन के बड़े आग्रही थे ।।१७।।

इन धर्मावतारों ने पंपासर तीर्थ पर चन्द्रमा के पूर्ण ग्रास पर फाल्गुनी पौर्णिमा संवत १९७ पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र व्यतीपात योग वैद्य्य करण शनिवार कन्या पर गुरु मेष पर शुक्र मीन पर सूर्य कुम्भ में चंद्रमा मिथुन में बुध करकट में मंगल और शनि में पंपासर तीर्थ में स्नान कर परम धार्मिक परमेश्वर परम माहेश्वर भट्टारक महाराज गौरचंद्र तथा हनुमच्चंद्र मुड़ाल गोत्र गर्गाड़ि.गरस मुड़ाल द्विजवर ठक्कुरनासी के पौत्र ठक्कुर उव्वट के पुत्र ठक्कुर चुप्पल शर्म्मा को कलिंगदेशान्तर्गत खातावी प्रगने के छीछल प्रगने का पसंसरी और कारंस नामक दो ग्राम दे कर इस के सीर सायर आकास पाताल खेत खर्पट बाटी तिवारी जल थल सब पर इन का अधिकार करते हैं इन के वंश का जो होय वह उस को मानै कोई कर नहीं लगेगा ।

मि. चैत्र शुद्ध १ सं. १९८ विक्रम के लिखे सूत्रधार प्रवासी राय और ब्राह्मण ब्राह्ममय ने शुभ ।

(इस के आगे ये श्लोक लिखे हैं)

ये सर्वेस्युर्भाविन: पार्थिवेन्द्रास्तेभ्यो भूयोयाचते रामचन्द्र: ।
सामान्योऽयं धर्म्मसेतुर्नृपाणां काले काले रक्षणीयो भवद्भि: ।।
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्ति हरेत्तुय: ।
षष्ठि वर्ष सहस्राणि विष्ठायां जायते क्रिमि : ।।
शुभम् श्री : ।।

कन्नौज का दानपत्र

यह दानपत्र राजा गोविन्दजचन्द्र कन्नौज के राजा का है जो दिल्ली के बादशाही खजाने से सिख लोग लाहौर लूट कर ले गए थे और अब श्री पंडित राधाकृष्ण चीफ पंडित लाहौर ने उस की एक प्रति हमारे पास भेजी है । इस राजवंश का पूर्व स्थापक गाहरवाल राजा था और करल्ल इस का अन्तिम राजकुमार हुआ । उसी वंश की एक शाखा महिआल में (वा महिआल का पुत्र) भोज हुआ जिसका काल ८८५ ईस्वी है । इन भोज और करल्ल की कीर्त्ति समाप्त होने के पीछे उसी वंश की शाखा में यशोविग्रह राजा हुआ उस का पुत्र महीचन्द्र, उस का पुत्र चन्द्रदेव, उसका पुत्र मदनपाल और उस मदनपाल का पुत्र गोविंदचन्द्र था, जिस ने यह दान किया है । यह राजा ऐसा दानी था कि इसके दिये हुए गाँवों के शतावधि दानपत्र मिले हैं । ये लोग वैष्णव वा वैष्णवों के अनुयायी थे, क्योंकि इनके दानपत्रों पर गरुड़ का चिन्ह और गोविंदचन्द्र की मोहर पांचजन्य शंख है । 'अकुंठोत्कुंठ' यह श्लोक प्राय: दानपत्रों पर है । यह दानपत्र संवत् ११८२ में माघ वदी ६ शुक्रवार को ग्रीवमती (?) तीर्थ में गंगा में स्नान कर के राजा गोविंदचन्द्र ने गौतम गोत्र के गौतमाङ्गिरस मुध्द विप्रवर के ब्राह्मण ठक्कर अल्हन के पुत्र छीफठ बाफठ दोनों भाइयों को हलद तालुके का गोंउली नाम गाँव दिया है ।

स्वस्ति —अकुण्ठोत्कुण्ठवैकुण्ठकण्ठलुठत्कर: । संरम्भ: सुरतारम्भे सश्रिय: श्रेयसे ऽस्तुव: ।।१।। आसीदशीतद्युति वंशजातक्ष्मापालमालासुदिवंगतासु । साक्षाद्विवस्वानिवभूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्युदार: ।।२।। तत्सुतोऽभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभंनिजम् । येनापारमकूपार पारेव्यापारितंयश: ।।३।। यस्य भूत्तनयोनैकरसिक: क्रान्तद्विषन्मण्डलो विध्वस्तोद्धतवीरयोतिमिर: श्रीचन्द्रदेवोनृप: । येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवम् श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ।।४।। तीर्थानि काशिकुशिकोत्तर कौशलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयताभिगम्य ।। हेमात्मतुल्यमनिशंददता द्विजेभ्यो येनाङ्किता वसुमती शतशस्तुलाभि: ।।५ ।। तस्यात्मजोविजयपालइतिक्षितीन्द्रचूडामणिर्विजयतेनिजगोत्रचन्द्र: । यस्याभिषेककलशोल्ललितै: पयोभि: प्रक्षालितंकलिरज: पटलं धरित्र्या: ।।६।। यस्यासी द्विजयप्रयाणसमये तुंगाचलोच्चैश्चलन्माद्यत्कुम्भिपदक्रमायभभरत्रस्यन्महीमण्डलम् । चूड़ारत्न विभिन्नतालुगलितस्त्यानासृगुद्भासित: शेष: येषवशादिवक्षणमसौक्रोडेनिलीनानन: ।।७।। तस्मादजायत निजायत बाहुवल्लिवन्धावरुद्धनवराज्य गजोनरेन्द्र: । सान्द्रामृतद्रवमुचा प्रभवो गवां यो गोविन्दचन्द्रइति चन्द्रइवाम्बुराशे: ।।८।। नकथमप्यलभत्तरक्षणक्षमास्तिसृषुदिक्षुगजानथवज्रिण: । ककुभिबभ्रमुरभ्रमुवल्लभ प्रतिभटाइवयस्यघटागजा: ।।९।।

सोयं समस्तराजचक्रसंसेवितचरणा: परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निज भुजोपार्ज्जित श्रीकान्यकुब्जाधिपत्य श्रीचन्द्रदेवपदानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति राज्यपत्रयाधि विविध विद्याविचारवाचस्पति: श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवो विजयी

हल्दोपपत्तनायामगोउलीग्राम निवासिनो निखिलजन पदानुपगतानपि च राजाराज्ञी युवराज मन्त्रिपुरोहितप्रतिहार-सेनापतिभाण्डारिकाक्षपटलिकभिकनैमिमित्तिकान्तः पुरिक-दूतकरि-तुरगपत्तनाकरस्थान्नागोकुलाधि पुरुषानाज्ञापयति बोधयत्यादि-शतिश्चयथा विदितमस्तुभवतां मयोपरिलिखितग्रामः सजलस्थलः सहोहलवणाकरः समत्स्याकरः सगर्तोखरः समधूकाम्रवनवाटिकः विटपतृणयुतोगोचरपर्य्यन्तः सोर्ध्वाविम्बत्तरः घटविबद्धः स्वमीमापर्य्यन्तः द्व्यषीत्यधिकैका दशशत संवत्सरे ११८२ माघेमासि कृष्णपक्षे षटयान्तिथौ भृगावपिर्तः श्रीवमतीस्थलेगंगायां स्नात्वा विधिवन्मन्त्रदेव मुनिमनूजभूत पितृगणां स्तर्पयित्वा तिमिर पटल पाटन पट्टमह-समुद्धतार्चिषमुपस्थायौषधिपतिसकलशेखरं सप्रभ्यर्च्य त्रिभुवनत्रतुर्वासुदेवस्य पूजां विधायप्रचुरप्रायसेनहविषा हविर्भुर्जहुत्वा मातापित्रौ रात्मनश्च पुण्ययशोभि-वृद्धये ऽस्माभिरग्रे करणकुशलत्तायुतकमतुलोदक पूर्वंगौतमगौत्राभ्यांगौतमांकिर समुद्गलत्रिः प्रवराभ्यांठक्कुर श्रीआलहनपु त्राभ्यां श्रीछीछट श्रीवाछट शर्म्मभ्यां आचन्द्राकं यावचछासती कृत्यप्रदत्तभत्वा यथा दीयमानभाग भोगकर प्रवणिकरतु-रुष्कदण्ड सर्वादायनाज्ञां विवेकी भूयक्षान्तव्योति। भवन्तिचात्र श्लोकाः ।

भूमिंयः प्रतिगृहृणाति यश्चभूमिंप्रयचछति। उभौ तौपुण्यकर्माणौ नियतंस्वर्ग-गामिनौ ।।१।। संबंधमासनंछत्र वाराश्वावरवारणाः। भूमिदानस्यचिन्हानि फलमेत-त्पुरंदर ।।२।। सव्वनितान्भाविनः पार्थिवेन्द्रान्भूयो भूयो याचतेरामचन्द्रः। सामा-न्योऽयां धर्मसेनतुर्नृपाणां कालेकालेपाल-नीयोभवद्भिः ।।३।। बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः। यस्ययस्ययदाभूमिस्तस्यतस्यतदाफलम् ।।४।। गामेकाम् स्वर्णमेकञ्च भूमेरप्येकमंगलम्। हरन्नरकमाप्नोति यादवाहूतसंप्लवम् ।।५।। तड़ागानां सहस्रेणाप्यञ्च मेघशतेनश्च। गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुद्धतिं।।६।। इति।

नागमंगला का दानपत्र

श्रीरंगपट्टन से १५ कोस उत्तर नागमंगल शहर में एक मंदिर है। वहाँ पर निम्नलिखित लेख ६ ताम्रपत्रों पर खोदा हुआ मिला है जोकि एक मोटे धातु के कड़े से बेधित हैं, ये पत्रे १० इंच लम्बे और ५ इंच चौड़े हैं।

इस लेख से ज्ञात होता है कि पृथिवी निगुड़ राजा की स्त्री कुंदेवी जो पल्लवाधिराज की पोती थी उसने शके ६९९ में एक जैन मंदिर स्थापित किया था। इसी के सहायता के कारण उस के पति को विजय स्कन्धावार के महाराज पृथ्वी कोंगिणि से उसके राज्यप्राप्ति के पचास बरस बाद प्रार्थना करने पर यह दानपत्र मिला था।

मर्कए के पत्रों के लेख से मिलता हुआ कुछ कोएगू राजाओं का वृत्तांत इस लेख के पूर्व में है, जो सन् ४६६ से आरंभ होता है। इन लेखों में केवल इतना ही अंतर है कि इस में प्रथम महाराज का नाम कोडगणी वर्म धर्म महाधिराज और छठे का कोगणी महाधिराज लिखा है और केवल दानकर्त्ता को कोणगयी लिखा है। इस शब्द के भिन्न भिन्न प्रकार के लिखे जाने से कुछ प्रयोजन नहीं केवल इस से यह सूचना होती है कि कुर्ग में एक पत्थर पर खुदा लेख निकाला था और जिसको सत्यवाक्य कोड़गिणी वर्म धर्म महाराजाधिराज ने सन् ८४० में लिखा था उस में भी इसी शब्द कोण्गणी ही का अपभ्रंश है और इस को कभी कभी कोडगू भी लिखते थे जो कि कोड़ागू से बहुत मिलता है। यह कोड़ागू उस देश का प्रचलित नाम है जिसको अंग्रेज लोग कुर्ग लिखते हैं।

मर्करा के लेख के सदृश इस से भी ज्ञात होता है कि दूसरे माधव और कदंब राजाओं में संबंध भया था अर्थात् पूर्वोक्त ने दूसरे की भगिनी से विवाह किया था, इस में विष्णु गोप के पुत्र गोद लेने और डिंडिकरराय के राज्य का कुछ भी वर्णन नहीं है। इस समय से लेकर भूविक्रम के राज्य तक जिसने सन् ५२१ में राज्यसिंहासन को सुशोभित किया दानपत्र और राज्य इतिहास दोनों में राजाओं की नामावली संपूर्ण मिलती है। इसके पश्चात् विलंड जिसका शुद्ध नाम राजा श्रीवल्लभाख्य था उसको इतिहास में वर्त्तमान राजा का भाई

लिखा है (प्रोफेसर डाउसन के अनुसार छोटा भाई और टेलर के अनुसार बड़ा)। यथार्थ में वह राजा और राज्यप्रबंध का कार्य सम्पादक दोनों था। दानपत्र में छोटे भाई का नाम नवकाम लिखा है। कोगणीमहाराज सोमेश्वर का वृत्तांत जिस का शुद्ध नाम डाउसन शिवग महाराय टेलर शिवरामराय बताते हैं पीछे लिखा है। इतिहास में तो यों है कि इस का पौत्र पृथ्वी कोंगणी महाधिराज था, जो सन ७४६ में राज्य सिंहासन पर था। यही नाम दानकर्त्ता का है और यदि भीमकोप और राजाकेसरी इसी राजा के नामांतर मान लिये जायें जैसा कि संभव होता है तो इतिहास और उन पत्र का वृत्तांत एक मिल जाता है।

(१) स्वस्ति जितं भगवता गतघनगगनाभेन पद्मनाभेन श्रीमज्जान्हवेकुलाम-लव्योमावभासनभास्करः स्वखड्गैकप्रहारखंडितमहाशिलास्तंभलब्धबलपराक्रमो-दारणारिगणविदारणोपलब्धवारणविभूषणविभूषितः काण्वायनसगोत्रश् श्रीमत्को-दग्निवर्माधर्ममहाधिराजः तस्य पुत्रः पितुरन्वागतगुणयुक्तो विद्याविनयविहितवृत्तः सम्यक्प्रजापालनमात्राधिगतराज्यप्रयोजनो विद्वत्कविकाचननिकषोपलभूतो नीतिशास्त्रस्य वक्तृप्रयोक्तृकुशलो दत्तकसूत्रवृत्तेः प्रणेता श्रीमान्मामहाधिराजः तत्पुत्रः पितृपैतामहगुणयुक्तोअनेक-चतुर्दन्तयुद्धावाप्तचतुरुदधिसलिलास्वा-दितयशाः श्रीमद्धरिवर्मामहाधिराजः, तत्पुत्रो द्विजगुरुदेवतापूजनपरो (२) नारायणचरणानुध्यातः श्रीमान्विष्णुगोपमहाधिराजः तत्पुत्रो त्र्यंबकचरणाम्भो-रुहराजपवित्रीकृतोत्तमांगः स्वभुजबलपराक्रमक्रयकृतराज्यः कलियुगबलपंका-वसन्नधर्मवृषोद्धरणनित्यसन्नद्धः श्रीमान्माधवमहाधिराजः तत्पुत्रश श्रीमत्कदंबकु लगगभक्तिमालिनः कृष्णवर्ममहाधिराजस्य प्रियभागिनेयो विद्याविनयात्तिशय-परिपूरिततांतरात्मा निरवग्रहप्रधानशौर्यो विद्वत्सु प्रथमगण्यः श्रीमान् कोगणि-महाधिराजः अविनतनामा तत्पुत्रो विजृम्भमाणशक्तित्रय "अंदरिह" "अलत्तुप" "पौरुलाले" पेलंगराज्यानेकसमरमुखमखहुतशूरपुरुष पशूपहार-विघसविहस्ती-कृतकृतान्ताग्निमुखः किरातार्जुनीयपंचदशसर्गा (३) दिकोंकारो दुर्विनतीतना-मधेयः तस्य पुत्रो दुर्दान्तविमर्द्दमिमृभितविश्वम्भरादिपंचालिमाला-मकरन्दपुंज-पिंजरीक्रीयमाणचरणयुगलनलिनोमुष्करनामनामधेयः तस्य पुत्रश्चतुर्दशविद्या-स्थानाधिगतविमलमतिः विशेषतो नवकोशस्य नीतिशास्त्रस्य वक्तृप्रयोक्तृकुशलो रिपुतिमिरनिकरनिराकरणोदयभास्करः श्रीविक्रमप्रथितनामधेयः तस्य पुत्रः अनेकसमरसम्पादितविजृंभितद्विरदरदनकुलिशघातव्रणसमरूढ्स्वास्थ्यद विजय-लक्षणलक्ष्मी कृतविशालवक्षस्थलः समधिगतसकलशास्त्राधितत्त्वः समाराधित-त्रिवर्गो निरवद्यचरितप्रतिदिनवर्द्धमानप्रभावो भुविक्रमनामधेयः अपिच ॥

नानाहेतिप्रहारप्रतिहतसुभटाराभवाटोत्थितासृग् ।
भारास्वादामृताशक्षुधितपरिसरद्गृध्रसंरुद्धसीमे ॥
सामन्तान्पल्लवेन्द्रान्नरपतिमजयद्योबिलंदाभिधाने ।
राज्याश्रीवल्लभाख्यः समरशतजयावाप्तलक्ष्मीविलासः ॥

तस्यानुजो नतनरेन्द्रकिरीटकोटिरत्नार्कदीधितिविराजितपादपद्मः ॥
लक्ष्म्याः स्वयं वृतपतिर्नवकामनामाशिष्टप्रियोरिगणदारणगीतकीर्तिः ॥

तस्य कोगणिमहाराजस्य सोमेश्वरापरनामधेयस्य पौत्रः समवनतसमस्त-सामन्तमुकुटतटघटितबहुबलरत्नविलसदमरधनुष्काण्डमण्डितचरणनखमण्डलो नारायणे निहितभक्तिः शूरपुरुषतुरगनरवारणघटा संघट्टदारुणसमरशिरसिनि-हितात्मकोपो भीमकोपः प्रकटरतिसमय समनुवर्तनचतुरयुवतिजनलोकधूतो लोकधूर्तः सुदुर्धरानेकयुद्धमूर्धन्यलब्धविजयम्पदहितगजघटां (५) तकेसरीराजकेसरी अपिच ॥

यो गंगान्वयनिर्मलांलंरतलब्धाभासनप्रोल्लसन् ।
मार्तण्डोरिभयंकरः शुभकरः संमार्गरक्षाकरः ॥

सौराज्यं समुपेत्यराज्यसविताराजन्यतारोत्तमो ।
राजा श्रीपुरुषेश्वरो विजयते राजन्यचूड़ामणि: ।।
कामः रामः स्वचापे दशरथतनयो विक्रमे जामदग्न्यः ।
प्राज्ये वीर्ये बलारिर्बहुमहसिरविः स्वप्रभुत्त्वेधनेशः ।।
भूयोविख्यातशक्तिः स्फुटतरमखिलप्राणभाजांविधाता ।
धात्राश्लिष्टः प्रजानांपतिरितिकवयोयंप्रशंसंतिनित्थम् ।।

तेन प्रतिदिनप्रवृत्तमहादानजनितपुण्याहघोषमुखरितमन्दिरोदारेण श्रीपुरुष-प्रथमनाममधेयेन पृथ्वीकोंगणिमहाराजेन, अष्टानवत्युत्तरषट्छतेशु शकवर्षेष्वातितेष्वात्मनः प्रवर्द्धमानविजयवीर्य संवत्सरेपंचाशत्तमेवर्द्धमाने मान्यपुरमधिवसति विजयस्कंदावारे श्रीमूलमूलशरणाभिनंदितनंदिसंगान्वयइरुगित्तिरंनाम्निगने मूलिकलगछे स्वच्छतरगुणाकरकीरप्रततिप्रल्हादितसकललोकः चंद्रइवापरः चंद्रनंदिनामगुरुरस्ति तस्य शिष्यः समस्तविबुधलोकपरिरक्षणक्षमात्मशक्तिः परमेश्वर-लालनीयमहिमा कुमारवद्द्वितीयः कुमारनंदिनामा मुनिपतिरभवत् तस्यांतेवासी समधिगतसकलतत्त्वार्थसमर्पितबुधसार्द्धसंपत्संपादितकीर्तिः कीर्तिनंद्याचार्यो नामा महामुनिः समजनि, तस्य प्रियशिष्यः शिष्यजनकमलाकरप्रबोधजनकः मिथ्याज्ञानसंततसनुतससन्मानात्मकसद्धर्मव्योमावभासनभास्करोविमलचन्द्राचार्यः समुदपादि, तस्य महर्षेर्धर्मोपदेशनयाश्रीमद्राणकलकलः सर्वत्तपोमहानदीप्रवाहः वाहुदण्डमण्डलाखण्डितारिमंडलद्रुमशुंडा डुंडुप्रथमनामधेयो निर्गुण्डयुवराजो जज्ञे, तस्य प्रियात्मजः आत्मजनितनयविषनिःशेषीकृतरिपुलोकः लोकहितः मधुरमनोहर-चरितः चरितार्तत्रिकर्णप्रवृत्तिः परमगुणप्रथमधेयः श्रीपृथ्वीनिर्गुंडराजोऽजायत पल्कवाधिराजः प्रियतमजायां सगरकुलतिलकात् मरुवर्मणो जातांकुण्डाधिनामधेया-मुवाह भर्तृभावनाविर्भुवयातथासंततप्रवर्तितधर्मकार्ययानिर्मिताय श्रीपुरोत्तरदिशामलं कुर्वतिलोभतिलकधाम्नेजिनभवनाय खंडस्फुटितनवसंस्कारदेवपूजादानधर्मप्रवर्तनार्थं तस्य एव पृथ्वी निर्गुण्डराजस्य विज्ञापनया महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीजसहितदेवेन निर्गुंडविषयांतः पाति पोन्नालिनामाग्रामः सर्वपरिहारोपेदत्तः तस्य सीमां तराणि पूर्वस्यांदिशि नोलिबेलदा बेगलेमालदि, पूर्वदक्षिणस्यांदिशिपाण्यंगेरि, दक्षिणस्यां-दिशि वेडगली गेरयादिल गेरयापल्लादकुदल, दक्षिणपश्चिमायांदिशिजयद शकेय्यावेडगलमोलादुत्तरपश्चिमायांदिशि हेनके वितालतुवाजराकेलि, पश्चिमोत्त-रस्यांदिशि पुणुसेयगोट्टगालाकालकुप्ये, उत्तरस्यांदिशि सामगेडेयपल्लदाह पेरमुडिक्केउत्तरपूर्वस्यांदिशि कलाम्बेयेत्यगट्ट ईशान्यामन्यादिक्षेत्राणिदत्तानि डुंडुसमुद्रदावयलुलकिलुदाडामेगेपदिरक्कंगंमणामपालेयरेनल्लु राजारपाक्कर्कट्टकंडुगं श्रीवरदडुंडगामण्डराताडडुपडुययांडुतांडु श्रीवरदावयतुल्लकम्भरगसिनल्लिरिकंडुगं कालानिपेरगिलयकेडगेआरभंडुगं रेपूलिगिलेयाकोयेलगोदायददं इरुपत्तगुंडुगं भेद्य अदुवुश्रीवरवा बड्गणापदुवणाकोनुणन् देवंगेशिमदपएहिदं मूवन्तादुयिन्दुमनेतानं अस्य दानस्य साक्षिणः अष्टादशप्रकृतयः अस्य दानस्य साक्षिणः षराणवति सहस्त्रविषयप्रकृतयः योऽस्यापहर्ता लोभान्मोहात्प्रमादेन वा सपंचभिर्महद्भिः पातकैः संयुक्तो भवति यो रक्षति सपुण्यभाग् भवति अपि चात्रमनुगीताः श्लोकः ।

स्वदातुं सुमहच्छक्यं दुःखमन्न्यस्य पालनं ।
दानं वा पालनं वेति दानाच्छेयोऽनुपालनं ।।
देवस्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते ।
विषमेकाकिनं हन्ति देवस्वं पुत्रपौत्रको ।।

सर्वकलाधारभूतचित्रकलाभिज्ञेन विश्वकर्माचार्येणेदं शासनं लिखितं चतुष्कण्डुकम्री हिवीजमात्रं छिकण्डुककंगुक्षेत्रं तदपि ब्रह्मदेयमिव रक्षणीयं ।

चित्रकूट (चित्तौर) स्थ रमा कुंड प्रशस्तिः

ओंनम : श्रीगणेशप्रसादात् सरस्वत्यै नम : ।। श्रीचित्रकोटाधिपति श्रीमहाराजाधिराज महाराणा श्रीकुंभकर्ण पुत्री श्रीजीर्ण प्रकारे सोरठ पति महाराया राय श्रीमंडलीक भार्या श्रीरमाबाई ए प्रासाद रामस्वामि रु रामकुंड कारायिता सवंत् १५५४ वर्षे चैत्र सुदि ७ रवौ मुहूर्त कृता : शुभं भवतु ।

श्रीमत्कुंभ नृपस्य दिग्गज रदातिक्रांत कीर्त्यं बुधे :।कन्या यादव वंश मंडन मसि श्रीमंडलीक प्रिया । संगीतागम दुग्ध सिंधुजसुधा स्वादे परा देवता । प्राद्युम्नं कुरुते वनीपक जनं कं न स्मरंतं रमा ।।१।। श्रीमत्कुंभलमेर दुर्ग शिखरे दामोदरं मंदिरं श्रीकुंडेश्वर दक्षणा श्रित गिरे स्तीरे सर : सुंदरं । श्रीमद्भूरि महाब्धि सिंधु भुवने श्रीयोगिनी पत्तने भूय: कुंड मचीकरत्किल रमा लोकत्रये कीर्त्तये ।।२।। श्रीकुंभोद्भमन्वय बुधिर्नियमित : किं वा सुधा दीधितेर्निक्षेप स्त्रिदशैरशोषण भिया किंवाप्सरासुंदरं । प्राप्तुं पौर पुरंध्रि वृंद मभुजद्भूमी तलं मानसं चित्रं रामशर प्रहार भयतोब्धिर्वेह कंडायते ।।३।। यस्मिन्नीर विहारि कोक मिथुनं क्रीडासमुन्मीलिते शीतांशा वितरेतरेण नितरां विश्लेष मासाद्य वा । तापे नैव तनौ विमर्त्य विरतं सोपान भित्तिस्फुरत् स्वीयांगे प्रतिबिंब संगम वशाद्दूरेपि तीरे चरत् ।।४।। पानीय हार विहार सुंदर सुंदरी वदनं निजं प्रतिबिंब भूत मितीह निर्मल धीर नीरगमंबुजं । आदातु मुद्यत पाणिना जलदोलनेन गत श्रम वितनोति कानन कुंभ पूरणमत्र विस्मय विभ्रमा ।।५।। रसाल तरु मंजुलं पिक विनोद नादोत्कलं क्कंचित कनक केतकोम्द पराग पिंगांचलं । सशीकर सुशीतलं सुरभि वृंद मंदानिलं मदीय मति निर्मलं जयति वीर भूमी तलं ।।६।। यदिय तट भूतलं हसित कुंद पुष्पोज्वलं क्कचिद्विकच मालती कुसुम लोल भृंगे ष्कलं । क्कचित् शरलसारणी तरल नीरता पेशलं स्तवंति सुरयोषित किमुत नंदना दव्यलं । एतद्भित्ति तटालयेषु रुचिरोत्कीर्णै : सुरीणां गणै : क्रीडो पागत पौरयौवत रबंतै रपि । तत्तादृक्प्रतिबिंबितै रुपलसन्नागांगना संगिभिर्मन्ये कुंडमिदं रमा विरचितं लोकत्रया दद्भुतं ।।८।। यद्वारुण प्रतिष्ठा समये समुपेत विबुध वृंदस्य । कनककुकूल विवरणं विदधाति रमेति लोलुपति सुरा : ।।९।। यावच्छेष शिर:सुशेखरपदं भूभूतधात्र्या मये मेरुर्मेरु गिरेरुपर्युपरितो ब्रह्मादि लोकत्रयं । धत्ते यावदमुत्र वा दिनमणि माणिक्य नीराजनं तावच्चारुतरं रमा विरचितं कुंडं चिरं नंदतु ।।१०।।

श्री रमा वर्णनं

उन्मीलद्गुण रत्नरोहण मही प्रौढप्रमालंकृता सौंदर्यामृत वाहिनी मधुसुहृत्साम्राज्य सर्वस्वभू : । सौराष्ट्रेश्वर यादवान्वयमणे : श्रीमंडलीक प्रभो राज्ञी चारु रमावती वितनुते संगीतमानंददं ।।१।। कुंभब्रहम सुमीरित क्रमसगा दुच्छिन्नता यत्क्षितौ तत्पोद्वृत्य गिरीश भक्ति परमा रम्या रमा भारती । संगीतं भरतादि गोत्र विधिना ब्रहमैक तानोपमा मंदानद विधायकं विलसति प्रोल्हासयंति परम् ।।२।। नाद नंद मयी वरोन्नतकरा लीलोल्लसद्वल्लकी रागा रक्त गिरीश्वर स्वरकला शमोर्मिरम्यो ज्वला । लीलां दोलित राजहंस गमना सद्भोगी भुर्त्तःसुता पद्मा मोदित मानसा विजयते वागीश्वरी श्रीरमा ।।३।। संजाता जलधे विवेक विधुरा धीरेष्वबद्धादरा चापल्याऽभिरता प्रमोद मयते या पंकजातस्थितो : । विद्वत् कुंभ नृपोद्भवा गुण गणा पूर्णा प्रवीणा नदी धैर्य प्रीति मतीति तां विजयते श्रेयो चित श्रीरमा ।।४।। राज द्वैवत भूधरां तररतं श्रीकांतमाराधयत् कांतानंदित मानसा यदनिशं राधेव चावत्यत : । मेरौ कुंभकृते महीप तनय श्रीमंडलीक प्रिया श्रीदामोदर मंदिर व्यरचयत् कैलास शैलोज्वलं ।।५।। श्रीरस्तु सूत्रधार रामा । अथ श्रीमहाराज श्रीमंडलीक प्रबंध : । इंदोरनिंदित कुलं बहुबाहुजातं वंशेषु यस्य बसतेरतुलं बभूव । श्रीमंडलेंद्र गिरि रेवतकाधिवासो दामोदरो भवतु व : सुचिरं विभूत्यै ।।१।। श्रीमंडलीक दर्शन परितुष्ट मना महेश्वर सुकवि : । श्रीमेदपाट बसतिर्गुणनिधिमेनं यथा मति स्तौति ।।२।। आश्लिष्ट : सुर विटपी संप्रति चिंतामणिर्मया कलित : । लब्ध : सुवर्ण शिखरी मिलिते त्वयि मंडलाधीश ।।३।। सुर विटपि विटप विशाल भुजदलकलित विपुल महाफलं । कवि चित्त चिंतामणि महागुण जाल जन्म महीतलं । अनवरत सुर सरिदमलतमजल लुलित सुर शिखरि प्रभं कलयामि मंडल राज महमिह तोष मेमि हिम प्रभं ।।४।। परि कलित : पुरुहूतो धन नाथो नगन गोचरो रचित : । साक्षात् कृतो रतीशस्त्वयि

मिलिते मंडलाधीश ।।५।। पुरुहूतमिव गुरु मंत्र यंत्रित मंगल मंडितं । धननाथमिव धन दानं तोषित चंद्रमौलिमखंडितं । रतिरमणमिव पर युवति कृतनुति महत विषय शरैर्युतं परिचिंत्य मंडल राज मह मिह गोदमगममनुव्रतं ।।६।। अंकुरिता शर्मलता कोरकिंता चित चंपक व्रतति : । उल्लसिता तनु नलिनी मिलिते त्वयि मंडलाधीश ।।७।। कलधौत विवरण तरल करजल जनित शर्म सदंकुरं जनचित्त चंपक कुसुम संभव मधुर तर मधु बंधुरं । गणनैक मणि विस्फुरण पुलकित विपुल तनु नलिनी दलं अनुभूय मंडल राज मिदमपि भवति हृदय मनाकुलं ।।८।। कर्पूरं नयन युगे वपुषि सुधा रश्मि परिषेक : । हृदये परमानंदस्त्वयि मिलिते मंडलाधीश ।।९।। घन सार सारसभाभि मार्दवलोचनं हिमनिर्भरे सकलं प्लुतवपुरद्य हिमहिम धाम धामनि निर्भरे । मम मनसि परमानंद संपदुदारतर भभि बर्द्धते नरनाथ मवति विलोकिते सति मंडलेश शुचिस्मिते ।।१०।। सुर तरु रद्य नरेश गेहदशं मम कलयति । सुरगिरि रिति यदुराज राजमान संकलयति । सुरपति रयमिति मति रुदेति । संप्रति नर नायक परिरिति नयनानुरक्ति रुदयति । दृढ़सायक अनुपमतम महिम महीप सुतमंडल सकल कला । अष्ट भूति भवमवधि नवनिधि संनिधि रधिकलमा ।। *

* अत्र अंतिम पंक्ति: पठनाशक्यत्वात्परित्यक्ता ।

गोविंद देवजी के मंदिर की प्रशस्ति ।

''सम्वत ३४ श्री शकबंध अकबरशाह राज्ये श्रीकुर्मकुल श्रीपृथीराजाधि । राजवंश महाराज श्रीभगवंतदास सुत श्रीमहाराजाधिराज श्रीमानसिंहदेव श्रीवृन्दावन जोग पीठस्थानकरा श्रीगोविन्ददेव को ।''

इस के प्रारंभ होने का यह संवत् जानना चाहिए ।

''श्रीवृन्दाविपिने शिवादिदिविषद्वन्दावलीवन्दिते . . . . श्री गोविन्द . . . . ष्णक्सदाराजते ।।१।। श्रीमानर्कवरोयदा भुवमयात्सर्वांतदैवाधुनासर्व : सौख्यम . . . गणै : स्वंधर्ममुच्चैर्भजन् । श्रीगोविन्द पदंतदेतदृयिते वासायसद्वैष्णवालम्भंल . . . तस्मै सदै वा. प : ।।२।। तस्मिस्तस्यसदान्वितक्षितिपति : श्रीमानसिंहाभिध : पृथ्वीराज बिराज. . . . धे श्वन्द्रमा : । भूभृदभारहमल्लजात भगवद्वासात्मजोमन्दिरं कुर्वन्निदरयाबला-दचलया ।।३।। . . . स्तथाविधमहाराजाधिराजाप्यसौ येनैवारि दिगनेन विजयीध्वस्त भ्रम : क्रीड़ति सश्रीमान. सिंह नवायुद्वेयस्य नियत्यं दिव्य पितृया: कीर्त्तिध्वजत्वंगता : ।।४।। य : क. धिपजातिरेष विजयीश्री मानसिंहोनृप :. . . . सदा विजत . . . . . . दास सुधी : । श्रीगोविन्दपदारविन्द . . . स्तनमन्दिरं संमदान् कुर्व्वन्नुदममत्रतूर्ण . . .पू . . .।।५।. श्रीमानसिंहाद्भुतम ।।६।।. . . इन्द्रप्रस्थनिवासि . . . षुगुरुर्गोविन्द-दासाभिध : ।. . . भवदाविष्य दखिल श्रीवैष्णवानांसुखं श्रीकर्ता हरिणासदानि जदयाया. याविनि. . . ।।७।। श्रीग्रसेन : कृती, तौद्वौश्रीयुतमानसिंहनृपति प्रस्थायितौनन्द ताम् । किम्वाग्ग्नाद्ववनीय . . . प्रतिपदंसौख्यंग्म हद्विन्दतु ।।८।। मुनिवेदर्तुचन्द्राह्व १६४७ सम्वन्मन्दिर सम्भवे . . .।।९।। श्रीमद्रूपसनातननामानौतौ-भजेतज ।।१०।।''

इन पद्यों का अविकल न होने से अर्थ लिखना हम उचित नहीं समझते । केवल एक दो बात स्मरण रखने के योग्य हैं ।

१ म. अकबर का संस्कृत नाम ''अर्कवर'' है, प्राय : भाषा-रसिक और संस्कृत-रसिक लोगों के उपयोगी है । २ य. मानसिंह की वंशपरम्परा यह है, राजा भारहमल्ल (वा भारामल्ल) राजा भागवतदास वा भगवंतदास राजा मानसिंह । ३ य श्रीरूपगोस्वामी और श्री सनातन गोस्वामी का प्रशंसा जैसी आज काल है वैसी तीन सौ बरस पहिले भी थी लोग आधुनिक कीर्त्ति कल्पना न समझें ।

इस लिपि के निकट ही जगमोहन के द्वार के ठीक सामने भूमि पर एक पत्थर की चट्टान में यह सफल संबंधी लिपि है ''राणा श्री अमर सिंह जी सुत श्री बागजी सुत श्री सबलसिंहजी की जात्रा सफल सम्वत् सतरै से अगंरोतरामंगसेर सुत ७ सो में लखत प्रोहेत जी जबारादास पधारो सम्वत् १७७८ ।

पाँच छोटे छोटे शिखर के दक्षिण, उत्तर में दो मन्दिर, दक्षिण मन्दिर की शिखर कुछ फूटी है और मंदिर का द्वार दो किष्कु ऊँचा हैं । सीढ़ी के योग से चढ़ते हैं । भीतर एक तल घर में वृंदादेवी (वा पातालदेवी) विराजती हैं । घुमाव की बारह पक्की सीढ़ी उतर कर नीचे दर्शन करना होता है । देवी की मूर्त्ति शृंगवर (संगमरमर) पाषाण की अष्टभुजी एवं सिंहवाहिनी ११ इञ्च ऊँची और ९ इञ्च चौड़ी है । पास ही एक शृंगच्र की छोटीसी चौकी पर श्रीराधिका जी के चरणचिन्ह हैं । चौकी के तट पर यह पद्य लिखा है ।

तत्पकाञ्चनगौरागिं राधेवृन्दावनेश्वरि।
वृषभानुसुतेदेवि प्रणमामिहरिप्रिये।।

एक मोरी जिस का निकास बाहर की ओर उत्तर दिशा में है उस के ऊपर यह प्रशस्ति है।

"सम्वत ३४ श्रीशकबन्ध अकबर महाराज श्री कर्मकुल श्री पृथीराजाधिराज वंश श्री महाराज श्रीभगवन्तदास सुत श्रीमहाराजाधिराज श्रीमानसिंहदेव श्रीवृंदावन जोगपीठ स्थान मंदिर कराजो श्रीगोविंददेव को काम उपरि श्रीकल्याणदास आज्ञा कारि माणिकचंद चोपड़ शिल्पकारि गोविंददास दीलवरिकारिगरद : गोरषदासवीभवल्।।"

मंदिर के चारों ओर संकीर्ण कच्चे चौक में कोई उत्तम स्थान नहीं है, केवल पूर्व द्वार की बाईं ओर कुछ थोड़ी फुलवारी है और पश्चिम द्वार की ओर अति निकट एक छत्री है। यह छत्री प्रथम नाट्य मंदिर के सामने थी, परंतु अबकी जीर्णोद्धार में परिष्कार एवं संस्कार करके पश्चिम प्रांत में एक चौतरे पर स्थापित कर दी गई। इस में चरणचिन्ह शृंगवर के बने हैं और एक स्तंभ पर लिपि है। ज्ञात होता है कि इस में किसी के अस्थि समूह सञ्चित थे, क्योंकि चरणचिन्ह का व्यवहार प्राय: ऐसे ही स्थान में होता है। दूसरे राजाओं में ऐसी रीति भी प्रचलित है पुण्य-स्थान में अस्थि सञ्चय किया जाय।

"सम्वत् १६९३ वरषे कातिक वदि ५ शुभदिने हजरत श्री३ शाहजहाँ राज्ये राणा श्रीअमरसिंह जी को बेटो राजाश्रीभीम जी राणी श्रीरम्भावती चौखंडी सौराई छैजी।"

बौद्धमत का श्लोक जो सारनाथ की धमेख मे मिला था।

ॐ ये धर्म्महेतु प्रभवाहेतुतेषां तथा गता ह्यवदत्
तेषांचयो निरोध एवंवादी महाश्रमण:।

बिहार जिले में बहुतेरी प्राचीन बौध मूरतों पर यह श्लोक खुदा हुआ है, वरन् राजगृह के प्रसिद्ध जैन मंदिर में भी जो बस्ती में है एक मूर्त्ति पर यही श्लोक खुदा है, और इसी कारण हम उस को प्राचीन बौधमती अनुमान करते हैं।

जेनरल कनिंगहाम साहिब ने जो दो हजार बरस के लगभग पुराने राजा वासुदेव की अथवा राजा वासुदेव के संवत् नब्बे में बनवाई महावीर स्वामी की मूर्त्ति मथुरा में पायी है उस पर ९० का अंक लिखा है। जेनरल साहिब ने जो उस मूर्त्ति पर से हर्फों का छापा लिया है उस के एक (पहले) टुकड़े में (सिद्ध ओं नमो अरहत महावीरस्य . . . . राजा वासुदेवस्य संवत्सरे ९०) लिखी है। अफसोस है कि हर्फों के घिस जाने के सबब इस से अधिक उस की इबारत पढ़ी ही नहीं जा सकती है।

जिला गया के प्रसिद्ध स्थान देवमंगा में एक सूर्य्य का मंदिर है उस पर यह श्लोक खुदा है। इस लेख से आश्चर्य होता है कि इतने दिनों का लेख वर्त्तमान हो।

शून्यव्योमनभोरसेंदुकरभेहीने द्वितीयेयुगे।
माघेवाणतिथौ शिते गुरुदिने, देवो दिनेशालुयं।।
प्रारंभेदुष्टदांचयेरचयितुं सौम्यादिलायांभवो।
यस्या सीत्सनराधिप: प्रभुतया लोकोविशोकोभुवि।।

अर्थ — दूसरे युग अर्थात् त्रेता युग के १२१६००० वर्ष बीतने पर माघ शुक्ल पंचमी गुरुवार के दिन ऐलपुरूरवा जो बुध से इला में उत्पन्न हुआ था उस ने पाषाणादिकों से दिनेश अर्थात् सूर्य्य का मंदिर बनाना प्रारंभ किया था। जब यह राज्य करता था तब इस की प्रभुता से सब प्रजा भूमि में सुखी थी।

प्राचीन का सम्वत् निर्णय।

माधवाचार्य्य लिखित किसी की टीका से राजावली ग्रंथ से उद्धत।

यह राजावली ग्रंथ किसी ज्योतिषी ने सं. १८१६ में बनाया है। इस में संवत्सर, प्रतिपदा के विधान और कालादिक का अनेक निर्णय किया है और फिर कलियुग के राजाओं का और अन्य युग के राजाओं का नाम

'राजाधिराज माधवाचार्य्य टीकायामुक्तं' कह के उसने माधवाचार्य्य के किसी ग्रंथ की टीका से उद्‌धृत किया है यह संवत् और नामादिक प्राचीन इतिहास के उपयोगी जान कर यहाँ प्रकाश किये जाते हैं ।

सत्ययुग में — कृष्णातीर में अमरेश्वरलिंग, पुष्करतीर्थ, बौद्धपत्तनपीठ । राज-कृतसंज्ञ कृतपुत्र कृतदेव त्यागी मेन, मुचकुन्द, भैरवनंद, अंधक, हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, विरोचन, बलि, वाणासुर, गमासुर, कपिलभद्र, निर्घोषा, मान्धाता, वेणु। कश्यप, सूर्य्य, मनु, महामनु, तक्षक, अनुरञ्जन, विश्वावसु, विमना, प्रद्युम्न, धनञ्जय, महीदास, यौवनाश्व, मान्धाता, मुचकुन्द, पुरूरवा, बलि, सुकान्ति, वीर ।

त्रेता में — नैमिषारण्य तीर्थ, सोमेश्वर लिंग, जालंधर पीठ । राजा-कद्रू, पुरूरवा, प्रीषध, वेण्य, नैषध, त्रिशृंग, मरीचि, इक्षु, मनु, दिलीप, रघु, त्रिशंकु, हरिश्चंद्र, रोहिताश्व, धुंधुमार, जन्हु, सगर, भगीरथ, वेणु, वत्स, भूपाल, अज, अतिथि, नल, नील, नाभ, पुंडरीक, क्षेमक, शतधन्वा, शतानीक, पारिजातक, दलनाभ, पुष्पसेन, अजपाल, दशरथ, श्रीराम, लवकुश, अंगस्वामी, अग्निवर्ण ।

द्वापर में — कुरुक्षेत्र तीर्थ, केदारेश्वरलिंग, अवंती पत्तन । राजा — भर्तृहरि, पृथु, अनुविरक्त, अव्यक्त, फेन, इंद्र, ब्रह्मा, अत्रि, सोम, बुद्ध, धनुर्जव, शतनु, गव्य, गवाक्ष, असमञ्जस, निर्घोष, प्रजापति, अंकुर, उपवीर, अनुसंधि, जेष्ठभरत, कनिष्ठभरत, धर्मध्वज, शांतनु, पांडु, नरवाहन, क्षेमक, ययाति, क्षान्त, चित्र, पार्थ, अर्जुन, अभिमन्यु, परीक्षित, जन्मेजय ।

कलियुग में — गंगा तीर्थ, कालीदेवता, प्रतिष्ठानपुरनगर । कल्किअवतार इस ने अलग तीन चाल पर यहाँ लिखा है और उन के परस्पर जन्मदिन, पिता माता के सब अलग अलग हैं । कलियुग के आरंभ से ३०४४ वर्ष के भीतर युधिष्ठिर, परीक्षित, जन्मेजय, वत्सराज, क्षेमसिंह, सोमसिंह, राणकण्य, अंनुसेन, रामभद्र, भरतसिंह, पठाणसिंह, विक्रमसिंह, नरसिंह, आदित्यसिंह, ब्रह्मसिंह, बसुधासिंह, हर्षसेन, भर्तृहरि । ३०४४ में विक्रम का राज्य, ३१७९ में शालिवाहन का राज्य, फिर सूर्य्यसेन, शक्तिसिंह, खड्गसेन, सुखसिंह, मम्मलसेन, मुञ्ज, भरत, श्रीपाल, जयानंद, रामचंद्र, छत्रचंद्र, अनूप सिंह, तुम्बरपाल, ननश्वाहाण, रणधीरी, शालपाल, कीर्त्तिपाल, अनंगपाल, विशालाक्ष, सोमदेव, बलदेव, नागदेव, कीर्त्तिदेव, पृथ्वीपति इतने प्रसिद्ध राजा हुए । फिर म्लेच्छों का राज्य आरंभ हुआ । सिकंदरशाह ने विश्वेश्वर का अपराध किया । इस के पीछे मुसलमानों का वर्णन है ।

फिर कालनिर्णय यों किया है — व्यासादिक का काल ५१५४ वर्ष कलियुग लगने के पूर्व । श्री कृष्णावतार द्वापर की संध्या प्रारंभ, कलियुग के पूर्व क्योंकि कलि का काल होते भी उसने प्राबल्य नहीं पाया था । क्षेमक तक युधिष्ठिर का वंश, सुमित्र तक इक्ष्वाकु का वंश और रिपुञ्जय तक जरासंध का वंश एक सहस्र वर्ष कलियुग बीते समाप्त हो चुका था । फिर १३८ वर्ष प्रद्योतनों का राज्य गत कलि ११३८ वर्ष । शिशुनाग वंश का राज्य ३६२ वर्ष ग. क. १५०० वर्ष । फिर शुद्ध क्षत्रियों का राज्य छूटकर नंदादिकों का राज्य हुआ । नंदों का राज्य १३७ वर्ष ग. क. ११३७ वर्ष । फिर कण्ववंश के राजा उन का राज्य ५५७ वर्ष ग. क. २१९४ वर्ष । फिर आंध्रराजा का ४५६ वर्ष ग. क. २६५० वर्ष । फिर सात आभीर और दस गर्दभिल राजों का राज्य ३९४ वर्ष ग. क. ३०४४ वर्ष । फिर विक्रमों का राज्य १३५ वर्ष ग. क. ३१२९ वर्ष । अंत के विक्रम को शालिवाहन ने मारा, फिर शालिवाहन वंश ने १५५ वर्ष राज्य किया । शेष पुत्र के वंशने १३९, शक्तिकुमार के वंश ने ११४. शूद्रक ने ९५ और इंदुकिरीटी ने ४८ । सब ४३७ वर्ष हुए । फिर ३३ वर्ष तोमर, ३४ वर्ष चिंतामणि, ३० वर्ष राम और ३६ वर्ष हेमाद्रि राजा ने राज्य किया । सब १३३ वर्ष हुए । तब शक ५७० था । उसी के पीछे तुरुष्कलोगों का प्रवेश होने लगा । फिर भारतवंश के खंडराज हुए । फिर चालुक्य वंश ने ४४४ वर्ष, पल्लोमदत्त ५५ वर्ष, गौड़राज्य २०, भिल्लराज ५० वर्ष राज्य तब शाके १००६ वर्ष कलि ४१८५ । फिर यादवराजे २२७ वर्ष तब शक १२३३ वर्ष । इस वंश के देवगिरि के अंतिम राजा रामदेव को शक १२१७ में अल्लाउद्दीन ने जीत कर राज्य फेर दिया, राम देव ने ५६ वर्ष और राज्य किया फिर तुरकों का राज्य ३३४ वर्ष हुआ ।

महाराष्ट्र देश का इतिहास

रचनाकाल सन् १८७५। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड— ३-४ सन् १८७५-७६ पहली बार प्रकाशित। बाबू शिवनन्दन सहाय के अनुसार पुस्तकाकार सन् १८८० में प्रकाशित : सं.

महाराष्ट्र देश का इतिहास

महाराष्ट्र देश का शृंखलाबद्ध इतिहास नही मिलता। शालिवाहन राजा वहाँ के पुराने राजों में गिना जाता है। इसने शाका चलाया है और यह भी प्रसिद्ध है कि इसने किसी विक्रम को मारा था। इस की राजधानी प्रतिष्ठान थी, जिसे अब पैठण कहते हैं। देवगिरि का राज्य मुसल्मानों के आगमन तक स्वाधीन था और रामदेव वहाँ का आखिरी स्वतंत्र राजा हुआ। तेरहवें शतक में मुसल्मानों ने देवगिरि (देवगढ़) विजय कर के उसका नाम दौलताबाद रक्खा। सन् १३५० ई. के लगभग दिल्ली के बादशाह के जफर खाँ नामक सूबेदार ने दक्षिण में एक मुसल्मानी स्वतंत्र राज्य स्थापित किया और वह पहिले एक ब्राह्मण का सेवक था, इससे अपना पद ब्राह्मण रक्खा था। इस वंश ने पहिले गुलबर्गा में, फिर बिंदर में, अंदाज डेढ़ सौ बरस राज किया। सन् १५०० के लगभग इस राज की पाँच शाखा हो गई थीं, जिनमें गोल कुंडा, बीजापुर और अहमदनगर वाले विशेष बली थे। इस वंश के राज में सन् १३९६ में बारह बरस का दक्षिण में एक बड़ा भारी अकाल पड़ा था। हिंदुओं में उस समय कोंकण में सिरका नाम का केवल एक स्वाधीन सरदार था, बाकी सब लोग इन के अधीन थे। ब्राह्मणीराज्य नाश होने के समय सन् १४९६ ई. में वास्कोडिगामा ने पुर्तगाल लोगों के साथ कालीकट में प्रथम प्रवेश किया और सन् १५१० में गोआ उन लोगों के आधीन हो गया। बीजापुर के बादशाह आदलशाही और गोलकुंडे के कुतुबशाही और अहमदनगर के निजामशाही कहलाते थे। सन् १६२८ में अहमदनगर की बादशाहत दिल्ली के अधिकार में हो गई और गोलकुंडा और बीजापुर भी सन् १६८७ ई. में दिल्ली में मिल गए।

महाराष्ट्रों का राजस्थापन करनेवाला शिवा जी सन् १६२७ ई. में उत्पन्न हुआ।

उस के पूर्वजों का नाम भोंसला था, जो लोग दौलताबाद के पास वेरूल गाँव में रहते थे।

शिवाजी का दादा मालोजी भोंसला अपने वंश में पहिला प्रसिद्ध मनुष्य हुआ और उसने अपने बेटे शहाजी का विवाह अहमदनगर के बादशाह के दशहजारी सरदार जादोराव की बेटी से किया और पूना सूबा बादशाह से जागीर में पाया और शिवनेरी और चाकण दोनों किलों का सरदार भी नियत हुआ।

अहमदनगर की बादशाहत बिगड़ने पर शहाजी दिल्ली में शाहजहाँ के पास गया और वहाँ से अपनी जागीर कायम रखने की सनद ले आया, पर थोड़े ही दिन पीछे किसी वैमनस्य से दिल्ली का अधिकार छोड़कर वह बीजापुर के बादशाह से जा मिला और अपने राज्य में करनाटक के बहुत से गाँव मिला लिये

शिवाजी शिवनेरी किले में जनमा और तब उस का बाप करनाटक में रहता था, इस से उसने छोटेपन मे पूना प्रांत में दादोजी कोणदेव से शिक्षा पाई थी । छोटेहीपन से इस में वीरता के चिन्ह और लड़ाई के उत्साह प्रगट थे ।

उन्नीस बरस की अवस्था में तोरन का किला जीत लिया और दादोजी कोणदेव के मरने पर पूना के जिले का सब काम अपने हाथ ले लिया ।

बीजापुर के पुरंदर और दूसरे दूसरे कई किले अपने अधिकार में कर के उस पर संतोष न करके दिल्ली के बादशाही देशों में भी लूट कर इसने अपना बल, सेना और धन बढ़ाया ।

मालव नाम की सूर जाति के लोग इस की सेना में बहुत थे और सन् १६४८ ई. में बीजापुर के बादशाह से इस के कल्याण की सूबेदारी लिया, परंतु जब बादशाह ने उसका बल बढ़ते देखा तो सन् १६५९ में अपने अफजल खाँ नामक सरदार को उससे लड़ने को भेजा, पर शिवाजी ने धोखा दे कर इस सरदार को मार डाला ।

सन् १६६४ ई. में शिवाजी का बाप मर गया और तब से उसने अपना पद राजा रख कर अपने नाम की एक टकसाल जारी किया ।

यह पहले राजगढ़ और फिर रायगढ़ के किले में रहता था । उस ने अपने बहुत से किले बनाये थे, जिन में राजगढ़ और प्रतापगढ़ ये दो मुख्य थे ।

सन् १९५६ ई. में सामराज पंत को शिवाजी ने पेशवा नियत किया ।

बीजापुर का बादशाह तो शिवाजी को दमन करने में समर्थ न हुआ, औरंगजेब ने राजा जसवंत सिंह को बहुत सी फौज दे कर शिवा जी को जीतने को भेजा, पर शिवाजी ने बादशाह के आधीन रहना स्वीकार कर के राजा से मेल कर लिया । और सन् १६६६ में आप भी दिल्ली गया, पर वहाँ उस का यथेष्ट आदर न हुआ, इस से उसने बादशाह को कटु वचन कहा, जिससे थोड़े दिन तक कैद में रह कर फिर अपने बेटे समेत दक्खिन भाग गया । कुछ दिन पीछे औरंगजेब ने उस को राजा का खिताब दिया और उसी अधिकार से उस ने दक्खिन में सन् १६७० में चौथ और सरदेशमुखी नाम के दो कर स्थापन किये । सन् १६६५ में इस ने पानी के राह से मालाबार पर चढ़ाई की और दो बेर सूरत लूटा । जब यह दूसरे बेर सूरत लूटने जाता था तब १५००० फौज इसके साथ थी और राह में हुबली नामक शहर लूटने से बहुत सा धन इस के हाथ आया और फिर तो वह यहाँ तक बलवान हो गया था कि जो अपने भाई बेंकों जी से बाप की जागीर बँटवाने और बीजापुर का इलाका लूटने को कर नाटक की तरफ गया था तो इसके साथ ४००० पैदल और ३०००० सवार थे । सामराज पंत से पेशवाई ले कर मोरोपंत पिंजले को उस स्थान पर नियत किया और प्रतापराव गूजर इस का मुख्य सेनापति था, जिस के मरने पर हंबीर राव मोहिता उसी काम पर हुआ ।

सन् १६७६ में रामगढ़ में शिवाजी का विधिपूर्वक राज्याभिषेक हुआ और तब इसने आठ अपने मुख्य प्रधान रखे थे । पेशवापंत, अमात्य, पंतसचिव, मंत्री, सेनापति, सुमंत, न्यायाधीश और पंडितराव, यही आठ पद उस ने नियुक्त किये थे और अपने जीते हुए देशों का काम आकाजी सोनदेव के अधिकार में दिया ।

जिस समय सब कोंकन और पूना का इलाका और करनाटक और दूसरे देशों में भी कुछ पृथ्वी इस के अधीन थी उस समय सन् १६८० ई. में संभाजी और राजाराम नाम के दो पुत्र छोड़ कर तिरपन वर्ष की अवस्था में यह परलोक सिधारा ।

शिवाजी के मरने के पीछे तेईस वर्ष की अवस्था में संभाजी गद्दी पर बैठा, पर यह ऐसा क्रूर और दुर्व्यसनी था कि इस से सब लोग दुखी थे । इस ने अपने छोटे भाई राजाराम की मा को मार डाला और सब पुराने कारबारियों को निकाल कर कलूसा नामक कनौजिया ब्राहमण को सब राजकाज सौंप दिया । इस की दुष्टता से इस के पिता का सब प्रबंध बिगड़ गया और सब सर्दार इस के अशुभ-चिंतक हो गये और यहाँ तक कि सन् १८८९ ई० में जब यह संगमेश्वर की ओर शिकार खेलने गया था तो इस को मुगलों ने पकड़ कर औरंगजेब की आज्ञा से कलूसा ब्राहमण समेत तुलापुर में मार डाला ।

इस का पुत्र शिवाजी जिस को साहू जी भी कहते हैं, औरंगजेब की कैद में था, इस से इस का सौतेला भाई राजाराम गद्दी पर बैठा । इस ने सितारा में अपनी राजधानी स्थापन किया और पंत प्रतिनिधि नाम का एक नया पद नियुक्त किया और बड़े भाई के बिगाड़े हुए सब प्रबंधों को नए सिरे से सँवारा । यह १७०० ई में मरा और फिर आठ वर्ष तक इस की स्त्री ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को गद्दी पर बिठा कर उस के नाम से राज्य

का काम चलाया ।

इन लोगों के समय में औरंगजेब ने महाराष्ट्रों को बहुत बिगाड़ना चाहा, परंतु कुछ फल न हुआ, यहाँ तक कि वह सन् १७०७ में आप ही मर गया । जब संभाजी का पुत्र शिवाजी औरंगजेब के पास रहता था तब औरंगजेब इस के दादा को लुटेरा शिवाजी और उस को साहू शिवाजी कहता था, इसी से दूसरे शिवाजी का नाम साहूराजा हुआ । सन् १७०८ ई. में जब साहू औरंगजेब की कैद से छूट कर आया तब सर्दारों ने उसे सितारे की गद्दी पर बिठाया, और तब उस की चाची ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को लेकर कोलापुर का एक अलग स्वतंत्र राज स्थापन किया ।

जब साहू राजा १७ वर्ष तक कैद में था तब औरंगजेब की बेटी उस पर और उस की मा पर बड़ी मेहरबान थी । इसी से औरंगजेब ने अपने यहाँ के दो बड़े बड़े मरहठे सरदारों की बेटी उसे ब्याह दी थी और उसे बहुत सी जागीर भी दी थी । जब साहू राजा दिल्ली से सितारे आता था तब एक स्त्री ने अपना दूध पीनेवाला बालक उस के पैर पर रख दिया था, जिस के वंश में अब अकलकोट के राजा हैं । साहू राजा का स्वभाव विषयी था, इसी से उस ने अपना सब काम धनाजी राव यादव को सौंप रक्खा था और उसने आवाजी पुरंदरे और बालाजी विश्वनाथ नाम के दो मनुष्य अपने नीचे रक्खे थे । धना जी के मरने पर सन् १७१४ ई. में बालाजी विश्वनाथ पेशवा हुआ और महाराष्ट्र के इतिहास में इस का नाम सब से प्रसिद्ध है ।

साहू राजा बयालीस वर्ष राज कर के छाछठ वर्ष की अवस्था में सन् १७४९ ई. में मर गया और इस के पीछे सितारे का राज्य पेशवा के अधिकार में रहा । यह मरते समय लिख गया था कि ताराबाई के पोते राजाराम को गोद ले कर कर हमारी गद्दी पर बिठा कर राज काज पेशवा करें ।

राजाराम सन् १७४९ ई. में नाम मात्र का राजा हो कर सन् १७७० तक राज्य करके अपुत्र मरा । फिर शिवाजी के भांजे के वंश का एक पुरुष दत्तक लेकर साहू महाराज के नाम से गद्दी पर बिठाया, जो सन् १८०८ ई० में मरा और उस के पीछे उस का पुत्र प्रताप सिंह गद्दी पर बैठा । इस को सन् १८१८ में सर्कार अंगरेज बहादुर ने पेशवा के राज्य से बहुत मुल्क दिया, पर सन् १८४९ में इस दोषारोप होने से अंगरेजों ने इसे निकाल कर इसके छोठे भाई शाहाजी को गद्दी पर बिठाया, जो सन् १८४८ ई. में निर्वंश मर कर इस वंश का अंतिम राजा हुआ और उसका सारा राज्य सर्कारी राज्य में मिल गया ।

दूसरा भाग

बालाजी विश्वनाथ ने पेशवा होकर सैयदों की सहायता से दिल्ली के परतंत्र बादशाह से अपने स्वामी का गया हुआ सब राज्य फेर लिया और छ वर्ष पेशवाई करके सन् १७२० में सासवड़ गाँव में मर गया । उसी साल में हैदराबाद के नवाबों का मूल पुरुष निज़ामुलमुल्क नर्मदा के इस पार आकर बादशाही सेना से लड़ाई कर रहा था और अपना अधिकार बहुत बढ़ा लिया था ।

साहू राजा ने बालाजी विश्वनाथ के बड़े पुत्र बाजीराव को पेशवाई का अधिकार दिया । यह मनुष्य शूर और युद्ध में बड़ा कुशल था और उस का छोटा भाई चिमनाजी आप्पा भी बड़ा बुद्धिमान् और वीर था और अपने बड़े भाई की राज्य और लड़ाई के कामों में बड़ी सहायता करता था । निजामुलमुल्क से इस ने तीन लड़ाई बड़ी भारी भारी जीती और गुजरात, मालवा इत्यादि अनेक देशों पर अपना इख्तियार कर लिया और अपनी सेना ले कर सारे हिंदुस्थान को लूटता और जीतता फिरता था । सेंधिया, हुल्कर और गाइकवाड़ ने इसी के समय उत्कर्ष पाया, पर सेंधिया के पुरुषा पहले से बादशाही फौज के सारदारों में थे । वरंच कहते हैं कि औरंगजेब ने इन्हीं पुरुषों में से किसी की बेटी साहूराजा को ब्याही थी । नागपुर वालों ने भी इसी के समय राज पाया । चिमनाजी आप्पा ने पोर्तुगीज लोगों से साष्ठीवेट का इलाका बड़ी बहादुरी से छीन लिया था । बाजीराव सन् १७४० में मरा और उस का बड़ा पुत्र बालाजी उर्फ नाना साहब पेशवा हुआ । इस का एक छोटा भाई रघुनाथ राव नाम का था । इस ने पूना को अपनी राजधानी बनाया । इसके छोटे भाई के अधिकार में राज्य का सब काम था । यद्यपि नाना साहब राज्य के कामों में बड़ा चतुर था पर कपटी और बड़ा आलसी मनुष्य था, पर उस के दोनों भाई अपने काम में ऐसे सावधान थे कि उस की बात में कुछ फरक न पड़ने पाया ।

सदाशिव राव भाऊ ने रामचंद्र बाबा शेणवी को साथ लेकर महाराष्ट्री राज्य का फिर से नया और पक्का

प्रबंध किया । महाराष्ट्रों का बल उस समय पूरा जमा हुआ था और हिंदुस्तान में ये लोग चारों ओर चढ़ाइयाँ करते फिरते थे । दिल्ली के बादशाह तो मानों इन की कठपुतली था । नाना साहब से नागपुर के सरदार राघोजी भोंसला से कुछ वैमनस्य हो गया था, पर साहू राजा ने बीच में पड़ कर बिहार, अयोध्या और बंगाल का मरहटी अधिकार भोंसला से छोड़वा कर आपस का द्वेष मिटा दिया ।

सन् १७४८ ई. में एक सौ चार वर्ष का होकर निज़ामुलमुल्क मर गया । उस के पीछे बारह वर्ष तक उसका राज्य अव्यवस्थित रहा ; फिर उस के पुत्रों में से निज़ामअली नाम के एक मनुष्य ने वह राज्य पाया । रघुनाथ राव ने अटक से कटक तक हिंदुस्तान को दो बेर जीता, पर वहाँ का रुपया वसूल करना हुल्कर और सेंधिया के अधिकार में करके आप फिर आया ।

इसी अवसर में अहमदशाह अफगानों की बड़ी भारी फौज लेकर हिंदुस्तान में मराठों को जीतने के लिये आया । तब सदाशिव राव भाऊ और पेशवा का बड़ा लड़का विश्वास राव ये दोनों सेंधिया, हुल्कर, गाइकवाड़ और और और सर्दारों के साथ डेढ़ लाख पैदल, पचपन हजार सवार और दो सौ तोप की फौज से दिल्ली की ओर चले और सन् १७६० ई में जब मरहटों ने दिल्ली जीती थी तब से इन की बहुत सी फौज दिल्ली में भी थी सो वह फौज भी इन लोगों के साथ मिल गई, पर दो महीने पीछे इन के फौज में अनाज का ऐसा टोटा पड़ा कि मरहटों से सिवा लड़ने के और कुछ न बन पड़ा । यह बड़ी लड़ाई पानीपत के मैदान में सन् १७६१ ई. के जनवरी महीने की सातवीं तारीख को हुइ । भाऊ निज़ामअली के जीतने से ऐसा गर्वित हो रहा था कि इस लड़ाई को वह बडी असावधानी से लड़ा । जब उस ने सुना कि विश्वास राव बहुत जखमी हो गया है तब हाथी पर से उतर पड़ा और फिर उस का पता न लगा । जनको जी सेंधिया और इब्राहीम खाँ गारदी भी मारे गये और दूसरे भी अनेक बड़े बड़े सरदार मारे गये, और मरहटों की ऐसी भारी हार हुई कि सारे दक्खिन में सियापा पड़ गया । और नाना साहब को तो इस हार से ऐसी ग्लानि और दु :ख हुआ कि थोड़े ही दिन पीछे परलोक सिधारे । इस मनुष्य के समय में जैसी पहिले महाराष्ट्रों की वृद्धि हुई थी वैसाही एक साथ क्षय भी हो गया । सन् १७६१ में बालाजी बाजीराव उर्फ नाना साहेब के मरने पीछे उन का पुत्र पहिला माधवराव गद्दी पर बैठा । यह स्वभाव का न्यायी सूर धीर और दयालु था । मराठी राज से बेगार की चाल इस ने एक दम उठा दी थी और गरीबों के पालने से इस का चित्त बहुत ही बहलता था । नाना फडनवीस नामक प्रसिद्ध मनुष्य इस का मुख्य वजीर था और मराठी राज्य की आमदनी इस के समय सात करोड़ रुपया थी । इसी के काल में हैदरअली ने मैसूर के राज की नेव दी थी । इस ने राघोबा दादा को कैद कर के पूने भेज दिया और आप न्याय और धर्म से ग्यारह बरस राज कर के अट्ठाईस बरस की अवस्था में क्षय रोग से मरा । इस के मरने के पीछे इस के भाई नारायण राव को गद्दी पर बैठाया, पर आठ ही महीने पीछे रघुनाथ राव ने उस को एक सूबेदार से मरवा डाला और आप गद्दी पर बैठा । इस से सब कारबारी इतने नाराज थे कि जब नारायण राव की स्त्री गंगाबाई (जो विधवा होने के समय गर्भवती थी) पुत्र जनी तो सवाई माधवराव के नाम से उस को राजा बना के उस के नाम की मुनादी फिरवा दी और नाना फड़नवीस सब काम काज करने लगा । राघोबा ने अँगरेजों से इस शर्त पर सहायता चाही कि साष्टीवेट, बसई गाँव और गुजरात के कुछ इलाके अँगरेज सरकार को दिये जाँय, पर पोर्तुगीज और बादशाह के कलह से अँगरेजों ने आप ही वह बेट ले लिया और फिर कलकत्ते के गवर्नर के लिखे अनुसार नाना फड़नवीस ने साष्टीबेट अँगरेजों को लिख दिया और कोपर गाँव में राघोबा को कुछ महीना कर के रख दिया । राघोबा दादा को बाजीराव, चिमना आप्पा और अमृतराव तीन पुत्र थे परंतु अमृतराव दत्तक थे । राघोबा का कई मनोरथ पूरा नहीं हुआ और सन् १७४८ में मर गया । नाना फड़नवीस से महाजी सेंधिया से कुछ लाग थी, इस से महाजी उस के ताबे कभी नहीं हुआ और सदा कुछ उत्पात करता रहा । नाना की फौज के हरिपंत फड़के और परशुराम पंत पट्टवर्द्धन ये दो बड़े सरदार थे ।सन् १७९५ में निजाम अली से महाराष्ट्र लोगों से एक लड़ाई, जिस में मरहटे जीते और अँगरेजों से भी तीन बरस तक कुछ कलह रही, पर फिर मेल हो गया । सन् १७९६ में नाना फड़नवीस के वंश में रहने के दु :ख से माधव राव गिर के मर गया और राघोबा का बड़ा बेटा दूसरा बाजीराव पेशवा हुआ, पर इस से भी नाना फड़नवीस से खपपट चली ही गई । बाजीराव ने दौलतराव सेंधिया को उभारा और उस ने छल बल कर के नाना फड़नवीस को नगर के किले में कैद कर लिया, पर बाजीराव को उस के कैद से छुड़ा कर फिर से दीवान बनाना पड़ा, क्योंकि ऐसा चतुर मनुष्य उस काल में उस को दूसरा मिलना कठिन था । नाना फड़नवीस सन् १८०० में मर गया और मराठी राज्य की लक्ष्मी और बल

अपने साथ लेता गया । राज पर बैठने के पहिले बाजीराव ने दौलतराव से करार किया था कि हम पेशवा होंगे तो तुम को दो करोड़ रुपया देंगे, पर जब इतना रुपया आप न दे सका तो दौलतराव के साथ पूना लूटा । सन् १८०२ में जब दौलतराव कहीं दौरा करने गया था तब यशवन्त राव हुल्कर ने पूना पर चढ़ाई किया और पेशवा और सेंधिया दोनों की सैना को हरा कर पूने को खूब लूटा । बाजीराव इस समय भाग कर अँगरेजों की शरण गया और उन से बसई में यह बात ठहराई कि सर्कारी ८००० फौज पूने में रहै और बाजीराव को शत्रुओं से बचावै और उस का सब खर्च बाजीराव दे । अँगरेजी फौज पहुँच जाने के पूर्व ही हुल्कर पूना छोड़ के चला गया और बाजीराव फिर से पेशवा हुआ । बाजीराव ऊपर से तो अँगरेजों से मेल रखता था पर भीतर से बड़ाही बैर रखता था और दूसरे राजों को बहकाने सिवा आप भी छिपी छिपी फौज भरती करता जाता था । सन् १८१५ में गंगाधर शास्त्री पट्टवर्द्धन जो गाइकवाड़ का वकील हो कर सर्कार अँगरेज की सलाह से बाजीराव के दरबार में गया था, उस को बाजीराव ने त्र्यंबक डेंगला नाम के एक अपने मुँह लगे हुये सरदार से मरवा डाला, जो सर्कार के और बाजीराव के बैर का मुख्य कारण हुआ और सर्कार ने उस त्र्यंबक को सन् १८१८ में पकड़ कर चुनार के किले में कैद किया । सर्कारी फौज इस समय गवर्नर-जेनरल की आज्ञा से पिंडारों को शमन करती फिरती थी कि इसी बीच में बाजीराव ने भी किसी बहाने से सर्कार से लड़ाई करनी आरंभ कर दी और बापू गोखला को सेनापति नियत किया, पर अंत में हार कर सन् १८१८ ई. की ३ जून को मालकम साहेब के शरण में जाकर आठ लाख रुपया साल लेकर बिट्ठूर में रहना अंगीकार किया । और इसी बीच में अष्ट गाँव पर छापा मार के सितारा के राजा को पकड़ लिया और इसी लड़ाई में बापू मारा गया । जब बाजीराव भागा फिरता था, उन्हीं दिनों में भीमा के किनारे कारै गाँव में मरहठों की फौज से और सर्कारी फौज से एक बड़ा घोर युद्ध हुआ, जिस में सर्कारी ३०० सिपाही और बीस अँगरेज मारे गये, पर इन लोगों ने बहादुरी से उनको आगे न बढ़ने दिया । सर्कार की ओर से यहाँ जयसूचक एक कीर्तिस्तंभ बना है । सर्कार ने महाराष्ट्र देश का राज अपने हाथ में लेकर एलफिंस्टन साहेब को वहाँ का प्रबंध सौंपा और पूर्वोक्त साहब ने महाराष्ट्रों की परंपरा के मान और रीति का पालन कर के किसी की जागीर किसी के साथ बंदोबस्त कर के वहाँ की प्रजा को ऐसा संतुष्ट किया कि वे लोग अब तक उन को स्मरण करते हैं ।

दिल्ली दरबार दर्पण

THE
DELHI ASSEMBLEGE MEMORANDUM

जयति राजराजेश्वरी जय युवराज कुमार । जय नृप-प्रतिनिधि कवि लिटन जय दिल्ली दरबार ।।
स्नेह भरन तम हरन दोउ प्रजन करन उँजियार । भयो देहली दीप सो यह देहली दरबार ।।

इस पुस्तक में सन् १८७७ के दिल्ली दरबार का विशद वर्णन है, जो क्वीन विक्टोरिया के भारत साम्राज्ञी पदवी धारण करने के उपलक्ष्य मे लार्ड लिटन के नेतृत्व में हुई थी । यह सन् १८७७ के जनवरी अंक मे पहली बार 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के परिशिष्ट मे छपी थी । — सं.

दिल्ली दरबार दर्पण

सब राजाओं की मुलाकातों का हाल अलग अलग लिखना आवश्यक नहीं, क्योंकि सब के साथ वहा मामूली बातें हुई । सब बड़े बड़े शासनाधिकारी राजाओं को एक एक रेशमी झंडा और सोने का तगमा मिला । झंडे अत्यंत सुंदर थे । पीतल के चमकीले मोटे मोटे डंडों पर राजराजेश्वरी का एक मुकुट बना था और एक एक पटरी लगी थी जिस पर झंडा पाने वाले राजा का नाम लिखा था और फरहरे पर जो डंडे से लटकता था स्पष्ट रीति पर उनके शस्त्र आदि के चिन्ह बने हुए थे । झंडा और और तगमा देने के समय श्रीयुत वाइसराय ने हरएक राजा से ये वाक्य कहे :-

"मैं श्रीमती महारानी की तरफ से यह झंडा खास आप के लिये देता हूँ, जो उन के हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की पदवी लेने का यादगार रहेगा । श्रीमती को भरोसा है जब कभी यह झंडा खुलेगा आप को उसे देखते ही केवल इसी बात का ध्यान न होगा कि इंगलिस्तान के राज्य के साथ आप के खैरखाह राजसी घराने का कैसा दृढ़ संबंध है वरन् यह भी कि सरकार की यही बड़ी भारी इच्छा है कि आप के कुल को प्रतापी, प्रारब्धी और अचल देखे । मैं श्रीमती महारानी हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार आप को यह तगमा भी पहनाता हूँ । ईश्वर करे आप इसे बहुत दिन तक पहिनें और आप के पीछे यह आप के कुल में बहुत दिन तक रह कर इस शुभ दिन की याद दिलावे जो इस पर छपा है ।"

शेष राजाओं को उन के पद के अनुसार सोने या चाँदी के केवल तगमे ही मिले । किलात के खाँ को भी झंडा नहीं मिला, पर उन्हें एक हाथी, जिस पर ४००० की लागत का हौदा था, जड़ाऊ गहने, घड़ी, कार चोबी, कपड़े, कमखाब के थान वगैरह सब मिला कर २५००० की चीजें तुहफे में मिलीं । यह बात किसी दूसरे के लिये नहीं हुई थी । इस के सिवाय जो सरदार उन के साथ आए थे उन्हें भी किश्तियों में लगा कर दस हजार रुपये की चीजें दी गई । प्राय : लोगों को इस बात के जानने का उत्साह होगा कि खाँ का रूप और वस्त्र कैसा था । निस्संदेह जो कपड़ा खाँ पहने थे वह उन के साथियों से बहुत अच्छा था तो भी उन की या उन के किसी साथी की शोभा उन मुगलों से बढ़ कर न थी जो बाजार में मेवा लिये घूमा करते हैं । हाँ, कुछ फर्क था तो इतना था कि लंबी गझिन दाढ़ी के कारण खाँ साहिब का चिहरा बड़ा भयानक लगता था । इन्हें झंडा न मिलने का कारण यह समझना चाहिये कि यह बिल्कुल स्वतंत्र हैं । इन्हें आने और जाने के समय श्रीयुत वाइसराय गलीचे के किनारे तक पहुँचा गए थे, पर बैठने के लिये इन्हें भी वाइसराय के चबूतरे के नीचे वही कुर्सी मिली थी जो और राजाओं को । खाँ साहिब के मिजाज में रूखापन बहुत है । एक प्रतिष्ठित बंगाली इन के डेरे पर मुलाकात के लिये गए थे । खाँ ने पूछा, क्यों आए हो ? बाबू साहिब ने कहा, आप की मुलाकात को । इस पर खाँ बोले कि अच्छा, आप हम को देख चुके और हम आप को, अब जाइये ।

बहुत से छोटे छोटे राजाओं की बोलचाल का ढंग भी, जिस समय वे वाइसराय से मिलने आए थे, संक्षेप के साथ लिखने के योग्य है । कोई तो दूर ही से हाथ जोड़े आए, और दो एक ऐसे थे कि जब एडिकाँग के बदन झुका कर इशारा करने पर भी उन्होंने सलाम न किया तो एडिकाँग ने पीठ पकड़ कर उन्हें धीरे से झुका दिया । कोई बैठ कर उठना जानते ही न थे, यहाँ तक कि एडिकाँग को "उठो" कहना पड़ता था । कोई झंडा, तगमा, सलामी और खिताब पाने पर भी एक शब्द धन्यवाद का नहीं बोल सके और कोई विचारे इन में से दो ही एक पदार्थ पाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि श्रीयुत वाइसराय पर अपनी जान और माल निछावर करने को तैयार थे । सब से बढ़ कर बुद्धिमान हमें एक महात्मा देख पड़े जिन से वाइसराय ने कहा कि आपका नगर तो तीर्थ गिना जाता है, पर हम आशा करते हैं कि आप इस समय दिल्ली को भी तीर्थ ही के समान पाते हैं । इस के जवाब में वह बेधड़क बोल उठे कि यह जगह तो सब तीर्थों से बढ़कर है, जहाँ आप हमारे "खुदा" मौजूद हैं । नवाब लुहारू की भी अंगरेजी में बात चीत सुन कर ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्हें हंसी न आई हो । नवाब साहिब बोलते तो बड़े धड़ाके से थे, पर उसी के साथ कायदे और मुहावरे के भी खूब हाथ पाँव तोड़ते थे । कितने वाक्य ऐसे थे जिन के कुछ अर्थ ही नहीं हो सकते, पर नवाब साहिब को अपनी अंगरेजी का ऐसा कुछ विश्वास था कि अपने मुँह से केवल अपने ही को नहीं वरन् अपने दोनों लड़कों को भी अंगरेजी, अरबी

ज्योतिष, गणित आदि ईश्वर जाने कितनी विद्याओं का पंडित बखान गए । नवाब साहिब ने कहा कि हम ने और रईसों की तरह अपनी उमर खेल कूद में नहीं गँवाई वरन् लड़कपन ही से विद्या के उपार्जन में चित्त लगाया और पूरे पंडित और कवि हुए । इस के सिवाय नवाब साहिब ने बहुत से राजभक्ति के वाक्य भी कहे । वाइसराय ने उत्तर दिया कि हम आप की अँगरेजी विद्या पर इतना मुबारकबाद नहीं देते जितना अँगरेजों के समान आप का चित्त होने के लिये । फिर नवाब साहिब ने कहा कि मैंने इस भारी अवसर के वर्णन में अरबी और फारसी का एक पद्य ग्रंथ बनाया है जिसे मैं चाहता हूँ कि किसी समय श्रीयुत को सुनाऊँ । श्रीयुत ने जवाब दिया कि मुझे भी कविता का बड़ा अनुराग है और मैं आप सा एक भाई-कवि (Brother–poet) देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, और आप की कविता सुनने के लिये कोई अवकाश का समय निकालूँगा ।

२९ तारीख को सब के अंत में महारानी तंजौर वाइसराय से मुलाकात को आईं । ये तास का सब वस्त्र पहने थीं और मुँह पर तास का नकाब पड़ा हुआ था । इस के सिवाय उन के हाथ पाँव दस्ताने और मोजे से ऐसे ढके थे कि सब के जी में उन्हें देखने की इच्छा ही रह गई । महारानी के साथ में उन के पति राजा सखाराम साहिब और दो लड़कों के सिवाय उन की अनुवादक मिसेज फर्थ भी थीं । महारानी ने पहले आकर वाइसराय से हाथ मिलाया और अपनी कुर्सी पर बैठ गईं । श्रीयुत वाइसराय ने उन के दिल्ली आने पर अपनी प्रसन्नता प्रगट की और पूछा कि आप को इतनी भारी यात्रा में अधिक कष्ट तो नहीं हुआ ? महारानी अपनी भाषा की बोलचाल में बेगम भूपाल की तरह चतुर न थीं, इस लिये जियादा बातचीत मिसेज फर्थ से हुई, जिन्हें श्रीयुत ने प्रसन्न हो कर "मनभावनी अनुवादक" कहा । वाइसराय की किसी बात के उत्तर में एक बार महारानी के मुँह से "यस" निकल गया, जिस पर श्रीयुत ने बड़ा हर्ष प्रगट किया कि महारानी अँगरेजी भी बोल सकती है, पर अनुवादक मेम साहिब ने कहा कि वे अँगरेजी में दो चार शब्द से अधिक नहीं जानतीं ।

इस वर्णन के अंत मेंयह लिखना अवश्य है कि श्रीयुत वाइसराय लोगों से इतनी मनोहर रीति पर बातचीत करते थे जिस से सब मगन हो जाते थे और ऐसा समझते थे कि वाइसराय ने हमारा सबसे बढ़ कर आदर सत्कार किया । भेंट होने के समय श्रीयुत ने हर एक से कहा कि आप से दोस्ती कर के हम अत्यंत प्रसन्न हुए और तगमा पहिनाने के समय भी बड़े स्नेह से उन की पीठ पर हाथ रख कर बात की ।

१ जनवरी को दरबार का महोत्सव हुआ।

यह दरबार, जो हिंदुस्तान के इतिहास में सदा प्रसिद्ध रहेगा, एक बड़े भारी मैदान में नगर से पाँच मील पर हुआ था । बीच में श्रीयुत वाइसराय का षटकोण चबूतरा था, जिसकी गुंबदनुमा छत पर लाल कपड़ा चढ़ा और सुनहला रुपहला तथा शीशे का काम बना था । कंगुरे के ऊपर कलसे की जगह श्रीमती राजराजेश्वरी का सुनहला मुकुट लगा था । इस चबूतरे पर श्रीयुत अपने राजसिंहासन में सुशोभित हुए थे । उन के बगल में एक कुर्सी पर लेडी साहिब बैठी थीं और ठीक पीछे खवास लोग हाथों में चँवर लिये और श्रीयुत के ऊपर कारचोबी छत्र लगाए खड़े थे । वाइसराय के सिंहासन के दोनों तरफ दो पेज (दामन बरदान), जिन में एक श्रीयुत महाराज जंबू का अत्यंत सुंदर सब से छोटा राजकुमार और दूसरा कर्नल बर्न का पुत्र था, खड़े थे और उन के दहने बाएँ और पीछे मुसाहिब और सेक्रेटरी लोग अपने अपने स्थानों पर खड़े थे । बाइसराय के इस चबूतरे के ठीक सामने कुछ दूर पर उस से नीच एक अर्द्धचंद्राकार चबूतरा था, जिस पर शासनाधिकारी राजा लोग और उनके मुसाहिब, मदरास और बंबई के गवरनर, पंजाब, बंगाल और पश्चिमोत्तर देश के लेफटिनेंट गवरनर, और हिंदुस्तान के कमांडरइनचीफ अपने अपने अधिकारियों समेत सुशोभित थे । इस चबूतरे की छत बहुत सुंदर नीले रंग के साटन की थी, जिसके आगे लहरियादार छज्जा बहुत सजीला लगा था । लहरिये के बीच बीच में सुनहले काम के चाँद तारे बने थे । राजाओं की कुर्सियाँ भी नीली साटन से मढ़ी थीं और हर एक के सामने वे झंडे गड़े थे जो उन्हें वाइसराय ने दिये थे और पीछे अधिकारियों की कुर्सियाँ लगी थीं, जिन पर भी नीली साटन चढ़ी थी । हर एक राजा के साथ एक एक पोलिटिकल अफसर भी था । इन के सिवाय गवर्नमेंट के भारी भारी अधिकारी भी यहीं बैठे थे । राजा लोग अपने अपने प्रांतों के अनुसार बैठाए गए थे, जिस से ऊपर नीचे बैठने का बखेड़ा बिल्कुल निकल गया था । सब मिलाकर तिरसठ शासनाधिकारी राजाओं को इस चबूतरे पर जगह मिली थी, जिनके नाम नीचे लिखे हैं :—

महाराज अजयगढ़, बड़ौदा, बिजावर, भरतपुर, चरखारी, दतिया, ग्वालियर, इंदौर, जयपुर, जंबू, जोधपुर, करौली, किशुनगढ़, पन्ना, मैसूर, रीवाँ, उर्छा, महाराना उदयपुर, महाराव राजा अलवर, बूँदी, महाराज राना झलावर, राना धौलपुर, राजा बिलासपुर, बमरा, बिरोंदा, चबा, छतरपुर, देवास, धार, फरीदकोट, जींद, खरोंद, कूचविहार, मंडी, नाभा, नाहन, राजपीपला, रतलाम, समथर, सुकेत, टिहरी, राव जिगनी, टोरी, नवाब टोंक, पटौदी, मलेरकोटला, लुहारू, जूनागढ़, जौरा, दुजाना, बहावलपुर, जागीरदार अलीपुरा, बेगम भूपाल, निज़ाम हैदराबाद, सरदार कलसिया, ठाकुर साहिब भावनगर, मुर्वी, पिपलोदा, जागीरदार पालदेव, मीर खैरपुर, महंत कोंदका, नंदगाँव और जाम नवानगर ।

वाइसराय के सिंहासन के पीछे, परंतु राजसी चबूतरे की अपेक्षा उस से अधिक पास, धनुषखंड के आकार की दो श्रेणियाँ चबूतरों की और बनी थीं जो दस भागों में बाँट दी गई थीं । इन पर आगे की तरफ थोड़ी सी कुर्सियाँ और पीछे सीढ़ीनुमा बेंचें लगी थीं, जिन पर नीला कपड़ा मढ़ा था । यहाँ ऐसे राजाओं को जिन्हें शासन का अधिकार नहीं है और दूसरे सरदारों, रईसों, समाचारपत्रों के संपादकों और यूरोपियन तथा हिंदुस्तानी अधिकारियों को, जो गवर्नमेंट के नेवते में आये थे या जिन्हें तमाशा देखने के लिये टिकट मिले थे, बैठने की जगह दी गई थी । ये ३००० के अनुमान होंगे । किलात के खाँ, गोआ के गवरनर-जेनरल, विदेशी राजदूत, बाहरी राज्यों के प्रतिनिधि समाज और अन्यदेश संबंधी कांसल लोगों की कुर्सियाँ भी श्रीयुत वाइसराय के पीछे सरदारों और रईसों की चौकियों के आगे लगी थीं ।

दरबार की जगह के दक्खिन तरफ १५,००० से ज्यादा सरकारी फौज हथियार बाँधे लैस खड़ी थी और उत्तर तरफ राजा लोगों की सजी पलटनें भाँति भाँति की वरदी पहने और चित्र विचित्र शस्त्र धारण किये परा बाँधे खड़ी थीं । इन सब की शोभा देखने से काम रखती थी । इस के सिवाय राजा लोगों के हाथियों के परे जिन पर सुनहली अमारियाँ कसी थीं और कारचोबी झूलें पड़ी थीं, तोपों की कतार, सवारों की नंगी तलवारों और भालों की चमक, फरहरों का उड़ना, और दो लाख के अनुमान तमाशा देखने वालों की भीड़ जो मैदान में डटी थी, ऐसा समा दिखलाती थी जिसे देख जो जहाँ था वहीं हक्का बक्का हो खड़ा रह जाता था । वाइसराय के सिंहासन के दोनों तरफ हाइलैन्डर लोगों का गार्ड ऑव ऑनर और बाजेवाले थे, और शासनाधिकारी राजाओं के चबूतरे पर जाने के जो रास्ते बाहर की तरफ थे उन के दोनों ओर भी गार्ड ऑव ऑनर खड़े थे । पौने बारह बजे तक सब दरबारी लोग अपनी अपनी जगहों पर आ गए थे । ठीक बारह बजे श्रीयुत वाइसराय की सवारी पहुँची और धनुष खंड आकार के चबूतरों की श्रेणियों के पास एक छोटे से खंभे के दरवाजे पर ठहरी । सवारी पहुँचते ही बिलकुल फौज ने शस्त्रों से सलामी उतारी पर तोपें नहीं छोड़ी गईं । खंभे में श्रीयुत ने जाकर स्टार ऑव इंडिया के परम प्रतिष्ठित पद के ग्रांड मास्टर का वस्त्र धारण किया । यहाँ से श्रीयुत राजसी छत्र के तले अपने राजसिंहासन की ओर बढ़े । श्री लेडी लिटन श्रीयुत के साथ थीं और दोनों दामनबरदार बालक, जिन का हाल ऊपर लिखा गया है, पीछे दो तरफ से दामन उठाए हुए थे । श्रीयुत के चलते ही बंदीजन (हेरल्ड लोगों) ने अपनी तुरहियाँ एक साथ बहुत मधुर रीति पर बजाईं और फौजी बाजे से ग्रांड मार्च बजने लगा । जब श्रीयुत राजसिंहासनवाले मनोहर चबूतरे पर चढ़ने लगे तो ग्रांडमार्च का बाजा बंद हो गया और नैशनल ऐन्थेम अर्थात् (गौड सेव दि क्वीन — ईश्वर महारानी को चिरंजीवी रक्खे) का बाजा बजने लगा और गार्ड्स ऑव ऑनर ने प्रतिष्ठा के लिये अपने शस्त्र झुका दिये । ज्योंही श्रीयुत राजसिंहासन पर सुशोभित हुए, बाजे बंद हो गए और सब राजा महाराजा, जो वाइसराय के आने के समय खड़े हो गए थे, बैठ गए । इस के पीछे श्रीयुत ने मुख्य बंदी (चीफ हेरल्ड) को आज्ञा की कि श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने के विषय में अँगरेजी में राजाज्ञापत्र पढ़ो । यह आज्ञा होते ही बंदीजनों ने, जो दो पाँती में राज्यसिंहासन के चबूतरे के नीचे खड़े थे, तुरही बजाई और उसके बंद होने पर मुख्य बंदी ने नीचे की सीढ़ी पर खड़े होकर बड़े ऊँचे स्वर से राजाज्ञापत्र पढ़ा, जिस का उल्था यह है :—

महारानी विक्टोरिया

ऐसी अवस्था में कि हाल में पार्लियामेंट की जो सभा हुई उन में एक ऐक्ट पास हुआ है, जिसके द्वारा परम कृपालु महारानी को यह अधिकार मिला है कि यूनाइटेड किंगडम और उस के अधीन देशों की राजसंबंधी पदवियों और प्रशस्तियों में श्रीमती जो कुछ चाहें बढ़ा लें और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि ग्रेट ब्रिटेन और

आयरलैंड के एक में मिल जाने के लिये जो नियम बने थे उन के अनुसार भी यह अधिकार मिला था कि यूनाइटेड किंगडम और उस के अधीन देशों की राजसंबंधी पदवी और प्रशस्ति इस संयोग के पीछे वही होगी जो श्रीमती ऐसे राजाज्ञापत्र के द्वारा प्रकाश करेंगी, जिस पर राज की मुहर छपी रहे । और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि ऊपर लिखे हुए नियम और उस राजाज्ञापत्र के अनुसार जो १ जनवरी सन् १८०१ को राजसी मुहर होने के पीछे प्रकाश किया गया, हम ने यह पदवी ली "विक्टोरिया ईश्वर की कृपा से ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंण्ड के संयुक्त राज की महारानी स्वधर्मरक्षिणी," और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि उस नियम के अनुसार, जो हिंदुस्तान के उत्तम शासन के हेतु बनाया गया था, हिंदुस्तान के राज का अधिकार, जो उस समय तक हमारी ओर से ईस्ट इंडिया कंपनी को सपुर्द था, अब हमारे निज अधिकार में आ गया और हमारे नाम से उस का शासन होगा । इस नये अधिकार की कि हम कोई विशेष पदवी लें और इन सब वर्णनों के अनंतर इस ऐक्ट में यह नियम सिद्ध किया गया है कि ऊपर लिखी हुई बात के स्मरण निमित्त कि हमने अपने मुहर किये हुए राजाज्ञापत्र के द्वारा हिंदुस्तान के शासन का अधिकार अपने हाथ में ले लिया, हम को यह योग्यता होगी कि यूनाइटेड किंगडम और उस के आधीन देशों के राजसंबंधी पदवियों और प्रशस्तियों में जो कुछ उचित समझें बढ़ा लें । इस लिये अब हम अपने प्रीवी काउंसिल की संमति से योग्य समझ कर यह प्रचलित और प्रकाशित करते हैं कि आगे को, जहाँ सुगमता के साथ हो सके, सब अवसरों में और संपूर्ण राजपत्रों पर जिन में हमारी पदवियाँ और प्रशस्तियाँ लिखी जाती हैं, सिवाय सनद, कमिशन, अधिकारदायक, पत्र, दानपत्र, आज्ञापत्र, नियोगपत्र, और इसी प्रकार के दूसरे पत्रों के, जिन का प्रचार यूनाइटेड किंगडम के बाहर नहीं है, यूनाइटेड किंगडम और उस के अधीन देशों की राजसंबंधी पदवियों में नीचे लिखा हुआ मिला दिया जाय, अर्थात् लैटिन भाषा मे "इंडिई एम्परेट्रिक्स" (हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी) और अँगरेजी भाषा में "एम्प्रेस ऑव इंडिया" । और हमारी यह इच्छा और प्रसन्नता है कि उन राजसंबंधी पत्रों में जिन का वर्णन ऊपर हुआ है यह नई पदवी न लिखी जाय । और हमारी यह भी इच्छा और प्रसन्नता है कि सोने चाँदी और ताँबे के सब सिक्के, जो आज कल यूनाइटेड किंगडम में प्रचलित हैं और नीतिविरुद्ध नहीं गिने जाते और इसी प्रकार तथा आकार के दूसरे सिक्के जो हमारी आज्ञा से अब छापे जायँगे, हमारी नई पदवी लेने से भी नीतिविरुद्ध न समझे जायँगे, और जो सिक्के यूनाइटेड किंगडम के अधीन देशों में छापे जायंगे और जिन का वर्णन राजाज्ञापत्र में उन जगहों के नियमित और प्रचलित द्रव्य करके किया गया है और जिन पर हमारी संपूर्ण पदवियाँ या प्रशस्तियाँ या उन का कोई भाग रहे, और वे सिक्के जो राजाज्ञापत्र के अनुसार अब छापे और चलाए जायँगे इस नई पदवी के बिना भी उस देश के नियमित और प्रचलित द्रव्य समझे जायंगे, जब तक कि इस विषय में हमारी कोई दूसरी प्रसन्नता न प्रगट की जायगी ।

हमारी विंडसर की कचहरी से २८ अप्रैल को एक हजार आठ सौ छिहत्तर के सन् में हमारे राज के उनतालीसवें बरस में प्रसिद्ध किया गया ।

ईश्वर महारानी को चिरंजीव रक्खे!

जब चीफ हेरल्ड राजाज्ञापत्र को अँगरेजी में पढ़ चुका तो हेरल्ड लोगों ने फिर तुरही बजाई, इस के पीछे फॉरेन सेक्रेटरी ने उर्दू में तर्जुमा पढ़ा । इस के समाप्त होते ही बादशाही झंडा खड़ा किया गया और तोपखाने से, जो दरबार के मैदान में मौजूद था, १०१ तोपों की सलामी हुई । चौंतीस चौंतीस सलामी होने के बाद बंदूकी को बाढ़ें दगीं और जब १०१ सलामियाँ तोपों से हो चुकीं तब फिर बाढ़ छूटी और नैशनल ऐन्थेम का बाजा बजने लगा ।

इसके अनंतर श्रीयुत वाइसराय समाज को एड्रेस करने के अभिप्राय से खड़े हुए । श्रीयुत वाइसराय के खड़े होते ही सामने के चबूतरे पर जितने बड़े बड़े राजा लोग और गवर्नर आदि अधिकारी थे खड़े हो गए पर श्रीयुत ने बड़े आदर के साथ दोनों हाथों से हिंदुस्तानी रीति पर कई बार सलाम करके सब से बैठ जाने का इशारा किया । यह काम श्रीयुत का, जिस से हम लोगों की छाती दूनी हो गई, पायोनीयर सरीखे अँगरेजी समाचार पत्रों के संपादकों को बहुत बुरा लगा, जिन की समझ में वाइसराय का हिंदुस्तानी तरह पर सलाम करना बड़े हेठाई और लज्जा की बात थी । खैर, यह तो इन अंगरेजी अखबारवालों की मामूली बातें हैं । श्रीयुत वाइसराय ने जो उत्तम ऐड्रेस पढ़ा उस का तर्जुमा हम नीचे लिखते हैं :—

सन् १८५८ ईसवी की १ नवंबर को श्रीमती महारानी की और से एक इश्तिहार जारी हुआ था, जिसमें हिंदुस्तान के रईसों और प्रजा को श्रीमती की कृपा का विश्वास कराया गया था, जिस को उस दिन से आज तक वे लोग राजसंबंधी बातों में बड़ा अनमोल प्रमाण समझते हैं ।

वे प्रतिज्ञा एक ऐसी महारानी की ओर से हुई थीं, जिन्होंने आज तक अपनी बात को कभी नहीं तोड़ा, इस लिये हमें अपने मुँह से फिर उन का निश्चय कराना व्यर्थ है । १८ बरस की लगातार उन्नति ही उन को सत्य करती है और यह भारी समागम भी उन के पूरे उतरने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस राज के रईस और प्रजा जो अपनी अपनी परंपरा की प्रतिष्ठा निर्विघ्न भोगते रहे और जिन को उचित लाभों की उन्नति के यत्न में सदा रक्षा होती रही उन के वास्ते सरकार की पिछले समय की उदारता और न्याय आगे के लिये पक्की जमानत हो गई है हम लोग इस समय श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने का समाचार प्रसिद्ध करने के लिये इकट्ठे हुए हैं, और यहाँ महारानी के प्रतिनिधि होने की योग्यता से मुझे अवश्य है कि श्रीमती के उस कृपायुक्त अभिप्रय को सब पर प्रकट करूँ जिस के कारण श्रीमती ने अपने परंपरा की पदवी और प्रशस्ति में एक पद और बढ़ाया ।

पृथ्वी पर श्रीमती महारानी के अधिकार में जितने देश हैं — जिन का विस्तार भूगोल के सातवें भाग से कम नहीं है, और जिन में तीस करोड़ आदमी बसते हैं — उन में से इस बड़े और प्राचीन राज के समान श्रीमती किसी दूसरे देश पर कृपादृष्टि नहीं रखतीं ।

सब जगह और सदा इंगलिस्तान के बादशाहों की सेवा में प्रवीण और परिश्रमी सेवक रहते आए हैं, परंतु उन से बढ़कर कोई पुरुषार्थी नहीं हुए, जिन की बुद्धि और वीरता से हिंदुस्तान का राज सरकार के हाथ लगा और बराबर अधिकार में बना रहा । इस कठिन काम में जिसमें श्रीमती की अँगरेजी और देशी प्रजा दोनों ने मिलकर भली भाँति परिश्रम किया है, श्रीमती के बड़े बड़े स्नेही और सहायक राजाओं ने भी शुभचिंतकता के साथ सहायता दी है, जिन की सेना ने लड़ाई की मिहनत और जीत में श्रीमती की सेना का साथ दिया है, जिन की बुद्धिपूर्वक सत्यशीलता के कारण मेल के लाभ बने रहे और फैलते गए हैं, और जिन का यहाँ आज वर्त्तमान होना, जो कि श्रीमती के राजराजेश्वरी की पदवी लेने का शुभ दिन है, इस बात का प्रमाण है कि वे श्रीमती के अधिकार की उत्तमता में विश्वास रखते हैं और उन के राज में एका बने रहने में अपना भला समझते हैं ।

श्रीमती महारानी इस राज को, जिसे उन के पुरखों ने प्राप्त किया और श्रीमती ने दृढ़ किया, एक बड़ा भारी पैतृक धन समझती हैं जो रक्षा करने और अपने वंश के लिये संपूर्ण छोड़ने के योग्य है, और उस पर अधिकार रखने से अपने ऊपर यह कर्त्तव्य जानती हैं कि अपने बड़े अधिकार को इस देश की प्रजा की भलाई के लिये यहाँ के रईसों के हकों पर पूरा पूरा ध्यान रखकर काम में लावें । इस लिये श्रीमती का यह राजसी अभिप्राय है कि अपनी पदवियों पर एक और ऐसी पदवी बढ़ावें, जो आगे सदा को हिंदुस्तान के सब रईसों और प्रजा के लिये इस बात का चिन्ह हो कि श्रीमती के और उन के लाभ एक हैं और महारानी की ओर राजभक्ति और शुभचिंतकता रखनी उन पर उचित है ।

वे राजसी घरानों की श्रेणियाँ जिन का अधिकार बदल देने और देश की उन्नति करके के लिये ईश्वर ने अँगरेजी राज को यहाँ जमाया, प्राय : अच्छे और बड़े बादशाहों से खाली न थीं परंतु उन के उत्तराधिकरियों के राज्यप्रबंध से उन के राज्य के देशों में मेल न बना रह सका । सदा आपस में झगड़ा होता रहा और अंधेर मचा रहा । निर्बल लोग बली लोगों के शिकार थे और बलवान् अपने मद के इस प्रकार आपस की काट मार और भीतरी झगड़ों के कारण जड़ से हिलकर और निर्जीव होकर तैमूरलंग का भारी घराना अंत को मिट्टी में मिल गया, और उस के नाश होने का कारण यह था कि उस से पश्चिम के देशों की कुछ उन्नति न हो सकी ।

आजकल ऐसी राजनीति के कारण जिस से सब जात और सब धर्म के लोगों की समान रक्षा होती है, श्रीमती की हर एक प्रजा अपना समय निर्विघ्न सुख से काट सकती है । सरकार के समभाव के कारण हर आदमी बिना किसी रोक टोक के अपने धर्म के नियमों और रीतों को बरत सकता है । राजराजेश्वरी का अधिकार लेने से श्रीमती का अभिप्राय किसी को मिटाने या दबाने का नहीं है वरन् रक्षा करने और अच्छी राहा बतलाने का । सारे देश की शीघ्र उन्नति और उस के सब प्रांतों की दिन पर दिन वृद्धि होने से अँगरेजी राज के फल सब जगह प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं ।

हे अँगरेजी राज के कार्यकर्त्ता और सच्चे अधिकारी लोग — यह आप ही लोगों के लगातार परिश्रम का गुण है कि ऐसे ऐसे फल प्राप्त हैं, और सब के पहले आप ही लोगों पर मैं इस समय श्रीमती की ओर से उनकी कृतज्ञता और विश्वास को प्रगट करता हूँ । आप लोगों ने इस भारी राज की भलाई के लिये उन प्रतिष्ठित लोगों से जो आप के पहले इन कामों पर नियत थे किसी प्रकार कम कष्ट नहीं उठाया है और आप लोग बराबर ऐसे साहस, परिश्रम और सचाई के साथ अपने तन, मन को अर्पण करके काम करते रहे जिस से बढ़कर कोई दृष्टांत इतिहासों में न मिलेगा ।

कीर्ति के द्वार सब के लिये नहीं खुले हैं परंतु भलाई करने का अवसर सब किसी को जो उसकी खोज रखता हो मिल सकता है । यह बात प्राय : कोई गवर्नमेंट नहीं कर सकती कि अपने नौकरों के पदों को जल्द जल्द बढ़ाती जाय, परंतु मुझे विश्वास है कि अँगरेजी सरकार की नौकरी में 'कर्त्तव्य का ध्यान' और 'स्वामी की सेवा में तन, मन को अर्पण कर देना' ये दोनों बातें 'निज प्रतिष्ठा' और 'लाभ' की अपेक्षा सदा बढ़कर समझी जायँगी । यह बात सदा से होती आई है और होती रहेगी कि इस देश के प्रबंध के बहुत से भारी भारी और लाभदायक काम प्राय : बड़े बड़े प्रतिष्ठित अधिकारियों ने नहीं किये हैं वरन् जिले के उन अफसरों ने जिनकी धैर्यपूर्वक चतुराई और साहस पर संपूर्ण प्रबंध का अच्छा उतरना सब प्रकार आधीन है ।

श्रीमती की ओर से राजकाज संबंधी और सेना संबंधी अधिकारियों के विषय में मैं जितनी गुणग्राहकता और प्रशंसा प्रगट करूँ थोड़ी है क्योंकि ये तमाम हिंदुस्तान में ऐसे सूक्ष्म और कठिन कामों को अत्यंत उत्तम रीति पर करते रहे हैं और करते हैं जिन से बढ़कर सूक्ष्म और कठिन काम सरकार अधिक से अधिक विश्वासपात्र मनुष्य को नहीं सौंप सकती । हे राजकाज संबंधी और सेना संबंधी अधिकारियो, — जो कमसिनी में इतने भारी जिम्मे के कामों पर मुकर्रर होकर बड़े परिश्रम चाहने वाले नियमों पर तन, मन से, चलते हो और जो निज पौरूष से उन जातियों के बीच राज्य प्रबंध के कठिन काम को करते हो जिन की भाषा, धर्म और रीतें आप लोगों से भिन्न हैं — मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि अपने अपने कठिन कामों को दृढ़ परंतु कोमल रीति पर करने के समय आप को इस बात का भरोसा रहे कि जिस समय आप लोग अपने जाति की बड़ी कीर्ति को थामें हुए हैं और अपने धर्म के दयाशील आज्ञाओं को मानते हैं उसी के साथ आप इस देश के सब जाति और धर्म के लोगों पर उत्तम प्रबंध के अनमोल लाभों को फैलाते हैं ।

उस पश्चिम की सभ्यता के नियमों की बुद्धिमानी के साथ फैलाने के लिये, जिस से इस भारी राज का धन बराबर बढ़ता गया, हिंदुस्तान पर केवल सरकारी अधिकारियों ही का एहसान नहीं है, वरन् यदि मैं इस अवसर पर श्रीमती की इस यूरोपियन प्रजा को जो हिंदुस्तान में रहती है पर सरकारी नौकर नहीं है, इस बात का विश्वास कराऊँ कि श्रीमती उन लोगों के केवल उस राजभक्ति ही की गुणग्राहकता नहीं करतीं जो वे लोग उनके और उनके सिंहासन के साथ रखते हैं किंतु उन लाभों को भी जानती और मानती हैं, जो उन लोगों के परिश्रम से हिंदुस्तान को प्राप्त होते हैं तो मैं अपनी पूज्य स्वामिनी के विचारों को अच्छी तरह न वर्णन करने का दोषी ठहरुँगा ।

इस अभिप्राय से कि अपने राज के इस उत्तम भाग को प्रजा को सरकार की सेवा या निज की योग्यता के लिये गुणग्राहकता देखाने का विशेष अवसर मिले श्रीमती ने कृपापूर्वक केवल स्टार आफ इंडिया के परम प्रतिष्ठित पद वालों और आर्डर आफ ब्रिटिश इंडिया के अधिकारियों की संख्या ही में थोड़ी सी बढ़ती नहीं की है किंतु इसी हेतु एक बिल्कुल नया पद और नियत किया है जो ''आर्डर आफ दि इंडियन एम्पायर'' कहलायेगा ।

हे हिंदुस्तान की सेना के अँगरेजी और देशी अफसर और सिपाहियो, — आप लोगों ने जो भारी भारी काम बहादुरी के साथ लड़ भिड़कर सब अवसरों पर किये और इस प्रकार श्रीमती की सेना की युद्धकीर्ति को थामे रहे, उस का श्रीमती अभिमान के साथ स्मरण करती हैं । श्रीमती इस बात पर भरोसा रखकर कि आगे को भी सब अवसरों पर आप लोग उसी तरह मिलजुल कर अपने भारी कर्त्तव्य को सचाई के साथ पूरा करेंगे, अपने हिंदुस्तानी राज में मेल और अमन चैन बनाए रखने के विश्वास का काम आप लोगों ही को सुपुर्द करती हैं ।

हे वालंटियर सिपाहियो, — आप लोगों के राजभक्तिपूर्ण और सफल यत्न जो इस विषय में हुए हैं कि

यदि प्रयोजन पड़े तो आप सरकार की नियत सैना के साथ मिलकर सहायता करें इस शुभ अवसर पर हृदय से धन्यवाद पाने के योग्य हैं ।

हे इस देश के सरदार और रईस लोग, — जिन की राजभक्ति इस राजा के बल को पुष्ट करने वाली है और जिनकी उन्नति इसके प्रताप का कारण है, श्रीमती महारानी आप को यह विश्वास करके धन्यवाद देती है कि यदि इस राज के लाभों में कोई विघ्न डाले या उन्हें किसी तरह का भय हो तो आप लोग उस की रक्षा के लिये तैयार हो जायेंगे । मैं श्रीमती की ओर से और उन के नाम से दिल्ली आने के लिये आप लोगों का जी से स्वागत करता हूँ और इस बड़े अवसर पर आप लोगों के इकट्ठे होने को इंगलिस्तान के राजसिंहासन की ओर आप लोगों की उस राजभक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण गिनता हूं जो श्रीमान प्रिंस आफ वेल्स के इस देश में आने के समय आप लोगों ने दृढ़ रीति पर प्रकट की थी । श्रीमती महारानी आप के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझती हैं, और अँगरेजी राज के साथ उसके कर देने वाले और स्नेही राजा लोगों का जो शुभ संयोग से संबंध है उस के विश्वास को दृढ़ करने और उसके मेल जोल को अचल करने ही के अभिप्राय से श्रीमती ने अनुग्रह करके वह राजसी पदवी ली है जिसे आज हम लोग प्रसिद्ध करते हैं ।

हे हिंदुस्तान की राज राजेश्वरी के देसी प्रजा लोग, — इस राज की वर्त्तमान दशा और उस के नित्य के लाभ के लिये अवश्य है कि उन के प्रबंध को जाँचने और सुधारने का मुख्य अधिकार ऐसे अँगरेजी अफसरों को सुपुर्द किया जाय जिन्होंने राज काज के उन तत्वों को भली भाँति सीखा है जिनका बरताव राज राजेश्वरी के अधिकार स्थिर रहने के लिये अवश्य है । इन्हीं राजनीति जानने वाले लोगों के उत्तम प्रयत्नों से हिंदुस्तान सभ्यता में दिन दिन बढ़ता जाता है और यही उसके राज काज संबंधी महत्व का हेतु और नित्य बढ़ने वाली शक्ति का गुप्त कारण है और इन्हीं लोगों के द्वारा पच्छिम देश का शिल्प, सभ्यता और विज्ञान, (जिन के कारण आज दिन यूरोप लड़ाई और मेल दोनों में सब से चढ़ बढ़ कर है) बहुत दिनों तक पूरब के देशों में वहाँ वालों के उपकार के लिये प्रचलित रहेगा ।

परंतु हे हिंदुस्तानी लोग ! आप चाहे जिस जाति या मत के हों यह निश्चय रखिये कि आप इस देश के प्रबंध में योग्यता के अनुसार अँगरेजों के साथ भली भाँति काम पाने के योग्य हैं, और ऐसा होना पूरा न्याय भी है, और इंगलिस्तान तथा हिंदुस्तान के बड़े राजनीति जानने वाले लोग और महारानी की राजसी पार्लमेंट व्यवस्थापकों ने बार बार इस बात को स्वीकार भी किया है । गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ने भी इस बात को अपने सम्मान और राजनीति के सब अभिप्रायों के लिये अनुकूल होने के कारण माना है । इसलिये गवर्नमेंट ऑव इंडिया इन बरसों में हिंदुस्तानियों की कारगुजारी के ढंग में, मुख्यकर बड़े बड़े अधिकारियों के काम में पूरी उन्नति देख कर संतोष प्रगट करती है ।

इस बड़े राज्य का प्रबंध जिन लोगों के हाथ में सौंपा गया है उन में केवल बुद्धि ही के प्रबल होने की आवश्यकता नहीं है वरन् उत्तम आचरण और सामाजिक योग्यता की भी वैसी ही आवश्यकता है । इस लिये जो लोग कुल, पद और परंपरा के अधिकार के कारण आप लोगों में स्वाभाविक ही उत्तम हैं उन्हें अपने को और अपने संतान को केवल उस शिक्षा के द्वारा योग्य करना आवश्यक है, जिससे कि वे श्रीमती महारानी अपनी राजराजेश्वरी की गवर्नमेंट की राजनीति के तत्वों को समझें और काम में ला सकें और इस रीति से उन पदों के योग्य हो जिन के द्वार उन के लिये खुले हैं ।

राजभक्ति, धर्म, अपक्षपात, सत्य और साहस देश संबंधी मुख्य धर्म हैं उनका सहज रीति पर बरताव करना आप लोगों के लिये बहुत आवश्यक है, और तब श्रीमती की गवर्नमेंट राज के प्रबंध में आप लोगों की सहायता बड़े आनंद से अंगीकार करेगी, क्योंकि पृथ्वी के जिन जिन भागों में सरकार का राज है वहाँ गवर्नमेंट अपनी सेना के बल पर उतना भरोसा नहीं करती जितना कि अपनी संतुष्ट और एकजी प्रजा की सहायता पर जो अपने राजा के वर्त्तमान रहने ही में अपना नित्य मंगल समझकर सिंहासन के चारों ओर जी से सहायता करने के लिये इकट्ठे हो जाते हैं ।

श्रीमती महारानी निर्बल राज्यों को जीतने या आसपास की रियासतों को मिला लेने से हिन्दुस्तान के राज की उन्नति नहीं समझतीं वरन् इस बात में कि इस कोमल और न्याययुक्त राज्यशासन को निरुपद्रव बराबर चलाने में इस देश की प्रजा क्रम से चतुराई और बुद्धिमानी के साथ भागी हो । जो हो उनका स्नेह और कर्त्तव्य

केवल अपने ही राज से नहीं है वरन् श्रीमती शुद्ध चित्त से यह भी इच्छा रखती हैं कि जो राजा लोग इस बड़े राज की सीमा पर हैं और महारानी के प्रताप की छाया में रहकर बहुत दिनों से स्वाधीनता का सुख भोगते आते हैं उन से निष्कपट भाव और मित्रता को दृढ़ रक्खें । परंतु यदि इस राज के अमन चैन में किसी प्रकार के बाहरी उपद्रव की शंका होगी तो श्रीमती हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी अपने पैत्रिक राज की रक्षा करना खूब जानती हैं । यदि कोई विदेशी शत्रु हिंदुस्तानी के इस महाराज्य पर चढ़ाई करे तो मानो उसने पूरब के सब राजाओं से शत्रुता की, और उस दशा में श्रीमती को अपने राज के अपार बल, अपने स्नेही और कर देने वाले राजाओं की वीरता और राजभक्ति और अपनी प्रजा के स्नेह और शुभचिंतकता के कारण इस बात की भरपूर शक्ति है कि उसे परास्त करके दंड दें ।

इस अवसर पर उन पूरब के राजाओं के प्रतिनिधियों का वर्त्तमान होना जिन्होंने दूर दूर देशों से श्रीमती को इस शुभ समारंभ के लिये बधाई दी है, गवर्नमेंट ऑव इंडिया के मेल के अभिप्राय, और आस पास के राजाओं के साथ उसके मित्र का स्पष्ट प्रमाण है । मैं चाहता हूँ कि श्रीमती की हिंदुस्तानी गवर्नमेंअ की तरफ से श्रीयुत खानकिलात और उन राजदूतों को जो इस अवसर पर श्रीमती के स्नेही राजाओं के प्रतिनिधि होकर दूर दूर से अँगरेजी राज में आए हैं और अपने प्रतिष्ठित पाहुने पर श्रीयुत गवरनर-जेनरल गोआ और बाहरी कांसलों का स्वागत करूँ ।

हे हिंदुसतान के रईस और प्रजा लोग, — मैं आनंद के साथ आप लोगों को यह कृपापूर्वक संदेसा जो श्रीमती महारानी और आप लोगों की राजराजेश्वरी ने आज आप लोगों को अपने राजसी और राजेश्वरीय नाम से भेजा है सुनाता हूँ । जो वाक्य श्रीमती के यहाँ से आज सबेरे तार के द्वारा मेरे पास पहुँचे हैं, ये हैं :—

''हम, विक्टोरिया, ईश्वर की कृपा से, संयुक्त राज (ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड) की महारानी, हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी अपने वायसराय के द्वारा अपने सब राजकाज संबंधी और सेना संबंधी अधिकारियों, रईसों, सरदारों और प्रजा को, जो इस समय दिल्ली में इकट्ठे हैं, अपना राजसी और राजराजेश्वरीय आशीर्वाद भेजते हैं और उस भारी कृपा और पूर्ण स्नेह का विश्वास कराते हैं जो हम अपने हिंदुस्तान के महाराज्य की प्रजा की ओर रखते हैं । हम को यह देख कर जी से प्रसन्नता हुई कि हमारे प्यारे पुत्र का इन लोगों ने कैसा कुछ आदर सत्कार किया, और अपने कुल और सिंहासन की ओर उनकी राजभक्ति और स्नेह के इस प्रमाण से हमारे जी पर बहुत असर हुआ । हमें भरोसा है कि इस शुभ अवसर का यह फल होगा कि हमारे और हमारी प्रजा के बीच स्नेह और दृढ़ होगा, और सब छोटे बड़े को इस बात का निश्चय हो जायगा कि हमारे राज में उन लोगों को स्वतंत्रता, धर्म और न्याय प्राप्त हैं और हमारे राज का अभिप्राय और इच्छा सदा यही है कि उन के सुख की वृद्धि, सौभाग्य की अधिकता, और कल्याण की उन्नति होती रहे ।''

मुझे विश्वास है कि आप लोग इन कृपामय वाक्यों की गुणग्राहकता करेंगे ।

ईश्वर विक्टोरिया संयुक्त राज की महारानी और हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की रक्षा करे ।

इस ऐड्रेस के समाप्त होते ही नैशनल एन्थेम का बाजा बजने लगा और सेना ने तीन बार हुर्रे शब्द की आनंदध्वनि की । दरबार के लोगों ने भी परम उत्साह से खड़े होकर हुर्रे शब्द और हथेलियों की आनंदध्वनि करके अपने जी का उमंग प्रगट किया । महाराज सेंधिया, निजाम की ओर से सर सालारजंग, राजपुताना के महाराजों की तरफ से महाराज जयपुर, बेगम भूपाल, महाराज कश्मीर और दूसरे सरदारों ने खड़े होकर एक दूसरे को बधाई दी और अपनी राजभक्ति प्रगट की । इस के अनंतर श्रीयुत वाइसराय ने आज्ञा की कि दरबार हो चुका और अपनी चार घोड़े की गाड़ी पर चढ़कर अपने खेमे को रवाने हुए ।

श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने के उत्सव में गवरन्मेंट ऑव इंडिया ने हिंदुस्तान के रईसों और साधारण लोगों पर जो अनेक अनुग्रह किये हैं उन्हें हम संक्षेप के साथ नीचे लिखते हैं ।

सलामी

जंबू, ग्वालियर, इंदौर, उदयपुर और त्रावणकोर के महाराजों की सलामी उनकी जिंदगीभर के लिए १९

के बदले २१ तोप की हो गई और महाराज जयपुर की १७ से बढ़कर २१।

जोधपुर और रीवाँ के महाराजों के लिये उनकी जिंदगी भर को १७ से बढ़कर १९ तोप की सलामी हो गई।

किशुनगढ़ और उर्छा के महाराजों की सलामी उनके जीवन समय के लिये १५ तोप के बदले १७ हो गई, और नवाब टोंक की ११ से बढ़कर १७। भूपाल की बेगम के पति और हैदराबाद के शम्सूल उमरा नामी दूसरे मंत्री की सलामी नये सिरे से १७ तोप की नियत हुई।

नवाब रामपुर की सलामी उमर के लिये १३ से १५ तोप हुई, और भाव नगर के ठाकुर, नवानगर के जाम, जूनागढ़ के नवाब और काठियावाड़ के राजा की ११ से बढ़कर १५। आरकट के शहजादे और बेगम भूपाल की संबंधिनी कुदसिया बेगम को १५ तोप की सलामी नए सिर के मुकर्रर हुई।

महाराज पन्ना, राजा जींद और राजा नाभा की ११ से १३ तोप की सलामी ज़िंदगी भर के लिये हो गई और महारानी तंजौर और महाराज बर्दवान को नए सिर से १३ तोप की सलामी मिली।

मकला के नकीब और शिवहर के जमादार को १२ तोप की सलामी उमर भर के लिए मिली।

मलेरकोटला के नवाब की सलामी जिंदगी भर के लिये ९ से ११ हो गई, और मुरवी के ठाकुर साहिब और टिहरी के राजा के लिये नए सिरे से ११ तोप की सलामी कायम हुई।

नीचे लिखी हुई जगहों के राजाओं, सरदारों या ठाकुरों के जीवन समय के लिये नए सिरे से नौ नौ तोप की सलामी मिली।

धरमपुर, ध्रोल, बलरामपुर, बसडा, बिरोंदा, गोंदाल, जंजीरा, खरींद, किलचीपुर, लिमडी, मैहर, पलिटाना, राजकोट, सुकेतरा (के सुल्तान), सुचीन, बादवान और बंकानेर।

यहाँ यह भी लिखना आवश्यक है कि १ जनवरी सन् १८७७ से श्रीमती राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार उनकी सलामी १०१ तोप की और राजसी झंडे और हिंदुस्तान के गवर्नर-जेनरल की ३१ तोप की नियत हुई।

नीचे लिखे हुए राजा और अधिकारी लोग "काउंसिलर ऑव दि एम्प्रेस" (राजराजेश्वरी के सलाहकार) नियत हुए :—

जीवन समय तक।

महाराज कश्मीर, श्रीरणवीरसिंह जी.सी.एस.आई.।
" बूँदी, श्रीरामसिंह जी. सी. एस. आई.।
" ग्वालियर, श्रीजयाजीराव सेंधिया जी. सी. एस. आई.।
" इंदौर, श्रीतुकाजीराव हुल्कर जी. सी. एस. आई.।
" जयपुर, श्रीरामसिंह जी. सी. एस. आई.।
" त्रावनकोर, श्रीरामवर्मा जी. सी. एस. आई.।
" जींद, श्रीरघुवीर सिंह जी. सी. एस. आई.।
" नवाब रामपुर, कलबअलीखाँ जी. सी. एस. आई.।

पद का अधिकार रहने तक

श्रीयुत रिचार्ड प्लांटाजिनेट केम्बेल जी. सी. एस. आई. ड्यूक आवॅ बकिंहैम ऐन्ड शान्डॉस, मदरास के गवरनर।

सर फिलिप उडहाउस जी. सी. एस. आई., के. सी. बी., बम्बई के गवरनर।
सर एफ. हेन्स के. सी. बी., हिंदुस्तान के कमांडरिन्चीफ।
सर रिचर्ड टेम्पल के. सी. एस. आई. बंगाल के लेफ्टेनेन्ट गवरनर।
सर जॉर्ज कूपर सी. बी. पश्चिमोत्तर देश के लेफ्टिनेन्ट गवरनर।
सर राबर्ड डेवीस के. सी. एस. आई., पंजाब के लेफ्टेनेन्ट गवरनर।
सर हंनरी नार्मन के. सी. बी. गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर।
आनरेबल ए. हॉबहाउस क्यू. सी. गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर।

सर ए. क्लार्क के. सी. एम. जी., सी. बी., गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।
आनरेबल ई. बेली सी. एस. आई., गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।
सर ए. आरबुथनाट के. सी. एस. आई., गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।
नीचे लिखे हुए राजाओं को प्रथम श्रेणी के स्टार ऑव इंडिया (जी. सी. एस. आई.) की पदवी मिली :—
श्रीयुत महाराज रामसिंह, बूँदी ।
'' महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह, बनारस ।
'' महाराज जसवन्त सिंह, भरतपुर ।
'' प्रिंस अजीमजाह बहादुर, आर्कट ।
इन लोगों को दूसरी श्रेणी के स्टार ऑव इंडिया (के. सी. एस. आई.) की पदवी मिली :—
श्रीशिवाजी छत्रपति, राजा कोल्हापुर ।
राजा आनंदराव पँवार, धारवाले ।
श्रीमानसिंहजी, राजा ध्रांगध्रा ।
श्रीविभवजी, जाम नवानगर ।
आर. जे. मैकडोनल्ड, श्रीमती के ईस्ट इंडीज की जहाजी फौजों के कमांडरिनचीफ ।
सर जॉर्ज कूपर सी. बी. पश्चिमोत्तर देश के लेफटेनेन्ट गवरनर ।
जेम्स स्टीवन साहिब, गवरनर जेनरल की काउंसिल के पहले मेंबर ।
आर्थर हावहाउस साहिब, गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।
ई.सी. बेली साहिब सी. एस. आई. गवर्नर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।

तीसरे दरजे के स्टार ऑव इंडिया (सी. एस. आई.) की पदवी २५ आदमियों को मिली, जिन में मथुरा के सेठ गोविंद दास, कश्मीर के दीवान ज्वाला सहाय, और त्रावणकोर के दीवान शशिया शास्त्री को भी गिनना चाहिये । नीचे लिखे हुए राजाओं को उनके नाम के सामने लिखी हुई पदवियाँ मिलीं ।

महाराज गाइकवाड़ बड़ोंदा — । ''फरजंदे खास दौलते इंगलिशिया'' (अँगरेजी सरकार के मुख्य बेटे)
महाराज ग्वालियर — ''हिसारमुस्सलतनत'' (राज्य की तलवार) ।
महाराज कश्मीर — ''इन्द्रमहेन्द्र बहादुर सिपरेसल्तनत'' (राज्य की ढाल)
महाराज अजयगढ़ — ''सवाई''
महाराज बिजावर — ''सवाई''
महाराज चरखारी — ''सिपहदारुलमुल्क'' (देश के सेनापति)
महाराज दतिया —''लोकेन्द्र''

नीचे लिखे हुए सरदारों और रईसों को ''महाराज' की पदवी अपनी जिन्दगी भर के लिए मिली:

आनंदराव पँवार, धार के राजा ।
छत्र सिंह, समथर के राजा बहादुर ।
धनुर्जय नारायणभंज देव, किलाक्योंझार के राजा, उड़ीसा ।
देव्या सिंह देव, पुरी के राजा, उड़ीसा ।
जगेन्द्रनाथ राय, (राजा नाटौर के घराने की बड़ी औलाद)
राजा ज्योतींद्र मोहन ठाकुर ।
कृष्णचंद्र, मोरभंज वाले, उड़ीसा ।
महीपत सिंह, पटना ।
आनरेबल राजा नरेन्द्रकृष्ण, कलकत्ता ।
राजा कृष्ण सिंह, सुसाँग के राजा ।
राजा रामनाथ ठाकुर, कलकत्ता ।

नीचे लिखी हुई रानियों को उनके जीवन समय के लिये ''महारानी' की पदवी मिली

रानी हरसुंदरी देव्या, सिरसौल, बर्दवान ।

रानी हींगन कुमारी, पैंदारा, मानभूम ।

रानी सुरतसुंदरी देव्या, राजशाही ।

राजा सर दिनकरराव के.सी.एस.आई. को "राजा मुशीरेखास बहादुर" (राजा मुख्य सलाहकार बहादुर) की पदवी उनकी जिंदगी के लिये मिली ।

नीचे लिखे हुए सरदारों और रईसों को उनकी जिंदगी के लिये "राजा बहादुर" की पदवी मिली

रघुबीरदयाल सिंह, बिरोंदा के राजा ।

खड्गसिंह, सुरीला के राजा ।

उदितप्रतापदेव, खरोंद के राजा ।

राजा बिशेशर मालिया, सिरसौल, बर्दवान ।

राजा हरिबल्लभसिंह, बिहार ।

राजा हरनाथ चौधरी, दुबलहट्टी, राजशाही ।

राजा मंगलसिंह ; भिनाई, अजमेर ।

राजा रामरंजन चक्रवर्ती, बीरभूमि ।

नीचे लिखे हुए मनुष्यों को उनके जीवन समय के लिए "राजा" की पदवी मिली:

बाबू अजीत सिंह, तरौल, प्रतापगढ़ ।

बाबा बलवंत राव, जबलपुर ।

बलवंत सिंह, गंगवाना ।

डमरू कुमार वेंकटिया नयुदू, जमींदार कलाहस्थी, उत्तर आरकट ।

देवा सिंह, राजगढ़ ।

दिगंबर मित्र, कलकत्ता ।

राव गंगाधरराम राव जमींदार पितापुर, गोदावरी प्रांत ।

राव छत्रसिंह, जमींदार, कन्याधना ।

हरिश्चन्द्र चौधरी, मैमनसिंह ।

कमलकृष्ण, कलकत्ता ।

रायबहादुर क्षेत्रमोहनसिंह, दीनाजपुर ।

कुँअर हरनरायण सिंह, हाथरस ।

कुँअर लछमन सिंह, डिप्टी कलेक्टर, बुलंदशहर ।

सर टी. माधवराव के. सी. एस. आई., बड़ोदा के दीवान ।

ठाकुर माधव सिंह, अजमेर ।

प्रताप सिंह, अजमेर ।

रामनरायन सिंह, मुंगेर ।

श्यामनंद दे, बलेसर ।

श्यामशंकर राय, टिउटा ।

सरदार सुरतसिंह मंजिठिया सी. एस. आई. ।

राव साहिब त्र्यंबक जी नाना अहीर, नागपुर के राव ।

काँदोकिशोर भूपति जमींदार सुकींदा, उड़ीसा ।

पादोलव राव, ज़मींदार औल, उड़ीसा ।

३२ आदमियों को "राव बहादुर" की पदवी मिली, जिनमें गोपाल राव हरी देशमुख, अहमदाबाद की स्मालकाज़कोर्ट के जज और नारायण भाई दंडकर बरार के शिक्षाविभाग के डायरेक्टर भी हैं ।

२९ मनुष्यों को "राय बहादुर" की पदवी मिली जिनमें डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र और बाबू कृष्णोदास पाल के नाम भी गिनने चाहियें ।

८ आदमियों को "राव साहिब" की पदवी मिली, ४ को "राव" की और ५ को "राय" की । इन में से अजमेर के पाँच आदमी "रावसाहिब" और तीन "राय" हुए । निस्संदेह अजमेर के चीफ कमिश्नर सिफारिश करने में बड़े उदार जान पड़ते हैं क्योंकि और भी बहुत सी पदवियाँ उधरवालों के हिस्से में आई हैं हमारे पश्चिमोत्तर देश से तो सिवाय दो एक के कोई पूछा ही नहीं गया है यद्यपि योग्य पुरुषों की यहाँ कमी नहीं है ।

राय मुंशी अमीचंद के जुडिसियल असिस्टेन्ट कमिंश्नर को "सरदार बहादुर" की पदवी मिली, रतनसिंह मध्य भरतखंड के पुलीस सुपरिंटेंडेंट को "सरदार" की ; देवर परगना के ठाकुर हीरासिंह को "ठाकुर रावत" की ; और लछमीनरायन सिंह केरावाले को "ठाकुर" की पदवी दी गई । ४ आदमी "नवाब" हुए । ४० को "खाँ बहादुर" का खिताब मिला, जिन में से एक मौलवी अबदुल्लतीफ खाँ कलकत्ते की डिप्टी कलेक्टर भी हैं ; और दो को "खाँ" का खिताब मिला ।

इन सरदारो को उनके नाम के सामने लिखे हुए खिताब खानदानी मिले —

महाराज सर जयमंगलसिंह बहादुर के.सी.एस.आई. गिद्दौर, मुंगेर — "महाराज बहादुर" ।

धर्मजीत सिंह देव, सरदार उदैपुर, छोटानागपुर महाल —"राजा उदयपुर" ।

नवाब ख्वाजा अबदुल्गनी, ढाका — "नवाब"

दीवान ग़यासुद्दीनअली खाँ सज्जादानशीन, अजमेर, को उनकी ज़िंदगी भर के लिये "शेखुल्मशायख़" का ख़िताब मिला और सरदार अतरसिंह बहादुर, भदौर, को "मलाजुल् उलमा उलफ़ीजला" का ।

इस के सिवाय एक को "दीवान बहादुर" की, एक को "दीवान" की और १३ को "ऑनरेरी असिस्टेंट सेक्रेटरी का और ऑनरेरी असिस्टेंट प्राइवेट सेक्रेटरी का पद भी अलग-अलग दिया गया ।

सेना के कितने अधिकारों के साथ भी "सरदार बहादुर" और "बहादुर" की पदवियाँ लगा दी गई ; और सब छोटे छोटे अधिकारियों, जहाज़ी नौकरों, सेना के सिपाहियों और गोरों को एक एक दिन की तनख्वाह इनाम मिली और दूसरी रिआयतें भी इन के साथ की गई । इस के सिवाय नेटिव कमीशंड आफ़िसर लोगों की तनख़्वाह भी कुछ बढ़ा दी गई है ।

रहीमखाँ खाँ बहादुर, असिस्टेंट सर्जन लाहौर को "ऑनरेरी सर्जन" की पदवी मिली ।

श्रीयुत रणवीर सिंह जी.सी.एस.आई. महाराज जम्बू और कश्मीर, और श्रीयुत जयाजीराव सेंधिया जी.सी.एस.आई. महाराज ग्वालियर को सेना के जेनरल (जरनैल) का पद प्रतिष्ठा की रीति पर श्रीमतीराजराजेश्वरी की ओर से दिया गया ।

राजालोगों के सलामी की शोधी हुई नई फिहरिस्त ।

—*—

राज की सलामी

२१

गायकवाड़ बड़ोदा, निजाम हैदराबाद और महाराज मैसूर ।

१९

महाराना मेवाड़, ख़ान क़िलात, बेगम भूपाल, महाराज जम्बू, इंदौर, ग्वालियर, ट्रैवंकोर और कोल्हापुर ।

१७

बहावलपुर के नवाब, बूँदी के महाराव राजा, कोटा के महराव, कोचीन के राजा, कक्ष के राव और भरतपुर, बीकानेर, जैपुर, करौली, जोधपुर, पटियाला और रीवाँ के महाराजा ।

१५

धार, दतिया, ईडर, कृष्णगढ़, शिकम और उर्छा के महाराजा, देवास के छोटे बड़े राजा, प्रतापगढ़ के राजा, अलवर के महाराव राजा, राना धौलपुर, डूँगरपुर और जैसलमेर के महारावल, झालावार के महाराज राना, खैरपुर के खाँ और सिरोही के राव।

१३

महाराजा बनारस, जावरा और रामपुर के नवाब, कोंच विहार, रतलाम और त्रिपुरा के राजा।

११

चंबा, छतरपुर, ध्रांगध्रा, फरीदकोट, झबुआ, जींद, कहंलूर, कपूरथला, मंडी, नाभा नरसिंहगढ़, राजपिंपला, सीतामऊ, सिलहना, सिरमौर और सुकेत के राजे।बावनी, कम्बे, जूनागढ़, राधनपुर, राजगढ़ और टोंक के नवाब। अजयगढ़, बिजावर, चरखारी, पन्ना और समथर के महाराजे, बाँसवारा के महारावल, भावनगर के ठाकुर, नबानगर: के जाम, पालनपुर के दीवान और पोरबंदर के राना।

९

अली राजपुर, बड़वानी और लुनवारा के राना, बैरिया, छोटा उदयपुर, नागोद और सोंठ के राजा; बालाशिनोर के वावी फुलदी और लहज के सुलतान तथा सावंतवाड़ी के देसाई और मालेर कोटला के नवाब।

शारीरक सलामी।

२१

महाराज दिलीप सिंह, महाराज जयाजी राव सेंधिया, महाराज तुकोजी राव होल्कर, महाराना सज्जनसिंह जी उदयपुर, महाराज रामसिंह सवाई जयपुर, महाराज रणवीर सिंह कश्मीर, महाराज श्रीराम वर्मा ट्रयवेंकोर।

१९

मुरशिदाबाद के नवाब निजाम, महाराज जसवंत सिंह जोधपुर, महाराज सर जंग बहादुर वज़ीर नैपाल, महाराज रघुराज सिंह रीवाँ।

१७

बेगम भूपाल के पति, हैदराबाद के सालारजंग और शमसुल्उमा, महाराज पृथ्वी सिंह कृष्णगढ़, महाराज महेंद्रप्रताप सिंह उर्छा और नवाब इब्राहीम खाँ टोंक।

१५

आर्कट के प्रिंस अजीमजाह, ठाकुर तख्तसिंह जी भावनगर, कुदसिया बेगम भूपाल, राजा मानसिंह ध्रांगध्रा, नवाब महाबत खाँ जूनागढ़, जाम श्रीविभव जी नवानगर, नवाब कलबअली खाँ रामपुर।

१३

महाराज महताबचंद बर्दवान, महाराज जींद, महाराज पन्ना, महाराज विजयनगरम, राजा नाभा और रानी विजयमोहिम्नी मुक्ताबाई तंजौर।

१२

उमर बिन सल्लह बिन मुहम्मद नकीब मकला, औध बिन उमर जमादार शहरा।

११

नवाब मालेर कोटला, ठाकुर मोरवी और राजा टेहरी।

९

महारावल बाँसवाड़ा, महाराजा बलरामपुर, महारावल धरमपुर, ध्रोल गोंदन, लिमडी, पालीटाना, राजकोट और बादवान के ठाकुर, जंजीरा के और सुचीन के नवाब, खंरोड़ बकनीर बिरोंदा और मैहर के राजे और सुलतान सकोतरा और किलिचीपुर के राव।

विदित रहे कि महाराज नैपाल, सुलतान मसकत, सुलतान जंजीबार और अमीर काबुल की सलामी भी २१ है।

उदयपुरोदय

(अर्थात् मेवाड़ का पुरावृत्त-संग्रह)

यह मेवाड़ का पुरावृत्त संग्रह है। इसका रचनाकाल सन् १८७७ है। इसे आप भारतेन्दु के इतिहास लेखन की शैली का उदाहरण मान सकते हैं। इसकी टिप्पणी देखने मात्र से पता चलता है कि इसके लेखन में भारतेन्दु जी को कड़ी मेहनत करनी पड़ी होगी। —सं.

उदयपुरोदय

पहिला अध्याय

मेवाड़ का शुद्ध नाम मेदपाट है और यहाँ के महाराज की संज्ञा सीसौंधिया है। कहते हैं कि इन के वंश में कोई राजा बड़े धार्मिक थे। एक समय वैद्यों ने छल से औषध में मद्य मिला कर उन को पिला दिया, क्योंकि जिस रोग में वे ग्रस्त थे उस की औषधि मद्य ही के साथ दी जाती थी। शरीर स्वच्छ होने पर जब उन्होंने जाना कि हम ने मद्य पीया था, तो उसके प्रायश्चित के हेतु गलता हुआ सीसा पीकर प्राण त्याग किया। तभी से सीसौंधिया इस वंश की संज्ञा हुई। यही वंश भारतखंड में सब से प्राचीन और सब से माननीय है। इसी वंश में महात्मा मांधाता, सगर, दिलीप, भगीरथ, हरिश्चंद्र, रघु आदि बड़े बड़े राजा हुए हैं और इसी वंश में भगवान श्रीरामचंद्र ने अवतार लिया है। इसी वंश के चरित्र में कालिदास, भवभूति, वरंच व्यास, बाल्मीक ने भी वह ग्रंथ बनाए हैं जो अब तक भारतवर्ष के साहित्य के रत्नभूत हैं। हिंदुस्तान में यही वंश ऐसा बचा है जिस मे लोग सत्ययुग से लेकर अब तक बराबर राज्यसिंहासन पर अचल छत्र के नीचे बैठते आए। उदयपुरवाले ही ऐसे हैं जिन्होंने और और विलायत के बादशाहों की बेटी ली, पर अपनी बेटी मुसलमान को न दी[१]। आज हम उसी बड़े पराक्रमशाली प्राचीन वंश का इतिहास लिखने बैठे हैं। इसमें हमारे मुख्य सहायक ग्रंथ टॉड साहिब का राजस्थान, उदयपुर के वंशचरित्र के भाषाग्रंथ और प्राचीन ताम्रपत्र हैं। जैसे संसार के सब राजों के इतिहास प्रारम्भ में अनेक आश्चर्य घटना पूरित होते हैं वैसे ही इस के भी प्रारंभ में अनेक आश्चर्य इतिहास हैं। उन से कोई इस के ऐतिहासिक इतिवृत्ति में संदेह न करें; क्योंकि प्राय: प्राचीन इतिवृत्त अनेक अद्भुत घटना पूर्ण होते हैं और इतिहासवेत्ता लोग उन्हीं चमत्कृत इतिहासों का सारासार निस्सार पूर्वक सारा निर्णय बुद्धि बल से कर लेते हैं।

राजस्थान में मेवाड़ और जैसलमेर का राज्य सब से प्राचीन है। आठ सौ बरस से भारतवर्ष में विदेशियों का राज्य प्रारम्भ हुआ, तब से अनेक राज्य बिगड़े और बने यह ज्यों का त्यों है। गजनी के बादशाह लोग सिंधु नदी का गंभीर जल पार कर के हिंदुस्तान में आए। उस समय जहाँ मेवाड़ के राज्य का सिंहासन था वहीं अब

१. कहते हैं कि जब औरंगज़ेब ने उदयपुर घेर लिया था तब राना साहब शिकार खेलते थे और उन को बादशाह की दो बेगम फौज से बिछड़ी जंगल में भटकती हुई मिलीं, जिन को राना ने अपनी बहिन कह के पुकारा और रक्षापूर्वक लाकर उन को औरंगज़ेब को सौंप दिया। मुसलमान तवारीख लिखनेवालों ने अपनी क्षति इसी बहाने पूरी की और कहा कि उदयपुरवालों ने बेटी नहीं दी, तो क्या हुआ, बादशाह बेगम को अपनी बहिन बनाया तो सही। वरंच इसी हेतु उस दिन से उन बेगमों को उदयपुरी बेगम लिखा गया। भाषाग्रंथों में इन बेगमों के नाम रंगी चंगी बेगम लिखे हैं।

भी है । बहुत से राजा लोग उस राज्य के चारों ओर, बहुत से वहाँ से और कहीं जा बसे, पर इनके महल अब भी वहीं खड़े हैं जहाँ पहले खड़े थे । सतयुग से आज तक इसी वंश के सब पुरुष सिंहासन ही पर मरे ।

भगवान रामचंद्र के ज्येष्ठ पुत्र लव ने अपने राज्य-समय में लवपुर अर्थात् लाहौर बसाया था और सुमित्रायु नामक राजा लव से पचपन पीढ़ी पीछे हुआ । पुराणों में लिखा है कि सुमित्र ने कलियुग में राज्य किया और बहुत से प्रमाणों से मालूम होता है कि ये विक्रमादित्य के कुछ पहले वर्त्तमान थे । इनके पीछे कनकसेन तक राजाओं का ठीक वृत्तांत नहीं मिलता । जहाँ तक नाम मिले हैं उसमें पहला महारथ, उस का पुत्र अंतरीक्ष, उस का अचलसेन और उस का पुत्र राजा कनकसेन हुआ । राजा कनकसेन ही सौराष्ट्र देश में आये, परंतु इस का नहीं पता लगता कि उन्होंने लाहौर किस हेतु से छोड़ा और किस पथ से सौराष्ट्र पहुँचे । यहाँ आकर इन्होंने किसी पवाँर वंश के राज का अधिकार जीत कर सन् १४४ में वीर नगर नामक नगर संस्थापन किया । कनकसेन को महामदनसेन, उनको शोणादित्य और उनको विजय भूप हुआ । इस ने जहाँ अब घोल का नगर है वहाँ पर विजयपुर नामक नगर संस्थापन किया और जहाँ अब सिहोर है तहाँ विदर्भ नगर बनाया । और ब्ल्लभीपुर नामक एक बड़ा नागर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया । अब धोल नगर से पाँच कोस उत्तर-पश्चिम बालभी नामक जो गाँव है वहीं इस प्रसिद्ध बल्लभीपुर का अवशेष है । शत्रुञ्जय-माहात्म्य नामक जैन ग्रंथ में भी इस नगर की बड़ी शोभा लिखी है । मेवाड़ के राजा लोग बल्लभीपुर से आए हैं यह प्रवाद बहुत दिन से था, पर कोई इस का पक्का प्रमाण नहीं था । अब उदयपुर के राज्य में एक टूटे शिवालय में एक प्राचीन खोदा हुआ पत्थर मिला है, उस से यह संदेह मिट गया, क्योंकि उस में लिखा है कि जिन महात्माओं का ऊपर वर्णन हुआ उस की साक्षी वल्लभीपुर के प्राचीर हैं । राणा राजसिंह के समय के बने हुये एक ग्रंथ में भी लिखा है कि सौराष्ट्र देश पर बरबरों ने चढ़ाई करके बालकानाथ को पराजय किया ।

इस बल्लभीपुर के विप्लव में सब लोग नष्ट हो गये और केवल एक प्रमार की दुहिता मात्र बची । बल्ल्भीपुर शिलादित्य के समय में नाश हुआ । विजयभूप के पद्मादित्य, उन के शिवादित्य, उन के हरादित्य, उन के सुयशादित्य, उन के सोमादित्य, उन के शिलादित्य ।

शिलादित्य वा शीलादित्य तक एक प्रकार का क्रम लिख आए हैं । अब आगे नामों में और उन के समय कितना गड़बड़ और उसके ठीक निर्णय में कितनी विपत्ति है यह दिखाते हैं । आर्यमत के अनुसार चार युग में काल बाँटा गया है । इसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति से सत्ययुग माना जाता है । अब अनेक पुराणों से और प्रसिद्ध विद्वानों के मत से प्रारंभ से काल लिखते हैं ।

पुराण के मत से इक्ष्वाकु को २१८५००० वर्ष हुए । जोन्स के मत से ६८७७ और विलफर्ड के मत से ४५७८, टॉड के मत से ४०७७, वेण्टली के मत से ३४०५ ।

श्री रामचंद्र का समय पुराण० ८६८७९७९ वर्ष, जोन्स० ३९०६, विलफर्ड० ३२३७, वेण्टली० २८२७, टॉड० ४००० ।

महाराज युधिष्ठिर का समय पुराण० ४९७९, वेंटली २४५३, और जोन्स-टाड ३३०७ और विलफर्ड के मत से श्री रामचंद्र का और युधिष्ठिर का समय एक है, विल्सन के मत से ३३०७ ।

सुमित्र का समय पुराण० ३९७७, जोन्स २९०६, विलफर्ड २५७७, वेंटली १९९६, विल्सन० २८०२, ब्रह्मावालों के मत से २४७७ ।

शिशुनाग का समय पुराण. ३८३६, जोन्स. २७४७, विलफर्ड. २४७७, विल्सन. २६५४, ब्रह्मावाले. २४७७ ।

नंद का समय पुराण० ३४७७, जोन्स० २५७६, विल्सन० २२९२, ब्रह्मावाले० २२८१ ।

चंद्रगुप्त का समय पुराण० ३३७९, जोन्स० २४७७, विलफर्ड० २२२७, विल्सन० २१९२, टॉड० २१९७, ब्रह्मावाले० २२६९ ।

अशोक का समय पुराण ३३४७, जोन्स. २५१७, विल्सन. २१२७, ब्रह्मावाले. २२०७ ।

जोन्स प्रिंसिप साहब के मत से परशुराम जी को ३०५३ वर्ष हुए और वेंटली साहब के मत से बाल्मीकि रामायण बने केवल १५८६ वर्ष हुए ।

कलियुग का प्रारंभ पुलोम के समय तक भागवत के मत से ३७३४, ब्रहमाण्डपुराण के मत से ३६५२, वायुपुराण के मत से ३६०६, जैनों के मत से २९५५ और चीन और ब्रहमा के मत से २५६८ वर्ष से है। अँगरेजी विद्वानों के पुराणों के अनुसार इस समय तक पुलोम का समय जोड़ कर एक सम्मति है कि कलियुग बीते ५००० वर्ष लगभग हुए, परंतु इस मत को वे सत्य नहीं मानते, क्योंकि फिर आप ही लिखते हैं कि स्वायंभु मनु को हुए ५८८३ वर्ष और ववस्वतमनु को ४८२७ वर्ष हुए।

युधिष्ठिर के ३०४४ संवत् बीते विक्रम का संवत् चला और विक्रम के १३५ वर्ष पीछे शालिवाहन का शाका चला।

ऊपर जो कालनिर्णय में विद्वानों के परस्पर विरुद्ध मत वर्णन किए गए इस से यह बात प्रसिद्ध होगी कि प्राचीन समय निर्णय करना कितना दुरुहय है, इस के आगे जो ब्रहमा से लेकर सुमित्र पर्यंत नामावली दी जाती है उसके मध्यगत काल का निर्णय न कर के सुमित्र के समय से जो हमारे मत के अनुसार २००० वर्ष बीते हुआ है काल का निर्णय प्रारंभ करेंगे।

ब्रहमा, मरीचि, कश्यप, विवस्वान, श्राद्धदेव, इक्ष्वाकु, विकक्षी १ पुरंजय, काकुस्थ, २ अनेनास, ३ पृथु, ४ विश्वगश्व, ५ अर्द, भाद्रआर्द, युवनाश्व, ६ वृहदश्व, ७ कुवलयाश्व, दृढ़ाश्व, हर्यश्व, निकुंभ, ८ संकटाश्व, ९ प्रसेनजित् युवनाश्व, १० मांधाता, पुरुकुत्स, चित्रिशदश्व, अनारण्य, पृषदश्व, हयश्व, ११ बसुमान, १२ त्रिघ्न्वा, १३, त्रयारण्य, त्रिशंकं, हरिश्चंद्र रोहिताश्व, हारीत, १४ चुंचु, विजय, १५ रुरुक, वृक, १६ बाहु, सगर, असमंजस, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, श्रुत, नाभाग, अंबरीष, सिंधुद्वीप, अयुताश्व, १७ ऋतुपर्ण, सर्वकाम, सुदास, कल्माष्पाद, १८ असमक, १९ हरिकवच, २० दशरथ, इलिवथ, विश्वासह, २१ खट्वाँग,, दीर्घबाहु, रघु, अज, दशरथ, श्रीराम, २२ कुश, अतिथि, निषध, नल, नाभ, पुंडरीक, क्षेमधन्वा, २३ द्वारिक, अहीनज, कुरुपरिपात्र, २५ दल, २६ छल, उकथ, २७ बज्रनाभि, २८ शंखनाभि, २९ व्युथिताभि, ३० विश्वासह, हिरण्यनाभि, ३१ पुष्य, ३२ ध्रुवसंधि, ३३ अपवर्म, शीघ्र, ३४ मरु, प्रसव श्रुत, ३५ सुसंध, आमर्ष, ३६ महाश्व, वृहद्वाल वृहद्शान, उरुक्षेप, वत्स, वत्सव्यूह प्रतिव्योम, ३७ देवकर, सहदेव, ३८ वृहदश्व, ३९ भानुरत्न, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र ४०।

केशीनर, ४१ अंतरीक्ष, ४२ सुवर्ण, अमित्रजित, वृहद्राज, ४३ धर्म ४४ कृतंजय, ४५ रणंजय, संजय, शाक्य, ४६ क्रोधदान, शाक्य सिंह, ४७ अतुल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, कुंदक, ४८ सुरथ, सुमित्र।

महाराज जैसिंह के ग्रंथ के अनुसार सुमित्र के पीछे महारितु, अंतरित, अचलसेन, कनकसेन, महामदनसेन, सुदंत वा प्रथम सोणादित्य, (विजयसेन वा अजयसेन वा विजयादित्य) पद्मादित्य, शिवादित्य, हरादित्य, सूर्यादित्य, शिलादित्य, ग्रहादित्य, नागादित्य, भार्गादित्य, देवादित्य, आशादित्य, कालभोज व भोजादित्य, द्वितीय ग्रहादित्य और बापा। सुमित्र से माहऋतु तक चार नाम नहीं मिलते और इस क्रम से श्रीरामचंद्र से बापा अस्सी पीढ़ी में हैं। तक्षक से लेकर के बाहुमान वा भानुमान तक आठ राजाओं के नाम कई वंशावली में नहीं मिलता। अनेक ग्रंथकारों का मत है कि इसी तक्षक के समय से ईरान, तूरान तुरकिस्तान इत्यादि देशों में इसका वंश राज करता था और तुरकिस्तान का प्राचीन नाम तक्षकस्थान बतलाते हैं और यूनान में जो अर्तक्षर्क नामक राजा हुआ है वह भी इसी तक्षक का नामांतर मानते हैं।

राजा जयसिंह का मत है, कनकसेन के समय में अर्थात् सन् १४४ में सौराष्ट्र देश में इस वंश का राज

१ नामांतर काकुस्थ। २-३ ना. अनुपृथु। ४ ना. विश्वगंधि। ५ ना. चंद्र। ६ ना. स्वसव या श्रव। ७ ना. धुंधुमार। ८ संकटाश्व के पीछे वरुणश्व और कृशाश्व दो नाम और मिलते हैं। ९ ना. सेनजित। १० ना. सुबंधु इन को चक्रवर्ती लिखा है। ११ ना. महण या अरुण। १२ ना. त्रिविधन १३ ना. सत्यव्रत। १४ ना. चंप, किसी पुस्तक में चंप के पीछे सुदेव तब विजय लिखा है। १५ ना. भरुक। १६ ना. बाहुक। १७ ऋतुपर्ण के पीछे किसी पुस्तक में नल, तब सार्वकाम लिखा है। १८ ना. आमक। १९ ना. मूलक। २० दशरथ, और इलिबथ दो के बदले किसी पुस्तक में ऐड़ाबिड़ एक ही नाम लिखा है। २१ ना. खरभंग। २२ कुश के समय से अनेक ग्रंथकार द्वापर की प्रवृत्ति मानते हैं (इन्हीं कुश का एक पुत्र कूर्म नामक था जिस से कछवाहे लोग अपनी वंशावली मानते हैं।) २३ ना. देवानीक। २४ ना. अहीनग। २६ ना. बल। २५ ना. रणच्छल। २७ बज्रनाभि के पीछे कोई अर्क तब शंखनाभि को लिखता है। २८ ना. सगण। २९ ना. विधृत। ३० ना. विशित्राश्व। ३१ ना. पुष्य। ३२ ध्रुवसंधि और अपवर्म के बीच में कोई सूदर्शन नामक और एक राजा मानता है। ३३ ना. अग्निवर्म। ३४ ना. मनु। ३५ ना.

हुआ और वही लिखते हैं कि विजय वा अजयसेन का नामांतर नौशेरवाँ था । इस ने विजयपुर वा विराटगढ़ बसाया ओर सन् ३१९ में बल्लभीपक स्थापन किया । उन्हीं का मत है कि शिलादित्य को यवनों ने जीता और सौराष्ट्र से यह राज छिन्न भिन्न हो गया और इसका पुत्र केशव वा गोप वा ग्रहादित्य भांडेर के जंगल में रहा और उस के पुत्र नागादित्य के समय से इस वंश का गोत्र गहलौत कहलाया और फिर आशादित्य ने मेवाड़ में अपने वंश की पहली राजधानी आशापुर और आहार बसाया और इस के पीछे बापा ने सन् ७१४ में चितौड़ का राज्य पाया, दूसरे ग्रहादित्य का नाम द्वितीय नागादित्य भी लिखा है ।

बापा तक नाम का क्रम हम पूर्व में लिख आए हैं, परंतु प्राचीन ताम्रपत्रों से लेकर यदि वंशावली लिखी जाया, तो सेनापति व भट्टारक तथा धरासेन, द्रोणसिंह (प्रथम), ध्रुवसेन, धरापति, गृहसेन, श्रीधरसेन (प्रथम), शिलादित्य (प्रथम), चारुग्रह वा खड़्ग्रह (द्वितीय), श्रीधरसेन (द्वितीय), ध्रुवसेन (तृतीय), श्रीधरसेन(, (तृतीय), शिलादित्य (इस के पीछे तीन नाम छूट गए हैं), शिलादित्य (तृतीय) और (चतुर्थ) शिलादित्य ।

टॉड साहब की वंशावली और बल्लभीपुर की वंशावली में कितना अंतर है यह ऊपर के नामों से प्रगट होगा । पादरी अंडरसन साहब ने दो नए ताम्रपत्र पढ़कर इस वंशावली को शोधा है और वे कहते हैं कि इस में जहाँ जहाँ श्रीधरसन लिखा है वह सब नाम धरासेन है और शिलादित्य का नाम क्रमादित्य वा विक्रमादित्य है और इन्हीं को धर्मादित्य भी कहते हैं[1] । और वंशावली के प्रथम पुरुष को सेनापति वा भट्टारक वा धर्मादित्य भी लिखा है । दोनों वंशावली में बल्लभीपुर का अंतिम राजा शिलादित्य है और इन दोनों के संवत् भी पास पास मिलते हैं । पारसी इतिहासवेत्ताओं के मत से इसी शिलादित्य का पुत्र ग्रह वा ग्रहादित्य, जिस ने ग्रहलोत व ममोधिया गोत्र चलाया, नौशेरवाँ का रक्षित पुत्र था, परंतु महाराज जैसिंह ने राजा अजयसेन का ही नामांतर नौशेरवाँ लिखा है । पारसी इतिहासवेत्ताओं के मत से नौशेरवाँ के पुत्र नोशीजाद (हमारे यहाँ का नागादित्य) और यजदिजिर्द की बेटी माहबानू, जो इन्हीं राजाओं में से किसी को ब्याही थी, इस वंश के मूल पुरुष हैं । विलर्फ साहब के मत से बल्लभीशक के स्थापनकर्ता अजयसेन वा दूसरी वंशावली के अनुसार धरासेन को ही पुराणों में शुद्रक वा शरक लिखा है, जिस ने ३२९० वर्ष कलियुग बीते सन् १९१ वा २९१ में प्रथम विक्रमादित्य के नाम से राज्य किया था ।[2] मेजर वॉटसन के मत से सेनापति भट्टारक के सौराष्ट्र जीतने के दो वर्ष पीछे प्रसिद्ध स्कन्दगुप्त मरा ।[3] इस से गुप्त संवत के आस ही पास बल्लभी संवत् भी है और इस विषय के उन्होंने अनेक प्रमाण भी दिए हैं । इस बल्लभी संवत के निर्णय में इतिहासवेत्ता विद्वानों के बड़े बड़े झगड़े हैं, जिससे कई दरजन कागज के बड़े ताव रँग गये हैं । लोग सिद्धांत करते हैं कि गुप्तवंश जब प्रबल था तब बल्लभीवंश के लोग उसके वंश के अनुगत थे, यहाँ तक कि भट्टारक सेनापति गुप्त वंश बिगड़ने के पीछे स्वाधीन हुआ और अपने दूसरे बेटे द्रोणसिंह का महाराज किया । पाँच छ : ताम्रपत्र इस वंश के जो मिले हैं इन के परस्पर नामों में बड़ा फरक है, जैसा गुहसेन धरासेन शिलादित्य धरासेन शिलादित्य वा गुहसेन के दो पुत्र शिलादित्य और खड़्ग्रह के दो पुत्र धरासेन और ध्रुवसेन वा शिलादित्य के देरभट्ट, उनके शिलादित्य खड़्ग्रह और ध्रुवसेन और शिलादित्य के बाद फिर शिलादित्य ।

इन नामों के परस्पर अत्यंत ही विरुद्ध होने से कोई निश्चित वंशावली नहीं बन सकती, अतएव इन झगड़ों को छोड़ कर राजा कनकसेन के समय से हम ने पूर्व वृत्तांत प्रारंभ किया । कारण यह कि जब एक बड़ा

संधि । ३६ ना. अवस्वान, इसी महाश्व के पीछे विश्वबाहु: प्रसेनजित और तक्षक नामक तीन राजा वृहद्वाल के पहले अनेक ग्रंथकार मानते हैं और कहते हैं, कलियुग का प्रारंभ इसी समय से हुआ । ३७ प्रतिव्योम और देवकर के बीच में कोई भानु को भी जोड़ते हैं । इसी देवकर का नामांतर दिवाकर है । ३८ सहदेव, तब बीर, तब वृहदश्व, यह किसी का मत है । ३९ ना. भानुमत वा भानुमान, ग्रंथकारों का मत है कि ईरान का जो प्रसिद्ध बहमन नामक राजा हुआ था । वह यही भानुमान है । इस के और सुप्रतीक के बीच में कोई प्रतिशोश्व नामक राजा मानते हैं ! ४० ना. पुष्कर । ४१ ना. रेख । ४२ ना. सुतुपा । ४३ ना. बाढ़ि । ४४ कोई ग्रंथकार कहते हैं कि यही कृतंजय प्रथम सौराष्ट्र में आया । ४५ ना. जयरान । ४६ ना. शुद्धोधन इसी का पुत्र प्रसिद्ध शाक्यसिंह है, जो भादो सुदी ५ को जन्मा था, और बौद्ध और जैन के नाम से जिस का मत संसार की एक तिहाई में व्याप्त है । ४७ ना. लांगल वा सिंघल वा रानुल । ४८ ना. सुरत वा सुराष्ट्र, कहते हैं कि इसी के नाम से सौराष्ट्र देश बसा है ।

1. Bomb. Jour. VLIII P. 216
2. as Ras VL IX pp. 135. 230.

वंश राज्य करता है तो उस की शाखा प्रशाखा आस पास छोटे छोटे राज्य निर्माण कर के राज करती हैं । इसमें क्या आश्चर्य है कि ताम्रपत्रों में ऐसे ही अनेक श्रेणियों की वंशावली का वर्णन हो जो वास्तव में सब बल्लभी वंश से संबंध रखती हैं । ऐसा ही मान लेने से पूर्वोक्त समय और वंश निर्णय की असमंजसता, जटिलता, घनता, असंबद्धता और विरोधिता दूर होगी ।

सुमित्र से लेकर शिलादित्य तक एक प्रकार का निर्णय ऊपर हो चुका और इस से निश्चय हुआ कि महाराज सुमित्र कलियुग के अंत में हुए थे और बल्लभीपुर का नाश भए दो हजार वर्ष के लगभग हुए । कहा है कि बल्लभीपुर में सूर्यकुंड नामक एक तीर्थ था । युद्ध के समय शिलादित्य के आवाहन करने से इस कुंड में से सूर्य के रथ का सात सिर का घोड़ा निकलता था और इस अश्व के रथ पर बैठने से फिर शिलादित्य को कोई जीत नहीं सकता था । और यह भी कथित है कि सूर्य की दी हुई शिलादित्य के पास एक ऐसी शिला थी जिसको दिखा देने से वा स्पर्श करा देने से शत्रुओं का नाश हो जाता था । और इसी वास्ते इनका नाम शिलादित्य था । इन के किसी शत्रु ने इन्हीं के किसी निज भेदिये की सम्मति से उस पवित्र कुंड को गोरक्त द्वारा अशुद्ध कर दिया, जिससे बल्लभीपुर के नाश के समय राजा के बारंबार आवाहन करने से भी वह अश्व नहीं निकला और राजा सपरिवार युद्ध में निहत हुआ और बल्लभीपुर नाश हुआ । जैनग्रंथों के अनुसार संवत २०५ में बल्लभीपुर नाश हुआ और श्री महाराणा उदयपुर के राज्य कृत संग्रह के अनुसार राजा शिलादित्य का नाम सलादित्य था और बल्लभीपुर का नाम विजयपुर ।

अँगरेजी विद्वानों का मत है कि नगरावरोधकारी शत्रुदल ने हिंदुओं को दु:ख देने के हेतु गोरक्त से बल्लभीपुर के जल कुंडों को अशुद्ध कर दिया होगा, जिससे हिंदू लोग घबड़ा कर एक साथ लड़ने को निकल खड़े हुए होंगे । अलाउद्दीन बादशाह ने गागरौन देश के खींची राजाओं से यही छल किया था । बल्लभीपुर के शत्रुओं का यही छल मानों इस कथा का मूल है ।

बल्लभीपुर को किस असभ्य जाति ने नाश किया इस का निर्णय भली भाँत नहीं होता । प्राचीन पारस निवासी लोग वृष को पवित्र समझते थे और सूर्य के सामने उसको बलिदान भी करते थे । इस से निश्चय होता है कि ये लोग पारसी तो नहीं थे । प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है कि ख्रिष्टीय दूसरी शताब्दी में सिंधु नदी के किनारे पारद वा पार्थियन लोगों का एक बड़ा राज्य था । विष्णुपुराण में लिखा है कि सूर्यवंशी सगर राजा ने मलेच्छों को चिन्ह विशेष देकर भारतवर्ष से निकाल दिया था, जिस में यवन सर्व शिरोमुंडित केश, अर्द्धशिर-मुंडित, पारद मुक्त केश और पन्हव वा पल्हव श्मश्रुधारी बनाए गए थे । उसी काल में श्वेत वर्ण की एक हूण जाति भी सिंधु के किनारे राज्य करती थी । हूण जाति नामक प्राचीन असभ्य मनुष्यों के लेख पुराणों और यूरोप के इतिवृतों में भी पाया जाता है । संभावना होती है कि इन्हीं दो जातियों में से किसी ने बल्लभीपुर नष्ट किया होगा । पारद और हूण दो जातियों का आदिनिवास शाकद्वीप है । महाभारत में शाकद्वीपी और पूर्वोक्ति हूणादिकों को इसी प्रकार यवन लिखा है । पुराणों में इन सबों को एक प्रकार का क्षत्री लिखा है । ये सब असभ्य जाति शाकद्वीप से किस काल में यहाँ आए इसका पता नहीं लगता । बेण्टली साहब का मत है कि शाकद्वीप इंगलैण्ड का नामांतर है । विशेष आश्चर्य का विषय यह है कि ये सब शाकद्वीपी काल पा के आर्य जाति में मिल गए, यहाँ तक कि ब्राह्मण और क्षत्रियों में भी शाकद्वीपी वर्त्तमान हैं ।

यह निश्चय हुआ कि इन्हीं म्लेच्छ जाति के लोगों में से किसी जाति ने बल्लभीपुर नाश किया । साँदोंराई से जो वंशपत्रिका मिली है उसमें लिखा है कि बल्लभीपुर नाश होने के पीछे वहाँ के लोग मारवाड़ में आकर साँदोंरावालों और नांदोर नगर बसा कर रहने लगे और फिर गाजनी नामक एक नगर का और भी उल्लेख है । एक कवि अपने ग्रंथ में लिखता है ''असभ्यों ने गाजनी हस्तगत किया, शिलादित्य का घर जनशून्य हुआ और जो वीर लोग उस की रक्षा को निकले वे मारे गए'' ।

हिंदू सूर्य के वंश का यहाँ चौथा दिवस अवसान हुआ । प्रथम दिवस इक्ष्वाकु से श्री रामचंद्र तक अयोध्या में बीता, दूसरा दिन लव से सुमित्र तक अन्य राजधानियों में, तीसरा सुमित्र से विजयभूप तक अँधेरे मेघों से छिपा हुआ कहाँ बीता न जान पड़ा और यह चौथा दिन आज बल्लभीपुर में शिलादित्य के अस्त होने से समाप्त हुआ । पाँचवें दिन का इतिहास बहुत स्पष्ट है, जो गुह और बाप्पा के विचित्र चित्रों से चित्रित होकर दूसरे अध्याय में वर्णन होगा ।

इति उदयपुरोदय प्रथम अध्याय

दूसरा अध्याय

वल्लभी वंश की रात्रि का अवसान हुआ । उदयपुर के इतिहास की यहाँसे शृंखला बँधी । पूर्व में लिख आए हैं कि बल्लभीपुर को यवनों ने घेरा और राजा शिलादित्य ने सकुटुंब सपरिवार वीरों की गति पाया । अब और सीमंतिनीगण राजा की सहगामिनी हुई, किंतु रानी पुष्पवती (वा कमलावती) मात्र जीवित रही ।

रानी पुष्पवती चंद्रावती नगर (सांप्रत आबूनगर) के राजा की दुहिता थीं । बल्लभीपुर के आक्रमण के पूर्व ही यह रानी गर्भवती होकर अपने पिता के राज में जगदंबा (आर्शाम्बिका) के दर्शन को गई थी और वहाँ से लौटती समय मार्ग में अपने प्राणवल्लभ और बल्लभीपुर का विनाश सुना और उसी समय अपना प्राण देना चाहा । परंतु बीरनगर की एक ब्राह्मणी लक्ष्मणावती जो रानी के साथ थी उसके समझाने से प्रसव काल तक प्राण धारण का मनोरथ कर के मालिया प्रदेश के एक पर्वत की गुहा में कालयापन करना निश्चय किया । इसी गुहा में गुहा का जन्म हुआ और रानी ने सद्यःजात संतान उस ब्राह्मणी को देकर आप अग्नि-प्रवेश किया । मरती समय रानी ब्राह्मणी को समझा गई थी कि इस पुत्र को ब्राह्मणोचित शिक्षा देकर क्षत्रिय कन्या से ब्याह देना ।

लक्ष्मणावती ब्राह्मणी उस बालक का लालन पालन करने लगी और द्वेषियों के भय से भांडेरगढ़ और पराशर वन में क्रम से रही । गुहा में जन्म होने के कारण बालक का नाम भी गुहा (ग्रहादित्य वा केशवादित्य) रक्खा । गुहा की प्रकृति दिन दिन अति उत्कट होने लगी और बहुत से वनवासी बालकों को इन्होंने अपना अनुगामी बना लिया । इसी वृत्तांत पर उस देश में यह कहावत अब भी प्रचलित है कि सूर्य की किरण को कौन छिपा सकता है ।

मेवाड़ की दक्षिण सीमा पर ईदर के राज्य पर उस समय भीलों का अधिकार था और उस समय के भीलों के राजा का नाम मंडलिका था । प्रतिपालक शांतिशील ब्राह्मणों के साथ गुहा का जी नहीं मिलता था । इस से सम स्वभाव उग्र प्रकृति वाले भीलों से अपनी उद्दंड प्रचंड प्रकृति की एकता देखकर गुहा उन्हीं लोगों के साथ वन वन घूमते थे और काल-क्रम से भीलों के ऐसे स्नेहपात्र हो गए कि सबन पर्वत ईदर प्रदेश भीलों ने इनको समर्पण कर दिया । अबुलफजल और भट्ट गण गुहा के भील-राजप्राप्ति का वर्णन यों करते हैं । एक दिन खेल में भील बालक लोग एक बालक को राजा बनाना चाहते थे और सब ने एक वाक्य होकर गुहा ही को राजा बनाना स्वीकार किया । एक भील के बालक ने चट से अपनी उँगली काट के ताजे लहू से गुहा के सिर में राजतिलक लगाया । यह खेल का व्यापार पीछे कार्यतः सत्य हो गया, क्योंकि भील-राजा मंडलिका ने यह समाचार सुन कर प्रसन्न हो कर ईदर का राज्य गुहा को दे दिया । कहते हैं कि गुहा ने व्यर्थ भीलराज मंडलिका को पीछे से मार डाला । गुहा के नाम के अनुसार उन के वंश के लोग गोहिलोट (गहिलौत वा गिहलौट) कहलाए । टॉड साहब कहते हैं कि गहिलौट ग्राहिलोत का अपभ्रंश है ।

गुहा (केशवादित्य) के पुत्र नागादित्य हुए । इन्हीं ने पराशर वन में नागह्रद नामक एक बड़ा ह्रद बनवाया । इन्हीं के नाम के कारण लक्ष्मणावती ब्राह्मणी के संतान वा वह वन और तालाब सब नागदहा के नाम से प्रसिद्ध हैं और सिसौधियों को भी नागदहा कहते हैं । नागादित्य के भोगादित्य ।इन्होंने कट्टिला नदी पर पक्का घाट बनाया और इंद्र सरोवर नामक तालाब का जीर्णोद्धार किया । पूर्वोक्त तड़ाग इन के नाम से अब तक भाडेला कहलाता है । इन के पुत्र देवादित्य, जिन्हों ने देलवाड़ा ग्राम निर्माण किया और उन के आशादित्य जिन्होंने अहाड़पुर नगर बसा कर अपनी राजधानी बनाया । यह अहाड़पुर अब राणा लोगों का समाधिस्थल है । कहते हैं कि अहाड़पुर में जो गंगोद्रव तीर्थ है वह इसी राजा का निर्माण किया है और इन्हीं की भक्ति से उस में गंगा जी का आविर्भाव हुआ था । उस प्रांत में इस तीर्थ का बड़ा माहात्म्य है । यह तीर्थ उदयपुर से एक कोस पूर्व की ओर है । आशादित्य के पुत्र कालभोजादित्य और उन के पुत्र ग्रहादित्य (वा द्वितीय नागादित्य) । घासा गाँव इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है । गुहा राजा से लेकर नागादित्य पर्यंत छ (टॉड साहब के मत से सात) राजाओं ने इसी पर्वत भूमि का राज्य किया, पर इन में से कोई अत्यन्त प्रसिद्ध न था, किंतु नागादित्य का पुत्र बाप्पा बड़ा प्रसिद्ध और नामी मनुष्य हुआ, वरंच उदयपुर के राज का इसे मूलस्तंभ कहें तो अयोग्य न होगा । बापा का

वर्णन उदयपुर से जो लिख कर आया है उसे हम यहाँ पर अविकल प्रकाश करते हैं । ''ग्रहादित्य के वाष्प
नामक पुत्र हुआ । कहते हैं कि वाष्प नंदी गण के अवतार थे । यह कथा सविस्तर वायु पुराणांतर्गत एकलिंग-
माहात्म्य में लिखी है । जब राजा ग्रहादित्य के एक शत्रु जंजावल नाम राजा ने घासा नगर को आन आवर्तन
किया वहाँ राजा ग्रहादित्य बड़े प्रराक्रम के साथ मारे गए और घासा में जंजावाल का अधिकार हो गया तब
आपत्ति-काल अवलोकन कर प्रमरवंशोद्‌दव ग्रहादित्य की राज्ञी ने अपने पुत्र वाष्प को शिशुता के भय से निज
पुरोहित वशिष्ठ के गृह में गोपान कर पिहित रहना स्वीकार कया । बहुत समय व्यतीत होने पीछे वाष्प ने
वशिष्ठ की गो-चारन का नियम लिया । लिखा है कि उस गो निकर में एक कामधेनु नाम धेनु थी, सो जब
वाष्प गो-चारन को जाते वहाँ उक्त गाय एक वेणु-चय में प्रवेश करती । वहाँ एक स्फटिक का लिंग था उस पर
अपने स्तनों से दुग्ध श्रवती । इस वास्ते गुरुपत्नी ने एक दिन वाष्प को उपालंभ दिया कि इस धेनु के स्तनों
में दुग्ध नहीं सो कहाँ जाता है । द्वितीय दिवस वाष्प ने उस गाय को दृष्टि से पिहित न होंने दिया । वह सुरभी
तो शिव लिंग पर पूर्वोक्त दुग्ध श्रवने लगी अरु वाष्प ने इस चरित्र को देख साक्षी बनाने को हारीत नामा ऋषि,
भृंगी गण का अवतार लिखा है वहाँ तपस्या करते हुये, को देख वाष्प ने निमंत्रण कर वह चरित्र दिखाया ।
जब भृंगी गण ने कहा कि हे वाष्प, इस श्रीमदेकलिंगेश्वर के दर्शनार्थ तो मैं यहाँ ऐसा कठिन तप करता था
अरु तू भी इन्हीं का सेवक नंदीगण का अंशावतार है, तब वाष्प को भी स्वरूपज्ञान हुआ । फिर श्रीशंकर की
स्तुति कर वर पाय हारीत ऋषि तो कैलास सिधारे और वाष्प ने राज्य की अपेक्षा करी । इससे उन को शंकर
ने वरदान दिया कि तेरा शरीर अभिन्न ओर महत्तर होगा और तुझे इस भर्तृहरि के पर्वत में खनन करने से
बहुत द्रव्य मिलेगा, जिससे सेना एकत्र कर अरु चित्तौड़ का राज्य अपने अधिकार में कीजियो और आज से
तुम्हारे नाम पर रावल पद प्रख्यात रहैगा । यह लिंग प्रादुर्भाव विक्रमार्क गताब्द २९० वैशाख कृष्ण कृष्ण १ को
हुआ था, सो उक्त महीने की इसी तिथि को अब भी प्रादुर्भावोत्सव प्रति वर्ष होता है । फिर रावल वाष्प ने
इष्टाज्ञा ले द्रव्य निष्कासन कर महत्तर सेना बनाय चित्तौड़ के राजा मानमोरी को जय किया और उसी दुर्ग
को अपनी राजधानी बनाया । इस महिपाल ने समस्त भारतवर्ष को विजय किया ।''

वापा के विषय में ऐसे ही अनेक आश्चर्य्य उपाख्यान मिलते हैं । पृथ्वी पर जितने बड़े बड़े राजवंश हैं
उन में ऐसे कोई भी न होंगे जो कवि जनों की विचित्र कल्पना से अलंकृत न हों, क्योंकि उस समय में उन के
विषय में विविधि दैवी कल्पनाओं का आरोप ही मानों उन के प्राचीनता और गुरुत्व का मूल था । रोम राज्य के
स्थापनकर्त्ता रमूलस देवता के पुत्र थे ओर बाघिन का दूध पी कर पले थे । ग्रीस राज्य के हर्क्यूलिस और
इंगलैण्ड राज्य के आथर राजाओं के दैत्यों से युद्ध इत्यादि अनेक अमानुष कर्म प्रसिद्ध हैं । जगद्विजयी सिकंदर
की दो सींग थीं । औफार के अफरासियाब ने जब देव सदृश अनेक कर्म किए, तो हिंदुस्तान के बड़े-बड़े
उदयपुर, नैपाल, सितारा, कोल्हापुर, ईजानगर, डूँगरपुर, प्रतापगढ़ और अलीराजपुर इत्यादि राजवंशों के मूल
पुरुष वापा के विषय में विचित्र बातें लिखी हों तो कौन आश्चर्य की बात है । वापा सैकड़ों राजकुल के आदि
पुरुष, लोकागीत, संभ्रम-भाजन और चिरजीवी, फिर उनके चरित्र अलौकिक घटनाओं से क्यों न संघटित
हों ।

वापा वाल्यकाल से गोचारण करते थे, यह पूर्व में कह आए हैं । कहते हैं कि शरत्काल में गोचारण के
हेतु वन में गमन करके वापा ने एक साथ छ सौ कुमारियों का पाणिग्रहण किया । उस देश में शरद ऋतु में
बालक और बालिका गन बाहर जा कर भूला भूलते हैं । इसी रीति के अनुसार नागेंद्रनगर के सोलंखी राजा की
क्वारी कन्या अपनी अनेक सखियों क साथ भूलने को आई थी, किंतु उन के पास डोरी नहीं थी कि वह भूला
बाँधें । वापा को देखकर उन सबों ने इन से डोरी माँगी । इन्होंने कहा पहिले व्याह खेल खेलो तो डोरी दें ।
बालिका लोगों के हिसाब सभी खेल एक से थे, इस से इन लोगों ने पहिले व्याह खेल ही खेलना आरंभ किया ।
राजकुमारी और वापा की गाँठ जोड़ कर गीत गाकर दोनों की सबने सात फेरी किया । कुछ दिन पीछे जब
राजकुमारी की व्याह ठहरा तब एक परपक्ष ज्योतिषी ने हाथ देखकर कहा कि इस का तो व्याह हो चुका है ।
कुमारी का पिता यह सुन के बहुत ही घबड़ाया और इसकी खोज करने लगा । वापा के साथ गोपाल गण यह
चरित्र जानतें थे, परंतु वापा ने इसके प्रगट करने की उन से शपथ ली थी । यह शपथ भी विचित्र प्रकार की थी । एक
गड़हे के निकट वापा ने अपने सब संगियों को बैठाया और हाथ में एक एक छोटा पत्थर देकर कहा कि तुम

लोग शपथ करों कि "तुमारा भला बुरा कोई हाल किसी से न कहैंगे, तुमको छोड़ के न जायँगे, और जहाँ जो कुछ सुनैंगे सब आ कर तुम से कहैंगे । यदि इस में कोई बात टालैं, तो हमारे और पुरुषा के धर्म कर्म इस ढेले की भाँति धोबी के गड़हे में पड़े" । बापा के संगियों ने यही कह कह के ढेला गढ़हे में फेंका और उस के अनुसार वापा का विवाह करना उन के संगियों ने प्रकाश न किया । किंतु छ सौ सरला कुमारियों पर जो बात विदित है, वह कभी छिप सकती है ? धीरे-धीरे यह विवाह खेल की कथा राजा के कान तक पहुँची । वापा को तीन वर्ष की अवस्था से भांडीर दुर्ग[१] से लाकर ब्राह्मणों ने इसी नागेंद्र नगर[२] के समीप निविड़ पराशर कानन में त्रिकूट पर्वत के नीचे अपने घर में रक्खा था, इस से वापा उसी सोलंखी राजा के प्रजा थे । राजा ने यह समाचार सुन लिया, यह जान कर वापा नागेन्द्र नगर छोड़ कर पर्वतों में छिप रहे और उसी समय से उन का सौभाग्य संचार होने लगा । किंतु इन छ सौ कुमारियों का फिर पाणिग्रहण न हुआ और वापा ही के गले पड़ीं । इसी कारण सैकड़ों राजा जमींदार सरदार सिपाही क्षत्री अपने को वापा[३] की संतान बतलाते हैं ।

नागेंद्र नगर से चलने के समय में दो भील वाप्पा के सहगामी हुए थे । इनमें एक उंद्री प्रदेशवासी और इस का नाम वालव, अपर[४] अगुणापानोर नामक स्थान-निवासी, इस का नाम देव । इन दोनो भीलों का नाम वाप्पा के नाम के साथ चिरस्मरणीय हो रहा है । चित्तौर के सिंहासन पर अभिषिक्त होने के समय वालव ने स्वीय करागुंलि कर्त्तन कर के सद्यो शोणित से वाप्पा के ललाट में राजतिलक प्रदान किया था । तदनुसार अद्यावधि पर्यंत वाप्पा वंशीय राजगण के सिंहासनारोहण के दिवस इन्हीं दो भीलों के संतान गण आकर अभिषेक-विधि संपादन करते हैं । अगुणा प्रदेश के भील स्वीय शोणित से राजललाट में तिलकार्पण और राजकीय बाहु धारण कर के सिंहासन में अधिष्ठित कराते हैं । उंद्री प्रदेश का भील तावत् काल दंडायमान हो कर राजतिलक का उपकरण[५] द्रव्य का पात्र लिये रहता है । जो प्रथा पुरुषानुक्रम से इस प्रकार से प्रतिपालित होती चली आती है, उस का मूल किस प्रकार से उत्पन्न हुआ था यह अनुसंधान कर के ज्ञात होने से अंत :करण कैसा विपुल आनंद रस से आप्लुत हो जाता है ।

मेवार के राज्याभिषेक के समुदय प्राचीन नियम रक्षा करने में विपुल अर्थ का व्यय होता है इसी कारण उसका अनेक अंग परित्यक्त हो गया है । राणा जगतसिंह के पश्चात् और किसी का अभिषेक पूर्ववत् समारोह के साथ संपन्न नहीं हुआ । उन के अभिषेक में नब्बे लक्ष रुपया व्यय हुआ था । मेवार के अति समृद्ध समय में समग्र भारतवर्ष की आय ९० लक्ष रुपया थी ।

नगेंद्र नगर से वाप्पा के जाने का कारण पहिले वर्णित हुआ है, वह संपूर्ण संगत है, परंतु भट्ट कविगण के ग्रंथ में उन के प्रस्थान का अन्य प्रकार का विवरण दृष्ट होता है । उन लोगों ने कविजन सुलभ कल्पना-प्रभाव से दैव घटना का आरोप कर के उस की विलक्षण शोभा संपादन किया है । काल्पनिक विवरण से

---

१. वापा भांडीर दुर्ग में भीलों के हाथ से पले थे । जिस भील ने वापा को पाला वह जदुवंशी था । उस प्रदेश में भीलों की दो जाति हैं । एक उजले अर्थात शुद्ध भील वंश के दूसरे संकर भील । यह संकर भील राजपूतों से भिल कर उत्पन्न हुए हैं और पँवार, चौहान, रघुवंशी, जदुवंशी इत्यादि राजपूतों की जाति के नाम उन की जाति के भी होते हैं । यह भांडीर दुर्ग मेवाड़ में जारोल नगर से आठ कोस दक्षिण-पश्चिम है ।

२ नागेंद्र नगर का नाम नागदहा प्रसिद्ध है । यह उदयपुर से पाँच कोस उत्तर की ओर है । यहाँ से टॉड साहब ने अनेक प्राचीन लिपि संग्रह किया था । इन सबों में एक पत्थर ईसवी नवम शतक का है जिस में राजाओं की उपाधि (गोहिलोट) लिखी है ।

३ वाप्पा दुलार में लड़के को कहते हैं । एक प्राचीन ग्रंथ में वापा का नाम शिलाधीश लिखा है, किंतु प्रसिद्ध नाम इन का वापा ही है ।

४ टॉड साहब कहते हैं, भारतवर्ष के मध्य अगुनापनोर प्रदेश अद्यावधि प्राकृतिक स्वाधीन अवस्था में है । अगुना एक सहस्र ग्राम में विभक्त । तत्रस्थ भीलगण जातीय जनैक प्रधान के आधीन में निर्विघ्नता से बास करते हैं । इस प्रधान की उपाधि भी राणा है, पर किसी राज के साथ इन लोगों का विशेष कोई संस्रव नहीं । विग्रह उपस्थित होने से अगुना का राणा धनु :शर पाँच सहस्र जन एकत्र कर सकता है । आगुनापनोर मेवार राजा के दक्षिण-पश्चिम प्रांत में अवस्थित है ।

५ राजटीका का प्रधान और प्राचीन उपकरण जल संयुक्त तंदुल चूर्ण राजस्थान की चलित भाषा में उस राजटीका का नाम "शुशकी" काल क्रम से सुगंधि मिला हुआ चर्ण तदुपकरण मध्य परिगणित हो गया है ।

अलंकृत न हो ऐसा संभ्रांत वंश भारतवर्ष में अतीव दुर्लभ है, सुतरां हम भी भट्टगण वर्णित वाप्पा के सौभाग्यसंचार का विवरण निम्न में प्रकटित करते हैं —

पहले कह आये हैं कि वाप्पा ब्राहमणगण का गोचारण करते थे ।[1] उनकी पालित एक गऊ के स्तन में ब्राहमणगण ने उपर्य्युपरि कियद्दिवस तक दुग्ध नहीं पाया, इस से संदेह किया कि वाप्पा इस गऊ को दोहन कर के दुग्ध पान कर लेते हैं । वाप्पा इस अपवाद से अति क्रुध हुए, किंतु गऊ के स्तन में स्वरूपत: दुग्ध न देख कर ब्राहमणगण के संदेह को अमूलक न कह सके । पश्चात् स्वयं अनुसंधान कर के देखा कि यह गऊ प्रत्यह एक पर्वत गुहा में जाया करती थी और वहाँ से प्रत्यागमन करने से उस के स्तन पय :शून्य हो जाते हैं । वाप्पा ने गऊ का अनुसरण कर के एक दिन गुहा में प्रवेश किया और देखा कि उस वेतसवन में एक योगी ध्यानावस्था में उपविष्ट है । उन के सम्मुख में एक शिवलिंग है और उसी शिवलिंग के मस्तक पर पयस्विनी का धवल पयोधर प्रचुर परिमाण से परिवर्षित होता है ।

पूर्वकाल के योगी ऋषिगण भिन्न यह प्राकृतिक और पवित्र देवस्थली इति पूर्व में और किसी को दृष्टिगोचर नहीं हुई थी । वाप्पा ने जिन योगी का ध्यान अवस्था में दर्शन किया था उन का नाम हारीत[2] जन समागम से जोगी का ध्यान भंग हुआ, वाप्पा का परिचय जिज्ञासा करने से वाप्पा ने आत्म वृत्तांत जहाँ तक अवगत थे सब निवेदन किया । योगी के आशीर्वाद ग्रहणांतर उस दिन गृह में प्रत्यागत भए अत: पर वाप्पा प्रत्यह एक बार योगी के निकट गमन कर के उन का पादप्रक्षालन, पानार्थ पय :प्रदान और शिवप्रीति काम होकर धतूरा, अर्क प्रभृति शिव-प्रिय वन पुष्प समूह चयन किया करते । सेवा से तुष्ट होकर योगीवर ने उन को क्रम क्रम से नीति शास्त्र में शिक्षित और शैव मंत्र से दीक्षित किया और स्वकर से उन के कंठ में पवित्र यज्ञसूत्र समर्पण पूर्वक "एकलिंग को देवान" यह उपाधि प्रदान किया ।

तत्पश्चात् वाप्पा का यह क्रम था कि नित्यप्रति योगी का दर्शन करना और तत्कथित मंत्र का अनुष्ठान करना । काल पाकर भगवती पार्वती ने मंत्र-प्रभाव से वाप्पा को दर्शन दिया और राज्यादिक के वरप्रदान पूर्व्वक दिव्य शस्त्र से वाप्पा को सुसज्जित किया ।

कियत् कालानंतर ध्यान से योगी ने अपने परमधाम जाने का समय निकट जान कर वाप्पा को तद्वृत्तांत विदित कर बोले "कल तुम अति प्रत्यूष में उपस्थित होना ?" वाप्पा निद्रा के वशीभूत होकर आदेशानुरूप प्रत्यूष में उपस्थित हो नहीं सके और बिलंब कर के जब वहाँ गए तो देखा कि हारीत ने आकाशपथ में कियद दूर तक आरोहण किया है । उन का विद्युत-निभ विमान उज्ज्वलांग अप्सरागण वहन करती हैं । हारीत ने विमान गति स्थगित कर के वाप्पा को निकटस्थ होने का आदेश किया । उस विमान तक पहुँचने के उद्यम से वाप्पा का कलेवर तत्क्षणात् २० हाथ दीर्घ हो गया । किंतु तथापि उन को गुरुदेव का रथ प्राप्त नहीं हुआ । तब योगी ने उन को मुख व्यादान करने को कहा । तदनुसार वाप्पा ने वदन व्यादित किया । कथित है योगीश्वर ने उन के मुख विवर में उगाल परित्याग किया था ।[3] वाप्पा ने उससे घृणा करके इस निष्ठोवन का पदतल में निक्षेप किया और इसी अपराध से उनको अमरत्वलाभ नहीं हुआ । केवल उनका शरीर अस्त्र शस्त्र से अभेद्य हो गया । हारीत अदृश्य हुए । वाप्पा ने इस प्रकार सदेवानुग्रहीत होकर और अपने को चित्तौर के मौरी राजवंश का दौहित्र जानकर और आलस्य में कालक्षेप करना युक्ति संगत अनुमान नहीं किया । अब गोचारण से उनको अत्यंत घृणा हुई और उन्होंने कतिपय सहचर समभिव्यवहार में लेकर अरण्यवास परित्याग करके लोकालय में गमन किया । मार्ग में नाहर-मगरा[4] नामक पर्वत में विख्यात

---

१. सूर्यवंशियों में ब्राह्मण की गोचारण करना प्रीचन प्रथा है । रघुवंश में दिलीप का इतिहास देखो ।

२. हारीत के वंशीय ब्राह्म लोग अद्यावधि एकलिंग के पूजक पद मों प्रतिष्ठित हैं । टॉड साहब के समकालीन पुरोहित हारीत से षष्टाधिक षष्ठितम पुरुष थे उन के निकट में राणा के मध्यवर्त्तिता से शिवपुराण प्राप्त हो कर टॉड साहब ने इंग्लैंड के रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (Royal Asiatic Society) समाज को प्रदान किया था ।

३. कथित है मुसलमानधर्मप्रचारक महम्मद ने स्वीय प्रिय दौहित्र हसन के बदन में ऐसाही निष्ठीवन परित्याग किया था । क्या आश्चर्य है जो मुसल्मान लोगों ने यह कथा भारतवर्ष के इसी उपाख्यान से ली है ।

४. मेवार के राजधानी उदयपुर के पूर्व भाग में प्रवेश करने को रास्ते में कोस के अंदर नाहरमगरा पर्वत

'गोरखनाथ' ऋषि के साथ उनका साक्षात् हुआ था । गोरक्ष ने उन को और द्विधार तीक्ष्ण करवाल[1] प्रदान किया था । मंत्रपूत करके चलाने से उस तीक्ष्ण कृपाण के आघात से पर्वत भी विदीर्ण हो जाता था । वाप्पा ने उसी के प्रताप से चित्तौर का सिंहासन प्राप्त किया था । भट्ट कविगण के ग्रंथ में वाप्पा के नागेन्द्र नगर से प्रस्थान का यह विवरण प्राप्त होता है और इस विवरण में मेवार निवासी लोगों का प्रगाढ़ विश्वास भी है ।

मालव के भूतपूर्व अधिपति प्रमारवंशीय तत्काल में भारत वर्ष के सार्वभौम थे । इस वंश की एक साखा का नाम मोरी । मोरी वंशियों का इस समय में चित्तौर पर अधिकार था, किंतु चित्तौर तत्काल प्रधान राजपाट था या नहीं यह निश्चित नहीं । विविध अट्टालिका और दुर्ग प्रभृति में इस वंश के राजत्व काल की खोदित लिपि विद्यमान हैं, उससे ज्ञात होता है कि मौरी राजागण उस समय में विलक्षण पराक्रमशाली थे ।

वाप्पा जब चित्तौर में उपस्थित हुए तत्काल में मोरीवंशीय मान राजा सिंहासनारूढ़ थे । चित्तौर के राजवंश के साथ उन का संबंध था ।[2] सुतरां विशेष समादर से राजा ने उन को सामंत पद में अभिषिक्त करके तदुचित भूमि-वृत्ति प्रदान किया । चित्तौर के सरदार गण सैनिक नियम भोग करते थे ।[3] । वे लोग समुचित सम्मानभाव से इति पूर्व में मान राजा के ऊपर विरक्त हो रहे थे । एक आगंतुक वाप्पा के ऊपर उन के समधिक अनुराग संदर्शन से वे लोग और भी सातिशय इर्ष्यान्वित हुए । इसी समय में चित्तौर राज विदेशीय शत्रु-कर्तृक आक्रांत होने से सर्दार लोग युद्घार्थ आहूत हुए, परंतु उन लोगों ने युद्घोद्योग नहीं किया । अधिकंतु सैनिक नियमानुसार भुक्त भूमि का पट्टा प्रभृति दूर निक्षेप करके साहंकार वाक्य बोले कि राजा अपने प्रियतर सरदार को युद्घार्थ नियोग करें ।

वाप्पा ने यह सुन कर उपस्थित युद्ध का भार ग्रहण करके चित्तौर से यात्रा किया । सरदार गण यद्यपि भूमि-वृत्ति-वंचित हुए थे तथापि लज्जावशत : वाप्पा के अनुगामी हुए । समर में विपक्ष गण ने पराजित होकर पलायन किया । वाप्पा ने सरदार गण के साथ चित्तौर में प्रत्यागत न होकर स्वीय पैत्रिक राजधानी गाजनी नगर में गमन किया । सलीम नामक जनैक असभ्य उस काल में गाजनी के सिंहासन पर था । वाप्पा ने सलीम को दूरीभूत करके वहाँ का सिंहासन जनैक चौर वंशीय राजपूत को दिया और आप पूर्वोक्त असंतुष्ट सरदार गण के साथ चित्तौर प्रत्यागमन किया । कथित है कि वाप्पा ने इस समय सलीम की कन्या का पाणिग्रहण किया था । जातरोष सरदार गण ने चित्तौर राजा के साथ वैरनिर्यातन में कृतसंकल्प होकर सब ने एक वाक्य होकर नगर परित्याग करके अन्यत्र गमन किया । राजा ने उन लोगों के साथ संधि करने के मानस से बारंबार दूत प्रेरण किया, किंतु किसी प्रकार सरदार गण का कोप शांत नहीं हुआ । उन लोगों ने कहा, "हम लोगों ने राजा का नमक खाया है, इस से एक वत्सर काल मात्र प्रतीक्षा करेंगे । अनंतर उनको व्यवहार के विहित प्रतिशोध देने में त्रुटि न करेंगे ।" वाप्पा के वीरत्व और उदार प्रकृति के वशंवद होकर सरदार गण ने उन को चित्तौर का अधिपति करने का अभिप्राय प्रकाश किया । वाप्पा ने सरदार गण के सहायता से चित्तौर नगर आक्रमण करके अधिकार कर लिया । भट्ट कविगण ने लिखा है "वाप्पा मोर राजा के निकट से चित्तौर ले कर स्वयं उस के 'मौर' (अर्थात् मुकुट सुरूप) हुए ।" चित्तौरप्राप्ति के पश्चात् सर्वसम्मति से वाप्पा ने 'हिंदूसूर्य' 'राजगुरु' और 'चक्कवै' यह तीन उपाधि धारण किया था । शेषोक्त उपाधि का अर्थ सार्वभौम ।

अवस्थित है । इस पर्वत में राजा और तत्पारिषदवर्ग मृगया काल में उपवेशन करते थे । उन लोगों के बैठने के स्थान सब अद्यापि असंस्कृत और जीर्ण अवस्था में पतित हैं ।

१. कथित है वह करवाल अद्यावधि विद्यामान है । राणा प्रति वत्सर में निरूपित दिवस में उस की पूजा करते हैं ।

२. वाप्पा की माता प्रमारवंशीया थी । सुतरां वर्त्तमान प्रमार के सहित मामा भागिनेय का संबंध था ।

३. सैनिक नियम (Feudal System) इस नियमानुसार से भुक्त भूमि के कर के परिवर्तन में प्रत्येक सरदार को अपने अपने वृत्ति भूमि के परिमाणनुरुप नियमित संख्या की सेना ले कर विग्रह समय में विपक्ष के साथ संग्राम करना होता है । प्राचीनकाल में वृहत वृहत राज्य भूमि संक्रांत यह नियम प्रचलित था ।

वाप्पा के अनेक पुत्र हुए। उन में से किसी किसी ने स्वीय वंश के प्राचीन स्थान सौराष्ट्र राज्य में गमन किया। आईने अकबरी ग्रंथ में लिखा है कि अकबर सम्राट् के समय में इस वंश के पचास सहस्र पराक्रांत सरदार सौराष्ट्र देश में वास करते थे। वाप्पा के अपर पाँच पुत्र ने मारवाड़ देश में गमन किया था। गोहिल्-वाल नामक स्थान में गोहिल वंशीय भी वाप्पा की संतानें हैं। परंतु वे लोग अपने वंश का मूल विवरण आप भूल गए हैं। इति पूर्व में उन लोगों ने क्षीर [1] प्रदेश में आ कर वास किया था। और अब पूर्व काल के पूर्व पुरुषगण के नाम वा वंश का अन्य कोई विवरण वह लोग नहीं बतला सकते। घटनाक्रम से उन लोगों ने बालभी ग्राम में वास भी किया, किंतु यह नहीं जाना कि यही स्थान उन लोगों की पैत्रिक भूमि है। यह लोग अब अरब गण के सहवास से वाणिज्य कर के जीविका निर्वाह करते हैं।

वाप्पा के चरम काल का विवरण सर्वापेक्षा आश्चर्य है। कथित है परिणत वसय में उन्होंने स्वरीय राजसंतान गण को परित्याग कर के खुरासान राज्य में गमन किया था और तद्देश अधिकार करके म्लेच्छ वंशीय अनेक रमणी का पाणिग्रहण किया था। इन सब रमणी के गर्भ से बहुसंख्यक संतान समुत्पन्न हुए थे।

सुना जाता है कि एक शत वर्ष की अवस्था में वाप्पा ने शरीर त्याग किया। देलवारा प्रदेश के सर्दार के निकट एक ग्रंथ है, उस में लिखा है कि वाप्पा ने इस्पहान, कंदहार, कश्मीर, ईराक, तूरान और कफरिस्तान प्रभृति देश अधिकार करके तत् समुदाय देशीया कामिनियों का पाणिपीड़न किया था। उन म्लेच्छ महिला के गर्भ से उनको १३० पुत्र जन्मे थे। उन लोगों की साधारण उपाधि "नौशीरा पठान है"। उन सब पुत्रों में से प्रत्येक ने अपने अपने मातृनामानुयायी नाम से एक एक वंश विस्तार किया है। वाप्पा के हिंदू संतान की संख्या भी अल्प नहीं। हिंदू महिला गण के गर्भ में उन्होंने ९८ पुत्र उत्पादन किया था। उन लोगों की उपाधि "अग्नि उपासी सूर्यवंशी" है। उक्त ग्रंथ में लिखा है, वाप्पा ने चरम काल में संन्यास आश्रम अवलंब कर के सुमेरु शिखर [2] मूल में अवस्थिति किया था। उन का प्राण त्याग नहीं हुआ है, जीवदशा में ही इस स्थान में उन की समाधि क्रिया सम्पन्न हुई थी। अन्यान्य प्रवाद में कथित है कि वाप्पा की अंत्येष्टि क्रिया संबंध में उन के हिंदू और म्लेच्छ प्रजागण के मध्य तुमुल कलह उपस्थित हुआ है। हिंदू लोग उन का शरीर अग्निदग्ध और म्लेच्छ लोग मिट्टी में प्रोत्थित करने की कहते थे। उभय दल ने इस विषय का विवाद करते करते शव का आवरण खोल कर देखा शव नहीं है तत् परिवर्त्तन में कतिपय प्रफुल्ल शतदल विराजमान है। उन लोगों ने वह सब कमल ले कर हृद में रोपन कर दिया था। पारस्य देश के नैशेरवाँ की और काशी के प्रसिद्ध भगवद्भक्त कबीर की अन्त्येष्टि क्रिया का प्रवाद भी ठीक ऐसा ही है।

मेवाड़ के राजवंश के प्रधान पुरुष वाप्पा का यह संक्षेपक इतिहास प्रकटित किया। प्राचीन कालीन अन्यान्य राजपुरुष की भाँति वाप्पा की कहानी भी सत्यमिथ्या से मिलित है। किंतु इस विचार को छोड़कर चित्तौर के सिंहासन में सूर्यवंशी राजगण ने दीर्घ कालावधि जो आधिपत्य किया था, उस आधिपत्य का वाप्पा से ही प्रारंभ है इस कारण गिहलोट गण का चित्तौर का राजस्व कितने दिन का है यह निरूपण करने को वाप्पा का जन्मकाल का निरूपण करना अत्यंत आवश्यक है। बल्लभीपुर २०५ संवत् शिलादित्य के समय में विनष्ट हुआ था। शिलादित्य से वाप्पा दशम पुरुष, परंतु आश्चर्य का विषय यह है कि उदयपुर के राजभवन की वंशपत्रिका में वाप्पा का जन्म-काल १९१ संवत् में लिखा है।

---

१. मारवाड़ प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम प्रान्त में लूणी नदी के निकट क्षीर भूमि है।

२. कोई कोई कहते हैं हिंदू ग्रंथानुसार पृथ्वी के उत्तर केंद्र का नाम सुमेरु। किसी किसी ग्रंथ में सुमेरु तद्रूप अर्थ में व्यवहृत हुआ है, परंतु पुराण केवर्णन से अनुमान होता है कि किसी विशेष पर्वत का नाम सुमेरु है। जम्बू द्वीप के मध्य इलावृत वर्ष में "कनकाचल सुमेरु विराजमान है, इसके दक्षिण में हिमवान, हेंमकूट और निषध पर्वत, उत्तर नील और श्वेत पर्वत।" चंद्रवंश का आदि पुरुष इला स्त्री रूप में जहाँ "आवृत्ति" हुए थे, उस का नाम इलावृत्त वर्ष। "सुमेरु के दक्षिण प्रथमत: भारतवर्ष"। इस से अनुमान होता है कि मध्य एशिया का नाम इलावृत्तवर्ष। अनुसंधान करने से सुमेरु आविष्कृत हो कर पौराणिक भूगोल वृत्तांत का अधिकांश परिष्कृत हो सकता है। केवल नाम परिवर्त्तन होकर इतना गबड़ा हुआ। कोई कोई कहते हैं कि पेशावर और जलालाबाद के मध्यस्थल में प्राय: चौदह सौ हस्त उच्च मारकोह नाम अति अनुवर जो एक पर्वत है वही हिंदू पुराण का सुमेरु है।

विशेषत : चित्तौर की एक खोदित लिपि से प्रकाश हुआ था कि ७७० संवत् में चित्तौर नगर मोरी वंशीय मान राजा के अधिकार में था । इसी मान राजा के समय में असभ्य गण ने चित्तौर नगर आक्रमण किया था । उन लोगों को पराभव कर के उस के पश्चात् वाप्पा ने पंचदश वर्ष की अवस्था में चित्तौर का सिंहासन प्राप्त किया था । इस कारण ईदृश विवरण से वाप्पा का जन्मकाल १९१ संवत् किसी प्रकार स्वीकृत नहीं हो सकता । परंतु उदयपुर के राजवंश के कुलाचार्य भट्ट गण पूर्वोक्त समुदय घटना स्वीकार कर के भी कहते हैं कि वाप्पा ने १९१ संवत् में जन्म ग्रहण किया था । टॉड साहब ने अनेक अनुसंधान कर के अवशेष में सौराष्ट्र देश में सोमनाथ के मंदिर की एक खोदित लिपि से जाना था कि वल्लभी संवत् नाम का एक और भी संवत् प्रचलित था । वह संवत् विक्रमादित्य के संवत् से ३७५ बरस के पश्चात् प्रारंभ हुआ था, २०५ वल्लभी संवत् में वल्लभी पुर विनष्ट हुआ था, सुतरां विक्रमादित्य के संवतानुसार उस के विनाश का काल ५८० हुआ । जिस प्रणाली से टॉड साहब ने चित्तौर के मान राजा का राजत्व, वल्लभीपुर का विनाश और कुलाचार्य गण लिखित वाप्पा के जन्मसमय का परस्पर समन्वय साधन किया है वह विलक्षण बुद्धि व्यंजक है, परंतु जटिल और नीरस है इस कारण सविस्तार से इस स्थान में प्रगटित नहीं किया । उसकी मीमांसा का स्थूलतात्पर्य यह है कि वल्लभीपुर विनाश के १९० बरस पश्चात् विक्रमादित्य के ७६९ संवत् में वाप्पा ने जन्म ग्रहण किया था । कुलाचार्य गण ने भ्रमवशत : इस १९० संख्या को विक्रमादित्य का संवत् कर के लिखा है । तत् पश्चात् पंचदश वर्ष की अवस्था में वाप्पा चित्तौर राज्य में अभिषिक्त हुए थे । सुतरां ७८४ संवत् उनका चित्तौर प्राप्तकाल निरूपित हुआ । उस समय से सार्द्ध एकादश वत्सरावधि वाप्पा के वंशीय साठ राजा गण ने क्रमान्वय से चित्तौर के सिंहासन पर उपवेशन किया है ।

यद्यपि भट्ट गण के ग्रंथानुयायी वाप्पा के जन्मकाल की प्राचीनत्व रक्षा नहीं हुई, परंतु जो समय टॉड साहब ने निरूपित किया है । वह भी नितांत आधुनिक नहीं है । तदनुसार प्रकाश होता है कि वाप्पा फरासी राजा के करोली भिंजिया वंशीय राज गण के और मुसल्मान साम्राज्य के वलीद खलीफा के समकालवर्ती थे ।

आइतपुर[1] नगर से मेवाड़वंशीय और एक खोदित लिपि संगृहीत हुई थी । वह लिपि १०२४ संवत् समय की है । तत्कालीन चित्तौर के सिंहासन में वाप्पा के वंशीय शक्ति कुमार राजा प्रतिष्ठित थे । उस लिपि में शक्ति कुमार के चतुर्दश पुरुष के मध्य एक जन शील नाम से अभिहित हुए हैं । राजभवन की वंशावली अपेक्षा तल्लिपि में यही एक मात्र अतिरिक्त नाम लक्षित होता है, तद्भिन्न विषय में समता है । इंगलैंड के प्रसिद्ध कवि ह्यूम ने कहा है । "यद्यपि कविगण सूक्ष्म सत्य के तादृश अनुरागी नहीं, और यदिच वह इतिवृत्त का रूपांतर कर देते हैं, तो भी उन लोगों की अत्युक्ति के मूल में सत्य की सत्वालक्षित होती है" । हमें वर्णित विषय में ह्यूम की एतदुक्तिका सारत्व प्रतीयमान होता है । जन समागम सूनय स्वापद पूर्ण आइतपुर के कानन में जो सब नाम विलुप्त हो जाते और उन सब नामों के कभी किसी के कर्णगोचर होने की संभावना नहीं थी, किंतु भट्ट कविगण की वर्णना प्रभा में मेवाड़ राजवंश के प्राचीन काल के वह सब नाम चिरस्मरणीय हो रहे हैं ।

इस १०२४ संवत् समय में वलीद खलीफा के सेनापति मोहम्मद बिन कासिम ने भारतवर्ष में आकर सिंधु देश जय किया था । इस के पहिले मोरी वंशीय मानराजा के समय जिस असभ्य राजा ने चित्तौर नगर आक्रमण किया था और वाप्पा कर्तृक जो पराजित हुआ था, वह अनुमान होता है कि यही बिन कासिम है ।

वाप्पा और शक्ति कुमार के मध्यवर्ती नौ राजा ने चित्तौर में राजत्व किया था । उस समय से दो शत वर्ष के मध्य में नौ जन राजा का राजत्व असंभव नहीं । तदनुसार मेवाड़ के इतिवृत्त का निम्नोक्त चार प्रधान काल निरूपित हुआ । प्रथम, कनकसेन का काल १४४ । द्वितीय, शिलादित्य और वल्लभीपुर विनाश का काल ५२४ । तृतीय, वाप्पा के चित्तौर प्राप्ति का काल खृष्टाब्द ७२८ । चतुर्थ, शक्तिकुमार का राजत्व काल खृष्टाब्द १०६८ ।

---

१. आइतपुर —सूर्य्यपुर । आदित्य शब्द का अपभ्रंश आइत । आइत शब्द का संकीर्ण रूप एत, यथा एतवार आदित्यवार ।

तृतीय अध्याय

वाप्पा और समर सिंह के मध्यवर्त्ती राजगण, वाप्पा का वंश, अरब जाति के भारतवर्ष-आक्रमण का विवरण, मुसलमानगण से जिन सब राजाओं ने चित्तौर नगर रक्षा किया था उन लोगों की तालिका।

७८४ संवत् में वाप्पा को चित्तौर सिंहासन प्राप्त हुआ था। मेवाड़ के इतिवृत्त में तत्परवर्ती प्रधान समय समर सिंह का राजत्व काल — संवत् १२४९। अतएव वाप्पा के ईरान राज्य-गमन के समय ८२० संवत से समर सिंह के समय पर्यंत भट्टगण के ग्रंथानुसार मेवाड़ राज्य का वृत्तान्त संप्रति प्रकटित होता है। समर सिंह का राजत्व काल केवल मेवाड़ के इतिवृत्ति का प्रधान काल नहीं, स्वरूपत: समुदया हिंदू जाति के पक्ष में एक प्रधान समय है। उनके राजत्व समय में भारतवर्ष का राज-किरीट हिंदू के सिर से अपनीत हेकर तातारी मुसलमान के सिर मे आरोपित हुआ था। वाप्पा के समर सिंह के मध्य चार शताब्दी काल का व्यवधान है। इस काल के मध्य में चित्तौर के सिंहासन पर अष्टादश राजाओं ने उपवेशन किया था। यदिच उन लोगों का राजत्व का विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता, तौ भी नितांत नीरव में तत्तावत् काल उल्लंघन करना उचित नहीं। उन सब राजा की लोहितवर्ण पताका सुवर्णमयी प्रतिमा से शोभमान चित्तौर के सौध शिखर पर उड्डीयमान थी और तन्मध्य में अनेक का नाम उन लोगों के राजस्थ शैल शरीर में लोह लेखनी की लिपि योग से अद्यावधि विद्यमान है।

इस के पहिले आइतपुर की जिस खोदित लिपि का उल्लेख किया है, उस से वाप्पा और समर सिंह के मध्यवर्त्ती शक्तिकुमार राजा का राजत्व काल संवत् १०२४ निरूपित हुआ। जैन ग्रंथ से ज्ञात होता है कि शक्तिकुमार के चार पुरुष पूर्ववर्त्ती उल्लत नाम राजा ९२२ संवत् में चित्तौर के सिंहासनारूढ़ हुए थे। ७६४ खृष्टाब्द में वाप्पा ने ईरान देश में गमन किया। ११९३ खृष्टाब्द में समर सिंह के समय में हिंदू राजत्व का अवसान हुआ। इस उभय घटना के मध्यवर्त्ती समय में मेवाड़ राज्य और एक बार मुसलमान गण से आक्रांत होने का विवरण राजवंश के ग्रंथ में प्राप्त होता है। तत्काल खुमान नामक एक राजा चित्तौर के सिंहासनस्थ थे। उनके राजत्व-काल में ८१२ से ८३६ खृष्टाब्द के अंतर्गत किसी समय में मुसलमानों ने चित्तौरनगर पर आक्रमण किया था। खुमान रासा नामक ग्रंथ में तत् आक्रमण संक्रांत वृत्तांत सविस्तार निवृत्त हुआ। मेवाड़ राज्य के पद्य-विरचित इतिहास ग्रंथ-समूह के मध्य खुमानरासा सर्वापेक्षा पुरातन है।

टॉड साहब कहते हैं भारतवर्ष का एतत् समय का इहिवृत्त नितांत तमसाच्छन्न है। इस कारण खुमानरासा प्रभृति हिंदू ग्रंथ से तत् संबंध में जो कुछ आलोक लाभ हो सकता है वह परित्याग करना उचित नहीं। भारतवर्ष में एतत् काल में जो सब ऐतिहासिक विवरण सत्य कह कर प्रसिद्ध हैं सो हिंदू ग्रंथ में लिखित विवरण अपेक्षा अधिक असंगत वा परिच्छन्न नहीं। जो हो, तदुभय एकत्रित रहनो से भाविकालीन इतिवृत्तप्रणेता उस में से अनेक उपकरण लाभ कर सकैंगे। इस कारण (मुसलमान साम्राज्य के आरंभ से गजनगर राज्य संस्थापन पर्यंत) भारतवर्ष में अरब जाति के समागम का संक्षिप्त विवरण इस अध्याय में सन्निविष्ट किया जायगा। परंतु अरब समागम का सविस्यार-विवरण-विशिष्ट कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, यह बड़े सोच की बात है। अलमकीन नामक ग्रंथकार ने खलीफा गण के इतिवृत्त में भारतवर्ष का प्राय: उल्लेख नहीं किया है। अबुलफजल के ग्रंथ में अनेक विषय का सविशेष विवरण प्राप्त होता है और वह ग्रंथ भी विश्वास के योग्य है। फरिश्ता ग्रंथ में इस विषय का एक पृथक् अध्याय है, परंतु उस का अनुवाद यथोचित मत से निष्पन्न नहीं हुआ है[1]। अब पहिले वाप्पा के वंशीय राजगण का वृत्तांत विवरित किया जाता है, पश्चात् यथायोग्य स्थान में सलमान गण का भारतवर्ष संक्रांत इतिवृत्त प्रकटित होगा।

---

१. टॉड साहब ने फ़िरिश्ता के अनुवाद में जो सब विषय परित्याग किया है तन्मध्य में अफ़गान जाति की उत्पत्ति का विवरण अतीव प्रयोजनीय है। मुसलमान गण के साथ हिजरी ६२ अब्द में जिस काल में अफ़गान जाति का प्रथम आगमन हुआ तब वे लोग सुलेमान पर्वत के निकटस्थ प्रदेश में बास करते थे। फ़िरिश्ता ने जिस ग्रंथ के ऊपर निर्भर कर के अफ़गान का विवरण लिखा है वह यह है "अफगान लोग कायर जाति के लोग फिर उस उपाधिकारी राजगण के आधीन वास करते थे। उन लोगों में बहुतों ने मूसा की प्रतिष्ठित नूतन धर्म-व्यवस्था अवलंबन किया था। जिन लोगों ने पूर्व की पौत्तलिकता त्याग नहीं किया वे लोग हिंदुस्तान से भाग कर कोह सुलेमान के निकटवर्ती देश में बास

गिहलोट वंश की चतुर्विंशति शाखा । तन्मध्य अनेक शाखा वाप्पा से समुत्पन्न । चित्तौर-अधिकार के पश्चात् वाप्पा ने सौराष्ट्र देश में गमन कर बंदर द्वीप के यूसुफगुल[1] नाम राजा की कन्या से विवाह किया । बदर द्वीप-निवासी व्यानमाता नामक एक देवी की उपासना करते थे । वाप्पा ने इस देवी की प्रतिमा और स्वीय वनिता सह चित्तौर में प्रत्यागमन किया था । गिहलोट वंशीय अद्यावधि व्यानमाता की उपासना करते हैं । वाप्पा ने इस देवी को जिस मंदिर में प्रतिष्ठित किया था, वह आज तक चित्तौर में विद्यमान है, तद्भिन्न तत्रत्य अन्यान्य अनेक अट्टालिका वाप्पा कर्तृक विनिर्मित हैं, यह भी प्रवाद प्रचलित है । यूसुफगुल के कन्या के गर्भ में वाप्पा को एक पुत्र जन्मा था, उस का नाम अपराजित । द्वारका नगरी के निकटवर्ती कालवायो नगर के प्रमार वंशीव जनैक राजा की कन्या से भी वाप्पा ने विवाह किया था । उस रमणी के गर्भ में इस के पहिले वाप्पा को और एक आसिल नामक पुत्र जन्मा था, यदिच आसिल ज्येष्ठ तथापि अपरात्रित चित्तौर में जन्मे थे, इस कारण उन्होंने वहाँ वहाँ विपुल वंश विस्तार हुआ था । इस वंश की उपाधि आसिला गिहलोट है ।

करते थे । सिंधु देश से आगत बिन कासिम के साथ उन लोगों का समागम हुआ था । हिजरी १४३ अब्द में उन लोगों ने किरमान और पेशावर प्रदेश और तत् सीमावर्ती समुदय स्थान अधिकार किया था ।'' कोहिस्थान का भूगोल वृत्तांत, रोहिला शब्द की व्युत्पत्ति और अन्यान्य प्रयोजनीय विषय टॉड साहब ने स्वीय अनुवाद में परित्याग किया है ।

१. कथित है, समुद्र में बंदर द्वीप और स्थल में चायाल नामक स्थान यूसफगुल राजा के अधिकार में था । यूसफगुल और वंशीय राजपूत, अनल परम का संस्थापनकर्त्ता रेणु राज अनुमान होता है । इसीयूसफगुल का वृत्तांत कुमार-पालचरित नामक ग्रंथ में लिखा है । रेणुराज के पूर्व पुरुष बंदर द्वीप के अधिपति थे । बंदर द्वीप आज कल पोर्तुगीस जाति के अधिकार में है । इसका आधुनिक नाम डिऔ है । यह नाम पोर्तुगीस जाति प्रदत्त है ।

२. आसिला के नामानुसार एक किला का आसिला नाम रक्खा था, यह वंशपत्रिका से ज्ञात होता है । संग्रामदेव नामक जनैक राजा के निकट से कुंबायत (कांबे) नगर अधिकार करने के अभिलाष में आसिल के पुत्र विजयपाल समर में निहत हुए थे । विजय की इसी आकस्मिक मृत्यु घटना के पहिले तदगर्भस्थ पुत्र अकाल में भूमिष्ठ हुआ था, उस पुत्र का नाम सेतु । टॉड साहब कहते हैं अस्वाभाविक मृत्यु-प्राप्त व्यक्तिगण भूतयोनि प्राप्त होते हैं । हिंदूगण का यह संस्कार है और स्त्री भूत का हिंदुस्तानी नाम चुरइल, सेतु की माता के अस्वाभाविक मृत्यु वशत : सेतु का वंश कोचोराइल नाम से प्रसिद्ध हुआ । आसिल से द्वादशतम अधस्तन पुरुष बीजा गिरनार के राजा श्रृंगार देव के भांजे थे और मातुल के निकट से इन्होंने सालन स्थान प्राप्त किया था । सुराट का राजा जयसिंह देव के साथ समर में बीजा निहत हुए थे । फिरिश्ता ग्रंथ में जो देवी सालिमा वंश का उल्लेख है, अनुमान होता रहा है देवी और चोरइल, इन दो नाम से समता से तन्नाम की उत्पत्ति हुई है ।

खत्रियों की उत्पत्ति

(अनेक शास्त्रों से संगृहीत)

यह सन् १८७३ से १८७८ तक लिखा है, क्योंकि इसका कुछ भाग 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' सन् १८७३ में और फिर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' सन् १८७८ की नवम्बर में छपा है। बतौर पुस्तक यह सन् १८८३ में खंग विलास प्रेस बांकीपुर से प्रकाशित हुई।

— सं.

खत्रियों की उत्पत्ति

मेरी बहुत दिन से इच्छा थी कि इस जाति का पुरावृत्त संग्रह करूँ परंतु मुझे इस में कोई सहायक न मिला और जिन जिन मित्रों ने मुझ से पुरावृत्त देने कहा था वे इस विषय में असमर्थ हो गए और इसी से मेरा भी उत्साह बहुत दिनों तक मंद पड़ा रहा। परंतु मेरे परम मित्र ने इस विषय में मुझे फिर उत्साहित किया और कुछ मुझे ऐसी सहायता भी मिल गई कि मैं फिर इस जाति के समाचार अन्वेषण में उत्सुक हुआ।

लाहौर निवासी श्रीपंडित राधाकृष्णजी ने इस विषय में मुझे बड़ी सहायता दी और वैसी ही कुछ सहायता श्री मुंशी बुधसिंह के मिहिर प्रकार और श्रीयुत शेरिंग साहब के जातिसंग्रह से मिली।

इस समय में प्राय: बहुत जाति के लोग अपनी उन्नति दर्शन में प्रवृत्त हुए हैं जैसा टूसर (जिन के वैश्यत्व में भी संदेह है क्योंकि उनके यहाँ फिर से कन्या का पति होता है) अपने को कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं, कायस्थ (जो शूद्रधर्म कमलाकर की रीति से संकर शूद्र हैं) कहते हैं कि हम क्षत्रिय हैं और जाट लोगों में भी मेरे मित्र बेसवाँ के राजा श्री ठाकुर गिरिप्रसाद सिंह ने निश्चय किया है कि वे क्षत्रिय हैं तो इस दशा में इस आर्य जाति का पुरावृत्त होना भी अवश्य है, जो मुख्य आर्य जाति के निवास-स्थल पंजाब और पश्चिमोत्तर देश में फैली हुई है और जिस में सर्वदा से अच्छे लोग होते आए हैं। हमारे पूर्वोक्त आर्य शब्द के दो बेर प्रयोग से कोई यह शंका न करे कि देश के पक्षपात से मैंने यह आग्रह से आदर का शब्द रक्खा है क्योंकि आर्य जाति के निवास का मुख्य यही देश है और यहीं से आर्य जाति के लोग सारे भारतवर्ष में फैले हैं, यह अंगरेजी हिंदुस्तान के इतिहासों के पाठ से स्पष्ट हो जायगा। हमारे एक मित्र से इस बात का मुझ से बड़ा विवाद उपस्थित हुआ था। वह कहते थे कि पंजाब देश अपवित्र है क्योंकि महाभारत में कर्ण पर्व के आरंभ में शल्य राजा से कर्ण ने पंजाब देश की बड़ी निंदा की है और वहाँ के बहुत बुरे आचरण दिखाये हैं परंतु वह निंदा निंदा की भाँति गृहीत नहीं होती क्योंकि पश्चिम में गुजराती या मध्य देश के वासियों की भाँति सोला पामरा का प्रचार नहीं है और न ऊपर से वे लोग स्वच्छ रहते हैं परंतु यह मैं निस्संदेह कह सकता हूँ कि यहाँ के काले चित्तवाले मनुष्यों से उनका चित्त कहीं उजला है। इसके अतिरिक्त कर्ण शल्य का शत्रु है इससे शत्रु की हुई निंदा निंदा नहीं कहाती। हाँ, इस बात का हम पूर्ण रूप से प्रमाण देते हैं कि भारतवर्ष में पहिले पहिले आर्य लोग केवल पंजाब से लेकर प्रयाग

तक बसते थे । श्रीमान जॉन म्योर साहब ने लाहौर के चीफ पंडित पंडित राधाकृष्ण को जो पत्र लिखा है उसमें मुक्त कंठ से उन्होंने स्थापन किया है कि जहाँ तक मैंने प्राचीन वेदादिक पुस्तकें पढ़ीं, उनसे मुझे पूरा निश्चय है कि आर्य लोग पहले इन्हीं देशों में बसते थे । ऋग्वेद संहिता, दशम मंडल, ७५ सू. ५ ऋक् 'इमं में गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या आसिक्त्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया ।' ६ मंडल सू. ४५ ऋ. ३१ 'अधिवृवुः पर्णानं वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् उरुकक्षो न गांग्यः ।' १० मंड. सू. ७५ ऋ और ५ में ७२ सू. ऋ. १७ 'सप्तमे सप्तशाकिन एकमेकाशता ददु : यमुनायामश्रुतमुद्राधोगव्यं मृधे निराधो अशव्या मृधे : '। मंड ३ सू ३३ ऋ. १ 'प्रपवतानामुशर्ता उपस्था दश्वे इव् विषिते हासमाने गावेव शुभ्रे मातरारिहाणे विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते ।' ३ मंड २३ सू. ४ ऋ. 'नित्वादधेवरे आपृथिव्या इलायास्पदे सुदिनत्वो अन्हाम् दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्नो दिदीहि ।' ६ मंड ६१ सू. ऋ. २ 'इयंशुष्मेभिविसखाइवारुजत् सानुगिरीणां तविषेभिरूर्म्मिभि : पारावतघ्नीमवसे सुवृत्तिभि : सरस्वतीमाविवासेमधीतिभि :'' इत्यादि श्रुतियों में गंगा, यमुना, व्यास, सतलज, सरस्वती इत्यादि नदियों की महिमा कही है और ऋग्वेद में पहले और दूसरे मंडल में कई ऋचाओं में सरस्वती की महिमा कही है । यास्क ने अपने निरुक्त में इन ऋचाओं के अर्थ में विश्वामित्र ऋषि के सतलज और व्यास के मुहाने पर यज्ञ करने का और इन नदियों के स्तुति करने का प्रकरण लिखा है ।[१] । और कीकट देश तथा अन्य प्रदेश और इत्यादि प्रदेश और गोमती इत्यादि नदियों के जो कहीं श्रुतियों में नाम आ गये हैं वे परस्पर विरुद्ध होने के कारण तादृश प्रमाणीभूत नहीं होते । इससे इस बात को हम पूर्ण रूप से प्रमाणित कर चुके कि आर्य लोगों के निवास का स्थान पंजाब से लेकर यमुना के किनारे तक के देश हैं तो इससे वहाँ के प्राचीन निवासियों को यदि हम परम आर्य कहें तो क्या हानि है ।

अब इस बात का झगड़ा रहा कि ये कौन वर्ण हैं ? तो हम साधारण रूप से कहते हैं कि ये क्षत्री हैं । क्षत्री से खत्री कैसे हुए इस में बड़ा विवाद है । बहुत लोगों का तो यह सिद्धांत है कि पंजाब के लोग क्ष उच्चारण नहीं कर सकते, इससे ये क्षत्री से खत्री कहलाये । कोई कहते हैं कि जब परशुराम जी ने निक्षत्र किया तब पंजाब देश में कई बालक खत्री कहकर बचा लिये गये थे । वे ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों के घरों में पले थे और अब उन्हीं से खत्री, अरोड़े, भाटिये इत्यादि अनेक उपजाति बन गई और उनके आचरण भी अपने अपने पालकों के अनुसार अलग-अलग हो गये । तीसरे कहते हैं कि क्षत्री और खत्री से भेद राजा चंद्रगुप्त के समय से हुआ क्योंकि चंद्रगुप्त शूद्र के पेट से था और जब उसने चाणक्य ब्राह्मण के बल से नंदों को मारा और भारतवर्ष का राजा हुआ तो सब क्षत्रियों से उसने रोटी और बेटी का व्यवहार खोलना चाहा तब से बहुत से क्षत्री अलग होकर हिमालय की नीची श्रेणी में जा छिपे और जब उसने क्षत्रियों का संहार करना आरंभ किया तब से ये सब क्षत्री खत्रियों के नाम से बनिये बन कर बच गये । कोई कहते हैं कि ये लोग हैं तो क्षत्री पर कलजुग के प्रभाव से वैश्य हो गये हैं क्योंकि कलजुग के प्रकरण में लिखा है कि ''वैश्य वृत्यातु राजान :'' । कोई ऐसा भी निश्चय करते हैं कि किसी समय सारे भारतवर्ष में जैनों का मत फैल गया था । तब सब वर्ण के लोग जैन हो गये थे, विशेष करके वैश्य और क्षत्री । उन में से जो क्षत्री आबू के पहाड़ पर ब्राह्मणों ने सस्कार देकर बनाये वे तो क्षत्री हुए और उन लोगों से सैकड़ों वर्ष पीछे जो क्षत्री जैन धर्म छोड़ कर हिंदू हुए वे खत्री कहाये और क्षत्रियों के पंक्ति से न मिले । गुरु गोविंद सिंह ने अपने ग्रंथ नाटक के दूसरे तीसरे चौथे पाँचवें अध्याय में लिखा है कि ''सब खत्री मात्र सूर्यवंशी हैं । रामजी के दो पुत्र लव और कुश ने मद्र देश के राजा की कन्या से विवाह किया और उसी प्रांत में दोनों ने दो नगर बसाये । कुश ने कसूर, लव ने लाहौर । उन दोनों के वंश में कई सौ वर्ष लोग राज्य करते चले आये । एक समय में कुशवंश में कालकेतु नामा राजा हुआ और लव वंश में कालराय । इन दो राजाओं के समय में दोनों वंशों से आपुस में बड़ा विरोध उत्पन्न हुआ । कालकेतु राजा बलवान था, उसने सब लववंशी क्षत्रियों को उस प्रांत से निकाल दिया । राजा कालराय भागकर सनौड देश में गया और वहाँ के राजा की बेटी से विवाह किया और उससे जो पुत्र हुआ उस का नाम सोढ़ीराय रक्खा । उस सोढ़ीराय के वंश के क्षत्री सोढ़ी कहाये । कुछ काल बीते जब सोढ़ियों ने कुश वंशवालों को जीता तो कुश वंश के भाग कर काशी में चले आये और वे लोग वहाँ रह कर वेद पढ़ने लगे और

---

१. मनु ने भी इन्हीं को पुण्य देश कहा है ''सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तर''. ''कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनकाः'' ।

उन में प्राय : बड़े बड़े पंडित हुए । बहुत दिनों पीछे जब सोढ़ियों ने सुना कि हमारे दूसरे भाई लोग काशी में वेद पढ़कर पंडित हुए हैं तो उनको काशी से बुलाया और वेद सुनकर अपना सब राज्य उन लोगों को दे दिया, जिनकी वेद पढ़ने से वेदी संज्ञा हो गई थी । काल के बल से इन दोनों वंश के राज्य नष्ट हो गए और वेदियों के पास केवल बीस गाँव रह गये और उन्हीं वेदियों के वंश में संवत १५२६ में कालू चोणे के घर बाबा नानक का जन्म हुआ और सीढ़ियों के वंश में गुरु गोविंद सिंह हुए'' । गुरु नानक साहब अपने ग्रंथ साहब में जहाँ चारों वर्णो का नाम लिखते हैं वहाँ ब्राह्मण, खत्री, वैश्य, शूद्र लिखते हैं ।

कोई कहते हैं कि बाबर के पहिले की किसी पुस्तक में खत्री का शब्द नहीं मिलता । इससे निश्चय होता है कि बाबर ने जिन क्षत्रियों को अपने सेना में नौकर रक्खा था उनका नाम खत्री रक्खा ।

परंतु कोई कहतेहैं कि पंजाब में नाग भाषा का बहुत प्रचार था और अब भी पंजाबी भाषा में उनके बहुत शब्द मिलते हैं और क्षत्री खत्री की नाग भाषा है ।

ऊपर के लेख से हम सिद्ध कर चुके कि खत्री क्षत्रिय हैं और उस में लोगों के जो अनेक विकल्प है, वे भी लिखे गए परंतु हम कोई विकल्प नहीं करते क्योंकि नीचे लिखे हुए वाक्य पुराणोपपुराण सारसंग्रह में दशावतार प्रकरण में परशुराम जी के दिग्विजय में मिले हैं : जिन से इनका क्षत्रिय होना स्पष्ट है, यथा —

यदा श्रीमत्परशुरामो गतो दिग्विजयेच्छया ।
सकलाभूस्तदाजाता पूर्ण मोदान्विता यत : ।।२४।।
दुष्टसंहारकृद्धीमान् दुष्टभाराकुला रसा ।
पर्यटन् सकलां पृथ्वीं जयन् बाहुबलेन च ।।२५।।
गत : पंचनदान्देशान्यद्राज्ञा क्रूरसंगरं ।
कृतं परशुरामेण महाविक्रमशालिना ।।२६।।
एकाकिनापि तद्राज्ञ : सैन्यं सर्वं विनाशितं ।
कतिचिद्विद्रुवुर्वीरा हतात्तु बहवो भवन् ।।२७।।
अमृड़ मेदवनी भूमि : शुशुभे रणमंडले । ।।
धुनी लोहितपंकाढ्या बभूवातिभयंकरा ।।२८।।
धूलि : सैन्यस्य यस्यां सा मग्ना पंकीबभूव ह ।
जन्वभूमिगता यत्र वीराणां मूलमस्तका : ।।२९।।
कमलाभां वहन्ती या कल्लोलैरावृताप्यभूत् ।
राजानं संनिहत्यासौ रामस्तत्र तरो : पदे ।।३०।।
श्रान्तो तिष्ठत् क्षणं यावद्रिपुनार्य : समागता : ।
अन्वेषयन्त्य : संग्रामभूम्यां स्वीयान् पतीन् मृतान् ।३१।।
आक्रोशंत्योभिधेयेन पुत्रवृत्तगृहादिना ।
विलपन् योमुहुर्दु :खाद्घातयन्त्य उर :स्थलं ।।३२।।
लक्ष्मीविलास नामैको वैश्यस्तावत्समागत :।
करुणापूर्ण हृदयो दृष्ट्वा तासां हि दुर्गतिम् ।।३३।।
पत्युर्नाशं महद्दु :खं ज्ञातवा ता : शीलशालिनी : ।
दानशौण्डोधनाढयश्च सद्‌बुध्या ता : सुदु :खिता : ।।३४।।
बालाननाथान् मत्वा ऽस्रोवनयत् स्वगृहं प्रति ।
सान्त्वयित्वा विवेकेन परेण परमा : सती : ।।३५।।
लालनं पालनं तेषां पोषणं तत्स्त्रियामुत ।
बालानां क्षत्रवंश्यानामकरात्, स्नेहभावत : ।।३६।।
एवमेव ततोरंगभूम्या : काश्चित् स्त्रियो हृता : ।
दुष्टै : काश्चिद्विइनिभैश्च दयालुभिरुपाहृता : ।।३७।।
लक्ष्मीविलास संज्ञेन विशा तें बालका यदा ।
व्रतबंधार्हतां प्राप्ता : समकार्युपनायनं ।।३८।।

स्वधर्माचरणे चैवं विशा ते सुनियोजिता : ।
एवमेवापरे बाला : स्त्रियो येन सुरक्षिता : ।।३९।।
पोषिता : स्वीयदत्तेन अन्नेनैव तथैव ते ।
मत्वा तमेव चाचारं ववर्तुस्तेन सन्मुदा ।।४०।।
इमे लक्ष्मीविलासेन रक्षिता : क्षत्रवंशजा : ।
शुद्धा : सदाचारयुक्ता बभू दुर्भाग्यशालिनः ।।४१।।
येषां कलियुगेपीमे चत्वारो वंशजा स्मृता : ।
अग्नि : सोमश्च सूर्य्यश्च नाग एते चतुर्विधा : ।।४२।।
अद्यापि भूमौ वर्तते चतुस्सन्तानवर्द्धका : ।
दानशूरा : सदाचारा भाग्यवंत : सुविक्रमा : ।।४३।।

अर्थ — जब परशुराम जी दिग्विजय करने निकले तब सब पृथ्वी आनंदपूर्ण हो गई क्योंकि दुष्टों के भार से पृथ्वी व्याकुल हुई थी और इन्होंने दुष्टों का संहार किया । सब पृथ्वी पर घूमते और बाहुबल से जय करते हुए पंचनद देशों में गए और वहाँ के राजा से बड़ा संग्राम किया । यद्यपि भगवान अकेले थे तथापि वहाँ के राजा की सब सेना मार डाली — इत्यादि ।

उन हत वीरों की स्त्रियाँ और बालकों को लक्ष्मीविलास नामक वैश्य ले गया और धर्मपूर्वक रक्षण किया और उनके पुत्रों का लालन पालन और यज्ञोपवीतादि संस्कार किया । इसी भाँति उन मृत वीरों की स्त्रियाँ और बालक ब्राह्मण वा शूद्रादि जिन वर्णों के घर गए उनके ऐसे ही आचरण हुए और लक्ष्मीविलास का पालित क्षत्रियों का समूह जो अग्नि, सूर्य, चंद्रमा और नागवंश का था, क्षत्रियसंस्कार पाकर भी वैश्यधर्म में निष्ठ हुआ इत्यादि ।

इनका विशेष वर्णन भविष्य पुराण के पूर्वार्द्ध में जो लिखा है उस से और भी निश्चय होता है कि सब क्षत्रिय हैं । इन श्लोकों की संस्कृत ऐसी ही सहज है कि अर्थ लिखने की आवश्यकता नहीं । सिद्धांत यह है कि वैश्यों की वा दूसरी वृत्ति करनेवाले क्षत्रिय जो पंजाब देश में हैं वे क्षत्रिय ही हैं किंतु परशुराम जी के समय से वहाँ के क्षत्रियों का युद्ध संस्कार छूट गया है और ऐसे लोगों की एक पृथक जाति,खत्री, रोड़े, भाटिये इत्यादि हो गई है । इस विषय के दोनों अध्याय यहाँ प्रकाशित किए जाते हैं ।

सूतउवाच

एवं बहुविधे देशे स हत्वा क्षत्रियर्षभान् ।
गतो पञ्चनदे देवो क्षत्रियान्वयसूदन : ।।१।।
तत्र प्राप्तान् महाशूरान् क्षत्रियान् रणदुर्मदान् ।
युयुधे ऽ तिबलो राम : साक्षान्नारायणांशज : ।।२।।
जनन्या जनितो लोके क : शूरोयस्तु पार्थिवान् ।
पाञ्चालान् जयतो युद्धे विना नारायणं स्वयं ।।३।।
सर्व्वान् हत्वा महाराजान् क्षत्रियान् सिद्धिजोत्तम : ।
रुरुधे पंकजवने यथा मत्त द्विपाधिप : ।४।।
एवं हत्वा रणे शूरान् तरुणान् रणदुर्म्मदान् ।
पवृत्तो वृद्धबालेषु हन्तुं क्रोधाकुलेक्षण : ।।५।।
हाहाकारो महानासीत्तत्र क्षत्रिय पर्य्यवे ।
नार्य्यो वृद्धाश्च बालाश्च मुमुहुर्भयविह्वला : ।।६।।
हतेषु तेषु शूरेषु बालवृद्धेषु च क्रमात् ।
अनाथाश्चाभवन् सर्व्वा : क्षत्रियाण्यो हतान्वया : ।।७।।

तत्र कश्चिन् महावैश्य: सुधर्म्मा नामक: प्रभु: ।
आसीन् नागान्वये जात: क्षत्रियाणां प्रियंकर: ।।८।।
हतेषु सर्वबालेषु व्याकुलाश्रुकुलेक्षण: ।
चतु:पञ्चावशेषेषूपायंसमकरोत्तदा ।।९।।
नीत्वा स बालान् तान् सर्व्वान् स्वप्रियायै प्रदत्तवान् ।
तस्य भार्य्या महाप्राज्ञी सुशीला नाम नामत: ।।
वात्सल्यमकरोत्तेषु यथा स्वोदरजे भृशं ।।१० ।।
यदा निवर्तितो देवो नि:क्षत्रीकृत्य पार्थिवान् ।
ऊचुस्तस्मै समागत्यं तद्वृत्तं पिशुनास्तदा ।।११।।
अस्ति कश्चिन महावैश्यो क्षत्रियाणां प्रियंकर: ।
रक्षितास्तेन बालास्ते क्षत्रियाणा नरोत्तम ।।१२।।
तच्छ्रुत्वा त्वा स द्विजो धावन्नुश्वसन्नुरगो यथा ।
उद्यम्य परशुं तत्र गत: क्रौधाकुलेन्द्रिय: ।।१३।।
तं दृष्ट्वां स महान् वैश्य: प्राप्तं कालानलोपमं ।
दुर्निवारं मनुष्येभ्यो भत्तक्या बुध्याप्यपूजयत् ।।१४।।
सारस्वतास्तु ये विप्रा: क्षत्रियाणां पुरोहिता:।
तेपि तत्रागमन् सर्व्वे यजमानहितेप्सव: ।।१५।।
ऊचु: प्राञ्जलयो विप्रा: प्रणामनतकन्धरा: ।
वैश्य: सुधर्म्मा तत्पत्नी भार्गवं भर्गविक्रमं ।।१६।।

सर्व्वे ऊचु:

नमो नमस्ते श्रितविग्रहाय । नमो नमस्ते हृत विग्रहाय ।
नमो नमस्ते कृत विग्रहाय । नमो नमस्ते धृत प्रग्रहाय ।।६।। ।७।।
नमस्ते पूर्णकामाय दुष्ट बामाय ते नम: ।
नमो रामाभिरामाय रूपश्यामाय ते नम: ।।१८।।
क्षात्रद्रुमकुठाराय चाकृपाराय ते नम: ।
नमस्ते ऽ कृतदाराय चाकृपाराय ते नम: ।।१९।।
नमो नमस्ते सर्व्वायार्चितशर्व्वाय ते नम: ।
हृतराजन्य गर्व्वाया पूर्व्वखर्व्वाय ते नम: ।।२०।।
मीन कच्छप वाराह नृसिंह वटु रूपिणे ।
कृत लीलावताराय विष्णवे प्रभविष्णवे ।।२१।।
रेणुका-गर्भरत्नाय च्यवनानन्ददायिने ।
भार्गवान्वय जाताय नमो रामाय विष्णवे ।।२२।।
नम: परशुहस्ताय खड्गिने चक्रिणे नम: ।
गदिने शार्गिणे नित्यं शौरिणे ते नमोनम: ।।२३।।
नमस्ते ऽ भुद्भुतविप्राय धराभारापहारिणे ।
शरणागतपालाय श्रीरामाय नमोनम: ।।२४।।

इति श्री भविष्यपुराणे पूर्वखण्डे वर्णाचारनिर्णये चत्वारिंशोध्याय: ।।

सूतउवाच—इत्यं स्तुत: स भगवान् उवाच श्लक्षणया गिरा ।
वरं व्रणीध्वं भद्रं वो मा भैष्ट विगतज्वरा: ।।१।।

सारस्वता- ऊचु :—नाशिता भवता देव राजन्या भूरिविक्रमा :
सन्ति तेषान्दयासिन्धो बाला दीनास्त्रियस्तथा ।।२।।
तेभ्यो ऽभयं वय त्वत्तो देव वाञ्छामहे सदा ।

क्षुधर्म्माउवाच- मया संरक्षिता ये तु मामकीं वृत्तिमाश्रिता : ।।३।।
त्यक्तक्षत्रिय धर्म्मास्ते सम्भविष्यन्ति बालका : ।
वैश्यस्तु भवता ऽवध्य : सदा त्वत्पादसेवक : ।
अनुकम्प्यो दयासिन्धो दीनो ऽहं बन्धु वंञ्चित : ।।४।।

परशुरामउवाच- अत्रा ऽगतोहं नाशार्थ तेषामेव न संशय : ।
किन्तु तत स्तवनात्प्रीतो विरक्तोहं वधात्प्रति ।।५।।
मत प्रसादाभद्दंविष्यन्ति बाला विटधर्म्ममाश्रिता : ।
लक्ष्मीवन्त : प्रजावन्तो नानाशास्त्रविचक्षणा : ।।६।।
पण्यवीथीषु चतुरा राजसेवाविधायिन : ।
पुरुषाश्च स्त्रिय : सर्व्वा सुभगा : कुलमाश्रिता : ।।७।।
यूयं सारस्वता विप्रा : प्रतिगृहणन्तु बालकान् ।
कुर्व्वन्तु चापि सर्व्वेषां संस्कारं क्षत्रियोचितम् ।।८।।

सूतउवाच- इति संस्थाप्य भगवान् प्रजाबीजं प्रजापति : ।
जगाम तपसे शैलं गौतमाचलमुत्तमं ।।९।।
तत : प्रभृति ते सर्वे क्षत्रिया द्विजपालिता : ।
त्यक्तक्षत्रियधर्म्माणो वणिग्वृत्तं समाश्रिता : ।।१०।।
ते सूर्य्य शशि वंशीया अग्निवंशसमुद्‌भवा : ।
उत्तमा : क्षत्रिया : ख्याता : इतरे मध्यमा : स्मृता :।।११।।
भोठ भिल्ल निवारादि महिषावत क्रोटका : ।
दैत्यवंश समुत्पन्ना : क्षत्रियास्तेपि विश्रुता : ।।१२।।
टिक्कसेल इति ख्याता प्रेतवंशोभद्‌वा : श्रुता : ।
उन्नाइवंशसंभूतातेस्तु कायस्थ पूर्वजा : ।।१३।।
बिसेना बर बाराश्च अवखास्तवखासतथा ।
अंगाश्चामर गौडाद्या सूतवंशसमुभद्‌वा : ।।१४।।
कंकान कनबाराश्च मोरभंजास्तु वैश्यका : ।
सेंगराख्या सोनगृहावत्सा ब्राहमणवंशजा : ।।१५।।
भरां भद्रा भार्गवाश्च मुण्डिता नाकुलन्धरा : ।
एवमन्येपि बहुशो क्षत्रियत्वं समाश्रिता : ।।१६।।
नागवंशोभद्‌वा दिव्या : क्षत्रियास्समुदाहृता : ।
ब्रहमवंशोभद्‌वाश्चान्ये तथा रुद्रवंशसम्भवा : ।।१७।।
एतेषु भविता हयेको महात्मा विगतज्वरा : ।
उदासीन : कुलगुरु : कलौ सार्द्ध चतुर्गति ।।१८।।
इत्येतत कथितं तात क्षत्रियाणां विनाशनं ।
पालनं चापि मद्रेषु किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।१९।।

इति पूर्व्वभविष्ये एकचत्वारिंशोध्याय : ।

श्रीयुत भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र महाशयेषु सविनय निवेदनम्

खत्री के उत्पत्ति विषय में मेरे मित्र पंडित चण्डीप्रसाद जी वर्णन करते हैं कि जब परशुराम श्री दशरथ जी के समय में क्षत्रियों को मारते थे तो वे सब खत्री कहि के बचि गये ! तब से वे खत्री कहलाए अद्यावधि उसी नाम से प्रकट हैं । कोई कहते हैं कि (ख) आकाशनिवासी (त्रि) तीन ऋषियों के सन्तान हैं अतएव खत्री शब्द से

प्रसिद्ध हैं । और जो परशुराम जी को शिरोनमन पूर्वक प्रणाम करि बद्धांजलि हो गए तब तो परशुराम जी ने प्रसन्न होकर कहा, धन्य हो तुम निर्भय रहो क्योंकि तुम अरुट् हौ अर्थात क्रोध बिना हौ सोई अब अरोड़ा कहलाते हैं । और मेरे मित्र पंडित गोकुलचंद्र जी के पास एक पुस्तक थी । तिस में लिखा है कि लव जी के वंश में एक राजा थे तिन्ह के दो स्त्री थीं । जो कि छोटी थीं वह राजा को परम प्यारी थी जो दूसरी बड़ी थी उस में कुछ रुचि कम थी एक एक पुत्र दोनों में प्रकट भये । छोटी स्त्री ने स्वामी से कहा कि राज्य मेरे पुत्र को देवो । राजा ने न माना । अंत में मंत्री को भी उस राणी ने स्ववशवर्ति करि के कहवाया कि छोटे को राज्य देना चाहिए । मंत्रियों ने कहा कि राजन्! एक को समस्त धन दे दो । एक को केवल राज्य दे दो । सुनि के राजा ने बड़े पुत्र को समस्त धन दे दिया । छोटे पुत्र को स्वकीय राज्य दे दिया । छोटे पुत्र ने राज्य पाय के बड़े भ्राता से कहा कि तुम मेरे देश तें निकल जाओ, तब तो वह तिलाचार होकर मूलत्राण नगर अर्थात मुलतान के पास में चला आया । और उस के और और जातियों के मित्र जो थे वे भी चलि आये तब तो उसने कहा कि हम सब एक जाति कहलावैं और एक अपने नाम पर ग्राम बसावैं जहाँ हमारी जाति सब सुखपूर्वक निवास करें । इस सलाह को सबने माना तब उस राजकुमार ने सब को कहा कि हम सब रुट् (कोप) कभी करैं नहीं आपस में अतएव अरुट् हमारा नाम हुआ । सब ने प्रसन्न होकर माना । परंच जो पुरुष आये थे उनके नाम से अरुट् में भी कई जाति हो गईं सो सब इस पंचनद देश में विस्तृत हैं । उसी समय उस राजकुमार ने उक्त नगर के निकट में एक अरुट् कोट नाम ग्राम बनवाय कर निवास किया जिस को आज कल आरोडकोट कहते हैं । वह ग्राम अरोड़ों का पूर्व निवास भूमि है । आज कल भी कई एक पुरुष उसी स्थान में जाय के विवाहादि करि आते हैं । जिन्हों को इस देश में कन्या नहीं मिलती हैं । अब देश प्रभाव से उस देश के लोक आचार से हीन होते हैं दूसरे गदहा को अनेक ही पुरुष रखते हैं उस पर नि :संक सवार भी हो जाते हैं एतएव नीच गिने जाते हैं नहीं तो जाति में अच्छे हैं । जो लघु राजकुमार क्षत्री था उस को इस पांचाल देश के लोगों ने खत्री शब्द से प्रसिद्ध किया क्योंकि जो श्री गुरु अंगद जी ने गुरुमुखी अक्षर बनाये उसमें केवल मूर्द्धन्य खकार है और (क्ष) अक्षर नहीं है एतएव देश बोली से सब खत्री कहलाने लगे । सोई रीति अद्यावधि चली आती है । इत्यादि प्रकार से प्रसिद्ध है । जो आकाश निवासी ३ ऋषि हैं उनका नाम १ आकर्ष २ पद्माख्य ३ खर्त्रिश इत्यादि सुदर्शन संहिता में लिखा है । खर्त्रिश की सन्तान खत्री कहलाते हैं । यह आख्यायिका उक्त संहिता के द्वादश अध्याय में विदित है । इत्यलम्बहुना ।

(शालिग्रामदास)

आज कल बहुधा लोग श्रेष्ठ वर्ण बनने के अधिकारी हुए हैं उनमें एक खत्री भी हैं । ये लोग अपने को क्षत्री कहते हैं इस बात का मैं भी मानता हूँ कि इनके आद्य पुरुष क्षत्री थे । क्योंकि जो जो कहानियाँ इस विषय में सुनी गई हैं उन से स्पष्ट मालूम होता है कि ये लोग क्षत्री वंश में हैं ।

लोग कहते हैं कि खत्री हयहो वंश के वंश में हैं । सहस्रार्जुन से और परशुराम से जब युद्ध ठनी तो परशुराम ने उस वंश के क्षत्रियों को मार डाला और यह प्रतिज्ञा किया कि इस वंश के क्षत्री को निर्वंश कर डालेंगे । यह प्रतिज्ञा सुनकर उस वंश के दूषण कुलकलंक कई एक कायर यह कह कर बच गये कि हम बनियों के बालक हैं । और जब परशुराम जी चले गये तो ये जाकर हयहोवंशियों से कहने लगे कि भाई हम लोग विपत्ति में ऐसा कह कर बच गये । यह सुनकर उन सबों ने बहुत प्रकार से धिक्कार दिया और कहा कि रे चांडाल तुम सबों ने यह क्या किया अपनी जननी को कलंक लगाया । हाय! तुम सब क्षत्री कुल में कलंक पैदा हुए । जाओ यहाँ से भागो दूर हटो न तो अभी शिर काट लेंगे क्या तुम सब हम लोगों के तुल्य हो सकते हो ? अपने वंश के लोगों की रक्षा क्या करोगे अपने बाप के माथे पाप चढ़ाये अब हम लोग तुम लोगों के साथ कोई व्यवहार न रक्खेंगे तुम लोगों ने अपने माता पिता को कैसा कलंक लगाया । यह सुनकर ये सब अपनी श्री गवांकर वहाँ से आके वैश्यों से कहा कि भाई तुम लोग अपनी जाति अर्थात वैश्य हम लोगों को बनाओ । कारण हम लोग बनियों के बालक कहकर बच गये हैं और अपनी सारी व्यवस्था कह गये । बनियांओं ने भी इस बात को अस्वीकार किया अर्थात कहा कि आज विपत्ति पड़ने पर तुम लोग बनियां के बालक कहकर बच गये कल विपत्ति पड़ने पर शूद्र के बालक कहोगे इस से हम लोग तुम लोग को वैश्य अर्थात बनियां न बनावेंगे इस बात

को सुनकर ये लोग बड़े बिपद में पड़े और आपस में सलाह कर के न क्षत्री न वैश्य एक विचित्र जाति खत्री बन गये ।

कोई कोई कहते हैं कि खात नामक राजपूत के वंश में एक वेश्या से इन लोगों की उत्पत्ति है और कोई २ कहते हैं कि नहीं ये लोग बढ़ई के बंश में हैं अर्थात् बढ़ई को खाति कहते हैं । काल प्रभाव से कुछ द्रव्य पाकर वैश्यों के गिनती में हो गये । जो हो कोई ऐसा भी कहते हैं कि खेचर नामक राजपूत के वंश में खत्री हैं । कोई कहते हैं कि ये लोग क्षत्री हुई नहीं हैं क्यों कि परशुरामजी से जो लोग अभय पाये हैं वे लोग वैश्य क्षत्री है जो वैश्यवारे में रहते हैं । और खत्रियों की दास की पदवी अब तक प्रचलित है इस से ये लोग शूद्र हैं परन्तु बड़े अफसोस की बात है कि जिनका बाप दास उनका बेटा अपने को क्षत्री लिखते हैं । ठीक है ''श्यार सुत सेर होत निधन कुबेर होत दीनन के फेर होत मेरु होत माटि को'' । कोई कहते हैं कि यदि इन के मूल पुरुष क्षत्री थे तो भी ये अब क्षत्री नहीं हो सकते कारण खानपान बैठब उठब सब क्षत्रियों से न्यारी है और मूल पुरुष तो पैठान के भी क्षत्री हैं क्योंकि प्राथियन से पैठान शब्द बना है और वेणु वंश के कोल भील खेरो आदि हैं तो क्या अब ये क्षत्री हो सकते कदापि नहीं । कोई कहते हैं कि चीनी लवण आदि के व्यापार करने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है तो क्षत्री होकर लवणादि बेचे तो क्या रहा ! इसी भाँति से लोग अनेक प्रकार से खत्रियों की उत्पत्ति वा वर्णनिर्णय बतलाते हैं परंतु मैं इन बातों को छोड़ कर नृपवंशावली से पता देता हूँ कि ये लोग क्षत्री के वंश में हैं ।

दोहा—

एक समय बसुधा भई, कामधेनु को रूप ।
पुलक गात रोमांच युत, झारि दियो तन कूप ।। १।।
तेहि रोमांच के मूल ते, प्रगटेउ छत्री खानि ।
ताको निज निज नाम सभ, विधिवत कहो बखान ।। २।।
जादव वैश निशेन नृप, खत्री खाति बिजवान ।
अगरवार सुरवार भौ, पंचगोतिया नृपं जान । ३।।
महीदहार कठिहार पुनि, धाकर और सिरमौर ।
लकरिहार जनवास पुनि, बड़ गुंजर मड़िऔर ।। ४।।
भदवरिया प्रगटे बहुरि, काश्यप और सोमवंश ।
मंडवलिया गाइ सहित, पाछिल भौ अवतंश ।। ५।।
कठहरिया उत्पन्न भौ, मलन हांस करिहार ।
पोड़ पुंडर बुंदेल पुनि, गौरवार भिलवार ।। ६।।
हाडा भए नरवनी, क्षत्री अति रणधीर ।
षड्ग दान वर्णन करी, विरदावलि अति वीर ।। ७।।
सोनकी और जगार भौ, बहुरि तरेढ गरेर ।
ठकुराई सांवन कहौ, खीची और धंधेर ।। ८।।
पुवि भौ प्रगट सिहोगिया, छत्री नृपति कुलीन ।
किनवार सिंहल नृप, कुलपालक अघहीन ।। ९।।
पुनि प्रगटेउ महरौठ नृप, कामधेनु ते जानि ।
करचोलिया क्षत्री भएउ, एहि प्रकार सभ खानि ।।१०।।
नागवंशी क्षत्री भए, गडवरिया सकसेल ।
जाति वंश कुल उत्तम, पुनि प्रगटेउ रकसेल ।।११।।
अनटैया अगरेढ नृप, कुश भौ नाम निहार ।
अपर वंश कहँ लागि कहौं, भए धेनु औतार ।।१२।।

(शिवराम सिंह)

दोहा

चार बेद प्रिय चार पद चारहु जुग परमान ।
जयति चतुर्भुज जासु जग बिदित बंस चौहान ।।
बूँदी राज प्रसिद्ध अति राजपुताना देस ।
जहँ के भारत में प्रगट हाड़ा नाम नरेस ।।
यह तिनकी बंसावली क्षत्रिन हित सानंद ।
लिखी अतिहि संक्षेप में ग्रंथन सों हरिचंद ।।

बाबू शिवनन्दन सहाय के मुताबिक इसका रचना काल १८८० है । सन् १८८२ में यह पुस्तक बोधोदय प्रेस, बांकीपुर से पहली बार छपी ।

— सं.

बूँदी का राजवंश

बूँदी का राजवंश चौहान क्षत्रियों से है । इस वंश का मूल पुरुष अन्हल चौहान प्रसिद्ध है । भट्ट लोगों के मत से चौहान का शुद्ध नाम चतुर्भुज है । अन्हल अनल शब्द का अपभ्रंश है, क्योंकि अनल अग्नि को कहते हैं और आबू के पहाड़ पर जो चार क्षत्री वंश उत्पन्न किए गए वे अग्नि से उत्पन्न किये गए थे । जेम्स प्रिंसिप साहब को सन्देह है कि पार्थिअन[1] (पार्थिव ?) Parthian Dynastyसे यह वंश निकला है । उन्हीं के मत के अनुसार ईसामसीह से ७०० वर्ष पूर्व अनल ने गढ़मंडला में राज स्थापन किया । अनल के पीछे सुबाच और फिर मल्लन हुआ (जिसने मल्लनी वंश चलाया ?) फिर गलन सूर हुआ । यहाँ तक कि ईस्वी सन् १४५ में (विराट का सं. २०२) अजयपाल ने अजमेर बसा कर राज किया । इसके पूर्व ८०० बरस और पीछे ५०० बरस ठीक ठीक नामावली नहीं मिलती । विल्फर्ड साहब के मत के अनुसार सन् ५०० ई. के अंत तक

---

१. और पठान शब्द भी इसी से निकला हुआ मालूम होता है, क्योंकि जो हिंदुस्तान के पास के क्षत्रियधर्म्मा मुसल्मान हैं वे ही पठान कहलाते हैं ।

सामंतदेव, महादेव, अजयसिंह (अजयपाल ?), वीरसिंह, बिंदुसुर और वैरी बिहंड इन राजाओं के नाम क्रम से मिलते हैं । यदि अजय पाल से मिला कर यह क्रम माना जाय तो वैरिबिहंड तक एक प्रकार का क्रम मिलेगा, किंतु दोलाराय (दुर्ल्लभराय ?) जिस से सन् ६८४ ईस्वी में मुसलमानों ने अजमेर छीना उस के पूर्व दो सौ बरस के लगभग कौन राजे हुए इसका पता नहीं । दोलाराय के पीछे माणिक्य राय (सन् ६९५ ई.) हुआ, जिसने साँभर का शहर बसाया और साँभरी गोत स्थापन किया । फिर महासिंह, चंद्रगुप्त (?), प्रतापसिंह, मोहनसिंह, सेतराय, नागहस्त, लोहधार, वीरसिंह (?), बिबुधसिंह और चंद्रराय के नाम क्रम से मिलते हैं । Bombay Government Selection Vol. III. P. 193 टॉड साहब लिखते हैं कि भट्ट लोगों ने दूसरे ग्यारह नाम यहाँ पर लिखे हैं । परंतु प्रिंसिप साहब के क्रम से दोलाराय के पीछे हरिहर राय (टॉड साहब के मत से हर्षराय) सन् ७७४ ई. में हुआ और इसने सुबुक्तगीं को लड़ाई में हराया, फिर बली अगराय (बेलनदेव Tod) हुआ जो सुल्तान महमूद के अजमेर के युद्ध में मारा गया । उसके पीछे प्रथमराय और उस को अंगराज (अमिल्लदेव) हुआ । अमिल्लदेव के विशालदेव राजा हुआ । विल्फर्ड १०१६ ई., लिपि १०३१ से १०९५ ई. तक टॉड साहब के मत में चंद के रायसे अनुसार संवत् ९२१ में और फीरोज की एक लिपि से (१२२० संवत्) फिर सिरंगदेव (सारंगदेव वा श्रीरंगदेव), अन्हदेव (जिस ने अजमेर में अन्ह सागर खुदवाया), हिसपाल (हंसपाल), जयसिंह तारीख फिरिश्ता का जयपाल जो प्रिंसिप साहब के मत से सन् ९७७ ईस्वी में हुआ), सोमेश्वर (जिसने दिल्ली के राजा अनंगपाल की बेटी से ब्याह किया), पृथीराय (लाहौर का जिसे शहाबुद्दीन ने कत्ल किया ११७६), रायनसी (रायनृसिंह जो ११९२ में दिल्ली के युद्ध में मारा गया), विजयराज और उसके पीछे लकुनसी (लक्ष्मण सिंह) हुआ, जिसकी सत्ताईसवीं पीढ़ी में वर्त्तमान समय के नीमरान के राजा हैं ।

अब टॉड साहब का मत है कि हाड़ालोगों का वंश माणिक्य देव की शाखा में वा विशाल देव के पुत्र अनुराज से यह वंश चला है । प्रिंसिप साहब अनुराज ही से हाड़ा लोगों की वंशावली लिखते हैं । किंतु बूँदी के भट्ट संगृहीत ग्रंथों में और तरह से इस वंश की उत्पत्ति लिखी है । ये लिखते हैं[1] "वशिष्ठ जी ने आबू पहाड़ पर यज्ञ किया । उस से चार उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए, उन में से चतुर्भुज जी (चौहान वा चहुमान) से १५६ पीढ़ी में भोमचंद्र राजा हुआ । उस का पुत्र भानुराज राक्षसों (यवनों) की लड़ाई में मारा गया । तब आशापुरा देवी ने कृपा कर के भानुराज की अस्थि एकत्र कर के जिला दिया और तब से भानुराज का नाम अस्थिपाल हुआ । अस्थिपाल के पीछे क्रम से पृथ्वीपाल, सेनपाल, शत्रुशल्य, दामोदर, नृसिंह, हरिवंश, हरियश, सदाशिव, रामदास, रामचंद्र, भागचंद्र, रूपचंद्र, मंडन जी (जिसने दक्षिण में मांडलगढ़ बसाया), आत्माराम, आनंदराम, राव हमीर, राव सुमेर, राव सरदार, राव जोधराज, राव रत्न जी, राव कील्हण जी, राव आशुपाल, राव विजयपाल और राव बंगदेव जी हुए ।" राव बंगदेव से भट्टो की और प्रिंसिप साहब की वंशावली एक है । प्रिंसिप साहब के मत से अनुराज से आसी वा हाँसी का राज किया । उसके पीछे इष्टपाल वा इष्ठपाल (शायद अस्थिपाल यही है) ने १०२४ ई. में असीरगढ़ में राज किया । उस का चण्डकर्ण वा कर्णचंद्र, उस का लोकपाल

---

१. अग्नि कुल की उत्पत्ति पुराणों में इस तरह लिखी है । जब परशुराम जी के मारे क्षत्रिय कुल का नाश हो गया तब उन्हों ने पृथ्वी की रक्षा के हेतु चिंता कर के आबू पर्वत पर ऋषियों से इस विषय का परामर्श कर के सब के साथ क्षीरसागर पर जा कर भगवान की स्तुति किया । आज्ञा हुई कि चार कुल उत्पन्न करो । फिर ऋषियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इंद्र आबू पहाड़ पर आये और वहाँ यज्ञ किया । इंद्र ने पहले अपनी शक्ति से घास का पुतला बना कर कुंड में डाला जिस से मार मार कहता हुआ भाला लिए हुए एक पुरुष निकला, जिस को ऋषियों ने प्रमार नाम देकर धार और उज्जैन का देश दिया । उसी भाँति ब्रह्मा ने वेद और खड्ग लिए हुए एक पुरुष उत्पन्न किया, एक चुलुक (चुल्लू) जल से जी उठने से इस का नाम चालुक्य हुआ और अन्हलपुर इस की राजधानी हुई । रुद्र ने तीसरा क्षत्री गंगाजल से उत्पन्न किया, यह धनुष लिए काला और कुरुप था, इस से इस का नाम परिहार रख कर पर्वतों और बनों की रक्षा इस को दी । अंत में विष्णु ने चार भुजा का एक मनुष्य चतुर्भुज नामक उत्पन्न किया । इस की राजधानी अकावती (गढ़ मंडल) हुई । इन्हीं चार पुरुषों से क्रम से पँवार, सोलंखी, परिहार और चौहान वंश हुए ।

प्राचीन काल में चौहान लोगों का समवेद, पंच प्रवर, मधु (मध्य ?) शाखा वत्सगोत्र, विष्णु (श्रीकृष्ण) वंश होने से सोमवंश, अम्बिका देवी, अर्बुद अचलेश्वर शिव, भृगुलक्षण विष्णु और कालभैरव क्षेत्रपाल थे ।

और उस का हम्मीर हुआ । इस हम्मीर का पृथ्वीराज रायसे में भी जिक्र है और पृथ्वीराज ही के युद्ध में यह ११९३ ई. में मारा गया । हम्मीर के पीछे क्रम से कालकर्ण, महामग्द (महामत्त), राव बच्च (राव वत्स) और रामचंद्र हुए । रावचंद्र का परिवार शहाबुद्दीन ने सन् १२९८ में मारा । केवल एक पुत्र रायसी बच गया, जो चित्तौर में पाला गया और जिसने भैंस रोर में राज स्थापन किया । रायन्सी के कोलन राय हुए जिसने मध्य देश में प्रमारों का राज्य किया और उनके बंगदेव हुए, जो हून के राजा हुए मैनाल लोगों पर प्रभुत्व किया । राव बंगदेव से वंश परंपरा में और भेद नहीं है, केवल समर सिंह के पुत्र हर राज (हाराराज, जिससे हाड़ा वंश चला) प्रिंसिप साहब वंशावली में विशेष मानते हैं । बूँदीवालों के मत से बंगदेव ने (सन् १३४१ ई. में) बंबावदा में राज किया और इन के पुत्र राव देव सिंह ने बूँदी में राज स्थापन किया और अपने पुत्र देव सिंह (संवत् १२९८) को बूँदी राज देकर चले गए । यही राव देव लोधी लोगों के दरबार में बुलाए गए, जो प्रिंसिप साहब के मत से अपने पुत्र हरराज को राज दे कर चले गए । बूँदी परंपर्रा में हरराज का नाम नहीं है, इस से संभव होता है कि हरराज और समरसिंह दोनों राव देव के पुत्र हैं । हरराज ने कुछ दिन राज किया, फिर समरसिंह ने भीलों को जीता था । समरसिंह के पीछे क्रम से ये राजा हुए । राव रनपालसिंह (नापा जी) संवत् १३३२, राव हम्मीर (हामाजी वा हामूजी) सं. १३४३, राव बरसिंह वा वीरसिंह सं. १३९३, राव बैरीशल्य वा बैरीसाल वा बीरूजी सं. १४५० (P. 4190. A.D.G.), राव सुभांडदेव वा बाँदा जी सं. १४९०, इनके समय में बड़ा काल पड़ा (ई. १४८७) और समरकंदी अमरकंदी नामक दो भाइयों ने इन्न को राज से उतार कर बारह बरस राज्य किया, राव नारायण दास ने पिता का राज्य अपने चचा लोगों से लिया । राव सूरजमल ने संवत् १५८४ (1533 A.D.) में भट्ट लोगों के मत से महाराना रत्न सिंह जी का बध किया, किंतु जेम्स प्रिंसिप साहब के मत से महाराना ने इन्हें मारा । इससे संभव होता है कि इन दोनों राजाओं में ऐसा घोर बैर हुआ कि दोनों मृत्यु के परस्पर कारण हुए । राव राजा सुरतान जी सं. १५८८ (1537 A.D.), यह पागल थे, इस से पंचों ने इनको राव से अलग कर के नारायणदास के पुत्र अर्जुनराव को राजा किया । इनके बहुत थोड़े ही समय राज के पीछे चित्तौर की लड़ाई में मारे जाने से राजावली में इन की गिनती नहीं हुई । राव राजा सुरजन जी सं. १६११ (1560 A.D.), इन्होंने महाराजाधिराज अकबर से काशी और चुनार पाया और काशी में राजमंदिर बसाया । राव राजा भोज सं. १६८२, इनके समय से कोटा और बूँदी का राज अलग हुआ । राव रतन जी सं. १६६४ (T. 1613 A.D.), इनके पुत्र कुँवर माधवसिंह ने जहाँगीर से कोटा पाया और कुँअर गोपीनाथ युवराज हुए । कुँअर गोपीनाथ भी (सं. १६७१) युवराजत्व के समय ही में शांत हुए, इस से उन के पुत्र रावराजा शत्रुशाल राव रत्न जी के गोद बैठे (सं. १६८८) और माधव सिंह कोटा के राजा हुए । यह राजा शत्रुशाल (प्रसिद्ध छत्रसाल) बड़ा वीर हुआ है, जिसने कुलवर्गा जीता और उज्जैन की प्रसिद्ध लड़ाई में १२ राजाओं के साथ मारा गया,[१] राव राजा भावसिंह सं. १७१५ (1658 A.D.) इन्होंने औरंगजेब से औरंगाबाद की सूबेदारी पाया । राव राजा अनरुद्धसिंह सं. १७३८ (P. 1681 A.D.), ये भावसिंह के छोटे भाई के पौत्र थे । राव राजा बुधसिंह[२] सं. १७५२ P. 1710 A.D.) इन्होंने बहादुरशाह की सहायता की थी, किंतु जयपुरवालों ने इन्हें राज्यच्युत कर दिया । महाराव राजा उमेदसिंह सं. १८०१ (1744 A.D.), होलकर की सहायता से

---

१. दारासाहि औरंग जुरे हैं दोऊ दिल्ली दल एकै गए भाजि एक रहे रुँधि चाल में ।
भयो घोर युद्ध उद्ध माच्यो अति दुंद जहाँ कैसहु प्रकार प्रान बचत न काल में ।।
हाथी तें उतरि हाड़ा जूझ्यो लोह लंगर दै एती लाज का मैं जेती लाज छत्रसाल में ।
तन तरवारन में मन परमेश्वर में प्रन स्वामि कारज मैं माथो हर माल में ।।

२. शिवसिंहसरोज में लिखा है, बुद्धराव (संवत १७५५) —

ये महाराज बूँदी के राजा जयसिंह सवाई आमेरवाले के बहनोई थे । बहादुरशाह बादशाह ने इन का बड़ा मान किया । इस बादशाह के यहाँ दूसरे की ऐसी इज्जत न थी । जब सय्यद बारहा ने बादशाह को बेदखल कर आप ही बादशाही नक्कारा बजाते हुए गली कूचों में निकलने लगा तब तो इस शूरवीर से कब रहा जाता था । सय्यदों का मुँह तरवारों की धार से फेर दिया और तमाम उमर बादशाह के यहाँ रहा । कविता इनको बहुत ही अपूर्व है

बूँदी फेर लिया । (1747) और फिर विरक्त होकर राज छोड़ कर चले गए । अजीत सिंह सं. १८२७ (1771), महाराव राजा विष्णुसिंह सं. १८३० । इन्होंने सं. १८७४ में सर्कार से अहदनामा किया । महाराज राजा रामसिंह, ये वर्त्तमान बूँदी के महाराव हैं । संवत् १८७८ में सावन कृष्ण ११ को इन्होंने राज पाया और पूस सुदी ३ सं. १८६६ को इनका जन्म है । ये महाराज बड़े धर्मनिष्ठ और संस्कृत के अनुरागी हैं । सर्कार से इस राज्य की सलामी १७ तोप की नियत की गई है और महाराव राजा श्री रामसिंह जी को जी.सी.आई. और "काउन्सेलर आफ़ दी इम्प्रेस" (राजराजेश्वरी के सलाहकार) की उपाधि दिल्ली के दरबार में (1877 A.D.) मिली ।

कोटा की शाखा ।

राव माधोसिंह सन् १५७९ ई.
राव मुकुंद सिंह सन् १६३० ई.
राव जगतसिंह सन् १६५७ ई.
राव किशवर (किशोर) सिंह सन् १६६९ ई.
राव रामसिंह सन् १६८५ ई.
राव भीमसिंह सन् १७०७ ई.
महाराव अर्जुनसिंह सन् १७१९ ई.
महाराव दुर्जनशाल (निस्संतान)
महाराव अजीतसिंह (विष्णुसिंह के पोते)
महाराज छत्रसाल
महाराज गुमानसिंह सन्, १७६५ (अपने भाई छत्रशाल की गद्दी पर बैठे)
जालिमसिंह इनके फौजदार थे ।
महाराव उम्मेदसिंह सन् १७७० ई.
महाराव किशोरसिंह सन् १८१९ ई.
महाराव उम्मेदसिंह सन् १८८९ ई. (सं.)

और कवि लोगों का बड़ा मान दान देनेवाला था ।

कीनो तुम मान मैं कियो है कब मान अब कीजै सनमान अपमान कीनो कब मैं ।
प्यारी हँसि बोलु और बोलैं कैसे बुद्ध राज हँसि हँसि बोलु हँसि बोलि हौं जू अब मैं ।।
हग करि सौं हैं कोरि सौं हैं करि जानत हैं अब करि सौं हैं अनसौहैं कीने कब मैं ।
लीजै भरि अंक जहाँ आये भरि अंक हौ न काहू भरि अंक उर अंक देखे अब मैं ।।१।।

ऐसी ना करी है काहू आज लौं अनैसी जैसी सैयद करी है ये कलंक काहि चढ़ैगे ।
दूजे को नगाड़े बाजे दिली में दिलीश आगे हम सुनि भागैं तौ कविंद कहाँ पढ़ैगे ।।
कहे राव बुद्ध हमैं करने हैं युद्ध स्वामि धर्म में प्रसुद्ध जेह जान जस मढ़ैगे ।
हाड़ा कहवाय कहा हारि करि कढ़ै ताते झारि शमशेर आजु रारि करि कढ़ैगें ।।२।।

काश्मीर कुसुम

अथवा

राजतरंगिणी-कमल

'कोऽन्य: कालमतिक्रांतं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षम: ।
कवीन् प्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिन:' ।।
'भुजतरुवन छायां येषां निषेव्य महौजसां ।
जलधिरसनामेदिन्यासीदसाधकुतोभया ।।
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रहं ।
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नम: कविकर्मणे' ।।

इस ग्रन्थ में काश्मीर का संक्षिप्त इतिहास संकलित है । राज तरंगिणी के बाद की सारी ऐतिहासिक घटनायें भी इसमें वर्णित हैं। सन् १८८४ में पहली बार 'द मेडिकल हाल' प्रेस, वाराणसी से मुद्रित और भारतेन्दु बाबू के स्वयं के मल्लिक चन्द्र एण्ड कम्पनी से प्रकाशित । दूसरी बार सन् १८८७ मे 'खंगविलास' प्रेस ने इसे छापा ।

— सं.

DEDICATION.

हे सौभाग्य काश्मीर,

केवल ग्रंथकर्त्ता ही से नहीं इस ग्रंथ से भी तुम से अनेक संबंध हैं । तुम कुसुम जाति हौ, यह ग्रंथ भी । काश्मीर के क्षेत्र से दर्शकों का मन प्रसन्न होता है, तुम्हारे दर्शन से हमारा । कश्मीर इस पृथ्वी का स्वर्ग है, तुम हमारे हेतु इस पृथ्वी में स्वर्ग हौ । यह ग्रंथ राजतरंगिणी कमल है, तुम वर्ण से राज तरंगिणी कमला ही नहीं हमारी आशाराजतरंगिणी में कमल हो । तरंगिणी 'गण की रानी भोगवती भागीरथी है, तुम हमारी हृदयपातालवाहिनी राजतरंगिणी हौ । कश्मीर भू स्वर्णमयी नीलमणि-प्रभवा है, तुम भी इन्हीं अनेक संबंधों से समझो या केवल हमारे हृदय संबंध से यह ग्रंथ तुम को समर्पित है ।

भूमिका

भारतवर्ष के निर्मल आकाश में इतिहास चंद्रमा का दर्शन नहीं होता, क्योंकि भारतवर्ष की प्राचीन विद्याओं के साथ इतिहास का भी लोप हो गया। कुछ तो पूर्व समय में शृंखलाबद्ध इतिहास लिखने की चाल ही न थी और जो कुछ बचा बचाया था वह भी कराल काल के गाल में चला गया। जैनों ने वैदिकों के ग्रंथ नाश किये और वैदिकों ने जैनों के। एक राजधानी में एक वंश राज्य करता था। जब दूसरे वंश ने उसको जीता तो पहले वंश की संपूर्ण वंशावली के ग्रंथ जला दिए। कवियों ने अपने अन्नदाता की झूठी प्रशंसा की, कहानी जोड़ लीं और उन के जो शत्रु थे उनकी सब कीर्त्ति लोप कर दीं। यह सब तो था ही, अंत में मुसलमानों ने आकर जो कुछ बचे बचाये ग्रंथ थे जला दिए। चलिए छुट्टी हुई। ऐसी काली घटा छाई कि भारतवर्ष के कीर्तिचंद्रमा का प्रकाश ही छिप गया। हरिश्चन्द्र, राम, युधिष्ठिर ऐसे महानुभावों की कीर्त्ति का प्रकाश अति उत्कट था इसी से घनपटल को वेध कर अब तक हम लोगों के अँधेरे दृश्य को आलोक पहुँचाता है। किंतु ब्रह्मा से ले कर आज तक और जितने बड़े बड़े राजा या वीर या पंडित या महानुभाव हुए किसी का समाचार ठीक ठीक नहीं मिलता। पुराणादिकों में नाम मिलता है तो समय नहीं मिलता।

ऐसे अँधेरे में काश्मीर के राजाओं के इतिहास का एक तारा जो हम लोगों को दिखलाई पड़ता है इसी को हम कई सूर्य से बढ़कर समझते हैं। सिद्धांत यह कि भारतवर्ष में यही एक देश है, जिसका इतिहास शृंखलाबद्ध देखने में आता है और यही कारण है कि इस इतिहास पर हामारा ऐसा आदर और आग्रह है।

कश्मीर के इतिहास में कल्हण कवि की राजतरंगिणी ही मुख्य है। यद्यपि कल्हण के पहले सुव्रत, क्षेमेंद्र, हेलाराज, नीलमुनि, पद्ममिहिर और श्री छविल्लभट्ट आदि ग्रंथकार हुए हैं, किंतु किसी के ग्रंथ अब नहीं मिलते। कल्हण ने लिखा है कि हेलाराज ने बारह हजार ग्रंथ कश्मीर के राजाओं के वर्णन के एकत्र किये थे। नीलमुनि ने इस इतिहास में एक बड़ा सा पुराण ही बनाया था। किंतु हाय ! अब ये ग्रंथ कहीं नहीं मिलते। कश्मीर के बचे बचाये जितने ग्रंथ थे सब दुष्टों ने जला दिए। आर्य्यों की मंदिर मूर्त्ति आदि में कारीगरी कीर्त्तिस्तंभादिकों के लेख और पुस्तकों का इन दुष्टों के हाथ से समूल नाश हो गया। परशुराम जी ने राजाओं का शरीरमात्र नाश किया, किंतु इन्होंने देह, बल, विद्या, धन, प्राण की कौन कहै कीर्त्ति का भी नाश कर दिया।

कल्हण ने जयसिंह के काल में सन् ११४८ ई. में राजतरंगिणी बनाई। यह कश्मीर के अमात्य चंपक का पुत्र था और इसी कारण से इस को इस ग्रंथ के बनाने में बहुत सा विषय सहज ही में मिला था।

इस के पीछे जोनराज ने १४१२ में राजावली बना कर कल्हण से लेकर अपने काल तक के राजाओं का उस में वर्णन किया। फिर उसके शिष्य श्री वरराज ने १४७७ में एक ग्रंथ और बनाया। अकबर के समय में प्राज्यभट्ट ने इस इतिहास का चतुर्थ खंड लिखा। इस प्रकार चार खंडों में यह कश्मीर का इतिहास संस्कृत में श्लोकबद्ध विद्यमान हैं।

महाराज रणजीत सिंह के काल में जान मैकफेयर नामक एक यूरोपीय विद्वान ने कश्मीर से पहले पहल इस ग्रंथ का संग्रह किया। विल्सन साहब ने एशियाटिक रिसर्चेज़ में इस के प्रथम छ सर्ग का अनुवाद भी किया था।

इसी राजतरंगिणी ही से यह इतिहास मैंने लिखा है। इस में केवल राजाओं के समय और बड़ी बड़ी घटनाओं का वर्णन है। आशा है कि कोई इस को सविस्तार भी निर्माण कर के प्रकाश करेगा।

राजतरंगिणी छोड़कर और और भी कई ग्रंथों और लेखों से इस में संग्रह किया है। यथा आइने अकबरी, ... का फारसी इतिहास, एशियाटिक सोसाइटी के पत्र, विल्सन, विलफर्ड, प्रिंसिप, कनिंगहम, टॉड, विलिअन्स, गोशेन और ट्रायर आदि के लेख, बाबू जोगेशचंद्रदत्त की अंगरेजी तवारीख, दीवान कृपाराम जी की फारसी तवारीख आदि।

बहुतों का मत है कि कश्मीर शब्द कश्यपमेरू का अपभ्रंश है। पहले पहल कश्यप मुनि ने अपने

तपोबल से इस प्रदेश का पानी सुखा कर इस को बसाया था । इनके पीछे गोनर्द तक अर्थात् कलियुग के प्रारंभ तक राजाओं का कुछ पता नहीं है । गोनर्द से ही राजाओं का नाम शृंखलाबद्ध मिलता है । मुसल्मान लेखकों ने इसके पूर्व के भी कई नाम लिखे हैं, किंतु वे सब ऐसे अशुद्ध और प्रतिशब्द में खाँ उपाधि विशिष्ट हैं कि उन नामों पर श्रद्धा नहीं होती ।

गोनर्द से लेकर सहदेव तक पूर्व में सैंतीस सौ बरस के लगभग डेढ़ सौ हिंदू राजाओं ने कश्मीर भोगा, फिर पूरे पाँच सौ बरस मुसल्मानों ने इसका उत्पीड़न किया । (बीच में बागी होकर यद्यपि राजा सुखजीवन ने ८ बरस राज्य किया था पर उसकी कोई गिनती नहीं) फिर नाममात्र को कश्मीर दुर्रानी राज्यभुक्त होकर आज चौंसठ बरस से फिर हिंदुओं के अधिकार में आया है । अब ईश्वर सर्वदा इस को उपद्रवों से बचावै । एवमस्तु ।

कश्मीर की संक्षिप्त वंशपरंपरा

कश्मीर के वर्त्तमान महाराज की संक्षिप्त वंशपरंपरा यों है । ये लोग कछवाहे क्षत्री हैं । जैपुर प्रांत से सूर्यदेव नामक एक राजकुमार ने आकर जम्बू में राज्य का आरंभ किया । उसके वंश में भुजदेव, अवतारदेव, यशदेव, कृपालुदेव, चक्रदेव, नृसिंहदेव, अजेनदेव और जयदेव ये क्रम से हुए । जयदेव का पुत्र मालदेव बड़ा बली और पराक्रमी हुआ । इस ने हँसी हँसी में पचास मन के जो पत्थर उठाए हैं वह उस की अचल कीर्त्ति बन कर अब भी जम्बू में पड़े हैं । उस के पीछे हंबीरदेव, अजेव्यदेव, वीरदेव, घोड़ादेव, कर्पूरदेव और सुमहलदेव क्रम से राजा हुए । सुमहल के पुत्र संग्रामदेव ने फिर बड़ा नाम किया । आलमगीर इनकी वीरता से ऐसा प्रसन्न हुआ कि महाराजगी का पद छत्र चँवर सब कुछ दिया । ये दक्षिण की लड़ाई में मारे गए । इन के पुत्र हरिदेव ने और उनके पुत्र गजसिंह ने राज को बहुत ही बसाया । सब प्रकार के नियम बाँधे और महल बनवाए । गजसिंह के पुत्र ध्रुवदेव ने बहुत दिन तक ऐश्वर्यपूर्वक राज्य किया । ध्रुवदेव के रणजीतदेव और सूरतसिंह पुत्र थे । रणजीतदेव को ब्रजराजदेव और उनको निज परंपरासंपूर्णकारी संपूर्णदेव हुए । संपूर्णदेव को संतति न होने के कारण रणजीतदेव के दूसरे पुत्र दलेलसिंह के पुत्र जैतसिंह ने राज्य पाया । महाराज रणजीतसिंह लाहोरवाले के प्रताप के समय में जैतसिंह को पिनशिन मिली और जंबू का राज्य लाहोर में मिल गया । जैतसिंह के पुत्र रघुबीरदेव के पुत्र पौत्र अब अंबाले में हैं और सर्कार अँगरेज से पिनशिन पाते हैं । ध्रुवदेव के दूसरे पुत्र सूरतसिंह को जोरावर सिंह और मियाँ मोटासिंह दो पुत्र थे । मियाँ मोटा को विभूतिसिंह और उन को एक पुत्र ब्रजदेव हैं, जिन को वर्त्तमान महाराज जंबू ने कैद कर रक्खा है । जोरावरसिंह को किशोरसिंह और उन को तीन पुत्र हुए, गुलाबसिंह, सुचेतसिंह और ध्यानसिंह । महाराज गुलाबसिंह ने महाराजाधिराज रणजीतसिंह से जंबू का राज्य फिर पाया । सुचेतसिंह का वंश नहीं रहा । राजा ध्यानसिंह को हीरासिंह, जवाहरसिंह और मोतीसिंह हुए, जिन में राजा मोतीसिंह का वंश है । महाराज गुलाबसिंह के उद्धवसिंह, रणधीरसिंह और रणवीरसिंह तीन पुत्र हुए । प्रथम दोनों नौनिहालसिंह और राजा हीरासिंह के साथ क्रम से मर गए, इस से महाराज रणवीरसिंह वर्त्तमान जंबू और कश्मीर के महाराज ने राज्य पाया । इनके एक वैमात्रेय भाई मियाँ हट्ठसिंह हैं, जिनको महाराज ने कैद कर रक्खा था, पर सुनते हैं कि आज कल वह कैद से निकल कर नैपाल प्रांत में चले गए हैं । सन् १८६१ में महाराज को जी.सी.एस.आई. का पद सरकार ने दिया और १८६२ में दत्तक लेने का आज्ञापत्र भी दिया । इन को २१ तोप की सलामी है । दिल्ली दरबार में इनको और भी अनेक आदरसूचक पद मिले हैं । ये संस्कृत विद्या और धर्म के अनुरागी हैं । इनको तीन पुत्र हैं यथा युवराज प्रतापसिंह, कुमार रामसिंह और कुमार अमरसिंह[१] ।

---

१. वर्त्तमान महाराज के परिषदवर्ग भी उत्तम हैं । इन के एक बड़े शुभचिंतक पंडित रामकृष्ण जी को कई वर्ष हुए लोगों ने षड्चक्र कर के राज्य से अलग कर दिया था और अब उन के पुत्र पंडित रघुनाथ जी काशी में रहते हैं । महाराज के अमात्य दीवान ज्वाला सहाय के पौत्र दीवान कृपाराम के पुत्र अनंतराम जी हैं, जो अँगरेजी फारसी आदि पढ़े और सुचतुत हैं । बाबू नीलाम्बर मुकुर्जी, पंडित गणेशचौबे प्रभृति और भी कई चतुर लोग राज्यकार्य में दक्ष हैं ।

राजतरंगिणी की समालोचना

जिस महाग्रंथ के कारण हम लोग आज दिन कश्मीर का इतिहास प्रत्यक्ष करते हैं उसके विषय में भी कुछ कहना यहाँ बहुत आवश्यक है । इस ग्रंथ को कल्हण कवि ने शाके एक हजार सत्तर १०७० में बनाया था । उस समय तीसरे गोनर्द से तेईस सौ तीस बरस बीत चुके थे । इस ग्रंथ की संस्कृत क्लिष्ट और एक विचित्र शैली की है । कवि के स्वभाव का जहाँ तक परिचय मिला है ऐसा जाना जाता है कि वह उद्धत और अभिमानी था, किंतु साथ ही यह भी है कि उसकी गवेषणा अत्यंत गंभीर थी । नीलपुराण छोड़ कर ग्यारह प्राचीन ग्रंथ इसने इतिहास के देखे थे । केवल इन्हीं ग्रंथों के भरोसे इसने यह ग्रंथ नहीं बनाया वरंच आजकल के पुरातत्ववेत्ता (Antiquarian) की भाँति प्राचीन राजाओं के शासनपत्र, दानपत्र तथा शिवालय आदि की लिपि भी इसने देखी थी । (प्रथम तरंग १५ श्लोक देखो) यह मंत्री का पुत्र था, इससे संभव है कि इन वस्तुओं को देखने में इसको इतना परिश्रम न पड़ा होगा जितना यदि कोई साधारण कवि बनाता तो उसको पड़ता । इस ग्रंथ में आठ हजार श्लोक हैं । साढ़े छ सौ बरस कलियुग बीते कौरव-पांडवों का युद्ध हुआ था, यह बात इसी ने प्रचलित की है । जरासंध के युद्ध में कश्मीर का पहला राजा गोनर्द मारा गया । यहाँ से कथा का आरंभ है[1] । इसी आदि गोनर्द के पुत्र को श्रीकृष्ण ने गंधार देश के स्वयंवर में मारा और उस की सगर्भा रानी को राज्य पर बैठाया । उस समय श्रीकृष्ण ने कश्मीर की महिमा में एक पुराण का श्लोक कहा । (१ त. ३२ तक) यही प्रकरण इस बात का प्रमाण है कि कश्मीर का राज्य बहुत दिन से प्रतिष्ठित है । इस रानी के पुत्र का नाम द्वितीय गोनर्द हुआ, जो महाभारत के युद्ध में मारा गया । इसी से स्पष्ट है कि पूर्वोक्त तीनों राजा जवानी ही में मरे, क्योंकि एक पांडवों के काल में तीनों का वर्णन आया है । इन लोगों के अनेक काल पीछे अशोक राजा जैनी हुआ । इसी ने श्रीनगर बसाया । इसके पीछे जलौकराजा प्रतापी हुआ, जिसने कान्यकुब्जादि देश जीता । यह शैव था । (भारतवर्ष में मूर्तिपूजा और शैव वैष्णवादि मत बहुत ही थोड़े काल से चले हैं यह कहने वाले महात्मागण इस प्रसंग को आँख खोल कर पढ़ें (१ त. ११३ श्लो.) । फिर हुष्क, जुष्क और कनिष्क ये तीन विदेशी (Bactro–Indian tribe) राजा हुए । इनके समय में शाक्य सिंह को हुए डेढ़ सौ बरस हुए थे । (१ त. १७२ श्लोक) इससे स्पष्ट होता है कि राजतरंगिणी के हिसाब से शाक्यसिंह को हुए पच्चीस सौ बरस हुए । इसी समय में नागर्जुन नामक सिद्ध भी हुआ । इनके पीछे अभिमन्यु के समय में चंद्राचार्य ने व्याकरण के महाभाष्य का प्रचार किया और एक दूसरे चंद्रदेव ने बौद्धों को जीता । कुछ काल पीछे मिहिरकुल नामक एक राजा हुआ । इसके समय की एक घटना विचारने के योग्य है । वह यह कि इसकी रानी सिंहल का बना रेशमी कपड़ा पहने थी । उस पर वहाँ के राजा के पैर की सोनहली छाप थी । इस पर कश्मीर के राजा ने बड़ा क्रोध किया और लंका जीतने चला । तब लंकावालों ने 'यमुषदेव' नामक सूर्य के बिंब के भापे का कपड़ा दे कर उससे मेल किया । (१ त. ३०० श्लोक) इससे स्पष्ट होता है कि चाँदी सोने से कपड़ा छापना लंका में तभी से प्रचलित था । अद्यापि दक्षिण हैदराबाद में (लंका के समीप) छापा अच्छा होता है । उस समय तक भट्टि

---

१. इस ग्रंथकर्ता के पिता श्रीयुत कविवर गिरिधरदास जी ने अपने जरासंधवध नामक महाकाव्य में जरासंध की सैना में कश्मीर के आदि गोनर्द के वर्णन में कई एक छंद लिखा है वह भी प्रकाश किया जाता है । (३ सर्ग ४० छंद)

चलेउ भूप गोनर्द वर्दवाहन समान बल,
संग लिये बहु मर्द सर्द लखि होत अपर दल ।
फेंटा सीस लपेटा गल मुकुता की माला,
सिर केसर को पुंड्र धरे पचरंग दुसाला ।
रथ चारु जराऊ सोहती रुप सबन मन मोहतो,
कश्मीर भूप भरि रिसि लसी मथुगपुर दिसि जोहतो । ।
(६ सर्ग २५ छंद)

(Bhatti), दारद (Dardareans) और गांधार (Kandharians) ब्राह्मण होते थे।

फिर तुंजीन नामक राजा के समय में चंद्रक कवि ने नाटक बनाया। (२ त. १६ श्लो.) इसके समय में एक बात और आश्चर्य की लिखी है कि एक समय बड़ा काल पड़ा था तो परमेश्वर ने कबूतर बरसाये थे। (२ त. ५१ श्लो.) और हर्ष नामक एक कोई और राजा उस काल में हुआ था। इस राजा के कुछ काल पीछे संधिमान राजा की कथा भी बड़ी आश्चर्य की लिखी है कि वह सूली दिया गया था और फिर जी गया इत्यादि। विक्रमादित्य के मरने के थोड़े ही समय पीछे प्रवरसेन राजा ने नाव का पुल बाँधा और वह ललाट में त्रिशूल की भाँति तिलक देता था (३ त. ३५६ और ३६७ श्लो.)।

जयापीड़ राजा का समय फिर ध्यान देने के योग्य है, क्योंकि इस के समय में कई पंडित हुए हैं, जिनमें शंकु नामक कवि ने मम्म और उत्पल की लड़ाई में भुवनाभ्युदय नामक काव्य बनाया था। (४ त. २५ श्लो.) इसी समय में वामन नामक वैयाकरण पंडित हुआ है जिस की कारिका प्रसिद्ध है। (४ त. ४८७ से ४९४ श्लो. तक) इसी वामन का बोपदेव ने खंडन किया है। (बोपदेव महाग्राहग्रस्तो वामने कुंजर :) इससे बोपदेव जयापीड़ के समय (७५ ई.) के पीछे हुए हैं यह सिद्ध होता है। जयापीड़ ने द्वारका फिर से बसा कर मंदिर बनवाए। (४ त. ५६० श्लो.) और उस समय नैपाल का राजा अरमुड़ि था (४ त. ५२९ श्लो.)।

राजा शंकरवर्मा का समय भी दृष्टि देने योग्य है। इसके पास ३०० हाथी, लाख घोड़े और नौ लाख प्यादे थे। उस समय गुजरात में 'खानाल खान' का जोर था। दरद और तुरुष्क देश के राजा भारत में बड़ा उपद्रव मचाए हुए थे। ललितयशाह खानालखान का सर्दार था (५ त. १५३ से १६० श्लो. तक)। इस ग्रंथ में मुसलमानों का वर्णन पहले यहीं आया है। इससे स्पष्ट होता है कि ईस्वी नवीं शताब्दी के अंत तक जो मुसलमान चढ़ाई करते थे वे गुजरात की राह से करते थे; उत्तर पश्चिम की राह नहीं खुली थी। इस तरंग में कायस्थों की बड़ी निंदा की है (४ त. ६२५ श्लो. से और ५ त. १७९ श्लो. आदि)।

चतुर्थ और पंचम तरंग में कई बात और दृष्टि देने के योग्य है। जैसे ताँबे की 'दीनार' पर राजाओं का नाम खुदा रहना। (४ त. ६२० श्लो.) जहाँ पथिक टिकें उस स्थान का नाम गंज (४ त. ५९२ श्लो.)। रुपयों की हुंडिका (हुंडी) का प्रचार। (५ त. १५९ श्लो.) मेष के ताजे चमड़े पर खड़े होकर तलवार ढाल हाथ में लेकर शपथ खाना इत्यादि (५ त. ३३० श्लो.)। इसी तरंग में गानेवालों का नाम डोम लिखा है। (५ त. ३५८ श्लो.) यह दीनार, गंज, हुंडी और डोम शब्द अब तक भाषा में प्रचलित हैं, वरंच मीरहसन ने भी 'डोमनपना' लिखा है। जैसा इस काल में रंडी[1] और इन की बुढ़िया तथा भड़ुओं के समझने की और साधारण लोग जिस में न समझें ऐसी एक भाषा प्रचलित है, वैसी ही उस काल में भी थी। गाने वाले को हेलू गाँव दिया गया, इसकी उस काल की भाषा हुई 'रंगस्सहेल्लुदिराणा' (५ त. ४०२ श्लो.)।

षष्ठ तरंग में दिद्दारानी का उपद्रव और बहुत से राजाओं के नाम के पूर्व में शाहि पद ध्यान देने के योग्य है।

सप्तम तरंग (५३ श्लो.) में हम्मीर नाम का एक राजा तुंग के समय में और (१९० श्लो.) अनंत के समय में भोज का राजा होना लिखा है। मान के हेतु लोगों को ठाकुर की पदवी दी जाती थी। (७ त. २९ श्लो.) तुरुष्क देश से सोने का मुलम्मा करने की विद्या हर्ष के समय में आई। (७ त. ५३ श्लो.) इसी काल में खस लोगों ने पहले पहल बंदूक का युद्ध किया। (७ त. ९८४ श्लो.) कालिंजर के राजा, राजा उदय सिंह आदि कई राजाओं के प्रसंग से (१३०० श्लो. के आसपास) नाम आए हैं। युद्ध हारने के समय क्षत्रानियां राजपुताने की भाँति यहाँ भी जल जाती थीं। (७ त. १५०० श्लो.)।

---

१. वर्त्तमान काल में रंडियों की भाषा का कुछ उदाहरण दिखाते हैं। नगर की वारवधूगण की संकेत भाषा यथा —लूरा-पुरुष, लूरी-रंडी, चीसा-अच्छा बीला बुरा, भीमटा रुपया आदि। ग्राम्य रंडियों की भाषा यथा-सेरुआ-पुरुष, सेरुइ-स्त्री, कनेरी-रुपया, सेमिल-अच्छा है और छौलिआयल्य : अर्थात् रुपया सब ठग लो।

अष्टम तरंग में भी कायस्थों की बहुत निंदा की है । (८ त. ८९ श्लो. आदि) कैदियों को भाँग से रंग कर कपड़ा पहनाते थे । (८ त. ९३ श्लो.) कल्याण के हेतु लोग भीष्मस्तवराज, गजेंद्रमोक्ष, दुर्गापाठ आदि का पाठ करते थे (८ त. १०६ श्लो.) टकशाल का नाम टंकशाला । (८ त. १५२ श्लो.) उस समय में भी राजाओं को इस बात का आग्रह होता था कि उन्हीं के नाम के सिक्के का प्रचार विशेष हो । इस समय (बारहवीं शताब्दी के मध्य में) कालिंजर का राजा कल्ह था । (८ त. २०५ श्लो.) हर्ष का सिर काट कर लोगों ने भाले पर चढ़ाया, किंतु इसके पहले किसी राजा के सिर काटने की चाल नहीं थी । हर्ष का व्याख्यान इस तरंग में अवश्य पढ़ने के योग्य है, जिससे श्रृंगार, वीर आदि रसों का हृदय में उदय हो कर अंत में वैराग्य आता है ।

राजतरंगिणी में राम लक्ष्मण की मूर्त्ति का पृथ्वी के भीतर से निकलना इस बात का प्रमाण है कि मूर्त्तिपूजा यहाँ बहुत दिन से प्रचलित है ।

इस में देवी, देवता, भूत प्रेत और नागों की अनेक प्रकार की आश्चर्य कथा हैं जिनको ग्रंथ पढ़ने के भय से यहाँ नहीं लिखा । और भी वृक्ष, शस्त्र, औषधि और मणि आदिकों के अनेक प्रकार के वर्णान हैं । कोई महात्मा इस का पूरा अनुवाद करैंगे तो साधारण पाठकों को इस का पूर्ण आनंद मिलैगा ।

इस में एक मणि का वर्णन बड़ा आश्चर्यजनक है । एक बेर राजा नदी पार होना चाहता था किंतु कोई सामान उस समय नहीं था । एक सिद्ध मनुष्य ने जल में एक मणि फेंक दी, उस से जल हट गया और सैना पार उतर गई । फिर दूसरी मणि के बल से इस मणि को उठा लिया । एक कहानी ऐसी और भी प्रसिद्ध है कि किसी राजा की अँगूठी पानी में गिर पड़ी । राजा को उस अमूल्य रत्न का बड़ा शोच हुआ । यह देखकर मंत्री ने अपनी अंगूठी डोरे में बाँधकर पानी में डाली । मंत्री के अँगूठी के रत्न में ऐसी शक्ति थी कि अन्य रत्नों को यह खींच लेती थी, इस से राजा की अँगूठी मिल गई ।

हर्षदेव ।

हर्ष देव के विषय में यद्यपि राज तरंगिणी में कुछ विशेष नहीं लिखा है किंतु इस राजा का नाम भारतवर्ष में बहुत प्रसिद्ध है और एक इस बात की प्रसिद्धि पर कि रत्नावली इत्यादि काव्यग्रंथ उसके समय में बने थे । इस राजा पर मेरी विशेष दृष्टि पड़ी । इस का समय विक्रम और कालिदास के समय के बहुत पीछे स्पष्ट होने से इस बात की मुझको बड़ी चिंता हुई कि वह कौन पुण्यात्मा श्री हर्ष का धावक ने जिसकी कीर्त्ति आचंद्रार्क स्थिर रक्खी है । वह श्री हर्ष निश्चय मम्मट, कालिदासादि के पूर्व और वत्सराज के पश्चात् हुआ है । वंशावलियों में खोजने से कई हर्ष मिले । यथा मालवा के राजाओं में एक हर्षमेघ १९१ ई. पू. हुआ है । यह युद्ध में मारा गया और कोई विशेष कथा इसकी नहीं है । छतरपुर में एक लिपि में श्री हर्ष नाम का एक राजा विहल का पुत्र यशोधर्मदेव का पिता लिखा है । और यह लिपि श्री हर्ष के प्रपौत्र की सं. १०१९ की है । एक श्री हर्ष नैपाल का राजा ३६३१ ई. पू. हुआ है । एक विक्रमादित्य जिस का दूसरा नाम हर्ष था मातृगुप्त के समय में हुआ । शक १००० में एक विक्रम और इस के कुछ ही पूर्व कान्यकुब्ज में एक हर्ष नामक राजा हुआ । कालिदास और श्री हर्ष कवि भी इसी काल में थे । जैन लोगों ने लिखा है कि वाराणसी के जयंतीचंद नामक राजा के दरबार में श्री हर्ष कवि था । (१०८९ शक) यह जैनों का भ्रम है । और हर्षों को छोड़ कर कान्यकुब्ज के हर्ष को यदि धावक कवि का स्वामी मानें तभी कुछ लड़ सब बातों की मिलैगी । जैसा रत्नावली में जिस वत्सराज का चरित है वह कलियुग के प्रारंभ में उरुक्षेप का पुत्र वत्स था । शुनकवंश का प्रथम राजा एक प्रद्योत हुआ है । (३००० ई. पू.) संभव है कि इसी प्रद्योत की बेटी वत्स को ब्याही हो । धावक ने एक उदयन का भी वर्णन किया है । वह पांडवों के वंश की अंतावस्था में हुआ था । यह सब अति प्राचीन हैं । इस से ३६३१ ई०पू. के नैपालवाले श्रीहर्ष के हेतु धावक ने काव्य बनाया है, यह नहीं हो सकता । कन्नौज में जो श्री हर्ष नामक राजा था, जिसकी सभा में श्रीहर्ष नामक कवि का पिता रहता था वही श्री हर्ष धावक का स्वामी था ।

छतरपुर की लिपि का काल १०१९ है । चार पुस्त पहले यह काल ८५० संवत् में जा पड़ेगा । यशोविग्रह के पहले कदाचित् राजविप्लव हुआ हो और श्री हर्ष से यशोविग्रह तक दो एक राजे और हो गए हों तो आश्चर्य नहीं । प्रशस्ति के 'क्ष्मापालमाला सुदिवंगतासु' इस पद से ऐसा झलकता भी है । यशोविग्रह से लेकर जयचंद तक नामों में जितनी प्रशस्ति मिली हैं उन में बड़ा ही अंतर है । जो ताम्रपत्र मैंने देखा है उसका क्रम यह है — यशोविग्रह, महीचंद, चंद्रदेव, मदनपाल, गोविंदेंद्र और जयचंद । जैनों ने इसी जयचंद्र को जयंतीचंद्र लिखा है और काशी का राजा लिखने का हेतु यह है कि ''तीर्थानि काशीकुशिकोत्तरकौशलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयताभिगम्य' इस पद से स्पष्ट है कि काशी भी उस समय कन्नौजवालों के अधिकार में थी, इसी से काशी का राजा लिखा । और जयचंद्र के प्रपितामह या उस के भी पिता के काल में जो श्रीहर्ष कवि था उस को जयचन्द्र के काल में लिख दिया । छतरपुर की लिपि में जो श्रीहर्ष राजा का पुत्र यशोधर्म लिखा है, वही यशोविग्रह मान लिया जाय और जयचंद्र उस के बड़े पुत्र का वंश और छतरपुर की लिपि वाले छोटे पुत्र के वंश में हैं, ऐसा मान लीजिए तो विरोध मिट जायगा । चंद्रदेव ने 'श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमखिलं दोर्विक्रमेनार्जितम्' इस पर से कान्यकुब्ज का राज्य अपने बल से पाया यह भी झलकता है । इससे यह भी संभव है कि श्रीहर्ष का राज्य कन्नौज में शेष न रहा हो और चंद्रदेव ने नए सिरे से राज्य किया हो । यशोविग्रह के वंश की कई शाखा हैं इसका प्रमाण प्रशस्तियों के भिन्न भिन्न नामों ही से है । इस से ऐसा निश्चय होता है कि संवत् ९०० के लगभग जो श्रीहर्ष नामक कान्यकुब्ज का राजा था, उसी के हेतु रत्नावली आदि ग्रंथ बने हैं[१] । कालिदास, विक्रम, भोज सब इस काल के सौ बरस के आस पास पीछे उत्पन्न हुए हैं और इसी से कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में धावक का परिचय दिया है । कल्हण कवि ने जो राजतरंगिणी में कालिदास या इसे श्रीहर्ष का नाम नहीं दिया उसका कारण यही है कल्हण का स्वभाव असहिष्णु था और कालिदास से कश्मीर के राजा भीमगुप्त से (जो ९७५ ई. के काल में राज्य करता था) महा वैर था, इस से उसने कालिदास का या उसके स्वामी विक्रम का नाम नहीं लिखा । कल्हण प्राय : सभी राजाओं की कुछ कुछ निंदा कर देता है, जैसा इसी हर्षदेव की, जिसकी और स्थानों में बड़ी स्तुति है, कल्हण ने निंदा की है । और ग्रंथकारों के मत में श्रीहर्ष बड़ा न्यायपरायण स्वयं महा कवि अति उदार था । पुकार सुनने के हेतु महल की भित्तियों पर घंटियाँ लटकती थीं । रात दिन गुणियों से घिरा रहता था और अंत में संसार को असार जानकर त्यागी हो गया । कल्हण से हर्षराज से द्वेष का यह कारण है कि इस के स्वामी जयसिंह का बाप सुस्सल हर्ष के पोते भिक्षाचर को मार कर राज्य पर बैठा था ।

●

१. पूर्व में तुंजीन के काल में एक हर्ष हुआ है यह लिख भी आए हैं ।

राजसंख्या	नाम राजाओं के	गत कलि	ट्रायर के मत से समय	कनिंगहम के मत से समय	विल्सन के मत से समय	राज्य काल	विशेष वर्णन
१	आदि गोनर्द	६८८।।	०	०	१४०० ई. पूर्व	३५।६	२४४८ ईसवी पूर्व, जरासंघ के युद्ध में बलदेव जी ने मारा, प्रिंसिप के मत से १०४५ ई. पू. नामांतर गोनंद वा अंगद, फारसीवालों के मत से राज्य १७ बरस ; मुसल्मानों का नाम आदि गंद ।
२	दामोदर	७२४	०	०	०	३०	गंधार देश के स्वयंवर में श्री कृष्ण ने इस को मारा और इस की यशोवती रानी को जो सगर्भा थी राज्य पर बैठाया ।
३	बालगोनर्द *	७५४	०	०	०		श्री कृष्ण ने आप आकर राज पर बैठाया, महाभारत के युद्ध में विद्यमान था ।
३८	पैंतीस राजे	१४६४	०	०	०	७१० *	इनके नाम कर्म कुछ भी विदित नहीं, मुसल्मानों के मत से ये पैंतीस नहीं सैंतीस थे और पांडव वंश में थे ।
३९	लव	१४९९	०	०	५७०	३।८	लोलूर बसाया. नामांतर बाललव. मुसल्मानों का लु, लोलूर में बीस लाख अस्सी हज़ार मनुष्यों की बस्ती थी. १७०९ ई. पू. ।

इस चक्र में राजाओं के नाम पर जहाँ * ऐसा चिन्ह दिया है वहाँ समझना चाहिए कि पूर्व वंश समाप्त होकर आगे से नया वंश चला ।

राजसंख्या	नाम राजाओं के	गत कलि	ट्रायर के मत से समय	कनिंगहम के मत से समय	विल्सन के मत से समय	राज्य काल	विशेष वर्णन
४०	कुशेशय	१५०२।८	०	०	०	६०	नामांतर कुश, १६६४ ई. पू. मुसल्मानों का किशन ।
४१	खगेंद्र	१५६२।८	०	०	०	३०।६	१६६० ई. पू. मुसल्मानों के मत से काकापुर और कथ नामक नगर बसाए ,। मुसल्मानो का गुलकन्द ।
४२	सुरेंद्र *	१५९३।२	०	०	०	३५।७	विल्फर्ड के मत से ३७० ई० पू. । मुसल्मानों के मत से पखनपति हकीम को बुलवाया, ईरान के बादशाह बहमन को जीता । निस्संतान मरा । मुसलमानों के मत से इस की बेटी बहमन को व्याही थी ।
४३	गोधर	१६२८।९	०	०	०	६०	१५७३ ई. पू.
४४	सुवर्ण	१६८८।९	०	०	०	६	स्वर्णनदी नाम की नदी पहाड़ खोद कर लाया । मुसल्मानों का बसरन ।
४५	जनक	१६९४।९	०	०	०	७१	१४७७ ई. पू. ।
४६	शचीनर	१७६५।९	०	०	०	६२	मुसल्मानों की संजीनरायन । १४७१ ई. पू. ।
४७	अशोक	१८२७।९	०	०	०	३०	१३९४ ई. पू. यह शचीनर का भतीजा था । श्रीनगर इसी ने बसाया और जैन मत का प्रचार किया । मुसल्मानों ने इस को शुकराज वा शकुनी का बेटा लिखा है । उस काल में श्रीनगर में छ : लाख मनुष्य थे ।
४८	जलौक	१८५७।९	०	०	०	२५	जाति विभाग किया, सप्त प्रकृति स्थापन किया । नंदिपुराण सुना । इसी को और ग्रंथकारों ने पटने के अशोक का पोता लिखा है । यवनराजा यूथिदेयुस को हराया । अन्तिओकस के साथ सुलहनामा किया । बड़ा प्रतापी था । १३३२ ई. पूर्व मुसल्मानों का चकवक ।
४९	दामोदरद्वितीय *	१८८२।९	०	०	०	६०	१३०२ ई. पू. शैवमत का प्रचार हुआ ।

५२ हुष्क, जुष्क और कनिष्क *	१९४३ / ९	०	०	०	३५	१९७७ ई. पू. ये तीनों तुर्क (किंवा तातार) थे किंतु बौद्ध थे । शाक्यसिंह को १५० बरस हुए थे । नागार्जुन सिद्ध इन्हीं के समय में हुआ और बौद्धमत को फैलाया ।
५३ अभिमन्यु	१९७७ /९	०	०	०	३५	मुसल्मानों का अभिगुन वा अभिबलन । १२१७ ई. पू. विल्फर्ड के मत से ४२३ ई. पू. बौद्धों को जीता, नीलपुराण सुना, महाभाष्य का प्रचार हुआ ।
५४ गोनर्द (३)	२०१२ /९	११८२ ई. पूर्व	५३ /३ ई. सन	११८२ ई. पूर्व	४५ /६	प्रिंसिप के मत से १०८ ई. पू., मुसलमानों ने इसका नाम कृष्ण लिखा है । विल्फर्ड के मत से ३८८ ई. पू. नागपूजा चलाया ।
५५ विभीषण	२०५८ /३	११४७	६१ /९	११४७	३० /६	विल्फर्ड के मत से ३७० ई.पू. । मुसल्मानों के मत से पखनपति नाम राज्यकाल ५३ ।६।७।
५६ इंद्रजित	२०८८।९	१०९३।६	७३।१	१०९६	३०।६	वि. ३५२ । मुसल्मान लेखकों ने इन्द्रजित रावण इन दोनों का राज्य ३६ वर्ष लिखा है ।
५७ रावण	२११९।३	१०५८	७३।१	१०६०।६	३५	वि. ३३४. मुसल्मानों ने इसके बेटे बरवाल का नाम और लिखा है और उसका राज्य भी ३५ बरस लिखा है ।
५८ विभीषण(२)	२१५४।३	१०२८	८०।८	१०३०।६	३९।९	वि. ३१६. मुसल्मानों ने लिखा है कि यह त्यागी था । इसका नाम पखनपत था । यह आजाद राजा का बेटा और बड़ा कवि था । पहले इसका ज्येष्ठ पुत्र इंद्रायन गद्दी पर बैठा किंतु उसके दुष्कर्मों से दुखी होकर लोगों ने उसे मार डाला और इसको गद्दी पर बैठाया ।
५९ किन्नर	२१९४	९९२।६	८९।२	९९३	६०	वि. २९८, नामांतर नर, बौद्ध था, मुसल्मानों ने इसको बड़ा क्रूर लिखा है और लिखा है कि दो वर्ष मात्र राज्य किया फिर राज्य कुछ दिन शून्य रहा ।
६० सिद्ध	२२५४	९५२।९	९९।२	९५३।३	३०।६	वि. २८०, मुसल्मानों ने लिखा है कि धाय इसको छिपाये हुए थी ।
६१ उपल	२२८४।६	८९२।९	११४।२	८९३।३	३७।७	वि. २६२, आईनेअकबरी में इसका नाम आदित्य वल्लभ लिखा है । नामांतर उत्पलाक्ष, मुसल्मानों का गुरुदत्त वा पलाशन, यह आँख का कंजा था ।
६२ हिरण्य	२३२२।१	८९२।३	१२१।९	८६२।९	६०	वि. २४४. नामांतर हिरण्याक्ष, मुसल्मानों का तिरन्य ।

६३ हिरण्यकुल	२३८२।१	८२४।८	१३१।२	८२५।२	६०	वि. २२६, मुसल्मानों का हिरणकुल । वि. २१८, आईने अकबरी का एविशाक, बड़ा विषयी था ।
६४ बसुकुल	२४४२।१	७६४।८	१४६।२	७६५।२	७०	वि. २००, ट्रायर के मतसे नाम मुकुल, लंकापर, चढ़ाई की,
६५ मिहिरकुल	२५१२।१	७०४।८	१६३।८	७०५।२	३९	बड़ाक्रूर था, दारद, गांधारों और भाटियों का प्राबल्य हुआ, पहाड़ तोड़ कर हाथियों से ढोंके हटाकर नदी निकलवाई । लंका में राजा का पैर छपा कपड़ा होता था । यह ऐसा क्रूर था कि एक बेर हाथी का पहाड़ पर से गिरना उस को अच्छा मालूम हुआ इस से सौ हाथी पहाड़ा पर से गिरवा दिए । बहुत सी स्त्रियों को भी इसने मार डाला ।
६६ बक	२५४८।१	६३४।८	१७४।८	६३५।२	३०	वि. १८२, मुसल्मानों का जंग । इस को एक स्त्री ने बलि दे दिया ।
६७ क्षितिनंदन	२५७८।१	५७१।८	१८७।८	५७२।२	५२	वि. १६४, क्षितिनंद वा नंदन, मुसल्मानों का आनंदकांत, इसका बेटा कतानंद, उस को बसुनंद हुआ ।
६८ वसुनंद	२६३०।१	५४१।८	१९५।२	५४२।२	६०	वि. १४६,आईने अकबरी का विस्तंद कामशास्त्र बनाया ।
६९ नर(२)	२६९०।१	४८४।६	२०८।२	४९०	६०	वि. १२८, नामांतर बर, आईने अकबरी का निर ।
७० अक्ष	२७५०।१	४२९।६	२२३।२	४३०	६०	वि. १००, आईने अकबरी का अत्र । मुसल्मान इतिहास-लेखकों ने इसका नाम लिखा ही नहीं है ।
७१ गोपादित्य	२८१०।१	३६९।६	२३८।२	३७०	५७	वि. ८२ ई. पू. आईन अकबरी का कुलवती, मुसल्मानों का कोमानंद वैदिक धर्म की उन्नति की ।
७२ गोकर्ण	२८९७।१	३०९।६	२५३।२	३१०	३६।३	वि. ६४ ई पू. आ. अ. का करन ।
७३ नरेंद्रादित्य	२९०३।४	२५१।७	२६९।११	२५३	३४	वि० ४० ई० पू० आ० अ० कर नरेन्द्रावत, मुसल्मानों का नरानंद, नामांतक खिंखिल ।
७४ अंधयुधिष्ठिर *	२९३७।४	२१५।४	२७९	२१६।९	३२	वि. २८ ई. पू. अंधसंज्ञा कमती सूझने से हुई, विषयी था । अंत में राज्य छोड़ कर भाग गया ।

७५ प्रतापादित्य	२९६९।४	१६७।३	२८७।६	१६८।९	३२	वि. १० ई. पू. किसी विक्रमादित्य का नातेदार था । मुसल्मानों के मत से नाम बरनपान है और मालवा से वहाँ जाकर राजा हुआ ।
७६ जलौक (२)	३००१।४	१३५।३	३०३।६	१३६।९	२६	वि. २२ ई. सन आ. अ. का जगुह ।
७७ तुंजीन *	३०२७।४	१०३।३	३१९।६	१०४।९	८	वि. ५४ ई. मुसल्मानों ने इसका नाम शनीचर और इस की रानी का नाम दक्षिणा लिखा है । नामांतर वंजीर । बड़ा भारी काल पड़ा, खजाना सब गरीबों को बाँट दिया । आकाश से लोगों के घर में कबूतर गिरे, बड़ा धर्मात्मा था । चंद्रक कवि ने नाटक काव्य बनाए ।
७८ विजय	३०३५।४	६७।३	३३८।६	६६।९	३७	वि. ९० ई. नामांतर वेजिरी, मुसल्मानों का विजयमल्ल ।
७९ जयेंद्र	३०७२।४	५९।३	३४१।६	६०।९	४७	वि. ९८ ई. नामांतर चंद्रः मुसलमानों का विजयेंद्र ।
८० संधिमान *	३११९।४	२२।३	३६९	२३।९	३४	नामांतर आर्यराज, जयेंद्र का मंत्री था । इसके विषय में यह विचित्र बात प्रसिद्ध है कि फाँसी पड़कर मर कर फिर जिया था । मुहम्मद अजीम ने अपने फारसी इतिहास में लिखा है कि जिस समय संधिमान शूली पर मर गया, उसी काल में राजा भी मर गया । तब प्रजा लोगों ने संधिमान मंत्री के पुत्र अरिराय को राज पर बैठाया और इस भाँति संधिमान के कपाल का लिखा पूरा हुआ । अरिराय विरागी होकर जंगल में चला गया । फिर युधिष्ठिर का पोता गोपाल राजा, जो बड़ा ही सुंदर था, राजा हुआ, अपने ससुर खता के बादशाह की मदद से काश्मीर का राजा हुआ था और सूरत तक जीता ।
८१ मेघवाहन	३१३।४	२४।९ ई. सन	३८३	२३।३	३०	गांधार (कंदहार) का था, वहाँ के राजा गोपादित्य ने इसे पाला था । बौद्धों को बसाया ।
८२ श्रेष्ठसेन	३१८३।४	५८।९	४००	५७।९	३०।२	मुसल्मानों के अनुसार खता के बादशाह की बेटी इसको व्याही थी । इसने प्रत्यक्ष पशु से घृणा करके पिष्ट की चाल चलाई । रुपये को दीनार कहते थे, आईने अकबरी का मेगदहन ।
८३ हिरण्य *(२)	३२१३।६	८८।९	४१५	८७।३	४।९	तोरमान कुमार का प्रतिद्वंद्वी था । मुसलमानों ने लिखा है कि इसका भाई परवाहन इसका मंत्री था ।

८४ मातृगुप्त	३२१८।३	११७।११	४३०	११८।५	६०	विक्रमादित्य ने उज्जैन से भेजा । जाति का ब्राह्मण था । इस विक्रमादित्य का नाम हर्ष था । उस काल में लोग ललाट में त्रिशूल की मुद्रा देते थे । किंतु कालिदास वाला विक्रम नहीं है ।
८५ प्रवरसेन	३२७८।३	१२३।८	४३२।६	१२२।२	३९	यह प्राचीन वंश का था । शिलादित्य नामक गुजरात के राजा से लड़ा । मुसलमानों के अनुसार पुरवाहन का बेटा था । श्रीनगर फिर से बसाया । मुसलमानों ने शिलादित्य को विक्रमादित्य का बेटा लिखा है ।
८६ युधिष्ठिर(२)	३३१७।३	१८३।८	४६४	१८५।२	०।८।१३	मुसल्मान लेखकों मे यहाँ बड़ा भेद है । वे लिखते हैं प्रवरसेन का बेटा चंद्रश्री, उसने ७३ वर्ष ३ महीना राज्य किया, उस का बेटा लक्ष्मण, राज्यकाल ३ बरस उस का बेटा जयादित्य ।
८७ नरेंद्रादित्य	३३१७।११।१३	२०४।११	४८३	२२४।५	३००*	इसी का नामांतर कोई लक्ष्मण मानते हैं वा नंद्रावत ।
८८ रणादित्य	३६१७।११।१३	२१७।११	४९०	२३७।५	४२	इस का राज्यकाल ग्रंथ में तीन सौ वर्ष लिखने से अनुमान होता है कि इसके पीछे के कुछ राजाओं के नाम छूट गए हैं । चोलराज की बेटी ब्याही । मुसलमानों ने लिखा है कि महात्मा मुहम्मद इसी के समय में उत्पन्न हुए थे और इस को राज्य करते जब २५८ वर्ष बीते थे तबवह मक्के से मदीने गए अर्थात सन हिजरी आरंभ हुआ ।
८९ विक्रमादित्य	३६५९।११।१३	५१७।११	५५६।५	५३७।५	३७	
९० बालादित्य*	३६९६।११।१३	५५९।११	५७६।६	५७९।५	३६	गोनर्दवंश का अंतिम राजा, मुसल्मानों का जयानंद । मुसल्मान लेखकों ने लिखा है कि उपलास नामक एक बड़ा पंडित इसके समय में हुआ । इस के पास पच्चीस हजार खासे के घोड़े और तीन लाख सवार और रात को प्रकाश करने वाले लाल थे । मुसल्मानों के अनुसार पहले इसका बेटा चंद्रानंद, फिर उसका भाई रवाजीत, फिर उस से छोटा अलतादित गद्दी पर बैठा ।
९१ दुर्लभवर्धन	३७३२।११।१३	५९७।६	५९४।६	६१५।५	५०	नामांतर प्रज्ञादित्य । कर्कोटक वंश का । यजर्दिर्जिद (Yezdejerd) का समकालीन ।

* तथा रणादित्य के बीच के राजाओं के नाम नहीं मिलते हैं सबका सम्मिलित राज्यकाल तीन सौ वर्ष दिया है । (सं.)

९२ प्रतापादित्य	(२) ३७८२।११।१३	६३३।३	६३०।६	६५१।५	८।८	नामांतर दुर्लभक ।
९३ चन्द्रापीड़	३७९१।७।१३	६८३।३	६८०।६	७०१।५	४।०।२४	नामांतर चंद्रानंद । बहुत धार्मिक था। इसके समय में भी क्षमाविक्रम नाम का कोई राजा था।
९४ तारापीड़	३७९५।८।७	६९१।११	६८९।२	७१०।१	२६।७।११	मुसलमानों का रबाजीत ।
९५ ललितादित्य	३८२२।३।१८	६९५।११	६९३।२	७१४।१	१।०।१५	चमार की एक झोपड़ी मंदिर में पड़ती थी । वह नहीं देता था। राजा ने स्वयं उसको राजी किया । कन्नौज के यशोवर्म से लड़ा । खता और ख़तन तथा बुखारा गुजरात, तिब्बत, बंगाल तक जीता । बड़ा प्रतापी था । पृथ्वी में से राम लक्ष्मण की मूर्ति मिलीं, उनकी प्रतिष्ठा की । सनद और सुलहनामा लिखने की चाल थी । शाहि शब्द सर्दारवाचक था। भवभूति महाकवि इसी के समय में था। इस समय में देवताओं के भीतर द्रव्य भी रहता था । राजा लोग जैन मतवालों का भी आदर करते थे।
९६ कुवलयापीड़	३८२३।४।३	७३२।७	७२९।९	७५०।८	७	मुसल्मानों से गुलाम बेचने की चाल सीखी । मुसल्मानों ने ललितादित्य का बेटा रमा वा रणानंद, उस का पुत्र सगरानंद या शकानंद राजा हुआ, यह क्रम लिखा है और इस के पीछे ललितादित्य का छोटा लड़का प्रहस्त गद्दी पर बैठा । ३१ वर्ष इन तीनों ने राज्य किया । इस के पीछे विजयानंद ४ वर्ष राजा रहा, फिर ३ वर्ष सगरानंद का बेटा रतिकाम राजा रहा और फिर २ वर्ष असदानंद राजा हुआ । करकोटक वंश का यह अंतिम राजा था । इस वंश में २००० वर्ष ५ महीना २० दिन राज्य रहा और जब वह वंश समाप्त हुआ तब हिजरी सन् २०९ था ।
९७ वज्रादित्य *	३८३०।४।३	७३३।७	७३०।९	७५१।८	४।१	
९८ पृथिव्यापीड़	३८३४।५।३	७४०।७	७३७।११	७५८।८	०।०७	
९९ संग्रामापीड़	३८३४।५।१०	७४४।८	७४१।११	७६२।१०	३	

१०० जज्ज *	३८३७।५।१०	७५१।८	७४८।११	७६९।१०	३१	जज्ज जयापीड़ का साला था। जब जयापीड़ परदेश गया तब वह राज्य पर बैठ गया।
१०१ जयापीड़	३८६८।५।१०	७५४।८	७५१।११	७७२।१०	१२	गौरदेश के जयंत राजा की बेटी व्याही। गुजरात के राजा भीमसेन को जीता। विद्या का प्रचार किया। ८४१ महाभाष्य की पुस्तक मँगाई। क्षीर और उद्‌भट पंडित तथा मनोरथ, शंखदत्त, चटक, संधिमान और वामन इत्यादि इस के सभा के कवि थे। द्वारका नगर बसाया और मूर्ति स्थापना की। ताँबे के दीनार अपने नाम के चलाए। उस समय नैपाल का राजा अरमूड़ि था। शंभुकवि ने भुवनाभ्युदय नामक काव्य मम्म और उत्पल की लड़ाई का बनाया। इस का नामांतर विजयादित्य था। लोग गंजों में टिकते थे।
१०२ ललितापीड़	३८८०।५।१०	७५८।८	७८२।११	८०३।१०	७	
१०३ संग्रामापीड़	(२) _३८८७।५।१०	७९७।८	७९४।११	८१५।१०	१२	नामांतर पृथिव्यापीड़।
१०४ वृहस्पति *	३८९९।५।१०	८०४।८	८०१।११	८२२।१०	३६	नामांतर चिप्पटजय। वेश्यापुत्र था। इसके पाँच भाइयों ने इस के नाम से राज चलाया।
१०५ अजितापीड़	३९३५।५।१०	८१६।८	८१३।११	८३४।१०	३	इन्हीं लोगों ने राज्य पर बैठाया।
१०६ अनंगापीड़	३९३८।५।१०	८५२।८	८४९।११	८७०।१०	३१	
१०७ उत्पालपीड़ *	३९६९।५।१०	८५५।८	८५२।११	८७३।१०	२७	कर्कोटकवंश का अंतिम राजा।
१०८ आदित्यवर्मा	३९९६।५।१०	८५७।८	८५४।११	८७५।१०	१८	नामांतर अवंतिवर्मा। बड़ा काल पड़ा। बहुत से इतिहासवेत्ताओं का निश्चय है कि जालंधर के यादव राजाओं से इस का वंश निकला है। मुसल्मानों ने लिखा है कि यह सखतवर्मा (शक्तिवमा) _ का पुत्र था और अपने रिश्तेदार शिववर्मा मंत्री की सहायता से गद्दी पर बैठा। इस का राज्य अट्ठाईस बरस तीन महीना तीन दिन।

१०९ शंकरवर्मा	४०१४।५।१०	८८६।८	८८३।२	९०४।१	२		गुर्ज्जर और भोज से लड़ा। बड़ा उद्धत था। नामांतर श्रीवस्मा या शिववर्मा। मु. राज्यकाल १७ बरस ७ महीना १९ दिन।
११० गोपालवर्मा	४०१६।५।१०	९०४।८	९०१।१०	९२२।९	०।०।२०		जवानी में मारा गया। इस का मंत्री प्रभाकरदेव बड़ा लोभी था। इसने अपने जामाता लकुज को शाहराज की पदवी देकर बड़े पद पर पहुँचाया किन्तु यही पीछे से राजा मंत्री दोनों की मृत्यु का कारण हुआ।
१११ संकटवर्मा *	४०१६।६।०	९०६।८	९०३।१०	९२४।९	२		वर्मवंश का अंतिम राजा। मुसल्मानों के मत के अनुसार यह गोपालवर्मा का वास्तविक भाई नहीं था, मुँहबोला भाई था।
११२ सुगंधारानी	४०१८।६	९०६।९	९०३।१०	९२४।९	१०		पार्थ को राज्य पर बैठाया। शंकरवर्मा की स्त्री थी।
११३ पार्थ	४०२८।६	९०८।८	९०५।१०	९२६।९	८		तातारी और एकांग जाति ने उपद्रव किया। निर्जितवर्मा का पुत्र था।
११४ निर्जितवर्मा	४०३६।६	९२४।९	९२०।१०	९४१।९	१४		पंगु था।
११५ चक्रवर्मा	४०५०।६	९२५।९	९२१।१०	९४२।९	१		जातियुद्ध हुआ, राजचक्र में बड़ा गड़बड़ हुआ।
११६ सूरवर्मा या शूरवर्मा	४०५१।६	९३६।९	९३१।१०	९५२।९	५		मुसल्मानों का शिववर्मा।
११७ पार्थवर्मा	४०५६।६	९३७।९	९३२।१०	९५३।९	०		फिर से गद्दी पर बैठा।
११८ चक्रवर्मा	४०५६।६	९३८।९	९३३।४	९५४।३	०		फिर से बैठा।
११९ शंकरवर्धन	४०५६।६	९३९।३	९३३।१०	९५४।८	०		राजतरंगिणी में इस का नाम नहीं है। मुसल्मानों ने इस का नाम शंकर दास लिखा है और लिखा है कि यह बड़ा ही क्रूर था।
१२० चक्रवर्मा	४०५६।६	९३९।७	९३५।४	९५६।३	२		तीसरी बेर गद्दी पर बैठा।
१२१ उन्मत्तवर्मा	४०५८।६	९३९।११	९३६।८	९५७।७	१		अवंतिवर्मा नामांतर।
१२२ शूरवर्मा (२)	*४०५९।६	९४१।११	९३८।१०	९५९।८	९		
१२३ यशस्करदेव (तथा) (वर्णद)	४०६८।६	९४२	९३९	९६०	०।६।०		इसके पीछे वर्णट ने ६ दिन राज्य किया। प्रभाकरदेव का पुत्र था। बड़ा ही उत्तम राजा हुआ है अंत में फकीर हो गया

						कहते हैं कि मम्मट इस समय में था । मुसल्मान लेखकों ने लिखा है कि संग्रामदेव का लड़का अमान था । इस को इसकी मा ने मार डाला । उस का पुत्र एक बरस राज कर के दादी के डर से फकीर हो गया । फिर तृभुवनगुप्त और बहमन (भीमगुप्त) — गद्दी पर बैठे पर इन की दादी ने इन को मार डाला । फिर विग्रहदेव राजा हुआ । यह दिद्दा का भतीजा था । इस को भी नृसिंहराय नामक दिद्दा के साधक वज़ीर ने मार डाला ।
१२५ संग्रामदेव *	४०६९	०	९४८	९६९	१।४।०	पर्वगुप्त ने मार डाला ।
१२६ पर्वगुप्त	४०७०।४	९५१	९४८	९६९	४।६	सुरेश्वरी क्षेत्र में मारा गया ।
१२७ क्षेमगुप्त	४०७४।१०	९५२	९५०	९७१	१३।१०	बौद्धों के बहुत से बिहार तोड़ डाले । किसी के मत से आठ बरस ।
१२८ अभिमन्युगुप्त	४०८८।८	९६१	९५८	९७९	११	
१२९ नंदिगुप्त	४०८९।९	९७५	९७२	९९३	४	इस की दादी दिद्दारानी ने इस को मार डाला ।
१३० त्रिभुवनगुप्त	४०९४।९	९७६	९७३	९९४	५	तथा ।
१३२ भीमगुप्त	४०९९।९	९७८	९७५	९९६	२३	भूवाचार्य और पिचुल पंडित इस की सभा में थे ।
						कालिदास तथा श्रीहर्षादि कवि और एक विक्रम भी इसी के समय में थे । अर्थात् इस समय से हर्ष के राज्यारंभ तक कवियों के उदय का काल था ।
१३३ दिद्दा	४१२२।९	९८२	९८०	१००१	२४	पूर्वोक्त तीनों को मार कर राज पर बैठी ।
१३४ संग्रामदेव	४१४६।९	१००६।९	१००३।६	१०२४।७	५२।४।७	इसके काल में हम्मीर नामक तुर्क ने चढ़ाई की और हार पाई ।
१३५ हरिराज और अनंतदेव	४१९९।१।७	०	१०२८	१०३२	८।१	सोमदेव ने वृहत्कथा में अनंत का पिता संग्रामदेव लिखा । हरि ने २२ दिन मात्र राज्य किया था, फिर अनंत राजा हुआ । अनंत ने फौज के लोगों को एक बेर ९२ करोड़ काश्मीरी रुपया बाँटा था ।

१३६ कलश	४२०७।२।७	०	१०८०	१०५४	०।०।२३	मुसल्मानों का गुलशन । विल्हण ने अपने विक्रमांक चरित में इस की बड़ी स्तुति लिखी है । इसकी माता का नाम सुभटा और मामा का नाम लोहराखण्डल क्षितपति था । ये लोग वैष्णव उदार और पंडित थे ।
१३८ उत्कर्ष और हर्ष *	४२०७।३	०	१०८८	१०६२	१०।४।२	बिल्हण ने इन का एक भाई विजयमल्ल नामक और लिखा है । सोमदेव ने वृहत्कथा इसी के समय में बनाई । और लेखकों के मत से इस ने १२ वर्ष राज्य किया था । चालुक्य वंश में एक विक्रम उस समय भी था । और लेखकों का मत है कि यह पिता पुत्र भाई सब एक काल में जुदा जुदा राज्य बाँटकर करते थे । मुसल्मानों ने लिखा है कि १२०० मशालें नित्य इस की सभा में बलती थीं और बड़ा ही न्यायी था ।
१३९ उदयन विक्रम *	४२१७।७।२	०	११००	१०६२	०	हर्ष से राज्य पाया । नामांतर उद्दाम विक्रम वा उच्चल । मुसल्मानों का वाजिल ।
१४० शंखराज	४२१७।७।२	०	११००	१०५२	०।१।२०	उच्चल को मार कर राज पर बैठा । नामांतर रड्ड । इस को उच्चल के भाई सुस्सल ने मार डाला । मुसल्मानों ने इसका नाम द्रैन लिखा है ।
१४१ सल्ह	४२१७।८।२२	०	१११०	१००२।०	१६	इन राजाओं के समय में बड़ी लड़ाई हुई । मुसल्मानों ने इस का नाम असस और इसके भाई का नाम एजिल लिखा है ।
१४२ सुसल्ह	४२३३।८।२२	०	११११	१०७२	०।६।०	मल्लदेव का छोटा बेटा उच्चल का भाई ।
१४३ भिक्षाचर *	४२३४।२।२२	०	११२७	१०८८	२२	
१४३ जयसिंहदेव	४२५६।२।२२	०	११२७	१०८८	९।६	मुसल्मानों का जैनक । मुसल्मानों ने इस के राज्य का अंत ५३५ हिजरी में लिखा है । राजतरंगिणी बनी । शाके १०७० में यहाँ तक पूरा हिसाब करने से गत कलि ईसवी हिजरी संवत् शाका सब दश पंद्रह बरस के हेरफेर में ठीक हो जाते हैं ।

१४५ परमान	४२६५।८।२२	०	११४९	१११०	७	
१४६ वन्दिदेव	४२७२।८।२२	०	११५९	१११९	९	
१४७ पोप्यदेव	४२८१।८।२२	०	११६६	११२६	२५	
१४८ जस्सदेव	४३०६।८।२२	०	११७५	११३५	१४	पोप्यदेव का भाई था, खब्ती था, किसी के मत से १८ बरस ।
१४९ जगदेव	४३२०।८।२२	०	११९३	११७३	२३	
१५० राजदेव	४३४३।८।२२	०	१२०८	११६७	१६	
१५१ संग्रामदेव	४३५९।८।२२	०	१२३१	११९०	२१।१	
१५२ रामदेव	४३८०।९।२२	०	१२४७	१२०६	३।६।२	
१५३ लक्ष्मणदेव *	४३८४।३।२४	०	१२६८	१२२७	१४।४	
१५४ सिंहदेव *	४३९८।७।२४	०	१२८१	१२६१	१९	
१५५ सिंहदेव * (२)	४४१७।७।२४	०	१२९२	१२७०	३।२	
१५६ श्रीरिंछण *	४४२०।९।२४	०	१३१८	१२९४	१६।१	ट्रायर के मत से नाम उदयदेव, भोटवंश का ।
१५७ कोटारानी	४४३६।१०।२४	०	१३३४	२२९४	३।५।०	रिंछन सुलतान के काल में द्वितीय कालस्वरूप दुल्लच नामक मुगल ने (जो न मुसल्मान था न हिंदू) कश्मीर में प्रवेश करके वहाँ के नगर, मंदिर, अट्टालिका, बगीचा सब निर्मूल कर दिया और मनुष्यों को घास की भाँति काट कर देश उजाड़ कर दिया । मानों आर्यों का राज्य नाश होता है यह समझ कर ईश्वर ने कश्मीर की प्राचीन शोभा ही शेष नहीं रक्खी । फिर कोटारानी के साथ उसके पालित दास शाहमीर ने विश्वासघात और कृतघ्नता करके अपने को राजा बनाया और कोटा से विवाह करने को बिचारी को तंग किया । पहले कोटा भागी किन्तु पकड़ आने पर ब्याह करना स्वीकार किया । ब्याह की महफिल सजी गई । जब दुलहिन श्रृंगार करके निकाह पढ़ाने आई, साथ में कटार छिपाकर लाई । ठीक विवाह के समय कटार पेट में मारकर

						मर गई । अंत समय कहा 'ले विश्वासघातक जिस शरीर को तू चाहता है यह तेरे सामने है !!! हिन्दुओं का राज्य इसी के साथ समाप्त हुआ । कुछ कम चार हजार बरस आर्य लोगों ने कश्मीर का भोग किया ।
१५८ शाहमीर	४४४१।०।२४	०	१३३४।६।१०	०	१।११	नामांतर शमसुद्दीन ।
१५९ जमशैद	४४४२।११।२४		१३३७।५		१२	
१६० अलाउद्दीन	४४५४।११।२४		१३३९।४		१८	
१६१ शहाबुद्दीन	४४७२।११।२४		१३५२।०।२३		१६	
१६२ कुतुबुद्दीन	४४८८।११।२४		१३७०।०।२३		२४	
१६३ सिकंदर	४५१२।११।२४		१३८६।०।२३		७	तैमूर का आना । यह ऐसा कट्टर मुसल्मान था कि केवल कश्मीर के प्राचीन मंदिर ही नहीं तोड़े, अपने सारे कश्मीर मंडल में संस्कृत के जितने ग्रंथ मिले सब को दीवार की नेव में डाल दिया !!! हा ! आज वे ग्रंथ होते तो न जाने क्या क्या बात हम लोग जानते ।
१६४ अलीशाह	४५१९।११।२४	०	१४१०।०।२३	०	५०	फ़कीर हो कर मक्के चला गया । कोई कहता है कि जैनुलाबदीन की कैद में मरा ।
१६५ जैनुलाबदीन	४५६९।११।२४		१४१७।०।२३		२	नामांतर बड्शाह व शाही खाँ । पंचाइत की अदालत (Local Self-Government) जारी किया ।
१६६ हैदरशाह	४५७१।११।२४		१४६७।०।२३		१२	बड़ा विषयी था। दीवार के नीचे दब कर मर गया ।
१६७ हसन	४५८३।११।२४		१४६९।०।२३		२	बड़ा विषयी था ।
१६८ मुहम्मद	४५८५।११।१४		१४८१।०।२८		११	
१६९ फतहशाह	४५६९।११।१४		१४८३।७।२८		३१	
१७० मुहम्मद (२ बेर)	४६२७।११।२४		१४९१।७।२८		२२	
१७१ फतह (३ बेर)	४६४९।११।२४		१५१३।५।७		१	
१७२ मुहम्मद (३ बेर)	४६५०।११।२४		१५१४।५।७		३	
१७३ फतह (२ बेर)	४६५३।११।२४		१५१७।५।७		३	

१७४ मुहम्मद (४ बेर)	४६५६।११।२४		१५२०।५।७		७	
१७५ नाजुकशाह	४६६४		१५२७।५।७		३	
१७६ मुहम्मद (५ बेर)	४६६७		१५३०।५।७		७	
१७७ नाजुकशाह (२ बेर) २ बेर	४६७४		१५३७।५।७		४	शम्सुद्दीन, इस्माइलशाह, इबराहीमशाह, हबीबशाह, अलीशाह और ग़ाज़ीशाह इतने बादशाहों के नाम यहाँ भिन्न भिन्न तवारीखों में और मिलते हैं ।
१७८ मिरज़ाहैदर	४६७८		१५४१।५।७		०	शीओं को बड़ी दुर्दशा से मारा । नाजुकशाह के नाम से राज्य करता रहा ।
१७९ हुमायूँ	४६७८		०		११	बीच में हुमायूँ के समय से उस के मरने तक कामराँ का काश्मीर में आना और उपद्रव करना और अनेक उपद्रवों में २५ या ३० वर्ष काल नष्ट हुआ ।
१८० ग़ाज़ीशाह	४६८९				६	मुसल्मानों के मत से नौ बरस, राजावली में ६ वर्ष । और लोगों का राज्य स्फुट रहा ऐसा लिखा है ।
१८१ हुसैनशाह	४६९५				९	
१८२ अलीखाँ आदिलशाह	४७०४				१	
१८३ युसुफ़शाह *	४७०५				१	
१८४ सैयदमुबारकखाँ	४७०६				०।२	
१८५ लोहरशाह	४७०६				३	राजावली में लोहर के पुत्र याक़ूब का राज्य एक वर्ष लिखा है ।
१८६ युसुफ़शाह (२ बेर)	४७०९				१	
१८७ याक़ूबशाह	४७१०				०	राजा भगवान दास से लड़ कर अपने नाम का सिक्का जारी किया ।
१८८ हुसैनशाह *	४७१०				०	
१८९ शमसी चक *	४७११				१९	

१९० अकबर	४७३०				२२	१५८३ में अकबर ने कश्मीर लिया । इस प्रसिद्ध और बुद्धिमान बादशाह की कहानी संसार में प्रसिद्ध है ।
१९१ जहाँगीर	४७५२				२२	सन् १६०५ में तख़्त पर बैठा, १६२७ ई. में मरा ।
१९२ शाहजहाँ	४७७४				३१	१६२८ में तख़्त पर बैठा, १६५९ में औरंगजेब ने कैद किया । १६६४ में मरा ।
१९३ औरंगजेब	४८०५				४८	१७०७ में मरा ।
१९४ मुअज़्ज़मबहादुर शाह शाहआलम	४८३६				५	औरंगजेब के पीछे मुसल्मानों का राज्य शिथिल हो गया इससे कई बादशाह हुए । सब नाम यथाक्रम लिए जाँय तो पहले आज़िम, फिर मुअज़्ज़म जहाँदारशाह फर्रुख़सियर, रफीउल्दरजात, रफीउल्दौलत, निकोसियर, मुहम्मदशाह, इबराहीमशाह, अहमदशाह, आलमगीरसानी, शाहजहाँ, शाहआलम, बेदारबख़्त, अकबरसानी और बहादुर शाह ये नाम होंगे ।
१९५ जहाँदारशाह	४८३७				१	
१९६ फ़रुख़सियर	४८४३				६	
१९७ मुहम्मदशाह *	४८६३·				२०	१७१९ में तख़्त पर बैठा । *
१९८ नादिरशाह *	४८७८				१५ +	सन् ११५१ हिजरी में नादिरशाह का खुतबा कश्मीर में पढ़ाया गया किन्तु नादिर के मरने पर कश्मीर फ़िर कुछ दिन गड़बड़ में रहा । ११६१ हिजरी में अहमद शाह के वजीर असमतुद्दीन ख़ाँ ने चढ़ाई की थी पर हार गया ।
१९९ अहमदशाह *	४८७९				१	११६६ हिजरी में पूरी तरह कश्मीर अहमद के अधिकार में आया ।
२०० राजासुखजीवन *	४८८७				८	इसने बागी होकर आठ वर्ष चार महीने राज्य किया ।
२०१ अहमदशाह (२ बेर)	४८९६				९	११७५ हिजरी में फिर अहमदशाह की सेना ने जीता । महानंद पंडित और कैलाश पंडित नाम इसके दीवानों ने

							प्रबंध किया। ११७९ में बड़ी बड़ी लड़ाई हुई।
२०२ तैमूरशाह *	४९२०					२०	११८४ में गद्दी पर बैठा। ३ महीने बड़ा भूकंप हुआ। पहले वजीर ने बड़ा उपद्रव किया, बहुत से लोग जल में डुवा दिये। तब पंडित दिलाराम नामक बड़ा बुद्धिमान यहाँ का सूबा हुआ। यह बड़ा बुद्धिमान था। अंत में पहले वज़ीर के बेटे को फिर सूबेदारी मिली और इसने भी बाप की भाँति महा अनर्थ किया।
२०३ ज़माँशाह	४९४६					२६	१२०८ हिजरी में गद्दी पर बैठा। दीवान नंदराम कश्मीर का सूबेदार हुआ।
२०४ सुलतानमहमूद						०	इन दोनों के काल का विशेष वृत्त नहीं ज्ञात हुआ। जमाँशाह के २६ वर्ष में इन दोनों का भी समय समझना चाहिये। *
२०५ शाहशुजा *						०	महाराज रणजीतसिंह ने कोहनूर हीरा इसी से लिया था।
२०६ महाराजरणजीतसिंह	४९४६					२१	१२३४ हिजरी अर्थात् १८१८ ईस्वी १८७५ संवत् में कश्मीर जीता। कश्मीर जीतने की तारीख। बोलो जी वाह गुरूजी का खालसा, बोलोजी वाह गुरूजी की फतेह।
२०७ महाराजखड्गसिंह	४९४७					१।४	१८९६ संवत् में महाराजा रणजीतसिंह मरे और ये राज पर बैठे।
२०८ कुँअरनौनिहालसिंह	४९४७					०।०।१	ये अपने पिता की क्रिया करके आये उसी समय पत्थर के नीचे दबकर मर गये।
२०९ महाराजशेरसिंह	४९५०					३	इनको सिंघावालों ने मार डाला।

*तैमूरशाह (सन् १७७३-९३), जमाँशाह (सन् १६९३-१८०० ई.) सन् १८१८ ई. में रणजीतसिंह के कश्मीर विजय करने तक महमूद, दोस्त महम्मद और शुजा का समय है। (सं.)

२१० महाराजदलीपसिंह	४९५२					२	बालक अवस्था में नाममात्र को राजा थे। अब विलायत में पेनशिन पाते हैं ।
२११ राजराजेश्वरी विक्टोरिया *	४९५२					०।०।७	सन् १८४६ ईस्वी संवत् १९०२ में सर्कार ने पंजाब जीता । सात दिन मात्र कश्मीर सर्कार के अधिकार में रहा । १८४६ ईस्वी के १६ मार्च को सर्कार से कश्मीर इन्होने पाया । *
२१२ महाराजगुलाबसिंह	४९६३					११	
२१३ महाराजरणबीर सिंह	४९७०						संवत् १९१४ में महाराज गुलाबसिंह के मरने पर ये राजा हुए अब कश्मीर का रकबा २५००० और आमदनी ५०००० समझी जाती है ।

* सन १८३९ ई. में रणजीत सिंह कीं मृत्यु हुई और सात वर्ष बाद गुलाब सिंह राज हुए । (पं.)

बादशाहदर्पण

अर्थात्

[हिन्दुस्तान के मुसल्मान बादशाहों के समय और जन्म आदिक मुख्य बातों के वर्णन का चक्र]

इसमें मुसलमान राजाओं का वृतान्त है। अनेक ऐसी भी बातें हैं जिनका वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यह सन् १८८४ में पहली बार छपा है। अकबर ने काश्मीर के एक हिन्दू मन्दिर का जिर्णोद्धार करा उस पर आज्ञा खुदवायी थी वह भी इस ग्रन्थ में प्रकाशित है। — सं.

भूमिका

रामायण में भगवान बाल्मीकिजी ने कहा है जो वस्तु हुई हैं नाश होंगी, जो खड़ी हैं गिरेंगी, जो मिले हैं बिछुड़ेंगे, और जो जीते हैं अवश्य मरेंगे। सच है इस जगत की गति पहिए की आर की भाँति है। जो आर अभी ऊपर थी नीचे गई और जो नीचे थी ऊपर हो गई। आधीरात को सूर्य का वह प्रचंड तेज कहाँ है जो दोपहर को था? दिन की ठंडी किरनों से जी हरा करने वाला चंद्रमा कहाँ है? संसार की यही गति है। जो भारतवर्ष किसी समय में सारी पृथ्वी का मुकुटमणि था, जिसकी आन सारा संसार मानता था और जो विद्या वीरता और लक्ष्मी का एक मात्र विश्राम था वह आज हीन दीन हो रहा है — यह भी काल का एक चरित्र है।

जब से यहाँ का स्वाधीनता सूर्य अस्त हुआ उसके पूर्व समय का उत्तम श्रृंखलाबद्ध कोई इतिहास नहीं है। मुसल्मान लेखकों ने जो इतिहास लिखे भी हैं उनमें आर्यकीर्ति का लोप कर दिया है। आशा है कि कोई माई का लाल ऐसा भी होगा जो बहुत सा परिश्रम स्वीकार कर के एक बेर अपने 'बाप दादों' का पूरा इतिहास लिख कर उनकी कीर्ति चिरस्थायी करेगा।

इस ग्रंथ में तो केवल उन्हीं लोगों का चरित्र है जिन्होंने हम लोगों को गुलाम बनाना आरंभ किया। इस में उन मस्त हाथियों के छोटे छोटे चित्र हैं जिन्होंने भारत के लहलहाते हुए कमलवन को उजाड़ कर पैर से कुचल कर छिन्न भिन्न कर दिया। मुहम्मद, महमूद, अलाउद्दीन, अकबर और औरंगज़ेब आदि इन में मुख्य हैं।

प्यारे भोले भाले हिन्दू भाइयो ! अकबर का नाम सुनकर आप लोग चौंकिए मत । यह ऐसा बुद्धिमान शत्रु था कि उसकी बुद्धि-बल से आज तक आप लोग उस को मित्र समझते हैं । किन्तु ऐसा है नहीं । उस की नीति (Policy) अँगरेजों की भाँति गूढ़ थी । मूर्ख औरंगज़ेब उसको समझा नहीं, नहीं तो आज दिन हिन्दुस्तान मुसल्मान होता । हिन्दू-मुसल्मान में खाना पीना ब्याह शादी कभी चल गई होती । अँगरेज़ों को भी जो बात नहीं सूझी वह इस को सूझी थी ।

यद्यपि उस उर्दू शैर के अनुसार 'बाग़बाँ आया गुलिस्ताँ में कि सैयाद आया । जो कोई आया मेरी जान को जल्लाद आया ।' क्या मुसल्मान क्या अँगरेज़ भारतवर्ष को सभी ने जीता, किन्तु इन में उनमें तब भी बड़ा प्रभेद है । मुसल्मानों के काल में शत सहस्त्र बड़े बड़े दोष थे किन्तु दो गुण थे । प्रथम तो यह कि उन सबोंने अपना घर यहीं बनाया था इससे यहाँ की लक्ष्मी यहीं रहती थी । दूसरे बीच बीच में जब कोई आग्रही मुसल्मान बादशाह उत्पन्न होते थे तो हिन्दुओं का रक्त भी उष्ण हो जाता था इससे वीरता का संस्कार शेष चला आता था । किसी ने सच कहा कि मुसल्मानी राज्य हैज़े का रोग है और अँगरेजी क्षयी का । इनकी शासनप्रणाली में हम लोगों का धन और वीरता नि :शेष होती जाती है । बीच में जाति-पक्षपात, मुसल्मानों पर विशेष दृष्टि आदि देख कर लोगों का जी और भी उदास होता है । यद्यपि लिबरल दल से हमलोगों ने बहुत सी आशा बाँध रक्खी है पर वह आशा ऐसी है जैसे रोग असाध्य हो जाने पर विषवटी की आशा । जो कुछ हो, मुसल्मानों की भाँति इन्होंने हमारी आँख के सामने हमारी देवमूर्त्तियाँ नहीं तोड़ीं और स्त्रियों को बलात्कार से छीन नहीं लिया, न घास की भाँति सिर काटे गए और न जबरदस्ती मुँह में थूक कर मुसल्मान किए गये । अभागे भारत को यही बहुत है । विशेषकर अँगरेज़ों से हम लोगों को जैसी शुभ शिक्षा मिली है उसके हम इनके ऋणी हैं । भारत कृतघ्न नहीं है । यह सदा मुक्तकंठ से स्वीकार करेगा कि अँगरेजों ने मुसल्मानों के कठिन दंड से हमको छुड़ाया और यद्यपि अनेक प्रकार से हमारा धन ले गए किन्तु पेट भरने को भीख माँगने की विद्या भी सिखा गए ।

मेरे प्रमातामह राय गिरधरलाल साहब, जो यावनी विद्या के बड़े भारी पंडित और काशीस्थ दिल्ली के शहज़ादों के मुख्य दीवान थे, उन की इच्छा से दिल्ली के प्रसिद्ध विद्वान सैयद अहमद ने एक ऐसा चक्र बनाया था, जिसमें तैमूर से लेकर शाहआलम तक सब बादशाहों के नाम आदि लिखे थे । उस फारसी ग्रंथ से इस में बहुत सी बातें ली गई हैं, इस कारण तैमूर के पूर्व के बादशाहों का वर्णन इतना पूरा नहीं है जितना तैमूर के पीछे है । फिर मेरे मातामह राय खिरोधरलाल ने बहादुरशाह के काल के आरंभ तक शेष वृत्त संग्रह किया । और और बातें और स्थानों से एकत्र की गई हैं । इसमें परंपरागत बहुत से बादशाहों के नाम हैं जो और इतिहासों में नहीं मिलते ।

यद्यपि इस से कुछ विशेष उपकार नहीं है किन्तु हम लोगों को इस से बहुत सा कौतूहल शांत होगा जब हमलोग इस में बादशाहों की माता आदि के नाम जो अन्य इतिहासों में नहीं है, पढ़ेंगे ।

नंबर	नाम बादशाहों का	बाप का नाम	जाति	राज्य पाने का समय	अवस्था	मरने का समय	मृत्यु का कारण	विवरण
१	कुतुबुद्दीन ऐबक	०	गोरी बादशाहों का दास	१२०६	बूढ़ा होकर मरा	१२१०	घोड़े से गिर कर	पहले शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी का गुलाम था। सन् ११९३ में जब पृथ्वीराज से दिल्ली ली तब मुहम्मद इसी को यहां का राज दे गया। यही गुलाम हिन्दुओं की गुलामी का मूल है। (सन् १२०६ में मुहम्मद मरा। सं.)
२	आरामशाह	कुतुबुद्दीन	०	१२१०	नहीं मालूम	०	०	साल भर तख्त पर नहीं रहा कि शमसुद्दीन अलतिमश ने उतार दिया।
३	शमशुद्दीन अलतिमश	०	०	१२१०	०	१२३६	स्वाभाविक	बहुत देश जीते। चंगेजखां इसीके काल में आया।
४	रुकनुद्दीन फीरोजशाह	शमसुद्दीन अलतिमश	०	१२३६	०	०	०	सात ही महीने तख्त पर रहा। बड़ा विषयी और निकम्मा था।
५	रज़िया बेगम	तथा	०	१२३६	०	१२३९	मारी गई	बड़ी सावधान थी। हबशी गुलाम पर विशेष कृपा करने के कारण लोगों ने मार डाला।
६	मुईजुद्दीन बहराम	तथा	०	१२३९	०	१२४१	कैद में मरा	बड़ा मूर्ख था।
७	अलाउद्दीन मसऊद	फीरोज़शाह	०	१२४१	०	१२४६	मारा गया	
८	नासिरुद्दीन महमूद	अलतिमश	०	१२४६	बूढ़ा होकर मरा	१२६६	स्वाभाविक	बहुत अच्छे स्वभाव का था।
९	ग़यासुद्दीन बलबन	०	०	१२६६	८० वर्ष	१२८८	०	महमूद का बहनोई था।
१०	मुईजुद्दीन कैकुबाद	कुराखां (बलबन का बेटा)	०	१२८६	२० वर्ष	१२८८	मारा गया	मूर्ख था।
११	जलालुद्दीन फीरोजखिलजी	०	खिलजी पठान	१२८८	बूढ़ा	१२९५	तथा	सीधा था।

१२	अलाउद्दीन	जलालुद्दीन का भतीजा	तथा	१२९५	अधेड़	१३१६	स्वाभाविक	बड़ा दुष्ट था। पहले अपने बूढ़े चाचा को मरवाया फिर अनेक पाप किए। चित्तौर, रणथम्भौर, प्रथम विश्वनाथ का मन्दिरादि इसी चांडाल ने तोड़ा। बड़ा ही क्रूर और उपद्रवी था।
१३	कुतुबुद्दीन मुबारकशाह	अलाउद्दीन	तथा	१३१६	०	१३२१	हिन्दू गुलाम के हाथ मारा गया	बाप की भाँति गोत्रहंता और क्रूर था। विशेषता यह थी कि आप विषयी और नीच भी थे। इसके पीछे चार महीने इसके गुलाम खुसरो खाँ ने सिक्का चलाया।
१४	गयासुद्दीन	०	तुगलक	१३२१	०	१३२५	काठ के मकान के नीचे दब कर मरा	अच्छा था।
१५	फखरुद्दीन महम्मद तुगलक (अलगखाँ)	गयासुद्दीन	तथा	१३२५	०	१३५१	स्वाभाविक	राजा शिवप्रसाद के लिखने के अनुसार बड़ा दाता, बड़ा पंडित, बड़ा बुद्धिमान, बड़ा भाग्यवान, बड़ा वीर, बड़ा मूर्ख, बड़ा क्रूर, बड़ा फक्की और बड़ा पागल था।
१६	फिरोजशाह	मुहम्मद	तथा	१३५१	९०	१३८८	तथा	अच्छा था। बहुत से धर्मार्थ काम किए।
१७	गयासुद्दीन	फीरोजशाह	तथा	१३८८	०	१३८९	मारा गया	पाँच महीने राज्य किया। मूर्ख था।
१८	अबूबकर	तथा (पोता)	तथा	१३८९	०	०	कैद में मरा	एक वर्ष भी पूरा राज्य न किया।
१९	नासिरुद्दीन	तथा	तथा	१३९०	०	०		
२०	मुहम्मद हुमायूँ सिकंदरशाह	नासिरुद्दीन	तथा	१९९४	०	१३९४	स्वाभाविक तथा	केवल ४५ दिन बादशाह था।
२१	नासिरुद्दीन महमूद	सिकंदर शाह	तथा	१३९४	०	१४१२	तथा	

नं.	बादशाहों के नाम	उनके पिता के नाम	माता के नाम	जाति	जन्म का वर्ष	कहाँ राज्य पर बैठे	किस अवस्था में राज्य पर बैठे	किस सन् में राज पाया	फारसी में राज पर बैठने की तारीख
१	अमीर तैमूर साहब किरान कुतुबुद्दीन	अमीरतुराग़ान	नगीना ख़ातून	चुग़ताई	सन् ७३६ हिजरी में शाबान की २७ को मंगल की रात	बलख	३५ वर्ष १५ दिन, परंतु जब दिल्ली में राज पर बैठे तब ६५ वर्ष ४ महीने कुछ दिन के थे	बुधवार १२ रमज़ाम सन् ७७१ हि. । दिल्ली में राज पर बैठने का सन् शुक्र-वार मुहर्रम मास सन् ८०१ हिजरी	सुलतान तैमूर कि मिस्ल ओ शाह नबूद । दर हफ्त सद हफ्ताद यके कर्द जलूस ।।
२	नुसरतशाह	बरोमंदखां	०	लोदी	९ रजब सन् ७६२ हिजरी	दिल्ली	३८ वर्ष ८ महीना कुछ दिन के थे	रबीउलऔवल सन् ८०१ हिजरी	ज़द चू सुसरत शाह बर औरंग सुलतानी कदम । दाद अल्को दानिर्श अफ़ज़ूमी व फहेंग दाद ।। फिक्र तारीखश हमीकर्दम कि अज़रूए जलाल । हातिफे गूफ्ता बिगो, आराइशे औरंग दाद ।।

इसी क्रम में देखें ७३६

कब तक राज किया	सिक्का	अवस्था	किस सन् में मरे	फारसी में मरने की तारीख	मरने के पीछे उपनाम क्या हुआ	कहाँ गाड़े गए	ईसवी सन् जुलूस	ईसवी सन् मरने का	विवरण
३५ वर्ष ११ महीना ५ दिन दिल्ली में १५ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	७० वर्ष ११ मास २० दिन	बुध की रात १७ शावान सन् ८०८ हिजरी	सुलतान तैमूर कि मिस्ल ओ शाह नबूद। दर हफ्त सदो सी व शश आमद वजूद ।। दर हफ्तसदो हफ्ताद यके कर्द जलूस। दर हश्तसदो हफ्त कर्द आलम पिदरूद ।।	उलमी मकाँ	समरकंद	१३९८	१४३४	दिल्ली के मनुष्यों को साग घास की भाँति काटा। भारतवर्ष के अंतिम बादशाह इसी के वंश में हुए हैं, बड़ा ही निर्दय था। एक पाँव का लँगड़ा था इसी से इस को तैमूर लंग कहते हैं।
११ मास	इस भय से कि अमीर-तैमूर की ओर से कुछ उपद्रव न हो अपना सिक्का नहीं चलाया	४६ वर्ष ४ महीने १९ दिन	२७ ज़ीकाद सन् ८०८ हिजरी	नुसरत शह सिपहर मुलाजिम चु शुद बखुल्द। दर सरेशक ता सरे मिज़गाँ बसिफते अल्क ।। बूदम बफिक्रे साल वफातश कि नागहाँ। साले वफाते कब्र मुकर्रर बगुफ्त अल्क ।।	०	मेवात के देश में	१३९८	१३९६	नाम मात्र का राज्य किया

३	एकबाल खाँ	ज़फरखाँ	०	लोदी	७ सफर सन् ७५९ हिजरी	दिल्ली	४३ वर्ष कुछ दिन के थे	सफर सन् ८०२ हिजरी	शाह अकबालखाँ नुसरतमंद । जायश तख्त शुद बअज्म शही ।। साल तारीख गुफ्त हातिफ शुद । महफिले इज़ बज्मे शही ।।
४	दौलतखाँ	महमूदखाँ	०	लोदी	७ सफ़र सन् ७५९ हिजरी	मुल्तान की ओर	४९ वर्ष २ मास कुछ दिन	२९ जमादिउल्-औवल सन् ८०८ हिजरी	
५	अख्तियार खाँ	०	०	लोदी	आखिर सन् ७६१ हिजरी	०	४७ वर्ष	०	
६	सुल्तान महमूद	०	०	लोदी	८ रजब सन् ७४६ हिजरी	दिल्ली	६१ वर्ष ११ मास १४ दिन के थे	जमादिउस्सानी सनू ८०८ हिजरी	शुद चू बर तख्ते शह गाजी सुलतान महमूद । दौलतश बेश व गुलामान : अश इकबाल अज़ बस ।। हातिफ अज़ मनज़र कुद्स आमद : आवाज कुनाँ । कुदरते अदल बूद साल जलूस अकदस ।।
७	दौलतखाँ (दूसरी बेर)	महमूदखा	०	लोदी	सफ़र सन् ७५९ हिजरी	कैथल की ओर	५६ वर्ष ८ मास कुछ दिन	१ ज़िलहिज् सन् ८१५ हिजरी	कर्द दौलतखाँ बताई दे खुदाए जुलमनन । रूए दौलतरा बहुस्न सई झूँ रूए अरूस ।। गुप्त हातिफ अज़ सरे इकबाल बा सद खुर्रमी । रोजगारे ऐश आमद साल तारीखे जलूस ।।
८	खिज़िरखाँ	मलिक सुभान	०	सइयद	१० रँबीउल औवल सन् ७४९ हिजरी	दिल्ली	५८ वर्ष ५ दिन	१५ रबीउल-औवल सन् ८१७ हिजरी	चूँ खिजिरखाँ बतख्त कर्द जलूस । मरहम सीन : हाए रेश आसद ।। बहर तारीख ओ जलूस सरोश । गुफ्त हुस्न फ़ाद पेश आमद ।।

इसी क्रम में देखें ७३८

६ वर्ष २ मास कुछ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	४९ वर्ष २ मास कुछ दिन	२७ जमादि-उल् औवल सन् ८०८ हिजरी	चू शहे इकबालखाँ फर्मान्दहे किश्रवरसिताँ । दावरे इल्कीमगीरो परवरिश फर्माए खुल्क ।। याफ्त जा दर सायए तौबा बकम्रे हूर ऐन । सालश अज़रूए बका शुद आह वावैलाए खुल्क । गुफ्त हातिफ साल ओ यक साहबे दौलत बमुर्द ।	०	मुल्तान की ओर	१३९९	१४०५	नाम मात्र को राज्य किया
२३ दिन	०	५३ वर्ष २ मास कुछ दिन	जमादिउल् औवल सन् ८१७ हिजरी		०	फीरोज़ा-बाद के प्रांत में	१४०५	१४०४	तथा
०	०	नहीं मिला	नहीं मिला		०	नहीं मिला	०	०	तथा
७ वर्ष ५ मास ७ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	६९ वर्ष ४ मास २१ दिन	२९ ज़िकाद सन् ८१५ हिजरी	ज़द कोसे फना ज़े बसकि सुलतान महमूद । आमद ग़म अज़ीं हादस : अज़ ग़म दिल खून ।। हातिफ़ बग़मो अलम शुद्ध बेह गुफ्त अज़ हेफ । साज़द अलमो दर्द बमन रोज़ अफ़जूं ।।	०	कैथल	१४०५	१४१२	तथा
१ वर्ष ५ मास कुछ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	५८ वर्ष २ मास कुछ दिन	जमादिउल् औवल सन् ८१७ हिजरी	रह चु दौलत खाँ बसूए जिन्नत अल्मावा गिरिफ्त । आलमे अज़ दर्दो ग़म सद नाल : राबर चर्ख बुर्द ।। सर बजेबे फिक्र बुर्दम ताकि तारीखे बेह नज़म । गुफ्त हातिफ साल ओ एक साहबे दौलत बमुर्द ।।	०	फीरोजा-बाद	१४१२	१४१३	तथा
७ वर्ष २ मास २ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	६५ वर्ष २ मास ७ दिन	१७ जमादि-उल् औवल सन् ८२४ हिजरी	चूं रख्व अज़ीं जहाँ खिज़खाँ बर बस्त । नख्ले तबें जहाँ बयफ्तांद अज़ बेख ।। हातिफ अज़ जेबे फिक्र बरज़द : गुफ्त । दर्द अर्ज़ा रोज़ अफजूं तारीख ।।	०	दिल्ली	१४१३	१४२१	पंजाब का हाकिम था । स्वयं बादशाह बन बैठा ।

९	मुइजुद्दीन ऐवानफतह मुबारकशाह	ख़िज़िरख़ाँ	मालिका जहान	सइयद	२० शाबान सन् ७९५ हिजरी	दिल्ली	२८ वर्ष ८ मास २९ दिन	१९ जमादि-उल्‌औवल सन् ८२४ हिजरी	गश्त चूँ बादशाह मुबारक शाह । शादी आमाद : गश्त व बरपा जश्न ।। साल तारीख ईं खुजस्त : जलूस । शुद निगहबान आलम आरा जश्न ।।
१०	मोहम्मदशाह	फरीदख़ाँ बेटा ख़िज़िरख़ाँ	०	सइयद	रबीउल्‌औवल सन् ८२५ हिजरी	दिल्ली	१२ वर्ष ६ मास कुछ दिन	५ रमज़ान सन् ८३८ हिजरी	शुद मुहम्मदशाह चूँ बर तख्ते दौलत कामयाब । ताबअ फर्मान ओ शुद बादशाह रूमो रूस ।। बदम अंदर फिक्र तारीखश कि हातिफ गुफ्त जूद । आसफे इनसाफो सिकंदर अद्‌ल तारीखे जलूस ।।
११	सुल्तान अलाउद्दीन	मुहम्मदशाह	जहानआरा बेगम	सइयद	२० मोहर्रम सन् ८४० हिजरी	दिल्ली	९ वर्ष ९ मास २ दिन	२२ शौव्वाल सन् ८४९ हिजरी	सुलतान अलाउद्दीन चु दर वक्ते सईद । बर सर बनिहाद ताज अज़ जोरे हिसाम ।। गुफ्तम कि ज़े साल चेगोयम हातिफ़ । फर्मूद कि ताज बादशाहे इस्लाम ।
१२	सुल्तान बहलूल	कालाबहादुर	०	लोदी	ज़ीकाद सन् ८२४ हिजरी	पंजाब की ओर	३१ वर्ष कुछ दिन	सन् ८५५ हि. दिल्ली में २५ जिलहिज सन् ८५६ हिजरी	शाह बहलोल चूँ बतख्त , नशस्त । अदलो साज़ो ज़ेब मुमलकत अस्त । गुफ्त दिल साल चीस्त हातिफ गुफ्त । कि बहारे जलूस सलतनत अस्त ।।

इसी क्रम में देखें ७४०

१३ वर्ष ३ मास १६ दिन	कुछ दिन अमीर तैमूर के नाम से रक्खा फिर अपने नाम का चलाया	४७ वर्ष १५ दिन	५ रमज़ान सन् ८३७ हिजरी	आमाद: चू शुदीये सफर अज़ दुनिया । सुलतान मुबारक शहे दौलत बदोश ।। आवाज़ आमद बराय तारीख वफ़ात । सई सफ़रे रूहे मुजस्सिम जे सरोश ।।	०	दिल्ली	१४२१	१४४६	मारा गया
१२ वर्ष २ मास ३ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	२४ वर्ष ७ मास कुछ दिन	३० शौव्वाल सन् ८४९ हिजरी	चू मुहम्मदशह यगानद कि बूद । दौलत श बंद: चाकर इकबालश ।। शुद बजिन्नत सरोश गैबी गुफ्त । नौह: व आह अश दर सालश ।।	०	दिल्ली	१४३४	१४४६	
७ वर्ष २ मास ३ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	४२ वर्ष कुछ महीना कुछ दिन	आखिर सन् ८८३ हिजरी		०	बदाऊं	१४४६	१४७७	बहलूल लोदी को दिल्ली की सल्तनत देकर आप बदाऊँ चला गया उस समय दिल्ली की बादशाहत केवल छ: कोस के घेरे में रह गई थी ।
३८ वर्ष ७ मास ७ दिन देल्ली में १७ र्ष ७ मास दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	६९ वर्ष ८ मास कुछ दिन	२ शाबान सन् ८९४ हिजरी	शाहनशहे आलम शहे बहलोल कि दीदी । उफ्ताद दर एतराफ जनाँ सुल्ले जलालश ।। दर खुल्द व गुफ्त सरोश अज सरे जिन्नत । कस्द सफरे आलमे अरवाह रिसालश ।।	०	दिल्ली	१४५०	१४८८	अमल्दारी बढ़ाई, प्रबंध भी किया ।

१३	निज़ामखाँ उपनाम अलाउद्दीन सिकंदर शाह	सुलतान बहलूल	पन्ना जो एक सोनार की बेटी थी उपनाम बीबी सोनारी	लोदी	जमादिउल्-औवल सन् ८२५ हिजरी	कसब: जलाली	६५ वर्ष ३ मास कुछ दिन	१२ शाबान सन् ८९४ हिजरी	
१४	सुल्तान इब्राहीम	सिकंदरशाह	०	लोदी	५ ज़ीकाद सन् ८५६ हिजरी	दिल्ली	५९ वर्ष १६ दिन	२१ जिकाद सन् ९१५ हिजरी	चूँ अफसरे दौलत अज़ सरे इब्राहीम । गर्दीद चू चतर ओ सआदत आमोद ।। साल तारीख ईं हुमायूँ साअत हातिफ । गुफ्ता नह ताज दौलत आसूद ।।
१५	जहीरउद्दीन मुहम्मद शाह बाबर	उमर शेख मिर्ज़ा	कतलक निगार खानम यूनास खाँ की बेटी	चुरताई	६ मुहर्रम सन् ८८८ हि. यही तारीख पैदाइश की है	अन्दोजान समर्कन्द	११ वर्ष ७ मास २९ दिन दिल्ली में ४४ वर्ष ६ मास	५ रमजान सन् ८९९ हिजरी पानीपत में दिन शुक्रवार ७ रजब सन् ९३२ हिजरी	नसीरुद्दीन मुहम्मद शाह बाबर । कसकंदर दौलतो बहराम सौलत ।। बदौलत कर्द फत्हे खत्तए हिंद । कि तारीख आमदश फत्हे बदौलत । कुश्त दर पानीपत इब्राहीम रा । शाह आदिल बाबरे आली लकब ।। रोज़ माह साल वकतुल जफर । सुबह बूदो जुम्म : व हफ्त रजब ।।

इसी क्रम में देखें ७४२

११ वर्ष ३ मास १ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	८६ वर्ष ६ मास कुछ दिन	दिन अतवार १३ ज़ीकाद सन् ९१५ हिजरी	चूँ कर्द रूखसते आलम निजामखाँ सुलतान। जे जाँ बतंग जहाने बा आहोजारी शुद।। जहाँ सियह शुद: दरचश्म हरकस जे हरकस। ज़े हाल आलम गुफ्ता सरोश बारी शुद।।	०	दिल्ली	१४८८	१५१६	बड़ा बादशाह हुआ किंतु हिंदुओं को बहुत दु:ख दिया, ग़ाजी मियाँ की पूजा बंद कर दी। कबीर इसी के समय में हुए, हिंदुओं को फारसी पढ़ाई।
१६ वर्ष ७ मास १५ दिन ३७ वर्ष ८ मास १ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	५ वर्ष ८ मास कुछ दिन	७ रज्जब सन् ९३२ हिजरी	कर्द चूँ सुलतान इब्राहीम कूच। इफ्तुम शहर रज्जब अज़ई सराय।। हस्ब दिल अज़ हातिफ इलहाम कुन। साल वफात शहे गर्दू गिराय।। गुफ्त कि दर जिन्नते बालाए पाक। याफ्त: सुलतान इब्राहीम जाय।।	०	पानीपत	१५१६	१५२६	मारा गया।
दूसरे मुल्क में ३२ वर्ष १० मास २ दिन दिल्ली में ४ वर्ष ९ मास २९ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	४९ वर्ष ४ मास	सोमवार ६ जमादि-उल्-औवल सन् ९३७ हिजरी	बादशाहे दह बाबर बा कमाले अदलो दाद। फिरदौस वाकिफे इसरारे आलम सस्दरे लुत्फे अल्ला।। आराम-साल जाँ ओ गुज़ीदन जाय फिरदौसश बिगो। गाह जाय फिर्दौस आमद: बेगुजीद बाबर बादशाह।।	पहिले ६ महीने आगरे के पास राम-बाग में गाड़ा था जाने के समय हुमायूँ मुर्दा फिर काबुल ले गया		१५२६	१५३०	बड़ा प्रसिद्ध मनुष्य हुआ है, पहले समर्कंद और काबुल का बादशाह था फिर हिंदुस्तान में आया।

१६	नसीरउद्दीन मुहम्मद हुमायूँ बादशाह पहली बार	बाबर बादशाह	माहम बेगम	चुगताई	सनीचर की रात १४ जीकाद सन् ९१३ हिजरी	आगरा	२३ वर्ष ५ मास कुछ दिन	जमादिउल्-औवल सन् ९३७ हिजरी सोमवार	मुहम्मद हुमायूँ शहे नेक बख्त । कि खैरूल मलूक अस्त अंदर सलूक ।। चू बर मसनदे बादशाही नशस्त । शुदश साल तारीख खैरूल् मुलूक ।।
१७	शेरशाह उपनाम फरीद खाँ	हसन खाँ	०	अफ़गान	रजब सन् ८७१ हिजरी	सुल्तानपुर बंगले की तरफ	६० वर्ष कुछ दिन दिल्ली में ६९ वर्ष ४ मास कुछ दिन	सन् ९३१ हिजरी दिल्ली में २७ शौव्वाल सन् ९४८ हिजरी	शाहनशाह : शेरशाह गर्दू रफअत । कस हस्त नेस्त रफीअ आली दूद : ।। ब नशस्त ब बस्त हफ्तुम शव्वाल । ब तख्त शाहाने जहाँ बयाये आली दूद : ।। तारीख जलूस गुफ्त हातिफ जे गैब । जेब औरंग सलतनत अफजूद : ।।
१८	इसलाम शाह उपनाम शाहज़ाद : जलाल खाँ नामांतर सलीम शाह	शेरशाह	बीबी गुमानी	अफगान	सफर सन् ९०३ हिजरी	कालिंजर के किले के नीचे	वर्ष ६ दिन	१७ रबी-उल्-औवल सन् ९५३ हिजरी	सुलतान सलीम शाह बाकर शिकोह । कर्द अदलशजुल्म दर अदम महबूस अस्त ।। वे नशस्त ब तख्त अज़ रहे इन्साफश ।। दर मुल्कश जे आमदन मानूस अस्त ।। तारीख जलूस सईद ओ अज नयूश । सामान जलूस मैमनत पाबोस अस्त ।।

इसी क्रम में देखें ७४४

१ वर्ष ५ मास कुछ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	४९ वर्ष ३ मास २६ दिन	११ रबउल-औवल सन् ९६३ हिजरी	हूमायूँ बादशाह आँ शाहे आदिल। कि फैजे खास ओबर आम उफ्ताद।। चु खुशीद अज जहाँ ताबे बलंदी। बियाबाँ दर निमाजे शाम उफ्ताद।। जहाँ तारीक शुद दर चश्मे मरदुम। खलल दर कार खासो आम उफ्ताद।। कजा अज बहव तारीखश रकम जद। हुमायूँ बादशाह अज बाम उफ्ताद।।	जन्नत आशियां	दिल्ली	१५३०	१५५५	शेरखाँ से हारकर लाहौर गया फिर सिंध और मारवाड़ में रहा, वहीं अकबर का जन्म हुआ, फिर डेढ़ बरस अमरकोट के राजा के यहाँ रहा, वहाँ से काबुल चला गया।
१४ वर्ष दिल्ली में ४ वर्ष ४ मास १५ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	७४ वर्ष ८ मास कुछ दिन	१२ रबी-उलऔवल सन् ९५३ हिजरी	शेरशाहे कि अज महाबत ओ। शेरो बज आब रा बहम मीखुर्द।। चूँ बरफ्त अज़ जहाँ बदारे बका। गश्त तारीख ओ ज़े आतिश मुर्द।।	०	सहसराम	१५४०	१५४५	इसका बाप हसनखाँ सहसराम में ५०० घोड़ों का जागीर दार था, जब इसने कालिंजर का किला घेरा तो एक गोले से इसके मेगजीन में आग लग गई जिससे यह झुलसकर मर गया।
८ वर्ष २ मास ८ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	५८ वर्ष ३ मास कुछ दिन	२५ जमादि-उलऔवल सन् ६६१ हिजरी	सुलतान सलीमशाह चूँ अज हुस्ने आकबत। आराम ज़ेर सायए अर्श खुदाई याफ्त।। बूदम बफिक्रे साल वफातश कि नागहाँ। हातिफ बज़द नवा कि बजिन्नात जाय याफ्त।।	०	सहसराम	१५४५	१५५३	नामांतर जलाल खाँ

१९	फिरोज खाँ वा फिरोज़ शाह	इस्लाम शाह वा सलीम शाह	बी मानी	अफगान	रबीउस्सानी सन् ९४९ हिजरी	दिल्ली	१२ वर्ष कुछ दिन	२६ जमादि-उस्सानी सन् ९६१ हिजरी	चूँ शुद फीरोज़ खाँ बाशिकोह। कस गुलाम दर बूद इजलाल हा।। याफ्त तख़्ते सलतनत जाए पिदर। कर्दे जेरे चतर इस्ततलाल हा।। साल तारीखश चुर्नी क़र्दम रकम। बादशाही याफ्त ज़ू इकबाल हा।।
२०	मुहम्मद आदिल शाह उपनाम मुबारिज़ खाँ	निज़ाम खाँ	०	अफगान	शाबान सन् ९११ हिजरी	दिल्ली	४९ वर्ष १० मास कुछ दिन	जमादिउल्-औवल सन् ९६१ हिजरी	जाय बर मुमलिकत मुबारिज खाँ। कि शुद : दर रहे सितम मालिक।। तख़्त फीरोजखाँ गिरफ्त बजुल्म। गश्त : बर मुल्क दौलतश मालिक।। साल तारीख दौलश गुफ्तम। बादशह शुद मुबारिज मुहलिक।।
२१	सुल्तान इब्राहीम सूर	०	०	अफगान	सन् ९०३ हिजरी	दिल्ली	५९ वर्ष	६ जमादिउस्सानी सन् ९६२ हिजरी	गश्त चूँ तख़्त मुनौवर ज़े तन इब्राहीम। रफ्त बर दोस्त दिलासा व बदुश्मत तो बेख।। साल तारीख जलूसश ज़े खिरद चूँ जस्तम्। रौनके कालबंद सलतनत आमद तारीख।।
२२	सिकंदर शाह उपनाम अहमद खाँ	हुसेन	०	अफगान	रबी-उल्-औवल सन् ९११ हिजरी	फरह	५१ वर्ष २ मास दिल्ली में ५१ वर्ष ४ मास	पंजाब में जमा-दिउस्सानी सन् ९६२ हिजरी दिल्ली में ९ रज्जब सन् ९६२ हिजरी	दाम अफजालहू
२३	दूसरी बार नसीरूद्दीन उपनाम मुहम्मद हुमायूँ शाह	बाबर बादशाह	माहरू बेगम चुगताई किसी-किसी ने इसका नाम 'माहम बेगम' लिखा है		मंगल की रात १४ ज़ीकाद सन् ९१३ हिजरी	दिल्ली	४८ वर्ष ९ मास कुछ दिन	रमज़ान ९६२ हिजरी इसी क्रम में देखें ७४६	मुंशिए खिरद तालए मैयूँ तलबद। इंशाए सखुन ज़े तबअ मौजूँ तलबद।। तहरीर चु कर्द फत्ह हिंदुस्तान रा। तारीख ज़े शमशेर हुमायूँ तलबद।।

५ दिन	अपने नाम का रुपया पैसा नहीं बनवाने पाया था कि मर गया	१२ वर्ष कुछ दिन	२९ जमादि-उल्-औवल सन् ९६१ हिजरी	शहे दौलत दौलत अफ्रोज़ फीरोज़खाँ । कि मीकर्द मुल्क सितम रा खराब ।। जे सैले अजल नागहाँ शुद खाँ । ब मुनियार मामूर : उमर शजे आब ।। चुनीं गुफ्त साले वफातश खिरद । जवाँमर्द शुद शाह बेजा जवाब ।।	०	०	१५५३	१५५३	इसके मामा ने इस को मार डाला ।
११ मास ७ दिन	मिला नहीं	५०	०	०	०	०	१५५३	०	बड़ा मूर्ख और बदकार था लोग अँधली कहते थे ।
२ मास ३ दिन	०	७२ वर्ष	सन् ९७५ हिजरी	०	०	उड़ीसा	१५५४	०	शेर शाह का चचेरा भाई ।
दिल्ली में २ मास कुछ दिन	०	०	सन् ९६२	०	०	०	१५५५	०	शेर शाह का चचेरा भाई ।
१ ले ६ मास कुछ दिन वलायत में १३ वर्ष १० मास कुछ दिन दिल्ली में १२ वर्ष कुछ दिन सब सल्तनत २५ वर्ष १० मास कुछ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	४९ वर्ष ३ मास २६ दिन	रबी-उल्-औवल सन् ९६१ हिजरी	हुमायूँ बादशाह आँ शाहे आदिल । कि फैजे खास ओ बर आम उफ्ताद ।। चू खुर्शीदे जहाँताब अज़ बलंदी । बियाबाँ दर निमाजे शाम उफ्ताद ।। जहाँ तारीके शुद दर चश्मे मदुम । खलल दर कार खासो आम उफ्ताद ।। कज़ा अज़ बहर तारीखश रकम ज़द । हुमायूँ बादशाह अज़ बाम उफ्ताद ।।	जन्नत आशियानी	दिल्ली में नाम हमकबरा हुमायूँ है जुलाई १५५५	जनवरी १६५६		फिर हिंदुस्तान जीतने पर छ: महीने राज्य किया और सीढ़ी पर से पैर फिसलने के कारण गिरकर मर गया ।

२४	अबुल् फतह जलालउद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह	हुमायूँ बादशाह	हमीदा बानू बेगम मरने के बाद मरियम मकानी उपनाम हुआ	चुगत्ताई	मंगल की रात ५ रजब ९४९ हिजरी १५४२ ई.	कलांवर (कलानौर)	१२ वर्ष ८ मास २७ दिन	२ रबीउस्सानी सन् ९६३ हिजरी	अज़ खुतबए शाह रफअत मुनीर शुद । बज़ सिक्कए अदल कारहा खू ज़र शुद । वेह नशस्त ब तख्त सलतनत अकबर शाह । तारीख जलूस नुसरत अकबर शुद ।।
२५	अबुल् मुज़फ्फर नूरउद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह	अकबर बादशाह	राजा भारामल की लड़की	चुगत्ताई	बुध १७ रबी-उल-औवल सन् ९७७ हिजरी	अकबराबाद	३७ वर्ष २ मास २७ दिन	बृहस्पति १४ जमादिउस्सानी सन् १०१४ हिजरी	शाह जहाँगीर चु अज़ मेहरे बख्त । गश्त शहनशाह दो आलम चु मेहर ।। गुफ्त खिरद साल जलूस सईद । शाह जहाँगीर नसीबे सिपहर ।।
२६	सुल्तान दावर ब्ख्श उपनाम मिर्जा बुलाकी	शाहज़ाद : सुल्तान खुसरो	०	चुग़ताई	ज़ीकाद सन् १०१० हिजरी	राजापुरी	२५ वर्ष ४ मास	रबी-उल-औवल सन् १०३६ हिजरी	चु शुद सुलतान दावरबख्श अज तख्त । बसाँ खोरे बरूए तख्त वाला ।। वजेबे फिक्रे सर बुर्दम किशानश । खिरद तारीख गुफ्ता बख्त बाला ।।

इसी क्रम में देखें ७४८

५१ वर्ष २ मास ११ दिन	एक ओर कल्मा एक ओर नाम आखिर बादशाहों में अल्लाह अकबर और जुलूस का सन्	६४ वर्ष ११ मास ८ दिन	बुधवार १३ जमादि-उत्सानी सन् १०१४ हिजरी	फौत अकबर शाह अज़ कजाए अल्लाह। गश्त तारीख फौत अकबर शाह। जहाँगीर अज़ जहाँ अज़्मे सफर कर्द।	अर्श आशियानी	विहिश्ता-बाद उप. सिकंदरा अकबरा-बाद (आगरा) के पास	१५५६	१६०५	बड़ा बादशाह हुआ। हिंदुओं से स्नेह उत्पन्न किया। बादशाहत बढ़ाई। ऐसा नामी मुसल्मान बादशाहों में कोई नहीं हुआ।
२१ वर्ष ८ मास १३ दिन	पहिले कल्मा पीछे फारसी का शैर	५८ वर्ष ११ मास १० दिन	२७ सफर सन् १०३६ हिजरी	०	जन्नत मकानी	शाहदरा लाहौर बाग़ नूरजहाँ बेगम	१६०५	१६२७	बड़ा बादशाह हुआ। हिंदुस्तान की बादशाहत इस के समय में पूरे ओज पर थी।

सिका ज़द दर अहमदाबाद अज़ एनायात अल:। रूए ज़र रा साख्त नूरानी बरंगे मेहरोमाह ।।
बहुक्मे शाह जहाँगीर याफ्त सद जेवर। बनाम नूरजहाँ बादशाह बेगम ज़र ।।

जिस वक्त नूरजहाँ बेगम महल में आई उस वक्त एक ओर सन् एक तस्वीर बादशाह और नूरजहाँ बेगम की।

एक वर्ष २ मास कुछ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम मगर बहुत नहीं चला	२६ वर्ष ३ मास कुछ दिन	१७ जमादि-उस्सानीं सन् १०३७ हिजरी	नमाँद मालिको इकबाल बाबर दौलत	०	बाग हात लाहौर	१६२७	१६२८	इसका नाम तवा-रीखों में नहीं है आसिफ खाँ ने शाहजहाँ के लौट आने तक बादशाह बनाया था और फिर आप ही मार डाला।

२७	शहाबुद्दीन मुहम्मद शाहजहाँ बादशाह	जहाँगीर बादशाह	नव्वाब जोधा बाई बेटी राजा भगवान दास राजा जोधपुर	चुग़ताई	बृहस्पति की रात १ रबी-उस औवल सन् १००० हिजरी	लाहौर	३७ वर्ष ३ मास ७ दिन	८ जमादि-उस्सानी सन् १०३७ हिजरी	बादशाहे जमान : शाहजहाँ । खुर्रमो शाद कामराँ बाशद ।। हुक्म ओ बर खलायके आलम । हम चु हुक्मे कजा रवाँ बाशद ।। बहर साल जुलूस ओ गुफ्तम् । दर जहाँ बाद बाजहाँ बाशद ।।
२८	अबुल् मुज़फ्फर मुहीउद्दीन औरंगजेब आलमगीर बादशाह	शाहजहाँ बादशाह	अरजुमंद बानू उपनाम बेगम मुंमताज़-महल	चुगताई	अतवार की रात ११ जीकाद सन् १०२८ हिजरी	एजाबाद	३९ वर्ष ११ मास २० दिन	शुक्रवार १ ज़ीकाद सन् १०६८ हिजरी	आफ्ताब आलम ताबम् ।
२९	मुहम्मद मुअज्जम उपनाम शाह आलम बहादुर शाह	औरंगजेब आलमगीर बादशाह	नव्वाब बाई	चुग़ताई	रज्जब सन् १०५३ हिजरी	लाहौर	६५ वर्ष ५ मास	१ जिल्हिज सन् १११८ हिजरी	नशस्त चूँ बसरीर जहाँ बहादुर शाह । रसीद मुज्द : दौलत जे आलमे बाला ।। जे मंजर फलक आवर्द सिर सिरूँ हातिफ । बगुफ्त साल जलूसश निजाम मुल्क दिला ।।

इसी क्रम में देखें ७५०

९ वर्ष ४ मास २२ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	७६ वर्ष ४ मास ६ दिन	सोमवार २६ रज्जब सन् १०७६ हिजरी	साल तारीख फौत शाहजहाँ । रज़ी अल्लाह-गुफ्त अशरफ खाँ ।।	उल्मी मकान	ताजगंज मुमताज उलजमानी के कब्र के पास अकबराबाद	१६२८	१६६४		दुष्ट ओरंगज़ेब ने राज्य के लोभ से बीमारी में कैद्ध कर लिया । यह भी बड़ा बादशाह था । इसका समय मुसलमानों के राज्य का ठीक मध्याह्न था । दिल्ली का ऐसा ऐश्वर्य ने पहले कभी था न फिर हुआ । ताज-गंब किला आदि अनेक उत्तम स्थान बनाये ।
५० वर्ष २७ दिन	सिक्क : जद बर जहाँ चू बद्रो मुनीर । शाह औरंगजेब आलमगीर ।।	९० वर्ष १७ दिन	शुक्रवार २६ ज़ीकाद सन् १११७ हिजरी	आफ्ताब आलम ताबमन	खुल्द मकाँ	औरंगाबाद	१६५९	१७०७ २१ जनवरी		शुद्ध स्वारथी महा-दुष्ट किंतु उद्योगी था । हिंदुओं के बहुत से मंदिर तोड़े । शिवाजी ने दक्षिण का राज्य ले लिया ।
५ वर्ष १ मास	०	७० वर्ष ६ मास	सनीचर १ ली मुहर्रम सन् १०२४ हिजरी	दूर वफातश बे सरो बे पा शुदंद । फैज़ो फजले नेअमते लुतफो जरम ।। खुल्द मंजिल	गाँव महरौली दिल्ली के पुराने होते में	१७०७	१७१२			सिक्खों का उदय । इन लोगों के नाम मात्र की बादशाही किया था ।

३०	खुजिस्त : अख्तार जहान शाह	मुहम्मद मुअज़्ज़म उपनाम बहादुर शाह	निज़ाम बाई	चुग़ताई	०	दिल्ली	०	८ सफर सन् ११२४ हिजरी	
३१	रफ़ीउल्शान	मुहम्मद मुअज़्ज़म उपनाम बहादुर शाह	निज़ाम बाई	चुग़ताई	०	दिल्ली	०	२२ सफर सन् ११२४ हिजरी	
३२	मुहम्मद मुगीसुद्दीन जहाँदार शाह	मुहम्मद मुअज़्ज़म उपनाम ब्हादुर शाह	निजाम बाई	चुग़ताई	बुधवार १० रमज़ान सन् १०७२ हिजरी	लाहौर	५२ वर्ष ५ मास ५ दिन	रबी-उल् औवल सन् ११२४ हिजरी	
३३	जलालुद्दीन मुहम्मद फरुख-सियर	अज़ीमउल्-शान बेटा मुहम्मद मुअज्जम उपनाम बहादुर शाह	०	चुग़ताई	बृहस्पति १३ रज्जब सन् १०९५ हिजरी	दिल्ली	२९ वर्ष ५ मास ५ दिन	२३ जीकाद सन् ११२४ हिजरी	शाह फर्रुखसियर कि अफसर ओ। आफ्ताब सिपहरे मुमलिक अस्त।। गुफ्त हातिफ कि साल सलतनतश। आफ्ताब कमाल सलतनत अस्त।।

इसी क्रम में देखें ७५२

४ दिन	०	०	२२ सफर सन् १२२४ हिजरी	०	०	दिल्ली	१७१२	०	पहले तीनो भाई ने मिलकर इकतीस दिन राज किया फिर लड़े अन्त को पहले दोनों मारे गए ।
८ दिन	०	एक ओर कलमा एक ओर नाम	सफर सन् ११२४ हिजरी	०	०	दिल्ली	१७१२	०	०
१० मास २३ दिन	बज़द सिक्क : बर मुल्क चूँ मेहो माइ । शहनशाह ग़ाजी जहाँदार शाह ।।	५३ वर्ष ३ मास २८ दिन	शुक्रवार ८ मुहर्रम सन् ११२५ हिजरी	०	०	मकबिर : हुमायूँ दिल्ली में	१७१२	१७१३	फर्रुखसियर की लड़ाई में कैद हो कर मरा ।
६ वर्ष ३ मास कुछ दिन	सिक्क : अज फजले हकबर सीमो ज़र । बाद-शाह बहरो बर फर्खसियर ।।	३५ वर्ष ८ मास २० दिन	८ रबीउस्सानी फुगाँ गुप्त हातिफ ब : तारीख फौत । सन् ११३१ हिजरी		०	मकबिर : हुमायूँ दिल्ली में	१७१३	१७१९	अब्दुल्लाह खाँ और हुसैन अली खाँ ने जहर देकर मार डाला ।

३४	मुहम्मद अबुल् बरकात सुल्तान रफीउलदरजात	रफीउलदर्जात बेटा मुहम्मद मुअज्जम उपनाम बहादुर शाह	नूरूल्-निसा बेगम	चुग़ताई	७ जमादिउल् आखिर सन् ११११ हिजरी	दिल्ली	१९ वर्ष १० मास २ दिन	९ रबीउस्सानी सन् ११३१ हिजरी	नशस्त बतख़्त चूँ रफीउद्दर्जात । गुये बर अर्श सर कशीद अज़ उर्फात ।। सर खरोश चु दीद बा फरो शिकोह । तारीख आमद लकब रफीउद्दजति ।।
३५	शमशुद्दीन रफीउद्दौला मुहम्मद शाहजहाँ बादशाह ग़ाज़ी	रफीउल्शान बेटा मुहम्मद मुअजम उपनाम वाहदुर शाह	नूरूल्निसा बेगम	चुग़ताई	७ जमादिउल् आखिर सन् ११११ हिजरी	दिल्ली	१९ नर्ष १० मास २ दिन	९ रबीउस्सानी सन् ११३१ हिजरी	नशस्त बतख़्त चूँ रफीउद्दजति । गूये बर अर्श सर कशीद अज़ उर्फात ।। सर खरोश चु दीद बा फरो शिकोह ! तारीख आमद लकब रफउद्दजति ।।
३६	रौशन अख़्तर उपनाम मुहम्मद शाह बादशाह (अबुल् फतह नासिरूद्दीन) साहब-किरान सानी	खुजिस्त: अख़्तर जहान शाह बेटा मुहम्मद मुअज्जम उपनाम बहादुरशाह	०	चुग़ताई	२६ रबी-उल् औवल सन् १११४ हिजरी	दिल्ली	१२ वर्ष ७ मास २१ दिन	१७ जीकाद सन् ११३१ हिजरी	शहे किश्वरसिताने रौशनअख़्तर आँकि दर आलम । गवाह आमद फरोगे बख़्त रा नामे हुमायूँनश ।। दर्री बुर्दम कि गोयम् नज्म तारीखश की अज़ हातिफ । सरीर आराए जाहो दौलत आमद साल तारीखश ।।

इसी क्रम में देखें ७५४

मास १ दिन	मुहम्मद अबुल बरकात सुलतान रफ़ीउद्दर्जात् बादशाह गाजी	२० वर्ष १ मास १३ दिन	मंगलवार रज्जब सन् ११३१ हिजरी	चूँ खाँ शहनशह रफीउद्दर्जात । रहे जन्नत बसायद निहाल तौबा ।। रिज़वाँ बदर बिहिश्त इकदाम कुनाँ । गुल्पा खुल्द बरीं मुकाम व मारा ।।	०	दिल्ली के हाते में	१७१९	१७१९	पोस्त बहुत पीकर मर गया ।
३ मास २७ दिन	शम्शुद्दीन मुहम्मद शाहजहाँ गाज़ी	२८ वर्ष ९ मास १२ दिन	१७ ज़ीकाद सन् ११३१ हिजरी		०	मकबिर : हुमायुँ	१७१९	१७१९	पोस्त पीकर मर गया तब अब्दुल्लाह खाँ ने रौशन अख़ूतर को कैद से निकालकर बाद- शाह बनाया ।
एक वर्ष १ मास ११ दिन	पहिले चौकोर रुपये पर एक ओर कलमा एक ओर नाम पीछे गोल रुपये पर मुहम्मद शाह गाज़ी साहिबकिराँ	४७ वर्ष १ मास ११ दिन	२७ रबी- उस्सानी सन् ११६१ हिजरी	०	फिरदौस आराम- गाह	दिल्ली सुल्तान मशायख की दरगाह में	१७१९	१७४८	बड़ा विषयी थी । किंतु औरंगजेब के पीछे इतने दिनतक स्थिर होकर इसी ने दिल्ली भोगी । नादिरशाह इसी के काल में आया । कहते हैं कि इसके पहले मुहम्मद निकोसियर नामक शाहजादा दो चार दिन के हेतु बादशाह हुआ था ।

३७	सुल्तान मुहम्मद इब्राहीम	तीसरा बेटा रफीउलशा बेटा मुहम्मद मुअज़्ज़म उपनाम बहादुर शाह	नूरूलनिसा बेगम	चुग़ताई	२६ रबी-उल् औवल सन् १११५ हिजरी	दिल्ली	१७ वर्ष ९ मास २ दिन	२६ ज़िलहिज सन् ११३२ हिजरी	
३८	रौशन अख़्तर उपनाम मुहम्मदशाह (दूसरी बेर)	ख़ुजिस्त : अख़्तर जहान शाह बेटा मुहम्मद मुअज़्ज़म उपनाम बहादुर शाह	०	चुग़ताई	२६ रबी-उल् औवल सन् १११४ हिजरी	शेरगढ़	१८ वर्ष ९ मास १७ दिन	१३ ज़ीकाद सन् ११३३ हिजरी	दिल्ली में नादिर शाह के आने की तारीख १६ सन् ११५१ हिजरी
३९	मजाहिदुलदीन अबुल् नसर मुहम्मद बादशाह ग़ाज़ी	मुहम्मद शाह	अहमद बाई उपनाम मुमताज़-महल	चुग़ताई	मागलवार २७ रबी-उस्सानी सन् ११३८ हिजरी	पानीपत	२३ वर्ष म मास	२ रबी-उल औवल सन् ११६१ हिजरी	चूँ शाह जवाँबख़्त अज़ सरे तख़्त । चू ख़ुर्शीद अज़ फलक बिनमूद जिल्व : ।। ख़िरद साल जलूसश बर लब आवुर्द । सरीर सलतनत अफज़ूद जिल्व : ।।
४०	अज़ीज़ुद्दीन आलम गीर सानी बादशाह ग़ाज़ी	मुग़ीसुद्दीन जहाँदारद शाह	अनूप बाई	चुग़ताई	शुक्रवार सन् ११०९ हिजरी	दिल्ली	६८ वर्ष कुछ मास कुछ दिन	मंगलवार १० शाबान् सन् ११६७ हिजरी । अहमद शाह दुर्रानी के आने की तारीख ७ जमादि-उल औवल सन् ११७० हिजरी	शाहवाला निज़ाद आलमगीर । अज़ अज़ल नामवर बफ़ैज़ आमद ।। गश्त चूँ जिल्व : गर बरूये सरीर । गश्त तारीख मजहरे एज़िद ।। फज्ले रब्बानी

इसी क्रम में देखें ७५६
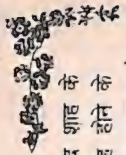
१५ दिन	सानी कोई रुपया अपने नाम का नहीं चलाया	०	०	०	०	०	१७०२	१७२०	मुहम्मद शाह के बादशाह होने के पीछे अब्दुल्लाह खाँ ने १५ दिन के हेतु बादशाह बनाया था।
२८ वर्ष ३ मास १४ दिन	पहिले चौकोर रु. पर एक ओर कलमा एक ओर नाम पीछे गोल रु. पर मुहम्मद शाह बादशाह गाज़ी साहिबकिराँ	४७ वर्ष १ मास १ दिन नादिर के दिल्ली से जाने की तारीख ७ सफर सन् ११५२ हिजरी	२७ रबी-उस्सानी सन् ११६१ हिजरी	शहे फलके हश्म रविश अख्तर आँकि अज़ो। चु आफ्ताब जहाँ जुमलगी फरोग गिरफ्त।। चु शुद बजाद: फिरदौस अजों सराय सिपंज।गाह सरोद हातिफे गैबी कि गो बख़िन्नत रफ्त।।	फिरदौस आराम-गाह	दिल्ली हजरत सुल्तान उल्मशायख की दरगाह में	१७२०	१७४८	नादिरशाह आया। मृत्यु से मरा।
६ वर्ष ८ मास ३ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	५० वर्ष ३ मास १३ दिन	मंगलवान १० शावान सन् ११८८ हिजरी	बर बस्त चू मुजाहिद दीं रख्त जिंदगी। हर कस दर रश्के बेहमिजगाने खेश मुफ्त।। हातिफ बराय साल वफातश कि नागहाँ। साले वफात साल वफात हाय हाय गुफ्त।।	शुल्द आरामगाह	दिल्ली	१७४८	१७५४	मृत्यु से मरा।
१ वर्ष ७ मास २७ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	७३ वर्ष कुछ मास कुछ दिन	बृहस्पतिवार ७ रबी-उस्सानी सन्	शाह आली नसब अज़ीजुद्दीन। कस बूद दर जवान रहमत जाय।। गुफ्त हातिफ चु रफ्त दर जिन्नत।	अर्श मंज़िल	दिल्ली के हाता मकबिर:	१७५४	१७६९	एमादुलमुल्क के कहने से मेहदी कुली खाँ ने कत्ल कर दिया।

४१	अबुल मुज़फफर जलालुद्दीन सुल्तान आली गौहर शाह आलम बादशाह	अज़ीजुद्दीन आलमगीर दूसरा	बी नन्ही	चुग़ताई	१७ ज़ीकाद सन् १०४० हिजरी	इलाहाबाद	३२ वर्ष ५ मास १७ दिन	१४ जमादि-उल-औवल सन् ११३७ हिजरी	दूसरी बेर अहमद शाह आया और मरट्ठों की लड़ाई सन् ११७३ हिजरी, सर्कार ने दिल्ली लिया १२१९ हिजरी
४२	अबुल् नसर नुइजुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह बादशाह	राह आलम बादशाह	मुबारक महल शाह आलम के वक्त तक और अकबरशाह के वक्त में नवाब कुदसि :	चुग़ताई	बृहस्पति की रात ७ रमज़ान सन् ११७३ हिजरी	दिल्ली	४८ वर्ष १ मास	सबेरे के पहर बुध के दिन ७ रमज़ान सन् १२२१ हिजरी	बबर चु कर्द लिबासे खिलाफत अकबर शाह । बशर्फो दौलतो इकबालो इज्जते मानूस ।। सरोश गैब जे रूये बदीद : यक नागाह । जहेज़ इशरत विरवद गुफ्त साल जलूस ।।
४३	अबुल् सिराजुद्दीन मुहम्मद बहादुर शाह बादशाह	ज़फरमुहम्मद अकबर शाह	लाल बाई	चुग़ताई	मंगलवार २८ शाबान सन् ११८९ हिजरी सूरज डूबने के वक्त	दिल्ली	६३ वर्ष १० मास	शुक्रवार की रात चिराग़े देहली २८ जमादि-उस्सानी सन् १२५३ हिजरी	

इसी क्रम में देखें ७५८

७८ वर्ष ४ मास ३ दिन	हाजी दीन-मुहम्मद साय : फज्ले अलाइ । सिक्का : जद बर हफ्त किश्वर शाह आलम बादशाह ।।	८० वर्ष ९ मास	७ रमज़ान सन् १२२१ हिजरी सुबह के वक्त	आह दरेग़ा या दिल ज़े रूये नाल : गुफ्ता हफ्तुम शहर स्यामरहनेवाले दिल्ली के	फिरदौस मंजिल	दिल्ली	१७५९	१८०५	अंतिम स्वत. बादशाह इसी के समय से अँगरजों का राज्य दिल्ली में हुआ १८०३ ई.
३१ वर्ष ९ मास २१ दिन	सिक्क : मुबारक साहिबकिराँ सानी । मुहम्मद अकबर बादशाह गाज़ी ।।	७९ वर्ष १० मास २१ दिन	शुक्रवार के दिन २८ जमा-दिउस्सानी सन् १२५३ हिजरी मग़रिब की नमाज के पीछे	चूँ बरफ्त अज़ जहाँ शहे अकबर । शुद सियह आस्माँ जे दूदे जिगर । पाय शादी शिकस्त व अहमद गुफ्त । साल तारीख ओ गमे अकबर ।।	अर्श आरामगाह	दिल्ली	१८०५	१८३७	नाम मात्र ।
२० वर्ष	ब सलीमो ज़र ज़द : शुद सिक्क : ब फज्ले अल्लाह । सिराजुद्दीन अबुलज़फर शाह बहादुर	९०	१२७९	बुझा है चिराग़े देहली या हे हे अबुल् मुजफ्फर	एक ओर कलमा एक ओर नाम	रंगून	१८३७	१८६३	दिल्ली के बलवे में अँगरेजों ने बिचारे बुढढे के नाम मात्र होने पर भी कैद करके रंगून भेज दिया । और इब की आँखों के सामने इसके भाई भतीजे लड़के पोते

मुसलमान-राज्यत्व का संक्षिप्त इतिहास

सन् ५७० में मुहम्मद का जन्म हुआ । ४० वर्ष की अवस्था में उन्होंने मुसल्मान धर्म का प्रचार किया । सन् ६३२ में इनकी मृत्यु हुई । इन के उत्तराधिकारियों में वलाद खलीफा ने अपने भतीजा कासिम को ६००० फौज के साथ सिंधु देश जय करने को भेजा । सिंधु का राजा दाहिर युद्ध में मारा गया और इस की दो बेटियों के कौशल से कासिम को भी वलीद ने मार डाला ।

सन् ८१२ में मामूँ ने हिंदुस्तान पर फिर चढ़ाई किया किंतु चित्तौर के राजा खुमान ने २४ बेर युद्ध कर के उस को भगा दिया ।

बुखारा के पाँचवें बादशाह अब्दुलमालिक का अलप्तगीन नामक एक गुलाम था जो मालिक के मरने पर बादशाह हुआ । सुबुक्तगीन इस का एक दास था । स्वामीपुत्र के मरने पर यही खुरासान का राजा हुआ और गजनी को अपनी राजधानी बनाया । सन् ९७० में इसने हिंदुस्यान पर चढ़ाई किया और लाहौर के राजा जैपाल को जीता । सन् ९९९ में उस के मरने के पीछे अपने भाई को कैद कर के सुलतान महमूद बादशाह हुआ । सन् १००१ में महमूद ने हिंदुस्यान पर चढ़ाई किया और अपने पुराने शत्रु जैपाल को कैद कर लिया । सन् १००४ में भटनेर के राजा को जीतने को महमूद की दूसरी चढ़ाई हुई । मुलतान के गवर्नर अबुलफतह लोदी को जीतने को वह तीसरी बेर हिंदुस्तान में आया (१००५ ई.) । चौथी चढ़ाई उस ने जयपाल के पुत्र आनंदपाल के जीतने को की । आनंदपाल भी असंख्य हिंदू सैन्य ले कर उस से भिड़ा, किंतु ठीक युद्ध के समय उस के हाथी के बिचलने से वह लड़ाई भी महमूद जीता और नगरकोट लूट कर भारतवर्ष की अनंत लक्ष्मी ले गया । इसमें २० मन तो केवल जवाहिर था (१००८ ई.) । अबुलफतह के बागी होने से मुलतान पर उस की पाँचवीं चढ़ाई हुई (१०१०) । छठीं बेर उसने थानेश्वर लूटा (सन् १०११) । सातवीं और आठवीं चढ़ाई इसने सन् १०१३ और १०१४ में कश्मीर पर किया, किंतु वहाँ के राजा संग्रामदेव ने इस को हटा दिया । नवीं बार यह सन् १०१७ में बड़ी धूम से कन्नौज पर चढ़ा, किंतु कन्नौज के राजा के दासत्व स्वीकार करने से मथुरा नाश करता हुआ लौट गया । १०वीं चढ़ाई इस की सन् १०२२ में कालिंजर पर हुई और उसी बरस ११वीं चढ़ाई इस की फिर लाहौर पर हुई । १२वीं बेर गुजरात पर चढ़ाई कर के सन् १०२४ में सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर तोड़ा । इस के पीछे वह हिंदुस्तान में नहीं आया और सन् १०३० में मर गया । इस के वंश वालों का हिंदुसतान में केवल पंजाब पर कुछ अधिकार रहा ।

ग़जनी राज्य निर्बल होने पर जगतदाहक अलाउद्दीन गोरी ने ग़ज़नी के अंतिम राजा बहराम को मार कर अपने को बादशाह बनाया और कुछ दिन पीछे उस के भतीजे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने बहराम के पोते को मार कर गजनी के राज्य का नाम भी शेष नहीं रक्खा । यही महम्मद हिंदुस्तान में मुसल्मानों के राज्य का मूल है । इस ने सन् ११७६ से लेकर १६ बरस तक कई बेर हिंदुस्तान पर चढ़ाई किया किंतु कुछ फल नहीं हुआ । कन्नौज के राजा जयचंद के बहकाने से इसने सन् ११९१ में दिल्ली के चौहान राजा पृथ्वीराज पर बड़ी धूम से चढ़ाई किया था, किंतु तरौरी नामक स्यान में घोर युद्ध के पीछे पृथ्वीराज से हारकर वह अपने देश को लौट गया । सन् ११९३ में यह बड़ी धूम और कौशल से फिर दिल्ली पर चढ़ा । हिंदुओं की सैना भी बड़ी धूम से इस के मुकाबिले को बाहर निकली । चित्तौर के समर सिंह इस सेना के सेनापति थे । युद्ध के डेरे पड़ने पर सुलह की बातचीत होने लगी । शहाबुद्दीन ने कहा हमने अपने भाई को सब वृत्तांत लिखा है, उत्तर आने तक लड़ाई बंद रहै । हिंदू सेना इस बात पर विश्वास करके शिथिल हो गई थी कि धोखा देकर एकाएक शहाबुद्दीन ने लड़ाई आरंभ की । बहुत से हिंदू वीर मारे गए । समरसिंह भी वीर गति को गए । पृथ्वीराज और उन के कवि चंद को कैद कर के ग़ज़नी भेज दिया । कहते हैं कि शब्दभेरी बान से अंधे होने की अवस्था में एक दिन पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन के भाई गयासुद्दीन का प्राण विनाश किया और उसी समय पूर्व संकेतानुसार चंद्र कवि ने उनको मारा और उन्होंने चंद * को । भारतवर्ष से हिंदुओं के स्वाधीनता का सूर्य

* चंद की उक्ति 'अब की चढ़ी कमान को जानै फिरि कब चढ़ै ।
जिनि चुक्कै चौहान इक्के मारय इक्क सर ।।'

सदा के हेतु अस्त हो गया । पीछे शहाबुद्दीन ने कन्नौज का राज भी ले लिया और बनारस को भी ध्वंस किया ।

भाई के मरने पर शहाबुद्दीन सन् १२०२ में पूरा बादशाह हुआ, किंतु आठ बरस भी राज्य करने नहीं पाया था कि बदमाशों के हाथ से (१२१०) मारा गया । उस समय हिंदुस्तान उस के दास कुतुबुद्दीन एवक के हाथ में था क्योंकि इसी को वह यहाँ का प्रबंध सौंप गया था । यों भारतवर्ष के राजेश्वरों का राज्य एक दास के अधीन हुआ ।

कुतुबुद्दीन ऐवक को शहाबुद्दीन के भतीजे महमूद गोरी ने बादशाह का खिताब भेज दिया और तब से हिंदुस्तान का राज्य निष्कंटक इस के अधिकार में आया । चार बरस राज्य कर के वह मर गया । इस का पुत्र आरामशाह साल भर भी राज्य करने न पाया था कि इस के बहनोई शम्सुद्दीन ने जो पहिले एक गुलाम था इस को सिंहासन से उतार मुकुट अपने सिर पर रक्खा । इस के समय में बंगाला, मुलतान, कच्छ, सिंधु, कन्नौज, विहार, मालवा और ग्वालियर तक दिल्ली के राज्य में मिल चुका था । इस के मरने के पीछे इस का बेटा रुकुनुद्दीन फीरोज बादशाह हुआ किंतु यह ऐसा नष्ट था कि इस को उतार कर लोगों ने इस की बहिन रजिया बेगम को बादशाह बनाया । साढ़े तीन बरस राज्य कर के बलवाइयों के हाथ से यह मारी गई । इस का भाई मुइजुद्दीन बहराम दो बरस दो महीना बादशाह रहा । फिर लोगों ने इस को कैद कर के इस के भतीजे अलाउद्दीन मसऊद को बादशाह बनाया । किंतु चार बरस बाद यह भी मारा गया और इस का चाचा नसीरुद्दीन महमूद बादशाह हुआ । अल्तिमश का दास और दामाद बलबन इस के समय में मंत्री था और इसने नरवर और चंदेरी का किला तथा गज़नी का राज्य जय किया था । सन् १२६६ में नसीर के मरने पर बलबन बादशाह हुआ और बीस बरस राज्य कर के ८० बरस की अवस्था में मर गया । इसका पोता कैकुबाद राजा हुआ किंतु यह ऐसा विषयी था कि दो बरस भी राज्य न करने पाया कि लोगों ने इसको मार डाला और दिल्ली का राज्य गुलामों के वंश से निकल कर खिलजियों के हाथ में आया ।

पंजाब से आकर सत्तर वर्ष की अवस्था में जलालुद्दीन खिलजी तख्त पर बैठा । मालवा और उज्जैन उस के समय में विजय हुए । इस के भतीजे अलाउद्दीन ने सन् १२९४ में देवगढ़ भी जीत लिया । किंतु दुष्ट अलाउद्दीन ने इस विजय के पीछे ही अपने वृद्ध चाचा को प्रयाग में मिलने के समय कटवा दिया और आप बादशाह हुआ । (१२९५) बादशाह होते ही इसने जलालुद्दीन के दो लड़के और उस के पक्षपाती कई सर्दारों को कत्ल किया और फिर बड़ी निर्दयता से गुजराज जीता । अनेक प्रकार के दुखदाई कर प्रचलित किए । १३०० में रणथम्भौर का प्रसिद्ध किला एक बरस की लड़ाई में टूटा और शरणागतवत्सल परम वीर हम्मीर[1] राजा सकुटुंब वीरों की गति को गया । १३०३ में इस ने चित्तौर पर चढ़ाई की । राजा रतन सेन से प्रथम मित्रता दिखला कर फिर विश्वास कर के उन को बंदी किया किंतु रानी पद्मावती अपनी बुद्धि और वीरता से राजा को छुड़ा ले गई । फिर तो क्षत्रियों ने जीवनाशा छोड़कर बड़ा युद्ध किया और सब के सब वीरगति को गए । क्षत्रानियाँ सब चिता पर बैठ कर भस्म हो गईं । १३०६ में देवगढ़ के राजा के कर न देने से फिर से उस पर चढ़ाई हुई और किला तोड़ा । १३१० में कर्नाटक में द्वारसमुद्र के राजा बल्लालदेव को और तैलंग के राजा लक्षधर को जीता । १३११ में विद्रोह के कारण एक दिन में इस ने अपने पंद्रह हजार मुगल सिपाही कटवा दिए । यह अति उग्र अभिमानी और निष्ठुर था । इस के मृत्यु के वर्ष १३१६ में देवगढ़ के राजा के जामाता राजा हरपाल ने देवगढ़ और गुजराज को जीतकर स्वतंत्र कर दिया । इसके मरने पर मलिक काफूर नामक एक इस के गुलाम ने जिसे इसने सर्दार बनाया था इसके दो बड़े बेटों को अंधा कर दिया और तीसरे मुबारक को अंधा करते समय आप ही मारा गया । कुतुबुद्दीन मुबारक ने बादशाह होकर (१३१७) अपने छोटे भाई को अंधा किया और बहुत से सर्दारों को मार डाला । यह अति विषयी और मूर्ख था । इस के एक हिंदू गुलाम ने, जिस का मुसलमान होने पर खुसरो नाम हुआ था, १३१९ में मलाबार जीता और १३२० में मुबारक को सकुटुम्ब

---

१. मीर मुहम्मदशाह मंगोल नामक एक सर्दार पर अपनी एक उपपत्नी से व्यभिचार के संदेह से अलाउद्दीन ने क्रोध करके उस के बध की आज्ञा दी थी । वह हम्मीर की शरण गया । बादशाह ने हम्मीर से मंगोल को माँगा किंतु धीर वीर हम्मीर ने अपने शरणागत को नहीं दिया इसी पर अलाउद्दीन चढ़ दौड़ा । राजा हम्मीर के विषय में यह दोहा जगतप्रसिद्ध है, सिंह सुवन सुपुरुष बयन, कदलि फलै इक सार । तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार ।

काटकर आप राज पर बैठा । दिल्ली में चार महीने तक इस का सिक्का चलता रहा । इस के समय में हिंदुओं ने मुसल्मान सर्दारों की स्त्रियों को दासी और वेश्या बनाया, मसजिदों में मूरतें बिठा दीं और क़ुरान की चौकी बनाकर उस पर बैठते थे । यह उपद्रव सुनकर पंजाब का सूबेदार गाजीखाँ सेना लेकर दिल्ली में आया और खुसरो को मार कर आप बादशाह बना ।

गाज़ी खाँ ने बादशाह होकर अपना नाम गियासुद्दीन तुगलक रखा (१३२१) । इसका बाप बलबन का गुलाम था । बीदर और वारंगल जीता । तुगलकाबाद का किला बनाया । तिरहुत जीत कर जब लौटा, तो नगर के बाहर इस के बेटे जूना ने एक काठ का नाचघर जो इसके लौटने के आनंद में बनाया था उस के नीचे दब कर मर गया । (१३२५) जूनाखाँ ने गद्दी पर बैठ कर अपना नाम मुहम्मद तुग़लक रक्खा । (१३२५) इसका प्रकृत नाम फखरुद्दीन अलग़खाँ था । पहिले यह बड़ा बुद्धिमान और बड़ा दानी था । हजार दर का महल बनाया । मुगलों ने सुलह किया और दक्षिण में अपना अधिकार फैलाया । पर पीछे से ऐसे काम किये कि लोग उसे पागल समझने लगे । हुकुम दिया कि दिल्ली की प्रजा मात्र दिल्ली छोड़ कर देवगढ़ में रहै, जिसको दक्षिण में दौलताबाद नाम से बसाया था । इसका फल यह हुआ कि देवगढ़ तो न बसा किंतु दिल्ली उजड़ गई । अंत में फिर दिल्ली लौट आया । फारस और खुरासान जीतने के लिये तीन लाख सतरह हजार सवार इकट्ठे किए । इन में से एक लाख को चीन लेने के लिए भेजा । ये सब के सब हिमालय में नष्ट हो गये, कोई न बचा । बहुत से कर प्रचलित किए । लोग शहर छोड़ कर जंगलों में भाग गये पर वहाँ भी पीछा न छोड़ा और जानवरों की भाँति उन लोगों का शिकार किया गया । कागज का सिक्का चलाया । बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा । लाखों मनुष्य मरे । चारों ओर विद्रोह हो गया । बंगाल और तैलंग स्वाधीन हो गये । मालवा, पंजाब और गुजरातवाले विद्रोही हो गये । कर्नाटक में विजयपुर नाम का एक नया राज्य हो गया । हुसैन बामनी ने मध्यप्रदेश में एक नया राज्य बनाया । अंत में विद्रोह शान्ति के लिए स्वयं सब ज़गह घूमा किंतु मालवा और पंजाब छोड़कर कहीं शांत न हुआ, रास्ते में सिंधु के पास ठट्ठा में इसकी मृत्यु हुई (१३५१) । मुहम्मद का भाई फीरोजशाह बादशाह हुआ (१३५१) । इसने स्थान स्थान पर हम्माम, चिकित्सालय, सराय, पुल, तालाब, पाठशाले और सुंदर महल बनवाए थे । कर्नाल से हाँसी हिसार तक जमुनाजी नहर निकाली । इसने अपने को अति वृद्ध समझकर नसीरुद्दीन को राज्य दिया किंतु इस के दो बरस पीछे नसीरुद्दीन के दो भाइयों ने बलवा करके इस को निकाल दिया और फीरोज शाह के पोते गियासुद्दीन को तख्त पर बैठाया । १३८९ में नब्बे बरस की अवस्था में फीरोज मरा और उसके पाँच ही महीने बाद १३८९ में इन्हीं बलवाइयों नो गियासुद्दीन को भी मार डाला और उसके भाई अबूबकर को बादशाह किया । अबूबकर साल भर भी राज्य नहीं करने पाया कि नसीरुद्दीन उस को जीत कर आप बादशाह बन बैठा । चार बरस राज्य कर के यह मर गया और इस का बड़ा बेटा हुमायूँ अपने को सिकंदर शाह प्रसिद्ध करके बादशाह हुआ । यह केवल ४५ दिन जीआ और इसके पीछे का छोटा भाई महमूद तुगलक बादशाह हुआ (१३९४) । इस की अवस्था छोटी होने के कारण राज्य में चारों ओर अप्रबंध हो गया और गुजरात, मालवा और खानदेश के सूबे स्वतंत्र हो गये और वज़ीर विगड़कर जौनपुर का स्वतंत्र राजा बन बैठा । इसी समय अमीर तैमूरलंग जो कि परमेश्वर की मानो मूर्तिमयी संहार शक्ति थी बहुत से तातारियों को लेकर हिंदुस्तान में आया (१३९८)। यह लँगड़ा था। इस के नाम तैमूर साहाकिराँ और गोरकाँ थे और जगद्वाहक चंगेजखाँ के वंश में था। पंजाब के रास्ते भटनेर इत्यादि जिनें नगर या गाँव मिले उनको प्रलय की तरह लूटता और जलाता हुआ दिल्ली को भी खूब लूटा और जलाया । लाख मनुष्य जो रास्ते में पकड़ गये थे कतल किये गये । १५ बरस से छोटे लड़के गुलामी के लिए नहीं मारे गये । महमूद गुजरात में भाग गया और तैमूर के नाम का खुतबा पढ़ा गया । सन् १३९९ में मेरठ लूटता हुआ यह अपने देश चला गया । महमूद फिर आया और छ बरस राज्य करके मर गया । और दौलत खाँ लौदी ने पंद्रह महीने तक राज्य किया । तैमूर से सूबेदार खिज्र खाँ सैयद ने इस से राज्य छीन लिया । सैयद अहमद ने अपने ज़ामेजम नामक चक्र में नसीरुद्दीन आदि दो तीन बादशाह और लिखे हैं जो और तवारीखों में नहीं हैं । १४१४ से १४२१ तक खिज्र खाँ बादशाह रहा और उस के मरने पर उस का बेटा मुबारकशाह बादशाह हुआ । १४३६ में उस के मंत्री अब्दुल सैयद और सदानंद खत्री ने उस को मार कर उस के भतीजे मुहम्मद को बादशाह बनाया । १४४४ ई. में इसके मरने पर इस का बेटा अलाउद्दीन बादशाह हुआ । उस समय की बादशाहत नाम मात्र को था । १४५० ई. में बहलूल लोदी ने पंजाब से आकर तख्त छीन लिया और

अलाउद्दीन बदायूँ चला गया।

बहलूल के बादशाह होने से पंजाब दिल्ली में मिल गया। जौनपुरवालों से छब्बीस बरस तक लड़कर उसने वह बादशाहत भी दिल्ली में मिला ली। १४८८ में इस के मरने पर इस का बेटा सिकंदर बादशाह हुआ। इसने हिंदुओं को अनेक कष्ट दिए। तीर्थ बंद कर दिए। पोर्चुगीज लोग पहले पहल इसी के काल में यहाँ आए। १५१६ में इस के मरने पर इसका बेटा इबराहीम बादशाह हुआ। यह ऐसा नीच और दुष्ट और अभिमानी था कि सब सूबेदार इस से फिर गए। पंजाब का सूबेदार सिकंदर लोदी जो इसका गोती था इस से ऐसा दुखी हुआ कि इसने काबुल के बादशाह बाबर जो तैमूर से छठी पुस्त में था उस को अपनी सहायता को बुलाया। बाबर ने आते ही पहले सिकंदर ही का राज नाश किया, फिर १५१६ में पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध में इबराहीम को जीतकर आप हिंदुस्तान का बादशाह हुआ।

बाबर ने बड़ी सावधानी से राज्य करना आरंभ किया। दिल्ली के अधीनस्थ जो सूबे फिर गये थे सब जीते गए। १५२७ में मेवाड़ के राजा संग्राम सिंह ने बहुत से देश जीत लिए थे, इस से कई बेर इन से घोर संग्राम हुआ, १४२८ में चंदेरी का किला टूटा। सब राजपूत बड़ी वीरता से खेत रहे। इसी साल राणा संग्राम सिंह ने रंतभँवर का किला ले लिया। १५२९ में बिहार, लाहौर, बंगाल आदि में अफगानों को बाबर ने पराजित किया। १५३० सन् में २६ दिसम्बर को बाबर की मृत्यु हुई। कहते हैं हुमायूँ बहुत बीमार हो गया था। बाबर ने इस बात का इतना सोच किया कि आप ही बीमार होकर मर गया। बाबर में कई गुण सराहने के योग्य थे। हुमायूँ ने राज्य पर बैठ कर अपने तीनों भाई कामरान्, हिंदाल और अस्करी को यथाक्रम काबुल, संभल और मेवात का देश दिया। पहले जौनपुर का विद्रोह निवारण करके फिर वह गुजरात पर चढ़ा और वहाँ के बादशाह बहादुर शाह को बड़ी बहादुरी से जीत लिया। १५३७ में शेरशाह ने बंगला जीत लिया और जब इधर हुमायूँ शेरशाह से लड़ने को आया तो बहादुर शाह फिर स्वतंत्र हो गया। शेरशाह पहले बाबर का एक सेनाध्यक्ष था। हुमायूँ ने पहले तो चुनार शेरशाह से जीता, किंतु पीछे शेरशाह ने विश्वासघात करके रोहतासगढ़ के राजा को मार कर उसके किले में अपना परिवार रख कर हुमायूँ पर एक बारगी, ऐसा धावा किया कि बनारस और कन्नौज तक जीत लिया। १५३९ में फिर एक बेर शेरशाह ने हुमायूँ का पीछा किया और गंगा में कूद कर हुमायूँ ने अपने को बचाया। सन् चालीस में फिर हुमायूँ शेरशाह से हारा और गंगा में तैर कर किसी तरह फिर बच गया। दिल्ली पहुँच कर अपना परिवार लेकर वह लाहौर गया, किंतु वहाँ भी शेरशाह ने पीछा न छोड़ा, इस से वह सिंध होता हुआ राजपुताने में आया। यहीं इसी आपत्ति के समय अमरकोट में १५४२ में अकबर का जन्म हुआ। डेढ़ बरस अमरकोट के राजा के आश्रय में रह कर हुमायूँ ईरान में चला गया और वहाँ के बादशाह की सहायता से वहीं रहने लगा।

शेरशाह ने (१५४०) हुमायूँ के अधीनस्थ सब राज्य अधिकार करके रायसेन, मारवार और मालवा जीता। (१५४५) चित्तौर जीतने का दृढ़ संकल्प कर के मार्ग में कालिंजर का किला घेरे हुए पड़ा था कि रात को मेगजीन में आग लगने से झुलस कर प्राण त्याग दिया। यह बड़ा धीर और बुद्धिमान था। घोड़े की डाँक, राजस्वकर, सराय, तहसीलदार आदि कई नियम उस ने उत्तम बाँधे थे। बंगाल से मुलतान तक एक राजमार्ग इस ने बनवाया था। इस के मरने पर इस का छोटा बेटा जलालखाँ सलीमशाह सूर नाम रख कर बादशाह हुआ। १५५३ में इस के मरने पर इस के बेटे फीरोजशाह को मार कर इस का शाला मुहम्मदशाह अदली बादशाह हुआ। राज्य का सब भार हेमू नामक एक बनिये के ऊपर छोड़ कर आप अति विषय में प्रवृत्त हुआ। चारों ओर बलवा हो गया। इसी वंश के इबराहीम सूर ने दिल्ली, आगरा, सिकंदर सूर ने पंजाब और मुहम्मद सूर ने बंगाला जीत लिया। हुमायूँ, जो हिंदुस्तान जीतने का अवसर देख ही रहा था, इस समय को अनुकूल समझ कर पंद्रह हजार सवार ले कर सिंध उतर कर हिंदुस्तान में आया और (१५५५) पंजाब जीतता हुआ दिल्ली में पहुँच कर फिर से भारतवर्ष के सिंहासन पर बैठा। जितने देश अधिकार से निकल गए थे सब जीते गए। किंतु मृत्यु ने उस को राज भोगने न दिया और एक दिन संध्या को महल की सीढ़ी पर से पैर फिसल कर गिरने से (१५५६) परलोक सिधारा।

इस की मृत्यु पर इस का पुत्र जगद्विख्यात अबुलमूज़फ्फर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह साढ़े तेरह बरस की अवस्था में बादशाह हुआ। बैरम खाँ खानखानाँ राज्य का प्रबंध करता था। बदखशाँ के बादशाह

सुलेमान शाह ने काबुल दखल कर लिया है, यह सुन कर वैरम अकबर को ले कर पंजाब के मार्ग से काबुल गया । इधर हेमूँ[1] बनिया ने तीस हजार सैन्य ले कर दिल्ली और आगरा जीत लिया और पंजाब की ओर अकबर के जीतने को आगे बढ़ा । बैरम खाँ ने यह सुन कर शीघ्र ही दिल्ली को बाग मोड़ी और पानीपत में हैमूँ से घोर युद्ध हुआ, जिस में हैमूँ मारा गया और बैरम की जीत हुई । इस जय से बैरम को इतना गर्व हो गया कि वह अकबर को तुच्छ समझने लगा । परिणामदर्शी अकबर उस की यह चाल देखकर बहाने से निकल कर दिल्ली चला आया और वहाँ (१५६०) यह इश्तिहार जारी किया की सल्तनत का सब काम उस ने अपने हाथ में ले लिया है । बैरम इस बात सेि खसिया कर बागी हुआ, किंतु बादशाही फौज से हार कर बादशाह की शरण में आया। अकबर ने उस के सब अपराध क्षमा किए और भारी पिनशन नियत कर दी । किंतु बैरम को उसी वर्ष मक्का जाती समय मार्ग में एक पठान ने ब्याह किया । मत का आग्रह छोड़ दिया । यहाँ तक कि कई हिंदुओं के तोड़े हुए मंदिर इसने फिर से बनवा दिए । लखनऊ, जौनपुर, ग्वालियर, अजमेर इत्यादि इस के राज्य के आरंभ ही में इस के आधीन हो गए थे । १५६१ में मालवा भी, जो अब तक राजा बाजबहादुर के अधिकार में था, इस के सेनापति ने जीत लिया । राजा के पहले ही पकड़े जाने पर उसकी रानी दुर्गावती बड़ी शूरता से लड़ी । दो बेर बादशाही फौज को इसने भगा दिया, किंतु तीसरी लड़ाई में जब हार गई तो आत्मघात कर के मर गई । इस पवित्र स्त्री का चरित्र अब तक बुंदेलखंड में गाया जाता है । अकबर ने बाजबहादुर को अपना निज मुसाहिब बना कर अपने पास रक्खा । १५६८ में अकबर ने चित्तौर का किला घेरा । राणा उदयसिंह पहाड़ों में चले गए, किंतु उन के परम प्रसिद्ध वीर जयमल्ल नामक सेनाध्यक्ष ने दुर्ग की बड़ी सावधानी से रक्षा किया । एक रात जयमल्ल किले के बुर्जों की मरम्मत करा रहा था कि अकबर ने दूरबीन से देख कर गोली का ऐसा निशाना मारा कि जयमल्ल गिर पड़ा । इस सैनाध्यक्ष के मरने से क्षत्री लोग ऐसे उदास हुए कि सब बाहर निकल आए । स्त्रियाँ चिता पर जल गईं और पुरुष मात्र लड़कर वीर गति को गए । उस युद्ध में जितने क्षत्री मारे गए उन सबका जनेऊ अकबर ने तौलवाया तो साढ़े चौहत्तर मन हुआ । इसी से चिट्ठियों पर ७४।। लिखते हैं, अर्थात जिसके नाम की चिट्ठी है उस के सिवा और कोई खोले तो चित्तौर तोड़ने का पाप हो । यद्यपि चित्तौर का किला टूटा किंतु वह बहुत दिनों तक बादशाही अधिकार में नहीं रहा । राणा उदय सिंह के पुत्र राणा प्रतापसिंह सदा सर्वदा लड़भिड़ कर बादशाही सेना का नाश किया करते थे । जहाँ बरसात आई और नदी नालों से बाहर आने का मार्ग बंद हुआ कि वह क्षत्रियों को ले कर उतरे और बादशाही फौज को काटा । मानसिंह का तिरस्कार करने से अकबर की आज्ञा से १५७६ में जहाँगीर और महाबतखाँ के साथ बड़ी सैना लेकर मानसिंह ने राणा पर चढ़ाई की । प्रतापसिंह ने हल्दीघाट नामक स्थान पर बड़ा भारी युद्ध किया, जिसमें बाईस हजार राजपूत मारे गए । इस पर भी राणा ने हार नहीं मानी और सदा लड़ते रहे । अपने बाप के नाम से उदयपुर का नगर भी बसाया और बहुत सा देश भी जीत लिया । १५७३ में गुजरात, ७६ में बंगाला और विहार, ८६ में काश्मीर, ९२ में सिंध और ९५ में दक्खिन के सब राज्य अकबर ने जीत लिए । अहमद नगर के युद्ध में (१६००) चाँद सुल्ताना नामक वहाँ के बादशह की चाची ने बड़ी शूरता प्रकाश की थी । इसी समय युवराज सलीम बागी हो गया और इलाहाबाद आदि अपने अधिकार में कर लिया । किंतु अकबर जब दक्खिन से लौटा तो जहाँगीर इस के पास हाजिर हुआ । अकबर ने अपराध क्षमा करके बंगाला और बिहार इस को दिया । १७८३ में युसुफजाइयों की लड़ाई में अकबर के प्रिय सभासद महाराज बीरबल मारे जा चुके थे और अबुलफजल को जहाँगीर के विद्रोह के समय उरछा के राजा ने मार डाला था, तथा उस का दूसरा लड़का मुराद भी अति मद्यपान करके मर चुका था । अब (१६०५) में अकबर को उस के तीसरे लड़के दानियाल को भी अति मद्यपान से मर जाने का समाचार पहुंचा । इतने प्रियवर्ग के मर जाने से इसका चित्त ऐसा दुखी हुआ कि बीमार हो कर ६३ वर्ष की अवस्था में आगरे में अकबर ने इस असार संसार को त्याग किया ।

---

१. इस का वास्तव में बसन्तराय नाम था । कई तवारीखों में इस की जाति दूसर लिखी है । किंतु अगरवालों के भाट इस को अगरवाला कहते हैं ।

अकबर अति बुद्धिमान और परिणामदर्शी था । आलस्य तो इस को छू नहीं गया था । प्रथमावस्था में तो कुछ भोजन पानादि का व्यसन भी था किंतु अवस्था बढ़ने पर यह बड़ा ही सावधान हो गया था । बरस में तीन महीना मांस नहीं खाता था । आदित्यवार को मांस की दुकानें बंद रहती थीं । जिजिया नामक कर और प्रत्यक्ष गोहिंसा उसने उठा दिया था । कर का भी बंदोबस्त अच्छा किया था । महाराज टोडर मल्ल (टन्नन खत्री), अबुलफ़ज़ल, खानखानाँ, मानसिंह, तानसेन, गंग, जगन्नाथ पंडितराज और महाराज बीरबल आदि सब प्रकार के चुने हुए मनुष्य इस की सभा में थे । कागज, हुंडी, बही आदि का नियम इन्हीं टोडर मल्ल का बाँधा हुआ है । विधवाविवाह के प्रचार में भी इस ने उद्योग किया था और तीर्थों का कर भी छूट गया था । भूमि की उत्पत्ति से तृतीयांश लिया था और पंद्रह सूबों में राज बटा हुआ था ।

अकबर के मरने पर सलीम नूरुद्दीन जहाँगीर के नाम से सिंहासन पर बैठा । इस ने बहुत से कर जो अकबर के समय भी बच गए थे बंद कर दिये । नाक कान काटने की सजा, बादशाही फौज का जमींदार या प्रजा से रसद लेना और अफ़ीम और मद्य का प्रचार इस ने बंद कर दिया । महल में एक सोने की जंजीर लटकाई थी कि किसी दीन दुखी की पुकार जो कोई राजपुरुष न सुनै तो वह जंजीर हिला दे । जंजीर की घंटी के शब्द पर वह आप बाहर निकल आता था और न्याय करता था । किंतु १६०६ में जब उसका लड़का खुसरो पंजाब में बाग़ी हो गया था तब जहाँगीर ने उसके सात सौ साथियों को बड़ी निर्दयता से उस के आँख के सामने मरवा डाला । १६१० से चार बरस तक मलिक अंबर और अहमद से लड़ाई होती रही । १६१४ में खुर्रम (शाहजहाँ) के साथ एक बड़ी सेना इस ने उदयपुर जीतने को भेजी थी, किन्तु राजा ने मेल कर लिया । १६११ में जहाँगीर ने नूरजहाँ से ब्याह किया । नूरजहाँ का पिता ग़ियासबेग ईरान का एक धनी था किन्तु विपत्ति पड़ने से वह व्यापार को हिन्दुस्तान आता था । मार्ग में नूरजहाँ का जन्म हुआ । ग़ियास यहाँ आकर अकबर के दरबार में भरती हो गया था । उसी समय से जहाँगीर की नूरजहाँ पर दृष्टि थी, अकबर के डर के मारे कुछ कर न सका और शेर अफ़गन नामक एक पठान अमीर के साथ जिसे अकबर ने बंगाल और बिहार में जागीर दी थी, नूरजहाँ का ब्याह हो गया था । बादशाह होते ही जहाँगीर ने बंगाले के सूबेदार को नूरजहाँ को किसी प्रकार भेज देने को लिखा । शेर अफ़गन बड़ी वीरता से मारा गया और नूरजहाँ बादशाह के पास भेज दी गई । चार बरस तक जहाँगीर ने इसकी सुश्रूषा करके इसके साथ विवाह किया । फिर तो नूरजहाँ ही सारी बादशाहत करती थी ; जहाँगीर नाम मात्र को बादशाह था । यह स्त्री चतुर भी अतिशय थी । १६२१ में जहाँगीर का बड़ा बेटा खुसरो मर गया । परवेज़ मूर्ख था, इससे जहाँगीर ने खुर्रम शाहजहाँ को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा । किन्तु नूरजहाँ की बेटी जहाँगीर के चौथे पुत्र शहरयार को ब्याही थी, इससे नूरजहाँ ने उसी को बादशाह बनाने की इच्छा से जहाँगीर का मन शाहजहाँ से फेर दिया । पिता का मन फिरा देख शाहजहाँ बाग़ी हो गया । दक्षिण में और बंगाले में यह बराबर लड़ता रहा और बादशाही फौज इस का पीछा किए फिरती थी । अंत में एक अर्जी भेजकर बाप से इसने अपराध की क्षमा चाही और अपने दो लड़कों को दरबार में भेज कर आप दक्षिण की सूबेदारी पर चला गया । नूरजहाँ ने एक बेर बंगाले के सूबेदार प्रसिद्ध वीर महाबतखाँ को हिसाब देने को बुला भेजा । महाबतखाँ इस आज्ञा से शंकित होकर आया सही, किन्तु पाँच हज़ार चुने हुए राजपूत अपने साथ लाया । इस समय जहाँगीर काबुल जाता था । ज्योंही झेलम पार इस की सैना उतर चुकी थी कि महाबतखाँ ने बादशाह और बेगम को घेर कर अपने अधिकार में कर लिया । किन्तु नूरजहाँ की चालाकी से कुछ दिन पीछे (१६२६) जहाँगीर महाबतखाँ के अधिकार से निकल आया । १६२७ में कश्मीर में जहाँगीर ऐसा रोगग्रस्त हुआ कि लाहौर में आकर साठ बरस की अवस्था में मर गया । आसफ़खाँ नामक नूरजहाँ के भाई ने जिसके हाथ में सारा राज्यचक्र था खुसरो के बेटे दावरबख़्श को नाममात्र बादशाह कर के आप काम काज करने लगा और शाहजहाँ को दक्खिन से बुला भेजा । शाहजहाँ के पहुँचने पर आसफ़खाँ ने दावरबख़्श को मार डाला । कहते हैं कि चौदह महीने यह नाम मात्र को बादशाह था । इंग्लिस्तान के बादशाह जेम्स (१) का एलची सर टामस रो जहाँगीर की सभा में आया था ।

शाहजहाँ १६२८ में बड़ी धूम धाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा । डेढ़ करोड़ रुपया उसी दिन व्यय हुआ था । महाबतखाँ और आसफ़खाँ इसके मुख्य मंत्री थे । दिल्ली फिर से बसाई गई । सात करोड़ दस लाख रुपया लगाकर तख़्तेताऊस (मोर का सिंहासन) बनवाया । आगरे में ताजगंज नामक प्रसिद्ध स्थान इसी

बादशाह का बनवाया है । नूरजहाँ जहाँगीर के पीछे २० बरस जीती रही और शाहजहाँ पच्चीस लाख रुपया साल इसको देता था । शाहजहाँ ने जैसा राज भोगा और सुख किया और हिन्दुस्तान की बादशाहत को चमकाया, पहले कभी ऐसा किसी और ने नहीं किया था । बत्तीस करोड़ साल इस की आमदनी थी । प्रति वर्ष सालगिरह में डेढ़ करोड़ व्यय होता था । मकानों में सोना और हीरा जड़ा जाता था । इस पर भी मरने के समय यह बयालीस करोड़ रुपया नक्द छोड़ गया था । १६३२ में कंदहार के ईरानी सूबेदार अलीमर्दानखाँ के शाहजहाँ से मिलजाने से कंदहार फिर हिन्दुस्तान के राज्य में मिल गया था, किन्तु इक्कीस बरस पीछे ईरानियों ने फिर जीत लिया । १६४६ में बुखारा भी बादशाह ने जीता । १६४७ में कई बरस की लड़ाई के पीछे दक्षिण में भी शांति स्थापन हुई और अबदुल्ला शाह गोलकुंडे के बादशाह से संधि हो गई । इसी संधि में कोहनूर नामक प्रसिद्ध हीरा बादशाह के हाथ लगा । शाहजहाँ को चार पुत्र थे । दाराशिकोह, शुजा, औरंगजेब और मुराद । दाराशिकोह बड़ा बुद्धिमान, नम्र और उदार था, किन्तु औरंगजेब इस के विरुद्ध दीर्घदर्शी और महाछली था । शुजा वीर था, परंतु अव्यवस्थित था और मुराद चित्त का बड़ा दुर्बल था । १६५७ में शाहजहाँ बहुत ही अस्वस्थ हो गया । दारा के हाथ में राज का शासन था । औरंगजेब ने इस अवसर को उत्तम समझ कर मुराद को बहकाया कि बेदीन दारा से बादशाहत तुम ले लो, हम तुम्हारी सहायता करेंगे और तुम को तख़्त पर बैठा कर मक्के चले जायँगे । मुराद दारा-से लड़ने चला । औरंगजेब भी आगे बढ़ कर उससे मिल गया । १६६२ में बंगाल से शाहशुजा भी फौज ले कर चढ़ा, किन्तु सुलैमान शिकोह (दाराशिकोह के बेटे) से बनारस के पास लड़ाई में हार कर फिर बंगाले चला गया । मुराद और औरंगजेब इधर यशवंत सिंह को जीतते हुए आगरे से एक मंजिल श्यामगढ़ में आ पहुँचे । दारा एक लाख सवार लेकर इन से युद्ध करने को निकला । राजा रामसिंह, राजा रूपसिंह, छत्रसाल आदि कई क्षत्री राजे उसकी सहायता को आए थे और बड़ी वीरता से मारे गए । परमेश्वर को मुसल्मानों का राज्य स्थिर नहीं रखना था इससे हाथी बिचलने से दारा की फौज भाग गई और औरंगजेब ने आगरे में प्रवेश कर के विश्वासघातकता से मुराद को कैद कर के १६५८ में अपने को बादशाह बनाया । अंत में एक दिन मुराद को भी मरवा डाला और सुलैमानशिकोह को भी, जो कश्मीर से पकड़ आया था, मरवा डाला । शुजा लड़ाई हार कर अराकान भागा और वहीं सवंश मारा गया । दारा ने सिंध की राह से अजमेर आकर बीस हजार सैना एकत्र कर के औरंगजेब पर चढ़ाई किया, किन्तु युद्ध में हार गया और औरंगजेब ने बड़ी निर्दयता से उसको मरवा डाला । उसके पुत्र सिपहरशिकोह को ग्वालियर के किले में कैद किया और फिर बहुत से शाहजादों को, जिन का बादशाह से दूर का भी संबंध था, कटवा डाला । कहते हैं कि दाराशिकोह बादशाह होता तो लोग अकबर को भी भूल जाते । इस के पीछे शाहजहाँ सात बरस जिया था ।

औरंगजेब के राज्य के आरंभ ही से मुसल्मानी बादशाहत का वास्तविक ह्रास समझना चाहिए । जिजिया का कर फिर से जारी हुआ । हिन्दुओं के मेले और त्योहार बंद किए । तीर्थ और देवमंदिर ध्वंस किए गए । इसी से 'तीन पुश्त की कमाई ' स्वरूप हिन्दुओं की जो दिल्ली के बादशाहों से प्रीति थी वह नाश हो गई । इधर दक्षिण में महाराष्ट्रों का उदय हुआ । शिवाजी नामक एक वीर पुरुष ने, जो यादवराव का नाती और मालोजी का पुत्र था, दक्षिण में अपनी स्वतंत्रता का डंका बजाया । पहले विजयपुर के राज में लूटपाट कर के अपनी सामर्थ्य बढ़ा कर १६६२ में बादशाही देशों को लूटना आरंभ किया । बादशाही सैनाध्यक्ष शाइस्ताखाँ ने इनके विरुद्ध आ कर पूने में अपना अधिकार कर लिया । किन्तु असम साहसी शिवाजी केवल पच्चीस मनुष्य साथ लेकर एक रात उसके डेरे में घुस गए और शाइस्ता बिचारे प्राण लेकर भागे । शिवाजी ने अबकी पूने से ले कर गुजरात तक अपना प्रताप बढ़ाया और तंजौर और मंदराज जीत कर १६६४ में अपने को राजा प्रसिद्ध किया । औरंगजेब शिवाजी के इस साहस से बहुत ही खिसिया गया और जयसिंह के साथ बहुत सी सैना उसे जीतने को भेजी । राजा जयसिंह और शिवाजी से संधि हो गई और उससे मरहठे दक्षिण में बादशाही मालगुज़ारी की चौथ लेने लगे । १६६५ में शिवाजी दिल्ली आए और औरंगजेब ने जब उन को नजरबंद कर लिया तो कुछ दिन पीछे बड़ी सावधानी से वह दिल्ली से निकल गए । १६६७ में औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की पदवी भेज दी और बीजापुर और गोलकुंडा के बादशाहों से लड़ने को इनको कहला भेजा । शिवाजी इन दोनों बादशाहों से लड़े और अंत में जब संधि हुई तो अपने राज्य का शिवाजी ने सुप्रबंध किया । १६६९ में शिवाजी का प्रभुत्व दक्षिण में स्थिर हो गया था, इससे औरंगजेब ने क्रोध करके महाबत खाँ को बड़ी सैना के साथ उन को दमन करने को भेजा, किन्तु (१६७०) शिवाजी ने उन को परास्त कर दिया । इसी समय सत्तनामी और सिख नामक दो

दल हिन्दुओं के और औरंगज़ेब के विरुद्ध खड़े हुए । १३७८ में जोधपुर के राजा यशवंत सिंह के सिंधुपार मारे जाने पर उन की स्त्री और पुत्र को निरपराध औरंगजेब ने कैद करना चाहा । यद्यपि दुर्गादास नामक सेनापति की शूरता से लड़के तो कैद नहीं हुए, किन्तु बादशाह की इस बेईमानी से राजपुताना मात्र विरुद्ध हो गया । उदयपुर के राणा राजसिंह, जयपुर के रामसिंह और सभी राजाओं ने बादशाह के विरुद्ध शस्त्र धारण किया । इधर दुर्गादास ने औरंगजेब के लड़के अकबर को बहका कर बागी कर दिया और सत्तर हज़ार सैना लेकर अजमेर में बादशाही सेना से बड़ा युद्ध किया । १६८० में बिरार, खानदेश, विल्लोर, मैसूर आदि देश में अपना अधिकार, यश और प्रताप विस्तार कर के शिवाजी मर गए । शिवाजी का पुत्र शंभुजी राजा हुआ और बादशाह के पुत्र मुअज़्ज़म को जीत कर बहुत देश लूटा, किन्तु एक युद्ध में बादशाही सैना से घिर कर पकड़ा गया और औरंगज़ेब ने उस को मरवा डाला । इधर बीस बरस के रगड़े झगड़े के पीछे गोलकुंडा और बीजापुर भी औरंगजेब ने जीत लिया । यद्यपि इस जीत से औरंगजेब का गर्व बढ़ गया, किन्तु साथ ही उस का आयुष्य और प्रताप घट गया । दक्षिण की लड़ाई के मारे खज़ाना खाली हो गया । हिन्दुओं का जी अति खट्टा हो गया । अंत में १७०७ में ८९ वर्ष की अवस्था में औरंगजेब मर गया और मुगलों का सौभाग्य भी उसी के साथ कब्र में समाहित हुआ ।

औरंगजेब के तीन लड़कों में से आज़म और मुअज़्ज़म दोनों ही बादशाह बन बैठे, किन्तु आज़म लड़ाई में मारा गया और कामबख्श भी दक्खिन में मारा गया, इस से मुअज्जम ही बहादुर शाह के नाम से बादशाह हुआ । इस ने उदयपुर, महाराष्ट्र आदि प्रबल राजों से संधि की । सिक्खों ने इस के समय में भी बड़ा उपद्रव किया । बहादुर शाह पाँच बरस राज कर के मर गया । इस के पीछे सभी बादशाह बनने लगे और बहुत सा रुधिर बहने के पीछे (१७१२) जहाँदार शाह बादशाह हुआ । यह भी साल भर नहीं रहा कि इस का भतीजा फर्रुखसियर इस को सपरिवार मार कर आप बादशाह हो गया (१७१३) । इसके समय में भाई बंदा नामक सिख बड़ी धर्मवीरता से मारा गया । १७१९ में सैयद अब्दुल्ला और सैयद हुसेन, जो इस के मुख्य सहायक थे, इस से बिगड़ गये और फर्रुखसियर मारा गया । सैयदों ने रफीउल्दरजात और रफीउलशान को सिंहासन पर बैठाया, किन्तु वे चार चार महीने में मर गये । जहाँदार और फर्रुख़सियर ने इतने शाहजादे मार डाले थे कि सैयदों ने बड़ी कठिनता से रौशनअख़तर नामक एक शहजादे को खोज कर कैद से निकाला और मुहम्मद शाह के नाम से बादशाह बनाया । (१७१३) विद्रोह चारो ओर फैल गया । १७२० में मालवा और १७२५ में हैदराबाद स्वतंत्र हो गए । सैयद लोग इस के पूर्व ही मारे जा चुके थे । इधर भरतपुर में जाटों ने नया राज्य स्थापन कर के लूटपाट आरंभ कर दी । इधर प्रताप शाली बाजीराव पेशवा ने दिल्ली के द्वार तक जीत कर चंबल के दक्षिण का सब देश अपने अधिकार में मिला लिया । (१७३७) इस के सर्दारों में से हुल्कर ने इंदौर, सेन्धिया ने ग्वालियर, गायकवाड़ ने बड़ौदा और भोंसला ने नागपुर राज्य स्थापन किया । इसी समय ईश्वर के क्रोध का एक पंचम अवतार ईरान का बादशाह नादिरशाह हिन्दुस्तान में आया । करनाल में मुहम्मदशाह ने इस से मुक़ाबला किया, किन्तु जब हार गया तो नादिरशाह के पास हाज़िर हुआ । नादिर ने इस का बड़ा शिष्टाचार किया । दोनों बादशाह साथ ही दिल्ली आए । उस समय दिल्ली ऐसे निकम्मे और लुच्चे लोगों से भरी हुई थी कि दूसरे ही दिन लोगों ने यह गप्प उड़ा दी कि नादिरशाह मारा गया । बदमाशों ने उस के मनुष्यों को काटना आरंभ कर दिया । इस बात पर नादिर ने ऐसा क्रोध किया कि सारी दिल्ली को काट देने का हुकुम दिया । डेढ़ पहर तक शाक की भांति लाख मनुष्यों के ऊपर काटे गये । अंत को मुहम्मदशाह रोता हुआ उस के सामने गया, तब नादिरशाह ने आज्ञा दिया कि काटना बंद हो जाए । उस की आज्ञा ऐसी मानी जाती थी कि उस के प्रचार होते ही यदि किसी ने किसी के शरीर में आधी तलवार गड़ाई थी तो वहीं से उठा ली — दिल्ली को यों उजाड़ा कर के अट्ठावन दिन वहाँ रह कर सत्तर करोड़ का माल साथ लेकर नादिर अपने मुल्क को लौट गया(१३७९) । कुछ दिन पीछे उसके देशवालों ने नादिरशाह को मार डाला और अहमदशाह नामक उस का एक सैन्याध्यक्ष कंदहार, बलख़, सिंध और कश्मीर का बादशाह बन बैठा । लाहौर लेते हुए (१७४७) हिन्दुस्थान में भी उस ने प्रवेश करना चाहा, किन्तु मुहम्मद शाह का पुत्र अहमद शाह ने सरहिन्द में युद्ध कर के उस को पीछे हटा दिया । इस के पूर्व (१७३०) बाजीराव मर गए थे, किन्तु उन के पुत्र बालाजी राव ने मालवा ले लिया था । १७४८ में मुहम्मद शाह मर गया । वह अति रागरंगप्रिय और विषयी था । इस का पुत्र अहमद शाह बादशाह हुआ । इस के समय में रुहेलों ने बड़ा उपद्रव उठाया था किन्तु मरहट्टों ने इनका दमन किया । १७५४ में

ग़ाजिउद्दीन ने अहमद शाह को अंधा और कैद कर के जहाँदारशाह के एक लड़के को तख्त पर बैठाया और आलमगीर सानी उसका नाम रक्खा । ग़ाजिउद्दीन ने अहमदशाह दुर्रानी के पंजाब के सूबेदार की माँ को कैद कर लिया था । इस बात से अहमदशाह ने ऐसा क्रोध किया कि बड़ी भारी सैना लेकर सीधा दिल्ली पर चढ़ दौड़ा । ग़ाजिउद्दीन बड़ी दीनता से उसके पास हाजिर हुआ, किन्तु वह बिना कुछ लिए कब जाता था । (१७४५) बल्लभगढ़ और मथुरा लूटी और काटी गई । दिल्ली और लखनऊ के लोगों से भी रुपया वसूल किया गया । अंत में नजीबुदौला को दिल्ली का प्रधान मंत्री बना कर अपने देश को लौट गया । ग़ाजिउद्दीन ने मरहट्टों से सहायता चाही और पेशवा का भाई रघुनाथ राव दिल्ली पर चढ़ आया । नजीबुद्दौला भाग गया और ग़ाजिउद्दीन फिर वज़ीर हुआ । इधर मरहट्टों ने अहमदशाह दुर्रानी के लड़के तैमूर को पंजाब से निकाल कर वह देश भी अधिकार में कर लिया अर्थात अब मरहठे सारे भारतवर्ष के अधिकारी हो गए । इसी समय में गाज़िउद्दीन ने बादशाह को मार डाला और आप दिल्ली छोड़ कर भाग गया । अहमदशाह दुर्रानी इस बात से ऐसा क्रोधित हुआ कि बहुत बड़ी सेना लेकर फिर हिन्दुस्तान में आया । पेशवा ने यह सुन कर अपने भतीजे सदाशिवराव भाऊ के साथ तीन लाख सेना और अपने पुत्र विश्वास राव को उस से युद्ध करने को भेजा । मरहट्टों ने पहले दिल्ली को लूटा, फिर पानीपति के पास डेरा डाला । पहले कुछ सुलह की बातचीत हुई थी, किन्तु अंत को ६ जनवरी १७६१ को दोनों दल में घोर युद्ध हुआ, जिस में दो लाख से ऊपर मरहट्टे मारे गए और अहमदशाह की जय हुई । इस हार से मरहट्टों का उत्साह, बल, प्रताप, सभी नष्ट हो गए और साथ ही मुगलों का राज्य भी अस्त हो गया । शुजाउद्दौला ने आलमगीर के बेटे अलीगौहर को शाहआलम के नाम से बादशाह बनाया (१७६१) । यह दस बरस तक तो पहले नजीबुद्दौला के डर से इलाहाबाद में पड़ा रहा, फिर उस के मरने पर मरहट्टों की सहायता से दिल्ली में गया । थोड़े ही दिन पीछे गुलामक़ादिर नामक नजीबुद्दौला के पोते ने दिल्ली लूट कर बादशाह को पृथ्वी पर पटक कर छाती पर चढ़ कर कटार से आँख निकाल ली और हाथ बाँध कर वहीं छोड़ दिया । महादजी सेंधिया यह सुन कर दिल्ली में आया और गुलामक़ादिर को पकड़ कर बड़ी दुर्दशा से मारा और अंधे शाहआलम को फिर से तख्त पर बैठाया । चारो ओर उपद्रव था । १८०३ में लार्ड लेक ने अँगरेजी सेना लेकर दिल्ली को मरहट्टों के हाथ से लिया और शाहआलम को पिन्शन नियत कर दी । शाहआलम को अकबर सानी और उस को बहादुर शाह हुए । ये लोग साढ़े सोलह लाख की जागीर और पिनशन भोगते रहे । अंत को वह भी न रही । यों मुसल्मानों का प्रतापसूर्य आठ सौ बरस तप कर अस्ताचल को गया ।

कनकपात्र रत नगजटित, फेंकत जौन उगार ।
तिन की आजु समाधि पर, मूतत स्वान सियार । ।
जे सूरज सों बढ़ि तपे, गरजे सिंह समान ।
भुज बल बिक्रम पारि निज, जीत्यो सकल जहान । ।
तिन की आजु समाधि पै, बैठयो पूछत काक ।
'को' हौ तुम अब 'का' भए, 'कहाँ' गए करि साक । ।

। । इति । ।

ग्रंथ का उपष्टम्भक

अकबर ने काश्मीर में हिन्दुओं के हेतु एक मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था, क्योंकि उस का मुसल्मान लोग तोड़ डाला करते थे । और उस पर उस की एक आज्ञा भी खुदी हुई है, जो यहाँ प्रकाशित होती है । इस से लोग उसका चित्त देखें ।

किताबए अबुलफ़जल बरलौह संग कलीसाए कश्मीर कि बमूजिब हुक्म अकबर तामीर याफ़्त : बूद व आँरा औरंगज़ेब आलमगीर ग़ाज़ी मिस्मार साख़्त । इलाही बहर कुजा कि मीनिगरम् जूयाये तवानद व बहर ज़ुबान कि मीशनूम गोयाये तवानद । शैर —

कुफ्रो इस्लाम दर रहश पोयाँ । वहद : लाशरीक वलह गोयाँ ।

अगर मस्जिदस्त बयाद तो नार : कुद्दूस मीज़नंद व अगर कलीसास्ता बशौक तो नाक़म मीजुंबानंद । शैर —

गहे मुहतक़िफ़ दैरम व गहे साकिने मस्जिद ।
यानी कि तुरा मीतलबम् खान : बखान : । ।

गर्चे खासान तरारा बकुफ्रो इस्लाम कारे न पस ईं हर दोरा दरपर्दा : इसरार तो बारी न : । शैर —

कुफ्र काफिर रा व दीन दीनदार रा । जर्र : दर्दे दिल अत्तार रा । ।

ईं खान : कि बनीयत तालीफ कुलूब मूहिदान हिन्दुस्तान खसूसा माबूद परस्ताँ अर्सए कश्मीर तामीर याफ़्त : । शैर —

बफ़र्मने खदीवे तख्तो अफ़सर । चिरागे आफरीनश शाह अकबर । ।

हरखान : खराब कि नज़र बर सिद्क न : अंदाख़्त : ईं खान : रा ख़राब साज़द बायद कि नखस्त मोबिद खुद रा बर अंदाजद गर्चे नज़र बदिल अस्त बाहम : साख्तनीस्त व अगर चश्म बर आबो गिलस्त हम : अंदाख़्तनीस्त । शैर —

खुदावंदा चु दारी कार दादी ।
मदारे कार बर नीयत निहादी । ।
तुई बर बारगाहे नीयत आगाह ।
व पेशे शाह दादी नीयते शाह । ।

हे परमेश्वर ! जिस स्थान को देखता हूँ वहाँ सब तेरे ही खोज में हैं और जिस से सुनता हूँ तेरी ही बात करते हैं । धर्माधर्म सब तेरे ही मार्ग में चलते हैं और एक ब्रह्माद्वैत ही का भाषण करते हैं । यदि तेरे वंदना के स्थान हैं तो वहाँ तेरे पवित्र नाम की शब्दध्वनि करते हैं और यदि देवस्थान हैं तो वहाँ सब तेरे ही अभिलाषा में शंखनाद करते हैं । कभी मैं मूर्तिमंदिर की परिक्रमा करता हूँ और कभी तेरे वंदनालय में रहता हूँ, अर्थात् तुझी को घर घर ढूँढ़ता हूँ । यद्यपि जो लोग तुझ में ही लवलीन हो रहे हैं, उन्हें इस द्वैतता से कुछ प्रयोजन नहीं और इन दोनो को तेरे अंतर भेद में गम्य नहीं । मूर्तिपूजकों को मूर्तिपूजा और वंदनावालों को वंदना किसी प्रकार चित्तरोग की शांति है ।

यह मंदिर भारतवर्ष के ब्राह्मद्वैतवादियों के विशेष कर काश्मीर प्रांत के प्रिय मूर्तिपूजकों के चित्त तोषार्थ सिंहासन और मुकुट के स्वामी साम्राज्य के मणिद्वीप महाराजाधिराज अकबर की आज्ञा से बनाया गया । जो सत्यानाशी सत्य पर दृष्टि न रखकर इस घर को गिरावेगा वह मानों अपने इष्ट का मंदिर ढहावेगा । यदि ईश्वर से सच्चे चित्त से संबंध है तो सब मत के स्थानों को बनाना चाहिये और मिट्टी पत्थर पर दृष्टि है तो सब को गिराना चाहिये ।

हे ईश्वर ! तू सब कर्मों के तत्व का समझनेवाला है और कर्मों की मूल मति है और तू ही हमलोगों की अंतर मति को जानता है और तू ही ने राजा के राजा योग्य मति दी है ।

किन्तु इस आज्ञापत्र पर दुष्ट औरंगजेब ने कुछ ध्यान न दिया और अपनी आज्ञा से इसे तोड़वा दिया ।

औरंगजेब ने एक आज्ञा सन् १०६९ हिज़री में ऐसी प्रचलित की थी कि बनारस में न कोई मंदिर तोड़े जाएं, न हिन्दुओं को दुख दें । १०६८ में विश्वनाथ का मंदिर उसने तुड़वाया था, उसके साल भर पीछे न जानें क्या दया आपके चित्त में आई कि यह आज्ञा प्रचलित की गई, किन्तु यह आज्ञा उस की किसी विशेष युक्ति से शून्य नहीं थी, और यह आज्ञा कार्य में परिणित भी नहीं हुई, क्योंकि १०७७ में इसी काशी में कृत्तवासेश्वर का मंदिर इसी की आज्ञा से तोड़ा गया था । वहाँ जो मस्जिद है उस का लेख भी यहाँ प्रकाशित होता है, इसी से उस के चित्त की कुटिलता स्पष्ट होगी । मंदिर न तोड़नेवाला असली आज्ञापत्र काशी में महादेव नामक एक ब्राह्मण के पास अद्यापि विद्यमान है ।

बिस्मिल्ला अल्रहमान अल्रहीम

तुग़रा बादशाह

मुहर बादशाह

सुदा

लायक़ुल एनायः व अल मरहमः अबुलहसन बइल्तफात शाहानः उम्मीदवार बूदः बिदानद कि चूँ बमुकतज़ाय मराहिम जाती व मकारिम जबली हमगी हिम्मत वाला नहिम्मत व तमामी नीयत हक़ तवीयत मा-बर-रिफाहियत ज़म्हूर व इंतजाम अहवाल तबक़ात खवास व अवाम मसरूफस्त व अज़ रूये शरअ शरीफ न मिल्लत मनीफ मुकर्रर चुर्नी अस्त कि दैरहाए देरीन बरअंदाख्तः न शवद व बुतकदः हाए ताज: बिना नयाबद व दरीं अय्याम मादलत इंतजाम बगरज अशरफ़ अकदस अर्फा आला रसीद कि बाज़ मर्दुम अज राह अनफ़ व तादी वहनूद सकनः कस्वः बनारस व बर्खे अमकनः दीगर कि बनिवाहे आँ वाकः अस्त व जमाअः बिरहमनान सदनः आँ महाल कि सदानत बुतखानः हाय कदीम आँजा ब आँहा ताल्लुक दारद मुजाहिम व मोतरिज़ मीशवंद व मीख्वाहंद कि एशाँरा अज़ सदानत आँ कि अज़ मुद्दत मदीद ब आँहा मुतअल्लिक अस्त बाज दारंद व ईं मआनी बाएस परेशानी व तफरकः हाल ईं गरोह मी गर्दद लिहाजा हुम्म वाला सादिर मीशवद कि बाद अज़ बरूद ईं मनशूर लामअलनूर मुकर्रर कुनद कि मन बाद अहदे बवजूह बेहिसाब तआरुज व तशवीश बअहवाल बिरहमनान व दीगर हनूद मुतवतनः आँ महाल नरसानद ता आँ हा बदस्तूर एय्याम पेशीं बजा व मुक़ाम खुद बूदः बजमैयत खातिर बदुआए बकाए दौलत दाद अबद मुद्दत अज़लं बुनियाद कयाम नुमायंद दरीं बाब ताकीद दानद । बतारीख १५ शहर जमादिउस्सानियः सन् १०६९ हिज़री नविश्तः शुदः

शाहजादा सुलतानमुहम्मद

मुहर

सुलतान

बरिसालए नवाब कुदसी अलक़ाब नौ बादः बर सितान खिलाफत गुज़ीं समरः शजरः रफअत चिराग़ दूदमान अबहत फरोग़ खानदान शौकत कुरः नासिरः दौलत व इकबाल तरह नामिया हशमत व इजलाल गिरामी नसब समीउल् मकान अल ममदूह बलसानुल् बाद वातुहर शाहज़ादः नामदार कामगार वालातबार मुहम्मद सुलतान बहादुर ।

यह आज्ञापत्र शाहज़ादे मुहम्मद सुल्तान बहादुर के नाम है । इस का आशय यह है— 'कुरान में लिखा है कि पुराने मंदिर को नहीं गिराना और नए नहीं बनाने देना । ऐसा सुना गया है कि बनारस के ब्राह्मणों को लोग दुख देते हैं, इस हेतु यह आज्ञा दी जाती है कि आगे से कोई हिन्दुओं के स्थानों को न छेड़े और ब्राह्मणों को निर्विघ्न पाठ पूजा करने दे (इत्यादि) १५ जमादिउस्सानी १०६९ ।

इस के पीछे का कृत्तवासेश्वर की मस्जिद पर का लेख ।

ज़े हुक्मे शाह सुलताने शरीअत । दलीले ज़हद बुर्हाने तरीक़त ।।
शहाबे आसमाने सरफ़राज़ी । मुहम्मदशाह आलमगीर ग़ाजी ।।

सरे अस्नाम बुतखानः शिकस्तः। जह्ररं मस्जिदे दिलख्वाह गश्तः।
(१०७७)

व इस्तसवाब नूरुल्लाह मुत्ती। गुलामे दरगहे पीराने चिश्ती।।
सनाए खानः जीनत अस्त पैदा। जे दौलतखाना तारीखश हुवेदा।।
(१०७७ हि.)

अर्थ — मुसल्मानी धर्म के स्वामी (इत्यादि) औरंगज़ेब बादशाह की आज्ञा से देवमंदिर के देवताओं के सिर तोड़ कर यह मस्जिद बनाई गई (इत्यादि) १०७७ हिजरी।

कालचक्र

अर्थात्

संसार में जो बड़ी बड़ी घटना हुई हैं उन का समय निर्णय

(श्री हरीशचन्द्र लिखित)

संसार में जो कुछ भी बड़ी घटनायें हुई हैं। सृष्टि के आरम्भ से लेकर भारतेन्दु तक, इस ग्रन्थ में उन सबका समय निर्धारण किया गया है। कालचक्र का रचनाकाल सन् १८८४ है। भारतेन्दु बाबू अपने जीवन काल में इसे पूरा नहीं कर पाये। बाद में श्री राधाकृष्ण दास ने इसे पूरा कर खंग विलास प्रेस से छपवाया। इसकी भूमिका भी राधाकृष्ण दास जी ने ही लिखी है। — सं.

भूमिका

ॐ कालात्मने भगवते श्री कृष्णाय नमः

हाय! इस 'कालचक्र' को पूरा करके छपाने की भी नौबत न पहुँची कि पूज्यपाद भारतेन्दु जी आप ही कालचक्र के कवाल गाल में जा फँसे! अस्तु भगवदिच्छा, अब कोई वश नहीं।

यह उन का परिश्रम आप लोगों की सेवा में भेंट किया जाता है, यदि इस से आप लोगों को कुछ भी सहायता मिलेगी तो सब परिश्रम सुफल हो जायगा।

बनारस — **सेवक**

बैशाख कृष्ण १ सं. १९४९ — **श्री राधाकृष्ण दास**

ॐ कालात्मने श्री कृष्णाय नमः

कालचक्र

(ईसवी के पूर्व का काल)

घटना	समय	विशेष
सृष्टि का प्रारंभ	१९७२९४७१०१	
सत्ययुग का प्रारंभ	३८९११०१	
त्रेतायुग का प्रारंभ	२१६३१०१	आर्य लोगों के मत से ।
द्वापरयुग का प्रारंभ	८६७१०१	
कलियुग का प्रारंभ	३१०१	ज्योतिष के मत से
,,	१८५७	भागवत ,,
,,	१७७५	ब्रह्माण्ड पुराण ,,
,,	१७२९	वायुपुराण ,,
,,	१०७८०	बौद्ध लोग ,,
इक्ष्वाकु का जन्म और प्रथम बुद्ध	२१८३१०२	पौराणिक मत से
,, ,,	५०००	जोंस ,,
,, ,,	२७००	विल्फ़र्ड ,,
,, ,,	१५२८	बेंटली ,,
इक्ष्वाकु जन्म, प्रथम बुद्ध	२२००	टॉड ,,
,, ,,	३५००	जोंस ने स्थानांतर में माना है ।
श्रीराम ...	८६७१०२	पौराणिक मत से
,, ...	२०२९	जोंस ,,
,, ...	१३६०	विल्फ़र्ड ,,
,, ...	९५०	बेंटली के मत से
,, ...	११००	टॉड ,,
युधिष्ठिर ...	३१०२	पौराणिक मत से
,, ...	५७६	बेंटली ,,
,, ...	१४३०	विल्फ़र्ड ,,
,, ...	१३९१	डेविस ,,
,, ...	११८०	जोंस और कोलब्रुक के मत से
महाभारत का युद्ध ...	१३६७	बिल्सन के मत से
कश्मीर राज्य-स्थापन	३७१४	
परीक्षित	३१०१	
श्री विष्णु स्वामी	३०००	
श्री निंबार्क स्वामी	३०००	
जनमेजय	१३००	
सुमित्र और प्रद्योत	२१००	पौराणिक मत से
,, ...	१०२९	जोंस ,,
,, ...	७००	विल्फ़र्ड ,,

सुमित्र और प्रद्योत	११९	बेंटली ..
,, ...	९१५	विल्सन ..
,, ...	६००	बर्मावाले ..
स्वायंभुवमनु ...	४००६	
जयगुप्त ने नैपाल राज्य की स्थापना की	२५९५	
सृष्टि का प्रारंभ	४००४	हिवरू धर्म पुस्तक के मत से
,, ...	५८७२	अन्य विद्वानों के मत से
,, ...	४७००	समारतिन मत से
,, ...	४७१०	जूलियन मत से
आदम की उत्पत्ति	४००४	
कायन की उत्पत्ति	४००३	
नूह का प्रलय	२३४९	
चीन राज-स्थापन	२२०७	
मिश्र राज्य-स्थापन	२१८८	
इब्राहीम का जन्म	१९९६	
हिन्दुस्तान से एथिओपियन लोगों का मिश्र में जाना	१६१५	
मूसा की उत्पत्ति	१५७१	
यूनान की सभ्यता	१५००	
यूरोप में पहले पहल जहाज चलना	१४८५	
शाक्य सिंह	१०२७ ई.पू.	चीनियों के अनुसार
,,	९६२ ई.पू.	तिब्बत के अनुसार
दाऊद का काल	१०३४	
रुस्तम हिन्दुस्तान में आकर कन्नौज में शिवराजवंश स्थापन किया	१०२७ ई.पू.	फरिश्ता
सुलेमान का उदय	९९२	
कीन सेमीरैमिस अर्थात् शमीरामा देवी	८१०	तृतीय बलबश की स्त्री कहते हैं कि यह भारतवर्ष में आई थी।
शिशु नाग	१९६२	पौराणिक मत से
,,	८७०	जोन्स ,,
तिब्बत राज्यारंभ	९६२ ई.पू.	तिब्बत के अनुसार
विलायत में चाँदी तथा सोने का सिक्का बनना	८९४	
मालवा का राज्य चला (धनंजयस)	८४०	
विलायत में चंद्रग्रहण गिना जाना	७२१	किसी के मत से इसी साल गौतम का जन्म
शिशुनाग	७७७	
वलीद के काल में मुसल्मानों ने भारतवर्ष में उपद्रव मचाया	७११	
अन्हल चौहान	७००	

शंकर ने गौड़ (लखनौती नगर) बसाया	७३१ ई.पू.	
चौहान (राज्यस्थापन, अन्हल चौहान)	७०० ई.पू.	दिल्ली अजमेर का राज्य इस वंश में अब निमरान के राजा हैं ।
चीनी और तातारियों में बड़ी लड़ाई	६३६	
नंद	१६००	पौराणिक मत से
,,	६९९	जोन्स ,,
महावीर स्वामी (जैनों के)	६२९	
भारतवर्ष से विजयराज ने लंका में जाकर जीतकर राज स्थापन किये	५४३ ई.पू.	
ब्रह्मराज्य स्थापन	६९१ ई.पू.	
विलायत में गानविद्या का नियमित रूप से चलना	६००	
चंद्रगुप्त ...	१५०२	पौराणिक मत से
,, ...	६००	जोन्स ,,
गौतम (बौद्ध मत का प्रचार)	६०८ ई.पू.	बर्मा वालों के मत से
रोम नगर में पहिले पहले मर्दुमशुमारी	५६६	
नौशेरवाँ की सेना हिन्दुस्तान में आई ।	५३०	
एथीन्सनगर में पहले पहल दुःखांत नाटक खेला जाना	५३५	
पयथागोरस मिश्र में आया	५३४	
अशोक ...	१४७०	पौराणिक मत से
,, ...	५४०	जोन्स ,,
अरस्तू का अंत और सुकरात का उदय	४६८	
नंद ...	४१५	नवीन विद्वानों के मत से ।
दहलू ने दिल्ली बसाई	४७१ ई.पू.	
सिकंदर का जन्म	३५६	
चंद्रबीज (मगध का अंतिम राजा)	४५२	पौराणिक मत से
,,	३००	जोन्स ,,
चंद्रगुप्त ...	३१५ ई. पू.	
अशोक ...	३३० ई.पू.	
सिकंदर ...	३३४	
सिकंदर ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की	३३१ ई.पू.	
दूसरे अरस्तू जुकरात, बुकरात आदि का उदय	३३०	
सिकंदर का भारतवर्ष में आगमन	३३७	
सिकंदर की मृत्यु	३२३	
क़हक़हा दीवाल का बनना	३००	

बली ...	९०८ ई.पू.	पौराणिक मत से
,, ...	१४९	जोन्स
जैसलमेर में यादवों का राज्य-स्थापन	१५० ई.पू.	
विक्रमादित्य	५६ ई.पू.	

ईसवी सन् से पूर्व या ईसवी सन में।

विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा	५७	
कैसर का उदय	५०	
ईसा मसी फाँसी पड़े	३३ ई.	
रोमवालों ने लंडननगर बनवाया	५० ई.	
सौराष्ट्र में वल्लभी वंश	१ ई.	
मनीपुर राज्यारंभ (पाखंबा)	३५ ई.	
फ़ारस राज्य स्थापन (अर्द शेर)	२२६ ई.	
आमेर राज्य-स्थापन (नल-नरवर गढ़)	२९४ ई.	
कर्णाट राज्यस्थापन	३०० ई.	
यूनान और एशिया में महाभूकंप हुआ १५० नगर नष्ट हो गये	३५८	
राठौर राज्य कन्नौज में स्थापन (यवनाश्व)	३००	
भोज ...	४८३ ई.	
मुहम्मद ...	५९४ ई.	जन्म ५६९ ई. मृत्यु ६५३ ई.
भारतवर्ष से यरप में रेशम गया	५५१ ई.	
एलोमार्चिश ...	६४८	Poulomeon of Chinese
अबूबकर ...	६३२ ई.	
उमर ...	६३४	
उसमान ...	६४४	
अली ...	६५६	
हुसेन ...	६६१	
करबला का युद्ध ...	६८१	
मुहम्मद का मदीने पलायन हिजरी सन् का स्थापन	६२२	
मुसलमानों ने इसकंदरिया का प्रसिद्ध पुस्तकालय जला दिया जिसमें केवल पुस्तकों की अग्नि से महीनों सब काम हुआ. हा !	६४०	
गुजरात राज्य-स्थापन (शैलदेव द्वारा)	६६९ ई.	
बापारावल ...	७१३ ई.	
हारूँरशीद ...	७८६	

ईसामसीह के जन्म से ईस्वी संवत की गणना चली ७४८

वकील विद्या की यूनान और रोम में सृष्टि हुई ७८८

मेवाड़ राज्य-स्थापन ७५०

रुरिक ने रूस बसाया ८६१

इंग्लैंड के लोगों ने ईंटा और मोमबत्ती बनाना सीखा ८८४

चालुक्य वंश राज्य ८१०

सुबुक्तगीन की भारतवर्ष पर चढ़ाई ९७०

जयपाल और सुबुक्तगीन का युद्ध ९७७ ई.

दूसरे आरडोनों ने स्पेन में सत्तर हजार मुसल्मानों को मारा। ९१८

इंगलैंड में फ्रीमैसन चला ९२६

यूरोप में गणित विद्या चली ९४१

तैलंग राज्य-स्थापन (राजधानी बारंगगोला) ९५१

महमूद ग़जनवी की पहली चढ़ाई १००१

सोमनाथ का टूटना १०२४

यूरप में कागज गूदर से बना १०००

क्रूसेड का प्रसिद्ध धर्मयुद्ध तीन लाख कृस्तानों ने आरंभ किया १०९६

द्वारावती (हाड़ा) राज्य-स्थापन १०२४ ई. अब कोटा बूँदी

बंगाल राज्य-स्थापन (भूपाल) १०००

विजय नगर राज्य-स्थापन (नंद) विद्यानगर १०३४

पृथ्वीराज ... ११९२ ई.

मुहम्मद गोरी ... ११९३

श्री रामानुज ११३७

श्री शंकराचार्य ११२२

शहाबुद्दीन की पहली चढ़ाई ११९१

पृथ्वीराज की हार, भारत की स्वाधीनता का अंत ११९३

युल्किड इंगलैंड में गई ११३०

पुस्तक बेंचने की चाल इंगलैंड में चली ११००

इंगलैंड में कर में रुपया लेना अब तक अन्न आदि लिया जाता था ११३६

वेंकटगिरि राज्यस्थापन (पाटलमारि बेताल) ११४०

गया उद्धार के हेतु उदयपुर के नौ राजाओं का वीरगति पाना — १२०० ई.

रणथम्भौर का हम्मीर	१२९९ ई.	
चंगेज़खाँ ...	१२०६	
हलाकू ...	१२५९	
कुतुबुद्दीन ऐबक	१२०६	
चंगेज़ खाँ का भारत में उपद्रव	१२१२	
रज़िया बेगम स्त्री-बादशाह हुई	१२३६	
दक्षिण पर मुसल्मानों की पहली चढ़ाई	१२९४	
हलाकू ने तातार राज्य स्थापन किया	१२५९	
बंगाले में (लखनौती गौड़) मुसल्मान राज्यारंभ (बखतियार खिलजी)	१२०३	इन लोगों ने अकबर के समय तक राज्य किया
इंगलैंड में जिआग्रफी गई	१२१०	
प्रसिद्ध मैगनाचार्टा पर हस्ताक्षर हुए और पार्लियामेंट इंगलैंड में चली	१२१५	२५ जून
कंपनी बनाकर व्यापार करने की चाल चली	१२३२	
इंगलैंड में प्रतिष्ठित लोगों को इस्कायर कहने की चाल चली।	१२४४	
वहाँ राजकवि का पद प्रतिष्ठित हुआ	१२५१	
वहाँ पहले पहल सोने का सिक्का बना	१२५७	
राठौरों का जोधपुर में बसना	१२१०	
बीरबुक्कराज विजयपुर का राजा, माधवाचार्य	१३३४ ई.	
तैमूर ...	१३९३	
श्रीमध्व ...	१३००	
जौनपुर की शाही स्थित हुई (ख्वाजा जहाँ)	१३९४	सन् १४७६ में यह राज बंगाले के मुसल्मानी राज्य में मिल गया।
गुजरात राज-नाश	१३०९	अलाउद्दीन मुहम्मद शाह ने जीता।
कुलबर्गा की बहमनी बादशाहत का आरंभ	१३४७	
यूरप में चाँदी के बरतन चिमचे चले और अलजेबरा आया।	१३००	
वहीं हुंडी की चाल चली।	१३०७	
गोटा किनारी चला (यूरप में)	१३२०	
छठे चार्लस फ़रासीस के बादशाह के वास्ते ताश का खेल बना	१३९१	
मालवा राज्य-ध्वंस	१३३० ई.	मुसलमानी राज्य में मिल गया।

गुरु नानक	१४१९	
गुरु अङ्गद	१४३०	
बीजापुर की बादशाहत का आरंभ	१४८९	
इंगलैंड में बारूद बनी	१४१८	
काठ के टाइप से यूरोप में पहले पहल छापना चला	१४३०	
वहाँ शीशा बनाना चला	१४५७	
वहाँ तौल नियत हुई	१४५२	
वास्कोडिगामा का हिन्दुस्तान खोजने को चलना	१४९७	
कोलम्बस के साथियों द्वारा अमेरिका का प्रादुर्भाव	१४९९	
बीकानेर राज्य-स्थापन (बीका)	१४५८	
आसाम राज्यारंभ	१४००	
मैसूर राज्य-स्थापन (बट्टावाड्डियार)	१४९०	
साँगा राणा का बाबर को जीतना ।	१५०८	
राणा प्रताप सिंह अकबर का घोर युद्ध ।	१५८३	
गुरु अमरदास	१५५२	
गुरु रामदास	१५७४	
गुरु अर्जुन	१५८१	
श्री वल्लभाचार्य	१५३५	
श्रीकृष्ण चैतन्य	१५४२	
श्री हितहरिवंशजी	१५८२	
बाबर का दिल्ली राज्य पर बैठना	१५२६	
सक्के ने चमड़े का सिक्का चलाया	१५३९	
गोलकुंडा की बादशाही का आरंभ	१५१२	
डिफेंडर आफ दी फेथ का पद हेनरी (७) को दिया गया जो, अब भी महारानी को है ।	१५२१	Defender of the faith
प्रोटेस्टेंट मत स्थापन	१५२९	
एंगलैंड में डाकखानों की सृष्टि	१५३१	
वहाँ के लोगों ने सूई बनाना सीखा ।	१५४५	
मेरी स्काटलैंड की रानी का सिर काटा गया ।	१५८७	एलिजबेथ ने व्यर्थ यह पाप किया । एलिजबेथ बड़ी पापासक्त थी किन्तु प्रकट में धार्मिक बनी थी ।
इंगलिश मर्क्यूरी नामक प्रथम समाचार पत्र चला	१५८८	English Mercury
कवि शेक्सपीयर का उदय	१५९५	
शिवाजी	१६४७ ई.	
गुरु हरिगोविंद	१६०६	

गुरु हरिराय	१६६४	
गुरु हरिकृष्ण	१६६१	
गुरु तेगबहादुर	१६६४	
गुरु गोविंदसिंह	१६७५	
व्यांस जी	१६१२	
अकबर का मरना	१६०५	
शिवाजी का जन्म	१६२७	
ईस्ट इंडिया कंपनी स्थापित हुई	१६००	
मदरास में अंगरेज जमे	१६२०	
तथा बंबई में	१६६१	
बंदा साहब	१७०८	
लंका का राज्य अंगरेजों ने लिया	१७९८	
हैदराबाद का राज्य आसफजाह ने स्थापन किया	१७१७	
बाजीराव का अंत	१७१८ ई.	
लखनऊ राज्यारंभ	१७००	
पानीपत में भाऊ की हार	१७५९	
शाह आलम को गुलाम कादिर ने अंधा किया	१७८८	
सिंहल (लंका) का अंतिम राजा	१७९८ ई.	अंगरेज़ों ने लिया
श्री विक्रमराजसिंह		
सर न्यूटन जोत्सी	१७००	
इंगलिस्तान में सूत की कल तथा फारस में प्रथम बैल्यून	१७३०	
कलकत्ता अंगरेजों ने स्वाधीन किया	१७५६	
बकसर की सिराजुद्दौला की लड़ाई	१७६४	
यह बात जानी गई कि जल दो वायु मिलकर बनता है	१७८१	
अमेरिका स्वतंत्र हुआ, सवा अरब रुपया, पचास हजार प्राणी और कई टापू गवाँ कर अंगरेज़ शांत हुए	१८७२	
विद्युतशक्ति प्रचारक बेनजामिन फैंकलिन मरा	१७९०	
नेपोलियन बोनापार्ट	उदय १७९४ अस्त १८२१	
वारन हेस्टिंग्स — जिसने राजा चेतसिंह से महा अन्याय पूर्वक बनारस का राज्य छीना था, सात लाख रुपया पार्लियामेंट में व्यय करके सात बरस में उन लोगों की दृष्टि में दोष मुक्त हुआ।	१७९५	किन्तु न्यायकर्त्ता परमेश्वर के सामने से दोष मुक्त कब हो सकता है ?

घटना	सन्	टिप्पणी
फ़रासीस में अंगरेज़ों को अति दु:खित जान कर दयालु आर्यों ने केवल बंगदेश से पद्रह लाख और अन्य २ देश में से करोड़ों रुपया भेजा।	१७९८	इलबर्टबिल विद्वेषी इस को पढ़कर भी हमलोगों से कृतघ्नता करने में न चूकेंगे।
टीपू हारा, अंगरेज़ों ने श्रीरंगपट्टन लिया।	१७९९	
हैदराबाद में निजाम राज्य-स्थापन (आसफ़जाह)	१७१७	
बनारस में सरकार का राज्य	१७६३	राजा चेतसिंह को निकाल दिया १७८१
वज़ीर अली का उपद्रव	१७९८	
मथुरा में कत्लेआम	१७५८	
नादिरशाही	१७३९ ई.	
कलकत्ता सर्कार ने लिया	१७५८	
पलासी की लड़ाई	१७६३	
विजयनगर (विद्यानगर) राज्य-नाश	१७५६	राजा त्रिमल्ल राव को सुलतान खाँ ने राज्य से उतारा।
पेशवा राज्यारंभ (बाला जी)	१७४०	
नागपुर राज्यारंभ (रघु जी)	१७३४	भोंसले
सेंधिया राज्यारंभ (रानू जी)	१७२४	
हुलकर राज्यारंभ (मल्हार राव)	१७२४	
गाइकवाड़ राज्यारंभ (दामाजी)	१७२०	
महाराज रणजीतसिंह	१८०५	
लखनऊ में बादशाही पद गाजीउद्दीन	१८१४	
लखनऊ का नाश	१८४७	
लार्ड लेक ने दिल्ली ली	१८०३	
तार की ख़बर का प्रचार	१८००	
इन्जिन से नाव चलाना चला	१८१२	
शाहशुजा से महाराज रणजीत सिंह ने कोहनूर हीरा लिया।	१८१४	
महारानी विक्टोरिया का जन्म	१८१९ मई २०	
लार्ड बेंटिंक ने सती होना बंद किया।	१८२९	
अमेरिका से पहले पहल जहाज में बरफ़ भर के कलकत्ते में आया।	१८३३	
अंगरेज़ी राज्य के सब टापू में लौंडी गुलाम स्वतंत्र कर दिए गए।	१८३४	
महारानी विक्टोरिया राज्य पर बैठी	१८३७ २० जून	उस समय अंगरेजी राज्य की आमदनी साढ़े छियालिस करोड़ थी।
महारानी विक्टोरिया का विवाह दोस्तमहम्मद का पकड़ा जाना।	१८४१ फरवरी १०	

रेल का नियमित रूप से चलना

प्रिंस आप वेल्स का जन्म	१८४१
प्रिंसेस आफ वेल्स का जन्म	१८४४
हिन्दुस्तान में बलवा	१८५७
महारानी का ईस्ट इंडिया कंपनी से राज्य अपने हाथ में लेना	१८५८
ड्यूक आफ एडिनबरा का भारतवर्ष में आना	१८७० ई.
प्रिन्स आफ वेल्स का शुभागमन	१८७५ ई.
स्वामी दयानंद का उदय	१८७०
महारानी का इम्प्रेस आफ इंडिया का पद धारण करना	१८७७
हिन्दी में प्रथम नाटक (नहुष नाटक)	१८५९
तथा द्वितीय — (शकुंतला)	१८६३
तथा तृतीय (विद्यासुंदर)	१८७१
हिन्दी नए चाल में ढली	१८७३
हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र (सुधाकर)	१८५०
तीर्थों का कर छूटा	१८३७
बनारस में पसेरी का उपद्रव	१८४२
काशी में दो महीने का महा भूकंप	१८३७
पीपे में आग लगी	१८५०
लाट मैरो की हिन्दू मुसल्मान की लड़ाई	१८०९
पेशवा राज्यांत बाजीराव	१८१८
नागपुरराज्यांत (मूडाजी)	१८१८
इलबर्ट बिल और आर्यों में ऐक्य का बीज	१८८३
गवर्नरजेनरल वारेन हेस्टिंगस	१७७४ — १७८५ ई.
मैकफर्सन ब्यारोनेट	१७८६ — १७८६ ई.
कॉर्नवालिस ...	१७८६ — १७९३ ई.
सर जान शोर ...	१७९३ — १७९८ ई.
एलुरेड क्लार्क ...	१७९८ — १७९८ ई.
वेल्सली ...	१७९८ — १८०५ ई.
मार्क्विस कॉर्नवालिस	१८०५ — १८०५ ई.
बार्लो ...	१८०५ — १८०७ ई.
मिन्टो ...	१८०७ — १८१३ ई.
हेस्टिंगस ...	१८१३ — १८२३ ई.
जान एडम ...	१८२३ — १८२३ ई.
एमहर्स्ट ...	१८२३ — १८२८ ई.
बेली ...	१८२८ — १८२८ ई.

वेन्टिक	...	१८२८ — १८३५ ई.
मेटकाफ़	...	१८३५ — १८३६ ई.
ऑकलैंड	...	१८३६ — १८४२ ई.
एलेनबरा	...	१८४२ — १८४४ ई.
हार्डिंग्ज	...	१८४४ — १८४८ ई.
डलहौसी	...	१८४८ — १८५६ ई.
कैनिंग	...	१८५६ — १८६२ ई.
एलगिन	...	१८६२ — १८६३ ई.
राबर्ट नेपियर	...	१८६३ — १८६३ ई.
विलियम डेनिसन	...	१८६३ — १८६४ ई.
लारेन्स	...	१८६४ — १८६९ ई.
मेयो	...	१८६९ — १८७२ ई.
स्ट्राची	...	१८७२ — १८७२ ई.
मार्चिस्ट्न (लॉर्ड नेपियर ऑव)		१८७२ — १८७२ ई.
नॉर्थब्रुक	...	१८७२ — १८७६ ई.
लिटन	...	१८७६ — १८८० ई.
रिपन	...	१८८० — १८८४ ई.

ब्राह्म मत का प्रचार ...	१८२७ ई.
पहिली पुस्तक छपी ...	१४५७ ई.
एशियाटिक सोसाइटी स्थापन	१७४८ ई.
काबुल युद्ध ...	१८४२ ई.
भारत में प्रथम ईस्ट इंडियन रेल का खुलना	१८५४ ई.
महाराज जंगबहादुर की मृत्यु	१८७७ ई.
मिस्टर ग्लैडस्टन का जन्म	१८०९ ई.
गारी बाल्डी का जन्म ...	१८०७ ई.
.. मृत्यु ...	१८८२ ई.
बुद्ध का जन्म ...	५५० ई.पू.

इसके अनंतर के बड़े लाटों की सूची इस प्रकार है —

डफरिन	१८८४ — १८८८ ई.
लैन्सडाउन	१८८८ — १८९४ ई.
एलिगन	१८९४ — १८९९ ई.
कर्जन	१८९९ — १९०४ ई.
एम्टहिल	१९०४ — १९०४ ई.
कर्जन	१९०४ — १९०५ ई.
मिन्टो	१९०५ — १९१० ई.
हार्डिंग	१९१० — १९१६ ई.
केम्सफोर्ड	१९१६ — १९२१ ई.
रीडिंग	१९२१ — १९२६ ई.
आर्विन	१९२६ — १९३१ ई.

कुष्ट की बीमारी भातरवर्ष में देखी गयी	१३०० ई.पू.	डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र लिखते हैं कि कुष्ट की बीमारी ऐत्रे ऋषि के समय में प्रथम भारतवर्ष में दिखाई दी जिसे आज ३२ सौ वर्ष हुए होंगे।

जयपुर राजवंश

नाम		राज्यारम्भ सन्		मृत्यु सन्
पृथ्वी सिंह	...	१५०३	...	१५२८ ई.
भारमल्ल	...	१५२८	...	१५७४ ई.
भगवानदास	...	१५७४	...	१५९० ई.
मानसिंह	...	१५९०	...	१६१५ ई.
भावसिंह	...	१६१५	...	१६२१ ई.
जयसिंह	...	१६२२	...	१६६७ ई.
रामसिंह	...	१६६७	...	१६६९ ई.
जयसिंह	...	१७००	...	१७४४ ई.
ईश्वरीसिंह	...	१७४४	...	१७५१ ई.
माधोसिंह	...	१७५१	...	१७७८ ई.
प्रतापसिंह	...	१७७९	...	१८०३ ई.
जगतसिंह	...	१८०३	...	१८१९ ई.
रामसिंह	...	१८३५	...	१८८० ई.
माधोसिंह	...	१८८०	...	०

भरतपुर के राजाओं का नाम।

नंबर	नाम रईस	गद्दी नशीनी का संवत	देहान्त संवत	मुद्दत हुकूमत
१	बदनसिंह	संवत् १७७९ चैत सुदी १	संवत् १८१२ ज्येष्ठ सुदी १०	३३ बरस, २ माह, १० दिन।
२	सूरजमल	संवत् १८१२ ज्येष्ठ सुदी १०	संवत् १८२० पौष कृष्ण १२	८ साल, छः माह, १५ दिन।
३	जवाहिरसिंह	संवत् १८२० पौष कृष्ण १३	संवत् १८२५ श्रावण सुदी १५	४ साल, ७ माह, १७ दिन।
४	रत्नसिंह	संवत् १८२५ भाद्रपद कृष्ण १	संवत् १८२६ चैत्र सुदी ५	७ माह, २० दिन।
५	केसरीसिंह	संवत् १८२६ चैत्र सुदी ६	संवत् १८३४ चैत्र कृष्ण १५	७ साल, ११ माह, २४ दिन।

विलिंगडन	१९३१ — १९३६ ई.
लिनलिथगो	१९३६ — १९४३ ई.
वावेल	१९४३ — १९४६ ई.
माउंटबेटन	१९४६ —

१५ अगस्त सन १९४७ को भारत को स्वतंत्रता अंग-भंग के साथ मिली।

६	रणजीतसिंह	संवत् १८३४ चैत्र सुदी १	संवत् १८६२ मृगशिर सुदी १५	२७ साल, ८ माह, १५ दिन ।
७	रणधीरसिंह	संवत् १८६२ पौष कृष्ण १	संवत् १८८० आश्विन सुदी ४	१७ साल, ९ माह, १९ दिन ।
८	बलदेवसिंह	संवत् १८८० आश्विन सुदी ५	संवत् १८८१ फागुन सुदी ११	१ साल, ४ पाह, १६ दिन ।
९	दुर्जनशाला	संवत् १८८१ चैत्र कृष्ण ९	संवत् १८८२ पौष सुदी १०	९ माह, १७ दिन ।
१०	बलवन्तसिंह	संवत् १८८२ पौष सुदी ११	संवत् १९०९ फाल्गुन सुदी १०	२७ साल, २ माह, २ दिन ।
११	महाराज जसवंतसिंह	संवत् १९१० आषाढ़ कृष्ण २	संवत् १९४२ तक मौजूद	३२ साल जारी ।

रामायण का समय

सन् १८८४ में लिखा गया यह लेख यह सिद्ध करता है कि भारतेन्दु जी अच्छे पुरातत्ववेत्ता भी थे । — **सं.**

रामायण का समय

(रामायण बनने के समय की कौन कौन बातें विचार करने के योग्य हैं)

पुराने समय की बातों को जब सोचिये और विचार कीजिये तो उनका ठीक ठीक पता एक ही बेर नहीं लगता । जितने नये नये ग्रंथ देखते जाइए उतनी ही नई नई बातें प्रकट होती जाती हैं । इस विद्या के विषय में बुद्धिमानों के आज कल दो मत हैं । एक तो वह जो बिना अच्छी तरह सोचे विचारे, पुराने अंग्रेज़ी विद्वानों की चाल पर चलते हैं और उसी के अनुसार लिखते पढ़ते भी हैं और दूसरे वे लोग जिनको किसी बात का हठ नहीं है, जो बातें नई जाहिर होती गईं उनको मानते गये । दूसरा मत बहुत दुरुस्त और ठीक तो है, पर पहिला मत माननेवालों को ऐंटिक्वेरियन (Antiquarian) बनने का बड़ा सुभीता रहता है । दो चार ऐसी बँधी बातें हैं जिन्हें कहने ही से वे ऐंटिक्वेरियन हो जाते हैं । जो मूर्त्तियाँ मिलैं वह जैनों की हैं, हिन्दू लोग तातार से वा और कहीं पच्छिम से आये होंगे, आगे यहाँ मूर्त्तिपूजा नहीं होती थी इत्यादि कई बातें बहुत मामूली हैं, जिनके कहने ही से आदमी ऐंटिक्वेरियन हो सकता है । जो कुछ हो इस बात को लेकर हम इस समय हुज्जत नहीं करते, हम सिर्फ यहाँ वाल्मीकीय रामायण में से ऐसी थोड़ी सी बातें चुन कर दिखाते हैं जो बहुत से विद्वानों की जानकारी में आज तक नहीं आई हैं ।

रामायण बनने का समय बहुत पुराना है, यह सब मानते हैं । इससे उसमें जो बातें मिलती हैं वे उस जमाने में हिन्दुस्तान में बरती जाती थीं, यह निश्चय हुआ । इससे यहाँ वे ही बातें दिखाई जाती हैं जो वास्तव में पुरानी हैं पर अब तक नई मानी जाती हैं और विदेशी लोग जिनको अपनी कहकर अभिमान करते हैं ।

रामायण कैसा सुंदर ग्रंथ है और इसकी कविता कैसी सहज और मीठी है, इसे जिन लोगों ने इस की सैर की है वे अच्छी तरह जानते हैं, कहने की आवश्यकता नहीं । और इसमें धर्मनीति कैसी चाल पर कही है, इससे हम यहाँ पर और बातों को छोड़ कर केवल वही बातें दिखाना चाहते हैं जो प्राचीन विद्या (ऐंटीक्केटी) से संबंध रखती हैं ।

बालकांड— अयोध्या के वर्णन में किले की छत पर यंत्र रखना लिखा है । यंत्र का अर्थ कल है [1] इस से यह स्पष्ट होता है कि उस जमाने में किलें की बचावट के हेतु किसी तरह की कल अवश्य काम में लाई

१. यंत्र उस को कहते हैं जिस से कुछ चलाया जाय । श्रीगीता जी में लिखा है "ईश्वर : सर्व्वभूतानां हृद्देशे ऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्व्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।" ईश्वर प्राणियों के हृदय में रहता है और वह भूत मात्र को जो (मानो) कल पर बैठे हैं माया से घुमाता है । तो इस से स्पष्ट होता है कि यंत्र से इस श्लोक में किसी ऐसी चीज से मतलब है जो चरखे की तरह घूमती जाय । कल शब्द भी हिंदी है, "कल गतौ" से बना हो वा "कल पेरणे" से निकला होगा (कवि-कल्पद्रुम कोष देखो) दोनों अर्थ से उस चीज़ को कहैंगे जो आप चलै वा दूसरे को चलावै ।

जाती थी, चाहे वे तोप हों या और किसी तरह की चीज़ (या यंत्र से दूरबीन मतलब हो)।

शतघ्नी [१] यह उस चीज़ को कहते हैं जिस से सैकड़ों आदमी एक साथ मारे जा सकें। कोषों में इस शब्द के अर्थ यह दिये हैं कि शतघ्नी उस प्रकार की कल का नाम है जिस से पत्थर और लोहे के टुकड़े छूट कर बहुत से आदमियों के प्राण लेते हैं और इसी का दूसरा नाम वृश्चिकाली है। (सर राजा राधाकान्त देव का शब्दकल्पद्रुम देखो।) इस से मालूम होता है कि उस समय में तोप या ठीक उसी प्रकार का कोई दूसरा शस्त्र अवश्य था।

अयोध्या के वर्णन में उस की गलियों में जैन फकीरों का फिरना लिखा है, इस से प्रकट है कि रामायण के बनने से पहिले जैनियों का मत था।

जिस समय राजा दशरथ ने अश्वमेघ यज्ञ किया उस समय का वर्णन है कि रानी कौशिल्या ने अपने हाथ से घोड़े को तलवार से काटा। इस बात से प्रगट होता है कि आगे की स्त्रियों को इतनी शिक्षा दी जाती थी कि वह शस्त्रविद्या में भी अति निपुणता रखती थीं।

अभी एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में पंडित प्राणनाथ एम.ए. ने इसका खंडन किया है कि वराहमिहर के काल में श्रीकृष्ण की पूजा ईश्वर समझ के नहीं करते थे और बराहमिहर के श्लोकों ही से श्रीकृष्ण की पूजा और देवतापन का सबूत भी दिया है। और भी बहुत से विद्वान इस बात में झगड़ा करते हैं। और योरोप के विद्वनों में बहुतों का यह मत है कि श्रीकृष्ण की पूजा चले थोड़े ही दिन हुए, पर ४०वें सर्ग के दूसरे श्लोक में नारायण के वास्ते दूसरा शब्द वासुदेव लिखा है और फिर पच्चीसवें श्लोक में कपिलदेव जी को वासुदेव का अवतार लिखा है; इससे स्पष्ट प्रगट है कि उस काल से श्रीकृष्ण को लोग नारायण कर के जानते और मानते हैं।[२]

अयोध्याकाण्ड — २०वें सर्ग के २९ श्लोकों में रानी कैकेयी ने राम जी को वन जाते समय आज्ञा दिया कि मुनियों की तरह तुम भी माँस न खाना, केवल कंदमूल पर अपनी गुजरान करना। इससे प्रकट है कि उस समय मुनि लोग माँस नहीं खाते थे।[३]

३०वें सर्ग के ३७ श्लोक में गोलोक का वर्णन है। प्राय: नये विद्वानों का मत है कि गोलोक इत्यादि पुराणों के बनने के समय के पीछे निकाले गए हैं और इसी से सब पुराणों में इन का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु

१. शतघ्नी को भी यंत्र करके लिखा है। शतघ्नी कौन चीज है इसका निश्चय नहीं होता। तीन चीज़ में इस का संदेह हो सकता है, एक तोप, दूसरे मतवाले, तीसरे जम्हीरे में। इस के वर्णन में जो जो लक्षण लिखे हैं उन से तोप का तो ठीक संदेह होता है, पर यह मुझे अब तक कहीं नहीं मिला कि ये शतघ्नियाँ आग के बल से चलाई जाती थीं, इसीसे उनके तोप होने में कुछ संदेह हो सकता है। मतवाले से शतघ्नी के लक्षण कुछ नहीं मिलते, क्योंकि मतवाले तो पहाड़ों वा किलों पर से कोल्हू की तरह लुढकाये जाते हैं और इस के लक्षणों से मालूम होता है कि शतघ्नी वह वस्तु है जिस से पत्थर छूटें। जहमीरा वा जम्हीरा एक चीज़ है, उस से पत्थर छूट छूट कर दुश्मन की जान लेते हैं (हिंदुस्तान की तबारीख में मुहम्मद कासिम की लड़ाई देखो)। इस से शतघ्नी के लक्षण बहुत मिलते हैं। पर रामायण में लिखा है कि लोहे की शतघ्नी होती थीं और फिर सुंदरकांड में टूटे हुए वृक्षों की उपमा शतघ्नी की दी है। इससे फिर संदेह होता है कि हो न हो यह तोप ही हो। रामायण के सिवा और पुराणों में भी किले पर शतघ्नी लिखा है? (मत्स्य-पुराण में राज्यधर्म वर्णन में) दुर्गेयंत्रा: प्रकर्त्तव्या: नाना प्रहरणन्विता:। सहस्रघातिनो राजंस्तैस्तुरक्षाविधीयते ।।१।। दुर्गञ्च परिस्वोपेतं वप्राट्टालसंयुतं। शतघ्नी यंत्र मुख्यैश्च शतशश्च समावृतं ।।२।। इस में ऊपर के श्लोकों में शतघ्नी के बदले सहस्रघाती शब्द है (यहाँ शत और सहस्र शब्दों से मुराद अनगिनत से है)। तोप की भाँति सुरंग उड़ाना भी यहाँ के लोग अति प्राचीन काल से जानते हैं। आदि पर्व का ३७८ श्लोक देखो। सुरंग शब्द ही भारत में लिखा है।

२. भारत के भी आदि पर्व का २४७ से २५३ श्लोक तक और २४२७ से २४३२ श्लोक तक देखो, श्रीकृष्ण को परब्रह्म लिखा है। और भी भारत में सभी स्थानों में है, उदाहरण के हेतु एक पर्व मात्र लिखा।

३. यहाँ माँस से बिना यज्ञ के माँस से मुराद होगी।

इस वर्णन से यह बात बहुत स्पष्ट हो गई कि गोलोक का होना हिन्दू लोग उस काल से मानते हैं जब कि रामायण बनी ।[१]

३२वें सर्ग में तैत्तिरीय शाखा और कठकलाप शाखा का नाम है । इस से प्रकट होता है कि वेद उस काल तक बहुत से हिस्सों में बँट चुके थे ।

रामजी ने वन जाने की राह इस तरह बयान की गई है । अयोध्या से चल कर तमसा अर्थात् टोंस नदी के पार उतरे । फिर वेदश्रुति,[२] गोमती, स्यंदिका[३] और गंगा पार होते हुए प्रयाग आये और वहाँ से चित्रकूट (जोकि रामायण के अनुसार १० कोस है)[४] गए । यह बिल्कुल सफर उन्होंने पाँच दिन में किया । और सुमंत उनको पहुँचा कर शृंगवेरपुर अर्थात् सिंगरामऊ से दो दिन में अयोध्या पहुँचा । पहली बात से प्रकट हुआ कि पुराने जमाने के कोस बड़े होते थे । और दूसरी बात से विदित हुआ कि सड़क उस समय में भी बनाई जाती थी, नहीं तो इतनी दूर की यात्रा का पाँच दिन में तै करना कठिन था ।

भरत जी जब अपने नाना के पास से जो कि कैकय अर्थात् गक्कर देश का राजा था, आने लगे तो उसने कई बहुत बड़े और बलवान कुत्ते दिये और तेज़ दौड़नेवाले गदहों (खच्चर) के रथ पर उन को बिदा किया । वे सिंधु और पंजाब होते हुए इक्षुमती को पार कर अयोध्या आये । इससे दो बात प्रकट हुई ; एक तो यह कि उस काल में कैकय देश के गदहे और कुत्ते अच्छे होते थे, दूसरे यह कि वहाँ की हिन्दुस्तान से राह सिंधु देकर थी ।

७१वें सर्ग में मूर्त्तियों का वर्णन है, इस से दयानंद सरस्वती इत्यादि का यह कहना कि रामायण में कहीं मूर्त्तिपूजन का नाम नहीं है अप्रमाण होता है ।

इसी स्थान में निषाद का लड़ाई की नौकाओं के तैयार करने का वर्णन है, जिस से यह बात प्रमाणित होती है कि उस काल के लोग स्थल की भाँति पानी पर भी लड़ सकते थे ।

दक्षिण के लोगों की सिर में फूल गूँधने की बड़ी प्रशंसा लिखी है । इससे यह बात झलकती है कि उत्तर के देश में फूल गूँधने का विशेष रिवाज नहीं था ।

१०८ सर्ग में जाबालि मुनि ने चार्वाक का मत वर्णन किया है । और फिर १०९ सर्ग में बुध का नाम और उन के मत का वर्णन है । इससे प्रगट है कि ये दोनों वेद के विरुद्ध मत उस समय में भी हिन्दुस्तान में फैले हुए थे । अभी हम ऊपर बालकाण्ड में जैनियों के उस काल में रहने का जिक्र कर चुके हैं तो अब ये सब बातें रामायण के बनने के समय, बुध के जन्म का और बौद्ध और जैन मत अलग होने के समय की विवेचना में कितनी हलचल डालेंगी प्रगट है ।

आरण्यकांड— चौथे सर्ग के २२३ श्लोक में लिखा है कि असुरों की यह पुरानी चाल है कि वे अपने मुर्दे गाड़ते हैं । इस से प्रगट है कि वेद के विरुद्ध मत माननेवालों में यह रीति सदा से चली आती है ।

किष्किंधाकांड— १३वें सर्ग के १६ श्लोक में कलम अर्थात् जोंधरी के खेत का बयान है, और कोष में "लेखनी कलमित्यपि" लिखा है । इस वाक्य से प्रगट होता है कि क़लम लिखने की चीज़ का नाम संस्कृत में भी है और वह और चीजों के साथ जोंधरी का भी होता था ; और इसी से यह भी साफ़ हो जाता है कि सिवा ताड़ के पत्र के कागज़ पर भी आगे के लोग लिखते थे, क्योंकि ताड़ पर मिटने के डर से सिर्फ़ लोहे की क़लम से लिखा जा सकता है जैसा कि अब तक बंगाले और ओड़ीसे में रिवाज है ।[५]

---

१. वेद में ब्रहम के धाम के वर्णन में लिखा है कि वहाँ अनेक सींगों की गऊ हैं ।

२. वेदसा नाम की एक छोटी नदी गोमती में मिलती है, शायद उसी का नाम वेदश्रुति लिखा है ।

३. जिस को अब सई कहते हैं ।

४. यह बड़े संदेह की बात है, अब जो चित्रकूट माना जाता है वह प्रयाग से तीन चार मंजिल है पर यहाँ दस कोस लिखा है । इस दस कोस से यह आशय है कि वहाँ से उस पर्वत की श्रेणी (लाइन) आरंभ होती है, पर जहाँ डेरा किया था वह स्थान दूर होगा ।

५. इस विषय के लिये 'सज्जनविलास' देखो ।

६२वें सर्ग के ३ श्लोक में पुराणों का वर्णन है, जिससे नई तबीयत और नई तलाश (लाइट) के लोगों का यह कहना कि पुराण सब बहुत नए हैं कहाँ तक ठीक है, आप लोगों पर आप से आप विदित होगा ।

इस कांड में और बातों की भाँति यह भी ध्यान करने के योग्य है कि रामजी ने बालि से मनु के २ श्लोक कहे हैं और यह भी कहा है कि मनु भी इस को प्रमाण मानते हैं । इस से प्रगट हुआ कि मनु की संहिता उस काल में भी बड़ी प्रामाणिक और प्रतिष्ठित समझी जाती थी ।[१]

सुंदरकांड — तीसरे सर्ग के १८ श्लोक में किले के शस्त्रालय (सिलहगाह) के वर्णन में लिखा है कि जिस तरह से स्त्री गहनों से सजी रहती है वैसे ही बुर्ज यंत्रों से सजे हुए थे । इससे स्पष्ट प्रगट होता है कि तोप या और किसी प्रकार का ऐसा हथियार जिससे कि दूर से गोले की भाँति कोई वस्तु छूट कर जान ले उस समय में अवश्य था ।

९ वें सर्ग के १३ श्लोक में लिखा है कि पुष्पक-विमान के चारों ओर सोने के हुंडार बने थे और खाने पीने की सब वस्तु उस में रक्खी रहा करती थी और वह बहुत से लोगों को बिठला कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता था । इस से सोचा जाता है कि यह विमान निस्संदेह कोई बेलून की भाँति की वस्तु होगी और हुंडार उस में पहचान के हेतु लगाये गये होंगे ।

९वें सर्ग के २५ और २६ श्लोकों में वर्णन है कि लंका में जो गलीचे बिछे थे उन में घर, नदी, जंगल इत्यादि बने हुये थे । अब यदि विलायत का कोई गलीचा आता है, जिसमें मकान, उद्यान इत्यादि बने रहते हैं तो देख कर हम लोग कैसा आश्चर्य करते हैं । कैसे सोच की बात है कि हम लोग नहीं जानते कि हमारे हिन्दुस्तान में भी इस प्रकार की चीजें पहिले बनती थीं । यहीं पर जब हनुमान जी ने रावण के मंदिरों को जा कर देखा है तो उस में भोजन के अनेक प्रकार के धातुओं के, मणियों के और काँच के पात्रों को भी देखा है । चिमचा, काँटा आदि भी उस समय होता था और बड़ी शोभा से खाना-चुना जाता था । और भी अँगरेजी चाल के पात्र और गहने भुवनेश्वर के मंदिर में भी बहुत प्राचीन काल के बने हैं । बाबू राजेन्द्र लाल मित्र का उड़ीसा प्रथम भाग देखो ।

इसी स्थान में अशोक-वन में जानकी जी के शिंशिपा के दरख्त के नीचे रहने का वर्णन है ।

हिन्दुस्तान के बहुत से पंडितों का निश्चय है कि शिंशिपा शीशम वृक्ष को कहते हैं । क़िन्तु हमारी बुद्धि में शिंशिपा सीताफल अर्थात् शरीफे के वृक्ष को कहते हैं । इस के दो बड़े भारी संबूत हैं । प्रथम तो यह कि यदि जानकी जी से शरीफे से कुछ संबंध नहीं तो सारा हिन्दुस्तान उस को सीताफल क्यो कहता है । दूसरे यह कि महाभारत के आदि पर्व में राजा जन्मेजय की सर्पयज्ञ की कथा में एक श्लोक है जिसका अर्थ है कि आस्तिक की दोहाई सुन कर जो सांप न जायगा, उस का सिर शिंश वृक्ष के फल की तरह सौ टुकड़े हो जायगा[२] । शिंश और शिंशपा दोनों एक ही वृक्ष के नाम हैं, यह कोषों से और नामों केसंबंध से स्पष्ट है । शीशम के वृक्ष में ऐसा कोई फल नहीं होता जिस में बहुत से टुकड़े हों । और शरीफे का फल ठीक ऐसा ही होता है जैसा श्लोक में लिखा है । इस से लोग निश्चय करें कि सीता जी शरीफे ही के वृक्ष के नीचे थीं ।

१८वें सर्ग के १२ श्लोक में गुलाब पाश का वर्णन है । इसलिए हमारे भाई लोग यह न समझें कि यह निधि हम को मुसल्मानों से मिली है, यह हिन्दुस्तान ही की पुरानी वस्तु है ।

३०वें सर्ग के १८-१९ श्लोक में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य प्रायः संस्कृत बोलते थे, किन्तु जब छोटे लोगों से बात करते थे तो यह संस्कृत से नीच भाषा में बोलते थे । इससे बहुत लोगों का यह कहना कि संस्कृत कभी बोली ही नहीं जाती थी खंडित होता है । हाँ. इस में कोई संदेह नहीं, सब से इस को काम में नहीं लाते थे ।

६४वें सर्ग के २४ श्लोक में लिखा है कि हनुमान जी राक्षसों के सिर इस तरह से तोड़ तोड़ कर फेंकते थे जैसे यंत्र से ढेले छूटैं । इस से ऊपर जहाँ हम यंत्रों का वर्णन कर आए हैं उस से लोग समझें कि वह निस्संदेह कोई ऐसी वस्तु थी, जिस से गोली या कंकड़-पत्थर छोड़े जाते थे ।

---

१. भारत में भी कई स्थान पर मनु का नाम है । उदाहरण के हेतु आदि पर्व का १७२२ श्लोक देखो ।
२. आस्तीक वचन श्रुत्वा यः सर्पो न निवत्तते । शताघाभिद्यतेमूर्घ्ना शिंशिवृक्ष फलं यथा ।।

लंकाकांड — (३ सर्ग १२ श्लोक) (३ सर्ग १३ श्लोक) (३ सर्ग १६ श्लोक) (३ सर्ग १७ श्लोक) (४ सर्ग २३ श्लोक) (२१ सर्ग श्लोक अंत का) (३९ सर्ग २६ श्लोक) (६० सर्ग ५४ श्लोक) (६१ सर्ग ३२ श्लोक) (७६ सर्ग ६८ श्लोक) (८६ सर्ग २२ श्लोक)। इन श्लोकों में यंत्र और शतघ्नी का वर्णन है।

यंत्र और शतघ्नी ये रामायण में किस किस प्रकार से वर्णन की गई हैं यह ऊपर के श्लोकों के देखने से प्रगट होगा। इन दोनों के विषय में हमें कुछ विशेष कहना नहीं है, क्योंकि हमारे पाठकों पर आप से आप यह प्रगट होगा कि यंत्र और शतघ्नी का कोई रूप रामायण से हम ठीक नहीं कर सकते।

पत्थर ढोने की कल किसी चाल की बाल्मीकि जी के समय में अवश्य रही होगी और किवाड़ भी किसी चाल के कल से बंद किये जाते होंगे।

यंत्र बहुत ऊँचे ऊँचे भी होते थे, जैसा कि कुंभकर्ण की उपमा में कहा गया है। शतघ्नी फ़ौलाद की बनती थी और वृक्षों की तरह लंबी होती थी और केवल क़िले ही पर नहीं रहती थी परंतु लड़ाई में भी लाई जाती थी। इन बातों से हमारा यह कहना तो ठीक ज्ञात होता है कि आगे कल[१] अवश्य थी पर शतघ्नी किस चाल का हथियार था यह हम नहीं कह सकते।[२]

११३ सर्ग ४२ श्लोक में राजा भोज के बेटे के नाम से जो सिंह और रीछ की कहानी प्रसिद्ध है वह ठीक ठीक यहाँ कही गई है।

(११० सर्ग २७ श्लोक) रामजी से ब्रह्मा ने कहा कि सीता लक्ष्मी हैं और आप कृष्ण हैं। (इस से हमारा बासुदेव शब्द वाला पहिला प्रमाण और भी दृढ़ होता है।[३]

(१२७ सर्ग ३ श्लोक) पुराणों का वर्णन है।

(१२८ सर्ग) जब राजा लोग राज पर बैठते थे तब नज़र ख़िलअत इत्यादि आगे पी ली और दी जाती थीं। इसी सर्ग में लिखा है कि रामायण वाल्मीकि जी ने जो पहिले से बनाया है वह जो सुनता है सो सब पापों से छुट जाता है। इस में (पुराकृत) पद से जैसे मनु का शास्त्र भृगु ने एकत्र किया है वैसे ही वाल्मीकिजी की कविता भी किसी ने एकत्र किया है, यह संदेह होता है। इसी सर्ग के १२० श्लोक में लिखा है कि जो रामायण लिखते है उनको भी पुण्य होता है। इससे उस काल में पोथियाँ लिखी जाती थीं, यह भी स्पष्ट है।

उत्तरकांड — उत्तरकांड में बहुत सी बातें अपूर्व और कहने सुनने के योग्य हैं पर अंग्रेज़ विद्वानों ने उस के बनाने का काल रामायण से पीछे माना है, इससे हमारा उन बातों के लिखने का उत्साह जाता रहा तब भी जो बातें विशेष दृष्टि देने के योग्य हैं यहाँ लिखी जाती हैं।

(३१ सर्ग श्लोक ४२।४३) रावण शिव जी की पूजा करता था,[१] इससे दयानंद स्वामी का यह कहना कि रामायण में मूर्त्तिपूजा नहीं है, खंडित होता है। हाँ, यदि वे भी कह दें कि यह कांड क्षेपक है या नया बना है तो इस का उत्तर नहीं।

---

१. महाभारत की टीका में युद्ध में नीलकंठ चतुर्धर ने यंत्र का अर्थ अग्नि यंत्र लिखा है, पर राजा राधाकांत ने अग्नियंत्र और अग्नयस्त्र इन दोनों शब्दों का अर्थ बंदूक किया है ("कामान बंदूक इति भाषा") और दारुयंत्र का अर्थ कल लिखा है। महाभारत में एक जगह लिखा है "यंत्रस्यगुण दोषौ न विचार्य्यौ मधुसूदन। अहं यंत्रो भवान् यंत्री न मे दोषो न मे गुणः।

२. विजय रक्षित ग्रंथ में लिखा है "अयः कंटक संछन्ना शतघ्नी महती शिला' अर्थात् लोहे के काँटों से छिपाई हुई शिला का नाम शतघ्नी है। मेदिनीकोष में करंज भी इस का नाम है।

३. पाणिनि के सूत्रों में वासुदेव आदि शब्द मिले हैं। इस विषय का विस्तार हमारे प्रबंध 'वैष्णवता और भारतवर्ष' में देखो।

१. यत्रयत्रस्मयातीह रावणोराक्षसेश्वरः। जाम्बूनदमयं लिङगं तत्र तत्रस्मनीयते।।४२।।
वालुका बेदि मध्येतुतल्लिङगस्थाप्य रावणः। अर्चयामासगन्धैश्चपुष्पैश्चामृतगन्धिभिः।।४३।।

(५३ सर्ग श्लोक २०,२१,२२) श्रीकृष्णावतार का वर्णन है ।[१] विदित हो कि तीसरे सर्ग के १२ श्लोक में भी एक जगह विष्णु का नाम गोविंद कहा है "गोविंद कर निस्मृता " और गोविंद श्रीकृष्ण का नाम तब पड़ा है जब गोवर्द्धन उठाया है, यह विष्णुपुराणादिक से सिद्ध है, यथा "गोविंद इतिचाभ्यघात् " तो इस से भी हमारी बालकांड वाली युक्ति सिद्ध हुई ।

(९४ सर्ग श्लोक ८) छन्दोविद: पुराणज्ञान् इस वाक्य में पुराणों का वर्णन किया है । पुराणज्ञैश्च महात्मभि: इत्यादि वाक्यों में और भी कई स्थानों पर पुराणों का वर्णन है और पुराणों की अनेक कथा भी इस कांड में मिलती हैं । इस से यह निश्चय होता है कि उत्तरकांड के बनने के पहले पुराण सब बन चुके थे ।

पुराणों के विषय की बहुत सी शंकाएँ काल क्रम से मिट गईं । जिन पुराणों को विलायती विद्वानों ने चार पाँच सौ बरस का बना बतलाया था उन की सात सात सौ बरस की प्राचीन पुस्तकें मिलीं । लोग भागवत ही को बोपदेव का बनाया कहते थे, किन्तु चन्द के रायसे में भागवत का वर्णन मिलने से और प्राचीन पुस्तकों से यह सब बातें खंडित हो गईं ।

उत्तरकांड से मालूम होता है कि अयोध्या, काशी और प्रयाग ये तीनों राज्य उस समय अलग थे और उस समय हिन्दुस्तान में तीन सौ राज्य अलग अलग थे ।

इसी कांड के चौरान्नबे सर्ग में यह लिखा है कि उत्तरकांड भार्गव ऋषि ने बनाया है । यह भी एक आश्चर्य की बात है । इस वाक्य से तो अँगरेज़ी विद्वानों का संदेह सिद्ध होता है ।

।। इति ।।

एक श्लोकी रामायणम् ।

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनम्,
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसंभाषणम् ।
वालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लंकापुरीदाहनम्,
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननम् एतद्धि रामायणम् ।।

२. उत्पत्स्यतेहिलोकेऽस्मिन् यदूनां कीतिवर्द्धनः ।
वासुदेव इति ख्यातो विष्णु:पुरुषविग्रहः ।।२०।।
स ते मोक्षयिता शापात् राजंस्तस्माद्भविष्यसि ।
कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ।।२१।।
भारावतरणार्थेहि नरनारायणावुभौ ! उत्पत्स्येते महावीर्योकलौयुगउपस्थिते ।।२२।।

पंच पवित्रात्मा

अर्थात्

मुसलमानी मत के मूलाचार्य महात्मा मुहम्मद, आदरणीय अली, बीबी फातिमा, इमाम हसन

और

इमाम हुसैन की संक्षिप्त जीवनी

> सन् १८८४ में पहली बार 'विक्टोरिया प्रेस बनारस' से छपी। ६ मई १८८४ को अपने किसी मित्र को लिखे पत्र में भारतेन्दु बाबू ने इसके बारे में लिखा है कि "हिन्दी जबान में यह पहिली किताब तसनीफ और शाया हुयी है जिस में कि बुजुर्गान अहले इसलाम का तजकिरा है और जो पढ़ने वालों के दिल पर उन लोगों की सच्ची बुजुर्गी का असर पैदा करने वाली है।"
>
> — सं.

पंच पवित्रात्मा

१— महात्मा मुहम्मद

जिस समय अरब देशवाले बहुदेवोपासना के घोर अंधकार में फँस रहे थे उस समय महात्मा मुहम्मद ने जन्म ले कर उन को एकेश्वरवाद का सदुपदेश दिया। अरब के पश्चिम ईसामसीह का भक्तिपथ प्रकाश पा चुका था, किन्तु वह मत अरब, फारस इत्यादि देशों में प्रबल नहीं था और न अरब ऐसे कट्टर देश में महात्मा मुहम्मद के अतिरिक्त और किसी का काम था कि वहाँ कोई नया मत प्रकाश करता। उस काल के अरब के लोग मूर्ख, स्वार्थतत्पर, निर्दय और वन्यपशुओं की भाँति कट्टर थे। यद्यपि उनमें से अनेक अपने को इब्राहीम के वंश का बतलाते और मूर्त्ति-पूजा बुरी जानते, किन्तु समाजपरवश होकर सब बहुदेवोपासक बने हुए थे। इसी घोर समय में मक्के से मुहम्मदचंद्र उदय हुआ और एक ईश्वर का पथ परिष्कार रूप से सबको दिखालाई देने लगा।

महात्मा मुहम्मद इब्राहीम के वंश में इस क्रम से हैं ; — इब्राहीम, इस्माईल, कबजार, हमल, सलमा, अलहौसा, अलीसा, ऊद, आद, अदनान, साद, नजार, मजर, अलपास, बदरका, खरीमा, किनाना, नगफर,

मलिक, फहर, गालिब, लबी, काब, मिरह, कलाव, फजी, अबद्मनाफ, हाशिम, अब्दुल् मतलब, अब्दुल्लाह और इनके अबुल् कासिम मुहम्मद ।

अहदुलमतलब के अनेक पुत्र थे, जैसा हमज़ा, अब्बास, अबूतालिब, अबुल्हब, अईदाक । कोई कोई हारिस, हजब, हकूम, जरार जुबैर, कासमे असगर, अबदुलकाबा और मकूम को भी कुछ विरोध से अब्दुल् मतलब का पुत्र मानते हैं । इन में अबदुल्लाह और अबूतालिब एक माँ से हैं । अबूतालिब के तीन पुत्र अक़ील, जाफर और अली । यह अली महात्मा मुहम्मद के मुसलमानी सत्य मत प्रचार करने के मुख्य सहायक और रात दिन के इनके दुख-सुख के साथी थे और यह अली जब महात्मा मुहम्मद ने दूतत्व का दावा किया तो पहिले पहल मुसल्मान हुए ।

महात्मा मुहम्मद की माँ का नाम आमिना है, जो अबद्मनाफ के दूसरे बेटे वहब की बेटी हैं और आदरणीय अली की माँ का नाम फातमा है, जो असद की बेटी है और यह असद हाशिम के पुत्र हैं । इससे मुहम्मद और अली पितृकुल और मातृकुल दोनों रीति से हाशिमी हैं ।

महात्मा मुहम्मद १२वीं रबीउलऔवल सन् ५६९ ईस्वी को मक्का में पैदा हुए ।

महात्मा मुहम्मद के पिता के इन के जन्म से पूर्व (एक लेखक के मत से इन के जन्म के दो वर्ष पीछे) मर जाने से उनके दादा इन का लालन पालन करते थे । अरब के उस समय की असभ्य रीति के अनुसार कोई दाई अनाथ लड़के को दूध नहीं पिलाती थी और इस में वहाँ की स्त्रियाँ अमंगल समझती थीं, किन्तु अलीमा नामक [1] एक स्त्री ने इन को दूध पिलाना स्वीकार किया । इस दाई को बालक ऐसा हिए लग गया कि एक दिन अलीमा ने आकर महात्मा मुहम्मद की माता अमीना से कहा कि मक्के में संक्रामक रोग बहुत से होते हैं इस से इस बालक को मैं अपने साथ जंगल में ले जाऊंगी । उन की माँ ने आज्ञा दे दी और साढ़े चार बरस तक महात्मा मुहम्मद अलीमा के साथ बन में रहे । परंतु इनके दैवी चमत्कार से कुछ शंका करके दाई फिर इनको इन की माता के पास छोड़ गई । इन की छः बरस की अवस्था में इन की माता अमीना का भी परलोक हुआ और आठ बरस की अवस्था में इन के दादा अब्दुल् मतलब भी मर गए । तब से इन के सहोदर पितृव्य अबूतालिब पर इन के लालन पालन का भार रहा । अबूतालिब महात्मा मुहम्मद के बारह और पितृव्यों में इन के पिता के सहोदर भ्राता थे । हाशिम महात्मा मुहम्मद के परदादा का नाम था और यह मनुष्य ऐसा प्रसिद्ध हुआ कि उस के समय से उस के वंश का नाम हाशिमी पड़ा । यहाँ तक कि मक्का और मदीने का हाकिम अब भी "हाशिमियों के राजा" के पद से पुकारा जाता है । अब्दुल् मतलब महात्मा मुहम्मद को बहुत चाहते थे और नाम भी उन्हीं का रक्खा हुआ था । इस हेतु मरती समय अबूतालिब को बुला कर महात्मा की बाँह पकड़ा कर उन के पालन के विषय में बहुत कुछ कह सुन दिया था । अबूतालिब ने पिता की शिक्षा अनुसार महात्मा मुहम्मद के साथ बहुत अच्छा बरताव किया और इन को देश और समय के अनुसार शिक्षा दिया और व्यापार भी सिखलाया ।

उन्होंने किस रीति-मत से विद्या शिक्षा किया था इस का कोई प्रमाण नहीं मिला । पचीस बरस की अवस्था तक पशु-चारण के कार्य में नियुक्त थे । चालीस बरस की अवस्था में उन का धर्म भाव स्फूर्ति पाया । ईश्वर निराकार है और एक अद्वितीय है ; उनकी उपासना बिना परित्राण नहीं है । यह महासत्य अरब के बहुदेवोपासक आचारभ्रष्ट दुर्दांत लोगों में वह प्रचार करने को आदिष्ट हुए । तैंतालिस बरस की अवस्था के समय में अग्निमय उत्साह और अटल विश्वास से प्रचार में प्रवृत्त हुए । "रौजतुः शोहदा" नामक मुहम्मदीय धर्म ग्रंथ में उन की उक्ति कह कर ऐसा उल्लिखित है । "हमारे प्रति इस समय ईश्वर का यह आदेश है कि निशा जागरण कर के दीन हीन लोगों की अवस्था हमारे निकट निवेदन करो, आलस्य-शय्या में जो लोग निद्रित हैं उन लोगों के बदले तुम जागते रहो, सुख-गृह में आनंद विह्वल लोगों के लिए अश्रुवर्षण करो ।" पैगंबर महम्मद जब ईश्वर का स्पष्ट आदेश लाभ करके ज्वलंत उत्साह के साथ पौत्तलिकता के और पापाचार के विरुद्ध खड़े हुए और "ईश्वर एक मात्र अद्वितीय है" यह सत्य स्थान स्थान में गंभीरनाद से घोषणा करने लगे, उस समय वह अकेले थे । एक मनुष्य ने भी उन को सम विश्वासी रूप से परिचित होकर उन के उस कार्य में

1. An Ethiopian Female Slave.

सहानुभूति दान नहीं किया । किन्तु उन्हों ने किसी की मुखापेक्षा नहीं किया, किसी का अणु मात्र भय नहीं किया, बुद्धि-विचार-तर्क की तृसीमा में भी नहीं गये, प्रभु का आदेश पालन करना ही उन का दृढ़ व्रत था । जब वह ईश्वर के आदेश से "ला इलाह इल्लिल्लाह" (ईश्वर एक मात्र अद्वितीय है) इस सत्य प्रचार में प्रवृत्त हुए, तब सब अरबी लोग, उन के कई एक पितृव्य और समस्त ज्ञाति संबंधी निज अवलंबित धर्म के विरुद्ध वाक्य सुन कर भयानक क्रोधांध हुए और उनके स्वदेशीय और आत्मीय गण "महम्मद मिथ्यावादी और ऐंद्रजालिक हैं" इत्यादि उक्ति कहके उनके प्रति और सबों का मन विरक्त और अविश्वस्त करने लगे । स्वजन संबंधियों के द्वारा क्लेश अपमान प्रहार यंत्रणा आदि उन को जितनी सह्य करनी पड़ती थी उतनी दूसरे किसी महापुरुष को नहीं सहनी पड़ी । विपरीत लोगों के प्रस्तराघात से उनका शरीर क्षत विक्षत हुआ था । किसी के प्रातराघात से उनका दो दाँत भग्न और ओठ विदीर्ण तथा ललाट और बाहु आहत हुआ था । किसी शत्रु ने उनको आक्रमण करके उन का मुखमंडल कंकड़मय मृत्तिका में घर्षण किया था, उससे मुँह क्षत विक्षत और शोणिताक्त हुआ था । एक दिन किसी ने उन के गले में फाँसी लगा कर स्वाँसरोध कर के उन को बध करने का उपक्रम किया था । एक दिन किसी ने उन का गला लक्ष्य कर के करवालाघात किया था, तब गह्वर में छिपकर उन्होंने अपने प्राण की रक्षा किया था । कई बार उन की जीवनाशा कुछ भी नहीं थी । एक दिन उनके पितृव्य और जातिवर्ग उन को बध करने को कृत संकल्प हुए थे । उन की प्रियतमा दुहिता फातिमा ने जान कर रोते रोते उन से निवेदन किया । उस में धर्म्मवीर विश्वासी महम्मद अकुतोभय भाव से बोले कि वत्से ! मत रो, हम को कोई बध नहीं कर सकेगा, हम उपासनारूप अस्त्र धारण करेंगे, विश्वास वर्म से आवृत होंगे । जब हजरत महम्मद को प्रहार-क्षत-कलेवर और निःसहाय देख कर उन के पितृव्य हमजा महाक्रोध से अबुलहब और अबूजोहल प्रभृति मुहम्मद के परम शत्रु पितृव्य और दूसरे दूसरे ज्ञाति संबंधियों को प्रहार करने जाते थे, उस समय वह बोले, "जिन ने हम को सत्यधर्म प्रचार के हेतु मनुष्य मंडली में प्रेरणा किया है, उस सत्य परमेश्वर के नाम पर शपथ करके हम कहते हैं, यदि तुम सुतीक्ष्ण करवाल के द्वारा नीच बहुदेवोपासक लोगों को निहत करो और उसी भाव से हमारी सहायता करने को अग्रसर हो तो तुम अपने को शोणित में कलंकित कर के पुण्यमय सत्य परमेश्वर से दूर जा पड़ोगे । ईश्वर के एकत्व में और हम उन के प्रेरित हैं, इस सत्य का विश्वास जब तक न करोगे तब तक तुम को युद्ध-विवाद में कोई फल नहीं होगा । पितृव्य, यदि तुम वात्सल्यरूप औषध हम को प्रदान करना चाहते हो, और हमारे आहत हृदय में आरोग्य का औषध लेपन करना चाहते हो, तो "ला इलाह इल्लिल्लाह महम्मद रसूलल्लाह" (ईश्वर एकमात्र अद्वितीय और मुहम्मद उस को प्रेरित है) यह वाक्य उच्चारण करो । यह सुन कर हमजा विश्वासी होकर कलमा उच्चारण पूर्वक एक ईश्वर के धर्म में दीक्षित हुए । तीन बरस शत्रु मंडली से अवरुद्ध होकर हजरत महम्मद को महा क्लेश से एक गिरिगुहा में कालयापन करना पड़ा था । इस बीच में बहुत से मनुष्यों ने उन के साथ उस उन्नत विश्वास में योग दिया था और उन के निकट एक ईश्वर के धर्म में दीक्षित हुए थे । ईश्वर की आज्ञापालन के लिए वह दस बरस मक्का नगर में अपरिसीम क्लेश और अत्याचार सहन कर के पीछे मदीना नगर में चले गए । वहीं शत्रुगण से आक्रांत होकर उन लोगों के अनुरोध से और आवाहन से युद्ध करने को बाध्य हुए । वह विपन्न अत्याचारित होकर कभी तनिक भी भीत और संकुचित नहीं हुए थे । जितनी बाधा और विघ्न उपस्थित होता था उतनी ही अधिक उत्साहानल से प्रज्वलित हो उठते थे । सब विघ्न अतिक्रम करके अटल विश्वास से वह ईश्वरादेश पालन व्रत में दृढ़ व्रती थे । वह ईश्वर और मनुष्य के प्रभु-भृत्य का संबंध अपने जीवन में विशेष भाँति प्रदर्शन करा गए हैं । वह स्वामी-आदेश शिरोधार्य कर के स्वर्गीय तेज और अलौकिक प्रभाव से कोटि कोटि मनुष्य को अँधेरे से ज्योति में लाए । लक्ष लक्ष जन का सांसारिक बल एक विश्वास के बल से चूर्ण कर के जगत में अद्वितीय ईश्वर की महिमा को महीयान किया । एकेश्वर की पूजा और सत्य का राज्य प्रतिष्ठित किया । प्रभु का आदेशपालन के हेतु सब प्रकार का दारिद्र, क्लेश, अपमान और आत्मीय जन का निग्रह अम्लान बदन से सिर नीचा करके सहन किया । धन्य ! ईश्वर के विश्वास किंकर महम्मद ! आज मुसलमान धर्म के प्रवर्त्तक ईश्वर के आज्ञाकारी विश्वस्त भृत्य मुहम्मद के नाम और उनके प्रवर्तित पवित्र एकेश्वर के धर्म में एशिया से योरोप आफ्रिका तक कोटि कोटि मुसलमान एक सूत्र में ग्रथित हैं । वह ऐसा आश्चर्य धर्म का बंधन जगत में संस्थापन कर गए हैं कि आज दिन उस के खोलने की किसी को सामर्थ्य नहीं है ।

२. बीबी फ़ातिमा

अब हम लोग उस का जीवनचरित्र लिखते हैं जिस को करोड़ों मनुष्य सिर झुकाते हैं और जिस के दामन से प्रलय पीछे करोड़ों मनुष्य को ईश्वर के सामने अपने अपराधों की क्षमा मिलने की आशा है । यह बीबी फ़ातिमा मुसलमान धर्माद्याचार्य महात्मा मुहम्मद की प्यारी कन्या थी । महात्मा मुहम्मद जैसै दुहितृवत्सल थे वैसी ही बीबी फातिमा पितृभक्त थीं । यह बाल्यावस्था ही में मातृहीना हो गईं, क्योंकि इन की माता महात्मा मुहम्मद की प्रथमा स्त्री बीबी ख़दीजा इनको शैशवावस्था ही में छोड़ कर परलोक सिधारीं । यद्यपि महात्मा मुहम्मद को अनेक संतति थीं पर औरों का कोई नाम भी नहीं जानता और इन को आबालवृद्ध बनिता सब जानते हैं । मुहम्मद ने अपने मुख से कहा है कि ईश्वर ने संसार की सब स्त्रियों से फातिमा को श्रेष्ठ किया । इन्होंने आठ बरस तक जिस असाधारण निष्ठा और परम श्रद्धा से पिता की सेवा की पराकाष्ठा की है वैसी संदेह है कि किसी स्त्री ने भी न की होगी और न ऐसी पितृगतप्राणा नारीरत्न और कहीं उत्पन्न हुई होगी । महात्मा मुहम्मद क्षण भर भी दृष्टि से दूर रखने में कष्ट पाते थे । पिता के अलौकिक दृष्टांत और उपदेशों के प्रभाव से शैशवावस्था ही से इन को अत्यंत धर्म्मनिष्ठा थी । इन का मुख भोला भाला सहज सौंदर्य्य से पूर्ण और सतोगुणी तेज से देदीप्यमान था । कभी इन्होंने सिंगार न किया । सांसारिक सुख की ओर यौवनावस्था में भी इन्होंने तृणमात्र चित्त न दिया । मर्म की विमल ज्योति और ईश्वरीय प्रताप इन के चेहरे से प्रगट था । धर्मसाधन और कठिन वैराग्य व्रतपालन ही में इनको आनंद मिलता था और अनशनादिक नियम ही इन का व्यसन था । इन के समस्त चरित्र में से दो एक दृष्टांत रूप यहाँ पर लिखे जाते हैं ।

महात्मा मुहम्मद के चचेरे भाई और परम सहायक आदरणीय अली से इन का विवाह हुआ और सुप्रसिद्ध हसन-हुसैन इन के दो पुत्र थे ।

एक बेर कुरेशवंशीय अनेक संभ्रातजन महात्मा मुहम्मद के पास आए और बोले कि यद्यपि हमारा आप का धर्म संबंध नहीं है पर हम आप एक ही वंश के और एक ही स्थान के हैं, इस से हम लोगों की इच्छा है कि हम लोगों के यहाँ जो अमुक आप के संबंधी का अमुक से विवाह होनेवाला है उस कार्य को आप की पुत्री फातिमा चल कर अपने हाथ से संपादन करै । महात्मा मुहम्मद ने अच्छा कह कर बिदा किया और फातिमा के निकट आ कर कहने लगे — वत्से ! लोगों से सद्भाव तथा शत्रुओं का उत्पीड़न सहन करना और शत्रुतारूपी विष को कृतज्ञता-रूपी सुधा भाव से पान ही हमारा धर्म है । आज अरब के अनेक मान्य लोगों ने अपने विवाह में तुम को बुलाया है । यह हमारी इच्छा है कि तुम वहाँ जाओ, परंतु तुम्हारी क्या अनुमति है हम जानना चाहते हैं । फातिमा ने कहा ईश्वर और ईश्वर के भेजे हुए आचार्य की आज्ञा कौन उल्लंघन कर सकता है ? हम तो आप की आज्ञाधीना दासी हैं, इस से हमारी सामर्थ्य नहीं कि आप की आज्ञा टालें । हम विवाह सभा में जायँगे, परंतु सोच यह है कि हम कौन सा वस्त्र पहन के जायँगे । वहाँ और स्त्री लोग महामूल्य वस्त्राभरणादिक धारण कर के आवेंगी और हमारी फटी चद्दर देख कर वे लोग हमारा और आप का उपहास करेंगी । अबूजुहल की बहिन आनवा की स्त्री और शवा की बेटी इत्यादि अनेक अरब की स्त्री कैसी असभ्यचारिणी और मंदप्रकृति हैं यह आप भली भाँति जानते हैं और हमालन की बेटी आप के चलने की राह में काँटा बिछा आती थी तथा अबूसफिनान की स्त्री को आप की निंदा के सिवा कोई काम ही नहीं है, यह भी आप को अविदित नहीं । सब उस सभा में उपस्थित रहेंगी और रूम और मिश्र के बहुमूल्य अलंकार धारण कर के मणिपीठ के ऊँचे आसन पर बड़े गर्व से बैठेंगी । उस सभा में आप की कन्या को एक मैली फटी पुरानी चद्दर ओढ़ कर जाना होगा । हम को देख कर वे सब कहेंगी कि इस कन्या को क्या हुआ । इस की माता की अतुल संपत्ति क्या हो गई जो इस वेश से यहाँ आई है । पिता ! इन लोगों को धर्मज्ञान और अंतरचक्षु नहीं है, केवल जगत् के वाह्याडंबर में भूली हैं, इस से हम को देख कर वह आप की निंदा करेंगी और केवल हमारे कारण आप का अपमान होगा ।

फातिमा पिता से यह कहती थीं और उनके नेत्रों से जल बहता था । महात्मा महम्मद ने उत्तर दिया — बेटी ! तुम किंचितमात्र भी सोच मत करो । हमारे पास उत्तम वस्त्राभरण और धन तो निस्संदेह कुछ भी नहीं है, परंतु निश्चय रक्खो कि जो आज लाल पीले वस्त्र पहन कर अलंकार के उद्यान में फूली फूली दिखाई पड़ती हैं वे अपने दुष्कर्मों से कल तृण से भी तुच्छ हो कर नर्क की अग्नि में जलेंगी । हम लोगों का वस्त्र और शोभा वैराग्य है । महात्मा महम्मद और भी कुछ कहना चाहते थे कि फातिमा ने कहा — पिता ! क्षमा कीजिए 'अब विलंब करने का कुछ प्रयोजन नहीं, आपकी आज्ञा हम को सर्वथा शिरोधार्य है ।

यह कह कर बीबी फातिमा घर से निकलीं [१] और उस विवाह सभा की ओर अकेली चलीं परंतु लिखा है कि ईश्वर के अनुग्रह से उनके अंग पर दिव्य अमूल्य वस्त्राभरण सज्जित हो गये । कुरेशवंश में और अरब की स्त्री लोग अभिमान से फातिमा की मार्ग की प्रतीक्षा कर रही थीं और कहती थीं कि आज हम लोगों की सभा में महात्मा महम्मद की बेटी फटा कपड़ा पहन कर आवेगी और हम लोगों के उत्तम वस्त्राभूषण देख के आज वह भली भाँति लज्जित होगी । इतने में विद्युल्लता की भाँति साम्हने से फातिमा की शोभा चमकी और विवाह-मंडप में इन के आते ही एक प्रकाश हो गया । फातिमा ने नम्र भाव से सब स्त्रियों को यथायोग्य अभिवादन किया, परंतु वे सब स्त्रियाँ ऐसी हतबुद्धि और धैर्यरहित हो गईं कि सलाम का उत्तर न दे सकीं । फातिमा का मुखचंद्र देख कर अभिमानिनी स्त्रियों के हृदय-कमल मुरझा गये और आँखों में चकचौंधी छा गई । सब की सब घबड़ा कर उठ खड़ी हुईं और आपस में कहने लगीं कि यह किस महाराज की कन्या और किस राजकुमार की स्त्री है । एक ने कहा, यह देवकन्या है । दूसरी बोली नहीं, कोई तारा टूट कर गिरा है । कोई बोली सूर्य की ज्योति है । किसी ने कहा, नहीं नहीं, आकाश से चंद्रमा उतरा है । परंतु जिस के चित्त में धर्मवासना थी उन्हों ने कहा कि यह ईश्वरीय ज्योति है । यह अनेक अनुमान तो लोगों ने किये, परंतु यह संदेह सब को रहा कि कोई होय पर यह यहाँ क्यों आई है ? अंत में जब लोगों ने पहचाना कि यह बीबी फातिमा है तो सब को अत्यंत लज्जा और आश्चर्य हुआ । सबसे ऊँचे आसन पर उनको लोगों ने बैठाया और आप सब सिर झुका कर उनके आस पास बैठ गईं । कई उनमें से हाथ जोड़कर बोलीं — हे महापुरुष महम्मद की कन्या ! हम लोगों ने आप को बड़ा कष्ट दिया, हम लोगों के कारण जो आप के नित्य कर्म में व्यवधान पड़ा हो उसे क्षमा कीजिये और हमारे योग्य जो कार्य हो आज्ञा कीजिये । हम लोगों को जैसा आदेश हो वैसा भोजन और शरबत आप के वास्ते सिद्ध करें । बीबी फातिमा ने विनयपूर्वक उत्तर दिया — भोजन और शरबत से हमारा संतोष नहीं, हमारा और हमारे पितृदेव का विषय में विराग सहज स्वभाव है । अनशन व्रत हम लोगों को सुस्वादु भोजन के बदले अत्यंत प्रिय है । हमारा और हमारे पिता का संतोष ईश्वर की प्रसन्नता है । तुम लोग देवी, देवता, भूत, प्रेत इत्यादि की पूजा और पाखंड छोड़ कर सत्य धर्म के प्रकाश में आओ, इस परमेश्वर की भक्ति करो, परस्पर बैर का त्याग और आपस में प्रीति करो । अनेक स्त्रियाँ फातिमा का यह अतुल प्रभाव देख कर उसी समय मुसलमान हुईं और जिन्होंने उनका धर्म नहीं ग्रहण किया उन्होंने भी उनका बड़ा आदर किया ।

किसी विशेष रोग के कारण इनकी मृत्यु नहीं हुई । पितृवियोग का शोक ही इनकी मृत्यु का मुख्य कारण है । कहते हैं कि महात्मा महम्मद की मृत्यु के पीछे फातिमा शोक से अत्यंत विह्वल रहीं । किसी भाँति भी इन को बोध नहीं होता था, रात दिन रोती थीं और बारबार मूर्च्छित हो जाती थीं । एक दिन उन्होंने कुछ स्वप्न देखा और मृत्यु के हेतु प्रस्तुत हो कर अपने प्रिय स्वामी आदरणीय अली को बुला कर कहा "कल पितृदेव को स्वप्न में देखा है जैसे वह चारों ओर नेत्र फैला कर किसी के मार्ग की प्रतीक्षा कर रहे हैं । हम ने कहा, पिता ! तुम्हारे विच्छेद से हमारा हृदय विदग्ध और शरीर अत्यंत जीर्ण हो रहा है । उन्होंने उत्तर दिया, कि पुत्री ! हम भी तो मार्ग ही देख रहे हैं । फिर हम ने ऊँचे स्वर से कहा — पिता ! आप किस का मार्ग देख रहे है ? तब उन्होंने कहा — कि तुम्हारा मार्ग देख रहे हैं । पुत्री फातिमा ! हमारा तुम्हारा वियोग बहुत दिन रहा, इस से तुम्हारे बिना अब हमारे प्राण व्याकुल हैं । तुम्हारे शरीर त्याग का समय उपस्थित है ; अब तुम अपनी आत्मा को शरीर संपर्क शून्य करो । इस निकृष्ट संकीर्ण जगत् का परित्याग कर के उस प्रसारित उन्नत देदीप्यमान आनंदमय जगत् में गृहस्थापन करो । संसाररूपी क्लेश-कारागारसे छुट कर नित्य सुखमय परलोक-उद्यान की ओर यात्रा करो । फातिमा ! जब तक तुम न आओगी तब तक हम नहीं जायँगे । हम ने कहा — पिता ! हम भी तुम्हारी दर्शनार्थी हैं, तुम्हारी सहवास संपत्ति लाभ करें यही हमारी भी आकांक्षा है । इस पर उन्होंने कहा — तो फिर विलंब मत करो, कल ही हमारे पास आओ । इस के पीछे हमारी नींद खुली, अब उस उन्नत लोक में जाने के लिये हमारा हृदय व्याकुल है । हम को निश्चय है कि आज साँझ या पहर रात तक हम इस लोक का त्याग करेंगे । हमारे पीछे तुम अत्यंत शोकाकुल रहोगे, इससे जिस में हमारे संतान भूखे

[१] हमारे पुराणों में भी लिखा है कि सती जब उदास हो कर दक्ष के यज्ञ में बिना सिंगार किये ही चलीं तो मार्ग में कुबेर ने उनको उत्तम उत्तम वस्त्राभूषण पहिना दिया । वैसे ही अनुमान होता है कि अपने आचार्य महात्मा मुहम्मद की बेटी को वस्त्रहीन देख कर उन के किसी धनिक सेवक ने अमूल्य वस्त्राभूषण से उनको सजा दिया ।

न रहें हम आज रोटी करके रख देते हैं और पुत्र-कन्या का वस्त्र भी धो देते हैं । हमारे पीछे यह कौन करेगा इस हेतु हम आप ही इन कामों से छुट्टी कर रखते हैं । हमारे अभाव में हमारे पुत्रों को कौन प्यार करेगा ? हमारी इच्छा थी कि आज इन का सिर सँवारें, परंतु हम को संदेह है कि कल कोई उनके मुँह की धूल भी न झारेगा" ।

अली यह सुन अत्यंत शोकाकुल हो कर रोने लगे और कहा कि फातिमा ! तुम्हारे पिता के वियोग से हृदय में जो क्षत है वह अब तक पूरा नहीं हुआ और उन महात्मा के चरणदर्शन बिना जो शोक है वह किसी प्रकार से नहीं जाता । इस पर तुम्हारा वियोग भी उपस्थित हुआ । यह आघात पर आघात और विपत्ति पर विपत्ति पड़ी । फातिमा ने कहा — अली ! उस विपत्ति में धैर्य किया है और इस में भी करो, इस क्षण में मुहूर्त्त भर भी हमसे अलग मत रहो, हमारे श्वासवायु अवसान का समय निकट है ; नित्याधाम में हम तुम फिर मिलेंगे यह प्रतिज्ञा रही ।

बीबी फातिमा यह कहती थीं और हसन-हुसेन के मुख की ओर देख कर दीर्घश्वास के साथ अश्रुवर्षण करती जाती थीं । माता की यह बात सुन कर हसन-हुसेन भी रोने लगे । फातिमा ने कहा — प्यारे बच्चो ! थोड़ी देर के वास्ते तुम लोग मातामह के समाधि-उद्यान में जाओ और हमारे हेतु प्रार्थना करो । वे लोग माता के आज्ञानुसार चले गये । फातिमा तब विछौने पर लेट गईं और अली से कहा, प्रिय तुम पास बैठो । बिदा का समय उपस्थित है । अली बैठे और शोक से रोने लगे । तब फातिमा ने आसमा नाम की दासी को बुला कर कहा कि अन्न प्रस्तुत रक्खो, हमारे प्यारे हसन-हुसैन आकर भोजन करेंगे । जब वे घर आवैं तब उन लोगों को अमुक स्थान पर बैठाना और भोजन कराना । उन को हमारे निकट मत आने देना, क्योंकि हमारी अवस्था देख कर वे घबड़ायेंगे । आसमा ने वैसा ही किया । इधर फातिमा ने अली से कहा —हमारा सिर तुम अपनी गोद में ले बैठो, अब जीवन में केवल कुछ ही क्षण बाकी हैं । अली ने कहा —फातिमा ! तुम्हारी ऐसी बातें हम नहीं सुन सकते । फातिमा ने उत्तर दिया । अली ! पथ खुला है, हम प्रस्थान करेहींगे और मन अत्यंत शोकाकुल है और तुम से कुछ कहना भी अवश्य है । हमारी बात सुनो और हमारे वियोग का शर्बत बाध्य होकर पान करो । अली फातिमा का सिर गोद में लेकर बैठे । फातिमा ने नेत्र खोलकर अली की ओर देखा ; उस समय अली के नेत्रों से आँसू के बूँद फातिमा के मुख पर टपकते थे । अली को रोते देखकर फातिमा ने कहा — हे नाथ ! यह रोने का समय नहीं है, अवकाश बहुत थोड़ा है । अंतिम कथा सुन लो । अली ने कहा — कहो क्या कहती हो । फातिमा ने कहा — हमें चार बात कहनी है ; पहली यह कि हम तुम्हारे साथ बहुत दिन तक रहे । यदि हमसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करो । अली रोने लगे और बोले — कभी तुम ने आज तक कोई ऐसी बात ही नहीं किया जो हमारे प्रतिकूल हो । प्यारी तुम तो सर्वदा हमारी मनोरंजनी रही, भूल कर भी तुम ने हम को कोई कष्ट नहीं दिया, तुमने सब आपत्ति अपने ऊपर सहन किया, परंतु हम को दुख न दिया, तुम उपकारिणी थीं, अपकारिणी नहीं । तुम को हम ने कोमल पुष्पमाला की भाँति अपने हृदय पर धारण किया कंटक की भाँति नहीं । बोलो, और बोलो और कौन बात है ? फातिमा ने कहा, दूसरे यह कि हमारे प्यारे हसन-हुसैन की रक्षा करना । जिस लाड़ प्यार और राव चाव से हमने उनको पाला है उसमें कुछ न्यूनता न हो ; उनकी सब अभिलाषा पूरी करना । तीसरे यह कि हमारे शव को रात्रि को भूमिशायी करना, क्योंकि जीवन दशा में जैसे पर पुरुष की दृष्टि हमारे शरीर पर नहीं पड़ी है वैसा ही पीछे भी हो । चौथे हमारी समाधि पर कभी कभी आ जाना । इतने में हसन-हुसेन भी आ गए और माता की यह अवस्था देखकर बहुत रोने लगे । फातिमा ने किसी प्रकार समझा कर फिर बाहर भेजा और दासी को बुला कर बीबी फातिमा [१] ने स्नान किया और एक धौत वस्त्र परिधान करके एक निर्जन गृह में दक्षिण पार्श्व से शयन करके ईश्वर का स्मरण करने लगीं । इसी अवस्था में उन्होंने परलोक गमन किया ।

●

१. इफ़ताम अरबी में बच्चे को दूध से छुड़ाने को कहते हैं । इन का फातिमा नाम इसी हेतु पड़ा था कि छोटेपनही में इन की मृत्यु हुई थी ।

आदरणीय अली की मृत्यु का समाचार

परम धार्मिक सुप्रसिद्ध अली मुसलमान धर्म के प्रवर्त्तक हज़रत महम्मद के जामाता और शीआ संप्रदाय के पहिले इमाम (आचार्य) थे। हज़रत महम्मद के लोकांतर गमन पीछे मुसलमान धर्म की स्थिति और उन्नति अली के ही ऊपर निर्भर थी। जैसे भक्तिभाजन ईसा को उन के शिष्य जूडा ने विंशति मुद्रा के लोभ से शत्रुहस्त में समर्पण कर के वध किया था वैसे ही इब्नमुलज़म नामक एक व्यक्ति ने एक दुश्चारिणी नारी के प्रलोभन में उसकी कुमंत्रणा से स्वीय धर्माचार्य अली को स्वयं करवालाघात से निहत किया। यह उससे भी भयंकर व्यापार है। इब्नमुलज़म के भाव चरित्र की चंचलता देख कर पहिले ही उस के ऊपर अली का संदेह हुआ था। एक दिन इब्नमुलज़म ने अली को एक उत्कृष्ट सामग्री उपहार दी थी। अली उस उपहार के प्रति अनादर प्रदर्शन कर के बोले कि हम तुम्हारे इस उपढौकन ग्रहण में नहीं प्रस्तुत हैं ; तुम परिणाम में हम को जो उपढौकन प्रदान करोगे उस के लिए हम विशेष चिंतित हैं। इस के कुछ दिन पीछे अली शिष्यमंडली के साथ कूफ़ा नगर में उपस्थित हुए। वहाँ इब्नमुलज़म ने कुत्तामा नाम की एक दुश्चरित्रा विधवा युवती के सौंदर्य से मुग्ध होकर उस से परिणय-अभिलाषा प्रगट की। कुत्तामा ने उसे प्रलोभन जाल में आबद्ध कर के कहा — हमारे तीन पण हैं सो पूर्ण करने से हम तुम्हारे साथ ब्याह में सम्मत हैं। एक सहस्र दिरहम (ताम्रमुद्रा विशेष), एक जन सुगायिका सुंदरी दासी और मुहम्मद के जामाता अली का बधसाधन। यह सुन कर इब्नमुलज़म बोला — पहिले दोनों पण कठिन नहीं हैं वह संसाधन कर सकेंगे, किन्तु तीसरा पण गुरुतर है इस के संसाधन में हम अक्षम हैं। कुत्तामा बोली — शेषोक्तपण ही सब में प्रधान है, अली हमारे पितृकुल का शत्रु है, उसका प्राणसंहार बिना किए कोई भाँति विवाह नहीं हो सकता है। दुरात्मा इब्नमुलज़म उसका सुदृढ़ पण देखकर उस में भी सम्मत हुआ एवं विषाक्त तीक्ष्ण करवाल के द्वारा गुरु की हत्या करने का सुयाग देखने लगा। एक दिन निशीथ समय में अली कूफ़ा की जामा मस्ज़िद के दरवाजे पर खड़े होकर नमाज में प्रवृत्त हैं, उस समय सुयोग समझ कर अतर्कित भाव से उस ने अली के सिर में एक आघात किया। अली आघात पाकर चिल्लाकर भूतलशायी हुए। शोणित-स्रोत से मस्जिद प्लावित हो गई। उनके आहत मस्तक से मस्तिष्क उद्भिन्न हो कर गिरा। दुरात्मा इब्नमुलज़म उसी क्षण धृत हो कर बंदी हुआ। पीछे उस ने दुष्कर्म का समुचित प्रतिफल भोग किया। अली ने दो दिवस विष की विषम यंत्रणा भोग कर के बंधुवर्ग को शोकसागर में मग्न करके परलोक गमन किया। मृत्युकाल में स्वीय प्रियतम पुत्र हसन को यह अनुमति दिया कि हमारा देह निशीथ समय में किसी निभृत स्थान में निहित करना, वही कार्य में परिणत हुआ। जब हसन पितृदेह भूमि निहित कर के लौटते थे उस समय एक व्यक्ति के रोने का शब्द सुन पड़ा। वह क्रंदन को लक्ष कर के वहाँ उपस्थित हुए, देखा कि एक दरिद्र अंध वृद्ध आकुल हो कर रो रहा है। हसन ने रोने का कारण पूछा, तो वह बोला कि प्रति दिन रात को एक महापुरुष आकर हम को आहार देते थे और सुमिष्ट वचन से परितोष करते थे। आज तीन दिन से वह नहीं आते हैं और वह मधुर वचन नहीं सुनने पाते हैं, हम अनाहार हैं। हसन ने पूछा — उन का नाम क्या है ? अंधा बोला — उन्होंने हम को अपना परिचय नहीं दिया। परिचय पूछने से वह कहते थे, हमारे परिचय से तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है, तुम हमारी सेवा ग्रहण करो। उनका कंठस्वर ऐसा था, वह अल्ला अल्ला की सदा ध्वनि करते थे। हसन अंधे की बात से जान गए कि वह महापुरुष उनके पिता थे। तब अश्रुपात कर के बोले कि आज वह महात्मा परलोक सिधारे हैं। अभी उनकी अंत्येष्टि क्रिया समाधान करके हम चले आते हैं। वृद्ध यह सुन कर शोक से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। पीछे रोते रोते बोला — तुम लोग हम को अनुग्रह कर के उनकी पवित्र समाधि भूमि में ले चलो। हसन हाथ पकड़ कर वृद्ध को वहाँ ले गए। वृद्ध ने वहाँ शोक और अनाहार से प्राण त्याग किया।

एक दिन किसी विपथगामी ईश्वरविरोधी व्यक्ति ने परम प्रेमिक अली से पूछा था कि हे ज्ञानवान् अली ! गृह और उच्च प्रासाद शिखर पर भी ईश्वर तुम्हारे रक्षक हैं, यह तुम स्वीकार करते हो ? अली बोले "हाँ, शैशव में, यौवन में, सर्वक्षण सर्वस्थान में वह हमारे प्राण के रक्षक हैं।" यह बात सुन कर वह बोला, "तुम अपने को, इस अट्टालिका पर से गिरा कर ईश्वर तुम को रक्षा करते हैं, इस विश्वास की पूर्णता प्रदर्शन करो, तब तुम्हारे विश्वास का हम विश्वास करेंगे और तुम्हारी ईश्वरनिष्ठा प्रमाण युक्त होगी।" तब अली बोले

चुप रहो और चले जाओ और स्पर्द्धा करके जीवन को कलंकित मत करो । मनुष्य का क्या साध्य है कि ईश्वर को परीक्षा में बुलावै । केवल उन को परीक्षा करने का अधिकार है । वह प्रति मुहूर्त्त में मनुष्य के निकट परीक्षा उपस्थित करते हैं । वह हम लोगों के पास हैं । हम लोग क्या हैं वह प्रकाश कर देते हैं । अंतर में हम लोग किस भाँति धर्मभाव रखते हैं, वह दिखला देते हैं । कौन मनुष्य ईश्वर को ऐसी बात कह सकता है कि यह सब पाप अपराध करके हम ने तुम्हारी परीक्षा किया । हे ईश्वर ! देखें, तुम्हारी कितनी सहिष्णुता है ! हा ! ऐसा कहने का किस को अधिकार है ? तुम्हारी बुद्धि अत्यंत दुष्ट हुई है । तुम्हारी यह उक्ति सब पापों से बढ़ कर है । जो यह सुविशाल नभोमंडल का रचयिता है उस की तुम परीक्षा करने क्या जानो ? तुम अपना शुभाशुभ तो जानते ही नहीं हो । पहिले अपनी परीक्षा करो, पीछे दूसरे की परीक्षा करना । पथप्रदर्शक अग्रगामी गुरु की जो शिष्य परीक्षा करता है वह मूर्ख है । जिस को तुम ने परीक्षक किया है, हे अविश्वासी, यदि उन्हीं की धर्ममार्ग में तुम परीक्षा करो, तो तुम्हारी दुःसाहसिकता और मूर्खता प्रकाश होगी । तुम ईश्वर की क्या परीक्षा करोगे ? धूलिकणिका क्या पर्वत की परीक्षा कर सकती है ? मनुष्य अपने बुद्धिगत अनुमान से तुला यंत्र प्रस्तुत करके ईश्वर को उस में स्थापन करने जाता है, किन्तु ईश्वर बुद्धि के अनायत्त हैं, उन के द्वारा बुद्धि-निर्मित परिमाण यंत्र चूर्ण हो जाता है । ईश्वर की परीक्षा करना और उनको आयत्त करना एक ही है । तुम एतादृश महाराज को आयत्त करने की चेष्टा मत करो, चित्रित वस्तु किस प्रकार से चित्रकार की परीक्षा करेगा उनके असीम ज्ञान में जो सब चित्र विद्यमान हैं उनके पास परिदृश्यमान विश्वचित्र क्या पदार्थ है ? जब परीक्षा ग्रहण की कुबुद्धि के द्वारा तुम आक्रांत होते हो, तब जानना तुम को संहार करने के लिए दुर्भाग्य उपस्थित हुआ है । अकस्मात् ईश्वर में ऐसी कुबुद्धि उपस्थित हो तो भूमिष्ठ प्रणत होना । भूमि को शोकाश्रुस्रोत से अभिषिक्त करना और कहना, हे ईश्वर ! इस कुचिंता से हमारी रक्षा करो । तब परम परीक्षक ईश्वर तुम को रक्षा करेंगे ।"

इमाम हसन और इमाम हुसैन

महात्मा मुहम्मद के जन्म का समाचार पूर्व में लिखा जा चुका है । इनको अठारह संतति हुई, किन्तु वंश किसी के आगे नहीं चला, केवल बीबी फ़ातिमा को वंश हुआ । यह बीबी फ़ातिमा आदरणीय अली से व्याही थीं । जब तक यह जीती थीं और विवाह आदरणीय अली ने नहीं किया केवल इन्हीं को अली मान कर इन्हीं के मुखपकज के अली बने रहे । बीबी फ़ातिमा को पाँच संतति हुईं, तीन पुत्र हसन, हुसैन और मुहसिन, और ज़ैनब और उम्म कुलसुम यह दो बेटियाँ थीं । इन में मुहसिन छोटेपन ही में मर गए । अली ने बीबी फ़ातिमा के मरने के पीछे उमुलनवीन से विवाह किया । उसके चार पुत्र अब्बास, जाफ़र, उसमान औन अब्दुल्लाह से उत्पन्न हुए, जो चारो अपने भाई इमाम हुसेन के साथ करबला में वीर गति को गए । इनमें से अब्बास की संतति चली । तीसरी स्त्री क़ैसी, उससे अबदुल्लाह और अबूबकर, यह दोनों भी करबला में मारे गए । चौथी स्त्री इसमानित से मुहम्मद और यहिया दो पुत्र हुए । इन चारों की संतति नहीं है । पाँचावीं स्त्री सहबाई से उमर और रकिया, जिनमें से उमर की संतति है।छठवीं स्त्री अम्मामा । इसको मुहम्मद मध्यम नामक पुत्र हुआ, किन्तु आगे संतति नहीं । सातवीं स्त्री इनकी खूला है, जिनके पुत्र बड़े मुहम्मद हुए, जिनका वंश वर्त्तमान है । आदरणीय अली को इन बेटों के सिवा चौदह बेटियाँ भी हुईं । इन सब से इमाम हसन, इमाम हुसैन, अब्बास, मुहम्मद और उमर का वंश है, जिनमें इमाम हसन और इमाम हुसेन की संतति सैयद कहलाती है और शेष तीनों की साहबजादों के नाम से पुकारी जाती है । किन्तु शीया लोगों में अनेक इमाम हसन के वंश को भी सैयद नहीं कहते हैं और कहते हैं कि ठीक सैयद केवल इमाम जैनुलआबदीन (इमाम हुसेन के मध्यम पुत्र) का वंश है । आदरणीय अली सब के पहिले मुसल्मान हुए और दाहिनी भुजा की भाँति महात्मा मुहम्मद के सदा सहायक रहे । इन्हीं अली के पुत्र इमाम हुसेन थे, जिनका दुष्टों ने करबला में बध किया, जिस का हम क्रम से वर्णन करते हैं ।

महात्मा मुहम्मद के (६३२ ई.) मृत्यु के पीछे अबूबकर (६३२ ई.) खलीफा हुए और उन के पीछे उमर (६३४ ई.) । इस में कुछ संदेह नहीं की महात्मा मुहम्मद के पीछे उनके सब शिष्यों को धन और देश और शासन के लोभ ने ऐसा घेर लिया था कि सब धर्म को भूल गए थे । केवल आड़ के वास्ते धर्म था । यद्यपि

उपद्रव तो मुहम्मद महात्मा की मृत्यु के साथ ही हुआ, किंतु तीसरे खलीफा (महन्त) के काल से उपद्रव बढ़ गया । यह हम पक्षपात छोड़ कर कह सकते हैं कि ऐसे घोर समय में आदरणीय अली ने बड़ा संतोष प्रकाश किया था । शाम (Asia minor) के लोग इन सब उपद्रवों की जड़ थे । उन में भी कूफा के सन् ६५६ में इन उपद्रवियों ने उसमान महंत का व्यर्थ बध किया और आदरणीय अली को ख़लीफा बनाया । यही समय मुहर्रम के अन्याय की जड़ है । उसमान खलीफा के समय में महात्मा मुहम्मद ने निज शिष्यों में एक मनुष्य मुआविया (जो इन का गोत्रज भी था) नामक शाम और मिस्र आदि देशों में गवर्नर था । जब अली खलीफा हुए तो इस मुआविया ने चाहा कि उनको जय करके आप खलीफा हों । यहाँ तक कि अनेक युद्धों में मुसलमानों पर अपना अधिकार जमाता गया । सन् ६६१ में पाँच बरस खलीफा रह कर अली एक दुष्ट के हाथ से मारे गये । इन के पीछे इन के बड़े पुत्र और महात्मा मुहम्मद के नाती इमाम हसन खलीफा हुए, किन्तु मुआविया ने इन को भी अपने राज्य-लोभ से भाँति-२ का कष्ट देना आरंभ किया । उस समय के लोग ऐसे क्रूर, लोभी और दुष्ट थे कि धर्म छोड़ कर लोभ से बहुत मुआविया से मिल गए और अपने परमाचार्यकी एक मात्र संतति हसन-हुसैन को दुःख देने लगे । इमाम हसन यहाँ तक दुःखी हुए कि चार लाख साल पिंशन पर निराश हो कर खिलाफत से बाज आए । कुछ ऊपर छ महीनेमात्र ये खलीफा थे । किन्तु इस पिंशन के देने में भी मुआविया बड़ी देर और हुज्जत करता रहा । यहाँ तक कि सन् ४९ हिजरी (६७० ई.) में मुआविया के पुत्र यज़ीद ने इमाम हसन की एक दुष्ट स्त्री जादा के द्वारा उनको विष दिलवाया । कहते हैं कि दो बेर पहिले भी इस दुष्टा स्त्री ने इस लोभ से कि वह यजीद की स्त्री होगी इमाम को विष दिया था, किन्तु तीसरी बार का विष ऐसा था कि उससे प्राण न बच सके और इस असार संसार को छोड़ गए । पंद्रह पुत्र और आठ कन्या इनको हुई थीं । अब लोग इन दुष्टों के धर्म को देखें कि साक्षात् परमाचार्य ईश्वर-प्रिय 'वरंच ईश्वर-तुल्य', अपने गुरु की संतति और गुरु-पुत्र और स्वयं भी गुरु उस का इन लोगों ने कैसे आनंद से बध किया ।

इमाम हसन के मरने के पीछे यज़ीद बहुत प्रसन्न हुआ और अपने राज्य को निष्कंटक समझने लगा । अब केवल इन लोगों की दृष्टि में इमाम हुसैन बचे जो कि रात-दिन खटकते थे, क्योंकि धर्मी और श्रद्धालु लोग इनके पक्षपाती थे । मुआविया और उसके साथी लोग अब इस सोच में हुए कि किसी प्रकार इनको भी समाप्त करो तो निर्द्वंद राज्य हो जाय । सन् ४९ के अंत में मुआविया मर गया और यज़ीद नारकी मुसलमानों का महंत हुआ । यह मद्यप परस्त्रीगामी और बेईमान था, इसी हेतु इसके महंत होने से अनेक लोगों ने अप्रसन्नता प्रकट की । मक्के और मदीने में सभ्य और अनेक प्राचीन लोग उसके धर्म शासन से फिर गए और अनेक लोग नगर छोड़ छोड़ कर दूर जा बसे । इमाम हुसैन का तो मानो वह शत्रु ही था । मदीना के हाकिम को लिख भेजा कि या तो इमाम हुसैन हमारा शिष्यत्व स्वीकार करे या उनका सिर काट लो । मदीने के हाकिम ने यह वृत्त इमाम हुसैन से कहा और उन पर अधिकार जमाने को नाना प्रकार की उपाधि करने लगा । यह बिचारे दुखी हो कर अपने नाना और माँ की समाधि पर बिदा होने गए और रो रो कर कहने लगे कि नाना तुम्हारे धर्म के लोग निरपराध हुसैन को कष्ट देते हैं, हसन को विष दे कर मार चुके पर अभी इन को संतोष नहीं हुआ । तुम्हारे एक मात्र पुत्र और उत्तराधिकारी दीन हुसैन को महंतों का पद त्याग करने पर भी यह लोग नहीं जीता छोड़ा चाहते । इसी प्रकार अनेक विलाप करके अपनी माँ और भाई की समाधि पर से भी बिदा हुए और अपने सपत्नी नानियों और संबंधियों से बिदा हो कर मक्के की ओर चले । इसी समय कूफा के लोगों ने इमाम को एक पत्र लिखा । उस में उन लोगों ने लिखा कि "हम लोग यज़ीद मद्यप के धर्मशासन से निकल चुके हैं, आप यहाँ आइए, आप ही वास्तव में हमारे गुरु हैं, हम लोग आप के चरण में रहैंगे और प्राण पर्यंत आप से अलग न होंगे । इस बात की हम शपथ करते हैं ।" इस पत्र पर कूफा के हज़ारों मनुष्यों के हस्ताक्षर थे । इस पत्र को पाकर इमाम ने कूफा जाना चाहा । उनके बंधुओं ने उन से बहुत कहा कि कूफे के लोग झूठे होते हैं, आप उन का विश्वास न कीजिए । पर उनके ईश्वर की शपथ खाने पर विश्वास करके इमाम ने किसी का कहना न सुना और अपने मक्का की यात्रा की समय अपने चचेरे भाई मुसलिम को कूफियों के पास भेजा कि उनको मक्का से लौटती समय इमाम के कूफा आने का सम्बाद पहिले से दें । इनको इधर भेज कर आप बंदना के हेतु मक्के चले । मुसलिम जब कूफे में पहुँचे तो इनको वहाँ के लोगों ने बड़ा शिष्टाचार किया और इमाम हुसैन के गुरुत्व को सबने स्वीकार किया । यह देख कर इन्होंने इमाम को पत्र लिखा कि आप निश्शंक कूफा आइए ;

यहाँ के लोग सब आप के दासानुदास हैं और तीस हज़ार आदमियों ने आप को गुरु माना है । इस पत्र के विश्वास पर इमाम हुसैन कूफे की ओर और भी निश्चिंत हो कर चले और बांधवों का वाक्य स्वीकार न किया । किन्तु शोच की बात है कि बिचारे मुसलिम वहाँ मारे जा चुके थे । कारण यह हुआ कि यज़ीद ने जब सुना कि कूफा में मुसलिम इमाम हुसैन का आचार्यत्व चला रहे हैं तो उसने वहाँ के हाकिम को बदल दिया और उबैदुल्लाह ज़ियाद-नंदन को हाकिम बनाया और आज्ञा भेजा कि हुसैन को बकरे की भाँति जिबह करो और मुसलिम को तो जाते ही मार डालो । जब ज़ियाद-पुत्र शाम का हाकिम हुआ तो मुसलिम के पकड़ने की फिक्र में हुआ । पहिले तो कूफे के लोग मुसलिम के साथ उस के मकान पर चढ़ गए, परंतु जब उसने उन लोगों को धमकाया और लालच दिया तो एक एक कर के सब मुसलिम का साथ छोड़ कर चले गए और मुसलिम बिचारे भाग कर एक घर में जा छिपे । परन्तु लोगों ने उन को वहाँ भी जाने न दिया और पकड़ लाए और इब्ने ज़ियाद की आज्ञा से उनका सिर काटा गया और उनका साथी हानी भी मारा गया, वरंच उनके दो लड़कों को भी मार डाला । महात्मा मुसलिम मरने के समय यही कहते थे कि मुझे अपने मरने का कष्ट नहीं, क्योंकि सत्य मार्ग स्थापन में मेरे प्राण जाते हैं । मुझे शोच यही है कि मेरे पत्र के विश्वास पर इन कृतघ्नी और विश्वासघाती कूफा वालों के विश्वास पर इमाम हुसेन यहाँ चले आवेंगे और उन महापुरुष के साथ भी ये कापुरुष कुपुरुष यही व्यवहार करेंगे और आचार्य मुहम्मद की संतान को निरपराध ये लोग वध कर डालेंगे । हाय ! उनके भाई मुसलिम कूफे में यों अनाथ की भाँति मारे गये, यह हुसैन को नहीं मालूम था और वे मंजिल मंजिल इधर ही बढ़े आते थे यहाँ तक कि जब शाम के हाते के भीतर पहुँच चुके तब उन्होंने मुसलिम का मरना सुना । उस समय आपने अपने साथ के लोगों से कहा कि भाई अब तुम सब लोग अपने देश लौट जाओ, हम तो प्राण देने जाते हैं । उस समय वे सब लोग, जो अरब से साथ आए थे, प्राण के भय से अपने सच्चे स्वामी को छोड़ कर चले गये । यहाँ तक कि हज़ारों की जमात में केवल बहत्तर मनुष्य साथ रह गए । जब इन लोगों के साथ इमाम सरलफ नामक स्थान पर पहुँचे तो हुर नामी उबेदुल्लाह का सेनापति दो हज़ार सिपाहियों के साथ मिला और वह इन लोगों को घेर कर शाम की तरफ बढ़ता हुआ ले चला । इस समय इमाम ने फिर सब लोगों को जाने को कहा, परंतु अब तो वे लोग साथ थे जो सच्चे बंधु थे । ऐसे कठिन समय में कौन साथ छोड़ कर जा सकता था । इसी समय शाम से और भी फौजें आने लगीं । इमाम ने उन लोगों को बहुत समझाया और कहा कि हम यज़ीद के राज्य के बाहर चले जायें, किन्तु किसी ने उनकी बात न सुनी । जब इमाम का डेरा करबला नामक स्थान में पड़ा था, उस समय शिमर नामक इब्ने ज़ियाद के सैनापति ने फुरात नहर का पानी भी इन पर बंद कर दिया । एक तो गरमी के दिन, दूसरे सफर की गरमी और उस पर यह आपत्ति कि पानी बंद । शिमर और उमर इस लश्कर में मुख्य थे । यदि इन में से किसी को भी कभी दया और धर्म सूझता भी, लोभ उसे हटा देता । कहते हैं कि यज़ीद हिमदानी ने साद से जाकर इमाम के वास्ते पानी माँगा और कहा कि क्या तुम को ईश्वर को मुँह नहीं दिखलाना है जो अपने गुरुपुत्र को निरपराध बध करते हो ? इस के उत्तर में उस दुष्ट ने कहा कि हम रै की हाकिमी को धर्म से अच्छी समझते हैं । अंत में उबैदुल्लाह ने सादपुत्र को आज्ञा लिखा कि क्यों इतनी देर करते हो ? या तो हुसैन का सिर लाओ या उनको यज़ीद के मत में लाओ । इस आज्ञा के अनुसार (सन् ६१ हिजरी के) ९वीं मुहर्रम की संध्या को अट्ठाईस हज़ार सैना से उमर ने इमाम का लशकर घेर लिया । इमाम उस समय संध्या की वंदना में थे । उठ कर सेना से कहा कि रात भर की मुझे और फुरसत दो । उमर ने इस बात को माना । इमाम ने साथ के लोगों से कहा कि अब अच्छा है चले जाओ और मेरे पीछे प्राण मत दो । परंतु किसी ने न माना और सब मरने को उद्यत हुए । रात भर सब लोग ईश्वर की स्तुति करते रहे । सबेरे इमाम ने स्त्रियों को धैर्य और संतोष का उपदेश दिया और आप ईश्वर का स्मरण करते हुए सब हथियार बाँध कर अपने साथियों के साथ मरने को निकले । इनके साथ जितने लोग मारे गए उनकी संख्या बहत्तर है । इनमें बत्तीस सवार और चालीस पैदल थे । सरदारों में मुसलिम बिन उनका जरगाम:, वहब उन्स, मालिक, हुज्जाज, ज़हीर, असदी, आमिर, उम्मग, उमरान, शईब यमर, शूदब और हबीब इब्ने मज़ाहिर (एक वृद्ध मनुष्य) थे और इमाम के नातेदारों में इनकी बहिन ज़ैनब के दो लड़के मुहम्मद और ऊन, और तीन मुसलिम के भाई, पाँच इमाम हुसैन के विमात्र भाई अब्बास, उसमान, मुहम्मद अब्दुल्लाह और जाफर और तीन पुत्र इमाम हसन के अब्दुलाह, जैद और कासिम (किसी के मत से पाँच अबूकर और उमर भी) और एक पुत्र इमाम हुसैन के अली

अकबर (अठारह बरस के) इतने मनुष्य थे । युद्ध होने के पूर्व इमाम एक ऊँट पर बैठ कर सैना के सामने आए और मृदु और गंभीर स्वर से बोले कि हमने किसी की स्त्री छीनी या किसी का धन हरण किया या कोई और बात धर्म विरुद्ध की ? किस बात पर तुम लोग हमको निरपराध बध करते हो ? इसका उत्तर किसी ने न दिया, तब इमाम यह कह कर उस ऊँट पर से उतरे कि हमने संसार में तुमसे हुज्जत समाप्त कर ली, अब ईश्वर के यहाँ हमारा तुम्हारा झगड़ा है और घोड़े पर सवार हुए । युद्ध आरंभ हुआ और बड़ी वीरता से इनके साथी सब मारे गए । अंत में इमाम अपने एक छोटे बच्चे को, जो प्यास से व्याकुल हो रहा था, उन लोगों के सामने लाए और कहा कि इस नौ महीने के बच्चे पर दया कर के केवल इस के पीने को तो पानी दो । इस के उत्तर में उन दुष्टों में से एक ने ऐसा तीर मारा कि वह बच्चा वहीं मर गया । और फिर चारो ओर से घेर कर हज़ारों वार लोगों ने किए, यहाँ तक कि वे घोड़े पर से गिरे । उस समय किसी ने उन का सिर काटा, किसी ने मरे पर भाला मारा, किसी ने हाथ की उँगली नोची । इस पर भी इन लोगों को संतोष न हुआ और उन लोगों के मरे शरीर पर घोड़े दौड़ाए । हाय ! इतने बड़े मनुष्य की यह गति ! भूख प्यास से दुखी और दीन मनुष्य को निरपराध बाल बच्चे समेत स्त्रियों के सामने मारना इन्हीं लोगों का काम है, उस पर भी गुरु-पुत्र को ।

नं.	नाम	बाप का नाम	मा का नाम	जन्म का समय	अवस्था	मृत्यु का समय	सन्तति	गाड़े जाने का स्थान	विशेष विवरण
१	मुहम्मद	अब्दुल्लाह	अमीना	१२ रबीउलऔ वल ५२ हिजरी के पूर्व	६३	१२ रबीउलऔ ६३२ ईसवी ११ हिजरी	४ पुत्र, ४ कन्या	मदीना	बहु देववादी भूतपिशाचोपासी अरब जाति में इन्हीं ने एकेश्वर वाद स्थापन करके मुसलमानी मत चलाया ; ग्यारह विवाह किए बुद्धि आश्चर्य कौशल सम्पन्न थी । किसी के मत में १४ विवाह १८ संतति ।
२	फ़ातिमा	मुहम्मद	ख़दीजा	६०४ ईसवी	२८	११ हिजरी	३ पुत्र, २ कन्या	मदीना	महात्मा मुहम्मद की एक मात्र वंश रखने वाली प्यारी कन्या थी । स्वभाव बहुत नम्र और दयालु था ।

३ अली	अबूतालिब	फ़ातिमा (असद की बेटी)	५९९ ईसवी ११ रजब मक्के में	६२	४० हिजरी १९ रमजान	१७ पुत्र वा १९, १७ कन्या	कूफा. नजफ ठीक नहीं मालूम	सुन्नियों के चौथे खलीफ़ा । शीआओं के पहल इमाम । पाँच बरस तीन महीना खिलाफ़त किया । माता और पिता दोनों संबंध में यह म. मुहम्मद के बहुत पास थे अर्थात् चचेरे और मौसेरे भाई थे । यह सैयदों के वंशकर्त्ता और फकीरों के मूल गुरु हैं । नौ विवाह किए थे ।
४ हसन	अली	फ़ातिमा	१५ शाबान सन् २ हिजरी ६२५ ई.	४५।।	१रबीउलऔवल ९९ हिजरी ६७० ईसवी	१९ पुंत्र, ८ कन्या	मदीना	सुन्नियों के पाँचवें खलीफ़ा तथा शीआओं के दूसरे इमाम थे । छ महीना खिलाफत किया । विष से शहीद हुए । पाँच पुत्रों का वंश है ।
५ हुसैन	अली	फ़ातिमा	५ शाबान सन् ४ हिजरी ६२६ ई.	५१ वर्ष ५ महीना ५ दिन	१० मुहर्रम. ६१ हिजरी ६८३ ई.	६ पुत्र, ८ कन्या	करबला	शीआओं के तीसरे इमाम । करबला के प्रसिद्ध युद्ध में शहीद हुए ।
६ अबूबकर	अबीक़हाफ़	उमउल खै़र	५७१ ईसवी	६३	१३ हिजरी ६३४ ई.	३ पुत्र, २ कन्या	मदीना	सुन्नियों के पहले खलीफा थे । महात्मा मुहम्मद के पीछे दो बरस तीन महीना खलीफा रहे । महात्मा मुहम्मद की छोटी स्त्री आयशा के पिता थे । चार स्त्री थीं और मुसलमानी धर्म फैलाने को इन्होंने बहुत सा द्रव्य व्यय किया था ।
७ उमर	ख़िताब	ख़तमा	५८२ ईसवी	६३	२३ हिजरी ४४ ई.	९ पुत्र, ३ कन्या	मदीना	दूसरे खलीफा थे, १० बरस आठ महीने खलीफा रहे । शहीद हुए, ६ पत्नी और दो उप-पत्नी थीं ।
८ उसमान	अफ़ान	अरदी	५७५ ईसवी	८२	३५ या ३४ हिजरी ६५२ ई.	३ पुत्र, ४ कन्या	मदीना	तीसरे खलीफा थे । १२ बरस खलीफा रहे । इनको महात्मा मुहम्मद की दो बेटियाँ व्याही थीं किन्तु उनको संतति नहीं थीं । आठ स्त्री थीं । पूर्वोक्त तीनों खलीफा की संतति शेख़ कहलाती हैं ।
९ इमाम जैनुलाबदीन	इमाम हुसेन	शहरबानू (नौशेरवाँ से पाँचवीं)	३६ हिजरी	५८	९४ हिजरी	९ पुत्र, ८ कन्या	मदीना	शीआ लोग केवल इन्हीं की संतति को सैयद मानते हैं ।
१० इमाम बाकर	हुसैन के पुत्र अली	उसम (अब्दुल्लहई इमन की बेटी)	५८ हिजरी	६३	११८ वा ११७ हिजरी	११ पुत्र, ४ कन्या	मदीना	

११	इमाम जाफर सादिक	बाकर	उम्मे फरदा (अबूबकर की पोती)	८० वा ८३	हिजरी ६७	१४८ हिजरी	६ पुत्र, ३ कन्या		मदीना	
१२	इमाम मूसा काज़िम	जाफर	हमीरा	१२८ हिजरी	४५ या ५५	१८३	२ पुत्र, १ कन्या		बुगदाद	शीआ कहते हैं कि सुन्नियों के उपद्रव से अरब छोड़ कर चले गये। किन्तु सुन्नी कहते हैं कि उस काल के खलीफा बुगदाद में रहते थे इससे आदर के हेतु इनको भी वहीं बुलाकर बसाया। ये बड़े भारी वंशकर्त्ता हुए हैं।
१३	अलीरजा	मूसा काजिम	तकीम	१५३ हिजरी	४९	२०३	८ पुत्र, २२ कन्या		बुगदाद	शीआ मत का विशेष प्रचार किया। किन्तु सुन्नी लोग कहते हैं कि ये लोग भी सब सुन्नी थे।
१४	अबूजाफ़र नकी	अली	रहीना	१९५ हिजरी	२५	२२०	५ पुत्र, १कन्या		बुगदाद	
१५	अबुलहसन असकरी तकी	नक़ा	समाना	२१४ हिजरी	४०	२५४	२ पुत्र, २ कन्या		सरमनराय	
१६	अबूमहम्मद	असकरी	सौसन	२३२ हिजरी	२८	२६०	२ पुत्र, १ कन्या		सरमनराय	
१७	अबुलकासिम मिहदी	अबूमुहजकी	नरगिस	२५५ हिजरी	०	२६७	१ पुत्र		बुगदाद	शीआओं के मत से ९ वर्ष की अवस्था में पर्वतगुहा में चले गए फिर प्रलय के समय निकलेंगे। सुन्नियों के मत से अभी जन्म ही नहीं हुआ, प्रलय में पैदा होंगे।
१८	इमाम अबूहनीफ	साबित		८०	७७	१५०	०		मदीना	
१९	इमाममालिक	उन्स	उमउलमुहसिन	९५	८४	१७९	०		मिस्र	नं. १८ से २१ तक ये सुन्नी मत के चार इमाम हैं, शीआ इन को नहीं मानते। ये चारो पृथक मत के प्रवर्त्तक हैं यथा हानिफी, मालिकी, शाफेई और जम्बूली।
२०	इमाम शाफई	इदरीस		१५०	५४	२०४	०		बुगदाद	अकबर के वंश के बादशाह हानिफी थे। दत्तात्रेय की भाँति अबूहनीफा ने अनेक गुरु किये थे, जिनमें इमामजाफर भी थे।

२१	इमाम जुमल	मुहम्मद		१६५	७६	२४२	०	बुगदाद	सुन्नियों में इन्हीं चारों की चार मुख्य मत शाखा हैं। ये क्रम से एक के दूसरे शिष्य भी थे।
२२	इनाम ग़ौस आज़म	अबासालिह (इमामहुसेन के वंश में)	फातिमा उमउलख़ैर (इमाम हसन के वंश में)	४७०	९१	५६१	०	बुगदाद	सुन्नियों में ये एक प्रसिद्ध इमाम हुए हैं, हसनी-हुसैन सैयद थे और बड़े भारी विद्वान और सिद्ध थे। शीआ लोग इनको नहीं मानते हैं वरंच सैयद भी नहीं कहते।

कार्तिक नैमित्तिक कृत्य

(तत्कर्महरितोषंयत्साविद्यातन्मतिर्यया '—

रचनाकाल सन् १८७२। पहली बार सन् १८७२ में ही बनारस लाइट प्रेस में छपी।— सं.

भूमिका

मेरे प्यारे मित्र— यद्यपि तुम्हारे प्रेम मार्ग मे यावत् कर्ममात्र निष्फल हैं तथापि तुम्हारे मिलने के साधन रूप कर्म तो कर्त्तव्य ही हैं, इसी आशय से यह विधि लिखी गई है। इसको देखकर कई पंडित रुष्ट होंगे पर यह तो समझें कि पंडितों के हेतु तो संस्कृत पुस्तकें बनी ही है, यह तो केवल उन्हीं के आनंदार्थ है जो श्रद्धावान हैं परंतु संस्कृत ग्रंथों को नहीं देखते। इसमें श्री रामार्चन चंद्रिका, निर्णय सिंधु, धर्म-सिंधु, जयसिंह-कल्पद्रुम, भगवद्‌भक्तिविलास और कार्तिक-महात्म्यादिक ग्रंथों का सारांश लिखा है। जो हो, तुम इससे प्रसन्न हो, यही इसका फल है। अतएव प्यारे! यह तुम्हारे चरणों में समर्पित है अंगीकार करो।

तुम्हारा रसिक
हरिश्चंद्र

कार्तिक नैमित्तिक कृत्य

* श्री राधादामोदरायनमः*

दोहा

जेहि लहि फिर कछु लहन की आस न चित में होय।
जयति पवित्री जग करन प्रेम-बरन यह दोय।।१।।

छप्पय

जदपि पान करि परम अमृतमय प्रेम भरयौ रस।
जड़ उनमत्त समान होइ बिचरत गत कलमस।।
सकल कर्म को जाल सिथिल किय परम प्रीति सों।
रहयौ न कछु कर्त्तव्य शेष कुल वेद रीति सों।।
पै जानि भागवत धर्म एहि सुझत सो पथ जेहि लहत।

लखि दीन जीव संसार के परम कृपा गहि कछु कहत । ।

कार्त्तिक-धर्म यहाँ क्यों विधान करते हैं ? इस हेतु से कि सब धर्मों में भगवद्धर्म मुख्य है और यही श्री मुख से भी कहा है —

"मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजीमान्नमस्कुरु मावेवैष्यसिकौन्तेय "

इत्यादि । ।

विशेषतः कलियुग में भगवद्धर्म ही की नित्यता है, यह भी निश्चय है । .

यथा हेमाद्रौ श्री भार्गवद्वाक्यम्

कलौ सभाजयन्त्यार्य्याः गुणज्ञास्सारभागिनः ।
यत्र संकीर्त्तनेनैव सर्व्वं स्वार्थोभिलभ्यते । ।

अनेक निबन्धेषु महाभारते

कलौ कलिमलध्वंसं सर्वपापहरं हरिम् ।
ये ऽर्च्चयन्ति नरानित्यं तेपिवंद्या यथा हरिः । ।

मदन पारिजाते योगि याज्ञवल्क्यः

विष्णुर्ब्रह्माचरुद्रश्च विष्णुर्देवो जनार्दनः ।
तस्मात्पूज्यतमंनान्यमहंमन्ये जनार्दनात् । । इत्यादि

और इसमें विशेषता यह है कि एक श्री भगवान के पूजन में सबका पूजन आ जाता है — यथा श्री मद्भागवते —

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्दभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च तथेन्द्रियाणां तथैव सर्व्वार्हणमच्युतेज्या । ।

और इस भगवद्धर्म के सब अधिकारी हैं ; यह श्री मुख से गाया है — स्त्रियोवैश्यास्तथा शूद्रास्तेपियान्ति परांगतिम् । ऐसा ही परम भक्त श्री प्रह्लाद जी ने भी कहा है —

नाल ऋषित्वं द्विजत्वं देवत्वं वा ऽसुरात्मजाः ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न धनं न बहुज्ञता । । इत्यादि

इससे सर्वसाधारण को और अनेक धर्मों को छोड़कर केवल भगवद्धर्म मुख्य हुआ तो भगवद्धर्मों में परम पुनीत कार्तिक व्रतादि यहाँ दिखाते हैं ।

कार्तिक सब मासों में पवित्र है और उसकी नित्य क्रिया क्या है यह कार्तिक कर्म विधि नामक निबंध में लिख चुके हैं । यहाँ वे धर्म लिखे जाते हैं जो नैमित्तिक हैं और जैसे कार्त्तिक-स्नान आश्विन शुद्ध ११ से आरंभ होता है, इससे नैमित्तिक कृत्य भी उसी दिन से लिखते हैं ।

अथ आश्विन शुद्ध, ११ — इसी एकादशी से कार्तिक के सब व्रत आरंभ करना । इस एकादशी का नाम पापांकुशा है । इसमें भगवान की पद्मनाभ नाम से पूजा करै ।

अथ आश्विन शुद्ध १५ — यदि एकादशी से कार्तिक-स्नान न आरंभ किया हो तो इस दिन से करना । इस पूर्णिमा में दो कर्म हैं — प्रथम रासोत्सव, द्वितीय कोजागर व्रत ।

रासोत्सव जिस दिन सायंकाल में पूर्ण चन्द्र हो उस दिन करना क्योंकि, "कलाहीने शशांके तु न कुर्य्याच्छारदोत्सवम् " इस वाक्य में हीन चंद्र का निषेध है और भगवान को श्वेत वस्त्र, श्वेताभरण, श्वेत नैवेद्य समर्पण करना और चाँदनी में शृंगार सहित बैठाकर रासलीला के भजन गाना । इस दिन श्री मद्भागवत की रासपंचाध्यायी का पाठ बहुत पुण्य देने वाला है और किसी ग्रंथकार ने यह भी लिखा है कि रात्रि को चंद्रमा की चाँदनी में सूई में डोरा पिरोना और कुछ अक्षर पढ़ना, इससे नेत्र की जोति बढ़ती है ।

कोजागर व्रत जिस दिन आधीरात को पूर्णिमा हो, उस दिन करना । साँझ से लक्ष्मी और इंद्र का स्थापन करके पूजा करना और नारियल का जल लक्ष्मी को भोग लगाकर पीना । आधीरात के समय लक्ष्मी जी यह कहती हुई निकलती हैं कि जो जागता मिलेगा और जूआ खेलता होगा, मैं उसे धन दूँगी । कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी का ध्यान करना और 'ॐ लक्ष्म्यैनमः' इस मंत्र से सब पूजा करके इस मंत्र से पुष्पांजलि देना ।

नमस्ते सर्व्व देवानां वरदासि हरिप्रिये ।
यागतिस्त्वत्प्रपन्नानां सामेभूयात्त्वदर्च्चनात् ।।

इंद्र को भी चार दाँत के श्वेत हाथी पर बैठे ध्यान करके 'इन्द्रायनमः' इस मंत्र से पूजा करके पुष्पांजलि इस मंत्र से देना ।

विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये ।
पौलोम्यालिंगितांगाय सहस्राक्षायतेनमः ।।

इसी पुनवासी को बड़े पुत्र की आरती और तिलक करना और रात को जागरण करना ।

अथ कार्तिक कृष्णा ४ — इस चतुर्थी को कर्क चतुर्थी का व्रत है । इसी चतुर्थी में रानियों सहित राजा दशरथ की पूजा करना ।

अथ कार्तिक कृष्णा ८ — इस अष्टमी का नाम राधाष्टमी है । यह अष्टमी अरुणोदय-व्यापिनी लेना और अरुणोदय की समय न मिलै तो सूर्योदय-व्यापिनी मानना । इस अष्टमी को श्री राधा कुंड में स्नान करना और श्री राधिका का पूजन करना । इस दिन श्री राधा-सहस्रनाम पाठ का बड़ा पुण्य लिखा है । इस दिन पुत्रवती स्त्री को गो-पूजन का, दाम्पत्य और शिव पूजन का विधान भी कोई ग्रंथकार लिखते हैं ।

अथ कार्तिक कृष्णा ११ — इस एकादशी का नाम रमा है । इसमें व्रत और जागरण और श्री राधादामोदर का पूजन करना और रात्रि को दीपदान करना ।

कार्तिक कृष्णा १२ — इसको वत्स-द्वादशी कहते हैं । यह द्वादशी सायंकाल-व्यापिनी मानना और इसमें नक्त व्रत करना । ब्रहमचर्य से रहना और उड़द का भोजन करना, पृथ्वी पर सोना, साँझ की समय गऊ की पूजा करना । वह गऊ सीधी और दूध देने वाली हो और उसका बच्चा भी उसी रंग का हो । सब पूजा करके तामें के अरघे में इस मंत्र से अघ देना ।

क्षीरोदार्णवसंभूते सुरासुरनमस्कृते ।
सर्वदेवमयेमातर्गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ।।

फिर इस मंत्र से गोग्रास देना ।

सर्व्वदेवमयेदेवि सर्वदेवैरलंकृते ।।
मातर्ममाभिलषितं सफल कुरु नन्दिनि ।

इसी दिन गऊ का घी, दूध, दही और मठा तथा तेल का और कढ़ाई का किया भोजन न करना । इस द्वादशी से पाँच दिन तक साँझ पीछे देवता, ब्राह्मण, गऊ, अपने से बड़े मनुष्य, मातादिक अपने से बड़ी स्त्री, हाथी और घोड़े की आरती करना और साँझ को दीये बालना । उत्तर मुख नव वा विशेष दीए बाल कर शुभाशुभ विचारना । दीया बालने का मंत्र ।

सूर्य्यांशसम्भवादीपा अंधकार विनाशकाः ।
त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तुच शुभाशुभम् ।।

अथ कार्तिक कृष्णा १३ — इस दिन साँझ को यम का दीया द्वार के बाहर देना । मंत्र —

मृत्युनापाशदंडाभ्यां कालेनश्यामयासह ।
त्रयोदश्यांदीपदानात् सूर्यजः प्रीयतां मम ।।

इसी तेरस के दिन गो-व्रत भी होता है ।

अथ कार्तिक कृष्णा १४ — इस चतुर्दशी में जो मंगलवार पड़े तो श्री महादेव जी का व्रत और पूजा करना । यह चतुर्दशी स्नानवाले चंद्रोदय व्यापिनी मानें और सर्वसाधारण इसमें अवश्य स्नान करें, क्योंकि जो इसमें तेल लगाके सिर मल के नहीं नहाते उनको बड़ा दोष होता है । स्नान की समय खेत की हल से निकाली मिट्टी, चिचिडा, भटकटैया और तुम्बी तीन बेर अपने ऊपर से फिरावै और स्नान करके तिलक करके तब नित्य का कार्तिक स्नान करैं । चिचिड़ा घुमाने का मंत्र —

सीतालोष्ट समायुक्त सकंटकदलान्वित ।
हरपापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ।।

नित्य स्नान करके यम तर्पण करे । यह तर्पण जिसका पिता जीता हो वह भी करे । मंत्र —

यमायनमः, धर्मराजायनमः, मृत्यवेनमः, अंतकायनमः, वैवस्वतायनमः, कालायनमः, सर्वभूतक्षयायनमः, औदुम्बरायनमः, दध्नायनमः, नीलायनमः, परमेष्टिनेनमः, वृकोदरायनमः, चित्रायनमः, चित्रगुप्तायनमः, ।

इस मंत्र से तीन तीन अंजली जल तिल समेत दे । इस चतुर्दशी से प्रतिपदा तक महाराज बलि का राज रहता है, इससे इन तीनों दिन घर स्वच्छ रक्खे, दीए बालैं, उज्वल वस्त्र पहिने और गीतादिक से चित्त प्रसन्न रक्खें । रात को चौमुखा दीया, नर्क के नाम का, इस मंत्र से निकाले ।

दत्तो दीपं चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मुदा ।
चतुर्वर्तिसमायुक्त सर्वपापापनुत्तये । ।

पीछे हाथ में जलती लकड़ी व पलीता लेकर पित्रों को मार्ग दिखावे । मंत्र —

अग्निदग्धाश्चयेजीवा येप्यदग्धाः कुले मम ।
उज्वलज्योतिषादग्धास्तेयांतु परमांगतिम् । ।
यमलोकम्परित्यज्य आगता ये महालये ।
उज्वलज्योतिषावर्त्म प्रपश्यन्तु व्रजन्तु ते । ।

इसी रात्रि को कोई काली-पूजन भी करते हैं और हनुमान जी का जन्मोत्सव भी इसी रात्रि को होता है और इसी रात्रि में वीरों का पूजन, कुमारी-पूजन और तंत्रोक्त मंत्रों की सिद्धि भी होती है पर यह अधिकारी-परत्व है । सतोगुनी भक्तों को तो परम भागवत हनुमान जी का ही पूजन ग्राह्य है । हनुमान जी को तुलसी दल पर श्री राम नाम लिखकर चढ़ाना और लड्डू भोग रखकर रामायण का पाठ व और कुछ रामचरित्र सुनना ।

मंत्र — यत्र यत्र रघुनाथकीर्त्तनं तत्र तत्र कृत मस्तकांजलिम् ।
वाष्पवारि परिपूरित लोचनं मारुतिन्नमतराक्षसान्तकम् । ।

इस चतुर्दशी को नक्तव्रत करना वा उड़द के पत्ते के शाक का फल विशेष है । जो इस चतुर्दशी को मंगलवार पड़े तो चित्राव्रत और शिवपूजन करना ।

अथ कार्तिक कृष्णा ३० — यह दीपावली अमावस्या है, इसमें दिन को व्रत करना । साँझ को भगवान के मंदिर में दीपदान करना और दीए के वृक्ष बनाना और अनेक प्रकार के भोग समर्पण करके हटरी में बैठाना । साँझ को अपना घर सब स्वच्छ करके यथाशक्ति उसकी शोभा करना । सड़कों को राजा आज्ञा देकर स्वच्छ करावैं और तोरणादिक सड़क के बाहर लगाना, दूकान पर वस्तु रखना और घर में सब स्थानों पर दीया बाल के लक्ष्मी और बलि का पूजन करना, लक्ष्मी को खोए का लड्डू भोग लगाना और इस मंत्र से दीपदान करना ।

त्वं ज्योतिः श्री रविश्चन्द्रो विद्युत्सौवर्ण तारकाः ।
सर्वेषां ज्योतिषांज्योतिर्दीपज्योतिर्नमोस्तुते । ।

रात को राज मार्ग में, स्मशान में, नदी के वा तड़ाग के तटों पर, मंदिरों में, शिखरों में, गलियों में और दुर्गम स्थानों में राजा दिया बालने की आज्ञा दे । सब लोग शृंगार करके, सुगंध लगा के, पान खाते बाहर निकलें और मित्रों से संबंधियों से मिलें । वारांगना और नटनर्तकादिक नृत्य-गीत करैं । राजा (यदि हिन्दू हो) इस बात की डौंड़ी पिटवा दे कि आज महाराज बलि का राज्य है, कोई दुखी न हो, सब अपना मनमाना करैं । जीवहिंसा, सुरापान, अगम्यागमन, चोरी और विश्वासघात ये पाँच पाप छोड़कर छूई हुई वस्तु का भोजन, वारांगनासेवन, द्यूत और सब जाति के संग बैठना यह सब राजा बलि के राज में पाप नहीं हैं ।

गोप लोग गऊ का शृंगार करैं और सब लोग गऊ को भोजन दें । मल्ल लोग मल्ल युद्ध करें । घोड़े वाले घोड़ा नचावैं । रात को राजा नगर के बाहर निकले और बालकों को एकत्र करके उनका खेल देखें और उनको खिलौना मिठाई दे । सब लोग बाजे बजावैं और आनंद की बातें करैं । रात को स्त्रियों के वा ब्राह्मणों वा स्नेहियों के संग जूआ खेलें । इसमें पूर्व पूर्व मुख्य है । आधी रात को जब पुरुष सोने लगें तब स्त्रियाँ सूप और डौंड़ी पीटती हुई दरिद्रा को घर से बाहर निकालें । इस दिन भी अभ्यंग की विधि है ।

अथ कार्तिक शुक्ला १ — इसमें श्री गोवर्द्धन-पूजन, बलि-पूजा, दीपोत्सव, गोक्रीड़ा, मार्गपालीबंधन, वृष्ठिकाकर्षण, नया वस्त्र पहिरना, उत्सव जूआ खेलना, मंगल मालिका और स्त्रियों की आरती करना ये मुख्य कर्म हैं । उसमें प्रथम श्री गोवर्धन-पूजन है । यह उत्सव अवश्व माननीय है क्योंकि इसके हेतु श्री मुख वाक्य है ।

एतन्ममतन्तात क्रियतां यदि रोचते ।
अयं गोब्राह्मणादीनाम्महयञ्च दयितोमखः । ।

इसमें प्रेम-मार्ग में वा और अन्य मार्ग में जैसी जिसकी रीति हो वह पूजन करे । अब साधारण लोगों के हेतु यह रीति लिखी जाती है । जहाँ साक्षात श्री गोवर्द्धन पर्वत है वहाँ तो उन्हीं की और जहाँ गोवर्द्धन नहीं है वहाँ गऊ के गोबर का पर्वत बनाना, उत्तर मुख रखना और एक कंदरा बनाना । वहाँ भगवान की मूर्ति रखकर षोड़शोपचार पूजन करना और अन्नकूट भोग लगाना । जहाँ गिरिराज की शिला हो वहाँ तो गिरिराज की शिला कंदरा में रखकर पूजन करना । जहाँ शिला न हो वहाँ शालिग्राम व छोटे श्री ठाकुर जी की मूरत रखकर पूजा करनी और गऊ गोप की भी पूजा करनी । पहिले भगवान की पूजा करनी, उसके मंत्र —

वलिराज्ञो द्वारपाल भवानद्यभवप्रभो ।
निज वाक्यर्थनार्थाय सगोवर्द्धन गोपते । ।
गोपालमूर्त्ते विश्वेश शक्रोत्सव विभेदक ।
गोवर्द्धनकृतच्छत्र पूजांमे हरगोपते ।
देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वर्षाश्मपर्षानिलैः ।
सीदत्पालपशुस्त्रियात्मशरणं दृष्टानुकम्प्युत्स्मयन् ।
उत्पाट्यैक करेणशैकमवलो लीलोच्छिलंघ्रं यथा ।
विभ्रद्गोष्टमपान्महेन्द्रमदभित् प्रोयान्नइन्द्रोगवां ।।

इति भगवत्-प्रार्थना मंत्र ।

गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ।
विष्णुबाहुकृतच्छाय गवांकोटि प्रदोभव । ।
एषो ऽव जानतेमर्त्यान् कामरूपी बनौकसः ।
हंतह्यस्मै नमस्यामः शर्म्मणे आत्मनोगवाम् । ।
हंतायमद्रिरबला हरिदासवर्य्यो ।
यद्रामकृष्णचरणस्पर्श प्रमोदः । ।
मानंतनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् । ।
पानीयसूयवसुकन्दरकन्द मूलैः । ।

इति गिरिराज-प्रार्थना मंत्रः ।

या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ।
घृतं वहतियज्ञार्थे ममपापंव्यपोहतु । ।
अग्रतस्सन्तुमेगावो गावोमेसन्तु दृष्टतः ।
गावोमेहृदयेसन्तु गवाम्मध्येवसाम्यहम् । ।

इति गो प्रार्थना मंत्रौ ।

अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोप ब्रजौकसाम् ।
यन्मित्रम्परमानन्दं पूर्णब्रह्मसनातनं । ।
आसामहोचरणरेणुजुषामहंस्यां
वृन्दावनेकिमपि गुल्मलतौषधीनां ।
यादुस्त्यजंस्वजन आर्य्यपथंविहाय
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्यां । ।
यावैश्रियार्चितमजादिभिरासकामैः
योगेश्वरैरपियदात्म निरासगोष्ठयां ।
कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दे
न्यस्तं स्तनेषुविजहुः परिरभ्यतापं । ।
वन्दे नन्द व्रजस्त्रीणंपादरेणूमभीक्षणशः ।

यासांहरिकथोद्‌गीतं पुनातिभुवनत्रयम् ।।

इति गोप-गोपी-प्रार्थना मंत्राः

धन्येयमद्यधारणी तृणवीरुधस्त्वत्
पादास्पृशो द्रुमलता करजाभिमृष्टाः ।
नद्योद्रयः खगमृगास्मदयावलोकैः
गांप्योंतरेण भुजयोरपियत्स्पृहाश्रीः ।।

इति व्रजप्रार्थना मंत्रः

इन मंत्रों से गोवर्द्धन-पूजन करके अन्नकूट भोग भगवान को समर्पण करके नमस्कार करना । इति ।

इस प्रकार गोवर्द्धन-पूजा करके महाराज बलि की पूजा करे । घर के एक कोने में महाराज बलि की और रानी विंध्यावलि की मूर्ति पाँच रंग से लिखे । जीभ, ओठ, हथेली, तलवा, और आँख के कोने लाल रंग से, बाल काले रंग से और सब अंग पीले रंग से, कपड़े श्वेत रंग से और आयुधादिक नीले रंग से लिखे । दो भुजा बनावे और राजाओं के सब चिन्ह बनाकर अक्षत और षोड़शोपचार से पूजा करे । मंत्र —

बलिराजनमस्तुभ्यं विरोचनसुतप्रभो ।
भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृहयतां ।।

बलि राजा की पूजा करके कुबेर और लक्ष्मी की पूजा करनी । पूजा के पीछे स्त्रियाँ आरती करें ।

तीसरे पहर कास और कुस की मार्ग-पाली बनाकर नगर के बाहर वृक्ष में बाँधना और नीचे लिखे हुए मंत्र से उसको नमस्कार करके सब लोग वाहनादि समेत उसके नीचे से निकलें । इससे वर्ष भर कुशल होती है । मंत्र —

मार्गपालिनमस्तेस्तु सर्व लोक सुखप्रदे ।
विधेयैःपुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ।।

साँझ को कुश काश की मोटी रस्सी बनाना और उसको एक ओर से राजपुत्रादिक एक ओर से नीचे लोग खींचे । जो नीचे लोग खींच ले जायँ तो जानना कि राजा की जय होगी ।

रात को जूआ खेलना । यद्यपि जूआ खेलने का विधान तीनों दिन है परंतु इस दिन मुख्य है । रात को जूआ स्त्रियों से खेलना और दीपदान करना, ब्राह्मणों को और मित्रों को वस्त्र और पान देना । इति ।

अथ कार्तिक शुक्ल २ — इसका नाम यम द्वितीया है । इसमें प्रातः काल श्री यमुना स्नान । जहाँ श्री यमुना जी न हों वहाँ श्री यमुना जलपान वा मार्जन करना । काशी वासियों को यम तीर्थ स्नान और यमेश्वर का दर्शन करना । इस दिन अपने घर नहीं खाना, मुख्य करके छोटी बहिन के घर भोजन करना । छोटी बहिन न हो तो बड़ी के घर भोजन करना । वह भी न हो तो बूआ के घर वा नाते की बहिन के घर खाना । जो नाते की भी कोई बहिन न हो तो मानी हुई बहिन वा मित्र की बहिन के घर खाना और बहन की पूजा करना । अपने घर कभी नहीं खाना । बहिन खिलाती समय इस मंत्र से भाई की प्रार्थना करे ।

भ्रातस्तवानुजाताहं भुंक्षभक्तमिदंशुभं ।
प्रीतयेयमराजस्य यमुनाया विशेषतः ।।

इस दिन श्री यमुना जी ने यमराज को भोजन कराया है, इससे यमराज ने बरदान दिया है कि आज के दिन जो यमुना-स्नान करेगा और बहिन का आदर करके बहिन के घर खायगा, उसको यम दंड न होगा । तीसरे पहर यमराज, यमी, यमुना, चित्रगुप्त और यमदूतों का पूजन करना । 'यमायनमः' इस मंत्र से षोड़शोपचार पूजन करके इन मंत्रों से पुष्पांजलि देना ।

यमायनमः, निहंत्रेनमः, पितृराजायनमः, धर्मराजायनमः, वैवस्वतायनमः, दंडधरायनमः, कालायनमः, भूताधिपायनमः, दत्तानुसारिणेनमः, कृतानुसारिणेनमः ।

इन नाम मंत्रों से पूजा करके अर्घ देना, उसका मंत्र —

एह्येहिमार्तंडजपाशहस्त यमांतकालीकधरांमरेश ।
भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजांग्रहाणचार्घ्यंभगवन्नमस्ते ।।

अथ कार्तिक शुद्ध ४ — इस दिन शेषादिक महानागों की पूजा करना।

अथ कार्तिक शुद्ध ५ — इस दिन जया व्रत करना, विष्णु की जया सहित पूजा करना, श्वेत वर्ण द्विभुज जया का ध्यान करके विष्णु और जया की प्रत्यंग-पूजा करके बाँस के पात्र में सप्तधान दान करना और "येन बद्धो बली राजा" इस मंत्र से रक्षाबंधन करना।

अथ कार्तिक शुद्ध ६ — जो मंगलवार हो तो अग्नि का पूजन करके ब्राह्मण भोजन कराना।

अथ कार्तिक शुद्ध ७ — इस दिन कार्त्तवीर्य्य की पूजा करके उनका दीप-दान करना।

अथ कार्तिक शुद्ध ८ — इस दिन गऊ का पूजन, गोग्रास दान करना और इसी में शाक व्रत है। नक्तव्रत करना, शाक खाना और शाक ही ब्राह्मण को देना।

अथ कार्तिक शुद्ध ९ — इस दिन श्री वृंदावन की परिक्रमा करना। यह नवमी द्वापर की युगादि भी है। इसमें कुष्मांड दान करना और जगद्धात्री का पूजन करना। तुलसी के विवाह का उत्सव इसी दिन से आरंभ होता है। जो तुलसी विवाह करे वह तीन दिन का व्रत करे। यद्यपि धात्री-पूजन कार्तिक में नित्य ही है तथापि जो और दिन न किया हो तो इस दिन करे। 'ॐ धात्र्यैनमः' इस मंत्र से षोड़शोपचार पूजा करे और आठ दीए आठ ओर बाल कर यह मंत्र पढ़े —

इमेदीपा मयादत्ता प्रदीप्ताघृतपूरिता।
धात्रिदेवि नमस्तुभ्यमतश्शान्तिम्प्रयच्छमे।।

फिर भोगादिक समर्पण करके इन मंत्रों से पुष्पांजलि चढ़ावैं —

धात्रिदेवि नमस्तुभ्यं सर्व्वपापक्षयंकरि।
पुत्रान्देहि महाप्राज्ञे यशोदेहिबलञ्चमे।।
प्रज्ञामेधाञ्चसौभाग्यं विष्णु भक्तिञ्च शाश्वतीम्।
निरोगंकुरुमांनित्यं निष्पापंकुरु सर्वदा।
सर्वज्ञंकुरुमांदेवि धनवंतन्तथा कुरु।
सम्वत्सरकृतं पापं दूरी कुरुममाक्षये।।

फिर इस मंत्र से सूत्र लपेटकर फेरी करे।

दामोदरनिवासायै धात्रैदेव्यैनमोनमः।
सूत्रेणानेनबध्नामि सर्वदेवनिवासिनीम्।।

फिर इन मंत्र से फूल चढ़ावे। धात्र्यैनमः, शान्त्यैनमः, कान्त्यै., मेधायै., प्रकृत्यै., विष्णुपत्न्यै., महालक्ष्म्यै., रमायै., कमलायै., इन्दिरायै, लोकमात्रे., कल्याण्यै., कमनीयायै., सावित्र्यै., जगद्धात्र्यै., गायत्र्यै., सुधृत्यै., अव्यक्तायै., विश्वरूपायै., सुरूपायै., अब्धिभवायैनमः इन मंत्रों से फूल चढ़ाना, धात्री के मूल में तर्पण करना।

पितापितामहाश्चान्ये येऽपुत्रायेप्य गोत्रिणः।
तेपिवन्तु मयादत्तं धात्रीमूलेऽक्षयम्पयः।।

आब्रह्मस्तम्ब पर्य्यन्तमित्यादि से फिर तर्पण करे। यह तर्पण सव्य ही से करे।

धात्री के नीचे दामोदर भगवान की पूजा करे, चित्रान्न, चित्रवस्त्र समर्पे, ब्राह्मणों का जोड़ा खिलावे, भगवान की षोडशोपचार पूजा करके इस मंत्र से अर्घ दे।

अर्घ्यं गृहाण भगवन् सर्वकामप्रदोभव।
अक्षय्यासंततिर्मेस्तु दामोदर नमोस्तुते।। इत्यादि

अथ कार्तिक शुद्ध १० — इस दसमी को सार्वभौम व्रत होता है।

अथ कार्तिक शुद्ध ११ — इस एकादशी का नाम प्रबोधिनी है। इस दिन भगवान सो कर उठते हैं, इससे यह परम मंगल दिन है। इस दिन जिस समय मुहूर्त अच्छा हो उस समय भगवान को जगाना। पहिले नीचे पृथ्वी में अनेक रंगों से मंगल-मंडप, सथिया, चक्र इत्यादिक बना कर उस पर चौसठ ऊख का चार खंभा बनाकर खड़ा करना, उसके नीचे भगवान को बिठाना और फिर घंटा शंख बजाते हुए इन मंत्रों से जगाना।

ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्नि कुवेरसूर्य सोमादिभिर्वन्दित वन्दनीय।

बुद्धस्वदेवेश जगन्निवास मंत्रप्रसादेनसुखेनदेव ।।
इयं च द्वादशी देव प्रबोधार्थंतुनिर्मिता ।
त्वयैवसर्वलोकानां हितार्थं शेषाशायिना ।।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठगोविन्दत्यजनिद्राम्जगत्पते ।
त्वयिसुप्तेजगत्सुप्तमुत्थितेउत्थितं जगत् ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठगरुड़ध्वज ।
उत्तिष्ठपुण्डरीकाक्ष त्रैलोक्ये मंगलकुरु ।।

तथाच जो निकुंज के परम रस के अधिकारी हों वह इस मंत्र से जगावें ।

विगता रजनी नाथ प्रमदानां सुखप्रदा ।
उदेत्ययंदिनमणिर्वियोगी जनवंचकः ।।
प्राणनाथ जगन्नाथ गोपीनाथ कृपानिधे ।
चिरसुप्तोसिजागृष्व सुरतश्रम कर्षितः ।।
ललितावाद्यतेवीणां विशाषा नृत्यतेंगणे ।
गायन्ति गोपिकास्सर्वास्तावकंनिर्म्मलंयशः ।।
वयस्या द्वारि सम्प्राप्ताः क्रीड़ार्थंतवमानद ।।
हय्यंगवीनहस्ता सा त्वां यशोदा भि वांछति ।
वियुक्ताश्चक्रवाकिन्यः पक्षिणो कुर्व्वते रवम् ।
वाति वायुस्सुखस्पर्शो दीपोयं मन्दतांगतः ।।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ प्राणेश उत्तिष्ठोतिष्ठ वल्लभ ।
मुखन्दर्शय मे नाथ वियोगं शमयप्रिय ।
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तम्भवेदिदम ।
उत्थिते चेष्टते सर्व्वमुत्तिष्ठोतिष्ठ माधव ।।

इन मंत्रों से जगा के पंचामृत स्नान कराना और चंदनादिक से उद्वर्त्तन करके शीत के नए वस्त्र समर्पण करके पुष्पादिकों से पूजन करना । मंत्र —

गतामेवा वियच्चैव निर्म्मलं निर्म्मलादिशः ।
शारदानिच पुष्पाणि गृहाण मम केशव ।।

इस भाँति पुष्प, गंध, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, फलादिक अर्पण करके आरती करके इन मंत्रों से स्तुति करना ।

यो ऽविषया !नुपहतोपिदशार्द्धवृत्या
निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।
अन्तर्जलेहि कशिपुस्पर्शानुकूलाम्
भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ।।
सोसांवदभ्र करुणो भगवान् विवृद्ध
प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ।
उत्थाय विश्वविजयायचनोविषादम्
माध्व्यागिरा ऽपनयतात्पुरुषः पुराणम् ।।
यन्नाभिपद्मभवनादज आविरासीत्
लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्त उदरस्थ भवाय योग
निद्राऽवसान विकसन्नलिनेक्षणाय ।।

प्रार्थना करके दंडवत प्रदक्षिणा करके कार्तिक के सब व्रत भगवान के सामने समाप्त करे । इस दिन श्री ठाकुर जी को रथ पर बिठा कर नगर में घुमाने का महापुण्य है । भगवान को रथ पर बैठा कर मंगलपाठ

वेदपाठ बाजा, शंख, घंटा बजाते हुए नगर में घुमावे और जहाँ जहाँ रथ जाय वहाँ वहाँ लोग पूजा करें । मंत्र –

यद्रोषविभ्रम विवृत्तकटाक्षपात
संभ्रान्त नक्र मकरो भयगीर्ण घोषः ।
सिन्धुशिशरस्यर्हण (परि) गृहय रूपी
पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ।
नत्वावयं जड़धियोरुवि दाम एतत् । ।
कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशं ।
यत्सत्वतस्सुरगणा रजसः प्रजेशा
अन्येय भूतपतय स्सभवात् गुणेशः । ।
कामम्प्रयाहि जहि विश्रवसोवमेह
त्रैलोक्य रावणमवाप्नु हि वीर पत्नीम् ।
वध्नीहि सेतुमिहिते यशसो वितत्यै
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः । ।
स्वस्त्यतु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवम्मिथोपिवा ।
मनश्चभद्रम्भजता दधोक्षजे
आवेश्य तान्नो मतिरप्य हैतुकी । ।
पुक्तंश्शैव्यादिवाहैर्मरकतसुरणत्किंकिणीजालमाला
रत्नोघैर्मोप्रेक्षणेनामृतौघम्क्तिकानामविरलमणिभिस्मम्भृतैश्चैवहारैः ।।
हेमैः कुम्भैः पताका शिवतर रुचिभिर्भूषितः केतु मुख्यैः ।
छत्रैर्व्रहमेशवन्धो दुरित हरहरेः पातु जैत्रो रथोव । ।
वक्त्रं नीलोत्पलरुचि लसत् कुण्डलाभ्यां सुमृष्टम् ।
चन्द्राकारं रचित तिलकं चन्दने नाक्षतैश्च । ।
गत्यां लीला जनसुखकारीं प्रेक्षणेनामृतौघम्
पद्मवासं सृततमुरसा धारयन् पातु विष्णुः । ।
मोदन्तां सुजनास्त्वनिन्दितधियस्त्यक्ताखिलोपद्रवाः ।
स्वस्थास्सुस्थिरबुद्धयः प्रतिहता मित्रारमन्तां सुखम् । ।
रे दैत्यागिरिगह्वराणि गहनान्याशु व्रजध्वं भयात् ।
दैत्यारिर्भगवान यन्नरहरि यानं समारोहति । ।
पलायध्वम्पलायध्वं रे रे दनुज दानवाः ।
संरक्षणाय लोकानां रथारूढो नृकेशरी । ।

इन मंत्रों को पढ़ते और भगवान का चरित्र गाते हुए रथ को घुमावे । रथ के खींचने का, रथ के संग चलने का, रथ पर बैठे भगवान के दर्शन करने का, तथाच पूजा करने का अनन्त माहात्म्य है । विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा । इसी दिन तुलसी जी का विवाह भी है । तुलसी-विवाह की विधि विशेष और ग्रंथों में लिखी है, देख लो । संक्षेप से यहाँ लिखते हैं । तुलसी अपने हाथ से घर वा बगीचे में लगाना, जब तीन महीने का वृक्ष हो तब उसका पूजन आरंभ करना और फिर शुभ मुहूर्त्त देखकर विवाह करना । मंडप, कलश-स्थापन, वेदी इत्यादि सब विवाह की भाँति बनाकर नवग्रह, मख, मातृका-पूजन नांदी श्राद्ध करके दान करना । जो लग्न कोई अच्छी मिले तो उस लग्न में, नहीं तो गोधूली में विवाह करना । अंतरपट करके "वासश्रुत:" इस मंत्र से वस्त्र पहिराना । "यदावध्ने" इस मंत्र से कंकण बाँधना और मंगलाष्टक पाठ करके अंतरपट हटाकर "मयासम्वर्द्धिता यथाशक्त्यलंकृतामिमांतुलसीं देवीं दामोदराय वराय तुभ्यमहं सम्प्रददे" यह संकल्प करके जल भगवान के सामने छोड़ना और तुलसी को भगवान से छूला देना । उस समय यह मंत्र पढ़वाना "कोदात्कस्माअदात" इत्यादि । फिर होम करना "पंचत्वनो अग्ने इत्यादि" मंत्र से नव आहुति देकर फिर होम

इन मंत्रों से करना । पहिले द्वादशाक्षर से फिर वासुदेवायनमः स्वाहा, नारायणाय.. माधवाय.. गोविन्दाय. विष्णवे.. मधुसूदनाय.. त्रिविक्रमाय.. वामनाय.. श्रीधराय.. ऋषीकेशाय.. पद्मनाभाय.. दामोदराय.. उपेन्द्राय. वासुदेवाय.. अग्निरुद्धाय.. अच्युताय. अनन्ताय.. गदिने.. चक्रिणे.. विष्वक्सेनाय.. वैकुंठाय. जनार्दनाय. मुकुन्दाय.. अधोक्षजायनमः स्वाहा इन मंत्रों से होम करके दक्षिणा, भूयसी-दक्षिणा, आचार्य-दक्षिणा शय्यादानादिक करके इस मंत्र से प्रार्थना करना ।

त्वन्देवि मेग्रतो भूया तुलसी देवि पार्श्वतः ।
देवित्वं पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानात् मोक्षमाप्नुयाम् ।।

विवाह के समय स्त्रियाँ गीत गावें ।

इति तुलसी विवाह ।

इस एकादशी को व्रत करके रात को जागरण करना । इस रात का जागरण का, दीपदान का बड़ा पुण्य है । जो इस एकादशी को सोमवार और उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र हो तो बड़ी फलदात्री हो । इसी दिन से भीष्म पंचक का व्रत करना । १०८ द्वादशाक्षर मंत्र जप करके भगवान को पंचामृत स्नान कराके 'ॐ विष्णवेनमः' इस मंत्र से १०८ आहुति देकर व्रत करना, पृथ्वी पर सोना, भीष्म तर्पण करना । पहिले दिन तुलसी से चरण पूजन करके गोबर प्राशन करना, दूसरे दिन बिल्वपत्र से जाँघ की पूजा करके गोमूत्र प्राशन करना, तीसरे दिन भंगरैया से नाभि-पूजन करके दूध प्राशन करना, चौथे दिन कनैल से कंधा पूजन करके दही प्राशन करना, पाँचए दिन विधि पूर्णमासी की विधि में देखो । इसी दिन मत्स्य भगवान् को घड़े पर रख के स्वर्ण की मूर्ति बनाकर पूजा करना भी किसी का मत है । पूजा करके इस मंत्र से घड़ा दान कर देना ।

जगद्योनिर्जगद्रूपो जगदादिरनादिमान् ।
जगदाद्यो जगद्धीत्रो प्रीयतां मे जनार्दन ।।

अथ कार्तिक शुद्धा १२ — यह मन्वंतरादि है । इसमें दीपदान, प्रातः समय नीराजनादिक करना ।

अथ कार्तिक शुद्धा १४ — इसका नाम चतुर्दशी है । यह परम पुण्य दिन है । इसमें स्नान-दानादिक करना । इसी चतुर्दशी में ब्रहमकूर्चक व्रत और पाषाण होते हैं । इसमें विश्वेश्वर का दर्शन और पूजन होना है । इसमें रात को जागरण करना और कार्तिक का उद्यापन करना ।

अथ कार्तिक शुद्धा १५ — यह बड़ी पवित्र तिथि है । इसमें जो विशाखा के सूर्य्य और कृत्तिका के चन्द्रमा हों तो पद्मक, नामक बड़ा पवित्र योग हो । इसमें पुष्कर-स्नान वा श्री यमुना स्नान वा श्रीगंगा-स्नान करके गोदान करना । इसमें जो भरणी, कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र हों तो बड़ा फल है । इसी पूर्णिमा में मत्स्य जयन्ती मत्स्य भगवान का पूजन करके दानादिक करना । इसी में साँझ को त्रिपुरोत्सव करना । साँझ को इस मंत्र से दीपदान करना — कीटाः पंतगाः मशकाश्च वृक्षाः जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः । दृष्ट्वा प्रदीपं नव जन्म भागिनो भवन्तु नित्यं श्वपचाश्च विप्रा ।।

इस पूर्णिमा को कार्त्तिकेय का दर्शन करना । यह मन्वादि भी है । इसमें नक्तव्रत वा उपवास करना । साँझ को कृत्तिका का पूजन करना । मंत्र — शिवायैनमः, सम्भूत्यैनमः, प्रीत्यैनमः, संतत्यैनमः अनुसूयायैनमः, क्षमायैनमः, कार्तिकेयायनमः, खंगिनेनमः, वरुणायनमः, हुताशनायनमः । इन मंत्रा से कृत्तिका और कार्तिकेय का पूजन करना । पूजा करके क्षीरसागर दान करना । चौबीस अंगुल का क्षीरसमुद्र बना कर गऊ का दूध भर कर सोने की मछली और मोती का आँख बनाकर दान करना । जो एकादशी को व्रत न समाप्त किया हो तो कार्तिक व्रत इस मंत्र से समाप्त करना ।

इदं व्रतं मयादेव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत् प्रसादाज्जनार्दन ।।

इसी पूर्णिमा में नील वृषभ दान करना और इसी में संतान व्रत, राशि व्रत और मनोर्थ पूर्णिमा व्रत होना है । इसी पूर्णिमा में चातुर्मास के व्रत समाप्त करना । उस व्रत के दान लिखते हैं । नक्त व्रत में दो वस्त्र दान करना । एकान्तर उपवास में गऊ । भू-शयन में शय्या । एक बेर खाने से गऊ देना । जो अन्न छोड़ा हो तो वह सोने का बनाकर देना । कृच्छ किया हो तो दो गऊ देना । शाकाहार किया हो वा दूध छोड़ा हो वा दूध पीना हो वा और कोई गोरस छोड़ा हो तो गऊ देना । ब्रहमचर्य लिया हो तो सोना देना । पान छोड़ा हो तो दो वस्त्र

देना । मौन लिया हो तो घी का घड़ा, दो वस्त्र और घंटा देना । जो नित्य रंग से मंदिर में स्वस्तिकादिक बनाते हो तो गऊ और सोने का कमल देना । दीपदान में दीए और दो वस्त्र देना । गऊग्रास देते हों तो गऊ और बैल देना । पृथ्वी पर भोजन करता हो तो काँसे की थाली और गऊ देना । सौ फेरी देते हों तो वस्त्र । अभ्यंग छोड़ा हो तो तेल का घड़ा । केश न बनवाया हो तो मधु, चीनी, सोना । गुड़ छोड़ा हो तो ताम्र का पात्र और गुड़ और सोना देना । ऐसे ही जिस वस्तु को छोड़ा हो वह स्वर्ण समेत देना । जो लाख तुलसी चढ़ाया हो तो उद्यापन करना । साँझ को इस मंत्र से दीपदान करना ।

नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे ।
नमो याम्याय रुद्राय कान्ताय पतयेनमः । ।

इस मंत्र से दीपदान करना । यह पूर्णिमा परम फलदात्री है । इसमें कुछ सुकृत हो सो करना । भीष्म पंचक का व्रत इसी दिन समाप्त करके कालपुरुष का दान करना, होम करना । यह तिथि श्री राधिकाजी को बहुत प्यारी है, इससे वैष्णवों को इस तिथि में श्री राधासहस्रनामपाठ,, श्री राधिका-मंत्रजप और श्री राधिका-पूजन करना । इसी पूर्णिमा को गोलोक में श्री ठाकुर जी ने श्री राधिकाजी का पूजन किया था और उस समय श्री महादेव जी ने ऐसा गान किया कि श्रीराधिकाजी सहित भगवान द्रव हो गए । इससे इसी पौर्णमासी को गंगाजी का जन्म है, अतएव इस दिन गंगा स्नान का बड़ा फल है और तुलसी का भी जन्म दिन यही है, यह देवी पुराण में लिखा है, इससे इस तिथि में तुलसी पूजन और भगवान को तुलसी समर्पण की मुख्यता है । विशेष कहाँ तक कहें, यह कार्तिक ऐसा पवित्र महीना है, इसमें स्नान, दान, जप, तप व्रत, जागरण, दीपदान इत्यादि सब कर्म अक्षय होते हैं ।

दोहा

प्राणनाथ-पद-रज सुमिरि धारि हृदय आनन्द ।
परम प्रेमनिधि रसिक बर बिरची श्री हरिचन्द ।
प्राणपियारे प्रेमनिधि प्रेमिन-जीवन-प्राण ।
तिनके पद अरपन कियो यह कारतीक विधान । ।

इति श्री

कार्तिक - कर्म - विधि

बाबू शिवनन्दन सहाय इसका रचना काल सन् १८६८ मानते है। सन् १८७२ में छपी कार्तिक नैमित्तिक कृत्य के पहले पृष्ठ पर इसका उल्लेख है। निश्चय ही यह इसके पहले की रचना होगी।— सं.

श्री राधाकृष्णाय नमः

श्री राधादामोदराय नमः

कार्तिक - कर्म - विधि

जै जै श्री नँदनंद श्रीराधारसबस रसिक।
दामोदर व्रजचंद गोपीनाथ अनाथगति।। १ ।।
रासरसिक राधारमण मनमोहन घनश्याम।
कोटि कोटि मनमथ मथन सुंदर सब सुखधाम।।२।।
बदौं कार्तिक मास दामोदर प्रिय पुण्यप्रद।
नासत यम की त्रास हिय हुलास कर अतिसुखद।। ३ ।।

श्लोकः

श्री कृष्णं करुणाकरं कविवरं कान्तापतिं कामदं
गपीनां नयनोत्सवं गुणनिधिं गो-गोपवृन्दप्रियं।
राधाराधितविग्रहं रतिरतं रामानुजं रासगं
मानाथं मथुराधिपं मनहरं मान्यं मनोज्ञं भजे।। १ ।।

इस संसार में जन्म लेके मनुष्यों को भगवत्स्मरण और स्नान-दानादिक करना यही मुख्य धर्म है, क्योंकि बड़े बड़े पर्वों में स्नान-पूजा-व्रत-दानादिक करने से पाप नाश होते हैं और मुक्ति मिलती है और पर्व और व्रत इत्यादि तो अनेक हैं और नित्य ही स्नानादिक का बड़ा फल है परंतु मार्गशीर्ष, कार्तिक, माघ, वैशाख सब महीनों में उत्तम गिने जाते हैं तिसमें भी कार्तिक-स्नान का फल विशेष है। यह बात सब शास्त्र में प्रसिद्ध है कि कार्तिक के महीने में काशी में पंचगंगा-स्नान का बड़ा पुण्य है।

यथा काशीखंडे

कार्त्तिकेमासि मे यात्रा यैः कृता भक्तितत्परैः।
विंदुतीर्थे कृतं स्नानं तेषाम्मुक्तिर्न दूरतः।। १ ।।
शतं समास्तपस्तप्तवा कृते यत्प्राप्यते फलं।
तत्कार्त्तिके. पंचनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते।। २ ।।
कार्त्तिके विंदुतीर्थे यो ब्रह्मचर्य्यपरायणः।
स्नानमर्घोदिते भानौ भानुजात्तस्य भी कुतः।। ३ ।।

यथा पाद्मे, भार्गवार्चनचन्द्रिकायां च

आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् ।
कार्त्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेत्सुधीः ।। ४ ।।

यथा विष्णुरहस्ये

प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः ।
प्रातः स्नानम्प्रकुर्वीत यावत् कार्त्तिकभास्करः ।। ५ ।।
यथा मदनपारिजाते विष्णुः, तथा नारदीये च
कार्त्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ६ ।।

इन वाक्यों का सारांश अर्थ यह है कि आश्विन शुक्ल एकादशी से आरंभ करके जो कार्त्तिक में जितेंद्रिय होकर और व्रतादिक कर पंचगंगा में प्रातः स्नान करता है वह मुक्तिभागी होता है और उसको यमराज का भय नहीं रहता और भी इसका महाफल लिखते हैं ।

तथा पुराणसारोद्धारे, नारदीये च

प्रयागे माघमासे तु सम्यक् स्नानस्य यत्फलं ।
तत्फलं कार्त्तिके काश्यां पंचनद्यां दिनेदिने ।। ७ ।।
कृते धर्म्मनदं नाम त्रेतायां धूतपापकं ।
द्वापरे बिन्दुतीर्थं च कलौ पंचनदं स्मृतम् ।। ८ ।।
अव्रतः कार्त्तिको येषां गतो मूढधियामिह ।
न तेषाम्पुण्यलेशोपि दुष्टानां शूकरात्मनां ।। ९ ।।

माघमहीने में प्रयाग नहाने का जो फल है वह कार्त्तिक में पंचगंगा में एक दिन स्नान से मिलता है । सत्ययुग में धर्मनद, त्रेता में धूतपापा, द्वापर में बिंदुसर, कलियुग में पंचगंगातीर्थ ही मुख्य है । जो लोग कार्त्तिक में स्नान-व्रतादिक नहीं करते वे मूढ़बुद्धि हैं, उन्हें किसी पुण्य का फल नहीं होता ।

यथा पद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्ये सत्यभामां प्रति श्री कृष्ण वाक्यम्

कार्त्तिके मासि ये नित्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ।
प्रातः स्नास्यन्ति ते मुक्ताः महापातकिनोपि वा ।। १० ।।
स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनं ।
कार्त्तिके ये प्रकुर्वन्ति ते नरा विष्णुमूर्त्तयः ।। ११ ।।
कार्त्तिकव्रतिनां पुंसां विष्णुवाक्यप्रणोदिताः ।
रक्षां कुर्वन्ति शक्राद्याः राजानं किंकरा यथा ।। १२ ।।
विष्णुप्रियं सकलकल्मषनाशनं यत्
सर्वत्र धर्म्मधनधान्यविवृद्धिकारि ।
ऊर्जव्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः
किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवया च ।। १३ ।।
ते धन्यास्ते सदापूज्यास्तेषां च कुलमेव च ।
विष्णुभक्तिपरा ये स्युः कार्त्तिकव्रतकादिभिः ।। १४ ।।

तुला के सूर्य्य में कार्त्तिक में जो लोग प्रातः स्नान करते हैं वे महापातकी हों तो भी मुक्त होते हैं । स्नान, जागरण, दीपदान, तुलसीपूजन इत्यादिक जो लोग करते हैं वे सब विष्णु के स्वरूप हैं । कार्त्तिक के व्रती लोगों की इंद्रादिक देवता ऐसी रक्षा करते हैं जैसे राजा की सेवक रक्षा करे क्योंकि उनको श्री विष्णुभगवान की यही आज्ञा है । विष्णु का प्यारा, कल्मश नाश करने वाला, और सब धर्म धान्य धन का बढ़ाने वाला कार्त्तिक व्रत जो लोग करते हैं उनको तीर्थों में घूमने से और उसकी सेवा से क्या है अर्थात् वह सब कुछ कर चुके । वह और उनके कुल धन्य हैं और पूज्य हैं जो कार्त्तिक में व्रतादिक से विष्णु की भक्ति करते हैं ।

तथा सनत्कुमारसंहितायां कार्त्तिकमाहात्म्ये

न कार्त्तिकसमं धर्म्यमर्थ्यं नो कार्त्तिकात्परं ।
न कार्त्तिकसमं काम्यं मोक्षदानं च कार्त्तिकात् ।। १५ ।।
तस्मात्सौरैश्च गाणेशैः शाक्तैः शैवैश्च वैष्णवैः ।
कर्त्तव्यं कार्त्तिकस्नानं सर्व्वपापापनुत्तये ।। १६ ।।
न कार्त्तिकसमो मासो न काशीसदृशी पुरी ।
न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात् पुरः ।। १७ ।।
प्रसंगाद्वा बलाद्वापि ज्ञात्वाऽज्ञात्त्वा कृतंतु यत् ।
स्नानं कार्त्तिकमासस्य न पश्येद्यमयातनां ।। १८ ।।
तावद्गर्ज्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
न कृतं कार्त्तिके स्नानं यावज्जन्तुभिरादरात् ।। १९ ।।
तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्त्तिकमासके ।
स्नानार्थं पंचगंगांतु समयांति न संशयः ।। २० ।।
दुर्लभो मानुषो देहो दुर्लभा काशिका पुरी ।
तत्रापि कार्तिके मासि पंचगंगं सुदुर्लभम् ।। २१ ।।

कार्त्तिक के समान न कोई धर्म है, न अर्थ है, न काम है, न मोक्ष है न दान है । सब एक ही हैं इससे शैव, वैष्णव, शाक्त और गाणपत्य सब को कार्त्तिक स्नान करना चाहिए । काशी के समान कोई पुरी नहीं, प्रयाग के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव के समान कोई देवता नहीं और कार्त्तिक के समान कोई महीना नहीं है । संग साथ से वा बल से, जाने वा बिना जाने भी जिसने कार्त्तिकस्नान किया है उसको यम का भय नहीं है । ब्रह्महत्यादिक पाप तभी तक गर्ज्जना करते हैं जब तक जीव ने कार्त्तिकस्नान नहीं किया । प्रयागादिक सब तीर्थ कार्त्तिक में पंचगंगा स्नान को आते हैं । एक तो मनुष्य का देह दुर्लभ है दूसरे काशी पुरी दुर्लभ है तिसमें भी कार्त्तिक महीने में पंचगंगा तीर्थ अति दुर्लभ है ।

और भी इसकी महिमा बहुत लिखा है ।

यथा पद्मपुराणे स्वर्गखंडे तृतीयाध्याये
तथा नारदीये रुक्मांगदोपाख्याने

प्रातः स्नानं नरो यो वै कार्त्तिके श्रीहरप्रिये ।
करोति सर्व्वतीर्थेषु यत् स्नात्वा तत्फलं लभेत् ।। २२ ।।

सब तीर्थों में स्नान करने का जो फल है वह कार्त्तिक में प्रातः स्नान से मिलता है ।

तथा तत्रैव विंशतितमेध्याये

श्रेष्ठं विष्णुव्रतं विप्र तत्तुल्या न शतं मखाः ।
कृत्वा व्रत व्रजेत् स्वर्गं वैकुंठं कार्त्तिकव्रती ।। २३ ।।

श्रीविष्णु भगवान् का व्रत सब व्रतों में उत्तम है, सौ यज्ञ भी उसके समान नहीं हैं, जो लोग इस कार्त्तिक का व्रत करते हैं वे व्रती लोग वैकुंठ नामक स्वर्ग में जाते हैं ।

तथा वायुपुराणे ।

यदीच्छेद्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्य्यग्रहोपमान् ।
कार्त्तिकं सकलम्प्राप्य प्रातःस्नायी भवेन्नरः ।।

कार्त्तिक का माहात्म्य सब शास्त्रों में बहुत कहा है, कहाँ तक लिखें । इस कार्त्तिक में एक व्रत और भी होता है, जिसका नाम मासोपवास है ।

यथा हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये

व्रतमेतत्तु गृहवीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ।
आश्विनस्यासितेपक्षे एकादश्यामुपोषितः ।। २४ ।।
वासुदेवं समुद्दिश्य कार्त्तिके सकले नरः ।
मासं चोपवसेद्यस्तुस मुक्तिफलभाग् भवेत् ।। २५ ।।
कृत्वा मासोपवासं च विचार्य्य विधिवन्मुने ।

कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ।। २६ ।।

यह कार्त्तिक का मासोपवास व्रत अत्यंत पवित्र है । इस की विशेष विधि व्रतार्क में लिखी है । कार्त्तिक का माहात्म्य सूचन करके अब कुछ उसके नियम लिखे जाते हैं जिस से विदित हो कि कार्त्तिक व्रत कब से करना और किस किस वस्तु का त्याग करना इत्यादि । कार्त्तिक स्नान आश्विन सुदी ११ एकादशी से प्रारंभ करना इसके वाक्य ऊपर लिख आए हैं ।

यथा स्कान्दे तथा ब्रह्मपुराणे च

वैष्णवं वैष्णवानां यद्व्रतंविष्णुपदप्रदं ।
आश्विनस्यासितेपक्षे एकदश्यां द्विजोत्तमैः ।
वैष्णवैः कल्पनापूर्वम्प्रारम्भोस्य विधीयते ।। २७ ।।

विष्णुपद का देने वाला यह वैष्णवों का परम वैष्णव व्रत कुँवार सुदी एकादशी से वैष्णव लोगों को कल्पनापूर्वक प्रारंभ करना चाहिए तथा कार्त्तिक में खाने पीने का संयम और ब्रह्मचर्य तो अवश्य ही करना चाहिए ।

प्रमाणं नारदीये

अव्रतेन क्षतेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियं ।
तिर्य्यग्योनिमवाप्नोति नात्र कार्य्याविचारणा ।। २८ ।।

तथा काशीखंडे

ऊर्ज्जे यवान्नमश्नीयाद् देवान्नमथवा पुनः ।
वृन्ताकं शूरणं चैव शूकशीवींश्च वर्जयेत् ।। २९ ।।

स्कान्दे

कार्त्तिके वर्ज्जयेत्तद्वद्विदलं बहुबीजकं ।
माष मुद्ग मसूरांश्च चणकांश्च कुलत्थकान् ।। ३० ।।

कार्त्तिक का महीना जो लोग बिना व्रत के बिताते हैं वे पशु योनि पाते हैं । कार्त्तिक में यव और पवित्र हविष्यान्न खाना और भंटा, सूरन और सेम इत्यादि नहीं खाना । कार्त्तिक में द्विदल, बहुत बीयावाली वस्तु, उड़द, मोट, मसुरी, चना और कुलथी इत्यादि खाना ।

तथा नारदीये स्कान्दे च

कार्त्तिके वर्जयेत्तैलं कार्त्तिके वर्जयेम्मधु ।
कार्त्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्त्तिके शुक्तसन्धितं ।। ३१ ।।

कार्त्तिक में तेल, मधु, कांस्यपात्र में भोजन, बासी अन्न, और खारे शाक ये सब वर्जित हैं ।

कार्त्तिक के व्रत में ब्रह्मचर्य्य और हविष्यभोजन ही मुख्य है जैसा कि ऊपर लिख आए हैं जपन्हविष्यभुक् शान्तः" । अब हविष्य में कौन कौन वस्तु है सो लिखते हैं और कार्त्तिक में किस किस वस्तु का त्याग है वह भी लिखते हैं ।

तथा सनत्कुमारसंहितायां कार्त्तिकमाहात्म्ये

तथा पुराणसारोद्धारे च पुराणसमुच्चयेपि भविष्योक्ते
हैमंतिकं सिता स्विन्नं धान्या मुद्गास्तिला यवा ।।
कलाय कंगु नीवारा वास्तुकं हिलमोचिकां ।
षष्ठिका कालशाकं च मूलकं केमुकोत्तरं ।। ३२ ।।
कंदं सैंधव सामुद्रो लवणो दधि सर्पिषी ।
पयानुद्धृतसारं च पनसाम्रौ हरीतकी ।। ३३ ।।
कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवं ।
पिप्पली जीरकं चैव नागरंगकतित्तणी ।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नम्प्रचक्षते ।। ३४ ।।

तथा हेमाद्रौ छान्दोग्यपरिशिष्टेकात्यायनः

हविष्येषु यवाः मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः ।
माषकोद्रवगौरादीन् सर्वाभावेपि वर्ज्जयेत् ।। ३५ ।।

तत्रैव अग्निपुराणे

व्रीहि षष्टिक मुद्राश्च कलायाः सलिलम्पयः ।
श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्यान्व्रते हियाः ।। ३६ ।।

हविष्य में इतनी वस्तु लेना । जाड़े का सपेद चावल, धान, मूँग, तिल, यव, मटर कँगुनी, तिन्नी का चावल, बथुआ का शाक, हेला का शाक, कालिका का शाक, केमुका का शाक, साठी का चावल, सेंधा नोन और समुद्र का नोन, दही, घी, बिना घी निकला दूध, कटहर, आम, हरै, केला, हारफारेवड़ी, आँवला, चीनी मिश्री (गुड़बिना), पीपल, जीरा, नारंगी, इमली, तैल में न किया होय ऐसे अन्न को मुनि लोग हविष्य कहते हैं । हविष्य में जव मुख्य है वा नहीं तो धान भी ग्राहय है परंतु उड़द, कोदो, सपेद गेहूँ तो कुछ अन्न न मिलता होय तौ भी नहीं लेना । धान, साठी का चावल, मूँग, कलाई, जल, दूध, साँवाँ, तिन्नी, लाल गेहूँ ये व्रत में लेना । भोजन करने की वस्तु लिख के अब न खाने वाली वस्तु लिखते हैं ।

यथा सनत्कुमारसंहितायां कार्त्तिकमाहात्म्ये

सर्वयैव न भोक्तव्यमामिषान्नं तु कार्त्तिके ।
तत्सर्वदा वर्जनीयं कार्त्तिके तु विशेषतः ।। ३७ ।।
दग्धमन्नं द्विपक्कं च मसूराम्नं सवल्कलं ।
उद्वालकाः पर्युषितमन्नमामिष उच्यते ।। ३८ ।।
वृन्ताकानि पटोलानि तुम्बिका च कलिंगकं ।
बिम्बीफलानि त्रपुमं फलशाकेषु चामिषं ।। ३९ ।।
दोरका तुलसी चिल्ली छत्राकं पोत्र पत्रकं ।
चक्रवर्ती राजगिरिः पत्रशाकेषु चामिषं ।। ४० ।।
गजरं रक्तमूलं च पलांडुर्लशुनं तथा ।
सर्वदैवामिषाणि स्युः कार्त्तिके स्मरणं त्यजेत् ।। ४१ ।।
परमांसैः स्वमांसानि यः पुष्णाति नराधमः ।
परजन्मनि तस्यैव विष्ठायां जायते कृमिः ।। ४२ ।।
बालान्मृगान् पक्षिणोवा तथा बालफलानि च ।
घातयन्ति दुरात्मानो जायन्ते मृतबालकाः ।। ४३ ।।
सर्वाण्येकत्रदानानि सर्वतीर्थान्यथैकतः ।
सर्वव्रतान्येकतश्च इयहिंसाकलया सभा ।। ४४ ।।
एवं विचार्य्य भुंजीत स्वान्नं विष्णुनिवेदितम् ।.

कार्त्तिक में मांस और उस के समान जितनी वस्तु हैं वह सब सर्वथा न खाना । और यह मांस तो सर्वदा वर्जनीय है परंतु कार्त्तिक में विशेष करके अर्थात् मांस इत्यादिक बुरी वस्तु कभी नहीं खाना ! जल अन्न, दो बेर किया हुआ अन्न, मसूर, कुरथी, बासी अन्न ये सब भी मांस कहलाते हैं । भंटा, परवल, तुम्बी फल, तरबूज, कुंदुरू और ककड़ी, ये सब फल के शाक में मांस के तुल्य हैं । तुलसी, छाता शाक, पोई, चकोंड़, राजगीरा ये सब पत्ते शाक में आमिष के तुल्य हैं । गाजर, लाल मूली, लहसुन, गोभी, प्याज इत्यादि मांसवत् सर्वदा ही त्याग करना और कार्त्तिक में तो इन का स्मरण भी नहीं करना । दूसरे जीवों के मांस से जो पापी अपने मांस को पुष्ट करता है अर्थात् जो लोग बल पुष्टता वा स्वाद के लोभ से किसी पशु या पक्षी का मांस खाते हैं वे मनुष्याधम दूसरे जन्म में उसी जीव के (जिसका मांस खाया है) विष्टा के कीड़े होते हैं । छोटे पशुओं को, छोटे पक्षियों को जो मारते हैं, जो कच्चे फलों को तोड़ते हैं, वे लोग दूसरे जन्म में मरे बालक होते हैं । सब व्रत और सब दान और सब तीर्थ का एकत्र फल और अहिंसा का फल बराबर है ऐसा विचार के सुंदर प्रसादी अन्न ही भोजन करना, मांसादिक सर्वथा नहीं खाना ।

तथा पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये

परान्नं परशय्यां च परवादं परांगनां ।
सदा च वर्ज्जयेत्प्राज्ञो कार्त्तिके तु विशेषतः ।। ४५ ।।
वेद देव द्विजानां च गुरु गो व्रतिनान्तथा ।
स्वराजोपहतां निन्दां वर्ज्जयेत्कार्त्तिके व्रती ।। ४६ ।।

दूसरे का अन्न, दूसरों की सेज, दूसरों की निन्दा, दूसरों की स्त्री इनको सदा बचाना चाहिए, कार्त्तिक में विशेष करके । वेद देव, तीनों वर्ण अर्थात् ब्राहमण, क्षत्री, वैष्य, गुरु, गऊ, व्रत करने वाले जिन का राज्य अर्थात् सम्पदा नाश हो गई है इन लोगों की निन्दा नहीं करना । इस का भावार्थ यह है कि कार्त्तिक में जहाँ तक बन सकै दूसरों का अन्न नहीं खाना और दूसरों की शैया से बचना अर्थात् दूसरों की स्त्री से बचना, दूसरों की निंदा नहीं करना । अब इस काल में लोग लोगों की निंदा बहुत करते हैं और दूसरों की निंदा करना महापाप है क्योंकि जो लोग दूसरों की निंदा करते हैं वे लोग जिनकी निंदा करते हैं उनका सब पाप आप ले लेते हैं तथा दूसरों की स्त्री को कुदृष्टि से देखना कार्त्तिक में विशेष करके वर्जित है और अब कार्त्तिक में बहुत स्त्रियों के नहाने जाने से कितने ही पुरुष भी सबेरा भया कि कार्त्तिक नहाने के बहाने उनका दर्शन करने जाया करते हैं उन लोगों को चाहिए कि इस वाक्य को कान खोल कर सुनैं ।

कार्त्तिक के व्रत और उसके नेम लिख के अब कार्त्तिक स्नान की विधि और मंत्रादिक लिखते हैं जिसका प्रमाण और विशेष विधि पुराणसारोद्धार, पुराणसमुच्चय, निर्णयसिंधु, स्कंदपुराणांतर्गतकार्त्तिकमाहात्म्य, पद्मपुराणांतर्गत कार्त्तिकमाहात्म्य, ब्रह्मपुराण आदिक ग्रंथों में लिखा है । विशेष करके इस का विस्तारपूर्वक विधान सनत्कुमारसंहिता के कार्त्तिक माहात्म्य में है, जिसमें से आवश्यक कर्म यहाँ पर लिखे जाते हैं । प्रातः काल उठ के धर्म चिंतवन करके भगवान का ध्यान करना, जैसा सनत्कुमारसंहिता में ध्यान लिखा है ।

प्रातःस्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभं ।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ।। ४७ ।।
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविंदयुगलं परमस्य पुंसः
नारायणस्य नरकार्णवतारकस्य
पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ।। ४८ ।।
प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं
प्राक सर्व्वजन्मकृतपापभयापहत्यौ ।
योग्राहवक्त्रपतितांघ्नि गजेंद्रघोरं
शोकात्तिनाशनकरोधृतशंखचक्रः ।। ४९ ।।
श्लोकत्रयमिदम्पुण्यं प्रातः प्रातः पठेन्नरः ।
लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ।। ५० ।।

और भी जो कुछ हो सकै भगवान का स्मरण करके अपने गुरु का ध्यान करना ।

यथा गार्ग्यां

ज्ञानमुद्रापरं ध्यायेत् श्रीगुरुं स्वस्तिकामनं ।
ध्यात्वा कृष्णं परं ध्यायेत् भक्त एकाग्रमानसः ।। ५१ ।।
किशोरं कामल श्यामं वशीवेत्रविभूषितं ।
एवं कृत्वा हरेर्ध्यानं पुनर्गच्छेद्धरिस्थलम् ।। ५२ ।।

पलथी मारे बैठे ज्ञानमुद्रा से उपदेश कर रहे हैं ऐसा अपने श्रीगुरु का ध्यान करके फिर श्रीकृष्णचंद्र का ध्यान करना । कोमल अंग किशोर स्वरूप श्यामसुंदर वंशी छड़ी धारण किए ऐसे श्री भगवान् का ध्यान करके सिर महादेव इत्यादिक देवता, गंगादिक नदी, नारदादि ऋषि, पृथ्वी, सप्तसमुद्र, नवग्रह इत्यादिक का ध्यान करके, वैष्णवन का ध्यान करके अपना हाथ देखना व दूब, ऐना, सोना, गऊ इत्यादिक मंगल-वस्तुओं को देख

लेना, जिस में दुष्ट मुख दर्शन का दोष नाश हो जाय । फिर यह मंत्र पढ़ के पृथ्वी पर पैर रखना —

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमंडिते ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व में ।। ५३ ।।

फिर मंदिर में जाकर के श्रीभगवान् को दंडवत करना । फिर नगर के बाहर शौच करके पवित्र होना । नदी के, तालाब के वा कोई जलाशय के किनारे मल त्याग नहीं करना, इसका महादोष है ; और भी अन्न के खेतखलिहान में, देवालय में, राजमार्ग में मलत्याग नहीं करना, इस का माघ-माहात्म्य में बड़ा पाप लिखा है और जहाँ मल त्याग करना वहाँ तृण बिछाय के और मुख के आगे वस्त्र को आड़ करके सूर्य और चंद्रमा की ओर मुख फेर करके मल त्याग करना । ऐसे मल त्याग करके फिर मृत्तिकास्पर्श करके पवित्र होना, जिसकी विधि सब स्मृतियों और पुराणों में लिखी है । "एका लिंगे गुदे पंच इत्यादि ।" यह वाक्य पृथक् पृथक् पुस्तकों में अनेक चाल से मिलता है और गिनती में परस्पर विरोध पड़ता है, परंतु यहाँ हम वही वाक्य लिखते हैं जो सनत्कुमारसंहिता के कार्तिक-माहात्म्य में है, क्योंकि यहाँ प्रसंग कार्तिक का है । यथा,

एकालिंगे गुदे सप्त दश वामकरे तथा ।
उभयोः सप्त दातव्याः पादयोर्मृत्तिकाद्वयम् ।। ५४ ।।

लिंग में एक, गुदा में सात, बायें हाथ में दश, फिर दोनों हाथ में सात, पैर में दो दो बेर मिट्टी लगा के धोना । ब्रह्मचारी को इसकी दूनी, वानप्रस्थ को तिगुनी और यति को चौगुनी यह क्रम है । फिर

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।। ५५ ।।

इस मंत्र से शुद्ध मृत्तिका से हाथ पैर धो के फिर दतुवन करना ।

यथा गार्ग्याम्

कंटकी क्षीर कार्पास निर्गुंडीब्रह्मवृक्षिका ।
वटै रंड विगंधाढ्यान्न कुर्य्याद्दन्तधावनम् ।। ५६ ।।

बबूल, बैर, कपास, निर्गुंडी, पलाश, बड़, रेंड़, दुर्गंध के वृक्ष इसकी लकड़ी से दतुवन नहीं करना तथा दतुवन करने के समय यह मंत्र पढ़ना ।

तत्रैव

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशु वसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां चं त्वन्नो देहि वनस्पते ।। ५७ ।।

फिर कुल्ला करना । उपवास, नवमी, छठ, श्राद्ध के दिन, अमावस, आदित्यवार, इतने दिन दतुवन नहीं करना । मिट्टी वा और किसी वस्तु से मुख शुद्ध कर लेना और बारह कुल्ला करने से मुख की शुद्धि हो जाती है । फिर श्री गंगा स्नान करने जाना । उस समय चित्त एकाग्र करके जाना, मुख में भगवान का यश गावते जाना । लोग श्री गंगा स्नान करने जाते हैं उनको पैर पैर पर अश्वमेध और वाजपेययज्ञ का फल होता है ।

यदुक्तं श्रीमद्भागवते पंचमस्कन्धे

यस्यां स्नानार्थं चागच्छतःपुंसःपदेपदेऽश्वमेधराजसूय
फलंदुर्लभमिति ।। ५८ ।।

ऐसे श्रीगंगा जी के स्नान को मन अति शुद्ध करके जाना, सो जाय के पहले श्री गंगा जी के तट पर दीपदान करना और भी देवालय तुलसीवृक्ष के निकट दीपदान करना ।

यथा सनत्कुमारसंहितायां कार्त्तिकमाहात्म्ये

देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ।
निद्रास्थाने दीपदाता तस्य श्रीः सर्व्वतोमुखी ।। ५९ ।।

फिर श्रीगंगा जी के निकट आय के बाल झाड़ना । प्रमाण स्मृति में —

अशोधितेषु केशेषु स्नानं यः कुरुते नरः ।
सम्यक् पुण्यं न लभते तस्मात्केशांश्च शोधयेत् ।। ६० ।।

फिर संकल्प करे "कार्त्तिकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुक वासरे अमुकगोत्रोत्पन्नो अमुकशर्म्माहं

अचिन्त्यफल प्राप्त्यर्थं श्रीगंगास्नानमहंकरिष्ये ।''

ऐसे संकल्प करके फिर प्रतिज्ञा करना इस मंत्र से —

कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं जनार्द्दन ।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ।। ६१ ।।

यह प्रतिज्ञा का मंत्र पढ़ना (यह मंत्र सब कार्त्तिकमाहात्म्य में लिखा है) फिर इन मंत्रों से दीजिए ।

यथा स्कान्दे पाद्मे ब्राह्मे सनत्कुमारसंहितायां च

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्तेस्तु हृषीकेश गृहाघर्यं नमोस्तुते ।।
नित्ये नैमित्तिके कृत्ये कार्त्तिक पापशोधने ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ।। ६२ ।।
व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ।। ६३ ।।
दामोदर जगन्नाथ शंखचक्रगदाधर ।
राधाकान्त गृहाणार्घ्यं प्रसीद परमेश्वर ।। ६४ ।।
द्रवरूपेण देवेश वर्त्तते गांगवारिषु ।
इदमघर्यं गृहाण तत्वं स्वीकृत्य करुणां कुरु ।। ६५ ।।

ऐसे अघर्य प्रदान करके फिर बाल में अँवला तिल और तुलसी की मट्टी लगाना और जिस जिस दिन अँवला तिल न लगाना हो उस दिन केवल तुलसी की मट्टी लगाना । फिर श्रीगंगा जी की मृत्तिका का तिलक (अश्वक्रांते रथक्रांते) इस मंत्र से करके हाथ जोड़ के दंडवत् करके प्रार्थना करना ।

किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती ।
गंगा च यमुना चैव पंचनद्यः पुनन्तु माम् ।। ६६ ।।
अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।। ६७ ।।
विष्णोराज्ञामनुप्राप्य कार्त्तिकव्रतकारिणः ।
रक्षन्ति देवास्ते सर्व्वे मां पुनन्तु सवासवाः ।। ६८ ।।
वेदमन्त्राः सबीजाश्च सरहस्यामखान्विताः ।
कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सदैवते ।। ६९ ।।
नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ।
देव देहि ममानुज्ञां युष्मत्तार्थनिषेवणे ।। ७० ।।
नन्दिनीत्येष ते नाम देवेषु नलिनीतिच ।
दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वनाथा शिवा सती ।। ७१ ।।
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी ।
क्षेमावती जान्हवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी ।। ७२ ।।
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ।
भवेत्सन्निहिता तत्र गंगा त्रिपथगामिनी ।। ७३ ।।

फिर हाथ जोड़ के यह मंत्र पढ़िए ।

स्वर्गारोहणसोपानं त्वदीयमुदकं शिवे ।
अतः स्पृशामि पादाभ्यामपराधं क्षमस्व मे ।। ७४ ।।

ऐसे प्रार्थना करके मौन होय के स्नान करना, भगवान का नाम लेना । श्री गंगा जी के निकट कुल्ला नहीं करना । ऐसे स्थान करके सीढ़ी पर एक अघर्य देना ।

मंत्र ।

यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसम्भवैः ।

तद्दोषपरिहारार्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम् ।। ७५ ।।

फिर शुद्ध हो वस्त्र पहिन के संध्यादिक करना । स्कंद पुराण में लिखा है कि श्रीगंगा जी में ये तेरह कर्म नहीं करना । शौच, कुल्ला, जूठा फेंकना, मल करना, तेल लगाना, निंदा, प्रतिग्रह, रति, दूसरे तीर्थ की इच्छा तथा दूसरे तीर्थ की प्रशंसा, वस्त्र धोना, उपद्रव, ये सब कर्म श्रीगंगा जी में नहीं करना । फिर श्री गंगाजल माथे पर छिड़क कर अघमर्षण करना, फिर वस्त्रांग आचमन करके शिखा बाँधना फिर तिलक करना बिना तिलक संध्यादिक नहीं करना ।

यथा पाद्मे

यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणं ।
भस्मीभवति तत्सर्व्वं ऊर्ध्वपुंड्रं विना कृतम् ।। ७६ ।।

यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण इत्यादिक सब कर्म ऊर्ध्वपुंड्र किए बिना जो करते हैं उनका निष्फल होता है । ऊर्ध्वपुंड्र ही लगाना और तिलक न लगाना इस का सिद्धांत श्रीश्रीगिरिधरदेव चरण ने ऊर्ध्वपुंड्र मार्तंड में किया है । ऐसे ही सर्वदा तुलसी की माला धारण करना और जो सब दिन धारण न करते हों तो कार्तिक में अवश्य धारण करना ।

यदुक्तं निर्णयसिन्धौ । अथ मालाधारणम् । तत्र

स्कान्दे द्वारकामाहात्म्ये

निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसंभवां ।
बहते यो नरो भक्त्या तस्य नैवास्ति पातकम् ।। ७७ ।।
नजह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालांविशेषतः ।
महापातक संहन्त्रीं सर्वकामार्थदायिनीम् ।। ७८ ।।

विष्णुधर्म्मे

स्पृशेत्तु यानि लोमानि धात्रीमाला कलौ नृणां ।
तावद्वर्ष सहस्राणि वैकुंठे वसतिर्भवेत् ।। ७९ ।।
मालायुग्मं तु यो नित्यं धात्री तुलसिसम्भवां ।
वहते कंठदेशे तु कल्पकोटिदिवं वसेत् ।। ८० ।।

मंत्र

तुलसी काष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये
बिभर्मि त्वामहं कंठे कुरु मां कृष्णवल्लभम् ।। ८१ ।।
एवं सम्प्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेऽर्पितां ।
भारयेत् कार्त्तिकेयो वै सगच्छेत् वैष्णवम्पदम् ।। ८२ ।।

निर्णयसिंधु ग्रंथ में माला-धारण लिखते हैं । वहाँ स्कन्द-पुराण का यह वचन है कि तुलसी के काठ की माला भगवान की प्रसादी जो लोग भक्ति से पहनते हैं उनके एक पाप भी नहीं बचते । महापापों के दूर करने वाली सब कामों के देने वाली तुलसी की माला वा आँवले की माला को कभी भी नहीं त्यागना । विष्णुधर्म्म में । कलियुग में आँवले की माला से जितना रोआँ छू जाता है उतने हज़ार बरस उस मनुष्य को स्वर्गवास मिलता है । ऊपर जो मंत्र लिखा है उस से जो विधिपूर्वक माला सदा धारण करते हैं वा श्री कृष्ण की प्रसादी माला जो लोग कार्त्तिक में धारण करते हैं उनको वैष्णव पद मिलता है ।

इस रीति से तिलक माला धारण करके क्या करना चाहिये, सो लिखते हैं ।

यथा सनत्कुमारसंहितायाम्

ततः सन्ध्यामुपासीत स्वसूत्रोक्तेन कर्मणा ।
ततः कार्य्योजपो देव्या यावत्सूर्य्योदयो भवेत् ।। ८३ ।।

फिर अपने सूत्र के अनुसार संध्या करना, फिर जब तक सूर्य्योदय न होय तब तक गायत्री देवी का जप करना ।

निर्णयसिंधु बनाने वाले ने यह निर्णय किया है कि कार्त्तिक के महीने में बिना अरुणोदय भी संध्या करने

का दोष नहीं है ।

मया कृतं मूत्रपुरीषशौचं स्नानंच गंडूषणमेहनंच ।
वस्त्रस्यसंक्षालनमेवदोषान् क्षमस्वगंगे मम सुप्रसीद ।। ८४ ।।

श्री गंगा जी की प्रार्थना इस मन्त्र से करना । अब सूर्य्योदय पीछे जो करना चाहिए वह लिखते हैं ।

तत्रैव

विष्णोः सहस्रनामाद्यं सन्ध्यान्ते च पठेन्नरः ।
देवालये समागत्य पुनः पूजनमारभेत् ।। ८५ ।।

संध्या करके विष्णुसहस्र नाम इत्यादिक ग्रंथों का पाठ करके फेर भगवान की पूजा को आरंभ करना । तहाँ फूल से भगवान की पूजा करना इसका माहात्म्य लिखते हैं ।

यथाभार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपुराणे

अगस्त्यकुसुमैर्देवं योर्चयेच्च जनार्द्दनं ।
दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकं नार्हते नरः ।। ८६ ।।
विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवं ।
कार्त्तिके यो ऽर्च्चयेद्भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ।। ८७ ।।

स्कान्दे

मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः ।
समाः सहस्रं सुप्रीतो भवेत्स मधुसूदनः ।। ८८ ।।

पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे

कार्त्तिके नार्चितो यैन्तु कमलैः कमलेक्षणः ।
जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे ।। ८९ ।।
कार्त्तिके केशवो पूजा येषां नाम्ना सुतैः कृता ।
ते निर्भर्त्स्य रवेः पुत्रं वसंति त्रिदिवे सदा ।। ९० ।।
तुलसीदललक्षेण कार्त्तिके योर्चयेत् हरिं ।
पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ।। ९१ ।।

अगस्त के फूल से जो भगवान की पूजा करते हैं उनके दर्शन से नरक नहीं मिलता । सब फूलों को छोड़ के कार्त्तिक में जो अगस्त के फूल से भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं उन्हें वाजपेय का फल होता है । कार्त्तिक में जिसने कमल से श्रीभगवान की पूजा नहीं किया उनके घर कोटि जन्म तक लक्ष्मी नहीं आतीं । जो कार्त्तिक में भगवान के नाम से पूजा करते हैं वे लोग यम को अनादर दे के स्वर्ग में रहते हैं । और जो लोग लाख तुलसी दल भगवान को अर्पण करते हैं वे एक एक पत्ते में मोती समर्पण का फल पाते हैं वा एक एक पत्ते में मुक्ति का फल पाते हैं ।

मंत्र

नमस्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये ।
केशवार्थे विचिन्वामि वरदा भव शोभने ।। ९२ ।।

ऊपर लिखे हुए मंत्र से तुलसी तोड़ कर श्री भगवान की पूजा करने का अकथनीय फल है । अब पूजा करने की विधि लिखते हैं । वह पूजा दो प्रकार की है — जिसमें नियम नहीं और परमभावात्मिका उसका नाम सेवा और जिसमें नियम हो, चाहै नैमित्तिक होय, उसका नाम पूजा । इसके भेद और प्रकार आदि पुराण और गर्गसंहिता में और भी संप्रदाय के ग्रंथों में विस्तारपूर्वक लिखे हैं । अब हम इस स्थान पर पूजा करने की विधि लिखते हैं । श्री भगवान की पूजा में चित्त एकाग्र रखना, पहिले मंदिर में जा करके प्रभु को जगाना, फिर षोड़शोपचार पूजा की सामग्री ले के पूजा आरंभ करना तहाँ पहिले आवाहन करना ।

मंत्र

गोलोकधामाधिपते रमापते गोविन्ददामोदर दीनवत्सल ।
राधापते माधव सात्वतां पते सिंहासनेस्मिन्मम सम्मुखोभव ।। ९३ ।।

अथ आसनम्

श्रीपद्मरागस्फुरदूर्ध्वपृष्ठ महार्हवैदूर्य्यखचितपदाब्जं ।
वैकुंठवैकुंठपते गृहाण पीतं तडिद्भ्राजकवस्त्रयुक्तम् ।। ९४ ।।

अथ पाद्यम्

परिस्थितं निर्मलमेकपात्रे समागतं विष्णुसरोवराद्वि ।
योगेश देवेश जगन्निवास गृहाण पाद्यं प्रणमामि पादौ ।। ९५ ।।

अथ अर्घ्यम्

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते धरणीधर ।
नमस्ते कमलाकान्त अर्घं नः प्रतिगृह्यताम् ।। ९६ ।।

अथाचमनम्

कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतं ।
आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः ।। ९७ ।।

अथ स्नानम्

काश्मीरपाटीरविमिश्रितेन स्वमक्षिकोशीरवताजलेन ।
स्नानं कुरु त्वं यदुनाथ देव गोविन्दगोपालक तीर्थपाद ।। ९८ ।।

अथ मधुपर्कः

मध्यान्हचंडार्कभवश्रमापहं सितांगसम्पक्कमनोहर परं ।
गृहाण विष्णो मधुपर्क्क मासनं श्री कृष्णपीताम्बरसात्वतांपते ।। ९९ ।।

अथ वस्त्रम्

विभो सर्वतो प्रस्फुरत् प्रोज्वलंतं महत् स्वर्णसूत्रांकितं दुर्लभं च ।
स्वतोनिर्म्मितं पद्मकिंजल्कवर्णं गृहाणाम्बरं देव पीताम्बराख्यम् ।। १०० ।।

अथ भूषणम्

कनकरलमयं मयनिर्मितं मदनरुक्कदनं सदनं रुचां ।
उषति सर्वसुवर्णविभूषणं सकललोकविभूषण गृह्यताम् ।। १०१ ।।

अथ यज्ञोपवीत्

सुवर्णभिमापीतवर्णं सुमंत्रैः वरं प्रोक्षितं वेदवन्निर्म्मितं च ।
शुभं पंचकार्य्येषु नैमित्तिकेषु प्रभो यज्ञ यज्ञोपवीतं गृहाण ।। १०२ ।।

अथ गंधम्

संध्येन्दुशोभं बहुमंगलं श्री काश्मीरपाटीरकषंकपंकं ।
स्वमंडनं गंधचयं गृहाण समस्तभूमंडलभारहानिन् ।। १०३ ।।

अथ अक्षतम्

ब्रह्मावर्त्ते ब्रह्मणा पर्व्वमुक्तं ब्रह्मैस्तोयैः सिंचितं विष्णुना च ।
रुद्रेण राद्राक्षितो राक्षसेभ्यः साक्षाद्भूमावक्षतं त्वं गृहाण ।। १०४ ।।

पुष्पम

मंदारसन्तानकपारिजात कल्पद्रुम श्रीहरिचंदनानां ।
गृहाणपुष्पाणि हरे तुलस्या मिश्राणि साक्षान्नवमंजरीभिः ।। १०५ ।।

अथ धूपम

लवंगपाटीरज चूर्णमिश्रं मनुष्य देवासुर सौख्यदं च ।
सद्यः सुगन्धी कृतहर्म्यदेशं द्वारावतीभूप गृहाण धूपम् ।। १०६ ।।

अथ दीपम

तमोहारिणं ज्ञानमूर्त्तिं मनोज्ञं लसद्वर्त्तिकर्पूरयुक्तं गवाज्यं ।
जगन्नाथ देवेश ज्योतिस्वरूप स्फुरज्ज्योतिकं दिव्यदीपं गृहाण ।। १०७ ।।

अथ नैवेद्यम्

सर्व्वै रसैर्वेविधिव्यवस्थितं रसै रसान्यं च यशोमतीकृतं ।
गृहाण नैवेद्यमिदं स्वरोचिषं गव्यामृतं सुन्दरनन्दनन्दन ।। १०८ ।।

अथ जलम्

गंगोत्तरीवेगबलात्समुछितं सुवर्णपात्रेण हिमांशुशीतलं ।
सुनिर्मलाभं ह्यमृतोपमं जलं गृहाण राधावर दीनवत्सल ।। १०९ ।।

अथ आचमनम्

कंकोलजातीफलपुष्पवासितं परं गृहाणाचमनं दयानिधे ।
राधापते श्रीगिरिजापते प्रभो श्रियःपते सर्व्वपते च भूपते ।। ११० ।।

अथ ताम्बूलम्

जातीफलेलासुरपुष्पयुक्तं यावित्रिपूगीफलपत्रवृन्दं ।
मुक्ताफलाखादि ररोचनार्थं गृहाण ताम्बूलमिदंनृपेश ।। १११ ।।

अथ दक्षिणा

नाकपालवसुपालमौलिभिः वन्दितांघ्रियुगल प्रभो हरे ।
दक्षिणां परिगृहाण माधवयज्ञरूपप्रभु दक्षिणापते ।। ११२ ।।

अथ प्रदक्षिणा

यानिकानिच पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्व्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिण पदेपदे ।। ११३ ।।

अथ नीराजनम्

प्रस्फुरत्परमदीप्तमंगलं गोघृताक्तनवपंचवर्त्तिकं ।
आर्त्तिकं परिगृहाण चार्त्तिहन्पुण्यकीर्त्तिविशदीकृता वने ।। ११४ ।।

अथ प्रार्थना

हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ
तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी ।।
इति त्वां च मत्वा जगन्नाथ देव
यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम् ।। ११५ ।।

अथ नमस्कारः

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्नेपुरुषायशाश्वतेसहस्रकोटीयुगधारिणेनमः ।।११६।।

इस प्रकार से भगवान की पूजा करके तब तुलसी पूजन करै । तुलसी पूजन की विधि लिखते हैं ।

यथा सनत्कुमारसंहितायां कार्त्तिकमाहात्म्ये

तुलस्यां सर्व्वतीर्थानि तुलस्यां सर्व्वदेवताः ।
कार्त्तिकेमासि तिष्ठन्ति नात्र कार्य्या विचारण ।। ११७ ।।

कार्त्तिक के महीने में श्रीतुलसी जी में सब देवता और सब तीर्थ निवास करते हैं ।

तथा पद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्ये ।

तुलसीकाननं राजन् गृहे यस्यावतिष्ठते ।
तद्गृहं तीर्थरूपंतु न यान्ति यमकिंकराः ।। ११८ ।।
रोपणात्पालनात्स्पर्शान्नृणाम्पापहरातथा ।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसम्भवम् ।। ११९ ।।

तुलसी का बन जिस घर में रहता है उस तीर्थ रूप घर को यम के दूत नहीं देखते । वृक्ष लगाने से, पालने से, स्पर्श करने से, तुलसी जी कायिक वाचिक मानसिक तीनों पापों को दूर करती हैं ।

तथा काशीखण्डे दूतान् प्रति यमवाक्यम्

तुलस्यलंकृता ये ये तुलसीनामजापका: ।
तुलसीवनपाला ये ते त्याज्या दूरतो भटाः ।। १२० ।।

यमराज दूतों से आज्ञा करते हैं कि हे दूत लोग हमारी बात सुनो, जो तुलसी की कंठ पहिनते हैं, जो लोग तुलसी का नाम जपते हैं, जो लोग तुलसी के बन की रक्षा करते हैं उनको तुम लोग दूर ही से छोड़ देना ।

तथा स्कन्दपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये

तुलसीगन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः ।
दिशा दश च ताः पूताः भूतग्रामं चतुर्विधम् ।। १२१ ।।

तुलसी जी की सुगंध लेकर जहाँ जहाँ वायु जाता है वहाँ वहाँ की दसो दिशा और वहाँ के चारों प्रकार के जीव पवित्र हो जाते हैं ।

अब तुलसीपूजा के मंत्र लिखते हैं ।

अथ ध्यानम्

ध्यायेच्च तुलसीं देवीं श्यामां कमललोचनां ।
प्रसन्नामलकल्हार वराभय चतुर्भुजाम ।। १२२ ।।
किरीटहारकेयूरकुण्डलादिविभूषितां ।
धवलांशुकसंयुक्तां पद्मासननिषेवितां ।। १२३ ।।

अथ आवाहनम

देवि त्रैलोक्यजननि सर्वलोकैकपावनि ।
आगच्छ भगवत्यत्र प्रसीद श्रीहरिप्रिये ।। १२४ ।।

अथासनम

सर्वलोकमये देवि सर्वदा विष्णुवल्लभे ।
देवि स्वर्णमयं दिव्यं गृहाणासनमव्ययम् ।। १२५ ।।

अथार्घ्यम्

सर्वदेवतलाकारे सर्वदेवनमस्कृते ।
दत्तं पाद्यं गृहाणेदं तुलसि त्वं प्रसीद मे ।। १२६ ।।

अथाचमनीयम

सर्वलोकस्य रक्षार्थं सदा कल्याणकारिणी ।
गृहाण तुलसि प्रीत्या इदमाचमनीयकम् ।। १२७ ।।

अथ स्नानम

गंगादिभ्यो नदीभ्यश्च समानीतमिदं जलं ।
स्नानार्थं तुलसीदेवि प्रीत्या तत प्रतिगृह्यताम् ।। १२८ ।।

अथ वस्त्रम

क्षीरोदमथनोद्भूते लक्ष्मी चंद्रसहोदरे ।
गृह्यतां परिधानार्थमिदं क्षौमाम्बरं शुभे ।। १२९ ।।

अथ गन्धम

श्रीगंधकुंकुमं दिव्यं कर्पूरागरुसंयुतं ।
कल्पितं ते महादेवि प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम ।। १३० ।।

अथ पुष्पम

नीलोत्पलसुकल्हारमालत्यादीनि शोभने ।
पद्मादि गंधवत्शीते पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम ।। १३१ ।।

अथ धूपम

धूपं गृहाण देवेशि मनोहरि सुमंगलं ।
आज्यमिश्रंतु तुलसि भक्तस्या भीष्टदायिनि ।। १३२ ।।

अथ दीपम

अज्ञानतिमिरांधेभ्यो ज्ञानदीपप्रदायिनि ।
दत्तः तुलसि प्रीत्यर्थं दीपोयं प्रतिगृह्यताम् ।। १३३ ।।

अथ नैवेद्यम्

नमस्ते जगतांनाथे प्राणिनां प्रियदर्शने ।
यथाशक्ति मया दत्तं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ।। १३४ ।।

अथ जलम्

नमो भगवति श्रेष्ठे नारायणि जगन्मये ।
तुलसि त्वरया देवि पानीयं प्रतिगृह्यताम् ।। १३५ ।।

अथ ताम्बूलम्

अमृते ऽमृतसम्भूते तुलस्यमृतरूपिणि ।
एलाकर्पूरसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम ।। १३६ ।।

अथ फलम्

इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव ।
अनेन सफला वाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ।। १३७ ।।

अथ प्रदक्षिणा

दक्षिण दक्षिणकरे त्वद्भक्तानाम्प्रियंकरि ।
करोमि ते सदाभक्त्या विष्णुकान्ते प्रदक्षिणाम ।। १३८ ।।

अथ नमस्कार, पुष्पांजलिः

नमोनमो जगद्धात्र्ये जगदाद्ये नमोनमः ।
नमोनमो जगद्भूत्ये नमस्ते परमेश्वरि ।। १३९ ।।
नमस्तुलसि कल्याणि नमो विष्णुप्रिये शुभे ।
नमो मोक्षप्रदे देवि नमः संपत्प्रदायिनि ।। १४० ।।
तुलसी पातु मां नित्यं सर्व्वापद्भ्योपि सर्व्वदा ।
कीर्तिता या स्मृता वापि या पावयति मानुषान ।। १४१ ।।
महाप्रसादजननि सर्व्वपापप्रणाशिनि ।
आधिव्याधिहरे देवि तुलसि त्वां नमाम्यहम ।। १४२ ।।
या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुःपावनी ।
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी ।।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता ।
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ।। १४३ ।।

अथ प्रार्थना

प्रसीद मयि देवेशि कृपया परया सदा ।
समाप्तफलसिद्ध्यर्थं कुरु मे माधवप्रियं ।। १४४ ।।

इस रीति से नित्य तुलसी पूजन करना और तुलसी के पत्र से विष्णु का पूजन करना ।

यथा गारुडे

गवामयुतदानेन यत्फलंलभते खग ।
तुलसीपत्रमेकेन तत्फलं कार्तिके स्मृतम ।। १४५ ।।

अयुत गोदान करने का जो फल है वह कार्तिक में एक तुलसी पत्र चढ़ाने से मिलता है. यह आप श्रीमुख से आज्ञा करते हैं गरुड़जी से ।

इस भाँति तुलसी पूजन करके फिर आँवला की पूजा करना तथा कार्तिक में आँवला की माला भी पहिरना ।

यथा स्कान्दे कार्तिक माहात्म्ये पुराणसारोद्धारे च ।

सर्व्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनःप्रिया ।
आरोपणीया सेव्या च पूजनीया सदा बुधैः ।। १४६ ।।
धात्रीफलविलिप्तांगो धात्राफलविभूषितः ।
धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ।। १४७ ।।
धात्रीछायां समाश्रित्य कुर्य्याच्छ्राद्धन्तयो मुने ।
मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादात्तस्य वै हरेः ।। १४८ ।।
कार्त्तिकेमासि विप्रेन्द्र धात्रीवृक्षोपशोभिते ।
वने दामोदरं विष्णुंचित्रान्नैस्तोषयेद्विभुम् ।। १४९ ।।

श्रीवासुदेव के मन की प्यारी सब देव मयी धात्री पंडित लोगों को सदा लगाना चाहिये, सेवा करना चाहिये और पूजना चाहिये । आँवला जिसने देह में लगाया है वा उस की माला पहिनते हैं वा जो लोग आँवला का फल खाते हैं वे मनुष्य नारायण होते हैं । आँवले की छाया में जो श्राद्ध करता है भगवान की कृपा से उस के पितर स्वर्ग में जाते हैं । कार्त्तिक के महीने में आँवले के बगीचे में भगवान दामोदर की चित्रान्न से पूजा करना इत्यादि बहुत माहात्म्य लिखा है । इससे नित्य आँवला का पूजन करना तथा आँवला के नीचे ब्राहमण भोजन कराना । इस भाँति आँवला की पूजा करके फेर श्री मद्‌भागवत इत्यादिक भगवान की कथा सुनना और यथाशक्ति दान करके ब्राहमण भोजन कराना ।

यथा सनत्कुमारसंहितायां कार्त्तिकमाहात्म्ये

नृत्यगानादिकार्य्येषु प्रहरं दिवसं नयेत् ।
ततः पुराणश्रवणं यामार्द्धं सम्यगाचरेत् ।। १५० ।।
सम्पूर्णं कार्त्तिकं यस्तु संपूज्यामलकींशुभां ।
राधादामोदरप्रीत्यै भोजयेच्चैव दम्पतीन् ।। १५१ ।।
पश्चात्स्वयं सुभुंजीत न श्रीस्तस्य क्षयं व्रजेत् ।
कृत्वामाध्यान्हिकंकर्म्मभुंजीतद्विदलोज्झितम् ।। १५२ ।।
ब्रहमांशकसमुद्भूते पलाशे यस्तु भोजनं ।
कुर्य्यातकार्त्तिकमासेसौ विष्णुलोकंप्रयास्यति ।। १५३ ।।

प्रहर दिन चढ़े तक भगवान के मंदिर में नाचना गाना, फिर आधे पहर कथा सुनना, फिर आँवला के नीचे दंपती ब्राहमण भोजन कराय के मध्यान्ह संध्या करके ऊपर जिन वस्तुओं का निषेध लिखा है उन्हें छोड़ के महा प्रसादी अन्न भोजन करना । जो कार्त्तिक में नित्य ऐसा करते हैं उन्हें लक्ष्मी त्याग नहीं करती । ब्रहमा के अंश से उत्पन्न भया है ऐसे पलाश के पत्ते में जो भोजन करते हैं वे लोग विष्णुलोक पाते हैं ।

इस भाँति दिन का कर्म लिख के अब संध्या का कर्म लिखते हैं । रात्रिकर्म में तीन कर्म मुख्य हैं, एक तो आकाश दीपदान, दूसरा भगवन्मन्दिर वा श्री गंगा जी वा तुलसी के निकट दीपदान, तीसरा नामसंकीर्तन । अब तीनों का फल और विधि लिखते हैं ।

यथा ब्रहमांडे

विष्णुवेश्मनियोदद्यात्तुलायां नभदीपकं ।
अग्निष्टोमसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ।। १५४ ।।

तथा निर्णयामृते निर्णयसिन्धौ च पुष्करपुराणे

तुलायान्तिलतैलेन सायंकाले समागते ।
आकाशदीपं योदद्यान्मासमेकं हरिं प्रति ।। १५५ ।।
महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदाम् ।

जो भगवन्मंदिर में आकाशदीप देते हैं उन्हें हजार अग्निष्टोम (यज्ञ) का फल होता है । कार्त्तिक के महीने भर जो लोग श्रीकृष्ण के प्रति संध्या को आकाशदीप देते हैं वे लोग बड़ी लक्ष्मी और बहुत संपदा और रूप सौभाग्य पाते हैं ।

तथा हेमाद्रौ आदिपुराणे

दिवाकरे ऽस्ताचलमौलिभूते गृहाद्दूरे पुरुषप्रमाणं ।

यूपाकृति यज्ञिय वृक्षदारुमारोप्यभूमावथतस्य मूर्ध्नि ।। १५६ ।।

यवांगुलच्छिद्रयुतास्तु मध्य द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकास्तु ।

कृत्वा चस्रोष्टदला: कृतास्तु याभिर्भवेदष्टदिशानुसारि ।। १५७ ।।

तत् कर्णिकायान्तु महाप्रकाशो दीपा: प्रदेया दलगास्तथाष्टौ ।

निवेद्य धर्म्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्म्मराज्ञे ।

प्रजापतिभ्यस्त्वथमतपितृभ्य: प्रेतेभ्य एवाथतम: स्थितेभ्य: ।। १५८ ।।

जब संध्या होय तब घर के पास मनुष्य के बराबर पवित्र लकड़ी गाड़ के उसके ऊपर दो हाथ का बाँस लगाना, उस ऊपर चौमुखा वा अठमुखा दीया रख के आठ बत्ती वा आठ पत्ती पर आठ दीया बालना । इन आठों के निमित्त १ धर्म्म २ महादेव जी ३ पृथ्वी ४ श्री राधादामोदर ५ धर्म्मराज ६ प्रजापतिगण ७ पितृगण ८ अंधेरे में रहने वाले प्रेत । इन आठों के निमित्त दीपदान करना और वैष्णवों के मंदिर में ऊँचा बाँस गाड़ के उस पर इस मंत्र से दीपदान करना ।

दामोदराय नभसि तुलायां दोलया सह ।

प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोनन्ताय वेधसे ।। १५९ ।।

कार्त्तिकमाहात्म्य में २० वा ९ व ५ हाथ का बाँस लिखा है । इस प्रकार आकाश दीपदान करके फिर भगवन्मंदिर में, राजमार्ग में, गंगा जी के तट पर दीपदान करना ।

यथा सनत्कुमारसंहितायाम

कार्त्तिकेमासि सम्प्राप्ते गगने स्वच्छतारके ।

रात्रौ लक्ष्मी समायाति द्रष्टुम्भवनकौतुकम ।। १६० ।।

यत्रयत्र च दीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा ।

तत्रतत्र रतिं कुर्य्यान्नान्धकारे कदाचन ।। १६१ ।।

देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषत: ।

निद्रास्थाने दीपदाना तस्य श्री सर्व्वतोमुखी ।। १६२ ।।

कीचकंटकसंकीर्णे विषमे दुर्गमस्थले ।

कुर्य्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति ।। १६३ ।।

कार्त्तिक महीने की रात का जब स्वच्छ तारे निकले रहते हैं तब लक्ष्मी जी घर का कौतुक देखने को आती हैं, सो वह जहाँ जहाँ दिये बलते देखती हैं वहाँ प्रसन्न होकर निवास करती हैं और जहाँ अंधकार देखती हैं उस स्थान को त्याग करती हैं । देवता के मंदिर में, नदी के तीर पर, राजमार्ग में विशेष कर के और निद्रा की जगह दीया बालनेवाले लोगों को लक्ष्मी श्री सर्वतोमुख रहती हैं । कीच में, काँटे की जगह में, ऊंची, नीची, सकरी दुर्गम जगह में जो लोग दीपदान करते हैं वे नरक में नहीं जाते ।

इस मंत्र से दीपदान करना —

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं जपहीनं जनार्द्दन ।

व्रतंसम्पूर्णतां यातु कार्त्तिके दीपदानत: ।। १६४ ।।

और जो विद्यार्थी को पढ़ने के वास्ते तेल देते हैं उन्हें भी बड़ा पुण्य होता है ।

तथा तत्रैव

यो वेदाभ्यासिन दद्याद्दीपार्थे तैलमुत्तमं ।

कार्त्तिकेमासि सम्प्राप्ते समुक्तिफलभागभवेत ।। १६५ ।।

जो कार्त्तिक में पढ़ने वाले विद्यार्थी को दीये का तेल देते हैं वे मुक्तिफल पाते हैं ।

और कार्त्तिक सुदी सप्तमी को कामना होय तो कीर्तवीर्य के वास्ते दीपदान करना, यह सब कामना का पूर्ण करने वाला है ।

यथा प्रयोगरत्नाकरे उंडामरतंत्रेच

ऊर्जे मासि सितेपक्षे सप्तम्यामभानुवासर ।

श्रवणर्क्षे व्यतीपाते विष्णोश्चक्रावतारिणः ।
दीपदानं प्रकर्त्तव्यं सर्व्वसौख्याविवृद्धये ।। १६६ ।।

कार्तिक सुदी सप्तमी मंगलवार श्रवण नक्षत्र व्यतीपात के दिन विष्णुचक्र के अवतार को दीपदान करना, इससे सब सौख्य बढ़ते हैं । इस प्रकार से दीपदान करके पहर रात तक भगवान का गुण गान करना । जहाँ भक्त लोग कीर्तन करते हैं वहाँ श्री भगवान आप निवास करते हैं ।

यथा पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये
नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।। १६७ ।।

नारद जी से आप आज्ञा करते हैं कि नारद हम न तो वैकुंठ में रहते हैं और न जोगियों के हृदय में रहते हैं, जहाँ हमारे भक्त गाते हैं हम वहीं बैठते हैं ।

यह जो ऊपर लिख आए हैं ये कार्तिक क नित्य कर्म हैं । और भी कार्तिक की एकादशी से लेकर के पुनवासी तक के पाँच दिन को भीष्मपंचक कहते हैं इस में इस मंत्र से भीष्मतर्पण करना ।

वैयाघ्रपदगोत्राय जलं वीराय वर्म्मणे ।
सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने ।
भीष्मायतद्ददाम्यर्च्यं आबालब्रह्मचारिणे ।। १६८ ।।

इस प्रकार पाँच दिन भीष्मपंचक में तर्पण और स्नान करना ।

कार्तिक में गर्गसंहिता सुनने का बड़ा माहात्म्य है ।

यथा —

यःकार्तिकेमासि नृपश्रियायुतो शृणोतिशश्वन्मुनिगर्गसंहिताम् ।
स चक्रवर्ती भविता न संशयो नरेन्द्रहस्तोद्धृतपादपादुकः ।। १६९ ।।
मनोजवैः सिन्धुतुरंगमैर्नवैर्द्विपैश्च विन्ध्याचलसम्भवैः परैः ।
वैतालिकोद्गीतयशा महीतले निषेवितो वारवधूजनैस्मह ।। १७० ।।

हे लक्ष्मीसंयुक्त नृप, जो कार्तिक में गर्गमुनि की संहिता विधिपूर्वक सुनै तो वह ऐसा चक्रवर्ती होय कि राजा लोग उसकी खड़ाऊँ उठावैं । हवा के वेग ऐसे सिंधी नए घोड़ों से और ऊँचे और विंध्याचल की तराई के हाथियों से और पृथ्वी के वैतालिकों के गीत रूपी अपने यश से और वारांगनाओं से सदा सेवित रहै । इस प्रकार कार्तिक का नित्य कर्म करके पूर्णिमा को यह व्रत समाप्त करै, यथाशक्ति दान दे, ब्राह्मणों का जोड़ा भोजन करावैं ।

लोकानाम्पापरूपप्रबलतमतमोनाशनायाशु शक्तं ।
हन्तुन्तीक्ष्णन्त्रितापम्पटुतरमनिशं यः परन्दुःखहेतुः ।।
दातुं शक्तं त्रिलोकैरसुलभममृतंकार्त्तिककर्म्मवैधं ।
राकाज्योत्स्नास्वरूपम्विलसतु जगति श्रीहरिश्चन्द्रचन्द्रात् ।।

दोहा

जै जै श्रीबल्लभ सदा, श्री विट्ठल द्विजराज ।
कृपा करत सब भय हरत, तारत पतित-समाज ।। १ ।।
नमो नमो कविमुकुटमणि, पितुपदकमल पुनीत ।
जाकी कृपा अपार तें, समुझि परी यह रीत ।। २ ।।
जानि परम उपकार पुनि, देखि शास्त्र को पंथ ।
जगहित श्रीहरिचंद किय, कार्तिक बिधि को ग्रंथ ।। ३ ।।

।। इति ।।

मार्गशीर्ष - महिमा

'मासानाम्मार्गशीर्षोहं'

श्रीमद्‌भगवद्वाक्यं

रचनाकाल सन् १८७३। बाबू बृजरत्न दास के मुताबिक कार्त्तिक कर्म विधि के बाद की कृति है। कार्त्तिक कर्म विधि की सफलता को देखते हुए भारतेन्दु ने इसे लिखा होगा। अगहन महीने के स्नानादि की विधि इस ग्रन्थ में है। इस पुस्तक के सन्दर्भ में उन्होंने एक विज्ञापन भी कराया था। जो आगे विज्ञापनों के क्रम में दिया गया है। एक अन्य लेख से पता चलता है कि ऐसी ही उन्होंने श्रावण मास पर भी कोई पुस्तक लिखी थी।— सं.

मार्गशीर्ष महिमा

(श्लोक, प्राचीन)

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूल चौराय ।
तस्मै कृष्णाय नमः संसार महीरुहस्य बीजाय ।।

(श्लोक, नवीन)

वजजन-सुखकारी । गोपिका-वस्त्रहारी ।।
सकल भुवन भारी । नित्यलीलावतारी ।।
व्रजभुवि-परिचारी । गोप-नारी-विहारी ।।
दनुज-तनु-विदारी । पातुनश्चक्रधारी ।।
सोरठा — प्रातहि अगहन न्हात, तिन्ह गोपिन को चीर लै ।
तरु कदंब चढ़ि जात, चोरि चरि नित प्रातही ।।
दोहा — रासरसिक फल देन हित, तिनकों करत विहार ।
ऐसे प्रभु के पद-कमल, बिनवत बारंबार ।।
सोरठा — पुनि बंदौं सुखरास, भुक्ति मुक्ति पद सहजहीं ।
जगहित अगहन मास, कृष्ण रूप गोपिन सुखद ।।

विदित हो कि इस दास ने परोपकारार्थ जो कार्तिक कर्म विधि लिखी थी, उसे हमारे एक मित्र ने बहुत प्रसन्नतापूर्वक अंगीकार किया । इस हेतु ऐसी इच्छा हुई कि इसी भाँति मार्गशीर्ष की भी विधि लिखी जाय तो बहुत लोकोपकार होगा क्योंकि इस परम पवित्र मास का माहात्म्य बहुत लोग जानते हैं और यह अगहन महीना श्री भगवान का स्वरूप है जैसा आपने श्री मत् भगवतगीता और श्री मत् भागवत में आज्ञा किया है । और व्रज की कुमारिकागण ने श्री भगवान के प्राप्ति के अर्थ इसी अगहन का स्नान किया था, जिससे उन्हें श्री कृष्ण मिले । इस अगहन का माहात्म्य स्कंदपुराण में लिखा है, जिसमें से नित्य विधि अध्याय क्रम से लिखते हैं । ब्रहमा भगवान से पूछते हैं कि आपने श्रीमद्गीता वा श्रीभागवत में आज्ञा किया है कि अगहन हमारा स्वरूप है, इस हेतु हम उसका माहात्म्य अच्छी भाँति सुना चाहते हैं ।

श्री भगवानुवाच ।

अन्यैर्धर्म्मादिभिः कृत्वा गोपितं मार्गशीर्षकं ।
मत् प्राप्तेः कारणं मत्व। देवैः स्वर्गनिवासिभिः । ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि सब धर्मों करके मार्गशीर्ष को स्वर्गनिवासी देवताओं ने हमारे प्राप्ति का कारण जान के छिपाय दिया ।

येकेचित्पुण्यकर्माणो ममभक्तिपरायणाः ।
तेषामवश्यं कर्तव्यं मार्गशीर्षमघापहं । ।

परंतु जो कोई पुण्य कर्मा हमारे भक्त होयँ उनको हमारे स्वरूप अगहन मास का व्रत अवश्य करना चाहिए ।

उषस्युत्थाय योमर्त्यः स्नानं विधिवदाचरेत् ।
तुष्टोहं तस्य यच्छामि आत्मानमपि पुत्रक ।। ४ ।।

हे पुत्र, अगहन में जो चार घड़ी रात रहे उठ के नहाते हैं उनको हम अपनी आत्मा भी दे देते हैं । ।

इत्यादि प्रथमाध्याये ।

●

श्री भगवान आज्ञा करत हैं ।

अब स्नान की विधि लिखते हैं । बड़े सबेरे उठ के गुरु को नमस्कार करके हमारा ध्यान करै और सहस्रनाम इत्यादि पढ़ के, गाँव के बाहर मल त्याग करके, शौच से शुद्ध होके, आचमन करके, दतुवन करके स्नान करै । तुलसी जी के जड़ की मिट्टी और उसका पत्ता लेकर के मूल मंत्र पढ़ के वा गायत्री पढ़ के शरीर में लगाय के स्नान करे । स्नान की समय इन मंत्रों से श्री गंगाजी का आवाहन करै ।

मंत्र

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णु देवता ।
त्राहि पापात्समस्तान्माजन्ममरणांतिकात् । ।
'तिस्रः कोट्योर्ध कोटिश्चतीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिविभुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्तु जान्हवि । ।
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलनीति च ।
दक्षापृथ्वी च बिहगाविश्वनाथाशिवासती । ।
विद्याधरी सु प्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी ।
क्षेमावती जान्हवी च शान्ताशान्तिप्रदायिनी । ।
एतानि पुण्य नामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ।
भवेत्सन्निहितातत्र गंगा त्रिपथगामिनी । ।

इन मंत्रों को पढ़ के फिर श्री गंगा जी की मृत्तिका इस मंत्र से सिर में लगाना ।

मंत्र

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते बसुन्धरे ।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतंकृतं । ।

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
नमस्ते सर्व देवानांप्रभवारणि सुव्रते ।।

इस मंत्र से मृत्तिका शिर में लगाय के स्नान करै । स्नान करके जल में वस्त्र न निचोड़े । फिर आचमन करके कपड़ा पहन के फिर आचमन करै । फिर संध्या तर्पण आरंभ करै, तिसमें पहले उर्ध्वपुंड्र धारण करके फिर संध्यादिक कर्म करै । इत्यादिक द्वितीयाध्याये ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि तुलसी की मृत्तिका वा गोपीचंदन वा प्रसादी कुंकुम चंदनादि से तिलक लगाने का बड़ा पुण्य है और गोपीचंदन से शंख चक्रादिक चिन्ह हृदय बाहुमूल इत्यादिक अंगों में धारण करना ।

इत्यादि तृतीयाध्याये ।

श्री भगवान कहते हैं कि तुलसी के काठ की माला जो धारण करते हैं वे चाहे भले हों चाहे बुरे हमारे ही होते हैं । तुलसी की काठ की या आँवले की माला जो लोग पहिनते हैं वे हमारे स्वरूप हैं । इस भाँति तिलक धारण करके, फिर संध्या करके, गुरु को भेंट करके, साष्टांग दंडवत करके, हमारी मानसी पूजा करके फिर विधि पूर्वक षोड़शोपचार पूजा करै ।

इत्यादि चतुर्थाध्याये ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि जो लोग हमैं अगहन में पंचामृत से स्नान कराते हैं वे लोग कोटिन गोदान का फल पाते हैं । जो लोग शंख से हमें स्नान कराते हैं वे जीवनमुक्त हैं । जिनके घर शंख की पूजा होती है वे धन्य हैं ।

इत्यादि पंचमाध्याये ।

आप कहते हैं कि जो लोग हमारे सामने घंटा बजाते हैं उनकी पूजा का करोड़ गुना फल होता है क्योंकि घंटा पर गरुड़ जी रहते हैं और गरुड़ जी के पक्ष से सामवेद निकलता है, इससे जो पूजा की समय घंटा बजाता है उसको बहुत फल होता है । जो लोग हमारी पूजा में नृत्य गान इत्यादिक करते हैं वे लोग अपने पित्रों के सहित वैकुंठ पाते हैं । जो लोग हमैं तुलसी के काठ का चंदन चढ़ाते हैं वे हमारे प्रिय होते हैं ।

तुलसी दमनकं मह्यं दत्वा यस्सेवते पुनः ।
मार्गशीर्षे सदा भक्त्या सलभेद्वांन्छितं फलं ।। १ ।।

इत्यादि षष्ठाध्याये ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि जो लोग हमैं अगहन में कमल का फूल चढ़ाते हैं वे लोग हमारे बल्लभ होते हैं । हमको बिना सुगंधि के फूल और कीड़े का चाटा फूल नहीं चढ़ाना । सब फूलों में जाती फूल का विशेष माहात्म्य है, इस हेतु आप आज्ञा करते हैं ।

यथा —

सर्वासाम्पुष्पजातीनां जातीपुष्पमिहोत्तमं ।
जातिपुष्पसहस्राणांयच्छेन्माला सुशोभनां ।।
मह्यंययोविधिवद्द्यात्तस्यपुण्यफलंशृणु ।
कल्पकोटि सहस्राणी कल्पकोटिशतानि च ।।
मत्पुरेवसते श्रीमान् ममतुल्य पराक्रमः । ।
सर्वेषांपत्र पुष्पांणां तुलसी मम बल्लभा ।
अन्येषाममपिदेवानां न निषिद्धाकदाचन ।। २ ।।

सब फूलों में जातीफूल की विशेष महिमा है । हजार जाती फूल माला जो हमको समर्पण करता है वह हजार करोड़ कल्प और सौ करोड़ कल्प हमारे लोक में हमारे तुल्य पराक्रम होकर वास करता है । और सब फूलों से तुलसी हमको बहुत प्यारी है दूसरे देवताओं की पूजा में भी तुलसी निषिद्ध नहीं है ।

इत्यादि सप्तमे ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि तुलसी हमको अत्यंत प्रिय है ।

यथा —

श्री मत्तुलस्यार्चयते सकृद्विमांपत्रैः सुगन्धैर्विमलैरखंडितैः ।

यत्तस्यपापंचटसंस्थितं तदानिर्रीक्षयित्वा परिमाजयेद्यमः । ।
तुलसीनयेषां ममपूजनार्थं सम्पादितैकादशिपुण्य वासरे ।
धिग्यौवनं जीवितमर्थ संतति तेषामुखंनेहचदृश्यते परैः । ।

जो कोई श्री तुलसी से हमारी पूजा करता है और उसके विमल ओर बिना टूटे दल हमको समर्पण करता है उसके हृदय का पाप यमराज दूर कर देते हैं । जिन लोगों ने एकादशी के दिन हमारी तुलसी से पूजा नहीं किया उनके जीवन और काम और उनके संतान धिक्कार योग्य हैं और मुँह देखने के योग्य नहीं है ।

अगहन के महीने में दीपदान का बहुत फल है । यथा —

यः करोति सहोमासे कर्पूरेण च दीपकं ।
अश्वमेधमवाप्नोति कुलंचैव समुद्धरेत । ।
घृतेन चाथतैलेन दीपंयोज्वालयेन्नरः ।
सहोमासे ममाग्रेतु तस्यपुण्यफलं शृणु । ।
विहायसकलंपापं सहस्रादित्यसन्निभः ।
ज्योतिष्मता विमानेन ममलोके महायते । ।

जो कोई अगहन में कपूर का दीया बालता है उसको अश्वमेध का फल मिलता है और अपने कुल का उद्धार करता है । घी से अथवा तेल से जो लोग अगहन में हमारे सामने दीया बालते हैं वे लोग सब पापों से छूट के हजार सूर्य समान ज्योति पाते हैं और बड़े ज्योतिमान विमान पर बैठ के हमारे लोक जाते हैं ।

इत्यादि अष्टमे ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि अगहन में जो लोग हमारी प्रदक्षिणा करते हैं और जो हमैं अष्टांग दंडवत करते हैं वे लोग स्वर्ग में निवास करते हैं । यथा

प्रदक्षिणां दंडपातं यः करोति सदामम ।
सहोमासि विशेषेणहयाकलाम्बसतेदिवि । ।
पद्भ्यांकराभ्यांजानुभ्यांउरसाशिरसातथा ।
मनसा वचसा दृष्ट्याप्रणामो ऽष्टंगउच्यते ।।

जो लोग हमको दंडवत और प्रदक्षिणा कहते हैं वे लोग कल्प भर स्वर्ग में निवास करते हैं । पैर से १ । हाथ से २ । जंघा से ३ । छाती से ४ । शिर से ५ । मन से ६ । वचन से ७ । और दृष्टि से ८ । नमस्कार करने को अष्टांग दंडवत कहते हैं अर्थात् आठो अंग झुकैं और आठों अंग से नमस्कार करें उसको साष्टांग दंडवत कहते हैं ।

इत्यादि नवमे ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि एकादशी का व्रत और जागरण जो लोग करते हैं वे हमको अत्यंत प्रिय हैं और जागरण में जो लोग दीपदान इत्यादि करते हैं वे हमारे परम प्यारे हो जाते हैं ।

यथा —

यः पुनः कुरुते नृत्यं दीपं गानं च पूजनं ।
न तत् क्रतुशतैः पुण्यंव्रतैर्दानशतैरपि । ।

जो भक्त हमारे सामने नाचते हैं, दीपदान करते हैं, हमारा कीर्तन करते हैं, पूजा करते हैं उनके पुण्य के बराबर न सौ यज्ञ का पुण्य है और न सौ व्रत और दान का पुण्य है । इत्यादि द्वादशे ।

अब कौन देवता की पूजा करना चाहिए सो आप आज्ञा करते हैं कि अगहन में कीर्ति और केशव की पूजा करना चाहिए और सपत्नीक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । यथा —

सहोमासे चवै देवी कीर्तियुक्तोहि केशवः ।
तस्यपूजा प्रकर्तव्यायथापूर्व्वप्रभाषिता । ।
ब्राह्मणं केशवं कुर्य्यात्तत्पत्नीकीर्ति-संज्ञिकाः ।
दंपती विधिवत्पूज्यौ वस्त्राभरणधेनुभिः । ।
दम्पत्योः पूजनेवत्सपूजितो हंसदारकं ।

तस्मादवश्यं सम्पज्यौ दम्पती मम तुष्टये । ।

अगहन के महीने में कीर्ति देवी और केशव देवता की पूजा षोड़शोपचार से करना । ब्राह्मण को केशव मानना और ब्राह्मण पत्नी को कीर्ति समझ के वस्त्र गहना गऊ से दोनों की पूजा करना । दंपती ब्राह्मण के पूजा से हमारी और लक्ष्मी दोनों की पूजा होती है, इस हेतु हमारे तुष्ट होने के अर्थ दंपती की पूजा अवश्य करना ।

इत्यादि चर्तुदशे ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि अगहन में हमारे प्रिय कदंब वृक्ष की पूजा अवश्य करना । यथा —

मार्ग शुक्ले प्रतिपदिकदम्बंपूजयेत्तु यः ।
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं पुमान् प्राप्नोत्यसंशयः । ।
मार्गशीर्षे सिताष्टम्यां भोजनं च कदम्बके ।
सिकथे सिकथे च गोदानं पुमानप्राप्नोत्यसंशयः । ।
एकादश्यांव्रतंकुर्य्यात् द्वादश्यामरुणोदये ।
कदम्बम् पजयेद्भत्क्या साक्षाच्छ्रीकृष्णदर्शनं ।।
अखंडं दीपकंकुर्य्यान्नीपवृक्षे हरिप्रिये ।
सर्वान् कामानवाप्नोति वशीकरणमुत्तमं । ।
मार्गशीर्षेत्रयोदश्यांयोनीपम्पयसा ऽचर्येत् ।
बिन्दुनाबिन्दुनाचैव अश्वमेध फलं लभेत् । ।
मार्गशीर्षेचतुर्दश्यान्दधिनानीपमर्चयेत् ।
इह सन्तान वृद्विश्च परत्र परमंपदं । ।
मार्गशीर्ष्याम्पौर्णमास्यांगुञ्जाहारेणनीपकं ।
वेपृष्ट्येद्वनमालाभिः कृष्णस्वस्यवशोभवेत् ।।
इदंरहस्यं गोपनीयं पुत्र सर्व्वात्मनामम । ।

अगहन सुदी प्रतिपदा को जो कदम्ब की पूजा करते हैं वे आयुष्य, आरोग्य, ऐश्वर्य पाते हैं । अगहन सुदी अष्टमी को जो कदम्ब के नीचे भोजन करते कराते हैं वे एक एक ग्रास में गोदान का फल पाते हैं । एकादशी का व्रत करके द्वादशी को सबेरे जो कदम्ब की पूजा करता है उसको साक्षात् श्रीकृष्ण का दर्शन होता है । जो कदम्ब के सन्मुख अखंड दीपदान करता है उसको सब कामों का फल होता है । यह हमारा वशीकरण है । अगहन की तेरस को जो कदम्ब को दूध चढ़ाते हैं, उनको एक एक बूंद में अश्वमेध का फल होता है । मार्गशीर्ष की चौदस को जो कदम्ब को दही चढ़ाते हैं, उनको इस लोक में संतान और उस लोक में परम पद मिलता है अगहन सुदी पुनवासी को जो लोग कदम्ब को गुँजा की माला और बनमाला समर्पण करते हैं, साक्षात् श्रीकृष्ण उनके वश में हो जाते हैं ।

अब इससे बढ़ के और क्या फल होगा कि थोड़े साधन में और साक्षात् श्रीकृष्ण वश हो जायँ । ऐसा कौन होगा जो इस छोटे साधन को बड़े फल की इच्छा से न करै । यह केवल श्री भगवान की कृपा है कि हम जीवों के हेतु उसने ऐसे छोटे छोटे साधन बनाए हैं । देखो कदम्ब को एक दिन गुंजा की माला चढ़ाने से आप वश में हो जाते हैं, यह केवल उनकी दीन दयालुता है । अहो, ऐसा कौन मूर्ख होगा जो इस बात को जान के भी श्री कृष्ण को वश करने की इच्छा न करेगा ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि हे पुत्र इस रहस्य को आत्मा से अधिक गुप्त रखना ।

इत्यादि षोड़शे ।

यह स्कंद पुराण के मार्गशीर्ष माहात्म्य का सारांश यहाँ पर लिखा गया है, जिससे सज्जनों को संतोष होगा ।

अब अगहन में किस दान की विशेष महिमा है सो लिखते हैं ।

यथा —

तिलपात्रं तुयोदद्यान्मार्गशीर्षे सकांचनं ।
कुलानां नरकास्थानां तिलसंख्यासमुद्धरेत् । ।

मार्गशीर्ष के महीने में सोना समेत जो तिलपात्र दान करते हैं वे लोग जितने तिलदान करते हैं उतने कुलों का उद्धार करते हैं ।
पुनः यथा —

स्वशक्त्याघृतपात्रं तु सहिरण्यं प्रदापयेत् ।
यमलोकस्य पंथानं स्वप्नो ऽ पि न स पश्यति ।।

जो लोग अपनी शक्ति के अनुसार सोना समेत घी का पात्र दान करते हैं वे लोग सपने में भी नरक का रास्ता नहीं देखते । इत्यादि ।

अगहन के महीने में कपड़ा और जूता दान करने का बड़ा पुण्य है और अगहन महीने में तुलसी के सामने ब्राह्मण को खीर खिलाने का महाफल है ।

यथा —

तुलसीसन्निधौविप्रान् भोजयेद्यस्तुपायसैः ।
एकेतुभोजितेमार्गे कोटिर्भवतिभोजिता ।।

अगहन के महीने में तुलसी के सन्निधान जो लोग एक ब्राह्मण को खीर खिलाते हैं वे लोग कोटि ब्राह्मण भोजन का फल पाते हैं ।

और भी अगहन में पूजा की सामग्री और शालिग्राम दान करने की आज्ञा है ।

यथा —

कुंकुमंह्यगरूंचैवचंदनं गुग्गुलं तथा ।
पूजाद्रव्यं तथा चान्यं मार्गशीर्षेप्रयच्छति ।।
विप्रायवेदविदुषे वैष्णवाय विशेषतः ।
सगच्छेन्मामकेलोके संयुतः कुल कोटिभिः ।
शालिग्रामशिलांरम्यां मार्गशीर्षेद्विजातये ।
ददाति हेम सहितांदिव्यवस्त्रैश्चवेश्टितां ।।
रत्नपूर्णाम्वसुमतीं सशैल बन काननां ।
दत्वायत्फलमाप्नोतितेन तत् फलमाप्नु यात् ।।
शालिग्रामं तथा चक्रं शंखं घंटां तथैव च ।
ददाति तस्य पुण्यस्य संख्याकर्तुन्नशक्यते ।।

रोली अगर चंदन गुगुल और भी पूजा की सामग्री जो लोग वेदपाठी ब्राह्मणों को और विशेष करके वैष्णव को अगहन में देते हैं, वे लोग अपने करोड़ कुल के सहित हमारे लोक में जाते हैं । जो लोग अगहन में शालिग्राम की रम्य शिला सोना और वस्त्र समेत ब्राह्मण को देता है वह रत्नपूर्ण पृथ्वी पहाड़ वन समेत दान करने का फल पाता है और शालिग्राम, गोमती चक्र, शंख घंटा जो लोग देते हैं उनके पुण्य की संख्या नहीं कर सकते । इत्यादि

अगहन में स्त्रियों को सोहाग पेटारी दान करना चाहिए ।

यथा —

मासिमार्गशिरेतुस्त्री कुंकुमं मौक्तिकानि च ।
सिन्दूर कज्जलं चापिहैमान्याभरणानिच ।।
सुगन्धीन्यपिवस्तूनि ताम्बूलं रंजिताम्बरं ।
प्रयच्छतिद्विजातिभ्यो तस्य पुण्यफलं शृणु ।।
पतिव्रता पुत्रिणी च सुभगा जन्मजन्मनि ।
स्वप्नेपिभर्तृदुःखंसानपश्यतिकदाचन ।।

अगहन में रोली, मोती, सेंदुर, काजल, सोना गहना, चूड़ी, सुगंध, पान, रँगी साड़ी, और भी ऐना, कंधी, टिकुली इत्यादिक सोहाग की वस्तु जो स्त्रीदान करती हैं वह पतिव्रता होती हैं । उनके पुत्र जीते हैं, जन्म जन्म में भाग्यवान होती हैं और वह सपने में भी पति का दुःख नहीं देखतीं । अब मार्गशीर्ष में और अन्य

देवताओं के जो व्रत हैं वह लिखते हैं।

अगहन बदी तीज को स्त्रियों को सौभाग्य सुंदरी का व्रत सौभाग्य का देनेवाला है। इसकी विशेष विधि व्रतार्क आदि ग्रंथों में लिखी है। इत्यादि।

मार्गशीर्ष कृष्णा ११ को उत्पन्ना एकादशी का व्रत है। मत्स्यपुराण में इसकी कथा है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा है और श्रीकृष्ण ने आज्ञा किया है कि इस एकादशी को एकादशी का जन्म है और यह बड़ी पुनीत एकादशी है।

इत्यादि मात्स्ये उत्पन्नाव्रतं।

इसी अगहन बदी ११ को वैतरणी व्रत होता है। इसमें गोपूजन और गोदान करना चाहिए। यह कथा भविष्योत्तर पुराण की हेमाद्रि ग्रंथ में लिखी है। राजा युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा है। उन्होंने उसका विधान और फल कहा है।

एकादशी तिथिः कृष्णामार्गशीर्षगतानृप।
तामासाद्यनरः सम्यग्गृहणीयान्नियमं शुचिः।।
एकादशी तिथिः कृष्णानाम्ना वैतरणी शुभा।
साव्रतेनसदाकार्य्या नक्तावाचोपवासिनी।।
मध्यान्हेतुनरः स्नात्वा नित्यनिर्वर्तित क्रियाः।
रात्रौ सुरभिमानीय कृष्णमेर्चद्यथाविधि।।

इत्यादि भविष्योत्तरे वैतरणीव्रतं

इसी एकादशी को कृष्णा एकादशी का व्रत होता है। यह व्रत वाराह पुराण में पृथ्वी ने श्री वाराह जी से पूछा है सो आपने आज्ञा किया है कि इस कृष्णा एकादशी को व्रत करना तिलपात्र दान करना।

समस्तपातकहरं स्वर्गदंसर्व्वकामदं।
न समं कृष्णद्वादश्या किञ्चिदस्तिपरं भुवि।।
मार्गशीर्षे कृष्णपक्षे दशम्यामेकभुकनरः।
एकादश्यामुपवसेत् कृष्णास्याचीं समाचरेत्।।
स्नातवाच कृष्णैस्तु तिलैः प्रभाते दद्याच्यसम्यक् तिलयुक्त पात्रं।
नमोस्तुकृष्णाय पितुश्चमातुः हत्वात्यघं प्रापयतोस्वगत्यै।।

इत्यादि वाराह पुराणे कृष्णाव्रतं।

अगहन बदी अमावस्या को गौरी तपोव्रत सौभाग्य बढ़ने के हेतु करना चाहिए। यह अंगिरा ने कहा है कि इस व्रत के करने से स्त्री को रूप-सौभाग्य मिलता है। यथा —

आदौमार्गशिरेमासिह्यमावस्यादिने शुभे।
गृहणीयान्नियमं तत्र दन्तधावन पूर्व्वकं।।

इस दिन सौभाग्य वस्तु दान करना और सुवासिनी को भोजन कराना चाहिए। इत्यादि अंगिरोक्तं गौरीतपोव्रतं।

इसी अगहन की अमावस्या को स्त्रियों को सौभाग्य वृद्धि के हेतु महाव्रत लिखा है। यह हेमाद्रि ग्रंथ में कालिकापुराण की कथा लिखी है। यथा —

ततोमार्गशिरेमासि प्रतिपद्य परेहनि।
उपवसेत् स्वगुरुम् पृछ्य महादेवंस्मरेन्मुहुः।।
एवम्व्रतं महच्चैव ब्रह्मघ्नेप्यघमर्षणं।
धनमायुप्रदन्नित्यं रूप सौभाग्यदंपरं।।

इत्यादि कालिका पुराणे।

मार्गशीर्ष सुदी ५ को नाग की पूजा करना, यह बात हेमाद्रि ग्रंथ स्कंद पुराण में लिखी है। यथा —

शुक्लामार्गशिरे या चश्रावणेया च पंचमी।
स्नानैर्दानैर्बहुफला नाग लोकप्रदायिनी।।

इत्यादि स्कान्दे नागपंचमी।

अगहन सुदी ६ स्कंद षष्ठी वा चम्पाषष्ठी है । इसमें सूर्य और स्कंद की पूजा करना । इस मंत्र से कार्तिकेय की पूजा करना ।

सेनाविदारकस्कंद महासेन महाबल ।
रुद्रोमांगजषडवक्त्रं गंगागर्भनमोस्तुमे । ।
इत्यादि दिवोदासीये चम्पाषष्ठी ।

अगहन सुदी ७ सूर्य तीर्थ में नहाना और सूर्य की पूजा करना और श्रीयमुनाजी में वा पंचगंगा में स्नान करना, यह स्कंद पुराण के मार्गशीर्ष माहात्म्य में लिखा है ।

यथा —

मार्गशीर्षेतुयाशुक्ला सप्तमी भानुसंयुता ।
कर्तव्यासा प्रयत्नेन सूर्य्यपर्व शताधिका । ।
तस्यांदत्तंहुतंजप्तं तपस्तप्तं कृतंचयत ।
अक्षयंतद्विजानीयाद्यमुनायांन संशयः । ।
इत्यादि स्कांदे सूर्य सप्तमी

अगहन सुदी ११ मोक्षा एकादशी, हेमाद्रि ग्रंथ में भविष्योत्तर का वाक्य लिखा है । इसमें जागरण और दीपदान का फल विशेष है ।

इत्यादि मोक्षाव्रतं

अगहन सुदी १२ को मत्स्य पूजा करना । इस दिन मत्स्य भगवान का उत्सव है । यह बात स्कन्दपुराण के एकादशी माहात्म्य में लिखी है ।

यथा —

ततः प्रभात समये कार्य्यं मत्स्योत्सवंबुधैः । इत्यादि ।

अगहन सुदी १४ को पिशाच मोचन तीर्थ पर श्राद्ध करना, यह त्रिस्थलीसेतु में लिखा है । इसमें श्राद्ध से पित्रों का मोक्ष होता है ।

इत्यादि निर्णयसिन्धौ पिशाचमोचने श्राद्धं ।

अगहन सुदी १५ को दत्तात्रेय जन्म है, यह बात स्कंदपुराण के सह्याद्रि माहात्म्य में लिखी है । इससे दत्तात्रेय की पूजा और उनका दर्शन करना ।

यथा —

मार्गशीर्षे तथा मासिदशमेंहिनमुनिर्मले ।
मार्गशीर्षे पौर्णमास्यां मृगशीर्षयुते बुधे । ।
जनयामास दीप्यमानं पुत्रं सती शुभं ।
तम्विष्णुमागतं दृष्ट्वा अत्रिर्नामाकरोत्सवं । ।
दत्तवानस्वस्य पुत्रस्यदत्तात्रेयमितीश्वरम ।
इत्यादि स्कांदे दत्तात्रेयजन्मोत्सवः ।

इसी अगहन सुदी १५ को जो कुछ दान पुण्य स्नान बन पड़े करना उचित है । इस पूर्णिमा के समान कोई पर्व नहीं है, यह बात स्कंदपुराण के मार्गशीर्ष माहात्म्य में लिखी है ।

यथा —

स्नानं दानं तथा पूजां पूर्णायाग्रकरोति यः ।
षष्टि वर्ष सहस्राणि रौरवे परिपच्यते ।।१।।
गोदानंभूमिदानं च वस्त्रान्नादि च यद्भवेत ।
मार्गशीर्षे पौर्णमास्यांदानंस्यादक्षयं फलं । ।

अगहन की पुनवासी को जो स्नानदानादिक नहीं करते वह साठ हजार बरस रौरव में वास करते हैं ।
अगहन सुदी १५ को जो कुछ दान करता है वह अक्षय होता है ।
अगहन में श्रीमद्भागवत सुनने का बड़ा माहात्म्य है । यथा मार्गशीर्ष माहात्म्ये ।

श्रीमद्भागवतं नामपुराणं ब्रहम सम्मितं ।
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो ममसन्तोषकारणं । ।
यावद्दिनानि हे पुत्रशास्त्रं भागवतं कली ।
तावत्कुर्वन्ति पितरः स्वर्गेत्वमृत भोजनं । ।
यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्री मद् भागवतं भवेत् ।
गच्छामि तत्रतत्राहं गौर्यथासुतवत्सला । ।
इत्यादि श्रीमद्भागवत माहात्म्यं ।

मार्गशीर्ष में गोपी गोविंद तीर्थ की यात्रा और गोविन्द नाम स्मरण यही करना चाहिए ।

यथा वायु पुराणे लक्ष्मीसंहितायां काशी माहात्म्ये ।
गोपी गोविन्द तीर्थं तु गोपी गोविन्दसंज्ञकं ।
तत्रमार्गशिरेमासिमहिमावहु गीयते । ।
इति मार्गशीर्ष महिमा

मार्गशीर्ष महिमा

चतुर्वर्ग, मोक्षादिक पाने का बहुत सहज उपाय ।

हम लोग माघ वैशाख कार्तिकादि नहाने को अति पवित्र जानकर स्नान दानादिक करते हैं परंतु हम लोग नहीं जानते कि एक महीना इन सभों में महा पुनीत और थोड़ेसाधन में बहुत फल का देनेवाला बच गया है और उसमें हम लोग कुछ स्नानदानादिक नहीं करते और जिसके प्रसिद्धि के वास्ते हम बड़े आनंद से यह इश्तिहार देते हैं ।

वह गोप्यमासा जिसका माहात्म्य सब शास्त्रों में बड़े आदर से कहा है वह मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन का महीना है, जिसका गुन गान करने से महात्मा लोग तृप्त नहीं होते और यह महीना सब महीनों का राजा और भगवान का स्वरूप है ।

मासानाम्मार्गशीर्षो ऽहं । श्री कुमारिका गनों ने इसी के स्नान से श्रीकृष्ण को पाया था और स्कंद पुराण में इसकी बड़ी स्तुति लिखी है । यथा स्कांदे ब्रहमाप्रति भगवद्वाक्यम् ।

सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषुयत्फलं ।
सहसाप्नोतितत्सर्व्वं मार्गशीर्षे कृते सुत ।। १ ।।
यज्ञाध्ययनदानाद्यैस्सर्वतीर्थावगाहनै : ।
संन्यासेन च योगेन नाहम्वश्योभवामिच ।। २ ।।

यह श्री भगवान ने श्रीमत् भागवत और श्री भगवत् गीता में श्री मुख से आज्ञा किया है कि सब महीने में अगहन हमारा स्वरूप है । और स्कंदपुराण में भी ब्रहमा से श्री भगवान फिर आज्ञा करते हैं । यथा —

स्नानेन दानेनच पूजनेन होमे विधाने तपआदितश्च ।
वश्यो यथामार्गशिरेस्वमासि तथा न चान्येपुहिगर्भमुक्त ।। ३ ।।
माघाच्छतगुणं पुण्यं वैशाखे मासि लभ्यते ।
तस्मात् सहस्रगुणितं तुलासंस्थे दिवाकरे ।। ४ ।।
तस्माच्च कोटि गुणितं वृश्चिकस्थे दिवाकरे ।
मार्गशीर्षे ऽधिक तस्मात्सर्व्वदा मम वल्लभ ।। ५ ।।

आप कहते हैं कि हे गर्भमुक्त ब्रहमा, हम स्नान, दान, पूजन, होम, विधान इत्यादिक से वश नहीं होते, हम मार्गशीर्ष-स्नान से वश होते हैं । माघ में वैशाख का सौ गुना पुण्य है और वैशाख से हजार गुना पुण्य कार्तिक में है और कार्तिक से करोड़ गुना पुण्य वृश्चिक के सूर्य में, और अगहन में इससे भी अधिक पुण्य है ।

इस हेतु आप लोगों को इस अगहन के महीने में जो कुछ बन सकै स्नान, दान तुलसी-कदंब-पूजन करना चाहिए ।

स्कंदपुराणे मार्गशीर्ष माहात्म्ये ।

मार्गशीर्षं न कुर्व्वन्ति ये नरा पाप मोहिताः ।
पाप रूपाहि ते ज्ञेया कलि काले विशेषतः । ।
धन्यास्ते कृतिनो ज्ञेया ये यजन्ति जनार्द्दनम् ।
कर्मणा मनसा वाचा भक्तितश्च भजन्ति ये ।। ७ ।।
मार्गशीर्षे महापुण्या मथुरा काशिका यथा ।
मथुरा स्नातु कामस्तु गच्छतस्तु पदे पदे ।। ८ ।।
निराशानि व्रजंत्येव पातकानि न संशयः ।
गोदादं स्वर्णदानं च वस्त्रान्नादि च यद्भवेत् ।। ९ ।।
पौर्णमास्यां सहोमासे दाने स्यादक्षम् यफलम् ।
सा पौर्णमासी लभ्येत गंगायां यदि भाग्यतः ।। १० ।।
स्नानादेव फलं तत्र यज्ञकोटिसमं भवेत् ।
पूजयेत् संस्मरेद्यस्तु कदम्बं सर्वकामदम् ।। ११ ।।
सर्व्वान्कामानवाप्नोति इहामुत्र न संशयः ।
कदम्ब मूलसंभूतां मृदं देहे विभर्त्ति यः ।। १२ ।।
सर्वतीर्थादिकं पुण्यं लभते मानवो भुवि ।

जो पाप मोहित लोग मार्गशीर्ष स्नान नहीं करते उन्हें इस कलियुग में विशेष करके पाप रूप जानना । वे सुकृती लोग धन्य हैं जो तन, मन, धन, वाणी और कर्म से श्री भगवान की सेवा करते हैं । अगहन के महीने में मथुरा और काशी में महाफल होता है । जो लोग मथुरा स्नान करने जाते हैं, उनके पाप भाग जाते हैं । अगहन की पुनवासी को सब दान अक्षय होते हैं । और भाग्य से यह पुनवासी में जो श्री गंगा स्नान बन जाय तो सैकड़ों करोड़ पुनवासी का फल मिलै । जो अगहन में कदम्ब की पूजा करते हैं उनके सब काम सिद्ध होते हैं । जो लोग कदंब के जड़ की मिट्टी का तिलक करते हैं, उनको सब तीर्थ स्नान का फल मिलता है ।

सब दिन स्नान न बनै तो पीछे के पाँच दिन हरिपंचक में अवश्य स्नान करै । यथा पाद्मे-स्कंदे च ।

हरिपंचक विख्यातं सर्व्व लोकेषु सिद्धिदम् ।
नारीणां च नरादीनां सर्व्वदुःख निबर्हणम् । ।

इस अगहन के महीने में आप लोगों से जो कुछ बनै स्नान दानादिक कीजिए ।

माघस्नान-विधि

रचनाकाल सन् १८७३। — सं.

माघ स्नान विधि

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ।।१।।

माघ-स्नान पूस सुदी एकादशी वा पूनम से प्रारंभ करके माघ सुदी द्वादशी वा पूनम को समाप्त करना चाहिए। माघ में मूली नहीं खानी। नहाने की विधि के अनुसार स्नान करना।

माघ स्नान के मंत्र

दुःख दारिद्रय नाशाय श्री विष्णोस्तोषणाय च।
प्रातः स्नान करोम्यद्य माघे पापविनाशनमें ।।२।।
मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव।
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ।।३।।

सूर्य को अर्घ देने का मंत्र

सवित्र प्रसवित्रेच परन्धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा।

माघ स्नान का समय ठीक सूर्य उदय होने के पीछे परंतु किसी का मत है कि अरुणोदय में नहाना। जो सारा माघ न नहाया जाय सके तो तीन दिन नहाना। मकर संक्रांति, रथसप्तमी और माघी पूनम ये तीन दिन। वा माघ बदी तेरस, चौदस, अमावस। वा माघ सुदी दसमी, एकादशी, द्वादशी वा संक्रांति के पीछे तीन दिन। पर मुख्य तीन दिन तेरस से अमावस तक ही है। माघ नहाकर उसी समय आग नहीं तापना। तिल में मीठा मिलाकर दान करना और उसी का होम करना, तिल से तर्पण करना, तिल देना और तिल खाना। अमला, तेल, लकड़ी, कम्मल, एक रत्ती सोना और कपड़े तथा जूतों के जोड़े ब्राह्मणों को देना। जब माघ स्नान समाप्त हो उस दिन घी तिल मीठा का होम कर इस मंत्र से सूर्य की प्रार्थना करना।

दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तुते।
परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमपुः पत ।।

माघ में मकर संक्रांति में स्नान करके वस्त्र और तिल धनु दान करना। माघ की अमावस्या को मौन स्नान करना। इस दिन जो सोमवार वा मंगल हो तो पुण्य विशेष है। अमावस्या यदि रविवार को हो और उस दिन श्रवण वा अश्विनी वा धनिष्ठा वा आर्द्रा वा अश्लेषा वा मृगशिरा नक्षत्र हो तो भी बड़ा फल है। माघ बदी ४ को गणेशपूजन। माघ बदी १४ को यम तर्पण करना। माघ सुदी ४ को ढुंढिराज का व्रत और पूजन करना। माघ सुदी ५ श्री पंचमी है, इस दिन कुंद के फूल से लक्ष्मी की पूजा करनी और नए अंकुर तथा नई बौर से कामदेव की पूजा करनी। माघ सुदी ७ रथसप्तमी है। इसमें अरुणोदय में स्नान का बड़ा पुण्य है। जल से जल हिलाकर धतूर के सात पत्ते सिर पर रखकर इन मंत्रों से नहाना।

यद्यज्जन्मकृतं पापं मया जन्मसुसप्तसु।
तन्मेरोगंचशोकंच माकरी हन्तु सप्तमी ।।१।।
एतज्जन्मकृतं पापम यच्चजन्मांतरार्जितम।

मनोवाक्कायजं यञ्च ज्ञाताज्ञातेच येपुनः ।।२।।
इतिसप्तविधंपापम् स्नानान्मे सप्त सप्तिके ।
सप्तव्याधि समायुक्तम् हर माकरिसप्तमि ।।३।।

स्नान के समय कुसुम मिली बत्ती का दिया सिर पर ऊँचा करके मंत्र से जल में सूर्य को दे ।

नमस्ते रुद्ररूपाय रसानाम्पतये नमः ।
वरुणाय नमस्तेस्तु हरिवास नमोस्तुते ।।४।।

चंदन से अष्टदल लिखकर बीच में प्रणव सहित शिव पार्वती लिखकर क्रम से इन नामों से कमल के पत्तों पर सूरज की पूजा करै । रवयेनमः, भानवेनमः, विवस्वतेनमः, भास्करायनमः, सवित्रेनमः, अर्क्कायनमः, सहस्रकिरणायनमः । सोने के सूर्य तिल पात्र में रख कर ब्राह्मण को दे और इस मंत्र से सूर्य अर्घ्य दे ।

सप्त सप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन ।
सप्तमी सहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ।।५।।
जननी सर्वलोकानां सप्तमीसप्त सप्तिके ।
सप्तव्याहृतिकेदेवि नमस्ते सूर्यमंडले ।।६।।

सोने का कनफूल वा सोने का दिया और सोने का न हो सकै तो तिल के आटे का बनाकर तामे के पात्र में तिल गुड़ घी समेत लाल कपड़े में समेट कर इस मंत्र से दान करै ।

आदित्यस्य प्रसादेन प्रातः स्नान फलेनच ।
दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मयादत्तं तुतालकम् ।।७।।

यही सप्तमी मन्वादि भी है । इसी सप्तमी को रथदान का बड़ा फल है । माघ सुदी अष्टमी का तिल लेकर भीष्म तर्पण करना । मंत्र —

भीष्मः शान्तनवो वीरस्सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्र पौत्रोचितांक्रियाम् ।।८।।
वैयाघ्रपद गोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।
अपुत्राय ददाम्येतज्जलम्भीष्मायवर्म्मणे ।।९।।
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजायच ।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे ।।१०।।

यह तर्पण जिसका पिता जीता हो वह भी अपसव्य से करै । माघ सुदी द्वादशी का नाम भीम द्वादशी है । माघ की पूनम को स्नान का बड़ा पुण्य है । जो मेष के शनैश्चर और गुरु चंद्रमा सिंह के और सूर्य श्रवण नक्षत्र में हो तो महामाघी होती है । इति

प्रानपियारे प्रेमनिधि, प्रेमिन-जीवन-प्रान ।
तिनके पद अरपन कियो, माघ नहान विधान ।।

द्वादश्यां पुराण निषेधः ।

पाद्मे सप्ताह-माहात्म्ये कुमार-नारद-सम्वादः

नित्यायाञ्च कथायान्तु पुराणानाम्मुनीश्वरं ।
द्वादशीम्वर्जयेत् प्राज्ञस्सूत सूतक संभवात् ।।१।।
श्रीमद्भागवतस्यापि सप्ताहे नैत्यिकेपिच ।
न निषेधोस्ति देवर्षे प्राहुरेवम्पुराविदः ।।२।।
श्री भागवत सप्ताहो महायज्ञः स्मृतोबुधैः ।
आषाढ़ शुक्लाद्वादश्याम्पारणाहनिपार्वति ।।३।।
पूर्वार्द्धे यामवेलायाम्भावित्वात्कृष्णमायया ।
मुग्धोदर्भकरो रामआहल्लोमहर्षमिति ।।

पौराणिकैर्ज्ञेयम्

वृहन्नारदीय पुराण से सगृहीत

पुरुषोत्तममास-विधान

'तत्कर्महरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया'

सन् १८७२ में लिखी गयी है। बतौर पुस्तक सन् १८७३ में छपी। इस किताब में 'अधिक मास' का माहात्म्य है, इसमें कहीं कहीं पुराणों के वाक्य भी उद्धृत हैं। पहले इसी में पुरुषोत्तम पंचक भी था। बाद की ग्रंथावली में उसे अलगाया गया है।
— सं.

पुरुषोत्तममास विधान

मृगमद मुद्रित चारु कपोलम्। मृग मद मोचन लोचन लोलम्।।
मृगमद मेचक सुन्दर रूपम्। नौमि हरिं वृन्दावन भूपम्।।१।।

दोहा।

श्री पुरुषोत्तम-राधिका चरण-शरण रहु आय।
कटि जैहैं भवभोग भय, रोग कुसोग बलाय।।१।।
जिन पुरुषोत्तम नाम सुभ, सहस कहे रुचि गाय।
सो पुरुषोत्तम बदन बपु, वल्लभ होहु सहाय।।२।।
पुरुषोत्तम-पद जुग सुमिरि, धरि हिय परम अनंद।
पुरुषोत्तम की विधि लिखी, पुरुषाधम हरिचंद।।३।।

एक समय अनेक देवर्षि, राजर्षि, शिष्य, प्रशिष्य समेत लोकोपकारशील स्वयम् तीर्थरूप तीर्थपाद चरणारविन्द मधुव्रत तीर्थ यात्रा के मिस नैमिषक्षेत्र में एकत्र हुए और वहाँ महाभागवत सूत पौराणिक भी आए। सूतजी से ऋषियों ने इस असार संसार के पार जाने का उपाय और श्री कृष्ण की लीला का प्रश्न किया। सूतजी बोले मैं अनेक तीर्थों में भ्रमण करता हुआ श्रीगंगाजी के किनारे भगवान श्री शुकदेव जी के मुखारविंद से श्री मद्भागवत रूपी मधुर सुधारस का पान करके आया हूँ, जो आज्ञा हो वह कथा आप लोगों को सुनाऊँ। ऋषियों ने कहा सहज उपाय से भगवत्-प्राप्ति का जो साधन हो वह कहिए। सूतजी बोले — एक दिन भगवान नारद जी चारों ओर घूमते हुए बद्रिकाश्रम में भगवान नारायण के पास गए और यही प्रश्न किया कि भगवन् कलियुग के जीवों को स्वल्प साधन में भगवान की प्राप्ति का उपाय कहिये। यह सुनकर भगवान नारायण ने पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य कहा। पांडवों को वन में अत्यंत क्लेशित देखकर उनका दुख से छूटने हेतु भगवान श्री कृष्णचंद्र ने पुरुषोत्तम माहात्म्य सुनाया। सब मासों के एक एक देवता नियत हैं, इससे जब पहले मलमास पड़ा तब उसका कोई देवता नहीं था और इस कारण लोग उसकी निन्दा करते थे। मलमास इस बात से अत्यंत दुखी होकर भगवान के पास गया और भगवान वैकुंठनाथ उसको लेकर गोलोक में गए। पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्द घन भगवान श्री कृष्णचंद्रमलमास का दुख सुनकर बोले मैं पुरुषोत्तम तेरा स्वामी हूँ अतएव तेरा नाम आज से पुरुषोत्तम मास होगा और सब मासों में तेरा फल विशेष होगा। जो साधन लोग कार्तिकादि पुण्य मासों से अनेक वर्ष में भी करके फल न पावेंगे, वह पुरुषोत्तम मास के थोड़े साधन में फल पावेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण धर्मराज जी से कहते हैं कि पूर्व जन्म में जब द्रौपदी मेधावी ऋषि की कन्या थी तब दुर्वासा ऋषि ने इसे पुरुषोत्तम मास का व्रत करने को कहा था परंतु स्त्री-बुद्धि से इसने पुरुषोत्तम मास का अनादर किया और शिवजी का व्रत करके पाँच बेर पति माँगकर तुम पाँचों को पति पाया, परंतु पुरुषोत्तम के अनादर से बारहवर्ष की विपत्ति भोगनी पड़ी। सो तीन महीने पीछे पुरुषोत्तम मास आनेवाला है, सो इसमें तुम लोग अवश्य व्रत करना।

भगवान श्रीकृष्णचंद्र की आज्ञानुसार पांडवों ने पुरुषोत्तम मास का व्रत किया और विपत्ति से छूटकर भगवान की कृपा से उत्तरोत्तर अनेक शुभफल पाया ।

नारद जी से भगवान नारायण बोले — पूर्व काल में सत्ययुग में हैहय देश का राजा दृढ़धन्वा था । पुष्करावर्त्त नगर उसकी राजधानी थी और विदर्भ नगर के राजा की कन्या गुणसुंदरी उसकी रानी थी । चारुमती कन्या और चित्रवाक, चित्रबाहु, मणिमान और चित्रकुंडल यह चार पुत्र थे । इस राजा का पुण्य प्रताप ऐश्वर्य सब महान अखंडित था । एक दिन राजा को अकस्मात चिंता हुई कि किस पुण्य से हमको ऐसा अखंड ऐश्वर्य मिला । इसी चिंता में राजा शिकार खेलता हुआ एक मृग के पीछे गहन वन में घुस गया और एक वृक्ष के नीचे थककर विश्राम करने लगा, तो वहाँ एक सुग्गे को यह पढ़ते हुए सुना —

पाय जगत में सकल सुख, करत न तत्व विचार ।
असत विषय भूल्यो फिरत किमि लहिहै भव पार ।।३।।

सुग्गे को मनुष्य की बोली बोलते और परम तत्त्व के पूर्वोक्त वाक्य को पढ़ते सुनकर राजा को अत्यंत आश्चर्य और मोह हुआ । यहाँ तक कि घर आकर काम काज छोड़कर रात दिन उसी सुग्गे का वाक्य सोचने लगा । एक दिन भगवान वाल्मीकि इस राजा के घर पर आए और राजा ने बड़ी नम्रता से सुग्गे के वाक्य का आशय पूछा । वाल्मीकि जी ध्यान करके बोले — पूर्व जन्म में आप ताम्रपर्णी के निकट सुदेव नामक ब्राह्मण थे । अपनी स्त्री गौतमी सहित पुत्र के हेतु आपने भगवान की बड़ी तपस्या किया । यद्यपि सुदेव के सात जन्म में भी पुत्र नहीं लिखा था तथापि भगवान के वाक्य से गरुड़जी ने सुदेव को पुत्र का वरदान दिया । सुदेव ने शुकदेव नामक एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्र पाया परंतु देवल ऋषि के कहे हुए फल के अनुसार बारह वर्ष की अवस्था में वह बावली में डूब कर मर गया । सुदेव पुत्र-शोक से अत्यंत व्याकुल होकर रोने लगा और यहाँ तक कि संयोग से उस समय आया हुआ पुरुषोत्तम मास उसने बिना अन्न जल के बिता दिया । इस व्रत से भगवान प्रसन्न होकर प्रगट हुए और कहा कि तुमने हठ करके पुत्र का वरदान लिया था, इससे धनुश्शर्मा ब्राह्मण की भाँति अंत में दुख पाया । अब तुम्हारा पुत्र जी जायगा और तुम बारह हजार वर्ष पुत्र सहित इस शरीर में रहकर अंत में सुधन्वा नामक राजा होगे और चार पुत्र, एक कन्या और राज्य का अखंड ऐश्वर्य पाओगे । सो उसी पुण्य से आपने यह राज्य और ऐश्वर्य पाया है ।

वह सुग्गा आपका पूर्व जन्म का शुकदेव नामक पुत्र था, जो आप को राज-काज में मग्न देखकर आपके हित के हेतु सुग्गे के रूप में आपको चितावनी का शुभ वाक्य सुना गया ।

वाल्मीकि जी से अपने पूर्व जन्म का चरित्र और पुरुषोत्तम का विचित्र माहात्म्य सुनकर सुधन्वा ने उनसे पुरुषोत्त मास की विधि पूछी । ऋषि बोले —पुरुषोत्तम मास में ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शौच करके और दंत धावन करके तीर्थ में स्नान करे फिर गोपी चंदन का ऊर्ध्व पुंड्र और शैव हो तो त्रिपुंड्र तिलक लगाकर भुजापर शंख चक्र का चिन्ह लगाकर संध्या करे । फिर पवित्र स्थान में चावल का अष्ट दल बनाकर उस पर सोने चाँदी तामे पीतल वा मिट्टी का कलश रक्खे, कलश में इन मंत्रों से जल भरे —

कलशस्य मुखे विष्णु: कंठे रुद्र: समास्थित: ।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणा: स्मृता: ।।
कुक्षौतु सागर: सर्व्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदो ऽर्थ यजुर्वेदस्सामवेदो ह्यथर्वण: ।
अंगैस्तु सहिता: सर्वे कलशं हि समाश्रिता: ।।
गंगा गोदावरी चैव कावेरी च सरस्वती ।।
अयान्तु मम शान्त्यर्थम् दुरितक्षयकारका: ।।

इस मंत्र से कलश की प्रतिष्ठा करके, कलश का पूजन करके एक तंदुल पूर्णपात्र कलश के ऊपर रक्खे । उस पर पीला कपड़ा बिछा कर श्री राधिका सहित भगवान की सोने की मूर्ति स्थापन करके पुरुषोत्तम बीज और नीचे लिखे हुए मंत्रों से प्राणप्रतिष्ठा करे ।

ॐ तद्विष्णो: परमम्पदं सदा पश्यन्ति सूरय: दिवीव चक्षुराततं स्वाहा
ॐ अस्यै प्राणा: प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणा: क्षरन्तु अस्यै देवत्व संख्यायै स्वाहा

जो वेद मंत्र का अधिकार न हो तो श्री राधिका सहित पुरुषोत्तमायनम : स्वाहा --- इस मंत्र से प्राणप्रतिष्ठा करके नीचे लिखी हुई विधि से पूजा करें ।

आगच्छ देवेश श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम ।
राधया सहितश्चात्र गृहाण पूजनं मम ।।२।।

श्रीराधिका सहित पुरुषोत्तमनम : आवाहनं समर्पयामि इत्यावाहनं ।

नाना रत्नसमायुक्तं कार्तस्वरविभूषितं ।
आसनं देव देवेश गृहाण पुरुषोत्तम ।।२।।

श्री राधा. आसनं.

गंगादि सर्व तीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतं ।
तोयमेतत्मुखस्पर्श पादार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।३।।

इति पाद्यं

नंदगोपगृहेजातो गोपिकानन्दहेतवे ।
गृहाणघर्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ।।४।।

इत्यर्घ्यं

गंगाजलं समानीतं सुवर्णकलशस्थितं ।
आचम्यतां हृषीकेश पुराणपुरुषोत्तम ।।५।।

इत्याचमनं

कार्य्यं सिद्धिमायातु पूजिते त्वयिधातरि ।
पञ्चामृतैर्मया नीतै राधिकासहितो हरे ।।६।।

इति स्नानं

पयोदधिघृतं गव्यं माक्षिकं शर्करा तथा ।
गृहाणेमानि द्रव्याणि राधिकानन्ददायक ।।७।।

इति पंचामृत स्नानं .

योगेश्वराय देवाय गोवर्द्धनधराय च ।
यज्ञानांपतये नाथ गोविन्दाय नमोनम : ।।८।।
गंगाजल : समम् शीतं नन्दितीर्थसमुद्भवं ।
स्नानं दत्तं मया कृष्ण गृह्यतां नन्दनन्दन ।।९।।

इति पुन : स्नानं

पीतांबर युगं देवसर्वकामार्थसिद्धये ।
मया निवेदितं भक्तया गृहाण सुरसत्तम ।।१०।।

इति वस्त्रं आचमनञ्च

दामोदर नमस्तेस्तु त्राहि मां भवसागरात् ।
ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम ।।११।।

उपवीतं आचमनं

श्रीखण्ड चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरं ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यतां ।।१२।।

चन्दनं

अक्षतास्तु सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ता: सुशोभिता : ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम ।।१३।।

इत्यक्षतान्

माल्यादीनि सुगन्धीनी मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मया हृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यतां ।।१४।।

इति पुष्पाणि । ततोङ्ग पूजा

नन्दात्मजो यशोदायास्तनय: केशिसूदन: ।
भूभारोत्तारकश्चैवह्यनन्तो विष्णुरूपधृक ।।१५।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च श्रीकंठ: शकलास्त्र दृक ।
वाचस्पति: केशवश्च सर्वात्मेति च नामत: ।।१६।।
पादौ गुल्फौ तथा जानू जघने च कटी यथा ।
मेढ्रं नाभिं च हृदयं कंठे बाहु मुखं तथा ।।१७।।
नेत्रे शिरश्च सर्वाङगं विश्वरूपिणमर्चयेत
पुष्पाण्यादायक्रमशश्चतुर्थ्यंतैर्जगत्पतिं ।।१८।।
प्रत्यंग पूजां कृत्वातु पुनश्च केशवादिभि: ।
चतुर्विंशति मंत्रैश्च चतुर्थ्यंतैश्च नामभि: ।।१९।।
पुष्पमादाय प्रत्येकं पूजयेत् पुरुषोत्तमं ।।२०।।
वनस्पति रसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तम: ।
आघ्रेय: सर्व देवानां धूपो यं प्रतिगृह्यतां ।।२१।।

इति धूपं

त्वं ज्योति सर्वदेवानां तेजसां तेज उत्तमं ।
आत्म ज्योति: परंधाम दीपोयं प्रतिगृह्यतां ।।२२।।

इति दीपं

नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्ति में ह्यचलां कुरु ।
ईप्सित मे वरं देहि परत्र च परांगति ।।२३।।

इति नैवेद्य

मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं ।

गंगाजलं समानीतं सुवर्णाकलशस्थित ।
आचमयतां हृषीकेश त्रैलोक्यव्याधिनाशन ।।२४।।

इत्याचमनं

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन में सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ।।२४।।

इति श्रीफलं

गंध कर्पूर संयुक्तं कस्तूर्यादि सुवासितं ।
करोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर ।।२६।।

इति करोद्वर्तन

पूगीफल समायुक्तं सकर्पूरं मनोहरं ।
भक्तया दत्तं मया देव तांम्बूलं प्रतिगृह्यतां ।।२७।।

इति तांम्बूलं

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसो: ।
अनन्त पुण्यफलद मत: शांति प्रयच्छमे ।।२८।।

इति दक्षिणां

शारदेंदीवरश्यामं त्रिभंगललिताकृतिं ।
नीराजयामि देवेशं राधया सहितं हरिं ।।२९।।

इति नीराजनम्

रक्षरक्ष जगन्नाथ रक्ष त्रैलोक्यनायक ।
भक्तानुग्रहकर्त्ता त्वं गृहाणस्मत् प्रदक्षिणां ।।३०।।

इति प्रदक्षिणां

यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ।
यज्ञानांपतयेनाथ गोविन्दाय नमोनमः ।।३१।।
इति मंत्र पुष्पम्
विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ।
विश्वस्यपतये तुभ्यं गोविन्दाय नमोनमः ।।३२।।
इति नमस्कारान्
मंत्रहीनेति मन्त्रेण क्षमाप्य पुरुषोत्तमम् ।
स्वाहांतैर्नाम मंत्रैश्च तिल होमो दिनेदिने ।।३३।।
इति

पूजन करके हविष्यान्न भोजन करे । मांस, मद्य और मादक वस्तु, द्विदल, तैल पक्व बड़ी, उरद, मसूर इत्यादि वस्तु न खाय । भाव-दुष्ट, क्रिया-दुष्ट और शब्द-दुष्ट वस्तु का वर्जन करे । पराये का द्रोह, अन्न, स्त्री और धन से दूर रहे । बिना तीर्थ परदेश न जाय, निंदा न करे, जंभीरी नीबू बासी अन्न, ब्राह्मण का बेचा हुआ रस, भूमि से उत्पन्न लवण, ताम्रपात्र में रक्खा हुआ गव्य, चमड़े के बर्तन का जल, ये सब मांस के तुल्य हैं । रजस्वला, म्लेच्छ, पतित, व्रात्य और देव-ब्राह्मण-द्रोही से पुरुषोत्तम में संबंध न रक्खे । इनका और कौवे का, सूतकवाले का छूआ अन्न और दो बेर पकाया हुआ तथा जला हुआ अन्न न खाय । प्रतिपदा से पूर्णिमा तक कूषमांड आदिक का वर्जन करे और जो वस्तु छोड़े वह वस्तु ब्राह्मण को दान दे । केवल दूध पीकर वा घी पीकर फलाहार करके वा अयाचित खाकर उपवास, एक नक्त वा नक्त व्रत जो बन पड़े और बिना कष्ट निबहै वह करे । शालिग्राम का पूजन करै, श्रीमद्भागवत सुने और सायंकाल को दीपदान करे ।

राजा दृढ़धन्वा ने वाल्मीकि ऋषि से दीपदान का माहात्म्य पूछा, इस पर वाल्मीकि जी ने कहा —प्राचीन काल में सौभाग्य नगर में एक चित्रभानु नाम राजा था और चंद्रकला नामक उसकी रानी थी । यह राजा धन धान्य सब प्रकार से सुखी था । एक दिन इसके यहाँ अगस्त ऋषि आये और राजा ने अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत पूछा । मुनि ने कहा — तुम बड़े दुष्ट मणिग्रीव नाम शूद्र थे और यह रानी तुम्हारी पतिव्रता स्त्री थी । कुकर्म में सब धन खोकर शिकार खेलकर अपनी जीविका करते थे । एक दिन घोर वन में मार्ग भूले हुए उग्रदेव नामक थके ब्राह्मण की तुम लोगों ने बड़ी सेवा किया और उनसे अपना दुःख निवेदन किया । इससे प्रसन्न होकर ऋषि ने पुरुषोत्तम मास में दीपदान करने का उपदेश किया और मणिग्रीव ने वन में इंगुदी के तेल से दीपदान किया, जिससे भगवान ने प्रसन्न होकर तुमको वरदान दिया और इस जन्म में तुमको सब सुख मिले ।

दीपदान का माहात्म्य सुनकर दृढ़धन्वा ने पुरुषोत्तम के उद्यापन की विधि पूछी । वाल्मीकि जी ने उत्तर दिया कि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी वा नौमी वा अष्ठमी को उद्यापन करना । तीस सपत्नीक ब्राह्मण को न्यौता देना और पंचधान्य का सर्वतोभद्र बनाकर चारों दिशा में चार कलशों पर वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का स्थापन करना । बीच में नित्य पूजित श्री राधिका सहित श्री पुरुषोत्तम का स्थापन करना । एक वैष्णव ब्राह्मण को आचार्य और चार ब्राह्मणों को जप की वरणी देकर चारों दिशा में दीपदान करके चतुर्व्यूह का जप करना और भगवान की पूजा करना । पंचरत्न और फल से भगवान को भक्तिपूर्वक अर्घ्य देना ।
अर्घ्य मंत्र —

देवदेव नमस्तुभ्यम्पुराणपुरुषोत्तम ।
गृहाणर्घ्यम्मयादत्तं राधया सहितो हरे ।।
वन्दे नवघनश्यामं द्विभुजं मुरलीधरम् ।
पीताम्बरधरं देवं सराधं पुरुषोत्तमम् ।।

फिर तिल से श्री राधिका सहित पुरुषोत्तमायनमः स्वाहा इस मंत्र से होम करना और तर्पण मार्जन के पीछे भगवान का नीराजन करना ।

मंत्र

नीराजयामि देवेशमिन्दीवरदलच्छविम ।
राधिकारमणंप्रेम्णा कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ।।

फिर क्षण भर भगवान का ध्यान करना ---

अन्तर्ज्योतिरनन्तरन्तरचिते सिंहासने संस्थितम् ।
वंशीनादविमोहितं व्रजवधू वृंदावने सुन्दरम् ।।
ध्यायेद्राधिकया सकौस्तुभमणि प्रद्योतितोरस्थलम् ।
राजद्रर्लकिरीटकुण्डलधरं प्रत्यग्र पीताम्बरम् ।।

फिर पुष्पांजलि देना और प्रणाम करना । मंत्र —

नौमि नव्यघनश्यामं पीतवाससमच्युतम् ।
श्रीवत्सभासितोरस्कं राधिकासहितं हरिम् ।।

फिर ब्रह्मा को पूर्णपात्र दान करके गोदान करना और घृतपात्र, तिलपात्र, उमा महेश्वर, सोहागपिटारी, वस्त्र, पद इत्यादि दान करना और जो श्रीमद्भागवत करे तो बड़ा ही पुण्य है । पुरुषोत्तम मास में श्री भागवत दान की समता अन्य दान नहीं कर सकते ।

और तीस कांसे की थाली में तीस तीस पूआ रखकर ब्राह्मणों को दान देना । और भी अन्न दानादि जो बन पड़े वह देना । अमावस्या की रात को जागरण करके सबेरे पूजा पीठ और सोने की मूर्ति दान देना । मंत्र —

श्रीकष्ण जगदाधार जगदानन्ददायक ।
ऐहिकामुष्मिकान्कामान् निखिलान् पूरयाशु मे ।।१।।
मंत्रहीनम् क्रियाहीनम् विधिहीनम् जनार्दन ।
व्रतं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादादयानिधे ।।२।।

फिर जो वस्तु का त्याग किया हो, उसका यथाक्रम दान करना । यथा ---नक्त व्रत में भोजन, अयाचित में स्वर्णदान, धात्री स्नान में दधि, फल न खाया होय तो फल, तेल छोड़ा होय तो घी, घी छोड़ा होय तो दूध, अन्न छोड़ा होय तो अन्न, भूमि-शयन लिया होय तो सेज, पत्र भोजन किया होय तो घी-चीनी, मौन लिया होय तो घण्टा, तिल और सोना । क्षौर न बनवाया हो तो दर्पण, जूता छोड़ा होय तो जूता, नमक छोड़ा होय तो घी, गुड़, तेल और नमक, दीपदान का नेम लिया होय तो ताँबे का दिया और सोने की बत्ती और एकान्तर उपवास किया होय तो वस्त्र सहित आठ कुंभ दान करे । पुरूषोत्तम मास में एक अन्न भोजन करने का बड़ा पुण्य है ।

वाल्मीकि जी से पूर्व जन्म का वृत्तांत और पुरुषोत्तम-माहात्म्य सुनकर राजा स्त्री सहित वन में जाकर तपस्या करके अंत में गोलोक में गया ।

नारायण नारद जी से कहते हैं कि कंदर्प नामक ब्राह्मण बड़ा पापी था, जन्म भर में केवल एक वैश्य को पुरूषोत्तम की पूजा करते दर्शन किया था और कोई पुण्य नहीं किया था । इसी पाप से एक जन्म में प्रेत और दूसरे में वह बंदर हुआ परंतु पुरूषोत्तम के पूजा के पुण्य से इन्द्रनिर्मित मृगतीर्थ पर उसका निवास हुआ और किसी समय पुरुषोत्तम मास में एक बेर उसने दुःखित होकर तीन दिन तक कुछ न खाया, न पीया और उसी तीर्थ पर प्राण त्याग किया और पुरुषोत्तम के प्रभाव से अंत में गोलोक गया ।

नारद जी के प्रश्न पर श्रीनारायण दिनचर्य्या कहते हैं ।

प्रातःकाल की क्रिया समाप्त करके पंचभूत देव पितृ बलि देकर अतिथि को भोजन कराकर दो वस्त्र से अकेले एक पात्र में पूर्वा पर आचमन संयुक्त भोजन करना । भोजन के पीछे पान खाकर भगवान के ध्यानपूर्वक भक्तिशास्त्र का विचार करना । तीसरे पहर धर्माविरूद्ध व्यवहार करना । साँझ को तीर्थ पर देहशुद्धि पूर्वक संध्या करके दीपदान करके भगवान का स्मरण करके शयन करना ।

इसके पीछे नारायण ने पतिव्रता के धर्म और पुरुषोत्तम की विशेष महिमा कहा । और विधान किया कि ---मंत्र —

गोवर्धनधरम् वन्दे गोपालम् गोपरूपिणम् ।
गोकुलोत्सवमौशानम् गोविन्दम् गोपिकाप्रियम् ।।१।।

इस मंत्र का पुरुषोत्तम मास में बार बार जप करना ।

दोहा —

श्री पुरुषोत्तम पद सुमिरि, धारि हृदय आनंद ।
यह पुरुषोत्तम विधि लिखी, कविवर श्री हरिचंद ।।१।।
प्रेम पियारे प्रेमनिधि, प्रेमिन-जीवन-प्रान ।
तिनके पद अरपन कियो, यह मलमास-विधान ।।२।।

इति श्री वृहन्नारदीय पुराण से संगृहीत पुरुषोत्तम
माहात्म्य समाप्त हुआ ।

भक्तिसूत्र वैजयन्ती

अर्थात्

श्रीशांडिल्य ऋषि के भक्ति के सौ सूत्रों पर

भाषा भाष्य

रचना काल सन् १८७३। यह पुस्तक हरिश्चन्द्र मैगजीन जि. १ सं. १ सन् १८७४ में मूल और अर्थसहित छपी है।

— सं.

प्राणप्यारे!

देखो, आज वसंत-पंचमी है, इस से बहुत लोग आम के मौर वा फूलों के गुच्छे ले कर तुमको मिलने आवैंगे तो मैं भी यह एक फूलों की वैजयन्ती माला बनाकर लाया हूँ, अंगीकार करो ; वैजयन्ती माला बनाने का यह हेतु है कि वनमाला होगी तो होली के खेल में अरुझैगी और इसके सिवाय इस वैजयन्ती से निश्चय करके ज्ञानादिक को जय करना है; पर प्यारे! बहुत सम्हल कर यह माला पहरना, टूट न जाय, क्योंकि सूत कच्चा है और कलियाँ ताजी और कोमल हैं, इससे कुम्हिलाने का भी भय है; जो हो, इस वसंत पंचमी को त्यौहारी मुझे यही दो कि इस सत्यानाशी 'अहं ब्रह्मवाद' को पूर्णरूप से नाश करके और भी सब बातों में इस नव वसंत में भारतवर्ष की सब आपत्तियों का बस अंत करो और अपने भक्तों के चित्त में प्रेम के नव पल्लव फिर से लहलहे करो, जो सदा एकरस रहै।

माघ शु. ५ सं. १९३०
काशी

तुम्हारा हरिश्चंद्र

भक्तिसूत्र वैजयन्ती

शाण्डिल्य-शतसूत्री भाषाभाष्य-सहित
ॐ नमश्शाण्डिल्याय तन्मतप्रवर्त्तकाचार्य्येभ्यः

श्रीवल्लभेभ्यश्च नमः

जेहि लहि फिर कछु लहन की, आस न चित में होय ।
जयति जगत पावन करन, प्रेम वरन यह दोय ।।

ॐ अथातो भक्तिजिज्ञासा ।।१।।

जीवों को कर्म ज्ञानादिक अनेक साधनों से खिन्न होकर भी शांति न पाते देखकर भगवान् शांडिल्य ने भक्तिशास्त्र प्रकट करने की इच्छा से यह भक्ति के सौ सूत्र करते हुए इस प्रेममार्ग को प्रवर्त्त किया । इस में पहिले पूर्वोक्त सूत्र कहा । अब भक्ति की जिज्ञासा अर्थात् विचार आरंभ करते हैं ।।१।। यद्यपि ज्ञान-कर्मादिकों की भाँति भक्ति भी स्वसाध्य नहीं है तथापि जो भक्ति मार्ग पर प्रवर्त्त होते हैं उनको भगवान भक्ति देता है इस आशा से भक्ति-मीमांसा आरंभ करते हैं ।

सा परानुरक्तिरीश्वरे ।। २ ।।

सो भक्ति ईश्वर में पूरे अनुराग को कहते हैं ।। २ ।। यहाँ परा शब्द कामनाओं की निवृत्ति के हेतु और अनुरक्ति शब्द हृदय के सच्चे प्रेम के अर्थ दिया है और ईश्वर शब्द माहात्म्य ज्ञान के हेतु है, जैसा श्रीगोपीजन को ।

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात् ।। ३ ।।

क्योंकि उसमें जो चित्त लगता है वह अमृत फल पाता है, यह महात्माओं ने कहा है ।। ३ ।।

ज्ञानमितिचेन्न द्विषतोऽपि ज्ञानस्य तदसंस्थितेः ।। ४ ।।

वह भक्ति ईश्वर विषयक ज्ञान मात्र है यह संदेह मत करो क्योंकि ज्ञान तो द्वेषियों को भी होता है पर उस ज्ञान से प्रीति नहीं होती ।। ४ ।। जैसे कोई किसी मनुष्य को जानता है कि वह अमुक है और उसको अमुक अधिकार है पर इतना जानने ही से उस मनुष्य की उस में प्रीति हो यह नियम नहीं ।

तयोपक्षयाच्च ।। ५ ।।

क्योंकि पूरी भक्ति से ज्ञान का क्षय होता है ।। ५ ।। जैसे श्रीगोपीजन को माहात्म्य-ज्ञान पूर्ण था तथापि प्रियतम, कितव इत्यादि नाम से भगवान को पुकारती थीं । अथवा भक्ति से ज्ञान अर्थात् मुक्ति वासना क्षय हो जाती है । जैसा आपने श्री मुख से कहा है कि यद्यपि मैं चारों प्रकार की मुक्ति देता हूँ तथापि मेरे भक्त मेरी सेवा छोड़ कर नहीं लेते ।

द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्च रागः ।। ६ ।।

द्वेष से प्रतिकूल होने से और रस शब्द प्रतिपाद्य होने से उस भक्ति का नाम अनुराग है ।। ६ ।। क्योंकि स्नेह और विरोध दो वस्तु अलग हैं । और भी किसी के द्वेषी से विरोध वही करेगा जिसका उसमें पूर्ण अनुराग होगा और ज्ञान में यह बात नहीं क्योंकि स्वरूप द्वेषियों को भी होता ही है और रस परम आनंद रूप है । वह रस जिसको पाकर मनुष्य आनंदी होता है वह भक्ति स्वरूप ही है (इस कहने से पूजाविडंवन को उपेक्षा

किया) । चकार से अश्रुपात, रोमांच और वाणीस्तंभादिक भक्ति का स्वरूप कहा ।

न क्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत् ।। ७ ।।

और वह भक्ति ज्ञान की भाँति कृपा करने वाले के आधीन नहीं है ।। ७ ।। अर्थात् भक्ति अपने साधन की नहीं है केवल उसकी कृपा से मिलती है इस से भक्ति की बहुमूल्यता दिखाई ।

अतएव फलानन्त्यम् ।। ८ ।।

इसी से इस के फलों का अंत नहीं है ।। ८ ।। क्योंकि मनुष्य के सब साधन क्षीयमाण और ईश्वर की कृपा अक्षया है ।

तद्वतः प्रपत्तिशब्दाच्च न ज्ञानमितरप्रपत्तिवत् ।। ९ ।।

क्योंकि ज्ञान वालोंको शरणागत है और बिना ज्ञान भी इतर प्रपत्ति होती है ।। ९ ।। क्योंकि श्रीमुख से कहा है कि बहुत जन्मों के पीछे ज्ञानी मेरे शरण आता है तो इससे ज्ञान का साधन भक्ति फलरूप है यह प्रगट किया और बिना ज्ञान भी भक्ति मिलती है इस से उसकी विशेषता दिखाई ।

इति प्रथमाह्निक ।

सा मुख्येतरापेक्षितत्वात् ।। १० ।।

सो भक्ति मुख्य है क्योंकि इतर ज्ञान योगादिकों में भी इसकी अपेक्षा रहती है ।। १० ।। तो इस से कोरे ज्ञान से मोक्ष मिलता है इसका खंडन किया, क्योंकि जब भक्ति की उसमें अपेक्षा रही तो वह स्वतः मुक्तिदाता न ठहरा इस से भक्ति ही मुख्य ठहरी ।

प्रकरणाच्च ।। ११ ।।

प्रकरण से भी ।। ११ ।। अर्थात् भक्ति अंगी है और ज्ञानादिक अंग हैं तो काम पूरा कोई अंग विशेष नहीं कर सकता और अंग अंगी के आधीन है, इस से भक्ति ही अमृत देनेवाली है । ज्ञान उस का साधन मात्र है ।

दर्शनफलमिति चेन्न, तेन व्यवधानात् ।। १२ ।।

दर्शन मात्र फल रूप है यह नहीं, क्योंकि उस से व्यवधान है ।। १२ ।। अर्थात् ज्ञान मात्र ही फल है यह नहीं है क्योंकि छांदोग्य श्रुति में पहिले ज्ञानियों का नाम लेकर फिर कहा है कि वह अर्थात् भक्तिमान् स्वराड् होता है तो पहिले ज्ञान को गौण करके भक्ति की मुख्यता वेद ने कही, इस से भक्ति ही परम साधन है ।

दृष्टत्वाच्च ।। १३ ।।

और ऐसा ही देखा भी जाता है ।। १३ ।। क्योंकि यदि किसी स्त्री पर कोई मनुष्य रीझकर प्रीत करैगा तो पहिले जब वह जानेगा कि यह स्त्री सुंदर है तब प्रीति करैगा । प्रीति करके न जानेगा अर्थात् जानने का फल प्रीति है, प्रीति का फल जानना नहीं है । इससे अनेक मत जो ईश्वर-विषयक ज्ञान मात्र ही को परम पुरुषार्थ कहते हैं, इसका निराकरण किया ।

अतएव तदभावाद्वल्लवीनां ।। १४ ।।

इसी से ब्रज के श्रीगोपीजनों का विज्ञान के बिना भी मुक्ति पाना प्रत्यक्ष है ।। १४ ।। इस सूत्र से भक्ति की परम श्रेष्ठता दिखलाई क्योंकि श्रीगोपीजन को यद्यपि ब्रह्मविषयक कुछ भी ज्ञान न था तथापि जो गति केवल प्रेम से श्री गोपीजन को मिली सो किसी को न मिली ।

भक्त्या जानातीति चेन्नाभिज्ञप्त्या साहाय्यात् ।। १५ ।।

जो कहो भक्ति से ज्ञान होता है सो नहीं, क्योंकि ज्ञान तो भक्ति का सहायक है ।। १५ ।। क्योंकि जब मनुष्य को ईश्वर-विषयक माहात्म्यज्ञान होगा तभी भक्ति में प्रवृत्ति होगी ।

प्रागुक्तंच ।। १६ ।।

पहिले कहा भी है ।। १६ ।। अर्थात् श्री गीताजी में अठारहवें अध्याय के चौवन श्लोक में आप ने श्रीमुख से कहा है कि ब्रह्म भाव पाकर प्रसन्न आत्मा न कुछ सोचता है न कुछ कहता है, सब लोगों को समान दृष्टि से देखता हुआ मेरी भक्ति पाता है ।

एतेन विकल्पो ऽपि प्रत्युक्तः ।। १७ ।।

इस से विकल्प भी निरस्त हुआ ।। १७ ।। अर्थात् ज्ञान के अगंत्व निर्णय में जो कुछ संदेह था वह

ऊपर के भगवत् वाक्य से मिट गया और भक्ति का अंगित्व निश्चय हुआ ।

देवभक्तिरितरस्मिन् साहचर्य्यात् ।। १८ ।।

ईश्वर के अतिरिक्त देवताओं की भक्ति भी उस परा भक्ति के समान नहीं, क्योंकि जगत में उसके समान और भी भक्तियाँ हैं ।। १८ ।। जैसा लिखा है, जैसी देवता में भक्ति करनी वैसी गुरु में करनी तो इस सूत्र से अनन्य भक्ति स्थापन किया ।

योगस्तूभयार्थमपेक्षात् प्रयाजवत् ।। १९ ।।

और योग तो वाजपेय यज्ञ में प्रयाज की भाँति भक्ति और ज्ञान दोनों का अंग है ।। १९ ।। इससे योग की अंगांगता दिखलायी ।

गौण्या तु समाधिसिद्धिः ।। २० ।।

गौणी भक्ति से तो समाधि की सिद्धि होती है ।। २० ।। इस से परा भक्ति की अपेक्षा इसकी महागौणता सिद्ध हुई ।

हेयारागत्वादितिचेन्नोत्तमास्पदत्वात् संगवत् ।। २१ ।।

भक्ति राग है इससे (राग को कोई ॠषि दुःख-स्वरूप मानते हैं यह समझकर) त्याग करने के योग्य है, यह नहीं क्योंकि इसका आश्रय उत्तम है संग की भाँति ।। २१ ।। जैसा साधारण स्त्री-पुरुष के अनुराग में परस्पर वियोग का और संयोग छूट जाने का दुख होता है वैसा ईश्वर के अनुराग में नहीं होता क्योंकि संग दुखदाई है यह नियम नहीं है । सत्संग से अनेक सुख होते हैं वैसे ही ईश्वर का अनुराग परम सुख-स्वरूप है ।

तदेव कर्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्यशब्दात् ।। २२ ।।

इससे भक्ति ही मुख्य है क्योंकि कर्मी, ज्ञानी और योगियों से उसको अधिक कहा है ।। २२ ।। श्री गीता जी के छठवे अध्याय के ४६ और ४७ वें श्लोक में आपने श्रीमुख से कहा है कि तपस्वी, ज्ञानी और कर्मी से योगी अधिक हैं और योगियों में हमारे भक्त अधिक हैं ।

प्रश्ननिरूपणाभ्यामाधिक्यसिद्धेः ।। २३ ।।

यह अधिकता प्रश्नोत्तर से सिद्ध है ।। २३ ।। श्रीगीता जी में १२ वें अध्याय में अर्जुन ने पूछा है कि जो अक्षर की उपासना करते हैं और जो आप की भक्ति करते हैं उन में मुख्य कौन है । इसके उत्तर में आप ने कहा है कि जो मेरे भक्त हैं वे अधिक हैं । इस के बिना किसी अर्थवाद से भक्ति की परमोत्तमता सिद्ध हुई ।

नैव श्रद्धा तु साधारण्यात् ।। २४ ।।

श्रद्धा ही भक्ति नहीं है क्योंकि उस को साधारणता है ।। २४ ।। क्योंकि श्रद्धा कर्मादिकों में भी होती है ।

तस्यां तत्त्वे चानवस्थानात् ।। २५ ।।

क्योंकि श्रद्धा से भक्ति तत्व की एकता करने से अनवस्था होती है ।। २५ ।। अर्थात् श्रद्धावान् भजन करता है, ऐसा लोग कहते हैं तो यदि श्रद्धा भक्ति एक ही होती तो अंग भाव से प्रयोग न होता ।

ब्रह्मकांडं तु भक्तौतस्यानुज्ञानाय सामान्यात् ।। २६ ।।

अतएव भक्ति प्रतिपादन के अर्थ उत्तरकांड की संज्ञा ब्रह्मकांड से ज्ञानकांड की सामान्यता है ।। २६ ।। अर्थात् जो ज्ञान की मुख्यता होती तो 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' यह न कहते । इस से कंठरव से ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की उत्तमता सिद्ध किया । इति २ आ. इति १ अध्याय ।।

बुद्धिहेतुप्रवृतिराविशुद्धेरवघातवत् ।। २७ ।।

बुद्धि के हेतुओं की प्रवृत्ति धान कूटने की भाँति विशुद्धि तक है ।। २७ ।। बुद्धि अर्थात् ब्रह्म-साक्षात्कार यद्यपि कृत्यनिष्पाद्य नहीं अर्थात् अपने किए हुए उपायों से बाहर है तो भी उस के हेतु श्रवण मननादिकों का अनुष्ठान आवश्यक है जैसे जब तक सब छिलके बराबर न निकल जाँय, धान शुद्ध न होगा ।

तदंगानाञ्च ।। २८ ।।

उस के अंगों को भी ।। २८ ।। अर्थात् जैसे श्रवण-मननादिक की आवश्यकता है वैसे ही गुरु की सेवा आदि उस के उपायों को भी है ।

तामैश्वर्य्यपदां काश्यपः परत्वात् ।। २९ ।।

उस को काश्यपाचार्य्य ऐश्वर्य्यपदा कहते हैं अलग होने से ।। २९ ।। अर्थात् सर्वैश्वर्य्यमय ईश्वर को मान कर उस की सेवा करना यही पुरुषार्थ कहते हैं । इनके मत में जीव और ईश्वर का नित्य भेद प्रगट हुआ ।

आत्मैकपरां बादरायणः ।। ३० ।।

बादरायण आचार्य इस को आत्मपर कहते हैं ।। ३० ।। वेदांत सूत्र में व्यास जी का मत है कि आत्मज्ञान ही से सिद्धि मिलती है ।

उभयपरां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्यां ।। ३१ ।।

शांडिल्याचार्य शब्द और उपपत्ति से उभय पर कहते हैं ।। ३१ ।। युक्तियों से और वाक्यों से जीव का ईश्वरांश होना सिद्ध है और ईश्वर में सब सामर्थ्य इत्यादि दिव्यगुण उसकी विलक्षणता भी प्रकाश करते हैं, इससे शांडिल्य दोनों मत मानते हैं अर्थात् अपने को ईश्वरांश मान करके भी उसकी उपासना करना ।

वैषम्यादसिद्धमितिचेन्नाभिज्ञानवदवैशिष्ट्यात् ।। ३२ ।।

वैषम्य से असिद्धि होगी ऐसा नहीं है क्योंकि ज्ञान की भाँति अवैशिष्ट्य है ।। ३२ ।। अर्थात् जिस रीति "यह वह है" यह भूत और वर्तमान काल की प्रतीति एक ही समय होती है क्योंकि दोनों काल का विषय (यह और वह शब्दों से प्रतिपाद्य) एक ही है वैसे ही ईश्वर में वैषम्य दोष नहीं जा सकता ।

न च क्लिष्टः परःस्यादनन्तरं विशेषात् ।। ३३ ।।

पर (परमात्मा) को कभी इस वैषम्य से क्लेश नहीं होता क्योंकि (ज्ञान के)अनंतर विशेष होता है ।। ३३ ।। अर्थात् जीव और ईश्वर में जो विशेषता है वह ज्ञान से प्रतीत होती है ।

ऐश्वर्यं तथेति चेन्न स्वाभाव्यात् ।। ३४ ।।

ऐश्वर्य भी क्लिष्ट नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वाभाविक है ।। ३४ ।। ईश्वर का ऐश्वर्य कुछ उपाधिभूत वा उपाधिजन्य नहीं किन्तु नैसर्गिक है इसी हेतु इसमे भी क्लेश नहीं हो सकता ।

अप्रतिषिद्धं परैश्वर्यं तद्भावाच्च नैवमितरेषाम् ।। ३५ ।।

(ईश्वर का) परमैश्वर्य कहीं भी प्रतिषिद्ध नहीं होता, बरंच उसका नैसर्गिकपन प्रगट होता है, इतरों का (जीवों का) ऐसा नहीं ।। ३५ ।। यह शंका न हो कि ईश्वर का जब ऐश्वर्य ऐसा है तो जीवों का भी ऐसा ही होगा । ईश्वर का यह सर्व स्वाभाविक है और जीवों का नहीं ।

सर्वानृतेकिमितिचेननैवं बुद्ध्यानन्त्यात् ।।३६।।

सब के बिना (उसका) क्या प्रयोजन है ? ऐसा नहीं क्योंकि बुद्धि का आनन्त्य है ।। ३६ ।। अर्थात् यदि सब जीव क्रमशः मुक्त होंगे तो ईश्वर का क्या प्रयोजन है तो उसका भी क्यों नहीं लय मानते ; ऐसा कहोगे तो यह असंभव है क्योंकि बुद्धि का अंत नहीं हो सकता । इस हेतु यह कल्पना मात्र है और ऐसा कालही नहीं कि जिसमें सब जीव एक बार मुक्त हो जाँय और महाप्रलय में जो जीव मुक्त होते हैं वे वासना सहित होते हैं ।

प्रकृत्यन्तरालादवैकार्यं चित्सत्वेनानुवर्तमानत्वात् ।। ३७ ।।

प्रकृत्यन्तराल से और चित्सत्व के अनुवर्तमान होने से (ईश्वर को) अविकारिता है ।। ३७ ।। यदि ईश्वर में उत्पत्ति कर्तृत्वादि ऐश्वर्य साहजिक है तो यह भी एक प्रकार का विकार हुआ, उसका निवारण करते हैं कि प्रकृति को ईश्वर विकृत करके उत्पत्ति आदि करता है । जैसे मायावी अपनी माया से अन्य वस्तुओं में विकार कर देता है परंतु आप नहीं विकार पाता अर्थात् ईश्वर दुग्ध के कार्य की भाँति विकृत नहीं होता वरंच सुवर्ण के विकार की भाँति । और उसमें जीवसत्व जो वर्तमान रहता है वह माया से परे है ।

तत्प्रतिष्ठा गृहपीठवत् ।। ३८ ।।

उसकी प्रतिष्ठा का व्यवहार घर में पीढ़े पर प्रतिष्ठा की भाँति है ।। ३८ ।। अर्थात् प्रकृति के विकार से जगत माया में प्रतिष्ठित है, यह शंका न हो जैसे किसी के घर पीढ़े पर कोई बैठा हो ऐसा कहने में आवेगा कि अमुक पीढ़े पर बैठा है पर वास्तव में वह पीढ़ा और मनुष्य दोनों घर में हैं ; वैसेही माया और संसार दोनों ईश्वर में हैं ।

मिथोपेक्षणादुभयं ।। ३९ ।।

परस्पर की अपेक्षा से दोनों कारण हैं ।। ३९ ।। अर्थात् संसार की उत्पत्ति में माया और ईश्वर दोनों ही

आवश्यक हैं ।

चेत्याचितोर्न तृतीयं ।। ४० ।।

प्रकृति और ब्रहम में भेद नहीं है ।। ४० ।। अर्थात् इन में तृतीय भाव नहीं है दोनों एक हैं । इससे प्रकृति स्वतंत्र कोई अलग है, इसका निषेध किया ।

युक्तौ च संपरायात् ।। ४१ ।।

वियोग के पूर्व दोनों एक हैं ।। ४१ ।। अर्थात् सृष्टि होने के समय ब्रहम और प्रकृति अलग अलग होते हैं परंतु जड़ाजड़ के भेद से नित्य में इनका अनन्य संबंध है ।

शक्तित्वान्नानृतं वेद्यं ।। ४२ ।।

शक्ति के कार्य होने से यह जगत् मिथ्या नहीं है ।। ४२ ।। अर्थात् जगत माया का कार्य है तो उसकी शक्ति भी सत्य है । प्रकृति केवल जड़मात्र तो है पर मिथ्या नहीं ।

तत्परिशुद्धिश्च गम्या लोकवल्लिंगेभ्यः ।। ४३ ।।

उस (भक्ति) परिशुद्धि लोक के (प्रेम के) चिन्हों से जानना ।। ४३ ।। अर्थात्-अश्रु, रोमांच, गद्गद इत्यादि स्थायी भावों से किसको कितना प्रेम है यह प्रगट होता है ।

सम्मान बहुमान प्रीति विरहेतरविचिकित्सा महिमख्याति तदर्थप्राणस्थान
तदीयतासर्वतद्भावाप्रातिकूल्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात् ।। ४४ ।।

सम्मान, बहुमान, प्रीति, विरह, इतरविचिकित्सा अर्थात् आग्रह पूर्वक दूसरे की अनपेक्षा, महिमा का कथन, प्रियतमहो के हेतु प्राणरक्षण, तदीयता, सब उसके भावों से देखना, अप्रातिकूल्य अर्थात् अनुकूलता इत्यादि प्रीति के लक्षण हैं ।। ४४ ।।

सम्मान जैसा अर्जुन का, बहुमान इक्ष्वाकु का कि भगवान के नाम वा वर्णों से जिन वस्तुओं में संबंध था उनका भी आदर करता था, प्रीति विदुर की, विरह श्रीगोपीजन का, इतरविचिकित्सा उपमन्यु का और श्वेतद्वीपवासी की तथा चित्रकेतु की, महिमख्याति यम, भीष्म और व्यास की, तदर्थ प्राणस्थिति व्रज के लोग तथा हनुमान जी की, तदीयता बलि की और उपरिचर वसु की, तद्भाव श्री प्रहलाद जी का, अप्रातिकूल्य भीष्म तथा धर्मराज का, आदि शब्द से नारद उद्धवादि भक्तों की प्रीति की चेष्टा और लक्षण जानना ।

द्वेषादयस्तु नैवं ।। ४५ ।।

द्वेषादिक से ऐसा नहीं होगा ।। ४५ ।। शिशुपाल इत्यादि के प्रकरण में भक्ति से इन की मुक्ति नहीं हुई किन्तु भगवान के महिमा कथन से भक्तों को तो द्वेषादिक होने ही नहीं ।

तद्वाक्यशेषात् प्रादुर्भावेष्वपि सा ।। ४६ ।।

उसके वाक्य शेष से अवतारों में भी वह है ।। ४६ ।। मत्स्यादिक अवतारों में, शिवादि गुण स्वरूपों में, संकर्षणादि व्यूहों में तथा आचार्यादि प्रादुर्भावों में भी परा भक्ति योग्य है ।

जन्मकर्मविदश्चाजन्मशब्दात् ।। ४७ ।।

जन्मकर्मों के जानने की सिद्धि भी अजन्म शब्द से है ।। ४७ ।। अर्थात् जो उस के जन्म कर्मों को जानता है वह फिर जन्म नहीं पाता किन्तु उसको पाता है । यह श्रीगीता के ४ अध्याय के ९ श्लोक में कहा है ।

तच्च दिव्यं स्वशक्तिमात्रोद्भवात् ।। ४८ ।।

उसके जन्म कर्मादिक दिव्य हैं क्योंकि केवल उसकी शक्तिमात्र से अनेक प्रकार के दिखाई पड़ते हैं ।। ४८ ।। यह ९ श्लोक और उसी अध्याय के छठे श्लोक में सिद्ध है ।

मुख्यं तस्याहिकारुण्यं ।। ४९ ।।

उसके जन्मादिकों में उसी की करुणा मुख्य है ।। ४९ ।। अर्थात् ईश्वर आधीन हो के नहीं जन्म लेता केवल अपनी अपार कृपा से जीवों के उद्धार के हेतु अनेक प्रकार के रूप धारण करता है ।

प्राणित्वान्नविभूतिषु ।। ५० ।।

प्राणी होने से ब्राहमण राजादि भगवद्विभूति में भक्ति सिद्धि देनेवाली नहीं होती ।। ५० ।।

द्यूतराजसेवयोः प्रतिषेधात् ।। ५१ ।।

द्यूत और राजसेवा के निषेध से ।। ५१ ।। क्योंकि गीता जी में आपने श्रीमुख से राजा और जूए को

विभूति कहा है और शास्त्र में उसका निषेध है। इससे विभूतियों में भक्ति नहीं करनी।

वासुदेवेपीतिचेन्न आकारमात्रत्वात् ।। ५२ ।।

श्रीवासुदेव में भी विभूति की शंका नहीं करनी क्योंकि वहाँ तो चीनी की पुतली की भाँति कर, पाद, मुख, उदर आदि सब आकार आनंदमय हैं ।। ५२ ।।

प्रत्यभिज्ञानाच्च ।। ५३ ।।

(श्रीगोपालतापनी, महाभारत, श्रीभागवत आदि पुराण तथा वैष्णवनिबंधों में) भगवान की परब्रह्मता ज्ञापित है ।। ५३ ।।

वृष्णिषुश्रैष्ठ्येनैतत् ।। ५४ ।।

विभूति में श्रीवासुदेव का कथन केवल यादवों में श्रेष्ठता के हेतु है ।। ५४ ।।

एवं प्रसिद्धेषु ।। ५५ ।।

इसी प्रकार श्रीरामादि प्रसिद्ध भगवदवतारों का भी विभूति में कथन केवल उस प्रकार की विभूति में श्रेष्ठता दिखाने के हेतु है। अर्थात् जो प्रसिद्ध भगवत्स्वरूप हैं उनमें विभूति बुद्धि न करनी ।। ५५ ।।

दूसरे अध्याय का पहिला आन्हिक समाप्त हुआ

भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्यापरायैतद्धेतुत्वात् ।। ५६ ।।

भक्ति से यहाँ गौण भक्ति लेनी क्योंकि उसका अर्थ भजन अर्थात् सेवा है और यह भक्ति परा में हेतु है ।। ५६ ।। क्योंकि गौण भक्ति से मुख्य भक्ति के साधन के बाधक दूर होते हैं और परा भक्ति सिद्ध होती है।

रागार्थप्रकीर्तिसाहचर्याच्चेतरेषाम् ।। ५७ ।।

गीता अ. ९ श्लोक १४ में कीर्तन के साथ कहे हुए नमस्कारादि कर्मों का फल केवल राग अर्थात् परा भक्ति है क्योंकि "स्थाने हृषीकेश" इस श्लोक में कीर्तन का फल अनुराग कहा है और पूर्वोक्त १४ श्लोक में कीर्तन के साथ नमनादिक का कथन है इससे नमनादिक का भी वही फल है ।। ५७ ।।

अन्तराले तु शेषाः स्युरुपास्यादौ च काण्डत्वात् ।। ५८ ।।

गीता जी के ९ अध्याय में १३ श्लोक से २९ श्लोक तक और जितनी भक्तियाँ कही हैं वह बीच की हैं क्योंकि उपासनादि परा भक्ति की साधक हैं ।। ५८ ।।

ताभ्यः पावित्र्यमुपक्रमात् ।। ५९ ।।

इन गौणी भक्तियों से पवित्रता अर्थात् मन की शुद्धता होती है क्योंकि उसी अध्याय के दूसरे श्लोक में इनको पवित्र कहा है ।। ५९ ।।

तासु प्रधानयोगात् फलाधिक्यमेके ।। ६० ।।

कोई कोई आचार्य कहते हैं कि इन गौण भक्तियों ही में प्रधानता के कारण फल अधिक है ।। ६० ।।

नाम्नेति जैमिनिः सम्भवात् ।। ६१ ।।

जैमिनि आचार्य का मत है कि उन को मुख्यता नहीं है, यहाँ उनका नाममात्र कथन है ।। ६१ ।। अर्थात् पूर्वोक्त श्रीगीता जी के श्लोकों में उनका मुख्यता करके नहीं कथन है वरंच गिनती मात्र गिनायी है।

अत्रांगप्रयोगानां यथाकालसम्भवो गृहादिवत् ।। ६२ ।।

यहाँ अंग के प्रयोगों का घर के अंगों की भाँति यथाकाल संभव है ।। ६२ ।। अर्थात् जैसे घर में पहिले नेंव तब द्वार तब छत इत्यादि अंगों का प्रयोग एक के बनने पर यथाकाल होता है वैसे ही परा भक्तियों की साधन अंग भक्ति का यथासमय प्रयोग होता है क्योंकि पहिले गुण श्रवण करैगा तब श्रद्धा होगी तब भजैगा, सेवैगा इत्यादि अनेक भक्तियों के पीछे परा भक्ति पावेगा।

ईश्वरतुष्टेरेकोपि बली ।। ६३ ।।

ईश्वर की तुष्टि के हेतु एक साधन करने वाला भी बली है ।। ६३ ।। अर्थात् भजन वा कीर्तन कोई एक साधन भी दृढ़ करके जो करैगा तो उसकी उस एक साधन पर दृढ़ता ईश्वर के तुष्टि की कारण होगी अर्थात् परा भक्ति की कारण होगी क्योंकि परा भक्ति स्वसाध्या नहीं है केवल ईश्वर के प्रसन्न होने से मिलती है।

अबन्धोऽर्पणस्य सुखम् ।। ६४ ।।

अर्पण का मुख अबंध है ।। ६४ ।। भगवान में शुभाशुभ कर्मों का अर्पण अबंध का द्वार है। यह

कीर्तनादिक गौणी भक्तियों के अतिरिक्त परा भक्ति सिद्धि का उपायांतर कहते हैं क्योंकि यज्ञादिक में से बहुत काल में अनेक लोकप्राप्ति द्वारा क्रमशः ईश्वर-लोक-प्राप्ति के कष्ट-निवारण के हेतु सब कर्मों का समर्पण सहज उपाय है ।

ध्यानानियमस्तु दृष्टसौकर्यात् ।। ६५ ।।

जिस का दर्शन अपने नेत्रों को जँचे उसी भाव से चिंतन करना यही ध्यान का नियम है ।। ६५ ।। भक्ति यदि स्वाभाविक होती है तो उत्तमा होती है क्योंकि हठ से की हुई भक्ति चिरकाल में सिद्ध होती है । इसी हेतु कहते हैं कि भगवान के स्वरूप के ध्यान में हठ करके कोई नियम न मानना, जो स्वरूप अपने नेत्रों को स्वभावतः जँचे उसी का ध्यान करना ।

तद्यजिः पूजायामितरेषांनैवम् ।। ६६ ।।

''यान्तिमद्याजिनोपि मां'' इस वाक्य में यजन शब्द भगवत्पूजन के अर्थ है, इतर यागादिकों के लिये नहीं ।। ६६ ।। अर्थात् यज्ञादिक में कामना और हिंसादि अनेक दोष हैं, इस से भगवान को यजन किसी और कर्म मार्ग के उपायों से न करना किन्तु केवल भगवत्स्वरूप की सेवा करनी ।

पादोदकं तु पाद्यमव्याप्ते ।। ६७ ।।

भगवन्मूर्तियों के स्नान का जल ही पादोदक है, अव्याप्ति से ।। ६७ ।। अर्थात् साक्षाद्भगवान् वा अन्य किसी अवतार के चरण का जल ही चरणामृत है, यह हठ न करना क्योंकि इस समय उसकी प्राप्ति कहाँ और पादोदक में चरण ही की मुख्यता न माननी क्योंकि श्रीशालिग्राम का स्नानजल भी पादोदक कहावेगा ।

स्वयमर्पितं ग्राह्यमविशेषात् ।। ६८ ।।

अपनी समर्पण की हुई वस्तु को आप लेना, क्योंकि विशेषता नहीं है ।। ६८ ।। अपनी समर्पण की हुई वस्तु है, इस भ्रम से प्रसाद लेने में संकोच न करना क्योंकि वैष्णवों को भगवत्प्रसाद लेने की आज्ञा है और उस समर्पण करने वाले में कोई विशेष नहीं अर्थात् वह भी वैष्णवान्तः पाती है ।

निमित्तगुणान्यपेक्षणादपराधेषु व्यवस्था ।। ६९ ।।

निमित्त, गुण और अनपेक्षा से अपराधों की व्यवस्था हैं ।। ६९ ।। भगवत्सेवा में जो बत्तीस अपराध कहे हैं वे तीन भाँति के हैं, एक तो वे कि जैसे किसी कारण से हो जाँय, दूसरे वे जिनके करने का नित्य स्वभाव है और तीसरे वे जो भूले से हों । इन तीनों की व्यवस्था अलग है जैसे अनिच्छापराध से निमित्तापराध और निमित्तापराध से नित्यापराध बढ़कर है ।

पत्रादेर्दानमन्यथाहि वैशिष्ट्यम ।। ७० ।।

पत्रपुष्पादि का दान सर्व समान (समान फल रूप) है ।। ७० ।। क्योंकि भगवान को पत्र का दान और स्वर्ण कोटि का दान दोनों समान संतोष करने वाला है ।

सुकृतत्वात्परहेतुश्च भावाच्च क्रियासु श्रेयस्यः ।। ७१ ।।

ये भक्तियाँ पराभक्ति की कारण और पुण्यरूप हैं इससे सब क्रियाओं में श्रेयस्कर हैं ।।७१।।

गौणं त्रैविध्यमितरेण स्तुत्यर्थत्वात् साहचर्य्यम् ।। ७२ ।।

(गीताजी के अ. ७ श्लो. ६ में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चारो प्रकार के भक्त कहे हैं, उन चारों की समता नहीं) गौणी भक्ति उसमें तीन ही हैं और स्तुति के अर्थ इनको ज्ञानी की भक्ति के साथ लिखा है ।। ७२ ।। क्योंकि आर्त की भक्ति अपनी विपत्ति मिटाने के हेतु है, जिज्ञासु की जानने के हेतु और अर्थार्थी की भक्ति अपने काम के हेतु है और ज्ञानी की भक्ति केवल प्रेम से है ।

बहिरन्तरस्थमुभयमवेष्टिसववत ।। ७३ ।।

(यद्यपि कीर्तनादिक भक्तियाँ परा भक्ति की अंग हैं परंतु यदि कीर्तनादि किसी में विशेष रुचि होय तो उस भक्ति में उस भक्ति की मुख्यता होगी क्योंकि) पराभक्ति के भीतर की भक्ति भी कहीं कहीं बाहर अर्थात् स्वतंत्र गिनी जाती है । जैसे यज्ञ की अवेष्टि यज्ञ के अंतर्गत और बहिर्गत भी है जैसे वाजपेय यज्ञ के अंग में बृहस्पतिसव आ जाता है परंतु बृहस्पतिसव की विशेष महिमा वेद में अलग भी लिखी है ।। ७३ ।।

स्मृतिकीर्त्योः कथादेश्चार्तो प्रायश्चित्तभावात् ।। ७४ ।।

कथादिकों का स्मरण और कीर्तन आर्त भजन में प्रायश्चित्त भाव से है ।। ७४ ।। अर्थात् आर्तलोग अपने

पाप वा आपत्ति मिटाने के हेतु कीर्तनादि करते हैं, इससे यहाँ कीर्तनादि में विशेषता नहीं है ।

भूयसामननुष्ठितिरितिचेदाप्रयाणमुपसंहारान्महत्स्वपि ।। ७५ ।।

जो कहो कि भक्ति करने वाले बहुत कर्मों का अनुष्ठान नहीं करते सो नहीं, क्योंकि बहुत कर्म करने वालों को भी अंत समय इसी का विधान है ।। ७५ ।। अर्थात् चाहे कितना ही कर्म करो जब भगवान की भक्ति बिना गति नहीं तो उस भक्ति के बिना बहुत विधिपूर्वक किए हुए भी अनेक कर्म व्यर्थ ही हैं ।

लघ्वपि भक्ताधिकारे महत्क्षेपकमपरसर्वहानात् ।। ७६ ।।

(क्योंकि) थोड़ा भी भक्ताधिकार बड़े पापों का नाशक होता है क्योंकि भगवान की अपने शरणागतों की वा नामस्मरण करने वालों के सर्व पापहानि की प्रतिज्ञा है ।। ७६ ।।

तत्स्थानत्वादनन्यधर्मः खले वालीवत् ।। ७७ ।।

(क्योंकि) भगवदाश्रय होने से (छोटे भी) भगवद्धर्म अनन्य धर्म ही हैं (और उन से सब बड़े पापों का क्षय हो जाता है) जैसा आखली में वालों का (अर्थात् आखली में कितना भी वाल पड़ें सब कूट पिस जायँगी वैसे ही भगवद्धर्म से कैसे भी पाप हों सब नाश हो जाते हैं) ।

आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात्सामान्यवत् ।। ७८ ।।

चांडालयोनि को भी भगवद्भक्ति का अधिकार है क्योंकि परंपरा से भक्तों की समानता है ।। ७८ ।। और गज, गृध्र, बानर इत्यादि मनुष्य छोड़ कर और योनि के जीवों को भी भक्ति से सिद्धि मिली है तथा एक विशेषता यह भी है कि भारतखंड छोड़ कर खंडांतर-वासियों को तो केवल भक्ति ही का आश्रय है क्योंकि वे कर्मभूमि नहीं हैं कि वहाँ के लोग कर्म से सिद्ध हों ।

अतोह्यविपक्वभावानामपि तल्लोके ।। ७९ ।।

इसी हेतु परा भक्ति में जो पक्के नहीं हैं वे भी भगवल्लोक में वास करते हैं ।। ७९ ।। अर्थात् ब्राह्मण, शूद्र, चंडाल इत्यादि संज्ञा से अपने अपने जाति की पूर्ण क्रिया करो तौ भी सिद्धि नहीं, कितना भी पुण्य करो अंत में क्षीण होने पर मृत्युलोक में आना पड़ता है और भक्ति करने वालों का नाश नहीं । जो पक्के नहीं हैं वे भगवल्लोक में रह कर भगवद्भक्ति में पक्के होकर अंत में भगवत्पद पाते हैं और भक्तों की कर्मवश से उपजी हुई कामनाओं को भी भक्ति अंत में भस्म कर देती है । इसमें जड़भरत जी का उपाख्यान प्रमाण है ।

क्रमैकगत्युपपत्तेस्तु ।। ८० ।।

केवल क्रममात्र से गति तो क्रिया की है ।। ८० ।। अर्थात् "बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते", "अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिं" इत्यादि वाक्यों में क्रम से जो सिद्धि पानी कही है वह सुकर्म करने वालों की है । भक्तों को तो एक भक्ति ही से सद्यः गति होती है ।

उत्क्रान्तिस्मृतिवाक्यशेषात् ।। ८१ ।।

क्योंकि भगवद्वाक्य में भक्तों को एक बार सब क्रमों का उल्लंघन करके सिद्धि मिलना कहा है ।। ८१ ।। अर्थात् "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" इस वाक्य से भगवान ने अपने भक्त के अन्य धर्मों की और क्रम प्राप्त उनके गतियों की श्रीमुख से आप ही उपेक्षा की है और ९ अध्याय में अनेक प्रकार के सत्कर्म इत्यादि कह कर भी ३०।३१।३२।३३।३४ श्लोकों में "हमारा भक्त कैसा भी दुराचारी हो उसको साधु ही समझना" कहा है और अनेक जन्म तथा कर्मादिकों को उल्लंघन करके उसकी सद्यःगति की और उस गति के फिर कभी न नाश होने की "क्षिप्र, शश्वत" इत्यादि शब्द कथनपूर्वक प्रतिज्ञा की है ।

महापातकिनां त्वार्तौ ।। ८२ ।।

(जो कहो कि जो बड़े बड़े पापी लोग हैं वे भी क्रम को उल्लंघन करके परम पद पावेंगे इस पर कहते हैं कि) महापातकियों की भक्ति तो आर्तों की भक्ति में है ।। ८२ ।। अर्थात पापी लोग अपने पाप की निवृत्ति के हेतु भक्ति करते हैं, उन की भक्ति सहजा नहीं । जिनकी भक्ति सहज है उन के पापों के हेतु तो "अपिचेत्सुदुराचारो" इत्यादि वाक्य जागरूक ही हैं ।

सैकान्तभावोगीतार्थप्रत्याभिज्ञानात् ।। ८३ ।।

परा भक्ति ही का नाम एकांत भाव है क्योंकि गीता में ऐसा ही कहा है ।। ८३ ।। यथा "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां", "यो मां पश्यति सर्वत्र", "मन्मना भव मद्भक्तो", "मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तः", "ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः", "तमेव शरणं गच्छ", "सर्वधर्मान् परित्यज्य" इत्यादि

वाक्यों से और उसके उपक्रमोपसंहार से सिद्ध है ।

परां कृत्वैव सर्वेषां तथाह्याह ।। ८४ ।।

(जो कहो कि गीता जी के वाक्यों की प्रवृत्ति तो ज्ञान, योग, सत्कर्म कीर्तनादि गौणी भक्ति इत्यादि अनेक विषयों पर है इस पर कहते हैं) कि श्रीमद्भगवद्गीता के वाक्यों की प्रवृत्ति तो परा भक्ति ही को मुख्य कर के है ऐसा ही आप ने कहा भी है ।। ८४ ।। क्योंकि जब आप ने "मनमना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।। मामेवैष्यसि कौन्तेय प्रतिजाने प्रियोसि मे ।। सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः" ये दो वाक्य साधन, सिद्धा परा भक्ति ही के मुख्यता के हेतु कहे तो उस की श्रेष्ठता के हेतु पहिले आग्रहपूर्वक "सर्वगुह्मतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः" इससे अगले दोनों वाक्यों की महिमा कही और लोक में भी प्रसिद्ध है कि मनुष्य किसी को उपदेश करे परंतु अंत में जो निचोड़ कर कहे वही बात मुख्य होती है । परंच गीता जी के कहने का तो फल परा भक्ति ही है, यह आप ने "यद्वदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यतअसंशयः" इस वाक्य में कहा है । इस से और "अहं" "त्वां" इन दो पदों के अलग होने से श्रीमद्गीता की प्रवृत्ति केवल भक्ति ही के हेतु है न ज्ञानकर्मादिकों के, यही सिद्ध हुआ ।

द्वितीयाध्याय का द्वितीयाह्निक समाप्त हुआ ।

भजनीयेनाद्वितीयमिदं कृतस्नस्य तत्स्वरूपत्वात् ।। ८५ ।।

(भक्ति की उत्कषता और जीवों के साधन कह कर अब सच्चिदानंदमय परमेश्वर और उस के सदंश से जगत और चिदंश से जीव और आनन्दमय श्री विग्रह इनका परस्पर संबंध दिखाते हैं) यह सब ईश्वर स्वरूप ही है इस से भजनीय अर्थात् भगवान् से यह अलग नहीं है ।। ८५ ।। इस सूत्र से मिथ्यावाद निरस्त करते हैं क्योंकि मिथ्यावादियों के मत से संसार असत्य है परंतु यहाँ पर सूत्रकार भगवान् शाण्डिल्य मुक्त कंठ से जगत की सत्यता प्रतिपादन करते हैं और इस जगत का विस्तार इस प्रकार से है कि सच्चिदानंदमय ईश्वर को जब संसार की इच्छा हुई तो अपने सदंश से जड़ प्रपंच किया और चिदंश से चैतन्य प्रपंच (जीव सृष्टि) किया । जीव में आनन्दांश का तिरोभाव है क्योंकि बहुत काल से आनंदराशि भगवान् से इन का वियोग है । उस वियोग का न इनको स्मरण है न वियोग जन्य दुःख है, सो भगवान की कृपा से वा उस के भक्तों की कृपा से उस के वियोग का स्मरण आना ही मानो उस के आनंदांश के आविर्भाव का कारण है और इसी से उसके एक अंश में स्थित यह सब नित्य सत्य है ।

तच्छक्तिर्माया जडसामान्यात् ।। ८६ ।।

(मिथ्यावादी का निराकरण कर के अब मायावादी का निराकरण करते हैं) कि माया स्वतंत्र कोई वस्त्वंतर नहीं है किन्तु भगवान के शक्ति ही का नाम माया है और वह भी जड़ अर्थात् अपनी सहज चैतन्यता शून्य अन्य चिदंश के समान है ।। ८६ ।। इस से मायावादियों का ईश्वर की माया के फंद में फँसना और शाक्तों का स्वतंत्र शक्तिवाद निरस्त हुआ ।

व्यापकत्वाद्व्याप्यानाम् ।। ८७ ।।

(सदंश और चिदंश में आनंदांश व्याप्त है इस से परस्पर इन में व्याप्य व्यापक भाव हुए तो अब संसार की व्याप्य और ईश्वर की व्यापक संज्ञा हुई तो फिर से उस की सत्यता और शुद्धाद्वैतता दिखाने के हेतु कहते हैं) कि व्यापक के सत्य होने से उसका व्याप्य भी सत्य ही है ।। ८७ ।।

न प्राणिबुद्धिभ्यो संभवात् ।। ८८ ।।

(मायावाद निराकरण करके उस के समान ही नास्तिकवाद का भी निराकरण करते हैं) यह किसी प्राणी की बुद्धि से नहीं बना है, क्योंकि इसकी सूक्ष्मता प्राणियों की बुद्धि के बाहर है इस से यह प्राणियों की बुद्धि से बना है यह बात असंभव है ।। ८८ ।।

निर्मायोच्चावचं श्रु तीश्च निर्मिमीते पितृवत् ।। ८९ ।।

यह सब भूत-समूह बना कर वेदों को बनाता है, पिता की भाँति ।। ८९ ।। जैसे पिता पुत्रों को उत्पन्न करके फिर उनको शिक्षा देता है वैसे ही भगवान् अपने एकांश से जीवों को प्रगट करके फिर उनकी शिक्षा के

हेतु वेद कहता है ।

मिश्रोपदेशान्नेति चेन्न स्वल्पत्वात् ।। ९० ।।

जो कहो कि वेद के उपदेश मिश्र हैं अर्थात् अग्निष्टोमादिक यज्ञ में हिंसा का विधान है इस से ये वेद ईश्वर के बनाये नहीं, ऐसा नहीं क्योंकि वह भाग उस में बहुत ही थोड़ा अर्थात् उपेक्षित है ।। ९० ।।

फलमस्माद्बादरायणो दृष्टात्वात् ।। ९१ ।।

(अब कर्मवादियों का मत निराकरण करते हैं) कि ये कर्म स्वतः फलदाता नहीं, फल देनेवाला ईश्वर ही है, यह व्यास जी कहते हैं क्योंकि ऐसा ही देखा भी जाता है ।। ९१ ।। जैसे राजा के तोष के हेतु अनेक कर्म करो परंतु उसका प्रतिफल देना राजा ही के अधिकार में है वैसे ही ईश्वर का प्रसन्न होना कर्म के अधीन नहीं कर्म केवल साधक है ।

व्युतक्रमादप्ययस्तथादृष्टम् ।। ९२ ।।

लय उलटी चाल से होता है ऐसा ही देखा गया है ।। ९२ ।। जैसे गोरखधंधे की डिबियों का फैलाते जाओ तो कई डिबियाँ हो जाती हैं और जब बंद करो तब सब से छोटी अपने से बड़ी डिबिया में और वह अपने से बड़ी में इसी प्रकार अंत वाली बड़ी डिबिया में सब डिबियाँ छिप जाती हैं वैसे ही जिस क्रम से उत्पत्ति होती है (अर्थात ब्रह्म से प्रकृति, प्रकृति से महत्तत्व इत्यादि एक से एक उत्पन्न होते हैं) वैसे ही लय होने के समय सब भगवान में लय पाते हैं, इस से फिर भी संसार की नित्यता सिद्ध किया ।

तीसरे अध्याय का प्रथमाहिनक समाप्त हुआ ।

तदैक्यं नानात्वैकत्वमुपाधियोगहानादादित्यवत् ।। ९३ ।।

उसकी एकता है क्योंकि उपाधि के योगों के मिटने से नानात्व का एकत्व हो जाता है आदित्य की भाँति ।। ९३ ।। जैसे "ध्येयः सदा सवितृमंडलमध्यवर्ती" इत्यादि वाक्यों से भगवान का स्वरूप और आदित्यमंडल यह दो पृथक प्रतीत होते हैं परंतु वास्तव पृथक् हैं नहीं क्योंकि जब मंडलरूपी उपाधि को भगवान अपने में लय कर लेता है तब केवल नारायण संज्ञा रह जाती है वैसे ही जब संसार को अपने में कर के उस के संयोग-वियोगात्मक "संसार" इन नाम को भी अपने में लय कर लेता है तब केवल आपही रह जाता है ।

पृथगिति चेन्न परेणासम्बन्धात्प्रकाशानां ।। ९४ ।।

अलग कहा सा नहीं, ऐसा कहने से पर अर्थात् भगवान से असंबंध होगा जैसे प्रकाशों का ।। ९४ ।। प्रकाशों का अर्थात सूर्य-मंडल की और नारायण की जैसी एकता है वैसे ही भगवान से इस से एकता है । इन दोनों का संबंध नहीं हो सकता ।

नविकारिणस्तु करणविकारात ।। ९५ ।।

ये आत्मा विकारी नहीं हैं क्योंकि ऐसा मानने से उनके कारण अर्थात् भगवान को भी विकार मानना पड़ेगा ।

अनन्यभक्त्या तद्बुद्धिर्बुद्धिलयादत्यन्तं ।। ९६ ।।

(भजनीय का और भजन करने वाले का स्वरूप दिखा कर उनके वियोग स्मृति का स्मारक फिर से कहते हैं) कि उस परमानंदमय भगवान में अनन्य भक्ति करते करते भृंगी कीट की भाँति तद्बुद्धि हो जाती है और उस बुद्धि के भी लय होने से अर्थात वियोग जन्य असह्य दुःख से सब सुध बुध छूट जाने से अत्यंत अर्थात सब वासनाओं के मोक्ष होने से परमानंद अर्थात आनंद मात्र कर-पाद-मुखोदरादि भगवान श्रीकृष्णचंद्र से नित्य लीला में संयोग होता है ।। ९६ ।।

आयुश्चिरमितरेषांतुहानिरनास्पदत्वात ।। ९७ ।।

(जो कहो कि संचित प्रारब्ध का भोग तो हुआ ही नहीं आनंद प्राप्ति कैसे हुई इस पर कहते हैं) कि साधारण जीवों की आयु ही प्रारब्ध की भोग कराने वाली है परंतु भगवद्भक्तों को तो उन संचित प्रारब्धों की आप ही हानि हो जाती है क्योंकि उसकी आश्रय आयु का भोग नहीं रहता ।। ९७ ।। अर्थात जिनको

भगवद्वियोग स्मरण में एक एक क्षण कोटि कोटि कल्प तुल्य असह्य यंत्रणा सहते हुए बीतते हैं व संयोगलीला स्मरण से एक एक क्षण लाख लाख बरस तक स्वर्ग के सुख भोग के समान बीतते हैं उनके सब भले बुरे प्रारब्ध इस वियोग संयोग के अनुभव में भस्म हो जाते हैं ।

संसृतिरेषाम भक्तिः स्यान्नाज्ञानात्कारणासिद्धेः ।। ९८ ।।

और जीवों की संसार की कारण अभक्ति है, अज्ञान नहीं, कारण की असिद्धि से ।। ९८ ।। अर्थात् संसार के कारण भगवान् में अभक्ति ही बंधन की हेतु होती है क्योंकि बंध मोक्ष का दाता ही जिस से रूठा रहेगा उसे मोक्ष कहाँ ।

त्रीण्येषां नेत्राणि शब्दलिंगाक्षभेदाद्रुद्रवत् ।। ९९ ।।

(जो कहो कि जीव कैसे जानें इस पर कहते हैं) कि इन जीवों को श्रीमहादेव जी की भाँति तीन नेत्र हैं अर्थात् तीन प्रकार से ये जानैं । कुछ तो शब्द अर्थात् वेदादिकों से, कुछ लिंग अर्थात् अनुमान से और कुछ अक्ष अर्थात् प्रत्यक्ष से जानें ।। ९९ ।।

अविस्तरोभावाविकाराः स्युः क्रियाफलसंयोगात् ।। १०० ।।

लय और उत्पत्ति क्रियाफल के संयोग से विकार हैं ।। १०० ।। अर्थात् वास्तविक निर्विकार भावों में क्रिया फल के संयोग से विकार प्रतीत होता है । भगवत्स्वरूप ज्ञानान्तर भक्ति पाने से मनुष्य वास्तविक स्वरूप जानैगा इस से भक्ति ही मुख्य है ।। इति ।।

व्याकुल लखि सब जीवगन, ज्ञान करम बहु मानि ।
कियो सूत्र शांडिल्य ऋषि, परम भक्ति की खानि ।। २ ।।
सुमिरि राधिका-प्रानपति, व्रज-जुवती-मन-फन्द ।
यह ताको भाषा तिलक, किय तदीय हरिचंद ।। ३ ।।

शांडिल्य सूत्र और उस का भाषा भाष्य हुआ ।

अथ पाठांतर

१५ सूत्र, अभिज्ञायाः साहाय्यात् इति श्री उपासना सर्वस्व तथा श्रीकाष्ठजिह्वास्वामिकृत पाठ ।

२६ सूत्र, तस्यानुज्ञानाय सामर्थ्यात् इति पूर्वोक्त पाठ ।

३० सूत्र, आत्मैकपरां इति पूर्वोक्त पाठ ।

३१ सूत्र, उभयपरां इति पूर्वोक्त पाठ ।

३२ सूत्र, प्रत्यभिज्ञानवत् इति पूर्वोक्त पाठ ।

३४ सूत्र, यहाँ से स्वप्नेश्वर के पाठ से पूर्वोक्त ग्रंथों के पाठ से बड़ा भेद है । यथा जन्मकर्मविदश्चाजन्मने शब्दात् ३४ तच्च दिव्य स्वशक्ति मात्रोद्भावात् ३५ मुख्यं तस्य हि कारुण्यं ३६ प्राणिन्वाननर्विभूतिषु ३७ द्यूतराजसेवयोः प्रतिषेधाच्च ३८ वासुदेवेपीतिचेन्नाकारमात्रत्वात् ३९ प्रत्यभिज्ञानाच्च ४० वृष्णिषु श्रेष्ठेनतत् ४१ एवं सिद्धेषु च ४२ भक्त्या भजनोपसंहारात् परार्थे हेतुत्वात् ४३ रागर्थम्प्रकीर्त्तितसाहचर्याच्चेतरेषाम् ४४ अन्तराले चशेषाः स्युरुपास्यादौ च कांडत्वात् ४५ ताभ्यः पावित्र्यमुपक्रमात ४६ तासुप्रधानयोगात् फलाधिक्यमेके ४७ नाम्नेति जैमिनिः सम्भवात ४८ अंगप्रयोगाणां यथाकालं सम्भवो गृहादिवत ४९ ईश्वरतुष्टेरेकोपिबली ५० अबन्धो ऽर्पणास्य सुखम ५१ ध्याननियमस्तु दृष्टिसौकार्यात् ५२ उर्ध्वादिभः पूजायामेव प्रयुक्तः ५३ पादोदकंतु पाद्यमव्याप्तेः ५४ स्वयमप्यर्पितं ग्राहयमविशेषात ५५ निमित्तगुणव्यापेक्षणादपराधेषु व्यवस्था ५६ पत्रादेर्दानमन्यथाहि वैशिष्ट्यम् ५७ सुकृतजत्वात् परहेतुभावाच्च क्रियासु श्रेयस्यः ५८ गौणत्रैविध्यमितरेण स्तुत्यर्थत्वात् साहचर्यम् ५९ वहिरंतः स्थमुभयमेविष्टसंबंधवत् ६० प्रमादसत्वासत्वाभ्यां विशेषात ६१ स्मृतिकीर्त्योः कथादेश्चार्त्तौ प्रायश्चित्तभावात ६२ भूयसामननुष्ठितिरिति चेदाप्रायणमुपसंहारान्महत्स्वपि ६३ लघ्वपि भक्ताधिकारे महत् क्षेपकमपरसर्वहारात ६४ ततस्थानत्वदन्याधर्माः खले बालीवत ६५ आनिंद्य योनिधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत् ६६ अतोहयविपक्वभावानामपितल्लोके ६७ क्रमैकगत्युपपत्तेस्तु ६८ उत्क्रान्ति वाक्यशेषात् ६९ महापातकिनां

त्वार्नौ ७० सैकांत भावा गीनार्थ प्रत्यभिज्ञानात ७१ परां कृत्यैव सर्वेषां तथा ह्याह ७२ भजनीयमद्वितीयमिदम्। कृत्स्नस्य तत्स्वरूपत्वात ७३ तच्छक्तिर्मायजड़सामान्यात ७४ व्यापकत्वातव्याप्यानां ७५ नप्राणिबुद्धिभ्यो सम्भवात ७६ निर्मायाच्चावचं श्रुतीश्चर्निर्मिमानपितृवत ७७ मिश्रोपदेशान्नेतिचेन्न स्वल्पत्वात् ७८ फलमस्माद बादरायणो दृष्टत्वात ७९ व्युत्क्रमात्प्ययस्तथा दृष्टं ८० तदैक्यं नानात्वमुपाधितः ८१ पृथगेव चेन्न परेनासंबंधात ८२ अविकारिणम्तु करणविकारात ८३ अनन्यभक्त्या तद्बुद्धिलयादत्यन्तं ८४ ग्रामादिवत विशिष्टतया पुमर्थत्वात ८५ आर्युश्चरमित्यपरेषां.तु हानिरनास्पदत्वात ८६ संसृतिरेषामभक्तेः स्यान्नाज्ञानात कारणासिद्धेः ८७ त्राण्येषां नेत्राणि शब्दलिंगाक्षभेदाद्रुद्रवत_ ८८ आविस्तिरोभावा विकाराः क्रियाफलसंयोगात क्रियाफल संयोगात ८९ इस क्रम सूत्रों के पाठ ग्रन्थसमाप्ति तक हैं । इति ।

अथ उपसंहार ।

हम लोगों के आर्य्यशास्त्रों में श्रुतियों के पीछे मूल सूत्रों का बड़ा आदर है । ये सूत्र भिन्न २ ऋषियों ने भिन्न २ शास्त्रों के प्रतिपादन को बनाए हैं और पीछे उन्हीं पर भाष्य व्याख्या टिपनी टीका बना बना कर लोगों ने उन शास्त्रों को चौड़ाया है । यथा जैमिनि ने पूर्वमीमांसा, व्यास ने उत्तरमीमांसा, गौतम ने न्याय, कणाद ने वैशेषिक, कपिल ने सांख्य और पतंजलि ने योगसूत्र बनाए हैं । इन्हीं छः शास्त्रों की संज्ञा षड् दर्शन हैं । इन में पूर्व मीमांसा सब से प्राचीन बोध होता है । इन सूत्रों को छोड़ कर और भी अनेक सूत्र हैं यथा पाणिनि के व्याकरण के सूत्र, वात्स्यायन के कामसूत्र, बामन और भरत के अलंकारशास्त्र पर सूत्र, पिंगल के छन्दःशास्त्र पर और दूसरे दूसरे ऋषियों के अन्य अन्य शास्त्रों पर । वैसे भक्तिशास्त्र पर शांडिल्य ऋषि के और नारद जी के सूत्र हैं । कहते हैं कि संकर्षणसूत्र और उसका प्राचीन भाष्य उपासना पर आगे प्रचलित था किन्तु अब उस की पुस्तक स्मरण शेष रह गई है ।

इस शांडिल्य सूत्र के भाष्यकारों ने सूत्रों के आरंभ करने के पूर्व उपासना रहस्य नामक अथर्ववेद की श्रुति का एक प्रकरण लिखा है । उस का आशय यह है कि ब्रहमा ने श्रीशिव जी से भक्ति का भेद पूछा है उस पर थोड़े से में शिव जी ने ब्रहमा से भक्तिस्वरूप कथन किया है । ब्रहमा जी ने वह रहस्य नारद, वशिष्ठ, असित, देवल और शांडिल्य से कहा है ।

इस प्रकार हम आर्य लोगों का मूल शास्त्र वेद त्रिकांड कहलाता है अर्थात कर्म, ज्ञान और उपासना । पहले शास्त्र जीवों को कर्म का उपदेश करता है, उन कर्मों से शुद्ध अधिकारी जीव को ब्रहमज्ञान कराता है, फिर जब ज्ञान हो लेता है तो उसको उपासना का उपदेश देता हुआ परम सिद्धि को पहुँचाता है ।

आज कल काल के प्रभाव से उपासनाकांड का प्रचार विरल हो गया है इसी हेतु इस सूत्र का भाषा में अर्थ प्रचार किया गया इस से जगत का परमोपास्य तुष्ट हो, इति ।

वैष्णवसर्वस्व

(संप्रदायपरंपरा और स्वल्प पुरावृत्त समेत)

'चतुर्भुजभुजच्छाया समालंबात्सुनिर्भयाः।।
जयंति संप्रदायास्ते चत्वारो हरिवल्लभाः।।'

इसका रचनाकाल सन् १८७५ से १८७९ की बीच है। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' सं. १० सन् १८७९ की अप्रैल के उत्तरार्द्ध अंक में प्रकाशित। सन् १८७६ में प्रकाशित युगल सर्वस्व की भूमिका में भी इसका उल्लेख है।— सं.

वैष्णवसर्वस्व

(पूर्व्वार्द्ध)

१ — क्षर से परे अक्षर ब्रहम स्वरूप नित्य लीला का गोलोक में धाम है जहाँ श्रीवृंदावन में श्रीयमुनाजी के निकट अनेक कुंजलताओं से वेष्टित एक मणिमय महायोगशिलास्तंम्भ है। उस भूमि का नाम विहारभूमि और तीर्थों की नाम-मूल-स्वरूप योगपीठ-शिला से मंडित उस कुट्टिम का नाम खेला तीर्थ है, जहाँ वेद वेदांतादि सर्वशास्त्र वेद्य सच्चिदानंदघन परमात्मा परमानंद-स्वरूप अनेक कोटि नित्यसिद्ध, साधन सिद्ध, भक्त, गोप, गौ और श्री गोपीजनों से वेष्टित उस योगपीठ पर एकाग्र चिंता से ध्यानावस्थित होकर श्रीव्रजेश्वरी की मानावस्था का ध्यान करते हैं।

२ — एक समय सब देवताओं के पूर्वज, सब विद्याके ईशान, सब भूतों के ईश्वर, चराचर के गुरु, मुमुक्षु-शरण, गुण-ब्रहमस्वरूप श्री शिवजी उस गोकुल मंडप में गये। वहाँ अनेक प्रकार के गान से भगवान को रिझाया और संसार के उद्धार के हेतु प्रेम-मार्ग का सिद्धांत पूछा और भगवान ने प्रेममार्ग का परम गुप्त तत्व और रहस्य सब शिवजी को कहा, जो सुनकर शिव जी ने जगत के विरुद्ध दिगंबर रूप प्रेमानंद में मग्न हो अनेक प्रकार से नृत्य किया और कभी उस प्रेममार्ग का प्रकाश न किया। यदि कभी कुछ कहा भी तो भगवान की परामाया श्रीपार्वती से ही कहा क्योंकि युगलस्वरूप के परम गुप्त विहार के अनुभव करने वा कहने सुनने का

पुरुष शरीरधारियों में शिव जी को छोड़ कर और कोई अधिकारी नहीं ।

३ — श्री महादेव जी को इस अवस्था में देखकर नारद जी ने अनेक बार तत्व पूछा परंतु श्री महादेवजी ने न बताया पर जब त्रिपुरासुर के युद्ध में भगवान ने त्रिपुर का नाश किया तब नारदजी ने बड़ी स्तुति किया और जब भगवान ने प्रसन्न होकर कहा कि "वर माँगो" तब नारदजी ने यही वर माँगा कि प्रेममार्ग का तत्व हम को बताइये और भगवान ने प्रेममार्ग के अनेक तत्व इन को बताये और सनकादि सिद्धों तथा आदि ऋषियों को भी भक्ति मार्ग का उपदेश किया । इस से ये नारदजी भक्ति मार्ग के तीसरे आचार्य हुए ।

४ — श्री नारदजी ने कृपा कर के उस तत्व को शाण्डिल्य, गर्ग, कौण्डिन्य आदि ऋषियों से कहा और अनेक ऋषियों के वाक्यों तथा शास्त्रों की विचित्र प्रवृतियों से व्याकुल श्री व्यासजी को भी अपना तत्वोपदेश किया ।

५ — व्यासजी ने उस तत्व को श्री शुकदेवजी से कहा ।

६ — श्री शुकाचार्य इस परंपरा में तृतीय और सप्तम दोनों हैं । तृतीय तो यों हैं कि नित्यलीला से वियुक्त एक शुक संसार में भ्रममाण होकर कहीं शांति न पाता हुआ कैलास में योगवट पर जा बैठा । वहाँ श्री महादेवजी पार्वती जी से परमगुप्त भगवद्रहस्य कहते थे और यह लीला शुक उस नित्य लीला से वियुक्त वह सब चरित्र ज्ञान बल से सुनता तथा केवल लीला के अधिकारी होने ही के कारण उस रहस्य स्थान में उस का प्रवेश भी हुआ । श्री महादेवजी श्री पार्वती जी से अंबिकावन में युगल स्वरूप का विहार तत्व कह रहे थे क्योंकि उस अंबिकावन में पुरुष भी जाय तो स्त्री हो जाय क्योंकि पुरुष शरीर उस गुप्त रहस्य सुनने का अधिकारी नहीं । उस लीलास्य शुक ने वे रहस्य चरित्र सुने, उस के नेत्र से प्रेमाश्रु के बिन्दु गिरे और श्री महादेव जी के जंघा पर पड़े । महादेव जी ने यह जान कर कि इस शुक ने हमारा रहस्य सुना, बड़ा क्रोध किया और उस के मारने को अपना त्रिशूल चलाया और वह शुक वहाँ से भागा और व्यास जी की स्त्री के गर्भ में छिपा, इससे ब्राह्मणी और स्त्री को अवध्य जान कर शिवजी का त्रिशूल फिर आया और शुकदेव जी ने व्यासजी के घर में जन्म लिया । तो जो रहस्य शुकदेवजी ने साक्षात् शिवजी से सुने थे वे अपने शिष्य श्री विष्णु स्वामी से कहे, इससे तो ये (शुक) तृतीय हुए । और घर से निकल जाने के पीछे नारदजी से "अहो बकीयं स्तनकालकूट" यह श्लोक गाते हुए सुन के भगवान के चरित्र पूछे तब नारदजी ने कहा कि तुम्हारे पिता ये सब चरित्र भली भाँति जानते हैं उन से जाकर पूछो । यह नारदजी का वाक्य सुन शुकदेवजी घर आए और अपने पिता व्यासजी से सब रहस्यतत्व सीखे, इस रीति से ये षष्ठ हुए ।

७ — श्री विष्णुस्वामी — महाराज युधिष्ठिर के राज्य समय से किंचित कलियुग बीते द्रविड़ देश में एक राजा हुआ । उस का मंत्री सर्वगुण संपन्न एक ब्राह्मण हुआ, जिस का नाम नारायण भट्ट था । उन के घर में भाद्रपद कृष्ण भौमवार रोहिणी नक्षत्र दो पहर की समय में श्रीविष्णु स्वामी का जन्म हुआ । इनका बालपन का नाम माधव भट्ट था । सातवें बरस में इनके पिता परलोक सिधारे और माता पति के साथ सती हो गई तब श्री विष्णु स्वामी अपने मामा रंगनाथ के साथ विद्याभ्यास के हेतु श्री काशी क्षेत्र में चले । मार्ग में पंढरपुर के राजा मंगलसेन की भेंट कर के काशी में आए और सदाशिव नामक ब्राह्मण से विद्याध्ययन किया और जब गुरुदक्षिणा में गुरु ने यह माँगा कि हम को व्यास सूत्र में कुछ संदेह है सो व्यास जी के मुख से वह अर्थ सुनाय दीजिये । तब योगबल से श्री विष्णु स्वामी ने एक दिव्यरथ मँगाया । उस पर आप आरूढ़ होकर अपने गुरु और उन के अनुज हरिहर भट्ट और पुत्र रंगनाथ भट्ट को साथ लेकर व्यासजी के आश्रम में जाकर व्यासजी के मुख से शुद्धाद्वैत मत के अनुसार मायावाद का खंडन कर के गुरु को सुनवाया और फिर पृथ्वीपर आकर हरिहर भट्ट रंगनाथ को शिष्य किया और सात सौ बरस भगवान की आज्ञा से अपना शरीर रक्खा । परंतु यह काशी की यात्रावाला प्रसंग सब चरित्र के ग्रंथों में नहीं मिलता, केवल श्री विष्णुस्वामी चरितामृत नामक ग्रंथ ही में मिलता है । सब चरित्र सम्मत मत यह है कि श्री विष्णुस्वामी ने घर में सब विद्या पढ़ी और उनको इस बात का सोच पड़ा कि हम अब किन गुणों कर के अपने पिता से अधिक होंय क्योंकि हमारे राजा से बढ़ कर इस देश में कोई राजा नहीं और हमारे पिता से बढ़ कर राजा के घर में और कोई मानपात्र नहीं तब कुबेर की सेवा करें, तो कुबेर भी इंद्र का अनुयायी है और इंद्रादिक देवता रुद्र के हैं और रुद्र तो ब्रह्मा का पुत्र है, ब्रह्मा भी नारायण के नाभि में से निकला है और नारायण भी अनेक मत्स्यादि अवतार बारंबार लिया करते हैं, इस से परतंत्र ज्ञात होते हैं

इस से उपनिषदों में सर्वेश्वर जिसको कहा है हम उस की उपासना करेंगे और जो सर्वेश्वर है उसकी सेवा महाराजोपचार से करने योग्य है ऐसा विचार कर के छत्र, चमर, सिंहासन, शय्या, धूप, दीप, भोग, इत्यादि राज सेवा-सामग्री सिद्ध कर के और भगवान का नाम रूपादि न जान कर के सर्वस्वामी के भाव से सेवा करने लगे । ऐसे ही नित्य सेवा करें पर उसको कोई अंगीकार न करे । जब ऐसे ही बहुत दिन बीते और उन की सेवा अंगीकृत न हुई तब उन्हों ने तो यह प्रण किया कि यदि आज से सर्वेश्वर मेरी सेवा न ग्रहण करेंगे तो मैं भी अन्न ग्रहण न करूँगा और ऐसे ही बिना अन्न जलादि से छ: दिन बीत गये तब सातवें दिन नित्य की भाँति भोग धर के प्रतिज्ञा की कि यदि आज भी सेवा का अंगीकार न होगा तो हम अग्नि प्रवेश करेंगे । ऐसी इन की बुद्धि की दृढ़ता देख कर श्री मच्छड्गुणैश्वर्य्य भगवान आविर्भूत हुए और सब सेवा का अंगीकार किया । जब स्वामी भीतर गए और वहाँ सच्चिदानंद रूप घन साक्षात परब्रहम द्विभुज मुरली-भूषित दक्षिण और बाम दोनों भागों में स्वामिनी समेत को देख कर बोले कि आप यहाँ क्यों आए हैं, आप तो पुराण और तंत्रों के प्रतिपाद्य साकार देवता हैं और हम ने तो श्रुतिशिर: प्रतिपाद्य निर्गुण सर्व स्रष्टा सर्वस्वामी की उपासना और सेवा की । यह श्री विष्णु स्वामी का वाक्य सुन भगवान बोले -- 'यदि हम से बढ़कर कोई ईश्वर है तो उसने तुम्हारी सेवा क्यों नहीं लिया ? और मैंने यदि चोर भाव से लिया तो उस ने दंड क्यों नहीं दिया ?' तब विष्णुस्वामी ने कहा — 'तुम साक्षात् ईश्वर हो, हम तुम्हारे शरणापन्न हैं, अपना माहात्म्य आप स्थापन कर के हमारा संशय दूर करो' । इस पर भगवान ने अनेक युक्ति और प्रमाणों से अपना स्वरूप प्रतिपादन किया तब विष्णुस्वामी ने कहा कि आप सपरिवार यहीं विराजो और मेरी सेवा का अंगीकार नित्य करो । तब आप ने आज्ञा किया कि हमारी मूर्ति की प्रेम से सेवा करो हम सब स्वीकार करेंगे और भगवान ने पंचाक्षर मंत्र का उपदेश कर के गीता और श्री भागवत परम शास्त्र है, हमारी सेवा ही मुख्य धर्म है और प्रेम मात्र साधन है यह उपदेश किया और आप अंतर्हित हुए । भगवान के कहे हुए प्रकार से और जैसी मूर्त्ति का स्वामी ने दर्शन किया था वैसी मूर्त्ति निर्मित करा के स्वामी सेवा करने लगे और लोकोपकार के हेतु आपने शिष्य संग्रह भी किया और किसी लेख के मत से आपने विवाह कर प्रतिरोध किया । किसी के मत से आपने विवाह नहीं किया केवल त्रिदंडी सन्यास कर के सतत श्री हरि सेवन किया । जिस का मत ''विवाह किया'' यह है उसी का यह भी लेख है कि आपने शरीर सात सौ बरस रक्खा और आप को जो पुत्र हुआ उन का नाम श्रीगोपीनाथ था जिनका उसी लेख के मतानुसार चैत्र कृष्ण १३ धनिष्ठा नक्षत्र प्रथम प्रहर में जन्म हुआ था और २१ पीढ़ी तक वंश भी रहा और हरिहर, रंगनाथ, जयगोविंद, भट्टाचार्य, मोहनलाल, व्यकंदेश, नरहरि, चिंतामणि, सोमगिरि, पद्मावती, कुलशेखर, चंद्रसेन, हरिजीवी, शंकर, गोविंददास, देवजीव, यज्ञनारायण, नरसिंह, लक्ष्यणगिरि, हरिदास, गोविंददास, दयाराम, जीवनराम, मनसाराम, कृष्णदत्त, बोपदेव, केशव, जयदेव, रत्नपाल, दुर्गावती, नामदेव, बिल्वमंगल इत्यादि शिष्यवर्ग स्वामी ही के काल में हुए हैं । वरंच भी महाप्रभु जी को भी स्वामी ने आप ही उपदेश कर आचार्य पदवी दे भाष्य करने की आज्ञा दी परंतु यह अप्रमाण है । वास्तव में श्रीगोपीनाथ से ले कर श्री बिल्वमंगल तक सात सौ परंपरा-प्राप्त शिष्य हुए और यहाँ जिनका नाम लिखा है वे उन में प्रसिद्ध थे और बहुतों के नाम काल बल से लुप्त हो गए । इसी से यहाँ पहिले और वर्णन छोड़ के उस घोर काल का वर्णन किया जाता है, जिस में वैदिक धर्म प्राय: उच्छिन्न सा हो गया था । भगवान ने बुद्धावतार ले कर बहुत से उपधर्मों का उपदेश करके सारे भारतवर्ष को उस धर्म से परिपूर्ण कर दिया । उस के कुछ काल पीछे एक दिन कैलास के शिखर पर सिद्ध वट के नीचे रत्नवेदि पर व्याघ्रचर्म्म के आसन पर बैठ के श्री पुरुषोत्तम का ध्यान करते रहे । कुछ काल के बाद भगवान उनकी समाधि से प्रगट हो कर कहने लगे कि ''तुम द्वापरादि युगों में मनुष्यादि में अंश से अवतीर्ण हो कर अपने बनाये हुए शास्त्रों में लोगों को मुझ से विमुख करो और अपना प्रभाव प्रगट करो'' । यह सुन शिवजी ने स्वीकारा । अनन्तर अपने को प्रगट करने की संधि देख रहे थे । उसी समय दक्षिण में द्रविड़ देश में एक महा शिव-भक्त वृद्ध ब्राहमण था उस को कोई संतति नहीं थी, इसलिए वह ब्राहमण कुछ अनुष्ठान करता था । सो एक दिन आप प्रसन्न हो कर ''वरं ब्रूहि'' यह बोले । यह शिव जी की वाणी सुनते ही ब्राहमण ने कहा ''महाराज ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र मिले'' । इस पर शिव बोले ''निर्गुण मूर्ख पुत्र चाहोगे तो एक सौ पाँच बरस का मिले गा और दूसरा सर्वगुण-सम्पन्न बारह वर्ष का मिलेगा ।'' इस पर ब्राहमण बोला 'महाराज ! तब तक आप ठहरिये जब तक मैं अपनी स्त्री से इसकी सलाह पूछूँ' । महादेव जी का ठहरने का विचार जान

क स्त्री से पूछने गया और स्त्री की संमति से शंकर जी से कहा महाराज ! सर्वगुणसंपन्न पुत्र मुझे दीजिए शिवजी ने बहुत अच्छा कह कर अन्य सर्वगुणसंपन्न कोई पुत्र न देखकर स्वयं उसका पुत्र होना स्वीकार किया और गर्भ-काल समाप्त होने पर उस ब्राहमण के स्त्री से अवतीर्ण हुए । ब्राहमण ने शिव का प्रसाद जान कर उस पुत्र का नाम शंकर रक्खा और क्रम से उपनयन तक संस्कार किये और साम वेद पढ़ाया । यह जनम से ही महाकवि हुआ, कभी शक्ति, कभी शिव और कभी विष्णु का स्तव करता था, जिस से वे देवता प्रत्यक्ष होकर वर देते थे । अणिमादि सिद्धि तो इस के वश में थीं । कुछ काल के अनंतर किसी ब्राहमण के घर में अवतीर्ण गौरी से यथाविधि विवाह हुआ । गृहस्थाश्रमी होकर त्रैवर्णिक धर्मका अजन किया और लक्ष्मी ऐश्वर्य संतति की इच्छा करने वाले लोगों के लिये उपासना कांड प्रसिद्ध किया । सर्वजन में इसकी कीर्त्ति होने के कारण सब इसके वाक्य पर विश्वास करने लगे । ऐसे एकादश वर्ष व्यतीत हुए तब शंकराचार्य ने अपने तात से कहा कि पिता अब कुछ अनिष्ट होगा ऐसा ज्ञात होता है इसलिए मेरी मनीषा काशी में जाने की है सो आप की आज्ञा चाहता हूँ । यह सुन पिता ने कहा बहुत अच्छा है परंतु हमको भी काशी को ले चलो । तब शंकराचार्य ने अपने मा बाप को शिविका में बैठाल कर स्त्री समेत काशी में आगमन किया । काशी में आते ही शंकराचार्य को कालज्वर आया और अपनी अंत की बेला जान मणिकर्णिका में स्नान किया और "निमज्जता नाथ भवार्णवान्तश्चिरान्मया पोतइवामि लब्धः" इस श्लोकार्ध से स्तवन करते करते प्राण त्याग किया ।

यह पुत्र का अंत देख कर माता पिता ने बहुत विलाप किया । अंतर गौर्यंशभूत शंकराचार्य की स्त्री ने अग्रिम आधा श्लोक पढ़ा यथा "त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीमनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः" । यह श्लोकार्ध सुनते ही शंकराचार्य जीतिव होकर स्त्री से बोले कि यद्यपि तुमने हमको जीवित किया तथापि हम सन्यास करेंगे । ऐसा कहकर चतुर्विध कुटीचर, बहूदक, हंस और परमहंसात्मक सन्यास किया । यद्यपि शास्त्र की आज्ञा, यावत् मदिरामत्त के समान ज्ञान से मत्त हुए बिना शिखा सूत्र का त्याग करने के विषय नहीं तथापि इन्हों ने अपना पूर्व श्री विष्णु का "जमान्मद्रिमुखानकुरु" यह वाक्य स्मरण करके शिखा सूत्र का त्याग किया और काषाय वस्त्र और दंड ग्रहण किया । अनंतर इनके बहुत से शिष्य भी हुए क्योंकि "यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्त देवेतरोजनः । सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते" । अनंतर शंकराचार्य ने वही भगवान का वाक्य पूर्ण मनोगत कर के व्याससूत्र का भाष्य मायावाद अर्थात् दैत्य मत के अनुसार किया । कुछ दिन के अनंतर प्रायः इन का मत इस देश में फैल गया ।

उसी समय गुजरात देश में एक राजा था । उसका पुत्र कुमारपाल नामक था । यह हेम सूरि नाम किसी श्वेताम्बर जैन से पढ़ाया गया था । किसी समय कुमारपाल ने स्वप्न में राहु से ग्रसा हुआ पूर्ण चंद्र देखा और हेमसूरि से इस का फल पूछने को तत्काल आया । स्वप्न का वृत्त सुनते ही हेमसूरि ने उस की बहुत निंदा की । राजपुत्र हेमसूरि के दुष्ट भाषण सुन घर आया और हेसूरि को मारने का विचार करते करते शेष रात्रि तक जागा । प्रभात होते ही हेमसूरि ने शिष्य द्वारा राजपुत्र को कहला भेजा कि यह 'स्वप्न बहुत लाभदायक है, आज से सातवें दिन राज्य सर्व तुम्हारे हस्तगत होगा । यदि यह असत्य हो तो हमैं दंड देना नहीं हमारी आज्ञा मानना' । राजपुत्र ने हाँ कहा और ऐसा ही हुआ । तब राजपुत्र से कहकर हेमसूरि ने वैष्णव-शैव-मीमांसक सब को नगर से निकलवा दिया ।

उसी काल में सूर्य्यांश देवप्रबोध नामा और जैमिनी के अंश भट्टाचार्य्य नामा पूर्व में दो पंडित हुए । वे लोग जब काशी में आये तब सुना कि गुजरात में जैनों ने वेदमार्ग का नाश किया । ये सुन के वे लोग गुजरात गये और काल पाकर हेमसूर्य्य के विश्वासपात्र शिष्य हुए । एक दिन पद्मावती की अंतरंग आराधना में हेमसूर्य्य ने इन दोनों को मद्य पीने को दिया । देवप्रबोध ने तो मारे डर के पी लिया । भट्टाचार्य ने कहा कि थोड़ी देर ठहर के पीयेंगे । अनंतर हेमसूर्य्य ने वेद धर्म की निंदा करनाशुरू किया । यह सुन कर भट्टाचार्य्य की आँखों से आँसू गिरने लगा और हेमसूर्य्य ने जाना कि यह कोई छिपा हुआ ब्राहमण है । हेमसूर्य्य ने उसे अपने ऊपर के कमरे में कैद किया । वहाँ जैनमार्ग की बहुत सी पुस्तकें रक्खीं जिनको पढ़ कर भट्टाचार्य ने वही वशीकरण सिद्ध कर लिया जिससे हेमसूर्य्य ने राजा को वश कर लिया था । उस राजा की एक रानी वैद्यक थी और नित्य शालिग्राम का पूजन करके जल पीती थी । उसका महल भट्टाचार्य के बँगले से बहुत निकट था । एक दिन उस रानी ने लंबी साँस लेकर यह आधा श्लोक पढ़ा "किंकरोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति" । यह सुनते ही भट्टाचार्य्य ने उत्तर दिया "माविशीद वरारोहे ! भट्टाचार्य स्तिभूतले" और यह कहके कूद पड़े कि जो वेद प्रमाण

हो तो हम न मरें । कहते हैं कि इतने ऊँचे से गिरने से वेद की सत्यता से उनके प्राण तो नहीं गये पर 'जो वेद सत्य हो' इस संदेह के वाक्य कहने से उनकी आँख में चोट आई और वहाँ से निकल कर उस नगर में एकांत में वे छिपे छिपे रहने लगे । एक दिन एक बगीचे में एकांत में एक तुलसी का पेड़ देखा और वहीं बैठे रहे । जब साँझ हुई तब एक माली आया और तुलसी की पुड़िया फूल में छिपाकर ले चला । भट्टाचार्य ने माली से बहुत हठ पूर्वक रानी का सब वृत्तांत जाना और ''किं करोमि क्व गच्छामि' यह पूरा श्लोक लिखकर माली को दिया कि वह रानी को देवे । रानी ने एकांत में भट्टाचार्य्य को बुलाया और यह जैन बनकर उसके महल में गए और फिर ब्राह्मण होकर रानी का दर्शन दिया । रानी ने इसकी बड़ी पूजा किया और दोनों ने मिल कर वेद धर्म के लिए बड़ा विलाप किया।रानी ने उनको अपने महल में छिपा कर रक्खा । फिर जैसा वशीकरण का बाजू हेमसूर्य्य ने राजा के हाथ में पहिनाया था वैसा ही दूसरा बाजू भट्टाचार्य्य ने बनाकर रानी से राजा के हाथ में बँधवा दिया और वह बाजू अपने पास मँगवा लिया इस अभिचार से राजा को बड़ा ज्वर आया । राजा ने हेमसूर्य्य से ज्वर की निवृत्ति का उपाय पूछा । उसने कहा कि ब्राह्मण को काल-पुरुष दान देने से ज्वर छूटेगा । राजा ने एक ब्राह्मण का लड़का खोज कर जनेऊ पहना कर काल-पुरुष को दान दिया और उससे राजा का ज्वर छूट गया । राजा के चित्त में उसी दिन से ब्राह्मणों का महत्व बढ़ा और ब्राह्मणों को राज्य में रहने की आज्ञा मिली । उसी समय देवप्रबोधाचार्य्य भी प्रायश्चित्त करके नरसिंह जी सेवर पाकर सिद्ध होकर पालकी पर चढ़ कर बहुत से शिष्यों के साथ उस नगर में आये । भट्टाचार्य्य इनसे आकर मिले । एक दिन जब ये श्राद्ध करते थे तब हेमसूर्य्य ने अपने मंत्र से इनका श्राद्ध नाश करना चाहा और जहाँ पाक होता था वहाँ मद्य बरसाना चाहा । भट्टाचार्य्य ने भी मंत्र से नारियल उड़ाये, जो जैन सिद्धों के सिर पर गिरने लगे, जिससे वे वहाँ से भाग गए । दूसरे दिन सब ब्राह्मण मिल कर राजसभा में गये । राजा ने प्रणामादि से इनका बड़ा सत्कार किया । ज्योतिषी ने पंचांग सुनाया । स्मार्त्त ने कहा आज अमावस्या है, श्राद्ध करना चाहिये । सुनते ही हेमसूर्य्य ने कुढ़ कर कहा कि आज अमावस्या नहीं पूर्णमासी है । अंत में यह ठहरी जिसकी बात झूठ हो वह अपने मत की पुस्तक समेत पृथ्वी में गाड़ा जाय । साँझ को हेमसूर्य्य ने अपनी इष्ट देवता पद्मावती से प्रार्थना करके उसका कुंडल चंद्रमा के स्थान पर उदय कराया । देवप्रबोध ने नृसिंह जी के प्रसाद से यह बात जानकर राजा से कहा कि यह कुंडल है और इसका प्रकाश केवल बारह कोस तक है । राजा ने उसी समय सवार भेजकर जब वृत्त जाना तब दूसरे दिन हेमसूर्य्य को पुस्तकों समेत पृथ्वी में गाड़ दिया । जिस समय हेमसूर्य्य गाड़ा जाता था उस समय बड़ी भीड़ हुई और सब लोगों ने मिलकर हेमसूर्य्य से पूछा कि 'अब तुम धर्म का सच सच तत्व बताओ' तब यह श्लोक पढ़कर उसने प्राण त्याग किया — 'हरिर्भागीरथी विप्राः विप्राः भागीरथी हरिः । भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेकं जगत्त्रये'' । । जैनों का बल टूटने से वेद फिर प्रवर्त्त हुये और वैष्णव-शैवमत प्रचार हुआ । भट्टाचार्य्य ने अपना वेदांत मत चलाया और पद्मावती को श्राप दिया कि तू मनुष्य हो । वही सरस्वती नाम से भट्टाचार्य्य ही के कन्या हुई और भट्टाचार्य्य ने उसका विवाह ब्रह्मा के अंश सुरेश्वराचार्य्य नामक अपने शिष्य से कर दिया । सुरेश्वर अपनी स्त्री को लेकर काशी में रहने लगे । जिस समय भट्टाचार्य्य शतायु होकर जैन ग्रंथ पढ़ने के प्रायश्चित्त में तुषानल करके जलने लगे, उस समय शंकराचार्य्य ने आकर इनका हाथ पकड़ा और कहा कि हम से वाद करो । भट्ट ने कहा तुम काशी जाव वहाँ हमारे जामाता से वाद करना, हम तो अब देह त्याग करते हैं । शंकराचार्य्य काशी में आये और सुरेश्वर की स्त्री को मध्यस्थ कर के वाद आरंभ किया । पद्मावती ने पूर्व वैर स्मरण कर के शंकराचार्य्य का पक्ष किया । सातवें दिन सुरेश्वरचार्य्य हारे और शंकराचार्य्य ने उन्हें सन्यासी किया । शंकर दक्षिण में गोकर्ण शिवक्षेत्र में आये और चार शिष्यों को आज्ञा दिया कि चार दिशा में जाकर तुम लोग शिखा सूत्र परित्याग पूर्वक सन्यास मत का प्रचार करो । उन शिष्यों में मध्व नामक एक ब्राह्मण को भगवान श्री रामचंद्रजी ने रात्रि को स्वप्न में आज्ञा दिया कि तुम तो हनुमान के अंश हो और वैष्णव मत फैलाने का तुम्हारा अवतार है, सो उठो और शंकराचार्य्य का मत खंडन करके हमारे तत्व वाद के अनुसार व्यास सूत्र की व्याख्या कर के वैष्णव मत फैलाओ । मध्वाचार्य्य ने भगवदाज्ञानुसार दूसरे दिन से शंकराचार्य्य का मत कंठरव से खंडन करके वैष्णव मत का प्रचार किया ।

विल्वमंगल के पीछे और मध्वाचार्य्य के पहले द्रविड़ देश में रामानुज नाम एक ब्राह्मण हुये । लक्ष्मी को तप से प्रसन्न करके उनसे वर माँगा कि हमसे भवगत् सिद्धांत कहो । लक्ष्मी जी ने गरुड़ जी को आज्ञा दिया और गरुड़ जी ने नारायणीय सिर्द्धांत रामानुज से कहा, जिसके अनुसार श्रीरामानुजाचार्य्य ने गीता और सूत्र

पर भाष्य करके विशिष्टाद्वैत वैष्णव संप्रदाय संसार में फैलाया । इसी संप्रदाय में अगस्त्य और परशुराम के बनाये हरिहरोपासक और लक्ष्मी के उपासक वैष्णव शाखांतर में हुए हैं ।

इस काल से बहुत पूर्व ही पंढरपुर में व्यास और सूर्य्य के अंश से निंबादित्य ब्राहमण हुये, जिनको श्री विट्ठलनाथ जी ने अपना सिद्धांत कहा और उसके अनुसार उन्होंने द्वैताद्वैत मत प्रवर्त्त किया । जैनों के बल से लुप्त संप्रदाय को श्रीनिवासाचार्य्य ने सूत्र और गीता पर भाष्य करके फिर से प्रवर्त्त किया ।

यह चारो संप्रदाय अर्थात् विष्णुस्वामी, मध्व, रामानुज और निंबादित्य की पूर्व्व व्यवस्था हुई । ये संप्रदाय रूद्र, ब्रहम, लक्ष्मी और सनकादि के क्रम से प्रवर्त्त किये हुये वास्तव में एक प्रगट अलग अलग संसार में प्रसिद्ध हैं ।

मध्वाचार्य्य से श्री जगन्नाथ जी ने आज्ञा किया था कि 'जो इन चारो संप्रदाय के बाहर है वह हमारा प्यारा नहीं है ।'

इन्हीं संप्रदायों के चार उपसंप्रदाय हैं — विष्णुस्वामी का उपसंप्रदाय चैतन्य, रामानुज का नंद, मध्वाचार्य का प्रकाश और निंबादित्य का स्वरूप । इनमें स्वरूप और प्रकाश की संप्रदाय कालबल से विच्छिन्न हो गई । ये चारो उपसंप्रदाय मूल संप्रदाय से अविरुद्ध हैं, केवल आचार्यों के रुचिभेद से नामांतर से प्रसिद्ध हैं ।

चतुर्भुजभुजच्छाया व्यवसायातसुनिर्भयाः ।
जयन्ति स सम्प्रदायाश्चत्वारो हरिवल्लभाः ।। १ ।।

(उत्तरार्द्ध)

अथ श्रीविष्णु स्वामी संप्रदाय-परंपरा

श्री पुरुषोत्तम, शिव जी, श्री नारद जी, श्री व्यास जी । व्यासजी को दो शिष्य शुकदेव जी और शांडिल्य । शांडिल्य के शिष्य गर्ग और कौंडिन्य । शुकदेवजी के शिष्य विष्णुस्वामी । विष्णुस्वामी से क्रम से परमानंद मुनि, आनंद मुनि, प्रकाश मुनि, श्रीकृष्णमुनि, नारायण मुनि, जै मुनि, श्रीमुनि, शंकरभट्ट, पद्मभट्ट, गोपाल भट्ट, श्रीधर भट्ट, श्याम भट्ट, राम भट्ट, सेतु भट्ट, कृष्ण भट्ट, दिवाकर भट्ट, कृपाल भट्ट, विद्याधर भट्ट, दिनकर भट्ट, मधुनिधान भट्ट, ज्ञान देव भट्ट, शुकदेव भट्ट, शिवदेव, शांतिदेव, दयालदेव, क्षमादेव, सन्तोषदेव, धीरजदेव, ध्यानदेव, विज्ञानदेव, महाचार्य्य, तत्वाचार्य्य, नृसिंहाचार्य्य, सूवाचार्य्य, सुबुद्धाचार्य्य, प्रबुद्धाचार्य्य, प्रबोधाचार्य्य, असुवाचार्य्य, रुद्राचार्य्य, भगवन्ताचार्य्य, रामेश्वराचार्य्य, ब्रहमविधिचर्य्याचार्य्य, सुदयाचार्य्य, लक्ष्मनारायणाचार्य्य, ज्ञानदेव, नाम देव, विलोचनदेव इत्यादि विल्वमंगल जी तक सात सै आचार्य्य हुए हैं, इसी से श्री महाप्रभु जी पहले से गिनने से सात सै सातवें आचार्य्य हैं ।

कहते हैं कि विष्णुस्वामी ने फिर से जन्म लिया था और व्यास अवतार कहलाते थे ।

श्री बल्लभी मत के अतिरिक्त श्री विष्णुस्वामी के संप्रदाय के लोग और कहीं कहीं भी मिलते हैं जैसा कि श्री प्रेमाकर गुसाई के शिष्य नारायण दास जी सारस्वत, जिनको श्री शुकदेव जी ने दर्शन दिया था । उन के पीछे पुरुषोत्तम जी और बंशीधर जी इस वंश में प्रसिद्ध हुए हैं । नाभा जी ने इन्हीं नारायण दास का भक्तमाल में वर्णन किया है । यह गद्दी नवल गोस्वामी के नाम से अब तक प्रसिद्ध है । ऐसे ही व्रज में और भी कुछ लोग इस संप्रदाय के हैं ।

अथ श्री मध्व संप्रदाय परंपरा

	देवता	अंशावतार	पृथ्वीस्थित्यंका	पुण्यतिथि		स्थल
१	वायुदेव	श्री आनंद तीर्थस्वामी	६८	माघ शुक्ल	९	१ स्थलदक्षिणस्थवृन्दावने
२	रुद्रदेव	पद्मनाभतीर्थस्वामी	७	कार्तिक कृष्ण	१४	२ बद्रिकाश्रम
३	मन्मथदेव	नरहर तीर्थस्वामी	८	पौष कृष्ण	७	३ अनीगोंदी
४	गरुड़देव	माधव तीर्थस्वामी	१७	भाद्रपद कृष्ण	१५	४ हंपिरूपाक्षी
५	रुद्रदेव	अक्षोभ तीर्थस्वामी		मार्गशीर्ष कृष्ण	१५	५ मेणुर भीमा तीर
६	हंसदेव	जय तीर्थस्वामी	९	आषाढ़ा कृष्ण	८	६ मलखेड़ा

७	सूर्यदेव	विद्यानिधि राजतीर्थ	६४ वैशाख शुक्ल	३	७ जगन्नाथ
८	चंद्रदेव	कवींद्र तीर्थस्वामी	७ चैत्र शुक्ल	९	८ पंपा सरोवर
९	यमदेव	वागीश तीर्थस्वामी	४ चैत्र शुक्ल	२	९ आनिगोदी
१०	अग्निदेव	रामचंद्र तीर्थस्वामी	३३ वैशाख शुक्ल	८	१० मलखेड़ा
११	वरुणदेव	विद्या तीर्थस्वामी	८ कार्तिक कृष्ण	४	११ आनिगोदी
१२	कुबेरदेव	रघुनाथ तीर्थस्वामी	३६ मार्गशीर्ष कृष्ण	२	१२ कोलुर
१३	प्रवाहदेव	रघुवर्य्य तीर्थस्वामी	८ ज्येष्ठ कृष्ण	३	१३ पेनगोड़ी
१४	नैत्रृतिदेव	रघुत्तम तीर्थस्वामी	३८ पौष शुक्ल	११	१४ ये चक्रमगर
१५	तुंबुरुदेव	वेदव्यास विधि तीर्थ	२४ चैत्र शुक्ल	२	१५ पण्ढरपुर भीमा तीर
१६	हाहागंधर्व	विद्याधीश तीर्थ	१८ पौष कृष्ण	१४	१६ साँगलि कृष्ण तीर
१७	हू हू गंधर्व	वेदनिधि तीर्थस्वामी	१७ कार्तिक शुक्ल	१२	१७ निवृत्ति संगम तीर
१८	लोमस ऋषि	सत्यवर्य तीर्थस्वामी	८ फाल्गुण शुक्ल	६	१८ विलोब नगर
१९	जावालि ऋषि	सत्यनिधि तीर्थस्वामी	२२ मार्गशीर्ष शुक्ल	४	१९ माचारगुडी काबेरी तीर
२०	विश्वामित्र	सत्यनाथ तीर्थस्वामी	३९ मार्गशीर्ष शुक्ल	११	२० कोलुर
२१	मेधातिथि	सत्याऽभिमान तीर्थ	६९ ज्येष्ठ कृष्ण	१४	२१ आरपी
२२	पराशर ऋषि	सत्यपूर्ण स्वांमी	२२ ज्येष्ठ कृष्ण	२	२२ माना मदरी
२३	जामदग्नि ऋषि	सत्य विजय स्वामी	१३ ज्येष्ठ कृष्ण	१२	२३ साबपुर सावणूर
२४	कश्यप ऋषि	सत्यप्रिय स्वामी	९ चैत्र शुक्ल	१३	२४ तुंगभद्रा तीर
२५	मांडव ऋषि	सत्यबोध तीर्थस्वामी	४० फाल्गुण कृष्ण	१	२५ सांतविवतुर
२६	—	सत्यसंघ तीर्थस्वामी	११ ज्येष्ठ शुक्ल	२	२६ —
२७	—	सत्यवर तीर्थस्वामी	२ श्रावण शुक्ल	७	२७ —
२८	—	सत्य धर्म तीर्थस्वामी		—	२८ —
२९	—	सत्य संकल्प तीर्थस्वामी		—	२९ —

अथ श्री चैतन्य संप्रदाय परंपरा

श्री कृष्ण, ब्रह्गा, नारद, व्यास, मध्व, पद्मनाभ, नृहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिंधु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेंद्र, जयधर्म्मा, पुरुषोत्तम, ब्रह्मण्य, व्यासतीर्थ, लक्ष्मीपति, माधवेंद्र। उन के तीन शिष्य १ ईश्वर १ अद्वैत २ और नित्यानंद २। ईश्वर के श्रीकृष्ण-चैतन्य, उनके गोपालभट्ट, उनके गोस्वामी गोपीनाथ जिनका वंश अब प्रसिद्ध है। श्री कृष्ण-चैतन्य के मुख्य चौदह पार्षद और चौसठ महंतों के नाम नीचे लिखे के अनुसार जानो। और श्रीकृष्ण-चैतन्य विद्या में केशवपुरी के शिष्य थे।

अद्वैत १ अभिराम २ नित्यानन्द ३ सुंदर ठक्कुर ४ धनंजय पंडित ५ कमलाकर ६ साहंस पंडित ७ पुरुषोत्तम ८ श्रीधर ९ हलायुध १० गौरीदास ११ उद्धारण १२ परमेश्वर १३ कृष्ण १४।

नीलांबर चक्रवर्ती १ गदाधर पंडित २ गदाधर ठक्कुर ३ नरहरी ४ मुकुंद ५ सदाशिव कविराज ६ जगदानंद पंडित ७ दामोदर ८ बनमाली ९ रघुनाथ भट्ट १० गदाधर भट्ट ११ प्रबोधनंद १२ राघो गोस्वामी १३ भूगर्भ गोस्वामी १४ काशीमिश्र १५ रूप गोस्वामी १६ सनातन गोस्वामी १७ रघुनाथ दास १८ रघुनाथ भट्ट १९ गोपाल भट्ट २० लोकनाथ २१ दूसरे गदाधर भट्ट २२ जीव गोस्वामी २३ गोविंद २४ माधव २५ वासू घोष २६ सिवानंद की स्त्री २७ परमानंद पुरी २८ राघौदास २९ शुक्लांबर ब्रह्मचारी ३० जगदीश पंडित ३१ श्रीलाचार्य३२ गरुड़ ३३ गोपीनाथ सिंह ३४ शंकर ३५ गुणसागर राय ३६ माधव ३७ भास्कर ३८ बनमाली ३९ सार्वभौम ४० सिहानंद ४१ लोकनाथ कविचंद्र ४२ श्रीनाथ ४३ रामनाथ ४४ काशीमिश्र ४५ रामानंद ४६ प्रतापरुद्र ४७ कालीदास ठक्कुर ४८ माकी स्त्री ४९ गोपीनाथाचार्य ५० शारंगदास ५१ विश्वेश्वर ५२ सत्यराज ५३ रामानंद ५४ गोविंद ५५ गरुड़ ५६ आचार्य्यरत्न ५७ श्री वल्लभ ५८ वृंदावन ५९ शिवानंद ६० जगन्नाथ पंडित ६१ अनल ६२ हरिदास ६३ हृदयानंद ६४।

अथ श्रीरामानुज संप्रदाय परंपरा

पुरुषोत्तम, लक्ष्मी, विश्वक्सेन, शठकोप, श्रीनाथ, पुंडरीकाक्ष, राममिश्र, यामुनाचार्य, पूर्णाचार्य, रामानुज, गोविंदाचार्य, पराशर, वेदांताचार्य, कलिवैरिदास, श्रीकृष्णप्रसाद, लोकाचार्य, श्रीशैलनाथ, वरबर मुनि, बरदनारायण, श्रीनिवासदास, प्रणतार्तिहराचार्य, बरदाचार्य, वेंकटेश, बरदार्य्य, प्रणतार्तिहर, वेंकटार्य, वेंकटेश, वरदाचार्य, प्रणतार्तिहर, श्रीनिवास, वेंकटाचार्य, कृष्णाचार्य्य, शेषाचार्य्य, श्रीनिवासरंगाचार्य । यह तो वर्तमान वृंदावनस्थ स्वामी रंगाचार्य तक परंपरा लिखी है परंतु रामानुज संप्रदाय में चौहत्तर गद्दी हैं । और देवाचार्य्य से प्रबोधानंद, राघवानंद, रामानंद यह रामानंदी शाखा है । रामानंद से अनंतानंद, कृष्णदास, कालीदास, अग्रदास, नारायणदास, गोविंददास, कान्हरदास तक अग्रदासी शाखा है । और निंबादित्य और रामानुज संप्रदाय से मिलकर श्रीजानकी घाट की और मिथिलापुर की संप्रदाय स्वतंत्र बन गई है । कितने साधु अग्रस्वामी के संप्रदाय के पौहारी बाबा को रामानुज के अंतर्गत मानते हैं पर महाराज विश्वनाथ सिंह ने अपनी गुरु परंपरा में इन लोगों को निंबादित्य के अंत: पाती हितहरिवंश जी के संप्रदाय में माना है ।

अथ श्री निंबादित्य संप्रदाय परंपरा

हंस, सनकादिक, नारद, निंबादित्य । निंबादित्य का नाम निंबार्कऔर नियमानंद भी है । इनकी माता जयंती और पिता अरुण द्राविड़ ब्राह्मण । इसी से इनको आरुणी भी कहते हैं । अंतरंग रूप इनका श्रीललिताजी और रंगदेवी का है । मर्यादा में ये सुदर्शन चक्र का अवतार हैं । शिष्य परंपरा श्रीनिवासाचार्य, विश्वाचार्य, पुरुषोत्तमाचार्य, विलासाचार्य, स्वरूपाचार्य, माधवाचार्य, बलभद्राचार्य, पद्माचार्य, श्यामाचार्य, गोपालाचार्य, कृपाचार्य, देवाचार्य, सुंदर भट्ट, पद्मनाभ, उपेंद्र भट्ट, रामचंद्रभट्ट, वामनभट्ट, कृष्णभट्ट, पद्माकरभट्ट, भूरिभट्ट, माधवभट्ट, श्यामभट्ट, गोपालभट्ट, बलभद्रभट्ट, गोपीनाथभट्ट, केशवभट्ट, गंगलभट्ट, केशव काश्मीरिभट्ट, श्रीभट्ट, हरिव्यासदेव । हरिव्यासदेवजी के पाँच शाखा नीचे लिखे हुए के अनुसार यथा ।

शोभूराम, कर्णहरदेव, मधुरेश नरहरिदास, प्रहलाददास इत्यादि ।

दूसरी शाखा

कर्णहरि, परमानंददेव, नागजी, मोहनदेव, आत्माराम, नारायण दास, भगवानदास, गिरधारीदास, गोपालदास ।

तीसरी शाखा

शोभूराम, मधुरेशदेव, बदरीशदेव, जयरामदेव, कृष्णदेव, धर्म दास जी ।

चौथी शाखा

व्यासदेव, परशुराम, हितहरिवंश, नारायणहित, वृंदावनहित, श्री गोविंदहित ।

पाँचवीं शाखा

व्यास जी के पहले किसी महात्मा से है यथा श्री आशाधीर जी, श्रीहरिदास स्वामी, विट्ठलविपुलविनोदविहारण, विहारणदास जी, नरहरदेव जी, रसिकदेव जी, पीतांबरदेव, गोवर्द्धनदेव, नरोत्तमदेव । रसिकदेव जी के दूसरे शिष्य ललितकिशोरी उनके मौनीदास जी जिनकी श्रीवन में टट्टी है ।

शोभूराम जी के भाई आत्माराम उन की दो शिष्य-परंपरा, एक संतदास की, एक माधव दास की ।

इस संप्रदाय में सुमुखन भक्त के पुत्र व्यासजी बड़े प्रसिद्ध हुए हैं, संवत् १६१२ में जन्म, पैंतालीस वर्ष की अवस्था में श्रीवन आए और बारह संप्रदाय चलाई ।

श्रीहित हरिवंश जी का निवास देवनगर, गौड़ ब्राह्मण काश्यप गोत्र यजुर्वेद माध्यन्दनी शाखा, पिता व्यास मिश्र माता तारावती, वंशी का अवतार, संवत १५५९ वैशाख सुदी ११ को जन्म । इनके ताऊ नृसिंहाश्रम प्रसिद्ध भक्त थे । इन को बारह भाई और स्त्री का नाम रुक्मिणी, मोहन जी इत्यादि तीन पुत्र और एक कन्या । श्रीस्वामिनी जी से अश्वत्थ वृक्ष पर मंत्र पाया । कृष्णदासी और मनोहरी दो स्त्री और व्याही । संवत् १५८२ कार्तिक सुदी १३ को श्रीराधावल्लभ जी को पाट बैठाया, पाँच भोग सात आरती का नेम रक्खा । इनका संस्कृत ग्रंथ श्रीराधासुधानिधि श्लोक २७० भाषा ग्रंथ पद चौरासी । मुख्य शिष्य नरवाहन, नाहरमल्ल, विट्ठलदास, मोहनदास, छबीलदास, नवलदास, वलीदास, परमानंद रसिक, हठी, हरिदास, खड्गसेन और गंगा, यमुना ।

इति श्री वैष्णव सर्वस्व परंएरावर्णने — उत्तरार्द्ध समाप्ताः ।

श्रीश्रीवल्लभाचार्यचरणकमलमिलिंदमरंद

चिंतासंतानहंतारो यत्पादांबुजरेणवः।
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहु ।।

रचना काल सन् १८७५। 'युगल सर्वस्व' के भादों शुक्ल ८ संबत् १९३३ के उपसंहार में तथा 'चन्द्रावली नाटिका' के प्रथम संस्करण सम्वत् १९३४ के मुख्य पृष्ठ पर इसका उल्लेख मिलता है। सन् १८८८ में खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर ने भी इसे मुद्रित किया था। फिर १८९२ में भी इसका संस्करण खड्ग विलास प्रेस का ही मिलता है।— सं.

श्री वल्लभीय सर्वस्व

दक्षिण में तैलंग देश में आंध्र प्रांत में आकबीडु जिला में, खम्मम कॉकरिविल्ल ग्राम में यजुर्वेद तैत्तिरीय शाखा भारद्वाज गोत्र में महादेव पात्र के वंश के ब्राह्मण रहते थे। इसी वंश में रामनारायणभट्ट के पुत्र यज्ञनारायण सोमयागी हुए। वे वेद के अवतार थे। इन पर वेद पुरुष अत्यंत ही प्रसन्न रहते थे। जब इनको वेद में कोई संदेह होता तब स्नान करके वेद पुरुष का ध्यान करते और वेद पुरुष प्रत्क्षक्ष होकर संदेश-नाश कर देते।

एक बेर मायावादियों ने हँसी से इनसे कहा कि आप वेद के अवतार हो तो बकरे से वेद पढ़वावो। तब यज्ञनारायण जी ने बकरे की ओर देखकर कहा ''मोलुलायत्वं वेदानुच्चारय''। इतना सुनते ही बकरा वह पाठ करने लगा। ऐसे ही दक्षिण में उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाए। ये श्री रामानुजाचार्य मत के बड़े पंडित थे।

जब यज्ञनारायण जी ने पहिला सोमयाग किया तब अग्निकुंड में से यह शब्द सुन पड़ा कि ऐसे सौ सोमयाग के पीछे भगवान का अवतार होता है। बत्तीस सोमयाग करके ये देवलोक पधारे।

इनके पुत्र गंगाधरभट्ट सोमयागी साक्षात् शिवजी के अवतार थे, जिन्होंने अवभृत्य स्नान करती समय लोगों को प्रत्यक्ष अपने केश में से जलधारा निकलती दिखाई। अट्ठाइस सोमयाग करके ये देवलोक गए।

इनके पुत्र गणपति सोमयागी थे। काशी में पंडितों की सभा में इन्होंने गणेश की भाँति दर्शन दिया और इसी से सभा में इनका प्रथम पूजन होता था। एक बेर सब प्रसिद्ध नगरों में जाकर शास्त्र का दिग्विजय किया था। तीस यज्ञ करके ये देवलोक सिधारे।

इनको तीन स्त्री थीं। इनमें ज्येष्ठ स्त्री के ज्येष्ठ पुत्र वल्लभ भट्ट सायंकाल की समय प्रहर दिन चढ़े के सूर्य की भाँति दर्शन दिया था। पाँच यज्ञ करके ये भी देवलोक गए।

इनके पुत्र लक्ष्मणभट्ट जी बड़े विद्वान साक्षात् अक्षर ब्रहम शेष जी के अवतार हुए। इनकी छोटी ही अवस्था में इनके पिता का परलोक हुआ था, इससे इनके मातामह ने लालन पालन करके इनको विद्या पढ़ाया था। इनकी स्त्री देवकीजी का अवतार श्रीइल्लमगारू जी थीं। इनके तीन पुत्र हुए। बड़े भाई का नाम नारायणभट्ट उपनाम रामकृष्ण भट्ट। ये कुछ दिन पीछे सन्यासी हो गये, तब केशवपुरी नाम पड़ा। यह ऐसे सिद्ध थे कि खड़ाऊँ पहिने गंगा पर स्थल की भाँति चलते थे। मँझले श्री महाप्रभुजी और छोटे रामचंद्र भट्ट जी। ये महा भारी पंडित थे, वेदांत, मीमांसा, व्याकरण, काव्य और साहित्य बहुत अच्छा जानते थे। लक्ष्मणभट्ट जी के मातुल वशिष्ट गोत्र के ब्राह्मण अपुत्र होने के कारण इन्हें अपने घर ले गए थे। कृष्ण कुतूहल, गोपाल लीला महाकाव्य इत्यादि कई ग्रंथ इन्होंने बनाए हैं। ये श्री महाप्रभु जी के विद्या में शिष्य थे और प्रायः अयोध्या में रहते थे। वादी ऐसे भारी थे कि प्रायः उस काल के सब पंडितों को जीता था। यहाँ तक कि इसी बाद के लाग पर इनको विष दे दिया।

लक्ष्मणभट्ट जी के पूर्व पुरुषों ने पंचानबे सोमयाग किये थे, सो इन्होंने पाँच और करके सौ पूरे किए। अंत के सोमयज्ञ का आरंभ चैत सुदी ९ सोमवार पुष्य नक्षत्र अभिजित योग में सं. १५३२ में किया। जब यज्ञ समाप्त हुआ तो कुँड से यह अलौकिक वाणी सुन पड़ी कि तुम्हारे कुल में पूर्ण पुरुषोत्तम का प्रागट्य होगा। यह वाणी सुनते ही यज्ञ में सबको बड़ा आनंद हुआ और लक्ष्मकाभट्ट जी ने उसी समय काशी में सवालक्ष ब्राह्मण-भोजन का संकल्प किया। उसी समय में संयोग से दक्षिण में कुछ यवनों का उपद्रव भी हुआ। इससे लक्ष्मणभट्टजी कुटुंब को लेकर और बहुत सा द्रव्य साथ लेकर काशी की ओर चले।

विदित हो कि श्री लक्ष्मणभट्ट जी सं. १५३२ के चैत्र के अंत में बहुत से विद्यार्थी और ब्राह्मण-भोजन के हेतु बहुत सा द्रव्य लेकर काशी चले और काँकरवल्लि से सात मंजिल पर भृंग-सार्थक तीर्थ में, जहाँ सर्वतोभद्रकुंड में राजा वरुण ने अपने यज्ञ का अवभृत स्नान किया है, तीन दिन तक रहे। वहाँ वैशाख बदी ११ की अर्द्धरात्रि को श्री ठाकुर जी ने श्री स्वामिनी जी सहित दर्शन दिया और आज्ञा किया कि जब तुम काशी से लौटकर चंपारण्य आओगे तब तुम्हारे यहाँ हमारा प्रागट्य होगा। यह आज्ञा करके एक उपरना, एक तुलसी की माला, एक कंठी देकर श्री मुख से कहा कि जब बालक हो तब उसको यह उपरना उढ़ा देना। इतना सुनते ही जब लक्ष्मणभट्ट जी नींद से चौंक पड़े तो इन वस्तुओं के सिवा और वहाँ कुछ न देखा।

लक्ष्मणभट्टजी भीमरथी, उज्जैन, पुष्कर इत्यादि तीर्थ होते हुए प्रयाग आये। वहाँ भरद्वाज ऋषि के आश्रम में आकाशवाणी हुई कि तुम हमारे गोत्र में धन्य हो, जिसके घर साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम का प्रागट्य होगा।

प्रयाग से भट्ट जी काशी आये। वहाँ गंगास्नान काशी-विश्वेश्वर का दर्शन करके एक स्थान लेकर उतरे और वेद का पारायण, अग्नि होत्र और ब्राह्मण-भोजन प्रारंभ किया और थोड़े दिनों में सवा लाख ब्राह्मण का भोजन समाप्त किया। इसी समय में दिल्ली के यवन राज्य में मुगलों और पठानों के विरोध के कारण बड़ा उपद्रव उठा और भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर प्रांत में चारों ओर हलचल पड़ गई। लोग नगर छोड़कर गाँव में बसने लगे। लक्ष्मण भट्ट जी के जाति के लोग भी काशी छोड़ कर इधर उधर चले गए और लक्ष्मणभट्ट जी भी कुटुंब लेकर दक्षिण की ओर चले, सो जब चम्पारण्य पहुँचे तब शके १४०० सं. १५३५ वैशाख सुदी ११ रविवार को श्री इल्लमगारू जी का सात महीने का गर्भश्राव हुआ, सो माता जी ने केले के पत्ते में वह गर्भ लपेटकर शमी के खोंडरे में रख दिया। यहाँ से ये लोग चोंड़ा नगर में गए और वहाँ सुना कि देशोपद्रव सब शांत हो गया। यहाँ एक रात्रि निवास करके जब लक्ष्मणभट्ट जी फिर काशी की ओर फिरे तो उसी शमी के वृक्ष के नीचे चालीस हाथ के लंबे चौड़े अग्निकुंड में बालक को खेलता देखा। श्री इल्लमगारू जी के स्तन से दूध की धारा उस समय निकली सो महाप्रभू जी के मुखारविंद में पड़ी। तब श्री लक्ष्मणभट्ट जी ने वेदमंत्र से और माता जी ने अपनी भाषा में अग्नि और वरुण की स्तुति किया और अग्नि ने इल्लमगारू जी को मार्ग दिया। माता जी ने बड़े आनंद और वात्सल्य से पुत्र को गोद में उठा लिया। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और देवताओं ने प्रत्यक्ष होकर जै जै कार किया। सबके चित्त में अकस्मात् नंद महोत्सव के आनंद का आविर्भाव हुआ।

श्री लक्षमणभट्ट जी बालक को लेकर काशी फिर आए और श्री ठाकुर जी की आज्ञा प्रमाण कंठी, माला, उपरना और बीड़ा श्री महाप्रभु जी को दिया। तैत्तिरीय शाखा के अनुसार नाम करणादिक सब संस्कार बड़े आनंद से हुए और जब श्री इल्लमगारू जी गंगा पूजने को गईं तब श्री गंगा जी ने माता की गोद ही में महाप्रभू जी का चरण स्पर्श किया और स्त्रियों सहित माता जी के वरदान माँगने पर जल में से शब्द सुन पड़ा कि तुम्हारा पुत्र सब वादियों को जीतेगा।

अथ जन्मपत्री

स्वस्ति श्रीमन्नृपति विक्रमार्क राज्याब्दे १५३५ शके १४०० वैशाखे मासे कृष्णपक्षे तिथौ १० रविवासरे घ. १६ प. १४ परत्र ११ तिथौ धनिष्ठा नक्षत्रे घ. ३८ प. ४६ शुभयोगे घ. ३८ प. २ नवकर्णे श्री सूर्योदयात इष्ट घ. ३७ प. ४२ वृश्चिक लग्नोदये श्री लक्ष्मणभट्ट पत्नीपुत्ररत्नमजीजनत्।

९
७
१०
८
६
११
शु. चं. रा.
५ के.
१२ बु.
२ श.
४ गु. मं.
सू. १
३

सूर्य ०।२।२२।११ लग्न ७।१०।१९।३१ दिन मान ३०।२८ रात्रिमान २९।३२

एक बेर श्री इल्लमगारू जी को व्रजयात्रा की इच्छा हुई और आपने अपने पति से निवेदन किया कि कृपापूर्वक व्रज चलिए परंतु भट्ट जी ने कहा कि पुत्र का यज्ञोपवीत करके चलेंगे । यद्यपि इल्लमगारू जी ने पति की आज्ञा का कुछ उत्तर नहीं दिया तथापि व्रजयात्रा की आपकी बड़ी ही इच्छा थी । यहाँ तक कि एक बेर श्री महाप्रभु जी को गोद में लिए आप बैठी थीं सो व्रज का स्मरण करके उनके नेत्रों में जल भर आया । सर्वान्तरयामी श्री महाप्रभु जी ने माता की इच्छा पूर्ण करने को जम्हाई लिया और मुखारविंद में चौरासी कोस व्रज का दर्शन कराया । श्री इल्लमगारू जी को यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ और आपने लक्ष्मणभट्ट जी से सब वृत्तांत कहा । भट्ट जी ने कहा कि एक बेर हम अग्निशाला में भूमि पर शयन करते थे तब अग्नि ने स्वप्न में हमसे आज्ञा किया कि तुम इस बालक के विषय में संदेह मत करना सो यह बालक अलौकिक साक्षात् नारायण का स्वरूप है ।

एक बेर श्री विश्वनाथ जी ने यह विचार किया कि श्री ठाकुर जी ने हमको तो माया मत फैलाने की आज्ञा दिया है और आप अपने संप्रदाय फैलाने को क्यों प्रगट हुए हैं, इससे एक बेर तो दर्शन करना चाहिए कि आपने कैसा वेष लिया है और क्या इच्छा है । यह विचार कर योगी बनकर एक सोने का बघनहा हाथ में लेकर श्री लक्ष्मणभट्ट जी के द्वार पर आये । श्री महाप्रभु जी उस समय अत्यंत रुदन करने लगे और कोई प्रकार से चुप न हों । तब लक्ष्मणभट्ट जी ने अपने पास बैठे हुए ज्योतिषियों से पूछा कि आज कल बालक के ग्रह कैसे हैं । ब्राहमणों ने उत्तर दिया कि ग्रह तो अच्छे हैं परंतु एक बघनहा इसके गले में पड़ा रहे तो अच्छा है । श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने अपने शिष्यों को आज्ञा दिया कि अभी बघनहा मोल लेकर सोने से मढ़ाकर पोहवा लाओ । शिष्य लोग जैसे ही बाहर निकले वैसे ही देखा कि एक योगी बघनहा लिए खड़ा है । बड़े हर्ष से शिष्य लोग योगी को भीतर ले गए । श्री महादेव जी ने श्री महाप्रभु जी को कठुला पहना कर पूछा "भगवान कोयं वेष:" । श्री महाप्रभु जी ने उसी क्षण उत्तर दिया "सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छात: करिश्यति" यह सुनकर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने छोटे बालक के मुख से शब्द स्पष्ट और फिर संस्कृत कैसे निकला । किसी ने कहा योगी बड़े सिद्ध हैं, किसी ने कहा नहीं बालक ही बड़ा प्रतापी है । उस पीछे श्री महादेव जी कई बेर योगी के वेष में खिलौना लेकर प्राय: मिलने को आते थे ।

सं. १५४० चैत्रवदी ९ अर्थात् श्री रामनवमी रविवार को लक्ष्मण भट्ट जी ने वेदविधि से आप का यज्ञोपवीत किया । सोरों जी नामक प्रसिद्ध वाराहक्षेत्र में केशवनंद नाम के एक बड़े सिद्धयोगी वैष्णव संप्रदाय के थे । सो जब श्री महाप्रधु जी का चंपारण्य में प्रगट्य हुआ, उसी समय उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि इस

समय पृथ्वी पर कहीं पुरुषोत्तम का अवतार हुआ है । उनके सेवकों में से कृष्णदास मेघन नामक एक सेवक थे, सो वह गुरु का वचन सुनते ही यह विचार करके घूमने निकले कि जो पुरुषोत्तम का प्रागट्य कहीं हुआ होगा, दर्शन होहींगे और जो हमको नाम लेकर पुकारेगा उसी को हम पुरुषोत्तम जानेंगे । यह कृष्णदास मेघन फिरते फिरते श्री महाप्रभुजी के उपवीत-समय काशी में आये और भीड़ देखकर जो श्री लक्ष्मण भट्ट जी के घर में गए तो उनको देखते ही श्री महाप्रभुजी ने आज्ञा किया "कृष्णदास तू आये" । इन्होंने दंडवत करके उत्तर दिया "जै, मैं आयो" और एक अँगूठी श्री महाप्रभु जी के यज्ञोपवीत भिक्षा में दी और तब ये आजन्म श्री प्रभु जी के साथ ही रहे ।

उपवीत धारण करने के पहले और पीछे जब आप खेलते तो ब्राहमण के लड़कों को शिष्य बनाते और आप गुरु बनकर उपदेश करते ।

लक्ष्मण भट्ट जी के घर के पास सगुन दास नामक ढाढ़ी रहते थे । उनको श्री महाप्रभु जी के दर्शन साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के होय, इससे उनका नेम था कि नित्य आपका दर्शन करके तब जल पीते । तो जब श्री महाप्रभु जी चरणारविंद से चलने लगे तब आप उनके घर पधार कर दर्शन देते । सो एक दिन श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने आप से आज्ञा किया, कि शूद्र के घर आप मत पधारा करो । इस पर श्री महाप्रभु जी ने यह वाक्य पढ़ा "स्त्रियो वैश्या तथा शूद्रा तेपियान्ति परांगति" । यह सुनकर लक्ष्मण भट्ट जी ने श्री महाप्रभु जी को सगुन दास जी के यहाँ जाने की आज्ञा दिया ।

यज्ञोपवीत के पीछे श्री महाप्रभु जी को लक्ष्मण भट्ट जी घर ही में वेद पढ़ाते थे परंतु आप की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी, इस हेतु असाढ़ सुदी २ पुष्यार्क योग में माध्वानंद स्वामी के यहाँ लक्ष्मण भट्ट जी ने आपको पढ़ने को बैठाया । सो चार ही महीने में चारो वेद, छओ शास्त्र पढ़कर सब को बड़ा आश्चर्य उत्पन्न किया । गुरु दक्षिणा में माध्वानंद स्वामी ने श्री ठाकुर जी की सेवा माँगी तब आपने आज्ञा किया कि जब श्रीनाथ जी को प्रगट करेंगे तब आप को सेवा देंगे । इन्हीं को और ग्रंथों में माधवेंद्रपुरी करके लिखा है और ये मध्व संप्रदाय के आचार्य थे । और विद्याविलास भट्टाचार्य से आपने न्याय, पातंजल और काव्य पढ़ा । श्री महाप्रभु जी की विद्या देख करके लक्ष्मणभट्टजी को फिर संदेह हुआ परंतु ठाकुर जी ने स्वप्न में पुनर्दर्शन देकर वह संदेह निवृत्त कर दिया । यह माधवेंद्रपुरी श्री कृष्ण चैतन्य के मंत्र गुरु हैं और इसी कारण श्री महाप्रभु जी और श्री कृष्ण चैतन्य से मित्रभाव था और आपने उनको श्री गोवर्द्धन की कंदरा से लाकर कृष्ण प्रेमामृत ग्रंथ दिया था और ऐसे ही निम्बार्क संप्रदाय के आचार्य केशव काश्मीरी जी से भी आप का बड़ा संग रहता था । विदित हो कि चैतन्य संप्रदाय के ग्रंथ वृहद्गौरगणोद्देशदीपिका ने श्री महाप्रभुजी को चौंसठ महानुभावों की गिनती में अनन्त संहिता के ७५ वें अध्याय के प्रमाण से श्री शुकदेवजी का अवतार लिखा है ।

एक समय श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने मायावादी संन्यासियों को अपने घर भोजन को बुलाया था सो श्री महाप्रभु जी ने ऐसा शास्त्रार्थ उठाया, जिससे मायावाद का खंडन होय । तब लक्ष्मण भट्ट जी ने कहा जो अपने घर आवे उसका अपमान नहीं करना, इससे आपने उनसे शास्त्रार्थ नहीं किया । पर वैष्णव धर्म-प्रचार की आप को ऐसी उत्कंठा थी कि काशी में जहाँ शास्त्रर्थ होता वहाँ आप जाते और वैष्णव मत का मंडन और अन्य मत का खंडन करते । यहाँ तक कि लक्ष्मण भट्ट जी के पास लोग उरहना देने आते कि आप के पुत्र ने भरी सभा में हमारा अपमान किया । तब लक्ष्मण भट्ट जी आप को निषेध करते । तब जिन पंडितों से आप निषेध करते उन पंडितों से शास्त्रर्थ न करते । उस काल में विश्वनाथ के सभामंडप में पंडितों की सभा नित्य होती थी और वे लोग एक बात पर निर्णय करके तब उठते थे । सो श्री महाप्रभुजी उस सभा-स्थान की भीति पर श्लोक नित्य लिख आते और जब पंडित लोग उसका एक दिन में निर्णय करते तो दूसरे दिन दूसरे श्लोक से उनका सब निर्णय खंडित हो जाता । ऐसे ही तीस दिन तक आपने यह खेल खेला और उसी से पत्रावलंबन ग्रंथ बन गया । एक प्रसंग यह भी है कि आप से बहुत से पंडित शास्त्रार्थ करने को आते थे और समय बहुत थोड़ा था, इस लिए आपने पत्रावलम्बन ग्रंथ करके विश्वेश्वर के द्वार पर भी डुगडुगी फेर दी थी कि जिसको हमसे शास्त्रार्थ करना हो पहले जाकर वह पत्र देख ले । यह सुनकर जो पंडित वह पत्र देखने जाते वह सब अपने प्रश्न का उत्तर पाकर लौट आते और इसी में पत्रावलंबन ग्रंथ बना ।

श्री लक्ष्मण भट्ट जी को श्री महाप्रभुजी के इस घोर शास्त्रार्थ करने से बड़ा क्षोभ हुआ और आपने वात्सल्य

भाव से यह सोचा कि ऐसा न हो कि द्वेष करक जादू से कोई पंडित हमारे पुत्र को मार डाले । यह विचार कर आपने देश जाने का मनोरथ किया क्योंकि बारह वर्ष की काशी में रहने की आप की प्रतिज्ञा भी पूरी हो गई थी । यह सब बात विचार कर आप सकुटुम्ब काशी से दक्षिण चले ।

वहाँ से सात मंजिल पर यह सुनकर कि विष्णु स्वामी संप्रदाय के कोई पंडित लक्ष्मण भट्ट जी अपने पुत्र सहित काशी में अनेक पंडितों को जीत कर यहाँ आते हैं, बहुत से पंडित मिलकर एक साथ लक्ष्मण भट्ट जी के डेरे पर शास्त्रार्थ करने गए और जब श्री महाप्रभुजी ने उनको शास्त्रार्थ में जीता तब लक्ष्मण भट्ट जी ने प्रसन्न हो कर कहा कि वरदान माँगो । तब आपने दो वरदान माँगे — प्रथम तो यह कि आप हमको शास्त्रार्थ करने जाने से कहीं रोको मत और दूसरे यह कि शास्त्रार्थ में कोई हमारा तेज पराभव न कर सके । लक्ष्मण भट्ट जी ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक दोनों वरदान दिए ।

लक्ष्मण भट्ट जी साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के धाम अक्षर ब्रहम शेष जी के स्वरूप हैं, इससे आप को त्रिकाल का ज्ञान है । सो जब आपने अपना प्रयाण समय निकट जाना तब काँगरवार से बड़े पुत्र रामकृष्ण भट्टजी को बाला जी में बुलाया और वहीं आपने डेरा किया । पुत्रों को अनेक शिक्षा देकर रामकृष्णभट्ट जी को श्री यज्ञनारायण के समय के श्री रामचंद्र जी पधराय दिए और कहा कि देश में जाकर सब गाँव और घर आदि पर अधिकार और वेल्लिनाटि तैलंग जाति की प्रथा और अपने कुल अनुसार सब धर्मपालन करो । ऐसे ही श्री यज्ञनारायणभट्ट के समय के एक शालिग्राम जी और मदनमोहन जी श्री महाप्रभुजी को देकर कहा कि आप आचार्य होकर पृथ्वी में दिग्विजय करके वैष्णव मत प्रचार करो और छोटे पुत्र रामचंद्र जी को, जिनका काशी में जन्म हुआ था, अपने मातामह की सब स्थावर जंगम संपत्ति दिया[1] । और श्री महाप्रभुजी के ग्यारह वर्ष की अवस्था में लमक्ष्मणबाला जी का शृंगार करते करते शरीर समेत उनके स्वरूप में लय हो गए । उनके पुत्रों ने लक्ष्मण भट्ट जी के वस्त्र का लौकिक संस्कार बड़ी धूमधाम से किया और महाप्रभुजी ने एक वर्ष तक यथाशास्त्र विहित सब रीति का बर्ताव किया ।

काशी में वैष्णव तंत्र, शैव तंत्र, कौमारिल प्रभाकर, मौद्गल इत्यादि मत से ग्रंथ और शैव, पाशपत, कालामुख, अघोर ये चार शव संप्रदाय और विष्णु स्वामी इत्यादिक चार वैष्णव संप्रदाय के ग्रंथ नहीं मिलते थे । इस हेतु सरस्वती भंडार में जाकर इन ग्रंथों को आपने अवलोकन किया और वेद की ३६ शाखा की संहिता ब्राहमण इत्यादिक कंठाग्र किया । फिर जब इल्लमगारू जी पति के हेतु विलाप करतीं तब आप को बड़ा दुःख होता, इससे श्री बाला जी ने स्वप्न में इल्लमगारू जी को विलाप करने का निषेध किया ।

जब आपको पृथ्वी परिक्रमा की इच्छा हुई तब मातृचरण को मामा के पास पहुँचाने को आप विद्यानगर पधारे और मार्ग में अपने अंतरंग दामोदर दास जी को सेवक किया ।

विद्यानगर में राजा कृष्णदेव[2] के यहाँ आचार्य के मामा रंगनाथ विद्याभूषण दानाध्यक्ष थे । श्री महाप्रभुजी अपने मामा के घर उतरे और वहीं यह सुना कि राजा कृष्णदेव की सभा में आजकल नित्त मतमतांतर का वाद होता है । यह सुन के आपने इच्छा किया कि हम भी चलेंगे । दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान संध्या होम करे ब्रहमचारी का भेष कर आप राजा की सभा में पधारे । इनका दर्शन पाते ही सब सभा तेजोहत हो गई और राजा कृष्ण देव राय ने बड़े आदर से इनको बैठाया । तब आपने राजा से सभा का वृत्तांत पूछा । राजा ने हाथ जोड़कर

---

१. ये रामचंद्रभट्ट बड़े पंडित थे । गोपाललीलामहाकाव्य, कृष्ण कुतूहल महाकाव्य और शृंगार-वेदांत ये तीन ग्रंथ इनके मिलते हैं । अयोध्या में ये रहते थे और श्री महाप्रभु जी को विद्यागुरु करके मानते थे । वैष्णव दीक्षा श्री महाप्रभु जी से इन्होंने पाई थी कि नहीं, इसमें संदेह है और रामकृष्णभट्ट जी कुछ दिन पोछे संन्यासी होकर केशवपुरी नाम से खड़ाऊँ पहनकर जल पर चलने वाले बड़े सिद्ध विख्यात हुए । इन लोगों के समकाल के प्रसिद्ध पंडित ये थे, मध्वमत में व्यासतीर्थ, निबार्क मत में केशवभट्ट, रामानुज मत में तानाचार्य और व्यंगकटाध्वरि, शंकर मत में आनंदगिरि, स्मार्तों में वा अन्य मत में मुकुंदानंद, केवलानंद, माधवानंद, बरदराज के महंत हस्तशृंगार और रंगनाथजी के महंत आनंदराम ।

२. राजा कृष्णदेव की वंश परंपरा यों है । पांडु वंश में चंद्रबीज राजा के दो पुत्र थे — बड़ा मेरु छोटा नन्दि । नन्दि को भूतनन्दि,, उसको नंदिल के दो पुत्र — शेषनंदि और यशोनंदि । इन दोनों को चौदह पुत्र थे, जिनको अमित्र और दुर्मित्र नामक दो भाई राजाओं ने जीत लिया । इनमें से सात भाई दक्षिण गए जिनमें से नंदिराज ने नंदपुर वा रंगोला बसाया (१०३० ई.) । उनके वंश में फिर चालुक्य राज (१०७६ ई.) विजयराज जिन्होंने विजयनगर बसाया (१११८), विमलराज (११५८), नरसिंधदेव, जो बड़ा प्रसिद्ध हुआ (११८०), रामदेव (१२४९) और भूपराज (१२७८) । भूपराज अपुत्र था, इससे इसने अपने निकटस्थ गोत्रज

निवेदन किया कि आज छ महीने से सब मत मतांतर के पंडितों से यहाँ शास्त्रार्थ हो रहा है, सो माया मत वालों को अब तक किसी ने नहीं जीता है । यह सुनकर आपने पंडितों से प्रश्न किया और शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ । चौदह दिन तत्वविचार में, बारहदिन स्थानवदादेश इस सूत्र से प्रारंभ होकर व्याकरण में और एक दिन जैन बौद्ध विचार में, इस तरह सब मिला कर सत्ताइस दिन शास्त्रार्थ हुआ और जितने वादी सभा में उपस्थित थे सब निरुत्तर हुए । तब राजा ने सब पंडितों से जयपत्र लिखवा कर उसपर अपनी मुहर करके इनको दिया और सब पंडितों और मत के आचार्यों ने मिलकर आचार्य पदवी से महाप्रभुजी को पुकारा । राजा कृष्ण देव ने कनकाभिषेक से आप की पूजा किया और सपरिवार शरण आकर सेवक हुआ ।[1] इस अभिषेक के सोने को श्रीमहाप्रभु जी ने तीन ब्राहमणों को बाँट दिया और अनेक ब्राहमण के लड़कों के यज्ञोपवीत और लड़कियों के विवाह और अनेक का ऋण-शोधन इससे हुआ । इस सुवर्ण के सिवा एक थाली भर कर मुहर राजा ने आप को भेंट किया था, जिसमें से सात मुहर आपने अंगीकार करके उसका श्री नाथ जी का नूपुर बनाया । फिर राजा को वहाँ के अनेक ब्राहमणों वृहस्पति सब बाजपेय आदि यज्ञ और अनेक महादान कराया और उससे जो द्रव्य एकत्र हुआ उसका तीन भाग किया । एक भाग से श्री विट्ठलनाथ जी की कटिमेखला बनी, दूसरे भाग से पिता का ऋण शोधन किया और तीसरे भाग को करणीय यज्ञ के व्यय निर्वाहार्थ माता को सौंप दिया । और अनेक दिन तक ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, व्रत यज्ञादि इत्यादि धर्म का उपदेश करते आप विद्यानगर में विराजे ।

कुछ दिन तक विद्यानगर में निवास करने के उपरांत माता से आज्ञा लेकर पृथ्वी-परिक्रमा करने को सं. १५४८ वैशाख बदी २ को आप नगर से बाहर चले । उस समय ब्रहमचर्यव्रत के कारण सीआ हुआ वस्त्र नहीं पहरते थे, इससे धोती उपरना पहनकर दंड कमंडल छत्र और पादुका धारण किए हुए आप चलते थे । इसी ब्रहमचर्य के दंड धारण पर भ्रम से बहुत मूर्ख आक्षेप करते हैं कि श्री वल्लभाचार्य पहले दंडी थे, फिर गृहस्थ हुए । दामोदरदास और कृष्णदास ये दो सेवक आपके साथ थे । पहले भीमरथी के तट पर पण्ढरपुर में आए, वहाँ सप्ताह परायण करके बैठक स्थापित किया । (आगे जिस तीर्थ के वर्णन में पा. बै. स्था. यह संकेत देखो वहाँ समझो कि परायण करके बैठक स्थापन किया) फिर नासिक, त्र्यंबक, पंचवटी, गोदावरी तीर्थ में आए वहाँ त्र्याह पा. बै.स्था. । वहाँ से उज्जयिनी में आए । वहाँ सिप्रा और अंगपात कुंड (जिसमें भगवान जब सांदीपनी जी के यहाँ पढ़ते थे तब पटिया धोते थे) में स्नान करके महाकालेश्वर का दर्शन करके नगर के बाहर एक पीपल की डाल गाड़ कर उस पर कमण्डलु का जल आपने छिड़का, जिससे वह तत्क्षणात् एक वृक्ष हो गया और उसके नीचे सप्ताह पा. बै. स्था. । यह पीपल का वृक्ष अद्यापि वर्तमान है । वहाँ से पुष्कर जी की यात्रा कर आप व्रज की ८४ कोस की परिक्रमा करने के हेतु सं. १५४८ के भाद्रपद कृष्णाष्टमी अर्थात् जन्माष्टमी के दिन श्री गोकुल में पधारे । तब श्री नाथ जी को यमुना जल में क्रीड़ा करते देख आप भी उनके समीप जाने लगे । तब तो

वीर बुक्कराय को गोद लिया । वीर बुक्कराय (१३२४) की सभा में सायण के बड़े भाई माधवाचार्य (विद्यारण्य) बड़े पंडित थे और उन्होंने वेदों पर भाष्य किया है और अनेक ग्रंथ बनाए हैं । वी बुक्कराय की सभा में कई विलायत के लोग आए थे । इनके हरिहरराय (१३६३), उनके देवराज (१३६७) विजयराज (१४१४) और उनके पंडरदेव (१४२८) । पंडरदेव को श्री रंगराज ने जीत कर अपने पुत्र रामचंद्रराय को (१४५०) राजा बनाया । इनके नृसिंहराय (१४७३), फिर वीर नृसिंहराय (१४९०), उनके अच्युतराय और उनके कृष्णदेवराय । राजा कृष्णदेवराय ने सं० १५७० तक (१५२४ ई०) राज्य किया और गुजरात जय किया और मुसलमानों से लड़े । राजा कृष्णदेव के सेनापति नाग नायक ने मथुरा जीत कर राज्य स्थापन किया, जो १६ पीढ़ी तक रहा । इनके रामराज हुए, जो निजामशाह और इमादुलमुल्क की लड़ाई में मारे गए । उनके पीछे श्री रंगराज, त्रिमल्लराज, वीर संचपतिराज, द्वितीय श्री रंगराज, रामदेवराय, व्यंकटपतिराय, द्वितीय व्यंकट मुगलों से हार कर चंद्रदेवगिरि में बसे । इनके पुत्र रामराय, उनको हरिदास (१६९३), चक्रदास (१७०४), त्रिम्मदास (१७२१), रामराय (१७३४), गोपालराय व्यंकटपति, त्रिमल्लराय, वीर व्यंकटपति और रामदेवराय क्रम से राजा हुए । इस वंश के अंतिम राजा रामदेवराय, जिनको सं० १८७५ (१८२९ ई०) में टीपू सुलतान ने मारकर राज्य नाश कर दिया ।

१. विद्यानगर के, कृष्णगढ़ के और नवानगर के राजा लोग इसी काल से इस मत के सेवक होते आते हैं किंतु विद्यानगर का वंश अब नहीं रहा, उस काल में दक्षिण प्रांत के सब राज्य बने हुए थे । विद्यानगर जाने के पूर्व आप हेमाचल गोआ इत्यादि होते हुए चौड़ा गए थे । चौड़ा के राजा ने एक म्याना और दो प्यादा साथ देकर आचार्य को विद्यानगर पहुँचवाया था । यहाँ पर एक बात और जानने के योग्य है कि श्री महाप्रभु विद्यानगर की सभा में श्री विष्णुस्वामी की गद्दी पर बिराजे । इसी समय श्री विल्वमंगल जी ने श्री विष्णुस्वामी के रहस्य और मतभेद सब आप को देकर तिलक किया था । यह भी जनश्रुति है कि श्री महाप्रभु जीने में योग-बल से अपना कमण्डलु फेंका, जो सूर्य का सा सभा में प्रकाश दिया । तदनन्तर आप सभा में गए ।

श्रीनाथ जी गिरिराज ऊपर आए । वहाँ भी आप उनके पीछे पीछे गए. इसी से श्री भगवान ने प्रसन्न हो यह वरदान दिया कि "यावत् यमुना जी में गंगा जल रहेगा तावत् तुम्हारी संप्रदाय अचल रहेगी" । ऐसा कह कर श्री नाथ जी अंतर्ध्यान हो गए । तब आप जिस मार्ग से पूर्व में गए थे, पूर्व गत मार्ग से आ अपने व्याकुल शिष्यों से मिलकर आसन पर आए । तदनंतर श्री आचार्य जी महाप्रभु जी व्रज की यात्रा करने चले और उसका निर्णय करके अनुक्रम से वर्णन किया है । और जिस जिस स्थल में आपने श्री मद्भागवत का पारायण कर बैठकें नियत की हैं, जो अद्य पर्यंत प्रसिद्ध हैं, उस जगह ऐसा * चिन्ह किया है ।

●

तदीयसर्वस्व

अर्थात्

श्री नारदकृत भक्तिसूत्र का बृहत् भाष्य

प्रेमी जनों के दासानुदास प्रेमपथ के भिक्षुक

तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव

श्रीहरिश्चन्द्र

द्वारा

'केनापि देवेन हृदि स्थिकेन'

लिखित

भक्त्य त्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यत् विडम्बनम्

यह पुस्तक सन् १८७४ में लिखी गयी । तदीय सर्वस्व 'नारद भक्ति सूत्र' का हिन्दी भाष्य है । हरिश्चन्द्र मैगजीन जि. १ नं. ५,१५ फरवरी सन् १८७४ में नारद सूत्र अर्थ सहित छपा था । बाद में इसकी व्याख्या भी की गयी ।— सं.

उपक्रम

हम आर्य लोगों में धर्मतत्व के मूलग्रंथों का भाषा में प्रचार नहीं । यही कारण है कि भिन्नता स्थान स्थान फैली हुई है । अनेक कोटि देवी देवताओं का माहात्म्य, छोटी छोटी बातों में ब्रह्महत्या का पाप और तुच्छ तुच्छ बातों में बड़े बड़े यज्ञों का पुण्य, अहं ब्रह्म का ज्ञान और मूलधर्म छोड़ कर उपधर्मों में आग्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक धर्मों का लोप कर दिया । जिस जगत्कर्त्ता ने हम लोगों को उत्पन्न किया, संसार के सुख दिए, बुरे भले का ज्ञान दिया और अपना सत् मार्ग दिखलाया उससे यहाँ की प्रजा विमुख हो कर धर्मांतर में फँस गई । यदि प्रथम कर्त्तव्य उसकी भक्ति के अनंतर कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होते तो कुछ वाधा नहीं थी । वह न हो कर गौण कर्म तो मुख्य हो गए और मुख्य वस्तु गौण हो गई । इसीसे सारा भारतवर्ष भगवद्विमुख होकर छिन्न भिन्न हो गया जो कि इसकी अवनति का मूल कारण हुआ । कभी भगवद्विमुख कोई देश या जाति उन्नत हो सकती है ? धर्म हमरा ऐसा निर्बल और पतला हो गया है कि केवल स्पर्श से वा एक चुल्लू पानी से मर जाता

है । कच्चे गले सड़े सूत वा चिउँटी की दशा हमारे धर्म की हो गई है । हाय ! ! !

इसी धर्मपथ को समुन्नत करने को एक ईश्वरवादी अनेक आचार्यों ने परिष्कृत और सहज धर्म प्रचलित किए हैं और अनेक लोग इन मार्गों में दीक्षित हैं । किन्तु उन लोगों में भी बाहयवेष बाहयाडंबर आचार विचार वा परनिंदादि आग्रह ऐसे समा गये हैं कि उनका धर्म किसी काम नहीं आता । या तो ईश्वरवादी हिन्दूसमाज से संपूर्ण वहिष्कृत हो जायँगे या कर्ममार्ग से ऐसे दब जायँगे कि नाममात्र के भक्त रहेंगे ।

इसी विषमता को दूर करने को इस ग्रंथ का आविर्भाव है । इस में मुक्तकंठ से कहा गया है कि केवल प्रेम परमेश्वर का दिव्य मार्ग है । यद्यपि यह ग्रंथ वैष्णवों की शैली पर लिखा गया है, किन्तु परमेश्वर के भक्तमात्र के हेतु यह उद्योग है । क्रिस्तान आदि विदेशी धर्मप्रेमी जन समझें कि कृष्ण उनके निर्गुण परमेश्वर का नाम है, वैष्णवों की तो कुछ बात ही नहीं है, शैव कहें कि विष्णु शिव ही का नामांतर है, ब्राहम समझें कि हरि ब्रहम ही को कहते हैं, उपासना और आर्यसमाज इसे अपना ही तत्व मानें, सिक्ख इस में गुरु का पथ देखें और ऐसे ही भक्तिमार्ग वाले मात्र सब लोग इस को अपनी निज संपत्ति समझें । इस में कोरे कर्ममार्गी वा बहु-भक्त वा स्वयं-ब्रहम लोग यदि मुझ को गाली भी देंगे तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा ।

लोगों को उचित है कि इस ग्रंथ को देखें । निश्चय रक्खें कि परमेश्वर को पाने का पथ केवल प्रेम है । और बातें चाहे धर्म की हों या लोक की, दोनों बड़ी ही हैं । बिना शुद्ध प्रेम न लोक है न परलोक । जिस संसार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है, जिस जाति वा कुटुंब से तुम्हारा संबंध है और जिस देश में तुम हो उस से सहज सरल प्रेम करो और अपने परम पिता परम गुरु परम पूज्य परमात्मा प्रियतम को केवल प्रेम से ढूँढ़ो । बस और कोई साधन नहीं है ।

हरिश्चंद्र

समर्पण

नाथ!

आज बहुत दिन पर कुछ कहने चले हैं । कुछ कहते कहाँ से, वैसा चित्त रहता तब न कहते ? क्या आप से कुछ छिपी है ? भला आप से क्या, आप तो ००००० हैं, आपके लोगों ही से न छिपैगी । बोल चालही से मालूम पड़ैगी । प्यारे ! ऐसा क्यों ? हम हजार बुरे बुरे बुरे लाख दफे बुरे पर आप तो भले हैं न ? फिर क्यों ? क्या हमारी करनी पर गए ? तब तो हो चुकी । भला ध्यान तो कीजिए हमसे वा किसी से भी आप से तुलना क्या ? हाय ! तुलना क्या कुछ बात ही नहीं । हरे ! हरे ! जो आप अपनी बड़ाई देखिए तो हम क्या बड़े बड़े क्या हैं । पर ऐसी तो नाथ ने आज तक कभी की नहीं यह नई क्यों होती है ? नाथ ! अपनाए की लाज तो हम पामरों को होती है तो बड़ों को क्यों न हो, और फिर आप की कृपा का क्या पूछना है । पर हाय ! क्या हमारे अपराध उस दया से भी बड़े निकले । प्यारे ! क्या इसी दशा में रहें ? नाथ ! क्या वे दिन अब दुर्लभ हो जायंगे ? हाय ! उन पवित्र आँसुओं से क्या अब हृदय नहीं सिंचित होगा ? क्या वे सर्वचिंताविस्मारक प्रियालाप अब कर्णरंध्रों को फिर न पूर्ण करैंगे ? क्या वे दिन अब इस जीवन में निस्संदेह दुर्लभ हो गए ? केवल जनम भर पाप कमाने और आपको और अपने को झूठ बदनाम कहने को ? धिक् ! ऐसे जीवन पर । हम तो इसकी आशा इसी से करते थे कि दिन दिन हमारी चित्तवृत्ति उज्ज्वल होगी और दिन दिन प्रेमानद बढ़ैगा । इस हेतु नहीं कि प्रवाहरज्जु में हम दिन दिन और जकड़ते जायँगे और केवल जीवनभार ढोकर संसार में लिप्त होकर अंत में आपके कहलाकर भी वैसे ही डूबैंगे जैसे तुम्हारे बिना संसार डूबता है । जीवन का परम फल तुम्हारा अमृतमय प्रेम है यदि वही नहीं तो फिर यह क्यों ? क्या संसार में कोई ऐसा है जिससे प्रेम करैं । जो फूल आज सुंदर कोमल हैं और जो फल आज सुस्वादु हैं पर कल न इनमें रंग है न रूप न स्वाद, सूखे गले मारे फिरते हैं, भला उनसे अनुराग ही क्या ? प्रेम की तो हम चिरस्थाई किया चाहें यहाँ प्रेमपात्रही स्थाई नहीं । तो चलो बस हो चुकी फिर इनसे प्रीति का फल ही क्या ? फल शब्द से आप कोई वांछा मत समझिएगा । प्रेम का यह सहज स्वभाव है कि वह प्रत्युत्तर चाहता है सो यहाँ दुर्लभ है । हमने माना कि 'ऐसे भी सत् लोग हैं जो प्रे

का प्रत्युत्तर दें पर वह भी तो परिणाम दुःख स्वरूप ही हैं । "संयोगा विप्रयोगान्ता:" कहा ही है । तो जिसके परिणाम में दुःख है वह वस्तु किस काम की । फिर उस दुःख में जीवन की कैसी बुरी दशा होगी ? तो ऐसे प्रेम ही से क्या और जीवन ही से क्या ? इसी से न कहा है "जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिर जहाज पर आवै ।" और जाय कहाँ । देखो संसार में वह कितना उदासीन है जिसको तुम्हारे प्रेम का क्लेश भी है । तो नाथ ! जो फिर उस उत्तम जीव को इस संसार के पंक में फँसाओ तो कैसे बने । हमने माना कि हमारी करनी वैसी नहीं । हाय ! भला यह मुँह से और कौन कह सकता है कि हम इसके योग्य हैं पर अपनी ओर देखो । नाथ ! अब नहीं सही जाती । कृत्रिमप्रेमपरायण और स्वार्थपर संसार से जी अब बहुत घबड़ाता है । सब तुम्हारे स्नेह के बाधक हैं साधक कोई नहीं, और जो स्वार्थपर नहीं हैं वे बेचारे भी क्या हैं कि कुछ संतोष देंगे । हाय ! क्या करें । हार करके स्नेह करके जैसे हो वैसे तुम्हारे ही शरण जाते हैं और वहाँ से भी दुरदराए जायँ तो फिर क्या करें । अत्त हो गई, नाकों में दम आ गई, अब नहीं सही जाती । इस चर्वितचर्वण को कब तक चबायँ । सच कहते हैं अब किसी की बात भी नहीं सुहाती । यद्यपि चित्त परवश होकर दिन दिन उलटा फँसता जाता है और संसार का और अपने जीवन का मोह बढ़ता ही जाता है पर साथ ही जी भी ऐसा मिचता जाता है जिसका कुछ कहना नहीं । धन के विषय में भी वैसा ही कीजिए । सारे संसार को दिखाइए कि हमारे यों डंका देकर इस संसाररूपी शत्रु-दुर्ग से निकलते हैं और मेरा भी मान रख लीजिए । हे नित्यनूतन घन नित्य नव प्रेम बरसाइए ।

हाय ! आज हमने आप को कितना कष्ट दिया और कितना बके । जमा भी तो कितने दिन से हो रहा था । और फिर बकें तो किस के आगे । बकने ही से तो कुछ संतोष होता है जाने दीजिए । देखिए यह आप के लोगों का सर्वस्व है इसे अंगीकार कीजिए । भला कहाँ परम पवित्र अमृतमय प्रेममार्ग, कहाँ हमारी पामर बुद्धि । पर क्या हुआ । ऐसी उत्तम बातें जो मुँह से निकली हैं यह हमारी करतूत नहीं है, तुमने कही हैं । शिवा वा नारद कौन हैं ? आपही । यद्यपि जब बुझ जाय तब काठ का काठ है पर जब तक अग्नि के संग से दहकता रहे काठ भी आग ही कहलाता है । शराबी की कोई जाति नहीं होती है । थोड़ी शराब पियै तो शराबी, बहुत पियै तो शराबी । इसी नाते इतना बके हैं । इसे सुन कर प्रसन्न होना, सुधारना, इसका प्रचार करना यह सब तुम्हारा और तुम्हारे जनों का काम है, हमारी तो कर्त्तव्यता इतनी ही थी कि निवेदन कर दिया ।

चैत्रशुक्ल ५
सं. १९३३

आपका
हरिश्चंद्र

श्री तदीयसर्व्वस्व

नारदीय

भक्तिसूत्र का बृहत् भाष्य

दोहा

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ।।
करि करुना लखि जग बिमुख कियो प्रेमपथ चारु ।
जय बल्लभ ब्रजगोपिका प्रीति कृष्ण अवतारु ।।
जिहि लहि फिर कछु लहनकी आस न चित में होय ।
जयति जगत पावन करन कृष्ण बरन यह दोय ।।

१ ॐ अथातोभक्तिं व्याख्यास्यामः ।

अब हम यहाँ से भक्ति की व्याख्या करते हैं । १ ।

अथ शब्द मंगलवाचक है । अतः शब्द से नारद जी अपनी कही हुई पूर्वोक्त वार्त्ता का व्यावर्तन करते हैं और इन सूत्रों के द्वारा प्रतिज्ञापूर्वक भक्तिशास्त्र का व्याख्यान आरंभ करते हैं ।

२ ॐ सा कस्मै परमप्रेमरूपा ।

वह ईश्वर में परमप्रेमरूपा है । २ ।

सा नाम पूर्वोक्त भक्ति कस्मै नाम सदा प्रश्नार्ह ईश्वर में परमप्रेमरूपा अर्थात् साधनांतरशून्या है । किं शब्द से ईश्वर का ही बोध होता है क्योंकि ईश्वर में सदा प्रश्न बना ही रहता है । ''नैकः सर्वः स वः कः किं'' विष्णुसहस्रनाम में भगवान् के नाम हैं क्योंकि वेद ईश्वर के विषय में 'नेतिनेति' बोलते हैं ।

३ ॐ अमृतस्वरूपा च ।

और अमृतस्वरूप है । ।३ ।

अमृत नाम मधुर है और मोक्षस्वरूप है क्योंकि जो भक्तिरत हैं उनको मोक्षांतर की अपेक्षा नहीं होती ।

४ ॐ यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतीभवति तृप्तोभवति ।

जिसको पाकर मनुष्य सिद्ध होता है, अमृत होता है और तृप्त होता है । ४ ।

यत् अर्थात् भक्तिस्वरूप अमृत को पाकर सिद्ध नाम साधनांतर निरपेक्ष और अमृती भवति नाम स्वयमानन्दरूप होता है, मृत्यु से निडर हो जाता है, तृप्त अर्थात् एतद् व्यतिरिक्त इस या परलोकगत सुखविषयक निरिच्छ होता है ।

५ ॐ यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साहीभवति ।

जिसको पाकर फिर न कुछ चाहता है न सोचता है, न किसी से द्वेष करता है न कहीं रमता है और न किसी विषय का उत्साह करता है ।। ५ ।।

क्योंकि पूर्वोक्त वार्ता का मुख्य कारण मन है, परंतु जब वह इसने भक्ति से किसी (परमेश्वर) को अर्पण किया है तो उसके अभाव से ये बातें आप न होंगी क्योंकि कार्य कारण के बिना नहीं हो सकता ।

६ ॐ यद्ज्ञानान्मत्तोभवति स्तब्धोभवत्यात्मारामो भवति ।

जिसको जानकर पागल, स्तब्ध और आत्माराम हो जाता है ।। ६ ।।

भक्ति का स्वरूप कह कर सूत्र में फल कहते हैं कि उस भक्ति का स्वरूप जान करके मनुष्य मत्त अर्थात् पागल हो जाता है 'जडोन्मत्तपिशाचवत्' । ''निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान् वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि । तदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्‌गदं प्रोत्कण्ठ उद्‌गायति रौति नृत्यति ।। यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रंदते ध्यायति वंदते जनं । मुहुश्श्वसन्वक्ति हरे जगत् पते नारायणेत्यात्मगतिर्गतत्रपः ।। तदा पुमान्मुक्तसमस्तबंधनस्तद्‌भाव-भावानुकृताशयाकृतिः । निदग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ।।'' श्रीमद्‌भागवत में परम भागवत श्रीप्रल्हाद जी ने दैत्यपुत्रों को उपदेश करती समय भक्तों के वर्णन में ये तीन श्लोक कहे हैं । (यहाँ यह भी बात समझनी चाहिए कि ये असुरबालक उपदेशपात्र नहीं थे, तथापि भक्तजनों के चित्त में जो प्रेम की उमंग आती है तो पात्रापात्र का विचार नहीं करते) भक्त जन भगवान के अनेक लीलार्थ धारण किए गए स्वरूपों के कर्म और अतुल्य गुण और वीर्यों को सुनकर जब अत्यंत हर्ष से रोमांचित अश्रु से गद्‌गद कंठ हो जाते हैं तब बड़े ऊँचे स्वर से गाते रोते नाचते हैं, कभी भूत लगे हुए मनुष्यों के समान हँसते हैं और चिल्लाते हैं, कभी बारंबार लंबी साँस लेते हैं, कभी तादात्म्य गति से 'हे हरे, नारायण, जगत्पते' आदि नाम कीर्तन लज्जा छोड़ के करते हैं । जब ऐसी गति हो जाती है तब मनुष्य सब बंधनों से छूट कर भगवद्‌भाव हीके भाव, वही अनुकरण, वही चेष्टा, वही आशय, वैसी ही आकृत्यादि करने लगता है और अपने प्रेम से सुकर्म दुष्कर्मों के बीजों को जला कर अपनी परम भक्ति से भगवान को प्राप्त होता है ।

तो परम भक्ति प्राप्त होने का यही लक्षण है कि मनुष्य पागल हो जाता है और स्तब्ध हो जाता है अर्थात् फिर उसको लोक और वेद भूत प्रेत देवता इत्यादि किसी को मानना वा किसी को नमस्कार वा किसी का किसी रीति आदर करने की आवश्यकता नहीं रहती और आत्माराम हो जाता है अर्थात् संसार के विषयों में प्रीति छोड़

आत्माराम अर्थात् ईश्वर ही में सदा रमण करता है ।

पहिला अनुवाक समाप्त हुआ

७ ॐ सा न कामयमाना निरोधरूपात् ।

वह भक्ति कामना के अर्थ नहीं होती, क्योंकि वह निरोधरूपा है ।। ७ ।।

जो कामना के लिए की जाती है वह भक्ति नहीं वह लोकव्यापार है । जब श्री नृसिंह जी ने प्रहलाद जी को वर माँगने के हेतु कहा तब उन्होंने भी यह उत्तर दिया कि 'हमने आपसे व्यापार नहीं किया, भक्ति किया । जो सेवक होकर सेवा के बदले सेव्य से कुछ चाहे वह सेवक नहीं किन्तु व्यापारकारी बनिया है, और यदि आप वर देना चाहें तो यही दीजिए कि हमारे मन में किसी वर वा राज्यभोगादि बांछा की उत्पत्तिही न हो' । भगवान ने श्रीमुख से भी यही आज्ञा की है "नमय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते । भर्जिता क्वथिता धाना भूयो बीजाय नेष्यते" ।। जिन लोगों का चित्त मुझ में शुद्ध रीति से प्रतिष्ठित है उनके काम कामना के अर्थ नहीं होते, क्योंकि भूने और कूटे धान फिर नहीं उगते ।

इस सूत्र से विषयजन्य प्रेम का भी निवारण किया, इससे लोग संसार के विषयियों के इंद्रियजन्य सुख वा और किसी इच्छा से की हुई प्रीति को हम किसी पर प्रेम करते हैं यह कह कर इस प्रेमशब्द को लज्जित न करें, क्योंकि प्रेम तो सर्वदा कामनाशून्य है ।।

कामना ही की निवृत्ति के अर्थ कहते हैं कि वह भक्ति निरोधस्वरूपा है, तो जब चित्त निरुद्ध होगा तो उसमें कोई कामना आप ही न होगी ।

भक्तिमार्गीय परमाचार्य श्रीश्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु ने अपने ग्रंथ निरोधलक्षण में लिखा है, "अहंनिरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः । निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ।। हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे । ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायांत्यहर्निशं' ।। आप आज्ञा करते हैं — मैं रोध में निरुद्ध हूँ और निरोध की पदवी को प्राप्त हो चुका हूँ तथापि निरोधाधिकारियों के निरोध के अर्थ निरोध का वर्णन करता हूँ । फिर आप आज्ञा करते हैं कि जिन को भगवान ने छोड़ दिया है वे संसारसागर में डूबे हुए हैं और जिनको उसने निरुद्ध किया है वही अहर्निश परमानंद प्राप्त करते हैं । इस वाक्य से यह दिखाया कि निरुद्ध होना स्वसाध्य नहीं है, जिनको वह (ईश्वर) चाहता है, निरुद्ध करता है, नहीं तो उसे छोड़ देता है । मनुष्य का बल केवल उस मार्ग पर प्रवृत्त होना है, परंतु इससे निराश न होना चाहिए कि जब अंगीकार करना वा न करना उसी के आधीन है तो हम क्यों प्रयत्न करें । हमारे क्लेश करने पर भी वह अंगीकार करे वा न करे ऐसी शंका कदापि न करना । क्योंकि आचार्य कहते हैं कि "क्लिश्यमानान्जनान्दृष्टा कृपायुक्तो यद भवेत् । तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ।। सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः । हृद्गतः स्वगुणान्श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् ।। तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः । सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता स्वतः ।।" जनों को क्लेशित देख कर के जब वह कृपायुक्त होता है तब सर्व सदानंद रूप बाहर और अंतः प्रगट कर देता है । सर्वानंदमय को भी उसके कृपा का आनंद दुर्लभ है परंतु हृदय में बैठा हुआ जब अपने गुणों को सुनता है तो अपने कृपानंद से लोगों को भिजो देता है । इस हेतु और सब बखेड़ा छोड़ कर सदानंद पर निरुद्ध लोगों को उसका गुण सदा गाना चाहिए । उससे सच्चिदानंद का आप से आप प्रागट्य होता है । अर्थात् नियम है कि जो सब परित्याग करके उसका भजन करेंगे उसको यह निरुद्ध करके परमानंद दान करेहीगा । यही उस की प्रतिज्ञा भी है "कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति । तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।। इस से उसके वाक्य पर विश्वास रख कर निरुद्ध होना चाहिए ।

निरोध छः प्रकार का है अर्थात् छः प्रकार की भावना ईश्वर में करने से मनुष्य निरुद्ध होता है ; यथा प्रथम 'भीतिभाव निरोध' अर्थात् संसार के दुःखों से भयभीत होकर ईश्वर में अवलंब करना, दूसरा "स्वामिभावनिरोध" अर्थात् ईश्वर को संसार का स्वामी मान कर दासभाव से निरुद्ध होना, तीसरा "सर्वभावनिरोध" अर्थात् ईश्वर को "वासुदेवःसर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः' इस वाक्य के अनुसार छोटे बड़े चेतन सब को ईश्वर मान कर नमस्कार करना और सब स्थान पर उसी को देखना वा स्वामी माता पिता मित्र सब भाव से ईश्वर ही का भजन, चौथा "सख्यभाव निरोध" अर्थात् ईश्वर ही को सखा मान कर निरुद्ध होना, पाँचवाँ "वात्सल्यभावनिरोध" अर्थात् श्री नन्दयशोदादिक ब्रज के बड़े गोपियों के वा इनके सदृश और किसी के

भाव के समान ईश्वर में पुत्रवत् स्नेह करना, छठा "कान्तभावनिरुद्ध" होना । इन छ निरोधों में पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर अधिक हैं ।

८ ॐ निरोधस्तु लोकवेदव्यापारसन्यासः ।

निरोध तो लोक वेद व्यापार का त्याग करना है ।।८।।

इस सूत्र में निरुद्ध होने का स्वरूप कहते हैं । लोक और वेद के व्यापार को छोड़ देना ही निरोध है ।

९ ॐ तस्मै अनन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ।

और उसमें अनन्यता और उसके विरोधियों पर उदासीनता भी निरोध है अर्थात् बिना अनन्यता हुए निरोध की सिद्धि नहीं होती ।। ९ ।।

१० ॐ अन्याश्रयाणांत्यागो नन्यता ।

अन्य आश्रयों का त्याग करना अनन्यता है ।

लोक में यह प्रत्यक्ष है कि स्वामी का सेवक, मित्र को मित्र, पुरुष को स्त्री बड़ी प्रिय होगी । जो अनन्य हो 'अनन्यार्श्चिन्तयन्तो मामित्यादि श्री महावाक्य भी है, व्याससूत्र में भी 'अनन्याधिपतिः' ईश्वर का गुण लिखा है ।

११ ॐ लोकवेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ।

लोक और वेद में केवल उन्हीं (प्रेमपात्र) के अनुकूल आचरण करने से उस अनन्यता के विरोधी कर्म में उदासीनता आप से आप होती है ।। ११ ।।

लोक और वेद में श्रीमद्भगवदनुकूलाचरण करना यही 'तद्विरोधिषूदासीनता' है अर्थात् जब हमने उनके अनुकूल हो सब आचरण किए तो तद्विरोधियों में उदासीनता आपही आ गई क्योंकि तदीय होने ही से जिनके सब पुरुषार्थ पूर्ण हो गए हैं और सब मंगलामंगल नष्ट हो गए हैं उनको कार्यांतर करने की आवश्यकता ही नहीं तो उनके वैदिक वा लौकिक कार्य आपही निवृत्त हो गए ।। ११ ।।

१२ ॐ भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्द्धं शास्त्ररक्षण ।

निश्चय के दृढ़ होने के पहिले शास्त्र रक्षण होय ।। १२ ।।

क्योंकि श्रीमुख से आप ने आज्ञा की है "त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्था निर्योगक्षेम आत्मवान् ।। यावानर्थ उदपाने सर्वतस्सम्प्लुतादके । तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।। कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।" हे अर्जुन वेद त्रिगुण विषय हैं तू तो तीनों गुणों की प्रवृत्ति से अलग होकर निर्द्वन्द्व और अपने स्वरूप में स्थित हो और अपने योगक्षेम की चिंता मत कर । परंतु जब तक तेरे हृदय में अर्थों की तरंगे उठती हैं तब तक तेरा सब वेदों में ब्राह्मण के कहे अनुसार कर्म में अधिकार है वहाँ भी कर्म के फल में तेरा अधिकार नहीं, इससे न तो तू फलों की इच्छा कर और न अकर्मी हो । तो जब तक कामना की तरंगें चित्त में उठती हैं और जब तक अनन्या भक्ति दृढ़ नहीं हुई है तब तक वेद मानै, फिर छोड़ दे ।

१३ ॐ अन्यथा पातित्याशंका ।

अन्यथा पतित होने की शंका है । १३ ।

अर्थात् जो सिद्ध होने के पहिले कर्मों को छोड़ दे और न यह सिद्ध हो न वह तो व्यर्थ पतित हो जाता है, परंतु भगवत्कर्म करता हुआ अन्य कर्मों से च्युत जो सिद्ध न होगा तौ भी उस जीव का नाश नहीं है और जीव का कल्याण है । जड़भरत जी का उदाहरण इसमें प्रमाण है, क्योंकि उन्होंने अपने मुख से कहा है, "अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसंगबंधः । आराधनं भगवत ईहमानो मृगोभवं मृगसंगाद्धतार्थः ।। सा मां स्मृतिर्मृगदेहेपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति । अतो हयहं जनसंगादसंगो विशंकमानो विवृतश्चरामि" । श्री मुख से भी आप ने आज्ञा की है "पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते । नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गति तात गच्छति" इत्यादि ।

१४ ॐ लोकोपि तावदेव किंतु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीधारणावधि ।

लोक भी तभी तक है किन्तु भोजनादि व्यापार तो जब तक शरीर है तब तक है । १४ ।

इस में कितने लोक शंका करते हैं वरंच हँसते हैं कि जब खाना पीना आदि व्यवहार छूटता ही नहीं तो

कर्म छोड़ देना यह अयुक्त है । परंतु इसी शंका के निवारणार्थ यह सूत्र है, भोजनादि व्यापार शरीररक्षार्थ है और जब तक शरीर है तब तक अवश्य कर्त्तव्य है । इनको जो छोड़ना हो तो विष खाके एक साथ ही न मर जाना । हाँ तदीयों को उन भोजनादि व्यापार की चिंता करनी अवश्यही नहीं चाहिए और जो कर्मों का कहो तो कर्मों का त्याग अनन्यता की पुष्टि के हेतु है क्योंकि बिना निःसाधन हुए मनुष्य अनन्य नहीं होता । इस से यह सिद्ध हुआ कि जब तक निश्चय न हो तब तक लोक और वेद दोनों मानना परंतु जब निश्चय दृढ़ हो जाय और कामनाओं की निवृत्ति हो जाय तब लोक और वेद दोनों छोड़ कर केवल ''कृष्ण एवं गतिर्मम'' यह उच्चारण करना । श्री विष्णुस्वामी-मत के बीजधारक श्री विल्वमंगलाचार्य ने भी यही कहा है ।

''संध्याबंदन भद्रमस्तु भवते भोस्नान तुभ्यं नमः
भोदेवाः पितरश्च तर्पणविधो नाहं क्षमः क्षम्यतां ।
यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः
स्मारंस्मारमघ हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे'' ।

दूसरा अनुवाक सम्पप्त हुआ ।

१५ ॐ तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ।

उस (भक्ति) के लक्षण विविध मतभेद से वर्णन किए जाते हैं ।

इस सूत्र में एक शंका है कि सूत्र का लक्षण 'स्वल्पाक्षरमसंदिग्धम्' ऐसा है । सूत्रों में कोई बात व्यर्थ नहीं होनी चाहिए यहाँ लक्षण तो आपही कहेंगे तो इस सूत्र की क्या आवश्यकता थी । ऐसा नहीं, यह सूत्र इस अर्थ का प्रतिपादक नहीं है कि हम आगे उस के लक्षण कहेंगे, वरन् ऐसी प्रतिज्ञा है कि संसार में इस प्रेम को लोग अनेक मत से मानते है परंतु वास्तव में वह प्रेम नहीं है । प्रेम वही है जो शास्त्र में कहा जायगा, जैसा स्त्री पुरुष का कामनार्थ प्रेम वा अन्य किसी प्रकार की त्रिगुणात्मिका देवभक्ति प्रेम नहीं है, यद्यपि संसार में वह प्रेम कही जाती है और उनके अनेक प्रकार लोग लक्षण कहते हैं । यही बात अग्रिम सूत्रों में सिद्ध करेंगे ।

१६ ॐ पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्य्यः ।

भगवत्पूजादिक में अनुराग रूप भक्ति यह श्री व्यासदेव का मत है ।

क्योंकि अनेक पुराणों में तथा जैमिनिसूत्र के भाष्य में बहुत कर्मविधान की प्रशंसा की है और पूजनादि केवल प्रेम के साधनस्वरूप हैं फलरूप नहीं । श्री महाप्रभु जी ने भी सेवानिर्णय में आज्ञा की है ''कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता' इत्यादि । जीवों के आसुरावेशनिवृत्त्यर्थ और मानसी-सेवा-सिद्ध्यर्थ वाहय सेवा (पूजादि) हैं, परंतु जब परम प्रेमावेश होता है तब मानसी सेवा भी छूट जाती है ।

१७ ॐ कथादिष्विति गर्गः ।

कथादि में अनुराग गर्गाचार्य का मत है ।

अर्थात् भगवत्कथाश्रवण को मुख्य मान कर कथा में अनुराग करना यह नारद जी का मत नहीं है, प्रेम की उत्कंठा में जो भगवत्कथा से अनुराग हो वह ठीक है ।

१८ ॐ आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ।

आत्मरति के अविरोध से अनुराग शांडिल्य का मत है ।

शांडिल्य भक्तिसूत्र के तृतीयाह्निक के तृतीय सूत्र में मत दिखाते हैं 'तामैश्वर्यपदां काश्यपः परत्वात्', 'आत्मैकपदां वादरायणः', 'उभयपदां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्यां' । कश्यप का द्वैत और वादरायण का अद्वैत दिखाकर आप द्वैताद्वैत अवलंबन करते हैं परंतु द्वैत वा अद्वैत वा द्वैताद्वैत मत का अवलंबन करके भक्ति को अपने पूर्वमत के आग्रह से अपनी दीक्षा वा संप्रदाय के अनुसार बलत्कार से भक्ति चलाना नारद का मत नहीं । जब मतमतांतर के वाद में बुद्धि अभिनिविष्ट हो जायगी तो तीव्र प्रेमलक्षणभक्ति में अन्यमनस्कं होने से भेद पड़ जायगा । इससे जिस भाव से निरोध हुआ हो उसी भाव से प्रेम में प्रवृत्त होना ही नारद का मत है । यदि हमारा यह भाव है कि ईश्वर एक है, आनंदमय है, हम उसके दासानुदास हैं, हमसे उससे कोई संबंध नहीं तो उसी भाव से भक्ति करनी और जो सर्वभाव हो तो सर्व भाव से भक्ति करनी, द्वैताद्वैत भाव पर चित्त आरूढ़ हो तो उसी भाव से उपासना करनी । अर्थात् जीव ईश्वर के भेदा-भेद के भगड़े में बुद्धि फँसा कर प्रेम में बाधा नहीं डालनी,

वही बात अगले सूत्र से सिद्ध करते हैं ।

१९ ॐ नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।।

नारद जी तो सर्व कर्म श्री हरि में अर्पण करना और श्री हरि की विस्मृति होने में परम व्याकुल होना यही भक्ति का लक्षण कहते हैं ।

कर्म दो प्रकार के हैं, लौकिक और पारलौकिक । प्रेमियों के दोनों कर्म यहाँ लिखते हैं । पारलौकिक में भक्तों को एतावन्मात्र कर्तव्य है कि अपने सब आचरणों को भगवान में अर्पण करना और लौकिक में इतना कर्तव्य है कि जब भगवद्वियोग-जनित परमानन्द का हृदय से तनिक भी विस्मरण हो तब परमव्याकुलता होनी । तो अलौकिक कर्म तो तत्समर्पण से निवृत्त हुए ; लौकिक में जब व्याकुलता का उदय होगा तो आपही सब काम छुट जायँगे । इस से लौकिक और पारलौकिक दोनों कर्मों की प्रवृत्ति से अलग होकर अनवच्छिन्न तैलधारावत सर्वक्षण भगद्वृत्ति में मग्न रहना, सर्वदा लीलाका अनुभव करना, सर्वदा वियोग का अनुभव करना, किसी काम में लगे हों परन्तु चित्त उधर ही रखना, जो वह ध्यान तनिक भी भूले तो एक संग व्याकुल हो जाना वही भक्ति का लक्षण है ।

२० ॐ अस्त्येवमेवं ।

ठीक ऐसा ही है ।

पूर्वकथित भक्तिलक्षण को इस सूत्र से अन्यस्थान में स्वकथित वा परकथित अनेक विधियों के निरासपूर्वक मुक्त कंठ से प्रतिज्ञा स्वरूप स्थापन करते हैं । लोक में भी चालू है कि जो बात दो बेर कहते हैं उस पर अपनी पूर्ण दृढ़ता दिखाते हैं इस भाव से यहाँ भी यह सूत्र कहा है अर्थात् अब इसमें किसी शंका का अवकाश नहीं ।

२१ ॐ यथा व्रजगोपिकानां ।

जैसा ब्रज की गोपियों का (प्रेम है) ।

लक्षण कहके उदाहरण में सब प्रेमियों की शिरोमणि-स्वरूप श्री गोपीजन का नाम लेते हैं अर्थात् प्रेम का उदाहरण जैसा श्री गोपीजन ने दिखाया वैसा और कौन दिखावेगा ? हई है, लोक वेद की कठिन लौहशृंखला को कच्चे सूतसी कौन तोड़ सकता है ? जिनके भगवान श्री सर्वदा ऋणी हैं उनकी महिमा कौन कह सकता है ? श्री मुख से कहा है 'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः । या मां भजन् दुर्जरगेहशृंखलां संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना'' । भगवान् श्री गोपीजन से गले में पीतांबर डाल कर और हाथ जोड़ कर निवेदन करते हैं हे श्री व्रजदेवियो ! मैं जो देवताओं की आयुष्य धारण करूँ और उस अनेक कल्प की आयुष्य से आप लोगों में ये एक का भी प्रत्युपकार किया चाहूँ तो न करे सकूँगा । क्योंकि महादुर्जर घर की शृंखला आप लोगों के सिवाय और कौन तोड़ सकता है ? अतएव मैं आप लोगों का सदा ऋणी हूँ । तो भगवान का यह श्री मुख वाक्य उन श्री गोपीजन के प्रति जिनने भगवान के श्री मुख से कहे हुए रासप्रसंग के दश श्लोकात्मक मर्यादास्थापन के वाक्यों को तृण सा भी नहीं माना, कुछ आश्चर्य नहीं है । एक तो साधारण शास्त्र के वाक्य माननीय हैं, दूसरे उस में भी भगद्वाक्य, तीसरे जब भगवान प्रत्यक्ष अपने मुखारविंद से आज्ञा करें तो ऐसा कौन होगा जो न मानेगा । पर ऐसे श्री गोपीजन ही हैं कि प्रेममार्ग के विरुद्ध भगवद्वाक्य को भी न माना ।

भगवान ने जब परमभागवत उद्धवजी को भक्ति का उपदेश किया है वहाँ कहा है ''रामेण सार्धं मधुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः । विगाढ़भावेन नमे वियोगतीव्राधयोन्यं ददृशुः सुखाय ।। तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण । क्षणार्द्धवृत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ।। ता नाविनन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तयेदं यथा समाधौ मुनयोब्धितोये न च प्रविष्टा इव नामरूपे ।। ब्रह्मा ने भी कहा है ''षष्ठिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं मया पुरा । नन्दगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणुपलब्धये ।। अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोप व्रजौकसां । यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनं'' । जब उद्धव जी को भगवान व्रज बिदा करने लगे हैं तब वहाँ भी श्री गोपीजन का स्वरूप अपने श्रीमुख से उद्धव जी को समझाया है । ''ता मन्मनस्का मत्प्राणाः मदर्थे त्यक्तदैहिकाः । ये त्यक्त लोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहं ।। मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः । स्मरंत्यो न विमुह्यन्ति विरहौत्कंठ्यविह्वलाः ।। प्रधारयंति कृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथंचन । प्रत्यागमनसंदेशैर्वल्लव्यो मे मदात्मिकाः'' । हे उद्धव उन गोपीजन ने मुझ में मन लगाया है, मैं

ही उनका प्राण हूँ, मेरे हेतु उनने सब देह के व्यवहार छोड़ दिये हैं और जो लोग मेरे अर्थ लोक और धर्म को छोड़ देते हैं उनको मैं धारण करता हूँ । वे गोपियाँ उन के परम प्यारों से प्यारे मेरे दूर रहने से जब मेरा स्मरण करती हैं तो विरह की उत्कंठा से व्याकुल होकर अपने शरीर की सुध भी भूल जाती हैं । बड़ी कठिनता से और बड़े दुःख से मेरे बिना किसी रीति प्राण धारण करती हैं मेरे आने के संदेसे सुन कर जीती हैं, उन गोपियों की आत्मा मैं हूँ और वे मेरी हैं, इत्यादि । जिन श्री गोपीजन से परम भागवत उद्धव जी ने भी कहा — "अहोयूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः । वासुदेवे भगवति यासामत्यर्पितं मनः ।। दानव्रततपोथोगजपस्वाध्यायसंयमैः । श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ।। भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा । भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ।। दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान् स्वजनान् भवनानि च । हित्वा वृणीयुर्यूयं यत् कृष्णाख्यं परमंपदम् ।। सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनाम धोक्षजे । विरहेण महाभागा महान्मेनुग्रहः कृतः ।।' इत्यादि । और जब श्री उद्धव जी ने अपने ज्ञान कथनांतर श्री गोपीजन का स्वरूप जाना है तब यही माँगा है कि हम श्री वृन्दावन में गुल्मलता हों, यथा "नायं श्रियोंगजनितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोन्यः । रासो त्सवे स्यभुजदंडगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ।। आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनां । या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्यां ।। या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनिरासगोष्ठ्या ।। कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणरविंदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापं ।।" श्री महाप्रभु जी ने संन्यासनिर्णय ग्रंथ में आज्ञा की है कि श्री गोपीजन प्रेममार्ग की गुरु हैं तथाच निरोधलक्षण ग्रंथ में आप ने श्रीगोपीजन तथा व्रज के गोपों का विरहानुभव प्राप्त होने की उत्कंठा दिखायी है । "यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले । गोपिकानां तु यद्दुखंतद्दुःखं स्यान्मम क्वचित् ।। गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् । यत्सुखं समभूतन्मे भगवान् किं विधास्यति ।। उद्धवागमने जाता उत्सवः सुमहान्यथा । वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित् ।। इत्यादि । और "गोपी प्रेम की ध्वजा । जिन घनस्याम किए अपने बस उर धरि स्यामभुजा" "गोपीपदपंकजपराग कीजै महाराज रज कीजै आपुनेई गोकुलानगर को ।" "ये हरिरसओपी गोपी सब तियतें न्यारी । कमलनयन गोविन्दचंद की प्राणपियारी ।। निर्मत्सर जे सन्त तिनकी चूड़ामनि गोपी जे ऐसे मर्याद मेटि मोहनगुन गावैं । क्यों नहिं परमानन्द प्रेमभक्ति सुखपावैं ।।" "अहो विधिना तोपै अँचरा पसारि माँगो जनम जनम दीजो याही ब्रज बसिबो । अहीर की जाति समीप नंदघर घरी घरी घनश्याम हेरिहेरि हँसिबो ।।" "बलि गुरु तज्यौ कंत ब्रजवनितन भइ जगमंगलकारी ।।" इत्यादि श्री सूरदासादिक परम अनुरागियों ने भाषा में भी श्री गोपीजन का पवित्र यश वर्णन किया है । परम अंतरंग श्री नागरीदास जी भी गाते हैं ।। जयति ललितादिदेवीय ब्रज श्रुति ऋचा कृष्णपियकेलिआधीरअंगी । युगुलरसमत्त आनन्दमय रूपनिधि सकलसुखसमयकी छाँहसंगी ।। गौरमुखहिमकिरणकी जु किरणावली श्रवत मधुगान हिय पियतरंगी । नागरीसकलसंकेतआकारिणी गनत गुनगननि मति होति पगी ।। भवतु ! इन श्री गोपीजन के अगणनीय गुण कहाँ तक लिखैं । रसिक लोग स्वतः अनुभव करैंगे ।

२२ ॐ न तत्रापि माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ।

यहाँ भी माहात्म्यज्ञानविस्मृति का अपवाद नहीं ।

जहाँ प्रेम है वहाँ माहात्म्यज्ञान नहीं, जहाँ माहात्म्यज्ञान है वहा प्रेम नहीं ; परंतु श्री गोपीजन में दोनों बातें थीं, क्योंकि उनको भगवत स्वरूप का ज्ञान नहीं था, यह शंका नहीं हो सकती । "अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवाँस्तनुभृतां किल बंधुरात्मा" ।। 'व्यक्तंभवान् व्रजभयार्तिहरोभिजातो" 'न खलु गोपिकानंदनो भवानखिलदेहिनामंतरात्मदृक ।। इत्यादि श्री गोपीजन के वाक्यों से उनका माहात्म्यज्ञान सिद्ध है ।

२३ ॐ तद्विहीनं जाराणामिव ।

उसके बिना जारों के समान है ।

अर्थात् जहाँ माहात्म्यज्ञान नहीं है वहाँ की प्रीति जारों की सी होती है । यद्यपि भगवान में ज्ञान वा अज्ञान से की हुई प्रीति निष्फल नहीं जाती तथापि यह लीला जहाँ पूर्ण प्रादुर्भाव है वहीं है परंतु माहात्म्य ज्ञानपूर्वक भक्ति में यह विशेषता है कि एक प्रस्तर में भी ईश्वर बुद्ध्यया सत्य प्रेम करने से फलदायिनी होती है ।

२४ ॐ नास्त्येव तस्मिस्तत्सुखसुखित्वं ।

उस से प्यारे के सुख से सुखी होना नहीं ही है ।

क्योंकि जारों की प्रीति अपनी कामना के अर्थ है तो उस में तत्सुखसुखित्व कहाँ से आवेगा ।

तीसरा अनुवाक् समाप्त हुआ ।

२५ ॐ सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योप्यधिकतरा ।

वह (भक्ति) तो कर्म्म, ज्ञान और योग से भी अधिक है ।

"तपस्विभ्यो ऽधिका योगी ज्ञानिभ्यो ऽपि मतो ऽधिकः ।। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।। योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना । श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः" ।। इन वाक्यों से भगवान श्रीमुख से ज्ञान और कर्म से योग को अधिक कह कर अपने भक्त को उससे भी अधिक कहते हैं और भक्ति ऐसी है कि भगवान मुक्ति देते हैं परंतु भक्ति नहीं । तथाहि "मुक्तिंददाति कर्हि चित्स्म न भक्तियोगं ।" तथा "न साधयति मां योगी न सांख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।। भक्त्याहमेकया ग्राह्यःश्रद्धयात्माप्रियः सताम् । भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकोनपि संभवात् ।।" और भक्ति में यह विशेष है कि कर्म, ज्ञान और योग इनमें अधिकारी अनधिकारी का बड़ा विचार रहता है परंतु इसमें किसी अधिकार का काम नहीं । श्रीमुखवाक्य प्रमाण है "केवलेन हि भावेन गोप्यो गावः खगा मृगाः । ये न्ये मूढ़धियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ।।"

२६ ॐ फलरूपत्वात् ।

क्योंकि फलरूपा है ।

ज्ञानाभिमानी लोग कहते हैं कि भक्ति का फल ज्ञान है, ऐसा नहीं । क्योंकि श्री भगवद्गीता में कहा है "अहंकारं बलं दर्प कामं क्रोधं परिग्रहं । विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।। ब्रह्मभूतःप्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां" ।। हई है, संसार के सब प्रकारके साधन का फल केवल भगवत्कृपा है और वह बिना भक्ति सिद्ध न होगी तो दोनों प्रकार से भक्ति के बिना अन्य साधन व्यर्थ ही हुए ।

२७ ॐ ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद्दैन्यप्रियत्वाच्च ।।

ईश्वर को भी अभिमान से द्वेषित्व है और दैन्य से प्रियत्व है ।

अर्थात् कर्म ज्ञान और योग उनके साधकों को अपने अपने साधन का अभिमान होता है तो उनसे भगवान प्रसन्न नहीं रहता । हई है, वह तो निराश्रयों का आश्रय, निःसाधनों का साधन, दीनों का बंधु, पतितों का प्यारा और सर्व प्रकार से हीनों का सर्वस्व है । जिन लोगों को अपने साधनों का बल है उनको क्यों वह पूछेगा । सच है, जो स्त्री अपने सौंदर्य्य के और जारों के बल से धन कमा लेती है उसे पति क्यों पूछेगा, जो बालक आप धनोपार्जन में समर्थ है उसे माता पिता क्यों भोजन देंगे, जो सेवक अपने गुण से अपना योग क्षेम चला लेता है उसके स्वामी को क्या शोच है, विशेष कर ईश्वर से स्वामी को, जिसको सर्वदा दीन प्यारा है । उसके सामने तो जब अनन्य होकर सब साधन छोड़कर उससे कहोगे "सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वथा । पापापीनस्य दीनस्य कृष्णएव गतिर्मम" ।। हे नाथ ! मैं सब साधन से हीन हूँ और संसार के पचड़े में मग्न हूँ पापों से लदा हुआ हूँ और परम दीन हूँ अतएव हे नाथ ! हमारी तो तुमही गति हो ।" क्योंकि और किसी के सामने मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहा, वेद को कैसे मुँह दिखाऊँ, उनके वाक्यानुसार सर्वकर्मानर्ह और पतित हो रहा हूँ, लोक को भी नहीं मुँह दिखा सकता क्योंकि लोक में सब से मुख्य रक्षणीय लज्जा का त्याग कर चुका हूँ और लोक के साधनों से विहीन हूँ हमारी तो और कोई शरण नहीं, महा निरवलम्ब हूँ, कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं, अथाह समुद्र में डूबता हूँ अब इस समय तुम्हारे सिवाय और कोई गति नहीं, मेरी तो तुमही गति हो इत्यादि । तभी वह तुम्हारी ओर ध्यान करेगा, ऐसा श्रीमुख से भी कहा है "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः" ।। सब धर्मों को छोड़ कर एक मेरी शरण आ, मैं तुझे सब पातकों से दूर करूँगा, शोच मत कर और यह वाक्य भी कब कहा है जब गीता का उपदेश कर चुके हैं तब ; इसको ठीक देने की भाँति कहा है ।

और आप अपने मुख से इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं "सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः । इष्टोमि मे दृढ़मतिस्ततो वक्ष्यामि ते हितम्" । और भी उद्धव जी प्रति श्री भगवद्वाक्य है "अकिंचनस्य दान्तस्य

शांतस्य समचेतसः । मया संतुष्टमनसः सर्वाःसुखमया दिशः ।। अज्ञायैव गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान् । धर्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ।। तस्मात् त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदना प्रतिचोदनां । प्रवृत्तं च निवृत्तंच श्रोतव्यं श्रु तमेव च ।। मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनां । याहि सर्वात्मभावेन मया स्याःह्यकुतोभयः (?) । न साधयति मां योगो न साख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायष्यतपस्त्यागे यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।। भक्तयाहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् । भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकमपि संभवात् ।। धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता । मद्भक्तया येतमात्मानः (?) न सम्यक्प्रपुनातिहि ।। कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना । विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्तया विनाशयः ।। वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्कचिद्वा ।। विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति'' ।

तथा — ''नाहं वेदैर्न तपसान दानेन न चेज्यया । शक्य एवंविधो दृष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।। भक्त्याहमेकया ग्राह्य अहमेवंविधोर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वोन प्रवेष्टुं च परंतप ।'' इत्यादि ।। इन वाक्यों को छोड़ कर भक्तों के दोनों लोक साधन के लिए उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा है ''कौंतेय प्रतिजानीहि न मेभक्तः प्रणश्यति'' ''नरकादुद्धराम्यहं'', ''तान्विभर्म्यहं'', ''सोयं मे ब्रत आहितः'' ''योगक्षेमं वहाम्यहं'', ''तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्'' इत्यादि ।

२८ ॐ तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येकं ।

उस (भक्ति) का साधन ज्ञानही है यह किसी का मत है ।

यह नहीं हो सकता । गृध्र, अजामिल, गजेंद्र इत्यादि को किसने ज्ञान दिया है ''केवलेनहिभावेन गोप्यो गावः खगा मृगाः। ये ऽ न्ये मूढ़धियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा'' ।। भक्ति का साधन तो अपने चित्त का अंकुर और उनकी कृपा ही है, ज्ञान बेचारा क्या साधेगा ?

२९ ॐ अन्योन्याश्रयत्वमित्यने ।

दूसरों का मत है कि भक्ति और ज्ञान से परस्पर आश्रयत्व है ।

यह भी नहीं हो सकता, जब मनुष्य किसी की भक्ति वा प्रीति कर लेगा तब उसके ज्ञान में क्या प्रवृत्त होगा ? पानी पी के जात नहीं पूछी जाती ।

३० ॐ स्वयंफलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ।

सनत्कुमारादिक और नारद जी का मत है कि भक्ति स्वयं फलरूपा है ।

हुई है, पहले भी कह आए हैं ।

३१ ॐ राजगृहभोजनादिषु दृष्टत्वात् ।

राजा का घर और भोजनादि के केवल देखने में ऐसा ही देखा गया है ।

पूर्वकथित फलरूपता का उदाहरण दिखाते हैं ।

३२ ॐ न तेन राजपरितोषो क्षुधाशान्तिर्वा ।

न उससे राजा का परितोष होगा, न क्षुधा मिटेगी ।

ज्ञान के फलरूप होने में दोष दिखाते हैं कि एक मनुष्य को किसी राजा का स्वरूपज्ञान बहुत अच्छा है पर इससे क्या ? क्या वह राजा बिना अपनी भक्ति किए ही उसे कुछ देगा वा कुछ भोजन रक्खा है ? हमको उसके स्वरूप का पूर्ण ज्ञान है कि इसमें पूरी है और वह आटा, घी, जल और अग्नि के संयोग से बनी है पर क्या इस ज्ञान ही से भूख मिट जायगी ? कदापि नहीं । वैसा ही भगवान का केवल जानकर कभी सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह अपने स्वरूपों पर किस नाते दत्तचित्त होगा ? अतएव अगले सूत्र में फिर से आग्रह दिखाते हैं ।

३३ ॐ तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ।

इस कारण मोक्ष की इच्छा करने वाले उसी (भक्ति) का ग्रहण करें ।

जो अपना कल्याण चाहे तो इस सूत्र को कान खोलकर सुने और विश्वास करे ।

चौथा अनुवाक समाप्त हुआ ।

३४ ॐ तस्यास्साधनानि गायन्त्याचार्याः ।

उस (भक्ति) के साधन आचार्य्य कहते हैं ।

पूर्वोक्त सूत्रों में भक्ति ही मुख्य है ऐसा कह अब उसके साधन दिखाते हैं ।

३५ ॐ तत्तु विषयत्यागात्संगत्यागाच्च ।

वह (भक्तिसाधन) तो विषयत्याग और संगत्याग से होता है ।

जो कहो कि हम विषय और संग में लगे हुए भी सिद्ध हो जायँगे तो यह नहीं हो सकता, क्योंकि श्री महाप्रभु जी ने अपने ग्रंथ बालबोध में "जीवाः स्वभावतो दुष्टाः" इस वाक्य से जीव को स्वभावतः दुष्ट कहा है, तो जीव को आसुरावेश होने में कुछ विलंब नहीं लगता । श्रीहरिराय जी ने अपने ग्रंथ कामदोषनिरूपण में इस विषय की कैसी निंदा की है, आप लिखते हैं "दोषेषु प्रथमः कामो विविच्य विनिरूप्यते यस्मिन्नुत्पद्यते तस्य नाशकः सर्वथा मतः ।। विषयावेशहेतुत्वाद्विक्षेपोत्पत्तिकारणं । रजोगुणसमुत्पन्नो रजः प्रक्षेपको मुखे ।। ब्रह्मावेशविरोधी च सद्बुद्धेर्बाधको मतः । सत्कर्मनाशक सर्वप्राकृतासक्ति साधकः ।। चित्ताशुद्धि निदानत्वाच्चि-दुत्पत्तौ च बाधकः । भक्तिमार्गमहाद्वेष्टा वैराग्याभावसाधनात् ।। सर्वत्रापरितोषश्चानेन लोभसमुद्भवात् । यथाकथंचित्सांमुख्यायेंद्रियवैमुख्यकारकः ।। कामलोभौ हरिप्राप्तिप्रतिबंधकपर्वतौ ।तावुल्लंघ्य न शक्नोति गन्तुं कृष्णांतिकं जनः ।। संसारमोहहेतुत्वान्मनोदूषणसाधनम् । अतः सेवाविरोधी च यतः सा मानसी मतां ।। निरोधस्यमहान्छत्रुरन्यत्स्फूर्तिकरोयतः । गुणगानसपत्नोपि न रोचंते गुणा यतः । वैराग्यबाधकाः सर्वे कामिनस्ते कथं प्रियाः । अतएव हि दृश्यन्ते गुणश्रवणवैरिणः ।। क्रोधः स्वकार्यकरणाल्लोभः प्रप्स्यापि शाम्यति । घृतहोमे वन्हिरिव कामो भोगेन वर्द्धते ।। कामेन नाशितमतिः प्रतिषिद्धे प्रवर्तते । अगम्यागमने चौर्य्ये तथैवाभक्ष्यभक्षणे ।। यतउत्पद्यते क्रोधो महन्मोहसमुद्भवः । लोभोपि जायते तस्मात्सचार्थविषये भवेत् ।। सोर्थः पञ्चदशानर्थमूलं तत्र प्रवर्तते । कामेनैवहि कार्पण्यं कामिनीषु सतां मतं । प्रर्थयन्ति यतस्तुच्छां प्रवेश्य वदने करं" इत्यादि कामदोष पर आपने एक ग्रंथ ही बनाया है तो काम मुख्य दोष है इसमें कोई संदेह नहीं, वरंच श्री गीता जी में काम ही के छुड़ाने के आग्रह से सुखपूर्वक भोजनादि का भी निषेध किया है । श्रीमुखवाक्य 'इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति निराहारस्य देहिनः । रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वानिवर्तते' । इससे भक्ति के सब साधनों में मुख्य विषयों का त्याग है । संगत्याग के दोष ४३।४४।४५ सूत्रों में दिखावेंगे ।

३६ ॐ अव्यावृतभजनात् ।

सतत भजन से ।

निरंतर शब्द यहाँ इस हेतु दिया है कि क्षण क्षण में जीव को आसुरावेश होता है और रजोगुण सतोगुण की तरंगें उठा करती हैं तो उसकी निवृत्ति के हेतु निरंतर भजन करै । जिस क्षण में नामोच्चारण का व्यवधान होगा उसी क्षण में आसुरावेश होगा अतएव भगवान श्री श्रीवल्लभाचार्य ने आज्ञा की है "तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम । वदद्भिरेव सततं स्थातव्यमिति मे मतिः" ।। अपने भक्तिवर्द्धिनी ग्रंथ में भी श्रीआचार्य जी ने "अव्यावृतो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः" इत्यादि लिखा है, भोजनादिक व्यवहार की रीति कुछ नित्य भजन भी कर लेना वा जहाँ सब काम करते हैं वहाँ एक घंटा भर यह भी सही इत्यादि । उपेक्षा वा साधारण व्यवहार पूर्वक भजन का निषेध इस सूत्र से किया । जो कहो कि संसार के और कोई काम न करें सो यह नहीं कहते वरंच जब तुम आवश्यक कार्यों से छूटो तब और कोई व्यर्थ काम करने के बदले निरंतर भजन करो, जैसा जितने क्षण खाते हो उतनी देर तो निःसंदेह तुम कुछ नहीं कह सकते पर जैसे ही मुँह धो चुको भगवन्नामोच्चारण प्रारंभ करो ।

३७ ॐ लोकेपि भगवतगुणश्रवणकीर्तनात् ।

लोक में भी भगवान के गुणों के श्रवण और कीर्तन से । "लोकेपि" अर्थात् जब तक अव्यावृत भजन की सिद्धि न हो और लोक के व्यवहार में चित्त निरा मग्न हो तब तक भगवान् के गुण कीर्तन करके और श्रवण करके निरंतर भजन का अभ्यास करे क्योंकि कोरे नामोच्चरण से वा ध्यान करने से भजन सुनने या गाने में सर्वसाधारण का चित्त विशेष लग सकता है । श्रीमहाप्रभुजी लिखते हैं "यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्तथोपायो निरूप्यते । बीजभावे दृढ़ेतु स्यात्त्यागाच्छ्रवणकीर्तनात् ।।बीजदाढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः । अव्यवृतो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः ।। व्यावृत्तोपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा । ततःप्रेम तथासक्तिर्व्यसनंच यदा भवेत्" अर्थात् जो चित्त भक्ति में न रँगा हो तो श्रवणादिक में लगावे और जब उसमें कुछ प्रेम और आसक्ति होगी और श्रवणादिक का व्यसन हो जायगा तब आपही भक्ति का बीज दृढ़ हो जायगा । यद्यपि भक्ति के

अधिकारी सब लोग नहीं हैं पर श्रवणकीर्तनादिक के अभ्यास से सब हो जाते हैं, क्योंकि श्रवणकीर्तन के अधिकारी मुक्त, मुमुक्षु और विषयी तीनों हैं । यही श्रीपरमभागवत श्रवणाधिकारी राजा परीक्षित ने कहा है "निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् । क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान्विरज्येत विना पशुघनात् ।।"

३८ ॐ मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा ।

(उस भक्ति का) मुख्य साधन तो महानुभावों की कृपा है वा भगवान की कृपा का लेश ।

ऐसा ही है, परम भागवत जड़भरतजी ने रहूगण को उपदेश किया है "रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा । न छन्दसा नव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकात् ।।" हे रहूगण, यह (सिद्धि) तप से नहीं होती और न यागादि कर्मों से, न घर छोड़ के योगी बनने से, न वेदों से, न जल से अर्थात् स्नान संध्या तर्पणादि से, न अग्नि से अर्थात् पञ्चाग्नि साधन वा अग्निहोत्र से, न सूर्य से अर्थात् सूर्योपस्थान वा ग्रीष्मताप सेवनादि से । बिना महानुभावों के पदरज में नहाये और किसी से यह नहीं हो सकता । यही श्रीमुख से भी कहा है "नह्यम्मयानि तीर्थाणि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।।" हे अक्रूर ! जिस को जलमय तीर्थ (गंगादि) और मृणमय और शिलामय देव पवित्र नहीं करते वा बहुत काल से करते हैं उसको साधु लोग दर्शनही से तत्काल पुनीत करते हैं ।

वरंच श्रीमद्भागवत पंचमस्कंध में श्रीमत्परम भागवत प्रह्लादजी ने कहा है "मागारदारात्मजवित्तबंधुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः । यः प्राणवृत्या परितुष्ट आत्मवान् सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ।। यत्संगलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुःसंस्पृशतां हि मानसं । हरत्यजोंतःश्रुतिभिर्गतोंगजं को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमं" ।।[१]

देवीपुराण नवमस्कंध के षष्ठाध्याय में गंगा जी से भगवान् का वाक्य है "मन्मंत्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात् । युष्माकं मोक्षणं पापात् दर्शनात् स्पर्शनात्तथा ।। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सत्यसंख्यानि सुन्दरि । भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ।। मन्मन्त्रोपासका भक्ता विभ्रमन्ति च भारते । पूतां कर्तुतारितुञ्च सुपवित्रां वसुन्धरां ।। मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च । तत्स्थानन्तु महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवं ।। स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः । जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ।। एकादशीविहीनश्च संध्याहीनोतिनास्तिकः । नरघाती भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ।। असिजीवी मसीजीवी धावकोग्रामयाचकः । वृषवाहो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ।। विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यस्य दायकः । स्थाप्यहारी भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ।। अत्युग्रवाग्दूषकश्च जारकः पुंश्चलीपतिः । पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ।। शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाचकः । अदीक्षितोभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्श-दर्शनात् ।। पितरं मातरम्भार्यां भ्रातरं तरयं सुतां । गुरोः कुलत्र भगिनीं चक्षुर्हीनञ्च बान्धवं ।। श्वस्नश्च श्वसुरञ्चापि यो न पुष्णाति सुन्दरि । स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ।। अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तनिन्दकस्तथा । शूद्रान्नभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात ।। देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः । लाक्षालोहरसानां च विक्रेता दुहितुस्तथा ।। महापातकिनश्चैव शूद्राणां शवदाहकः । भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ।।" तथा देवी का वाक्य "पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् । येषां च पादरजसा पूतो पादोदकान्मही ।। येषां संदर्शनं स्पर्शं ये वा वांछन्ति भारते । सर्वेशां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ।। नह्यम्मयानि तीर्थाणि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनंत्युरुकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो" । फिर भगवद्वाक्य "पुरुषाणां शतं पूर्वं तथा तज्जन्ममात्रतः । स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात् ।। यःकैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धंयेषु च जन्तुषु । जीवन्मुक्तस्तु ते पूता यान्ति काले हरेः पदं ।। मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः । मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च सन्ततं ।। मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः । सगद्गदः साश्रु नेत्रः स्वात्मविस्मृत एवच ।। न वाञ्छन्ति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयं । ब्रह्मत्वममरत्वंवा तद्वाञ्छा मम सेवने ।। इंद्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभं । स्वर्गराज्यादिभोगांश्च स्वप्ने ऽपि न वाञ्छति ।।

[१] देवीपुराणही को देवीभागवत कहते हैं क्योंकि पुराणों में जहाँ कहीं उपपुराणों को गिना है वहाँ "देवी भागवत" वा "देवीपुराण" ऐसा शब्द है ।

भ्रमन्ति भारतं भक्तास्तादृग् जन्म सुदुर्लभं । मद्गुणश्रवणश्राव्यगानैर्नित्यं मुदान्विता: ।। ते यांति च महीं पूत्वा नरा: शीघ्रं ममालयं । इत्येवं कथितं सर्वं पद्मे कुरु यथोचितं ।। तदाज्ञयां तास्तच्चक्रु र्हरिस्तस्थौ सुखासने ।। तथाच सरासंग्रह में पराशरस्मृति "सहस्रवार्षिकी पूजा विष्णोर्भगवतो हरे: । सकृद्भागवताचार्या: कलां नार्हंति षोड़शीं ।।" इत्यादि । बृहन्नारदीयपुराण में "पूजनाद्विष्णुभक्तानां पुरुषार्थोस्ति नेतर: । तेषु तद्द्वेषत: किंचिन्नास्ति नाशनमात्मन: ।।" पद्मपुराण में श्री महादेव जी का वाक्य "आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परं । तस्मात्परतरं देवि तदीयानां च पूजनं ।।" श्री मद्भागवत में श्री महादेव जी का वाक्य "न मे भागवतानां च प्रेयानन्योस्ति कर्हिचित्" इत्यादि । पूर्वोक्तश्लोकों में तदीय जनों का माहात्म्य सिद्ध हुआ तो ऐसे तदीयों की कृपा से भक्ति मिले इसमें क्या आश्चर्य है वा भगवान ही की कृपा से होय । क्योंकि आप कभी-कभी भक्तिदान देते हैं "ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते" । परतु भगवान की कृपा से भक्तों की कृपा सुलभ है क्योंकि भगवान भक्तिदान विशेष नहीं करते "मुक्तिं ददामि कर्हिचित् स्म न भक्तियोगं ।।" इत्यादि अतएव इस सूत्र में महत्कृपा का मुख्य करके भगवत्कृपा को गौण किया है ।

३९ ॐ महत्संगस्तु दुर्लभो ऽगम्यो ऽमोघश्च ।

और महत्संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ (सफल) है ।

ऐसा ही है, "क्षणार्द्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवं । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिष:" इत्यादि । श्रीमद्भागवत में श्री महादेव जी का वाक्य है । "अमोघं सिद्धदर्शनं" इत्यादि स्मृति तथा श्रीमुखवाक्य 'न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एवच । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ।। व्रतानि यज्ञच्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमा: । यथावरुध्येत्सत्संग: सर्वसंगापहोहि मां ।।" और लोक में भी प्रसिद्ध है "सत्संगति: कथय किं न करोति पुंसां" इत्यादि ।

४० ॐ लभ्यतेपि तत्कृपयैव ।

महत्संग उसकी कृपा से ही मिलता है ।

"यस्य भागवता: प्रीतास्तस्य प्रीतो हरि: स्वयं ।" इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है । तथा श्री महादेव जी ने भी कहा है "अथानघांघ्रेस्तव कीर्तितीर्थे योन्तर्वहि: स्नाति विधूतपाप्मना । भूतेष्वनुक्रोशसुसत्वशीलिनां स्यात्संगमोनुग्रह एवमस्तु च" ।।

४१ ॐ तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ।

उसके और उसके जन में भेद के अभाव से ।

श्रुति भी है । "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरावित्यादि" । "न मे भागवतानां च भुक्तिभेदोस्ति कर्हिचित्" इत्यादि श्री मुख से कहा है । तथाच श्री गोपीजन को "ता मन्मनस्का मत्प्राणा बल्लव्यो मे मद्रात्मिका:" इत्यादि । श्री महादेव जी को "यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु । त्वद्गुपासा जगन्नाथ सैवास्तु मम गोपते" तथा उद्योगपर्व में दुर्योधन से पांडवों के हेतु भी कहा है "यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु । ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पांडवै धर्म्मचारिभि: ।।" इत्यादि । तथा श्री प्रहलादादिक भक्तों से भगवान ने वही कहा है " जिसने तुमसे द्वेष किया उसने मुझ से द्वेष किया" । इसका उदाहरण अंबरीष का प्रकरण प्रत्यक्ष है और वहाँ भी श्रीमुख से कहा है "अहंभक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विजं । साधुभिग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रिय: ।।" महाभारत में भी कहा है 'तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन च । विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सल: ।।" उद्धव जी से भी ऐसाही कहा है ।[1] 'न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकर: । नचसंकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान' (?) । 'निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शिनं । अनुव्रजाम्यहं नित्यंपूजयेयंघ्रिरेणुभि: (?) ।। इत्यादि श्रीमुख से अपने भक्तों से अपनी एकता स्वाधीनता इत्यादि वर्णन किया, तो इस से भगवान और उनके भक्तों की एकात्मता ही सिद्ध हुई । "त्रिधाप्येकं सदागम्यं गम्यं भेदप्रभेदकै: । प्रेम प्रेमी प्रेमपात्रत्रितयं प्रणतोसम्यहं" ।।

---

१ चारो नाम चार संप्रदाय के आचार्यों ही के लिये ब्रह्मा माधव, महादेव विष्णुस्वामी, संकर्षण निम्बार्क और श्री रामानुज इन मर्य्यादामार्ग के भक्तों की उत्कर्षता के हेतु उद्धव को सबसे बड़ा कहा ।

४२ ॐ तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ।

उसी का साधन करो, उसी का साधन करो । हम लोग भी मुक्त कंठ से यही कहते हैं ।

पंचम अनुवाक समाप्त ।

४३ ॐ दुःसंगस्सर्वथैव त्याज्यः ।

दुःसंग का सब रीति से त्याग करना । उसके त्याग में कारण कहते हैं —

४४ ॐ कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात् ।

(क्योंकि वह) काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश तथा सर्वनाश का कारण है ।

ऐसाही श्रीमुख से भी कहा है "ध्यायतो विषयान्पुन्सःसंगस्तेषूमजायते । संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते ।। क्रोधाद्भवति संमोहं संमोहात् स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणाश्यति ।।" विषयों के सुख सोचते सोचते विषयसंग होता है और विषयसंग से अनेक प्रकार की कामना उत्पन्न होती है, और जब उस कामना के पूर्ण होने में कोई बाधक होता है तब क्रोध उत्पन्न होता है और जब उस क्रोध से अनिवार्य बाधकों का प्रत्यय नहीं कर सकता तब मोह हो जाता है और निराश हो के रोने लगता है । फिर इस दुःख से सब स्मृति भूल जाती है और जब स्मृति भूल जाती है तब इस की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती और अन्यथा करने पर प्रवृत्त हुआ तहाँ उस का लोक परलोक सब नाश होता है" । इस से यह दिखाया कि सब बिगाड़ का कारण विषय और उसका संग ही है ।

४५ ॐ तरंगायितापीमे संगात्समुद्रायन्ति ।

ये (काम क्रोधादिक) तरंगों की भाँति होकर भी संग से समुद्र से हो जाते हैं ।

दुःसंग में और भी दोष दिखाते हैं । यद्यपि जो लोग सन्मार्ग पर प्रवृत्त हैं उनको अहर्निश भगवदाराधन करते-करते काम क्रोधादिक की केवल तरंग आती है, जैसे नित्य विशयियों को सुरतान्त, तीर्थगमन, कथाश्रवण वा स्मशानदर्शन से ज्ञान की तरंग आती है । जितनी देर स्मशान पर बैठते हैं संसार नश्वर है, पुत्रादिकों में मोह अच्छा नहीं इत्यादि ज्ञान छाँटते हैं पर जहाँ घर आये तहाँ फिर संसारी काम में मग्न हो गये । वैसे ही अच्छे लोगों को प्रारब्धवशात् संग में जो कुछ कामक्रोधादिक की तरंगें आती भी हैं तो वे उतने ही काल रहती हैं जब तक कि वे अपना स्वरूप भूले रहते हैं तथापि यदि वेही सज्जन दुःसंग में पड़ जायँ तो ये ही काम क्रोध उनको डुबा दें ।

४६ ॐ कस्तरति कस्तरति मायां ? यः संगांस्त्यजति यो महानुभावं सेवते यो निर्ममो भवति ।

कौन तरता है ? माया को कौन तरता है ? जो संगों को छोड़ता है, जो महानुभाव की सेवा करता है, जो निर्मोह होता है ।

यद्यपि महात्माओं की कृपा और संगत्याग मुख्य साधन हैं तथापि कुटुंबादिक का मोह भी एक बड़ी भारी बेड़ी है इससे इस का त्याग भी मुख्य ही है ।

४७ ॐ यो विविक्तस्थानं सेवते यो लोकबंधमुन्मूलयति निस्त्रैगुण्यो भवति योगक्षेमं त्यजति ।

जो एकांत स्थान सेवन करता है, जो लोकबंध की जड़ निकाल देता है, निस्त्रैगुण्य होता है और योग क्षेम छोड़ देता है ।

क्रमशः उसके साधन कहते हैं । यदि जन समाज में रहेगा तो पहले तो उसके अनवच्छिन्न भगवच्चिंतन में कोलाहलादि से अनेक बाधा पड़ेगी, दूसरे अनेक प्रकार के लोगों से मिलने से उनके व्यवहार में व्यापृत होने और उनके संग में पड़ जाने का डर है अतएव श्रीमुख से कहा है "विविक्तजनसेवित्वमरतिर्जनसंसदि" । और महात्माओं की भी आज्ञा है "विमुक्तबन्धा विचरेदसंगः ।" इत्यादि तथा लोक का बंधन छोड़ना भी एक बड़ा कठिन साधन है । कोई हँसे न, कोई नाम न धरे, 'धोती इतनी नीचे पहिने कि एड़ी न दिखाय', नहीं निर्ल्लज्ज कहावेंगे, मार्ग में जिस चाल से निकलते हैं वैसे ही निकलना चाहिए, इत्यादि लोककल्पित व्यवहार और भी महाबंधन के कारण होते हैं । इस हेतु सब लोकबंधन की मूल लज्जा को चौपट कर डालना "एकां लज्जां परित्तज्य त्रैलोक्यविजयी भवेत्" । क्योंकि भक्ति के साधन में श्री मुख से आप ने आज्ञा की है "विलज्ज उद्गायति रौति नृत्यति मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति", तो सबके सामने कौन गावेगा कौन रोवैगा कौन

नाचैगा ? जो मेरा सा निपट बेहया होगा तथा जब लोक छुटा तब उससे भी बड़ा बंधन वेद वचा, उसके मिटाने के हेतु कहते हैं "निस्त्रैगुण्यो भवति" अर्थात सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों की प्रवृत्ति से अलग हो जाता है । श्री मुख से भी कहा है "त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।।"

परंतु जो कहो कि लोक वेद छोड़ के केवल अपना भला करना तो चार्वाक का मत है तो इसका खंडन करते हुए कहते हैं "योगक्षेमं त्यजति" अर्थात् केवल लोक वेद नहीं छोड़ता वरंच अपने भी खाने पीने पहिरने रहने ओढ़ने बिछाने सोने इत्यादि का शोक छोड़ देता है "भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवा: । विश्वम्भरो गुरुर्येषां किं दासान् समुपेक्षते" और उसकी प्रतिज्ञा भी है "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानं योगक्षेमं वहाम्यहं" इत्यादि । क्योंकि जब सब छोड़ा फिर अपनी हाय हाय न छूटी तो उस छोड़ने पर धिक्कार है ।

४८ ॐ य: कर्मफलं त्यजते कर्माणि संन्यसति ततो निर्द्वन्द्वो भवति ।।

जो कर्मफल छोड़ता है, कर्मों का त्याग कर के निर्द्वन्द्व होता है ।

निस्त्रैगुण्य होने का क्रमश: साधन कहते हैं, जब तक चित्त में अर्थों की तरंगे उठैं तब तक कर्मों को नहीं छोड़ना, उसका फल छोड़ना और जब कामनाओं की निवृत्ति हो जाय तब उन कर्मों को भी छोड़ के निर्द्वन्द्व हो जाना, क्योंकि श्रीमुख से भी कहा है "निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।" "यावानर्थ उदपाने" इत्यादि ऊपर लिख आए हैं ।

४९ ॐ वेदानपि संन्यसति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ।

वेदों को भी छोड़ देता है और केवल अविछिन्न अनुराग (प्रीति) को पाता है ।

अब साधन दिखा कर उसकी सिद्ध दशा लिखते हैं । जब सिद्ध हो जाता है तब वेदों का त्याग कर देता है और केवल अविच्छिन्न प्रेम पाता है ।

५० ॐ स तरति स तरति स लोकान्तारयतीति ।

वह तरता है, वह तरता है, वह लोकों को तारता है ।

नारद जी अपनी प्रतिज्ञा दृढ़ करने के हेतु दो बार कहते हैं और निश्चय कराते हैं । वरंच यह कहते हैं कि वह आपही नहीं तरता किन्तु संसार को तारता है, "पुनाति भुवनत्रयं", "तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थाणि स्वान्तस्थेन गदाभृता", "ते पुनन्त्युरुकालेन", "मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति", "स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं" इत्यादि वाक्यों से उनका संसार में पवित्र कर के तारना सिद्ध है ।

षष्ठ अनुवाक समाप्त ।

●

५१ ॐ अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपं ।

प्रेम का स्वरूप कहा जा नहीं सकता ।

तो हम लोग क्या कहें ।

५२ ॐ मूकास्वादनवत् ।

गूँगे के स्वाद की भाँति ।

अर्थात् केवल अनुभव सिद्ध है क्योंकि मीठे और सलोने में जो भेद वा स्वाद है वह कहा नहीं जा सकता । इतना ही कह सकते हैं कि खाके अनुभव कर लो । उसमें भी गूंगे के स्वाद का क्या पूछना है । यहाँ वही कहावत है "बिना अपने मरे स्वर्ग नहीं सूझता ।"

५३ ॐ प्रकाश्यते क्वापि पात्रे । [१]

(तथापि) कभी किसी पात्र (अधिकारी) से प्रकाश किया जाता है ।

"ब्रूयु: स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत" इत्यादि वाक्य से सिद्ध है । तो इस में यह शंका हुई कि श्री नारद जी ने संसार में कोई पात्र पाए बिनाही इन सूत्रों का प्रकाश क्यों किया ? इसके उत्तर में हम इतना ही कहा चाहते हैं कि यह किसी पात्र को उद्देश्य करके नहीं कहा बरंच स्वत: मुँह से प्रेम के आवेश से निकल गया

---

[१] जिस पुस्तक में "प्रकाशते" ऐसा पाठ है वहाँ अर्थ है कि प्रेम स्वरुप कभी किसी पात्र (अधिकारी) में स्वयं प्रकाश पाता है ।

क्योंकि पात्र भर जाता है तब आप से आप ऊपर बह निकलता है । उस समय यह विचार नहीं रहता कि नीचे पात्रान्तर आधारभूत है या नहीं, वही दशा इस की भी है । जब उस परमानंद का उच्छ्वास होता है तब यहाँ भी पात्रापात्र — विचार नहीं होता, पागल की भाँति गूढ़ तत्व भी अपने आप बकने लगता है ।

५४ ॐ गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणबर्द्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ।

(प्रेमस्वरूप) गुणों से रहित, कामनाओं से रहित, प्रतिक्षण में वृद्धिगत, अविच्छिन्न, सूक्ष्मतर केवल अनुभवरूप है ।

कामनारहित, क्योंकि कामना से यह भक्ति व्यवहार हो जायगी, इससे स्वर्गादि कामना के अर्थ योजनस्वरूपा भक्ति वा कामपूरणार्थ दंपति के प्रेम का नाम प्रेम है, इस का निराकरण किया । श्रीमुख से भी कहा है, "न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते । भर्जिता क्कथिता धाना भूयो बीजाय नेष्यते" इत्यादि और सांसारिक प्रेम से इस शुद्ध प्रेम में आधिक्य दिखाने के हेतु "प्रतिक्षण-वर्द्धमान" यह कहा, क्योंकि संसार में प्रेम पहले तो बड़े चाव से होता है फिर प्रतिदिन अवस्था बल वा रूप गुण धन के घटने से वह प्रेम दिन दिन घटता जाता है और उस अशेषगुणसम्पन्न नित्यनव किशोर असीमगुणमंडित अतुलबलसीम परमानन्दमय में जो प्रेम होगा वह प्रतिक्षण बढ़ता जायगा क्योंकि उत्तम सौंदर्य और गुण का धर्म है कि जितना उसको देखते वा विचारते जाओगे उतनी ही उत्तम सूक्ष्मता प्रगट होती जायगी और जैसा इस प्रेम को संसार के दुःखादि बाधा कर देते हैं वैसी उसमें कोई बाधा नहीं होती क्योंकि भगद्वियोग के महादुःखसागर में ये सब संसार क्षुद्र दुःख डूब जाते हैं । "सर्वपदं हस्तिपदे निमग्नं" और सूक्ष्म इतना है कि उसका उदाहरण नहीं दिया जा सकता, इसी हेतु अनुभवरूप कहा है । पुराणांतर में कथा है कि सती ने किसी कल्प में श्रीजानकी जी का वेष धर के भगवान् की परीक्षा की थी इससे हम सब प्रेमियों के शिरोरत्न श्री महादेव जी ने फिर सती के उस देह को स्पर्श न किया । बोधा ने भाषा कवित्त में कहा है "अति छीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है । सुचिबेध ते नाको सकीर्न तहाँ परतीत को टाँड़ो लदावनो है ।। कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है । यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धार पै धावनो है ।।"

५५ ॐ तंप्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति ।

उसको पाकर उसी को देखता है, उसी को सुनता है, उसी को बोलता है और उसी का चिन्तन करता है ।

क्योंकि फिर इसको कहने, सुनने और देखने को अवशिष्ट नहीं रहता और जहाँ "तं प्राप्य तमेव अवलोकयति" इत्यादि पाठ है वहाँ यह अर्थ है कि उसको अर्थात् भगवान को प्रेम द्वारा पाकर उसी को देखता है क्योंकि उस अनिर्वचनीय रूप को देख कर और देखने की इच्छा नहीं होती ।

५६ ॐ गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा ।

गौणी (भक्ति) तीन प्रकार की, गुणभेद वा आर्तादि भेद से ।

मुख्याभक्ति का स्वरूप दिखाकर गौणी का स्वरूप कहते हैं — सत्व, रज, तम गुणों के भेद से सात्विकी, राजसी, तामसी तीन प्रकार की भक्ति वा श्रद्धा होती है । गुणत्रयविभाग वर्णन में श्रीभगवान ने इसका विस्तार कहा है वा आत, जिज्ञासु और अर्थार्थी इन तीनों के भजन के भेद से भी गौणी भक्ति तीन प्रकार की हो जाती है ।।

५७ ॐ उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूपूर्वपूर्वो श्रेयाय भवति ।

पिछले पिछले (भेद) से पहला कल्याण हेतु होता है ।

अर्थात तमोगुण से रजोगुणी और रजोगुणी से सत्वगुणी अच्छी होती है, वैसे ही अर्थार्थी से जिज्ञासु और जिज्ञासु से आर्त अच्छा होता है क्योंकि सतोगुणी भक्ति से वा आर्त के भजन से शुद्ध भक्ति मिलने की संभावना है ।

सप्तम अनुवाक समाप्त ।

●

५८ ॐ अन्यस्मात्सौलभ्यं भक्तौ ।

अन्य से भक्ति में सुलभता है ।

पूर्व में भक्ति का अनिर्वचनीय स्वरूप कहा है तो इस से जीवों को शंका हो कि ऐसी सूक्ष्म वस्तु के

अधिकारी हम कैसे होंगे तो उस शंका से मिटाने के हेतु और जीवों को उस मार्ग पर आरूढ़ करने के हेतु कहते हैं कि और जितने साधन हैं सब से भक्ति (साधन) सुलभ है क्योंकि न इसमें विद्या का काम है न धन का, न वेद का, न आचार का, न उत्तमता का, न वर्ण का, क्योंकि गणिका को क्या विद्या थी, शबरी को क्या धन था, श्री गोपीजन ने कौन वेद पढ़ा था, गृध्र का कौन आचार था, गज की क्या उत्तमता थी और केवट का कौन वर्ण था। और सबसे बड़ी सुलभता यह है कि इस में कोई वाद विवाद नहीं रहता, क्योंकि —

५९ ॐ प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयंप्रमाणत्वात् ।

(यहाँ) अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं, स्वयमेव प्रमाण है ।

क्योंकि वाद की और प्रमाण की इस में आवश्यकता नहीं, जब अपने चित्त में प्रेम का उदय हुआ तब उससे बढ़ कर और प्रमाण क्या चाहिए । प्रमाणान्तर को अनपेक्षता दिखाकर भक्ति में और भी उत्तमता दिखाते हैं —

६० ॐ शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ।

शान्ति रूप और परमानन्द रूप है ।

अर्थात् इस के शान्ति रूप होने से रजोमय तमोमय नानाप्रकार के वाद और विकल्प चित्त में आप ही नहीं होते और परम शांतिरूप है इसी से परमानन्द रूप है क्योंकि परमानन्द वहाँ ही है जहाँ वादादि से प्रतिबंध नहीं और "परमानन्द" शब्द कहने से भगवान की और भक्ति की एकता दिखाई क्योंकि ईश्वर का भी परमानन्द स्वरूप है — "आनन्दमयोभ्यासात्", "आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि", "आनन्दं ब्रह्म", "आनन्दं ब्राह्मण विद्वान्" इत्यादि श्रुति से भगवान् का आनंद स्वरूप सिद्ध है और जीव में आनंद का तिरोभाव है तो पुनः आनंद उद्दीपन के साधन ज्ञानादि कर के परमानंदमयी भक्ति के आविर्भाव बिना जीव के ताप की निवृत्ति नहीं होती । और वेदांतियों ने ज्ञान का फल आनंद कहा है, ज्ञान को स्वतः आनंदस्वरूप नहीं कहा है । और भक्ति का स्वरूप आनंद तो सूत्र में कहते ही हैं ।

अब जो जीव को शंका हो कि हम ने तुम्हारे कहने अनुसार योगक्षेमादिक सब छोड़ा परंतु उस लोक की गति क्या होगी इस शंका के मिटाने के हेतु कहते हैं ।

६१ ॐ लोकहानौ चिंता न कार्य्या निवेदितात्मलोकवेदशीलत्वात् ।

लोक हानि में चिंता नहीं करना, क्योंकि (भक्तों ने) आत्मा, लोक वेद, शील सब ईश्वर में अर्पण किया है ।

अर्थात् जो वस्तु कोई किसी को दे देता है फिर उसकी हानि का सोच देने वाले को नहीं होता, जिसको देता है उसी को होता है । हम लोगों को लोकादि हानि का सोच क्यों करना चाहिए, उसका सोच वह (भगवान) आप करेगा अतएव श्री महाप्रभु जी ने आज्ञा की है "चिंता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापि भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिं । निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वदा तादृशैर्जनैः ।। सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति । सर्वेषां प्रभु सम्बन्धो न प्रत्येकमितिस्थितिः ।। अतोन्यविनियोगेपि चिन्ता का स्वत्य सो पि चेत् । अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनं ।। यैः कृष्णस्तत्कृतप्राणैस्तेषां का परिवेदना" इत्यादि अथवा चतुः श्लोकी में फिर आप आज्ञा करते हैं कि [१] "एवं सदा स्व कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति । प्रभुः सर्वसमर्थोहि ततोनिश्चिन्ततां व्रजेत् ।। यदि श्री गोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि । ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ।।"

अब जो वसा दृढ़ नियम न सिद्ध हुआ तो क्या करना इसका साधन लिखते हैं —

६२ ॐ न तदसिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव ।

उस (निश्चय) की असिद्धि में लोकव्यवहार को नहीं छोड़ना, किन्तु फल छोड़ना, वरंच उस (फल) का साध अवश्य ही करना ।

क्योंकि विश्वास दृढ़ भए बिना लोक-व्यवहार छोड़ने में वही कहावत होगी "न घर के हुए न घाट के" परंतु उसका फल छोड़ देना अर्थात् लोकव्यवहार को असार समझना और विश्वास की सिद्धि के साधन में प्रवृत्त होना । उसके कौन कौन साधन हैं सो आगे दिखाते हैं —

६३ ॐ स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम् ।

१. एवं सवै ; स्म कर्तव्यमिति पाठ भेद ।

स्त्री, धन, नास्तिक और वैरी का चरित्र नहीं सुनना।

स्त्रियों के चरित्र सुनने से विषयों में वासना होती है, धन का चरित्र सुनने से लोभ की वृद्धि होती है, नास्तिकों का चरित्र सुनने से विश्वास में हानि होती है तथा वैरियों का चरित्र सुनने से उन पर क्रोध की वृद्धि होती है तो ये सब तमोगुणादिक के कारण हैं इस से इनको सुनना ही नहीं।

६४ ॐ अभिमानदंभादिकं त्याज्यम्।

अभिमान, दम्भ आदि को छोड़ना।

भक्तिमार्ग के मुख्य विरोधी ये ही दो हैं, क्योंकि भक्ति सिद्ध हो जाने पर भी इनके फिर उदय होने का भय रहता है, हम बड़े भक्त हैं, हम लोगों के उपदेष्टा हैं इत्यादिक अभिमान और वाह्याचरण में व पूजा के आडंबर में भेद न पड़े यह दंभ और आदि शब्द से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद,मत्सर इत्यादि लिये जाते हैं। जो कहो कि दुस्त्यज हैं तो कहते हैं —

६५ ॐ तदर्पिताखिलाचारस्सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम्।

सब आचार उसी (भगवान) को अर्पण कर उस क्रोध अभिमान आदि सब उसी पर करना।

अर्थात् काम करना तो यही कि वह परमश्रेष्ठ हमें मिले, क्रोध करना तो उसी पर कि क्यों नहीं मिलता? अभिमान भी उसी का कि हमारा स्वामी सर्वेश्वर है हमारा प्यारा सब से सुंदर है इत्यादि।

६६ ॐ त्रिरूपभंगपूर्वक नित्यदासनित्यकान्ता भजनात्मकं वा प्रेम एव कार्य्यं प्रेम एवं कार्यमिति।

तीनों रूपभंग पूर्वक (भगवान का) नित्य दास्य और नित्यकान्ता की भाँति भजन रूपी प्रेम ही करना, प्रेम ही करना।

त्रिरूप शब्द का क्या अभिप्राय है यह कौन जाने। यदि हम स्मार्त होते तो ब्रह्मा विष्णु शिव को एक करते वा वेदान्ती होते तो त्रिपुटीभंग वा जीव, ईश्वर और ब्रह्म की एकता करते परंतु यह भक्तिशास्त्र है यहाँ इनका प्रयोजन नहीं। यहाँ तीनों गुणों को मिटा कर वा भक्तिस्वरूप आनंदांश के आविर्भाव से तीनों (सत्, चित् और आनंद) का परस्पर पृथक्त्व भंग करना वा गुरु ईश्वर और उसके भक्तों के भेद का भंग इत्यादि। अब हम अपना सिद्धांत दिखाते हैं। युगल स्वरूप में और उनको पृथक् मानना अर्थात् यह वह और यह दोनों अलग हैं यह जो तीन प्रकार की भावना है इसका भंग वा प्रेमी, प्रेम और प्रेमपात्र इनके भेद के भंग पूर्वक दासभाव से वा कांताभाव से प्रेम ही करना, प्रेम ही करना। इति शब्द से इन साधनों के कहने के पीछे और कुछ शेष वक्तव्य नहीं यह बोधन किया।

अष्टम अनुवाक समाप्त।

●

६७ ॐ भक्ता एकान्तिनो मुख्याः।

भक्त एकांती (अभ्यंतरचारी) (और सब से) मुख्य होते हैं।

पहिले सूत्रों में साधारण भक्तों की महिमा दिखाकर अब एकांती भक्तों की महिमा दिखाते हैं। भक्तों में भी अनन्य और एकांती (अपनी भक्ति को गूढ़ रखने वाले) मुख्य हैं। इस एकांती शब्द से भक्ति भी सब संसार के दिखावे की भाँति एक संसारी आचरण है, इस का निषेध किया।

६८ ॐ कण्ठावरोधरोमांचाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च।

(ज भक्त लोग) कंठ का अवरोध, रोमांच और अश्रु आदि से युक्त होकर परस्पर भाषण करते हुए कुल और पृथिवी को पवित्र करते हैं।

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोघौघहरं हरिं। भक्त्या संजातया भक्ता विभ्रत्युत्पुलकां तनुं ।। क्वचिद्रुदंत्यच्युतचिन्तया क्वचित् हसन्ति नन्दन्ति वदंत्यलौकिकाः। नृत्यन्ति गायंत्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीम्परमेत्य निर्वृताः ।। इत्यादि प्रबुद्ध का वाक्य है ।।

परम भागवत प्रल्हाद जी ने कहा है "निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वार्याणि लीलातनुभिः कृतानि। यदातिहर्षोत्पुलकाश्रु गद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ।। यदा ग्रहग्रहस्त इव क्वचिद्धसित्याक्रदन्ते ध्यायति वन्दते जनं। मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्मगतिर्गतत्रपः ।।" श्रीमुखवाक्य भी है "एवं हरौभगवति प्रति लब्धभावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात्। औत्कण्ठ्यवाष्पकलया मुहुर्र्द-

मानस्तच्चापि चित्तवडिशं शनकैर्वियुंक्ते ।।'' एकादश में भी ''शृण्वन् सुभद्राणिरथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके । गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंग: ।। एवंव्रत:स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः । हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्य:'' ।। तृतीय में ''देहञ्च तत्वपरम: स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतो ध्यगमत्स्वरूपं । दैवादुपेतमथ दैववशादुपेत वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्ध: ।।' इत्यादि और सब भक्तों का आचरण ऐसा ही सुनने में आया है, यथा श्री गोपीजन का ''विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनं'' ''रुरुदु: सुस्वरं राजन्'' ''कृष्णो हं पश्य त गति'' ''ललितामिति तन्मना:'' ''विक्षिप्तमनसो नृप'' इत्यादि और श्री महादेव जी की जड़ोन्मत्तपिशाचचर्या लोक में प्रसिद्ध ही है ''स्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचा: सहचरा: । चिताभस्मालेप: स्त्रगपि नृकिरोटीपरिकर: अमंगल्यं शीलं भवतु तव नामैवमखिलं । तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मंगलमसि ।।'' श्मशानचकानिलधूलिधूम्रो विकीर्णविद्योत-जटाकलाप: । भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभि: पश्यति देवरस्ते ।। नयस्यलोके स्वजन: परोवा नात्याद्रृतो नोतकश्चिद्विगहय: । वयं व्रतैर्यच्चारणापविद्धामाशास्महे जांव्रत भुक्तभोगां ।। यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलं विमत्सव: । निरस्तसाम्यातिशयोपि यत्स्वयं पिशाच चर्यामचरद्गतिस्सतां ।। हसन्ति यस्याच्चरितंहिदुर्भगासुस्वात्मनरतस्याविदुषस्समाहितं । यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितं ।। ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया । आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्य्या अहोविभूम्नश्चरितं विडम्बनम्'' ।।

अहा जब भगवान् शिवजी ने जोकि इस मार्ग के परम गुरु और परम रहस्यवेत्ता ''ईशान: सर्वविद्यानामीश्वर: सर्वदेहिनां । ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपति:'' ''अहं कलानां ऋषभो'' ''विद्याकामस्तु गिरिशं'' ''यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिपो रुद्रोमहर्षि:'' ''हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं सनो देव: शुभया स्मृता संयुनक्तु'' ''कस्तञ्चराचरगुरुन्निर्वैरं शान्तविग्रह । आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ।।'' ''त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनं । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षाय मा भृतात् ।।'' ''तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणं सुरा: । ददृशु: शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवांतकं'' ।। ''विद्यातपोयोगपथमास्थितं जगदीश्वरं । चरंतं विश्वसुहृदं

वात्सल्याल्लोकमंगलं ।। उपविष्टं दर्भमय्यां वृस्यां ब्रह्म सनातनं । नारदाय प्रवोचंतं पृच्छते शृण्वतां सतां ।। कृत्वोरौ दक्षिणे सव्ये पादपद्मञ्च जानुनी । बाहुप्रकोष्ठे ऽक्षं माला मासीनं योगमुद्रया ।। तं ब्रह्मनिर्वाण-समाधिमास्थितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षां । सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्रांजलय: प्रणेमु: ।।''इत्यादि श्रुतिपुराणादि वाक्यों से प्रतिपाद्य श्रीमहादेव जी ने यह मत्तचर्या अवलम्बन किया तब और भक्तों का क्या पूछना है । ऐसे ही ऋषभदेव जी की भी चर्या है यथा ''जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषो ऽभिभाष्यमाणो ऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णींबभूव ।।'' तथा जड़भरत जी की भी चर्या है ''तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवते प्रवर्द्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्य: प्रहर्षवेगेनात्मन्यवधीयमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयवाष्प-निरुद्धावलोकनयन एवंनिजरमणारुणचरण रविंदानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुत: परमाल्हादगम्भीरहृदय-ह्नदावगढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ।।'' उद्धव जी ने भी ऐसाही किया है ''मुक्तकण्ठो रुरोद ह'' । श्रुतदेवजी ने भी ऐसाही किया ''धुन्वन्वासो ननर्त ह'' । राजा चित्रकेतु की भी यही दशा है ''स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुवर्षैरुपमेहयन्मुहु: ।। प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवाशकत्तं प्रसमीक्षितुं चिरम् । (श्रीमद्भागवत) ध्रुवजी का भी ऐसाही चरित्र है । यत्तद्विष्णुपदमाहु: यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादि: परमभागवतो अस्मत्कुलदेवताचरणारविंदोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढ़ं क्लिद्यमानां-तर्हृदयऔत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलवाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलको धुनापि परमादरेण शिरसा विभर्त्ति, इत्यादि । श्रीअक्रूर की भी ऐसी दशा हुई ''तद्दर्शनाह्वादविवृद्धसंभ्रमप्रेम्णोदर्ध्वरोमाश्रु कलाकुलेक्षण: । रथादवस्कंद्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंघ्रिरजांस्यहो इति ।।'' इत्यादि कहाँ तक कहें सब भक्तों के ऐसे ही चरित्र हैं क्योंकि प्रेम भी एक मदिरा है, जो पीएगा आप ही नाचेगा, रोएगा, हँसेगा, बकेगा । श्रीमहाप्रभु जी का भी 'तत्कथाक्षिप्तचित्तस्तत् विस्मृतान्यो व्रजप्रिय:' नाम है ।।

''तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि'' ''तीर्थं पुनाना मुनयोभियन्ति'' ''स्वयंहि तीर्थानि पुनंति संत:'' इत्यादि वाक्यों से तथा श्रीगंगा जी के प्रति भगवान् के वाक्यों से सिद्ध है और संत का कर्मों को सुकर्म करना राजा युधिष्ठिर के यज्ञ के प्रसंग से और व्यास जी के संवाद से सिद्ध है । संतों की महिमा विशेष कर के ३६।३९।४०।४१। सूत्रों में लिख आए हैं ।

७० ॐ तन्मया: ।

(क्योंकि वे) तन्मय हैं ।

तीर्थादि के पवित्र करने में कारण देते हैं कि ''पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगल'' इत्यादि वाक्य से संसार में जो कुछ पवित्रता है भगवान की है तो तन्मय जो भक्त हैं उनके दर्शन-स्पर्श से क्यों न पवित्र होंगे । ''तीर्थपाद'' भगवान का नाम है और उनके भक्त उनका चरित्र सर्वदा गान करते हैं और भगवान के चरित्र ही से तीर्थ, कर्म और शास्त्र इन सब को सत्तीर्थता, सत्कर्मता और सच्छास्त्रता होती है, यह क्रम से दिखाते हैं । ''तत्रैव गंगा यमुना च तत्र गोदावरी सिन्धुसरस्वती च । सर्वाणि तीर्थानि वसंति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसंग:'' इत्यादि वाक्यों से तीर्थों का ''तत्कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया ।'' ''धर्म: स्वनुष्ठित: पुंसां विष्वक्सेनकथासु य: । नोत्पादयेद्यदिरतिं श्रम एवहि केवलम्'' ।। ''दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमै: । श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यै: कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते'' ।। ''धिग्जन्मनस्त्रिवद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञतां । धिक्कुलं धिक्क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे'' ।। ''देश: काल: पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजो ऽग्नय: । देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मय: ।।'' ''नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनं । कुत: पुन: शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारम् ।।'' इत्यादि से भगवान का कर्म को भी पवित्र करना और एकादश स्कंध के ५ अध्याय में ''कर्मण्यकोविदा: स्तब्धा'' इत्यादि परम भागवत चमस जी के वाक्य में भगवत्तोष बिना कर्मांतर की प्रवृत्ति की निंदा में कर्मों का सुकर्म होना तथा ''न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीय कर्हिचित । तद्वायसं तीर्थमुशंति मानसा न यत्र हंसा विरमंत्युशिक्षया: ।। तद्वाग्विसर्गोजनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोक-मबद्धवत्यपि । नामान्यनंतस्य यशोंकितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणंति साधव: ।।'' इत्यादि से शास्त्रों का सच्छास्त्र करना सिद्ध है तो तन्मय, तत्स्वरूप, तत्समानादरणीय परमभक्त जन तीर्थादिकों को तीर्थ बनावेंगे इसमें कौन आश्चर्य है ।

७१ ॐ मोदंति पितरो नृत्यंति देवता: सनाथा चेयं भूर्भवति ।

(जिनके चरित्र देख) पितर आनन्दयुत होते हैं, देवता लोग नाचते हैं और यह पृथ्वी सनाथ होती है ।

''कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भागवती च धन्या । स्वर्गेपि तेषां पितरश्च धन्या येषां कुले बैष्णवनामधेयम्'' ।। ''स वै पुण्यतमो देश: सत्पात्रं यत्र लभ्यते ।।'' ''संकीर्तनध्वनिं श्रुत्वा येच नृत्यंति वैष्णवा: । तेषां पादरज:स्पर्शात्सद्य: पूता वसुन्धरा ।। तद्दिनं सफलं धन्यं यशस्यं सर्वमंगलं । श्रीकृष्णकीर्तनं यत्र यत्र नैवायुषो व्यय: ।। तत्कीर्तिनं भवेद्यत्र कृष्णस्य परमात्मन: । स्थानं तच्च भवेत्तीर्थं मृतानां तत्र मुक्तिदम ।। नात्र पापानि तिष्ठंति पुण्यानि सुस्थिराणि च । तपस्विनाञ्च व्रतिनां व्रतानां तपसां फलम् ।।'' इत्यादि शास्त्र में महिमा कही है तथा श्रीमुख से भी आज्ञा करते हैं (वाराहपुराण) ''जान्हव्यादीनि तीर्थानि पापनिष्कृतिहेतवे । कांक्षांति हरिदासानां दर्शनं हरिदासवत् ।। मद्भक्तजनसम्मर्दपादपांसुविसर्जनात् । चतु:सागरपर्यंतं पावनं स्याद्वसुन्धरे ।।'' तथा प्रहलाद जी से भी भगवान ने कहा है ''त्रि:सप्तभि: पिता पूत: पितृभि: सह ते ऽनघ । यत्साधो ऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावन: । यत्र यत्र च मद्भक्ता: प्रशांता: समदर्शिन: । साधव: समुदाचारास्ते पूयत्यपि कीकटा: ।।'' इत्यादि ।

७२ ॐ नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेद: ।

उन (भक्तों) में जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रिया आदि का भेद नहीं ।

''नालं द्विजत्वं ऋषित्वं वा सुरात्मजा: । प्रीणनाय मुकुन्दस्य न दत्तं न बहुज्ञता ।।'' ''विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविंदनाभपादारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् । मन्ये'' ''अहोबत श्वपचोतो गरीयान्यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यं ।।'' ''ब्राह्मण: क्षत्रियो वैश्य: शूद्रो वा यदि वेतर: । विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेय: सर्वोत्तमोत्तम: ।।'' ''दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रिय: शूद्रा ब्रजौकस: ।'' ''विद्याधरा मनुष्येषु वैश्या: शूद्रा: स्त्रियोन्त्यजा: । सर्वेधिकारिणोह्यत्र विष्णुभक्तो यथा नृप ।।'' ''किरातहूणांध्रपुलिंदपुष्कसाआभरकंका यवना:

खसादयः । येन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ।'' पञ्चम स्कन्ध में श्रीहनुमद्वाक्य ''न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्‌ न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः । तैर्यद्विशिष्टानपि नो वनौकसां चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः'' ''इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधीरघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः । मांधात्रलर्कशतधन्वनुरंतिदेव-देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ।। सौभर्युतंकशिविदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः । येन्ये विभीषण हनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ।। ते वै विदंत्यतितरंति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः यद्यद्‌गुणक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ।।'' इत्यादि वाक्यों से तदीयों की समता स्पष्ट है और वैष्णवे जातिबुद्धि अर्थात् वैष्णव में जातिभेद करना यह ६४/महा अपराधों * में से एक गिना है और भागवतों के लक्षण में भी कहा है ''न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः । सज्जतेस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः'' । और श्री हरिराय जी ने अपने ग्रंथ शिक्षापत्र में भी ऐसा ही लिखा है । इसी से वैष्णवों को परस्पर जाति, विद्या रूप, कुल धन और क्रिया आदि का भेद कदापि नहीं करना क्योंकि जिस समय वह तदीय हुआ उसी समय सब गुण पूर्ण हो गया । ''यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः'' इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है ।

७३ ॐ यतस्तदीयाः ।

क्योंकि (ये) उसके हैं ।

पूर्वोक्त अभेद मानने का हेतु देते हैं कि जब तुम तदीय हो और वे भी तदीय हैं तब परस्पर न्यूनाधिक भेद कहाँ रहा, सब एक से भाई हुए और जब सब विद्या, जाति, क्रिया इत्यादिकों का मूल पवित्र करने वाला भगवान इन के हृदय में बैठा है तो वे आप ही सर्वोत्तमोत्तम हो गए ।

नवम अनुवाक समाप्त ।

---

*(१) भगवान् में देवविशेष या तत्वविशेषबुद्धि (२) शास्त्रों में ग्रंथ अर्थात् पौरुषेय-बुद्धि (३) वैष्णव में जाति-बुद्धि (४) गुरु में साधारण मनुष्य-बुद्धि (५) प्रतिमा में शिलाबुद्धि (६) प्रसाद में खाद्यबुद्धि (७) चरणोदक में जलबुद्धि (८) तुलसी में वृक्षसाधारण बुद्धि (९) गऊ में पशुसाधारण बुद्धि (१०) भागवत और गीता में ग्रंथसाधारण बुद्धि (११) भगवल्लीला में मनुष्यकृत्य बुद्धि (१२) सांसारिक प्रेम वा स्त्रीसुख में लीला गान वा स्मरण (१३) श्रीगोपीजन में परकीया-भावना (१४) रासलीला में कामबुद्धि (१५) महोत्सव में स्पर्शास्पर्शबुद्धि (१६) नास्तिक-वादावलंबन (१७) संदेहपूर्वक धर्माचरण (१८) अश्रद्धापूर्वक धर्माचरण वा धर्म में आलस्य करना (१९) वैष्णव का वाह्य चरित्र देखना (२०) महात्माओं के चरित्र पर गुण दोष विचारना (२१) अपने को उत्तम समझना (२२) किसी देवता या शास्त्र की निंदा (२३) भगवद् विग्रह के सामने पीठ लगाकर बैठना (२४) जूता पहने, (२५) माला पहने, (२६) छड़ी लिए, (२७) नील वस्त्र पहने (रेशम में नील शुद्ध है) (२८) बिना दंतधावन किए, (२९) मलत्याग मैथुनादि के पीछे बिना वस्त्र बदले मंदिर में जाना, (३०) भगवद्विग्रह के सामने हाथ पैर हिलाना (३१) ताम्बूलादि खाना, (३२) ऊँचे हँसना, (३३) कुचेष्टा करना, (३४) स्त्री को घूरना, (३५) क्रोध करना (३६) दूसरे को आदर के हेतु अभिवादन करना, (३७) दुर्गंध वस्तु खाकर तथा पहनकर, बिना गंध दूर भए वा अजीर्ण भए पर जाना, (३८)मत्त होना अर्थात् नशा सेवन करके जाना, (३९) किसी का अपमान करना वा मारना, (४०) काम क्रोधादि चेष्टा करना (४१) घर आए मनुष्य को विशेष करके संत की अभ्यर्थना न करना (४२) सेवा वा धर्म वा पांडित्य अपने में मानना वा सुकृत को अपना किया समझना (४३) नास्तिकों का, लंपटों का, हिंसकों का, लोभियों का, मिथ्याचारियों का संग करना (४४) विपत्ति परमेश्वर ने दिया यह बुद्धि करना (४५) धर्म के बल पाप करना (४६) किसी को तृण मात्र भी कष्ट देकर अपने को धार्मिक समझना (४७) स्त्री पुत्र भृत्य परिवार आश्रित दीन संत की उपेक्षा (४८) वस्तु को अपने उपयोगी समझकर सेवा में देना वा असमर्पित वस्तु ग्रहण करना (४९) इष्टदेव की शपथ खाना (५०) भगवान्, धर्म वा नाम बेंचकर द्रव्य कमाना (३१) अन्य देवता से आशा करना (५२) धर्मशास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन (५३) वह दशा भए बिना ज्ञान हाँकना वा वैसा आचरण करना (५४) देवचरित्र की भाँति आचरण करना (५५) संप्रदायभेद से वैष्णवों को ऊँचा नीचा समझना (५६) अवतार की तारतम्यदृष्टि से निंदा करना (५७) हँसी में भी किसी को तुम परमेश्वर हो यह कहना (५८) परमेश्वर को कदापि किसी कारण से भी अणुमात्रभी परतंत्र समझना (५९) लोभ से किसी को चरणामृत वा प्रसाद देना (६०) भगवान् के चित्र मूर्ति नाम आदि की अवज्ञा करना या कहना (६१) किसी जीव को किसी प्रकार

७४ ॐ वादो नावलम्बध्यः ।

श्रीमुख से निषेध किया है "वादवादांस्त्यजेत्तर्कान् पक्षं कञ्चन नाश्रयेत् । वेदवादरतो न स्यान्नपाखण्डी न हेतुकः ।।" इत्यादि क्योंकि वाद से मनुष्य के चित्त में आग्रह की गाँठ पड़ जाती है और जहाँ आग्रह होता है वहाँ तत्व नहीं प्रगट होता और बहुत वाद करने से तमोगुण उदय होने की भी संभावना है । अब उसमें हेतु देते हैं —

७५ ॐ बाहुल्यावकाशवत्त्वादनियतत्वात् ।

(क्योंकि वाद में) बहुत अवकाश है और अनियत है ।

व्यास जी ने कहा है "तर्काप्रतिष्ठानात्" तथा श्रुति भी है "नैषामतिरापनेया दुषप्रतर्क्यैः" । क्योंकि जितने वाद हैं वे भगवान् का तत्व जानने के हेतु हैं सो वादों से कभी नहीं जाना जायगा, क्योंकि वहाँ तक बुद्धि जाती नहीं "यतो वाचो निवर्तते अप्राप्य मनसा सह" "यद्वाचा नाभ्युदितं" । सनत्सुजात में भी "न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः", "नेदं यदिदमुपासते", "वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहं", "शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयं । अनन्तपारगम्भीरं दुर्विगाहयंसमुद्रवत्", "नैतन्मनो विशति वागपि चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि च ।" इत्यादि से ईश्वर की वादों से दूरता स्पष्ट है और वेद भी उसके विषय में नेति नेति कहते हैं तब व्यर्थ वाद क्यों करना क्योंकि उस की प्रतिज्ञा है "भक्त्याहमेकया ग्राह्यः" । इससे वादों को छोड़ कर केवल उस पर विश्वास करना ।

७६ ॐ भक्तिशास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधककर्म्मण्यपि करणीयानि ।

भक्ति शास्त्रों को मनन करना और उस (भक्ति) को बढ़ाने वाले कर्मों को करना ।

बाद छोड़कर केवल सिद्धान्त स्वरूप भक्तिशास्त्रों को देखना और उनका चिन्तन करना आचार्यों और भगवज्जनों और सिद्धान्तों के रहस्य को जानना और भक्ति बढ़ाने वाले उत्सव, सत्संग, तीर्थाटन, कथाश्रवण, तदीयों से आलाप, भगवत्सेवा और गुरु-शुश्रूषा इत्यादि कर्म करना इससे भक्ति प्रतिक्षण वर्द्धमान रहेगी ।

७७ ॐ सुखदःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्धमापि व्यर्थं न नेयं ।

सुख, दुःख, इच्छा, लाभादि (का अभिमान) छोड़ कर काल की प्रतीक्षा करते हुए भी आधा क्षण भी व्यर्थ न बिताना ।

यद्यपि इच्छादि के परित्याग से पूर्ण काम हो गए हैं और कुछ कर्तव्य है नहीं तथापि भगवद्जन बिना क्षण भर भी नहीं बिताना क्योंकि यह तो नित्य कार्य है । देखो मरने के समय करोड़ उपाय करो क्षण भर भी विशेष मनुष्य नहीं रह सकता ऐसे अनमोल क्षण को व्यर्थ बिताना मूर्खता की बात है ।

७८ ॐ अहिंसासत्यशौचदया ऽस्तिक्यतादिचारित्र्याणि पालनीयानि ।।

अहिंसा, सचाई, शुद्धि, दया, आस्तिकता आदि सब चारित्र्यों का पालन करना ।

क्योंकि सत्व गुण के ये सब कृत्य हैं । इनके न करने से वा विरुद्ध करने से तमोगुण की प्रवृत्ति होती है और भक्ति में बाधा होती है ।

७९ ॐ सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तैर्भगवानेन भजनीयः ।

सर्वदा सब प्रकार से निश्चित होकर भगवान ही का भजन करना ।

साधारण शिक्षा देकर सिद्धांत की शिक्षा देते हैं कि सर्वदा सब काल में दुःख में सुख में अनेक कर्मों में प्रवृत्त रहने के समय भी सर्व भाव से अर्थात् उसको अपना सर्वस्व मान कर केवल उसी का भजन करना और भजन भी निश्चिंत होकर करना, क्योंकि जो किसी प्रकार खटका रहता है तब भजन भली भाँति नहीं होता ।

८० ॐ स कीर्त्यमानश्शीघ्रमेवाविर्भवस्यनुभावयति भक्तान् ।

वह गाए जाने से शीघ्र ही प्रगट होता है और अपने भक्तों को अनुभव कराता है ।

सो तो उसकी प्रतिज्ञा ही है "नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।" और नारद जी ने भी कहा है "प्रगायतस्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः । आहूत इव मे शीघ्र दर्शनं याति चेतसि ।।" श्रीमहाप्रभु जी ने भी कहा है "क्लिश्यमानान्जनान्दृष्ट्वा कृपायुक्तोवदाभवेत् । तदा सर्वं

भी ताप देना वा उद्वेजन करना (६२) तर्कवितर्क से आस्तिकता से मान डिगाना (६३) भगवदवतार में जन्म कर्म मानना (६४) जुगल स्वरूप में भेदबुद्धि ।

सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं वहिः ।। सदानन्दमयस्यापि कृपानन्दःसुदुर्लभः । हृद्गतःस्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् ।।'' और श्री महाप्रभु जी का ''स्वयशोगानसंहृष्टहृदयाम्भोजविष्टः । वशःपीयूषलहरीप्लावितोन्यरसः परः ।।''

८१ ॐ त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ।

त्रि (कालमें) सत्य (भगवान) की भक्ति ही सब में (साधनों में) बड़ी है, भक्ति ही बड़ी है ।

''भक्त्यैव तुष्टिमभ्येति विष्णुर्नान्येन केनचित् । प्रीयतेभलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनं ।।'' ''भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय'', ''भक्त्याहमेकया ग्राह्यः'' ''भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा'', ''भक्त्या मामभिजानाति'', ''भक्त्यैकलभ्यो पुरुषोत्तमोहि'', ''भक्तिमान् यः स मे प्रियः'', ''भक्तियोगेन सेवते'', ''भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यै, किमर्थं क्रियते प्रयत्नः'', ''धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता । समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा करे ।।'' ''ब्रह्मसंस्थोमृतत्वमेति'', ''मयि भक्तिर्हि भूतानाम-मृतत्वाय कल्पते'', ''तन्निष्ठस्य मोक्षापदेशात्'', ''तत्संस्थस्यामृतोपदेशात्'', ''सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति प्रयाचते । अभयंसर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।।'' ''भक्त्या त्वनन्यया शक्यः'', ''भक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया'', ''श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः'', ''भक्तिप्रियोमाधवः'', ''मयि संजायते भक्तिः कोन्योस्यार्थोव-शिष्यते'', ''योमे भक्त्या प्रयच्छति ।। तदहंभक्त्युपहृतं'', ''अण्वप्युपहृतं भक्त्यैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत्'', ''श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते'', ''अपि यः सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्'', ''अहं भक्तपराधीनो'' इत्यादि वेद, उपनिषत्, श्रीमुखवाक्य, रामायण, भारत, स्मृति, व्याससूत्र, शांडिलयसूत्र, पुराण और तन्त्रों से सिद्ध है कि सब साधनों में मुख्य साधन केवल भक्ति ही है । विस्तरभयात् विशेष प्रमाण नहीं दिया ।

८२ ॐ गुणमाहात्म्यासक्ति १ रूपासक्ति २ पूजासक्ति ३ स्मरणासक्ति ४ दास्यासक्ति ५ सख्यासक्ति ६ कान्तासक्ति ७ वात्सल्यासक्ति ८ आत्मनिवेदनासक्ति ९ तन्मयतासक्ति १० परमविरहासक्ति ११ रूपा एकधाप्येकादशधा भवति ।

(यह भक्ति) एक रूप ही होकर गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति रूप से एकादश प्रकार की होती है ।

इससे श्रवणादिक नवधा भक्ति गौण हैं, इसका निषेध किया क्योंकि नारद जी का मत है कि भक्तिबीज के हृदय में उत्पन्न होने के पूर्व जो श्रवणादिक हैं उनको श्रवणभक्ति नहीं कह सकते और यह पूर्वोक्त जो श्रवणादिक हैं वे शुद्धा भक्ति से भिन्न नहीं हैं अतएव प्रति शब्द के साथ आसक्ति का शब्द दिया है । जो यह शंका करो कि जिनको प्रेम सिद्ध है उनको तो पूर्वोक्त आसक्तियाँ होगीं सो, नहीं यह विशेष आसक्ति परत्व है । जैसे प्रेमियों को अपने प्रेम पात्र का सबही अंग सुन्दर लगता है तथापि प्रति प्रेमी को अपने प्रेमपात्रों में कोई अंग वा चेष्टा विशेष मोह के विषय होते हैं, वैसे ही पूर्ण प्रेमियों को यद्यपि सबही आसक्तियाँ सिद्ध हैं तथापि किसी को किसी में विशेष रुचि है किसी को किसी में है । श्रवणादिकों को गौणी भक्ति मानने में एक बड़ा दोष यह है कि जैसे अर्जुन सख्य के वा श्री हनुमान जी दास्य के अधिकारी हैं तो जिसके मत में यह भक्तियाँ गौणी हैं उन के मत से ये भक्त भी गौण हुए । तो इस सूत्र से शुक, प्रह्लाद, हनुमान, अर्जुन, बलि, विभीषण आदि एक एक भक्ति के विशेष अधिकारी महानुभावों को गौण भक्त कहने वालों का मत परास्त हुआ और सिद्ध हुआ कि प्रेम एक ही वस्तु है जो केवल रुचि की विचित्रता से अलग अलग छलावे दिखाता है । इनमें तन्मयतासक्ति तथा परम विरहासक्ति वियोगी भक्तों को सिद्ध है, शेष आसक्तियाँ संयोगी और वियोगी दोनों को सिद्ध हैं । और किसी किसी भक्त को एक एक आसक्ति सिद्ध हैं, परंतु किसी को दो तीन भी सिद्ध हैं और श्री गोपीजन को तो सभी सिद्ध हैं ।

१ ''गुणमहात्म्यासक्ति'' — जैसा परिक्षित को, नारद को तथा हनुमान जी को और श्रीपृथुराजा को, जिसने केवल हरिगुण-श्रवण के अर्थ दस हजार कान माँगे थे । परीक्षित ने कहा है ''नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि वाधते । पिबंतं त्वन्मुखांभोजच्युतं हरिकथामृतम् ' ।। नारद जी का वाक्य ''देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषितां । मूर्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम्'', ''प्रगायतः स्वीवीर्याणि तीर्थपादः पृथुश्रवाः ।

आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि'' ।। हनुमान जी का तो ध्यान ही है ''यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिं । बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसांतकं ।'' तथा अपने मुँह से (रामायण उत्तरकाण्ड १०७ सर्ग ३१ श्लोक) ''यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी । तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्'' । तथा (श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध १९ अध्याय ८ श्लोक) सुरो ऽसुरो वाप्यथवा नरो ऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमं । भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तरामनयत् कोशलान्दिवं'' ।

२ रूपासक्ति दो प्रकार की होती है — एक किशोररूप में एक बाल रूप में । बाल रूप से श्री मातृचरण श्री नन्दोपनन्दादिक वृद्ध ब्रजवासियों को तथा किशोर रूप में ब्रज की स्त्री पुरुष पशु पक्षिमात्र को । जैसा ''अहो अमी देववरामरार्चितं'' इत्यादि श्लोकों में श्रीमुख से भी कहा है और ''अक्षणवतां फलमिद न परं विदामः'' इत्यादि वेणुगीत के श्लोकों में तथा ''वामबाहुकृतवामकपोलो'' इत्यादि युगलगीत के श्लोकों से सिद्ध है ।

३ ''पूजासक्ति'' महाराज पृथु को, जैसा उन्होंने कहा है ''यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः । सद्यःक्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदांगुष्ठविनिःसृता सरित ।।'' इत्यादि ।

४ ''स्मरणासक्ति'' परम भागवत प्रहलाद को, जैसा ''सो ऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तवनृसिंहविरंच्यगीताः । अंजस्तितर्म्यनुगृणान् गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससंगः ।।'' इत्यादि ।

५ ''दास्यासक्ति'' परमभागवत प्रहलाद और हनुमान आदि को जैसा प्रहलाद जी का वाक्य ''आयुः श्रियं विभवमैंद्रियमाविरिच्यात् नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण । कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वं ।।'' तथा हनुमानजी का वाक्य ''दासो ऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।'' इत्यादि और यथा अक्रूर जी का वाक्य ''अहं हि नारायणदासदासो दासानुदासस्य च दासदासः'' ।। विदुर जी का वाक्य ''वासुदेवस्य ये भक्ताश्शान्तास्तद्गतमानसाः । तेषां दासस्य दासो ऽहं भवेयं जन्मजन्मनि ।।'' इत्यादि । तथा उद्धव जी और युधिष्ठिर को तो हरिदास नाम ही मिला है ।

६ ''सख्यासक्ति'' जैसा अर्जुन, सुग्रीव, उद्धव, कुबेर, सुदामा, देव, सुबल, श्रीदामादि, गरुड़ इत्यादि और कभी कभी हनुमान जी को भी हो सकती है । अर्जुन को श्रीमुख से कहा है ''भक्तोसि मे सखा चेति'' तथा अर्जुन का वाक्य ''सखेति मत्वाप्रसभं यदुक्तं हेकृष्ण हेयादव हेसखेति'' तथा श्रीमद्भागवत ''नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हेपार्थ हे र्जुन सखे कुरुनन्दनेति । संजल्पितानि नरदेवहृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयंमम माधवस्य ।। शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य कृतवानिति विप्रलब्धः । सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सोहेमहान्महितयान्कुमतेरघ मे ।।''

तथा ''या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी । त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ।। उद्धव जी की ''वैष्णीनां प्रवरो मंत्री कृष्णस्य दोयतः सखा ।।'' ''श्रीमुखवाक्य भी ''नौद्धवोण्वपि मन्नूयूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः'' ''न तथा मे प्रियतमो आत्मयोनिर्न शंकरः । न च संकर्षणो न श्रीनवात्मा च यथा भवान्'' । उद्धवजी का वाक्य ''शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु । कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ।।'' तथा ''मंत्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः । पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव'' ।। कुवेर की श्रीशिवजी में यथा मनुजी का वाक्य ''हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतं'' तथा श्रीशुकदेव जी का वाक्य ''उपास्यमानं सख्याच भर्त्रा गुह्यकरक्षसां ।'' कोश में भी ''कुबेरः त्र्यम्बकसखा'' इत्यादि । सुबलश्रीदामादि की यथा ''श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा । सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् । एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया'' इत्यादि । दशम के १८ अध्याय में सब इन्हीं लोगों के सख्यत्व की सीमा लिखी है । श्रीसुदामा जी की यथा ''कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद् ब्राणो यो ब्रह्मवित्तमः । ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियःपतेः'' ।। जिसका भगवान ने ऐसा आदर किया ''तं विलोक्याच्युतां दूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः । सहसोत्थाय ऽभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ।। सख्युः प्रियस्य विप्रर्षे रंगसंगातिनिर्वृतः । प्रीतो व्यमुंचदब्बिंदून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ।। अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणं । उपहृत्यावनिज्यास्य पादौपादावनेजनीः ।। अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवांल्लोकपावनः । कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततं ।। देवी पर्यचरच्छैब्या चामरव्यजनेन वै ।। योसौ त्रिलोकगुरुण श्रीनिवासेन संभृतः । पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा

परिष्वक्तो ऽग्रजो यथा ।।'' जिसके चावल भगवान ने आप ही छीन कर खाए और ''सख्युः प्रियचिकीर्षया'', ''परमप्रीणनं सखेः'', ''पर्यंके भ्रातरौ यथा'', दाशार्हकाणामृषभः सखा मे'', ''सुहृत्कृतं फलवपि भूरिकारि'', ''तस्यैव् मे सौहृदसख्यमैत्री'', ''एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा'' इत्यादि । गरुड़ की जैसी ''भगवान् भगवत्प्रियः'', ''विनतासुतांसेविन्यस्तहस्तमपरेण धुनानमब्जं ।'' तथा हनुमान जी की ''न जन्म नूनं महतो न सौभगं नवाग् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः । तैर्यद्विसृष्टानपि नोवनौकसश्चकार सख्ये वत लक्ष्मणाग्रजः ।।'' तथा सुग्रीव की (बाल्मीकि रा. किष्किन्धा षष्ठ सर्ग श्लोक १२) ''तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनं । आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ।।'' तथा सुग्रीव का वाक्य (७ सर्ग श्लोक १३) ''हितं वयस्यभावेन ब्रू वे नोपदिशामि ते । वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि'' तथा श्रीरामजी का वाक्य (७ सर्ग श्लोक १६) ''कर्तव्य यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । अनुरूपं च युक्तञ्च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ।। एष च प्रकृतिस्थोहमनुनीतस्तया सखे । दुर्लभोहीदृशो बंधु रस्मिन् काले विशेषतः ।।'' इत्यादि ।

७ ''कान्तासक्ति'' — यथा श्री गोपीजन को । यद्यपि श्री गोपीजन को सभी आसक्तियाँ सिद्ध हैं यह पहले लिख आए हैं और विरहासक्ति में निरूपण भी करेंगे तथापि श्री गोपीजन की आसक्तियों में कान्तासक्ति अंगीभाव से है जो ''कृष्णं विदुः परं कान्त'' इत्यादि वाक्यों से सर्वत्र सिद्ध है ।

८ ''वात्सल्यासक्ति'' — श्रीनन्द, यशोदा, कौशल्या, दशरथ, सुमित्रा, कश्यप, अदिति, धनिष्ठा, श्री वृषभानु, कीर्तिदा, पूर्णमासी इत्यादि को ।

९ ''आत्मनिवेदनासक्ति'' — यथा बलि को ''सर्व्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् ।''

१० ''तन्मयासक्ति'' — यथा श्री शिव जी को, जिनका अभेद पुराणों से सिद्ध है ।

११ ''परमविरहासक्ति'' — यथा श्री उद्धवादि को ''योगेन कस्तद्विरहं सहेत'' इत्यादि ।

तथा श्रीगोपीजन को

अथ श्रीगोपीजन में सभी आसक्तियाँ सिद्ध हैं यह दिखाते हैं ।

१ ''गुणमाहात्म्यासक्ति'' श्री गोपीगीत, वेणुगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत आदि से सिद्ध है ।। २ ''रूपासक्ति'' गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने । क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ।। अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखांबुजं । आपीतमपि नातृप्यत्सन्तस्त्च्चरणं यथा ।।'' इत्यादि से । ३ ''पूजासक्ति'' फल फूलादि दान से ४ ''स्मरणासक्ति'' ''स्मरंत्यः कृष्णचेष्टितं'' इत्यादि से । ५ ''दासासक्ति'' ''भवाम दास्यः श्यामसुन्दर ते दास्यः'' ''शिरस्सु च किंकरीणां'' इत्यादि से । ६ ''सख्यासक्ति'' ''सखउदेयिवान्. भजसखेभवत् कितवयोषितः इत्यादि से । ७ ''कान्तासक्ति'' ''कान्तकामदं'', ''प्रेष्ठोभवान्'', ''दयितदृश्यतां'', ''सुरतनाथते'' इत्यादि वाक्यों से । ८ ''वात्सल्यासक्ति'' ''गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डल'' से, दामोदरलीला आदि में स्पष्ट । ९ ''आत्मनिवेदनासक्ति'' 'यः पत्यपत्य' इत्यादि श्लोकों से । १० ''तन्मयतासक्ति'' ''कृष्णोहं'' इत्यादि वाक्यों में । ११ ''परमविरहासक्ति'' ''क्षणं युगशतमिव'' इत्यादि से । और इन श्री गोपीजन को नित्य लीला में श्री मुख का दर्शन होते भी केवल पलक की ओट में जिनका परमवियोग होता है और कहती हैं कि हे निर्दई विधना इस मुखचन्द्र देखने के हेतु तुझको रोम रोम में आँखें बनानी थीं उसके बदले यह उलटा अँधेर किया कि बिना बात के पलक बना दी । तो जिनका प्रेम और विरह इतना सीमा के बाहर है उनकी ये सब आसक्तियाँ सिद्ध हों इसमें क्या आश्चर्य है । जिनकी चरणारविन्द के रेणु के प्रसाद से लोग प्रेम पथ के अधिकारी हो सकते हैं उनके प्रेम का क्या पूछना है । भक्तिमार्ग के उद्धारकर्ता श्री आचार्य्य जी ने जिनकी स्पृहा की है यथा 'गोपिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्यान्मम क्वचित्' ।। और जिनको अपने मार्ग का गुरु लिखा है यथा ''गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधने मता'' तो अब इससे बढ़ कर उनके आदर के हेतु वा प्रमाण के हेतु हम क्या लिखें वा क्या कहें ।

ये प्रेम के ग्यारह अलग अलग भेद नहीं हैं किन्तु स्वरूप हैं क्योंकि जो अलग होती तो जिसको एक सिद्ध हो उसको दूसरी न होती और यदि दो सिद्ध होंगी तो एक से जिस को दो सिद्ध हो उस की विशेषता होगी और प्रेमियों में कोई छोटा बड़ा नहीं इससे भक्ति एक ही है केवल प्रेमियों की रुचि भेद से अलग दिखाती है ।

८३ ओं इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमारव्यासशुकशाण्डिल्यगर्गविष्णुकौण्डिन्यशेषोद्धवारुणिबलिहनुमद्विभीषणादयो भक्त्याचार्याः ।

कुमार (सनकादिक), व्यासजी, शुकदेवजी, शाण्डिल्य, गर्गाचार्य, विष्णु, कौण्डिन्य, शेष, उद्धवजी, आरुणि, बलि, हनुमानजी, विभीषण आदि भक्ति के आचार्य लोक के उपहास से निर्भय होकर पूर्वोक्त मार्ग कहते हैं ।।

कुमार — सनकादिक, इनका प्रेममार्ग निम्बार्कमत के नाम से प्रसिद्ध है । भगवान ने इन लोगों से अपना तत्व हंस का स्वरूप लेकर कहा है और इनकी वंशपरंपरा मन्वन्तर वर्णन में श्री मद्भागवत में लिखी है "महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा । मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः" ।। और प्रामाणिक स्मार्तो के निबंधों में भी एकादशी के प्रसंग में ४५ दंड का वेध मानने वालों का इनका मत "कपालवेधमित्याहुराचार्या ये हरिप्रियः" "निम्बार्को भगवान्येषामित्याहुः सनकादयः ।।" इत्यादि वाक्यों से प्रमाण करके लिखते हैं और निम्बार्काचार्य ने अपना परमाचार्य इन्हीं लोगों को माना भी है जैसा उन्होंने दशश्लोकी में कहा है "उपासनीयं नितरां जनैः सह प्रहाणये ज्ञानतमोनिवृत्तये । सनंदनाद्यैर्मुनिभिर्यथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्वसाक्षिणे ।।" इत्यादि । और लोग तो भक्तिसाधनार्थ ही प्रगट हुए हैं क्योंकि यद्यपि उन्होंने अपना शिष्यरूपी वंश तो स्थापन किया, पर पिता की आज्ञा भी न मानकर मोह करने वाली और सृष्टि न की, यथा "ते नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणः" इत्यादि । वरंच भक्तिस्थापनार्थ यह भगवान् ही का अवतार है "तप्तुन्तपो विविधलोकसिसृक्षत्त में वादौसनात स्वतपसः स चतुःसनो भूत् । प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्वं सम्यग् जगद मुनयो यदचक्षतात्मन् ।।" इति ।

व्यास —व्यासजी ने तो मुक्तकंठ होकर कहा ही है कि "आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः । इदमेकं सुनिस्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ।।" इत्यादि । जो कहो कि अनेक पुराणों में व्यास जी ने अनेक मत और उपासना कही है तो उसमें भक्ति की विशेषता कहाँ आई तो यह शंका मत करना क्योंकि व्यास जी की तो दृढ़ प्रतिज्ञा है "वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा । आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।।" इत्यादि इन को भक्ति मिलने का विशेष वर्णन भक्तवंशपरंपरा में मिलेगा ।

शुकदेवजी — शुकदेवजी ने राजा से पहिले ही सिद्धांत स्वरूप कहा है "देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष-वसत्स्वपि । तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ।। तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयं ।। एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभः परः पुंसामंते नारायणस्मृतिः ।। प्रायेण मुनयो राजन् निवृत्ता विधिनिषेधतः । नैर्गुण्यस्था रमन्तेस्म गुणनुकथने हरेः ।। इत्यादि" । क्यों न कहें ? वेद जिनको मुक्त लिखता है "शुको मुक्तो वामदेवो वा" और भगवान की माया जिनको कभी व्यापी ही नहीं, जिनको देख कर स्त्रियों ने भी लज्जा न की, जिन्होंने पिता को वृक्षों में से उत्तर दिया और प्रेम मार्ग का सिद्धांत स्वरूप श्रीमद्भागवत प्रगट करके राजा परीक्षित को मोक्ष दिया तथा सप्ताह में भी बीच बीच में जब लीला स्मरण आती थीं तब बेसुध हो जाते थे, उन के प्रेम का निरूपण यहाँ क्या हो सकता है ।

शाण्डिल्य --- शाण्डिल्य जी ने तो स्वतंत्र भक्तिशास्त्र ही रचा है, जिसमें ज्ञान, योगादि से भक्तिसाधन ही उत्तम कहा है ।

गर्ग — गर्गाचार्य अपनी गर्गसंहिता में अनेक प्रकार के भक्ति के रहस्य तथा यादव आदि के नष्ट होने पर जब भगवत्तत्व का जानने वाला कोई नहीं रहा तब वज्रनाभ ने अनेक प्रकार का रहस्य, जो व्रज में तथा उद्धव नारदादिकों के मुख से सुना था, कहकर फिर से भक्तिमार्ग का स्थापन किया । इनको वात्सल्य और दास्य दोनों भक्ति सिद्ध थीं ।

विष्णु —लोक में जिनका नाम विष्णुस्वामी प्रसिद्ध है । विशेष वर्णन परंपरा में देखो ।

कौण्डिन्य — कौण्डिन्य के विषय में हम इतना ही जानते हैं कि हमारे आचार्य ने अपनी गुरुपरंपरा में श्री गोपीजन के समान इनको भी माना है यथा "कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः" इति और जिनको तन्मयतासक्ति थी । जिनको इस आसक्ति से वृक्षों में भी सर्वत्र श्री अनंत का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था ।

शेष — शेषजी ने केवल दास्य भक्ति की शिक्षा के हेतु श्री लक्ष्मण जी का स्वरूप लेकर संसार को दिखाया कि दास्य इसका नाम है और इस रीति करना होता है और आप ने भी पंचवटी में अपने सब गुप्त सिद्धांत उपदेश किए तथा श्री लक्ष्मी जी और गरुड़ जी से नारायणीय सिद्धांत पाकर उन्होंने चित्रकेतु इत्यादि को

उपदेश किया, जो मत अब तक रामानुजीय नाम से प्रसिद्ध है और जिसमें यामुन, शठकोप इत्यादि महात्मा और अग्रस्वामी इत्यादि प्रेमी हुए ।

उद्धव — उद्धव जी का क्या पूछना है जिनको प्रेमपात्र और प्रेमी अर्थात् श्रीभगवान तथा श्री गोपीजन ने आप अपने मुख से प्रेममार्ग का उपदेश किया है, उनकी क्या बात है । ये वही उद्धव जी हैं जिनको छोटेपन से खेल ही में भगवत्पूजा का व्यसन था और जिनको भगवान ने अपना तत्व संसार में स्थापन करने के हेतु ब्रह्मशाप उल्लंघन करके पृथ्वी में छोड़ा, उन का क्या पूछना है ।

आरुणि — इनही का नामांतर निम्बार्क है और ये सनकादिकों के मत के प्रवर्तक हैं और इन के दश श्लोक जो मिलते हैं उनमें युगल स्वरूप की भक्ति का सिद्धांत किया है ।

व्यूहांगिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिं । अंगेतु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगां ।। सखीसहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् । ये बड़े प्राचीन हैं क्योंकि श्रीमद्भागवत में वेदस्तुति में इनका मत कहा है और जहाँ परीक्षित राजा से मिलने के हेतु ऋषिगण आये हैं वहाँ भी इनका नाम है यथा "राजर्षिवर्या अरुणादयश्च" । ये श्री स्वामिनी जी के कंकण के पूर्णावतार हैं अतएव इनको लोग सुदर्शनतत्व कहते हैं । किसी समय इन्होंने यतियों का निमंत्रण किया था । उनके आने में विलंब हुआ और जब भोजन करने बैठे तब साँझ हो गई, इस से उन यतियों ने कहा कि अब हम नहीं खायेंगे ; तब इन्होंने कहा कि आप लोग खाइये अभी सूर्य है और आप नीम पर चढ़कर सूर्य बन के दर्शन दिया, अतएव निम्बार्क नाम पड़ा । इन के सेव्य श्री स्वरूप श्रीगोपीजनवल्लभजी और शालग्राम सर्वेश्वर जी अभी विद्यमान हैं तथा श्रीनिवासाचार्य, पुरुषोत्तमाचार्य इत्यादि धुरंधर पंडित और हरिवंश जी, व्यासजी, स्वामी हरिदास जी इत्यादि प्रेमी इन्हीं के संप्रदाय में हुए हैं ।

बलि — इनको सर्वस्वात्मनिवेदन भक्ति सिद्ध थी । अपने पितामह साक्षात् प्रह्लाद जी से उपदेष्टा और भगवान् से पात्र पावें तो फिर इनका क्या पूछना है । कहते हैं कि यतीन्द्र, बलि, अंबरीष और विश्वक्सेन नाम के किसी काल में प्राचीन चार वैष्णव संप्रदाय थे, परंतु अब सब लुप्त हुए ।

हनुमान — श्री हनुमान जी की दास्यभक्ति का वर्णन ऊपर दास्यभक्तिनिरूपण में कह आये हैं और क्या कहें, केवल भगवान की कथा-श्रवण के हेतु जिनका जीवधारण है, उनके प्रेम का माहात्म्य कौन कह सकता है ? क्योंकि उन्होंने भगवान से यही वर माँगा है कि "यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी । तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ।" और जिनका मत अद्यापि श्रीभगवान के मुखारविंद से सुने हुए विष्णुतत्व के अनुसार "मध्वमत" नाम से प्रसिद्ध है ।

विभीषण — इन्होंने कुसंगति में रह कर भी भगवद्भक्ति लोगों को सिखाई, वरञ्च "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।।" यह जगदुपकारिणी प्रतिज्ञा इन्हीं के हेतु हुई है ।

८४ ॐ य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसति श्रद्धत्ते स भक्तिमान् भवति स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभते इति ।

इस नारद जी के कहे हुए शिवानुशासन पर जो विश्वास और श्रद्धा करता है वह भक्तिमान् होता है, वह प्यारे को पाता है, वह प्यारे को पाता है ।। ८४ ।।

उपदेश करके उसका फल कहते हैं । विशेष करके प्रेष्ठ शब्द से यह दिखाया कि भगवान् इत्यादि को ब्रह्म, विष्णु, नारायण, भगवान इत्यादि भावों से तो और लोग भी पावेंगे परंतु प्रियतम भाव से वही पावेगा जो इस प्रेमसूत्र पर विश्वास करेगा और प्रेममार्ग पर चलेगा ।

इति नारदीये **भक्तिशास्त्रे दशमो ऽनुवाकः** ।।

यह श्रीनारद जी का कहा हुआ भक्तिशास्त्र दश अनुवाक में "तदीयसर्वस्व" नामक तदीयनामांकित अनन्यवीर वैष्णव हरिश्चन्द्र कृत भाषाभाष्यसहित समाप्त हुआ ।।

।। इति ।।

श्री युगुलसर्वस्व

सन् १८७६ में लिखा गया है। भादो शुक्ल ८ सं. १९३३ में छपा भी।— सं.

श्रीयुगुलसर्वस्व

(श्री नित्यलीला के निकुंज सखा सखी सहचरी सेवक परिवार
आदि का नाम रूप वर्ण स्वभावादि वर्णन)

श्री भागवत, उसकी टीका, पद्मपुराण, नारदपुराण, कृष्ण जन्मखंड, बाराहपुराण,
आदिपुराण, रहस्यपुराण, ब्रह्मांडपुराण, नारदपंचरात्र, गौतमीतंत्र, रास
उल्लासतंत्र, वृंदावनपटल, लघुराधा-वृहद्राधातंत्र, हयग्रीव-पंचरात्र
तथा श्रीहरिरायजी, श्रीगोकुलनाथ जी की भावना, श्रीद्वारकेशजी,
श्रीव्रजाधीशजी, श्री गोपिकेशजी की रहस्य भावना और
उज्ज्वलनीलमणि तथा गणोद्देशदीपिका आदिक
ग्रंथों से संग्रह किया।

समर्पण

हे अंतरंगी जन!

आज तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं वह दूसरे को समर्पित हुईं थीं परंतु यह युगुलसर्वस्व तुम को समर्पित है, माथे चढ़ा कर अंगीकार करो। इस को अनधिकारी के हाथ खबरदार खबरदार मत देना और इस से परमानंद लाभ कर के मेरा परिश्रम सफल करना।

भाद्रपद कृष्णा ९ सं. १९३३
श्रीनंदमहोत्सव

आप लोगों के चरणरज का वांछक
हरिश्चंद्र

युगल - सर्वस्व

दोहा

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ।। १ ।।
तन्नमामि निज परम गुरु, श्रीवल्लभ द्विज - भूप ।
जाकी कृपा अपार लहि, उबर्यौ हौं भवकूप ।। २ ।।
श्री बृंदावन राज है, जुगल केलि रस धाम ।
तहँ के परिकर आदि को, बरनत या थल नाम ।। ३ ।।
बंस, सखी, परिचारिका, पशु पच्छी नर बृंद ।
इन सब को बरनन करत, निज अनुभव हरिचंद ।। ४ ।।
प्रेमवारि परजन्य जो, जिन सम धन्य न अन्य ।
सोइ श्याम परजन्य के, दादा श्री परजन्य ।। ५ ।।
दादी नाम बरीयसी, नाना सुमुख बखान ।
नानी देवी पाटला, जासी और न आन ।। ६ ।।
बड़ी मात श्री रोहनी, पिता नंद सरदार ।
माता जसुदाजू अहैं, जा हित यह अवतार ।। ७ ।।
बड़ काका उपनंदजू, अरु अभिनंद प्रनाम ।
नंदन अरु संनंद ये, काका छोटे जान ।। ८ ।।
तुंगा, अतुला, पीवरी कुवला पुनि रसधाम ।
उलटे क्रम सों जानिये, काकिन के ये नाम ।। ९ ।।
मामा जसबरधन, जसोधर जसदेव सुदेव ।
मौसी बिदित जसस्विनी, मौसा मल्ल सुदेव ।। १० ।।
तड़डुल पुरट कुबेर ये, सगरे ददा समान ।
गोष्ठ कलोल करुण्ड ये, मातामह सम जान ।। ११ ।।
शीला भेरी अरु शिखा, पितामही सी होय ।
पौर्णमासी भगवती, सिद्ध बिधाइनि सोय ।। १२ ।।
जटिला भेला घरघरा, सुखरा भोरा जान ।
करवालिका करालिका, मातामही समान ।। १३ ।।
मंगल पिंगल रंगपिठ, पट्टस माटर पिंग ।
नेह करत पितु से सबै, संगर संकर भृंग ।। १४ ।।
तरलाछिनी तरालिका, शुभदा कुशला नारि ।
मालिकांगदा बत्सला, ताली आदि विचारि ।। १५ ।।
और हु बृद्धा मेदुरा, भरी नेह चित चाय ।
हरि पै बत्सलता करत, जैसे जसुमति माय ।। १६ ।।
परम नेहवारी अहै, नाम धनिष्ठा धाय ।
तथा तिलिम्बा अम्बिका, ताको जुगल सहाय ।। १७ ।।
वेदगर्भ भागुरि महायज्वा, द्विज निरधारि ।
सुलभा गौतमि, भारगी, चंडिलादि द्विज नारि ।। १८ ।।

भाई श्री बलदेव से, भक्तन के अवलंब।
छनमहँ जिन हति लंब किय, खल कुल लंब प्रलंब ।। १९ ।।
भाबी श्रीमति रेवती, जाको हरि पै चाव।
सख्य तथा वात्सल्य मिलि, जाको अनुपम भाव ।। २० ।।
मंडल दंडी कुंडली, भद्रकृष्ण से भ्रात।
बहिन नंदिरा मंदिरा, नंदी नंदा सात ।। २१ ।।
धाय अंबिका को सुअन, बिजय नाम को जौन।
हरि तन रच्छत सर्बदा असि लै सँग रहि तौन ।। २२ ।।
दिव्य सक्ति कुलबीर पुनि, महाभीम रनभीम।
रणधिर रणथिर सरप्रभ, सुर सभा बलसीम ।। २३ ।।
इन आदिक हरि जेठ जे, गोप - बाल - सरदार।
पितु आयसु नित संग एहि, रच्छत सदा कुमार ।। २४ ।।
बीरभद्र भद्रांग भट, गोभट यक्ष सुरेस।
भद्रमंडली भद्रबर धन से सुहृद हमेस ।। २५ ।।

गद्य

विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, बरूथप, मिलिंद, कुसुमापीड़, मणिबंध, करंधम, मरंद, चंदन, कुंद, कलिंद और कुलिक इत्यादि कनिष्ठ सखा हैं, ये सेवा करै हैं ।। २६ ।।

दामा, सुदामा, किंकिणी, तोककृष्ण, अंश, भद्रसेन, बिलासी, पुंडरीक, विटंकाक्ष, कलंबिका, प्रियंकर और श्रीदाम आदि समान सखा हैं ; तिनमें श्रीदामा मुख्य है, पीठमर्द है बड़ो धृष्ट है ।। २७ ।। सब सखा की सेना को भद्रसेन सेनापति है, अरु तोककृष्ण तो श्रीकृष्ण की दूसरी प्रतिमूर्ति है, और यह श्रीकृष्ण को बहुत ही प्यारो है ।। २८ ।।

सुबल, अर्जुन, गंधर्व, बसंत, उज्वल, कोकिल, सनंदन और विदग्द आदि प्रिय नर्मसखा हैं ; इन सों कोई रहस्य छिप्यौ नहीं है ।। २९ ।।

मधुमंगल, पुष्पांक और हंस आदि विदूषक हैं और कडार, भारती, गंधबंध और वेध आदि श्रीकृष्ण के विट हैं ।। ३० ।।

भृंगुर, भृंगार, संधिक और ग्रहल आदि चेटक हैं, तथा रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकंठ मधुव्रत, सालिक, तांडिक, माली, मालू और मालाधर आदि दास हैं ।।३१ ।।

पल्लव, मंगल और फुल्ल कोमल और कपिल आदि छोटे बालक नाचि नाचिकै विचित्र चेष्टा करिकै प्रभु को हँसावैं हैं ।। ३२ ।।

सुबिलास, विशालाक्ष, रसांक, रसशाली और जंबुक इत्यादि पान खवाइबेवारे हैं ।। ३३ ।। पयोद और बारिद नाम के पानी पियावे को काम करैं, तथा सारंग बकुल आदि वस्त्र धरावैं हैं ।। ३४ ।।

प्रेमकंद नाम को अतर लगावै और मधुकंदला सैरंध्री केसादिक सँवारै हैं ।। ३५ ।। मकरंदादिक सदा शृंगार करै हैं, तथा सुमना, कुसुमोल्लास, पुष्पहासहर इत्यादि चंदन और मालादिक को काम करै हैं ।। ३६ ।।

दक्ष, सुबंध, कर्पूर और सुगंधकुसुम आदि नाई हैं ; केश को काम करैं, तेल लगावैं, पाँव दाबैं और दर्पण दिखावैं है ।। ३७ ।।

स्वच्छ, शीतल और प्रगुण आदि धन संबंधी काम करै हैं, अरु कमल, विमल आदि पीढ़ा, खड़ाऊँ, छाता लिये साथ चलैं हैं ।। ३८ ।।

धनिष्ठा, चंदनकला, गुणमाला, तडित्प्रभा, भरणी, इंदुप्रभा, शोभा और रंभा इत्यादि दासी हैं, और तिनमें धनिष्ठा मुख्य धाय मातृतुल्या है ।। ३९ ।।

कुरंगी, भृंगारी, सुलंबा और लंबिका इत्यादि दासी दधिमंथन, मार्जन तथा और घर के काम करै हैं ।। ४० ।।

विशारद, तुंग, नीतिसार, मनोरम और बावदूक इत्यादि दूत निकुंज विहार के उपयोगी हैं ।। ४१ ।।

दोहा

वृंदा, मेला, मुरलिका, वृंदारिका सुजान ।
दूती सबै निकुंज की, वृंदा तासु प्रधान ।। ४२ ।।
दूजी बीरा नाम की, दूती परम प्रसिद्ध ।
जासों नहिं कोऊ बची, करत सबै जो सिद्ध ।। ४३ ।।
सोभन दीपक नाम के, द्वै मसालची खास ।
मधुरराव सुविचित्ररव, ये जुग वंदी पास ।। ४४ ।।
चंद्रहास, सिव, चंद्रमुख, नचबैया ये तीन ।
सुखद, सुधाकर बहुरि, सारंग मृदंग प्रवीन ।। ४५ ।।
सुधाकंठ, कलकंठ इन, आदि गान रस लीन ।
सबै कलारत अति सुघर, गाय बजावैं बीन ।। ४६ ।।
सारँग, रसद, विलास ये, नाटक नट अभिराम ।
सब अभिनय जानहिं निपुन, करहिं सदा नट काम ।। ४७ ।।
दरजी रौचिक नाम को, गणअंगण सुसुनार ।
चित्र विचित्र चितेर दोउ, कर्मठ पवन कुहाँर ।। ४८ ।।
वर्द्धमान अरु बर्द्धको, द्वै बढ़ई सुखरास ।
पोटी, मन्थन, दाम, अरु, कंठार आदि फर्रास ।। ४९ ।।
कुमुल, कुंड, कंडोल अरु, कारँड करँड अनेक ।
सेवक सेना में रहत, धरे दासपन टेक ।। ५० ।।
हंसी, वंसी, पिंगला, गंगा, रंगा नाम ।
प्रिया, पिशंगी, धूमला, मणि, सारनी ललाम ।। ५१ ।।
इन आदिक जे नैचिकी, तिन सों हरि को हेत ।
तिन में धवली मुख्य अति, निज कर जेहि तृन देत ।। ५२ ।।
बलीवर्द्द हैं अति भले, उत्पलगंध, पिशंग ।
कपि सुन्दर दधिलोल है, नाम सुरंग कुरंग ।। ५३ ।।
स्वान व्याघ्र भ्रमरक दोऊ, विदित कलस्वन हंस ।
शिखी तांडविक शुक जुगल, बोलत परम प्रशंस ।। ५४ ।।
नित्य बाग वृंदाविपिन, जहाँ जुगल रस केलि ।
करहिं नित्य, को लखि सकै, बाहु बाहु पर मेलि ।। ५५ ।।
क्रीडा गिरि गिरिराज है, नीलमंडपक घाट ।
गुफा बनी मणिकन्दली, केलिकुंज रस ठाट ।। ५६ ।।

गद्य

केलिसरोवर को नाम मानसी गंगा है और वाके मुख्य घाट को नाम पारंग है और वामैं सुबिलास नाम की नाव है ।। ५७ ।।

नंदीश्वर नामा पर्वत पै इंदिरालय नामा सुंदर मंदिर है, जहाँ अनेक प्रकार की संगमरमर पत्थर की आमोदवर्द्धन नाम्नी सुगंध सों भरी बैठक है । जाके आगे पावन नामक सुंदर कुंड है, जापै मंदार नामक मणि को

फरस है और कुंज और अकामनामक महातीर्थ है ; जिनके चित्त में काम की वासना को लेश है वे या तीर्थ को दर्शन नहीं पावै हैं । और वहाँ की पृथ्वी को नाम अनंगरंग है और श्रीजमुना जी के घाट को नाम खेलातीर्थ है और पुलिन को नाम लीलापुलिन है जहाँ कदंबराज नामक बड़ो कदंब को वृक्ष और भांडीरवट नामक बड़ को वृक्ष है, जहाँ नित्य जुगल स्वरूप को बिहार है ।। ५८ ।।

आपके दर्पन को नाम शरदिन्दु है और पंखा को नाम मधुमारुत है और स्मेर नाम को नित्य लीलाकमल श्री हस्त में धारन करै हैं और गेंदा को नाम चित्रकोरक है ।। ५९ ।।

उज्वल नाम आप को बाण है, बिलासकार्मुक नाम धनुष और मणिबद्ध नाम वाकी डोरी है और अनेक रत्न सों जड़ी बड़े सुंदर मूठ की तुष्टिदा नाम की छुरी है ।। ६० ।।

शृंग को नाम मंजुघोष और श्रीराधाचित्तहारिणी, महानंदा तथा भुवनमोहिनी ये तीन बंसी हैं, और मुरली को नाम सरला है, और मदनहुंकृत, बंधुर और षड्ग्र ये तीन बेणु हैं, और काकली को नाम मूकितपिका है, जाको श्रवन करि कै कोइल मूक होइ जाय हैं, और गौरी और गूजरी टोडी ये दोऊ राग अत्यंत प्यारे हैं । और बीणा को नाम नादवरांगिणी है ।। ६१ ।।

वेत्र को नाम मंडल है और लड्ड को नाम पशुवशीकर है और दोहिनी को नाम अमृतदोहिनी है ।। ६२ ।।

श्री मातृचरण ने नवरत्न की भुजा पै रक्षा बाँधी है और रंगद नाम के बाजू और चंकन नाम के कंकण और रत्नमुखी नाम की अंगूठी है और निगमशोभन नाम को पीतांबर है, और कलझंकार नाम की किंकिनी है और नूपुरन को नाम हंसगंजन है, जाके शब्द सुनतही श्री ब्रजदेविन के चित्त चलायमान होत हैं ।। ६३ ।।

हार को नाम तारमणि है और माला को नाम तडित्प्रभा है और कंठा को नाम कौस्तुभ है, जाके नीचे भुजंगमणि को पदक है । रति और राग के अधिदेवता मंकराकृत कुंडल हैं और रत्नपार नाम को मुकुट है और अमरडामर नाम की सीसफूल है और मोर के चंद्रक को नवरत्नविडंबक नाम है और गुंजा को माला को नाम रागवल्ली और तिलक को नाम दृष्टिमोहन है और पल्लव, पत्र पुष्प और मोर के पच्छ तथा कमल इत्यादि सों गुथी श्री चरणारविंद तक बनमाला शोभित है और जो पंचरंगे फूलन सों गुथी कटि के नीचे तक सुंदर माला है वाको नाम बैजयंती है ।। ६४ ।।

श्री युगलसर्वस्व को प्रथम प्रकरण समाप्त भयो ।

अथ युगल सर्वस्व को दूसरी प्रकरण लिखियत है।

सोरठा—

मंगल माधव नाम, मंगल ब्रज वृंदा बिपिन।
मंगल राधा वाम, मंगल सब ब्रज गोपिका।।

अथ श्री पूर्ण पुरुषोत्तम को मंगल समय कहत हैं। श्रीशुभ सम्वति ईश्वरे नाम्नि द्वापरार्द्धे ८६३८७४ शेष १२५ श्रीसूर्ये दक्षिणायने वर्षात्रृतौ भाद्रपदे मासि कृष्ण पक्षे अष्टम्यां घटी ५६. पल ४५ बुधवासरे कृत्तिकानक्षत्रे घटी २८ पल. हर्षणयोगे घटी ४१ पल ३७ कौलव करणे इष्टं ४६ घटी १४ पल एतत्समये चन्द्रवंशांत:पाति वैश्यवंशावतंस गुरुगोब्राह्मणसेवापरायण श्री मत्पर्जन्यात्मजश्रीमन्नन्दराजगृहे श्रीयशोदाकुक्षौ पुत्ररत्नमजीजनत्।
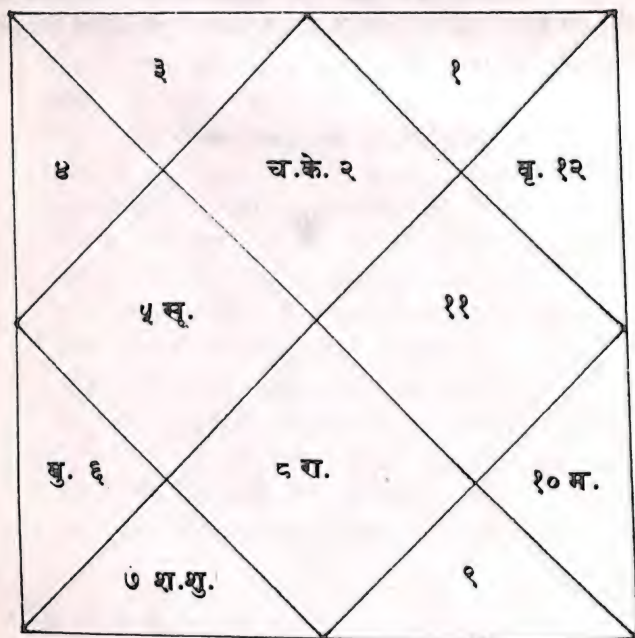
१९५५८७७८७५ सृष्टिमारंभतो गताब्दा:।
१९७२९४३८७५ वाराहकल्पप्रवेशप्रारंभगताब्दा:।।
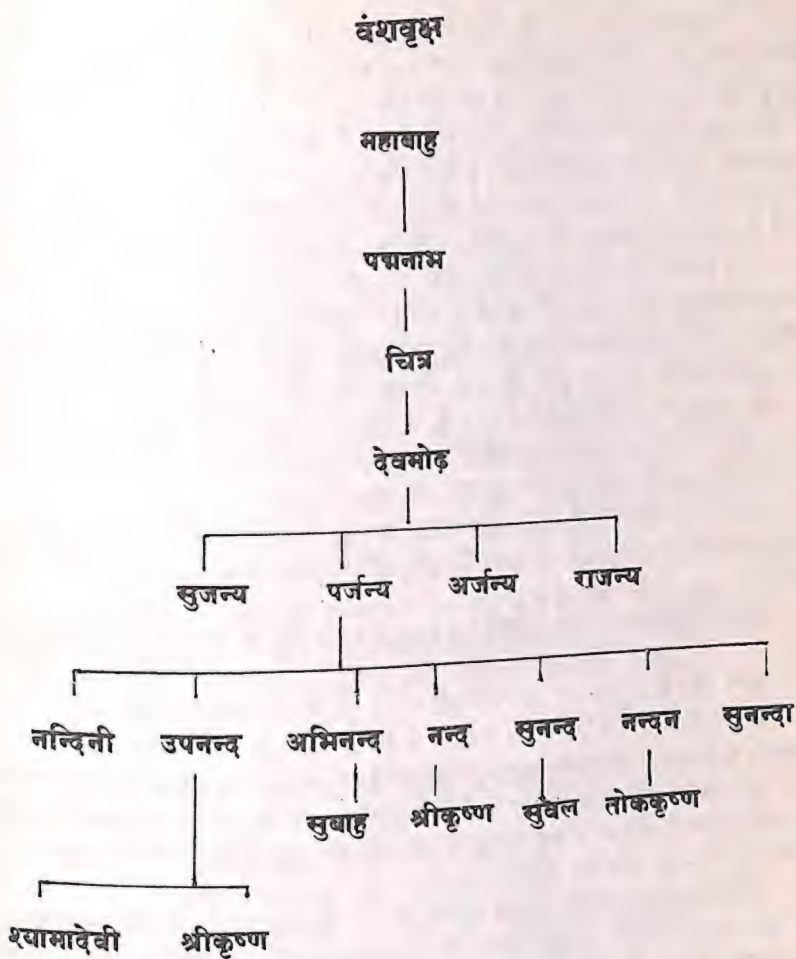
अथ उपनंद जी को वर्णन । उपनन्द जी श्री नंदराय जी के सब भाइन में बड़े हैं । गाँव में इन को बड़ो मान है । गाँव में जो कुछ काहू को धर्म वा साइत वा औषधी पूछनी होय तो इन सों आय के पूछें । इन्हें भगवद्वात्सल्य सिद्ध है और ब्रज के सब गाँव की देव पितर की रीति जो कोई करै सो इन सों पूछि कै करै । केशी दैत्य के भय सों वृन्दावन छोड़ि कै ये महा बन में सब भाइन के साथ बास करै हैं । इनकी स्त्री को नाम तुंगी है । इन को वर्ण गौर, दाढ़ी श्वेत और नाभि तक लंबी है और हरे रंग को वस्त्र पहिने हैं और नव लाख गऊ और लाखन हाथी घोड़े इन के पास हैं ।

अथ अभिनंद जी को वर्णन । इन को वर्ण गौर है, शरीर पुष्ट और बलवान, केश सब श्वेत हो गये हैं, पर दाँत नहीं टूटे, गालन पै सुंदर गलमुच्छा है और आठ लाख गऊ हैं और लाल वस्त्र पहिने हैं ।

अथ नंद जी को वर्णन । श्री नंदराय को वर्ण गौर है ; केश कछु श्याम और श्वेत मिलुवाँ हैं । तोंद बड़ी है, छाती ऊँची है, वस्त्र नीलो पहिरे हैं, इनकी स्त्री को नाम श्री यशोदा है, जिन को अंग कछु स्थूल है और रंग साँवरो है । फूलनसों बेनी सदा गूँथी रहै और वस्त्र पीरो पहिनै । और इन को नैहर को नाम देवकी है । श्री नंदराय जी के ७२०००००० बहत्तर करोड़ गऊ हैं और भैंस बकरी बहुत हैं । भाइन के हिस्सा में

श्रीनंदराय जी को नव लाख गऊ मिली हैं सो अब वे गऊ मोहना नामक ग्वारिआन के सरदार के पास हैं । उपनंद जी और अभिनंद जी ने आप राज्य नहीं लियो तासों नंदराय जी ब्रज के राजा भये । इनके कुलदेवता नारायण हैं, इनके कुल को वेद साम और शाखा कौथुमी है ; पर जब सों ब्रज के राजा भये तब सों यजुर्वेद और माध्यंदिनी शाखा भई । इनके कुलपुरोहित शाण्डिल्य हैं । इनके राज्य में तीन प्रकार के गोप बसे हैं, प्रथम वे जो व्यापार और गोरक्षण करै हैं, दूसरे वे जो गाय भैंस रखैं और खेती करै हैं, और तीसरे वे जो बकरी इत्यादि छोटे जीव पालैं । श्री नंद रायजी को मुख्य मंदिर उत्तराभिमुख है और दरवाजे के बाहर दोऊ ओर बड़े सिंह बने हैं, भीतर बड़ी चौक है वहाँ एक ऊँचो चौतरा है जा पै साँझ को सब ब्रज के लोग आयकै बैठैं हैं, ताके पीछे जो दरवज्जा है वाके दोऊ ओर बड़े बड़े हाथी बने हैं और वाहू के भीतर दरवज्जा जो है वाके दोऊ ओर चंद्रमा और सूर्य बने हैं । वाके भीतरी अनेक चौक हैं, जिन में सर्वतोभद्र, कमलचौक और मणिचौक ये तीन मुख्य चौक हैं, ताके आगे श्री व्रजरानी को मंदिर है और भीतर बाहर ताईं अनेक दर दालान और मंदिर हैं और इनके बीच में कहूँ कहूँ बड़े बड़े वृक्ष लगे हैं और कहीं तुलसी को थावरो है । इनकी या पार की राजधानी को नाम गोकुल और वा पार की राजधानी को नाम नंदीश्वर है । गोकुल के देवता चिंतामणि माधव और मथुरानाथ जी हैं और नंदगाँव के ग्रामदेवता नंदीश्वर शिव हैं, और शैलासन और पाँडु नाम की दो अथाई हैं ।

अथ सुनँद जी को वर्णन । सुनंद जी को शरीर बड़ो ही पुष्ट है और अवस्याहू वृद्ध नहीं भई है, केश सब श्याम हैं और ब्रज की सेना को सब प्रबंध करै हैं और सृंग और तरवार सदा हाथ में लिये रहैं, वस्त्र पीरे पहिरै हैं । इनकी स्त्री को नाम कुबला और गऊ नौ लाख हैं ।

अथ नंदन को वर्णन । ये सबसों छोटे हैं, रंग गेहुआँ और केश बड़े लंबे लंबे हैं । वस्त्र सफेद पहिनैं और स्त्री को नाम अलता है, जाको रंग गौर और श्याम रंग को वस्त्र पहिरैं । इनकी निज की गऊ सात लाख हैं ।

श्री नंद जी की माता को नाम बरीयसी है । इनको अंग नाटो और केश सब श्वेत होय गये और वस्त्र हरे हैं ।

अर्जन्य की स्त्री को नाम नटी और राजन्यकी स्त्री को सूरा है । नंदराय जी के फूफा को नाम गुरुवीर है और ये वृषभानु जी के मामा लगै हैं । और नंद राय जी के दोऊ बहिन के पतिन को नाम लीन और काम है ।

उपनंद जी के पुत्र को नाम कृष्ण (कोऊ कोऊ को मत है कि उपनंद जी को पुत्र नहीं भयो सो जब नंद राय जी को पुत्र भयो तब उपनंद जी के गोद में दै दियो, तासों भगवान को नाम नंद जी उपनंद जी दोउन को वंशपरंपरा में आवै है) और इनकी एक बेटी या को नाम कामा और प्रसिद्ध नाम श्यामदेवी है । जाको रंग साँवरो है और रूप में सब कृष्ण की उन्हार है ।

अभिनंद जी के पुत्र को नाम सुबाहु है ; या को रंग गोरो और वस्त्र हरो है । यह श्रीकृष्ण के साथ रक्षा के हेतु सदा लकुट लिये रहै, क्योंकि श्रीकृष्ण को बड़ो भाई है तासों याके सख्य में वात्सल्य मिली है ।

सुनंद जी के पुत्र को नाम सुबल है, याको रंग लाल और वस्त्र कारो है और श्रीकृष्ण को बड़ो प्यारो मित्र है, क्योंकि याकी और भगवान की अवस्था एक ही है ।

नंदन जू के पुत्र को नाम तोक कृष्ण है। कोऊ को मत है कि या को रंग श्याम और वस्त्र पीत है । याके पुकारबे को नाम तोक है और या को चलन बोलन सब श्रीकृष्ण की सी है और यह श्रीकृष्ण को अत्यंत प्यारो है क्योंकि आप को नेम है कि जो थोड़ी हू वस्तु अरोगें तो अपने हाथ सों पहिले कवर या के मुख में देत हैं ।

अब जन्म समय को भाव लिखत हैं । तहाँ श्री पूर्ण पुरुषोत्तम ने विश्वावसु नाम संवत् में जन्म लियो है ताको भाव यह है —जो विश्वावसु गंधर्वन का राजा है ताके संवत में आपने जन्म लियो तासों यह जतायो कि हम गानविद्या की प्रवृत्ति करेंगे । और दक्षिणायन में जन्म लियो ताको भाव यह है कि आप अनेक नायकागण को दक्षिण होयेंगे और भक्तजन सों हू दक्षिण रहेंगे, और यज्ञअवतार में स्त्री को नाम हू दक्षिणा है तासूँ दक्षिणअयन में जन्म लियो । और वर्षा ऋतु में जन्म लियो ताको भाव यह है कि वर्षा ऋतु सब जगत को जीवन है और सब ऋतुन की अपेक्षा आनंददायक है याही सों सब अन्न आदि उत्पन्न होय है तासों यह जनायो कि हम जगत् के हेतु हैं और सब को आनंद देंगे । अरु सब महीना छोड़िकै भाद्रपद में जन्म लियो ताको यह हेतु है कि भद्र अर्थात् कल्याण वही भाद्र वाको पद नाम घर अर्थात् कल्याण को घर तासों आप ने सब मास

छोड़िकै भाद्रपद ही में जन्म लियो । अब वर्षा ऋतु के २० दिन को एक ऐसे तीन पाद है तामैं मध्य पाद में जन्म लिया । ताको भाव यह कि प्रथम पाद में उष्णता विशेष है और तृतीय में शीतता तासों मध्य के पाद में जन्म लियो, और ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तीन देवता हैं तामे मध्य में विष्णु है ताको हेत यह जो प्रधान मध्य में हैं तासों मध्य पाद में जन्म लियो सो जाननो । अब कृष्ण पक्ष में जन्म लियो ताको कारण यह है कि आपको अपने नाम को पक्ष है तासों यह जनायो कि हम अपनो पक्ष थापेंगे और अष्टमी तिथि को कारण यह है कि अष्टमी शिवतिथि है, कल्याण रूप है, यद्वा श्रीमहादेव जी परम वैष्णव हैं तिनकी तिथि है, यद्वा पंद्रहो तिथि के मध्य में अष्टमी है, सो प्रधान मध्य में रहै है तासों, यद्वा अष्टमी जयतिथि है सो हम असुरन को जय करेंगे यह जनायो । वा यह श्री बसुदेव जी की जन्मतिथि है । और रात को जन्म लियो ताको हेत यह है कि हम चंद्रवंशी हैं सो चन्द्रमा रात्रि को राजा है तासों हम को दिन सों प्रयोजन नहीं । और अर्द्धरात्र को जन्म लियो ताको हेत यह है कि वा समय में कोई कार्य नहीं कियो जाय है, स्वस्य बेला है, तासों जा समय मेरे भक्त स्वस्थ रहैं वा समय जन्म लियो चाहिए । और चंद्रमा के उदय होत जन्म लियो ताको हेत यह है कि जैसे चंद्रमा जगत को आहलाद करै है तैसी आह्लाद हम करेंगे यह जनायो, यद्वा हम चंद्रवंशी हैं सो अपने वंशस्य के उदय संग अपनो उदय कियो । और भगवान के जन्म समय आकाश में मेघ छाये याको हेत यह है जैसो मेघ सबकों आनंद देत है तैसो हम आनंद देंगे, यद्वा मेघ प्रसन्न भये कि हमारा नाम घनश्याम श्रीठाकुर जी को होयगो, हमारी उपमा ब्रह्म को दी जायगी तासों प्रसन्न भये, यद्वा जल को नाम जीवन है सो जीवन जगत को हम करेंगे यह जनायो । और रोहिणी नक्षत्र पर जन्म लियो ताको भाव यह है कि जैसे चंद्रमा को अनेक नक्षत्र हैं तैसेही यद्यपि आप को अनेक सखी सेवन करैं तथापि मुख्य श्री प्रियाजी ही हैं । और रोहिणी में जन्म ग्रहण करके आपने श्री बलदेव जी से सहोदरता सूचन कराई । बुधवार में आपने जन्म लियो ताको हेत यह है कि सब ग्रहन में बुध अत्यंत सुंदर है तासों आप अलौकिक सौंदर्य प्रगट करैंगे और बुध आप के वंश को पूज्य हू है तासों वंश को पक्षपात जनायो । वा ''विष्णु चंद्रसुते'' यासों बुध के दिन आप अवतीर्ण भए । काहू पुराण को मत सोमवार के हूँ जन्मदिन मनावे को है सो बाहू में पूर्वोक्त भाव जानने । इत्यादि अनेक भाव हैं कहाँ ताईं लिखिये ।

अथ चरण चिन्ह वर्णन

छप्पै

स्वस्तिक स्यंदन संख सक्ति सिंहासन सुंदर ।
अंकुस ऊरधरेख अब्ज अठकोन अमलतर ।।
बाजी बारन बेनु बारिचर बज्र बिमलबर ।
कुंत कुमुद कलधौत कुंभ कोदंड कलाधर ।।
असि गदा छत्र नवकोन जव तिल त्रिकोन तरु तारग्रह ।
हरिचरन चिन्ह बत्तिस * लखे अग्निकुंड अहि सैल सह ।।१।।
छत्र चक्र ध्वज लता पुष्प कंकन अंबुज पुनि ।
अंकुस ऊरधरेख अर्धससि जव बाएँ गुनि ।।
पास गदा रथ जग्यबेदि अरु कुंडल जानो ।
बहुरि मत्स्य गिरिराज संख दहिने पुनि मानो ।।
श्रीकृष्ण प्रानप्रिय राधिका चरन-चिन्ह उन्नीस बर ।
'हरिचंद' सीस राजत सदा कलिमलहर कल्यानकर ।।२।।

अन्य मत सों

केतु छत्र स्यंदन कमल ऊरध रेखा चक्र ।
अर्ध चंद्र कुस बिंदु गिरि संख सक्ति अति बक्र ।।

* श्री चरण चिन्ह के विशेष भाव भक्ति सर्वस्व नाम ग्रंथ में लिखे हैं, वहाँ देखो ।

लोनी लता लवंग की गदा बिंदु द्वै जान ।
सिंहासन पाठीन पुनि सोहत चरन बिमान ।।
अष्टादस श्री चिन्ह श्री राधापद मैं जान ।
जा कहँ गावत रैन दिन अष्टादसो पुरान ।।
जग्य सुवा को चिन्ह है काहू के पद सोइ ।
पुनि लक्ष्मी को चिन्ह हू मानत हरि पद कोइ ।।
श्री राधा पद मोर को चिन्ह कहत कोउ संत ।
द्वै फल की बरछी कोऊ मानत कुस के अंत ।।

अथ हस्त चिन्ह वर्णन

जव खुर तोरन कमल लता वंसी त्रिकोन ध्वज ।
वृक्ष शंख घट अग्निकुण्ड अंकुश गृह रथ गज ।
सफरी ऊरधरेख कलस फल सब मन भाये ।
छत्र गदा धनु सर सुचक्र अरु बिजन सुहाये ।
बर पानपात्र गो सींप तिल स्वस्तिक श्रीश्रीकृष्णकर ।
'हरिचंद्र' चिन्ह बत्तीस ये सोहत नित जन-सीस पर ।।२।।
इति श्रीयुगलसर्वस्व के पूर्वार्द्ध को दूसरो प्रकरण ।

अथ अष्ट सखिन के नाम ।

अपने मत सों — श्रीचंद्रावली जी, श्रीललिता जी, श्री विशाखा जी, श्रीचंपकलता जी, श्रीचंद्रभागा जी, श्रीराधासहचरी, श्रीश्यामा जी और श्रीभामा जी । इनमें श्रीचंद्रावली जी को स्वामिनीत्व है और सबन कों सखित्व है याही सों पंचाध्याई में अंतर्ध्यान और आविर्भाव और महारास तीनहूँ समै में काचित् काचित् करिकै सात ही गिनाई हैं । और सप्तावरणात्मक, श्रीस्वामिनीजी तथा श्रीठाकुरजी को स्वरूपहू है । यथा चक्रव्यूहात्मक, कालात्मक, संयोगात्मक और वियोगात्मक श्रीठाकुरजी को स्वरूप है । वियोगात्मक स्वरूप बृज में प्रगटे हैं और बृज ही में विराजत हैं, मथुरा द्वारका नाहीं जात । तथा श्री स्वामिनीजी शक्तित्रयात्मक-स्वामिन्यात्मक, संयोगात्मक, वियोगात्मक हैं, तिन मैं वियोगात्मक स्वरूप द्वै वर्ष पहले सेवाकुंज में प्रादुर्भाव भये हैं और संयोगात्मक स्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम के साथ श्री यसोदा जी के यहाँ प्रगटे हैं और पंचावरणात्मक स्वरूप पंद्रह दिन पछे श्री बृषभानजू के घर प्रगट होत हैं । याही सों एक एक आवरण की सेवा के हेत एक एक सखी को प्रादुर्भाव है । और श्री चंद्रावलीजी युगल स्वरूप के प्रेम की मूर्ति हैं, रासलीला में विशेष रसपोषकता अर्थात् परकीया विभाग सुख प्राप्ति की कारण है और स्वामिनीजू के मान के कारण इनको प्राकट्य है याही सों एकादश सखा की भाँति सात सखी मुख्य हैं और याही सों वेणु में सप्तरंध्र तथा गुसांई जी के घरहू सात बालकन को प्रादुर्भाव है । कोक महात्मा को मत है कि श्री स्वामिनीजी और श्री चंद्रावलीजी को स्वामिन्यात्मक स्वरूप के अतिरिक्त एक एक संख्यात्मक स्वरूपहू है । यथा श्री स्वामिनीजी को राधा सहचरी वा रंगदेवात्मक और चंद्रावली जी को इंदुमुख्यात्मक ।

अथ अन्य मत सों अष्ट सखिन के नाम

ललिता, विशाखा, तुंगविद्या, रंगदेवी, इंदुरेखा, चंद्रभागा, और चंपकलता । एक के मत सों ललिता, विशाखा, चंद्रभागा, संध्यावली, तुंगभद्रा, श्यामा, भामा और तुलसा । एक के मत सों श्री चंद्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, भद्रा, धन्या, रंगदेवी और श्यामा हैं ।

एक के मत सों ललिता, विशाखा, चंद्रभागा, श्यामा, भामा, कुसुमा, तुलसी और माधवी ।

एक मत में ललिता, विशाखा, चंद्रभागा, चंपकलता, चित्रा, स्वर्णलेखा, इंदुमती और संध्यावली ।

इति श्री युगलसर्वस्व उत्तरार्ध को प्रथम अध्याय संपूर्ण ।

अथ स्फुट वर्णन । श्री गोपीजन के यूथ अनगिनत हैं, इन की कोऊ संख्या नाहीं करि सकत । इन की यूथनि में एक पुराण के मत सों ये मुख्य यूथाधिकारिणी हैं और इनके यूथ में इतनी सखी हैं । यथा चंद्रावली १६०००, सुशीला १६०००, शशिकला १४०००, चंद्रमुखी १३०००, माधवी ११०००, कदंबमाला १३०००, कुंती १००००, जमुना १४०००, जान्हवी ९०००, सावित्री १५०००, सुधामुखी १४०००, शुभा १४०००, पद्मा १४०००, गौरी १४०००, सर्व्वमंगला १६०००, सरस्वती १३०००, भारती १००००, अपर्णा १४०००, रति १००००, गंगा १४०००, अंबिका १६०००, सती १३०००, नंदिनी १००००, सुंदरी १३०००, कृष्णप्रिया १६०००, मधुमती १४०००, चम्पा १३०००, और चंदना १४००० ।

काहू मत सों श्रीनंदराय जी की परंपरा यह है ।

आभीरभानु के चंद्रसुरभि, तिन के मीलुक, मीलुक कों महावाह, तिन के कंजनाभ, तिन के बीरभानु, तिन के धर्म्मधीर, तिन के धार्म्मश्रवा, तिन के काननेंदु, तिन के जयबल, तिन के जयकीर्ति, तिन के यशोधन, तिन के कंठभानु, तिन के महाबुद्धि, तिन के मानमेरु, तिन के मनोरथ, तिन के वरांगद, तिन के चित्रसेन, तिन के सुनंद, तिन के उपनंद, तिन के महानंद, तिन के नंदन, तिन के कुलनंद, तिन के बंधुनंद, तिन के केलिनंद, तिन के प्राणनंद, तिन के नंद हैं ।

एक मत सों चित्रा जी को वर्णन । श्रीकुंड के पूर्व आनंद सुखद नाम इन को निकुंज है, इन की वय तेरह वर्ष आठ महीना की, वर्ण गौर, वस्त्र जाती पुष्प तुल्य और सेवा चित्र की है ।

श्यामली जी दोऊ स्वरूप की संबंधिनी हैं, श्री ठाकुर जी के काका की बेटी हैं, साँवलो रंग है । श्रीठाकुर जी की उनहार बहुत मिलत है । कोऊ को मत है कि श्री ठाकुर जी के काके की बेटी को नाम श्याम देवी है, श्यामली जी श्री ठाकुरानी जी के काका की बेटी हैं परंतु श्री ठाकुर जी की पक्षपातिनी हैं ।

अथ अष्ट सखिन के राग तथा बाजन को वर्णन

तहाँ श्री स्वामिनी जी संयोग में बिपंची जाति की बीन और वियोग में वंशी बजावत हैं । राग केदार और कान्हरो रात में तथा दिन में सारंग और मालकोस, वर्षा में मेघ और मल्लार ।

श्री चंद्रावली जी । बाजा अमृत कुंडली, राग सोरठ और जलतरंग ।
श्री विशाखा जी । बाजा मृदंग, राग सारंग ।
श्री चंद्राभागा जी । बाजा स्वरोदय, राग केदार ।
श्री चंपकलता जी । बाजा रबा , राग कान्हरा ।
श्री भामा जी । बाजा चंग, राग कल्यान ।
श्री संध्यावली जी । बाजा सारंगी, राग सोरठ ।
श्री इंदुलेखा जी । बाजा ताल, राग बिहाग ।
श्री चित्रा जी । बाजा सितार, राग संकरा ।

अन्य मत सों बाजन के वर्णन

श्री ललिता जी मृदंग । श्री जमुना जी सहनाई । श्री विशाखा जी सुरमंडल । श्री श्यामला जी दुधारा । श्री चंपकलता जी सारंगी । श्री भामा जी करताल । श्री कामा जी तुरही अरु सहचरी किन्नरी ।

अथ अन्य मत सों प्रियाजी के हस्त को चिह्न

जव, माला, कमल, वाटिका, भ्रमर, व्यजन, छत्र, अर्द्धचंद्र, कर्णफूल, मड़वा अरु जलपात्र ।

अथ वामहस्त के चिह्न

लक्ष्मी, सीप, वृक्ष, वेदी, आसन, कुसुमलता अरु चामर ।

अथ श्री ठाकुर जी के दक्षिण हस्त के चिह्न ।

हाथी, अंकुश, घोड़ा, वृक्ष, बाण, गऊ, पंखा, मँडवा, बंशी, चक्र, माला और कमल ।

अथ श्री ठाकुरजी के वाम हस्त के चिह्न

मँड़वा, कमल, तरवार, थापा, धनु, परिघ, बिल्ववृक्ष, मीन, बाण अरु नंदावर्त ।

अथ श्री ठाकुरजी के उत्सव । भादों सुदी २ को दसूठन, भादों सुदी ५ को श्री चंद्रावलीजू को जन्म, क्वारबदी ८ को महीना को चौक, पौष सुदी ८ को अन्नप्राशन, माघ बदी ६ को नामकरण, वैशाख सुदी ९ को ब्याह और असाढ़ सुदी ३ को गौना । पूस सुदी ८ को श्री नंदजू को जन्म, माघ सुदी ६ को यशोदाजू को जन्म और सावन बदी ५ को अठवासा तथा अगहन सुदी २ को श्री ठाकुरजी कूख में पधारे हैं । कार्तिक सुदी १५ को यज्ञपत्नी को अंगीकार ।

आधिदैविक उद्भव, आधिदैविकी सुभद्रा, आधिदैविक अर्जुन, आधिदैविकी रुक्मिणी और आधिदैविकी सत्यभामा को व्रज की लीला में अंगीकार हैं तैसे ही आधिदैविक बलदेवजी और रेवतीजी सदा व्रज में बिराजत हैं और मर्यादा श्रुतिरूपा गोपी इन को यूथ है ।

श्री ठाकुरजी के बूआ को नाम मैना है और धरानंद अर्थात् सुनंदजी की बेटी सुभद्रा श्री ठाकुरजी की प्यारी बहन है । श्रीवृषभानुजी विवेक और श्री कीर्ति जी भक्ति को स्वरूप हैं तथा देवतान की आदिजननी महामाया देवकी जी को स्वरूप है और धर्म को स्वरूप बसुदेवजी को है । इन दोउन कों व्रज में कबहूँ कबहूँ बाललीला के दर्शन होत हैं ।

गोलोक में श्री गोवर्द्धन को विस्तार बारह हजार कोस है और भगवान के आनंद सों उन की उत्पत्ति है । श्री स्वामिनीजी के सात्विक भाव सों रास की उत्पत्ति है । तिरानबे कोटि रासलीला और उतने ही कुंज हैं, तिनहूँ में चौरासी मुख्य हैं । निज निकुंज में श्रीठाकुर जी कबहूँ गौर विराजत हैं कबहूँ श्याम । सात्विक कुंज फूलन के हैं, राजस मणि काँच इत्यादि के और तामस धातु पाषाणादि के हैं । निर्गुण कुंज इच्छामय षट ऋतु संपन्न हैं । कुंज मंडल में पहलो निकुंज श्री यमुनाजी को, दूसरो अग्निकुमारिका को, तीसरो श्रुतिरूपा की मुखिया श्री चंद्रावली जी को और चौथो निज निकुंज है । ऐसे हीं अंतरंग कुंज में इन स्वरूपन के आधिदैविक स्वरूप क्रम सों श्री यमुनाजी, श्री राधा सहचरी, श्री चंद्रावलीजी और जुगल स्वरूप बिराजत हैं और वे स्वरूप अलौकिक मनुष्य के ज्ञान के बाहर के हैं । जिन स्वामिनी और सखिन को जगत भजन करत है वे गुणमई हैं ।

श्री चंद्रावलीजी को गाँव बृज में रिठौरा है । नवधा भक्ति वात्सल्य में तो श्री नवनंद के स्वरूप में और शृंगार में सखी स्वरूप में रहत हैं । बृज में अनेक अवतारन के बरदान सों श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, यज्ञसीता, रमासहचरी, लोकालोकबारी, रजोगुण की, तमोगुण की, सतोगुण की, कोशलपुरी, पुलिंदी, श्वेतद्वीप की, मिथला की, ऊर्द्धबैकुंठ की, भूमिगोलोक की, अजितपद की, दिव्या, विष्णुलोक की, अदिव्या, समुद्रकन्या, अप्सरा, पुरंध्री, लता, गोपी, वर्हिष्मती, नागकन्या, सुतलनिवासिनी और श्रीरामावतार की मानवी इतनी जूथन को मनोरथ पूर्ण पुरुषोत्तम ने पूर्ण कीनो है ।

इन में जालंधरी तो रंगजीत नामक गोप की कन्या भई हैं और मत्स्य अवतार के बरदान की बर्हिमती अप्सरा नागकन्या और सुतलवासिनीन ने बृज के पास वर्हिषल नगर में जन्म लीने हैं । रिषीरूपा बंग देश में मंगल गोप के घर पाँच हजार उत्पन्न भई हैं । और श्री नंदरायजी ने इन को बंगाले सो लाय के महल में रक्खी हैं । कोशल की स्त्री नव उपनंद की पत्नी हैं । मालव को राजा दिवस्पति गोप व्रज में बसत है सो देवतान की स्त्री वा की कन्या गोपी भई हैं । सिंधु देश को राजा बिमल वाके यहाँ अवध और मिथिलापुर की स्त्री एक करोड़ प्रगटी हैं । ये पहले कामबन में रहीं, फेर द्वारका गईं, जासों इनको राज्यलीला प्रिय है । दक्षिण में उशीर नगर

क गोप पानी न बरिसबे सों ब्रज में आय बसे हैं तिन की बेटी यज्ञजानकी और पुलिंदी भई हैं । दिव्य बाहु, गोपेष्ट, पतंग, भार्गव, शुक्ल और नीतिविद ये छः लघु वृषभान हैं । इनके घर ऊर्द्ध विष्णुपदवासिनी, रमासखी, जलकन्या, श्वेत द्वीप की स्त्री लोकाचलवासिनी और अजितपद की स्त्री प्रगटी हैं । वीतिहोत्र, श्रुत, अग्निभुक, गोपति, श्रीकर, शांत, पावन, शांभ और ब्रजेश ये नवलघु उपनंद हैं । त्रिगुणा और दिव्या ऽदिव्या के यूथ को इनके घर प्रागट्य हैं ।

और अवतारन में स्वकीया छोड़ के और स्त्री सों रमण करें तो धर्म की मर्यादा जाय वाही सों जब पूर्ण पुरुषोत्तम प्रगटे हैं तब इन सबन को मनोर्थ पूर्ण भयो है ।

विशेष कर के श्री रामावतार की स्त्रीन को ब्रज में प्रागट्य है जासों श्रीरामजू साक्षात् वासुदेव स्वरूप और मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और अत्यंत ही सुंदर हैं, देखतमात्र स्त्रीजन को चित्त हरन करते हैं सो मर्यादा पुरुषोत्तम में आसक्त होइ के पुष्टि पुरुषोत्तम सों रमण की आधिकारिणी होत हैं । ताहू मैं अग्निकुमार दंडकारण्य के पाँच हजार ऋषी को मुख्य नित्य लीला में अंगीकार है क्योंकि पुरुष होइ के प्रभु में इन के स्त्रीभाव कीन्हो है, सो कुमारिकान को यूथ जा की मुखिया श्री राधा सहचरी जू हैं, इन्हीं दंडकारण्य के ऋषिन को है ।

सुजस गोप की स्त्री जसा सों कीर्ति जी को प्रागट्य है । सुनैनाजी इन की अंश हैं । चंद्र वंश में कुरंग नामक राजा और वा की स्त्री विशालाक्षी सों सुनैना जू की उत्पत्ति है ।

श्री जानकी जू इनहीं के गृह प्रगटी हैं और मंदोदरी, पृथ्वी, पार्वती और सुनयना इन सबन सों आप सों मातृ संबंध है । जब ऋषिन को ब्रह्मतेज एक घड़ा में बंद होय के रावन के पास आयो तब मंदोदरी ने वाको अपने गर्भ में धारण कियो सो नारद जी के कहिबे सों रावण ने वा गर्भ को पीड़ित करि वा घडा में भरि कै जनकपुर के पास गड़वाय दियो । ताही सों श्री जानकी जी प्रगटी हैं । और श्री लक्ष्मन जी सब ब्रह्मान के, भरथ जी सब विष्णुन के और शत्रुघ्न जी सब शिवन के आधिदैविक स्वरूप हैं ।

आल्हादिनी, चारुशीला, अतिशीला, सुशीला, हेमा, लक्ष्मना ये श्री जानकी जी की कुंजन की, शोभना, सुभद्रा, शांता, संतोषा, शुभदा, सत्यवती, सुस्मिता, चार्वंगी, लोचना, हेमांगी, क्षेमा, क्षेमदात्री, सुधात्री, धीरा, धरा और चारुरूपा, ये सोरह सिंगार की, माधवी, मनोजवा, हरिप्रिया, वागीशा, विद्या, सुविद्या, नित्या और वैसा ये आठ अंग की मुख्य सखी है ।

इति श्रीयुगलसर्वस्व के उत्तरार्द्ध को द्वितीय अध्याय स्फुट प्रकरण समाप्त भयो ।

३ अध्याय

अब प्रसंगवशात् अन्य अन्य रहस्य निरूपण करत हैं । १ । रसिक जन और महात्मान के निकुंजादि वर्णन में अनेक मत हैं, तिन को परस्पर विरुद्ध देखि कै शंका न करनी काहे सों कि यह तो निकुंजलीला भाव सिद्ध है जैसो जाको भाव को अधिकार है वैसो वाहि दर्शन होत है । २ । रहस्य पुराण में तिरानबे कोटि रासलीला लिखी हैं । ३ । तिरानबे कोटि कुंजहू हैं । ४ । धाम एक भूमंडल पर श्रीवृंदाबन, एक गोलोक को नित्य वृंदाबन । ५ । सब कुंजन में ८४ कुंज मुख्य हैं । याही सों ८४ सेवक हू श्री महाप्रभु जी ने अंगीकार किए हैं । ६ । श्रीठाकुरजी के गुणमय नौ स्वरूप उन की भार्य्या १ अजा २ अरूपा ३ निर्गुणा ४ निराकारा ५ सनातनी ६ निरीहा ७ परब्रह्मभूता ८ अविनाशिनी और ९ निरंजना । सो इन नओ स्त्रीन सों श्रवणादिक प्रेम भक्ति उत्पन्न होत भई । ७ । और निर्गुण स्वरूप श्री ठाकुरजी को एक सच्चिदानंदघन, ताकी स्त्री अलौकिकी, तासों प्रेम लक्षणा उत्पन्न भई, ताके सहज, सुहित और सुहृत तीन पुत्र भए । ८ । श्रवणादिक प्रेमन को एक एक कों नौ नौ पुत्र भए तेही ८१ और तीन प्रेमलक्षण के पुत्रन के पुत्र सब मिलि कै चौरासी प्रकार प्रेम तेई निकुंज होत भए । ९ । श्रवण की भार्या श्रुति ताके नौ पुत्र सूक्ष्मकुंज, उनकी संज्ञा, उनके नाम यथा प्रीतिकुंज, प्रेमकुंज, कंदर्पकुंज, लीलाकुंज, मज्जनकुंज, विहारकुंज, उत्कंठकुंज, मोहनकुंज, युगुलकुंज । १० । कीर्त्तन की स्त्री नर्त्तकी ताके नौ देहकुंज पुत्र भए यथा हावकुंज, भावकुंज, कटाक्षकुंज, अलककुंज, मुक्ताकुंज, भ्रूकुंज, वेनीकुंज, रोमराजीकुंज, नीवीकुंज । ११ । अर्चन की भार्या पूजा ताके नौ पुत्र विहारकुंज, यथा कटिक्षीणकुंज, मानकुंज, भ्रमनकुंज, तिष्ठनकुंज, संगीतकुंज, आलस्यकुंज कलकूजितकुंज, विविधाकारकुंज, दुकूलकुंज, कुचकुंज । १२ । पाद सेवन की स्त्री पादोदका ताके नौ श्रृंगारकुंज यथा नेत्रकुंज, कुंडलकुंज, हारकुंज,

ताबूलकुंज, आड़कुंज, लावन्यकुंज, हास्यकुंज, उत्साहकुंज, उग्रताकुंज । १३ । स्मरण की स्त्री स्मृति ताके नै महाकेलिकुंज यथा कोकिलालापकुंज, ग्रीवकुंज, आलिंगनकुंज, चुंबनकुंज, अधरपानकुंज, दर्शनकुंज, दर्पनकुंज, प्रलापकुंज, उन्मादकुंज । १४ । वंदन की स्त्री नति वाके नौ एकांतकुंज यथा दर्पकुंज, उत्सादनकुंज, उत्कर्षकुंज, दीनकुंज, अधीनकुंज, सुरतकुंज, आकर्षणकुंज, उच्चाटनकुंज, मूर्छाकुंज । १५ । दास्य की स्त्री विनया वाके नौ गोप्यकुंज यथा बशकरणकुंज, स्तंभनकुंज, प्रियस्कंधारोहणकुंज, आवेशकुंज, व्यात्तालापकुंज, पर्यंकशयनकुंज, प्रियाचरणताड़नकुंज, नखक्षतकुंज, दंतक्षतकुंज । १६ । सख्य की स्त्री मैत्री तासौं नौ भावकुंज यथा क्षयितरंगकुंज, विगताभरणकुंज, भूषणकुंज, कंपकुंज, रतिप्रलापकुंज, तुत्तुलगिरिकुंज, प्रियावासभवनकुंज, मदनगुह्यकुंज, आसक्तकुंजकुंज, । १७ । निवेदन की स्त्री आत्मसमर्पिणी ताके नौ परमरसकुंज यथा पीड़ावादीकुंज, सुरतश्रमनिषेधकुंज, ठुनुककुंज, वाग्विभ्रमकुंज, व्यस्तभावकुंज, कामटंककुंज, किंकिनिरवकुंज, वीरविपरीतकुंज, सुरतांतकुंज । १८ । सुहृत् की स्त्री सुहृदा तासों कलिकाकौतुककुंज और सुहित की स्त्री हितकारिणी तासों सुरतकुंज तथा सहज की स्त्री सहजा तासों सहज प्रेमकुंज येई चौरासी कुंज भए । १९ । इन कुंजन में एक एक में सब कुंज अंतरभाव सों रहत हैं कहूँ प्रच्छन्नरहतहैं और कहूँ प्रकाशित होत हैं । २० ।

अब और स्फुट रहस्य वर्णन करत हैं । व्रज में सप्तावरण स्वरूप श्रीठाकुर जी को तथा श्रीस्वामिनीजी को विराजत है ।। २ ।। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, कालेश्वर, संयोगरसात्मक और वियोगरसात्मक यह सात स्वरूप मिलि कै पूर्ण होत हैं सो इन में अन्य कल्पन में कहूँ एक कहूँ दोय ऐसे स्वरूप प्रकट होत हैं ।। ३ ।। जब पूर्ण प्राकट्य भयो तब छ स्वरूप मथुराजी में प्रगटे, वियोगात्मक स्वरूप बृज ही में प्रगटे ।। ४ ।। श्रीशक्ति, भूशक्ति, लीलाशक्ति, मनोरथात्मक, स्वामिन्यात्मक, वियोगात्मक, संयोगरसात्मक यह सात स्वरूप श्री स्वामिनी जी के हैं तिन में अन्य युगन मैं कोउ एक स्वरूप प्रकटत हैं । जब पूर्ण प्रागट्य भयो तब पाँच स्वरूप कीर्त्ति जी के यहाँ प्रगटे और जब श्री.ठाकुर जी प्रकटे तिन के साथ मायावृत संयोग-वियोग रसात्मक दोय स्वरूप यहाँ प्रकटे । सो जब कीरतिजी अपुने घर सों श्री स्वामिनी जी को लाईं तब श्री ठाकुर जी माता की गोद सों किलके और हँसे वाही समैं इन दोऊ रसात्मक स्वरूपन को उन पंचावरणात्मक स्वरूप मैं स्थापन कीनो ।। ५ ।। जब कछु आवरण सों मथुरा पधारे तब वियोगरसात्मक मुख्य स्वरूप श्रीस्वामिनीजी के हृदय में बिराजे ।। ६ ।। श्रीस्वामिनीजी को मनोरथात्मक जो स्वरूप हैं ताही में अन्य के प्रभु सों रमण करिबे के मनोरथ तथा वरदान आदि सों जे स्वामिनी प्रकटत हैं ते मिलि रहत हैं और स्वामिन्यात्मक स्वरूप में प्रति कुंज प्रति मंडल प्रति जूथ मैं जो स्वामिनी जी के अंश स्वरूप रहत हैं तिनकी एकता है ।। ७ ।।

अथ श्रीस्वामिनी - जन्म - समय

अथ ब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्धे श्वेत वाराह कल्पे द्वापरांते विश्वावसु संवत्सरे भाद्रपदेशुक्लाष्टम्यां गुरु वासरे अरुणोदये विशाखायां सिंहलग्नोदये प्राड्मुहूर्त्तद्वयान्विते श्री श्रीस्वामिन्या जन्म ।। ८ ।।

नव वृषभानों का चक्र

नाम	स्त्री नाम	संतति	वर्ण	चाल वस्त्र	गुण	वय	गऊ
सत्यभानु	सत्यकला	श्रीललिताजी	गौर मूँछ श्वेत	शरीर ठिगना चित्त गंभीर वस्त्र काले	औदार्य	७५	२२०००००
गुणभानु	गुणकला	श्रीविशाखाजी	गुलाबी, केश श्वेत	रंग शहाना	विद्या	६७	२१०००००
धर्मभानु	धर्मकला	श्रीरंगदेवी	साँवला, केश श्वेत	वस्त्र लाल शरीर लंबा	धर्म	६४	२००००००
रुचिभानु	रुचिरकला	श्रीचित्राजी	पीन शरीर लंबा चौड़ा केश, अधकचरे	लीला	ज्योतिष	६०	१९०००००
सुभानु	सुष्ठुकला	श्रीतुंगविद्याजी	साँवला, केश अधकचरे	डाढ़ी पीत प्रसन्न वदन	रोचकता	५७	१८०००००

नव वृषभानों का चक्र

नाम	स्त्री नाम	संतति	वर्ण	चाल वस्त्र	गुण	वय	गऊ
चंद्रभानु	चंद्रकला	श्रीचंद्रावलीजी श्रीचंपकलताजी	गौर केश कृष्ण किंचित्श्वेत	हरित	कला	५४	१७००००
वरभानु	बरकला	श्रीइंदुलेखाजी	लाल, केश काले	पहलवानी धानी	गानविद्या	५२	१६०००००
उदधिभानु	कमला	श्रीसुदेवीजी	पक्का	केश काले श्वेत	व्यायाम पशुपरीक्षण	५०	१५०००००
श्रीवृषभानुजी	कार्त्तिजी	श्री दामा श्रीराधिकाजी	लाल	केश काले	राजविद्या	४५	१००००००

युगलसर्वस्व के उत्तरार्द्ध को तीसरो प्रकरण समाप्त भयो ।

अथ चतुर्थ अध्याय

६४ गुण श्रीभगवान के

सुरम्यांग १ सर्वसल्लक्षणान्वित २ रुचिर ३ तेजोयुक्त ४ बली ५ वयोयुक्त ६ विविधाद्भु तभाषावित् ७ सत्यवाक्य ८ प्रियंवद ९ वावदूक १० पंडित ११ बुद्धिमान १२ प्रतिभान्वित १३ विदग्ध १४ चतुर १५ दक्ष १६ कृतज्ञ १७ दृढ़व्रत १८ देशकालपात्रज्ञ १९ शास्त्रचक्षु २० पवित्र २१ वशी २२ स्थिर २३ दांत २४ क्षमाशील २५ गंभीर २६ धृतिमान् २७ सम २८ वदान्य २९ धार्मिक ३० शूर ३१ करुण ३२ मानदायक ३३ दक्षिण ३४ विनयी ३५ लज्जावान ३६ शरणागतपालक ३७ सुखी ३८ भक्तसुहृत् ३९ प्रेमवश्य ४० सर्वशुभंकर ४१ प्रतापी ४२ कीर्त्तिमान ४३ लोकप्रिय ४४ साधुसमाश्रय ४५ नारीमनोहर ४६ सर्वाराध्य ४७ समृद्धिमान् ४८ श्रेष्ठ ४९ ईश्वर ५० नित्य सुंदर ५१ सर्वज्ञ ५२ सच्चिदानंदघन ५३ सर्वसिद्धिसंयुक्त ५४ अविचिंत्य ५५ महाशक्ति ५६ अनेककोटि ब्रह्माण्डविग्रह ५७ अवतारावलीवीज ५८ हतारिगतिदायक ५९ आत्माराम गुणाकर्षी ६० अत्यंत अद्भुत और चमत्कार लीला कल्लोल के समुद्र ६१ अतुल्य मधुर प्रेमप्रिय मंडल सों मंडित ६२ मुरली वादन सों सर्वमानसाकर्षी ६३ अत्यंत अलौकिक उज्ज्वल अद्भुत तथा उद्वत रूपश्री सों चराचर को मोहन ।। ६४ ।।

प्रथम पचास सहज गुण । ६० तक १० अद्भुत । और चार असाधारण गुण ।

२४ नित्य प्रिया सहचरी

चंद्रावली १ विशाखा २ ललिता ३ श्यामा ४ पद्मा ५ शैव्या ६ भद्रिका ७ तारा ८ विचित्रा ९ गोपाली १० धनिष्ठा ११ पालिका १२ खंजनाक्षी १३ मनोरमा १४ मंगला १५ विमला १६ शीला १७ कृष्णा १८ सारिका १९ विशारदा २० तारावली २१ चकोराक्षी २२ शंकरी २३ कुंकुमा २४ ।

इन में विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा सखी और शेष यूथपति हैं ।

अथ यूथपति अपर

चंद्रावली और सुशीला १६०००, शशिकला १४०००, चंद्रमुखी १३०००, माधवी ११०००, कदंबमाला १३०००, कुंती १००००, यमुना १४०००, जाह्नवी ९०००, पद्ममुखी ९०००, सावित्री १५०००, सुधामुखी १४०००, शुभा १४०००, पद्मा १४०००, गौरी १४०००, सर्वमंगली १६०००, सरस्वती १३०००, भारती १००००, अपर्णा १४०००, रति १००००, गंगा १४०००, अंबिका १६०००, सती १३०००, निंदिनी १००००, सुंदरी ११०००, कृष्णप्रिया १६०००, मधुमती १४०००, चंपा १३००० चंदना १४००० ।

श्रीस्वामिनीजी के १६ नाम

राधा १ रासेश्वरी २ रासवासिनी ३ रसिकेश्वरी ४ कृष्णप्राणाधिका ५ कृष्णप्रिया ६ कृष्णस्वरूपिणी ७ कृष्णवामांगसंभूता ८ परमानंदरूपिणी ९ कृष्णा १० वृंदावनी ११ वृंदा १२ वृंदावनविनोदिनी १३ चंद्रावली १४ चंद्रकांता १५ शतचंद्रनिभानना १६ ।।

उत्तर
पूर्व
दक्षिण
पश्चिम
श्री राधा
१ ललिता (पीत)
२ चंद्रावली (शुक्ल)
३ श्यामला (कृष्ण)
४ चित्ररेखा (शुक्ल)
५ श्रीमती (लाल)
६ चंद्रा (नील)
७ हरिप्रिया (लाल)
८ मदन सुंदरी (श्वेत)
९ विशाखा (पीत)
१० प्रिया (शुक्ल)
११ सैव्या (श्यामा)
१२ मधुमती (शुक्ल)
१३ पद्मा (लाल)
१४ शशिरेखा (नील)
१५ भद्रा (लाल)
१६ रसप्रिया (शुक्ल)
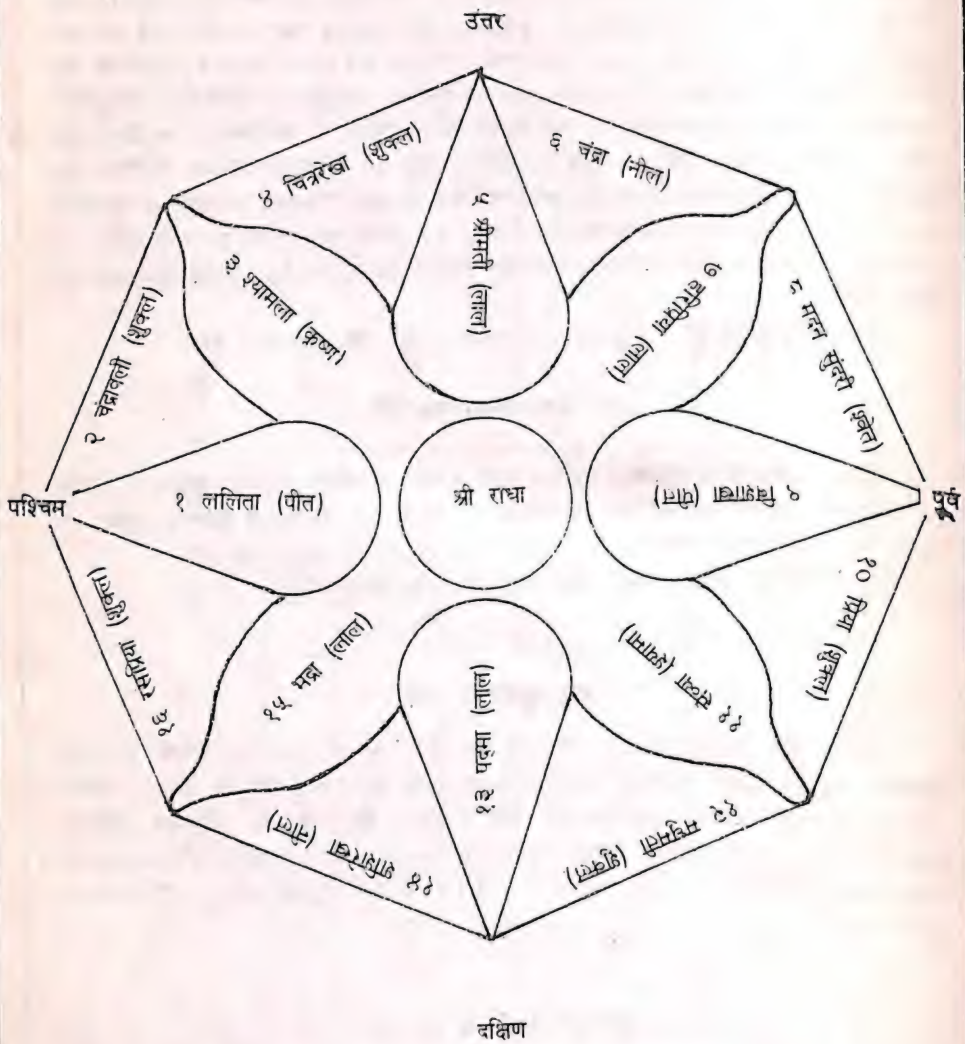
अथ उत्सवन पर रागन को अंगीकार

जन्मोत्सव	सारंग
दान	टोडी
साँझी	गौरी
विजयदशमी	मारू
रास	केदार, कान्हरा तथा सर्व
कार्तिक	भैरो, ईमन कल्यान
मार्गशीर्ष	पंचम
पूस	आसावरी
माघ	मालकोस, बसंत
फागुन	धनाश्री, विहाग आदि सब राग
दोल	हम्मीर सारंग
चैत	पूर्वी
बैशाख	मधु सारंग, केदार
ज्येष्ठ	सारंग शुद्ध
आषाढ़	सामंतसारंग, गौड़ सोरठ
श्रावण	मलार
जागने को समय	भैरव पंचम
शृंगार करती समय	रामकली
अरोगती समय	यथाऋतु
दिन	टोड़ी, आसावरी, सारंग, धनाश्री
तीसरे पहर	**गौरी, पूर्वी, धनाश्री**
जन्मोत्सव	सारंग
सैन आरती वा कुंजविहार	केदार, कान्हरा, ईमन
एकांत विहार	विहार, सोरठ, परज, कलिंगड़ा

अथ तंत्र मत सों सखीन को वर्णन

१	ललिता	स्वर्णवर्ण	रत्नाभरण	पीतांबर
२	चंद्रावती	,,	श्वेत वस्त्र	मंजीर की सेवा
३	श्यामला	,,	श्याम वस्त्र	मृदंगसेवा
४	चित्ररेखा	,,	शुक्लांबर	डफ की सेवा
५	श्रीमती	,,	रक्त वर्ण	दासी की सेवा
६	चंद्रा	,,	नील वस्त्र	रबाब
७	हरिप्रिया	,,	लाल वस्त्र	उपंग
८	मदनसुंदरी	,,	श्वेत वस्त्र	रबाब और गाना
९	विशाखा	,,	पीत वस्त्र	वंशी
१०	प्रिया	,,	श्वेत वस्त्र	वंशी
११	शैव्या	,,	श्याम वस्त्र	गाना
१२	मधुमती	,,	शुद्ध वस्त्र	चरन सेवा

३	पद्मा	..	लाल वस्त्र	सारंगी
१४	शशिरेखा	..	नील वस्त्र	यंत्र
१५	भद्रा	..	रेशमी लाल वस्त्र	सुरमंडल
१६	रसप्रिया	..	चीन शुक्ल वस्त्र	तुमरी

एक एक की सात सखी

१ ललिता की इंदुमुखी १ रसज्ञा २ शुभदा ३ सुमुखी ४ वल्लभी ५ चंद्रिका ६ चतुरा ७ ।

२ चंद्रावली की चंचला १ मधुरा २ हस्तकमला ३ मधुरभाषिनी ४ विलासिनी ५ रसवती ६ खंजनलोचना ७ ।

३ श्यामला की सुखदा १ चंपकलिका २ रसदा ३ रसमंजरी ४ सुमंजरी ५ शीला ६ चारुमती ७ ।

४ चित्ररेखा की चंद्रप्रभावती १ वासंती २ मालती ३ जाती ४ चंद्रकांती ५ सुकुंतला ६ रंभा ७ ।

५ श्रीमती की भ्रमरगंभीरा १ सुशीला २ सुदर्शिनी ३ आमलिकी ४ सुधाकंठी ५ श्रेया ६ रतिप्रिया ७ ।

६ चंद्रा की शुकप्रिया १ मधुकरी २ सुकेशा ३ अमृतोद्भवा ४ मुरली ५ वल्लभी ६ वृंदा ७ ।

७ हरिप्रिया की पारिजातप्रिया १ शुभा २ पंचस्वरा ३ रत्नमाला ४ मंदिरा ५ रासवल्लवी ६ मातंगगामिनी ७ ।

८ मदनसुंदरी की तारावती १ कुंडलधारिनी २ केशरी ३ मित्रवृंदा ४ लक्षणा ५ अच्युतमालिका ६ चंद्रा ७ ।

९ विशाखा की मायावती १ कौशिकी २ कामलांगी ३ सुचंदना ४ पीयूषभाषिणी ५ सत्यवती ६ कुंजवासिनी ७ ।

१० प्रिया की कपोतमालिका १ लोपामुद्रा २ किंशुकप्रिया ३ इलावती ४ कुंकुमा ५ कमला ६ मदालसा ७ ।

११ शैव्या की सावित्री १ बहुला २ प्रियवादिनी ३ मुक्तावली ४ चित्ररेखा ५ सुमित्रा ६ लोलकुंडला ७ ।

१२ मधुमती की अरुंधती १ चित्रवती २ श्रीरक्ता ३ पद्मगंधिनी ४ मेनका ५ कलिका ६ रंगकेतकी ७ ।

१३ पद्मा की काममूर्छिनी १ कुमुदप्रिया २ तारप्रिया ३ नित्य विलासिनी ४ हीरावती ५ हारकंठा ६ सिंहमध्या ७ ।

१४ शशिरेखा की सुलोचना १ नंदव्या २ आनंदकलिका ३ सुनंदा ४ आनंददायिनी ५ कुरंगाक्षी ६ सुश्रोणी ७ ।

१५ भद्रा की केलिलोला १ प्रियंवदा २ श्यामराधा ३ श्यामासेव्या ४ कस्तूरी ५ मानभंजनी ६ विचित्रवासना ७ ।

१६ रसप्रिया की मंजुकिंकिनी १ पिकस्वरा २ भृंगगाना ३ रासविहारिणी ४ रसमंजीरा ५ तिलोत्तमा ६ चारुमती

अथ अन्य प्रमाण के अनुसार अष्ट सखी को चक्र

श्री चित्रा	श्री सुदेवी	श्री रंगदेवी	नान्दीमुखी	श्री तुंगविद्या	श्री चम्पकलता जी श्री इन्दुलेखा	श्री विशाखा जी	अनुराधा जी	श्री ललिता जी
शुचिभानु	उदधिभानु	धर्मभानु	सुभानु	बरभानु	चंद्रभानु	गुणभानु	सत्यभानु	पितानाम
रुचिरकला	कमला	धर्मकला	सुष्ठुकला	बरकला	चंद्रकला	गुणकला	सत्यकला	मातानाम
कुंकुमप्रभा	सलोना	कमलकेसर प्रभा	गौर	हरतालप्रभा	चंपकप्रभा	दामिनीप्रभा	गोरोचनप्रभा	रंग
सुनहला	सूहा	उड़हुल के फूल	पोला	अनार के फूल	नील	चाँदतारा .	मयूरपिच्छ	वस्त्र रंग
जलादि पान की	केशपाशरचनादि आरसी	आभरण	गान	शय्या कहानी	व्यंजनादि	वस्त्रादि	पानकीबीड़ी	मुख्यसेवा
रुचि अवलोकन	शुकपाठ तिलक आदि	शृंगार माल्यनिर्माण	वाद्यादि कला	कोक	यथारुचि सिद्ध करना	सदा साथ रहना	मध्या मुख्य स्नेहवर्द्धन	चातुर्य्य
रसालिका, तिलकिनी, सुगंधिका, सौरसेनी, नागरी, रामिलिका, नागवेनिका, अरुना	कावेरी, मनोहरा, मंजुकेशी, केशिका, हीरा, चारुकुमारी, हीरकंठा, महाहीरा	कलकंठी, शशिकला, कमला, सुंदरी, कंदर्पा, प्रेममंजरी, कामलता, मधुविंदा,	मंजुमेधा, सुमेधिका, गुणचूड़ा, मधुरा, मधुस्यंदा, मधुरेक्षणा, तनुमध्या, वारुणी	चित्रलेखा, मेदिनी, मंदालसा, रसतुंगा, भद्रतुंगा, गानकला, सुमंगला, चित्रांगी	कुरंगाक्षी, मिहिर कुंडला, चंद्रिका, सुचरित्रा, मंडिनी, चंद्रलता, रसऐनी, सुमंदिरा	माधवी, मालती, कुंजरी, हरिनी, चपला, गंध रेखा, शुभानना, सौरभी	रत्नप्रभा, रतिकला, निपुणा, कलहंसी, कलापिनी, सुमुखी, मन्मथमोदा, सौ रभा	उन की सखियों के नाम
सेवासाख्य	मुसाहिब	सेवासख्य	मुसाहिब	परमांतरंग	इन पर श्री प्रिया सख्य		सख्य	भाव

अथ अन्य मत सों अष्ट सखीन को वर्णन

नाम	रंग	वस्त्र	माता	पिता	पति	चातुर्य	सेवा
ललिता सुंदरी	गोरोचन	मयूरपिच्छ	शारदा	विशोक	बांलीक	मध्या वाक्य	तांबूल
विशाखा	बिजली	चाँदतारा	सुदक्षिणा	पावन	बल्लभ	सामादि भेद-काव्य	वस्त्र
चंपकलता	चंपा	नीला	वाटिका	राम	चंडाक्ष	दौत्य	पाक वस्तु
चित्रा	कुंकुम	काला	चर्चिका	चतुर	पिठर	आगमज्योतिष, पशुविद्या, जलपान	सँवारना जल केश
तुंगविद्या	केसर	पीले	मेधा	पौष्कर	बालिस	संगीत साहित्य मेलन	वीणा
इंदु लेखा	हरिताल	लाल	सागर	वेला	दुर्बल	कोक वशीकरणदैन्य	चंदन
रंगदेवी	पद्म किंजल्क	सफेद	करुणा	रंगसार	चक्रेशण	श्रृंगार	—
सहचरी	गौर	नील	सुदेवी	देवबंधु	कोपन खलंदु	अंजन, अभ्यंग-चरण-सेवा	पीकदान

अथ अन्य मत सों सखीन को वर्णन चक्र

नाम	रंग	कौन सी सखी	वस्त्र	वाद्य	सेवा	दल	स्थान
श्रीललिता	चंद्रभा	श्री स्वामिनी जी की	पीला	—	—	पीला	पश्चिम
चंद्रावती (ली)	सोना	श्री ललिता जी की	श्वेत	—	—	सफेद	उसके बाएँ
श्यामला	सोना	श्री स्वामिनी जी की	काला	मृदंग	—	काला	वायव्य
चित्रलेखा	तपाया सोना	श्री ठाकुर जी की	श्वेत	डफ	गाना	सफेद	उसके बाएँ
श्री मती	सोना	श्री ठाकुर जी की	लाल	—	दास	लाल	उत्तर
चंद्रा		श्री ठकुर जी की	नीला	रबाब	गाना	नील	उसके बाएँ
हरिप्रिया	सोना	—	पीला	उपंग	—	लाल	ईशान
मदनसुंदरी	चंद्र	—	सफेद	रबाब	गाना	धूम्र	उसके बाएँ
विशाखा	गौर	श्री स्वामिनि जी की	पीत	वंशी	—	पीत	पूर्व
श्री प्रिया	सोना	विशाखा जी की	सफेद	वंशी	—	शुक्ल	उसके बाएँ
शैव्या	सोना	श्रीकृष्ण की	काला	मंजुसुखयंत्र	—	श्याम	अग्नि कोण
मधुमती	सोना	युगल स्वरूप की	सफेद	—	गाना	शुक्ल	उसके बाएँ

अन्य मत सों अष्ट सखीन को चक्र

नाम	रंग	किसकी सखी	वस्त्र	वाद्य	सेवा	दल	स्थान
पद्मा	फूल	—	लाल	सारंगी	—	लाल	दक्षिण
इंदुलेखा वा शशिरेखा	चंद्रमा	श्री ठाकुर जी की	पट्ट	मृदंग	गाना	नील	उसके बाएँ
भद्रा	सोना	श्री युगल	लाल	स्वरमंडल	—	लाल	नैर्ऋत
रसप्रिया	सोना	युगल	लाल	—	—	शुक्ल	उसके बाएँ
वृन्दा (वनप्रिया)	हरदी	—	सफेद साटन	तंबूरा	—	—	—
श्री चंद्रावली	लाल सोना	—	चुनरी	—	जूही के फूल की माला	—	—

श्री रामचन्द्र के दक्षिण चरण के २४ चिन्ह क्रम सों

एड़ी में स्वस्ति चिन्ह । १ पीतरंग मध्य तरवा में ऊर्द्ध रेखा । २ लाल रंग । ऊर्द्ध रेखा के बायें तरफ अष्टकोण ३ श्वेत अरुण । श्री । ४ । बालार्क सन्निभ । हल । ५ मुसल । ६ (स्वेत धूम्र) सर्प । ७ । सित । बाण । ८ । स्वेत । पीत अरुण हरित । आकाश । ९ । नील । अष्टदल कमल । १० । अरुण स्यंदन । ११ । विचित्र वर्ण जिसमें चारि घोड़े स्वेत । वज्र । १२ । बिजुरी वर्ण । अँगूठे में जब । १३ । स्वेत रक्त । उर्द्ध रेखा के दक्षिण ओर कल्प वृक्ष । १४ । हरिद्वर्ण । अंकुश । १५ । श्याम । ध्वज । १६ । लोहित चित्रित । मुकुट । १७ । तप्त कांचन वर्ण । चक्र । १८ । सिंहासन । १९ । रत्नमय । कालदंड । २० । कंसावत । चामर । २१ । अत्यंत धवल । छत्र । २२ । सित लाल । नृ । २३ । जपमाला (२४ चिन्ह) स्वेत, पीत, अरुण, हरित अरु वज्रवत ।

श्री राघव के बायें पदाब्ज के २४ चिन्ह क्रम सों

पद मध्य में दक्षिण पद लौं उर्द्ध रेख की जगह पै सरयू । १ । सित । एड़ी में गो पद । २ । सित रक्त । सरयू के दक्षिण ओर भूमि । ३ । पीतरक्त सित । कुंभ । ४ । स्वर्ण वर्ण कुछ स्वेत । पताका । ५ । चित्रवर्ण । जंबू फल । ६ । श्याम । अर्द्धचंद्र । ७ । धवल । दर । ८ । सित कछु लाल । षट्कोण । ९ । महास्वेत । त्रिकोण । १० । अरुण । गदा । ११ । श्यामल । जीवात्मा । १२ । दीप्तिरूप । अंगुष्ठ में बिंदु । १३ । पीत । गोपद की बाईं ओर । शक्ति । १४ । रक्त श्याम सित । सुधाकुंड । १५ । सित रक्त । त्रिवली । १६ । त्रिवेणीवत् । मछरी । १७ । रुपेवत । पूर्णसिंधु । १८ । धवल । वीणा । १९ । पीत रक्त सित । वंशी । २० । चित्र विचित्र । धनु । २१ । हरित पीत अरुण । त्रोण । २२ । चित्र विचित्र । मराल । २३ । चरण चंचु लाल । सित । चंद्रिका । २४ । सित पीत अरुण विचित्र रंग ।

जो चिन्ह श्री रामजी के दक्षिण पद में हैं सोई चिन्ह श्री जानकी जी के वाम पाद में हैं और जो श्री राघव के वाम पद में सोई श्री लाडिली जी के दच्छिन पद में ।

उपसंहार

यह पूर्वोक्त श्री युगलसर्वस्व अनेक प्रामाणिक ग्रंथों से संग्रह करके छापा गया । इसके छपने से अनन्य लोग रुष्ट न हों क्योंकि यह बजार बजार बेचने और घर घर बाँटने को नहीं छापा गया है केवल अनन्य अधिकारी लोगों के हेतु थोड़ी सी पुस्तकें गुप्त रीति से छाप ली गई हैं ।

यह भी विदित रहे कि एक्ट २५ सन् १८६७ ई. की रीति के अनुसार रजिस्ट्री किया है और छापे के अन्य अन्य एक्ट के अनुसार इसका सब स्वत्व हमने केवल अपने हस्तगत रखा है इस्से भूल कर भी कोई इसी भाषा और इसी लिपि में वा किसी अन्य भाषा और अन्य लिपि में वा कुछ घटा बढ़ाकर वा कुछ हेर फेर कर भी छापने का उद्योग न करे नहीं तो वह कानून के अनुसार दंडनीय होगा ।

विदित हो कि सर्व्वसदार्यशिरोधार्यचरण आचार्यवर्य श्री महाप्रभु जी ने युगल स्वरूप की सेवा और भावना ही अपने संप्रदाय में मुख्य मानी है तथापि प्रचार बालसेवा और बालभाव का किया है । इस का कारण यही है कि संसार के स्वभावदुष्ट जीव इस उत्तम रस के अधिकारी नहीं हैं । उन की प्रवृत्ति सहज ही नीच है और चित्त सांसारिक विषयों से कलुषित है तो वे लोग यदि यह रहस्य कहैं सुनैं तो उलटे अपराधी हों । यह तो जलकमल की भाँति जो भक्त संसार में रहते हैं उन्हीं के कहने सुनने के योग्य हैं, क्योंकि सिंगार भावना सिंहनी का दूध है, जो या तो सिंह के बच्चे के मुँह में ठहरे या स्वर्ण के पात्र में । और पात्र में रक्खो तो फट जाय वैसे ही यह उत्तम रस पात्र बिना नहीं ठहरता । और बाल भाव तो गऊ का दूध है अनेक प्रकार के सत् पात्र में ठहर सकता है यद्यपि नास्तिक इत्यादि खटाई और बहिर्मुख से पीतल के पात्र में इस को भी विकार होता है तथापि सर्व

साधारण में इसके कहने सुनने वालों का सुनना तो मानों अपने माता पिता का रहस्य उद्घाटन करना है । इस के तो जो अधिकारी हों उन्हीं से कहना सुनना योग्य है । इस मरे लिखने का तात्पर्य यह कि जिन के पास यह ग्रंथ रहे वह इस को किसी साधारण स्थान में वा साधारण लोगों के हाथ में न फेंक दें वरन्च इस का बहुत यत्नपूर्वक रखें ।

ऐसे ही युगल स्वरूप के चरणचिन्ह वर्णन में भक्त सर्वस्व, श्री महाप्रभु जी के वर्णन में श्री वल्लभीयसर्वस्व, चारो संप्रदाय के सविस्तार वर्णन में वैष्णवसर्वस्व और भगवद्भक्ति निरूपण में तदीय सर्वस्व, भक्ति सूत्र का भाष्य, चंद्रावली नाटिका और अनेक लीला तथा रहस्य के गद्य पद्य मय ग्रंथ मेरे पास प्रस्तुत हैं । जिन भवदीय लोगों को देखने की इच्छा हो अनुग्रह करके मुझसे मँगवा लें ।

भाद्रपद शुक्ल ८ **हरिश्चंद्र**
सं. १९३३

मूर्त्तिपूजन का निषेध करनेवाले दयानंद प्रभृत लोगों के गले की

दूषणमालिका

रचनाकाल सन् १८७०।— सं.

श्री श्रीवल्लभोविजयते ।

भूमिका

अथ दयानंदनामी क्या जाने कौन जाति वा किस आश्रम के कोई नग्न पुरुष सब देशों में भ्रमण करते हुए सनातन सधर्म्म रूपी सूर्य्य को राहु की भाँति ग्रास करते हुए मूर्खों और आलस्य से भरे हुए जीवों के हृदय-वस्त्र को अपने रंग में रंगते हुए इसी बहाने अपना नाम लोगों में विदित करते हुए और अपने वाक्य बना के आडम्बर से साधु लोगों का हृदय दहन करते हुए काशी में आये और दुर्गाकुण्ड निवासियों के सहवासी हुए और उनने जो व्यर्थ उपद्रव किये वह सब पर विदित हैं अब उनने एक छोटी सी पुस्तक छपवाकर लोगों पर यह विदित करना चाहा है कि मैं हारा नहीं इस से मैंने ऐसा विचार किया कि ऐसे मनुष्य से सम्भाषण करना उचित नहीं और पत्रद्वारा शास्त्रार्थ करना जिसमें सब लोगों पर सदसत का प्रकाश और हारने जीतने का निश्चय हो जाय इस हेतु यह दूषणमालिका उनके गले में पहिनाई जाती है । उनको उचित है कि इन सब प्रश्नों का प्रति पद उत्तर दें और इसी प्रकार से बराबर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ होय और इतने प्रश्नों का एक जीतने के ईश्तिहार की भाँति उत्तर न दिया जाय क्योंकि इन शब्दों के प्रति शब्द का उत्तर न देने से परास्त समझ जाँयगे और प्रश्नोत्तर करते करते जो थक जाय और जिसकी बुद्धि में उत्तर की युक्ति न आवे वह हारा समझा जायगा ।

१८७० ई. **हरिश्चंद्र**
काशी

दूषणमालिका

१. आपने जो पुस्तक छपवाई है उसमें वेद के मंत्र हैं सो वेद के मंत्र शूद्रों तथा मलेच्छादिकों के हाथ में देने से आप को दोष हुआ कि नहीं ।

२. आप कौन आश्रम और किस जाति के हैं और किस धर्म को मानते हैं जो कहिये कि हम वेदधर्म को मनते हैं तो वेदधर्म को मानना इस में क्या प्रमाण और ख्रीष्ट और मुहम्मदी मत को न मानना इसमें क्या प्रमाण । जो कहिये कि हम उसी कुल में उत्पन्न हैं इससे यही धर्म मानना योग्य है तो आप मूर्त्ति पूजक के वंश में हो कि नहीं ।

३. जो आप कहैं कि हम अमुक जाति के थे अब योगी हुए हैं तो आप के पिता पुरुषा सब उसी जाति में उत्पन्न हुए इसको किसने देखा है और उस में क्या प्रमाण है ।

४. जो कहिये कि शिष्टाचार प्रमाण है और हम सुनते आते हैं कि हम अमुक वंशीय हैं तो इसी भाँति मूर्त्ति पूजनादि शिष्टाचार क्यों नहीं मानते ।

५. जो कहो कि वेद नहीं है तो दयानंद स्वामी अमुक वंश में भये यह वेद में कहाँ है ।

६. आपने सम्पूर्ण वेद देखा है ।

७. जो कहिये कि वेद बहुत है और लुप्त प्राय है इस से सब नहीं देखा है तो वेद में अमुक वस्तु नहीं यह कहना व्यर्थ हो जाता है ।

८. जो आप वेद जानते हैं तो उन के भेद कहिये ।

९. बारहो उपनिषत् किन किन ब्राह्मणों वा संहिता के अंत भाग है ।

१०. जो कहिये कि अमुक के हैं तो वे सब वेद के भीतर हैं या बाहर । जो भीतर हैं तो अश्वमेध प्रकरण में जब एक बेर सब वेदों को गिनाय गये तो फिर वेद के बाहरवाली कौन ब्रह्मविद्या थी जिसे पुराण के नाम से चर्व्वित चर्व्वण किया ।

११. अश्वमेध प्रकरण में पुराण शब्द का अर्थ ब्रह्मविद्या है इस में कौन सा प्रमाण है और वसुरुद्रादि शब्द का अर्थ परमेश्वर ही है लिंगधारी देवता नहीं इस में क्या प्रमाण और वेद में जहाँ सहस्रनयन वज्रपाणि इत्यादि विशेषण दिये वहाँ क्या व्यवस्था और जो व्यवस्था आप करें वही ठीक इस में क्या प्रमाण ।

१२. और भी कई स्थान पर पुराण का अर्थ प्राचीन और इतिहास ही है इस का प्रमाण ।

१३. ऋग्वेद के कै विभाग हैं और इसमें कितनी शाखा और कितनी संहिता और कितने उपनिषत् और कितने ब्राह्मण इत्यादि हैं कहिये ।

१४. और इन सब के आदि अंत के मंत्र सूचना के हेतु कहिये और इन की पुस्तकें उपलब्ध होंगी और आपने इन सबों को किससे अधीत किया है ।

१५. इसी भाँति यजुर्वेद का सब वृतांत कहिये ।

१६. ऐसे ही सामवेद का कहिये ।

१७. इसी प्रकार ब्यौरेवार अथर्ववेद का संपूर्ण वृतांत कहिये ।

१८. जो कहियेगा कि एक मनुष्य सब नहीं जान सकता इससे हम सब नहीं जानते तो ७ वें प्रश्न का दोष आप के माथे पड़ेगा ।

१९. इन चारों वेदों को कौन स्वर से पढ़ना चाहिये और उनके स्वर की रीति वेद में किस स्थान पर लिखी है ।

२०. वे सब स्वर जो आर्ष रीति के हैं सोई हैं या कुछ पलट गये । जो कुछ पलट गये तो इन के पलट जाने में क्या प्रमाण और जो वे ही हैं तो उन के वे ही होने में और न पलट जाने में क्या प्रमाण ।

२१. वेदों के या मंत्रों के आप जो अर्थ करें सोई अर्थ है दूसरा अर्थ नहीं इस में क्या प्रमाण ।

२२. आप ने ११ ग्रंथ आर्ष माने उनके अतिरिक्त ग्रंथ अप्रमाण हैं इसमें क्या प्रमाण ।

२३. ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है इसमें क्या प्रमाण और जो आयुर्वेद प्रचलित है वही प्राचीन है इसमें निश्चायक क्या ।

२४. जो कहिये कि उसका प्रमाण उसी में है तो सब पुराणों में भी पुराणों की प्रशंसा है इस हेतु इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

२५. चरक आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

२६. सुश्रुत आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

२७. धनुर्वेद ही यजुर्वेद का उपवेद है इस में प्रमाण ।

२८. धनुर्वेद का अब कौन ग्रंथ मिलता है बताइये और जो मिलता है तो वही आर्ष है इसमें प्रमाण दिखलाइये ।

२९. जो कहिये कि धनुर्वेद के ग्रंथ लुप्त हो गये तो आप इस विषय के अज्ञ ठहरे तो फिर ७ प्रश्न का दोष पड़ा ।

३०. सामवेद का उपवेद गान है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

३१. गान विद्या के कौन ग्रंथ आर्ष इस में भी श्रुति पूर्व्वक कहो ।

३२. अथर्व्ववेद का उपवेद शिल्प है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

३३. शिल्प विद्या में कौन-कौन ग्रंथ मिलते हैं और वे श्रुति संमत भी हैं इस में प्रमाण कहिये ।

३४. चारो उपवेद जो आप न जानते होंगे तो उस विषय के अज्ञ होने से ७ प्रश्न का दोष पड़ैगा ।

३५. शिक्षा का कौन ग्रंथ है और उसके आर्ष होने में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

३६. कल्प जो प्रचलित है सोई आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये और कल्प के कौन ग्रंथ मिलते हैं कहिये !

३७. अष्टाध्याई आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण कहिये ।

३८. महाभाष्य प्रमाण है इस में श्रुति प्रमाण कहिये ।

३९. निरुक्त कौन ग्रंथ प्रचलित है और वही आर्ष भी इसमें युक्ति और प्रमाण दीजिये ।

४०. छंद के कौन ग्रंथ आर्ष हैं और उनके आर्ष होने में क्या प्रमाण और उनके स्वरूप बदले नहीं इसमें श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४१. भृगुसंहिता आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये और प्रचलित भृगुसंहिता वही प्राचीन भृगुसंहिता है इस में युक्ति कहिये ।

४२. ये बारह उपनिषत् वेदांत शास्त्र हैं यह बात कहाँ लिखी है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४३. शरीरिक सूत्र आर्ष हैं इसमें प्रमाण दीजिये और यह वही सूत्र है जो व्यास ने कहा इस में युक्ति कहिये ।

४४. कात्यायन आदि सूत्र आर्ष हैं इन में प्रमाण कहिये और आदिपद से आप और किसे लेते हैं ।

४५. योगभाष्य आर्ष है इसमें श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४६. मनुस्मृति यह वही है जो मनुने कहा है कालबल से बदली नहीं इस में युक्ति और श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४७. मनुस्मृति में जिन वाक्यों को आप नहीं मानते वे कल्पित हैं इस में प्रबल युक्ति और श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४८. यही महाभारत महाभारत है इसमें क्या प्रमाण और कौन सी युक्ति है ।

४९. महाभारत में जिन श्लोकों को आप कल्पित मानते हैं उनके कल्पित और बाकी आर्ष होने में कौन प्रमाण और कौन सी युक्ति है ।

५०. श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान ने जो "मे" मत "मां" इन शब्दों से अपनी भक्ति यही परम धर्म है यह कहा है यह प्रमाण है या नहीं ।

५१. जो कहो कि "मे" इत्यादि शब्दों का अर्थ आत्मा है तो और सौ स्थान पर जहाँ ये शब्द आये हैं वहाँ इनका आत्मा अर्थ क्यों नहीं होता और दूसरे स्थान पर इन शब्दों का अर्थ अपना मुझे होय श्रीमद्भगवद्गीता ही में आत्मा अर्थ होय इसमें प्रमाण और प्रबल युक्ति दीजिये ।

५२. इन ऊपर के लिखे हुए ग्रंथों को आप सब भाँति से जानते हैं कि नहीं । जो सब को न जानियेगा

जो सर्वज्ञ न ठहरियेगा और जो सर्व्वज्ञता विना कोई बात कहियेगा तो ७ प्रश्न का दोष पड़ेगा ।

(इन ऊपर लिखे ग्रंथों को दयानंद प्रमाण मानते हैं)

५३. शिष्टाचार प्रमाण है कि नहीं ।

५४. जो कहिये कि जो अविरुद्ध अर्थात् वेद में लिखा है वह प्रमाण बाकी अप्रमाण तो आप नित्य उठ के सब वेद में लिखी हुई बातें करते हैं तो इन सब बातों को वेद से सिद्ध कीजिये कि आप मट्टी लगाते हैं सो वेद में कहाँ लिखा है, आप कौपीन धारण करते हैं यह कहाँ लिखा है, मैं एक दिन आप के दर्शन को गया था उस दिन आप बाजार के लड्डू और गुलाबजामुन खाते थे यह कहाँ लिखा है और उस दिन आप पीतल की लोटिया में जल पीते थे यह वेद में कहाँ लिखा है, आप मूर्ति पूजन और पुराणों का निषेध करते हैं यह कहाँ लिखा है ।

५५. जो कहिये यह तो मनुष्य की परंपरा प्राप्त ही है तो मूर्त्तिपूजन भी परंपरा प्राप्त है और शिष्टाचार अवश्य माननीय है और भी इसमें यह बात है कि मूर्त्ति पूजन का यद्यपि इस लोक में कुछ फल न हो तथापि यदि परलोक में इसका फल सत्य हुआ तो आप फिर महापाप के भागी हुए और जो न सत्य हुआ तो हम लोगों की कुछ हानि नहीं बल्कि शिष्टाचार मानने से हमारी प्रशंसा ही होगी ।

५६. ये यथा माम्प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहं । इस भगवत् प्रतिज्ञा का क्या आशय है और यथा शब्द के अंतर देवतादिक और मूर्त्ति आदिक नहीं है इसमें प्रमाण पूर्व्वक नियम कहिये ।

५७. कालाग्निरुद्रोपनिषत् और तापनीयादिक श्रुति को आप क्यों नहीं मानते इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

५८. सब त्रैवर्ण के वंश वे ही हैं इस में क्या प्रमाण युक्ति पूर्व्वक कहिये ।

५९. सब वेद की पुस्तकें और उनके सब मन्त्र वे ही हैं जो ईश्वर से निकले और इतने काल तक उनका स्वरूप कुछ नहीं बदला और ये सब वे ही आर्ष अक्षर हैं इस में किसी ने कपोल कल्पित मन्त्र नहीं मिलाये इस में क्या प्रमाण और क्या युक्ति है कहिये ।

६०. जो कहिये कि परंपरा प्राप्त हैं तो परंपरा प्राप्तता से वेद का तो निश्चय होय और परंपरा प्राप्त मूर्तिपूजन न माना जाय इसमें क्या प्रमाण और जो आप कहिए कि हम अपनी बुद्धि से समझते हैं कि ये वेद वे ही हैं तो आप की बुद्धि ठीक है इसमें क्या प्रमाण और कौन सी युक्ति है ।

६१. बात सौ पण्डित लोगों की मानैं कि एक आप की ।

६२. जो कहिये कि ऐसा लिखा है कि एक पंडित सौ मूर्ख इतना होता है तो यह सब अज्ञ हैं हम पंडित हैं हमारी बात मानो तो इस में क्या प्रमाण है और क्या युक्ति है कि आप ही पंडित हैं और ये सब अज्ञ हैं ।

६३. वेद की पुस्तक पर जो कोई लात रखदे तो आप उसको दोष भागी कहेंगे तो वह दोष भागी कैसे होगा क्योंकि मूर्तियों में तो आप कहते हैं वहाँ क्या है पत्थर है तो उस वेद की पुस्तक में क्या है कागज और सियाही है जो हमारे हाथ की बनाई है और हमारे हाथ का लिखा है और अक्षर है सो एक प्रकार का संकेत है तो ऐसी जड़ वस्तु के अनादर से क्या दोष है । जो कहिए उन से वेही मन्त्र समझे जाते हैं जो हमारे धर्म्म स्वरूप हैं इस से आदर के योग्य हैं तो वे मूर्त्तियाँ जिन से हमारे पूज्य देवता के आकार का स्मरण होता है क्यों नहीं मानने के योग्य हैं ।

६४. आप के पिता या किसी पुरुषा का मृत देह या उनके चित्र जिससे उनके स्वरूप का ज्ञान हो या कागज पर उनका नाम लिख के इन सब का अनादर करैं और इन पर बुरी वस्तु डालैं तो आप को बुरा लगैगा कि नहीं क्योंकि ये सब तो पृथ्वी तत्व के अंश और जड़ वस्तु हैं ।

दयानन्द जी ने ४ प्रश्न किए थे इस हेतु उन के चार को चार बेर चौगुन करके चौंसठ प्रश्न किए हैं इन का उत्तर उन के अक्षरश: देना उचित है ।

●

तहक़ीक़ात - पुरी की तहकीकात

रचना काल सन् १८७० । 'बनारस लाइट प्रेस' से सन् १८७१ में प्रकाशित । इस सिलसिले में एक घटना का उल्लेख कर देना ठीक होगा । ग्यारह वर्ष की उम्र में भारतेन्दु बाबू जगन्नाथ पुरी गये । वहाँ जगन्नाथ जी की मूर्ति के साथ भैरव जी की मूर्ति बैठाने की प्रथा थी । बालक हरिश्चन्द्र को यह प्रथा बुरी लगी । इस सन्दर्भ में उन्होंने नामी गिरामी लोगों के पास पत्र लिख इस विषय पर उनकी सम्मति माँगी । इसीके बाद सन् १८७१ में किसी पण्डित महाशय ने 'तहकीकात पुरी' नामक एक किताब लिखी । उस किताब के खण्डन में भारतेन्दु बाबू ने तहकीकात पुरी की तहकीकात ग्रन्थ लिख यह सिद्ध किया कि श्री जगदीश पूर्ण पुरुषोत्तम पीठ वैष्णव स्थान है । यहाँ भैरव की प्रतिमा नहीं हो सकती ।— सं.

तहकीकात पुरी की तहकीकात

इसके पूर्व में कि मैं 'तहकीकात पुरी' पर कुछ अपनी अनुमति प्रकट करूँ, मैं उसी तहकीकात पर कुछ विचार करता हूँ जिसे देख के लोग उसका संपूर्ण वृत्तांत जान जायँ और धोखा न खायँ ।

अब पहिले ही से विचार कीजिए इसका नाम 'तहकीकात पुरी' है धर्म विचार की जो पुस्तक और सबके पहिले फारसी शब्द 'बिस्मिल्ला गलत' । इसको जाने दीजिए पुस्तक से आरंभ कीजिए ।

इस पुस्तक में पहिले ही लिखा है 'काशी धर्म सभा निर्णय:' अब कहिये किस मिती की धर्म सभा में निर्णय हुआ है कुछ दिन मिती भी है कि यों ही धर्म सभा का ध्यान करके निर्णय किया गया है । जो हो । आगे उसमें लिखा है, यथा नियमितं भोगराग वितरण संरभ्रणाय श्री जगन्नाथ मंदिरे श्री जगन्नाथ समकाल स्थापित भैरववोत्पाटनंकैश्चिद्विद्वेषिभि: कृतन्ततस्थापनाय यत्र श्री मोहनलाल शर्मा पुरींगत्वा इत्यादि । वाह वाह क्या सुंदर संस्कृत वैयाकरण लोगों के देखने योग्य है क्या कहूँ स्थान थोड़ा है नहीं तो प्रति पद उद्धृत करके दिखा देता । इसका अर्थ यह है कि भैरव की मूर्त्ति श्री जगन्नाथ जी के समकाल से स्थापित थी सो अब उच्छिन्न हो गई । पंडित जी ने बिना जगन्नाथ महात्म देखे इतना परिश्रम क्यों व्यर्थ किया भला प्रत्यक्ष नहीं तो सपने में तो देख लेते । हाय मुझे इनके इस व्यर्थ परिश्रम का सोच होता है और सुनिये इस व्यवस्था के नीचे लिखा है कि 'गवर्नमेंट को इसमें सहायता देनी उचित है, छि: छि: गवर्नमेंट को क्या पड़ी है कि इसके बीच में क़ूदेगी । यह दशा तो जितने पृथ्वी पर मंदिर हैं सब में है । जब गवर्नमेंट सब पर हाथ लगावैगी तब इधर भी देखेगी, यह भी हुआ । इसके नीचे श्री काशी धर्म सभासद पं. बस्ती राम जी की सम्मति है । अब मैं फिर पंडित जी से पूछता हूँ कि संसार में जितनी सभा हैं उनकी यह रीति है कि लेखाध्यक्ष वा सभापति का अंत में हस्ताक्षर होता है सो यह धर्म सभा के किस नियम में लिखा है कि एक सभासद भी सम्मति कर सकता है और किस सभा में आपने इस व्यवस्था पर सभासदों से सम्मति ली थी । जो कहिए कि मैंने आप ही लिखा है तो बताइए कि धर्म सभा के प्रत्येक सभासद को कितनी व्यवस्था देने का अधिकार है और आप की धर्म सभा के कितने सभासद हैं । वाह वाह के धर्म सभा जिसके ऐसे मनमाने नियम, इसको भी जाने दीजिये । इसके आगे एक दूसरी संस्कृत व्यवस्था

है जिसमें दो प्रश्नों के उत्तर हैं — पहिला जो कोई औद्धत्य से किसी देव मूर्त्ति को उखाड़ दे तो उसको क्या दोष है । इसका उत्तर देने के पहिले मैं पूछता हूँ कि वह देव मूर्त्ति स्थापित थी इसमें कौन प्रमाण या बिना बात ही कहना कि विश्वनाथ जी के सिर पर गरुड़ की मूर्ति थी । उसको शैवों ने तोड़ के फेंक दिया हम फिर बैठावेंगे । जो कहो कि प्राचीन काल से न थी तो किसी को उसका उखाड़ना भी तो अयोग्य है । मैं कहता हूँ कि पहिले तो किसी की स्थापना ही में प्रमाण नहीं और जो किसी ने स्थापना किया तो वह योग्य है वा अयोग्य । जैसा किसी शिव जी से बड़े देवता के ऊपर किसी क्षुद्र देवता या किसी विष्णु गण की मूर्ति बल से बैठा दे तो वह योग्य होगी वा अयोग्य । मैं कहता हूँ·अयोग्य ही होगी । इसमें प्रमाण यही है कि किसी बड़े देवता के सिर पर या परम निकट किसी क्षुद्र देवता की मूर्ति अंगी भाव से देखने में नहीं आती । जाने दीजिये इस संस्कृत व्यवस्था का विचार मत कीजिये क्योंकि इस पर बड़े बड़े लोगों के हस्ताक्षर हैं और आगे विचार कीजिये । इस तहकीकात की हिंदी के पूर्व दो श्लोक लिखे हैं जिनमें पहिले का यह अर्थ है । हम लोग अद्वैतवादी विष्णु, शिव के ईश्वरता का विचार नहीं करते पर जो लोग शिव जी से द्वेष करते हैं उसकी हम दुरुक्ति काटते हैं । इसमें कोई विष्णुद्वेष की शंका न करै । महाराज अद्वैतवादी जो आप पक्के नहीं हैं अभी कच्चे अद्वैतवादी हैं क्योंकि आप अभी साहेब लोगों के संग नहीं खाते । हाँ और यह तो कहिये कि जब आप अद्वैतवादी हैं तब आप को दुरुक्ति और उसका काटना और विष्णु द्वेष की शंका की डर कहाँ से आई क्योंकि-का विधिः को निषेधः । स्मरण कीजिये आप जैसे हों उससे मुझे कुछ काम नहीं परंतु पंडितों की तो समान दृष्टि चाहिए । शुनिचैवश्व पाके च पण्डितास्समदर्शिनः आप तो समान दृष्टि वाले हैं आप से और दुरुक्ति छेदन से क्या काम और फेर यह तो कहिये कि आप श्री जगन्नाथ जी के भोग का प्रबंध करते हैं कि शिव विष्णु का भेदाभेद करते हैं । यहाँ शिव का द्वेषी कौन है जिसकी दुरुक्ति काटने को आप प्रवर्त्त भए हैं । जो कहिये कि महंत और पंडे तो आप उनकी दुरुक्ति काटते हैं कि उनकी जीविका काटते हैं, यह केवल उन की मनोवृत्ति इसी बहाने प्रकट हो गई ।

जो हो अब मैं आगे इस पुस्तक की भाषा पर विचार करता हूँ । पर इससे कोई यह न समझै कि मैं केवल द्वेषि बुद्धि से लेखनी लिए हूँ । ऐसा कदापि नहीं क्योंकि जो विषय कि मैं इस स्थान पर नहीं खंडन करता उनसे समझिये कि मेरी संमति है मुझे केवल इस पुस्तक के सब दफों में से केवल २, ३, और ९ दफे में कुछ कहना है । और शेष पर मैं पूर्ण रीति से संमति करता हूँ क्योंकि पुरी के और सब अन्याय उसमें ठीक ठीक लिखे हैं । जैसा दूसरे दफे में लिखते हैं कि 'श्री जगन्नाथ जी के मंदिर में रत्न सिंहासन और प्राचीन काल से ५ मूर्ति स्थापित थीं जैसा श्री जगन्नाथ १ बलभद्र २ सुभद्रा ३ सुदर्शन ४ भैरव ५ । और उस मूर्ति को वैष्णवों ने बंगला सन् १२०८ में उखाड़ के फेंक दिया ।'

तीसरे दफा में फिर लिखते हैं कि पं. बस्तीराम जी के बयान से जाना गया कि मूर्ति पहिले से थी पर किसी भाँति उसका अंग भंग हो गया तब महाराज मानसिंह ने जीर्णोद्धार किया । उसी को आचारियों ने तोड़ा । इस दफे में सांप्रत काल के श्री महाराज सवाई रामसिंह की स्तुति भी है ।

अब मैं इसका विचार करता हूँ, सुनिये । पहिले तो विष्णु के समान कोई देवता बैठ ही नहीं सकता । क्योंकि विष्णु के समान अन्य देव तुलना करने से बड़ा दोष होता है जैसा वशिष्ठ — श्री महाविष्णुमन्येन हीनदेवनदुर्मतिः । साधारणं सकृद्ब्रूते मोंत्यजोनांत्यजोंत्यजः । और भी वासुदेवं परित्यज्य योन्यदेवमुपासते । तृषितो जान्हवीतीरे कूपंखनति दुर्मतिः ।

दूसरे कहीं भैरव और विष्णु को एक संग बिठाने की विधि नहीं है । तीसरे शैव पुराणों से ज्ञात हुआ कि भैरव विष्णु का अवतार है इससे जब साक्षात् विष्णु विराजते हैं तब भैरव का क्या काम है । चौथे जगन्नाथ माहात्म्य के देखने से जाना गया कि जगन्नाथ जी नृसिंह के स्वरूप हैं और नृसिंह से भैरवादिक डरते हैं जैसा इस वाक्य से स्पष्ट है । डाकिनी शाकिनीभूत प्रेतविघ्नपभैरवा । नृहरेर्गर्ज्जनंश्रुत्वा पलायन्तेपरांमुखाः ।

पाँचवे तामस देवताओं की पूजा का निषेध है इससे भैरव सात्विकों के पूजने योग्य नहीं जैसा श्री मदभागवत में लिखते हैं । मुमुक्षवोघोर रूपान् हित्वाभूतपतीनथ । नारायण कलाश्शान्ता भजन्तिह्यनुसूयवः ।

छठें पंचायतन बिना केवल दो देवता की विधि किसी शास्त्र में देखने में नहीं आती ।

सातवें विष्णु के आवरण में जहाँ भैरव की पूजा का विधान है वहाँ भैरव को बराबर बिठाना नहीं लिखा है । दुर्गा और भैरव की पूजा नीचे करनी लिखी है ।

आठवें जो आवरण पूजा में भैरव कहाँ हैं तो दुर्गा गरुड़ विष्वक्सेन नारदादिक क्यों नहीं है ।

नवें बहुभक्त होना यह बड़ा दोष है । एकोदेवः केशवोवा शिवोवा । अत्रिस्मृति श्लोक ३३८ । बहुभक्तोदीनमुखो मत्सरीक्रूर बुद्धिमान् । एतेषांनैवदातव्यः कदाचिच्च परिग्रहः ।

दसवें एक भगवान सर्व व्यापी है उसी की पूजा में सबकी पूजा हो जाती है जैसा — श्रुति । एकोदेवस्सर्व्वभूतेषु गूढ़ः सर्व व्यापी भूतान्तरात्मा । कर्माध्यिक्षस्सर्वभूताधिवासस्साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।

अनेक नाम उसी के हैं जैसा श्रुति । सुपर्ण विप्राः कवयोवचो भिरेकं संतं बहुधा कल्पयंति । जैसा दूसरी श्रुति में । इंद्रं मित्रम्वरुणमग्निमाहुरथा दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान । और यह एक देव भगवान नारायण ही हैं जैसा श्रुति स्मृति कहती हैं । एको हवै नारायणो आस । सर्वे वेदायत्पद मा मनन्ति । वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः । मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट है तो अलग भैरव की पूजा अप्रयोजन है । उसी की पूजा में सबकी पूजा आ गई । जैसा पुराण में लिखते हैं — यथाहि स्कन्द शाखानान्तरोर्मूलावसेचनं । विष्णोराधनं तद्वत्सर्वेषामात्मनश्चहि । इत्यादि ।

ग्यारहवें भैरव शिव के स्वरूप हैं इनकी पूजा बिना भस्म त्रिपुंड के नहीं जैसा बिना भस्म त्रिपुंड्रेण बिना रुद्राक्ष मालया । पूजितोपि महादेवो नस्यात् पुन्य फल प्रदः इत्यादि और विष्णु पूजन में त्रिपुंड का निषेध है जैसा आचार माधव के दूसरे अध्याय में बौधायन । ब्राहमणानामयन्धर्मो यद्विष्णोर्लिंग धारणं । मदन पारिजात में ब्रहमपुराण का वाक्य है उर्द्धपुण्ड्रन्द्विजः कुर्यात । ब्रहमरात्र का वाक्य — धारयेत्क्षत्रियाद्योपिविष्णुभक्तोभवेद्यदि । निर्णय सिंधु मदन पारिजात । पृथ्वी चंद्रोदय में भी — उद्र्ध्वज्वतिलकंकुर्य्यान्नकुर्य्यद्वै तृपुंड्रकं ! आचारार्क कमलाकरान्हिक में भी उद्र्ध्वपुंड्रविहीनस्य स्मशान सदृशम्मुखं । सार संग्रह में । ब्रहमरात्र में भगवान का वाक्य योनधारयते मर्त्यो मामकं चिन्हमीदृशं । तंत्यजामि दुरात्मानंमदीयाज्ञा ऽतिलंघिनं ।तो इन वाक्यों से वैष्णवों को और विष्णुपूजन में ऊर्ध्वपुंड्र अवश्य आया 'भस्मी भवति तत्सर्व्वमूर्ध्वपुंड्रेविनाकृते' और भैरव के पूजन में त्रिपुंड्र की नित्यता तो अब कहिये एक कालावच्छिन्न पूजा कैसे कीजियेगा और एक स्थान पर भैरव विष्णु की मूर्ति कैसे बैठाते हो ।

बारहवें भैरवादिक उग्र देवता की पूजा तो सब लोगों को करनी ही अयोग्य है फिर उनको रत्न सिंहासन पर बिठाना और जगन्नाथ जी के संग पूजा करना कहाँ हो सकता है जैसा श्रीमद्भागवत में । मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ! नारायण कलाश्शान्ता भजन्तिह्यनुसूयवः ।। २५ ।। रजस्तमः प्रकृतयस्समशीलाभजन्तिवै । पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्य्य प्रजेप्सवः ।। २६ ।। तथा सार संग्रह में वशिष्टस्मृति । रजस्वलांसूतिकाञ्च श्वानंकाकञ्चगर्द्दभं । कुक्कुटम्विड्वराहञ्च पूपपाखंडिनन्तथा । वहिर्देवालकं स्पृष्ट्वा सबासाजलमाविशेत् । गणेशंभैरवं दुर्गा रुद्रादीनुग्रदेवतान् । योर्चयेद्भक्तिमान्विप्रो सवैदेवालकस्मृतः । और भैरवादिकों के पूजन से वैसी ही गति मिलती है परम पद नहीं मिलता है जैसा श्रीमुख से आज्ञा करते हैं ७ अध्याय में । कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते ऽन्य देवता । तंतंनियममास्थाय प्रकृत्यानियताः स्वया ।। २० ।। योयो यांतातनुंभक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्यतस्याचलीं श्रद्धां तामेवविदधाम्यहं ।। २१ ।। सतयाश्रद्धयायुक्तस्तस्या-राधनमीहते । लभतेच ततः कामान् मयैव विहितान्हितान् ।। २२ ।। अंतवत्तुफलंतेषां तद्भवत्यल्पमेधसः । देवानदेवयजोयान्ति मद्भक्तायान्तिमामपि ।। २३ ।। इससे मोक्ष की कामनावाले को दूसरे देवता की पूजा सर्वथा अयोग्य ही है और मोक्ष दान शक्ति केवल भगवान ही को है जैसा आचार प्रकाश से मत्स्यपुराण का वचन । आरोग्यं भास्करादिच्छेत् धनमिच्छेत् हुताशनात् । ज्ञानम्महेश्वरादिच्छेन्मोक्ष मिच्छेज्जनार्दनात ।। दक्ष स्मृति में भी अंत दशा में । योगमभ्यसमानस्य ध्रुवंकश्चिद्दुपद्रवः । विद्यावायदिवाविद्या शरणन्तु जनार्दनं । श्रुति भी कहती है यो ब्राहमणं विदधाति पूर्व्वं योवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तंहदेवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहम्प्रपद्ये । इससे एकांत चित्त होकर भगवत्सेवा ही मुख्य है । बिना अनन्यता के फल नहीं होता जैसा श्री मुख से गाते हैं । ९ वें अध्याय में । महात्मनस्तुमाम्पार्थ दैवींप्रकृतिमाश्रिताः । भजन्त्यनन्य मनसो ज्ञात्वाभूतादिमव्ययं ।। १३ ।। अनन्याश्चिन्तयन्तो मां येजनाः पर्य्युपासते । तेषान्नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं-वहाम्यहं ।। २ ।। अपिचेत्सु दुराचारो भजतेमामनन्यभाक् । साधुरेव समन्तव्यस्सम्यग्व्यवहितोहिसः ।। ३० ।। क्षिप्रंभवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिनिगच्छति । कौन्तेयप्रतिजानीहि नमेभक्तः प्रणश्यति ।। ३१ ।। तो इन बातों से यह निश्चय है कि जो लोग मोक्ष चाहने वाले हैं सर्व्वं देव मय सर्वाराध्य मुमुक्ष शरण श्रीकृष्णचंद्र की पूजा उपासना करें और आग्रह कलुष से कलंकित चित्त को इन वाक्यों से स्वच्छ करें और जो किसी प्रकार की

कामनादिक हो तो अपने घर में चाहें जिसकी पूजा करें। श्री जगन्नाथ जी के रत्न सिंहासन पर तो भैरव बैठाने का मनोर्थ चित से दूर करें क्योंकि उपास्य एक भगवान कृष्ण चंद्र ही हैं दूसरा सर्वथा नहीं है जो इतने पर भी मेरी बात न मानैं तो इन वाक्यों के समूह को कान खोल के सुनैं। सार संग्रह में प्रजापति स्मृति। नारायणं परित्यज्य हृदिस्थं प्रभुमीश्वरं। योन्यमर्च्चयतेदेवः परबुध्यासपापभाक।। वशिष्ट भी। नारायणः परं ब्रह्म ब्राह्मणानांहिदैवत। भारत में भी। ब्रह्मणंशितिकण्ठच याश्चान्याः देवतास्मृताः। प्रतिबुद्धान सेवन्ते यस्मात्परिमितम्फलं। पद्मपुराण में भी नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं हरिः। सएवपूज्योविप्रानां पुरुपर्षभनेतरः। नान्यंदेवंनिरीक्षेत नान्यंदेवञ्चपूजयेत्। न चान्यंप्रणमेद्विप्रो नान्यदायतनम्विशेत्। वाराह पुराण में --- यत्सत्वंसहरिर्देवी हरिस्तत्परमंपदं। सत्वं रजस्तमञ्चेति तृतयंचैतदुच्यते। और कहाँ तक लिंगपुराण में भी प्रसिद्ध वाक्य देख लीजिये। उसका प्रसाद कौन लेगा क्योंकि वह तो रुद्रांश है और रण्यगर्भोरसजा तमसा शंकर स्वयं। सत्वेनसर्वगोविष्णुस्सर्व्वात्मा सदसन्मयः। सात्विकैस्सेव्यतेविष्णुस्तामसैरेव शंकरः। राजसैस्सेव्यते ब्रह्मा संकीर्णैश्च सरस्वती। इस वाक्य को दोनों कानों से सुनिए। नौद्धोरुद्रस्तथावायुर्दुर्गागणपभैरवाः। यमस्कन्दौनैऋतश्च तामसा देवता स्मृताः। फिर पद्म पुराण में। यक्षराक्षसभूताद्या कृष्माण्डागणभैरवाः। नार्चनीयासदादेवि। विष्णु लोकममीप्सभिः। रजस्तमोभिभूतानामर्च्चनं प्रतिबिध्यते। रौरवन्नरकंयान्तियक्षभूत-गणार्च्चनात्। और भैरव तो कापालिकों के देवता हैं उसका पूजन तो वैष्णव स्मार्त सब को निषिद्ध है जैसा महामेरुतंत्र में संप्रदाय देवता प्रसंग में। कुलाचार्य्य स्तुवामानां सिद्धानाम्मुण्ड ऽमालिनी। तथा कापालिकानाञ्च देवता भैरव स्वयं। और कापालिकों के देवता भैरव हैं यह प्राचीन काव्यों में भी प्रसिद्ध है जैसा प्रबोध चंद्रोदय नाटक में तीसरे अंक में कापालिक का वाक्य। मस्तिष्कान्त्रवसाभिधारित महामांसाहुतिर्जुहवतां। बन्हौ ब्रह्म कपाल कल्पित सुरापानेननः पारणा। सद्यः कृत्त कठोर कण्ठ बिगलत्कीलालधारोज्वलै। रर्च्योनः पुरुषोपहार बलिभिर्देवो महाभैरवः।। १।। इस हेतु सतोमय श्रीकृष्ण की उपासना करो और वह आग्रह छोड़ो।

तेरहवें जो भैरव रत्नसिंहासन पर बैठेगा तो फिर श्रीकृष्णातिरिक्त और देवता का विशेष करके रुद्र का प्रसाद निर्माल्य ग्रहण का निषेध है। जैसा नारायण भट्ट कृत धर्म प्रवृत्ति में। पवित्रम्विष्णुनैवेद्यं सुरसिद्धर्षिभिस्मृतं। अन्यदेवस्य नैवेद्यम्भुक्त्वाचान्द्रायणं चरेत्। तथा स्कंदपुराण के मार्गशीर्ष माहात्म्य में भगवद् वाक्य। अन्येषान्देवतानाञ्च न गृहवीयाच्चभक्षितं। अभक्तनांचपक्वन्न भुक्त्वा वैनरकं व्रजेत्। फिर स्मृत्यर्थ सार में और धर्मसिंधु के तीसरे परिच्छेद में। शैव सौर निर्माल्य भक्षमेचान्द्रायणी। प्रायश्चिचेन्दु शेपर में भी। रुद्रनिर्माल्यस्पर्शे सचैलस्नानं शैव सौर निर्म्माल्य भक्षणे चान्द्रं। इत्यादि। स्मृत्यर्थ सार में भी तथा श्राद्ध हेमादि में स्कंदपुराण का वाक्य। स्पृष्ट्वारुद्रस्य निर्म्मार्ल्यं वाससाआप्लुतश्शुचिः। प्रायश्चित्त मयूख में भी कालिका पुराण का यही वाक्य यों है। स्पृष्ट्वारुद्रस्यनिर्म्मार्ल्यं सबासाआप्लुतश्शुचिः। शिवपुराण में भी शिव जी का वाक्य। अनर्हम्ममनैवेद्यम्पत्रम्पुष्पम्फलज्जलं। इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट है कि जो भैरव रत्न सिंहासन पर बैठेगा तो फिर महा प्रसाद कोई न लेगा और फिर भैरव की तृप्ति भी इन अन्नों से नहीं होती है उसकी तो मदिरा और मांस से होती है बिना वह दिए भैरव कभी न तृप्त होगा और जो मांस मदिरा दोगे तो भगवान विष्णु वहाँ न रहेंगे। देखो भैरव का मांस प्रिय होना कुल धर्म सार धृतमहामेरु तंत्र के वाक्य से स्पष्ट है। किं बेदैः किं पुराणैश्च किम्मन्त्रैश्चैवतर्पितः। चतुःषष्ट्युपचारैः किं किंतयास्तवनादिभिः। विनाकुलोक्तविधिना रुद्रोभूतगणेश्वरः। न प्रीयते महादेवो भैरवः कुल कैरवः। शोणशोणितधारेण विमलेनपलेन च। प्रस्वदमेदपंकेन तथास्थिनिचयेन च। छिंधिभिंधीतिवाक्येन खंगानांचालनेनच। मुण्डानांकर्त्तनेनैव रुण्डानांनर्त्तनेनहि। चटाचटेतिशब्देन अंगानांकंदुकेनच। मदिराया प्रवाहेन मधुकुंडेनवैतथा। वाल्वीसरितयाचैव मासवेनाधरस्यच। श्यामानांदर्शनेचैव विलोमभगचुम्बने। मैथुनेमानिनीनां च कन्यानां कुचमर्द्दने। मुद्राणां भक्षणेचैव मत्स्यानाम्भोजनेनहि। गायकानान्तुगानेन नर्त्तकीनर्त्तनेन च। मृदंगवेणुढक्कानां वाद्येनतुमुलेन च। जय भैरव घोषेण प्रीतस्याच्चण्डिकापतिः। विनापञ्चमकारेण कुलस्यविधिनाविना। सर्व्वतः पूजितश्चापि नस्यात-स्यफलप्रदः। तस्मात्सर्व्व प्रयत्नेन मांसमुद्रादिभिश्शिवं। नित्यं मां पूजयेद्देवि भैरवं भय नाशनं। इति।

अब हम इन बातों को छोड़ के शुद्ध जगन्नाथमाहात्म्य से इस व्याख्या का विचार करते हैं। श्री जगन्नाथ माहात्म्य दो प्रचलित हैं एक तो छोटा लीलादि महोदय धृत सूत संहिता का दूसरा स्कंदपुराण के उत्कल खंड का। अब इन दोनों में तो कहीं रत्न सिंहासन पर भैरव का नाम नहीं है। इसके अतिरिक्त मनोरथ ग्रंथ धृत

मिथ्या पुराण के आग्रह खंड के भैरव माहात्म्य में कहीं लिखा हो तो लिखा हो । अब इस स्थान पर मैं उन वाक्यों को लिखता हूँ सुनिये । सूत संहिता के माहात्म्य में तो रत्न सिंहासन पर सात मूर्ति लिखी हैं जैसा बलभद्र १ सुभद्रा २ श्री जगन्नाथ ३ चक्र ४ माधव ५ लक्ष्मी ६ सत्यभामा ७ 'एवं सप्तविधामूर्ति ब्रह्मण: करयोगत:' 'अयंसप्तविधामूर्तिविधायभगवान् प्रभु: । अवतीर्णसस्वयंवेद वेद्यश्चचतुर्भुज:' । इत्यादि वाक्य प्रसिद्ध है और उसके पाँचवें अध्याय के अंत भाग में और छठे अध्याय के पूर्व में लिखे हैं पुस्तक लेके देख लीजिए । अब उत्कल खंड के माहात्म्य का वाक्य सुनिये । ५ अध्याय । एकदारुसमुत्पन्नाचतुर्दासम्भविष्यति । फिर उसी अध्याय में । नीलाचलगुहासंस्थै विभ्रद्वारुमयम्वपु: । आस्तलोकोपकाराय वलेन च सुभद्रया । सुदर्शनेन चक्रेण दारुनानिर्म्मितेन च । फिर सातवें अध्याय में । तदादेशाद्दारुमयं प्रभोलिंगचतुष्टयं । फिर अठारहवें अध्याय में । चतुर्मूर्तिस्सभगवान् यथापूर्वमयोदित: । फिर भी । ऋकवेदरूपीहलधृक सामरूपोनृ-केशरी । यनुसृष्टिस्त्वियमम्भद्राचक्रमाथर्व्वनस्मृतं । भेदेचतुर्द्धा मेष्टो यमेकराशिरभेदत: । इत्यादि इस इतने बड़े माहात्म्य में पुस्तक भर में भैरव का नाम कहीं नहीं है केवल एक स्थान पर पूजंग में क्षेत्रपालादि को बलिदान लिखा है दूसरे तीसवें अध्याय में मार्कंडेय की यात्रा में मार्कंडेय के मंत्र में भैरव शब्द पड़ा है और कहीं नहीं है फिर रत्नसिंहासन पर भैरव बैठना कहाँ रहा ।

और जो आप कहते हैं कि पूजा शाक्त मत से होनी चाहिए यह तो केवल आप की तोतली बोली है नहीं तो विष्णु पूजा शाक्त रीति से आप न कहते और जगन्नाथ जी में वैष्णवी विधि तो उक्त महात्म्य के इस वाक्य से सिद्ध हैं । यत्सर्व्वम्वैष्णवंकर्म्म प्रतिमारिक कल्पनं । फिर । तेतुवैष्णवमार्गोक्ता: महाभोगोपृथग्विधा इत्यादि और भैरवी विधि और भैरव देवता तो चांडालों के अंत्यजों के हैं इस बात को सुन के क्रोध मत कीजिए । ये कृत्य कल्पतरु नामक प्रसिद्ध स्मार्त्त ग्रंथ के धरे हुए देवी पुराण के वाक्य को सुनिए । वर्णाश्रसविभेदेन देवास्थाप्य तु नान्यथा । ब्रहमातुब्राह्मणैस्थाप्यो गायत्री सहित: प्रभु: । चतुवर्णैस्तथा विष्णु: प्रतिष्ठाप्यस्सुखार्थिभि: । भैरवोपियथावर्णैरन्त्यजानान्तथामतं ।। इत्यादि ।

महाप्रसाद को सब लोग छूते हैं कुछ विचार नहीं करते यह सोचना तो केवल कूपमंडूकता है क्योंकि दक्षिण में बरदराज शेषशायी इत्यादि जितने वैष्णव तीर्थ हैं सबमें क्षेत्र के भीतर स्पर्शास्पर्श नहीं मानते तो कहिये अब कहाँ आप भैरवी क्षेत्र बनाइएगा । थोड़ा सा द्रव्य व्यय करके दक्षिण की यात्रा कीजिए तो महाप्रसाद की महिमा प्रगट हो और प्रसाद की ऐसी महिमा तो श्राद्ध सिद्ध ही है इसमें कौन सा संदेह हो सकता है जैसा सार संग्रह में पद्मपुराण का वाक्य । विष्णोर्न्निवेदितान्नं यो नश्नातित्पर्शशंकया । वायसोविड्वराहश्च विष्टायांजायतेकृमि: ।। तथा नारायणभट्टकृत धर्मत्रवृत्ति में — पवित्राम्विष्णुनैवेद्यंसुर सिद्धर्षिभि: कृतं । नैवेद्य भक्षण विचार ग्रंथ में पद्मपुराण का वाक्य । रमाब्रहमादयो देवास्सनकाद्याशुकादय: । श्री नृसिंह प्रसादोयं सर्व्वैर्गृह्णान्तु देवता ।। उत्कल खंड के माहात्म्य के ३८ वें अध्याय में । पाकसंस्कारकर्तृणां संपर्काचनदुष्यति । पद्मायास्सन्निधानेन सर्व्वेतेशुचयस्मृता: ।। सार संग्रह में वाराह पुराण । नैवेद्यं जगदीशस्य चान्नपानादिकंतुयत् । भक्ष्याभक्ष्यविचारस्तु नास्तितद्भोजनेद्विजा: । ब्रहमवंन्निर्विकारं हि यथाविष्णुस्तथैवस: । विचार येप्रकुर्वन्ति तेनश्यन्तिनराधमा: । उत्कल खंड के माहात्म्य के ३१ अध्याय में । चिरस्यमपिसंशुद्धं नीतंचदूर देशत: । नीलाद्रिमहोदय के माहात्म्य के अध्याय में । किमुक्तेनाचबहुनाचाण्डालस्पृष्टमेवहि । कुक्कुरस्यमुखाद्भ्रष्ट तग्राह्यन्दैवतैरपि । तस्मात्तदन्नंसहसा प्राप्तमात्रतदाग्नियात् । विचारस्यनकर्तव्यान कर्तव्याकथञ्चन । जगन्नाथानमेतव्द्वैशुष्कं कृत्वाथभक्तित: । देशान्तरे जनोयस्तु भक्षेत्प्रतिदिनंद्विजा । सर्वपापविनिर्मुक्तस्सगच्छेत्-परमंपदं ।। इत्यादि अनेक प्रज्वलित वाक्यों से आग्रहियों का हृदयान्धकार नाश होय और साधु लोगों को आनंद होय और सर्व्वात्मा भगवान संसार की रक्षा करै ।

सज्जन लोग इसमें की दुरुक्तियों को क्षमा करें क्योंकि यह तो प्रति उत्तर है स्वयं कथन नहीं है ।

हरि ॐ शांति: शांति: शांति: ।

अष्टादश पुराण की उपक्रमणिका

यह पुस्तक सन् १८७५ में लिखी गयी है। पहली बार यह हरिश्चन्द्र चन्द्रिका सं. ८ - १२ सन् १८७६ में प्रकाशित हुई। —सं.

भूमिका

व्यास जी के बनाए अठारह पुराण लोक में प्रसिद्ध हैं। काव्य वाल्मीकीय रामायण, इतिहास महाभारत, अठारह पुराण, अठारह उप पुराण, पाँच पंचरात्र और पाँच संहिता इनकी समष्टि की संज्ञा पुराण है। अठारह उप पुराण, यथा १. आदि पुराण (सनत्कुमारोक्त) २. नरसिंह पुराण ३. स्कंदपुराण ४. शिव धर्म (नंदीश-प्रोक्त) ५. आश्चर्य पुराण (दुर्वासा का कहा) ६. नारदपुराण ७. कपिल पुराण ८. वामन पुराण ९. वरुण पुराण १०. शाम्ब पुराण ११. सौर पुराण १२. पराशर पुराण १३. भार्गव पुराण १४. मारीच पुराण १५. कालिका पुराण १६. देवी पुराण १७. माहेश्वर पुराण १८. पद्मपुराण। भास्कर, नंदिकेश्वर, रहस्य, उशना और ब्रह्मांड ये पाँच नाम उप पुराणों के और भी मिलते हैं।

१. वशिष्ट पंचरात्र २. नारदीय पंचरात्र ३. कपिल पंचरात्र ४. गौतमीय पंचरात्र और ५. सनत्कुमारीय पंचरात्र और ब्रह्म, शिव गौतम, प्रह्लाद और सनत्कुमार ये पाँच संहिता हैं। हमारे ग्राहकों में बहुत से लोगों की इच्छा होगी कि परिश्रम भी न करें और जान भी लें कि अठारहो पुराणों मे क्या है। हम उनकी इच्छा पूर्ण करने को पुराणों की यह उपक्रमणिका प्रकाश करते हैं, जिससे बहुत सहज में लोग जान जायेंगे कि चार लाख श्लोक समूह के अठारह टुकड़ों में क्या क्या विषय सन्निवेशित है।

हरिश्चंद्र

अष्टादशपुराणोपक्रमणिका

प्रथम ब्रह्मपुराण

यह पुराण पूर्व एवं उत्तर दो भाग में विभक्त है। अत्रस्थ श्लोक संख्या १०००० दस सहस्र। सूत-शौनक संवाद में नाना प्रसंग एवं विविध इतिहास वर्णित हैं।

पूर्व भाग — १. देवता एवं असुर गणों की उत्पत्ति वर्णन २. दक्षादि प्रजापति की उत्पत्ति वर्णन ३. सूर्यवंश वर्णन एवं तन्मध्य में श्रीराम का चतुर्व्यूह कथन ४. सोमवंश वर्णन तत् प्रसंग से श्रीकृष्ण चरित्र कथन

५. द्वीप कथन ६. वर्ष कथन ७. पाताल कथन ८. स्वर्ग कथन ९. नरक कथन १०. सूर्य स्तुति ११. पार्वती जन्म एवं विवाह कथन १२. दक्ष आख्यान १३. एकाग्र क्षेत्र कथन ।

उत्तर भाग — १. पुरुषोत्तम वर्णन २. तीर्थयात्रा विस्तार कथन ३. यमलोक कथन ४. पितृश्राद्ध विधि ५. वर्णाश्रमाचार धर्मनिरुपण ६. विष्णु धर्म कथन ७. युगाख्यान ८. प्रलय कथन ९. योग कथन १०. सांख्य कथन ११. ब्रह्मवाद कथन १२. पुराणांश कथन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखाकर वैशाख मास में स्वर्णयुक्त जल धेनु सहित पौराणिक ब्राह्मण को अर्चना पूर्वक दान करने एवं ब्राह्मण भोजन कराने से चंद्र सूर्य स्थिति काल पर्यंत ब्रह्मलोक में स्थिति होती है एवं संयत होकर यह पुराण श्रवण वा पाठ करने से सकल धर्मफल लभ्य होता है ।

द्वितीय पद्मपुराण

पाँच खंड में ५५००० पचपन सहस्र श्लोक । पंच खंड, यथा १. सृष्टि खंड २. भूमि खंड ३. स्वर्ग खंड ४. पाताल खंड ५. उत्तर खंड ।

प्रथम सृष्टिखंड — पुलस्य-भीष्म संवाद से सृष्ट्यादि का उपक्रम एवं नाना धर्म आख्यान और इतिहास कथन । इस खंड में १. पुष्कर माहात्म्य विस्तार २. ब्रह्मयज्ञ विधि ३. वेदपाठादि लक्षण ४. दान विवरण ५. पृथक पृथक व्रत कथन ६. शैल जाया विवरण ७. तारकाख्यान ८. गोमाहात्म्य ९. कालकेयादि दैत्य वध १०. ग्रहों की पूजा एवं दान विवरण है ।

द्वितीय भूमि खंड — सूत-शौनकसंवाद । १. पितृमातृ पूजा कथन २. शिवशर्मा कथा ३. सुव्रत चरित्र ४. वृत्रासुर वध ५. पृथक् वर्ण आख्यान् ६. धर्म कथा ७. पितृशुश्रूषण कथन ८. नहुष कथा ९. ययाति चरित्र १०. गुरुतीर्थ निरूपण ११. राजा के सहित जैमिनि के संवाद में बहुत सी आश्चर्य कथा १२. अशोक सुंदरी की कथा १३. हुण्डदैत्य वध १४. कामदाख्यान १५. विहुण्ड वध १६. च्यवन-कुंजल का संवाद १७. सिद्धाख्यान १८. ग्रंथ की फल श्रुति ।

तृतीय स्वर्ग खंड — ऋषि लोगों से सौति का कथा-प्रसंग १. ब्रह्मांडोत्पत्ति कथन २. भूमिलोक संस्थान ३. तीर्थ आख्यान ४. नर्मदा की उत्पत्ति ५. नर्मदास्थ तीर्थ उपाख्यान ६. कुरुक्षेत्रादि तीर्थ कथन ७. कालिंदी की पुण्य कथा ८. काशी माहात्म्य ९. गया माहात्म्य १०. प्रयाग माहात्म्य ११. वर्णाश्रम धर्म एवं योग निरूपण १२. व्यासजैमिनि संवाद की पुण्य कथा १३. समुद्र मंथन १४. व्रत कथन १५. श्रेष्ठ माहात्म्य स्तोत्र ।

चतुर्थ पातालखंड — १. श्रीराम का अश्वमेध एवं राज्याभिषेक कथन २. अगस्त्यादि का आगमन ३. पौलस्ति का उपाख्यान ४. अश्वमेघ करणाः देश ५. अश्वमेधीय घोटकगमन ६. नाना राज कथन ७. जगन्नाथ देव का वृत्तांत ८. वृंदावन का माहात्म्य ९. लीलावतारी की नित्य लीलानुकथन १०.वैशाख स्नान दान एवं अर्चन ११. धरा-वराह संवाद १२. यम एवं ब्राह्मण की कथा १३. राजा का आचरण १४. श्रीकृष्ण का स्त्रोत्र १५. शिवशंभु मिलन १६. दधीचि का आख्यान १७. भस्मधारण माहात्म्य १८. शिव माहात्म्य १९. इंद्रपुत्र का आख्यान २०. पुराणवित्जन की प्रशंसा २१. गौतम का आख्यान २२. गीता २३. भारद्वाज के आश्रम में श्रीरामचंद्र का कल्पांतरीय इतिहास कथन ।

पंचम उत्तर खंड — शिव-पार्वती संवाद । १. पर्वत का आख्यान २. जालंधर की कथा ३. श्री शैलादि का विवरण ४. सगर का उपाख्यान ५. गंगा, प्रयाग, काशी एवं गया की पुण्यकथा ६. आम्रादि दानमाहात्म्य ७. महा द्वादशी व्रत कथन ८. चतुर्विंशति एकादशी माहात्म्य ९. विष्णुधर्म कथन १०. विष्णु सहस्रनाम ११. कार्तिक व्रत फल १२. माघस्नान फल १३. जंबूद्वीप के तीर्थ सकल का माहात्म्य १४. साभ्रमती महिमा १५. नृसिंहोत्पत्ति कथन १६. देवशर्मा का आख्यान १७. गीता माहात्म्य १८. भक्ति का माहात्म्य १९. श्री भागवत माहात्म्य २०. इंद्रप्रस्थ की महिमा २१. नाना तीर्थ कथा २२. मंत्ररत्न की कथा २३. त्रिपाद विभूति का कथन २४. मत्स्यादि अवतार कथन २५. श्रीराम का शतनाम एवं तन्माहात्म्य २६. भृगु की विष्णु विभव परीक्षा ।

फलश्रुति — यह पुराण लिखाकर स्वर्णयुक्त पुराणवित् ब्राह्मण को दान करने से अथवा श्रवण करने से वैष्णवधाम की प्राप्ति होती है एवं इसकी अनुक्रमणिका श्रवण करने से समुदाय पुराण-श्रवण का फल लाभ होता है ।

तृतीय विष्णु पुराण [1]

आदि एवं अंत दो भाग में २३००० तेईस सहस्र श्लोक, उसमें आदि भाग ६ अंश में विभक्त । मैत्रेय-पराशर संवाद वराह कल्पोपाख्यान प्रथमभाग प्रथम अंश १. सृष्टि का आदि कारण एवं सृष्टि वर्णन २. देवादिन की उत्पत्ति ३. समुद्र मंथन ४. दक्षादि वर्णन ५. ध्रुव चरित्र ६. पृथु चरित्र ७. प्रचेता आख्यान ८. प्रहलाद उपाख्यान ९. प्रहलाद राज्य का पृथक् आख्यान ।

प्रथम भाग द्वितीय अंश — १. प्रियव्रत उपाख्यान २. द्वीप और वर्ष निरूपण ३. पाताल कथन ४. नरक कथन ५. सप्तस्वर्ग निरूपण ६. सूर्यादि संचार ७. भरत चरित्र ८. मुक्तिमार्ग निरूपण ९. निदाघादि ऋतु संवाद ।

---

१. विष्णु पुराण में २३ हजार श्लोक है परंतु भूलकर सुखसागर के बारहवें स्कंध में तीस हजार लिख दिया । यही नहीं वरंच चंद कवि ने भी रायसा में २३ हजार चार सौ लिख दिया । परंतु रायसा के कई एक पुस्तकों में ३३४०० और रामरत्न गीता में अस्सी हजार लिख दिया परंतु तुलसी सदार्थ में तेईस हजार लिखा । मेरी राय से, जिन जिन पुस्तकों में अंतर है उन सबको यहाँ लिख देता हूँ पाठकगण स्वयं विचार कर लें ।

सुखसागर में मक्खनलाल ने लिखा है । ब्रह्मपुराण दश हजार वो पद्म पुराण पचपन हजार वो विष्णु पुराण तीस हजार वो शिवपुराण चौबीस हजार वो श्रीमद्भागवत पुराण अठारह हजार वो नारद पुराण पच्चीस हजार वो मार्कंडेय पुराण नौ हजार वो अग्नि पुराण पंद्रह हजार चार सौ वो लिंग पुराण ग्यारह हजार वो वाराह पुराण चौबीस हजार वो स्कंद पुराण इक्यासी हजार एक सौ वो वामन पुराण दश हजार वो कूर्म पुराण सत्रह हजार व मत्स्य पुराण चौदह हजार वो गरुड़ पुराण उन्नीस हजार वो ब्रह्मांण्ड पुराण बारह हजार श्लोक हैं ।

पृथ्वीराज रासो में लिखा है —

पद्धरी-ब्रहमन्यदेव सम वासुदेव । अष्टादस पुरान तिन कहै समेव ।।
तिन कहों नाम परिमान ब्रन्नि । जिन सुनत सुद्ध भव हो तन्नन्नि ।।
ब्रहम पुरान दस सहस जुट्टि । जिहि पढत सुनत तन तप्प छुट्टि ।।
पंचास पंचह हज्जार गन्नि । पद्यह पुरान तिन कहयौ ब्रन्नि ।।
तेईस सहस से चारि जानि । विष्णु पुराण विष्णू समानि ।।
चौबीस सहस कहि शिवपुरान । तिहि पढ़त सुनत सम अमियपान ।।
अठार सहस भागवत मेव । करि पार परिष्यत सुक्कदेव ।।
नारद पुरान कहि पाव लाख । तहाँ मुक्ति मोद आनंद भाख ।।
मारकंड नाम तेइस हजार । पौरान पवित्र सो दुख हजार ।।
पंद्रह हजार संख्या सपूर । अग्नि पुरान पढ़ि पाप पूर ।।
चवदे हजार सै पाँच पडिढ । मवषित पुरान सो पाप जड़िढ ।।
ब्रह्मवैव्रत सहसं अठार । केवल गिनान कथि भक्ति सार ।।
रुद्रह हजार लिंगह पुरान । आनन्द अर्थ आगम गुरान ।।
चौबीस सहस बाराह भक्ति । पौरख पुरान तिन अमित सक्ति ।।
हजार इक्यासी कहि विवेक । स्कंद पुरान मव भक्ति एक ।।
इग्यारह सहस बावन सु अछ । पौरान सुनत सुधि अग्ग पछ ।।
सत्रह हजार कूरंम पुरान । भाषा विनोद प्राक्रम गुरान ।।
विद्या हजार मित मछ देव । विधि संख उद्धरे सेव मेव ।
उनईस सहस गरुडह पुरान । श्रोतान वक्त भक्ति डरान ।
ब्रहमांड पुरान बारह सहंस । करि व्यास भक्ति प्रभु कंस नंस ।।
पंद्रह हजार अरु च्यारि लाख । सम ब्रहम व्यास कहि चंद भाख ।।

प्रथम भाग तृतीय अंश — १. मन्वन्तर कथा २. वेदव्यास अवतार ३. नरक उद्वार और कर्म ४. सगर एवं औघ संवाद में सर्व धर्म निरूपण ५. वर्णाश्रम निरूपण ६. श्राद्व कल्प ७. सदाचार कथन ८. मायामोह की कथा ।

प्रथम भाग चतुर्थ अंश — १. सूर्यवंश कथा २. सोमवंश कथा ।

प्रथम भाग पंचम अंश — १. नाना राजा लोगों की कथा २. श्री कृष्णावतार प्रश्न ३. गोकुल कथा ४. श्रीकृष्ण बाल्य लीला पूतनादि बध ५. कौमार अघासुरादि वध ६. कैशोर कंस वधादि मथुरा लीला ७. यौवन द्वारावती लीला दैत्य वध एवं विवाह ८. भूभार हरण ९. अष्टावक्र उपाख्यानं ।

तुलसी शब्दार्थ में लिखा है । अष्टादश पुराण —

ब्रह्म ब्रह्मांड बावन सरस, ब्रह्मवैवर्त सुजान ।
मार्कण्ड अस भविष्य ये, राजस कहैं पुरान ।।१।।
नारद विष्णु बराह अरु, गरुड़ पद्म सुखसार ।
भगवत रूपी भागवत, ये सात्विक निधार ।।२।।
मीन कूर्म अरु लिंग शिव, स्कंधरू अग्नि विचार ।
तामस सिव के अंग ए, सुनतहि मिटै खमार ।।३।।
बावन ब्रह्म दस दस सहस, द्वादस है ब्रह्मांड ।
ब्रह्म वैवर्त दस सहस पुनि, पचपन पद्म अखण्ड ।।४।।
पन्द्रह सहस सुचारि सत, मार्कण्डे सु पुरान ।
साढ़े चौदह भविष्य है, तेइस विष्णु बखान ।।५।।
पंचविंस नारद कहत, सूकर चौबिस जान ।
उनइस गरुड़ बखानिय, अठारह भगवत मान ।।६।।
मत्स सु चौदह सहस है, कूरम सत्रह होइ ।
लिंग इकादस कहत है, चौबिस रुद्र जु सोइ ।।७।।
पावक पंद्रह सहस पुनि, चारि सैकरा आन ।
स्कन्ध इक्यासी सहस अरु, इकसत करत बखान ।।८।।
तीन लाख अट्टानबे, सहस वेद सत आद ।
सब पुरान ऽश्लोक की, कही व्यास मर्याद ।।९।।
उपपुराण नाम —सनतकुमारहि जान पुनि, नरसिंह अस्कन्ध ।
दुर्वासा आश्चर्य गनि, नारद कपिल प्रबन्ध ।।१०।।
मानव अरु ब्रह्मण्ड कहि, भार्गव गरुड़ बखान ।
माहेस्वर पुनि कालिका, सांवरु सूर्य पुनार ।।११।।
विष्णुपुरान परासरी पुनि, संचय सर्वार्थ ।
देवि भागवत मिलि भये, अष्टादस सब सार्थ ।।१२।।
श्री भागवत के १२वें स्कंध के १३वें अध्याय में लिखा है ।

ब्राह्मं दशसहस्राणिपाद्मंपंचोनषष्ठि च श्रीवैष्णवंत्रयोविंशच्चतुर्विंशति सैवकम् ।।
दशाष्टौ श्री भागवतं नारदंपंचविंशति मारकंडेयंनववाहनंतुदशपंच चतुः शतम् ।।५।।
चतुर्दशभविष्यंस्यात्तथापंचशतानि च दशाष्टौब्रह्मवैवर्तलिंगमेकादशैवतु ।।६।।
चतुर्विंशतिवाराहमेकाशीति सहस्रकम् स्कांदंशतंतथाचैकंवामनंदश कीर्तितम् ।।७।।
कौर्मसप्तदशाख्यातंमात्स्यंनत्तुचतुर्द्दश एकोनविंशत्सौवर्णं ब्रह्माडंद्वादशैवतु ।।८।।
एवंपुराणसंदोहश्चतुर्लक्षउदाहृतः तत्राष्टदशसाहस्रं श्री भागवतमिष्टते ।।९।।

पुराणों के नामों में भी कई एक लोगों ने पृथक् पृथक् लिखा है । यथा शब्द कोष में लिखा है —पुराण । (पुरा पुराना; पुर आगे जाना —अर्थात् जिसमें पुराने समय की बाते हों, अथवा जो पुराने समय में बने हों) पुराण वे ग्रंथ जिनमें से बहुतों को व्यास जी ने बनाए अथवा इकट्ठे किये । पुराण सब पद्य में लिखे हुए हैं और

प्रथम भाग षष्ट अंश — १. कलिजात चरित्र २. चतुर्विध लय कथा ३. ब्रहमज्ञान कथा ४. केशिध्वज कर्तृक खाण्डिक्य निरूपण ।

द्वितीय भाग — सूत्र-शौनक संवाद — १. विष्णु धर्म कथन २. नाना धर्म कथन ३. पुण्य व्रत नियम एवं यम कथन ४. धर्म शास्त्र ५. अर्थ शास्त्र ६. वेदांत शास्त्र ७. ज्योतिः शास्त्र ८. वंश आख्यान ९. स्तव कथन १०. मनु सकल की कथा ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर आषाढ़ मास में घृत धेनु के साथ पौराणिक ब्राहमण को दान करने से सूर्य के रथ पर आरोहण करके विष्णु धाम में गमन एवं भक्ति युक्त पाठ किंवा श्रवण करने से विष्णु लोक में वास औ दिव्य भोग प्राप्ति होती है इसकी अनुक्रमणिका पाठ वा श्रवण करने से समुदाय पुराण श्रवण फल होता है ।

चतुर्थ वायुपुराण

पूर्व और उत्तर दो खंड २४००० चौबीस सहस्र श्लोक वायु ने श्वेत कल्प प्रसंग से सकल धर्म कहा है ।

पूर्व भाग — १. स्वर्गादि लक्षण विस्तार कथन २. सकल मन्वन्तर के राजगण का वंश कथन ३. गयासुर वध ४. मास गणों की महिमा एवं माघ मास की विशेष महिमा ५. दान धर्म एवं राज धर्म विस्तार कथन ६. भूचर, पातालचर, दिकचर एवं आकाशचर विवरण ७. व्रत विवरण ।

उत्तर भाग १. नर्मदा तीर्थ कथन २. शिव संहिता कथन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर गुड़ धेनु के साथ गृहस्थ ब्राहमण को श्रावण मास में दान करने से चतुर्दश इंद्र परिमित काल रुद्रलोक में वास नियम एवं हविष्य से पुराण श्रवण करने से वा श्रवण कराने से रुद्र तुल्यता प्राप्ति । पुराण की अनुक्रमणिका सुनने से समुदाय पुराण श्रवण फल प्राप्त होता है ।

पंचम श्रीभागवत

द्वादशस्कंध १८००० अठारह सहस्र श्लोक सारस्वत कल्पीय कथा ।

प्रथमस्कंध — १. सूत और ऋषियों का मिलन २. व्यासदेव का पुण्य चरित्र ३. पांडव का चरित्र ४. परीक्षित का उपाख्यान ।

द्वितीयस्कंध — १. परीक्षित शुक संवाद से सृष्टिद्वयनिरूपण २. ब्रहमा नारद संवाद से अवतार कथन ३. पुराण लक्षण ४. सृष्टि प्रकरण कथन ।

तृतीय स्कंध — १. विदुर चरित्र एवं मैत्रेय मिलन २. ब्रहमा सृष्टि प्रकरण ३. कपिल सांख्य कथन ।

चतुर्थ स्कंध — १. सती चरित्र २. ध्रुव चरित्र ३. पृथुचरित्र ४. प्राचीनवर्हि आख्यान ।

पंचम स्कंध — १. प्रियव्रतचरित्र एवं उनका वंश कथन २. ब्रहमांडान्तर्गत लोक सकल का वृत्तांत ३.

उनको हिंदू पवित्र मानते हैं । हर एक पुराण में विशेष करके इन पाँच बातों का वर्णन है । जैसे —सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशोमनवन्तराणि च । वंशानु चरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ।।

अर्थात् १ संसार की उत्पत्ति; २ प्रलय और प्रलय के पीछे फिर संसार की उत्पत्ति; ३ देवता और शूरवीरों की वंशावली ४ मनुष्यों का राज और ५ उनके वंश के लोगों का व्यवहार और चलन । पुराण अठारह हैं १ ब्रह्म पुराण २ पद्म पुराण ३ ब्रह्मांड पुराण ४ अग्नि पुराण ५ विष्णु पुराण ६ गरुड़ पुराण ७ ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ८ शिव पुराण ९ लिंग पुराण १० नारद पुराण ११ स्कंद पुराण १२ मार्कंडेय पुराण १३ भविष्यत् पुराण १४ मत्स्य पुराण १५ बाराह पुराण १६ कूमर्म पुराण १७ वामन पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण । इन सब पुराणों में चार लाख श्लोक गिने गए हैं और अठारह उपपुराण भी हैं । पुराण० पुराना; पहले का; सबसे पहला ।

संस्कृत कोष में लिखा है —पुराण पुं० पण अर्थात् व्यवहार दांव मुख्य धन द्यूतव्यवहार अर्थात जुए का खेल विष्णु चिरंजीवी दीर्घायुः प्राण जीव के बनाए हुए अठारह पुराण तथा च प्रमाणम् । श्लोकमद्वयं द्वयं चैव व्रत्रयंवचतुष्टयम् । अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ।। मार्कंडेय पुराण १ मत्स्य पुराण २ भविष्योत्तर पुराण ३ भागवत पुराण ४ ब्रहमांड पुराण ५ ब्रहमवैवर्त पुराण ६ ब्रहमोत्तर पुराण ७ वाराह पुराण ८ वामन पुराण ९ वायुपुराण १० विष्णु पुराण ११ अग्नि पुराण १२ नारद पुराण १३ पद्मपुराण १४ लिंग पुराण १५ गरुड़ पुराण १६ कूर्मपुराण १७ स्कंद पुराण १८

नरक स्थिति कथन ।

षष्ठ स्कंध — १. अजामिल चरित्र २. दक्ष सृष्टि निरूपण ३. वृत्रासुर आख्यान ४. मरुत जन्म कथन ।

सप्तम स्कंध — १. प्रहलाद चरित्र २. वर्णाश्रम निरूपण ३. वासना कर्म इत्यादि कीर्तन ।

अष्टम स्कंध — १. गजेन्द्र गोक्षण २. मन्वन्तर निरूपण ३. समुद्रमंथन ४. बलि वैभव एवं बधन ५. मत्स्यावतार चरित्र ।

नवम स्कंध — १. सूर्यवंश कथन २. रामायण ३. सोमवंश निरूपण ।

दशमस्कंध — १. श्री कृष्ण बाल चरित्र २. कौमार चरित्र ३. ब्रज स्थिति ४. कैशोर लीला ५. मथुरावास ६. यौवन ७ द्वारकास्थिति ८. भूभार-हरंण ।

एकादश स्कंध — १. वसुदेव-नारद संवाद २. यदु-दत्तात्रेय संवाद ३. श्रीकृष्ण-उद्धव संवाद ४. यादव मुक्ति कथन ।

द्वादश स्कंध — १. भविष्य एवं कलि कथा २. परीक्षित मोक्ष ३. वेदशाखा कथन ४. मार्कंडेय तपस्या ५. सौरी विभूति कथन ६. पुराण संख्या कथन ।

फलश्रुति — यह पुराण हेम सिंहासनस्थ करके भादो पूर्णिमा को प्रीति पूर्वक ब्राह्मण को वस्त्र एवं स्वर्ण सहित दान करने से भगवद्भक्ति लाभ होता है और श्रवण करने से अथवा श्रवण कराने से भक्ति और मुक्ति लाभ होता है और इसकी अनुक्रमणिका श्रवण करने किंवा कराने से संपूर्ण भागवत श्रवण फल लभ्य होता है ।

षष्ठ नारद पुराण

पूर्व एवं उत्तर दो भाग में २५००० पच्चीस सहस्र श्लोक । पूर्व भाग चार पद में विभक्त पूर्व भाग का प्रथम पाद — सूत-शौनक संवाद — १. सृष्टि संक्षेप वर्णन एवं नाना धर्म कथा ।

पूर्व भाग द्वितीय पाद — १. मोक्ष धर्म कथन मोक्षोपाय निरूपण २. वेदांग कथन ३. सनन्दन कर्तृक नारद प्रति शुकोत्पत्ति कथन ४. महातंत्र से पशुपाश विमोचन ५. मंत्रशोधन ६. दीक्षा ७. मंत्रोद्धार पूजा प्रयोग कवच विष्णु सहस्रनाम एवं स्तोत्र ८. गणेश सूर्य विष्णु शिव एवं शक्ति का क्रम से उपाख्यान कथन ।

पूर्व भाग तृतीय पाद — १. नारद और सनत्कुमार संवाद २. पुराण लक्षण प्रमाण एवं दान काल कथन ३. चैत्रादि मास की प्रतिपदादि तिथि व्रत विस्तार कथन ।

पूर्वभाग चतुर्थ पाद — १. सनातन कर्तृक नारद प्रति वृहदाख्यान कथन ।

उत्तर भाग — १. एकादशी व्रत विषयक प्रश्न २. वशिष्ट एवं मांधाता का संवाद ३. रुक्मांगद की कथा ४. मोहिनी की उत्पत्ति एवं संवाद ५. मोहिनी प्रति वसु का शाप एवं उद्धार ६. गंगा की पुण्य कथा ७. गया यात्रा ८. काशी माहात्म्य ९. पुरुषोत्तम वर्णन १०. क्षेत्र यात्रा एवं अन्यान्य बहु कथा ११. प्रयाग माहात्म्य १२. कुरुक्षेत्र माहात्म्य १३. हरिद्वार माहात्म्य १४. कामोदा आख्यान १५. बदरी तीर्थ माहात्म्य १६. कामाख्या माहात्म्य १७. प्रभास माहात्म्य १८. पुराण आख्यान १९. गौतमाख्यान २०. वेदपादस्तव २१. गोकर्ण क्षेत्र माहात्म्य २२. लक्षण आख्यान २३. सेतु माहात्म्य २४. नर्मदा माहात्म्य २५. अवंती माहात्म्य २६. मथुरा माहात्म्य २७. वृंदावन माहात्म्य २८. ब्रह्मा के निकट वसु का गमन २९. मोहिनी चरित्र कथन ।

फल श्रुति — यह पुराण श्रवण करने किंवा श्रवण कराने से ब्रह्म धाम प्राप्ति होती है और अनुक्रमणिका श्रवण करने किंवा श्रवण कराने से स्वर्ग लाभ होता है और यह पुराण आश्विनी पूर्णिमा को सप्त धेनु युक्त उत्तम ब्राह्मण को दान करने से मोक्ष प्राप्ति होती है ।

सप्तम मार्कण्डेय पुराण

९००० नौ सहस्र श्लोक

१. मार्कंडेय कर्तृक जैमिनि का पक्षियों के निकट प्रेरण २. धर्म पक्षि सकल का जन्म निरूपण ३. इनकी पूर्व जन्म कथा ४. सूर्य क्रिया कथन ५. बलदेव तीर्थ यात्रा ६. द्रौपदेय कथा ७. हरिश्चंद्रपुण्य कथा ८. आडीबक

नामक युद्ध कथा ९. पिता पुत्र कथा १०. दत्तात्रेय कथा ११. हैहय चरित्र एवं माहात्म्य १२. मदालसा कथा १३. अलर्क चरित्र १४. षष्टी संकीर्तन १५. नवप्रकार पुण्य कथा १६. कतिपय अंतकाल निर्देश १७. पक्षिसृष्टि निरूपण १८. रुद्रादि सृष्टि १९. द्वीप एवं वर्ष कथा २०. मनु कथा और अष्टम मन्वन्तर में देवी माहात्म्य कथा २१. प्रणदोत्पत्ति कथा वेद एवं तेज जन्म २२. मार्कंडेय जन्म और माहात्म्य २३. वैवस्वत चरित्र सहित वत्समीर चरित्र २४. खनित्र पुण्य कथा २५. अवक्षत चरित्र २६. किमिच्छव्रत २७. अविनाश चरित्र २८. इक्ष्वाकु चरित्र २९. तुलसी चरित्र ३०. रामचंद्र कथा ३१. कुशवंश आख्यान ३२. सोमवंश की कथा ३३. नहुष की अद्भुत कथा ३४. ययाति चरित्र ३५. यदुवंश कीर्तन ३६. श्रीकृष्ण बाल चरित्र ३७. मथुरा में श्रीकृष्ण चरित्र ३८. द्वारका चरित्र ३९. सकल अवतार कथा ४०. सांख्ययोग उद्देश ४१. प्रपंच एवं असत्य कीर्तन ४२. मार्कंडेय चरित्र ४३. पुराण श्रवण फल ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखाकर सुवर्ण संयुत्त ब्राह्मण को दान करने से ब्रहमपद मिलता है एवं भक्ति पूर्वक श्रवण करने किंवा श्रवण कराने से मार्कंडेयतुल्य गति प्राप्ति और वांछित फल लाभ होता है ।

अष्टम अग्निपुराण

१५००० पंद्रह सहस्र श्लोक ईशानकल्प कथा वशिष्ठ नल उपाख्यान ।

१. पुराण प्रश्न २. सर्व अवतार कथा ३. सृष्टि प्रकरण कथन ४. विष्णु पूजादि विधि ५. अग्नि पूजा मंत्र और मुद्रादि लक्षण ६. दीक्षा विधान ७. अभिषेक कथन ८. मंडल करण लक्षण ९. कुशमार्जन १०. पवित्रारोपण विधि ११. देवालयकरण विधि १२. शालग्राम पूजा एवं लक्षण कथन १३. प्रतिष्ठा प्रकरण १४. न्यासादि विधि १५. विनायक दीक्षा विधि १६. अन्यान्य कथन १७. देवप्रतिष्ठा विधि १८. ब्रहमांड निरूपण १९. गंगादि तीर्थ माहात्म्य २०. द्वीप वर्णन २१. उर्द्ध एवं अघोलोक रचना २२. ज्योतिषचक्र निरूपण २३. ज्योतिष शास्त्र वर्णन २४. युद्ध जयकरण शास्त्र २५. षट्कर्म कथा २६. मंत्रयंत्र औषध प्रकरण २७. कुब्जिकादि कथन २८. छः प्रकार के न्यास की विधि २९. कोटि होम विधान एवं विस्तार निरूपण ३०. ब्रहमचर्य धर्म ३१. श्राद्धकल्प विधि ३२. ग्रहयज्ञ ३३. वेदोक्त एवं स्मृत्युक्त कर्म ३४. प्रायश्चित्त कथन ३५. तिथि व्रतादि कथन ३६. बार व्रत ३७. नक्षत्र व्रत ३८. मास व्रत ३९. दीपदान विधि ४०. नूतन व्यूहार्चन प्रकरण ४१. नरक निरूपण ४२. व्रत एवं दान निरूपण ४३. नाड़ी चक्रवर्णन ४४. संध्या विधि ४५. गायत्री अर्थ ४६. शिवलिंग स्तोत्र ४७. शकुन्यादि शुभाशुभ दृष्टि निरूपण ४८. मडलादि निर्देश ४९. रणदीक्षा विधि ५०. श्री रामोक्तनीति ५१. रत्नलक्षण ५२. धनुर्विद्या ५३. व्यवहार निरूपण ५४. देवासुर विवर्धन आख्यान ५५. आयुर्वेद निरूपण ५६. गजादि की रोग चिकित्सा एवं आरोग्य कथन ५७. गो अश्वादि की चिकित्सा ५८. नाना पूजा प्रकरण ५९. विविध शांति ६०. छंद शास्त्र ६१. साहित्य शास्त्र ६२. एकार्णवादि शास्त्र समाख्यान ६३. प्रसिद्ध शिष्टानुशासन ६४. धनागार एवं सृष्ट्यादि वर्ग ६५. प्रलय लक्षण ६६. शारीरक निरूपण ६७. नरक वर्णन ६८. योग शास्त्र ६९. ब्रहमज्ञान ७०. पुराण श्रवण माहात्म्य ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर अग्रहायण मांस में सुवर्ण कमल सहित अथवा तिल धेनु सहित पुराणवित ब्राह्मण को दान करने से स्वर्ग लाभ होता है एवं यह पुराण श्रद्धा करके श्रवण करने किंवा श्रवण कराने से सकल पाप क्षय होता है । और भक्ति युक्त होकर इस पुराण अनुक्रमणिका का पाठ करने से सकल पुराण का फल लभ्य होता है ।

नवम भविष्य पुराण

पंच पर्व १४००० चौदह सहस्र श्लोक । अघोरकल्प वृत्तांत । नाना आश्चर्य कथा । प्रथम पर्व ब्राह्मण पर्व और द्वितीय तृतीय चतुर्थ एवं पंचम पर्व एकत्र हैं ।

प्रथम पर्व सूत शौनक संवाद — १. पुराण प्रश्न २. नाना आख्यान युक्त सूर्य चरित्र वर्णन ३. सृष्ट्यादि लक्षण ४. पुस्तक लेखक एवं लिखने का लक्षण ५. सकल प्रकार संस्थान लक्षण ६. प्रतिपदादि तिथि एवं सप्त ७. विष्णु विषय अष्टम्यादि शे[illegible] कथा ८. शैव विषय इच्छाधीन भिन्न भिन्न कल्प कथन ९

और विषय शेष कथा १०. नाना आख्यान युक्त प्रतिसृष्टि नाम वर्णन ११. पुराण उपसंहार एवं पंच पर्व कथन। इस पर्व में धर्म विषय में ब्रह्मा की महिमा का आधिक्य कथन है।

द्वितीय पर्व — भोग विषय में शिवमाहात्म्य कथन।

तृतीय पर्व — मोक्ष विषय में विष्णु का माहात्म्य कथन।

चतुर्थ विषय — चतुर्वर्ग विषय में सूर्य माहात्म्य कथन।

पंचम पर्व — सर्व कथा युक्त प्रति सर्ग वर्णन। इस पुराण में अद्वितीय ब्रह्म का गुण तारतम्य रूप भेद से सकल देव की समता वर्णित है।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर पोषी पौर्णिमा को गुड़ धेनु स्वर्ण वस्त्र सहित पुराण पाठक ब्राह्मण को दान करने से एवं श्रवण किंवा पाठ करने से सकल घोर पाप से विमुक्ति एवं ब्रह्मपद प्राप्ति होती है और पुराण की अनुक्रमणिका पाठ किंवा श्रवण करने से भक्ति मुक्ति मिलती है।

दशम ब्रह्मवैवर्तपुराण

चार खंड १८००० अठारह सहस्र श्लोक। १. ब्रह्म खंड २. प्रकृति खंड ३. गणेश खंड ४. श्रीकृष्णजन्म खंड।

सूत-ऋषि संवाद प्रथम ब्रह्मखंड — १. सृष्टि प्रकरण २. नारद और ब्रह्मा विवाद एवं शापान्त ३. नारद का शिवलोक गमन एवं गान शिक्षा ४. शिवादेश से मारीचि के सहित नारद का सावर्णि प्रबोधार्थ सिद्धाश्रम में गमन।

द्वितीय प्रकृति खंड — १. सावर्णि-नारद संवाद २. श्रीकृष्ण माहात्म्य युक्त नानाख्यान ३. प्रकृति की अंश और कलाओं का माहात्म्य वर्णन ४. उनका गंगादि विस्तार और माहात्म्य वर्णन।

तृतीय गणेशखंड — १. गणेशजन्म प्रश्न २. पुण्यव्रत कथन ३. पार्वती कार्तिक एवं गणेश जन्म ४. कार्त्तवीर्य चरित्र ५. परशुराम विवरण ६. जमदग्नि एवं गणेश का आश्चर्य विवाद।

चतुर्थ श्रीकृष्ण जन्म खंड — १. श्रीकृष्ण जन्म प्रश्न एवं जन्मकथा २. गोकुल गमन ३. पूतनादि वध ४. बाल्य-कौमार विविध लीला वर्णन ५. शरत्काल में गोपी सहित रास क्रीड़ा ६. श्री राधिका सहित निर्जन क्रीड़ा विस्तार वर्णन ७. अक्रूर सहित हरि मथुरा गमन ८. कंस वध ९. द्विज संस्कार १०. सांदीपनी गुरु निकट विद्योपार्जन ११. कालयवन वध १२. द्वारिका गमन १३. नरकादि वध वर्णन।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर माघ मास में धेनु सहित ब्राह्मण को दान करने से ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है एवं अज्ञान बंधन से मुक्ति होती है और पाठ किंवा श्रवण करने से संसार बंधन क्षय होता है तथा इसी पुराण की अनुक्रमणिका पाठ करने से श्रीकृष्ण के प्रसाद से वांछित फल लाभ होता है।

एकादश लिंग पुराण

पूर्व एवं उत्तर दो भाग ११००० ग्यारह सहस्र श्लोक। शिव माहात्म्य प्रकाशक अग्नि कल्प कथा।

पूर्व भाग — १. पुराणांत में सृष्टि विषयक संक्षेप प्रश्न २. योगाख्यान ३. कल्पाख्यान ४. लिंगउद्भव एवं पूजा ५. सनत्कुमार और शैलादि का संवाद ६. दधीचि चरित्र ७. युग धर्म निरूपण ८. कोष कथन ९. सूर्य वंश एवं सोम वंश वर्णन १०. सृष्टि वर्णन एवं त्रिपुर आख्यान ११. लिंग प्रतिष्ठा कथन १२. पशुपाश विमोक्षण १३. शिव व्रत १४. सदाचार निरूपण १५. प्रायश्चित्त कथन १६. श्रीशैल वर्णन १७. अंधक आख्यान १८. वाराह चरित्र १९. नृसिंह चरित्र २०. जलंधरवध २१. शिव सहस्रनाम २२. दक्षयज्ञ विनाश २३. कामदेव दहन २४. गिरिजा सह शिव विवाह २५. विनायक आख्यान २६. शिवनृत्य २७. उपमन्यु कथा।

उत्तर भाग — १. विष्णु माहात्म्य २. अंबरीष कथा ३. सनत्कुमारनन्दि संवाद ४. शिव माहात्म्य ५. स्नान योगादिक वर्णन ६. सूर्य पूजा विधि ७. शिव पूजा ८. बहुविध दानादि विधि ९. श्राद्धप्रकरण १०. मूर्ति प्रतिष्ठा प्रकरण ११. घोरतम कथा १२. व्रजेश्वरी महाविद्या गायत्री महिमा वर्णन १३. त्र्यम्बक माहात्म्य १४. पुराण श्रवण माहात्म्य।

फल श्रुति — यह पुराण लिखाकर फाल्गुनी पूर्णिमा को तिल धेनु सहित भक्ति पूर्वक ब्राह्मण को दान करने से जरा मरण वर्जित हो कर शिव सायुज्य प्राप्ति होती है और पुराण पाठ वा श्रवण करने से नाना भोग करके अंत में शिव लोक में गमन होता है और अनुक्रमणिका श्रवण किंवा पाठ करने से श्रोता एवं पाठक उभय शिवभक्त होते हैं एवं बहुकाल स्वर्ग भोग करते हैं ।

द्वादश वाराह पुराण

पूर्व एवं उत्तर भाग २४००० चौबीस सहस्र श्लोक विष्णु माहात्म्य वर्णन भूमि-वराह संवाद मानवकल्प प्रसंग ।

पूर्व भाग —१. आदिकृत वृत्तांत रंभा चरित्र कथन २. दुर्जय प्रति श्राद्ध कल्प कथा ३. महातपस्या आख्यान ४. गौरी उत्पत्ति कथन ५. विनायक कथा ६. नाग कथा ७. सेनानी एवं आदित्य कथा ८. देवगण कथा ९. कुवेरगण सकल कथा १०. वृष कथा ११. सत्यतप कथा १२. व्रत आख्यान १३. अगस्त्य गीता १४. रुद्रगीता १५. महिषासुर वध में ब्रह्मा विष्णु एवं शिव की शक्ति एवं माहात्म्य कथन १६. पर्वाध्याय १७. श्वेत उपाख्यान १८. गोदान कथा १९. भगवद्धर्म्म २०. व्रत एवं तीर्थ कथा २१. अत्रि अपराध कथा २२. शारीरिक प्रयश्चित्त २३. सकल तीर्थ महिमा २४. मथुरा माहात्म्य विशेष वर्णन २५. ऋषि पुत्र प्रसंगाधीन यमलोक वर्णन २६. कर्मविपाक २७. विष्णुव्रत निरूपण २८. गोकर्ण माहात्म्य ।

उत्तर भाग — १. पुलस्त्य कुरुराज संवाद सकल तीर्थ माहात्म्य पृथक् पृथक् विस्तारित रूप वर्णन २. अशेष धर्माख्यान ३. पौष्कर पुण्य कथा ।

फल श्रुति — यह पुस्तक लिख कर चैत्री पूर्णिमा को कांचन गरुड़ एवं तिल धेनु समन्वित भक्ति पूर्वक ब्राह्मण को दान करने से वैष्णव धाम प्राप्ति एवं देवता और ऋषि गण द्वारा वंदित होता है और पुराण पाठ करने किंवा श्रवण करने से संस्कार नाशिनी विष्णु भक्ति लभ्य होती है ।

त्रयोदश स्कंदपुराण

सप्त खंड ८१००० इक्यासी सहस्र श्लोक । १. माहेश्वर खंड २. वैष्णव खंड ३. ब्रह्म खंड ४. काशी खंड ५. अवंती खंड ६. नागर खंड ७. प्रभास खंड । इस पुराण में कार्तिकेय ने माहेश्वर धर्म कहा है ।

प्रथम माहेश्वर खंड, प्रायः १२००० बारह सहस्र श्लोक — १. केदार माहात्म्य २. दक्ष यज्ञ कथा ३. शिवलिंग अर्चन फल ४. समुद्र मंथन ५. देवेंद्र चरित्र ६. पार्वती उपाख्यान एवं विवाह ७. कार्तिकेय उत्पत्ति ८. तारकासुर युद्ध ९. पाशुपत आख्यान १०. चंडाख्यान ११. द्यूत प्रवर्तन १२. नारद समागम १३. कुमार माहात्म्य १४. पंचतीर्थ कथा १५. धर्म नृपाख्यान १६. नदी एवं सागर कीर्त्तन १७. इंद्रद्युम्न कथा १८. नाड़ी जंघ कथा १९. पृथ्वी प्रादुर्भाव २०. दमनक कथा २१. महीसागर संयोग २२. कुमार कथा २३. नाना आख्यान युक्त तारक युद्ध २४. तारकवध २५. पंचलिंग निवेश २६. द्वीपाख्यान २७. उर्द्धलोक स्थिति २८. ब्रह्मांड स्थिति एवं परिणाम २९. वक्रेश कथा ३०. महाकाल समुद्भव एवं अद्भुत कथा ३१. वासुदेव माहात्म्य ३२. करितीर्थ वर्णन ३३. नाना तीर्थ कथा ३४. गुप्तक्षेत्र कथा ३५. पांडवों की पुण्य कथा ३६. महाविद्या प्रसाधन ३७. तीर्थयात्रा समाप्ति ३८. अरुणाचल माहात्म्य ३९. सनक एवं ब्रह्मा की कथा ४०. गौरी तपस्या एवं तीर्थ निरूपण ४१. महिषासुर के पुत्र का आख्यान एवं उसका अद्भुत वध ४२. शोनाचल में भगवती का नित्य अवस्थान कथन ।

द्वितीय वैष्णव खंड — १. भूमि वराह आख्यान रोचक क्रुद्ध माहात्म्य २. कमला कथा ३. श्री निवास स्थिति ४. कुलाल आख्यान ५. सुवर्ण मुख कथा ६. नानाख्यान युक्त भारद्वाज कथा १०. अंबरीष कथा ११. इंद्रद्युम्न आख्यान १२. विद्युनति कथा १३. जैमिनी कथा १४. नारद कथा १५. नीलकंठ आख्यान १६. नृसिंह वर्णन १७. राजा की अश्वमेध कथा एवं ब्रह्मलोक गति १८. रथयात्रा विधि एवं जन्म और स्नान यात्रा विधि १९. दक्षिणामूर्ति आख्यान २०. गुंडिचा आख्यान २१. रथ रक्षा विधान २२. शयनोत्सव वर्णन २३. मंत्रोक्त श्वेतोपाख्यान २४. शक्रोत्सव २५. दोलोत्सव २६. भगवान का सांवत्सरिक व्रत कथन २७. विष्णु पूजा २८. मोक्ष साधन मंत्रोक्त नाना योग निरूपण २९. दशावतार कथा ३०. स्नानादि कीर्तन ३१. बदरिका माहात्म्य

३२. वैनतेय शिला जात अग्न्यादि तीर्थ माहात्म्य ३३. भगवान के वास का कारण कपालमोचन तीर्थ कथा ३४. पंचधारा तीर्थ कथा ३५. मेरु संस्थापन ३६. कार्तिक माहात्म्य में मदालसा माहात्म्य ३७. धूम्रकेश आख्यान ३८. कार्तिक मास का दिन कृत्य ३९. भीष्म पंचक व्रत आख्यान ४०. तीर्थ माहात्म्य प्रसंग से स्नान विधान ४१. पुत्रादि कीर्तन एवं मालाधार कथा और पंचामृत स्नान एवं घंटा बादनादि फल ४२. नाना पुष्प द्वारा अर्चन फल ४३. तुलसीदल से अर्चन फल ४४. नैवेद्य माहात्म्य ४५. हरिवास वर्णन ४६. एकादशी एवं जागरण माहात्म्य ४७. मत्स्योत्सव विधान ४८. नाम माहात्म्य ४९. ध्यानादिपुण्य कथा ५०. मथुरा तीर्थ माहात्म्य ५१. द्वादश वन माहात्म्य ५२. श्री मद्भागवत माहात्म्य ५३. बज्र शांडिल्य संवाद ५४. अंतर्लीला कथन और श्रीनाथ केशवदेवादि विग्रह स्थापन ५५. माघ में स्नान दान जप माहात्म्य और नानाख्यान ५६. वैशाख माहात्म्य ५७. शय्या दान फल ५८. जल दान फल ५९. कामाख्या वर्णन ६०. श्रुतदेव चरित्र ६१. व्याध उपाख्यान ६२. अक्षय तृतीयादि विशेष पुण्य कीर्तन ६३. अयोध्या माहात्म्य चक्र ब्रह्मतीर्थ प्रसंग ऋण प्रति विमोक्ष कथा आधार 'सहस्र' एवं स्वर्ग द्वार चंद्र हरि और धर्म हरि वर्णन ६४. स्वर्णवृष्टि आख्यान ६५. तिलद्वार सहित सरयू मिलन कथा ६६. सीताकुंड कथा ६७. गुप्त हरि कथा ६८. सरयू और घर्घरा आख्यान ६९. गो प्रभाव ७०. दुग्धोदकथा ७१. गुरु कुंडादि पंचतीर्थ कथा ७२. घोषार्कादि त्रयोदश तीर्थ वर्णन ७३. गया कूप माहात्म्य ७४. मांडव्य आश्रम और पूर्व तीर्थ वर्णन ७५. अजितादि मानसादि असंख्य तीर्थ वर्णन ।

तृतीय ब्रह्मखंड — १. सेतु माहात्म्य प्रसंग से स्नान एवं दर्शनजन्य फलकथन २. गालव तपस्या ३. राक्षसाख्यान ४. चक्रतीर्थ माहात्म्य ५. देवी पतन कथा ६. वेतालतीर्थ माहात्म्य ७. पाप नाशादि तीर्थ कथन ८. मंगलादि तीर्थ माहात्म्य ९. ब्रह्मकुंड वर्णन १०. हनुमत कुंड महिमा ११. अगस्त्य तीर्थ फल १२. रामतीर्थ कथन १३. लक्ष्मीतीर्थ निरूपण १४. शंखादि तीर्थ महिमा १५. साध्यमृत् तीर्थ महिमा १६. धनुष्कोट्यादि तीर्थ महिमा १७. क्षीर कुंडादि माहात्म्य १८. गायत्र्यादि तीर्थ माहात्म्य १९. रामनाम महिमा एवं तत्वज्ञानोपदेश २०. सेतु यात्राभिधान २१. धर्मारण्य माहात्म्य एवं ततस्थान संभूति और पुण्य कथा २२. कर्म सिद्धि आख्यान २३. ऋषिवंश २४. अप्सरा तीर्थ माहात्म्य २५. वर्ण एवं आश्रम धर्म और तत्व निरूपण २६. देवस्थान विभाग २७. बकुलार्क कथा २८. छत्रानंदा शांता श्री माता एवं मतंगिनी देवी की अवस्थिति २९. इंद्रेश्वरादि माहात्म्य ३०. द्वारकादि निरूपण ३१. लोहासुर आख्यान ३२. गंगाकूप निरूपण ३३. श्रीराम चरित्र ३४. सत्यमंदिर वर्णन ३५. जीर्णमंदिरादि उद्धार कथा ३६. शासन प्रतिपादन ३७. जाति भेद कथन ३८. स्मृति धर्म निरूपण ३९. नानाख्यान से वैष्णव धर्म निरूपण ४०. चातुर्मास्य सकल धर्म निरूपण ४१. दानव्रत महिमा ४२. तपस्या पूजा एवं सच्छत्र कथन ४३. प्रकृति आख्यान ४४. शालिग्राम निरूपण ४५. तारकासुर वध उपाय ४५. लक्ष्मी अर्चन एवं महिमा ४७. विष्णु की शाप से वृक्षत्त्व प्राप्ति एवं पार्वती का अनुनय ४८. महादेव का ताडवनृत्य रामनाम निरूपण ४९. हरलिंग पतन ५०. जवन कथा ५१. पार्वती जन्म और चरित्र ५२. तारक वध ५३. प्रणव ऐश्वर्य कथन ५४. तारक चरित्र ५५. दक्ष यज्ञ समाप्ति ५६. द्वादश अक्षर निरूपण ५७. ज्ञान योग आख्यान ५८. द्वादश आदित्य महिमा ५९. श्रावणादि पुण्य कथा ।

तृतीय ब्रह्म खंड उत्तर भाग — १. शिव का अद्‌भुत माहात्म्य २. पंचाक्षर महिमा ३. गोकर्ण महिमा ४. शिवरात्रि महिमा ५. प्रदोष व्रत कीर्तन ६. सोमवार व्रत ७. सीमंतिनी कथा ८. भद्रायु उत्पत्ति कथन ९. सदाचार १०. शिव धर्म कथा ११. भद्रायु विवाह एवं महिमा १२. भस्म माहाम्त्य १३. शवराख्यान १४. उमा माहेश्वर व्रत १५. रुद्राक्ष माहात्म्य १६. रुद्राध्याय माहात्म्य श्रवणादि पुण्य कथन ।

चतुर्थ काशी खंड विंध्य नारद संवाद — १. सत्य लोक प्रभाव २. अगस्त्याश्रम में देवता सकल का आगमन ३. पतिव्रता चरित्र ४. तीर्थ यात्रा प्रशंसा ५. सप्तपुरी आख्यान ६. यमपुरी निरूपण ७. शिव शर्मा की ध्रुवलोक इंद्रलोक अग्नि लोक प्राप्ति ८. अग्नि उद्‌भव ९. क्रव्याद वरुण संभव १०. गंधवती अलका पुरी एवं ईश्वरी का उद्‌भव और चंद्र मंगल बुध एवं रवि आदि लोक का उद्‌भव ११. सप्त ऋषि एवं ध्रुव लोक का वर्णन १२. ध्रुवलोक की पुण्य कथा १३. सत्य लोक निरूपण १४. स्कंध और अगस्त्य का अलाप १५. मणिकर्णिका का उद्‌भव १६. गंगा का प्रभाव एवं सहस्र नाम १७. वारानसी प्रशंसा १८. भैरब आविर्भाव १९. दंडपाणि एवं ज्ञान रवि का उद्‌भव २०. कलावती आख्यान २१. सदाचार निरूपण २२. ब्रह्मचारि कथा २३. स्त्री लक्षण कथन २४. कृत्याकृत्य निर्देश २५. अविमुक्तेश्वर वर्णन २६. गृहस्थ एवं योगि धर्म २७. काल ज्ञान

२८. दिवोदास कथा २९. काशी वर्णन ३०. योगिचर्या लोलार्क ३१. शाम्बार्क कथा ३२. द्रुपदार्क एवं तार्क्ष तीर्थकथा ३३. अरुणार्क का उदय ३४. दशाश्वमेध आख्यान ३५. मंदराचल से गणपति की माया प्रकाश ३६. पिशाचमोचन आख्यान ३७. गणेश प्रेषण ३८. गणपति का आगमन और माया प्रकाश ३९. पृथ्वी से माया का प्रादुर्भाव ४०. विष्णु माया का विस्तार ४१. दिवोदास विमोचन ४२. पंच नंदोत्पत्ति ४३. बिंदुमाधव संभव ४४. वैष्णव तीर्थ आख्यान ४५. महादेव का काशी में आगमन ४६. जैगायव्य के सहित महेश का आख्यान ४७. शिवक्षेत्र आख्यान ४८. कंदुकेश्वर एवं व्याघ्रेश्वर का उद्भव ४९. शैलेश्वर एवं कृत्तिवास का उद्भव ५०. देवता सकल का अधिष्ठान ५१. दुर्गासुर का पराक्रम ५२. दुर्गाविजय ५३. ओंकारेश्वर वर्णन ५४. ओंकार माहात्म्य ५५. त्रिलोचन समुद्भव ५६. केदार आख्यान ५७. धर्मेश्वर कथा ५८. वीरेश्वर आख्यान ५९. गंगा माहात्म्य कीर्तन ६०. विश्वकर्मेश्वर महिमा ६१. दक्ष यज्ञोद्भव ६२. सतीश्वर एवं अमृतेश्वर उपाख्यान ६३. पराशर भुजस्तम्भ ६४. क्षेत्र तीर्थ समूह वर्णन ६५. मुक्ति मंडप कथा ६६. विश्वेश्वर विभव ६७. यात्रा परिक्रम।

पंचम अवंती खंड — १. महंकाल यवन का आख्यान २. ब्रह्मशीर्षच्छेद ३. प्रायश्चित्त विधि ४. अग्नि उत्पत्ति एवं आगमन ५. देवदक्ष ६. नाना पाप नाशन शिव स्तोत्र ७. कपाल मोचन आख्यान एवं महाकाल वनस्थिति ८. कर्णखलेश तीर्थ आख्यान ९. अप्सरा कुंड कथा १०. स्वर्ग में रुद्रकुंड उपाख्यान ११. कुंडुड्वेश एवं मर्कटेश्वर तीर्थ वर्णन १२. स्वर्गद्वार चतुः सिंधु शंकरांक गंधवती एवं दशाश्वमेध कालांश तीर्थ वर्णन १३. पिशाचकादि यात्रा १४. हनुमान एवं यमेश्वर वर्णन १५. महाकालेश्वर यात्रा १६. वाल्मीकेश्वर तीर्थ १७. मेषजाख्य शुक्र तीर्थ कुशस्थली प्रदक्षिणा १८. अक्रूर मंदाकिनी कपाल चंद्रार्क वैभव करमेश लड्डुकेशादि तीर्थ वर्णन १९. मार्कंडेश्वर २०. यज्ञवापी २१. सोमेश २२. नरकांतक २३. केदारेश्वर २४. रामेश्वर २५. सौभाग्येश्वर २६. नरार्क २७. केशार्क २८. शक्ति भेद २९ स्वर्णाक्षर मुख ३०. ओंकारेश्वरादि तीर्थ वर्णन ३१. अंधक स्तुति कीर्तन ३२. कालारण्य लिंग संख्या ३३. स्वर्ण,शृंग ३४. कुशस्थली ३५. अवंत्याश्व ३६. उज्जयिनी ३७. पद्मावती ३८. कूर्मद्वती ३९. रमावती नामक तीर्थ उपाख्यान ४०. विशाला एवं प्रतिकल्प ४१. ज्वर शांतिक तीर्थ कथन ४२. शिप्रास्नानादि फल ४३. नाग कृत शिव स्तुति ४४. हिरण्याक्ष बधाख्यान ४५. सुंदरकुंड ४६. नील गंगा ४७. पुष्कर ४८. विंध्यवासनी ४९. पुरुषोत्तम ५०. अविनाश ५१. अघ नाशन ५२. गोमती ५३. वामन एवं कुंड तीर्थ वर्णन ५४. विष्णु सहस्र नाम ५५. काल भैरव तीर्थ वीरेश्वर सरोवर आख्यान ५६. नाग पंचमी में नृसिंह महिमा वर्णन ५७. जयंतिका कुठारेश्वर यात्रा ५८. देवसाधक ५९. कर्कराज ६०. विघ्नेशादि सुरोहण तीर्थ विवरण ६१. रुद्रकुंडादि बहुतीर्थ निरूपण ६२. अष्टतीर्थ निरूपण ६३. रेवा माहात्म्य ६४. धर्म पुत्र का वैराग्य वशतः मार्कंडेय संगम ६५. प्रागलय उपाख्यान ६६. अमृता कीर्तन ६७. प्रति कल्प में नर्मदा वर्णन ६८. आर्यस्तव ६९. नर्मदास्तव ७०. कालरात्रि कथा ७१. महादेव स्तुति ७२. पृथक पृथक कल्प की अद्भुत कथा ७३. विशल्याख्यान ७४. जालेश्वर कथा ७५. गौरीव्रत ७६. त्रिपुर दहन कथा ७७. देहपात विधान ७८. कावेरी संगम ७९. दारुतीर्थ ब्रह्माभिन्नईश्वर कथा ८०. अग्नि ८१. रवि ८२. मेघनाद ८३. द्विदारुक ८४. देव ८५. नर्मदेश्वर ८६. कपिलाख्य ८७. करंजक ८८. कुंडलेश्वर ८९. पिप्पलाद ९०. विमलेश्वरादि तीर्थ कथन ९१. शचीहरण आख्यान ९२. मंदक वध ९३. शूलभेद उद्भव ९४. पृथक दान धर्म कथन ९५. दीर्घ तापस आख्यान ९६. ऋष्य शृंग कथा ९७. चित्रसेन कथा ९८. काशीराज मोक्षण ९९. देवशिला आख्यान १००. शबरी चरित्र १०१. व्याधाख्यान १०२. पुष्करिण्यर्क १०३. तापितेश्वर १०४. शक्र १०५. करोटीक १०६. कुमारेश १०७. अगस्त्येश १०८. मातृज १०९. लोकेश ११०. धनदेश १११. मंगलेश ११२. कामज ११३. नागेश ११४. गोपार ११५. गौतम ११६. शंखचूडज ११७. नारदेश ११८. नंदिकेश ११९. वरुणेश्वर १२०. दधि स्कंद १२१. हनुमंतेश्वर १२२. रामेश्वर १२३. सोमेश १२४. पिंगलेश्वर १२५. ऋणमोक्ष १२६. कपिलेश्वर १२७. पूतिकेश्वर १२८. जलेशय १२९. चंडार्क १३०. यम १३१. कलहडीश १३२. नादिक १३३. नारायण १३४. कोटीश्वर १३५. व्यास १३६. प्रभासिका १३७. नागेश्वर १३८. संकर्षण १३९. मन्मथेश्वर १४०. एरंडी संगम १४१. सुवर्णशील १४२. करंज १४३. कामह १४४. मांडीर १४५. वाहिनीभव १४६. चक्र १४७. धौतपाप १४८. स्कान्द १४९. आंगिरस १५०. कोटि १५१. अयोनि १५२. अंगार १५३. त्रिलोचन १५४. इंद्रेश १५५. जंबुकेश १५६. सोमेश १५७. कोहनांशक

१५८. नार्मद १५९. आर्क १६०. आग्नेय १६१. भार्गविश्वर १६२. ब्राहम १६३. देव १६४. भागेश १६५. आदि वाराह १६६. रामेश १६७. सिद्धेश १६८. आहल्य १६९. कंटकेश्वर १७०. शाक्र १७१. सौम्य १७२. नान्देश १७३. तापेश १७४. रुक्मिणीभव १७५. योजनेश १७६. वराहेश १७७. द्वादशी तीर्थ १७८. शिव १७९. सिद्धेश १८०. मंगलेश्वर १८१. लिंग वराह १८२. कुंडेश १८३. श्वेतवाराह १८४. भार्गवेश १८५. रवीश्वर १८६. शुक्लादि १८७. हुंकारस्वामि १८८. संगमेश १८९. नरकेश १९०. मोक्ष १९१. सार्प १९२. गोपक १९३. नाग १९४. शाव १९५. सिद्धेश १९६. मार्कंड १९७. अक्रूर १९८. कामोद १९९. शूलारोप २००. मांडव्य २०१. गोपकेश्वर २०२. कपिलेश २०३. पिंगलेश २०४. भूतेश २०५. गांग २०६. गौतम २०७. अश्वमेघ २०८. भृदुकच्छ २०९. केदारेश्वर २१०. कणखलेश २११. जालेश्वर २१२. शालग्राम २१३. वराह २१४. चंद्रप्रभास २१५. आदित्य २१६. श्रीपति २१७. हंसक २१८. मूल स्थान २१९. शूलेश २२०. आग्नेय एवं चित्रदैवक २२१. शिखीश्वर २२२. कोटि २२३. दशकन्य २२४. सुवर्णक २२५. ऋणमोक्ष २२६. भारभूति २२७. पुंख २२८. मुंडिम २२९. आमलेश्वर २३०. कपालेश्वर २३१. शृंगेरण्डीभव २३२. कोटी २३३. लोटनेश्वर तीर्थ विवरण २३४. फलश्रुति कथन २३५. दुमिजंगल माहात्म्य रोहिताश्व कथा २३६. धुन्धुमान उपाख्यान २३७. धुंधुमार वधोपाय २३८. धुंधुमार वध कथन २३९. चित्रवह उद्भव एवं २४०. महिमा कथन २४१. चंडीश प्रभाव २४२. रतीश्वर वर्णन और केदारेश्वर वर्णन २४३. लक्ष तीर्थ कथन २४४. विष्णुपदी उद्भव २४५. सुखार २४६. च्यवनान्ध २४७. ब्रहम सरोवर २४८. चक्र २४९. ललिता २५०. बहुगोमख २५१. रुद्रावर्त २५२. मार्कंड २५३. रावणेश्वर २५४. शुद्धपट २५५. देवान्धु २५६. प्रेत २५७. जिहवोद २५८. सम्नूति २५९. शिवोद भेद तीर्थ वर्णन २६०. फलश्रुति ।

षष्ट नागर खंड — १. लिंगोत्पत्ति आख्यान २. हरिश्चन्द्र कथा ३. विश्वामित्र माहात्म्य ४. त्रिशंकु स्वर्ग गति ५. हाटकेश्वर माहात्म्य ६. वृत्रासुर वध ७. नागविल्व ८. शंखतीर्थ कथा ९. अचलेश्वर वर्णन १०. चमत्कार पुराख्यान ११. गयशीर्ष १२. बालसख्य १३. बालमंड १४. मृगाह्वय १५. विष्णुपाद १६. गोकर्ण १७. युगरूप १८. समाश्रय १९. सिद्धेश्वर २०. नागसरोवर २१. सप्तार्षेय २२. अगस्त्य २३. भ्रणगर्तनेश २४. भैष्म और इन्दुवैर और अर्क २५. सार्मिष्ट २६. शोभनार्थ २७. दौगर्भमान सजकेश्वर तीर्थ वर्णन २८. जमदग्नि उपाख्यान २९. नैः क्षत्रिय कथा ३०. रामहृद ३१. नागपुर ३२. षड्लिंग ३३. यज्ञभू ३४. मुंडिरादि ३५. त्रिकार्क ३६. सती परियोगेश ३७. योगेश वालिखिल्य ३८. गाडुर तीर्थ कथन ३९. लक्ष्मी सप्तविंशति शाप कथन ४०. सोमप्रसाद कथन ४१. अम्बावृद्ध ४२. पादुकाख्य ४३. आग्नेय ४४. ब्रहमकुंड ४५. गोमुख ४६. लोह षष्ट्याख्य ४७. आजावालेश्वरी ४८. शालेश्वर ४९. राजवापी ५०. रामेश्वर ५१. लक्ष्मणेश्वर ५२. कुशेश्वर ५३. लवेश्वर तीर्थ वर्णन ५४. लिंग उपाख्यान ५५. अष्टषष्टि समाख्यान ५६. दमयंती एवं त्रिजातक उपाख्यान ५७. रेवती ५८. भट्टिका तीर्थ ५९. क्षेमंकरी ६०. केदार ६१. शुक्ल ६२. सुखारक ६३. सत्य संघेश्वर तीर्थ आख्यान ६४. कर्णोत्पला नदी कथा ६५. अटेश्वर ६६. याज्ञवल्क्य ६७. गौरी ६८. गणेश तीर्थ कथा ६९. वास्तुपदा आख्यान ७०. अजाग्रह कथा ७१. सौभाग्यादि कथा ७२. शूलेश्वर कथा ७३. धर्मराज कथा ७४. मिष्टाम्प्रदेश्वर आख्यान ७५. गाणपत्य त्रय कथा ७६. जाबालि चरित्र ७७. मकरेश्वर कथा ७८. कालेश्वरी ७९. अंधकोपाख्यान ८०. अप्सरा कुंड उपाख्यान ८१. पुष्पादित्य उपाख्यान ८२. रोहिताश्व उपाख्यान ८३. नागरोत्पत्ति कीर्तन ८४. भार्गव चरित्र ८५. विश्वामित्र ८६. सारस्वत चरित्र ८७. पैप्पलाद ८८. कंसारीश एवं ८९. पौण्ड तीर्थ वर्णन ९०. सावित्र्याख्यान सहित ब्रहमा यज्ञ चरित्र एवं रैवत भर्तृ यज्ञाख्यान कथा ९१. मुख्य तीर्थ निरीक्षण ९२. कौरव क्षेत्र ९३. हाटकेश क्षेत्र ९४. प्रभास क्षेत्र उपाख्यान ९५. पौष्कर क्षेत्र ९६. नैमिष क्षेत्र ९७. धर्म अरण्य क्षेत्र ९८. वारानसी ९९. द्वारका १००. अवंती पुरी कथन १०१. वृंदावन १०२. खाण्डवारण्य १०३. अद्वैताख्य पुरी कथन १०४. कल्प १०५. शालग्राम एवं १०६. नन्दग्राम का उपाख्यान १०७. असि १०८. शुक्ल १०९. पितृसंज्ञ तीन तीर्थ का वर्णन ११०. श्च्यर्बुद १११. रैवत ११२. शैव इन तीन पर्वतों का उपाख्यान ११३. गंगा ११४. नर्मदा ११५. सरस्वती इन तीन नदियों का उपाख्यान ११६. कुपिका और शंख ११७. अमरक एवं बालमंडन इन चार तीर्थ का हाटकेश्वर तीर्थ क्षेत्र के समान फल कथन ११८. सांबादित्य ११९. श्राद्धकल्प १२०. युधिष्ठिर १२१. आंधक १२२. जलशायि १२३. चातुर्मास्य १२४. अशून्य शयन व्रत कथन १२५. मंगलेश १२६. शिवरात्रि १२७. तुला पुरुष दान

१२८. पृथ्वी दान कथन १२९. बालकेश्वर १३०. कपालमोचनेश्वर १३१. पाप पीड़ १३२. सप्तलिंग वर्णन १३३. युगपरिमाणादि कथन १३४. निर्विशशाक १३५. भार्याख्या कथन १३६. एकादश रुद्र कथन १३७. दान माहात्म्य १३८. द्वादश आदित्य उपाख्यान ।

सप्तम प्रभास खंड — १ सोमेश वर्णन २. विश्वेश वर्णन ३. अर्कस्थल वर्णन ४. सिद्धेश्वरादि का पृथक उपाख्यान ५. अग्नितीर्थ ६. कपर्द्दीश तीर्थ वर्णन ७. भीम ८. भैरव ९. चंडीश १०. भास्कर ११. अंगारकेश्वर १२. बुध वृहस्पति मंगल चंद्र शनि १३. राहु केतु १४. शिव स्वरूप मूर्ति वर्णन १५. सिद्धेश्वरादि पंचरुद्र अवस्थिति वर्णन १६. वरारोहा १७. अजापाला १८. मंगला १९. ललिता एवं ईश्वरी २०. लक्ष्मीश २१. वाडवेश २२. अर्घीश २३. कामेश्वर २४. गौरीश्वर २५. वरुणेश्वर २६. उशीष २७. गणेश्वर २८. कुमारेश २९. शाकल्य ३०. शकल एवं उतंक ३१. गौतम ३२. दैत्यघ्नेश ३३. चक्रतीर्थ संनिहितार्थ कथन ३४. भूतेशादि लिंग कथन ३५. आदि नारायण कथन ३६. चक्र धराख्यान ३७. सांबादित्य कथा ३८. कंटक शोधिनी कथा ३९. महिषघ्नी कथा ४०. कपालीश्वर कथा ४१. कोटीश कथा ४२. बालब्रह्म कथा ४३. नरकेश ४४. सम्वर्तेश ४५. निधीश्वर कथा ४६. बलभद्र कथा ४७. गंगा कथा एवं गणेश्वर कथा ४८. जांबवती कथा ४९. पांडुकूप सत्कथा ५०.शतमेघ लक्षमेघ एवं कोटिमेघकथा ५१. दुर्वासार्क ५२. यदुस्थान ५३. हिरण्यारंगम कथा ५४. नगरार्क ५५. श्रीकृष्ण ५६. संकर्षण एवं समुद्र कथा ५७. कुमारी क्षेत्रपाल ५८. ब्रह्मेश की पृथक कथा ५९. पिंगल ६०. संगमेश्वर ६१. शंकरार्क ६२. घटेश की कथा ६३. ऋषितीर्थ ६४. नंदार्क तीर्थ ६५. त्रितयकूप कीर्तन ६६. शशपाल ६७. पर्णार्कि ६८. अंशुमती की अद्भुत कथा ६९. वाराह ७०. स्वामि वृत्तांत ७१. छाया लिंगाख्य ७२. गुल्फ कथा ७३. कनक नन्दा ७४. कुंती एवं ७५. गंगेश कथा ७६. चमसोद्भेद ७७. विदुर ७८. त्रिलोकेश कथा ७९. मंचनेश ८०. त्रैपुरेश ८१. षण्ड तीर्थ कथा ८२. सूर्य्याप्राची ८३. त्र्यक्षण ८४. उमानाथ कथा ८५. भृंगार ८६. मूल स्थल ८७. च्यवनाकेश कथा ८८. अजपालेश ८९. वालार्क ९०. कुबेर स्थल कथा ९१. ऋषितोषा कथा ९२. संगालेश्वर कीर्तन ९३. नारदादित्य कथन ९४. नारायणनिरूपण ९५. तप्तकुंड माहात्म्य ९६. मूलचंडीश वर्णन ९७. चतुर्वक्र गणाध्यक्ष ९८. कलम्बेश्वर कथा ९९. गोपाल स्वामि १००. बकुल स्वामि १०१. मारुती कथा १०२. क्षेमार्क १०३. उन्नत १०४. विघ्नेश १०५. जलस्वामि कथा १०६. कालमेघ १०७. रुक्मिणी १०८. उव्वशीश्वर १०९. भद्रा कथा ११०. शंखावर्त १११. इक्षुतीर्थ ११२. गोष्पद एवं अच्युत गृह कथा ११३. जालेश्वर ११४. हुंकार कूप ११५. चंडीश कथा ११६. आशापुर विघ्नेश एवं ११७. कलाकुंड कथा ११८. कपिलेश्वर कथा ११९. जरद्गव शिव कथा १२०. नल १२१. कर्कोट १२२. हाटकेश्वर कथा १२३. नारदेश १२४. यंत्रभूषा एवं दुर्गकूट एवं गणेश कथा १२५. सुपर्णलाख्य १२६. भैरवी १२७. भल्लतीर्थ कथा १२८. कर्दमाल कीर्तन १२९. गुप्त सोमेश्वर कीर्तन १३०. बहु स्वर्णेश १३१. शृंगेश १३२. कोटीश्वर कथा १३३. मार्कंडेश्वर १३४. कोटीश्वर एवं १३५. दामोदर गृह कथा १३६. स्वर्ण रेखा १३७. ब्रह्मकुंड १३८. कुंभीश्वर १३९. भीमेश्वर १४०. ब्रह्मायर्थ क्षेत्र मृगाकुंड १४१. सर्वस्व कथा १४२. विघ्नेश १४३. गंगेश १४४. रैवत कथा १४५. अर्बुदेश्वर कथा १४६. अचलेश्वर १४७. नागतीर्थ कथा १४८. वशिष्ठाश्रम वर्ण १४९. भद्र वर्ष माहात्म्य १५०. त्रिनेत्र माहात्म्य १५१. केदार माहात्म्य १५२. तीर्थागमन कीर्तन १५३. कोटीश्वर १५४. रूप तीर्थ १५५. हृषीकेश कथा १५६. सिद्धेश १५७. शुक्रेश्वर १५८. मणिकर्णिकेश कीर्तन १५९. पंगु १६०. यम एवं १६१. वराह तीर्थ वर्णन १६२. चंद्र प्रभास १६३. पिंडोद १६४. श्रीमाता १६५. शुक्ल १६६. कात्यायनी तीर्थ माहात्म्य १६७. पिंडारक माहात्म्य १६८. कनखल १६९. चक्र एवं १७० मानुष तीर्थ माहात्म्य १७१. कपिलाग्नि १७२. रक्तानुबंध तीर्थ कथा १७३. गणेश १७४. पार्थेश्वरयात्रा १७५. मुद्गल यात्रा कथन १७६. चंडीस्थान १७७. नागोद्भव शिव कुंड १७८. महेश कथा १७९. कामेश्वर १८०. मार्कंडेय उत्पत्ति कथा १८१. उद्दालकेश १८२. सिद्धेश गत तीर्थ कथा १८३. श्री देवमाता उत्पत्ति १८४. व्यास १८५. गौतम तीर्थ कथा १८६. कुलसान्ता माहात्म्य १८७. राम एवं कोटि तीर्थ कथा १८८. चंद्रोद्भव १८९. ईशानशृंग १९०. ब्रह्मस्थानोद्भव १९१. त्रिपुष्कर १९२. रुद्र ह्रद १९३. गुहेश्वर कथा १९४. अविमुक्त माहात्म्य १९५. उमा माहेश्वर माहात्म्य १९६. महौजस प्रभाव १९७. जंबुतीर्थ वर्णन १९८. गंगाधर एवं मिश्र कथा १९९. फलश्रुति २००. द्वारका माहात्म्य प्रसंग चंद्र शर्म कथा २०१. एकादशी जागरणादि व्रत २०२. महा द्वादशीकथा २०३. प्रह्लाद एवं ऋषि समागम २०४. दुर्वासा

उपाख्यान २०५. यात्रा उपक्रम कीर्तन २०६. गोमती उत्पत्ति कथन २०७. गोमती स्नानादि फल २०८. चक्रतीर्थ माहात्म्य २०९. गोमती समुद्र संगम २१०. दु:सनकादि हृदाख्यान २११. नृगतीर्थ कथा २१२. गोप्रचार कथा २१३. गोपी द्वारका गमन २१४. गोपीसरोवर आख्यान २१५. ब्रह्मतीर्थादि कीर्तन २१६. नानाख्यान युक्त पंचनदी आख्यान २१७. शिवलिंग २१८. महातीर्थ २१९. कृष्णपूजादि कीर्तन २२०. त्रिविक्रममूर्ति २२१. दुर्वासा एवं श्रीकृष्णकथन २२२. कुशदैत्य वधोपाख्यान २२३. प्रतिमा आख्यान २२४. विशेष पूजाफल २२५. गोमती एवं द्वारिका में तीर्थ आगमन कीर्तन २२६. कृष्ण मंदिर दर्शन फल २२७. द्वारावती अभिषेक २२८. द्वारका तीर्थ वास कथा २२९. द्वारकापुर कीर्तन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर हेमशूल युक्त ब्राह्मण को दान करने से शिवलोक प्राप्ति होती है ।

चतुर्दश वामनपुराण

पूर्व, उत्तर दो भाग १०००० दस सहस्र श्लोक । उत्तर भाग वृहत् वामन संज्ञक इस पुराण में त्रिविक्रम चरित्र बहुविध वर्णित है कूर्म्म कल्प का आख्यान ।

प्रथम पूर्व भाग — १. पुराण प्रश्न २. ब्रह्मा शिरच्छेद कथा ३. कपाल मोचन आख्यान ४. दक्ष यज्ञ विनाश ५. महादेव का कालरूप धारण ६. कामदेव दहन ७. प्रहलाद नारायण का युद्ध एवं देवता असुर का युद्ध एवं सूर्य की कथा ९. भुवनकोश वर्णन १०. काम्यव्रत आख्यान ११. दुर्गा चरित्र १२. तपती चरित्र १३. कुरुक्षेत्र वर्णन १४. सरोवर माहात्म्य १५. पार्वती जन्म तपस्या एवं विवाह कथन १६. गौरी उपाख्यान १७. कौशिकी उपाख्यान १८. कुमार चरित्र १९. अंधक वध उपाख्यान २०. साध्य उपाख्यान २१. जावालि चरित्र २२. अरजा कथा २३. अंधक युद्ध एवं गण कथन २४. मरुत जन्म कथा २५. बलि चरित्र २६. लक्ष्मी चरित्र २७. त्रिविक्रम चरित्र २८. प्रहलाद की पूर्व में तीर्थ यात्रा २९. धुन्धु चरित्र ३०. प्रेतउपाख्यान ३१. नक्षत्र पुरुष आख्यान ३२. श्रीदाम चरित्र ३३. त्रिविक्रम चरित्र ३४. ब्रहमउक्तस्तव ३५. प्रहलाद एवं बलि संवाद ३६. सुतल में हरि प्रशंसा कथन ।

द्वितीय उत्तर भाग — १. माहेश्वरी संहिता श्री कृष्ण के भक्ति का कीर्तन २. भागवती संहिता अवतार कथा ३. सौरी संहिता सूर्य महिमा कथन ४. गाणेश्वरी संहिता गणेश महिमादि कथन । यह संहिता चतुष्टय के प्रत्येक संहिता में एक सहस्र' श्लोक ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर कार्तिकी संक्राति को घृत धेनु के साथ वेदज्ञ ब्राह्मण को दान करने से नरक भोग से मुक्ति और स्वर्ग लाभ होता है एवं भोगादिक और देहांत में विष्णु के परम पद की प्राप्ति होती है । यह पुराण पाठ किंवा श्रवण करने से परमगति प्राप्त होती है ।

पंचदश कूर्मपुराण

पूर्व एवं उत्तर दो भाग १७००० सत्रह सहस्र श्लोक । उत्तर भाग पंचपाद में विभक्त । लक्ष्मी कल्पचरित्र । इसी कल्प में हरि ने कूर्म रूप धारण किया है एवं इंद्रद्युम्न प्रसंग से धर्मार्थ काम मोक्ष का माहात्म्य कहा है ।

प्रथम पूर्व भाग — १. पुराण उपक्रम कथन २. लक्ष्मी इंद्रद्युम्न संवाद ३. कूर्म ऋषिगण कथा ४. वर्णाश्रमाचार कथा ५. जगदुत्पत्ति कथा ६. काल संख्या एवं लयान्त में विभुस्तव ७. सर्गसंक्षेप कथा ८. शंकर चरित्र ९. पार्वती सहस्रनाम १०. योग निरूपण ११. भृगुवंश आख्यान १२. स्वायम्भुवकथा १३. देवतादि उत्पत्ति १४. दक्ष यज्ञ नाश १५. वृक्ष सृष्टि कथा १६. कश्यप वंश कथन १७. आत्रेय वंश कथन १८. कृष्ण चरित्र १९. मार्कंडेय कृष्ण संवाद २०. व्यास पांडव की कथा २१. युगधर्म कथा २२. व्यास जैमिनि की कथा २३. वाराणसी माहात्म्य २४. प्रयाग माहात्म्य २५. त्रिलोक वर्णन २६. वेदशाखा निरूपण ।

द्वितीय उत्तर भाग — १. ऐश्वरी गीता २. नानाधर्म प्रकाशिका व्यास गीता ३. नानाविध तीर्थ का पृथक् माहात्म्य ४. ब्राह्मी संहिता ५. भागवती संहिता । इसमें सकल वर्णन से पृथक वृत्ति निरूपण है ।

उत्तर भाग में प्रथम पाद में ब्राह्मण की सदाचारात्मिका व्यवस्थिति कथन । द्वितीय पाद में क्षत्रिय की वृत्ति निरूपण । तृतीय पाद में वैश्य जाति की चार प्रकार की वृत्ति निरूपण । चतुर्थ पाद में शूद्र की वृत्ति

कथन । पंचम पाद में वर्ण शंकर की वृत्ति कथन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर भक्ति पूर्वक हेम कूर्म युक्त ब्राह्मण को दान करने से परम गति होती है और श्रवण किंवा पाठ करने से सर्वोत्कृष्ट गति मिलती है ।

षोडश मत्स्य पुराण

१४००० चौदह सहस्र श्लोक सत्य कल्प कथा । १. व्यास कर्तृक नरसिंह वर्णन २. मनु एवं मत्स्य संवाद ३. ब्रह्मांड वर्णन ४. ब्रह्मदेव एवं असुर उत्पत्ति कथन ५. मारुत उत्पत्ति ६. मदन द्वादशी कथा ७. लोकपाल पूजा ८. मन्वन्तर कथन ९. वैश्य राज्याभि वर्णन १०. सूर्य एवं वैवस्वत की उत्पत्ति ११. बुध का संगम १२. पितृवंशानु कथन १३. श्राद्ध काल निरूपण १४. पितृतीर्थ प्रचार १५. सोमोत्पत्ति १६. सोम वंश कीर्तन १७. ययाति चरित्र १८. कार्तवीर्य चरित्र १९. सृष्ट वंश कीर्तन २०. भृगुशाप २१. विष्णु का दश मूर्ति धारण २२. पुरुवंश कथा २३. हुताशनवंश कथन २४. क्रिया योग कथन २५. पुराण कीर्तन २६. नक्षत्र पुरुष कथन एवं व्रत २७. मार्कंडेय शयन २८. कृष्णाष्टमी व्रत २९. तडाग विधि माहात्म्य ३०. पादुकोत्सर्ग ३१. सौभाग्य शयन वर्णन ३२. अगस्त्य व्रत कथन ३३. अनंत तृतीया ३४. रस कल्यानी व्रत कथा ३५. आनंद कर व्रत ३६. सारस्वत व्रत ३७. उपराग अभिषेक ३८. सप्तमास स्वपन व्रत कथा ३९. भीम द्वादशी व्रत ४०. अनंग शयन व्रत ४१. अशून्य शयन व्रत ४२. अंगारक व्रत ४३. सप्तमी सप्तक व्रत ४४. विशोक द्वादशी व्रत ४५. दशधा मेरुप्रदान व्रत ४६. ग्रहशांति ४७. ग्रेह स्वरूप कथन ४८. शिव चतुर्दशी व्रत ४९. सर्व फल त्याग व्रत ५०. सूर्यवार व्रत ५१. संक्रांति स्नान ५२. विभूति द्वादशी व्रत ५३. षष्टि व्रत माहात्म्य ५४. स्नान विधि क्रम ५५. प्रयाग माहात्म्य ५६. द्वीप एवं लोकानुवर्णन ५७. अंतरिक्ष और दिशा कथन ५८. ध्रुव माहात्म्य ५९. इंद्रभवन वर्णन ६०. त्रिपुर घातन ६१. पितृ प्रवर माहात्म्य ६२. मन्वंतर निर्णय ६३. चतुर्युग संभूति युगधर्म निरूपण ६४. बज्रांग-संभूति ६५. तारकासुरोत्पत्ति एवं माहात्म्य ६६. ब्रह्मदेव अनुकीर्तन ६७. पार्वती संभव ६८. शिव तपोवन वर्णन ६९. अनंगदेह दाह ७०. रति विलाप ७१. गौरी तपोवन ७२. शिव प्रसादन ७३. पार्वती ऋषि संवाद एवं विवाह ७४. कार्तिकेय जन्म और विजय ७५. तारकवध ७६. नरसिंह वर्णन ७७. पद्म कल्प कथा ७८. अंधकासुर घातन ७९. वारानसी माहात्म्य ८०. नर्मदा माहात्म्य ८१. प्रवरानुक्रम ८२. पितृगाथा कीर्तन ८३. उभयमुखीदान ८४. कृष्णाजिन दान ८५. सावित्र्युपाख्यान ८६. राजधर्म ८७. विविधोत्पात् कथन ८८. ग्रह शांति कथन ८९. यात्रा निमित्त कथन ९०. स्वप्न मंगल कीर्तन ९१. वामन माहात्म्य ९२. वराह माहात्म्य ९३. समुद्र मंथन ९४. कालकूट अभिशान्तन ९५. देवासुर विमर्दन ९६. वास्तुविद्या ९७. प्रतिभा लक्षण ९८. देवता स्थापन ९९. प्रासाद लक्षण १००. देव मंडप लक्षण १०१. भविष्य राजा का उद्देश कथन १०२. महादान कथन १०३. कल्प कथा ।

फलश्रुति — यह पुराण लिख कर भक्ति पूर्वक विषुव संक्रांति को ब्राह्मण को दान करने से परम पद मिलता है और इस पुराण के पाठ किंवा श्रवण करने से आयु कीर्ति कल्याण की वृद्धि एवं हरि भवन प्राप्ति होती है ।

सप्तदश गरुड़पुराण

पूर्व एवं उत्तर दो खंड में १९००० उन्नीस सहस्र श्लोक गरुड़ प्रति भगवान ने कहा है । इस पुराण में तार्क्ष कल्प की कथा है ।

प्रथम पूर्व खंड — १. पुराण उपक्रम वर्णन २. संक्षेप स्वर्ग वर्णन ३. सूर्यादि पूजा विधि ४. दीक्षा विधि ५. लक्ष्मी पूजा प्रकरण ६. नवव्यूह अर्चन ७. विष्णु पूजा विधान ८. वैष्णव पंजर ९. योगाध्याय १०. विष्णु सहस्रनाम ११. सूर्य पूजा १३. मृत्युंजयार्च्चन १४. नानामंत्र १५. शिव पूजा १६. गण पूजा १७. गोपालपूजा १८. त्रैलोक्य मोहन श्री रामार्चन १९.विष्णु पूजा एवं पंचतत्व पूजा २०. चक्रार्चन २१. देवपूजा २२. न्यासादि कथन २३. संध्यादि उपासना २४. दुर्गार्चन २५. सुरार्चन २६. माहेश्वर पूजा २७. पवित्रा रोपणार्चन २८. मूर्तिध्यान २९. वास्तु प्रमाण ३०. प्रासाद लक्षण ३१. सकल देवता पृथक पूजा ३३. अष्टांग योग ३४. दान धर्म ३५. प्रायश्चित्त विधि क्रम ३६. द्वीप ईश्वर और नरक वर्णन ३७. सूर्य व्यूह कथन ३८. ज्योतिष श्राद्ध

वर्णन ३९. सामुद्रिक स्वर ज्ञान ४०. नवरत्न परीक्षा ४१. तीर्थ माहात्म्य ४२. गया माहात्म्य ४३. मनवन्तर पृथक् पृथक् आख्यान ४४. पित्राख्यान ४५. वर्णधर्म ४६. द्रव्यशुद्धि ४७. द्रव्य समर्पण ४८.श्राद्धकथा ४९. विनायक पूजा ५०. ग्रहयज्ञ ५१. आश्रम कथा ५२. मननाख्यान एवं प्रशौच ५३. नीतिसार ५४. व्रतोक्ति ५५. सूर्य वंश ५६. सोमवंश ५७. हरि अवतार कथन ५८. रामायण ५९. हरिवंश ६०. भारताख्यान ६१. आयुर्वेद ६२. निदान ६३. चिकित्सा ६४. द्रव्यगुण ६५. रोगघ्न विष्णु कवच ६६. गरुड़ कवच ६७. त्रिपुर आख्यान ६८. प्रश्न चूड़ामणि ६९. अश्वायुर्वेद ७०. ओषधीनाम कथन ७१. व्याकरण शास्त्र ७२. छंदशास्त्र ७३. सदाचार ७४. स्नान विधि ७५. वैश्वदेव तर्पण ७६. संध्या ७७. पार्वण कर्म ७८. नित्य श्राद्ध ७९. सपिंड श्राद्ध ८०. धर्मसार निष्कृति ८१. प्रतिसंक्रम ८२. युगधर्म कृत फल ८३. योगशास्त्र ८४. विष्णु भक्ति ८५. भगवत्प्रणाम फल ८६. वैष्णव माहात्म्य ८७. नरसिंह स्तव ८८. ज्ञानामृत ८९. गुह्याष्टक स्तव ९०. विष्णु अर्चना ९१. वेदांत सार सांख्य और सिद्धांत शास्त्र ९२. ब्रह्मज्ञान ९३. आत्म ज्ञान ९४. गीता सार एवं फल कथन ।

द्वितीय उत्तर खंड प्रेत कल्प कथा — १. धर्म प्रकटित करण २. पूर्व योनि गति कारण ३. दानादिफल ४. और्द्ध दैहिक क्रिया ५. यमलोक मार्ग वर्णन ६. षोडश श्राद्ध फल ७. यममार्ग से निष्कृति कथन ८. धर्मराज वैभव ९. प्रेत पीड़ा निर्णय १०. प्रेत चिन्ह निरूपण ११. प्रेत चरित्र १२. प्रेत कारण १३. प्रेत कृत्य विचार १४. सपिंडीकरण १५. प्रेतत्व मोक्षण आख्यान १६. विमुक्ति कारण दान १७. प्रेत आवश्यक दान १८. शारीरिक विनिर्देश १९. यमलोक वर्णन २०. प्रेतत्व उद्धार कथन २१. कर्म कर्त्ता निर्णय २२. मृत्यु की पूर्व क्रिया कथन एवं पश्चात कर्म निरूपण २३. षोडश श्राद्ध कथन २४. स्वर्ग प्राप्ति क्रिया २५. सूतक संख्या २६. नारायण बलि कर्म २७. वृषोत्सर्ग माहात्म्य २८. निषिद्ध त्याग २९. अपमृत्यु क्रिया ३०. मनुष्य कर्म विपाक ३१. कृत्याकृत्य विचार ३२. मुक्ति कारण विष्णु ध्यान ३३. स्वर्ग गमन विहित आख्यान ३४. स्वर्ग सुख निरूपण ३५. भूर्लोक वर्णन ३६. सप्तलोक वर्णन ३७. पंच उर्द्धलोक कथन ३८. ब्रह्मांड स्थिति कीर्तन ३९. ब्रह्मांड अनेक चरित्र कथन ४०. ब्रह्मजीव निरूपण ४१. आत्यन्तिक लय कथन ४२. फल श्रुति निरूपण ।

फल श्रुति — यह पुराण पाठ करने किंवा श्रवण करने से पाप शमन होता है और लिखकर विष्णु संक्रांति को सुवर्ण हंस द्वय युक्त ब्राह्मण को दान करने से स्वर्ग लाभ होता है ।

अष्टादश ब्रह्मांड पुराण

४ पाद तीन भाग १२००० बारह सहस्र श्लोक । प्रथम भाग में — १. प्रक्रिया पाद २. अनुषंग पाद ३. उपोद्घात पाद मध्य भाग ४. उप संहार पाद शेष भाग । इस पुराण में भविष्य कल्प की कथा है ।

प्रथम भाग प्रक्रिया पाद आरंभ — १. कृत्य समुदेश २. नैमिषाख्यान ३. हिरण्य गर्भोत्पत्ति ४. लोक कल्पना कथा ।

द्वितीय अनुषंग पाद — १. कल्पमन्वंतराख्यान कथा २. लोक ज्ञान कथन ३. मानसिक सृष्टि विवरण ४. रुद्र प्रभाव विवरण ५. महादेव विभूति वर्णन ६. ऋषि सर्ग वर्णन ७. अग्नि उत्पत्ति विवरण ८. काल सद्भाव वर्णन ९. प्रियव्रत समूह उद्देश १०. पृथिवी आयाम एवं विस्तार वर्णन ११. भारतवर्ष वर्णन १२. अन्य वर्ष वर्णन १३. जंब्वादि सप्तद्वीप वर्णन १४. अधः एवं उर्द्ध लोक विवरण १५. ग्रहाचार १६. आदित्य व्यूह विवरण १७. देवग्रह वर्णन १८. नीलकंठाख्यान १९. महादेव वैभव २०. अमावस्या कथा २१. युग तत्व निरूपण २२. यज्ञ प्रवर्तन २३. मध्य एवं अन्त्य युग की क्रिया एवं सत्ययुग की प्रजा का लक्षण २४. ऋषि प्रवर वर्णन २५. वेद आख्यान २६. स्वायम्भुव निरूपण २७. शेष मन्वन्तराख्यान २८. पृथिवी दोहन ।

मध्यभाग उपोद्घात पाद — १. सप्तऋषि कथा २. प्रजापति उपाख्यान ३. देवादि उद्भव ४. जय एवं क्रीड़ा ५. मरुत उत्पत्ति कीर्तन ६. काश्यप विवरण ७. ऋषि वंश निरूपण ८. पितृकल्प कथा ९. श्राद्ध कल्प कथा १०. वैवस्वतोत्पत्ति ११. वैवस्वत सृष्टि विवरण १२. मनुपुत्र निर्णय १३. गंधर्व निरूपण १४. इक्ष्वाकुवंश विवरण १५. अत्रिवंश विवरण १६. अमावसु अर्च्चन १७. रजि चरित्र १८. ययाति चरित्र १९. यदुवंश निरूपण २०. कार्तवीर्य चरित्र २१. जमदग्नि विवरण २२. वृष्णिवंश विषय २३. सागर उपाख्यान २४. भार्गव चरित्र २५. गय वध २६. समर विवरण २७. पुनर्वार भार्गव विषय २८. देवासुर युद्ध में कृष्ण का आविर्भाव वर्णन २९. शुक्र कर्तृक इलस्तव ३०. विष्णु माहात्म्य विवरण ३१. इलिवंश निरूपण ३२. कलियुग

के भविष्य राजा गण का चरित्र ।

अंतभाग उपसंहार पाद — १. वैवस्वत मन्वन्तर का संक्षेप विवरण २. भविष्य मनु का कर्म चरित्र ३. कल्प प्रलय निर्देश ४. काल परिमाण विवरण ५. परिमाण और लक्षण सहित चतुर्दश लोक विवरण ६. नरक एवं विकर्म वर्णन ७. मनोमयपुर आख्यान ८. प्राकृतिक लय विवरण ९. शैवपुर वर्णन १०. सत्वादि गुण संबंध से जीव की गति विवरण ११. अनिर्देश्य ब्रह्म वर्णन ।

फल श्रुति — यह पुराण श्रवण किंवा पाठ करै उसका पाप मोचन होय एवं देवलोक में गति होय । यह पुराण लिख कर[1] स्वर्णसिंहासनस्थ करके ब्राह्मण को दान करने से ब्रह्म लोक प्राप्ति होती है ।

छोड़ि अनेकन साधन को मन मान कह्यौ न करै चित चाही ।
नंद के लाल सों नेह करै किन भूलत दौरे वृथा जिय दाही ।।
आजु लौं नीचन सों हरिचन्द से कौन ने बोलि तौ प्रीत निबाही ।
हैं गनिका सबरी गज गीध अजामिल आदिक याकी गवाही ।।

---

[1] इतिहास तिमिर नाशक तीसरा खंड में यह सिद्ध किया गया है कि पहले आर्य लोग लिखना न जानते थे किंतु यह भ्रम है । पुराणों में प्राय: लिखने का अनेक स्थानों में वर्णन आया है जो इस अनुक्रमणिका से मालूम हुआ होगा और इसका अनेक मैंने कई एक स्थलों में संग्रह किया है । इतिहास तिमिरनाशक का भ्रम मूल लेख नीचे लिखा है । अब हम लोग मेक्समूलर साहब के लेखों को मानें या पुराण को । यथार्थ में मेक्समूलर को भ्रम हुआ है और उसी को मूल मान कर राजा जी चले हैं तब वह क्यों न भूलें ।

''इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता कि इनको लिखना भी आता हो वेद श्रुति स्मृति शास्त्रदर्शन सूक्त ऋच साम वर्ग अध्याय अध्यापक उपाध्याय ग्रंथ पाठ पाठक पठन मनन घोषण इत्यादि सब शब्द जब उनके अर्थ पर ध्यान करो यही गवाही देते हैं कि वेदों के जमाने में लिखना किसी को नहीं आता था । वेद वा ब्राह्मण वा सूत्रों में इसका कहीं कुछ ज़िक्र नहीं है । कोई शब्द ऐसा नहीं कि जिससे इसका इशारा पाया जाय । उणदि सूत्र में जो अति प्राचीन व्याकरण है और जिसका जिक्र पाणिनी ने किया है यदि कोई शब्द ऐसा मिल भी जाता है तो वह पीछे से मिलाया हुआ मालूम होता है (इसी तरह उणादि सूत्र में दीनार: जिन: तिरीटम् स्तूम: इत्यादि शब्द पीछे से लिख दिये गए हैं । दीनार: (Denarious) रुमी शब्द है और जि धातु को जिससे जिन निकला है । सायन ने जहाँ उणादि से लिखा छोड़ दिया है नृसिंह ने भी अपनी स्वर मंजरी में जि धातु को छोड़ दिया है । यह धातु किसी प्रामाणिक ग्रंथ में नहीं मिलता) जैसा अरबी शब्द किताब (पुस्तक) जिसका अर्थ ही लिखना है अथवा यूनानी शब्द पेपर (कागज) जिसका अर्थ ही पेपरिस वृक्ष की छाल से बनाया हुआ है कोई भी हाथ नहीं लगता । संस्कृत में सूत्रों की रचना ऐसी है कि जुबानी याद रक्खे जाँय । सूत्रकारों ने उन्हें लिखने के लिए कदापि नहीं रचा । मनुजी ने जहाँ पढ़ाने का बहुत विस्तारपूर्वक नियम बाँधा है (ब्रह्मारम्भेवसाने च पादौग्राह्यौ गुरोस्सदा । संहत्यहस्तावध्येयं सहि ब्रह्माञ्जलि: स्मृत: ।। अध्येष्यमणन्तु गुरुनिर्त्य कालमतन्द्रित: । अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोसित्वति चारमेत् ।) पुस्तक कलम दवात कागज का नाम भी नहीं लिखा, लिखने का कहीं किसी प्रकार से कुछ चर्चा ही नहीं किया और देखो अब तो लिखना पढ़ना ये दोनों ऐसे द्वंद्व हो गए हैं कि पर्यायी से जान पड़ते हैं । एक के स्मरण के साथ ही दूसरे का स्मरण भी हो आता है । निदान लिखने की विद्या इस देश में पीछे से फैली (यदि पहले होती तो महाभारत में जहाँ कौरव पांडव के दूतों का हाल लिखा है उनके साथ पत्र जाने का भी हाल लिखा होता ।) पत्र लेखनी मसी ये सब शब्द पीछे से काम में आये । उत्तर में पहले भोजपत्र और दक्षिण में पहले तालपत्र पर लिखा होगा इसी से जिस पर लिखें उसका नाम पत्र रह गया और तालपत्र पर लीकों के खींचने अर्थात् खोदने से यह काम ही लिखना ठहरा । लिप लीपना है जब पत्रों पर सियाही लगाई होगी यह शब्द काम में आया । यदि पाणिनी के समय में भी लिखना किसी को मालूम होता वह अवश्य इसके लिए कोई शब्द बनाता । इसने जो वर्ण अक्षर और विराम लिखा है वर्ण का अर्थ आवाज का रंग है, अक्षर का अर्थ अविनाशी है, विराम का अर्थ आवाज का बंद होना है । यदि वह लिखना जानता होता अनुस्वार विसर्ग जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का नाम बोपदेव की तरह बिंदु द्विबिंदु बज्राकृति और गजकुंभाकृति रखता ।''

श्रीहरि

उत्सवावली

(वर्ष भर के उत्सवों की तालिका और संक्षेप सेवा शृंगार वर्णन)

"तत्कर्म हरितोषं यत्"
"कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा"
"कृष्ण सेवा सदा कार्या"

रचनाकाल सन् १८७६। इसमें साल भर के उत्सवों की तालिका, व्रत, सेवा, शृंगार आदि का वर्णन है।— सं.

उत्सवावली

चैत्र शुक्ल पक्ष

प्रतिपदा — नवरात्रारंभ, अभ्यंग, शृंगार भारी, हो सके तो गुलाब की फूल मंडली।

पंचमी — श्री रामानुजस्वामी का जन्मोत्सव।

षष्ठी — श्री यदुनाथ जी का जन्मोत्सव।

नवमी — श्री रामनवमी, केसरिया वस्त्र, उत्सव का शृंगार, पंचामृत (दोपहर को)।

एकादशी — मुकुट का शृंगार।

द्वादशी — दमनक (दौना) समर्पण करना।

पूर्णिमा — महारास की समाप्ति का उत्सव, मुकुट का शृंगार।

किसी के मत से चैत्र शुक्ल द्वितीया को श्री जानकी-जन्म। जिस दिन मेष संक्रांति पड़े उस दिन सत्तू के लड्डू भोग धरना।

वैशाख कृष्ण पक्ष

एकादशी — श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु का जन्म, केसरिया बागा।

वैशाख शुक्ल पक्ष

तृतीया — अक्षयतृतीया। निकुंज में प्रथम स्नेह का उत्सव। केसरी किनारा रंगा हलका वस्त्र, मोती पोत के आभरण। गर्मी की सेवा आज से चली। खसखाना, पंखा, मट्टी की झारी, छिरकाव, फुहारा, जो बन जाय। परशुराम-अवतार।

सप्तमी — श्री रामराज्य।

नवमी — श्री जानकी-जन्म-दिन, श्री स्वामिनी जी से विवाहोत्सव, सेहरे का शृंगार।

एकादशी — श्री हरिवंश जी का जन्म।

चतुर्दशी — नृसिंह जयंती, गर्मी की जो सेवा बाकी हो सो सब और भी इस दिन से चलै, केसरिया वस्त्र, संध्या को पंचामृत-स्नान।

पूर्णिमा -- श्री राधारमण जी का प्राकट्य।

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष

पंचमी — कूर्मावतार।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष

दशमी — दशहरा, जमुनाजी-गंगाजी का पूजन।

एकादशी — जल विहार, पानी भरकर उसमें सिंहासन रखकर श्री ठाकुरजी को पधरावना।

चतुर्दशी — स्नान यात्रा के हेतु जल ले आना। जल में फूल की कली, चंदन, कपूर इत्यादि ठंडी वस्तु मिलाकर ओस में ढँककर रखना वा विधिपूर्वक मंत्र से अधिवासन करना।

पूर्णिमा — स्नान यात्रा, ज्येष्ठा नक्षत्र में पहले दिन के लाये पानी से सबेरे श्री ठाकुरजी को स्नान कराना। मूंग भीगी, फल इत्यादि ठंडी वस्तु भोग लगाना।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष

द्वितीया — पुष्य नक्षत्र में रथ यात्रा। सफेद गोटे का बागा। जड़ाऊ आभरण, कुलह, चंद्रिका।

तृतीया — श्री ठाकुरजी का गौना।

षष्ठी — पांडुरंग षष्ठी, श्री विट्ठलनाथजी (दक्षिणवाले) का पाटोत्सव है और इसी दिन से रंगीन वस्त्र धारण कराना आरंभ होता है।

एकादशी — हरिशयनी।

पूर्णिमा — असाढ़ी जोग, चुनरी का बागा, मुकुट, मोर की पिछवाई।

श्रावण कृष्ण पक्ष

प्रतिपदा वा द्वितीया — जिस दिन चंद्रमा अच्छा हो हिंडोला आरंभ, लाल बागा, पाग, मोरशिखा।

पंचमी — अठवाँसा का उत्सव।

श्रावण शुक्ल पक्ष

तृतीया — श्री ठकुरानी तीज, चुनरी का बागा, श्री स्वामिनी जी का शृंगार भारी। हिंडोले का मुख्य उत्सव।

पंचमी — श्याम बागा, मुकुट का शृंगार।

अष्टमी — लाल बागा, मुकुट का शृंगार, बगीचे में हिंडोला।

एकादशी — पवित्रा, श्री ठाकुरजी को पवित्रा यथाशक्ति समर्पण करना।

द्वादशी — गुरु को और श्री ठाकुरजी को पवित्रा समर्पण करना।

त्रयोदशी — चतुरा नागा का उत्सव।

पूर्णिमा — रक्षाबंधन।

पूर्णिमा पीछे हिंडोला विसर्जन अच्छे मुहूर्त में करना।

भाद्रपद कृष्ण पक्ष

सप्तमी — श्री विष्णु स्वामी का जन्मोत्सव, किसी किसी मत से पूतना-वध के कारण छठें दिन छठी नहीं हुई थी, इसी कारण इस सप्तमी को हुई।

अष्टमी — महामहोत्सव जन्माष्टमी पहिले दिन से सब तैयारी कर रखना। उत्सव के दिन बड़े सवेरे उठना। घर में जितने स्वरूप ठाकुर जी के छोटे बड़े हों सब को पंचामृत स्नान कराकर अभ्यंग कराके उत्तम केसरिया वस्त्र शृंगार भारी कुलह चंद्रिका आदिक जहाँ तक हो सकै भारी तैयारी करना। शृंगार करके तिलक करना, भेंट धरना। बंदनवार थापा केले का खंभा लगाना। अष्टमी के दिन को श्री ठाकुर जी के जनम गाँठ के उत्सव की भावना करना और रात को जन्मोत्सव की भावना। संध्या से रोशनी करना। अर्द्धरात्रि को एक छोटे

स्वरूप को पंचामृत स्नान कराना । घंटा शंख नौबतखाना बजाना । व्रज भयो महर के पूत, यह पद गाना । जन्म पीछे श्री ठाकुरजी को नई फूल की माला तिलक पीतांबर समर्पण करना । फिर यथाशक्ति महाभोग धरना । पंजीरी भोग । सवेरे नवमी को श्रीठाकुरजी को पालने पर झुलाना । दही से नंद महोत्सव करना, पालना के भोग में मेवा मिठाई मक्खन रखना, भेंट आरती करना ।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष

द्वितीया — दसूठन का उत्सव ।

पंचमी — श्रीबलदेव जी का जन्म, श्रीचंद्रावली जी का जन्म । जहाँ दो स्वामिनी जी बिराजती हों वहाँ दक्षिण भाग की स्वामिनी जी को दूध का स्नान, तिलक ।

अष्टमी — श्री राधाष्टमी, शृंगार जन्माष्टमी का, श्री स्वामिनी जी को दूध से स्नान कराना, तिलक भोग आरती तोरण आदि जन्माष्टमी की भाँति सब करना ।

एकादशी — दान एकादशी, मकुट काछनी का शृंगार वस्त्र लाल, दही दूध छोटी छोटी कुल्हिया में भोग रखना, व्रज भक्त (सखी) हों तो उनके सिर पर दही दूध रखकर सामने खड़ी करना ।

द्वादशी — वामनजयंती, केसरिया वस्त्र, धोती उपरना, कुलह, दोपहर को पंचामृत ।

पूर्णिमा — साँझी के उत्सव का आरंभ, साँझ को ठाकुर जी के सामने फूल की वा रंग की साँझी बनाना ।

आश्विन कृष्ण पक्ष

अष्टमी — महीना का चौक ।

द्वादशी — श्री गो. गोपीनाथ जी का उत्सव ।

त्रयोदशी — श्री बाल कृष्ण जी का उत्सव ।

चतुर्दशी — कोट की आरती ।

पूर्णिमा — साँझी की समाप्ति ।

आश्विन शुक्ल पक्ष

प्रतिपदा — नवरात्रारंभ, कुलह चंद्रिका ।

नवमी — नवरात्र की समाप्ति, कुलह चंद्रिका, सफेद छापे का बागा, सामग्री ।

दशमी — विजयदशमी, सफेद जरी का बागा, पाग चंद्रिका, संध्या को जवार की कलगी धराना, तिलक, खंजर कमर में धराना, रावण बध के कीर्तन गाना ।

एकादशी — मुकुट ।

पूर्णिमा — महारास, सफेद ताश का बागा, मुकुट, आभरण सफेद रात को चाँदनी में श्री ठाकुर जी विराजैं, सफेद वस्तु भोग लगाना, रास के कीर्तन गाना ।

कार्तिक कृष्ण पक्ष

दशमी वा एकादशी से हटरी दीपमालिका आरंभ ।

त्रयोदशी — धन तेरस, हरी जरी का बागा ।

चतुर्दशी — रूप चतुर्दशी, बागा लाल जरी का ।

अमावस्या — दीपावली, सफेद ताश का बागा, कुलह चंद्रिका, रात को हटरी में बैठाना, सामने दीपावली, चौपड़, भँड़हर, खिलौना आदि रखना ।

कार्तिक शुक्ल पक्ष

प्रतिपदा — अन्नकूट, शृंगार दीवाली का रहेगा । गोवर्धन की पूजा करके अन्नकूट का भोग रखना, जहाँ तक बन पड़े सामग्री समर्पण करना ।

द्वितीया — भाई दूइज, तिलक ।

अष्टमी — गोपाष्टमी ।

नवमी — अक्षयनवमी, गोविंदाभिषेकोत्सव, परिक्रमा करना ।

एकादशी — प्रबोधिनी, अच्छे समय में ऊख के मंडप में पधराय कर जगाना, नया जाड़े का कपड़ा

समर्पण करना, अँगीठी आदि जाड़े का उपचार रखना।

द्वादशी — श्री गिरिधर जी का और श्री रघुनाथ जी का उत्सव।

त्रयोदशी — श्री राधावल्लभ जी का पाटोत्सव।

पूर्णिमा — यज्ञपत्री अंगीकार।

कार्तिक में अगस्त के फूल की माला, दीप दान, रंग से स्वस्तिकादि लिखना, तुलसी समर्पण और सामग्री भोग रखना।

मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष

तृतीया — बुध अवतार।

षष्ठी — श्री गोविंदराय जी का उत्सव।

त्रयोदशी — श्री घनश्याम जी का उत्सव।

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष

द्वितीया — कृख में पधारे।

पंचमी — श्री रुक्मिणी जी तथा श्री सीता जी का विवाहोत्सव।

सप्तमी — श्री गोकुलनाथ जी का उत्सव।

पौष कृष्ण पक्ष

नवमी — प्रभु श्री गो. विट्ठलनाथ जी का उत्सव।

पौष शुक्ल पक्ष

अष्टमी — अन्नप्राशन, इसी दिन श्री नंदराय जी का जन्म।

माघ कृष्ण पक्ष

षष्ठी — श्री ठाकुर जी का नामकरण।

मकर संक्रांति जिस दिन हो उस दिन छींट के नए रूई के बागा धराना और तिल का लड्डू भोग धरना।

माघ शुक्ल पक्ष

पंचमी — बसंतोत्सव, खेल आरंभ, सफेद बागा, इसी दिन से अबीर बुक्का केसर चोआ से नित्य खिलाना, सामने बसंत रखना, बसंत राग माघ की पूर्णिमा तक गाना। श्री अद्वैत प्रभु का उत्सव।

षष्ठी — श्री यशोदा जी का जन्म।

अष्टमी — श्री मध्वाचार्योत्सव।

त्रयोदशी — श्री नित्यानंद प्रभु का उत्सव।

पूर्णिमा — होली डाँड़ा।

फाल्गुण कृष्ण पक्ष

सप्तमी — श्रीनाथ जी का पाटोत्सव।

फाल्गुण शुक्ल पक्ष

एकादशी — कुंज एकादशी, फूल का मुकुट धरावना, कुंज में खिलाना।

पूर्णिमा — होलिकोत्सव, सफेद बागा, पाग, मोर चंद्रिका, खेल। श्री चैतन्य प्रभु का उत्सव।

चैत्र कृष्ण पक्ष

प्रतिपदा — दोलोत्सव, सफेद बागा, पाग मोर चंद्रिका, आम के मौर की डोल बाँध कर ठाकुर जी को झुलाना, चार भोग चार खेल होय।

पंचमी — मत्स्यावतार।

त्रयोदशी — बाराहावतार।

संक्षिप्त नित्य सेवा पद्धति

सेवा का मूल यह है कि स्नेह पूर्वक जैसे निज देह वा बालक वा स्वामी की गर्मी सर्दी आदि ऋतु के

अनुसार भोजन वस्त्र से रक्षा की जाती है वैसे ही सर्व स्वामी परिपूर्ण परमेश्वर की मूर्ति की भी सेवा करना। नित्य सबेरे प्रात: कृत्य से निवृत्त होकर तिलक संध्या करके मंदिर में जाकर पहिले दंडवत करके मार्जनी करना, रात के बरतन धोकर वस्त्रादि जो बदलना हो सब ठीक करके घंटानाद पूर्वक ठाकुर जी को जगाना और मंगल भोग रखकर मंगला आरती करना, फिर स्नान कराकर यथा शक्ति शृंगार करना, फूल की माला पहराना, चरण पर तुलसी समर्पण करके खड़ी मूर्ति हो तो वेणु धराकर दर्पण दिखलाना, श्रद्धा सौकर्य हो तो शृंगार भोग रखकर फिर दूध भोग लगाकर तब राजभोग धरना। न सौकर्य हो तो शृंगार पीछे एक ही भोग रखना। आचमन मुख वस्त्र करके बीड़ी समर्पण करके चौपड़ खिलौना आदि सामने धर के आरती करना। फिर सज्जा साज करके किवाड़ बंद कर देना। संध्या को फिर घंटानाद करके जगा कर दिन का पानी आदि बदल कर यथा शक्ति फल भोग रखना सौकर्य हो तो साँझ को भी दो भोग और रखना नहीं तो एक ही बेर सही। फल भोग के पीछे शृंगार उतार कर शयन भोग रखना और दूध रखना। फिर आरती करके शयन कराना। गर्मी हो तो पतली चद्दर, जाड़ा हो तो रजाई उढ़ाना। स्वामिनी जी को साड़ी और खड़े सरूप हों तो तनियां रात को भी रहै। बालसरूप हो तो नंगे ही पौढ़ैं। मणि विग्रह हों तो नित्य स्नान नहीं कराना। व्रत के दिन भी ठाकुर जी को नित्य की भाँति अन्न आदि समर्पण करना। गर्मी सर्दी का सेवा में बहुत ध्यान रखना।

अथ संक्षिप्त निर्णय

एकादशी के व्रत का मोटा निर्णय यह है कि पहले दिन पचपन घड़ी से पल भर भी दशमी विशेष हो तो व्रत नहीं करना, द्वादशी को व्रत करना। किंतु निंबार्क संप्रदाय वाले ४५ घड़ी से अधिक दशमी हो तो व्रत नहीं करते। द्वादशी दो हों तो पहिली द्वादशी को व्रत करना। दो एकादशी हों तो दूसरी एकादशी को व्रत करना। पत्रा न मिलै और दशमी के समय में कुछ भी संदेह हो तो द्वादशी को व्रत करना। जन्माष्टमी, रामनवमी और नृसिंह जयंती उदयात् लेना और वामन द्वादशी मध्यान्हव्यापिनी, विजय दशमी सायंकाल व्यापिनी। और उत्सव सब संसार में जिस दिन तिथि मानी जाय उस दिन। रास पूर्णिमा जिस दिन चंद्रमा की कला विशेष मिलै उस दिन करना।

●

हिंदी कुरानशरीफ़

रचनाकाल सन् १८७५। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका जि. २ सं. ८ - १२ सन् १८७५ में पहली बार अपूर्ण प्रकाशित।— सं.

हिंदी कुरानशरीफ

मुहम्मदीय मत प्रयुक्त ईश्वर के पवित्र और आदरणीय वाक्य आरंभ करता हूँ क्षमा करने वाले और दयालु ईश्वर के नाम के साथ।

सब स्तुति उसी की है जो लोकों का भर्त्ता है। हम तेरी ही वंदना करते और तुझी से सहायता चाहते हैं। मुझको सीधा मार्ग दिखा। जो मार्ग उनका है जिन पर तूने कृपा की है न कि उनका जिन पर तूने क्रोध किया है और जो भूले हैं।

१ म. खण्ड समाप्त हुआ।

आरंभ करता हूँ क्षमा करनेवाले और दयालु ईश्वर के नाम के साथ।

निस्संदेह यह पुस्तक धर्मियों को उसका मार्ग दिखाती है। जो बिन देखे विश्वास करते हैं और वंदना का नियम रखते हैं और उस पर संतोष रखते हैं जो मैंने उन्हें दिया है। और जो लोग कि उस पर विश्वास लाते हैं जो तुम्हारे लिए उतारा गया और जो तुम्हारे पूर्व उतारा गया और जो अंत के दिन का स्मरण रखते हैं।

यही लोग अपने परमेश्वर की शिक्षा पर चलने वाले और यही लोग मुक्ति पाने वाले हैं। और निश्चय जो लोग बहिर्मुख हैं उन्हें चाहे तू कितना भी डरावै या न डरावै वे विश्वास न करैंगे। कृपा की ईश्वर ने इनके चित्त कान और आँखों पर और उन पर परदा है और उनको बड़ा पाप है। मनुष्यों में कोई कहते हैं कि ईश्वर पर विश्वास लाए हम और पिछले दिनों पर निश्चय किया और कोई विश्वास नहीं लाते। वे ईश्वर से और उसके विश्वासियों से छल करते हैं पर यह नहीं समझते कि उन्होंने अपनी आत्मा से छल किया। इनके चित्त में व्याधि है और ईश्वर ने बढ़ाई है इनकी व्याधि, और वे पाप के और दुःख के भागी हैं क्योंकि वे झूठ बोलनेवाले थे, जब उनसे कहा जाता है कि पृथ्वी पर उपद्रव मत करो वे कहते हैं कि हम योग्य करते हैं, निश्चय रक्खो कि वे पाखंडी हैं और अज्ञानी हैं, जब उनसे कहा जाता है कि तुम भी विश्वास करो जैसे औरों का विश्वास है तो वे कहते हैं, कि विश्वास हम कैसे करैं विश्वास करनेवाले तो मूर्ख हैं पर निश्चय रखो कि वे ही मूर्ख हैं पर वे अपने को जानते नहीं। वे जब धर्मियों से मिलते हैं तब कहते हैं कि हम भी उस पर विश्वास रखते हैं पर जब अपने (पाखंडी) वर्ग के मुखियों से मिलते हैं तो कहते हैं कि हम निस्संदेह तुम्हारे साथ हैं हँसी नहीं करते, (परंतु) ईश्वर उनसे हँसी करता है और उनको अपने विरुद्ध प्रेरणा करता है, यही लोग हैं जिन्होंने शिक्षा के बदले कुमार्ग मोल लिया इससे इनके व्यौपार में न तो कुछ लाभ हुआ और न इनको मार्ग मिला, इन लोगों की उपमा उस मनुष्य की है जिसने आप आग लगाई और अपने पास की वस्तु जला दी इसी से ईश्वर ने

उनका प्रकाश हरण कर लिया और उनको अंधकार में डाल दिया इसी से वे नहीं देखते । वे बहिरे अंधे और गूँगे हैं क्योंकि उनकी गति नहीं । वा मेघ की आकाश में अंधेरी और गरज और चमक से वे कानों में उंगली करते हैं पर मृत्यु की कड़क (बिजली) से डरो और (निश्चय रक्खे कि) भगवान दुष्टों को आच्छादन करने वाला है । निकट है कि वह बिजली उनकी दृष्टि हरण कर ले जाय क्योंकि वह जब उनको प्रकाश देती है तब वे उस मार्गपर चलते हैं और वह जब अंधकार करती है तब वे खड़े रह जाते हैं और यदि ईश्वर चाहे तो उनका कान और आँख हरण कर ले क्योंकि निश्चय ईश्वर वस्तु मात्र का प्रभु है । हे लोगो ! अपने परमेश्वर की बंदना करो जिसने तुमको और तुम्हारे पूर्वजों जो उत्पन्न किया तो बचोगे । जिसने तुम्हारे हेतु पृथ्वी का बिछौना बनाया और आकाश की छत और आकाश से पानी उतार कर फल उत्पन्न करके तुम्हारा भोज्य बनाया इससे उसकी किसी की समता मत दो यह तुम जानते हो । यदि तुमको इस विषय में संदेह हो तो जो वस्तु हमने अपने दासों के हेतु बनाई हैं इसमें से (एक भी) वस्तु वैसी ही लाओ और अपने साक्षियों से पूछो कि ईश्वर को छोड़ कर तुम (कैसे) सच्चे हो तुम वैसा नहीं कर सकते निश्चय तुम वैसा नहीं कर सकते इससे उस अग्नि से डरो जिसका मनुष्य ईंधन है और पत्थर (भी उन) पाखंडियों के हेतु बनाये गए हैं, और लोगों को यह समाचार शुभ है जिन्होंने उस पर विश्वास किया है और अच्छी करनी की है क्योंकि उनके लिए वे स्वर्ग बने हैं जिनके नीचे नहरें बहती हैं और उनको (उत्तम) फलों का भोजन मिलेगा तब वे कहेंगे कि यह वह वस्तु है जो हमें पहिले ही से मिली हैं जो एक दूसरे के समान हैं और ये अवर्णनीय और पवित्र हैं और वे उसमें सर्वदा रहने वाले हैं ।

निश्चय भगवान को इसमें लज्जा नहीं है कि कोई मच्छड़ की उपमा दे या कोई और उपमा दे जो लोग विश्वास रखते हैं वे भली भाँति जानते हैं कि निश्चय यह उनके ईश्वर का कहा है पर जो अविश्वासी हैं वे कहते हैं कि ईश्वर को ऐसी उपमा देने की क्या आवश्यकता थी । इसी से वह बहुतों को सन्मार्ग दिखाता है और बहुतों को वह भुलाता है क्योंकि वे उसकी आज्ञा उल्लंघन करते हैं । जो दुष्ट लोग शपथ किये पीछे ईश्वर के साथ के नियमों को तोड़ते हैं और जिन बातों को उसने जोड़ने की आज्ञा दी है उनको भी तोड़ते हैं और सारे देश में उपद्रव उठाते हैं वे निश्चय हानि|वाले हैं । जिसने मृत से तुमको जीवनदान दिया और जीवित से मृत करेगा और फिर जिलावैगा और अपने पास बुलावैगा उस ईश्वर पर तुम क्यों नहीं विश्वास करते । उसी ने पृथ्वी पर की सब वस्तु तुम्हारे हेतु उत्पन्न की और सातो आकाश की ओर दृष्टि फेर कर पृथ्वी से उसका (गुणद) संबंध स्थिर किया और वही सर्वज्ञ है । जब उसने देवताओं से कहा कि मुझको पृथ्वी पर एक आश्चर्य (ईश्वर का दूत और स्थानापन्न) रखना है तो देवताओं ने कहा कि क्या आप ऐसा मनुष्य भेजा चाहते हैं जो उपद्रव करे और पृथ्वी पर बहुत जीवों का बध करे । हम लोग सदा आप का गुणगान करते हैं और आप की पवित्र मूर्ति का ध्यान करते हैं (अर्थात् हम पृथ्वी पर भेजे जाने के योग्य हैं) ईश्वर ने कहा तुम सब अल्पज्ञ हो सर्वज्ञ केवल मैं हूँ फिर आदिम को उसने अपनी सृष्टि के स्थावर जंगमों के नाम बताए और उन वस्तुओं को देवताओं को दिखाकर उनका नाम पूछा । उन लोगों ने कहा प्रभु तू सबसे निराला है हम सब केवल उतना ही जानते हैं जितना ज्ञान तूने हमें दिया है और निस्संदेह सर्वज्ञ केवल तू है । तब ईश्वर ने आदिम से कहा कि तू इनके नाम बता तब उसने सब नाम बतलाए तब ईश्वर ने कहा कि देखो पृथ्वी और स्वर्ग का त्रिकाल ज्ञान हमको है और हम तुम्हारे प्रगट और प्रच्छन्न कर्मों को जानते हैं, आज्ञा दिया कि सब देवता इसकी वंदना करो और सबने वंदना की परंतु अवलीश (इबलीस) ने वंदना न की आज्ञा से फिर गया क्योंकि वह दुष्ट था । मैंने आज्ञा दी कि ए आदिम तुम और तुम्हारी स्त्री वैकुंठ में रहो और सावधानी से इन अमृत फलों को खाओ और चाहो जहाँ फिरो परंतु इस वृक्ष के पास मत जाना नहीं तो पापी होगे परंतु उनको स्तेन (शैतान) ने बहकाया और उनको उस परम सुख से च्युत किया । तब मैंने कहा कि तुम नीचे उतरो, तुम्हारे में परस्पर वैर है और बहुत काल तक तुमको पृथ्वी पर रहना है और बड़े काम करने हैं फिर आदिम ने अपने ईश्वर से बहुत से धर्म सीखे और ईश्वर उनपर दयालु हुआ क्योंकि वह सच्चा दयालु और क्षमावान है । फिर मैंने कहा कि तुम सब नीचे उतरो और जब कभी कोई हमारा अनुशासन मिले तो उसको मानो क्योंकि जो हमारी आज्ञा मानते हैं उनको न भय है न शोक पर जो उस आज्ञा का उल्लंघन करते हैं और हमारे अनुभवों को झूठा करते हैं वे नारकी हैं

और सदा नर्क में रहैंगे । हे इसराईल (ईश्वरायिल) की संतान हमारे अनुग्रहों को स्मरण करो जो हमने तुम्हारे ऊपर किए और तुम अपने वचनों को पूरा करो तो मैं भी अपने वचनों को पूरा करूंगा और केवल मेरा ही भय रखो । और मानो जो कुछ हमने तुम्हारे हेतु उतारा क्योंकि सच माननेवाला तुम्हारे पास है और मेरी आज्ञाओं को बहुमूल्य समझो और मुझसे भय करो । सत्य में असत्य मत मिलाओ और सब को जान बूझकर मत छिपाओ और वंदना करो (नमाज खड़ी करो) और दान (जकात) दो और वंदना में झुकनेवालों के साथ झुको ।

लोगों को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश करते हौ पर तुम आप वैसा आचरण नहीं करते । धर्म पुस्तकों को पढ़ते हौ पर समझते नहीं । धैर्य से प्रार्थना करो और निश्चय रखकर वंदना करो यद्यपि यह कठिन है परंतु दीन भक्तों को सदा लभ्य है क्यौंकि उनको अपने सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर से मिलने और अंत में उसके पास जाने का निश्चय है । हे इसराईल की संतान हमारे उन अनुग्रहों को जो हमने तुम पर किए हैं स्मरण रखो । हमने तुमको संसार के जीवमात्र से श्रेष्ठ किया है । और उस दिन का भय रखो जिस दिन कोई किसी के कुछ भी काम नहीं आता और न किसी की सिफारश सुनी जाती है न कोई कुछ बदला देकर बच सकता है और न किसी की कोई सहायता कर सकता है । उसको स्मरण करो जो हमने तुमको फरऊन के गणों से बचाया जो तुमको बड़ा दुःख देते और तुम्हारे संतान का बध करते तथा तुम्हारी स्त्रियों को (दासी बनाने को) जीती रखते । ईश्वर ने इस कार्य में तुम्हारी बड़ी सहायता की है । तुम देखते थे कि (नील) नदी को दो भाग करके हमने तुम्हें बचा लिया और फरऊन के गण को डुबा कर नाश कर दिया । मूसा से हमने चालीस रात्रि में सब आपत्तियों से छुड़ाने का प्रण किया था पर फिर तुम सब मुझसे फिर गए और बछड़े की पूजा की अतएव तुम बहिर्मुख हो । तब भी हमने तुमको क्षमा किया कि तुम अब भी हमारे गुण मानों और इसी हेतु मूसा को हमने धर्म पुस्तक और उपदेश दिए कि तुम उनके द्वारा सत्यमार्ग पहिचानो । और जब मूसा ने अपनी जाति से कहा कि तुम लोगों ने इस बछड़े की पूजा करके अपनी बड़ी हानि किया इससे अब तुम इसकी घृणा करो और इसके प्रायश्चित्त में अपने जीव की बलि दो क्योंकि इसी में तुम्हारे परमेश्वर की प्रसन्नता है । यों उसने तुम्हारी ओर फिर दृष्टि फेरी क्योंकि वह क्षमावान और दयावान है परंतु तुमने फिर यही कहा ए मूसा जब तक हम लोग परमेश्वर को अपने सामने न देखैंगे कभी विश्वास न करैंगे । इस बात पर तुम्हारे सामने बिजली ने फिर तुमको घात किया परंतु हमने मरने पीछे फिर तुमको इस वास्ते जिलाया कि तुम अब भी विश्वास लाओ । और हमने दिन भर तुम पर मेघ की छाया की और मन[१] और सलवी[२] उतार कर कहा कि उत्तम वस्तुओं को मैंने तुम्हें दिया तुम इन्हें खाओ । तुमने मुझसे विमुख होकर अपनी ही हानि की कुछ मेरी हानि नहीं की है । फिर मैंने तुमसे कहा कि इस नगर में बसो और यथा सुख निर्भय इन उत्तम खाद्य वस्तुओं को खाते फिरो और मेरा धन्यवाद करके द्वार में प्रवेश करो और कहो कि हमैं क्षमा कर तो मैं तुम्हारे अपराधों को क्षमा करूँ । विशेष कर मैं उनकी क्षमा करूँगा जो विश्वासी हैं । परंतु दुष्टात्मा लोगों ने फिर मुझसे मुख फेर लिया इस हेतु मैंने आकाश से फिर उन अन्यायियों पर क्रोध उतारा । फिर जब मूसा ने अपने शिष्यों के हेतु पानी माँगा मैंने कहा तुम अपनी छड़ी पत्थर पर मारो । फिर उससे बारह सोते बह निकले और सब ने अपनी अपनी जीविका पहिचान ली । फिर मैंने आज्ञा दी कि ईश्वरदत्त जीविका से निर्बाह करो और देश में उपद्रव उठाते मत फिरो । फिर तुमने कहा कि ए मूसा हम एक प्रकार के भोजन पर संतोष न करैंगे इससे तू पुकार अपने ईश्वर को कि हमारे हेतु पृथ्वी से साग, लकड़ी, गेहूँ, मसूर और प्याज उत्पन्न करैं । उसने कहा तुम एक उत्तम वस्तु के बदले बुरी वस्तु चाहते हो ।

१. मन एक मीठा दाना धनिया का सा था जो ईश्वर ने जीवों पर क्षमा करके बरसाया था ।
२. सलवी बटेर की सी एक चिड़िया थी जिन्हें परमेश्वर ने उनके लिए भेजा था ।

किसी नगर में उतरो तो जो तुम माँगते हो तुमको मिलै । तब उन पर विपत्ति और दैन्य पड़ा और ईश्वर का कोप हुआ क्योंकि वह ईश्वर की आज्ञा नहीं मानते थे और आचार्यों को व्यर्थ मार डालते थे और वह आज्ञा के विरुद्ध थे और उन्होंने सीमा उल्लंघन की थी । जो लोग मुसलमान[१] या यहूदी[२] या क्रिस्तान[३] या साबईन[४] जो कोई ईश्वर पर और प्रलयकाल पर विश्वास करता है और अच्छा काम करता है, तो वह ईश्वर से अपनी कमाई पाता है और न उसको डर है, और न वह दुःख भोगता है । जब हमने पर्वत[५] ऊँचा किया और तुमसे वाक्य लिया और कहा कि जो हमने तुमको दिया उसको बल से पकड़ो जिसमें तुमको भय हो फिर इसके पीछे तुम फिर गए सो इस अवसर पर जो ईश्वर की उदारता और दया तुमपर न होती तो तुम नाश हो जाते और तुम जानते हो कि तुम लोगों में से जिसने अतवार के दिन उपद्रव किया उनको हमने शाप दिया कि बंदर हो जाओ और इस कथा को जो उस जात के लोग हैं वा होंगे उनके हेतु हमने विभीषिका रखा कि इससे उनको भय और उपदेश हो । और जब मूसा ने अपनी जाति को कहा कि एक बछड़ी बलि दो तो उन्होंने कहा कि तुम हँसी करते हो । मूसा ने कहा कि मैं इन मूर्खों की मंडली में ईश्वर से शरण माँगता हूँ तब वह बोले कि अपने ईश्वर को पुकार कि वह हमसे वर्णन करै कि वह गाय कैसी है । उसने कहा वह न बूढ़ी है न बिन ब्याई और इन सभों में डील की छोटी है लो अब जो ईश्वर ने आज्ञा किया है करो । फिर उन्होंने कहा अपने ईश्वर को पुकार कि वह उसका रंग बतलावै । मूसा ने कहा कि वह एक गहिरे पीले रंग की गाय है जिसके देखने से नेत्रों को आनंद होता है । वे बोले हमारे वास्ते अपने ईश्वर को पुकार कि वह वर्णन करै कि वह किस जात की गाय है क्योंकि हमको गायों में संदेह हो गया है और ईश्वर ने चाहा तो हम सन्मार्ग पर आवैंगे । उसने कहा कि ईश्वर कहता है कि वह परिश्रम करनेवाली गाय नहीं है जो पृथ्वी जोते खेत सींचे[६], न उसके शरीर पर रोम है तब उन लोगों ने कहा कि अब तुमने सच्ची बात कही और फिर उसका बलि दिया परंतु उससे दूर रहे । फिर तुमने एक मनुष्य को मार डाला पर उसका कलंक एक दूसरे को देते थे और ईश्वर की इच्छा थी कि जो तुम छिपाते हो वह प्रगट हो, फिर हमने कहा कि इस मुरदे पर बलि दी हुई गाय के शरीर का टुकड़ा मारो जिससे परमेश्वर उस मृतक को जिलावैगा और तब तुमको उस पर विश्वास आवैगा । फिर भी तुम लोगों के चित्त पत्थर की भाँति वरञ्च उससे भी कठोर हो गए और पत्थर में तो ऐसे भी होते हैं जिनसे नहरें निकलती हैं और ऐसे भी होते हैं जो फट जाते हैं और उनके नीचे से पानी निकलता है और ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर के भय से गिर पड़ते हैं, और ईश्वर तुम्हारे सब कर्मों का ज्ञाता है । तो हे विश्वासी गण क्या तुम को आशा है कि यहूदी लोग तुम्हारी बात सुनैंगे ? इन्हीं लोगों ने ईश्वर के वाक्य[७] पहिले सुने और उससे फिर गए, ये लोग जब विश्वासियों से मिलते हैं कहते हैं कि हम भी विश्वास लाए पर जब एकांत में एक दूसरे से मिलते हैं तो कहते हैं कि तुम पर जो परमेश्वर ने प्रगट किया है वह उनसे (अर्थात् मुसलमानों से) क्यों कहते हो[८] क्योंकि इससे वे ईश्वर के सामने तुम्हीं को झूठा बनावैंगे, परंतु यह नहीं जानते और इतनी बुद्धि तुमको नहीं है कि ईश्वर जो तुम छिपाया चाहते हो और जो प्रगट किया चाहते हो सब जानता है और कितने उनमें ऐसे हैं जो धर्म पुस्तक पढ़ते हैं परंतु उनको ज्ञान नहीं है और व्यर्थ के मनोरथ किया करते हैं इससे उनके पास सेवाय तर्क वितर्कों के और कुछ नहीं है । और वे लोग अपराधी हैं जो पुस्तक अपने हाथ से लिखते हैं और कहते हैं कि यह ईश्वर के यहाँ से आई है

---

१. म. मुहम्मद का मत मानने वाले ।

२. म. मूसा का मत मानने वाल ।

३. म. ईसा का मत मानने वाले ।

४. म. इब्राहीम का मत माननेवाले । इस मत के लोग अब नहीं देख पड़ते ।

५. तूर पर्वत० जब तौरेत उतरी तब लोगों ने कहा कि यह सब आज्ञा हमसे न मानी जायँगी इस हेतु उनको भय दिखलाने को ईश्वर ने तूर पर्वत ऊँचा किया कि उनके ऊपर गिर पड़े ।

६. इससे यह ध्वनि निकली कि जो पशु खेती बारी के काम आवें और दूध दें उनकी बलि नहीं देना ।

७. तौरेत ।

८. उस समय में यहूदी लोग मुसलमानों के सामने जो तौरेत में से अंतिम ईश्वर दूत (म. मुहम्मद) की महिमा सुनावें तो पीछे विरोधी लोग उनसे रुष्ट होते थे क्यों ऐसा करते हो ।

और उससे लाभ उठाते हैं सो उनके इस हाथ के लिखने और लाभ उठाने पर धिक्कार है । कितने कहते हैं कि हमको नर्क का भय नहीं केवल कुछ दिन नर्क भोगना होगा[1] । तो कहो कि क्या ईश्वर से उन लोगों ने ऐसा वचन ले लिया है यदि ऐसा वचन ले लिया है तो अवश्य ईश्वर उसके विरुद्ध न करैगा परंतु उसके विषय में व्यर्थ झूठ क्यों कहते हो । जिन लोगों ने पाप कमाया है उनको पाप ने आच्छादन कर लिया है और वे नर्क के भागी हैं और सदा नर्क ही में रहैंगे । और जिन लोगों ने धर्म विश्वास किया और पुण्य कर्म किए वे स्वर्ग के भागी हैं और सदा स्वर्ग में रहेंगे । हमने इसराईल की संतान से शपथ लिया था कि ईश्वर को छोड़ और किसी की पूजा मत करो, माता, पिता, संबंधी, अनाथ और दीनों का उपकार करो, लोगों से अच्छे वचन बोलो, वंदना नित्य करो और दान दो किन्तु तुम लोगों में से कुछ लोग फिर गए । फिर तुम लोगों से हमने शपथ लिया कि आपस में मार काट न करो और न अपने जातिवालों को देश से निकालो और तुमने भी यह प्रतिज्ञा की और उस पर आरूढ़ रहे । परंतु फिर तुम वैसे ही मार काट करते हो, अपने जाति के लोगों को देश से निकाल देते हो, उन पर पाप और अन्याय से चढ़ाई करते हो, और वही लोग जब तुम्हारे सामने बंधुए होकर आते हैं तो उनको छुड़ाने को भी प्रस्तुत होते हो, यद्यपि उनका निकाल देना ही पाप है, तो क्यों धर्म पुस्तक का एक वाक्य मानते हो एक नहीं मानते, तो ऐसे लोगों को क्या दंड है, यही कि संसार जीवन में तो निन्दा और प्रलय के दिन कठिन से कठिन नर्क दंड, क्योंकि ईश्वर तुम्हारे सब कर्मों का ज्ञाता है । ऐसे ही लोगों ने तुच्छ संसार के बदले (चिरसुख) स्वर्ग छोड़ा है सो ऐसे लोगों का पाप न हलका होगा न उन पर दया होगी । और हमने मूसा (मोक्ष) को धर्म पुस्तक दी और उसके पीछे बराबर धर्मदूत भेजे और मरियम के पुत्र ईसा (ईश) को अनेक चमत्कार शक्ति दीं और पवित्रात्मा ((जिबरील-गरुड)[2] के द्वारा अनेक बल दिए किन्तु किसी धर्मदूत ने तुम लोगों से कोई बात ऐसी कही जो तुम्हारी रुचि के अनुसार नहीं थी तो तुम अभिमान करते थे और कुछ लोगों को बहकाया और अनेकों को मार डाला । और कहते कि हमारे चित्त पर आवरण[3] पड़ा है इससे ईश्वर ने उनको (धर्मदूतों से) विमुख होने पर धिक्कृत किया । और जब उनको धर्म पुस्तक ईश्वर की ओर से मिली तो अपने पास वाली (धर्म पुस्तक) को सच्ची बतलाने लगे, सो यद्यपि पहिले ये अधर्मी लोगों को जीतने चाहते थे[4] परंतु जब उनको वह वस्तु भेजी गई जिसका उनको ज्ञान था और उससे भी फिर गए तो विमुख होनेवालों को ईश्वर ने धिक्कार किया । ऐसे लोगों ने प्राण के बदले बुरी वस्तु मोल ली कि उन वाक्यों से जो ईश्वर ने उनके हेतु उतारा फिर गए सो भी केवल ईर्षा से और अपनी दया से वह अपने दासों में से चाहे जिसके द्वारा अपने वाक्य उतारे अतएव (विरोधी) उन पर कोप पर कोप हुआ और ऐसे फिर जानेवालों को पाप और दुर्दशा है । और जो उनसे कहो कि जो वाक्य ईश्वर ने उतारा है उसको मानो तो वे कहते हैं कि हम पर जो पूर्व में उतरा है वही मानते हैं जो अब उतरा है उसको नहीं मानते और यद्यपि यह सत्य है पर उन से पूछो कि जो तुम धार्मिक हो तो ईश्वर के दूतों को क्यों दुःख देते हो । यद्यपि मूसा प्रत्यक्ष में आश्चर्य सिद्धि लेकर तुम्हारे पास आया परंतु उसके पीछे तुमने फिर बछड़ा बना लिया और तुम उपद्रवी हो ।

१. यहूदियों के एक संप्रदाय का विश्वास था कि केवल थोड़ी सी पाप की यातना भोगने के बाद यहूदी मात्र स्वर्ग जायँगे । जैसा कि काशी वासियों का भैरवी यातना के विषय में विश्वास है ।

२. कहते हैं कि जिबरील (गरुड़) सदा ईसा के साथ रहते हैं ।

३. यहूदियों का विश्वास है कि उनके चित्त पर ईश्वर ने एक आवरण बनाया है जिससे दूर धर्म का उनको व्यर्थ संस्कार न हो ।

४. अर्थात् जब यहूदियों पर अधर्मी लोग उपद्रव करते तब वे (म. मुहम्मद) अंतिम धर्म दूत के उत्पन्न होने की प्रार्थना करते पर जब वह उत्पन्न हुए तो यहूदी लोग उनसे फिर गए ।

श्री वल्लभाचार्य कृत चतुश्लोकी

श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका जिल्द १ संख्या ३-१ सितम्बर सन् १८८३ में प्रकाशित श्री बल्लभाचार्यकृत चतुश्लोकी का अनुवाद यह है।—सं.

नमः प्रेमपथप्रवर्तकेभ्यः

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः ।
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कथं च न ।। १ ।।

संसार के जीवों को कर्मजाल में बधे देखकर आप परम कारुणिक श्री महाप्रभुजी अन्य साधनों की निवृत्ति के हेतु परम अमृत स्वरूप वाक्य श्रीमुख से आज्ञा करते हैं, सर्वदेति । सब समय में दुःख सुख में खाते पीते उठते बैठते सब क्षण में सर्व भाव से व्रजाधिप श्रीराधारमण ही का भजन करना क्योंकि भजनीय वही है, और कोई प्रेम का बदला नहीं दे सकता और भजन भी सर्व भाव से करना अर्थात् संसार में जितने भाव हैं ईश्वर भाव, गुरु भाव, मित्र भाव, पतिभाव इत्यादि पृथक् भाव जिसमें जिससे हो सब को समेटकर सब भाव से उन्हीं का भजन करना, रीझना भी उन्हीं पर खीझना तो उन्हीं पर, माँगना तोउन्हीं से,लड़ना तो उन्हीं से, जिसमें फिर कहीं और कोई भाव न रह जाय केवल एक अवलंब श्रीकृष्ण ही हों इस पर आप आज्ञा करते हैं कि जो लोग हमारे हैं उनका निश्चय एक यही धर्म है दूसरा कोई धर्म कदापि किसी भांति से नहीं है अर्थात् कर्ममार्ग प्रवर्तकः इस नाम से कोई यज्ञादिकों को ही मुख्य धर्म मान कर इसे छोड़ उसमें प्रवृत्त होकर भ्रांत न हो जायँ इस हेतु आप मुक्त कंठ से कहते हैं कि हमारे लोगों का तो मुख्य धर्म यही है कि सर्वदा सर्व भाव से केवल श्रीकृष्ण ही का भजन करना ।

एवं सर्वैस्स्वकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ।
प्रभुस्सर्वसमर्थोहि ततो निश्चिंततं व्रजेत् ।। २ ।।

अब जो कोई शंका करे कि हम सब छोड़ कर एक श्रीकृष्ण ही को भजें तो हमारा योग-क्षेम पितृ देव कर्मादिक सब कैसे सिद्ध होगा, इस शंका के निवारण के हेतु आप आज्ञा करते हैं कि इन सब बातों की चिंता छोड़ कर जैसा पूर्व में कहा है वैसा ही करो फिर तुम्हारा जो कुछ कर्तव्य है वह सब आप कर लेगा करने न करने अन्यथा करने में और भी सब में वह निश्चय करके समर्थ है इससे आप निश्चिंत हो जाना, जब हमने उसके भरोसे सब छोड़ा है तो वह अंतर्यामी है आप जानता है सब कर लेगा । गीता में उसकी प्रतिज्ञा है कि जो लोग अनन्य होकर मुझे भजते हैं उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ इससे लोक वेद दोनों से निश्चिंत होकर केवल भजन ही करना ।

यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतस्सर्वात्सना हृदि ।
ततः किमपर ब्रहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ।। ३ ।।

जो यह शंका करो कि हम लौकिक वैदिक कर्म छोड़ दें तो पतित न हो जायँगे उस पर आप आज्ञा करते हैं कि जो श्रीगोकुलाधीश्वर सर्वभाव से एकचित्तता से हृदय में धारण किए गए हैं तो बताओ फिर और किसी लौकिक और वैदिक कर्मों से क्या ? क्योंकि ये तो दोनों रीति से व्यर्थ पड़ते हैं जो श्रीकृष्ण की भक्ति नहीं है तो ये कर्म किस काम के क्योंकि ये परमानंदमय श्रीकृष्ण वियोगदान में समर्थ नहीं हैं और जो श्रीकृष्ण की भक्ति है तब ये किस काम के क्योंकि उसको फिर और कोई कर्म अवशिष्ट नहीं है इससे सर्व प्रकार से अनन्य होकर सर्वांतरयामी एक श्रीकृष्ण ही का भजन करना ।

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं गोकुलेश्वर पादयोः ।
स्मरणं कीर्तनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ।। ४ ।।

इससे सर्व भाव से आत्मा मन बुद्धि प्राण देह और इंद्रिय सब से नित्य प्रतिक्षण श्रीगोकुलेश्वर जुगल चरणारविंद का स्मरण और कीर्तन कभी नहीं छोड़ना यह श्री महाप्रभु जी आज्ञा करते हैं कि हमारी मति है अर्थात् जो श्रीमहाप्रभु जी के मतावलंबिगन हैं उनको तो सब साधन छोड़ कर एक श्रीकृष्ण ही भजनीय हैं । यह आपने अपना मत दिखाया ।

श्रीवल्लभाचार्य विरचिता चतुश्लोकी समाप्ता ।

श्रुति रहस्य

यह लेख श्री हरिश्चन्द्र मैगजीन जिल्द १, संख्या ६, मार्च १५ सन् १८७४ में प्रकाशित है ।— सं.

(नमः श्रीवल्लभाय श्रुतिवाक्यैस्तत्स्वरूपप्रदर्शकाय श्रीगिरिधराय च)

वेद के अक्षर कामधेनु हैं और इसी कारण सब मतों के आचार्य लोग उनके जितने अर्थ करते हैं सब मान्य होते हैं । यदि उनमें एक भी न माना जाय तो पूर्वाचार्यों पर आक्षेप होने से न माननेवाले नास्तिक गिने जाते हैं । जैसे 'चत्वारिशृंगा' इस श्रुति का निरुक्तकार, महाभाष्यकार, रामानुजाचार्य, विद्यारण्य इत्यादि ने अनेक प्रकार का अर्थ किया है और ये सब अर्थकार ऐसे हैं कि उनमें से एक के भी मानने बिना काम नहीं चलता तो सिद्धांत यह हुआ कि श्रुति से जितने अर्थ निकलेंगे वे कोई अप्रमाण न होंगे । जैसा चत्वारिशृंगा के यहाँ सब अर्थ दिखाते हैं ।

चत्वारिशृंगात्रयो अस्य पादा द्वेशीर्षे सप्तहस्तासा अस्य ।
त्रिधा बद्धा वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश ।।

१. अक्षरार्थ

उसको चार सींग हैं, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं, तीन प्रकार से बँधा हुआ बैल चिल्लाता है, तेज देवता मरनेवालों में घुसा है ।

अब यह केवल रूपक की भाँति कूट हुआ इसको स्पष्ट करने को

२. निरुक्तकार का अर्थ

यह श्रुति यज्ञ का प्रतिपादन करती है ; चार वेद इसके चार सींग हैं ; तीन स्रवन अर्थात् नीच, मध्य और

उच्च स्वर ये तीन पैर हैं ; प्रायणीय और उदयनीय ये दो सिर हैं ; सात गयत्र्यादि छंद इसके हाथ हैं ; मंत्र, ब्राहमण और कल्प तीनों से बँधा हुआ यज्ञ वृषभ शब्द करता है, तेज का देवता मनुष्यों में इनके कल्याण के हेतु प्रवेश करता है ।

३. महाभाष्यकार का अर्थ

यह श्रुति शब्दरूपी वृषभ के वर्णन में है यथा संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग और निपात ये चार इसके सींग हैं ; और भूत भविष्यत् और वर्त्तमान ये काल तीन पैर हैं; नित्य और कार्य ये दो सिर हैं; सात विभक्तियाँ हाथ हैं, हृदय, कंठ और सिर तीन स्थानों में बँधा है, वर्षण में इसकी वृषभ संज्ञा है, शब्द करनेवाला महान् देव (शब्द स्वरूप) मरण धर्मवाले मनुष्यों में प्रविष्ट होता है ।

४. श्रीरामानुज का अर्थ

यह श्रुति ईश्वर के वर्णन में है, चारों वेद चार सींग हैं ; नित्य, बद्ध और मुक्त तीनों प्रकार के जीव तीन पाद हैं ; शुद्ध सत्व और गुणात्मक सत्व इसके दो सिर हैं अर्थात् शिर:स्थान में हैं, महत्तत्वादि, सात प्रकृति और विकृति इसके सात हाथ हैं, ऐसा महादेव श्रेष्ठ वृषभ वासुदेव अपने संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध इन तीनों रूपों से मनुष्यों में बँधता नाम प्रकट होता हुआ सब वस्तुओं को रोरवीति अर्थात् नामरूपवत् करता है और मर्त्य नाम चेतनाऽचेतन पदार्थों को अंतरात्मा होकर प्रवेश करता है ।

५. श्री विद्यारण्य का अर्थ

यह श्रुति प्रणव पर है, अकार, उकार, मकार और नाद ये इसके चार सींग हैं, अध्यात्म, विश्व और तैजस ये तीन पाद हैं, चित् और अचित् ये दो शक्तियाँ शिरस्थान में हैं, भूरादि सात लोक सात हाथ हैं, विराट्, हिरण्यगर्भ और व्याकृत इन तीन प्रकारों से बँधा हुआ वृषभ प्रणव ब्रहम तेजोमयत्व का प्रतिपादन करता है ।

६. श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुयायी का अर्थ

यह श्रुति श्री पुष्टि लीलास्थ पूर्ण पुरुषोत्तम ही का प्रतिपादन करती है, उन श्री पुरुषोत्तम के चार नित्य सिद्धादि यूथ शृंग अर्थात् उत्तम स्थान में हैं और उनके तीन पाद अर्थात् प्राप्ति होने के साधन तनुजा, वित्तजा और मानसी यह तीन प्रकार की सेवा हैं ; सख्य और आत्मनिवेदन ये दो भक्तियाँ शिर अर्थात् सिद्ध स्थान में हैं ; श्रवणादिक सात भक्तियाँ हाथ अर्थात् साधन स्थान में हैं ; श्रीपुरुषोत्तम की पूर्वोक्त नौ प्रकार के भक्ति से युक्त जीव अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्य और सेवा में उपयोगी देह धारण, इन तीन प्रकार से बँधा है ; और उनकी लीला के प्रवेश के अर्थ धर्म-स्वरूप वर्षा करनेवाले और शोभा करने वाले वृषभ अर्थात् श्रीआचार्य रोरवीति नाम भक्तों को मंत्र और ग्रंथ द्वारा उपदेश करते हैं जिससे वर्ण धर्मा जीव अर्थात् सेवामार्गी जीव जब अधिकारी होते हैं तब महोदेव लीलास्थ पूर्ण पुरुषोत्तम उनमें आवेश करके लीला का अनुभव कराते हैं ।

७. श्रीवेणु पर अर्थ

यह श्रुति श्रीवेणु का प्रतिपादन करती है ; गान में चार रीति की बानी चार सींग हैं ; कोमलादि तीन स्वर पाद हैं ; मुख्य छिद्र वा लय और स्वर दो सिर हैं ; सात रंध्र सात हाथ हैं ; अधर दो हस्तों से बँधा है ; ऐसा 'रुद्रो वै वेणुः' इस श्रुति से साक्षाद्रुद्रस्वरूप वेणु 'श्रीगोपालमुपास्महे श्रु तिशिरोवंशीरवैर्दर्शितं', इससे वेणु रूप ही धर्म मनुष्यों में प्रवेश करता है ।

८. श्री संगीत पर अर्थ

यह श्रुति संगीत का भी प्रतिपादन करती है, इसके तत, बितत, घन और धमन चार सींग हैं, तीन ग्राम तीन पाद हैं, लय और स्वर दो सिर हैं ; सात स्वर वा त्रिमूर्छना सप्तक सात हाथ हैं ; कंठ, नाभि और मुख इन तीन स्थलों से बँधा हुआ संगीत रूपी वृषभ अर्थातगान ब्रहम मनुष्यों को तन्मय कर देता है ।

९. साहित्य पर अर्थ

यह श्रुति साहित्य का भी प्रतिपादन करती है ; इसके आरभट्यादि कथन चार सींग हैं ; लक्षणा, व्यंजना और ध्वनि तीन पाद हैं ; दृश्य और श्रव्य दो सिर हैं ; चित्रादि सात हाथ हैं ; गद्य, पद्य, और गीत तीन रीति से बँधा है, ऐसा साहित्य रूपी वृषभ मनुष्यों को चित्त में उल्लास कर आनंद देता है । यथा —

सुभाषितरसास्वाद बद्धरोमांचकंचुकाः ।

विनापि कामिनीसंगं कवयः सुखमासते ।।
सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया ।
यस्य न द्रवते चित्तं सवै मुक्तोऽथवा पशुः ।।

●

इशुखृष्ट और ईशकृष्ण

यह लेख श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड ६, संख्या ७, जनवरी सन् १८७९ में प्रकाशित है। हालाँकि लेख के अन्त में क्रमशः छपा है पर बाकी अंश मिलता नहीं है। इस लेख में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की चेष्टा है।— सं.

पाठक गण को स्मरण होगा कि भारत भिक्षा में " भारत भुज बल लहि जग रच्छित, भारत सिच्छा लहि जग सिच्छित" लिखा है, आज उसी का हम प्रमाण देना चाहते हैं । न्यायप्रियगण देखें कि जैसा भारत भिक्षा में कहा गया वह उचित है कि नहीं ।

समाज की उन्नति का मूल धर्म है । जहाँ का धर्म परिष्कृत नहीं वहाँ कभी समाज उन्नत नहीं । धर्म पर सब लोगों को ऐसा आग्रह रहता है, कि उसको साक्षात् परमेश्वर से उत्पन्न मानते हैं अतएव अन्य विषयों को छोड़ कर केवल धर्म पर हम विचार किया चाहते हैं और मुक्त कंठ होकर कहते हैं कि संसार के धर्माचार्य मात्र ने भारतवर्ष की छाया से अपने अपने ईश्वर, देवता, धर्म पुस्तक, धर्मनीति और निज चरित्र निर्माण किया है । जितने धर्म प्रचलित हैं या प्रचलित थे वह सब या तो वैदिकों का अनुगमन हैं या बौद्धों का । यहाँ तक कि प्रसिद्ध ईश्वरवाची शब्द भी इसी से निकले हैं । अंगरेजों में परमेश्वर को गाड (God) कहते हैं । यह गौतम का नामांतर है । उत्तर के देशों में गौतम को गोडमा कहते हैं, इसी से यह गाड शब्द बना । फारसी में मूर्तियों को बुत कहते हैं यह शब्द बुद्ध से निकला । हरम हर्म्य से, सनम शंभु से, दैर देवल से, देव देवता से और ऐसे ही देवतावाचक अनेक शब्द दूसरे दूसरों से ।

यह सब जाने दीजिये सृष्टि के आरंभ से चलिये । भगवान मनु लिखते हैं कि प्रथम सब जगत सुषुप्त

था । फिर सर्वनियंता जगदीश्वर ने स्वशक्ति से प्रवेश पूर्वक उसको चैतन्य किया । यही यूनानियों के ऋषि केयस ने भी लिखा है । फिर परमात्मा ने अपनी प्रकृति रूपी परिणत शरीर से प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से चिंता किया कि 'कैसे सब होगा' और यह चिंता करके पहिले जल होय यह कह कर आकाशादि क्रम से जल सृष्टि किया । ओल्ड सिस्टेम (बाइविल) के जिनिसिस के प्रथम अध्याय को इस से, वहाँ भी यही है । फिर परमात्मा ने जल से ब्रहमा उत्पन्न किया उसने आकाश पृथ्वी स्वर्गादि निर्माण किया और महत्तत्व अहंकार गुण आदि की क्रम से सृष्टि हुई और उससे मनुष्य पशु पक्षी स्थावरादि उत्पन्न हुए । फिर प्राणविशिष्ट इंद्रादि देवगण और कम हेतुक पाषाणमय देवगण और साध्य नामक सूक्ष्म देवगण अग्निष्टोमादि यज्ञ बनाये गए ।

अँगरोजी और यूनानी फिलासिफी में इस बात की छाया देख लीजिये । फिर वेद क्रिया काल ग्रह उन्नत अवनत स्थान तप संतोष इच्छा आदि की सृष्टि हुई फिर कर्तव्य अकर्तव्य कर्म के विभाग के हेतु धर्म अधर्म की सृष्टि हुई । धर्म का फल सुख और अधर्म का दुःख (अब महाभारत के आदि पर्व में धर्म अधर्म की सृष्टि वर्णन इस मनु कथित सृष्टि की तुलना करके उससे मिल्टन के मृत्यु विषयक प्रस्ताव मिला कर पढ़ो ।) फिर पंच महाभूतों के सूक्ष्म अंश और स्थूल अंश से जगत की सृष्टि हुई । (मिल्टन की ५ वीं पुस्तक में स्वर्गच्युति के गल्प से इसे मिलाओ ।) फिर मानव सृष्टि हुई और आत्मा को उसके देहों में प्रवेश का अधिकार दिया गया और एक को छोड़ कर दूसरे में गमन का भी (इससे सिद्ध होता है कि Transmigration of soul के प्रगट कर्ता भी मनु ही हैं ।)

ऐसे ही संसार के सब देवता भी भारतवर्ष ही के देवगण की छाया हैं । मिनर्वा नाम्ना यूरोप की प्राचीन देवी हम लोगों की भगवती दुर्गा हैं । मिनर्वा इंद्र के कंधों से प्रगटी है यहाँ भी दुर्गा देवताओं के अंश (अंश कंधे को भी कहते हैं) से प्रादुर्भूत हुई हैं । मिनर्वा भी सब शस्त्रों को लिए जन्मी हैं और दुर्गा भी, मिनर्वा युद्ध की देवी है दुर्गा भी । मिनर्वा शनिश्चर से लड़ी है दुर्गा महिषासुर से (महिषासुर और शनैश्चर में सादृश्य यह है कि शनैश्चर महिषवाहन है और महिषासुर महिष रूप) मिनर्वा और दुर्गा दोनों सिंहवाहिनी हैं मिनर्वा के एक हाथ में भाला और दूसरे में मदुस का सिर है (यह मदुस शब्द मधु वा महिष से निकला होगा) और दुर्गा का भी यही ध्यान है । मिनर्वा का दूसरा ध्यान कटे सिर का मुकुट पहिने और सर्प लपेटे है और दुर्गा का भी । मिनर्वा को मुर्गे प्यारे हैं यहाँ देवी को भी कुक्कुट बलि दिया जाता है ।

अब अपेल्लो को लीजिए । यह हिंदुओं के श्री कृष्ण का चित्र है । इसका सूर्य में निवास है और यहाँ भी नारायण का सूर्य में निवास है । इस नाम के चार देवता थे और यहाँ भी श्रीकृष्ण के चार व्यूह हैं । उसने पाइथन नामक सर्प को मारा और यहाँ भी कालिया दमन हुआ । वहाँ वह शिल्प, औषध, गान, काव्य, और रस का देवता है और यहाँ भी । उसका ध्यान सुंदर युवा, लंबे केश और हाथ में कभी धनुष कभी वंशी लिये है और यहाँ भी । वह पर्वत पर नव मित्रों के साथ विहार करता था यहाँ गिरिराज पर नव गोपियों के साथ विहार है ।

वैसे ही जुपिटर[२] इंद्र है । और इन दोनों को देवराजत्व प्राप्त है । यहाँ इस को अपने भाई टिटन्स का डर था वहाँ हिरण्य कशिपु का । इंद्र भी बड़ा लंपट है और जुपिटर भी । जुपिटर का ध्यान सोने के सिंहासन पर बिजली हाथ में लिये हुये मेघों में शासन करते हुए है, और यहाँ भी वज्रहस्त है । किंतु जुपिटर के चरित्र में श्रीकृष्ण के बहुत से चरित्र मिला दिये हैं ।[३]

केवल यूरोप के मूर्तिपूजकों पर ही नहीं नये संप्रदाय वालों की भी यही दशा है । गेब्रिल (जिबरईल) गरुड़ का अपभ्रंश है और गरुड़ जैसे परमेश्वर के सबसे उत्तम पार्षदों में है वैसे ही जिबरईल उत्तम फरिश्तों

---

२. यद्यपि यूरोप वालों ने हमारे देवताओं के चरित्र का बहुत अनुकरण किया है तथापि उसके देवताओं के वेश में बड़ा गड़बड़ है इससे वंश परंपरा को मिलान न कर के केवल चरित्र मात्र का यहाँ उदाहरण दिया है ।

३. दिव धातु से देववाची शब्द संसार में प्रसिद्ध है । भारत के इंद्र देव व देवेंद्र और यूनान में दिवस वा जियस । दोनों वज्रपाणि वारिदाता दांभिक पर्वत वासी और विलाससुखभोगी और एक वृत्रदानवहन्ता दूसरे टाइटस-दानव हन्ता ।

में । वरंच फरिश्ता शब्द ही पार्षद का अपभ्रंश है । जिबरईल का ईश्वर की आज्ञा ला कर मत-प्रवर्त्तक होने का उदाहरण भी रामानुज संप्रदाय में देख लीजिये । क्रिस्तानों में एक आचार्य जोसफेट करनेल हैं और यह महात्मा शाक्यसिंह की प्रतिमूर्ति हैं । दोनों के पिता राजा, दोनों के जन्म के पूर्व ज्योतिषियों ने कहा था कि यह या तो बड़ा प्रतापी राजा होगा या धार्मिक । दोनों के पिता ने चेष्टा किया कि जिसमें पुत्र संन्यासी न हो और इनको रम्य उद्यान में रखा किंतु संसार की असारता जान कर दोनों ही संन्यासी हो गये और दोनों ने अपने पिता को नये धर्म से दीक्षित किया । सबसे ऊपर आनंद की बात यह है जान, जो मनुष्य जोज़फेट का माहात्म प्रचारक है, लिखता है कि जोजफेट भारतवर्ष में हुआ और हिंदुस्थान से आये विश्वस्त लोगों से हमने उसका चरित्र सुना । अब बतलाइये जोजफेट शाक्यसिंह ही का नामान्तर है कि नहीं ।[१] ।

धर्म ही पर नहीं नीति संबंधी भी यावत् गल्प मात्र इसी भारत वर्ष से फैलकर और स्थानों में गई हैं । विलसन साहब लिखते हैं — केपस नगर के घोड़ा का उपाख्यान भारतवर्ष में भी प्रचलित है किन्तु भेद इतना है कि भारतवर्ष में घोड़ा हाथी के स्वरूप में है । उर्दू किताबों का यह किस्सा अत्यंत प्रसिद्ध है कि टके की मुर्गी लेंगे, तब उसको अंडे बच्चे होंगे तो उनको बेंच कर बकरी लेंगे, उसको बच्चे होंगे तो उनको बेचकर घोड़ी लेंगे, उसको बच्चे होंगे तो उससे रोजगांर करेंगे, रुपया पैदा होगा तब बादशाह की बेटी से शादी करेंगे जब वह शर्बत पिलाने आवेगी और खड़ी होकर विनती करके कहेगी कि मेरे प्यारे दूध पीओ तो हम एक लात मारेंगे, यह कह कर लात जो चलाया तो बरतन फूट गए । इसी से मसल निकली है कि तुम्हारा तो बर्तन फूटा हमारी गृहस्थी ही खराब हो गई । अंग्रेजी में इस गल्प को और तरह से कहते हैं । फरासीस में लाफेन्टन कवि ने इसको पैरट गोपिनी के नाम से लिखा है जिसने पूर्व की भाँति सोचते सोचते अपना दधिभाजन फोड़ डाला । संसार की और भाषाओं में भी रूपांतर से यह गल्प प्रसिद्ध है ।

परंतु इसका मूल कहाँ है ? भारतवर्ष में । पंचतंत्र देखिये उसमें यह किस्सा स्वभाव कृपण नामक ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है, और हितोपदेश में देवशर्मा के नाम से । एक विद्वान ने लिखा है कि ब्राह्मण से एक साधारण चर्म विक्रेता वा कुंभकार इत्यादि नाम हुआ । अंत में जयसुरसिक लाफेण्टन ने इस गल्प को लिखा तो इस शुष्क ब्राह्मण के स्थान पर नवयौवना ग्वालिनि को पुस्तक में स्थान दिया । अब कहिये कि कैसे संस्कृत वेश त्याग कर यह सब किस्से और भाषा में हुए और इतनी दूर पहुँचे । इस छोटे छोटे किस्सों में एक ऐसी संजीवनी शक्ति है कि राज्य और धर्म का हेर फेर हो जाय और भाषा का परिवर्तन हो जाय परंतु यह सब छोटी छोटी गल्प बालकों और मुग्ध स्त्रियों के मुख द्वारा एक ही रूप से अनेक सहस्र कोस तक प्रचलित रहेंगे । महात्मा मोक्षमूलर लिखते हैं 'उन्नीसवीं शताब्दी में इस खीष्ट धम प्रधान देश में हम लोग अपने बालकों को जो ऐहिक और पारलौकिक ज्ञान की गल्पों में शिक्षा देते हैं वह धर्म विरोधी ब्राह्मणों और बौद्धों की पौत्तलिक धर्म की पुस्तकों से संग्रहीत हैं । अब इस बात को कोई न मानेगा किंतु हजार दो हजार बरस पहले भारतवर्ष के किसी निर्जन वन और क्षुद्र पल्लियों में भ्रमण करने ही से यह सव्य बीज प्राप्त होता, जो अब समस्त पृथ्वी में विस्तृत है और सरस बालकों के हृत क्षेत्र में सदा लहलहाता रहेगा । बड़े बड़े विद्वान भी किसी अपनी नीति को इस सुरीति पर सर्व हृदयग्राही और चिरस्थायी नहीं कर सके हैं जैसा कि इन गल्प रचयिताओं ने सहज हृदयग्राही रचना की है । किंतु ये बुद्धिमान लोग कौन थे यह ज्ञात नहीं और संसार के और और मानवोपकारियों की भाँति विस्मृति देवी के अपार उदर में यह भी शयन करते हैं । यदि दो सहस्र वर्ष पूर्व कोई भारत वर्ष में जाता तो ये महात्मा लोग मिलते । अब केवल हम यही कह सकते हैं कि यह अति चातुर्य उन्हीं लोगों का है जिनको अब कोई कोई निगरो पुकारते हैं ।''

१. See Plato's Theology Concerning spiritual nature.

१. See Professor Max Muller's Sanskrit Literature

वैष्णवता और भारतवर्ष

इस लेख का उल्लेख 'रामायण का समय' नामक लेख में पहले ही आ चुका है जो सन् १८८४ की रचना है। अतः यह उसके पहले की ही रचना होनी चाहिये।— सं.

यदि विचार करके देखा जायगा तो स्पष्ट प्रकट होगा कि भारतवर्ष का सबसे प्राचीन मत वैष्णव है। हमारे आर्य लोगों ने सबसे प्राचीनकाल में सभ्यता का अवलंबन किया और इसी हेतु क्या धर्म क्या नीति सब विषय के संसार मात्र के ये दीक्षागुरु हैं। आर्यों ने आदिकाल से सूर्य ही को अपने जगत् का सब से उपकारी और प्राणदाता समझ कर ब्रह्म माना और इन का मूल मंत्र गायत्री इसी से इन्हीं सूर्य नारायण की उपासना में कहा गया है। सूर्य की किरणैं 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः' जलों में और मनुष्यों में व्याप्त रहती हैं और इस द्वारा ही जीवन प्राप्त होता है इसी से सूर्य का नाम नारायण है। हम लोगों के जगत् के ग्रह मात्र, जो सब प्रत्येक ब्रह्माण्ड हैं, इन्हीं की आकर्षण शक्ति से स्थिर हैं, इसी से नारायण का नाम अनंत कोटिब्रह्मांडनायक है। इसी सूर्य का वेद में नाम विष्णु है, क्योंकि इन्हीं की व्यापकता से जगत् स्थित है। इसी से आर्यों में सबसे प्राचीन एक ही देवता थे और इसी से उस काल के भी आर्य वैष्णव थे। कालांतर में सूर्य में चतुर्भज देव की कल्पना हुई। 'ध्येयः सदा सवितृ मंडल मध्यवर्ती नारायणःसरसिजासनसंनिविष्ट', 'तद्विष्णोः परमं पदम्', 'विष्णोः कर्माणि पश्यत', 'यत्र गावो भूरिशृंगाः', 'इदंविष्णुर्विचक्रमे' इत्यादि श्रुति जो सूर्यनारायण के आधिभौतिक ऐश्वर्य की प्रतिपादक थीं, आधिदैविक सूर्य की विष्णुमूर्ति के वर्णन में व्याख्यात हुई। चाहे जिस रूप से हो वेदों ने प्राचीनकाल से विष्णुमहिमा गाई। उस के पीछे उस सूर्य की एक प्रतिमूर्ति पृथ्वी पर मानी गई, अर्थात् अग्नि। आर्यों का दूसरा देवता अग्नि है। अग्नि यज्ञ है और 'यज्ञो वै विष्णुः' यज्ञ ही से रुद्र देवता माने गये। आर्यों के एक छोड़ कर दो देवता हुए। फिर तीन और तीन से ग्यारह को त्रिविध करने से तैंतीस और इसी तैंतीस से तैंतीस करोड़ देवता हुए। इस विषय का विशेष वर्णन अन्य प्रसंग में करैंगे। यहाँ केवल इस बात को दिखलाते हैं कि वर्तमान समय में भी भारतवर्ष से और वैष्णवता से कितना घनिष्ठ संबंध है। किन्तु योरप के पूर्वीविद्या जाननेवाले विद्वानों का मत है कि रुद्र आदि आर्यों के देवता नहीं हैं[१] वह अनार्यों (Non-Aryan or Tamalian) के देवता हैं। इस के वे लोग आठ कारण देते हैं। प्रथम वेदों में लिंगपूजा का निषेध है। यथा वशिष्ठ इंद्र से विनती करते हैं कि हमारी वस्तुओं को 'शिश्नदेवा' (लिंगपूजक) से बचाओ इत्यादि[२]। ॠग्वेद और अन्यान्य ॠचाओं में भी शिश्नदेवालोगों को असुर, दस्यु इत्यादि कहा है और रुद्री में भी रुद्र की स्तुति भयंकर भाव से की है। दूसरी युक्ति यह है कि स्मृतियों में लिंगपूजा का निषेध है।[३] प्रोफेसर मैक्समूलर ने वशिष्ठस्मृति के अनुवाद के स्थल में यह विषय बहुत स्पष्ट लिखा है। तीसरी युक्ति वे यह कहते हैं कि लिंगपूजक और दुर्गाभैरवादिकों के पूजक ब्राह्मण को पंक्ति से बाहर करना लिखा है। (मिताक्षरावृत्त ब्रह्मांडपुराण के वाक्य, चतुर्विंशतिमत पराशर व्याख्या में माधव श्लोक २९, आपस्तम्ब, भागवत चतुर्थस्कंध द्वितीयाध्याय २८ श्लोक और धर्माब्धिसार के तीसरे परिच्छेद का पूर्वार्द्ध देखो।) चौथी युक्ति यह कहते हैं कि लिंग का तथा दुर्गा भैरवादि का निर्माल्य खाने में पाप लिखा है।

---

१. ऐंटिक्किटीज अव उड़ीसा १ जिल्द १३६ पेज देखो।
२. Rigveda, IV., P. 6 and Dr. Wilson's Vedic Comments
३. Professor Max Muller's Ancient Sanskrit Literature, P. 55

कमलाकरान्हिक, निर्णयसिंधु (आचारमाधवादि ग्रंथों में सैकड़ों वाक्य हैं, देख लो) । पाँचवें शास्त्रों में शिवमंदिर और भैरवादिकों के मंदिर को नगर के बाहर बनाना लिखा है ।[१] छठवें वे लोग कहते हैं कि शैवबीजमंत्र से दीक्षित और शिव को छोड़ कर और देवता को न माननेवाले ऐसे शुद्ध शैव भारतवर्ष में बहुत ही थोड़े हैं । या तो शिवोपासक स्मार्त्त हैं या शाक्त हैं । शाक्त भी शिव को पार्वती के पति समझकर विशेष आदर देते हैं, कुछ सर्वेश्वर समझ कर नहीं । जंगमादिक दक्षिण में जो दीक्षित शैव हैं वे बहुत ही थोड़े हैं । शाक्त तो जो दीक्षित होते हैं वे प्राय: कौलही हो जाते हैं । सौर गाणपत्य की तो कुछ गिनती ही नहीं । किन्तु वैष्णवों में मध्व और रामानुज को छोड़कर और इन में भी जो निरे आग्रही हैं वे ही तो साधारण स्मार्तों से कुछ भिन्न हैं, नहीं तो दीक्षित वैष्णव भी साधारण जनसमाज से कुछ भिन्न नहीं और एक प्रकार के अदीक्षित वैष्णव तो सभी हैं । सातवीं युक्ति इन लोगों की यह है कि जो अनार्यलोग प्राचीन काल में भारतवर्ष में रहते थे ओर जिन को आर्यलोगों ने जीता था वही शिल्पविद्या नहीं जानते थे और इसी हेतु लिंग, ढोंका सिद्धपीठ इत्यादि पूजा उन्हीं लोगों की है जो अनार्य हैं । आठवें शिव, काली, भैरव इत्यादि के वस्त्र, निबास, आभूषण आदिक सभी आर्यों से भिन्न हैं । स्मशान में वास, अस्थि की माला आदि जैसी इन लोगों की वेषभूषा शास्त्रों में लिखी है वह आर्योचित नहीं है । इसी कारण शास्त्रों में शिव का, भृगु और दक्ष आदि का विवाद कई स्थल पर लिखा है और रुद्रभाग इसी हेतु यज्ञ के बाहर है । यद्यपि ये पूर्वोक्त युक्तियाँ योरोपीय विद्वानों की हैं, हमलोगों से कोई संबंध नहीं किन्तु इस विषय में बाहरवाले क्या कहते हैं, केवल यह दिखलाने को यहाँ लिखी गई है ।

पाश्चिमात्य विद्वानों का मत है कि आर्य लोग (Aryans) जब मध्य एशिया (Central Asia) में थे तभी से लोग विष्णु का नाम जानते हैं । ज़ोरौस्ट्रियन (Zorastrian) ग्रंथ जो ईरानी और आर्य शाखाओं के भिन्न होने के पूर्व के लिखे हैं उन में भी विष्णु का वर्णन है । वेदों के आरंभकाल से पुराणों के समय तक तो विष्णुमहिमा आर्यग्रंथों में पूर्ण है । वरंच तंत्र और आधुनिक भाषा ग्रंथों में उसी भाँति एकछत्र विष्णुमहिमा का राज्य है ।

पंडितवर बाबू राजेन्द्रलाल मित्र ने वैष्णवता के काल को पाँच भाग में विभक्त किया है । यथा १ वेदों के आदि समय की वैष्णवता, २ ब्राहमण के समय की वैष्णवता, ३ पाणिनि के और इतिहासों के समय की वैष्णवता, ४ पुराणों के समय की वैष्णवता, ५ आधुनिक समय की वैष्णवता ।

वेदों के आदि समय से विष्णु की ईश्वरता कही गई है । ऋग्वेद संहिता में विष्णु की बहुत सी स्तुति है । विष्णु को किसी विशेष स्थान का नायक या किसी विशेष तत्व वा कर्म का स्वामी नहीं कहा है, वरंच सर्वेश्वर की भाँति स्तुति किया है । यथा विष्णु पृथ्वी के सातों तहों पर फैला है । विष्णु ने जगत् को अपने तीन पर के भीतर किया । जगत् उसी के रज में लिपटा है । विष्णु के कर्मों को देखो जो कि इंद्र का सखा है । ऋषियो ! विष्णु के ऊँचे पद को देखो, जो एक आँख की भाँति आकाश में स्थिर है । पंड़ितों ! स्तुति गाकर विष्णु के ऊँचे पद को खोजो । इत्यादि । ब्राहमणों ने इन्हीं मंत्रों का बड़ा विस्तार किया है और अब तक यज्ञ, होम, श्राद्ध आदि सभी कर्मों में ये मंत्र पढ़े जाते हैं । ऐसे ही और स्थानों में विष्णु को जगत् का रक्षक, स्वर्ग और पृथ्वी का बनानेवाला, सूर्य और अँधेरे का उत्पन्न करनेवाला इत्यादि लिखा है । इन मंत्रों में विष्णु के विषय में रूप का परिचय इतना ही मिलता है कि उस ने अपने तीन पदों से जगत् को व्याप्त कर रखा है । यास्क ने निरुक्त में अपने से पूर्व के दो ऋषियों का मत इस के अर्थ में लिखा है । यथा शाक्यमुनि लिखते हैं कि ईश्वर का पृथ्वी पर रूप अग्नि है, घन में विद्युत् है और आकाश में सूर्य है । सूर्य की पूजा किसी समय समस्त पृथ्वी में होती थी यह अनुमान होता है । सब भाषाओं में अद्यापि यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'उठते हुए सूर्य को सब पूजता है ।' (अरुणभाव सूर्य के उदय, मध्य और अस्त की अवस्था को तीन पद मानते हैं ।) दुर्गाचार्य अपनी टीका में उसी मत को पुष्ट करते हैं । सायणाचार्य विष्णु के बावन-अवतार पर इस मंत्र को लगाते हैं । किन्तु यज्ञ और आदित्य ही विष्णु हैं, इस बात को बहुत लोगों ने एक मत होकर माना है । अस्तु, विष्णु उस समय आदित्य ही को नामांतर से पुकारा है कि स्वयं विष्णु देवता आदित्य से भिन्न थे, इस का झगड़ा हम यहाँ नहीं करते । यहाँ यह सब लिखने से हमारा केवल यह आशय है कि अति प्राचीनकाल से विष्णु हमारे देवता हैं । अग्नि, वायु और सूर्य यह तीनों रूप विष्णु के हैं ; इन्हीं से ब्रहमा, शिव और विष्णु यह तीन मूर्तिमान् देव हुए हैं ।

ब्राह्मणों के समय में विष्णु की महिमा सूर्य से भिन्न कह कर विस्तर रूप से वर्णित है और शतपथ, ऐतरेय और तैत्तिरीय ब्राह्मण में देवताओं का द्वारपाल, देवताओं के हेतु जगत् का राज्य बचानेवाला इत्यादि कह कर लिखा है ।

इतिहासों में रामायण और भारत में विष्णु की महिमा स्पष्ट है, वरंच इतिहासों के समय में विष्णु के अवतारों का पृथ्वी पर माना जाना भी प्रकट है । पाणिनि के समय के बहुत पूर्व कृष्णावतार, कृष्ण पूजा और कृष्णभक्ति प्रचलित थी, यह उन के सूत्र ही से स्पष्ट है। यथा, जीविकार्थे चापण्ये वासुदेवः ।।५।।३।।९९।।० कृष्णं नमेच्चेतसुखं यायात् ।३।३।१५ इ. वासुदेवे भक्तिरस्य वासुदेवकः ।।४।।३।।९८।।० और प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सुभद्रा नाम इत्यादि के पाणिनि के लिखने ही से सिद्ध है कि उस समय के अति पूर्व कृष्णावतार की कथा भारतवर्ष में फैल गई थी । यूनानियों के उदय के पूर्व पाणिनि का समय सभी मानते हैं । विद्वानों का मत है कि क्रम से पूजा के नियम भी बदले यथा पूर्व में यज्ञाहुति, फिर वलि और अष्टांग पूजा आदि हुई और देवविषयक ज्ञान की वृद्धि के अंत में सब पूजन आदि से उस की भक्ति श्रेष्ठ मानी गई ।

पुराणों के समय में तो विधिपूर्वक वैष्णव मत फैला हुआ था, यह सब पर विदित ही है । वैष्णव पुराणों की कौन कहे, शाक्त और शैव पुराणों में भी उन देवताओं की स्तुति उन को विष्णु से संपूर्ण भिन्न कर के नहीं कर सके हैं । अब जैसा वैष्णव मत माना जाता है उस के बहुत से नियम पुराणों के समय से और फिर तंत्रों के समय से चले हैं । दो हजार वर्ष की पुरानी मूर्त्तियाँ वाराह, राम, लक्ष्मण और वासुदेव की मिली हैं और उन पर भी खुदा हुआ है कि उन मूर्त्तियों की स्थापना करनेवालों का वंश भागवत अर्थात् वैष्णव था राजतरंगिणी के ही देखने से राम, केशव आदि मूर्त्तियों की पूजा यहाँ बहुत दिन से प्रचलित है, यह स्पष्ट हो जाता है । इस से इस की नवीनता या प्राचीनता का झगड़ा न करके यहाँ थोड़ा सा इस अदल बदल का कारण निरूपण करते हैं ।

मनुष्य के स्वभाव ही में यह बात है कि जब वह किसी बात पर प्रवृत्त होता है तो क्रमशः उस की उन्नति करता जाता है और उस विषय को जब तक वह एक अंत तक नहीं पहुँचा लेता संतुष्ट नहीं होता । सूर्य के मानने की ओर जब मनुष्यों की प्रवृत्ति हुई तो इस विषय को भी वे लोग ऐसी ही सूक्ष्म दृष्टि से देखते गये ।

प्रथमतः कर्म मार्ग में फँसकर लोग अनेक देवी देवों को पूजते हैं, किन्तु बुद्धि का यह प्रकृत धर्म है कि यह ज्यों ज्यों समुज्ज्वल होती है अपने विषय मात्र को उज्ज्वल करती जाती है । थोड़ी बुद्धि बढ़ने ही से यह विचार चित्त में उत्पन्न होता है कि इतने देवी देव इस अनंत सृष्टि के नियामक नहीं हो सकते, इन का कर्त्ता स्वतंत्र कोई विशेष शक्तिसंपन्न ईश्वर है । तब उस का स्वरूप जानने की इच्छा होती है, अर्थात् मनुष्य कर्मकांड से ज्ञानकांड में आता है । ज्ञानकांड में सोचते सोचते संगति और रुचि के अनुसार या तो मनुष्य फिर निरीश्वरवादी हो जाता है या उपासना में प्रवृत्त होता है । उस उपासना की भी विचित्र गति है । यद्यपि ज्ञानवृद्धि के कारण प्रथम मनुष्य साकार उपासना छोड़कर निराकार की ओर रुचि करता है, किन्तु उपासना करते करते जहाँ भक्ति का प्राबल्य हुआ वहीं अपने उस निराकार उपास्य को भक्त फिर साकार कहने लगता है । बड़े बड़े निराकारवादियों ने भी "प्रभो दर्श दो ! अपने चरणकमलों को हमारे सिर पर स्थान दो, अपनी सुधामयी वाणी श्रवण कराओ" इत्यादि प्रयोग किया है वैसे ही प्रथम सूर्य पृथ्वीवासियों को सब से विशेष आश्चर्य और गुणकारी वस्तु बोध हुई, उस से फिर उन में देवबुद्धि हुई । देवबुद्धि होने ही से आधिभौतिक सूर्य मंडल के भीतर एक आधिदैविक नारायण माने गये । फिर अंत में यह कहा गया कि नारायण एक सूर्य ही में नहीं, सर्वत्र हैं, और अनंत कोटि सूर्य, चंद्र, तारा उन्हीं के प्रकाश से प्रकाशित हैं । अर्थात् आध्यात्मिक नारायण की उपासना में लोगों की प्रवृत्ति हुई ।

इन्हीं कारणों से वैष्णवमत की प्रवृत्ति भारतवर्ष में स्वाभाविकी है । जगत् में उपासनामार्ग ही मुख्य धर्ममार्ग समझा जाता है । कृस्तान, मुसलमान, ब्राह्म, बौद्ध उपासना सब के यहाँ मुख्य है । किन्तु बौद्धों में अनेक सिद्धों की उपासना और तप आदि शुभ कर्मों के प्राधान्य से वह मत हम लोगों के स्मार्त्त मत के सदृश है और कृस्तान, ब्राह्म, मुसलमान आदि के धर्म में भक्ति की प्रधानता से ये सब वैष्णवों के सदृश हैं । इंजील में वैष्णवों के ग्रंथों से बहुत सा विषय लिया है और ईसा के चरित्र में श्री कृष्ण के चरित्र का सादृश्य बहुत है, यह विषय सविस्तर भिन्न प्रबंध में लिखा गया है । तो जब ईसाइयों के मत को ही हम वैष्णवों का अनुगामी सिद्ध

कर सके हैं, फिर मुसलमान जो कृस्तानों के अनुगामी हैं वे हमारे अन्वनुगामी हो चुके ।

यद्यपि यह निर्णय करना अब अति कठिन है कि अतिप्राचीन के ध्रुव, प्रह्लाद आदि, मध्यावस्था के ऊद्धव, आरुणि, परीक्षितादिक और नवीन काल के वैष्णवाचार्यों के खान-पान, रहन-सहन, उपासनारीति, वाह्य चिन्ह आदि में कितना अंतर पड़ा है, किन्तु इतना ही कहा जा सकता है कि विष्णु-उपासना का मूल सूत्र अति प्राचीनकाल से अनवच्छिन्न चला आता है । ध्रुव, प्रह्लादादि वैष्णव तो थे, किन्तु अब के वैष्णवों की भाँति कंठी, तिलक, मुद्रा लगाते थे और मांस आदि नहीं खाते थे, इन बातों का विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता । ऐसे ही भारतवर्ष में जैसी धर्मरुचि अब है उस से स्पष्ट होता है कि आगे चलकर वैष्णवमत में खाने पीने का विचार छूट कर बहुत सा अदल बदल अवश्य होगा । यद्यपि अनेक आचार्यों ने इसी आशा से मत प्रवृत्त किया कि इसमें सब मनुष्य समानता लाभ कर और परस्पर खानपानादि से लोगों में ऐक्य बढ़े और किसी जाति, वर्ण, देश का मनुष्य क्यों न हो वैष्णवपंक्ति में आ सकै, किन्तु उन लोगों की यह उदार इच्छा भली भाँति पूरी नहीं हुई, क्योंकि स्मार्त मत की और ब्राह्मणों की विशेष हानि के कारण इस मत के लोगों ने उस समुन्नत भाव से उन्नति को रोक दिया, जिस से अब वैष्णवों में छूआछूत सब से बढ़ गया । बहुदेवोपासकों की घृणा देने के अर्थ वैष्णवातिरिक्त और किसी का स्पर्श बचाते वहाँ तक एक बात थी, किन्तु अब तो वैष्णवों ही में ऐसा उपद्रव फैला है कि एक संप्रदाय के वैष्णव दूसरे संप्रदाय वाले को अपने मंदिर में और अपने खान पान में नहीं लेते और 'सात कनौजिया नौ चूल्हे' वाली मसल हो गई है । किन्तु काल की वर्तमान गति के अनुसार यह लक्षण उनकी अवनति के हैं । इस काल में तो इस की तभी उन्नति होगी जब इस के वाहयव्यवहार और आडंबर में न्यूनता होगी और एकता बढ़ाई जायगी और आंतरिक उपासना की उन्नति की जायगी । यह काल ऐसा है कि लोग उसी मत को विशेष मानेंगे जिस में वाहय देह-कष्ट न्यून हो । यद्यपि वैष्णवधर्म भारतवर्ष का प्रकृत धर्म है इस हेतु उस की ओर लोगों की रुचि होगी, किन्तु उसमें अनेक संस्कारों की अतिशय आवश्यकता है । प्रथम तो गोस्वामीगण अपना रजोगुणी-तमोगुणी स्वभाव छोड़ेंगे तब काम चलेगा । गुरु लोगों में एक तो विद्या ही नहीं होती, जिसके न होने से शील, नम्रता आदि उनमें कुछ नहीं होते । दूसरे या तो वे अति रूखे क्रोधी होते हैं या अति बिलासलालस होकर स्त्रियों की भाँति सदा दर्पण ही देखा करते हैं । अब वह सब स्वभाव उनको छोड़ देना चाहिए, क्योंकि इस उन्नीसवीं शताब्दी में वह श्रद्धाजाड्य अब नहीं बाकी है । अब कुकर्मी गुरु का भी चरणामृत लिया जाय वह दिन छप्पर पर गए । जितने बूढ़े लोग अभी तक जीते हैं उन्हीं के शील संकोच से प्राचीनधर्म इतना भी चल रहा है, बीस पचीस बरस पीछे फिर कुछ नहीं है । अब तो गुरु गोसाईं का चरित्र ऐसा होना चाहिए कि जिस को देख सुन कर लोगों में श्रद्धा से स्वयं चित्त आकृष्ट हों । स्त्रीजनों का मंदिरों से सहवास निवृत्त किया जाय । केवल इतना ही नहीं, भगवान श्री कृष्णचन्द्र की केलिकथा जो अतिरहस्य होने पर भी बहुत परिमाण से जगत् में प्रचलित है वह केवल अंतरंग उपासकों पर छोड़ दी जाय, उनके माहात्म्य मत विशद चरित्र का महत्व यथार्थ रूप से व्याख्या कर के सब को समझाया जाय । रास क्या है, गोपी कौन हैं, यह सब रूपक अलंकार स्पष्ट कर के श्रुतिसम्मत उनका ज्ञान वैराग्य भक्तिबोधक अर्थ किया जाय । यह भी दबी जीभ से हम डरते डरते कहते हैं कि व्रत, स्नान आदि भी वहीं तक रहैं जहाँ तक शरीर को अति कष्ट न हो । जिस उत्तम उदाहरण के द्वारा स्थापक आचार्यगण ने आत्मसुख विसर्जन कर के भक्ति सुधा से लोगों को प्लावित कर दिया था उसी उदाहरण से अब भी गुरु लोग धर्म प्रचार करैं । वाहय आग्रहों को छोड़ कर केवल आंतरिक उन्नत प्रेममय भक्ति का प्रचार करैं, देखैं कि दिग्दिगंत से हरिनाम की कैसी ध्वनि उठती है और विधर्मीगण भी इसको सिर झुकाते हैं कि नहीं और सिक्ख, कबीरपंथी आदि अनेक दल के हिन्दूगण भी सब आप से आप बैर छोड़ कर इस उन्नतसमाज में मिल जाते हैं कि नहीं ।

जो कोई कहै कि यह तुम कैसे कहते हो कि वैष्णवमत ही भारतवर्ष का प्रकृत मत है तो उस के उत्तर में हम स्पष्ट कहैंगे कि वैष्णव मत ही भारतवर्ष का मत है और वह भारतवर्ष कह हड्डी लहू में मिल गया है । इस के अनेक प्रमाण हैं, क्रम से सुनिए (१) पहले तो कबीर, दादू, सिक्ख, बाउल आदि जितने पंथ हैं सब वैष्णवों की शाखा प्रशाखायें हैं और सारा भारतवर्ष इन पंथों से छाया हुआ है । (२) अवतार और किसी देव का नहीं, क्योंकि इतना उपकार ही [दस्यु दलन आदि] और किसी से नहीं साधित हुआ है । (३) नामों को लीजिए तो क्या स्त्री, क्या पुरुष, आधे नाम भारतवर्ष के विष्णुसंबंधी हैं और आधे में जगत् है । कृष्णभट्ट, रामसिंह,

गोपालदास, हरिदास, रामगोपाल, राधा, लक्ष्मी, रुक्मिन, गोपी, जानकी आदि । विश्वास न हो कलेक्टरी के दफ्तर से मर्दुमशुमारी के काग़ज़ निकाल कर देख लीजिए वा एक दिन डाँकघर में बैठकर चिट्ठियों के लिफाफों की सैर कीजिए । (४) ग्रंथ, काव्य, नाटक आदि के, संस्कृत या भाषा के, जो प्रचलित हैं उन को देखिए । रघुवंश, माघ, रामायण आदि ग्रंथ विष्णुचरित्र के ही बहुत हैं । (५) पुराण में भारत, भागवत, वाल्मीकि-रामायण यही बहुत प्रसिद्ध हैं और यह तीनों वैष्णवग्रंथ हैं । (६) व्रतों में सब से मुख्य एकादशी है वह वैष्णव व्रत है और भी जितने व्रत हैं उन में आधे वैष्णव हैं । (७) भारतवर्ष में जितने मेले हैं उन में आधे से विशेष विष्णुलीला, विष्णुपर्व या विष्णुतीर्थों के कारण हैं । (८) तिहवारों की भी यही दशा है । वरंच होली आदि साधारण तिहवारों में भी विष्णुचरित्र ही गाया जाता है । (९) गीत, छंद चौदह आना विष्णुपरत्व हैं, दो आना और देवताओं के । किसी का व्याह हो, रामजानकी के व्याह के गीत सुन लीजिए । किसी के बेटा हो नंद बधाई गाई जायगी । (१०) तीर्थों में भी विष्णुसंबंधी ही बहुत हैं । अयोध्या, हरिद्वार मथुरा, वृंदावन, जगन्नाथ, रामनाथ, रंगनाथ, द्वारका, बदरीनाथ आदि भली भाँति याद कर के देख लीजिए । (११) नदियों में गंगा, यमुना मुख्य हैं, सो इन का माहात्म्य केवल विष्णुसंबंध से है । (१२) गया में हिंदू मात्र को पिंडदान करना होता है, वहाँ भी विष्णुपद है । (१३) मरने के पीछे 'रामःामसत्य है' इसी की पुकार होती है और अंत में शुद्ध श्राद्ध तक 'प्रेतमुक्ति प्रदोभव' आदि वाक्य से केवल जनार्दन ही पूजे जाते हैं । यहाँ तक कि पितृरूपी जनार्दन ही कहलाते हैं । (१४) नाटकों और तमाशों में रामलीला, रास ही अति प्रचलित हैं । (१५) सब वेद पुस्तकों के आदि और अंत में लिखा रहता है 'हरिः ॐ' । (१६) संकल्प कीजिए तो विष्णुः विष्णुः । (१७) आचमन में विष्णु विष्णु । (१८) शुद्ध होना हो तो यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं । (१९) सुग्गे को भी राम ही राम पढ़ाते हैं । (२०) जो कोई वृत्तांत कहै तो उसको राम कहानी कहते हैं । (२१) लड़कों को बाल गोपाल कहते हैं । (२२) छपने में जितने भागवत, रामायण, प्रेमसागर, ब्रजविलास छापी जाती है और देवताओं के चरित्र उतने नहीं छपते । (२३) आर्यलोगों के शिष्टाचार में रामराम, जयश्रीकृष्ण, जयगोपाल ही प्रचलित हैं । (२४) ब्राह्मणों के पीछे बैरागी ही को हाथ जोड़ते हैं और भोजन कराते हैं । (२५) विष्णु के साला होने के कारण चंद्रमा को सभी चंदामामा कहते हैं । (२६) गृहस्थ के घर घर तुलसी का थाला, ठाकुर की मूर्ति, रसोई भोग लगाने को रहती है । (२७) कथा घाट बाट में भागवत ही रामायण की होती है । (२८) नगरों के नाम में भी रामपुर,[१*] गोविंदगढ़, रघुनाथपुर, गोपालपुर[२*] आदि ही विशेष हैं । (२९) मिठाई में गोविंदबड़ी, मोहनभोग आदि नाम

---

* विष्णु संबंधी अनेक गाँव हैं, कई एक यहाँ पर लिखे जाते हैं । जिला गया के जहानाबाद थाना के इलाके में विसुनगंज गाँव है । जिला गया के नबीनगर थाना के इलाके में किसुनपुर बटाने के किनारे पर है, यहाँ मेला लगता है । जिला गया के दाऊदनगर थाना के इलाके में गोपालपुर गाँव है । जिला गया के शहरघाटी थाना के इलाके में नारायणपुर गाँव है ।

बरेव से तीन कोस पूरब सकरी नदी के बायें किनारे गोविंदपुर बैजनाथ जी की कच्ची सड़क पर भारी बाजार है । यहाँ लकड़ी और बहुत सी जंगली चीज बिकती हैं । यहाँ से दो कोस नैत्रमृत्यकोन में एक तारा गाँव से आध कोस दक्खिन महभर पहाड़ में ककीलत बड़ा भारी और प्रसिद्ध झरना है, इस में सदा पानी मोटी धार से गिरा करता है । पानी गिरते नीचे एक अथाह कुंड बन गया है । पानी इस झरने का बहुत निर्मल और ठंढा रहता है । यह स्थान परम रम्य और मनोहर लगता है । मेष की संक्रांति में (बिसुआ) बड़ा मेला लगता है । गोविंदपुर के आस पास बिसुनपुर, सुंघड़ी और पहाड़ के पार सिऊर रपऊ आदि बड़े बड़े गाँव हैं । सिऊर में दो बड़े तालाब हैं और एक पुराने राजगृह का चिन्ह देख पड़ता है ।

सीतापुर के वायु कोन । सदर मुकाम दरयाबाद लखनऊ से ४५ मील वायुकोन उत्तर को झुकता हुआ है ।

२. एक गाँव असनीगोपालपुर है । वहाँ के नरहरि कवि ने अपने परिचय में कहा है: !

कवित्त ! नाम नरहरि है प्रशंसा सब लोगें करैं हंसहू से उज्वल जगु व्यापे हैं । गंगा के तीर ग्राम असनीगोपालपुर मंदिरगोपाल जी को करत मंत्र जापे हैं । कबि बान्शाही मौज पावै बादशाही वो जगावै बादशाही जाते अरिगन कांपे हैं । जब्बर गनीमन के तोरिबे को गब्बर हुमायूं के बब्बर अकब्बर के थापे हैं ।।१।।

हैं, अन्य देवताओं का कहीं कुछ नाम नहीं है । (३०) सूर्यचंद्रवंशी क्षत्री लोग श्री राम कृष्ण के वंश में होने का अब तक अभिमान करते हैं । (३१) ब्राह्मणगण ब्रह्मण्य देव कह कर अब तक कहते हैं 'ब्राह्मणो मामकीतनुः' । (३२) औषधियों में भी रामबाण, नारायणचूर्ण आदि नाम मिलते हैं । (३३) कार्तिकस्नान, राधा दामोदर की पूजा, देखिए, भारतवर्ष में कैसी है । (३४) तारकमंत्र लोग श्रीरामनाम ही को कहते हैं । (३५) किसी हौस में चले जाइए तूल के थान निकलवा कर देखिए उस पर जितने चित्र विष्णुलीला संबंधी मिलैंगे अन्य नहीं । (३६) बारहो महीने के देवता विष्णु हैं । ऐसी ही अनेक अनेक बातें हैं । विष्णुसंबंधी नाम बहुत वस्तुओं के हैं, कहाँ तक लिखे जायँ । विष्णुपद (आकाश), विष्णुरात (परीक्षित), रामदाना, रामधेनु, रामजी की गैया, रामधनु (आकाश धनु), रामफल, सीताफल, रामतरोई, श्रीफल, हरिगीती, रामकली, रामकपूर, रामगिरी, रामचंदन, रामगंगा, हरिचंदन, हरिसिंगार, हरिकेला, हरिनेत्र (कमल), हरिकेली (बंगल देश), हरिप्रिय (सफेदचंदन), हरिवासर (एकादशी), हरिबीज (बग़नीबू), हरिवर्षखंड, कृष्णकली, कृष्णकंद कृष्णकांता, विष्णुक्रांता (फूल), सीतामऊ, सीतावलदी, सीताकुण्ड, सीतामढ़ी, सीता की रसोई, हरिपर्वत, हरि का पत्तन, रामगढ़, रामबाग, रामशिला, रामजी की घोड़ी, हरिपदा (आकाशगंगा), नारायणी, कन्हैया आदि नगर नद नदी पर्वत फलफूल के सैकड़ों नाम हैं । (जले विष्णुः स्थले विष्णुः) सब स्थान पर विष्णु के नाम ही का संबंध विशेष है । आग्रह छोड़ कर तनिक ध्यान देकर देखिए कि विष्णु से भारतवर्ष से क्या संबंध है, फिर हमारी बात स्वयं प्रमाणित होती है कि नहीं कि भारतवर्ष का प्रकृत मत वैष्णव ही है ।

अब वैष्णवों से यह निवेदन है कि आप लोगों का मत कैसी दृढ़ भित्ति पर स्थापित है और कैसे सार्वजनीन उदारभाव से परिपूर्ण है, यह कुछ कुछ हम आपलोगों को समझा चुके । उसी भाव से आपलोग भी उस में स्थिर रहिये, यही कहना है । जिस भाव से हिंदूमत अब चलता है उस भाव से आगे नहीं चलेगा । अब हमलोगों के शरीर का बल न्यून हो गया, विदेशी शिक्षाओं से मनोवृत्ति बदल गई, जीविका और धन उपार्जन के हेतु अब हमलोगों को पाँच पाँच छ छ पहर पसीना चुआना पड़ेगा, रेल पर इधर से उधर कलकत्ते से लाहौर और बंबई से शिमला दौड़ना पड़ैगा, सिविल सर्विस का, बैरिस्टरी का, इंजिनियरी का इम्तिहान देने को विलायत जाना होगा, विना यह सब किए काम नहीं चलेगा, क्योंकि देखिए, कृस्तान, मुसल्मान, पारसी यही हाकिम हुए जाते हैं, हमलोगों की दशा दिन दिन हीन हुई जाती है । जब पेट भर खाने ही को न मिलेगा तो धर्म कहाँ बाकी रहेगा, इस से जीवमात्र के सहज धर्म उदरपूरण पर अब ध्यान दीजिए । परस्पर का बैर छोड़िए । शैव, शाक्त, सिक्ख जो हो, सब से मिलो । उपासना एक हृदय की रत्न वस्तु है उस को आर्यक्षेत्र में फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं । वैष्णव, शैव, ब्राह्म, आर्यसमाजी सब अलग अलग पतली पतली डोरी हो रहे हैं, इसी से ऐश्वर्य रूपी मस्तहाथी उन से नहीं बँधता । इन सब डोरी को एक में बाँध कर मोटा रस्सा बनाओ, तब यह हाथी दिगदिगंत भागने से रुकैगा । अर्थात् अब वह काल नहीं है कि हम लोग भिन्न भिन्न अपनी अपनी खिचड़ी अलग पकाया करैं । अब महाघोर काल उपस्थित है । चारो ओर आग लगी हुई है । दरिद्रता के मारे देश जला जाता है । अँगरेजों से जो नौकरी बच जाती है उन पर मुसल्मान आदि विधर्मी भरती होते जाते हैं । आमदनी वाणिज्य की थी ही नहीं, केवल नौकरी की थी सो भी धीरे धीरे खसकी । तो अब कैसे काम चलैगा । कदाचित ब्राह्मण और गोसाई लोग कहैं कि हमको तो मुफ्त का मिलता है, हम को क्या ? इस पर हम कहते हैं कि विशेष उन्हीं को रोना है । जो करालकाल चला आता है उस को आँख खोल कर देखो । कुछ दिन पीछे आप लोगों के माननेवाले बहुत ही थोड़े रहेंगे, अब सब लोग एकत्र हो । हिंदूनामधारी वेद से ले कर तंत्र, वरंच भाषाग्रंथ माननेवाले तक सब एक होकर अब अपना परमधर्म यह रक्खो कि आर्यजाति में एका हो । इसी में धर्म की रक्षा है । भीतर तुम्हारे चाहे जो भाव और जैसी उपासना हो ऊपर से सब आर्यमात्र एक रहो । धर्म संबंधी उपाधियों को छोड़ कर प्रकृत धर्म की उन्नति करो ।

मदालसोपाख्यान

(मार्कंडेय पुराण से संगृहीत)

जिसे

बाबू हरिश्चंद्र ने

अपनी पत्रिका बालाबोधिनी से लेकर

युवराज

श्रीयुत प्रिंस आवॅ वेल्स बहादुर

के
शुभागमन के आनंद के अवसर में

बालिकाओं को

वितरण के अर्थ अलग छपवाया

जिस लड़की को यह पुस्तक दी जाय उससे अध्यापक लोग ५ बेर कहला ले "राजपुत्र चिरंजीव" ।

Benares Light Press

बनारस लाइट छापाखाना मे मुद्रित हुआ ।

रचना काल सन् १८७४। यह उपाख्यान पहले बालाबोधिनी मे प्रकाशित हुआ था। सन् १८७५ में यह अलग पुस्तकाकार महिलाओं के लिए छापकर निःशुल्क बांटा गया।— सं.

मदालसा

(उपाख्यान : मार्कण्डेयपुराण से)

पुराने जमाने में शत्रुजित नाम का एक राजा था और उसको अरिविदारण कृतध्वज नाम का एक लड़का था । अश्वतर नाग के दो लड़के ब्राह्मण बनकर उसके साथ खेलने आते थे । राजकुमार से उनसे ऐसी प्रीति हो गई थी कि वे रात दिन नाग लोक छोड़कर यहीं भूले रहते थे । एक दिन नागों के राजा अश्वतर ने अपने लड़कों से पूछा 'प्यारे लड़को, आज कल तुम लोग नाग लोक छोड़कर मृत्यु लोक ही में क्यों रमे रहते हो ?' वे बोले 'पिता, शत्रुजित राजा के कुमार कृतध्वज ने शिष्टाचार और प्रीति से हमारा मन ऐसा मोहा है कि पाताल उसके बिना गर्म और उसके मिलने से सूर्य ठंडा मालूम पड़ता है ।' पिता ने कहा 'निस्संदेह वह पुरुष धन्य है जिसको ऐसा मित्रों को सुखदाई पुत्र हुआ है, भला ऐसे सच्चे सुहृत् का तुम लोगों ने उपकार भी किया ?' लड़के कहने लगे 'भला हम लोग उसका क्या उपकार करेंगे, धन, जन, विद्या सबमें वह हमसे बढ़ चढ़ के हैं और जो उसका एक काम है उसको ब्रह्मादिक ईश्वर के सिवा कोई कर नहीं सकता ।' नागराज ने कहा 'भला हम सुनैं तो सही, ऐसा कौन काम है जो आदमी न कर सकै । किसी प्रकार भी तुम लोग मित्र का प्रति उपकार कर सको तो मैं अपने को ऋण से छूटा समझूँ ।' नाग पुत्र बोले 'उस मित्र के पिता के पास उसकी जवानी में गालव नाम का ब्राह्मण एक बहुत बढ़िया घोड़ा लेकर आया और बोला कि महाराज एक राक्षस हम लोगों को बहुत दुःख देता है, नित्य तप में विघ्न कर करके उसने हमारी नाकों में दम कर रक्खा है और हम लोगों ने बड़े कष्ट से तप किया है इससे उसको शाप देकर तप नहीं न्यून किया चाहते । एक दिन बड़े दुःखी हो कर जो मैंने एक लम्बी ठंडी साँस भरी तो देखता हूँ कि यह घोड़ा आसमान से उतरा चला आता है, साथ ही आकाश वाणी भी सुना कि इस घोड़े की गति पृथ्वी और आकाश पाताल सब जगह है । और ऐसा घोड़ा पृथ्वी पर दूसरा नहीं है । चाल में हवा को भी यह पीछे छोड़ता हुआ संसारियों के मन की भाँति उड़ा चलता है । इसका नाम कुवलय है, इसे राजा शत्रुजित को दो और उसका पुत्र इस घोड़े पर सवार हो कर उस राक्षस को मारे । इससे उस राजा की बड़ी कीर्ति होगी । सो अब मैं आप के पास आया हूँ । राजा ने कुमार को उसी समय सज सजा कर असीस दी और ब्राह्मण के साथ विदा किया । राज कुमार गालव के आश्रम में रहने लगा । एक दिन वह राक्षस जंगली सुअर बन कर आया और जब कुँअर ने उसके पीछे धनुष तान कर घोड़ा दौड़ाया तो वह एक घने जंगल में भागा । भागते भागते वह बहुत दूर जाकर एक गड़हे में गिर पड़ा तो कुँअर भी साथ ही कूदा । अँधेरे में कुँअर को कुछ भी नहीं देखाता था पर घोड़ा फेंके चला जाता था । जब उँजेला आया तो वह सुअर न दिखाई पड़ा, सिर्फ एक बड़ा रत्नों से जड़ा घर सामने खड़ा था । उसके दरवाजे की सीढ़ी पर एक जवान सुंदर स्त्री चढ़ी जाती थी । कुँअर भी दरवाजे पर घोड़ा बाँध बेधड़क उस मकान में घुसा और एक बड़ी सजी सजाई जड़ाऊ दालान में हिंडोला खाट पर उसे एक कन्या दिखाई पड़ी और जो स्त्री उसे सीढ़ी पर चढ़ती मिली थी, वह भी उसके पास बैठी थी । कुँअर को देखते ही वह कन्या बेहोश हो गई । उस स्त्री और कुँअर ने किसी तरह उसको सावधान किया । तब कुँअर उस सखी से उन लोगों का नाँव गाँव और बेहोशी का कारण पूछने लगा । स्त्री बोली यह गंधर्वों के राजा विश्वावसु की कन्या है । इसको पातालकेतु नाम का दैत्य माया से उठा लाया है । अगली तेरस को वह दुष्ट इससे ब्याह करने को था और जब इस दुख से यह प्राण देने लगी तो आकाशवाणी हुई कि प्राण मत दे । गालव के आश्रम में जिस राज कुँअर से यह मारा जायगा वही तेरा हाथ पीला करेगा । मैं इसकी सखी विंध्यवान् की पुत्री कुंडला हूँ । मेरे पति पुष्कर माली को जब शम्भू दैत्य ने वध कर डाला तब से धर्म में लगी हूँ । इसके मूर्च्छा का कारन यह है कि आज मैं खबर ले आई हूँ कि गालव के आश्रम में किसी ने उस सुअर बने हुए दैत्य को बान से मारा है । अब वही इसका पति होगा पर यह तुम्हारे रूप से मोह गई है और यह सोचती है कि हाय जिसको मैं चाहती हूँ उससे न ब्याही जाऊँगी । अब आप कौन हैं, कहिए ? राजकुमार ने सब हाल कहा और अपना राक्षस का मारना वर्णन किया । सुनते ही उस कन्या ने घूंघट कर लिया और बहुत प्रसन्न होकर कुंडला से बोली सखी, सुरभी का कहना क्या झूठ हो सकता है । कुंडला ने उसी समय तुंबरु गंधर्व का ध्यान किया । उसने आते ही प्रसन्नता से अग्नि को साखी देकर दोनों का हाथ दोनों को पकड़ा दिया

और आप तप करने चला गया । कुंडला भी अपनी सखी को गले लगाकर दुलहा दुलहिन दोनों को कुछ हित की बातें सिखाकर तप करने गई । कुँअर उस कन्या (मदालसा) को घोड़े पर बिठाकर उस पाताल की गुफा से बाहर निकलने लगा पर उसी क्षण राक्षसों की फौज ने चोर चोर कह कर आन घेरा और मदालसा को उससे छुड़ाना चाहा । कुँअर ने बहादुरी से उन सबों को बात की बात में मार गिराया और आप राजी खुशी अपने घर आया । पिता के पैरों पर पड़कर सब हाल कह सुनाया । राजा-रानी बहू-बेटा पाकर बड़े प्रसन्न हुए और सब लोग सुख से रहने लगे । राजा ने कुँवर को आज्ञा दे दी थी कि तुम नित्य घोड़े पर चढ़कर मुनियों की रखवाली किया करो । कुँअर घोड़े पर चढ़ा एक दिन यमुना किनारे के मुनियों की रखवाली कर रहा था कि एक आश्रम देखा । इस आश्रम में उस पातालकेतु राक्षस का भाई तालकेतु कपटी मुनि बन कर बैठा था । कुँअर को देखते ही पुराना बैर याद करके वह बोला कि कुँअर तुम अपने गहने हमको दो और जब तक हम पानी में जाकर वरुण की पूजा करके न फिरें तब तक तुम हमारे आश्रम की चौकी दो । राजपुत्र ने सब गहना उतार दिया और उस कुटीचर की कुटी का पहरा देने लगा । वह दुष्ट गहना लेकर जल में डूबकर माया से कुँअर के महलों में गया और मदालसा से बोला कि हमारे आश्रम में कृतध्वज को एक राक्षस ने मार डाला और हिनहिनाते हुए उस बिचारे घोड़े को भी घसीट ले गया । शूद्र तपसियों से क्रिया कराके उसका गहना लेकर मैं तुम को देने आया हूँ, यह लो । इतना कहकर आभूषण सब फेंक दिये और आप चलता हुआ । मदालसा ने उसी समय पति के दुःख से प्राण त्याग किये । महल में हाहाकार मच गया, जिधर देखो उधर कुहराम पड़ा हुआ था और दर दीवार से हाय कुँअर हाय बहू की आवाज आती थी । राजा शत्रुजित धीरज रखकर बोला कि इतना क्यों रोते हो ? मुनियों की रक्षा में हमारा पुत्र यश कमाकर मारा गया, इसका क्या सोच है । उसकी माँ भी बोली कि बड़ों का यश बड़ा कर जो क्षत्री युद्ध में मरे उसका क्या रोना और ऐसी बहू का भी क्या सोच जो पति के सब सुख भोगकर अन्त में पति लोक उसके साथ ही गई, उठो क्रिया करो और सोच दूर करो । राजा ने नगर के बाहर सब लोक रीति किया और बेटे बहू को पानी देकर घर फिरा । इधर कपटी मुनि भी कुँअर से आकर बोला कि मेरा काम हो गया, आपका कल्याण हो, अब घर सिधारिये । कुँअर जब नगर में आया तो सबको उदास पाया । कुँअर को देखते ही बधाई बधाई का चारों ओर से शोर मच गया । कुँअर बहुत चकपकाया कि यह मामला क्या है ? अन्त में घर पर गया और सब हाल सुनकर बहुत ही घबड़ाया । माँ बाप के डर से रो तो न सका पर अपनी पतिव्रता प्रान प्यारी के बिछुड़ने से बहुत ही उदास हो गया और यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं प्रान तो नहीं देता पर अब किसी दूसरी स्त्री से जन्म भर न मिलूँगा । तब से इस सुख से वंचित है और यदि संसार में उसका कोई हित है तो इतना ही है कि मदालसा उसको फिर मिले पर यह सिवा ईश्वर के कौन कर सकता है ?' नागराज ने कहा 'पुत्र ईश्वर की दया और मनुष्य के परिश्रम के आगे कोई बात कठिन नहीं ।'

उसी दिन से अश्वतर ने हिमालय पर्वत पर सरस्वती की आराधना करनी आरंभ कर दी । जब सरस्वती प्रसन्न हुई, कहा 'वर-माँगो' तो नागराज ने यह वर लिया कि उन्हें और उनके भाई कंबल को संगीत विद्या संपूर्ण रीति से आ जाय । वर पाकर कंबल अश्वतर दोनों कैलाश को गए और गाकर श्री भोलानाथ सदाशिव को ऐसा रिझाया कि महादेव पार्वती साथ ही बोले "माँगो क्या चाहते हो" । दोनों ने हाथ जोड़कर कहा "नाथ ! कुवलनाथ की स्त्री मदालसा उसी रूप और अवस्था से हमारे घर में फिर जन्म ले" । "एवमस्तु" त्रिनयन जी ने कहा और यह भी आज्ञा दिया कि तुम्हारी साँस से आज के तीसरे दिन मदालसा उत्पन्न होगी । तीसरे दिन मदालसा का जब जन्म हुआ तो नागधिप ने सबसे छिपाकर उसको निज के जनाने में रक्खा । एक दिन बातों बात में अश्वतर ने कहा 'बेटा भला हम भी तुम्हारे मित्र को देखें' । नाग कुमार उसी समय कुवलयाश्व के पास आए और बोले 'हम आप से कुछ जाँचते हैं' । कृतध्वज बोला 'मित्र, हमारे धन्य भाग, इतने दिन तक आप लोग मेरे साथ रहे कभी कुछ न कहा, आज भला इतना कहा तो, मैं राज्य और प्राण भी देने को प्रस्तुत हूँ ।' कुमारों ने कहा 'मेरे पिता जी आप को देखा चाहते हैं' । राजकुमार उन ब्राह्मण बने हुए नागकुमारों के साथ चला और वे दोनों उसका हाथ पकड़ कर यमुना में कूद पड़े । जब पैर तल पर लगे और कुँअर ने आँख खोली तो देखा कि एक रत्नमय नगरी में खड़े हैं । नागपुत्र कुमार को लेकर नागेश्वर के सामने गए । कुमार नाग लोगों का वैभव देख कर चकित हो गया । उसके नगर के जौहरी जितनी बड़ी मनियों का ध्यान भी नहीं कर सकते, वैसी वहाँ अनेक देखने में आईं । नाग सम्राट को तीनों कुमारों ने साष्टांग दण्डवत किया । अश्वतर

ने राजकुँअर का सिर सूँघा और गोद में बैठाकर बोले 'पुत्र, तुम धन्य हो, आज तक तुम्हारे गुणों को अपने पुत्रों के मुख से सर्वदा सुनने से तुम्हें देखने की जो मेरी लालसा थी वह पूरी हुई, कहो हम भी तुम्हारा उपकार कर सकते हैं ।' कुँअर ने हाथ जोड़ कर कहा 'आप की कृपा से मेरे सब काम पूर्ण हैं, यदि वर दिया ही चाहते हैं तो इतना ही दीजिए कि मेरी मति सदा सुपथ पर चले । नागराज ने कहा 'तुम्हारी मति तो आप ही सुपथ पर है, कोई दूसरा वर माँगो ।' कुँअर नहीं माँगता था । गरज इसी संवाद में अवसर पाकर नाग नंदन बोले 'पितः इनको तो केवल एक मात्र दुःख है, जो मैंने आप से पूर्व कहा था' । कंवलानुज उसी समय महल में से मदालसा को ले आये और कुमार का हाथ पकड़ा दिया । उस समय कुमार को जो अलौकिक आनंद हुआ वह कौन वर्णन कर सकता है । यदि ऐसे ही मरा हुआ कोई प्राणप्रिय मित्र मिले तो उसका अनुभव किया जाय । पन्नगाधिपति ने पाताल में बड़ा उत्सव करके उन दोनों का फिर से पाणिग्रहण कराया । नाग नंदनों ने भी बड़ा आनंद किया और बड़े धूम धाम से कुँवर की दावतें हुईं । सारा नाग लोक उमड़ पड़ा था और कुँवर को सब बधाई देते थे । कुंडला जो तप के बल से अब विद्याधरी हो गई थी, मदालसा के गले से लगी और बधाई देकर बोली 'बहिन, मेरे धन्य भाग हैं कि तुझे जीती जागती भली चंगी अपने पति के साथ देखती हूँ भगवान करे तू सीली सपूती ठंडी सुहागिन हो और धन जन पूत लक्ष्मी से सदा से सदा सुखी रहे' । अश्वतर का भाई कंबल और और भी बड़े बड़े नाग लोग इस उत्सव में आये थे और कुँवर से मिलकर सब प्रसन्न हुए ।

मणिधर मुकुट मणि अश्वतर ने कुवलायश्व को बहुत से मणि दिव्य वस्त्र चंदन इत्यादि देकर बड़ी प्रीति से धूम धाम से विदा किया और एक सज्जन मित्र का उपकार करके अपने को कृतकृत्य समझा और कुँअर से बहुत तरह से विनती करके कहा कि सदा आना जाना बनाए रहना और पिता से हमारा बहुत प्रणाम कहना — तुम्हारे स्नेह ने हमें बिना सैन्य जीत लिया है । नाग पत्नी नाग कन्याओं ने बहुत गहना कपड़ा दे उसका सिंगार किया और असीस देकर आँखों में आँसू भर के अपनी निज बेटी की भाँति विदा किया । कुँअर हँसी खुशी गाजे बाजे से उसी धूम धाम के साथ घर पहुँचा । माँ बाप का बहू बेटे को देख कर ऐसा कलेजा ठंडा हुआ जैसे किसी को खोई हुई संपत्ति मिले । राजा के सारे राज्य में आनंद फैल गया और घर घर बधाइयाँ होने लगीं । कुँअर को राज का बोझ सुपुर्द करके राजा भी सुचित हुआ और कुँअर भी मदालसा के साथ सुख से काल बिताने लगा । काल पाकर राजा रानी परलोक को सिधारे और कुवलायश्व राजा और मदालसा रानी हुई । राज का प्रबंध कुवलायश्व ने बहुत अच्छा किया । प्रजा सब सुखी और चोर और शत्रु दुखी । कुवलायश्व मदालसा के साथ महल-बगीचे वन पहाड़ों और नदियों सुंदर स्थानों में सुख से काल बिताता था । समय से मदालसा को एक पुत्र हुआ । नाम करण के दिन राजा ने उसका सुबाहु नाम रक्खा तो मदालसा हँसी । राजा ने पूछा 'ऐसे अवसर में तुम हँसती क्यों हो ?' मदालसा ने कहा 'सुबाहु किसकी संज्ञा है इस जीव की कि इस देह की ? देह की कहो तो हो नहीं सकती क्योंकि यह मेरा हाथ, यह मेरा देह, यह सब लोग कहते हैं इससे देह का कोई दूसरा अभिमानी अलग मालूम होता है और जो कहो जीव की है तो जीव को तो बाहु हुई नहीं, वह तो निर्लेप है । फिर इसकी सुबाहु संज्ञा क्यों ? मेरे जान यह नामकरण इसका व्यर्थ है ।' राजा को ऐसे नामकरण के आनंद के अवसर में उसका यह ज्ञान छाँटना जरा बुरा मालूम हुआ पर चुप कर रहा । मदालसा जब बालक को खिलाने लगती तो यह कह कर खिलाती :-

वैत — अरे जीव तू आतमा शुद्ध है । निरंजन है तू और तू बुद्ध है ।।
फँसा है तू आकर के भौजाल में । निराला है तू इंनसे पर चाल में ।।
न माया में इनके अरे कुछ भी भूल । न सपने की संपत पै इतना तू फूल ।।
तेरा कोई दुनिया में साथी नहीं । तेरा राज घोड़ा व हाथी नहीं ।।
चौपाई — पुत्र भूल तू जग में आया । माया ने तुझको भरमाया ।।
तू है अलख निरंजन बेटा । जग माया ने तुझे लपेटा ।।
है तू इस शरीर से न्यारा । परमातमा शुद्ध अविकारा ।।
वही जतन तू कर सुत मेरे । जिस्से छूटैं बन्धन तेरे ।।

छोटेपन ही से ज्ञान के संस्कार से बड़ा होते ही वह लड़का संसार को छोड़कर बन में चला गया । और

उसके पीछे दो लड़के और भी हुए और वे भी बालकपन ही से ज्ञान का उपदेश सुनते सुनते जब बड़े हुए तो संसार से उदास होकर घर छोड़ गए । क्योंकि कच्चे कलेजे में जो बात सिखाई जाती है बड़े होने पर उसका असर चित्त पर बहुत रहता है । राजा मदालसा के इस कृत्य से बहुत उदास रहता था । जब चौथा लड़का हुआ और उसका नामकरण करने लगा तो मदालसा से बोला कि देवी, अब की तुम्हीं इसका नाम रक्खो क्योंकि उन तीनों के हमारे नाम रखने से तुम हँसती थीं । मदालसा ने उस लड़के का नाम अलर्क रक्खा । राजा ने पूछा 'अलर्क शब्द का तो कुछ अर्थ ही नहीं ऐसा नाम क्यों ?' मदालसा ने कहा 'पुकारने के वास्ते कोई संज्ञा रखनी चाहिए, इसमें सार्थक और निरर्थक क्या ?' एक दिन राजा ने देखा कि उसको भी वही सब कह कह कर खिला रही है, तो राजा को बड़ा ही क्षोभ हुआ । हाथ जोड़कर बोला 'चंडिके, यह बालक हमें दान कर दो, तीन को तुम मिट्टी में मिला चुकीं यही एक बाकी रहा है ।' पति की इच्छानुसार मदालसा ने उसे ज्ञानोपदेश न करके उसके बदले अनेक प्रकार की नीति और धर्म पढ़ाया, जिसके प्रताप से किसी समय अलर्क बड़ा प्रतापी हुआ क्योंकि माता की शिक्षा सब शिक्षा से बढ़ कर है । राजा रानी ने अलर्क को समर्थ देखकर राज का बोझ सौंप दिया और आप तप करने वन में चले गए । यही अलर्क जब राज काज में भूल कर संसार में फँस गया था तो मदालसा के दिए हुए यंत्र को (जिस पर लिखा था "संपत्ति में औदार्य, विपत्ति में धैर्य, संग्राम में शौर्य और सब समय में जिसे ज्ञान नहीं, उसका संसार में जन्म व्यर्थ है । संग, काम, क्रोध, लोभ, मोह ये पाँचों दुस्त्यज्य हैं, इससे इनको १ सत् २ स्वकीया ३ अपनी अकृतज्ञता ४ सिद्वांत ५ भगवान की ओर प्रयुक्त करै) पढ़कर और अपने बड़े भाई सुबाहु की कृपा और दत्तात्रेय जी के उपदेश से बड़ा ज्ञानी गुणी प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुआ है ।

एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती

यह अंश 'कविवचन सुधा' भाग ८ सं. २२ बैशाख कृष्ण ४ सन् १८७६ में प्रकाशित हुआ । यह भारतेन्दु का आत्मचरित्र है । निश्चित रूप से यह भारतेन्दु की पहली औपन्यासिक कृति होती यदि यह पूरी हुई होती । आत्मकथात्मक शैली में लिखे इस लेख के केवल दो ही पन्ने मिलते हैं । इस अधूरे लेख की शैली भारतेन्दु के व्यक्तित्व के बहुत करीब है ।— सं.

प्रथम खेल

जमीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या ?
बदलता है रंग आसमाँ कैसे कैसे ।।

हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हैं आप लोग पीछे जानेंगे । आप लोगों को क्या, किसी का रोना हो पढ़े चलिए, जी बहलाने से काम है । अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में बड़ा पवित्र दिन है । सं. १९३० में मैं जब तेईस बरस का था, एक दिन खिड़की पर बैठा था, बसन्त ॠतु, हवा ठंडी चलती थी ? साँझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूर्य पर दोनों लाल लाल, अजब समा बँधा हुआ कसेरू, गंडेरी और फूल बेंचनेवाले सड़क पर पुकार रहे थे । मैं भी जवानी की उमंगों में चूर, जमाने के ऊँच नीच से बेखबर, अपनी रसिकाई के नशे में मस्त, दुनिया के मुफ्तखोरे सिफारशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था, पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भली भाँति पहचानता था ।

कोई कहता था आप से सुंदर संसार में नहीं, कोई कसमें खाता था, आपसा पंडित मैंने नहीं देखा, कोई पैगाम देता था चमेली जान आप पर मरती हैं, आपके देखे बिना तड़प रही हैं, कोई बोला हाय ! आपका फलाना कवित्त पढ़कर रात भर रोते रहे, दूसरे ने कहा आपकी फलानी गजल लाला रामदास की सैर में जिस वक्त प्यारी ने गाई सारी मजलिस लोट-पोट हो गयी, तीसरा ठंडी साँस भरकर बोला धन्य है आप भी गनीमत हैं बस क्या कहें कोई जी से पूछे, चौथा बोला आपकी अंगूठी का पन्ना क्या है काँचका टुकड़ा है या कोई ताजी तोड़ी हुई पत्ती है, एक मीर साहब चिड़िया वाले ने चोंच खोली, बेपर की उड़ायी बोले कि आपके कबूतर किससे कम हैं वल्लाह कबूतर नहीं परीजाद हैं, खिलौने हैं, तसवीर हैं । हुमा पर साया पड़े तो उसे शहबाज बना दें, ऐसे ही खूबसूरत जानवरों में ईसाई लोग खुदा का नूर उतरना मानते हैं, इनको उड़ते देखकर किसके होश नहीं उड़ते, कसम कलामुल्लाह शरीफ की मटियाबुर्जवालों ने ऐसे जानवर ख्वाब में नहीं देखे । एक दलाल घोड़े की तारीफ कर उठा, जौहरी ने खच्चरों की तरफ बाग मोड़ी, बजाज बाग की स्तुति में फूल बूटे कतरने लगा, सिद्धान्त यह कि मैं बिचारा अकेला और वाह वाहें इतनी कि चारों ओर से मुझे दबाए लेती थीं और मेरे ऊपर गिरी क्या फिसली पड़ती थीं ।

यह तो दीवानखाने का हाल हुआ अब सीढ़ी का तमाशा देखिये । चार पाँच हिंदू, चार पाँच मुसलमान सिपाही, एक जमादार, दो तीन उम्मेदवार और दस बीस उठल्लू के चूल्हे, कोई खड़ा है, कोई बैठा है, हाय रुपया सबके जबान पर, पर इसमें सब ऐसे ही नहीं कोई-कोई सच्चा स्वामिभक्त भी है । कोई रंडी के भडुए से लड़ता है, रुपये में दो आना न दोगे तो सरकार से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार में दरशन भी दुर्लभ हो जायगा, कोई बजाज से कहता है कि वह काली बनात हमें न ओढ़ाओगे तो बरसों पड़े झूलोगे रुपये के नाम खाक भी न मिलेगी, कोई दलाल से अलग सट्टा बट्टा लगा रहा है, कोई इस बात पर चूर है कि मालिक का हमसे बढ़कर कोई भेदी नहीं जो रुपया कर्ज आता है हमारी मारफत आता है, दूसरा कहता है बचा हमारे आगे तुम क्या पूचल चर हो औरतों का भुगतान सब मैं ही करता हूँ ।

इन सबों में से एक मनुष्य को आपलोग पहचान रखिए, इससे बहुत काम पड़ेगा । यह नाटा खोटा अच्छे हाथ पैर का साँवले रंग का आदमी है, बड़ी मोंछ, छोटी आँखें, कछाड़ा कसे, लाल पगड़ी बाँधे, हरा दुपट्टा कमर में लपेटे, सफेद दुपट्टा ओढ़े, जात का कुनबी है । इसका नाम होली है । होली आजकल मेरे बहुत मुँह लग रहा है, इसीसे जो बात किसी को मुझ तक पहुँचानी होती है वह लोग उससे कहते हैं । रेवड़ी के वास्ते मसजिद गिरानी इसी का काम है ।

स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन

स्वामी दयानंद सरस्वती और बाबू केशवचंद्रसेन के स्वर्ग में जाने से वहाँ एक बेर बड़ा आंदोलन हो गया । स्वर्गवासी लोगों में बहुतेरे तो इनसे घृणा करके धिक्कार करने लगे और बहुतेरे इनको अच्छा कहने लगे । स्वर्ग में भी 'कंसरवेटिव' और 'लिबरल' दो दल हैं । जो पुराने जमाने के ऋषिमुनि यज्ञ कर करके या तपस्या करके अपने अपने शरीर को सुखा सुखा कर और पच पच कर मरके स्वर्ग गए हैं उनके आत्मा का दल 'कंसरवेटिव' है, और जो अपनी आत्माही की उन्नति से वा और किसी अन्य सार्वजनिक उच्च भाव संपादन करने से या परमेश्वर की भक्ति से स्वर्ग में गए हैं वे 'लिबरल' दलभक्त हैं । वैष्णव दोनों दल के क्या दोनों से खारिज थे, क्योंकि इनके स्थापकगण तो लिबरल दल के थे किंतु अब ये लोग 'रेडिकल्स' क्या महा महा रेडिकल्स को गए हैं । बिचारे बूढ़े व्यासदेव को दोनों दल के लोग पकड़ पकड़ कर ले जाते और अपनी अपनी सभा का 'चेयरमैन' बनाते थे, और बेचारे व्यासजी भी अपने प्राचीन अव्यवस्थित स्वभाव और शील के कारण जिस की सभा में जाते थे वैसी ही वक्तृता कर देते थे । कंसरवेटिवों का दल प्रबल था ; इसका मुख्य कारण यह था कि स्वर्ग के जमींदार इन्द्र, गणेश प्रभृति भी उनके साथ योग देते थे, क्योंकि बंगाल के ज़मीदार इन्द्र गणेश प्रभृति भी उनके साथ योग देते थे, क्योंकि बंगाल के ज़मींदारों की भाँति उदार लोगों की बढ़ती से उन बेचारों को विविध सर्वोपरि बलि और भान न मिलने का डर था ।

कई स्थानों पर प्रकाश सभा हुईं । दोनों दल के लोगों के बड़े आतंक से वक्तृता दी । 'कंसरवेटिव' लोगों का पक्ष समर्थन करने को देवता भी आ बैठे और अपने अपने लोकों में भी उस सभा की शाखा स्थापन करने लगे । इधर 'लिबरल' लोगों की सूचना प्रचलित होने पर मुसलमानी-स्वर्ग और जैन स्वर्ग तथा क्रिस्तानी-स्वर्ग से पैगंबर, सिद्ध, मसीह प्रभृति हिंदू-स्वर्ग में उपस्थित हुए और 'लिबरल' सभा मैं योग देने लगे । बैकुंठ में चारों ओर इसी की धूम फैल गई । 'कंसरवेटिव' लोग कहते, "छि: दयानंद कभी स्वर्ग में आने के योग्य नहीं ; इसने १ पुराणों का खंडन किया, २ मूर्ति पूजा की निंदा किया, ३ वेदों का अर्थ उलटा पुलटा कर डाला, ४ दश नियोग करने की विधि निकाली, ५ देवताओं का अस्तित्व मिटाना चाहा, ६ और अंत में संन्यासी होकर अपने को जलवा दिया । नारायण ! नारायण ! ऐसे मनुष्य की आत्मा को कभी स्वर्ग में स्थान मिल सकता है, जिसने ऐसा धर्म विप्लव कर दिया और आर्यावर्त को धर्म बहिर्मुख किया ।"

एक सभा में काशी के विश्वनाथ जी ने उदयपुर के एकलिंग जी से पूछा "भाई ! तुम्हारी क्या मत मारी गई जो तुमने ऐसे पतित को अपने मुंह लगाया और अब उसके दल के सभापति बने हौ, ऐसाही करना है तो जाओ लिबरल लोगों से योग दो ।" एकलिंग जी ने कहा "भाई, हमारा मतलब तुम लोग नहीं समझे । हम उसकी बुरी बातों को न मानते न उसका प्रचार करते, केवल अपने यहाँ के जंगल की सफाई का कुछ दिन उसके ठेका दिया, बीच में वह मर गया अब उसका माल मता ठिकाने रखवा दिया तो उसका बुरा किया ।"

कोई कहता 'केशवचंद्रसेन ! छि छि ! इसने सारे भारतवर्ष का सत्यानाश कर डाला । १ वेद पुराण सब को मिटाया, २ क्रिस्तान मुसलमान सब को हिंदू बनाया । ३ खाने पीने का विचार कुछ न बाकी रक्खा । ४ मद्य की तो नदी बहा दी । हाय हाय ऐसी आत्मा क्या कभी बैकुंठ में आ सकती है ।"

ऐसे ही दोनों के जीवन की समालोचता चारों ओर होने लगी ।

लिबरल लोगों की सभा भी बड़ी धूमधाम से जमती थी । किंतु इस सभा में दो दल हो गए थे, एक जो केशव की विशेष स्तुति करते, दूसरे वे जो दयानंद को विशेष आदर देते थे । कोई कहता, अहा धन्य दयानंद

जिसने आर्यावर्त के निंदित आलसी मूर्खों की मोह निद्रा भंग कर दी । हजारों मूर्खों को ब्राह्मणों के (जो कंसरवेटिवों के पादरी और व्यर्थ प्रजा का द्रव्य खाने वाले हैं) फंदे से छुड़ाया । बहुतों को उद्योगी और उत्साही कर दिया । वेद में रेल, तार, कमेटी, कचहरी दिखाकर आर्यों की कटती हुई नाक बचा ली । कोई कहता धन्य केशव ! तुम साक्षात् दूसरे केशव हो । तुमने बंग देश की मनुष्यनदी के उस वेग को, जो कृश्चन समुद्र में मिल जाने को उच्छलित हो रहा था, रोक दिया । ज्ञानकर्म का निरादर कर के परमेश्वर का निर्मल भक्ति मार्ग तुमने प्रचलित किया ।

कंसरवेटिव् पार्टी में देवताओं के अतिरिक्त बहुत लोग थे जिन में, याज्ञवल्क्य प्रभृति कुछ तो पुराने ऋषि थे और कुछ नारायणभट्ट, रघुनंदनभट्टाचार्य, मंडनमिश्र, प्रभृति, स्मृति ग्रंथकार थे । सुना है कि विदेशी स्वर्ग के कुछ 'शीआ' लोगों ने भी इनके साथ योग दिया है ।

लिबरल दल में चैतन्य प्रभृति आचार्य, दादू, नानक, कबीर प्रभृति भक्त और ज्ञानी लोग थे । अद्वैतवादी भाष्यकार आचार्य्य पंचदशीकार प्रभृति पहले दलमुक्त नहीं होने पाए । मिस्टर ब्रैडला की भाँति इन लोगों पर कंसरवेटिवों ने बड़ा आक्षेप किया किंतु अंत में लिबरलों की उदारता से उन के समाज में इनको स्थान मिला था ।

दोनों दलों के मेमोरियल तयार कर स्वाक्षरित होकर परमेश्वर के पास भेजे गए । — एक में इस बात पर युक्ति और आग्रह प्रगट किया था कि केशव और दयानंद कभी स्वर्ग में स्थान न पावैं और दूसरे में इसका वर्णन था कि स्वर्ग में इनको सर्वोत्तम स्थान दिया जाय ।

ईश्वर ने दोनों दलों के डेप्यूटेशन को बुलाकर कहा ''बाबा अब तो तुम लोगों की 'सैल्फगवर्नमेंट' है । अब कौन हम को पूछता है, जो जिसके जी में आता है करता है । अब चाहे वेद क्या संस्कृत का अक्षर भी स्वप्न में भी न देखा हो पर धर्म विषय पर वाद करने लगते हैं । हम तो केवल अदालत या व्यवहार या स्त्रियों के शपथ खाने को ही मिलाए जाते हैं । किसी को हमारी डर है ? कोई भी हमारा सच्चा 'लायक' है ? भूतप्रेत ताजिया के इतना भी तो हमारा दरजा नहीं बचा । हम को क्या काम चाहे बैकुंठ में कोई आवे । हम जानते हैं चारों लड़कों (सनक आदि) ने पहले ही से चाल बिगाड़ दी है । क्या हम अपने बिचारे जयविजय को फिर राक्षस बनवावें कि किसी का रोकटोक करें । चाहें सगुन मानो चाहे निर्गुन, चाहे द्वैत मानों चाहे अद्वैत, हम अब न बोलेंगे । तुम जानो स्वर्ग जाने ।''

डेप्यूटेशन वाले परमेश्वर की ऐसी कुछ खिजलाई हुई बात सुनकर कुछ डर गए । बड़ा निवेदन सिवेदन किया । कोई प्रकार से परमेश्वर का रोश शांत हुआ । अंत में परमेश्वर ने इस विषय के विचार के हेतु एक 'सिलेक्टकमेटी' स्थापन की । इसमें राजा राम मोहन राय, व्यासदेव, टोडरमल, कबीर प्रभृति भिन्न भिन्न मत के लोग चुने गए । मुसलमानी-स्वर्ग से एक 'इमाम', क्रिस्तानी से 'लूथर', जैनी से पारसनाथ, बौद्धों से नागार्जुन और अफरीका से सिटोवायो के बाप को इस कमेटी का 'एक्स अफीशियो मेंबर' किया । रोम के पुराने 'हरकुलिस' प्रभृति देवता तो अब गृह सन्यास लेकर स्वर्गही में रहते हैं और पृथ्वी से अपना संबंध मात्र छोड़ बैठे हैं, तथा पारसियों के 'जरदुश्तजी' को 'कारेस्पांडिग आनरेरी मेंबर' नियत किया और आज्ञा दिया कि तुम लोग इस सब कागज पत्र देखकर हम को रिपोर्ट करो । उनकी ऐसी भी गुप्त आज्ञा थी कि एडिटरों की आत्मागण को तुम्हारी किसी 'काररवाई' का समाचार तब तक न मिलै जब तक कि रिपोर्ट हम न पढ़ लें नहीं ये व्यर्थ चाहे कोई सुनै चाहे न सुनै अपनी टाँय टाँय मचा ही देंगे ।

सिलेक्ट कमेटी का कोई अधिवेशन हुआ । सब कागज पत्र देखे गए । दयानन्दी और केशवी ग्रंथ तथा उनके अनेक प्रत्युत्तर और बहुत से समाचार पत्रों का मुलाहिजा हुआ । बालशास्त्री प्रभृति कई कंसरवेटिव और द्वारकानाथ प्रभृति लिबरल नव्य आत्मागणों की इस में साक्षी ली गई । अंत में कमेटी या कमीशन ने जो रिपोर्ट किया उसकी मर्म बात यह थी कि : —

''हम लोगों की इच्छा न रहने पर भी प्रभु की आज्ञानुसार हम लोगों ने इस मुकदमे के सब कागज पत्र देखे । हम लोगों ने इन दोनों मनुष्यों के विषय में जहाँ तक समझा और सोचा है निवेदन करते हैं । हम लोगों की सम्मति में इन दोनों पुरुषों ने प्रभु की मंगलमयी सृष्टि का कुछ विघ्न नहीं किया वरंच उस में सुख और संतति अधिक हो इसी में परिश्रम किया । जिस चंडाल रूपी आग्रह और कुरीति के कारण मनमाना पुरुष

धर्मपूर्वक न पाकर लाखों स्त्री कुमार्ग गामिनी हो जाती हैं, लाखों विवाह होने पर भी जन्म भर सुख नहीं भोगने
पातीं, लाखों गर्भ नाश होते और लाखों ही बाल हत्या होती हैं, उस पापमयी परम नृशंस रीति को इन लोगों ने
उठा देने में अपने शक्यभर परिश्रम किया । जन्मपत्री की विधि के अनुग्रह से जब तक स्त्री पुरुष जीऐं एक तीर
घाट एक मीर घाट रहैं, बीच में इस वैमनस्य और असंतोष के कारण स्त्री व्यभिचारिणी पुरुष विषयी हो जायँ,
परस्पर नित्य कलह हो, शांति स्वप्न में भी न मिलै, वंश न चलै, यह उपद्रव इन लोगों से नहीं सहे गये ।
विधवा गर्भ गिरावै, पंडित जी या बाबू साहब यह सह लेंगे, वरंच चुपचाप उपाय भी करा देंगे, पाप को नित्य
छिपावेंगे, अंततोगत्वा निकलही जायँ तो संतोष करेंगे, इस दोष को इन दोनों ने निःसंदेह दूर करना चाहा ।
सवर्ण पात्र न मिलने से कन्या को वर मूर्ख अंधा वरंच नपुंसक मिले तथा वर को काली कर्कशा कन्या मिले
जिसके आगे बहुत बुरे परिणाम हों, इस दुराग्रह को इन लोगों ने दूर किया । चाहे पढ़े हों चाहे मूर्ख, सुपात्र हो
कि कुपात्र, चाहे प्रत्यक्ष व्यभिचार करें या कोई भी बुरा कर्म करें, पर गुरु जी हैं, पंडित जी हैं, इनका दोष
मत कहो, कहोगे तो पतित होगे, इनको दो, इनको राजी रक्खो; इन सत्यानाश संस्कार को इन्होंने दूर किया ।
आर्य जाति दिन दिन ह्रास हो, लोग स्त्री के कारण, धन के वा नौकरी व्यापार आदि के लोभ से, मद्यपान के
चसके से, बाद में हार कर राजकीय विद्या का अभ्यास करके मुसल्मान या क्रिस्तान हो जायँ, आमदनी एक
मनुष्य की भी बाहर से न हो केवल नित्य व्यय हो, अंत में आर्यों का धर्म और जाति कथाशेष रह जाय, किंतु जो
बिगड़ा सो बिगड़ा फिर जाति में कैसे आवेगा, कोई भी दुष्कर्म किया तो छिपके क्यों नहीं किया, इसी अपराध
पर हजारों मनुष्य आर्य पंक्ति से हर साल छूटते थे, उसको इन्होंने रोका । सब से बढ़ कर इन्होंने यह कार्य
किया, सारा आर्यावर्त जो प्रभु से विमुख हो रहा था, देवता बिचारे तो दूर रहे, भूत प्रेत पिशाच मुरदे, साँप के
काटे, बाघ के मारे, आत्म हत्या करके मरे, जल, दब या डूब कर मरे लोग, यही नहीं गुसलमानी पीर पैगंबर
औलिया शहीद वीर ताजिया गाजीमियाँ, जिन्होंने बड़ी मूर्ति तोड़ कर और तीर्थ पाट कर आर्य धर्म विध्वंस
किया, उन को मानने और पूजने लग गए थे, विश्वास तो मानों छिनाल का अंग हो रहा था, देखते सुनते लज्जा
आती थी कि हाय ये कैसे आर्य हैं, किससे उत्पन्न हैं, इस दुराचार की ओर से लोगों का अपनी वक्तृताओं के
थपेड़े के बल से मुँह फेर कर सारे आर्यावर्त को शुद्ध 'लायल' कर दिया ।

'भीतरी चरित्र में इन दोनों के जो अंतर हैं वह भी निवेदन कर देना उचित है । दयानंद की दृष्टि हम
लोगों की बुद्धि में अपनी प्रसिद्धि पर विशेष रही । रंग रूप भी इन्होंने कई बदले । पहले केवल भागवत का
खंडन किया । फिर सब पुराणों का । फिर कई ग्रंथ माने कई छोड़े । अपने काम के प्रकरण माने अपने विरुद्ध
को क्षेपक कहा । पहले दिगंबर मिट्टी पोते महात्यागी थे । फिर संग्रह करते करते सभी वस्त्र धारण किये ।
भाष्य में भी रेल तार आदि कई अर्थ जबरदस्ती किए । इसी से संस्कृत विद्या को भली भाँति न जानने वाले ही
प्राय : इनके अनुयायी हुए । जाल को छुरी से न काट कर दूसरे जाल ही से जिस को काटना चाहा इसी से दोनों
आपस में उलझ गए और इसका परिणाम गृह विच्छेद उत्पन्न हुआ ।

''केशव ने इनके विरुद्ध जाल काट कर परिष्कृत पथ प्रकट किया । परमेश्वर से मिलने मिलाने की आड़
या बहाना नहीं रखा । अपनी भक्ति की उच्छलित लहरों में लोगों का चित्त आर्द्र कर दिया । यद्यपि ब्राह्म
लोगों में सुरा मांसादि का प्रचार विशेष है किंतु इसमें केशव का दोष नहीं । केशव अपने अटल विश्वास पर
खड़ा रहा । यद्यपि कूचबिहार के संबंध करने से और यह कहने से कि ईशामसीह आदि उससे मिलते हैं,
अंतावस्था के कुछ पूर्व उन के चित्त की दुर्बलता प्रकट हुई थी, किंतु वह एक प्रकार का उन्माद होगा वा जैसे
बहुतेरे धर्म प्रचारकों ने बहुत बड़ी बातें ईश्वर की आज्ञा बतला दीं वैसे ही यदि इन बेचारे ने एक दो बात कही
तो क्या पाप किया । पूर्वोक्त कारणों ही से केशव का मरने पर जैसा सारे संसार में आदर हुआ वैसा दयानंद का
नहीं हुआ । इस के अतिरिक्त इन लोगों के हृदय के भीतर छिपा कोई पुन्य पाप रहा हो तो उस को हम लोग
नहीं जानते इस का जानने वाला केवल तू ही है ।

भीतर छिपा कोई पुन्य पाप रहा हो तो उस को हम लोग नहीं जानते इस का जानने वाला केवल तू ही है ।''

इस रिपोर्ट पर विदेशी मेंबरों ने कुछ क्रुद्ध होकर हस्ताक्षर नहीं किया ।

रिपोर्ट परमेश्वर के पास भेजी गयी । इस को देखकर इस पर क्या आज्ञा हुई और वे लोग कहाँ भेजे गए यह जब हम भी वहाँ जायँगे और फिर लौट कर आ सकेंगे तो पाठक लोगों को बतलावेंगे । या आप लोग कुछ दिन पीछे आपही जानोगे ।[१]

●

स्तोत्र-पंचरत्न

रचना काल सन् १८७४ से १८७८ के बीच। स्तोत्र पंचरत्न के नाम से श्री वेश्यास्तवराज, स्त्रीसेवापद्धती, मदिरास्तवराज, कंकड स्तोत्र और अंग्रेज स्तोत्र का संग्रह खंगविलास प्रेस बांकीपुर से छपा। जिसकी भूमिका भारतेन्दु जी ने सन् १८८२ में लिखी थी, जो दूसरी बार १८८६ में छपी। इस बार इसमें एक और लेख 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है' जुड़ गया।

यह बनारस की म्यूनिसपैलिटी पर व्यंग है। बरसात में कंकड़ों की करामात पर लिखा गया यह लेख भारतेन्दु के उत्कृष्ट हास्य का नमूना है। —सं.

भूमिका

प्रिय पाठकगण ! यद्यपि ये स्तोत्र हास्यजनक हैं तथापि विज्ञ लोग इनसे अनेकहों उपदेश निकाल सकते हैं । शोच का विषय है कि इन दिनों हम आर्य लोगों का दीन भारतवर्ष मांस मदिरा वेश्यादि दोषों से ग्रस्त हो रहा है । यदि इसके बचाव का कोई उपाय शीघ्र न किया जायगा तो हम लोगों को बड़ी भारी क्षति सहनी पड़ेगी अतएव शीघ्र ही इन आपत्तियों से भारतवासियों को बचना उचित है ।

बकरी विलाप को इसमें सम्मिलित करने में केवल यही प्रयोजन है कि इस दीन दुखिया के विलाप को सुनकर मांसलोलुप महाशय बकरों पर दया करें और वृथा ही अपनी जिह्वा के स्वादार्थ इन सहायहीन विचारों के प्राण न लें । संसार में सहस्रों ही एक से एक उत्तम स्वादिष्ट खाद्य-वस्तु ईश्वर ने उत्पन्न की है कुछ मांस के सिर में सुरखाब का पर लगा ही नहीं है अतएव आशा है कि पाठकगण इस घृणित और जघन्य कार्य से अपना अपना हाथ खींच लेंगे ।

हरिश्चंद्र

---

१. मित्र विलास खण्ड ८ सं. ४०, १९ जून सन् १८८५ में तथा कविवचन सुधा १ जून अंक ८ सन् १८७५ में प्रकाशित यह लेख स्वामी दयानन्द और केशव चन्द्र सेन के परलोक गमन पर लिखा गया था। बाद में 'क्रानिकल' में उसका अंग्रेजी अनुवाद भी छपा। — सं.

स्तोत्र पंचरत्न

श्री वेश्यास्तवराज

(महा संस्कृत)

ओं अस्य श्री वेश्यास्तवराज महामाला मंत्रस्य भण्डाचार्य्य : श्री हरिश्चन्द्रो ऋषि : द्रव्योबीजं मुख कीलकं वारवधू महादेवता सर्वस्वाहार्थं जपे विनियोग : । अथ अंगन्यास : । द्रव्य हारिण्यै हृदयाय नम : जेरपायी धारिण्यै शिरसे स्वाहा चोटी काटिन्यै शिखायै वषट् प्रत्यंगालिंगन्यै कवचाय हृकामान्ध कारिण्यै नेत्राभ्यां वौषट् विषयार्थिन्यै अस्त्र त्रयाय फट् ।

अथ करन्यास :

सर्व शून्य कत्र्यै अंगुष्टाभ्यान्नम : लोकवेदनिषेधिन्यै तर्जनीभ्यान्नम : मध्यम विधायिन्यै मध्यमाभ्यान्नम : दुर्नैमदायिन्यै' अनामिकाभ्यान्नम: कनिष्ठकारिण्यै कनिष्ठिकाभ्यान्नम : आसमुद्रान्त कर ग्राहिण्यै करतल कर पृष्टाभ्यान्नम : ।।

अथ ध्यानम्

पद्माकारामुखां कपोल ललितां माधुर्य पूर्णाधरां । अत्युच्चस्तनमण्डलां विषजलै : पूर्णां घटकांचनीं । मिथ्याप्रेममयीं तनुं विदधतीं सर्वस्य संहारणीं । ध्यायेद्वार वधू सदैव हृदये धमार्थ विच्छित्तये ।।

अथ स्तोत्र प्रारम्भ ।

नौमि नौमि नौमि देवि रण्डिके ।
लोक वेद सिद्व पंथ खण्डिके ।।
कोटि यक्षराज कोप नासिनी ।
स्वार्थ सिद्वि हेतही विलासिनी ।।
दृष्टि मात्र मन्द मन्द हासिनी ।
कामि बृन्द काम दु :ख नासिनी ।।
जातरूप जात रूप शालिनी ।
नव्य न्यून वृन्द मुण्ड मालिनी ।
क्षेत्रपाल वाहनादि पालिनी ।।
काशिका प्रवास मोक्ष दायिनी ।
पोर्ट ब्रांडिकादि मद्यपायिनी ।।
केश पाश स्वच्छ गुच्छ शोभिनी ।
द्रव्य दर्श भव्य भाव लोभिनी ।।
काम अग्नि ज्वाल माल कुण्डिनी ।।
कामि चित्त पक्षिका भुसुण्डिनी ।।
पुन्य तीर्थ यात्रि वृन्द पावनी ।
दैन युक्त काम सैन्य छावनी ।।
मद्यप प्रमोद पुष्ट पीढ़िका ।
एनलाइटेंड पंथ सीढ़िका ।।
पेशवाज अंग शोभिताननां ।
गिलटभूषणा प्रमोद काननां ।।
मातृ पितृ बन्धु शील भक्षिका ।
लोक लाज नाश हेतु तक्षिका ।।
गुप्त द्रव्य पुञ्ज गेह रक्षिका ।
यौवनासवार्थ पुष्प भक्षिका ।।

धर्म कर्म शर्म चर्म हारिणी ।
गर्म धर्म नर्म मर्म कारिणी ।।
प्रेजुडीस लेश मात्र भञ्जिका ।
मद्यपान घोर रंग रञ्जिका ।।
दायिनी क्षणैक मात्र संग की ।
आतशक सुजाक और फिरंग की ।।
पितृ नाम हीन मातृ नासिका ।
सब जाति पांति मध्य गामिका ।।
मिष्ट जिह्वा कपाल मूंड़नी ।
मित्र वर्ग युक्त नर्क बूड़नी ।।
लोक वेद लाज पत्र फाड़नी ।
जीवितैव कब्र मध्य गाड़नी ।।
द्रव्य लाभ धावमान सांड़नी ।
सद्गृहस्थ गेह की उजाड़नी ।।
सम्प्रदायि वृन्द जीविका प्रदा ।
टाल हेतु माल पूरनी सदा ।
नायकावलम्बिनी सुखास्पदा ।
त्वांनमामि रण्डि देवते सदा ।।
इदं वार बधू स्तोत्रं दिव्यादिव्यतरंमहत् ।
गुप्तं गुप्तवती तंत्रे देवैरपि सुदुर्लभम् ।।
य : पठेव्यातरुत्थाय सायंवासुसमाहित : ।।
मुक्तो भवतिसदैव देवगेहादि बन्धनात् ।।
जप्त्वा जप्त्वा पुनर्जप्त्वा पतित्वा चमहीतले ।
उत्थाप्यचपुनर्जप्त्वा नरोमुक्तिमवाप्नुयात् ।।

इति

स्त्री सेवा पद्धति

इस पूजा में अश्रु जल ही पाद्य है, दीर्घश्वास ही अर्घ्य है, आश्वासन ही आचमन है, मधुर भाषण ही मधुपर्क है, सुवर्णालंकार ही पुष्प हैं, धैर्य ही धूप है, दीपक है, चुप रहना ही चंदन है और बनारसी साड़ी ही बिल्पपत्र हैं, आयु रूपी आँगन में सौंदर्य तृष्णा रूपी खूंटा है, उपासक का प्राण पुंज छाग उसमें बँध रहा है, देवी के सुहाग का खप्पर और प्रीति की तरवार है, प्रत्येक शनिवार की रात्रि इसमें महाष्टमी है, और पुरोहित यौवन है ।

पद्यादि उपचार करके होम के समय यौवन पुरोहित उपासक के प्राण समिधों में मोहाग्नि लगाकर सर्वनाश तंत्र से मंत्रों से आहुति दे ''मानखण्ड के लिए निद्रा स्वाहा'' ''बात मानने के लिए माँ बाप का बंधन स्वाहा'' ''वस्त्रालंकारादि के लिए यथा सर्वस्व स्वाहा'' ''मन प्रसन्न करने के लिए यह लोक परलोक स्वाहा'' इत्यादि, होम के अनन्तर हाथ जोड़कर स्तुति करै ।

हे स्त्री देवी ! संसार रूपी आकाश में गुब्बारा (बेलून) हो, क्योंकि बात बात में आकाश में चढ़ा देती हो, पर जब धक्का दे देती हो तब समुद्र में डूबना पड़ता है अथवा पर्वत के शिखरों पर हाड़ चूर्ण हो जाते हैं, जीवन के मार्ग में तुम रेलगाड़ी हो, जिस समय रसना रूपी एञ्जिन तेज करती हो एक घड़ी भर में चौदहों भुवन दिखला देती हो, कार्यक्षेत्र में तुम इलेकट्रिक टेलीग्राफ हो, बात पड़ने पर एक निमेष में उसे देशदेशांतर में पहुँचा देती हो तुम भवसागर में जहाज हो, बस अधम को पर करो ।

तुम इंद्र हो श्वसुर कुल के दोष देखने के लिए तुम्हारे सहस नेत्र हैं स्वामी के शासन करने में तुम वज्रपाणि हो । रहने का स्थान अमरावती है क्योंकि जहाँ तुम हो वहीं स्वर्ग है ।

तुम चन्द्रमा हो तुम्हारा हास्य कौमुदी है उससे मन का अंधकार दूर होता है तुम्हारा प्रेम अमृत है जिसकी प्रारब्ध में होता है वह इसी शरीर से स्वर्ग सुख अनुभव करता है और लोक में जो तुम व्यर्थ पराधीन कहलाती हो यही तुम्हारा कलंक है ।

तुम बरुण हो क्योंकि इच्छा करते ही अश्रु जल से पृथ्वी आर्द्र कर सकती हो तुम्हारे नेत्र जल की देखा देखी हम भी गल जाते हैं ।

तुम सूर्य हो तुम्हारे ऊपर आलोक का आवरण है पर भीतर अंधकार का वास है, हमें तुम्हारे एक घड़ी भर भी आँखों के आगे न रहने से दसों दिशा अंधकारमय मालूम होता है पर जब माथे पर चढ़ जाती हौ तब तो हम लोग उत्ताप के मारे मर जाते हैं किम्बहुना देश छोड़कर भाग जाने की इच्छा होती है ।

तुम वायु हो क्योंकि जगत की प्राण हो तुम्हें छोड़कर कितनी देर जी सकते हैं ? एक घड़ी भर तुम्हे बिना देखे प्राण तड़फड़ाने लगते हैं, जल में डूब जाने की इच्छा होती है पर जब तुम प्रखर बहती हो किस के बाप की सामर्थ्य है कि तुम्हारे सामने खड़ा रहे ।

तुम यम हो यदि रात्रि को बाहर से आने में विलम्ब हो, तो तुम्हारी वक्तृता नरक है । वह यातना जिस न सहनी पड़े वही पुण्यवान है उसी की अनंत तपस्या है ।

तुम अग्नि हो क्योंकि दिन रात्रि हमारी हड्डी हड्डी जलाया करती हो ।

तुम विष्णु हो तुम्हारी नथ तुम्हारा सुदर्शन चक्र है उसके भय से पुरुष असुर माथा मुड़ाकर तटस्थ हो जाते हैं एक मन से तुम्हारी सेवा करे तो सशरीर वैकुण्ठ को प्राप्त कर सकता है ।

तुम ब्रह्मा हौ तुम्हारे मुख से जो कुछ बाहर निकलता है वही हम लोगों का वेद है और किसी वेद को हम नहीं मानते तुमको चार मुख है क्योंकि तुम बहुत बोलती हौ सृष्टिकर्त्ता प्रत्यक्ष ही हौ पुरुष के मनहंस पर चढ़ती हौ चारो वेद तुम्हारे हाथ में है इससे तुमको प्रणाम है ।

तुम शिव हौ सारे घर का कल्याण तुम्हारे आधीन है । भुजंग वेनी धारिणी है (३) त्रिशूल तुम्हारे हाथ में है क्रोध में और कंठ में विष है तौ भी आशुतोष हौ ।

इस दिव्य स्तोत्र पाठ से तुम हम पर प्रसन्न हो । समय पर भोजनादि दो । बालकों की रक्षा करो । भृकुटी धनु के सन्धान से हमारा बध मत करो । और हमारे जीवन को अपने कोप से कंटकमय मत बनाओ ।

अथ मदिरास्तवराज

मदिरामादकंमद्यं सुराहाला हरिप्रिया ।
गन्धोत्तमाप्रसन्नेरा परिश्चुत वरुणात्मजा ।।
कश्यं कादम्बरी गन्धमादिनी च परिश्रुता ।
मानिकाकपिशीमत्ता माधवीकापिशायनम् ।।
कत्तोयंकामिनीसीता।। मदगन्धा मद प्रिया ।
माध्वीकंमधुसन्धानमासवोमदना ऽमृता ।।
वीरामनोज्ञा मेधावी विधातामदनीहली ।
श्रीमेदिनी सुप्रतिभा महानन्दामधूलिका ।।
मदोत्कंठागुणारिष्टं मैरेयंमदवल्लभा ।।
कारणं सरक: सीधुर्मदिष्टाच परिप्लुता ।।
तत्वं कल्पंस्वादुरसा शुण्डाकपिशमब्धिजा ।
हराहरंदेवसृष्टा मार्द्वीकंदुष्टमेव च ।।
खर्जूरंपानसंद्राक्षं माक्षिकंतालमैक्षरणम् ।
टाकमन्नो विकारोत्थं मधुकंनारिकेलजं ।।

गौड़ीमाध्वीतथापैष्टी माद्याचाद्यास्वरूपिणी ।
कुलीन कुल सर्वस्वा तन्त्र सारामनोहरा ।।
मकार वमध्यस्था देवीप्रीतिकरी शिवा ।
वीरपेयानित्यसिद्धा भैरवी भैरवप्रिया ।।
कायस्थकुल संपूज्या ऽऽभीराभिल्लजर्नाप्रिया ।।
शूद्रसेव्याराजपेया घूर्णाघूर्णित कारिणी ।।
चन्द्रानुजादेवपीता दैत्यालक्ष्मीसहोदरा ।
म्लेच्छप्रियादानवेज्या यादवान्वयनाशिनी ।।
गौरण्डागौरसंसेव्या फ्रान्सदेशसमुद्भवा ।
शराबमयदुखतरिरजवतगुलगूँ आफताबशर ।
ब्राण्डी शाम्पिनपोर्टवाइन क्लारेट एकश्वास्तु हाकगिन ।
मुजेलव्हिस्कीमार्टल औल्डटाम हेनिसी शेरी ।
बिहाइव वैडेलिसमेनी रमबीयर बरमौथुज ।।
क्यूरेसिया कागनक्लअण्टिलोपिका ।
वाइनमगैलिसाइवान मरू बरमऐक्वावाइटा ।।
दुधिया दुधवा दुद्दी दारु मद दुलारिया ।
कलवार-प्रिया काली कलवरियानिवासिनी ।
होटलीलोटलीलोट नाशिनी चोटलीचला ।
धनमानादि संहर्त्री ग्रैण्डटोटल कारिणी ।।
पंचापंच परित्यक्ता पंच पंचप्रपंचिता ।
इमानिश्रीमहामद्य नामानिवदनेसदा ।
तिष्ठन्तु सेविनांसंख्या क्रमात्सार्द्ध शतानिच ।।
य: पठेत्प्रातरुत्थाय नामसार्द्धशतम्मुदा ।
धनमानं परित्यज्य ज्ञातिपंक्त्याच्युतोभवेत् ।।
निन्दितो बहुर्भिलोकैर्मुखस्वासपरांगमुखै: ।
बलहजीनोक्रियाहीनो मूत्रकृत्लुण्ठतेक्षितौ ।।
पीत्वा पीत्वा पुन: पीत्वा यावल्लुठतिभूतले ।
उत्थाय च पुन: पीत्वा नरोमुक्तिमवाप्नुयात ।।

इति श्री पञ्चमहातंत्रे प्रपंचपटले पंचमकारवर्णनेमदिरास्तवाराजे सार्द्धशतनाम संपूर्णम् ।

अथ स्तवराज—

हे मदिरे तुम साक्षात् भगवती का स्वरूप हो, जगत तुमसे व्याप्त है, तुम्हारी स्तुति करने को कौन समर्थ है अतएव तुम्हें प्रणाम ही करना योग्य है । हे मद्य तुम्हें सौत्रामणि यज्ञ में तो वेद ने प्रत्यक्ष आदर दिया है परंतु तुम अपने सोमरूप प्रच्छन्न अमृत प्रवाह से संपूर्ण वैदिक यज्ञ वितान को प्लावित करती हो अतएव हे श्रुतिश्रुते तुम्हें प्रणाम है ।

हे वारुणि ! स्मृतिकारों ने भी तुम्हारी प्रवृत्ति नित्य मानी है, निवृत्ति केवल अपने पद्धति पने के रक्षण के हेतु लिखी है अतएव हे स्मृतिस्मृते तुम्हें प्रणाम है ।

हे गौड़ि ! पुराणों में तो तुम्हारी सुधासारिण कथा चारों ओर अति वाहित है, निषेध के बहाने भी तुम्हारी विधि ही विधि हैं, इससे हे पुराण प्रतिपादिते ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे सोम सन्नते ! चंद्रमा में तुम्हारा निवास, समुद्र तुम्हारी उत्पत्ति का स्थान और सकल देव, मनुष्य,

असुर तुम्हारे पति हैं, अतएव हे त्रिलोकगामिनि ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे बोतल वासिनि ! देवी ने तुम्हारे बल से शुंभादि को मारा । यादव लोग तुम्हें पी के कट मरे । बलदेव जी ने तुम्हारे प्रताप से सूत का सिर काटा, अतएव हे शक्ति ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे सकल मादक सामग्री शिरो रत्ने ! तंत्र केवल तुम्हारे प्रचार ही को बनाए हैं, और इनका कोई प्रयोजन नहीं था केवल तुम मय जगत् करने को इनका अवतार है, अतएव हे स्वतंत्रे ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे ब्रांडि ! बौद्ध और जैन धर्म की तुम सारभूत हौ । मुसल्मानी में मुफ्त के मिस हलाल हौ ! क्रिस्तानों में भी साक्षात् प्रभु की रुधिर रूप हौ और ब्राहमोधर्म की तुम एक मात्र आड़ हौ, अतएव हे सर्व धर्म मर्म स्वरुपे ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे शाम्पिन ! आगे के लोग सब तुम्हारे सेवक थे, यह श्लोकों के प्रमाण सहित बाबू राजेन्द्रलाल के लेकचर से सिद्ध है तो अब तुम्हारा कैसे त्याग हो सकता है, अतएव हे सिद्धे ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे ओल्डटाम ! तुम्हें भारतवर्षियों ने उत्पन्न किया, रुम, चीन इत्यादि देश के लोगों ने कुछ परिष्कृत किया, अब अँग्रेजों और फरासीसियों ने तुम्हें फिर से नए भूषण पहिराए, अतएव हे सर्वविलायत भूषिते ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे कुलमर्यादासंहारकारिणि ! तुमसे बढ़कर न किसी का बल है, न आग्रह, न मान, तुम्हारे हेतु तुम्हारे प्रेमी कुल, धन, नाम, मान, बल, मेल, रुप वरञ्च प्राण का भी परित्याग करते हैं, अतएव हे प्रणयैक पात्रे ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे प्रेजुडिस-विध्वंसिनी ! तुम्हारे प्रताप से लोग अनेक प्रकार की शंका परित्याग करके स्वच्छंद विहार करते हैं, जिनके बाप-दादे हुक्काभाँग-सुरती से भी परहेज करते थे वे अब सभ्यों की मजलिस में तुम्हारा सेवन करके जाना ऐब नहीं समझते, अतएव हे बोलडलेस जननि ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे सर्वानंद सार भूते ! तुम्हारे बिना किसी बात में मजा नहीं मिलता, रामलीला तुम्हारे बिना निरी सुपनखा की नाक मालूम पड़ती है, नाच निरे फूटे काँच और नाटक निरे उच्चाटक बेवकूफी के फाटक दिखाई पड़ते हैं, अतएव हे मजे की मोटरी, तुम्हें प्रणाम है ।

हे मुख-कज्जलावलेपके ! होटल नाच जाति पाँति घाट बाट मेला तमाशा दरबार घोड़ दौड़ इत्यादि स्यान में तुम्हें लेकर जाने से लोग देखो कैसी स्तुति करते हैं । अतएव हे पूर्व पुरुष संचित विद्या धन राज संपर्क्कादि जन्य कठिन प्राप्य प्रतिष्ठा समूह सत्यानाशनि ! तुम्हें बारंबार प्रणाम करना योग्य है ।

कंकर स्तोत्र

कंकड देव को प्रणाम है । देव नहीं महादेव क्योंकि काशी के कंकड़ शिव शंकर समान हैं ।

हे कंकड़ समूह ! आज कल आप नई सड़क से दुर्गा जी तक बराबर छाये हौ इससे काशी खण्ड "तिलेतिले" सच हो गया अतएव तुम्हें प्रणाम है ।

हे लीला कारिन् ! आप केशी शंकट वृषभ खरादि के नाशक हौ इससे मानो पूर्वार्द्ध की कथा हौ अतएव व्यासों की जीविका हौ ।

आप सिर समूह भंज्जन हौ क्योंकि कीचड़ में लोग आप पर मुँह के बल गिरते हैं ।

आप पिष्ट पशु की व्यवस्था हौ क्योंकि लोग आप की कढ़ी बना कर आप को चूसते हैं ।

आप पृथ्वी के अंतरगर्भ से उत्पन्न हौ । संसार के गृह निर्माण मात्र के कारण भूत हौ । जल कर भी सफेद होते हौ । दुष्टों के तिलक हौ । ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे आप कमस्कारणीय हौ ।

हे प्रबल वेग अवरोधक ! गरुड़ की गति भी आप रोक सकते हौ और की कौन कहै इससे आप को प्रणाम है ।

हे सुंदरी सिंगार ! आप बड़ी के बड़े हौ क्योंकि चूना पान की लाली का कारण है और पान रमणी गण मुख शोभा का हेतु है इससे आप को प्रणाम है ।

हे चुगी नंदन ! ऐन सावन में आप को हरियाली सूझी है क्योंकि दुर्गा जी पर इसी महीने में भीड़ विशेष होती है तो हे हठ मूर्ते ! तुम को दंडवत है ।

हे प्रबुद्ध ! आप शुद्ध हिंदू हौ क्योंकि शरह विरुद्ध हौ आव आया और आप न बर्खास्त हुए इससे आप को सलाम है ।

हे स्वेच्छाचरिनं ! इधर उधर जहाँ आप ने चाहा अपने को फैलाया है । कहीं पटरी के पास हो कहीं बीच में अड़े हौ अतएव हे स्वतंत्र आप को नमस्कार है ।

हे ऊभड़ खाभड़ शब्द सार्थ कर्त्ता ! आप कोणमिति के नाशकारी हौ क्योंकि आप अनेक विचित्र कोण सम्वलित हौ अतएव हे ज्योतिषारि आप को नमस्कार है ।

हे शस्त्र समष्टि ! आप गोली गोला के चचा, छर्रों के परदादा, तीन के फल तलवार की धार और गदा के गोला हौ इससे आप को प्रणाम है ।

आहा ! जब पानी बरसता है तब सड़क रूपी नदी में आप द्वीप से दर्शन देते हौ इससे आपं के नमस्कार में सत्र भूमि को नमस्कार हो जाता है ।

आप अनेकों के वृद्धतर प्रपितामह हो क्योंकि ब्रह्मा का नाम पितामह है उनका पिता पंकज है उसका पिता पंक है और आप उसके भी जनक है इससे आप पूजनीयों में एल एल डी हौ ।

हे जोगा जिवलाल रामलालादि मिश्री समूह जीविका दायक ! आप कामिनी-भंजक धुरीश विनाशक बारनिस चूर्णक हौ । केवल गाड़ी ही नहीं घोड़े की नाल सुम बैल के खुर और कंटक चूर्ण को भी आप चूर्ण करनेवाले हौ इससे आप को नमस्कार है ।

आप में सब जातियों और आश्रमों का निवास है । आप बाणप्रस्थ हौ क्योंकि जंगलों में लुड़कते हौ । ब्रह्मचारी हौ क्योंकि बटु हौ । गृहस्थ हौ चूना रूप से, सन्यासी हौ क्यौंकि घुट्टमघुट्ट हौ । ब्राह्मण हौ क्योंकि प्रथम वर्ण हो करभी गली गली मारे मारे फिरते हौ । क्षत्री हौ क्योंकि खत्रियों की एक जाति हौ । वैश्य हौ क्योंकि कांट बांट दोनों तुम में है । शूद्र हौ क्योंकि चरण सेवा करते हौ । कायस्थ हौ क्योंकि एक तो ककार का मेल दूसरे कचहरी पथावरोधक तीसरे क्षत्रियत्व हम आप का सिद्ध कर ही चुके हैं । इससे हे सर्ववर्ण स्वरूप तुमको नमस्कार है ।

आप ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, अग्नि, जम, काल, दक्ष और वायु के कर्त्ता हौ, मन्मथ की ध्वजा हौ, राजा पद दायक हौ, तन मन धन के कारण हौ, प्रकाश के मूल शब्द की जड़ और जल के जनक हौ वरञ्च भोजन के भी स्वादु कारण हौ, क्योंकि आदि व्यंजन के भी बाबा जान हो इसी से हे कंकड़ तुमको प्रणाम है ।

आप अँगरेजी राज्य में श्रीमती महाराणी विक्टोरिया और पार्लामेण्ट महासभा के आछत प्रबल प्रताप श्रीयुत गवर्नर जनरल और लेफ्टेण्ट गवर्नर के वर्तमान होते, साहिब कमिश्नर साहिब मजिस्ट्रेट और साहिब सुपररिनटेंडेंट के इसी नगर में रहते और साढ़ेतीन तीन हाथ के पुलिस इंसपेक्टरों और कांसिटेबुलों के जीते भी गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छंद रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पांव पड़कर रुधिर धारा से नियम और शांति का अस्तित्व बहा देते है अतएव हे अंगरेजी राज्य में नवाबी स्थापक, तुमको नमस्कार है ।

यहा लंबा चौड़ा स्तोत्र पढ़कर हम बिनती करते हैं कि अब आप सड़े सिकंदरी बाना छोड़ो या हटो या पिटो ।

हे मानद हमको टाइटल दो, खिताब दो, खिलअत दो, हमको अपना प्रसाद दो हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

हे भक्तवत्सल ! हम तुम्हारा पात्रावशेष भोजन करने की इच्छा करते हैं तुम्हारे कर स्पर्श से लोक मण्डल में महामानास्पद होने की इच्छा करते हैं, तुम्हारे स्वहस्तलिखित दो एक पत्र बक्स में रखने की स्पर्द्धा करते हैं, हे अंग्रेज ! हम पर प्रसन्न हो हम तुम को नमस्कार करते हैं ।

हे अंतरयामिन् ! हम जो कुछ करते हैं केवल तुम को धोखा देने को, तुम दाता कहो इस हेतु हम दान करते हैं, तुम परोपकारी कहो इस हेतु हम परोपकार करते हैं तुम विद्यमान कहो इस हेतु हम विद्या पढ़ते हैं अतएव हे अंग्रेज ! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

हम तुम्हारी इच्छानुसार डिस्पेंसरी करैंगे, तुम्हारे प्रीत्यर्थ स्कूल करैंगे तुम्हारी आज्ञा प्रमाण चंदा देंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो, हम तुम को नमस्कार करते हैं ।

हे सौम्य ! हम वही करैंगे जो तुमको अभिमत है, हम बूट पतलून पहिरैंगे, नाक पर चश्मा देंगे, कांटा और चिमटे से टिबिल पर खायेंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को प्रणाम करते हैं ।

हे मिष्टभाषिण ! हम मातृभाषा त्याग करके तुम्हारी भाषा बोलैंगे, पैतृक धर्म छोड़ के ब्राह्म धर्मावलंब करेंगे, बाबू नाम छोड़ कर मिष्टर नाम लिखवावेंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को पणाम करते हैं ।

हे सुभोजक ! हम चावल छोड़ के पावरोटी खायेंगे, निषिद्धमांस बिना हमारा भोजन ही नहीं बनता, कुक्कर हमारा जलपान है, अतएव हे अंग्रेज ! तुम हम को चरण में रक्खो हम तुम को प्रणाम करते हैं ।

हम विधवा विवाह करैंगे, कुलीनों की ज्ञाति मारैंगे, जाति भेद उठा देंगे — क्योंकि ऐसा करने से तुम हमारी सुख्याति करोगे, अतएव हे अंग्रेज ! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को नमस्कार करते हैं ।

हे सर्वद ! हम को धन दो, यश दो, हमारी सब वासना सिद्ध करो, हमको चाकरी दो, राजा करो, रायबहादुर करो, कौंसिल का मिंबर करो हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

यदि यह न हो तो हम को डिनर होम में निमंत्रण करो, बड़ी बड़ी कमेटियों का मिम्बर करो, सीनट का मिम्बर करो, जसटिस करो, आनरेरी मजिस्ट्रेट करो, हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

हमारी स्पीच सुनो, हमारा एसे पढ़ो हम को वाह वाही दो, इतना ही होने से हम हिंदू समाज का अनेक निन्दा पर भी ध्यान न करैंगे, अतएव हम तुम्हीं को नमस्कार करते हैं ।

हे भगवान् — हम अकिञ्चन हैं और तुम्हारे द्वार पर खड़े रहेंगे, तुम हमको अपने चित्त में रक्खो हम तुमको डाली भेजैंगे, तुम अपने मन में थोड़ा सा स्थान मेरी ओर से भी दो, हे अंग्रेज ! हम तुमको कोटि कोटि शाष्टांग प्रणाम करते हैं ।

तुम दशावतार धारी हो, तुम मत्स हो क्योंकि समुद्रचारी हो और पुस्तक छाप छाप के वेद का उद्धार करते हो, तुम कच्छ हो — क्योंकि मदिरा, हलाहल, वारांगना, धन्वन्तर और लक्ष्मी इत्यादि रत्न तुमने निकाले हैं पर वहां भी विष्णुत्व नहीं त्याग किगा है अर्थात् लक्ष्मी उन रत्नों में से तुमने आप लिया है, तुम श्वेत वाराह हो क्योंकि गौर हो और पृथ्वी के पति हो, अतएव हे अवतारिन् ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

तुम नृसिंह हो क्योंकि मनुष्य और सिंह दोनों पन तुम में है टैक्स तुम्हारा क्रोध है और परम विचित्र हो, तुम बामन हो क्योंकि तुम बामन कर्म्म में चतुर हो, तुम परशुराम हो क्योंकि पृथ्वी निक्षत्री करदी है, अतएव हे लीलाकारिन् ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

तुम राम हो क्योंकि अनेक सेतु बाँधे हैं, तुम बलराम हो क्योंकि मद्यप्रिय और हलधारी हो, तुम बुद्ध हो क्योंकि वेद के विरुद्ध हो, और तुम कल्कि हो क्योंकि शत्रु संहारकारी हो, अतएव हे दश विधि रूप धारिन् ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

तुम मूर्तिमान् हो ! राज्यप्रबंध तुम्हारा अंग है, न्याय तुम्हारा शिर है, दूरदर्शिता तुम्हारा नेत्र है और कानून तुम्हारे केश हैं अतएव हे अंग्रेज ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

कौंसिल तुम्हारा मुख है, मान तुम्हारी नाक है, देश पक्षपात तुम्हारी मोक्ष है और टैक्स तुम्हारे कराल दंष्ट्रा हैं अतएव हे अंगरेज ! हम तुमको प्रणाम करते हैं हमारी रक्षा करो ।

चुंगी और पुलिस तुम्हारी दोनों भुजा हैं, अमले तुम्हारे नख हैं, अन्धेर तुम्हारा पृष्ट है और आमदनी तुम्हारा हृदय है अतएव हे अंग्रेज ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराटरूप अंग्रेज ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानयागादिका: क्रिया ।
अंग्रेज स्तवपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।।१।।

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
स्टारार्थी लभते स्टारम् मोक्षार्थी लभते गतिं ।।२।।
एक कालं द्विकालं च त्रिकालं नित्यमुत्पठेत् ।
भव पाश विनिर्मुक्त : अंग्रेज लोकं संगच्छति ।।३।।

ईश्वर बड़ा विलक्षण है

भला इस संसार बनाने का क्या काम था ? व्यर्थ इतने उल्लू एक संग पिंजड़े में बन्द कर दिए किसी को दु :खी बनाया किसी को सुखी, किसी को राजा बनाया किसी को फकीर, इसी से मैं कहता हूँ कि ईश्वर बड़ा विलक्षण है ।

सब उसमें लय रहता, किसी को कुछ दु :ख सुख का अनुभव न होता, वह केवल परम आनंदमय अपने में रहता इसी से —

कोई इसको हाँ कहता है कोई नहीं, कोई मिला कोई अलग, कोई एक कोई अनेक तो उसको अपने माहात्म्य की दुर्दशा क्यों करानी थी इसी से —

सव्व सामर्थ्य मान उसको सुनकर भी लोग सर्वदा उसको नहीं मानते पर हाँ जब कुछ दु :ख पड़ता है तब स्मरण करते हैं । जब लोगों का कुछ बनता है तो उसको धन्यवाद तो थोड़े लोग देते हैं पर जो कुछ काम बिगड़ता है तो गाली सभी देते हैं, पानी न बरसै तो, घर का कोई मर जाय तो, रोग फैले तो, हार जाँय तो सब प्रकार से वह गाली सुनता है इसी से —

अनेक प्रकार के जीव, विचित्र स्वभाव, अलग अलग धर्म और रुचि, विचित्र-विचित्र रंग काम क्रोध, मद, ईर्षा, अभिमान दम्भ, पैशुन्य आमृत्य इत्यादि अनेक प्रकार के स्वभाव बनाकर लंबा चौड़ा गोरख धंधा का जाल फैला कर इस घनचक्कर में सब को घुमा दिया है इसी से —

एक बिचारा सुख से अपना काल क्षेप करता है कुछ उसके काम में विघ्न डालकर व्यर्थ बिना बात बैठे बिठाये उसको रुला दिया, कोई दु :ख में है उसको एक संग सुख दे दिया इसी से —

एक को घटाया एक को बढ़ाया, एक को बनाया एक को बिगाड़ा, राई को पर्वत् किया पर्व्वत को राई, राजा को रंक किया रंक को राजा, भरी ढलकाया खाली भरा इसी से —

उदार और पंडित दरिद्र मूर्ख धनवान, और सुंदर रसिक को कुरूपा कूढ स्त्री, कुरसिक को सुंदर वा रसिक स्त्री, सुस्वामी को कुसेवक कुसेवक को कुस्वामी इत्यादि संसार में कई बातें बे जोड़ हैं इसी से —

प्रत्यक्षलोग देखते हैं कि हमारे बाप दादा इत्यादि मर गए और नित्य लोग मरते जाते हैं तब भी लोग जीते हैं जानते हैं कि संसार का पट्टा मैंने लिखवा लिया है पहिले तो मैं मरूहींगा नहीं और मरा भी तो सब मेरे साथ जायगा इसी से —

सच है मनुष्य यह कैसे सोचे, जो हम बैठे हैं, खाते पीते हैं, चैन करते हैं कभी सोचते नहीं, कि हमारी दशांतर भी होगी वही हम कैसे मरैंगे कदापि नहीं आता इसी से —

मजा है तमाशा है खेल है धूम है, दिल्लगी है मसखरापन है, लुचापन है, हंसी है, मूर्खता है, खिलौने हैं, बालक हैं, पट्ठे हैं, नासमझ हैं, जड़ हैं, जीव हैं मोहित हैं, उल्लू के पट्ठे हैं, सब परंतु उसके समझ में और उसके लोगों के समझ में भेद हैं इसी से —

उसके नाते परस्पर सब केवल सगे भाई बहन हैं पर लोग जाति कुजाति वर्ण आश्रम नीच ऊँच राजा प्रजा स्त्री पुत्र इत्यादि अनेक भेद समझते हैं इसी से —

यह उसी की विलक्षणपना है कि हिंदुओं को सब के पहिले उसने लक्ष्मी और सरस्वती दी और चिर काल तक उनको इस देश में स्थित किया परंतु अब वह हिंदू दास धर्म शिक्षित हो रहे हैं इसी से —

यह उसी का विलक्षणपन है जिस भूमि में उदयन, शूद्रक, विक्रम, भोज ऐसे राजा कालीदास, वाण से पंडित दे उसी भूमि में हमारे तुम्हारे से लोग हैं, यह उसी का विलक्षणपन है कि मुसलमानों ने हिंदुस्तान को बहुत दिन तक भोगा अब अंग्रेज भोगते हैं, मुसलमानों को अपने पक्षपात हैं अंग्रेजों को अपनी का, हिंदू दोनों की।

समझ में मूर्ख हैं इसी से —

यह उसी का विलक्षणपन है कि हिंदू निर्लज्ज हो गए हैं, ऐसे समय में जब कि सब आगे बड़ा चाहते हैं ये चूकते हैं और पीछे ही रहे जाते हैं, विशेष सब संसार का आलस्य पश्चिमोत्तर देश बासियों में घुसा है और अपने को भूल रहे हैं क्षुद्रपना नहीं छूटता इसी से —

यह उसी का विलक्षणपना है कि हम लोग समाचार पत्र लिखते हैं और यह अभिमान करते हैं कि हमारे इन लेखों से हमारे भाइयों का कुछ उपकार हो, भला नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है, सब अपने रंग में उसकी माया से मस्त हैं उनको क्यों नहीं छोड़ते हैं क्यों नहीं विराग करते, संसार मिटै हमको क्या हम कौन जो कहै, पर यह नहीं समझते, हम अपने ही अभियान में चूर हैं यह भी सब उसी की माया है इसी से हम कहते हैं ईश्वर बड़ा विलक्षण है ।

मुशायरा [1]

इसका काल अब तक अज्ञात है। है। — सं.

चिड़ीमार का टेला । भाँत भाँत का जानवर बोला ।।

लखनऊ दिल्ली बनारस पूरब और दखिन के कई मुफ्तखोरे शायर एक जगह जमा हुए और लगे रंग बिरंगी बोलियाँ बोलने मैंने भी वहीं मैक्राफून[2] की कल लगा दी । जो कुछ उसमें आवाज बन्द हो गई आप लोग भी सुन लीजिए ।

सबके पहिले लाला साहब उठे और बन्दगी करके यों चोंच खोली ।

"गल्ला कटै लगा है कि भैया जो है सो है ।।
बनियन काँ ग़म भवा है कि भैया जो है सो है ।।
लाला की भैंसी शीर निचोवत माँ शाशी जब ।
दूध ओहमाँ मिल गवा है कि भैया जो है सो है ।।
इक तो कहत[3] माँ मर मिटी खिलकत[4] जो हैगा सब ।
तेहपर टिकस बँधा है कि भैया जो है सो है ।।
अँगरेज से अफगान से वह जंग होत है ।
अखबार माँ लिखा है कि भैया जो है सो है ।।
कुप्पा भए हैं फूल के बनियाँ ब फ़र्ते माल[5] ।
पेट उनका दमकला है कि भैया जो है सो है ।।
अखबार नाहीं पंच से बढ़ कर भवा कोऊ ।।
सिक्का य जम गवा है कि भैया जो है सो है ।।"

इसके बाद लाला साहब ने रें रें कर के एक होली भी गाही दी ।।

कैसी होरी खिलाई । आग तन मन में लगाई ।।
पानी की बूँदी से पिंड प्रगट कियो सुंदर रूप बनाई ।
पेट अधम के कारन मोहन घर घर नाच नचाई ।।

१. कवि सम्मेलन २. एक यंत्र ३. अकाल ४. प्रजा ५. धन कमाकर ।

तबौ नहीं हवस बुझाई ।
भूँजी भाँग नहीं घर भीतर का पहिनी का खाई ।
टिकस पिया मोरी लाज कां रखल्यो ऐसे बनो न कसाई ।।
तुम्हैं कैंसर की दोहाई ।
कर जोरत हौं बिनती करत हैं छाँड़ौ टिकस कन्हाई ।
आग लगौ ऐसो फाग के ऊपर भूखन जान गँवाई ।।
तुम्है कुछ लाज न आई ।'

लाला साहब के गाने के बाद ही ललाइन साहब से भी न रहा गया । कुछ जो मेम साहब की तालीम ने तुन्दी किया सो चट से कूद परदे के बाहर बेतकल्लुफ[1] तशरीफ लाईं और मटक मटक कर कहने लगीं ।

''लिखाय नाहीं देत्यो पढ़ाय नाहीं देत्यो ।
सैयाँ फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यो ।।
लहँगा दुपट्टा नीक न लागे ।
मेमन का गौन मँगाय नाहीं देत्यो ।।
वै गोरिन हम रंग सँवलिया ।
रंग में रंग मिलाय नाहीं देत्यो ।।
हम ना सोइबे कोठा अटरिया ।
नदिया प बँगला छवाय नाहीं देत्यो ।।
सरसों का उबटन हम ना लगैवै ।
साबुन से देहियाँ मलाय नाहीं देत्यो ।।
डोली मियाना प कब लग डोलों ।
घोड़वा प काठी कसाय नाहीं देत्यो ।।
कब लग बैठीं काढ़े घुँघटवा ।
मेला तमासा जाये नहीं देत्यो ।।
लीक पुरानी कब लग पीटों ।
नई रीत रसम चलाय नाहीं देत्यो ।।
गोबर से ना लीपव पोतब ।
चूना से भितिया पोताय नाहीं देत्यो ।।
खुसलिया छदम्मी ननकू हन काँ ।
विलायत का काहें पठाय नाहीं देत्यो ।।
धन दौलत के कारन बलमा ।
समुंदर में बजरा छोड़ाय नाहीं देत्यो ।।
बहुत दीनाँ लग खटिया तोड़िन ।
हिंदून का काहें जगाय नाहीं देत्यो ।।
दरस बिना जिय तरसत हमरा ।
कैसर का काहें देखाय नाहीं देत्यो ।।
हिज्रपिया तोरे पय्याँ पड़त हैं ।
पंचा माँ एहकाँ छपाय नाहीं देत्यौ ।।

ललाइन साहब की आजादी देखते ही साहो जी साहब मुतहैय्यर[2] हो घबड़ा कर यों रेंके

का भवा आवा है ए राम जमाना कैसा ।
कैसी मेहरारू है ई हाय जनाना कैसा ।।

१. निस्संकोच २. चकित

लोग क्रिस्तान भए जायें बनयें साहेब ।
कैसा अब पुन्न धरम गंगा नहाना कैसा ।।
हाल रोजगार गवा धूल में बेवहार मिला ।
का सराफी रहीं हुंडी का चलना कैसा ।।
धोय के लाज सरम पी गए सब लरकन लोग ।
काहे के बाप मतारी रहे नाना कैसा ।।
आँखी के आगे लगे पीये सभै मिल के शराब ।।
हाय आब जात कहाँ पंच में जाना कैसा ।
पगड़ी जामा गवा अब कोट औ पतलून रही ।
जब चुरुट है तो इलइची का है खाना कैसा ।।
सब के उप्पर लगा टिक्कसकि उड़ा होस मोरा ।
रोवै के चहिए हँसी ठीठी ठठाना कैसा ।।

साहो जी की बनारसी सुनते ही लखनऊ के एक शोहदे साहब चार अंगुल की टोपी दिए एक कोने में ऊँकड़े हुए डँटे थे बहुत ही परीशान हुए क्योंकि उनके समझ में यह कुछ भी न आया तो चिटख कर बोले "बनिए क्या जो है सो नाहक की बक बक लगाई है एक कनगुज्झा[१] ईंधे[२] और एक नागड़भिन्नी[३] ऊँघे[४] और चपतगाह[५] प एक गुदकी जमाऊँगा जो है सो कि बताना निकल पड़ैगा" और कहने लगे ।

क्यों बे सुनता नहीं सोहदे की बी तकरीर को आँ ।
कहीं नकभिन्नी की आऊं न तेरे पीर को आँ ।।

लोगों ने बढ़ावा दिया कि हाँ साहब यह भी तो बड़े शायर हैं कुछ फर्माएँ । इतना इशारा पाना था कि लगे शोहदे जी गाने ।

सान सौकत तेरे आसिक की मेरी जान जे है ।
होंगे सुलफा[६] इसी दरवाजे प अरमान जे है ।।
कहीं सुहदे भी पिचकते हैं भला झाँपो के[७] ।
आ तो डँट जा अभी खम ठोंक के मैदान जे है ।
गैर के कहने पै हजरत को न मुतलक हो खेयाल ।
बज्वो एक एक को बहकाता है सैतान जे है ।।
आके हम लोगों से माँगैं न टिकस मोटे मल ।
रख दूँ धुन के उन्हैं बनियों प फकत सान जे है ।।
आज मामूर है आलम के नमूदारों[८] में ।
लुत्फ अल्लाह का सर पर तेरे खाकान[९] जे है ।।

शुहदे की बातचीत सुन कर हमारे बनारस के भैवा लोगों से कब रहा जाता है यह भी अपनी चर्री बूकने ही लगे ।

चाँई चकार चोर औंर नटखट तोरे बदे ।
होय गैल सारे रामधै चौपट तोरे बदे ।।
घर से नगर से जात कुटुम संगी भाई से ।
कैसे भयल बिगार न खटपट तोरे बदे ।।

---

१. चपेटा, थप्पड़, २. इस ओर ३. नाक भन्ना देनेवाला थप्पड़ ४. उस ओर ५. चपत मारने का स्थान ६. जला देना ७. एक गाली ८. प्रकट लोगों ९. राजा ।

रोअल करीला पाटी प माथा पटक पटक ।
लेईला जब कि रात के करवट तोरे बदे ।।
राजा नवाब बाबू के ताड़ीला ए रजा ।
होय जाई राज रामधै कोरट तोरे बदे ।।
देके सारन के बहाली तू घरे चल आव: ।
आज न आय सक: कौनो बखत कल आव: ।।
आज खरचा भी दुकनदार से पौले बाड़ी ।
चल के बैठक में बचा चाभ के मगदल आव: ।।
नरकू चिरकिट और पनारू से कह: घुरपतरी ।
नल के बंगले में तो हौऐं सभे बैठल आव: ।।
उहै चल जाला सरवा देख: बतौले झाँई ।
देख के कैसनै हमन के हौ खड़कल आव: ।।
चाभ के पान महावीरी के टीका देके ।
मल के देही में अतर साँझी बेरा चल आव: ।।
सारे चल आवै ले सब खोज में हमरे तोहरे ।
मोड़ वा गल्ली के आगे तनी झड़कल आव: ।।
कौनो सरवा नहीं समझाय के कहतैं राजा ।
तेग[1] से कौने बदे बाड़: तुँ खड़कल आव: ।।
भौं चूम लेइला केहू सुन्दर जे पाईला ।
हम ऊ हई की होंठे प तरुवार खाईला ।।
डन कै के अपने रोज तो रहिला चबाइला ।
राजा के अपने खुरमा औ बुँदिया चभाइला ।।
सौ सौ तरे कै मूड़े प जोखिम उठाईला ।
पै राजा तोहें एक बेरी देख जाईला ।।
पुतरी मतिन रखब तोहें पलकन के आड़ में ।
तोहरे बदे हम आँखी में बैठक बनाईला ।।
कहली कि काहे आँखी में सुरमा लगावल: ।
हँस के कहै लै छूरी के पत्थर चटाईला ।।
हम झारै वाला बाड़ी हजारन में रामधै ।
पै राजा तोंसे बेंत मतिन थरथराईला ।।
राजा बाबू तोरें चेहरा प लुभायल बाड़ैं ।
सैकड़न सरवा तेरे आँखी क घायल बाड़ैं ।।
रात भर कँहरीला खटिया प परल हम संगो ।
केहू राजा सौ कहै काहे कोंहायल बाड़ैं ।।
बाघ की नाईं महल्ला में त डौंडत होइहैं ।
सब केहू कहला टहलू त परायल बाड़ैं ।।
आँख की पुतरी मतिन सामने नाचत होइहैं ।।
नींद जब आवैलै तब देखीला आयल बाड़ैं ।।

१. तेग़ अली, जिसकी यह रचना है ।

पाँचों पकवान नहीं नीक लागत बा रमचे ।
तिल के चेहरा क तोरे 'तेग' भुखायल बाड़ै ।।

बनारस के गुंडों की बोली सुनते ही बैसवारे के तिलंगा भाई को भी फुरफुरी आई और ढोलक बजाकर गाने ही लगे कि —

फुरै कहत हौं महिते जो जइहौं रिसाय के ।
भरुका म बिख भरा है मैं मर जैहौं खाय के ।।
सारन क आज सार म भँवरी बताय के ।
लैहौं करेजा दूध बकेना पियाय के ।।
खरिहान माँ जो रात के रइहौ तुम आय के ।
दैहों उकाँव गोहुँ क तुम कँ उठाय के ।।
सूरज के कुछ न लीन न तुम हन गुनहगार ।
काहे क हम कै मारथौ घामे डहाय के ।।
बौरान रोज फिर्त हौं बारी बगैचा में ।
टोला म हमरें आएव न एक दिन भुलाय के ।।
धरहृ प आय तेग क दरसन नहीं हौ ख्यात ।
औरन तें तो मिलत हौ रजा धाय धाय के ।

इन सब की रें रें के पीछे एक नये ढंग के शायर कबरिस्तान के फकीर मरघट के बाम्हन एक नई अनोखी चाल की शायरी ले उठे । यह ढंगही सबसे निराला । रेखती फेखती सबसे अलग मरसिये का भी चचा। माशूक ही को कोसना ।

फिर उन्हें हैजा हुआ फिर सब बदन नीला हुआ ।
फिर न आने का मेरे घर में नया हीला हुआ ।।
कहरे हक[1] नाज़िल[2] हुआ पत्थर पड़े वह मर गए ।
अब्र का टुकड़ा उनहें तवरम् अबाबीला हुआ ।।
फिर उन्हें आया पसाना सब बदन ठंढा हुआ ।
मुफ़लिसी में फिलमसल आँटा अजी गीला हुआ ।।
नाम सुनते ही टिकस का आह करके मर गए ।
जानली कानून ने बस मौत का हीला हुआ ।।
आप शेखी पर चढ़े थे मसले अफग़ानाने बद ।
खूब शुद गदकों के मारे सब बदन ढीला हुआ ।।
कैसरे हिन्दोस्ताँ अब जान इनकी वख़श दो ।
देख लो रंजिश से सब इनका बदन पीला हुआ ।।

अफ़सोस कि अ. फालेन[3] इस मौके पर नहीं थे नहीं तो कई नए मोहावरे उनके हाथ लगते ।

---

१. खुदा का कोप २. उतरा ३. एस. डब्ल्यू. फैलों

पाँचवें (चूसा) पैग़म्बर

यह 'पेनी रीडिंग क्लब में पढ़ा गया लेख है, जो बाद में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन १५ दिसम्बर सन् १८७३ के अंक में छपा भी। — सं.

लोगो दौड़ो, मै पाँचवाँ पैग़म्बर हूँ, दाऊद, ईसा, मूसा, मुहम्मद ये चार हो चुके । मेरा नाम चूसा पैगम्बर है, मैं विधवा के गर्भ से जनमा हूँ और ईश्वर अर्थात् खुदा की ओर से तुम्हारे पास आया हूँ इससे मुझ पर ईमान लाओ नहीं तो ईश्वर के कोप में पड़ोगे ।

मुझ को पृथ्वी पर आए बहुत दिन हुए पर अब तक भगवान का हुक्म नहीं था इससे मैं कुछ नहीं बोला, बोलना क्या बल्कि जानवर बना घात लगाए फिरता था और मेरा नाम लोगों ने ब्रूश, बंदर, लंका की सैना और म्लेच्छ रक्खा था पर अब मैं उन्हीं लोगों का गुरु हूँ क्योंकि ईश्वर की आज्ञा ऐसी है इससे लोगो ईमान लाओ ।

जैसे मुहम्मदादि के अनेक नाम थे वैसे ही मेरे तीन नाम हैं, मुख्य चूसा पैगम्बर, दूसरा डबल[1] और तीसरा सुफैद और पूरा नाम मेरा श्रीमान् आनरेबल हज़रत डबल सफैद चूसा अलैहुस्सलाम[2] पैगम्बर आखिर कुन जमाँ[3] है ।

मुझको कोहचूर पर खुदा ने जल्वा दिखाया और हुकुम दिया कि मैं पैगम्बर किया तुझ को तू लोगों को ईमान में ला, दाऊद ने बेला बजा के मुझे पाया तू हारमोनियम बजावैगा, मूसा ने मेरी खुदाई रौशनी से कोहातूर जलाया तू आप अपनी रौशनी से जमाने को जला कर काला करैगा, ईसा मर के जिया था तू मरा हुआ जीता रहैगा, मुहम्मद ने चांद को बीच में से काटा तू चाँद का कलंक मिटा अपना टीका बनावैगा ।

(खुदा कहता है) देख मूर्त्तिपूजन अर्थात् बुतपरस्ती को ज़माने से उठा देना क्योंकि मैंने हाफ सिविलाइज्ड किया दुनिया को पूरा तुझको ; जो शराब सब पैगम्बरों पर हराम थी मैंने हलाल किया तेरे पर, बल्कि तेरे मजहब की निशानी है जो तेरे आसमान पर आने के बाद रूए जमीन पर कायम रहैगी क्यौंकि "यद्यपि तेरा राज्य सर्वदा न रहैगा पर यह मत यहाँ सर्वदा दृढ़ रहैगा" ।

(खुदा कहता है) मैंने हलाल किया तुझपर गऊ, सूअर, मेंढ़क कुत्ता वगैरह सब जानवर जो कि हराम है ; मैंने हलाल किया तुझपर, अपने मज़हब के वास्ते झूठ बोलना और हुकुम दिया तुझ को औरतों की इज्जत करने और उनको अपने बराबर हिस्सा देने की बल्कि यारों के संग जाने की ; और सिवाय पब्लिक प्लेसों[4] के कोहेचूर पर जहाँ मैंने जलवा दिखाया तुझको तीन आरामगाह[5] फरिश्तों से बनवाकर तुझे बख्शीं और तुझपर हलाल कीं जिन तीनों का नाम कुर्सी, झुर्सी, और दगली है ।

(खुदा कहता है) देख, खबरदार, मुँह वग़ैरह किसी बदन को साफ न रखना नहीं तो तुझे शैतान बहका देंगे, लिबास सियाह हमेशा पहिरना और मेरी याद में सिर खुला रखना ।

मैं खुदा के इन हुक्मों को मानकर तुम्हारे पास आया हूँ, मेरा कहा मानो और ईमान लाओ मैं खुदा का प्यारा पुत्र, माशूक, जोरू, नायब नहीं हूँ बल्कि खुदा का दूसरा हूँ ? वह इज्जत किसी पैग़म्बर को नहीं मिली थी ।

लोगो ! मेरा कहा मानो खुदा मुझसे डरता है क्योंकि मैं प्रच्छन्न नास्तिक हूँ पर पैग़म्बरिन के डर से आस्तिक हो गया हूँ इससे खुदा को हमेश : हमारी दलीलों से अपने उड़ जाने का डर रहता है तो जब खुदा मुझ

---

१. दूना २. प्रणाम है जिसको ३. संसार का अंत करनेवाला ४. जन साधारण के स्थानों ५. सुखस्थान

से डरता है तब उस के बन्दो तुम मुझ से बहुत ही डरो ।

मेरे प्यारे अंगरेजो ! तुम खौफ़ मत करो मैं तुम को सब गुनाहों से बरी कराऊँगा क्योंकि नाशिनैलिटी बड़ी चीज़ है । पैगम्बरिन तुम्हारा रंग एक है इससे मैं तुम्हारे पापों को छिपा दूँगा ।

प्यारे मुसल्मानो ! मैं कुछ तुमसे डरता हूँ क्योंकि तुम को मार डालने में देर नहीं लगती इससे मैं तुम्हारी बेहतरीके वास्ते अपनी धर्मपुस्तक में लिख जाऊँगा कि हमारे सक्सेसर[1] लोग तुम्हारी खातिर करें तुम्हारे न पढ़ने पर अफ़सोस करें और तुम्हारे वास्ते स्कूल और कालिज बनावें ।

मगर मेरे मेमने हिंदुओ ! तुमको मैं सब प्रकार नीच समझूँगा क्योंकि यह वह देश है जो ईश्वर के क्रोध रूपी अग्नि से जल रहा है और जलैगा और ईश्वर के कोप से तुम्हारा नाम जीते हुए, हाफसिबिलाइजड[2], रुड[3], 'काफिर, बुतपरस्त, अँधेरे में पड़े हुए, बारबर्स[4], बाजिबुल् क़त्ल[5] होगा ।

देखो हम भविष्य बानी कहते हैं तुम रोते और सिर टकराते भागते भागते फिरोगे, बुद्धि सीखते ही नहीं, बल नाश हो चुका है एक केवल धन बचा है सो भी सब निकल जायगा, यहाँ महँगी पड़ैगी, पानी न बरसैगा, हैजा, डैंगू वगैरह नए नए रोग फैलैंगे, परस्पर का द्वेष और निन्दा करना तुम्हारा स्वभाव हो जायगा, आलस छा जायगी, तब तुम उस के कोप अग्नि से जल के खाक के सिवा कुछ न बचोगे ।

पर प्यारो ! जो मुझ सच्चे पैगम्बर पर ईमान लावेगा वह छुड़ाया जायगा क्योंकि मैं खुशामद पसंद और घूस लेने वाला जाहिरा[6] नहीं हूँ मैं ईश्वर का सच्चा पैगम्बर और दुनिया का सच्चा बादशाह हूँ क्योंकि सूरज को खुदा ने रोशनी मेरे लिए इनायत की, चाँद में ठंढ़क सिर्फ मेरे लिए बख्शी गई और जमीन आसमान मेरे लिए पैदा किया बल्कि फरिश्ते भी मेरे ही लिए बनाए गए ।

ईमान लाओ मुझ पर, डाली चढ़ाओ मुझ को, जूता उतार के आ ओ मेरी मज़ार पाक[7] पर, पगड़ी पहन कर आओ मेरे मकबरे में, इनाम दो इन को और धक्का खाओ उन का जो मेरे मु[illegible]विर[8] हैं क्योंकि वे मूजिब होंगे तुम्हारी नजात के, और जो कुछ मैं कहूँ उसे सुन कर हजूर, साहब बहुत ठीक फरमाते हैं, बजा इरशाद, बेशक ठीक है, सत्त बचन, जा आज्ञा जो आज्ञा जे आज्ञा, इस में क्या शक, ऐसा ही है, मेरे मालिक, मेरे बाबाजान, सब सच्च फरमाते हौ —कहो क्योंकि जो मैं कहता हूँ वह ईश्वर कहता है ; और मेरे अनादरों को सहो अगर मेरी दरगाह में तुम्हें गरदनियाँ दी जाय तो उस की कुछ लाज मत करो फिर घुसो क्योंकि मेरी दरगाह से निकलना दुनिया से निकल जाना है ।

देखो शराब पियो, बिधवा विवाह करो, बालापाठशाला करो, आगे से लेने जाओ, बाल्यविवाह उठाओ, जाति भेद मिटाओ, कुलीन का कुल सत्यानाश में मिलाओ, होटल में खाओ, लव[9] करना सीखो, स्पीच दो, क्रिकेट खेलो, शादी में खर्च कम करो, मेम्बर बनो, मेम्बर बनो, दरबारदारी करो, पूजा पत्री करो, चुस्त चालाक बनो, हम नहीं जानते को हम नहीं जानता कहो, चक्करदार टोपी पहिनो वा सिर खुला रक्खो पर पौशाक सब तग रक्खो, नाच, बाल[10], थियेटर अंटा गुड़गुड़ बंग प्रिवी सिवी घरों में जाओ क्योंकि ये काम मूजिब होंगे खुदा और मेरी खुशी के ।

शराब पियो, कुछ शंका मत करो, देखो मैं पीता हूँ क्योंकि यह खुदा का खून है जो उस ने मुझे पिलाया और मैंने दुनिया को और यह उसके दोनों बादशाहत की निशानी है जो बाद में मेरे बहुत दिनों तक कायम रहैगी क्योंकि उसने हुक्म दिया है कि औरों की तरह तू मकान बहुत पक्का न बनवा क्योंकि दुनिया खुद नापायदार[11] है मगर मेरे खून के बोतलों के टुकड़े जो कि (खुदा कहता है) मेरी हड्डियाँ हैं बहुत दिनों तक न गलैंगी और मेरे सच्चे राज की निशानी कायम रहेगी ।

देखो मेरा नाम चूसा है क्योंकि मैं सब का पाप रूपी पैसा चूस लेता हूँ क्योंकि खुदा ने फरमाया है कि मेरे बन्दे पैसों के बहकाने से गुनाह करते हैं अगर उन के पास पैसा न रहे तो खुद गुनाह न करें इस से तू सब से पहिले इन का पैसा चूस ले ।

मेरा दूसरा नाम डबल है क्योंकि डबल हिंदी में पैसे को कहते हैं और अंगरेजी में दूने को और पच्छिम

१. उत्तराधिकारी २. अर्द्ध सभ्य ३. उदंड ४. जंगली ५. मार डालने के योग्य ६. प्रकट में ७. पवित्र कब्र ८. पंडा ९. प्रेम १०. नाचघर ११. आधारहीन

में उस बरतन को जिस्से घी वा अनाज निकाला जाता है और मेरा तीसरा नाम सुफेद है क्योंकि मैं रौशनी बखशने वाला हूँ और दिल मेरा साफ चिट्टा चमकीला चीनी की जात है और चमड़ा मेरा गोरा है और भी मैं सफेद करूगा लोगों को अपने दीन की चाँदनी से इनलाइटेंड[1] करके।

मेरे पहाड़ का नाम कोहचूर है क्योंकि मैं सब के पापी दिलों को और पापों को तथा प्रैजुडिसों[2] को लोगों के बल और धन को चूर करूँगा, और मेरी पहली आरामगाह कुर्सी है क्योंकि अब वहाँ की आबहवा साफ होकर बेवकूफी की शिकायत रफ़ा हो गई और दूसरी भुरसी है जहा जलती आग पर मेरे से पैग़म्बर के सिवा दूसरा नहीं बैठ सकता और तीसरी दग़ली है उस में चारों दग़ल[3] भरा है और बीच में मेरा सिंहासन है।

जहाँ पर खुदा ने हलाल किया है शराब, बीफ, मटन, बग्गी, दगल, फसल, नैशानालिटी,[4] लालटैन, कोट, बूट, छड़ी, जेबीघड़ी, रेल, धुआकश, बिधवा, कुमारी, परकीया, चाबुक, चुरुट, सड़ी मछली, सड़ी पनीर, सड़े अँचार, मुँह की बू, अधो भाग के केश, बिना पानी के मल धोना, रुमाल,मौसी, मामी, बूआ, चाची मैं अपनी बेटी पोतियों के, कज़िन फ्रेंड,[5] लेपालट की बहू, खानसामा खानसामिन, हुक्का, धुक्का, लुक्का, बुक्का और आजादी को और हराम किया बुतपरस्ती, बेईमानी, सच बोलना, इनसाफ करना, धोती पहरना, तिलक लगाना, कंठी पहरना, नहाना, दतुअन करना, स्वच्छन्द होना, उदार होना, निर्भय होना, कथा, पुरान जातिभेद, बाल्यविवाह, भाई वा मा वा पिता के साथ रहना, मूर्तिपूजन तथा आर्थोडाक्स[6] की सुहबत, सच्ची प्रीत, परस्पर उपकार, आपस का मेल बुरी बातैं घातैं लातैं फातैं छातैं और प्रेजुडिस को।

लोगो ! दौड़ो दौड़ो ईमान लाओ मुझ पर, देखो पीछे पछताओगे और हाथ मलते रह जाओगे मैं ईश्वर का प्यारा दूसरा और पाँचवाँ पैगम्बर केवल तुम्हारे उद्धार के वास्ते पृथ्वी पर आया हूँ ईमान लाओ मुझपर हुकुम मानो मेरा, दाहिना हाथ जो तुम लोगों के सामने उठा है खुदा का हाथ है इस को सिजदा करो, झुको, अदब करो, ईमान लाओ और इस शराब को खुदा का खून समझ कर पिओ पिओ पिओ।

●

१. प्रकाशित २. अंधविश्वासों ३. कपट ४. जातीयता ५. चचेरे भाई बहन मित्र १. कट्टर
६. कट्टर

क़ानून ताज़ीरात शौहर

रचना काल सन् १८८३। नाट्य शैली में लिखा गया लेख। — सं.

क़ानून ताज़ीरात शौहर[1]

पहिला बाब[2]

तमहीद[3]

चूँकि मुनासिब मालूम हुआ कि एक कानून ऐसा इजरा किया जावै जिस से बाद शादी के जौज़:[4] : अपने शौहरों पर बखूबी हकूमत कर सकें और इस सबब से उन दोनों में निफ़ाक़[5] न पैदा हो लेहाज़ा कानून हस्बज़ैल[6] मुरौविज[7] किया गया।

दफ़ा:[8] (१) इस कानून का नाम ताज़ीरात शौहर होगा. हिंदुस्तान में कोई औरत या मर्द जो शाली कर लेगा वह कानूनन इस का पाबन्द[9] समझा जायगा।

मुस्तसना[10]

जो अह्ल[11] यूरप हिंदुस्तान में आकर शादी करेंगे वह इस कानून से मुस्तसना समझे जायँगे।

दूसरा बाब

बयान असर[12] अलफाज[13]

दफ: (२) किसी औरत के तहत हुकूमत[14] में कोई शै[15] जो कि जाहिरा[16] मनकूल:[17] मगर बगैर हुक्म औरत के गैरमनकूल:[18] है उस से मुराद शौहर है।

---

१. पति दंड विधान २. प्रकरण ३. भूमिका ४. पत्नी ५. झगड़ा ६. निम्न के अनुसार ७. प्रचलित ८. धारा ९. आबद्ध १०. मुक्त ११. निवासी १२. परिभाषा १३. शब्दों १४. शासन के अधीन १५. वस्तु १६. प्रकट में १७. चल १८. अचल

तमसीलात[1]

अलिफ — सन्दूक वगैरह को शौहर नहीं कह सक्ते क्योंकि वह जयदाद[2] मनकूल : से हैं मगर अपने को खुद बखुद नहीं चला सक्ते हैं ।

बे-गाय, बैल, कुत्ता, गदहा वगैरह अगरचे खुद बखुद चल सक्ते हैं मगर वह अपने औरतों की हुकूमत से जायदाद गैरमनकूल : नहीं हो जाते, इस वास्ते लफ्ज शौहर उन पर असर पज़ीर[3] न होगा ।

जीम —चूँकि ऐसी जायदाद जो कि ज़ाहिरा मनकूल : हो मगर औरत के हुक्म से फौरन गैर मनकूल : हो जाय सिर्फ शादीकरद:[4] मर्द हैं, लेहाज़ा लफ्ज शौहर से मुराद उन्हीं लोगों से होगी ।

दफ :(३) शौहर की जायदार है, इस वास्ते उस पर उस को हर किस्म[5] का अखतियार हासिल[6] है ।

तमसील

अपनी जायदाद को लोग जिस तरह बना बिगाड़ सक्ते हैं, उसी तरह जोरुओं को अपने शौहर पर ज़द व कोब[१५] करना वा खाना न देना वगैरह का अखतियार हासिल है ।

तीसरा बाब

सज़ा

दफ :(४) इस कानून में मुजरिमों[8] को हस्बजैल सज़ा दी जायगी ।

अलिफ़ — कैद यानी शौहर को मकान की चार दीवारी से बाहर न जाने देना, यह कैद दोनों तरह की होगी, वा[9] मेहनतव| बिला[10] मेहनत —लफ़ज़ मेहनत से यह मुराद है कि शौहर कैद भी रहे और गालियों की बौछार भी बरदाश्त करता रहे —लफ्ज बिना मेहनत से मुराद है कि सिर्फ बाहर न जाने पाये ।

बे — अलग बिस्तर या दूसरे मकान में सोलाना ।

जीम — हमेशा के वास्ते गुलामी[11] करानी ।

दाल — जुर्मान : यानी किसी किस्म का नक्द या जेवर लेकर कसूर मुआफ़ करना ।

दफ :(५) इस कानून में भी सजाय मौत सब से बड़ी सज़ा है मगर आदमी के जान को उन की बदन से अलग कर देना यहाँ सज़ाय मौत नहीं, यहाँ लफ्ज सजाय मौत से यह मुराद है कि औरत रूठ कर अपने बाप या भाई के घर चली जाय और फिर न आये ।

दफ: (६) सजाय हबसदवाम[12] बअबूर[13] दरियाशोर[14] से इस कानून में यह मुराद है कि औरत चंद अरस: के वास्ते शौहर को अपने घर में न आने दे या चंद अरस : के वास्ते खफा हो कर अपने बाप के घर में चली जावै ।।

दफ: (७) मुकद्दमात सर्सरी[15] के वास्ते हस्बजैल छोटी छोटी सजायें मुकर्रर हैं —

अलिफ — न बोलना । बे — भौं चढ़ाना । जीभ — रोना । दाल — बकना ।

चौथा बाब

मुस्तसनियात[16]

दफ: (८) हर बशर[17] जो खुदा के यहा से जामय[18] औरत पहिना से उतारा गया है वह इस कानून से मुस्तसना है ।

दफ :(९) कोई जुर्म मुन्दर्जे कानून हाजा अगर बहुक्म औरत किया जाय तो इस कानून से मुस्तसना है ।

दफ :(१०) कोई शख्स जो कि दरहकीकत फकीरी अखतियार करे और दुनिया छोड़ दे वह बाद उस

---

१. उदाहरण २. संपत्ति ३. प्रभावान्वित ४. विवाहित ५. प्रकार ६. प्राप्त ७. मार-पीट ८. दोषियों ९. सहित १०. बिना ११. दासता १२. सदा का कारावास १३. पार कर १४. समुद्र १५. साधारण १६. मुक्तगण १७. मनुष्य १८. वस्त्र

७. साधारण ८. मुक्तगण ९. मनुष्य ०. वस्त्र

लमह:[1] के जिसमें कि दुनिया छोड़ी है इस कानून से मुस्तसना है ।

दफ :(११) कोई शख्स जो अपने जोरू को तिलाक दे, वह बाद उस लमह : के जब कि उसने अपना औरत को तिलाक दिया है उस लहज:[2] के पेश्तर तक जबकि वह दूसरी औरत से सरोकार कायम करे इस कानून से मुस्तसना है ।

पाँचवाँ बाब

इमदाद[3] जुर्म

दफ :(१२) कोई शौहर जो कि दूसरे शौहर को किसी औरत के बरखिलाफ बरगलाएगा[4] तो यह समझा जायगा कि उसने जुर्म करने में इमदाद की ।

दफ :(१३) जिस वक्त कोई शौहर किसी दूसरे शौहर के जुर्म करने के वक्त मौजूद रहे और उसको उस जुर्म से न बाज रक्खे[5] तो वह भी जुर्म की इमदाद करनेवाला समझा जायगा ।

मुस्तसनियात

अलिफ — कोई औरत व मर्द जिन की शादी नहीं हुई है इमदाद करने के जुर्म से मुस्तसना हैं ।

बे — कोई शख्स जो बजोर बदमाशी या दौलत या और किसी सबब से जुर्म करद : शौहर की औरत के अखतियार के बाहर है वह इस कानून से मुस्तसना है ।

जीम — मगर बगैर शादी किए हुए भी वह लोग जो किसी औरत के तहत हकूमत में हैं मुस्तसना न समझे जायँगे ।

तमसीलात

अलिफ — जैद का बकर नाम का एक भतीजा है जिस की शादी नहीं हुई है, जैद बकर के बहकाने से किसी मेल : में गया और वहाँ रात को देर तक रहा पस जैद मुजरिम हुआ, मगर बकर जो कि दूसरे घर में रहता है और औरत की हकूमत से बाहर है इमदाद जुर्मकी तुहमत उस पर नहीं हो सकती ।

बे — खालिद एक नव्वाब है जिस के सबब से अमरू की गुजर औकात[6] होती है, खालिद ने किसी शब मुहफिल में अमरू को अपने साथ रहने पर मजबूर किया मगर चूँकि वह दौलतमन्द है इस वास्ते इमदाद जुर्म के इत्तिहाम[7] से मुस्तसना है ।

जीम — जैद बकर का छोटा भाई है और अपने भावज की पकाई हुई रोटी खाता है । अगर जैद व बकर दोनों किसी शब को देर तक बाहर रहे तो जैद इमदाद जुर्म करने से सजायाब[8] हो सक्ता है ।

दफ :(१४) इमदाद जुर्म करने वाले मुजरिमों की सजा उन की अदालत में होगी अगर वे असल मुजरिम की अदालत के हद अखतियार[9] के बाहर हैं ।

तमसील

अलिफ — जैद असल मुजरिम है और बकर उसका मददगार है मगर दोनों की शादी हो चुकी है तो जैद की सजा उसकी जोरू करैगी और बकर की सज़ा जैद की जोरू के बहकाने से बकर की जोरू करैगी ।

दफ :(१५) जुर्म के इमदाद करने वालों की सजा ब नजर तम्बीह[10] सिर्फ सर्सरी तौर से काफी होगी

---

१. क्षण २. समय ३. सहायता ४. बहकावेगा ५. रोके ६. कालयापन ७. दोष ८. दंडित ९. अधिकार की सीमा १०. शासन की दृष्टि से

छठा बाब

जुर्म खिलाफ अदब अदालत

दफ : (१६) लफ्ज़ अदालत से मुराद यहाँ सिर्फ शादी की हुई जोरू समझना चाहिए ।

दफ : (१७) जो शौहर अपनी जोरू से लड़ना चाहे या लड़े या गैर शख्स जो उससे लड़ता हो उसकी इमदाद करे तो उस को किसी किस्म की कैद की सजा दी जायगी लेकिन अगर अदालत की राय में यह जुर्म संगीन[1] मालूम हो तो हब्सदवाम बअबूर दरयायशोर की सज़ा देने का भी अदालत को अखतियार है ।

दफ :(१८) जो शख्स अपने किसी बुजुर्ग या रिश्त :दार या दोस्त या लड़कों को अपने तरफ करके जोरू पर हावी[2] होने का इराद : करे उस की कैद की सज़ा या अलग सोने की सजा या सिर्फ गाली वगैरह दी जायगी ।

दफ : (१९) जो शख्स सिवा अपनी औरत के औरकिसीऔरत पर इश्क[3] जाहिर करैगा, तो वह अदालत का दुश्मन समझा जायगा ।

खुलास :

अपनी जोरू के सिवा किसी औरत पर मेहरबानी की नज़र करना ही जुर्म है, चाहै वह किसी सबब से क्यों न हों ।

तमसीलात

सुग़रा जैद की जोरू है और कुबरा जैद की परोसिन है मगर कुबरा ग़रीब है इस वास्ते जैद कभी-२ कुबरा की कुछ मदद करता है पस जैद मुजरिम जुर्म मुन्दरज दफ: हाजा[4] का हुआ ।

अलिफ — अदालत को अखतियार हासिल है कि बगैर कसूर किये हुए भी शौहर को इस जुर्म का मुजरिम करार दे, मुजरिम का यह सबूत देना कि वह मुर्तकिब[5] इस जुर्म का नहीं हुआ काबिल समाअत[6] न होगा ।

बे — अदालत के खौफ से झूठ मूठ भी एक मर्तब : जुर्म का इकरार कर लेना किसी शौहर को मुजरिम बनाने के वास्ते काफी होगा ।

जीम — बगैर जुर्म के इस कसूर में मुजरिम बनानेवाली अदालत यानी औरत सिन्‌रसीद : या बदसूरत होनी चाहिये या जिसका शौहर सिनरसीद : या मकरूहसूरत[8] हो उस औरत को भी इस किस्म का जुर्म कायम[9] करने का अखतियार हासिल है ।

दाल — अगर नौजवान या खूबसूरत औरत अखतियारात मुन्दर्जे बाला हासिल करना चाहे तो उस को अपनी बदमिज़ाजी[10] कबूल करनी पड़ैगी ।

दफ :(२०) इस कानून में जितनी किस्म की सजायें लिखी हैं वह सब या उन में से चंद दफ : १९ के मुजरिम को दी जा सकती हैं ।

सातवाँ बाब

जुर्म खिलाफ फौज सर्कारी

दफ: (२१) घर के लड़के बर्री[11] फौज और मजदूरनियाँ बहरी[12] फौज समझी जायँगी ।

दफ: (२२) जो शख्स अपने किसी लड़की या अपने किसी लड़के को उन के माँ के बरखिलाफ[14] बोलने या मजदूरनियों को बगैर हुक्म बीबी के काम करने को कहैगा तो वह फौज के बरखिलाफ बलव : करने का मुजरिम करार दिया जायगा ।

दफ :(२३) जो मुजरिम जुम- मुन्दर्जे दफ : २२ का होगा उस को गाली बकने या झिड़की देने या रोने की सजा दी जायगी ।

१. भारी २. प्रभाव डालने ३. आसक्ति ४. पूर्वोक्त ५. करनेवाला ६. सुनने के योग्य । ७. प्रौढ़ा या वृद्धा ८. घृणित रूपवाली ९. स्थापित १०. कर्कशापन ११. स्थल की १२. समुद्री १३. विरुद्ध ।

आठवाँ बाब

जुर्म बरखिलाफ अमन[१] शहर

दफ : (२४) जो शख्स अपने दोस्तों या रिश्त :दारों को जो जोरू की राय के बरखिलाफ हैं अकसर अपने मकान में जमा करैगा या ज्याद :तर उनकी दावत करैगा वह इस बात का मुजरिम समझा जायगा कि उसने शहर के अमन में फरक[२] डाला ।

दफ : (२५) जो शख्स किसी रिश्त :दार या बुजुर्ग को घर में अपने जोरू के समझाने के वास्ते बुलावेगा वह भी शहर के अमन में फरक डालने का मुजरिम करार दिया जायगा ।

दफ : (२६) दफ : २४ वो २५ के मुजरिमों की सजा गाली वगैर : या जुर्म संगीन हो तो हब्सदवाम बअबूर दरियायशोर हो सकती है ।

नवाँ बाब

अदूलहुक्मी[३]

दफ : (२७) जो अपनी जोरू का हुक्म न मानेगा वह अदूलहुक्मी का मुजरिम करार दिया जायगा ।

तमसीलात

अलिफ — जोरू ने हुक्म दिया कि कल शाम तक फलाना ज़ेवर या कपड़ा बन कर आवै मगर शौहर तंगदस्ती[४] के सबब से नहीं ला सकता इस वास्ते मुजरिम हुआ ।

बे — जोरू से एक दूसरी औरत से लड़ाई है और वह लड़ाई भी महज[५] बे बुनियाद[६] है । दोनों के शौहर आपस में करीबी[७] रिश्त :दार हैं, एक शौहर के यहाँ कोई शादी या गमी[८] का जरूरी काम पेश आया और दूसरे शौहर को लड़ाई के सबब से उसकी जोरू ने पहिले के यहाँ जाने से बाज रखना चाहा मगर शौहर शर्त आदमियत से बाज न रहा इस वास्ते वह मुजरिम जुर्म दफ: हाजा का हुआ ।

जीम — जोरू को शैतानपरस्ती[९] पर एतकाद[१०] है मगर शौहर एक पढ़ा लिखा आदमी है । लड़कों की खैरियत के वास्ते जोरू ने शौहर को किसी पीर की नेयाज[११] करने को कहा मगर शौहर ने ईमार को पाबन्दी से उसको नहीं माना लेहाज़ा वह मुजरिम दफ : हाजा का हुआ ।

दफ : (२८) मुजरिम अदूलहुक्मी को जुर्माना : या कैद या दोनों किस्म की सजायें दी जायँगी ।

दसवाँ बाब

जुर्म दिलशिकनी[१२]

दफ :(२९) जो शौहर अपनी जोरू की दिलशिकनी करेगा वह दिलशिकनी के जुर्म का मुजरिम समझा जायगा ।

तमसीलात

अलि — शौहर ने हीलतन[१३] या सरीहतन[१४] कोई हरकत[१५] ऐसी नहीं की कि उस की जोरू की दिलशिनी हो मगर जोरू ने किसी हरकत से किसी दिलशिकनी मान ली तो वह भी दिलशिकनी होगी और उस में शौहर को कोई उज्र[१६] न होगा ।

१. शाति, २. भंग करना, ३. आज्ञा की अवहेलना, ४. घनाभाव, ५. केवल, ६. बेजड़ ७. पास की, ८. शोक, ९. भूत पूजना, १०. विश्वास, ११. मिन्नत या चढ़ावा, १२. हृदय पर चोट, १३. कपट से, १४. प्रकट में, १५. कार्य, १६. आपत्ति ।

बे — शौहर किसी मोहफिल में गया और वहाँ ब मजबूरी उस को रंडियों का तमाशा देखना पड़ा तो यह भी दिलशिकनी हुई ।

जीम — शौहर किसी ऐसी मजहबी जमायात[1] में शरीक[2] हुआ जिस में बहुत सी औरतें मौजूद थीं अगरचे[3] मजहब के पाबंद हो कर उस का उस जमायत में शरीक होना फर्ज[4] था मगर उस से दिलशिकनी हुई ।

दाल — अगर शौहर किसी ऐसी राहा से गुजरा कि जिसमें किसी सबब से कुछ औरते जमा थीं तो वह मुर्तकिब जुर्म दिलशिकनी हुआ ।

हे — किसी रिश्त :दार के सबब से या किसी मुआमिल : के सबब से किसी शौहर ने दूसरे औरत से जरूरी गुफ्तगू[5] की तो मुजरिम दिलशिकनी हुआ ।

बाव — लड़कों को पढ़ने की ज्याद: ताकीद करना भी जुर्म दिलशिकनी है ।

जे — रँगरेज पर कपड़ा जल्द न रंग लाने की, दरजी पर कुरती जल्द न सीने की ताकीद नहीं करना या उन कामों का जल्द अंजाम पाना[6] उसके अखतियार के बाहर है, तो वह शख्स मुजरिम दिल शिकनी का हुआ ।

हे — मेले या तमाशे वगैर : के ऐसे मौकों से जिस में इज्जत जाने का खौफ है, जोरू को बमिन्नत बाज रखना भी जुर्म दिलशिकनी है ।

दफ :(३०) मुजरिम दिलशिकनी को सर्सरी की कुल सजायें दी जा सकती हैं ।

ग्यारहवाँ बाब

हंगाम:[७]

दफ :(३१) जोरू की किसी बात का जवाब देना जुर्म हंगाम : है ।

दफ : (३२) हंगाम : करनेवाले मुजरिम को रोने या बकने की सजा दी जायगी ।

कित :[८] तारीख तसनीफ[९] दर सन् १८८३ ई. ।

चोगरदीद ईं जेराफतनाम : तसनीफ़ ।
के बाशद हर्फ़ हरफ़श दुर ओ गौहर ।।
जे[१०]रूये आबरू शुद ईसवी साल ।
निको क़ानून ताजीरात शौहर ।।

---

१. सभा, २. सम्मिलित, ३. यद्यपि, ४. कर्तव्य, ५. वार्तालाप ६. पूरा होना, ७. विद्रोह, ८. एक छंद, ९. रचना, १०. जब यह बुद्धिमानी की रचना प्रणीत हुई, जिसके हर एक अक्षर मोती से हैं । तब प्रतिष्ठा के रूप में ईसवी साल हुआ 'निको कानून ताजीरात शौहर' । (१८८३)

(बलिया में व्याख्यान)

भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?

बलिया वाला भाषण

यह नवम्बर सन् १८८४ में बलिया के ददरी मेले में आर्य देशोपकारिणी सभा में दिया गया भाषण है। बाद में नवोदिता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका जि. ११ नं. ३, ३ दिसम्बर सन् १८८४ में छपा।
—सं.

इस साल बलिया में ददरी का मेला बड़ी धूम-धाम से हुआ । श्री मुंशी बिहारीलाल, मुंशी गणपति राय, मुंशी चतुर्भुज सहाय सरीखे उद्योगी और उत्साही अफसरों के प्रबंध से इस वर्ष मेले में कई नई बातें ऐसी हुई, जिनसे मेले की बड़ी शोभा हो गई । एक तो पहलवानों का दंगल हुआ, जिसमें देश देश के पहलवान आए थे और कुश्ती का करतब दिखलाकर पारितोषिक पाया । दूसरे मेले के थोड़े दिन पूर्व ही से एक नाट्य समाज नियत हुआ था, जिसने मेले में कई उत्तम नाटकों का अभिनय किया । श्री भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी नाट्य समाज के प्रबंध-कर्ताओं के आग्रह और अनुराग से यहाँ विराजमान थे । उक्त बाबू साहब कृत प्रसिद्ध नाटक "सत्यहरिश्चंद्र" और "नीलदेवी" बड़ी सुघराई से खेले गए । संपूर्ण दर्शक-मंडली मोहित हो गई और इन नाटकों के कवि बाबू हरिश्चन्द्र जी की, जो संयोग से नाट्यशाला में इस समय विद्यमान थे बार बार सराहना करने लगी । बाबू साहब का नाम सुनकर इस जिले के मैजिस्ट्रेट आदिक अनेक साहिबान और मेम लोग भी थियेटर में उपस्थित थे और "सत्य हरिश्चन्द्र" "नीलदेवी" का अभिनय देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की । वरंच रॉबर्ट्स साहब मैजिस्ट्रेट ने कहा कि इनके नाटक कवि शिरोमणि शैक्सपियर से भी उत्तम हैं । बलिया की सज्जन-मंडली ने बाबू हरिश्चन्द्र जी का योग्य आदर संमान किया । श्री बाबू जी साहेब के स्वागत संमानार्थ यहाँ "बलिया इंस्टिट्यूट" की एक सभा की गई जिसमें इस नगर के सब प्रतिष्ठित अफसर और रईस एकत्र थे । इस जिले के मान्यवर, सर्व प्रिय कलेक्टर मि. डी. टी., रॉबर्ट्स साहेब बहादुर सभाध्यक्ष के उच्चासन में इस अवसर पर सुशोभित थे । श्री मुंशी बिहारीलाल जी सेक्रेटरी बलिया इंस्टिट्यूट ने संक्षिप्त आदर सूचक वाक्य द्वारा बाबू साहेब का सभा से परिचय कराया । यद्यपि इसकी कुछ ऐसी आवश्यकता न थी क्योंकि कौन ऐसा देश और नगर है जहाँ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी का नाम नहीं प्रसिद्ध है ? यहाँ एक पृथक् सभा "आर्यदेशोपकारिणी सभा" के नाम से स्थापित है । उसके सेक्रेटरी पं. इंदिरादत्त उपाध्याय जी बी. ए . ने एक छोटा ऐड्रेस बाबू साहेब की प्रशंसा में कियां । तदुपरांत बाबू हरिश्चन्द्र जी ने एक बड़ा ललित, गंभीर और समयोपयोगी व्याख्यान इस विषय पर दिया कि "भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है ?" सभासदगण बाबू साहेब का लेकचर सुनकर गद्‌गद् हो गये । व्याख्यान समाप्त होने पर श्रीमान् सभापति साहेब ने बाबू साहेब को धन्यवाद दिया और गुणानुवाद किया और सभा विसर्जित हुई । लेकचर तथा ऐड्रेस पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे प्रकाशित होता है ।

रविदत्त शुक्ल

ऐड्रेस

समासद महाशय,

आज का दिन धन्य है कि हम लोग इस बलिया में भारतभूषण भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी के स्वागत के निमित्त एकत्र हुए हैं । बलिया ऐसे सामान्य स्थान में एक ऐसे बड़े विद्वान और देश-शुभचिंतक का आगमन एक बड़े सौभाग्य और धन्यवाद का विषय है । ऐसे अवसर का उपस्थित होना बड़ा ही दुर्लभ है । मैं आर्य देशोपकारिणी सभा के ओर से, जो यहाँ बलिया इंस्टिट्यूट से एक पृथक ही सभा है, श्रीमान् बाबू साहब को अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने बलिया में इस अवसर पर विराजमान होकर हम लोग का मनोर्थ सिद्ध किया और अपने मुख-चंद्र से अमृत की वर्षा करके हम बलिया-निवासी अनुरागियों का उत्साह बढ़ाया । श्रीकृपासागर जगदीश्वर से हम सब भारतवासियों की यही प्रार्थना है कि श्री बाबू साहेब सरीखे उत्साही गुणग्राही स्वदेशानुरागी उदार चरित सर्व प्रिय पुरुष को दीर्घायु करै और सदा इस दीन भारतवर्ष के हितसाधन में तत्पर रखे । आज हम श्रीमान् डी.टी. रॉबर्ट्स साहेब बहादुर को भी कोटि कोटि धन्यवाद देते हैं कि श्रीमान् ने इस कृपानुरागपूर्वक सभा में सुशोभित होकर हम लोगों को आदर दिया ।

भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?

आज बड़े ही आनंद का दिन है कि इस छोटे से नगर बलिया में हम इतने मनुष्यों को बड़े उत्साह से एक स्थान पर देखते हैं । इस अभागे आलसी देश में जो कुछ हो जाय वही बहुत कुछ है । बनारस ऐसे ऐसे बड़े नगरों में जब कुछ नहीं होता तो यह हम क्यों न कहैंगे कि बलिया में जो कुछ हमने देखा वह बहुत ही प्रशंसा के योग्य है । इस उत्साह का मूल कारण जो हमने खोजा तो प्रगट हो गया कि इस देश के भाग्य से आजकल यहाँ सारा समाज ही ऐसा एकत्र है । जहाँ राबर्ट्स साहब बहादुर ऐसे कलेक्टर हों वहाँ क्यों न ऐसा समाज हो । जिस देश और काल में ईश्वर ने अकबर को उत्पन्न किया था उसी में अबुलफजल, बीरबल, टोडरमल को भी उत्पन्न किया । यहाँ राबर्ट्स साहब अकबर हैं तो मुंशी चतुर्भुज सहाय, मुंशी बिहारीलाल साहब आदि अबुलफ़जल और टोडरमल हैं । हमारे हिंदुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी हैं । यद्यपि फर्स्ट क्लास, सेकेंड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी-अच्छी और बड़े बड़े महसूल की इस ट्रेन में लगी हैं पर बिना इंजिन ये सब नहीं चल सकतीं, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलानेवाला हो तो ये क्या नहीं कर सकते । इनसे इतना कह दीजिए ''का चुप साधि रहा बलवाना'', फिर देखिए हनुमानजी को अपना बल कैसा याद आ जाता है । सो बल कौन दिलावै । या हिंदुस्तानी राजे महाराजे नवाब रईस या हाकिम । राजे-महाराजों को अपनी पूजा भोजन झूठी गप से छुट्टी नहीं । हाकिमों को कुछ तो सर्कारी काम घेरे रहता है, कुछ बॉल, घुड़दौड़, थिएटर, अखबार में समय गया । कुछ बचा भी तो उनको क्या गरज है कि हम गरीब गंदे काले आदमियों से मिलकर अपना अनमोल समय खोवैं । बस वही मसल हुई — 'तुमें गैरों से कब फुरसत हम अपने गम से कब खाली । चलो बस हो चुका मिलना न हम ख़ाली न तुम खाली ।' तीन मेंढक एक के ऊपर एक बैठे थे । ऊपरवाले ने कहा 'जौक शौक', बीचवाला बोला 'गुम सुम', सब के नीचे वाला पुकारा 'गए हम' । सो हिन्दुस्तान की साधारण प्रजा की दशा यही है, गए हम ।

पहले भी जब आर्य लोग हिंदुस्तान में आकर बसे थे, राजा और ब्राह्मणों ही के जिम्मे यह काम था कि देश में नाना प्रकार की विद्या और नीति फैलावैं और अब भी ये लोग चाहैं तो हिंदुस्तान प्रतिदिन कौन कहे प्रतिछिन बढ़ै । पर इन्हीं लोगों को सारे संसार के निकम्मेपन ने घेर रखा है । ''बोद्धारो मत्सरग्रस्ता प्रभवः स्मरदूषिताः ।'' हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जब इनके पुरुषों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नलियों से जो तारा ग्रह आदि वेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपए के लागत

की विलायत में जो दूरबीनें बनी हैं उनसे उन ग्रहों को वेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंगरेजी विद्या की और जगत् की उन्नति की कृपा से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी की कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं । यह समय ऐसा है कि आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं । सबके जी में यही है पाला हमीं पहले छू लें । उस समय हिंदू काठियावाड़ी खाली खड़े खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं । इनको औरों को जाने दीजिए, जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देखकर भी लाज नहीं आती । यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायगा फिर कोटि उपाय किए भी आगे न बढ़ सकैगा । इस लूट में, इस बरसात में भी जिसके सिर पर कमबख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्टी बंधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए ।

मुझको मेरे मित्रों ने कहा था कि तुम इस विषय पर आज कुछ कहो कि हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो सकती है । भला इस विषय पर मैं और क्या कहूँ । भागवत में एक श्लोक है ''नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारं । मयाऽनुकूलेन नभ : स्वतेरितुं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ।'' भगवान कहते हैं कि पहले तो मनुष्य जनम ही बड़ा दुर्लभ है, सो मिला और उसपर गुरु की कृपा और मेरी अनुकूलता । इतना सामान पाकर भी जो मनुष्य इस संसार-सागर के पार न जाय उसको आत्म हत्यारा कहना चाहिए । यही दशा इस समय हिंदुस्तान की है । अंगरेजों के राज्य में सब प्रकार का सामान पाकर अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय पर उन्नति न करैं तो हमारा केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है । सास के अनुमोदन से एकांत रात में सूने रंगमहल में जाकर भी बहुत दिन से जिस प्रान से प्यारे परदेसी पति से मिलकर छाती ठंढ़ी करने की इच्छा थी, उसका लाज से मुँह भी न देखै और बोलै भी न, तो उसका अभाग्य ही है । वह तो कल फिर परदेश चला जायगा । वैसे ही अंगरेजों के राज्य में भी हम कूँए के मेंढ़क, काठ के उल्लू, पिंजड़े के गंगाराम ही रहैं तो हमारी कमबख्त कमबख्ती फिर कमबख्ती है ।

बहुत लोग यह कहैंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करैं ? तुम्हारा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है । यह कहना उनकी बहुत भूल है । इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था । उसने एक हाथ से अपना पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के काँटों को साफ किया । क्या इंगलैंड में किसान, खेतवाले, गाड़ीवान, मजदूरे, कोचवान आदि नहीं है ? किसी देश में भी सभी पेट भरे हुए नहीं होते । किंतु वे लोग जहाँ खेत जोतते बोते हैं वहीं उसके साथ यह भी सोचते हैं कि ऐसी और कौन नई कल या मसाला बनावैं जिसमें इस खेती में आगे से दूना अन्न उपजै । विलायत में गाड़ी के कोचवान भी अखबार पढ़ते हैं । जब मालिक उतरकर किसी दोस्त के यहाँ गया उसी समय कोचवान ने गद्दी के नीचे से अखबार निकाला । यहाँ उतनी देर कोचवान हुक्का पीएगा या गप्प करेगा । सो गप्प भी निकम्मी । वहाँ के लोग गप्प ही में देश के प्रबंध छाँटते हैं । सिद्धांत यह कि वहाँ के लोगों का यह सिद्धांत है कि एक छिन भी व्यर्थ न जाय । उसके बदले यहाँ के लोगों को निकम्मापन हो उतना ही बड़ा अमीर समझा जाता है । आलस यहाँ इतनी बढ़ गई कि मलूकदास ने दोहा ही बना डाला ''अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम । दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम ।'' चारों ओर आँख उठाकर देखिए तो बिना काम करनेवालों की ही चारों ओर बढ़ती है । रोजगार कहीं कुछ भी नहीं है । अमीरों की मुसाहबी, दलाली या अमीरों के नौजवान लड़कों को खराब करना या किसी की जमा मार लेना, इनके सिवा बतलाइए और कौन रोजगार है जिससे कुछ रुपया मिलै । चारों ओर दरिद्रता की आग लगी हुई है । किसी ने बहुत ठीक कहा है कि दरिद्र कुटुंब इसी तरह अपनी इज्जत को बचाता फिरता है जैसे लाजवती कुल की बहू फटे कपड़ों में अपने अंग को छिपाए जाती है । वही दशा हिंदुसतान की है ।

मदुमशुमारी की रिपार्ट देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य दिन दिन यहाँ बढ़त जाते हैं और रुपया दिन दिन कमती होता जाता है । तो अब बिना ऐसा उपाय किए काम नहीं चलैगा कि रुपया भी बढ़ै, और वह रुपया बिना बुद्धि न बढ़ेगा । भाइयो, राजा महाराजों का मुँह मत देखो, मत यह आशा रक्खो कि पंडितजी कथा में कोई ऐसा उपाय भी बतलावैंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े । तुम आप ही कमर कसो, आलस छोड़ो । कबतक अपने को जंगली हूस मूर्ख बोदे डरपोकने पुकरवाओगे । दौड़ो इस घोड़दौड़ में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है । ''फिर कब राम जनकपुर ऐहैं'' । अबकी जो पीछे पड़े तो फिर रसातल ही पहुँचोगे ।

जब पृथ्वीराज को कैद करके गोर ले गए तो शहाबुद्दीन के भाई गियासुद्दीन से किसी ने कहा कि वह शब्दभेदी बाण बहुत अच्छा मारता है । एक दिन सभा नियत हुई और सात लोहे के तावे बाण से फोड़ने को रखे गए । पृथ्वीराज को लोगों ने पहले ही से अंधा कर दिया था । संकेत यह हुआ कि जब गियासुद्दीन हूँ करे तब वह तावों पर बाण मारे, चंद कवि भी उसके साथ कैदी था । यह सामान देखकर उसने यह दोहा पढ़ा । ''अबकी चढ़ी कमान, को जानै फिर कब चढ़ै । जिनि चुक्कै चौहान, इक्कै मारय इक्क सर ।।'' उसका संकेत समझकर जब गियासुद्दीन ने हूँ किया तो पृथ्वीराज ने उसी को बाण से मार दिया । वहीं बात अब है । अबकी चढ़ी इस समय में सर्कार का राज्य पाकर और उन्नति का इतना समय भी तुम लोग अपने को न सुधारो तो तुम्हीं रहो । और वह सुधारना भी ऐसा होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो । धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में, शिष्टाचार में, चाल चलन में, शरीर के बल में, मन के बल में, समाज में, बालक में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरुष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति सब देश में उन्नति करो । सब ऐसी बातों को छोड़ो तो तुम्हारे इस पथ के कंटक हों, चाहे तुम्हें लोग निकम्मा कहैं या नंगा कहैं, कृस्तान कहैं या भ्रष्ट कहैं । तुम केवल अपने देश की दीनदशा को देखो और उनकी बात मत सुनो ।

अपमान पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठत: ।
स्वकार्य्यं साधयेत् धीमान् कार्य्यध्वंसो हि मूर्खता ।।

जो लोग अपने को देशहितैषी लगाते हों वह अपने सुख को होम करके, अपने धन और मान का बलिदान करके कमर कस के उठो । देखादेखी थोड़े दिन में सब हो जायगा । अपनी खराबियों के मूल कारणों को खोजो । कोई धर्म की आड़ में, कोई देश की चाल की आड़ में, कोई सुख की आड़ में छिपे हैं । उन चारों को वहाँ वहाँ से पकड़ पकड़ कर लाओ । उनको बाँध बाँध कर कैद करो । हम इससे बढ़कर क्या कहें कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरुष व्यभिचार करने आवै तो जिस क्रोध से उसको पकड़कर मारोगे और जहाँ तक तुम्हारे में शक्ति होगी उसका सत्यानाश करोगे । उसी तरह इस समय जो जो बातें तुम्हारे उन्नति पथ में काँटा हों उनकी जड़ खोद कर फेंक दो । कुछ मत डरो । जब तक सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जात से बाहर न निकाले जायँगे, दरिद्र न हो जायँगे, कैद न होंगे वरंच जान से न मारे जायँगे तब तक कोई देश भी न सुधरैगा ।

अब यह प्रश्न होगा कि भाई हम तो जानते ही नहीं कि उन्नति और सुधारना किस चिड़िया का नाम है । किसको अच्छा समझैं ? क्या लें, क्या छोड़ें ? तो कुछ बातें जो इस शीघ्रता में मेरे ध्यान में आती हैं उनको मैं कहता हूँ, सुनो —

सब उन्नतियों का मूल धर्म है । इससे सबके पहले धर्म की ही उन्नति करनी उचित है । देखो, अँगरेजों की धर्मनीति और राजनीति परस्पर मिली है, इससे उनकी दिन दिन कैसी उन्नति है । उनको जाने दो, अपने ही यहाँ देखो ! तुम्हारे यहाँ धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, समाज-गठन, वैद्यक आदि भरे हुए हैं . दो एक मिसाल सुनो । यही तुम्हारा बलिया का मेला और यहाँ स्नान क्यों बनाया गया है ? जिसमें जो लोग कभी आपस में नहीं मिलते, दस दस पाँच-पाँच कोस से वे लोग साल में एक जगह एकत्र होकर आपस में मिलें । एक दूसरे का दु:ख सुख जानें । गृहस्थी के काम की वह चीजें जो गाँव में नहीं मिलती, यहाँ से ले जायँ । एकादशी का व्रत क्यों रखा है ? जिसमें महीने में दो एक उपवास से शरीर शुद्ध हो जाय । गंगा जी नहाने जाते हो तो पहिले पानी सिर पर चढ़ा कर तब पैर डालने का विधान क्यों है ? जिसमें तलुए से गरमी सिर में चढ़कर विकार न उत्पन्न करे । दीवाली इसी हेतु है कि इसी बहाने साल भर में एक बेर तो सफाई हो जाय । यही तिहवार ही तुम्हारी मानो म्युनिसिपालिटी हैं।ऐसे ही सब पर्व सब तीर्थ व्रत आदि में कोई हिकमत है । उन लोगों ने धर्मनीति और समाजनीति को दूध पानी की भाँति मिला दिया है । खराबी जो बीच में भई है वह यह है कि उन लोगों ने ये धर्म क्यों मानन लिखे थे, इसका लोगों ने मतलब नहीं समझा और इन बातों को वास्तविक धर्म मान लिया । भाइयो, वास्तविक धर्म तो केवल परमेश्वर के चरणकमल का भजन है । ये सब तो समाजधर्म हैं जो देशकाल के अनुसार शोधे और बदले जा सकते हैं । दूसरी खराबी यह हुई कि उन्हीं महात्मा बुद्धिमान ऋषियों के वंश के लोगों ने अपने बाप दादों का मतलब न समझकर बहुत से नए नए धर्म

बनाकर शास्त्र में धर दिए । बस सभी तिथि ब्रत और सभी स्थान तीर्थ हो गए । सो इन बातों को अब एक बेर आँख खोलकर देख और समझ लीजिए कि फलानी बात उन बुद्धिमान ऋषियों ने क्यों बनाई और उनमें देश और काल के जो अनुकूल और उपकारी हो उसको ग्रहण कीजिए बहुत सी बातें जो समाज-विरुद्ध मानी हैं किंतु धर्मशास्त्रों में जिनका विधान है उनको चलाइए । जैसे जहाज का सफर, विधवा विवाह आदि । लड़कों को छोटेपन ही में ब्याह करके उनका बल, वीर्य, आयुष्य सब मत घटाइए । आप उनके माँ बाप हैं या उनके शत्रु हैं । वीर्य उनके शरीर में पुष्ट होने दीजिए, विद्या कुछ पढ़ लेने दीजिए, नोन, तेल, लकड़ी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लेने दीजिए, तब उनका पैर काठ में डालिए । कुलीन प्रथा, बहुविवाह को दूर कीजिए । लड़कियों को भी पढ़ाइए, किंतु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती हैं जिससे उपकार के बदले बुराई होती है । ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुलधर्म सीखें, पति की भक्ति करें, और लड़कों को सहज में शिक्षा दें । वैष्णव शक्ति इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का वैर छोड़ दें । यह समय इन झगड़ों का नहीं । हिंदू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए । जाति में कोई चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए, जो जिस योग्य हो उसको वैसा मानिए । छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए । सब लोग आपस में मिलिए ।

मुसलमान भाइयों को भी उचित है कि इस हिंदूस्तान में बस कर वे लोग हिंदुओं को नीचा समझना छोड़ दें । ठीक भाइयों की भाँति हिंदुओं से बरताव करें । ऐसी बात, जो हिदुओं का जी दुखाने वाला हो, न करें । घर में आग लगै तब जिठानी-द्यौरानी को आपस का डाह छोड़कर एक साथ वह आग बुझानी चाहिए । जो बात हिंदुओं को नहीं मयस्सर हैं वह धर्म के प्रभाव से मुसलमानों को सहज प्राप्त हैं । उनमें जाति नहीं, खाने पीने में चौका चूल्हा नहीं, विलायत जाने में रोक टोक नहीं । फिर भी बड़े ही सोच की बात है, मुसलमानों ने अभी तक अपनी दशा कुछ नहीं सुधारी । अभी तक बहुतों को यही ज्ञान है कि दिल्ली लखनऊ की बादशाहत कायम है । यारो ! वे दिन गए । अब आलस हठधर्मी यह सब छोड़ो । चलो, हिंदुओं के साथ तुम भी दौड़ो, एकाएक दो होंगे । पुरानी बातें दूर करो । मीरहसन की मसनवी और इंदरसभा पढ़ाकर छोटेपन ही से लड़कों को सत्यानाश मत करो । होश सम्हाला नहीं कि पट्टी पार ली, चुस्त कपड़ा पहना और गजल गुनगुनाए । "शौक तिफ्ली से मुझे गुल की जो दीदार का था । न किया हमने गुलिस्ताँ का सबक याद कभी" । भला सोचो कि इस हालत में बड़े होने पर वे लड़के क्यों न बिगड़ैंगे । अपने लड़कों को ऐसी किताबें छूने भी मत दो । अच्छी से अच्छी उनको तालीम दो । पिनशिन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो । लड़कों को रोजगार सिखलाओ । विलायत भेजो । छोटेपन से मिहनत करने की आदत दिलाओ । सौ सौ महलों के लाड़ प्यार दुनिया से बेखबर रहने की राह मत दिखलाओ ।

भाई हिंदुओ ! तुम भी मतमांतर का आग्रह छोड़ो । आपस में प्रेम बढ़ाओ । इस महामंत्र का जप करो । जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू । हिंदू की सहायता करो । बंगाली, मरहट्ठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मो, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो । कारीगरी जिसमें तुम्हारे यहाँ बढ़े, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहै वह करो । देखो, जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली हैं, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंगलैंड फरासीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती हैं । दीआसलाई ऐसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है । जरा अपने ही को देखो । तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो वह अमेरिका की बनी है । जिस लंकिलाट का तुम्हारा अंगा है वह इंगलैंड का है । फरासीस की बनी कंघी से तुम सिर झारते हो और वह जर्मनी की बनी चरबी की बत्ती तुम्हारे सामने बल रही है । यह तो वही मसल हुई कि एक बेफिकरे मँगनी का कपड़ा पहिनकर किसी महफिल में गए । कपड़े की पहिचान कर एक ने कहा, 'अजी यह अंगा फलाने का है' । दूसरा बोला, 'अजी टोपी भी फलाने की है ।' तो उन्होंने हँसकर जवाब दिया कि, 'घर की तो मूछैं ही मूछैं हैं ।' हाय अफसोस, तुम ऐसे हो गए कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते । भाइयो, अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो । जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो । परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो । अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो ।

संगीत सार

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड-२ संख्या ८-११ सितम्बर सन् १८७५ में छपा । बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित । — सं.

भारतवर्ष की सब विद्याओं के साथ यथाक्रम संगीत का भी लोप हो गया । यह गानशास्त्र हमारे यहाँ इतना आदरणीय है कि सामवेद के मंत्र मात्र गाए जाते हैं । हमारे यहाँ वरंच यह कहावत प्रसिद्ध है 'प्रथम नाद तब वेद' । अब भारतवर्ष का संपूर्ण संगीत केवल कजली ठुमरी पर आ रहा है । तथापि प्राचीन काल में यह शास्त्र कितना गंभीर था यह हम इस लेख में दिखलावेंगे ।

गाना, बजाना, बताना और नाचना इस के समुच्चय को संगीत कहते हैं । प्राचीन काल में भरत, हनुमत्, कलनाथ और सोमेश्वर यह चार मत संगीत के थे । कोई कोई शारदा, शिव, हनुमत और भरत यह चार मत कहते हैं । सात अध्यायों में यह शास्त्र बँटा है । जैसे स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोक और हस्त । सम्यक् प्रकार से जो गाया जाय उसे संगीत कहते हैं, धातु और मातु संयुक्त सब गीत होते हैं । नादात्मक धातु और अक्षरात्मक मातु कहलाते हैं । वह गीत यंत्र और गात्र विभाग से दो तरह के हैं । बीना बेनु इत्यादि से जो गाया जाय वह यंत्र और कंठ से जो गाया जाय वह गात्र गीत है । गीत निबद्ध और अनिबद्ध दो प्रकार के होते हैं, अक्षरों के नियम और गमक के नियम बिना अनिबद्ध और ताल मान गमक अक्षर रसादि के नियम सहित निबद्ध । शुद्ध, शालंग और संकीर्ण के भेद से यह गीत तीन प्रकार के हैं परंतु यह भेद प्रबंध हीके होते हैं । शुद्ध के एलादिक बीस भेद हैं, यथा एला, सोध्यभवा, पाट करण, पंच, तालेश्वर, कैरात, स्मर, चक्रपाल, विजया, गद्य, त्रिभंगी, टेंकौ, वर्णपुट, सर्गपुट, द्विपदिका, मुक्तावली, माहका, लंब, दंडक ओर वर्त्तनी । इन गीतों के छ अंग हैं यथा पद, तान, बिरूद, ताल, पाट और स्वर । ध्रुवक, मंडक प्रतिमंडक, नि:सारक, वासक, प्रतिलाभ, एकतालिका, यति और भ्रूमरी ये शालग के भेद हैं । चैत्र, मंगलक, नगनिका, चर्च्चा, अतिनाट, उन्नवी, दोहा, बहुला, गुरुबला, गीता, गोवि, हेम्ना, कोपी, कारिका, त्रिपदिका और अधा ये संकीर्ण के भेद हैं । गीत प्रबंध में अक्षरों के मात्राशुद्धि पुनरूक्ति इत्यादि दोष नहीं होते । गाना बजाना सब दो प्रकार का होता है, एक ध्वन्यात्मक दूसरा रागात्मक । रागात्मक चार प्रकार के होते हैं, यथा स्वर प्रधान अर्थात् स्वर के आग्रह से जिसमें ताल की मुख्यता न रहै, दूसरा उभय प्रधान जिसमें ताल बराबर रहे और स्वर भी सुंदर हों, तीसरा शुद्धता प्रधान जिस में राग के शुद्ध रूप रहने का आग्रह हो चाहै माधुर्य हो चाहै न हो, चौथा माधुर्य प्रधान जिस में राग का शुद्ध रूप कुछ बिगड़े पर माधुर्य रहै ।

स्वर —षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात हैं । मयूर, गऊ, बकरी, क्रौंच, कोकिल, अश्व और हाथी इनके शब्द में क्रम से पूर्वोक्त स्वर निकलते हैं । नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दंत छ स्थान से जो उत्पन्न हो वह षड्ज, (ऋषीशगतौ) स्वर को गति नाभि से सिर तक पहुँचै इससे ऋषभ, गंधवाही वायु की नलिकाओं में वह स्वर पूर्ण हो इस से गांधार, फिर वह स्वर मध्य अर्थात् नाभि तक प्राप्त हो इस से मध्यम, (धयतिस्वरान् इति धैवत) मध्यम के आगे भी जो स्वरों को खींचै वह धैवत, पूर्वोक्त पाँचों सुरों को पूर्ण करै वा पंचम स्थान मूर्द्धा तक पहुँचे वह पंचम और (निषीदन्तिस्वरा अस्मिन् इति निषाद:) स्वरों का जिस में विराम हो अर्थात् जिस से ऊँचा और कोई स्वर न हो वह निषाद । इन्हीं सातों सुरों

के प्रथमाक्षर[1] से स रि ग म प ध नि ये सात स्वर वर्ण नियत हुए । षड्ज, पंचम और मध्यम में चार, ऋषभ-धैवत में तीन और गांधारनिषाद में दो श्रुति हैं । संपूर्ण स्वर सरिगमपधनि । खाड़व निषाद बिना अर्थात् सरिगमपध और उड़व ऋषभ और पंचम बिना अर्थात् सगमधनि । नाटवसंतादि संपूर्ण राग सातो सुर से, खाड़व राग छः सुर से और उड़व पाँच सुर से गाए जाते हैं । नाम के क्रम से रखने से इनका प्रस्तार होता है और नष्ट, उद्दिष्ट, मेरू, मर्कटी, पताका, सूची, सप्तसागर इत्यादि में इसका विस्तार होता है ।

राग —जैसे रास में वंशी के सात रंध्रों से सात सुरों की उत्पत्ति मानते हैं वैसे ही रास में १६०८ गोपियों के गाने से सोलह सौ आठ तरह के राग हैं, जो एक एक मुख्य से दो सौ अट्ठाईस तरह के होकर बने हैं । भरत और हनुमत मत से छ राग भैरव, कौशिक (मालकोस), हिंदोल, दीपक, श्रा और सोमेश्वर, और कलानाथ के मत से छ राग श्री, बसंत, पंचम, भैरव, मेघ और नटनारायण । पूर्वमत में प्रत्येक राग को पाँच रागिनी, पर मत में छ रागिनी आठ पुत्र और एक एक पुत्र-भार्या । अन्य मत से मालव, मल्लार, श्री, बसंत, हिल्लाल और कर्णाट ये छ राग हैं । मालव की रागिनी धानसी, मालसी, रामकीरी, सिंधुड़ा, भैरवी और आसावरा । मल्लार की बेलावला, पूर्वा, कानड़ा, माधवी, कोंड़ा और केदारिका । श्री की गांधारी, शुभगा, गौरी, कौमारिका, बेलवारी, और बैरागी । बसंत की टोड़ी, पंचमी, ललिता, पटमञ्जरी, गुज्जरी और बिभाषा । हिल्लोल की मायूरी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, बराडी और मोरहारी । कर्णाट की नाटिका, भूपाली, रामकली, गडा, कामादा और कल्यानी । इन में बराड़ी, मायूरी, कोड़ा, वैरागी, धानुधी, बेलावली और मोरहारी मध्यान्ह को, गांधारी, दीपिका, कल्यानी, पूरबी, कान्हड़ा, शाखी, गौरी, केदारा, पाहड़ी, मालसी, नाटी, मायूरी, भूपाली और सिंधुड़ा साँझ को और बाकी सबेरे गाना । राग छओ तीसरे पहर से आधीरात तक । वर्षा में मल्लार और बसंतपंचमी से रामनवमी तक बसंत और वामन द्वादशी से विजयदशमी तक मालसी यह समय नियत है । बेलावली, गांधारी, ललिता, पटमंजरी, वैरागा, मोरहाटी और पाहिड़ी (पहाड़ी) यह करुणा में, पूरबी, कान्हड़ा, गौरी, रामकीरी, दापिका, आसावरी, विभाषा, वडारी और गड़ा यह बीर में, शेष शृंगाररस में गाना । वैसेही, मालव, श्री, हिल्लोल और मल्लार शृंगार में और बसंत और कर्णाट वीररस में गाना । वह पूर्वोक्त अन्य मत दक्षिण में प्रचलित है इधर नहीं । कहते हैं कि शिव, शारद, नारद और गंधर्व यह चार मत पृथक् हैं । इधर हनुमत् और भरत मत मिल के प्रचलित हैं । हनुमत् मत से प्रथम राग भैरव, उसका ध्यान महादेवजी की भाँति, उत्पत्ति शिवजी के मुख से, जाति उड़व अर्थात् धनिसगम, यह पंचस्वर, गृहधैवत्, गाने का समय शरतऋतु में प्रातः काल, भैरवी, बंगाली, बगरी, मधुमाधवी और सिंधवी यह पाँच रागनी, हर्ष, तिलक, सूहा, पूरिया, माधव, बलनेह, मधु और पंचम ये आठ पुत्र । कलानाथ-मत से यह चतुर्थराग, इनकी भैरवी, गुर्जरी, भासा, विलावली, कर्णाटी और बड़हंसा यह छ रागिनी, देवशाख, ललित, मालकोस, बिलावल, हर्ष, माधव, बलनेह, और मधु ये आठ पुत्र । सोमेश्वर-मत से भैरवी, गुनकली, देवा, गूजड़ि, बंगाली और बहुली ये छ रागिनी और गाने का समय ग्रीषम् । भरत-मत से ललिता, मधुमाधवी, बरारी, बाहाकली और भैरवी यह पाँच रागिनी, देवशाख, ललित, विलावल, हर्ष, माधव, बंगाल, विभास और पंचम ये आठ पुत्र, सूहा, विलावली, सोराठी, कुंभारी, अंदाही, बहुलगूजरी, पटमंजरी, मिरवी यह आठ पुत्र-भार्या, मतांतर से भैरवी, बंगाली, वैरागी मध्यमा, मधुमाधवी और सिंधवी यह छ रागिनी, कोशक, अजयपाल, श्याम, खरताप, शुद्ध, और टोल यह छ पुत्र, अष्टी, रेवा, बहुला, साहिनी, रामेली और सूहा यह छ पुत्रबधू । सब मतों से रागों का परस्पर भेद दिखाकर अब केवल प्रसिद्ध अनुमत् और भरत मत सब रागों का वर्णन करते हैं । मालकोस भरत मत से दूसरा राग है, विष्णु के कंठ से निकला है, संपूर्ण जाति, स्वर सातो सरिगमपधनि, गृह षड्ज स्वर, शरदऋतु में पिछली रात को गाने का समय, ध्यान युवा गौर पुरुष, इसकी रागिनी हनुत मत से यथा —टोड़ी, गुनकली, गौरी, खंभावती और ककुभ, आठ पुत्र यथा मारू, मेवाड़, बड़हंस, प्रबल, चंद्रक, नंद, भ्रमर और खुखर । भरत मत से गौरी, दयावती, देवदाली, खंभावती और ककुभ रागिनी, और गांधार, शुद्ध, मकर, त्रिछन, महाना, शक्रवल्लभ, माली और कामोद पुत्र, घनाश्री, मालश्री, जयश्री, सुधवारी, दुर्गा, गांधारी, भीमपलासी और कामोद, आठ पुत्र आर्या । हिंदोल भरत मत से द्वितीय और हनुमत से तृतीय राग है, उत्पत्ति ब्रह्मा के शरीर से, जाति उड़व, स्वर

१. 'ष' 'ऋ' के उच्चारण की सुगमता के हेतु 'स' 'रि' माना है ।

सगमपध पाँच, गृह षड्ज, गान समय बसंत ऋतु दिन का प्रथम भाग, ध्यान स्वर्ण वर्ण हिंडोले पर झूलता हुआ। हनुमत् मत से रागिनी रामकली, देखाखी, ललिता, बिलावली और पटमंजरी, पुत्र चंद्रविंब, मंडल, शुभ, आनंद, विनोद, गौर प्रधान और विभास। भरत मत से रागिनी रामकली, मालवती, आशावरी, देवारी और गुनकली, पुत्र बसंत, मालव, मोरु, कुशल, लंकादहन, बखार बंध, नागधुन और धवल, पुत्रबधू लीलावती, कैरवी, चैती, पारावती, पूरबी, तिरवरी, देवगिरि और सुरमती। दीपक हनुमत् मत से दूसरा और भरत मत से चतुर्थराग, सूर्य के नेत्र से उत्पत्त, जाति संपूर्ण, स्वर सरिगमपधनि सात, गृह षड्ज, गाने का समय ग्रीष्म का मध्यान्ह, हाथी पर सवार वीरवेष। हनुमत मत से रागिनी इसकी देसी, कामोद, केदार, कान्हरा और कर्नाटी, पुत्र कुंतल, कमल, कलिंग, चंपक, कुसुंभ ; राम, लहिल और हिम्माल। श्री राग दोनों मतों से पाँचवाँ राग, जाति संपूर्ण, सात स्वर सरिगमपधनि, गृह षड्ज, समय हेमंत की संध्या, ध्यान सुंदर सिंहासनारूढ़ पुरुष। हनुमत् मत से रागिनी मालश्री, मारवा, धनाश्री, बसंत और आशावरी, पुत्र सिंधु, मालव, गौड़, गुनसागर, कुंभ, गंभीर संकर और विहाग, भरत मत से रागिनी सिंधवी, काफी, देसी, विचित्रा और सोरठी, पुत्र श्री रमण, कोलाहल, सामंत, संकर, राकेश्वर, खट, बड़हंस और देशकार (मतांतर से हम्मीर और कल्याण भी), पुत्र भार्य्या कुंभा, सोहनी, शारदा, ध्याया, शशिरेखा, सरस्वती, क्षमा और वैया। मेघ दोनों मत से छठा राग, ध्यान श्यामरंग, शोणित-खड्ग-हस्त, जाति उड़व, पंचस्वर यथा ध नि स रि ग, गृह धैवत, गान-समय वर्षा की रात्रि, रागिनी टंक, मदपारी, गूजरी, भूपाली और देशी, पुत्र जालंधर, सार, नटनारायन, शंकराभरण, कल्याण, गजधर, गांधार और सहान, भरत मत से पाँच रागिनी मलारी, मुलतानी, देशी, रतिवल्लभा और कावेरी, पुत्र यथा कलायर, वागेश्वरी, सहाना, पूरिया, तिलक, कान्हरा, स्तंभ, शंकराभरण, पुत्रबधू, यथा कर्नाटी, कादवी, ककल्लनाट, पहाड़ी, माँझ, परज, नटभंजी, शुद्ध नट। यह छ रागों का वर्णन हुआ। अब और बातों का भी वर्णन करते हैं।

मूर्च्छना वह वस्तु है जो खरज से ऋषभ तक पहुँचने में जहाँ स्वर बदलैगा वहाँ लगै। यह तो हनुमत् मत से है। भरत मत से स्वरों के गान में गले का काँपना मूच्छर्ना है। और मतों से ग्राम का सातवे भाग का नाम मूर्च्छना है। षड्ज ग्राम की मूर्च्छना, यथा ललिता, मध्यमा, चित्रा, रोहिनी, मतंगजा, सौवीरा। मध्यम ग्राम की मूर्च्छना, यथा पंचमी, मत्सरी, मधु, मध्या, शुद्धा, अन्ता, कलावती और तीव्र। गांधार ग्राम की मूच्छना ७ यथा रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, स्वेदरी, सुरा, नादावती और विशाला। इन्हीं मूर्च्छनाओं का जहाँ शेष में विस्तार होता है उन को तान कहते हैं। वे ४९ हैं। इन्हीं में स्वरों के मेल से कूटतान होती हैं। इन मूर्च्छनाओं के जनक तीन ग्राम है — षड्ज, मध्यम, गंधार। इन तीन ग्रामों में पूर्व दो पृथ्वी पर और अंत का स्वर्ग में गाया जाता है।

श्रुति वह वस्तु है जो स्वरों का आरंभ करती हैं और सूक्ष्मरूप से स्वरों में व्याप्त रहती हैं। ये ४ षड्ज में, ३ ऋषभ में, २ गांधार में, ४ मध्यम में, ४ पंचम में, ३ धैवत में, २ निषाद में, यही २२ श्रुति हैं। कोमल, अति कोमल, समान, तीव्र, तीव्रतर से रीति रागों में यथा रीति सुर बरते जाते हैं और जहाँ सूक्ष्म और स्फुट स्वर लगते हैं वहाँ कालकी कहलाती हैं। लोगों का चित्त रंजन करते हैं इससे इन की राग संज्ञा है और जहाँ राग रागनियों के ध्यान रूप क्रिया आदि लिखे हैं, उनका आशय यह है कि वैसे अवसर पर वे राग योग्य होते हैं। जैसे भैरवी का ध्यान है कि स्वेत वस्त्रा सवेरे शिव पूजन करती है, तो जानो कि ऐसे ही सवेरे शिव-पूजन के अवसर में इसका गाना उत्तम है।

हमारे प्रबंध के पढ़नेवालों को एक ही रागिनी का नाम बारंबार कई रागों में देखकर आश्चर्य्य होगा। इसमें हमारा दोष नहीं, यह संगीत शास्त्र के प्रचार की न्यूनता से ग्रंथों में गड़बड़ हो गई है। कोई अन्वेषण करने वाला हुआ नहीं, जो ग्रंथकारों को मिला वा उन्होंने सुना लिख दिया। यह तो जब अपने गले वा हाथ से करता हो और ग्रंथों को भी जानता हो वह एक बेर निर्णय कर के लिखै तब यह सब ठीक हो जाय।

ताल। समय का सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़ा से बड़ा समान विभाग ताल है। विचार करके देखो तो छंदों की प्रवृत्ति भी ताल ही से होगी। एक गिरह की लकीर खींचो तो इस बिंदु से लकीर के उस बिंदु तक उँगली ले जाने में जो काल लगैगा वह ताल ठहरा और उसी गिरह भर के बाल बराबर मोटे जितने सूक्ष्म भाग हैं उनके प्रति भाग पर जो काल लगा वह भी ताल है। पर ऐसे सूक्ष्म और ऐसे गुरु जिन के बरताव में काल का स्मरण न रहे वह कुछ काम नहीं आते। सिद्धांत यह कि गाने के अनुकूल समय का विभाग ही ताल है। नृत्य, गान वा

वाद्य को नियमित काल से उठाना, नियमित काल पर समाप्त करना । उसी नियमित काल को अनेक समान भागों पर बाँट देने की जो क्रिया है वह ताल है । महादेव जी के नृत्य तांडव और पार्वती जी के नृत्य लास्य का प्रथमाक्षर लेकर ताल शब्द बना है, वा तल नाम हाथ की हथेली वा पद-तल इस का भाव ताल है ; क्योंकि प्रायः ताल विन्यास हाथ वा पैर ही से होता है । तालों के बनाने को चार मात्रा की कल्पना है, एक नियमित काल ही मात्रा होती है । अर्द्ध मात्रा की द्रुत, एक मात्रा की लघु, दो मात्रा की गुरु और और तीन मात्रा की लुप्त संज्ञा है । चंचत्पुट, चारुपुट इत्यादि साठ ताल के मुख्य और एकसौ एक गौण भेद संगीतदामोदर वाले शुभंकर ने किये हैं । इन चार मात्राओं पर अंगुल्यादि से संकेत करके ये ताल बनते हैं और इन्हीं मात्राओं को जहाँ बीच बीच में छोड़ देते हैं और काल के समाप्त का चिन्ह बीच में नहीं करते फिर दूसरे तीसरे इत्यादि पर चिन्ह करते हैं तो उस बीच में छूटे हुए काल में जहाँ नियमित मात्रा समाप्त होती हैं पर प्रगट नहीं की जातीं उसे ख वा खाली कहते हैं । एक नियम काल कल्पित मात्रा के ताल समाप्त होने पर फिर से वही ताल आरंभ करने को इन दोनों की मित्रतासूचक जो बीच का एक नियमित समान काल है वह भी ख अर्थात् खाली कहलाता है । चंचत्पुट ताल में दो गुरु एक लघु और एक प्लुत हैं, एक एक गुरु लघु और प्लुत चारुपुट में हैं, ऐसे ही सब तालों का प्रस्तार है । जहाँ मात्रा के काल अनुसार तान की समाप्ति होती है उसको सम कहते हैं । इन चौसठ तालों के अतिरिक्त आठ अष्टताल, ग्यारह रुद्रताल, चार ब्रह्मताल और चौदह इंद्रताल हैं । रुद्रताल का प्रथम भेद वीरविक्रम यथा एक मात्रा एक शून्य ऐसी तीन आवृत्ति फिर दोताल यह वीरविक्रम हुआ । ऐसे ही सब ताल यथा मात्रानुसार जानो । आज कल प्रसिद्धताल चौताला, तिताला, एकताला, आड़ा, रूपक, झपताल इत्यादि हैं ।

(झाँझ) मुख्य हैं । तत यथा अलाबुनी, ब्रह्मबीना , किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपंची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, ज्योतिष्मती, जया, हस्तिका, कुब्जिका, कूर्मी, शारंगी, परिवादिनी, त्रिशरी, शतचंद्री, नकुलौष्ठी, टंसरी, उडम्बरी, पिनाकी, निवंध, तानपुर, स्वरोद, स्वरमंडल, स्वरसमुद्र, शुष्कल, रुद्र, गदावरण, हस्तक, विलास्य, मधुस्पन्दी और घोण इत्यादि । वीणा के तीन भेद हैं यथा वल्लकी, पंचतंत्री (विपंची) और परिवादिनी । धनिमाला, रंगमल्ली, घोषवती, कंठकूजिका और विद्युत ये वीणा ही के नामांतर हैं । वीणा के सात भेद और हैं यथा नारद की महती, दीव की लम्बी, सरस्वती की कच्छपी, तुंबरु की कलावती, विश्वावसु की बृहती और चांडालों की कंडील बीना अथवा चांडाली । (इसका प्रयोजन शव क्रिया के समय पड़ता था) । वीणा के अंग को कोलंबिक, बंधन को उपनाह, दंड को प्रवाल, बगल के काठ को ककुभ और प्रसेवक और वंशशाला, काकलिका, कूनिका, मेरु इत्यादि और वस्तुओं को कहते हैं । सुशिर यथा वंशी, मुरली, वेणु (तीनों वंशी के भेद), पारी, मधुरी, तित्तरी, शंख, काहला, तोंमड़ी, निषंग, बुक्का, शृंगिका, मुखचंग, स्वरनाभि, आवर्त्ती, शृंग, कापालिका, चर्म्मवंश, स्वरनादी (सैनाई), वक्रगला, चर्म्मदेहा और गलस्वरा इत्यादि । वेणु रक्तचंदन, खैर, चंदन, स्वर्ण, चाँदी, तामा, लोहा और कठिन पाषाण का होता है परंतु बाँस का सब से उत्तम है । मतंग मुनि के मत से बाँसही का वेणु होता है । दस अंगुल का वेणु महानंद, इसके ब्रह्मा देवता, ग्यारह अंगुल का नंद इसके रुद्र देवता, बारह अंगुल का विजय इसके सूर्य्य देवता और चौदह अंगुल का जय इसके विष्णु देवता । वंशी की फूँक में निविड़ता, प्रौढ़ता, सुस्वरता, शीघ्रता और मधुरता ये पाँच गुण हैं और सीत्कार-बाहुल्य, स्तब्ध, विस्वर, खंडित, लघु और अमधुर ये छ दोष हैं । तेरह और सत्रह अंगुल की वंशी नहीं बनाना इसमें आचार्यों ने दोष माना है । कानी उँगली जा सकै इतना बीच का छेद (पोलापन) रहै, यह छेद आरपार रहै पर सिर की ओर किसी वस्तु से अवरुद्ध वा बंधनांतर संयुक्त रहै, सिरे से एक अंगुल वा दो अंगुल छोड़ कर स्वर का छेद करना, फिर पाँच अंगुल छोड़कर सात सुर के सात छेद आधे आधे अंगुल पर बैर के बीज बराबर करै, दोनों ओर तार वा चर्म्मतार से वंशी को बाँधे और बीच में सिक्कक (छींके) स्वर की मधूर और श्रुति

संगीत के पूर्वोक्त तीन भेद अर्थात् स्वर, राग और ताल गले के अतिरिक्त वाद्यो से भी संपादित होते हैं, अतएव अब वाद्यों का वर्णन करते हैं । बाजों के चार भेद है, यथा तत, सुशिर, आनद्ध और घन । नए मत से अर्थात् कालानुसार दो भेद और कर सकते हैं, यथा समष्टि और स्वयं वह । तार से जो बजैं वह तत यथा वीणादिक । फूँकने से बजें वह सुशिर यथा वंशी इत्यादि । चमड़े से मढ़े हों वह आनद्ध यथा मृदंगादिक । कांसादिक से जो ताल सूचक हों वह 'घन' यथा झाँझ आदि । ये चारों वा तीन वा दो जिस में मिले हों वह

समष्टि यथा हारमोनियम आदि और जो ताली इत्यादि से बजे वह स्वयंवह यथा अरगन आदि । ये सब वाद्य तीन भेद में विभक्त हैं यथा स्वर वाही, ताल वाही और अभय वाही । तम्बूरादिक स्वर वाही, झाँझ इत्यादि ताल वाही, वीणादिक उभय वाही । इन चारों में तत में वीणा शुसिर में वंशी, आनद्ध में मृदंग और घन में ताल उत्पन्न करने को लगावै । अयुक्ति वद्धयुक्त और युक्ति (अर्थात् छिद्रों को बंद करना खोलना और उसस श्रुति लय तान इत्यादि किंचित् बंद करके निकालना) ये तीन अंगुलिक्रिया हैं और अकम्पत्व और सुस्वरत्व ये दो अंगुली के गुण हैं । गाने वालों को सहायता देना, स्थान देना, उन के दोष छिपाना और जिन स्वरों पर गला न पहुँचै वे स्वर निकालने ये चार इस में लाभ हैं । भगवान को तीन वंशी हैं यथा घर में बजाने की १२ अंगुल की मुरली संज्ञक, श्री गोपीजन को बुलाने की १८ अंगुल की बंशी संज्ञक और गऊ बुलाने की एक हाथ की वेणु संज्ञक । इससे ज्ञात होता है, वेणु का प्रमाण एक हाथ तक है । आनद्ध में मर्दल, अर्द्ध मर्दल, मर्दल खंड, ढलक, मुरज, ढक्का, पटह, बिबक, दर्पवाद्य, पवन, घन, रुञ्व, कलास, विकलास, टाकली, अर्द्धटाकली, झल्ली, दुकुल्ली, दौंडिशान, डमरू, तुंवुर, टमुकिड़्डु, कुंडली, स्तंक, अभिघट, रज, दुंदुभी, टुटुकी, ददुर, उपांग, खंजरीट और करचंग ये सब हैं। इनमें मर्दल (मृदंग श्रेष्ठ है । मर्दल खैर के काठ का अच्छा होता है । चमड़े की डारी से मेरू संयुक्त कर के दोनों मुँह मढ़ा कर कसना । मढ़ने के पीछे छ महीने तक न बजाना । काठ का दल आध अंगुल मोटा हो और बाईं पूरी दस वा बारह अंगुल चौड़ी हो तथा दहिनी उस के एक वा आधी अंगुल छोटी हो । बाईं ओर तो पिसान की पूरी चिपकाना और दहिनी ओर खरली (खली) की पूरी लगा के सुखा देना । वह खरली — राख, गेरू, भात और केंदुक (गालव, शायद भाषा में केंदुआ कहते हैं) की हो वा चिपीटक (चूड़ा ?) में जीवनीसत्व (?) मिला कर लगाना । मट्टी का हो तो मृदंग कहलाता है । इसमें घाट, विधि पाट, कूटपाट और खंड पाट ये चार प्रकार के वर्ण हैं और यति, उढ़व अवच्छेद, गजर, रूपक, ध्रुव, गलप, सारिगोंनी, नाद, कथित, प्रहरन और वृंदन ये बारह प्रबंध हैं । घन में करताल, कांस्यताल, कम्बिका, जयघंटा, शुक्तिका, पटवाद्य, पट्टातोघ, घर्घर, दंदा, झंझा, मज्जीर, कर्तरी, अंकुर, काष्टताल, प्रस्तरताल, दंतताल, जलतरंग, तालतरंग, पात्रतरंग, त्रिकोणघंटा, डोलक इत्यादि हैं । घन के दो भेद हैं । अनुरक्त वह जिन में गीतों का अनुगमन हो और विरक्त वह जो केवल ताल दें । लड़ाई में वीरों का गर्जन और ये चार वाद्य बजते हैं, इससे लड़ाई की पंच वाद्य संज्ञा है ।यह वाद्यों का साधारण वर्णन हुआ । ऐसे ही अनगिनती वाद्य हैं, जो अब नाम मात्रावशेष हैं । उनके रंग रूप की किसी को खबर नहीं ।

संगीत का चौथा अंग नृत्य है । ताल, मान, रस, भाव, हास, बिलास, वाद्यादि संयुक्त अंग विक्षेप का नाम नृत्य, इसके दो भेद तालाश्रित नृत्य और भावाश्रित नृत्त । नृत्य मधुर हो तो लास्य और उत्कट हो तो तांडव कहलाता है । तांडव के पेरली और बहुरूप ये दो भेद हैं । जिनमें अंग बहुत चलैं और अभिनय थोड़ा हो वह पेरली, इसी की देशी भी संज्ञा है । जहाँ अभिनय बहुत हो और रूपांतर धारण इत्यादि किया हो वह बहुरूप । लास्य के छुरित और यौवत दो भेद हैं । जहाँ नायिका-नायक रसपूर्वक भाव परस्पर दिखाते, चुंबन इत्यादि करते नृत्य करै वह छुरित और जहाँ नटी वा नटी-वेषधारी सुंदर पुरुष नाचैं वह यौवत । हाथ-पैर-सिर-नेत्र का चलाना, मुड़ना, फिरना, भाव, कमर लचकाना, घुँघरु बजाना, गाना, वस्त्र उठाना और घूमना इन सब नृत्य के अंगों में जिसको अभ्यास न हो और जो सुंदर न हो वह न नाचै । अलागलाग, उरपतिरप लगडाँट, लहाछेह, घट-बढ़ और संकोचन-प्रसारन ये नृत्य के काम हैं और शिव-नृत्य, मयूरनृत्य, रास नृत्य, कुक्कुटनृत्य, मण्डूकनृत्य, बलाकानृत्य, हंसनृत्य, कर्त्तकनृत्य, मण्डल-नृत्य, युगल-नृत्य, एकहाज्ञ-नृत्य, आलातचक्र, कलानृत्य इत्यादि नृत्य के और अनेक भेद हैं ।

संगीत का पाँचवा अंग भाव है । निर्विकार चित्त में प्रीतम वा प्रिया के संयोग वा वियोग के सुख वा दु :ख के अनुभाव से जो प्रथम विकार हो वह भाव है । उसी का अनुकरण नृत्य में करना भावक्रिया है । हँसना, रोना, उदास होना, प्रसन्न होना, व्याकुल होना, छकना, मत्त होना, बुलाना, प्रणाम करना इत्यादि क्रिया को गीत अर्थ के अनुसार प्रत्यक्ष दिखाना भाव है । भाव के चार भेद हैं, यथा स्वर, नेत्र, मुखाकृत और अंग । स्वर से दु :ख, सुख इत्यादि का बोध कराना स्वर भाव है । यह बहुत कठिन है क्योंकि गाने के स्वरों का व्यत्यय न होकर भाव प्रगट हैं यह कठिन बात है । नेत्र ही से सब बातों का बोध हो और अंग न चलै, वह नेत्र भाव है । यह भी कठिन है पर तादृश नहीं परंतु इस में नेत्र ही से हँसी प्रगट करना वा अनायास आँसू बहाना कठिन काम

भाव बताना अंग भाव है । यह औरों की अपेक्षा सहज है । नृत्य वा गीत में इनमें से एक वा दो वा तीन वा चारों साथ ही किए जाते हैं । भाव रसज्ञता जितनी विशेष होगी उतने ही अच्छे होंगे क्योंकि अनुभवगम्य हैं ।

संगीत का छठा भेद कोक अर्थात नायिका, नायक, रस, रसाभास, आलंबन, उद्दीपन, अलंकार, समय, समाज इत्यादि का ज्ञान कोक है । यह साहित्य ग्रंथों में सविस्तार वर्णित है इससे यहाँ नहीं लिखते । इसका जानना संगीत वाले को अवश्य क्योंकि भाव और नृत्य में इस के बिना काम नहीं चलता ।

है । मुख की चेष्टा ही से भाव प्रगट करना मुखाकृत भाव है, अर्थात कोई अंग न हिलै, भौं-नेत्र इत्यादि यथा स्थान स्थित रहैं और भाव चेष्टा से प्रगट हो, यह भी बहुत कठिन है । अंग अर्थात नेत्र हाथ इत्यादि अंगों से

सातवाँ भेद हस्त है । नाचने गाने वा बताने में हाथ चलाना हस्त है । इसके दो भेद हैं, एक लयाश्रित दूसरा भवाश्रित । प्राय: यह नृत्य और भाव के अंतर्गत ही सा है, इस से कोई विशेषता नहीं ।

पूर्वोक्त सातों अंग की समष्टि का नाम आदि संगीत-दामोदर, संगीत-कल्पतरु, संगीतसार इत्यादि ग्रंथों से चुनकर और अपनी जानकारी के अनुसार भी ये बातें यहाँ लिखी गई हैं। इसको लिखकर प्रकाश करने में हमारा कुछ प्रयोजन है । शास्त्र दो प्रकार के होते हैं — एक अदृष्टवाद दूसरे दृष्टवाद । अदृष्टवाद परलोक इत्यादि के मत में मनुष्य को तर्क छोड़ कर केवल शास्त्र अवलंबन करना चाहिए । दृष्टवाद में शास्त्रों के और बुद्धि के तथा अपने और दूसरों के अनुभव के अविरुद्ध जो बात हो वह माननी चाहिए । संगीत शास्त्र के और अपने मत के अविरुद्ध मनुष्य को वरतना उचित है । अब देखिए कि संगीत की क्या दशा हो रही है । कितनी रागिनियों का गाना कौन कहै किसी ने नाम भी नहीं सुना है । कितनी मत भेद से दो दो चार चार रागो की रागिनी हैं, यह क्या ? केवल अंध परंपरा । हम यह पूछते हैं कि प्रथम गाने में चार मत होने ही का क्या प्रयोजन है ? एक भैरव राग सारा संसार एक स्वर-क्रम और रीति से गावैं, यदि कहीं मतों के भेद से चारों भैरव में भेद है तो उस में एक को भैरव सिद्ध रक्खो बाकी या तो किसी दूसरे राग में आप ही मिले निकलैंगे, यदि न मिले निकलैं, उन का दूसरा नाम रक्खो । ऐसे ही हजारो बातें है, कोई बँधा हुआ नियम नहीं । जितने इस विद्या के जानने वाले हैं, अपने अभिमान में मत्त हैं । कोई ऐसा नियम नहीं कि जिसके अनुसार सब चलें । यही कारण है कि रागों के पत्थर पिघलने इत्यादि प्रभाव लोप हो गए । हा ! किसी काल में इस शास्त्र का ऐसा कठिन नियम था कि पुराणों में बराबर लिखा है कि ब्रह्मा ने अमुक गंधर्व को ताल से वा स्वर से चूकने से यह शाप दिया, शिवजी ने यह शाप दिया, इंद्र ने यह शाप दिया, वही संगीत शास्त्र अब है कि कोई नियम नहीं । शास्त्र असिल सब डूब गए । कुछ जैनों ने नाश किये, कुछ मुसलमानों ने । मुसल्मानों में अकबर और मुहम्मदशाह को इसका ध्यान भी हुआ तो बड़े बड़े गवैये मुसल्मान बनाए गए, जिससे हिंदुओं का जी और भी रहा सहा टूट गया । चलिये सब विद्या मिट्टी में मिली । इसमें मुख्य कारण यही हुआ कि केवल गुरुमुख-श्रुति पर यह विद्या रही । किसी ने कभी इस को ऐसी सुगम रीति पर न लिखा कि उसे देखकर वही काम दूसरे कर सकें । धन्य ! राजा यतींद्रमोहन ठाकुर और शौरींद्रमोहन ठाकुर, जिन्होंने इस काल में इस विद्या की बड़ी ही वृद्धि की । श्रीक्षेत्रमोहन गोस्वामी ने इस विषय में नियम भी बनाए हैं और बाबू कृष्णधन बानुर्जी ने एक सितार-शिक्षा भी छपवाई है । उधर के लोगों ने इस विषय में बहुत कुछ किया है पर इधर अभी कुछ नहीं हुआ । हमारे काशी के बाबू महेशचंद्र देव ने सितार, बीन और तानपूरा बनाने में जैसे परिश्रम करके खूँटी, तूमा, इत्यादि में नई उपयोगी बात निकाली हैं वैसे ही और सब जानकार लोग मिलकर एक बेर इस लुप्त हुए शास्त्र का भली भाँति मंथन करके इसकी एक सनियम उज्ज्वल परिपाटी बना डालैं । नहीं तो यह शास्त्र कुछ दिन में लोप हो जायगा । और हमारे हिंदुस्तानी अमीरों को चाहिए कि वारवधू के मुखचंद्र के सुंदरताही पर इस विद्या की इति श्री न करैं, कुछ अभागे भी बढ़ें । हमने इसमें जो बातैं लिखी हैं उनको सबके खंडन मंडन पूर्वक निर्णय करने के वास्ते यहाँ प्रकाश करते हैं । जो लोग जानकार हैं वे आनंद से जो इसमें आयोग्य हो उसका खंडन करैं, जो बात हमारे समझ में न आई हो उसे समझावैं और जो योग्य हो उसका अनुमोदन करैं । इस विषय में जो कोई पत्र भेजैगा उसे हम बड़े आनंदपूर्वक प्रकाश करैंगे । आशा है कि हमारा परिश्रम व्यर्थ न जायगा और इस विद्या के रसिक लोग हमारी बिनती के अनुसार इसके उद्धार का उपाय शीघ्र ही करेंगे ।

खुशी

यह सहज और शुद्ध ऊर्दू भाषा में लेकिन नागरी लिपि मे लिखा लेख है। बाद में 'खुशी' खंग विलास प्रेस बांकीपुर पटना से भी छपी।

— सं.

हस्बदिल ख्वाह आसूदगी को खुशी कहते हैं याने जो हमारे दिल की ख्वाहिश हो वह कोशिश करने से या इत्तिफाकिय: बग़ैर कोशिश किये बर आवे तो हम को खुशी हासिल होती है। खुशी जिंदगी के फल को कहते हैं, अगर खुशी नहीं है तो जिन्दगी हराम है क्यों कि जहाँ तक ख्याल किया जाता है मालूम होता है कि इस दुनिया में भी तमाम जिंदगी का नतीजा खुशी है।

इसी खुशी के हम तीन दर्जे कायम कर सकते हैं याने आराम, खुशी और लुत्फ — आराम वह हालत है हिस्सा तकलीफ के मेकदार से ज्याद: हो जाय। और लुत्फ वह हालत है जिसमें तकलीफ का नाम भी न बाक़ी रहे।

खुशी तीन किस्मों में बँटी है याने दीनी खुशी, दुनियाबी खुशी और गलत खुशी।

दीनी खुशी अपने अपने मजहब के उकदे के मुताबिक कुछ कुछ अलग है मगर नतीजा सबका एक ही है याने इतात दुनियवी से छुट कर हमेश: के वास्ते परमेश्वर की कुर्बत मयत्सार होनी हो असली खुशी है।हम लोगों में परमेश्वर का नाम सत् चित आनंद है और हम लोगों के नेक अकीदे के मुताबिक परमेश्वर का नाम रूप सब बिल्कुल लतीफ है इसी से उस की याद में लुत्फ हासिल होता है। उपनिषद् में एक जगह सब की खुशी को मुकाबिला किया है। वह लिखते हैं कि खुशी जिन्दगी का एक जुजे आजम है और दुनिया में जितने मखलूकात हैं सब खुशी ही के वास्ते मखलूक हैं। इसी सब खिलकत में जानदारों की बनावट और लियाकत के मुताबिक खुशी बँटी हुई है कीड़ा सिर्फ इस बात में खुश होता है कि एक पत्ते पर से दूसरे पत्ते पर जाय, चिड़ियों की खुशी का दर्जा इस से कुछ बढ़ा है याने इधर उधर परवाज़ करना बोलना वगैर:। इसी तरह अखीर में आदमी की खुशी बनिस्बत और जानवरों के बहुत बढ़ी चढ़ी है। आदमियों में भी बनिस्बत बेवकूफों के समझदारों की खुशी का दर्ज: ऊँचा हैं। आदमियों की खुशी से देवताओं की खुशी बहुत ज्याद: है। इस लंबी चौड़ी तकरीर का खुलासा उन्होंने यह निकाला है कि सबसे ज्याद: और लतीफ परमेश्वर है। उस में कितना लुत्फ और खुशी है जो हम लोग नहीं जान सकते। इसी से अगर हम लोगों को खुशी और लुत्फ की तलाश है तो हम लोगों को उसी का भजन करना चाहिए।

इस के पहिले दुनियवी खुशी का बयान किया जाय उस खुशी का बयान आप लोग सुन लीजिए जो अब हम हिंदुओं को खास कर साकिनाने बनारस के मयत्सर हैं। सबसे बड़ी खुशी बेफिकरी है।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहें, कि सबके दाता राम'' ।।

ऐसे ही खूब भाँग पीना, झन्नाटे इक्के पर सवार होकर बहरी ओर जाना, कभी-२ कुछ गाना सुन लेना, बरसात के दिनों में अगर फोलनी दाना मयस्सर हो तो क्या बात है। अगर इस खुशी का दर्जा बहुत बढ़ गया

तो एक आध सैल हो गई कुछ खाना कुछ पीना कुछ नाच कुछ तमाशा हो गया और अगर यही खुशी 'सिविलाइज्ड' की गई तो उसकी छोटी छोटी कुमेटियों या बर्फ की दावत से बदल दिया।

इस से मेरा यह मतलब नहीं है कि इन बातों में बिल्कुल खुशी नहीं है। बेशक तफरीह में खुशी है मगर उन्हीं लोगों को जो हमेश: बड़ी खुशी की तलाश में रहते हैं और जो दुनियवी खुशी के बयान में हम दिखायेंगे।

जिनकी तबीयत तहकीकात की तरफ रुजूअ है और जो लोग हर शय और हर फेल का सबब और नतीजा दरयाफ्त करने की ख्वाहिश रखते हैं और यह भी जानना चाहते हैं कि इस दुनिया में जिन्दगी की हालत में इंसान को किस चीज की ज्याद: ज़ुरूरत है उन पर यह बात बखूबी रौशन होगी कि इस किस्म के ख्यालों को तहजीब के कायदों के पैरों रह कर दलीलों से सुलझाने में और बसबूत कामिल इस अम्र का तस्फिय: करने में कैसे वक्त दरपेश होते हैं। चुनांचे जब हम खयाल करते हैं कि दुनिया में हम को किस खास चीज़ की जरूरत और वह जरूरत लाबुदी क्यों है तो दिल में मुख्तलिफ वजूहात के साथ कई किस्म के खयाल पैदा होते हैं और मुखतलिफ हाजतों के रफअ करने की मुखतलिफ सूरतें दरपेश आती हैं मगर इस मौकअ पर हम रूह की उस खास हाजत का जिक्र करेंगे जिसे जिन्दगी का वसूल और अक्ल का नतीजा कहना चाहिये याने खुशी। यह वह चीज है जिसके हासिल करने की कोशिश हम पर उतनी ही लाजिम है जितना उस के तहसील के तरीकोंके मालूम करने की भी ज़ुरूरत है। इसी से इस लाजिम मल्जूम जरूरत की कैफियत को हम खुशी के नाम से पुकारते हैं। अब यह सवाल पैदा हुआ कि हमारी जिंदगी के वसूल का यह लतीफ हिस्सा याने खुशी क्या चीज है और क्यों कर हासिल हो सकती है। इस सवाल का जवाब अकसर बड़े बड़े आलिमों ने अपने अपने तौर पर दिया है जिन सभों को इख्तिसार से पहिले बयान कर के तब जो कुछ होगा हम अपनी राय जाहिर करेंगे। मशहूर फिलासफर पेली का कौल है कि खुशी दिल की वह हालत है कि जिसमें तअदाद राहत की रंज से ज्यादा बढ़ जाय। खुशी का शुरूअ हालत ख्वाहिश के मुताबिक काम शुरूअ करना, बाद अजआं और कामियाब होता है वह काम चाहे किसी किस्म का क्यों न हो मसलन् इल्म व हुनर सीखना, मुल्क फतह करना, बाग लगाना, गाना, खाना वगैर: वगैर: इसी खुशी के हासिल करने के वास्ते पहिले हम लोगों को चन्द दर चंद तकलीफें इन कामों में कामयाब होने को उठानी पड़ती हैं। मुमकिन है कि बगैर खुशी हासिल होने तकलीफ रफअ हो जाय अगर जब तकलीफ होगी तब खुशी ख्वाह न ख्वाह जाय: हो जायगी। हाँ बिल्कुल तकलीफ के दूर हो जाने को हम बेशक खुशी कह सकते हैं और इसी सबब से खुशी हासिल करने का गोया यह वसूल है कि पहिले की तकलीफ को कोशिश की तकलीफ से बदलना और कामयाबी की खुशी से उसी कोशिश की तकलीफ को कामयाबी की खुशी से जाय: कर देना। इसी से अगर खुशी की बतौर सरसरी के तहकीकात की जाय तो यह बात साबित होगी कि खुशी उस हालत का नाम है जिस में रंज का हिस्सा राहत से दब गया है। केंट साहब का कौल है कि खुशी हमेशा: तकलीफ का नतीजा है और इस की मिसाल मकान बनाने से साफ जाहिर है। यह बात हम लोगों की आदत में दाखिल है कि अपनी मौजूद: हालत को कभी नहीं पसंद करते और हमेश: अपनी हालत असलीसे बढ़ने की कोशिश करतेहैं। तकलीफ मौजूद: को दबा कर खुशी के हिस्से को बढ़ाया चाहते हैं। अगर हमारी खुशी हमेश: कयाम पजीर होती तो हम हालत मौजूद: से कहीं घटे हुए होते क्योंकि हमलोग किसी किस्म की कोशिश न करते और जिस का नतीजा यह होता कि कोई नई बात न जाहिर होती इसी से गोया उसी कारसाज हकीकी ने दुनिया की तरक्की के वास्ते यह कायदा मुकर्रर किया है कि आदमी पहिले जैसी तकलीफ उठावे पीछे से आराम हो और इसी बुनयाद पर आदमी की खासियत भी ऐसी ही बनाई है। हाँ यह बात बेशक है कि किसी को कम तकलीफ है और किसी को ज्याद: और कोई उसे थोड़ी कोशिश में हासिल करता है और किसी को अपनी उम्र का एक हिस्सा उसके हासिल करने में सफ करना होता है। इसी को तफरीह हम लोग कहते हैं कि यह आदमी खुश है और यह ज्याद: खुश है। इसी सबूतों से कहा जाता है कि खुशी खुद कोई चीज नहीं बल्कि तकलीफ के उलटे अक्स का नाम खुशी और यही सबब है कि रंज और राहत लाजिम मलजूम हैं। बल्कि इसी से हमेश: यह एक मुअइअन कायदा है कि कोई काम बगैर तकलीफ के शुरूअ नहीं होता।

सर विलियम हमिल्टन खुशी की तारीफ में फरमाते हैं कि खुशी खुद कोई चीज़ नहीं है बल्कि आदमी की खासियत या आदत को जब कोई रुकावट नहीं होती तो यही हालत खुशी की कहलाती है ।

इन आलिमों की राय पर बहस न कर के अब हम खुशी के लफ्ज को भी कुछ बयान किया चाहते हैं । खुशी एक नाम है जो आराम को याने ख्वाहिशों के पूरे होने को और तकलीफों की हालत को कहते हैं और इस ऊपर के लफ्जी बयान से भी साबित हुआ कि खुशी एक ऐसा लफ्ज है जो हमेशा तकलीफ के मुकाबले में मुस्तअमल होता है ।

बहुत लोगों का ख्याल है कि खुशी से इल्म से कुछ इलाका नहीं है बल्कि यह एक खसलत जबली है जो इनसान और हैवान दोनों में बराबर होती है । मगर यह बात नहीं है क्योंकि इस किस्म की हैवानी खुशी के आलिम लोगों की खुशी से क्या फर्क है यह जिनको कुछ भी शऊर है बखूबी जान सकते हैं और इसीसे कहा जा सकता है कि मिस्ल हैवानों के जो खुशी है वह झूठी खुशी है और जो खुशी के दर्ज: से बढ़ी हुई है वह बड़ी बल्कि खुदापरस्त लोग इसी वास्ते इन दोनों खुशियों से बढ़कर के एक खुशी ऐसी मानते हैं जिसकी कोशिश में दुनियवी खुशियों को भी तर्क कर देना होता है ।

यह हर शख्स जानता है कि बार बार इस्तअमाल करने से कैसी भी खुशी क्यों न हो जाय : हो जायगी बल्कि ऐसी हालत में उसी खुशी का नाम बदल कर आदत है । यही सबब है कि अय्याश लोग अकसर गमगीन देखे गये हैं क्योंकि पहिले जिस खुशी को उन्होंने बड़ी कोशिश से हासिल किया था अब वह उनका रोजमर्र : हो गया और हवस कम न हुई पस जब वह रोज अपनी औकात, ताकत, इज्जत और रुपया सर्फ करते हैं मगर हज नहीं हासिल होता तो गमगीन होते हैं । इसी किस्म से खाना, पीना, नाच, रंग वगैरह की खुशी भी जल्द जाय : हो जाती है मगर हाँ शिकार वगैर : की खुशी का दर्ज : कुछ इस से बड़ा है और इसी तरह वह खुशी जो सनअत सीखने से हासिल होती है मसलन रंगराजी, इल्म मुसीकी, कारीगरी वगैरह : ऊपर बयान की हुई खुशियों से ज्याद : देरपा है क्योंकि गुंजाइश के सबब से यह खुशी जल्दी जाय: नहीं होती और इसी से जल्द जाय : होने वाली खुशी के तलबगारों को अखीर में इसी खुशी से उकता कर के गोश :नशीनी की तलाश होती है ।

यही हम कह सकते हैं कि हर शख्स को अपने-२ हौसल : और हिम्मत के मुआफिक ज्याद : ज्याद खुशी मिलती है इस बयान से मेरा यह मतलब नहीं है कि बड़े मर्तब : के लोगों को गरीबों से ज्याद : खुशी होती है बल्कि उन गरीबों को जो कि अपनी हालत में तो गरीब हैं मगर उन के हौसले बहुत बड़े हैं, बनिसबत अमीरों के हमेश : ज्याद : खुशी हासिल होती है ।

तवारीख से यह बात बखूबी साबित होती है कि बड़े बड़े फतह करने वाले पादशाह या शाहजाद बनिस्वत अवाम के हमेश : ज्याद : तर मुशीबतें झेलते रहे हैं और खुशी से यहाँ तक महरूम रहे हैं कि उनमें से अक्सरों ने खुदकुशी की है और बहुतेरे घर बार छोड़कर फकीर हो गये हैं । फीज़मानन शहंशाह रूस पर इसकी मिसाल बहुत ठीक घटती है । बेशक दुनिया में वह सब से बड़ा और सबसे ज्याद : खुशी से महरूम है । गरीब की एक जान हजार दुश्मन । बल्कि हमारे जनाब हाजिरीन में ज्याद: लोग ऐसे होंगे जो दर हकीकत इस वक्त हमारे जनाब मुअल्ला अल्काब गर्दूं रकाब शहन्शाहे रूस दाम सल्तनतहू से बहुत ज्याद : खुशी होंगे ।

इसी से हम कहते हैं कि खुशी से मर्त्तब : से कुछ वास्ता नहीं खुशी एक नेअमते उजमा है जिसे हर शख्स नहीं पाता । फारसी किताबों में मशहूर किस्सा है कि एक खुदापरस्त हमेश : परमेश्वर से अपने रंजो की शिकायत किया करता था । अल्लाह तअलाने उस की यह शिकायत रफअ करने को एक आईन : दिया और फरमाया कि इस आईन : में तू सब का दिल देख और जो इन्सान तुझको तेरी हालत से ज्याद : खुश मालूम हो उसका नाम बतला कि तेरी हालत वैसी ही कर दी जावे । इस शख्स ने एक एक के दिल का इम्तिहान किया और ज्यों ज्यों ज्याद : रुतबे के आदमियों का दिल देखा गया त्यों त्यों ज्याद :तर तकलीफों से घेरा हुआ पाया । यहाँ तक कि जब बादशाह के दिल के देखने की नौबत आई तब उस आईन : में सिवाय काले दागों के कुछ न बचा और उसने घबरा कर आईने को दरिया में फेंक दिया और अपनी असली हालत पर खुदा का शुक्र किया । इस कहने से मेरा यह मतलब नहीं है कि आदमी अपने हौसलों को पस्त करदे और कहे पादशाह होना न चाहिए बल्कि हमेश : अपने हौसले को बढ़ा कर कामयाब होता रहे मगर बाद कामयाबी के अपनी हालत ऐसी न

परेशान रक्खे जिससे अपनी कोशिशों का सुख भोगने के बदले उसे रात दिन दुख उठाना पड़े हमेश : हुकमा जब अमीरों से उन के तरद्दुदात की शिकायत करते हैं तो उनको रहम की नजर से देखते हैं मगर ये उमरा अपने से छोटे दर्जे वालों को कभी रहम की नज़ से नहीं देखते बल्कि हिकारत की । इसका यही सबब है कि उलमा अपनी कोशिश से कामयाब होकर खुशी के दर्जे को पहुँच गये हैं और किसी किस्म के तरद्दुद बाकी न रहने से वह दूसरों की मदद में अपने औकात सर्फ कर सकते हैं । बरखिलाफ इसके उमरा अपनी कोशिशों की नाकामयाबी से दूसरों पर हमेश : हसद किया करते हैं । मतबे का खासफायदा ऊँचा हौसला और बड़ी बड़ी खुशियों में शामिल रहने का खयाल है और यह वह खुशियाँ है जो हर हालत में एक सूं रहती हैं । और इन खुशियों का नतीज़ा यह होता है कि आसूद: लोग अपने कौम वतन और दुनिया की तरक्की की तदाबीर के हौसले का मौकअ पाते हैं । बरखिलाफ इस के हैवानी खुशी के जोयाँ उमरा आपस में दुश्मनी बढ़ाये, हसद फैलाये वगैर हज़ जिंदगी उठाये अपनी जिंदगी मुफ्त बरबाद करते हैं ।

मेरे ऊपर के बयान से आप लोगों पर जाहिर हो गया होगा कि खुशी इमारत पर मुस्तसना नहीं बल्कि एक खुदादाद चीज है । अब मैं बयान करता हूँ कि खुशी किस चीज़ में है । अब उनकी हासिल करने की और बादह उसके कायम रखने की तदबीर सोचनी ज़रूर हुई । खुशी हासिल करने का तरीका जानने के लिये सबके पहिले लियाकत की ज़रूरत है । बहुत सी ऐसी हालतें हैं जिनमें खुशी हासिल करने की कोशिश की जाती है मगर उसका नतीजा उलटा होता है और अक्सर रंज के मौकों में यकायक खुशी हासिल हो जाती है इसी से खुशी हासिल करने की खास तदबीरों का बयान करना मुश्किल है । सिर्फ अपनी हाजतों को पूरा करना खुशी नहीं कही जा सकती क्योंकि बहुत सी हाजतें ऐसी होती हैं जो महज गलत वसूलों पर कायम होती हैं । अकसर उलमा का कौल है कि खुशी मुहब्बत में है । दुनिया में खुदा ने मुहब्बत के सजावार भाई, जोरू, लड़के, रिश्त:दार और दोस्त वगैरह : बहुतेरे बनाए हैं । अक्सर इन लोगों की अदममौजूदगी में खुशी न हासिल होने से लोग फकीर हो जाते हैं या दुनिया में रहते हैं तो परेशान रहते हैं । चंद लोग दूसरों की हाज़त रफअ करने को खुशी कहते हैं क्योंकि दूसरे लोग खुशी हासिल करने को जो कोशिश करते हैं उन को अपनी कोशिश में कामयाब बनाकर खुश कर देना गोया उनकी खुशी में शरीक होना है

बाज उलमा खुशी हासिल करने की कोशिश ही को खुशी कहते हैं मगर इस में मुश्किल यह है कि पहिले से उस कोशिश के अखीर नतीजे की कामयाबी को बखूबी जाँच कर लेना चाहिए । दूसरे जब तक कि उस काम का अंज़ाम बखूबी न हो जाय बराबर मुस्तअदी की भी ज़रूरत है । पेली का कौल है कि खुशी जितनी अपने इरादों की मज़बूती में है उतनी सिर्फ खयालात और कोशिश में नहीं । इस कौल की तसदीक बहुत साफ है । जो अपने इरादों पर मजबूत है वह हमेश : अपनी कामयाबी को अपनी आँखों के सामने देखता है और अगर ऐसा शख्स अपना काम पूरा किये हुए भी मर जाय तो उसको वही खुशी हासिल रहेगी जो कि कामयाबी पर हो सकती थी । वही मजबूत की खुशी हासिल करने के वास्ते काम के पीछे लगे रहना निहायत ज़रूर है ख्वाह वह अपने फायदे के वास्ते हों या आम फायदे के वास्ते हों । अक्लमंद लोग इसी काम में लगे रहने को दिल्लगी कहते हैं और यह वह दिल्लगी है जो आदमियों को अपने इरादों पर कामयाब करके खुशी ही नहीं बख्शती है बल्कि रूहानी व जिस्मानी सिहत को भी कायम रखती हैं ।

इन में खुशी के चंद वसीले ऐसे हैं जिन का असर आदमी अपनी मौत के बाद भी छोड़ जा सकता है मसलन् मुल्की . . . की जमाअतो का कायम करना, स्कूल और शफाखानों की बुनियाद डालना वगैर : वगैर : ।

जाती फायदों की खुशी भी बाज हालत में आदमी के मरने के बाद भी कायम रह सकती है मसलन् अपने खान्दान के खुद व नोश की सूरत बेखलिश कायम कर जाना । किसी काम की तरफ मजबूती से दिल लगाने में एक फायदा यह भी है कि बीच में छोटी छोटी तकलीफें जो इत्तिफाक से सरजद होती हैं उन को आदमी अपनी होनहार खुशी की धुन में बिल्कुल खयाल में नहीं लाता ।

खुशी की एक उमद: हालत यह भी है कि अपनी बुरी आदत को बदल देना । वह आदमी कैसा खुश होगा जब वह अपने को बुरी आदत से छूटा हुआ देखेगा ।

बहुत से लोग गैर मामूली ख्वाहिशों के पूरे होने को खुशी कहते हैं जैसा कि जो शख्स हमेश : तनहाई में रहता है उसे अगर दोस्तों की सुहबत नसीब होती है तो उसको गनीमत जानता है । मगर कोशिश कुनिन्द : को ऐसे मौकअ में बनिस्बत सुस्त लोगों के ऐसे हालत में भी जयाद : खुशी हासिल होती है । मसलन् जो फिलासफी की बड़ी बड़ी किताबों के पढ़ने में हमेश : अपना वक्त सर्फ करता है उसे अगर छोटी मोटी कोई किस्से की किताब मिल जाय तो वह बड़ी खुशी से पढ़ेगा बरखिलाफ इस के जो हमेश : किस्से कहानियों से जी बहलता है उस को अगर फिलासफी की किताब दे दी जाय तो उसका जी उलझेगा और वह उसे फेंक देगा ।

गैर मामूली खुशी अमीरों पर भी असर करती है । मसलन् किसी अमीर की सालाना आमदनी हजार रुपया है मगर किसी साल इत्तिफाक से दस या बारह आ जावें तो, उस को खुशी हासिल होगी । यही मिशाल इस बात की दलील है कि अगरचे दौलतमंदी खुशी की मूजिब है मगर उस में भी तरक्की ज्याद : खुशी देती है ।

खुशी का एक बड़ा भारी सबब तंदुरुस्ती भी है और यह तंदुरुस्ती तब ही दुरुस्त रह सकती है जब आदमी रूहानी या जिस्मानी तकलीफ से बच सकता है । खुशी है वह जिस का बदन बलगम या रीह या चरबी से नहीं तैयार है । बल्कि किसी किस्म की तकलीफ न होने की आसूदगी से तैयार है । मगर यह खयाल ज़ुरूर है कि यह तंदुरुस्ती उस किस्म की बेफिक्री से न पैदा हो जिससे कि तमाम कोशिश और हौसले पस्त हो जायं जैसा कि हमारे हज़रत बनारस की खुशी है ।

हम पहिले कह चुके हैं कि सच्ची खुशी के लिये लियाकत की ज़ुरूरत है मगर इस लियाकत के साथ दुनियवी तहजीव और दीनी ईमानदारी की भी निहायत ज़ुरूरत है । अक्सर लोगों को बहुत सी ऐसी बातों में खुशी हासिल होती है जो दर हकीकत ईमान, तहजीब, आकबत, आबरू, बल्कि जान, माल और जिस्मी आराम को भी गारत करनेवाले होते हैं । तो क्या हम ऐसी खुशी को भी अस्ली खुशी कहेंगे ? मसलन् मूजी को ईजारसानी में, बदकार को बदी में, किमार बाज को जुए में और ऐसे ही बहुत सी बातों में खुशी मान ली जाती है जो हिकमतन्, शरहन् और यकीनन, हर सूरत से सिवाय जरर के फायदा नहीं पहुँचाती । इस सूरत में तो बल्कि यह सोचना लाजिम आता है कि ऐसी खुशियों के नजदीक भी न जाय क्योंकि जब कोई शय तुम्हारी अक्ल पर गालिब आ जाय तो तुम नशे के आलम की तरह, अपने हवास पर काबू न रख कर झूठी खुशी की तलाश में जाहिरी लज्जत के धोखे से जहर का प्याला पी जाओगे । हकीकी खुशी वही है जिसका अंजाम व आगाज दोनों खुश हैं । अस्ली खुशी सुफहए दिल से रंज का नाम यककलम हटा देती है और तमाम जिस्म को, हवा से खम्स: को और जान को ऐसी राहत देती है कि उस हालत महवीयत में उसी सामाने खुशी की निस्बत हर लहज : में दिल की नई नई उलफतें और नए नए शौक पैदा करता है । इस कैफियत का ठीक ठीक जाहिर करना जबान की कूव्यत से बाहर है इससे तज्रिब :कार लोगों के कयास ही पर छोड़ दिया जाता है ।

पेली ने लिखा है कि खुशी तहजीब वाकिय : जमाअतों की मुतफर्रिक लोगों में करीब करीब बराबर हिस्सों में बँटी है और इसी से बुराई करने वाला हमेश : बमुकाबल : ईमानदार दुनियवी खुशी से भी महरूम रहता है, खुशी से गम को अलाहिद : करने के लिए एक खास किस्म की लियाकत की ज़ुरूरत होती है जो हर शख्स में नहीं पाई जाती इसी से खालिस खुशी का लुत्फ हर शख्स को नसीब नहीं होता । दुनिया में तकलीफ भी जब अपनी हद को पहुँचती है खुशी का मजा चखाती है । जब आदमी पर हद से ज्याद : जुल्म होता है या हालत सकरात पहुँचती है तब नई खुशी से बदल जाता है और यही सबब है कि आदमी जितना छोटी छोटी तकलीफों से तंग आता है उतना बड़ी तकलीफ से नही घबराता । सच्चे आशिकों की हिजरत की तकलीफ जब हद से ज्याद : बढ़ जाती है तब फिराक में वस्ल से ज्याद : मजा मिलता है । सुई गड़ने में जो तकलीफ होती है वह बल्कि नहीं बरदाश्त होती मगर जंग में मुतवातिर चोटों को आदमी बेतकलीफ बरदाश्त कर सकता है । अफरीक : के मशहूर सैयाह डाक्टर ल्यूंगशटन (लिविंगस्टोन) ने लिखा है जब वह बेर के जंगल में फँस गए थे तो उनको मायूसी के साथ एक किस्म की खुशी हुई थी । इसी तरह अक्सर मौत शदीद के वक्त लोग खुश पाये गये हैं । इसका सबब यह है कि जब आदमी की हालत बिल्कुल ना उमैदी को पहुँचाती है तो उस तकलीफ का खौफ का बाकी नहीं रहता मसलन् जब तक आदमी को जीस्त की उम्मैद है, उसका मौत का खौफ रहेगा मगर जिस वक्त कि जीस्त की उम्मैद बिल्कुल मुनकतअ हो गई फिर उसको किस बात का खौफ रहा । यही सबब

है कि हिंदू शास्त्रकारों ने खौफ और रंज की अस्ली हालत को भी एक रस माना है और जाहिर है कि ट्राजिडी यानी ऐसे तमाशे जिन का आखिर हिस्सा बिल्कुल रंज भरा हो देखने में एक अजीब किस्म का लुत्फ देती है बल्कि ट्राजिडी में जैसी उम्दा किताबें लिखी गई हैं वैसी कामेडी में नहीं । जिस तरह रंज की आखिरी हालत खुशी से बदल जाती है उसी तरह खुशी की भी आखरी हालत रंज से बदल जाती है और इसी से ज्याद : खुशी के वक्त लोग शिद्दत से रोते हुए पाये गये हैं । खुलासा कलाम यह कि इस किस्म की बहुत सी खुशियाँ दुनिया में हैं जिनको हम खालिस खुशी नहीं कह सकते ।

अब हम इस बात पर गौर किया चाहते हैं कि वह अस्ली खुशी हिंदुओं को क्यों नहीं हासिल होती क्योंकि जब हम इसी खुशी को अपनी पूरी बलंदी की हद पर हर सूरत से कामिल देखना चाहते हैं तो हमेश : गैर कौमों में पाते हैं । इसकी जाहिर वजूहात जो मालूम होती हैं उनमें सब से पहिला सबब हिंदुओं के दीनी व दुनियवी तरीकों का आपस में मिल जाना और तनज्जुली के जमाने के कम बेश फाजिलों का इहकाम शरअी में दखल दर माकूलात करना है जिन के कलाम पर आपने अपनी नातजरिब :कारी से पूरा अमल कर दिया है । इन फुजला ने अपनी कम हिम्मती की वजह से ऐसे कायदे जारी किये जिनसे आखिरकार हम लोगों की यह तर्स के लायक हालत पहुँची कि हम लोग उस खुशी को जो फी जमाना गैर कौमों को हासिल है कभी ख्वाबोखयाल में भी नहीं ला सकते । इन फिलासफरों के फिलासफी का इत्र निकाल कर जिन बातों को हमारे आराम के लिये जुरूरी बल्कि हमारी नजात का मूजिब ठहराया है वे अगर इस नजर से देखे जावें जिससे हम खुशी को अब अस्ली हालत पर गैर कौमों में बतलाते हैं तो साफ जाहिर होगा कि इन्हीं की तअलीम का यह फल है कि परमेश्वर ने इन बेचारे हिंदुओं को इस सच्ची खुशी से महरूम रख कर इसके हिस्से से अपनी एक दूसरी प्यारी खिलकत की गोद भरदी है जहाँ कि हर एक की उम्र का जाम खुशी से लबालब नजर आता है. इन कदीम जमाने के फिलासफरों के असूल की बहस बहुत तूल है और इसी तरह उस्को सिलसिलेवार दलीलों से रद करने के लिये भी बड़ी गुंजाइश चाहिये इस लिये यहाँ सिर्फ उन पुराने खयालों का खुलासा दिखलाया जाता है कि किस तरीके पर उन्होंने अपनी उस अनोखी खुशी की बुनियाद कायम की है और वह इस तरक्कीयाफ्त : जमाने के आकिलों के कौलों फेअल के नजदीक कितनी हेच है ।

इन उलमा की खुशी का पहिला तरीका सन्तोष यानी कनाअत है । उन्होंने अपनी पेचीद : इबारत के बेमानी मजमून में जिसका हर फिकरा अब हदीस गिना जाता है आखीर को यह साबित किया है कि खुशी व रंज दोनों गलत और बहम हैं यानी रंज और राहत से अलहद : वह हालत जिस में अक्ल, ख्याल, हवास और हरकत (शायद सकते की बीमारी की हालत) जब सलफ हो जावें वही परमानंद है और वही खशी का असलुलवसूल और लुब्बे लबाब है ।| आदमी को इस हालत तक पहुँचने के लिये उन लोगों ने चंद कायदे भी ईजाद फरमाये हैं जिन में अव्वल उनके कलाम पर विला हुज्जत यकीन लाना हर्गिज हर्गिज दलील और अक्ल को दखल न देना ! दूसरे उसी गारतगर सन्तोष को इख्त्यार करना और ख्वाहिश व हाजतों को दिल में पैदा न होने देना ।. तीसरे सब कुछ बरदाश्त कर लेना और रंज और राहत को एक अम्रे तकदीरी समझ कर दमबखुद रहना । चौथे नेक और बद में तमीज न करना और भला बुरा सबको यक सा समझना । पाँचवे (मुआज अल्लाह) खालिक और मखलूक न समझना ।

. जाहिर है कि पहिले कायदे पर अमल करने ही से अक्ल पर जवाल आया और फायद : व नुकसान का खयाल जाता रहा । उन्हीं आँखों को अपने हाथ से फोड़कर बहकते बहकते उस अंधे कुएँ में जा पड़े जिस में परमेश्वर ही हाथ पकड़ कर निकाले तो निकलना मुमकिन है । दूसरे कायदे की इख्तियार करते ही नामर्दी छा गई काहिली बढ़ने से हिम्मत बहादुरी और हौसले का नाम ही न बाकी रहा फौरन बेबस हो कर जमाने के हेरफेर के मुताबिक हमेश : के वास्ते अपने मुल्क को गैर कौम की नज्र कर आप परमानन्द की मूरत बन बैठे । गौर का मुकाम है कि जब ख्वाहिश और हाजत न होगी तब आदमी को किसी शय से तअल्लुक बाकी न रहेगा जिसके हासिल होने या कायम रहने को हम तअल्लुक बाकी न रहेगा जिस के हासिल होने या कायम रहने को हम खुशीका मूजिब कहें । आसूदगी को एक मौकअ तक कौन न पसंद करेगा क्योंकि बकद्र ख्वाहिश उस के हासिल होने पर जब तक हम ऐसी नई ख्वाहिश न पैदा करें जिस के पूरे करने का जरिय : पहिले से सोच लिया हो यह जुरूर है कि हम पहिली ख्वाहिस पर कामयाब होने का मजा हासिल करने के लिये आसूदगी इखतियार

करें । सिवाय इसके आसूदगी से यह मुराद नहीं है कि हमारी भूख जाती रहे और हमको हर रोज ताजा खाना खाने की जरूरत न बाकी रहे । जब हम खाना खा चुकते हैं बेशक आसूदगी हासिल करते हैं मगर फिर मेहनत वगैर: से भूख बढ़ा कर खाने का नया शौक पैदा करते हैं । उसी तरह जितना हमारा इल्म बढ़ता जाता है और खुशी के नये नये सामान नजर आते हैं उतना ही हमारी आदमीयत पर फर्ज होता है कि अगर हम अपनी हालत का बेहतर होना न पसन्द करें तो भी अपनी जमाअत की हाजत रफ़अ करने के खयाल से उस सामान के मुहैया करने की तदबीर से बाज न आवें । बल्कि जिस हालत में किसी ऐसी आफत नागहानी से हम पर कोई सदमा ऐसा सख्त हायल होता है कि जिससे दिल पस्त और बे हौसल: हो जाता है और हरगिज किसी ख्वाहिश के पैदा करने या उसके बढ़ाने में खुशी नहीं दिखलाती उस वक्त भी अगर इस कंबख्त संतोष का गुजर न हुआ होय तो दूसरों को खुशी पहुँचाने से इंसान खुशी हासिल कर सकता है । क्योंकि हिकमत से यह साबित है कि खुशी का बदला खुशी और रंज का बदला रंज मिलता है । यह बात जाहिर है कि तरक्की और कनाअत से जिद है और जब तरक्की मौकूफ़ हुई तो जमाना जुरूर तनज़ुली पहुँचाएगा ।

जब हम देखते हैं कि हमारे हर चहार तरफ हर कौम के लोग बाजी लगा लगा कर और जान लड़ा कर दौड़ रहे हैं और अपनी-२ मुस्तअदी और कुवत के जोर से तरक्की के बुकचे लूट कर मालामाल हुए जाते हैं तब किस तरह दिल कुबूल कर सकता है कि हम कनाअत के टुकड़े तोड़ कर पेट भरें और मुहताजी के जहन्नुम को खुशी से कुबूल करें । अलबत्त: लाचारी की हालत में सब्र उस वक्त तक काम दे सकता है कि जब तक हम अपनी हालत बदलने की दूसरी सूरत न पैदा कर सकें । तीसरे कायदे की निसबत यह कहना है कि सख्ती के बरदास्त करने की आदत उसी कनाअत से दिल बुझे जाने और पित्ता मर जाने के बाद खुद बखुद पैदा होती है, उस वक्त गैरत जो इंसान को हैवान से अलहद: करनेवाली चीज है गुम हो जाती है और जब यह इंसान का उमद: जेवर खो गया तो खुशी का सिर्फ नाम याद रह सकता है । बरदाश्त सिर्फ दुश्मन की ताकत घटा कर हिकमतें अमली से उस पर गालिब आने का मौकह पाने के लिये है न कि हमेश: के लिए गुलामी इख्तियार करने के । चौथे कायदे की तअलीम में खुशी और रंज का फर्क ही न बाकी रक्खा कि एक के हासिल करने और दूसरे के रफअ करने की जुरूरत होती । उस अनूठे कारीगर ने अपने कारीगरी की बारीकी जानने के लिये जो कुछ हमें तमीज बख्शा है उससे हम दम पर दम नए तिलस्मात का भेद जानते जाते हैं जिस से हमारे दिल का अँधेरा खुद बखुद दूर होता है और हमारी आँखों के सामने वह बातें दिखलाई पड़ती हैं जिस के वगैर हम किसी चीज की पूरी पूरी कद्र नहीं कर सकते, जाहिर है कि जब हम कद्र ही नहीं कर सकते तो हम न उसके हासिल होने की ख्वाहिश होगी न हासिल होने पर खुशी होगी । हर शख्स इसकी वजह खुद दरयाफ्त कर सकता है कि तमीज के साथ खुशी की तअदाद बढ़ती है बल्कि मुख्तलिफ हुकमा इस बात पर बहस करते हैं और खुशी जानकारी है या अनजानपन । एक का कौल है कि इल्म ही खुशी का मूजिब है क्योंकि अपनी ख्वाहिश और उस के पूरे होने की कद्र आदमी इल्म से करता है बरखिलाफ इसके दूसरा आलिम कहता है कि जानकारी ही से ख्वाहिश बढ़ती है और आदमी अपनी हशमत मौजूद: को कम समझता है । खैर इस बहस का जवाब और मौकअ पर मौजूद है । इस वक्त इस कहने से मतलब यही है कि हर हालत में बे तमीज को खुशी की कद्र नहीं मालूम हो सकती क्योंकि वह अपनी गलती नहीं पहचान सकता और इसी से वाकिफकारी के फायदों को नहीं उठाता जिस पर कि खुशी का घटना बढ़ना मौजूद है ।

पाँचवें कायदे की निसबत हम इतना ही कह सकते हैं कि इस शैतानी खयाल से सख्त मुसीबत, इंतिहा की आजिजी और मायूसी की हालत में जब कि किसी सूरत में तस्कीन नहीं होती और खुशी का नाम भी जबान से नहीं निकल सकता उस वक्त बंदों के वास्ते एक आखिरी दरवाजा फर्य्याद का जो खुला था वह भी बन्द कर दिया गया । तमाम उम्र देखा कि ये कि कभी दो मुख्तलिफ जुज एक नहीं हुए मगर इन दिल्लगीबाजों ने यकीन करा ही दिया कि कोहार और खिलौना एक ही चीज है पर और के तजरिब: और आदमी की बनावट की खासियत को बखूबी मालूम करने से मालूम होता है कि हमारी जिन्दगी का कडुआ प्याला उसकी याद के आबहयात के दो चार कतरे शामिल किए वगैर किसी खालिश खुशी से शीरी किया नहीं जा सकता मगर जब याद और यादकुनिंदा ही बाकी न रहा तो फकत इस जिन्दगी के नतीजे ही रह गए । खैर इस तूल कलामी से कुछ हासिल नहीं अब सिर्फ इतना दिखलाना और बाकी है कि उन कौमों में जिनको परमेश्वर ने अस्ली खुशी

हासिल करने का शऊर और मनसब बख्शा है हिंदुओं के बरखिलाफ बाहिरा क्या फर्क है । कौमियत का पास, अपने तरक्की की कोशिश, तैतकल्लुफी आज़ादी, इल्म और हुनर सीखने का खान्दानी रिवाज, बे हुनरी और काहिली और एहसान उठाने की शर्म, मुस्तअदी, दिलेरी, सिपहगिरी का शौक, फनून की चाह, बे गरज दोस्ती और उसकी शर्तों की पाबन्दी, तहज़ीब की कैद, सफाई, कद्रदानी, खुदा का खौफ और मजहब का रस्म और दूरंदेशी के सिवाय खुशी की बुनयाद, औरतों की लियाकत और इरादे, ऐसी ही बहुत सी बातें हैं जो उन कौमों को खुदा ने बख्शीं और हम उन से महरूम हैं । खुशी तो इन सिफतों की गुलाम है मुमकिन है कि जहाँ यह सिफतें मौजूद हों खुशी खुद बखुद बस्त : न हाजिर हो । मगर बरखिलाफ इस के हमारे पास जो सामान हैं रंज के हैं यानी बे इख्तियारी, दीनी और दुनियवी कायदों का एक होना, ना तजरिब : कार बुजुर्गों की बात पर अमल करना, मजहब के उन फुजूल उकायद की पाबन्दी जिन से दर हकीकत मजहब से कोई इलाका नहीं है, अपने हसब व नसब का भूल जाना, हमदर्दी का दिल से गुम होने तरीक : तालीम के उसूलों का पस्त होना, अपनी पाबन्दियों से मुल्क की आबोहवा को बिगाड़ कर तंदरुस्ती में फर्क डालना, तकलीफ ही को सवाब और आराम का मूजिब समझना, दौलत का हमेश : बाहर जाना और कार के उम्द : वसीलों का जाय : होना, मुख्तलिफ मजाहिब की पाबंदी से दिलों का न होना । एक और सबसे बड़ी बात उस परमेश्वर का हम लोगों से नाराज रहना । ऐसी ही बहुत सी बातें हैं जिन से हम हिंदुओं को अब ख्वाब में भी खुशी नसीब नहीं है कि जिन में से एक एक तहकीकात और बयान के वास्ते अलग अलग किताबें लिखी जायं तो भी काफी न हो ।

जातीय-संगीत

मई, सन् १८७९ में "कविवचन सुधा" में इस लेख का विज्ञापन छपा था। इससे भारतेन्दु बाबू की लोक व्यापी दृष्टि और सामान्य जन से उनका लगाव सहज ही मालूम पड़ता है। इस लेख से लगता है कि सबसे पहले ग्राम गीतों का महत्व भारतेन्दु जी ने ही समझा था और वे लोक गीतों को समाज सुधार का अच्छा माध्यम समझते थे।

— सं.

भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा कि जातीय संगीत की छोटी छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गाँव, गाँव, मे साधारण लोगों में प्रचार की जायँ। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदैशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे ऐसे गीतों को संग्रह करूँ और उनको छोटी छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूँ। इस विषय में मैं, जिनको जिनको कुछ भी रचनाशक्ति है, उनसे सहायता चाहता हूँ कि वे लोग भी इस विषय पर गीत वा छंद बनाकर स्वतंत्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उनको प्रकाश करूँगा और सब लोग अपनी मंडली में गानेवालों को वह पुस्तक दें। जो लोग धनिक हैं वह नियम करें कि जो गुणी इन गीतों को गावेगा उसी का वे लोग गाना सुनैंगे। स्त्रियों की भी ऐसे ही गीतों पर रुचि बढ़ाई जाय और उनको ऐसे गीतों के गाने का अभिनंदन किया जाय। ऐसी पुस्तकें या बिना मूल्य वितरण की जायँ या इनका मूल्य अति स्वल्प रक्खा जाय। जिन लोगों को ग्रामीणों से संबंध है वे गाँव में ऐसी पुस्तकें भेज दें। जहाँ कहीं ऐसे गीत सुनैं उसका अभिनंदन करैं इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे छोटे छंदों में और साधारण भाषा में बनैं वरंच गवाँरी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली, ठुमरी, खेमटा, कँहरवा, अद्धा, चैती, होली, साँझी, लंबे, लावनी, जाँते के गीत, बिरहा, चनैनी, गजल इत्यादि ग्रामगीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो, अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुंदेलखंडी, बिहार में बिहारी, ऐसे जिन देशों में जिन भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें। उत्साही लोग इसमें जो बनाने की शक्ति रखते हैं वे बनावें, जो छापने की शक्ति रखते हैं वे छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे प्रचार करें। मुझसे जहाँ तक हो सकैगा मैं भी करूंगा। जो गीत मेरे पास आवैंगे उनको मैं यथाशक्ति प्रचार करूँगा। इससे सब लोगों के निबेदन है कि गीतादिक भेजकर मेरी इस विषय में सहायता करैं और यह विषय प्रचार के योग्य है कि नहीं और इसका प्रचार सुलभ रीति से कैसे हो सकता है इस विषय में प्रकाश करके अनुगृहीत करैंगे। मैंने ऐसी पुस्तकों के हेतु नीचे लिखे हुए विषय चुने हैं। इनमें और भी जिन विषयों की आवश्यकता हो लिखैं। ऐसे गीतों मे रोचक बातें जो स्त्रियों और गँवारों को अच्छी लगै होना चाहिए और

शृंगार, हास्य आदि रस इसमें मिले रहैं जिसमें इनका प्रचार सहज में हो जाय ।

वाल्य विवाह — इसमें स्त्री का बालक पति होने का दु:ख, फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन, उससे अनेक भावी अमंगल और अप्रीतिजनक परिणाम ।

जन्मपत्री की विधि — इससे बिना मन मिले स्त्री-पुरुष का विवाह और इसकी अशास्त्रता ।

बालकों की शिक्षा — इसकी आवश्यकता, प्रणाली, शिष्टाचारशिक्षा, व्यवहार-शिक्षा आदि ।

बालकों से बर्ताव — इसमें बालकों के योग्य रीति पर बर्ताव न करने में उनका नाश होना ।

अँगरेजी फैशन — इससे बिगड़कर बालकों का मद्यादि सेवन और स्वधर्म विस्मरण ।

स्वधर्मचिंता — इसकी आवश्यकता ।

भ्रूणहत्या और शिशुहत्या — इसके प्रचार के कारण, उसके मिटाने के उपाय ।

फूट और बैर — इसके दुर्गुण, इसके कारण भारत की क्या-क्या हानि हुई इसका वर्णन ।

मैत्री और ऐक्य — इसके बढ़ने के उपाय, इसके शुभ फल ।

बहुजातित्व और बहुभक्तित्व — के दोष, इससे परस्पर चित्त का न मिलना, इसी से एक का दूसरे के सहाय में असमर्थ होना ।

योग्यता — अर्थात् केवल वाणी का विस्तार न करके सब कामों के करने की योग्यता पहुँचाना और उदाहरण दिखलाने का विषय ।

पूर्व्वज आर्यों की स्तुति — इसमें उनके शौर्य्य, औदार्य्य, सत्य, चातुर्य्य, विद्यादि गुणों का वर्णन ।

जन्मभूमि — इससे स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन ।

आलस्य और संतोष — इनकी संसार के विषय में निंदा और इससे हानि ।

व्यापार की उन्नति — इसकी आवश्यकता और उपाय ।

नशा — इसकी निंदा इत्यादि ।

अदालत — इसमें रुपया व्यय करके नाश होना और आपस में न समझने का परिणाम ।

हिंदुस्तान की वस्तु हिंदुस्तानियों को व्यवहार करना — इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन ।

भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन — करुणा रस संवलित ।

ऐसे ही और विषय जिनमें देश की उन्नति की संभावना हो लिए जायँ । यद्यपि यह एक एक विषय एक एक नाटक, उपन्यास वा काव्य आदि के ग्रंथ बनाने के योग्य हैं और इनपर अलग ग्रंथ बनें तो बड़ी ही उत्तम बात है, पर यहाँ तो इन विषयों के छोटे छोटे सरल देशभाषा में गीत और छंदों की आवश्यकता है जो पृथक पुस्तकाकार मुद्रित होकर साधारण जनों में फैलाए जायेंगे । मैं आशा करता हूँ कि इस विषय की समालोचना करके और पत्रों के संपादक महोदयगण मेरी अवश्य सहायता करैंगे और उत्साही जन ऐसी पुस्तकों का प्रचार करेंगे ।

लेवी प्राण लेवी

कविवचन सुधा सं. २ नं. ५ कार्तिक शुक्ल १५ सबत् १९२७ (१८७०) में प्रकाशित। १८७० में श्रीयुत लार्ड म्यो साहब जब काशी पधारे तब वहां पर एक लेवी दरबार हुआ था। उसी समय "कविवचन सुधा" में उस दरबार के संबंध में यह लेख छपा। इसी लेख के कारण भारतेन्दु को सरकार का कोपभाजन भी बनना पड़ा।
—सं.

श्री युत लार्ड म्यौ साहिब बहादुर गवर्नर जेनरल हिंद ने काशी में १ नवम्बर को एक "लेवी" का दर्बार किया था। यद्यपि 'दर्बार' और 'लेवी' में बहुत भेद है पर यह 'लेवी' और "दर्बार" दोनों के बीच की अपूर्व वस्तु थी। श्री मन्महाराजाधिराज काशिराज को कोठी में इस 'लेवी' के हेतु एक डेरा दल बादल खड़ा किया गया था। जो सूर्य नारायण और श्रीयुत लार्ड साहिब के तेज और प्रताप परम सुशीतल खसखाने की भाँति हो गया था और गरमी भी मारे गरमी के इसी खसखाने में आ छिपी थी, डेरे के बीच में चँदवा के नीचे एक सोने की कुरसी धरी थी। नाम लिखने वाले मुंशी बद्रीनाथ फूले फाले अबा पहिने पगड़ी सजे पुराने दादुर की भाँति इधर उधर उछलते और शब्द करते फिरते थे और बाबू भी वैसे ही छोटे तेंदुए बनें गरज रहे थे। पहिले लोगोंने यह प्रगट किया कि जूता पहिन कर जाने की आज्ञा नहीं है। फिर कोलाहल हुआ कि चाहो जैसे आओ तिस पर भी शाहजादों के अतिरिक्त केवल चार रईस जूता पहिरे हुए थे। इतने में बंगाली बाबू सबका नंबर लगाने लगे और पंडितों को दक्षिणा बटने वाली सभा की ... एक एक का नाम लेकर पुकार के बल्लमटेर की पल्टन की चाल से सबको खड़ा कर दिया। बनारस के रईस भी कठपुतली बने हुए उसी गत नाचते रहे। जब खड़े खड़े बड़ी देर हुई और पैर टूटने लगे और इस तपस्या पर भी श्रीयुत लार्ड साहिब के दर्शन न हुए तब राय नारायण दास आनरेरी मजिस्ट्रेट हौलदार की भाँति बोल उठे "सिट डौन" (बैठ जाओ)। सब लोग खड़े खड़े थक तो गए ही थे मुँह के बल बैठ गये परंतु राय साहब को यह 'कवायद' कराना तभी अच्छा लगता जब उनके हाथ में एक लकड़ी भी होती। लार्ड साहब की 'लेवी' समझ कर कपड़े भी सब लोग अच्छे अच्छे पहिन कर आए थे पर वे सब उस गरमी में बड़े दुखदाई हो गए। जामे वाले गरमी के मारे जामे के बाहर हुए जाते थे, पगड़ीवालों को पगड़ी सिर का बोझ सी हो रही थी और दुशाले और कमखाब की चपकन वालों को गरमी ने अच्छी भाँति जीत रक्खा था। सबके अंगों से पसीने की नदी बहती थी मानों श्रीयुत को सब लोग आदर से "अर्घ्य पाद्य" देते थे। कोई खड़ा हो जाता था तो कोई बैठा ही रह जाता था कोई घबड़ा कर डेरे के बाहर घूमने चला जाता था कि इतने में कोलाहल हुआ "लाट साहब आते हैं"। रायनारायण दास साहिब ने फिर अपने मुख को खोला 'स्टैंड अप' (खड़े हो जाव)। सब के सब एक साथ खड़े हो गए। राय साहिब का 'सिट डौन कहना' तो सबको अच्छा लगा पर "स्टैंड-अप" कहना तो सबको बुरा लगा मानों भले बुरे का फल देने वाले राय साहिब ही थे। इतने में फिर कुछ आने में देर हुई और फिर सब लोग बैठ गये। वाह वाह दर्बार क्या था "कठपुतली का तमाशा" था या बल्लमटेरों की 'कवायद' थी या बंदरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतना था या 'फौजदारी की सजा थी"। बैठने देर न हुई थी कि श्रीयुत लार्ड साहिब आये फिर सबके सब उठ खड़े हुए। श्रीमान् के संग श्री काशीराज और उनके चिरंजीव बीच में खड़े हो गये। उनकी दाहिनी ओर श्री काशीराज और उनके राजकुमार शोभित हुए। पहिले तैमूर के वंशवालों की मुलाकात हुई फिर महाराज विजयानगरम् और उनके कुँअर की। इसी भाँति सब लोगों का नाम बोलते गए और सलाम होती गई। श्री महाराज विजयानगर भी बाई ओर खड़े हो गए थे। जब सब लोगों की हाजिरी हो चुकी श्रीयुत लार्ड साहिब कोठी पधारे और सब लोग इस बंदीगृह से छूट छूटकर अपने अपने घर आए। रईसों के नंबर की यही दशा थी कि आगे के पीछे और पीछे के आगे अँधेरनगरी हो रही थी। बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा। ये विचारे तो मोम की नाक हैं चाहे जिधर फेर दो, हाय —पश्चिमोत्तर देश वासी कब कायरपन छोड़ैंगे और कब इनकी उन्नति होगी और कब इनको परमेश्वर वह सभ्यता देगा जो हिंदुस्तान के और खंड वासियों ने पाई है।

हरिद्वार

कविवचन सुधा खण्ड ३ अंक १,३० अप्रैल सन् १८७१ के अंक में छपा, सम्पादक के नाम पत्र। —सं.

श्रीमान् क. व. सु. संपादक महोदयेषु !

श्री हरिद्वार को रुड़की के मार्ग से जाना होता है । रुड़की शहर अंगरेजों का बसाया हुआ है । इसमें दो तीन वस्तु देखने योग्य हैं एक तो (कारीगरी) शिल्प विद्या का बड़ा कारखाना है जिसमें जल चक्की पवन चक्की और भी कई बड़े बड़े चक्र अनवर्त खचक्र में सूर्य, चंद्र, पृथ्वी मंगल आदि ग्रहों की भाँति फिरा करते हैं और बड़ी बड़ी धरन ऐसी सहज में चिर जाती हैं कि देखकर आश्चर्य होता है । बड़े बड़े लोहे के खंभे एक क्षण में ढल जाते हैं और सैकड़ों मन आटा घड़ी भर में पिस जाता है । जो बात है आश्चर्य की है । इस कारखाने के सिवा यहाँ सबसे आश्चर्य श्री गंगाजी की नहर है, पुल के ऊपर से तो नहर बहती है और नीचे से नदी बहती है । यह एक बड़े आश्चर्य का स्थान है । इसके देखने से शिल्प-विद्या का बल और अंगरेजों का चातुर्य और द्रव्य का व्यय प्रगट होता है । न जाने वह पुल कितना दृढ़ बना है कि उस पर से अनवर्त कई लाख मन वरन करोड़ मन जल बहा करता है और वह तनिक नहीं हिलता । स्थल में जल कर रक्खा है । और स्थानों में पुल के नीचे से नाव चलती है यहाँ पुल के ऊपर नाव चलती है और उसके दोनों ओर गाड़ी जाने का मार्ग है और उसके परले सिरे पर चूने के सिंह बहुत ही बड़े बड़े बने हैं । हरिद्वार का एक मार्ग इसी नहर की पटरी पर से है और मैं इसी मार्ग से गया था ।

विदित हो कि यह श्री गंगाजी की नहर हरिद्वार से आई है और इसके लाने में यह चातुर्य किया है कि इसके जल का वेग रोकने के हेतु इसको सीढ़ी की भाँति लाए हैं । कोस कोस डेढ़ डेढ़ कोस पर बड़े बड़े पुल बनाये हैं वही मानो सीढ़ियाँ हैं और प्रत्येक पुल के ताखों से जल को नीचे उतारा है । जहाँ जहाँ जल को नीचे उतारा है वहाँ बड़े बड़े सीकड़ों में कसे हुए दृढ़ तखते पुल के ताखों के मुंह पर लगा दिये हैं और उनके खींचने के हेतु ऊपर चक्कर रक्खे हैं । उन तखतों से ठोकर खाकर पानी नीचे गिरता है वह शोभा देखने योग्य है । एक तो उसका महान शब्द दूसरे उसमें से फुहारे की भाँति जल का उबलना और छींटों का उडना मन को बहुत लुभाता है और जब कभी जल विशेष लेना होता है तो तखतों को उठा लेते हैं फिर तो इस वेग से जल गिरता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता और ये मल्लाह दुष्ट वहाँ भी आश्चर्य करते हैं कि उस जल पर से नाव को उतारते हैं या चढ़ाते हैं । जो नाव उतरती है तो यह ज्ञात होता है कि नाव पाताल को गई पर वे बड़ी सावधानी से उसे बचा लेते हैं और क्षण मात्र में बहुत दूर निकल जाती है पर चढ़ाने में बड़ा परिश्रम होता है । यह नाव का उतरना चढ़ना भी एक कौतुक ही समझना चाहिए ।

इसके आगे और भी आश्चर्य है कि दो स्थान नीचे तो नहर है और ऊपर से नदी बहती है । वर्षा के कारण वे नदियाँ क्षण में तो बड़े वेग से बढ़ती थीं और क्षण भर में सूख जाती हैं । और भी मार्ग में जो नदी मिली उनकी यही दशा थी । उनके करारे गिरते थे तो बड़ा भयंकर शब्द होता था और वृक्षों को जड़ समेत उखाड़

उखाड़ के बहाये लाती थी । वेग ऐसा कि हाथी न सम्हल सके पर आश्चर्य यह कि जहाँ अभी डुबाव था वहाँ थोड़ी देर पीछे सूखी रेत पड़ी है और आगे एक स्थान पर नदी और नहर को एक में मिला के निकाला है । यह भी देखने योग्य है । सीधी रेखा की चाल से नहर आई है औ रबेंड़ी रेखा की चाल से नदी गई है । जिस स्थान पर दोनों का संगम है वहाँ नहर के दोनों ओर पुल बने हैं और नदी जिधर गिरती है उधर कई द्वार बनाकर उसमें काठ के तख्ते लगाये हैं जिससे जितना पानी नदी में जाने देना चाहें उतना नदी में और जितना नहर में छोड़ना चाहें उतना नहर में छोड़ें ।

जहाँ से नहर श्री गंगाजी में से निकला है वहाँ भी ऐसा ही प्रबंध है और गंगाजी नहर में पानी निकल जाने से दुबली और छिछली हो गई हैं परंतु जहाँ नील धारा आ मिली है वहाँ फिर ज्यों की त्यों हो गई हैं ।

हरिद्वार के मार्ग में अनेक प्रकार के वृक्ष और पक्षी देखने में आए । एक पीले रंग का पक्षी छोटा बहुत मनोहर देखा गया । बया एक छोटी चिड़िया है उसके घोंसले बहुत मिले । ये घोंसले सूखे बबूल काँटे के वृक्ष में हैं और एक एक डाल में लड़ी की भाँति बीस बीस तीस तीस लटकते हैं । इन पक्षियों की शिल्पविद्या तो प्रसिद्ध ही है लिखने का कुछ काम नहीं है इसी से इनका सब चातुर्य प्रगट है कि सब वृक्ष छोड़ के कांटे के वृक्ष में घर बनाया है । इसके आगे ज्वालापुर और कनखल और हरिद्वार है जिसका वृत्तांत अगले नंबरों में लिखूँगा ।

आपका मित्र

पुरुषोत्तम शुक्ल १० **यात्री**

हरिद्वार

कविवचन सुधा १४ अक्टूबर सन् १८७१ में ही यह दूसरा पत्र संपादक के नाम छपा। — **सं.**

श्रीमान् कविवचन सुधा संपादक महामहिम मित्रवरेषु !

मुझे हरिद्वार का शेष समाचार लिखने में बड़ा आनन्द होता है कि मैं उस पुण्य भूमि का वर्णन करता हूँ जहाँ प्रवेश करने ही से मन शुद्ध हो जाता है । यह भूमि तीन ओर सुंदर हरे हरे पर्वतों से घिरी है जिन पर्वतों पर अनेक प्रकार की वल्ली हरी भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों की भाँति फैल कर लहलहा रही हैं और बड़े बड़े वृक्ष भी ऐसे खड़े हैं मानों एक पैर से खड़े तपस्या करते हैं और साधुओं की भाँति घाम ओस और वर्षा अपने ऊपर सहते हैं । अहा ! इनके जन्म भी धन्य हैं जिन से अर्थी विमुख जाते ही नहीं । फल, फूल, गंध, छाया, पत्ते, छाल, बीज, लकड़ी और जड़ यहाँ तक कि जले पर भी कोयले और राख से लोगों का मनोर्थ पूर्ण करते हैं । सज्जन ऐसे कि पत्थर मारने से फल देते हैं । इन वृक्षों पर अनेक रंग के पक्षी चहचहाते हैं और नगर के दुष्ट बधिकों से निडर होकर कल्लोल करते हैं । वर्षा के कारण सब ओर हरियाली ही दृष्टि पड़ती थी मानों हरे गलीचा की जात्रियों के विश्राम के हेतु बिछायत बिछी थी । एक ओर त्रिभुवन पावनी श्री गंगाजी की पवित्र धारा बहती है जो राजा भगीरथ के उज्ज्वल कीर्ति की लता सी दिखाई देती है । जल यहाँ का अत्यंत शीतल है और मिष्ट भी वैसा ही है मानो चीनी के पने बरफ में जमाया है, रंग जल का स्वच्छ और श्वेत है और अनेक प्रकार के जल जंतु कल्लोल करते हुए । यहाँ श्री गंगा जी अपना नाम नदी सत्य करती हैं अर्थात् जल के वेग का शब्द बहुत होता है और शीतल वायु नदी के उन पवित्र छोटे छोटे कनोंको लेकर स्पर्श ही से पावन करता हुआ संचार करता है । यहाँ पर श्री गंगा जी दो धारा हो गई हैं एक का नाम नील धारा दूसरी श्री गंगा जी ही के नाम से. इन दोनों धारों के बीच में एक सुंदर नीचा पर्वत है और नील धारा के तट पर एक छोटा सा सुंदर चुटीला पर्वत है और उसके शिषर पर चण्डिका देवी की मूर्ति है । यहाँ हरि की पैरी नामक एक पक्का घाट है और यहीं स्नान भी होता है । विशेष आश्चर्य का विषय यह है कि यहाँ केवल गंगाजी ही देवता हैं दूसरा देवता नहीं यों तो वैरागियों ने मठ मंदिर कई बना लिये हैं । श्री गंगा जी का पाट भी बहुत छोटा है पर वेग बड़ा है, तट पर राजाओं की धर्मशाला यात्रियों के उतरने के हेतु बनीं हैं और दुकानें भी बनी हैं पर रात को बंद रहती हैं । यह ऐसा निर्मल तीर्थ है कि काम क्रोध की खानि जो मनुष्य हैं सो वहाँ रहते ही नहीं । पंडे दूकानदार इत्यादि कनखल वा ज्वालापुर से आते हैं । पंडे भी यहाँ बड़े बिलक्षण संतोषी हैं । ब्राह्मण होकर लोभ नहीं यह बात इन्हीं में देखने में आई । एक पैसे को लाख करके मान लेते हैं । इस क्षेत्र में पाँच तीर्थ मुख्य हैं हरिद्वार, कुशावर्त्त, नीलधारा, विल्वपर्वत और कनखल । हरिद्वार तो हरि की पैंड़ी पर नहाते हैं, कुशावर्त्त भी उसी के पास है, नीलधारा वही दूसरी धारा, विल्व पर्वत भी पास ही एक सुहाना पर्वत है जिसपर विल्वेश्वर महादेव की मूर्ति है और कनखल तीर्थ इधर ही है, यह कनखल तीर्थ बड़ा उत्तम है । किसी काल में दक्ष ने यहीं यज्ञ किया था और यहीं सती ने शिव जी का अपमान न सहकर अपना शरीर भस्म कर दिया, यहाँ कुछ छोटे छोटे घर भी बने हैं । और भारामल जैकृष्णदास खत्री यहाँ के प्रसिद्ध धनिक हैं । हरिद्वार में यह बखेड़ा कुछ नहीं है और शुद्ध निर्मल साधुओं के सेवन योग्य तीर्थ है । मेरा तो चित्त वहाँ जाते ही ऐसा प्रसन्न और निर्मल हुआ कि वर्णन के बाहर है । मैं दीवान कृपा राम के घर के ऊपर के बंगले पर टिका था । यह स्थान भी उस क्षेत्र में टिकने योग्य ही है चारो ओर से शीतल पवन आती थी । यहाँ रात्रि को ग्रहण हुआ और हम लोगों ने ग्रहण में बड़े आनंद पूर्वक स्नान किया और दिन में श्री भागवत का पारायण भी किया । वैसे ही मेरे संग कल्लू जी मित्र भी

परमानंदी थे । निदान इस उत्तम क्षेत्र में जितना समय बीता बड़े आनंद से बीता । एक दिन मैंने श्री गंगा जी के तट पर रसोई करके पत्थर ही पर जल के अत्यंत निकट परोस कर भोजन किया । जल के छलाके पास ही ठंढे ठंढे आते थे । उस समय के पत्थर पर भोजन का सुख सोने की थाल के भोजन से कहीं बढ़ के था । चित्त में बारंबार ज्ञान वैराग्य और भक्ति का उदय होता था । झगड़े लड़ाई का कहीं नाम भी नहीं सुनाता था । यहाँ और भी कई वस्तु अच्छी बनती हैं, जनेऊ यहाँ का अच्छा महीन और उज्ज्वल बनता है । यहाँ की कुशा सबसे विलक्षण होती है जिसमें से दालचीनी जावित्री इत्यादि की अच्छी सुगंध आती है । मानो यह प्रत्यक्ष प्रगट होता है कि यह ऐसी पुण्यभूमि है कि यहाँ की घास भी ऐसी सुगंधमय है । निदान यहाँ जो कुछ है अपूर्व है और यह भूमि साक्षात विरागमय साधुओं और विरक्तों के सेवन योग्य है । और संपादक महाशय मैं चित्त से तो अब तक वहीं निवास करता हूँ और अपने वर्णन द्वारा आपके पाठकों को इस पुण्यभूमि का वृत्तांत विदित करके मौनावलंबन करता हूँ । निश्चय है कि आप इस पत्र को स्थानदान दीजिएगा ।

आपका मित्र
यात्री

लखनऊ

कविवचन सुधा खण्ड-२, अंक २२, श्रावण कृष्ण ३० सम्वत् १९२२ में सम्पादक को लिखा गया पत्र जिसमें भेजने वाले का नाम एक यात्री लिखा है । भारतेन्दु का एक उपनाम यह भी था ।
— सं.

श्रीमान् क. व. सुधा संपादक महोदयेषु !

मेरे लखनऊ गमन का वृत्तांत निश्चय आपके पाठकगणों को मनोरंजक होगा ।

कानपुर से लखनऊ आने के हेतु एक कंपनी अलग है । इसका नाम अ. रु. रे. कंपनी है । इसका काम अभी नया है और इसके गार्ड इत्यादिक सब काम चलानेवाले हिंदुस्तानी हैं । स्टेशन कान्हपुर का तो दरिद्र सा है पर लखनऊ का अच्छा है । लखनऊ के पास पहुँचते ही मसजिदों के ऊँचे कंगूर दूर ही से दिखाते हैं, परंतु नगर में प्रवेश करते ही एक बड़ी बिपत आ पड़ती है । वह यह है कि चुंगी के राक्षसों का मुख देखना होता है । हम लोग ज्यों ही नगर में प्रवेश करने लगे जमदूतों ने रोका । सब गठरियों को खोल खोल के देखा जब कोई वस्तु न निकसी तब अँगूठियों पर (जो हम लोगों के पास थीं) आ झुके बोले इसका महसूल दे जाओ । हम लोग उतर के चौकी पर गए । वहाँ एक ठिगना सा काला रूखा मनुष्य बैठा था । नटखटपन उसके मुखरे से बरसता था । मैंने पूछा क्यों साहब बिना बिकरी की वस्तुओं पर भी महसूल लगता है । बोले हाँ, कागज देख लीजिए छपा हुआ है मैंने कागज देखा उसमें भी यही छपा था । मुझे पढ़ के यहाँ की गवर्नमेंट के इस अन्याय पर बड़ा

दु:ख हुआ। मैंने उनसे पूछा कि कहिये कितना महसूल दूँ। आप नाक गाल फुला के बोले कि मैं कुछ जवहिरी नहीं हूँ कि इन अँगूठियों का दाम जानू मोहर करके गोदाम को भेजूँगा वहाँ सुपरिंटेंडेंट साहब साँझ को आकर दाम लगावैंगे। मैंने कहा कि साँझ तक भूखों कौन मरेगा। बोले इससे मुझे क्या? कहाँ तक लिखूँ इस दुष्ट ने हम लोगों को बहुत छकाया। अंत में मुझे क्रोध आया तब मैंने उसको नृसिंह रूप दिखाया और कहा कि मैं तेरी रिपोर्ट करूँगा। पहिले तो आप भी बिगड़े पीछे ढीले हुए, बोले अच्छा जो आपके धरम में आवे दे दीजिए। तीन रुपये देकर प्राण बचे तब उनके सिपाहियों ने इनाम माँगा। मैंने पूछा क्या इसी घंटों दुख देने का इनाम चाहिये। किसी प्रकार इस बिपत से छूटकर नगर में आए। नगर पुराना तो नष्ट हो गया है जो बचा है वह नई सड़क से इतना नीचा है कि पाताल लोक का नमूना सा जान पड़ता है। मसजिद बहुत सी हैं, गलियाँ सकरी और कीचड़ से भरी हुई बुरी गंदी दुर्गन्धमय। सड़क के घर सुथरे बने हुए हैं। नई सड़क बहत चौड़ी और अच्छी है। जहाँ पहिले जौहरी बाजार और मीनाबाजार था वहाँ गदहे चरते हैं और सब इमामबाड़ों में किसी में डाकघर कहीं अस्पताल कहीं छापा खाना हो रहा है। रूमी दर्वाजा नवाब आसिफुद्दौला की मसजिद और मच्छीभवन का सर्कारी किल बना है। बेदमुश्क के हौजों में गोरे मूतते हैं। केवल दो स्थान देखने योग्य बचे हैं। पहिला हुसैनाबांद और दूसरा कैसर बाग। हुसैनाबाद के फाटक के बाहर एक षट्कोण तालाब सुंदर और एक बारहदरी भी उसके ऊपर है और हुसैनाबाद के फाटक के भीतर एक नहर बनी है और बाईं ओर ताजगंज का सा एक कमरा बनाहुआ है। वह मकान जिसमें बादशाह गड़े हैं देखने योग्य है। बड़े बड़े कई सुंदर झाड़ रक्खे हुए हैं और इस हुसैनाबाद के दीवारों में लोहे के गिलास लगाने के इतने अँकुड़े लगे हैं कि दीवार काली हो रही है। कैसरबाग भी देखने योग्य हैं। सुनहरे शिखर धूप में चमकते हैं। बीच में एक बारादरी रमणीय बनी है और चारों ओर अनेक सुंदर सुंदर बंगले बने हैं। जिसका नाम लंका है उसमें कचहरी होती है। और औध के तअल्लुके दारों को मिले हैं। जहाँ मोती लुटते थे वहाँ धूल उड़ती है। यहाँ एक पीपल का पेड़ श्वेत रंग का देखने योग्य है।

यहाँ के हिंदू रईस धनिक लोग असभ्य हैं और पुरानी बातें उनके सिर में भरी हैं। मुझसे जो मिला उसने मेरी आमदनी गाँव रुपया पहिले पूछा और नाम पीछे। वरन् बहुत से आदमी संग में न लाने की निंदा सबने किया पर जो लोग शिक्षित हैं वे सभ्य हैं। परंतु रंडियाँ प्राय: सबके पास नौकर हैं। और मुसल्मान सब वाहय सभ्य हैं, बोलने में बड़े चतुर हैं। यदि कोई भी माँगता है या फल बेचता है तो वह भी एक अच्छी चाल से। थोड़ी अवस्था के पुरुषों में भी स्त्रीपन झलकता हैं। बातैं यहाँ की बडी लंबी चौड़ी बाहर से स्वच्छ पर भीतर से मलीन। स्त्रियाँ सुंदर तो ऐसी नहीं पर आँख लड़ाने में बड़ी चतुर। यहाँ भंगेड़िने रंडियों के भी कान काटती हैं। हुक्के की भंग की दूकानों पर सज सज के बैठती हैं और नीचे चाहनेवालों की भीड़ खड़ी रहती है पर सुंदर कोई नहीं।

और भी यहाँ अमीनाबाद, हजरतगंज, सौदागरों की दूकानैं, चौक, मुनशी नवलकिशोर का छापाखाना और नवाब मशकूरुद्दौला की चित्र की दूकान इत्यादि स्थान देखने योग्य हैं।

जैसा कुछ है फिर भी अच्छा है।

ईश्वर यहाँ के लोगों को विद्या का प्रकाश दें और पुरानी बातैं ध्यान से निकालैं।

आपका चिरानुगत
यात्री

जब्बलपुर

कविवचन सुधा २० जुलाई सन् १८७२ के अंक में यात्रा वृत्तान्तों की कड़ी में छपा सम्पादक के नाम पत्र ।

— सं.

श्रीयुत कवि वचन सुधा संपादक समीपेषु

महाशय

मेरी इच्छा है कि मैं अपनी मध्य देशीय और बंबई की यात्रा का सविस्तार समाचार लिखकर आपके पत्र द्वारा अपने देशवालों पर विदित करूँ जिसमें वे लोग इसे पढ़कर सज्ञ हो जायं और आशा रखता हूँ कि आप को स्थान देने में कुछ असमंजस न होगा ।

मैंने आप की पवित्र नगरी से दूसरी तारीख को संध्या समय दस बजे प्रस्थान किया और जिस समय राजघाट पहुँचा गाड़ी छूटने को केवल पाँच मिनट का विलंब था । झट टिकट लेकर आरोहण किया और थोड़े समय में मोगलसराय में पहुँचा । वहाँ पर एक दूसरे गाड़ी में चढ़ा और निरंतर चला तो सूर्योदय होते होते नैनी के स्टेशन पर पहुँचा और वहाँ उतर पड़ा क्योंकि वह गाड़ी इलाहाबाद जाती थी और मुझे आना था जबलपुर । वहाँ हम लोगों ने (क्योंकि एक मित्र भी मेरे साथ थे) नित्य शौच किया और चाहा कि कुछ खाँय पर वहाँ काहे का कुछ मिलता है । दूध के लिए एक मनुष्य को पैसा दिया तो वह मुँह बनाये हुए आया और बोला कि अभी दूध नहीं आया । फिर हम लोगों ने पूछा कि भला यहाँ जिलेबी मिलेगी उसने कहा हाँ । पैसा देकर भेजा तो वह तेल की जिलेबी उठा लाया परंतु वैसी तेल की न समझिए जैसी बनारस में बनती है और टके की पाव भर बिकती है । यह उससे तो बढ़कर थी । हम लोगों ने अपना अपना माथा ठोंका और इस द्रव्य को उसी मनुष्य के अर्पण किया । इतने में नौ बजा और गाड़ी आई । फिर हम लोग चढ़े और जसरा, शिवराजपुर, बरगढ़, दबोरा, माणिक्यपुर, मरकुण्डी, मजगाँवा, जेतवार, सतना, उचारा, मैहरी, अधरा, जोखई, कतनी, स्लीमानाबाद रोड, सिंहोरा रोड, देवरी नाम स्टेशनों को पार करते हुए सवा आठ बजे रात को जबलपुर पहुँचे । मार्ग में जो क्लेश हुआ वह अथकनीय है । एक तो मार्तण्ड की प्रचण्ड किरण से गाड़ी ऐसी उत्तप्त हो रही थी । यदि शरीर स्पर्श हो जाय तो यह भ्रम होता था कि फफोला तो नहीं पड़ गया, किसी प्रकार से चैन नहीं मिलता था । यदि एकाद बार खिड़की खुल जाती तो मुँह मानो प्रज्वलित अग्नि की ज्वाल से झौंस जाता । प्यास के मारे कंठ सूखा जाता था और मुख से आखर नहीं निकलते थे । जो कहीं पानी मिलै भी तो अदहन के सहस । उधर क्षुधा अलग सता रही थी । आते आते जब सतना में पहुँचे तो थोड़ी सी जिलेबी लेकर खाया तब कुछ आँखें खुली फिर मैहर में पक्का आम विक्रय होता था वह लिया । इसी भाँति ज्यों त्यों कर करके जबलपुर में आकर उतरे . अब यहाँ कहीं टिकने का ठिकाना न मिले । थोड़ी दूर पर सुना कि एक सराय है । वहाँ गए तो देखा कि एक बड़ा भारी

मैदान है और उसके किनारे किनारे छावनी सी बनी है पर वह क्या था मालूम नहीं क्योंकि यात्री सब उसी मैदान में बिस्तरा लगाए पड़े थे । चौधरी के पास गए । (यहाँ भठियारे नहीं हैं) तो वह मारे मिजाज के किसी की कुछ सुनता ही न था । खैर बड़ी देर के अनंतर जब हम लोगों ने पूछा कि यहाँ चारपाई इत्यादि मिलेगी कि नहीं, उसने कहा जाकर बनिए से पूछो और बनिए की वहाँ कहीं सूरत भी नहीं दिखाती थी । अंत को असक्त होकर वहाँ एक हलवाई था उससे कुछ लेकर हम लोगों ने क्षुधा शांत किया और एक एक्केवाले को बुलाकर पुल पर पंडित गोपालराय, एक्सट्रा असिस्टेंट नरसिंहपुर के घर पर गए । परंतु इसके पूर्व यह प्रकाश करना उचित कि यहाँ पैसा साढ़े पंद्रह आने तो बिकतई है दो अन्नी और चरअन्नी भुजाने में भी एक एक पैसा भुजाना लगता है । ऐसा अँधेर हमने और किसी स्थान में नहीं देखा था । एक्केवाले को चरअन्नी दिया तो वह कहता है कि यह तो पंद्रही पैसे हुए एक पैसा और चहिए । एक और लड़के को सात पैसे के पलटे दो अन्नी दिया । हम नहीं जान्ते कि सरकार इन बातों को जानती है या नहीं जानकर कान में तेल डाले बैठी है । अभी तक जबलपुर मैंने भली भाँति देखा नहीं पर दो तीन बात यहाँ नई देखने में आई । एक प्रत्येक चौराहे पर यहाँ लालटेन एक एक झाड़ टगें हैं । जे सड़क उस स्थान पर मिलती है उतना ही लालटेन एक खंभे में लगी हैं । दूसरे यह कि सड़क बहुत परिष्कृत और प्रशस्त हैं । फिरती बार ईश्वर चाहेगा तो नगर को भली भाँति देखकर आप के पास लिखूँगा । रात भर तो उन महाराज जी (उक्त महाशय के शाले) के यहाँ रहे दूसरे दिन उन्होंने बड़े आतिथ्य से भोजन कराया और आदरपूर्वक बिदा किया । जबलपुर से फिर हम लोगों ने ३ /-)।। दे दे कर इटारसी का टिकट लिया और ग्रेट इंडियन पेनिन्सुला रेलवे कंपनी की गाड़ी पर सवार हुए । यह गाड़ी एक विचित्र प्रकार की होती है । ईस्ट इंडियन रेलवे की गाड़ी मेंकई विभाग रहते हैं परंतु यहाँ सरासर एकी रहती है और उसमें छ : बेंच लगे रहते हैं — तीन द्वार के एक और तीन दूसरी ओर । इन गाड़ियों के एक कोने में एक शौच गृह (पायखाना) भी बना रहता है और गाड़ी की सूरत भी बहुत भद्दी होती है । यह तो तीसरी क्लास की गाड़ी है । यहाँ एक लोकल गाड़ी होती है जिसमें कुली आदि नीच लोग भेंड़ की भाँति भर दिए जाते हैं । उसमें बैठने के लिए कुछ भी स्थान नहीं बने रहते । किराया उसमें एक पैसे कोस है । यह तो गाड़ी की प्रशंसा है । स्टेशन का प्रबंध ऐसा है कि खाने की वस्तु का तो नाम न लेना, लोग पानी पुकारा करते हैं कोई सुनता नहीं । एक बेर दो तीन मनुष्य मेरी गाड़ी में बहुत चिल्ला रहे थे कि एक गार्ड आया तो एक पारसी ने कहा Sir They (are) Complaining very much for water" (साहेब लोग पानी पानी बहुत चिल्लाते हैं) तो गार्ड ने उत्तर दिया Can't help मैं कुछ नहीं कर सकता) अब कहिये ज्येष्ठ की दुपहरी में यदि कोई पानी बिना मर जाय तो क्या कंपनी पकड़ी न जायगी ? इस उत्तर से तो यही प्रगट होता है । ज्ब्बल पुर और इटारसी के बीच में ७ स्टेशन (चिदवारा, नृसिंहपुर, गदावराए बाकेड़ी, सोहागपुर, बाग्रा और इटारसी) पड़ते हैं । परंतु रेल पथ के दोनों ओर जंगल और पहाड़ों के कुछ दृष्टि नहीं पड़ता । कोसों पर्यन्त कोई गाँव नहीं दिखाई देता । इससे आप समझ लीजिये कि यह कैसा देश है । इटारसी और बाग्रा के बीच यहां भी एक सुरंग है जिसके भीतर से गाड़ी जाती है परंतु यह सुरंग जमालपुर के सुरंग से बड़ा है क्योंकि इसमें जिस समय गाड़ी जाती है तो किंचित अंधकार हो जाती है तो किंचित अंधकार हो जाता है पर उसमें इधर से उधर तक बराबर प्रकाश रहता है । परंतु अनेक लोग कहते हैं कि वही बड़ा है । इटारसी के स्टेशन से जो बाहर आकर मैंने एक बेर दृष्टि फेरी तो ज्ञात हुआ कि कैसे देश में आया हूँ क्योंकि चतुर्दिक जंगल और मैंदान दीखने लगा । इसके आगे मार्ग ऐसा है कि केवल सगड़ और घोड़े के कुछ नहीं जा सकती । हम लोगों ने भी एक गाड़ी पाँच रुपये पर भाड़े की ओर चढ़ कर चले । आगे का समाचार दूसरे पत्र में लिखूँगा ।

एक मध्यदेश यात्री

सरयू पार की यात्रा

'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' खं ६ सं. ८, फरवरी सन् १८७९ में छपा यह यात्रा वृत्तांत बड़ा विस्तृत है। इस लेख में भारतेन्दु बाबू के सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृत्ति के साथ साथ सैलानी प्रवृत्ति का भी पता चलता है। — सं.

अयोध्या

कल साँझ को बेगा बजे रेल पर सवार हुए, यह गए, वह गए। राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़ न जाने क्यों ? और मजा यह कि पानी कहीं नहीं मिलता था। यह कंपनी यजीद के खानदान की मालूम होती है कि ईमानदारों को पानी तक नहीं देती। या सिप्रस का टापू सरकार के हाथ आने से और शाम में सरकार का बंदोबस्त होने से यह भी शामत का मारा शामी तरीका अखतियार किया गया है कि शाम तक किसी को पानी न मिले। स्टेशन के नौकरों से फर्याद करो तो कहते हैं कि डाँक पहुँचावें, रोशनी दिखलावें कि पानी दें। खैर, ज्यों त्यों कर अयोध्या पहुँचे। इतना ही धन्य माना कि श्रीराम नवमी की रात अयोध्या में कटी। भीड़ बहुत ही है, मेला दरिद्र और मैले लोगों का। यहाँ के लोग बड़े ही कंगाल टिर्रे हैं। इस वक्त दोपहर को अब उस पार जाते हैं। ऊँट गाड़ी यहाँ से पाँच कोस पर मिलती है।

कैम्प हरैया बाजार

अब तक तीन पहर का सफर हो चुका है और सफर भी कई तरह का और तकलीफ देने वाला। पहिले सरा से गाड़ी पर चले। मेला देखते हुए रामघाट की सड़क पर गाड़ी से उतरे। वहाँ से पैदल धूप में गर्म रेती में सरजू किनारे गुदारा घाट पर पहुँचे। वहाँ से मुश्किल से नाव पर सवार होकर सरजू पार हुए। वहाँ से बेलवाँ, जहाँ कि डाँक मिलती है और शायद जिसका शुद्ध नाम बिल्व ग्राम है, दो कोस है। सवारी कोई नहीं न राह में छाया के पेड़, न कूँआ न सड़क। हवा खूब चलती थी इससे पगडंडी भी नहीं नजर पड़ती, बड़ी मुश्किल से चले और बड़ी ही तकलीफ हुई। खैर बेलवाँ तक रो रो कर पहुँचे। वहाँ से बैल की डाँक पर नौ बजे रात को वहाँ पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही हरैया बाजार के नाम से यह गीत याद आया 'हरैया लागल झबिआ के रे लैहै ना'। शायद किसी जमाने में यहाँ हरैया बहुत बिकती होगी। इसके पास ही मनोरमा नदी है। मिठाई हरैया की तारीफ के लायक है। बालूसाही बिल्कुल बालूसाही भीतर काठ के टुकड़े भरे हुए। लड्डू 'भूरके'। बरफी हा हा हा ! गुण से भी बुरी। खैर, लाचार होकर चने पर गुजर की। गुजर गई गुजरान —क्या झोपड़ी क्या मैदान, बाकी हाल कल के खत में।

बस्ती

परसों पहिली एप्रिल थी इससे सफर करके रेती में बेवकूफ बनने का और तकलीफ में सफर करने का हाल लिख चुके हैं । अब आज आठ बजे सुबह रें रें करके बस्ती पहुँचे । वाह रे बस्ती, झख मारने को बसती है अगर बसती इसी को कहते हैं तो उजाड़ किसको कहेंगे । सारी बस्ती में कोई भी पंडित बस्तीराम जी ऐसा पंडित नहीं । खैर अब तो एक दिन यहीं बसती होगी । राह मे मेला खूब था, जगह जगह पर शहाबे का शहाबा । चूल्हे जल रहे हैं । सैकड़ों अहरे लगे हुए हैं । कोई गाता है, कोई बजाता है, कोई गप हाँकता है । रामलीला के मेले में अवध प्रांत के लोगों का स्वभाव रेल अयोध्या और इधर राह में मिलने से खूब मालूम हुआ । बैसवारे के पुरुष अभिमानी, रूखे और रसिकमन्य होते हैं, रसिकमन्य ही नहीं वीरमन्य भी । पुरुष सब पुरुष और सभी भीम, सभी अर्जुन, सभी सूत पैराणिक और सभी वाजिद अली शाह । मोटी मोटी बातों को बड़े आग्रह से कहते सुनते हैं । नई सभ्यता अब तक इधर नहीं आई है । रूप कुछ ऐसा नहीं पर स्त्रियाँ नेत्र नचाने में बड़ी चतुर । यहाँ के पुरुषों की रसिकता मोटी चाल सुरती और खड़ी मोंछ में छिपी है और स्त्रियों कि रसिकता मैले वस्त्र और सूप ऐसी नथ में । अयोध्या में प्राय : सभी ग्रामीण स्त्रियों के गोल आते हुए मिले । उनका गाना भी मोटी रसिकता का । मुझे तो उनकी सब गीतों में ''बोलो प्यारी सखियाँ सीताराम राम राम'' यही अच्छा मालूम हुआ । राह में मेला जहाँ पड़ा मिलता था वहाँ बारात का आनंद दिखलाई पड़ता था । खैर मैं डाँक पर बैठा बैठा सोचता था कि काशी में रहते तो बहुत दिन हुए परंतु शिव आज ही हुए क्योंकि बृषभवाहन हुए । फिर अयोध्या याद आई कि हा ! यह वही अयोध्या है जो भारतवर्ष में सबसे पहले राजधानी बनाई गई । इसी में महात्मा इक्ष्वाकु, मांधाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, अज, रघु, श्री रामचन्द्र हुए हैं और इसी के राजवंश के चरित्र में बड़े बड़े कवियों ने अपनी बुद्धिशक्ति की परिचालना की है । संसार में इसी अयोध्या का प्रताप किसी दिन व्याप्त था और सारे संसार के राजा लोगइसी अयोध्या की कृपाण से किसी दिन दबते थे वही अयोध्या अब देखी नहीं जाती । जहाँ देखिए मुसलमानों की कब्रे दिखाई पड़ती हैं । और कभी डाँक पर बैठे रेल का दु :ख याद आ जाता कि रेलवे कंपनी क्यों ऐसा प्रबंध किया है कि पानी तक न मिले । एक स्टेशन पर एक औरत पानी का डोल लिए आई भी तो गुपला गुपला पुकारती रह गई, जब हम लोगों ने पानी माँगा तो लगी कहने कि 'रह : हो पानियैं पानी पड़ल हौ' फिर कुछ जियादा जिद में लोगों ने माँगा तो बोली 'अब हम गारी देब' । वाह ! क्या इंतज़ाम था । मालूम होता था रेलवे कंपनी स्वभाव (Nature) की बड़ी शत्रु है क्योंकि जितनी बातें स्वभाव से संबंध रखती हैं अर्थात खाना, पीना, सोना, मलमूत्र त्याग करना इन्हीं का इसमें कष्ट है । शायद ; इसी से अब हिंदुस्तान में रोग बहुत हैं । कभी सराय की खाट के खटमल और भटियारियों का लड़ना याद आया । यही सब याद करते कुछ सोते जागते हिलते हिलते आज बस्ती पहुँच गए । बाकी फिर । यहाँ एक नदी है उसका नाम कुआनय । डेढ़ रुपया पुल का गाड़ी का महसूल लगा ।

बस्ती के जिले की उत्तर सीमा नैपाल, पश्चिमोत्तर की गोंडा, पश्चिम-दक्षिण अयोध्या और पूरब गोरखपुर है । नदियाँ बड़ी इसमें सरयू और इरावती । सरयू के इस पार बस्ती उस पार फैजाबाद । छोटी नदियों में कुनेय, मनोरमा, कठनेय, आमी, बानगंगा और जमबर है । बरकरा ताल और जिरजिरवा दो बड़ी झील भी हैं । बाँसी, बस्ती और मकहर तीन राजा भी हैं । बस्ती सिर्फ चार पाँच हजार की बस्ती है पर जिला बड़ा है क्योंकि जिले की आमदनी चौदह लाख है । साहब लोग यहाँ कुल दस बारह हैं, उतनेही बंगाली हैं । अगरवाला मैंने खोजा एक भी न मिला. सिर्फ एक है वह भी गोरखपुरी। पुरानी बस्ती खाँई के बीच में बसी है । राजा के महल बनारस के अर्दली बजार के किसी मकान से उमदा नहीं । महल के सामने मैदान, पिछवाड़े जंगल और चारों ओर खाँई है । पाँच सौ खटियों के घर महल के पास हैं जो आगे किसी जमाने में राजा के लूटमार के मुख्य सहायक थे। अब राजा के स्टेट के मैनेजर कूक साहब हैं ।

यहाँ के बाजार का हम बनारस के किसी भी बाजार से मुकाबिला नहीं कर सकते । महज बेढ़ैसियत ! महाजन ' एक यहाँ हैं वह टूटे खपड़े में बैठे थे । तारीफ यह सुना कि साल भर में दो बेर कैद होते हैं क्योंकि महाजन पर जाल करना फर्ज है और उसको भी छिपाने का शऊर नहीं । यहाँ का मुख्य ठाकुरद्वारा दो तीन हाथ चौड़ा और उतना ही लंबा और उतना ही ऊँचा बस । पत्थर का कहीं दर्शन भी नहीं । यह हाल बस्ती का है ।

कल डाँक ही नहीं मिली कि जायँ । मेंहदावल की कच्ची सड़क है इससे कोई सवारी नहीं मिलती आज कँहार ठीक हुए हैं । भगवान ने चाहा तो शाम को रवाना होंगे । कल तो कुछ तबीअत भी गबड़ा गई थी इससे आज खिचड़ी खाई । पानी यहाँ का बड़ा बातुल है । अकसर लोगों का गला फूल जाता है, आदमी का ही नहीं कुत्ते और सुग्गे का भी । शायद गला फूल कबूतर यहीं से निकले हैं । बस अब कल मिंहदावल से खत लिखेंगे ।

मेंहदावल

आज सुबह सात बजे मेंहदावल पहुँचे । सड़क कच्ची है, राह में एक नदी उतरनी पड़ती है उसका नाम आमी है । छ: आना पुराना महसूल लगा । रात को ग्यारह बजे पालकी पर सवार हुए । बदन खूब हिला । अन्न भी नहीं पचा । इस वक्त यहाँ पड़े हैं । यहाँ मक्खी बहुत हैं और आबादी बहुत है । दो लड़कों के स्कूल हैं और एक लड़कियों का स्कूल है और एक डाक्तरखाना है । बस्ती शहर है मगर उससे यह मेंहदावल गाँव बहुत आबाद है । फैजाबाद में ५।।) बस्ती तक डांक का लगा और बस्ती से मेंहदावल तक ३।।।) पालकी का । अभी एक गँवार भाट आया था बेतरह बका । फूहर औरतों की तारीफ में एक बड़ी भारी पचड़ा पढ़ा । यहाँ गरमी बहुत है और मक्खियाँ लखनऊ से भी जियादा । दिन को बड़ी बेचैनी है ।

यहाँ की औरतों का नाम श्यामतोला, रामतोला, मनतोरा इत्यादि विचित्र विचित्र होता है और नारंगी को भी यही श्यामतोला कहते हैं जो संगतरा का अपभ्रंश मालूम होता है क्योंकि यहीं के गँवार संतोला कहते हैं । यहाँ एक नाऊ बड़े पंडित थे । उनसे किसी पंडित ने प्रश्न किया 'कि दूधं' (तुम कौन जात हो) तब नाई ने जवाब दिया 'चटपटाक चटपटाक' (नाई) तब ब्राह्मण ने कहा 'तं दूरं' (तुम दूर जाओ), तब नाई ने जवाब दिया 'किं छौरं' (तब मूड़ कौन मूड़ेगा) । एक का बाप डूबकर मर गया उसके बाप का पिंडा इस मंत्र से कराया गया 'आर गंगा पार गंगा बीच में पड़ गई रेत । तहाँ मर गए नायका चले बुज बुजा देत, घर दे पिंडवा ।'

कुछ फुटकर हाल भी यहाँ का सुन लीजिए । कल मजहब का हाल हमने नीचे लिखा था । उसका अच्छी तरह से हाल दर्याफ्त किया तो मालूम हुआ कि हमारे ही मजहब की शाखा है । इनके ग्रंथों में हमने एक श्लोक श्री महाप्रभु जी की सुबोधिनी की कारिका का देखा, इसी से हमको संदेह हुआ । फिर हमने बहुत खोद खाद कर पूछा तो वह साफ मालूम हुआ कि इसी मत से यह मत निकला है क्योंकि एक बात वह और बोले कि हमारा मत श्री वल्लभाचारज की टीका में लिखा है । इन लोगों के उपास्य श्री कृष्ण हैं और एकादशी, शालग्राम, मूर्तिपूजा, तीर्थ किसी को नहीं मानते । इनके पहिले आचार्य्य देवचन्द जी थे, जो जात के कायथ थे और दूसरे प्राणनाथ जी जो कच्छ के क्षत्री (भाटिया) थे । हमारे ही मत की शाखा सही पर विचित्र Reformed मत है । वैष्णव होकर मूर्तिपूजा का खंडन करने वाले यही लोग सुने ।

यहाँ बूढ़े को खबीस, ब्रत को बेनी राम, भोजन को बुलनी, जात को दूध, ऐसे ही अनेक विचित्र-विचित्र बोली है ।

गाँव गन्दा बड़ा है और लोग परले सिरे के बेवकूफ । यहाँ से चार मील पर एक मोती भील वा बखरा ताल नामक भील है । दर हकीकत देखने के लायक है । कई कोस लम्बी भील है और जानवर तरह तरह के देखने में आते हैं । पहाड़ से चिडियाँ हजारों ही तरह की आती हैं और मछली भी इफरात । पेड़ों पर बंदर भी । मेंदावल में कोई चीज भी देखने लायक नहीं । जहाँ देखो वहाँ गन्दगी । लोग बज्र मूख, क्षत्री ब्राह्मण जियादा । एक यहाँ प्रान नाथ का मजहब है और दस बीस लोग उसके मानने वाले हैं । ये लोग एकादशी तीर्थ वगैरह को नहीं मानते और सुने सुनाए दो तीन श्लोक जो याद कर लिये हैं बस उसी पर चूर हैं । 'मदीनास्यां शरदां शतं' और 'गोविंदं गोकुलानन्द मक्केश्वरं' यह श्लोक पढ़ के कहते हैं कि वेद में मक्का मदीने का वर्णन है । ऐसे ही बहुत वाहियात बात कहते हैं और कोई कितना भी कहै कुछ सुनते नहीं । कहते हैं कि गोलोक का नाश है और गोलोक ऊपर एक 'अखंड मण्डलाकारं' लोक है, उसमें मेरे कृष्ण हैं । इनका मजहब एक प्राणनाथ नामक एक क्षत्री ने पन्ना में करीब तीन सौ बरस हुए चलाया था । यहाँ चैत सुदी भर रात को औरतें जमा होकर माता का गीत गाती हैं और बड़ा शोर करती हैं । असभ्य बकती हैं । व्यभिचार यहाँ बेतकल्लुफ है । सरयू पार के ब्राह्मण बड़े विचित्र हैं । मांस मछली सब खाते हैं । कुँए के जगत पर एक आदमी जो पानी भरता हो दूसरा

आदमी चला आवै तो अपना घड़ा फोड़ डाले और उससे घड़े का दाम ले । घड़ा कोई कहै तो घड़ा छू जाय क्योंकि घड़ा मुसलमानी लफ़्ज़ है, दाल कहै तो छू जाय क्योंकि दाल मुसलमानी है । सूरज वंशी छत्री राजा बाबू को छाता नहीं लगता है क्योंकि वे तो सूरज वंशी हैं, सूरज से क्या छाता लगावें । नेम बड़ा धरम बिलकुल नहीं । एक ब्राह्मण ने कोंहार से नई सनहकी मोल लेकर उसमें पूरी बनाकर खाया, इससे वह जात से निकाल दिया गया क्योंकि जैसे बर्तन में मुसलमान खाना बनावैं उस आकार के बरतन में इसने हिंदू होकर खाना बनाया । ह हा हा ! और मजा यह कि ताजिये को सब मानते हैं । मेंहदावल में एक थाना है । थानेदार यहाँ के बादशाह हैं । एक डाक्तर खाना भी है । वह बड़ा सर्कार का पुन्य है । बस हमको तो सर्कार के पुन्य में कसर यही मालूम होती है कि पुलों पर महसूल लिया जाता है क्योंकि भला नाव या ऐसे पुल पर महसूल लगै तो ठीक है, जिसकी हर साल मरम्मत हो, पक्के पर भी महसूल । बस्ती में अगरवाला नहीं, एक है सो जूता उतार कर लायची खाते हैं । मेंहदावल में एक अगरवाले हैं । मुसलमान फर्श पर यहाँ नहीं बैठते । पिण्डारे जिनको इस जिले में जमीन मिली हैं अब नवाब हो गए हैं और उनकी मुस्तैदी आराम से बदल गई है । यहाँ कहीं कहीं धारु लोगों का रक्खा सोना खोदने से ॥ तक मिलता है यहाँ के बाबू ऐसी हठी कि बंगला गिर पड़ा पर जूता उलटा था, खिदमतगार को पुकारा वह न आया, इससे आप वहाँ से न चले और दबकर मर गए ।

गोरखपुर

अहो बरनि नहिं जात है आज लह्यो जो खेद ।
आतप उष्मा बायु सों चल्यो नखन सों स्वेद ।।१।।
प्रिय दुरगा परसाद गृह ठहरे हैं इत आय ।
बाट बिलोकत दुष्ट की रहे उतहि बिलगाय ।।२।।
आवत ह्वैहे दुष्ट सो लीने नग निज साथ ।
पै निकस्यौ जो खोट तो रहिहैं हम धुनि माथ ।।३।।
करम लिखी सो होय है यामैं कछु न सँदेह ।
बृथा लोभ बस लोग सब छाँड़त सुख मैं गेह ।।४।।
"करम कमंडल कर गहे तुलसी जहँ जहँ जाय ।
सरिता सागर कूप जल बूँद न अधिक समाय ।।५।।"
तऊ सोच नहिं कछु करिय मम प्रभु मंगल धाम ।
करिहैं सब कल्यान ही यामैं कदु न कलाम ।।६।।
रजिस्टरी को पत्र इक गयो होइहैं तत्र ।
ताहि जतन करि राखियो फिरि नहिं आवै अत्र ।।७।।
जेहि छन सो खल आइहै ताही छन दिखराइ ।
ताहि तुरंतहिं लौटिहैं तितहि पहुँचिहैं आइ ।।८।।
तित प्रबन्ध सब राखिहौ रहिहौ ह्वै हुसियार ।
कीजौ रच्छा अंग की करि उपाय हर बार ।।९।।
आवत हैं हम वेग ही यामैं संसय नाहिं ।
अति व्याकुलता तित बिना मेरेहू जिय माहिं ।।१०।।
प्रति पद माधव की प्रथम रस शिव दृग ग्रह चन्द ।
संवत मंगल के दिवस लिख्यौ पत्र हरिचन्द ।।११।।

वैद्यनाथ की यात्रा

यह यात्रा विवरण हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका खं ७, संख्या ४, आषाण शुक्ल १ सम्बत् १९३७ (सन् १८८०) में प्रकाशित है। — सं.

श्री मन्महाराज काशीनरेश के साथ वैद्यनाथ की यात्रा को चले । दो बजे दिन के पैसेंजर ट्रेन में सवार हुए । चारों ओर हरी हरी घास का फर्श, ऊपर रंग रंग के बादल, गड़हों में पानी भरा हुआ, सब कुछ सुंदर । मार्ग में श्री महाराज के मुख से अनेक प्रकार के अमृतमय उपदेश सुनते हुए चले जाते थे । साँझ को बक्सर के आगे बड़ा भारी मैदान, पर सब्ज काशानी मखमल से मढ़ा हुआ । साँझ होने से बादल छोटे छोटे लाल पीले नीले बड़ेही सुहाने मालूम पड़ते थे । बनारस कालिज की रंगीन शीशे की खिड़कियों का सा सामान था । क्रम से अंधकार होने लगा. ठंढी ठंढी हवा से निद्रा देवी अलग नेत्रों से लिपटी जाती थी । मैं महाराज के पास से उठकर सोने के वास्ते दूसरी गाड़ी में चला गया । झपकी का आना था कि बौछारों ने छेड़छाड़ करनी शुरू की. पटने पहुँचते पहुँचते तो घेर घार कर चारों ओर से पानी बरसने ही लगा । बस पृथ्वी आकाश सब नीरब्रह्ममय हो गया । इस धूमधाम में भी रेल, कृष्णाभिसारिका सी अपनी धुन में चली ही जाती थी । सच है सावन की नदी और दृढ़प्रतिज्ञ उद्योगी और जिनके मन पीतम के पास हैं वे कहीं रुकते हैं ? राह में बाज पेड़ों में इतने जुगनू लिपटे हुए थे कि पेड़ सचमुच 'सर्वे चिरागाँ बन रहे थे । जहाँ रेल ठहरती थी, स्टेशन मास्टर और सिपाही बिचारे टुटरू टूँ छाता, लालटेन लिए रोजी जगाते भीगते हुए इधर उधर फिरते दिखलाई पड़ते थे । गार्ड अलग 'मैकिंटाश का कवच पहिने' अप्रतिहत गति से घूमते थे । आगे चलकर एक बड़ा भारी विघ्न हुआ, खास जिस गाड़ी पर श्री महाराज सवार थे, उसके धुरे घिसने से गर्म होकर शिथिल हो गए । वह गाड़ी छोड़ देनी पड़ी । जैसे धूम धाम की अंधेरी, वैसी ही जोर शोर का पानी । इधर तो यह आफत, उधर फरऊन क्या फरऊन के भी बाबाजान रेलवालों की जल्दी, गाड़ी कभी आगे हटै कभी पीछे । खैर, किसी तरह सब ठीक हुआ । इसपर भी बहुतसा असबाब और कुछ लोग पीछे छूट गए । अब आगे बढ़ते बढ़ते तो सबेरा ही होने लगा । निद्रा वधू का संयोग भाग्य में न लिखा था, न हुआ । एक तो सेकेंड क्लास की एक ही गाड़ी, उसमें भी लेडीज कंपार्टमेंट निकल गया, बाकी जो कुछ बचा उसमें बारह आदमी । गाड़ी भी ऐसी टूटी फूटी, जैसी

हिंदुओं की किस्मत और हिम्मत । इस कम्बख्त गाड़ी से और तीसरे दर्जेकी गाड़ी से कोई फर्क नहीं, सिर्फ एक एक धोके की टट्टी का शीशा खिड़कियों में लगा था । न चौड़े बेंच न गद्दा, न बाथरूम । जो लोग मामूली से तिगुना रुपया दें उनको ऐसी मनहूस गाड़ी पर बिठलाना, जिसमें कोई बात भी आराम की न हो, रेलवे कंपनी की सिर्फबेइंसाफी ही नहीं वरन् धोखा देना है क्यों नहीं ऐसी गाड़ियों को आग लगाकर जला देती । कलकत्ते में नीलाम कर देती । अगर मारे मोह के न छोड़ी जाय तो उसमें तीसरे दर्जे का काम ले । नाहक अपने गाहकों को बेवकूफ बनाने से क्या हासिल । लेडीज कंपार्टमेंट खाली था, मैंने गार्ड से कितना कहा कि इसमें सोने दो, न माना । और दानापुर से दो चार नीम अंगरेज (लेडी नहीं सिर्फ लैड) मिले उनको बेतकल्लुफ उसमें बैठा दिया । फर्स्ट क्लास की सिर्फ दो गाड़ी — एक में महाराज, दूसरी में आधी लेडीज, आधी में अंगरेज । अब कहां सोवैं कि नींद आवै । सचमुच अब तो तपस्या करके गोरी गोरी कोख से जन्म लें तब संसार में सुख मिले । मैं तो ज्यों ही फर्स्ट क्लास में अंगरेज कम हुए कि सोने की लालच से उसमें घुसा । हाथ फैलाना था कि गाड़ी टूटनेवाला विघ्न हुआ । महाराज के इस गाड़ी में आने से मैं फिर वहीं का वहीं । खैर इसी सात पाँच में रात कट गई । बादल के परदों को फाड़ फाड़कर ऊषा देवी ने ताकझांक आरंभ कर दी । परलोकगत सज्जनों की कीर्ति की भाँति सूर्य नारायण का प्रकाश पिशुन मेघों के वागाडंबर से घिरा हुआ दिखलाई पड़ने लगा । प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ, ठंढी-ठंढी हवा मन की कली खिलाती हुई बहने लगी । दूर से धानी और काही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला । कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियाँ छिपी हुई, और कहीं चारों ओर से उनपर जलधारा-पात से बुक्के की होली खेलते हुए बड़े ही सुहाने मालूम पड़ते थे । पास से देखने से भी पहाड़ बहुत ही भले दिखलाई पड़ते थे । काले पत्थरों पर हरी हरी घास और जहाँ तहाँ छोटे बड़े पेड़, बीच बीच में मोटे पतले झरने ; नदियों की लकीरें, कहीं चारों ओर से सघन हरियाली, कहीं चट्टानों पर ऊँचे नीचे अनगढ़ ढोंके और कहीं जलपूर्ण हरित तराई विचित्र शोभा देती थी । अच्छी तरह प्रकाश होते होते तो वैद्यनाथ के स्टेशन पर पहुँच गए । स्टेशन से वैद्यनाथ जी कोई तीन कोस हैं । बीच में एक नदी उतरनी पड़ती है जो आजकल बरसात में कभी घटती और कभी बढ़ती है । रास्ता पहाड़ के ऊपर ही ऊपर बरसात से बहुत सुहावना हो रहा है । पालकी पर हिलते हिलते चले । श्रीमहाराज के सोचने के अनुसार कहारों की गतिध्वनि में भी परदेश ही की चर्चा है । पहले 'कोहं कोहं' की ध्वनि सुनाई पड़ती है फिर 'सोहं सोहं' की एकाकार पुकार मार्ग में भी उससे तन्मय किए देती थी ।

मुसाफिरों को अनुभव होगा कि रेल पर सोने से नाक थर्राती है और यही दशा कभी कभी सवारियों पर होती है इससे मुझे पालकी पर भी नींद नहीं आई और जैसे तैसे बैजनाथ जी पहुँच ही गए ।

बैजनाथ जी एक गाँव है, जो अच्छी तरह आबाद है । मजिस्ट्रेट, मुनसिफ वगैरह हाकिम और जरूरी सब आफिस हैं । नीचा और तर होने से देश बातुल गंदा और 'गंधद्वारा' है । लोग काले काले और हतोत्साह मूर्ख और गरीब हैं । यहाँ सौंथाल एक जंगली जाति होती है । ये लोग अब तक निरे वहशी हैं । खाने पीने की जरूरी चीजें यहाँ मिल जाती हैं । सर्प विशेष हैं । राम जी की घोड़ी जिनको कुछ लोग ग्वालिन भी कहते हैं एक बालिश्त लंबी और दो दो उँगल मोटी देखने में आईं ।

मंदिर बैद्यनाथ जी का टोप की तरह बहुत ऊँचा शिखरदार है । चारों ओर और देवताओं के मंदिर और बीच में फर्श है । मंदिर भीतर से अँधेरा है क्योंकि सिर्फ एक दरवाजा है । बैजनाथ जी की पिंडी जलधरी से तीन चार अंगल ऊँची बीच में से चिपटी है । कहते हैं कि रावण ने मूका मारा है इससे यह गड़हा पड़ गया है । वैद्यनाथ बैजनाथ और रावणेश्वर यह तीन नाम महादेव जी के हैं । यह सिद्धपीठ और ..तेलिंग स्थान है । हरिद्रा पीठ इसका नाम है और सती का हृदयदेश यहाँ गिरा है । जो पार्वती अरोगा और दुर्गा नाभ की सामने एक देवी हैं वही यहाँ की मुख्य शक्ति हैं । इनके मंदिर और महादेव जी के मन्दिर से गांठ जोड़ी रहती है रात को महादेव जी के ऊपर बेलपत्र का बहुत लंबा चौड़ा एक ढेर करके ऊपर से कम खाब या ताश का खोल चढ़ाकर शृंगार करते हैं या बेलपत्र के ऊपर से बहुत सी माला पहना देते हैं सिर के गड़हे में भी रात को चंदन भरदेते हैं

वैद्यनाथ की कथा यह है कि एक बेर पार्वती जी ने मान किया था, और रावण के शोर करने से वह मान छूट गया, इसपर महादेव जी ने प्रसन्न होकर वर दिया कि हम लंका चलेंगे और लिंग रूप से उसके साथ चले । राह में जब बैजनाथ जी पहुँचे तब ब्राह्मण-रूपी विष्णु के हाथ में वह लिंग देकर पेशाब करने लगा ।

कई घड़ी तक माया-मोहित होकर वह मूतता ही रह गया और घबड़ा कर विष्णु ने उस लिंग को वहीं रख दिया । रावण से महादेव जी से यह करार था कि जहाँ रख दोगे वहाँ से आगे न चलेंगे इससे महादेव जी वहीं रह गए, वरंच इसी पर खफा होकर रावण ने उनको मूका भी मार दिया ।

वैद्यनाथ जी का मंदिर राजा पूरणमल्ल का बनाया हुआ है । लोग कहते हैं कि रघुनाथ ओझा नामक एक तपस्वी इसी वन में रहते थे । उनको स्वप्न हुआ कि हमारी एक छोटी सी मढ़ी झाड़ियों में छिपी है तुम उसका एक बड़ा मंदिर बनाओ । उसी स्वप्न के अनुसार किसी वृक्ष के नीचे उनको तीन लाख रुपया मिला । उन्होंने राजा पूरणमल्ल को वह रुपया दिया कि वे अपने प्रबंध में मंदिर बनवा दें । वे बादशाह के काम से कहीं चले गए और कई बरस तक न लौटे, तब रघुनाथ ओझा ने दुखित होकर अपने व्यय से मंदिर बनवाया । जब पूरणमल्ल लौटकर आए और मंदिर बना देखा तो सभामंडप बनवाकर मंदिर के द्वार पर अपनी प्रशस्ति लिखकर चले गए । यह देखकर रघुनाथ ओझा ने दुखित होकर कि रुपया भी गया कीर्ति भी गई, एक नई प्रशस्ति बनाई और बाहर के दरवाजे पर खुदवा कर लगा दी । वैद्यनाथ महात्म्य भी मालूम होता है कि इन्हीं महात्मा का बनाया हुआ है क्योंकि उसमें छिपाकर रघुनाथ ओझा को श्रीरामचन्द्र जी का अवतार लिखा है । प्रशस्ति का काव्य भी उत्तम नहीं है, जिससे बोध होता है कि ओझा जी श्रद्धालु थे किंतु उद्भत पंडित नहीं थे । गिद्धौर के महाराज सर जयमंगलसिंह के.सी.एस.आई. कहते हैं कि पूरणमल्ल उनके पुरखा थे । एक विचित्र बात यहाँ और भी लिखने के योग है । गोवर्धन पर श्रीनाथ जी का मंदिर सं. १५५६ में एक राजा पूरणमल्ल ने बनाया और यहाँ संवत १६५२ सन् १५९५ ई. में एक पूरणमल्ल ने वैद्यनाथ जी का मंदिर बनाया । क्या यह मंदिरों का काम पूरणमल्ल ही को परमेश्वर ने सौंपा है ?

निज मंदिर का लेख

अचल शशिशायके लसित भूमि शकाब्दके ।
वलति रघुनाथके वहल पूजक श्रद्धया ।।
विमल गुण चेतसा नृपति पूरणेनाचितं ।
त्रिपुरहरमंदिरं व्यरचि सर्वकामप्रदम् ।।
नृपतिकृत पद्यमिदम् ।

सभामंडप का लेख

चंद्र विंब प्रतीकाशं, प्रासादं चातिशोभनम् ।
हरिद्रा पीठके कर्तुं काम्येस्मिन्नभवन्मुनि : ।।१।।
न चेदं मानुषं कर्म चोलराज महामते ।
भविष्यति न संदेह: कदाचिच्च कलौ युगे ।।२।।
मुने: कल्याणमित्रस्य पार्थस्य च महात्मन: ।
संवादं शृणु राजेंद्र चेतिहासं पुरातनम् ।।३।।
यदा कदाचिच्च कलौ रामांशेन द्विजन्मना ।
कारयेत् वै मठवरो रावणेश्वर कानने ।।४।।
स्वयं दाता समागत्य प्रोद्भिद्य मठकूवरम् ।
स करिष्यति यत्नेन प्रच्छन्नो नरविग्रह: ।।५।।
आर्जवं शतसाहस्रस्मिन् लिंगे प्रतिष्ठितम् ।
वस्वंगुलं हि तल्लिंगं वेदिकोपरिचोत्थितम् ।।६।।
अधोर्द्ध शिखराकारं योजनार्द्धं च विस्तृतम् ।
लक्ष लिंगोद्भवं पुण्यं पूजनात्तस्य जायते ।।७।।
छद्मना पद्मनाभेन वंचितस्तु दशाननात् ।
रक्षणाय च देवानां दैत्यानां वै वधाय च ।।८।।

कैलाशशिखरे देवी यदा मानवती सती ।
तस्मिन् काले दसग्रीवद्वारस्थोनं निवारयन् ।।९।।
दोर्भिजग्राह शैलेंद्र सिंहनादं चकार सः ।
तेन संत्रासिता देवी मानं तत्याज भामिनी ।।१०।।
तस्मिन्नुपरते शब्दे जहास परमेश्वरः ।
व्रीड़ामवाप महतीं दशग्रीवं चुकोप सा ।।११।।
शश्वत् प्रीतिमना भूत्वा दैत्यराजाय वै पूरा ।
एवं वरं ददौ शंभुर्लङ्कागमनकारणम् ।।१२।।
तिस्रः कोट्योर्द्ध कोटिश्च देवाः सत्रासमाययुः ।
स्मरन्ति देवीं संस्तूय कालरात्रिस्वरूपिणीम् ।।१३।।
कामरूपं परित्यज्य सा संध्या तमुपागता ।
हरिद्रापीठमासाद्य वासंश्चक्रे दशाननः ।।१४।।
एतस्मिन्तनंतरे राजन् द्विजरूपधरौ हरिः ।
हस्ते कृत्वा तु तल्लिंगं क्षणमात्रं स्थितस्तदा ।।१५।।
प्रस्रावं कर्तुमारेभे यावद्दंडं दशाननः ।
तावत्स विप्रस्त्वरितो लिंगं तत्याज भूतले ।।१६।।

करततिभिरकर्षच्चैकवारं द्विवारं तृतयमपि गृहीत्वा कुंठिता तत्र शक्तिः ।
करकलित शिरोग्रं जीवतांते तुरीयं दशवदन भुजानां जातु मन्युर्बभूव ।।१७।।
मुषित इव तटस्थः सोर्थसिद्धेर्निरस्तः स्मरजिशनिखंडं सप्तपातालविद्धः ।
त्रिदिश-युवतिमाले दत्तमंदारमालो दशवदनविदारीप्रादुरासीदयोध्याम् ।।१८।।

गते किमपि काले तु रावणं भक्षितुं नृप।
निमित्तं राममासाद्य जहास परमेश्वरी ।।१९।।
नातः परतरं स्थानं गुह्यमुक्तं तु शंभुना ।
चतुरस्रं क्रोशमिदं चतुः किष्कुसमुच्छ्रितन् ।।२०।।
यदा यदा भवेद् ग्लानिः स्थानेस्मिन् मनुजाधिप ।
तदा तदावतरते रामः कमललोचनः ।।२१।।
यस्यैषा मानिनी देवी मातेव हितकारिणी ।
स एव रामो विज्ञेयो मठं कारयिता चतो ।।२२।।

श्रीवैद्यनाथ चरणाब्ज मधुव्रतेन विप्रावतं स रघुनाथ गुणार्णवेन ।
प्राप्य प्रसादमजसीसमिदं विधायि प्रसाद सेतु बनवारि मठादि सर्वम् ।।२३।।

मंदिर के चारों ओर देवताओं के मंदिर हैं । कहीं प्राचीन जैन मूर्तियाँ हिंदू मूर्ति बनकर पूजती हैं । एक पद्मावती देवी की मूर्ति बड़ी सुंदर है जो सूर्यनारायण के नाम से पुजती है । यह मूति पद्म पर बैठी है और दे बड़ी सुंदर कमल की लता दोनों ओर बनी हैं ।इस पर अत्यंत प्राचीन पाली अक्षर में कुछ लिखा है जो मैंने श्री बाबू राजेंद्रलाल के पास पढ़ने को भेजा है । दो भैरव की मूर्ति, जिससे एक तो किसी जैन सिद्ध की और एक जैन क्षेत्रपाल की है, बड़ी ही सुंदर हैं । लोग कहते हैं कि भागलपुर जिले में किसी तालाब में से निकली थी ।

जनकपुर की यात्रा

यह यात्रा विवरण 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका और' मोहन चन्द्रिका खं. ७ सं. ४ आषाढ़ शुक्ल १ सं. १९३७ (सन् १८८०) में छपा है। —सं.

आज देपहर को पहुंचे । राह में रेल में कुछ कष्ट हुआ । क्योंकि सेकण्ड क्लास में तीन चार अंग्रेज थे । बस उनमें मैं अकेला ''जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी'' कष्ट हुआ ही चाहै 'नर बानरहि संग कहु कैसे' । इसके वास्ते यह इंतिजाम होना जरूर है कि हर ट्रेन में एक गाड़ी जिसमें फर्स्ट और सेकण्ड दोनों ही हिंदुस्तानियों ही के वास्ते रहै । इस विषय में मैंने रेलवे कंपनी की कनफरेंस के सेक्रेटरी को लिखा तो है पर 'तूती की आवाज' अगर सुनी जाय । जैसी ही उनको पान सुरता की पचापच से नफरत है वैसी इधर चुरुट के धूम्र से । ऐसी ही अनेक प्रकृति विरुद्ध बातें हैं जो केवल कष्टदायक हैं । एक बात और बहुत जरूरी है । ऐसे स्टेशनों पर जहाँ गाड़ी देर तक ठहरै फर्स्ट और सेकेण्ड क्लास के हिंदुस्तानियों की पाखाना वगैरह की कोठरी अलग बननी चाहिए क्योंकि न कमोड का इनको अभ्यास न स्वतंत्र जलादिक बिना इनको सुभीता । मगर गौर सभ्य बाजे तो बड़े सभ्य और दिल्लगीबाज मिलते हैं । अब की बरसात में सेकेंड क्लास में एक साहब सोये थे मैं भी उसी में था । पानी की कुछ बौछार भीतर आई । साहब ने जागकर पूछा Have you made water ? मैंने कहा Not I but God इस पर बहुत ही प्रसन्न हुआ । वैसे ही अब की भी एक दिल्लगीबाज थे । मेरे पास एक हिन्दोस्तानी रईस थ ये । उनको उन्होंने पूछा यह कौन हैं ? मैंने उत्तर दिया He is a rich man. His fore–fathers were very rich bankers of my city. इस पर उसने हँसकर कहा all of those fours ? इस फिकरे पर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ । मेरे बालों पर विग विग की और दो और सोए हुए थे उन पर स्त्री पर की फबती भी अच्छी हुई । तो बाजे तो भाग्य से ऐसे मिल जाते हैं मगर बाजे बड़े ही कष्टदायक मिलते हैं और हिंदोस्तानियों से ऐसी घृणा करते हैं कि जी दु :खी हो जाता है । रें रें करके रात को बारह बजे बाढ़ पहुँचे । चार बजे तक सरदी में वहीं टपे । पाँच बजे रेल फिर चली । घाट पर पहुँचे । वहाँ एक स्टीमर था । दरिद्र स्टीमर । जिसके सेकेण्ड क्लास में सिवा इस नाम के गुण कोई नहीं । बल्कि वहाँ बैठना भले आदमी के वास्ते एक शर्म की बात है । खैर वहीं बैठ कर पार लगे । वहाँ से तिरहुत की रेल वाह रे रेल । एक गाड़ी बालू में गड़ी थी उसी में तार घर और टिकट आफिस । तार दो दो कैंचीदार बाँसों पर । सड़क आधे आधे औंधे गोलों पर बालू में राम भरोसे । गाड़ी ऊँचे नीचे पर छकड़ों की तरह लुड़कती पुड़कती चलती थी । छोटी इतनी कि जी चाहा कि सरस्वती की गुड़िया को दे दूँ । सेकेण्ड क्लास महज वाहियात । भबा रंग भबे काठ भबे लोहे । जगह सोने को कौन कहे बैठने को नहीं । रेल की तारीफ। कहूँ कि तार की कि स्टेशनों की कि मास्टर की । झण्डी मालूम होती थी कि कोई खेत वाला स्त्री की मैली फटी साड़ी का पल्ला फाड़कर लकड़ी में लगाकर कौआ हाँकता है । खैर दरभंगे पहुँचे । कल जनकपुर जाँयगे । बाकी कल के खत में ।

कविवचन सुधा के सम्पादक के नाम पत्र

शृंगार रत्नाकर नाम का एक ग्रन्थ तत्कालीन काशिराज ने सं० १९१९ में प्रकाशित कराया। लेखक थे प्रसिद्ध विद्वान पं० ताराचरण तर्करत्न। तर्करत्न जी ने इस ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है:

हरिश्चन्द्रास्तु वात्सल्य सख्य भक्तयानन्दाख्ययधिकं रस चतुष्टयं मन्वते।

जब यह ग्रन्थ छपा उस समय भारतेन्दु बाबू की उम्र १२ वर्ष थी। निश्चित ही उसके कई वर्ष बाद अपने अकाट्य तर्कों से भारतेन्दु जी ने तर्करत्न जी को प्रभावित किया होगा।

कविवचन सुधा जि० ३ नं० २२ शुक्रवार ५ जुलाई १८७२ के अंक में सम्पादक के नाम लिखे इस पत्र से भारतेन्दु बाबू का आचार्यत्व प्रकट होता है।

—सं०

श्री क० व० सु० सम्पादकेषु

शृंगार रत्नाकर नामक श्रीताराचरण तर्करत्न ने जो नया प्रबंध बनाया है उसमें मेरा मत लिखा है कि "हरिश्चंद भक्ति, सख्य, वात्सल्य और आनंद यह चार रस और भी मानते हैं" इस पर काशी विद्यासुधानिधि नामक मासिक पत्र के सम्पादक (पूर्ब्ब के किसी पत्र में) ने बड़े चढ़ाव से आनंद रस की हंसी किया है और उनके लिखने से ऐसा जाना जाता है कि आनंद रस हास्य के अन्तर्गत है और मानने के योग्य नहीं है तथा श्रीनृसिंह शास्त्री ने काव्यात्मसंशोधन नामक जो ग्रंथ निर्माण कर के बहुत सा कागज का व्यय किया है उसमें भी इन चारों रस को व्यर्थ और शृंगारादि रसों के अन्तर्गत किया है तथा इन्दुप्रकाश समाचार पत्र में भी आनंद रस को तुच्छ लिखा है और ये महात्मा लोग इसमें कारण यह लिखते हैं कि प्राचीन लोग नहीं मानते।

वाह वाह! रसों का मानना भी मानों वेद के धर्म का मानना है कि जो लिखी है वहीं माना जाय और उसके अतिरिक्त करै तो पतित होय रस ऐसी वस्तु है जो अनुभव सिद्ध है इसके मानने में प्राचीनों की कोई आवश्यकता नहीं यदि अनुभव में आवै मानिये न आवै न मानिये। आज इस स्थान पर चारों रसों को पृथक पृथक स्थापन करते हैं।

भक्ति—कहिए इस रस को आप किसके अन्तर्गत करते हैं क्योंकि इस रस की स्थाई श्रद्धा है और इसके आलम्बन भक्त और इष्ट देवता हैं और उद्दीपन पुराणादिक भक्तों के प्रसंग और सत्संग हैं अब तो जो इसे शांत के अन्तर्गत कीजियेगा तो शांत की स्थाई वैराग्य है और इसकी भक्ति है आसक्ति से और वैराग्य से जो अंतर है सो प्रसिद्ध है वैराग्य उसे कहते है जो संसार से विरक्तता होय और सब सुखों को त्याग करै और भक्ति उसे कहते हैं जो गृहस्थ लोग भी कर सकते हैं और भक्ति देवता के सिवा माता पिता गुरु राजा और स्वामि की भी मनुष्य कर सकता है तो जहाँ ऐसे प्रसंग जिसमें शुद्ध भक्ति का वर्णन है और हनूमान जी इत्यादि भक्तों के प्रसंग में यह कौन कह सकता है कि यह शांत रस है क्योंकि इन वर्णनों में स्थाई रूप वैराग्य नहीं है स्थाई रूप भक्ति है और दास्यत्व की मुख्यता है फिर कौन कह सकता है कि शांत और भक्ति एक है।

सख्य—इस रस को लोग शृंगार के अन्तर्गत करते हैं हम उन लोगों से पूछते हैं कि जहां श्रीकृष्ण और अर्जुन का प्रसंग और इसी भांति अनेक मित्रों के विपत्ति में मित्रों के संग देने के प्रसंग में शृंगार रस किस भांति आवैगा क्योंकि शृंगार की स्थाई रति है और यहां मित्रता में रति का क्या कार्य है।।

वात्सल्य—इस रस को लोग शृंगार के अन्तर्गत करते हैं अब हम उनसे पूछते हैं कि आप जिस समय अपने पुत्र को या कन्या को देखियेगा या उनका वर्णन पढियेगा तो आप को कौन रस उदय होगा यदि उस समय अर्थात पुत्र को कन्या को देखके शृंगार रस उदय होय तो आप धन्य हैं और जो कहैं सो मानने योग्य है ।।

आनंद—लोग कहते हैं कि इस रस के मानने से कोई लाभ नहीं है । मैंने माना कि लाभ नहीं पर मैं यह पूछता हूँ कि जहां कवि की दृष्टि शुद्ध शब्दालंकार आनन्द होता है वहां तुम कौन रस मानोगे वा जहां कोई नीति की बात वा किसी वस्तु की शोभा वर्णन की जायेगी वहां कौन सा रस होगा निस्संदेह सब काव्य में रस होता है क्योंकि बिना रस के काव्य व्यर्थ हैं "सौ वै सः यल्लब्ध्वानन्दी भवतीति" तो इससे कृपा कर के आग्रह छोड़िये और काव्य विषय में जो कुछ अनुभव में आता जाता उसको मानते जाइये इसमें शब्द प्रमाण का कोई काम नहीं है ।

कृपा कर के इस पत्र को छाप दीजिए ।

रामकटोरा
ज्येष्ठ शु० ।।

आपका मित्र
हरिश्चंद्र

(हिन्दी भाषा)

यह खंग विलास प्रेस से सन् १८९० में छपा है । बृजरत्न दास का मानना है कि इसका पहला संस्करण भी यहीं से सन् १८८३ में निकला था । इस लेख में भारतेन्दु बाबू ने अपने युग के भाषा विवाद पर प्रकाश डाला है । —सं०

भाषाओं के तीन विभाग होते हैं यथा घर में बोलने की भाषा कविता की भाषा और लिखने की भाषा । अब पश्चिमोत्तर देश में घर में बोलने की भाषा कौन है यह निश्चय नहीं होता क्योंकि दिल्ली प्रांत के वा अन्य नगरों में भी खत्रियों वा पछाहीं अगरवालों वा और पछाहीं जातियों के अतिरिक्त घर में हिंदी बनारस में जो बनारस के पुराने रहवासी हैं उनके घर में विचित्र विचित्र बोलियां पुराने कसेरे लोग "बाटः" शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं जैसा "आवत हई" के स्थान पर "आवट बाटी" "का करत हौवः "वा" का करल" के स्थान पर "का करत वाट्य वा बाटो वा बाटः" । इस दशा में बनारस की मुख्य बोली यह और वह बोली है जिसका उदाहरण में न० ७ कलकत्ते की शोभा में मिलैगा अर्थात वह पुरबिये बनियों की बोली है. वरंच यह बोली यहां के प्रसिद्ध धनिकों के घर में बोली जाती है परन्तु इस दोनों बोलियों को छोड़कर बनारस में बदमाशों की भाषा अलग ही है जिसमें कितने ऐसे व्यर्थ शब्द हैं जिनका न सिर है न पैर है जैसा झांझा, गोजर इत्यादि. वरन वे जिस ईकारान्त (वा कभी कभी ओकारांत वा कदाचित आकारांत) शब्द के पीछे क लगा देंगे उसका अर्थ गाली होगा । इसका विशेष वर्णन हम काशी की दशा के वर्णन में लिखेंगे पर यहां इतना ही समझ लेना चाहिए कि इन की भाषा भी अब काशी की भाषा में स्वतंत्र हो गई है ।

कोई कहते हैं कि काशी की सबसे प्राचीन भाषा वह है जो डोम लोग बोलते हैं क्योंकिं वे ही यहां के प्राचीन वासी हैं और उनकी भाषा में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है । जो हो यह तो सिद्धांत है कि जो यहां के शिष्ट लोग बोलते हैं वह परदेशी भाषा है और यहां पश्चिम से आई है । काशी के उस पास ही रामनगर में यहां की बोली से कुछ विलक्षण बोली बोली जाती है और वह मिर्ज़ापुर की भाषा से बहुत मिलती है । ऐसे ही पश्चिमोत्तर देश में अनेक भाषा हैं पर उनमें ऐसे नगर थोड़े हैं जिनमें आबाल वृद्ध वनिता सब खड़ी भाषा बोलते हों अतएव यद्यपि काशी ऐसे पूर्व्व प्रदेशों की मातृभाषा व घर में बोलचाल की भाषा हिन्दी हैं यह तो हम नहीं कह सकते पर हां यह कह सकते हैं कि इसी पश्चिमोत्तर देश में कई नगर ऐसे हैं जहाँ यही खड़ी

बोली मातृभाषा है ।

पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा व्रजभाषा है यह निर्णीत हो चुकी है और प्राचीन काल से लोग इसी भाषा में कविता करते आये हैं परन्तु यह कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय के पूर्व नहीं था क्योंकि मोहम्मद मलिक जाइसी और चंद की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदास जी ने भी व्रजभाषा का नियम भंग कर दिया । जो हो मैंने आप कई बेरें परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊ पर वह मेरे नित्तानुसार नहीं बनी इससे यह निश्चय होता है कि व्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता व्रजभाषा में ही उत्तम होती है । जैसे व्रजभाषा में कविता होती है वैसे ही बुंदेलखंड की बोली में भी कविता बनती आती है और अब कविता में यह दोनों बोली मिल गई हैं । परन्तु पूरब में कवियों की वृद्धि होने से उन लोगों ने उस कविता की भाषा अपने चाल पर एक नई भाषा बना ली है यहां यह भी कहना आवश्यक है कि कविता ने पंजाबी और माड़वारी बोली भी ग्रहण किया है और इस भाषा में भी कविता बनाई है । इन सब के उदाहरण नीचे नई और पुरानी कविता में दिखाई जाते हैं जिन से पूर्वोक्त वर्णन स्पष्ट हो जायेगा ।

व्रजभाषा, बुंदेलखंड की बोली के उदाहरण—नागभाषा की कविता—''चंद की भाषा में ऐसे शब्द बहुत हैं, अब तक जोधपुर उदयपुर के कवि ''नच्चिम'', ''बड़ढिया'' इत्यादि शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं और इसी में बड़ा पांडित्य मानते हैं ।''''

कजली की कविता—कजली की कविता बड़ी विचित्र होती है इसके उदाहरण के पूर्व हम इस नष्ट की कुछ उत्पत्ति भी लिखते हैं । कन्तित देश में गहरवार क्षत्री दादूराय नामक राजा हुए और मांड़ा विजैपूर इत्यादि देश में उनका राज था । विन्ध्याचल देवी के मंदिर के नाले के पास उनके टूटे गढ का चिन्ह अब तक मिलता है उन्हीं ने चार भैरगें के बीच में अपना गढ़ बनाया था और वह अपने राज में मुसलमानों को गंगाजी नहीं छूने देते थे । उसके देश में अनावृष्टि हुई और उसने उसके निवारणार्थ बड़ा धर्म किया और फिर वृद्धि हुई इसी में उसकी कीर्ति को जो कन्तित की स्त्रियों ने उसके करने और उसकी रानी नागमती के सती होने पर एक मनमाने नाग और धुन में बांध कर गाया इसी से उसका नाम कजली हुआ । कजली नाम के दो कारण है एक तो उस राजा का एक बन था उसका नाम कजली बन था दूसरे उस तृतीय का नाम पुराणों में कजली तीज लिखा है जिस में यह कजली बहुत गाई जाती है ।

उसकी कीर्ति में ग्रामीणों ने उसी काल में ये छंद बनाये थे । ''कहां गये दांदुरैया बिन जग सून । तुरकन गांग जुठारा बिन अरजून ।'' . . . इस नष्ट कजली को प्राय स्त्रियां आप ही बान लेती हैं परन्तु पुरुषों में भी इसके कवि होते हैं सांप्रत एक पंखा वाला है उसने अनेक कजली बनाई परन्तु इस सबों में पंडित बैणीराम नामक एक ब्राहमण थे उनने कजली बनाई है ।

बंग भाषा की कविता—बंग भाषा अब हिंदी से बिल्कुल विलक्षण है यह प्रत्यक्ष हैं । पूर्व काल के बंग भाषा के कविगण की जो भाषा है वह बिल्कुल व्रजभाषा ही है । बंगाली विद्वानों में इस विषय में अनेक बादानुवाद है किंतु हम को ऐसा निश्चय होता है कि उन कवियों ने व्रजभाषा ही में कविता करने की चेष्टा की हो तो क्या आश्चर्य है । कवि ककण, चण्डी, विद्यापति, गोविंद दास इत्यादि इनके प्राचीन कविगण की भाषा वर्तमान व्रजभाषा और मैथिली से बिल्कुल मिली हुई है । यह कोई कविता पांच सौ वर्ष के ऊपर की नहीं किन्तु धन्य काल जिसने भाषा का अब इतना रूपांतर कर दिया । इन्हीं प्राचीन कवियों में से गोविंददास की कविता कौतुकार्य यहां प्रकाश की जाती है । इस कविता में एक अपूर्व और सहज माधुर्य ऐसा है कि अनुभव में बड़ा आनंद होता है ।

नई भाषा की कविता—

''भजन करो श्रीकृष्ण का, मिलकर के सब लोग ।
सिद्ध होयगा काम और छूटैगा सब सोग ।।''

अब देखिये यह कैसी भोंड़ी कविता है मैंने इस का कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी नहीं बनती तो तुझ को सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्राय:दीर्घ मात्रा होती हैं इससे कविता अच्छी नहीं बनती ।

आप लोगों को ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा कि कविता की भाषा निस्संदेह ब्रजभाषा ही है और दूसरे भाषाओं की कविता इतना चित्त को नहीं पकड़ती । यदि हमारे पाठक लोग इच्छा करेंगे तो कविता में नायिका भेद, अलंकार और कवियों के स्वतंत्र प्रयोग कैसे-कैसे बदल गये इनका वर्णन फिर कभी करूँगा ।

हिन्दी कविता—संस्कृत यद्यपि परम मधुर है तथापि भाषा की मधुरई में किसी प्रकार से घट के नहीं है—इसके उदाहरण में हम एक श्रीजयदेव जी की अष्टपदी और एक उसका अनुवाद देते हैं अब हमारे पाठक लोग दोनों भाषा की माधुरी का प्रमाण जान लें ।

अब लिखने की भाषा के उदाहरण—भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है और इसमें बड़ा झगड़ा है कोई कहता है कि उरदू शब्द मिलने चाहिए कोई कहता है कि संस्कृत शब्द होने चाहिए और अपनी अपनी रुचि के अनुसार सब लिखते हैं और इसके हेतु कोई भाषा अभी निश्चित नहीं हो सकती ।"

इन सब भाषाओं के नीचे उदाहरण दिखाते हैं ।

वर्षावर्णन ।

नं० १—जिसमें संस्कृत के शब्द बहुत हैं

अहा पर कैसी अपूर्व और विचित्र वर्षा ऋतु साम्प्रत प्राप्त हुई है अनवत्ते आकाश मेघाच्छन्न रहता है और चतुर्दिक कुझझटिका पात से नेत्र की गति स्तम्भित हो गई है प्रतिक्षण अभ्र में चंचला पुंश्चली स्त्री की भांति नर्तन करती है और वैसे ही बकावली उडडोयमाना होकर इतस्ततः भ्रमण कर रही है मयूरादि अनेक पक्षिगण प्रफुल्लित चित से रव कर रहे हैं और वैसे ही दर्दगण भी पंकाभिषेक करके कुकवियों की भांति कर्णविधक ढक्का झंकार सा भयानक शब्द करते हैं ।

नं० २—जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं ।

सब विदेशी लोग घर फिर आये और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया पुल टूट गये बांध खुल गये पंक से पृथ्वी भर गई । पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाये बृक्ष कूल समेत तोड़ गिराए सर्प बिलों से बाहर निकले महानदियों ने मर्यादा भंग कर दी और स्वतंत्रता स्त्रियों की भांति उमड़ चली ।

नं० ३— जो शुद्ध हिन्दी है ।

पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फेर में पड़ गये कि इधर की सुध ही भूल गये । कहां तो वह प्यार की बातें कहां एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना । हा ! मैं कहां जाऊं कैसी करूँ मेरी तो ऐसी कोई मुंहबोली सहेली नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊं कुछ इधर उधर की बातों ही से जी बहलाऊं ।

नं० ४— जिसमें किसी भाषा के शब्द मिलने का नेम नहीं है ।

ऐसी तो अंधेरी रात उसमें अकेली रहना कोई हाल पूछने वाला भी पास नहीं रह रह कर जी घबड़ाता है कोई खबर लेने भी नहीं आता और न कोई इस विपत्ति में सहाय होकर जान बचाता ।

नं० ५—जिसमें फारसी शब्द विशेष हैं ।

खुदा इस आफत से जी बचाये प्यारे का मुंह जल्द दिखाए कि जान में जान आए । फिर वहीं ऐश की घड़ियां आए शबोरोज दिलवर की मुहबत रहे । रंजोगम दूर हो दिल मसरुर हो ।

कलकत्ते की शोभा

नं० ६—जिसमें अंगरेजी शब्द हिन्दी के ही मिल गये हैं ।

वहां हौसों में हजारों बक्स माल रखे हैं—कम्पनियों के सैकड़ों बक्स इधर से उधर कुली लोग

लिए फिरते हैं लालटेन में गिलास चारो तरफ बल रहे हैं सड़क की लैन सीधी और चौड़ी है पालकी गाड़ी बग्गी चिरिट फिटिन दौड़ रही हैं रेलवे के स्टेशनों पर टिकट बंट रहा है कोई फर्स्ट क्लास में बैठता है कोई सेकेण्ड में कोई थर्ड में बैठता है ट्रेन को इंजिन इधर से उधर खींच कर ले जाती है बड़े-छोटे तक उहदेदार जज मजिस्टर कलकटर पोस्ट मास्टर पिटी साहब स्टेशन मास्टर करनैल जनरैल कमानियर किरानी और कांस्टेबल वगैरह चारों ओर घूम रहे हैं कोई कोट पहिने है कोई बूट पहिने है कोई पाकेट में लोट भरे हैं लाट साहिब भी इधर उधर आते जाते हैं डाक दौड़ती है बोट तिरते हैं पादरी लोग गिरजों में किसानों को बैविल सुनाते हैं पंप में पानी दौड़ता है कंप में लंप रौशन हो रही है।

नं० ७–जिसमें पुरबियों की बोली वा काशी की देशभाषा है।

क साहेब आप कब्वों कलकत्ता गये हो कि नाहीं ? जो न गये हो तो एक बेर हमरे कहे से आप ऊ शहर को जरूर देखों देख ही के लायक है आपसे हम ओकी तारीफ का करी आपनी आंखो से देखे बिना ओका मजै नहीं मिलता आप तौ बहुत परदेस जाथौ एक बेर ओहरो झुक पड़ो।

नं० ८–जो काशी के अर्धशिक्षित बोलते हैं।

महाराज मैं सच कहता हौं कलकत्ता देखने ही के योग्य है आप देखियेगा तो खुस हो जायेगा हम एक दफे गये रहे से ऐसा जी प्रसन्न हो गया कि क्या पूछना है।

नं० ९–दक्षिण के लोगों की हिन्दी।

सो तो ठीक है कलकत्ते तो आपके एक बेर अवश्य जाना हमारे कूं तो ऐसा जान पड़ता है कि जावत पृथ्वी तल में दूसरा ऐसा कोई नगर ही नहीं है !

नं० १०–बंगालियों की हिन्दी।

सच है उधर राजा बाजार का बड़ा बड़ा दोकान है इधर मछुआ बाजार में बहुत अच्छा अच्छा सामान है कहीं गाड़ी खड़ा है कहीं केली फला है कहीं गोरा की समाज की समाज आती है कहीं अमारा देश का बंगाली बाबू लोगों का पल्टन जाती है के कोम्पानी लोग दीवालिया होया जाता है कहीं मारवाड़ी माल लेकर घर पराता है।

नं० ११–अंग्रेजी की हिन्दी।

बेशक इसमे कोई शक नहीं है कैलकटा देखने का जगह है हम वहां अकसर रहता आप एक बार जाने मांगो वहां जाकर थोड़ा सबुर करो देखो बहुत लोग जाता तो आप घर में पड़ा-पड़ा क्यों सड़ता जाओ हमारा कहने से जाओ।

नं० १२–रेलवे की भाषा। ईस्टइंडिया रेलवे। इस्तहार ––(इसमें दो इश्तहार दिये हैं जिनमे से एक उद्धृत किया जाता है)

कजरा स्टेशन में एक मिसत्री जिसका नाम वसी था एक चारपाई नेआ सिलिपर के चोरा कर के बनवाने के वास्ते अगस्त सन् १८८३ ई० साल में गिरफतार कीया गेया था और मजिस्ट्रेट साहब ने उसको मोजरिम ठहरा कर एक बरस के वास्ते सख्त मेहनत के साथ कैद किया।

हम इस स्थान पर वाद नहीं किया चाहते कि कौन भाषा उत्तम है और कहीं लिखनी चाहिए पर हां मुझे से कोई अनुमति पूछे तो मैं यह कहूंगा कि नम्बर २ और तीन लिखने योग्य है।

यदि इसका विचार कीजिए कि यह देशभाषा कहां से आई है तो यह निश्चय होता है कि पश्चिम से आई है और पंजाबी ब्रजभाषा इत्यादि भाषाओं से बिगड़ कर बनी है पर उनका आदि किसी समय में नागभाषा रही हो तो आश्चर्य नहीं।

ग्रीष्म ऋतु

हरिश्चन्द्र मैगजीन में १५ मई सन् १८७४ में छपा। मैगजीन की यह प्रति अधूरी है। अत: लेख अधूरा मिला है। यह लेख भारतेन्दु जी के प्रकृति वर्णन का उदाहरण है। **सं०**

''अहा हा यह भी कैसा भयंकर ऋतु है ''ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नतिप्रेयांच्छरणा'' इसमें प्रचंड मार्तण्ड अपनी घोर किरणों से स्थावर जंगम और जल सब का रसखींच लेता है, जैते ही जीते सब जीव निर्जीव हो जाते हैं। सावन केवल जीवन में आ अटकता है और वह जल भी इस उग्र सूर्य से इस ऋतु में इतना डरता है कि प्राय: छोटी नदी और छोटे सरोवर तो शुष्क ही हो जाते हैं, कूपों में यद्यपि जल इतना नीचे छिपा रहता है कि सूर्य के दुखदाई किरण बाण वहां न पहुंचे तो भी मारे डर के थर थर कांपता है। पर देखो शत्रु के घर में कैसा भी बलिष्ठ पसु आता है तो शत्रु निर्बल होने पर भी अपना दाव लिये बिना नहीं छोड़ते, इन्हीं सूर्य की खरतर किरणों को जब अपने तरंग भुजाओं से पकड़ लेता है तो टुकड़े टुकड़े कर इधर-उधर बहा देता है और जब अपनी किरणों का अपने सामने हजारों टुकड़े होना देखता है तो सूर्य भी जल में थर थर कांपता है, मत्स्य, कच्छ इत्यादि जीव गरमी के मारे भीतर से उबल-उबल कर ऊपर उछले पड़ते हैं और ऊद भंस सूकर इत्यादि स्थल के पशु भी जल में जा बैठते हैं, हंस, बगले, बतक, जलकुक्कुट, पनडुब्बे और चकई चकवे पक्षी हो कर भी इस ऋतु में शुद्ध जलचर जान पड़ते हैं, अन्न का आदर घट जाता है शांति केवल जल में होती है, स्त्रियों को यद्यपि सहज की वस्त्राभूषण से प्रीति है परन्तु इस ऋतु में वे भी उन्हें उतार उतार कर फेंक देती हैं और बन की भीलिनों की भांति फूल पत्तों से ही अपने को सज बज कर प्रीतम की बड़ी प्यारी भुजा को भी धर्म भय से बारंबार कंठ पर धरती और उतारती रहती हैं काशी से प्रस्तरमय नगर का तो कुछ पूछना ही नहीं घर सब तनदूर हो जाते हैं छत के पत्थरों को चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से प्रात:काल की वायु से भी सहायता लेकर नहीं ठंडा कर सकता यदि किसी छोटी खिड़की के पास मुंह ले जाओ तो अजगरों की श्वास और लोहारों की धौकनी के सामने बैठने का आनंद मिलता है, यद्यपि नीची गलियों में सूर्य की उल्वण किरणें नहीं पहुँचती तौ भी वे उन संतप्त गृहों के संताप में ऐसी संतप्त हो जाती है और उमस जाती हैं कि संकेत बदे हुए नायिका नायक के अतिरिक्त जिनको ऐसे प्राणों का शत्रु सूर्य भी शरहतु के चन्द्रमा सा आनंददायक होता है, एक ''चिड़िया का पूत'' भी नहीं रहता, पृथ्वी तवा सी संतप्त हो जाती है लोग तहखानों में वृक्षों की छाया में, टटिट्यों की आड़ में पौसरों में जलाशयों के निकट और छाया के स्थानों में दिन भर अधमरे से पड़े रहते हैं, और अपने इस दिन पर वियोगिनियों की रातें निछावर किया करते हैं। गऊ, घोड़े इत्यादि घरैले पशु और सुग्गा, कौआ इत्यादि पक्षी भी व्याकुल होकर हांफा करते हैं और दीन कुत्ते तो साहिब मजिस्ट्रेट की आज्ञा से भी विशेष त्रस्त हो कर जीभ निकाले दुम दबाये इधर उधर आकुल हो दौड़ा करते हैं कहीं शरण नहीं मिलती, जहां कहीं पौसरों का पानी गिरा रहता है या पनघट होता है वहां घड़ी दो घड़ी पड़े रहकर कुछ विश्रामामास कर लिया करते हैं वायू का प्राण नामकरण इसी ऋतु में हुआ पंखे लोगों के ऐसे मित्र हो रहे हैं कि क्षण पर भी नहीं छूटते धनवान लोग खसखानों में थर्मेन्टीडोट के सामने बर्फ का पानी पिया करते हैं परन्तु धनहीन लोगों को तो किसीप्रकार से भी इस ऋतु में सुख नहीं मिलता कबूतर के दरबे की भांति किराये के घरो में कलौंजी से कसे सड़ा करते हैं और वायु के स्वच्छ न रहने से अनेक रोगों से भी पीड़ित रहते हैं। रेल पर जाने वाले पथिक कपड़ा पहिने बोझे से लदे सिपाहियों का धक्का खाए रुपया गवाये भूखे प्यासे बिना नहाये धोये गाड़ी की कोठड़ियो में अचार के मटके में पसीने नमकीन नीबू से ठसे जी से खटटे होने को धूप में तपाये जाते हैं और उसमें भी में अचार के मटके में पसीने से पसीने नमकीन नीबू से ठसे जी से खटटे होने को धूप में तपाये जाते हैं और उसमें भी जब गाड़ी स्टेशनों पर पानी लेने को खड़ी हो जाती है तब तो संयमनी से यमराज आकर अपने शतावधि नरको को एक एक कोठरियों पर न्योछावर करके फेंक देते हैं क्योंकि चलने में तो कुछ हवा

लगती भी है पर रुक जाने से तो ट्रेन की ट्रेन कलकत्ते की बलैक होल हो जाती है पहिले तो पथिक प्राय: वेसुध पड़े रहते हैं और यदि कभी चौंक उठते हैं तो केवल पानी-पानी का शब्द उनके मुख से सुन पड़ता है । जैसे बहेलिये की पिटारियों में बारे फेरे की सिरोहियां कसी रहती हैं वहीं दशा इन जात्रियों की भी होती है । यद्यपि यमलोक और रेल लोक की यात्रा का साथ ही प्रस्थान करते हैं पर न जानै कि पुन्यों से भी वे बच कर घर पहुंचते हैं ।

बन और पहाड़ो की भी यही दशा है । हरने चौकड़ी भूले मृगतृष्णा के पीछे दौड़ते फिरते हैं मोर मुह खोले इधर से उधर दौड़ते हैं छोटी-छोटी चिड़ियां तो भुन भुन के डाल पर से नीचे गिर गिर पड़ती हैं, सिंह तराइयों में से सिकार देख कर भी नहीं उठते, पर्वत अंवा से हो जाते हैं वृक्ष सब मुरझाये हुए दूब सूखी हुई कहीं कोकिल और कठफोड़वा के शब्द कान में पड़ते हैं कहीं पनडुब्बी बोलती है जहां कहीं सोते वा झरने वा कुंड वा झील होती है वहां चारों ओर जीवों का झुण्ड घिरा रहता है ऐसे कठिन और भीषण ग्रीष्म ऋतु में भी जो श्री वृंदावन की लीला में भीगे रहते है और प्रेम में जिनके नेत्र से फुहारे चलते हैं वे शीतल चित्त रहेते हैं क्योंकि सच "वृन्दावन गुणैर्वसंत इव लक्ष्यते" "यह लिखा है वहीं ग्रीष्म ऋतु श्री वृंदावन में वसंत सा ज्ञात होता है जिसका पाक जनों को इस पत्र के सम्पादक के पिता के इस ग्रीष्म वर्णन से स्पष्ट अनुभव होगा ।

EDUCATION COMMISSION EVIDENCE
OF
BABU HARISHCHANDRA

सन् १८८२ में एक शिक्षा कमीशन बैठा था । भारतेन्दु बाबू उसके प्रधान साक्षी चुने गये थे । पर वे बिमारी के कारण स्वयं उपस्थित हो कमीशन के सामने बयान न दे सके । लिहाजा आयोग द्वारा प्रेषित बहत्तर सवालों का उत्तर उन्होंने लिखकर भेजा ।

शिक्षा कमीशन के प्रश्नों का जो लेखबद्ध उत्तर भारतेन्दु बाबू ने भेजा उस संबंध में तत्कालीन अंग्रेजी पत्र 'रईस और रैयत' के सम्पादक श्री शम्भूचरण मुखर्जी अपने ७ जुलाई सन् १८८३ के अंक में लिखते हैं—

'यह रोचक बातों से भरी हुई है और इससे सिद्ध होता है कि जिन विषयों पर इन्होंने लिखा है उन्हें यह पूर्ण रूप से समझे हुए हैं । पश्चिमोत्तर देश में शिक्षा की उन्नति की चाल को यह अवश्य ही बड़ी सावधानी से देखते गये हैं और इस विषय में इनकी जो जानकारी देखी जाती है वह वर्षों के मनन, विचार, अनुसंधान तथा निज अनुभव का परिणाम है । इन्होंने अपनी सम्मतियां बहुत स्पष्ट करके लिखी हैं और जो बातें साधारण प्रवादों के विरुद्ध हैं उनको यह प्रमाणों तथा तर्कों से पुष्ट करते गये हैं । जिस स्वतंत्रता से इन्होंने इस विषय का प्रतिपादन तथा समर्थन किया है वह इन्ही के उपयुक्त है ।' उसी साक्षी का यह मुख्य अंश है । — सं०

EDUCATION COMMISSION

★

EXTRACTS FROM EVIDENCE, BABU HARISCHANDRA

I have always taken an interest in education. I am a Sanskrit, Hindi and Urdu poet, and have composed many works in verse and prose. I started a Hindi journal, the Kavivachana Sudha, which still exists. My aim has always been to better the educational status of my countrymen, to improve the vernacular language of these provinces, and to add to the stock of the vernacular literature. I have always taken pleasure in the enlightenment of my fellow countrymen. I have established a school for elementary education in the City of Benares. I was a member of the Benares Educational Committee, and have had considerable opportunity of coming into contact with those connected with the Educational Department and other men of learning. I have given prizes to students and scholars of Government schools and colleges to encourage the advancement of learning.

I belong to the North Western Provinces, and my experience is confined to them.

It is true that the officers of the Education Department are not sufficiently respected by the ignorant public. It is not the fault of the department. It is owing to the quiet nature of the work which the department has to do, viz., supervision and examination of schools. In India hukumat (authority) commands respect. An education officer cannot consign a man to custody, cannot fine him, cannot sqeeze his purse. They are much like missionaries, in pursuit of a good cause, unmindful of the scorn of the ignorant, whereas the functions of the Revenue and Police Departments inspire awe in the minds of the people, affecting as they do matters in which they have a nearer interest than they have in the education of their little ones . . . . . To remove this evil, the best remedy would be to make primary education compulsory in India as it is in England and other European countries, to make the language of the court the language used by the people, and to introduce into the court papers the character which the majority of the public can read. The character in use in primary schools of these provinces is, with slight exceptions, entirely Hindi, and the character used in the courts and offices is Persian, and therefore the primary Hindi education which a rustic lad gains at his village has no value, reward or attraction attached

to it. The son of a zamindar, after he has been for years mastering the curriculum of village schools, on going to court finds himself out of his element, he sees that all his labour has been wasted, he finds himself as ignorant as his forefathers were, and cannot understand the hieroglyphics used in amladom. If the son of a poor man wishes to secure a livelihood by his knowledge, he must knock at the door of the Education Department. The other department will send him away as ignorant.

There are instances of the big landholders or zamindars of the Khastriya or Brahmin caste not wishing to educate the sons of their ryots of the lower orders, with a view to profit by ignorance. But such cases are very rare.

The time has not yet arrived when the Government should depend on private exertions for the diffusion of elementary education in rural districts. The withdrawal of Government, even if it be in an indirect manner, would certainly be a death-blow to the cause of education. The natives of this country have for a long, long period been under the despotic rule of Hindu Rajas or Musalman Emperors, and have acquired a habit of dependence and slavery which is engendered in their very nature, and it will take a very long time before the benign rule of the English Government can inspire their nature with free thoughts of independence. India, wherein it is but the dawn of civilization such a step would be too early and premature, especially when we see that in England and other European countries, which are far ahead of us in all that appertains to civilization, elementary education is compulsory. If we turn to the returns of the Education Department we shall be able to see what progress has been made by this country in education by direct Government interference. People of this country, although they pay for primary education in the shape of local rates, care little whether a school situated in their village is opened or abolished. They pay education cess because they consider it a tax imposed on them by Government and not with any regard to their own good. It is by direct Government interference alone that this country can prosper.

It is rather difficult to answer the question, what is our vernacular language ? In India it is a saying-nay, an established fact-that language varies every yojana (eight miles). In the North Western Provinces alone there are seveal dialects. The vernacular of these provinces, though it can be divided, owing to its various intricate and manifold forms, into a hundred sub-heads, has four main features—(1) Purbi, as spoken in Benares and its bordering districts ; (2) Kannauji, the dialect spoken at Cawnpore and the adjoining districts ; (3) Brajbhasha, as spoken in Agra and its neighbourhood ; (4) Kaiyan or Khariboli, as spoken at Saharanpur, Meerut, and the neighbouring districts.

In the city of Benares alone, if you have to ask any man "how he is

doing"—you will use the following different expressions :—

"Apka sarir kusal hai ? kshem hai ? swasth hai ? Mizaji mubarak, Mizaji mukaddas, Mizaji sharif ? Apka mizaj kaisa hai ? Tohar jiu kaisan batai ? hau kaisan baya ? kaisan hoe, &c. &c.,"

according as you are a pandit, a munshi, a citizen or a villager. When you observe such vast variety in one and the same common dialect used in one and the same place, what can you say of the language used throughout the entire province ? The vernacular of this province therefore varies according to the caste, birthplace, and attainments of the speaker, I would therefore call the vernacular of the province the dialect spoken by the classes of people in public places and on public occasions : for instance at royal Durbars, Courts, public meetings, &c., &c., or the dialect in which books are written.

Thus it will be seen that out of features of the vernacular of this province as noted above, only two, viz., Brajbhasha and Khariboli, attract attention. Brajbhasha is used in Hindi poetical composition, and Khariboli under two different disguises is spoken all over the province. The latter consequently, when spoken with abundant use of Persian words and written in Persian character, is styled "Urdu", and when free from such foreign mixture and written in Nagri character, is termed Hindi. Thus we come to the conclusion that there is no real difference between Urdu and Hindi.

But in these days the two forms of our vernacular occupy the thoughts of the people and afford to them an attractive topic of discussion and a theme for long debates and harangues. The Muhammadans and their fellow companions, such as the Kayasths of Benares and Allahabad, the Agarwalas and Khattris of the more western portion of the provinces, call this dialect Urdu, and there are several reasons for their doing so. The Muhammadans for a long time were the ruling power in India, and consequently the dialect spoken by them was considered in these provinces as most respectable. Those who wished to be looked upon as fashionable or polite to public meetings or other assemblages spoke Urdu, and many have recourse to the same practice up the present day. Excellence in Urdu is imagined to be contained in the use of big and high sounding Persian words to such a degree of profusion as to leave only the verb of the sentence Hindi.

The respect that Urdu commands in the British rule is owing to its being the court language of the province. The Musalmans not only have a sharp and oily tongue, but are also very forward and headstrong, and this is the cause why they over-power other people. By the time the Hindus think to convene a meeting to address the Government and ask it to introduce Hindi, the Musalmans will have protested the Government to

the contrary. If Urdu cease to be the court language, the Musalmans will not easily secure the numerous offices of Government, such as peshkarships, serishtadarships, muharrirships, &c., of which at present they have a sort of monopoly. By the introduction of the Nagri character they would loose entirely the opportunity of plundering the world by reading one word for another and thereby misconstruing the real sense of the contents. The Persian Character particularly Shikast, in which at present the court business is carried on, is an unfailing source of income to mukhtars, pleaders and cheats.

May god save us from such letters ! ! ! What wonders cannot be performed through their medium ? Black can be changed into white and white into black. Writing, which is present a perpetual source of income to hangers-on of the court, will cease to fill their coffers if Hindi is introduced. Bombast and high-sounding Persina words which have never been heard of by landholders, cultivators and traders, are forced into composition purely with a view to yield a harvest to interbreters. If Hindi is introduced who will pay to four annas to learn the contents of a summons, or eight annas to one rupee for writing out a small petition ? How can, then, a summons to give evidence be interpreted as a warrant of arrest ? The use of Persian letters in office is not only an injustice to Hindus, but it is a cause of annoyance and inconvenience to the majority of the loyal subject of Her Imperial Majesty. Because Urdu is the language of the court, a few people are favourably impressed towards it.

In all civilized countries the language spoken by the people and the character written by them are also used in the courts. This is the only country where the court language is a language which is neither the mother tongue of the ruler nor of the subject. If you send out two public notices, one written in Urdu and the other in Hindi the proportion of the people deciphering each can be easily known. Both rayats and zamindars have been heartily gratified at the introduction of Hindi letters in summonses issued by Collectors. The Bankers keep their account-books in Hindi. The private correspondence of the Hindi is carried on in the same letters. The Hindus speak Hindi in their families, and their women use Hindi characters. The patwari keeps his village papers in Hindi and the majority of the village schools teach Hindi.

I am sorry to learn that the Honourable Sayyid Ahmad Khan, Bahadur, C.S.I. in his evidence before the Education Commission, says that Urdu is the language of the gentry and Hindi that of the vulgar. The statement is not only incorrect but unjust to the Hindus. With the exception of a few Kayasths, the remaining Hindus, e.g., Kshatriyas, mahajans, zamindars—nay, the revered Brahmins, who speak Hindi, are supposed to be vulgar. In spite of this though the Lala Sahib (Kayasth)

will correspond with the Sayyid Sahib Bahadur in Urdu yet when writing to his wife he must use the Hindi character.

The days are gone by when Brahmins and Pandits learn their Gaitris (the most holy verses) through the medium of Persian. These are the letters which teach us Gul bulbul sharab, piyala, ishk, ashik, mashuk, and ruin us. In early age love occupies our thoughts. Karima, and Mamukima, and Mahmudnama, are the books for beginners. The Karima is a small good book, but the two latter contain only love odes. Further on, the Gulistan and Bostan, are not quite free from occasional mention of love stories. The immoral not quite free from occasional mention of love stories. The immoral composition of Zulekha and Bahardanish scarcely fail to deprave the mind of the reader. There is a secret motive which induces the worshippers of Urdu to devote themselves to its cause. It is the language of dancing girls and prostitutes. The depraved sons of wealthy Hindus and youths of substance and loose character, when in the society of harlots, concubines and pimps speak Urdu, as it is the language of their mistress and beloved ones. The correct pronunciation of Urdu, with its shin, ghain, and guttural kaf, is indispensable in such a company, and one unable to twist his tongue into unnatural and unpleasant distortions is not a welcome or an agreeable companion.

As I have mentioned above, the 2nd branch of Khariboli is Hindi, which is also called Aryabhasha or Sadhubhasha. Hindi is made to appear hard and different by our Pandits on account of profuse use of Sanskrit words which are far beyond the average understanding of the ignorant public. For example, 'mar sah kar wuh bhag gaya' : this is a pure Hindi sentence. The Maulvis would translate it 'wuh zad uardasht kar apne maskan ko farar ho gaya'. The Pandit would say 'wuh mar sahan kar swagriha ko palait ho gaya'. This interposition of foreign words have spoiled true Hindi. Hindi by itself without much foreign aid can easily answer our purpose. Look at the language of the "Rani Ketaki ki Kahani" (Story of Queen Ketaki) compiled by Insha Alla Khan. The constant war in which Maulvis and Pandits have engaged themselves has ruined the cause of true Hindi. Our vernacular is neither the language of the Maulvis or that of the Pandits. It is something between ; it is the "the Golden mean."

The natives of this country, at least of these provinces, have been under a strict impression for the last eight or nine years, that the Government wishes to shut up the doors of education against them ; that it thinks Education Department the most superfluous of all the departments of the state ; that this is the only department which shows all expenditure and no income; that Indian youths aspire to Government posts, and upon failure turn round and abuse the very Government that educated them.

I cannot but express my deep regret to answer this question in the negative. The Government has hitherto turned a deaf ear to our prayers in this matter. After repeated representations of the complaint by the Education Department in the year 1877 the local Government passed an order ruling that no Government appointment to which a salary of Rs. 10 or upward was attached should be given to a person who had not passed a certain public examination. The rule was heartily welcomed by the educated, who thought that the golden age had again returned, and that none but the really deserving would have the monopoly of government posts. Alas ! to their mortification and surprise, the Government order was consigned to the waste basket by Anglo-Indian officials. It is no more than a dead letter now. If a report be called for from all the departments of Government administration, as to how far effect has been given to this order of Government my statement will be borne out.

A large majority of the Anglo-Indian officials have a deep-rooted prejudice against the graduates and undergraduates, and systematically shut to them the doors of responsible Government posts. They prefer employing men of the old school, who are neither well educated nor possess any high moral sense, but are ready to bear patiently the abusive language and offensive manners of their superiors. On the contrary, the Anglo-Indian functionaries hate the University educated men, who seldom refrain from criticizing the conduct of the authorities when they pas the bounds of propriety or give way to their whims. The amla try their utmost not to let University men pollute the atmosphere of their jurisdiction or trespass on the limits of the cutcherry, into which they think that they themselves and their belongings only have a writ to enter. The officials always accept the nominations of their serishtadars and head-clerks. The claims of the educated are persistently ignored : they are deliberately kept down and all the avenues to distinction are shut to them. The Government of these provinces has done but little to help such men, and this is the reason that such men go round from door to door of all the departments begging for employment. If the commission were to take up the list of Sub-Judges, Munsiffs, Deputy Collectors, Tahsildars, Peshkars, Munsarims, Serishtadars, Head-clerks and subordinate amla, it will readily find whether what I have stated is a fact. The only department wherein such people can find employment is the Education Department.

No instruction in duty and principles of moral conduct occupy any place in Government colleges or schools. It is a want extremely felt, and such study ought certainly to have a place in the school and college curriculum. Books may be selected hereafter, but in no way should they be such as to interfere with the religious views of any sect of people.

There are very few public schools for indigenous instruction of girls. I know one or two of the kind. There is a large school of this class at Benaras supported by His Highness the Maharaja of Vizianagram, attended by about 500 girls under the supervision of European ladies. But it must be remembered that almost all the girls are paid for attendance and the majority of them come from the low classes.

There is little inclination on the part of the natives of this country to send their girls to public schools, they are generally opposed to such a scheme. But we have something like "home" education. Respectable people do not wish to send their girls of whatever age they be, to a public school, whether under the management of Government or private individuals ; and therefore they generally employ a tutor of their own to educate their girls. The home education is often of a religious character and has little to do with western enlightenment. Religious books containing lessons on principles of morality and household duty are generally read. The Muhammadans teach the Koran to their girls.

European ladies of the civil, military, or Education Departments have shown little interest in female education. Should these ladies do so, the cause of female education in India might prosper and good results might be achieved. The mission ladies have evinced some interest, but their visits to the zanana have been seldom reckoned as beneficial. They are naturally inclined to inculcate religious principles and free thoughts which instead of creating in the minds of native women a desire for education, generally make them averse to it. They are led to consider that the sole aim of such ladies is to convert them, and therefore they scrupulously avoid mixing with the supposed enemies of their religions.

लेखक
और
नागरी-लेखक

लेखक की महत्ता पर प्रकाश डालने वाला भारतेन्दु का यह विचार प्रधान निबन्ध जिसका पुर्नमुद्रण नागरी प्रचारिणी सभा के पण्डित केदार नाथ पाठक द्वारा किया गया ।

— सं०

प्रत्येक जाति को अपने लेखकों ही के गौरव और उच्चाशय द्वारा सर्वोच्च यश की प्राप्ति हुई (या होती) है —

* Every nation arrived their highest reputation from the splendour and dignity of their writers.

Dr. Johnson.

आजतक हम महापुरुषों को साक्षात् ब्रह्म अवतार कवि, आचार्य्य और राजास्वरूप में सुनते और मानते

आये हैं परन्तु आज कल हम यह क्या सुनते हैं — ''वह लेखक है, वह महापुरुष है ।'' पहिले चार के विषय में तो हमने अपने नागरी जगत में अतीत कहानी मात्र सुना है और अन्तिम पञ्चन के विषयमें हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जानते हैं कि जो ३६ कोटि मनुष्यों के एक मात्र कुर्त्ता, धर्त्ता और विधाता हैं वह अवश्य एक महापुरुष हैं, इसमें सन्देह ही क्या !— इसलिये वर्तमान समय में किसी राजपुरुष को ''महापुरुष न मानते हुए भी हम अपने सम्राट् महाराज एडवर्ड को एक महापुरुष समझते हैं । परन्तु — ''वह लेखक है, वह महापुरुष है ।'' यह ध्वनि कान में पड़ते ही बड़ा आश्चर्य्य होता है कि एक साधारणस्थिति के मनुष्य को जगत महापुरुष कैसे कहता है । न्यायालयों और कार्य्यालयों में जिसका पद सब से छोटा है यहां तक कि जिसे न्यायाध्यक्ष (हाकिम) और कार्य्याध्यक्ष (आफिसर) ही की नहीं, बरन कभी कभी उसके अर्दली और चपरासी तक की फटकार सहनी पड़ती है उसी नकल नवीस, मोहिर्रिर और आज कल के क्लर्क के पर्य्यायवाची शब्द के ''लेखक'' नामधारी मनुष्य को जगत महापुरुष क्यों कर मानता है ? किन्तु जब हम वर्तमान समयकी ओर देखते हैं और यह समझते हैं कि ''लेखक'' सामयिकसृष्टि का यथार्थ में महापुरुष है तो हमारा आश्चर्य्य नहीं रहता, क्योंकि रात दिन देखते हैं कि वर्त्तमान समय में अनेकाकानेक असम्भव बातें सम्भव हो रही हैं । यदि वर्त्तमान सृष्टि की विचित्र गति को देखकर हम यह समझ लें कि हिन्दुओं को पवित्र पुस्तकों के लेखानुसार कलिकाल में जो भगवान का कल्कि अवतार होना माना जाता है तो वह स्यात् इन्हीं महापुरुषों के वेश में हो, इसमें कुछ आश्चर्य्य नहीं माना जा सकता क्योंकि इस समय विलासप्रियजगत में इन महापुरुषों के अतिरिक्त और कोई ऐसा हमारी दृष्टि में नहीं आता है जो चना के पौधेके तले बैठने की नाईं, रूखा सूखा, मोटा फटा पहिन, सर्दी गर्मी सह कर ''परोपकाराय सतां विभूतय:'' के उपदेश में लगा रहे । आ हम आप से पूछते हैं कि आप क्या ऐसे महापुरुष की कथा नहीं सुनना चाहते हैं ?

''यथा नाम तथा गुण:'' की जैसी विलक्षण सिद्धि ''लेखक'' के जीवन वृत्तान्त में दीख पड़ती है वैसी स्यात् ही कहीं दीख पड़ेगी । भविष्यत् में कुछ हो परन्तु अभी तक लिखने की सिद्धि प्राप्त किये विना कोई लेखक नहीं कहल सका है । ब्रह्मज्ञान के विना शासन ब्रह्मस्वरूप दैहिक वासनाओं के रखते हुये अवतार रूप कत्थक भांड़ों और वेश्याओं के लिये, अनर्थ में फंसानेवाले विषय वासना की चाण्डालिनी मूर्ति के प्रति लक्ष्य कर के दो चार पद निर्माण करने वाले कवि, धर्म के ज्ञान से शून्य केवल नाना आडम्बर द्वारा अपने पेट की पूजा कराने वाले आचार्य और प्रजा के संरक्षण एवं राजनीति के मर्म से शूनय राजा, भले ही मनुष्यं बन जायें, परन्तु जब तक ऐश्वरीय ज्ञान प्रदपत्र प्रतिभा मय लेखन शक्ति मनुष्य को प्राप्त न होगी वह कभी ''लेखक'' नहीं कहला सकेगा । उपरोक्त यहां पुरुषों को परीक्षा में उत्तीर्ण न होने देने की अनेक बातें बाधक कही जा सकती हैं । परन्तु जब तक शरीर में प्राण है, तब तक जगत की कोई वस्तु ''लेखक'' का अवरोध नहीं कर सकती है, इस लिये लेखक की परीक्षा के लिए किसी समय सामग्री की आवश्यकता नहीं है । जब से जगत में अक्षर की सृष्टि हुई है, तभी से हमारे लेखक महापुरुष का अवतार हुआ है । यों तो इस परिवर्त्तनशील जगत में अनेक वस्तुएं अनेक बार बनती और अनेक बार लुप्त होती हैं जिस से यह निर्णय नहीं हो सकता कि इस काल चक्र में कहां पर क्या क्या देखा । गाड़ी के पहिये को देखो ज्यों ही यह एक बार घूम जाता है और दूसरी फेरी में पड़ता है त्योंही हमें उसकी पहली बार की गति और उसपर बीती हुई बातें भूल जाती हैं । इस से हम लेखक की आयु का निर्णय नहीं कर सकते । परन्तु जो कि हमें केवल ''नागरी-लेखक से ही सम्बन्ध है इस से हम लेखक की आयु का निर्णय नहीं कर सकते । परन्तु जो कि हमें केवल ''नागरी-लेखक से ही सम्बन्ध है इस लिये हम कह सकते हैं कि गत शताब्दि के आरम्भ से प्रथम कोई ''नागरी-लेखक'' अपना वर्तमान गौरव-सूचक ''लेखक'' नाम सार्थक नहीं सका है । कहना नहीं होगा, मुद्रण यन्त्रं के प्रचार के साथ ही साथ महायुकब ''लेखक'' की उन्नाति हुई जैसे विष्णु चक्र और महादेव त्रिशूल के सहारे संसार पर विजय पाते हैं वैसे ही ''लेखक''मानों अपने मुद्रणयन्त्र से ही जगत में अपनी दुन्दुभी बजाते हैं । जब तक संसार में मुद्रण यन्त्र रूपी उनका अस्त्र रक्षित रहेगा, तब तक वह जगत में महापुरुष कहला कर ही पुजते रहेंगे ।

हमें तो स्मरण नहीं होता क किसी नागरी लेखक ने १९ वीं शताब्दि के पहिले अपने उच्च विचारों को लिखकर और छापेखाने में छपवा कर सर्व साधारण के सामने धरा हो । यद्यपि हमारे पास कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है जिस से हम यह सिद्ध कर सकेंगे कि जितने लेखक इस समय प्रसिद्ध हो रहे हैं उन के

अतिरिक्त भी कुछ और जन्मे और कुछ थोड़ा बहुत अपना कार्य्य कर के स्वर्ग को पधार गये । तथापि हमारा मन साक्षी देता है कि साधारणत: केवल कृतकार्य्य मनुष्यों का ही नाम हमें सुनाई पड़ता है, परन्तु देखते हैं कि सहस्रों के उद्योग करने पर केवल कुछ इने गिने ही अपने कार्य्य में सफल होते हैं तो अवश्य सम्भव है कि अनेकों ने इस कार्य में अपने प्राण खोये होंगे, जिन का नाम भी आज संसार में नहीं है । परन्तु सब से बढ़ कर धन्यवाद के पात्र वही हैं जो इस कार्य में बिना धन और बिना यश कमाये, प्रसन्नता पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करते हुए काल की गोद में चले गये । इस में कुछ सन्देह नहीं कि वर्त्तमान राजनियम के अनुसार वह अपनी पुस्तकों पर स्वत्व न रख सके और जहां तहां राजाओं से थोड़ा बहुत पुरस्कार पाते हुए ही वे अपने जीवन के दिन भयंकर दारिद्र दुख में व्यतीत करते रहे परन्तु अब वे ही अपनी चिता की भस्म में से निकल कर मनुष्यों के हृदय पर राज करने लगे हैं । हा शोक ! इस के विचारमात्र से ही हमारे हृदय पर कितना बड़ा आघात लगता है कि जो आज हमारे हृदय के अधीश्वर हैं वे पेट भर अन्न और शरीर ढकने योग्य वस्त्र भी बिना पाये अपनी जीवन लीला सम्वरण कर गये । इस से बढ़ कर दु:खदाई और लज्जा जनक बात मनुष्यमात्र के लिये क्या हो सकती है ?

शोक का विषय है कि हमारे स्वर्गीय लेखकगण ही ऐसी दशा में आविर्भूत नहीं हुए कि जिस में हम यह नहीं जान सकते थे कि इन निकम्मों से भी हमारा कुछ काम निकल सकता है, वरन आज तक भी हमारे नागरी जगत में लेखक कोरा उठल्लू समझा जाता है । हम लोग स्वर्ग में गद्दी पाने की इच्छा से निरक्षरभट्टाचार्य कितने साधू, सन्यासी, दण्डी उदासी पुरोहित और गंगा यमुना के पुत्रों की सेवा सुश्रूषा में कितने ही का गांजा चरस और चण्डू क्यों न फूक दें और जन्म भर उन की टहल किया करें, परन्तु जो स्वर्ग के सच्चे प्रथम दर्शक हैं उन विद्वान लेखकों की ओर से हम अपना मुंह फेर लें और उन के लिये कभी एक फूटी कौड़ी भी न खर्चें । इसी का फल है कि आजा हमारी यह दुर्दशा हो रही है और हम अपने लेखकों के कष्ट को स्मरण कर २ के आह २ आंसू रो रहे हैं । जब हमें यह दीख पड़ रहा है कि विद्या ही हमारे परित्राण के लिये चक्र है तब तो लेखक भी हमारे लिये चक्रधारी भगवान वसुदेव के समान परित्राणदाता अवश्य होंगे । पाठकगण ! समझे, लेखक हमारा पूजनीय और आराधनीय देव है । शत पथ ब्राह्मण का वचन है कि "विद्या सो हि देवा:" अर्थात् जो विद्वान् है वही देव हैं । विद्या के बिना लेखनशक्ति प्राप्त नहीं हो सकती और लिखने से विद्या के ऊपर शान चढ़ती है, इस से लेखक विद्वान् की भी अपेक्षा श्रेष्टतर निर्भ्रम पूजनीय देव है । लेखक मनुष्य समाज का प्राण है । लेखक मनुष्य के हृदय पर अपना अधिकार जमाये बिना कदापि नहीं रह सकता है । लेखक से संसार का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि संसार की गति की परीक्षा हम लेखकों की गति से कर सकते हैं ।

जैसे संसार की अन्य सब बातों में सच और झूठ का भेद माना जाता है वैसे ही लेखकों के भी दो भेद हैं । एक योग्य और दूसरे अयोग्य । योग्य लेखक वे हैं जिन के लेख जगत में माननीय और आदर्णीय माने जाते हैं और सर्वदा वैसे ही माने जाते रहेंगे । जिन्होंने जिस विषय का विवरण किया वह विषय उस समय जगत में सर्वोच्च समझा जाता था जिन की जिव्हा और लेखरी से सर्वदा ऐश्वरीय विचारों का प्रवाह प्रसृवित होता है । जो इस क्षणभंगुर असार और मायालिप्त वाह्यजगत् में रहते हुए भी अनादि अनन्त सारभूत पवित्र आन्तरिकतत्व के साथ सदा विचरण करते हैं । जो इस जगत के आन्तरिक दृश्य को देखते हुए इतर मनुष्यों को जो अधिकांश उस स्वर्गीयसुख से वञ्चित होते हैं और जिव्हा और लेखनी से उस दृष्य के दिखाने की यथासाध्य चेष्टा करते हैं । जिस की पवित्र आत्मा ऐश्वरीयज्ञान के निर्मल प्रकाश में सांसारिक क्षणस्थायी सुखों को तुच्छ देखती हुई अक्षयमोक्ष सुख की खोज में लगी रहती है । "लेखक के स्वभाव" पर व्याख्यान देते हुए जर्मनी के प्रसिद्ध तत्व वेता फिची (Fitche) ने कहा था, — "हम और हमारे समस्त मनुष्य भाइयों के सहित इस पृथ्वी पर के समस्तपदार्थ इस दृश्यमान् जगत् के सम्भोग पदार्थ हैं, इन पदार्थों के स्वरूप के भीतर उनका सारा भाग जिसे हम लोग "जगत का ऐश्वरीय विचार" कहते हैं, रहता है और यह विचार "जगत की मान्यता है जो प्रति मूर्ति के हृदय में विद्यमान है" जगत में यह ऐश्वरीय विचार सर्वसाधारण के लक्ष में नहीं आ सकते हैं साधारण मनुष्य जगत की बाहरी दिखावटों और बनावटों में ही उलझे रहते हैं और उन का यह स्वप्न में भी विचार नहीं होता कि संसार की इन बाहरी दिखावटों और बनावटों में भी कुछ ऐश्वरीयभाव विद्यमान है । परन्तु लेखक का जगत में अवतार इसी लिये होता है कि वह इस असार जगत् के सार को स्वयं देखे और दूसरों को दिखलावे; और भाष का जब जब परिवर्तन हो तो उसी परिवर्तित भाषा में उस समय के मनुष्यों की रुचि के अनुकूल उस "सार" को

वर्णित करे । फिची के कथन का सार-मर्म यही है कि वह सर्वव्यापी परमात्मा अपनी ब्रहमा विष्णु और महेश आदि अनेक ज्योतियां में से किसी न किसी थोड़ी या बहुत ज्योति से प्रत्येक पदार्थ के सारभाग को उद्‌भासित कर रहा है । ब्रहमवादी इसी से जगत को केवल ब्रहमय मानते हैं । प्रकृतिवादी सत रज और तम भेद से उस का जगत में व्याप्य होना कहते हैं । ''ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्'' ।। यह ईशोपनिषद का वाक्य है, जिसका अर्थ यह है । जो कुछ सृष्टि में भंगुर पदार्थ है यह सब परमेश्वर से बसा है । इसी के व्याख्या स्वरूप उसी उपनिषद के पांचवे श्लोक में कहा है ?'तदन्तरस्य सर्वस्य तद सर्व स्यास्य बाहयत:'' अर्थात् वही इस सब के भीतर है वही इस सब के बाहर है । इसी से स्वामी शंकराचार्य्य ने ज्ञान रूप परमात्मा का जगत् में व्याप्त होने की शिक्षा देने की अपेक्षा उस का साक्षात् रूप जगत होना कहा और संसार में अद्वैतवाद का झण्डा खड़ा किया । इसी, क्या अन्तर क्या बाहय, सर्वव्यापी ईश्वरीयज्ञान प्रभा के प्रकाश से चौंधिया कर भगवान बुध ने निर्वाण पद पाकर जीव का साक्षात परमेश्वर होना माना है । कहां तक कहें यह वह विषय है कि जिस को सारा चराचर जगत अपनी आत्मा से भली भांति मान रहा है ।

फिची [Fitche] ने इसी लिये लेखक को धर्मोपदेशक भी कहा है क्योंकि वह नाना प्रकार से मनुष्यों को ऐश्वरीयभाव दर्शाने की चेष्टा करता है । मानों या न मानों परन्तु इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि सच्चे लेखक की आत्मा आवश्य पवित्र होती है उस के विचार ऐश्वरीयज्ञान से परिपूर्ण होते हैं । लेखक जगत का प्रकाश है, लेखक जगत का गुरु है, उसी के प्रकाश के सहारे हम पायपूरित अंधियारी रजनी में अपनी संसार यात्रा को समाप्त करते हैं और उसी के उपदेश में हम इन्द्रिय लालसाओं के और लुटेरों के पञ्जों से बचते हैं । अयोग्य अथवा झूठे लेखक वे हैं जो ऐश्वरीयज्ञान से वञ्जित रहते और सांसारिक विषयों की इच्छा रखते हुए जगत को भुलावे में डाल का अपना अर्थसाधन करते हैं । जिन्हें दैहिक सुख की कामना है वे आत्मिक सुख का कभी अनुभव नहीं कर सकते हैं । जो लेखक ऐसे हैं उनको उन्हें, स्वार्थी और मिथ्या वादी कहना पाप न होगा । परमात्मा करे, विद्या के पवित्र क्षेत्र में ऐसे नराधमों का कभी पैर न पड़ने पावे ।

हमारे पूजनीय पूर्वपुरुषों नो देवालयों में भगवत पूजन करने और देवनदियों में निर्द्धारित तिथियों को स्नान करने और विद्वानों के समागम पर एक स्थान पर एकत्रित होने की प्रथा इसी लिये प्रचलित की थी कि ऐसे समयों पर तो भी सर्वसाधारणजन योग्यपुरुषों की विद्याबुद्धि और वाकि शक्ति का परिचय पा सकें । उन को मालूम था वाकशक्ति के समान जाति की उन्नति के लिये और कोई शक्ति लाभदायक नहीं है और यदि यह न हुई तो जातीय जीवन किसी काम का नहीं है । उन का यह कार्य्य कैसा उच्च, पवित्र, सुन्दर, लाभकारी और महान था । परन्तु यह देखो लेखनप्रणाली और मुद्रणयंत्र के सहारे अब जगत के इन कार्य्यों का कैसा उलट फेर हो गया है । लेखक (ग्रंथकार) धर्मोपदेशक की नाई इधर उधर यहां वहां नगर धर्मोपदेश नहीं देता फिरता है, परन्तु वह एक ही समय में एक दूसरे से बहुत दूर बसे हुए अनेक स्थानों पर अपनी शिक्षाओं को सुनाता है । परन्तु शोक है कि इन बेचारे लेखकों की सुनते बहुत कम हैं । नाना प्रकार के मनोहर पदार्थों से सुसज्जित कमरे में बैठे हुए और धनवान शिष्य दल से घिरे हुए आचार्य्यवर की नवरसपूरित कथाओं को छोड़ कर कौन ऐसा मन्दमति होगा जो कुछ पैसे खर्च कर एकग्रचित्त हो कर लेखक के कोरे कागज में अपना सिर खपावेगा । पञ्चभूतनिर्मित इस शरीरराज्य के राजा मन का कष्ट छोड़ शारीरकसुख भोगने का स्वाभाविकगुण है । इसी से मनुष्य विवेचनारहित हो कर सुख दु:ख की सीमा का विना मिलान किये हुए कष्ट साध्य कामों से दूर भागता है परिमाण में दु:ख की अपेक्षा सुख कितना ही गुना क्यों न हों । इसी से वर्तमान दैहिक सुख को सुख समझने वाले जगत् में ऐसी किस की भी गती है जो लेखक के भविष्यत् सुख पर विश्वार करें । ऐसी दशा में लेखक के लिये कौन पूछता कि कहा से आया कहां जायगा कैसे आया और कैसे जायगा ? वह जगत में एक अपरिचित मनुष्य की नाईं मारा २ फिरता है । गृहहीन, आश्रमहीन और सहायहीन बन वासी मनुष्य की नाईं वह उसी जगत में जिस का वह स्वयं अज्ञानान्धकारनाशी निर्मल प्रकाश है घूमता फिरता है ।

संसार में मनुष्य ने अपनी बुद्धि से जितने अद्‌भुत आविष्कार किये हैं उन में सब से बढ़ कर लिपि निर्माण है । पुराणों में महादेव के गणों के कैसे २ चमत्कारिक कार्य्य लिखे हैं परन्तु हम कहते हैं कि पुस्तकों

ने उन से भी बढ़ कर आश्चर्य्य जनक कार्य्य किये हैं । पुस्तकों में सारा भूत बंधा पड़ा है, उस काल की भाषा और शब्दावली इन में मौजूद है । जिस समय के अधिकांश पञ्चभूत निर्मित पदार्थ अपने स्थूल शरीर को त्याग कर के निज २ तत्व में जा मिले हैं जहां से उनका लौटना सर्वथा असम्भव है, उस समय के उनहीं पदार्थों का सारा विवरण यदि अब इस समय जानना चाहो तो शिलाखण्ड, ताम्रपत्र, भोजपत्र और आज कल के घास फूस और चिथड़ों से बने हुए कोरे कागज पर के खुदे, लिखे और छपे चिन्हों को देखो इन चिन्हों को देखते ही आप की आंखों के सामने नाना प्रकार के अद्भुत दृष्य आने लगेंगे मानों किसी ने तुम्हारी आत्मा को अपनी आत्मा से आच्छादित कर लिया है और वह तुम्हें नाना रूप रंग तमाशे दिखाते हुए तुम्हें कठपुतली की नाईं नचाता है । समझे पाठक । यह क्या है ? मेस्मेरिज्म जानने वाला जैसे कांच और जल को विश्वव्यापिनी विद्युत की आकर्षण शक्ति से आमन्त्रित कर के उस के द्वारा धारक को अपने वश में करता है लेखक वैसे ही इन अक्षर रूपी चीन्हों में अपनी आत्मा को प्रविष्ट कर के उन के समझने वालों के हृदय को अपना बनाता है । जलादिक पार्थिवपदार्थों द्वारा आत्मा का विनियोग क्षण स्थायी परन्तु इन अक्षरों का प्रभाव अचल, अमिट और अनन्त है । इस प्रचलित मेस्मेरिज्म में कारक धारक से बलवान होना चाहिये परन्तु इस लेखन रूपी मेस्मेरिज्म में लेखक मृत्यु शय्या पर पड़े हुए भी महाबलवानों के हृदय पर अधिकार करता है । मेस्मेरिज्म में कारक धारक को न बलवान और न निर्बल बना सकता है परन्तु लेखन में लेखक पाठक और श्रोता दोनों को बात की बात में सबल को निर्बल और बलवान को निर्बल बना सकता है । इस लिये, प्रिय पाठक । इस शरीर के साथ नाश होने वाली विद्या और मरणोपरान्त अपने साथ न जाने वाले कर्मों को न सीखो । इस समय देखो इंगलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, रूस, और जापान की जल, थल सैनायें अपनी शक्ति में मत्त, समुद्रकी उत्ताल तरंगों पर नृत्य कर रही हैं, गिरिराज के अभ्रभेदी शिखरों पर विहार कर रही हैं ; उन के अस्त्र, शस्त्र और यंत्रागार पृथ्वी पर अपना पूर्ण प्रभाव दिखा कर समुद्र को जलाने, पहाड़ो को उड़ाने और आकाश को भेदने के लिये कमर कसे बैठे हैं ; उनकी राजधानियां संसार वैभव में मदमाती इठलाती हुई अलकापुरी का उपहास कर रही हैं, उन के धनागार (बैंक) अपार धनराशि की ओर निहारते हुए कुबेर के कोषागार को तुच्छ समझने लगे हैं । यह सब कुछ है परन्तु, स्मरण रखिये जो था वह अब नहीं है और जो अब है वह आगे न रहेगा, इस प्राकृत नियम के अनुसार यह जगत का वर्तमान ऐश्वर्य्य एक दिन अवश्य भूत काल के ऐश्वर्य्य में जा मिलेगा । भविष्यत् में १९वीं शताब्दि के अन्त और २० के वर्तमान प्रारम्भ के ऐश्वर्य्य को हमारे आगे की सन्तान क कौन बतलावेगा, ऐश्वर्य के जितने साधन हमारे पास हैं वह सब मिल कर भी हमारे इस गौरव को नष्ट होने से न बचा सकेंगे । समयान्तर में हमारा यह ऐश्वर्य्य किसी प्रकार रक्षित न रह सकेगा । उस समय हमारे वर्त्तमान, धर्म्म, कर्म, राज्य, बल, गौरव और धन का हाल कैसे मालूम हो सकेगा ? वर्त्तमान दशा के विपर्य्य होने पर इन शताब्दियों का दृश्य हमारी भविष्यत सन्तान को कौन दिखलावेगा, उस समय, स्मरण रखिये, अन्न वस्त्र हीन, अर्द्धविक्षिप्त, निरुद्यमी, बकवादी और बखेड़िया लेखक के परिश्रम से ही हमारा यह वर्तमान जगत कालका कौर बन जाने पर जीवित बना रहेगा । पाण्डवों और कौरवों की वह अजित सेना अब कहां है । गांडीव धनुष ऐसे अस्त्र अब कहां है ? समृद्धिशालिनी हस्तिनापुरी अब कहां है ? धर्म राज का वह मय निर्मित सभा भवन कहां है ? और उस समय के उस विचित्र नाटक के सूत्र धार साक्षात ब्रहमस्वरूप भगवान कृष्णचन्द्र कहां हैं ? हम क्या बतावें कहां है । अब जगन्नाटक में अपना २ खेल कर अपने आप उसे देख और दूसरों को दिखा कर रंग शाला में चले गये हैं । परन्तु महर्षि वैशम्पायन की कृपा से आज ५००० वर्ष के बीत जाने पर भी इस कौरव पाण्डवों का महायुद्ध देखते हैं, गाण्डीव के भंयकार प्रपात को सुनते हैं, हस्तिनापुरी की शोभा निरखते हैं, पाण्डवों के राजभवन में विचरते हैं और बनविहारी बनवारी के उपदेशामृत को पान करते हैं । उन "कालहु जीति सकल त्रिपुरारी" शिव की सांसारिक लीला कभी की समाप्त हो जाती यदि भोजपत्रादि पर बने हुये अक्षर उन्हें जीवित न रखते । देखो पाठक गण, पुस्तक कैसी अद्भुत विचत्रिशाला (Museum) (अजायबघर) है संसार में अनेक विचित्र शालायें नष्ट हो गईं परन्तु यह शाला पृथ्वी के आदि दिन से आज दिन तक ज्यों की त्यों बनी है । मनुष्य जाति का यही सर्वोत्तम नाम है ।

क्या पुस्तकों में अब महा कार्य्य और अद्‌भुत व्यापार करने की शक्ति नहीं रही ? हम तो जानते हैं कि उन में जैसी सर्वदा थी वैसी ही अब भी बनी है । आज कल हमारे शिक्षित समाज में चाक चक्य चिकनाहट की जो चाल है: पश्चिमीय सभ्यता की गन्धि जो उस में फैली है, प्रेमाराधन का सोता जो उस में धड़धड़ाहट से बह रहा है, यह किसका फल है ? यह केवल उन विषयों की पुस्तकों के अधिक प्रचार का फल है । पुस्तकों के पाठ से विचार उत्पन्न होते हैं, विचार होने से अभिलषित पदार्थ के प्राप्त करने की इच्छा होती है, इच्छा होने से मनुष्य कार्य करता है और कार्य्य करने से फल प्राप्त होता है । वट सरीखे महावृक्ष का मूल कारण जैसे उस का छोठा सा बीज मात्र है संसार के वर्तमान महाकार्य्यों का सूत्रपात वैसे ही मनुष्य के लिखे हुये चिन्ह मात्र अक्षरों से हुआ है । विचार कर देखो पौराणिक लोग कौन सा ऐसा गण कार्य अपनी कथा में वर्णित करते हैं जो वर्तमान में पृथ्वी पर पुस्तकों के कार्य्य से बढ़ कर हो । देवादिदेव भगवान महादेव के कैलाश का दर्शन होना हमारे लिये दुस्तर है, वीरभद्र का वह प्रचण्ड कोप संसार में नाना प्रकार के दुष्कर्म होते हुए देख कर के भी शान्त हो गया है, भक्तों को संकट से परित्राण न होते देख कर भगवान के भक्तरक्षक नाम में भी हमें सन्देह होने लगा है, परन्तु जब तक पुराण हैं, अवतारों में हमारी श्रद्धा बनी रहेगीं, सब चला गया है परन्तु हम उस का पुस्तक में विवरण रहते होना मानेंगे । पापनाशिनी काश वे में पवित्र विश्वीश्वर का जगत प्रसिद्ध मन्दिर कैसे प्रतिष्ठित हुआ है ? केवल पुराण पुस्तक द्वारा पुण्य धाम अयोध्या के पाप तापनाशी राम मंदिर के सुवर्ण कलश को ऊंचे आकाश में किसने स्थापित किया है, संस्कृत और भाषा रामायण के प्रणेता वालमीक और तुलसीदास ने । इन दोनों महापुरुषों के पास क्या था ? संसार में धन नहीं, बल नहीं, कुछ भी सहाय नहीं,दोनों एकाकी संसार में भ्रमण करते हुये रामचरित को मधुर और अनुपम स्वर में गाते फिरते थे । वही उन का स्वर आकाश को उठा और ऊंचे उठकर संसार में फैल गया । जहां तक रामायण का स्वर पहुंचा वहां तक वालमीक और तुलसीदास ने मनुष्य के हृदय पर अधिकार किया है । इसी भांति भारतवर्ष भर में फैले हुए एक से एक बढ़ कर उन मन्दिरों को किस ने बनाया है, जिन में योगीन्द्र भगवान कृष्ण चन्द्र की मूत्तिर्यां विराजमान हैं ? केवल भागवतादि श्री कृष्ण चन्द्र के गुण वर्णन करने वाले ग्रंथो ने । यह हमारी बात आप को आश्चर्य्य जनक बोध हो, परन्तु हम कहते हैं कि इस में अणुमात्र भी भूठ नहीं है । लेखन कार्य्य जिस का मुद्रण एक सरल स्वरूप मात्र है, मनुष्यमात्र के लिये एक चमत्कारिक सृष्टि उत्पन्न कर रहा है, यह लेखन कार्य्य भूत काल और दूर देश की घटनाओं को एक अद्‌भुत नीवन रूप से वर्तमान समय में हमारे सामने ला धरता है, तीनों काल और पृथ्वी पर के समस्त स्थानों के साथ इस हमारे वर्तमान समय और इस हमारे स्थान का जहां हम हैं अनन्त काल के लिये विचित्र सम्मेलन कर देता है । मनुष्य के जितनी वस्तुएँ हैं उन सब का इस ने रूपान्तर कर दिया है, मनुष्य के समस्त बड़े २ कार्य्य इसने पलट दिये हैं, क्या शिक्षा क्या दीक्षा, क्या राज्य और क्या अन्य कार्य्य ।

प्रथम शिक्षा को ही लीजिये । विद्यालयों का स्थापन करना वर्त्तमान समय का एक अति उत्तम और पूजनीय कार्य्य है । परंतु पुस्तकों से इन विद्यालयों के भी रूप में, मूल कारण में, अन्तर पड़ गया है . विद्यालयों की भर भराहट उस समय अधिक थी जिस समय पुस्तकों का प्राप्त होना कठिन था । उस समय एक एक पुस्तक के लिये ५०० अथवा १००० मुद्रा पुस्तक के स्वामी को भेंट करना कुछ अधिक नहीं समझा जाता था । उस समय जब किसी मनुष्य को किसी विषय में जनना होता था तो उसे उस विषय के ज्ञाता पण्डितों को इकट्ठा करना होता था । पहिले जब किसी को, मान लो, शंकर स्वामी का वेदान्त पर भाष्य सुनना होता था तो उस को स्वयं शंकर स्वामी से भेंट करना होता था । सहस्रों मनुष्य विद्वानों के द्वार पर पढ़े हुए उन की कृपा सम्पादन करना चाहते थे । बिना नाक रगड़े उस समय विद्या प्राप्त होना कठिन था । विद्वानों के भ्रकुटी पात से बड़े २ भूपति थर्रा उठते थे । राजाओं ने इसी लिये कि एक स्थान पर सब विद्याओं के जानने वाले मिल सकें विश्वविद्यालय स्थापित किये । इन में प्रति शास्त्र का एक २ महाविद्वान नियत होता था जो वहां उस विषय का मुख्य आचार्य्य समझा जाता था । पुराने समय से लेकर आज तक पुण्य धाम काशी की इसी लिये विद्यापीठ में गणना है कि भारत वर्ष में इस स्थान पर छओं

शास्त्रों की शिक्षा समान भाव से मिलती है । यद्यपि पश्चिम में रोम और पैरिस के प्राचीन विश्वविद्यालय वर्तमान विश्वविद्यालयों के आदि गुरू समझे जाते हैं परन्तु केवल छ शताब्दियों से पहिले उनका सूत्र पात होना सुनकर हमें तो ऐसा ही विश्वास होता है कि भारतवर्ष के विद्यालयों ही का उदाहरण लेकर जगत में वर्तमान विश्वविद्यालयों की नींव पड़ी है ।

परिहासिनी ।
अर्थात
हिन्दी-पत्रों से हास्य रस के विषयों का संग्रह ।

अपने मित्रों के लिए " हँसी " " दिल्लगी " " चीज की बातें " और चुटकुले भारतेन्दु ने लिखे थे, बाद में जिसका संग्रह " परिहासिनी " उन्होंने स्वयं प्रकाशित कराया था । इसका रचना काल १८७५ से सन् १८८० के बीच है । — सं०

निज मित्र गण ठाकुर कविराज श्यामल दासजी,
राजा गिरि प्रसाद सिंह, बाबू बदरी नारायण चौधरी,
बाबू बालेश्वर प्रसाद, और बाबू दुर्गा प्रसाद के
चित्त विनोद के अर्थ
हरिश्चन्द्र ने संगृहीत किया ।
बनारस हरिप्रकाश यन्त्रालय में जगन्नाथ प्रसाद ने
मुद्रित किया

परिहासिनी

अर्थात
हँसी, दिल्लगी, पंच, चीज की बातैं
और चुटकिले

चीज की बातें ।

भेद ।

कृष्ण प्रसाद नो दामोदर से कहा "तुमने हमारा भेद क्यों खोल दिया ।" "ह हा !! इस को तुम भेद खोलना कहते हो ? जब हमने जाना कि हम उसको नहीं छिपा सकते तो हमने क्या बुरा किया कि उस भेद को ऐसे आदमी में कह दिया जो उसे छिपा सकता था" ।।

जादूगरनी।

दो कुमारियों को एक जादूगरनी ने खूब ठगा, उससे कहा कि हम एक रुपये में तुम दोनों को तुम्हारे पति का मुख दिखा देंगे और रुपया जट कर उन दोनों को एक आईना दिखा दिया, बिचारियों ने पूछा ''यह क्या'' तो वह डोकरी बोली ''बलैया ल्यों जब ब्याह होगा तब यही मुंह दूल्हे का हो जायगा'' ।।

खुशामद।

एक ना मुराद आशिक ने किसी ने पूछा ''कहो जी तुम्हारी माशूक: तुम्हें क्यौं नहीं मिली'' बिचारा उदास होकर बोला ''यार कुछ न पूछो मैंने इतनी खुशामद की कि उसने अपने को सचमुच परी समझ लिया और हम आदमियों से बोलने में भी परहेज किया'' ।।

मुंहतोड़ जबाब।

एक ने कहा ''न जाने इस लड़की में इतनी बुरी आदतें कहां से आईं ? हमें यकीन है कि हमसे इसने कोई बुरी बात नहीं सीखी'' लड़का चट से बोल उठा ''बहुत ठीक है क्योंकि हमने आपमें बुरी आदतें पाई होतीं तो आप में बहुत सी कम हो जातीं'' ।।

लाला साहब का राम चेरा।

लाला रामसरन लाल ने देर होने पर रामचेरवा से खफा होकर कहा ''क्यौं बे नामाकूल आज तू इतनी देर कर आया कि और नौकरों जो काम शुरू किये एक घटे से जियाद: गुज़र गया'' यह नटखट झट पट बोला ''तब लला साहब ओमें बात को है साँझ के आज हम और लोगन से एक घंटा अगौऐं चल जाब बराबर होय जाइब'' ।।

अंगहीन धनी ।।

एक धनिक के घर उसके बहुत से प्रतिष्ठित मित्र बैठे थे, नौकर बुलाने को घंटी बजी,. मोहना भीतर दौड़ा, पर हंसता हुआ लौटा, और नौकरों ने पूछा ''क्यौं बे हंसता क्यौ है ?'' तो उसने जबाब दिया, ''भाई, सोलह हट्टे कट्टे जवान थे उन सभों से एक बत्ती न बुझें, जब हम गये तब बुझें''

अद्भुत संबाद ।।

''ए ज़रा हमारा घोड़ा तो पकड़े रहो'' ''यह कूदेगा तो नहीं'' ''कूदेगा ! भला कूदेगा क्यों ? लो संभालो'' ''यह काटता है ?'' ''नही काटेगा, लगाम पकड़े रहो'' ''क्या इसे दो आदमी पकड़ते हैं तब सम्हलता है'' ''नहीं'' ''फिर हमें क्यों तकलीफ देते हैं ? आप तो हई है'' ।।

पंच का प्रपंच ।।

अरी कलारिन दौर तू चोखो प्यालो लाव । भयो जात बेहोस में दै एक और चिताव ।। देखु न इतने दिवस लों हम मुरक्षित हे जान । मानहुं तन मैं नहिं रहयो मो गरीब के प्रान ।। तेरे पायल की झनक सुनत उठे अकुलाय । गए प्रान बहुरे बहुरि अमृत दियो छिरकाय ।। अमृत सों का काम नहिं इधर सुध की आस । मेरी तो प्यारी बुझे मदिराही तें प्यास ।। दै प्यालो इक और तू करि मति कछू बिचार । दाम न मारी जायगो तेरो री सुकुमार ।। जोखिम कछु यामें नहीं दिये जाइये आप । दाम दाम चुक जायगो मरिहै जब मम बाप ।। देखति नहिं मोहि गांव है कोठी बंगला बीस । बग्गी घोड़ा झाड़ मैं फानूसन को ईस ।। दाम दाम सब देइहौं तेरी रकम चुकाय । नहिं वसूल करि लीजियो सब नीलाम कराय ।। पै इन बातन सों कहा तू तो परम उदार । दै प्यालो बिन दाम को करिहैं जै जै कार ।। जब लौं सूरज चंद हैं जब लौं सागर भूमि । जब लौं कमलन को भ्रमर रहत मत्त मुख चूमि ।। तब लौ तुव जीवन बढ़े मैखानो थिर गोयं । अघट होहिं घट मद्य के पूरन प्यालो होय ।। होली बीती

देखि तूं आयो प्रगट बसन्त । दै प्यालो हमको नतरु होत हमारी अन्त ।। हमें जगत को गम नहीं जो तू मद नहिं देत । मंगल में जानी हमहिं क्यों नहिं जम करि लेत ।। देखत नहिं इहि ओर तू कैसो बढ़यौ अनन्द । मंगल मंगल कहत सब मतवारे नर वृन्द ।। गंगा में चहुं ओर सौं दोपहि दीप दिखात । नावन सों सुरसरि छिपी जल नहिं नेक लखात ।। आनि परत धुनि कान मैं मधुर सुरन के संग । तैसेही कहुँ बजि उठत सारंगी मिरदंगा ।। तैसी घूमत नाव सब जल मैं झोंका खाइ । मनु हम सो मतवार कोउ झूमत रंग जमाइ ।। कबहु बीच मैं बजि उठत नरसिंहा धुनि घोर । कबहुं नाव है परस पर लड़त मचावत सोर ।। कबहुं जुगौड़ा नाचि कै लेत बेसुरी तान । आपु हिलत बाजी हिलत और हिलत जल जान ।। कबहुं पार जल के छुटत दारू जंत्र अपार । कबहु गुबारे उड़त हैं नभ मैं बांधि कतार ।। कबहुं श्रवन पुट मैं परत मैना की वह तान । जाहि सुनत मुनि जनन के छूटन तुरतहि ध्यान ।। कहुं तौकी के सुरन की सुभग सुनात अलाप । मधुर सरंगी कहुं बजत कहुं तबलन की थाप ।। कोऊ मारे भौंह के कोउ नैनन के तीर । कोऊ बेधे तान के ब्याकुल कामी भीर ।। कोऊ के जिय धसि रही नाचन में मुरिजान । कोऊ के उर मैं बसी सो उरवसी समान ।। हंसत कोऊ धावत कोऊ मगन कोऊ कोउ धीर । कोउ नाव बंधावहीं जहं नावन की भीर ।। मनु बिमान सब देव के सुरसरि मैं दरसात । कै तारन की मंडली घूमत है या रात ।। देखि न तू ऐसी समय क्यौं नहिं जस करि लेत । हमसे मद मतवार को क्यों न सुरा भरि देत ।। दै इक प्यालो औरहू छकि कै रंग जमाव । जात अबै हम देखिवे दक्षिनपति की नाव ।। हाय हाय तहं कछु नहीं सूनी नाव लखात । गम छायो चहुं ओर सों तासों काछु न दिखात ।। करत गवैया बैठि के चें चें तहं द्वै तीन । नहिं प्यालो नहिं रंग कछु हाय कहा विधि कौन ।। ह्वै निरास तहं सो फिरयौ उतरि गयो सब रंग । दै प्याले द्वै तीन फिर जमैं हमारो ढंग ।। ढाल ढल मदिरा अरी खरी कहा पछितात । काशिराज के दरस हित राम नगर हम जात ।। काशिराजहू ह्वां नहीं यह भाखत सब कोय । मुख सो मुख लै भागि कै फिरि आए हम रोय । गिरत परत भागे हमहुं आए तेरे पास । दै इक प्यालो औरइ मिटै सकल जग त्रास ।। देखु देखु बीती निसा दिसा वारुनी लाल । दै हमकोहूँ वारुनी मधिवारुनी रसाल । सीतल पौन चलै लगी उडुगन जोति मलीन । चकई सों चकवा मिले दीपक दुति भई छीन ।। श्रवन परत धुनि भैरवी मंद मंद नव तान । देखु न उठि उठि द्विजगनन लायो निज निज ध्यान ।। देर होत है और भरु इक प्यालो मतवारि । उतरत है निसि को नसा यह जियमांझ विचारि ।। बंधी खुमारी रैन को टूटै सो न खिलार । दै इक प्यालो औरहू मदिरा चोंखो ढार ।। मंदिर में सब कोउ कहत लाग्यौ छप्पन भोग । महा महा उच्छव भयौ जुरे बहुत से लोग ।। प्यालो छप्पन तू हमें मेरी जान पियाव । तौ हम सांचो मानहीं छप्पन भोग उछाव ।। मुनशी प्यारेलाल ने ब्याह खरच किय बंद । कछु मदिरा रोकी नहीं जो तू सकुचत मंद ।। इंसिदादे दुख्तरकुशी करत अहैं प्रभु लाट । पै कोउ नहिं ढरकावहीं तेरो मदिरा माट । ब्राह्मी मैरिज बिल भयो पास गजट के मांहिं । अब तो प्यालो दै अरी क्यों भाषत है नांहिं ।। इन्तिजाम सब कोउ करत सब बातन को जान । तेरी पूछ कहूँ नहीं यह तू निश्चय मान ।। सरकारहि मंजूर जो तेरो होत उपाय । तो क्यों नहिं मदिरान पैं देती टिकस बढ़ाय ।। तू तो है या राज की परम निशानी आप । सब जैहे पै तू सदा रहिहै विनहीं पाप । राज चिन्ह जब एकहू नहिं मिलि हैं सुन प्रान । बहु बोतल के टूक को मिलिहै तबहु निसान ।। यह तो परम अभीष्ट है तेरी बढ़ती होय । नांहीं तो क्यों मौन धरि बैठे हैं सब कोय ।। डगर डगर मैं ह्वै गई तेरी प्रगट दुकान । कोउ बरजन हारो नहीं जो कछु करै वखान ।। इत मंदिर है देव को इत मदिरा की हाट । इत मसजिद गिरिजा उतै इत शराब के ठाट ।। बोरडिंग इक ओर है नारसमल इक ओर । एक ओर इंट्यूट है मधि मदिरा घर जोर ।। इत भैरव गनपति उतै इत देवी उत देव । तिनके मधि मदिरा भरी यह विचित्र अति भेव ।। मंदिर सों मंसजिदन सों गिरजनहूं सो जान । स्कूलन सों हूंहवां लखौ बढ़तो मद्य दुकान ।

लाज संक सब छोडि कै धरम भीति विसराइ । पान करत हैं मद्य सब मंगल महा मनाइ । एक्ट पांच पुनि आठ अरु पैंतालिस पच्चीस । कोऊ कछु मानत नहीं तनिक न नावत सीस ।। पहिरि पहिरि पतलून अरु टोपी चक्कर दार । कोट बूठ जेबौ घड़ी छड़ी सूहाय संवार ।। कोऊ कहत मद नहिं पियैं तौं कछु लिख्यो न जाय । कोउ कहत हम मद्य बल करत वकीली आय ।। मरहि के परभाव सों रचत अनेकन ग्रन्थ । मद्यहि के परकास सों लखत धरम को पन्थ ।। मदिराही को पान करि करत ईस को ध्यान । सबै काज मद सों सरत यह निश्चय जिय आन ।। मदिराही के पान हित हिंदू धरमहि छोड़ि । बहुत लोग कृश्चन बनत निज कुल सों मुख मोड़ि ।।

दैदै प्यालो प्रान इक भरिकै गद छलकाय । क्यों इतनो संकोच तू करत सुमोहि बताय ।। मृगनैनी गजगामिनी चन्द्राननि सुकुवारि । दै प्यालो भरि भरि पियहिं रो मिठ वोलिन नारि ।। कहा मौन धरि कै रही अरी बोल तू बोल । क्यों तरसावति हाय मोहि प्यारी महा ठठोल ।। ज्यों बालक के खेल में मरन चिरी को होय । त्योंही या तेरी हंसी प्रान जात हैं रोय ।। देखत तू क्यों नहिं इतै आई सुखद बसन्त । पथिक वधू विरही जनहिं जो नित परम दुरन्त ।। कोकिल कल कुहकत तरुन भंवर करत गुञ्जार । फूले फूल अनेक विधि अमवा बोरे डार ।। बौरे जब जड़ आम तरु या मधु रितु के मांहिं । तब तू मद दै कै हमैं क्यों बौरावत नांहिं ।। मधु रितु याको नाम है माधव को है मास । हमको क्यों मधु देत नहिं करिकै दया प्रकास ।। देखि देखि हरि करि कृपा प्रिंसहि कियो अराम । धन्यवाद सब करत हैं मंगल धामहिं धाम ।। हम कोहूँ आनंद मैं प्यालो भरि दै एक । भले बुरे मैं नहिं रहै जासों कछू विवेक ।। मद्यपान करि मत्त ह्वै हमहूं देहिं असीस । हे मेरे युवराज तुम जीओ कोटि बरीस ।। चित सब मे चिन्ता रहित जुरे अनंद समाज । रंक लही निधि तिमि प्रजहि बढ्यो सकल सुख साज ।। जीओ जुग जुग निरुज ह्वै राजकुंवर सुखकन्द । बढ़ो राज करि नासि अरि जननी सह सानन्द ।।

दिल्लगी की बातें

किसी अमीर ने ज़रा सी शिकायत के लिये हकीम को बुलाया । हकीम ने आकर नब्ज देखी और पूछा — "आपको भूख अच्छी तरह लगी है" — अमीर ने कहा "हां" । हकीम ने फिर सवाल किया — "आपको नींद भरपूर आती है" — अमीर ने जवाब दिया "हां" । हकीम बोला "तो मैं कोई दवा ऐसी तजवीज़ करता हूं जिससे यह सब बाते जाते रहें" ।। का० प०

अमेरिक के एक जज ने किसी गवाह की हाज़िरी और हलफ लेने के लिये हुक्म दिया । वकीलों ने इत्तिला दी कि वह शख्स बहरा और गूंगा है । जज ने कहा "मुझे इससे कुछ ग़रज़ नहीं कि वह बोल सकता है या नहीं । यूनाइटेड स्ट्रेस का कानून यह मेरे सामने मौजूद है । इसके मोताबिक हर आदमी को अदालत में बोल सकने का हक हासिल है और जब तक कि मैं इस अदालत में हूं हर्गिज कानून के बखिलाफ तामील होने की इजाज़त न दूंगा जिसमें किसी की हकतलफी हो । जो कानून का मनशा है उस पर उसको जरूर अमल करना पड़ेगा" ।। का० प०

कहते हैं कि मिल्टन की बीबी निहायत बद्‌मिजाज थी मगर खूबसूरत भी हद से जियादा थी । लार्ड. बकिंगहेम ने एक रोज़ मिल्टन के सामने उसकी नजाकत को तारीफ करके गुलाब के फूल के साथ उसकी तशबीहे (उपमा) दी । मिल्टन ने कहा कि गोकि में अंधा हूं और नज़ाकत को नहीं देख सकता तो भी आप के बात की सचाई पर गवाही देता हूं । हकीकत में वह गुलाब का फूल है क्योंकि कांटे अक्सर मेरे भी लगते रहते हैं । नै० मू

एक डाक्टर साहिब कहीं बयान कर रहे थे कि दिल और जिगर की बामारियां औरतों से मर्दों को जियादा होती हैं । एक जवान खूबसूरत औरत बोल उठी "तभी मर्दुए औरों को दिल देते फिरते हैं" ।। नै० म०

एक शख्स ने किसी से कहा कि अगर मैं भूठ बोलता हूं तो मेरा भूठ कोई पकड़ क्यों नहीं लेता । उसने जवाब दिया कि आप के मुंह से भूठ इस कदर जल्द निकलता है कि कोई उसे पकड़ नहीं सकता । नै० म०

एक बेवकूफ इस खयाल से अपने सामने आईना रख कर सो रहा कि देखूं सोते वक्त मेरी सूरत कैसी मालूम होती है ।। नै० म०

एक शख्स वकालत के इम्तिहान के लिये तैयारी कर रहे थे इसलिये उन्हों ने एक उस्ताद से मन्तिक पढ़ना शुरू किया और पांच सौ रुपया उस्ताद को देने का करार किया जिसमें से आधे रुपये पेशगी दे दिये और बाकी को निसबत यह शर्त की कि वकालत की सनद पाकर जिस वक्त औवल मुकद्दमा जीतूंगा उस वक्त अदा करूंगा । इस शर्त पर मन्तिका पढ़कर हज़रत वकालत के इम्तिहान में काम्याब हो गये मगर मुद्दत तक न तो अदालत को गये और न उस्तात के सामने आये । जब उस्दाद ने देखा कि इन हज़रत की नीयत बाकी रुपया देने की नहीं है तो नालिश कर दी । जब अदालत में इज़हार देने के वक्त मुकाबला हुआ तो उस्ताद बोले कि बच्चा रुपया तो तुममें मैं हर सूरत में ले लूंगा — अगर मैं जीता तो अदालत दिलवा देगी — और अगर तुम जीते तो

तुम्हें शर्त के मुवाफिक देना पड़ेगा, क्योंकि औवल मुकद्दमा जीतने पर रुपया अदा करने का तुम ने वादा किया है । शागिर्द ने (जिस पर यह मिसरा सादिक आता है "उस्दाद जो आफत है तो शगिर्द गजब है") जवाब दिया उस्ताद मैं आपको एक कौड़ी दिवाल नहीं हर सूरत में मेरी ही जीत है — अगर मैं जीता तो आपको अदालत न दिलवायेगी — और अगर हारा तो शर्त के मुताबिक न दूंगा, क्योंकि शर्त तो यह है कि जीतूं तो दूं न कि हारू तो दूं ।।

एक दिल्लगीबाज आदमी में कोई बेवकूफ जरा सी हंसी की बात पर खफा होकर कहने लगा "तुम अशराफ नहीं हो" । इस हंसोड़ ने पूछा कि "आप अशराफ हैं ?" वह बेवकूफ बड़ी तेजी से बोला "बेशक" । इस शख्स ने जवाब दिया "तो हम खुदा का शुक्र करते हैं कि हम अशराफ नहीं है ।"

एक जज किसी गवाह का इज़हार ले रहे थे । गवाह शरारत से अक्सर हिकलाता था । जज ने खफ़ा होकर कहा "मैं समझता हूं कि तुम बड़े पाजी हो" । गवाह ने जवाब दिया 'उतना पाजी हर्गिग नहीं हूं जितना कि हुजूर — मु-मु-मुझे खयाल करते हैं' ।।

एक वकील ने बीमारी की हालत में अपना सब माल और असबाव पागल दीवाने और सिड़ियों के नाम लिख दिया । लोगों ने पूछा यह क्या तो उसने जवाब दिया कि यह माल ऐसेही आदमियों सें मुझे मिला था और अब ऐसे ही लोगों को दिये जाता हूं । आर्य्यमित्र

एक काने ने किसी आदमी से यह शर्त बादी कि जो मैं तुमसे जियादा देखता हूं तो पचास रुपय जीतूं और जब शर्त पक्की हो चुकी तो काना बोला कि लो मैं जीता, दूसरे ने पूछा क्यों ? इसने जवाब दिया कि मैं तुम्हारी दोनों आंखें देखता हूं और तुम मेरी एकही ।। आ० मि०

एक अन्धा वैरागी काशी के बीच मनिकर्निका घाट पर बैठा गहन में दही पेड़े खा रहा था, कि देख कर किसी पण्डित ने पूछा, सूरदास जी ! यह क्या करते हो ? बोला, महाराज दही पेड़े खाता हूं । कहा गहन में ? उत्तर दिया, बावा ! मेरे गुरू को दया से सदाही गहन है । यह सुन पण्डित हंसकर चुप हो रहा ।

कोई राजपूत बहुत अफीम खाता था, दैवी उसे विदेश जाना पड़ा, और किसी अड्डे में जाकर उतरा, वहां के लोगों ने आकर इस से कहा, कि ठाकुर साहिब ! यहां चोरी बहुत होती है आप चौकसी से रहियेगा । यह बात सुन कर रात तो उसने जाग कर काटी, पर यह बात जी में रखी, कि चोरी बहुत होती है । भोर होतेही घोड़े की पीठ लगा एक नगर के बीच चला जाता था, कि एका एकी पीनक से चौंक कर पुकारा, ऊरे रमचेश ! अरे रमचेरा ! घोड़ा कहाँ ? वह बोला महाराज ! घोड़े पै तो बैठेही जाते हो, और घोड़ा कैसा ? कहा बेटा ! इस बात की कुछ चिन्ता नहीं पर सावधान रहना अच्छा है ।।

दो कलावत दक्षिण से कमाई किये दिल्ली को चले आते थे, कि वाट में दौड़ों ने आय लिया, और लगे बरछियां भाले उठाय उठाय मार मार डाल डाल पुकारने । उस काल ये दोनों भी झट गाड़ी से उतर, चट परतल के टट्टू पर जा बैठे, और लगे उनसे पूछने, कि वलैया लों, मार मार डार डार ही कर जान्यो है, कै कभू चौपड़हू खेले हौ । उनमें से एक बोला, कि क्यों ? इन्हों ने कहा कि कहूं जुगहू मार्‌यो जातु है ? इस रहस से बहुत मगन हुए और इन्हें न लूट हंस कर चले गये ।।

मथुरा क चौबे बड़े ठठोल होते हैं एक दिन कोई चौबे हाट बें मारू बैंगन मोल लाया, देख कर उसकी जीरू ने पूछा, कहा भरता करूं ? यह बोला मोतें कहा चूक परी ? उसने उत्तर दिया, लोग तुम्हें जोय सी कहत हैं, यह सुन चौबे निरुत्तर हुआ ।

एक कायथ अनपढ़ घोड़े पर बैठा हाट में चला जाता था, किसी घुड़चढ़े ने उसे मेंड़की से भी पीछे हटा बैठा देख के कहा भैया जी ! कुछ आगे हट बैठो, क्यों ? कहा, आसन खाली है । उसने उत्तर दिया, क्या तुम्हारे कहे से हट बैठेंगे ? जैसे साईस ने बैठा दिया है, तैसे बैठे चले जाते हैं ।।

किसी बड़े आदमी के पास एक ठठोल आ बैठा था, और इनके यहां कहीं से गुड़ आया, उसने ठठ्ठे में कहा, कि महाराज ! मैंने जनम भर में तीन बिरिया गुड़ खाया है । बोला, बखान कर, कहा । एक तो छठौ के दिन जनमघूंटी में खाया था ; और एक कान छिदाये थे तब ; और एक आज खाऊंगा । उन्ने कहा, जो मैं न दूं ? बोला, दोही बार खाया सही ।।

दिल्लगी की बातें।

एक सौदागर किसी रईस के पास एक घोड़ा बेचने को लाया और बार बार उस की तारीफ में कहता "हजूर यह जानवर गज़ब का सच्चा है" रईस साहिब ने घोड़े को खरीद कर सौदागर से पूछा कि घोड़े के सच्चे होने से तुम्हारा क्या मतलब है । सौदागर ने जवाब दिया "हजूर जब कभी मैं इस घोड़े पर सवार हुआ इसने हमेशा गिराने का खौफ दिलाया और सचमुच इस ने आज तक कभी झूठी धमकी न दी" ।।

एक दिल्लगीबाज़ शख्स एक वकील से जिसने किसी मजमून पर एक वाहियात सा रिसाला लिखा था राह में मिला और बेतकल्लुफी से कहा "वाह जी तुम भी अजब आदमी हो कि मुझसे अब तक अपने रिसाले का जिकर भी न किया — अभी कुछ वरक जो मेरी नज़र से गुजरे उनमें मैंने ऐसी उम्दा चीजें पाईं जो आज तक किसी रिसाले में देखने में न आई थीं" । यह शख्स एक लाइक आदमी की ऐसी राय सुन कर खुशी के मारे फूल उठा और बोला "मैं आप की कद्रदानी का निहायत ही शुकरगुज़ार हुआ — मिहरबानी करके बतलाइये कि वह कौन कौन सी चीज़े हैं जो आपने उस रिसाले में इस कदर पसंद कीं" । उसने जवाब दिया आज सुवह को मैं एक हलवाई की दूकान की तरफ से गुज़रा तो क्या देखा कि एक लड़की आप के रिसाले के वरकों में गर्मागर्म समोसे लपेटे लिये जाती थी" ।।

बात की धुन।

हाईकोर्ट के एक वकील साहब अपने स्पीच के जोर में ऐसे बढ़ चढ़ चले कि ज़मीन को छोड़ कर आसमान की बातें करने लगे । जज्ज ने घबड़ा कर अपना रूल टेबल पर पटका और बोले बस साहब बस अब आप हमारी हुकूमत के बाहर हो गए । भला सरकार का राज छोड़कर किसी दूसरे राज में चले जाते तब तो हमको सुनने का अखतियार ही न था कहां अब तो आप इस दुनिया के ही बाहर पहुंचे ।।

न्याय शास्त्र।

मोहिनी ने कहा "न जानैं हमारे पति से जब हम दोनों की एकही राय है तब फिर क्यों लड़ाई होती है । क्योंकि वह चाहते हैं कि मैं उनमें दबू और यही मैं भी ।।

मिहमान

रामेश्वरदत्त के घर एक दिन जगदेव सिंह गए. बैठने के वास्ते चटाई वटाई कुछ नहीं थी बिचारे खड़े रहे । पंडित जी बड़े चाव में बोले "ठाकुर साहब देखिए आप कैसे भाग्यवान है कि जहां जाते हैं वहां बैठने को जगह नहीं मिलती" ।।

मुफ्तखोर।

एक मुसलमान अमीर के दीवानखाने में एक मुफ़तखोरे खाने की ताक में टहल रहे थे । जब देर हुई तो आप खिदमतगार मे पूछने लगे "बेगू दस्तरखान कब बिछैगा?' नौकर ने जवाब दिया 'ज्योंही तुम जाओगे' ।

गुरू के गुरू।

बाबू प्रहलाददास से बाबू राधाकृष्ण ने स्कूल जाने के वक्त कहा "क्यों जनाब मेरा दुशाला अपनी गाड़ी पर लिये जाइयेगा" उन्होंने जवाब दिया "बड़ी खुशी में" मगर फिर आप दुशाला मुझमें किस तरह पाइएगा । राधाकृष्ण जी बोले "बड़ी आसानी से क्योंकि मैं भी तो उसे अगोरने साथही चलता हूं" ।।

अचूक जवाब।

एक अमीर से किसी फकीर ने पैसा मांगा उस अमीर ने फकीर से कहा "तुम पैसों के बदले लोगों से लियाकत चाहते तो अब तक कैसे लायक आदमी हो गए होते" फकीर चट पट बोला "मैं जिसके पास जो देखता हूं वही उससे मांगता हूं ।।

संप्राप्तेषोड़शेवर्षे गर्दभीचाप्सरायते ।।

एक औरत ने जिसकी जवानी ढल चली थी खूबसूरती के गरूर में अपनी एक नौ जवान लौंडी से पूछा "तू मे हुस्न की कितनी कदर करती है" लौड़ी बोली "करीब करीब अपनी जवानी के" ।

ज्ञान चरचा ।।

किसी दिन तुलसीदास गुसांईं कितने एक आदमियों के बीच कहीं बैठे ज्ञान चरचा करते थे इसमें उस राह से किसी की बरात आ निकली उसके बाजे की आवाज सुन सब के मन दुचिते हुए तब तुलसीदास हंसे उनको हंस्ता देख उनमें से किसी ने पूछा महाराज आप क्या देख कर हंसे जवाब दिया दुनिया की भूल देख के बोला सो क्या उत्तर दिया ।

फूले फूले फिरत हैं होत हमारो ब्याव ।
तुलसी गाय बजाय के देत काठ में पाव ।।

एक बड़ा सौदागर किसी साहिब कमान्त फकीर के यहां जाकर मुरीद हुआ और पीर की खिदमत में आठो पहर हाजिर रहने लगा । खुदा का चाहा छः महीने के अरसे में उसका ऐसा काम बिगड़ा कि खाने पीने को भी कुछ पास न रहा । एक रोज पीर ने इसे उदास देख कहा कि बाबा क्या तूने यह मसल कभी नहीं सुनी जो इतनी फिक्र करता है ।

अहलाद करता की बातें क्या करता क्या न करे हाथी माार गर्द में डाले अदना के सिर छत्र धरे । रीती भरे भरी ढुलकावे मिहर करे तो फेर भरे ।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।

शैटीनाफ सातवें लूइस का मुसाहिब बड़ाही बुद्धिवान था । जब वह आठ नौं बरस का था एक पादरी ने उससे पूछा "लड़के जो तुम बतला दो कि खुदा कहां रहता है तो मैं तुमको एक नांरगीं दूं " लड़का चट से बोला "साहिब अगर आप बतला दें कि खुदा नहीं कहाँ है तो मैं आप को दो नारंगी दूं ।।

दुआ मांगना ।

एक मौलवी साहब अपने एक चेले के यहां खाने गये । जब मेज पर खाना चुना जा चुका चेले ने मौलाना साहब से दुआ मांगने कहा । एक लड़के ने जो वहां हाजिर था घबड़ा कर अपने बाप से पूछा "बाबा जब यह कहीं खाने आते हैं तब हमेशा हाथ उठा कर यह बड़ी मिन्नत करते हैं । क्या जो इतनी आरजू न करें तो लोग बुला कर की भी इन्हें भूखा फेर दें" ।।

लार्ड केम्स अक्सर अपने दोस्तों से एक शख्स का किस्सा बयान किया करते थे जिस ने उनके मुलाकाती होने का बड़ा पक्का पता बतलाया था । लार्ड साहिब जिन दिनों जज थे एक बार कहीं सफर में राह भूल गये और एक आदमी से जो सामने नज़र पड़ा दर्खास्त को की भाई जरा हमें रास्ता बता देना । उसने बड़ी मुहब्बत से जवाब दिया "हजूर मैं निहायत खुशी से आपकी खिदमत के लिये हाजिर हूं, क्या हुजूर ने मुझे नहीं पहचान ? मेरा नाम जान.... है और मैं एक बार बकरी चुराने की इल्लत में हुजूर के सामने पेश होने
सामने पेश होने की इज्जत हासिल कर चुका हूं ।" "अहा जान मुझे खूब याद है, और तुम्हारी जोरू किस तरह है । उसने भी तो मेरे सामने पेश होने की इज्जत हासिल की थी क्योंकि उसने चोरी की बकरियों को जान बूझ कर घर मों रख छोड़ा था" । — "हुजूर के इकबाल से बहुत खुश है, हम लोग उस बार काफी सबूत न पहुंचने से छूट गये थे अब तक हुजूर की बदौलत वही पेशा किये जाते हैं ।" — लार्ड केम्स बोले "तब तो हम लोगों को एक दूसरे की मुलाकात की फिर भी कभी इज्जत हासिल होगी" ।।

सिकी लाइक मौलवी ने एक बार निहायत उमदा और दिलचस्प तौर पर तकरीर की खैरात के बराबर दुनिया में कोई अच्छा काम नहीं है । एक मशहूर कंजूस जो वहां मौजूद था बोला "इस तकरीर में यह अच्छी तरह साबित हो जाता है कि खैरात करना फर्ज है इस लिए मेरा भी जी चाहता है कि फकीर हो जाऊं ।।

का० ८८

एक निर्लज्ज की पगड़ी पर चील बैठो तो बोला कि बरताने तक पहुंची ।।

चुटकिले ।

एक ने एक से कहा कि एकदाशी का व्रत करके द्वादशी को पारण करना उसने व्रत तो नहीं किया पर पारण किया जब उसने पूछा कि कहो व्रत किया था तब वह बोला कि भाई व्रत तो नहीं हो सका पर तुम्हारे डर के मारे पारण कर लिया कि जो बने सोई सही ।।

।। इति ।।

पत्र साहित्य
भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र के पत्र

सन् १८६६ में कुचेसर यात्रा के दौरान भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र द्वारा अपने भतीजे कृष्णचंद्र जी को लिखा गया पत्र । —सं०

चिरंजीव,

श्रीकृष्ण, प्यारेकृष्ण, राजाकृष्ण, बाबूकृष्ण, आंखों की पुतली । तुम्हारा जी कैसा है ? सर्दी मत खाना, रसोई रोज खाते रहना । तुम को छोड़कर हमारा अखतियार होता तो क्षण भर भी बाहर नहीं आते । क्या करें लाचारी से झक मारते हैं । कृष्ण, तुम्हारा अभी कोमल स्वच्छचित है । तुम हमारे चित्त को ध्यान से जान सकते किन्तु बुद्धि और वाणी अभी स्फुरित नहीं है । इससे तुम और किसी पर उसे प्रगट नहीं कर सकते हो । परमेश्वर के अनुग्रह से उसको उस स्वाभाविक कृपा से जो आजतक इस वंश पर है, तुम चिरंजीव हो, तुम्हारे में उत्तम गुण हो । हम इस समय बुलन्दशहर में हैं । आज कुचेसर जायेंगे ।''

—हरिश्चंद्र

सन् १८७१ की हरिद्वार यात्रा के बाद इन्होंने हरिद्वार के एक पण्डे को पत्र लिखा— —सं०

सम्वत बसु युग ग्रहससो, पूनो शह अषाढ़ ।
रविबासर हरिद्वार में, लिख्यो पच अति गाढ़ ।।
मित्र मिलन मधुबन गमन के हित कियो पयान ।
मध श्रीगंगाहार में, हरखि कियो अस्नान ।।
संग कन्हैयालाल जू और किशन इकदास ।
रैन युगल बसि के कियो, न्हान चन्द्र के ग्रास ।।
द्विजवर नागर मल्ल पुनि, श्रीगोविन्दा राम ।
पोखरिया उपनाम है, तीरथद्विज गुन धाम ।।
दून को पंडा मानि के पूजन बहुबिधि कीन्ह ।
पाठ कियो शुकसंहित, यथाशक्ति धन दीन्ह ।।
यातें जो आवै दूते, मेरे कुल के मांहि ।
सो इनही को पूजिहैं, और द्विजन को नाहिं ।।
विमल वैश्यकुल कुमुद ससि, सेवत श्रीनन्दनंद ।
निजकर कमलन सौ लिख्यो, यह कबिबर हरिश्चंद्र ।।

मेवाड़ यात्रा के समय इन्होंने अपने भाई को मल्लिका की चिन्ता करते हुए यह पत्र लिखा था। पत्र में तारीख नहीं है। इसका बहुत सा अंश पेन्सिल से लिखे जाने की वजह से अस्पष्ट है।
—सं.

प्रिय,

''विदेश से हम लौट कर न आवें तो इस बात का जो हम यहां लिखते हैं ध्यान रखना। ध्यान क्या अपने पर फर्ज समझना। किन्तु हम जल्दी जीते जागते फिरेंगे। कोई चिन्ता नहीं है। सिर्फ संयोग के वश हो कर लिखा है। यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना। यह तुम जानते हो कि तुम्हारी भाभी की हमको कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि तुम्हारे ऐसा देवर जिनका वर्तमान है उसको और क्या चाहिये। दो बात की हमको चिन्ता है। प्रथम कर्जे, दूसरी मल्लिका की रक्षा। थोड़ी सी डिगरी जो बच गई है उसको चुका देना। और जीवन भर दीन हीन मल्लिका की जिसको हमने धर्मपूर्वक अपनाया है रक्षा करनी। कृष्ण को ऊंची शिक्षा संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला की हो। जो ग्रन्थ हमारे या बाबू जी के बे छपे रह जांय वे छपैं। इस पत्र को हमने कलेजा फाड़ फाड़ कर चार दिन में अर्थात् अछनेरा से शुरु करके भिलाडे में खतम किया है। इसपर हंसना मत दु;खी होना, क्योंकि अभी तो अणु मात्र भी मरने की सम्भावना नहीं है। शारीरिक कुशल है तनिक भी चिन्ता न करना।''

— हरिश्चन्द्र

जून १८८२ ई० में भोपाल की बेगमसाहिबा ने अपनी कुछ कवितायें भारतेन्दु जी के पास भेजी थीं उनको इन्होंने निम्नलिखित पत्र के साथ ''भारतमित्र'' के संपादक के पास भेज कर प्रकाशित कराया था।
—सं.

''प्रिय सम्पादक ! भूपाल की रईस और स्वामिनी वर्तमान श्रीमती बेगम साहिबा उर्दूभाषा में बहुत अच्छी कवि है। इन की गजल में ''चमनिस्तानपुर बहार'' और ''गुलजारेपुर बहार'' इत्यादि में प्रकाशित कर चुका हूं। संपति उन के बनाये भाषा में कई एक भजन मेरे पास आये हैं। मैं उन में से दो आपके पास प्रकाश करने को भेजता हूं। इस को देख कर क्या साधारण आर्य्य धर्म्माभिमानी ललनागण लज्जित न होंगी कि एक मुसलमान और अत्यन्त राज भारव्यग्र स्त्री ने ऐसी सुन्दर कविता की है। क्या वह भी दिन देखने में आवेगा कि हमारी गृहिलक्ष्मी गण भी कुछ बनावेंगी ? इन का काव्य में ''रूपरतन'' नाम है। नाम भी बड़े ठाट बाट का रक्खा है।

— हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु ने अपनी शुरूआती कवितायें प्राय: ब्रज भाषा में लिखी हैं। कुछ उर्दू भाषा में भी हैं। बाद में खड़ी बोली आन्दोलन को साधुभाषा कह उन्होंने इसमें भी कविता लिखनी शुरू की और लोगों से लिखवाया भी। इस सन्दर्भ में १ सितम्बर १८८१ को 'भारत मित्र' के सम्पादक को लिखा गया पत्र द्रष्टव्य है।
— सं०

''प्रचलित साधुभाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इसमें क्या कसर है। और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है। इस विषय में सर्वसाधारण की अनुमति ज्ञात होने पर आगे से वैसा परिश्रम किया जायगा। तीन भिन्न-भिन्न छंदों में यह अनुभव करने ही के लिये कि किस छंद में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है।

मेरा चित्त इससे सन्तुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रजभाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ । इस भाषा की क्रियाओं में दीर्घ मात्रा विशेष होने के कारण बहुत असुविधा होती है । मैंने कहीं कहीं सौकर्य्य के हेतु दीर्घ मात्राओं को भी लघु करके पढ़ने की चाल रखी है । लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करुंगा ।''

—हरिश्चन्द्र

ब्रिटिश नेशनल एंथम (राष्ट्रगीत) का अंग्रेजी साम्राज्य की सभी भाषाओं में अनुवाद के लिए सन् १८८२-८३ में इंगलैण्ड में एक कमेटी बनी । इस कमेटी में अपने समय के लगभग सभी प्रभावशाली लोग थे । भारत की बीस भाषाओं में भी इस अंग्रेजी राष्ट्रीय गीत का अनुवाद होना था । जिन लोगों ने इस गीत का अनुवाद किया उनमें प्रो० मैक्समूलर (संस्कृत) , यतीन्द्र नाथ ठाकुर (बंगला) आदि भी थे । हिन्दी अनुवाद के लिए भारतेन्दु बाबू से निवेदन किया गया । उन्होंने यह अनुवाद किस परिस्थिति में किया, यह उनके इस पत्र से पता चलता है । यह पत्र उन्होंने फेडरिक के० हेनफोर्ड को लिखा था । पत्र के कुछ ही अंश प्राप्त हैं । मूल पत्र अंग्रेजी में था जो अप्राप्य है ।

—सं०

''आपका . . . तारीख १८८३ का पत्र मिला । जवाब देने में देर हुई । कारण मेरी पांच महीने से चल रही बीमारी, पहले बुखार और कुछ सप्ताह से हैजा । मैं आशा करता हूं कि आप मेरे इस विलम्ब के कारण को मेरी बेपरवाही नहीं समझेंगे ।

कुछ दिन पहले मैंने आपको (राष्ट्रीय गीत) जातीय संगीत को संस्कृत में गाने के विषय पर ब्राहमाणों की सम्मति भेजी थी । उस सम्मति पत्र पर बनारस के संस्कृत के सर्वोत्तम पण्डितों के हस्ताक्षर हैं । उसी के साथ मैंने आपको जातीय संगीत का संस्कृत अनुवाद भी भेजा है जिसे पं० गंगाधर शास्त्री ने किया है ।

अब इस पत्र के साथ मैं आपके जातीय संगीत का हिन्दी अनुवाद भेजता हूं जिसे मैंने आपके आदेशानुसार स्वयं किया है । मेरी बीमारी के कारण यह इतना उत्तम नहीं हो सका जितना मैं चाहता था । परन्तु दूसरे अनुवादों के अपेक्षा यह अच्छा है, विशेषतया इसलिए कि यह मूल जातीय संगीत के नजदीक है । इसमें मैंने हर लाइन में मूल के भाव के विचारों का ध्यान रखा है ।

ऐसे काम में जो एक विशेष कठिनाई उपस्थित होती है वह यह है कि अंग्रेजी की भांति हिन्दी में वैसे तुलनात्मक 'मीटर' नहीं है । इसलिए मैंने ऐसे पदों की व्यवस्था की है जो छोटे हों और जो मूल अंग्रेजी की तरह हों ।

भारत की एक प्रथा के अनुसार हर राग के गायन का एक समय निश्चित होता है । इसके अनुसार सायंकाल का राग प्रातःकाल नहीं गाया जाता । यह प्रतिकूल ही नहीं, वरन् पाप समझा जाता है । इसलिए जहां अंग्रेजी के पद्य तो किसी भी समय गाये जा सकते हैं, हिन्दी के पद्य नहीं गाये जा सकते । मैंने ऐसी पद्य प्रणाली चुनी है कि वह किसी भी समय गाये जा सकते हैं ।

इंगलैण्ड में तो आपने इस विषय पर अब विचार किया है । मैंने कई वर्ष हुए सोचा था कि जातीय संगीत, या सम्राज्ञी के लिए शुभकामनाओं की कविता हमारे देश की सभाओं में भी गाई जानी चाहिये । मेरी मनोकामना अभी तक पूरी नहीं हो पाई । मेरी अपनी इच्छापूर्ति के लिए मैंने अपनी कृतियों के अन्त में एक पद्य दे दिया है । जब क्वीन विक्टोरिया ने १८७७ में ''भारत सम्राज्ञी'' की पदवी ग्रहण की थी तब मैंने उर्दू में एक गजल लिखी थी । यह एक सार्वजनिक सभा में गाई भी गई थी । और . . . पेरिस . . . के अखबारों में इसकी समालोचना भी छपी थी ।

यदि आपको मेरे अनुवाद में कोई भी त्रुटि दिखाई दे, या आपके विचार में किसी पद में परिवर्तन आवश्यक हो, तो कृपा करके निस्संकोच मुझे लिख दीजिये ।

मैं आपकी सुविधा के लिए इस गीत की कुछ छपी हुई प्रतियां भेज रहा हूं, ताकि आप इन्हें उन विशेषज्ञों में तुरत बांट सकें, जिनकी सम्मति आप आवश्यक समझें।

मुझे यह पढ़कर बड़ी खुशी हुई कि यदि संभव हुआ तो मेरी कविता सम्राज्ञी को भी भेट की जायेगी।

यह तो आप जानते ही हैं कि भारतीय जनता के हृदय में सम्राज्ञी के लिए अथाह राजभक्ति है। ईश्वर भक्ति को छोड़कर यह भक्ति सब से अधिक है। और केवल अपनी सम्राज्ञी के लिए ही है। इसीलिए मेरे जैसा तुच्छ सेवक क्यों नहीं फूला समाए कि उसे ऐसा अवसर मिला है कि वह सम्राज्ञी के प्रति अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन कर सके।

— हरिश्चन्द्र

कलकत्ता निवासी अपने किसी मित्र को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने नये मित्र (बाबू रामदीन सिंह जी) के बारे में लिखा। — सं०

''इतने दिनों के अनन्तर मुझे एक हिन्दी के सच्चे प्रेमी मिले हैं, जो अपने बचन के सच्चे और कार्य में पक्के हैं इन्होंने मेरी पुस्तकों के छापने का प्रण किया है और मेरी अर्थ सहायता भी यथेष्ट कर रहे हैं जिससे मैं अब निश्चिन्त होकर कुछ लिखने में प्रवृत्त हूं। परन्तु खेद है कि उक्त मित्र कुछ काल पूर्व न मिले, नहीं तो मैं बहुत कुछ कर सकता, क्योंकि मेरा शरीर स्वस्थ् रहता था। अब मेरा स्वास्थ्य भंग हो गया है। इससे मैं यथायोग्य श्रम नहीं कर सकता। यों तो मेरे मित्र बहुत हैं, परन्तु प्रायः सब सम्पत के साथी ही निकले, अधिकांश स्वार्थी निकले। किसी से कुछ आशा नहीं, हां इनमें से अधिकांश मित्र वे हैं जो मेरे ग्रन्थों को छापकर निज उदरपूर्ण करने ही को मित्रता का निदर्शन समझते हैं। परन्तु ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने इतने दिनों बाद एक सच्चा प्रेमी मिला दिया जो कि हिन्दी के लिए बड़े व्यग्र हैं और हिन्दी की उन्नति के लिए ठीक मेरी तरह तन-मन-धन श्री कृष्णार्पण करने को कटिबद्ध हैं। आप इस समाचार से प्रसन्न होंगे कि ये बीच-बीच में मेरी अर्थ सहायता तो करते ही आते हैं। परन्तु सम्प्रति इन्होंने एक साथ ४०००) देकर मुझे ऋण से उत्रृण किया है। क्या आप ऐसे महात्मा का नाम भी सुनना चाहते हैं ? लीजिए सुनिए — इनका नाम महाराज कुमार श्री रामदीन सिंह, क्षत्रिय पत्रिका सम्पादक, है। मैं अब किसी को पुस्तकें छापने न दूंगा, प्रकाशित अप्रकाशित समस्त पुस्तकों का स्वत्व भी इन्हीं को दिए देता हूं। . . .''

— हरिश्चन्द्र

बंगला में उपन्यास साहित्य की प्रगति देख भारतेन्दु का ध्यान इस ओर भी गया। भारतेन्दु स्वयं भी उपन्यास लिखना चाहते थे। किन्हीं संतोष सिंह को लिखे एक पत्र में वे कहते हैं। — सं०

''जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गये हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ गोस्वामी राधाचरण जी कोई उपन्यास लिखे तो उत्तम है। यदि ऐसी इच्छा हो तो दीप निर्वाह नामक उपन्यास का अनुवाद हो। यह उपन्यास केवल उपन्यास ही नहीं भारतवर्ष का इससे बड़ा सम्बन्ध है।

— हरिश्चन्द्र

इस प्रोत्साहन के बाद कई उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद हुआ। — सं०

पं० विष्णुलाल मोहनलाल पंडया जी को यह पत्र उदयपुर पहुंचने के पहिले लिखा गया था।

श्रीचरण युगल सरसीरुहेषु निवेदनम्,
कहयौ बृत सब आजु को, पंडया जू समझाय ।
जल प्रयान सह श्री चरन, दरसन हेतु उपाय ।।
कवि स्यामल स्यामल करत, कच स्यामल उघान,
मोहन राजसभा रहे, काज करन के घ्यान ।।२।।
मैं बिनु सिक्के श्रीसभा, है इकलो इत ज्ञात ।
संकित ही रहियो सतत, सब बिधि इतहि अजान ।।३।।
तासो उचित विचरि जौ आयसु दीजै जेहि ।
मोहन मोहि न छोड़हीं, पद जोहन जौं मोह ।।४।।

श्रीराधा कृष्णदास जी उर्फ बच्चा बाबू को लिखा गया पत्र।

"अजीज अज जान मन बच्चा बहादुर । मेरे दिल के सदफ्र के बेबहा दुर ।।
बहुत ही जल्द भेजो नीलदेवी । इसी दम चाहिए इक उसकी कापी ।।
वहां पर कृष्ण खैरियत से पहुचा । तुम इसका हाल भी चट हमको लिखना ।।
कोई था माधवी के यां से आया । य भी दर्याफत चन्द्रावली कल ।
बिरज, बी. दास के यहां से मुवहल ।।

—**हरिश्चन्द्र**

म० कु० श्री बाबू रामदीन सिंह जी को लिखे गये कुछ पत्र।

प्रियवेरेषु,

अब की बकरीद में भारतवर्ष के प्रायः अनेक नगरों में मुसलमानों ने प्रकाश रूप से जो गोबध किया है इससे हिंदुओं की सब प्रकार से जो मान हानि हुई है वह अकथनीय है । पालिसी परतन्त्र गवर्नमेंट पर हिन्दुओं की अकिंचितकरता और मुसलमानों की उग्रता भलीभांति विदित है यही कारण है कि जानबूझ कर भी वह कुछ नहीं बोलती, किन्तु हम लोगों की जो भारत वर्ष में हिन्दुओं के ही वीर्य से उत्पन्न हैं ऐसे अवसर पर गवर्नमेंट के कान खोलने का उपाय अवश्य करणीय है । इस हेतु आपसे इस पत्र द्वारा निवेदन है कि जहां तक हो सके इस विषय में प्रयत्न कीजिए । भागलपुर, मिरजापुर, काशी इत्यादि कई स्थानो में प्रकाशयरुप से केवल हमारा जी दुखाने को हांकाठोकी यह अत्याचार हुआ है जो किसी किसी समाचारपत्र में प्रकाश भी हुआ है । आप भी अपने पत्र में इस विषय का भलीभांति आन्दोलन कीजिए । सब पत्र एक साथ कोलाहल करेंगे तब काम चलेगा । हिन्दी, उर्दू, बंगाली, मराठी, अंग्रेजी सब भाषा के पत्रों में जिनके संपादक हिन्दू हों एक बेर बड़े धूम से इसका आंदोलन होना अवश्य है, आशा है कि अपने शंका भर आप इस विषय में कोई बात उठा न रखेंगे ।

भवदीय

—**हरिश्चन्द्र**

प्रियवरेषु,

कल पुस्तकें ठीक समय पर मिल गई । उसमें कई ऐसे हैं जो मेरे यहां हैं । सिंहपत्रावली बहुत बिकने की वस्तु है अर्थात हजारों की नहीं काल पाकर लाखों की ही बिकेगी । एक तो इस को छाप कीजिए और एक मुहनाद अही बीबीफातिमा और हसन हुसैन का जीवनंदसिंह की मुसलमान मात्र लगे । मुझ को बड़ी लज्जा है कि ऐसी कोई वस्तु आप मैं नहीं छापी जो बहुत बिके । पत्रों का संग्रह भी न छापने को थे ? और जो इच्छा हो । मैं आपके अनुग्रहों का ऋणी हूँ ।

—**हरिश्चन्द्र**

बाबू रामदीन सिंह को भारतेन्दु बाबू द्वारा दिया गया अपनी पुस्तकों को छापने का अधिकार पत्र।

बाबू रामदीनसिंह साहब, मालिक व मुहर्तायन क्षत्रियपत्रिका, खंगविलास प्रेस बांकीपुर।

आपको में इजाजत देता हूँ कि आप मेरे किताबों में से जिनको आप चाहें छापें और इस वास्ते कि जो किताब आप छापें उनमें आपको नुकसान न हो। यह भी आपको लिखा जाता है कि जो चीज आप छाप लेंगे, उसको और कोई नहीं छाप सकेगा, और अगर कोई छापे तो कानून हक तसनीफ के (कापी राइट) मुताबिक आप उस पर नुकसानी का दावा करने को मजाज होगें और मेरे किताब के सबब से आपको जो कुछ इनतिफाअ हो उससे मुझको कोई वास्ता नहीं है। वह कुल मुनाफा क्षत्रिय पत्रिका के पर्चे में लगाया जायगा जिसके की आप मालिक हैं।

फकत मरकूम, २३ सितम्बर, १८८२ ई. (हस्ताक्षर अंग्रेजी में)

मुकाम बनारस **हरिश्चन्द्र**

भारतेन्दु बाबू के पत्र रामदीन सिंह जी के नाम

२३, सितम्बर
१८८२

प्रिय,

आपका पत्र और तार मिला। आपने जैसा अनुग्रह इस समय किया वह कहने के योग्य नहीं चित्त ही साक्षी है। आज शनिवार की दोपहर है अब तक बाबू सहिब प्रसादसिंह नहीं आये। सांय तक या रात तक शायद आतें यद्यपि इस अवसर पर फिर कुछ आपको लिखना निराभ्रक मारना है। किन्तु अत्यन्त कष्ट के कारण लिखता हूँ। हो सके एक सौ और भेज दीजिए। जो काम कमबख्त दरपेश है नहीं निकलता और मैं यहाँ किसी से उसका जिक्र तक नहीं किया चाहता इसी से फिर निर्लज्ज होकर लिखा है। किन्तु जाने दीजिए बहुत कष्ट हो तो नहीं। क्षमा इसके पीछे जो नोटिस है मेरे अनुरोध से क्षत्रिय पत्रिका में छाप दीजिएगा।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

सूचना

मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकों को श्री बाबू रामदीन सिंह खंग विलास के स्वामी छाप सकते हैं जब तक जिन पुस्तकों को ये छापते रहें और किसी को अधिकार नहीं कि छापें।

२३.१०.१८८२ — **हरिश्चन्द्र**

(२)

प्रिय बाबू साहबसिंह का शिष्टाचार मुझे कुछ भी नहीं बन पड़ी मेरा स्वभाव आपने देखा होगा कि बिल्कुल बाह्ययाडम्बर शून्य है इसी से मुझको जाहिरा कुछ नहीं आता। वह सब पत्र यहीं छापूंगा। यह फिर मैं किस मुँह से कहूँ कि हो सके तो शीघ्र एक और भेज दीजिए।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

प्रिय वरेषु !

आपका पत्र आया व्याकरण और "विहारदर्पण" आने पर मैं अपनी राय लिख भेजूंगा। काशीनाथ के मुकद्दिम में विलम्ब मेरे विन्ध्याचल चले जाने से हुआ था। वह सब कुछ तै हो गया आप खातिर जमा रखिए।

भक्तिसूत्र विना ॐ के छापिये।

मेरे एक मित्र ने मुझसे बड़ा विश्वासघात किया। मेरा कुछ रुपया किसी कारण से उसके नाम रहता था। वह बेईमान होकर मिर्जापुर चला गया। वरंच मैं इसी वास्ते विन्ध्याचल गया था। अब वह साफ इनकार कर गया खैर दिवानी फौजदारी जो कुछ होगी देखी जायगी। अब एक गुप्त बात आपको लिखता हूँ कि रु० सब एक साथ हाथ से निकल जाने से मैं बहुत ही तंग हो गया हूँ वालिश दीवानी फौजदारी सभी करनी है। महाराज से मांगा तो कहा कि दूसरे महिने में देंगे। यदि हो सके तो शीघ्र सहायता कीजिए। वह यों कि मैं अपनी पुस्तकों में से जिसका आप चाहें स्तत्व हकतसनीफ मैं आपके हाथ बेच डालू। वा और जैसे उचित समझिए। ४०० रु. कि मुझको जरूरत है इसमें आपका किया जितना हो सके जो कुछ हो तार द्वारा समाचार दीजिएगा। आदित्यवार तक रु. हमको यहाँ पहुँच जाना चाहिए। यहाँ अन्धेर नगरी विद्या सुन्दर इत्यादि का लोगों ने ५५ रु. प्रति पुस्तक लगाया किन्तु लज्जा के कारण मैंने नहीं बेचा। वहाँ होगा तो जो वस्तु १ की बिकेगी वह आप नोटिस में ४ की लिखिएगा। तब हमारी आपकी और पुस्तक की प्रतिष्ठा रहेगी। वा यह जो आप न चाहें तो जो कुछ हो लिखिएगा। सिद्धान्त यह समझिए कि इस विषय को मैं विशेष नहीं लिख सकता इस समय सहायता कीजिएगा। तो अगले जनम भर एहसान मानूंगा। और किसी बात से आपसे बाहर नहीं हूंगा। जो कुछ हो नहीं थोड़ा बहुत मंजूर हो शीघ्र तार दीजिए। मैं किसी विशेष कारण से यहाँ कुछ उपाय न करने के हेतु ये भुगतान चाहता हूँ। बड़ी घबड़ाहट में हूँ उत्तर शीघ्र। यह पत्र आपको गुरुवार को मिलेगा उसी क्षण तार में जबाव दीजिएगा हो सके तो उस दिन डाक द्वारा पत्र भेजिएगा। ४०० रु. हो सके अत्युत्तम नहीं जितना भेज सकिए। फेर भेजने लिखिएगा तो दो एक सप्ताह में फेर भेजूंगा। इति

भवदीय

हरीश्चन्द्र

प्रियवर,

आपका पत्र आया, पुस्तकें भी पहुंची, दीपनारायण सिंह ने अपने ताश के खेल में मेरा नाम नहीं दिया है यह अनुचित किया है जब कि उन्होंने स्वयं एक वस्तु को उलट पुलट कर छापा है तो फिर रजिस्टरी कराके दूसरों को क्यों निषेध करते हैं? आप जानते हैं कि मेरी पुस्तकें लाभ के लिए नहीं छपतीं, मुझे इस में कुछ ख्याल नहीं है परन्तु कृतज्ञता मनुष्य के शरीर का रत्न है। भला और कुछ नहीं तो कृतज्ञता तो स्वीकार करना था।

उदेपुर की बंशावली मेरे पास बिल्कुल नहीं लिखी है। टाड का राजस्थान अंग्रेजी में और उर्दू में छप गया है और थोड़ासा बंगले में भी छपा है। वह बहुत अच्छा है उसमें और भी कई जगह से उसने मिलान कर के लिखा हैं कुछ कागजात उदैपुर के मेरे पास है और एक उदैपुर को तवारीख खास दर्वार में को लिखी हुई है कुछ मेरर लिखी हुई है। यदि आप उन सबों को इकट्ठा करके आप लिखना चाहें तो मैं भेज दूंगा। आपको राजस्थान लेना होगा क्योंकि यह मेरे पास नहीं है। इस विषय में आपकी क्या सम्मति है?

पुरानी पुस्तकों के विषय में जो आपने लिखा है पहिले यह लिखिए कि किस शास्त्र की पुस्तकें आपके पास पहिले भेजी जाये?

आपको जो कुछ पूछना हो लिखिऐ उत्तर बराबर जायेगा।

"अंधेर नगरी चौपट राजा" जाता है इसे शीघ्र ही छाप दीजिए, इस की आवश्यकता है।

"भक्तलाल" आप अवश्य छाप दीजिए परन्तु आपके पास जो भक्तलाल है वह भी मुझे देखने को भेज दीजिए।

हिन्दी प्रदीप का लेकचर आप अवश्य छाप सकते हैं ।

''अंधेर नगरी'' यदि आप मेरे तरफ से छापना चाहिए तो ५०० कापी मैं लूंगा परन्तु छपाई इत्यादि अवश्य दूंगा । यदि आप स्वयं छापना चाहे तो में १० कापी लूंगा बाकी आप बेच लें ।

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यह वही विक्रम हो । यह बंगला के जयदेव जी के जीवनचरित्र में लिखा है कि ''हरिदास हीराचंद्र बंबई वाले ने लिखा है कि ''ये विक्रम के दर्बार में थे'' मेरी भी यही सम्मति कि यह वहीं विक्रम है क्योंकि यह वह विक्रम नहीं हो सकते जिनका संवत चलता है । जयदेव जी के सन के कई सौ बाद हुए है ।

राजा शिवप्रसाद ने भारतेन्दु बाबू को अपना फोटोग्राफ देने को कहा था। फोटोग्राफ मांगने के लिए लिखा गया रुक्का। **—सं०**

महाराज कुमार लाल खंग बहादुर मल्ल की विद्योसाहिता, शील देख कर मैं बड़ा प्रसन्न हूं । उनका एक पत्र और एक नाटक मेरे पास भी आया है हमारी उनसे मिलने की बड़ी इच्छा है ईश्वर करे वे शीघ्र ही आवैं ।

बूंदी की बंशावली जाती है ।

इस समय मित्र लिखित पुस्तकों के छपने की बहुत आवश्यकता है । लोग बहुत ढूंढ़ते हैं ।

१. सत्य हरिश्चंद्र एक बेर मुद्रित इसकी बहुत मांग आती है ।

२. विद्यासुन्दर एक बेर मुद्रित इसकी ५० कापी गर्वनमेंट लेगी ।

३. कपूर्ररमंजरी एक बेर मुद्रित ।

४. प्रेम फुलवारी एक बेर मुद्रित इसकी बहुत ही मांग आती है ।

५. भारत दुर्दशा (क० व० सु०) में मुद्रित ।

भवदीय

—हरिश्चंद्र

श्री बाबू साहिबप्रसाद सिंह

प्रियवर

आपका छपापत्र आया था परन्तु मेरी माता का देहांत हो गया इससे पत्रोतर में विलंब हुआ क्षमा कीजिएगा ।

बूंदी की राज बंशावली का ''नोट'' और दोहे भेजे जाते हैं । यह इतनी ही है । इसमें एक गलती है उसे बना लीजियेगा । वह यह है कि ''टाड साहब के मत से हर्षिराय'' इसके आगे जीसन लिखा है उसको ७५५बना दीजिये ।

''अंधेर नगरी का एक दृश्य यहीं रह गया था वह जाता है । इसे शीघ्रता से मुद्रित कीजिए क्योंकि ७ फरवरी को यह नाटक महाराज डुमराव के यहां खेला जायेगा उस अवसर पर बांटने के लिए इसकी आवश्यकता है, अतएव इसका प्रूफ बहुत ही शीघ्र भेजिए ।

५—**हरिश्चंद्र**

परिश्रम देना क्षमा कीजिएगा । और भक्तमाल भी भेजिएगा । भारतमित्र के सम्पादक भी टाड साहिब का राजिस्थान छापना चाहते हैं दोनों जगह छपना अच्छा न होगा आप उनको पत्र लिख तै कर लें ।

—हरिश्चंद्र

''इसी शैर के मुताबिक जवाब दीजिएगा ।
कमाल शौके मुलाकात उसने लिखा है ।
चलूं मैं आप ही कासिद जवाब के बदले ।।

उन्होंने लिफाफे में अपना फोटोग्राफ रख दिया और मेरे रुक्के को काट दिया ।

''इसी शैर के मुताबिक जवाब दीजिएगा, दिया है,
कमाल शौके मुलाकात उसने लिखा है
चला मैं आप ही कासिद जबाव के बदले ।''

भारतेन्दु बाबू के पत्र गोस्वामी श्रीराधाचरण जी को

(१)

श्रीकृष्ण

प्रियवरेषु

बहुत दिनों से आप का कोई पत्र नहीं आया, चित्त चिंतित है, सर्वदा कुशल पत्र से चित्त आनन्दित किया कीजिए, यहाँ योग्य कार्य हो वह भी असंकुचित होकर लिखिए ।

भवदीय स्नेहाभिलाषी
हरिश्चंद्र

(२)

महोदयेषु

मैं तीन चार दिन में शायद श्रीवन आऊँ, कृपापूर्वक एक स्थान अपने अति निकट रखिए, दो बात, मुख्य आराम देख लीजिएगा एक तो पाखाना स्वच्छ हो और दूसरे दिन को गर्म न हो चाहे अति छोटा हो ।

हरिश्चंद्र

(३)

शत कोटि प्रणामानंतरं प्रेम्णा विज्ञापयति — श्री हरिदास, श्री हरि वंश जी, श्री नागरीदास जी, श्री आनन्दघन जी, और श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चित्र हैं अनुग्रह पूर्वक लिखिए कि और किन किन महात्माओं के चित्र आपको मिले हैं —

दासानुदास
६ शमी
हरिश्चंद्र

(४)

प्रणाति पूर्विका विज्ञप्ति :

श्री अद्वैत महाप्रभु का उत्सव बंगला पत्रों में उत्सवों की तालिका में वैसा ही है जैसा उत्सवावली में लिखा है, क्या वह दिन नहीं है जो भारतेंदु में ७ लिखी है ? इसको जरा निश्चय कर लीजिए, मैंने बंगला कई पत्र देखे सब में ५ ही मिली ।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(५)

मित्रेषु,

दूसरी आवृत्ति में उत्सवावली में उत्सव का दिन शुद्ध कर दिया जायगा ।

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र

(६)

अनेक कोटि साष्टांग प्रणाम

आप का कृपा पत्र मिला चंद्रिका सेवा में भेजी है स्वीकृत हो । आप अनेक ग्रंथों का अनुवाद करते हैं तो चैतन्य चंद्रोदय का अनुवाद क्यों नहीं करते ? बड़ा ही प्रेममय नाटक है, इसके छंद मात्र मैं दत्तचित्त होकर बना

दूगा, उत्साह कीजिए । जातीय गीत भी कुछ बनें और छपैं, मैं बहुत उद्योग करता हूँ किन्तु किसी ने न बनाकर भेजे ।

गुरु

आपका हरिश्चन्द्र

(७)

३-५-८३

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत्

प्रणामानंतरं निवेदयति

लघु र. क. मिली, धन्यवाद, नाटकादि जाते हैं, भारतेंदु बहुत अच्छी चाल से चला है किंतु तनिक कड़ाई विशेष है । लेख परिपाटी उत्तम है, क्या यह वही लाहौर वाला है ? मैं अब तक नहीं अच्छा हुआ, बड़ी ही सुस्ती है, प्राण बचैं तो कुशल हैं, हमारी सर्वस्य निधि जो आप संग्रह कर रहे हैं शीघ्र भेजिए, इस दुख में सर्व प्रकार सहायक होगी ।

श्री चरण सेवक

हरिश्चन्द्र ।

(८)

श्रीकृष्ण

हम लोगों का बड़ा दिन ।

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामांतरं निवेदयति —

महात्माओं ने जो पद बनाए हैं उनमें प्रिया पीतम का जो संवाद है वा अन्य सखियों की उक्ति हैं उन्हीं सबों के यथास्थान नियोजन से एक रूपक बनें तो बहुत ही चमत्कार हो अर्थात् नाटक की और जितनी बातैं हैं अमुक आया गया इत्यादि अंक दृश्य इत्यादि मात्र तो अपनी सृष्टि रहै किंतु संवाद मात्र उन्हीं प्रवीनों के पदों की योजना से हों । जहाँ कहीं पूरा पद रहै वहाँ पूरा कहीं आधा चौथाई एक टुकड़ा जितना आवश्यक हो उतना मात्र उनमें से ले लिया जाय । यह भी यों ही कि एक बेर पदों में से चुन चुन कर अत्यंत चोखे चोखे जो हों वा जिनमें कोई एक टुकड़ा भी अपूर्व हो वह चिन्हित रहै फिर यथा स्थान उनकी नियोजना हो, ऐसा ही गीत गोविंद से एक संस्कृत में हो, बहुत ही उत्तम ग्रंथ होगा । आप परिश्रम करैं तो हो मैं तो ऐसा निर्बल हो गया हूँ कि बरसों में सुधरूँगा ।

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

(९)

श्रीहरि :

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत प्रणामानंतरं निवेदनम् —

आज के भारतेंदु में प्रथम पत्र आर्य समाजियों के विषय में जो है उसमें मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि ब्राह्मणों को एक ही बेर छोड़ देने की अपेक्षा उनको सुधारना उत्तम है —

भारतेंदु टाइप में छपै तो बड़ी उत्तम बात है । २४ पेज में टाइटेल पेज के २५० कापी छपाई कागज समेत २५) में उत्तम छप सकता है, यहाँ छपे तो मैं प्रूफ आदि भी शीघ्र दिया करूँ ।

मैं इन दिनों महात्माओं के चित्रों की फोटोग्राफ में कापी करके संग्रह कर रहा हूँ, नागरीदास श्री महाप्रभु आदि कई चित्र तो हैं, कुछ यहाँ भी मिलेंगे ?

आगरे के उपद्रव का वृत्तांत मैंने विलायत कई मित्रों को लिखा है उसके प्रमाण के हेतु कई समाचार पत्र भी भेजे हैं । इस मास का भेजूँगा इससे इसकी एक कापी और दीजिए ।

अबकी इसमें समालोचना छोटी २ बहुत सुंदर हैं । शृंगारलतिका पर नकछेदी जी ने रजिस्टरी भी करा ली । यह मजा देखिए, राजा मानसिंह के मानों आप पोष्यपुत्र हैं । ललिता ना. चन्द्रवली की छाया पर बनी है, अस्तु, बिचारे वैष्णव मत का न भेद जानैं न आप वैष्णव, वैष्णव पत्रिका के संपादक तो हैं —

नाटकों में गँवारी वैसवारे की मेरी बुद्धि में उत्तम होगी क्योंकि इस प्रदेश में दूर तक बोली जाती है ।

प्रतिपदा

दासानुदास

हरिश्चन्द्र ।

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत् प्रणामानंतर निवेदयति —

आप का कृपापात्र पाया, बृहद्गौर गणोद्देश दीपिका वा वृहद्गणोद्देश दीपिका जो जो जितनी मिलैं भेजिएगा । जो पुस्तकें वहाँ मिलती हैं, यदि आप कृपापूर्वक उनका एक सूचीपत्र भेज दें तो बड़ा उपकार हो । कीर्तन की पुस्तक आप दो भेज दें एक नित्य पद की दूसरी उत्सव की पद । मुक्तावली लोग क्यों नहीं देते ? कदम्ब की लकड़ी श्री . . . . जी के वेणु निर्माण के हेतु चाहिए मयूरपिच्छ चन्द्रिका मात्र ही भेजिएगा हम आपसे किसी बात से बाहर नहीं जिस प्रकार आप भेजिएगा हम को शिरसाधार्य्य है । रासोत्सव व्यवस्था जो कल के पत्र में छपैगी वह श्रीवन के पंडितों को दिखलाइएगा देखिए लोग क्या कहते हैं और सब कुशल हैं .

भवदीय

रविवासरे हरिश्चंद्र

आज

आज सबेरे से यहाँ घनघोर वृष्टि हो रही है ।

(११)

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत प्रणामानंतरं निवेदयति —

निस्संदेह आप मुझसे व्यर्थ रुष्ट हुए, इस वर्ष के पहिले ही नम्बर में आपका प्रतिवाद छपा है, भला इसमें मेरा क्या दोष है, जिसने आपकी निंदा किया है उसको दो हजार आप गाली दीजिए देखिए छपता है कि नहीं । चंद्रिका के भेजने का प्रवन्ध आदि सब अब पं. गोपीनाथ जी के जिम्मे है । मैं उनसे पूछूँगा कि क्यों नहीं गई और भिजवा दूँगा । संसार में भले बुरे सब प्रकार के लोग हैं कोई किसी की निंदा, कोई स्तुति करता है । हम तो केवल तटस्थ हैं, कोई हमारे चित्त में कल्मष तो तब आप को प्रतीत करना था जब आप का प्रतिवाद न छपता ।

श्रीवन से हमें कई पुस्तकें मँगाना है आप कृपापूर्वक उसका प्रबन्ध कर दें तो हम नामादिक लिख भेजें । और सर्व्व कुशल हैं ।

आपका दासानुदास

शनि हरिश्चंद्र

(१२)

श्रीहरि : ।

प्रिय पूज्य चरणेषु ! होली मंगल

क्या आप चित्रों का विषय भूल गए ? क्या अभी तक एक भी नहीं बने ? तनिक ध्यान रहै । मेरे योग्य सेवा हो सो लिखिएगा ।

दासानुदास

हरिश्चंद्र

(१३)

श्रीकृष्णायनम : ।

अनेक कोटि दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति —

पूर्व में एक पत्र आपको लिखा था, उसमें चित्रों के विषय में आप को जो लिखा था उसका कुछआपको पता लगा ? व्यास जी, श्री अद्वैत प्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री गोपालभट्ट जी या और किसी महात्मा की भी तस्वीरैं मिलें और दस दिन के वास्ते भी मँगनी मिल सकैं तो मैं कपी करा लूँ । कष्ट क्षमा —

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

(१४)

शतश : प्रणति के पश्चात् निवेदन !

क्या चित्रों की याद एक बारगी भुला दी ? इतने चित्र हैं, श्री श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु, स्वामी हरिदास जी, हरिवंश जी, नागरीदास जी, आनन्दघन जी और हमारे आचार्य और उनके द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी इनके अतिरिक्त और जिन महात्माओं के मिलैं दीजिए । कष्ट देने को बारंबार क्षमा कीजिए ।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(१५)

''भक्त्यात्वनन्ययालभ्यो हरिरन्यद्विडम्बनम्''

"Heaven is love, and love is heaven"

अनेक शतकोटि प्रणामानंतरं निवेदयति,

कृपा पत्र मिला, बच्चा को पत्र में लिख दिया है कि आप की सेवा में यात्रा से लौटकर आवे, मथुरा एजेंसी वालों को कह दीजिए कि उनके पास जिन २ महात्माओं की कापी बिकाऊ हों उनका एक सूची पत्र मेरे पास भेज दें ।

पुस्तकों का सूचीपत्र छापा तो है ।

दासानुदास
हरिश्चंद्र

(१६)

पूज्य चरणेषु,

श्री रूपसनातन गोस्वामि की जाति क्या थी ? श्री महाप्रभु का जीवन चरित्र एक बँगला से हिन्दी किया है उसमें यवन लिखा है । मैंने कायस्थ सुना है । हमारे निज संप्रदाय के ग्रंथों में भी कायस्थ लिखा है । इसका उत्तर अति शीघ्र दीजिए ।

श्री शचीदेवी और श्री विष्णु प्रिया कब तक जीवित रहीं यह भी लिखिएगा । अपने परम पूज्य पिता जी से मेरा साष्टांग प्रणाम कहिएगा ।

द्वितीया

दासानुदास
हरिश्चंद्र

(१७)

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामानंतरं निवेदयति —

आपका कृपा पत्र मिला, आपने ऐसा क्यों लिखा है । अलौकिक और लौकिक दोनों संबंध से हमारे आप पूज्य हैं ।

चित्र जो मिलै अति शीघ्र यत्नपूर्वक भेजें । जितने चित्र जितने दिन के हेतु मँगनी आवें उनका वृत्त लिखिएगा कि उतने ही दिन में वे फेर दिए जायँ । जो मूल्य पर मिलें उनका मूल्य लिखिएगा । आप अलौकिक चित्र पुस्तकादि मुझको भेजते हैं इसका मैं जन्मजन्म ऋणी रहूँगा ।

२४ डिसेम्बर १८८३
काशी

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(१८)

शतकोटि दण्डवत् प्रणामानंतरं निवेदयति —

बाबू राजेन्द्रलाल मित्र ने एक प्रबंध में इस बात का खंडन किया है कि महाप्रभुजी मध्वमतावलंबी थे इसमें प्रमाण, उन्होंने यह आज्ञा किया कि ''यत श्रीधरविरुद्धं तन्नामात्माकमादरणीयम् !'' वह कहते हैं कि

ध्व मत के ग्रंथ मात्र ही श्रीधर के विरुद्ध हैं । इसका क्या उत्तर है ? वैष्णवदीक्षा आपने कब और किससे लिया था ?

दासानुदास
हरिश्चंद्र

मैं इन दिनों महाप्रभुजी के चरित्र का नाटक लिखता हूँ उसी के हेतु इन बातों के जानने की जल्दी है । हरिश्चंद्र

(१९)

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामानांतरं निवेदयति —

बच्चा और उसकी माँ व्रजयात्रा करने जाती हैं और जो चित्र हों सो बच्चा को दीजिएगा।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(२०)

शतकोटि दण्डवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति —

काशिराज ने आपसे यह प्रश्न किया है कि श्री राधारमण, श्री राधावल्लभ आदि विग्रहों के साथ श्री राधिका जी की मूर्ति क्यों नहीं है ? श्री मद्भागवत में उनका वर्णन कहाँ है ?

विशेष कृपा, कष्ट क्षमा ।

चिरबाधित
हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु जी की एक रखैल थी माधवी । माधवी उसका असली नाम नहीं था । वह किन्हीं किशन सिंह की पुत्री थी । कहते हैं जब हरिश्चन्द्र से इसका सम्पर्क हुआ तब यह मुसलमान वेश्या थी और इसका नाम था आलीजान । हरिश्चन्द्र ने इसकी शुद्धि की और उसका नाम रखा, माधवी । इसी माधवी के संबंध में भारतेन्दु ने यह पत्र बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन को लिखा है । — सं.

श्री बद्रीनारायण जी उपाध्याय 'प्रेमघन' को

प्रिय,

एक बड़ी गुप्त बात है, इसमें बड़ी सावधानी से सहायता दीजिएगा, गोवर्धनदास रोड़ा उर्फ खरदूखनदास से इन दिनों माधवी से बिगाड़ हो गया । वह चित्त का ऐसा कुनही है कि उस बिगाड़ का बदला यों लेना चाहता है कि माधवी की एक किता हुंडी २३००) रु. की जो वास्तव में माधवी के रुपये की है मगर उसके नाम की है उसको हजम किया चाहता है । अभी पूरी हजम नहीं किया इरादा है । इसी इरादे से यह हुंडी हमसे लेकर विंध्याचल चला गया । एक मकान माधवी के वास्ते लिया जाता है । उसका बयाना देने १००) रुपया हमने उससे माँगा हुंडी उसको दे दिया कि १००) आज दे बाकी रजिस्टरी के दिन दे । आज रजिस्टरी होने वाली थी । आज रु. भेजते हैं यह कहके भी विंध्याचल चला गया । हम स्टेशन पर गए मुलाकात हुई । एक पुरजा गट्टू मित्र के नाम लिख दिया और कहा कि हम कह आए हैं गट्टू मिश्र रुपया दे देंगे । गट्टू मिश्र कहते हैं कि हम कुछ

नहीं जानते । कैसी हुंडी कैसा रुपया ? यहाँ मकान की रजिस्टरी की हर्ज होती है । न जानै उनको क्या मंजूर है । जो हो कानूनन तो उनपर खयानत और जालसाजी का दावा अच्छा खासा होगा । मगर वह हमारे निज का आदमी है वह कभी ऐसी बेईमानी न करैगा खाली माधवी से बुरा मानकर तंग करता है । आप फौरन खत पाते ही उसको बुलाकर या जाकर मिलिए और एक तार हमने आपके नाम दिया है, उसके मुताबिक अनजान बनकर पूछिए कि कौन से हुंडी के रुपए के बिना बाबू साहब का हर्ज है वह भुगतान जल्दी कर दो । या तो अभी तार दो कि उनको रुपया मिल जाय या तुम कल बनारस चले जाओ । इस बखत तार उससे भिजवाइए, और एक तार हमारे नाम भी भिजवाइए । बल्कि तार की खबर का खर्च भी आप दे दीजिएगा । हम आपके हिसाब में पाठक जी को दे देंगे । हमारा खत उसको मत दिखलाइएगा न कुछ हाल कहिएगा कि मैंने उसकी बुराई की है । अपना काम देखिएगा । जिसमें तार के खबर से चिट्ठी से गवाही से आपके सामने बयान से हर तरह से उसको पाबंद कर लीजिएगा । रुपए बिना बड़ा हर्ज है । कह दीजिए कि आज शाम तक तार का इन्तिजार देखकर वह खुद चले आवैंगे । बाहर ही से इस आदमी को रवाने किया है इसे ,खर्च नहीं दिया है दे दीजिएगा । व्यय मात्र कहिएगा । आपके यहाँ के नौकरों को या पाठक जी को दे दूँगा । बड़ी सावधानी से चटपट काम हो । शाम के भीतर हमको खबर दीजिएगा तार पर कि क्या जवाब दिया । खर्च सब मेरे जिम्मे ।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

प्रियवरेषु —

आपका कृपा-पत्र आया । यह संसार दु :ख का सागर है और अपनी अपनी विपत्ति में सब फँसे हैं पर मैं सोचता हूँ कि जितना मैं चारों तरफ से दु :ख में जकड़ा हूँ इतना और कोई कम जकड़ा होगा पर क्या करूँ खैर चला ही जाता है बाबू जी का यह तुक बहुत ही ठीक है —''है संसार का यह मजा, धन सरिस दुख तड़ित सम सुख मोह छाजन छजा ।'' इन्हीं झंझटों से आजकल पत्र नहीं लिखा । क्षमा कीजिएगा । चित्त वैसा ही है । इसमें संदेह न कीजिएगा । ''सौ युग पानी में रहै मिटै न चकमक आग ।'' और सब कुशल है —आपका भी पचड़े में फँसना सुनकर बड़ा दुख होता है । ठीक है — खैर न वह रही न यह रहेगी ।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

पत्रकार कर्म

सम्पादकीय टिप्पणी, विज्ञापन/ सूचनाएँ और अन्य

सम्पादकीय

१० जनवरी सन् १८७२ के साप्ताहिक 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित हिन्दी कविता पर लम्बा सम्पादकीय लेख। —सं०

(हिन्दी कविता)

ऐसा निश्चय है कि हिन्दी भाषा प्राकृत भाषा से बिगड़ती हुई बनी होगी परन्तु इसमें कोई पुष्ट प्रमाण नहीं केवल हिन्दी कविता में बहुत से प्राकृत शब्द मिलते हैं इससे निश्चय हो सकता है जैसा किति कान्ह गव्व इत्यादि । सबसे पुरानी हिन्दी की कविता चन्द कवि की है जो महाराज पृथवीराज का कवि था । इसकी कविता के पहिले की कोई कविता नहीं मिलती । एक कोई बैताल कवि हुआ है और उसने बहुत सी छप्पय बनाई । और उसकी भाषा भी पुरानी है पर यह निश्चय नहीं होता कि वह ठीक किस समय में हुआ था । चन्द की कविता प्राकृत भाषा की सी है । जैसा "गज खम्म छुटत उभदद मदं । मनो गाजत गज्ज अषाढ़ भदं इत्यादि" यह कविता बहुत मधुर नहीं है इसके पीछे फिर कौन कौन कवि हुए यह निश्चय नहीं परन्तु महम्मद मालिक जाइसी ने जो पदमावत बनाई है वह कविता उस काल के पीछे थी कविता कहीं जा सकती है । यह कविता मीठी और सीधी बनी है और इसके पीछे कबीर और नान्हक की कविता है । इस काल तक कविता की कोई बंधी भाषा नहीं थी अब लोग सीधी बोली में कविता करते थे । राजाधिराज अकबर का समय हिन्दी कविता की ठीकवृद्धि का समय था और नरहारि इत्यादि कवि उसी समय में हुए । नरहारि कान्यकुब्ज ब्राहमण थे और उनके बंश के लोग अब तक कवि हैं । अकबर ने नरहरि को महापात्र का पद दिया था और उस समय में हिन्दी कविता में ब्रजभाषा मिल गयी थी परन्तु ब्रजभाषा में कविता करने का नियम सूरदास जी ने बांधा है जो इसी अकबर के समय हुए थे । सूरदास जी का जीवन वृत्त हम लोग विगत वर्ष के किसी विन्दु में लिख चुके हैं । ये भाषा के कवियों के मुकुट मणि और महाराज थे प्रायशः नये कवियों की कविता में वही उपम्मा और मिलते है जो सूरदास गान कर गये हैं । हिन्दी की बोलचाल और प्रबन्ध के पहिले लिखने वाले यही थे । यों तो इनके कुछ पूर्व से भी वृन्दावन में ब्रजभाषा में कविता बनती थी पर प्रसिद्व इन्हीं के समय में हुए और इनके समकालीन बहुत से कवि हुए । सूरदास जी ने तो सवाभावोक्ति बहुत कहीं हैं पर और भाषा के कवियों का ध्यान इधर न रहा और मुसलमानी राज्य के ठीक समय में होने के कारण उन लोगों ने बड़ी लम्बी लम्बी उपमा और अक्षर मैत्री और बड़े-बड़े शब्द कविता में भर दिये और हिन्दी कविता के तादृश आदर न पाने का यहीं कारण हुआ । अकबर के समय से औरंजेब के समय तक बहुत से कवि हुए और वैष्णवों में कविता की चरचा की विशेषता से ब्रजभाषा ही कविता की मुख्य भाषा रही और काव्यादर्श इत्यादि ग्रंथों का मत लेकर हिन्दी कविता के शास्त्र भी बने परन्तु जैसा कवियों ने अलकांर और नायका भेद में जी लगाया वैसा व्याकरण की ओर न झुके और यही कारण है कि मनमानी भाषा और मनमाने शब्द कविता में मिल गये । इसी समय के अन्त भाग में तुलसीदास जी हुए पर इनने ब्रजभाषा का नियम अपनी भाषा में न रक्खा । उस काल के राजा लोगों का भी हिन्दी कविता का व्यसन बढ़ा और कवियों को नौकर रखने लगे और जयपुर और बुंदेलखंड में बहुत से कवि रहने लगे और

यही कारण हुआ कि पीछे हिन्दी कविता में ब्रजभाषा और बुंदेलखंडी बोली समभाव से मिल गई । इस समय के प्रसिद्ध कवियों में देव बड़ा कवि हुआ जिसके बावन ग्रंथ अबवदि मिलते हैं और इसने अपनी भाषा में कठोर शब्द भी नहीं भरे । इस काल में कविता का चरचा ऐसा था कि मुसलमान लोग भी हिन्दी कविता करने लगे नेवाज नवी सेख आलम जहान पीतम रहीम जैनददी महम्मद, लालखा और ताज इत्यादि अनेक उत्तम कवि मुसलमानों में हुए और इन लोगों ने कई ग्रंथ भी बनाये । कहते हैं कि सेख और ताज ये दो स्त्रियों के उपनाम हैं वह कविता स्त्रियों की है । उस समय में अनेक हिन्दू स्त्री भी कवि हुए जैसा गंगावाई, मीरावाई, चतुरकुंअर, सोनादासी, और रामदासी इत्यादि । मुसलमानों में गाने के प्रबन्ध बनाने वाले भी उस समय से बहुत लोग हुए जैसा मियां तानसैन इत्यादि पर उस काल में क्या हिन्दू क्या मुसलमान किसी कवि ने कविता की रीति सुधारने और शब्दों के नियम बनाने में चित्त न दिया । नाटक का तो ये नाम भी जानते थे दो नाटक उस समय के बने हैं पर वे दोनों कथा की भांति हैं नाटकपन उसमें नहीं है । उनमें एक तो प्रबोध चन्दोदय भाषा में है और दूसरे में बाज कवि या शकुन्तला है । इस समय के कवियों का चित्त स्वाभावोक्ति पर तनिक नहीं जाता था । केवल बड़े-बड़े शब्दाडम्बर करते थे और इन शब्दाडम्बरों का पदमाकर राजा है और इसने वैन मैची के हुते अनेक व्यर्थ शब्द अपनी काव्य में भर दिये हैं और फारसी के भी बहुत शब्द मिला दिये और इसकी देखा देखी और कवि भी ऐसा करने लगे । केशवदास ने तब भी कवि की मर्याद बांधी और उसकी मर्याद को बहुत लोग अब तक मानते हैं । उस समय में श्रीवृदाबन में अनेक कवि अच्छे हुए और उनकी कविता सीधी स्वाभोवोक्ति लिए और रसभरी होती थी । जिनमें नागरीदास जी इत्यादि कई लोग बहुत अच्छे हुए जिनकी कविता बहुत उत्तम है परन्तु नाटक बनाने में किसी ने जोर न लगाया । इस काल में नाटक एक दो बने जिनमें एक हास्यार्णव था यद्यपि यह शुद्ध नाटक की चाल से नहीं है तथापि कुछ नाटक की चाल छूकर बना है पर बहुत असभ्य शब्द से भरा है इसी से कवि ने उसमें अपना नाम नहीं रक्खा पर अनुमान होता है कि रघुनाथ कवि का है नाटक सब के पहिले जो हिन्दी भाषा में पुरानी ठीक नाटक की रीति से बना वह नहुष नाटक श्री गिरिधरदास कवि का है और इसके पीछे आजकल तो अनेक नाटक बने और अब तो भाषा के अनेक व्याकरण और प्रबन्ध की पुस्तक बन गई । साम्प्रत काल के कवियों में श्री गिरिधरदास महान कवि हुए क्योंकि व्याकरण और कोष और नाटक हिन्दी में पहिले इन्हीं ने बनाये और इस काल पजनेस ठाकुर रघुनाथ इत्यादि अनेक कवि कुछ पहिले हुए पर किसी ने नई बात नहीं की वही लीक पीटते चले गये । अब भी बहुत कवि हैं और इस भाषा की अच्छी वृद्धि है पर अब हिन्दी खड़ी बोली में पद्य कविता नहीं वर्ना पर जो ऐसी वृद्धि है तो आशा है कि यह भाषा सुघर जायेगी ।

हिन्दी भाषा

" कविवचन सुधा कार्तिक कृष्ण ३० सं. १९२७ वाराणसी नं. ४ में प्रकाशित सम्पादकीय लेख । —सं०

प्राय लोग कहते हैं कि हिन्दी कोई भाषा ही नहीं है । हमको इस बात को सुनकर बड़ा शोच होता है यदि कोई अंग्रेज ऐसा कहता तो हम जानते कि वह अज्ञान है इस देश का समाचार भली भांति नहीं जानता । पर अपने स्वदेशियों को हम क्या कहें । हम नहीं जानते कि उनकी ऐसी हत बुद्धि क्यों हो गई कि वे अपने प्राचिन भाषा का तिरस्कार करते हैं । क्या भारतखंड निवासी महाराज विक्रमादित्य और भोज के समय में भी लखनऊ की सी बोली बोलते थे । एक महाशय लिखते हैं कि "यवन लोगों के आगमन के पूर्व इस देश में प्राकृत भाषा प्रचलित थी परन्तु उसके अनन्तर उस भाषा में विशेष करके अरबी और फारसी शब्द मिश्रित हो गये । अब उस नवीन भाषा को चाहे हिन्दी कहो, हिन्दुस्तानी कहो, वृजभाषा कहो, खड़ी बोली कहो, चाहे उर्दू कहो ।" परन्तु वही यह भी कहते हैं कि "मुसलमान लोगों ने अपने

आगमनान्तर अपनी फारसी अर्थात फारस देश की भाषा के सन्मुख प्राकृत का नाम हिन्दी अर्थात हिन्द की भाषा रक्खा ।'' ''प्राचीन रीत्यानुसार चलने वाले इसी को हिंदी भाषा कहते हैं और इसी की वृद्धि चाहते हैं । परन्तु वे महाशय एक और स्थान में कहते हैं कि ''भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसको सम्पूर्ण लोग वे प्रयास समझ जाये'' और आप ही ऐसे ऐसे क्लिष्ट शब्द लिखते हैं कि फारसी खाओं के अतिरिक्त और लोगों को यूनानी भाषा जान पड़े हम नहीं जानते कि वे यहाँ की भाषा किस को ठहराते हैं । कितने लोग कहते हैं हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसमें संस्कृत शब्द विशेष हैं वह भाषा है जिसमें फारसी और अरबी शब्दों की अधिकता हो हम लोग भी इसी वर्ग के हैं और सदा अपने हिंदी ही की उन्नति चाहते हैं —आप लोग जानते होंगे कि प्रयाग में एक यूनीवर्सिटी अर्थात प्रधान शिक्षालय नियत कराने के हेतु लोग बड़ा श्रम कर रहे हैं । बहुतेरों ने इस विषय में अपनी सम्मति प्रकट की है ।

परन्तु प्रोग्रेस के सम्पादक को यह बात पसन्द नहीं है । इस विषय पर हम लोग अवकाश के समय अधिक ध्यान देंगे ।

सम्पादकीय नोट

''कविवचन सुधा' के किसी न किसी अंक में प्रकाशित महत्व के कुछ सम्पादकीय नोट दिये जा रहे हैं इनमें भारतेन्दु की देश भक्ति, भाषा भक्ति तथा तात्कालिक भारत की आर्थिक दशा के सन्दर्भ में उनकी चिंता पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही राजभक्ति से देश भक्ति की ओर अग्रसर उनकी मानसिकता का अन्दाज मिलता है।

''भुतही इमली का कनकौआ'' नामक लेख पर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने आपत्ति की कि इस लेख में परोक्ष रूप से उनका मजाक उड़ाया गया है। गवर्नर से भी शिकायत की गयी। इसी प्रकार ''मर्सिया'' के छपने पर भी अंग्रेज नाराज हुए। उन्होंने कविवचन सुधा की सौ प्रतियों की सरकारी खरीद को बन्द करने की धमकी दी।

भारतेन्दु को कविवचन सुधा के २० अप्रैल १८७४ के अंक में एक स्पष्टीकरण छापना पड़ा। —सं०

शंका शोधन

''मर्सिया में हमारें अनेक ग्रहकों को शंका होगी कि वह राजा कौन था । इस्से अब हम उस राजा का अर्थ स्पष्ट करके सुनाते हैं । वह राजा अंग्रेजी फैशन था जो इस अपूर्ण शिक्षित मंडली रूप अंघेर नगरी का राज करता था जब से बम्बई और काशी इत्यादि स्थानों में अच्छे अच्छे लोगों ने प्रतिज्ञा करके अंग्रेजी कपड़ा पहिरना छोड़ देने की सौगंद खाई तब से मानो वह मर गया था ।''

'कविवचन सुधा'(८ जून १८७४) में छपा

फिर भी कविवचन सुधा की सरकारी खरीद बन्द हो गयी। अंत में भारतेन्दु को अपने पाठकों से ही आग्रह करना पड़ा।

''अप्रसन्नता''

''आजकल हमारे पत्र के अष्टमंगल आये हैं बहुत से लोग हम लोगों से अप्रसन्न हो रहे हैं श्रीयुत डायरेक्टर साहब ने पत्र के सम्पादक को लिख भेजा कि मर्सिया ऐसे बुरे आर्टिकल लिखने से तुम्हारे पत्र का गवर्नमेंट एड बन्द किया गया ।''

'कविवचन सुधा' के २२ दिसम्बर के अंक में लिखा देश की आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में—

''चाहे कैसे भी द्रव्य एकत्र किया हो अन्त में सब जायेगा बिलायत में, क्योंकि हमारी शोभा की सब वस्तुएं वहां से आवैंगी, कपड़ा, झाड़ फानूस, खिलौने, कागज और पुस्तक इत्यादि सब वस्तु बिलायत से आवैंगी उसके बदले यहां से द्रव्य जायेगा तो परिणाम यह होगा कि चाहे किसी उपाय से द्रव्य लो अन्त में तुम्हारे देश से निकल जायेगा ।''

डेढ़ दो महीने बाद ९.२.१८७४ 'कविवचन सुधा' में लिखा

– स्वदेशी का नारा–

''अब भी हम लोगों को कला कौशल्य की ओर ध्यान देना चाहिए । लोगों को तो अंगरेजी वस्तुओं की रुचि लगी है तो अंगरेजों के समान सब पदार्थों के कारखाने यहां नियत किये जाये पर अभी यहां के व्यापारियों में इतना सामर्थ्य नहीं है कि अंगरेजों के समान लोहा पीतल इत्यादि मौल्यवान पदार्थ लेकर मट्टी के वस्तु तक बनावैं जैसे कि अंगरेजी व्यापारी माल भेजने लगे देखो बढ़ई आदि छोटे छोटे व्यापारियों को काम मिलना कठिन हो गया है यहां तक कि घर की खिड़कियां दरवाजे आदि सब विलायत से बन कर आते हैं । इस धोके का मुख्य कारण यही है जो अंगरेजों ने सबों के चित्त को अंग्रेजी भाषा की तरफ खीचा जो यथार्थ है कि हम लोगों ने कला कौशल्य की ओर ध्यान नहीं दिया और उन्होंने तो इसी मिस से हम लोगों को ''बहाली दी'' और द्रव्य सब विदेश के ले गये । अब हम लोग इस बात की ओर कुछ चित्त लगाकर अपने लाभ के विषय में विचार करने लगे हैं और उसका कुछ फल भी दृष्टिगोचर होने लगा है परन्तु यथार्थ में यहां का माल तैयार करने के निर्मित्त जो लोग एकत्र हुए हैं वे कुछ भी नहीं है क्योंकि जब तक देश भर के व्यापारी इस विषय में उद्योग न करैंगे तब तक कार्य सिद्ध भली भांति नहीं हो सकता । जिस लिए केवल इतने ही से एतददेशीय वस्त्र आदि की वृद्धि होनी कठिन है और अंग्रेजों के समान वस्तु तैयार करना बिना सबों की सहायता के नहीं हो सकता ।''

''जानि सकैं सब कछू सबहि बिविध कला के भेद
बनै वस्तु कल की इतै मिटै दीनता खेद''

और

''अंगरेजी पहिले पढ़ै पुनि विलायतहिं जाय
या विद्या को भेद सब तो कछु ताहि लखाय''

१६.२.१८७४ 'कविवचन सुधा':

''जाने को तो यहां से तत्व खिंचकर जाता है और आने के शीशा खिलौना और कलम पिन्सिल आती है । बड़े बड़े एम. ए. और बी. ए. अब इस दुर्भिक्ष में किस काम आवैंगे, एक राजा अच्छा पढ़ा लिखा और एक बंसफोड़ कभी दोनों एक जंगली टापू में छोड़ दिये गये थे वहां के लोग उनकी बोली नहीं समझते थे और क्रूर थे राजा का सौन्दर्य बुद्धि विद्या वहां कुछ काम न आई और उस बंसफोड़ ने बांस और लकड़ी लेकर माला बनाई उसे देख कर जंगली लोग बड़े प्रसन्न हुए और उसी लकड़ी के माला की कृपा से उन दोनों को भोजन मिला । तो है देशवासियों तुम भी इस निद्रा से चौको इनके न्याय के भरोसे मत फूले रहो । ये विद्या कुछ काम न आवैगी यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हे कभी दैन्य न होगा नहीं तो अन्त में यहां का सब धन विलायत चला जायेगा तुम मुंह बाये रह जाओगे ।''

हरिश्चंद्र की जागरूकता का प्रमाण यह भी है कि वह विज्ञान की उन्नति चाहते थे । ''कविवचन सुधा'' में इस विषय पर लेख भी निकले । ९ मार्च १८७४ के अंक में लिखा— — सं०

''(विलायत में) एक लक्ष बइलर है, भाप के यंत्र हैं और एक एक की शक्ति ४० घोड़ों की है । एक घोड़े की शक्ति आठ मनुष्यों के बराबर है तो इस हिसाब से चलीस लाख घोड़े अर्थात तीन करोड़ बीस

लाख मनुष्यों का काम इन यंत्रों के द्वारा होता है ५ मनुष्य तो काम करते करते थक जाते हैं पर ये यंत्र कभी नहीं थकते और मनुष्यों के समान चार आना आठ आना रोज नहीं देना पड़ता केवल इनमें अग्नि प्रदीप करने से चलने लगते हैं . . . परदेश के कला कौशल्य ने इस देश पर चढ़ाई किया ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था ।''

एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात यह भी है कि आगे चलकर हरिश्चंद्र ने स्वदेशी का नारा लगाया। नारा ही नहीं, स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार की शपथ लेने के लिए 'कविवचन सुधा' २३.३.१८७४ के अंक में छपा। — सं०

''हम लोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा कि पहले से मोल ले चुके हैं और आज की मिली तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावैंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भांति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे । हिन्दुस्तान ही का बना कपड़ा स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देशी हितैषी इस उपाय के वृद्धि में अवश्य उद्योग करेंगे ।''

"कविवचन सुधा" (८.२.१८७४)

''कुछ काल पहले अंग्रेज लोग जब हिन्दुस्तान के विषय में व्याख्यान देते थे तब यही प्रकट करते थे कि हम केवल इस देश के लाभ अर्थ राज्य करते हैं यही चिल्ला चिल्ला कर सर्वदा कहा करते कि हम सदैव हिन्दुस्तान की बुद्धि के निमित्त विचार करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करैंगे और यहां के निवासियों को विद्यामृत पिलावैंगे और राज्य का प्रबन्ध किस भांति करना यह ज्ञान जब प्रजा को स्वत: हो जायेगा तब हम लोग हिन्दुस्तान का सब राज्य प्रबन्ध यहां के निवासियों को स्वाधीन कर देंगे और अंत को सब राम राम कह कर जहाज पर पैर रख स्वदेश गमन करैंगे । यह वार्ता हम लोग अपनी गड़ी हुई नहीं कहते । पर इन्हीं अंग्रेजों की और मुख्य करके पाद्रियों के जो व्याख्यान प्रसिद्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट प्रगट होता है यह प्रकार पाठकजनों के देखने में निस्संदेह आया ही होगा इसमें संदेह नहीं ।''

(२)

अंग्रेजों ने हम लोगों को विद्यामृत पिलाया और उस्से हमारे देश बान्धवो को बहुत लाभ हुए इसे हम लोग अमान्य नहीं करते परन्तु उन्हीं के कहने के अनुसार हिन्दुस्तान की वृद्धि का समय आने वाला हो सो तो एक तरफ रहा पर प्रतिदिन मूर्खता, दुर्भिक्षता और दैन्य प्राप्त होता जाता है । अंगरेजों ने उनको अपने विद्या की रुचि लगा कर राजनीति में उनके चित्त को आकर्षण किया और सच्ची विद्या उन्हें न दिया और यही कारण है कि हम लोग इनकी माया से मोहित हो गये और हम लोगों को अपनी हानि दृष्ट न पड़ी ।''

१६ फरवरी १८७४ के 'कविवचन सुधा' में:

''बंगाल में दुर्भिक्ष क्या है केवल अनीति के बीज का फल है क्या कारण है कि दिन दिन महंगायी बढ़ती जाती है और अन्न गत वर्ष में १२ सेर का विकता था सो इस वर्ष में ८ सेर बिकने लगा विचार करों कि बीस वर्ष बाद के पूर्व अन्न ४० सेर का बिकता था अब उसका पंचमांश क्यों हो गया ?''

७ मार्च १८७४ 'कविवचन सुधा'—

''सरकारी पक्ष का कहना है कि हिन्दुस्तान में पहले सब लोग लड़ते भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था । यह सब सरकार की कृपा से हुआ । हिन्दुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं । रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है । रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं । कुल मिलाकर २६ करोड़ रुपया बाहर जाता है ।

१८ मई सन् १८७४' कविवचन सुधा'

''अब तो प्रति वर्ष में कहीं न कहीं दुष्काल पड़ा ही रहता है मुख्य करके अंगरेजी राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका का रोग जो अब सम्पूर्ण भारत खंड में छा रहा है अंगरेजों के राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका का रोग जो अब सम्पूर्ण भारत खंड में छा रहा है अंगरेजों के राज के आरंभ से इसका प्रारम्भ हुआ है।

'' ... जब अंगरेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिन्दुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बन कर जाते हैं . . . इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।''

'कवि वचन सुधा' २० जुलाई १८७४

बंगाल में अकाल पड़ा है इस्से इसके समाप्त होने पर किताब का भाव निस्संदेह बहुत सस्ता हो जायेगा जहां तक कि टके सेर तक बिकै तो आश्चर्य नहीं, हम ग्राहकों को समाचार देते हैं कि वे प्रस्तुत हो रहे हैं केवल थोड़ा सा कागज रंगने झूडी मीठी रिपोर्ट कर देने पर खिताब मिल जायेगा पर ढंगबाजी शर्त है राय बहादुर राजा रौव्वाब स्टार सब बाजार में आवैंगे ग्राहक लोग मियानी खोल रक्खें।''

'कवि वचन सुधा' ३१.८.७४
'सच मत बोल'

''अखबार वाले इतना भूंकते हैं कोई नहीं सुनता अंधेर नगरी है व्यर्थ न्याय और आजादी देने का दावा है सब स्वार्थ साधते साधते हौ कहोगे गर्वमेंट के लोग तुमसे भला न मानेंगे सारांश यह कि सच्ची बातें जिनसे कहोगे व तुम्हें शत्रु जानैंगे।

''मुसलमान लोग अंग्रेजों की अपेक्षा सौगुन अपव्ययी थे, परन्तु वे लोग इस देश के निवासी थे इससे उनका अर्थ समुदाय इसी देश में व्यय होता था . . . जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेषित होकर स्वाधीन हुई वैसे ही भारतवर्ष में भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है परन्तु भारत वर्ष उपनिवेषित होने से इसके विपक्ष भी बहुत आपत्ति है।
भी बहुत आपत्ति है। बीस करोड़ भारतवर्ष को पचास हजार अंग्रेज शासन करते हैं ये लोग प्रायः शिक्षित और सभ्य हैं परन्तु इन्हीं लोगों के अत्याचार से सब भारतवर्षीगण दुखी रहे हैं।''

'हरिश्चंद्र मैगजीन' के पहले ही अंक में — **सं०**

अंग्रजों को घूस, सलाम बड़ेगी ऐड्रेसी सी कुछ मिलता है। धन विद्या कौशल सब उनके पास है। उन्हीं के आवभगत के लिए सभाऐं होती हैं। एका और बल उनके पास है। हिन्दुस्तानियों के हिस्से में मूर्खता है कायरता धक्के खाना पड़ा है। जो भाग्यशाली है वे दरवार में कुर्सी पाते हैं कौंसिल मेम्बरी और सितारे हिन्द का खिताब पाते हैं।''

सम्पादकीय नोट

खबरें

अकसर ''कविवचन सुधा' में बनारस आदि के बारे में खबरें भी छपती थी, सम्पादकीय टिप्पणी के साथ ऐसी ही दो तीन खबरें कवि वचन सुधा से दी जा रही है। इससे भारतेन्दु जी के समाचार संकलन और सम्पादकीय रुचि का पता चलता है।

— सं०

बनारस

(१)

अब की यहां दिवाली भी अच्छी नहीं भयी । शुक्रवार को पानी बरसने लगा तो दूसरे शनिवार तक सूर्य दृष्ट नहीं पड़े । सोमवार वाले दिन वायु का वेग इतना प्रचण्ड था कि खिड़कियों पर भी दीये न ठहर सकें ।

मघुराम या माघोराम नामें एक कोई ब्राहमण दशाश्वमेघ घाट पर रहता है उस का आगमन किसी प्रकार से एक पंजाबी के घर हो गया और वहां उसको किसी मृगनैनी के हाव भाव ने आसक्त कर लिया और यह बराबर वहां आने जाने लगा । जब इस बात का समाचार उस घर के मालिक को हुआ उसने इसका आना बंद कर दिया । फिर उसको कैसी व्याकुलता हुई होगी प्रेमी लोग भली भांति जानते हैं । दैवयोग से उस मालिक का एक पुत्र बीमार पड़ा । लोगों ने कहा अमुक जन भूत विद्या जानता है । तुमारा पुत्र उसी के कारण बीमार हुआ है । उन्होंने उसको बुलाने का उपयोग किया पर उसने उत्तर दिया कि जब तक वे आप मेरे घर पर न आवै मैं न आऊंगा यह उसके पास गये और वह आया और किसी प्रकार से दवा दारू करके लड़के को अच्छा किया, तब ७०० रु. और दुशाले की इच्छा प्रकट की और कहा कि यदि तुम न दोगे तो अबकी तुम्हारे पुत्र को मार ही डालेंगे । ये कुछ पढ़े लिखे भी हैं इससे यह जानते हैं कि यह सब झूठ है । पर इनके घर वाले मानते नहीं । अतः वह १०० लेने पर प्रस्तुत हुआ है पर वह बड़े विकल हैं कि क्या करें ।

हम लोगों ने सुना है उसका यहीं व्यापार है कि लोगों को धमका धमका कर रुपया पुजावे । क्या ऐसे आदमियों को सर्कार नहीं पकड़ती । इनका तो भलीभांति दण्ड करना चाहिए ।

(२)

पहली नवम्बर का प्रातःकाल साढ़े सात बजे गवर्नर जनरल बहादुर काशी में आये । महाराज विजयानगरम और महाराज बनारस और अन्य रईस आगे से मिलने के लिए स्टेशन पर ठहरे थे । स्टेशन की सजावट न्यूनाधि उसी प्रकार की थी जैसी डयूक साहब के समय हुई थी । इस पार आकर श्रीयुत लार्ड साहिब और काशीराज एक ही गाड़ी पर और सब लोग अपनी अपनी गाड़ियों पर आरोहण करके महाराज की नदेसर वाले कोठी में गये । दोपहर के अनन्तर दर्बार हुआ था । रात्रिकाल में रोशनी प्रसन्नता योग्य हुई थी और आतिशवाजी का वृतांत लिखा नहीं जाता जिन्होनें देखा वही लोग जानते हैं । तीसरी को प्रातःकाल गाजीपुर पधारे ।

कविवचन सुधा जिल्द दो नं० सनं० १८७०

"कविवचन सुधा" और "हरिश्चन्द्र मैगजीन" में प्रकाशित कुछ विज्ञापन और सूचनाएँ द्रष्टव्य हैं। इनसे भारतेन्दु के अध्येताओं को उनकी रुचि, धर्म और समाज के प्रति उनका लगाव तथा ज्ञान विस्तार की उनकी ललक का पता चलता है। भारतेन्दु व्यक्तित्व की समग्रता को यह सामग्रियां समेटें हैं। — सं०

शिवाला हटाकर सड़क बनाने पर। — सं०

"शिवाला"

काशी में चौक से गुदोलिया तक जो नई सड़क निकली है उसके बीच में एक शिवाला है ईश्वर उस्को खुदने से बचावै नहीं तो हिन्दुओं के चित्त में इस्का बड़ा खेद होगा निश्चय है कि सरकार इस पर ध्यान देगी और अवश्य ध्यान देना चाहिए । यह भी सुना गया है कि किसी पंडित ने यह कह दिया है कि वह शिवलिंग तो वेश्या द्वारा स्थापित है इस्से खोदने में दोष नहीं : धिक धिक उस्की बुद्दि ऐसा जो सोचा

जायगा तो बड़े बड़े स्थानों में यह पोल निकलेगी ऐसा कदापि न होना चाहिए और हिन्दुओं का कल्याण भी इसी में है कि वह शिवाला यथा स्थित रहे।

—सम्पादकीय टिप्पड़ी

कविवचन सुधा जिल्द २ नं० १९ सं० १९२८

एक बार हिजड़ो पर भी आपत्ति आयी थी

हिजड़ों के लिए सूचना:

हिजड़ों के लिए एक नयी नीति प्रस्तुत की गयी है। उसके एक विभाग में लिखा है कि यदि कोई हिजड़ा स्त्री का वस्त्र धारण कर गली या सड़क में नाचैगा वा गावैगा और कोई इसी प्रकार का कर्म करैगा तो उसको दो वर्ष कारावद्ध होना पड़ेगा।

कविवचन सुधा ११ नवम्बर १८७१ जि. ३ नं. ६

भारतेन्दु की पुस्तक प्रेम और ज्ञान की पिपासा —सं०

विज्ञापन:—

सन् १८७१ की पहली जनवरी से ३१ दिसम्बर तक हिन्दी वा संस्कृत में जितनी पुस्तकें छपैं मैं सब में की एक एक प्रति मोल लेता हूँ। सब छापने वाले को उचित है कि जो पुस्तक नई छापैं एक प्रति भेंज दें और मूल्य मंगवा लें।

हरिश्चंद्र

२६ दिसम्बर, १८७१

कविवचन सुधा जि. ३, २६ दिसम्बर, १८७१

आश्वासन के बाद भी चंदा नहीं मिलता था। —सं.

विज्ञापन:

श्री रामनारायण दास आनरेरी मजिस्ट्रेट आपने मेरे स्कूल में ५ रुपये मासिक देने को कहा था उसको १४ महीने हुए परन्तु अनुग्रह नहीं किया इन दिनों स्कूल में रुपयों की आवश्यकता है इससे आशा करता हूँ कि आप शीघ्र भेज देंगे।

१ नवम्बर १८७०

हरिश्चंद्र

मालिक-चौखम्बा स्कूल

कविवचन सुधा जिल्द दो नम्बर ५ सं० १९२७

नकली अशर्फियों के सन्दर्भ में —सं०

सूचना

आजकल किसी ने बहुत से झूठी अशरफिया बनाकर चलाई है। यद्यपि हम लोगों ने चाहा सविस्तार वृतांत लिखें परन्तु हमको अभी ठीक समाचार नहीं मिला, आशा है कि भविष्य नम्बर में कुछ लिखैं।

कविवचन सुधा जि. २ नं. ८ सप्लीमेंट पौष कृष्ण ३० सं० १९२७

हैजे से कैसे बचे—सं०

सूचना

इन हैजे का उपद्रव बहुतायत से फैल जाता है इस हेतु लोगों को उचित है कि नीचे लिखा हुआ उपाय करें। निश्चय है कि इस उपाय से बड़ा बचाव होगा।

सब लोग छोटे या बड़े एक एक ताम्बें का पैसा या अधेला या तांवे का जन्तर या तावें का कोई टुकड़ा डोरे में पिरोकर गले में इस चाल से पहिरे कि वह छाती के नीचे लटकता रहे और धूप में बहुत न फिरैं और भोजन दस बजे तक कर लें और घर में मैलापन न रखैं और हैजे की चर्चा बहुत न करैं।

निश्चय ही जो लोग यह उपाय करेंगे उनको ईश्वर उसे बुरे रोग से बचावेगा।

—हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा चैत्र १५, १९२७ जि० २ नं० १५ सप्लीमेन्ट

असमर्थता और अस्वस्थता की विज्ञपित होती थी —सं०

विशेष विज्ञापन

सम्पादक के अस्वस्य होने से यह अंक विशेष मनोरंजक नहीं हुआ। परन्तु हम अपने ग्राहकों को समाचार देते हैं कि अगला नम्बर बहुत ही मनोरंजक होगा।

हरिश्चंद्र मैगजीन १५ फरवरी १८७४

इस पत्र के सम्पादक का जी अच्छा नहीं है। और वह व्याधि ऐसी है कि पढ़ने लिखने से और भी बढ़ती है। इस्से ग्राहकों से निवेदन है कि जब तक ईश्वर उसे फि ज्यों का त्यों भली भांति चंगा न कर दे तब तक इस अप्रबन्ध मात्र को आप लोग क्षमा करेंगे।

हरिश्चंद्र मैगजीन मार्च १५, १८७४

इश्तिहार

कवितावर्द्धिनी की दूसरी सभा अगहन कृष्ण को होगी

समस्याः—बीस रवि दस ससि संगही उदै भये वर्णन संध्या काः चाहे जिस छंद में हो।

सूड़िया नई धर्मशाला कार्तिक कृष्ण ५ **—हरिश्चंद्र**

क. व० सभा का लेखाध्यक्ष

कविवचन सुधा-कार्तिककृष्ण ३० सं. १९२७ जिल्द दो नं० ४

कवितावर्द्धिनी सभाः

कवितावर्द्धिनी सभा की तीसरी सभा पूस बदी एक को सूड़िया पर नई धर्मशाला में होगी।

१. समस्या — खेलत आंगन नन्द को लाला।

२. वर्णन — पुरुष के वा स्त्री के खुले हुए बालों की शोभा का वर्णन।

मार्गशीर्ष कृष्ण ३० **हरिश्चंद्र**

क. ब. सभा कार्यालय **लेखाध्यक्ष, क. ब. सभा**

कविवचन सुधा— जि० २ सं० ६ सम्वत १९२७

कविवचन सुधा-जि. २ सं. ६ सम्वत १९२७

प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर प्रकाशित विज्ञापन —सं०

''श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजुकुमार आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे। इस के वर्णन में सब भाषा के कवियों श्री कविता एकत्र संग्रह कर के पुस्तकाकार छापी जायेगी। यह सब कविता श्री महाराणी वा कुमार वा उन के वंश की कीर्ति वर्णन में वा उन के आशीर्वाद में होगी। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, महाराष्ट्री, तमिल, तेलंग इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवशित हो सकेगी। कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हो। यों तो बिना कुछ नमक मिर्च मिलाए कविता होती हो नहीं''।

चौखम्बा, बनारस **हरिश्चंद्र**

प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन संबंधी कविता के लिए कविवचन सुधा में भारतेन्दु बाबू द्वारा छपवाया गया विज्ञापन। —सं०

''श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजकुमार प्रिन्स आफ वेल्स आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे, इसके वर्णन में सब भाषा के कवियों की कविता एकत्र संग्रह करके पुस्तकाकार छापी जाएगी। यह सब कविता श्री महाराणी के वा कुमार के वा उनके वंश की कीर्ति में वा उनके आर्शीवाद में होगी। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलगु इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवेशित हो सकेगी। कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हों, यों तो बिना कुछ नमक मिर्च लगाए कविता होती ही नहीं। इसमें जिनकी कविता छपेगी एक-एक प्रति इस पुस्तक की मिलेगी और जो लोग सहायतापूर्वक वित्ता भिजवावेंगे वे भी पुस्तक पावेंगे। जो कोई कविता भेजै, वह स्पष्ट अक्षरों में भेजै। ३० अक्टोबर के बाद कोई कविता आवैगी तो वह न छापी जायगी। यदि पत्र बेरिंग भेजै तो लिफाफे पर ''राजकुमार संबंधी कविता'' इतना लिख दें और कविता बहुत लम्बी चौड़ी भी न हो। कविता चुनने का अधिकार हमने अपनें हाथ में रखा है।

हरिश्चन्द्र
काशी पश्चिमोत्तरदेशी

''मार्गशीर्ष महिमा' पुस्तक के विषय में किया गया विज्ञापन —सं०

चतुर्वर्ग को मोखादिक पाने का बहुत सहज उपायः— हम लोग माघ, वैशाख, कार्तिकादि महीने को अति पवित्र जानकर स्नानादि करते हैं परन्तु हम लोग नहीं जानते कि एक महीना जो इन सबों से महापुनीत और थोड़े साधन में बहुत फल का देनेवाला है, बच गया है और उसमें हम लोग कुछ स्नानादि नहीं करते जिसकी प्रसिद्दि के वास्ते हम बड़े आनंद से यह इश्तहार देते हैं।

''वह गोप्य मास जिसका माहात्म्य सब शास्त्रों में बड़े आदर से कहा गया है मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन का महीना है, जिस के गुण गान करने से महात्मा लोग तृप्त नहीं होते और यह महीना सब महीनों का राजा और भगवान का स्वरूप है जैसा कि आपने श्रीमद्भगवत गीता में और श्री भागवत एकादश स्कंध में आज्ञा की है। और श्री कुमारिकागणों ने इसी के स्थान से श्रीकृष्ण को पाया था और स्कन्दपुराण में इस की बड़ी स्तुति लिखी है यथा ''सर्वयज्ञेपु यत्पुण्यं, सर्वतीर्थेषु यत्फलं ।। सहसाप सहसाप्रीति तत्सर्व्वम्मार्गशीर्षे कृते सुन ।।१।। यथाध्ययनदानाचैस्सर्व्वतीर्थावगाहनैः। सन्यासेन च योगेन नाहम्वश्यो भवामि च ।।२।। स्नानेन दानेन च पूजनेन होमे विधाने तप आदितश्च। वश्यो यथा मार्गशिरे स्वमासि तथा न चान्येषुहि गर्भमुक्ता ।।३।। मार्गशीर्षन्न कुर्वन्ति ये नराः पापामोहिताः। पापरूपा हि ते ज्ञेयाः कलिकाले

विशेषतः ।।४।। माघाच्छनगुणम्पुण्यम्वे शाखे मासि लम्वते । तम्मात्सहस्रगुणितन्तुलासंस्थे दिवाकरे ।।५।। कोटिगुणितं वृश्चिकस्थे दिवाकरे । मार्गशीर्षे धिकस्तस्मात्सर्व्वदा मम ।।६।। और भी बहुत सा माहात्म्य है कहां तक लिखें अर्थात् इस महीने में प्रातः स्नान तुलसी और कदम्बपूजन से बढ़ कर मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं है और कदम्बपूजन इस में मुख्यता विशेष है । यथा । पूजवेत्संस्मरेद्यस्तु कदम्बंसर्व्वकामदं । सर्व्वान् कामानवापीति इहामुत्र न संशयः ।। इस वास्ते आप लोग इस में जहां तक बन पड़े स्नान दानादि कीजिए और दूसरे लोगों को भी इस का उपदेश कीजिए किमधिकम्, इति ।

चौखम्भा बनारस **हरिश्चन्द्र**

यह विज्ञापन ''कविवचन सुधा' में छपा था। —सं०

सब पर विदित हो कि फ्रांसीस में जो युद्ध हुआ है और हो रहा है उस का वर्णन जो कोई नाटक की रीति से करेगा तो उस को मेरी ओर से ४००) पारितोषिक मिलेगा, परन्तु उस के ये नियम हैं:-

(१) पुस्तक बीररस अंगी होता और करुणा और रौद्र उसके अंग होंगे ।

(२) इस के पढ़ने से युद्ध का आद्योपान्त सब वृतान्त जाना जाय कि युद्ध कब और क्यों आरम्भ हुआ और कब तक रहा और इस में क्या-क्या हुआ ।

(३) इस का फल यह हो कि पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य सन्धि और विग्रह इत्यादि नीति में और युद्धकर्म्म में चतुर हो जाय और २०० पृष्ठ से न्यून न हो ।

(३) नीचे लिखे हुए लोग इस की परीक्षा करेंगे कि पुस्तक यथोचित बनी है कि नहीं तब पारितोषिक मिलेगा । बाबू राजेन्द्र लाल मित्र, कुंअर लक्षण सिंह ।

२४.२.७८ **हरिश्चन्द्र**

१६ सितम्बर १८७२ के अंक में एक विज्ञापन द्वारा यह ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी उर्दू में कासिद नाम का एक पत्र भी निकालना चाहते थे। —सं०

''कासिद ।

सातएं दिन आवैगा ।।''

नये हितकारी और विचित्र समाचार कहैगा ।।''

यह एक साप्ताहिक उर्दू पत्र निकलैगा इस्में अनेक हित की नये उदगार की साम्प्रत समयानुसार लोक वृद्धि की और अनेक शुभ समाचार की बातैं रहैंगी यह पत्र बहुत उत्तम बड़े बड़े पृष्ठों में स्वच्छ अक्षरों में छपैगा ।

मूल्य-१० रु. वार्षिक

हरिश्चन्द्र उद्यमकर्ता

''भारत मित्र के १८८१ के कई अंको में' हरिश्चंद्र के नाम से गोवध निवारण सम्बन्धी साहित्य रचना के लिए एक विज्ञापन छपा है। —सं०

सूचना

गोवध निवारण विषयक भाषा काव्य जो रचना करेगा उसको ५ रु०, १५ रु०, २५ रु०, जिस योग्य होगा पुरस्कार दिया जायेगा । कोई नाटक या उपाख्यान (नावेल दृष्टान्त बहुत अच्छा किसी विषय

कविवचन सुधा-जि. २ सं. ६ सम्वत १९२७

प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर प्रकाशित विज्ञापन —सं०

''श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजुकुमार आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे । इस के वर्णन में सब भाषा के कवियों श्रीं कविता एकत्र संग्रह कर के पुस्तकाकार छापी जायेगी । यह सब कविता श्री महाराणी वा कुमार वा उन के वंश की कीर्ति वर्णन में वा उन के आशीर्वाद में होगी । संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, महाराष्ट्री, तमिल, तेलंग इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवशित हो सकेगी । कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हो । यों तो बिना कुछ नमक मिर्च मिलाए कविता होती हो नही'' ।

चौखम्बा, बनारस **हरिश्चंद्र**

प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन संबंधी कविता के लिए कविवचन सुधा में भारतेन्दु बाबू द्वारा छपवाया गया विज्ञापन । —सं०

''श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजकुमार प्रिन्स आफ वेल्स आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे, इसके वर्णन में सब भाषा के कवियों की कविता एकत्र संग्रह करके पुस्तकाकार छापी जाएगी । यह सब कविता श्री महाराणी के वा कुमार के वा उनके वंश की कीर्ति में वा उनके आर्शीवाद में होगी । संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलगु इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवेशित हो सकेगी । कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हों, यों तो बिना कुछ नमक मिर्च लगाए कविता होती ही नहीं । इसमें जिनकी कविता छपेगी एक-एक प्रति इस पुस्तक की मिलेगी और जो लोग सहायतापूर्वक वित्ता भिजवावेंगे वे भी पुस्तक पावेंगे । जो कोई कविता भेजै, वह स्पष्ट अक्षरों में भेजै । ३० अक्टोबर के बाद कोई कविता आवैगी तो वह न छापी जायगी । यदि पत्र बेरिंग भेजै तो लिफाफे पर ''राजकुमार संबंधी कविता'' इतना लिख दें और कविता बहुत लम्बी चौड़ी भी न हो । कविता चुनने का अधिकार हमने अपने हाथ में रखा है ।

हरिश्चन्द्र
काशी पश्चिमोत्तरदेशी

''मार्गशीर्ष महिमा' पुस्तक के विषय में किया गया विज्ञापन —सं०

चतुर्वर्ग को मोखादिक पाने का बहुत सहज उपायः— हम लोग माघ, वैशाख, कार्तिकादि महीने को अति पवित्र जानकर स्नानादि करते हैं परन्तु हम लोग नहीं जानते कि एक महीना जो इन सबों से महापुनीत और थोड़े साधन में बहुत फल का देनेवाला है, बच गया है और उसमें हम लोग कुछ स्नानादि नहीं करते जिसकी प्रसिद्वि के वास्ते हम बड़े आनंद से यह इश्तहार देते हैं ।

''वह गोप्य मास जिसका माहात्म्य सब शास्त्रों में बड़े आदर से कहा गया है मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन का महीना है, जिस के गुण गान करने से महात्मा लोग तृप्त नहीं होते और यह महीना सब महीनों का राजा और भगवान का स्वरूप है जैसा कि आपने श्रीमद्‌भगवत गीता में और श्री भागवत एकादश स्कंध में आज्ञा की है । और श्री कुमारिकागणों ने इसी के स्थान से श्रीकृष्ण को पाया था और स्कन्दपुराण में इस की बड़ी स्तुति लिखी है यथा ''सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं, सर्वतीर्थेषु यत्फलं ।। सहसाप सहसाप्रीति तत्सर्व्वम्मार्गशीर्षे कृते सुन ।।१।। यथाध्ययनदानाद्यैस्सर्व्वतीर्थावगाहनैः । सन्यासेन च योगेन नाहम्वश्यो भवामि च ।।२।। स्नानेन दानेन च पूजनेन होमे विधाने तप आदितश्च । वश्यो यथा मार्गशिरे स्वमासि तथा न चान्येपुहि गर्ममुक्ता ।।३।। मार्गशीर्षन्न कुर्वन्ति ये नराः पापामोहिताः । पापरूपा हि ते ज्ञेयाः कलिकाले

विशेषतः ।।४।। माघाच्छनगुणम्पुण्यम्वे शाखे मासि लम्बते । तम्मात्सहस्रगुणितन्तुलासंस्थे दिवाकरे ।।५।। कोटिगुणितं वृश्चिकस्थे दिवाकरे । मार्गशीर्षे धिकस्तस्प्रात्सर्व्वदा मम ।।६।। और भी बहुत सा माहात्म्य है कहां तक लिखैं अर्थात् इस महीने में प्रातः स्नान तुलसी और कदम्बपूजन से बढ़ कर मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं है और कदम्बपूजन इस में मुख्यता विशेष है । यथा । पूजवेत्संस्मरेद्यस्तु कदम्बंसर्व्वकामदं । सर्व्वान् कामानवापीति इहामुत्र न संशयः ।। इस वास्ते आप लोग इस में जहां तक बन पड़े स्नान दानादि कीजिए और दूसरे लोगों को भी इस का उपदेश कीजिए किमधिकम्, इति ।

चौखम्भा बनारस **हरिश्चन्द्र**

यह विज्ञापन "कविवचन सुधा" में छपा था। —सं०

सब पर विदित हो कि फ्रांसीस में जो युद्ध हुआ है और हो रहा है उस का वर्णन जो कोई नाटक की रीति से करेगा तो उस को मेरी ओर से ४००) पारितोषिक मिलेगा, परन्तु उस के ये नियम हैं:-

(१) पुस्तक बीररस अंगी होता और करुणा और रौद्र उसके अंग होंगे ।

(२) इस के पढ़ने से युद्ध का आद्योपान्त सब वृतान्त जाना जाय कि युद्ध कब और क्यों आरम्भ हुआ और कब तक रहा और इस में क्या-क्या हुआ ।

ङ३) इस का फल यह हो कि पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य सन्धि और विग्रह इत्यादि नीति में और युद्धकर्म्म में चतुर हो जाय और २०० पृष्ठ से न्यून न हो ।

(३) नीचे लिखे हुए लोग इस की परीक्षा करेंगे कि पुस्तक यथोचित बनी है कि नहीं तब पारितोषिक मिलेगा । बाबू राजेन्द्र लाल मित्र, कुंअर लक्षण सिंह ।

२४.२.७८ **हरिश्चन्द्र**

१६ सितम्बर १८७२ के अंक में एक विज्ञापन द्वारा यह ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी उर्दू में कासिद नाम का एक पत्र भी निकालना चाहते थे । —सं०

"कासिद ।

सातएं दिन आवैगा ।।"

नये हितकारी और विचित्र समाचार कहैगा ।।"

यह एक साप्ताहिक उर्दू पत्र निकलैगा इस्में अनेक हित की नये उदगार की साम्प्रत समयानुसार लोक वृद्धि की और अनेक शुभ समाचार की बातैं रहैंगी यह पत्र बहुत उत्तम बड़े बड़े पृष्ठों में स्वच्छ अक्षरों में छपैगा ।

मूल्य-१० रु. वार्षिक

हरिश्चन्द्र उद्यमकर्ता

"भारत मित्र के १८८१ के कई अंको में' हरिश्चंद्र के नाम से गोवध निवारण सम्बन्धी साहित्य रचना के लिए एक विज्ञापन छपा है। —सं०

सूचना

गोवध निवारण विषयक भाषा काव्य जो रचना करेगा उसको ५ रु०, १५ रु०, २५ रु०, जिस योग्य होगा पुरस्कार दिया जायेगा । कोई नाटक या उपाख्यान (नावेल दुखान्त बहुत अच्छा किसी विषय

विविद हो कि यह लीविंग साहब डाक्टर ने निर्माण किया है और हम लोगों ने इन्द्रप्रकाश आफिस से अभी इसके केवल थोड़े से बाट्ल परीक्षा के हेतु मंगवाऐ हैं । निश्चय यह बड़ी अपूर्व वस्तु है क्योंकि निर्बल या अन्न से चिढ़ने वाले या मातृहीन बालकों का तो यह जीवा है और निर्बल मनुष्यों का भी यह भक्ष्य के समान है जिनको मंगाना हो मंगा लें ।

मूल्य-२ रु. **हरिश्चंद्र**

कविवचन सुधा २० जुलाई सन् १८७२

"बनारसी माल"

विदेशी लोगों पर विदित हो कि हम लोगों के यहां बनारसी दुपट्टे साड़ी रूमाल मन्रील कमखाव के थान, चोलखण्ड चिनियापोत और छोटे रूमाल की टोपी इत्यादि अनेक वस्तु बहुत उत्तम और सस्ती बनती है । जिन सौदागर या रसिकों को मंगाना हो वो हम लोगों को पत्र व्यवहार करै निश्चय है कि वे इसमें लाभ भी उठावैंगे और अच्छी वस्तु पाकर प्रसन्न भी होंगे ।

हरिश्चंद्र
चौखम्बा, बनारस

कविवचन सुधा जिल्द ३ नं. १९

इश्तिहार

मुद्रिका । **छल्ले ।।** **अगूंठियों ।।।**

हम लोगों ने नई चाल के छल्ले सोच कर निकाले हैं और उनमें नगो के नाम पर और रंग के मत सम्बन्धी वा प्रीति सम्बन्धी शब्द निकालते हैं अंग्रेजी फारसी और हिन्दी के वर्णों में लोगों के नाम के मुख्यलें अक्षर भी निकल सकते हैं जिन लोगों को ऐसी अपूर्व मुद्रिका बनवानी हो वह अपना नाम और आशय लिखे तो वैसी ही बन जायेगी उसका उदाहरण हम लोग खलों के भय से स्पष्ट रीति से नहीं लिख सकते क्योंकि यदि लोग इस विषय को जान जायेंगें तो हम लोगों के परम श्रम से फलस्वी अगूंठियों को सहज में बना लेंगे इस्से जिनको जो आज्ञा देनी हो उसका आशय हम लोगों को लिखे ।

हरिश्चंद्र
(बनारस)

कविवचन सुधा जि० ३ अंक १९, ७ मई १८७२

पुराने सिक्के

हम लोगों ने पुराने सिक्के एकत्र किये हैं जिनको भरपूर मूल्य देकर लेना हो लिखैं ।

हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा जिल्द ३ नं० १९ सन् १८७२

पर कोई लिखे जिसकी कथा मनोहर और करुणापूर्व तथा आर्टर्यजन के चित्त में घृणा लज्जा और उत्साह बढ़ाने वाली हो तो ५० रु० से १०० रु० तक पारितोषिक दिया जायेगा ग्रंथ उत्तम विचित्र कथापूर्ण और छोटा न हो ।

हरिश्चंद्र

इसी आशय का हरिश्चंद्र ने बाबू रामदीन सिंह जी को एक पत्र भी लिखा था । —सं.

पुस्तकालय

किन्ही शीतलप्रसाद के पुस्तकालय के सन्दर्भ में प्रकाशित इस विज्ञापन से भारतेन्दु के पुस्तक एवं पुस्तकालय प्रेम पर प्रकाश पड़ता है । —सं०

आपका पुस्तकालय सहायहीन हो जर्जर हो गया हम आप लोगों से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग कृपा कर थोड़ी थोड़ी सहायता करें । पुही पुही तालाब भरता है । इस लोकोक्ति के अनुसार यह शुभ कार्य भलीभांति सम्पन्न हो जायेगा ।

गत मुनशी जी के बाबू रामदास उस पुस्तकालय को सहायता करने को सब भांति उद्यत है और श्री बाबू गुरुदास मित्र ने घर भी बहुत उत्तम दिया है और उस्मे पुस्तकें भी बहुत भाषा की रक्खी है पर केवल परें की सहायता के बिना वह नष्ट प्राय हो रहा है आशा इस पत्र को देखने वाले कुछ सहायता अवश्य करेंगे । वरन मेरी यह विनती है कि सहायता थोड़ी ही की जाय जिस्में उसका निर्वाह निष्कंटक होता रहे ।

आपलोगों का दास. हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा १७ अगस्त सन् १८७२

कुछ व्यापारिक विज्ञापन

लवेन्डर का सपटन
ल्फोरिडा वारद सुगन्ध का जल

यह सुगन्धी और सब सुगन्धियों से अच्छी है सिर में लगाने कपड़े में लगाने और रूमाल में छिड़कने योग्य है और सिर की व्यथा घूमटा, जी मचलना और गरमी को इसकी सुगन्ध दूर करती है और इस्से मुंह धोने से मुह के मुहांसे और किसी प्रकार के मुंह के दाग हो तो दूर जाते हैं और दांत में पीड़ा हो तो पानी मिला कुल्ली करने से दांत भी शुद्ध हो जाते हैं । अभी हम लोगो ने इसको इन्द्र प्रकाश आफिस से थोड़ा सा नमूने के हेतु मंगाया है जिसको मंगाना हो लिखै ।

हरिश्चंद्र

मूल्य ३) रु

कविवचन सुधा २० जुलाई सन् १८७२

"शुद्ध माता का दूध"

बालक का अशक्त को
केवल यही योग्य भक्ष्य है ।

फोटोग्राफ

फोटोग्राफ का हम लोगों ने नया प्रबन्ध किया है और अनेक चित्र राजाओं के बनारस के रईसों और प्रसिद्ध स्थानों के छापे हैं। जिनको लेने की इच्छा हो मुझे लिखे।

हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा जिल्द ३ नं० १९ सन् १८७१

इस विज्ञापन से भारतेन्दु की काष्ठ औषधियों के प्रति आस्था झलकती है।

— सं०

नये सूचना पत्र

सब रोगों का मूल रक्त बिगड़ना
परम उपचार रक्त शुद्ध करना।
स्वल्प है शीघ्रता करौ।।।

हम लोगों के पास विष्टलस सारमा परीक्षा के कुछ बाटल आ गये हैं और विकने के हेतु रक्खे हैं जिनको मंगवाना हो शीघ्र मंगवा लें क्योंकि वस्तु थोड़ी है ग्राहक बहुत।।।

इसके पीने का उपय उसी में कागज पर चिपकाया है। विदित हो कि यह शुद्ध काष्ट औषध है और रक्त के यावत् विकार जैसा घबड़ाहट, गजकर्ण, दाद, फोड़े, ब्रण, रक्तवित्त, गंडमाला, अंग से चिनगारी सा निकलना, गरमी का कोई रोग, अंग पर लाल या काले चकोटें पड़ना वा किसी रस के खाने से रक्त का बिगाड़ होना इन सब रोगों को यह गुण करता है।

यह निर्बल वा बालकों को भी दिया जा सकता है।

हरिश्चंद्र

मूल्य-बड़ा बाटल-६।।)

कविवचन सुधा ५ जुलाई १८७२

कुरान शरीफ

अर्थात मुसलमानों के मन की पवित्र धर्म पुस्तक हिन्दी भाषा में। इस बड़े ग्रंथ को मैंने बड़े परिश्रम से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है और अब इसको छापने का भी विचार है परन्तु बड़ा ग्रंथ है और व्यय विशेष है इस्से यह इच्छा की है कि पहिले १०० ग्राहक ठहरा कर तब छापना आरम्भ करुं इस्से विद्यानुसरागी और मतों के जानकारों से निवेदन है कि वे लोग उसके छापने का उत्साह अपने आज्ञापत्र से शीघ्र बढ़ावे और मूल्य इसका छपने के पीछे व्यय के अनुसार रखा जायेगा परन्तु किसी भी दशा में १० रु. से वह विशेष न होगा।

हरिश्चंद्र

१२ जनवरी

कविवचन सुधा में प्रकाशित

— सं०

अप्रैल १८८४ में महारानी के चतुर्थ पुत्र ड्यूक आफ अल्बनी के अकाल मृत्यु पर के शोक सभा करने की सोची और हिन्दी अंग्रेजी तथा उर्दू में आशय की नोटिस छपावा बांटी । — सं०

''हम लोगों की राजराजेश्वरी के चतुर्थ पुत्र के अकालमृत्यु पर शोक प्रकाश करने की १२ अप्रैल शनिवार की सन्ध्या को ६ बजे टाउन हाल में सर्वसाधारण की सभा होगी । श्री राजराजेश्वरी की सब प्रजा की वहां आना उचित है ।''

हरिश्चंद्र

मार्च १८०८ ई० के चन्द्रग्रहण के अवसर पर सूतक के विषय में भारतेन्दु के विचार । — सं०

''इस वर्ष में जो चन्द्रमा का ग्रस्तोदय ग्रहण हुआ था उस में ज्योतिष के अनुसार तीसरे पहर से लोगों ने सूतक माना और हम लोगों के श्री श्री बल्ल्भमीय सम्प्रदाय की रीति के अनुसार श्री ठाकुर जी भी उसी समय से अलग विराजे, किन्तु ऐसा निश्चय होता है कि शास्त्रमान से सूतक मानने की आवश्यकता नहीं । व्यर्थ ठाकुर जी को इतने पहिले कष्ट दिया क्योंकि ग्रहण का सूतक ग्रहण के देने बिना नहीं होता यथा ''सर्व्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहु दर्शनं', 'स्नानं दानं तपः श्राद्ध मनन्तं राहुदर्शने', 'दत्तं जप्तं हुतं स्नातभनन्तं राहुदर्शने' इत्यादि वाक्यों में जो दर्शन शब्द है और 'देखे गहन सुने सूतक' इस लोक कहावत से गहन जब तक लोक के दृष्टिगोचर न हो तब तक उस के सूतक का आरम्भ नहीं होता । अतएव 'सूय्यग्रहो यदा राचो दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तब स्नानं न कर्तव्यं दद्याद्वानं च न कञ्चित्' विधान किया है । जो कहो ग्रस्तास्तु में शस्त्ररीति से जब तक उग्रह न हो तब तक सूतक क्यों मानते हैं ? तो इस से उस से भेद है । उस में दर्शन को कर सूतक लग चुका है, उस की निवृत्ति शास्त्र रीति में हगहमान कर करना और यहां सूतक का प्रारम्भ ही नहीं हुआ है । जो कहो कि ऐसा मान कर फिर पहर दिन चढ़ने के भीतर भोजन करना क्योंकि चन्द्रग्रहण के पहिले केवल तीन पहर निषेध है सो नहीं । इस भोजन के हेतु एक विशेष वाक्य है यथा 'सन्ध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । दिवा तब न भोक्तव्य रात्रो नैव कदाचन ।''

भारतेन्दु को ऋण का चस्का कब लगा यह उनकी इस याददाश्त से पता चलता है । — सं०

''एक बेर कोई कलकत्ते से लालरंग की चन्द्रजीति पहले पहल मंगल के मेले में लाया था । घर की नाव तमाशा देखने की हुई थी । हम ने वाल स्वभाव से चार रुपये की पावभर बुकनी मंगाकर उस पर छोड़ दी । पीछे उसका रुपया मुनीबजी ने नहीं दिया । जनाने में इत्तिला हुई । मायजी ने भी नहीं दिया । बड़ा पचड़ा हुआ । एक दिन भोजन नहीं किया । अंत में तंग होकर छग्गनलाल नामक एक मनुष्य से पुरजा लिख कर चार रुपया मंगाया तो उन्होंने उसी समय भेज दिया । वही मानो चसका लगा । बालको के सुधारने की इच्छा करने वाले माता पिता इस किस्से को कान लगाकर सुनें । उस समय वह चार न देना कैसा विष हुआ । अंत में चार लाख ले गया । वारुद तो चल ही गई थी बिना दिये कैसे काम चलता । यौवनारम्भ में बालक की इतनी कैद वा निगरानी खराब करती है ।''

भारतेन्दु द्वारा अनेक उपमानो से सूर्योदय वर्णन । —सं.

''देखो सूर्य्य का उदय हो गया । अहा । इस की शोभा इस समय ऐसी दिखाई पड़ती है मानों अन्धकार को जोतने को दिन ने यह गोला मारा है . . . वा आकाश का यह कोई बड़ा लाल कमल खिला है . . ., वा काल के निर्लेप होने की सौगन्ध खाने को यह तपाया हुआ लोहे का गोला है, वा उस बड़े आतिशवाज का जिस ने रात को अद्भूत गंज सितारा छोड़ा था यह दिन का गुबार है . . . या रात को सुख पाने वाली दिन को वियोगिनी होने वाली स्त्रियों की वियोगाग्नि का कुंड है, . . . वा काल खिलाड़ी का यह लाल पतंग है, वा समय रेल की आगमनसूचक यह आगे की लाल लालटेन है . . . वा समयरूपी चालान को पेटो पर यह लाह की मोहर है, वा आकाशरूपी दिगम्बर का भीख मांगने का यह तांबे का कटोरा है . . ., वा अंधेरे से लड़ने वाले चन्द्रमावीर की यह खून लगी ढाल है, वा दिशकामिनी का यह सोने का कर्णफूल है, . . .वा उस हठीले बालक के खेल की यह चकई है जो उस की आज्ञारूप डोर पर ऊंची नीची हुआ करती है . . ., वा सूर्य्यवंशियों के अभिमान की गठरी है 'गजर देने का यह घंटा है . . ., वा सूर्य्यवंशियों के अभिमान की गठरी है' इत्यादि । जिस को इस उपमावली को बहार देखनी हो वह स्वयं इस प्रबन्ध का पाठ करें ।

गुरुसारणी

''बालाबोधिनी'' भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा स्त्रियों के लिए ही प्रकाशित की जाती थी । इसमें गुरुसारणी नाम का एक कालम होता था, जिसमें घर के हिसाब किताब के कविता में सूत्र प्रकाशित किये जाते थे । जिसे भारतेन्दु के ही समकालीन कवि हनुमान किशोर ने बनाये थे । बाद मे यह पुस्तकाकार छपा जिसकी भूमिका भारतेन्दु बाबू ने लिखी थी । —सं.

(भूमिका)

विदित हो कि अपनी छोटी बुद्धि के अनुसार छोटा सा ग्रंथ प्रथम गुरुसारणी लोगों के उपकार के लिए बनाया, जो इस्से बहुत मनुस्यों का उपकार होगा और रुचि होगी तो इससे अच्छे अच्छे ग्रंथ और भी तैयार हुआ करेंगे । प्रथम इस ग्रंथ के बनाने से अभित्त हमारा यह है कि बहुधा लोग अपने पुत्रों को कड़के सबब से पढ़ाने लिखाने में सुसती कर जाते हैं और कहते हैं कि ''लड़का जब सयाना होगा और जीता रहेगा पढ़ लेगा'' तो हुशियार होने पर मनुष्य को अपने कमाने खाने को फिकर हो जाती है और विद्या पढ़ने में मन नहीं लगता । कारण इसका यह है कि एक मन दो जगह कैसे कम से तो वही मनुष्य उस अवस्था में व्यवहारिक कर्म में बहुत कठिनता से हिसाब जान सकते हैं । ऐसे मनुस्यों के हेतु यह ग्रंथ जनाब मुहल्ला अलकाव मिस्टर ''सांदरस'' साहेब बहादुर के आज्ञानुसार बनारस के रहने वाले पण्डित हनुमान किशोर ने बनाया । और जो हिसाब हरक्त के लेन देन में काम पड़ता है । छंद प्रबन्ध करके लिखा इस कारण से कि वार्तिक विशेष करके लोगों को स्मरण नहीं रहता और इसके यह कि युवा अवस्था में छंद प्रबन्ध से लोगों की रुचि भी विशेष होती है, इसे मन लगा के याद कर लेगें और निश्चय है कि ऐसे उपकारी ग्रंथ का बहुत लोग चाह करेंगे ।

अगस्त १८७५

जिल्द दो नं. ८ 'बालाबोधिनी'

हरिश्चंद्र

सन् १८७३ में इन्होने काशी में ही पैनीरीड़िग क्लब स्थापित किया इसके लेखकगण अपने लेख पढ़ते थे। जिसे बाद में 'हरिश्चंद्र मैगजीन'' में छापा जाता था। भारतेन्दु ने उसकी नियमावली जो बनाई थी वह यह है —सं.

(१) पढ़नेवालों को अपने विषय का नाम तीन दिन पहिले लेखाध्यक्ष के पास भेज देना होगा।

(२) अपशब्द और अश्लील और विभत्स शब्द कोई न प्रयोग करे, और ईश्वर के विषय में कोई निंदा का शब्द वा किसी सभ्य के विषय में मर्मवाक्य कोई न बोले।

(३) बिना पास के कोई न आने पावेगा और पास सब सम्मावित लोग लेखाध्यक्ष से मंगवा लेंगे।

(४) जो पास पाने का अधिकारी नहीं है उसको पांच रुपये देने से सीजन पास मिलेगा।

(५) जहां तक हो सकेंगा पढ़ना शीघ्र ही आरम्भ और शीघ्र ही समाप्त होगा।

(६) कोई देखने वाला कोलाहल करके विघ्न करेगा तो निकाल दिया जायेगा।

(७) कोई रंग मन्दिर में न आये, यदि जायेगा तो निकाल दिया जायेगा।

—हरिश्चंद्र

सन् १८८३ में ब्रिटेन के किसी उपनिवेश के गर्वनर पोपहैन्सी ने'' इल्वर्टबिल' के सन्दर्भ में भारतेन्दु बाबू को एक पत्र लिखा'' लार्ड रिपन की सुनीत सर्मथन में क्या आप अपनी लेखनी नहीं उठायेगा'' ?

भारतेन्दु बाबू ने इस विषय पर कोई गलतफेहमी न पैदा हो इसलिए हिन्दी और अंग्रेजी के समाचार पत्रों में यह विज्ञप्ति प्रकाशित की। —सं०

'एक हाल की सभा में कर्नल मलेसन साहिब ने मेरा नाम लिया है कि मैं ''जुरिजडिकशनविल'' का विरोधी हूं। कर्नल साहिब के ऐसा कहने से सम्भव है कि मेरे देशीयजन मेरे विषय में कुछ और ही अनुमान करें। यदि मैं कर्नल साहिब की बातों का खंडन न करूँ तो मैं देश का अशुभचिन्तक समझा जाऊँगा यथार्थ बात यह है कि लेखन में मेरे एक मित्र फ्रेडरिक पिनकाट साहिब हैं। मैंने उनके पास दो तीन पत्र भेजा था जिसमें इलवर्टविल के सम्बन्ध में मी कुछ लिखा था। मेरे लेखों का सारांश यह था कि ''जुरिजडिकशनविल' के सम्बन्ध में हिन्दू और अंगरेज में बड़ा हलचल और झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। यदि बिल पास हो तो हिन्दुओं का बहुत लाभ न होगा और जो न पास हो तो अंगरेजों को मी बहुत लाभ न होगा। प्रत्येक अंगरेज तथा हिन्दू को जो देश की भलाई की मनोकामना रखते हैं यही इच्छा करनी उचित है कि यह विरोध और यह जातीय झगड़ा निवृत्त हो जाय। अवश्य मैंने अपने प्रत्र में बंगालियों का नाम नहीं लिया था।

—सं०

कविता वर्द्धिनी सभा द्वारा कवियों को दिया जाने वाला प्रशंसा-पत्र।

प्रशंसापत्र

यह प्रशंसापत्र   को कवि सभा की ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को (जो पूर्ण करने के हेतु दी गई थी) इन्हों ने उत्तमता से पूर्ण किया और दत्त विषय की कविता इन ने प्रशंसा के योग्य की है इस हेतु मिली   की काव्य वर्द्धिनी सभा के सभापति, सभाभूषण, सभासद और लेखाध्यक्षों ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्व्वक आदर से इन को यह पत्र दिया है।

मि.   संवत् १९२७

ह.   ह.

सभापति   लेखाध्यक्ष

धर्म के प्रसार और ईश्वर प्रेम के लिए भारतेन्दु बाबू ने सन् १८७३ में "तदीय समाज" की स्थापना की। इस संस्था द्वारा मादक द्रव्यों, मांस आदि पर प्रतिबन्ध के लिए सबसे पहले आवाज उठायी गयी। संस्था के नियम भारतेन्दु ने ही बनाये थे।

— सं०

समाज को मि० श्रावण शुक्ल १३ बुधवार सं० १९३० को आरम्भ किया था। इसके नियम ये थे —

१. श्री तदीय समाज इसका नाम होगा।

२. यह प्रति बुधवार को होगा।

३. कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भी होगा।

४. प्रत्येक वैष्णव इस समाज में आ सकते हैं परन्तु जिनका शुद्ध प्रेम होगा वे इसमें रहैंगे।

५. कोई आस्तिक इस माज में आ सकता है पर जब एक सभासद उसे विषय में भली भाँति कहैगा।

६. जो कुछ द्रव्य समाज में एकत्रित होगा धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया जायगा।

७. समाज क्या करेगा —

(क) समाज का आरम्भ किसी प्रेमी के द्वारा ईश्वर के गुणानुवाद से होगा।

(ख) गुरुओं के नामों का संकीर्तन होगा।

(ग) एक वक्ता कोई सभासद गत समाज के चुने हुए विषय पर कहेगा।

(घ) एक अध्याय श्री गीताजी का और श्रीमद्भागवत दशम का एक अध्याय, पढ़े जायँगे।

(ङ) समाज के समाप्ति में नाम संकीर्तन होगा और दूसरे समाज के हेतु विषय नियत किया जायगा और अंत में प्रसाद बँटैगा।

८. इसके और भी क्रम सामाजिकों की आज्ञा से बढ़ सकते हैं।

९. यद्यपि इस समाज से जगत और मनुष्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं तथापि जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करैगा और हिंसा के नाश करने में प्रवृत्त होगा।

इसके ये महाशय सभासद थे, १ श्री हरिश्चन्द्र २ राजा भरत पूर (राव श्री कृष्णदेव शरण सिंह —अच्छे कवि और विद्वान थे) ३ श्री गोकुलचन्द्र ४ दामोदर शास्त्री (संस्कृत हिन्दी के प्रसिद्ध कवि) ५ तिलँवण कर (?) ६ तारकाश्रम (अच्छे विरक्त थे) ७ प्रयागदत्त (सच्चररित्र ब्राह्मण थे) ८ शुकदेव मिश्र (श्री गोपाललाल जी के मन्दिर के कीर्तनिया) ९ हरीराम (प्रसिद्ध वीणकार बाजपेई जी) १० व्यास गणेशराम जी (श्री मद्भागवत के अच्छे वक्ता थे, बड़े उत्साही थे, भागवत सभा, कान्यकुब्ज पाठशाला के संस्थापक थे) ११ कन्हैयालाल जी (बाबू गोपालचन्द्र जी के सभासद) १२ शाह कुन्दनलाल जी (श्री वृन्दाबन के प्रसिद्ध कवि,

और महानुभाव) १३ मिश्र रामदास (?) १४ बाबा जी (?) १५ बिट्ठल भट्टजी (बड़े विद्वान और भावुक वक्ता थे) १६ गोरजी (प्रसिद्ध तीर्थोद्धारक गोरजी दीक्षित) १७ रामचन्द्र पंत (?) १८ रघुनाथ जी (जम्बू राजगुरु बड़े विद्वान और गुणी थे) १९ शीतल जी (काशी गवर्न्मेण्ट कालिज के सुप्रसिद्ध अध्यापक, पण्डित मण्डली में मुख्य और संस्कृत हिन्दी के कवि) २० बेचनजी (गवर्न्मेण्ट कालिज के प्रधानाध्यापक, पण्डित मात्र इन्हें गुरुवत् मानते थे और अग्रपूजा इनकी होती थी, महान् विद्वान और कवि थे) २१ वीसूजी (काशी के प्रसिद्ध रईस, परम वैष्णव और सत्संगी) २२ चिन्तामणि (कवि-वचन-सुधा के सम्पादक) २३ राघवाचार्य (बड़े गुणी थे) २४ ब्रह्मदत्त (परम विरक्त ब्राह्मण थे) २५ माणिक्यलाल (अब डिप्टी कलकटर हैं) २६ रामायण शरण जी (बड़े महानुभाव थे, समग्र तुलसीकृत रामायण कंठ थी, पचासों चेले लिए रामायण गाते फिरते थे, बड़े सुकंठ थे, काशिराज बड़ा आदर करते थे, काशी के प्रसिद्ध माहत्माओं में थे) २७ गोपालदास २८ वृन्दाबन जी २९ बिहारी लाल जी ३० शाह फुन्दन लाल जी (शाह क़ुन्दन लाल जी के भाई, बड़े महानुभाव थे) ३१ पण्डित राधाकृष्ण लाहौर (पञ्जाब केशरी महाराज रञ्जीत सिंह के गुरु पण्डित मधुसूदन के पौत्र, लाहौर कालिज के चीफ पण्डित) ३२ ठाकुर गिरिप्रसाद सिंह (बेसवाँ के राजा, बड़े विद्वान और वैष्णव थे) ३३ श्री शालिग्रामदास जी लाहौर (पञ्जाब में प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, सुकवि थे) ३४ श्री श्रीनिवासदास लाहौर ३५ परमेश्वरी दत्त जी (श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ता थे) ३६ बाबू हरिकृष्णदास (श्री गिरिधर चरितामृत आदि ग्रन्थों के कर्ता) ३७ श्री मोहन जी नागर ३८ श्री बलवन्त राव जोशी ३९ व्रजचन्द्र (सुकवि हैं) ४० छोटू लाल (हेड मास्टर हरिश्चन्द्र स्कूल) ४१ रामजी ।

''तदीय समाज ने भारतेन्दु को तदीयनामांकित' ''अनन्य वीर वैष्णव' की पदवी दी थी जिसके लिन्हेंउन्हें नीचे लिखा प्रतिज्ञा पत्र भी लिखना पड़ा था ।
—सं०

''हम हरिश्चन्द्र अगरवाले श्री गोपालचन्द्र के पुत्र काशी चौखम्भा महल्ले के निवासी तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं ।

१. हम केवल परम प्रेम मय भगवान श्री राधिका रमण का भी भजन करेंगे ।
२. बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी अन्याश्रय न करेंगे
३. हम भगवान से किसी कामना के हेतु प्रार्थना न करेंगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहेंगे
४. जुगल स्वरूप में हम भेद दृष्टि न देखेंगे
५. वैष्णव में हम जाति बुद्धि न करेंगे
६. वैष्णव के सब आचार्य्यों में से एक पर पूर्ण विश्वास रक्खेंगे परन्तु दूसरे आचार्य्य के मत विषय में कभी निन्दा वा खण्डन न करेंगे
७. किसी प्रकार की हिंसा वा मांस भक्षण कभी न करेंगे
८. किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायेंगे न पीयेंगे
९. श्री मदभगवद्गीता और श्री भागवत को सत्य शास्त्र मानकर नित्य मनन शीलन करेंगे ।
१०. महाप्रसाद में अन्न बुद्धि न करेंगे ।
११. हम आमरणान्त अपने प्रभु और आचार्य पर दृढ़ विश्वास रखकर शुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करेंगे ।
१२. वैष्णव मार्ग के अविरुद्ध सब कर्म करेंगें और इस मार्ग के विरुद्ध श्रौत स्मार्त वा लौकिक कोई कर्म न करेंगें ।
१३. यथा शक्ति सत्य शौच दयादिक का सर्वदा पालन करेंगे ।

१४. कमी कोई बाद जिससे रहस्य उद्घाटन होता हो अनधिकारी के सामने न कहेंगे । और न कमी ऐसा बाद अवलम्बन करेंगे जिस्से आस्तिकता की हानि हो ।

१५. चिन्ह की भाँति तुलसी की माला और कोई पीत वस्त्र धारण करेंगे ।

१६. यदि ऊपर लिखे नियमों को हम भंग करेंगे तो जो अपराध बन पड़ेगा हम समाज के सामने कहेंगे और उसकी क्षमा चाहेंगे और उसकी घृणा करेंगे ।

मिती भाद्रपद शुक्ल ११ संवत १९३०
हरिश्चन्द्र
हस्ताक्षर तदीय नामांकित अनन्य
वीर वैष्णव
यद्यपि मैंने लिख दिया है तथापि
इसकी लाज तुम्हीं को है
(निज कल्पित अक्षर में)
मुहर तदसीय
समाज

साक्षी
पं. वेचन राम तिवारी
पं. ब्रहमदत्त
चिन्तामणि
दामोदर शर्मा
शुकदेव
नारायण राव
माणिक्यलाल जोशी शर्मा

बाबू हरिश्चंद्र ने वैष्णव समाज के लिए एक परीक्षा करने की भी सोची थी । लेकिन वह चल न पायी । उसकी प्रकाशित नियमावली यह है । —सं.

श्रीमद्वैष्णवग्रंथों में

परीक्षा

वैष्णवों के समाज ने निम्न लिखित पुस्तकों में तीन श्रेणियों में परीक्षा नियत की है और १५०) प्रथम के हेतु और १५०) द्वितीय के हेतु और ५०) तृतीय के हेतु पारितोषिक नियत है जिन लोगों को परीक्षा देनी हो काशी में श्रीहरिश्चन्द्र गोकुलचन्द्र को लिखें नियत परीक्षा तो स: १९३२ के वैशाख शुद्ध ३ से होगी पर बीच में जब जो परीक्षा देना चाहे दे सकता है ।

श्रेणी	श्रीनिम्बार्क	श्रीरामानुज	श्रीमध्व	श्रीविष्णुस्वामि
प्रविष्ट	वेदान्त रत्न मंजूषा, वेदान्त रत्नमाला, सुरद्रुम मंजरी	यतीन्द्रमत दीपिका, शतदूषणी	वेदान्त रत्न-माला, तत्व प्रकाशिका	षोडश ग्रन्थ, षोडशबाद, संप्रदाय प्रदीप
प्रवीण	वेदान्त कौस्तुम और प्रभा, षोड़शी रहस्य,	श्रुति सूत्र तात्पर्य्य निर्णय, प्रस्थान त्रय	भाष्य सुधा, न्यायामृत	विद्वन्मंडल स्वर्ण सूत्र, निबन्ध आवर्ण भंग

	पंच कालानुष्ठान	का भाष्य		वाप्रहस्त, पंडित करभिंदिपाल, वहिर्मुख मुख मर्दन
पारंगत	अध्याय गिरि वज्र सेतुका, जान्हवी मुक्ता-वली	वेदान्ताचार्य्य का लघु भाष्य, वृहच्छतदूषणी	सहस्र दूषिणी	अणु भाष्य, भाष्य प्रदीप, भाष्य प्रकाश, प्रमेय रत्नार्णव[1]

भारतेन्दु जी छोटी-छोटी नोटबुक छपवाकर उन्हें मित्रों में वितरित करते थे जिनमें '**हरिश्चंद्र जी को न भूलिए**' आदि वाक्य छपे रहते थे । काशी के एक कमिश्नर कारमाइकेल ने ऐसी ही एक नोट बुक की प्रशंसा की थी ।

इनकी विशेषता भारतेन्दु बाबू के शब्दों में ही हमने अपने पत्रों को लिखने के हेतु सात वारों के भिन्न-भिन्न रंग के कागज और उनके ऊपर के दोहे आदि बनाये थे । इनमें लाघव यह है कि बिना वार का नाम लिखेंही पढ़ने वाला जान जाएगा कि अमुक वार को पत्र लिखा है । जैसा शनेश्चर के पत्र के ऊपर लिखा हुआ था '**श्री श्यामा श्यामाभ्यां नमः**

उनके लिखे पत्रों के नीचे यह दोहा लिखा रहता था ।

बंधुन के पत्राहि कहत, अर्ध मिलन सब कोय ।
आपहु उत्तर देहु तौ, पूरो मिलनो होय ।

इनका मुख्य सिद्धांत वाक्य "**यतो धर्मस्ततो कृष्णःयतो कृष्णस्ततो जयः**" था ।

रविवार को गुलाबी कागज पर—

"भक्त कमल दिवाकराय नम;"

"मित्र पत्र बिनु हिय लहत छिनहूं नहिं विश्राम ।
प्रफुलित होत न कमल जिमि बिनु रवि उदय ललाम ।।"

सोमवार को श्वेत कागज पर —

"श्रीकृष्णचन्द्राय नमः"

"बन्धुन के पत्रहिं कहत अर्घ मिलन सब कोय ।
आपहु उत्तर देहु तौ पूरो मिलनो होय ।।"

सोमवार का यह दोहा भी छपवाया था —

"ससिकुल कैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज ।
श्री मुखचन्द्र चकोर श्री, कृष्णचन्द्र महराज ।।"

मंगल को लाल कागज पर —

"श्रीवृन्दावन सार्वभौमाय नमः"

"मगलं भगवान विष्णुं मगलं गरुड़ध्वजम् ।
मगलं पुण्डरीकाक्षं मगलायतनुं हरि ।।"

बुध को हरे कागज पर —

"श्रीगुरु गोविन्दायनमः"

"बुध जन दर्पण में लखत दृष्ट वस्तु को चित्र।
मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिम्ब विचत्र।।"

गुरुवार को पीले कागज पर —

"श्रीगुरु गोविन्दायनमः"

"आशा अमृत पात्र प्रिय बिरहातप हित छत्र।
बचन चित्र, अवलम्बप्रद कारज साधक पत्र।।"

शुक्रवार को सफेद कागज पर —

"कविकीर्ति यशसे नमः"

"दूर रखत करलेत आवरन हरत रखि पास।
जानत अन्तर भेद जिय पत्र पथिक रसरास।।"

शनिवार को नीले कागज पर —

"श्रीकृष्णायनमः"

"और काज सनि लिखन मैं होइ न लेखनि मन्द।
मिलै पत्र उत्तर अवसि यह बिनवत हरिचन्द।।"

परिशिष्ट

भारतेन्दु जी के निधन पर उनके निकटतम मित्र व्यास राम शंकर शर्मा जी ने "चन्द्रास्त" नामक पुस्तक छपवा कर बँटवायी थी। व्यास जी भारतेन्दु जी की टूटती साँस के चश्मदीद गवाह थे। "चन्द्रास्त" में ही उन्होंने भारतेन्दु जी की पहली जीवनी भी प्रकाशित की थी जो यहाँ दी जा रही है। व्यास जी कुछ दिनो तक "कविवचन सुधा" के सम्पादक भी थे। — सं०

चन्द्रास्त

अर्थात

श्रीमान कविशिरोमणि भारतभूषण भारतेन्दु
श्री हरिश्चन्द्र का सत्यलोक गमन

अद्य निराधाराऽभूद्दिवंगते श्री हरिश्चन्द्रे।
भारतधरा विशेषादभाग्यरूपा महोदयाग्रेन्द्रे।।

अतिशय दुःखित
व्यास रामाशंकर शर्म्मा लिखित

अमीरसिंह द्वारा बनारस हरिप्रकाश यंत्रालय में मुद्रित हुआ
१८८५
बिना मूल्य बँटता है

अनर्थ! अनर्थ!! अनर्थ!!!

सबसे अधिक अनर्थ

"दीन जानि सब दीन्ह एक दुरायो दुसह दुख।
सो दुख हम कहँ दीन्ह कछुह न राख्यो बीरबर।।"

आज हमको इसके प्रकाशित करने में अत्यन्त शोक होता है और कलेजा मुँह को आता है कि हम लोगों के प्रेमास्पद भारत के सच्चे हितैषी, और आर्य्यों के शुभचिन्तक श्रीमान् भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी कल मङ्गल की अमङ्गल रात्रि में ९ बज के ४५ मिनट पर इस अनित्य संसार से विरक्त हो और हम लोगों को छोड़ कर परम पद को प्राप्त हुए। उनकी इस अकाल मृत्यु से जो असीम दुःख हुआ उसे हम किसी भाँति से प्रकट नहीं कर सकते क्योंकि यह वह दुसह दुःख है कि जिनके वर्णन करने से हमारी छाती तो फटती ही है वरन्च लेखनी का हृदय भी विदीर्ण होता जाता है और वह सहस्रधारा से अश्रुपात करती है।

हा! जिस प्राण प्यारे हरिश्चन्द्र के साथ सदा विहार करते थे और जिसके चन्द्रमुख दर्शन मात्र से हृदय कुमुद विकशित होता था उसे आज हम लोग देखने के लिये भी तरसते हैं। जिसके भरोसे पर हम लोग निश्चिन्त बैठे रहते थे और पूरा विश्वास रखते थे वही आज हमको धोखा दे गया। हा! जिस हरिश्चन्द्र को हम अपना समझते थे उसको हमारी सुध तक न रही। हरिश्चन्द्र तुम तो बड़े कोमल स्वभाव के थे परन्तु इस समय तुम इतने कठोर क्यो हो गये? तुमको तो राह चलते भी किसी का रोना अच्छा नहीं लगता था सो अब सारे भारतवर्ष का रोना कैसे सह सकोगे। प्यारे! कहो तो सही, दया जो सदा छाया सी तुम्हारे साथ रही सो इस समय कहाँ गई। प्रेम जो तुम्हारा एक मात्र व्रत था उसे इस वेला कहाँ रख छोड़ा है जो तुम्हारे सच्चे प्रेमी बिलला रहे हैं हे देशाभिमानी हरिश्चन्द्र! तुम्हारा देशाभिमान किधर गया जो तुम अपने देश की पूरी उन्नति किये बिना इसे अनाथ छोड़ कर चल दिये। तुम्हारा हिन्दी का आग्रह क्या हुआ, अभी तो वह दिन भी नहीं आये थे जो हिन्दी का भली भाँति प्रचार हो गया होता, फिर आप को इतनी जल्दी क्या थी जो इसका हाथ ऐसी अधूरी अवस्था में छोड़ा हे परमेश्वर, तूने आज क्या किया, तेरे यहाँ कमी क्या थी जो तूने हमारी महानिधि छीन ली। जो कहो कि वह तुम्हारे भक्त थे तो क्या न्याय यही है कि अपने सुख के लिये भक्त के भक्तों को दुख दो। अरे मौत निगोड़ी, तुझे मौत भी न आई जो मेरे प्यारे का प्राण छोड़ती। अरे दुर्दैव क्या तेरा पराक्रम यही था जो हतभाग्य भारत को यह दिन दिखलाया। हाय! आज हमारे भारतवर्ष का सौभाग्यसूर्य अस्त हो गया, काशी का मानस्तथ टूट गया और हिन्दुओं का बन जाता रहा। यह एक ऐसा आकस्मिक वज्रपात हुआ कि जिस के आघात से सब का हृदय चूर्ण हो गया। हा! अब ऐसा कौन है जो अपने बन्धुओं को अपने देश की भलाई करने की राह बतलावैगा और तन मन धन से उनमें सुमति और अच्छे उपदेशों के फैलाने का यत्न करैगा। अभागिनी हिन्दी के भण्डार को अपने उत्तमोत्तम लेख द्वारा कौन पुष्ट करेगा और साधारण लोगों में विद्या की रुचि बढ़ाने के लिये नाना प्रकार के सामयिक लेख लिख कर सब का उत्साह कौन बढ़ावेगा। अपनी सुधामयी वाणी से हम लोगों की आवेलि कौन बढ़ावैगा और हा! काव्यामृत पान करा के हमारी आत्मा को कौन तुष्ट करेगा। मेरे प्राणप्यारे! अवसर पड़ने पर हमारे आर्यधर्म की रक्षा करने के लिये कौन आगे होगा और दीनोद्वार की श्रद्धा किसको होगी। यों तो आर्य जाति को अब कोई संकष्ट उपस्थित होता था तो वे तुम्हारे समीप दौड़े जाते थे पर अब किसकी शरण जायेंगे। शोक का विषय है कि तुमने इनमें से एक पर भी ध्यान न दिया और हम लोगों को निरवलम्ब छोड़ गये। प्रियतम हरिश्चन्द्र! आज तुम्हारे न रहने ही से काशी में उदासी छा रही है और सब लोगों का अन्तःकरण परम दुःखित हो रहा है। तुम को वह मोहन मंत्र याद था कि जिस से सारे संसार को अपने वश में कर लिया था। पर हा! आज एक तुम्हारे चले जाने से सारा भारतवर्ष ही नहीं, किन्तु यूरोप अमेरिका इत्यादि के लोग भी शोकग्रस्त होंगे यद्यपि तुम कहने को इस संसार में नहीं हो, परन्तु

तुम्हारी वह अक्षय कीर्ति है कि जो इस संसार में उस समय तक बनी रहेगी कि जबलों हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों का लोप होगा। प्यारे! तुम तो वहाँ भी ऐसे ही आदर को प्राप्त होगे पर बिला मौत हम लोग मारे गये। अस्तु परमेश्वर की जो इच्छा आप की आत्मा को सुख तथा अखण्ड स्वर्गनाम हो, पर देखना अपने दीन मित्र तथा गरीब भारतवर्ष को भूलना मत। अब सिवा इसके रह क्या गया है कि हम लोग उनके उपकारों को याद करके आँसू बहावैं, इसलिये यहाँ पर आज थोड़ा सा उनका चरित प्रकाशित करता हूँ, चित्त स्वस्थ होने पर पूरा जीवनचरित छापूँगा क्योंकि वह स्वयं भविष्यवाणी कर गये हैं कि

कहैंगे सबही नैन नीर भरि २ पाछैं
प्यारे हरिचन्द की कहानी रह जायंगी।

मानमन्दिर, **प्यारे के वियोग से नितान्त दुःखी**
७.१.८५ **व्यास रामशंकर शर्मा**

माघ पूर्णिमा सं. १९४१ को भारतेन्दु के निधन पर हुई शोक सभा का निमंत्रण पत्र। —सं.

कला लयो विष्णुपदाश्रयश्च
सुधासगाप्लावितदिग्विभागः
श्रीमान् 'हरिश्चन्द्र' इति प्रसिद्धि,
यो भारते भूत्किल भारतेन्दुः।।१।।
तदीयसख्येन महानुभावाः,
यशः प्रकाशैः परिपूरिताशाः।
दयादृशा सूरिवरा भवन्तः
पुनन्तु दत्वा ननु दर्शन नः।।२।।

आपका सेवक,
गोकुलचन्द

संक्षिप्त जीवनी

श्रीमान कविचूड़ामणि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने सन् १८५० ई० के सितम्बर मास की ९वीं तारीख को जन्मग्रहण किया था। जब वह ५ वर्ष के थे तो उनकी पूज्य माता जी वने ९ वर्ष के हुए तो महामान्य पिता जी का स्वर्गवास हुआ, जिससे उनको माता पिता का सुख बहुत ही कम देखने में आया, उनकी शिक्षा बालकपन से दी गई थी और उन्होंने कई वर्ष तो कालेज में अंग्रेजी तथा हिन्दी पढ़ी थी संस्कृत, फारसी, बंगला, महाराष्ट्री इत्यादि अनेक भाषाओं में बाबू साहिब ने घरपर निज परिश्रम किया था। इस समय बाबू साहिब तैलङ्ग तथा तामील भाषा को छोड़ कर भारत की सब देश भाषा के पण्डित थे। बाबू साहिब की विद्वत्ता, बहुज्ञता, मीतित्रता, पाण्डित्य, तथा चमत्कारिणी बुद्धि का हाल सब पर विदित है कहने की कोई आवश्यकता नहीं। इनकी बुद्धि का चमत्कार देख कर लोगों को आश्चर्य होता था कि इतनी अल्प अवस्था में यह सर्वज्ञता। कविता की रुचि बाबू साहिब को बाल्यावस्था ही से थी, उनकी उस समय की कविता पढ़ने से कि जब वह बहुत छोटे थे बड़ा आश्चर्य होता है और इस समय की तो कहना ही क्या है मूर्तिमान आशुकवि कालिदास थे जैसी कविता इनकी सरस और प्रिय होती थी वैसी आज दिन किसी की नहीं होती। कविता सब भाषा की करते थे, पर भाषा की कविता में अद्वितीय थे। उनके जीवन का बहुमूल्य समय सदा लिखने पढ़ने में जाता था। कोई काल ऐसा नहीं था कि उनके पास कलम, दावात और कागज न रहता रहा हो। १६ वर्ष की अवस्था में कविवचन सुधा पत्र निकाला था जो आज तक चला जाता है। इसके उपरान्त तो क्रमशः अनेक पत्र पत्रिकाएँ और सैकड़ों पुस्तक लिख डाले जो युग युगान्तर तक संसार में उनका नाम

जैसा का तैसा बनाये रखेंगे । २० वर्ष की अवस्था अर्थात सन् ७० में बाबू साहिब आनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुए और सन् ७४ तक रहे वो उसी के लगभग ६ वर्ष लों म्यूनिस्पल कमिश्नर भी थे । साधारण लोगों में विद्या फैलाने के लिये सन् १८६७ ई० में जब कि बाबू साहिब की अवस्था केवल १७ वर्ष की थी चौखम्मा स्कूल जो अबतक उनकी कीर्ति की ध्वजा है, स्थापित किया, जिनके छात्र आज दिन एम. ए. बी. ए. तथा बड़ी बड़ी तनखाह के नौकर हैं । लोगों के संस्कार सुधारने तथा हिन्दी की उन्नति के लिये हिन्दी डिबेटिंग क्लब, अनाथरक्षिणी तदीय समाज, काव्य समाज इत्यादि सभाएँ संस्थातिप की और उनके सभापति रहे, भारतवर्षके प्रायः सब प्रतिष्ठित समाज तथा सभाओं में से किसी के प्रेसीडेन्ट, सेक्रिटरी और किसी के मेम्बर रहे लोगों के उपकारार्थ अनेक बार देश देशान्तरों में व्याख्यान दिये । उनकी वक्तृता सरस और सारग्राहिणी होती थी । उनके लेख तथा वक्तृत्व में देशा गौरव झलकता था । विद्या का सम्मान जैसा साहिब करते थे वैसा करना आजकल कठिन है, ऐसा कोई भी विद्वान् न होगा जिसने इनसे आदर सत्कार न पाया हो । यहां के पण्डितों ने जो अपना अपना हस्ताक्षर करके बाबू साहिब को प्रशंसापत्र दिया था उसमें उन लोगों ने स्पष्ट लिखा है कि —

जिमि सुभाच दिन रैन के कारन नित हरिचन्द ।।
सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द ।
जिमि सुभाव दिन रैन के कारन नित हरिचन्द ।।

बाबू साहिब दानियों में कर्ण थे, इतना ही कहना बहुत है । उनसे हजारों मनुष्य का कल्याण होता रहा । विद्योन्नति के लिये भी उन्होंने बहुत व्यय किया । ५०० रु० तो उन्होने पं० परमानन्द जी की शतसई की संस्कृत टीका का दिया था और इसी प्रकार से कालिज, वो स्कूलों में उचित पारितोषिक बांटे हैं । जब जब बंगाल, बम्बई, वो मदरास में स्त्रियां परिक्षोत्तीर्ण हुई हैं तब तब बाबू साहिब ने उनके उत्साह बढ़ाने के लिए बनारसी साड़ियां भेजी थीं । जिनमें से कई एक की श्रीमती लेडी रिपन ने प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथ से बांटा था । बाबू साहिब ने देशोपकार के लिये नेशनल फंड होमियोपैणिक डिस्पेंसरी, गुजरात वो जौनपुर रिलीफ फण्ड, सेलजे होम, प्रिंस आफ् वेल्स हास्पिटल और लैब्रेरी इत्यादि की सहायता में समय समय पर चन्दा दिये हैं । गरीब दुखियों की बराबर सहायता करते रहे ।

गुणग्राहक भी एक ही थे, गुणियों के गुण से प्रसन्न होकर उनको यथेष्ट द्रव्य देते थे, तात्पर्य यह कि जहां तक बना दिया देने से हाथ नहीं रोका ।

देशहितैषियों में पहिले इन्हीं के नाम पर अंगुली पड़ती है क्योंकि यह वह हितैषी थे कि जिन्होंने अपने देशगौरव के स्थापित रखने के लिये अपना धन, मान, प्रतिष्ठा एक ओर रख दी थी और सदा उसके सुधरने का उपाय सोचते रहे । उनको अपने देशवासियों पर कितनी प्रीति थी यह बात उनके भारतजननी, वो भारतदुर्दशा इत्यादि ग्रन्थों के पढ़ने ही से विदित हो सकती है । उनके लेखों से उनकी हितैषिता और देश का सच्चा प्रेम झलकता था ।

यद्यपि बहुत लोगों ने उनको गवर्मेन्ट का डिसेलायल (अशुभचिन्तक) मान रक्खा था, पर यह उनका भ्रम था, हम मुक्तकण्ठ स कह सकते हैं कि वह परम राजभक्त थे । यदि ऐसा न होता तो उन्हें क्या पड़ी थी कि जब प्रिंस आफ वेल्स आये थे तो वह बड़ा उत्सव और अनेक भाषा के छन्दों में बना कर स्वागत ग्रन्थ (मानसोपायन) उनके अर्पण करते । डयूक आव् एडिन्बरा जिस समय यहां पधारे थे बाबू साहिब ने उनके साथ उस समय वह राजभक्ति प्रकट की जिससे डयूक उन पर ऐसे प्रसन्न हुए कि जब तक काशी में रहे उन पर विशेष स्नेह रक्खा । सुमनोन्जलि उनके अर्पण किया था जिसके प्रति अक्षर से अनुराग टपकता है । महाराणी की प्रशंसा में मनोनुकूल माला बनाई । मिस्र युद्ध के विजय पर प्रकाश्य सभा की दो विजयिनीविजय बैजयंती बनाकर पूर्ण अनुराग सहित भक्ति प्रकाशित की । महाराणी के बचने पर सन् ८२ में चौकाघाट के बगीचे में भारी उत्सव किया था और महाराणी के जन्म दिवस तथा राजराजेश्वरी की उपाधि लेने के दिन प्रायः बाबू साहिब उत्सव करते रहे । डयूक आव् अलबनी की अकाल मृत्यु पर सभा कर के महाशोक किया था । जब जब देशहितैषी लार्ड रिपन आये उन को स्वागत कविता देकर आनन्दित हुए । सन् ७२ में म्यो मेमोरियल सिरीज में १५०० रु. दिये । यह सब लायल्टी नहीं तो क्या है ?

बाबू साहिब भारतवर्ष के एड्यूकेशन कमीशन (विद्या सभा) के सभ्य तो हुए ही थे वे परन्तु इन का गुण यह था कि विलायत में जो नेशनल एंथम (जातीय गीत) के भारत की सब भाषाओं में अनुवाद करने के लिए महारानी की ओर से एक कमेटी हुई थी उसके मेम्बर भी थे, और उनके सेक्रेटरी ने जो पत्र लिखा था उसमें उसने बाबू साहिब की प्रशंसा लिख कर स्पष्ट लिखा था कि मुझको विश्वास है कि आप की कविता सबसे उत्तम होगी और अन्त में ऐसा ही हुआ क्यों नहीं जब की भारती जिह्वा पर थी । सच पूछिए तो कविता का महत्व उन्हीं के साथ था । बाबू साहिब की विद्वत्ता और बहुज्ञता की प्रशंसा केवल भारतीय पत्रों ने नहीं की वरन्च विलायत के प्रसिद्ध पत्र ओवरलेण्ड, इण्डियन और होम मेल्स इत्यादिक अनेक पत्रों ने की है । उनकी बहुदर्शिता के विषय में एशियाटिक सोसाइटी के प्रधान डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, एम०. ए०. शेरिंग, श्रीमान् पण्डितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति महाशयों ने अपने अपने ग्रथों में बड़ी प्रशंसा की है । श्रीयुत विद्यासागर जी ने अपने अभिज्ञान शाकुन्तल की भूमिका में बाबू साहिब को परम अमायिक, देशबन्धु धार्मिक, और सुहृद इत्यादि कर के बहुत कुछ लिखा है । बाबू साहिब अजातशत्रु थे इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं और इनका शील ऐसा अपूर्व था कि साधारणों की क्या कथा भारतवर्ष के प्रधान २ राजे, महाराजे, नवाब और शहजादे इन से मित्रता का बर्ताव बरतते थे और अमेरिका व यूरोप के सहृदय प्रधान लोग भी इन पर पूरा स्नेह रखते थे । हा ! जिस समय ये लोग यह अनर्थकारी घोर सम्वाद सुनेंगे उनको कितना कष्ट होगा ।

बाबू साहिब को अपने देश के कल्याण का सदा ध्यान रहता था । उन्होंने गोवध उठा देने के लिए दिल्ली दरबार के समय ६०००० हस्ताक्षर करा के लार्ड लिटन के पास भेजा था । हिन्दी के लिये सदा जोर देते गये और अपनी एज्यूकेशन कमीशन की साक्षी में यहां तक जोर दिया कि लोग फड़क उठते हैं । अपने लेख तथा काव्य से लोगों की उन्नति के अखाड़े में आने के लिये सदा यत्नवान रहे । साधारण की ममता इनमें इतनी थी कि माधोराव के धरहरे पर लोहे के छड़ लगवा दिये कि जिससे गिरने का भय छूट गया। इनकमटैक्स के समय जब लाट साहिब यहां आये थे तो दीपदान की वेला दो नावों पर एक पर और दूसरी पर स्वागत स्वागत धन्य प्रभु श्री सर विलियम म्योर । टेक्स छुड़ावहु सबन को विनय करत कर जोर ।। लिखा था इसके उपरान्त टिकस उठ गया लोग कहते हैं कि इसी से उठा । चाहे जो हो इसमें सन्देह नहीं कि वह अन्त तक देश के लिये हाय हाय करते रहे ।

सन् १८८० ई०. के २० सितम्बर के सारसुधानिधि पत्र में हमने बाबू साहिब को भारतेन्दु की पदवी देने के लिये एक प्रस्ताव छपवाया था और उसके छप जाने पर भारतवर्ष के हिन्दी समाचारपत्रों ने उसपर अपनी सम्मति प्रकट की और सब पत्र के सम्पादक तथा गुणग्राही विद्वान् लोगों ने मिल कर उनकी भारतेन्दु की पदवी दी, तबसे वह भारतेन्दु लिखे जाते थे ।

बाबू साहिब का धर्म्म वैष्णव था । श्रीवल्लभीय वह धर्म के बड़े पक्के थे, पर आडम्बर से दूर रहते थे । उनके सिद्धान्त में परम धर्म्म भगवत्प्रेम था । मत वा धर्म्म विश्वासमूलक मानते थे प्रमाण मूलक नहीं । सत्य, अहिंसा, दया, शील, नम्रता आदि चरित्र को भी धर्म मानते थे, वह सब जगत को ब्रह्ममय और सत्य मानते थे ।

बाबू साहिब ने बहुत सा द्रव्य व्यय किया, परन्तु कुछ शोच न था । कदाचित् शोच होता भी था तो दो अवसर पर, एक जब किसी निज आश्रित को या किसी शुद्ध सज्जन को बिना द्रव्य कष्ट पाते देखते थे, दूसरे जब कोई छोटे मोटे काम देशोपकारी द्रव्याभाव से रुक जाते थे ।

हां । जिस समय हमको बाबू साहिब की यह करुणा की बात याद आ जाती है तो प्राण कंठ में आता है । वह प्रायः कहते थे कि अभी तक मेरे पास पूर्ववत बहुत धन होता तो मैं चार काम करता । (१) श्रीठाकुर जी को बगीचे में पधराकर धूम धाम से षट्ऋतु का मनोरथ करता (२) विलायत, फरासीस और अमेरिका जाता (३) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की यूनिवर्सिटी स्थापन करता (हाय रे ! हतभागिनी हिन्दी, अब तेरा इतना ध्यान किसको रहेगा) (४) एक शिल्प कला का पश्चिमोत्तर देश में कालिज करता ।

हाय ! क्या आज दिन उन के बड़े बड़े धनिक मित्रों में से कोई भी मित्र का दम भरने वाला ऐसा सच्चा मित्र है जो उनके इन मनोरथों में से एक को भी उनके नाम पर पूरा करके उनकी आत्मा को सुखी करे ! हायरे ! हतभाग्य पश्चिमोत्तर देश, तेरा इतना भारी सहायक उठ गया, अब भी तुझसे उनके लिये कुछ बन पड़ेगा या नहीं ? जब कि बंगाल और बम्बई प्रदेश में साधारण हितैषियों के स्मारक चिह्न के लिये लाखों बात की बात में इकट्ठे हो जाते हैं ।

बाबू साहिब के खास पसन्द की चीजें राग, वाद्य, रसिक समागम, चित्र, देश-देश और काल-काल की विचित्र वस्तु और भांति-भांति की पुस्तक थीं ।

काव्य उनको जयदेव जी, देव कवि, श्री नागरीदास जी, श्री सूरदास जी, और आनन्दघन जी का अति प्रिय था । उर्दू में नजीर और अनीस का । अनीस को अच्छा कवि समझते थे ।

संतति बाबू साहिब को तीन हुई । दो पुत्र एक कन्या पुत्र दोनों जाते रहे, कन्या है, विवाह हो गया ।

बाबू साहिब कई बार बीमार हुए थे, पर भाग्य अच्छे थे इसलिये अच्छे होते गये । सन् १८८२ ई. में जब श्रीमन्महाराणा साहिब उदयपुर से मिलकर जाड़े के दिनों में लौटे तो आते समय रास्ते ही में बीमार पड़े । बनारस पहुँचने के साथ ही श्वास रोग से पीड़ित हुए । रोग दिन-दिन अधिक होता गया महीनों में शरीर अच्छा हुआ । लोगों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया । यद्यपि देखने में कुछ रोज तक रोग मालूम न पड़ा पर भीतर रोग बना रहा और जड़ से नहीं गया । बीच में दो एक बार उभड़ आया, पर शान्त हो गया था, इधर दो महीने से फिर श्वास चलता था, कभी-कभी ज्वर का आवेश भी हो जाता था । औषधि होती रही शरीर कृशित तो हो चला था पर ऐसा न ही था कि जिससे किसी काम में हानि होती, श्वास अधिक हो चला क्षयी के चिह्न पैदा हुए । एका एक दूसरी जनवरी से बीमारी बढ़ने लगी, दवा, इलाज सब कुछ होता था पर रोग बढ़ता ही जाता था ६वीं तारीख को प्रातःकाल के समय जब ऊपर से हाल पूछने के लिये मजदूरिन आई तो आप ने कहा कि जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है । उसी दिन दोपहर से श्वास वेग से आने लगा कफ में रुधिर आ गया, डाक्टर वैद्य अनेक मौजूद थे और औषधि भी परामर्श के साथ करते थे परन्तु मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की । प्रतिक्षण में बाबू साहिब डाक्टर और वैद्यों से नींद आने और कफ के दूर होने की प्रार्थना करते थे, पर करें क्या काल दुष्ट तो सिर पर खड़ा था, कोई जाने क्या, अन्ततोगत्वा बात करते ही करते पावे १ बजे रात को भयंकर दृश्य आ उपस्थित हुआ । अन्त तक श्रीकृष्ण ध्यान बना रहा । देहावसान समय में श्रीकृष्ण । श्रीराधाकृष्ण । हे राम । आते हैं सुख देख लाओ कहा और कोई दोहा पढ़ा जिसमें से श्रीकृष्ण सहित स्वामिनी इतना धीरे स्वर से स्पष्ट सुनाई दिया । देखते ही देखते प्यारे हरिश्चन्द्र जी हम लोगों की आंखों से दूर हुए । चन्द्रमुख कुम्हिला कर चारो ओर अन्धकार हो गया । सारे घर में मातम छा गया, गली-गली में हाहाकार मचा, और सब काशीवासियों का कलेजा फटने लगा । लेखनी अब आगे नहीं बढ़ती बाबू साहिब चरणपादुका पर . . .

हा ! काल की गति भी क्या ही कुटिल होती है, अचानक कालनिद्रा ने भारतेन्दु को अपने वश में कर लिया कि जिससे सब जहां के तहां पाहन से खड़े रह गये । वाह रे दुष्ट काल ! तूने इतना समय भी न दिया जो बाबू साहिब अपने परम प्रिय अनुज बाबू गोकुलचन्द्र जी को बाबू राधाकष्णदास तथा अन्य आत्मीयों से एक बार अपने मन की बात भी कहने पाते और हमको, जिसे उस समय यह भयंकर दृश्य देखना पड़ा था, इतना अवसर भी न मिला कि अन्मि सम्भाषण भी कर लेते हा ! हम अपने इस कलंक को कैसे दूर करें । वह मोहनी मूर्ति भुलाये नहीं भूलती पर करें क्या । बाबू साहिब की अवस्था कुल ३४ वर्ष ३ महीने २७ दिन १७ घं. ७ मि. और ४८ से. की थी । पर निर्दयी काल से कुछ वश नहीं ।

वंश वृक्ष
रायबालकृष्ण
फकीरचन्द
लक्ष्मीराम
दलपतराय
हरिबिलास
सूरत सिंह
गिरिधारी लाल
खिरोधर लाल
रूपचन्द
अनूपचन्द
शोभाचन्द
सेठ अमीचन्द
चन्द्र विलास
डालचन्द
मोहनचन्द
विष्णुचन्द
सीतलचन्द
पूर्णचन्द
राजा गोविन्दचन्द
हुकुमचन्द
रामरत्न चन्द
नान्हकचन्द
आनन्द चन्द
बाबू रायचन्द
गोपीचन्द
बाबू फतहचन्द्र
बाबू हर्षचन्द्र (काले)
यमुना बीबी
गंगा बीबी
राय प्रहलाद दास
श्रीराधाकृष्ण दास
बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास
मुकुन्दी बीबी
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
बाबू गोकुलचन्द्र
गोविन्दी बीबी
विद्यावती
(बा० बलदेव दास)
सरस्वती
कृष्णावती
बाबू कृष्णचन्द्र
बाबू व्रजचन्द्र
व्रजरमनदास
रेवती रमनदास
(व्रजरतन दास)
व्रजजीवन दास
मोहन दास
व्रजभूषण दास
कुमुद चन्द्र
मोहनचंद
मोतीचंद
लक्ष्मी चंद
नारायण चंद

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
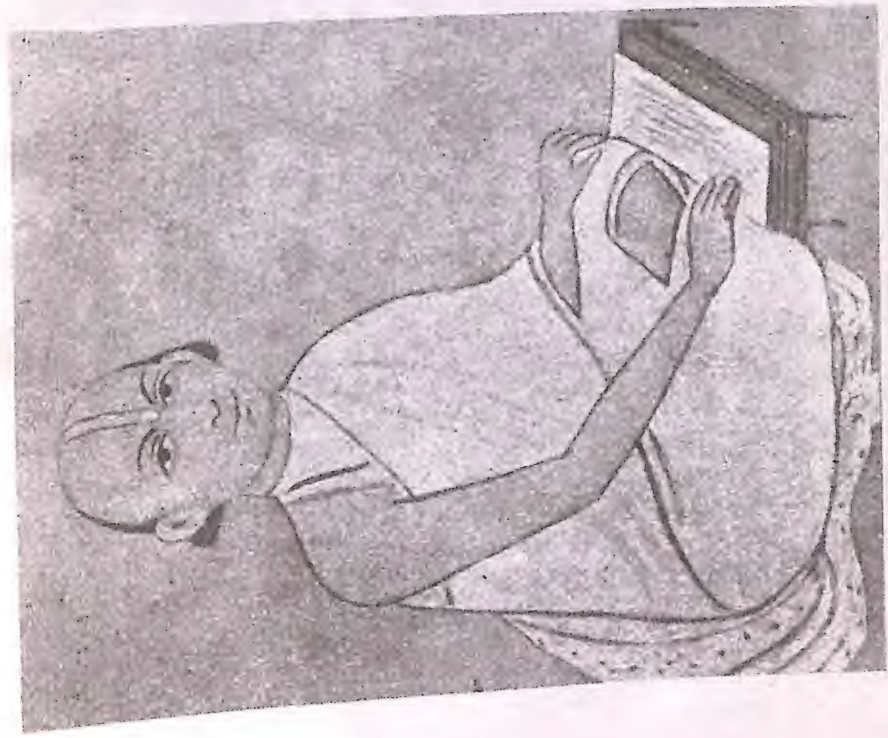
पिता बाबू गोपाल चन्द्र

युवक हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी प्रेयसी मल्लिका

EDUCATION COMMISSION.

—ooo—

EVIDENCE OF

BABU HARIS CHANDRA.

Question 1.—*Please state what opportunities you have had of forming an opinion on the subject of education in India, and in what province your experience has been gained.*

Answer 1.—I have always taken an interest in education. I am a Sanskrit, Hindi and Urdu poet, and have composed many works in verse and prose. I started a Hindi journal, the *Kavirachana Sudha*, which still exists. My aim has always been to better the educational status of my countrymen, to improve the vernacular language of these provinces, and to add to the stock of the vernacular literature. I have always taken pleasure in the enlightenment of my fellow countrymen. I have established a school for elementary education in the City of Benares. I was a member of the Benares Educational Committee, and have had considerable opportunity of coming into contact with those connected with the Educational Department and other men of learning. I have given prizes to students and scholars of Government schools and colleges to encourage the advancement of learning.

I belong to the North Western Provinces, and my experience is confined to them.

Question 2.—*Do you think that in your province the system of primary education has been placed on a sound basis, and is capable of development up to the requirements of the community? Can you suggest any improvements in the system of administration or in the course of instruction?*

Answer 2.—As far as my knowledge and experience go, I am of opinion that the system of primary education has been placed on a sound footing, and is quite capable of development up to the requirements of the community with but a few slight amendments and improvements.

I consider the present system of managing schools by educational committees objectionable. The official members can hardly spare time to look after the schools which are situated far from them in the district. The majority of non-official members attend the meetings not because they have any love or even the smallest desire on their part for the education of their country, but only because they consider it an honor to be a member of such local boards, and because they would be entitled to a seat in the presence of the Collector. I have known many members of educational committees who hardly themselves know even the vernacular of the province, and they are enrolled as members because they are classed among the gentry, and some of them are such as cannot even claim that distinction. I seldom know a non-official member of the committee visit a district school or take a [illegible] *wide* interest in the cause of education purely with a view to benefit his country.

शिक्षा आयोग के समक्ष दी गयी भारतेन्दु बाबू की गवाही ।

३.५.८३.

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामानन्तर निवेदनमिति —
लघु. र. क. मिली. धन्यवाद. नाटकादि नाना हैं.
भारतेन्दु बहुत अच्छी चाल से चला है किन्तु तनिक
कड़ाई विशेष है. लोक परिपाटी उत्तम है. क्या यह नहीं
छापा जाता है? मैं अब तक नहीं अच्छा हुआ. बड़ी ही सुस्ती
है - आप बने तो मिलते रहें. हमारे संबन्धि तिथि जो आप संग्रह
कर रहे हैं शीघ्र भेजिए. इस ग्रन्थ में सर्व प्रकार सहायक होगी

श्री चरण सेवक
हरिश्चन्द्र

EAST INDIA POST CARD
THE ADDRESS ONLY TO BE WRITTEN ON THIS SIDE

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का पत्र
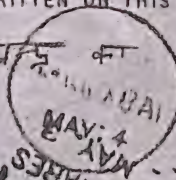
Sri Radha Churan ji Goswami
Sri Radha Raman ji Ka ghera
Bundaban Sri Vrindaban

भारतेन्दु बाबू का गोस्वामी राधाचरण जी को लिखा गया एक पत्र ।

कविवचनसुधा।

पहले 'कविवचन सुधा' की 'टाइटिल हिन्दी में छपती थी

THE

KAVIVACHANSUDHA

कविवचनसुधा।

ADVERTISEMENTS

बाद में अंग्रेजी में भी छपने लगी
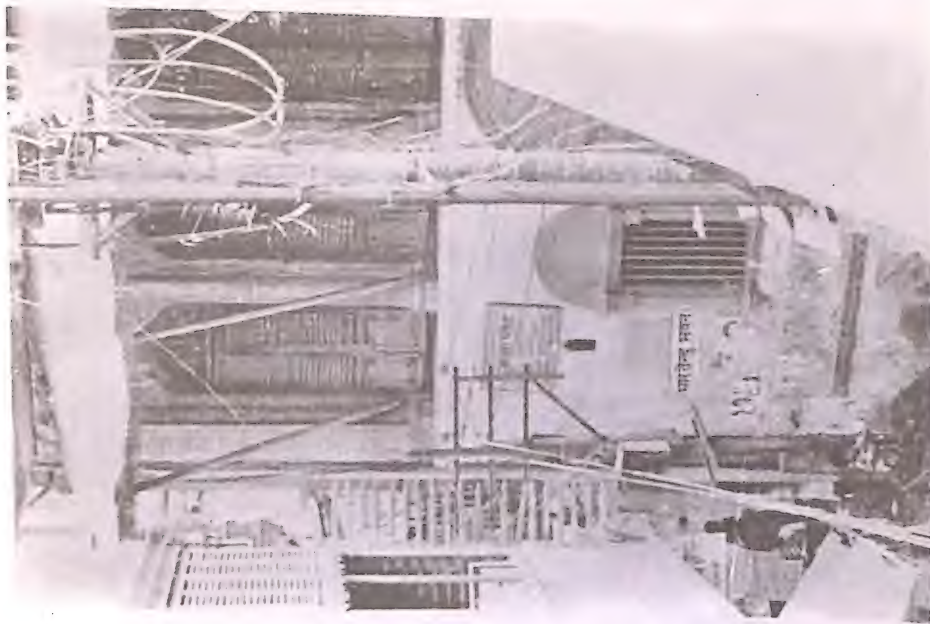
बालाबोधिनी

स्त्री जनों की प्यारी ''बाला बोधिनी''
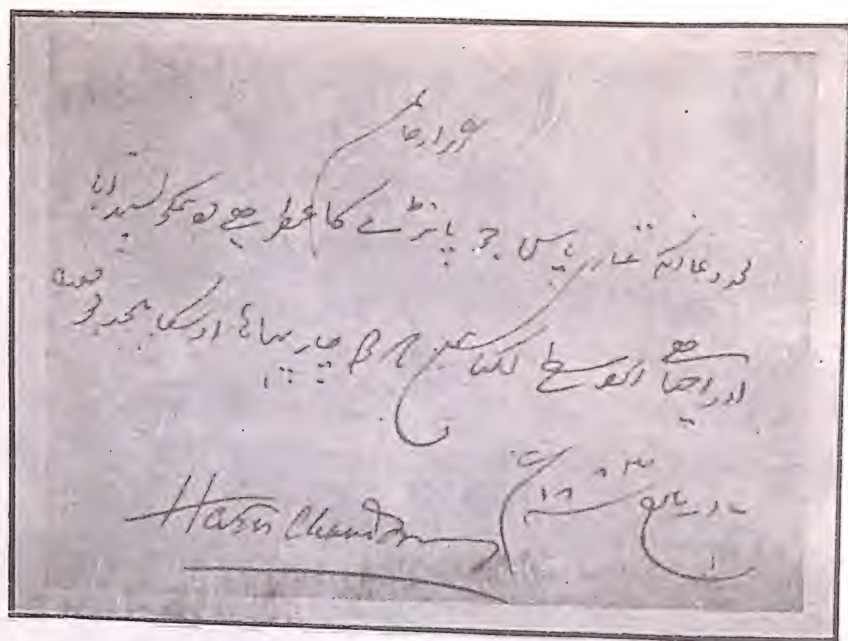
भारतेन्दु बाबू के ऊर्दू और अंग्रेजी हस्ताक्षरों के नमूने ।

भारतेन्दु बाबू का इत्रदान

चित्र: डा. गिरीश चन्द्र चौधरी के सौजन्य से

बाबा सुमेर सिंह से उन्हे मिली पोथी और लेखन सामग्री की मंजूषा ।

चित्र. डा. गिरीश चन्द्र चौधरी के सौजन्य से

भारतेन्दु बाबू द्वारा प्रयोग में लायी गयी कलमें और कलमदान

चित्र. डा. गिरीश चन्द्र चौधरी के सौजन्य से

हरिश्चन्द्र मल्लिक एण्ड कम्पनी के पैड पर लिखा उनके अप्रकाशित उपन्यास का एक पृष्ठ

साप्ताहिक हिन्दुस्तान से साभार

चित्र — भारतकला भवन के सौजन्य से